उच्च आर्थिक सिद्धांत

(ADVANCED ECONOMIC THEORY)

(व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र)

By the same author :

विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन

व्यष्टि अर्थशास्त्र

समष्टि अर्थशास्त्र

अतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र

मौद्रिक अर्थशास्त्र

मुद्रा, बैंकिग एव अतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र

उच्च आर्थिक सिद्धांत

(Advanced Economic Theory)

(व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र)

डॉ. एम. एल. झिंगन
सेवानिवृत्त उप-निदेशक, उच्चतर शिक्षा, हरियाणा

आठवाँ संशोधित एवं परिवर्द्धित सस्करण

वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

आठवें संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत सस्करण मे कुछ सामान्य परिवर्तन एव सशोधन करने के अतिरिक्त दो नये भाग *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार* तथा *आर्थिक विकास और आयोजन* से सबधित कुछ अध्यायो का समावेश किया गया है। भाग छ मे *सार्वजनिक उद्यमो का कीमत निर्धारण* तथा परिशिष्ट मे *माग पूर्वानुमान* नये अध्याय भी शामिल किए गए है।

यह हर्ष का विषय है कि प्राध्यापको एव विद्यार्थियो ने पिछले सस्करण की बहुत सराहना की और उसे सुधारने हेतु अनेक सुझाव दिए जिनका इस सस्करण मे समावेश किया गया है।

आशा है पाठक अपने नवीन सुझावो से अनुगृहित करेगे।

ई-मेल mlkjhingan@rediff com

एम. एल झिंगन

छठे संस्करण की भूमिका

इस पुस्तक का प्रथम सस्करण 1974 मे प्रकाशित हुआ था तथा पचम सशोधित सस्करण 1989 मे। बीच के वर्षों मे यह पुन मुद्रित भी होती रही। यह हर्ष की बात है कि अब यह पुस्तक अनेक विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रमो म अनुशसित है।

प्रस्तुत छठे सस्करण में व्यष्टि अर्थशास्त्र मे हुए नवीन विचारो, धारणाओ और सिद्धातो का समावेश किया गया है। प्राय सभी अध्याय पुन लिखे गये है और उनमे महत्वपूर्ण परिवर्तनो का सयोजन किया गया है। सभी चित्र पुन खींचे गये हैं तथा जटिल चित्रो और स्पष्टीकरणो को सरल किया गया है। कुछ महत्वपूर्ण नए विषय और अध्याय जिनका समाविष्ट किया गया है, वे हैं *भाग एक* मे, अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्यायें, आर्थिक क्रिया का चक्रीय प्रवाह, सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र तथा आर्थिक मॉडल। *भाग दो* मे, क्षतिपूरित माग वक्र, उदासीनता वक्र विश्लेषण म स्थानापन्न और पूरक, और माग सिद्धात मे नूतन विकास सन्निहित एक नया अध्याय जिसमे *CE माग फलन, गत्यात्मक माग* फलन, अनुभवसिद्ध माग फलन LES, IU फलन, व्यय फलन तथा लकास्टर का विशेषता माग सिद्धात का विश्लेषण किया गया है। प्रकटित अधिमान सिद्धात तथा अनिश्चितता या जोखिम चुनावो के आधुनिक उपयोगिता सिद्धात को अब पृथक अध्यायो मे पुन लिखा गया है। *भाग तीन* में नए विषय हैं पैमाने के प्रतिफल बनाम साधन के प्रतिफल, इष्टतम प्रसार पथ का चुनाव, बहुवस्तु फर्म, उत्पादन फलन बनाम उत्पादन प्रक्रिया तथा तकनीकी प्रगति और उत्पादन फलन पर एक नया अध्याय। *भाग चार* मे जो वस्तु-कीमत निर्धारण मे सबद्ध है उसमे लाभ अधिकतमकरण और पूर्ण-लागत निर्धारण सिद्धात और फर्म के व्यवहार-सबधी तथा प्रबधकीय सिद्धात दो नए अध्याय जोडे गए है। इनके अतिरिक्त पूर्ण प्रतियोगिता मे ससाधन आवटन, एकाधिकार मे ससाधन आवटन, एकाधिकारात्मक

प्रतियोगिता मे गैर-कीमत प्रतियोगिता, अल्पाधिकार मे कार्टल और कोटा तथा गैर-कीमत प्रतियोगिता विषयो का अध्ययन किया गया है। *भाग पाच* जो साधन कीमत निर्धारण से सबंधित है उसमे आयलर प्रमेय का अध्याय जोडा गया है तथा शैक्ल के लाभ सिद्धात की विवेचना की गई है। *भाग छ:* मे परेटो इष्टतमता और पूर्ण प्रतियोगिता तथा सामान्य सतुलन मॉडल दो नए अध्यायों का समावेश किया गया हें। सामान्य सतुलन मॉडल अध्याय मे सतुलन के अस्तित्व, स्थिरता और अद्वितीयता की समस्याए, वालरसीय सामान्य सतुलन मॉडल तथा 2 × 2 × 2 ग्राफीय सामान्य सतुलन मॉडल का विश्लेषण किया गया है। आशा है विद्यार्थी इस पूर्णरूप से सशोधित एवं परिवर्द्धत सस्करण से लाभान्वित होगे।

मैं उन सभी विद्यार्थियो और प्राध्यापको के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होने अपनी अमूल्य सम्मतिया भेजने का कष्ट किया। श्री चन्दर कान्त विशेषतौर से धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने इस सस्करण को लिखने मे अनेक प्रकार से सहायता की।

आशा है पाठक अपने रचनात्मक सुझाव प्रेषित करेंगे जिनका हार्दिक स्वागत किया जाएगा।

ए-18, राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-110007

एम. एल झिगन

विषय-सूची

भाग एक
मूल धारणाएँ
(BASIC CONCEPTS)

भाग दो
मांग सिद्धांत
(DEMAND THEORY)

भाग तीन
उत्पादन सिद्धांत
(PRODUCTION THEORY)

भाग चार
वस्तु-कीमत निर्धारण
(PRODUCT PRICING)

भाग पाँच
साधन-कीमत निर्धारण
(FACTOR PRICING)

भाग छ
सामान्य सन्तुलन और कल्याण अर्थशास्त्र
(GENERAL EQUILIBRIUM AND WELFARE ECONOMICS)

भाग सात

समष्टि अर्थशास्त्र
(MACRO ECONOMICS)

भाग आठ
व्यापार-चक्र
(BUSINESS CYCLES)

भाग नौ
अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार
(INTERNATIONAL TRADE)

भाग दस
आर्थिक विकास और आयोजन
(ECONOMIC DEVELOPMENT AND PLANNING)

भाग एक
मूल धारणाएं
(BASIC CONCEPTS)

अध्याय 1

अर्थशास्त्र का क्षेत्र और प्रकृति
(THE NATURE AND SCOPE OF ECONOMICS)

1. प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

प्रस्तुत पुस्तक व्यष्टि अर्थशास्त्र पर है, परन्तु अर्थशास्त्र का क्षेत्र और प्रकृति का विश्लेषण और अध्ययन ध्यान देने योग्य है। अर्थशास्त्र का क्षेत्र और प्रकृति का सबध है अर्थशास्त्र क्या है? क्या यह धन या मानव व्यवहार अथवा दुर्लभ साधनो का अध्ययन है? परन्तु यह मान लिया गया है कि अर्थशास्त्र का सबध साधनो की दुर्लभता से है, जो एक अर्थव्यवस्था की मूल समस्याओ के अध्ययन की ओर ले जाता है "क्या, कैसे और किसके लिए"। यह आगे एक अर्थव्यवस्था मे निर्णय करने वाली इकाइयो के अध्ययन की ओर सकेत करता है जो आर्थिक क्रिया को चलाते है। किसी अन्य शास्त्र की तरह, अर्थशास्त्र की प्रकृति इससे सबधित है कि क्या अर्थशास्त्र विज्ञान है और क्या यह एक यथार्थ अथवा आदर्श विज्ञान है।

2. अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु
(THE SUBJECT MATTER OF ECONOMICS)

अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु एक कठिन प्रश्न है और इस सबध मे अर्थशास्त्रियो मे काफी मतभेद है। केन्ज के नाम लिखे गए अपने एक पत्र मे मार्शल ने इसका तथ्यपूर्ण उत्तर दिया है "यह लगभग हर विज्ञान के बारे मे सच है कि हम उसका जितना अधिक अध्ययन करते है हमे उसका क्षेत्र उतना ही विशाल प्रतीत होने लगता है चाहे वास्तव मे उसका क्षेत्र करीब-करीब अपरिवर्तित ही रहा हो। परन्तु अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु तेजी से बढती रहती है।"[1] मोटे तौर पर, एडम स्मिथ से लेकर पीगू तक अर्थशास्त्र के अधिकाश विचारको ने अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु की या तो यह परिभाषा दी है कि वह ऐसा विज्ञान है जो भौतिक कल्याण के कारणों का अध्ययन करता है, या फिर यह कि वह धन का विज्ञान है। विशेष रूप से, मार्शल ने इसे जीवन के सामान्य व्यापार मे लगे हुए व्यक्तियों के द्वारा धन के उपभोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण तक सीमित रखा जो विचारशील है और वर्तमान सामाजिक, वैधानिक तथा सस्थात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करते है। यह सामाजिक दृष्टि से अवाछित या असाधारण व्यक्तियों—जैसे शराबियों, कजूसो, चोरो इत्यादि—के व्यवहार तथा क्रियाओ का बहिष्कार कर देता है।

पर, प्रो राबिन्स समझता है कि यह विषय-वस्तु इतनी सकुचित है कि इसमे सब तथ्य नहीं आ सकते। उसने यह स्पष्ट करने के लिए कई उदाहरण दिए है कि मनुष्य की कुछ

1 A C Pigou (Ed) *Memorials of Alfred Marshall* 1953

क्रियाओं का एक निश्चित आर्थिक महत्त्व होता है परन्तु उनका भौतिक कल्याण से या तो कोई संबंध होता ही नहीं या फिर नाम-मात्र का ही संबंध होता है। वस्तु या सेवा एक समय पर किन्हीं निश्चित परिस्थितियों के अन्तर्गत मानव कल्याण में वृद्धि कर सकती है परन्तु हो सकता है कि किसी अन्य समय पर भिन्न परिस्थितियों के अन्तर्गत वह ऐसा न कर पाए। इसलिए रॉबिन्स का यह मत है कि किसी वस्तु या सेवा का आर्थिक महत्त्व हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि उसकी कोई कीमत हो। और इस बात के लिए कि उस वस्तु की कोई कीमत हो, यह आवश्यक नहीं कि वह भौतिक कल्याण में वृद्धि करे, बल्कि यह आवश्यक है कि वह दुर्लभ हो और उसमें विकल्पात्मक प्रयोगों में लगाए जा सकने की क्षमता हो। इस प्रकार अर्थशास्त्र धन के उपभोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण से इतना संबंध नहीं रखता जितना कि मानव व्यवहार के एक विशेष पक्ष से—अर्थात् उस पक्ष से जो प्रतियोगी लक्ष्यों में दुर्लभ साधनों के आवंटन से संबंध रखता है। यह आधारभूत समस्या सब समयों और स्थानों पर सभी प्रकार की परिस्थितियों में उपस्थित रहती है। अतः अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु में प्रतियोगितामूलक व्यापार जगत के गृह-प्रबंध की दैनिक क्रियाएँ और सार्वजनिक संसाधनों का प्रबंध शामिल है ताकि साधनों की दुर्लभता की समस्या हल की जा सके।

परन्तु सही तौर से यह कहना संभव नहीं है कि क्या अर्थशास्त्र धन या मानव व्यवहार अथवा दुर्लभ साधनों से संबंधित है। जैसा कि बोल्डिंग का मत है, "इसे 'जीवन के सामान्य व्यापार में मानव का अध्ययन' के रूप में परिभाषित करना बहुत व्यापक है। इसे 'भौतिक धन का अध्ययन' के रूप में परिभाषित करना बहुत संकुचित है। इसकी यह परिभाषा, कि यह मानव मूल्यन का अध्ययन तथा चुनाव है, भी संभवतः बहुत व्यापक है और यह परिभाषा भी कि यह मानव क्रिया के उस भाग का अध्ययन है जिसे मुद्रा के मापदण्ड द्वारा मापा जा सके, बहुत संकुचित है।"[2] इसलिए हम जैकब वाइनर (Jacob Viner) के इस मत से सहमत हैं कि "अर्थशास्त्र वह कुछ है जो अर्थशास्त्री करते हैं।" परन्तु सत्य तो यह है कि दुनिया में कल्याणकारी राज्यों को स्थापित करने की आज की प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए कल्याण परिभाषाएँ अपेक्षाकृत अधिक व्यावहारिक हैं और जबकि दुर्लभता की परिभाषाएँ अधिक वैज्ञानिक हैं। एक संतोषजनक परिभाषा में अर्थशास्त्र की इन दोनों विचारधाराओं का समन्वय होना जरूरी है। इस प्रकार हम अर्थशास्त्र की यह परिभाषा दे सकते हैं कि **अर्थशास्त्र वह सामाजिक विज्ञान है जो स्थिरता और विकास को प्राप्त करने तथा उसे बनाए रखने के लिए दुर्लभ साधनों के उचित प्रयोग तथा आवंटन से संबंध रखता है।**

अब हम रॉबिन्स की परिभाषा का विस्तृत अध्ययन करते हैं।

3. रॉबिन्स की दुर्लभता परिभाषा (ROBBINS' SCARCITY DEFINITION)

1932 में अपनी रचना *Nature and Significance of Economic Science* के साथ रॉबिन्स ने पूर्ववर्ती परिभाषाओं की तार्किक असंगतियों तथा अपूर्णताओं को ही प्रकट नहीं किया बल्कि अपने अर्थशास्त्र के सिद्धान्त को भी प्रस्थापित किया है। रॉबिन्स के शब्दों में, "अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो लक्ष्यों तथा विकल्पात्मक प्रयोग वाले दुर्लभ साधनों के बीच संबंधात्मक रूप में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है।"[3] यह परिभाषा मानव व्यवहार द्वारा शासित निम्नलिखित संबद्ध धारणाओं

2 K E Boulding *Economic Analysis*, p 3

3 "Economics is the science which studies human behaviour as a relationship between ends and scarce means which have alternative uses "—Robbins *op cit* p 16

पर आधारित है

(1) **मानव व्यवहार का अध्ययन है**—अर्थशास्त्र एक ऐसा विज्ञान है जो मानव व्यवहार के एक पहलू से सबद्ध है जो अर्थशास्त्र को अन्य सामाजिक विज्ञानों जैसे न्यायशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, आदि से भिन्न करता है। वह पहलू है—सीमित साधनो से अधिकतम सतुष्टि प्राप्त करने हेतु उनके वैकल्पिक चुनाव करना।

(2) **साध्य या आवश्यकताएँ अगणित हैं**—जब एक विशेष आवश्यकता तृप्त हो जाती है, तो उसके स्थान पर दूसरी उत्पन्न हो जाती है। आवश्यकताओ की बहुलता के कारण मनुष्यो के लिए अनथक कार्य करते रहना आवश्यक हो जाता है, परन्तु वे उन सब आवश्यकताओ को तृप्त नहीं कर पाते।

(3) **समय और साधन दुर्लभ हैं**—असीमित आवश्यकताओ के तृप्त न हो सकने का स्पष्ट कारण उन साधनो की दुर्लभता है जिन पर मानव का अधिकार है। इन आवश्यकताओं को तृप्त करने के लिए समय और साधन दुर्लभ या सीमित है।

(4) **दुर्लभ साधनों को विकल्पात्मक प्रयोगों मे लगाया जा सकता है।** राबिन्स के अनुसार "गुणात्मक दृष्टि से मिलते-जुलते साध्यों को प्राप्ति के लिए तकनीकात्मक दृष्टि से समरूप साधनो का भिन्न-भिन्न समयों पर व्यवहार उनके विकल्पात्मक प्रयोग है।" चावल, गन्ना, गेहूँ, मक्का इत्यादि उगाने के लिए भूमि का प्रयोग हो सकता है। इसी प्रकार, फैक्टरियो, रेलों मे और बिजली पैदा करने इत्यादि के लिए कोयले का प्रयोग हो सकता है। एक निश्चित समय पर, एक दुर्लभ स्रोत का एक साध्य के लिए प्रयोग, उसके किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग को रोक देता है।

(5) **चुनाव की समस्या पाई जाती है**—साध्य विभिन्न महत्त्व के होते है जिनका आवश्यक परिणाम यह होता है कि चुनाव की समस्या खडी हो जाती है—अर्थात उन प्रयोगो का चुनाव करने की समस्या जिनमें दुर्लभ स्रोतो को लगाया जा सकता है। राबिन्स लिखता है कि "जब साध्यो की प्राप्ति के लिए काल और साधन सीमित और विकल्पात्मक व्यवहार मे लगाए जा सकते हो, और महत्त्व के क्रम से साध्यो मे अन्तर किया जा सकता हो, तो व्यवहार निश्चय से चुनाव का रूप ले लेता है। एक साध्य की प्राप्ति के लिए जिसमे काल और दुर्लभ साधनो की आवश्यकता हो, ऐसे हर कार्य मे अन्य साध्यों की पूर्ति के लिए, उनके प्रयोग का परित्याग सन्निहित रहता है। इसका एक आर्थिक पक्ष है विभिन्न आवश्यक्ताओ की पूर्ति के लिए साधनो की दुर्लभता मानव व्यवहार की एक लगभग सर्वव्यापक स्थिति है।"

(6) **अर्थशास्त्र का सबध साधनो के आबटन से है**—अर्थशास्त्र व्यवहार के उन सब भेदो से सम्बन्ध रखता है जिनमे चुनाव की समस्या पाई जाती है। यह स्पष्ट रूप से आर्थिक पक्ष को तकनीकी, राजनैतिक, ऐतिहासिक तथा अन्य पक्षों से अलग कर देता है। दिए हुए ससाधनों से एक कालिज की बिल्डिंग कैसे बनाई जाए, यह समस्या तकनीकी है। परन्तु ससाधनो के श्रेष्ठतम सयोग के चुनाव की समस्या या फिर आडिटोरियम, लाइब्रेरी, प्रयोगशाला, अध्यापन कक्ष, साइकिल शैड, और कैन्टीन इत्यादि के बीच दिए हुए बिल्डिंग साधनों के आबटन की समस्या, आर्थिक है। इसलिए, अर्थशास्त्र मूल्यन (valuation) की प्रक्रिया से सबद्ध है जिसमे वस्तुओं और सेवाओ के उत्पादन और वितरण द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति का अध्ययन किया जाता है।

इस प्रकार, अर्थशास्त्र निश्चय से एक मूल्यन प्रक्रिया है, जिसका सम्बन्ध अनेक लक्ष्यो तथा दुर्लभ साधनो को उनके महत्त्व के क्रम से विकल्पात्मक प्रयोगो मे लगाए जाने से है। अन्तिम विश्लेषण मे आर्थिक समस्या अनेक लक्ष्यो के सम्बन्ध मे दुर्लभ साधनो की मितव्ययिता की समस्या है।

राबिन्स की परिभाषा की श्रेष्ठता (Superiority of Robbins' Definition)—अन्य परिभाषाओ से राबिन्स की परिभाषा कई तरह से श्रेष्ठ है।

(क) विश्लेपणात्मक—इसमे 'भौतिक कल्याण' और 'कल्याण के भौतिक आवश्यक गुण' जैसी अस्पष्ट शब्दावलियाँ नहीं है जिनके कारण नव-क्लासिकी प्रस्थापनाएँ वर्गात्मक (classificatory) बन गई। थीं। इसलिए उसकी परिभाषा विश्लेपणात्मक है क्योंकि "वह व्यवहार के कुछ निश्चित भेदों को चुन लेने का प्रयत्न नहीं करती, बल्कि व्यवहार के एक विशेष पक्ष पर, दुर्लभता के प्रभाव द्वारा स्थापित रूप पर ध्यान केन्द्रित करती है।"

(ख) वैज्ञानिक—राबिन्स इस बात पर बल देता है कि अर्थशास्त्र एक विज्ञान है। यह "ज्ञान का एक व्यवस्थित क्षेत्र है जो अपने गौरवपूर्ण स्वामी को ऐसा ढाँचा प्रदान करता है जिसके भीतर अध्ययन से सम्बन्धित समस्याओं का विश्लेषण किया जा सके।" अन्य विशुद्ध विज्ञानों की भाँति अर्थशास्त्र भी साध्यों के प्रति तटस्थ रहता है। साध्य श्रेष्ठ हो या निकृष्ट, महत्त्वपूर्ण हो या साधारण, आर्थिक हो या आर्थिकेतर—उस रूप मे अर्थशास्त्र को उनसे कोई सरोकार नहीं। अर्थशास्त्र का नीतिशास्त्र से कोई वास्ता नहीं क्योंकि राबिन्स के अनुसार, "अर्थशास्त्र निर्णय-योग्य तथ्यो पर विचार करता है, जबकि नीति-शास्त्र मूल्यनों और कर्त्तव्यों पर। जाँच के दोनों क्षेत्र विवरण के एक ही धरातल पर नहीं है।"

(ग) मूल्यन प्रक्रिया—राबिन्स ने अर्थशास्त्र को एक मूल्यन प्रक्रिया बना दिया है। जब कभी साध्य (आवश्यकताएँ) असीमित और साधन दुर्लभ होते है, तो वे एक आर्थिक समस्या उत्पन्न कर देते है। ऐसी स्थिति मे इस बात की कोई आवश्यकता नहीं रहती कि भौतिक कल्याण के कारणो के अध्ययन के रूप में अर्थशास्त्र की परिभाषा दी जाए। धन के उत्पादन और वितरण की समस्या भी विभिन्न साध्यों के सम्बन्ध में दुर्लभ स्रोतों की मितव्ययिता की समस्या है।

(घ) सर्वव्यापक—राबिन्स द्वारा दी गई अर्थशास्त्र की दुर्लभता परक परिभाषा मे सर्वव्यापकता है। यह राबिन्सन क्रूसो अर्थव्यवस्था पर भी उतनी ही लागू होती है जितनी कि एक साम्यवादी अर्थव्यवस्था और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पर। जैसाकि राबिन्स ने स्वयं कहा है, "हमारा अर्थशास्त्र वस्तु विनिमय के अन्तर्गत भी और मुद्रा विनिमय के अन्तर्गत भी व्यक्तिगत तथा समाज गत मानव-व्यवहार पर भी, पूँजीवादी तथा समाजवादी समाज के अन्तर्गत भी समान रूप से सही ठहरता है।" इसके नियम जीवन के नियमों के समान है और सब कानूनी तथा राजनैतिक ढाँचे से मुक्त है।

इस सब के परिणामस्वरूप अर्थशास्त्रियों ने राबिन्स की परिभाषा को युग का 'प्रमुख साहित्यिक सिद्धान्त' बताया।

राबिन्स की परिभाषा की आलोचनाएं (Criticisms of Robbins' Definition)

राबिन्स ऐसे आलोचकों से बच नहीं पाया जिन्होंने "व्यर्थ का पडिताऊपन" कह कर उसकी भर्त्सना की है जबकि दूसरे ने उस पर 'व्यवहारवादिता' का आरोप लगाया है। उसके सब से बडे आलोचकों मे से आर डब्ल्यू सोतर (R W Souter) ने उसका चित्रण करते हुए कहा है कि "वह वास्तविकता के स्थान पर स्थैतिक शाब्दिक तर्क तथा 'रूप' का अर्पण करने वाला भ्रष्ट जादूगर है।"[4] टी पार्सन्स (T Parsons), लिण्डले फ्रेजर (Lindley Fraser), ए एल मेक्फार्ड (A L Macfie) तथा बारबरा वूटन (Barbara Wootton), इस क्षेत्र में उसके कुछ अन्य विरोधी है। इन्होंने तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने निम्नलिखित आधारों पर राबिन्स की परिभाषा की आलोचना की है।

(1) लक्ष्यों तथा साधनों का सबध कृत्रिम (Artificial relation between ends and means)—कुछ आलोचक राबिन्स द्वारा प्रस्तुत किए गए लक्ष्यों तथा दुर्लभ साधनों के संबध को 'कृत्रिम चित्र' बताते है। अपनी प्रस्थापना मे राबिन्स 'लक्ष्यों की प्रकृति' तथा उससे सबद्ध

4 R W Souter, The Nature and Significance of Economic Science in Recent Discussion *Q J E* May 1933 [Italics mine]

कठिनाइयों की पूर्ण रूप से व्याख्या करने मे असफल रहा है। उसने मानव लक्ष्यो को "उस आचरण की प्रवृत्तियाँ बताया है जिनकी व्याख्या की जा सकती है और जिन्हे समझा जा सकता है।" लक्ष्यो के इस दृष्टिकोण मे उद्देश्य के उस तत्त्व का बहिष्कार कर दिया गया है जोकि मानव लक्ष्यों का आधारभूत तत्त्व है। इस प्रकार साध्य मानव से बाहर है और साधनो से भिन्न नहीं है। यह राबिन्स के लक्ष्य-साधन चित्र को कृत्रिम बना देता है और इसलिए राबिन्स पर व्यवहारवादिता तथा प्रत्यक्षवादिता का आरोप लगाया गया है।

(2) **निश्चित लक्ष्यों की धारणा अमान्य** (Definite ends not acceptable)—राबिन्स की 'निश्चित लक्ष्यों की धारणा भी अमान्य है, क्योंकि तत्काल लक्ष्य आगे अन्तिम साध्यो के मध्यवर्ती हो सकते है। *वास्तव मे, लक्ष्यों को साधनो से अलग करना कठिन है। तत्काल लक्ष्य के साधन हो* सकते है और साधन अपने आप मे पूर्ववर्ती कार्यो के लक्ष्य हो सकते है। लक्ष्य-साधनो का यह द्वि-भाजन (dichotomy) राबिन्स के मितव्ययिता के विचार की स्थापना की सत्यता के सम्बन्ध मे सदेह उत्पन्न करता है।

(3) **अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र से अलग नहीं** (Economics not separate from ethics)—उसकी नैतिक तटस्थता के लिए भी अर्थशास्त्रियों ने राबिन्स की परिभाषा की आलोचना की है। राबिन्स का यह कथन अनावश्यक है कि "अर्थशास्त्र लक्ष्यो के बीच तटस्थ रहता है।" भौतिक विज्ञानो के विपरीत, अर्थशास्त्र भौतिक पदार्थ से नहीं बल्कि मानव व्यवहार से सम्बन्ध रखता है। इसलिए, अर्थशास्त्रियों के लिए यह सभव नहीं कि अर्थशास्त्र को नीतिशास्त्र से अलग कर दे। जैसा कि प्रोफेसर पीगू ने लिखा है, "आर्थिक विज्ञान प्रमुख रूप से न तो बौद्धिक कलाबाजी और न ही सत्य को उसके अपने निमित्त जीतने के साधन के रूप मे है बल्कि इसलिए मूल्यवान है कि वह नीतिशास्त्र की कर-सेविका तथा व्यवहार की दासी है।"

(4) **मानव कल्याण की उपेक्षा** (Neglect of human welfare)—सब समस्याओ को हल करने के लिए लक्ष्यों के सम्बन्ध मे दुर्लभ साधनो की मितव्ययिता का राबिन्स का सिद्धान्त केवल मूल्यन समस्या है। इससे अर्थशास्त्र का अधिकार क्षेत्र सीमित हो गया है। बोल्डिंग के अनुसार, "प्रोफेसर राबिन्स मूल्यन समस्या के रूप मे अर्थशास्त्र की परिभाषा देकर अर्थशास्त्र को कल्याण का अध्ययन करने के उसके अधिकार से वचित करता प्रतीत होता है।"[5] कल्याण के अध्ययन के बिना अर्थशास्त्र ज्ञान का अधूरा अग रह जाएगा, जिसकी राबिन्स उपेक्षा करता है।

(5) **अर्थशास्त्र केवल प्रत्यक्ष विज्ञान नहीं** (Economics not a positive science only)—मूल्यन समस्या पर सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित करके, राबिन्स ने अर्थशास्त्र को एक यथार्थ विज्ञान बना दिया है। परन्तु सोतर, पार्सन्स, वूटन, मेक्फाई जैसे अर्थशास्त्री इसे यथार्थ विज्ञान ही नहीं बल्कि एक आदर्श विज्ञान भी मानते है। वे राबिन्स से इस बात पर सहमत नहीं है कि "यथार्थ तथा आदर्श अध्ययनो के बीच एक स्थिर तार्किक खाडी रहती है जिसे न तो कोई प्रवीणता (ingenuity) छुपा सकती है और न ही स्थान या काल की समीपता पार कर सकती है।" मेक्फाई के अनुसार "अर्थशास्त्र मूलरूप से एक आदर्श विज्ञान है, न कि रासायनिकी की भाँति केवल एक यथार्थ विज्ञान है।"[6]

(6) बहुत सकुचित एव व्यापक (Very narrow and broad)—राबिन्स की परिभाषा को राबर्टसन (Robertson) "एक साथ बहुत सकुचित तथा बहुत व्यापक" मानता है। यह अत्यन्त सकुचित तो इसलिए है क्योंकि यह उन सगठनात्मक दोषो को शामिल नहीं करती, जिनसे साधन निष्क्रिय हो जाते है। दूसरी ओर, दुर्लभ साधनो को दिए हुए लक्ष्यो मे विभाजित करने की समस्या

5 K E Boulding *Economic Analysis* Part I 3rd Ed
6 A L Macfie *An Essay on Economy and Value*

ऐसी है जो उन क्षेत्रों में भी उत्पन्न हो सकती है जो अर्थशास्त्र के अधिकार-क्षेत्र के बाहर पड़ते हैं। हो सकता है कि एक सदस्य के घायल हो जाने पर, खेल के मैदान में एक टीम के कप्तान को या युद्ध के मैदान में सेना के कमाण्डर को, दुर्लभ साधनों की समस्या का सामना करना पड़ जाए। इस प्रकार, राबिन्स की दुर्लभता-स्थापना अनार्थिक समस्याओं पर भी लागू हो सकती है और अर्थशास्त्र के क्षेत्र को बहुत व्यापक बना देती है।

(7) अर्थशास्त्र केवल व्यक्तिगत व्यवहार से संबद्ध नहीं (Economics not concerned only with individual behaviour)—राबिन्स की अर्थशास्त्र सम्बन्धी धारणा निश्चय से व्यष्टि विश्लेषण है। यह व्यक्तिगत व्यवहार से सम्बन्धित है—अर्थात् उसके अधिकारगत सीमित साधनों के साथ लक्ष्यों की मितव्ययिता से। परन्तु अर्थशास्त्र अकेले व्यक्तिवादी लक्ष्यों तथा साधनों से ही सम्बन्ध नहीं रखता। इसे राबिन्स क्रूसो अर्थव्यवस्था से कुछ सरोकार नहीं। हमारी आर्थिक समस्याएँ व्यक्तिगत व्यवहार के बजाय सामाजिक व्यवहार से संबंध रखती हैं। इसलिए राबिन्स की परिभाषा क्लासिकी परम्परा में दब गई है और अर्थशास्त्र की समष्टि आर्थिक प्रकृति पर बल देने में असफल है।

(8) सामान्य बेरोजगारी की समस्या का विश्लेषण करने में असमर्थ (Failure to analyse the problem of general unemployment)—राबिन्स के दुर्लभता सिद्धान्त की व्यावहारिक उपयोगिता नहीं के बराबर है क्योंकि वह साधनों के सामान्य बेरोजगारी के कारणों का विश्लेषण करने में असमर्थ रहता है। साधनों की दुर्लभता के कारण नहीं बल्कि उनकी बहुतायत से अल्प-बेरोजगारी उत्पन्न होती है। इसलिए केवल एक पूर्ण रोजगार अर्थव्यवस्था में ही विकल्पात्मक प्रयोगों के बीच दुर्लभ साधनों के आवंटन की समस्या उत्पन्न होती है। इस प्रकार राबिन्स की दुर्लभता परिभाषा एक पूर्ण रोजगार की अर्थव्यवस्था पर लागू होती है जो वास्तविक जगत की आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए अवास्तविक है।

(9) अल्पविकसित देशों की समस्याओं का समाधान करने में असमर्थ (Inadequate to solve the problems of underdeveloped countries)—राबिन्स का अर्थ विषयक दृष्टिकोण अल्पविकसित देशों की समस्याओं का कोई हल प्रस्तुत नहीं करता। अल्पविकसित देशों की समस्याएँ प्रयोग न किए गए ससाधनों के विकास से सम्बन्ध रखती हैं। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में ससाधनों की बहुतायत होती है परन्तु उनका उपयोग किया ही नहीं जाता, या फिर अल्प या गलत ढंग से उपयोग होता है। पर राबिन्स की दुर्लभता प्रस्थापना साधनों को दिया हुआ मान लेती है और विकल्पात्मक प्रयोगों में उनके आवंटन का विश्लेषण करती है।

(10) वृद्धि और स्थिरता की समस्याओं की उपेक्षा (Neglects the problems of growth and stability)—राबिन्स की परिभाषा आधुनिक अर्थशास्त्र की दो महत्त्वपूर्ण वृद्धि और स्थिरता की समस्याओं की उपेक्षा करती है।

ऊपर वर्णित त्रुटियों के कारण राबिन्स की परिभाषा अपर्याप्त और भ्रामक है।

4. निष्कर्ष (CONCLUSION)

साध्य-साधन द्वि-भाजन में कमियां, राबिन्स की परिभाषा में कल्याण पक्ष का अभाव, और इस जगत में ससाधनों की दुर्लभता, श्रीमती वूटन के शब्दों में, "प्रोफेसर राबिन्स द्वारा परिभाषित और क्लासिकी विश्लेषण में सकलित तथा समसामयिकों द्वारा परिवर्द्धित तथा परिष्कृत अर्थशास्त्र के अध्ययनों के समस्त ग्रन्थ समूह को व्यर्थ, असबद्ध तथा अवास्तविक"[7] नहीं बनने देते। इसलिए, यह

7 B Wootton, *Lament for Economics*

बात आश्चर्यजनक नहीं कि अर्थशास्त्रियों ने थोड़ा-बहुत परिवर्तन करके राबिन्स के अर्थ में अर्थशास्त्र की परिभाषा दी है। स्टोनियर तथा हेग की अस्पष्ट परिभाषा के अनुसार, अर्थशास्त्र "मूल रूप से दुर्लभता तथा दुर्लभता से उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन" है।[8] वे इस विवाद में नहीं पड़ते कि अर्थशास्त्र का सम्बन्ध व्यक्तिगत या सामाजिक व्यवहार से है। प्रो स्किटोव्स्की के अनुसार, "अर्थशास्त्र सीमित साधनों के प्रबन्ध से सम्बन्ध रखने वाला सामाजिक विज्ञान है।"[9] इसी प्रकार, प्रोफेसर फर्गूसन के शब्दों में "अर्थशास्त्र, प्रतिद्वन्द्वी लक्ष्यों में दुर्लभ भौतिक तथा मानवीय साधनों के मितव्ययी आवटन का अध्ययन है—अर्थात ऐसा आवटन जो एक निश्चित इष्टतम या अधिकतम लक्ष्य की पूर्ति करता है।"[10] परन्तु राबिन्स अर्थशास्त्र को मानव-व्यवहार का विज्ञान मानता है, उसके विपरीत ये दुर्लभता की प्रस्थापनाएँ अर्थशास्त्र को एक सामाजिक विज्ञान मानती हैं। पर, प्रो सैम्यूलसन द्वारा इन शब्दों में दी गई दुर्लभता की परिभाषा अधिक व्यापक है "अर्थशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि मुद्रा के प्रयोग या प्रयोग के बिना, वस्तुओं के कालगत उत्पादन के लिए, व्यक्ति तथा समाज उत्पादक ससाधनों के नियोजन का किस प्रकार चुनाव करते हैं और समाज के विभिन्न लोगों तथा ग्रुपों में उनके अब तथा भविष्य में उपभोग के लिए किस प्रकार वितरण करते हैं।"[11]

इस प्रकार, राबिन्स की परिभाषा सबसे मान्य है जो हमें एक अर्थव्यवस्था की प्रमुख समस्याओं के अध्ययन की ओर ले जाती है।

5. एक अर्थव्यवस्था की प्रमुख अथवा केन्द्रीय समस्याएं (THE CENTRAL PROBLEMS OF AN ECONOMY)

एक अर्थव्यवस्था की प्रमुख समस्या दुर्लभ ससाधनों का मितव्यय (economise) करने में है। इस अर्थ में, अर्थशास्त्र दुर्लभ साधनों के वैकल्पिक प्रयोगों के आवटन का अध्ययन है। दुर्लभता की समस्या इसलिए उत्पन्न होती है मानवीय आवश्यकताएं असीमित हैं और उनको पूरा करने के साधन सीमित हैं। यह चुनाव की समस्या की ओर ले जाती है—वैकल्पिक प्रयोगों का चुनना जिनमें दुर्लभ साधन लगाए जा सकते हों। दुर्लभ साधनों के आवटन की समस्या का हल कीमत-निर्धारण प्रणाली में विद्यमान है जो प्रत्येक अर्थव्यवस्था में पाई जाती है चाहे वह पूंजीवादी, समाजवादी या मिश्रित हो। इसके लिए आर्थिक व्यवस्था को चार मूल समस्याएं अवश्य हल करनी चाहिए।

1 **क्या और कितनी मात्राओं में उत्पादित करना है?** (What to produce and in what quantities)—एक अर्थव्यवस्था की प्रथम केन्द्रीय समस्या यह है कि किन-किन वस्तुओं का और कितनी-कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए। इसमें अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन की बनावट का दुर्लभ साधनों के आवटन से सबद्ध समस्या भी पाई जाती है। क्योंकि साधन दुर्लभ होते हैं इसलिए समाज को उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं के बारे में निर्णय लेना होता है, जैसे गेहूँ, कपड़ा, सड़कें, दूरदर्शन, विद्युत, भवन, आदि। एक बार वस्तुओं की किस्मों के बारे में निर्णय कर लिया

8 W Stonier and D Hague *A Text Book of Economic Theory* p 3
9 T Scitovsky *Welfare and Competition* p 3
10 C E Ferguson, *Micro-economic Theory* p 1
11 Economics is the study of how men and society choose with or without the use of money to employ scarce productive resources to produce various commodities over time and distribute them for consumption now and in the future among various people and groups in society"—P Samuelson *Economics* (7th Ed), p 6

जाता है, तब उनकी मात्राओं के बारे में निर्णय लेना होता है। अर्थात् कितने क्विंटल गेहूँ, कितने लाख मीटर कपड़ा, कितने दूरदर्शन सैट, कितने लाख किलोवाट विद्युत, कितने भवन, आदि। क्योंकि अर्थव्यवस्था के साधन दुर्लभ होते हैं, इसलिए वस्तुओं की किस्मों एवं मात्राओं के बारे में निर्णय, समाज उनके लिए प्राथमिकताओं या अधिमानों के आधार पर लेता है। यदि समाज वर्तमान में अधिक उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन को प्राथमिकता देता है, तो वह भविष्य में उनकी कम मात्रा लेगा। पूँजी वस्तुओं को वर्तमान में अधिक प्राथमिकता देने का अभिप्राय है कि अब कम उपभोक्ता वस्तुएँ लेना और भविष्य में अधिक। क्योंकि साधन दुर्लभ है, इसलिए यदि कुछ वस्तुएं अधिक मात्राओं में उत्पादित की जाती है, तो कुछ दूसरी थोड़ी मात्राओं में उत्पादित करनी पड़ेगी।

2 कैसे उत्पादित करना है? (How to produce?)—एक अर्थव्यवस्था की दूसरी समस्या यह निर्णय करना है कि वस्तुओं और सेवाओं को कैसे उत्पादित करना है, किन संयोगों (combinations) के साथ और किन उत्पादन की विधियों से। यह समस्या अर्थव्यवस्था में साधनों की उपलब्धता पर निर्भर करती है। फिर, एक वस्तु या सेवा उत्पादन के साधनों के विभिन्न संयोगों द्वारा उत्पादित की जा सकती है। यदि भूमि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, तो विस्तृत खेती करनी चाहिए। यदि भूमि दुर्लभ है, तो गहन-खेती विधियां प्रयोग करनी चाहिए। यदि श्रम अधिक है, तो श्रम-गहन तकनीकें प्रयोग की जाएगी, जबकि श्रम की कमी है, तो पूंजी-गहन तकनीकें प्रयोग की जाएगी। प्रयोग की जाने वाली तकनीक उत्पादित की जाने वाली वस्तु या सेवा की किस्म और मात्रा पर निर्भर करती है। पूंजी वस्तुएं और अधिक उत्पादन करने के लिए महंगी मशीनें और जटिल तकनीकों की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, सरल उपभोक्ता वस्तुओं और कम उत्पादन के लिए सापेक्षतया छोटी तथा सस्ती मशीनें एवं सरल तकनीकें चाहिए। यह निर्णय लेते समय कि वस्तुएं और सेवाएं कैसे उत्पादित की जाएं, अर्थव्यवस्था को साधनों और उत्पादन की तकनीकों के वे संयोग चुनने चाहिए जिनसे एक वस्तु या सेवा की एक इकाई का उत्पादन करने की लागत न्यूनतम हो, जिनसे साधनों का दक्ष आवंटन हो और अर्थव्यवस्था में समग्र उत्पादकता बढ़े।

3 किसके लिए उत्पादन किया जाए? (For whom to produce?)—तीसरी मूल समस्या जिसके बारे में निर्णय लेना है वह समाज के सदस्यों के बीच वस्तुओं के आवंटन की है। उपभोक्ता वस्तुओं को कैसे वितरित किया जाए? पूंजी वस्तुएं कैसे वितरित की जाएं? व्यक्तियों को उपभोक्ता वस्तुओं का विनिमय के आधार पर वितरण किया जाता है। जिस किसी के पास खरीदने के साधन हैं, वह उन्हें खरीद सकता है। एक परिवार जिसकी मासिक आय 12000 रु है, वह किसी अन्य परिवार जिसकी मासिक आय 2000 रु है की तुलना में प्रत्येक वस्तु की अधिक मात्रा खरीद सकता है। इस प्रकार, एक अमीर व्यक्ति को जो वस्तुएं चाहिए वह अधिक ले सकता है और एक गरीब व्यक्ति कम वस्तुएं ले सकेगा जिनकी उसे आवश्यकता है।

एक परिवार द्वारा उत्पादन के लिए प्रदान की गई श्रम, भूमि और पूंजी के रूप में साधनों की मात्राएं और मार्किट में जो उनकी कीमतें प्राप्त होती हैं, आय के वितरण को निर्धारित करती हैं। कराधान और हस्तांतरण भुगतानों (transfer payments) द्वारा सरकार आय वितरण को प्रभावित करती है। यदि कर भारी हैं, तो करदाताओं के हाथ में प्रयोज्य (disposable) आय कम होती है। जो सरकार से सामाजिक सुरक्षा (social security) भुगतान प्राप्त करते हैं, उनके लिए आय बढ़ती है। कर और सामाजिक सुरक्षा भुगतान आय असमानताओं को कम करते हैं। इस प्रकार अर्थव्यवस्था को ऐसी वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए और आय वितरण के बारे में ऐसे निर्णय लेने होते हैं, जो अधिकतम सामाजिक कल्याण लाते हैं।

4 **कितनी दक्षता के साथ साधनों का उपयोग किया जा रहा है?** (How efficiently are the resources being utilised?)—आगे, समाज को यह देखना है कि क्या वह साधनों का पूर्ण उपयोग कर रहा है या नहीं। यदि अर्थव्यवस्था के साधन बेकार पडे हुए है, तो उसे ऐसे तरीके ढूढने होते है जिनसे उनका पूर्ण उपयोग हो। यदि श्रम, भूमि या पूजी आदि साधनों का बेकार रहना कु-आवटन के कारण है, तो समाज को ऐसे मौद्रिक, राजकोषीय और भौतिक उपाय अपनाने पड़ेगे जिनसे उनका कु-आवटन ठीक हो। जिस अर्थव्यवस्था मे उपलब्ध साधन पूरी तरह से उपयोग किए जा रहे है, वहा तकनीकी दक्षता या पूर्ण रोजगार की स्थिति होती है। उसे इस स्तर तक कायम रखने के लिए, अर्थव्यवस्था को सदैव कुछ वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन का त्याग करके कुछ अन्य का उत्पादन बढाना चाहिए।

5 **क्या अर्थव्यवस्था वृद्धि कर रही है या गतिहीन है?** (Is the economy growing or stagnant?)—अन्तिम समस्या यह मालूम करने की है कि क्या अर्थव्यवस्था के ससाधन समय के साथ बढ रहे है या गतिहीन है। यदि अर्थव्यवस्था गतिहीन है या धीरे-धीरे वृद्धि कर रही है, तो इसकी वृद्धि को तीव्र करना चाहिए। ऐसा पूजी निर्माण की ऊची दर द्वारा सभव है, जिसमे नवप्रर्वतन या अधिक दक्ष उत्पादन तकनीके अपनाकर वर्तमान पूजी पदार्थों को नए और अधिक उत्पादकीय पूजी पदार्थों से प्रतिस्थापित करना है।

निष्कर्ष (Conclusion)

एक अर्थव्यवस्था की ये सभी केन्द्रीय समस्याए परस्पर सबधित और परस्पर निर्भर है। पहली तीन व्यष्टि अर्थशास्त्र से और अन्तिम दो समष्टि अर्थशास्त्र से सबद्ध है। पहले वर्ग की समस्याए स्थैतिक अर्थव्यवस्था की है जब कि दूसरे वर्ग की गत्यात्मक अर्थव्यवस्था की है। ये साधनों की दुर्लभता और लक्ष्यों की अधिकता की मूल समस्याओं से उत्पन्न होती है जो साधनों की मितव्ययिता या चुनाव की समस्या की ओर ले जाती है। इन पाचो मूल समस्याओं[12] का हल कीमत तत्र है जिसकी विवेचना आगे अध्याय 7 मे की गई है।

6 समाज की उत्पादन सभावनाए या उत्पादन सभावना वक्र (SOCIETY'S PRODUCTION POSSIBILITIES OR PRODUCTION POSSIBILITY CURVE)

एक अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्याओ को एक उत्पादन सभावना वक्र द्वारा चित्रित किया जाता है। उत्पादन सभावना वक्र एक विश्लेषणात्मक औजार है, जिसका प्रयोग एक काल्पनिक अर्थव्यवस्था मे चुनाव की समस्या या मितव्यय करन (economising) की प्रक्रिया की व्याख्या करने के लिए किया जाता है।

उत्पादन सभावना वक्र निम्न मान्यताओ पर आधारित हे

(1) अर्थवयवस्था मे केवल दो वस्तुए X (उपभोक्ता) और Y (पूजी) विभिन्न अनुपातों मे उत्पादित की जाती है।

(2) दोनों मे से कोई एक या दोनो वस्तुए उत्पादित करने के लिए समान साधन प्रयोग किए जा सकते है, जिन्हे दोनों के बीच बिना किसी रोकटोक के शिफ्ट किया जा सकता है।

(3) साधनों की पूर्तिया स्थिर है। परन्तु सीमाओं के अन्दर उन्हे दोनो वस्तुओं के उत्पादन के

12 अर्थव्यवस्था की इन समस्याओं के बारे मे अर्थशास्त्री एक मत नहीं है। सेम्यूलसन तीन, स्टिगलर चार लैफ्टविच पाच और लिप्सी छ की विवेचना करते है।

लिए पुन आवटित किया जा सकता है।

(4) उत्पादन तकनीकें दी हुई और स्थिर है।

(5) अर्थव्यवस्था के ससाधन पूर्ण रोजगार मे लगे है और तकनीकी तौर से दक्ष है।

(6) समय अवधि अल्प है।

ये मान्यताएँ दी हुई होने पर हम एक फर्म की उपकल्पित उत्पादन सभावना अनुसूची तालिका 1.1 मे लेते है।

तालिका 1.1 उत्पादन सभावना अनुसूची

सभावना	X का उत्पादन	Y का उत्पादन
P	0	250
B	100	230
C	150	200
D	200	150
P_1	250	0

इस अनुसूची में P तथा P_1 ऐसी सभावनाएँ है जिनमें कि फर्म एक साधन की निश्चित मात्राओ से या तो Y की 250 इकाइयाँ या X की 250 इकाइयाँ उत्पादित कर सकती है। परन्तु मान्यता यह है कि फर्म दोनो ही वस्तुओ का उत्पादन करे। दोनो वस्तुओ का उत्पादन करने के लिए उसके पास कई सभावनाएँ है, जैसे B, C एव D। सभावना B मे, फर्म वस्तु X की 100 इकाइयाँ और Y की 230 इकाइयाँ उत्पादित कर सकती है और सभावना C मे, X की 150 इकाइयाँ और Y की 200 इकाइयाँ तथा D सभावना मे, X की 200 और Y की 150 इकाइयाँ उत्पादित कर सकती है। उत्पादन-सभावना अनुसूची यह दर्शाती है कि जब फर्म वस्तु X की अधिक इकाइयो का उत्पादन करती है तो वह वस्तु की उत्तरोत्तर अधिक इकाइयो का परित्याग करती जाती है, अर्थात् दी हुई साधन की अधिक मात्राएँ Y से हटा कर उनका X वस्तु के उत्पादन मे प्रयोग करती है। उदाहरणार्थ, B से C सभावना पर पहुँचने के लिए फर्म वस्तु X की 50 इकाइयाँ अधिक उत्पादित करने के लिए वस्तु Y की 30 इकाइयो का त्याग करती है जबकि D सभावना में X की उतनी ही इकाइयों के लिए Y की 50 इकाइयों का त्याग करती है।
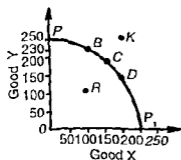
चित्र 1.1

तालिका 1.1 को चित्र 1.1 मे रेखांकित किया गया है। क्षैतिज अक्ष पर Y वस्तु की इकाइयाँ और समानातर अक्ष पर X वस्तु की इकाइयाँ ली गई है। PP_1 वक्र दोनो वस्तुओ के विभिन्न सभावना सयोगो को प्रकट करता है। यह उत्पादन संभावना वक्र है जिसे रूपान्तरण-वक्र भी कहते है। हर उत्पादन सभावना वक्र उत्पादन सयोगो का बिन्दु-पथ है जोकि साधन की एक निश्चित मात्रा से प्राप्त किया जा सकता है। यह वक्र केवल उत्पादन-संभावनाएँ ही नहीं दर्शाता बल्कि यह भी बताता है कि जब फर्म एक सभावना बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर जाती है तो एक वस्तु की कितनी मात्रा का दूसरी वस्तु मे रूपान्तरण होता है। PP_1 उत्पादन सभावना वक्र मूल बिन्दु के नतोदर

(concave) होता है। जिसका अभिप्राय यह है कि फर्म वस्तु X की अतिरिक्त इकाइयाँ प्राप्त करने के लिए वस्तु Y की उत्तरोत्तर अधिक इकाइयों का त्याग करती है। हम ज्यों-ज्यों बिन्दु B से C तथा D की ओर चलते हे, त्यों-त्यों उत्पादन सभावना वक्र पर रूपान्तरण की दर बढती जाती है।

उत्पादन सभावना वक्र आगे यह बताता है कि जब समाज सभावना-बिन्दु B से C या D की ओर चलता है तो वह साधनो को Y वस्तु के उत्पादन से X वस्तु के उत्पादन मे स्थानान्तरित करता चलता है। जैसाकि सेम्यूल्सन ने कहा है, "एक पूर्ण रोज़गार अर्थव्यवस्था सदा एक वस्तु का उत्पादन करने मे अवश्य ही किसी अन्य वस्तु के कुछ अश का त्याग करती रहेगी। उत्पादन-सभावना सीमान्त क्षेत्र समाज के चुनावो की व्यजन सूचि (menu) दर्शाता है।"[13] इसी को मैक्कोनल (McConnel) ने समाज का "इष्टतम उत्पाद-मिश्र" (optimum product mix) कहा है।

फिर, उत्पादन सभावना वक्र पर स्थित सभी सभावना-सयोग (जैसे कि B C और D) दो *वस्तुओं के उन सयोगो को प्रकट करते हैं जिनका उत्पादन समाज के विद्यमान साधनो और* तकनीक से किया जा सकता है। इस प्रकार के सयोग "तकनीकी रूप से दक्ष" कहे जाते है। उत्पादन सभावना वक्र के भीतर स्थित किसी भी सयोग, जैसे कि चित्र 1 1 मे R का मतलब है कि समाज अपने विद्यमान साधनो का पूरा इस्तेमाल नहीं कर रहा है। इस प्रकार का सयोग "तकनीकी रूप से अदक्ष" कहलाता है। उत्पादन सभावना सीमा के बाहर स्थित किसी भी सयोग *जैसे कि K का मतलब है कि समाज के पास इस सयोग के उत्पादन के लिए पर्याप्त साधन नहीं* है। इसे "तकनीकी रूप से असाध्य अथवा अप्राप्य" कहते है।

उत्पादन सभावना वक्र के उपयोग (Uses of Production Possibility Curve)

जीवन के आधारभूत तथ्यो जेसे बेरोज़गारी, प्रौद्योगिकीय प्रगति, आर्थिक वृद्धि तथा आर्थिक दक्षता की समस्याओं की व्याख्या करने मे उत्पादन सभावना वक्र बहुत महत्त्वपूर्ण हे।

(1) **बेरोज़गारी** (Unemployment)—यदि हम साधनो के पूर्ण रोजगार की मान्यता शिथिल कर दे, तो हम अर्थव्यवस्था मे साधनो की बेकारी का स्तर जान सकते है। इस प्रकार की स्थिति चित्र 1 2 मे दिखाई गई है जहाँ वक्र PP अर्थव्यवस्था मे महत्त्वपूर्ण बेरोज़गारी को व्यक्त करती है।[14] इसका मतलब है कि अर्थव्यवस्था मे साधन या तो बेकार है या फिर उनका अदक्ष प्रयोग किया जा रहा हे। अर्थव्यवस्था अपने साधनो का पूर्ण तथा दक्ष उपयोग करके पूर्ण *रोज़गार स्तर P_1P_1* उपलब्ध कर सकती है। पूर्ण रोजगार स्तर पर अर्थव्यवस्था पहले की अपेक्षा बिन्दु B पर अधिक पूँजी वस्तुएँ, बिन्दु C पर, अधिक उपभोक्ता वस्तुएँ और बिन्दु D पर दोनो प्रकार की अधिक वस्तुएँ प्राप्त कर सकती है।
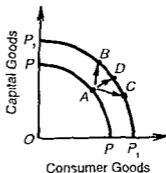
चित्र 1 2

(2) **प्रौद्योगिकीय प्रगति** *(Technological Progress)*—प्रौद्योगिक प्रगति से साधनो की वही मात्राओं से एक अर्थव्यवस्था अधिक उत्पादन प्राप्त करती है। दी हुई तथा स्थिर उत्पादन-तकनीको

13 P A Samuelson *op cit*, p 21

14 अनियोजित साधनों का अनुपात जितना अधिक होगा, उत्पादन सम्भावना वक्र PP मूल बिन्दु के उतना ही निकट होगा।

की मान्यता को शिथिल करके, उत्पादन संभावना वक्र की सहायता से दिखाया जा सकता है कि दोनों प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन पहले की अपेक्षा बढ़ जाता है। मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था उपभोक्ता वस्तुओं और पूँजी वस्तुओं की कुछ निश्चित मात्राओं का उत्पादन कर रही है जिन्हें चित्र 1.3 में उत्पादन संभावना वक्र PP द्वारा व्यक्त किया गया है। साधनों की पूर्ति दी हुई होने पर, यदि प्रोद्योगिकीय प्रगति से अर्थव्यवस्था की उत्पादक दक्षता बढ़ेगी, तो उत्पादन संभावना वक्र सरककर P_1P_1 पर पहुँच जाएगा। इसमें उपभोक्ता एवं पूँजी वस्तुओं दोनों ही के उत्पादन की मात्राएँ बढ़ जाएँगी जैसाकि PP वक्र पर बिन्दु A से P_1P_1 वक्र पर बिन्दु C की ओर गति द्वारा दिखाया गया है।

यदि तकनीकी प्रगति केवल दोनों में से एक, जैसे उपभोक्ता वस्तुओं, के उत्पादन में होती है, तो नया संभावना वक्र चित्र 1.3 में PP_1 होगा। यह ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि तकनीकी प्रगति एक वस्तु तक सीमित है, यह अर्थव्यवस्था को दोनों वस्तुओं की अधिक मात्राएं उपलब्ध कराती है। उपभोक्ता वस्तु उद्योग में बढ़ी हुई उत्पादकता, इस उद्योग के उत्पादन में वृद्धि लाती है। साथ ही यह साधनों को छोड़ती है जिन्हें पूंजी वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने में लगाया जाता है। चित्र 1.4 यह दर्शाता है कि तकनीकी प्रगति उपभोक्ता वस्तुओं की अपेक्षा पूंजी वस्तुओं में अधिक वृद्धि लाती है, $CD > AB$, जबकि चित्र 1.5 पूंजी वस्तुओं की अपेक्षा उपभोक्ता वस्तुओं में अधिक वृद्धि को दर्शाता है, $AB > CD$
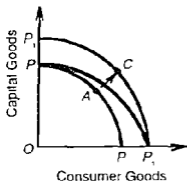
चित्र 1.3
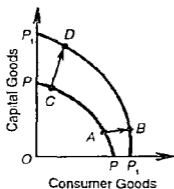
चित्र 1.4
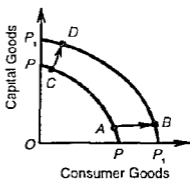
चित्र 1.5

(3) आर्थिक वृद्धि (Economic Growth)—अल्प अवधि और साधनों की स्थिर पूर्ति की मान्यताएं छोड़ने से, उत्पादन संभावना वक्र एक अर्थव्यवस्था कैसे वृद्धि करती है उसकी व्याख्या करने में सहायक होता है। भूमि, श्रम, पूंजी और उद्यमीय योग्यता आदि साधनों की पूर्तियां केवल अल्पकाल में ही स्थिर होती हैं। विकास एक निरन्तर और दीर्घकालीन प्रक्रिया होने के कारण, ये साधन समयोपरि परिवर्तित होते हैं तथा उत्पादन संभावना वक्र को बाहर की ओर सरका देते हैं, जैसा कि चित्र 1.6 में दर्शाया गया है। मान लीजिए कि यदि अर्थव्यवस्था बिन्दु S पर गतिहीन
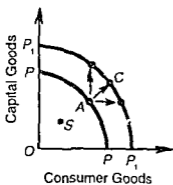
चित्र 1 6

अवस्था मे है, तो आर्थिक वृद्धि इसे उत्पादन सभावना वक्र PP के बिन्दु A पर ले जाएगी तथा साधनो मे और वृद्धि होने से उत्पादन सभावना वक्र को दाई और P_1P_1 पर सरका देगी। अब अर्थव्यवस्था C बिन्दु पर उत्पादन करेगी। ऐसा इसलिए कि आर्थिक वृद्धि होने से अर्थव्यवस्था पहले की तुलना मे उपभोक्ता और पूजी वस्तुओ दोनो की अधिक मात्राए प्राप्त करेगी।

(4) वर्तमान वस्तुए बनाम भविष्य की वस्तुए (Present Goods *vs* Future Goods)—एक अर्थव्यवस्था जो वर्तमान मे उपभोक्ता वस्तुओ की अपेक्षा पूजी वस्तुओ के लिए अधिक साधनो का आवटन करती है, उसमे दोनो प्रकार की वस्तुओ
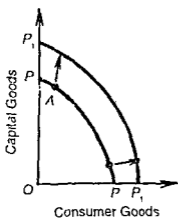
चित्र 1 7
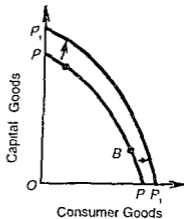
चित्र 1 8

की अधिक मात्राए भविष्य मे होगी। इस प्रकार, वह उच्च आर्थिक वृद्धि का अनुभव करेगी। ऐसा इस कारण कि उपभोक्ता वस्तुए वर्तमान आवश्यकताओं की सतुष्टि करती है जबकि पूजी वस्तुए भविष्य की आवश्यकताओ को सतुष्ट करती है। चित्र 1 7 दर्शाता है कि अर्थव्यवस्था के वर्तमान उत्पादन सभावना वक्र PP के बिन्दु A से बाहर की ओर भविष्य के वक्र P_1P_1 पर सरकना अधिक है, जब भविष्य मे अधिक पूँजी वस्तुए उत्पादित की जाती है। दूसरी ओर, चित्र 1 8 मे वर्तमान वक्र PP के बिन्दु B से भविष्य के वक्र P_1P_1 का बाहर की ओर कम सरकना दिखाया गया है जो भविष्य मे कम पूँजी वस्तुओं के उत्पादन को व्यक्त करता है। चित्र 1 7 में P_1P_1 वक्र चित्र 1 8 के वक्र की अपेक्षा बाहर की ओर अधिक सरकता है।

ऊपर की व्याख्या के अतिरिक्त उत्पादन सभावना वक्रो पर वस्तुओ या सेवाओ के विभिन्न जोडो की अनेक सख्याए चित्रो द्वारा दिखा सकते है, जैसे सार्वजनिक बनाम निजी वस्तुए, कृषि बनाम गैर-कृषि वस्तुए, उपभोक्ता बनाम निवेश (या बचत) आदि।

(5) **आर्थिक दक्षता** (Economic Efficiency)—प्रो. डोर्फमैन ने जिन्हें "तीन दक्षताएँ" कहा है उनकी व्याख्या करने में भी उत्पादन सम्भावना वक्र को इस्तेमाल किया जाता है। वे "तीन दक्षताएँ हैं (i) उत्पादन की जाने वाली वस्तुओं का दक्ष चयन, (ii) इन वस्तुओं के उत्पादन-साधनों का दक्ष आवंटन तथा उत्पादन के साधनों का दक्ष चुनाव, (iii) उत्पादन की गई वस्तुओं का उपभोक्ताओं में दक्ष आवंटन।"[15] ये वास्तव में, अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्याएँ हैं जो उन बातों में सम्बद्ध हैं जिनके बारे में सैम्यूल्सन कहता है कि "क्या, कैसे और किन के लिए उत्पादन किया जाए"।[16]

(6) उत्पादन सम्भावना वक्र हमें मानव-जीवन के आधारभूत तथ्य के संबंध में बताता है कि साधनों, वस्तुओं, मुद्रा अथवा समय के रूप में मानव जाति को उपलब्ध साधन उसकी आवश्यकताओं के अनुपात में दुर्लभ है, और इनका हल इन साधनों का मितव्यय करने में है। जैसाकि सैम्यूल्सन ने ठीक ही कहा है कि, "आर्थिक दुर्लभता जीवन के इस आधारभूत तथ्य को निर्दिष्ट करती है कि मानव तथा गैर-मानव साधनों की एक सीमित मात्रा ही विद्यमान है जिसे श्रेष्ठतम तकनीकी ज्ञान भी केवल किसी सीमित अधिकतम मात्रा का ही उत्पादन करने के लिए उपयोग कर सकता है जैसाकि उत्पादन सम्भावना सीमा दर्शाती है। और अब तक विश्व में वस्तुओं की पूर्ति इतनी बहुतायत में अथवा रुचियों की सीमा इतनी कम नहीं रही है कि औसत आदमी को प्रत्येक इच्छित वस्तु काफी से अधिक मात्रा में प्राप्त हो सके।"

7. आर्थिक क्रिया का चक्रीय प्रवाह
(THE CIRCULAR FLOW OF ECONOMIC ACTIVITY)

सर्व-व्यापक आर्थिक समस्या दुर्लभता की है जिसे अर्थव्यवस्था की तीन संस्थाएं (या निर्णय करने वाले एजेंट) हल करती हैं। वे परिवार या व्यक्ति, फर्में और सरकार हैं। वे वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, उपभोग और विनिमय की तीन आर्थिक क्रियाओं में सक्रियता से संलग्न हैं। ये निर्णय कर्त्ता ऐसे ढंग से क्रिया और प्रतिक्रिया करते हैं कि समस्त आर्थिक क्रियाएं चक्रीय प्रवाह में गति करती हैं।* प्रथम हम निर्णय लेने में उनकी प्रकृति और कार्य की विवेचना करते हैं।

परिवार (Households)—परिवार उपभोक्ता हैं। वे अकेले व्यक्ति या उपभोक्ताओं के ग्रुप हो सकते हैं जो उपभोग के बारे में इकट्ठे निर्णय लेते हैं। वे कुटुम्ब भी हो सकते हैं। उनका उद्देश्य अपने सीमित बजट के साथ अपने सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा करना है। परिवार भूमि, श्रम, पूंजी और उद्यमी योग्यता जैसे उत्पादन के साधनों के स्वामी होते हैं। ये इन साधनों की सेवाएं बेचते हैं और उनके बदले क्रमशः मजदूरी, ब्याज और लाभ के रूप में आय प्राप्त करते हैं।

फर्में (Firms)—अर्थशास्त्र में 'फर्म' शब्द को उत्पादक के पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है। वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन का निर्णय एक फर्म द्वारा लिया जाता है। इसके लिए, वह उत्पादन के साधनों को नियुक्त करती है और उनके स्वामियों को भुगतान देती है। जिस प्रकार अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए परिवार वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग करते हैं उसी प्रकार फर्में लाभ कमाने के लिए वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करती हैं। 'फर्म' शब्द में निजी और सार्वजनिक संयुक्त स्टॉक कंपनियां, साझेदारी फर्में, सहकारी सोसायटियां, छोटी और बड़ी दुकानें, जो बिना वस्तुएं बनाए उनको बेचती हैं, शामिल हैं।

15 Robert Dorfman, *The Price System*, 1964
16 पहली दो दक्षताओं की चित्र 1.1 और 1.2 द्वारा व्याख्या की जा सकती है।
★ इसके विस्तृत विवरण को छोड़ा जा सकता है जो नीचे चार पेज में है।

सरकार (Government)—सभी प्रकार की आर्थिक प्रणालियो जैसे पूजीवाद, समाजवाद और मिश्रित मे सरकार की मुख्य भूमिका होती है। पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे सरकार हस्तक्षेप नहीं करती है। वह सपत्ति अधिकारों को स्थापित और उनकी रक्षा करती है। वह मौद्रिक प्रणाली और माप एव तोल के मापदड स्थापित करती है। एक समाजवादी अर्थव्यवस्था मे, सरकार की बहुत विस्तृत भूमिका होती है। वह अर्थव्यवस्था की सभी उत्पादन ओर उपभोग प्रक्रियाओ का स्वामित्व और नियमन करती है और वस्तुओ एव सेवाओ की कीमते निश्चित करती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था मे सरकार मार्किट सिस्टम को शक्तिशाली बनाती है। वह निजी क्षेत्र की क्रियाओं का नियमन करके तथा उसे प्रोत्साहन देकर मार्किट सिस्टम के दोषो को दूर करती है। सरकार स्वय भी वस्तुओ ओर सेवाओ का उत्पादन करने के लिए साधनो का प्रयोग करती है जिनको आगे परिवारो और फर्मों को बेचती है।

ये निर्णयकर्त्ता एजेंट वस्तुओ ओर सेवाओ का उत्पादन और विनिमय करने के आर्थिक निर्णय लेते हैं जिनसे उनके उपभोग द्वारा समस्त अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओ की सतुष्टि होती है।

उत्पादन, उपभोग और विनिमय एक अर्थव्यवस्था की तीन मुख्य आर्थिक क्रियाए है। उपभोग और उत्पादन प्रवाह हैं जो साथ-साथ कार्य करते है तथा परस्पर सबधित और परस्पर निर्भर है। उत्पादन से उपभोग होता है और उपभोग से उत्पादन की आवश्यकता होती है। दूसरे
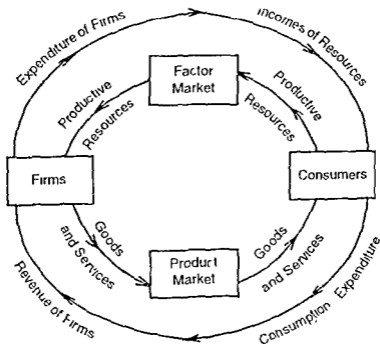
चित्र 1 9

शब्दों में, समस्त आर्थिक क्रियाओं का साधन (प्रारंभ) उत्पादन है और अन्त उपभोग है। आगे, उत्पादन और उपभोग विनिमय पर निर्भर करते हैं। इस प्रकार, ये दोनों प्रवाह विनिमय द्वारा परस्पर संबंधित और परस्पर निर्भर हैं।

दो-क्षेत्र अर्थव्यवस्था में चक्रीय प्रवाह (The Circular Flow in a Two-Sector Economy)

एक सरल अर्थव्यवस्था जिसमें परिवार या उपभोक्ता और व्यवसाय फर्में दो प्रकार के आर्थिक एजेंटों की आर्थिक क्रिया का चक्रीय प्रवाह चित्र 1.9 में दिखाया गया है। उपभोक्ता और फर्मों का दोहरा कार्य होता है और वे एक दूसरे के साथ दो भिन्न तरीकों से विनिमय करते हैं परिवार उत्पादन के सभी साधनों जैसे भूमि, श्रम, पूंजी और उद्यमता के स्वामी हैं, जिन्हें उत्पादक साधन भी कहा जाता है। वे वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करने के लिए उन्हें फर्मों को बेचते हैं। चित्र में फर्मों द्वारा वस्तुओं और सेवाओं का वस्तु मार्किट में उपभोक्ताओं को बेचना नीचे के भाग में बाएं से दाएं आंतरिक चक्र में दिखाया गया है, और साधन मार्किट में परिवारों द्वारा अपनी सेवाओं को फर्मों को बेचना आंतरिक चक्र के ऊपरी भाग में दाएं से बाएं दिखाया गया है। ये वस्तुओं और सेवाओं के वास्तविक प्रवाह हैं जो फर्मों से परिवारों को जाते हैं और विनिमय के माध्यम या वस्तु-व्यापार (barter) द्वारा परिवारों से फर्मों को साधन-सेवाओं के प्रवाह से जुड़े हुए हैं।

(2) आधुनिक अर्थव्यवस्था में, विनिमय वित्तीय प्रवाहों द्वारा होता है, जो "वास्तविक" प्रवाहों के विपरीत दिशा में चलते हैं। वस्तु मार्किट में वस्तुओं और सेवाओं का परिवारों द्वारा क्रय उनका उपभोग व्यय है जो फर्मों की आमदनी बनता है जिसे चित्र के बाहरी चक्र के निचले भाग में दाएं से बाएं दिखाया गया है। साधन मार्किट में परिवारों से साधन-सेवाएं खरीदने पर फर्मों का व्यय, परिवारों की आय बन जाती है जिसे चित्र के बाहरी चक्र के ऊपरी भाग में बाएं से दाएं दर्शाया गया है।

तीन-क्षेत्र अर्थव्यवस्था में चक्रीय प्रवाह (The Circular Flow in a Three-Sector Economy)

अभी तक हम एक अर्थव्यवस्था के दो-क्षेत्र मॉडल के चक्रीय प्रवाह का वर्णन कर रहे थे। इसमें हम, सरकारी क्षेत्र को शामिल करके आर्थिक क्रिया के चक्रीय प्रवाह का तीन-क्षेत्र बंद मॉडल निर्मित करते हैं। इसके लिए, हम अपने विवरण में कर और सरकारी क्रय (या व्यय) सम्मिलित करते हैं। 'कर' चक्रीय प्रवाह में से बहिर्वाह (outflows) हैं और सरकारी क्रय चक्रीय प्रवाह में अंतर्वाह (inflows) है। तीन-क्षेत्र अर्थव्यवस्था में चक्रीय प्रवाह को चित्र 1.10 में दिखाया गया है।

प्रथम, घरेलू क्षेत्र और सरकारी क्षेत्र के बीच चक्रीय प्रवाह को लीजिए। घरेलू क्षेत्र द्वारा दिए गए वैयक्तिक (personal) आय कर और वस्तु कर चक्रीय प्रवाह में से बहिर्वाह या स्राव (leakages) हैं। सरकार परिवारों की सेवाएं खरीदती है और उनके बदले में उन्हें बीमारी लाभ, बेरोजगारी सहायता, वृद्धावस्था पेंशन आदि के रूप में हस्तांतरण भुगतान करती है और शिक्षा, स्वास्थ्य, निवास, जल, पार्क आदि अन्य सुविधाएं सामाजिक सेवाओं के रूप में प्रदान करने के लिए उन पर व्यय करती है। ऐसे सभी सरकारी व्यय चक्रीय प्रवाह में अंतर्वाह (या इंजेक्शन) हैं।

अब व्यवसाय क्षेत्र और सरकारी क्षेत्र के बीच चक्रीय प्रवाह को लीजिए। व्यवसाय क्षेत्र द्वारा सरकार को दिए गए सभी प्रकार के कर चक्रीय प्रवाह में से बहिर्वाह या स्राव हैं। दूसरी ओर, सरकार सभी प्रकार की वस्तुओं की अपनी आवश्यकताएं व्यवसाय क्षेत्र से खरीदती है और उनके उत्पादन को प्रोत्साहित करने हेतु फर्मों को हस्तांतरण भुगतान करती है तथा सब्सिडी देती

है। ये सरकारी खर्चे चक्रीय प्रवाह मे इजेक्शन (या अतर्वाह) है।

अब हम घरेलू, व्यवसाय और सरकारी क्षेत्रो को इकट्ठा लेते है ताकि चक्रीय प्रवाह मे उनके अंतर्वाहो और बार्हिर्वाहो को दिखा सकें। जैसा कि ऊपर बताया गया है, कर चक्रीय प्रवाह मे से एक स्राव है। वे घरेलू क्षेत्र के उपभोग और बचतो को कम करते है। आगे, कम उपभोग से फर्मों के विक्रय और आय कम होते है। दूसरी ओर, व्यवसाय फर्मों पर कर उनके निवेश और उत्पादन को कम करते है। सरकार करो की राशि के बराबर व्यवसाय क्षेत्र से वस्तुए और घरेलू क्षेत्र से सेवाए खरीद कर इन स्रावो की क्षतिपूर्ति कर देती है। इस प्रकार, चक्रीय प्रवाह मे अतर्वाह *(इजेक्शन) और बार्हिर्वाह (स्राव) बराबर रहते हैं।*
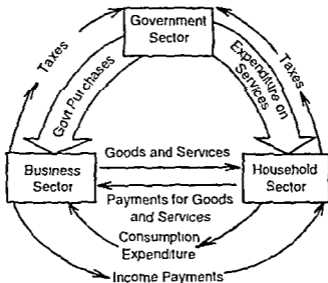
चित्र 1 10

चित्र 1 10 दर्शाता है कि घरेलू और व्यवसाय क्षेत्रो से "कर" सरकार को जाते हैं। सरकार फर्मों से वस्तुए और परिवारो से उत्पादन के साधन खरीदती है। इस प्रकार, सरकार द्वारा वस्तु और सेवाओ का क्रय चक्रीय प्रवाह मे एक अतर्वाह (इजेक्शन) है और कर चक्रीय प्रवाह से बार्हिर्वाह (स्राव) है।

8. अर्थशास्त्र विज्ञान के रूप मे (ECONOMICS AS A SCIENCE)

अर्थशास्त्रियो मे बहुत मतभेद है कि क्या अर्थशास्त्र एक विज्ञान है और यदि है, तो क्या यह यथार्थ विज्ञान है या आदर्श विज्ञान? इन प्रश्नो का उत्तर देने के लिए यह जानना आवश्यक है कि विज्ञान *क्या है और कहा तक विज्ञान की विशेषताए अर्थशास्त्र पर लागू होती है।*

ज्ञान का व्यवस्थित अंग विज्ञान है जिसकी निरीक्षण तथा प्रयोगीकरण द्वारा जाच की जा सकती है। यह सामान्यीकरणों, नियमों, सिद्धांतों या कानूनों का अंग है जो कारण और परिणाम के बीच कारण-विषयक संबंध को चित्रित करता है।[17] किसी भी पाठ्य विषय का विज्ञान होने के लिए यह आवश्यक है कि (1) वह ज्ञान का व्यवस्थित अंग हो, (2) उसके अपने नियम या सिद्धांत हों, (3) जिनकी निरीक्षण एवं प्रयोग द्वारा जाँच की जा सके, (4) भविष्यवाणी (prediction) कर सके, (5) स्व-शोधक (self-corrective) हो, और (6) व्यापक मान्यता (universal validity) हो। यदि विज्ञान की इन विशेषताओं को अर्थशास्त्र पर लागू किया जाता है, तो यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र एक विज्ञान है। अर्थशास्त्र ज्ञान का एक व्यवस्थित अंग है जिसमें आर्थिक तथ्यों का व्यवस्थित ढंग से अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है। उदाहरणार्थ, अर्थशास्त्र को क्रमश उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण और राजस्व में बांटा गया है, जिनके अपने नियम और सिद्धांत हैं और उनके आधार पर व्यवस्थित ढंग से इनका अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाता है।

किसी अन्य विज्ञान की भांति, अर्थशास्त्र के सिद्धांत, नियम या सामान्यीकरण दो या अधिक तथ्यों के बीच कारण और परिणाम के बीच संबंध स्थापित करते है। अन्य विज्ञानों की तरह ही अर्थशास्त्र में एक विशेष कारण से एक निश्चित परिणाम निकलने की आशा की जाती है। रसायन विज्ञान के नियम का एक उदाहरण है कि अन्य बातें समान रहने पर, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन को 2 : 1 के अनुपात में मिलाने से पानी बन जाएगा। भौतिकी में, गुरुत्वाकर्षण (gravitation) का नियम यह बताता है कि अन्य बातें समान रहने पर, ऊपर से आने वाली वस्तुएं एक निश्चित दर से पृथ्वी पर गिरेंगी। इसी प्रकार अर्थशास्त्र में, माग का नियम बताता है कि अन्य बातें समान रहने पर, कीमत में कमी से माग में विस्तार होता है और कीमत में वृद्धि से माग घट जाती है। यहा कीमत में कमी या वृद्धि कारण है तथा माग में विस्तार या संकुचन उसका परिणाम है। इस प्रकार, अर्थशास्त्र, अन्य किसी भी विज्ञान की भांति, एक विज्ञान है जिसके अपने सिद्धांत और नियम हैं जो कारण और परिणाम के बीच संबंध स्थापित करते हैं।

अर्थशास्त्र इसलिए भी विज्ञान है कि इसके नियमों में व्यापक मान्यता पाई जाती है जैसे कि घटते प्रतिफल का नियम, घटती सीमांत उपयोगिता का नियम, माग का नियम, ग्रेशम का नियम, आदि।

फिर, अर्थशास्त्र विज्ञान है क्योंकि इसकी प्रकृति स्व-शोधक (self-corrective) है। अर्थशास्त्र निरीक्षणों पर आधारित नए तथ्यों के प्रकाश में अपने निष्कर्षों का संशोधन करता रहता है। समष्टि अर्थशास्त्र, मुद्रा अर्थशास्त्र, अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र, सार्वजनिक वित्त और आर्थिक विकास के क्षेत्रों में आर्थिक सिद्धांतों या नियमों को निरंतर संशोधित किया जा रहा है।

परन्तु कुछ अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को विज्ञान का पद नहीं देते हैं, क्योंकि इसमें एक विज्ञान की अन्य विशेषताएं नहीं पाई जाती हैं। विज्ञान केवल निरीक्षण द्वारा तथ्यों का इकट्ठा करना नहीं है। इसमें प्रयोगीकरण द्वारा तथ्यों का टैस्ट करना भी शामिल है। ऐसा प्राकृतिक विज्ञानों में ही सम्भव है। परन्तु अर्थशास्त्र में प्रयोगीकरण की कोई सम्भावना नहीं है क्योंकि अर्थशास्त्र का संबंध मनुष्य, उसकी समस्याओं और क्रियाओं से है। आर्थिक तथ्य बहुत जटिल होते हैं, क्योंकि वे मनुष्य से संबंधित है, जिसकी क्रियाएं उसकी रुचियों, आदतों और जिस समाज में वह रहता है उसकी सामाजिक और वैधानिक संस्थाओं द्वारा सीमित होती है। अर्थशास्त्र का संबंध मानवों से है जो

17 A science is a systematised body of knowledge ascertainable by observation and experimentation It is a body of generalisations, principles, theories or laws which traces out a causal relationship between cause and effect

अविवेकी व्यवहार करते हैं तथा अर्थशास्त्र में प्रयोगीकरण का कोई अवसर नहीं है। यद्यपि अर्थशास्त्र के पास सांख्यिकीय, गणितीय और अर्थमितीय विधियां हैं, फिर भी ये उतनी सही नहीं कि आर्थिक नियमों और सिद्धांतों की वास्तविक सत्यता का निर्णय कर सकें। परिणामस्वरूप, अर्थशास्त्र में सही मात्रात्मक भविष्यवाणी संभव नहीं होती है। उदाहरणार्थ, यदि युद्ध की आशंका से वस्तुओं की कमी का लोगों को भय हो, तो कीमत में वृद्धि होने से मांग में कमी न होकर वृद्धि होगी। इसलिए मार्शल का यह कथन सही है "ऐसे विज्ञानों में यथार्थता कम प्राप्य होती है जिनका संबंध मनुष्य से होता है।"[18]

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अर्थशास्त्र एक विज्ञान नहीं है। जैसा कि मार्शल ने कहा है, "अर्थशास्त्र विज्ञानों के ग्रुप में स्थान पाने की आकांक्षा रखता है, क्योंकि यद्यपि इसके माप बहुत कम यथार्थ होते हैं और निर्णायक तो कभी होते ही नहीं, फिर भी, यह उन्हें अधिक यथार्थ बनाने का प्रयत्न और इस प्रकार उन मामलों के क्षेत्र विस्तार का प्रयत्न करता रहता है जिन पर एक व्यक्तिगत विद्यार्थी अपने विज्ञान पर अधिकारपूर्वक कुछ कह सके।" किसी भी अन्य विज्ञान की भांति यह भी निश्चय से एक विज्ञान है। जीव-विज्ञान (Biology) तथा ऋतुविज्ञान (Meteorology) ऐसे विज्ञान हैं जिनमें भविष्यवाणी की संभावना अपेक्षाकृत कम होती है। ज्वारभाटा का नियम इस बात की व्याख्या करता है कि अमावस्या और पूर्णमासी के दिन ज्वारभाटा प्रबल, और चन्द्रमा के प्रथम चतुर्थांश (quarter) में निर्बल क्यों होता है। इसके साथ ही उस ठीक समय की भविष्यवाणी भी संभव है कि ज्वारभाटा कब आएगा। परन्तु हो सकता है कि ऐसा न हो। किन्हीं अप्रत्याशित (unforeseen) परिस्थितियों के कारण ज्वारभाटा पूर्वकथित समय के पहले या बाद में आ सकता है। इसलिए, मार्शल ने ज्वारभाटा के नियमों से अर्थशास्त्र के नियमों की तुलना की है "बजाय गुरुत्वाकर्षण के सरल तथा यथार्थ नियमों से। क्योंकि मानवों के कार्य इतने विभिन्न तथा अनिश्चित होते हैं कि प्रवृत्तियों के संबंध में किए गए कथन, जो हम मानव-व्यवहार विषयक विज्ञानों में कर सकते हैं, अवश्य अयथार्थ तथा दोषपूर्ण होंगे।"[19] भले ही अर्थशास्त्र वैसा यथार्थ विज्ञान न हो जैसाकि प्राकृतिक विज्ञान है, पर हम श्रीमती बारबरा वूटन (Wootton) के इस कथन से सहमत नहीं हैं कि "सैद्धान्तिक अर्थशास्त्रियों द्वारा अपने अध्ययनों के लिए विज्ञान शब्द के बढ़ते हुए सामान्य उपयोग में इच्छामूलकता (wishfulness) का तत्त्व है।"

अर्थशास्त्र—यथार्थ अथवा आदर्श विज्ञान (Economics—Positive or Normative Science)

इसकी विवेचना करने से पूर्व कि क्या अर्थशास्त्र यथार्थ अथवा आदर्श विज्ञान है, हमें इनके अर्थ को समझना चाहिए जिनका सर्वोत्तम वर्णन (लार्ड केन्ज़ के पिता) जे. एन. केन्ज़ ने इन शब्दों में किया, "एक यथार्थ विज्ञान को ज्ञान का ऐसा व्यवस्थित अंग परिभाषित किया जा सकता है जो क्या है से संबंधित है, एक आदर्श विज्ञान ज्ञान का ऐसा व्यवस्थित अंग है जो क्या होना चाहिए के मापदंड से संबद्ध है, और वास्तविक से भिन्न आदर्श (ideal) से संबंधित है।"[20] इस प्रकार, यथार्थ विज्ञान का संबंध "क्या है" (What is) से है और आदर्श विज्ञान का "क्या होना चाहिए" (What ought to be) से है।

अर्थशास्त्र यथार्थ विज्ञान के रूप में (Economics as a Positive Science)

राबिन्स ने अपनी पुस्तक *An Essay on the Nature and Significance of Economic Sci-*

18 "In sciences that relate to man, exactness is less attainable." *A. Marshall*
19 A. Marshall *op cit*., p. 26
20 J. N. Keynes *The Scope and Method of Political Economy* 4/e, pp. 34-5 Italics in original

ence में इस विवाद को तीव्र रूप दिया कि क्या अर्थशास्त्र एक यथार्थ विज्ञान है अथवा आदर्श विज्ञान। राबिन्स अर्थशास्त्र को क्या है का विशुद्ध विज्ञान मानता है जिसका संबंध नैतिक या नीतिशास्त्र विषयक प्रश्नों से नहीं है। अर्थशास्त्र लक्ष्यों के प्रति तटस्थ रहता है। अर्थशास्त्री को लक्ष्यों की अपनी बुद्धिमत्ता या मूर्खता के संबंध में निर्णय देने का कोई अधिकार नहीं है। वह केवल इच्छित लक्ष्यों के सम्बन्ध में ससाधनों की समस्या से सरोकार रखता है। सिगरेटों तथा शराब का निर्माण तथा क्रय स्वास्थ्य के लिए हानिकर हो सकता है, और इसलिए नैतिक दृष्टि से अनुचित है, परन्तु अर्थशास्त्री को इस सम्बन्ध में निर्णय देने का कोई अधिकार नहीं, क्योंकि दोनों ही मानव इच्छाओं को सतुष्ट करती है और दोनों में आर्थिक क्रिया शामिल रहती है।

क्लासिकी अर्थशास्त्रियों का अनुसरण करते हुए, राबिन्स उन प्रस्थापनाओं (propositions) को, जिनमें "चाहिए" (ought) शामिल है, उन प्रस्थापनाओं से भिन्न प्रकार की मानता है जिनमें "है" (is) शामिल रहता है। वह समझता है कि पूछताछ के यथार्थ तथा आदर्श क्षेत्रों के बीच एक 'तार्किक खाई' है क्योंकि वे "विचार-विमर्श के एक ही धरातल पर नहीं हैं।" क्योंकि "अर्थशास्त्र निर्णय-योग्य तथ्यों पर विचार करता है" और नीतिशास्त्र "मूल्यनों तथा कर्त्तव्यों पर" इसलिए "उन्हें अलग न रखने, या उनके अनिवार्य अन्तर को स्वीकार न करने" का वह कोई कारण नहीं देखता। इसलिए, उसका मत है कि "अर्थशास्त्रियों का काम यह है कि वे खोज और व्याख्या करें, न कि समर्थन और खण्डन।"[21] इस प्रकार एक अर्थशास्त्री को लक्ष्य का चुनाव नहीं करना चाहिए, बल्कि तटस्थ रहना चाहिए और केवल उन साधनों का सकेत करना चाहिए जिनसे लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।

फ्रीडमैन भी राबिन्स की तरह अर्थशास्त्र को एक यथार्थ विज्ञान मानता है। उसके अनुसार, "एक यथार्थ विज्ञान का अन्तिम उद्देश्य एक 'सिद्धांत' या 'परिकल्पना' (hypothesis) का विकास करना है जो अभी तक न देखे गए तत्त्वों के बारे में मान्य और अर्थपूर्ण भविष्यवाणियां प्रदान करता है।"[22] इस सदर्भ में, अर्थशास्त्र व्यवस्थित सामान्यीकरण (generalisations) प्रदान करता है जिन्हें सही भविष्यवाणियां करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। क्योंकि अर्थशास्त्र की भविष्यवाणियों को टैस्ट किया जा सकता है, इसलिए भौतिकी की तरह अर्थशास्त्र एक यथार्थ विज्ञान है जो मूल्य निर्णयों से मुक्त होना चाहिए। फ्रीडमैन के अनुसार, एक अर्थशास्त्र का उद्देश्य एक सच्चे वैज्ञानिक की तरह होना है, जो नई परिकल्पनाओं और सिद्धान्तों का निर्माण करता है। परिकल्पनाएं और सिद्धान्त हमें भविष्य की घटनाओं के बारे में भविष्यवाणी करने की अनुमति देते है या केवल इस बात की व्याख्या देते हैं कि भूतकाल में क्या हुआ। परन्तु ऐसी परिकल्पनाओं और सिद्धांतों की भविष्यवाणियां घटनाओं द्वारा सीमित हो भी सकती हैं और नहीं भी। इस प्रकार, अर्थशास्त्र किसी अन्य प्राकृतिक विज्ञान की भांति एक यथार्थ विज्ञान होने का दावा करता है।

इस प्रकार अर्थशास्त्र एक यथार्थ विज्ञान है। यह इस बात की व्याख्या करने का प्रयत्न करता है कि वास्तव में क्या होता है, इस बात की नहीं कि क्या होना चाहिए। उन्नीसवीं शताब्दी के अर्थशास्त्रियों का भी यही मत था। सीनियर तथा जे. एस. मिल से लेकर बाद के लगभग सभी प्रमुख अर्थशास्त्रियों ने यह घोषणा की है कि अर्थशास्त्र को "क्या है" से सम्बन्ध रखना चाहिए न कि "क्या होना चाहिए।"

21 "The function of economists consists in exploring and explaining and not advocating and condemning." *L. Robbins*

22 M. Friedman, *Essays in Positive Economics*, 1953

अर्थशास्त्र आदर्श विज्ञान के रूप मे (Economics as a Normative Science)

अर्थशास्त्र "क्या होना चाहिए" का आदर्श विज्ञान है। एक आदर्श विज्ञान के रूप मे अर्थशास्त्र नैतिक दृष्टिकोण से आर्थिक घटनाओ का मूल्याकन करता है। मार्शल, पीगू, हाट्रे, फ्रेजर जैसे अर्थशास्त्री इस मत से सहमत नहीं कि अर्थशास्त्र केवल एक यथार्थ विज्ञान है। वे तर्क देते है कि अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है जिसमें मूल्य निर्णय पाए जाते है और मूल्य निर्णयो (value judgements) को प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि वे सत्य है या असत्य। यह प्राकृतिक विज्ञानो की तरह वास्तविक विज्ञान नहीं है। इसके लिए निम्न तर्क दिए जाते है।

प्रथम, जिन मान्यताओ पर आर्थिक नियम और सिद्धात आधारित है उनका सबध मनुष्य और उसकी समस्याओ से है। जब हम उनके आधार पर आर्थिक घटनाओ की भविष्यवाणी और टैस्ट करते है, तो उनमे *व्यक्तिपरक (subjective) अश सदैव प्रवेश कर जाता है।*

दूसरे, क्योकि अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है, इसलिए आर्थिक सिद्धात सामाजिक और राजनैतिक कारको द्वारा प्रभावित होते है। उनको टैस्ट करते समय, अर्थशास्त्रियो द्वारा व्यक्तिपरक मूल्य निर्णयो के प्रयोग करने की सभावना पाई जाती है।

तीसरे, प्राकृतिक नियमो मे प्रयोग किए जाते है जिनके द्वारा नियमो का निर्माण होता है। परन्तु अर्थशास्त्र मे प्रयोगीकरण सभव नहीं है। इसलिए अर्थशास्त्र के नियम केवल प्रवृत्तिया ही बन कर रह जाते है।

निष्कर्ष (Conclusion)

अत यह दृष्टिकोण कि अर्थशास्त्र केवल यथार्थ विज्ञान है वास्तविकता से दूर है। अर्थशास्त्र को उसके आदर्श विज्ञान के पहलू से अलग नहीं किया जा सकता। क्योंकि अर्थशास्त्र मानव कल्याण से सबद्ध है, इसलिए इसमे नैतिक विचार पाए जाते है और अर्थशास्त्र एक आदर्श विज्ञान भी है। *पीगू के अनुसार मार्शल का यह विश्वास था कि "आर्थिक विज्ञान प्रमुख रूप से न तो बौद्धिक* कलाबाजी और न ही सत्य को उसके अपने निमित्त जीतने के साधन के रूप मे है, बल्कि इसलिए मूल्यवान है कि वह नीतिशास्त्र की कार-सेविका तथा व्यवहार की दासी है।"[23] इन विचारो के आधार पर, अर्थशास्त्र केवल 'प्रकाशदायक' (light bearing) ही नहीं, बल्कि 'फलदायक' (fruit bearing) भी है। अर्थशास्त्री केवल दर्शक या आरामकुर्सी मे बैठे रहने वाले साहित्यिक ही नहीं बने रह सकते। फ्रेज़र (Fraser) ने कहा कि "एक अर्थशास्त्री जब केवल अर्थशास्त्री ही बना रहता है तो बेचारी सुन्दर मछली के समान होता है"[24] आयोजन के इस युग मे, जबकि सब राष्ट्र कल्याणकारी राज्य बनना चाहते है, केवल अर्थशास्त्र ही इस स्थिति मे है कि समर्थन, खण्डन, तथा आधुनिक जगत के आर्थिक रोगो का उपचार कर सके। पीगू ने लिखा था कि "जब हम उन मानव उद्देश्यो *के खेल को देखने लगते है—जोकि साधारण होते है—कुछ ऐसे कि क्षुद्र, तुच्छ और निकृष्ट होते है,* तो हमारा आवेग एक दार्शनिक का आवेग नहीं होता, ज्ञान केवल ज्ञान के लिए नहीं होता, बल्कि चिकित्सक का वह ज्ञान होता है जो घावो को भरने मे सहायक होता है।"[25] अर्थशास्त्री के लिए *इतना ही पर्याप्त नहीं है कि वह धन के असमान वितरण, औद्योगिक शान्ति, सामाजिक सुरक्षा* इत्यादि की समस्याओ की व्याख्या और विश्लेषण करे, बल्कि उसका कार्य इनका समाधान करना

23 "Economic science is chiefly valuable neither as an intellectual gymnastic nor even as a means of winning truth for its own sake, but as a handmaid of ethics and a servant of practice " *A C Pigou*

24 "An economist who is only an economist is a poor pretty fish "—*R Frazer*

25 A C Pigou, *The Economics of Welfare*, pp 4 5

भी है। यदि वह केवल सिद्धान्तवादी ही होता, तो मानव के भाग्य में केवल गरीबी, मुसीबत और वर्ग संघर्ष ही होते। यह तथ्य, कि अर्थशास्त्रियों को आर्थिक समस्याओं पर निर्णय तथा सुझाव देने को कहा जाता है, प्रकट करता है कि अबंध नीति (laissez faire) की भावना के समाप्त होने के बाद से, आर्थिक विज्ञान के आदर्शात्मक पक्ष का पलड़ा भारी होता जा रहा है। वूटन ठीक ही कहती है कि "अर्थशास्त्रियों के लिए अपनी चर्चाओं में आदर्शात्मक पक्ष को पूर्ण रूप से छोड़ देना बहुत कठिन है।" मिर्डल अधिक स्पष्टतया कहता है कि अर्थशास्त्र मूल्य से भरा हुआ है और "एक 'निस्वार्थ सामाजिक विज्ञान' कभी भी अस्तित्व में नहीं रहा है, और तार्किक कारणों से, अस्तित्व में नहीं रह सकता है।"

आदर्श और यथार्थ अर्थशास्त्र के संबंध के बारे में, फ्रीडमैन का कथन है कि यथार्थ विज्ञान के निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण आदर्श समस्याओं से, क्या करना चाहिए के प्रश्नों से और किस प्रकार दिया उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है से तत्काल संबद्ध है। यथार्थ विज्ञान में आदर्श विज्ञान स्वतंत्र नहीं हो सकता यद्यपि यथार्थ विज्ञान मूल्य निर्णयों[26] से स्वतंत्र है। इसलिए, अर्थशास्त्र न केवल "क्या है" का यथार्थ विज्ञान है, बल्कि "क्या होना चाहिए" का आदर्श विज्ञान भी है।

प्रश्न

1 "अर्थशास्त्र को वैकल्पिक लक्ष्यों के बीच दुर्लभ साधनों के आवंटन का अध्ययन परिभाषित किया जा सकता है।" विवेचना कीजिए।

2 उत्पादन संभावना वक्र की व्याख्या कीजिए। आर्थिक विश्लेषण में इनके क्या प्रयोग हैं उनको चित्रों द्वारा बताइए।

3 आर्थिक क्रिया में परिवारों, फर्मों और सरकार की भूमिका की व्याख्या कीजिए। उनके परस्पर संबंधों का वर्णन कीजिए।

4 तीन-क्षेत्र अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रिया के चक्रीय प्रवाह की व्याख्या करिए।

5 "अर्थशास्त्र के विज्ञान के यथार्थ और आदर्श दोनों पक्ष हैं।" विवेचना कीजिए।

6 अर्थशास्त्र की यथार्थ विज्ञान और आदर्श विज्ञान के रूप में प्रकृति की व्याख्या कीजिए। क्या यह सामाजिक विज्ञान है?

7 "आर्थिक विश्लेषण का उद्देश्य केवल सत्य की खोज करना ही नहीं बल्कि यथार्थ समस्याओं के हल में सहायता करना भी है।" टिप्पणी कीजिए।

8 "अर्थशास्त्री का कार्य खोज और व्याख्या करना है, न कि समर्थन या खण्डन करना।" विवेचना कीजिए। [इस और ऊपर के प्रश्न का उत्तर 'यथार्थ और आदर्श विज्ञान' का है।]

26 Value Judgements in Economics के लिए अध्याय 43 देखिए।

अध्याय 2

अर्थशास्त्र में कार्यपद्धति-विपयक वादविपय
(METHODOLOGICAL ISSUES IN ECONOMICS)

1. प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य अर्थशास्त्र की कार्यपद्धति (methodology) और ऐसे सबधित वादविपयो जैसे सैद्धातिक आर्थिक विश्लेषण मे मान्यताओ की भूमिका का अध्ययन करना है। वैज्ञानिको की तरह अर्थशास्त्री लगभग समान प्रक्रियाओ का अनुसरण करते हुए आर्थिक तथ्यो की जाच मे लगे हुए है। अध्ययन की विधियो के रूप मे, वे निगमन और आगमन का भी प्रयोग करते है। परन्तु उनके द्वारा जो सामान्यीकरण या नियम निर्मित किए जा रहे है वे अन्य विज्ञानो से काफी भिन्न है। हम इन समस्याओ की विवेचना करते है।

2 सैद्धांतिक अर्थशास्त्र या आर्थिक सिद्धात की प्रकृति
(THE NATURF OF THEORETICAL ECONOMICS OR ECONOMIC THEORY)

अर्थ (Meaning)—अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो किसी अन्य विज्ञान की तरह सैद्धान्तिक ज्ञान के सगठित खण्ड पर निर्भर करता है। सैद्धान्तिक ज्ञान तथ्यो (facts) पर आधरित है, तथा सत्यापित (verified) परिकल्पना (hypothesis) पर आधारित तथ्य, सिद्धान्त बन जाते है। जैसा कि बोल्डिग (Boulding) ने कहा, "तथ्यो के बिना सिद्धान्त व्यर्थ हो सकते है, परन्तु सिद्धान्तो के बिना तथ्य निरर्थक है।"[1]

सिद्धान्त क्या है? सिद्धान्त कारण और परिणाम के बीच कारण-विषयक सम्बन्ध को व्यक्त करता है। यह "क्यो" की व्याख्या करने का प्रयत्न करता है। इसमे परिभाषाओ का एक समूह सम्मिलित होता है जो स्पष्टतया बताता है कि हम विभिन्न पदो (terms) से क्या समझते है, और मान्यताओ का एक समूह शामिल होता है जो यह बताता है कि ससार किस प्रकार व्यवहार करता है। अगला पग, यह खोजने के लिए तार्किक निगमन (logical deduction) की प्रक्रिया का अनुसरण करता है कि इन मान्यताओ के निहित अर्थ क्या है। ये निहित-अर्थ (implications) सिद्धान्त की भविष्यवाणिया (predictions) है जिनकी जाच निरीक्षण (observation) और आकडो के साख्यिकी विश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा की जा सकती है। यदि सिद्धान्त जाच मे पूरा उतरता है, तो इसके उपरान्त किसी कार्यवाही की आवश्यकता नहीं होती है। यदि सिद्धान्त तथ्य द्वारा गलत ठहरता है, तो यह या तो नए प्राप्त तथ्यो के प्रकाश मे सशोधित किया जाता है या यह एक श्रेष्ठ प्रतियोगी

1 "Theories without facts may be barren but facts without theories are meaningless" *K E Boulding*

सिद्धान्त के पक्ष मे त्याग दिया जाता है। आर्थिक सिद्धान्त इस दृष्टिकोण से एक सिद्धान्त है। यह वास्तविक ससार के बारे मे है। सिद्धान्त के प्रयोग द्वारा हम वास्तविक ससार मे विषयो की व्याख्या को समझना और भविष्यवाणी करने की चेष्टा करते है, तथा इसलिए हमारा सिद्धान्त हमारे इर्द-गिर्द ससार के अनुभवसिद्ध निरीक्षण से सम्बन्धित और उसके द्वारा जाचा जाना चाहिए। प्रो नेगल आर्थिक सिद्धान्त को "एक विशेष ढग से सगठित कथनो का एक समूह परिभाषित करता है तथा जो आर्थिक विषयो के एक अनियमित तौर से बडे (और प्राय विभिन्न) वर्ग की व्याख्या और भविष्यवाणी करने के लिए आशिक आधार-तथ्यो के रूप मे कार्य करने हेतु बनाया गया है।"[2]

आर्थिक सिद्धान्त मे सामान्यीकरण (generalisations) सम्मिलित होते है जो आर्थिक विषयो के विभिन्न तत्त्वो के बीच सम्बन्धो की सामान्य प्रवृत्तियो या एकरूपताओ के कथन है। एक सामान्यीकरण विशेष अनुभवो के आधार पर एक सामान्य सत्य की स्थापना करता है। उदाहरणार्थ, अन्य बाते समान रहते हुए, यह सामान्यीकरण विशेष अनुभवो के आधार पर एक सामान्य सत्य की स्थापना करता है। उदाहरणार्थ, अन्य बाते समान रहते हुए, यह सामान्यीकरण की माग कीमत का विपरीत फलन है, कीमत और माग मे एक सम्बन्ध को व्यक्त करता है। यदि अन्य बाते समान रहे तो माग का नियम सही ठहरता है। यदि अन्य बाते समान न रहे, तो यह गलत ठहरता है।

वैज्ञानिक सिद्धात के सोपान (Steps of Scientific Theory)

वैज्ञानिक विधि का प्रयोग उन प्रक्रियाओ या सोपानों की व्याख्या करने के लिए किया जाता है जिनके द्वारा एक सिद्धात निर्मित किया जाता है। इस विधि से तथ्यो और स्थिर विश्वासो का पता लगाया जाता है और उन्हे स्थापित किया जाता है ताकि निरपेक्ष और प्रमाणनीय ज्ञान प्राप्त हो। इसके छ सोपान है।

1 **समस्या का चुनाव करना** (Selecting the Problem)—एक सिद्धात के निर्माण का पहला सोपान समस्या का चुनाव करना है जिसे स्पष्ट रूप से और सही प्रस्तुत करना चाहिए। जिस समस्या की जाच करनी है, वह बहुत ही व्यापक हो सकती है, जैसे दरिद्रता, बेरोज़गारी, स्फीति आदि, या फिर सीमित हो सकती है जैसे किसी उद्योग से सम्बन्धित। समस्या जितनी अधिक सीमित होगी, जाचकर्त्ता उतने ही अधिक सतोषजनक ढग से जाच कर सकेगा। "यह वाछनीय है कि जाचकर्त्ता ऐसी सीमित समस्याओ पर ध्यान केन्द्रित करे जिनका क्षेत्र या अवधि या पहलू सीमित हो और समस्या के चुनाव मे महत्त्वपूर्ण कसौटी यह होनी चाहिए कि उसमे व्यापक कार्य की बजाय अधिक गहन कार्य करने की गुजाइश हो।"[3]

2 **आँकडे इकट्ठे करना** (Collection of Data)—दूसरा सोपान यह है कि जाच की जाने वाली समस्या से सबधित आँकडे अथवा तथ्य इकट्ठे किए जाएँ। यदि समस्या सरल है तो आँकडे आसानी से इकट्ठे किए जा सकते है। पर यदि समस्या जटिल है, तो आवश्यक आँकडे इकट्ठे करने में कई महीने या वर्ष भी लग सकते है। इस सोपान को वर्णनात्मक अर्थशास्त्र (descriptive economics) कहते है। कभी-कभी, सावधानी से निरीक्षण करने पर 'तथ्य' (facts) ज्ञात हो सकते हैं। सावधान निरीक्षण पर ही अर्थशास्त्र के नियम आधारित है जैसे कि ह्रासमान प्रतिफल का नियम, माल्थस का जनसख्या सिद्धान्त, मार्शल का कीमत सिद्धान्त आदि।

2 Ernest Nagel defines an economic theory "as a set of statements, organised in a characteristic way, and designed to serve as partial premises for explaining as well as predicting an indeterminately large (and usually varied) class of economic phenomena."

3 M H Gopal, *An Introduction to Research Procedures in Social Sciences*, 1964

3 **आँकड़ो का वर्गीकरण** (Classification of Data)—आँकड़े इकट्ठे करने के बाद, उनकी परिगणना की जाती है और उनका वर्गीकरण तथा विश्लेषण किया जाता है। वर्गीकरण तो वस्तुओं को जानने का तरीका है। इसमे आँकड़ो तथा तथ्यो को उनकी समानताओ तथा भेदो के अनुसार समूहो मे रखा जाता है और उनकी तुलना एव विरोध लक्ष्य किये जाते है। उदाहरण के लिए, यदि समस्या जनसख्या वृद्धि की प्रवृत्ति के अध्ययन से सम्बन्ध रखती है, तो जनसख्या के आँकड़े लिंग-भेद, आयु-वर्ग, साक्षरता, वैवाहिक स्तर, व्यवसायात्मक वितरण आदि के अनुसार एकत्रित एव वर्गीकृत किए जा सकते है। इस प्रकार, वैज्ञानिक सिद्धात के लिए आँकड़ो का परिगणन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण बहुत महत्त्वपूर्ण है।

4 **परिकल्पना का निर्माण** (Formulation of Hypothesis)—अगला पग विश्लेषण किए जाने वाले आर्थिक तथ्यो के बारे मे परिकल्पना का निर्माण करना है। किसी समस्या का प्रस्तावित हल परिकल्पना है जिसकी सहायता से हम तथ्यो की क्रमबद्धता का पता लगाकर उन्हे स्पष्ट करने का प्रयत्न करते है। निरीक्षित तथ्यो अथवा जाचकर्ता के अनुभव या पूर्ववर्ती ज्ञान से परिकल्पना उत्पन्न होती है। इस परिस्थिति में सरलीकरण करने वाली मान्यताए प्रवेश की जा सकती है ताकि विशेष परिकल्पना अधिक पूर्णता से विकसित की जा सके। ये विशेष मान्यताए ही सचेतन रूप से परिकल्पना बन जाती है।

5 **परिकल्पना का परीक्षण** (Testing the Hypothesis)—अगला सोपान निर्मित परिकल्पना का परीक्षण है। निर्मित परिकल्पना ऐसी होनी चाहिए जिससे निष्कर्ष निकाले जा सके और यह निर्णय किया जा सके कि क्या वह विचारित तथ्यो की व्याख्या करती है या नहीं। तर्क एव स्थापित सांख्यिकी तकनीकों से परिकल्पना का परीक्षण होना चाहिए, जिसकी पुष्टि की जाय। फिर, परिकल्पना ऐसी हो जो उस समस्या का हल प्रदान करे जिसके कारण जाच की गई थी। इसके लिए भविष्यवाणी की आवश्यकता है। भविष्यवाणी अतीत, वर्तमान या भावी घटनाओ के बारे मे हो सकती है, बशर्ते कि भविष्यवाणी के समय या उससे पहले वह अज्ञात हो। जो परिकल्पना सफल भविष्यवाणी कर सके, उसे सिद्ध तो नहीं, पर सत्यापित (verified) कहा जा सकता है। विविध निर्मित परिकल्पनाओ मे से उस परिकल्पना को अधिमान देना चाहिए, "जो यह भविष्यवाणी कर सके कि क्या होने वाला है और जिससे वह निष्कर्ष निकल सके जो पहले ही हो चुका है, भले ही परिकल्पना निर्मित करने के समय यह ज्ञात न हो कि क्या हो चुका है।"[4] एक सफलतापूर्वक टैस्ट की गई परिकल्पना एक सिद्धात होता है।

6 **सिद्धात का सत्यापन** (Verification of Theory)—टैस्ट की गई परिकल्पना अथवा सिद्धात का सत्यापन करना चाहिए। यदि परिकल्पना सत्य निकलती है, तो वह सत्यापित अथवा प्रमाणित कहलाती है। जाँच की प्रक्रिया निरीक्षण (observation) द्वारा अथवा यह जाच करके की जा सकती है कि क्या परिकल्पना उन सम्बन्धित तथ्यो के अनुरूप है या नहीं, जिन्हे सत्य माना जाता है। यदि कोई परिकल्पना गलत सिद्ध होती है, तो वह रद्द कर दी जाती है। परन्तु यह मान लेना बडी भूल है कि रद्द की गई परिकल्पना हमेशा बेकार होती है। बल्कि एक असत्य परिकल्पना असशयित (unsuspected) तथ्यो या नए तथ्यो की ओर हमारा ध्यान आकर्षित कर सकती है और सिद्धात के सशोधन की ओर ले जा सकती है।

जब एक बार परिकल्पना जाच द्वारा सत्य सिद्ध हो जाती है, तो विचाराधीन समस्या के सभव हल या विचार तैयार किए जाएँ। अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान मे ऐसा करना आवश्यक है, क्योकि अर्थशास्त्रियों का समाज की ओर झुकाव होता है और साधारण तथा असबद्ध प्रश्नो पर

4 M R Cohen and E Nagel *op cit*

वे अपनी शक्तियां नष्ट करने में विश्वास नहीं करते।" यह अन्तिम अवस्था व्यावहारिक अर्थशास्त्र कहलाती है और इसमें मूल्य-निर्णय शामिल होते है।

3. सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र के उपयोग[5]
(USES OF THEORETICAL ECONOMICS)

सैद्धान्तिक आर्थिक विश्लेषण अर्थशास्त्रियों को आर्थिक औजार प्रदान करता है, आर्थिक विषयों की व्याख्या करने में आर्थिक घटनाओं की भविष्यवाणी करने में अर्थव्यवस्था के कार्य का निर्णय करने में तथा आर्थिक नीतियों के निर्माण में सहायता करता है। हम इनकी विस्तार से व्याख्या करते है।

1. आर्थिक औजार प्रदान करना (To provide economic tools)—सैद्धान्तिक आर्थिक विश्लेषण अर्थशास्त्रियों को आर्थिक औजार प्रदान करता है। यही कारण है कि श्रीमती जोन राबिन्सन उसे "औजार का सन्दूक" कहती है। यह सही भी है, क्योंकि यह आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए अर्थशास्त्रियों को अनेक प्रकार के औजार प्रदान करता है। अर्थशास्त्र में जो परिभाषाएं और विधियां प्रयोग की जाती है वे अर्थशास्त्रियों के "औजारों का सन्दूक" है।

आर्थिक औजार सभी आर्थिक प्रणालियों पर लागू होते है चाहे वे पूंजीवादी, समाजवादी या मिश्रित हो। उनका प्रयोग विकसित तथा अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं पर भी किया जाता है।

2 आर्थिक तथ्यों की व्याख्या करना (To explain economic phenomena)—सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र वास्तविक जगत के आर्थिक तथ्यों को समझने और व्याख्या करने में सहायक होता है। अमूर्तकरण (abstraction) की प्रक्रिया द्वारा यह प्रासंगिक (relevant) तथ्यों को चुनता है, वर्तमान या पिछले ज्ञान के प्रकाश में उन्हें वर्गीकृत करके व्याख्या करता है। एक आर्थिक समस्या की प्रामाणिकता स्थापित करने के लिए यह विभिन्न चरों के बीच कारण-विषयक सम्बन्ध स्थापित करता है। उदाहरणार्थ, देश में बेरोजगारी के कारणों को जानने के लिए, आकड़े या तथ्य एकत्रित, परिगणित, वर्गीकृत तथा विश्लेषित किए जाते है। तब बेरोजगारी की प्रकृति के हमारे ज्ञान के प्रकाश में उसकी व्याख्या की जाती है। अन्ततः, कारणों तक पहुंचने के लिए बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी सम्भावित कारकों के बीच कारण-विषयक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

3 आर्थिक घटनाओं की भविष्यवाणी करना (To predict economic events)—यह अदृश्य आर्थिक घटनाओं की भविष्यवाणी करने के लिए आधार प्रस्तुत करता है। यह वास्तविक जगत की आर्थिक समस्याओं के खोजने में बहुत पूर्वसूचक यथार्थता रखता है। उदाहरणार्थ, यदि हम यह पाते है कि गेहू की पूर्ति में वृद्धि से इसकी कीमत नहीं गिरती, तो गेहू की माग होने पर हम यह भविष्यवाणी कर सकते है कि आगामी वर्ष में गेहू की कमी होने की सभावना है। कारण कुछ भी हो सकता है, वर्षा का न होना या सूखा, अथवा किसी अनिश्चित घटना की सम्भावना, जैसे युद्ध।

4 अर्थव्यवस्था के कार्य का निर्णय करना (To judge the performance of the economy)—सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र समस्त अर्थव्यवस्था तथा उसके विभिन्न क्षेत्रों के कार्य का निर्णय करने में सहायक होता है। उदाहरणार्थ, यदि खाद्य तेलों की कीमतें बढ़ रही है, तो कीमत तन्त्र का ज्ञान आवश्यक है ताकि यह निर्णय किया जा सके कि क्या उनकी कीमतों में वृद्धि कच्चे माल की कमी के कारण है, अथवा माग में वृद्धि अथवा अर्थव्यवस्था या उद्योग के गलत कार्यकरण के कारण है।

5 आर्थिक नीतियों को निर्मित करने और समझने में सहायता करना (To help in

5 यह भाग आर्थिक सिद्धान्त या सैद्धान्तिक आर्थिक विश्लेषण के लाभों से भी सबद्ध है।

formulating and understanding economic policies)—यह आर्थिक नीतियो को समझने मे सहायता करता है। *आर्थिक सिद्धान्तों का प्रयोग अर्थव्यवस्था की नीतियो के निर्माण के लिए किया* जाता है। और नीतियो का निर्माण करना अर्थशास्त्री का कार्य होता है। मान लीजिए कि बेरोजगारी को कम करने के उपाय सुझाने है। यह समस्या गरीबी को दूर करने तथा आय और धन के समान वितरण के उद्देश्यो की पूरक है। परन्तु यह कीमत स्थिरता के उद्देश्य की विरोधी है। इसलिए अर्थशास्त्री को यह विचार करना होगा कि कितनी न्यूनतम स्फीति के साथ कितनी बेरोजगारी कायम रखी जा सकती है। *बेरोजगारी की समस्या का चुनाव आर्थिक सिद्धान्त का* प्रथम पग है, जिसे नीति निर्माण के लिए लागू किया गया है।

दूसरा पग, आकडे इकट्ठे करना या यदि वे पहले से ही प्राप्य है, तो उनको सुव्यवस्थित करना तथा बेरोजगारी के कारण जानने के लिए बेरोजगारी के वर्तमान सिद्धान्तो के प्रकाश मे उनकी व्याख्या करना है।

फिर, बेरोजगारी के स्तर को कम करने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए *अर्थशास्त्री* को वैकल्पिक साधनो का प्रस्ताव रखना होता है। दूसरे शब्दो मे, किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नीति उपाय के मूल्याकन का जब सामना करना पड़ता है, तो उसे यह प्रश्न करना चाहिए कि क्या स्थान और समय के अनुसार उचित अन्य उपाय इच्छित उद्देश्य को श्रेष्ठतया प्राप्त कर सकते है।

अन्तिम, अर्थशास्त्री को अर्थव्यवस्था पर इन उपायो के सभावित प्रभावो को दर्शाना चाहिए। इसके लिए उसे वैकल्पिक प्रोग्रामो के आर्थिक प्रभाव, लागतो और राजनैतिक व्यवहार्यता की स्पष्ट समझ होनी अपेक्षित है।

इस प्रकार, समाज तथा व्यक्तियो के उद्देश्य दिए होने पर, इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए उनकी दक्षता के रूप मे विभिन्न नीतियो का मूल्याकन करने हेतु आर्थिक सिद्धान्तो का प्रयोग किया जा सकता है। लिप्सी के अनुसार, "यह अर्थशास्त्री का कार्य है कि वह न केवल एक प्रस्तावित नीति के परिणामो का विश्लेषण करे (अथवा दो या अधिक नीतियो की तुलना करे), परन्तु नीतियो का सुझाव भी दे। उद्देश्यो का कथन दिया होने पर, आर्थिक सिद्धान्त का प्रस्तावित नीतियो का आविष्कार और प्रचार करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है जो कि पहले विचारणीय नही है।"[6]

अत सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र सरकारी आर्थिक नीतियो को समझने मे सहायक होता है। इतना ही नहीं यह उपभोक्ताओ, उत्पादको, व्यापारियो, श्रमिको, तथा अर्थशास्त्रियो को विवेकशीलता से आयोजन करने मे निर्देश देता है।

4 सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र की सीमाए (LIMITATIONS OF THEORETICAL ECONOMICS)

आर्थिक समस्याओ के समझने और सुलझाने मे सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र से बहुत अधिक अपेक्षित नहीं है, क्योकि इसकी अपनी सीमाए है।

1 सही आँकडे उपलब्ध नहीं होते हैं (Accurate data not available)—आर्थिक सिद्धान्त "औजारो की पेटी" होने के कारण इस पूर्व-मान्यता पर आधारित है कि सही आकडे या तथ्य उपलब्ध होते है, परन्तु *ये आसानी से उपलब्ध नहीं होते।* *वास्तव मे*, एक सिद्धान्त तथ्यो पर आधारित होता है। यदि तथ्य ही सही न हो तो सिद्धान्त गलत होता है। एक सिद्धान्त को सत्य होने के लिए यह आवश्यक है कि उसे वास्तविक आर्थिक तथ्यो या आकडो के आधार पर जाचा

6 Richard G Lipsey, *An Introduction to Positive Economics* 3/e, 1971

जा सके। परन्तु आकडो का सकलन और व्याख्या अक्सर मनगढन्त होते है जो आर्थिक सिद्धान्तो को अवास्तविक बना देते है।

2 **सही भविष्यवाणिया सम्भव नहीं** (Accurate predictions not possible)—आर्थिक सिद्धान्त मे सही भविष्यवाणिया सदैव सभव नहीं होती है। सही भविष्यवाणियों की सभाव्यता भौतिक विज्ञानो की अपेक्षा अर्थशास्त्र मे बहुत कम होती है। एक वैज्ञानिक अपनी जाचो को एक प्रयोगशाला मे नियन्त्रित अवस्थाओ के अन्तर्गत प्रयोगो द्वारा कर सकता है। परन्तु एक अर्थशास्त्री सही ढग से भविष्यवाणी करने की क्षमता नहीं रखता है क्योकि वह आर्थिक विषयो का नियन्त्रित प्रयोग नहीं कर सकता।

3 **मानव व्यवहार विवेकपूर्ण नहीं** (Human behaviour not rational)—आर्थिक सिद्धान्त का सम्बन्ध मनुष्यो के व्यवहार से होता है जो सदैव विवेकशीलता के साथ कार्य नहीं करते। दूसरी ओर भौतिक विज्ञानो का सम्बन्ध भौतिक पदार्थों से होता है। मनुष्यो का व्यवहार समाज की वर्तमान सामाजिक और वैधानिक सस्थाओ द्वारा अधिक प्रभावित होता है, न कि आर्थिक नियमों द्वारा। एक परीक्षण नली (test tube) मे उपभोक्ताओ या व्यापारियों के एक वर्ग को, यह देखने के लिए कि वे एक दिए हुए परिवर्तन के प्रति कैसे प्रतिक्रिया करेंगे, पृथक् करना असम्भव है।

4. **अवास्तविक मान्यताए** (Unrealistic assumptions)—सभी आर्थिक सिद्धान्त कुछ मान्यताओ पर आधारित है। परन्तु उनमे से कुछ अवास्तविक है। उदाहरणार्थ, हम यह मान लेते है कि उपभोक्ता और उत्पादक व्यक्तिगत रूप मे विवेकपूर्ण व्यवहार करते है। परन्तु ऐसा देखा गया है कि वे विवेकपूर्ण व्यवहार नहीं करते। इस मान्यता पर आधारित पूर्वानुमान गलत साबित हो जाते है। जैसा कि बोल्डिंग ने स्पष्ट किया है "आर्थिक विश्लेषण आर्थिक जीवन का पूर्ण चित्र नहीं है, यह उसका मानचित्र (map) है। जिस प्रकार हम एक मानचित्र मे अपेक्षित नहीं करते कि वह एक भूदृश्य (landscape) मे प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक मकान, और घास के प्रत्येक तिनके को दिखाए, इसी प्रकार हमे सैद्धान्तिक आर्थिक विश्लेषण से अपेक्षित नहीं करना चाहिए कि वह वास्तविक आर्थिक व्यवहार के प्रत्येक विवरण और ब्यौरा को सम्मिलित करे।"[7]

5 **आर्थिक नीतियो पर पूरी तरह लागू नहीं** (Not fully applicable to economic policies)—सैद्धान्तिक आर्थिक विश्लेषण आर्थिक नीतियों पर पूरी तरह लागू नहीं होता है। स्थान और समय पर विचार किए बिना आर्थिक सिद्धान्त को आर्थिक नीतियो पर लागू करने से बहुत-सी आर्थिक नीतिया असफल हुई है, यद्यपि वे अच्छे इरादों से कार्यान्वित की गई थीं। आर्थिक सिद्धान्त का सही लागू होना इस बात पर निर्भर करता है कि इसकी मान्यताए वास्तविक स्थिति के साथ मेल खाती है या नहीं, अन्यथा परिणाम गलत होंगे। उदाहरणार्थ, यदि फर्म का लाभ अधिकतम करने का सिद्धान्त एक विशेष उद्योग पर लागू किया जाता है, तो हमारे निष्कर्ष गलत हो सकते है यदि उस उद्योग मे वास्तव मे पूर्ण प्रतियोगिता की शर्तें नहीं पाई जाती है। दूसरे, आर्थिक सिद्धान्त का नीति से सम्बन्धित असफल होने का एक और कारण देश मे सिद्धान्त से भिन्न विशेष स्थितियाँ पाई जाना है। ऐसी स्थिति अल्पविकसित देशों मे उत्पन्न होती है जब उनकी समस्याओं को सुलझाने के लिए विकसित देशों के आर्थिक सिद्धान्त लागू करने के प्रयत्न किए जाते है। तीसरे, एक आर्थिक सिद्धान्त अर्थव्यवस्था मे एक समय मे नीति उपाय का आधार होता , यह सदैव के लिए सत्य नहीं हो सकता क्योकि एक अर्थव्यवस्था एक गत्यात्मक, परिवर्तनीय सगठन है। इसलिए एक सिद्धान्त जो आज सही है वह कल निरर्थक हो सकता है तथा इस पर आधारित नीति भी व्यर्थ हो सकती है।

7 K E Boulding *op cit*, p 11

5 सैद्धांतिक अर्थशास्त्र की विधियां—निगमन एवं आगमन (METHODS OF THEORETICAL ECONOMICS—DEDUCTION AND INDUCTION)

सैद्धांतिक अर्थशास्त्र की दो विधियाँ हैं निगमन ओर आगमन। वास्तव में, निगमन और आगमन तर्कशास्त्र की दो किस्में हैं जो सत्य को स्थापित करने में सहायता करती है।

निगमनिक विधि (The Deductive Method)

निगमन का अर्थ है सामान्य से विशेष की ओर या समष्टि से व्यष्टि की ओर तर्क अथवा निष्कर्ष। निगमनिक विधि आधारभूत मान्यताओं से अथवा अन्य विधियों द्वारा स्थापित सत्यों से नए निष्कर्ष निकालती है। इसमें उन नियमों अथवा सिद्धान्तों में जिन्हें सत्य मान लिया गया है तथ्यों के विश्लेषण तक तर्क की प्रक्रिया शामिल है। फिर निष्कर्ष निकाले जाते हैं जिनकी जाँच निरीक्षित तथ्यों के मुकाबले में की जाती है। बेकन (Bacon) ने निगमन को ऐसी 'अवरोही प्रक्रिया' (descending process) बताया है जिसमें हम किसी सामान्य सिद्धान्त से उसके परिणामों की ओर चलते हैं। मिल ने इसे निगम्य (a priori) प्रणाली कहा है जबकि अन्य अर्थशास्त्री इसे अमूर्त (abstract) एवं विश्लेषणात्मक (analytical) कहते हैं।

निगमन में कुछ सोपान शामिल हैं (1) समस्या का चुनाव करना, (2) मान्यताओं का निर्माण करना जिनके आधार पर समस्या का चुनाव किया जाना है, (3) तार्किक तर्क की प्रक्रिया द्वारा परिकल्पना का निर्माण करना जिससे निष्कर्ष निकाले जाते हैं, और (4) परिकल्पना का सत्यापन (verify) करना। इन सोपानों की नीचे विवेचना की गई है।

(1) समस्या का चुनाव करना (Selecting the Problem)—जिस समस्या को जाचकर्त्ता जाच के लिए चुनता है वह स्पष्ट तौर से व्यक्त की गई होनी चाहिए। यह गरीबी, बेरोजगारी, स्फीति जैसी विस्तृत हो सकती है या एक उद्योग से सबंधित सीमित। जितनी सीमित समस्या होगी, उतनी अच्छी प्रकार से जाच की जा सकेगी।

(2) मान्यताओं का निर्माण करना (Formulating Assumptions)—निगमन का अगला पग मान्यताओं का निर्माण करना है जो परिकल्पना का आधार है। जाच की लाभदायकता के लिए, मान्यताएं सामान्य होनी चाहिए। एक आर्थिक जाच मे, मान्यताओं का एक से अधिक सैट लेना चाहिए जिनके अनुसार परिकल्पना निर्मित की जा सके।

(3) परिकल्पना निर्माण करना (Formulating Hypothesis)—अगला पग मान्यताओं के आधार पर परिकल्पना का निर्माण करना है। एक परिकल्पना तथ्यों पर आधारित एक सुझाव है, जिसे तार्किक तर्क के लिए आधार के रूप में प्रयोग किया जाता है। आगे इसके (तर्क) द्वारा प्रस्थापनाओं (propositions) से निष्कर्ष निकाले जाते हैं। ऐसा दो तरीकों से किया जाता है प्रथम, तार्किक निगमन द्वारा। यदि और क्योंकि सबध p और q सभी मौजूद हैं, तब इसका अवश्य मतलब है कि सबध r भी विद्यमान है। तार्किक निगमन की इस विधि मे अधिकतर गणित का प्रयोग किया जाता है। रिकार्डो, सीनियर, राबिन्स आदि ने तार्किक विधि का प्रयोग किया, जबकि कूर्नो, परेटो और एज्वर्थ ने गणितीय विधि का प्रयोग किया। आधुनिक अर्थशास्त्री परिकल्पनाओं के विश्लेषण और टैस्ट करने के लिए निगमनिक तर्क में गणित और अर्थमिति दोनों का अधिक प्रयोग कर रहे है।

(4) परिकल्पना जाच करना (Verifying the Hypothesis)—निगमन विधि मे अन्तिम सोपान परिकल्पना की जाच करना है। जाच में यह प्रमाणित करना होता है कि क्या परिकल्पना तथ्यों के साथ मेल खाती है कि नहीं। एक परिकल्पना सत्य है या नहीं को निरीक्षण और प्रयोग

द्वारा जाचा जा सकता है। क्योंकि अर्थशास्त्र मानव व्यवहार से सबद्ध है, इसलिए परिकल्पना का निरीक्षण और टैस्ट करने में समस्याएं आती है। उदाहरणार्थ, यह परिकल्पना कि फर्में सदैव अपने लाभों को अधिकतम करने का प्रयत्न करती है, इस निरीक्षण पर निर्भर करता है कि कुछ फर्में अवश्य इस प्रकार व्यवहार करती है। यह निगमनिक ज्ञान पर आधारित है जो उतनी देर तक स्वीकृत किया जाएगा जब तक कि इससे निकाले गए निष्कर्ष तथ्यों के साथ मेल खाते है। इस प्रकार, परिकल्पना सत्यापित (verified) है। यदि परिकल्पना प्रमाणित नहीं होती है, तो यह तर्क दिया जा सकता है कि विशेष परिस्थितियों के कारण परिणाम विरोधी है। ऐसी स्थितियों के अन्तर्गत, परिकल्पना गलत साबित हो सकती है। अर्थशास्त्र में, बहुत सी परिकल्पनाए मानव व्यवहार में पाए जाने वाले जटिल कारकों के कारण असत्यापित रह जाती है, जो आगे सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक कारकों पर निर्भर करता है।

दूसरी ओर, प्रयोग एक प्रयोगशाला में नियंत्रित स्थितियों में निरीक्षण है। ऐसे नियंत्रित प्रयोग केवल प्राकृतिक विज्ञानों में ही संभव है न कि अर्थशास्त्र में। इसलिए अर्थशास्त्र में अधिकतर परिकल्पनाए टेस्ट किए बिना होती है।

निगमन विधि के गुण (Merits of Deductive Method)

निगमनिक प्रणाली के कई लाभ हैं।

(1) **वास्तविक** (Realistic)—बोल्डिंग के कथनानुसार, यह बौद्धिक प्रयोग विधि है। क्योंकि वास्तविक जगत् बहुत जटिल है, इसलिए "हम अपने मन में ऐसी आर्थिक प्रणालियाँ परिकल्पित कर लेते है जो यथार्थ की अपेक्षा अधिक सरल हो और आसानी से समझ आ सके। तब हम इन सरलीकृत प्रणालियों के सबध निकालते है और धीरे-धीरे अधिकाधिक पूर्ण मान्यताए प्रवेश करके अन्त में वास्तविकता के तर्क तक पहुँच जाते है।"[3] इस प्रकार यह विधि वास्तविकता के अधिक निकट है।

(2) **सरल** (Simple)—निगमनिक विधि सरल है क्योंकि यह विश्लेषणात्मक है। इसमें पृथक्करण की क्रिया शामिल रहती है और यह जटिल समस्या को उसके सघटक भागों (component parts) में विभाजित कर उसे सरल बना देती है। फिर, ऐसी परिकल्पनात्मक स्थितियाँ चुनी जाती है जिनसे समस्या बहुत सरल बन जाए, और तब उनसे निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

(3) **स्पष्ट** (Clear)—निगमन में गणित के प्रयोग से अर्थशास्त्रीय विश्लेषण में यथार्थता तथा स्पष्टता आती है। गणितीय प्रणाली में प्रशिक्षित अर्थशास्त्री बहुत थोड़े समय में निष्कर्ष निकाल लेता है और अन्य सामान्यीकरणों पर सिद्धान्तों से अनुरूपता स्थापित कर देता है। फिर, गणितीय निगमनिक विधि का प्रयोग आर्थिक विश्लेषण की असगतियाँ प्रकट करने में सहायक होता है।

(4) **शक्तिशाली** (Powerful)—यह कुछ तथ्यों से निष्कर्ष निकालने के लिए विश्लेषण की एक शक्तिशाली विधि है। जैसा कि केर्नेस (Cairnes) ने बताया, "निगमन विधि अतुलनीय है, जब यह उचित नियन्त्रण में अपनाई जाए तो यह खोज का सबसे शक्तिशाली औजार है जो मानव बुद्धि द्वारा कभी प्रयोग किया गया।"

(5) **अनिवार्य** (Indispensable)—अर्थशास्त्र जैसे विज्ञानों में निगमन विधि अनिवार्य है जहाँ प्रयोग करना सभव नहीं है। जैसा कि जीड एव रिस्ट (Gide and Rist) ने कहा, "राजनीति अर्थशास्त्र जैसे विज्ञान में जहाँ प्रयोग यथार्थत असभव है अमूर्तीकरण और विश्लेषण ही केवल अन्य प्रभावों से बचने का माध्यम होते है जो समस्या को जटिल बनाते है।"

3 K E Boulding, op cit p 11

(6) सर्वव्यापक (Universal)—निगमनिक प्रणाली ऐसे निष्कर्ष निकालने में सहायक होती है जिनकी मान्यता सर्वव्यापी होती है क्योंकि वे सामान्य सिद्धान्तों पर आधारित होते हैं, जैसे कि ह्रासमान प्रतिफल का नियम।

निगमन विधि के दोष (*Demerits of Deductive Method*)

इन गुणों के बावजूद, इस विधि के विरुद्ध जर्मनी के ऐतिहासवादी सम्प्रदाय ने बहुत आलोचनाएं कीं।

1 **गलत मान्यताएं** (Wrong Assumptions)—प्रत्येक परिकल्पना मान्यताओं के एक सेट पर आधारित होती है। जब एक परिकल्पना टेस्ट की जाती है तो मान्यताएं परोक्ष रूप में तथ्यों के साथ तुलना द्वारा टैस्ट हो जाती हैं। लेकिन जब तथ्य टेस्ट की गई परिकल्पना पर आधारित सिद्धान्त को गलत प्रमाणित करते हैं, तो मान्यताएं भी परोक्ष रूप में गलत हो जाती हैं। इस प्रकार, निगमन मान्यताओं की प्रकृति पर निर्भर करती है। यदि वे अवास्तविक हों, तो सिद्धान्त टूट जाता है। उदाहरणार्थ, क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने अपने नियम इस मान्यता पर आधारित किए कि *निजी स्वार्थ सदैव मानव व्यवहार को प्रेरित करता है।* यह स्पष्टतया सही नहीं है जिससे गलत प्रमाणित होने वाली उपकल्पनाओं और सिद्धान्तों का निर्माण हुआ।

2 **सर्वव्यापी नहीं** (Not Universal)—अक्सर निगमन तर्क द्वारा निकाले गए निष्कर्ष सर्वव्यापी नहीं हैं क्योंकि जिन प्रस्थापनाओं से वे निकाले जाते हैं, वे सभी स्थानों और समयों पर लागू नहीं हो सकते। उदाहरणार्थ, अपने तर्क में क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने यह मान्यता ली कि उनके समय के इंग्लैंड में पाई जाने वाली विशेष परिस्थितियां समस्त संसार में सही ठहरती हैं। यह मान्यता गलत थी। इसलिए प्रो. लर्नर ने ठीक ही कहा कि निगमन विधि केवल "आराम-कुर्सी पर बैठकर किया गया विश्लेषण" है जो सर्वव्यापी नहीं माना जा सकता।

3 **अपर्याप्त आंकड़े** (Inadequate Data)—*अर्थशास्त्र में सिद्धान्तों, सामान्यीकरणों या नियमों का सत्यापन निरीक्षण पर आधारित है। और सही निरीक्षण आंकड़ों पर निर्भर करता है जो* पर्याप्त और सही हों। यदि किसी परिकल्पना को अपर्याप्त या गलत आंकड़ों से निकाला जाता है, तो सिद्धान्त तथ्यों के साथ मेल नहीं खाएगा और गलत प्रमाणित हो जाएगा। उदाहरणार्थ, क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के सामान्यीकरण अपर्याप्त आंकड़ों पर आधारित थे और उन्होंने यह गलत माना कि उनके अमूर्तीकरण सदैव तथ्यों के साथ मेल खाते थे।

4 **अमूर्त** (Abstract)—निगमनिक विधि अत्यन्त अमूर्त है और इसके लिए विविध धारणाओं से निष्कर्ष निकालने में बहुत कुशलता चाहिए। कुछ आर्थिक समस्याओं की जटिलता के कारण, एक विशेषज्ञ जांचकर्त्ता के लिए भी इस विधि का प्रयोग करना कठिन हो जाता है।

अन्तिम, निगमनिक विधि का प्रमुख दोष "इस तथ्य में निहित है कि हो सकता है कि जो *इस विधि का अनुसरण करते हैं वे बौद्धिक खिलौने बनाने में मस्त हों और बौद्धिक व्यायाम तथा* गणितीय विश्लेषण में वास्तविक जगत को भूल ही जाएँ।"

आगमनिक विधि (Inductive Method)

आगमन "तर्क कि वह प्रक्रिया है जिसमें एक अंश से सम्पूर्ण की ओर विशेषों से सामान्यों की ओर या व्यष्टि से समष्टि की ओर जाते हैं।"[9] बेकन ने इसे "एक आरोही प्रक्रिया" (an ascending process) बताया है जिसमें तथ्य इकट्ठे करते हैं उन्हें क्रमबद्ध करते हैं और तब निष्कर्ष निकालते हैं।

9 Gee Wilson *Social Science Research Methods* 1950

अर्थशास्त्र में आगमनिक विधि को जर्मनी के इतिहासवादी सम्प्रदाय ने प्रयोग किया था जो पूर्णतया ऐतिहासिक अनुसंधान से अर्थशास्त्र का विकास करना चाहता था। ऐतिहासिक अथवा आगमनिक विधि आशा रखती है कि अर्थशास्त्री प्रमुख रूप से अर्थशास्त्र का इतिहासकार होगा जो पहले ऐतिहासिक सामग्री संग्रह करेगा, फिर सामान्य निष्कर्ष निकालेगा और उन्हें आगामी घटनाओं पर लागू करके परिणामों की जाच करेगा। इसके लिए, यह सांख्यिकीय विधियां प्रयोग करती है। एंजेल का पारिवारिक व्यय का नियम और माल्थस का जनसंख्या सिद्धांत आगमनिक तर्क द्वारा निकाले गए हैं।

आगमन विधि में निम्न सोपान सम्मिलित हैं

(1) **समस्या** (The Problem)—एक आर्थिक तथ्य से संबंधित सामान्यीकरण तक पहुंचने के लिए, समस्या का उचित ढंग से चुनना और स्पष्ट करना चाहिए।

(2) **आकड़े** (Data)—अगला पग उपयुक्त सांख्यिकीय तकनीकों द्वारा आकड़ों का इकट्ठा करना, उनका परिगणन, वर्गीकरण और विश्लेषण करना है।

(3) **निरीक्षण** (Observation)—समस्या से संबंधित विशेष तथ्यों के बारे में निरीक्षण के लिए आकड़ों का प्रयोग करना है।

(4) **सामान्यीकरण** (Generalisation)—निरीक्षण के आधार पर सामान्यीकरण को तर्क द्वारा निकाला जाता है जो विशेष तथ्यों से एक सामान्य सत्य स्थापित करता है।

इस प्रकार, आगमन एक प्रक्रिया है जिसमें विशेष निरीक्षित तथ्यों के आधार पर सामान्यीकरण पर पहुंचते हैं।

अर्थशास्त्र में आगमन तर्क का सबसे बढ़िया उदाहरण "ह्रासमान प्रतिफल" का सामान्यीकरण है। जब स्काटलैण्ड के एक कृषक ने देखा कि उसके खेत की काश्त में व्यय की जाने वाली श्रम एवं पूंजी की मात्रा में वृद्धि करने से वर्ष-प्रतिवर्ष अनुपात से कम प्रतिफल (उपज) प्राप्त होता है, तो एक अर्थशास्त्री ने अनेक दूसरे खेतों पर यही निरीक्षित किया, तब वह इस सामान्यीकरण पर पहुंचा जिसे "ह्रासमान प्रतिफल का नियम" कहते हैं।

आगमनिक विधि के गुण (Merits of Inductive Method)

इस विधि के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं

(1) **वास्तविक** (Realistic)—आगमनिक विधि यथार्थिक है क्योंकि यह तथ्यों पर आधारित है और उनके वास्तविक रूप में उन्हें स्पष्ट करती है। यह मूर्त्त एवं श्लेषात्मक (concrete and synthetic) है क्योंकि यह एक साथ पूर्ण विषय पर विचार करती है और उसे कृत्रिम रूप से उसके संघटक भागों में विभक्त नहीं करती।

(2) **भावी जांच में सहायक** (Helpful in Future Inquiries)—आगमन भावी जांच में सहायक है। सामान्य सिद्धान्तों को खोज कर और उन्हें सिद्ध करके, आगमन भावी छानबीन में सहायक होता है। जब एक बार कोई सामान्य सिद्धान्त स्थापित हो जाता है, तो वह भावी जांच का प्रारंभ बिन्दु बन जाता है।

(3) **आर्थिक नीतियां बनाने में सहायक** (Helpful in Formulating Economic Policies)—हाल के वर्षों में सांख्यिकी-विज्ञान का तेजी से विकास हुआ है। आगमनिक विधि इस सांख्यिकी प्रणाली का लाभ उठाती है। इससे व्यापक विस्तार वाली आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण करने के लिए आगमन को व्यवहार करने में महत्त्वपूर्ण सुधार हुए हैं। विशिष्ट रूप से, सरकारी एवं निजी एजेंसियां द्वारा समष्टि परिवर्तियों से, जैसे—राष्ट्रीय आय, सामान्य कीमतों, उपभोग, बचत, कुल रोजगार आदि—से संबंधित आंकड़ों के संग्रह ने इस विधि का मूल्य बढ़ा दिया है और सरकारों को

सहायता दी है कि वे गरीबी हटाने, असमानताएँ दूर करने, अल्पविकास आदि से सबधित आर्थिक नीतियाँ बना सके।

(4) गत्यात्मक (Dynamic)—आगमनिक विधि गत्यात्मक है। इसमें परिवर्तित होती हुई आर्थिक स्थितियो का अतीत के अनुभव के आधार पर विश्लेषण किया जा सकता है, निष्कर्ष निकाले जा सकते है और उचित उपचारक कदम उठाए जा सकते है। इस प्रकार आगमन नई *समस्या के हल के लिए समय-समय पर विशुद्ध सिद्धान्त प्रस्तावित करता है।*

(5) इतिहास-सापेक्ष (Historico-relative)—आगमनिक विधि के अन्तर्गत प्राप्त सामान्यीकरण अर्थशास्त्र मे प्राय इतिहास-सापेक्ष होता है। क्योकि वह एक विशिष्ट ऐतिहासिक स्थिति से प्राप्त होता है, इसलिए उसे सभी स्थितियो पर नहीं लागू किया जा सकता बशर्ते कि वे एक-दूसरी से मिलती-जुलती न हो। उदाहरण के लिए, साधन सम्पन्नताओ की दृष्टि से भारत तथा अमरीका मे अन्तर है। इसलिए आज के भारत मे वह औद्योगिक नीति लागू करना गलत होगा जो उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त मे अमरीका मे प्रचलित थी। इस प्रकार आगमनिक प्रणाली का यह *गुण है कि वह सबद्ध स्थितियो अथवा घटनाओ पर सामान्य सिद्धान्त लागू करती है।*

(6) जाच में (In Verification)—स्थापित आर्थिक सिद्धातों की सत्यता की जाँच करने हेतु आगमन विधि महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

आगमनिक विधि के दोष (Demerits of Inductive Method)

आगमनिक विधि मे निम्न दोष पाए जाते है

(1) गलत प्रयोग (Wrong Use)—विश्लेषण के लिए आगमनिक विधि साख्यिकीय अको पर भरोसा करती है और "यदि उनके प्रयोग के लिए आवश्यक मान्यताए भूल जाएँ तो उनका गलत प्रयोग तथा उनकी गलत व्याख्या हो सकती है।"[10]

(2) अनिश्चितता (Uncertainty)—बोल्डिंग ने लक्ष्य किया है कि "साख्यिकी सूचना केवल हमे ऐसी प्रस्थापनाएँ (proposition) दे सकती है जिनकी सत्यता थोडी बहुत सभव हो पर वह निश्चित कभी नहीं हो सकती।"[11]

(3) मूर्त नहीं (Not Concrete)—साख्यिकीय विश्लेषण मे जिन परिभाषाओ, स्रोतो तथा विधियों का प्रयोग किया जाता है, वे एक ही समस्या तक के लिए एक से दूसरे अनुसधानकर्त्ता तक भिन्न-भिन्न होती है, उदाहरणार्थ, राष्ट्रीय आय का लेखा। इस प्रकार साख्यिकीय तकनीक 'एकदम मूर्त' नहीं होती।

(4) महगी (Costly)—आगमनिक विधि मे समय भी बहुत लगता है और लागत भी बहुत पडती है। इसमें प्रशिक्षित एव विशेषज्ञ अनुसधानकर्त्ताओ तथा विश्लेषको को आँकडो को सग्रह करने, वर्गीकरण, विश्लेषण तथा व्याख्या करने की विस्तृत एव परिश्रमी प्रक्रियाएँ करनी पडती है।

(5) परिकल्पना सिद्ध नहीं हो सकती (Hypothesis cannot be tested)—आगमन मे साख्यिकी के प्रयोग से परिकल्पना सिद्ध नहीं हो सकती। यह तो केवल इतना ही बता सकता है कि परिकल्पना ज्ञात तथ्यों से असगति नहीं रखती। वास्तव मे आँकडो का सग्रह ज्ञानदायक नहीं है जब तक कि वह परिकल्पना से सबद्ध न हो।

(6) प्रयोगीकरण सभव नहीं (Experimentation not Possible)—आगमन मे साख्यिकीय विधि के अतिरिक्त जिस अन्य विधि का प्रयोग होता है वह नियत्रित प्रयोगीकरण की प्रणाली है।

10 Cohen and E Nagel, *op cit*, p 316
11 K E Boulding *op cit* p 12

यह प्रणाली प्राकृतिक एवं भौतिक विज्ञानों में बहुत उपयोगी है जो कि भौतिक पदार्थ से सबध रखते है। परन्तु प्राकृतिक विज्ञानों से भिन्न, अर्थशास्त्र में प्रयोगीकरण की गुंजाइश नहीं है क्योंकि अर्थशास्त्र मानव-व्यवहार से सबध रखता है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति और एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न होता है। फिर, आर्थिक घटनाएँ बहुत जटिल होती है क्योंकि वे मनुष्यों से सबध रखती है जो युक्तिसगत आचरण नहीं करते। उसके कुछ कार्य उस समाज की वैधानिक एवं सामाजिक सस्थाओ से आबद्ध रहते है जिस समाज में वह रहता है। इस प्रकार आगमनिक *अर्थशास्त्र में नियंत्रित प्रयोगीकरण की बहुत कम गुंजाइश रहती है।*

निष्कर्ष (Conclusion)

ऊपर दिए गए विश्लेषण से स्पष्ट है कि वैज्ञानिक अनुसधान में स्वतन्त्र रूप से न तो निगमन सहायक है और न आगमन। वास्तव मे, कुछ तथ्यो के कारण निगमन तथा आगमन एक-दूसरे से सम्बद्ध है। ये दोनों तर्कशास्त्र के दो रूप है जो पूरक एव सहसबद्ध है और सत्य की स्थापना मे सहायक है।

अर्थशास्त्र में इन्हें सयुक्त रूप से प्रयोग करते है ताकि निगमन के माध्यम से निष्कर्षों की आगमनिक तर्क-वितर्क द्वारा पुष्टि हो सके और विलोमश भी। श्मोलर (Schmoller) से यह उद्धरण देकर मार्शल ने जाच की दोनो विधियो की पूरक प्रकृति का समर्थन किया है, "वैज्ञानिक चिन्तन के लिए आगमन और निगमन दोनों की उसी प्रकार ज़रूरत है जिस प्रकार चलने के लिए दाएँ और बाएँ दोनों पैरो की ज़रूरत है।" मार्शल ने स्वय भी निगमन और आगमन को समझदारी से मिला कर ही अर्थशास्त्र की जाच मे सच्ची प्रगति पर बल दिया है। मार्शल के शब्दों में "निगमन और विश्लेषण द्वारा सहायता-प्राप्त, आगमन तथ्यो की उपयुक्त श्रेणियो को इकट्ठा करता है, क्रमबद्ध करता है, उनका विश्लेषण करता है और उनमें से सामान्य कथन अथवा नियम निकालता है। तब कुछ समय के लिए निगमन मुख्य भूमिका निभाता है यह इनमें से कुछ सामान्यीकरणों को एक दूसरे के साथ लाता है, उनमें से प्रयोगात्मक तौर से नए और विस्तृत सामान्यीकरण अथवा नियमो की खोज करता है और फिर नए नियमो का परीक्षण और "जाच" करने के लिए इन तथ्यों को इकट्ठा करने, अदला-बदली और व्यवस्थित करने के मुख्य काम को बाटने के लिए पुन आगमन को आमन्त्रित करता है।"[12]

आजकल अर्थशास्त्री विभिन्न क्षेत्रो मे परिकल्पनाओ की परोक्ष जाच करने और निरीक्षित तथ्यों से सामान्यीकरण निकालने के लिए अपने आर्थिक तथ्यों के अध्ययनों में आगमन और निगमन का इकट्ठा कर रहे हैं। वे निगमन द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की पुष्टि आगमनिक तर्क से करके दोनो विधियो का प्रयोग करते है और विलोमश। इस प्रकार, आर्थिक जाचो मे सही प्रगति आगमन और निगमन के समझदार सयोग से की जा सकती है।

6. आर्थिक नियमों (या सामान्यीकरणों) की प्रकृति (THE NATURE OF ECONOMIC LAWS OR GENERALISATIONS)

आर्थिक नियमो का अर्थ (Meaning of Economics Laws)

एक नियम (या सामान्यीकरण) विशेष निरीक्षणों या प्रयोगों के आधार पर सामान्य सत्य स्थापित करता है जो दो या अधिक तथ्यों के बीच कारणात्मक (causal) सबध खोजता है। परन्तु

12 A Marshall, *op cit*, p 614

आर्थिक नियम दो या अधिक आर्थिक तथ्यो के बीच सबधो मे सामान्य प्रवृत्तियों या समानताओ के कथन है। मार्शल ने आर्थिक नियमो को इस प्रकार परिभाषित किया "आर्थिक नियम या आर्थिक प्रवृत्तियों के कथन वे सामाजिक नियम हे, जो आचरण की उन शाखाओं से सबधित हे जिनमें मुख्यतया सबधित उद्देश्यो की दृढता को मुद्रा कीमत मे मापा जा सकता है।"[13] इस परिभाषा से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आर्थिक नियम (क) *आर्थिक प्रवृत्तियों के कथन* हैं, (ख) वे सामाजिक नियम हैं, (ग) वे मानव व्यवहार से सबद्ध है, ओर (घ) मानव व्यवहार को मुद्रा द्वारा मापा जा सकता है। दूसरी ओर राबिन्स के अनुसार, "आर्थिक नियम मानव व्यवहार के बारे मे समानताओ के कथन है जिनका सबध असीमित आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए वेकल्पिक प्रयोगो द्वारा सीमित साधनो का निपटारा करने से हे।"[14] ये दोनो परिभाषाएं इस बात मे समान हे कि आर्थिक नियमो को *मानव व्यवहार से सबधित प्रवृत्तियो या समानताओं के कथन* मानती हैं।

उनकी प्रकृति *(Their Nature)*

आर्थिक नियम वैज्ञानिक नियमो के समान हे जो दो या अधिक तथ्यो के बीच कारणात्मक सबध खोजते हे। प्राकृतिक विज्ञानो की भाति, अर्थशास्त्र मे भी आशा की जाती हे कि एक विशेष कारण से एक निश्चित परिणाम निकलेगा। गुरुत्वाकर्षण का नियम बताता हे कि अन्य बातें समान रहने पर, ऊपर से आती हुई वस्तुए एक निश्चित दर से पृथ्वी पर गिरेंगी। परन्तु यदि आधी हो तो, *गुरुत्वाकर्षण शक्ति कम हो जाएगी तथा नियम ठीक प्रकार मे कार्य नहीं करेगा। जेसा कि* मार्शल ने कहा, "इसलिए गुरुत्वाकर्षण का नियम प्रवृत्तियो का एक कथन है।" इसी प्रकार आर्थिक नियम प्रवृत्तियो के कथन हे। उदाहरणार्थ, माग का नियम कहता हे कि अन्य बाते समान रहने पर जब कीमत गिरती ह तो माग बढती हे ओर विलोमश। फिर, विज्ञान के नियमो की भाति अर्थशास्त्र के कुछ नियम, निश्चयात्मक (positive) हैं, जेसे ह्रासमान प्रतिफल का नियम जो निर्जीव *प्रकृति से सबध रखता है। क्योकि वेज्ञानिक नियमो की भाति ही आर्थिक नियम है, इसलिए उनकी* मान्यता व्यापक (universal validity) हे। राबिन्स के अनुसार, "आर्थिक नियम अनिवार्य निहितार्थों (implications) का वर्णन करते है। यदि जिन आकडो को वे लेते हैं वे दिए हुए हे, तब जिन परिणामों की वे भविष्यवाणी करते हे अवश्य निकलते हैं। इस अर्थ में, वे अन्य वैज्ञानिक नियमो के समान आधार पर हैं, ओर थोडे मे 'अनिश्चितता' के योग्य।"

इन *समानताओं के बावजूद, आर्थिक नियम उतने यथार्थ* ओर निश्चयात्मक नहीं जितने कि प्राकृतिक विज्ञानो के नियम। ऐसा इसलिए कि आर्थिक नियम उतनी निश्चितता से कार्य नहीं करते जिस प्रकार वेज्ञानिक नियम करते हे। उदाहरणार्थ, चाहे कुछ भी स्थितिया हो गुरुत्वाकर्षण का नियम अवश्य क्रियाशील होना हे क्योकि कोई भी ऊपर से आती वस्तु अवश्य भूमि पर गिरेगी। परन्तु कीमत के गिरने से माग मे वृद्धि नहीं होगी यदि अर्थव्यवस्था मे मदी हो, क्योकि उपभोक्ताओं के पास क्रयशक्ति नहीं होती। इसलिए मार्शल के अनुसार, "ऐसी कोई आर्थिक प्रवृत्तिया नहीं हे, जो इतनी स्थिरता ओर निश्चितता से मापी जा सकती है जितना की गुरुत्वाकर्षण, ओर परिणामस्वरूप, अर्थशास्त्र के कोई नियम नहीं हैं जिनकी यथार्थता के लिए

13 "Economic laws or statements of economic tendencies are those social laws which relate to those branches of conduct in which the strength of the motives chiefly concerned can be measured by money price." *Marshall op cit* p 27

14 "Economic laws are statements of uniformities about human behaviour concerning the disposal of scarce means with alternative uses for the achievement of ends that are unlimited" *L Robbins op cit*, p 121

गुरुत्वाकर्षण के नियम के साथ तुलना की जा सके।"

प्राकृतिक विज्ञानों में नियन्त्रित प्रयोगीकरण होता है और प्राकृतिक वैज्ञानिक प्रयोगशाला में अपने प्रयोगों में प्राकृतिक स्थितियों जैसे तापमान और दबाव को परिवर्तित करके वैज्ञानिक नियमों को बहुत शीघ्रता से टेस्ट कर सकता है। परन्तु अर्थशास्त्र में नियन्त्रित प्रयोग संभव नहीं है, क्योंकि एक आर्थिक स्थिति किसी अन्य समय में उसी प्रकार कभी भी दोहराई नहीं जाती है।

फिर, अर्थशास्त्री का वास्ता मनुष्य से रहता है जो अपनी रुचियों, स्वभावों, स्वभावगत विलक्षणताओं आदि के अनुसार व्यवहार करता है। अर्थशास्त्री की प्रयोगशाला समस्त विश्व या विश्व का वह भाग है जिसमें वह अपना अनुसंधान करता है। परिणामतः मानव के व्यवहार से संबंधित भविष्यवाणी गलत हो सकती है। उदाहरण के लिए, हो सकता है कीमत में वृद्धि होने से माँग में कमी न हो, बल्कि यदि युद्ध की प्रत्याशा में लोगों के मन में वस्तुओं की कमी होने का भय है तो कीमत बढ़ने पर भी माँग बढ़ सकती है। यदि कीमत बढ़ने के परिणामस्वरूप माँग घट भी जाए, तो भी ठीक-ठीक यह बता सकना संभव नहीं है कि माँग कितनी कम होगी। इस प्रकार, "यह आवश्यक नहीं कि अर्थशास्त्र के नियम प्रत्येक व्यक्तिगत स्थिति में लागू हों, हो सकता है कि वास्तविक अर्थव्यवस्था के नित्य बदलते वातावरण में वे विश्वसनीय न हों, और निस्संदेह वे किसी भी तरह अलंघनीय (inviolable) तो नहीं हैं।"[15]

परन्तु केवल अर्थशास्त्र ही ऐसा विज्ञान नहीं है जिसमें सही भविष्यवाणियाँ संभव न हों। जीव विज्ञान तथा ऋतु विज्ञान जैसे विज्ञान भी घटनाओं के संबंध में सही-सही भविष्यवाणी नहीं कर सकते। ज्वारभाटा का नियम बताता है कि क्यों पूर्ण चन्द्रमा के समय ज्वारभाटा शक्तिशाली और चन्द्रमा के प्रथम चतुर्थांश (quarter) में कमजोर होता है। इस आधार पर यह पहले से बताया जा सकता है कि ठीक किस समय पर ज्वारभाटा आएगा। परन्तु हो सकता है कि उसी समय यह न आए। किन्हीं पहले से न ज्ञात परिस्थितियों के कारण, बताए गए समय से पहले या बाद में भी ज्वारभाटा आ सकता है। इसलिए मार्शल ने ज्वारभाटा के नियमों के साथ अर्थशास्त्र के नियमों की तुलना की है, "न कि गुरुत्वाकर्षण के सरल तथा सही नियमों के साथ। क्योंकि मनुष्यों के कार्य इतने विविध एवं अनिश्चित हैं कि मानव-व्यवहार के विज्ञान में प्रवृत्तियों से संबंधित जो श्रेष्ठतम कथन हम कर सकते हैं, वह अवश्य ही गलत और दोषपूर्ण होगा।"[16]

बहुत से आर्थिक नियम व्यवहारवादी (behaviourist) हैं, जैसे घटती सीमांत उपयोगिता का नियम, सममीमांत उपयोगिता का नियम, माँग का नियम, आदि जो मानव व्यवहार पर निर्भर करते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र के व्यवहारवादी नियम उतने सही नहीं हैं जितने कि प्राकृतिक विज्ञानों के नियम क्योंकि ये मानव प्रवृत्तियों पर आधारित हैं जो सदैव एक जैसी नहीं रहतीं। इसका कारण यह है कि सभी मनुष्य विवेकशील नहीं हैं। और फिर उन्हें उस समाज की सामाजिक एवं कानूनी संस्थाओं के अधीन कार्य करना पड़ता है जिसमें वे रहते हैं। जैसा कि प्रो. शुम्पीटर ने ठीक ही कहा है, "किसी भी भौतिक विज्ञान के नियमों की अपेक्षा अर्थशास्त्र के नियम बहुत कम स्थिर हैं ... और विभिन्न संस्थानिक स्थितियों में वे भिन्न-भिन्न परिणाम देते हैं।"[17]

आर्थिक नियम निश्चयात्मक (assertive) नहीं होते जबकि वैज्ञानिक नियम निश्चयात्मक होते हैं। वास्तव में आर्थिक नियम सांकेतिक (indicative) होते हैं। उदाहरणार्थ, माँग का नियम केवल यह संकेत करता है कि अन्य बातें समान रहने पर, माँगी गई मात्रा कीमत के साथ उल्टे

15 C D Harbury, *An Introduction to Economic Behaviour*, 1971
16 A Marshall, *op cit*, p 26
17 J A Schumpeter *History of Economic Analysis*, 1954

सबधित होती है। परन्तु यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि कीमत के बढ़ने से माँग अवश्य गिरेगी।

प्रो सेलिगमैन ने आर्थिक नियमों की यह विशिष्टता बताई है कि वे "मूलत परिकल्पित" (essentially hypothetical) होते हैं क्योंकि वे "अन्य बातों के समान रहने" की पूर्वमान्यता लेकर चलते हैं और कुछ परिकल्पनाओं से निष्कर्ष निकालते हैं। इस अर्थ में, सभी वैज्ञानिक नियम भी परिकल्पित हैं क्योंकि वे भी यह मान कर चलते हैं कि "यदि अन्य बाते समान रहें"। उदाहरण के लिए, यदि अन्य बातें समान रहें तो 2 1 के अनुपात में हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन के संयोग से पानी बन जाएगा। पर, यदि यह अनुपात बदल दिया जाए अथवा/तथा तापमान एव दबाव स्थिर न रखे जाए तो पानी नहीं बनेगा। फिर भी वैज्ञानिक नियमों के मुकाबले आर्थिक नियमों में विद्यमान परिकल्पित तत्त्व भिन्न होता है। यह आर्थिक नियमों में अधिक स्पष्ट होता है क्योंकि अर्थशास्त्र मानव व्यवहार से संबध रखता है जबकि प्राकृतिक विज्ञान जड पदार्थों से।

परन्तु अन्य सामाजिक विज्ञानों के नियमों की तुलना में अर्थशास्त्र के नियम कम परिकल्पित तथा अधिक यथार्थ, सही एव परिशुद्ध हैं। इसका कारण यह है कि अर्थशास्त्र के पास मुद्रा का मापदण्ड है जो नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि अन्य विज्ञानों को उपलब्ध नहीं है जो अर्थशास्त्र के नियमों को अधिक प्रामाणिक और निश्चित बना देता है। मुद्रा का मापदण्ड आर्थिक नियमों को सामाजिक विज्ञानों के नियमों से श्रेष्ठ तो बना देता है, परन्तु मुद्रा का मूल्य सदैव स्थिर नहीं रहता बल्कि परिवर्तनशील होता है, इसलिए सामाजिक नियमों की भांति आर्थिक नियमों में अनिश्चितता पाई जाती है।

अर्थशास्त्र में कुछ ऐसे सामान्यीकरण भी हैं जिन्हें स्वयंसिद्ध (truism) कहा जा सकता है। वे सूक्तियों (axioms) की भाँति सत्य होते हैं और उनमें कोई अनुभव सिद्ध तत्त्व नहीं होता जैसे कि "बचत आय का फलन है", "मानवीय आवश्यकताएँ अनेक होती हैं" आदि। इस तरह के कथन आर्थिक सामान्यीकरणों को सार्वभौमिक एव सर्वमान्य बना देते हैं। उनके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। अत वे वैज्ञानिक नियमों से श्रेष्ठ होते हैं। परन्तु सभी आर्थिक नियम सूक्तियों की तरह नहीं होते हैं, और इसलिए वे सार्वभौमिक और सर्वमान्य नहीं हैं।

दूसरी ओर, ऐतिहासवादी सम्प्रदाय के अर्थशास्त्री आर्थिक नियमों को कल्पना-मात्र मानते थे, क्योंकि वे इतिहास-सापेक्ष (historico-relative) होते हैं। अर्थात् आर्थिक नियम एक दिए हुए समय, स्थान और वातावरण पर सीमित रूप से लागू होते हैं। परन्तु यह दृष्टिकोण पूरी तरह से सत्य नहीं है क्योंकि आर्थिक नियम इतिहास-सापेक्ष नहीं होते हैं। वे कुछ ऐतिहासिक अवस्थाओं पर ही सीमित तौर से मान्य होने है और उनके बाहर सामाजिक तथ्यों के विश्लेषण पर कोई सबद्धता नहीं होती। लेकिन रॉबिन्स इस विचार से सहमत नहीं है, क्योंकि उसके अनुसार आर्थिक नियम इतिहास-सापेक्ष नहीं हैं। वे कुछ अवस्थाओं के विद्यमान होने के साथ केवल सापेक्ष होते हैं, जो दी हुई मान ली जाती है। यदि मान्यताएं एक दूसरे के साथ मेल खाती हैं और यदि तर्क की प्रक्रिया तार्किक है, तो आर्थिक नियम सर्वमान्य होंगे। परन्तु ये बहुत बडी शर्तें (ifs) हैं। इसीलिए हम प्रो पीटरसन से सहमत हैं कि आर्थिक नियम "वास्तविक जगत् के चित्र का विस्तृत एव सही चित्रात्मक पुनर्प्रस्तुतीकरण नहीं हैं बल्कि वे तो सरलीकृत चित्र हैं जिनका उद्देश्य वास्तविक जगत् को समझने योग्य बनाना है।"[18]

18 W C Peterson *Income Employment and Economic Growth* 1967

7 आर्थिक सिद्धांत में मान्यताओं की प्रकृति, कार्य और महत्त्व (NATURE, ROLE AND SIGNIFICANCE OF ASSUMPTIONS IN ECONOMIC THEORY)

प्रकृति (Nature)

आर्थिक सिद्धांत कुछ मान्यताओं पर आधारित है जिन्हें मुख्यतया तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है।

1 **मनोवैज्ञानिक या व्यवहारवादी मान्यताएं** (Psychological or Behavioural Assumptions)—ये मान्यताएं व्यक्तिगत मानव व्यवहार के बारे में हैं। वे व्यक्तियों के उपभोक्ताओं और उत्पादकों के रूप में विवेकी व्यवहार से संबद्ध हैं। उपभोक्ताओं के रूप में उनमें परिवार, गृहस्थी और व्यक्ति शामिल हैं, और उत्पादकों के रूप में, उनमें व्यापारी, उद्यमी और फर्में सम्मिलित हैं। एक विवेकी उपभोक्ता का उद्देश्य अपनी दी हुई आय और उसका वस्तुओं और सेवाओं पर व्यय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना है। दूसरी ओर, एक विवेकी उत्पादक का उद्देश्य अपने लाभों को अधिकतम करना है। विवेकिता की मान्यताएं व्यष्टि आर्थिक सिद्धांत का आधार है, जिसमें विवेकी उपभोक्ता और उत्पादक मार्किट प्रणाली द्वारा पारस्परिक क्रिया करते हैं। बामोल और बलिंडर के अनुसार, "अर्थशास्त्र में विवेकी व्यवहार को उन निर्णयों की विशेषता के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो निर्णय लेने वाले को अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सहायता करने में बहुत प्रभावी हैं, चाहे वे जो भी हों। उद्देश्य स्वयं (जब तक कि वे स्वयं परस्पर विरोधी न हों) कभी भी विवेकी या अविवेकी नहीं समझे जाते हैं।"[19] विवेकिता मान्यता के आधार पर एक उपभोक्ता और उत्पादक के रूप में एक व्यक्ति एक "आर्थिक व्यक्ति" का कार्य करता है। यह मान्यता अर्थशास्त्री को सामाजिक तथ्यों के प्रयोज्य (usable) परन्तु खण्डनीय (refutable) भविष्यवाणियां उपलब्ध करवाता है। विवेकी व्यवहार व्यवस्थित और प्रयोजन-सहित होता है, जब कि अविवेकी व्यवहार अनिश्चित और भविष्यवाणी न करने योग्य होता है। यद्यपि कुछ व्यक्ति अविवेकी और अनिश्चित ढंग से व्यवहार करते हैं, तो भी इकट्ठे लेने पर अधिकतर व्यक्ति सामूहिक विवेकिता प्रदर्शित करते हैं।

2 **संस्थानिक मान्यताएं** (Institutional Assumptions)—आर्थिक सिद्धांत में ये मान्यताएं सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक संस्थाओं से संबद्ध हैं। सभी आर्थिक सिद्धांतों को एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की मान्यता पर विकसित किया गया है जिसमें उत्पादन और वितरण के साधनों का निजी स्वामित्व होता है और उनका निजी लाभ के लिए प्रयोग किया जाता है। वे स्थिर सरकार और कुछ सामाजिक-आर्थिक संस्थाओं की मान्यताएं लेते हैं जिनमें निजी सम्पत्ति, निजी स्वार्थ, आर्थिक उदारवाद या अबंध नीति, प्रतियोगिता और कीमत प्रणाली सम्मिलित हैं। सरकार का कार्य "खेल के नियमों" का मार्किट में लागू करना है। ये संस्थानिक मान्यताएँ व्यष्टि आर्थिक सिद्धांतों का आधार हैं।

3 **संरचनात्मक मान्यताएं** (Structural Assumptions)—इन मान्यताओं का संबंध अर्थव्यवस्था की प्रकृति और भौतिक बनावट एवं प्रौद्योगिकी की स्थिति से है। अल्पकाल में, आर्थिक सिद्धांत दिए हुए संसाधनों और प्रौद्योगिकी की मान्यताओं पर आधारित है। परन्तु दीर्घकाल में, श्रम, पूंजी और अन्य साधन तथा प्रौद्योगिकी कुछ सिद्धांतों में परिवर्तित होते मान लिए जाते हैं। संरचनात्मक मान्यताओं का विभिन्न प्रकार के उत्पादन फलनों और वृद्धि सिद्धांतों

19 W J Baumol and Blinder *Economics—Principles and Policies* 1979

मे प्रयोग किया जाता है।

मान्यताओं का कार्य और महत्व (Role and Significance of Assumptions)

आर्थिक सिद्धात मे मान्यताओ के कार्य के बारे मे भिन्न विचार पाए जाते है। एक ओर क्लासिकी और नवक्लासिकी अर्थशास्त्री हैं और दूसरी ओर, फ्रीडमेन, मेक्लप, कूपमैन्स आदि है।

क्लासिकी और नवक्लासिकी अर्थशास्त्रियो का विश्वास था कि आर्थिक सिद्धातो के यथार्थिक होने के लिए वे उन्हे "वास्तविक" मान्यताओं पर आधारित होना जरूरी है। मान्यताओं को उनके निहित-अर्थों (implications) की वास्तविक जगत् मे तथ्यों के साथ तुलना करके परोक्ष रूप मे टेस्ट किया जाता है। जब कुछ मान्यताओ पर आधारित सिद्धातो को तथ्य गलत साबित करते है, तो तथ्य उन मान्यताओं को परोक्षतया खण्डित करते है।

फ्रीडमैन अपने निबंध The Methodology of Positive Economics (1953) मे इस मत से सहमत नहीं होता। उसके अनुसार, एक सिद्धात को उसकी मान्यताओं के "यथार्थवाद" (realism) पर आका नहीं जा सकता। बल्कि अर्थशास्त्र म एक अच्छे सिद्धात की प्रामाणिकता (validity) उसकी "भविष्यसूचक शक्ति" (predictive power) और वास्तविक जगत् के लिए उसके निहितार्थ हैं। वह दावा करता है कि मान्यताओं का यथार्थवाद असगत (irrelevant) है क्योंकि यदि निष्कर्ष को सही भविष्यवाणियों द्वारा सत्यापित (verified) किया जाता है, तो सिद्धात पूर्णरूप से प्रामाणिक है। फ्रीडमेन के लिए मान्यताओं के "यथार्थवाद" का अभाव एक गुण नहीं है, परन्तु यह आवश्यक बुराई है। एक सिद्धात को पूर्णतया यथार्थवादी मान्यताओं पर आधारित करना एक-के-साथ एक मेल खाता एक मानचित्र खींचने की तरह है।

फ्रीडमैन आर्थिक सिद्धात-निर्माण मे मान्यताओं को तीन भिन्न, यद्यपि सबधित, निश्चित कार्यों की ओर सकेत करता है।

(क) एक सिद्धात को प्रस्तुत या वर्णन करने क लिए वे अक्सर किफायती ढग हैं,

(ख) वे कभी-कभी एक परिकल्पना के परोक्ष टैस्ट को उसके निहित-अर्थो द्वारा सुविधा प्रदान करते है, और

(ग) वे कभी-कभी स्थितियों का विशेष रूप से उल्लेख करने का सुविधाजनक माध्यम है जिनके अन्तर्गत सिद्धात का सत्यापित होना सभावित है।

एक सिद्धात कुछ महत्त्वपूर्ण मान्यताओं के आधार पर निर्मित किया जाता है। साधारण तौर मे, एक सिद्धात के निर्माण के लिए मान्यताओं का एक से अधिक सेट होता है। फ्रीडमैन के अनुसार, ऐसी मान्यताओ के बीच चुनाव निम्न के आधार पर किया जाता है

(1) परिकल्पना को प्रस्तुत करने में किफायत, स्पष्टता और यथार्थता,

(2) परिकल्पना की प्रामाणिकता पर परोक्ष प्रमाण को लाने की उनकी क्षमता, और

(3) परिकल्पना के कुछ निहित-अर्थों का सुझाव देकर जिनकी निरीक्षण द्वारा जाच की जा सकती हे या अन्य परिकल्पनाओ के साथ इसके सबध लाते हुए जो सबद्ध तथ्यो के साथ व्यवहार करते है।

परन्तु इससे कोई फर्क नहीं पडता कि क्या आर्थिक सिद्धात की मान्यताए "वास्तविक" हैं या नहीं। महत्त्वपूर्ण बात हे सिद्धात की 'भविष्यसूचक शक्ति'। इस प्रकार, फ्रीडमेन एक सिद्धात की भविष्यसूचक यथार्थता को उसकी प्रामाणिकता की केवल कसोटी मानता हे। सेम्यूलसन इसे फ्रीडमैन-घुमाव (F-twist) कहता है, जिसका अर्थ है, जितनी अधिक अयथार्थिक मान्यताए, उतना श्रेष्ठ सिद्धात। फ्रीडमेन के अनुसार, वास्तव मे महत्त्वपूर्ण और सार्थक परिकल्पनाओ की ऐसी मान्यताए पाई जाएगी जो यथार्थता की व्यापक गलत वर्णन होगी। उदाहरणार्थ, एक महत्त्वपूर्ण

और लाभदायक आर्थिक सिद्धांत यह है कि व्यापारी अपने लाभों को अधिकतम करने का उद्देश्य रखते है। इससे हम काफी सफलता के साथ भविष्यवाणी करते हैं कि व्यापारी घटनाओं की एक विस्तृत रेंज के साथ कैसे प्रतिक्रिया करेंगे। इसलिए, यह भिन्न आर्थिक नीतियों के प्रभावों के संभावित प्रभावों में तुलना करने में बहुत उपयोगी है। जिन मान्यताओं पर लाभ-अधिकतमकरण सिद्धांत आधारित है, वे बहुत अयथार्थिक हैं। व्यापारी सीमांत और औसत लागतों एवं आगमों (revenues) की गणना नहीं करते। वे यह जानने के लिए कि उनके लाभ अधिकतम हुए हैं या नहीं, जटिल युगपत् समीकरणों को हल नहीं करते है। बल्कि वे मार्किट स्थितियों के बारे में अपनी कुशाग्र बुद्धि, निपुणता और ज्ञान पर या किसी व्यापारिक भेद पर निर्भर करते हैं। परन्तु लाभ-अधिकतमकरण सिद्धांत सही है।

लाभ-अधिकतमकरण का यह सिद्धांत सरल, उपयोगी और लाभप्रद है। इसलिए केवल इस कारण से यह अप्रामाणिक (invalid) नहीं है कि इसकी मान्यताएं यथार्थिक और सत्य नहीं है। एक अर्थशास्त्र जो "यथार्थवाद" को ढूढने का यत्न करता है, वह जटिलताओं के जाल में फस जाता है। यह जानने के लिए कि वे अपने लाभों की गणना कैसे करते है, और जो वे कहते है सत्य है या नहीं और मान्यताओ के 'यथार्थवाद' पर जाच-परिणामो को अपने निरीक्षणों के आधार पर प्रस्तुत करने हेतु, एक अर्थशास्त्री के लिए सभी व्यापारियों की इंटरव्यू करना असंभव है। फ्रीडमेन निष्कर्ष देता है कि एक सिद्धांत या उसकी मान्यताए संभवत पूर्णतया "यथार्थिक" नहीं हो सकते। महत्त्वपूर्ण यह है कि एक सिद्धांत अपनी मान्यताओं में वर्णनात्मक रूप मे असत्य होना चाहिए। वे सभी जो मान्यताओं के "यथार्थवाद" के महत्त्व को अत्यधिक बल देते है, उन्होंने भावी घटनाओ की भविष्यवाणी करने और उनको नियंत्रित करने के आर्थिक सिद्धांत के वास्तविक उद्देश्य को भुला दिया है। घटनाओं की भविष्यवाणी करने और उनको नियंत्रित करने की यह क्षमता, एक सिद्धांत को उसकी लाभदायकता प्रदान करती है, न कि उसकी मान्यताओं को "यथार्थवाद"।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)

कुछ अर्थशास्त्री आर्थिक सिद्धांत-निर्माण मे मान्यताओ के कार्य एव महत्त्व के बारे मे फ्रीडमेन से सहमत नहीं है।

प्रो नेगल[20] आर्थिक सिद्धांतो मे मान्यताओं के कार्य पर फ्रीडमेन के मत को मूलत स्वीकार करता हुआ सही मानता है। परन्तु वह उसके तर्कों को "अनिर्णायक और अस्पष्ट" कह कर आलोचना करता है। उसके अनुसार, आर्थिक सिद्धांतो का केवल भविष्यसूचक कार्य ही नहीं है, बल्कि व्याख्यात्मक कार्य भी है। फ्रीडमेन एक सिद्धांत की "भविष्यसूचक शक्ति" पर बल देता है और उसके व्याख्यात्मक कार्य की उपेक्षा करता है। इस प्रकार, एक आर्थिक सिद्धांत की मान्यताओ की अयथार्थिक प्रकृति का समर्थन एक बेहतर ढग से किया जा सकता है, यदि उसके व्याख्यात्मक कार्य पर बल दिया जाता है।

प्रो गोर्डन[21] का विचार है कि फ्रीडमेन आर्थिक सिद्धांत मे मान्यताओं के कार्य की अपनी व्याख्या मे "परिचालन प्रस्थापनाओं (operational propositions) की उपेक्षा करता है। एक परिचालन प्रस्थापना वह है जिसका परिणाम प्रस्थापना को टैस्ट करता है। प्रामाणिक परिचालन प्रस्थापनाए इस मान्यता पर आधारित है कि व्यवहार के विवेकी स्थिर ढाचे है। फ्रीडमेन आर्थिक सिद्धांत की केवल भविष्यसूचक शक्ति पर ही विचार करता है और मान्यताओं की परिचालन प्रामाणिकता की उपेक्षा करता है।

20 E Nagel, *The Structure of Science* 1961
21 D F Gordon, "Operational Propositions in Economic Theory" *JPE*, April 1955

प्रश्न

1 अर्थशास्त्र मे सिद्धान्त निमाण प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए। इस सदर्भ मे फ्रीडमैन के मान्यताओ के "यथार्थवाद बनाम लाभदायकता" म सम्बधित विचारा की विवेचना करिए।

2 अर्थशास्त्र मे सिद्धात निमाण की कार्यपद्धति (methodology) की व्याख्या कीजिए। इस सदर्भ मे मान्यताओं की भूमिका की विवचना करिए।

3 'निगमनिक' और 'आगमनिक' मे भेद कीजिए और आर्थिक विश्लेषण मे उनकी लाभदायकता का मूल्याकन करिए।

4 निगमन और आगमन के बीच भेद की व्याख्या करिए और प्रत्येक के सापेक्ष लाभ बताइए।

5 आर्थिक नियमो की प्रकृति की विवेचना कीजिए। वे भौतिक विज्ञानो के नियमो से कैसे भिन्न है?

6 आर्थिक सिद्धात निर्माण करने मे मान्यताओ के कार्य की विवेचना कीजिए।

7 आर्थिक सिद्धात की प्रकृति और सीमाओ की विवेचना कीजिए। आर्थिक नीतियो मे आर्थिक सिद्धात कैसे सहायक होते है?

अध्याय 3

आर्थिक मॉडल
(ECONOMIC MODELS)

1 प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

वैज्ञानिकों की भांति अर्थशास्त्री वास्तविक जगत् की आर्थिक समस्याओं को अपनी जानकारी बढाने के लिए आर्थिक मॉडलों का निर्माण करते है। प्रस्तुत अध्याय में आर्थिक मॉडलों का अर्थ, प्रकृति, मॉडल निर्माण में धारणाएँ, तथा मॉडल निर्माण, टेस्ट, लाभ और सीमाओं का अध्ययन किया जा रहा है।

2 अर्थ और प्रकृति
(MEANING AND NATURE)

अर्थ (Meaning)

एक आर्थिक मॉडल सबधो का व्यवस्थित सेट होता है, जो मान्यताओं के एक सेट के अन्तर्गत एक आर्थिक समानिका (identity) के कार्यकरण की व्याख्या करता है, जिसमे से एक निष्कर्ष या निष्कर्षों का एक सेट तर्कसगत तरीके से निकाला जाता है। आर्थिक समानिका एक परिवार, एक अकेला उद्योग, एक क्षेत्र, एक अर्थव्यवस्था या समस्त विश्व हो सकता है। वास्तव में, एक आर्थिक मॉडल आर्थिक सबधो का एक सेट होता है जिसे सामान्यतया गणितीय समीकरणो के एक सेट द्वारा व्यक्त किया जाता है। प्रत्येक समीकरण में कम-से-कम एक चर होता है, जो कम-से-कम एक अन्य सबध मे भी पाया जाता है, जो मॉडल का भाग होता है।

प्रकृति (Nature)

एक आर्थिक मॉडल वास्तविक जगत् का जानबूझकर सरलीकृत चित्रण होता है। "जानबूझकर सरलीकृत" (deliberately simplified) दो अर्थो मे है

प्रथम, यह बहुत से तत्त्वों को छोड देता है जो वास्तविकता मे कार्य करते है, और दूसरे, यह कई सबधो में वास्तविकता को झुठलाता है। एक वास्तविक स्थिति का चित्रण करने के बजाय, यह आवश्यक सबधो की व्याख्या करता है, जो पास मे विशेष स्थिति की मुख्य विशेषताओं का विश्लेपण और व्याख्या करने के लिए पर्याप्त है।

एक मॉडल का वास्तविकता के साथ सबध उसकी मान्यताओं द्वारा होता है। परन्तु मान्यताए पूर्णतया वास्तविकता को व्यक्त नहीं करती है। बल्कि वे वास्तविकता में "इच्छित अमूर्तीकरण" है जिसका अर्थ है कि वास्तविकता के कुछ पहलू मान्यताओं में समाए हुए है जो मॉडल में सन्नद्ध हैं। यदि मॉडल की मान्यताए कुछ-कुछ वास्तविक है, तो जो निष्कर्ष निकाला

जाता है उसे वास्तविक विश्व स्थिति पर लागू होता दिखाया जा सकता है। इस प्रकार, एक मॉडल वास्तविक आर्थिक विश्व का वर्णन नहीं करता है, क्योकि अपनी प्रकृति द्वारा वह 'वास्तविकता' से एक अमूर्तीकरण निर्मित किया जाता है। फिर भी, अमूर्तीकरण से अभिप्राय अवास्तविकता नहीं, बल्कि वास्तविकता का सरलीकरण है।

एक आर्थिक मॉडल की एक मानचित्र के साथ तुलना की जा सकती है जो भूभाग के प्रत्येक पहलू को नहीं दर्शाता बल्कि केवल उन रूपरेखाओं को जो पास में विशेष स्थिति से सबद्ध हैं। मानचित्र क्षेत्र नहीं है। न ही मॉडल वास्तविक जगत् है। परन्तु दोनों में से कोई भी एक मानचित्र या मॉडल के बिना नहीं समझा जा सकता। एक मानचित्र की भांति, एक आर्थिक मॉडल विशेष स्थिति का ठीक-ठीक पता लगाता है, और, एक मानचित्र मे वास्तविक क्षेत्र की तरह, इसे वास्तविक जगत् में पाए जाने वाले बहुत से जटिल और असबद्ध घटकों से मुक्त रखता है।

एक मॉडल को दो मुख्य उद्देश्यों के लिए निर्मित किया जाता है विश्लेषण या व्याख्या और भविष्यवाणी। विश्लेषण का अर्थ है किसी वस्तु को अशो में भग करना जिनसे वे बनती हैं। हम एक तथ्य या उसके विभिन्न अशो मे विश्लेषण करते हैं। मान्यताओ के आधार पर तथ्यो का विश्लेषण किया जाता है। इसके लिए, एक मॉडल मे मान्यताए निर्मित की जाती हैं जिसमे से एक नियम को तर्क द्वारा निकाला जाता है, जो जाच के तथ्य का वर्णन, व्याख्या और विश्लेषण करता है। उदाहरणार्थ, उपभोक्ता व्यवहार सिद्धात मे, माग के नियम को दी हुई रुचिया, सबधित वस्तुओ की कीमतें और उपभोक्ता की आय जैसी मान्यताओं से, निकाला जाता है। इन मान्यताओं पर आधारित, यह नियम बतलाता है कि माग फलन है कीमत की। इस प्रकार, माग के नियम की मान्यताए इस व्यष्टि आर्थिक मॉडल मे उपभोक्ता के मार्किट व्यवहार को स्थापित करती हैं।

फिर, एक मॉडल को भावी घटनाओ की भविष्यवाणी करने के लिए निर्मित किया जाता है। उदाहरणार्थ, एक मॉडल को अगले वर्ष के लिए मार्किट मे गेहूं की कीमत की व्याख्या करने के लिए निर्मित किया जा सकता है जो गेहूं की फसल का सभावित आकार, फसल की पिछली प्रवृत्ति, बफ्फर स्टॉक मे गेहूँ की मात्रा और पिछले वर्षों मे कीमतो पर आधारित हो। इस प्रकार, यह मॉडल मार्किट मे गेहूँ की भावी कीमत की भविष्यवाणी करेगा।

एक मॉडल की उपयोगिता या "अच्छाई" उसकी प्रामाणिकता (validity) पर निर्भर करती है। एक मॉडल की प्रामाणिकता अनेक कसौटियो के आधार पर आकी जा सकती है इसकी भविष्यसूचक शक्ति, सगति, इसकी मान्यताओं का यथार्थवाद, इसकी व्याख्यात्मक शक्ति, इसकी सामान्यता और इसकी सरलता। परन्तु अर्थशास्त्रियो मे इस बारे मे कोई सामान्य सहमति नहीं कि कौनसी कसौटी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

फ्रीडमैन के लिए, एक आर्थिक मॉडल की प्रामाणिकता की सबसे महत्त्वपूर्ण कसौटी उसकी भविष्यसूचक शक्ति है, न कि उसकी मान्यताओ का यथार्थवाद। मॉडल को वास्तविक विश्व स्थितियों के लिए प्रयोज्य (usable) भविष्यवाणिया और निहित-अर्थ देने चाहिए। उसके अनुसार एक मॉडल अर्थव्यवस्था का सरलीकृत चित्रण है और एक मॉडल हवाई-जहाज की तरह वास्तविक जगत कैसे व्यवहार करेगा के बारे मे भविष्यवाणिया करने के लिए टेस्ट किया जाता है। लेकिन फ्रीडमेन की मॉडल के बारे में कसौटी की व्याख्यात्मक शक्ति नहीं है, क्योकि यह मान्यताओ के यथार्थवाद की उपेक्षा करता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि एक मॉडल को उसकी भविष्यवाणियो की जाच द्वारा टेस्ट करना चाहिए परन्तु जिन मान्यताओ पर वह आधारित है वे भी उसकी प्रामाणिकता का परोक्ष टेस्ट उपलब्ध कराते हैं। दूसरी ओर सैम्युलसन उपभोक्ताओं और उत्पादकों के व्यवहार की व्याख्या करने के लिए मॉडल की मान्यताओं के यथार्थवाद और व्याख्यात्मक शक्ति

को एक प्रामाणिक मॉडल की महत्त्वपूर्ण कसौटिया मानता है।

एक मॉडल को ऐसे ढग से निर्मित करना चाहिए कि वह टैस्ट योग्य हो। और एक मॉडल की प्रामाणिकता को निरीक्षण और सत्यापन की प्रक्रिया द्वारा टैस्ट किया जा सकता है। यदि मॉडल सही तौर से व्याख्या और भविष्यवाणी करता है, तो उसकी प्रामाणिकता सिद्ध हो जाती है। उदाहरणार्थ, यदि फर्म का एक मॉडल फर्म के व्यवहार से सबधित भविष्यवाणिया करता है जो टैस्ट योग्य है और यदि ये भविष्यवाणिया प्रमाण द्वारा समर्थित हैं, तो मॉडल प्रामाणिक कहा जाएगा। फिर, वास्तविक जगत् स्थिति और मॉडल के बीच जितनी अधिक सगति की कोटि (degree of consistency) होगी उतनी अधिक मॉडल की प्रामाणिकता होगी।

प्रामाणिक होने के लिए, एक मॉडल का सामान्य होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ, फर्म के सिद्धात से सबधित एक मॉडल प्रकृति में सामान्य है, क्योंकि इसके निष्कर्ष सभी फर्मों पर उनके आकार या मार्किट ढाचे पर ध्यान दिए बिना लागू होते है। वास्तविक फर्में ऐसा व्यवहार करती मान ली जाती है कि वे मॉडल की मान्यताओं के अनुरूप चलती है और भविष्यवाणियों के निकालने और टैस्ट करने की प्रक्रिया मान्यताओं का अनुकरण करती है। यदि फर्में व्यवहार में इस मॉडल का प्रयोग करती है तो मॉडल खण्डित (refute) हो सकता है यदि मान्यताए अवास्तविक है।

अन्तिम, एक मॉडल सरल होना चाहिए। एक मॉडल को सरल होने के लिए जिन मान्यताओं पर मॉडल आधारित है वे प्रकृति में सामान्य और सख्या में कम होनी चाहिए। यदि एक मॉडल-निर्माता मान्यताओं के एक भिन्न सैट से एक ही समस्या से सबधित दो मॉडलों का निर्माण करता है और प्रत्येक समान रूप से भविष्यवाणी करता है, तो दोनों में से सरल को चुनना चाहिए। जितना मॉडल सरल होगा, उतनी अधिक उसकी सामान्यता होगी।

एक सरल मॉडल में सीमित सख्या में बीजगणितीय समीकरण शामिल होने चाहिए जो युगपतीय तरीके से हल और ग्राफ द्वारा चित्रित किए जा सकते है। युगपत् बीजगणितीय या ग्राफीय हल प्राप्त करने के लिए, चरो के बीच उतने ही सबध होने जरूरी है, जितने चरो को हल करना होता है। ऐसे सरल मॉडल मे, मॉडल-निर्माता न केवल हल प्राप्त करता है, बल्कि अलग-अलग समायोजनो और उनकी गति के समस्त ढाचे को समझने का यत्न करता है जो मॉडल मे घटित होते रहते है।

3. मॉडल निर्माण मे धारणाए (CONCEPTS IN MODEL BUILDING)

जब एक अर्थशास्त्री एक समस्या पर कार्य करने बैठता है, तो वह सर्वप्रथम एक गणितीय मॉडल निर्मित करता है जो उस घटना का वर्णन करता है जिसकी वह व्याख्या करना चाहता है और उन मान्यताओ की जो समस्या के साथ सबद्ध होते है। एक गणितीय मॉडल मे तीन अश शामिल होते है (i) एक निर्भर चर, अर्थात् व्याख्या की जाने वाली घटना, (ii) एक या अधिक स्वतन्त्र चर, अर्थात् तथ्य जो निर्भर चर के व्यवहार को निर्धारित करते है, और (iii) व्यावहारिक मान्यताए जो व्याख्यात्मक और निर्भर चरो के बीच कारणात्मक (causal) सबधो की प्रकृति की व्याख्या करती है।

एक मॉडल जिसका अर्थशास्त्री निर्माण करता है उसमे सामान्यत व्यावहारिक सब [illegible] का एक सैट और सतुलन शर्तों का एक सैट शामिल होता है। वह पहले चरो और प्राचलों (parameters) जिन्हे वह सम्मिलित करना चाहता है, उनका अलग-अलग [illegible] करता है। अगला पग मॉडल के परिचालन (operation) के लिए शर्तों का [illegible] करना है। [illegible] परिभाषा या

समानिकाए, फलनात्मक संबंध और संतुलन एवं असंतुलन शर्तें, जो आगे प्रवाह और स्टॉक शर्तों में विभाजित होती है।

मॉडल निर्माण मे विभिन्न धारणाएं जो प्रयोग की जाती है, निम्न है

1 चर (Variables)—एक चर वह है जिसका आकार या मात्रा एक विचाराधीन निश्चित समय अवधि मे परिवर्तित हो सकता है। इसके भिन्न मूल्य माने जा सकते है, जो प्राय निश्चित होते है। प्रत्येक चर एक निश्चित चिह्न द्वारा व्यक्त किया जाता है। उदाहरणार्थ, हम माग को D से, पूर्ति को S से और कीमत को P से व्यक्त कर सकते है।

एक मॉडल के निर्भर (dependent) *और स्वतंत्र* (independent) चर हो सकते है। एक निर्भर चर वह होता है जिसका आकार या मात्रा किसी अन्य चर की मात्रा मे परिवर्तनो से सबद्ध होता है। उदाहरणार्थ, जब हम यह कहते हैं कि अन्य बाते समान रहने पर, माग कीमत के साथ विपरीत परिवर्तित करती है, तो यहा माग निर्भर चर है और कीमत स्वतंत्र चर।

फिर, एक मॉडल के अन्तर्जात (endogenous) चर और बहिर्जात (exogenous) चर होते है। अन्तर्जात चर वे होते है जिनके मूल्य मॉडल के भीतर से निर्धारित होते है। दूसरी ओर, मॉडल में कुछ ऐसे भी चर हो सकते है जिनके मूल्य बाहरी शक्तियो द्वारा निर्धारित होते है। ऐसे बहिर्जात चर होते है। मॉडल निर्माण मे प्राय प्रयोग किए जाने वाले अन्तर्जात चर हैं माग, पूर्ति, राष्ट्रीय आय, उपभोग, बचत, निवेश आदि। जबकि बहिर्जात चर हैं कीमत, आयात, निर्यात, लाभ, आगम, श्रम-शक्ति, आविष्कार, तकनीकी परिवर्तन, आदि। फिर भी, एक चर जो एक मॉडल के लिए अन्तर्जात होता है, वह किसी अन्य मॉडल के लिए बहिर्जात हो सकता है। उदाहरणार्थ, यदि एक मार्किट-व्यष्टि-मॉडल मे एक वस्तु की कीमत निर्धारित करनी हो तो कीमत एक अन्तर्जात चर होगा। परन्तु यदि एक उपभोक्ता-व्यय मॉडल की व्याख्या करनी हो, तो कीमत एक बहिर्जात चर होगा।

आगे, प्रवाह (flow) चर और स्टॉक चर होते है। प्रवाह चर वह मात्रा है जिसे एक विशेष समय अवधि मे मापा जा सकता है, जबकि स्टॉक चर वह मात्रा है जिसे एक विशेष समय पर मापा जा सकता है। मार्किट माग और पूर्ति अनुसूचिया प्रवाह चर है, जबकि किसी विशेष समय पर एक वस्तु की मार्किट मे उपलब्ध पूर्ति एक स्टॉक चर है। परन्तु एक विशेष चर प्रवाह और स्टॉक चर दोनो ही हो सकता है। उदाहरणार्थ, अवधि t मे पूर्ति पिछली अवधि $t-1$ मे कीमत का फलन हो सकती है, जिससे $S_t = f(P_{t-1})$ जहा पूर्ति प्रवाह चर है। दूसरी ओर, माग स्टॉक चर हो सकती है यदि वह उसी अवधि t मे कीमत का फलन हो, जिससे $D_t = f(P_t)$।

2 स्थिराक (Constants)—एक स्थिराक वह होता है जिसका आकार या मात्रा परिवर्तित नहीं होता। इस प्रकार, यह एक चर का विपरीत है। जब एक चार को स्थिराक के साथ जोड़ा जाता है, तो उसे उस चर का *गुणाक* (*coefficient*) *कहते है।*

3 प्राचल (Parameters)—प्राचल एक चिन्ह है जो किसी एक विशेष समस्या के लिए स्थिराक होता है, परन्तु विभिन्न समस्याओं मे भिन्न मूल्य मान सकता है। यद्यपि एक चर को भिन्न मूल्य दिए जा सकते है, फिर भी यह मॉडल मे एक स्थिराक ही माना जाता है। इसलिए, इसे प्राचलिक (parametric) स्थिराक कहा जाता है। प्राचलो को सामान्य तौर से ऐसे चिन्हो द्वारा व्यक्त किया जाता है, जैसे a b और c या α, β और γ

4 मान्यताओं का एक सेट (A Set of Assumptions)—प्रत्येक मॉडल का निर्माण मान्यताओ के समूह पर आधारित होता है। जितनी मान्यताएं सरल और थोड़ी होंगी, उतना ही मॉडल निर्मित करना आसान होगा।

5 **फलनात्मक संबंध** (Functional Relationships)—दो चरों के बीच एक फलनात्मक संबंध तब पाया जाता है, जब एक चर के मूल्य में परिवर्तन अकेला ही अन्य चर के मूल्य में परिवर्तन को निर्धारित करता है। यदि, उदाहरणार्थ, हम प्रत्येक x-मूल्य को एक अकेला निश्चित y-मूल्य नियत करते हैं, तब y एक फलन है x का जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है $y = f(x)$ जब एक बार हम प्रत्येक x फलन के लिए इस अकेले y को स्थापित कर लेते हैं, तो हम विपरीत संबंध नहीं ले सकते हैं कि x एक फलन है y का।

f के अलावा, फलनों को अन्य चिन्हों द्वारा भी व्यक्त किया जाता है, जैसे g F G या ग्रीक शब्द ϕ और ψ अर्थशास्त्र में, बाएं हाथ के शब्द को फलन के लिए पुन संकेत-चिन्ह के रूप में लिखना प्रचलित है। इस प्रकार, जब हम इस कथन को गणितीय रूप में व्यक्त करना चाहते हैं कि माग कीमत पर निर्भर करती है, तो इसे इस प्रकार लिखा जा सकता है $D = D(P)$ माग और कीमत के बीच यह फलन हमें स्मरण कराता है कि D निर्भर चर है और P स्वतंत्र चर। क्योंकि माग फलन साधारण तौर से ऋणात्मक होता है, इसलिए रेंज सीमित होती है, $D = f(P) \geq 0$

आर्थिक मॉडलों में, फलनात्मक संबंध एक अकेले स्वतंत्र चर तक ही सीमित नहीं है, जैसे $D = f(P)$, बल्कि दो या अधिक स्वतंत्र चरों तक। सामान्य उत्पादन फलन है $Q = f(K, L)$, अर्थात् उत्पादन (Q) पूंजी (K) और श्रम (L) की मात्राओं द्वारा निर्धारित होता है। इसी प्रकार, बहु-चर फलनात्मक संबंध हो सकता है जिसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है $d = f(p_i, y_i, pr_i, t)$, जहा माग (d) फलन है कीमत (p), आय (y), संबंधित वस्तुओं की कीमतें (pr) और रुचिया (t)

6 **समीकरण** (Equations)—आर्थिक मॉडलों में तीन प्रकार के समीकरणों का प्रयोग किया जाता है पारिभाषिक, व्यावहारिक और संतुलन।

पारिभाषिक समीकरण (Definitional Equation)—एक पारिभाषिक समीकरण एक-ही अर्थ वाले दो वैकल्पिक व्यंजकों (expressions) के बीच एक संबंध का उल्लेख करता है। ऐसे समीकरण के लिए ≡ (समानरूप से बराबर) चिन्ह का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ, कुल लाभ (π) को कुल लागत (C) के ऊपर कुल आगम (R) के आधिक्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसे $\pi \equiv R - C$ लिखा जा सकता है। इसे समानिका (identity) या लेखा संबंध भी कहा जाता है, जो एक स्वयंसिद्धि (truism) को व्यक्त करता है।

व्यावहारिक समीकरण (Behavioural Equations)—एक व्यावहारिक समीकरण स्पष्ट करता है कि एक चर अन्य चरों में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप कैसे व्यवहार करता है। एक व्यावहारिक समीकण सदैव कुछ निश्चित मान्यताओं पर आधारित होता है जिस पर विचाराधीन चर का विशेष व्यवहार आधारित है। उदाहरणार्थ, यदि हमें चाय की माग का विश्लेषण करने के लिए एक मॉडल निर्मित करना है, तो *व्यावहारिक मान्यता यह परिकल्पना है कि उपभोक्ता कितनी चाय* खरीदनी है का निर्णय करने के लिए सदैव अपनी संतुष्टियों को अधिकतम करने का यत्न करते हैं। निम्न मांग फलनों पर विचार कीजिए

$$Qd = 800 - 16P \quad (1)$$

$$Qd = 800 - 8P \quad (2)$$

समीकरण (1) में ऊंची कीमत (रु 16) पर मांगी गई मात्रा कम होगी (50 कि ग्रा), जबकि समीकरण (2) में, कम कीमत (रु 8) पर मांगी गई मात्रा अधिक होगी (100 कि ग्रा)। ये समीकरण इस मान्यता के आधार पर उपभोक्ताओं के व्यवहार को दर्शाते हैं कि जब कम कीमत होती है तो वे चाय की अधिक मात्रा खरीद कर और अधिक कीमत होने पर कम मात्रा खरीद कर अपनी संतुष्टियों को अधिकतम करते हैं।

एक व्यावहारिक समीकरण या तो मानव व्यवहार या गैर-मानव व्यवहार को व्यक्त कर सकता है। ऊपर का समीकरण जो चाय की माग से सबधित है, मानव व्यवहार को शासित करता है। दूसरी ओर, जब एक फर्म की कुल लागत उत्पादन में परिवर्तनों द्वारा प्रभावित होती है, तो व्यावहारिक समीकरण का सघर्ष गैर-मानव व्यवहार से है। ऐसा व्यावहारिक समीकरण इस रूप मे हो सकता है $C = 120 + 12Q$

सतुलन शर्त (Equilibrium Condition)—जब एक मॉडल सतुलन के अध्ययन से सबद्ध होता है, तो समीकरण सतुलन को प्राप्त करने की व्याख्या करता है उसे सतुलन स्थिति या शर्त कहते है। मार्किट मॉडल के लिए सतुलन स्थिति है $Qd = Qs$।

व्यवहारिक समीकरणो के आधार पर सतुलन स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है। मान लीजिए कि मार्किट मॉडल के लिए व्यावहारिक समीकरण है

$$Qd = 36 - 4P \quad (1)$$

$$Qs = -12 + 12P \quad (2)$$

$$Qd = Qs \quad (3)$$

समीकरण (1) और (2) को (3) मे स्थानापन्न करने से,

$$36 - 4P = -12 + 12P$$

$$-4P - 12P = -12 - 36$$

$$-16P = -48$$

$$P = \frac{48}{16} = 3$$

P के मूल्य को (1) और (2) समीकरणो मे लगाने से, हमे सतुलन स्थिति प्राप्त होती है,

$$Qd = 36 - 4 \times 3 = 24$$

$$Qs = -12 + 12 \times 3 = 24$$

$$Qd = Qs = 24$$

1. एक व्यष्टि-स्थैतिक मॉडल का निर्माण (BUILDING A MICRO-STATIC MODEL)

एक पूर्ण प्रतियोगी मार्किट मे चाय की कीमत निर्धारित करने के लिए हम एक व्यष्टि स्थैतिक मॉडल निर्मित करते है। इस मॉडल को तीन चरो के बीच परानात्मक सबध व्यक्त करके निर्मित किया जा सकता है। ये तीन चर हैं *चाय की मागी गई मात्रा* (Qd) *सप्लाई की गई मात्रा* (Qs) और चाय की कीमत (P) जहा मागी गई और सप्लाई की गई मात्राए निर्भर चर है और कीमत स्वतन्त्र चर है। इस प्रकार, तीनो चरो मे भौतिक सबध है,

$$Qd = f(P)$$

$$Qs = f(P)$$

$$\text{और} \quad Qd = Qs$$

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

इस मॉडल की निम्न मान्यताए हैं

(1) मागी गई मात्रा कीमत का घटता हुआ फलन है।

(2) सप्लाई की गई मात्रा कीमत का बढता हुआ फलन है। परन्तु यदि कीमत एक न्यूनतम

से नहीं बढ़ती है, तो सप्लाई बिल्कुल नहीं होती।

(3) माग मात्रा और सप्लाई मात्रा स्टॉक चर है।

(4) मार्किट सतुलन में होती है जब आधिक्य माग शून्य हो, अर्थात् $Qd - Qs = 0$। दूसरे शब्दों में, सतुलन शर्त है $Qd = Qs$।

मॉडल (The Model)

इस स्थैतिक मार्किट मॉडल मे, दो व्यावहारिक समीकरण और एक सतुलन समीकरण है,

$$\left.\begin{array}{l} Qd = a - bp \\ Qs = -c + dP \end{array}\right\} \text{व्यावहारिक समीकरण}$$

और $$Qd = Qs \quad \text{(सतुलन शर्त)}$$

जहा a b c और d स्थिराक है।

मान लीजिए कि मार्किट मॉडल के लिए व्यावहारिक समीकरणो के निम्न मूल्य है,

$$Qd = 36 - 4P \quad (1)$$

$$Qs = -12 + 12P \quad (2)$$

$$Qs = Qs \quad (3)$$

समीकरण (1) और (2) को (3) में स्थानापन्न करने से

$$36 \quad 4P = -12 + 12P$$

$$-4P - 12P = -12 \; -36$$

$$-16P = -48$$

$$P \quad = 3$$

P का मूल्य समीकरणों (1) और (2) मे लगाने से

$$Qd = 36 - 4 \times 3 = 24$$

$$Qs = -12 + 12 \times 3 = 24$$

$$Qd = Qs = 24$$

इस प्रकार, चाय की मार्किट रु 3 प्रति कि ग्राम कीमत पर सतुलन मे है जब चाय की 24 टन मात्रा बेची और खरीदी जाती है। जब सतुलन कीमत से कम या अधिक कीमत होती है, तो माग और सप्लाई मात्राओ मे गड़बड़ हो जाती है। परन्तु अन्तत सतुलन कीमत ही स्थापित होगी। इस प्रक्रिया की तालिका 3.1 मे व्याख्या की गई है।

तालिका 3.1 चाय के लिए माग और सप्लाई अनुसूची

कीमत	$36-4P = Qd$	$-12+12P = Qs$	
P_1	$36 - 4\times1 = 32$	$-12 + 12\times1 = 0$	
P_2	$36 - 4\times2 = 28$	$-12 + 12\times2 = 12$	
P_3	$36 - 4\times3 = 24$	$-12 + 12\times3 = 24$	सतुलन स्थिति
P_4	$36 - 4\times4 = 20$	$-12 + 12\times4 = 36$	

यह माग और सप्लाई अनुसूची दर्शाती है कि जब चाय की कीमत सतुलन कीमत (रु 3) से कम रु 2 होती है, तो माग गई मात्रा बढ़कर 28 टन हो जाती है और सप्लाई की गई मात्रा गिर कर 12 टन होती है। कम सप्लाई की तुलना मे अधिक माग कीमत को बढ़ाकर रु 3 कर देगी। परिणामस्वरूप, माग-मात्रा गिर कर 24 टन और सप्लाई-मात्रा भी बढ़कर 24 टन हो

जाएगी जिससे सतुलन स्थिति पुन स्थापित हो जाएगी। इसके विपरीत, कीमत के बढकर रु 4 प्रति कि गा हो जाने पर, चाय की मॉग-मात्रा कम होकर 20 टन और सप्लाई-मात्रा बढकर 36 टन हो जाएगी। सतुलन कीमत से अधिक कीमत पर, प्रत्येक विक्रेता अपनी सप्लाई-मात्रा को पहले बेचने का प्रयत्न करेगा। उसके लिए उसे अपनी कीमत को थोडा सा कम करना पडेगा। दूसरे विक्रेता उसका अनुसरण करेंगे। विक्रेताओ में प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप, कीमत कम होकर रु 3 हो जाएगी और सतुलन स्थिति पुन स्थापित हो जाती है।

ऊपर वर्णित गणितीय मॉडल को चित्र 3 1 मे दर्शाया गया है जहा माग वक्र D व्यावहारिक समीकरण $36 - 4P$ और सप्लाई वक्र S व्यावहारिक समीकरण $- 12 + 12P$ को व्यक्त करता है। दोनो वक्र E बिन्दु पर काटते है जो सतुलन बिन्दु है। OP_3 सतुलन कीमत है जिस पर OQ (= 24 टन) सतुलन मात्रा बेची और खरीदी जाती है। ये सतुलन स्थिति को पूरा करते है। यदि कीमत सतुलन स्तर से कम होकर OP_2 हो जाती है, तो सप्लाई-मात्रा से माग-मात्रा s_1d_1 अधिक होती है। चाय की कमी उत्पन्न हो जाती है और प्रतियोगिता द्वारा कीमत बढकर सतुलन स्तर E पर पहुच जाती है। दूसरी ओर, यदि कीमत सतुलन स्तर से बढकर OP_4 हो जाती है तो माग-मात्रा से सप्लाई मात्रा ds अधिक हो जाती है। इससे चाय की मार्किट मे अधिक मात्रा होने से प्रतियोगिता द्वारा कीमत पुन सतुलन स्तर E पर स्थापित हो जाती है। अत इस मार्किट सतुलन मे, जब एक बार सतुलन स्थिति हो जाती है तो उससे कोई भी विचलन, माग और सप्लाई की स्वचालित शक्तियो द्वारा पुन स्थापित हो जाता है।

चित्र 3 1
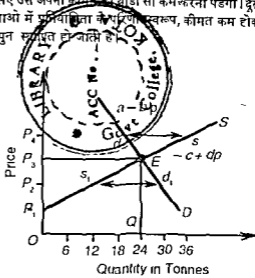
5. एक आर्थिक मॉडल के निर्माण और टैस्ट करने की प्रक्रिया (THE PROCESS OF BUILDING AND TESTING AN ECONOMIC MODEL)

एक आर्थिक मॉडल के निर्माण और टैस्ट करने मे निम्न सोपान शामिल है

1 **समस्या परिभाषित करना** (To define the Problem)—समस्या को परिभाषित करने मे तीन चरण शामिल है प्रथम, समस्या को परिभाषित करना जिसके बारे मे मॉडल निर्मित करना हो। ये एक व्यक्ति, फर्म, उद्योग, एक अकेली वस्तु के लिए मार्किट या समस्त अर्थव्यवस्था हो सकती है। दूसरा चरण प्रश्नो को तैयार करना जिनका एक मॉडल को उत्तर देना होता है। वे घटना या तथ्य के कारणों से सबद्ध हो सकते है। अन्तिम चरण मे, समस्या से सबधित मुख्य चरो के बीच सबध स्थापित किया जाता है।

2 **मान्यताए निर्मित करना** (To formulate Assumptions)—मॉडल की शर्तों एव पदो को परिभाषित करने के पश्चात्, अगला पग जिस समस्या का मॉडल बनाना है उसे सबधित मान्यताओ के एक सैट का निर्माण करना है। मान्यताओ के आधार पर मॉडल के चरो के बीच प्रस्तावित

संबध स्थापित किए जाते है।

3 आकड़े एकत्र करना (To collect Data)—तीसरी स्टेज मॉडल के प्राचलों का अनुमान लगाने हेतु आवश्यक आकडो को इकट्ठा करना, आगणन करना और वर्गीकृत करना है। ऐसे अनुमान लगाने के लिए भिन्न प्रकार की सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

4 तार्किक निगमन निकालना (To derive Logical Deductions)—मॉडल निर्माण की प्रक्रिया मे अगला पग तार्किक निगमन का है जिससे मान्यताओ के निहित-अर्थों को खोजा और पहचाना जाता है। ये निहित-अर्थ मॉडल के बारे में भविष्यवाणिया है।

5 मॉडल को टैस्ट करना (To test the Model)—अगला चरण जिस तथ्य या घटना के लिए मॉडल निर्मित किया जा रहा है उसके वास्तविक व्यवहार पर आकडो से मॉडल की भविष्यवाणियो को टैस्ट करना है। यह सबधित तथ्यों के साथ भविष्यवाणियों की सगति की जाच या निरीक्षण द्वारा किया जाता है।

6 मॉडल को स्वीकार, अस्वीकार या सशोधित करना (To accept, reject or revise the Model)—यदि मॉडल की भविष्यवाणिया सही हैं, तो मॉडल वैज्ञानिक तौर से प्रामाणिक और विश्वसनीय है। यह टैस्ट मे सफल हो जाता है, स्वीकार कर लिया जाता है और आगे किसी कार्यवाही की आवश्यकता नहीं होती है।

यदि भविष्यवाणिया आकडों द्वारा सिद्ध नहीं होती, तो मॉडल तथ्यो के प्रतिकूल है और या तो अस्वीकार कर दिया जाता है या सशोधित किया जाता है। सशोधन करने के लिए, भविष्यवाणियो को नये आकडो के आधार पर टैस्ट करना चाहिए, क्योकि सभव है कि पहले एकत्र किए गए आकडों मे कोई कमी रह गई हो।

6. मॉडलो मे चुनाव (CHOICE AMONG MODELS)

मॉडलो मे चुनाव करते समय, प्रो फ्रीडमैन का कथन है कि एक मॉडल को फाइल करने का एक सिस्टम समझना चाहिए ताकि जाँच सामग्री को सगठित किया जा सके और उसके समझने के लिये सुविधा प्रदान करे, तथा जिन कसोटियो द्वारा उनको आका जाना है वे एक फाइल करने के सिस्टम के लिए उचित हो। क्या मॉडलो की सभी श्रेणिया स्पष्टतया और ठीक-ठीक परिभाषित है? क्या वे विस्तृत है? क्या आप जानते है कि प्रत्येक अकेली मद को कहा फाइल करना है, या क्या उसमे काफी अस्पष्टता है? क्या शीर्षको और उप-शीर्षको का सिस्टम ऐसा बना है कि शीघ्रता से एक मद जिसको हम चाहते है फाइल कर सकते है या उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ढूढना पडता है? क्या मदे जिन पर सयुक्त रूप से हम विचार करना चाहते है वे इकट्ठी फाइल हुई है? क्या फाइल करने का सिस्टम विस्तृत प्रति सदर्भों (cross references) को टालता है?

मॉडलों के बीच चुनाव करते समय, हम उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं की नीचे गणना करते है।[1]

1 जिस समस्या का मॉडल निर्मित करना हो, वह सीमित होनी चाहिए।

2 मॉडल का प्रयोग की जाने वाली धारणाए स्पष्ट और अर्थपूर्ण होनी चाहिए जिनका जाच-योग्य अश अर्थपूर्ण हो।

3 जिन मान्यताओं पर मॉडल आधारित होगा, उन्हें स्पष्टतया निश्चित किया जाए।

1 ये शर्तें एक अच्छे मॉडल की कसौटियों से भी सबद्ध हैं।

जितनी कम मान्यताए होगी, उतना अच्छा मॉडल होगा।

4 मान्यताए एक दूसरे के साथ तर्कपूर्ण तौर से मेल खाती हो, ताकि उनसे प्रामाणिक निष्कर्ष निकाले जा सके।

5 ये निरीक्षण द्वारा परस्पर-विरोधी नहीं होने चाहिए। उदाहरणार्थ, निर्भर चरो को स्वतत्र चर नहीं मानना चाहिए और विलोमश।

6 मॉडल निरीक्षण-योग्य आकडो को सबोधित प्रश्नो के एक समूह से व्यवस्थित रूप मे सबधित होना चाहिए।

7 प्रारभ मे मॉडल पर्याप्त स्थितियो के निर्माण तक सीमित होना चाहिए, जब तक कि नया प्रमाण उनको सही साबित नहीं कर देता है।

8 कुल मिलाकर, मॉडल अनुभवसिद्ध प्रमाण द्वारा खण्डित नहीं होना चाहिए।

9 यदि मॉडल को अध्ययन के बाहर के क्षेत्रो पर लागू किया जाता है, तो इसे पूरा करने के लिए निकाले गए सबधो के अनुमानो को अवश्य शामिल कर लेना चाहिए।

10 मॉडल से नीति निष्कर्ष निकालने के लिए, आर्थिक सिस्टम मे ज्ञात आर्थिक स्थितियो के अनुमान और उनकी कार्य-प्रणाली तैयार करने चाहिए।

11 मॉडल सरल होना चाहिए।

12 मॉडल की वास्तविक जगत् स्थिति के लिए विस्तृत व्यावहारिता होनी चाहिए।

7. आर्थिक मॉडल की सीमाए
(LIMITATIONS OF ECONOMIC MODELS)

आर्थिक मॉडलों में अनेक सीमाए पाई जाती हैं।

1 शुद्ध सैद्धातिक मॉडल अध्ययन के अर्न्तगत तथ्यो के पूर्ण वर्णनो या सही भविष्यवाणियो की व्याख्या नहीं करते हैं।

2 आर्थिक मॉडल आशिक होते है, न कि विस्तृत।

3 वे उन कारको की उपेक्षा करते है जिनको निर्धारित करना कठिन है। इसलिए ये बिल्कुल असबद्ध है।

4 आर्थिक मॉडल-निर्माण मे अर्थमितीय ने एकीकरण और यादृच्छिक (random) बाधाओ की समस्या को प्रदान किया है।

5 जब गणितीय रूप मे व्यक्त किया जाए तो आर्थिक मॉडलो मे यथार्थवाद और प्रासगिकता का अभाव पाया जाता है।

6 जब वे वास्तविक आर्थिक स्थितियों पर लागू किए जाते है तो ये चयनात्मक (selective) अमूर्त और मनमाने होते है। इसलिए एक मॉडल अवास्तविक होता है क्योकि वह बहुत सारे अशो को छोड देता है जो वास्तविक अर्थव्यवस्थाओ मे पाए जाते है।

7 आर्थिक मॉडलो मे चार प्रकार से मान्यताओ के कारण त्रुटिया प्रवेश करती हैं जिन्हे स्पष्ट नहीं किया जाता है।

(i) कुछ प्राचल स्थिर रह सकते है,

(ii) महत्त्वपूर्ण चरो की सख्या को एक अकेले चर मे सीमित किए जाने से,

(iii) बहुत असमान मदो को एक अकेली श्रेणी के रूप मे विश्लेषण करने से, और

(iv) कुछ अनुक्रमो (sequences) को पृथक करके अन्य अनुक्रमो के सबधो की ओर ध्यान दिए बिना विश्लेषण करना।

8. मॉडलों के प्रयोग
(USES OF MODELS)

आर्थिक मॉडलों के निम्न लाभ पाए जाते है।

1 मॉडलों का मुख्य प्रयोग सैद्धान्तिक आर्थिक विश्लेषण में होता है। माने गए संबंधों के सापेक्ष महत्त्व की बहुत स्पष्टता से व्याख्या की जा सकती है तथा भिन्न सैद्धान्तिक दावों के बीच तुलनाएँ कुछ-कुछ सरल बन जाती है।

2 दी हुई मान्यताओं में परिवर्तन करके, मॉडल के व्यवहार पर उन परिवर्तनों के प्रभावों का विश्लेषण करना संभव भी हो जाता है। स्थैतिक और गत्यात्मक मॉडलों को व्यष्टि और समष्टि आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करने के लिए निर्मित किया जाता है।

3 गणितीयपरक दृष्टिकोण से, अर्थमिति और कम्प्यूटरों का मॉडल-निर्माण में प्रयोग आर्थिक रिसर्च प्रक्रिया के एकीकरण को विकसित करने में एक महत्त्वपूर्ण पग का कार्य करता है।

4 मॉडल नीति निर्णय लेने में सहायक होते हैं।

5 अन्तिम, आर्थिक मॉडल स्पष्ट चिन्तन के आवश्यक साधन है।

जैसा कि प्रो मिर्डल ने कहा है, आर्थिक मॉडलों का प्रथम गुण यह है कि जो अन्य प्रकार से अस्पष्ट, अनिश्चित और अपने-आप में परस्पर विरोधी रह सकता है, उसे स्पष्ट और यथार्थ बना सकता है। यद्यपि एक मॉडल पूर्णतया अवास्तविक है तो भी उसका शिक्षणीय मूल्य हो सकता है। आर्थिक मॉडलों के प्रयोग के सबसे तर्कसंगत दावे ये है कि परस्पर निर्भर संबंधों के सोचने में विचारों और गणितों की अत्यधिक दृढ़ताओं के उपचार है।

प्रश्न

1. आर्थिक मॉडल क्या है? अर्थशास्त्र में मॉडल निर्माण में प्रयोग की गई विभिन्न धारणाओं की व्याख्या कीजिए।

2 एक मॉडल या सिद्धान्त के अनुभवसिद्ध टैस्ट से क्या अभिप्राय है? एक मॉडल जो अनुभवसिद्धि द्वारा जाँचा नहीं जा सकता उसे सन्तोषजनक क्यों नहीं समझा जाता है?

3. आर्थिक मॉडल क्या होता है? आर्थिक मॉडलों की प्रकृति की विवेचना कीजिए।

4 आर्थिक मॉडल को परिभाषित कीजिए। एक व्यष्टि-स्थैतिक मॉडल निर्मित कीजिए।

5 एक आर्थिक मॉडल के निर्माण और टैस्ट करने में जो सोपान (steps) होते है उनकी व्याख्या करिए।

6 एक आर्थिक मॉडल क्या है? आर्थिक मॉडलों के लाभ और सीमाओं की व्याख्या कीजिए।

अध्याय 4

व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्र
(MICRO AND MACROECONOMICS)

1 प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

व्यष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं तथा विश्लेषण के दो मार्ग है। पहले का सबध व्यक्तिगत आर्थिक इकाइयो के अध्ययन से है, जबकि दूसरे का समस्त अर्थव्यवस्था के अध्ययन से। रेगनर फ्रिश (Ragner Frisch) पहला व्यक्ति था जिसने 1933 मे अर्थशास्त्र मे व्यष्टि तथा समष्टि शब्दो का प्रयोग किया था।

2 व्यष्टि अर्थशास्त्र
(MICROECONOMICS)[1]

इसका अर्थ (Its Meaning)

व्यक्तियों और व्यक्तियो के छोटे ग्रुपो की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन व्यष्टि अर्थशास्त्र है। इसमे प्रोफेसर बोल्डिग (Boulding) के अनुसार, "विशेष फर्मों, विशेष परिवारो, व्यक्तिगत कीमतो, मजदूरी, आय, व्यक्तिगत उद्यमो तथा विशेष वस्तुओं का अध्ययन" शामिल है।[2] कीमत निर्धारण के विश्लेषण तथा विशिष्ट प्रयोगो मे ससाधनो के आवटन से यह अपना सबध रखता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र के क्षेत्रों मे से कुछ ये है फर्म या उद्योग के सतुलन उत्पादन का निर्धारण, एक विशिष्ट प्रकार के श्रम की मजदूरी दर, तथा चावल, चाय या कार जैसी किसी विशिष्ट वस्तु की कीमत का निर्धारण। ऐक्ले (Ackley) के अनुसार, "व्यष्टि अर्थशास्त्र उद्योगो, वस्तुओं और फर्मो मे कुल उत्पादन के वितरण एव प्रतियोगी ग्रुपो के बीच ससाधनो के आवटन से सबध रखता है। इसकी रुचि विशेष वस्तुओ तथा सेवाओं की सापेक्षिक कीमतो से है।"[3]

वास्तव में जैसा कि मारिस डॉब्ब (Maurice Dobb) ने कहा है कि व्यष्टि अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था का सूक्ष्मतम (microscopic) अध्ययन है। यह एक प्रकार से सूक्ष्मदर्शक (microscope) द्वारा अर्थव्यवस्था को देखने के समान है ताकि यह जाना जा सके कि व्यक्तिगत वस्तुओं की मार्किटों तथा व्यक्तिगत उपभोक्ताओं एव उत्पादकों की क्रियाशीलता का पता चल सके। दूसरे शब्दों में, व्यष्टि अर्थशास्त्र में हम व्यक्तिगत परिवारों, व्यक्तिगत फर्मों एव व्यक्तिगत उद्योगों के एक-दूसरे के साथ परस्पर सबधों का अध्ययन करते है। इस दृष्टिकोण से व्यष्टि अर्थशास्त्र समूहों

1 ग्रीक भाषा के mikros शब्द से जिसका अर्थ है "छोटा"।
2 K E Boulding, *Economic Analysis* (3rd Ed) p 237
3 G Ackley *Macroeconomic Theory*, p 4

(aggregates) का अध्ययन है।

इसका क्षेत्र (Its Scope)

"कीमत और मूल्य सिद्धान्त, परिवार, फर्म एवं उद्योग का सिद्धान्त, अधिकतम उत्पादन तथा कल्याण सिद्धान्त व्यष्टि अर्थशास्त्र के प्रकार है।"[4] अत व्यष्टि अर्थशास्त्र यह अध्ययन करता है कि— (1) विशेष वस्तुओ और सेवाओ के उत्पादन मे ससाधनो का आवटन किस प्रकार होता है। (2) इन वस्तुओ तथा सेवाओ का लोगो मे कैसे वितरण किया जाता है, और (3) वे कितनी दक्षता के साथ वितरित किए जाते है। एक वस्तु की कीमत के निर्धारण की अवस्थाओ का अध्ययन करते समय, व्यष्टि अर्थशास्त्र ससाधनो की कुल मात्रा दी हुई मानता है और उस वस्तु के उत्पादन के लिए उन ससाधनो के आवटन की व्याख्या करने का प्रयत्न करता है। एक विशेष वस्तु के लिए ससाधनो का आवटन, अन्य वस्तुओ की कीमतो और उनका उत्पादन करने वाले साधनो की कीमतो पर निर्भर करता है। दूसरे शब्दो मे, ससाधनो का आवटन ही यह निर्धारित करता है कि क्या उत्पादित किया जाए, कैसे उत्पादित किया जाए, और कितना उत्पादन किया जाए। और यह निश्चय वस्तुओ और सेवाओ की सापेक्षिक कीमतो पर निर्भर करता है। इस प्रकार "व्यष्टि अर्थशास्त्र कीमत सिद्धान्त का अध्ययन है।" एक विशेष वस्तु जैसे चावल, चाय, दूध, पखे, स्कूटरों आदि की कीमत कैसे निर्धारित होती है, एक विशेष प्रकार के श्रम की मजदूरी, एक विशेष प्रकार के पूँजी पदार्थ पर ब्याज, एक विशेष भूमि पर लगान और एक विशेष उद्यमी के लाभ कैसे निर्धारित होते है, तथा कितनी कुशलता के साथ विभिन्न ससाधनों का आवटन व्यक्तिगत उपभोक्ताओ और उत्पादको मे किया जाता है। हम सक्षेप में इन समस्याओ का अध्ययन करेंगे।

व्यष्टि अर्थशास्त्र मे कीमत निर्धारण के विश्लेषण और ससाधनो के आवटन का अध्ययन तीन भिन्न स्थितियों में किया जाता है (i) व्यक्तिगत उपभोक्ताओ और उत्पादको का सतुलन, (ii) एक अकेली मार्केट का सतुलन, और (iii) सब मार्केटों का एक साथ सतुलन। व्यक्तिगत उपभोक्ता और उत्पादक उन वस्तुओं की कीमतो को प्रभावित नहीं कर सकते जिन्हें वे खरीदते और बेचते है। एक उपभोक्ता को दी हुई कीमतों का सामना करना पडता है और वह वस्तु की उतनी ही मात्रा खरीदता है जिससे उसका तुष्टिगुण अधिकतम हो जाए। एक व्यक्तिगत उत्पादक के लिए, आगत (input) तथा निर्गत (output) कीमते दी हुई होती है और वस्तु की उतनी ही मात्रा का उत्पादन करता है जिससे उसके लाभ अधिकतम हो जाएँ। मार्केट मे, कीमत तथा खरीदी और बेची गई मात्रा को क्रेताओं तथा विक्रेताओं के कार्य निर्धारित करते है। व्यक्तिगत माँग तथा पूर्ति वक्रो मे कुल माँग तथा पूर्ति वक्र बनाए जाते हैं। कुल माँग और पूर्ति वक्रो की समानता कीमत तथा मार्केट मे खरीदी और बेची गई मात्रा को निर्धारित करती है। यह बात, वस्तु और साधन दोनो ही मार्केटो पर लागू होती है। पूर्ण प्रतियोगी मार्केट की कुछ मान्यताओं को शिथिल करके, एकाधिकार, अल्पाधिकार तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगी मार्केटो तक इस विश्लेषण का विस्तार होता है।

अन्त मे, भिन्न-भिन्न मार्केटो के आपसी सम्बन्धों को लिया जाता है ताकि सब कीमते एक-साथ निर्धारित की जा सके। यद्यपि यह आम तौर पर कहा जाता है कि व्यष्टि अर्थशास्त्र 'आंशिक सतुलन विश्लेषण (partial equilibrium analysis) से सम्बन्धित है जो कि एक व्यक्ति, एक फर्म, एक उद्योग या उद्योगो के समूह की सतुलन अवस्था का अध्ययन है, तो भी यह अर्थव्यवस्था मे उनके परस्पर सम्बन्धों और परस्पर निर्भरताओं का अध्ययन है जो कि 'सामान्य सन्तुलन

4 *Ibid*

विश्लेषण' (general equilibrium analysis) के अन्तर्गत आता है। अत व्यष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तिगत उपभोक्ताओं, फर्मों और उद्योगों से सबधित वस्तु कीमतो, साधन कीमतो, उनकी माँगो व पूर्तियों एव लागतों की परस्पर निर्भरताओ का अध्ययन है।

प्रथम, एक उपभोक्ता मार्किट है जिसमें प्रत्येक वस्तु की मागी गई मात्रा केवल उसकी अपनी कीमत पर ही निर्भर नहीं करती है बल्कि मार्किट में उपलब्ध प्रत्येक अन्य वस्तु की कीमत पर भी निर्भर करती है। इस मार्किट में, वस्तुओं को खरीदने के लिए उपभोक्ता उत्पादकों को मिलते हे जिसमें उपभोक्ता खरीदते है और उत्पादक वस्तुओ को बेचते है। विभिन्न वस्तुओं के लिए उपभोक्ताओं की माग उनकी कीमतों और जो सेवाए वे प्रदान करते है उनकी कीमतों पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दो मे, एक उपभोक्ता अपनी उत्पादक सेवाओं को बेचकर आय अर्जित करता है और उससे वस्तुओं के लिए माग उत्पन्न करता है। जिस कीमत पर वस्तु बिकती है वह उसकी उत्पादन लागतों पर निर्भर करती है। आगे, उत्पादन लागते विभिन्न उत्पादक सेवाए, जो वस्तु को बनाने के लिए लगाई जाती है, उनकी मात्राओं ओर उनको दिए गए पारिश्रमिकों पर निर्भर करती है। इस प्रकार, मार्किट में वस्तुओं की पूर्ति फर्मों की लागतों और उनके द्वारा विभिन्न उत्पादक सेवाओं की मात्राओं और उनकी कीमतो पर निर्भर करती है।

दूसरे, एक उत्पादकों की मार्किट या साधन मार्किट है। इस मार्किट में, उत्पादन के साधनो की माग उत्पादकों से आती है और पूर्ति उपभोक्ताओं से। एक वस्तु का उत्पादन करने के लिए
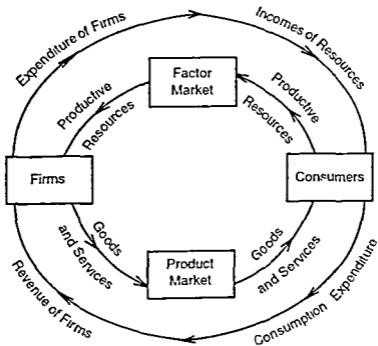
चित्र 4.1

प्रयोग किए गये साधन की मात्रा उसकी कीमत और अन्य साधनों की कीमतों और वस्तुओं की कीमतों के सबधो पर निर्भर करती है। यहा उत्पादक श्रमिको, पूँजीपतियों, भूमिपतियो और अन्य साधन स्वामियों को मिलते हैं। इस मार्केट में, मुद्रा आय साधन स्वामियों द्वारा अर्जित की जाती है, जो साधनों के स्वामी होते हैं और उन्हें बचेते है। वे अधिकतर उपभोक्ता होते हैं। इस प्रकार, व्यष्टि अर्थशास्त्र उपभोक्ताओं, उत्पादको और साधन स्वामियों के परस्पर सबधो का अध्ययन है। इस प्रणाली में, सभी कीमतें एक दूसरे के सापेक्ष हैं। किसी एक कीमत मे परिवर्तन से हलचल हो जाती है जो वस्तु और साधन मार्किटो दोनों पर प्रभाव डालती है। कीमतों द्वारा साधन और वस्तु मार्किटो के बीच परस्पर सबधो को चित्र 4 1 में दर्शाया गया है। इस प्रकार, व्यष्टि अर्थशास्त्र वस्तु कीमतो, साधन कीमतो, उनकी मागो, पूर्तियों और लागतो की परस्पर निर्भरताओं का अध्ययन है जिनका सबध व्यक्तिगत उपभोक्ताओं, फर्मों और उद्योगों के साथ है।

इसके अतिरिक्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र यह भी अध्ययन करता है कि अर्थव्यवस्था मे कितनी दक्षता (efficiency) के साथ विभिन्न ससाधनों का व्यक्तिगत उपभोक्ताओं और उत्पादकों में वितरण होता है। ससाधनो के वितरण की दक्षता कल्याण अर्थशास्त्र के अध्ययन से सबधित है। इसमे उपभोग में दक्षता, उत्पादन मे दक्षता तथा उपभोग और उत्पादन मे परिपूर्ण दक्षता का अध्ययन सम्मिलित होता है। उपभोग और उत्पादन दक्षताओं का सम्बन्ध व्यक्तिगत कल्याण से होता है, तथा परिपूर्ण दक्षता का सामाजिक कल्याण से। एक व्यक्तिगत उपभोक्ता का कल्याण अधिकतम तब होता है जब ससाधनों के किसी भी पुनर्वितरण से वह किसी अन्य व्यक्ति की स्थिति खराब किए बिना बेहतर हो जाए। एक व्यक्तिगत उत्पादक उत्पादन मे दक्षता तब प्राप्त करता है जब किसी एक वस्तु के उत्पादन मे ससाधनो के किसी भी पुनर्वितरण से वह किसी अन्य वस्तु के उत्पादन को कम किए बिना इस वस्तु के उत्पादन को बढाने में समर्थ होता है। परिपूर्ण दक्षता (overall efficiency) जो सामाजिक कल्याण या पेरेटो इष्टतमता (Pareto optimality)[5] भी कहलाती है, समाज की आर्थिक दक्षता के परिपूर्ण सुधार से सबधित होती है, जिससे सामाजिक कल्याण बढता है जब ससाधनों के पुनर्वितरण से किसी भी व्यक्ति की स्थिति खराब किए बिना सारा समाज बेहतर अवस्था में हो जाता है। दक्षता के इस स्तर पर ससाधनो का कोई भी पुनर्वितरण होने पर केवल परिपूर्ण आर्थिक अदक्षता (inefficiency) ही नहीं होगी बल्कि व्यक्तिगत उपभोक्ताओं और उत्पादकत्ताओ की अदक्षताएँ भी उत्पन्न होंगी। इस प्रकार व्यष्टि अर्थशास्त्र कल्याणकारी सिद्धान्त का व्यक्तिगत और सामूहिक दृष्टिकोण से अध्ययन करता है।

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि व्यष्टि अर्थशास्त्र मे कीमत सिद्धान्त, व्यक्तिगत परिवार, फर्म ओर उद्योग का सिद्धान्त, उत्पादन सिद्धात ओर कल्याण सिद्धात का अध्ययन शामिल है।

व्यष्टि अर्थशास्त्र का महत्त्व (Importance of Microeconomics)

व्यष्टि अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की एक महत्त्वपूर्ण विधि है जिसे केन्ज ने मनुष्य के विचार के उपकरण का आवश्यक भाग (a necessary part of one's apparatus of thought) माना है। इसके सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों ही महत्त्व है।

(1) अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझना (To understand the working of the economy)—व्यष्टि अर्थशास्त्र एक मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के कार्यकरण के समझने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। ऐसी अर्थव्यवस्था में आर्थिक प्रणाली का नियोजन और समन्वय करने के लिए कोई भी सत्ता नहीं होती। ऐसे निर्णय कि उत्पादन कैसे किया जाए, क्या उत्पादित किया जाये, किसके

5 इसके विस्तृत अध्ययन के लिए 'कल्याण अर्थशास्त्र' अध्याय देखिए।

लिए उत्पादन किया जायें, कैसे वितरण किया जाये और क्या उपभोग किया जाये, सभी बिना किसी बाह्य शक्ति के उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं द्वारा लिए जाते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि एक केन्द्रीय आयोजित अर्थव्यवस्था में आयोजन प्राधिकारी एक मुक्त उद्यम अर्थव्यवस्था के अभाव में अर्थव्यवस्था के कुशल कार्यकरण को प्राप्त नहीं कर सकते। जैसा कि लरनर ने कहा है, "व्यष्टि अर्थशास्त्र हमें यह सिखाता है कि अर्थव्यवस्था का पूर्ण रूपेण "सीधा" कार्यकरण असम्भव है—आधुनिक अर्थव्यवस्था इतनी जटिल है कि कोई भी केन्द्रीय आयोजन संस्था सारी सूचना प्राप्त नहीं कर सकती और इसके कुशल कार्यकरण के लिए सभी आवश्यक निर्देश नहीं दे सकती।"[6]

(2) **आर्थिक नीतियों के लिए उपकरण प्रदान करना** (To provide tools for economic policies)—व्यष्टि अर्थशास्त्र राज्य की आर्थिक नीतियों का मूल्यांकन करने के लिए विश्लेषणात्मक उपकरण प्रदान करता है। कीमत या मूल्य प्रणाली एक उपकरण है जो इस कार्य में सहायता देती है। एक मिश्रित अर्थव्यवस्था में राज्य कई सार्वजनिक उपयोगी सेवाएँ जैसे डाक, रेलें, पानी, बिजली आदि का संचालन करता है। इन अवस्थाओं में केन्द्रीय, राज्य, और स्थानीय सरकारें न-लाभ न-हानि के आधार पर कीमतें नियत करती हैं। आगे, ये कीमतें अन्य वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों को प्रभावित करती हैं। यहाँ सार्वजनिक उद्यम भी होते हैं जिनका संचालन कीमत-लाभ नीति पर होता है। इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं की कीमतें अर्थव्यवस्था के निजी क्षेत्र में विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों को प्रभावित करती हैं। कुछ सार्वजनिक उद्यम निजी उद्यमों के प्रतियोगी होते हैं जिससे उनकी कीमत नीतियाँ कीमत प्रणाली पर आधारित होती हैं। ये निजी क्षेत्र से अधिक कीमतें नहीं ले सकते हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र सरकार को सही कीमत नीतियाँ बनाने और उनका ठीक ढंग से मूल्यांकन करने में सहायता करता है।

(3) **संसाधनों की कुशल नियुक्ति में सहायक** (Helpful in the efficient employment of resources)—कीमत सिद्धान्त का संबंध दुर्लभ संसाधनों के कुशल मितव्यय (economizing) से है। आधुनिक सरकारों को जिस मुख्य समस्या का सामना करना पड़ता है वह प्रतियोगी साध्यों में संसाधनों के वितरण की है। इस विचार से, व्यष्टि अर्थशास्त्र का सरकार द्वारा प्रयोग संसाधनों की कुशल नियुक्ति और स्थिरता के साथ विकास प्राप्ति के लिए होता है।

(4) **व्यवसाय कार्यपालक को सहायता** (Help to the business executive)—व्यष्टि अर्थशास्त्र व्यावसायिक को वर्तमान संसाधनों से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने में सहायक होता है। वह इसी की सहायता से उपभोक्ता माँग को जानने और अपनी वस्तु की लागतों का आगणन करने में समर्थ होता है।

(5) **कराधान की समस्याएँ समझने में सहायक** (Helpful in understanding the problems of taxation)—व्यष्टि अर्थशास्त्र कराधान की कुछ समस्याओं को समझने में सहायक होता है। यह एक कर के कल्याणकारी परिणामों की व्याख्या करने में प्रयोग किया जाता है। यह कर साधनों के अपने इष्टतम स्तर से पुनर्वितरण की ओर ले जाता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र यह समझाने में सहायता करता है कि एक आय-कर सामाजिक कल्याण की कमी करता है या एक उत्पादन-शुल्क या बिक्री कर। आय-कर की अपेक्षा उत्पादन शुल्क या बिक्री कर सामाजिक कल्याण में कमी लाता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र विश्लेषण, विक्रेताओं और उपभोक्ताओं में वस्तु-कर (उत्पादन-शुल्क या बिक्री कर) के करापात के वितरण का भी अध्ययन करता है।[7]

6 A P Lerner Microeconomic Theory in *Perspectives in Economics* (Ed) Brown Ne Berger Palmatic p 33

7 इसका विश्लेषणात्मक रूप में समझने के लिए उदासीनता वक्र अध्याय में "उदासीनता वक्र के प्रयाग" के अन्तर्गत देखिए।

(6) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की समस्याएँ समझने में सहायक** (Helpful in understanding the problems of International trade)—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में इसका प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ, भुगतान-शेष के असन्तुलन और विदेशी विनिमय दर के निर्धारण में किया जाता है। एक दूसरे की वस्तुओं के प्रति माँग की सापेक्षिक लोचें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लाभ को निर्धारित करती हैं। भुगतान-शेष में असन्तुलन, विदेशी मुद्रा की माँग की पूर्ति में असमानता होती है। एक मुक्त बाजार में करेंसी की विनिमय दर विदेशी मुद्रा की माँग ओर पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

(7) **आर्थिक कल्याण की शर्तों का निरीक्षण करना** (To examine the conditions of economic welfare)—व्यष्टि अर्थशास्त्र का प्रयोग आर्थिक कल्याण की शर्तों का निरीक्षण करने के लिए किया जा सकता है, "अर्थात् व्यक्तिपरक (subjective) सन्तुष्टियों का निरीक्षण करना जिनको व्यक्ति, वस्तुओं एवं सेवाओं तथा विश्राम का आनन्द लेकर प्राप्त करते हैं।" यह कल्याणकारी अर्थशास्त्र का अध्ययन शामिल करता है जो कि एक आदर्श अर्थव्यवस्था को परिभाषित करता है।"[8] जैसा कि ऊपर बताया गया है कल्याण अर्थशास्त्र का सबंध सामाजिक कल्याण को बढाने से है। यह केवल पूर्ण प्रतियोगिता में ही सभव है। परन्तु एकाधिकार, अल्प-एकाधिकार या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में सदैव ससाधनों का कुआवटन होता है और प्राप्त उत्पादन सदैव इष्टतम से कम होता है। अत ससाधनों का काफी अपव्यय होता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र अधिकतम सामाजिक कल्याण लाने के लिए अपव्ययों को दूर करने हेतु कई तरीकों का सुझाव देने में सहायता करता है। जैसा कि प्रो लरनर ने ठीक कहा है, "हम व्यष्टि अर्थशास्त्र में अधिकतर अपव्यय को दूर करने या समाप्त करने से सबंधित होते हैं, या इससे कि अकुशलता उत्पन्न होने से उत्पादन का सगठन कुशलतम सभव तरीके से नहीं किया गया व्यष्टि अर्थशास्त्र सिद्धान्त दक्षता की शर्तों को बताता है (अर्थात् सभी प्रकार की अकुशलताओं को समाप्त करने के लिए) और यह सुझाव देता है कि इन शर्तों को कैसे पूरा किया जाये। ये शर्तें 'पैरेटो-इष्टतम' शर्तें कहलाती हैं) जनसख्या का रहन-सहन का स्तर ऊचा करने में सबसे अधिक सहायक हो सकती है।"[9]

(8) **पूर्वकथन का आधार** (The basis for prediction)—**बिलास के अनुसार व्यष्टि अर्थशास्त्र** सिद्धान्त पूर्वकथन के आधार के तौर पर प्रयोग हो सकता है। इसका यह अर्थ नहीं कि यह हमें भविष्य को बताने में सामर्थ्य देगा। वरन यह अधिकारी को सप्रतिबन्ध (conditional) पूर्वकथन करने में सामर्थ्य देगा। इन शर्तों की निम्नलिखित किस्में हैं यदि कुछ होता है, तो एक निश्चित परिणामों के समूह पाये जायेंगे उदाहरणार्थ, हम वस्तुओं और मजदूरियों को प्रभावित कर रही सरकारी नीतियों का अध्ययन करने में समर्थ हों, और देखें कि यह नीतियाँ साधनों के वितरण को कैसे प्रभावित करती हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र सिद्धान्त हमें यहाँ सप्रतिबन्ध पूर्वकथन करने में सामर्थ्य देगा।"[10]

(9) **वास्तविक आर्थिक तत्त्वों के लिए मॉडलों का निर्माण एवं प्रयोग** (Construction and use of models for actual economic phenomena)—व्यष्टि अर्थशास्त्र वास्तविक आर्थिक तत्त्वों को समझने के लिए मॉडलों को बनाता और प्रयोग करता है। जैसा कि बिलास ने कहा है, "व्यष्टि अर्थशास्त्र का सैद्धान्तिक रास्ता अमूर्त मॉडलों के प्रयोग करने का प्रयत्न यह देखने के लिए करता है कि कीमतें कैसे निर्धारित होती हैं ओर साधनों का विभिन्न उपयोगों में वितरण कैसे होना है। सिद्धान्त को उपयोग करने वाले अधिकारी को यह निर्धारण करने के लिए सामर्थ्य देना चाहिए कि

8 R A Bilas *Microeconomic Theory* p 3
9 A P Lerner *op cit* p 30
10 R A Bilas *op cit* italics mine

कौन से तथ्य विशेषतया अध्ययन की जाने वाली समस्या के प्रासगिक है।" लरनर इसको अधिक स्पष्ट करते हुए कहता है, "व्यष्टि अर्थशास्त्र यह समझने की सुविधा देता है कि बुरी तरह से जटिल अस्त-व्यस्त असख्य तथ्यो के लिए व्यवहार के मॉडल बनाकर जो काफी हद तक वास्तविक घटनाओं के समान होते हैं उनके समझने में सहायक होगा। इसी समय ये मॉडल अर्थशास्त्रियो को उस कोटि तक व्याख्या करने की सामर्थ्य देते है जहाँ तक कि वास्तविक घटनाएँ निश्चित आदर्श रचनाओ से विचलित होती है, जो पूर्णतया व्यक्तिगत और सामाजिक उद्देश्यो को पूर्ण करेगे। इसी प्रकार वे केवल वास्तविक आर्थिक स्थिति का ही वर्णन करने में सहायक नहीं होते, परन्तु नीतियाँ भी सुझाते हैं, जो कि बहुत सफलता एव बहुत दक्षता के साथ ऐच्छित परिणामो को लायेगी और ऐसी नीतियाँ एव अन्य घटनाओ के परिणामो की भी भविष्यवाणी करेगी।"[11] इस प्रकार, यह समस्या सुलझाने की एक बढ़िया विधि है।

व्यष्टि अर्थशास्त्र की सीमाए (Limitations of Microeconomics)—इसके महत्त्वो के बावजूद व्यष्टि अर्थशास्त्र की कुछ सीमाए है जिनकी निम्न व्याख्या की गई है।

(1) यह अर्थव्यवस्था मे पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। केन्ज के अनुसार, पूर्ण रोजगार को मानना यह मान लेने के बराबर है कि हमारे सामने कठिनाइया है ही नहीं। वास्तविक ससार मे पूर्ण रोजगार नियम नहीं, बल्कि अपवाद है। इस प्रकार, व्यष्टि अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की एक अवास्तविक विधि है।

(2) व्यष्टि अर्थशास्त्र अबाध (laissez faire) नीति की मान्यता पर आधारित है। परन्तु यह नीति अब बिल्कुल प्रयोग मे नहीं लाई जाती है। यह 1930 के दशक की महान मदी के साथ समाप्त हो गई थी। इस कारण व्यष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन अवास्तविक बन जाता है।

(3) व्यष्टि अर्थशास्त्र अशो के अध्ययन से सबधित है और समस्त की उपेक्षा करता है। जैसा कि बोल्डिग ने व्यक्त किया है, "आर्थिक प्रणाली जैसे तथ्यो के एक बडे और जटिल ससार की व्याख्या व्यक्तिगत इकाइयो के रूप मे करना असभव है।" अत व्यष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन अर्थव्यवस्था की एक अस्पष्ट और अपूर्ण तस्वीर प्रदान करता है।

(4) कई आर्थिक समस्याओ का विश्लेषण करने मे व्यष्टि अर्थशास्त्र असमर्थ ही नहीं, बल्कि भ्रातिजनक भी है। यह आवश्यक नहीं कि जो नियम एक विशेष परिवार, फर्म या उद्योग के लिए सत्य है, वे समस्त अर्थव्यवस्था पर भी ठीक-ठीक लागू हो।

3 समष्टि अर्थशास्त्र
(MACROECONOMICS)

इसका अर्थ (Its Meaning)

समष्टि अर्थशास्त्र[12] समूहो (aggregates) अथवा समस्त अर्थव्यवस्था से सबध रखने वाली औसतो का अध्ययन है जैसे कि कुल रोजगार, बेरोज़गारी, राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय उत्पादन, कुल निवेश, कुल उपभोग, कुल बचत, कुल पूर्ति, कुल माँग और सामान्य कीमत स्तर, मजदूरी स्तर, ब्याज दरे, तथा लागत ढाँचा। दूसरे शब्दो मे यह सामूहिक अर्थशास्त्र जो विभिन्न समूहो के आपसी

11 A P Lerner, *op cit*, p 29

12 ग्रीक भाषा के शब्द Macro से जिसका अर्थ है "बडा"। (Macroeconomics is the study of *aggregates or averages* covering the entire economy such as total employment, national income, national ouput, total investment total consumption total savings aggregate supply aggregate demand, general price level, general wage level and general cost structure)

सम्बन्धों, उनके निर्धारण और उन में होने वाले उतार-चढ़ावों की जाँच करता है। इस प्रकार, एक्ले के अनुसार "समष्टि अर्थशास्त्र आर्थिक घटनाओं से वृहत रूप में व्यवहार करता है। यह आर्थिक जीवन के कुल आयामों से सबंध रखता है। यह आर्थिक अनुभव के 'हाथी' के व्यक्तिगत अंगों के कार्यकरण, हड्डियों के जोड़ों और आयामों को देखने की बजाय, उसके कुल परिमाण और आकार तथा कार्यकरण को देखता है। यह, उन वृक्षों से स्वतन्त्र रहकर, जंगल की प्रकृति का अध्ययन करता है, जिनसे कि वह (जंगल) बना है।"[13]

समष्टि अर्थशास्त्र को 'आय और रोजगार का सिद्धान्त' या केवल 'आय विश्लेषण' भी कहते हैं। बेरोजगारी, आर्थिक उतार-चढ़ाव, मुद्रास्फीति, अपस्फीति, अस्थिरता, गतिहीनता, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा आर्थिक विकास की समस्याओं से इसका सबंध है। यह बेरोजगारी के कारणों तथा रोजगार के विभिन्न निर्धारकों का अध्ययन करता है। व्यापार चक्रों के क्षेत्र में, यह कुल उत्पादन, कुल आय, तथा कुल रोजगार पर पड़ने वाले निवेश के प्रभावों से अपना सबंध रखता है। मौद्रिक क्षेत्र में यह सामान्य कीमत स्तर पर मुद्रा की कुल मात्रा के प्रभाव का अध्ययन करता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भुगतान-शेष तथा विदेशी सहायता की समस्याएँ समष्टि आर्थिक विश्लेषण के क्षेत्र में आती हैं। इन सब से बढ़कर, समष्टि आर्थिक सिद्धान्त एक देश की कुल आय के निर्धारण की समस्याओं और उनके उतार-चढ़ाव के कारणों पर विचार करता है। अन्तिम, यह उन कारणों का अध्ययन करता है जो विकास में रुकावट डालते हैं और उनका, जो अर्थव्यवस्था को आर्थिक विकास के मार्ग पर लाते हैं।

समष्टि अर्थशास्त्र का क्षेत्र और महत्त्व (Scope and Importance of Macroeconomics)

आर्थिक विश्लेषण की विधि के रूप में समष्टि अर्थशास्त्र का सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक महत्त्व बहुत है।

(1) **अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझना** (To understand the working of the economy)—अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझने के लिए समष्टि आर्थिक चरों (variables) का अध्ययन अनिवार्य है। हमारी प्रमुख आर्थिक समस्याएँ अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत कुल आय उत्पादन, रोजगार, और सामान्य कीमत स्तर से सबंधित रहती हैं। ये चर आकड़ों से मापे जा सकते हैं और इस प्रकार, अर्थव्यवस्था के कार्यकरण पर पड़ने वाले प्रभावों के विश्लेषण की सभावनाएँ आसान बन जाती हैं। जैसा कि टिम्बर्गन का कथन है समष्टि आर्थिक सिद्धान्त 'निरसन प्रक्रिया को समझने योग्य तथा पारदर्शी बनाने में' सहायक है।[14] सम्भव है कि कोई इस बात पर सहमत न हो कि भिन्न-भिन्न कीमतों को मापने का कौन-सा तरीका सबसे अच्छा है, परन्तु अर्थव्यवस्था की प्रकृति को समझने में सामान्य कीमत स्तर सहायक होता है।

(2) **आर्थिक नीति में** (In economic policy)—आर्थिक नीति के दृष्टिकोण से समष्टि अर्थशास्त्र अत्यन्त उपयोगी है। आधुनिक, विशेष रूप से अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की, सरकारों को अनगिनत राष्ट्रीय समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वे अति-जनसंख्या, मुद्रास्फीति, भुगतान-शेष, तथा सामान्य अल्प-उत्पादन की समस्याएँ हैं। इन सरकारों का प्रमुख दायित्व यह है कि अति-जनसंख्या, सामान्य कीमतों व्यापार की सामान्य मात्रा, सामान्य उत्पादन आदि का नियमन

13 Macroeconomics deals with economic affairs in the large It concerns the overall dimensions of economic life It looks at the total size and shape and functioning of the 'elephant' of economic experience, rather than working or articulation or dimensions of the individual parts It studies the character or dimensions of the individual parts. It studies the character of the forest independently of the trees which compose it " G. Ackley *op cit* p 4

14 It helps in making the elimination process understandable and transparent *J Tinbergen*

और नियत्रण करे। टिम्बर्गन का कथन है "अपने समय की बडी समस्याओं के हलो मे योगदान देने के लिए समष्टि आर्थिक सिद्धान्तो से कार्यकरण नितान्त आवश्यक है।" व्यक्तिगत व्यवहार के आधार पर कोई भी सरकार इन समस्याओ को हल नहीं कर सकती है। हम कुछ जटिल आर्थिक समस्याओ को हल करने मे समष्टि आर्थिक अध्ययन के उपयोग का विश्लेषण करते हैं।

(i) **सामान्य बेरोजगारी मे** (In general unemployment)—केन्ज का रोजगार का सिद्धान्त समष्टि अर्थशास्त्र का एक प्रयोग है। अर्थव्यवस्था मे रोजगार का सामान्य स्तर प्रभाव माँग पर निर्भर करता है, जो कि कुल माग ओर कुल पूर्ति फलनों पर निर्भर करती है। इस प्रकार, बेरोजगारी का कारण प्रभावी माँग की कमी है। इसको दूर करने के लिए कुल निवेश, कुल उत्पादन, कुल आय ओर कुल उपभोग को बढाकर प्रभावी माँग बढानी चाहिए। इस प्रकार, समष्टि अर्थशास्त्र का विशेष महत्त्व इस बात मे हे कि वह सामान्य बेरोजगारी के कारणो, प्रभावो तथा उपचार का अध्ययन करता है।

(ii) **राष्ट्रीय आय मे** (In national income)—राष्ट्रीय आय के रूप मे अर्थव्यवस्था के समस्त कार्य का मूल्याकन करने के लिए समष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन बहुत आवश्यक है। 1930 के बाद की विश्वव्यापी मन्दी के आगमन के साथ यह जरूरी हो गया कि सामान्य अति-उत्पादन तथा सामान्य बेरोजगारी के कारणों का विश्लेषण किए जाए। इसके परिणामस्वरूप, राष्टीय आय के आकडों का निर्माण हुआ। राष्ट्रीय आय के आकडो से आर्थिक क्रिया के स्तर का पूर्वानुमान करने ओर अर्थव्यवस्था मे लोगों के भिन्न-भिन्न वर्गों मे आय के वितरण को समझने मे सहायता मिलती है।

(iii) **आर्थिक विकास मे** (In economic development)—विकास का अर्थशास्त्र भी समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन का विषय हे। समष्टि अर्थशास्त्र के आधार पर ही एक अर्थव्यवस्था के ससाधनों ओर क्षमताओ का मूल्याकन किया जाता है। राष्ट्रीय आय, उत्पादन ओर रोजगार मे कुल वृद्धि की योजनाएँ बनाई ओर लागू की जाती हे ताकि समस्त अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास का स्तर बढे।

(iv) **मोद्रिक समस्याओ मे** (In monetary problems)—समष्टि अर्थशास्त्र की सहायता से ही मोद्रिक समस्याओ का विश्लेषण किया जा सकता ह ओर उन्हे ठीक मे समझा जा सकता हे। मुद्रा के मूल्य मे जल्दी-जल्दी होने वाले परिवर्तन—मुद्रास्फीति या अपस्फीति—अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हे। समस्त अर्थव्यवस्था के लिए मोद्रिक, राजकोषीय ओर सीधे नियत्रण उपाय अपनाकर उनकी रोक-थाम की जा सकती ह।

(v) **व्यापार चक्रो मे** (In business cycles)—आर्थिक समस्याओ के माँग के रूप मे समष्टि अर्थशास्त्र विश्वव्यापी मन्दी के बाद शुरू हुआ। इस प्रकार इसका महत्त्व इस बात मे है कि वह आर्थिक उतार-चढावों के कारणों का विश्लेषण ओर उनका उपचार करता है।

(3) **व्यक्तिगत इकाइयो के व्यवहार को समझने के लिए** (For understanding the behaviour of individual units)—अन्तिम व्यक्तिगत इकाइयो के व्यवहार को समझने के लिए समष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। व्यक्तिगत वस्तुओ के लिए माँग अर्थव्यवस्था मे कुल माँग पर निर्भर करती है। जब तक कुल माँग मे कमी के कारणो का विश्लेषण न किया जाए तब तक व्यक्तिगत वस्तुओं की माँग मे कमी होने के कारणो को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता। समस्त अर्थव्यवस्था की ओसत लागत स्थितियों के जाने बिना एक विशेष फर्म या उद्योग की लागतो मे वृद्धि के कारणों का विश्लेषण नहीं हो सकता। अत समष्टि अर्थशास्त्र के बिना व्यक्तिगत इकाइयो का अध्ययन सभव नहीं।

निष्कर्ष (Conclusion)—इस प्रकार राष्ट्रीय आय, उत्पादन, निवेश, बचत तथा उपभोग के

सम्बन्धी, उनके निर्धारण और उन में होने वाले उतार-चढ़ावों की जाँच करता है। इस प्रकार, एक्ले के अनुसार "समष्टि अर्थशास्त्र आर्थिक घटनाओं से वृहत रूप में व्यवहार करता है। यह आर्थिक जीवन के कुल आयामों से सबंध रखता है। यह आर्थिक अनुभव के 'हाथी' के व्यक्तिगत अंगों के कार्यकरण, हड्डियों के जोड़ों और आयामों को देखने की बजाय, उसके कुल परिमाण और आकार तथा कार्यकरण को देखता है। यह, उन वृक्षों से स्वतन्त्र रहकर, जंगल की प्रकृति का अध्ययन करता है, जिनसे कि यह (जंगल) बना है।"[13]

समष्टि अर्थशास्त्र को 'आय और रोजगार का सिद्धान्त' या केवल 'आय विश्लेषण' भी कहते हैं। बेरोजगारी, आर्थिक उतार-चढ़ाव, मुद्रास्फीति, अपस्फीति, अस्थिरता, गतिहीनता, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा आर्थिक विकास की समस्याओं से इसका संबध है। यह बेरोजगारी के कारणों तथा रोजगार के विभिन्न निर्धारकों का अध्ययन करता है। व्यापार चक्रों के क्षेत्र में, यह कुल उत्पादन, कुल आय, तथा कुल रोजगार पर पड़ने वाले निवेशों के प्रभावों से अपना सबंध रखता है। मौद्रिक क्षेत्र में यह सामान्य कीमत स्तर पर मुद्रा की कुल मात्रा के प्रभाव का अध्ययन करता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भुगतान-शेष तथा विदेशी सहायता की समस्याएँ समष्टि आर्थिक विश्लेषण के क्षेत्र में आती हैं। इन सब से बढ़कर, समष्टि आर्थिक सिद्धान्त एक देश की कुल आय के निर्धारण की समस्याओं और उसके उतार-चढ़ाव के कारणों पर विचार करता है। अन्तिम, यह उन कारणों का अध्ययन करता है जो विकास में रुकावट डालते हैं और उनका, जो अर्थव्यवस्था को आर्थिक विकास के मार्ग पर लाते हैं।

समष्टि अर्थशास्त्र का क्षेत्र और महत्त्व (Scope and Importance of Macroeconomics)

आर्थिक विश्लेषण की विधि के रूप में समष्टि अर्थशास्त्र का सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक महत्त्व बहुत है।

(1) **अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझना** (To understand the working of the economy)—अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझने के लिए समष्टि आर्थिक चरों (variables) का अध्ययन अनिवार्य है। हमारी प्रमुख आर्थिक समस्याएँ अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत कुल आय उत्पादन, रोजगार, और सामान्य कीमत स्तर में सबंधित रहती हैं। ये चर आंकड़ों से मापे जा सकते हैं और इस प्रकार, अर्थव्यवस्था के कार्यकरण पर पड़ने वाले प्रभावों के विश्लेषण की संभावनाएँ आसान बन जाती हैं। जैसा कि टिन्बर्गन का कथन है समष्टि आर्थिक सिद्धान्त 'निरसन प्रक्रिया को समझने योग्य तथा पारदर्शी बनाने में' सहायक है।[14] संभव है कि कोई इस बात पर सम्मत न हो कि भिन्न-भिन्न कीमतों को मापने का कौन-सा तरीका सबसे अच्छा है, परन्तु अर्थव्यवस्था की प्रकृति को समझने में सामान्य कीमत स्तर सहायक होता है।

(2) **आर्थिक नीति में** (In economic policy)—आर्थिक नीति के दृष्टिकोण से समष्टि अर्थशास्त्र अत्यन्त उपयोगी है। आधुनिक, विशेष रूप से अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की, सरकारों को अनगिनत राष्ट्रीय समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वे अति-जनसंख्या, मुद्रास्फीति, भुगतान-शेष, तथा सामान्य अल्प-उत्पादन की समस्याएँ हैं। इन सरकारों का प्रमुख दायित्व यह है कि अति-जनसंख्या, सामान्य कीमतों, व्यापार की सामान्य मात्रा, सामान्य उत्पादन आदि का नियमन

13 Macroeconomics deals with economic affairs ' in the large' It concerns the overall dimensions of economic life It looks at the total size and shape and functioning of the elephant' of economic experience rather than working or articulation or dimensions of the individual parts It studies the character or dimensions of the individual parts It studies the character of the forest, independently of the trees which compose it " G Ackley, *op cit* p 4

14 It helps in making the elimination process understandable and transparent *J Tinbergen*

और नियमण करें। दिल्लर्गन का कथन है "अपने समय की बड़ी समस्याओं के हलों में योगदान देने के लिए समष्टि आर्थिक सिद्धान्तों से कार्यकरण मिलना आवश्यक है।" व्यक्तिगत व्यवहार के आधार पर कोई भी सरकार इन समस्याओं को हल नहीं कर सकती है। हम कुछ जटिल आर्थिक समस्याओं को हल करने में समष्टि आर्थिक अध्ययन के उपयोग का विश्लेषण करते हैं।

(i) सामान्य बेरोजगारी में (In general unemployment) - केन्ज का रोजगार का सिद्धान्त समष्टि अर्थशास्त्र का एक प्रयोग है। अर्थव्यवस्था में रोजगार का सामान्य स्तर प्रभावी माँग पर निर्भर करता है, जो कि कुल माँग और कुल पूर्ति फलनों पर निर्भर करती है। इस प्रकार बेरोजगारी का कारण प्रभावी माँग की कमी है। इसको दूर करने के लिए कुल निवेश, कुल उत्पादन, कुल आय और कुल उपभोग को बढ़ाकर प्रभावी माँग बढ़ानी चाहिए। इस प्रकार, समष्टि अर्थशास्त्र का विशेष महत्त्व इस बात में है कि वह सामान्य बेरोजगारी के कारणों, प्रभावों तथा उपचार का अध्ययन करता है।

(ii) राष्ट्रीय आय में *(In national income)* राष्ट्रीय आय के रूप में अर्थव्यवस्था के समस्त कार्य का मूल्यांकन करने के लिए समष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन बहुत आवश्यक है। 1930 के बाद की विश्वव्यापी मन्दी के आगमन के साथ यह जरूरी हो गया कि सामान्य अति-उत्पादन तथा सामान्य रोजगारी के कारणों का विश्लेषण किए जाए। इसके परिणामस्वरूप, राष्ट्रीय आय के आंकड़ों का निर्माण हुआ। राष्ट्रीय आय के आंकड़ों से आर्थिक क्रिया के स्तर का पूर्वानुमान करने और अर्थव्यवस्था में लोगों के भिन्न-भिन्न वर्गों में आय के वितरण को समझने में सहायता मिलती है।

(iii) आर्थिक विकास में (In economic development) - विकास का अर्थशास्त्र भी समष्टि *अर्थशास्त्र के अध्ययन का विषय है। समष्टि अर्थशास्त्र के आधार पर ही एक अर्थव्यवस्था के* ससाधनों और क्षमताओं का मूल्यांकन किया जाता है। राष्ट्रीय आय, उत्पादन और रोजगार में कुल वृद्धि की योजनाएँ बनाई और लागू की जाती हैं ताकि समस्त अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास का स्तर बढ़े।

(iv) मौद्रिक समस्याओं में (In monetary problems)—समष्टि अर्थशास्त्र की सहायता से ही मौद्रिक समस्याओं का विश्लेषण किया जा सकता है और उन्हें ठीक से समझा जा सकता है। मुद्रा के मूल्य में जल्दी-जल्दी होने वाले परिवर्तन—मुद्रास्फीति या अपस्फीति—अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। समस्त अर्थव्यवस्था के लिए मौद्रिक, राजकोषीय और सीधे नियन्त्रण उपाय अपनाकर उनकी रोक-थाम की जा सकती है।

(v) व्यापार चक्रों में (In business cycles) आर्थिक समस्याओं के माँग के रूप में समष्टि अर्थशास्त्र विश्वव्यापी मन्दी के बाद शुरू हुआ। इस प्रकार इसका महत्त्व इस बात में है कि वह आर्थिक उतार-चढ़ावों के कारणों का विश्लेषण और उनका उपचार करता है।

(vi) व्यक्तिगत इकाइयों के व्यवहार को समझने के लिए (For understanding the behaviour of individual units)—अन्तिम व्यक्तिगत इकाइयों के व्यवहार को समझने के लिए समष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। व्यक्तिगत वस्तुओं के लिए माँग अर्थव्यवस्था में कुल माँग पर निर्भर करती है। जब तक कुल माँग में कमी के कारणों का विश्लेषण न किया जाए तब तक व्यक्तिगत वस्तुओं की माँग में कमी होने के कारणों को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता। समस्त अर्थव्यवस्था की औसत लागत स्थितियों के जाने बिना एक विशेष फर्म या उद्योग की लागतों में वृद्धि के कारणों का विश्लेषण नहीं हो सकता। अतः समष्टि अर्थशास्त्र के बिना व्यक्तिगत इकाइयों का अध्ययन सम्भव नहीं।

निष्कर्ष (Conclusion)—इस प्रकार राष्ट्रीय आय, उत्पादन, निवेश, बचत तथा उपभोग के

व्यवहार का अध्ययन करके, समष्टि अर्थशास्त्र एक अर्थव्यवस्था के कार्यकरण के संबंध में हमारा ज्ञान बढ़ाता है। यह बेरोजगारी, मुद्रास्फीति, आर्थिक अस्थिरता तथा आर्थिक विकास की समस्याओं के हल करने में बहुत प्रकाश डालता है। एकले के अनुसार, यह विश्लेषण की वैज्ञानिक विधि से अधिक है, यह आनुभविक आर्थिक ज्ञान का समूह भी है।

समष्टि अर्थशास्त्र की सीमाएँ (Limitations of Macroeconomics)

समष्टि आर्थिक विश्लेषण की कुछ सीमाएँ भी हैं। वे अधिकतर व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर समष्टि आर्थिक सामान्य सिद्धान्तों को बनाने के प्रयत्नों से उत्पन्न होती हैं।

(1) **संरचना की भ्रान्ति (Fallacy of composition)**— समष्टि आर्थिक विश्लेषण में "संरचना की भ्रांति" रहती है अर्थात् कुल आर्थिक व्यवहार व्यक्तिगत क्रियाओं का कुल जोड़ होता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जो बात व्यक्तियों के लिए सत्य है, वह समस्त अर्थव्यवस्था के लिए भी सत्य होगी। उदाहरण के लिए, बचत एक व्यक्ति का गुण है पर सार्वजनिक दोष। यदि अर्थव्यवस्था में कुल बचतें बढ़ जाएँ तो वे मंदी को शुरू कर सकती हैं, जब तक कि उनका निवेश न किया जाए। फिर, यदि एक व्यक्ति बैंक से अपना पैसा निकलवा लेता है, तो इसमें कोई हानि नहीं होती, परन्तु यदि सभी व्यक्ति एक साथ ऐसा करना शुरू कर दें, तो बैंकिंग व्यवस्था समाप्त हो जाएगी।

(2) **समूहों को समरूप मानना (To regard the aggregates as homogeneous)**—समष्टि विश्लेषण में एक प्रमुख दोष यह है कि यह समूहों की आन्तरिक संरचना तथा ढाँचे की परवाह किए बिना उन्हें समरूप मान लेता है। एक देश में औसत मजदूरी सब व्यवसायों की मजदूरी का कुल जोड़ होती है अर्थात् क्लर्कों, टाइपिस्टों, अध्यापकों, नर्सों आदि की मजदूरी। परन्तु कुल रोजगार की मात्रा औसत मजदूरी की बजाय मजदूरी के सापेक्ष ढाँचे पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, यदि नर्सों की मजदूरी बढ़ जाए पर क्लर्कों की मजदूरी कम हो जाए, तो हो सकता है कि औसत मजदूरी में परिवर्तन न हो। परन्तु यदि नर्सों के रोजगार में थोड़ी कमी हो जाए और क्लर्कों का रोजगार अधिक मात्रा में बढ़ जाए तो कुल रोजगार बढ़ जाएगा।

(3) **सामूहिक चरों का महत्त्वपूर्ण होना आवश्यक नहीं (Aggregate variables may not be important necessarily)**—हो सकता है कि सामूहिक चर, जो कि अर्थव्यवस्था को बनाते हैं, अधिक महत्त्वपूर्ण न हों। उदाहरण के लिए एक देश की राष्ट्रीय आय सब व्यक्तिगत आयों का जोड़ है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि का यह अर्थ नहीं कि सभी की व्यक्तिगत आय भी बढ़ गई है। हो सकता है कि देश में कुछ धनी व्यक्तियों की आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई हो। इस प्रकार राष्ट्रीय आय में ऐसी वृद्धि का समाज के दृष्टिकोण से कोई महत्त्व नहीं।

प्रोफेसर बोल्डिंग (Boulding) इन कठिनाइयों को "समष्टि आर्थिक विरोधाभास" (macroeconomic paradoxes) कहता है जो एक अकेले व्यक्ति पर लागू किए जाएँ, तो सत्य होते हैं परन्तु जब समस्त अर्थव्यवस्था पर लागू किए जाते हैं, तो असत्य होते हैं।[15]

(4) **समष्टि अर्थशास्त्र का विवेकहीन प्रयोग भ्रान्तिजनक (Indiscriminate use of macroeconomics misleading)**—फिर, वास्तविक जगत की समस्याओं के विश्लेषण में समष्टि अर्थशास्त्र का विवेकहीन प्रयोग प्राय भ्रांतिजनक भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार लाने तथा बनाये रखने के लिए नीति के रूप में अपनाए गए तरीके व्यक्तिगत फर्मों और उद्योगों की संरचनात्मक बेरोजगारी पर लागू किए जाएँ तो वे असंगत बन जाएँगे। इसी प्रकार, सामान्य कीमतों पर नियंत्रण करने के उद्देश्य से अपनाए गए तरीकों को

15 K. Boulding, *A Reconstruction of Economics*, p. 173

व्यक्तिगत वस्तुओं की कीमतो के नियत्रण के लिए लागू करने से अधिक लाभ नहीं होगा।

(5) आँकडो तथा सकल्पना सबधी कठिनाइयाँ (Statistical and conceptual difficulties)— अन्तिम, समष्टि आर्थिक धारणाओं की माप मे आँकडो तथा सकल्पना सबधी कई कठिनाइयाँ रहती है। ये समस्याएँ समष्टि आर्थिक चरो के जोड से सबधित हैं। यदि व्यक्तिगत इकाइयाँ लगभग समान हो, तब तो जोड मे अधिक कठिनाई नहीं होती। परन्तु यदि समष्टि आर्थिक चरो का सबध समरूप व्यक्तिगत इकाइयो से हो तो उनका एक समष्टि आर्थिक चर मे इकट्ठा करना हानिकर और गलत हो सकता है।

4 व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र मे भेद
(DISTINCTION BETWEEN MICROECONOMICS AND MACROECONOMICS)

व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र मे निम्न भेद किए जा सकते है

'व्यष्टि' शब्द ग्रीक शब्द 'micros' से व्युत्पन्न किया गया है जिसका अर्थ है 'छोटा'। व्यष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तियों और व्यक्तियों के छोटे ग्रुपों का अध्ययन है। यह विशेष परिवारो, विशेष फर्मों, विशेष उद्योगों, विशेष वस्तुओं और व्यक्तिगत कीमतों का अध्ययन है। 'समष्टि' शब्द भी एक ग्रीक शब्द 'macros' से व्युत्पन्न किया गया है, जिसका अर्थ है 'बडा' यह "इन मात्राओं के समूहों से सबधित है न कि व्यक्तिगत आय बल्कि राष्ट्रीय आय से, व्यक्तिगत कीमतो से नहीं, परन्तु सामान्य कीमत स्तरो से, व्यक्तिगत उत्पादन से नहीं बल्कि राष्ट्रीय उत्पादन से।"[16]

व्यष्टि अर्थशास्त्र का माग की ओर उद्देश्य उपयोगिता को अधिकतम करना है जबकि पूर्ति की ओर न्यूनतम लागत पर लाभों को अधिकतम करना है। दूसरी ओर, समष्टि अर्थशास्त्र के मुख्य उद्देश्य पूर्ण रोजगार, कीमत स्थिरता, आर्थिक वृद्धि और अनुकूल भुगतान सतुलन हैं।

व्यष्टि अर्थशास्त्र का आधार कीमत तन्त्र है जो माग और पूर्ति की शक्तियो की सहायता से कार्य करता है। ये शक्तिया मार्किट मे सतुलन कीमत निर्धारित करने मे सहायक होती है। दूसरी ओर, समष्टि अर्थशास्त्र के आधार राष्ट्रीय आय, उत्पादन, रोजगार और सामान्य कीमत स्तर है जो कुल माँग और कुल पूर्ति द्वारा निर्धारित होते है।

व्यष्टि अर्थशास्त्र उन मान्यताओं पर आधारित है जिनका सबध व्यक्तियों के विवेकी व्यवहार से है। फिर इसमे 'अन्य बाते समान रहें' का प्रयोग विभिन्न आर्थिक नियमो की व्याख्या करने के लिए किया जाता है। दूसरी ओर, समष्टि अर्थशास्त्र की मान्यताएँ अर्थव्यवस्था के उत्पादन की कुल मात्रा, किस सीमा तक इसके ससाधन नियोजित हैं, राष्ट्रीय आय का आकार और सामान्य कीमत स्तर, जैसे चरों पर आधारित है।

व्यष्टि अर्थशास्त्र आशिक सतुलन विश्लेषण पर आधारित है जो एक व्यक्ति, एक फर्म, एक उद्योग और एक साधन की सतुलन शर्तों की व्याख्या करने में सहायक होता है। दूसरी ओर, समष्टि अर्थशास्त्र सामान्य सतुलन विश्लेषण पर आधारित है जो एक आर्थिक प्रणाली के कार्यकरण को समझने के लिए अनेक आर्थिक चरो ओर उनके परस्पर सबधो ओर परस्पर निर्भरताओं का विस्तृत अध्ययन है।

व्यष्टि अर्थशास्त्र मे, सतुलन शर्तों का अध्ययन एक विशेष अवधि मे किया जाता है। यह समय तत्त्व की व्याख्या नहीं करता है। इसलिए व्यष्टि अर्थशास्त्र स्थैतिक विश्लेषण है। दूसरी ओर, समष्टि अर्थशास्त्र समय पश्चताओं (time lags), परिवर्तन की दरों और चरो के विगत एव

16 K E Boulding *Economic Analysis* 3/e, p 237

प्रत्याशित मूल्यों पर आधारित है। इस प्रकार यह गत्यात्मक विश्लेषण से संबंधित है।

व्यष्टि अर्थशास्त्र विस्तृत रेंज की स्थितियों, समस्याओं, वस्तुओं, मार्किटों और संगठन की किस्मों पर अधिकतम सामान्यता और व्यवहार्यता से युक्त है। यह धारणाओं और प्रणाली-विज्ञान (methodology) पर बल देता है जिनका समस्या हल करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसकी तुलना में, समष्टि अर्थशास्त्र एक अर्थव्यवस्था के व्यवहारिक ज्ञान का पता लगता है जिसमें समष्टि आर्थिक समस्याएं अपेक्षतया कम है और इसी प्रकार उनके विशेष हल भी।

व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र दोनों में समूहों (aggregates) का अध्ययन शामिल है। परन्तु व्यष्टि अर्थशास्त्र में समूह समष्टि अर्थशास्त्र में समूहों से भिन्न है। व्यष्टि अर्थशास्त्र में, व्यक्तिगत परिवारों, व्यक्तिगत फर्मों और व्यक्तिगत उद्योगों के एक दूसरे के साथ परस्पर-संबंध समूहन (aggregation) के साथ संबंध रखते हैं। "उदाहरण के तौर पर, 'उद्योग' की धारणा अनेक फर्मों या वस्तुओं का जोड करती है। जूतों के लिए उपभोक्ता माँग कई परिवारों की माँगों का जोड होती है, तथा जूतों की पूर्ति कई फर्मों के उत्पादन का जोड है। किसी एक इलाके या उद्योग में श्रम की माँग व पूर्ति स्पष्टतया सामूहिक धारणाएँ है।"[17] परन्तु व्यष्टि अर्थशास्त्र में समूहों का अध्ययन समष्टि अर्थशास्त्र से भिन्न होता है। समष्टि अर्थशास्त्र में समूहों के प्रयोगों का सम्बन्ध "समस्त अर्थव्यवस्था के जोड" से होता है जबकि व्यष्टि अर्थशास्त्र में ये अर्थव्यवस्था के साथ सम्बन्धित नहीं होते परन्तु व्यक्तिगत परिवारों, फर्मों एवं उद्योगों से होते है।

5. दोनो मार्गों के परस्पर सम्बन्ध तथा समाकलन की समस्याएँ (PROBLEMS OF INTERRELATION AND INTEGRATION OF THE TWO APPROACHES)

व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्र का यह सामान्य विभाजन दृढ नहीं है क्योंकि अंश समस्त और समस्त अंशों को प्रभावित करते हैं।

व्यष्टि अर्थशास्त्र की समष्टि अर्थशास्त्र पर निर्भरता (Dependence of microeconomics on macroeconomics)—उदाहरण के लिए समष्टि अर्थशास्त्र पर व्यष्टि अर्थशास्त्र की निर्भरता को लीजिए। जब समृद्धि (prosperity) की अवधि में कुल माँग बढ़ती है, तो व्यक्तिगत वस्तुओं की माँग भी बढ़ जाती है। यदि ब्याज की दर में कमी होने से माँग में यह वृद्धि हुई है तो विभिन्न प्रकार की पूँजी वस्तुओं की माँग बढ़ जाएगी। इसका परिणाम यह होगा कि पूँजी-वस्तु उद्योग के लिए आवश्यक विशेष प्रकार के श्रम के लिए माँग में वृद्धि हो जाएगी। यदि ऐसे श्रम की पूर्ति कम लोचदार हो, तो उसकी मजदूरी की दरें बढ़ जाएँगी। पूँजी-वस्तुओं की बढ़ी हुई माँग के परिणामस्वरूप लाभों में वृद्धि के कारण ही मजदूरी दर बढ़ सकी है। इस प्रकार समष्टि आर्थिक परिवर्तन व्यष्टि आर्थिक चरों के मूल्यों में परिवर्तन कर देता है अर्थात् विशेष वस्तुओं के लिए माँग में, विशेष उद्योगों की मजदूरी दरों में, विशेष फर्मों और उद्योगों के लाभों में, और वर्करों के भिन्न-भिन्न वर्गों की रोजगार की स्थिति में परिवर्तन हो जाता है। इसी प्रकार, अर्थव्यवस्था में, आय, उत्पादन, रोजगार, लागतों आदि का कुल आकार व्यक्तिगत उद्योगों तथा फर्मों की व्यक्तिगत आय, उत्पादन, रोजगार और लागतों की संरचना को प्रभावित करता है। एक और उदाहरण लीजिए, जब मंदी की अवधि में कुल उत्पादन गिर जाता है, तो उपभोक्ता वस्तुओं की अपेक्षा पूँजी वस्तुओं का उत्पादन अधिक गिरता है। इसलिए, उपभोक्ता वस्तु-उद्योगों की अपेक्षा पूँजी-वस्तु

17. G. Ackley, *op. cit.*, pp. 4-5.

उद्योगों में लाभ, मजदूरी तथा रोज़गार अधिक तेजी से गिरते हैं।

समष्टि अर्थशास्त्र की व्यष्टि अर्थशास्त्र पर निर्भरता (Dependence of macroeconomics on microeconomics)—दूसरी ओर, समष्टि आर्थिक सिद्धान्त भी व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण पर निर्भर रहता है। समस्त का निर्माण अशों से होता है। राष्ट्रीय आय व्यक्तियों, परिवारों, फर्मों और उद्योगों की आय का जोड है। कुल बचतें, कुल निवेश और कुल उपभोग व्यक्तिगत उद्योगों, फर्मों, परिवारों और व्यक्तियों के बचत, निवेश तथा उपभोग सबधी निर्णयों का परिणाम होते हैं। सामान्य कीमत स्तर व्यक्तिगत वस्तुओं और सेवाओं की सब कीमतों की औसत है। इसी प्रकार अर्थव्यवस्था का कुल उत्पादन सब व्यक्तिगत उत्पादक इकाइयों की निर्गतों का जोड है।

हम व्यष्टि अर्थशास्त्र पर इस समष्टि निर्भरता के कुछ ठोस उदाहरण लेते हैं। यदि अर्थव्यवस्था अपने स्रोतों को कृषि वस्तुओं के उत्पादन में केन्द्रित कर दे, तो अर्थव्यवस्था का कुल उत्पादन घट जाएगा क्योंकि अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्र उपेक्षित रह जाएँगे। अर्थव्यवस्था में उत्पादन, आय तथा रोज़गार का कुल स्तर भी आय के वितरण पर निर्भर करता है। यदि आय का असमान वितरण हो जिसमें थोड़े से अमीर आदमियों के हाथों में आय एकत्रित हो जाये, तो उससे उपभोक्ता वस्तुओं की माँग घट जायेगी। लाभ, निवेश और उत्पादन में कमी हो जाएगी, बेरोजगारी बढ़ेगी और अन्त में अर्थव्यवस्था को मदी का सामना करना पड़ेगा। इस प्रकार, आर्थिक समस्याओं के हल करने के समष्टि तथा व्यष्टि दोनों ही मार्ग परस्पर सबद्ध तथा परस्पर निर्भर हैं।

दोनों में परस्पर निर्भरता न पाया जाना (Non-interdependence between the two)—इन परस्पर सबधों के बावजूद, बहुत सी समष्टि आर्थिक समस्यायें होती हैं जो कि व्यक्तियों पर लागू नहीं होतीं और बहुत सी व्यक्तिगत समस्यायें होती हैं जो कि सारी अर्थव्यवस्था पर लागू नहीं होतीं। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति की आय और उसके व्यय में प्राय अन्तर होता है और हो भी सकता है, परन्तु समस्त अर्थव्यवस्था के लिए कुल आय तथा कुल व्यय सदैव एक दूसरे के बराबर होते है। एक व्यक्ति बिना बचत किए निवेश कर सकता है, परन्तु अर्थव्यवस्था के लिए बचत और निवेश अवश्य बराबर होने चाहिए। अर्थव्यवस्था में जब पूर्ण रोजगार होता है तो एक फर्म उद्योग में दूसरी फर्मों के साधन आकर्षित करके अपने उत्पादन को बढ़ा सकती है, परन्तु सारा उद्योग इस प्रकार अपने साधनों में वृद्धि नहीं कर सकता। एक देश के निर्यात आयात से अधिक हो सकते हैं, या आयात निर्यात से, परन्तु सारे ससार के लिए कुल आयात कुल निर्यात के बराबर होना चाहिए।

दोनों मार्गों का उचित समाकलन (Proper integration of the two approaches)—वास्तव में, व्यष्टि तथा समष्टि विश्लेषण के बीच कोई अति कठोर रेखा नहीं खींची जा सकती। अर्थव्यवस्था के एक सामान्य सिद्धान्त के अन्तर्गत दोनों आने चाहिए। वह ऐसा सिद्धान्त होना चाहिए जो कीमतों, उत्पादनों, आय, व्यक्तियों, व्यक्तिगत फर्मों एवं उद्योगों के व्यवहार और व्यक्तिगत चरों के समूहों की व्याख्या करे। "वास्तव में समष्टि अर्थशास्त्र और व्यष्टि अर्थशास्त्र में ठीक प्रकार से रेखा नहीं खींची जा सकती। अर्थव्यवस्था का एक 'सामान्य' सिद्धान्त स्पष्टतया दोनों का आलिगन करेगा, यह व्यक्तिगत व्यवहार, व्यक्तिगत उत्पादन, आय और कीमतों की व्याख्या करेगा, और व्यक्तिगत परिणामों के जोड़ या औसतें समूहों को बनायेंगे जिनमें समष्टि अर्थशास्त्र का सबध है। ऐसा सामान्य सिद्धान्त विद्यमान हैं, परन्तु इसकी व्यापकता ही इसके पास बहुत कम मौलिक तत्त्व छोड़ती है। वस्तुत , यथार्थ परिणामों को पहुँचने के लिए, हम यह पाते हैं कि हमें समष्टि आर्थिक समस्याओं को समष्टि आर्थिक उपकरणों तथा व्यष्टि आर्थिक समस्याओं को व्यष्टि आर्थिक उपकरणों द्वारा पहुँचना चाहिए। इस प्रकार, आवश्यकता इस बात की है कि दोनों मार्गों

का उचित समाकलन किया जाए।"[18] प्रोफेसर ऐक्ले (Ackley) ने सुझाव दिया है कि व्यष्टि आर्थिक सिद्धान्त को चाहिए कि वह हमारे समष्टि सिद्धान्तों के निर्माण खण्ड (बिल्डिंग ब्लाक) प्रदान करे। पर व्यष्टि अर्थशास्त्र को समझने में समष्टि अर्थशास्त्र भी योग दे सकता है। उदाहरण के लिए, यदि अनुभव के आधार पर हम कुछ ऐसे स्थिर समष्टि आर्थिक सामान्य सिद्धान्त खोज लें जो कि व्यष्टि आर्थिक सिद्धान्तों से मेल खाते हुए प्रतीत न होते हों या जो व्यवहार के ऐसे पक्षों से सबंध रखते हों जिन्हें व्यष्टि अर्थशास्त्र ने उपेक्षित कर दिया है, तो व्यष्टि अर्थशास्त्र को चाहिए कि हमें इस बात की इजाजत दे कि हम व्यक्तिगत व्यवहार के अपने ज्ञान में सुधार कर लें। परन्तु दोनों में से किसी भी दिशा में चलने के लिए हमें समूहन की कुछ अपेक्षाकृत अधिक तकनीकी समस्याओं के संबंध में जागरूक होने की जरूरत नहीं है जो कि यह बताती है कि "समष्टि अर्थशास्त्र की प्रगति कीमतों और आय के वितरण के व्यष्टि आर्थिक सिद्धान्त की ओर अधिक प्रगति पर निर्भर करती है।"

प्रश्न

1 व्यष्टि अर्थशास्त्र क्या है? इसके विषय-क्षेत्र और महत्त्व की विवेचना कीजिए।

2 व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्र में अन्तर कीजिए। समष्टि आर्थिक विश्लेषण के लाभ तथा सीमाओं की व्याख्या कीजिए।

3 व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्र में भेद कीजिए। "आर्थिक प्रक्रिया के कार्यकरण की सही समीक्षा करने के लिए एक के अध्ययन को दूसरे के अध्ययन के साथ परिपूरक करना आवश्यक हो जाता है।" क्या आप इससे सहमत हैं? विवेचना कीजिए।

18 G Ackley *op.cit.*, p 5

अध्याय 5

आर्थिक स्थैतिकी तथा प्रावैगिकी *
(ECONOMIC STATICS AND DYNAMICS)

1 प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

किसी प्रकार की अनुरूपता न होने पर भी, स्थैतिकी तथा प्रावैगिकी शब्द अर्थशास्त्र मे सैद्धान्तिक यान्त्रिकी (Theoretical Mechanics) से ग्रहण किए गए हैं। दोनो शब्दो मे स्पष्ट और वैज्ञानिक *अन्तर सर्वप्रथम 1928 मे रैगनर फ्रिश (Ragnar Frisch) ने प्रस्तुत किया।* इसके बाद तो हिक्स, टिन्बर्गन, सैम्यूलसन, हैरड तथा बौमल के बीच लम्बा-चौडा धारणा-विषयक विवाद चलता रहा। इससे बहुत गडबड और भ्रान्ति उत्पन्न हुई है। हाल मे, हिक्स, डोमार, कलैस्की, हैरड, सैम्यूलसन, बौमल, लिण्डाल , लम्बर्ग तथा अन्य अर्थशास्त्रियो ने अर्थमिति (econometrics) मॉडलो का निर्माण करके समष्टि-स्थैतिक तथा समष्टि-प्रावैगिक विश्लेषण के सदर्भ मे प्रक्रियात्मक (methodological) मार्ग बनाया है।

2. आर्थिक स्थैतिकी
(ECONOMIC STATICS)

Statics शब्द ग्रीक भाषा के *Statike* शब्द से बना है जिसका अर्थ है स्थिर करना। भौतिकी (Physics) मे इसका अर्थ है स्थिरता की वह स्थिति जहाँ किसी प्रकार की गति न हो। अर्थशास्त्र मे इसका अर्थ है एक विशेष स्तर पर गति की वह विशिष्ट स्थिति जिसमे कोई परिवर्तन न हो। क्लार्क (Clark) के अनुसार यह वह स्थिति है जहाँ अपनी अनुपस्थिति मे पाँच प्रकार के परिवर्तन प्रमुख रहते है (*i*) जनसख्या का परिमाण, (*ii*) पूँजी की पूर्ति, (*iii*) उत्पादन के तरीके, (*iv*) व्यापार *सगठन के रूप, और (v) लोगो की आवश्यकताएँ स्थिर रहती है, परन्तु अर्थव्यवस्था समान गति* से काम करती रहती है। प्रोफेसर मार्शल का कहना है कि "इस सक्रिय परन्तु अपरिवर्तनशील प्रक्रिया के लिए 'स्थैतिक अर्थशास्त्र' शब्दावली का व्यवहार होना चाहिए।"[1] इस प्रकार स्थैतिक अवस्था वह काल-रहित (time-less) अर्थव्यवस्था है जहाँ कोई परिवर्तन नहीं होते और जो निश्चय से सतुलन मे होती है। सूचकाको (indices), चालू माँग उत्पादन, और वस्तुओ तथा सेवाओ की कीमतो का अपने आप समायोजन (adjustment) होता है। जैसाकि सैम्यूलसन ने बताया है "स्थैतिक अर्थशास्त्र पारस्परिक परस्पर निर्भर सबधो के द्वारा आर्थिक चरो के समकालिक और

1 "It is to this active but unchanging process that the expression 'static economics' should be applied "—*Marshall*

तात्कालिक या कालरहित निर्धारण से संबंध रखना है।"[2] स्थैतिक अवस्था में न तो अतीत होता है और न ही भविष्य। इसलिए इसमें अनिश्चितता का तत्त्व बिल्कुल नहीं होता। इस प्रकार प्रोफेसर कुज़नेट्स (Kuznets) का विश्वास है कि "यह मान लेने पर कि निरपेक्ष अथवा सापेक्ष तौर से शामिल आर्थिक मात्राओं में समरूपता और स्थिरता होती है, स्थैतिक अर्थशास्त्र संबंधों और प्रक्रियाओं पर विचार करता है।"[3]

इसके अतिरिक्त, एक स्थैतिक अर्थव्यवस्था के कार्यकरण के लिए पूर्ण प्रतियोगिता, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दूरदर्शिता और पूर्ण गतिशीलता के अस्तित्व की मान्यताएं आवश्यक समझी जाती हैं। परन्तु हेरड यह नहीं मानता कि स्थैतिक विश्लेषण से यह मान्यताएं अनिवार्य रूप से संबद्ध हैं। जॉन राबिन्सन (John Robinson) की *Imperfect Competition* और चैम्बरलिन (Chamberlin) की *Monopolistic Competition* आर्थिक स्थैतिकी के प्रयोग हैं।

अर्थशास्त्री स्थैतिक विश्लेषण की व्याख्या व्यष्टि तथा समष्टि स्थैतिकी सन्तुलन मॉडलों में करते हैं।

व्यष्टि स्थैतिकी (Micro Statics)

एक आर्थिक मॉडल विभिन्न आर्थिक चरों (variables) के सम्बन्धों को बताता है। जिसमें एक चर एक से अधिक सम्बन्धों में पाया जाता है। व्यष्टि-स्थैतिकी मॉडल में माँग तथा पूर्ति के सम्बन्ध में एक समय पर (at a point of time) कीमत निर्धारित करते हैं जो कि काल पर्यन्त (through time) स्थिर होते हैं। माँग और पूर्ति के दिए हुए फलन हैं।

चित्र 5 1

$$D = f(P) \quad (1)$$

$$S = f(P) \quad (2)$$

(1) तथा (2) से $\quad D = S \quad (3)$

जहाँ D किसी वस्तु की माँगी गई मात्रा है, S उस वस्तु की पूर्ति की मात्रा, और P इसकी कीमत है। यह व्यष्टि स्थैतिकी सम्बन्ध चित्र 5.1 में दिखाया गया है।
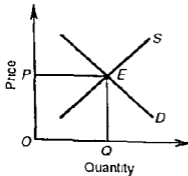
D और S क्रमश माँग और पूर्ति वक्र हैं। वे एक-दूसरे को E पर काटते हैं जहाँ OP कीमत पर माँग और पूर्ति की मात्राएँ OQ के बराबर होती हैं। माँग और पूर्ति की अवस्था में परिवर्तन न होने पर, यह सन्तुलन की अवस्था केवल वर्तमान (एक समय पर) पर ही लागू नहीं होगी बल्कि भविष्य (काल पर्यन्त) पर भी। हिक्स (Hicks) की आर्थिक स्थैतिकी की परिभाषा कि "मैं आर्थिक सिद्धान्त के उन भागों को आर्थिक स्थैतिक कहता हूँ जहाँ हम दिनांकन का कष्ट नहीं झेलते।"[4] यह परिभाषा ऊपर की व्याख्या पर पूरी उतरती है।

2 "Economic statics concerns itself with the simultaneous and instantaneous or time-less determination of economic variables by mutually interdependent relations "—*P A Samuelson*

3 "Static economics deals with relations and processes on the assumption of uniformity and persistence of either the absolute or relative economic quantities involved "—*Kuznets*

4 "I call economics statics those parts of economic theory where we do not trouble about dating "—*J R Hicks*

अपनी नई पुस्तक *Capital and Growth* मे हिक्स ने आर्थिक स्थैतिकी को अधिक स्पष्ट तौर से इस प्रकार पारिभाषित किया है, "यह वह है जिसमे कुछ मुख्य चर (वस्तुओ की मात्राएँ जिनका उत्पादन और उपभोग होता है, और जिन कीमतो पर उनका विनिमय होता है) न बदल रहे होते है।"

समष्टि-स्थैतिकी (Macro-Statics)

समष्टि-स्थैतिकी विश्लेषण अर्थव्यवस्था की स्थैतिक सन्तुलन अवस्था की व्याख्या करता है। इसे प्रो कुरीहारा द्वारा बहुत अच्छे ढग से इन शब्दो मे समझाया गया है, "यदि उद्देश्य समस्त अर्थव्यवस्था की 'स्थिर तस्वीर' दिखाना हो, तो समष्टि स्थैतिक तरीका सही तकनीक है। क्योकि यह तकनीक सतुलन की अन्तिम अवस्था मे निहित समायोजन की प्रक्रिया के निर्देश के बिना समष्टि चरो मे सम्बन्धो की खोज का है।"[5] ऐसी सन्तुलन की अन्तिम अवस्था को इस समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है, $Y = C + I$

यहाँ Y कुल आय है, C कुल उपभोग व्यय और I कुल निवेश व्यय है। यह बिना किसी समायोजना प्रक्रिया के एक काल-रहित समानता समीकरण दिखाती है। यह समष्टि-स्थैतिकी मॉडल कुरीहारा के रेखाचित्र की सहायता से नीचे दिखाया गया है।

केन्ज के इस स्थैतिक मॉडल के अनुसार, राष्ट्रीय आय का स्तर उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहाँ कुल पूर्ति फलन (aggregate demand function) कुल माँग फलन (aggregate demand function) को काटता है। चित्र 5 2 मे 45 रेखा कुल पूर्ति फलन को दर्शाती है और $C+I$ रेखा कुल पूर्ति फलन को। 45 रेखा और $C+I$ वक्र प्रभावी माँग के बिन्दु E पर काटते है और आय का OY स्तर निर्धारित करता है।

चित्र 5 2

इस प्रकार, आर्थिक स्थैतिकी कालरहित अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित होती है। इसका न तो विकास होता है और न ही क्षय। यह "स्थिर" केमरे से खींचे गये तात्कालिक चित्र (snap-shot) की भाँति है जो वैसे ही रहेगा, चाहे अर्थव्यवस्था की पहले या बाद की स्थितियो मे परिवर्तन हो या न हो।
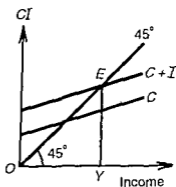
3. आर्थिक प्रावैगिकी
(ECONOMIC DYNAMICS)

दूसरी ओर, आर्थिक प्रावैगिकी परिवर्तन का त्वरण (acceleration) या परिमन्दन (deceleration) का अध्ययन है। जैसाकि ऐक्ले ने कहा है, "प्रावैगिकी का सबध आवश्यक तौर से परिवर्तन और असतुलन की स्थितियो से है।" यह परिवर्तन की प्रक्रिया का विश्लेषण है जो काल-पर्यन्त चलता रहता है। समय के साथ अर्थव्यवस्था मे दो तरह से परिवर्तन हो सकता है एक तो उसके ढाँचे मे

5 K K Kurihara, *An Introduction to Keynesian Dynamics*, p 22

परिवर्तन किए बिना और दूसरे उसके ढाँचे को बदल कर। आर्थिक प्रावैगिकी दूसरे प्रकार के परिवर्तन से संबंध रखती है। यदि जनसंख्या, पूँजी, उत्पादन की तकनीकों, व्यापार संगठन के रूपों और लोगों की रुचियों में से किसी एक या सब में परिवर्तन हो जाए, तो अर्थव्यवस्था भिन्न ढाँचा धारण कर लेगी और आर्थिक प्रणाली अपनी दिशा बदल लेगी। नीचे के चित्र में, अर्थव्यवस्था में प्रारम्भिक मूल्य दिए हुए होने पर, वह *AB* मार्ग पर चलती है, परन्तु *A* पर सूचकांक (indices) अचानक ढाँचे को बदल देते हैं और संतुलन की दिशा *C* की ओर बदल जाती है। फिर, यह *D* की ओर जाती है परन्तु *C* पर ढाँचा और दिशा *E* की ओर बदल जाते हैं। इस प्रकार आर्थिक प्रावैगिकी एक संतुलन स्थिति से दूसरी की ओर के 'मार्ग' का अध्ययन करती है जैसे *A* से *C* की ओर के मार्ग का और *C* से *E* की ओर के मार्ग का।

$$
\begin{array}{ccc}
 & D & \\
 & \uparrow & \\
 & C & \rightarrow E \\
 & \uparrow & \\
\rightarrow & A & \rightarrow B
\end{array}
$$

प्रोफेसर हिक्स ने अपनी पुस्तक *Value and Capital* में आर्थिक प्रावैगिकी की परिभाषा इस प्रकार दी है कि यह "अर्थव्यवस्था का वह भाग है जिसमें हर मात्रा दिनांकित होनी चाहिए।"[6]

परन्तु प्रोफेसर हैरड इससे सहमत नहीं है जबकि वह यह कहता है कि "स्थैतिकी की अपेक्षा प्रावैगिकी में दिनांकन (dating) अधिक आवश्यक नहीं है।" इसलिए उसने सुझाव दिया है कि प्रावैगिकी को चाहिए कि "एक वृद्धिशील अर्थव्यवस्था की विशेष प्रकृति द्वारा उत्पन्न निरंतर परिवर्तनों के विश्लेषण से सरोकार रखे।" इस प्रकार उसके अनुसार अर्थशास्त्र का संबंध "एक वृद्धिशील अर्थव्यवस्था में विभिन्न तत्त्वों के वृद्धि दरों के आवश्यक संबंधों से है।"[7] वह समझता है कि एक बार परिवर्तन (once-over changes) आर्थिक स्थैतिकी के क्षेत्र में आते हैं। ऐसे परिवर्तनों का मतलब है कि संतुलन की एक स्थिति सरक कर संतुलन की एक दूसरी स्थिति पर चली जाती है। हमारे चित्र में, मार्ग को पार किए बिना ही सीधे *A* से *C* और *C* से *E* पर चले जाना स्थैतिक अर्थशास्त्र है। प्रोफेसर हिक्स ने अपनी पुस्तक *Trade Cycles* में हैरड के इस मत को स्वीकार किया है।

पर, रैगनर फ्रिश (Ragnar Frisch) आर्थिक स्थैतिकी को 'केवल निरंतर परिवर्तनों का ही नहीं बल्कि परिवर्तन की प्रक्रिया का भी अध्ययन मानता है। उसके अनुसार यह ऐसी अवस्था है जिसमें "भिन्न-भिन्न समयों पर चर एक आवश्यक ढंग से सम्मिलित रहते हैं। यह अनिवार्यता एक प्रावैगिकी सिद्धान्त की विशेषता है—यह व्याख्या करना कि एक स्थिति पिछली स्थिति से बाहर कैसे निकलती है।"[8] इस प्रकार आर्थिक प्रावैगिकी में भिन्न-भिन्न समय बिन्दुओं पर आर्थिक चरों के फलनात्मक संबंधों की खोज शामिल रहती है। पूर्वानुमान (forecasting) के लिए ऐसे संबंधों का ज्ञान आवश्यक है। इस प्रकार, बामोल के अनुसार, फ्रिश की परिभाषा का सार भविष्यवाणी (prediction) है। इसलिए बामोल ने यह परिभाषा दी है कि "आर्थिक प्रावैगिकी पहले और बाद की घटनाओं के संबंध में आर्थिक स्थिति का अध्ययन है।"[9]

इस प्रकार आर्थिक प्रावैगिकी समय-पश्चताओं (time-lags), परिवर्तनों की दरों तथा चरों और प्रत्याशित मूल्यों से संबंध रखती है। प्रावैगिकी अर्थशास्त्र में स्वीकृत तत्त्वों में परिवर्तन होते

6 "That part of economic theory in which every quantity must be dated."—*J R Hicks*

7 Dynamics economics should concern itself with the analysis of continuing changes generated by the special nature of a growing economy It is concerned with the necessary relations between the rates of growth of different elements of a growing economy—*R F Harrod*

8 It is a system in which variables at different points of time are involved in an essential way This is essentially the characteristic of a dynamic theory—to explain how one situation grows out of the foregoing situation—*R Frisch*

9 Economic dynamics is the study of economic phenomena in relation to preceding and succeeding events —*W J Baumol*

हैं और अर्थव्यवस्था उसके अनुसार अपने को ढालने में कुछ समय लेती है। निष्कर्षत प्रो कुजनेट्स (Kuznets) के शब्दो मे "आर्थिक प्रावैगिकी उस आर्थिक सिद्धात को कहते है जो आर्थिक परिवर्तनों की स्थिति और उन परिवर्तनों के अर्थों की व्याख्या और दिए हुए परिवर्तन को लाने मे कार्यशील साधनो की जाच तथा उस परिवर्तन एवं परवर्ती गतियों के क्रमिक परिणामो का सामना करने का प्रयत्न करता है।"

प्रावैगिक विश्लेषण की व्यष्टि-और समष्टि-प्रावैगिक मॉडलो के रूप मे व्याख्या की जा सकती है। व्यष्टि प्रावैगिक मॉडलो मे से एक महत्त्वपूर्ण मॉडल मकडजाल मॉडल है जिसकी आगे विवेचना की गई है।

कॉबवैब मॉडल—व्यष्टि प्रावैगिकी (The Cobweb Model—Micro Dynamics)

कॉबवैब (मकडजाल) मॉडल का प्रयोग लबी समय अवधि पर माग, पूर्ति और कीमत की गतिशीलता की व्याख्या करने के लिए किया जाता है। बहुत-सी नाशवान कृषि वस्तुए होती हैं, जिनकी कीमतें और उत्पाद दीर्घ काल पर निर्धारित होते है और वे चक्रीय गतिया दर्शाते है। जब कीमतें ऊपर और नीचे चक्रो में गति करती है, उत्पादित मात्राए भी प्रति-चक्रीय (counter-cyclical) ढग से ऊपर और नीचे गति करती नज़र आती हैं। वस्तु कीमतो और उत्पादो मे ऐसे चक्रो की मकडजाल मॉडल के रूप मे व्याख्या की जाती है। ऐसा इसलिए कि उनके चित्र मकडजाल की तरह नज़र आते हैं।

मान लीजिए कि उत्पादन प्रक्रिया दो समय अवधियो पर फैली हुई है वर्तमान और पिछली। वर्तमान अवधि मे उत्पादन को पिछली अवधि में लिए गए निर्णयो द्वारा निर्धारित माना जाता है। इस प्रकार, वर्तमान उत्पादन, उत्पादक द्वारा पिछली अवधि में लिए गए एक उत्पादन निर्णय को व्यक्त करता है। यह निर्णय उस कीमत के प्रतिक्रिया के है जिसकी उसे वर्तमान अवधि में चालू रहने की प्रत्याशा (expectation) है, जब फसल बिक्री के लिए तैयार है। परन्तु वह आशा करता है कि वर्तमान अवधि के दौरान जो कीमत स्थापित होगी वह पिछली अवधि की कीमत के बराबर होगी।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

मकडजाल मॉडल निम्न मान्यताओं पर आधारित है

(1) वर्तमान वर्ष (t) की पूर्ति उत्पादन स्तर से सबधित पिछले वर्ष ($t-1$) की निर्णयों पर आधारित है। अत वर्तमान उत्पादन पिछले वर्ष की कीमत, $P(t-1)$ द्वारा प्रभावित होती है।

(2) वर्तमान अवधि या वर्ष को एक सप्ताह या पखवाडा की अल्प अवधियो मे बाँटा गया है।

(3) पूर्ति फलन का निर्धारण करने वाले प्राचलो (parameters) के अवधियो की शृखलाओं (series) पर स्थिर मूल्य है।

(4) वस्तु के लिए वर्तमान माग (D_t) वर्तमान कीमत (P_t) का फलन है।

(5) वर्तमान अवधि मे पाई जाने वाली प्रत्याशित कीमत पिछले वर्ष मे वास्तविक कीमत है।

(6) विचाराधीन वस्तु नाशवान है और केवल एक वर्ष के लिए स्टोर की जा सकती है।

(7) पूर्ति और माग फलन दोनो रेखीय (linear) है।

मॉडल (The Model)

कॉबवैब प्रमेय (Cobweb theorem) के इस प्रतिपादन मे, पूर्ति फलन है $S_t = S(t-1)$ और माग फलन है $D_t = D(P_t)$। जब पूर्ति और माग मात्राए बराबर होती हैं तो बाजार सतुलन

होगा $S_t = D_t$ किसी मार्केट मे, जहा उत्पादक की वर्तमान पूर्ति पिछले वर्ष की कीमत की प्रतिक्रिया (response) में होती है, तो सतुलन अनेक लगातार अवधियो पर समायोजनों (adjustments) की शृखलाओं द्वारा स्थापित हो सकता है।

उदाहरण के लिए आलू उत्पादक लीजिए जो वर्ष मे केवल एक फसल ही पैदा करते हैं। इस वर्ष कितने आलू उत्पादित करते हैं इसका निर्णय वे इस मान्यता पर करते हैं कि आलुओं की इस वर्ष की कीमत पिछले वर्ष की कीमत के बराबर होगी। आलुओ के माग और पूर्ति वक्रों को क्रमश D और S वक्रों द्वारा चित्र 5.3 में दर्शाया गया है। पिछले वर्ष OP कीमत थी और उत्पादक इस वर्ष OQ सतुलन उत्पादन का निर्णय लेते हैं। लेकिन अगमारी के कारण इस वर्ष आलू की फसल खराब हो जाती है जिससे OQ सतुलन उत्पादन से OQ_1 वर्तमान उत्पादन कम होता है। इससे वर्तमान अवधि मे कीमत बढ़ कर OP_1 हो जाती है। अगली अवधि में, ऊँची कीमत $OP_1(=Q_1b)$ की प्रतिक्रिया में आलू उतपादक OQ_2 मात्रा उत्पादित करेंगे। परन्तु यह मात्रा, सतुलन मात्रा OQ जो मार्किट मे चाहिए, उससे अधिक है।
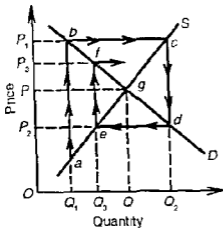
चित्र 5.3

इससे कीमत कम होकर $OP_2(=Q_2d)$ हो जाएगी। इस प्रकार, यह कम कीमत उत्पादकों की योजनाओं में पुन परिवर्तन लाएगी, जिससे वे तीसरी अवधि मे अपनी पूर्ति को कम करके OQ_3 कर देंगे। परन्तु यह मात्रा सतुलन मात्रा OQ से कम है। इस कारण, कीमत बढकर $OP_3(=Q_3f)$ हो जाएगी, जो आगे उत्पादकों को OQ मात्रा उत्पादित करने पर उत्साहित करेगी। अन्तत, सतुलन g बिन्दु पर स्थापित हो जाएगा, जहा D और S वक्र एक दूसरे को काटते हैं। ऊपर वर्णित समायोजनों की शृखलाए a b c d, e और f एक मकड़जाल ढांचे को प्रस्तुत करती हैं जो मार्किट सतुलन बिन्दु g की ओर मिलती है, जब मात्रा और कीमत मे अवधि-से-अवधि परिवर्तन शून्य हो जाते हैं। यह एक केन्द्राभिमुखी (convergent) कॉबवैब है। यह पश्चता समायोजन के साथ प्रावैगिक सतुलन है।[10]

चित्र 5.4

10 This is dynamic equilibrium with lagged adjustment

परन्तु अस्थिर (unstable) कॉबवैब भी हो सकता है, जब कीमत और मात्रा परिवर्तन सतुलन स्थिति से दूर गति करते है। इसे चित्र 5.4 में दर्शाया गया है। मान लीजिए कि OP और OQ की प्रारंभिक कीमत मात्रा सतुलन स्थिति में अस्थायी गडबड होती है जिसके कारण उत्पादन कम होकर OQ_1 हो जाता है। इससे कीमत बढकर $OP_1 (= Q_1a)$ हो जाती है। आगे, बढी हुई कीमत उत्पादन को OQ_2 पर बढा देती है, जो सतुलन मात्रा OQ से अधिक है। परिणामस्वरूप, कीमत OP_2 पर गिर जाती है। परन्तु इस कीमत पर पूर्ति (OQ_2) से माग (OQ_2) अधिक है, जिससे कीमत बढकर $OP_3 (= Q_3e)$ पर पहुच जाती है और उत्पादों का इस कीमत के साथ समायोजन करने से वे सतुलन से और दूर हो जाते हैं। यह स्फोटक स्थिति है और सतुलन अस्थिर होता है। यह अपसारी (divergent) अर्थात् केंद्र से दूर कॉबवैब है।

कीमतों और मात्राओं के निरतर घटाव-बढाव और स्थिर विस्तार वाला कॉबवैब भी हो सकता है, जिसे चित्र 5.5 मे दर्शाया गया है। मान लीजिए कि वर्तमान अवधि मे कीमत OP है। इस प्रकार, आपूरित की जाने वाली मात्रा OQ_1 है। परन्तु इस मात्रा को बेचने के लिए जो कीमत इसे अगली अवधि मे प्राप्त होगी, वह OP_1 है। परन्तु इस कीमत पर OQ पूर्ति मे OQ_1 माग अधिक है, जो कीमत को फिर $OP (=Qb)$ पर बढा देगी। इस तरह, कीमतें और मात्राए सतुलन बिन्दु e के ईदगिर्द स्थिर विस्तार से घटती-बढती हुई एक चक्र मे गति करेगी।

चित्र 5.5

कॉबवैब मॉडल (या प्रमेय) कीमतों और उत्पादों की गतियो का विश्लेषण करता है जब पूर्ति पिछली अवधि की कीमतों द्वारा पूर्णरूप से निर्धारित होती है। केन्द्र की ओर, केन्द्र के बाहर और स्थिर चक्रों की स्थितियों को जानने के लिए पहले माग वक्र की ढलान और फिर पूर्ति वक्र की ढलान को देखना होता है। यदि पूर्ति वक्र से माग वक्र की ढलान सख्यात्मक तौर से छोटी हो, तो कीमत सतुलन (केंद्र) की ओर गति करेगी। इसके विपरीत, यदि पूर्ति वक्र से माग वक्र की ढलान सख्यात्मक तौर मे अधिक हो, तो कीमत सतुलन से बाहर की ओर गति करेगी। यदि पूर्ति वक्र और माग वक्र की ढलान सख्यात्मक तौर से बराबर हो, तो कीमत अपने सतुलन मूल्य के इर्दगिर्द गति करेगी।
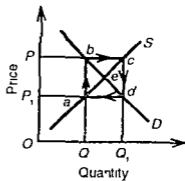
इसकी सीमाएं (Its Limitations)

कॉबवैब प्रमेय का ऊपर का विश्लेषण बहुत प्रतिबधात्मक मान्यताओं पर आधारित है जो इसकी व्यावहारिकता को भ्रातिजनक बना देते है। यह मानना वास्तविक नहीं है कि माग और पूर्ति स्थितिया वर्तमान और पिछली अवधियो मे, अपरिवर्तित रहती है जिनसे माग और पूर्ति वक्र परिवर्तित (शिफ्ट) नहीं करते है। वास्तव मे, वास्तविक और प्रत्याशित कीमतों मे काफी अतर होने के कारण उनमे परिवर्तन अवश्य होते है। मान लीजिए कि कीमत इतनी कम है कि कुछ उत्पादक भारी हानिया उठाते है। परिणामस्वरूप, विक्रेताओं की सख्या कम हो जाती है जिससे पूर्ति वक्र की स्थिति परिवर्तित हो जाती है। यह भी सभव है कि प्रत्याशित कीमत मे अनुमानित कीमत काफी भिन्न हो। इससे अपरिवर्तित माग और पूर्ति वक्रों के आधार पर मकडजाल सही ढग

से विकसित न हो। इस प्रकार, माग, पूर्ति और कीमत के संबंध जो विभिन्न मकड़जालों की ओर ले जाते है उनकी बहुत कम वास्तविक व्यावहारिकता है।

इसके निहितार्थ (Its Implications)

कॉबवैब मॉडल वास्तविक कीमत निर्धारण प्रक्रिया का अतिसरलीकरण है। लेकिन यह मार्किट व्यवहार के बारे में मार्किट में भाग लेने वालों को नई सूचना प्रदान करता है जिसे वे अपनी निर्णयों मे शामिल कर सकते है। कॉबवैब मॉडल केवल मार्किट संतुलन की एक समायोजन प्रक्रिया ही नहीं हैं, बल्कि यह दृष्टिगोचर घटनाओं का भी पूर्वकथन (predict) करता है। इसका महत्त्व कृषि पदार्थों के माग, पूर्ति और कीमत व्यवहार में पाया जाता है। भविष्य की स्थितियों की प्रत्याशाओं का वर्तमान कीमतों पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यदि अर्थव्यवस्था मे तेजी (boom) की स्थितिया हो तो किसान अपनी फसलों की ऊंची कीमतों की आशा रखते है और मार्किट में उनकी पूर्तिया बढाते है। परन्तु फसल खराब होने पर, कृषि पदार्थों की पूर्तिया कम हो जाएगी। ऐसी स्थिति में सरकार कृषि-करों में किसानों को छूट दे सकती है और उन्हें संकट की स्थिति से उठने के लिए ब्याज-रहित कर्जे भी प्रदान कर सकती है। इसके विपरीत, भरी-पूरी फसल होने पर माग की अपेक्षा पूर्तियों के बढ जाने से कृषि फसलों की कीमतें कम हो सकती है। ऐसी स्थिति मे, सरकार किसानों को सब्सिडी प्रदान कर सकती है या उनसे न्यूनतम समर्थन कीमत पर कृषि पदार्थ खरीद सकती है।

समष्टि-प्रावैगिकी (Macro-Dynamics)

प्रो कुरीहारा के अनुसार "समष्टि-प्रावैगिकी समष्टि-चरों की निरंतर गतियों या परिवर्तन की दरों का विवेचन करता है।"[11] वह आगे लिखता है कि "यह तरीका भूल-चूक की प्रक्रिया को, लगातार बदल रही प्रतिक्रियाओं की शृंखलाओं में पृथक करता है, और क्रमश यह संकेत करता है कि क्या कारण है और क्या प्रभाव है। यह एक बदल रहे संसार को वर्णित करता है क्योंकि यह पहले और बाद में आने वाले समयावधियों मे सम्बन्धित होता है, यह समूहों के अनिरन्तर और निरन्तर परिवर्तनों, किसी प्रारम्भिक हलचल से उत्पन्न होने वाले कारण और प्रभाव-घटनाओं के अनुक्रम, समष्टि चरों के अवधि-मार्ग एव सामूहिक सम्बन्धों का विश्लेषण करता है। इस प्रकार समष्टि-प्रावैगिक इस प्रगतिशील अर्थव्यवस्था के कार्यकरण के 'चल-चित्र' को देखने की क्षमता प्रदान करता है।"[12] समष्टि-प्रावैगिक मॉडल को कुरीहारा ने केन्ज के निवेश गुणक (investment multiplier) से वर्णित किया है, जहाँ उपभोग
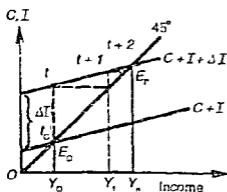
चित्र 5.6

11 "Macro-dynamics treats discrete movements or rates of change of macro-variables."—K K Kurihara

12 K K Kurihara, op cit., p 21

पिछली अवधि की आय का फलन है, अर्थात $C_t = f(Y_{t-1})$ और निवेश समय तथा स्थिर स्वायत्त निवेश ΔI का फलन है, अर्थात् $I_t = f(\Delta I)$

चित्र 5 6 मे, $C+I$ कुल माँग फलन है और 45 रेखा कुल पूर्ति फलन है। यदि हम अवधि t_0 मे प्रारम्भ करे जहाँ OY सन्तुलन आय स्तर होने पर निवेश ΔI द्वारा बढाया जाता है, तो अवधि t मे आय बढे हुए निवेश के बराबर बढती है। (t_0 से t)। बढी हुई आय को नए कुल माँग फलन $C+I+\Delta I$ द्वारा दिखाया गया है परन्तु अवधि t मे उपभोग पीछे रह जाता है और E_0 पर आय के बराबर ही होता है। $t+1$ अवधि में उपभोग बढता है और नये निवेश के साथ यह आय को और ऊचे OY_1 बढा देता है। आय प्रजनन की यह प्रक्रिया चलती रहेगी जब तक कि कुल माँग फलन $C+I+\Delta I$ कुल पूर्ति फलन 45 रेखा को nth अवधि मे E_n पर नहीं काटता। नया सन्तुलन स्तर OY_n पर निर्धारित होता है। t_0 मे E_n तक का टेढा-मेढा रास्ता समष्टि-प्रावैगिक सन्तुलन मार्ग है।

4 तुलनात्मक स्थैतिकी (COMPARATIVE STATICS)

तुलनात्मक स्थैतिकी सर्वप्रथम एक जर्मन अर्थशास्त्री ओपनहीमर (F Oppenheimer) ने 1916 में प्रयोग की थी। शूम्पीटर ने इसे "स्थैतिक मॉडलो के एक अनुक्रम द्वारा एक विकासवादी प्रक्रिया" बताया है।[13] उसके अनुसार तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण की एक विधि है जिसमे विभिन्न सतुलन अवस्थाओ की तुलना की जाती है। इसमे कई प्राचल जैसे जनसख्या, पूजी स्टॉक, प्रौद्योगिकी, उत्पादन की तकनीके, आय स्तर, रुचिया, आदतें आदि स्थिर मान लिए जाते है।

स्थैतिक तुलनात्मक स्थैतिक और प्रावैगिक स्थितियो का भेद साथ वाले चित्र द्वारा समझाया गया है। जब अर्थव्यवस्था A स्थिति पर कार्यशील है जहा यह बिना चरो मे कोई परिवर्तन मे एक स्थिर दर से उत्पादन कर रही है, तो स्थैतिक अवस्था है जो समय के एक बिन्दु पर कार्यरत है। जब अथव्यवस्था सतुलन बिन्दु A मे B पर काल पर्यन्त (through time) गति करती है तो यह आर्थिक प्रावैगिकी है जो दो सतुलन बिन्दुओ के बीच गति के पथ को ट्रेस करती है। दूसरी ओर, तुलनात्मक स्थैतिकी का सबध A मे B बिन्दु तक एक बार परिवर्तन से है जिसमे अर्थव्यवस्था की पहली अवस्था A और दूसरी अवस्था B की तुलना होती है। इसमे A से B तक पहुचने के मार्ग के पीछे शक्तियो का अध्ययन नहीं किया जाता है।

A ⟷ B

मार्शल की कीमत-निर्धारण प्रक्रिया तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण पर आधारित है, जहा दो सतुलन स्थितियों की तुलना की गई है, जैसा कि चित्र 5 7 में दर्शाया गया है। जब माग वक्र D पूर्ति वक्र S को E बिन्दु पर काटता है, तो X की OQ मात्रा OA कीमत पर खरीदी और बेची जाती है। माग वक्र D का ऊपर की ओर D_1 पर सरकने से नया सतुलन E_1 बिन्दु पर स्थापित होता है, जहा OA_1 कीमत पर X की OQ_1 मात्रा खरीदी और बेची जाती है। यहा हम उस प्रक्रिया या कारण का अध्ययन नहीं करते जिससे नीचे स ऊपर सतुलन स्थिति पर परिवर्तन हुआ। बल्कि हम यह कहते है कि ऊची कीमत OA_1 पर बिन्दु E की तुलना में बिन्दु E_1 पर X की अधिक मात्रा मार्केट मे बेची और खरीदी जाती है।

केन्ज की General Theory परिवर्ती (shifting) सन्तुलन के सिद्धान्त पर आधारित है जिसमे

13 "An evolutionary process by a succession of static models" —J Schumpeter

चित्र 5.7

यह आय के विभिन्न स्तरों की तुलना करता है। कुरीहारा के अनुसार, केन्ज ने सतुलन की एक स्थिति से दूसरी स्थिति के परिवर्तन की प्रक्रिया को दिखाने का कोई प्रयत्न नहीं किया था। उसने केवल तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण का प्रयोग किया। चित्र 5.8 आय के दो विभिन्न स्तरों OY_1 समय OT_1 पर तथा OY_2 समय OT_2 पर की व्याख्या करता है। एक दूसरी से स्वतत्र होने की अवस्था मे दोनों आय स्तर आर्थिक स्थैतिकी मे सबद्ध है। परन्तु OY_2 आय स्तर OY_1 स्तर से ऊचा है। यह तुलनात्मक स्थैतिकी है जो आय के दो स्थैतिक स्तरों A और B की तुलना करती है। यह विश्लेषण इस बात की व्याख्या नहीं करता कि आय का A से B पर बढ़ने का मार्ग कैसे प्राप्त हुआ जो प्रावैगिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आता है।

इसकी सीमाए (Its Limitations)

तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण की अनेक सीमाए है। प्रथम, इसका क्षेत्र सीमित है क्योंकि यह बहुत-सी महत्वपूर्ण आर्थिक समस्याओं को शामिल नहीं करता। ये आर्थिक उतार-चढ़ाव तथा विकास की समस्याए है जिनका अध्ययन केवल प्रावैगिक अर्थशास्त्र की विधि से ही किया जा सकता है।

चित्र 5.8

दूसरे, तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण सन्तुलन की एक स्थिति से दूसरी स्थिति पर परिवर्तन की प्रक्रिया को समझाने मे असमर्थ है। यह केवल गतियों की आंशिक झलक ही देता है क्योंकि हमे केवल दो 'स्थिर तस्वीरों' की ही तुलना करनी होती है, जबकि प्रावैगिकी हमे एक चलचित्र (movie) देगा।
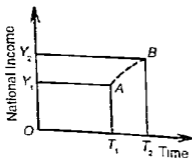
तीसरे, हमे इस बात का निश्चय नहीं कि नया सतुलन कब स्थापित होगा क्योंकि यह विधि सक्रमण (transitional) अवधि की अवहेलना करता है। यह तुलनात्मक स्थैतिकी को आर्थिक विश्लेषण की अपूर्ण और अवास्तविक विधि बनाता है।

इसका महत्व (Its Importance)

बावजूद इन कमियों के हिक्स ने इस विधि की प्रशसा की है। उसके अनुसार यह विधि गड़बड़ी करने वाले कारणों के प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए सराहनीय है। यह परिवर्तन की

प्रक्रिया मे स्थिरता पुन स्थापित करती है। यदि आर्थिक चरो मे कुछ परिवर्तन होते है जो निरन्तर परिवर्तनो की प्रक्रिया को चालू करते है तो यह बताना सभव नहीं कि यह प्रक्रिया कब समाप्त होगी। इसी प्रकार यदि सतुलन मे एक बार गडबड हो जाती है जिससे असतुलन की निरन्तर प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है तो उसके पुन सन्तुलन की स्थिति मे आने को निश्चित तौर से बताना सभव नहीं होता। ऐसी स्थितियो मे तुलनात्मक स्थैतिकी सन्तुलन के कुछ निश्चित बिन्दुओ को दर्शा कर परिवर्तन की दिशा को बता सकती है। इस प्रकार यह विश्लेषण अनिश्चित स्थिति मे निश्चितता प्रदान करता है।

5 आर्थिक स्थैतिकी का महत्त्व
(IMPORTANCE OF ECONOMIC STATICS)

आर्थिक स्थैतिकी का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक महत्त्व पाया जाता है।

(1) **शिक्षक के रूप मे** (As a teacher)—ज्यूथन (Zeuthen) के अनुसार, आर्थिक स्थैतिकी का परिचयात्मक शिक्षक के रूप में मूल्य है। कुछ चरो को दिया हुआ और स्थिर मान लेने पर आर्थिक समस्याओं को समझ लेना आसान हो जाता है। आर्थिक स्थैतिकी एक स्थिर अवस्था की आर्थिक स्थिति का काल्पनिक मॉडल प्रदान करती है जो कुछ परिवर्तनों के परिणामो को समझने में विद्यार्थी की सहायता करते है। उदाहरणार्थ, एक अर्थव्यवस्था मे कीमतो के व्यवहार को समझने के लिए सतुलन कीमत का अध्ययन उपयोगी है। स्थैतिक अवस्था मे, माँग और पूर्ति हमेशा सतुलन मे होते हैं। यह बात, कि माँग और पूर्ति मे परिवर्तन कीमतो को किस प्रकार प्रभावित करते है, तभी समझ मे आ सकती है जब माँग और पूर्ति दोनों ही सतुलन की स्थिति मे हो।

(2) **जाच के लिए** (For investigations)—क्लासिकी अर्थशास्त्री जाच के उद्देश्य से स्थैतिक अवस्थाओं को मान कर चले। सामाजिक स्थितियो को समझने के लिए उन्होंने व्यक्तिगत फर्मो, *उद्योग और उपभोक्ताओ की क्रियाओं का अध्ययन किया और थोडे प्रावैगिक मिश्रण से स्थैतिक विश्लेषण को इस योग्य बनाया कि वास्तविक जगत् पर लागू किया जा सके।*

(3) **तुलनात्मक स्थैतिकी के अध्ययन के लिए** (To study comparative statics)—स्थैतिक विश्लेषण का एक और लाभ यह है कि वह सतुलन की एक स्थिति की दूसरी से तुलना करने मे सहायता देता है। इसे तुलनात्मक स्थैतिकी कहते है जो कि आर्थिक स्थैतिकी पर आधारित है।

(4) **जटिल समस्याओ के हल करने मे** (In solving complex problems)—फिर आर्थिक स्थैतिकी मे हम यह अध्ययन करते है कि एक व्यक्ति अधिकतम सतुष्टि प्राप्त करने के लिए अपनी सीमित आय को विभिन्न वस्तुओं मे कैसे वितरित करता है, कि एक उत्पादक दिए हुए उत्पादक स्रोतो को इष्टतम ढग से मिलाकर कैसे अधिकतम लाभ प्राप्त करता है, कि वस्तुओ और सेवाओ की कीमतें कैसे निर्धारित होती हैं, और कि राष्ट्रीय आय का वितरण कैसे होता है। इन जटिल समस्याओ को हल करने मे स्थैतिकी विश्लेषण बहुत महत्त्व का है।

(5) **आर्थिक सिद्धान्तो मे** (In economic principles)—इसके अतिरिक्त आर्थिक सिद्धान्त का निम्नलिखित विशाल क्षेत्र आर्थिक स्थैतिकी के अध्ययन पर आधारित है। रॉबिन्स की अर्थशास्त्र की परिभाषा से सबधित सिद्धान्त और नियम का केन्द्रीय तत्त्व निश्चित रूप में आर्थिक स्थैतिकी का विषय है। स्वतत्र व्यापार का विषय, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त, जोन रॉबिन्सन का *Economics of Imperfect Competition* चैम्बरलिन का *Monopolistic Competition* और हिक्स का *Value*

and Capital ये सब स्थैतिक विश्लेषण के प्रयोग है जिन्होंने आर्थिक सिद्धान्त को समृद्ध बनाया है।[14]

(6) **अनिश्चितता** (Uncertainty)—क्योंकि परिवर्तन मे तथा उत्पादन के पेचीदा तरीकों मे अनिश्चितता रहती है और सतत परिवर्तन की अपेक्षा एकदा-समाप्त परिवर्तन (once-over change) अधिक अनिश्चितता उत्पन्न करता है, इसलिए प्रोफेसर हैरड का मत है कि "नाइट (Knight) का लाभ सिद्धान्त स्थैतिकी के क्षेत्र में आता है।" यह स्थैतिक विश्लेषण की सहायता से अर्थशास्त्र की अत्यन्त भ्रामक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न है।

(7) **प्रत्याशाएँ** (Expectations)—प्रत्याशाएँ प्राय आर्थिक प्रावैगिकी के क्षेत्र मे आती है। परन्तु प्रत्याशाओ मे एक-बार परिवर्तन प्रभावों को स्थैतिक अर्थशास्त्र की तकनीक सभालती है। हैरड के इस मत से सहमति प्रकट करते हुए प्रोफेसर हिक्स ने अपनी पुस्तक *Trade Cycles* मे केन्ज की *General Theory* को पूर्ण रूप से स्थैतिक माना है क्योंकि इसमें प्रत्याशाएँ मौजूद है।

(8) **केन्ज का सिद्धान्त** (Keynesian theory)—धनात्मक बचत (positive saving) के सिद्धान्त को छोड़कर केन्ज विश्लेषण के सभी चर स्थैतिक प्रकृति के है। वे ये है अनैच्छिक बेरोजगारी, तरलता अधिमान, पूँजी की सीमान्त उत्पादकता और सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति। इन सब चरों की व्याख्या करते हुए केन्ज ने एकदा-समाप्त परिवर्तन दिखाया है जो स्थैतिकी विश्लेषण का प्रयोग है।

(9) **व्यापार चक्र** (Trade cycles)—हैरड मानता है कि स्थैतिक अवस्थाओ से भी व्यापार चक्र का अनुभव होता है जबकि वह नियमित और समय-समय पर होने वाले उतार-चढ़ावों को प्रकट करता है। दूसरे विश्व युद्ध से पहले व्यापार-चक्रों के जलवायु सबधी मनोवैज्ञानिक और मुद्रा सिद्धान्तों की प्रकृति स्थैतिक थी। हाल मे काल-प्रवाह और त्वरण के नियम का समावेश करके टिन्बर्गन, कलेस्की, फ्रिश, सैम्यूल्सन और हिक्स ने व्यापार चक्र के प्रावैगिक सिद्धान्तो का विकास किया।

निष्कर्ष (Conclusion)—वास्तव मे, जैसाकि प्रोफेसर रॉबिन्स ने सकेत किया है, "आर्थिक स्थैतिकी की कुछ प्रस्थापनाएँ ऐसी है जो अपने आप मे विशिष्ट तथा महत्त्वपूर्ण है। परन्तु यह कहने मे कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि उनकी विशिष्टता इसमे है कि वे इससे आगे बढ़कर आर्थिक प्रावैगिकी पर लागू होती हैं। परिवर्तन के नियमों को समझने के लिए आगे हम 'स्थैतिकी' के नियमो का अध्ययन करते है।"[15]

6 सीमाएँ
(LIMITATIONS)

परन्तु स्थैतिकी विश्लेषण की अपनी दुर्बलताएँ हैं। यह विश्लेषण वास्तविकता से दूर है। यह जनसख्या, रुचियों, तकनीकों जैसे चरों को दिया हुआ और स्थिर मान लेता है। यह बाह्य शक्तियों के प्रभाव को छोड़ देता है और इस प्रकार एक 'बन्द अर्थव्यवस्था' से सम्बध रखता है। यह सब, स्थैतिकी अर्थशास्त्र और उस पर आधारित नियमों को अवास्तविक बना देता है।

फिर, आर्थिक स्थैतिकी अवधि के प्रभाव पर भी ध्यान नहीं देती। यह काल-रहित अर्थव्यवस्था है, जबकि इस ससार में परिवर्तन निरन्तर होते रहते हैं। इस प्रकार आर्थिक स्थैतिकी कल्पना की उड़ान मात्र है, केवल एक बौद्धिक खिलौना है जिससे अर्थशास्त्री खेलते हैं। इसलिए

14 यह और अगले अनुच्छेद Roy Harrod की पुस्तक *Towards A Dynamic Economics*, 1948 पर आधारित है।

15 L Robbins *The Nature and Significance of Economic Science*, 1932

ऐसा विश्लेषण आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए सीमित व्याख्या ही दे सकता है।

7. आर्थिक प्रावैगिकी का महत्त्व (SIGNIFICANCE OF ECONOMIC DYNAMICS)

आर्थिक प्रावैगिकी का सिद्धान्त और व्यवहार में बहुत महत्त्व है।

(1) **यह वास्तविक है** (It is realistic)—आर्थिक प्रावैगिकी का महत्त्व इस बात मे है कि यह एक कल्पना नहीं बल्कि वास्तविकता है। यह सिद्धान्त एक सतुलन स्थिति का नहीं अपितु परिवर्तनशील सतुलनो को अध्ययन है। यह सिद्धान्त परिवर्तनशील स्थिति के कारणो एव प्रभावों की व्याख्या करता है और हमे एक अर्थव्यवस्था के कार्यकरण के सम्पूर्ण चलचित्र को देखने की अर्थात् यह देखने की क्षमता प्रदान करता है कि पूर्ववर्ती अवधि से निकलकर अर्थव्यवस्था का वर्तमान अवधि मे किस प्रकार विकास होता है।

(2) **सतुलन-स्थिरता का अध्ययन** (Study of stability of equilibrium)—प्रावैगिक विश्लेषण विसतुलित अर्थव्यवस्था के व्यवहार का अध्ययन करता है और उन शक्तियो के मार्ग को ट्रेस करता है जो नई सतुलन स्थिति की स्थापना करती है। इस प्रकार, सतुलन स्थिरता की महत्त्वपूर्ण समस्या प्रावैगिक विश्लेषण से सबध रखती है।

(3) **क्लासिकी अर्थशास्त्र की समस्याओ के अध्ययन मे** (In the study of the problems of classical economics)—प्रावेगिक विश्लेषण क्लासिकी अर्थशास्त्र की भी कुछ समस्याएँ हल करता है। रिकार्डो का वितरण सिद्धान्त तथा माल्थस का जनसख्या सिद्धान्त प्रावेगिकी के प्रयोग हैं। यहा तक कि मार्शल का अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन कीमत निर्धारण का भेद भी प्रावैगिक विश्लेषण से सबध रखता है।

(4) **आर्थिक विकास की समस्याओ के अध्ययन मे** (*The study of the problems of economic growth*)—समय-पश्चताए, विकास की दरो और क्रम विश्लेषण की समस्याओ मे भी प्रावैगिक सबधों के प्रयोग की ज़रूरत रहती है। प्रावैगिक विश्लेषण का महत्त्व आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे निहित है, चाहे वह अल्पकालीन मे हो चाहे दीर्घकालीन मे। इस प्रकार प्रो लिंडहाल (Lindhall) के शब्दों मे आर्थिक प्रावैगिकी का काम "किन्हीं दी हुई स्थितियों और उनके अनुरूप विकासो के सबध की व्याख्या करना" है।

(5) **व्यापार चक्रों में** (In business cycles)—चिरकालिक विकास, सट्टा और चक्रीय उतार-चढ़ावो का वास्तविक विश्लेषण प्रस्तुत करने के लिए आर्थिक प्रावैगिकी का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि इन सब में काल का तत्त्व शामिल रहता है। व्यापार चक्रो के क्षेत्र मे यह विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुई है। व्यापार चक्रो के व्यवहार की व्याख्या करने के लिए काल-पश्चता और त्वरण जैसे नए सैद्धान्तिक प्रावैगिक विचारो का विकास हुआ है। प्रावैगिक विश्लेषण की सहायता से ही बहिर्जात (exogenous), अतर्जात (endogenous) और मिश्रित चक्रीय सिद्धान्तो में अन्तर कर सकना सभव हो सकता है। इससे व्यापार चक्रो मे 'मोड बिन्दुओं' के अलग-अलग सिद्धान्तों की आवश्यकता भी समाप्त कर दी है। इस प्रकार, प्रावैगिक विश्लेषण ने हमारे चक्रीय प्रक्रिया के ज्ञान को समृद्ध बनाया है।

(6) **केन्ज के सिद्धान्त मे** (In Keynes theory)—केन्ज की *General Theory* "अपेक्षाकृत अधिक सामान्य प्रावैगिक व्यवस्था की विशिष्ट स्थिति" के रूप मे माना जाता है जो कालपर्यन्त कुल राष्ट्रीय आय के निर्धारण से सम्बन्ध रखता है। बचत और निवेश की प्रेरणा राष्ट्रीय

आय-निर्धारक है जो स्वयं इन्हीं पर निर्भर है। राष्ट्रीय आय के सम्बन्ध में उनके व्यवहार में समय का तत्त्व रहता है और इस प्रकार वह 'प्रावैगिक' है।

(7) **आर्थिक विश्लेषण की नई तकनीकों को विकसित करने में** (In developing new techniques of economic analysis)—आधुनिक वर्षों में फ्रिश, कलेस्की, टिन्बर्गन, राबर्टसन, हैरड, मैक्ल्प, लिडहाल, सैम्यूल्सन, हिक्स आदि अर्थशास्त्रियों ने 'समष्टि-प्रावैगिकी' की तकनीकों का विकास किया है। समष्टि-प्रावैगिकी समष्टि चरों के परिवर्तनों की दरों से सम्बन्धित है। समष्टि-प्रावैगिकी विश्लेषण पर अर्थमिति के राष्ट्रीय आय, व्यापार-चक्र और आर्थिक विकास के मॉडल व्यापकता से निर्मित हो रहे हैं। इसने अर्थशास्त्र को अधिक वैज्ञानिक बना दिया है।

निष्कर्ष (Conclusion)—प्रावैगिक विश्लेषण के महत्त्व पर अपना मत प्रकट करते हुए प्रोफेसर सैम्यूल्सन ने कहा है कि यह "विभिन्न उपकल्पनाओं की उलझनों को दूर करने और नई सभावनाओं की छानबीन, दोनों के लिए अत्यन्त लचीली विचारधारा है।"

8. आर्थिक प्रावैगिकी की सीमाएं
(LIMITATIONS OF MACRO-DYNAMICS)

इस तथ्य के बावजूद कि जटिल आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए आर्थिक प्रावैगिकी एक उपयोगी और वास्तविक विधि है, इसकी अपनी दुर्बलताएँ भी है।

(1) **जटिल विधि** (Intricate method)—यह अत्यन्त कोमल तथा जटिल विधि है जिसे सावधानी से प्रयोग करने की जरूरत है। अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रयुक्त आर्थिक चरों की व्याख्या करने में इसने अत्यधिक विवाद खड़ा कर दिया है। उदाहरणार्थ, प्रो. नाइट समझता है कि उसका लाभ का सिद्धान्त 'प्रावैगिकी' के क्षेत्र में सम्बन्ध रखता है, जबकि हैरड का विचार है कि वह स्थैतिकी के क्षेत्र में आता है। केन्ज के "सामान्य सिद्धान्त" की व्याख्या के सम्बन्ध में भी ऐसे ही भेद पाये जाते हैं।

(2) **अनुकूल स्थितियों का अभाव** (Lack of favourable conditions)—नार्थरोप[16] ने अर्थशास्त्र में ऐसे सिद्धांत के अनुकूल स्थितियों के अभाव का संकेत करके "आर्थिक प्रावैगिकी के सैद्धान्तिक विज्ञान की असम्भवता" प्रदर्शित की है। आर्थिक आँकड़ों की औपचारिकताएँ होती हैं, आर्थिक प्रावैगिकी के सैद्धान्तिक विज्ञान का निर्माण करने के लिए उनकी निजी विशेषताओं को काम में नहीं लाया जा सकता। क्योंकि मानवीय आवश्यकताएँ किसी 'स्थिरता के नियम' को नहीं मानती इसलिए वर्तमान आवश्यकताओं से भविष्य का ढाँचा नहीं बनाया जा सकता। इसलिए हो सकता है कि आर्थिक प्रावैगिकी के सिद्धान्त की खोज का आधार कोई "ऐसी रूढ़िबद्ध धारणा हो जिसे हमारा अनुभवसिद्ध ज्ञान पहले ही असत्य सिद्ध कर देता है।"

नार्थरोप के मत के विपरीत, पिछले कुछ वर्षों में आर्थिक समस्याओं के हल के लिए अनन्त प्रावैगिकी मॉडल निर्मित किए जा चुके हैं, परन्तु उनमें अनुभवजन्य तत्त्व का अभाव है।

(3) **व्यावहारिक उपयोगिता का अभाव** (Lack of practical utility)—अन्तिम, आर्थिक मॉडल-निर्माण के प्रति झुकाव ने अर्थशास्त्र को एक साधारण विद्यार्थी के लिए जटिल और कठिन बना दिया है। इससे आर्थिक प्रावैगिकी की व्यावहारिक उपयोगिता के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न हो गए हैं।

16. F.S.C. Northrop. *The Logic of the Science and Humanities* 1947

9 स्थिर अवस्था पर टिप्पणी
(A NOTE ON THE STATIONARY STATE)

आर्थिक विश्लेषण की विधियो के रूप मे स्थैतिकी और प्रावैगिकी स्थिर अवस्था के काल्पनिक विचार से सम्बन्धित है। सामान्य रूप से स्थिर अवस्था का सिद्धान्त प्राय स्थैतिक और प्रावैगिक अर्थशास्त्र की प्रकृति को समझने का विश्लेषणात्मक साधन समझा जाता है। पर, शूम्पीटर इसे "एक विधि या विश्लेषक की मानसिक प्रकृति नहीं, बल्कि विश्लेषण के उद्देश्य की एक निश्चित स्थिति" मानता है। यह चाहे कुछ भी हो, पर कुछ जटिल आर्थिक समस्याओ की व्याख्या करने के लिए कार्ल मार्क्स और मार्शल ने व्यापकता से इस विचार का प्रयोग किया था। परन्तु स्थिर अवस्था है क्या?

स्थिर अवस्था उस अर्थव्यवस्था को कहते है जिसमे काल पर्यन्त सब चरो के मूल्य परिवर्तित नहीं होते। रुचियाँ, साधन और तकनीके काल पर्यन्त स्थिर रहती हैं। यह सम्भव है कि स्थिर स्थिति मे कुछ आर्थिक स्थितियाँ समष्टि अर्थशास्त्र की दृष्टि से परिवर्तित होती हो और व्यष्टि अर्थशास्त्र की दृष्टि से स्थिर रहे। यह वह स्थिति है जिसमे उत्पादन, उपभोग, वितरण और विनिमय की सामान्य स्थितियाँ स्थिर रहती है परन्तु फिर भी गति होती है। गणना, कुशलता तथा आयु-सरचना की दृष्टि से जनसख्या स्थिर रहती है। उत्पादन की विधियाँ कुल उत्पादन और पूँजी वस्तुओं के स्टॉक भी उतने ही रहते हैं, चाहे जन्म और मरण की दरे समान रहती है और कुल सख्या मे परिवर्तन नहीं होता। इसी प्रकार, वस्तुओ का उत्पादन और उपभोग समान दरो पर होता रहता है। इसलिए कीमते स्थिर रहती है। मुद्रा की कुल मात्रा स्थिर रहती है और न तो बचते होती है ओर न ही निवेश, चाहे व्यक्ति बचते या निवेश करते रहे।

जिस स्थिर अवस्था का ऊपर उल्लेख किया गया है, वह दो स्पष्ट शक्तियो का निर्देश करती है। प्रथम, क्योकि अर्थव्यवस्था मथन (churn) करती रहती है अत वह काल पर्यन्त गति करती है और इसलिए प्रावैगिक अर्थव्यवस्था को निर्देश करती है। दूसरे, क्योकि यह उसी ढाँचे की पुनरावृत्ति (repetition) होती है, इसलिए स्थैतिक अर्थव्यवस्था का निर्देश करती है। एक बार जब ढाँचा बन जाता है, तो वह अपनी पुनरावृत्ति करता है और अर्थव्यवस्था वैसे ही अपरिवर्तनशील गति में रहती है जैसे एक ग्रामोफोन का रिकार्ड निरतर पुनरावृत्ति करता रहता है। अर्थव्यवस्था "एक सक्रिय परन्तु अपरिवर्तनशील प्रक्रिया" (active but unchanging process) को प्रकट करती है और वह "स्थिर" होती है। ऐसी अर्थव्यवस्था ठीक सौर मण्डल (solar system) के समान होती है जिसमे सूर्य तो बीच मे है और बाकी नक्षत्र उसके गिर्द घूमते रहने है और उनकी गति और ढाँचे मे कोई परिवर्तन नहीं होता। स्थिरता की अवस्था प्रावैगिक अर्थव्यवस्था की सीमित स्थिति है जहाँ समय तो दिया जाता है पर वह अपना पूरा काम नहीं कर पाता। इस प्रकार स्थिर अवस्था स्थैतिकी अर्थव्यवस्था का काल पर्यन्त प्रसार है।

इसकी सीमाएँ (Its Limitations)

स्थिर अवस्था वास्तविकता नहीं है। यह एक भ्रान्ति है जिसे मार्शल 'कल्पना' कहता है। अन्य चरो के प्रभाव के अन्तर्गत प्रत्येक आर्थिक चर निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। रुचियाँ, तकनीके और साधन ये सभी काल पर्यन्त परिवर्तित होते रहते है। माँग, पूर्ति और कीमत एक दूसरे को प्रभावित करती रहती है। *जनसख्या एव पूँजी बढती रहती है। इस प्रकार स्थिर अवस्था की मान्यताओ* की शिथिलता हमे वास्तविकता के अधिक निकट ले आती है। ओर कई ऐसी जटिल आर्थिक समस्याओं को हल करने मे सहायता देती है जिन्हे एक प्रयत्न मे ग्रहण कर सकना कठिन है।

आर्थिक समस्याओ के हल मे स्थिर अवस्था के प्रयोग के बारे मे हिक्स को बहुत शका है।

स्थिर अवस्था के साथ अत्यधिक तल्लीनता का अर्थशास्त्रियों के मन पर बुरा प्रभाव पडा है। इसने इन्हे अर्थशास्त्र की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समस्याओं की उपेक्षा करने को प्रोत्साहन दिया है। उदाहरणार्थ, स्थिर अवस्था के विचार ने कई वर्षों तक ब्याज के प्रावैगिक सिद्धात के विकास मे बाधा प्रस्तुत की। स्थिर अवस्था के विचार ने उन्हे हल करने की बजाय और समस्याएँ खडी की है। इसने आर्थिक सिद्धान्त के वास्तविक आधार पर विकास मे अडचने प्रस्तुत की है।

प्रश्न

1 स्थैतिकी और तुलनात्मक स्थैतिकी मे अन्तर को बतलाइए। इस भेद को स्पष्ट करने के लिए चित्रो का प्रयोग कीजिए। व्यष्टि अर्थशास्त्र से इन दोनों के उदाहरण दीजिए।

2 "मैं आर्थिक सिद्धान्त के उन भागों को आर्थिक स्थैतिकी कहता हूँ जिसमें हम दिनांकन का कष्ट नहीं करते, जबकि आर्थिक प्रावैगिकी में प्रत्येक मात्रा का सम्बन्ध किसी दिनांकन से होता है।"—हिक्स। उपरोक्त मत से आप कहाँ तक सहमत हैं?

3 आर्थिक स्थैतिकी तथा आर्थिक प्रावैगिकी मे अन्तर कीजिए। स्थैतिकी के महत्त्व एव त्रुटियों की अध्ययन रीति की तरह व्याख्या कीजिए।

4 स्थिर अर्थशास्त्र और गतिशील अर्थशास्त्र की धारणाएँ समझाइए। आर्थिक विवेचन मे इनका उपयोग समझाइए।

5 एक कॉबवेब मॉडल का वर्णन कीजिए। आर्थिक विश्लेषण मे कॉबवेब मॉडल का क्या महत्त्व है?

अध्याय 6

संतुलन की धारणा
(THE CONCEPT OF EQUILIBRIUM)

1. अर्थ
(MEANING)

Equilibrium' शब्द लैटिन के *aequilibrium* शब्द से निकला है जिसका अर्थ है समान तुलन। अर्थशास्त्र में इसका प्रयोग भौतिकी (Physics) से लिया गया है। भौतिकी में इसका अर्थ होता है समान तुलन की वह स्थिति जिसमें विरोधी शक्तियाँ या प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे को निष्प्रभाव कर देती हैं। प्रो स्टिगलर ने इसी प्रकार की परिभाषा इन शब्दों में दी है, "सतुलन यह स्थिति है जिसमें गति की शुद्ध प्रवृत्ति न हो, हम 'शुद्ध' प्रवृत्ति इस तथ्य पर बल देने के लिए कहते हैं कि वह स्थिति आवश्यक रूप से आकस्मिक जडता की नहीं होती परन्तु इसके स्थान पर बलशाली शक्तियों को निष्प्रभाव करने की होती है।"[1] सतुलन का अर्थ है विश्राम (rest) की ऐसी स्थिति जिसकी विशेषता है परिवर्तन का अभाव। प्रो जे. के. मेहता के शब्दों में, "अर्थशास्त्र में सतुलन, गति में परिवर्तन की अनुपस्थिति बताता है।"[2] यह ऐसी स्थिति है जिसमें मार्किट के विभिन्न प्रतिभागियों (participants) की सभी निर्णयों में पूरी सहमति होती है और कोई भी अपने निर्णय को दोहराने या बदलने की आवश्यकता नहीं समझता। दूसरे शब्दों में, यह ऐसी मार्किट स्थिति है जहाँ भाग लेने वालों के सब निर्णय एक-दूसरे से पूर्ण मेल रखते हैं। स्किटोवस्की के शब्दों में, "एक मार्किट, या अर्थव्यवस्था, या व्यक्तियों और फर्मों का कोई अन्य समूह उस समय सतुलन की स्थिति में होता है जब उसका कोई भी सदस्य अपने व्यवहार में परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव नहीं करता। इसलिए किसी समूह के सतुलन के लिए यह आवश्यक है कि उसके सब सदस्य सतुलन में हो और प्रत्येक सदस्य का सतुलन व्यवहार हर अन्य सदस्य के सतुलन व्यवहार के अनुरूप हो।"[3] मान लीजिए कि प्रति दिन मार्किट में मछली की स्थिर मात्रा लगातार आती है और सभावी क्रेता उसे उसी चाह से खरीदते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि मार्किट कीमत ऐसी हो जिससे मछली की माँग और पूर्ति समान हो जाए। जब तक निश्चित कीमत पर माँग और पूर्ति समान हों, तब तक वह सतुलन की स्थिति होती है। वह कीमत जिस पर मछली खरीदी और बेची जाती है, सतुलन कीमत कहलाती है, तथा मछली की वह मात्रा जो उस कीमत पर खरीदी और बेची जाती है, सतुलन मात्रा होती है।

1 "An equilibrium is a position from which there is no net tendency to move, we say net tendency to emphasise the fact that it is not necessarily a state of sudden inertia, but may instead represent the cancellation of power forces " G J Stigler, *The Theory of Price* pp 14-15

2 "Equilibrium denotes in economics absence of change in movement " J K. Mehta, *Advanced Economic Theory* p 94

3 T Scitovsky, *Welfare and Competition* pp 230-31

चित्र 6 1

सतुलन कीमत पर क्रेता और विक्रेता में से कोई भी कम या अधिक मात्रा खरीदने या बेचने को प्रेरित नहीं होता। उदाहरण के लिए, चित्र 6 1 मे पूर्ति वक्र S माँग वक्र D को E पर काटता है जोकि सतुलन का बिन्दु है, और OP तथा OQ सतुलन कीमत-मात्रा सयोग को प्रकट करते हे।

यदि किसी कारणवश कीमत गिर कर सतुलन कीमत से नीचे OP_2 पर आ जाए, तो माँग की मात्रा बढ जाएगी ओर पूर्ति की मात्रा घट जाएगी अर्थात् $P_2d > P_2s$ शक्तियाँ कार्यशील हो जाएँगी ओर कीमत को वापस सतुलन स्थिति E की ओर धकेलने लगेंगी। इस प्रकार सतुलन स्तर से बढकर कीमत के OP_1 स्तर पर आ जाने से पूर्ति बढ जाएगी और माँग घट जाएगी अर्थात् $P_1s_1 > P_1d_1$ और कीमत तुरन्त वापस E पर आ जाएगी।
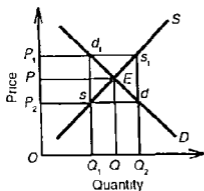
२. स्थैतिक सतुलन (STATIC EQUILIBRIUM)

सतुलन स्थिति, जिसकी ऊपर व्याख्या की गई है, सतुलन सिद्धान्त की एक ओर विशेषता को प्रकट करती है और वह यह कि यह टिकाव की स्थिति होती है जिसमें गति की ऐसी विशेषता है कि विरोधी शक्तियाँ एक-दूसरे को सतुलित करती हें। एक बार जब यह स्थिति आ जाती हे तो फिर इससे दूर जाने की प्रवृत्ति नहीं होती। प्रो मेहता के अनुसार, "स्थैतिक सतुलन वह सतुलन हे जोकि अपने आप को विचाराधीन समयावधि के बाद बनाए रखता है।"[4] यह ऐसी आनन्ददायक स्थिति है जिसे हर व्यक्ति, फर्म, उद्योग या साधन प्राप्त करना चाहता है ओर जब यह स्थिति आ जाती हे तो कोई भी इसे छोडना नहीं चाहता। एक उपभोक्ता उस समय सतुलन की स्थिति मे होता है जब वह भिन्न-भिन्न वस्तुओं और सेवाओं पर दिए हुए निश्चित खर्च से अधिकतम सतुष्टि प्राप्त करता है। अपने कुल खर्च को अपनी खरीद पर नए सिरे से आबटन करने का उपभोक्ता का कोई भी प्रयत्न उसकी सतुष्टि को बढाने की बजाय घटा देगा। एक फर्म उस समय सतुलन की स्थिति मे होती है जब उसके लाभ अधिकतम हों और वह अपने उत्पादन को बढाने में कोई रुचि न रखती हो। इस स्थिति से किसी भी प्रकार हटने से लाभ घट जाएगा। इसी प्रकार, एक उद्योग उस समय सतुलन की स्थिति में होता हे जब उसे अपने कुल उत्पादन को परिवर्तित करने में कोई रुचि नहीं होती। यह ऐसी स्थिति मे होती हे जिसमे न तो वर्तमान फर्में उद्योग को छोडना चाहती हे और न ही नई फर्में आना चाहती हैं। दूसरे शब्दों में, कोई उद्योग उस समय सतुलन की स्थिति मे होता है जब सभी फर्में सामान्य लाभ कमा रही हों। एक उत्पादक साधन उस समय सतुलन की स्थिति में होता है जब उसे उसकी अधिकतम कीमत पर काम पर लगाया जाता है जिससे उसकी

4 J K Mehta, *op cit*, p 189

आय अधिकतम होती है। वह अपनी सेवा को कम या अधिक मात्रा में प्रस्तुत करने को प्रेरित नहीं होता और न ही कहीं और नौकरी खोजता है। ऐसा करने से उसकी आय घट जाएगी। प्रो बोल्डिंग ने स्थैतिक संतुलन को इन शब्दों में व्यक्त किया है "एक गेंद जो समान गति से लुढ़कती जा रही हो, या इससे भी अच्छा उदाहरण एक वन का है जिसमें पेड़ उगते हैं, बढ़ते या नष्ट होते हैं परन्तु समूचे वन की संरचना में कोई परिवर्तन नहीं आता, यहाँ संतुलन का मात्रिक उदाहरण पाया जा सकता है।"[5] यह ऐसा स्थैतिक संतुलन है जो दी हुई तथा निश्चित कीमतों, मात्राओं, आय, रुचियों, प्रौद्योगिकी और जनसंख्या पर आधारित होता है।

3. प्रावैगिक संतुलन (DYNAMIC EQUILIBRIUM)

प्रावैगिक संतुलन में कीमतें, मात्राएँ, आय, रुचियाँ, प्रौद्योगिकी, जनसंख्या आदि सभी लगातार बदलते रहते हैं। इसीलिए समय की एक निश्चित अवधि में संतुलन के बजाय असंतुलन की स्थिति पाई जाती है। यदि मार्किट के प्रतिभागियों द्वारा किए जाने वाले निर्णयों में सहमति नहीं है तो यह वर्तमान संतुलन की स्थिति को बिगाड़ देगी और असंतुलन पैदा हो जाएगा। यदि भाग लेने वाला कोई व्यक्ति असंतुलन में है और प्रयत्न करने पर भी संतुलन में नहीं आ पाता, तो वह दूसरों को भी असंतुलन की स्थिति में डाल देगा। इस प्रकार प्रतिक्रिया की एक शृंखला प्रारंभ हो जाती है जो सभी भाग लेने वालों के निर्णयों में समरूपता ले आती है और संतुलन की नई स्थिति बन जाती है। जैसाकि प्रो मेहता ने कहा है, एक निश्चित अवधि के बाद जब संतुलन की अवस्था भंग हो जाती है तो वह प्रावैगिक संतुलन कहलाता है।

हम अपने उदाहरण को आगे बढ़ाते हैं। मान लीजिए कि कुछ व्यक्तियों में मछली के लिए रुचि उत्पन्न हो जाती है। इससे मछली की माँग बढ़ जाएगी। फलस्वरूप, मार्किट में सभी भाग लेने वालों की पहली योजनाओं और प्रवृत्तियों में गड़बड़ पैदा हो जाएगी। विक्रेता तुरन्त कीमत बढ़ा देंगे जिससे पुराने क्रेताओं के व्यवहार में परिवर्तन हो जाएगा। मार्किट में असंतुलन की स्थिति पैदा हो जाएगी और तब तक बनी रहेगी जब तक नई माँग के स्तर तक मछली की पूर्ति नहीं बढ़ जाती, यहाँ से विरोधी शक्तियों में नया संतुलन आएगा। चित्र 6.2 असंतुलन से संतुलन की स्थिति तक पहुँचने की इस प्रक्रिया की व्याख्या कॉबवेब प्रमेय (Cobweb theorem) द्वारा करता है। a प्रारंभिक संतुलन की स्थिति है, जहाँ से गड़बड़ शुरू होती है। जब माँग बढ़ कर D_1 हो जाती है तो कीमत एकदम OP_1 ($= qb$) पर चली जाती है, परन्तु जब दीर्घ अवधि में मछली की पूर्ति धीरे-धीरे बढ़ती है, तो कीमत गिरते-गिरते नए संतुलन

चित्र 6.2

5 K E Boulding *op cit* p 541
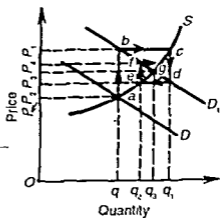
बिन्दु g पर आ जाती है, जहाँ नई सतुलन कीमत $OP_3 (=q_3g)$ पर Oq_3 मात्रा की माँग और पूर्ति होती है। यह प्रावैगिक सतुलन को स्पष्ट करती है।

परन्तु प्रश्न यह है कि नए सतुलन की यह स्थिति कब और कैसे आएगी? मछली की पूर्ति की मात्रा एक दिन मे तो बढ नहीं सकती। उत्पादको को योजना बनाने और वस्तु की अतिरिक्त मात्रा को मार्किट मे लाने मे कुछ अवधि तो लगेगी ही। इसे पश्चता समायोजना (lagged adjustment) कहते है जिसकी कॉबवेब प्रमेय की सहायता से व्याख्या की जा सकती है। चित्र 6 2 मे जब माँग D से बढकर D_1 हो जाती है, तो कीमत $qb (= OP_1)$ पर पहुँच जाती है, और यह आशा की जाती है कि यह कुछ समय तक उसी स्तर पर रहेगी। इसलिए यह कीमत उत्पादको को प्रेरित करती है कि वे पूर्ति मे qq_1 मात्रा की वृद्धि कर कुल पूर्ति को Oq_1 पर ले आएँ। परन्तु यह उस सतुलन मात्रा Oq_3 से अधिक है जिसकी मार्किट मे जरूरत है। इससे कीमत फिर घट कर dq_1 $(= OP_2)$ हो जाएगी और उत्पादको की उत्पादन योजना को बदल देगी, जो पूर्ति को घटा कर Oq_2 कर देगी। परन्तु यह मात्रा सतुलन स्तर Oq_3 से कम है, इसलिए कीमत बढ कर OP_4 हो जाएगी जो पूर्ति को बढावा देकर Oq_3 पर ले आएगी। अन्त मे, बिन्दु g पर सतुलन स्थापित हो जाएगा जहाँ S और D_1 वक्र एक-दूसरे को काटते है और $OP_3 - Oq_3$ कीमत मात्रा सयोग बन जाता है। इसे 'पश्चता समायोजन के साथ प्रावैगिक सतुलन' कहते हैं।

4 स्थिर बनाम अस्थिर सतुलन
(STABLE *VS.* UNSTABLE EQUILIBRIUM)

सतुलन की जो भिन्न-भिन्न स्थितियाँ ऊपर दी गई है, उनका सबध स्थिर सतुलन से है। यदि सतुलन की स्थिति मे कोई गडबड पैदा हो जाए, तो वह अपने आप समायोजन कर लेती है और पुरानी सतुलन स्थिति फिर स्थापित हो जाती है जैसाकि चित्र 6 1 मे दिखाया गया है। मार्शल के शब्दो मे, "जब माँग-कीमत पूर्ति-कीमत के बराबर होती है, तो उत्पादन की नई मात्रा मे बढने या घटने की प्रवृत्ति नहीं होती, वह सतुलन मे होती है, ऐसा संतुलन स्थिर होता है अर्थात् कीमत यदि इस स्थिति से थोडी-सी हटा दी जाए तो वह घडी के पैण्डुलम की भाति अपने निम्नतम बिन्दु पर आने का प्रयत्न करेगी।" पीगू के अनुसार एक भारी निधरण (keel) वाला जहाज सतुलन मे रहता है।[6] शूम्पीटर ने एक और प्रसिद्ध उपमा कटोरे और गेद की दी है। कटोरे मे टिकी हुई गेंद संतुलन की स्थिति मे होती है, क्योकि उसे छेड दिया जाए तो वह आगे-पीछे घूम कर अन्त मे अपनी प्रारभिक स्थिति पर आ कर टिक जाती है।

दूसरी ओर, सतुलन उस समय अस्थिर होता है जब संतुलन की स्थिति मे कोई भी गडबड पैदा होने से ऐसी शक्तियाँ कार्यशील हो जाती है जो व्यवस्था को उससे दूर ले जाती है और वह स्थिति फिर कभी भी स्थापित नहीं होती। पीगू के शब्दो मे, "यदि थोडी-सी गडबड होने से ऐसी शक्तियाँ कार्यशील हो जाती है जोकि मिलकर व्यवस्था को उसकी प्रारभिक स्थिति से हटा देती है," तो वह अस्थिर सतुलन की स्थिति मे होती हैं। मार्शल के अनुसार "एक अण्डा जो अपने एक सिरे पर सतुलित कर दिया गया है, बिल्कुल थोडा-सा हिल जाने से गिर पडेगा और लम्बाई के रुख लेट जाएगा।" यदि कटोरे को उलट दिया जाए और गेंद को उसके ऊपर के सिरे पर रख दिया जाए तो वह अस्थिर सतुलन की स्थिति मे होगी क्योकि ऐसी स्थिति मे गेद को थोडा-सा धकेल दिया जाए तो वह कटोरे के ऊपर से गिर कर भूमि पर आ जाती है और फिर अपनी असली स्थिति पर नहीं लौट सकती।

6 A C Pigou, *Economics of Welfare*, p 795

स्थिर और अस्थिर सतुलन की धारणाएँ सतुलन की स्थिरता से सम्बन्ध रखती है जिनकी अध्याय 42 मे विवेचना की गई है।

5. तटस्थ सतुलन (NEUTRAL EQUILIBRIUM)

एक और प्रकार का सतुलन जिसका प्राय वर्णन किया जाता है, तटस्थ सतुलन है। जब प्रारभिक सतुलन की स्थिति मे गडबड पैदा होती है, तो गडबड पैदा करने वाली शक्तियाँ उसे सतुलन की नई स्थिति मे ले आती है जहाँ आ कर व्यवस्था टिक जाती है। बिलियर्ड (billiard) की मेज पर एक गेद छेड दी जाए तो वह नई स्थिति में पहुँच कर टिक जाएगी। प्रो पीगू के अनुसार, "एक अण्डा जो अपनी लम्बाई के रुख पडा है, तटस्थ सतुलन मे है।" स्थैतिक तटस्थ सतुलन की स्थिति को चित्र 6.3 मे दिखाया गया है और प्रावैगिक को चित्र 6.4 मे। चित्र 6.3 मे, E प्रारभिक सतुलन का बिन्दु है जहाँ OP कीमत पर OQ मात्रा की माँग और पूर्ति होती है। कीमत के बढ कर OP_1 हो जाने से E_1 नया सतुलन बिन्दु बन जाता है परन्तु माँग और पूर्ति की मात्रा पहले जितनी अर्थात् OQ ही रहती है। इस प्रकार कीमत क्षेत्र PP_1 (= EE_1) तटस्थ सतुलन को प्रकट करता है।
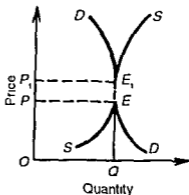
चित्र 6.3

यदि मार्किट प्रावैगिक हो, तो माँग मे वृद्धि कीमत को बढा कर OP_1 (= Qb) कर देती है जो उत्पादक की पूर्ति बढा कर OQ_1 करने की प्रेरणा देती है, जैसे चित्र 6.4 मे। परन्तु माँग-कीमत Q_1d पूर्ति कीमत Q_1c से कम है, इसलिए उत्पादक पूर्ति को घटा कर OQ पर लाना चाहेगे। परन्तु इस स्तर पर पूर्ति से माँग अधिक है, इसलिए कीमत फिर बढ कर Qb (= OP_1) हो जाएगी। इस प्रकार कीमत और मात्राए एक दायरे मे स्थिर विस्तार के उतार-चढाव के साथ सतुलन बिन्दु e के गिर्द घूमेगी।
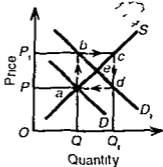
चित्र 6.4

यह ध्यान देने की बात है कि स्थिर, अस्थिर और तटस्थ इन तीनो सतुलनो मे से केवल स्थिर सतुलन ही अर्थशास्त्रियो के काम का है जो जटिल आर्थिक समस्याओ के विश्लेषण मे प्रयुक्त होता है। अस्थिर और तटस्थ सतुलन तो केवल सैद्धान्तिक रुचि के विषय है।

6. आंशिक संतुलन
(PARTIAL EQUILIBRIUM)

आंशिक या विशेष संतुलन विश्लेषण, जिसे व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण भी कहते हैं, एक व्यक्ति या फर्म या उद्योग या उद्योगों के एक समूह के संतुलन की स्थिति का अध्ययन करता है। यह ऐसी मार्किट प्रक्रिया है जो वस्तु-कीमतों और साधन-कीमतों का निर्धारण करती है और जिसमें अन्य बातें समान रहते हुए एक या दो चरों पर विचार किया जाता है। स्टिगलर के शब्दों में, "आंशिक संतुलन वह है जो केवल सीमित आँकड़ों पर आधारित है। एक आदर्श उदाहरण एक वस्तु की कीमत का विश्लेषण है, जबकि अन्य सभी वस्तुओं की कीमतें स्थिर रखी जाती हैं।" मार्शल का अर्थशास्त्र अधिकतम आंशिक संतुलन विश्लेषण के अध्ययन से सम्बन्ध रखता है।

आंशिक विश्लेषण का संबंध दो प्रकार की आर्थिक समस्याओं से है। प्रथम, वे जो किसी व्यक्ति, फर्म या उद्योग के आर्थिक व्यवहार के किसी विशेष पक्ष से सम्बन्ध रखती है। उदाहरण के लिए, यह विश्लेषण अपने को किसी एक वस्तु की मार्किट तक सीमित कर लेता है, जहां वस्तु की कीमत, उत्पादन की तकनीक और वस्तु के उत्पादन में प्रयोग किये जाने वाले साधनों की मात्रा पर विचार किया जाता है। जबकि कीमत को प्रभावित करने वाले अन्य सब तत्त्व स्थिर मान लिए जाते हैं। दूसरे, जिन आर्थिक घटनाओं का यह विश्लेषण करता है, उनके केवल प्रथम कोटि (first order) के परिणामों का ही अध्ययन करता है। जिस वस्तु का विश्लेषण किया जा रहा है उस वस्तु के द्वारा अन्य वस्तुओं की कीमतों पर पड़ने वाले तथा बदले में अन्य वस्तुओं के उस वस्तु पर पड़ने वाले द्वितीय कोटि के प्रभावों की यह उपेक्षा करता है।

हम संक्षेप में एक व्यक्ति, फर्म, उद्योग और साधन की संतुलन स्थितियों का अध्ययन करेंगे।[7]

एक उपभोक्ता उस समय संतुलन की स्थिति में होता है जब वह अपनी मौद्रिक आय को भिन्न-भिन्न साधनों और सेवाओं पर ऐसे ढंग से खर्च करता है कि उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होती है। ये शर्तें हैं (1) प्रत्येक वस्तु की सीमांत उपयोगिता उसकी कीमत के बराबर है, अर्थात् $\frac{MU_A}{P_A} = \frac{MU_B}{P_B} \quad . = \frac{MU_N}{P_N}$, और (2) उपभोक्ता अपनी समस्त आय को वस्तुओं के क्रय पर व्यय करे, अर्थात् $Y = P_A Q_A + P_B Q_3 + \quad + P_N Q_N$ यह मान लिया जाता है कि उसकी रुचियाँ, अधिमान, उसकी मौद्रिक आय तथा जिन वस्तुओं को वह खरीदना चाहता है, उनकी कीमतें दी हुई और स्थिर हैं।

एक फर्म उस समय संतुलन की स्थिति में होती है जब वह अपने उत्पादन में कोई परिवर्तन नहीं करना चाहती। अल्पकालीन में इसकी सीमान्त लागत और सीमान्त आगम बराबर होते हैं और दीर्घकालीन में यह पूर्ण संतुलन की शर्तों को पूरा करती है अर्थात् $MC = MR = LAC$ के न्यूनतम बिन्दु पर। इस प्रकार यह सामान्य लाभ कमाती है और उद्योग को छोड़ना नहीं चाहती। फर्म के विश्लेषण में उत्पादन की तकनीक तथा वस्तुओं और साधनों की कीमतें दी गई होती हैं।

एक उद्योग उस समय संतुलन की स्थिति में होता है जब उसकी सब फर्में सामान्य लाभ कमा रही हों और कोई भी परिवर्तन फर्म उसे छोड़ना या नई फर्म उसमें आना न चाहती हो। एक वस्तु की मार्किट में एक समय पर एक ही कीमत पाई जाती है, जिस पर जो मात्रा उपभोक्ता खरीदना चाहते हैं, ठीक उस मात्रा के बराबर होती है जो विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित की जा रही होती है। उद्योग की प्रत्येक फर्म अपनी वस्तु वर्तमान मार्किट कीमत पर बेचती है और उत्पादन

7 इनकी चित्रों द्वारा व्याख्या 8, 22 और 37 अध्यायों के अध्ययन के बाद की जा सकती है।

के उस स्तर का उत्पादन करती है, जहाँ उसकी सीमान्त लागत और सीमान्त आगम बराबर हो। अल्पकालीन में, वह अपनी औसत लागतो से कम कीमत पर भी उत्पादन कर सकती है, परन्तु दीर्घकालीन मे यह आवश्यक है कि कीमत उत्पादन की न्यूनतम औसत लागतो के बराबर हो।

उत्पादन का एक साधन (भूमि, श्रम, पूँजी या सगठन) उस समय सतुलन मे होता है जब वह अपने अधिकतम प्रदत्त (paid) कार्य मे नियुक्त हो ताकि उसकी आय अधिकतम होती है। यह वह स्थिति है जब उसकी कीमत उसके सीमात आगम उत्पाद के बराबर होती है। इस कीमत पर, न तो कहीं और नियोजित होने और न ही अपनी सेवाओ को कम या अधिक प्रदान करने की प्रेरणा होती है। इस प्रकार, साधन के लिए एक ही कीमत होती है जो किसी भी समय समस्त मार्किट मे पाई जाती है। फिर, एक साधन के स्वामी चालू कीमत पर अपनी सेवा बेचने को तैयार होते है यह उस मात्रा के अवश्य बराबर होनी चाहिए जिसे उद्यमी लेने को तैयार है।

मान्यताएं (Assumptions)

मार्किट का आशिक सतुलन विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ताओ के लिए वस्तु की कीमत दी हुई और स्थिर है। उपभोक्ताओ की आय, रुचियाँ, आदते और अधिमान स्थिर रहते है। फर्मों के लिए, वस्तु के उत्पादक ससाधन और अन्य सबधित वस्तुओ की कीमतें दी हुई और स्थिर है। प्रयोग की जा रही उत्पादन की तकनीको के अनुसार उत्पादन के साधन दी हुई और स्थिर कीमतो पर उद्योग को आसानी से मिल जाते है। यदि कोई परिवर्तन हो, मान लीजिए उपभोक्ता की रुचियो मे या उत्पादन की तकनीकों मे, तो उपभोक्ता-उत्पादक योजनाएँ बदल दी जाती है और एक नए स्तर पर सतुलन फिर स्थापित हो जाता है। एक साधन के लिए मार्किट का विश्लेषण यह मानता है कि जिन वस्तुओ को साधन बनाने मे सहायक होता है इनकी कीमतें दी हुई और स्थिर हैं और अन्य सभी साधनों की मात्राए और कीमते दी हुई और स्थिर है। फिर, स्थानो और व्यवसायो के बीच उत्पादन के साधन पूर्णतया गतिशील है। अल्पकाल मे, एक साधन अपने सीमात उत्पादन से कम कमा सकता है परन्तु दीर्घकाल मे, सभी रोजगारो और सभी स्थानो पर उसकी कीमत अवश्य उसके सीमात आगम उत्पाद के बराबर होनी चाहिए।

ऊपर जिस विश्लेषण पर विचार किया गया है वह पूर्ण प्रतियोगी मार्किट से सम्बन्ध रखता है और उसे एकाधिकार, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता, अल्पाधिकार और एक-क्रयिता मार्किटो पर भी लागू किया जा सकता है।

इसके गुण (Its Merits)

आशिक सतुलन विश्लेषण के कुछ गुण इस प्रकार है

प्रथम, यह हमे किसी वस्तु या सेवा की कीमत मे परिवर्तन के कारणो का विश्लेषण करने मे सहायता देता है। इसी प्रकार, एक व्यक्ति, फर्म या उद्योग के व्यवहार मे परिवर्तन के कारण भी समझे जा सकते है।

दूसरे, यह विधि मार्किट मे भाग लेने वालो की योजनाओ और व्यवहार मे परिवर्तनों के परिणामो को बताने मे सहायक है। मार्किट व्यवस्था के कार्यकरण में राज्य के हस्तक्षेपो के परिणामो का भी विश्लेषण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, कपडे के उद्योग मे उत्पादन-कर का कीमत, उत्पादन, विक्रय लाभ आदि पर क्या प्रभाव पडेगा, यह आशिक सतुलन विश्लेषण के क्षेत्र मे आता है।

तीसरे, यह व्यावहारिक समस्याओं को हल करने के लिए अनिवार्य साधन है। आर्थिक विषयो के सीमित और छोटे क्षेत्र पर ध्यान केन्द्रित करके तथा एक या दो चरों तक अपनी जाँच

के क्षेत्र को घटाकर यह विधि आर्थिक समस्याओं को सरल और आसानी से समझने वाली बना देती है।

अन्तिम, आर्थिक व्यवस्था के सामान्य कार्यकरण को समझने के लिए, जिसमे आर्थिक चर एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं, आशिक सतुलन विश्लेषण आधार है। इसके बिना सामान्य सतुलन विश्लेषण को समझना और उनकी व्याख्या करना सभव नहीं।

सीमाएँ (Limitations)

परन्तु आशिक सतुलन विश्लेषण की अपनी सीमाएँ हैं। यह केवल एक विशेष क्षेत्र तक सीमित रहता है, चाहे वह एक व्यक्ति हो, चाहे एक फर्म या उद्योग। यदि उन अवास्तविक मान्यताओं को, जो विशेष मार्किट को शेष अर्थव्यवस्था से अलग करती है, छोड दिया जाए तो आशिक सतुलन विश्लेषण समाप्त हो जाता है। उस मार्किट मे एक आर्थिक गडबड के परिणामस्वरूप असतुलन की ऐसी शक्तियां कार्यशील हो जाती हैं जो माग और पूर्ति में परिवर्तन का ऐसा रूप धारण कर लेती है कि सारी अर्थव्यवस्था मे परिवर्तन की पहली, दूसरी, तीसरी कोटि की लहरें शुरु हो जाती है। अर्थव्यवस्था के सभी भागो के पारस्परिक सबधो का अध्ययन करने मे आशिक सतुलन विश्लेषण असमर्थ है। आर्थिक प्रक्रिया की परस्पर निर्भरता को उसके पूर्ण रूप मे समझने के लिए सामान्य सतुलन विश्लेषण का अध्ययन अनिवार्य है।

8. सामान्य सतुलन[8]
(GENERAL EQUILIBRIUM)

सामान्य सतुलन आर्थिक परिवर्तियों, उनके परस्पर सबधो और निर्भरताओं का विस्तृत अध्ययन है *जिससे आर्थिक व्यवस्था के पूर्ण रूप मे कार्यकरण को समझा जा सके।* यह समस्त अर्थव्यवस्था के सबध मे कीमतों, वस्तुओं की मात्राओं और सेवाओं मे परिवर्तनो के कार्यकरण के कारणों और परिणामो को इकट्ठा कर देता है। एक अर्थव्यवस्था केवल उस समय सामान्य सतुलन मे हो सकती है जब सब उपभोक्ता, सब फर्में, सब उद्योग और सब साधन-सेवाएँ एक साथ सतुलन मे हो और वस्तु तथा साधन कीमतों के माध्यम से आपस मे जुडी हो। जैसाकि स्टिगलर ने कहा है, "सामान्य सतुलन का सिद्धान्त अर्थव्यवस्था के समस्त भागो के परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त है।"

सामान्य सतुलन उस समय पाया जाता है जब सभी कीमते सतुलन मे होती है, हर उपभोक्ता अपनी दी हुई आय को ऐसे ढग से खर्च करता है कि उसे अधिकतम सतुष्टि मिलती है, प्रत्येक उद्योग की सब फर्में सभी कीमतो और उत्पादनो पर सतुलन मे होती हैं, और सतुलन कीमतो पर उत्पादक साधनो की माँग और पूर्ति बराबर होती है। प्रो लैफ्टविच के शब्दो मे, "सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए सामान्य सतुलन तभी हो सकता है जब सभी आर्थिक इकाइयाँ एक ही साथ अपना आशिक सतुलन प्राप्त करे।"

इसकी मान्यताएँ (Its Assumptions)

सामान्य सतुलन विश्लेषण निम्न मान्यताओं पर आधारित है

1 वस्तु मार्किट और साधन मार्किट दोनों मे पूर्ण प्रतियोगिता है।
2 उपभोक्ताओं की रुचियां और आदतें दी हुई है और स्थिर है।
3 उपभोक्ताओं की आय दी हुई और स्थिर है।

8 सामान्य सतुलन के सिद्धान्त के लिए अध्याय 42 देखिए।

4 भिन्न-भिन्न व्यवसायों और स्थानो के बीच उत्पादन के साधन पूर्ण रूप से गतिशील है।
5 प्रतिफल का पैमाना स्थिर है।
6 सब फर्में समरूप लागत स्थितियो के अन्तर्गत चलती है।
7 एक उत्पादन के साधन की सब इकाइयाँ समरूप है।
8 उत्पादन की तकनीको मे कोई परिवर्तन नहीं होता।
9 श्रम और अन्य स्रोत पूर्ण रूप से रोजगार मे लगे हुए है।

सामान्य सतुलन व्यवस्था का कार्यकरण (Working of the General Equilibrium System)

इन मान्यताओं के अन्तर्गत, अर्थव्यवस्था उस समय सतुलन की स्थिति मे होती है जब हर वस्तु और सेवा की माँग उस पूर्ति के बराबर होती है। इसका अर्थ है कि मार्किट मे सब भाग लेने वालो के निर्णयो मे पूरी समरूपता है। हर वस्तु की खरीद के विषय मे उपभोक्ताओं का निर्णय उत्पादको के उस वस्तु के उत्पादन और बेचने के निर्णय मे पूर्ण रूप से अनुरूप होना चाहिए। इसी प्रकार, प्रत्येक साधन-सेवा को बेचने के विषय मे मालिक का निर्णय उन को काम पर लगाने वालो के निर्णय के पूर्ण अनुकूल होना चाहिए। सामान्य मार्किट सतुलन केवल उसी समय मे होता है जब वस्तु और सेवाओ को खरीदने वालो के निर्णय बेचने वालो के निर्णयों से पूरी तरह मेल खाते हो।

अर्थव्यवस्था मे उपभोक्ताओ की रुचियो, अधिमानो और लक्ष्यो के दिए हुए होने पर, प्रत्येक वस्तु की माँग की मात्रा केवल उस वस्तु की अपनी ही कीमत पर निर्भर नहीं करती बल्कि मार्किट में मिलने वाली हर अन्य वस्तु की कीमत पर भी निर्भर करती है। इस प्रकार हर उपभोक्ता मार्किट की चालू कीमतो की सापेक्षता मे अपनी सतुष्टि को अधिकतम बनाता है। उसके लिए, हर वस्तु की सीमान्त उपयोगिता उसकी कीमत के बराबर होती है।

इस विश्लेषण मे यह मान लिया जाता है कि हर उपभोक्ता अपनी पूरी आय को उपभोग पर खर्च कर देता है, इसलिए उसका खर्च उसकी आय के बराबर होता है और बदले मे उसकी आय इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपनी उत्पादक सेवाओ को किस कीमत पर बेचता है। दूसरे शब्दो मे, उपभोक्ता जिन उत्पादक सेवाओ का स्वामी है, उनको बेचने से आय कमाता है। इस प्रकार, विभिन्न वस्तुओं के लिए उपभोक्ताओ की माँग उनकी कीमतो और उनकी सेवाओं की कीमतो पर निर्भर करती है।

अब हम पूर्ति पक्ष को लेते है। मार्किट का ढाँचा, प्रौद्योगिकी की स्थिति, और फर्मों के लक्ष्य दिए हुए होने पर वस्तु की विक्रय कीमत उसके उत्पादन की लागतो पर निर्भर करती है। आग,
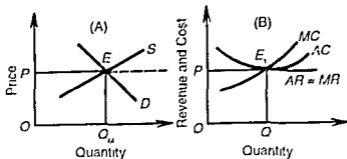
चित्र 6.5

उत्पादन की लागत उसके उत्पादन मे लगाई गई विभिन्न साधन-सेवाओ की मात्राओ और उनके लिए दी गई कीमतों पर निर्भर करती है। स्थिर प्रतिफल का पैमाना और सब फर्मों के लिए समरूप लागत स्थितियो को मान लेने पर प्रत्येक उत्पादक उत्पादन की उतनी मात्रा का उत्पादन और विक्रय करेगा जिस पर वस्तु की माँग-कीमत न्यूनतम औसत लागत और सीमान्त लागत के बराबर होगी। वस्तु मार्किट के सतुलन को चित्र 6.5 (A) मे दर्शाया गया है। मार्किट E बिन्दु पर संतुलन मे है, जहा मार्किट माँग और पूर्ति वक्र D और S एक दूसरे को काटते हैं। यहाँ OP कीमत निर्धारित होती है जिस पर OQ_M वस्तु की मात्रा मार्किट मे खरीदी और बेची जाती है। समान लागतें होने पर, मार्किट मे प्रत्येक फर्म दी हुई कीमत OP पर वस्तु को उत्पादित करती है और बेचती है। जब चित्र के पैनल (B) मे बिन्दु E_1 पर $MC = MR$ और $AC = AR$ होते हे और फर्म वस्तु की OQ मात्रा उत्पादित करती और बेचती है तो सतुलन मे होती है। मान लीजिए यदि मार्किट मे 100 फर्मे हैं, और प्रत्येक वस्तु की 60 इकाइया उत्पादित करती है, तो कुल उत्पादन 6000 (= 100 × 60) इकाइया होगा। इस विश्लेषण को इसी प्रकार अर्थव्यवस्था मे अन्य वस्तुओ पर लागू किया जा सकता है।

वस्तुओं की माग और पूर्ति की समानता की तरह, साधन-सेवाओ की माग और पूर्ति की समानता का भी सामान्य सतुलन व्यवस्था के लिए होना आवश्यक है। उत्पादक सेवाओ के लिए माग उत्पादको से आती है और पूर्ति उपभोक्ताओं से। उत्पादकों का लाभ-अधिकतम करने का उद्देश्य तथा प्रोद्योगिकी दी होने पर, एक वस्तु का उत्पादन करने के लिए एक साधन की उपयोग की गई मात्रा उसकी और अन्य साधनो की कीमतो के सबधो पर और वस्तुओं की कीमतों पर निर्भर करती है। प्रत्येक उत्पादक, साधनो की चालू कीमतो के सापेक्ष मे अपने लाभ अधिकतम करने के लिए, ऐसी मात्राओं और अनुपातों मे विभिन्न साधनों को लगाता है कि उनकी आगम उत्पादकताए उनकी कीमतो के बराबर हो। क्योकि अर्थव्यवस्था मे पूर्ण रोजगार होता है, साधनो के लिए मार्किट उस समय सतुलन होती है, जब काम के लिए पेश की गई साधनो की कुल मात्राए काम मे लगाई गई कुल साधन-मात्राओ के बराबर हो। साधन मार्किट के सतुलन को चित्र 6.6 (A) मे दर्शाया गया है, जहा एक साधन की कीमत OP और उसकी मात्रा ON मार्किट में E बिन्दु पर निर्धारित होती हैं जब उसके माग और पूर्ति वक्र D और S काटते हैं। चित्र का पेनल (B) यह दर्शाता है कि एक व्यक्तिगत फर्म के लिए इस साधन का पूर्ति वक्र पूर्ण लोचदार है और यह उस
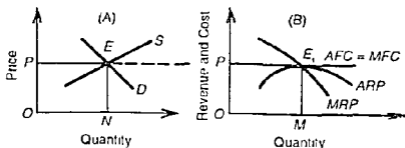
चित्र 6.6

साधन की सीमात लागत MFC के बराबर है। यह फर्म इस साधन की दी हुई कीमत OP पर इसकी इकाइया नियुक्त करेगी जहा $MFC = MRP$ और $AFC = ARP$ ऐसा सतुलन बिन्दु E_1 है जिस पर यह साधन की OM इकाइया लगाती है। यदि 10 समान लागत फर्में हो और प्रत्येक साधन की 100 इकाइया लगाती हैं, तो इस साधन की कुल मार्किट माग और पूर्ति 1000 इकाइया होगी। इस विश्लेषण को समस्त अयव्यवस्था पर फैलाया जा सकता है।

इस प्रकार, अर्थव्यवस्था उस समय सामान्य सतुलन मे होती है जब वस्तु-कीमतें प्रत्येक माग को उसकी पूर्ति के बराबर करती है और साधन-कीमते प्रत्येक साधन की माग को उसकी पूर्ति के बराबर करती हैं जिनमे सभी वस्तु मार्किट और साधन मार्किट एक-साथ सतुलन मे होती है। ऐसे सामान्य सतुलन के लिए दो शर्तें पाई जाती है (1) सभी उपभोक्ता अपनी सतुष्टियों को अधिकतम करते है और सभी उत्पादक अपने लाभों को अधिकतम करते हैं, तथा (2) सभी मार्किटो मे सभी वस्तुए और साधन बिक जाते हैं, जिसका अभिप्राय है कि वस्तु
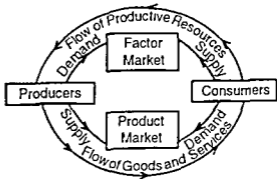
चित्र 6 7

और साधन दोनो मार्किटो मे धनात्मक (positive) कीमत पर कुल मागी गई मात्रा बराबर होती है कुल पूर्ति-मात्रा के। इसकी व्याख्या करने के लिए हम एक कल्पित साधारण अर्थव्यवस्था लेते हैं जिसमे केवल दो क्षेत्र है, घरेलू (household) और व्यवसाय (business)। आर्थिक क्रिया इन दो क्षेत्रों के बीच वस्तुओ और सेवाओ का प्रवाह ओर मौद्रिक प्रवाह का रूप लेती है। ये दो प्रवाह क्रमश वास्तविक और मौद्रिक प्रवाह कहलाते हैं, जिन्हे चित्र 6 7 मे दर्शाया गया है, जिसमे वस्तु मार्किट (product market) नीचे के भाग मे और साधन मार्किट (factor market) ऊपर के भाग मे दिखाए गए है। वस्तु मार्किट मे, उत्पादकों से उपभोक्ता वस्तुए ओर सेवाए खरीदते हे जबकि साधन मार्किट में उपभोक्ता अपनी सेवाए प्रदान करने के बदले उत्पादको से आय प्राप्त करते है। इस प्रकार, उत्पादकों द्वारा प्रदान की गई सभी वस्तुओ ओर सेवाओ को उपभोक्ता खरीदते हे और इनके बदले उन्हे मुद्रा देते है। उत्पादक, आगे, उपभोक्ताओं द्वारा प्रदान की गई सेवाओ के बदले उनको भुगतान करते हैं— जैसे श्रम सेवाओ के लिए मजदूरी, प्रदान की गई पूजी के बदले ब्याज, आदि। इस प्रकार, जैसा कि चित्र के बाहरी भाग मे तीरो के द्वारा दिखाया गया है, भुगतान उत्पादकों से उपभोक्ताओ को और उपभोक्ताओं से उत्पादको को चक्रीय ढग से घूमते रहते है। मुद्रा भुगतान प्रवाहो के विपरीत विपरीत दिशा मे वस्तुओं ओर सेवाओं के प्रवाह होते हैं। वस्तु मार्किट में व्यवसाय क्षेत्र से घरेलू क्षेत्र को वस्तुए प्रवाहित होती है और साधन मार्किट मे घरेलू क्षेत्र व्यवसाय क्षेत्र से सेवाए प्रवाहित होती है, जैसा कि चित्र के भीतरी भाग मे दिखाया गया है। ये दोनो प्रवाह वस्तु कीमतो ओर साधन कीमतों द्वारा जुडे होते हे। अर्थव्यवस्था सामान्य सतुलन मे होती है, जब कीमतो का एक सेट पाया जाता है जिस पर उत्पादकों से उपभोक्ताओं को आग

प्रवाह की मात्रा बराबर होती है उपभोक्ताओं से उत्पादकों को मुद्रा-व्यय प्रवाह की मात्रा के।

इसकी सीमाएं (Its Limitations)

अर्थव्यवस्था के सामान्य सतुलन के विश्लेषण की कई सीमाए हैं।

प्रथम, यह अनेक अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है जो ससार में वर्तमान वास्तविक स्थितियों से उलट है। पूर्ण प्रतियोगिता, जो इस विश्लेषण का आधार है, मिथ्या है।

दूसरे, यह विश्लेषण स्थैतिक है। इस विश्लेषण में सब उपभोक्ता और उत्पादक, समय के किसी भी प्रकार के विलम्ब के बिना, हर रोज वस्तुओं की उतनी ही मात्रा का उपभोग और उत्पादन करते हैं। उनकी रुचियाँ, अधिमान और उद्देश्य वही रहते हैं, और उनके आर्थिक निर्णय पूरी तरह एक-दूसरे के अनुरूप होते हैं। वास्तव में, ऐसा कुछ नहीं होता। उत्पादक और उपभोक्ता कभी भी एक ढग से न तो सोचते हैं, और न ही एक ढग से कार्य करते हैं। रुचियों और अधिमानों में निरतर परिवर्तन होते रहते हैं। पैमाने के प्रतिफल हमेशा स्थिर नहीं होते और कोई दो साधन-सेवाए समरूप नहीं होतीं। इस प्रकार हर उत्पादक की लागत स्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती है। क्योंकि दी हुई स्थितियाँ निरन्तर बदलती रहती हैं, इसलिए सामान्य सतुलन की ओर गति रुक जाती है और इसकी प्राप्ति हमेशा चाहपूर्ण कल्पना ही रही है।

अन्तिम, प्रो स्टिगलर का मत है कि "सामान्य सतुलन एक मिथ्या धारणा है। कोई भी आर्थिक विश्लेषण इस अर्थ में सामान्य नहीं है कि यह विशेष सतुलन अध्ययनों की तुलना में सतुलन अध्ययनों को अधिक शामिल करके विचार करता है, परन्तु वे कभी पूर्ण नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त, विश्लेषण जितना अधिक सामान्य होगा, उतने ही उसके निष्कर्ष आवश्यक तौर से कम निश्चित होंगे।"

सामान्य संतुलन विश्लेषण के लाभ (Uses of General Equilibrium Analysis)

सामान्य सतुलन विश्लेषण के कई महत्त्वपूर्ण लाभ भी हैं।

1 **अर्थव्यवस्था के सतुलन का चित्रण** (A picture of economy's equilibrium)—यह निजी उद्यम की अर्थव्यवस्था के सतुलन का चित्र प्रस्तुत करता है, जहाँ उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि और उत्पादक अधिकतम लाभ की स्थिति पर पहुचते हैं। साधनों का कोई अपव्यय नहीं होता। सब पूर्ण रोजगार में लगे होते हैं। आर्थिक दक्षता अधिकतम होती है जिससे समाज का आर्थिक कल्याण अधिकतम होता है। इस प्रकार, यह किसी अर्थव्यवस्था के आकार के निर्धारकों को समझने में सहायता देता है।

2 **आर्थिक व्यवस्था का कार्यकरण समझना** (To understand the working of economic system)—*वैसे भी, यह सिद्धान्त अन्य सिद्धान्तों से भिन्न है, जिसमें से कुछ अवास्तविक मान्यताओं* को निकाल दिया जाए तो एक आर्थिक व्यवस्था का कार्यकरण समझा जा सकता है। हम यह जान सकते हैं कि अर्थव्यवस्था दक्षता से चल रही है अथवा नहीं और उसके सामान्य कार्यकरण में कोई बेसुरापन तो नहीं। इस विश्लेषण की सहायता से असतुलन और फिर से सतुलन स्थापित करने की समस्याओं का अध्ययन किया जा सकता है।

3 **मार्किट की जटिल समस्याओं को समझना** (To understand the complex problems of the market)—फिर, सामान्य सतुलन विश्लेषण किसी स्वायत्त (autonomous) आर्थिक घटना के परिणामों को पहले से बताने में भी सहायता देता है। मान लीजिए, वस्तु A की माँग बढ़ जाती है जिससे उसकी कीमत बढ़ सकती है। इससे, आगे उसके स्थानापन्नों की कीमतें घट जाती हैं और पूरकों की कीमतें बढ़ जाती हैं। इनसे, इस प्रकार, A की माँग कुछ घट सकती है। यदि

उत्पादक-सेवाओं की कीमतों में भी बढ़ने की प्रवृत्ति हो, तो वस्तु *A* की माँग और प्रभावित हो सकती है। इस प्रकार सामान्य सन्तुलन विश्लेषण क्रमिक आधार पर मार्केट के सबंधों की जटिल श्रृंखलाओं की प्रकृति को समझने में मदद देता है।

4 **कीमतों के कार्यकरण को समझने में** (To understand the working of pricing process)— सामान्य सन्तुलन विश्लेषण अर्थव्यवस्था में कीमतों के कार्यकरण की व्याख्या करने में भी सहायक है। सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन होता रहता है, इसलिए समस्त अर्थव्यवस्था के विषय में तीन बड़े निर्णय किए जाते है किस वस्तु का और कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए, कैसे उत्पादन किया जाए, और वस्तुओं का उत्पादन हो जाने पर उन्हें कौन खरीदेगा। व्यक्तिगत उत्पादक और उपभोक्ता ये निर्णय करते है क्योंकि जिस वस्तु का वे उत्पादन, विक्रय और क्रय करना चाहते है उस वस्तु की एक कीमत होती है जो उनकी माँग और पूर्ति में परिवर्तनों के प्रति प्रतिक्रिया करती है। इस प्रकार सामान्य सन्तुलन विश्लेषण कीमत परिवर्तनों के द्वारा प्रभावित कई प्रकार के व्यक्तिगत निर्णयों का एकीकरण करने में सहायता देता है।

5 **आगत-निर्गत विश्लेषण को समझने में** (To understand the input-output analysis)— सामान्य सन्तुलन का प्रमुख महत्त्व इस बात में निहित है कि यह आगत-निर्गत के उस विश्लेषण को धारणात्मक आधार प्रदान करता है जिसका लियोन्टिफ ने विकास किया। इस विश्लेषण में, जिसे सामान्य सन्तुलन विश्लेषण का प्रमुख प्रकार समझा जाता है, घरेलू और उद्योग अर्थव्यवस्था के आगत और निर्गत के अदृश्य परस्पर निर्भर व्यवस्था में सबंधित है। पिछड़े हुए क्षेत्रों और देशों के आर्थिक विकास की योजना के लिए इस विश्लेषण का अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है।

प्रश्न

1 प्रावैगिक सन्तुलन की परिभाषा कीजिए। रेखाचित्रों द्वारा सिद्ध कीजिए कि समय-स्मय पर वास्तविक जीवन में सन्तुलन प्राप्त किया जा सकता है।

2 सन्तुलन की परिभाषा कीजिए और कॉबवब प्रमेय की सहायता से सिद्ध कीजिए कि कुछ दी हुई परिस्थितियों में सन्तुलन वास्तव में प्राप्त किया जा सकता है।

3 आंशिक और सामान्य सन्तुलन विश्लेषण में भेद स्पष्ट कीजिए तथा सामान्य सन्तुलन की विस्तार से व्याख्या करिए।

4 स्थैतिक और प्रावैगिक सन्तुलन में भेद कीजिए। अपने उत्तर को चित्रों और समीकरणों की सहायता से समझाइए।

5 "आधुनिक आर्थिक विश्लेषण में सन्तुलन की धारणा एक अनिवार्य आधार है।" विवेचना कीजिए।

अध्याय 7

कीमत तंत्र का कार्य
(THE ROLE OF PRICE MECHANISM)

1. कीमत तंत्र का अर्थ
(MEANING OF THE PRICE MECHANISM)

कीमत तंत्र आर्थिक संगठन की वह प्रणाली है जिसमें हर व्यक्ति उपभोक्ता, उत्पादक और साधन स्वामी के रूप में पर्याप्त स्वतन्त्रता के साथ आर्थिक क्रिया में लगा रहता है। हर समाज में कानूनी तथा सामाजिक संस्थाएँ होती हैं। व्यक्तिगत आर्थिक क्रियाएँ उनके अनुसार होनी चाहिए। मुक्त अर्थव्यवस्था में, जिससे कीमत प्रणाली सम्बन्ध रखती है, उत्पादन के साधन निजी होते हैं। कच्चे माल, मशीनों तथा फेक्टरियों के निजी स्वामी होते हैं जो स्वतन्त्रतापूर्वक देश के वर्तमान कानूनों के अनुसार उनकी व्यवस्था कर सकते हैं। सब व्यक्ति इस विषय में स्वतंत्र होते हैं कि वे किसी भी व्यवसाय को चुन लें तथा पारस्परिक लाभ को ध्यान में रखते हुए चाहे जिससे वस्तुओं तथा सेवाओं का क्रय-विक्रय करें। इसका अर्थ यह है कि व्यक्तियों को अपनी इच्छानुसार सम्पत्ति प्राप्त करने, उसका निपटारा करने, या उसे पट्टे पर देने का अधिकार है। उन्हें परस्पर स्वीकृत कीमत पर लेने-देन के सौदे करने की स्वतन्त्रता होती है। इस प्रकार कीमत तंत्र पारस्परिक विनिमय तथा समन्वयन की प्रणाली है, जो आर्थिक क्रिया की कुशलतापूर्वक व्यवस्था और पथ-प्रदर्शन करती है।

2. कीमतों का कार्य या कीमत तंत्र का मुक्त अर्थव्यवस्था में कार्य
(THE ROLE OF PRICES OR PRICE MECHANISM IN A FREE ENTERPRISE ECONOMY)

एक प्रतियोगी मार्किट में वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति और माँग द्वारा कीमत तंत्र कार्य करता है। जो आगे, उनकी कीमत द्वारा निर्धारित होता है। कीमतें अनेक वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन को निर्धारित करती हैं। कीमतें उत्पादन का आयोजन करती हैं की वस्तुओं तथा सेवाओं के वितरण में सहायता देती हैं, वस्तुओं की पूर्ति को नियमित और आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती हैं। इन सभी क्षेत्रों में कीमतों के कार्य का विश्लेषण हम आगे करते हैं।

(1) क्या और कितना उत्पादन करना (What and how much to produce)—कीमतों का पहला कार्य इस समस्या को हल करना है कि किन-किन वस्तुओं का और कितनी-कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए। इसमें अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन की बनावट का दुर्लभ साधनों के बँटवारे में सबद्ध समस्या भी पाई जाती है। क्योंकि साधन दुर्लभ होते हैं इसलिए समाज को उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं के बारे में निर्णय लेना होता है, जैसे गेहूँ, कपड़ा, सड़कें, दूरदर्शन, विद्युत, भवन, आदि। एक बार वस्तुओं की किस्मों के बारे में निर्णय कर लिया जाता है, तब उनकी

मात्राओ के बारे मे निर्णय लेना होता है, अर्थात् कितने क्विटल गेहूँ, कितने लाख मीटर कपडा, कितने दूरदर्शन सैट, कितने लाख किलोवाट विद्युत, कितने भवन, आदि। क्योंकि अर्थव्यवस्था के साधन दुर्लभ होते है, इसलिए वस्तुओ की किस्मो एव मात्राओ के बारे मे निर्णय, समाज उनके लिए प्राथमिकताओ या अधिमानो के आधार पर लेता है। यदि समाज वर्तमान मे अधिक उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन को प्राथमिकता देता है, तो वह भविष्य में उनकी कम् मात्रा लेगा। पूँजी वस्तुओं को वर्तमान में अधिक प्राथमिकता देने का अभिप्राय है कि अब कम उपभोक्ता वस्तुएँ लेना और भविष्य मे अधिक।
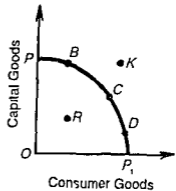
चित्र 7.1

इस समस्या की उत्पादन सम्भावना वक्र (production possibility curve) द्वारा व्याख्या की जा सकती है जैसाकि चित्र 7.1 मे दिखाया गया है। मान लो कि अर्थव्यवस्था पूँजी वस्तुएँ तथा उपभोक्ता वस्तुएँ उत्पादित करती है। अर्थव्यवस्था के कुल उत्पादन का निर्णय करते समय समाज पूँजी तथा उपभोक्ता वस्तुओ के ऐसे सयोग को चुनेगा जो इसके साधनों के अनुरूप होते है। यह R सयोग नहीं चुन सकता है जो उत्पादन-सम्भावना वक्र P_1P_1 के अन्दर है, क्योंकि यह अर्थव्यवस्था मे आर्थिक अदक्षता को व्यक्त करता है जिसका अर्थ है कि साधन पूरी तरह प्रयुक्त नहीं किए जा रहे। न ही यह सयोग K को चुन सकता है जो समाज की वर्तमान उत्पादन सम्भावनाओ से बाहर है, अर्थात् समाज के पास पूँजी तथा उपभोक्ता वस्तुओ के इस सयोग को उत्पादित करने के लिए साधनो की कमी है। इसलिए इसे B C, या D सयोगो मे से किसी एक को चुनना पडेगा जो अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करता है। यदि समाज अधिक पूँजी वस्तुएँ लेने का निर्णय करता है तो वह सयोग B चुनेगा। यदि वह अधिक उपभोक्ता वस्तुएँ लेना चाहता है तो सयोग D चुनेगा।

वास्तव मे, उपभोक्ता को अनेक प्रकार की उन वस्तुओ मे से चुनाव करना पडता है जो उसके सामने हो। कुछ वस्तुओ के लिए विशेष इच्छा का अर्थ है कि उपभोक्ता उनके बदले काफी मुद्रा और अधिक कीमत देने को तैयार है। इससे उन वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उत्पादकों को अधिक लाभ होता है। यदि उपभोक्ताओ को वस्तुओ की कम इच्छा है, तो वह उन पर अधिक खर्च करने को तैयार नहीं होगे और कम कीमत देना चाहेगे। कम लाभ की आशका से उत्पादक भी अपनी वस्तु को कम मात्रा मे ही बाजार मे लाएगे।

यदि कोई उत्पादक उपभोक्ताओ की इच्छा पर ध्यान दिए बिना ही किसी वस्तु की पूर्ति बढा देते है, तो उपभोक्ताओं के हिसाब मे उस वस्तु का मूल्य कम हो जाता है और कीमते गिर जाती हैं। दूसरी ओर, कम पूर्ति, उपभोक्ताओ की दृष्टि मे वस्तु का सम्मान बढा देती है और वे उस वस्तु के लिए अधिक कीमत दे देते है। इस प्रकार उपभोक्ता भिन्न-भिन्न वस्तुओ की जो कीमते देते है, वे उपभोक्ताओं की दृष्टि मे उन वस्तुओ का तुलनात्मक मूल्य प्रकट करती है।

उपभोक्ताओ की रुचियो और अधिमानो के साथ कीमतो मे भी परिवर्तन होता है। वस्तुओ की अधिक कीमते देकर उपभोक्ता उनके प्रति अपने अधिमान व्यक्त करते है और कम कीमत से अपनी अरुचि। यदि उपभोक्ता तागे और रिक्शा की बजाय आटो स्कूटर और टैक्सी के अधिमान

व्यक्त करते हे तो वे तागे ओर रिक्शा को कम कीमत देंगे। इससे कुछ तागे और रिक्शा वाले कोई ओर धन्धा ढूँढेंगे, या सभव है कि वे आटो स्कूटर ओर टेक्सी चलाना शुरू कर दे, आवश्यक साधन पास होने पर वे वर्कशाप भी खोल सकते है। इस प्रकार वस्तुओ ओर सेवाओ की कीमतो मे उपभोक्ताओं की रुचियाँ ओर अधिमान झलकते है।

सामान्य रूप से किसी वस्तु की कीमत मे हुआ परिवर्तन उत्पादक या उपभोक्ता जो भी हो, उसके लिए एक साथ पथ-प्रदर्शक का काम करता है। यदि एक वस्तु की कीमत बढ जाती है, तो यह उपभोक्ताओं को चेतावनी है कि वह उस वस्तु को कम मात्रा में खरीदे और साथ ही उत्पादक को सकेत है कि वह उस वस्तु का उत्पादन बढाए। ऊँची कीमत ओर अधिक लाभ की सभावना अन्तत नए उत्पादकों को उद्योग की ओर आकर्षित करती है। साधन स्वामी भी अपने साधनो को ऊँची कीमत वाले उद्योग मे लगा देते है। इस प्रकार जब उद्योग की सभी फर्मे अधिक उत्पादन करती है, तो पूर्ति माँग से बढ जाती है ओर कीमते गिरने लगती है। दूसरी ओर, कम कीमत वाली वस्तु से साधनों के हटा लिए जाने के कारण उस वस्तु का उत्पादन कम हो जाता है। परन्तु उस वस्तु की ओर उपभोक्ता की माँग के झुकाव से अन्तत उसकी कीमत बढने लगती है। यह प्रवृत्ति तब तक चलती रहती है जब तक कि दोनो वस्तुओ की कीमते बराबर नहीं हो जातीं ओर दोनो उद्योगो के उत्पादको को समान लाभ नहीं देतीं।

इसके विपरीत यदि किसी वस्तु की कीमत गिर जाती है तो यह उत्पादकों के लिए एक चेतावनी है कि वह उस वस्तु का उत्पादन घटाएँ ओर उपभोक्ताओ के लिए एक निमन्त्रण है कि वह उस वस्तु को अधिक मात्रा मे खरीदे। कम कीमते ओर परिणामत कम लाभ उत्पादको को कम कीमत वाले उद्योग से साधनो को हटाकर ऊँची कीमत वाले उद्योग मे लगाने को प्रेरित करेंगे। यह दीर्घकालीन प्रवृत्ति पूर्ति को कम कर देगी जबकि माँग बढ रही है। इसके परिणामस्वरूप कीमत बढने लगती है। दूसरी ओर, ऊँची कीमत वाले उद्योग मे साधनों के लग जाने से पूर्ति बढ जाती है। माँग कम होने के कारण कीमत गिरने लगती है। यह दीर्घकालीन प्रवृत्ति तब तक चलती रहती है जब तक कि दोनो वस्तुओ की कीमते ऐसी नहीं हो जाती कि दोनो के उत्पादकों को समान लाभों की प्राप्ति हो।

इस प्रकार उपभोक्ता प्रभु (sovereign) है। वह कीमते तय करता है ओर उत्पादक उन वस्तुओ का उत्पादन करता है जिनकी उसे अधिक आवश्यकता होती है। उत्पादक जितना अधिक उत्पादन करते है, उन्हे ओर इसी प्रकार साधन स्वामियो को भी, उतना ही अधिक लाभ होता है। यदि उपभोक्ता को उत्पादक की वस्तुएँ अच्छी न लगे ओर वह उनकी कीमत घटा दे, तो उत्पादक बेचारा तो मारा गया। इसलिए उपभोक्ता की क्रिया के साथ उत्पादक तुरन्त प्रतिक्रिया करता है *ओर उत्पादन के अनुसार ही साधनो का आवटन होता है।*

(2) **उत्पादन कैसे करना** (How to produce)—कीमतो का अगला कार्य वस्तुओ के उत्पादन मे प्रयुक्त होने वाली तकनीको को निर्धारित करना है। साधन-सेवाओ का प्रतिफल ही उनकी अपनी कीमत है। मजदूरी श्रम-सेवा की कीमत है, लगान भूमि से प्राप्त और ब्याज पूँजी से प्राप्त सेवा की कीमत है तथा लाभ उद्योगी की अपनी सेवा की कीमत है। इस प्रकार मजदूरी, लगान, ब्याज तथा लाभ उत्पादन के साधनो की कीमते है जो उद्यमी देता है। इन सब को मिला कर उत्पादन की कुल लागत बनती है।

दक्षतम उत्पादन क्रिया का प्रयोग करना हर उत्पादक का लक्ष्य होता है। आर्थिक दृष्टि से दक्षतम उत्पादन क्रिया वह है जो न्यूनतम लागत से वस्तुओं का उत्पादन करती है। उत्पादन क्रिया का चुनाव साधन-सेवाओं की सापेक्ष कीमतों ओर उत्पादन की वस्तुओं की मात्रा पर निर्भर करता

है।

उत्पादक सस्ते साधनों की अपेक्षा महँगी साधन-सेवाओं का कम मात्रा में प्रयोग करता है। उत्पादन की लागत घटाने के लिए वह महँगे साधनों के बजाय सस्ते को स्थानापन्न करता है। यदि श्रम की अपेक्षा पूँजी सस्ती है, तो उत्पादक पूजी-गहन-उत्पादन प्रक्रिया का प्रयोग करेगा। इसके विपरीत, यदि पूँजी की अपेक्षा श्रम सस्ता है तो वह श्रम-गहन-उत्पादन प्रक्रियाओं को अपनाएगा। अल्पविकसित देशों मे जहाँ श्रम अपेक्षाकृत अधिक सस्ता होता है, ऐसी तक्नीक द्वारा लागत बहुत कम हो जाती है जिससे अधिक श्रम काम में आए। जबकि विकसित देशों में, जहाँ श्रम अपेक्षाकृत महँगा होता है, पूँजी का प्रयोग और श्रम-बचत की तक्नीकें मिलकर दक्षता में लागत को न्यूनतम कर देती हैं। क्योंकि मुक्त अर्थव्यवस्था मे किसी एक विशेष वस्तु की एक ही कीमत पाई जाती है, इसलिए आर्थिक दृष्टि से दक्ष उत्पादक ही उद्योग मे ठहर सकते हैं। जो उत्पादक साधनो को न्यूनतम प्रतिफल या कीमत देने की क्षमता नहीं रखते, वे या तो काम बद कर देंगे या किसी अन्य वस्तु के उत्पादन मे लग जाएँगे।

वस्तुओं के उत्पादन के लिए प्रयोग की जाने वाली तक्नीक को चित्र 7.2 द्वारा समझाया
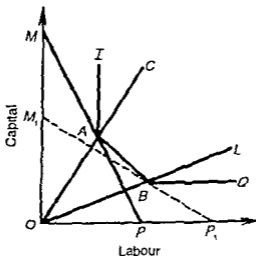
चित्र 7.2

गया है। माना कि एक अर्थव्यवस्था में उत्पादन की केवल दो तक्नीकें पाई जाती है, अर्थात् पूँजी-गहन जो OC किरण द्वारा और श्रम-गहन OL किरण द्वारा दिखाई गई है। $IABQ$ समोत्पाद (isoproduct) वक्र है जो एक इकाई-उत्पादन स्तर को दर्शाता है जिसे दोनों में से किसी भी तक्नीक को प्रयोग करके प्राप्त किया जा सकता है। बिन्दु A एक इकाई-उत्पादन स्तर है जो पूँजी-गहन तक्नीक का प्रयोग करके प्राप्त किया जाता है और बिन्दु B वही उत्पादन स्तर श्रम-गहन तक्नीक अपना कर प्राप्त किया जाता है। MP तथा M_1P_1 समान-लागत रेखाएँ हैं जो पूजी एव श्रम की बाजार कीमतो को व्यक्त करती हैं। रेखा MP यह बताती है कि श्रम की अपेक्षा पूजी सस्ती है, तथा पूँजी-गहन तक्नीक से बिन्दु A पर उत्पादन इष्टतम होगा। दूसरी ओर, यदि पूँजी की अपेक्षा श्रम

सस्ता है जैसा कि रेखा M_1P_1 बताती है, तो श्रम-गहन तकनीक में इष्टतम उत्पादन बिन्दु B पर होगा।

प्रयोग में लाई जाने वाली तकनीकें उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं के प्रकार और श्रेणी पर भी निर्भर करती हैं। मुख्य वस्तुओं के बहुत अधिक उत्पादन के लिए जटिल और महँगी मशीनों और तकनीकों की जरूरत पड़ती है। दूसरी ओर, साधारण उपभोक्ता-वस्तुओं के थोड़े उत्पादन के लिए छोटी और सस्ती मशीनों तथा साधारण तकनीकों की आवश्यकता होती है। फिर यह भी निर्णय करना होता है कि कौन-सी वस्तुएँ सरकारी क्षेत्र में तथा कौन-सी निजी क्षेत्र में उत्पादित की जाएँ।

(3) **आय वितरण का निर्धारण करना** (To determine income distribution)—कीमतों का एक अन्य कार्य आय के वितरण को निर्धारित करना है। मुक्त अर्थव्यवस्था में, वस्तु-वितरण और आय-वितरण एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। यह प्रणाली पारस्परिक विनिमय की प्रणाली है जिसमें प्राय वही व्यक्ति उत्पादक भी होते हैं और उपभोक्ता भी। साधन स्वामी मुद्रा के बदले अपनी सेवाएँ बेचते हैं और फिर साधन-सेवाओं से उस मुद्रा को खर्च करते हैं। उत्पादक मुद्रा के बदले उपभोक्ता को वस्तुएँ बेचते हैं और सेवाएँ बेचते हैं और उपभोक्ता साधन-सेवाओं के स्वामी होने के नाते आय प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, आय साधन स्वामियों से उत्पादकों की तरफ और पुन लौट कर उपभोक्ताओं की तरफ प्रवाहित होती है। आय के ऐसे चक्रीय प्रवाह को चित्र 7.3 में दर्शाया गया है।
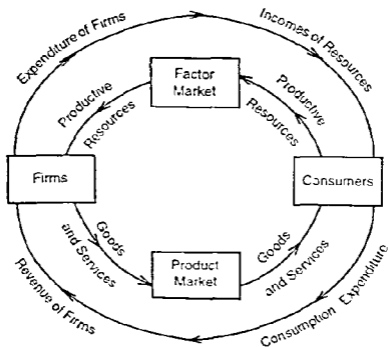
चित्र 7.3

आय के प्रवाह मे कीमतें महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदने में जो खर्च करता है, वह उसका निर्वाह-व्यय है। वस्तुओं के बेचने से उत्पादक को जो मिलता है, वह उनकी व्यक्तिगत आय है और साधन-सेवाओं के बदले उत्पादक जो देता है, वह उसकी उत्पादन लागत है।

निष्कर्ष यह है कि एक व्यक्ति की आय इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितने साधनों का स्वामी है और उपभोक्ता की दृष्टि में उसके साधनों का कितना मूल्य है। जिन लोगों के पास अधिक मात्रा में साधन होंगे, उनकी आय अधिक होगी ओर/अथवा उपभोक्ता को अधिक संतुष्टि प्रदान करने वाली वस्तुओं के निर्माण में वे अधिक योग देंगे। इसके विपरीत, कम साधनों के स्वामियों की आय कम होगी और/अथवा उपभोक्ता की संतुष्टि में वृद्धि करने वाली वस्तुओं के निर्माण में वे बहुत कम योग दे सकेंगे। फिर भी, इस प्रकार के आय भेदक अपने आप ठीक होने वाले होते है। कोई भी व्यक्ति बहुत देर तक कम आय पर नहीं रह सकता। इसलिए कम आय वर्ग के व्यक्ति (श्रमिक) ऐसे उद्योग में काम ढूढेंगे जहाँ अधिक मजदूरी मिले। कम आय वाले उद्योग से श्रमिकों के अधिक आय वाले उद्योग में जाने का परिणाम यह होगा कि पहले वाले उद्योग की पूर्ति घट जाएगी और बाद वाले उद्योग की पूर्ति बढ जाएगी। पूर्ति के घटने से वस्तु की कीमत, उत्पादक के लाभ और श्रमिक की आय में वृद्धि होगी। दूसरी ओर, अन्य वस्तु की पूर्ति बढ जाने में वस्तु की कीमत गिर जाएगी और उत्पादक का लाभ तथा श्रमिक की आय कम हो जाएँगे। यह क्रिया तब तक चलती रहेगी, जब तक आय भेदक पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाते। इस प्रकार, कीमतें आय के वितरण को केवल निर्धारित ही नहीं करतीं अपितु उसमें समानता भी लाती है।

(4) ससाधनो का पूर्ण उपयोग करना (To utilise resources fully)—कीमत प्रणाली एक अर्थव्यवस्था के ससाधनों का पूर्ण उपयोग करने में भी सहायक होती है। ससाधनों के पूर्ण उपयोग से अभिप्राय पूर्ण रोजगार है। इसके लिए बड़े निवेशों द्वारा आय मे वृद्धि करने की आवश्यकता होती है और अन्तत बचत और निवेश मे समानता। एक वृद्धिशील अर्थव्यवस्था में बचत ओर निवेश में समानता ब्याज दरों को कम करके लाई जाती है। जब अर्थव्यवस्था ससाधनों के दक्ष प्रयोग द्वारा पूर्ण रोजगार के स्तर के निकट पहुँच रही होती है तो आय तीव्र दर से बढती है और उसके साथ बचतें भी। परन्तु निवेश पीछे रह जाता है जिसे ब्याज दरों में कमी करके बचतों के स्तर तक लाया जा सकता है। इस प्रकार, ब्याज दर समानता लाने के यत्र का कार्य करता है। फिर भी, पूर्ण रोजगार के निकट पहुँच रही अर्थव्यवस्था में निवेश और बचत की समानता लाने के लिए केवल ब्याज दर पर ही निर्भर नहीं हो सकते। इसलिए, बचत ओर निवेश से सबंधित उपभोक्ताओं और उत्पादकों के निर्णयों को प्रभावित करने के लिए मौद्रिक और राजकोषीय उपाय और भौतिक नियत्रणो की भी आवश्यकता होती है।

(5) आर्थिक विकास को प्रेरणा प्रदान करना (To provide an incentive to growth)—कीमतें आर्थिक विकास की व्यवस्था करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। कीमत तत्र के माध्यम से सुधार, नव-प्रवर्तन और विकास की प्रेरणा मिलती है। ऊँची कीमतो और लाभ से ओद्योगिक सस्थाओं को इस बात के लिए प्रोत्साहन मिलता है कि वे अपेक्षाकृत अच्छी तकनीकों के विकास और सुधार के लिए अन्वेषण और प्रयोगीकरण पर बहुत अधिक खर्च करें।

अर्थव्यवस्था कीमतो के माध्यम से ही अपने आप को इच्छाओं, साधनों और तकनीकों में परिवर्तन के अनुकूल ढालती है। यदि उपभोक्ताओं को एक वस्तु की अपेक्षा दूसरी वस्तु की अधिक इच्छा है तो दूसरी वस्तु की कीमत बढ जाएगी। साधन उस उद्योग में लग जाएँगे। लाभ भी बढ़ेंगे। अधिक लाभों के कारण अपेक्षाकृत उच्च तकनीक अपनाई जाएगी। कम लागत और अधिक लाभ
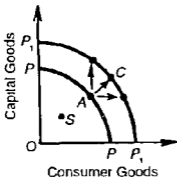
चित्र 7.4

नए उत्पादकों को आकर्षित करेंगे। इससे पूँजी का निर्माण होगा। इसमें संदेह नहीं कि आर्थिक विकास बहुत से अन्य साधनों पर भी निर्भर करता है, फिर भी, स्थिरता से आर्थिक विकास की व्यवस्था में कीमतें महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं।

इसकी चित्र 7.4 में व्याख्या की गई है जहां अर्थव्यवस्था को S बिन्दु पर उत्पादन संभावना वक्र PP के नीचे गतिहीनता की अवस्था में दर्शाया गया है और आर्थिक वृद्धि के लिए इसे PP वक्र के बिन्दु A पर लाना होगा जिससे अर्थव्यवस्था उपभोक्ता और पूंजी वस्तुओं की अधिक मात्राएं उत्पादित करती है। ऐसा पूँजी निर्माण की ऊंची दर से संभव है जिसमें नवप्रवर्तनों अथवा अधिक दक्ष उत्पादन तकनीकें अपना कर वर्तमान पूंजी वस्तुओं को नई और अधिक उत्पादकीय वस्तुओं से बदलना शामिल है। और अधिक वृद्धि से उत्पादन संभावना वक्र PP बाहर की ओर P_1P_1 पर शिफ्ट कर जाता है। बिन्दु C इस स्थिति को व्यक्त करता है जहां अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता और पूँजी वस्तुओं की अधिक मात्राएं उत्पादित करती है। ऊँची कीमतों, लाभों और आमदनियों द्वारा आर्थिक वृद्धि दोनों वस्तुओं की अधिक मात्राएं प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करती है।

निष्कर्ष—इस प्रकार, मुक्त अर्थव्यवस्था में पूर्ति और माँग के माध्यम से कार्यशील कीमत तंत्र प्रमुख संगठनात्मक शक्ति का काम करता है। किस वस्तु का और कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए, इसका निर्धारण करता है। यह प्रणाली साधन-सेवाओं का प्रतिफल तय करती है और साधनों का उपयुक्त दिशाओं में आवंटन करके आय का समान वितरण करती है। यह वर्तमान वस्तुओं और सेवाओं का समान वितरण करती है, अर्थव्यवस्था के संसाधनों का पूर्ण उपयोग करती है और आर्थिक वृद्धि के साधन प्रदान करती है।

3. समाजवादी अर्थव्यवस्था में कीमत तंत्र
(PRICE MECHANISM IN A SOCIALIST ECONOMY)

कीमत तंत्र स्वतंत्र मार्केट अर्थव्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है और इसलिए कहा जाता है कि योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में कीमत तंत्र का कोई सम्बन्ध नहीं। आयोजित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत कीमत तंत्र के विविध तत्त्व—लागतें, कीमतें तथा लाभ—सभी योजनाबद्ध होते हैं और योजना प्राधिकारी द्वारा योजना के लक्ष्यों के अनुसार आगणित किये जाते हैं। इस प्रकार, योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में विवेकशील आर्थिक परिगणना असम्भव है क्योंकि स्वतंत्र मार्केट अर्थव्यवस्था के विपरीत इसमें कीमत तंत्र नियमित तथा नियन्त्रित होता है। जिन विधि मान्यताओं के अन्तर्गत कीमत तंत्र कार्य करता है, वे समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सही नहीं ठहरती हैं।

एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में, मार्किट का कार्य केन्द्रीय आयोजन प्राधिकारी (authority) करता है। क्योंकि उत्पादन के सभी भौतिक संसाधनों का स्वामित्व, नियंत्रण और निर्देश सरकार द्वारा होता है, इसलिए इस बारे में सभी निर्णय कि क्या उत्पादित करना है एक केन्द्रीय योजना के

ढाचे के अन्तर्गत किए जाते है। किस प्रकार की वस्तुए और कितनी मात्राओ मे उत्पादित करनी हैं, इनके निर्णय केन्द्रीय आयोजन प्राधिकारी द्वारा नियत किए गए उद्देश्यो, लक्ष्यो और प्राथमिकताओ पर निर्भर करते हैं। विभिन्न वस्तुओं की कीमतें भी इसी प्राधिकारी द्वारा निश्चित की जाती है। कीमतें साधारण व्यक्ति के सामाजिक अधिमानों (preferences) को व्यक्त करती है। उपभोक्ताओ का चुनाव केवल उन वस्तुओं तक ही सीमित होता है जिन्हें आयोजक (planners) उत्पादित करने और पेश करने का निर्णय लेते है। वस्तुओं को कैसे उत्पादित करना है का निर्णय भी केन्द्रीय आयोजन प्राधिकारी करता है। वह उत्पादन के साधनो को इकट्ठा करने और एक प्लाट के उत्पादन के पैमाने का चुनाव करने के लिए नियम स्थापित करता है जिनसे उद्योग के उत्पादन को निर्धारित, ससाधनो का आवटन और लेखा (accounting) मे कीमतो का प्राचलिक (parametric) प्रयोग किया जा सके। केन्द्रीय आयोजन प्राधिकारी प्लाट प्रबधको (Managers) के मार्गदर्शन के लिए दो नियम रखता है। प्रथम, प्रत्येक प्रबधक उत्पादक वस्तुओ और उत्पादन का ऐसे ढग से सयोग करे कि इनके उत्पादन की औसत लागत न्यूनतम हो। दूसरे, प्रत्येक प्रबधक उत्पादन के उस पैमाने को चुने जो सीमात लागत को कीमत के बराबर करे। क्योकि अर्थव्यवस्था मे सभी ससाधनो का स्वामित्व और नियमन सरकार द्वारा होता है इसलिए कच्चे माल, मशीने और अन्त आगते (inputs) भी उन कीमतो पर बेची जाती है जो उनकी सीमात लागत के बराबर होती है। यदि एक वस्तु की कीमत उसकी औसत लागत से अधिक है तो प्लाट मैनेजर लाभ अर्जित करेगे और यदि यह औसत लागत से कम है तो वे हानि उठाएगे। पहली स्थिति मे उद्योग फैलेगा और दूसरी स्थिति मे वह उत्पादन को कम कर देगा और अन्तत सतुलन की एक स्थिति आ जाएगी जहा कीमत औसत लागत और सीमात लागत दोनो के बराबर होगी।

जहा लागते प्लाट के साथ भिन्न होती हैं, वहा प्लाट मैनेजर इस बिन्दु तक उत्पादन करते है जहा उनकी सीमात लागत (*LMC*) कीमत ($P = AR = MR$) के बराबर होती है। ऐसी स्थिति मे, केवल सीमात प्लाट मे ($LAC = LMC = MR = AR = P$) बिन्दु E_1 पर बराबर होगी जेसा कि चित्र 7 5 (B) मे दर्शाया गया है। अन्य सभी प्लाट *PABE* के बराबर लाभ अर्जित करेगे, जैसाकि चित्र 7 5 (A) मे दिखाया गया है। यह लाभ सरकार को प्राप्त होगे। निम्न लागत वाली फैक्टरिया ऊची

चित्र 7 5
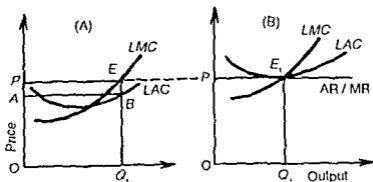
लागत वाली फैक्टरियो को आर्थिक सहायता देगी और सतुलन मे समस्त उद्योग के लिए कुल आगम और कुल लागत समान होगे।

परन्तु केन्द्रीय योजना प्राधिकारी सतुलन मार्किट और लेखा कीमतो का कैसा पता लगाता है? ऐतिहासिक रूप से दी हुई कीमतो से शुरु करके, वह प्लाट प्रबधको को आदेश दे सकता है कि वे उन्हे सही कीमते माने। यदि वह गलत होगी, तो अतिरेक (surpluses) या कमियाँ प्रकट हो जाएगी। कीमतो का समायोजन हो जाएगा। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी, जब तक कि भूल और चूक (trial and error) विधि द्वारा सतुलन की स्थिति नहीं आ जाती है। "भूल और चूक" की विधि ऐतिहासिक तौर से दी हुई कीमतो के आधार पर चलेगी जिसके लिए समय-समय पर कीमतो मे सापेक्षतया छोटे समायोजनो की आवश्यकता पडेगी। इनके आधार पर प्रत्येक वस्तु की माग और पूर्ति मात्रा बराबर होगी। यदि किसी वस्तु की मागी गई मात्रा उसकी पूर्ति के बराबर न हो, तो उस वस्तु की कीमत परिवर्तित करनी पडेगी। यदि पूर्ति से माग अधिक हो तो कीमत को बढाना पडेगा और इसकी विपरीत स्थिति मे कीमत को कम करना पडेगा।

किसके लिए उत्पादन किया जाए की समस्या को समाजवादी अर्थव्यवस्था मे सरकार ही हल करती है। इस निर्णय केन्द्रीय योजना प्राधिकारी योजना के समस्त उद्देश्यो के अनुरूप "क्या और कितना उत्पादित करना है" के समय कर लेता है। यह निर्णय करते समय सामाजिव अधिमानो को अधिक महत्त्व दिया जाता है। दूसरे शब्दो मे, ऐसी वस्तुओ और सेवाओ के उत्पादन को अधिक महत्त्व दिया जाता है जिनकी अधिक लोगो को आवश्यकता होती है, न कि विलासता वस्तुओ को। वे लोगो की न्यूनतम आवश्यकताओ पर आधारित होती है और वे सरकारी दुकानो द्वारा निश्चित कीमतो पर बेची जाती है। क्योकि वस्तुए माग की प्रत्याशा (anticipation) मे बेची जाती है, माग मे वृद्धि से वस्तुओ की कमी हो जाती है जिससे उनका राशन करना पडता है।

इस प्रकार, एक समाजवादी अर्थव्यवस्था मे आय वितरण की समस्या अपने-आप हल हो जाती है क्योकि सभी ससाधनो पर सरकार का स्वामित्व होता है और उनके पारिश्रमिक (rewards) भी सरकार द्वारा निश्चित और प्रदान किए जाते है। आर्थिक अतिरेक जान-बूझकर उत्पन्न किए जाते है जिन्हे पूजी सचय और आर्थिक वृद्धि के लिए प्रयोग किया जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion)—इस प्रकार, कीमत तत्र समाजवादी अर्थव्यवस्था के साथ मेल खाता है। यह दो तरह से समाजवादी अर्थव्यवस्था की सहायता करता है। प्रथम, यह लेखा का आधार बनता है—लेखा कीमतो तथा लागतो पर आधारित उत्पादन तथा उत्पादन की लागत के मूल्याकन तथा तुलना का साधन बनता है। दूसरे, यह लोगो को योजना के लक्ष्यो के अनुसार कार्य करने की प्रेरणा देता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था मे कीमत तत्र का कार्य उचित लागत लेखा के माध्यम से अर्थव्यवस्था मे अधिकतम उत्पादक दक्षता सुनिश्चित करना और लोगो को पर्याप्त प्रेरणाएँ प्रदान करना है। अत ऐसी अर्थव्यवस्था मे केन्द्रीय योजना प्राधिकारी मार्किट का कार्य करता है। क्योकि उत्पादन के सभी भौतिक साधनो की मल्कियत, नियन्त्रण तथा निर्देशन इसके द्वारा होता है, इसलिए क्या उत्पादन करना है, कैसे उत्पादन करना है, तथा किसके लिए उत्पादन करना है, ये सभी निर्णय एक केन्द्रीय योजना के अनुसार केन्द्रीय प्राधिकारी द्वारा लिए जाते है। कीमते भी इसी प्राधिकारी द्वारा निश्चित की जाती हैं। कीमते सामाजिक अधिमानो को व्यक्त करनी है। वस्तुओ को उत्पादित करते समय भी सामाजिक अधिमानो को महत्त्व दिया जाता है। इस प्रकार, एक सामाजिक अर्थव्यवस्था मे कीमत तत्र मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था से बिल्कुल भिन्न कार्य करता है, क्योकि राज्य उत्पादन एव वितरण के सभी साधनो का स्वामित्व, नियन्त्रण तथा नियमन करता है।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि ऐसी अर्थव्यवस्था में कीमतें कोई कार्य नहीं करती है। वास्तव में, वे कैसे उत्पादन करना है इस समस्या का हल करने में सहायक होती है।

4. मुक्त मार्किट अर्थव्यवस्था में कीमत तंत्र की सीमाएं (LIMITATIONS OF THE PRICE MECHANISM IN A FREE MARKET ECONOMY)

कीमत तंत्र मुक्तरूप से कार्य नहीं करता है। यह एक मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में सरकार द्वारा लगाए गए कुछ प्रतिबंधों के अंतर्गत कार्य करता है। इन प्रतिबंधों ने कीमत प्रणाली की कार्यशीलता को काफी हद तक परिवर्तित कर दिया है। फिर, "प्रतियोगिता की अपूर्णतताएं" पाई जाती हैं जो कीमत तंत्र के कार्य में बाधा डालती हैं। हम इन कारकों का आगे विवेचन करते हैं।

(1) सरकार उत्पादकों को निर्देश देती है कि वे विभिन्न प्रकार की वस्तुएं निश्चित मात्राओं में उत्पादित करें जिनकी सामाजिक आवश्यकताएं पूरा करने के लिए जरूरत पड़ती है।

(2) प्रशासनिक नियंत्रण लगाना, वस्तुओं की आपूर्तियों का नियमन करना, वस्तुओं का राशन करना, लाईसेंस जारी करना, कोटा निश्चित करना, आदि कुछ ऐसी विधियां हैं जो मुक्त कीमत प्रणाली की कार्यशीलता को परिवर्तित करती है।

(3) साधन स्वामियों को भी मुक्तरूप से कार्य करने नहीं दिया जाता। यदि सरकार चाहती है कि निजी क्षेत्र भविष्य के लिए अधिक उत्पादन करे, तो संसाधनों का पूंजी पदार्थ क्षेत्र की ओर पुनर्आवंटन किया जाएगा। लोगों को वर्तमान में अधिक बचत और कम उपभोग करने के लिए भी कहा जाएगा।

(4) जब सरकार स्टील, कपड़ा, चीनी, उर्वरक जैसी वस्तुओं और श्रमिकों की मजदूरी को निश्चित करती है, तो ये मुक्त कीमत तंत्र के कार्यकरण में बाधाएं हैं।

(5) आरोही आय और संपत्ति कर, सामाजिक सुरक्षा के नियम, कीमत समर्थन प्रोग्राम, सब्सिडी देना, साख सुविधाएं आदि उपाय भी कीमत प्रणाली के कार्यकरण में बाधाएं होते हैं।

(6) सामाजिक सेवाओं के राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य मिश्रित अर्थव्यवस्था की ओर कीमत प्रणाली को परिवर्तित करना है।

(7) कीमत तंत्र पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यताओं के अंतर्गत कार्य करता है। परन्तु वास्तविक संसार में प्रतियोगिता कहीं भी पूर्ण नहीं है। उत्पादकों को उपभोक्ता की रुचियों का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है। इसलिए वे कुछ वस्तुओं की अधिक मात्रा और कुछ की कम मात्रा उत्पादित कर देते हैं। इसलिए, वे अपने लाभों को अधिकतम करने में असमर्थ रहते हैं। फिर, वस्तुओं की माग और पूर्ति में असमानताओं के कारण अक्सर मंदी या स्फीति आ जाती है।

(8) मार्किट की अपूर्णताओं से एकाधिकार उत्पन्न होते हैं जिनसे गलत कीमत निर्धारण, संसाधनों का अपव्यय, और एकाधिकार लाभ होते हैं। इनके द्वारा मुक्त प्रतियोगिता कमजोर हुई है और उपभोक्ता का प्रभुत्व कम हुआ है।

(9) कीमत तंत्र ने आय असमानताओं को कम करने की अपेक्षा उन्हें बढ़ावा है। ऐसा इसलिए कि मांग और पूर्ति ठीक ढंग से कार्य नहीं करते हैं। उत्पादन विशिष्ट वर्ग की मांग को ध्यान में रखकर किया जाता है न कि गरीबों की आवश्यकताओं को समक्ष रख कर। इस कारण, संसाधनों को अमीरों के लिए विलासिता वस्तुएं उत्पादित करने हेतु प्रयोग किया जाता है। इससे आय का कुवितरण होता है।

प्रश्न

1 मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में साधनों का वितरण किस प्रकार होता है? इसकी व्याख्या कीजिए।

2 समाजवादी अर्थव्यवस्था किसे कहते है? ऐसी अर्थव्यवस्था मे कीमतों का क्या कार्य होता है और सतुलन कीमते कैसे प्राप्त की जाती हैं?

3 एक प्रतियोगी अर्थव्यवस्था मे कीमतो की भूमिका की व्याख्या कीजिए। इसकी क्या सीमाए है?

4 आप कीमत तत्र से क्या समझते है? एक अर्थव्यवस्था मे इसके कार्य की विवेचना कीजिए।

भाग दो
मांग सिद्धान्त

अध्याय 8

नव-क्लासिकी मांग विश्लेषण
(THE NEO-CLASSICAL DEMAND ANALYSIS)

1. प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

मार्शल, पीगू तथा अन्य अर्थशास्त्रियों द्वारा निर्मित नव-क्लासिकी उपयोगिता विश्लेषण उपभोक्ता माँग के सिद्धान्त की ओर निर्देश करता है। यह सिद्धान्त उपयोगिता की गणन-संख्या (cardinal) प्रणाली पर आधारित है तथा उपयोगितावादी (utilitarian) धारणाओं पर आश्रित है।

उपयोगिता शब्द किसी वस्तु या सेवा की आवश्यकता पूर्ति की शक्ति को व्यक्त करता है। चाहे वस्तु व्यर्थ, हानिकारक या घातक भी हो, परन्तु यदि वह किसी आर्थिक आवश्यकता को सतुष्ट करती है तो उसमें उपयोगिता है। शराब तथा सिगरेट स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। जो व्यक्ति इस बात को जानते है, वे इनका प्रयोग नहीं करते। उनके लिए इन वस्तुओं में उपयोगिता नहीं है। पर अन्य लोगों के लिए इनकी आवश्यकता है इसलिए इनमे उपयोगिता है। इस प्रकार उपयोगिता व्यक्तिपरक (subjective) है और इसमें किसी प्रकार का नैतिक महत्त्व नहीं पाया जाता।

मार्शल का माँग विश्लेषण गणन-संख्या उपयोगिता की धारणा पर आधारित है जो यह मान कर चलती है कि उपयोगिता मापी और जोड़ी जा सकती है। इसकी मात्रा का माप कल्पित इकाइयों मे व्यक्त किया जाता है जिन्हें यूटिल (util) कहते हैं। यदि एक उपभोक्ता यह समझता है कि एक आम मे 8 यूटिल होते है और एक सेब में 4, तो इसका अर्थ है कि एक आम की उपयोगिता सेब की उपयोगिता से दुगुनी है।

२. उपयोगिता विश्लेषण की मान्यताएँ
(ASSUMPTIONS OF UTILITY ANALYSIS)

उपयोगिता विश्लेषण अनेक मान्यताओं पर आधारित है।

(1) उपयोगिता विश्लेषण गणन-संख्या धारणा पर आधारित है जो यह मानता है कि उपयोगिता वस्तुओं के भार और लबाई की तरह मापी ओर जोडी जाती है।

(2) उपयोगिता को मुद्रा द्वारा मापा जाता है।

(3) मुद्रा की सीमात उपयोगिता स्थिर मानी जाती है।

(4) उपभोक्ता विवेकशील है जो वस्तुओं की विभिन्न इकाइयों का माप, गणन, चुनाव और तुलना करता है और उपयोगिता को अधिकतम करने का उद्देश्य रखता है।

(5) वस्तुओं की उपलब्धता और उनकी गुणवत्ताओं के बारे मे उसे पूर्ण ज्ञान है।

(6) वस्तुओं के जो चुनाव उसके समक्ष हैं उनका उसे पूरा ज्ञान है और उसके चुनाव निश्चित हैं।

(7) वह विभिन्न वस्तुओं की कीमतों को जानता है और उनकी कीमतों में परिवर्तन उपयोगिताओं को प्रभावित नहीं करते हैं।

(8) वस्तुओं के स्थानापन्न नहीं पाए जाते हैं। मार्शल का समस्त उपयोगिता विश्लेषण जिसमें घटती सीमांत उपयोगिता नियम, अधिकतम उपयोगिता नियम, उपभोक्ता की बचत नियम और माँग का नियम शामिल है, इन्हीं मान्यताओं पर आधारित है। इन नियमों की व्याख्या करने से पूर्व कुल उपयोगिता तथा सीमान्त उपयोगिता के सम्बन्ध का अध्ययन लाभदायक होगा।

3 कुल उपयोगिता बनाम सीमान्त उपयोगिता (TOTAL UTILITY *VS* MARGINAL UTILITY)

उपभोक्ता के लिए हर वस्तु में उपयोगिता होती है। जब एक उपभोक्ता सेब खरीदता है तो वह 1, 2, 3, 4 आदि इकाइयों में लेता है। 2 सेबों में 1 की अपेक्षा, 3 सेबों में 2 की अपेक्षा और 4 सेबों में 3 की अपेक्षा अधिक उपयोगिता होती है। उपभोक्ता उनकी उपयोगिता के अवरोही क्रमानुसार (descending order) सेबों का चुनाव करता है। उसके अनुमान के अनुसार सेबों की पूरी ढेरी में से पहला सेब ही सर्वश्रेष्ठ है, जो उसे अधिकतम सतुष्टि देता है जिसे हम 20 यूटिल मान लेते हैं। दूसरा सेब स्वाभाविक रूप से पहले की अपेक्षा कुछ कम, 15 यूटिल, उपयोगिता से युक्त है। तीसरे सेब में 10 यूटिल और चौथे सेब में 5 यूटिल उपयोगिता है। उपभोक्ता द्वारा ली गई एक वस्तु की विभिन्न इकाइयों की उपयोगिताओं का जोड़ **कुल उपयोगिता** को प्रकट करता है। हमारे उदाहरण में दो सेबों की कुल उपयोगिता 35 (20 + 15) यूटिल है, तीन की 45 (20 + 15 + 10) यूटिल तथा चार की कुल उपयोगिता 50 (20 +15 + 10 + 5) यूटिल है। वस्तु की एक इकाई के अतिरिक्त उपभोग से कुल उपयोगिता में जो वृद्धि होती है उसे **सीमान्त उपयोगिता** (marginal utility) कहते हैं। दो सेबों की कुल उपयोगिता 35 यूटिल है। तीसरे सेब का उपभोग करने से उपभोक्ता को कुल 45 यूटिल उपयोगिता प्राप्त होती है। इस प्रकार तीसरे सेब की सीमान्त उपयोगिता 10(45 – 35) यूटिल है। दूसरे शब्दों में, एक इकाई कम उपभोग करने से जितनी उपयोगिता की हानि होती है, वह वस्तु की सीमान्त उपयोगिता है। बीजगणित में एक वस्तु की n इकाइयों की कुल उपयोगिता (TU) में से, (n–1) इकाइयों की कुल उपयोगिता को कम करने से n इकाई की सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होगी। [(MU of nth units = TU of n units—TU of (n–1))]

कुल उपयोगिता तथा सीमान्त उपयोगिता का सम्बन्ध तालिका 8.1 की सहायता से समझाया जा सकता है।

तालिका 8.1 कुल और सीमांत उपयोगिता में सबंध

सेबों की इकाइयां (1)	कुल उपयोगिता (2)	सीमान्त उपयोगिता (3)
0	0	0
1	20	20
2	35	15
3	45	10
4	50	5
5	50	0
6	45	–5
7	35	–10

चौथी इकाई तक ज्यों-ज्यों कुल उपयोगिता बढती जाती है, त्यों-त्यों सीमात उपयोगिता घटती जाती है। पाँचवी इकाई पर जब कुल उपयोगिता अधिकतम है, तो सीमान्त उपयोगिता शून्य है। यही उपभोक्ता की पूर्ण सतुष्टि का बिन्दु है। जब कुल उपयोगिता घटने लगती है तो (6ठीं और 7वीं इकाई की) सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है। ये इकाइयाँ अनुपयोगिता (disutility) या असतुष्टि देती हैं, अत इन्हे लेना व्यर्थ है।

इस सम्बन्ध को चित्र 8 1 मे दिखाया गया है। कुल उपयोगिता और सीमात उपयोगिता के वक्रो को खींचने के लिए हम कुल उपयोगिता को तालिका 8 1 के स्तभ (2) से लेते है ओर आयते प्राप्त करते है। इन आयतो के शिखरो को एक सरल रेखा से जोडने पर हमे *TU* वक्र प्राप्त होता है जो *Q* पर
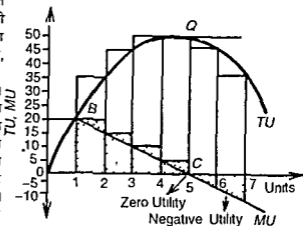
चित्र 8 1

शिखर पर है और फिर धीरे-धीरे गिरता है। *MU* वक्र को खींचने के लिए हम तालिका के स्तभ (3) से सीमात उपयोगिता लेते है। *MU* वक्र को कुल उपयोगिता मे वृद्धि द्वारा व्यक्त किया जाता है जिसे चित्र मे छायाकित ब्लाको मे दिखाया गया है जिन्हें इन ब्लाको के शिखरो को एक सरल रेखा द्वारा मिलाया जाए तो *MU* वक्र प्राप्त होता है। जैसे-जैसे *TU* वक्र ऊपर को चढता है, वैसे-वैसे *MU* वक्र नीचे को उतरता है। जब *TU* वक्र उच्चतम बिन्दु *Q* पर पहुचता है, तो *MU* वक्र *C* बिन्दु पर *X*-अक्ष को स्पर्श करता है जहाँ सीमान्त उपयोगिता शून्य है। जब *TU* वक्र *Q* से आगे की ओर गिरने लगता है तो *MU* वक्र *C* से आगे ऋणात्मक हो जाता है।

4. घटती सीमान्त उपयोगिता का नियम
(THE LAW OF DIMINISHING MARGINAL UTILITY)

मानव की आवश्यकताओ की एक विशेषता यह है कि उनकी तीव्रता सीमित होती है। हम जैसे-जैसे किसी वस्तु का लगातार अधिक उपयोग करते है वैसे-वैसे उसकी बाद की इकाइयों के लिए हमारी तीव्रता घटती जाती है। मनुष्य इच्छाओं के इस सामान्यीकरण को 'घटती सीमान्त उपयोगिता का नियम' कहते है। इस नियम को पहले-पहल सन् 1854 मे गोसन ने बनाया था। इस नियम को मार्शल ने नाम दिया था। जैवन्स (Jevons) ने इसे गोसन का प्रथम नियम कहा। गोसन ने नियम को इस तरह प्रस्तुत किया *"जब हम किसी एक सतुष्टि का निर्विघ्न रूप से* लगातार उपयोग करते रहते हैं, तो उस सतुष्टि की मात्रा तब तक निरंतर घटती जाती है, जब तक कि पूर्ण सतुष्टि की प्राप्ति नहीं हो जाती।"[1]

1 'The magnitude of one and the same satisfaction when we continue to enjoy it without interruption continually decrease until satisfaction is reached" — *H H Grossen*

ऊपर तालिका 8.1 के स्तंभ मे दिए गए सेबों के उदाहरण को लीजिए। जब हमारा कल्पित उपभोक्ता पहला सेब खाता है, तो उसे अधिकतम सतुष्टि मिलती है जो 20 यूटिल है। जैसे-जैसे वह लगातार दूसरी, तीसरी, चौथी इकाई का उपभोग करता है, वैसे-वैसे उसे निरन्तर कम (15, 10 और 5 यूटिल) सतुष्टि मिलती है। पाँचवी इकाई का उपभोग करने से पूर्ण सतुष्टि हो जाती है, क्योंकि उस इकाई से मिलने वाली सतुष्टि शून्य है।

ऊपर के चित्र 8.1 मे *MU* वक्र सीमान्त उपयोगिता वक्र है। इस वक्र से स्पष्ट है कि ज्यो-ज्यो वस्तु की इकाइयों का और अधिक उपभोग होता है, त्यों-त्यों सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है और अन्त मे तृप्ति बिन्दु *C* आ जाता है। इसके बाद और इकाइयो के उपभोग से अनुपयोगिता होती है, जिसे बिन्दु *C* से *MU* की ओर *X*-अक्ष के नीचे वक्र द्वारा दिखाया गया है।[2]

इसकी सीमाएँ (Its Limitations)—यह सामान्य नियम शारीरिक, सामाजिक और कृत्रिम इच्छाओं पर लागू होता है। यह दूसरी बात है कि कुछ वस्तुओ से प्राप्त होने वाली तृप्ति की सीमा जल्दी आ जाती है और कुछ की देर मे। परन्तु यह नियम किन्हीं विशेष दशाओं मे ही ठीक उतरता है

(1) व्यक्तिगत उपभोक्ता की आवश्यकता की वस्तु केवल एक होनी चाहिए, जिसकी इकाइया समरूप हो। वस्तु की सब इकाइयाँ एक ही वजन और श्रेणी की होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि पहला सेब खट्टा है और दूसरा मीठा तो पहले की अपेक्षा दूसरा अधिक सतुष्टि देगा।

(2) उपभोक्ता की रुचि, आदत, रीति-रिवाज, फेशन और आय मे कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए। इनमे से किसी एक मे भी परिवर्तन होगा, तो वह उपयोगिता को घटाने की बजाय बढा देगा।

(3) वस्तु के उपभोग मे निरतरता बनी रहनी चाहिए। किसी विशेष समय पर वस्तु की इकाइयो का लगातार उपभोग किया जाए। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद खाने से रोटी की उपयोगिता बढ सकती है।

(4) वस्तु की इकाइयाँ उचित आकार की हो। एक प्यासे व्यक्ति को एक-एक चम्मच पानी देने मे बाद की इकाइयो की उपयोगिता बढ जाएगी।

(5) वस्तु की इकाइयो और स्थानापन्नो की कीमते स्थिर होनी चाहिए।

(6) वस्तु अविभाज्य नहीं होनी चाहिए। टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की उपयोगिता का हिसाब नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि उनका प्रयोग एक लम्बे समय तक होता है। फिर उपभोक्ता अपने इस्तेमाल के लिए पाँच स्कूटर, 6 टेलीविजन सेट या सिलाई की तीन मशीने भी नहीं खरीदता।

(7) उपभोक्ता आर्थिक व्यक्ति और विचारशील होना चाहिए। यदि वह शराब या अफीम जैसी किसी वस्तु के प्रभाव मे है, तो बाद की इकाइयो की उपयोगिता बढ जाएगी। परन्तु यह अपवाद भी पूर्ण रूप मे सत्य नहीं है। शुरू मे शराब के हर पैग की उपयोगिता बढती है, परन्तु बाद मे घटने लगती है। अन्त मे जब शराबी वमन करने लगता है तो उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है।

(8) वस्तुएँ साधारण होनी चाहिए। यह नियम उस अवस्था मे लागू नहीं होता जब वस्तुएँ दुर्लभ हो। जैसे हीरे, जवाहरात या शौक की वस्तुएँ जैसे टिकट, सिक्के या पेंटिंग। अतिरिक्त सिक्को और जवाहरात की उपयोगिता पहले की अपेक्षा अधिक हो सकती है। परन्तु यह बात भी ठीक नहीं है क्योंकि नियम तो इन पर भी लागू होता है। सिक्को या जवाहरात का सग्रह करने वाला एक

2 तालिका 8.1 के केवल (1) और (3) स्तभ लेने है। इसी प्रकार, चित्र 8.1 का *MU* वक्र ही खींचना है।

ही प्रकार के बहुत से सिक्के और जवाहरात नहीं रखना चाहता। इस प्रकार यदि संग्रहकर्त्ता के पास टिकटों के एक विशेष निर्गम (issue) का एक सैट पहले से है, तो उसके लिए वैसे ही दूसरे सैट की उपयोगिता घट जाएगी।

(9) ज्यों-ज्यों हम अधिक मुद्रा प्राप्त करते हैं, मुद्रा के लिए हमारी तीव्रता घटती जाती है। इसमें संदेह नहीं कि मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता शून्य तो कभी नहीं होती, पर ज्यों-ज्यों एक व्यक्ति और अधिक मुद्रा प्राप्त करता है, उसके लिए मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है। एक धनी व्यक्ति के लिए मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता कम है और गरीब के लिए अधिक। यदि ऐसा न हो तो विलासिताओं और दिखावे की वस्तुओं पर धनी व्यक्ति कभी फिजूल खर्च न करें।

नियम का महत्त्व (Importance of the Law)—घटती सीमान्त उपयोगिता नियम उपभोग का आधारभूत नियम है। माँग का नियम, सम सीमान्त उपयोगिता का नियम, और उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त इसी नियम पर आधारित हैं।

(1) इसी नियम को ध्यान में रखते हुए उत्पादक प्राय वस्तुओं के डिज़ाइन, नमूनों और पैकिंग में परिवर्तन करते हैं। हम जानते हैं कि एक वस्तु का प्रयोग करते-करते हम उकता जाते हैं—*हमारी दृष्टि में उसकी उपयोगिता घट जाती है। हम साबुन, टूथपेस्ट, पैन आदि में भिन्नता* चाहते हैं। इस प्रकार यह नियम उपभोग और उत्पादन में विविधता लाता है।

(2) यह नियम मूल्य-सिद्धान्त में इस स्थिति की व्याख्या करने में सहायक है कि वस्तु की पूर्ति बढ़ने से उसकी कीमत घट जाती है। इसका कारण यह है कि वस्तु का स्टॉक बढ़ने से उसकी सीमान्त उपयोगिता घट जाती है।

(3) फिर इस नियम की सहायता से स्मिथ के प्रसिद्ध हीरा-पानी विरोधाभास (diamond-water paradox) की भी व्याख्या की जा सकती है। अपेक्षाकृत दुर्लभ होने के कारण हीरों की सीमान्त उपयोगिता अधिक है और इसीलिए उनकी कीमत ऊँची होती है। यद्यपि पानी की कुल उपयोगिता बहुत अधिक है, फिर भी, अपेक्षाकृत बहुत अधिक मात्रा में मिलने के कारण इसकी सीमान्त उपयोगिता कम है। इसीलिए हीरे की अपेक्षा अधिक लाभदायक होने पर भी पानी की कीमत बहुत कम है।

(4) कराधान में आरोही (progressive) सिद्धान्त का आधार भी यही नियम है। व्यक्ति की आय के साथ-साथ कर की दर भी बढ़ती जाती है, कारण कि आय में वृद्धि के साथ उसके लिए मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है।

(5) अन्तिम, यह नियम धन के समान वितरण सम्बन्धी समाजवादी तर्क का आधार है। धनियों के लिए मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता कम है, इसलिए यह उचित है कि राज्य उनके फालतू धनों को ले ले और गरीबों में वितरित कर दे जिनके लिए मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता अधिक होती है।

5. आनुपातिकता का नियम
(THE PROPORTIONALITY RULE)

आनुपातिकता नियम को अनेक नाम दिए गए हैं, जैसे सम-सीमान्त प्रतिफलों का नियम (Law of Equimarginal Returns) स्थानापत्ति नियम (Law of Substitution), अधिकतम सतुष्टि नियम (Law of Maximum Satisfaction), उदासीनता का नियम (Law of Indifference) सम-सीमान्त

उपयोगिता का नियम (Law of Equimarginal Utility) तथा गोसन का दूसरा नियम (Gossen's Second Law) । मार्शल ने इस प्रकार परिभाषित किया "यदि किसी व्यक्ति के पास कोई ऐसी वस्तु है जिसका उपयोग वह कई प्रकार से कर सकता है, तो वह उसे उन उपयोगों मे ऐसे ढग से विभक्त करेगा कि उसकी सीमान्त उपयोगिता सब उपयोगों में समान हो।"[3]

हर उपभोक्ता की आवश्यकताएँ असीमित है, किन्तु किसी भी समय उसकी आय सीमित होती है। उपभोक्ता अपनी निश्चित आय को विभिन्न वस्तुओं की खरीद में इस प्रकार लगाएगा कि उसे अधिकतम सतुष्टि प्राप्त हो। इसके लिए, वह जिन वस्तुओं को खरीदना चाहता है उन सबके सीमान्त उपयोगिता की और प्रत्येक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता की उस वस्तु की कीमत से भी तुलना करेगा। यदि वह देखता है कि वस्तु B की अपेक्षा वस्तु A की सीमान्त उपयोगिता अधिक है, तो वह B के स्थान पर A को तब-तक स्थानापन्न करता रहेगा जब तक कि दोनों की सीमान्त उपयोगिता समान नहीं हो जाती। क्योंकि हर वस्तु की अपनी अलग कीमत है, इसलिए उपभोक्ता अपने बजट को खाने, कपड़े, मनोरजन और स्वास्थ्य सेवा आदि पर इस प्रकार विभाजित करेगा कि हर वस्तु या सेवा पर खर्च किये जाने वाले आखिरी रुपये से उसे समान सीमान्त उपयोगिता की प्राप्ति हो। यदि वस्तु A पर आखिरी रुपया खर्च करने से उसे कम सीमान्त उपयोगिता और वस्तु B पर खर्च करने में अधिक सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होती है, तो उस रुपये को वस्तु A की बजाय वस्तु B पर खर्च करेगा। इस प्रकार उपभोक्ता कम सीमान्त उपयोगिता वाली वस्तु के स्थान पर दूसरी अधिक सीमान्त उपयोगिता वाली वस्तु को तब तक स्थानापन्न करता जाएगा जब तक कि प्रत्येक की सीमान्त उपयोगिता उस वस्तु की कीमत के अनुपात में नहीं आ जाती और सब वस्तुओं की कीमतों का अनुपात उनकी सीमान्त उपयोगिता के बराबर नहीं हो जाता। इसे आनुपातिकता का नियम कहते हैं। इस नियम के अनुसार उपभोक्ता के सतुलन की स्थिति इस प्रकार होती है

$\frac{MU_A}{P_A} = \frac{MU_B}{P_B}$ जहाँ MU क्रमश A और B, वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता और P उनकी कीमत है। इसे इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है $\frac{MU_A}{MU_A} = \frac{P_A}{P_B}$.

तालिका 8 2

इकाइयाँ	सेबों (A) की MU	केलों (B) की MU
1	100 यूटिल	80 यूटिल
2	80	60
3	60	40
4	40	20
5	20	10

मान लीजिए कि उपभोक्ता सेब (A) और केले (B) इन दो वस्तुओं पर 12 रु खर्च करने को तैयार है और इनकी कीमतें क्रमश 2 रु और 1 रु हैं। फिर भी यह मान लीजिए कि उपभोक्ता किसी अन्य वस्तु को अधिमान नहीं देता और उसकी आय स्थिर रहती है। हमारे उपभोक्ता के

3 "If a person has a thing which he can put to several uses he will distribute it among these uses in such a way that it has the same marginal utility in all" -Alfred Marshall Principles of Economics p 92

सतुलन की पहली शर्त तब आती है जबकि, जैसा ऊपर के समीकरण मे दिखाया गया है, सेबो और केलों की सीमान्त उपयोगिता *(MU)* का कीमत *(P)* से अनुपात बराबर हो। जब वह 4 केले और 2 सेब खरीदता है तो यही शर्त पूरी होती है।

$$\frac{MU_A}{P_A} = \frac{40}{2} = \frac{MU_B}{P_B} = \frac{20}{1} = 2 \text{ यूटिल}$$

इस सयोग से उसे अधिक्तम सतुष्टि मिलती है। यदि उपभोक्ता इम क्रम को बदल दे और 5 सेब और 2 केले खरीदे तो सीमान्त उपयोगिता-कीमत अनुपात (marginal utility-price ratio) इस प्रकार बिगड जाएगा

$$\frac{20}{2} \neq \frac{60}{1}$$

इससे उपभोक्ता के सतुलन की शर्त पूरी नहीं होती है।

उपभोक्ता के सतुलन की एक अन्य शर्त यह है कि वह अपनी समस्त आय दोनो वस्तुओ के क्रय पर खर्च करे। इसे इस प्रकार व्यक्त करते है

$$Y = P_A \times A + P_B \times B$$

जहा Y आय है ओर A और B सेबो और केलो की क्रमश इकाइया है।

दूसरी शर्त पूरी होती है जब उपभोक्ता सेबो और केलो की 4-4 इकाइयो पर अपनी सारी आय 12 रु व्यय करता है। अत

$$\text{रु } 12 = (2\times4) + (1 + 4)$$

आनुपातिक नियम के अनुसार उपभोक्ता के सतुलन को चित्र 8.2 मे दर्शाया गया है जहा अनुलब अक्ष पर MU_A/P_A और MU_B/P_B लिए गए है और सेबो और केलो की इकाइया समानातर अक्ष पर। MU_A ओर MU_B क्रमश वस्तु A और B के सीमान्त उपयोगिता वक्र हैं। समानातर रेखा ab दोनो शर्तों को पूरा करती है। जब उपभोक्ता सेबो की OA इकाइया और केलो की OB इकाइया खरीदता है, तो $MU_A/P_A = MU_B/P_B = EO$
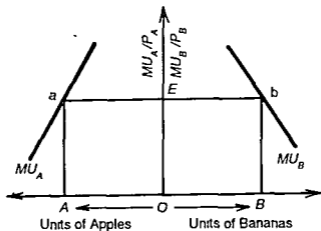
चित्र 8 2

इस प्रकार उपभोक्ता के सतुलन को तीन तरीकों से प्रकट किया जा सकता है (i) जबकि वह वस्तु की कीमत से भारित (weighted) हर वस्तु की सीमान्त उपयोगिता को समान बना लेता है $MU_A / P_A = MU_B / P_B$,

(ii) जबकि वह सब वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता के अनुपात को कीमतों के अनुपात के बराबर कर लेता है, $MU_A / MU_B = P_A / P_B$, और

(iii) जब एक रुपये की A वस्तु की सीमात उपयोगिता एक रु की B वस्तु की सीमात उपयोगिता के बराबर होती बशर्ते कि उपभोक्ता की समस्त आय A और B दोनों वस्तुओं पर खर्च की जाती है, अर्थात्, $\frac{MU_A}{\text{Rupee's worth of } A} = \frac{MU_B}{\text{Rupee's worth of } B}$,
बशर्ते कि $P_A \times A + P_B \times B = Y$

इसकी सीमाएँ (Its Limitations)—यह नियम अनेक अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है जिससे इसकी व्यावहारिक उपयोगिता कम हो जाती है।

(1) एक धारणा यह है कि उपभोक्ता को अपने समक्ष विद्यमान वैकल्पिक चुनावो का पूर्ण ज्ञान होता है। वास्तव मे, अधिकाश उपभोक्ताओ को उन उपयोगी विकल्पो का नहीं पता होता जिन पर कि वे अपनी आय खर्च कर सकते है। इससे स्थानापन्नता का कार्य कठिन हो जाता है और नियम नहीं लागू होता है।

(2) दूसरी धारणा यह है कि सभी मात्राएँ जैसे उपयोगिताए, वस्तुएँ, आय, आदि पूर्णरूप से विभाज्य है। यह भी एक अवास्तविक धारणा है जो नियम के सरल कार्यकरण मे बाधा बनती है। यद्यपि मुद्रा और उपयोगिता उपभोक्ता की सुविधा के अनुसार विभक्त किए जा सकते है, तथापि छोटी इकाइयो मे सभी वस्तुओ का विभाजन सभव नहीं है। कुछ वस्तुएँ ऐसी है जो पखे और रेडियो के समान भारी-भरकम होती है और छोटे खण्डो मे विभक्त नहीं हो सकतीं। 2½ पखों और 3½ रेडियो सैटो का सयोग सभव नहीं है।

(3) उपभोक्ता के समक्ष जो विकल्प रहते है उन्हे भी निश्चित मान लिया जाता है। परन्तु उपभोक्ता के द्वारा किए गए चुनाव अनिश्चित और यहाँ तक कि जोखिम वाले भी होते है। वास्तव मे, दी हुई आय से जिन विभिन्न वस्तुओ को खरीदा जा सकता है, उपभोक्ता के द्वारा उनके चुनाव को उनकी प्रत्याशित उपयोगिता ही निर्धारित करती है।

(4) एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण धारणा यह भी है कि दी हुई आय को, अपने चुनाव की वस्तुओ मे, आवटन करते समय उपभोक्ता विवेकशीलता से कार्य करता है। उसमे यह आशा की जाती है कि वह हिसाबी प्रकृति का व्यक्ति है और सुन्दर ढग से वस्तुओ की उपयोगिताओ को मापने की क्षमता रखता है। परन्तु हम मे से कितने ऐसे व्यक्ति है जो वस्तुओं को खरीदते समय हिसाब लगाते हैं और उनकी उपयोगिताओ को तौलते है? स्वभाव अथवा रुचि से प्रेरित हमारी अधिकाश खरीद आकस्मिक होती है। प्राय फैशन, रिवाज या विज्ञापन के प्रभाव मे आकर हम वस्तुएँ खरीद लेते है। ऐसी स्थिति मे, उपभोक्ता से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह विवेकशीलता से कार्य करेगा।

(5) इस नियम की एक और सीमा यह है कि उपभोक्ता के लिए कोई निश्चित लेखाकन अवधि (accounting period) नहीं होती जिसमे वह वस्तुओ की खरीद और उनका उपभोग कर सके। यदि यह मान भी लिया जाए कि कोई निश्चित अवधि (जैसे एक महीना) है जिसमें उसे अपनी दी हुई निश्चित आय को कुछ वस्तुओ पर खर्च करना ही है तो भी वह टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की उपयोगिता का सही माप नहीं कर सकेगा। क्योंकि एक टिकाऊ वस्तु जैसे कि साईकल,

जो कई आगामी लेखाकन महीनो मे भी काम आती है, इसलिए इसकी उपयोगिता ठीक-ठीक नहीं आँकी जा सकती।

(6) मार्शल के अन्य सिद्धान्तो की भाति अधिकतम सतुष्टि का यह नियम भी उपयोगिता के गणन-सख्या माप और मुद्रा की उपयोगिता की स्थिरता की अवास्तविक मान्यताओ पर आधारित है। हिक्स (Hicks) ने इन दोनो धारणाओं को रद्द कर दिया है और उदासीनता अधिमान पद्धति की सहायता से उपभोक्ता के सतुलन की व्याख्या की है।

नियम की व्यावहारिकताएँ (Applications of the Law)—अर्थशास्त्र मे अधिकतम सतुष्टि के नियम का व्यावहारिक महत्त्व बहुत अधिक है। मार्शल के अनुसार, **"आर्थिक जाच के लगभग हर क्षेत्र में इस नियम का प्रयोग होता है।"**

(1) **उपभोक्ता के व्यय का आधार** (Basis of consumer expenditure)—हर उपभोक्ता के व्यय करने के तरीके का आधार यही नियम है। हर उपभोक्ता अपनी आय को विभिन्न वस्तुओ पर ऐसे ढग से खर्च करता है कि हर प्रयोग से उसे समान सीमान्त उपयोगिता की प्राप्ति हो। मार्शल इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार करते है, "वह क्लर्क, जो यह निर्णय नहीं कर पा रहा कि उसे सवारी से शहर जाना चाहिए या (पैसे बचाने के लिए) पैदल, जिससे दोपहर को थोडा अधिक बढिया खाना खा सके, वास्तव मे मुद्रा खर्च करने के दो भिन्न-भिन्न तरीको से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता को एक-दूसरे के मुकाबले में तोल रहा है," वह प्रयत्न करता है, "कि वह उनके *आवटन का ऐसा समायोजन करे कि कुल उपयोगिता की न्यूनतम हानि हो और जो कुल* उपयोगिता उसके पास बचे, वह अधिकतम हो।"[4] इस तरह उपभोक्ता अपनी सतुष्टियो को अधिकतम बनाते है।

(2) **बचत तथा उपभोग का आधार** (Basis for saving and consumption)—इसी प्रकार एक सतर्क उपभोक्ता अपने सीमित साधनो को वर्तमान और भविष्य के प्रयोगो मे इस प्रकार बाँटने की कोशिश करेगा कि उसे हर प्रयोग से समान सीमान्त उपयोगिता प्राप्त हो। यदि वह समझता है कि एक रुपये को अब खर्च करने से उसे ठीक उतनी ही उपयोगिता की प्राप्ति होगी, जितनी उसे भविष्य मे खर्च करने के लिए बचा लेने से हानि, तो वह उसे भविष्य मे उपभोग के लिए बचाने की बजाय अभी खर्च कर देगा। इस तरीके से वह अपनी आय से अधिकतम सतुष्टि प्राप्त करता है।

(3) **उत्पादन के क्षेत्र** (In the field of production)—एक सतर्क व्यापारी अपने लाभो को अधिकतम बनाने के लिए इस *नियम का प्रयोग करता है। वह प्रयत्न करता है कि "निश्चित व्यय* से अपेक्षाकृत अधिक अच्छे परिणामो की अथवा कम व्यय करके उतने ही परिणामो की उपलब्धि की जाए।" इसके लिए वह एक साधन-इकाई के स्थान पर दूसरी साधन-इकाई प्रतिस्थापित करता चलता है जब तक कि सब साधनो से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता समान नहीं हो जाती। इस नियम का व्यापक अर्थ यह भी हो सकता है कि एक व्यापारी अपने व्यापार की विविध दिशाओ मे तब तक पूजी लगाता है जब तक कि वह इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचता कि उस दिशा में और पूजी लगाने से होने *वाला लाभ उसके व्यय की पूर्ति नहीं करेगा।*

(4) **विनिमय के क्षेत्र में** (In the field of exchange)—वस्तु विनिमय या मुद्रा विनिमय *स्थानापत्ति नियम* के अतिरिक्त कुछ नहीं है। वस्तु-विनिमय व्यापार मे लगा हुआ व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की वस्तुओ से अपनी वस्तुओं का विनिमय तब तक करता रहेगा जब तक कि दोनो की वस्तुओ की सीमान्त उपयोगिता बराबर नहीं हो जाती। मौद्रिक लेन-देन मे, यदि एक वस्तु की

4 A Marshall, *op cit* pp 99-100

सीमान्त उपयोगिता उस वस्तु पर खर्च की गई मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता के बराबर होगी, तो व्यक्ति मुद्रा की निश्चित इकाई के बदले वस्तु का क्रय-विक्रय कर लेगा।

(5) कीमतों के निर्धारण में (For determining prices)—कीमतो के निर्धारण मे भी प्रतिस्थापना का नियम लागू होता है। दुर्लभ वस्तु की कीमत अधिक होती है। उसकी कीमत नीचे लाने के उद्देश्य से यदि हम उस वस्तु के स्थान पर प्रचुर मात्रा मे मिलने वाली वस्तु को स्थानापन्न करना शुरू कर दे तो उस वस्तु की दुर्लभता समाप्त हो जाएगी।

(6) वितरण मे (In distribution)—एक सतर्क उत्पादक अपने साधनो को अधिकतम लाभदायक प्रयोग मे लगाने का प्रयत्न करता है। इस नियम के अनुसार कार्य करते हुए वह एक साधन की बजाय दूसरे साधन को तब तक स्थानापन्न करता चलता है जब तक कि उसकी लागत उसके प्रयोग से प्राप्त सीमान्त आगम (revenue) के बराबर नहीं हो जाती।

(7) सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र मे (In the field of public finance)—सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र मे यह नियम लागू होता है। ऐसे तरीके से कर लगाए जाते है कि प्रत्येक कर देने वाले का सीमान्त त्याग बराबर हो। इसी प्रकार योजनाओं और उनके व्यय का निर्णय करने में सरकार यह प्रयत्न करती है कि प्रत्येक योजना की सामाजिक सीमान्त उपयोगिता समान हो। यदि सरकार देखती है कि मजदूरो के क्वार्टर बनाने की अपेक्षा प्रशासकीय मकान बनाने मे खर्च करने से कम सामाजिक सीमान्त उपयोगिता की उपलब्धि होती है, तो वह मज़दूरो के मकान बनाने पर अधिक और प्रशासकीय मकान बनाने पर कम खर्च करेगी ताकि दोनों की सामाजिक उपयोगिता बराबर हो जाए।

6. मांग
(DEMAND)

इसके बाद नव-क्लासिकल उपयोगिता विश्लेषण मे मार्शल का सिद्धान्त आता है। एक वस्तु की माग उसकी मात्रा है जिसे एक दी हुई समय अवधि मे उपभोक्ता विभिन्न कीमतों पर खरीदने की इच्छा और क्षमता रखता है। इसलिए किसी एक वस्तु के लिए मांग होने के लिए उपभोक्ता के पास उसको क्रय करने की इच्छा, उसको क्रय करने की क्षमता या साधन होने आवश्यक है, और यह समय की प्रति इकाई से सबधित हो, अर्थात् प्रतिदिन, प्रति सप्ताह, प्रति मास या प्रति वर्ष। कीमत, आय, सम्बन्धित वस्तुओ और रुचियो का फलन माग है, जिसे इस प्रकार व्यक्त करते है $D = f(P, Y, Pr, T)$, जहाँ D माँग, f फलन, P कीमत, Y आय, Pr सम्बन्धित वस्तुएँ, T रुचियाँ है। जब आय, सम्बन्धित वस्तुओ और रुचियो की कीमते दी हुई हो तो माँग फलन (function) $D=f(P)$ होता है। यह दी हुई कीमतों पर एक वस्तु की खरीदी गई मात्राओ को बताता है। मार्शल के विश्लेषण सिद्धान्त में माँग के अन्य निर्धारक निश्चित और स्थिर मान लिए जाते हैं।

एक उपभोक्ता की माग अनुसूची और वक्र (A Consumer's Demand Schedule and Curve)

एक उपभोक्ता की माँग से तात्पर्य एक वस्तु की वे मात्रायें हैं जिनकी वह, अन्य बातें समान रहते हुए (Y, Pr और T) विभिन्न कीमतों पर माँग करता है। एक वस्तु के लिए एक व्यक्ति की माँग को माँग-अनुसूची और माँग-वक्र द्वारा व्यक्त किया जाता है। कीमतो और मात्राओ की सूची माँग-अनुसूची और उसको चित्र द्वारा दिखाना माँग-वक्र कहलाता है।

तालिका 8.3. माँग अनुसूची

कीमत (रु)	मात्रा
6	10 इकाइयाँ
5	20 „
4	30 „
3	40 „
2	60 „
1	80 „

चित्र 8.3

माँग-अनुसूची से स्पष्ट है कि जब कीमत 6 रु है तो माँग 10 इकाई है। यदि कीमत 5 रु हो जाए तो माँग 20 इकाई हो जाती है इत्यादि। चित्र 8.3 में DD_1 इस माँग-अनुसूची के आधार पर खींचा गया माँग वक्र है। बिन्दु *D P, Q R S, T* और *U* विभिन्न कीमत-मात्रा संयोगों को प्रकट करते हैं। मार्शल के अनुसार ये माँग-बिन्दु हैं। पहला बिन्दु पहले संयोग को प्रकट करता है। शेष कीमत-मात्रा संयोग दाईं तरफ D_1 की ओर चलते हैं।

व्यक्तिगत माँग-वक्र हमारा ध्यान उन प्रभावों पर केन्द्रित करता है जो एक वस्तु की कीमत बढ़ने या कम होने से उपभोक्ता के व्यवहार पर पड़ते हैं। वे स्थानापत्ति और आय प्रभाव हैं।

(1) इसका परिणाम यह होता है कि उपभोक्ता किसी वस्तु के सस्ती होने पर उसे अधिक और महँगी होने पर कम मात्रा में खरीदने को प्रवृत्त होता है। ऐसा सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन के स्थानापत्ति प्रभाव के कारण होता है।

(2) वस्तु की कीमत में परिवर्तन से उपभोक्ता की वास्तविक आय पर प्रभाव पड़ता है। वस्तु की कीमत गिरने से उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है और इस आय-प्रभाव के परिणामस्वरूप वह वस्तु की अधिक मात्रा खरीदता है। मामूली कीमत गिरने से आय-प्रभाव बहुत कम होता है।

यदि उपभोक्ता वस्तु पर बहुत कम खर्च करता है तो आय-प्रभाव भी नगण्य (negligible) होता है। स्थानापत्ति और आय-प्रभाव दोनों ही माँग वक्र की ऋणात्मक ढलान के लिए उत्तरदायी हैं। परन्तु घटिया वस्तुओं के विषय में ऋणात्मक आय-प्रभाव स्थानापत्ति प्रभाव को आंशिक रूप से समाप्त कर सकता है। गिफ्फन वस्तुओं के प्रसंग में सशक्त ऋणात्मक आय-प्रभाव प्रतिस्थापन-प्रभाव को पूरी तरह समाप्त कर सकता है जिससे माँग वक्र की ऋणात्मक ढलान समाप्त हो जाती है।

मार्किट माग अनुसूची और वक्र (Market Demand Schedule and Curve)

एक मार्किट में एक वस्तु का एक उपभोक्ता न होकर बहुत से उपभोक्ता होते हैं। एक वस्तु की मार्किट माग एक माग अनुसूची और माग वक्र पर दर्शायी जाती है। वे वस्तु की विभिन्न कीमतों पर सभी उपभोक्ताओं द्वारा मागी गई विभिन्न मात्राओं के कुल जोड़ को दर्शाते हैं। मान लीजिए कि एक मार्किट में *A B* और *C* तीन व्यक्ति हैं जो वस्तु को खरीदते हैं। वस्तु की माग अनुसूची को तालिका 8.4 में व्यक्त किया गया है।
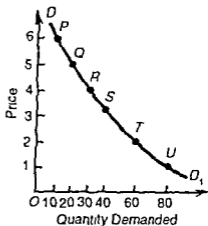
तालिका 8 4 मार्किट माग अनुसूची

कीमत रु (1)	A (2)	B + (3)	C + (4)	कुल माग = (5)
6	10	20	40	70
5	20	40	60	120
4	30	60	80	170
3	40	80	100	220
2	60	100	120	280
1	80	120	160	360
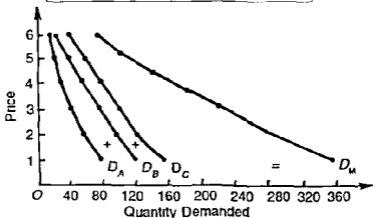
चित्र 8 4

तालिका का स्तभ (5) विभिन्न कीमतो पर वस्तु की मार्किट माग को व्यक्त करता है। यह (2), (3) और (4) स्तभो को जोडने से तीनो उपभोक्ताओं की कुल माग को दिखाता है। (1) और (5) स्तभो के बीच सबध मार्किट माग अनुसूची को दर्शाते है। जब कीमत बहुत ऊँची 6 रु होती है तो माग 70 कि ग्रा है। जब कीमत गिरती है तो माग बढती है। जब कीमत न्यूनतम 1 रु है, तो मार्किट माग 360 कि ग्रा है।

तालिका 8 4 से हम चित्र 8 4 मे मार्किट माग वक्र D_M खींचते है जो सभी व्यक्तिगत माग वक्रो का समानातर जोड है $D_M = D_A + D_B + D_C$ एक वस्तु की मार्किट माग सभी घटको पर निर्भर करती है जो एक व्यक्ति की माग को निर्धारित करते है।

परन्तु मार्किट माँग वक्र बनाने का अपेक्षाकृत अच्छा तरीका यह है कि व्यक्ति माँग वक्रो का पार्श्व-योग (lateral summation) कर दिया जाए। इस अवस्था मे, निश्चित कीमत पर उपभोक्ताओं की माँग की विभिन्न मात्राओ को प्रत्येक व्यक्तिगत माँग वक्र द्वारा दिखाया जाता है और फिर उनका पार्श्व-योग कर देते है, जैसाकि चित्र 8 5 मे दिखाया गया है।

मान लीजिए मार्किट मे A, B C तीन व्यक्ति है। वे OP कीमत पर वस्तु OA, OB, OC मात्राएँ खरीदते है जिन्हे क्रमश चित्र A, B C मे दिखाया गया है। मार्किट मे OQ मात्रा खरीदी
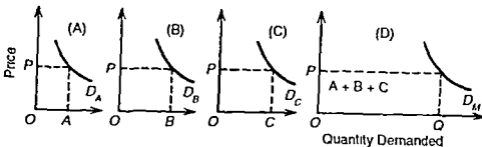
चित्र 8.5

जाएगी जो मात्रा *OA OB OC* मात्राओं को जोड़ने से बनती है। व्यक्तिगत माँग वक्र D_A, D_B, D_C के पार्श्व-योग से मार्किट माँग वक्र D_M प्राप्त होता है।

मांग मे परिवर्तन (Changes in Demand)

माग स्थिर नहीं रहती, बल्कि बदलती रहती है। एक व्यक्ति का माग वक्र इस मान्यता पर खींचा जाता है कि उसकी माग को प्रभावित करने वाले घटक जैसे अन्य वस्तुओं की कीमतें, आय और रुचिया स्थिर रहते है। यदि उसकी माग को प्रभावित करने वाला कोई एक घटक परिवर्तित होता है, जबकि अन्य स्थिर रहें, तो उसके माग वक्र पर क्या प्रभाव पड़ता है? एक घटक के परिवर्तित होने से उसका माग वक्र सरक (shift) जाता है। मान लीजिए जब एक व्यक्ति की आय बढ़ती है, अन्य घटक स्थिर रहते हुए, उसका एक वस्तु के लिए माग वक्र दाईं ओर ऊपर को सरक जाएगा। वह दी हुई कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा खरीदेगा जैसा कि चित्र 8 6 मे दर्शाया गया है। उसकी आय बढने से पहले वह D_1D_1 माग वक्र पर OQ_1 मात्रा *OP* कीमत पर खरीद रहा है। उसकी आय बढने से उसका माग वक्र D_1D_1 दाईं ओर सरक कर D_2D_2 हो जाता है। अब वह उसी कीमत *OP* पर अधिक मात्रा OQ_2 खरीदता है। जब उपभोक्ता दी हुई कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा खरीदता है तो उसे माग मे वृद्धि (increase) कहते है। इसके विपरीत, यदि उसकी आय कम होती है तो उसका माग वक्र बाईं ओर नीचे की ओर सरक जाएगा। अब वह उसी कीमत पर वस्तु की कम मात्रा खरीदेगा, जैसाकि चित्र 8 7 में दर्शाया गया है। आय कम होने से पहले उपभोक्ता D_1D_1 माग वक्र पर है जहा वह *OP* कीमत पर OQ_1 मात्रा खरीद रहा है। जब उसकी आय कम होती है तो उसका माग वक्र D_1D_1 बाईं ओर D_2D_2 पर सरक जाता है। अब वह *OP* कीमत पर कम मात्रा OQ_2 खरीदता है। जब उपभोक्ता दी हुई कीमत पर वस्तु की कम मात्रा खरीदता है तो इसे माग मे कमी (decrease) कहते है।
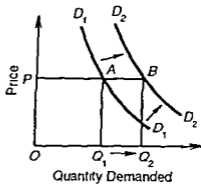
चित्र 8 6
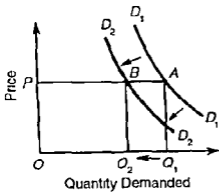
चित्र 8 7
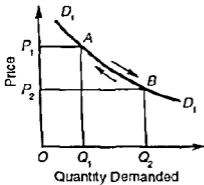
इस प्रकार माँग वक्र स्थिर नहीं रहते। वे अनेक कारणो से बाएँ को या दाएँ को स्थान-परिवर्तन करते रहते हैं। वे कारण है उपभोक्ताओ की रुचियो, आदतो और रीति-रिवाजो मे परिवर्तन, आय खर्च मे परिवर्तन, स्थानापन्नो और पूरक वस्तुओ की कीमतो मे परिवर्तन, भविष्य मे कीमतो और आय मे परिवर्तन की आशा, और जनसंख्या की आयु-रचना मे परिवर्तन, आदि।

चित्र 8 8

जब वस्तु की मागी गई मात्रा मे परिवर्तन वस्तु की अपनी कीमत मे परिवर्तन से होता है जो माग वक्र के साथ-साथ गति होती है। इसे चित्र 8 8 मे दर्शाया गया है जो यह दिखाता है कि जब कीमत OP_1 है तो मागी गई मात्रा OQ_1 है। वस्तु की कीमत गिर कर OP_2 होने से, मागी गई मात्रा बढकर OQ_2 हो जाती है। इस प्रकार, कीमत कम होने से उसी माग वक्र D_1D_1 के साथ-साथ बिन्दु A से B पर नीचे की ओर गति हुई है। इसे माग मे विस्तार (extension) कहते हैं। इसके विपरीत, यदि हम B को मूल कीमत-माग बिन्दु मान ले तो कीमत मे OP_2 से OP_1 बढोतरी से मागी गई मात्रा OQ_2 से गिरकर OQ_1 हो जाती है। उसी माग वक्र D_1D_1 के साथ-साथ उपभोक्ता ऊपर की ओर बिन्दु B से A की ओर गति करता है। इसे माग मे सकुचन (contraction) कहते है।

मांग का नियम (The Law of Demand)

यह नियम वस्तु की मांग की गई मात्रा और उसकी कीमतो मे सम्बन्ध व्यक्त करता है। मार्शल के शब्दो मे नियम की परिभाषा इस प्रकार है, "माग की मात्रा कीमत गिरने से बढती है और कीमत बढने से घटती है।" इस प्रकार, यह नियम कीमत तथा माग मे विपरीत सम्बन्ध व्यक्त करता है। नियम उस दिशा की ओर निर्देश करता है जिस दिशा मे कीमत मे परिवर्तन के साथ माँग मे परिवर्तन होता है। चित्र मे इसे माँग वक्र के ढलान से व्यक्त किया जाता है जो साधारणतया ऋणात्मक होता है। कीमत माँग का विपरीत सम्बन्ध इस बात पर निर्भर करता है कि 'अन्य बाते समान रहे'। यह वाक्यांश नियम की कुछ महत्त्वपूर्ण मान्यताओं की ओर निर्देश करता है जिनके आधार पर ही यह नियम चालू होता है।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

ये मान्यताएँ इस प्रकार है—(i) उपभोक्ताओ की रुचियो व अधिमानो मे कोई परिवर्तन न हो, (ii) उपभोक्ताओ की आय स्थिर रहे, (iii) रीति-रिवाजो मे कोई परिवर्तन न हो, (iv) प्रयोग मे

आने वाली वस्तु साधारण हो अर्थात् श्रेष्ठता प्रदान करने वाली न हो, (v) वस्तु के कोई स्थानापन्न न हों, (vi) अन्य वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन न हों, (vii) भविष्य में वस्तु की अपनी कीमत मे परिवर्तन की आशा न हो, (viii) वस्तु विशेष के गुण मे परिवर्तन न हो, और (ix) उपभोक्ताओ की आदतें यथास्थिर रहें। इन मान्यताओं के होने पर ही माँग का नियम क्रियाशील होता है। यदि इनमे से किसी एक मे भी परिवर्तन आ जाये तो यह चालू नहीं होगा।

नियम की व्याख्या तालिका 8 3 और चित्र 8 3 द्वारा कीजिए।

माँग वक्र के नीचे की ओर ढालू होने के कारण (Causes of Downward Sloping Demand Curve)

माँग वक्र बाएँ से दाएँ नीचे की ओर ढालू क्यों होता है, इसके कारण माँग नियम की क्रियाशीलता को भी स्पष्ट करते है। इसके मुख्य कारण निम्नलिखित हैं

(1) माँग का नियम घटती सीमान्त उपयोगिता के नियम पर आधारित है। इस नियम के अनुसार जब कोई उपभोक्ता किसी वस्तु की अधिक इकाइयाँ खरीदता है तो उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता कम होती जाती है। इसलिए उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक इकाइयाँ तभी खरीदेगा जब उसकी कीमत कम हो जाएगी। कम इकाइयाँ प्राप्त होने पर उपयोगिता अधिक होगी और उपभोक्ता वस्तु के लिए अधिक कीमत देने के लिए तैयार होगा। इससे यह सिद्ध होता है कि कम कीमत पर माँग अधिक होगी और अधिक कीमत पर माँग कम होगी। इसी कारण माँग वक्र नीचे की ओर ढालू होता है।

(2) हर वस्तु के कुछ उपभोक्ता होते हैं। परन्तु जब उस वस्तु की कीमत कम हो जाती है तो नये उपभोक्ता उसको खरीदने लगेंगे जिससे माँग बढ जाती है। इसके विपरीत, वस्तु की कीमत बढने से कई उपभोक्ता वस्तु का उपभोग बन्द या कम कर देंगे जिससे माँग कम हो जाएगी। अत *उपभोक्ताओं द्वारा कीमत प्रभाव के कारण वस्तु के अधिक प्रयोग या परित्याग करने से भी माँग* वक्र नीचे की ओर ढालू होता है।

(3) जब किसी वस्तु की कीमत कम हो जाती है तो उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ जाती है, क्योंकि वस्तु की पहले जितनी मात्रा खरीदने पर उसे अब कम मुद्रा व्यय करनी पड़ती है। इसके विपरीत, वस्तु की कीमत बढने पर उपभोक्ता की वास्तविक आय कम हो जाती है। इसे आय प्रभाव कहते हैं। इस प्रभाव के अधीन वस्तु की कीमत कम होने पर उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक मात्रा खरीदता है और साथ मे बढी हुई आय का कुछ भाग दूसरी वस्तुओं की भी अधिक मात्रा खरीदने पर खर्च करेगा। जैसे दूध की कीमत कम होने से वह दूध की अधिक मात्रा तो खरीदेगा ही, पर साथ मे, अन्य वस्तुओ की माँग भी बढा देगा। परन्तु कीमत बढने पर वह दूध की माँग कर देगा। साधारण वस्तुओं की कीमत मे परिवर्तन का आय प्रभाव धनात्मक होता है। इसी कारण माँग वक्र नीचे की ओर ढालू होता है।

(4) वस्तु की कीमत मे परिवर्तन होने का दूसरा प्रभाव स्थानापत्ति प्रभाव होता है। किसी वस्तु की कीमत कम हो जाने पर, परन्तु उसके स्थानापन्नों की कीमतों मे कोई परिवर्तन न होने पर, उपभोक्ता उस वस्तु को स्थानापन्नों के स्थान पर अधिक खरीदेंगे जिससे उनकी माँग बढ जाएगी। इसके विपरीत, *स्थानापन्नों की कीमतें स्थिर रहने पर यदि विचाराधीन वस्तु की कीमत* बढ जाती है तो उपभोक्ता इस वस्तु का उपयोग कम कर देंगे और स्थानापन्नों को अधिक खरीदेंगे जिससे वस्तु की माँग कम हो जायेगी। उदाहरणार्थ, चाय की कीमत कम होने पर, परन्तु काफी की कीमत स्थिर रहने पर चाय की माँग बढ जायेगी, और इससे उलट, चाय की कीमत बढने पर इसकी माँग कम हो जायेगी।

(5) हर समाज मे लोगो की वैयक्तिक आय भिन्न होती है परन्तु अधिकतर ऐसे लोग पाये जाते है जिनकी आय कम होती है, माँग वक्र का नीचे की ओर ढालू होना इन्हीं व्यक्तियो पर निर्भर करता है। साधारण लोग कीमत कम होने पर वस्तु की अधिक मात्रा तथा कीमत बढने पर वस्तु

की कम मात्रा खरीदते हैं। धनी लोगों का माँग वक्र पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि वे अधिक कीमत पर भी वस्तु की पहली जितनी मात्रा खरीदने में समर्थ होते हैं।

(6) कई वस्तुओं व सेवाओं के भिन्न-भिन्न प्रयोग होते हैं जो माँग वक्र की ऋणात्मक ढलान को प्रभावित करने में सहायक होते हैं। ऐसी वस्तुओं की कीमत बढ़ जाने पर उनका प्रयोग केवल अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए किया जायेगा जिससे उनकी माँग कम हो जायेगी। इसके विपरीत, कीमत गिर जाने पर उनका प्रयोग कई प्रकार के कार्यों में किया जायेगा जिससे उनकी माँग बढ़ेगी। जैसे, बिजली की दर अधिक होने पर उसका प्रयोग केवल घरों में रोशनी के लिए किया जायेगा परन्तु यदि रेट कम हो तो लोग इसका प्रयोग खाना बनाने, पंखे, हीटर आदि चलाने में भी करेंगे।

माग-नियम के अपवाद (Exceptions to the Law of Demand)

माग के नियम के कुछ अपवाद भी हैं। कुछ अवस्थाओं में माँग वक्र बाएँ से दाएँ ऊपर को ढालू होता है अर्थात् इसकी ढलान धनात्मक होती है। कुछ विशेष परिस्थितियों में उपभोक्ता, वस्तु की कीमत बढ़ने पर अधिक और कीमत गिरने पर कम मात्रा खरीदते हैं। जैसाकि चित्र 8.9 में D वक्र दिखाया गया है। ऊपर की ओर ढालू माँग वक्र के अनेक कारण बताए जाते हैं

चित्र 8.9

(i) युद्ध (War)—यदि युद्ध या आपातिक स्थिति के पूर्व-अनुमान के कारण वस्तु की पूर्ति में कमी हो जाने की आशंका हो तो कीमत बढ़ने पर भी लोग स्टॉक करने के लिए वस्तु को अधिक खरीदने लगते हैं, जिससे माँग बढ़ती है।

(ii) मंदी (Depression)—मंदी के दौरान कीमतें कम होने पर भी लोग वस्तुओं की कम मात्रा ही खरीदते हैं। ऐसा इसलिए कि उपभोक्ताओं की क्रय-शक्ति कम होती है।

(iii) गिफ्फन विरोधाभास (Giffen Paradox)—मार्शल के अनुसार गिफ्फन विरोधाभास के कारण माग वक्र की ढलान धनात्मक होती है। उदाहरणार्थ, यदि कोई वस्तु जैसे गेहूँ, जो जीवन के लिए आवश्यक है और उसकी कीमत बढ़ जाए, तो उपभोक्ता मांस और मछली जैसी खाने की महँगी वस्तुओं का उपभोग घटाने को विवश हो जाते है, और गेहूँ फिर भी सबसे सस्ती होने के कारण, इसका उपभोग बढ़ा देते है। इस प्रकार कीमत बढ़ने पर भी आवश्यक वस्तुओं की माँग गरीबों की ओर से बढ़ती है। मार्शल का उपरोक्त उदाहरण विकसित देशों पर लागू होता है। इसके विपरीत बहुत घटिया वस्तु जैसे मक्का की कीमत कम होने से उपभोक्ता इसके स्थान पर बढ़िया वस्तु जैसे गेहू का उपभोग अधिक कर देंगे जिससे मक्का की कीमत कम होने पर उसकी माँग भी कम हो जायेगी। इस गिफ्फन विरोधाभास के कारण माँग वक्र ऊपर की ओर ढालू होता है।

(iv) प्रदर्शन प्रभाव (Demonstration Effect)—यदि उपभोक्ता दिखावटी उपभोग (conspicuous consumption) या प्रदर्शन प्रभाव से प्रभावित है तो वे कीमतों के बढ़ने पर भी ऐसी वस्तुएँ खरीदना चाहेंगे जो उन्हें सम्मान प्रदान करने वाली हों। इसके विपरीत, ऐसी वस्तुओं की कीमतें कम होने पर उनकी माँग कम होती है। जैसे हीरे, जवाहरात, फैशन की वस्तुएँ आदि।

(v) अज्ञानता प्रभाव (Ignorance Effect)—उपभोक्ता अज्ञानता प्रभाव के कारण ऊँची कीमत पर भी ऐसी वस्तुएँ खरीद लेते हैं जो अपनी कीमत, भ्रान्तिजनक पैकिंग, लेबल आदि के

कारण धोखे से कुछ और समझ ली जाती हैं। इसके विपरीत, कुछ वस्तुएँ सस्ती होने पर भी अधिक नहीं बिकतीं क्योंकि उनके पैकिंग, लेबल आदि आकर्षक नहीं होते।

(vi) सट्टा (Speculation)—मार्शल सट्टे को भी माँग के महत्त्वपूर्ण अपवादो मे से एक मानता है। उसके अनुसार, "सटोरियो के दलो मे होड के कारण माँग पर माँग का नियम लागू नहीं होता। एक ग्रुप जो किसी वस्तु की बहुत अधिक मात्रा मार्किट मे फेकना चाहता है, प्राय उस वस्तु को खुल्लमखुल्ला खरीदना शुरू कर देता है। इस प्रकार जब वह ग्रुप वस्तु की कीमत बढा देता है, तो चुपचाप और अपरिचित दिशाओ के माध्यम से बहुत अधिक मात्रा बेचने की व्यवस्था कर लेता है।"[5]

आय माँग (Income Demand)

अन्य बातो को स्थिर रखते हुए अब तक हमने कीमत की माँग मे विभिन्न पक्षो का अध्ययन किया है। अब हम आय माँग का अध्ययन करेगे। आय की माँग आय और वस्तुओ की मात्रा की माँग को व्यक्त करती है। इसका सबध किसी वस्तु या सेवा की विभिन्न मात्राओ से है जिन्हे उपभोक्ता विभिन्न आय स्तरो पर एक निश्चित अवधि मे खरीद लेगा जबकि अन्य बातें समान रहे। अन्य बाते, जिनका समान रहना मान लिया जाता है, वे वस्तु विशेष की कीमत, सबधित वस्तुओ की कीमत तथा वस्तु के लिए उपभोक्ता की रुचियाँ, अधिमान तथा आदते। वस्तु के लिए आय-माँग फलन इस प्रकार व्यक्त किया जाता है, $D = f(Y)$ । आय तथा माँग मे प्राय सीधा सबध होता है। आय बढने से वस्तु की माँग मे वृद्धि होती है और आय घटने से माँग मे कमी, जैसा कि चित्र 8 10 में दिखाया गया है।

जब आय OI है तो वस्तु की माँगी गई मात्रा OQ है और जब आय बढकर OI_1 हो जाती है, तो वस्तु की माँगी गई मात्रा बढकर OQ_1 हो जाती है। विपरीत स्थिति को भी इसी तरीके से दिखाया जा सकता है। इस प्रकार आय माँग वक्र ID का ढलान धनात्मक है। परन्तु सामान्य वस्तुओ के विषय मे ही यह रूप होता है।

चित्र 8 10

अब हम ऐसे उपभोक्ता का उदाहरण लेते है जो एक घटिया वस्तु का उपभोग करने का आदी है। जब तब उसकी आय उसके न्यूनतम निर्वाह के विशेष स्तर से कम होती है, तो थोडी-थोडी मात्रा मे आय-वृद्धि होने पर भी उस घटिया वस्तु को खरीदता रहता है, परन्तु जब उसकी आय इस स्तर से बढने लगती है तो वह घटिया वस्तु के लिए अपनी माँग कम कर देता है। चित्र 8 10 (B) मे, OI आय का न्यूनतम स्तर है जिस पर वह वस्तु की IQ मात्रा खरीदता
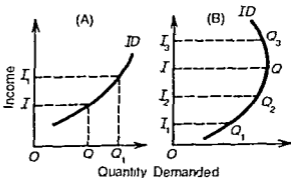
5 A Marshall op cit p 84 n 1

है। इस स्तर तक यह वस्तु उसके लिए सामान्य वस्तु है और जैसे-जैसे उसकी आय OI_1 से OI_2 और OI तक धीरे-धीरे बढती चलती है, वह उस वस्तु का उपभोग बढाता जाता है। जब उसकी आय OI से ऊपर चली जाती है, वह उस वस्तु की कम मात्रा खरीदने लगता है। उदाहरणार्थ, OI_3 आय स्तर पर वह I_3Q_3 मात्रा खरीदता जो IQ से कम है। इस प्रकार घटिया वस्तुओ के विषय में आय माँग वक्र ID का ढलान पीछे की ओर हो जाता है।

प्रति माँग (Cross Demand)

अब हम सबद्ध वस्तुओं (related goods) का उदाहरण लेकर देखते है कि एक वस्तु की कीमत मे परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग को कैसे प्रभावित करता है। इसे प्रति माँग कहते हैं और इस प्रकार लिखते हैं $D = f(P_i)$। सबद्ध वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं स्थानापन्न तथा पूरक। **स्थानापन्न या प्रतियोगी** वस्तुओ मे एक वस्तु A की कीमत बढने से वस्तु B की माँग बढ जाती है, जब वस्तु B की कीमत में परिवर्तन नहीं होता। इसके उलट जब वस्तु B की माँग कम होती है, तो वस्तु A की कीमत गिर जाती है। चित्र 8 11 (A) मे इसे दिखाया गया है। जब वस्तु A की कीमत OA से बढकर OA_1 हो जाती है तो वस्तु B की मात्रा भी OB से बढकर OB_1 हो जाती है। स्थानापन्नों के प्रति माँग वक्र CD की ढलान धनात्मक होती है। कारण यह है कि A की कीमत बढने पर लोग अपनी माँग B पर कर देगे क्योंकि B की कीमत स्थिर रहती है। यहाँ यह भी मान लिया गया है कि उपभोक्ता की आय, रुचियो और अधिमानो आदि मे कोई परिवर्तन नहीं होता।
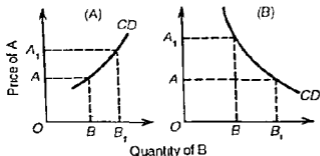
चित्र 8 11

यदि दो वस्तुएँ पूरक या सयुक्त माँग वाली हो, तो वस्तु A की कीमत बढने से वस्तु B की माँग गिर जायेगी। इसके विपरीत A की कीमत गिरने से B की माँग बढ जायेगी। इसे चित्र 8 11(B) में दिखाया गया है। जब वस्तु A की कीमत OA_1 से गिर कर OA पर आ जाती है, तो वस्तु B की माँग OB मे बढकर OB_1 हो जाती है। पूरक वस्तुओं के प्रति माँग वक्र की ढलान साधारण माँग वक्र की भाँति ऋणात्मक होती है।

हाँ, यदि दो वस्तुएँ स्वतन्त्र हो तो A की कीमत मे परिवर्तन का B की माग पर कोई प्रभाव नहीं पडता। हम गेहूँ और कुर्सी जैसी असम्बद्ध वस्तुओ का अध्ययन नहीं करते। उपभोक्ता के रूप मे प्राय हमारा सबध स्थानापन्नो और पूरक वस्तुओ के कीमत-माँग सबध से रहता है।

अल्पकालीन और दीर्घकालीन माग वक्र (Short-Run and Long-Run Demand Curves)

अल्पकालीन और दीर्घकालीन माग वक्रों में भेद किया जा सकता है। नाशवान वस्तुओ जैसे सब्जियाँ, फल, दूध आदि के लिए कीमत मे परिवर्तन से मागी गई मात्रा मे परिवर्तन शीघ्रता से होता है। ऐसी वस्तुओ के लिए एक अत्यन्त ऋणात्मक ढलान वाला सामान्य माग वक्र होता है।

लेकिन टिकाऊ वस्तुओं जैसे उपकरण, मशीनें, कपडे ओर अन्य ऐसी वस्तुओं के लिए कीमत मे परिवर्तन का मागी गई मात्रा पर अतिम प्रभाव नहीं होगा जब तक कि वस्तु का वर्तमान स्टॉक समायोजित नहीं होता जो लबी अवधि ले सकता है। एक अल्पकालीन माग वक्र कीमत मे परिवर्तन से मागी गई मात्रा मे परिवर्तन को दर्शाता है, जब टिकाऊ वस्तु का वर्तमान स्टॉक और स्थानापन्नों की पूर्तिया दी हुई हो। दूसरी ओर, एक दीर्घकालीन माग वक्र कीमत मे परिवर्तन से मागी गई मात्रा मे परिवर्तन को दर्शाता है, जब दीर्घकाल मे सभी समायोजन (adjustments) कर दिए गए हो।

अल्पकालीन और दीर्घकालीन माग वक्रों के सबध को चित्र 8.12 में दिखाया गया है। मान लीजिए कि उपभोक्ता पूरी तरह से OP_1 कीमत और OQ_1 मागी गई मात्रा के साथ सतुलन बिन्दु E_1 पर अल्पकालीन माग वक्र D_1 पर सतुलन मे है। अब मान लीजिए कि कीमत गिर कर OP_2 हो जाती है। अल्पकाल मे, उपभोक्ता D_1 वक्र के साथ-साथ प्रतिक्रिया करेंगे और बिन्दु E_2 पर सतुलन मे होकर मागी गई मात्रा को OQ_2 पर बढा देंगे। कुछ समय बीतने के बाद जब नई कीमत OP_2 पर समायोजन कर दिए जाते हैं तो एक नया सतुलन E_3 पर बढी हुई मात्रा OQ_3 का होता है। अब E_1 और E_3 बिन्दुओं से गुजरता हुआ एक नया अल्पकालीन माग वक्र D_2 प्राप्त होता है। कीमत मे और कमी OP_3 पर पहले OQ_4 मागी गई मात्रा के साथ E_4 पर सतुलन होगा ओर अन्तत OQ_5 मागी गई मात्रा के साथ E_5 पर अल्पकालीन माग वक्र D_3 पर सतुलन होगा। प्रत्येक कीमत पर अतिम सतुलन बिन्दुओं E_1, E_3 और E_5 मे से गुजरती हुई एक रेखा दीर्घकालीन माग वक्र D_l को दर्शाती है। दीर्घकालीन माग वक्र D_l अल्पकालीन माग वक्रो D_1, D_2 ओर D_3 की अपेक्षा अधिक चपटा है।
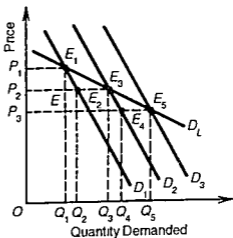
चित्र 8.12

7. माग सिद्धात या उपयोगिता विश्लेषण के दोष
(DEFFCTS OF UTILITY ANALYSIS OR DEMAND THEORY)

मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपयोगिता विश्लेषण में कई दोष एव त्रुटिया पायी जाती हैं, जिनकी विवेचना निम्नलिखित हे

(1) **उपयोगिता को गणन-सख्या प्रणाली से नहीं मापा जा सकता** (Utility cannot be measured cardinally)—मार्शल का समस्त उपयोगिता विश्लेषण इस तथ्य पर आधारित हे कि उपयोगिता को गणन-सख्या प्रणाली द्वारा मापा जा सकता हे। गणन-सख्या प्रणाली के अनुसार वस्तु की उपयोगिता को 'यूटिल' (util) या इकाइयों मे मापा जाता है। उपयोगिता को इकाइयों के रूप मे जमा भी किया जा सकता हे और घटाया भी जा सकता हे। उदाहरणार्थ, जब कोई उपभोक्ता रोटी खाता है तो प्रथम रोटी से उसे यदि 15 इकाइयो के बराबर सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होती है, दूसरी एव तीसरी रोटी से क्रमश 10 और 5 इकाइयाँ, तथा चोथी रोटी लेने पर

सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है। यदि यह मान लिया जाए कि उसको चौथी रोटी के बाद और इच्छा नहीं है तो पाँचवीं रोटी लेने पर उपयोगिता ऋणात्मक 5 इकाइयाँ हो जाएगी। इस प्रकार पहली चार रोटियों की कुल उपयोगिता क्रमश 15, 25, 30 एव 30 होगी जबकि पाँचवीं रोटी लेने से कुल उपयोगिता 25 (30-5) इकाइयाँ हो जाएगी।

इसके अतिरिक्त उपयोगिता विश्लेषण इस मान्यता पर भी आधारित है कि उपभोक्ता अपने अधिमानों से परिचित है और उनकी तुलना करने मे समर्थ है। उदाहरणार्थ, यदि एक सेब की उपयोगिता 10 इकाइयाँ है, केले की 20 इकाइयाँ तथा सन्तरे की 40 इकाइयाँ तो इसका अभिप्राय यह है कि उपभोक्ता सेब की तुलना मे केले को दुगना और सन्तरे को चौगुना अधिमान देता है। इससे यह पता चलता है कि उपयोगिता सकर्मक (transitive) भी है। प्रो हिक्स के अनुसार उपयोगिता विश्लेषण का यह आधार कि उपयोगिता मापनीय है, त्रुटियुक्त है क्योंकि वास्तव मे उपयोगिता एक व्यक्तिपरक तथा मनौवैज्ञानिक धारणा है जिसे गणन-सख्या प्रणाली द्वारा नहीं मापा जा सकता है, बल्कि इसका सही माप ढग क्रमसख्या प्रणाली (ordinal system) है।

(2) एक-वस्तु मॉडल अवास्तविक है (Single commodity model is unrealistic)— उपयोगिता विश्लेषण एक-वस्तु मॉडल है जिसमे प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता अन्य वस्तु की उपयोगिता से स्वतन्त्र मानी जाती है। मार्शल ने स्थानापन्न तथा पूरक वस्तुओं को एक ही वस्तु मान कर विश्लेषण किया परन्तु ऐसा करने से उपयोगिता विश्लेषण अवास्तविक बन जाता है। उदाहरणार्थ, चाय तथा कॉफी दो स्थानापन्न वस्तुएँ है। जब इनमे से किसी एक वस्तु के स्टॉक मे परिवर्तन होता है तो उसकी अपनी सीमान्त उपयोगिता तथा अन्य वस्तु की सीमान्त उपयोगिता मे परिवर्तन होगा। मान लीजिए कि उपभोक्ता के चाय के स्टॉक मे वृद्धि होती है। इससे केवल चाय की सीमान्त उपयोगिता मे ही कमी नहीं होगी बल्कि कॉफी की सीमान्त उपयोगिता भी गिर जाएगी। इसी प्रकार कॉफी के स्टॉक मे परिवर्तन होने से कॉफी तथा चाय दोनों की सीमान्त उपयोगिता मे परिवर्तन होगा। एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर प्रभाव और दूसरी का पहली द्वारा प्रभावित होना प्रति-प्रभाव (cross-effect) कहलाता है। उपयोगिता विश्लेषण स्थानापन्न, पूरक तथा असम्बन्धित वस्तुओं के प्रति-प्रभावों की उपेक्षा करता है जिस कारण यह अवास्तविक बन जाता है। इसी त्रुटि को दूर करने के लिए हिक्स ने दो-वस्तु मॉडल का उदासीनता-वक्र पद्धति मे निर्माण किया।

(3) मुद्रा उपयोगिता का अपूर्ण मापदण्ड है (Money is an imperfect measure of utility)— मार्शल उपयोगिता को मुद्रा द्वारा मापता है, परन्तु मुद्रा उपयोगिता का सही तथा पूर्ण मापदण्ड नहीं क्योंकि मुद्रा के मूल्य मे प्राय परिवर्तन होता रहता है। जब एक उपभोक्ता एक वस्तु की समान इकाइयाँ भिन्न-भिन्न समय मे खरीदता है तो उसको समान उपयोगिता प्राप्त नहीं होगी, यदि मुद्रा के मूल्य मे पहले की अपेक्षा कमी हुई हो। कीमतों के लगातार बढ़ने से मुद्रा के मूल्य मे कमी होना स्वाभाविक है। फिर, यदि दो उपभोक्ता एक ही समय मे बराबर मुद्रा राशि खर्च करते है तो दोनों को समान उपयोगिताएँ प्राप्त नहीं होगी, क्योंकि उपयोगिता की मात्रा प्रत्येक वस्तु के लिए इच्छा की तीव्रता पर निर्भर करती है। उदाहरणार्थ, उपभोक्ता *A* उतने ही पैसे खर्च करके *B* की अपेक्षा अधिक उपयोगिता प्राप्त कर सकता है यदि उसकी वस्तु के लिए इच्छा अधिक तीव्र हो। अत मुद्रा, उपयोगिता का अपूर्ण तथा अविश्वसनीय मापदण्ड है।

(4) मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर नहीं है (Marginal utility of money is not constant)—उपयोगिता विश्लेषण मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मानता है। मार्शल ने इसके पक्ष मे यह तर्क दिया कि एक समय मे एक उपभोक्ता एक वस्तु पर अपनी कुल आय का केवल

थोडा-सा भाग ही खर्च करता है जिससे उसके पास बाकी बचे मुद्रा के स्टॉक मे कोई विशेष कमी नहीं आती। परन्तु वास्तविकता यह है कि कोई भी उपभोक्ता एक समय मे एक वस्तु ही नहीं खरीदता बल्कि अनेक वस्तुएँ खरीदता है जिससे उसकी आय का बहुत बडा भाग जब खर्च हो जाता है तो मुद्रा का बाकी बचा स्टॉक कम हो जाने से उसकी सीमान्त उपयोगिता बढ जाती है। उदाहरणार्थ, हर उपभोक्ता अपनी आय का अधिक भाग महीने के प्रथम सप्ताह मे घरेलू आवश्यकताओ की पूर्ति पर व्यय कर देता है ओर उसके बाद वह बहुत सोच-समझकर व्यय करता है। जिसका अभिप्राय यह है कि बाकी बची मुद्रा राशि की उसके लिए उपयोगिता बढ गयी है। अत उपयोगिता विश्लेषण की यह मान्यता कि मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहती है *वास्तविकता से दूर है जो इस विश्लेषण को काल्पनिक बना देता है।*

(5) **मनुष्य विचारशील नहीं है** (Man is not rational)—उपयोगिता विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि हर उपभोक्ता विवेकी है जो सोच-विचारकर वस्तु को खरीदता है तथा वस्तु की भिन्न-भिन्न इकाइयो की अनुपयोगिता एव उपयोगिताओं की गणना करने की क्षमता रखता है और वस्तु की ऐसी इकाइयाँ ही खरीदता है जो उसे अधिक उपयोगिता प्रदान करती है। यह मान्यता भी **यथार्थहीन** है क्योंकि कोई भी उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदते समय उनकी उपयोगिताओं तथा अनुपयोगिताओं की तुलना नहीं करता बल्कि अपनी इच्छाओ, रुचियों या आदतों के वशीभूत होकर वस्तुओं को खरीदता है। इसके अतिरिक्त, उपभोक्ता की आय तथा वस्तुओं की कीमतें भी उपभोक्ता की खरीद को प्रभावित करते है। इस प्रकार उपभोक्ता वस्तुओं को विचारशीलता से नहीं खरीदता। इसी कारण उपयोगिता विश्लेषण अवास्तविक तथा अव्यावहारिक है।

(6) ***उपयोगिता विश्लेषण आय-प्रभाव, स्थानापन्नता-प्रभाव एव कीमत-प्रभाव का अध्ययन नहीं करता*** (Utility analysis does not study income-effect, substitution-effect and price-effect)—उपयोगिता विश्लेषण में सबसे बडी त्रुटि आय-प्रभाव, स्थानापत्ति प्रभाव तथा कीमत-प्रभाव का अध्ययन न करना है। उपयोगिता विश्लेषण यह नहीं बतलाता है कि जब उपभोक्ता की आय मे वृद्धि या कमी होती है तो वस्तुओं की माँग पर क्या प्रभाव पडता है। इस प्रकार यह आय-प्रभाव की उपेक्षा करता है। फिर जब एक वस्तु की कीमत मे परिवर्तन होने से दूसरी वस्तु की सापेक्ष कीमत मे परिवर्तन होता है तो उपभोक्ता एक को दूसरे के स्थान पर जब स्थानापन्न करता है, उसे स्थानापत्ति-प्रभाव कहते है। उपयोगिता विश्लेषण इसका भी अध्ययन करने मे असमर्थ है क्योंकि यह एक-वस्तु मॉडल पर आधारित है। इसके अतिरिक्त, जब एक वस्तु की कीमत मे परिवर्तन होता है तो उसकी और अन्य सम्बन्धित वस्तु की माँग मे जो परिवर्तन होता है वह कीमत-प्रभाव कहलाता है। उपयोगिता विश्लेषण इसकी भी उपेक्षा करता है। उदाहरणार्थ, जब एक वस्तु की कीमत गिरती है तो उपयोगिता विश्लेषण केवल यह बताता है कि इसकी माँग बढ जायेगी। परन्तु यह बताने मे असमर्थ है कि कीमत गिरने मे जब उपयोगिता की वास्तविक आय मे वृद्धि होती है तो उसका आय-प्रभाव कितना होता है और उसमे स्थानापत्ति-प्रभाव कितना होता है अर्थात् उपयोगिता विश्लेषण कीमत-प्रभाव के आय-प्रभाव तथा स्थानापत्ति-प्रभाव की विवेचना नहीं करता जो इसकी एक महान त्रुटि है।

(7) **उपयोगिता विश्लेषण घटिया तथा गिफ्फन वस्तुओं का स्पष्टीकरण करने में विफल है** (Utility analysis fails to clarify inferior and Giffen goods)—मार्शल के माँग के उपयोगिता विश्लेषण की एक विफलता यह भी पायी जाती है कि वह इस तथ्य का स्पष्टीकरण नहीं करता कि जब किसी **घटिया और गिफ्फन** वस्तु की कीमत गिर जाती है तो उसकी माँग मे कमी किस कारण

होती है। मार्शल इस विरोधाभास को सुलझाने मे इसलिए असमर्थ रहा क्योंकि उपयोगिता विश्लेषण मे कीमत-प्रभाव के आय-प्रभाव तथा स्थानापन्नता-प्रभाव की विवेचना नहीं की गई है। इस कारण मार्शल का माँग नियम अधूरा है।

(8) **माँग के उपयोगिता विश्लेषण की यह मान्यता कि वस्तु की कीमत कम होने से उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक इकाइया खरीदता है, यथार्थ नहीं** (The assumption of the utility analysis of demand that the consumer buys more units of a commodity when its price falls is not realistic)—माँग का उपयोगिता विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि जब वस्तु की कीमत गिरती है तो उपभोक्ता उसकी पहले से अधिक इकाइयाँ खरीदता है। यह खाद्य पदार्थों के लिए सत्य हो सकता है। जब सन्तरे, केले, सेब, आदि की कीमत कम होती है तो उपभोक्ता अवश्य उसकी अधिक मात्राएँ खरीदते हैं, परन्तु टिकाऊ वस्तुओं पर यह तथ्य सत्य नहीं। उदाहरणार्थ, साइकल, रेडियो आदि टिकाऊ वस्तुओं की कीमत मे कमी हो जाने पर भी कोई उपभोक्ता दो या तीन साइकिले या रेडियो नहीं खरीदेगा। यह अन्य बात है कि कोई धनी उपभोक्ता शौक के कारण, दो या तीन प्रकार की कारें, जूतों के जोडे तथा पहनने के कई प्रकार के वस्त्र खरीद ले, परन्तु ऐसा वह इन वस्तुओं की कीमत कम होने के कारण नहीं करता।

(9) **यह विश्लेषण अविभाज्य वस्तुओं की माँग को समझने मे विफल है** (This analysis fails to explain the demand for indivisible goods)—उपयोगिता विश्लेषण स्कूटर, ट्रांजिस्टर, रेडियो आदि अविभाज्य वस्तुओं की माँग को समझने में विफल है क्योंकि एक समय में उपभोक्ता ऐसी वस्तुओं की केवल एक इकाई ही खरीदता है। उपभोक्ता द्वारा एक वस्तु की एक ही इकाई खरीदने में न तो सीमान्त उपयोगिता की गणना की जा सकती है, और न ही उपभोक्ता की उस वस्तु के लिए माँग अनुसूची बनाई जा सकती है, तथा न ही माँग-वक्र खींचा जा सकता है। अत अविभाज्य वस्तुओं पर उपयोगिता विश्लेषण लागू नहीं होता।

उपयोगिता विश्लेषण की इन त्रुटियों के कारण हिक्स जैसे आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने उपभोक्ता के माँग विश्लेषण की व्याख्या उदासीनता-वक्र प्रणाली द्वारा की है।

प्रश्न

1 घटते सीमान्त उपयोगिता के नियम की परिभाषा एव व्याख्या कीजिए। इसकी सीमाएँ तथा महत्त्व भी बताएँ।

2 सिद्ध कीजिए कि उपभोक्ता-आचरण सिद्धान्त का मूल तत्त्व उपभोक्ता का अधिकतम सतुष्टि प्राप्त करना है।

3 "स्थानापत्ति के नियम की व्यावहारिकताएँ आर्थिक विश्लेषण के लगभग हर क्षेत्र मे फैलती है।" मार्शल के इस कथन की व्याख्या कीजिए।

4 माँग वक्र दाईं ओर नीचे क्यों ढालू होता है? किन अवस्थाओं मे एक माँग वक्र दाईं ओर ऊपर ढालू होता है?

5 उन स्थितियों का विश्लेषण कीजिए जब एक वस्तु की कीमत कम होने से उसकी माग कम होती है।

6 मार्शल के माग वक्र की मान्यताओं की व्याख्या कीजिए। एक माग वक्र के साथ-साथ गति और माग वक्र के सरकने (shift) मे भेद कीजिए।

7 यह व्याख्या करिए कि एक वस्तु की माग कैसे प्रभावित होती है (i) अन्य वस्तु की कीमत मे परिवर्तन से, (ii) उपभोक्ता की आय मे परिवर्तन से।

8 नव-क्लासिकी माग सिद्धान्त की मूल धारणाओं की व्याख्या कीजिए। इसकी त्रुटिया क्या है?

9 टिप्पणी लिखिए (1) अल्पकालीन और दीर्घकालीन माग वक्र (2) प्रतिलोच माग।

अध्याय 9

उदासीनता वक्र सिद्धांत
(THE INDIFFERENCE CURVE THEORY)

1. प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

उदासीनता वक्र एक ज्यामितीय विधि है। नव क्लासिकी गणनसख्या उपयोगिता (cardinal utility) माप सिद्धान्त के स्थान पर इसका प्रयोग किया जाता है। सन् 1939 में प्रोफेसर हिक्स ने अपनी पुस्तक *Value and Capital* मे इसकी विस्तृत व्याख्या की ओर सन् 1956 मे अपनी दूसरी पुस्तक *A Revision of Demand Theory* मे इस सिद्धान्त का प्रमुख सशोधन प्रस्तुत किया। उपरोक्त रचना मे समस्या का अर्थमितितया (econometrically) विश्लेषण किया गया है, और विशेष रूप से सैम्यूलसन के प्रकटित अधिमान उपकल्पना (Samuelsonian Revealed Preference Hypothesis) के क्षेत्र में हुए आवश्यक विकासो पर प्रकाश डाला गया है।

2. उदासीनता वक्र
(INDIFFERENCE CURVES)

उदासीनता वक्र विश्लेषण उपयोगिता के क्रमसंख्या (ordinal) माप की विधि है। यह सिद्धान्त किन्हीं दो वस्तुओ जैसे X और Y के विभिन्न सयोगो के लिए उपभोक्ता के अपने अधिमान या क्रमन्यास (ranking) के अनुसार उपभोक्ता के व्यवहार की व्याख्या करता है। उपभोक्ता की उदासीनता अनुसूची से उदासीनता वक्र खींचा जाता है। उदासीनता अनुसूची दो वस्तुओ के ऐसे विभिन्न सयोगो को प्रस्तुत करती है कि उपभोक्ता इन सयोगो के सम्बन्ध मे उदासीन रहता है। "उदासीनता अनुसूची दो वस्तुओ के सयोगो की एक अनुसूची है, जिसको इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि उपभोक्ता उन सयोगो के सम्बन्ध मे उदासीन होता है, किसी एक को दूसरो की अपेक्षा अधिमान नहीं देता।"[1] तालिका 9.1 में एक कल्पित उदासीनता अनुसूची दी जा रही है जिसमे X ओर Y वस्तुओ के विभिन्न सयोग रखे गए है।

उपभोक्ता इस अनुसूची के विभिन्न सयोगो मे से किसी भी सयोग के प्रति उदासीन है। वह Y की 18 इकाइयो + X की 1 इकाई वाले पहले सयोग को, या Y की 4 इकाइयो + X 5 की इकाइयो

1 "An indifference schedule is a list of combinations of two commodities, the list being so arranged that a consumer is indifferent to the combinations, preferring none of any others"—D S Watson *Price Theory and its Uses* p 77

तालिका 9.1 उदासीनता अनुसूची

सयोग	X वस्तु		Y वस्तु
1	1	+	18
2	2	+	13
3	3	+	9
4	4	+	6
5	5	+	4
6	6	+	3
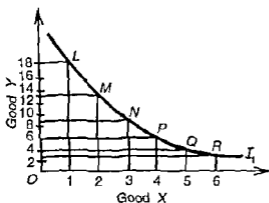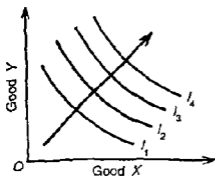
वाले पाँचवे या किसी भी अन्य सयोग को खरीद सकता है। सब सयोग उसे समान सतुष्टि प्रदान करते है। हमने केवल एक अनुसूची ली है, परन्तु दो वस्तुओ की बहुत-सी अनुसूचियाँ ली जा सकती है। वे उपभोक्ता की अधिक या कम सतुष्टि को व्यक्त करती हैं।

यदि विभिन्न सयोगो को चित्र मे अकित करके एक रेखा से मिला दिया जाए, तो उदासीनता वक्र बन जाता है जैसे चित्र 9 1 मे I_1 वक्र। यह उदासीनता वक्र *L, M, N, P, Q,* और *R* बिन्दुओ का पथ है जो दो वस्तुओ के उन सयोगो को दिखाता है जिनके प्रति उपभोक्ता उदासीन है। "यह मात्राओ के जोडों को प्रदर्शित करने वाले बिन्दुओ का पथ है, जिनके बीच व्यक्ति उदासीन होता है। इसलिए इसे उदासीनता वक्र नाम दिया गया है।"[2] यह वक्र वास्तव मे समान सतुष्टि वक्र (Iso-utility curve) है जो अपने सब बिन्दुओ पर समान सतुष्टि को प्रकट करता है।

चित्र 9 1

चित्र 9.2

एक अकेले उदासीनता वक्र का सबध सतुष्टि के केवल एक स्तर से होता है। परन्तु, जैसा कि चित्र 9 2 मे दर्शाया गया है, अनेक उदासीनता वक्र होते है। I_1 और I_4 वक्र जो मूल

2 "It is the locus of points representing pairs of quantities between which the individual is indifferent, so it is termed as *indifference curve*."—J K Eastham, *An Introduction to Economics*, p 50

से दूर है वे सतुष्टि के उच्चतर स्तरो को व्यक्त करते है क्योकि उनके X और Y के बडे सयोग होते है। चित्र मे दिखाए तीर की दिशा मे गति करने को उपभोक्ता अधिमान देगे। ऐसा चित्र जिस मे अनेक उदासीनता वक्र हो उसे उदासीनता मानचित्र (map) कहते है, जहा प्रत्येक उदासीनता वक्र उपभोक्ता की एक भिन्न अनुसूची के अनुसार होता है। यह एक समोच्च रेखा (contour) मानचित्र की तरह होता है जो समुद्र तल से ऊपर भूमि की ऊचाई को दर्शाता है, जहा ऊचाई की बजाय, प्रत्येक उदासीनता वक्र सतुष्टि के एक स्तर को व्यक्त करता है।

3. उदासीनता वक्र विश्लेषण की मान्यताएँ (ASSUMPTIONS OF THE INDIFFERENCE CURVE ANALYSIS)

उदासीनता वक्र विश्लेषण मे गणनसख्या माप सिद्धान्त की कुछ मान्यताएँ ले ली गई है, कुछ अस्वीकार कर दी गई है और कुछ अपनी नई मान्यताए बना ली गई है। क्रमिक सख्या सिद्धान्त की मान्यताएँ ये है

(1) सतुष्टि को अधिकतम बनाने के लिए उपभोक्ता विचारशीलता से कार्य करता है।

(2) X और Y दो वस्तुएँ हैं।

(3) मार्किट मे वस्तुओं की कीमतों की पूरी सूचना उपभोक्ता के पास होती है।

(4) दो वस्तुओ की कीमतें निश्चित है।

(5) समस्त विश्लेषण मे उपभोक्ता की रुचियों, आदतो और आय मे कोई परिवर्तन नहीं होता।

(6) X की अपेक्षा Y की अधिक मात्रा के लिए अथवा Y की अपेक्षा X की अधिक मात्रा के लिए उपभोक्ता का अधिमान होता है।

(7) उदासीनता वक्र की ढलान नीचे दाईं ओर को ऋणात्मक झुकाव की होती है।

(8) उदासीनता वक्र सदैव मूल की ओर उन्नतोदर (convex) होता है।

(9) उदासीनता वक्र समतल और निरतर होता है जिसका अभिप्राय है कि दोनो वस्तुए बहुत विभाज्य है और सतुष्टि के स्तर भी निरतरता से परिवर्तित होते है।

(10) उपभोक्ता दो वस्तुओं को अधिमान के पैमाने मे (scale of preference) मे क्रमबद्ध करता है। इसका अर्थ है कि वस्तुओं के लिए उसका अधिमान और उदासीनता दोनो है। उससे आशा की जाती है कि वह वस्तुओ को अधिमान के क्रम मे रखे और बता सके कि एक सयोग की अपेक्षा दूसरे सयोग के लिए उसका अधिमान अधिक है या वह दोनो के प्रति उदासीन है।

(11) अधिमान और उदासीनता दोनो सकर्मक (transitive) है। इसका अर्थ है, यदि सयोग B की अपेक्षा सयोग A के लिए और सयोग C की अपेक्षा सयोग B के लिए अधिमान अधिक है, तो सयोग C की अपेक्षा सयोग A के लिए अधिक अधिमान होगा। इसी प्रकार, यदि उपभोक्ता A और B के तथा B और C के सयोगो के प्रति उदासीन है, तो वह A और C के सयोगो के प्रति भी उदासीन रहेगा। बहुत से सयोगो मे से सगत (consistent) चुनाव करने के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण मान्यता है।

(12) उपभोक्ता दो वस्तुओ के सभी सभव सयोगो के लिए आदेश दे सकता है।

५. उदासीनता वक्रों की विशेषताएँ
(PROPERTIES OF INDIFFERENCE CURVES)

ऊपर जिन मान्यताओं का वर्णन किया गया है उनसे उदासीनता वक्रों की निम्नलिखित विशेषताएँ प्राप्त होती हैं।
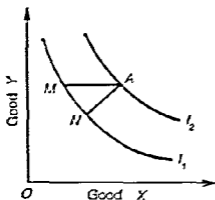
चित्र 9.3

(1) एक उदासीनता वक्र के दाईं ओर अधिक ऊँचा दूसरा उदासीनता वक्र संतुष्टि के अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर और दो वस्तुओं के श्रेष्ठ संयोग को व्यक्त करता है (A higher indifference curve to the right of another represents a higher level of satisfaction and preferable combination of the two goods)—चित्र 9.3 के I_1 और I_2 उदासीनता वक्रों और उन पर क्रमश: N और A संयोगों पर ध्यान दीजिए। क्योंकि A अधिक ऊँचे उदासीनता वक्र पर तथा N के दाईं ओर है, इसलिए उपभोक्ता X और Y दोनों वस्तुओं की अधिक मात्रा लेगा। यदि इन वक्रों पर दो बिन्दु जैसे M और A एक ही समतल पर भी हों, तो भी उपभोक्ता का अधिमान A संयोग के लिए अधिक होगा। यद्यपि वस्तु Y की मात्रा तो उतनी ही रहेगी तथापि उसे वस्तु X की अधिक मात्रा मिलेगी।

(2) दो वक्रों के बीच अनेक वक्र हो सकते हैं (In between two curves there can be a number of curves)—दो उदासीनता वक्रों के बीच में अन्य कई उदासीनता वक्र हो सकते हैं। चित्र पर प्रत्येक बिन्दु की दूरी में एक वक्र हो सकता है।

(3) उदासीनता वक्रों को दी गई संख्याएँ पूर्णतया मनगढ़न्त हैं (The numbers given to indifference curves are absolutely arbitrary)—उदासीनता वक्रों को कोई भी संख्या दी जा सकती है। संख्याएँ आरोही क्रम में हो सकती हैं जैसे 1, 2, 4, 6 या 2, 3, 1, 4 आदि। संख्याओं का इस विश्लेषण में कोई महत्त्व नहीं है।
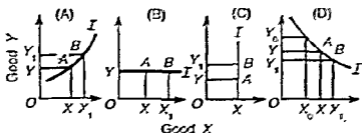
चित्र 9.4

(4) **उदासीनता वक्र का ढलान बाएँ से दाएँ, नीचे की ओर ऋणात्मक होता है** (The slope of an indifference curve is negative, downward sloping from left to right)— इसका अर्थ है कि उदासीनता वक्रों के सभी संयोगों के प्रति उदासीनता के लिए उपभोक्ता X वस्तु की अधिक इकाइयाँ प्राप्त करने के लिए अवश्य Y वस्तु की कम इकाइयों का त्याग करे। इस विशेषता को सिद्ध करने के लिए हम इस धारणा के विपरीत उदासीनता वक्रों को लेते है। चित्र 9 4 (A) मे B संयोग $(OX_1 + OY_1)$ का अधिमान A संयोग की अपेक्षा अधिक है क्योंकि A संयोग में दोनों वस्तुओं की मात्रा कम है। इसलिए उदासीनता वक्र की ढलान बाएँ से दाएँ ऊपर की ओर नहीं हो सकती। यह समान सतुष्टि वक्र नहीं है। इस प्रकार चित्र 9 4 (B) में, A संयोग की अपेक्षा B संयोग का अधिमान अधिक है क्योंकि B संयोग मे Y की मात्रा तो उतनी ही है पर X की मात्रा अधिक है। इसलिए उदासीनता वक्र समानान्तर (horizontal) भी नहीं हो सकता। चित्र 9 4 (C) मे उदासीनता-वक्र अनुलब (vertical) दिखाया गया है। इसमें भी B संयोग का अधिमान A की अपेक्षा अधिक है क्योंकि उपभोक्ता को X की तो उतनी ही मात्रा मिलती है पर Y की अधिक। इसलिए उदासीनता वक्र अनुलब भी नहीं हो सकता। निष्कर्ष यह कि उदासीनता वक्र ऋणात्मक होता है जैसाकि चित्र 9 4 (D) मे दिखाया गया है। इसमे A और B संयोग उपभोक्ता को समान सतुष्टि प्रदान करते है। ज्यो-ज्यो वह A से B संयोग की ओर जाता है, उसे X की अधिक मात्रा प्राप्त करने के लिए Y की कम मात्रा का त्याग करना पड़ता है।

(5) **उदासीनता वक्र न तो एक-दूसरे को छू सकते हैं और न ही काट सकते हैं** (Indifference curves can neither touch nor intersect each other)—इस प्रकार उदासीनता मानचित्र पर एक उदासीन वक्र एक ही बिन्दु से गुजर सकता है। ऐसी स्थिति से जो असगति पैदा होती है उसे चित्र 9.5 (A) मे दिखाया जा सकता है, जहाँ I_1 और I_2 दो वक्र एक-दूसरे को काटते है। उदासीनता वक्र I_2 के बिन्दु B की अपेक्षा I_1 वक्र का बिन्दु A सतुष्टि का ऊंचा स्तर व्यक्त करता है, क्योंकि यह
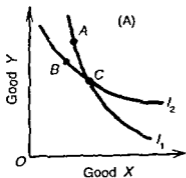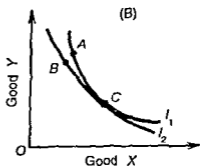
चित्र 9 5 (A) चित्र 9 5 (B)

मूल से अधिक दूरी पर स्थित है। परन्तु बिन्दु C जो दोनों वक्रों पर स्थित है, वह A और B बिन्दुओं के समान स्तर की सतुष्टि प्रदान करता है। इस प्रकार

I_1 वक्र पर $A = C$

और I_2 वक्र पर $B = C$

$A = C$

यह असगत है क्योंकि A को B से अधिमान दिए जाना है। कारण यह कि A ऊंचे वक्र I_1 पर

स्थित है। अत उदासीनता वक्र एक दूसरे को नहीं काट सकते, क्योंकि प्रत्येक उदासीनता वक्र सतुष्टि के एक भिन्न स्तर को व्यक्त करता है। यही तर्क लागू होता है जब दो उदासीनता वक्र एक दूसरे को चित्र 9 5(B) मे C बिन्दु पर छूते है।

चित्र 9 6

(6) **उदासीनता वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श नहीं कर सकता** (An indifference curve cannot touch either axis)—यदि यह X अक्ष को स्पर्श करता हैं जैसा कि चित्र 9 6 मे M बिन्दु पर I_1 वक्र तो उपभोक्ता को X वस्तु की OM मात्रा मिलेगी, पर Y की कोई मात्रा नहीं मिलेगी। इसी प्रकार यदि I_2 उदासीनता वक्र L बिन्दु पर Y अक्ष को स्पर्श करता है, तो उपभोक्ता को Y वस्तु की OL मात्रा ओर X की शून्य मात्रा मिलेगी। ऐसे वक्र इस मान्यता के विरुद्ध हैं कि उपभोक्ता दो वस्तुओं के सयोगों को खरीदता है।

(7) **उदासीनता वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर होते है** (Indifference curves are convex to the origin)—उदासीनता वक्रो की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे मूल बिन्दु के उन्नतोदर होते है। उन्नतोदरता नियम का अर्थ है कि ज्यो-ज्यो उपभोक्ता Y के स्थान पर X को स्थानापन्न करता है, त्यों-त्यो स्थानापन्नता की दर घट जाती है। इसका मतलब है कि ज्यो-ज्यो X की समान मात्राओं मे वृद्धि होती है, Y कम मात्राओं में घटती जाती है। ज्यों-ज्यों हम दाए को चलते है वक्र की ढलान छोटी होती जाती है। इसे सिद्ध करने के लिए हम एक नतोदर (concave) वक्र लेते है जिसमे Y के स्थान पर X की स्थानापन्नता की सीमान्त दर घटने के बजाय बढती जाती है अर्थात् X की अतिरिक्त इकाइयों की प्राप्ति के लिए Y की अधिक इकाइयों का त्याग करना पडता है। जैसा कि चित्र 9 7(A) मे दिखाया गया है, उपभोक्ता X की $bc = de = fg$ इकाइयों के लिए Y की $ab < cd < ef$ इकाइयों का त्याग कर रहा है। परन्तु उदासीनता वक्र मूल बिन्दु के नतोदर नहीं हो सकता।
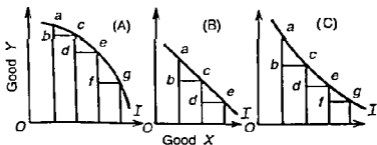
चित्र 9 7

यदि हम एक सीधी रेखा उदासीनता वक्र लें जो दोनो अक्षो से 45° के कोण पर हो, तो दोनों वस्तुओ के बीच स्थानापत्ति की सीमात दर स्थिर होगी जैसाकि पैनल (B) में है जहाँ Y का ab =

X का bc और Y का $cd = Y$ का de इस कारण एक उदासीनता वक्र सीधी रेखा भी नहीं हो सकता। ऐसा वक्र केवल पूर्ण स्थानापन्न वस्तुओ का होता है।

चित्र 9 7 (C) में उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर है। यहाँ उपभोक्ता X की समान अतिरिक्त इकाइयो को प्राप्त करने के लिए Y की क्रमश कम-कम इकाइयो का त्याग कर रहा है अर्थात् X के $bc = de = fg$ के लिए Y का $ab > cd > ef$ अत एक उदासीनता वक्र सदैव मूल के उन्नतोदर होता है क्योकि दो वस्तुओ के बीच स्थानापन्नता की सीमात दर घटती है।

(8) यह आवश्यक नहीं कि उदासीनता वक्र आपस मे समानान्तर हो (Indifference curves are not necessarily parallel to each other)—यद्यपि वे दाईं ओर को ऋणात्मक झुकाव के साथ नीचे को जाते है तो भी सब उदासीनता वक्रो के गिरने की दर समान नहीं होती। दूसरे शब्दो मे, सब उदासीनता अनुसूचियो में दो वस्तुओं की स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर का नितान्त समान होना आवश्यक नहीं। चित्र 9 8 में I_1 और I_2 वक्र एक-दूसरे के समानान्तर नहीं है।

चित्र 9 8

(9) उदासीनता वक्र वास्तव मे चूड़ियो की भाति होते है (Indifference curves are like bangles)—परन्तु सैद्धान्तिक रूप से इनके प्रभावी भागो को खण्डो मे दिखाया जाता है। इसका कारण उदासीनता वक्रो के विषय मे यह मान लिया जाना है कि वे ऋणात्मक ढलान वाले और मूल बिन्दु के उन्नतोदर होते है। चित्र 9 9 मे एक व्यक्ति तब तक अधिक ऊचे उदासीनता वक्रो I_2, I_3 तक चलता जा सकता है, जब तक कि वह तृप्ति बिन्दु S पर नहीं पहुँच जाता जहाँ उसकी कुल सतुष्टि अधिकतम होती है। यदि उपभोक्ता X या Y से अधिक उपभोग करता है तो उसकी कुल सतुष्टि में कमी हो जाएगी। यदि वह X का इतना उपभोग बढा देता है ताकि वह I_3 वक्र के बिन्दुकित भाग मे पहुँच जाए। (बिन्दु S से आगे समानान्तर दिशा मे) तो उसे ऋणात्मक उपयोगिता प्राप्त होती है। यदि उपयोगिता की हानि की क्षतिपूर्ति करने के लिए वह Y का उपभोग बढा देता है तो भी वह के बिन्दुकित भाग पर होगा
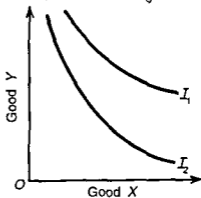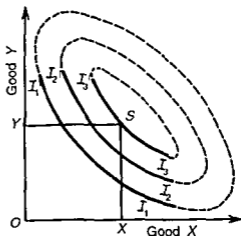
चित्र 9 9

(बिन्दु S से ऊपर लम्ब दिशा में)। इस प्रकार उपभोक्ता चक्रीय वक्र के नतोदर (concave) भाग में होगा। क्योंकि वक्र के बिन्दुकित भाग में जाने पर उसको ऋणात्मक उपयोगिता प्राप्त होती है इसलिए चक्रीय वक्र का प्रभावी भाग मूल बिन्दु के उन्नतोदर होगा, जो समतल वक्रों I_1I_1, I_2I_2 और I_3I_3 द्वारा दिखाया गया है।

5. स्थानापन्नता की सीमान्त दर (MARGINAL RATE OF SUBSTITUTION)

स्थानापन्नता की सीमान्त दर (*MRS*) समान अधिमान वाली X और Y वस्तुओं की कुछ इकाइयों के विनिमय की दर है। X की Y के लिए स्थानापन्नता की सीमान्त दर (MRS_{xy}) वस्तु Y की वह मात्रा है जिसका, X की हर अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए, त्याग किया जाएगा।[3]

आगे दी गई उदासीनता तालिका 9 2 में इस दर की व्याख्या दी गई है।

तालिका 9 2 स्थानापन्नता की सीमांत दर

संयोग	वस्तु X इकाइयाँ	वस्तु Y इकाइयाँ	*MRS* of X for Y
1	1	18	—
2	2	13	5 1
3	3	9	4 1
4	4	6	3 1
5	5	4	2 1
6	6	3	1 1

दूसरे संयोग को प्राप्त करने और फिर भी संतुष्टि के उसी स्तर पर रहने के लिए उपभोक्ता *X की Y के लिए स्थानापन्नता की सीमान्त दर 5 1 है। स्थानापन्नता दर Y की इकाइयों की वह* संख्या है जिसके लिए X की एक इकाई स्थानापन्न है। ज्यों-ज्यों वह X की अतिरिक्त इकाइयों को प्राप्त करने के लिए अग्रसर होता है, वह Y की अपेक्षाकृत कम इकाइयां छोड़ना चाहता है और छठे संयोग में स्थानापन्नता की सीमान्त दर 5 1 से गिरकर 1 1 हो जाती है। चित्र 9 1 में उदासीनता वक्र I_1 के M बिन्दु पर उपभोक्ता X की एक अतिरिक्त इकाई के लिए Y की 5 इकाइयाँ छोड़ने को तैयार है। ज्यों-ज्यों वह वक्र के साथ-साथ M से R की ओर जाता है, वह X की अधिक मात्रा और Y की कम मात्रा प्राप्त करता है। X की अतिरिक्त इकाइयों को प्राप्त करने के लिए Y की जो मात्रा छोड़ने को तैयार है, वह धीरे-धीरे कम ही होती जाती है। उपभोक्ता के इस व्यवहार को **स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर का नियम** (Principle of diminishing marginal rate of substitution) कहते हैं। प्रोफेसर हिक्स ने इसकी परिभाषा इन शब्दों में दी है, "मान लीजिए हम वस्तुओं की निश्चित मात्रा से शुरू करते हैं और फिर इस प्रकार X की मात्रा को बढ़ाते और Y की मात्रा को घटाते चलें कि उपभोक्ता अन्त में न तो पहले से अच्छी और न बुरी अवस्था में हो, तो X की प्रथम इकाई के लिए Y की जितनी मात्रा घटानी पड़ती है, उसकी अपेक्षा X की दूसरी इकाई के लिए Y की कम मात्रा घटाई जाएगी। दूसरे शब्दों में, X को Y के लिए जितना अधिक स्थानापन्न

3 "The marginal rate of substitution of X for $Y(MRS_{xy})$ is defined as the amount of Y the consumer is just willing to give up to get an additional unit of X"—*Leftwitch op cit* p 72

करते हैं, X की स्थानापन्नता की सीमान्त दर उतनी ही कम होती जाती है।"[4]

X की Y के लिए स्थानापन्नता की सीमान्त दर (MRS_{xy}) वास्तव मे उदासीनता वक्र के किसी बिन्दु वक्र की ढलान होती है। इस प्रकार, $MRS_{xy} = \Delta Y / \Delta X$

इसका अर्थ है कि MRS_{xy} वस्तु X के निश्चित परिवर्तन से वस्तु Y मे होने वाले परिवर्तन का अनुपात है। चित्र 9 10 मे वक्र I_1 पर तीन त्रिकोण है। उनके अनुलब भुज ab cd ef, प्रकट करते है ΔY को और समानातर भुज bc, de, fg प्रकट करते हैं ΔX को।

बिन्दु C पर $MRS_{xy} = ab/bc$, बिन्दु e पर cd/de, और बिन्दु g पर $MRS_{xy} = ef/fg$ इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उपभोक्ता ज्यो-ज्यो वक्र के साथ-साथ नीचे की ओर आता है, वह X की अतिरिक्त इकाइयो को प्राप्त करता चलता है ओर Y की कम-कम इकाइयो को छोडता है, अर्थात् MRS_{xy} घटती जाती है।

चित्र 9 10

अपवाद (Exceptions)—X की Y के लिए अथवा Y की X के लिए स्थानापन्नता की सीमान्त दर घटती जाती है, तो उदासीनता वक्र अवश्य मूल बिन्दु के उन्नतोदर होगा। यदि यह दर स्थिर है, तो उदासीनता वक्र प्रत्येक अक्ष के साथ 45° का कोण बनाता हुआ दाएँ को नीचे की ओर ढालू सीधी रेखा के रूप मे होगा, जैसाकि चित्र 9 7 (B)। यदि स्थानापन्नता की सीमान्त दर बढती जाती है, तो उदासीनता वक्र मूल बिन्दु के नतोदर (concave) होगा जैसाकि चित्र 9 7(A) मे।[5] पूर्ण पूरकों की दशा मे MRS_{xy} शून्य होता है क्योकि उदासीनता वक्र L के आकार के होते है जैसाकि वक्र I_1 चित्र 9 11 (A) में। वक्र की वक्रता पर या उसके निकट साधारण पूरकों की स्थानापन्नता की दर तो बहुत कम होती है, जैसा कि चित्र 9 11 (B) मे I_1 वक्र है। जहा स्थानापन्नता की दर A और

चित्र 9 11

4 J R Hicks *Value and Capital* 1947
5 यहा दोनों चित्र बनाइए।
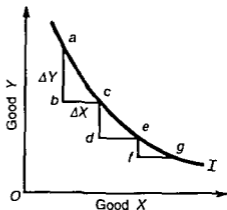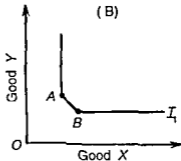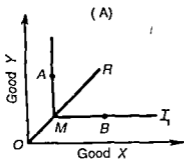
B बिन्दुओं के बीच सीमित है। परन्तु सीधे, नतोदर तथा L के आकार के उदासीनता वक्र स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर के सामान्य नियम के अपवाद हैं।

महत्त्व (Importance)— घटती सीमान्त उपयोगिता के नियम की अपेक्षा स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर का नियम श्रेष्ठ है। प्रो. हिक्स के अनुसार घटती सीमान्त उपयोगिता नियम की बजाय स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर के नियम की स्थापना उपभोक्ता माँग के सिद्धान्त का अनुवाद मात्र नहीं है बल्कि एक प्रत्यक्ष परिवर्तन है। हिक्स का दृष्टिकोण है भी ठीक, क्योंकि मार्शल के विश्लेषण का आधार अंतर्दर्शी गणनसंख्या है जिसमें उपयोगिता की मात्रात्मक माप की जाती है तथा वह केवल एक वस्तु के विश्लेषण तक सीमित है। स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर का नियम वैज्ञानिक और यथार्थ है क्योंकि यह उपयोगिता विश्लेषण के मनोवैज्ञानिक गणनसंख्या माप से मुक्त है। यह वस्तुओं के संयोगों को लेकर उपयोगिता क्रमसंख्या (ordinal) माप करता है। इस बात में यह उपयोगिता सिद्धान्त से श्रेष्ठ है।

6. उपभोक्ता का सन्तुलन
(CONSUMER'S EQUILIBRIUM)

एक उपभोक्ता उस समय सन्तुलन की अवस्था में होता है जब अपनी रुचियों और दो वस्तुओं की कीमतें दी होने पर वह अपनी आय को दो वस्तुओं को खरीदने में इस ढंग से खर्च करता है कि उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो।

इसकी मान्यताएँ (Its assumptions)—उपभोक्ता के सन्तुलन का उदासीनता वक्र विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

(1) दो वस्तुओं X और Y के लिए उपभोक्ता का उदासीनता मानचित्र, उन वस्तुओं के लिए उपभोक्ता के अधिमान के पैमाने पर आधारित है जोकि इस विश्लेषण में बिल्कुल नहीं बदलता।

(2) उसकी मौद्रिक आय दी हुई और स्थिर रहती है। मान लीजिए कि वह 10 रुपये है, जिसे वह विचाराधीन दो वस्तुओं पर खर्च करता है।

(3) दोनों वस्तुओं X और Y की कीमतें भी दी हुई और स्थिर हैं। X की कीमत 2 रुपये प्रति इकाई है और Y की 1 रुपया प्रति इकाई है।

(4) वस्तुएँ X और Y समरूप और विभाज्य हैं।

(5) विश्लेषण के दौरान उपभोक्ता की रुचियों और आदतों में कोई परिवर्तन नहीं होता।

(6) उपभोक्ता विचारशील है और दो वस्तुओं को खरीद कर अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम बनाता है।

(7) मार्किट में पूर्ण प्रतियोगिता है जहाँ से वह दोनों वस्तुएँ खरीदता है।

उपभोक्ता के सन्तुलन की शर्तें (Conditions of Consumer's Equilibrium)—उपभोक्ता के सन्तुलन की तीन शर्तें हैं

(1) बजट रेखा उदासीनता वक्र को स्पर्श करे (The budget line should be tangent to the indifference curve)—इन दी हुई मान्यताओं के रहते हुए, उपभोक्ता अपनी 10 रुपये की कुल राशि को खर्च कर X की 5 इकाइयाँ अथवा Y की 10 इकाइयाँ खरीद सकता है। तालिका 9.3 में उन सम्भव संयोगों में से कुछ संयोग दिखाए गए हैं जिनमें 10 रुपये की राशि बाँटी जा सकती है।

तालिका 9 3 व्यय योजना

सयोग	वस्तु X (इकाइया)	वस्तु Y (इकाइया)
Q	5	0
N	4	2
T	3	4
S	2 ½	5
K	1 ½	7
R	1	8
P	0	10

चित्र 9 12 में इन सात सम्भव सयोगों को P R K S T N और Q बिन्दुओ द्वारा दिखाया गया है। PQ रेखा X और Y वस्तुओं के इन सयोगो को प्रकट करती है जबकि वह दी हुई कीमतो पर इन वस्तुओ को खरीदने मे अपनी आय को खर्च करता हे। ऐसा इसलिए है कि बीजगणित की विधि से

$$I = P_x X + P_y Y$$

जिसमे I उपभोक्ता की आय को और P_x तथा P_y क्रमश वस्तु X और Y की कीमतो को प्रकट करते है। यह 'बजट समीकरण' Q ओर P बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा का समीकरण है जबकि $Q = I/P_x$ और $P = I/P_y$ इस प्रकार PQ वह रेखा है जिसे हम बजट रेखा, कीमत रेखा, कीमत-अवसर रेखा, व्यय रेखा, उपभोग-सभावना रेखा या कीमत-आय रेखा मे से कुछ भी कह सकते है।

इस बजट रेखा पर P, R, K, S, T, N, Q में कुल सात सम्भव सयोग हैं। उपभोक्ता इनमें से किसी भी सयोग को ले सकता है। P या Q सयोग का तो सवाल ही नहीं उठता क्योकि इनमें से प्रत्येक स्थिति में वह केवल X या केवल Y वस्तु को ही ले सकेगा। वह अपेक्षाकृत नीचे उदासीनता वक्र I_1 पर सयोग R या N को भी नहीं लेगा, क्योकि उससे ऊँचे उदासीनता वक्र I पर उसे T सयोग भी मिल सकता है। पर इस बजट रेखा PQ पर एक और सयोग S है जो सबसे ऊँचे उदासीनता-वक्र I_3 पर स्थित है। क्योंकि बाकी सब सयोग अपेक्षाकृत नीचे उदासीनता वक्रो पर स्थित है, इसलिए वे सब सयोग S की अपेक्षा नीचे सतुष्टि-स्तर को प्रकट करते है। इस प्रकार सयोग S ही उपभोक्ता के सतुलन का बिन्दु है। अब हम उपभोक्ता के सतुलन की शर्तों की गणना कर सकते है।

उपभोक्ता उस समय सतुलन मे होता है जब उसकी बजट रेखा उदासीनता वक्र को स्पर्श
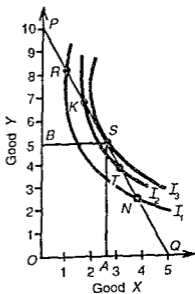
चित्र 9 12

करे। PQ रेखा S बिन्दु पर उदासीनता वक्र I_2 का स्पर्श करती है। S बिन्दु पर वह बजट समीकरण को भी सतुष्ट करता है

$$I \text{ (रु 10)} = OA\,P_x + OB\,P_y$$
$$= X \text{ की } 2\tfrac{1}{2} \text{ इकाई} \times \text{रु } 2 + Y \text{ की 5 इकाई} \times \text{रु } 1$$
$$= \text{रु } 5 + \text{रु } 5$$
$$= \text{रु } 10$$

(2) सतुलन के बिन्दु पर उदासीनता वक्र और बजट रेखा की ढलान समान होनी चाहिए (At the point of equilibrium the slope of the indifference curve and of the budget line should be the same)—बिन्दु S पर उदासीनता वक्र की ढलान वास्तव मे X की Y के लिए स्थानापन्नता की सीमान्त दर है और यह बजट रेखा पर X की कीमत का Y की कीमत से अनुपात है।

बजट रेखा PQ की ढलान $= I/P_y - I/P_x = I/P_y \times Px/I = P_x/P_y$, और I_2 वक्र की ढलान MRS_{xy} है।

इस प्रकार $MRS_{xy} = P_x/P_y$ चित्र 9.12 के बिन्दु S पर।

परन्तु उपभोक्ता सतुलन के लिए यह शर्त आवश्यक होते हुए भी काफी नहीं है।

(3) उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होना चाहिए (Indifference curve should be convex to the origin)—इसलिए, उपभोक्ता सतुलन की अन्तिम शर्त यह है कि X की Y के लिए स्थानापन्नता की सीमान्त दर घटती हुई होनी चाहिए। इसका अर्थ है कि सतुलन बिन्दु पर उदासीनता वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर हो। यदि R बिन्दु पर उदासीनता वक्र मूल बिन्दु के नतोदर हो तो MRS_{xy} बढती जाती है। चित्र 9.13 मे R बिन्दु पर उपभोक्ता सतुष्टि के न्यूनतम बिन्दु पर है। PQ रेखा पर किसी भी अक्ष की ओर R से दूर जाने पर उपभोक्ता अपेक्षाकृत, ऊँचे उदासीनता वक्र पर पहुँच जाएगा। I_2 वक्र पर बिन्दु S, वास्तव मे, अधिकतम सतुष्टि और स्थिर सतुलन का बिन्दु है। इसलिए उदासीनता वक्र के किसी बिन्दु पर सतुलन की स्थिरता के लिए यह आवश्यक है कि किन्ही दो वस्तुओं मे स्थानापन्नता की सीमान्त दर घटती हुई और उनकी कीमतो के अनुपात के बराबर हो। अर्थात् $MRS_{xy} = P_x/P_y$ इसलिए बजट रेखा के स्पर्श बिन्दु पर उदासीनता वक्र का मूल बिन्दु के उन्नतोदर होना आवश्यक है।
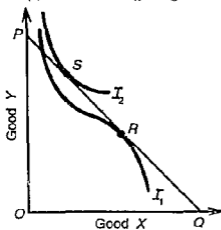
चित्र 9.13

उपभोक्ता के सतुलन के कोण हल (Corner Solutions of Consumer's Equilibrium)

ऊपर के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बजट रेखा और एक उन्नतोदर उदासीनता वक्र के स्पर्श बिन्दु पर उपभोक्ता का सतुलन होता है जब वह दोनों वस्तुओं की कुछ इकाइया खरीदता है। इसे आतरिक हल (interior solution) कहते हैं जैसा कि चित्र 9.13 के बिन्दु S पर जो वस्तु स्थान के अदर स्थित है। हमने यह भी देखा कि यदि उदासीनता वक्र मूल के नतोदर हो, तो उसका बजट रेखा के साथ स्पर्श करने पर भी उपभोक्ता सतुलन मे नहीं हो सकता, जैसे कि चित्र 9.13 के बिन्दु

R पर, क्योंकि इस बिन्दु के दाएं अथवा बाएं जाने पर MRS_{xy} बढ़ती है। फिर भी, सीधी रेखा, नतोदर और उन्नतोदर वक्रों से यह दिखाया जा सकता है कि उपभोक्ता संतुलन में हो सकता है यदि वह दो वस्तुओं की अपेक्षा केवल एक वस्तु का उपभोग करता है। इन सभी स्थितियों में, उपभोक्ता का संतुलन एक कोण हल होगा। परन्तु उपभोक्ता के संतुलन की यह शर्त कि संतुलन बिन्दु पर $MRS_{xy} = P_x P_y$ पूरी नहीं होती है। इन स्थितियों की व्याख्या की जा रही है।

1 एक सीधी रेखा उदासीनता वक्र की स्थिति में, यदि उदासीनता वक्र से बजट रेखा सापेक्षतया कम तिरछी है तो संतुलन कोण में होगा जहां I_1 वक्र PQ बजट रेखा के बिन्दु Q पर मिलता है। उपभोक्ता वस्तु X की OQ मात्रा खरीदता है और Y की बिल्कुल नहीं खरीदता, जैसाकि चित्र 9 14 (A) में दर्शाया गया है। दूसरी ओर, यदि I_1 वक्र से बजट रेखा PQ तिरछी है, जैसा कि चित्र के पेनल (B) में है, तो संतुलन P कोण में होगा जहां दोनों मिलते हैं। उपभोक्ता केवल वस्तु Y की OP मात्रा खरीदता है और X नहीं खरीदता।
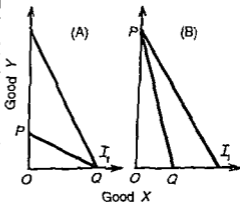
चित्र 9 14

2 नतोदर वक्र की स्थिति का विश्लेषण करने के लिए, चित्र 9 15 की ओर ध्यान दीजिए जहां I_1 वक्र PQ बजट रेखा को R बिन्दु पर स्पर्श करता है। परन्तु R उपभोक्ता की अधिकतम संतुष्टि का बिन्दु नहीं है, क्योंकि R से दूर बजट रेखा के साथ-साथ बाहर की ओर तथा एक अक्ष (3x15) की तरफ गति करने से उपभोक्ता की संतुष्टि को बढ़ाया जा सकता है। बिन्दु A और B उसे उपलब्ध हैं क्योंकि वे ऊंचे उदासीनता वक्र I_2 पर हैं। परन्तु वह अपनी संतुष्टि को और अधिक ऊंचे वक्र I_3 के बिन्दु C पर गति करके अपनी संतुष्टि बढ़ा सकता है तथा और आगे उच्चतम उदासीनता वक्र I_4 के बिन्दु P पर। इस प्रकार, उपभोक्ता बजट रेखा PQ और उदासीनता वक्र I_4 के कोण बिन्दु P पर संतुलन में होगा। वह केवल वस्तु Y की OP मात्रा खरीदेगा और वस्तु X की कोई भी नहीं। यदि उपभोक्ता केवल वस्तु X का उपभोग करना चाहता है तो कोण हल उदासीनता वक्र I_1 के बिन्दु Q पर होगा।

चित्र 9 15

चित्र 9 16
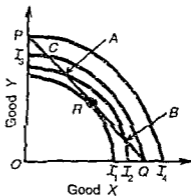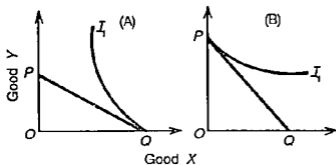
3 जब एक उदासीनता वक्र मूल के उन्नतोदर होता है तो भी कोण हल हो सकता है। यह बहुत सी ऐसी वस्तुओं के बारे में होता है जब उनकी कीमतें इतनी ऊची होती है कि उपभोक्ता अपनी दी हुई आय से एक समय में केवल एक ही वस्तु खरीद सकता है। ऐसी वस्तुए एक कार, एक रगीन टी वी या एक वी सी आर, आदि हो सकती है। चित्र 9 16(A) देखिए जहा वक्र I_1 से बजट रेखा PQ कम तिरछी है। (या PQ रेखा से वक्र I_1 तिरछा है)। ऐसी स्थिति में सतुलन कोण बिन्दु Q पर होगा जहा उपभोक्ता अपनी समस्त आय X वस्तु की OQ मात्रा खरीदने पर व्यय करता है और Y वस्तु पर बिल्कुल नहीं। दूसरी ओर, पेनल (B) में वक्र I_1 से बजट रेखा PQ तिरछी है (या रेखा PQ से वक्र I_1 चपटा है) और उपभोक्ता का सतुलन कोण बिन्दु P पर होगा, जहा वह अपनी समस्त आय केवल Y की OP मात्रा खरीदने पर खर्च करता है और X पर बिल्कुल नहीं। Q और P कोण हल बजट रेखा और उदासीनता वक्र की स्पर्श समानता के निकटतम है जिसे उपभोक्ता पहुच सकता है। इस प्रकार, उन्नतोदर उदासीनता वक्र आतरिक और कोण हल दोनो की व्याख्या करने की सामर्थ्य रखते है।

7. आय प्रभाव
(INCOME EFFECT)

ऊपर उपभोक्ता-सतुलन विश्लेषण में यह मान लिया गया था कि उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है और X तथा Y वस्तुओं की कीमते दी हुई है। उपभोक्ता की रुचियाँ, अधिमान तथा दो वस्तुओं की कीमतें दी होने पर यदि उपभोक्ता की आय में परिवर्तन हो जाए, तो उस परिवर्तन का उसके द्वारा खरीदी गई वस्तुओं पर जो प्रभाव पडता है उसे "आय-प्रभाव" कहते है। यदि उपभोक्ता की आय बढ जाती है तो उसकी बजट रेखा मूल बजट रेखा के समानान्तर दाएँ ऊपर की ओर सरक जाएगी। इसके विपरीत यदि आय घट जाती है तो बजट रेखा बाएँ अन्दर की ओर सरक जाएगी। बजट रेखाएँ एक-दूसरी के समानान्तर होती है क्योंकि सापेक्षिक कीमतो मे परिवर्तन नहीं होता।

चित्र 9 17 मे जब बजट रेखा PQ है, तो सतुलन बिन्दु R है, जहाँ यह उदासीनता वक्र I_1 को स्पर्श करती है। अब यदि उपभोक्ता की आय बढ जाती है, तो PQ दाएँ को सरक कर नई बजट रेखा P_1Q_1 बन जाएगी और नया सतुलन बिन्दु S होगा जहाँ यह उदासीनता वक्र I_2 को स्पर्श करती है। जब आय और बढ जाती है, तो बजट रेखा P_2Q_2 बन जाती है और T उसका सतुलन बिन्दु है। इन R S T सतुलन बिन्दुओं का पथ एक वक्र बनाता है जिसे आय-उपभोग वक्र

[(Income-Consumption Curve (ICC)] कहते हैं। ICC वक्र, दो वस्तुओं की सापेक्ष कीमतों के दिए होने पर, उपभोक्ता की आय मे परिवर्तन के कारण उन वस्तुओ की खरीद पर पडने वाले आय प्रभाव को प्रकट करता है। सामान्य रूप से, जब उपभोक्ता की आय बढ जाती है तो वह दो वस्तुओं की अधिक मात्राएँ खरीदता है। चित्र 9 17 मे PQ बजट रेखा के सतुलन बिन्दु R पर वह Y की RA और X की OA मात्रा खरीदता है। जब उसकी आय बढ जाती है, तो वह P_1Q_1 बजट रेखा के सतुलन बिन्दु S पर Y की SB और X की OB मात्रा तथा P_2Q_2 बजट रेखा के सतुलन बिन्दु T पर Y की TC और X की OC मात्रा खरीदता है। प्राय ICC वक्र की ढलान दाएँ ऊपर की ओर होती है जैसाकि चित्र 9 17 मे दिखाया गया है।
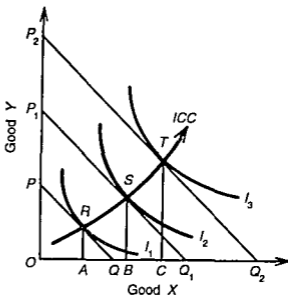
चित्र 9 17

परन्तु ICC वक्र किसी भी आकार का हो सकता है बशर्ते कि वह उदासीनता वक्र को एक से अधिक स्थानो पर न काटे। पाँच प्रकार के आय-उपभोग वक्र हो सकते है। पहले प्रकार की व्याख्या ऊपर चित्र 9 17 मे की जा चुकी है जबकि ICC वक्र की ढलान इसकी पूरी सीमा मे धनात्मक (positive) है यहाँ आय-प्रभाव भी धनात्मक है।

दूसरी प्रकार के ICC वक्र की ढलान शुरू मे धनात्मक होती है परन्तु एक निश्चित बिन्दु के बाद यह समानान्तर हो जाता है और तब उपभोक्ता की आय के निरन्तर बढते रहने पर भी समानान्तर रहता है। चित्र 9 18 (A) मे उदासीनता वक्र I_2 पर बजट रेखा P_1Q_1 के सतुलन बिन्दु R तक ICC वक्र की ढलान ऊपर की ओर है। इस बिन्दु से आगे ढलान समानान्तर हो जाती है जिसका तात्पर्य है कि Y वस्तु के उपभोग सम्बन्ध मे उपभोक्ता तृप्ति बिन्दु पर पहुँच चुका है। अपनी आय मे और वृद्धियो के बावजूद वह Y वस्तु की पहले जितनी मात्रा (RA) ही खरीदता है। ऐसा आवश्यकता की उस वस्तु के बारे मे होता है जिसकी माँग, उपभोक्ता की आय मे और वृद्धि होते रहने पर भी, पहले जितनी रहती है। यहाँ Y आवश्यक वस्तु है।

चित्र 9 18 (B) अनुलम्ब ICC को प्रदर्शित करता है जबकि वस्तु X के उपभोग के सम्बन्ध मे उपभोक्ता का तृप्ति स्तर R पर आ जाता है। अपनी आय मे और वृद्धियो के बावजूद वह इस वस्तु की खरीदी जाने वाली मात्रा को बढाना नहीं चाहता। आय के अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे स्तरो पर भी वह इसकी OA मात्रा ही खरीदता रहता है। यहा वस्तु X आवश्यक वस्तु है।

अन्तिम दो प्रकार के आय उपभोग वक्रो का सम्बन्ध घटिया वस्तुओ से है। जब उपभोक्ता की आय एक निश्चित स्तर से बढ जाती है, तो घटिया वस्तुओ की माँग गिर जाती है और वह उनके स्थान पर बढिया वस्तुओ को स्थानापन्न करता है। वह मोटे अनाज की बजाय गेहू या चावल
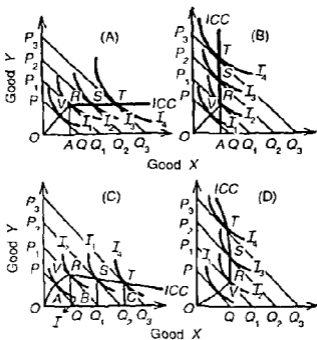
चित्र 9 18

और मोटे कपडे के स्थान पर बढिया किस्म के कपडे को स्थानापन्न कर सकता है। चित्र 9 18 (C) मे वस्तु Y घटिया है। R बिन्दु तक ICC वक्र की ढलान धनात्मक है और इसके बाद वह ऋणात्मक हो जाती है। उपभोक्ता द्वारा खरीदी गई Y की मात्रा, उसकी आय मे वृद्धि के साथ, RA से गिर कर SB और TC हो जाती है। इसी प्रकार चित्र 9 18 (D) मे वस्तु X घटिया है, और इसकी खरीदी गई मात्रा सतुलन बिन्दु R के बाद गिरने लगती है जब ICC वक्र स्वय पीछे को घूम जाता है। इन दोनो स्थितियो में ICC पर बिन्दु R के बाद आय प्रभाव ऋणात्मक है।
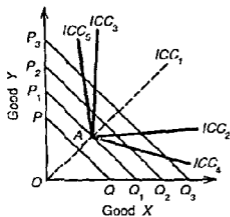
चित्र 9 19

विभिन्न प्रकार के आय उपभोग वक्र चित्र 9 19 मे भी दिखाए गए है। जिनमे (1) ICC_1 का ढलान धनात्मक है। इसका सम्बन्ध सामान्य वस्तुओ से है, (2) ICC_2 बिन्दु A के

बाद समानान्तर हो जाता है। यहाँ X उत्तम वस्तु है जबकि Y आवश्यकता की वस्तु है जिसे अपनी आय में और वृद्धि होने पर भी, उपभोक्ता सामान्य से अधिक मात्रा में नहीं खरीदना चाहता, (3) ICC_3 बिन्दु A के बाद अनुलम्ब हो जाता। यहाँ Y उत्तम वस्तु है और X तृप्त हुई आवश्यकता, (4) ICC_4 की ढलान नीचे की ओर ऋणात्मक है। यहाँ A के बाद Y घटिया वस्तु बन जाती है जबकि X उत्तम वस्तु है, और (5) ICC_5 प्रदर्शित करती है कि X एक घटिया वस्तु है।

आय उपभोग वक्र और ऐंजल वक्र (Income Consumption Curve and Engel Curve)

ऊपर हमने आय उपभोग वक्र (ICC) के बारे में अध्ययन किया जो आय के विभिन्न स्तरों पर एक उपभोक्ता द्वारा X और Y वस्तुओं की जो मात्राएं खरीदी जाएगी उनको दर्शाता है। एक ऐंजल वक्र (EC) व्युत्पन्न करने के लिए ICC का प्रयोग किया जा सकता है। ऐंजल वक्र, जो 19वीं शताब्दी के एक जर्मन के नाम पर जाना जाता है, आय के विभिन्न स्तरों पर उपभोक्ता एक वस्तु की जो मात्राएं खरीदता है उन्हें दर्शाता, उस वस्तु की कीमत, रुचियां और अधिमान दिए होने पर।[6]
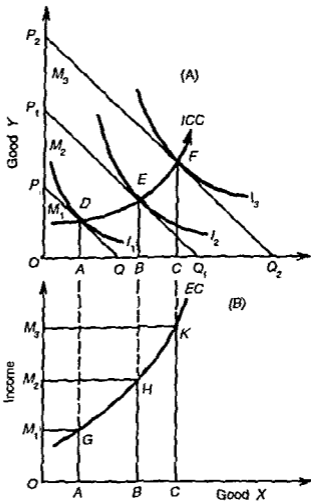
चित्र 9.20

6 ऐंजल ने अपने "परिवार व्यय के नियम" में व्यय और खरीदी गई मात्रा के बीच सबंध का विश्लेषण किया जिसे ऐंजल व्यय वक्र द्वारा दिखाया जाता है, जबकि आय और खरीदी गई मात्रा के बीच सबंध को ऐंजल वक्र द्वारा दिखाया जाता है।
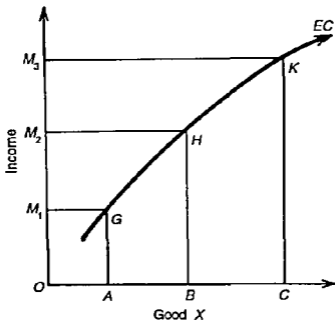
चित्र 9.21
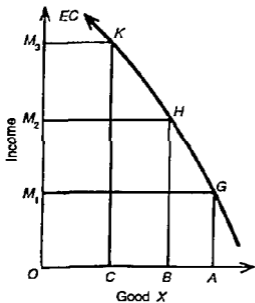
चित्र 9.22

चित्र 9.20 (A) में वस्तु X के लिए ICC से एक ऐंजल वक्र व्युत्पन्न किया गया है। ICC यह दर्शाता है कि उपभोक्ता की आय M_1 से M_2 और M_3 बढने पर X वस्तु की खरीदी गई मात्राए OA से OB और OC बढती है, X और Y की कीमतें दी होने पर। पेनल (B) में, उपभोक्ता की आय अनुलब अक्ष पर और X की खरीदी गई मात्राए समानातर अक्ष पर ली गई है। अब हम आय और X की खरीदी गई मात्राओं के सयोगों को निचले चित्र मे स्थानातर करते हैं। हम ऊपर के चित्र से M_1 आय और X की OA मात्रा को व्यक्त करता हुआ बिन्दु G ट्रेस करते है, M_2 आय और X की OB मात्रा को व्यक्त करता है

बिन्दु H, तथा M_3 आय और X की OC मात्रा को व्यक्त करता बिन्दु K ट्रेस करते है। G H और K बिन्दुओ को मिलाने से हम EC ऐंजल वक्र खींचते है। ICC और EC दोनो वक्र समान नज़र आते है परन्तु ऐसा नहीं है, क्योकि ICC के लिए अनुलब अक्ष वस्तु Y को मापता है और EC के लिए अनुलब अक्ष आय को।

चित्र 9 20 (B) मे ऐजल वक्र एक आवश्यक वस्तु से सबद्ध है क्योकि आय के बढने के साथ X की खरीदी गई मात्रा घटती दर से बढती है, अर्थात् $OA > OB > OC$

परन्तु एक विलासिता के लिए, आय में वृद्धि के साथ X की खरीदी गई मात्रा बढती दर से वृद्धि करती है जैसा कि चित्र 9 21 में दर्शाया गया है जहा $OA < OB < OC$ आवश्यकताए और विलासिताए इकट्ठी लेने पर सामान्य वस्तुए कहलाती है जिनके लिए ऐंजल वक्र बाईं से दाईं ओर ऊपर को ढालू होता है क्योकि आय में वृद्धि होने पर उपभोक्ता X की अधिक मात्रा खरीदता है।

यदि X घटिया वस्तु हो, तो आय बढने के साथ-साथ उपभोक्ता X की कम मात्रा खरीदता है। घटिया वस्तु X के लिए ऐजल वक्र चित्र 9 22 मे दर्शाया गया है जहा वस्तु की खरीदी गई मात्रा OA से OB और OC कम होती है जब उपभोक्ता की आय क्रमश M_1 से M_2 और M_3 बढती है। ऐसा ऐजल वक्र दाए से बाए पीछे की ओर ढालू होता है जैसा कि चित्र मे EC वक्र है।

तटस्थ वस्तु, जैसे नमक है जिसका हर कोई उपभोग करता है, ऐजल वक्र एक अनुलब रेखा होता है जैसा कि चित्र 9 23 के ST खण्ड द्वारा दिखाया गया है। उपभोक्ता की आय बढने के साथ वह वस्तु X की समान मात्रा का उपभोग करता है, अर्थात् $M_3S = M_4C = M_5T$ यह चित्र यह भी दर्शाता है कि ऐजल वक्र का RS खण्ड वस्तु X को आवश्यकता के रूप में और TU खण्ड वस्तु X को घटिया वस्तु के रूप मे व्यक्त करता है।
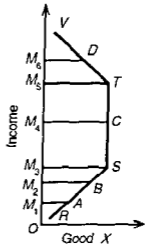
चित्र 9 23

8. स्थानापन्नता प्रभाव
(THE SUBSTITUTION EFFECT)

स्थानापन्नता प्रभाव एक वस्तु की कीमत मे परिवर्तन होने से उसकी माग-मात्रा मे जो परिवर्तन, सापेक्षतया सस्ती वस्तु को महगी के स्थान पर स्थानापन्न करने से, होता है उससे सबधित है, जबकि दूसरी वस्तु की कीमत और उपभोक्ता की वास्तविक आय और रुचिया स्थिर रहे।

स्थानापन्नता प्रभाव को मापने की दो विधिया हैं प्रथम, हिक्स की और द्वितीय, स्लट्स्की की। हम इनका विश्लेषण करते है।

***हिक्स का स्थानापन्नता प्रभाव** (Hicks' Substitution Effect)*

प्रो हिक्स ने आय प्रभाव से स्वतत्र आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन (compensating variation

in income) द्वारा स्थानापन्नता प्रभाव की व्याख्या की है। स्थानापन्नता प्रभाव एक वस्तु की कीमत मे कमी होने से उसकी खरीदी गई मात्रा मे वृद्धि है, जो आय का समायोजन करने के बाद होता है ताकि उपभोक्ता की वास्तविक क्रय शक्ति पहले जैसी ही रहे। आय मे इस समायोजन को क्षतिपूरक परिवर्तन कहते है और इसे नई बजट रेखा के समानातर शिफ्ट द्वारा चित्र मे दिखाया जाता है जब तक यह मूल उदासीनता वक्र को स्पर्श नहीं करती है। इस प्रकार, क्षतिपूरक परिवर्तन की विधि के आधार पर, स्थानापन्नता प्रभाव एक वस्तु की सापेक्ष कीमत मे परिवर्तन के प्रभाव को मापता है, जबकि वास्तविक आय स्थिर रहती है। वस्तु X की कीमत मे कमी होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय मे जो वृद्धि होती है उसको इस प्रकार उपभोक्ता से वापिस ले लिया जाता है कि वह पहले से न तो अच्छी और न ही बुरी स्थिति मे होता है।

स्थानापन्नता प्रभाव की चित्र 9 24 मे व्याख्या की गई है जहा PQ मूल बजट रेखा है जहा पर उपभोक्ता I_1 वक्र के बिन्दु R पर सतुलन मे है जहा वह X की OB मात्रा खरीद रहा है। मान लीजिए कि X की कीमत कम हो जाती है जिससे PQ_1 उसकी नई बजट रेखा होती है। वस्तु X की कीमत कम होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय मे वृद्धि हो जाती है। उसकी आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन करने के लिए, उसकी बढी हुई आय को Y की PM मात्रा या X की Q_1N मात्रा के बराबर उससे वापिस इस प्रकार ले लिया जाता है कि उसकी बजट रेखा बाई और PQ_1 के समानातर MN हो जाती है। यह रेखा MN मूल उदासीनता वक्र I_1 को H बिन्दु पर छूती है जहा उपभोक्ता X की OD मात्रा और Y की DH मात्रा का उपभोग करता है। इस प्रकार, Y की PM मात्रा या X की Q_1N मात्रा आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन को व्यक्त करती है,
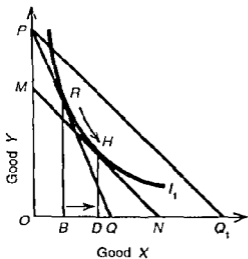
चित्र 9 24

जिसे चित्र मे रेखा MN द्वारा I_1 वक्र को बिन्दु H पर स्पर्श करते हुए दिखाया गया है। अब उपभोक्ता Y के लिए X को स्थानापन्न करता है और R से H बिन्दु पर या समानातर अक्ष पर B से D बिन्दु पर जाता है। यह गति स्थानापन्नता प्रभाव कहलाती है। स्थानापन्नता प्रभाव सदैव ऋणात्मक होता है क्योकि जब एक वस्तु की कीमत कम (या अधिक) होती है तो इसकी अधिक (या कम) मात्रा खरीदी जाएगी, दूसरी वस्तु की कीमत और उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर रहते हुए। दूसरे शब्दो मे, कीमत और मागी गई मात्रा के बीच विपरीत सबध होने के कारण स्थानापन्नता प्रभाव ऋणात्मक होता है।

स्लट्स्की का स्थानापन्नता प्रभाव (The Slutsky's Substitution Effect)

स्लट्स्की[7] ने उपभोक्ता की आभासी (apparent) वास्तविक आय स्थिर मानकर स्थानापन्नता प्रभाव की व्याख्या की। मान लीजिए कि वस्तु X की कीमत कम हो जाती है जिससे उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ती है जिसका समायोजन इस प्रकार किया जाता है कि उपभोक्ता यदि चाहे तो दोनो वस्तुओ का पहले वाला बडल खरीद सके जो कीमत मे परिवर्तन से पूर्व उसके पास था ताकि उसकी वास्तविक आय स्थिर रहे। लेकिन जब वह ऊचे वक्र पर गति करता है तो स्थानापन्नता प्रभाव होता है। प्रो हिक्स स्थानापन्नता प्रभाव को मापने की स्लट्स्की की इस विधि को लागत-अंतर विधि कहता है। स्लट्स्की स्थानापन्नता प्रभाव मे, स्थिर वास्तविक आय का अर्थ है दो वस्तुओ के एक विशेष बडल के रूप मे स्थिर क्रयशक्ति। लागत-अतर का सबध कीमतों में अंतर के कारण क्रयशक्ति मे अतर है। इसकी गणना पुरानी और नई कीमत पर दो वस्तुओ के एक विशेष बडल की लागत मे अतर द्वारा की जाती है।

स्लट्स्की के स्थानापन्नता प्रभाव की चित्र 9.25 द्वारा व्याख्या की गई है जहा मूल रेखा PQ उदासीनता वक्र I_1 को R बिन्दु पर स्पर्श करती है। इस बिन्दु पर उपभोक्ता X की OA मात्रा और Y की AR मात्रा खरीदता है। मान लीजिए कि X की कीमत कम हो जाती है और उसकी नई बजट रेखा PQ_1 है। X की कीमत कम होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय या क्रयशक्ति बढ जाती है। इस बढी हुई आय को लागत-अतर द्वारा इस ढग से वापिस लीजिए कि उपभोक्ता X और Y के मूल बडल R को खरीद सके ताकि उसकी आभासी वास्तविक आय स्थिर रहे। इसके लिए रेखा M_1N_1 इस तरीके से खींची जाती है कि यह PQ_1 रेखा के समानातर बिन्दु R मे से गुजरती है। यह उपभोक्ता की आय को Y की PM_1 या X की Q_1N_1 मात्रा के बराबर कम करना है। परन्तु उपभोक्ता रेखा M_1N_1 पर मूल बिन्दु R पर नहीं हो सकता क्योंकि यह I_1 वक्र को इस बिन्दु पर स्पर्श नहीं करती है। इसलिए वह ऊचे उदासीनता वक्र I_2 के बिन्दु S पर चला जाएगा यहा कीमत-आय रेखा M_1N_1 इसे छूती है। क्योंकि PQ और M_1N_1 रेखाओं की क्रयशक्ति बराबर है, इसलिए इन दोनों की सतुलन स्थितियों R और S के बीच का अतर कीमत-अतर का स्थानापन्नता प्रभाव है। इस प्रकार, समानातर अक्ष पर A से C तक वस्तु X की मात्रा मे वृद्धि X की कीमत मे कमी का स्थानापन्नता

चित्र 9.25

7 E E Slutsky, "On the Theory of Budget of the Consumer", published in 1915 in Italian Reprinted in English in *Readings in Price Theory* 1952

प्रभाव है जब उपभोक्ता Y की GH मात्रा के लिए X की AC मात्रा स्थानापन्न करता है। यह स्लट्स्की का स्थानापन्नता प्रभाव है।

निष्कर्ष (Conclusion)

स्थानापन्नता प्रभाव मापने की दोनों विधियों में से हिक्स की विधि से स्लट्स्की विधि बेहतर है। हिक्स का स्थानापन्नता प्रभाव मूल उदासीनता वक्र पर सतुष्टि के प्रारंभिक स्तर पर लाकर उपभोक्ता की वास्तविक आय को स्थिर रखता है। दूसरी ओर, स्लट्स्की स्थानापन्नता प्रभाव उपभोक्ता को ऊंचे उदासीनता वक्र पर लाकर उसे अधिक सतुष्टि प्रदान करता है। स्लट्स्की विधि में, मार्किट कीमतों और मात्राओं का अवलोकन करके लागत-अंतर के बराबर वास्तविक आय की गणना की जा सकती है, जबकि हिक्स की विधि द्वारा आय में क्षतिपूरक परिवर्तन का अनुमान लगाना कठिन है।

9. कीमत प्रभाव (THE PRICE EFFECT)

कीमत-प्रभाव यह बताता है कि एक वस्तु X की कीमत में परिवर्तन होने से उपभोक्ता द्वारा खरीदी गई उसकी मात्रा में क्या परिवर्तन होता है जबकि उपभोक्ता की आय, रुचियाँ, अधिमान और अन्य वस्तु Y की कीमत दी हुई हो। इसे चित्र 9.26 में दर्शाया गया है। मान लीजिए X की कीमत गिर जाती है। बजट रेखा PQ दाएँ बाहर की ओर बढ़कर PQ_1 हो जाएगी जो यह प्रदर्शित करती है कि उपभोक्ता पहले की अपेक्षा X की अधिक मात्रा खरीदेगा क्योंकि X सस्ती हो गई है। बजट रेखा PQ_2 वस्तु X की कीमत के और गिर जाने को प्रकट करती है। यदि X की कीमत बढ़ जाती है, तो उसे मूल बजट रेखा के बाएँ अन्दर की ओर, बजट रेखा खींच कर दिखाया जाएगा। यदि हम PQ_2 को मूल बजट रेखा मान लें तो वस्तु X की दो बार कीमत बढ़ने पर बजट रेखा अंदर की ओर सरक कर PQ_1 तथा PQ हो जाएगी। P से निकलने वाली प्रत्येक बजट रेखा उदासीनता वक्र I_1, I_2 और I_3 को क्रमश बिन्दु R, S और T पर स्पर्श करती है। इन सतुलन बिन्दुओं के मार्ग को मिलाने वाला वक्र कीमत उपभोग वक्र PCC कहलाता है। कीमत उपभोग वक्र, X की कीमत में परिवर्तन होने से उपभोक्ता द्वारा खरीदी गई दो वस्तुओं X और Y के कीमत-प्रभाव को व्यक्त करता है जबकि उपभोक्ता की आय, रुचियाँ, अधिमान
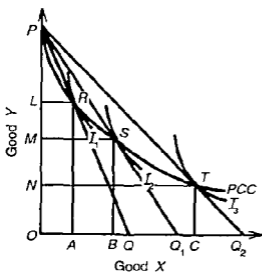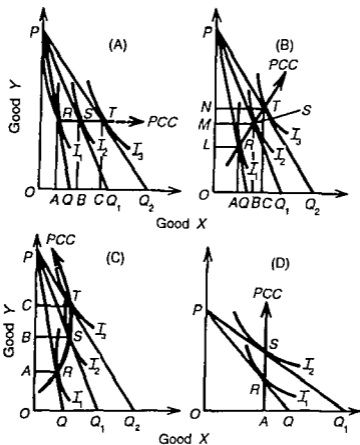
चित्र 9.26

चित्र 9 27

और वस्तु Y की कीमत दिए हुए हो।

चित्र 9 26 मे PCC वक्र की ढलान नीचे की ओर है। ज्यो-ज्यो X की कीमत गिरती है उपभोक्ता अपेक्षाकृत X की अधिक और Y की कम मात्रा खरीदता है। इस प्रकार PCC के R बिन्दु पर X की OA और Y की OL मात्रा की बजाय, वह S बिन्दु पर X की OB और Y की OM मात्रा खरीदता है।

इस प्रकार नीचे की ओर ढालू कीमत उपभोग वक्र यह बताता है कि दो वस्तुएँ X और Y एक दूसरी की स्थानापन्न है। जब दो वस्तुएँ X और Y एक-दूसरे की स्थानापन्न हो, तो उन वस्तुओ मे माँग की प्रतिलोच (cross elasticity of demand), धनात्मक होती है। यदि PCC समानान्तर हो, तो X और Y मे माँग की प्रतिलोच शून्य होती है जिसका अर्थ है कि X और Y असबधित वस्तुएँ है। X वस्तु की कीमत गिरने से यद्यपि X वस्तु की खरीद OA से OB और OC तक बढती है, पर इसका वस्तु Y की माँग पर कोई प्रभाव नहीं पडता जो पहले जितनी ही रहती है $RA = SB = TC$

जैसा चित्र 9 27(A) मे दिखाया गया है। यदि PCC की ढलान ऊपर की ओर हो, तो X और Y पूरक वस्तुएँ होती है। क्रमश R,S,T बिन्दुओ पर उपभोक्ता दोनो वस्तुओ की और अधिक मात्राएँ खरीदता है जैसे कि पेनल (B) मे।

जब PCC की ढलान पीछे को Y अक्ष की ओर हो, जैसाकि पेनल (C) मे, तो X और Y वस्तुओं में माँग की प्रतिलोच ऋणात्मक होती है। X की कीमत मे PQ_1 से PQ_2 की कमी होने पर उसकी माँग BS से CT कम हो जाती है परन्तु Y की माँग OB से OC बढ जाती है। इस स्थिति मे X एक गिफ्फन वस्तु है क्योकि, ज्यो-ज्यो यह सस्ती होती है, उपभोक्ता इसकी कम मात्रा खरीदता है। पेनल (D) मे अनुलब PCC दिखाया गया है जो यह बताता है कि S घटिया वस्तु है क्योकि इसकी कीमत PQ से PQ_1 कम हो जाने पर भी इसकी माँग नहीं बढती बल्कि पहले जितनी OA ही रहती है।

10. कीमत प्रभाव से स्थानापन्नता प्रभाव और आय प्रभाव को अलग करना (THE SEPARATION OF SUBSTITUTION EFFECT AND INCOME EFFECT FROM THE PRICE EFFECT)

हमने ऊपर अध्ययन किया कि वस्तु X की कीमत मे कमी होने से, वस्तु Y की कीमत दी होने पर, उसकी माग मे वृद्धि होती है। यह कीमत प्रभाव है जिसके दो प्रभाव होते है स्थानापन्नता प्रभाव और आय प्रभाव। स्थानापन्नता प्रभाव का सबध वस्तु X की कीमत मे कमी से उसकी मागी गई मात्रा मे वृद्धि से होता है, जब उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर रखी जाए। इससे उपभोक्ता सापेक्षतया महगी वस्तु Y के स्थान पर सस्ती वस्तु X का स्थानापन्न करता है। आय प्रभाव तब होता है जब वस्तु X की कीमत कम होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय मे वृद्धि होती है और वह X की अधिक मात्रा खरीदता है, Y की कीमत स्थिर रखते हुए, उसे आय प्रभाव कहते है। इन दो प्रभावो को कीमत प्रभाव से अलग करने के लिए दो विधिया है, हिक्स विधि और स्लट्स्की विधि जिनकी आगे व्याख्या की गई है।

1. हिक्स विधि (The Hicksian Method)

हिक्स ने उपभोक्ता की वास्तविक आय को स्थिर रखते हुए और एक वस्तु की सापेक्ष कीमत मे परिवर्तन करके आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन द्वारा स्थानापन्नता प्रभाव और आय प्रभाव को कीमत प्रभाव से अलग किया है।

मान लीजिए कि प्रारभ मे उपभोक्ता बजट रेखा PQ के R बिन्दु पर सतुलन मे है जहा उदासीनता वक्र I_1 उसको स्पर्श करता है जैसाकि चित्र 9 28 मे है। अब X की कीमत कम हो जाती है। परिणामस्वरूप, उसकी बजट रेखा बाहर दाई ओर फैलकर PQ_1 हो जाती है, जहा उपभोक्ता इसके साथ ऊँचे उदासीनता वक्र I_2 के बिन्दु T पर सतुलन मे होता है। समानातर अक्ष पर बिन्दु B से E या बिन्दु R से T पर गति वस्तु X की कीमत कम होने पर कीमत प्रभाव को दर्शाती है। वस्तु X की कीमत कम होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ जाती है। उसकी आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन करने और स्थानापन्नता प्रभाव को अलग करने के लिए, उपभोक्ता की आय को Y की PM मात्रा या X की Q_1N मात्रा के बराबर कम कर दिया जाता है, जिसे PQ_1 रेखा के समानातर MN रेखा द्वारा दिखाया गया है, जो मूल उदासीनता वक्र I_1 के साथ बिन्दु H पर स्पर्श करती है। इस प्रकार, I_1 वक्र पर R से H को गति स्थानापन्नता प्रभाव है जिससे उपभोक्ता Y को X द्वारा स्थानापन्न करके X के उपभोग को OB से OD बढाता है क्योकि Y की अपेक्षा X सस्ती है। यह ध्यान देने योग्य है कि जब वस्तु X की कीमत मे कमी (या वृद्धि) होती है, तो स्थानापन्नता प्रभाव सदैव इसकी मागी

गई मात्रा मे वृद्धि (या कमी) लाता है। इस प्रकार, कीमत और मागी गई मात्रा मे विपरीत सबध होने से कीमत परिवर्तन का स्थानापन्नता प्रभाव सदैव ऋणात्मक (negative) होता है, वास्तविक आय स्थिर रखते हुए। इसे स्लट्स्की प्रमेय (Slutsky Theorem) कहते हैं जिसे सर्वप्रथम स्लट्स्की द्वारा माँग के नियम के सबध में व्यक्त किया गया था।

चित्र 9 28
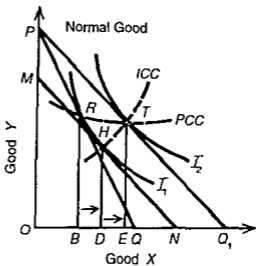
कीमत प्रभाव से आय प्रभाव को अलग करने के लिए, उपभोक्ता से जो मुद्रा ली गई थी उसे वापिस कीजिए ताकि वह PQ_1 बजट रेखा और I_2 वक्र के सतुलन बिन्दु T पर पुन चला जाए। निचले वक्र I_1 के बिन्दु H से ऊचे उदासीनता वक्र I_2 के बिन्दु T पर गति, वस्तु X की कीमत कम होने का आय प्रभाव है। आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन की विधि मे उपभोक्ता की वास्तविक आय मे X की कीमत कम होने से जो वृद्धि हुई है उससे उपभोक्ता सस्ती वस्तु X की अधिक मात्रा समानातर अक्ष पर DE खरीदता है। यह एक साधारण (normal) वस्तु X की कीमत मे कमी का आय प्रभाव है। एक साधारण वस्तु के लिए कीमत परिवर्तन के साथ आय प्रभाव ऋणात्मक होता है।[8] ऐसा इस कारण कि वस्तु X की कीमत मे कमी से वस्तु की मागी गई मात्रा मे DE की जो वृद्धि हुई है, वह उपभोक्ता की वास्तविक आय मे बढोतरी द्वारा है। इस प्रकार, कीमत और माग-मात्रा मे विपरीत सबध है जिसका अभिप्राय माग वक्र की ऋणात्मक ढलान है। यही कारण है कि आय प्रभाव ऋणात्मक है। अत वस्तु X की कीमत मे कमी का DE ऋणात्मक आय प्रभाव BD ऋणात्मक स्थानापन्नता प्रभाव को बल देता है जिससे साधारण वस्तु के लिए कुल कीमत प्रभाव BE भी ऋणात्मक होता है। इसका अभिप्राय है कि वस्तु X की कीमत मे कमी होने से, दोनो प्रभावों के जोड से, वस्तु की माग-मात्रा में वृद्धि हुई है। इसे स्लट्स्की समीकरण (Slutsky equation) के रूप मे इस प्रकार लिखा जा सकता है कीमत प्रभाव $(-) BE = (-) BD$ (स्थानापन्नता प्रभाव) + $(-) DE$ (आय प्रभाव)।

एक घटिया वस्तु के लिए स्थानापन्नता और आय प्रभाव (Substitution and Income Effects for an Inferior Good)

यदि X घटिया वस्तु हो, तो X की कीमत में कमी होने से आय प्रभाव **धनात्मक होगा**

8 यह भ्राति पाई जाती है कि क्या आय प्रभाव धनात्मक (positive) या ऋणात्मक (negative) है। जब आय प्रभाव स्वय आय मे परिवर्तन से ही सबधित हो जैसा कि चित्र 9 17 में ICC वक्र द्वारा दिखाया गया है, तो यह धनात्मक होता है क्योकि आय बढने के साथ X की अधिक मात्रा मागी जाती है। परन्तु जब आय प्रभाव को कीमत परिवर्तन से सबधित क्षतिपूरक परिवर्तन विधि का प्रयोग करके उपभोक्ता की वास्तविक आय मे परिवर्तन द्वारा समझाया जाता है तो वह साधारण वस्तुओ के लिए ऋणात्मक और घटिया एव गिफ्फन वस्तुओ के लिए धनात्मक होता है।

क्योकि जब उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ती है तो वह X की पहले से कम मात्रा की माग करेगा।[9] दूसरी ओर, ऋणात्मक स्थानापन्नता प्रभाव से X की मागी गई मात्रा मे वृद्धि होगी। दूसरे शब्दो मे, जब घटिया वस्तु X की कीमत कम होती है तो उपभोक्ता आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन के कारण स्थानापन्नता प्रभाव के अन्तर्गत इसकी अधिक मात्रा खरीदता है, और वास्तविक आय बढने के कारण आय प्रभाव के अन्तर्गत कम मात्रा खरीदता है और बाकी राशि को किसी अन्य वस्तु पर खर्च करता है। परन्तु घटिया वस्तु के लिए धनात्मक आय प्रभाव से ऋणात्मक स्थानापन्नता प्रभाव अधिक शक्तिशाली होता है जिससे कुल कीमत प्रभाव ऋणात्मक होगा।

X को घटिया वस्तु के रूप मे चित्र 9 29 मे दर्शाया गया है। प्रारभ मे उपभोक्ता बिन्दु R पर सतुलन मे है जहा बजट रेखा PQ उदासीनता वक्र I_1 को स्पर्श करती है। X की कीमत कम होने से वह PQ_1 रेखा पर ऊँचे उदासीनता वक्र I_2 के साथ बिन्दु T पर चला जाता है। उसकी बिन्दु R से T या समानातर अक्ष पर B से E को गति कीमत प्रभाव है। आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन द्वारा वह नई बजट रेखा MN के बिन्दु H पर मूल वक्र I_1 के साथ सतुलन मे होता है। वक्र I_1 पर बिन्दु R से H को गति स्थानापन्नता प्रभाव है जिसे वस्तु X की अधिक माँग-मात्रा BD द्वारा मापा गया है। आय प्रभाव को अलग करने के लिए जब उपभोक्ता से ली गई वास्तविक आय उसे वापिस कर दी जाती है, तो वह PQ_1 रेखा और I_2 वक्र के स्पर्श बिन्दु T पर पहुच जाता है। बिन्दु H से T की गति घटिया वस्तु X की कीमत में कमी का आय प्रभाव है जो DE है। यह आय प्रभाव धनात्मक है क्योकि
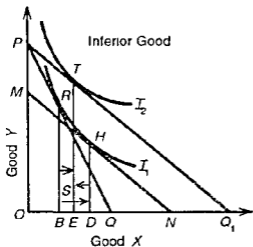
चित्र 9 29

घटिया वस्तु X की कीमत कम होने से जब उपभोक्ता की वास्तविक आय मे वृद्धि हुई तो वह इसकी DE कम मात्रा खरीदता है। जब कीमत और माग-मात्रा का आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन द्वारा सीधा सबध हो तो आय प्रभाव धनात्मक होगा।

एक घटिया वस्तु के लिए धनात्मक आय प्रभाव से ऋणात्मक स्थानापन्नता प्रभाव बडा होता है जिससे कुल कीमत प्रभाव ऋणात्मक होगा। अत कीमत प्रभाव $(-) BE = (-) BD$ (स्थानापन्नता प्रभाव) $+ DE$ (आय प्रभाव)। दूसरे शब्दो मे, बिन्दु R से T को पूर्ण कीमत गति, जिसमे आय और स्थानापन्नता प्रभाव दोनों शामिल है, X की कीमत कम होने के बाद माग-मात्रा मे BE की वृद्धि दर्शाती है। यह घटिया वस्तु के बारे मे भी नीचे की ओर ढालू माग वक्र को स्थापित करती है।

9 कीमत और मागी गई मात्रा का सबध सीधा होने के कारण यह प्रभाव धनात्मक होता है, अर्थात् कीमत कम होने से माग-मात्रा कम होना या कीमत बढने से माग-मात्रा बढना, जब उपभोक्ता की वास्तविक आय मे परिवर्तन द्वारा यह प्रभाव हो।

गिफ्फन वस्तु के लिए स्थानापन्नता और आय प्रभाव (Substitution and Income Effect for a Giffen Good)

एक बहुत घटिया वस्तु गिफ्फन वस्तु होती है, जो राबर्ट गिफ्फन के नाम पर कहलाती है। गिफ्फन ने यह पाया कि आयरलैड के गरीब किसानों के लिए आलू एक अनिवार्य खाद्य पदार्थ था। उसने यह देखा कि 1848 के अकाल मे आलुओ की कीमत मे वृद्धि से उनकी मागी गई मात्रा मे बढोतरी हुई। उसके पश्चात उनकी कीमत मे कमी से उनकी माग-मात्रा मे कमी हो गई। आवश्यक खाद्य पदार्थों के लिए कीमत और माँग-मात्रा मे यह सीधा सबध **गिफ्फन विरोधाभास** (Giffen paradox) कहलाता है। ऐसी विरोधाभासी प्रवृत्ति का यह कारण है कि जब जनसाधारण के उपभोग के किसी खाद्य पदार्थ जैसे ब्रैड की कीमत बढती है तो उसका प्रभाव यह होता है कि उपभोक्ताओं की वास्तविक आय कम हो जाती है, जो अधिक महँगी खाद्य वस्तुओ पर अपने खर्च कम कर देते है, जिसके परिणामस्वरूप ब्रैड की माग बढ जाती है। इसी प्रकार, ब्रैड की कीमत कम होने से उपभोक्ताओ की वास्तविक आय मे वृद्धि होती है जो ब्रैड के स्थान पर अन्य महगी खाद्य वस्तुओ को स्थानापन्न करते है जिससे ब्रैड की माग कम हो जाती है।

एक गिफ्फन वस्तु के लिए ऋणात्मक स्थानापन्नता प्रभाव से धनात्मक आय प्रभाव शक्तिशाली होता है जिससे इसकी कीमत कम होने पर उपभोक्ता इसकी कम मात्रा खरीदता है। इसे चित्र 9.30 मे दिखाया गया है। मान लीजिए कि X गिफ्फन वस्तु है और प्रारभिक सतुलन बिन्दु R है जहा PQ बजट रेखा उदासीनता वक्र I_1 को स्पर्श करती है। अब X की कीमत कम होती है और उपभोक्ता नई बजट रेखा PQ_1 और उदासीनता वक्र I_2 के स्पर्श बिन्दु T पर चला जाता है। उसकी R से T को गति कीमत प्रभाव है जिससे वह X की BE कम मात्रा खरीदता है। स्थानापन्नता प्रभाव को अलग करने के लिए, X की कीमत मे कमी से जो वास्तविक आय मे वृद्धि हुई है उसे उपभोक्ता से लेने के लिए PQ_1 रेखा के समानातर MN रेखा खींची गई है जो मूल उदासीनता वक्र I_1 को H बिन्दु पर स्पर्श करती है। परिणामस्वरूप, वह I_1 वक्र के साथ-साथ बिन्दु R से H को गति करता है। यह ऋणात्मक स्थानापन्नता प्रभाव है जो X की कीमत कम होने पर, उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर रहते हुए, अधिक मात्रा BD खरीदता है। आय प्रभाव को अलग करने के लिए जब उपभोक्ता से ली हुई आय को वापिस कर दिया जाता है तो वह बिन्दु H से T पर चला जाता है जिससे वह X के उपभोग की बहुत अधिक मात्रा DE कम कर देता है। यह धनात्मक आय प्रभाव है क्योंकि गिफ्फन वस्तु X की कीमत में
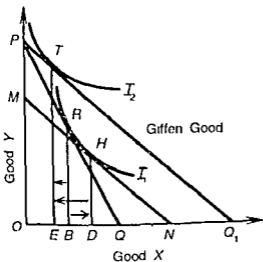
चित्र 9.30

कमी होने से आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन द्वारा इसकी माग-मात्रा DE कम होती है। दूसरे शब्दो मे, यह कीमत परिवर्तन के प्रति धनात्मक है, अर्थात् वस्तु X की कीमत मे कमी से, आय प्रभाव द्वारा, मागी गई मात्रा कम हो जाती है। इस प्रकार, एक गिफ्फन वस्तु के लिए ऋणात्मक स्थानापन्नता प्रभाव से धनात्मक आय प्रभाव शक्तिशाली होने के कारण कुल कीमत प्रभाव धनात्मक होता है। यही कारण है कि एक गिफ्फन वस्तु के माग वक्र की धनात्मक ढलान बाए से दाए ऊपर की ओर होती है। अत कीमत प्रभाव $BE = DE$ (आय प्रभाव) + $(-)BD$ (स्थानापन्नता प्रभाव)।

हिक्स के अनुसार, एक वस्तु को गिफ्फन वस्तु होने के लिए तीन शर्तों को पूरा करना आवश्यक है (i) उपभोक्ता उस पर अपनी आय का बहुत बडा भाग व्यय करे, (ii) यह घटिया वस्तु हो जिसका आय प्रभाव शक्तिशाली हो, और (iii) स्थानापन्नता प्रभाव कमजोर हो। परन्तु गिफ्फन वस्तुएँ बहुत दुर्लभ होती है जो इन शर्तो को पूरा कर सके।

निष्कर्ष (Conclusion)

हिक्स के कीमत प्रभाव को स्थानापन्नता प्रभाव और आय प्रभाव मे बाटने की विधि दोषपूर्ण है, क्योकि यह जानना सभव नहीं है कि उपभोक्ता की वास्तविक आय मे कितना परिवर्तन किया जाए ताकि उसे मूल उदासीनता वक्र पर रखा जा सके। इस कारण, इसमे व्यावहारिक उपयुक्तता का अभाव है। स्लट्स्की विधि उपभोक्ता की आभासी वास्तविक आय को लेकर आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन द्वारा इसको सुलझाने का प्रयत्न करती है।

2. स्लट्स्की विधि (The Slutsky Method)

स्लट्स्की ने, उपभोक्ता की आभासी वास्तविक आय (apparent real income) को स्थिर मान कर, कीमत प्रभाव के इन आय और स्थानापन्नता प्रभावो की व्याख्या की। X की कीमत गिरने से जब उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ जाती है, तो वह बढी हुई आय इस प्रकार समायोजित (adjust) की जाती है कि यदि उपभोक्ता चाहे तो X की पहले जितनी मात्रा खरीद सकता है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी आभासी वास्तविक आय स्थिर रहती है। इसका कारण यह है कि जब स्थानापन्नता-प्रभाव होता है तो वह अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे उदासीनता-वक्र पर चला जाता है। इसका मतलब है कि स्लट्स्की-प्रभाव एक बिन्दु के गिर्द घूमने वाली बजट रेखाओं के अनुरूप है जहाँ वे एक-दूसरी को काटती है जैसे चित्र 9 31 मे बिन्दु R प्रो टिक्स इसे लागत-अन्तर विधि कहता है। मान लो कि वस्तु X की कीमत कम हो जाती है परन्तु उपभोक्ता की आभासी वास्तविक आय मे कोई परिवर्तन नहीं होता इसलिए X की कीमत कम होने से उसकी बढी हुई आय उससे इस प्रकार ले ली जाती है कि वह X तथा Y वस्तुओ का पहला सयोग ही ले सके। स्लट्स्की-प्रभावो को चित्र 9 31 मे दिखाया गया है। उपभोक्ता R बिन्दु पर सतुलन मे है जहाँ उदासीनता वक्र I_1 को बजट रेखा PQ छूती है। जब X की कीमत कम होती है तो नई बजट रेखा PQ_1 हो जाती है जहाँ उपभोक्ता I_2 वक्र के T बिन्दु पर सतुलन मे होता है। उपभोक्ता का बिन्दु R से T पर जाना कीमत प्रभाव है। X की कीमत कम होने से लागत-अन्तर द्वारा उपभोक्ता की बढी हुई आय को इस प्रकार कम करना है कि वह पहले वाले सयोग R को ही खरीद सके क्योकि ऐसा मान लिया गया है कि उसकी आभासी वास्तविक आय स्थिर रहती है। इसके लिए M_1N_1 रेखा इस प्रकार खीची गई है कि वह R बिन्दु मे से गुजरे। यह एक प्रकार से वस्तु Y की PM_1 मात्रा तथा वस्तु X की Q_1N_1 मात्रा के बराबर उपभोक्ता की आय कम कर दी जाती है। परन्तु नई बजट रेखा M_1N_1 पर उपभोक्ता S बिन्दु पर सतुलन में होता है जहाँ यह रेखा I_2 वक्र को छूती है। वास्तव में X वस्तु Y की अपेक्षा

सस्ती होने से उपभोक्ता X को Y के स्थान पर स्थानापन्न करता है। अत वह Y की GH मात्रा त्याग कर X की AC मात्रा अधिक लेता है। उपभोक्ता का बिन्दु R से S को जाना स्लट्स्की स्थानापन्नता प्रभाव है। यदि उपभोक्ता से ली गई आय को उसे लौटा दिया जाय तो वह S बिन्दु से I_3 वक्र के T बिन्दु पर चला जाएगा। उपभोक्ता का S से T पर जाना
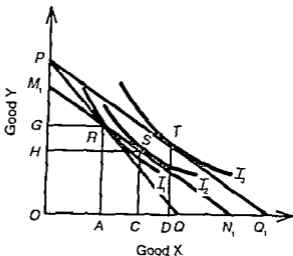
चित्र 9.31

आय प्रभाव है। इस प्रकार जब X वस्तु की कीमत कम होती है तो बिन्दु R से T पर गति कीमत प्रभाव है जिससे उपभोक्ता X वस्तु की AD अधिक मात्रा खरीदता है। इस कीमत प्रभाव का पहला प्रभाव स्थानापन्नता प्रभाव AC है जो उपभोक्ता का R से S बिन्दु पर जाना दर्शाता है। इसका दूसरा प्रभाव आय प्रभाव है जिसके कारण उपभोक्ता जब S से T पर जाता है तो Y की CD मात्रा खरीदता है।

स्लट्स्की बनाम हिक्स कीमत प्रभाव से स्थानापन्नता प्रभाव और आय प्रभाव को अलग करना
(Slutsky *vs* Hicks Effects Separation of Income and Substitution Effects from Price Effect)

हिक्स तथा स्लट्स्की कीमत प्रभाव के आय प्रभाव तथा स्थानापन्नता प्रभाव को पृथक्-पृथक ढगों से अलग करते हैं। हिक्स के अनुसार, जब Y वस्तु की कीमत गिरती है तो उसका दोहरा प्रभाव यह होता है कि प्रथम उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है और वह क्षतिपूरक परिवर्तन के आधार पर स्थानापन्नता प्रभाव के माध्यम से पहले वाले उदासीनता वक्र पर रहता है। ऐसा दोनों वस्तुओं X तथा Y की सापेक्ष कीमतों मे परिवर्तन के कारण होता है जिससे उपभोक्ता की बढ़ी हुई वास्तविक आय दोनों वस्तुओं पर इस प्रकार खर्च हो जाती है कि वह न तो पहले से अच्छी और न ही बुरी अवस्था मे होता है।

अत उपभोक्ता स्थानापन्नता-प्रभाव के अन्तर्गत उसी उदासीनता वक्र I_1 पर चला जाता है जैसा कि चित्र 9 32 में दिखाया गया है। जैसाकि ऊपर देखा गया है, स्लट्स्की स्थानापन्नता प्रभाव के अनुसार X वस्तु की कीमत गिरती है तो उपभोक्ता बढ़ी हुई आय इस प्रकार खर्च करता है कि यदि वह चाहे तो X तथा Y की पहले वाली मात्राएँ ही खरीद सके ताकि उसकी आभासी वास्तविक आय में कोई परिवर्तन न हो। परन्तु स्थानापन्नता प्रभाव ऊँचे वक्र I पर होता है।

चित्र 9.32 हिक्स ओर स्लट्स्की द्वारा स्थानापन्नता ओर आय प्रभावों को कीमत प्रभाव मे

चित्र 9.32
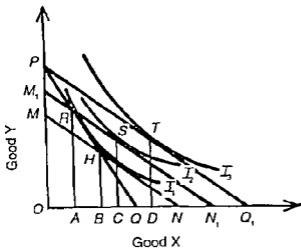
अलग करने की व्याख्या करता है। यहाँ PQ मूल बजट रेखा है जहाँ उदासीनता वक्र I_1 पर R सतुलन का विन्दु है जिस पर उपभोक्ता X की OA और Y की RA मात्रा खरीदता है। अब X की कीमत गिर जाने से बजट रेखा फैलकर PQ_1 हो जाती है और उपभोक्ता ऊँचे उदासीनता वक्र I_3 के बिन्दु T पर आ जाता है। R से T पर गति कीमत प्रभाव है जो यह बताता है कि X की कीमत गिरने से उपभोक्ता उसकी पहले की अपेक्षा AD मात्रा अधिक खरीदता है। यह कीमत प्रभाव मिश्रण है आय प्रभाव और स्थानापन्नता प्रभाव का, जिन्हें दो तरह से अलग किया जा सकता है। हिक्स का अनुसरण करते हुए हम PQ_1 के समानान्तर MN रेखा इस प्रकार खींचते हैं कि उपभोक्ता उसी वास्तविक आय-स्तर पर मूल उदासीनता वक्र I_1 और बजट रेखा MN के बिन्दु H पर होता है। वक्र I_1 के बिन्दु R से H पर गति स्थानापन्नता प्रभाव को मापती है। परिणामस्वरूप, उपभोक्ता X की पहले से AB मात्रा अधिक खरीदता है। X की शेष BD मात्रा की वृद्धि, आय प्रभाव के H से T पर होने का परिणाम है।

स्लट्स्की विधि के अनुसार, PQ_1 के समानान्तर नई बजट रेखा M_1N_1 इस प्रकार खींची गई है कि X की कीमत गिर जाने के बाद भी उपभोक्ता की आभासी वास्तविक आय स्थिर रहती है। यदि M_1N_1 रेखा बिन्दु R में से गुजरे तो संयोग R को खरीदने के लिए उपभोक्ता के पास उतनी ही मौद्रिक आय रहती है जिसे वह पुरानी बजट रेखा PQ पर खरीद रहा था। परन्तु वास्तव में M_1N_1 बजट रेखा के संयोग S के लिए उपभोक्ता का अधिमान R की अपेक्षा अधिक है क्योंकि बिन्दु R अपेक्षाकृत नीचे वक्र I_1 पर है जबकि बिन्दु S उस बजट रेखा पर स्थित है जो अपेक्षाकृत ऊँचे वक्र I_2 का स्पर्श करती है। R से S पर गति स्लट्स्की का स्थानापन्नता प्रभाव है। परिणामस्वरूप, उपभोक्ता X की AC मात्रा अधिक खरीदता है और S से T पर गति या X की CD मात्रा आय प्रभाव है। जैसाकि चित्र से स्पष्ट है, हिक्स और स्लट्स्की स्थानापन्नता प्रभावों में अंतर BC है। ऐसा इस कारण कि हिक्स के स्थानापन्नता प्रभाव से स्लट्स्की प्रभाव बड़ा है। दूसरी ओर, स्लट्स्की आय प्रभाव (CD) से हिक्स का आय प्रभाव (BD) बड़ा है।

यदि X घटिया वस्तु (Inferior Good) हो तो X की कीमत गिर जाने से कीमत प्रभाव के जो स्थानापन्नता प्रभाव तथा आय प्रभाव होंगे उनको हिक्स एवं स्लट्स्की की विधियों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। चित्र 9.33 में उपभोक्ता का R से T पर जाना हिक्स तथा स्लट्स्की दोनों के अनुसार कीमत प्रभाव है। उसकी उसी उदासीनता वक्र I_1 पर R से H की गति हिक्स के स्थानापन्नता प्रभाव के अनुसार होती है तथा R से S की गति स्लट्स्की के स्थानापन्नता प्रभाव के अनुसार ऊँचे वक्र I_2 पर होती है। X वस्तु घटिया होने पर जब इसकी कीमत गिरती है तो आय प्रभाव से

चित्र 9 33

स्थानापन्नता प्रभाव बड़ा होता है। यही बात यह दोनो विधियां स्पष्ट करती है। X घटिया वस्तु होने पर उसकी कीमत कम होने से इसकी पहले से कम मात्रा खरीदता है। हिक्स के आय प्रभाव के अनुसार उपभोक्ता H से T को चला जाता है और Y की BD कम मात्रा खरीदता है। जबकि स्लट्स्की विधि के अनुसार वह S से T पर जाता है तथा X की CD कम मात्रा खरीदता है।
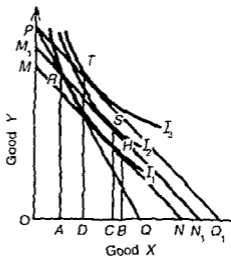
जैसाकि चित्र से स्पष्ट है, घटिया वस्तु X के बारे जब उसकी कीमत कम होती है तो स्लट्स्की के स्थानापन्नता प्रभाव (AC) से हिक्स का स्थानापन्नता प्रभाव (AB) बड़ा है। इसी प्रकार, स्लट्स्की के आय प्रभाव (CD) से हिक्स का आय प्रभाव (BD) बड़ा है।

निष्कर्ष (Conclusion)—स्लटस्की विधि वास्तविक आय को स्थिरता के समीप लाने का अच्छा प्रयत्न है जो हिक्स-विधि से श्रेष्ठ है। स्लट्स्की का स्थानापन्नता प्रभाव उपभोक्ता को ऊंचे उदासीनता वक्र पर लाकर अधिक सतुष्टि प्रदान करता है जबकि हिक्स का स्थानापन्नता प्रभाव उसे पहले वाली स्थिति पर ही ले आता है। हिक्स स्वयं इसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए लिखता है कि इसके अनुसार "स्थानापन्नता प्रभाव वास्तविक आय को स्थिर मान कर सापेक्ष कीमतो मे परिवर्तन के प्रभाव को मापता है, तथा आय प्रभाव वास्तविक आय मे परिवर्तन के प्रभाव को मापता है।"[10] हिक्स का स्थानापन्नता प्रभाव दुर्बल है क्योंकि यह आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन पर निर्भर करता है। स्लट्स्की विधि के अनुसार लागत-अन्तर के बराबर आय का मार्किट की स्थिति और व्यवहार से सीधा हिसाब लगाया जा सकता है जबकि आय मे क्षतिपूरक परिवर्तन का हिसाब लगाना कठिन होता है। उदासीनता वक्र का बिल्कुल ज्ञान न होने पर भी मार्किट कीमतो और उन कीमतो पर खरीदी गई मात्राओ से स्लट्स्की के आय प्रभाव तथा स्थानापन्नता प्रभाव को आसानी से आका जा सकता है। हिक्स इस बात को स्वीकार करते हुए लिखता है कि स्लट्स्की का आय प्रभाव सरलता से दिखाया जा सकता है जबकि क्षतिपूरक परिवर्तन विधि आय प्रभाव को स्थानापन्नता प्रभाव के साथ जोड कर जटिल बना देती है। अतः स्लट्स्की विधि व्यावहारिक दृष्टिकोण से हिक्स विधि से श्रेष्ठ है।

11. कीमत उपभोग वक्र से माँग वक्र खींचना (TO DERIVE DEMAND CURVE FROM PCC CURVE)

कीमत उपभोग वक्र (PCC) किसी वस्तु की कीमत मे परिवर्तन होने पर उपभोक्ता द्वारा उस वस्तु

10 J R Hicks *Revision of Demand Theory*, p 62, emphasis mine

की खरीदी गई विभिन्न मात्राओं को प्रकट करता है। मार्शल का माँग वक्र भी विभिन्न कीमतों पर उपभोक्ता द्वारा एक वस्तु की खरीदी गई विभिन्न मात्राओं को बताता है जबकि अन्य बातें समान रहती हैं। जब उपभोक्ता की मौद्रिक आय और उसका उदासीनता मानचित्र दिए हों, तो PCC से किसी वस्तु के लिए उपभोक्ता का माँग वक्र खींचा जा सकता है। एक वस्तु की दी हुई कीमत माँग अनुसूची से परम्परागत माँग वक्र खींचना आसान है जबकि PCC से माँग वक्र खींचना कुछ जटिल है। परन्तु पहले से दूसरा तरीका अच्छा है क्योंकि यह इन मान्यताओं को नहीं लेता कि उपयोगिता मापी जा सकती है तथा मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर होती है। PCC से माँग वक्र का व्युत्पन्न करना किसी वस्तु की कीमत में उतार-चढ़ाव के आय और स्थानापन्नता प्रभावों की भी व्याख्या करता है। मार्शल का माँग वक्र इनकी व्याख्या करने में असमर्थ रहता है। PCC जिससे माँग वक्र खींचा जाता है, माँग की कीमत-लोच को भी प्रकट करता है। कुल मिलाकर माँग वक्र के व्युत्पन्न करने की क्रमसंख्या (ordinal) तकनीक मार्शल के तरीके से अच्छी है।

मान्यताएँ (Assumptions)

इस विश्लेषण की मान्यताएँ इस प्रकार हैं कि (1) उपभोक्ता द्वारा खर्च की जाने वाली मुद्रा दी हुई और स्थिर है। वह 10 रुपये है। (2) वस्तु X की कीमत गिरती है। (3) अन्य सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन नहीं होता। (4) उपभोक्ता की रुचियाँ और अधिमान स्थिर रहते हैं।

दो मंजिले चित्र 9.34 के ऊपरी भाग में मुद्रा (रुपयों में) Y अनुलंब अक्ष पर ली गई है और समानान्तर अक्ष पर वस्तु X की PQ, PQ_1 और PQ_2 उपभोक्ता की बजट रेखाएँ हैं जिन पर R, S और T सतुलन की स्थितियाँ हैं जो PCC वक्र बनाती हैं। वह PCC वक्र के इन बिन्दुओं पर X की क्रमशः OA, OB और OC इकाइयाँ खरीदता है। यदि उपभोक्ता की कुल आय को उससे खरीदी जाने वाली वस्तु की इकाइयों से विभाजित कर दें तो हमें वस्तु की प्रति इकाई कीमत प्राप्त होगी। उपभोक्ता X की OA इकाइयों के लिए OP/OQ, OB इकाइयों के लिए OP/OQ_1 और OC इकाइयों के लिए OP/OQ_2 कीमत देता है। वास्तव में, यह X वस्तु के लिए उपभोक्ता की कीमत-माँग अनुसूची है, जिसे तालिका 9.5 के रूप में नीचे दिखाया गया है।

तालिका 9.5 : वस्तु X के लिए कीमत माँग-अनुसूची

बजट रेखा	X की कीमत $\left[= \dfrac{\text{कुल मुद्रा}}{X \text{ की इकाइयों की संख्या}}\right]$	X की माँग की मात्रा
PQ	$\dfrac{OP}{OQ}\left[\dfrac{10}{2} = ₹\ 5\right]$	$OA = 1$ इकाई
PQ_1	$\dfrac{OP}{OQ_1}\left[\dfrac{10}{5} = ₹\ 2.00\right]$	$OB = 4$ इकाइयाँ
PQ_2	$\dfrac{OP}{OQ_2}\left[\dfrac{10}{10} = ₹\ 1.00\right]$	$OC = 7$ इकाइयाँ

उपभोक्ता की वस्तु X के लिए कीमत-माँग अनुसूची यह बताती है कि उसकी मौद्रिक आय OP (10 ₹) होने पर जब वह समस्त आय को OQ मात्रा (2 इकाइयाँ) खरीदने पर खर्च करता है तो इसका अर्थ यह है कि X की कीमत PQ बजट रेखा के अनुसार 5 ₹ है, जिस पर उपभोक्ता
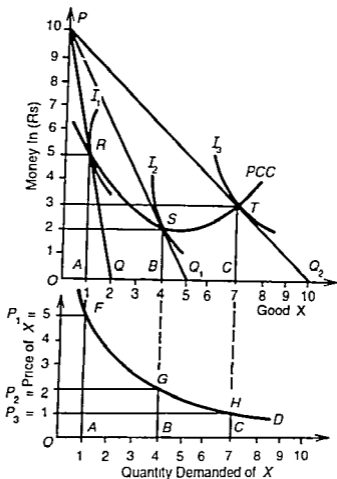
चित्र 9.34

वस्तु X की OA मात्रा (एक इकाई) खरीदेगा जो I_1 वक्र के सतुलन बिन्दु R द्वारा निश्चित है। इसी प्रकार, जब उपभोक्ता PQ_1 बजट रेखा पर होता है तो वह OB (4 इकाइयाँ) OP/OQ_1 (रु 2) प्रति इकाई खरीदता है। इसे I_2 वक्र के S बिन्दु द्वारा दिखाया गया है। जब वह PQ_2 बजट रेखा पर I_3 वक्र के साथ T बिन्दु पर होता है तो वह X की OC (7 इकाइया) मात्रा OP/OQ_2 (=रु 1) पर खरीदता है। PCC वक्र पर बिन्दु R S और T वस्तु X के लिए कीमत-मात्रा सबधो को दर्शाते है।

इसी अनुसूची को चित्र 9.34 के नीचे के भाग में अकित किया गया है। X की कीमते अनुलब अक्ष पर और माँग की मात्राए समानातर अक्ष पर ली गई है। वक्र PCC से माँग वक्र खींचने के लिए चित्र के ऊपरी भाग मे R बिन्दु से एक लब, A मे से गुजरता हुआ चित्र के निम्न भाग पर खींचें तथा कीमत अक्ष के P_1 (=5) बिन्दु से एक रेखा खींचे जो इस लम्ब को F बिन्दु पर काटे तो इस प्रकार F माँग वक्र का प्रथम बिन्दु होगा। इसी प्रकार क्रमश G और H बिन्दु खींचे हुए है।

अनुसूची के अनुसार विभिन्न कीमतों और मात्राओं से जो यह तीन बिन्दु प्राप्त होते है, उनको एक रेखा द्वारा मिलाने से D माँग वक्र बनता है। यह वक्र विभिन्न कीमतों पर उपभोक्ता द्वारा माँगी गई X की मात्राओं को व्यक्त करता है। वस्तु X की कीमत कम होने पर वह उसकी अधिक मात्राएँ खरीदता है तथा माँग वक्र D दायीं ओर नीचे झुकता है।

धनात्मक ढलान वाला माँग वक्र (Positively sloping demand curve)—माँग वक्र का दाईं ओर नीचे को झुकाव, जैसा चित्र 9 34 के नीचे के भाग मे दिखाया गया है, साधारण वस्तुओं के लिए होता है। परन्तु X गिफ्फन वस्तु होने पर माँग वक्र बाए से दाए ऊपर की ओर ढालू होता है। इसका कारण यह है कि X वस्तु बहुत घटिया होने पर जब उसकी कीमत मे कमी होती है तो उपभोक्ता की वास्तविक आय मे वृद्धि होती है जिससे वह इस वस्तु की अपेक्षा बढिया खाद्य वस्तुओं का उपभोग करता है और गिफ्फन वस्तु की कम मात्रा खरीदता है। चित्र 9 35 मे PCC से गिफ्फन वस्तु का माग वक्र खींचा गया है।

चित्र 9 35 के ऊपरी भाग मे पीछे की ओर झुकाव वाला (backward sloping) PCC वक्र खींचा गया है जो गिफ्फन वस्तु के लिए होता है। बजट रेखा PQ_1 पर उपभोक्ता R बिन्दु पर सतुलन मे होता है। वस्तु X की कीमत गिरने से बजट रेखाएँ PQ_2, PQ_3 एव PQ_4 होने से वह क्रमश S T एव U सतुलन बिन्दुओं पर जाता है तो वह X की कम मात्राएँ OB, OC तथा OD खरीदता है। PCC वक्र से नीचे तालिका 9 6 मे दी गई अनुसूची बनाई गई है।

तालिका 9 6 गिफ्फन वस्तु के लिए कीमत-माँग अनुसूची

बजट	X की कीमत	X की माँग
PQ_1	$\frac{OP}{OQ_1}$ या P_1	OA
PQ_2	$\frac{OP}{OQ_2}$ या P_2	OB
PQ_3	$\frac{OP}{OQ_3}$ या P_3	OC
PQ_4	$\frac{OP}{OQ_4}$ या P_4	OD

चित्र 9 35 के नीचे भाग मे इस अनुसूची को अकित किया गया है। विभिन्न कीमतों पर वस्तु की माँगी गई मात्राओं के सतुलन बिन्दु L H G तथा F खींचे गए हैं जिनको मिलाने से D_1D_1 माँग वक्र प्राप्त होता है जो बाईं ओर से दाए ऊपर को ढालू है। D_1D_1 माँग वक्र यह व्यक्त करता है कि P_1 कीमत होने पर वस्तु X की माँग OA है। X गिफ्फन वस्तु होने के कारण जब उसकी कीमत P_2, P_3, और P_4 गिरती है तो X की माँग भी क्रमश OB OC और OD कम होती जाती है।

इस प्रकार, ऊपर की ओर बाए से दाए ढलान वाला माग वक्र यह दर्शाता है कि जब एक गिफ्फन वस्तु की कीमत कम होती है तो उसकी माँग-मात्रा भी कम हो जाती है और इसके विपरीत कीमत बढने पर माँग-मात्रा बढती है।

मार्किट माँग वक्र (Market demand curve)—यदि एक वस्तु के इस कीमत-उपभोग वक्र से कई व्यक्तियों की माँग वक्रों को बना लिया जाय और इन्हे जोड दिया जाए, तो उस वस्तु का
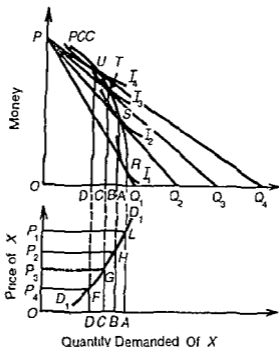
चित्र 9.35

मार्किट माँग वक्र बन जाता है। इस प्रकार चित्र 9.36 (A) में OP_1 कीमत पर वस्तु X के लिए उपभोक्ता A की माँग QA है। इसी कीमत पर उपभोक्ता B की माँग QB और उपभोक्ता C की QC है जिसे पेनल (B) और (C) में दिखाया गया है। इन QA QB QC मात्राओं को चित्र (D) में पार्श्व-योग (lateral summation) कर दिया गया है, जहाँ $OQ = QA + QB + QC$ सब व्यक्तियों की माँग वक्रों का ढलान और मार्किट वक्र का ढलान एक ही है।

व्यक्तिगत माँग वक्र की भाँति मार्किट माँग वक्र का ढलान दाएँ को नीचे की ओर होता है। यदि वस्तु कुछ व्यक्तियों के लिए घटिया भी हो, तो भी मार्किट माँग वक्र का ढलान बाएं से दाएं ऊपर को
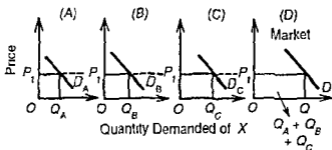
चित्र 9.36

नहीं होगा। अन्य उपभोक्ता होंगे जिन्हें शायद वह वस्तु घटिया प्रतीत न हो और वे कम कीमत पर उसकी माँग करें। मार्किट के लिए कोई वस्तु घटिया नहीं होती क्योंकि उसी कीमत सीमा (market range) में वस्तु खरीदने वालों की हमेशा काफी संख्या होती है। इसलिए मार्किट माँग वक्र का ढलान हमेशा नीचे दाएँ को होगा।

12. क्षतिपूरित माग वक्र (THE COMPENSATED DEMAND CURVE)

क्षतिपूरित माग वक्र एक वस्तु की मात्रा को दर्शाता है जिसे एक उपभोक्ता खरीदेगा यदि इस वस्तु की कीमत के लिए उसे आय-क्षतिपूर्ति किया जाता है। दूसरे शब्दों में, एक वस्तु के लिए क्षतिपूर्ति माग वक्र एक ऐसा वक्र है जो यह दर्शाता है कि परिवर्तित कीमत पर उपभोक्ता द्वारा वस्तु की कितनी मात्रा खरीदी जाएगी, यदि आय प्रभाव को हटा दिया जाता है।
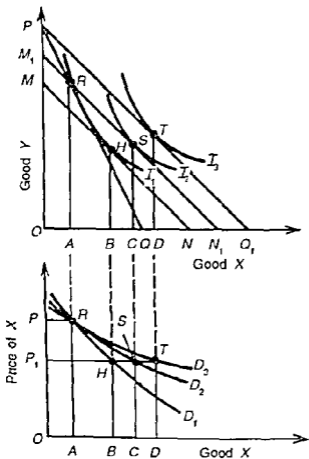
चित्र 9.37

क्षतिपूरित माग वक्र की हिक्स और स्लट्स्की दोनों द्वारा व्यक्त स्थानापन्नता प्रभावों द्वारा व्याख्या की जा सकती है। दो तलिला चित्र 9.37 हिक्स और स्लट्स्की के क्षतिपूरित माग वक्रों और अक्षतिपूर्ति (uncompensated) साधारण या मार्शल के माग वक्र के निर्माण को दर्शाता है। चित्र का ऊपरी भाग हिक्स और स्लट्स्की विश्लेषणों के स्थानापन्नता प्रभावों और संयुक्त कीमत प्रभाव को दिखाता है। चित्र का निचला भाग हिक्स और स्लट्स्की के क्षतिपूर्ति माग वक्रों और साधारण माग वक्र की व्युत्पत्ति को व्यक्त करता है। पहले निचले चित्र की

और ध्यान दीजिए जहा वस्तु X की कीमत को अनुलब अक्ष पर लिया गया है। इस अक्ष पर P एक मनमाना बिन्दु लिया गया है जो वस्तु X की कीमत को दर्शाता है, जब ऊपरी चित्र मे PQ बजट रेखा है। X की कीमत मे कमी को PQ_1 रेखा द्वारा दिखाया गया है जिसे निचले चित्र मे P_1 द्वारा व्यक्त किया गया है।

मार्शल का अक्षतिपूरित या साधारण माग वक्र (The Marshallian Uncompensated or Ordinary Demand Curve)

प्रथम, मार्शल के अक्षतिपूरित माग वक्र की व्युत्पत्ति की व्याख्या करते है। मान लीजिए कि उपभोक्ता का मूल सतुलन बिन्दु R है, जहा PQ बजट रेखा और उदासीनता वक्र I_1 स्पर्श करते है और उपभोक्ता X की OA मात्रा खरीदता है। X की कीमत गिरने से बजट रेखा PQ_1 हो जाती है और उपभोक्ता इस रेखा पर ऊचे उदासीनता वक्र I_1 के बिन्दु T पर सतुलन मे होता है। उसकी R से T को गति कीमत प्रभाव है जिसमे स्थानापन्नता प्रभाव और आय प्रभाव दोनो ही शामिल है। इसे चित्र के निचले भाग में D_1 वक्र द्वारा दिखाया गया है। यह अक्षतिपूरित या साधारण या **मार्शल का माग वक्र** है जो यह दर्शाता है कि जब X की कीमत P से कम होकर P_1 होती है, तो उसकी मागी गई मात्रा OA से बढकर OD हो जाती है।

हिक्स का क्षतिपूरित मांग वक्र (The Hicksian Compensated Demand Curve)

क्योंकि वस्तु X की कीमत मे परिवर्तन के स्थानापन्नता प्रभाव पर क्षतिपूरित माग वक्र आधारित है, इसलिए हम ऊपर के विश्लेषण को आगे बढाते हुए, हिक्स के स्थानापन्नता प्रभाव को व्युत्पन्न करते है। वस्तु X की कीमत मे कमी होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय मे जो वृद्धि हुई उसे वस्तु Y की PM मात्रा और वस्तु X की Q_1N मात्रा के बराबर उपभोक्ता से वापिस ले लिया जाता है, जिसे PQ_1 बजट रेखा के समानातर MN क्षतिपूरित बजट रेखा खींच कर दिखाया गया है। यह रेखा MN मूल उदासीनता वक्र I_1 को बिन्दु H पर स्पर्श करती है। I_1 वक्र पर बिन्दु R से H को गति स्थानापन्नता प्रभाव है जो चित्र के निचले भाग मे D_1 वक्र को ट्रेस करता है, जब वस्तु X की कीमत P से P_1 कम होने पर उसकी माग OA से बढकर OB हो जाती है।

स्लट्स्की का क्षतिपूरित मांग वक्र (The Slutsky Compensated Demand Curve)

स्लट्स्की स्थानापन्नता प्रभाव व्युत्पन्न करने के लिए, वस्तु X की कीमत कम होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय मे जो **आभासी** (apparent) वृद्धि हुई थी उसे वस्तु Y की PM_1 मात्रा या X की Q_1N_1 मात्रा के रूप में स्लट्स्की क्षतिपूरित बजट रेखा M_1N_1 को PQ_1 रेखा के समानातर खींच कर वापिस ले लिया जाता है। यह रेखा M_1N_1 इस ढग से खींची जाती है कि यह I_1 वक्र पर मूल बिन्दु R मे से गुजरती है जहा उपभोक्ता X की पहले वाली मात्रा OA को खरीद सकता है। परन्तु क्योंकि X की कीमत कम हुई है, इसलिए वह इसकी अधिक मात्रा खरीदेगा जिससे वह ऊचे उदासीनता वक्र I_2 के बिन्दु S पर चला जाएगा, जहा उसकी बजट रेखा M_1N_1 उसे स्पर्श करती है। इस प्रकार, बिन्दु R से S को गति स्थानापन्नता प्रभाव है जो स्लट्स्की के क्षतिपूरित माग वक्र D_2 को चित्र के निचले भाग मे ट्रेस करता है। यह वक्र दर्शाता है कि वस्तु X की कीमत P से P_1 पर कम होने से, उसकी माग OA से बढकर OC हो जाती है।

निष्कर्ष (Conclusion)

हिक्स के क्षतिपूरित माग वक्र D_1 और स्लट्स्की के D_2 माग वक्र के एक अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि D_1 वक्र से D_2 वक्र अधिक लोचदार है। ऐसा इस कारण कि वस्तु X के क्रय पर हिक्स की धारणा से स्लट्स्की की धारणा मे अधिक कुल व्यय होता है। जबकि स्लट्स्की के माग

वक्र D_2 से परंपरागत (मार्शल) माग वक्र D_1 और भी अधिक लोचदार है।

एक अन्य ध्यान देने योग्य महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि क्षतिपूरित माग वक्र चाहे हिक्स या स्लट्स्की का हो, सदैव नीचे की ओर ढालू होता है क्योंकि यह इस प्रकार खींचा जाता है कि केवल स्थानापन्नता प्रभाव ही सक्रिय होता है और आय प्रभाव को आय-क्षतिपूर्ति करके बिल्कुल समाप्त कर दिया जाता है। परन्तु एक साधारण माग वक्र नीचे की ओर ढालू हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता है। D_1 वक्र जैसे साधारण माग वक्र के लिए स्थानापन्नता और आय प्रभाव दोनो ही सक्रिय होते है और ये माग वक्र की नीचे की ओर ढलान की व्याख्या करते है। यदि वस्तु X घटिया हो तो साधारण माग वक्र नीचे की ओर ढालू होगा परन्तु यह क्षतिपूरित माग वक्रो जैसे D_1 और D_2 से लोचदार होगा। ऐसा इस कारण कि साधारण माग वक्र के लिए आय प्रभाव से स्थानापन्नता प्रभाव शक्तिशाली होगा। परन्तु यदि X गिफ्फन वस्तु हो तो साधारण माग वक्र बाए से दाए ऊपर की ओर ढालू होगा। दूसरे शब्दो मे, इसकी ढलान धनात्मक होगी क्योंकि गिफ्फन वस्तु के लिए स्थानापन्नता प्रभाव से आय प्रभाव शक्तिशाली होता है। दूसरी ओर, क्षतिपूरित माग वक्र सदैव ऋणात्मक ढलान के होते है, क्योंकि वे आय प्रभाव द्वारा प्रभावित नहीं होते है।

13. उदासीनता वक्र विश्लेषण मे स्थानापन्न और पूरक (SUBSTITUTES AND COMPLEMENTS IN IC ANALYSIS)

उदासीनता वक्र विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि दो सबधित वस्तुए है जो स्थानापन्न या पूरक हो सकती है। परेटो ने पूरक और स्थानापन्न वस्तुओ के बीच सबध की व्याख्या प्रतिवर्ती (reversible) की जिसका अभिप्राय है कि यदि Y के लिए X स्थानापन्न है, तो X के लिए Y स्थानापन्न है, और यदि Y का पूरक X है, तो X का पूरक Y है। इस अर्थ मे, एक उदासीनता वक्र की आकृति इस बात पर निर्भर करती है कि क्या दो सबधित वस्तुए पूर्ण या अपूर्ण स्थानापन्न है अथवा पूरक।

एक उदासीनता वक्र की आकृति मूल के उन्नतोदर होती है और यह स्थानापन्नता की घटती सीमात दर के नियम पर आधारित है। यह नियम सतुष्टि या उपयोगिता के एक विशेष स्तर को प्राप्त करने के लिए एक वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ स्थानापन्न करना सभव बनाता है। अत दो वस्तुए X और Y अपूर्ण स्थानापन्न हो तो उदासीनता वक्र की सामान्य ऋणात्मक ढलान की आकृति होती है जैसा कि (अध्याय के प्रारभ मे) चित्र 9 1 मे दर्शाया गया है।
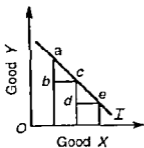
चित्र 9 38

यदि दो वस्तुए **पूर्ण** स्थानापन्न हो, तो उदासीनता वक्र नीचे की ओर ढालू सरल रेखा होता है, जैसाकि चित्र 9 38 मे दिखाया गया है, क्योंकि MRS_{xy} स्थिर है। वक्र की ढलान का मूल्य घटा (–) होता है और $MRS_{xy}=1$ चित्र मे, Y का $ab = X$ का bc और Y का $cd = X$ का de ऐसी स्थिति मे, उपभोक्ता इन दो वस्तुओ के बीच भेद नहीं करता और उन्हे एक ही वस्तु मानता है, जैसे कि चाय के दो ब्रैंड। उपभोक्ता को केवल एक ही वस्तु खरीदने की सनक होती है। इसे उस वस्तु के लिए उन्माद कहते है।

यदि दो वस्तुएं निकट स्थानापन्न हों, जैसे कि मोटा चावल और गेहूँ तो ऐसी दो वस्तुओं की उच्च कोटि की स्थानापन्नता होती है। चित्र 9.39 में, AB रेंज की बीच उदासीनता वक्र I_1 की ढलान लगभग स्थिर है, अर्थात् इस रेंज में सभी बिन्दुओं पर MRS_{xy} लगभग समान है।

चित्र 9.39

यदि दो वस्तुएं पूर्ण पूरक हों, तो उदासीनता वक्र समकोण या L-आकृति का होता है, जैसाकि चित्र 9.40 (A) में दर्शाया गया है। वक्र I_1 का अनुलंब भाग यह प्रकट करता है कि चाहे Y की मात्रा में कितनी भी कमी की जाए वस्तु X की मात्रा में जरा-सी भी वृद्धि नहीं होगी। उदाहरणार्थ, सभी बिन्दु A, M और B वक्र I_1 पर हैं परन्तु M की अपेक्षा B पर X की अधिक मात्रा प्राप्त होती है जबकि Y की मात्रा समान ही है। अत MRS_{xy} शून्य है। X और Y दोनों वस्तुओं का इच्छित अनुपात में उपभोग होता है, जैसाकि बिन्दु M पर किरण OR की ढलान दिखाती है। ऐसी पूरक वस्तुएं दाएं और बाएं जूते हैं जिनका उपयोग 1 : 1 के स्थिर अनुपात में किया जाता है।
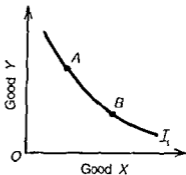
निकट या अत्यन्त पूरक वस्तुओं की स्थिति में, उदासीनता वक्र के घुमाव पर तीव्र वक्रता (curvature) होती है। उपभोक्ता Y के लिए X को वक्र के घुमाव पर और निकट स्थानापन्न करता है। चित्र 9.40 (B) में, वस्तु Y और X एक दूसरे के साथ उदासीनता वक्र I_1 के A और B सीमित रेंज में स्थानापन्न किए जाएंगे। ऐसे निकट पूरक टायर और ट्यूब, बिजली और बिजली उपकरण, आदि हैं।

ऊपर वर्णित स्थानापन्नों और पूरकों में भेद उदासीनता वक्रों की वक्रता पर आधारित है। परन्तु प्रो. हिक्स के अनुसार, यह पता लगाना असभव है कि "उदासीनता वक्रों की वक्रता की कितनी कोटि पूरक और स्थानापन्न वस्तुएं के भेद के साथ मेल खाती है।"[11]

स्थानापन्नों और पूरकों पर हिक्स के विचार (Hicks' Views on Substitutes and Complements)

हिक्स बताता है कि स्थानापन्नों और पूरकों का परपरागत वर्गीकरण माग की कीमत

चित्र 9.40

11. J. R. Hicks, *Value and Capital* 2/e, 1946, p. 42
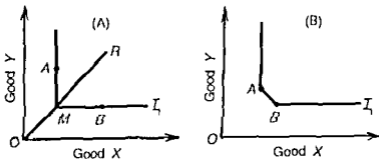
प्रति-लोच (cross elasticity) पर आधारित है। इस वर्गीकरण के अनुसार, वस्तुए X और Y स्थानापन्न या पूरक है इस बात पर निर्भर करता है कि माग की प्रति-लोच धनात्मक या ऋणात्मक है। उदाहरणार्थ, Y की कीमत स्थिर रहते हुए, जब X की कीमत मे कमी से Y की मागी गई मात्रा कम हो जाती है, तो X और Y की माग की प्रति-लोच धनात्मक होगी और दोनो वस्तुए स्थानापन्न कहलाएगी। दूसरी ओर, Y की कीमत स्थिर रहते हुए, यदि X की कीमत मे कमी से Y की मागी गई मात्रा मे बढोतरी होती है, तो माग की प्रति-लोच ऋणात्मक होगी और X और Y पूरक वस्तुए कहलाएगी।

हिक्स के अनुसार, माग की प्रति-लोच के रूप मे स्थानापन्न और पूरक वस्तुओ का वर्गीकरण अपर्याप्त है। उदाहरणार्थ, वस्तु X की कीमत मे कमी से वस्तु Y की माग बहुत अधिक बढ सकती है, यद्यपि दोनो वस्तुए इस अर्थ मे स्थानापन्न हो कि वस्तु Y की अधिक मात्रा द्वारा वस्तु X की अधिक मात्रा की क्षतिपूर्ति की जा सकती है जबकि उपभोक्ता उसी उदासीनता वक्र पर हो। इसका मतलब है कि माग की प्रति-लोच वस्तुओ को पूरक दिखा सकती है जबकि उपभोक्ता X को Y के लिए स्थानापन्न करने को तैयार है ताकि स्थिर उपयोगिता प्राप्त कर सके। फिर, यह धारणा वास्तविक आय मे क्षतिपूर्ति परिवर्तन किए बिना एक सबधित वस्तु की कीमत मे परिवर्तन से दूसरी वस्तु की मागी गई मात्रा मे परिवर्तन की ओर लक्ष्य करती है।

ऊपर वर्णित कमियो के कारण, हिक्स स्थानापन्न और पूरक वस्तुओ के बीच भेद को कीमत प्रभाव के स्थानापन्नता और आय प्रभावो के रूप मे व्याख्या करता है। यदि X की कीमत मे कमी से Y की मागी गई मात्रा मे कमी होती है और X की मात्रा मे वृद्धि, तो Y के लिए वस्तु X स्थानापन्न है। जहाँ X की मात्रा मे वृद्धि और Y की मात्रा मे कमी स्थानापन्नता प्रभाव और धनात्मक आय प्रभाव के कारण है जो आय मे क्षतिपूर्ति परिवर्तन का परिणाम है। दूसरी ओर, यदि X की कीमत मे कमी से X और Y दोनो की मागी गई मात्राओ मे वृद्धि होती है, तो X और Y पूरक वस्तुए है। यह आय मे क्षतिपूर्ति परिवर्तन करने से केवल स्थानापन्नता प्रभाव के कारण है। जो वस्तुए कुल कीमत प्रभाव के अनुसार वर्गीकृत की जाती है, जिनमे स्थानापन्नता और आय प्रभाव शामिल होते है, वे सकल (gross) स्थानापन्न और पूरक कहलाती है। दूसरी ओर, जहा आय मे क्षतिपूर्ति परिवर्तन किया जाता है, वे शुद्ध (net) कीमत स्थानापन्न और पूरक वस्तुए कहलाती है।

आगे, हिक्स यह निर्णय करने के लिए कि वस्तुए X और Y स्थानापन्न है या पूरक, अपने विश्लेषण को तीन वस्तुओ पर बढाता है। ऐसा इस कारण कि दो वस्तुओ का एक दूसरे के साथ सदा स्थानापन्न सबध होता है, अर्थात् उदासीन वक्रो की ऋणात्मक ढलान होती है। इसलिए, वह तीन वस्तुए X, Y और M (मुद्रा) लेता है, जहा M एक मिश्रित (composite) वस्तु है। इस अर्थ मे, हिक्स स्थानापन्न और पूरक वस्तुओ को यूँ परिभाषित करता है

(1) वस्तु X के लिए Y एक स्थानापन्न है, यदि M के लिए Y की स्थानापन्नता की सीमात दर कम होती है, जब M के लिए X को इस प्रकार स्थानापन्न किया जाता है कि उपभोक्ता पहले से अच्छी स्थिति मे न हो।

(2) वस्तु X की Y एक पूरक है, यदि M के लिए Y की स्थानापन्नता की सीमात दर बढती है, जब M के लिए वस्तु X को इस तरह स्थानापन्न किया जाता है कि उपभोक्ता पहले से अच्छी स्थिति मे न हो।

चित्र 9 41 मे, M से सबद्ध स्थानापन्न वस्तुओ X और Y की ऊपर दी गई परिभाषा की व्याख्या की गई है। यदि Y और M के बीच स्थानापन्नता की सीमात दर कम होती है जब X की अधिक मात्रा मागी जाती है, तो X और Y स्थानापन्न वस्तुए है। दूसरे शब्दो मे, यदि X की एक अतिरिक्त इकाई
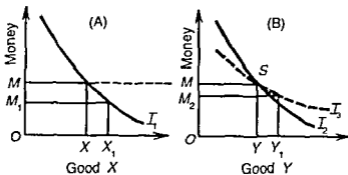
चित्र 9.41

खरीदने के बाद, उपभोक्ता Y की एक और इकाई खरीदने के लिए कम मुद्रा (M) का त्याग (व्यय) करता है, तो X और Y स्थानापन्न वस्तुएं है। चित्र का पेनल (A) वस्तु X और M का सबंध और पेनल (B) वस्तु Y और M का संबध दर्शाता है। पेनल (B) में, चपटे उदासीनता वक्र I_2 पर मूल Y-M संयोग का बिन्दु S, वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई XX_1 प्राप्त करने के बाद, Y और M के बीच सबध को व्यक्त करता है। पेनल (A) में, वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई XX_1 प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता MM_1 मुद्रा व्यय करता है। परन्तु पेनल (B) में, वस्तु Y की एक अतिरिक्त इकाई YY_1 खरीदने के लिए वह कम मुद्रा MM_2 व्यय करता है। चित्र के पेनल (A) और (B) से स्पष्ट है कि $MM_2 < MM_1$ जबकि $YY_1 = XX_1$ जिससे सिद्ध होता है कि MRS_{YM} कम होती है।

इसी प्रकार, चित्र 9.42 के पेनल (A) और (B) में X और Y पूरक वस्तुओं की M से सबद्ध व्याख्या की गई है। यदि Y की एक अतिरिक्त इकाई खरीदने के बाद, उपभोक्ता Y की एक और इकाई खरीदने के लिए अधिक मुद्रा (M) व्यय करता है, तो X और Y पूरक वस्तुएं है। पेनल (B) में, तिरछे उदासीनता वक्र I_1 पर मूल YM संयोग का बिन्दु C वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई XX_1 प्राप्त करने के बाद, Y और M के बीच सबध को प्रकट करता है। पेनल (A) में, वस्तु X की अतिरिक्त इकाई XX_1 प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता MM_1 मुद्रा व्यय करता है। परन्तु पेनल (B) में, वस्तु Y की एक अतिरिक्त इकाई YY_1 खरीदने के लिए वह अधिक मुद्रा MM_2 व्यय करता है। चित्र में पेनल (A) और (B) से स्पष्ट है कि $MM_2 > MM_1$ जबकि $YY_1 = XX_1$ जिससे सिद्ध होता है कि MRS_{YM} बढ़ती है।
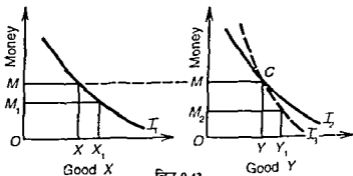
चित्र 9.42

हिक्स निष्कर्ष देता है कि जब उपभोक्ता अपनी आय को X और Y दो वस्तुएं खरीदने पर व्यय करता है, तब उन दोनों के बीच स्थानापन्नता का संबंध होता है। परन्तु जब केवल तीन वस्तुएं होती हैं तो संबंध पूरक वस्तुओं का होता है।

14. कीमत उपभोग वक्र से माँग की लोच मापना
(MEASURING ELASTICITY OF DEMAND FROM PCC)

मार्शल की कुल व्यय विधि (total outlay method) के आधार पर कीमत उपभोग वक्र से माँग की लोच को जाना जा सकता है। यदि कीमत उपभोग वक्र (PCC) वक्र की ढलान नीचे की ओर हो तो X वस्तु की माँग लोचदार होती है जिसे चित्र 9.43 में PCC वक्र के R से S तक ढलान द्वारा दिखाया गया है। जब X की कीमत OP/OQ से गिरकर OP/OQ_1 हो जाती है तो कुल खर्च बढ़ जाता है, क्योंकि X की अधिक मात्रा खरीदी जाती है। यह कीमत-माँग अनुसूची तालिका 9.7 में स्पष्ट है। जब X वस्तु की कीमत रु. 5 से घटा कर रु. 2 हो जाती है तो इस पर कुल खर्च रु. 5 से रु. 8 हो जाता है जैसे पद 1 तथा 2 से प्रकट होता है। इस प्रकार PCC वक्र में RS भाग पर X की माँग लोचदार है।

तालिका 9.7 कीमत-माँग अनुसूची

पद	X वस्तु की कीमत रु.		X वस्तु की माँग	कुल व्यय
1	$\frac{OP}{OQ}\left[\frac{10}{2}=\right]5$	×	1 इकाई (OA)	= रु. 5
2	$\frac{OP}{OQ_1}\left[\frac{10}{5}=\right]2$	×	4 इकाइयाँ (OB)	= रु. 8
3	$\frac{OP}{OQ_2}\left[\frac{10}{6\frac{1}{4}}=\right]1.60$	×	5 इकाइयाँ (OC)	= रु. 8
4	$\frac{OP}{OQ_3}\left[\frac{10}{10}=\right]1.00$	×	6 इकाइयाँ (OD)	= रु. 6

चित्र 9.43
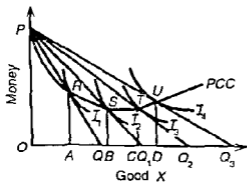
PCC वक्र का जो भाग समानान्तर (horizontal) होता है वह एकीय लोच (unitary elasticity) को प्रकट करता है। जब X की कीमत OP/OQ_1 से गिर कर OP/OQ_2 हो जाती है तो कुल खर्च में कोई परिवर्तन नहीं होता तब माँग की लोच इकाई के बराबर होती है जैसे तालिका 9.7 के पद 2 और 3 से स्पष्ट होता है। कीमत कम होने

तथा माँग बढ़ने से कुल खर्च यथास्थिर रहता है (रु 2 × 4 इकाइयाँ = र 1 60 × 5 इकाइयाँ=रु 8)। चित्र में यह S से T तक का भाग है।

जब कीमत उपभोग वक्र की ढलान ऊपर को होती है तो उसका यह भाग माँग की इकाई से कम लोच बताता है। जब X की कीमत OP/OQ_2 से गिर कर OP/OQ_3 हो जाती है तो उपभोक्ता PCC वक्र के बिन्दु T से U पर आ जाता है। कीमत घटने में X वस्तु पर उसका कुल खर्च र 8 से कम होकर रु 6 हो जाता है जैसाकि तालिका 9 7 के पद 3 तथा 4 में स्पष्ट होता है।

15 उदासीनता वक्र विश्लेषण के लाभ या व्यावहारिकता (USES OR APPLICABILITY OF IC ANALYSIS)

उदासीनता वक्र तकनीक अर्थशास्त्रीय विश्लेषण में एक सरल साधन बनकर आई है। इसने उपभोग के सिद्धान्त को मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण की अवास्तविक धारणाओं से मुक्त कर दिया है। इस विषय में उपभोक्ता सतुलन, माँग वक्र के निर्माण और उपभोक्ता के आधिक्य का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। उत्पादक के सतुलन की व्याख्या करने में, विनिमय, राशनिग और कर लगाने के क्षेत्र मे, श्रम की पूर्ति में, कल्याणकारी अर्थशास्त्र तथा बहुत-सी दूसरी समस्याओं को हल करने में उदासीनता वक्र विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है। इस तकनीक की सहायता से नीचे कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याओं की व्याख्या की जा रही है।

1 विनिमय की समस्या (The Problem of Exchange)

उदासीनता वक्र तकनीक की सहायता से दो व्यक्तियों की विनिमय की समस्या को हल किया जा सकता है। हम दो उपभोक्ताओं A और B को लेते हैं जिनके पास क्रमश X और Y वस्तुएँ निश्चित मात्रा मे है। समस्या यह है कि उन दोनो के पास जो वस्तुएँ हे उनका विनिमय वे किस प्रकार करे। उनका अधिमान मानचित्रो और वस्तुओ की दी हुई पूर्ति के आधार पर बॉक्स के आकार का ऐंज्वर्थ-बाऊले चित्र बनाकर इस समस्या को हल किया जा सकता है।

बॉक्स के आकार के चित्र 9 44 मे, उपभोक्ता A का मूल बिन्दु O_a और उपभोक्ता B का मूल बिन्दु O_b है (समझने के लिए चित्र को उलट कर देखिए)। दोनो अक्षो के अनुलम्ब भुजाए O_a तथा O_b वस्तु Y को और समानान्तर भुजाए वस्तु X को प्रकट करते है। उदासीनता वक्र I_{1a}, I_{2a}, I_{3a} उपभोक्ता A के अधिमान मानचित्र को प्रकट करते हे और उदासीनता वक्र I_{1b}, I_{2b}, I_{3b} उपभोक्ता B के मानचित्र को। मान लीजिए शुरू मे A के पास वस्तु X की O_aX_a तथा Y की O_aY_a मात्रा है। इस प्रकार B के पास X की O_bX_b तथा Y की O_bY_b मात्रा बच जाती है। यह स्थिति बिन्दु E
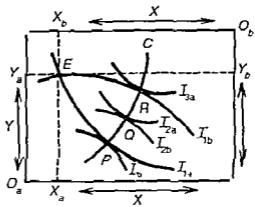
चित्र 9 44

पर प्रकट होती है जहाँ I_{1a} को I_{1b} वक्र काटता है।

मान लीजिए उपभोक्ता *A* वस्तु *X* की, तथा *B* वस्तु *Y* की और मात्रा लेना चाहता है। यदि दोनो अपनी-अपनी वस्तु की अनचाही मात्रा का विनिमय कर ले अर्थात् यदि दोनो अपेक्षाकृत ऊँचे उदासीनता वक्र पर जा सकें, तो दोनो की स्थिति पहले से अच्छी हो जाएगी। परन्तु विनिमय किस स्तर पर हो? दोनो मे एक-दूसरे की वस्तु का विनिमय उस बिन्दु पर होगा जिस पर दोनो वस्तुओं की स्थानापन्नता की सीमान्त दर उनकी कीमतो के अनुपात के बराबर होगी। विनिमय की यह शर्त उसी बिन्दु पर पूरी होगी जहाँ दोनो विनिमय करने वालो के उदासीनता वक्र एक-दूसरे को स्पर्श करेंगे। चित्र मे *P Q R* विनिमय के तीन सभव बिन्दु है। इन तीनो मे से गुजरने वाली संविदा रेखा (contract curve) या सघर्ष रेखा (conflict curve) है जो *X* और *Y* के विनिमय की उन विभिन्न स्थितियों को बताती है जहाँ दोनो विनिमय करने वालो की स्थानापन्नता की सीमान्त दर बराबर है।

यदि विनिमय बिन्दु *P* पर हो, तो *B* अधिक लाभदायक स्थिति मे रहेगा क्योंकि यह बिन्दु सब से ऊँचे उदासीनता वक्र I_{3b} पर स्थित है। *A* घाटे मे रहेगा क्योंकि यह बिन्दु उसके निम्नतम उदासीनता वक्र I_{1a} पर है। दूसरी ओर *R* बिन्दु पर *A* को अधिकतम लाभ और *B* को अधिकतम हानि होगी। हाँ, बिन्दु *Q* पर दोनो समान लाभ की स्थिति मे होंगे। इस स्थिति पर वे परस्पर सहमत होकर ही पहुँच सकते है, अन्यथा सतुलन बिन्दु प्रत्येक की सौदा करने की शक्ति पर निर्भर करता है। यदि *B* की अपेक्षा *A* सौदा करने मे अधिक कुशल है तो वह *b* को धकेल कर *R* बिन्दु पर ले आएगा। इसके उलट, यदि *B* सौदा करने मे अधिक कुशल है तो वह *A* को बिन्दु *P* पर ला सकता है।

2. उपभोक्ताओं पर सब्सिडी के प्रभाव (Effect of Subsidy on Consumers)

आय वर्गों को दी गई सरकारी सहायता के प्रभावों को मापने के लिए उदासीनता वक्र तकनीक का प्रयोग किया जा सकता है। हम उस स्थिति को लेते है जब सरकारी सहायता नकद मुद्रा मे नहीं दी जाती पर उपभोक्ताओं को दालें, अनाज आदि सस्ते दामो पर दिए जाते है और कीमत का अन्तर सरकार पूरा करती है। ऐसा वास्तव मे भारत की विभिन्न राज्य सरकारें कर रही हैं। चित्र 9.45 में अनुलम्ब अक्ष पर आय तथा समानान्तर अक्ष पर अनाज मापे गए है।

चित्र 9.45

मान लीजिए कि उपभोक्ता की आय *OM* है और सरकारी सहायता के बिना उसकी कीमत आय रेखा *MN* है। तब सस्ते दामो पर अनाज की पूर्ति द्वारा उसे सब्सिडी दी जाती है तो उसकी कीमत-आय रेखा *MP* हो जाती है। (यह अनाज की कीमत मे हुई कमी के बराबर है) इस कीमत-आय रेखा पर उपभोक्ता वक्र *I* के *E* बिन्दु पर सतुलन मे है जहाँ *MS* मुद्रा खर्च करके अनाज की *OB* मात्रा खरीदता है। अनाज की *OB* मात्रा की
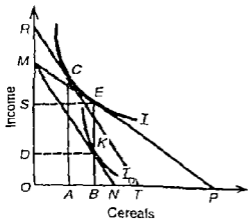
पूरी मार्किट कीमत MN रेखा पर MD है जहाँ वक्र I_2 इसे स्पर्श करता है। इसलिए सरकार SD मात्रा सहायता के रूप में देती है। परन्तु उपभोक्ता को अनाज पहले से कम कीमत पर मिलता है। उसे सब्सिडी की SD मात्रा नकद नहीं मिलती। यदि सहायता का मौद्रिक मूल्य उसे नकद दिया जाए, तो उसे मुद्रा की MR मात्रा मिलेगी। MR के बराबर परिवर्तन बताता है कि यदि उपभोक्ता को अनाज के माध्यम से सब्सिडी न देकर नकद पैसे दे दिए जाएँ तो भी वह उसी उदासीनता वक्र I के C बिन्दु पर आ जाएगा जिससे उसकी स्थिति उतनी ही अच्छी हो जाती है जितनी (सस्ते अनाज की) सब्सिडी से। परन्तु सब्सिडी DS की जो लागत सरकार को पड़ती है उसकी अपेक्षा उपभोक्ता को मिलने वाली सहायता MR का उपभोक्ता के लिए मूल्य कम है। इससे प्रकट होता है कि सब्सिडी यदि सस्ते अनाज के रूप में न देकर नकद दी जाए, तो उपभोक्ता अधिक प्रसन्न होता है। इस अवस्था में राज्यकोष को भी सब्सिडी की अपेक्षाकृत कम लागत पड़ेगी। यह स्थिति एक और रोचक परिणाम की ओर संकेत करती है कि नकद पैसों में सब्सिडी मिलने से जब उपभोक्ता की आय बढ़ जाएगी, तो वह अनाज की पहले से कम मात्रा खरीदेगा। चित्र 9.45 में सतुलन बिन्दु C पर वह अनाज की OA मात्रा खरीदता है जो OB से कम है जो उसे सब्सिडी प्राप्त कीमत पर मिलती थी। सरकार भी वास्तव में यही चाहती है।

3 राशनिंग की समस्याओं को हल करने में (The Problems of Rationing)

राशनिंग के विभिन्न तरीकों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं की व्याख्या करने के लिए उदासीनता वक्र तकनीक का प्रयोग होता है। प्राय राशनिंग का यह मतलब है कि हर व्यक्ति को वस्तुओं की निश्चित और बराबर मात्रा दी जाए। (हम यहाँ परिवारों को नहीं ले रहे क्योंकि उन्हें बराबर मात्रा दे सकना सभव नहीं।) दूसरी अपेक्षाकृत अधिक उदार स्कीम यह है कि व्यक्ति को उसकी अपनी रुचि के अनुसार राशन की वस्तुओं की कम या अधिक मात्रा लेने दी जाए। इस बात को उदासीनता वक्र विश्लेषण की सहायता से दिखाया जा सकता है कि पहली स्कीम की अपेक्षा दूसरी स्कीम बेहतर है।

हम मान लेते है कि चावल और गेहूँ दो वस्तुओं का राशन हुआ है। और यह भी मान लेते हैं कि दोनों वस्तुओं की कीमतें बराबर हैं तथा हर उपभोक्ता की आय भी समान है। इस प्रकार MN कीमत-आय रेखा है जबकि दी हुई आय और दो वस्तुओं की कीमत दरें निश्चित है। चावल को अनुलब अक्ष पर और गेहूँ को समानातर-अक्ष पर चित्र 9.46 में लिया गया है।

राशनिंग के पहले तरीके के अनुसार, A और B दोनों उपभोक्ताओं को चावल और गेहूँ की निश्चित तथा समान मात्राएँ OR + OW दी जाती है। A उदासीनता वक्र I_1 पर है और B उदासीनता वक्र I_1 पर। अधिक उदार स्कीम लागू करने पर प्रत्येक अपनी रुचि के अनुसार चावल या गेहूँ की कम या अधिक मात्रा ले सकता है। इस स्थिति में, A बिन्दु P से अपेक्षाकृत ऊँचे

चित्र 9.46
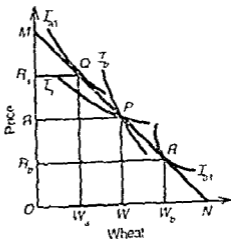
उदासीनता वक्र I_{a1} के बिन्दु Q पर चला जाएगा। अब वह चावल की $OR_a + OW'_a$ गेहूँ की मात्रा ले सकता है। इसी प्रकार B बिन्दु P से अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे उदासीनता वक्र I_{b1} के बिन्दु R पर चला जाएगा और चावल की $OR_b + OW_b$ गेहूँ की मात्रा खरीद सकेगा। राशनिंग की उदार स्कीम लागू होने से दोनों उपभोक्ताओं को पहले से अधिक सतुष्टि मिलती है। वस्तुओं की कुल मात्रा पहले जितनी ही बिकती है क्योकि जब B गेहूँ की WW'_b मात्रा अधिक खरीदता है, तो वह चावल की RR_b मात्रा कम लेता है और जब A चावल की RR_a मात्रा अधिक लेता है तो वह गेहूँ की WW'_a मात्रा कम खरीदता है। इस प्रकार सरकार का वस्तुओं के नियंत्रित वितरण का लक्ष्य बिलकुल नहीं बिगडता, बल्कि व्यक्तिगत रुचियो के अनुसार वस्तुओं का पहले से अच्छा वितरण हो गया है।

4. सूचकाक: रहन-सहन की लागत मापना (Index Numbers Measuring Cost of Living)

उदासीनता वक्र विश्लेषण का प्रयोग सूचकाको द्वारा रहन-सहन की लागत या रहन-सहन का स्तर मापने के लिए किया जाता है। सूचकाको की सहायता से दो समय अवधियो की तुलना करके यह जाना जाता है कि उपभोक्ता की स्थिति पहले से खराब है या बेहतर, जब दो वस्तुओ की कीमतों और उपभोक्ता की आय मे परिवर्तन होता है। मान लीजिए कि एक उपभोक्ता दो विभिन्न समय अवधियो O और 1 मे केवल दो वस्तुए X और Y खरीदता है और इन दो अवधियो मे अपनी समस्त आय इन वस्तुओं पर खर्च करता है। यह भी मान लिया जाता है कि उपभोक्ता की रुचिया और दोनो वस्तुओं की गुणवत्ता मे परिवर्तन नहीं होता है।

कीमत स्तर मे परिवर्तन के मापने की दो स्टेण्डर्ड विधिया है लास्पेयर (Laspeyres) और पाशे (Paasche) सूचकाक।

लास्पेयर कीमत सूचकाक को इस प्रकार परिभाषित किया जाता है

$$P = \frac{\Sigma p_1 q_0}{\Sigma p_0 q_0}$$

जहाँ आधार अवधि की मात्राए (q_0) भार (weights) हैं।

दूसरी ओर पाशे सूचकाक को इस प्रकार परिभाषित किया जाता है

$$P = \frac{\Sigma p_1 q_1}{\Sigma p_0 q_1}$$

जहाँ वर्तमान अवधि की मात्राए (q_1) भार है।

मुद्रा-आय परिवर्तन का सूचकाक या आय सूचकाक ऐसे परिभाषित किया जाता है

$$\frac{\Sigma p_1 q_1}{\Sigma p_0 q_0} = \frac{M_1}{M_0}$$

जो दो अवधियों मे कुल व्यय का अनुपात है।

यदि लास्पेयर कीमत सूचकाक से आय सूचकाक अधिक होता है,

$$\frac{\Sigma p_1 q_1}{\Sigma p_0 q_0} > \frac{\Sigma p_1 q_0}{\Sigma p_0 q_0}$$

तो उपभोक्ता आधार अवधि O की तुलना मे अवधि 1 मे बेहतर स्थिति मे होता है।

दूसरी ओर, यदि पाशे कीमत सूचकाक से आय सूचकाक कम होता है,

$$\frac{\Sigma p_1 q_1}{\Sigma p_0 q_0} < \frac{p_1 q_1}{p_0 q_1}$$

तो उपभोक्ता आधार अवधि O की तुलना मे अवधि 1 मे खराब स्थिति मे होता है।

पहले लास्पेयर कीमत सूचकाक लीजिए जहा अवधि O मे उपभोक्ता के मूल आय और

व्यय को इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$Mo = p_{x0}q_{x0} + p_{y0}q_{y0} = \Sigma p_0 q_0$$

इसे चित्र 9.47 मे AB बजट रेखा द्वारा व्यक्त किया गया है जहा उपभोक्ता उदासीनता वक्र I_0 के विन्दु L पर सतुलन मे है और वस्तु X की OX_0 मात्रा और Y की OY_0 मात्रा खरीदता है।

अवधि 1 मे उसका आय और व्यय इस प्रकार लिखा जा सकता है।

$$M_1 = p_{x1}q_{x1} + p_{y1}q_{y1} = \Sigma p_1 q_1$$

इसे नई बजट रेखा CD द्वारा दर्शाया गया है। यह रेखा बिन्दु L मे से गुजरती है जो यह दिखाती है कि I_0 वक्र पर नया कीमत-आय अनुपात दोनो वस्तुओं के मूल सयोग OX_0-OY_0 पर उपलब्ध है। लेकिन वह बजट रेखा CD के बिन्दु L_1 पर ऊचे उदासीनता वक्र के साथ सतुलन में हो सकता है ओर दोनो वस्तुओं का OY_1 और OY_1 सयोग प्राप्त कर सकता है। क्योकि L और L_1 दोनो ही बजट रेखा CD पर स्थित है, इस कारण दोनों सयोगो की लागत समान है। परन्तु उपभोक्ता L_1 सयोग का चुनाव करेगा क्योकि यह ऊचे उदासीनता वक्र I_1 पर है और वह आधार अवधि O की तुलना मे अवधि 1 मे बेहत्तर स्थिति मे है।

चित्र 9.47

अब पाशे कीमत सूचकाक लीजिए जहा चित्र 9.48 में आधार अवधि O की मूल बजट रेखा AB है और उपभोक्ता इस पर उदासीनता वक्र I_0 के साथ P बिन्दु पर सतुलन मे है। अवधि 1 मे नई बजट रेखा CD है जो नए उदासीनता वक्र I_1 के बिन्दु P_1 मे से गुजरती है। दोनो सयोग P और P_1 मूल बजट रेखा AB पर स्थित है, इस कारण दोनो सयोगो की लागत बराबर है। परन्तु सयोग P_1 की अपेक्षा सयोग P ऊचे उदासीनता वक्र I_0 पर स्थित है। फिर भी, उपभोक्ता अवधि 1 मे नई कीमत (p_1) पर सयोग P को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए वह निचले उदासीनता वक्र I_1 पर P_1 सयोग को चुनता है ओर वह आधार अवधि O की तुलना में अवधि 1 मे खराब स्थिति मे होता है।
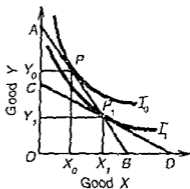
चित्र 9.48

5 आय-अवकाश विनिमय और श्रम की पूर्ति (Income-Leisure Trade-off and Supply of Labour)

उदासीनता वक्र तकनीक का प्रयाग श्रम की व्यक्तिगत पूर्ति की कुछ समस्या ; जेसे

आय-अवकाश विनिमय, ऊंची ओवरटाइम दरें और श्रम का पीछे की ओर ढालू पूर्ति वक्र की व्याख्या करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

(1) आय अवकाश विनिमय (Income-Leisure Trade-off)

एक वर्कर की अपने श्रम की पूर्ति अर्पण करना उसके आय और अवकाश के बीच अधिमानों और मजदूरी दर पर निर्भर करता है। आय और अवकाश का विपरीत संबंध होता है, जबकि आय और प्रतिदिन काम के घंटों का सीधा संबंध होता है। अवकाश का सदैव आय के साथ विनिमय किया जाता है।

यह विश्लेषण यह मानता है कि काम के घंटों पर कोई संस्थानिक प्रतिबंध नहीं है, और वर्करों को कार्य करने या अवकाश लेने की पूरी स्वतन्त्रता है। काम के घंटों के निर्णयों का विश्लेषण आय का अवकाश से संबंधित एक उदासीनता मानचित्र बनाकर किया जाता है। एक उदासीनता वक्र आय और अवकाश के विभिन्न संयोगों को दर्शाता है जो एक वर्कर को स्वीकार होंगे। चित्र 9.49 आय या मजदूरी को अनुलंब अक्ष पर और अवकाश एवं काम के घंटों को समानांतर अक्ष पर मापा गया है। आय-अवकाश उदासीनता वक्र I_2 है। WL रेखा वर्कर की आय-अवकाश रेखा है। मजदूरी दर (w) इस रेखा की ढलान के बराबर है। रेखा WL यह व्यक्त करती है कि यदि वह बिल्कुल काम नहीं करता है तो अवकाश के OL घंटों का आनंद लेता है और शून्य आय कमाता है, और यदि वह OL घंटे कार्य करता है तो अधिकतम आय OW कमाता है। परन्तु वह अपनी आय-अवकाश रेखा WL पर कौन-सा बिन्दु वास्तविकता में चुनेगा? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हम एक ऐसे वर्कर को लेते हैं जिसे प्रतिदिन H घंटे उपलब्ध हैं और इन में से वह L घंटे काम पर लगाता है। यदि हम उसके अवकाश या खाली घंटों को F द्वारा व्यक्त करें, तब

$L = H - F$ जो घंटों की संख्या है जिनमें वह काम करता है।

यदि मजदूरी दर w है, तब उसकी आय y है

$$y = wL$$

और उसका आय-अवकाश चुनाव यूं दिया जा सकता है

$$y = wH - wF$$

यदि अपने आय-अवकाश का चुनाव करने में वर्कर का उद्देश्य अपनी संतुष्टि को अधिकतम करना है, तो वह आय-अवकाश के उस संयोग को चुनेगा जहाँ उसकी आय-अवकाश रेखा उदासीनता वक्र को छूती है। चित्र 9.49 में, यह बिन्दु A है जिस पर I_2 वक्र WL रेखा को छूता है।
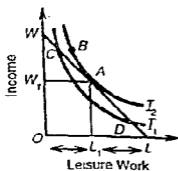
चित्र 9.49

मजदूरी दर दी होने पर, वर्कर L_1L घंटे काम करके, OW_1 आय कमा कर और OL_1 घंटों के अवकाश का आनंद उठाकर अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करता है। यदि वर्कर I_2 वक्र पर बिन्दु A से परे बिन्दु B पर जाने की कोशिश करता है तो उसमें समान संतुष्टि प्राप्त होगी। परन्तु बिन्दु B उसकी पहुंच से बाहर है क्योंकि यह उसकी आय-अवकाश रेखा WL से ऊपर स्थित है। वास्तव में, बिन्दु A के सिवाय वक्र I_2 पर सभी अन्य बिन्दु उसकी पहुंच से बाहर हैं। परन्तु वर्कर को WL रेखा पर ऊपर या नीचे की ओर, जैसे बिन्दु C या D जाने की स्वतंत्रता है। परन्तु ये

बिन्दु निचले उदासीनता वक्र I_1 पर स्थित है जो सतुष्टि का निम्न स्तर व्यक्त करते है। इसलिए, बिन्दु A से हटने पर वर्कर को अधिकतम सतुष्टि प्राप्त नहीं होगी। अत वह आय-अवकाश का केवल A सयोग ही चुनेगा।
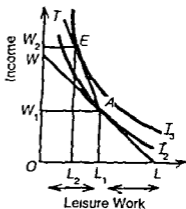
चित्र 9 50

अब एक स्थिति लीजिए जब एक वर्कर को ओवरटाइम मज़दूरी दर का प्रस्ताव प्राप्त होता है और वह कुछ अतिरिक्त घटे काम करता है। इसे चित्र 9 50 में बिन्दु A की बाईं ओर एक तिरछी आय-अवकाश रेखा खींच कर दिखाया गया, है जिससे इस बिन्दु पर इस रेखा का किक होता है। ऐसी रेखा AT है जिसकी ढलान यह दर्शाती है कि ओवरटाइम मज़दूरी दर, रेखा WL की ढलान द्वारा दिखाई गई मज़दूरी दर में, अधिक है। E बिन्दु पर वर्कर सतुलन मे है, जहा ऊचा उदासीनता वक्र I_1 रेखा AT को स्पर्श करता है। अब वर्कर पहले के L_1L काम के घटे और OW_1 आय की तुलना मे L_2L घटे काम करके OW_2 आय कमाता है। इस प्रकार वर्कर L_2L_1 ओवरटाइम काम के घटे करके, W_1W_2 अतिरिक्त मज़दूरी कमाता है।

(2) श्रम की पूर्ति (The Supply of Labour)

एक व्यक्तिगत वर्कर के पूर्ति वक्र को भी उदासीनता वक्र तकनीक से खींचा जा सकता है। उसका श्रम की पूर्ति अर्पण करना उसके आय और अवकाश के बीच अधिमान और मजदूरी दर पर निर्भर करता है। चित्र 9.51 मे काम के घटे और अवकाश समानातर अक्ष पर तथा आय या मुद्रा मज़दूरी अनुलब अक्ष पर मापे गए है। W_1L मज़दूरी रेखा या आय-अवकाश रेखा है जिसकी ढलान प्रति घटा मज़दूरी दर (w) को व्यक्त करती है। जब मज़दूरी दर बढती है, तो नई मज़दूरी रेखा W_2L होती है और प्रति घटा मज़दूरी दर भी बढती है और इसी प्रकार W_3L मज़दूरी रेखा के लिए। ज्यू-ज्यू प्रति घटा मजदूरी दर बढती है, तो मजदूरी रेखा तिरछी होती जाती है। जब वर्कर मजदूरी रेखा W_1L और उदासीनता वक्र I_1 के स्पर्श बिन्दु E_1 पर सतुलन में होता है तो वह L_1L घटे काम करके E_1L_1 मज़दूरी कमाता है, और OL_1 घटों के अवकाश का आनद उठाता है। इसी प्रकार,
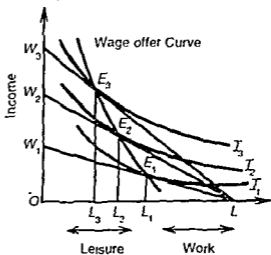
चित्र 9.51

जब उसकी मज़दूरी बढ़कर E_2L_2 होती है, तो वह अधिक घंटे L_2L काम करता है, और E_3L_3 मज़दूरी बढ़ने से और अधिक L_3L घंटे काम करता है और पहले से कम अवकाश प्राप्त करता है। E_1, E_2, और E_3 बिन्दुओं को जोड़ रही रेखा मज़दूरी अर्पण वक्र (wage offer curve) कहलाता है।

श्रम का पूर्ति वक्र E_1, E_2 और E_3 सतुलन बिन्दुओं के बिन्दुपथ से खींचा जा सकता है। परन्तु मज़दूरी अर्पण वक्र श्रम का पूर्ति वक्र नहीं है। बल्कि, यह श्रम के पूर्ति वक्र की ओर संकेत करता है। चित्र 9.51 में दिए गए मज़दूरी अर्पण वक्र से श्रम का पूर्ति वक्र व्युत्पन्न करने के लिए हम तालिका 9.8 में एक मज़दूरी घंटा अनुसूची खींचते हैं।

तालिका 9.8 : मज़दूरी-घंटा अनुसूची

सतुलन बिन्दु	मजदूरी दर प्रति घंटा	काम के घंटे
E_1	$OW_1/OL = w_1$	L_1L
E_2	$OW_2/OL = w_2$	L_2L
E_3	$OW_3/OL = w_3$	L_3L

चित्र 9.52
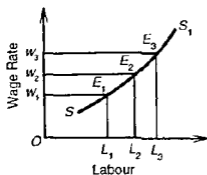
ऊपर की अनुसूची के आधार पर, श्रम का पूर्ति वक्र चित्र 9.52 में खींचा गया है जहां प्रति घंटा मज़दूरी दर अनुलंब अक्ष पर और काम के घंटे (या श्रम की पूर्ति) समानांतर अक्ष पर मापी गई है। जब मज़दूरी दर w_1 है, तो OL_1 श्रम की पूर्ति की जाती है। ज्यू-ज्यू मज़दूरी दर बढ़कर w_2 से w_3 होती है, तो श्रम की पूर्ति भी बढ़कर OL_2 से OL_3 हो जाती है। मज़दूरी-श्रम संयोग बिन्दु E_1, E_2 और E_3 श्रम का पूर्ति वक्र SS_1 ट्रेस करते हैं। SS_1 बाईं से दाईं ओर ऊपर को धनात्मक ढलान का वक्र है जो यह दर्शाता है कि जब मजदूरी दर बढ़ती है तो वर्कर अधिक घंटे काम करता है। *वर्कर का यह रवैया दो शक्तियों का प्रभाव है* पहला, स्थानापन्नता प्रभाव और दूसरा, मज़दूरी वृद्धि का आय प्रभाव। जब मज़दूरी की दर बढ़ती है, तो अधिक कमाने के लिए श्रमिक को अधिक घंटे काम करने की प्रवृत्ति होती है। यह ऐसा है जैसे अवकाश उसके लिए महँगा हो गया हो। इसलिए उसकी अवकाश के स्थान पर काम को स्थानापन्न करने की प्रवृत्ति होती है। यह श्रमिक की मज़दूरी दर में वृद्धि का स्थानापन्नता प्रभाव है। दूसरे, जब मज़दूरी दर बढ़ती है तो श्रमिक की अवस्था निश्चय ही पहले से अच्छी हो जाती है। वह संतोष का अनुभव करता है और अवकाश को काम की अपेक्षा अधिमान देता है। यह मजदूरी-दर में वृद्धि का आय प्रभाव है। चित्र में, ज्यू-ज्यू मज़दूरी दर w_1 से w_2 और w_3 बढ़ती है, काम के घंटे OL_1 से OL_2 और OL_3 क्रमश बढ़ते हैं। ऐसा इसलिए कि आय प्रभाव से स्थानापन्नता प्रभाव शक्तिशाली है।

पीछे की ओर ढालू श्रम का पूर्ति वक्र (Backward Sloping Supply Curve of Labour)

किसी ऊंची मज़दूरी दर पर यदि मजदूरी दर और बढती है, तो वर्कर पहले से कम घंटे काम करके अधिक अवकाश का आनंद ले सकता है। ऐसी स्थिति को चित्र 9 53 मे दर्शाया गया है। जब वर्कर की आय उत्तरोत्तर (progressively) E_1L_1 से E_2L_2 और E_3L_3 बढती जाती है, तो आय के किसी स्तर पर वर्कर कम घंटे काम कर सकता है। चित्र मे बिन्दु E_1 पर वह L_1L घंटे काम कर रहा है और सतुलन बिन्दु E_2 पर वह अधिक घंटे L_2L काम करता है जब उसकी आय E_1L_1 से बढकर E_2L_2 होती है। परन्तु आय मे और वृद्धि E_3L_3 होने से वह काम करने के घंटों को L_2L से कम करके L_3L कर देता है। अब वर्कर अपने अवकाश के घंटे OL_2 से बढाकर OL_3 करता है। इन मजदूरी-श्रम सयोगों के अनुरूप श्रम का पूर्ति वक्र SS_1 चित्र 9 54 मे खींचा गया है जो पीछे की ओर ढालू है। मज़दूरी वृद्धि के स्थानापन्नता प्रभाव और आय प्रभाव लेते हुए w_2 मज़दूरी दर तक आय प्रभाव से स्थानापन्नता प्रभाव शक्तिशाली है। इसलिए इस वर्कर का पूर्ति वक्र S से E_2 तक धनात्मक ढलान वाला है। मज़दूरी दर w_2 पर स्थानापन्नता प्रभाव के बिल्कुल बराबर आय प्रभाव है और E_2 बिन्दु पर SS_1 वक्र अनुलब है। ज्यू-ज्यू मज़दूरी दर w_2 से बढती जाती है, स्थानापन्नता प्रभाव से आय प्रभाव शक्तिशाली होता जाता है, और पूर्ति वक्र E_2S_1 भाग मे ऋणात्मक ढलान का है, जो यह दर्शाता है कि वर्कर अवकाश को काम पर अधिमान देता है। चित्र मे जब मज़दूरी दर बढकर w_3 हो जाती है तो वर्कर अपने काम करने के घंटे OL_2 मे कम करके OL_3 कर देता है और L_2L_3 अवकाश का आनद उठाता है।
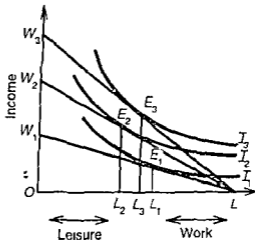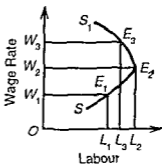
चित्र 9 53

चित्र 9 54

6 आय प्रभाव बनाम उत्पादन शुल्क (The Effect of Income Tax *vs* Excise Duty)

उदासीनता वक्र तकनीक उत्पादन शुल्क या बिक्री कर के विरुद्ध आयकर के कल्याणकारी परिणामों पर विचार करने मे भी सहायता देती है। क्या कर देने वाले को आयकर से अधिक आघात पहुचता है या उसकी बराबर मात्रा के उत्पादन शुल्क से? हम एक कर देने वाले को लेते

है जिसे आयकर या वस्तु X पर उत्पादन शुल्क के रूप मे प्रति वर्ष रु 4000 देने पडते हैं। यह भी मान लेते है कि उत्पादन शुल्क लगने से कीमत बढ जाने पर भी वह वस्तु को खरीदता रहेगा।

चित्र 9.55 मे कर देने वाले की आय अनुलब पर दिखाई गई है। उसकी आय OM है और शुल्क लगने से पहले उसकी मूल कीमत-आय रेखा MN है। वह उदासीनता वक्र I_1 के बिन्दु B पर सतुलन में है। X की MA मात्रा के लिए वह AB खर्च करता है। अब जबकि वस्तु X पर उत्पादन शुल्क लगाया जाता है तो इसकी कीमत-आय रेखा MN_1 पर आ जाती है जहा I_2 वक्र के बिन्दु C पर वह सतुलन मे है। शुल्क के कारण वह X की ML मात्रा खरीदता है और उस पर LC खर्च करता है। परन्तु मूल कीमत रेखा पर इस ML मात्रा के लिए उसे LC खर्च करना पडता है। इसलिए इस वस्तु के लिए वह SC शुल्क देता है।

चित्र 9 55
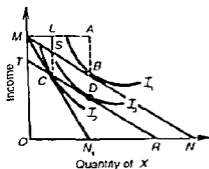
यदि इसकी बजाय सरकार आय कर के रूप में कर की उतनी ही मात्रा बढा दे, तो कर देने वाले की आय की $MT (= SC)$ मात्रा कम हो जाएगी। वह उदासीनता वक्र I_3 के पहले से नीची रेखा TR के बिन्दु D पर आ जाता है। क्योंकि उदासीनता वक्र I_3 वक्र I_2 से ऊपर है, इसलिए उत्पादन शुल्क के बराबर आय कर, कर देने वाले को अच्छी स्थिति मे पहुँचा देता है।

7 एक व्यक्ति की बचत योजना (The Saving Plan of an Individual)

एक व्यक्ति की बचत योजना का अध्ययन करने के लिए भी उदासीनता वक्र का प्रयोग किया जा सकता है। किसी व्यक्ति का बचत करने का निर्णय उसकी वर्तमान और भविष्य की आय, वर्तमान और भविष्य की वस्तुओ के लिए उसकी रुचियों और अधिमानों, उनकी प्रत्याशित कीमतों, वर्तमान और भविष्य ब्याज की दर और उसकी अपनी बचत के स्टॉक पर निर्भर करता है। वास्तव मे, उसका बचत का निर्णय उसकी वर्तमान और भविष्य की वस्तुओं के लिए इच्छा की तीव्रता पर निर्भर करता है। यदि वह अधिक बचत करना चाहता है, तो अन्य बातो के समान रहने पर वर्तमान वस्तुओं पर कम खर्च करेगा। यह बचत वास्तव मे वर्तमान और भविष्य वस्तुओं मे चुनाव है। इसे चित्र 9.56 में उदासीनता वक्रो की सहायता से स्पष्ट किया गया है।

चित्र 9 56

मान लीजिए कि व्यक्ति की कुल कीमत-आय रेखा PF_1 है जहाँ उदासीनता वक्र I के बिन्दु S पर वह सतुलन मे है। वर्तमान और भविष्य की वस्तुओ की कीमतों, उपभोक्ता की आय, उसकी वर्तमान और भविष्य की रुचियो और अधिमानों तथा ब्याज की दर दी हुई होने पर वह वर्तमान वस्तुओं की OA मात्रा खरीदता है और इतना बचाने की योजना बनाता है कि उसे भविष्य मे वस्तुओं की OB मात्रा मिल सके।

मान लीजिए उसके अधिमानो मे परिवर्तन हो जाता है। ऐसे परिवर्तन का उपभोक्ता की बचत योजना पर क्या प्रभाव पडेगा? यदि वर्तमान वस्तुओं के लिए उसका अधिमान बढ जाता है, तो उसकी रेखा P_1F हो जाएगी जिससे वह वक्र I_1 के बिन्दु Q पर सतुलन मे आ जाएगा। अब वह वर्तमान वस्तुओं की OA_1 मात्रा खरीदता है और इस प्रकार भविष्य की वस्तुओं के लिए कम बचाता है। इसके परिणामस्वरूप, भविष्य की वस्तुओं की खरीद OB से कम होकर OB_1 हो जाती है। दूसरी ओर, यदि उसके अनुमान मे भविष्य के उपभोग का मूल्य बढ जाता है, तो उसकी कीमत रेखा P_2F_2 पर चली जाएगी जहा वह I_2 वक्र के बिन्दु R पर सतुलन मे होगा। इसलिए वह अधिक बचत करेगा और अपने वर्तमान वस्तुओं के उपभोग को घटाकर OA_2 कर देगा जिससे उसे भविष्य मे वस्तुओं की OB_2 मात्रा मिल सके। यदि ब्याज की दर बढ जाए, तो भी इसी प्रकार के प्रभाव होते है बशर्ते कि अन्य बाते स्थिर रहे।

8 **उपभोक्ता की बचत का माप** (Measuring Consumer's Surplus)

देखिए अध्याय 14

16. उदासीनता वक्र तकनीक की उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठता (SUPERIORITY OF INDIFFERENCE CURVE TECHNIQUE OVER UTILITY ANALYSIS)

प्रोफेसर ऐलन और हिक्स द्वारा निर्मित उदासीनता वक्र तकनीक को मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण पर सुधार माना जाता है क्योंकि यह अपेक्षाकृत अधिक वास्तविक तथा कम मान्यताओं पर आधारित है।

(1) **यह उपयोगिता के गणनसख्या माप का त्याग करता है** (It dispenses with cardinal measurement of utility)—समस्त उपयोगिता विश्लेषण यह मानकर चलता है कि उपयोगिता गणनसख्याओं मे मापी जा सकने वाली मात्रा है जिसका भार 'यूटिलो' मे नियत किया जा सकता है। यदि एक सेब की उपयोगिता 10 यूटिल, केले की 20 यूटिल और सतरे की 40 यूटिल है, तो केले की उपयोगिता सेब की उपयोगिता से दुगुनी और सतरे की उपयोगिता सेब की उपयोगिता से चार गुनी और केले की उपयोगिता से दुगुनी है। यह माप्यता (measurability) नहीं है बल्कि सकर्मकता (transitivity) है। वास्तव मे, एक उपभोक्ता के लिए किसी वस्तु मे जो उपयोगिता है वह व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक होती है, इसलिए उसकी मात्रात्मक माप नहीं की जा सकती। उपयोगिता विश्लेषण से उदासीनता सिद्धान्त श्रेष्ठ है क्योंकि यह उपयोगिता का क्रमसख्या माप करता है। उपभोक्ता वस्तुओं के विभिन्न सयोगो को अधिमान के पैमाने मे रखता है और उन्हे पहला, दूसरा, तीसरा, आदि क्रम देता है। वह बता सकता है कि पहले सयोग की अपेक्षा दूसरे के लिए या दूसरे की अपेक्षा पहले के लिए उसका अधिमान अधिक है या कि वह दोनों के प्रति उदासीन है। परन्तु वह यह नहीं बता सकता है कि एक की अपेक्षा दूसरे सयोग के लिए उसका अधिमान कितनी मात्रा मे अधिक है। क्रमसख्या विधि और सकर्मकता की मान्यता इस तकनीक को अधिक वास्तविक बना देती है।

(2) **यह एक के स्थान पर दो वस्तुओ के सयोगों का अध्ययन करता है** (It studies combinations of two goods instead of one good)—उपयोगिता सिद्धान्त केवल एक वस्तु का विश्लेषण करता है, जिसमे एक वस्तु की उपयोगिता दूसरी वस्तु की उपयोगिता से स्वतत्र मान ली जाती है। मार्शल ने कई वस्तुओं को एक वस्तु के रूप मे इकट्ठा करके स्थानापन्नता और पूरक

वस्तुओं की चर्चा से बचने की कोशिश की। यह मान्यता वास्तविकता से बहुत दूर है क्योंकि उपभोक्ता एक समय पर किसी एक वस्तु को न लेकर वस्तुओं के संयोगों का खरीदता है। उदासीनता वक्र तकनीक द्वि-वस्तु तकनीक है जो स्थानापन्नों, पृथक वस्तुओं और असंबंधित वस्तुओं के विषय में उपभोक्ता के व्यवहार की चर्चा करती है। इस प्रकार यह उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ है।

(3) यह स्थानापन्नों और पूरकों में वस्तुओं का बेहतर वर्गीकरण प्रदान करती है। (It provides a better classification of goods into substitutes and complements)—परम्परागत अर्थशास्त्री स्थानापन्नों और पूरकों की व्याख्या माग की प्रति-लोच के अनुसार करते थे। हिक्स इसे अपर्याप्त मानता है और आय में क्षतिपूर्ति परिवर्तन करके इनकी व्याख्या करता है। इस प्रकार वह स्थानापन्नों और पूरकों के परम्परागत वर्गीकरण में पाई जाने वाली अस्पष्टता को दूर करता है।

(4) यह घटती सीमान्त उपयोगिता नियम की उपयोगिता विश्लेषण की मान्यताओं के बिना व्याख्या करती है। (It explains the Law of Diminishing Marginal Utility without the unrealistic assumptions of utility analysis)—उपयोगिता विश्लेषण घटती सीमान्त उपयोगिता के नियम की स्थापना करता है जो सब प्रकार की वस्तुओं पर, यहाँ तक कि मुद्रा पर भी, लागू होता है। क्योंकि यह नियम गणनसंख्या माप पर आधारित है इसलिए उस विश्लेषण के सभी दोष इस नियम में भी पाए जाते हैं। अधिमान सिद्धान्त में इस नियम का स्थान घटती सीमान्त स्थानापन्नता दर के नियम ने ले लिया है। हिक्स के अनुसार, स्थानापन्नता नियम अनुवाद मात्र नहीं बल्कि प्रत्यक्ष परिवर्तन है। यह वैज्ञानिक है और साथ ही उपयोगिता विश्लेषण के मनोवैज्ञानिक मात्रात्मक माप से मुक्त है। उपभोग, उत्पादन और वितरण के क्षेत्र में इस नियम के प्रयोग ने अर्थशास्त्र को अधिक वास्तविक बना दिया है।

(5) यह मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता की मान्यता से मुक्त है (It is free from the assumptions of Constant Marginal Utility of Money)—उपयोगिता विश्लेषण मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मान लेता है। मार्शल ने इस तर्क के आधार पर इसकी सार्थकता बनाई कि एक व्यक्तिगत उपभोक्ता किसी एक समय में किसी एक वस्तु पर अपने कुल व्यय का थोड़ा-सा भाग ही खर्च करता है। यह मान्यता कई प्रकार से उपयोगिता सिद्धान्त को अवास्तविक बना देती है। यह केवल एक-वस्तु मॉडल पर लागू होता है। विभिन्न वस्तुओं के उपभोग से प्राप्त एक व्यक्ति की सन्तुष्टि को मुद्रा के मापदण्ड से मापने में यह सिद्धान्त असफल रहता है। उपयोगिता विश्लेषण की अपेक्षा उदासीनता वक्र तकनीक निश्चय ही श्रेष्ठ है। क्योंकि यह मुद्रा की स्थिर सीमान्त उपयोगिता की मान्यता से मुक्त है। जब उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होता है तो यह आय-प्रभाव पर विचार करती है।

(6) यह विश्लेषण कीमत-प्रभाव के दोहरे प्रभाव की व्याख्या करता है (The analysis explains the dual effect of the price effect)—मार्शल के विश्लेषण की एक मुख्य त्रुटि यह है कि इसमें वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से आय तथा स्थानापन्नता प्रभावों की उपेक्षा की गई है। उदासीनता वक्र प्रणाली में जब किसी वस्तु की कीमत कम होती है तो पहले उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ती है जो आय प्रभाव है, तथा दूसरा, वस्तु की कीमत कम होने से जब वह सस्ती हो जाती है तो उपभोक्ता उसको दूसरी वस्तु के साथ स्थानापन्न करता है, यह स्थानापन्नता प्रभाव है। उपयोगिता विश्लेषण से उदासीनता वक्र श्रेष्ठ है क्योंकि जब किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है, तो कीमत-प्रभाव और आय तथा स्थानापन्नता-प्रभावों के रूप में इसके दोहरे प्रभाव का अध्ययन करती है। जब उपभोक्ता की आय के साथ अन्य किसी वस्तु की कीमत में भी परिवर्तन होता है तो यह तकनीक प्रति-प्रभाव (cross effect) का विश्लेषण करती है।

(7) **यह आनुपातिकता नियम की अच्छे ढग से व्याख्या करती है** (It explains the proportionality rule in a better way)—फिर, उदासीनता वक्र तकनीक मार्शल के आनुपातिकता नियम से मिलते-जुलते परन्तु अपेक्षाकृत अच्छे ढग से उपभोक्ता के सतुलन की व्याख्या करती है। उपभोक्ता उस बिन्दु पर सतुलन की स्थिति मे होता है जहाँ बजट रेखा उदासीनता वक्र को स्पर्श करती है। इस बिन्दु पर उदासीनता वक्र की ढलान बजट रेखा की ढलान के बराबर होती है

जिससे Y के लिए X का $MRS = \dfrac{\text{Price of } X}{\text{Price of } Y}$ (1)

मार्शल के आनुपातिकता नियम के अनुसार, उपभोक्ता उस समय सतुलन की स्थिति मे होता है जब

$$\frac{MU \text{ of } X}{\text{Price of } X} = \frac{MU \text{ of } Y}{\text{Price of } Y} \quad (2)$$

क्योंकि हिक्स ने Y के लिए X की MRS को Y के रूप मे X की सीमान्त उपयोगिता कहा है,

इसलिए हम कह सकते है कि Y के लिए X की MRS $\dfrac{MU \text{ of } X}{MU \text{ of } Y}$

समीकरण (1) इस प्रकार लिखा जा सकता $\dfrac{MU \text{ of } X}{MU \text{ of } Y} = \dfrac{\text{Price of } X}{\text{Price of } Y}$

वज्र गुणन (cross multiplication) से हम मार्शल के आनुपातिकता नियम पर पहुच जाते है अर्थात् यह निष्कर्ष हमे आनुपातिकता नियम की असगत मान्यताओ के बिना प्राप्त होता है

$$\frac{MU \text{ of } X}{\text{Price of } X} = \frac{MU \text{ of } Y}{\text{Price of } Y}$$

(8) **यह उपभोक्ता की बचत के सिद्धात का पुनर्स्थापन करती है** (It rehabilitates the concept of consumer's surplus)—इसी प्रकार, मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता की स्थिरता की अवास्तविक मान्यता को छोड़कर हिक्स ने उपभोक्ता की बचत का पुनर्स्थापन किया है। उसके अनुसार उपभोक्ता की बचत उस लाभ को मौद्रिक आय के रूप मे व्यक्त करने का साधन है जो कीमत गिरने के परिणामस्वरूप उपभोक्ता को होता है। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त अब एक 'गणितीय पहेली' नहीं रह गया और उपयोगिता सिद्धान्त की अन्त विश्लेषक गणनसख्या माप से मुक्त कर दिया गया है।

(9) **यह माँग नियम की अधिक वास्तविक ढग से व्याख्या करती है** (It explains the law of demand more realistically)—उदासीनता वक्र तकनीक मार्शल के माँग के नियम की अधिक वास्तविक ढंग से कई प्रकार व्याख्या करती है। यह उपयोगिता विश्लेषण की मनोवैज्ञानिक मान्यताओ से मुक्त है। यह एक घटिया वस्तु की कीमत मे कमी के प्रभाव की उपभोक्ता की माँग पर व्याख्या करता है। गिफ्फन वस्तुएँ मार्शल के लिए हमेशा विरोधाभास बनी रहीं। इस तकनीक की सहायता से उनकी बड़ी सुन्दर व्याख्या की गई है। जबकि मार्शल के माँग सिद्धान्त के अनुसार एक वस्तु की माँग उसकी कीमत से उलट आनुपाती (inversely proportional) होती है और माँग वक्र की ढलान नीचे दाएँ को होती है। उदासीनता वक्र विश्लेषण दो और स्थितियो की व्याख्या करता है

(i) एक वस्तु की कीमत गिरने से भी उसकी माँग में परिवर्तन नहीं होता। उन घटिया वस्तुओ के विषय मे ऐसा होता है जिनका आय-प्रभाव स्थानापन्नता-प्रभाव के बिलकुल बराबर होता है।

(ii) जब एक वस्तु की कीमत गिरती है तो उसकी माँग भी गिर जाती है। यह गिफ्फन वस्तुओं की स्थिति है जिनका आय-प्रभाव स्थानापन्नता-प्रभाव की अपेक्षा अधिक होता है और माँग वक्र की ढलान बाएँ से दाएँ ऊपर की ओर होती है।

मार्शल इन स्थितियों की व्याख्या करने में असमर्थ रहा। इस कारण मार्शल के अन्त विश्लेषक गणनसख्या माप की अपेक्षा उदासीनता वक्र तकनीक निश्चय की श्रेष्ठ है।

17. उदासीनता वक्र विश्लेषण की आलोचनाएं (CRITICISMS OF INDIFFERENCE CURVE ANALYSIS)

निस्सदेह उपयोगिता विश्लेषण से उदासीनता विश्लेषण श्रेष्ठ समझा जाता है, परन्तु इसका विरोध करने वाले आलोचकों की कमी नहीं। आलोचना की मुख्य बातों पर नीचे विचार किया जा रहा है।

(1) नई बोतलों में पुरानी शराब (Old wine in new bottles)—प्रोफेसर राबर्टसन[12] को उदासीनता वक्र तकनीकों में कोई नई बात नहीं लगती है और वह समझते हैं कि यह केवल **'नई बोतलों में पुरानी शराब'** है। यह 'उपयोगिता' के स्थान पर 'अधिमान' की धारणा को स्थानापन्न करती है। इसमें अन्त विश्लेषक गणनसख्या माप का स्थान अन्त विश्लेषक क्रमसख्या ले लेता है। उपभोक्ता के अधिमान को प्रदर्शित करने के लिए सख्यात्मक गणना 1, 2, 3 की बजाय क्रमिक गणना I, II, III (पहला, दूसरा, तीसरा आदि) का व्यवहार होता है। यह सीमान्त उपयोगिता (*MU*) की बजाय स्थानापन्नता की सीमान्त दर (*MRS*) को, और घटती सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त की बजाय स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर के नियम को स्थानापन्न करती है तथा मार्शल के उपभोक्ता सतुलन का आनुपातिकता नियम के साथ स्थानापन्न करती है। इस प्रकार यह तकनीक उपयोगिता विश्लेषण में प्रत्यक्ष परिवर्तन लाने में असफल है और पुराने सिद्धान्तों को केवल नए नाम देती है।

(2) वास्तविकता से दूर (Away from reality)—इस निश्चित कथन के विषय में कि उदासीनता वक्र तकनीक गणनसख्या उपयोगिता विश्लेषण की अपेक्षा इसलिए श्रेष्ठ है कि वह अपेक्षाकृत कम मान्यताओं पर आधारित है, राबर्टसन का कहना है कि "यह तथ्य कि दोनों तकनीकों में से मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधिक जटिल उदासीनता उपकल्पना तार्किक दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ है, इस बात की कोई गारन्टी नहीं देता कि वह सत्य के अधिक निकट है।" वह आगे प्रश्न करता है, क्या हम चार पैर वाले पशुओं की इस आधार पर उपेक्षा कर सकते हैं कि चलने के लिए केवल दो पैरों की जरूरत है?

(3) मध्यमार्गी घर (Midway house)—उदासीनता वक्र उपकल्पित (hypothetical) हैं क्योंकि इन्हें प्रत्यक्ष रूप से नहीं मापा जा सकता। यद्यपि उपभोक्ता के चुनावों को क्रमसख्या के आधार पर सयोगों में इकट्ठे रखा जाता है, परन्तु अब तक उदासीनता वक्र के ठीक आकार को मापने का कोई क्रियात्मक तरीका नहीं बन पाया है। इसका कारण यह तथ्य है कि "इस सिद्धान्त की विचित्र तर्कसगत सरचना में अनुभववादी अश बहुत कम है।" उपभोक्ता के व्यवहार का वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रस्तुत करने में हिक्स और एलन की असफलता के कारण शूम्पीटर (Schumpeter) ने उदासीनता विश्लेषण को **"मध्यमार्गी घर"** (midway house) कहा है। उसका कथन है, "जब हम एकदम कल्पित उदासीनता वक्र बनाते हैं, तो उस स्थिति की अपेक्षा, जबकि

12 D H Robertson, *Lectures on Economic Principles*, Vol I, 1957

हम एकदम कल्पित उपयोगिता फलनों की बात करते है, व्यावहारिक दृष्टि से, बहुत अच्छी स्थिति मे नहीं होते।"[13]

(4) **उदासीनता वक्र तकनीक मे क्रमसख्या माप अंतर्निहित** (Cardinal measurement implicit in I C technique)—प्रो रार्बटसन यह बताता है कि उदासीनता तकनीक मे क्रमसख्या माप अंतर्निहित होता है जब स्थानापन्नो और पूरको का विश्लेषण किया जाए। उनके बारे मे यह माना जाता है कि उपभोक्ता एक स्थिति मे परिवर्तन को एक अन्य स्थिति में अन्य परिवर्तन को अधिमान देने की क्षमता रखता है। इसकी व्याख्या करने के लिए रार्बटसन तीन स्थितिया *A B* और *C* लेता है जैसा कि चित्र 9.57 मे दर्शाया गया है। मान लीजिए कि उपभोक्ता स्थिति *AB* में एक परिवर्तन को *BC* स्थिति मे अन्य परिवर्तन के साथ तुलना करता है। वह *BC* परिवर्तन से *AB* परिवर्तन को बहुत अधिक अधिमान देता है।

A D B C

चित्र 9.57
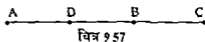
यदि एक अन्य बिन्दु *D* लिया जाए, तो वह *AD* परिवर्तन को उतना ही ऊचा अधिमान देता है जितना कि *DC* परिवर्तन को। राबर्टसन के अनुसार, यह इस तरह कहने के समान है कि *AC* दूरी *DC* दूरी से दुगनी है और हम वापिस उपयोगिता के गणनसख्या माप के ससार मे आ जाते है। इस प्रकार, जब दो स्थितियो में परिवर्तनो की तुलना की जाती है जैसेकि स्थानापन्नो और पूरको के बारे मे तो उससे उपयोगिता का गणनसख्या माप होता है।

(5) **उपभोक्ता के अवलोकित व्यवहार की व्याख्या करने मे असफल** (Fails to explain the observed behaviour of the consumer)—प्रोफेसर नाईट (Knight) का तर्क है कि उदासीनता विश्लेषण की सहायता से उपभोक्ता के अवलोकित (observed) मार्किट व्यवहार की निरपेक्ष व्याख्या नहीं की जा सकती क्योकि व्यक्ति निजी रूप से सोचता और कार्य करता है, इसलिए उपभोक्ता की माँग को गणनसख्या उपयोगिता सिद्धान्त पर आधारित न करना गलती है। उदाहरण के लिए, केवल अवलोकन के आधार पर कीमत और स्थानापन्नता प्रभावो मे अन्तर नहीं किया जा सकता। वास्तव में, हम जिसका अवलोकन करते है वह मिश्रित कीमत-प्रभाव है। इसी प्रकार स्थानापन्नता की सीमान्त दर के नियम पर आधारित पूरको और स्थानापन्नो के प्रभाव को मार्किट के आँकडो के आधार पर प्रकट नहीं किया जा सकता। सैम्यूलसन ने उपभोक्ता के अवलोकित व्यवहार की अपने प्रकटित अधिमान सिद्धान्त मे व्याख्या की है।

(6) **उदासीनता वक्र सकर्मक नहीं है** (Indifference curves are non-transitive)—प्रो. आर्मस्ट्राग उदासीनता सिद्धान्त के सबसे बडे आलोचको मे से है। उनका तर्क यह है कि उपभोक्ता इसलिए उदासीन नहीं होता है कि जो विभिन्न सयोग उसे मिल सकते हैं उनका उसे पूरा ज्ञान है बल्कि इसलिए उदासीन होता है कि वह वैकल्पिक सयोगों के अन्तर को पहचानने मे असमर्थ होता है। आगे उसका मत है कि एक उदासीनता वक्र पर स्थित कोई दो बिन्दु इसलिए उदासीनता बिन्दु नहीं है कि वे समान सतुष्टि के बिन्दु है बल्कि इसलिए उदासीनता के बिन्दु है कि वे शून्य-उपयोगिता अन्तर (zero utility difference) के बिन्दु है। एक उदासीनता वक्र के दो या अधिक बिन्दुओ का सबध केवल तब समान होता है जब उपयोगिता अन्तर शून्य हो। आर्मस्ट्राग के तर्क को चित्र 9.58 की सहायता से समझाया गया है। इस चित्र मे वक्र I_1 पर बिन्दु *P Q R S* दो वस्तुओ *X* और *Y* के भिन्न-भिन्न सयोगो को प्रकट करते है। बिन्दु *P* और *Q* तथा *R* और *S* इस ढंग से लिए गए है कि हर जोडे में अन्तर सूक्ष्म है। बिन्दु *P* और *Q* या *R* और *S* तभी समान

13 J A Schumpeter *History of Economic Analysis* p 1066
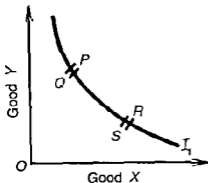
चित्र 9.58

सन्तुष्टि के बिन्दु होंगे जब उनके बीच उपयोगिता का अन्तर शून्य होगा। परन्तु उपभोक्ता *P* और *R* के प्रति उदासीन नहीं हो सकता क्योंकि *P* और *R* के बीच कुल उपयोगिता का अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। इसलिए उपभोक्ता *R* की अपेक्षा *P* को या विपरीत स्थिति में *P* की अपेक्षा *R* को अधिक अधिमान देगा। इससे स्पष्ट है कि एक उदासीनता वक्र पर स्थित बिन्दु सकर्मक नहीं है। आर्मस्ट्राग का कहना है कि "यदि उदासीनता वक्र सकर्मक नहीं है, तो पाठय-पुस्तकों के चित्रों में बने, न काटने वाले ढेरों उदासीनता वक्रों का कोई मतलब नहीं।"[14] इसलिए 'उदासीनता' का विचार ही संदेहपूर्ण प्रतीत होता है।

(7) **उपभोक्ता विचारशील नहीं** (The consumer is not rational)—उपयोगिता सिद्धान्त की भाँति उदासीनता विश्लेषण भी यह मानकर चलता है कि उपभोक्ता विचारशीलता से कार्य करता है। यह हिसाब लगाने वाला व्यक्ति है जो दिमाग में भिन्न वस्तुओं के अनगिनत संयोगों को रखता है, एक संयोग के स्थान पर दूसरे को स्थानापन्न कर सकता है, उनकी कुल उपयोगिताओं की तुलना करके वस्तुओं के विभिन्न संयोगों में से उचित चुनाव कर सकता है। उपभोक्ता से इतनी आशा करना व्यर्थ है जबकि उसे विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और कानूनी प्रतिबंधों के रहते हुए कार्य करना पड़ता है। इससे उदासीनता वक्र तकनीक अवास्तविक बनने लगती है।

(8) **संयोग किसी नियम पर आधारित नहीं** (Combinations are not based on any principle)—क्योंकि वस्तुओं की प्रकृति पर ध्यान दिए बिना संयोग बना दिए जाते हैं, इसलिए प्रायः वे व्यर्थ हो जाते हैं। हममें कितने हैं जो 10 जोड़ी जूते और 8 पैण्टे, या 6 रेडियो और 5 घड़ियाँ, या 4 स्कूटर और 3 कारें खरीदते हैं? ऐसी संयोगों का उपभोक्ता के लिए कोई अर्थ नहीं होता। संयोग कैसे और किन वस्तुओं के हों ऐसा कोई भी नियम इस प्रणाली में नहीं पाया जाता। इस लिए यह अवास्तविक है।

(9) **उपभोक्ता के व्यवहार का सीमित विश्लेषण** (Limited analysis of consumer's behaviour)—*फिर यह मान्यता भी व्यर्थ है कि वस्तु की कीमत गिर जाने पर उपभोक्ता उसी वस्तु* की ओर इकाइयाँ खरीदता है। घटिया वस्तुओं की बात छोड़ दीजिए। वह वस्तुओं की और इकाइयाँ शायद इसलिए भी न खरीदना चाहे कि वह 'प्रत्यक्ष या दिखावटी उपभोग' के प्रभाव में है, और प्रदर्शन के लिए या विविधता के लिए वस्तुएँ लेना चाहता है। उपभोक्ता की रुचि में परिवर्तन या उसके सट्टा करने का भी वस्तुओं के प्रति उसके अधिमान पर प्रभाव पड़ता है। इन अपवादों के कारण उदासीनता विश्लेषण उपभोक्ता के व्यवहार का सीमित अध्ययन ही कर सकता है।

(10) **उपभोक्ता व्यवहार से संबंधित कुछ अन्य घटकों पर विचार करने में असफल** (Failure to consider some other factors concerning consumer behaviour)—उदासीनता वक्र विश्लेषण सट्टा माग, दभी, वेबलन और बैंडवैगन प्रभावों के रूप में उपभोक्ताओं के अधिमानों की परस्पर निर्भरता, विज्ञापन के प्रभाव और स्टॉक एवं शेयरों आदि के प्रभावों पर विचार नहीं करता है।

14 W E Armstrong, Utility and the Theory of Welfare', *O E P*, Oct 1951

(11) **द्वि-वस्तु मॉडल अवास्तविक है** (Two good model unrealistic)—द्वि-वस्तु मॉडल, जिस पर उदासीनता विश्लेषण आधारित है, सिद्धान्त को अवास्तविक बना देता है क्योंकि अपनी अनगिनत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपभोक्ता केवल दो वस्तुएँ नहीं खरीदता है बल्कि बहुत-सी वस्तुएँ खरीदता है। परन्तु कठिनाई यह है कि तीन से अधिक वस्तुओं के विषय में ज्यामिति (geometry) से काम नहीं चलता और अर्थशास्त्रियों को उपभोक्ता के व्यवहार की समस्या का विश्लेषण करने के लिए अधिक जटिल गणितीय विधियों का सहारा लेना पड़ता है।

(12) **जोखिम या अनिश्चितता में उपभोक्ता के व्यवहार की व्याख्या करने में असफल** (Fails to explain consumer's behaviour in choices involving risk or uncertainty)— **न्यूमैन तथा मॉरगेनस्टर्न** ने अधिमान सिद्धान्त के विरुद्ध एक गम्भीर आपत्ति यह उठाई है कि यह सिद्धान्त उपभोक्ता के व्यवहार की उस समय व्याख्या करने में असफल रहता है जब व्यक्ति के सामने ऐसे चुनाव हों जिनमें जोखिम उठानी पड़े या प्रत्याशाओं की अनिश्चितता हो। मान लीजिए कि तीन स्थितियाँ A, B और C हैं। उपभोक्ता B की अपेक्षा A को और A की अपेक्षा C को अधिक अधिमान देता है। इन स्थितियों में से A तो निश्चित है परन्तु B और C स्थितियों के प्रस्तुत होने की सम्भावना 50-50 (बराबर-बराबर) है। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता के A की अपेक्षा C के अधिमान को केवल गणनसंख्या ढंग से ही मापा जा सकता है।

(13) **पूर्ण प्रतियोगिता तथा समरूप वस्तुओं की अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित** (Based on unrealistic assumptions of perfect competition and homogeneous products)—उदासीनता वक्र तकनीक पूर्ण प्रतियोगिता तथा वस्तुओं की समरूपता विषयक अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है जबकि वास्तव में उपभोक्ता को भिन्नित वस्तुओं और एकाधिकारी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। क्योंकि उदासीनता सिद्धान्त अनावश्यक मान्यताओं पर आधारित है, इसलिए अवास्तविक बन जाता है।

(14) **सभी वस्तुएँ अविभाज्य नहीं होती** (All commodities are not divisible)—उदासीनता वक्र प्रणाली हास्यास्पद हो जाती है जब इसमें यह माना जाता है कि वस्तुओं को छोटी-छोटी इकाइयों में विभाजित किया जा सकता है। परन्तु घड़ियों, कारों, रेडियो आदि को विभाजित नहीं किया जा सकता है। यदि 3 1/2 घड़ियाँ या 2 1/2 कारें या 1 1/2 रेडियो किसी भी संयोग में लें तो यह वास्तविकता नहीं। जब अविभाज्य वस्तुओं को किसी संयोग में लिया जाए तो विभाजित किए बिना दूसरी वस्तु के साथ स्थानापन्न भी नहीं किया जा सकता। इस प्रकार उपभोक्ता अधिक संतुष्टि प्राप्त नहीं कर सकता।

इन सब आलोचनाओं के बावजूद मार्शल के गणनसंख्या माप सिद्धान्त की तुलना में उदासीनता वक्र तकनीक को श्रेष्ठ समझा जाता है।

प्रश्न

1 उपयोगिता को मापने में क्या कठिनाइयाँ हैं, स्पष्ट कीजिए। उदासीनता वक्र प्रणाली इन कठिनाइयों को किस प्रकार दूर करती है।

2 निम्नलिखित की जाँच कीजिए

(अ) उदासीनता वक्रों की विशेषताएँ।

(ब) वह परिस्थितियाँ जिनमें अपने व्यय में उपभोक्ता अधिकतम संतोष प्राप्त करता है।

3 उदासीनता वक्रों की सहायता से आय-प्रभाव, स्थानापन्नता प्रभाव तथा कीमत प्रभाव की स्पष्ट रूप में व्याख्या कीजिए।

4 किसी वस्तु के कीमत परिवर्तन में होने वाले आय प्रभाव तथा स्थानापन्नता प्रभाव का विश्लेषण करिए तथा हिक्स एवं स्लट्स्की प्रभावों में भेद कीजिए।

5 उदासीनता वक्र विश्लेषण द्वारा गिफ्फन वस्तु के लिए माग वक्र खींचिए।

6 उदासीनता वक्र तकनीक की सहायता से निम्न में से किन्हीं दो की व्याख्या करिए

(i) दो व्यक्ति दो वस्तुओं का विनिमय करके कैसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करेंगे?

(ii) रहन-सहन की लागत को कैसे मापा जाएगा?

(iii) एक वर्कर अपने समय को काम और अवकाश में कैसे बाटेगा?

7 "साधारण माग वक्र नीचे की ओर ढालू हो भी सकता है या नहीं भी, परन्तु क्षतिपूरित माग वक्र सदैव नीचे की ओर ढालू होता है।" इस कथन की उदासीनता वक्र की सहायता से व्याख्या कीजिए।

8 उदासीनता वक्र प्रणाली की उपयोगिता विश्लेषण पर श्रेष्ठता की आलोचनात्मक विवेचना करिए।

अध्याय 10

जोखिम अथवा अनिश्चतता वाले चुनावों का आधुनिक उपयोगिता विश्लेषण
(THE MODERN UTILITY ANALYSIS OF CHOICES INVOLVING RISK OR UNCERTAINTY)

1. समस्या
(THE PROBLEM)

आधुनिक उपयोगिता विश्लेषण जोखिम या अनिश्चतता वाले चुनावो का उदासीनता वक्र तकनीक द्वारा उपभोक्ता के व्यवहार की व्याख्या न करने की विफलता का परिणाम है। परम्परागत उपयोगिता विश्लेषण भी जोखिमरहित चुनावो मे ही उपभोक्ता के व्यवहार से सम्बन्ध रखता है। ऐसे चुनाव निश्चित होते है क्योंकि वे घटती सीमान्त उपयोगिता और आनुपातिकता के नियम पर आधारित है। उपभोक्ता अपनी आय, रुचियो और उन वस्तुओं के विषय मे, जिन्हे वह खरीदता है, निश्चित होता है और उन सयोगो के चुनाव से, जो उसे अधिकतम उपयोगिता प्रदान करते है, अपनी सतुष्टि को अधिकतम बनाता है। परन्तु वास्तव मे, बहुत सी सेवाए और वस्तुए जोखिम अथवा अनिश्चितता[1] वाली होती है, जैसे शेयर या स्टॉक मे निवेश, बीमा और दाव लगाना (gambling)। न्यूमैन (Neumann) और मोरगेन्स्टर्न (Morgenstern) ने अपनी पुस्तक *Theory of Games and Economic Behaviour* मे जोखिमी स्थितियों मे एक व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन किया। उनके सिद्धान्त को फ्रीडमैन और सेवेज तथा मार्कोविज ने परिष्कृत किया। जोखिमी स्थितियो की समस्या का हल डेनियल बर्नोली (Daniel Bernoulli) ने प्रदान किया जिसने "सेंट पीटर्सबर्ग विरोधाभास" को हल करने का प्रयत्न किया। हम जोखिम या अनिश्चितता वाले चुनावो से सबधित इन विभिन्न विचारो की व्याख्या करते है।

2 बर्नोली उपकल्पना
(THE BERNOULLI HYPOTHESIS)

नवक्लासिकी सिद्धात इस मान्यता को लेता है कि उपभोक्ता एक विवेकशील प्राणी है जो दाव नहीं लगाता या उचित बाज़ी (fair bet) नहीं लगाता जिसमे जीत-हार की 50-50 सभावना हो। ऐसी

1 जोखिम और अनिश्चितता मे अतर समझना आवश्यक है। एक जोखिमी स्थिति का एक से अधिक सभव परिणाम होता है और जोखिम उठाने वाले को सभी सभव परिणामो की जानकारी होती है और वह प्रत्येक के होने की सभाविता (probability) को जानता है। एक अनिश्चित स्थिति में, इन परिणामो की सही प्रकृति की जानकारी नहीं होती और परिणामो की सभाविता निश्चित नहीं की जा सकती है।

उचित बाजी मे लोग क्यो दाव लगाने को तैयार नहीं होते, इसका कारण 18वीं शताब्दी के स्विस गणितज्ञ डेनियल बर्नोली ने बताया। 1732 में कुछ समय के लिए सेंट पीटर्सबर्ग मे ठहरने पर बर्नोली ने देखा कि रूसी लोग 50-50 सभावना से श्रेष्ठ बाजी पर दाव लगाने को तैयार नहीं थे, यह जानते हुए भी कि दाव पर लगाई गई अधिक मुद्रा से मौद्रिक लाभ की गणितीय आशा बहुत अधिक है। इस परस्पर-विरोध को "सेंट पीटर्सबर्ग विरोधाभास" (St Petersburg Paradox) कहते है। इसकी व्याख्या करने के लिए, बर्नोली ने निम्नलिखित दाव की रचना की। एक सिक्का उछाला जाता है और जुआरी को भुगतान इस पर निर्भर करते हुए किया जाता है कि सिक्के के कौन-सा उछाल पर 'चेहरा' (head) पहले आता है। यदि चेहरा पहली उछाल पर आता है तो जुआरी को £2 प्राप्त होते है और दाव समाप्त हो जाता है। यदि यह दूसरी उछाल पर आता है, तो उसे $£2^2$= £4 दिए जाते है और दाव समाप्त हो जाता है। यदि n उछालो के बाद पहली बार 'चेहरा' आता है, तो जुआरी को $£2^n$ दिए जाते है। एक विवेकी व्यक्ति इस दाव मे भाग लेने के लिए कितना देना को तैयार होगा? अथवा, ऐसे दाव के भुगतान का सभावित मौद्रिक मूल्य क्या है? इस दाव का सभावित मौद्रिक मूल्य अनन्त है। सिक्के की पहली उछाल पर चेहरा आएगा, इसकी सभाविता ½ है। पहली बार nवीं उछाल पर चेहरा प्राप्त करने की सभाविता $(½)^n$ है। क्योकि फेंक (throws) की कोई सीमित सख्या नहीं है जिनके बीच कोई गारटी दी जा सकती है कि चेहरा आएगा, इसलिए दाव का सभावित भुगतान या दाव का सभावित मौद्रिक मूल्य (expected monetary value),

$$\begin{aligned} \text{EMV} &= (½)\,2 + (½)^2\,2^2 + (½)^3 2^3 + \quad + (½)^n 2^n \\ &= \sum_{n=1}^{\infty} (½)^n\, 2^n = 1+1+1+ \quad +1 \\ &= \text{अनन्त (infinity)} \end{aligned}$$

क्योंकि EMV अनन्त है, इसलिए एक व्यक्ति जिसका उद्देश्य सभावित मौद्रिक मूल्य को अधिकतम करना है वह दाव लगाने के लिए जो कुछ भी उसके पास है देने को तैयार होगा। बर्नोली ने सेंट पीटर्सबर्ग विरोधाभास को सुलझाने के लिए सुझाव दिया कि लोग अपनी समस्त आय को ऐसे दाव पर लगाने के लिए इस *कारण तैयार नहीं होंगे क्योंकि मुद्रा की सीमात उपयोगिता कम होती* जाती है ज्यों-ज्यों आय बढती है। उसके शब्दो मे, "धन की थोडी मात्रा की वृद्धि से प्राप्त होने वाली उपयोगिता पहले से प्राप्त धन की मात्रा के विपरीत अनुपात मे होगी।"

एक व्यक्ति जो 100 रु दाव पर, 10 रु जीतने या हारने की बराबर सभावना पर, लगाता है वह जुआ नहीं खेलेगा यदि वह विवेकी है। क्योंकि यदि वह जीतता है तो उसके पास 110 रु होंगे जो 100 रु मे जमा 10 रु जीतने से उपयोगिता का लाभ है। यदि वह हारता है तो उसके पास 90 रु होंगे जो 100 रु मे से घटा 10 रु उपयोगिता की हानि के है। यद्यपि मौद्रिक लाभ और हानि बराबर (10 रु) है, फिर भी इस दाव मे उपयोगिता मे लाभ से उपयोगिता मे हानि अधिक है। इस प्रकार, बर्नोली के विचार मे, जोखिमी चुनावो के बारे मे विवेकी निर्णय मौद्रिक मूल्य की गणितीय सभावनाओं की अपेक्षा कुल उपयोगिता की सभावनाओं के आधार पर लिए जाएंगे। इसे चित्र 10.1 मे दर्शाया गया है, जहा TU कुल उपयोगिता वक्र है जो आय के ऊंचे स्तरो पर कम तिरछा होता जाता है जो आय की घटती सीमान्त उपयोगिता की ओर निर्देश करता है। मान लीजिए कि व्यक्ति OY आय स्तर (100 रु हमारे उदाहरण के अनुसार) पर है जो उसे OU उपयोगिता देता है। वह विचार करता है कि वह या तो अपनी आय को OY_2 (110 रु) पर बढाने या समान राशि से OY_1 (90 रु) पर कम करने वाले 50-50 सभाविता के उचित दाव को स्वीकार करे अथवा नहीं। इसके प्रभाव को उपयोगिता पर वह देखेगा। यदि उसकी आय बढकर OY_2 हो

जाती है, तो उसकी उपयोगिता बढ़कर OU_2 होती है और यदि उसकी आय कम होकर OY_1 हो जाती है, तो उसकी उपयोगिता गिर कर OU_1 होती है। जैसाकि चित्र से स्पष्ट है उपयोगिता मे हानि UU_1 उपयोगिता मे लाभ UU_2 से अधिक है। कुल उपयोगिता मे हानि और लाभ से अभिप्राय सीमात उपयोगिता से है। क्योंकि उपयोगिता से सभावित हानि उपयोगिता मे लाभ से अधिक है, इसलिए यह व्यक्ति उचित दाव को स्वीकार नहीं करेगा।
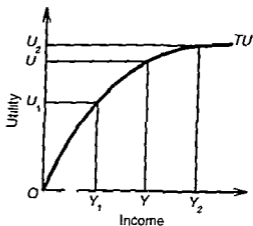
चित्र 10 1

बर्नोली द्वारा सेट पीटर्सबर्ग विरोधाभास का समावित उपयोगिता के अर्थ में हल के आधार पर जोखिमी चुनावो के अन्तर्गत न्यूमैन और मोरगेन्स्टर्न ने अपने उपयोगिता सूचक का निर्माण किया।

3. उपयोगिता मापने की न्यूमैन-मोरगन्स्टर्न विधि
(THE NEUMANN-MORGENSTERN METHOD OF MEASURING UTILITY)

न्यूमैन और मोरगन्स्टर्न ने अपनी पुस्तक *Theory of Games and Economic Behaviour*[2] मे जोखिमी चुनावो से सभावित (expected) उपयोगिता की गणनसख्या (cardin) माप विधि को विकसित किया। ऐसे जोखिमी चुनाव जुए, लाटरी टिकटो आदि मे पाए जाते हैं। इसके लिए उन्होंने एक उपयोगिता सूचक का निर्माण किया जिसे N-M उपयोगिता सूचक कहते है।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

N–M उपयोगिता सूचक निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

(i) व्यक्ति इस उद्देश्य से जोखिम वाली स्थितियो मे व्यवहार करता है कि वह अपनी संभावित उपयोगिता को अधिकतम बनाए।

(ii) उसके चुनाव सकर्मक (transitive) होते है। यदि वह पुरस्कार (जीत) *B* से पुरस्कार *A* को और पुरस्कार *C* से पुरस्कार *B* को अधिमान देता है तो वह *C* से *A* को अधिमान देगा।

(iii) शून्य और एक के बीच कुछ सभाविता *P* (probability) ऐसी होती है ($0<P<1$) कि व्यक्ति निश्चित पुरस्कार *A* और लाटरी के टिकटो द्वारा प्रदान किये जाने वाले पुरस्कार *C* तथा पुरस्कार *B* की क्रमश सभाविता *P* और $1-P$ के बीच उदासीन होता है।

(iv) यदि लाटरी के टिकट समान पुरस्कार देने वाले हो, तो व्यक्ति लाटरी के उन टिकटो को अधिमान देगा जिन पर जीतने की सभाविना अधिक होगी।

2 2/e 1947

(v) अनिश्चित चुनावो के सभाविता-सयोगो को व्यक्ति पूर्ण रूप से आदेशित (order) कर सकता है।

(vi) अनिश्चितता या जोखिम मे अपनी कोई उपयोगिता या अनुपयोगिता नहीं होती।

N-M उपयोगिता सूचक (The N-M Utility Index)

न्यूमैन-मोरगेन्स्टर्न ने उपयोगिता सूचक को मापने की यह विधि सुझाई है

"तीन स्थितियाँ C, A, B लीजिए जिनके लिए व्यक्ति के अधिमान का क्रम वही है जो ऊपर बताया जा चुका है। मान लीजिए कि शून्य और 1 के बीच α ऐसी वास्तविक सख्या है कि A उतनी ही इच्छित है जितनी B के लिए सभाविता $1-\alpha$ के परिवर्तन से बनी स्थिति और C के लिए सभाविता α की शेष सभाविता की स्थिति। तब हम B पर C के अधिमान से B पर A के अनुपात के सख्यात्मक आगणन के लिए α के प्रयोग का सुझाव देते है।"[3]

उनका सूत्र[4] यह बन जाता है,

$A = B(1-\alpha) + \alpha C$ सभाविता α के स्थान पर P रख देने से $A = B(1-P) + PC$

सूत्रक की मान्यताए दी होने पर, ऊपर के सूत्र के आधार पर गणनसख्यात्मक सूचक (cardinal utility index) निकाला जा सकता है। मान लीजिए, तीन स्थितियाँ (लाटरिया) C, A, B है। इनमे से स्थिति (लाटरी) A निश्चित है, C की सभाविता P है और B की सभाविता $(1-P)$, यदि उनकी उपयोगिताएँ क्रमश U_a, U_c और U_b हो, तो

$$U_a = P\,U_c + (1-P)\,U_b$$

क्योकि यह आशा की जाती है कि उपभोक्ता उपयोगिता को अधिकतम बनाएगा, इसलिए निश्चितता A की उपयोगिता अवश्य P के किसी मूल्य के बराबर होनी चाहिए जो स्थितियो (लाटरियो) C और B की समायोजित उपयोगिता है।

N-M समीकरण के आधार पर एक उपयोगिता सूचक का निर्माण करने के लिए हमे C और B को उपयोगिता मूल्य देने पडेंगे। ये उपयोगिता मूल्य काल्पनिक है परन्तु यह ध्यान रखा जाए कि जिस स्थिति (लाटरी) का अधिमान अधिक है उसका उपयोगिता मूल्य अधिक लगाया जाए। मान लीजिए कि हम निम्नलिखित काल्पनिक उपयोगिता मूल्य लगाते है $U_c = 100$ यूटिल, $U_b = 0$ यूटिल, और $P = 4/5$ या 0.8 तब

$$\begin{aligned} U_a &= (4/5)100 + (1-4/5)\,(0) \\ &= 80 + (1/5)\,(0) \\ &= 80 \end{aligned}$$

अत इस स्थिति मे उपयोगिता सूचक है,

स्थिति	U_a	U_b	U_c
1	80	0	100

इस प्रकार प्रक्रिया करते हुए हम U_a, U_b, U_c आदि के उपयोगिता मूल्य निकाल सकते है

3 *Ibid*, p 18

4 सभाविता (probability) एक गणितीय शब्द है जिसका अर्थ है कि दी हुई स्थितियो मे से किसी एक स्थिति के कितनी बार घटित होने की सभावना है। एक सिक्के को उछालने (toss) की सभाविता ½ है, क्योकि सिक्के के दो पक्ष हैं। छ तरफो वाले पासे (dice) मे 'चार' पडने की सभाविता 1/6 है अथात् छ बार फेंकने पर एक 'चार' पड सकता है। ऊपर के सूत्र मे यदि लाटरी मे पुरस्कार C जीतने की सभाविता 50-50 है, तो पुरस्कार B के हारने की सभाविता (1−½) है। और यदि सभाविता 40-60 है, तो C की जीतने की सभाविता $40/100 = 2/5$ होगी और B की हारने की सभाविता $1-2/5 = 3/5$ होगी।

और जोखिम वाली या सभाविता की दो काल्पनिक स्थितियो से प्रारभ करके सब सभव सयोगो के पूर्ण N-M उपयोगिता-सूचक (utility index) का निर्माण कर सकते हैं।

इसका मूल्याकन (Its Appraisal)

N-M उपयोगिता सूचक जोखिमी चुनावों के अतर्गत गणनसख्या उपयोगिता का सकल्पनात्मक माप प्रदान करता है। इसका प्रयोग जुआ खेलने, लाटरी टिकटों आदि से सबधित दो या अधिक विकल्पों के बारे में भविष्यवाणिया करने के लिए किया जाता है, और उनमें से कौन-से एक को जुआरी या खिलाडी अधिमान देता है।

N-M सूचक उपयोगिताओ के सभावित मूल्यो पर आधारित है। यह मुद्रा की सीमात उपयोगिता को गणनात्मक सख्या द्वारा मापने की विधि प्रदान करता है। परन्तु यह इस बात की ओर निर्देश नहीं करता कि मुद्रा की सीमात उपयोगिता बढती है या घटती है। इस दृष्टिकोण से उपयोगिता माप की यह विधि अधूरी है।

परन्तु N-M गणनसख्या उपयोगिता नवक्लासिकी गणनसख्या उपयोगिता से भिन्न है। यह लबाई या भार के माप की तरह नहीं है। न ही यह वस्तुओ और सेवाओ से प्राप्त अतर्दर्शी सतुष्टि अथवा आनद की तीव्रता को मापती है, जैसाकि नवक्लासिकी उपयोगिता मे है। उपयोगिता मापने की N-M विधि जोखिमी चुनाव करने वाले एक व्यक्ति की क्रियाओ का विश्लेषण करती है।[5]

बावजूद इस बात के कि N-M उपयोगिता सूचक की गणना करने मे मनमानापन पाया जाता है, फिर भी इसे एक रेखीय रूपातरण (linear transformation) तक मापा जा सकता है। इसमे योगात्मकता (additivity) नहीं पाई जाती है बल्कि जोखिमी चुनावो के सापेक्ष अधिमानो का गणनसख्या माप प्रस्तुत किया जाता है।

4 फ्रीडमैन-सेवेज़ उपकल्पना
(THE FRIEDMAN-SAVAGE HYPOTHESIS)

N-M विधि उपयोगिताओ के सभावित मूल्यो पर आधारित है, इसलिए इस बात का निर्देश नहीं करती कि मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता बढती है या घटती है। इस दृष्टि से उपयोगिता माप की यह विधि अधूरी है। जब कोई व्यक्ति बीमे की पालिसी लेता है, तो वह जोखिम से बचने या टालने के लिए अदायगी करता है। परन्तु जब वह लाटरी का टिकट खरीदता है, तो वह बडे लाभ के लिए छोटा अवसर प्राप्त करता है। इस प्रकार वह जोखिम को उठा लेता है। कुछ लोग बीमा को लेने और जुआ दोनो मे लगे होते हैं और इस प्रकार जोखिम को टालते और उठाते है। क्यो? इसका उत्तर N-M विधि के विस्तार के रूप मे फ्रीडमैन-सेवेज उपकल्पना[6] द्वारा दिया गया है। फ्रीडमैन तथा सेवेज के अनुसार, एक निश्चित स्तर से नीचे की आय के लिए आय की सीमान्त उपयोगिता घटती है, उस स्तर और उससे ऊपर एक निश्चित स्तर के बीच की आय के लिए यह बढती है और उससे ऊपर के स्तर से अधिक आय के लिए यह फिर घटने लगती है। इसे चित्र 10 2 मे कुल उपयोगिता वक्र TU के रूप मे दर्शाया गया है जिसमे उपयोगिता को अनुलब अक्ष और आय को समानातर अक्ष पर लिया गया है।

5 अधिक जानकारी के लिए अन्तिम खण्ड देखिए।

6 M Friedman and L J Savage "The Utility Analysis of Choices Involving Risk", *JPE*, Vol LVI August 1948
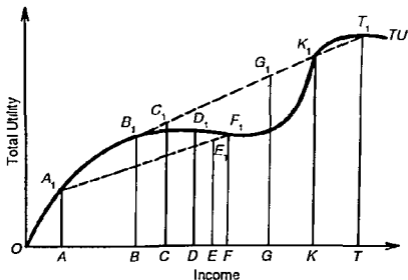
चित्र 10 2

मान लीजिए कि एक व्यक्ति अपने मकान के लिए बीमा करवाता है जिसमें आग से भारी हानि की थोडी सभावना है और एक लाटरी टिकट भी खरीदता है जिसमे बडी जीत की थोडी सभावना है। एक व्यक्ति का ऐसा परस्पर विरोधी व्यवहार जिसमे वह बीमा पालिसी भी खरीदता है और जुआ भी खेलता है उसे फ्रीडमैन और सेवेज एक कुल उपयोगिता (TU) वक्र द्वारा दर्शाते है। ऐसा वक्र पहले घटती दर से बढता है जिससे मुद्रा की सीमात उपयोगिता कम होती है और फिर बढती दर से बढता है जिससे मुद्रा की सीमात उपयोगिता बढती है। चित्र 10 2 मे TU वक्र पहले नीचे की ओर मुख करके बिन्दु F_1 तक बढता है और फिर ऊपर की ओर मुख करके बिन्दु K_1 तक बढता है। मान लीजिए कि व्यक्ति की उसके मकान से आय OF है और आग लगने के बगैर FF_1 उपयोगिता है। अब वह आग से जोखिम बचाने के लिए बीमा पालिसी खरीदता है। यदि मकान आग से जल जाता है तो उसकी आय AA_1 उपयोगिता के साथ कम होकर OA होती है।

A_1 और F_1 बिन्दुओ को मिलाने से हमे इन दो अनिश्चित आय स्थितियो के बीच उपयोगिता बिन्दु प्राप्त होते है। यदि आग न लगने की सभाविता (probablity) P है, तो N-M उपयोगिता सूचक के आधार पर इस व्यक्ति की सभावित आय है

$$Y = P(OF) + (1-P)(OA)$$

मान लीजिए कि व्यक्ति की सभावित आय (Y) है OE तो उसकी A_1F_1 डैश (dash) रेखा पर उपयोगिता EE_1 है। अब यह मान लीजिए कि बीमा की लागत (प्रीमियम) FD है। इस प्रकार व्यक्ति की बीमा के साथ निश्चित आय $OD (= OF-FD)$ है जो उसे अधिक उपयोगिता DD_1 देती है, यह आग न लगने की सभाविता से सभावित आय OE से प्राप्त EE_1 उपयोगिता से अधिक है।

इसलिए, व्यक्ति जोखिम से बचने के लिए बीमा पालिसी को खरीदेगा और FD प्रीमियम देकर आग से मकान जल जाने की स्थिति में OD निश्चित आय प्राप्त करेगा।

मकान को आग लगने के विरुद्ध बीमा पालिसी खरीदने के बाद बची आय OD से व्यक्ति DB मुद्रा खर्च कर एक लाटरी टिकट खरीदने का निर्णय करता है। यदि वह लाटरी जीतता नहीं तो उसकी आय BB_1 उपयोगिता के साथ कम होकर OB हो जाएगी।[7] यदि वह जीतता है, तो उसकी आय KK_1 उपयोगिता के साथ बढ़कर OK हो जाएगी। अत उसकी लाटरी न जीतने की सभाविता P' के साथ सभावित आय है

$$Y_1 \; P'(OB) + (1-P')(OK)C$$

मान लीजिए कि व्यक्ति की सभावित आय (Y_1) है OC, तो B_1K_1 डैश रेखा पर उसकी उपयोगिता CC_1 है जो DD_1 उपयोगिता से अधिक है यदि उसने लाटरी न खरीदी हो। इसलिए यह व्यक्ति मकान को आग लगने के विरुद्ध बीमा पालिसी खरीदने के साथ-साथ लाटरी टिकट भी खरीदेगा।

अब हम TU वक्र का बढ़ रहा भाग F_1K_1 जिसमें उसकी सभावित आय OG है और उसकी सीमात उपयोगिता बढ़ रही है। इस में, लाटरी टिकट खरीदने से प्राप्त उपयोगिता GG_1 यदि वह लाटरी न खरीदे से प्राप्त DD_1 उपयोगिता से अधिक है। इसलिए वह अपनी मुद्रा को लाटरी खरीदने पर लगाएगा। अंतिम स्टेज में जब व्यक्ति की सभावित आय TU वक्र के K_1T_1 क्षेत्र में OK से अधिक हो तो उसकी आय की सीमात उपयोगिता कम हो रही होगी। इसलिए वह लाटरी टिकट खरीदने में जोखिम उठाने या अन्य जोखिमी निवेशों में अपनी आय नहीं लगाएगा जब तक कि उसके अनुकूल सभावनाए न हों। यह क्षेत्र सेंट पीटर्सबर्ग विरोधाभास की व्याख्या करता है।

फ्रीडमेन और सेवेज का यह मानना है कि TU वक्र विभिन्न सामाजिक-आर्थिक ग्रुपों में जोखिम के प्रति लोगों के व्यवहार का वर्णन करता है। फिर भी, वे समान सामाजिक-आर्थिक ग्रुप में लोगों के बीच बहुत से अतरों को स्वीकार करते है। कुछ आदत से जुआरी होते है जबकि अन्य जोखिमों को टालते है। इसके बावजूद फ्रीडमैन और सेवेज का विचार है कि यह वक्र मुख्य ग्रुपों की प्रवृत्तियों का वर्णन करता है। उनके अनुसार, मध्य आय ग्रुप में लोग जिनकी आय की सीमात उपयोगिता बढ़ रही होती है वे है जो अपनी स्थिति को सुधारने के लिए जोखिम उठाने को तैयार है। यदि वे जोखिम उठाकर अपने प्रयत्नों से अधिक मुद्रा प्राप्त करने में सफल हो जाते है तो वे अपने आप को अगले ऊचे सामाजिक-आर्थिक ग्रुप में उठा लेते है। वे केवल अधिक उपभोक्ता वस्तुए ही नहीं चाहते, बल्कि वे सामाजिक श्रेणी में ऊपर उठना और अपने जीवन के ढांचे को बदलना चाहते हैं। यही कारण है कि उनके लिए आय की सीमात उपयोगिता बढ़ती है।[7]

5 मार्कोविज उपकल्पना
(THE MAROWITZ HYPOTHESIS)

मार्कोविज[8] ने उपभोक्ता व्यवहारों के विपरीत फ्रीडमैन-सैवेज उपकल्पना को पाया। उसके अनुसार, यह कहना सही नहीं है कि गरीब और अमीर जुआ खेलने और जोखिम उठाने के लिए इच्छुक नहीं होते, सिवाय अनुकूल सभावनाओं (favourable odds) के। बल्कि दोनों ही

7 D S Watson *Price Theory and Its Uses* p 136
8 H Markowitz "The Utility of Wealth" *JPE*, April 1952

लाटरियां खरीदते हैं और घुडदौडो पर दाव लगाते हैं। वे जुआखानो मे एक जैसी खेले खेलते हैं ओर स्टॉक मार्किट मे सट्टा करते है। इस प्रकार, फ्रीडमैन और सेवेज गरीबो और अमीरो के वास्तविक व्यवहार की ओर ध्यान देने मे असफल रहे क्योंकि उन्होंने यह मान्यता ली कि आय की सीमात उपयोगिता आय के निरपेक्ष (absolute) स्तर पर निर्भर करती है। मार्कोविज ने इसको सशोधित किया है। उसने आय की सीमात उपयोगिता को वर्तमान (present) आय के स्तर में परिवर्तनों के साथ सबद्ध किया है। मार्कोविज के अनुसार, जब आय मे थोडी वृद्धि होती है तो उससे आय की सीमात उपयोगिता बढती है। परन्तु आय मे बडी वृद्धियो से आय की सीमात उपयोगिता घटती है। इसी कारण आय के ऊचे स्तरो पर भी लोग उचित दाव या बाजी (Fair bets) पर जुआ खेलने के इच्छुक नहीं होते है और धीरे-धीरे बढ रही आय ग्रुपो मे लोग अपनी स्थिति को सुधारने के लिए जुआ खेलते हैं। दूसरी ओर, जब आय मे थोडी कमिया होती है तो आय की सीमात उपयोगिता बढती है। लेकिन आय मे बडी कमियो से आय की सीमात उपयोगिता घटती है। इसी कारण लोग थोडी हानियो के विरुद्ध बीमा करवाते है, लेकिन जहा बडी हानिया होने की सभावनाए होती हैं वे जुआ खेलते है। इसे मार्कोविज उपकल्पना कहते है जिसकी चित्र 10.3 मे व्याख्या की गई है जहा मार्कोविज चित्र के ऊपरी भाग मे आय के TU वक्र पर *M*, *N* और *P* तीन मोड बिन्दु लेता है जिनमे से वर्तमान आय मध्य बिन्दु *N* पर है। आय की सीमात उपयोगिता का MU वक्र चित्र के निचले भाग मे व्युत्पन्न किया गया है जहा वर्तमान आय स्तर *OB* है। एक व्यक्ति की आय मे *OB* से *OC* तक थोडी वृद्धि होने पर, आय की. सीमात उपयोगिता MU वक्र पर *S* से *T* बिन्दु पर बढती है। परन्तु *OC* के आगे आय मे बडी वृद्धियो से *T* बिन्दु के आगे MU वक्र के साथ-साथ आय की सीमात उपयोगिता घटती जा रही है। दूसरी ओर, आय मे *OB* से *OA* तक थोडी कमियो से आय के MU वक्र पर *S* से *R* तक आय की सीमात उपयोगिता बढती है। परन्तु *A* के बाई ओर आय मे बडी कमियो से MU वक्र पर *R* से *O* की ओर आय की सीमात उपयोगिता घटती है।
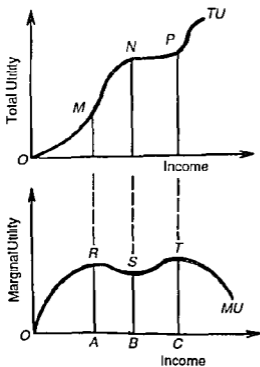
चित्र 10.3

फ्रीडमैन-सेवेज उपकल्पना पर मार्कोविज उपकल्पना एक सुधार है। एक व्यक्ति की निरपेक्ष आय की बजाय वह उसकी

वर्तमान आय को लेता है। वह सुझाव देता है कि एक व्यक्ति का बीमा और दाव लगाने के प्रति व्यवहार समान होता है चाहे वह गरीब हो अथवा अमीर। वह इस बात पर बल देता है कि एक व्यक्ति की वर्तमान आय में 'थोडी' या 'बडी' कमिया अथवा वृद्धिया उसके बीमा और दाव लगाने के व्यवहार को निर्धारित करती है।

6. आधुनिक उपयोगिता विश्लेषण का समीक्षात्मक मूल्याकन (CRITICAL APPRAISAL OF MODERN UTILITY ANALYSIS)

जोखिम अथवा अनिश्चितता के आधुनिक उपयोगिता विश्लेषण मे जोखिम वाले चुनावों का N-M सिद्धान्त तथा इसके रूपातर फ्रीडैन-सेवेज उपकल्पना और मार्कोविज उपकल्पना अभी भी विवाद का विषय बने हुए है। इसके दो कारण है प्रथम, व्यावहारिक दृष्टि से ये उपयोगी प्रतीत नहीं होते, दूसरे, यह स्पष्ट नहीं होता कि यह विधि गणनसख्यात्मक (cardinal) की है अथवा क्रमसख्यात्मक (ordinal) की।

प्रथम, यह बात सदेहपूर्ण है कि जोखिम को मापा जा सकता है। जब न्यूमैन और मोरगेन्स्टर्न यह मान कर चलते है कि जोखिम की अपनी कोई उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता नहीं होती, तो वे अनिश्चितता के आनन्द और पीडा की उपेक्षा कर देते है। दूसरे, अधिकतर व्यक्तिगत चुनावो मे अनिश्चितता की मात्रा बहुत कम होती है। तीसरे, व्यक्तिगत चुनाव अनन्त प्रकार के होते है। यदि यह गारन्टी हो कि वे अनिश्चित है, तो क्या N-M विधि से उनकी माप की जा सकती है? अन्तिम, यह विधि, अनिश्चित चुनावो के अन्तर्गत वस्तुओ और सेवाओ के प्रति व्यक्तियों की "भावनाओ की तीव्रता" की माप नहीं करती।

N-M विधि उपयोगिता की गणनसख्यात्मक माप करती है और क्रमसख्यात्मक? इस प्रश्न पर अर्थशास्त्रियो मे काफी विभ्रम है। राबर्टसन ने अपनी पुस्तक *Utility and All That* मे गणनसख्यात्मक अर्थ मे इसका प्रयोग किया है जबकि प्रोफेसर बोमल, फैलनर तथा अन्य अर्थशास्त्रियो का विचार है, उपयोगिता का क्रमन्यास (ranking) करने के कारण यह क्रमसख्यात्मक विधि है। बोमल के अनुसार, गणनसख्यात्मकता की दृष्टि से N-M सिद्धान्त मे कोई ऐसी बात नहीं जो नवक्लासिकी सिद्धान्त से मिलती हो। नवक्लासिकी सिद्धान्त मे गणनसख्यात्मक शब्द का प्रयोग 'उपयोगिता के अन्तर्दृष्टि निरपेक्ष सीमान्त माप' के लिए होता है जबकि इस N-M सिद्धान्त में परिचालन (operationally) अर्थ मे इसका प्रयोग किया जाता है। N-M सिद्धान्त मे, व्यक्ति द्वारा किए गए पुरस्कारो के क्रमन्यास के अनुसार लाटरी के टिकटो को उपयोगिता सख्याएँ प्रदान की जाती है और दो टिकटो मे से कौन-सी टिकट चुनी जाए इस विषय मे गणनसख्यात्मक पूर्वानुमान किया जाता है। यद्यपि उपयोगिता सूचक निकालने के लिए N-M सूत्र का प्रयोग किया जाता है, परन्तु यह सूत्र पूर्वानुमान घटती सीमान्त उपयोगिता के बारे मे कुछ नहीं बताता।

फ्रीडमैन-सेवेज तथा मार्कोविज ने जो सुधार किए उनसे नवक्लासिकी सिद्धान्त की इस मान्यता को त्याग देने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है कि आय के सभी क्षेत्रो मे आय की सीमान्त उपयोगिता घटती है। इस प्रकार जोखिम वाले चुनावो के अन्तर्गत उपयोगिता माप का सिद्धान्त जो निश्चित चुनावो के नवक्लासिकी अन्तदृष्टि गणनसख्यात्मकता से श्रेष्ठ है।

डॉर्फमेन (Dorfman), सैम्यूलसन और सोलो जैसे अर्थशास्त्रियो ने N-M सिद्धान्त से परेटो के

9 W J Baumol, *op cit* p 434

उपयोगिता सूचकों को निकाला है। और जब व्यक्ति के क्रमन्याम के आधार पर N-M सूचक का निर्माण किया जाता है, तो यह व्यक्ति के अधिमानों को सूचित करता है।

प्रोफेसर बोमल आगे चलकर N-M माप को क्रमसख्यात्मक के अर्थ मे भी प्रयोग करता है जब वह N-M सीमान्त उपयोगिता का स्थानापन्नता की सीमान्त दर मे समीकरण करता है। वह लिखता है कि "X की सीमान्त उपयोगिता स्टैण्डर्ड लाटरी टिकटो के पूर्व निर्धारित पुरस्कार E को जीतने की सभाविता और वस्तु X के बीच स्थानापन्नता की सीमान्त दर के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह निश्चय से क्लासिकी अर्थ में गणनसख्यात्मक माप नहीं है।"

प्रश्न

1 'जोखिम वाले चुनावों' से सबधित आधुनिक उपयोगिता सिद्धान्त की आलोचनात्मक विवेचना करिए।

2 N-M उपयोगिता सूचक की व्याख्या कीजिए तथा जोखिमी चुनावों की फ्रीडमैन-सैवेज उपकल्पना की विवेचना करिए।

3 टिप्पणी करिए बर्नोली उपकल्पना, मार्कोविज उपकल्पना।

अध्याय 11

मांग का प्रकटित (उद्‌घाटित) अधिमान सिद्धांत
(THE REVEALED PREFERENCE THEORY OF DEMAND)

1. प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

प्रोफेसर सैम्यूल्सन[1] का प्रकटित अधिमान सिद्धान्त व्यवहारवादी क्रमसख्यात्मक विश्लेषण है जो हिक्स तथा ऐलन के अर्तदर्शी (introspective) क्रमसख्या विश्लेषण से भिन्न है। यह "तर्कसगत माँग के सिद्धान्त का तीसरा मूल है।" (It is the third root of the logical theory of demand) । हिक्स इसे "सशक्त आदेश के अन्तर्गत प्रत्यक्ष सगति परीक्षण" (direct consistency test under strong ordering) कहता है। यह सिद्धान्त मार्किट मे उपभोक्ता के अवलोकित (observed) व्यवहार के आधार पर दो वस्तुओ एक सयोग के लिए उपभोक्ता के अधिमान का विश्लेषण करता है।

2. चुनाव अधिमान को प्रकट करता है
(CHOICE REVEALS PREFERENCE)

प्रो सैम्यूल्सन का माग सिद्धात प्रकटित अधिमान उपकल्पना पर आधारित है जो यह बताता है कि चुनाव अधिमान को प्रकट करता है।

इस विचार को दृष्टिगोचर रखते हुए एक उपभोक्ता दो वस्तुओ के एक सयोग को इसलिए खरीदेगा कि या तो वह इसको किसी अन्य सयोग की अपेक्षा अधिक पसन्द करता है या यह दूसरे की अपेक्षा सस्ता है। मान लीजिए कि उपभोक्ता *B C* या *D* सयोगो की अपेक्षा *A* सयोग को खरीदता है। इसका अभिप्राय यह है कि वह *A* के प्रति अपने अधिमान को प्रकट करता है। ऐसा सभवत वह दो कारणो से कर सकता है। प्रथम, कि *A* सयोग *B C D* अन्य सयोगो की तुलना मे सस्ता हो, द्वितीय, कि सयोग *A* अन्य सयोगों की तुलना मे महँगा होने पर भी उपभोक्ता उसको दूसरो की अपेक्षा अधिक पसन्द करता हो। इस स्थिति मे यह कहा जा सकता है कि *B C D* की अपेक्षा *A* प्रकटित अधिमानित (revealed preferred) हुआ है, या *A* की अपेक्षा *B C D* प्रकटित घटिया (revealed inferior) हुए है।

चित्र 11 1 मे इसकी व्याख्या की गई है। *X* और *Y* दोनो वस्तुओ की कीमते तथा उपभोक्ता की आय दी हुई होने पर, *LM* उपभोक्ता की कीमत-आय रेखा है। त्रिभुज *OLM* उपभोक्ता के चुनाव का क्षेत्र है जो उसकी दी हुई कीमत-आय स्थिति *LM* पर तथा *X* तथा *Y* वस्तुओ के विभिन्न

1 PA Samuelson *Foundations of Economic Analysis*, 1947 Ch V VI and "Consumption Theorems in terms of Overcompensation Rather than Indifference Comparisons", *Economics* Feb 1958

चित्र 11.1

सयोगों को दर्शाता है। अर्थात् उपभोक्ता त्रिभुज *OLM* में *LM* रेखा पर *A* एव *B* सयोगों तथा इस रेखा से नीचे *C* एव *D* सयोगों में से किसी भी एक सयोग का चुनाव कर सकता है। यदि वह सयोग *A* का चुनाव करता है तो यह *B* की अपेक्षा प्रकटित अधिमानित है। *C* एव *D* सयोग, *A* की अपेक्षा प्रकटित घटिया है क्योंकि वे कीमत-आय रेखा से नीचे हैं परन्तु *E* सयोग उपभोक्ता के लिए अधिक महँगा है क्योंकि यह उसकी कीमत-आय *LM* से ऊँचे है। इसलिए *A* सयोग सभी सयोगों की तुलना में प्रकटित अधिमानित है।
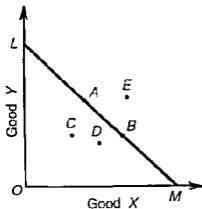
प्रो हिक्स के अनुसार, जब एक उपभोक्ता अवलोकित मार्किट व्यवहार के आधार पर एक निश्चित सयोग के लिए अपने अधिमान को प्रकट करता है तो वह ऐसा सशक्त आदेश (strong ordering) के अन्तर्गत करता है जब चुनी हुई स्थिति को *OLM* त्रिभुज पर या अदर सभी अन्य स्थितियों से अधिमानित दर्शाया जाता है। अत जब उपभोक्ता अपने निश्चित अधिमान को सयोग *A* के लिए त्रिभुज *OLM* पर या अदर प्रकट करता है, तो वह अन्य सभी सयोगों जैसे *B C* और *D* अस्वीकार करता है। इसलिए *A* का चुनाव सशक्त आदेशित है।

3. माग का नियम (THE LAW OF DEMAND)

प्रो सेम्यूलसन उदासीनता वक्रों के प्रयोग और उनसे सबधित रुकावटी मान्यताओं के बिना, अपनी प्रकटित अधिमान उपकल्पना के आधार पर सीधे तौर से माग के नियम को स्थापित करता है।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

सैम्यूलसन का माग का नियम इन मान्यताओं पर आधारित है

(1) उपभोक्ता की रुचियों मे परिवर्तन नहीं होता।

(2) एक सयोग का चुनाव उस सयोग के प्रति उपभोक्ता के अधिमान को प्रकट करता है।

(3) दी हुई कीमत-आय रेखा पर उपभोक्ता केवल एक सयोग का चुनाव करता है, अर्थात्, सापेक्ष कीमतों मे कोई भी परिवर्तन जो वह खरीदता है उसमें सदैव कुछ परिवर्तन लाएगी।

(4) वह किसी भी स्थिति मे कम वस्तुओं की अपेक्षा अधिक वस्तुओं के सयोग के प्रति अधिमान रखता है।

(5) उपभोक्ता का चुनाव सशक्त आदेश पर आधारित है।

(6) यह उपभोक्ता के व्यवहार की सगति (consistency) को मानकर चलता है। यदि एक स्थिति में यह *B* की अपेक्षा *A* को अधिमान देता है, तो किसी अन्य स्थिति में *A* की अपेक्षा *B* को अधिमान नहीं दे सकता। हिक्स के अनुसार यह 'द्विवाची सगति' (two-term consistency) है

2 इसके विस्तृत अध्ययन के लिए अगला अध्याय देखिए।

जिसके लिए एक सरल रेखा वक्र पर दो शर्तों को पूरा करना आवश्यक है (a) A यदि B के बाईं ओर स्थित है तो B अवश्य A के दाईं ओर स्थित होगा, (b) A यदि B के दाईं ओर स्थित है, तो B अवश्य A के बाईं ओर स्थित होगा।

(7) यह सिद्धान्त सकर्मकता (transitivity) की मान्यता पर आधारित है। **सकर्मकता** त्रिवाची सगति (three-term consistency) का निर्देश करती है। यदि B की अपेक्षा A के लिए और C की अपेक्षा B के लिए अधिमान है, तो उपभोक्ता का निश्चय से C की अपेक्षा A के लिए अधिमान होगा। यदि उपभोक्ता दी हुई वैकल्पिक स्थितियों में से सगत चुनाव करना चाहता है, तो प्रकटित अधिमान सिद्धान्त के लिए यह मान्यता आवश्यक है।

(8) माँग की आय लोच धनात्मक है अर्थात् जब आय बढ़ती है तो वस्तु की अधिक मात्रा माँगी जाती है और कम मात्रा मागी जाती है जब आय कम होती है।

माग प्रमेय या आधारभूत प्रमेय (Fundamental Theorem or Demand Theorem)

इन दी हुई मान्यताओ को लेकर सैम्यूल्सन ने उपभोग सिद्धान्त का आधारभूत प्रमेय, जिसे माँग प्रमेय भी कहते है, इन शब्दो मे प्रस्तुत की **"कोई वस्तु (साधारण या मिश्रित) जिसकी माँग केवल मौद्रिक आय मे वृद्धि होने पर बढ़ती है, निश्चय से उसकी माँग घट जाती है जब केवल उसकी कीमत मे वृद्धि होती है।"** इसका अर्थ यह हुआ कि जब माँग की आय-लोच धनात्मक हो तो माँग की कीमत-लोच ऋणात्मक होती है। इसे एक वस्तु की कीमत मे वृद्धि और कमी दोनो से दर्शाया जा सकता है।

(क) कीमत मे वृद्धि (Rise in Price)

पहले हम एक वस्तु, मान लीजिए X की कीमत मे वृद्धि का विश्लेषण करते है।

इस आधारभूत प्रमेय को सिद्ध करने के लिए हम इसे दो स्टेजो मे बाट लेते है। प्रथम स्टेज मे, एक उपभोक्ता को लीजिए जो अपनी सारी आय दो वस्तुओ X और Y पर खर्च करता है। चित्र 11 2 मे, LM उसकी मूल कीमत-आय रेखा है जहाँ उपभोक्ता R द्वारा प्रकटित किए गए सयोग का चुनाव करता है। त्रिभुज OLM उपभोक्ता के चुनाव का क्षेत्र है जहा उसकी दी हुई कीमत-आय रेखा LM पर वस्तु X और Y के विभिन्न सयोग उसे उपलब्ध हैं। केवल सयोग R को चुनकर उपभोक्ता त्रिभुज OLM पर या अदर अन्य सयोगो की अपेक्षा अपने अधिमान को प्रकट करता है।

मान लीजिए कि X की कीमत बढ़ती है, Y की कीमत स्थिर रहते हुए, जिससे LS उसकी नयी कीमत-आय रेखा बन जाती है। अब मान लीजिए कि वह एक नया सयोग A चुनता है जो यह दर्शाता है कि X की कीमत बढ़ने से उपभोक्ता पहले से कम X की मात्रा खरीदेगा। वस्तु X की कीमत बढने से उपभोक्ता की वास्तविक आय मे कमी हो जाती है जिसकी क्षतिपूर्ति करने के लिए उसे वस्तु Y के रूप मे LP मुद्रा की राशि दीजिए। परिणामस्वरूप, PQ उसकी नई कीमत-आय रेखा बन जाती है जो LS रेखा के समानातर है और बिन्दु R में से गुजरती है। सैम्यूलसन इसे **अतिक्षतिपूर्ति प्रभाव** (overcompensation effect) कहता है। अब उपभोक्ता का चुनाव क्षेत्र
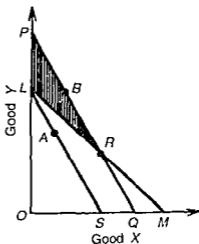
चित्र 11 2

OPQ त्रिभुज बन जाता है। क्योंकि मूल कीमत-आय रेखा LM पर R सभी अन्य विन्दुओं से अधिमानित प्रकटित हुआ था, इसलिए PQ रेखा के खण्ड RQ पर R से नीचे स्थित सभी विन्दु उपभोक्ता व्यवहार के साथ मेल नहीं खाएगे। ऐसा इस कारण कि वह X की अधिक मात्रा नहीं ले सकता जब उसकी कीमत बढी हो। इसलिए उपभोक्ता कीमत-आय रेखा PQ के खण्ड PR पर छायाकृत (shaded) क्षेत्र LRP में या सयोग R या कोई अन्य सयोग, जैसे B, चुनेगा। यदि वह सयोग R चुनता है तो वह X कीमत बढने से पहले वाली X और Y की मात्राए खरीदेगा। दूसरी ओर, यदि वह सयोग B चुनता हे तो वह पहले से कम मात्रा X की और अधिक मात्रा Y की खरीदेगा।

दूसरी स्टेज मे, यदि उपभोक्ता को दिया गया मुद्रा का अतिरिक्त पैक्ट LP उससे वापिस ले लिया जाता है, तो वह R के बाईं ओर LS रेखा के बिन्दु A पर होगा जहा वह X की कम मात्रा खरीदेगा यदि X के लिए माग की आय-लोच धनात्मक है। क्योंकि X की कीमत बढने से इसकी माग मे कमी हुई है (जब उपभोक्ता A बिन्दु पर है) तो यह सिद्ध होता है कि जब आय-लोच धनात्मक है तो कीमत-लोच ऋणात्मक है।

(ख) कीमत में कमी (Fall in Price)

माग प्रमेय को सिद्ध किया जा सकता है जब वस्तु X की कीमत गिर जाती है। इसे इन शब्दो मे परिभाषित किया जा सकता है **"कोई वस्तु (साधारण या मिश्रित) जिसकी माग केवल मौद्रिक आय मे कमी होने पर घटती है, निश्चय से उसकी माँग बढ जाती है जब केवल उसकी कीमत मे कमी होती है।"** इसकी व्याख्या चित्र 11 3 में की गई है। LM मूल कीमत-आय रेखा है जिस पर उपभोक्ता R पर अपना अधिमान प्रकटित करता है। वस्तु X की कीमत कम हो जाने पर तथा Y की कीमत स्थिर रहने पर, उसकी कीमत-रेखा LS की स्थिति मे चली जाती है। मान लीजिए कि उपभोक्ता इस रेखा पर सयोग A के प्रति अपने अधिमान को प्रकटित करता है जो यह दर्शाता है कि वह X की पहले से अधिक मात्रा खरीदता है। वस्तु X की कीमत कम होने से विन्दु R से A को गति कीमत प्रभाव है, जिससे X की माग में वृद्धि हुई है।

चित्र 11 3
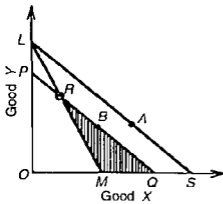
मान लीजिए कि X की कीमत कम होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय मे जो वृद्धि हुई है वह Y की LP मात्रा के रूप में उससे ले ली जाती है। अब PQ उसकी नई-कीमत रेखा हो जाती है जो LS के समानातर है और बिन्दु R मे से गुजरती है। नई त्रिभुज OPQ उसके चुनाव का क्षेत्र बन जाता है। क्योंकि उपभोक्ता LM रेखा के बिन्दु R पर अपने अधिमान को प्रकटित कर रहा था, इसलिए PQ रेखा के विन्दु R से ऊपर खण्ड RP पर स्थित सभी बिन्दु उसके चुनाव से मेल नहीं खाएगे। ऐसा इसलिए कि RP खण्ड पर वस्तु X की उसे पहले से कम मात्रा प्राप्त होगी परन्तु X की कीमत कम होने पर यह सभव नहीं है।
अत उपभोक्ता R से ऊपर सभी सयोगो को अस्वीकार कर देगा। वह छायाकृत क्षेत्र MRQ में रेखा PQ के खण्ड RQ पर या तो सयोग R या कोई अन्य सयोग जैसे B को चुनेगा। यदि वह सयोग R चुनता है तो X की कीमत कम होने से पहले X और Y की जो मात्राए वह खरीद रहा था, उतनी

ही खरीदेगा। और यदि वह B सयोग खरीदता है तो वह पहले से अधिक मात्रा X की ओर कम मात्रा Y की खरीदेगा। बिन्दु R से B को उपभोक्ता की गति X की कीमत मे कमी का स्थानापत्ति प्रभाव है।

यदि LP के रूप मे उपभोक्ता से ली गई मुद्रा उसे वापिस कर दी जाती है, तो वह कीमत गिरने के बाद की अपनी LS रेखा पर पुराने सयोग A पर होगा, जहा वह X की कीमत गिरने से इसकी कम मात्रा खरीदेगा। बिन्दु B से A की ओर उपभोक्ता की गति **आय प्रभाव** है। इस प्रकार माग प्रमेय फिर सिद्ध हो जाता है कि धनात्मक आय-लोच का अर्थ है माग की ऋणात्मक कीमत-लोच।

यह ध्यान देने योग्य हे कि सेम्यूलसन का स्थानापत्ति प्रभाव उदासीनता वक्र विश्लेषण के स्थानापत्ति प्रभाव से भिन्न है। उदासीनता वक्र विश्लेषण मे उपभोक्ता उसी उदासीनता वक्र के एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर गति करता हे ओर उसकी वास्तविक आय स्थिर रहती है। लेकिन प्रकटित अधिमान सिद्धान्त मे उदासीनता वक्रो को नहीं माना जाता है ओर स्थानापत्ति प्रभाव सापेक्ष कीमतो के परिवर्तन से उत्पन्न कीमत-आय रेखा के साथ-साथ गति है।

4 प्रकटित अधिमान से माग वक्र की व्युत्पत्ति
(DERIVATION OF THE DEMAND CURVE FROM REVEALED PREFERENCE)

प्रकटित अधिमान उपकल्पना से एक व्यक्ति के माग वक्र को व्युत्पन्न किया जा सकता है। इसे चित्र 11 4 मे दर्शाया गया है। पेनल (A) मे, मुद्रा को अनुलब अक्ष पर ओर वस्तु X को समानातर अक्ष पर लिया गया है। LM मूल कीमत-आय रेखा है जिसके बिन्दु R पर उपभोक्ता अपने अधिमान को प्रकटित करता है और वस्तु X की OA मात्रा खरीदता है। मान लीजिए कि X की कीमत कम हो जाती है। परिणामस्वरूप, उसकी नई आय-कीमत रेखा LS हे। इस रेखा पर, उपभोक्ता T बिन्दु पर अपने अधिमान को प्रकटित करता है ओर वह पहले से अधिक X की मात्रा OB खरीदता है। बिन्दु R से T को गति X की कीमत गिरने का कीमत प्रभाव हे जिसके कारण उसकी माग OA से बढकर OB हुई हे।

चित्र 11 4

अब उपभोक्ता की आय मे LP के बराबर जो वास्तविक वृद्धि X की कीमत मे कमी से हुई है, उसे उसमे ले लीजिए। इस प्रकार, PQ उसकी नई कीमत-आय रेखा है जो LS रेखा के समानातर है और R बिन्दु मे से गुजरती हे। नया त्रिभुज OPQ उसका चुनाव का क्षेत्र बन जाता हे।
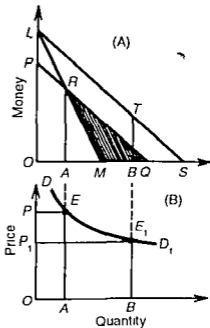
क्योंकि उपभोक्ता मूल कीमत-आय रेखा LM के बिन्दु R पर अपने अधिमान को प्रकटित कर रहा था, इसलिए R बिन्दु से ऊपर PQ रेखा के RP खण्ड पर सभी बिन्दु उसके चुनाव से मेल नहीं खाते है। ऐसा इस कारण कि X की कीमत गिरने पर वह उसकी कम मात्रा नहीं ले सकते। अत वह R से ऊपर सभी सयोगो को अस्वीकार करेगा और या तो सयोग R या कोई अन्य सयोग छायाकृत त्रिभुज MRQ मे चुनेगा। यदि मुद्रा की PL राशि जो उससे ली गई थी उपभोक्ता को वापिस कर दी जाती है, तो वह पुन कीमत-रेखा LS के बिन्दु T पर होगा जहा वह X की पहले से अधिक मात्रा OB खरीदता है। बिन्दु R से T तक गति को चित्र के पेनल (B) मे माग वक्र को खींचकर दिखाया गया है।

क्योंकि हमने पेनल (A) में मुद्रा को अनुलब अक्ष पर लिया है, इसलिए वस्तु X की कीमत की गणना करने के लिए हम उपभोक्ता की कुल मौद्रिक आय को X की खरीदी गई मात्राओं से विभाजित करते है। जब X की कीमत $OL/OM (= OP)$ हो, तो मागी गई मात्रा OA है। जब X की कीमत कम हो जाती है $OL/OS (= OP_1)$, तो मागी गई मात्रा बढकर OB होती है। चित्र के पेनल (B) में, हम कीमत को अनुलब अक्ष पर और वस्तु X की इकाइयो को समानातर अक्ष पर लेते है और इन कीमत-मात्रा सयोगों E और E_1 को खींचते है और इन बिन्दुओं के सरल रेखा द्वारा मिला कर हमें DD_1 माग वक्र प्राप्त होता है। यह वक्र दर्शाता है कि जब कीमत OP से गिरकर OP_1 होती है, तो उपभोक्ता X की AB अधिक मात्रा खरीदता है।

5. प्रकटित अधिमान से उदासीनता वक्र व्युत्पन्न करना (DERIVATION OF INDIFFERENCE CURVE FROM REVEALED PREFERENCE)

सैम्यूलसन के प्रकटित अधिमान सिद्धात का प्रयोग उदासीनता वक्र तकनीक की तुलना मे एक उदासीनता वक्र खींचने के लिए अधिक सुव्यवस्थित ढग से किया गया है। उदासीनता वक्र तकनीक मे यह माना गया है कि एक उदासीनता वक्र उपभोक्ता को पूछकर व्युत्पन्न किया जा सकता है कि वह वस्तुओ के सभी सभव सयोगो मे से चुनाव करे। फिर भी, उपभोक्ता अक्सर अपने अधिमानों के बारे में सीधे प्रश्नो के विश्वसनीय उत्तर नहीं देगे या दे सकेंगे। प्रकटित अधिमान सिद्धान्त के अनुसार, एक उपभोक्ता के अधिमानो का अनुमान लगाया जा सकता है और मार्किट मे पर्याप्त सख्या के अवलोकित चुनावो या क्रयो से उदासीनता वक्र व्युत्पन्न किया जा सकता है, बिना व्यक्ति के अधिमानो मे सीधे तौर से कोई जाच करने की आवश्यकता के। फिर, उदासीनता वक्र तकनीक यह मानती है कि उपभोक्ता वस्तुओ के सभी सभव सयोगो को विवेकशीलता और सगतिपूर्वक क्रमबद्ध करता है। परन्तु प्रकटित अधिमान सिद्धान्त मे उपभोक्ता को अपने अधिमानो को क्रमबद्ध करने और अपनी रुचियों के बारे मे कोई अन्य सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती है। बल्कि उपभोक्ता के मार्किट व्यवहार का अवलोकन करके प्रकटित अधिमान द्वारा एक उन्नतोदर उदासीनता वक्र खींचा जा सकता है।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

यह विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित है

(1) उपभोक्ता की रुचियों मे परिवर्तन नहीं होता।

(2) वह किसी भी स्थिति मे अधिक वस्तुओ के सयोग को कम वस्तुओं की अपेक्षा अधिमान देता है।

(3) उपभोक्ता के व्यवहार मे संगति है। इसका अभिप्राय है कि यदि एक स्थिति मे B से A को अधिमान दिया जाता है तो दूसरी स्थिति मे B को A से अधिमान नहीं दिया जा सकता है।

(4) उपभोक्ता के अधिमानो मे सकर्मकता है। इसका मतलब है कि यदि B से A को अधिमान दिया जाता है और C से B को, तो उपभोक्ता A को C पर अवश्य अधिमान देगा।

(5) X और Y दो वस्तुए है।

यह मान्यताए दी होने पर, उपभोक्ता दो वस्तुओ के एक विशेष सयोग को किसी अन्य सयोग की अपेक्षा दो मे से एक कारण से चुनता है या तो चुना गया सयोग अन्य सभी सयोगों से अधिमानित है, या जो नहीं चुना गया उसकी बजट रेखा से बाहर स्थित है।

चित्र 11 5

मान लीजिए कि चित्र 11 5 मे उपभोक्ता अपनी मूल बजट रेखा LM पर सयोग R के लिए अपने अधिमान को प्रकट करता है। रेखा LM पर और नीचे सभी अन्य बिन्दु R से घटिया सयोग दर्शाते है। इसे छायाकृत क्षेत्र द्वारा दिखाया गया है जिसे घटिया क्षेत्र (inferior zone) कहते है। दूसरी ओर, R से ऊपर और/ या दाईं ओर TRS क्षेत्र मे सभी बिन्दु R से अधिमानित है क्योकि उन पर अधिक X और/या Y की मात्राए उपलब्ध होती है। इसलिए, R से ऊपर छायाकृत क्षेत्र TRS अधिमानित क्षेत्र (preferred zone) कहलाता है। फिर भी, R के दाईं और बाईं ओर LM रेखा के ऊपर और TRS के नीचे क्षेत्रो मे दो वस्तुओ के सयोग पाए जाते है जिन्हे उपभोक्ता आदेशित नहीं करता है। वे TRL और SRM है जिन्हे अनभिज्ञता
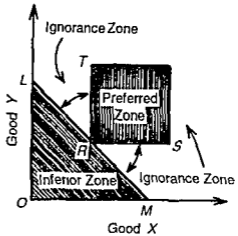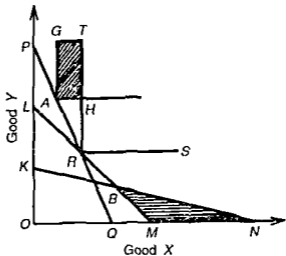
चित्र 11 6

क्षेत्र (ignorance zone) कहते हैं क्योंकि इनमें उपभोक्ता के अधिमानों का ज्ञान नहीं है। इससे यह परिणाम निकलता है कि उदासीनता वक्र R में से अवश्य गुजरे और TRS क्षेत्र के नीचे और LM बजट रेखा के ऊपर स्थित हो। R बिन्दु पर इसकी ढलान अवश्य ऋणात्मक हो और यह मूल के उन्नतोदर हो, क्योंकि यह अनभिज्ञता के ऊपरी और निचले क्षेत्रों में स्थित होगा।

उदासीनता वक्र की सही स्थिति को मालूम करने के लिए, हम पहले यह मान्यता लेते हैं कि X की कीमत गिरती है, जिससे उपभोक्ता की नई बजट रेखा KN हो जाती है, चित्र 11.6 में, जो मूल रेखा LM को R के नीचे बिन्दु B पर काटती है। अब उपभोक्ता या तो संयोग B या KN रेखा के BN खण्ड पर किसी अन्य संयोग को चुनेगा। इस रेखा के KB खण्ड पर B के बाईं ओर अन्य सभी बिन्दु उसके चुनाव से मेल नहीं खाएंगे, क्योंकि वे मूल रेखा LM के नीचे अनभिज्ञता क्षेत्र में स्थित हैं। क्योंकि उपभोक्ता B संयोग को चुनता है, यह R से घटिया प्रकटित होता है और BN खण्ड के ऊपर या नीचे प्रत्येक बिन्दु भी R से घटिया प्रकटित होता है। इस प्रकार, त्रिभुज BNM निचले अनभिज्ञता क्षेत्र से काट दिया जाता है। बिन्दु R के नीचे ऐसी बजट रेखाएं खींचकर और इसी तर्क का प्रयोग करके, निचले अनभिज्ञता क्षेत्र में R से नीचे समस्त हिस्से को हटाया जा सकता है।

इसी प्रकार, हम R के बाईं ओर ऊपरी अनभिज्ञता क्षेत्र को चित्र 11.6 में काट सकते हैं। मान लीजिए कि X की कीमत बढ़ती है और नई बजट रेखा PQ मूल बिन्दु R में से गुजरती है जो वही वास्तविक आय दर्शाती है जो R बिन्दु पर है। अब उपभोक्ता एक नए बिंदु A को बजट रेखा PQ पर चुनता है। इस प्रकार, वह R की अपेक्षा A के प्रति अपने अधिमान को प्रकटित करता है, क्योंकि दोनों बिन्दु एक ही बजट रेखा पर हैं। परन्तु A से दाईं ओर तथा ऊपर GAH क्षेत्र में सभी संयोगों को A पर अधिमान दिया जाता है, क्योंकि यह क्षेत्र उन संयोगों को व्यक्त करता है, जिन पर A संयोग की अपेक्षा दोनों में से एक वस्तु अधिक प्राप्त होती है। इसे यूं समझा जा सकता है क्योंकि R से A अधिमानित है और GAH क्षेत्र A से अधिमानित है, इसलिए R से GAH अधिमानित है। इस प्रकार, $GAHT$ क्षेत्र में संयोगों को श्रेणीबद्ध (ranking) करते हुए R से अधिमानित करके, हम ऊपरी अनभिज्ञता क्षेत्र के कुछ भाग को हटा देते हैं। इस प्रक्रिया को दोहराते हुए, हम अनभिज्ञता क्षेत्र को सीमित करते जाते हैं और अन्ततः उदासीनता वक्र को स्थापित कर लेते हैं, जिसे चित्र 11.7 में I वक्र द्वारा दिखाया गया है।

चित्र 11.7
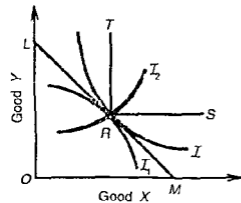
जहां तक उदासीनता वक्र की आकृति का संबंध है, चित्र 11.7 दर्शाता है कि R बिन्दु पर I वक्र मूल के उन्नतोदर है क्योंकि यह निचले और ऊपरी अनभिज्ञता क्षेत्रों में से गुजरता है। और प्रमाण देने के लिए, पहले हम LM को सरल रेखा उदासीनता वक्र विचारते हैं। रेखा LM उदासीनता वक्र नहीं हो सकता, क्योंकि R का चुनाव LM पर सभी बिन्दुओं को R से घटिया प्रकटित करता है तथा उपभोक्ता एक ही समय बिन्दु R और LM पर किसी अन्य बिन्दु के बीच उदासीन नहीं हो

सकता है। दूसरे, यह I_2 वक्र की तरह नहीं हो सकता जो LM रेखा को R बिन्दु पर काटता है, क्योंकि R से नीचे सभी बिन्दु R से घटिया प्रकटित हैं और उपभोक्ता उनके प्रति उदासीन है। तीसरे, उदासीनता वक्र I_1 की तरह R मे गुजरता नतोदर (concave) नहीं हो सकता क्योंकि इसके ऊपरी और निचले भाग घटिया क्षेत्र में है और सभी बिन्दु R से घटिया प्रकटित हैं।[3] इसलिए, उदासीनता वक्र केवल मूल के उन्नतोदर ही हो सकता है, जैसा कि चित्र 11 7 में I वक्र है।

6 प्रकटित अधिमान सिद्धान्त की श्रेष्ठता (SUPERIORITY OF REVEALED PREFERENCE THEORY)

उपभोक्ता के व्यवहार में सम्बन्ध रखने वाले हिक्स के क्रम-सख्यात्मक सिद्धान्त की अपेक्षा प्रकटित अधिमान सिद्धान्त श्रेष्ठ है।

1 यह उपभोक्ता के व्यवहार के बारे में किसी मनोवैज्ञानिक अर्तदर्शी सूचना का अध्ययन नहीं करता है। बल्कि, यह मार्किट में उपभोक्ता के व्यवहार के निरीक्षण के आधार पर व्यवहारवादी विश्लेषण प्रस्तुत करता है। सैम्युलसन के अनुसार, इस सिद्धान्त ने माग सिद्धात को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के अंतिम अवशेषों से मुक्त कर दिया है। इसलिए, प्रकटित अधिमान उपकल्पना पूर्व माग प्रमेयों से अधिक वास्तविक और वैज्ञानिक है।

2 यह सिद्धान्त उपयोगिता और उदासीनता वक्र दोनो सिद्धान्तों की निरतरता (continuity) मान्यता से बच जाता है। एक उदासीनता वक्र निरतर वक्र होना है जिस पर उपभोक्ता दोनों वस्तुओं के कोई भी सयोग ले सकता है। परन्तु सैम्यूल्सन का यह विश्वास है कि इस प्रकार अनिरतरता पाई जाती है क्योंकि उपभोक्ता केवल एक ही सयोग ले सकता है। सैम्यूलसन का अनुकरण करते हुए हिक्स ने अपनी *Revision of Demand Theory* में निरतरता की मान्यता के स्थान पर सशक्त और निर्बल आदेश (strong and weak ordering) को रखा है।

3 हिक्स का माँग विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता दी हुई आय से अपनी सतुष्टि को अधिकतम करने के लिए विवेकपूर्ण व्यवहार करता है। सैम्यूल्सन का माँग प्रमेय इससे श्रेष्ठ है क्योंकि यह इस मान्यता का बिल्कुल त्याग करता है कि उपभोक्ता सदैव अपनी सतुष्टि को अधिकतम करता है तथा मार्शल के घटती सीमान्त उपयोगिता नियम एवं हिक्स के घटती सीमान्त स्थानापत्ति दर जैसे भ्रामक सिद्धान्त का प्रयोग नहीं करता है।

4 सैम्यूल्सन के माग प्रमेय की प्रथम अवस्था मे, स्लट्स्की के स्थानापन्न-प्रभाव की भाँति, 'अति क्षतिपूर्ति प्रभाव' (over compensation effect) हिक्स के स्थानापन्नता-प्रभाव की अपेक्षा उपभोक्ता के व्यवहार की अधिक वास्तविक व्याख्या करता है। वस्तु X की कीमत मे वृद्धि होने पर यह प्रमेय उपभोक्ता को पहले से ऊची कीमत-आय स्थिति में आने देता है और वस्तु X की कीमत कम होने पर पहले से नीची कीमत-आय स्थिति में लाता है। यह हिक्स के आय क्षतिपूर्ति परिवर्तन मे संशोधन है। फिर, हिक्स ने क्षतिपूर्ति परिवर्तन के नियम को छोड दिया है और अपनी *Revision of Demand Theory* मे 'अति क्षतिपूर्ति-प्रभाव' को 'लागत-अन्तर' (cost difference) कहकर सैम्यूल्सन के विचार को ले लिया है। इसी प्रकार, दूसरी अवस्था में सैम्यूल्सन प्रमेय हिक्स के आय-प्रभाव की बहुत ही सरल ढग से व्याख्या करता है। प्रोफेसर हिक्स स्वय इस सिद्धान्त की श्रेष्ठता को स्वीकार करते है, जब वे यह कहते हैं कि "उदासीनता विधि के स्पष्ट विकल्प के रूप में इसे (प्रकटित अधिमान को) प्रस्तुत करना माँग के सिद्धान्त के योगदान मे सैम्यूल्सन की

3 4 इसे समझने के लिए देखिए चित्र 11 5

नवीनतम व महत्त्वपूर्ण देन है।"

5 यह प्रमेय सगत (consistent) चुनाव के आधार पर निरीक्षण के योग्य व्यवहार के रूप मे कल्याणकारी अर्थशास्त्र का आधार प्रदान करता है।

7. प्रकटित अधिमान सिद्धान्त के दोष
(DEFECTS OF THE REVEALED PREFERENCE THEORY)

सैम्यूल्सन के व्यवहारवादी क्रमसख्यात्मक सिद्धान्त के कई दोष हैं

प्रथम, यह उपभोक्ता के व्यवहार मे 'उदासीनता' की एकदम उपेक्षा करता है। यह तो ठीक है कि जब उपभोक्ता वस्तुओ के एक सयोग का बिन्दु *R* पर चुनाव करता है तो वह कीमत-आय रेखा पर या अदर किसी एक-मूल्य वाले माँग फलन के द्वारा अपनी उदासीनता को प्रकट नहीं करता। परन्तु यह सभव है कि चित्र 11 8 मे दिए हुए बिन्दु मे *R* के हर तरफ ऐसे बिन्दु हो जेसे *A* तथा *B* जिनके प्रति उपभोक्ता उदासीन रहता है जिन्हे वृत्त मे दिखाया गया है। यदि आर्मस्ट्राग (*Armstrong*) की इस आलोचना को स्वीकार कर लिया जाय तो सेम्यूलसन का 'आधारभूत प्रमेय' ही समाप्त हो जाता है। मान लीजिए कि *X* की कीमत बढ जाती है और उपभोक्ता की नई बजट रेखा *LS* हो जाती है। अब उसे कुछ अतिरिक्त मुद्रा दीजिए ताकि वह मूल सयोग *R* को रेखा *PQ* पर खरीद सके। इस नई कीमत-आय स्थिति मे वह मान लो कि *R* से नीचे *B* बिन्दु को चुनता है। ऐसा इसलिए कि आर्मस्ट्राग यह मानता है कि उपभोक्ता चुने हुए बिन्दु के इर्दगिर्द बिन्दुओं के प्रति उदासीन है। परन्तु *PQ* कीमत-आय स्थिति में *B* के चुनाव से मतलब है कि उपभोक्ता *X* की अधिक मात्रा खरीदता है जब उसकी कीमत बढती है। इससे सैम्यूल्सन का आधारभूत प्रमेय समाप्त हो जाता है क्योंकि *X* की कीमत बढने से इसकी माग सकुचित होने के बजाय विस्तृत हुई है।

चित्र 11 8
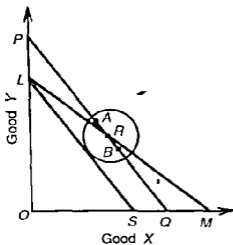
दूसरे, प्रोफेसर हिक्स के अनुसार क्योंकि प्रकटित अधिमान सिद्धान्त सशक्त आदेश (strong ordering) पर आधारित है, इसलिए यह मान सकना सभव नहीं कि "वे सब रेखागणितीय बिन्दु, जो त्रिभुज (हमारे चित्र में *OLM*) के अन्दर या ऊपर स्थित हो, प्रभावशाली विकल्पो को व्यक्त करे। एक द्वि-आयाम सतति (two-dimensional continuum) का सशक्त आदेश सभव नहीं। इसलिए हमारे पास यह मान लेने के सिवाय कोई चारा नहीं कि वस्तुए केवल अलग-अलग इकाइयो मे मिलती है, इसलिए चित्र को केवल वर्ग-पत्र (*squared paper*) पर ही खींचने का विचार किया जा सकता है और प्रभावशाली-विकल्प वर्गों के कोनो पर ही स्थित हो सकते है। स्वय बिन्दु *R* भी स्पष्ट रूप से वर्ग कोण पर ही स्थित होगा।

तीसरे, सैम्यूल्सन का आधारभूत प्रमेय शर्तबद्ध है सामान्य नहीं। यह इस तथ्य पर आधारित है कि धनात्मक आय-लोच मे ऋणात्मक आय-लोच निहित होती है। क्योंकि कीमत-प्रभाव आय

तथा स्थानापन्नता-प्रभावो के मेल से बनता है, इसलिए निरीक्षण के स्तर पर स्थानापन्नता-प्रभाव को आय-प्रभाव से अलग नहीं किया जा सकता। यदि आय-प्रभाव धनात्मक नहीं है, तो माँग की कीमत-लोच अनिश्चित होगी। दूसरी ओर, यदि माँग की आय-लोच धनात्मक हो, तो कीमत मे परिवर्तन के कारण होने वाले स्थानापन्नता-प्रभाव को निर्धारित नहीं किया जा सकता। इसलिए सैम्यूल्सन के प्रमेय मे आय-प्रभाव और स्थानापन्नता-प्रभाव मे भेद नहीं किया जा सकता।

चौथे, सैम्यूल्सन का प्रकटित अधिमान सिद्धान्त गिफ्फन के विरोधाभास का हल नहीं देता है क्योकि यह केवल माँग की धनात्मक आय-लोच पर विचार करता है, जबकि गिफ्फन विरोधाभास का ऋणात्मक आय-लोच से सम्बन्ध है। मार्शल के माँग के सिद्धान्त की भाँति, सैम्यूल्सन का प्रमेय भी इन दो मे भेद नहीं कर पाता। एक तो घटिया स्थानापन्नता-प्रभाव से युक्त गिफ्फन वस्तु का ऋणात्मक आय-प्रभाव और दूसरा शक्तिशाली स्थानापन्नता-प्रभाव से युक्त ऋणात्मक प्रभाव। इसलिए सैम्यूल्सन का प्रमेय हिक्स-ऐलन के कीमत प्रभाव से घटिया और कम सपूर्ण है।

पाँचवे, यह मान्यता कि उपभोक्ता दी हुई कीमत-आय स्थिति पर केवल एक ही सयोग चुनता है, गलत है। इसका मतलब है कि उपभोक्ता दोनो वस्तुओ मे से थोडा-थोडा चुनाव करता है। परन्तु ऐसा बहुत कम होता है कि कोई भी व्यक्ति हर वस्तु का थोडा-थोडा भाग खरीदे।

छठे, इस मान्यता की भी आलोचना की गई है कि "चुनाव अधिमान को प्रकट करता है"। चुनाव विचारशील उपभोक्ता व्यवहार की अपेक्षा रखता है। क्योकि एक उपभोक्ता हर समय विचारशीलता से काम नहीं करता, इसलिए हो सकता है कि वस्तुओ के एक विशेष सयोग का चुनाव उसके प्रति उपभोक्ता के अधिमान को प्रकट न करे। इसलिए यह प्रमेय मार्किट मे उपभोक्ता के अवलोकित व्यवहार पर आधारित नहीं है बल्कि अन्य सभी आर्थिक सिद्धान्तो की भाँति यह भी एक अव्यावहारिक अभ्यास है।

सातवें, प्रकटित अधिमान सिद्धान्त केवल व्यक्तिगत उपभोक्ता पर लागू होता है। इस सिद्धान्त की सहायता से, 'अन्य सब बातें समान रहती है' यह मानकर, हर उपभोक्ता के लिए ऋणात्मक ढलान वाले माँग वक्र खींचे जा सकते है। परन्तु यह तकनीक मार्किट माँग अनुसूचियों को खींचने में सहायता नहीं देती। क्योकि मार्किट मे जब वस्तु X की कीमत गिरती है, तो इससे अन्य वस्तुओ की कीमते प्रभावित हो सकती हैं जो समाज में वास्तविक आय के वितरण को बदल देगी। यद्यपि इस वस्तु X के लिए प्रत्येक व्यक्ति का माँग वक्र नीचे की ओर ढालू होना है, फिर भी, कीमतों के किसी विशेष क्षेत्र मे, वास्तविक आय के पुनर्वितरण मे मार्किट का माँग वक्र ऊपर को ढालू पाया जाता है।[5] हिक्स-ऐलन का सिद्धान्त प्रकटित अधिमान उपकल्पना से श्रेष्ठ है क्योंकि वह कीमत उपभोग वक्रो से व्यक्ति और मार्किट दोनो के माँग वक्रो का निर्माण कर सकता है।

आठवें, टी मजूमदार[6] के अनुसार, प्रकटित अधिमान उपकल्पना उन स्थितियो के लिए असमर्थ है जहा व्यक्तिगत चुनावकर्ता खेल सिद्धान्त किस्म की कूटनीतिया प्रयोग करने मे समर्थ है।

अन्तिम, प्रकटित अधिमान सिद्धान्त उपभोक्ता के व्यवहार मे जोखिम या अनिश्चितता वाले चुनावों का विश्लेषण करने मे असफल रहा है। यदि तीन स्थितियाँ A B C हों तो उपभोक्ता A को B से अधिमान देता है और C को A से। इनमें से A निश्चित है, परन्तु B या C की सभावना 50-50 है। ऐसी अवस्था मे, उपभोक्ता का C को A से अधिमान देना उसके अवलोकित व्यवहार पर आधारित नहीं कहा जा सकता।

निष्कर्ष (Conclusion)—इस विवेचन से प्रतीत होता है कि प्रकटित अधिमान सिद्धान्त

5 E J Mishan, "Theories of Consumer Behaviour A Cynical View", *Economica* Feb 1961

6 T Majumdar, *The Measurement of Utility* 1958

किसी भी प्रकार हिक्स-ऐलन के उदासीनता विश्लेषण मे सुधार नहीं है। वह स्थानापन्नता-प्रभाव को आय-प्रभाव से अलग नहीं कर सकता, गिफ्फन के विरोधाभास को छोड देता है और मार्किट माँग विश्लेषण का अध्ययन नहीं कर पाता। फिर भी, एक-मूल्य वाले माँग फलन के स्थान पर उपभोक्ता के अवलोकित मार्किट व्यवहार का तथ्य प्रकटित अधिमान सिद्धान्त को उदासीनता वक्र तकनीक की अपेक्षा अधिक वास्तविक बना देता है। इस प्रकार, सैम्यूल्सन का व्यवहारवादी क्रमसख्यात्मक उपयोगिता विश्लेषण हिक्स-ऐलन के अंतर्दर्शी क्रमसख्यात्मक उपयोगिता सिद्धान्त का स्पष्ट विकल्प है।

प्रश्न

1 'प्रकटित अधिमान' सिद्धान्त पर एक सक्षिप्त तथा तर्कपूर्ण टिप्पणी लिखिए।

2 'चुनाव अधिमान को प्रकट करता है।' इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

3 उदासीनता वक्र की सीमाओ के सदर्भ मे यह विवेचना करिए कि प्रकटित अधिमान सिद्धान्त कैसे एक सुधार है?

4 प्रकटित अधिमान उपकल्पना की मुख्य विशेषताओ की व्याख्या कीजिए।

5 प्रकटित अधिमान उपकल्पना से माग वक्र व्युत्पन्न कीजिए।

6 प्रकटित अधिमान उपकल्पना से एक उदासीनता वक्र व्युत्पन्न कीजिए।

अध्याय 12

हिक्स द्वारा माँग सिद्धान्त का संशोधन : तर्कसंगत आदेश का मांग सिद्धांत

(HICKS' REVISION OF DEMAND THEORY DEMAND THEORY OF LOGICAL ORDERING)

1. भूमिका
(INTRODUCTION)

सन् 1956 में हिक्स ने अपनी पहली पुस्तक *Value and Capital* के प्रथम तीन अध्यायो का सशोधन[1] प्रस्तुत किया। अपनी नयी पुस्तक *A Revision of Demand Theory* मे अपने माँग सिद्धान्त का अर्थमिति दृष्टिकोण दिया क्योकि *Value and Capital* मे यह बिल्कुल सुस्पष्ट नहीं था। उसने यह स्वीकार किया कि "यह एक गभीर त्रुटि थी कि अर्थमिति सकेत (econometric reference) अधिक सुस्पष्ट नहीं किया गया था।" वह सैम्यूल्सन के प्रकटित (उद्घाटित) अधिमान सिद्धान्त (revealed preference theory) द्वारा उत्साहित हुआ क्योकि सैम्यूल्सन के सिद्धान्त का समस्त रूप अर्थमिति सकेत द्वारा निर्देशित होने दिया जाता है। परन्तु उसने यह अनुभव किया कि सैम्यूल्सन के सिद्धान्त मे भी अर्थमिति सकेत इतना सुस्पष्ट नहीं जितना कि होना चाहिए। इसलिए उसने सैम्यूल्सन का अन्धा अनुकरण नहीं किया। सैम्यूलसन की तकनीक का प्रयोग करते हुए हिक्स ने अपने माँग सिद्धान्त को सैम्यूल्सन से भी अधिक अर्थमिति दृष्टिकोण से सुस्पष्ट करने का प्रयत्न किया।

माँग सिद्धान्त के इस अर्थमिति दृष्टिकोण मे हिक्स *Value and Capital* के क्रमसख्यात्मक सिद्धान्त (ordinal theory) का प्रयोग करता है तथा गणनसख्यात्मक (cardinal) धारणा का बहिष्कार करता है। परन्तु यह उदासीनता वक्र प्रणाली का बिल्कुल परित्याग करता है तथा इसके लिए दो कारण देता है। प्रथम, उदासीनता वक्र की ज्यामितीय विधि केवल दो वस्तुओं की मात्राओं के चुनाव को व्यक्त करने मे पूर्णरूपेण प्रभावशाली होती है। यदि हम दो से अधिक वस्तुएँ ले तो "हमे विस्तृत गणित पर निर्भर करना पड़ता है जो प्राय आर्थिक विचार, कि क्या किया जा रहा है, को छिपा लेता है।" दूसरे, ज्यामिति विधि निरन्तरता की मान्यता पर आधारित है, "जो विशेषता ज्यामितीय क्षेत्र की तो होती है, परन्तु जो सामान्यत आर्थिक की नहीं होती है।" इसलिए वह उदासीनता वक्र तकनीक के साथ-साथ निरन्तरता की मान्यता का परित्याग करता है।

1 J R Hicks, *A Revision of Demand Theory* 1956 इस अध्याय का विश्लेषण उक्त पुस्तक के अध्याय एक से सात की सामग्री पर आधारित है।

2. सशक्त और दुर्बल आदेश
(STRONG AND WEAK ORDERING)

अपने संशोधित माग सिद्धात का निर्माण करने के लिए हिक्स यह मान्यता लेता है कि एक आदर्श उपभोक्ता अधिमान उपकल्पना (preference hypothesis) के अनुसार व्यवहार करता है। ऐसा उपभोक्ता केवल वर्तमान मार्किट स्थितियों द्वारा प्रभावित होता है जिनमे उसकी वस्तु के लिए माग (वस्तु की) अपनी कीमत, अन्य वस्तुओं की कीमतों और उपभोक्ता की आय द्वारा प्रभावित होती है। अधिमान उपकल्पना आदर्श उपभोक्ता के व्यवहार को अधिमानों के एक पैमाने के अनुसार मानता है। इसका अभिप्राय है कि "आदर्श उपभोक्ता के समक्ष जितने भी विभिन्न विकल्प विद्यमान है, उनमें से ऐसा विकल्प चुनता है जिसको वह सबसे अधिक अधिमान देता है या क्रमबद्ध करता है। बाजार-स्थितियों के एक समूह में वह चुनाव करता है और अन्य में दूसरे, परन्तु जो चुनाव वह करता है, सदैव समान आदेश व्यक्त करते है और इसलिए वे एक-दूसरे के साथ अवश्य ही सगत होने चाहिए। यह उपकल्पना आदर्श उपभोक्ता के व्यवहार के बारे में बनाई गई है।" हिक्स का मांग-सिद्धात विश्लेषण अधिमान उपकल्पना पर आधारित है जो कि आदेश के तर्कसगत सिद्धात का आर्थिक प्रयोग है। अपने मांग सिद्धांत की व्याख्या करने से पहले, हिक्स दुर्बल आदेश के तर्क और सशक्त आदेश के तर्क के बीच भेद करता है, क्योंकि उसका सिद्धात दुर्बल आदेश उपकल्पना पर आधारित है।

दुर्बल आदेश (Weak Ordering)—दुर्बल आदेश को सशक्त आदेश से तुलना करके ही समझा जा सकता है। "यदि कुछ मदों का समूह सशक्त आदेशित है, यह ऐसा है कि हर मद का आदेश मे अपना स्थान है, नियमानुसार इसे सख्या दी जा सकती है और हर सख्या की एक मद होगी, और केवल एक ही मद जो समान होगी। वर्णमाला के अक्षर सशक्त आदेशित है। दूसरी ओर, दुर्बल आदेश इस सम्भावना की अनुमति देता है कि कुछ मदों को एक-दूसरे के आगे क्रमबद्ध करना असमर्थ हो सकता है। एक दुर्बल आदेश मे समूहों मे विभाजन सम्मिलित होता है जिसमे समूहों का क्रम सशक्त आदेशित होता है परन्तु जिसमे समूहों के अन्दर कोई आदेश नहीं होता।" मान लीजिए कि वर्षों से सबध रखे बिना, व्यक्ति केवल जन्मदिनों के आधार पर आदेशित किए जाते है। एक बडी जनसंख्या मे, कुछ व्यक्ति समान जन्मदिनों वाले होगे। इस प्रकार, जन्मदिनों के समूह सशक्त आदेशित किए जा सकते है, लेकिन एक समूह के अन्दर कोई आदेश नहीं होगा। यह दुर्बल आदेश है। उदासीनता वक्र विश्लेषण मे, उपभोक्ता अधिमान दुर्बल आदेश पर आधारित है क्योंकि एक उदासीनता वक्र पर सभी सयोग अथवा बिन्दु आदेशित नहीं होते है, यद्यपि सभी समान रूप से वाछनीय है, परन्तु उपभोक्ता अन्य के प्रति उदासीन होता है।
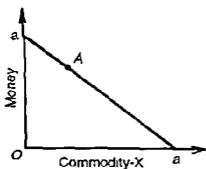
चित्र 12.1

सशक्त आदेश (Strong Ordering)—प्रकटित अधिमान उपकल्पना सशक्त आदेश पर आधारित है जिसका मतलब है कि जब उपभोक्ता सयोग A के लिए अपने अधिमान को प्रकट करता है तो वह सभी अन्य सयोगों, जैसे B C या D जो उसको उपलब्ध है उन्हे अप्रत्यक्षतौर से अस्वीकार करता है। इस प्रकार, सयोग A सशक्त आदेशित है।

आगे, हिक्स सशक्त आदेश को माग सिद्धात

पर लागू करते हुए चित्र 12 1 मे व्याख्या करता है। वह मानता है कि दो वस्तुए X और M है। वस्तु X एक व्यक्तिगत वस्तु है और M मिश्रित (Composite) वस्तु है जो X के अलावा सभी वस्तुओ और सेवाओ को व्यक्त करती है। वस्तु M को अनुलब अक्ष पर और X समानातर अक्ष पर मापा जाता है। उपभोक्ता की आय और X एव M की कीमते दी होने पर, आदर्श उपभोक्ता की कीमत-आय स्थिति को रेखा aa द्वारा व्यक्त किया गया है और जो चुनाव उसके सामने खुले है वे त्रिभुज aOa पर या उसके बीच मे बिन्दुओ द्वारा दिखाए गए है। रेखा aa पर बिन्दु A उपभोक्ता का वास्तविक चुनाव व्यक्त करता है। सशक्त आदेश के रूप मे अधिमान उपकल्पना त्रिभुज aOa पर या बीच मे किसी अन्य स्थिति से स्थिति A को अधिमान देना व्यक्त करता है। सैम्यूलसन की भाषा मे, वह *त्रिभुज पर या बीच मे उसको उपलब्ध सभी सयोगो के ऊपर सयोग A के लिए 'अपना अधिमान प्रकट'* करता है। इस प्रकार, उपभोक्ता A के लिए निश्चित अधिमान दर्शाता है जिसे सशक्त आदेशित कहा जाता है।

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)—हिक्स ने निम्न कारणो से सैम्यूलसन की प्रकटित अधिमान उपकल्पना के सशक्त आदेश की आलोचना की है।

1 सशक्त आदेश रूप मे सैम्यूलसन की अधिमान उपकल्पना मे यह नहीं माना जा सकता कि सभी ज्यामितीय बिन्दु जो aOa त्रिभुज पर या बीच मे स्थित होते है वे प्रभावी विकल्प व्यक्त करते है। हिक्स के अनुसार, "एक दो आयामी निरतरता बिन्दु सशक्तता से आदेशित नहीं किया जा सकता हे।"

2 हिक्स का यह कहना है कि सशक्त आदेश के अन्तर्गत वस्तुओ का केवल असतत (discrete) इकाइयो मे उपलब्ध होना माना जाता है। यह मान्यता वास्तविक वस्तु X पर लागू हो सकती है लेकिन सयुक्त वस्तु M पर नहीं जो अच्छी तरह से विभाजित होती हे। इस प्रकार, असतत इकाइयो मे उपलब्ध वस्तु X और अच्छी प्रकार से विभाजित होने वाली वस्तु M के बीच चुनाव करते समय, सशक्त आदेश को त्यागना ही पडेगा। ऊपर के तर्क के आधार पर सैम्यूलसन की सशक्त आदेश उपकल्पना को हिक्स अस्वीकार करता है।

हिक्स के माग सिद्धात मे दुर्बल आदेश का प्रयोग (The Use of Weak Ordering in Hicks' Demond Theory)

हिक्स अपने माग सिद्धात मे दुर्बल आदेश के प्रयोग की व्याख्या इस प्रकार करता है। उसके *अनुसार यदि उपभोक्ता के अधिमान दुर्बलता से आदेशित किए जाते है,* तब मान लीजिए चित्र 12 2 मे एक विशेष स्थिति A का उसका चुनाव यह प्रकट नहीं करता कि aOa त्रिभुज पर या बीच मे किसी अस्वीकृत (rejected) स्थिति पर A को अधिमान प्राप्त होता है। यह सभव है कि कोई अस्वीकृत स्थिति A के प्रति उदासीन (indifferent) हो। तब स्थिति A का चुनाव एक सयोग (chance) की बात है।

ऊपर के तर्क के आधार पर *माग सिद्धात की प्रस्थापनाओ को व्युत्पन्न करना सभव नहीं है।* इसलिए, हिक्स एक **अतिरिक्त उपकल्पना** (additional hypothesis) का प्रवेश कराता है कि उपभोक्ता सदैव मुद्रा की एक बडी राशि (M) को एक छोटी राशि पर अधिमान देगा, बशर्ते कि उसके पास X की मात्रा अपरिवर्तित रहे। चित्र 12.2 अतिरिक्त उपकल्पना के साथ-साथ दुर्बल आदेश उपकल्पना की व्याख्या करता है। चित्र में A और B स्थितियो को लीजिए, जहा A त्रिभुज aOa पर और B त्रिभुज के बीच मे स्थित है। दुर्बल आदेश के अन्तर्गत, यदि B की बजाय A को चुना जाता है, तो इसका यह अभिप्राय नहीं कि B पर A को अधिमान दिया जाता है। इसका केवल यह अभिप्राय है कि B को A पर अधिमान नहीं दिया जाता है। दूसरे शब्दो मे, इसका मतलब है कि या तो A को B पर अधिमान दिया जाता है या A और B उदासीनता (तटस्थता) की स्थितिया है।

चित्र 12.2
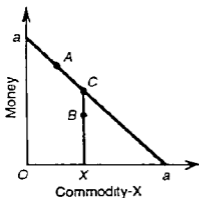
परन्तु दुर्बल आदेश की यह प्रस्थापना नहीं ठहरती है, यदि aa रेखा पर अनुलब रेखा XB के बीच में से एक और स्थिति C ली जाती है। अतिरिक्त उपकल्पना के अन्तर्गत, C को B पर अधिमान दिया जाता है, क्योंकि उपभोक्ता B पर कम मुद्रा की बजाय C पर अधिक मुद्रा को अधिमान देता है, वस्तु की वही मात्रा OX दी होने पर। यदि A और B उदासीनता की स्थितिया है, तो सकर्मकता शर्त (transitivity condition) से यह परिणाम निकलता है कि C को A पर अधिमान दिया जाता है। परन्तु दुर्बलता आदेश उपकल्पना के अनुसार (जैसा कि ऊपर इस खण्ड के प्रारंभ में व्यक्त किया गया) aOa त्रिभुज पर और बीच में कोई भी अन्य स्थिति को A पर अधिमान नहीं दिया जाता है जिसका अभिप्राय है कि C को पहले से ही A के पक्ष में अस्वीकार कर दिया गया है। इसलिए, A और C स्थितिया उदासीनता की हो सकती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि A ओर C उदासीनता की स्थितिया है, तब यह विकल्प कि A और B स्थितिया तटस्थ (उदासीन) है अवश्य असगत घोषित कर देना चाहिए। अत दुर्बल आदेश का तर्क यह बतलाता है कि aa रेखा पर स्थित A को B पर अधिमान दिया जाता है क्योंकि B त्रिभुज aOa के बीच में स्थित है। परन्तु यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि स्थिति A को C या aa रेखा पर किसी अन्य स्थिति के ऊपर अधिमान दिया जाता है।

3 प्रत्यक्ष संगति परीक्षण
(THE DIRECT CONSISTENCY TEST)[2]

हिक्स आदर्श उपभोक्ता के, जो अपने अपरिवर्तित अधिमानो के पैमाने को प्रकट करता है, उसके अभिलिखित (recorded) व्यवहार की व्याख्या करने के लिए सेम्यूल्सन के प्रकटित अधिमान सिद्धात का अनुसरण करता है। वह प्रत्यक्ष सगत परीक्षण को सशक्त तथा दुर्बल आदेश के अन्तर्गत प्रयुक्त करता है जबकि सैम्यूल्सन का विश्लेषण सशक्त आदेश पर आधारित है। उपभोक्ता के चुनाव की सगति के अतिरिक्त वह असगति (inconsistency) के आधार पर इस धारणा का परीक्षण करता है।

वस्तु X को समानान्तर अक्ष पर और मिश्रित वस्तु M को चित्र 12.3 में अनुलम्ब अक्ष पर लिया गया है। उपभोक्ता की आय तथा X की कीमत दी होने पर, उपभोक्ता के समक्ष चुनावो को त्रिभुज aOa पर या अन्दर बिन्दुओं द्वारा दर्शाया गया है। रेखा aOa पर बिन्दु A उपभोक्ता के वास्तविक चुनाव को दिखाता है। अधिमान उपकल्पना के सशक्त आदेश के रूप में (सैम्यूल्सन के दृष्टिकोण से) सयोग A त्रिभुज aOa पर या अन्दर दुर्बल सभी सयोगो से अधिमानित है, जबकि आदेश के रूप में इसका अभिप्राय है कि सयोग A त्रिभुज के बीच में सभी सयोगों से अधिमानित

2 हिक्स के नए माग सिद्धान्त की व्याख्या करने के लिए, प्रत्यक्ष सगति परीक्षण देने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु हिक्स के माग सिद्धान्त को समझने के लिए इसकी जानकारी आवश्यक है।

है और aa की अन्य स्थितियो से या तो अधिमानित है या उदासीन दूसरी मार्किट स्थिति लीजिए, जो bb कीमत-आय रेखा द्वारा व्यक्त की गई है जहाँ X की कीमत भिन्न है और उपभोक्ता की आय भिन्न हो भी सकती है या नहीं भी। उपभोक्ता के समक्ष चुनावो को त्रिभुज bOb पर या अन्दर बिन्दुओ द्वारा व्यक्त किया गया है और वास्तविक चुनाव बिन्दु B है।

चित्र 12.3

यदि अधिमानो का पैमाना अपरिवर्तित हो तो उपभोक्ता के व्यवहार द्वारा प्रकटित अधिमानो मे सगति (consistency) पायी जाती है। उसका व्यवहार असगत (inconsistent) होता है यदि वह स्थिति A मे A को B से अधिमान देता है, और स्थिति B मे B को A से अधिमान देता है। दुर्बल आदेश मे उदासीनता की सभावना को भी दृष्टिगोचर रखना होता है।

सशक्त एव दुर्बल आदेश मे सगति या असगति की जो स्थितियाँ पायी जा सकती है, हिक्स उनका निम्न विधियो मे विश्लेषण करता है

(1) **प्रथम सभावना** यह है कि जहाँ रेखा aa पूर्णरूपेण bb रेखा के ऊपर स्थित होती है जैसे कि चित्र 12.3 मे। स्थिति A मे B त्रिभुज aOa के बीच मे स्थित है और उपभोक्ता A को B से सशक्त आदेश के अन्तर्गत अधिमान देता है। साथ मे वह B के प्रति उदासीन है। इस प्रकार सगति की शर्त दुर्बल आदेश मे पूरी हो जाती है। B स्थिति मे उपभोक्ता को A सयोग प्राप्त नहीं हो सकता, जिससे उसके द्वारा A स्थिति मे A के लिए अधिमान B स्थिति में उसके B के चुनाव से सगत है। परन्तु इन दो स्थितियो मे कोई असगति नहीं। यही बात सैम्यूलसन ने अपने प्रकटित अधिमान सिद्धान्त द्वारा सिद्ध की।

चित्र 12.4

(2) **दूसरी सभावना** यह है कि जहाँ दोनो कीमत-आय रेखाएँ एक-दूसरे को काटती है जैसा कि चित्र 12.4 मे दिखाया गया है, और इससे निम्नलिखित चार सम्भावनाएँ उत्पन्न होती है

(i) मान लीजिए कि उपभोक्ता के समक्ष जो चुनाव A तथा B दोनो स्थितियो मे पाए जाते है, वे काट (cross) C के बाईं ओर (C के ऊपर की ओर) स्थित है। स्थिति A मे B, त्रिभुज aOa के बीच मे है। इस लिए उपभोक्ता B को A पर अधिमान देता है और B के प्रति उदासीन भी है (दुर्बल आदेश)। स्थिति B मे, A उसे प्राप्य नहीं क्योकि यह सयोग उसकी पहुच से बाहर है। इसलिए स्थिति B मे उस द्वारा B का चुनाव, स्थिति A मे A के लिए अधिमान से सगत है।

(ii) मान लीजिए कि दोनो A तथा B काट (cross) C के दाईं ओर (C के नीचे की ओर) स्थित है। इस अवस्था मे B को A से अधिमानित किया जाता है क्योकि A, त्रिभुज bOb के बीच मे स्थित
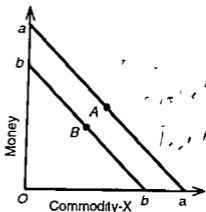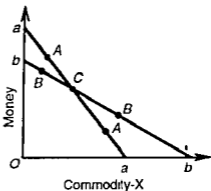
है और उपभोक्ता A के प्रति उदासीन भी है। स्थिति A मे B सयोग उपभोक्ता को उपलब्ध नहीं। इसीलिए उसका A स्थिति मे A का चुनाव, B स्थिति मे B के चुनाव से सगत है।

(iii) अब वह स्थिति लीजिए जब A काट (cross) C के बाहर बाईं ओर स्थित है और B बाहर दाईं ओर ($aACBb$ क्षेत्र मे)। इस अवस्था मे, सयोग B स्थिति A मे उपभोक्ता की पहुच के बाहर है, इसलिए वह केवल A सयोग चुनता है। इसी प्रकार स्थिति B मे, सयोग A उसकी पहुच के बाहर है और वह केवल सयोग B ही चुनता है। एक का दूसरे के लिए अधिमान का प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रकार सशक्त तथा दुर्बल दोनों स्थितियों के अन्तर्गत चुनाव सगत हैं।

(iv) यदि दोनों बिन्दु काट (cross) के अन्दर स्थित हैं, C के बाईं ओर B तथा इसके दाईं ओर A ($bBCAa$ क्षेत्र मे) तो उपभोक्ता के व्यवहार मे असगति पाई जाती है। स्थिति A मे, A को B से अधिमान दिया जाता है क्योंकि B, त्रिभुज aOa के बीच मे स्थित है। इसी प्रकार स्थिति B मे, B को A से अधिमान दिया जाता है क्योंकि A सयोग त्रिभुज bOb के बीच मे स्थित है। दोनों ही अवस्थाओ मे उपभोक्ता जब एक चुनाव को लेता है तो दूसरे के प्रति उदासीन होता है। परन्तु वह A को B से अधिमान नहीं दे सकता और साथ ही B को A से। अत सशक्त एव दुर्बल आदेश के *अन्तर्गत उपभोक्ता के चुनाव मे असगति है।*

(3) तीसरी सभावना चित्र 12 5 मे व्यक्त की गई है, जहाँ एक बिन्दु काट (cross) पर स्थित होता है और दूसरा काट के बाहर या अन्दर।

चित्र 12.5
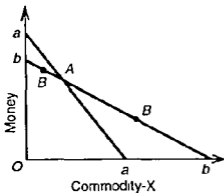
(क) पहले वह सभावना ली जाती है जिसमे A काट पर है और B काट के अन्दर, A के दाईं ओर स्थित हैं। स्थिति A मे, A सयोग B से अधिमानित है क्योंकि यह त्रिभुज aOa के बीच मे स्थित है और उपभोक्ता B के प्रति उदासीन है। परन्तु रेखा bb पर स्थित B मे सयोग A भी पाया जाता है। सशक्त आदेश के अन्तर्गत B स्थिति मे, B सयोग A से अधिमानित प्रकट होता है यद्यपि स्थिति A मे सयोग B की अपेक्षा A अधिमानित प्रकट हुआ था। इस प्रकार इस अवस्था मे असगति पाई जाती है क्योंकि दोनों A और B एक-दूसरे से अधिमानित नहीं हो सकते। दुर्बल आदेश मे, या तो B सयोग B स्थिति मे A की अपेक्षा अधिमानित है या A के प्रति B उदासीन है। इसमे असगति है क्योंकि उपभोक्ता के व्यवहार मे निश्चितता नहीं पाई जाती है।

(ख) अब हम वह अवस्था लेते है जिसमे A काट (cross) पर स्थित है और B इसकी बाईं ओर बाहर को है चित्र 12 5 मे स्थिति A मे सयोग B उपभोक्ता की पहुच के बाहर है, इसलिए इस स्थिति मे उपभोक्ता के चुनाव मे कोई असगति नहीं। स्थिति B मे, B सयोग A मे अधिमानित होता है। दुर्बल आदेश मे इसका अर्थ यह है कि या तो B सयोग A से अधिमानित है या B सयोग A के प्रति उदासीन है। इसलिए इसमे कोई असगति नहीं क्योंकि B सयोग A स्थिति मे प्राप्य नहीं।

(4) अन्तिम, यदि A तथा B दोनों ही काट पर स्थित होते है (चित्र मे नहीं दिखाया गया) तो उपभोक्ता एक स्थिति के दूसरे के प्रति अधिमान नहीं रख सकता। अत उसके चुनाव मे कोई असगति नहीं हो सकती।

प्रोफेसर हिक्स निष्कर्ष देता है कि "प्रत्यक्ष संगति परीक्षण अनन्त एक जैसा ही बताता है चाहे हम सशक्त या दुर्बल आदेश मान रहे हों। दोनों ही मान्यताओं पर असंगति होती है (i) जब दोनों बिन्दु A और B काट में स्थित हों, (ii) जब एक काट पर तथा दूसरा अन्दर स्थित हो। यद्यपि अधिमान उपकल्पना की दोनों व्याख्याएं समान परिणाम देती हैं, फिर भी इस पर अवश्य बल देना चाहिए कि जिन तर्कों द्वारा उन्होंने यह परिणाम प्राप्त किया है भिन्न हैं।"

4. दुर्बल (या तर्कसंगत) आदेश का माग सिद्धान्त
(DEMAND THEORY OF WEAK (OR LOGICAL) ORDERING)

हिक्स अपने माग सिद्धान्त का दुर्बल आदेश और प्रत्यक्ष संगति परीक्षण के आधार पर निर्माण करता है। तब वह मांग वक्र को व्युत्पन्न करने की ओर अग्रसर होता है।

इसकी मान्यताएँ (Its Assumptions) हिक्स के माग सिद्धांत की आधारभूत मान्यताएं ये हैं

(1) हिक्स के माग सिद्धान्त का विश्लेषण अधिमान उपकल्पना पर आधारित है जो यह मानता है कि एक आदर्श उपभोक्ता का व्यवहार उसके अधिमानों के पैमाने के अनुसार है। आदर्श उपभोक्ता केवल वर्तमान बाजार स्थितियों द्वारा प्रभावित होता है और वह विभिन्न उपलब्ध विकल्पों में से ऐसा विकल्प चुनता है जिससे वह सबसे अधिक अधिमान देता है या क्रमबद्ध करता है। परन्तु जो चुनाव वह करता है सदैव समान आदेश व्यक्त करते हैं और एक-दूसरे के साथ संगत होते हैं।

(2) यह माना जाता है कि वस्तु की अधिक मात्रा को कम की अपेक्षा सदैव अधिमान दिया जाता है।

(3) यह मान्यता ली जाती है कि मांग सिद्धान्त दुर्बल आदेश उपकल्पना पर आधारित है। दुर्बल आदेश आगे दो शर्तों पर निर्भर करता है (i) द्विवाची संगत शर्त (two-term consistency) और (ii) सकर्मकता शर्त (transitivity condition) द्विवाची संगतशर्त का कार्य है कि किन्हीं दो आदेशित मदो में संबध एकदिशीय (unidirectional) है। यदि एक सरल रेखा वक्र पर P and Q दो मदें हों, तो क्रम में P का Q से ऊपर होना और Q का P से ऊपर होना संभव नहीं है। P एक ही क्रम में Q से ऊपर और नीचे नहीं हो सकता है। द्विवाची संगत शर्त को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है

(क) P यदि Q के दाईं ओर स्थित नहीं है, तो Q P के बाईं ओर नहीं है। (ख) P यदि Q के बाईं ओर नहीं है तो Q, P के दाईं ओर नहीं है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि P तटस्थ है Q के और Q है तटस्थ (neutral) P के।

सकर्मकता शर्त का त्रिवाची संगति (three-term consistency) से संबध है। यह बताती है कि Q यदि P के दाईं ओर नहीं है, और R यदि Q के दाईं ओर नहीं है, तो R दाईं ओर नहीं है Q के। इसी प्रकार दूसरी दिशा के लिए 'के बाईं ओर नहीं।' P यदि Q के तटस्थ है और Q है R के बाईं ओर, तो P बाईं ओर है R के, और इसी प्रकार दूसरी दिशा के लिए।

(4) यह मान लिया जाता है कि X और M दो वस्तुएं हैं और M (मुद्रा) सामान्यीकृत या मिश्रित (composite) वस्तु है। वस्तु X की कीमत में परिवर्तन होता है जबकि M वस्तु की कीमत स्थिर रहती है।

(5) उपभोक्ता सदैव मुद्रा की थोड़ी मात्रा की अपेक्षा मुद्रा की बड़ी मात्रा को प्राथमिकता देता है।

उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर प्रो हिक्स माग के नियम को व्युत्पन्न करता है।

माँग के सिद्धान्त की व्युत्पत्ति (Derivation of the Law of Demand)

प्रोफेसर हिक्स प्रत्यक्ष सगति परीक्षण (direct consistency test) तथा दुर्बल आदेश उपकल्पना (weak ordering hypothesis) के आधार पर उपभोक्ता का नीचे की ओर ढालू माँग वक्र की व्युत्पत्ति करता है। उदासीनता वक्र तकनीक की तरह वह वस्तु की माँगी गई मात्रा पर कीमत परिवर्तन के प्रभाव को आय-प्रभाव तथा स्थानापन्नता-प्रभाव में बाटता है। स्थानापन्नता-प्रभाव विचाराधीन कीमत मे परिवर्तन का प्रभाव है जिसमे समुचित आय-प्रभाव शामिल होता है—जो इस ढग से चुना जाता है कि सयुक्त परिवर्तन (स्थानापन्नता-प्रभाव) के प्रभाव की निश्चित विशेषताएँ है जिन्हे सगति सिद्धान्त से तर्क द्वारा निकाला जा सकता है। जो वास्तविक परिवर्तन हुआ है उसका अवशेष (remainder) आय प्रभाव है। क्योंकि स्थानापन्नता-प्रभाव मे कीमत परिवर्तन होने दिया गया है तो आय-प्रभाव को कीमतो मे परिवर्तन के प्रभाव तक ही सीमित रहने दिया है। सगति सिद्धान्त ऐसे आय-प्रभावो के लिए कोई विशेष नियम उपलक्षित नहीं करता, परन्तु ऐसा होता है कि आय मे शुद्ध परिवर्तनो के प्रभाव के विषय मे अनुभवसिद्ध प्रमाण काफी मात्रा में पाए जाते है। अत हिक्स सगति सिद्धान्त से स्थानापन्नता-प्रभाव को तर्क द्वारा निकालता है और आय-प्रभाव को अनुभवसिद्ध प्रमाण (empirical evidence) द्वारा। इसलिए वह माँग के सिद्धान्त को मिश्रज (hybrid) कहता है—इसकी एक टाँग सिद्धान्त पर स्थिर रहती है और दूसरी निरीक्षण (observation) पर।

माँग के सिद्धान्त की व्युत्पत्ति करने के लिए हमे उपभोक्ता की आय तथा वस्तु M की कीमत दी होने पर, वस्तु X की कीमत कम होने के कीमत प्रभाव पर विचार करना है। वस्तु X की कीमत कम होने से उसकी माँग मे वृद्धि मिले-जुले आय तथा स्थानापन्नता-प्रभावों द्वारा होगी। स्थानापन्न-प्रभाव को आय-प्रभाव से पृथक करने तथा इसे सिद्ध करने के लिए प्रोफेसर हिक्स दो विधियो का प्रयोग करता है—(1) क्षतिपूरक परिवर्तन विधि और (2) लागत-अन्तर विधि।

(1) **क्षतिपूर्ति परिवर्तन विधि** (The Compensation Variation Method)—हिक्स का अनुसरण करते हुए हम वस्तु X की माँग समानान्तर अक्ष पर मापते है जिसे चित्र 12 6 मे नहीं दिखाया गया है।[3] मिश्रित वस्तु M (मुद्रा) को अनुलम्ब अक्ष पर लिया गया है। मान लीजिए कि उपभोक्ता कीमत-आय रेखा aa पर स्थिति A मे है जबकि उसकी आय तथा X की कीमत दी हुई है। आय स्थिर रहते हुए X की कीमत कम होने पर उसकी नयी कीमत-आय रेखा bb हो जाती है जिस पर उपभोक्ता स्थिति B पर चला जाता है। सगति सिद्धान्त से यह पता चलता है कि वह B को A से अधिमानित करेगा, चाहे A और B के बीच X के उपभोग मे वृद्धि, कमी या परिवर्तन न हो। क्षतिपूरक परिवर्तन विधि उदासीनता वक्र उपकल्पना पर आधारित होने के कारण, उपभोक्ता की A से B को गति कीमत प्रभाव व्यक्त करती है जो आय-प्रभाव तथा स्थानापन्नता-

चित्र 12 6
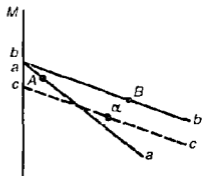
3 हिक्स का विचार है कि समानान्तर अक्ष का खींचा जाना यह दर्शाता है कि उपभोक्ता अपनी आय का एक बहुत बड़ा भाग वस्तु X पर व्यय करता है। इस त्रुटि को दूर करने के लिए समानान्तर अक्ष नहीं खींचा गया है और यह कल्पना कर ली जाती है कि यह पृष्ठ के निचले भाग मे कहीं स्थित है। इसलिए चित्र का ऊपरी भाग ही खींचा गया है जिसकी आवश्यकता है।

प्रभाव का मिश्रण है। आय-प्रभाव को पृथक करने के लिए उपभोक्ता की आय को क्षतिपूरक परिवर्तन द्वारा कम कीजिए। ऐसा bb से नीचे ओर समानान्तर cc कीमत-आय रेखा खींच कर किया जाता है, जो उसकी आय की कमी के बराबर है ओर X की कीमत मे कमी से वास्तविक आय में लाभ को समाप्त करने के लिए है। इस रेखा cc पर उपभोक्ता स्थिति α को चुनता है और A के प्रति उदासीन है। इस व्याख्या के अनुसार, प्रोफेसर **हिक्स** लिखता है कि "स्थानापन्नता प्रभाव सापेक्षिक कीमतों मे परिवर्तन के प्रभाव को वास्तविक आय स्थिर होने पर मापता है, आय प्रभाव वास्तविक आय मे परिवर्तन के प्रभाव को मापता है।"

उदासीनता वक्र सिद्धान्त के अनुसार उपभोक्ता की A से α को गति स्थानापन्नता-प्रभाव है जो धनात्मक है। सगति सिद्धान्त द्वारा यह दिखाया जा सकता है कि यह स्थानापन्नता प्रभाव किस दिशा की ओर कार्य करता है। उपभोक्ता का A तथा α के बीच उदासीन होने के कारण, cc रेखा को aa रेखा अवश्य काटनी चाहिए और उपभोक्ता को प्राप्य विभिन्न सगत चुनाव ये हैं (i) दोनो स्थितियाँ A तथा α काट (cross) के बाहर स्थित होती है, (ii) या स्थिति A या स्थिति α काट पर स्थित है ओर दूसरी काट के बाहर है, (iii) दोनो A तथा α काट पर स्थित हैं। सगति सिद्धान्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि Y की कीमत कम होने से, इसका उपभोग बढता है या A तथा α के बीच स्थिर रहता है। अत A से α को गति स्थानापन्नता-प्रभाव है।

अब आय प्रभाव को जानने के लिए उपभोक्ता की आय को उतनी ही मात्रा में बढा दीजिए, जितनी पहले कम की थी ताकि वह cc रेखा पर स्थिति α से स्थिति B पर bb रेखा पर चला जाए। यह आय-प्रभाव है जो X के उपभोग में वृद्धि करता है, जब X की कीमत गिरती है।

हम निष्कर्ष निकालते है कि जब X की कीमत गिरती है तो उपभोक्ता A से B स्थिति पर चला जाता है और X का उपभोग बढता है। A से B को गति **कीमत प्रभाव** है, जो A से α तक गति स्थानापन्नता प्रभाव तथा α से B तक गति **आय प्रभाव** का मिश्रण है। अत यह प्रमेय सिद्ध हो जाता है कि माँग वक्र नीचे को ढालू होता है।

(2) **लागत-अन्तर 'विधि'** (The Cost-Difference Method)—इसके पश्चात सेम्यूल्सन द्वारा प्रतिपादित लागत-अन्तर विधि का माँग वक्र की व्युत्पत्ति के लिए प्रो हिक्स प्रयोग करता है। इस विधि के अनुसार जब X की कीमत कम होती है तो उपभोक्ता की वास्तविक आय इस ढग से कम की जाती है कि वह पहले वाला सयोग A चित्र 12 7 मे खरीदता है। "पुरानी कीमत पर उसकी X के पूर्व (A) उपभोग की लागत और नयी कीमत पर के अन्तर के बराबर आय कम कर दी जाती है।" मान लो कि उपभोक्ता aa कीमत-आय रेखा के A बिन्दु पर है। जब X की कीमत गिरती है तो वह bb रेखा के B बिन्दु पर चला जाता है। उसकी A से B को गति **कीमत प्रभाव** है जिसे लागत-अन्तर विधि द्वारा आय प्रभाव तथा स्थानापन्नता प्रभाव मे विभक्त करना है। परिभाषा के अनुसार लागत-अन्तर bc या ac है और उपभोक्ता की आय इस ढग से कम कर दी जाती है कि रेखा cc पुराने बिन्दु A मे से गुजरती है। cc रेखा पर उपभोक्ता a' स्थिति पर होगा। A से a' को गति स्थानापन्नता प्रभाव है। सगत चुनाव के लिए उपभोक्ता के समक्ष ये सम्भावनाएँ है (i) स्थिति a' स्थिति A के बाईं ओर स्थित है, तथा (ii) स्थितियाँ A ओर a' समान (coincide) होती हैं। अत अवस्था (i) मे X का उपभोग A से a' तक बढेगा और अवस्था (ii) मे यह स्थिर रहेगा। क्षतिपूरक परिवर्तन
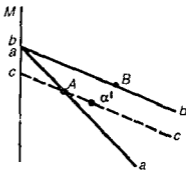
चित्र 12 7

विधि की तरह, यदि उपभोक्ता की कम की गई आय को उसे वापिस कर दिया जाए तो वह bb रेखा के बिन्दु B पर चला जाएगा। क्योंकि B बिन्दु a' के ऊपर तथा दाईं ओर स्थित है, इसलिए a' से B को आय प्रभाव धनात्मक है और उपभोक्ता आय प्रभाव के कारण X की कीमत गिरने से अधिक मात्रा का उपभोग करता है।

X घटिया वस्तु (X Inferior Good)—यदि X घटिया वस्तु हो तो इसकी आय लोच ऋणात्मक होगी, X की कीमत कम हो जाने पर उसकी माँग भी कम हो जाएगी। फिर भी, घटिया वस्तुओ के लिए ऋणात्मक आय प्रभाव से धनात्मक स्थानापन्नता प्रभाव बडा होने के कारण, उपभोक्ता वस्तु X की कीमत गिरने से उसका उपभोग बढा देगा। इसे चित्र 12 8 मे व्यक्त किया गया है।

चित्र 12 8

प्रारम्भ मे, उपभोक्ता aa रेखा के बिन्दु A पर है तथा X की कीमत के गिरने से वह bb रेखा के बिन्दु B पर चला जाता है। A से B को गति कीमत प्रभाव है। यह A से a' को गति स्थानापन्नता प्रभाव तथा a' से B को गति आय प्रभाव का मिश्रण है। स्थानापन्नता प्रभाव (A से a') के कारण तो उपभोक्ता X की अधिक मात्रा उपभोग करेगा और ऋणात्मक आय प्रभाव (a' से B) के कारण X की कम मात्रा। परन्तु ऋणात्मक आय-प्रभाव से धनात्मक स्थानापन्नता प्रभाव बडा होने के कारण उपभोक्ता X की अधिक मात्रा ही उपभोग करता है। यह चित्र 12 8 के निचले भाग मे दिखाया गया है। अनुलम्ब अक्ष कीमत और समानान्तर अक्ष X की माँगी गई मात्रा को मापता है। प्रारम्भिक कीमत P है। जब कीमत गिर कर P_1 हो जाती है तो माँगी गई मात्रा OQ से बढ कर OQ_1 होती है। कीमत-मात्रा सम्बन्ध के अनुरूप माँग वक्र A तथा B बिन्दुओं मे से गुजरता है। अत माँग वक्र D घटिया वस्तुओ के लिए भी दाईं ओर नीचे ढालू होता है। जैसाकि प्रोफेसर हिक्स ने निर्देश किया है, "यद्यपि माँग का नियम आवश्यक तौर से घटिया वस्तुओं पर लागू नहीं होता परन्तु यह व्यावहारिक रूप से लागू होने की सम्भावना रखता है।" यही हमने सिद्ध किया है।

X गिफ्फन वस्तु (X Giffen Good)— यदि X गिफ्फन वस्तु हो तो इसकी कीमत गिरने से इसका उपभोग नहीं बढेगा, अन्य बातें समान रहते हुए। इस अवस्था मे माँग वक्र की सामान्य नीचे की ओर ढलान नहीं होगी। माँग के नियम के इस अपवाद के लिए हिक्स के अनुसार तीन बातें आवश्यक है "(i) वस्तु घटिया होनी जरूरी है जिसकी ऋणात्मक आय-लोच काफी बडे आकार की हो, (ii) स्थानापन्नता प्रभाव अवश्य छोटा होना चाहिए, (iii) घटिया वस्तु पर खर्च किया गया

आय का अनुपात अवश्य बड़ा होना चाहिए।"

गिफ्फन अवस्था को चित्र 12 9 मे व्यक्त किया गया है। जहाँ प्रारम्भ मे उपभोक्ता *cc* वक्र के *A* बिन्दु पर है। *X* की कीमत गिरने से उपभोक्ता *bb* रेखा के *B* बिन्दु पर चला जाता है। क्योकि *X* गिफ्फन वस्तु है इसलिए वह इसकी कीमत कम होने से उपभोग भी कम करेगा। यह *A* के बाईं ओर बिन्दु *B* द्वारा दिखाया गया है जो कीमत प्रभाव है। इस कीमत प्रभाव का स्थानापन्नता प्रभाव *A* से *a'* को गति है जबकि ऋणात्मक आय प्रभाव *a'* से *B* को गति है। *a'B* मे अन्तर, *Aa'* मे अन्तर से अधिक होने के कारण उपभोक्ता स्थिति *B* पर स्थिति *A* की अपेक्षा पहले से कम *X* का उपभोग करता है। यह चित्र 12 9 के निचले भाग द्वारा दर्शाया गया है, जहाँ उपभोक्ता *P* कीमत पर *Y* की *OQ* मात्रा का उपयोग करता है। *Y* की कीमत गिरकर P_1 हो जाने से वह *X* की पहले से कम OQ_1 मात्रा उपभोग करता है। माँग वक्र *D* इस कीमत-मात्रा सम्बन्ध के अनुरूप *A* तथा *B* बिन्दुओ मे से गुजरता है और नीचे की ओर ढालू नहीं है। हिक्स के अनुसार ऐसा कभी-कभी होता है कि उसके द्वारा बताई गई तीनो शर्तें किसी साधारण वस्तु के ऊपर पूरी उतरती है। क्योकि उसके होने की सम्भावना नाममात्र है, इसलिए गिफ्फन वस्तुओ की सभी अवस्थाएँ भी केवल सैद्धान्तिक सम्भावनाएँ होती है।

चित्र 12 9

इसकी श्रेष्ठता (Its Superiority)

हिक्स का संशोधित माग सिद्धात गणन-सख्यात्मक और उदासीनता वक्र पद्धतियो से निम्न कारणों से श्रेष्ठ है।

1 वह गणन-सख्यात्मक उपयोगिता मान्यता को पूर्णरूपेण अस्वीकारता है क्योकि माँग सिद्धात की अधिक कठिन शाखाओ मे यह बाधा बन जाता है। विशेषकर, गणन-सख्यात्मक विश्लेषण कीमत परिवर्तनो के स्थानापन्नता और आय प्रभावो का विश्लेषण करने मे असफल होता है, जिनकी हिक्स अधिमान उपकल्पना द्वारा व्याख्या करता है।

2 हिक्स की अधिमान उपकल्पना गणन-सख्यात्मक और उदासीनता वक्र विधियो से श्रेष्ठ है, क्योकि यह एक विवेकी उपभोक्ता की अवास्तविक मान्यता का त्याग करती है। विवेकी उपभोक्ता एक कल्पित व्यक्ति है जिससे हम बहुत अधिक आशा रखते है। दूसरे ओर, हिक्स एक आदर्श उपभोक्ता की मान्यता लेता है, जो केवल वर्तमान मार्किट स्थितियो द्वारा प्रभावित होता है।
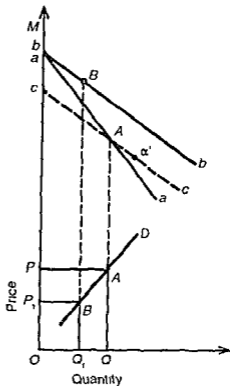
3 हिक्स का सशोधित माग सिद्धात उदासीनता वक्र तकनीक से भी श्रेष्ठ है क्योंकि यह केवल एक सरल ज्यामिति विश्लेषण न होकर माग के सिद्धात पर आर्थिक प्रयोग है। वास्तव मे, उदासीनता वक्र की ज्यामितीय विधि केवल दो वस्तुओ के चुनाव की व्याख्या करने मे सहायक है, जबकि अर्थमिति विधि दो से अधिक वस्तुओं के लिए भी लाभदायक है।

4 हिक्स अपने सशोधित माग सिद्धात को सेम्यूल्सन की प्रकटित अधिमान उपकल्पना से श्रेष्ठ समझता है क्योंकि उसका सिद्धात दुर्बल आदेश पर आधारित है जबकि सेम्यूल्सन का सिद्धात सशक्त आदेश पर। हिक्स के अनुसार, दोनों मे से दुर्बल आदेश कम प्रतिबधात्मक मान्यता है।

5 फिर, हिक्स का माग सिद्धात सैम्यूल्सन के सिद्धात से इसलिए भी श्रेष्ठ है क्योंकि यह घटिया वस्तुओं और गिफ्फन वस्तुओं की विवेचना करता है, जिनका सैम्यूल्सन विश्लेषण नहीं करता है।

6 प्रो हौथेकर[4] के अनुसार, हिक्स की अधिमान उपकल्पना और दुर्बल आदेश के आधार पर यह दर्शाया जा सकता है कि अधिकतर माग वक्र नीचे की ओर ढालू होते है, कि उदासीनता मानचित्र पाए जाते है, और कि उपभोक्ता के अधिमानो का आनुभाविक तौर से अनुमान लगाया जा सकता है, जब उसे उचित रूप से चुने गए कीमतो और आयों के विभिन्न सेट का सामना होता है।

इसकी कमिया (Its Weaknesses)

हिक्स के सशोधित माग सिद्धात की इन श्रेष्ठताओं के बावजूद यह कुछ कमियो से मुक्त नहीं है। उसके सिद्धात की गणितीय और गैर-गणितीय व्याख्या कठिन है। उदाहरणार्थ, उसकी आदेश के तर्कपूर्ण सिद्धात, द्विवाची सगति और सकर्मकता शर्तो की व्याख्याओं को समझना आसान नहीं है। प्रो मेक्लप के अनुसार, हिक्स की मान्यताए भी दुर्बल है।

जहा तक हिक्स के नूतन माग सिद्धात का वास्तविक जीवन की व्यावहारिक समस्याओं पर प्रयोग की बात है, मेक्लप का विचार है, "व्यावहारिक परीक्षणों द्वारा, हम हिक्स की खोजों के लिए मुश्किल से किसी महत्त्व का दावा कर सकेंगे। वे किसी भी तरह आर्थिक नीति की कोई सिफारिश, भावी घटनाओ की कोई भविष्यवाणिया, भूत की कोई व्याख्या को प्रभावित नहीं करेगी।"[5]

प्रश्न

1 अधिमान उपकल्पना और आदेश के तर्क पर आधारित हिक्स के माग सिद्धात की विवेचना कीजिए।

2 हिक्स के "प्रत्यक्ष सगति परीक्षण" की विवेचना करिए। इसके आधार पर उसके माग प्रमेय को व्युत्पन्न कीजिए।

3 दुर्बल और सशक्त आदेश के बीच भेद कीजिए। आप माग वक्र की व्युत्पत्ति के लिए कौन सा चुनेंगे और क्यों?

4 जे आर हिक्स उदासीनता वक्रो का प्रयोग किए बिना दुर्बल आदेश की मान्यता से माग के नियम को सीधे तौर से कैसे व्युत्पन्न करता है?

4 H S Houthakker "Revealed Preference and the Utility Function " *Economica*, May 1950
5 F Machlup "Professor Hicks' *Revision of Demand Theory*" *A E R*, March 1957

अध्याय 13

मांग की लोच
(THE ELASTICITY OF DEMAND)

1. भूमिका
(INTRODUCTION)

इस अध्याय मे माग की लोच की धारणा का सविस्तार अध्ययन किया जा रहा है। सामान्यतौर से, माग की लोच का सबध माग की कीमत लोच से समझा जाता है यद्यपि माग की लोच की धारणा माग की आय, क्रास और स्थानापन्न लोचों से भी सबधित होती है। हम प्रत्येक प्रकार की माग-लोच की विवेचना आगे करते है।

2 माग की कीमत लोच
(PRICE ELASTICITY OF DEMAND)

कीमत मे परिवर्तन से माग की प्रतिक्रियाशीलता की कोटि को माग की लोच कहते है।[1] डा मार्शल, जिन्होने माग की लोच की धारणा का निर्माण किया, के शब्दो मे **"मार्किट मे माँग की लोच (या क्रियाशीलता) इस बात के अनुसार अधिक या कम होती है कि कीमत मे निश्चित कमी होने पर माँग की मात्रा मे अधिक या कम वृद्धि हो तथा कीमत मे निश्चित वृद्धि पर अधिक या कम हो।"[2]** आधुनिक अर्थशास्त्री माँग की लोच को गणितीय ढग से परिमापित करते है जैसे प्रो लिप्सी के शब्दो मे, **"माँग की लोच की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है, कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से माँग-मात्रा मे प्रतिशत परिवर्तन का अनुपात।"[3]** श्रीमती रॉबिन्सन ने अधिक स्पष्टता से इन शब्दो मे इसे परिभाषित किया है "किसी कीमत पर माँग की लोच, कीमत मे थोडे परिवर्तन के प्रत्युत्तर मे क्रय की गई मात्रा के आनुपातिक परिवर्तन को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है।"[4] इस परिभाषा को यो व्यक्त किया जा सकता है

$$E_p = \frac{\text{माँग- मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत मे प्रतिशत परिवर्तन}}$$

1 The elasticity of demand is the degree of responsiveness of demand to a change in price

2 "The elasticity (or responsiveness) of demand in a market is great or small according as the amount demanded increases much or little for a given fall in price and diminishes much or little for a given rise in price" —*Marshall*

3 "Elasticity of demand may be defined as the ratio of the percentage change in the quantity demanded to percentage change in price"—*R G Lipsey*

4 "The elasticity of demand at any price is the proportional change of amount purchased in response to a small change in price, divided by the proportional change of price" —*Joan Robinson*

यदि परिवर्तन के लिए Δ (डेल्टा), q माग-मात्रा के लिए और p कीमत के लिए प्रयोग किए जाए, तो फार्मूला है

$$E_p = \frac{\frac{\Delta q}{q}}{\frac{\Delta p}{p}} = \frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{-\Delta p} = -\frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}$$

माग की कीमत लोच का गुणाक (E_p) सदैव ऋणात्मक होता है क्योंकि जब कीमत मे परिवर्तन होता है तो माग विपरीत दिशा मे गति करती है। पर, सुविधा के लिए ऋणात्मक चिन्ह न देना प्रथा बन गई है।

माग की लोच इकाई, इकाई से अधिक, इकाई से कम, शून्य या अनन्त हो सकती है। नीचे दिए गए चित्रों की सहायता से इन पाँच स्थितियों की व्याख्या की जा रही है।

(1) इकाई–लोच (Unity Elasticity)—माँग की लोच उस समय इकाई के बराबर होती है, जब माँग मे परिवर्तन कीमत मे परिवर्तन के ठीक अनुपात मे हो। उदाहरण के लिए, जब कीमत में
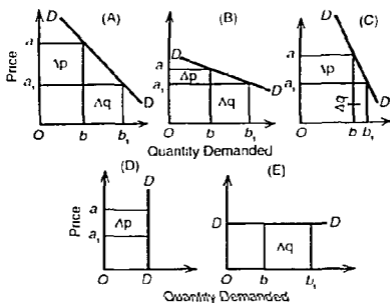
चित्र 13 1

20% परिवर्तन होने पर माँग मे 20% परिवर्तन होता है तो E_p = 20%/20% = 1 ऊपर के चित्र मे Δp कीमत मे परिवर्तन को, Δq माँग मे परिवर्तन को और DD माँग वक्र को प्रकट करती है। चित्र 13 1 (A) माँग वक्र पर कीमत की लोच एक है, क्योंकि Δq/Δp =1

(2) इकाई से अधिक लोच (Elasticity greater than Unity)—जब माँगी गई मात्रा मे परिवर्तन कीमत मे परिवर्तन के अनुपात मे अधिक हो तो माँग की कीमत लोच इकाई से अधिक होती है। यदि कीमत मे 20% परिवर्तन होने पर माँगी गई मात्रा मे 40% परिवर्तन हो, तो E_p = 40%/20% = 2 इसे चित्र के पेनल (B) मे व्यक्त किया गया है जहाँ माँग तथा कीमत मे परिवर्तन का अनुपात = Δq/Δp > 1 इसे सापेक्षतया लोचदार माँग भी कहते है।

(3) इकाई से कम लोच (Elasticity Less than Unity)—जब माँगी गई मात्रा मे परिवर्तन कीमत मे परिवर्तन के अनुपात से कम हो तो माँग की कीमत लोच इकाई से कम होती है। जब कीमत मे 20% परिवर्तन होने पर माँगी गई मात्रा मे 10% परिवर्तन हो, तो E_p=10%/20%=1/2=<1 इसे पेनल (C) मे व्यक्त किया गया है जहाँ माँग तथा कीमत मे परिवर्तन का अनुपात $=\Delta q/\Delta p<1$ इसे सापेक्षतया बेलोच माँग भी कहते है।

(4) शून्य लोच (Zero Elasticity)—माँग की लोच शून्य तब होती है जब कीमत मे कितना भी परिवर्तन हो पर माँगी गई मात्रा मे बिल्कुल कोई परिवर्तन नहीं होता। इस स्थिति मे माँग की कीमत-लोच बिल्कुल बेलोच होती है। कीमत मे 20% परिवर्तन होने पर माँगी गई मात्रा मे कोई परिवर्तन न हो तो $E_p = 0/20\% = 0$ इसे पेनल (D) मे दिखाया गया है जहाँ माँग OD यथास्थिर रहती है जबकि कीमत Δp परिवर्तन होता है, अर्थात् $0/\Delta p = 0$ इसे पूर्णतया बेलोच माँग कहते है।

(5) अनन्त लोच (Infinite Elasticity)—माँग की कीमत-लोच अनन्त तब होती है जब कीमत मे बहुत ही कम (नाममात्र) परिवर्तन होने पर माँगी गई मात्रा मे अनन्त परिवर्तन हो जाए। जब देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कीमत मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ पर माँग मे अनन्त परिवर्तन हो गया है, तो $E_p = \infty/0 = \infty$ जैसे पेनल (E) मे कीमत OD पर माँगी गई मात्रा Ob से Ob_n तक बढती चली जाती है। इसे पूर्णतया लोचदार माँग कहते है।

2. माग की कीमत लोच मापने की विधिया
(Methods of Measuring Price Elasticity of Demand)

माग की लोच को मापने की चार विधिया है। वे है प्रतिशत विधि, बिन्दु विधि, चाप विधि और व्यय विधि। इनकी व्याख्या निम्नलिखित है।

(1) प्रतिशत विधि (The Percentage Method)—माग की कीमत लोच उसके गुणाक (E_p) द्वारा मापी जाती है। यह गुणाक, E_p, वस्तु की कीमत मे परिवर्तन मे मागी गई मात्रा मे प्रतिशत परिवर्तन को मापता है। इस प्रकार,

$$E_p = \frac{\text{मात्रा में \% परिवर्तन}}{\text{कीमत में \% परिवर्तन}} = \frac{\Delta q/q}{\Delta p/q} = \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}$$

जहा q = मागी गई मात्रा, p = कीमत, और Δ = परिवर्तन है। यदि E_p > 1 तो माग लोचदार है। यदि E_p < 1 तो माग कम लोचदार है, और यदि E_p = 1 तो माग की लोच इकाई है।

इस फार्मूले की सहायता से एक माग अनुसूचि के आधार पर हम माग की कीमत लोचो का आकलन कर सकते हैं।

तालिका 13.1 · माग अनुसूची

संयोग	कीमत ₹ प्रति कि ग्रा	मात्रा कि ग्रा
A	6	0
B	5 →	10
C	4	20
D	3 →	30
E	2	40
F	1 →	50

पहले संयोग B और D को लीजिए।

(i) मान लीजिए कि वस्तु X की कीमत 5 रु प्रति कि ग्रा से कम होकर 3 रु प्रति कि ग्रा हो जाती है और इसकी मागी गई मात्रा 10 कि ग्रा से बढकर 30 कि ग्रा हो जाती है। तब

$$E_p = \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q} = \frac{(30-10)}{(3-5)} \times \frac{5}{10} = \frac{20}{-2} \times \frac{5}{10} = 5 \text{ या} > 1$$

यह लोचदार माग अथवा एक से अधिक माग की लोच दर्शाता है।

नोट : समीकरण के हल को इस प्रकार समझा जा सकता है

$\Delta q = q_2 - q_1$ जहा q_2 नई मात्रा (30 कि ग्रा) और q_1 मूल मात्रा (10 कि ग्रा)।

$\Delta p = p_2 - p_1$ जहा p_2 नई कीमत (3 रु) और p_1 मूल कीमत (5 रु)।

p मूल कीमत p_1 से सबधित है और q मूल मात्रा q_1 से T नीचे उदाहरण (ii) में ऊपर से विपरीत है, जहाँ 3 रु मूल कीमत और 30 कि ग्रा मूल मात्रा बन जाते है।

(ii) अब हम विपरीत दिशा मे गति करके माग की लोच मापते है। मान लीजिए X की कीमत बढकर 3 रु से 5 रु प्रति कि ग्रा और मागी गई मात्रा घटकर 30 कि ग्रा से 10 कि ग्रा हो जाती है। तब

$$E_p = \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q} = \frac{(10-30)}{(5-3)} \times \frac{3}{30} = \frac{-20}{2} \times \frac{3}{30} = -1$$

यह इकाई के बराबर माग की लोच दर्शाता है।

अब सयोग D और F को लीजिए।

(iii) मान लीजिए कि वस्तु X की कीमत 3 रु प्रति कि ग्रा से कम हो कर 1 रु. प्रति कि ग्रा और उसकी मांगी गई मात्रा 30 कि. ग्रा से बढ कर 50 कि ग्रा हो जाती है। तब

$$E_p = \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q} = \frac{(50-30)}{(1-3)} \times \frac{3}{30} = \frac{2}{-2} \times \frac{3}{30} = -1$$

यह फिर इकाई के बराबर माग की लोच है।

(iv) अब विपरीत दिशा लीजिए जब कीमत 1 रु से बढ़कर 3 रु प्रति कि ग्रा और मागी गई मात्रा 50 कि ग्रा से कम होकर 30 कि ग्रा हो जाती है। तब

$$E_p = \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q} = \frac{(30-50)}{(3-1)} \times \frac{1}{50} = \frac{-20}{2} \times \frac{1}{50} = \frac{1}{5} < 1$$

यह बेलोच माग अथवा इकाई से कम माग-लोच है।

ऊपर के उदाहरणो (i) और (ii) अथवा (iii) और (iv) में कीमते और मात्राएं वही होने पर भी E_p के मूल्य एक दूसरे से भिन्न आते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि (क) हम किस दिशा में गति करते हैं। (ख) लोचो में ये अन्तर प्रत्येक उदाहरण में प्रतिशत परिवर्तनो का आकलन (Compute) करते समय एक भिन्न आधार के प्रयोग के कारण है।

(2) **बिन्दु विधि** (The Point Method)—माँग वक्र के किसी बिन्दु पर माँग की लोच को मापने के लिए मार्शल ने ज्यामितीय विधि निकाली। मान लीजिए कि RS सरल रेखीय माँग वक्र है। यदि कीमत PB (= OA) से कम होकर MD (= OC) हो जाए तो माँगी गई मात्रा OB से OD हो जाती है। इस सूत्र के अनुसार माँग वक्र RS के बिन्दु P पर माँग की लोच

$$E_p = \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}$$

जहां Δq = माग मात्रा मे परिवर्तन, Δp कीमत मे परिवर्तन, p = मूल कीमत और q = मूल माग-मात्रा।

चित्र 13.2 से

$$\Delta q = BD = QM$$
$$\Delta p = PQ$$
$$p = PB$$
$$q = OB$$

इन मूल्यों को लोच फार्मूला मे स्थानापन्न करने से

$$E_p = \frac{QM}{PQ} \times \frac{PB}{OB}$$

क्योंकि ΔPBS ओर ΔPQM समरूप है इसलिए उनकी भुजाओ का अनुपात भी बराबर है अर्थात्

$\frac{QM}{PQ} = \frac{BS}{PB}$ इस प्रकार ऊपर के समीकरण का यह रूप हो जाता है

चित्र 13.2

$$\frac{BS}{PB} \times \frac{PB}{OB} = \frac{BS}{OB}$$

और क्योंकि ΔPBS ओर ΔROS समरूप है, इसलिए बिन्दु P पर

$$E_p = \frac{BS}{OB} = \frac{OA}{AR} = \frac{PS}{PR} = \frac{\text{नीचे का खण्ड (Lower Segment)}}{\text{ऊपर का खण्ड (Upper Segment)}}$$

बिन्दु विधि की सहायता से माँग वक्र के किसी भी बिन्दु पर लोच को बताना आसान है। मान लीजिए कि चित्र 13.3 मे DC सरल माँग वक्र 6 सेन्टीमीटर है। इस माँग वक्र पर L M N P एव Q बिन्दु लिए गए है। इन सभी बिन्दुओ पर माँग की लोच को ऊपर बताए गए ढग से जाना जा सकता है।

मान लीजिए कि N बिन्दु DC माँग वक्र के मध्य मे है अत N बिन्दु पर माँग की लोच

$$E_p = \frac{NC\ (\text{Lower Segment})}{ND\ (\text{Upper Segment})}$$

$= \frac{3}{3} = 1$, अर्थात् इकाई के बराबर।

चित्र 13.3

M बिन्दु पर माँग लोच $E_p = \frac{MC}{MD} = \frac{5}{1} = 5$ अर्थात् इकाई से अधिक।
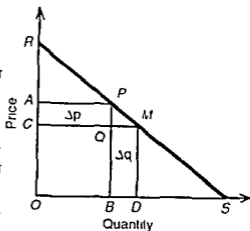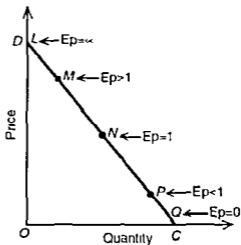
L बिन्दु पर माँग की लोच $E_p = \frac{LC}{LD} = \frac{6}{0} = \infty$ अर्थात् अनन्त (infinite)

P बिन्दु पर माँग की लोच $E_p = \frac{PC}{PD} = \frac{1}{5}$, अर्थात् इकाई से कम।

Q बिन्दु पर माँग की लोच $E_p = \frac{QC}{QD} = \frac{0}{6} = 0$ अर्थात् शून्य।

अत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि माँग वक्र के मध्य बिन्दु पर माँग की लोच इकाई के बराबर होती है। मध्य बिन्दु से ऊपर की ओर जाने पर माँग की लोच अधिक होती जाती है। जब माँग वक्र Y-अक्ष को स्पर्श करता है, तो लोच अनन्तता (∞) हो जाती है। स्वत एव (Ispo Facto) मध्य बिन्दु से नीचे को X-अक्ष की ओर माँग की लोच कम हो जाएगी। माँग वक्र X-अक्ष को स्पर्श करता है तो माँग की लोच शून्य हो जाती है।

(3) **चाप विधि** (The Arc Method)—हमने माग वक्र के किसी बिन्दु पर लोच के माप का अध्ययन किया है। परन्तु जब एक ही माग वक्र के दो बिन्दुओ के बीच लोच को मापा जाता है, तो उसे चाप लोच कहते है। प्रो बामोल (Baumol) के शब्दों मे, "चाप लोच एक माग वक्र के किसी सीमित फासले द्वारा प्रदर्शित की गई कीमत परिवर्तन की औसत प्रतिक्रियाशीलता का एक माप है।"[5]
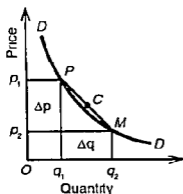
माँग वक्र पर कोई दो बिन्दु एक चाप बनाते है। चित्र 13 4 मे DD वक्र के बिन्दु P और M के बीच का क्षेत्र एक चाप है जो निश्चित क्षेत्र मे कीमतों और मात्राओ की लोच को मापता है। किसी माग वक्र के किन्हीं दो बिन्दुओ पर लोच गुणाक (elasticity coefficients) आकलन की विधि पर निर्भर करते हुए भिन्न हो सकते हैं। तालिका 13 2 मे दिए गए कीमत-मात्रा सयोग P और M पर विचार कीजिए। यदि हम P से M की ओर गति करते है, तो माँग की लोच है,

चित्र 13.4

तालिका 13 2 : माग अनुसूची

बिन्दु	कीमत (रु)	मात्रा (कि ग्रा)
P	8	10
M	6	12

$$E_p = \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q} = \frac{(12-10)}{(6-8)} \times \frac{8}{10} = \frac{2}{-2} \times \frac{8}{10} = -\frac{4}{5}$$

यदि हम विपरीत दिशा मे M से P की ओर गति करते है तो

$$E_p = \frac{(10-12)}{(8-6)} \times \frac{6}{12} = \frac{-2}{2} \times \frac{6}{12} = -\frac{1}{2}$$

5 "Arc elasticity is a measure of the average responsiveness to price change exhibited by a demand curve over some finite stretch of the curve."—*W J Baumol*

इस प्रकार, एक माग वक्र के दो भिन्न बिन्दुओं पर लोच मापने की बिन्दु विधि भिन्न लोच गुणांक देती है, क्योंकि हम प्रत्येक के लिए प्रतिशत परिवर्तन का आकलन करते समय भिन्न आधार का प्रयोग करते हैं।

इस त्रुटि को दूर करने के लिए चाप (*PM* चित्र 13.4 में) के लिए लोच की गणना दोनों कीमतों की औसत $[(p_1+p_2)\,1/2]$ और दोनों मात्राओं $[(q_1+q_2)\,1/2]$ की औसत को लिया जाता है। माग वक्र पर चाप के मध्य बिन्दु (चित्र 13.4 में *C* पर माग की कीमत लोच के लिए फार्मूला है।

$$E_p=\frac{\dfrac{\Delta q}{(q_1+q_2)1/2}}{\dfrac{\Delta p}{(p_1+p_2)1/2}}=\frac{\Delta q}{(q_1+q_2)1/2}\times\frac{(p_1 p_2)1/2}{\Delta p}=\frac{\Delta q}{\Delta p}\times\frac{p_1+p_2}{q_1+q_2}$$

इस फार्मूला के आधार पर, हम मांग की चाप लोच को माप सकते हैं जब बिन्दु *P* से *M* या *M* से *P* को गति होती है।

P से *M* को गति–बिन्दु *P* पर $p_1=8, q_1=10$ और *M* पर $p_2=6, q_2=12$ इन मूल्यों को फार्मूला में लगाने से,

$$E_p=\frac{\Delta q}{\Delta p}\times\frac{p_1+p_2}{q_1+q_2}=\frac{(12-10)}{(6-8)}\times\frac{(8+6)}{(10+12)}=\frac{2}{-2}\times\frac{14}{22}=-\frac{7}{11}$$

M से *P* को गति–बिन्दु *M* पर $p_1=6\ q_1=12$ और *P* पर $p_2=8, q_2=10$ अब

$$E_p=\frac{(10-12)}{(8-6)}\times\frac{(6+8)}{(12+10)}=\frac{-2}{2}\times\frac{14}{22}=-\frac{7}{11}$$

इस प्रकार, चाहे हम *M* से *P* या *P* से *M* की ओर *DD* माग वक्र की चाप *PM* पर गति करें, मांग की चाप लोच का फार्मूला समान संख्यात्मक मूल्य प्रदान करता है। बिन्दु *P* और *M* एक-दूसरे के जितना निकट होंगे, इस सूत्र के आधार पर लोच की माप उतनी ही सही होगी। यदि दो बिन्दु जो माग वक्र पर चाप बनाते हैं इतने पास हों की वे लगभग एक-दूसरे मे मिल जाए तो चाप लोच का संख्यात्मक मूल्य बराबर होता है बिन्दु लोच के संख्यात्मक मूल्य के।

(4) कुल व्यय विधि (The Total Outlay Method)—मार्शल ने लोच की माप के लिए कुल व्यय या कुल आगम (revenue) विधि का निर्माण किया। कीमत में परिवर्तन से पहले और बाद में एक व्यक्ति के कुल खर्च की तुलना करने से यह जाना जा सकता है कि एक वस्तु के लिए उसकी मॉंग अधिक लोचदार, इकाई या कम लोचदार है। वस्तु की खरीदी गई मात्रा को कीमत से गुणा करने पर कुल व्यय आ जाता है कुल व्यय = कीमत × माग-मात्रा। इसे मांग अनुसूची द्वारा तालिका 13.3 में समझाया गया है।

तालिका 13.3 · कुल व्यय विधि

कीमत ₹ प्रति कि ग्रा (1)	मात्रा कि ग्रा (2)	कुल व्यय रु (1 × 2) = (3)	E_p (4)
9	20	180	> 1
8	30	240	
7	40	280	
6	50	300	= 1
5	60	300	
4	75	300	

3	80	240	< 1
2	90	180	
1	100	100	

(1) लोचदार माग (Elastic Demand)—एक वस्तु की माग लोचदार होती है जब उसकी कीमत गिरने से कुल व्यय बढ़े और कीमत कम होने से कुल व्यय कम हो जाए। तालिका 11 दर्शाती है कि जब कीमत गिर कर 9 रु से 8 रु होती है तो कुल व्यय 180 रु से बढ़कर 240 रु हो जाता है, और जब कीमत 7 रु से बढ़कर 8 रु हो जाती है तो कुल व्यय 280 रु से कम हो कर 240 रु हो जाता है। इस स्थिति में माग लोचदार ($E_p > 1$) है।

(2) इकाई के बराबर माग-लोच (Unitary Elastic Demand)—जब वस्तु की कीमत में कमी या बढ़ोतरी होने पर कुल व्यय में परिवर्तन न हो, तो माग की लोच इकाई होती है। तालिका में जब कीमत के 6 रु से 5 रु पर गिरने या 4 रु से 5 रु बढ़ने से कुल व्यय 300 रु पर अपरिवर्तित रहता है, तो $E_p = 1$

(3) कम लोचदार माग (Less Elastice Demand)—जब कीमत में कमी से कुल व्यय कम हो और कीमत बढ़ने से कुल व्यय बढ़े तो माग कम लोचदार होती है। तालिका में जब कीमत 3 रु से गिर कर 2 रु होती है तो कुल व्यय 240 रु से कम होकर 180 रु हो जाता है, और जब कीमत 1 रु से बढ़ कर 2 रु होती है तो कुल व्यय 100 रु से 180 रु हो जाता है। इस स्थिति में बेलोच अथवा कम लोचदार मांग ($E_p < 1$) होती है।

तालिका 13 4 इन सबको का सार दर्शाती है

तालिका 13 4 कुल व्यय विधि

कीमत	कुल व्यय	E_p
गिरती	बढ़ता	> 1
बढ़ती	गिरता	
गिरती	अपरिवर्तित	= 1
बढ़ती	अपरिवर्तित	
गिरती	गिरता	< 1
बढ़ती	बढ़ता	

चित्र 13.5 मांग की लोच और कुल व्यय के बीच संबंध को दर्शाता है। आयात कुल व्यय को व्यक्त करते हैं : कीमत X माग-मात्रा। चित्र दर्शाता है कि माग वक्र के मध्य बिन्दु पर इकाई लोच के रेंज में कुल व्यय अधिकतम है। माग के लोचशील रेंज में कीमत गिरने से कुल व्यय बढ़ता है 9 रु, 8 रु, और 7 रु होने पर जब मात्राएं 20 कि ग्रा, 30 कि ग्रा और 40 कि ग्रा होती हैं। कम लोचदार रेंज में जब कीमत गिरती है तो कुल व्यय भी कम होता है 3 रु, 2 रु और 1 रु होने पर जब मांग-मात्राएं 80 कि ग्रा, 90 कि ग्रा और 100 कि ग्रा होती हैं। इस प्रकार, DD_1 माग वक्र के AB रेंज में माग की लोच इकाई है, बिन्दु A से ऊपर की ओर AD रेंज में लोचदार और बिन्दु B से नीचे की ओर BD_1 रेंज में कम लोचदार है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि मांग की कीमत लोच का संबंध एक विशेष माग वक्र के साथ-साथ गति से होता है।

3 लोच और मांग वक्र की ढलान (Elasticity and Slope of the Demand Curve)

मांग वक्र की ढलान और उसकी कीमत लोच के बीच भेद करना आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। आमतौर पर यह समझा जाता है कि एक मांग वक्र की ढलान को केवल देख कर ही उसकी कीमत

लोच जानी जा सकती है, अर्थात् एक चपटे माग वक्र की कीमत लोच अधिक होती है और एक तिरछे माग वक्र की कम कीमत लोच होती है। परन्तु यह गलत धारणा है क्योकि एक माग वक्र की ढलान और उसकी कीमत लोच मे अन्तर होता है। इन दोनो मे अन्तर को समझने के लिए हम माग की कीमत लोच के फार्मूला का विश्लेषण करते है,

चित्र 13 5

$$E_p = \frac{\Delta q}{\Delta p} \cdot \frac{p}{q}$$

जहा इसका पहला भाग, $\Delta q / \Delta p$, एक माग वक्र की ढलान का व्युत्क्रम (reciprocal) है, और दूसरा भाग, p/q, कीमत का मात्रा के साथ अनुपात (ratio) है।

एक माग वक्र की ढलान, चाहे वह तिरछी या चपटी हो, कीमत और माग मे निरपेक्ष (absolute) परिवर्तनो पर आधारित है, अर्थात्

$$\text{माग वक्र की ढलान} = \frac{\Delta p}{\Delta q} = \frac{1}{\Delta q/\Delta p}$$

दूसरी ओर, माग की कीमत लोच का सबध कीमत और मात्रा मे सापेक्ष (relative) परिवर्तनो से है, अर्थात्

$$E_p = \frac{\Delta q/q}{\Delta p/p}$$

इसलिए माग वक्र और उसकी लोच भिन्न है, क्योकि

$$\frac{1}{\Delta q/\Delta p} \neq \frac{\Delta q/q}{\Delta p/p}$$

फिर जैसा कि चित्र 13 3 से स्पष्ट होता है एक रेखीय माग वक्र जैसे कि *DC* की ढलान स्थिर है जबकि इसी वक्र पर कीमत की माग लोच विभिन्न बिन्दुओ पर ∞ और *O* के बीच परिवर्तित होती है। अत स्पष्ट होता है कि माग वक्र की ढलान और उसकी कीमत लोच एक ही तत्व नहीं होते। इस बात को दो विभिन्न या समान ढलानो की तुलना करके समझा जा सकता है।

(क) एक बिन्दु से निकले दो सरल रेखा माग वक्र (Two straight line demand curves originating from the same point)—चित्र 13 6 को लीजिए जहा *NM* और *NS* दो सरल रेखा

चित्र 13.6
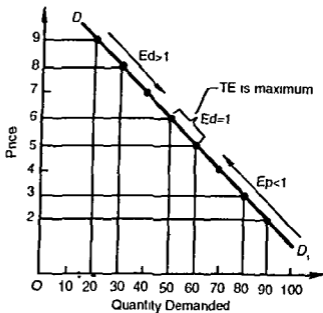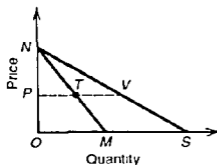
माग वक्र है। देखने से मालूम होता है कि दोनो मे से NM वक्र की अपेक्षा NS वक्र चपटा होने के कारण इसकी माग की लोच अधिक है। परन्तु यह वास्तविक नहीं है। यदि इन माग वक्रो मे मे गुजरती हुई एक PV रेखा खींचे जो अनुलब अक्ष के बिन्दु P को छूता है और NM को T बिन्दु पर काटती है, तो बिन्दु लोच फार्मूला के अनुसार T बिन्दु पर लोच है $\frac{MT}{TN} = \frac{OP}{PN}$ इसी प्रकार, NS वक्र के V बिन्दु पर लोच है $\frac{SV}{VN} = \frac{OP}{PN}$ इसलिए $\frac{MT}{TN} = \frac{SV}{VN} = \frac{OP}{PN} = 1$ इस प्रकार, T और V दोनो बिन्दुओ पर दोनो माग वक्रो की लोच बराबर है। निष्कर्ष यह है कि यदि दो रेखीय माग वक्र अनुलब अक्ष के एक बिन्दु, जैसे कि N, से निकलते हो तो प्रत्येक अकेली कीमत पर उनकी कीमत लोच बिल्कुल बराबर होगी।

(ख) विभिन्न बिन्दुओ से निकले दो सरल रेखा माग वक्र जो न तो समानातर और न ही एक दूसरे को काटते है (Two straight line demand curves originating from different points which are neither parallel nor intersecting)—चित्र 13.7 दो माग वक्रो NM और NS को दर्शाती है। इनमे से, NS वक्र चपटा है और यह अधिक कीमत लोच नजर आता है। परन्तु यह सही नहीं है। इसे सिद्ध करने के लिए अनुलब अक्ष के बिन्दु P से एक रेखा खींचे जो इन वक्रो के क्रमश A और B बिन्दुओ मे से गुजरती है। इस प्रकार, NM वक्र के बिन्दु A पर कीमत लोच है $\frac{MA}{AN} = \frac{OP}{PN}$ और RS वक्र के बिन्दु B पर है, $\frac{SB}{BR} = \frac{OP}{PR}$ क्योंकि $\frac{OP}{PN} > \frac{OP}{PR}$, इसलिए $\frac{MA}{AN} > \frac{SB}{BR}$ इसका अभिप्राय है कि माग वक्र RS के बिन्दु B पर कीमत लोच इकाई से कम है और NM वक्र के बिन्दु A पर इकाई से अधिक है।

(ग) दो समानातर सरल रेखा माग वक्र (Two parallel straight line demand curves)—दो

चित्र 13.7

चित्र 13.8

समानातर सरल रेखा माग वक्रो की ढलानें समान दिखती है और इसलिए उनकी कीमत लोच समान होती है। यह विचार भी गलत है। सिद्ध करने के लिए, दो समानातर सरल रेखा माग वक्र NM और RS लीजिए और एक PT रेखा खींचे जो इन सरल रेखाओ के क्रमश L और T बिन्दुओ से गुजरती है, जैसा कि चित्र 13 8 मे दर्शाया गया है। NM वक्र के बिन्दु L पर कीमत लोच है, $\frac{ML}{LN} = \frac{OP}{PN}$ इसी प्रकार, RS वक्र के बिन्दु T पर कीमत लोच है, $\frac{ST}{TR} = \frac{OP}{PR}$ क्योकि $\frac{OP}{PN} > \frac{OP}{PR}$, इसलिए $\frac{ML}{LN} > \frac{ST}{TR}$ इसका मतलब है कि NM रेखा के बिन्दु L पर RS रेखा के बिन्दु T की अपेक्षा लोच अधिक है। दूसरे शब्दों मे, जो वक्र मूल के पास है उसकी लोच अधिक है, उस वक्र की अपेक्षा जो मूल से दूर है। अत दो सरल रेखा समानातर माग वक्रो के हर एक बिन्दु पर भिन्न लोचे होती है।

(घ) एक टेढे माग वक्र पर दो बिन्दु (Two points on a curved demand curve)—अब एक टेढे माग वक्र D पर दो बिन्दु A और B लीजिए जैसा कि चित्र 13 9 मे दिखाया गया है। बिन्दु A पर एक स्पर्श रेखा RS खींचिए तथा बिन्दु B पर स्पर्श रेखा NM खींचिए। देखने से स्पष्ट होता है कि RS रेखा तिरछी है जबकि NM रेखा चपटी है। परन्तु तिरछी रेखा के बिन्दु A पर माग की लोच SA/AR चपटी रेखा के बिन्दु B पर माग की लोच MB/BN से अधिक है। अर्थात् रेखा RS के बिन्दु A पर माग की लोच इकाई से अधिक है तथा रेखा MN के बिन्दु B पर माग की लोच इकाई से कम है, क्योंकि $SA/AR > MB/BN$ ऊपर की सभी स्थितिया यह सिद्ध करती है कि माग की कीमत लोच को केवल माग वक्र की ढलान देखकर ही मालूम नहीं किया जा सकता है।

इसके अपवाद (*Its Exceptions*)—फिर भी, तीन ऐसी असाधारण स्थितिया है जब कीमत लोच को माग वक्र की ढलान से जाना जा सकता है।

(1) जब कीमत और मात्रा समान हो तो एक दूसरे को काटते हुए दो वक्रो को देखकर यह बताया जा सकता है कि कौन सा वक्र अधिक या कम लोचदार है। इसकी चित्र 13 10 मे व्याख्या की गई है जहा RS वक्र की ढलान इसे चपटा और NM वक्र की ढलान इसे तिरछा दर्शाती है। दोनो K बिन्दु पर काटते है जिससे उनकी समान कीमत OP और समान मात्रा OQ होती है। RS वक्र के K बिन्दु पर कीमत लोच है, $\frac{SK}{KR} = \frac{OP}{PR}$ इसी प्रकार, NM वक्र के K बिन्दु पर लोच, $\frac{MK}{KN} = \frac{OP}{PN}$ लेकिन $\frac{OP}{PR} > \frac{OP}{PN}$ इसलिए $\frac{SK}{KR} > \frac{MK}{KN}$ अत K बिन्दु पर तिरछे वक्र NM की अपेक्षा चपटे वक्र RS की लोच अधिक है।

(2) यदि माग वक्र अनुलब है तो इसकी कीमत लोच शून्य होती है, जैसा कि चित्र 13 1 (D) मे दर्शाया गया है।
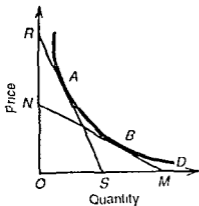
चित्र 13 9
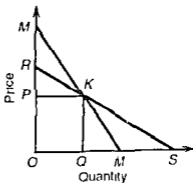
चित्र 13 10

(3) यदि माग वक्र समानातर है तो इसकी कीमत लोच अनन्त होती है, जैसे कि चित्र 13 1 (E) मे दर्शाया गया है।

3. माग की प्रतिलोच (CROSS ELASTICITY OF DEMAND)

एक वस्तु की माँग-मात्रा मे प्रतिशत परिवर्तन का एक सबधित वस्तु की कीमत मे प्रतिशत परिवर्तन का आनुपातिक सबध माँग की प्रतिलोच है।[6]

A और *B* वस्तुओ के बीच माँग की प्रतिलोच

$$Eba = \frac{B \text{ की मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{A \text{ की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\Delta qb / qb}{\Delta pa / pa} = \frac{\Delta qb}{qb} \times \frac{pa}{\Delta pa} = \frac{\Delta qb}{\Delta pa} \times \frac{pa}{qb}$$

इसे चाप लोच के सूत्र से भी मापा जा सकता है। अन्तर केवल इतना है कि यहाँ कीमत और मात्रा भिन्न वस्तुओ की ओर निर्देश करती है।

$$Eba = \frac{qb \text{ का अन्तर}}{qb \text{ का जोड}} \times \frac{pa \text{ का जोड}}{pa \text{ का अन्तर}}$$

मान लीजिए कि जब चाय की कीमत रु 8 प्रति कि ग्रा है, तो कॉफी 100 कि ग्रा खरीदी जाती है, परन्तु जब कीमत बढकर 10 रुपये हो जाती है तो कॉफी की माँग बढकर 120 कि ग्रा हो जाती है। इस सूत्र के अनुसार प्रतिलोच गुणाक $Eba = \frac{20}{220} \times \frac{18}{2} = \frac{9}{11} < 1$ अर्थात् इकाई से कम है। दो प्रकार की सबधित वस्तुए होती कि ग्रा है स्थानापन्न और पूरक।

स्थानापन्नो की प्रतिलोच (Cross Elasticity of Substitutes)

स्थानापन्नो के विषय मे प्रतिलोच धनात्मक (positive) और अधिक होती है। गुणाक *Eba* जितना अधिक होगा, वस्तुएँ उतनी अच्छी स्थानापन्न होंगी। यदि मक्खन की कीमत बढ जाए तो उससे मुरब्बे की माँग बढ जाएगी, इसी प्रकार मक्खन की कीमत कम हो जाने से मुरब्बे की माँग कम हो जाएगी।

यदि वस्तु *A* की कीमत मे परिवर्तन होने के कारण वस्तु *B* की माग में अनुपात से अधिक परिवर्तन हो तो प्रतिलोच ऊँची होती है। चित्र 13 11 (A) मे वस्तु *A* की कीमत *Y*-अक्ष पर और वस्तु *B* की मात्रा *X*-अक्ष पर ली गई है, वस्तु *B* की माँग-मात्रा मे परिवर्तन Δqb वस्तु *A* की कीमत मे परिवर्तन Δpa के अनुपात से अधिक है, इसलिए प्रतिलोच इकाई से अधिक ($Eba > 1$) है। इस प्रकार की वस्तुएँ निकट स्थानापन्न (close substitutes) होती है।

उस समय माँग की प्रतिलोच इकाई के बराबर ($Eba = 1$) होती है, जब वस्तु *A* की कीमत मे परिवर्तन के कारण वस्तु *B* की माँगी गई मात्रा मे परिवर्तन के अनुपात समान हो। इसे चित्र के पेनल (B) मे दिखाया गया है जहाँ Δqb (*B* की माँग-मात्रा मे परिवर्तन) और Δpa (*A* की कीमत मे परिवर्तन) बराबर है। अत माँग की प्रतिलोच इकाई के बराबर है।

माँग की प्रतिलोच इकाई से कम ($Eba < 1$) तब होती है जब वस्तु *B* की माँगी गई मात्रा मे परिवर्तन Δqb वस्तु *A* की कीमत मे परिवर्तन Δpa के अनुपात से कम हो जैसा कि चित्र के पेनल (C) मे दिखाया गया है। इसका अभिप्राय है कि *A* और *B* वस्तुएँ घटिया स्थानापन्न है।

6 The cross elasticity of demand is the proportionate relation between percentage change in the quantity demanded of a good to the percentage change in the price of related good

चित्र 13 11
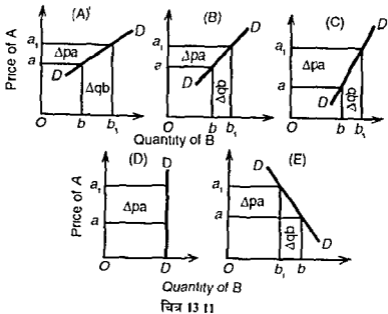
जब वस्तु A की कीमत मे परिवर्तन का वस्तु B की माँग पर बिल्कुल कोई प्रभाव नहीं पडता तो माँग की प्रतिलोच शून्य होती है। चित्र के पेनल (D) से स्पष्ट है कि वस्तु A की कीमत मे a से a_1 परिवर्तन होने पर भी B की माँगी गई मात्रा OD मे कोई परिवर्तन नहीं होता ($Eba = 0$) ऐसी वस्तुएँ एक दूसरे से असबधित होती है जैसे मक्खन और आम।

यदि दो वस्तुएँ **पूर्ण स्थानापन्न** हो, तो माँग की प्रतिलोच अनन्त (*infinite*) होगी ($Eba = \infty$) मक्खन की कीमत मे कमी होने से मुरब्बे की माँग शून्य पर आ सकती है। वस्तु B (मुरब्बे) का माँग वक्र Y-अक्ष के साथ मिल जाएगा।

यद्यपि स्थानापन्नो की माँग की प्रतिलोच शून्य से अनन्त तक परिवर्तित होती रहती है, फिर भी, यह ऋणात्मक हो सकती है। यदि A की कीमत गिर जाए और A की माँग लोचरहित हो, तो A की कम मात्रा खरीदी जाएगी क्योंकि यह पहले से सस्ती है और B की अधिक मात्रा खरीदी जाएगी। चित्र के पेनल (E) मे वस्तु A की कीमत a_1 से गिर कर a हो जाने पर B की माँग b_1 से बढकर b हो जाती है। DD वक्र का ढलान ऋणात्मक प्रतिलोच को प्रकट करता है।

पूरक वस्तुओं की प्रतिलोच (Cross Elasticity of Complementary Goods)

यदि दो वस्तुएँ पूरक हो अर्थात् उनकी इकट्ठी माँग हो, तो एक वस्तु की कीमत बढने से दूसरी की माँग कम हो जाती है। कारो की कीमत गिरने से उनकी माँग के साथ पेट्रोल की माँग भी गिर जाएगी। इसी प्रकार कारो की कीमत गिरने से पेट्रोल की माँग बढ जाएगी। क्योंकि कीमत और माँग मे विपरीत दिशा मे परिवर्तन होता है, इसलिए माँग की प्रतिलोच ऋणात्मक है।

यदि वस्तु B की माँग-मात्रा मे परिवर्तन वस्तु A की कीमत मे परिवर्तन के अनुपात के ठीक समान हो, तो प्रतिलोच इकाई के बराबर होती है जैसा कि चित्र के पेनल (A) मे दिखाया गया है, $\Delta qb/\Delta pa = 1$

पूरक वस्तुओ के विषय मे प्रतिलोच उस समय इकाई से अधिक होती है ($Eba > 1$) जब B
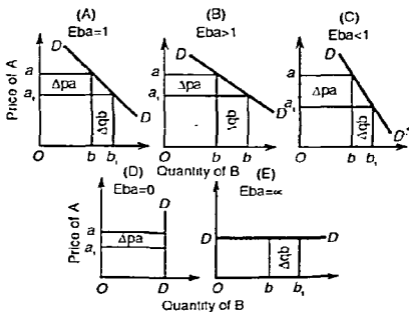
चित्र 13.12

वस्तु की माँगी गई मात्रा मे परिवर्तन (Δqb) वस्तु A की कीमत में परिवर्तन (Δpa) के अनुपात से अधिक हो जैसा कि चित्र के पेनल (B) में दिखाया गया है अर्थात् $\Delta qb/\Delta pa > 1$

जब वस्तु B की माँग-मात्रा में परिवर्तन वस्तु A की कीमत में परिवर्तन से कम हो, तो प्रतिलोच इकाई से कम ($Eba < 1$) होती है जैसा कि चित्र के पेनल (C) में दिखाया गया है, $\Delta qb/\Delta pa < 1$

जब वस्तु A की कीमत में परिवर्तन होने पर वस्तु B की खरीदी गई मात्रा में बिल्कुल कोई परिवर्तन नहीं होता तो माँग की प्रतिलोच शून्य ($Eba = 0$) होती है। चित्र के पेनल (D) में वस्तु A की कीमत a से a_1 होने पर वस्तु B की माँग उतनी ही OD रहती है।

जब वस्तु A की कीमत में नाममात्र परिवर्तन से वस्तु B की खरीदी गई मात्रा में अनन्त वृद्धि हो, तो माँग की प्रतिलोच अनन्त ($Eba = \infty$) होती है। जैसे चित्र के पेनल (E) में A की कीमत लगभग उतनी OD ही रहती और वस्तु B की माँग b से b_1 हो जाती है।

कुछ निष्कर्ष (Some Conclusions)—माँग की प्रतिलोच के इस विश्लेषण से हमें निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं

(1) दो वस्तुओं में, चाहे वे स्थानापन्न हों या पूरक, माँग की प्रतिलोच केवल एकमार्गी यातायात की तरह है। मक्खन और मुरब्बे की प्रतिलोच मुरब्बे और मक्खन की प्रतिलोच से भिन्न हो सकती है। मक्खन की कीमत में 10% कमी होने से मुरब्बे की माँग 5% कम हो सकती है, परन्तु सम्भव है मुरब्बे की कीमत 10% गिरने से मक्खन की माँग केवल 2% कम हो। इससे प्रकट होता है कि पहली स्थिति में गुणांक 0.5 और दूसरी स्थिति में 0.2 है। जिस स्थानापन्न की कीमत में परिवर्तन होता है, वह जितना बढ़िया होगा, माँग की प्रतिलोच उतनी ही अधिक होगी।

यह नियम पूरक वस्तुओ के विषय मे भी लागू होता है। यदि कार की कीमत 5% गिर जाए तो पैट्रोल की माँग 15% प्रतिशत बढ सकती है जिससे गुणाक 3 प्राप्त होता है। परन्तु सम्भव है पैट्रोल की कीमत मे 5% कमी होने से कारो की माँग केवल 1% बढे। इससे गुणाक 0 2 प्राप्त होगा।

(ii) स्थानापन्नो और पूरक दोनों की प्रतिलोचो मे परिवर्तन शून्य से अनन्त तक हो सकता है। सामान्य रूप से स्थानापन्नो की प्रतिलोच धनात्मक और पूरको की प्रतिलोच ऋणात्मक होती है।

(iii) जो वस्तुएँ निकट स्थानापन्न होती है, उनकी प्रतिलोच अधिक होती है और जिन वस्तुओं की प्रतिलोच कम होती है वे घटिया स्थानापन्न होती है। यह भेद उद्योग की परिभाषा करने मे सहायक है। यदि कुछ वस्तुओ की प्रतिलोच ऊँची है, तो इसका मतलब है कि वे वस्तुएँ निकट स्थानापन्न है। जो फर्मे उन वस्तुओ को बनाती है उन्हे एक उद्योग माना जा सकता है। अन्य वस्तुओं की तुलना मे कम प्रतिलोच वाली वस्तु को हम एकाधिकार वस्तु मान सकते है, और उस वस्तु का उत्पादन करने वाली फर्म स्वय मे एक उद्योग बन जाती है। परन्तु ऊँची या कम प्रतिलोच किसी उद्योग की सीमाओ को निर्धारित करने के लिए किन्हीं निश्चित नियमो का निर्माण नहीं करती। वे केवल पथ-प्रदर्शक रेखाएँ होती है।

4 माग की आय लोच
(INCOME ELASTICITY OF DEMAND)

माँग की आय लोच (Ey) का सिद्धान्त उपभोक्ता की आय मे परिवर्तन होने पर किसी वस्तु के लिए उसकी माँग मे परिवर्तन को व्यक्त करता है। इसकी परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है "आय मे प्रतिशत परिवर्तन से एक वस्तु की माँग-मात्रा मे प्रतिशत परिवर्तन का अनुपात माँग की आय लोच है।" इस प्रकार,

$$E_y = \frac{\text{माँग- मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{आय में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\Delta Q / Q}{\Delta Y / Y} = \frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{Y}{\Delta Y} = \frac{\Delta Q}{\Delta Y} \times \frac{Y}{Q}$$

जहाँ Δ = परिवर्तन, Q = माग-मात्रा और Y = आय।

गुणाक Ey एक वस्तु की प्रकृति पर निर्भर करते हुए धनात्मक, ऋणात्मक या शून्य हो सकता है। यदि आय के बढने से एक वस्तु की माग बढती है, तो आय लोच गुणाक धनात्मक होता है। एक वस्तु जिसकी आय लोच धनात्मक होती है, वह सामान्य वस्तु है क्योंकि उपभोक्ता की आय बढने के साथ उसकी अधिक मात्रा खरीदी जाती है। दूसरी ओर, यदि आय मे कमी से वस्तु की माग भी कम हो जाती है, तो आय लोच गुणाक ऋणात्मक होता है। ऐसी घटिया वस्तु कहलाती है क्योंकि आय बढने से इसकी कम मात्रा खरीदी जाती है। यदि आय मे परिवर्तन के बावजूद एक वस्तु की खरीदी गई मात्रा अपरिवर्तित रहती है तो माग की आय लोच शून्य ($Ey = 0$) होती है।

सामान्य वस्तुए तीन प्रकार की होती है आवश्यकताए, विलासिताए और सुविधाए। विलासिताओं के बारे मे, आय लोच का गुणाक धनात्मक परन्तु ऊचा होता है, $Ey > 1$। माग की आय लोच ऊची होती है जब आय मे वृद्धि के अनुपात से एक वस्तु की माग अधिक बढती है। अन्य सभी वस्तुओ की कीमते स्थिर मानते हुए, यदि उपभोक्ता की आय मे 5% की वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप वस्तु के क्रय 10% बढते है, तब $Ey = 10/5 = 2 (> 1)$ आय को अनुलब अक्ष पर और मागी गई मात्रा को समानातर अक्ष पर लेते हुए, आय मे वृद्धि Y_1Y_2 से माग मे वृद्धि Q_1Q_2 अधिक है, जैसा कि चित्र 13 13 पेनल (A) मे दर्शाया गया है। वक्र D_1 धनात्मक और लोचदार आय माग दिखाता है।

आवश्यकताओ के लिए, आय लोच का गुणाक धनात्मक परन्तु नीचा होता है, $E_y < 1$ माग की आय लोच कम होती है जब आय मे वृद्धि के अनुपात मे एक वस्तु की माग कम बढती है। यदि एक वस्तु पर खर्च किया गया आय का अनुपात 2% बढता है जब उपभोक्ता की आय मे 5% की वृद्धि होती है, तो $E_y = 2/5 (= < 1)$ चित्र का पेनल (B) एक धनात्मक परन्तु कम लोचदार आय माँग वक्र D_y दर्शाता है क्योकि आय मे वृद्धि Y_1Y_2 के अनुपात से माग मे वृद्धि Q_1Q_2 कम है।

सुविधाओ के लिए, आय लोच का गुणाक इकाई $(E_y = 1)$ होता है, जब आय मे वृद्धि के अनुपात मे माग मे समान वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ, आय मे 5% वृद्धि से माग मे भी 5% वृद्धि होती है, $E_y = 5/5 = 1$ चित्र के पेनल (C) मे D_y वक्र आय की लोच इकाई दर्शाता है क्योकि माग मे वृद्धि Q_1Q_2 बिल्कुल बराबर है आय मे वृद्धि Y_1Y_2 के।

घटिया वस्तुओ के लिए माग की आय लोच का गुणाक ऋणात्मक होता है। एक घटिया वस्तु के लिए उपभोक्ता उसकी खरीद कम कर देगा जब उसकी आय बढती है। यदि आय मे 5% वृद्धि से माग 2% कम हो जाती है, तो $E_y = -2/5 (< 0)$ पेनल (D) एक घटिया वस्तु का वक्र D_y दर्शाती है जो A से B की ओर ऊपर मुडता है जब आय मे Y_1Y_2 की वृद्धि से माग-मात्रा Q_1Q_2 कम होती है।

यदि आय के बढने के साथ, माग-मात्रा अपरिवर्तित रहती है, तो आय लोच का गुणाक, $E_y = 0$ यदि मान लीजिए, आय मे 5% वृद्धि से माग मे कोई परिवर्तन नहीं होता है, तो $E_y = 0/5 = 0$ पेनल (E) शून्य लोच वाला अनुलब आय माग वक्र D_y दर्शाता है।
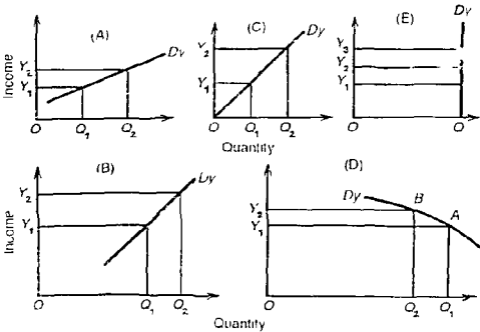
चित्र 13 13 (A, B, C, D, E)

माग की आय लोच को मापना (Measuring Income Elasticity Demand)

प्रत्येक Dy वक्र आय-मात्रा सबध दर्शाता है। ऐसे वक्र को **ऐंजल** (Engel) वक्र कहते है जो आय के विभिन्न स्तरो पर उपभोक्ता द्वारा खरीदी गई एक वस्तु की मात्राओ को दर्शाता है। चित्र 13 13 मे हमने माग की आय लोच की रेखीय ऐंजल वक्रो की सहायता से व्याख्या की है। गैर-रेखीय ऐंजल वक्रो की आय लोच को बिन्दु फार्मूला द्वारा मापा जा सकता है। सामान्य तौर से, ऐंजल वक्र चित्रो 13 14, 13 15 और 13 16 मे दर्शाए गए $E_1 E_2$ और E_3 वक्रो की तरह लगते है।

(1) चित्र 13 14 को लीजिए जहा ऐंजल वक्र E_1 को LA रेखा बिन्दु A पर स्पर्श करती है। बिन्दु A पर माग की आय लोच का गुणाक है

$$E_y = \frac{\Delta Q}{\Delta Y} \times \frac{Y}{Q} = \frac{LQ}{QA} \times \frac{QA}{OQ} = \frac{LQ}{QA} > 1$$

यह माप दर्शाता है कि वक्र E_1 अपनी अधिकतर रेज पर आय लोच है। जब ऐंजल वक्र धनात्मक ढलान वाला हो ओर $Ey > 1$, तो यह स्थिति विलासता वस्तु की होती है।

चित्र 13 14

(2) चित्र 13 15 को लीजिए जहाँ NB रेखा E_2 वक्र को B बिन्दु पर स्पर्श करती है। बिन्दु B पर आय लोच का गुणाक है

$$Ey = \frac{\Delta Q}{\Delta Y} \times \frac{Y}{Q} = \frac{NQ}{QB} \times \frac{QB}{OQ} = \frac{NQ}{OQ} < 1$$

यह दर्शाता है कि ऐंजल वक्र E_2 की आय लोच इसके अधिकतर रेज मे शून्य से अधिक लेकिन एक से कम है। जब ऐंजल वक्र धनात्मक ढलान वाला हो और $Ey < 1$, तो वस्तु आवश्यकता होती है और आय कम लोचदार।

चित्र 13 15

(3) चित्र 13 16 मे ऐंजल वक्र E_3 बिन्दु B के बाद पिछली ओर ढालू (backward sloping) है। पिछली ओर ढालू रेंज मे, एक स्पर्श रेखा GC बिन्दु C पर खींचिए। बिन्दु C पर आय लोच का गुणाक है।

$$Ey = \frac{-GQ}{GC} \times \frac{GC}{OQ} = -\frac{GQ}{OQ} < 0$$

यह माप दर्शाता है कि जिस रेंज पर ऐंजल वक्र E_3 ऋणात्मक ढलान वाला है, Ey ऋणात्मक है ओर वस्तु घटिया है। परन्तु पिछली ओर मुडने से पहले, यह ऐंजल वक्र अपने

चित्र 13.16

अधिकतर रेंज में कम आय लोच होता है और आवश्यक वस्तु के बारे में बताता है।
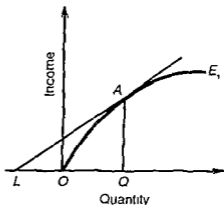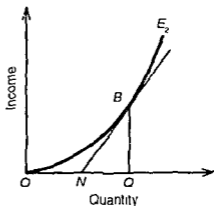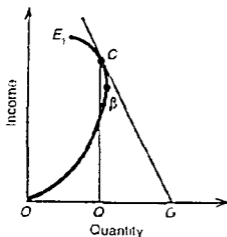
महत्त्व (Importance)—माँग की आय लोच का सिद्धान्त आवश्यक और अनावश्यक वस्तुओं में अन्तर करने में सहायक है। ऊँची आय लोच वाली वस्तुएँ विलासिताएँ हैं। ज्यों-ज्यों एक व्यक्ति अमीर होता जाता है, वह अपनी आय का अधिक भाग कार, आभूषण तथा कंडीशनर आदि वस्तुओं पर खर्च करता है। माँग की कम आय लोच वाली वस्तुएँ आवश्यक होती हैं। आय में वृद्धि होने पर सिगरेट, माचिस, साबुन, अखबार, जूतों आदि पर खर्च की गई आय का अनुपात कम हो जाता है। सामान्य रूप से, हम कह सकते हैं कि अनावश्यक वस्तुओं के विषय में माँग की आय लोच इकाई से अधिक होती है और आवश्यक वस्तुओं के विषय में इकाई से कम। परन्तु दोनों में स्पष्ट अन्तर करना कठिन है क्योंकि एक वस्तु, जो आय के एक स्तर पर आवश्यकता है, आय के दूसरे स्तर पर विलासिता बन सकती है। फिर, ज्यूँ-ज्यूँ एक देश का विकास स्तर बढ़ता जाता है, कई विलासिता की वस्तुएँ सुविधाएँ और सुविधाएँ आवश्यकताएँ बनती जाती हैं।

5. स्थानापन्नता की माँग लोच (DEMAND ELASTICITY OF SUBSTITUTION)

दो वस्तुओं X और Y के अनुपातों में आनुपातिक परिवर्तन का उनके कीमत-अनुपात के आनुपातिक परिवर्तन का अनुपात स्थानापन्नता की माँग लोच है। इसका संख्यात्मक सूत्र

$$Es = \frac{X \text{ और } Y \text{ के अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{उनकी कीमतों के अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \left(\frac{\text{Proportionate change in the ratio of } X \,\&\, Y}{\text{Proportionate change in their price ratios}} \right)$$

$$\text{बीजगणित में } Es = \frac{\Delta\left(\frac{X}{Y}\right) / \frac{X}{Y}}{\Delta\left(\frac{Px}{Py}\right) / \frac{Px}{Py}}$$

जहाँ X/Y दो वस्तुओं X और Y के अनुपात को, $\Delta\left(\frac{X}{Y}\right)$ इन X और Y के अनुपात में परिवर्तन को, Px/Py इन X और Y के कीमत अनुपात को और $\Delta\left(\frac{Px}{Py}\right)$ उनके कीमत अनुपातों के परिवर्तन को व्यक्त करते हैं।

(1) **इकाई के बराबर स्थानापन्नता-लोच** (Unity Substitution Elasticity)—स्थानापन्नता की लोच का गुणाक उस समय इकाई के बराबर होता है ($Es = 1$) जब X और Y की माँग के अनुपातों का आनुपातिक परिवर्तन X और Y के कीमत अनुपातों के आनुपातिक परिवर्तन के ठीक बराबर हो। इसे सख्यात्मक उदाहरण की सहायता से समझा जा सकता है। मान लीजिए, X और Y की मूल कीमतें रु 10 और 12 हैं जिन पर क्रमश 4 और 6 इकाइयों की माँग की जाती है। यदि X की कीमत रु 8 हो जाए और Y की कीमत उतनी ही रहे तो X की माँग बढ कर 8 इकाई और Y की 10 इकाई हो जाती है। इस प्रकार,

$$\frac{X}{Y} = \frac{4}{6} \quad \Delta\left(\frac{X}{Y}\right) = \frac{8}{10} - \frac{4}{6} = \frac{2}{15}$$

$$\frac{\Delta(X/Y)}{X/Y} = \frac{2/15}{4/6} \qquad (1)$$

और $\frac{Px}{Py} = \frac{10}{12} \quad \Delta\left(\frac{Px}{Py}\right) = \frac{8}{12} - \frac{10}{12} = -\frac{2}{12}$

$$\frac{\Delta(Px/Py)}{Px/Py} = \frac{-2/12}{10/12} \qquad (2)$$

$$Es = \frac{2/15}{4/6} \div \frac{-2/12}{10/12} = \frac{2}{15} \times \frac{6}{4} \div \frac{-2}{12} \times \frac{12}{10} = \frac{1}{5} \times \frac{-5}{1} = -1$$

सरलता के लिए ऋण (minus) के चिह्न को छोड दिया जाय, तो गुणक का मूल्य इकाई के बराबर है। चित्र 13 17 मे वक्र E दो वस्तुओ X ओर Y की स्थानापन्नता की इकाई लोच (unity elasticity) को प्रकट करता है।

(2) **इकाई से अधिक स्थानापन्नता-लोच** (Substitution Elasticity Greater than Unity)—गुणाक Es इकाई से अधिक होता है जबकि X और Y की माँग-अनुपातो मे परिवर्तन उनके कीमत अनुपातो के परिवर्तन से अनुपात मे अधिक हो। ऊपर के सख्यात्मक उदाहरण को थोडा सा बदल कर इसका भी हिसाब लगाया जा सकता है, अन्य बातें पहले की भाँति स्थिर रहते हुए। यदि X की 4 इकाई की बजाय Y की माँग बढ कर 6 इकाई हो जाए, तो पहले की भाँति $X/Y = 4/6$, परन्तु $\Delta(X/Y) = 8/6 - 4/6 = 4/6$, इस प्रकार

चित्र 13 17

$$\frac{\Delta(X/Y)}{X/Y} = \frac{4/6}{4/6} = \frac{4}{6} \times \frac{6}{4} = 1$$

ऊपर (2) से $\frac{\Delta Px/Py}{Px/Py}$ का मूल्य $\left(\frac{1}{5}\right)$ हमें ज्ञात है।

$$Es = 1 \div \frac{1}{5} = 1 \times \frac{5}{1} = 5 (> 1)$$
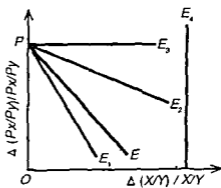
चित्र 13.17 में वक्र E_2 इकाई से अधिक स्थानापन्नता की लोच को प्रकट करता है। ऐसा तब होता है जब दो वस्तुएँ निकट स्थानापन्न हो, जैसे गगा और सिन्थोल साबुन।

(3) **इकाई से कम स्थानापन्नता-लोच** (Substitution Elasticity Less than Unity)—जो वस्तुएँ घटिया स्थानापन्न हो, उनकी स्थानापन्नता की लोच इकाई से कम होती है, जैसे खाँड और चाय। खाँड की कीमत गिर जाने पर भी हम चाय के हर प्याले मे एक दो चम्मच से अधिक खाँड नहीं डाल सकते। चित्र 13.17 मे इकाई से कम स्थानापन्नता की लोच को प्रकट करने वाला वक्र E_1 है।

(4) **शून्य स्थानापन्नता-लोच** (Zero Substitution Elasticity)—स्थानापन्नता की शून्य और अनन्त लोच की दो चरम (extreme) स्थितियाँ भी होती हैं। जब दो वस्तुओं का निश्चित अनुपातो मे प्रयोग किया जाता है तो उनका एक-दूसरी को स्थानापन्न करना सम्भव नहीं। उनके कीमत-अनुपात मे जितना भी परिवर्तन क्यों न हो जाए, उनकी माँग के अनुपात मे परिवर्तन शून्य रहता है। इसलिए उनके विषय मे स्थानापन्नता की लोच शून्य होती है। पूरक वस्तुओं की ऐसी स्थितियाँ बहुत कम होती है। इस स्थिति मे वक्र E_1 का आकार अनुलब रेखा है।

(5) **अनन्त स्थानापन्नता-लोच** (Infinite Substitution Elasticity)—दूसरी चरम स्थिति पूर्ण स्थानापन्नो की है। जब तक X की कीमत मे परिवर्तन नहीं होता, X और Y दोनो की माँग रहती है। परन्तु ज्यो ही X की कीमत गिरती है, Y की कीमत स्थिर रहने पर उपभोक्ता Y के स्थान पर केवल X वस्तु को ही खरीदेगा, अर्थात् पूर्ण स्थानापन्न कर देगा। दोनो मे स्थानापन्नता-लोच अनन्त है। समानातर वक्र E_3 स्थानापन्नता की अनन्त लोच को व्यक्त करता है।

उदासीनता वक्र विश्लेषण से स्थानापन्नता लोच की व्याख्या (Explanation of Substitution Elasticity in terms of Indifference Curve Analysis)

उदासीनता वक्र विश्लेषण की भाषा मे गुणक Es को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है

$$Es = \frac{X \text{ और } Y \text{ के अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन}}{Y \text{ के लिए } X \text{ की स्थानापन्नता की सीमान्त दर में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

दूसरे शब्दो मे स्थानापन्नता की लोच उस दर की माप करती है जिस दर पर Y की तुलना मे X की स्थानापन्नता की सीमान्त दर कम होती है जबकि उपभोक्ता X की अपेक्षाकृत अधिक और Y की कम मात्रा लेता है। इस प्रकार उदासीनता वक्रो की सामान्य ढलान उपभोक्ता के अधिमान माप मे X और Y के सापेक्ष महत्त्व को प्रकट करती है। उदासीनता वक्र जितना चपटा होगा, Y के लिए X की स्थानापन्नता की सीमान्त दर उतनी ही कम होगी। इसका अर्थ है कि Y की कम मात्रा के लिए X स्थानापन्न करता है। X की एक अधिक इकाई लेने के लिए Y की कम मात्रा का त्याग किया जाता है। उदासीनता वक्र पर दो वस्तुओं के विभिन्न सयोग इस प्रकार एक-दूसरे के बढ़िया स्थानापन्न हैं। Y के लिए X की स्थानापन्नता की लोच अधिक है, जैसे कि गगा (X) और सिन्थोल साबुन (Y) में। गगा (X) की कीमत में कमी, गगा (X) की एक और बट्टी लेने के लिए उपभोक्ता
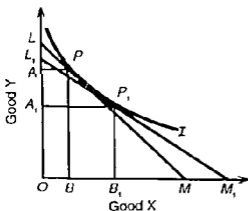
चित्र 13.18

को Y की कम मात्रा छोडने को प्रेरित करेगा। इसे स्थानापन्नता-प्रभाव की भाषा मे चित्र 13 18 द्वारा स्पष्ट किया गया हे। P से P_1 तक गति स्थानापन्नता प्रभाव को प्रकट करती है। सिन्योल (Y) की AA_1 मात्रा की बजाय स्थानापन्न करने पर उपभोक्ता को गगा (X) BB_1 मात्रा मिलती है। इसका ढलान $\Delta Y/\Delta X$ कम है, वक्र I चपटा है और दो वस्तुओ की स्थानापन्नता की लोच अधिक है।

इसके विपरीत उदासीनता वक्र की ढलान जितनी तिरछी होगी, स्थानापन्नता की सीमान्त दर उतनी ही अधिक होगी। इसका अर्थ हे कि X की एक अतिरिक्त इकाई लेने के लिए Y की अधिक मात्रा का त्याग किया जाएगा। इस स्थिति मे Y के लिए X की स्थानापन्नता की लोच कम है। चित्र 13 19 मे वस्तु X की BB_1 मात्रा लेने के लिए उपभोक्ता Y की बडी मात्रा AA_1 छोडता है। जबकि Y की कीमत गिरती है। P से P_1 तक गति स्थानापन्नता प्रभाव को प्रकट करती हे। $\Delta Y/\Delta X$ अपेक्षाकृत बडा है जिसका अर्थ हे कि I वक्र की ढलान अधिक तिरछी है।

चित्र 13 19

जब दो वस्तुए पूर्ण स्थानापन्न हो तो उदासीनता वक्र एक सरल रेखा होती है। यहाँ उदासीनता वक्र की ढलान धुर तक समान होता हे ओर दो वस्तुओं की स्थानापन्नता की सीमान्त दर स्थिर रहती है। यदि ऐसा उदासीनता वक्र Y-अक्ष के साथ 45° का कोण बनाए, तो दो वस्तुओ का समान अनुपात (अर्थात् 1 1) मे विनिमय होता है। दो वस्तुएँ X और Y एकरूप होती है ओर उनमे स्थानापन्नता की सीमान्त दर अनन्त होती है। क्योकि उदासीनता वक्र कभी सरल रेखा नहीं होती, इसलिए पूर्ण स्थानापन्नो का विषय स्थानापन्नता प्रभाव के क्षेत्र से बाहर है।
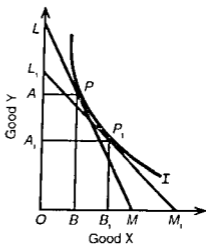
6 कीमत लोच के सिद्धान्त का महत्त्व
(IMPORTANCE OF THE CONCEPT OF PRICE ELASTICITY)

आर्थिक नीतियो के निर्माण ओर आर्थिक समस्याओ को समझने के लिए कीमत लोच के सिद्धान्त का व्यावहारिक महत्त्व बहुत अधिक है।

(1) **एकाधिकार कीमत निर्धारण मे** (In the determination of monopoly price)—अपनी वस्तु की कीमत निर्धारित करते समय एकाधिकारी इसकी माँग की लोच को ध्यान मे रखता है। यदि उसकी वस्तु की माँग लोचदार हो, तो वस्तु की कम कीमत नियत करने से उसे अधिक लाभ होगा। यदि माँग कम लोचदार हो, तो वह वस्तु की ऊँची कीमत नियत कर सकने की स्थिति मे होता है। यदि अन्य उत्पादको की अपेक्षा उसकी वस्तु की माँग अधिक लोचदार है, तो वह अपनी वस्तु की कीमत कम कर के अधिक ग्राहको को आकर्षित कर सकता है। दूसरी ओर यदि वह अपनी वस्तु की कीमत को बढा दे, तो अपेक्षाकृत कम लोचदार माँग उपभोक्ताओ को उसे छोडने को प्रेरित नहीं करेगी।

(2) **एकाधिकारात्मक विभेद मे कीमत-निर्धारण** (In the determination of price under dis-

criminating monopoly)—एकाधिकारात्मक विभेद के अन्तर्गत दो भिन्न मार्किटों में एक ही वस्तु के कीमत-निर्धारण की समस्या भी हर मार्किट में माँग की लोच पर निर्भर करती है। विभेदक एकाधिकारी उस मार्किट में, जहाँ उसकी वस्तु की माँग अधिक लोचदार होती है, कम कीमत नियत करता है और उस मार्किट में जहाँ माँग कम लोचदार होती है, ऊँची कीमत वसूल करता है।

(3) सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं की कीमतें निर्धारण में—(In the determination of price of public utility services)—माँग की लोच सार्वजनिक उपयोगिताओं द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की कीमतों के निर्धारण में भी सहायक होती है। जिन सेवाओं की माँग बेलोच होती है, उनकी ऊँची कीमत वसूल की जाती है और लोचदार माँग वाली सेवाओं की अपेक्षाकृत कम कीमत होती है। उदाहरण के लिए घरेलू प्रयोग के लिए बिजली की माँग कम लोचदार होती है, इसलिए राज्य बिजली बोर्ड ऊँची दरें नियत करते हैं। बोर्डों को पता है कि बिजली के सुविधाजनक स्थानापन्न नहीं मिलते। परन्तु फैक्टरियों और अन्य उत्पादक संस्थाओं से कम दरें वसूल की जाती हैं क्योंकि अधिकारी जानते हैं कि कोयला शक्ति, तेल या डीजल शक्ति जैसे बढ़िया स्थानापन्न मौजूद हैं।

(4) संयुक्त वस्तुओं की कीमतों के निर्धारण में (In the determination of price of joint products)—ऊन और गोश्त, गेहूँ और चारा, रुई और बिनौला जैसी संयुक्त वस्तुओं की कीमतें निर्धारित करने के लिए भी माँग की लोच के सिद्धान्त का बहुत प्रयोग होता है। ऐसी स्थितियों में हर वस्तु के उत्पादन की अलग लागत का पता नहीं होता। इसलिए उसकी माँग की लोच के आधार पर हर वस्तु की कीमत नियत की जाती है। यही कारण है कि गौण उत्पादनों (byproducts) के रूप में प्राप्त होने वाली गोश्त, चारा और बिनौले जैसी लोचदार माँग की वस्तुओं की अपेक्षा ऊन, गेहूँ और रुई जैसी कम लोचदार माँग की वस्तुओं की कीमत बहुत ऊँची होती है।

(5) मजदूरी निर्धारण में (In the determination of wages)—एक विशेष प्रकार के श्रम की मजदूरी निर्धारित करने में भी माँग की लोच का सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है। यदि एक उद्योग में श्रम की माँग लोचदार है, तो मजदूरी बढ़ाने के लिए हड़तालें तथा अन्य श्रम-संगठन व्यर्थ सिद्ध होंगे और यदि श्रम के लिए माँग बेलोच है, तो श्रम-संगठन द्वारा की गई हड़ताल की धमकी ही मालिकों को उद्योग में काम करने वाले श्रमिकों की मजदूरी बढ़ाने को मजबूर कर देगी।

(6) प्रवर्तक लोच का आधार है (It is the basis of promotional elasticity)—लोच के सिद्धान्त का ज्ञान ही उत्पादकों को अपनी वस्तुओं के विज्ञापन पर मुद्रा की बहुत बड़ी मात्रा खर्च करने की प्रेरणा देता है। क्योंकि वे जानते हैं कि विज्ञापन वस्तु की माँग को कम लोचदार बना देता है, जिससे कीमत बढ़ाने पर उसके विक्रय में कमी नहीं होगी। यह प्रवर्तक लोच के सिद्धान्त को जन्म देता है जो विज्ञापन और अन्य प्रवर्तक खर्चों में विक्रय की मात्रा के अनुपात को मापता है।

$$\text{प्रवर्तक लोच} = \frac{\text{विक्रय में परिवर्तन}}{\text{विक्रय का जोड़}} \times \frac{\text{प्रवर्तक खर्चों का जोड़}}{\text{प्रवर्तक खर्चों में परिवर्तन}}$$

(7) माँग की लोच का सरकारी नीतियों में महत्त्व (Importance of elasticity of demand in government policies)—अब हम विभिन्न क्षेत्रों में सरकार की नीतियों के निर्माण में माँग की लोच के सिद्धान्त के प्रयोग पर विचार करेंगे

(i) संरक्षण प्रदान करते समय (While granting protection)—सरकार उन उद्योगों की वस्तुओं की माँग की लोच पर विचार करती है जो आर्थिक सहायता या संरक्षण की प्रार्थना करते हैं। आर्थिक सहायता या संरक्षण उन्हीं उद्योगों को दिया जाता है जिनकी वस्तुओं की माँग लोचदार होती है। फलस्वरूप वे विदेशी प्रतियोगिता का सामना नहीं कर सकते तब तक कि

आर्थिक सहायता से उनकी कीमत न घटा दी जाए अथवा भारी शुल्क लगाकर आयात वस्तुओं की कीमत न बढ़ा दी जाए।

(ii) **सार्वजनिक उपयोगिताओं का निर्णय करते समय** (While deciding about public utilities)—सरकार का कुछ उद्योगों को सार्वजनिक उपयोगिताएँ घोषित करने का निर्णय उनकी वस्तुओं की माँग की लोच पर निर्भर करता है। सार्वजनिक हित इसी बात में है कि राज्य केवल उन्हीं उद्योगों को लेकर सार्वजनिक उपयोगिताओं के रूप में चलाए जिनकी वस्तुओं की माँग बेलोच है। इस प्रकार एकाधिकारी शोषण को हटा कर राज्य आवश्यक वस्तुएँ और सेवाएँ उचित दरों पर लोगों को प्रदान करता है।

चित्र 13 20

(iii) यह प्रचुरता में दरिद्रता के विरोधाभास की व्याख्या करता है (It explains the paradox of poverty in the midst of plenty)—निजी उपक्रम अर्थव्यवस्थाओं का एक बड़ा परस्पर विरोधात्मक विरोधाभास प्रचुरता में दरिद्रता है। *यदि वस्तु की माँग बेलोच हो* तो एक अच्छी फसल उगाने वालों के लिए समृद्धि लाने की बजाय तबाही का कारण बन सकती है। उदाहरणार्थ, गेहूँ की माँग बेलोच होती है, इसलिए अच्छी फसल उल्टे गेहूँ की कीमत को बहुत नीचे ले आएगी। ऐसी स्थिति में किसानों को नुकसान रहेगा क्योंकि अच्छी फसल से प्राप्त उनका कुल आगम कम फसल के आगम से कम होगा। इसे चित्र 13 20 में दिखाया गया है। D माँग वक्र है ओर S एक साधारण गेहूँ की फसल का पूर्ति वक्र है। E बिन्दु पर उनका सतुलन OP कीमत निर्धारित करता है जिस पर OQ मात्रा खरीदी और बेची जाती है। प्रारम्भ में कुल आगम $OPEQ$ था और अच्छी फसल के बाद जब गेहूँ की मात्रा OQ_1 होती है तो आगम $OP_1E_1Q_1$ हो जाता है। P_1PER तथा QRE_1Q_1 आयतों का अन्तर कुल आगम में कमी को व्यक्त करता है जो गेहूँ की पूर्ति बढ़ने से हुई है।

चित्र 13 21

(iv) **कृषि वस्तुओं की न्यूनतम कीमतें निश्चित करने में** (In fixing minimum price of farm products)—खेतों की उपज के लिए न्यूनतम कीमतों की गारंटी की नीति, कीमत-समर्थक प्रोग्राम और बफ्फर स्टॉक बनाने की सरकार की नीतियों का उद्देश्य कृषि की कीमतों को स्थिर करना,
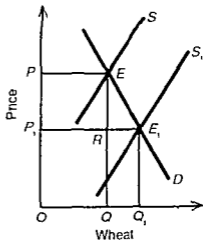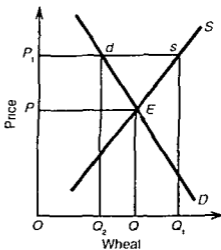
अच्छी फसल के प्रभाव को शून्य बनाना और किसानों को अधिक उत्पादन के लिए प्रोत्साहित करना है। प्रत्याभूत (guaranteed) न्यूनतम कीमतें किस प्रकार किसानों की बिना कुल आय में नुकसान के अपनी खेतों की उपज बेचने में सहायता देती हैं, इसे चित्र 13 21 में दिखाया गया है। मान लीजिए कि पिछले वर्ष गेहूँ की सतुलन कीमत *OP* थी जिस पर *OQ* मात्रा खरीदी और बेची गई थी। गेहूँ की बम्पर फसल सभावना मे सरकार वर्तमान वर्ष के लिए न्यूनतम कीमत OP_1 निर्धारित करती है। परन्तु इस कीमत पर पूर्ति की मात्रा OQ_1 और माँगी गई मात्रा OQ_2 होगी। अपनी कीमत नीति को प्रभावशाली बनाने के लिए सरकार को मार्किट से OP_1 कीमत पर गेहूँ की Q_2Q_1 (= *ds*) मात्रा खरीदनी पडेगी और साथ ही बफ्फर स्टॉक बनाना पडेगा।

(v) **वित्त मत्री के लिए महत्त्व** (Importance for the finance minister)—माँग की लोच का सिद्धान्त वित्त मत्री के लिए बहुत अधिक महत्त्व का है। वित्त मत्री को पता लगाना पडता है कि वह राजकोष मे किस प्रकार अधिक राजस्व प्राप्त कर सकता है। इसके लिए उस वस्तु की माँग की लोच का ज्ञान अवश्य होना चाहिए जिस पर वह कर लगाना चाहता है। हम चित्र 13 22 की सहायता से इस बात को स्पष्ट करते हैं कि लोचदार माँग वाली वस्तु पर कर लगाने से राजकोष को अधिक राजस्व प्राप्त होगा या बेलोच माँग की वस्तु पर।

D मूल माँग वक्र है और *S* पूर्ति वक्र। ये *PQ* कीमत निर्धारित करते हैं जिस पर *OQ* मात्रा का विनिमय होता है। उत्पादन शुल्क लगाने के बाद वस्तु का पूर्ति वक्र S_1 है। यह ऐसा इसलिए खींचा गया है कि अप्रत्यक्ष कर लगाने से वस्तु की कीमत बढ जाने पर माँगी गई मात्रा कम हो जाती है। परिणामस्वरूप P_1Q (अर्थात् कर के बराबर PP_1 अधिक) कीमत पर उत्पादक द्वारा पहले जितनी मात्रा *OQ* बेची जाएगी। इस स्थिति मे कोई भी उपभोक्ता वस्तु को बिल्कुल नहीं खरीदेगा। हाँ, वे *PQ* से थोडी अधिक कीमत P_2Q_2 पर पहले से कुछ कम मात्रा OQ_2 खरीदने को तैयार हैं। क्योंकि *D* लोचदार वक्र है इसलिए सरकार को वस्तु OQ_2 मात्रा बिकने पर कुल राजस्व $T_2R_2P_2S_2$ प्राप्त होता है। D_1 कम लोचदार वक्र है जो उत्पादन शुल्क लगने के बाद पूर्ति वक्र S_1 के साथ कीमत को P_3Q_3 पर स्थित कर देता है। क्योंकि माँग कम लोचदार है इसलिए माँग बहुत नहीं घटती। यह OQ_3 हो जाती है। उत्पादन शुल्क से राज्य को $T_3R_3P_3S_3$ राजस्व प्राप्त होता है। यह माँग के लोचदार होने की स्थिति मे प्राप्त राजस्व $T_2R_2P_2S_2$ से अधिक है। अत स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि लोचदार माँग की वस्तुओं की अपेक्षा कम लोचदार वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क लगाने से सरकार को अधिक राजस्व की प्राप्ति होगी।
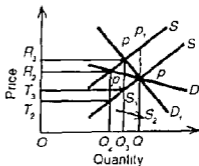
चित्र 13 22

(8) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की समस्याओ मे महत्त्व** (Importance in the problems of international trade)—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की जटिल समस्याओ—जैसे आयात और निर्यात का परिमाण, व्यापार की शर्तें, व्यापार से लाभ, आयात-निर्यात कर के प्रभाव और भुगतान-शेष का विश्लेषण करने मे माँग (और पूर्ति) की लोच का व्यावहारिक महत्त्व बहुत अधिक है।

(i) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ निर्धारण मे** (In the determination of the gain from international trade)—व्यापार की शर्तें उस दर का निर्देश करती हैं जिस पर कोई देश अपने निर्यात का दूसरे देश की आयात से विनिमय करता है। एक-दूसरे की वस्तुओं के लिए दो देशों की माँग की

सापेक्ष लोचे उस सही दर को निर्धारित करेगी जिस पर विनिमय होगा। और व्यापार मे लाभ, *अन्य बातो के अतिरिक्त, माँग की लोच और व्यापार की शर्तों पर निर्भर करेगा।* यदि हम कम लोचदार माँग की वस्तुओ को निर्यात और अधिक लोचदार माँग की वस्तुओ को आयात करेगे, तो हमे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ होगा। पहली स्थिति मे हम अपनी वस्तुओ की ऊँची कीमत *वसूल कर सकेगे और दूसरी स्थिति मे हम दूसरे देशो से प्राप्त वस्तुओ की कम कीमत देगे। इस प्रकार हमें दोनो तरह से लाभ होता है और हम अपनी निर्यात और आयात की मात्रा बढा सकेगे।*

(ii) टैरिफ नीति मे (In tariff policy)—आयात-निर्यात करो से घरेलू वस्तुओ की कीमते बढ जाती है। सरक्षित वस्तुओ की माँग की लोच पर आन्तरिक कीमतो की वृद्धि की सीमा निर्भर करती है। यदि सरक्षित वस्तुओ की माँग लोचदार है, तो कीमत बढने से उनकी विक्रय की मात्रा कम हो जाएगी। *इसके विपरीत यदि माँग कम लोचदार है, तो आयात-निर्यात कर नीति के* परिणामस्वरूप लोगो को ऊँची कीमतो का बोझ सहना पडेगा।

(iii) अवमूल्यन की नीति का आधार (Basis of the policy of devaluation)—जो देश अवमूल्यन के द्वारा अपने प्रतिकूल भुगतान-शेष को ठीक करने का विचार कर रहा है, उसके लिए आयात और *निर्यात की माँग की लोच पर ध्यान देना आवश्यक है। जो देश अवमूल्यन करता है* उसका निर्यात सस्ता और आयात पहले से महँगा हो जाएगा। मान लीजिए कि हम अवमूल्यन करते है। इसका पहला प्रभाव यह होगा कि हमारी आयात की कीमते बढ जायेगी और हम अपनी आयात कम करने को प्रवृत्त होगे। दूसरी ओर, विदेश मे हमारी निर्यात की कीमत कम होने से हम अधिक निर्यात करेगे परन्तु यह इस बात पर निर्भर करेगा कि विदेशियो के लिए हमारी वस्तुओ की माँग की लोच कितनी है। इस प्रकार वह सीमा, जिस तक हम अपनी विदेशीय विनिमय की आमदनी और खर्च के अन्तर को कम कर सकते है, हमारी निर्यात और आयात की माँग की लोचो पर निर्भर करती है।

प्रश्न

1 माँग की कीमत लोच की धारणा की व्याख्या करिए और उसके मापने की विभिन्न विधियो का परीक्षण कीजिए।

2 "माग की लोच की धारणा आर्थिक विश्लेषण का एक महत्त्वपूर्ण औजार है।" उचित उदाहरणो सहित इस कथन की वैधता की विवेचना कीजिए।

3 माग की आय लोच क्या है? उसे हम कैसे मापते है?

4 माग की कीमत लोच की परिभाषा दीजिए। एक चित्र द्वारा माग वक्र के एक दिए हुए बिन्दु पर एक माग वक्र की लोच और ढलान मे अन्तर कीजिए।

5 माग की प्रतिलोच (क्रास) की परिभाषा दीजिए। हम उसे कैसे मापते है? माग की प्रतिलोच की प्रकृति को (i) स्थानापन्न वस्तुओ, (ii) पूरक वस्तुओ, और (iii) स्वतन्त्र वस्तुओ के लिए दिखाइए।

6 माग की कीमत लोच को मापने की "बिन्दु" और "चाप" विधियो म अन्तर दीजिए।

अध्याय 14

उपभोक्ता की बचत की धारणा
(THE CONCEPT OF CONSUMER'S SURPLUS)

1. प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

उपभोक्ता की बचत की धारणा माँग के सिद्धान्त पर आधारित है। मूल रूप से इस सिद्धान्त की कल्पना एक फ्रांसीसी अर्थशास्त्री ड्यूपू (Dupuit) ने 1844 में की थी। मार्शल ने 1895 में अपनी पुस्तक *Principles of Economics* के तृतीय संस्करण में इस सिद्धान्त को पूर्णता प्रदान की। हिक्स और ऐलन ने 1930 में मार्शल के माँग-सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया और अन्य बातों के साथ उपभोक्ता की बचत की धारणा को भी। वर्तमान शताब्दी के चौथे दशक में हिक्स ने *Review of Economic Studies* में प्रकाशित एक लेख माला में उदासीनता-वक्र तकनीक की सहायता से इस सिद्धान्त को पुन स्थापित करने का प्रयत्न किया। हम यहाँ मार्शल के दृष्टिकोण और हिक्स के पुन स्थापन का आलोचनात्मक अध्ययन करते है।

2. धारणा का कथन
(STATEMENT OF THE CONCEPT)

किसी वस्तु के लिए एक उपभोक्ता जो कीमत देता है, वह उससे कम होती है जो वह उस वस्तु के लिए देने को तैयार होता है जिससे उपभोक्ता द्वारा खरीदी गई वस्तु से जो सतुष्टि प्राप्त होती है वह उस वस्तु के लिए दी गई कीमत से अधिक होती है। इस प्रकार उपभोक्ता जो अतिरिक्त सतुष्टि प्राप्त करता है उसे मार्शल 'उपभोक्ता की बचत' कहता है। मार्शल के शब्दों मे "वस्तु से वचित रहने की अपेक्षा उपभोक्ता वस्तु के लिए जो कीमत देने को तैयार हो, तथा जो कीमत वह वास्तव मे देता है, इन दोनो का अन्तर इस अतिरिक्त सतुष्टि का आर्थिक माप है। इसे 'उपभोक्ता की बचत' कह सकते है।"[1] हमारे दैनिक जीवन में नमक, समाचारपत्र, पोस्टकार्ड, आदि ऐसी वस्तुएँ है जिनसे हमे उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है। मार्शल के अनुसार उपभोक्ता की बचत उस लाभ का अश है जो एक व्यक्ति को अपनी परिस्थितियो या सयोगो से प्राप्त होता है।[2]

1 The excess of the price which he would be willing to pay rather than go without the thing, over that which he actually does pay, is the economic measure of this surplus satisfaction It may be called "consumer's surplus" Alfred Marshall

2 Consumer's surplus is part of the benefit which a person derives from his environment or conjuncture

उदाहरण के लिए हम मान लेते है कि एक उपभोक्ता सतरे की 1 रुपया कीमत पर एक, 75 पैसे कीमत पर दो, 50 पैसे कीमत पर तीन और 25 पैसे कीमत पर पाँच सतरे खरीदने को तैयार है। मान लीजिए कि मार्किट कीमत 25 पैसे प्रति सतरा है। इस कीमत पर उपभोक्ता चार सतरे खरीदेगा और रु 1 50 (75+ 50+ 25) के आधिक्य का उपभोग करेगा। इसे तालिका 14 1 मे दिखाया गया है।

तालिका 14 1 मार्शल का उपभोक्ता की बचत का माप

सतरे की इकाइयाँ	सीमात उपयोगिता (जो कीमत देने को तैयार है)	वास्तविक कीमत	उपभोक्ता की बचत (पैसा मे)
1	1 00	25	75
2	75	25	50
3	50	25	25
4	25	25	
	कुल उपयोगिता = 2 50	कुल कीमत = 1 00	1 50

इस प्रकार उपभोक्ता की बचत की यह परिभाषा दी जा सकती है कि यह उन कीमतो का अन्तर है जो उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए देने को तैयार है और जो उसके लिए वास्तव मे देता है। हमारा कल्पित उपभोक्ता 4 सतरो के रु 2 50 (=1 00+ 75+ 50+.25) देने को तैयार है परन्तु वास्तव मे रु 1 देता है और इसलिए उसे रु 1 50 (रु 2 50 - 1 00) की बचत की प्राप्ति होती है। इसे यो भी व्यक्त कर सकते है

उपभोक्ता की बचत (*CS*) = कुल उपयोगिता—सीमान्त उपयोगिता (या कीमत) × वस्तु की इकाइयो की सख्या। इस सूत्र के आधार पर उपभोक्ता की बचत र 1 50 = 2 50 (कुल उपयोगिता)—(25 × 4)। यह इस मान्यता पर आधारित है कि वस्तु की कीमत उसकी उपयोगिता के बराबर होती है।

चित्र 14 1 मे उपभोक्ता की बचत को चित्रात्मक रूप मे व्यक्त किया गया है जहाँ DD_1 वस्तु का माँग वक्र है। OP कीमत पर वस्तु की OQ इकाइयाँ खरीदी जाती है और $OP \times OQ$ = क्षेत्र $OQRP$ कीमत दी जाती है। परन्तु OQ इकाइयों के लिए उपभोक्ता कुल कीमत (कुल उपयोगिता) $OQRD$ देने को तैयार है। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत = $OQRD - OQRP$ = DRP। यदि वस्तु की कीमत गिर कर OP_1 हो जाए, तो उपभोक्ता की बचत बढ कर DR_1P_1 हो जाती है। और इसके विपरीत यदि कीमत बढ जाए तो उपभोक्ता की बचत घट जाएगी। दूसरे शब्दो मे, उपभोक्ता की बचत माग वक्र (DD_1) और कीमत रेखा (PR या P_1R_1) के बीच का क्षेत्र है और माग वक्र के नीचे जो त्रिभुज बनता है उसके बराबर है।
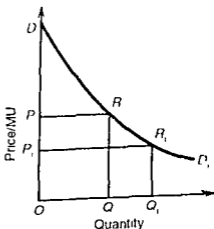
चित्र 14 1

2. आलोचनाएं
(CRITICISMS)

यूलिस गोबी (Ulisse Gobbi), केनन (Cannan), निकलसन (Nicholson), टॉसिग (Taussig), हिक्स (Hicks), और सेम्यूल्सन (Samuelson) आदि ने मार्शल के उपभोक्ता-बचत के माप की बड़ी कड़ी आलोचना की है। प्रोफेसर हिक्स का यह कथन उचित है कि "मार्शल की *Principles* (Book III) में किसी भी अन्य बात की अपेक्षा उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त ने सबसे अधिक समस्या और विवाद खड़ा किया है।" यह "समस्या और विवाद" उन मान्यताओं के कारण खड़ा हुआ है जिन पर यह सिद्धान्त आधारित है। हम नीचे उन मान्यताओं पर आधारित आलोचनाओं पर विचार करते हैं।

(1) **उपयोगिता का मात्रात्मक माप नहीं किया जा सकता** (Utility cannot be measured quantitatively)—उपभोक्ता-बचत का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि उपयोगिता का मात्रात्मक माप किया जा सकता है। जिस क्षण हम यह जान लेते हैं कि उपयोगिता मापी जा सकने वाली मात्रा नहीं है, तभी उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त भ्रामक बन जाता है। फिर जब हम उपयोगिता को मौद्रिक भाषा में प्रस्तुत करते हैं तो जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं वे सामान्य बुद्धि के अनुकूल नहीं होते। जैसाकि प्रोफेसर नाईट (Knight) ने संकेत किया है कि यह सम्भव है कि भूख से मरता हुआ कोई करोड़पति एक 6 पैन्स की रोटी के लिए £ 100,000 देने को तैयार हो, परन्तु जब उसे वही रोटी 6 पैन्स में मिल सकती है तो यह विश्वास करना जरा मुश्किल है कि उसे £ 99,999—19*s*—6*d* अधिक सतुष्टि मिलती है। उपयोगिता की मापात्मकता के बिना ही उदासीनता वक्र तकनीक की सहायता से उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त की व्याख्या करके हिक्स ने इस कठिनाई को पार किया है।

(2) **मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर नहीं रहती** (Marginal utility of money does not remain constant)—उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त पहले से यह मान लेता है कि विनिमय की क्रिया के दौरान मुद्रा की उपयोगिता स्थिर रहती है। यह मान्यता इस सिद्धान्त की सार्थकता को समाप्त कर देती है क्योंकि जब एक उपभोक्ता अपनी दी हुई मौद्रिक आय को एक वस्तु को खरीदने में खर्च कर देता है, तो उसके पास बची हुई मुद्रा उसी मात्रा में कम हो जाती है जिस से उस मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता बढ़ जाती है। इस आलोचना का मार्शल ने यह उत्तर दिया था कि उपभोक्ता किसी एक विशेष वस्तु पर अपनी कुल मौद्रिक आय का बहुत थोड़ा भाग खर्च करता है और इस प्रकार इससे उसके लिए मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जिसे हम स्थिर मान सकते हैं। परन्तु इस तर्क से समस्या हल नहीं हो जाती क्योंकि उपभोक्ता तो एक नहीं बल्कि कई वस्तुएँ खरीदता है और उसकी कुल आय का महत्त्वपूर्ण भाग इन पर खर्च हो जाता है जिससे उसके लिए मुद्रा उपयोगिता बढ़ जाती है और इस प्रकार उपभोक्ता की बचत का हिसाब गलत हो जाता है। उदासीनता वक्र तकनीक की भाषा में उपभोक्ता की बचत को माप कर हिक्स ने इस कठिनाई को भी हल कर दिया है।

(3) **एक वस्तु दूसरी से स्वतन्त्र नहीं होती** (One good is not independent of the other)—मार्शल की यह भी मान्यता है कि किसी वस्तु की उपयोगिता केवल उस वस्तु की पूर्ति पर निर्भर करती है। वह वस्तुओं की पूरकता की समस्या की उपेक्षा करता है और इस प्रकार एक वस्तु को दूसरी से स्वतन्त्र समझता है। यह मान्यता मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता की स्थिरता से प्राप्त होती है। वस्तु X की उपयोगिता केवल वस्तु X की पूर्ति पर ही नहीं बल्कि सम्बन्धित वस्तु Y की पूर्ति पर भी निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में, यदि उपभोक्ता केवल वस्तु X को खरीदता है और Y बिल्कुल नहीं खरीदता तो X पर किए गए खर्च से उपभोक्ता की बचत भिन्न होगी और यदि वह

X को खरीदने के बाद Y या Y को खरीदने के बाद X को खरीदता है तो भी भिन्न होगी। ऐसी सब स्थितियों में उपभोक्ता की बचत को ठीक से मापना कठिन होगा।

(4) स्थानापन्नों की अनुपस्थिति अवास्तविक है (Absence of substitutes is unrealistic)—यह सिद्धान्त उस वस्तु के स्थानापन्नों की अनुपस्थिति को मानकर चलता है जिससे उसे बचत प्राप्त होती है क्योंकि चाय और कॉफी जैसे स्थानापन्नों की उपस्थिति उपभोक्ता की बचत की माप को कठिन बना देती है। यदि न तो चाय हो और न ही कॉफी, तो उपयोगिता की जो हानि होगी वह उसकी अपेक्षा बहुत अधिक होगी जो केवल चाय या केवल कॉफी मिलने से होती है। इस कठिनाई से बचने के लिए, मार्शल ने सामान्य माँग अनुसूची के अन्तर्गत दो वस्तुओं को इकट्ठा करके एक वस्तु के अन्तर्गत रख दिया। परन्तु यह धारणा सिद्धान्त को अवास्तविक बना देती है क्योंकि ऐसी वस्तु को ढूँढना सभव नहीं जिसका कोई स्थानापन्न न हो।

(5) आय सवेदनशीलतायें एव रुचियो सम्बन्धी भेदो की उपेक्षा नहीं की जा सकती (Differences in incomes, sensibilities and tastes cannot be neglected)—मार्शल की यह भी मान्यता है कि उपभोक्ता की बचत का हिसाब लगाते समय उपभोक्ताओं के धन सवेदनशीलताए सम्बन्धी भेदों को छोड देना चाहिए। यह धारणा मनमानी और अवास्तविक है क्योंकि अपनी रुचियों, सवेदनशीलताओं और आय के अनुसार हर उपभोक्ता उसी वस्तु के लिए कम या अधिक कीमत देने को तैयार होता है। यदि सब उपभोक्ताओं की आय समान भी हो, तो उनकी रुचियाँ और सवेदनशीलताए तो भिन्न होगी ही। मार्शल ने स्वय इस बात को स्वीकार किया है कि "एक साधारण धनी व्यक्ति की अपेक्षा एक साधारण गरीब आदमी के लिए एक पाउड की सतुष्टि बहुत अधिक होगी, और चाय ओर नमक की तुलना करने की बजाय, जिसका दोनों ही वर्ग अधिकता से प्रयोग करते है, यदि हम चाय या नमक की शेम्पेन या अनानास से तुलना करे, तो इसके कारण जो सशोधन करने पड़ेगे वे आगणन के समस्त रूप को बदल देंगे।" इस कठिनाई से बचने के निए मार्शल का सुझाव है कि अधिक व्यक्तियो की औसत ले लेनी चाहिए ताकि उनकी सवेदनशीलताओं और धन में अन्तर समाप्त हो जाए। परन्तु इससे सिद्धान्त मनमाना और अवास्तविक बन जाता है।

ऊपर दी हुई आपत्तिया सिद्धान्त की मान्यताओं के विरुद्ध उठाई गई है। इसके अतिरिक्त अन्य दोषों का सन्देश करने वाले आलोचकों की भी कमी नहीं है।

(6) उपभोक्ता वस्तु की वास्तविक कीमत से अधिक कीमत नहीं देता (The consumer does not pay more than the actual price of the commodity)—आलोचकों ने यह भी सकेत किया है कि आवश्यकताएँ असीमित होती है ओर उन्हे तृप्त करने के साधन सीमित है, इसलिए उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए उसकी वास्तविक कीमत से अधिक नहीं दे सकता। यदि उसे कोई विशेष वस्तु उसकी वर्तमान कीमत पर नहीं मिल सकती, तो वह किसी ओर स्थानापन्न वस्तु को ले लेगा। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत का विचार ही काल्पनिक और अवास्तविक है। उपभोक्ता को एक रुपये के वदले वास्तव मे जो कुछ मिलता है उसके लिए रु 20 देने को तेयार होने पर मिलने वाली रु 19 के बराबर सतुष्टि केवल मनोवैज्ञानिक सतुष्टि है, जबकि उसके पास मुद्रा की इतनी मात्रा है ही नहीं।

(7) अन्तिम विश्लेषण मे उपभोक्ता की बचत शून्य हो जाती है (In the ultimate analysis consumer's surplus becomes zero)—यूलिस गोबी (Ulisse Gobbi) के अनुसार, यदि उपभोक्ता की बचत को सभावित (potential) कीमत ओर वास्तविक कीमत का अन्तर मान लिया जाए, तो अन्तिम विश्लेषण मे यह अन्तर शून्य हो जाता है। "यदि हम उपभोक्ता द्वारा खरीदी गई सब वस्तुओं पर ध्यान दे, तो उन वस्तुओं की खरीद पर वह जितनी मुद्रा खर्च करता है वह उस के बराबर होती है जिसे वह इन वस्तुओ की खरीद पर खर्च करने को तैयार था क्योंकि ये दोनों उसके

मुद्रा पर अधिकार अर्थात् उसकी आय से सीमाबद्ध है। यदि उपभोक्ता अपनी दी हुई आय से पारम्भ करे, तो यह मान लिया जा सकता है कि वह अपनी उस सारी आय को एक ही वस्तु पर खर्च करने को तैयार है पर जब उसे वह वस्तु कम कीमत पर मिल जाती है, वह दूसरी वस्तु लेना चाहता है और इस बार वह उतनी ही कीमत देने को तैयार होता है, जितनी मुद्रा पहली वस्तु को खरीदने के बाद उसके पास बच गई है। यदि फिर कुछ बच जाता है तो वह तीसरी वस्तु की ओर मुड़ता है, इत्यादि। ज्यों-ज्यों उसके कार्यों की शृंखला बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों सभावित कीमत और वास्तविक कीमत मे तब तक वह अन्तर कम होता जाता है जब तक कि उसकी अन्तिम खरीद के साथ वह बिल्कुल समाप्त नहीं हो जाता।"[3]

(8) **वस्तु की हर अतिरिक्त इकाई खरीदने पर नया माँग-वक्र खींचना पड़ता है** (The purchase of every additional unit of the commodity requires the re-drawing of the demand curve)—प्रोफेसर पेटन (Patten) ने मार्शल के उपभोक्ता बचत सिद्धान्त का आधार माँग वक्र की शुद्धता पर ही आपत्ति उठाई है। ज्यों-ज्यो उपभोक्ता एक वस्तु की अतिरिक्त इकाइयाँ खरीदता है, पहली इकाइयों के लिए उसकी तीव्रता कम होती जाती है जिससे उपभोक्ता के लिए उन वस्तुओं *की उपयोगिता का ह्रास हो जाता है। उपभोक्ता की बचत का हिसाब लगाते समय मार्शल* उपयोगिता मे गिरावट पर ध्यान देने मे असफल रहा। एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए एक उपभोक्ता पहली सिली-सिलाई कमीज पर रु 240 खर्च करने को तैयार है और दूसरी पर रु 230। दूसरी कमीज उसे कम सतुष्टि इसलिए देती है कि कमीज़ के लिए उसकी इच्छा समाप्त हो गई है। परन्तु यदि वह दोनो कमीजे खरीद ले, तो औसत उपयोगिता और औसत कीमत भी—पहले से कुछ कम—रु 235 होगी। इसलिए उपभोक्ता की बचत को ठीक-ठीक मापने के लिए वस्तु की हर अतिरिक्त इकाई की खरीद के साथ लगातार नया माँग वक्र खींचा जाना चाहिए। यह आलोचना तब ठीक होती जब माँग वक्र सीमान्त उपयोगिता की अपेक्षा औसत उपयोगिता पर आधारित होता। मार्शल का माँग वक्र वस्तु की सीमान्त उपयोगिता पर आधारित है, और इसलिए यह आपत्ति ठीक नहीं।

(9) **वस्तु की समस्त माँग अनुसूची को जानना सम्भव नहीं** (It is not possible to know the whole demand schedule of the commodity)—माँग वक्र से सम्बन्ध रखने वाली एक और कठिनाई यह है कि समस्त माँग अनुसूची को, जिस पर यह सिद्धान्त आधारित है, जानना सभव नहीं। यह जानना असभव है कि उपभोक्ता वस्तु की हर इकाई के लिए कितनी कीमत देने को तैयार है। इसलिए उपभोक्ता की बचत का सही हिसाब नहीं लगाया जा सकता। चित्र 14.1 में, क्षेत्र *DRP* द्वारा व्यक्त की गयी उपभोक्ता की बचत केवल तब मापी जा सकती है जबकि *D* से *R* तक माँग अनुसूची ज्ञात हो। इसे हम केवल अनुमान या अटकल से जान सकते हैं मार्शल इसे गम्भीर व्यावहारिक कठिनाई नहीं समझता था। इसलिए कि हम माँग अनुसूची के उस भाग से काफी परिचित होते हैं जो चालू मार्किट कीमत के निकट हो।

(10) **आवश्यक वस्तुओं से उपभोक्ता की बचत निश्चित एवं अनन्त होती है** (Consumer's surplus from necessaries is indefinite and infinite)—सब आलोचक कम से कम इस बात पर सहमत है कि आवश्यक वस्तुओं से प्राप्त उपभोक्ता की बचत निश्चित और निर्णय योग्य नहीं होती। आवश्यक वस्तुओं की कीमत बहुत कम होती है जबकि उनकी उपयोगिता बहुत अधिक होती है। इसलिए उनसे प्राप्त उपभोक्ता की बचत अनन्त और अनिश्चित होती है। मरने की बजाय, एक प्यासा व्यक्ति पानी के एक गिलास के लिए अपना सब कुछ देने को तैयार हो सकता है। प्रोफेसर पेटन ने **पीड़ा-अर्थव्यवस्था** (Pain Economy) और **आनन्द-अर्थव्यवस्था** (Pleasure

3 A K Das Gupta *The Concept of Surplus in Theoretical Economics* p 120

Economy) में अन्तर करके इस कठिनाई को पार करने का प्रयत्न किया है। पीडा-अर्थव्यवस्था में एक व्यक्ति को आवश्यक वस्तुओ के उपभोग से कोई धनात्मक (positive) सतुष्टि नहीं मिलती। यदि वह उनके उपभोग को छोडने का प्रयत्न करता है, तो वह प्रयत्न कष्टदायक बन जाता है और उसे ऋणात्मक (negative) सतुष्टि मिलती है। सब आवश्यकताओ को सतुष्ट करने के बाद एक व्यक्ति आनन्द-अर्थव्यवस्था मे प्रवेश करता है, जबकि यह वस्तुओ के उपभोग से धनात्मक सतुष्टि प्राप्त करता है। उपभोक्ता की बचत आनन्द-अर्थव्यवस्था में पायी जाती है जहाँ एक व्यक्ति को जीवन के सच्चे उपभोग (सुख) प्राप्त होते है।

(11) **विलास एव प्रतिष्ठा वस्तुओ से उपभोक्ता की बचत मापना सम्भव नहीं** (It is not possible to measure consumer's surplus from luxury and prestige goods)—इस सिद्धान्त की आलोचना प्रोफेसर टॉसिग का तर्क है कि विलास एव प्रतिष्ठा (prestige) वस्तुओ के विषय मे उपभोक्ता की बचत की माप सम्भव नहीं। हीरे जैसी वस्तुओ की कीमत गिरने से उनके स्वामियो के लिए उनकी उपयोगिता कम हो जाती है जिससे उपभोक्ता की बचत कम हो जाती है। चित्र 14। की भाषा मे, विलास वस्तुओ के सबध मे माँग वक्र DD_1 पर R के नीचे का भाग खींचना सभव नहीं।

(12) **यह सिद्धान्त उपकल्पित, अवास्तविक तथा मनगढ़न्त है** (This doctrine is hypothetical, unreal and imaginary)—उपभोक्ता के आधिक्य के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए निकलसन मार्शल से पूछते है, "यह कहने का क्या लाभ है कि एक वर्ष मे £ 100 की उपयोगिता एक वर्ष मे £ 1000 के बराबर होती है?" निकलसन का कथन था कि यह सिद्धान्त उपकल्पित, अवास्तविक और मनगढ़न्त है। निश्चय ही यह सिद्धान्त अवास्तविक धारणाओं और हिसाब लगाने की अद्‌भुत विधि के कारण ऐसा है। निकलसन की आलोचना मार्शल के इस उत्तर के सामने निर्बल है कि मध्य अफ्रीका मे रहने वाले व्यक्ति की अपेक्षा इग्लैड मे रहने वाला व्यक्ति बहुत अच्छी स्थिति मे है क्योंकि इग्लैड वाले व्यक्ति को बहुत-सी वस्तुएँ सस्ती मिल सकती है जो अफ्रीका वाले को मुद्रा की कितनी भी मात्रा मे बिल्कुल प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए बहुत अधिक आय वाले एक अफ्रीका-निवासी से कम आय वाला इग्लैड-निवासी अच्छी स्थिति मे है क्योंकि इग्लैड-निवासी को अपनी खरीद से बहुत अधिक मात्रा मे उपभोक्ता की बचत की प्राप्ति होती है।

(13) **सिद्धान्त का नाम 'उपभोक्ता की बचत' सही नहीं है** (The name "consumer's surplus" is not correct)—आलोचकों ने तो "उपभोक्ता के आधिक्य" नाम पर भी आपत्ति उठाई है। प्रोफेसर बोल्डिग के अनुसार, क्योंकि इस सिद्धान्त का सबध एक वस्तु की खरीद से है, इसलिए यह "क्रेता की बचत" (buyer's surplus) है। इसे उपभोक्ता की बचत कहना गलत है क्योंकि अतिरेक हमेशा एक वस्तु के उत्पादन मे होता है न कि उसके उपभोग मे। परन्तु इस पारिभाषिक शब्दावली-विषयक (terminological) विवाद से सिद्धान्त के मूल पर कोई आघात नहीं होता।

निष्कर्ष (Conclusion)—वर्तमान प्रवृत्ति यह है कि अर्थशास्त्र से इस सिद्धान्त के अध्ययन को निकाल देना चाहिए। प्रोफेसर हिक्स के इसे पुन स्थापित करने के प्रयत्नो से इग्लैड और अमरीका के अर्थशास्त्रियो के विचारो मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ। प्रोफेसर रोबर्टसन की आलोचना कुछ नर्म है। इस चेतावनी के साथ "कि आप इससे अधिक आशा न रखें" प्रोफेसर रोबर्टसन इसे अभी भी "बौद्धिक रूप से सम्मान के योग्य और व्यावहारिक क्रिया के पथ-प्रदर्शन मे उपयोगी" समझते है। प्रोफेसर सैम्यूलसन अर्थशास्त्र मे इसकी उपयोगिता के बारे मे सदेह करते है, जबकि वह कहते है, "गणितीय पहेली के आकर्षण के साथ यह ऐतिहासिक और सैद्धान्तिक रुचि का विषय है। अच्छा हो कि अर्थशास्त्री इसे छोड दे। यह ऐसा साधन है जिसे वही प्रयोग कर सकता है जो इसके प्रयोग के बिना रह सकता है और सभी ऐसा नहीं कर सकते।"

3. उदासीनता वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता की बचत (CONSUMER'S SURPLUS IN INDIFFERENCE CURVE ANALYSIS)

उपयोगिता विश्लेषण की अवास्तविक मान्यताओं के कारण मार्शल के उपभोक्ता-बचत माप में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं परन्तु दो आधारभूत मान्यताएँ उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त के मूल में निहित हैं। ये हैं, प्रथम कि उपयोगिता की मात्रात्मक माप की जा सकती है और द्वितीय कि मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहती है। उपयोगिता एक व्यक्तिवादी धारणा है जिसे गणन-संख्यात्मक (cardinal numbers) में व्यक्त नहीं किया जा सकता और इसलिए उसका योग या घटा करना संभव नहीं। क्रम-संख्यात्मक (ordinal) में उपयोगिता को मापकर उदासीनता-वक्र तकनीक इस कठिनाई से बच जाती है। उपभोक्ता की संतुष्टि उसके अधिमान-माप पर आधारित है जिसे उदासीनता मानचित्र पर दिखाया जा सकता है जिसमें एक उदासीनता वक्र पर स्थित प्रत्येक बिन्दु समान संतुष्टि को प्रकट करता है। मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता की स्थिरता की मान्यता भी इस तकनीक में नहीं आती क्योंकि यह एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन के आय-प्रभाव को छोड़ देती है। मार्शल के माप की अपेक्षा उदासीनता-वक्र तकनीक की सहायता से उपभोक्ता की बचत की माप-विधि श्रेष्ठ है क्योंकि यह उपभोक्ता की बचत पर कीमतों और आय-परिवर्तनों के प्रभाव का अध्ययन करती है। उपयोगिता के गणन-संख्यात्मक माप और मुद्रा की स्थिर सीमान्त उपयोगिता की मान्यताओं के बिना उदासीनता-वक्र तकनीक में उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त को पुनः स्थापित करने का श्रेय प्रोफेसर हिक्स को है। हम नीचे प्रोफेसर हिक्स द्वारा समय-समय पर की गई विभिन्न स्थापनाओं का अध्ययन करते हैं।

1 मुद्रा की स्थिर सीमांत उपयोगिता रहते मार्शल का माप (The Marshallian Measure with Constant MU of money)

प्रथम, हिक्स उदासीनता वक्र विश्लेषण में मुद्रा की स्थिर सीमांत उपयोगिता रहते मार्शल की उपभोक्ता-बचत की माप करता है। चित्र 14 2 लीजिए जहाँ मुद्रा को अनुलंब अक्ष पर और वस्तु X को क्षैतिज अक्ष पर लिया गया है। मान लीजिए कि उपभोक्ता की बजट रेखा MN है। यह मानते हुए कि मुद्रा की एक इकाई की कीमत एक के बराबर है, इस रेखा की ढलान X वस्तु की कीमत के बराबर है। वस्तु X की कीमत दी होने पर, उपभोक्ता A बिन्दु पर संतुलन में है, जहाँ उदासीनता वक्र I_2 बजट रेखा MN को स्पर्श करता है। इस बिन्दु A पर उसके पास वस्तु X की OQ मात्रा खरीदने के लिए अपनी BM आय को व्यय करता है।
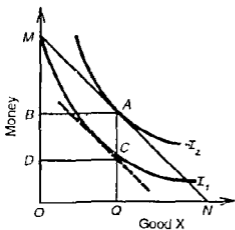
चित्र 14 2

यह मालूम करने के लिए कि वस्तु से वंचित रहने की बजाय उपभोक्ता वस्तु X की OQ मात्रा के लिए मुद्रा की कितनी राशि व्यय करने को तैयार है, हम बिन्दु M से एक उदासीनता वक्र I_1 खींचते हैं जो उदासीनता वक्र I_2 के अनुलंबीय समानान्तर है। वक्र I_1 बिन्दु C पर वक्र I_2 के अनुलंबीय समानान्तर है, जैसा कि MN के समानान्तर इस बिन्दु पर बिन्दुरित स्पर्श रेखा द्वारा दिखाया गया है। इस प्रकार दोनों वक्रों की ढलान X की OQ मात्रा पर समान है। उदासीनता वक्र I_1

दर्शाता है कि उपभोक्ता X की OQ मात्रा के लिए मुद्रा की DM राशि व्यय करने को तैयार है। परन्तु वास्तव मे, X की उसी मात्रा को खरीदने लिए BM मुद्रा व्यय करता है। अत $DM-BM = DB=CA$ उपभोक्ता की बचत है।

यह ध्यान देने योग्य है कि मार्शल ने अपनी धारणा मे मुद्रा सीमात उपयोगिता को स्थिर माना और मार्शल के माप को समझाने के लिए हिक्स ने अनुलबीय समानातर उदासीनता वक्रो की मान्यता ली। इस प्रकार, जब I_1 और I_2 उदासीनता वक्रो की ढलाने C और A बिन्दुओ पर समान होती है तो मुद्रा की स्थिर सीमात उपयोगिता की मान्यता पूरी हो जाती है।

2 मुद्रा की घटती सीमात उपयोगिता के साथ मार्शल का माप

(The Marshallian Measure with Diminishing MU of Money)

हिक्स ने दर्शाया है कि मार्शल की उपभोक्ता-बचत को मुद्रा की स्थिर सीमात उपयोगिता की मान्यता को त्याग कर मापा जा सकता है। इसे चित्र 14 3 में व्यक्त किया गया है, जहाँ प्रारभ मे उपभोक्ता बिन्दु A पर सतुलन मे होता है जब उसकी बजट रेखा MN उदासीनता वक्र I_3 को स्पर्श करती है। उपभोक्ता मुद्रा की BM राशि से वस्तु X की OQ मात्रा खरीदना है। यह मालूम करने के लिए कि वस्तु से वचित रहने की बजाय उपभोक्ता वस्तु X की वही मात्रा OQ के लिए मुद्रा की कितनी राशि व्यय करने को

चित्र 14.3

तैयार होगा, M मे से एक उदासीनता वक्र I_2 खींचिए। यह वक्र AQ रेखा मे से बिन्दु C पर से गुजरता है जहा इसकी ढलान बिन्दु A पर IC_3 वक्र की ढलान की अपेक्षा चपटी है। यह मुद्रा की घटती सीमात उपयोगिता को दर्शाता है। उपभोक्ता वस्तु X की OQ मात्रा के लिए DM मुद्रा की मात्रा व्यय करने को तैयार है। इस प्रकार, उपभोक्ता की बचत है $DM - BM = DB = CA$

हिक्स के उपभोक्ता-बचत के माप की मार्शल के माप के साथ तुलना करने के लिए, एक और उदासीनता वक्र I_1 बिन्दु M से खींचिए जो रेखा AQ पर बिन्दु E मे से गुजरता है। यह वक्र I_1 बिन्दु E पर वक्र I_3 के अनुलबीय समानातर है जैसे कि MN रेखा के समानातर बिन्दुकित रेखा से स्पष्ट होता है। यह मुद्रा की स्थिर सीमात उपयोगिता को दर्शाती है। अब मार्शल का उपभोक्ता-बचत का माप FB हिक्स के उपभोक्ता-बचत माप DB से अधिक है। इस प्रकार, हिक्स का उपभोक्ता-बचत माप मार्शल के माप के अनुरूप है परन्तु यह मार्शल के माप से श्रेष्ठ है क्योंकि यह मुद्रा की स्थिर सीमात उपयोगिता की मान्यता से मुक्त है।
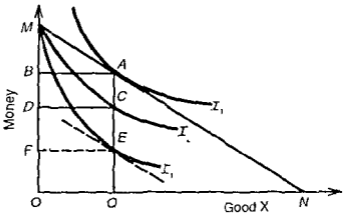
4. हिक्स का पुनर्निर्माण : उपभोक्ता-बचत के चार माप (HICKS' REFORMULATION : FOUR MEASURES OF CONSUMER'S SURPLUS)

प्रो. हिक्स ने 1939 में अपनी पुस्तक *Value and Capital* के प्रथम संस्करण में उदासीनता वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता की बचत को आय में क्षतिपूरक परिवर्तन (compensating variation in income) के रूप में व्यक्त किया। प्रो. हेंडरसन[4] ने यह बतलाते हुए हिक्स की आलोचना की कि मार्शल की उपभोक्ता की बचत की धारणा हिक्स की आय में क्षतिपूरक परिवर्तन व्याख्या से भिन्न है। उसके अनुसार, मार्शल के माप में उपभोक्ता द्वारा खरीदी गई वस्तु की मात्रा नहीं रहती है, जब कि हिक्स के माप में वस्तु की मात्रा का कोई प्रतिबंध नहीं है और क्रय की गई मात्रा उपभोक्ता के चुनाव के साथ बदलती है। दोनों में अन्तर का चित्र 14.4 में वर्णन किया गया है। मार्शल का माप *AC* है जब मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर नहीं बल्कि घटती है। हिक्स के आय में क्षतिपूरक परिवर्तन *MS* के परिणामस्वरूप, उपभोक्ता की बचत *AE* है जो *AC* से अधिक है जब उपभोक्ता वस्तु *X* की वही मात्रा *OQ* खरीदता है। यदि उपभोक्ता *I*, वक्र के बिन्दु *H* पर शिफ्ट करता है, तो वस्तु परिवर्तन होता है। उपभोक्ता बिन्दु *H* पर *OQ* से कम खरीदेगा तथा हिक्स का उपभोक्ता की बचत का माप मार्शल के माप से कम होगा।

चित्र 14.4
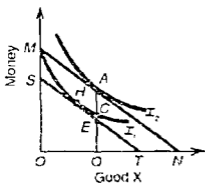
हिक्स ने स्वयं बाद में क्षतिपूरक परिवर्तन को उपभोक्ता की बचत के माप उलझाने की त्रुटि को स्वीकारा और एक लेख[5] में उसने उपभोक्ता-बचत की धारणा को चार विभिन्न माप देकर पुनः स्थापित किया जो क्षतिपूरक परिवर्तन और समान परिवर्तन के रूप में मात्रा परिवर्तनों और कीमत परिवर्तनों पर आधारित है। वह है : (1) कीमत क्षतिपूरक परिवर्तन, (2) मात्रा क्षतिपूरक परिवर्तन, (3) कीमत समान परिवर्तन और (4) मात्रा समान परिवर्तन। हम इनका निम्न वर्णन करते हैं।

क्षतिपूरक परिवर्तन (Compensating Variation)

हिक्स ने क्षतिपूरक परिवर्तन को इस प्रकार परिभाषित किया : यह मुद्रा की वह राशि है जो जब अदा (या प्राप्त) की जाए तो उपभोक्ता को उसकी प्रारंभिक कल्याण अवस्था अथवा संतुष्टि स्तर में छोड़ देगी।

(1) कीमत क्षतिपूरक परिवर्तन (The Price Compensating Variation)—कीमत क्षतिपूरक परिवर्तन एक वस्तु की कीमत में कमी के लाभ को प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता जो राशि अदा करेगा ताकि वह संतुष्टि के प्रारंभिक स्तर पर रह सके, उसको मापना है, यह मानते हुए कि वह वस्तु की जो मात्रा खरीदता है उसको चुन सकता है। इसे चित्र 14.5 में दर्शाया गया है। मान

4. A. M. Henderson, "Consumer's Surplus and Compensating Variation," *R.E.S.* Vol. VIII, No. 2, 1941.

5. J. R. Hicks, "The Four Consumer's Surpluses," *R.E.S.* Vol. XI, 1944.

लीजिए की उपभोक्ता प्रारभ मे A बिन्दु पर सतुलन मे है जहा उसका उदासीनता वक्र I_1 कीमत-आय (बजट) रेखा MN को स्पर्श करता है। अब X की कीमत को गिरने दीजिए जिससे कीमत-आय रेखा फैल कर MP हो जाती है और उपभोक्ता का नया सतुलन ऊचे वक्र I_2 के बिन्दु B पर होता है। बिन्दु A से B पर गति करने से उपभोक्ता को लाभ होता है। सतुष्टि का वही स्तर कायम रखने के लिए उपभोक्ता को अपने मूल उदासीनता वक्र I_1 पर होना चाहिए। साथ ही, कम कीमत के लाभ को प्राप्त करने के लिए, उसे मुद्रा की वही राशि देने को तैयार होना चाहिए। इसके लिए, उपभोक्ता मुद्रा की MR राशि देने को तैयार होगा। इसे MP के समानातर RS कीमत-रेखा खींच कर दिखाया गया है जो प्रारभिक उदासीनता वक्र I_1 के बिन्दु C पर स्पर्श करती है। बिन्दु C पर बिन्दु B की अपेक्षा उपभोक्ता वस्तु X की अधिक मात्रा खरीद कर कम कीमत का लाभ उठाता है, और I_1 वक्र पर रहकर सतुष्टि के प्रारभिक स्तर पर भी रहता है। इस प्रकार MR कीमत क्षतिपूरक परिवर्तन है।
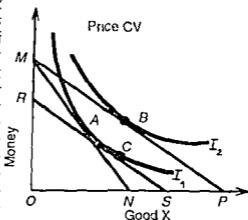
चित्र 14 5

(2) *मात्रा क्षतिपूरक परिवर्तन (The Quantity Compensation Variation)*—मात्रा क्षतिपूरक परिवर्तन से अभिप्राय है, एक वस्तु की कीमत मे कमी से होने वाले लाभ को प्राप्त करने के लिए मुद्रा की जो राशि उपभोक्ता देने को तैयार होगा ताकि वह सतुष्टि के प्रारभिक स्तर पर रहे। परन्तु शर्त यह है कि वह वही मात्रा खरीदने को बाध्य हो जो उसने कम कीमत पर खरीदी हो, यदि कोई क्षतिपूरक भुगतान न किया गया हो।

इस स्थिति को चित्र 14 6 मे दर्शाया गया है। मान लीजिए की उपभोक्ता उदासीनता वक्र I_1 के बिन्दु A पर सतुलन मे है और वस्तु X की OQ मात्रा खरीदता है। वस्तु X की कीमत कम होने से, उसके कीमत-आय रेखा MN फैल कर MT हो जाती है और वह ऊचे उदासीनता वक्र I_2 के बिन्दु B पर गति करता है तथा वस्तु X की OQ_1 मात्रा खरीदता है। वक्र I_1 पर सतुष्टि के प्रारभिक स्तर पर रहने के लिए और साथ मे कीमत मे कमी का लाभ उठाने हेतु उपभोक्ता को मुद्रा की BD राशि देने को तैयार होना चाहिए क्योकि वह वस्तु X की OQ_1 मात्रा लेने को बाध्य है। इस प्रकार, मात्रा क्षतिपूरक परिवर्तन BD है क्योकि B पर वह मुद्रा की इतनी राशि दे सकता है, X की OQ_1 मात्रा खरीद सकता है और बिन्दु D

चित्र 14 6

चित्र 14 7

पर अपने पुराने उदासीनता वक्र I_1 पर वापिस आ सकता है।

समान परिवर्तन (Equivalent Variation)—हिक्स ने समान परिवर्तन का इस प्रकार परिभाषित किया यह मुद्रा की राशि है जिसे उपभोक्ता स्वीकार करने को तैयार है, जो कीमत में कमी के बराबर है और जो उसे उसकी बाद की कल्याण अवस्था या संतुष्टि स्तर में छोड़ती है।
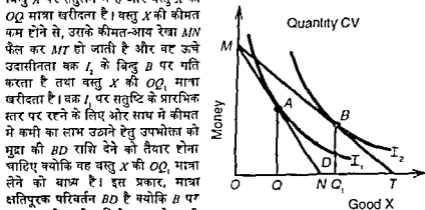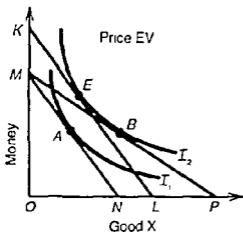
(3) कीमत समान परिवर्तन (The Price Equivalent Variation)—कीमत समान परिवर्तन न्यूनतम क्षतिपूर्ति है, जिसे उपभोक्ता स्वीकार करने को तैयार है ताकि वह कम कीमत पर वस्तु को खरीदने के अवसर को त्याग सके और कम कीमत पर बाद के संतुष्टि स्तर को प्राप्त कर सके। इसे चित्र 14 7 में दर्शाया गया है। मान लीजिए की प्रारंभ में उपभोक्ता A बिन्दु पर संतुलन में है जहा कीमत-आय रेखा MN उदासीनता वक्र I_1 को स्पर्श करती है। कीमत में कमी होने से यह रेखा फैल कर MP हो जाती है और उपभोक्ता ऊचे वक्र I_2 के बिन्दु B पर गति करता है जो उसे संतुष्टि का ऊंचा स्तर प्रदान करता है। उपभोक्ता को इस ऊचे उदासीनता वक्र I_2 पर रखने के लिए, उसकी क्षतिपूर्ति देनी चाहिए जो वस्तु X की कीमत में कमी के बराबर हो। यह MK के बराबर है जो वस्तु X की कीमत में कमी के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि को दर्शाती है। जब यह क्षतिपूर्ति दी जाती है, तो उपभोक्ता की नई कीमत-आय रेखा MN के समानान्तर KL बन जाती है, जहा वह ऊचे वक्र I_2 के E बिन्दु पर संतुलन में है। इस प्रकार, MK कीमत समान परिवर्तन है, जो उपभोक्ता को ऊंचे उदासीनता वक्र I_2 के बिन्दु E पर उसके बाद के संतुष्टि स्तर पर छोड़ देता है।

चित्र 14.8

4 मात्रा समान परिवर्तन (Quantity Equivalent Variation)—मात्रा समान परिवर्तन न्यूनतम क्षतिपूर्ति है, जिसे उपभोक्ता स्वीकार करने को तैयार है ताकि वह कम कीमत पर वस्तु को खरीदने के अवसर को त्याग सके। लेकिन वस्तु X की कीमत में कमी होने से पहले वाली प्रारंभिक मात्रा को खरीदने के लिए वह बाध्य है। इसे चित्र 14.8 में वर्णन किया गया है। मान लीजिए कि प्रारंभ में उपभोक्ता A बिन्दु पर संतुलन में है जहाँ

कीमत-आय रेखा *MN* और उदासीनता वक्र I_1 एक दूसरे को स्पर्श करते है। वस्तु *X* की कीमत मे कमी होने से उसकी कीमत-आय रेखा फैल कर *MT* हो जाती है और वह ऊचे वक्र I_2 के बिन्दु पर गति करता है तथा वस्तु *X* की OQ_1 मात्रा खरीदता है। अब यदि वह प्रारभिक मात्रा *OQ* खरीदने को बाध्य है तो उसे *AH* क्षतिपूर्ति के रूप मे देना चाहिए ताकि वह कीमत मे कमी के बाद वाले ऊचे उदासीनता वक्र I_2 पर रहे। इस प्रकार, *AH* **मात्रा समान परिवर्तन** है जो उपभोक्ता को उसके बाद के सतुष्टि स्तर *H* पर ऊचे उदासीनता वक्र I_2 पर स्थित रखता हे।

निष्कर्ष (Conclusion)

हिक्स के उपभोक्ता की बचत के चारो मापो के ऊपर के अध्ययन से कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते है।

1 मार्शल का उपभोक्ता-बचत का माप हिक्स के चार मापो मे से किसी के साथ भी मेल नहीं खाता जब तक कि उदासीनता वक्र एक दूसरे के अनुलबीय समानातर न हो अर्थात् मुद्रा की स्थिर सीमात उपयोगिता न हो।

2 वस्तु *X* की कीमत मे कमी के क्षतिपूर्ति परिवर्तन से समान परिवर्तन अधिक होगा।

3 कीमत मे कमी के मात्रा क्षतिपूर्ति परिवर्तन से कीमत समान परिवर्तन अधिक होगा।

4 कीमत मे कमी के कीमत समान परिवर्तन से मात्रा समान परिवर्तन अधिक होगा।

परन्तु जैसा कि हिक्स ने कहा है, सभी व्यावहारिक उद्देश्यो के लिए इनमे अन्तर को महत्त्वपूर्ण नहीं समझना चाहिए।

प्रश्न

1 उपभोक्ता-बचत के विचार को उपभोक्ता रीति तथा उदासीनता वक्र रीति दोनों द्वारा स्पष्ट कीजिए और इसके माप की कठिनाइयो की व्याख्या कीजिए।

2 उपभोक्ता की बचत की धारणा की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। प्रो हिक्स इस धारणा के पुर्ननिर्माण मे कहा तक सफल हुआ है?

3 हिक्स द्वारा उपभोक्ता-बचत की धारणा के पुर्ननिर्माण की विवेचना करिए।

अध्याय 15

मांग सिद्धांत में नूतन विकास
(RECENT DEVELOPMENTS IN DEMAND THEORY)

1. भूमिका
(INTRODUCTION)

उपभोक्ता व्यवहार के परपरागत और आधुनिक सिद्धात क्रमसख्या और गणनसख्या उपयोगिता विश्लेषण पर आधारित सैद्धातिक आर्थिक विश्लेषण का आधार रहे हैं। हाल ही के वर्षों में, अर्थशास्त्रियों ने व्यावहारिक अर्थशास्त्र मे इनकी लाभदायकता पर आपत्ति उठाई है, और तदनुसार माग सिद्धात को अधिक वास्तविक बनाने हेतु मॉडलों का निर्माण तथा सिद्धातों का प्रतिपादन किया है। हम इस अध्याय मे माग सिद्धात की व्यावहारिक धारणा जिसमे स्थिर-लोच माग फलन, गत्यात्मक माग फलन और अनुभवसिद्ध माग फलन सम्मिलित है तथा रेखीय व्यय प्रणालिया, परोक्ष उपयोगिता फलन, व्यय फलन, और लकास्टर के विशेषता सिद्धात की विवेचना की गई है।

2 मांग सिद्धांत की व्यावहारिक धारणा
(THE PRAGMATIC APPROACH TO DEMAND THEORY)

उपभोक्ता व्यवहार के परपरागत और आधुनिक सिद्धात अर्थशास्त्रियों को उनके मॉडलो के लिए सैद्धातिक आधार प्रदान करते है, परन्तु उनका वास्तविक जगत की जटिल समस्याओं के लिए प्रत्यक्ष व्यावहारिक प्रयोग नहीं है। फिर भी, वे प्रत्यक्ष तौर से मार्किट आकडों पर आधारित माग फलनो के साख्यिकीय अनुमान का प्रारभिक बिन्दु प्रदान करते हे। इसलिए, हाल ही मे बहुत से अर्थशास्त्रियो ने स्थैतिक और गत्यात्मक दोनो दृष्टिकोणो से माग फलनो का अध्ययन किया है। माग के मूल नियम को स्वीकार करते हुए, उन्होने बहुचर माग फलनों (multivariate demand functions) प्रतिपादित किए है, जिनमे एक वस्तु की माग केवल वस्तु की कीमत का फलन न होकर बहुत से चरो का फलन है। इन चरो मे अन्य वस्तुओ की कीमते, उपभोक्ताओ की आय, उपभोक्ताओ की रुचिया, आदि सम्मिलित है। ऐसे माग फलनो ने मुख्यतया उपभोक्ताओ की मार्किट माग पर केन्द्रित किया है, न कि व्यक्तिगत उपभोक्ता की माग पर। फिर, कुछ माग फलन वस्तुओ के विभिन्न ग्रुपो पर विचार करते है, जैसे खाद्य वस्तुओ की माग, स्थायी वस्तुओ की माग, सेवाओ की माग, आदि। यह मांग सिद्धात की व्यावहारिक धारणा है। हम नीचे कुछ ऐसे माग फलनो का विश्लेषण करते है।

1. स्थिर लोच का माग फलन (The Constant Elasticity of Demand Function)

बहुत से साख्यिकीय अध्ययनो मे, स्थिर लोच माग फलन का प्रयोग किया जाता है। यह माग और उसके ऐसे निर्धारकों जैसे वस्तु की कीमत, सबधित वस्तुओ की कीमते, उपभोक्ता की आय, आदि के बीच सबध के बारे मे बहुत सरल मान्यताओं पर आधारित है। यह मान लिया जाता है

कि उपभोक्ता की आय और सबधित वस्तुओ की कीमते स्थिर है। इस आधार पर, माग फलन मे कीमत-मात्रा सबध को अलग कर लिया जाता है। जहा तक माग फलन (वक्र) की आकृति है, वक्र को साख्यिकीय आकडो के आधार पर स्थित (fit) किया जाता है। परन्तु वक्र एक छल है, क्योकि यह सही प्रमाण को कभी व्यक्त नहीं करेगा बल्कि केवल उसका सन्निकट (approximation) होगा।

स्थिर-लोच माग फलन का सामान्य रूप है,

$$Q_x = a\ P_x^b\ P_o^c\ Y^d\ e^{ft} \qquad (1)$$

जहा Q_x = वस्तु x की मागी गई मात्रा
a = स्थिराक
P_x = x की कीमत
b = माग की कीमत लोच
P_o = अन्य असबंधित वस्तुओ की कीमते
c = माग की प्रतिलोच (cross elasticity)
Y = उपभोक्ता आय
d = माग की आय लोच
e = सहज लघुगणिको (natural logarithms) का आधार
ft = रुचियो के लिए प्रवृत्ति-घटक (trend factor)

ऊपर समीकरण (1) मे दिया फलन माग का स्थिर लोच फलन कहलाता है, क्योकि माग की लोचो के गुणाक b, c और d स्थिर मान लिए गए है।

इसकी उपपत्ति (Its Proof)

इसे सिद्ध करने के लिए, हम मात्रा ओर वस्तु X की कीमत के लघुगणिक लेते है, माग फलन के अन्य निर्धारक चरो को स्थिर मानते हुए।

स्थिर कीमत लोच के माग फलन के लिए,

$$b = \frac{\Delta Q_x / Q_x}{\Delta P_x / P_x}$$

एक स्थिराक है।

इस विशेपता का प्रयोग करते हुए कि लघुगणिको मे गणितीय परिवर्तन चर मे आनुपातिक परिवर्तन व्यक्त करते है, हम लिख सकते है,

$$\Delta \log Q_x = b\, \Delta \log P_x$$

जहा $\Delta \log Q_x = \Delta Q_x/Q_x$, $\Delta \log P_x = \Delta P_x/P_x$, और b माग की कीमत लोच है, जिससे,

$$b = \frac{\Delta Q_x / Q_x}{\Delta P_x / P_x}$$

जहा b स्थिर मान ली गई है।

सामान्यीकरण करते हुए है, P_x, P_o और Y का स्थिर-लोच का माग फलन लघुगणिको के रूप मे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है,

$$\log Q_x = \log a + b \log P_x + c \log P_o + d \log Y \qquad (2)$$

सरलीकरण के लिए समीकरण (1) के पद e^{ft} को नहीं लिया गया है।

समीकरण (2) को सहज इकाइयो मे परिवर्तित करते हुए, यह बन जाता है,

$$Q_x = a\ P_x^b\ P_o^c\ Y^d \qquad (3)$$

ग्राफीय प्रस्तुतीकरण (Graphic Presentation)

स्थिर लोच के माग फलन को ग्राफीय रूप में चित्र 15 1 मे प्रस्तुत किया गया है जिसे बिन्दुओं के समूह द्वारा आंकडों के एक उपकल्पित सैट पर फिट करके चित्रित किया गया है। इस प्रकार, D वक्र माग की स्थिर कीमत लोच दर्शाता है।

चित्र 15 1

सामान्य तौर से, अर्थशास्त्री समीकरण (3) के माग फलन को शून्य कोटि के एक समरूप फलन के रूप मे व्यक्त करते है। ऐसा माग फलन मे वास्तविक आय ओर सापेक्ष कीमतो को माग फलन मे लेकर किया जाता है, अत

$$Q_x = \left(\frac{P_x}{P}\right)^b \left(\frac{P_o}{P}\right)^c \left(\frac{Y}{P}\right)^d \qquad (4)$$

जहा P एक सामान्य कीमत सूचक है।
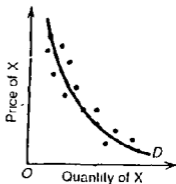
2. गत्यात्मक माग फलन (The Dynamic Demand Functions)

माग सिद्धात मे एक अन्य नूतन विकास गत्यात्मक माग फलन है, जिन्हे **माग के वितरित पश्चता मॉडल** (distributed lag models of demand) कहते है।

गत्यात्मक माग फलनो मे अलग चरो के रूप मे आय और मागी गई मात्रा के पश्चता मूल्य शामिल होते हे जो एक विशेष अवधि मे माग को प्रभावित करते है। ये स्टॉक-समायोजन नियम (stock adjustment principle) पर आधारित है जो यह बताता है कि वर्तमान माग निर्णय पिछले व्यवहार द्वारा प्रभावित होते है। यह मान्यता है कि वर्तमान माग पिछली (past) आय और माग के स्तरो पर निर्भर करती है। एक स्थायी उपभोक्ता वस्तु के लिए, इसके पिछले क्रय इस वस्तु का 'स्टॉक' होते है, जो स्पष्टतया इसके वर्तमान और भविष्य के क्रयो (जैसे पखे, सिलाई मशीने, आदि) को प्रभावित करते है। परन्तु एक गैर-स्थायी उपभोक्ता वस्तु, जैसे खाद्य, पेय, सिगरेट, आदि के लिए पिछले क्रय एक 'आदत' को व्यक्त करते है, जिसे भूतकाल मे वस्तु का क्रय और उपभोग करके अपनाया जाता है और जिससे पिछली अवधियो मे क्रयो का स्तर माग के वर्तमान और भविष्य के ढाचो को प्रभावित करता है। फिर, माग या आय के बहुत नजदीकी भूतकाल के स्तरो का अधिक दूर के स्तरो की तुलना मे वर्तमान उपभोग ढाचो पर अधिक प्रभाव होता है। उदाहरणार्थ, पाच या दस साल पहले अर्जित आय की तुलना मे हम पिछले वर्ष की अपनी आय द्वारा अधिक प्रभावित होते है।

माग ओर आय के एक वितरित-पश्चता मॉडल को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है,

$$Q_t = f(P_t, P_{t-1}, \ldots, Q_{t-1}, Q_{t-2}, \ldots, Y_t, Y_{t-1}, \ldots)$$

जहा Q_t = क्रय की गई वस्तु वस्तु की वर्तमान मात्रा।
P_t = वस्तु की वर्तमान कीमत।
P_{t-1} = पिछली अवधि 1 मे कीमत।
Q_{t-1} और Q_{t-2} = पिछली अवधियो 1 और 2 मे क्रय की गई मात्रा।
Y_t = उपभोक्ता की वर्तमान आय।
Y_{t-1} = उपभोक्ता की पिछली अवधि 1 मे आय।

यह फलन दर्शाता है कि वर्तमान माग निर्णय कीमत, माग और आय के पिछले स्तरो द्वारा प्रभावित होते है।

(1) टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओ के लिए माग फलन (Demand Function for Consumer Durables)—ऊपर का माग फलन नेरलोव (Nerlove) के स्टॉक समायोजन नियम पर आधारित है और जब इसे टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओ पर लागू किया जाता है तो माग फलन इस रूप का होता है,

$$Q_t = aY_t + bQ_{t-1} \qquad (1)$$

जहा Q_t = वर्तमान क्रय Y_t = वर्तमान आय, Q_{t-1} = पिछली अवधि मे क्रय की गई मात्रा, और a और b प्राचल (parameters) है।

यह फलन निम्न तरीके से व्युत्पन्न किया जाता है।

टिकाऊ वस्तुओ का एक वाछित (या इच्छित) स्तर Q_t है, जो वर्तमान आय Y_t द्वारा निर्धारित होता है,

$$Q_t^* = cY_t \qquad (2)$$

जहा c प्राचल है।

लेकिन उपभोक्ता अपनी सीमित आय, अपर्याप्त बचतो, साख प्रतिबधो, आदि के कारण टिकाऊ वस्तुओ का इच्छित स्तर शीघ्र खरीद नहीं सकता है। इसलिए उपभोक्ता प्रत्येक अवधि मे अपने इच्छित स्तर का केवल एक अश ही खरीदता है। यदि पिछली अवधि मे खरीदी गई मात्रा से **वास्तविक परिवर्तन** $Q_t - Q_{t-1}$ है, तो यह वाछनीय परिवर्तन का केवल एक अश k है, $Q_t - Q_{t-1}$ अत

$$Q_t - Q_{t-1} = k(Q_t^* - Q_{t-1}) \qquad (3)$$

जहा $Q_t - Q_{t-1}$ वास्तविक परिवर्तन है, $Q_t^* - Q_{t-1}$ वाछनीय परिवर्तन है ओर k स्टॉक समायोजन का गुणाक है, और $0 < k < 1$

समीकरण (2) को (3) मे स्थानापन्न करने से, हमे प्राप्त होता है

$$Q_t - Q_{t-1} = k(cY_t - Q_{t-1})$$

पुन व्यवस्थित करने से,

$$Q_t = (kc)Y_t + (1-k)Q_{t-1}$$

$kc = a$ और $(1-k) = b$ सैट करके, हम समीकरण (1) पर पहुचते है

$$Q_t = aY_t + bQ_{t-1}$$

(2) गैर-टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के लिए माग फलन (Demand Function for Consumer Non-durables)—होथैकर और टेलर[1] ने नेरलोव स्टॉक-समायोजन नियम के स्थान पर आदत निर्माण नियम (habit formation principle) स्थानापन्न करके उसे गैर-टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओ पर फेलाया। इस माग फलन में, गैर-टिकाऊ वस्तुओ के लिए वर्तमान माग, अन्य बातो के अतिरिक्त, आदत पर आधारित वस्तुओ के पिछले क्रयो (Q_{t-1}) पर निर्भर करती है। माग फलन इस रूप का होता है,

$$Q_t = a + b_1P_t + b_2\Delta P_t + b_3Y_t + b_4\Delta Y_t + b_5Q_{t-1}$$

जहा a = स्थिराक, P_t वर्तमान कीमत, ΔP_t = कीमत मे परिवर्तन, Y_t = वर्तमान आय, ΔY_t = आय मे परिवर्तन, और b_1 से b_5 प्राचलिक गुणाक (parametric coefficients) है।

वास्तव मे, गैर-टिकाऊ वस्तुओं के लिए माग फलन टिकाऊ वस्तुओ से व्युत्पन्न की जाती है, जो

1 H S Houthakkar and L D Taylor, *Consumer Demand in the United States*, 1966

किसी भी अवधि मे वर्तमान कीमत, टिकाऊ वस्तुओं के स्टॉक, गैर-टिकाऊ वस्तुओ के स्टॉक के लिए आदत और वर्तमान आय स्तर पर निर्भर करता है।

3 अनुभवसिद्ध माग फलन (Empirical Demand Function)

सामान्यत , एक वस्तु के लिए माग फलन को ऐसे लिखा जा सकता है,

$$Q = F(P, P_c, P_s, Y, T)$$

जहा Q = मागी गई वस्तु की मात्रा, P = वस्तु की कीमत, पूरक वस्तुओ की कीमत, P_s स्थानापन्न वस्तुओ की कीमत, Y = उपभोक्ता की आय, और T = उपभोक्ता की रुचिया।

यह फलन दर्शाता है कि एक वस्तु की माग उसकी अपनी कीमत, अपनी पूरक और स्थानापन्न वस्तुओं की कीमतो, तथा उपभोक्ता की आय और रुचियों पर निर्भर करती है।

परन्तु यह फलन इतना साधारण है कि इसका कोई अनुभवसिद्ध औचित्य नहीं हो सकता है। यह केवल बताता है कि वस्तु की मागी गई मात्रा, निर्भर चर Q और स्वतत्र चरों P P_c P_s Y और T के बीच सबध के लिए बिना एक विशेष फलनात्मक रूप बताए, प्रत्येक निर्धारक का फलन है। एक आनुभविक अनुभवसिद्ध माग फलन का अनुमान लगाने के लिए, यह व्यक्त करना आवश्यक है कि वस्तु की माग पर अन्य वस्तुओ की कीमतो का मापने योग्य क्या प्रभाव है। यदि रुचिया समयोपरि स्थिर रहे तो कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती है तथा T को अनुमानित समीकरण से निकाला जा सकता है। यदि रुचिया समयोपरि (everting) परिवर्तन होती है तो परिवर्ती के रूप मे एक समय चर ले लिया जाता है। द्वितीय कुछ समय के लिए आर्थिक और राजनैतिक घटको के कारण रुचिया परिवर्तित हो सकती है। इसलिए एक डम्मी (दिखावटी) चर D उस अवधि के लिए प्रयोग किया जाता है। फिर, एक त्रुटि पर u भी एक फलन मे प्रयोग किया जाता है।

आर्थिक आंकडों के साख्यिकीय विश्लेषण के लिए बहुगुण प्रतीपगमन (multiple regression) जसी तकनीको का प्रयोग किया जाता है जो एक माग फलन के गुणाको का अनुमान लगाने के लिए माग पर आनुभविक आकडे और उसके निर्धारको का प्रयोग करने की अनुमति देता है।

यदि विभिन्न स्वतत्र चरों को मागी गई मात्रा के साथ जोडते हुए गुणाको के आकार का अनुमान लगाना हो, तो एक विशेष फलन रूप चुनने की आवश्यकता होती है। दो सामान्य रूप है रेखीय माग फलन और घातीय माग फलन।

रेखीय मांग फलन (linear demand function) इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$Q = a + bP + b_2P_c + b_3P_s + b_4Y + b_5T + b_6D + u$$

यदि प्रत्येक चर के लिए आकडे उपलब्ध हैं और बहुगुण प्रतीपगमन (multiple regression) की तकनीक को लागू करने के लिए पर्याप्त प्रेक्षण (observations) है, तो अवरोध (intercept) a के लिए गुणाक और मागी गई मात्रा पर प्रत्येक निर्धारक (b_1 to b_6) के प्रभाव को दिखाते हुए गुणाको को अनुमानित किया जा सकता है। जब एक बार वे अनुमानित किए गए हो, तो प्रत्येक निर्धारक हेतु मूल्यो के किसी सैट के लिए मागी गई मात्रा को हल करना सभव है। ऐसा इन मूल्यों को समीकरण में शामिल करके किया जाता है।

घातीय मांग फलन (exponential demand function) के लिए, अनुमानित लोचें, अर्थात्, अपनी-कीमत (own - price) लोच, प्रति-कीमत (cross-price) लोचें और आय लोच, आकडों के समस्त रेंज पर स्थिर मानी जाती हैं। यह भी मान लिया जाता है कि फलन मे रुचिया स्थिर है और त्रुटियों को निकाल दिया गया है, ताकि सरलीकरण के लिए T, D और u समीकरण मे न लिए जाएं। *इस प्रकार रेखीय माग फलन का विकल्प घातीय माग फलन है जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है*

$$Q = P^a \quad P_c^b \quad P_s^c \quad Y^d$$

इस रूप मे, a b, c और d लोचे घाताक है ओर ऊपर के माग फलन को लघुगणक (logarithms) लेकर एक रेखीय रूप मे इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$\log Q = a \log P + b \log P_c + c \log P_s + d \log Y$$

इस समीकरण की माग की विभिन्न लोचो के सीधे अनुमान देकर बहुगुण प्रतीपगमन की विधियो का प्रयोग करके अनुमानित किया जा सकता है।

आनुभविक माग वक्र (Empirical Demand Curve)—एक आनुभविक माग वक्र को समयोपरि विभिन्न कीमतो पर वस्तु की मागी गई मात्राओ के प्रेक्षित (observed) मार्किट आकडो से व्युत्पन्न या फिट किया जा सकता है, यह मानते हुए कि पूरक ओर स्थानापन्न वस्तुओ की कीमते ओर उपभोक्ताओ की आय ओर रुचिया स्थिर है। इसे चित्र 15 2 मे DD माग वक्र दिखाया गया है। यदि पूरक और स्थानापन्न वस्तुओ की कीमते और उपभोक्ताओ की आय और रुचिया समयोपरि परिवर्तित होते है, तो आनुभविक माग वक्र ऊपर या नीचे की ओर D_1D_1 या D_2D_2 पर सरक सकता है।
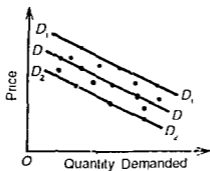
चित्र 15 2

माग फलनो की सीमाए (Limitations of Demand Functions)

माग सिद्धात की व्यावहारिक धारणा मे ऊपर वर्णित माग फलनो के अनुमान लगाने मे अनेक साख्यिकीय समस्याए है।

(1) वस्तुओ और व्यक्तियो के समूहन की समस्या उत्पन्न होती है जिससे सूचकाको के प्रयोग की आवश्यकता पडती है। परन्तु सूचकाको का निर्माण अनेक समस्याओ से सबधित होता है।

(2) माग फलन का अनुमान लगाते समय भी समस्या उत्पन्न होती है, जब माँग के निर्धारको मे एक-साथ परिवर्तन होता है। इससे प्रत्येक निर्धारक के अलग प्रभाव का मूल्याकन करने मे समस्याए उत्पन्न होती है।

(3) माग फलन का अनुमान लगाने मे बहुगुण प्रतीपगमन की विधि आकडो को 'श्रेष्ठ फिट' प्रदान करती है। परन्तु 'श्रेष्ठ फिट' घटिया हो सकता है और माग फलन माग मे परिवर्तन केवल एक बहुत छोटे अनुपात की व्याख्या कर सकता है।

(4) माग फलन मे व्यक्तिगत गुणाको के अनुमानित मूल्य केवल 'अच्छे अनुमान' है, यदि 'त्रुटि' पद के बारे मे प्रतिबधक मान्यताओ की सख्या वैध (valid) हो। यदि ऐसा नहीं है, तो शुद्धिया करनी पडेगी जो सर्वथा सतोषजनक होनी आवश्यक नहीं है।

(5) माग वक्र का अनुमान लगाते समय एकीकरण की समस्या उत्पन्न होती है। एक वस्तु की कीमत और उसकी माग से सबधित प्रेक्षणों के एक सेट के आधार पर खींचा गया माग वक्र 'श्रेष्ठफिट' है। इसके बावजूद यदि पूर्ति वक्र शिफ्ट करता है, तो पूर्ति वक्र द्वारा ट्रेस किए गए बिन्दु मांग वक्र का भी एकीकरण कर सकते है। एकीकरण समस्या के हल के लिए माग फलन के लिए अकेले समीकरण की अपेक्षा अनेक युगपत् समीकरण चाहिए जो एक जटिल प्रक्रिया है।

3. रेखीय व्यय सिस्टम (LES)
(THE LINEAR EXPENDITURE SYSTEM)

प्रो आर स्टोन[2] ने उपयोगिता फलन पर आधारित रेखीय व्यय प्रणाली का मॉडल प्रतिपादित किया, जिससे एक बजट प्रतिबध के अधीन उपयोगिता फलन को अधिकतम करके माग फलनो को सामान्य तरीके से व्युत्पन्न किया जाता है। इस पहलू में, LES की धारणा उदासीनता वक्र की धारणा के समान है। फिर भी, इन मे दो अतर है (1) उदासीनता वक्र व्यक्तिगत वस्तुओं से सबध रखते हैं जब कि LES 'वस्तुओं के ग्रुपों' से सबधित है। (2) उदासीनता वक्र प्रणाली में वस्तुओं का स्थानापन्न किया जा सकता है, जबकि LES मे ग्रुपों के बीच स्थानापन्न नहीं किया जाता है।

इसकी मान्यताएं (Its Assumptions)

रेखीय व्यय सिस्टम का एक मॉडल निम्न मान्यताओं पर आधारित है

1 उपभोक्ता वस्तुओं के पाँच ग्रुप है, A, B, C D और E।

2 वस्तुओं के प्रत्येक ग्रुप में सभी स्थानापन्न और पूरक शामिल हैं।

3 ग्रुपों के बीच वस्तुओं की कोई स्थानापन्नता नहीं है, परन्तु एक ग्रुप में स्थानापन्नता हो सकती है।

4 उपभोक्ता की आय दी हुई और स्थिर है।

5 उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों पर ध्यान दिए बिना, प्रत्येक ग्रुप में से वस्तुओं की कुछ न्यूनतम मात्रा खरीदता है। इन्हें जीविका मात्राएं कहते हैं जिन्हें उपभोक्ता अपने जीवन-निर्वाह के लिए खरीदता है। उन पर व्यय की गई मुद्रा निर्वाह-आय कहलाती है। शेष आय, जिसे अतिरिक्त आय कहते हैं, उसे वस्तुओं के विभिन्न ग्रुपों के बीच उनकी कीमतों के आधार पर आवटित कर दिया जाता है।

6 उपभोक्ता विवेकपूर्णता से कार्य करता है।

7 उपयोगिताएं योगात्मक हैं।

LES की मॉडल

ये मान्यताएं दी होने पर, प्रो स्टोन ने लघुगणकों (logarithms) में वस्तुओं के ग्रुपों का एक योगात्मक उपयोगिता फलन प्रतिपादित किया

$$U \sum_{i=1}^{n} a_i \log (Q_i - C_i)$$

अर्थात् $$U = U_A + U_B + U_C + U_D + U_E$$

या $$U = (Q_1 - C_1)^{a1} (Q_2 - C_2)^{a2} \quad (Q_n - C_n)^{an}$$

या $$U = a_1 \log (Q_1 - C_1) = a_2 \log (Q_2 - C_2) + \quad + a_n \log (Q_n - C_n)$$

$$[0 < a_i < 1, C_i > 0 \ (Q_i - C_i) > 0]$$

उपभोक्ता अपने बजट (आय) प्रतिबध के अधीन अपनी कुल उपयोगिता को अधिकतम करता

2 Stone. "Linear Expenditure Systems and Demand Analysis," *E J* 1954

है जिसमे उसका उपयोगिता फलन है

Maximise $U = a_1 \log(Q_1 - C_1) + \quad + a_n \log(Q_n - C_n)$

Subject to $Y = \Sigma P_i Q_i$

प्रतिबधित उपयोगिता फलन का अधिकतमकरण निम्न माग फलन देता है

$$Q_i = C_i + \frac{a_i}{P_i}(Y - \Sigma P_i C_i) \qquad (1)$$

जहा Q_i = ग्रुप i की मागी गई मात्रा

C_i = ग्रुप i वस्तुओं की न्यूनतम मात्रा

a_i = सीमात बजट हिस्सा अर्थात् यदि कुल आय एक इकाई द्वारा परिवर्तित होती है तो ग्रुप i पर कितना व्यय बढ़ता है।

P_i = ग्रुप i का कीमत सूचक

Y = उपभोक्ता की कुल आय

$\Sigma P_i C_i$ = उपभोक्ता की निर्वाह-आय

$(Y - \Sigma P_i C_i)$ = उपभोक्ता की अतिरिक्त आय।

माग फलन (1) ऐसे भी लिखा जा सकता है

$$P_i Q_i = P_i C_i + a_i (Y - \Sigma P_i C_i)$$

इसे उपभोक्ता का ग्रुप i वस्तुओं पर व्यय पडना चाहिए $P_i Q_i = P_i C$ (उसका निर्वाह-व्यय) + $[a_i (Y - \Sigma P_i C_i)]$ उसका अतिरिक्त व्यय।

4 परोक्ष उपयोगिता फलन
(THE INDIRECT UTILITY FUNCTION)

परोक्ष या अप्रत्यक्ष उपयोगिता फलन रेखीय प्रोग्रामिग तकनीक (linear programming technique) की शब्दावली में उपयोगिता अधिकतमकरण समस्या की व्याख्या करता है।

उपयोगिता अधिकतमकरण समस्या को हल करने के लिए, हम इस प्रकार लिखते हैं

$$\text{Max} \quad U(X)$$

$$\text{Subject to} \quad \sum_i P_i X_i \le Y \qquad (1)$$

जहा X_i = i वस्तुओं का उपभोग बडल

U = उपभोग बडल से प्राप्त हुई उपयोगिता

P_i = i वस्तुओं की कीमतें

Y = उपभोक्ता की कुल आय।

मान लीजिए कि $\lambda_i = P_i/Y$ और अब उपयोगिता अधिकतमकरण समस्या को इस प्रकार लिखा जा सकता है,

$$\text{Max} \quad U(X)$$

$$\text{Subject to} \quad \sum_i \lambda_i X_i \le 1 \qquad (2$$

जहा λ_i सामान्यकृत (normalised) कीमतें।

इस रूप में, उपयोगिता-अधिकतमकरण समस्या के n चरो के दो सैट होते हैं (i) X मूल्यो के साथ उपभोग मात्राए, और (ii) सामान्यकृत कीमतें $\lambda = \lambda_1 \ldots \lambda_n$ मूल्यो के साथ।

इष्टतम माग बडल माग फलन के सिस्टम द्वारा इस प्रकार दिया जाता है

$$X_i = d_i(\lambda) \qquad i = 1, \quad n \tag{3}$$

अधिकतम उपयोगिता स्तर समीकरण (3) के इष्टतम उपभोग बडल को समीकरण (1) के उपयोगिता फलन मे स्थानापन्न करके प्राप्त किया जाता है। आगे, यह इष्टतम उपभोग बडल आय स्तर और कीमतो के सदिश (vector) पर निर्भर करता है, जो समीकरण (3) मे माग फलन के सिस्टम मे प्रतिबिंबित होता है। इससे प्राप्त होता है परोक्ष उपयोगिता फलन,

$$V(\lambda) = U(d_i(\lambda), \quad , d_n(\lambda)) \tag{4}$$

V परोक्ष उपयोगिता फलन कहलाता है, क्योंकि यह परोक्ष रूप से आय स्तर और कीमत सदिश या सामान्यीकृत कीमतो के एक सैट λ पर निर्भर करती है।

परोक्ष उपयोगिता फलन की विशेषताए (Properties of Indirect Utility Function)

परोक्ष उपयोगिता फलन की निम्न विशेषताए है

1 यदि U निरतर है, तो V भी λ के सभी धनात्मक सेटो पर निरतर है।

2 U नहीं बढता क्योकि यदि कीमत बढाई जाती है या आय कम की जाती है, तो यह अधिकतम उपयोगिता को नहीं बढा सकती है। यह सही है यद्यपि U अह्रासमान (non-decreasing) नहीं है।

3 U जरूरतन् घटती नहीं जब ith सामान्यकृत कीमत हो, यद्यपि U उपभोग बडल ith मे बढ रही हो।

4 यदि एक कोणात्मक हल (corner solution) हो, अर्थात् $X_i = 0$, तो P_i को बढाने से उपभोक्ता की उपयोगिता पर कोई प्रभाव नहीं होता। उदाहरणार्थ, यदि मारुती जेन की कीमत बढा दी जाती है, तो इसका अधिकतर उपभोक्ताओ के उपयोगिता स्तरो पर प्रभाव नहीं पडता है।

ग्राफीय प्रस्तुतीकरण (Graphic Presentation)

परोक्ष उपयोगिता फलन को परोक्ष उदासीनता वक्रो द्वारा चित्रित किया जाता है। मान लीजिए कि केवल दो उपभोक्ता वस्तुए 1 और 2 है जिनकी सामान्यीकृत कीमते λ_1 और λ_2 है जिन्हे क्रमश समानातर और अनुलब अक्षो पर लिया गया है, जैसा कि चित्र 15.3 मे है। एक परोक्षउदासीनता वक्र जैसे IIC_2 सामान्यीकृत कीमतो के सयोगो को दर्शाता है, जो अधिकतम उपयोगिता स्तर को अपरिवर्तित छोड देते है। यदि उपभोक्ता IIC_2 वक्र पर दोनो मे से किसी एक वस्तु से सतुष्ट नहीं है और ऊचे वक्र IIC_3 पर चला जाता है, तो दोनो वस्तुओ की सामान्यीकृत कीमते बढती है और उपयोगिता घट जाती है। इसके विपरीत, यदि उपभोक्ता नीचे के वक्र IIC_1 पर चला जाता है, तो दोनो वस्तुओ की सामान्यीकृत कीमते कम हो जाती है और उपयोगिता बढ जाती है। इस प्रकार एक परोक्ष उपयोगिता फलन मे परोक्ष ऊचे उदासीनता वक्रो के नीचे उपयोगिता स्तर
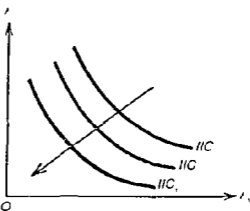
चित्र 15.3

होते है और परोक्ष निचले उदासीनता वक्रो के ऊचे उपयोगिता स्तर होते है।[3]

इसका द्वैत (Its Dual)

उपयोगिता-अधिकतमकरण समस्या का द्वैत उपयोगिता-न्यूनतमीकरण समस्या है जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है,

$$\text{Min} \quad V(\lambda)$$

$$\text{Subject to} \quad \sum_i \lambda_i X_i \leq 1 \qquad (5)$$

उपयोगिता स्तर को न्यूनतम करने के लिए, उपभोग बडल को स्थिर मान लिया जाता है और एक सामान्यीकृत कीमत सदिश λ चुना जाता है। इस न्यूनतमीकरण समस्या के हल को n समीकरण के निम्न सैट द्वारा व्यक्त किया जाता है

$$\lambda_i = a_i(X) \qquad i = 1, \ldots, n, \qquad (6)$$

केवल दो वस्तुए 1 और 2 लेते हुए, न्यूनतमीकरण की समस्या की बजट समानता है

$$\lambda_1 X_1 + \lambda_2 X_2 = 1$$

इसे λ_2 के लिए हल करते हुए

$$\lambda_2 = (1/X_2) - (X_1/X_2)\lambda_1$$

$1/X_2$ वस्तु 2 के लिए बजट प्रतिबध है।

इसी प्रकार, λ_1 के लिए हल करने से वस्तु 1 के लिए बजट प्रतिबध $1/X_1$ है।

ऊपर के हल के आधार पर, उपयोगिता न्यूनतमीकरण समस्या को चित्र 15 4 मे दर्शाया गया है, जहा अनुलब अवरोध $1/X_2$ है ओर समानातर अवरोध $1/X_1$ है। इन्हे मिलाने से, हम बजट रेखा को ट्रेस करते है।

उपयोगिता-न्यूनतमीकरण का इष्टतम हल बिन्दु M पर है जहा बजट रेखा परोक्ष उदासीनता वक्र IIC_2 को स्पर्श करती है, क्योकि यह न्यूनतम उपयोगिता स्तर के साथ उच्चत्तर सभव परोक्ष उदासीनता वक्र है। वक्र IIC_1 इष्टतम उपयोगिता न्यूनतम हल नहीं दे सकता क्योकि IIC_1 वक्र पर उपयोगिता IIC_2 वक्र की अपेक्षा अधिक है। इसी प्रकार,

चित्र 15 4

वक्र IIC_3 इष्टतम हल नहीं देता है यद्यपि इस पर IIC_2 वक्र की अपेक्षा उपयोगिता का कम स्तर है, क्योकि यह उपभोक्ता की बजट रेखा $1/X_2 - 1/X_1$ की पहुच से ऊपर स्थित है। अत केवल बिन्दु
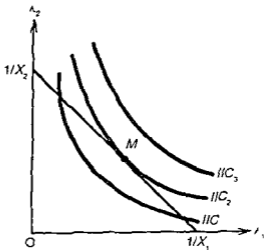
3 सामान्यत परोक्ष उपयोगिता फलन की व्याख्या यहीं तक कीजिए। अगला खण्ड साधारण विद्यार्थी छोड सकते हैं।

M इष्टतम उपयोगिता न्यूनतमीकरण का है।

प्रत्यक्ष और परोक्ष उपयोगिता फलनो में भेद (Difference between Direct and Indirect Utility Functions)

प्रत्यक्ष उपयोगिता फलन उदासीनता वक्र प्रणाली सबध रखता है और परोक्ष उपयोगिता फलन का सबध भी उदासनीता वक्रो से है जिन्हे परोक्ष उदासीनता वक्र कहते है। इन दोनों मे निम्न समानताए पाई जाती है।

1 दोनो प्रकार के वक्र बिल्कुल एक जैसे लगते है।

2 दोनो मूल के उन्नतोदर (Convex) है।

3 इन वक्रो के किसी भी बिन्दु पर उपभोक्ता उदासीन होता है क्योंकि उसे प्रत्येक पर समान उपयोगिता प्राप्त होती है।

परन्तु इन दोनों प्रकार के वक्रो मे एक मुख्य अन्तर पाया जाता है। ऊचे प्रत्यक्ष उदासीनता वक्र ऊचे उपयोगिता स्तरो के साथ सबधित होते है। इसके विपरीत ऊचे परोक्ष उदासीनता वक्र निचले उपयोगिता स्तरो के साथ सबधित होते है।

5. व्यय फलन
(THE EXPENDITURE FUNCTION)

उपभोक्ता व्यय फलन यह बताता है कि उपभोक्ता अपना व्यय कैसे कम करता है, वस्तुओं की कीमते और उपयोगिता स्तर दिए होने पर उपभोक्ता व्यय फलन की व्युत्पत्ति रेखीय प्रोग्रामिंग तकनीक पर आधारित है। उपभोक्ता व्यय को न्यूनतम करने के लक्षित फलन का हल है

$$\left.\begin{array}{ll}\text{Min} & \sum_i P_i X_i \\ \text{Subject to} & U(X) \geq U\end{array}\right\} \quad (1)$$

जहा P_iX_i कुल व्यय है जिसे न्यूनतम किया जाना है बशर्ते कि इस प्रतिबंध के कि उपयोगिता स्तर U से कम न हो। समीकरण (1) का हल कीमतो के मूल्यो और उपयोगिता स्तर पर निर्भर करता है जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है,

$$X_i = f_i(P, U) \qquad i = 1, \quad n \quad (2)$$

इस फलन को लक्षित फलन (1) मे स्थानापन्न करने से एक फलन प्राप्त होता है जो व्यय के न्यूनतम स्तर को व्यक्त करता है जो उपयोगिता स्तर U प्राप्त कर सकता है, कीमते P दी होने पर,

$$\sum_i P_i f_i(P, U) \quad (3)$$

यह उपभोक्ता व्यय फलन है।

चित्र 15 5 व्यय फलन दर्शाता है, दो वस्तुएँ X_1 और X_2, उनकी कीमते P_1 और P_2 तथा उपभोक्ता का आय स्तर Y_1 दिए होने पर। वस्तु X_1 समानातर अक्ष पर और वस्तु X_2 को अनुलब अक्ष पर लिया गया है। अवरोध Y_1/P_2 और Y_1/P_1 को मिलाने से बजट रेखा है, जो उपभोक्ता का व्यय स्तर दर्शाती है। बजट रेखा $Y_0/P_2 - Y_0/P_1$ निचले आय स्तर को प्रतिबिंबित करती है।

व्यय न्यूनतमीकरण समस्या (1) को हल करने के लिए उपयोगिता स्तर, U को प्राप्त करना है जिसे एक उदासीनता वक्र द्वारा व्यक्त किया जाता है जो इन बजट रेखाओं मे से सबसे निचली बजट रेखा को स्पर्श करता है। चित्र बिन्दु E है जहा उदासीनता वक्र U की बजट रेखा $Y_1/P_2 - Y_1/P_1$ स्पर्श करती है। यह वह बिन्दु है जहा उपभोक्ता दो वस्तुओं X_1 और X_2 पर अपने व्यय को न्यूनतम करती है, उसकी कीमतें और उसकी आय Y_1 दी होने पर।

इसे सिद्ध करने के लिए, बजट रेखा Y_2/P_2 - Y_2/P_1 लीजिए जो Y_2 आय स्तर के अनुकूल है, जहा उदासीनता वक्र U इसे E_1 और E_2 बिन्दुओं पर काटता है। उपभोक्ता उपयोगिता स्तर U को E_1 या E_2 पर प्राप्त करता है परन्तु उपभोक्ता के सतुलन की शर्तों को इन मे से किसी भी बिन्दु पर पूरा नहीं करता है। ये है (i) सतुलन बिन्दु पर बजट रेखा की ढलान और उदासीनता वक्र की ढलान समान हो, और (ii) स्पर्श बिन्दु पर उदासीनता वक्र मूल के उन्नतोदर हो। ये शर्तें बिन्दु E_1 या E_2 पर पूरी नहीं होती है। अब बजट रेखा Y_0/P_2 - Y_0/P_1 लीजिए जो आय स्तर Y_0 के अनुकूल है, जो उदासीनता वक्र U के नीचे है। यहा उपभोक्ता उदासीनता वक्र U जो उपयोगिता स्तर को व्यक्त करता है उसके आय स्तर Y_0 के साथ प्राप्त नहीं कर सकता है। अत यह ही ऐसा बिन्दु है जिस पर उपभोक्ता उपयोगिता स्तर U को प्राप्त करके अपने व्यय को न्यूनतम करता है।
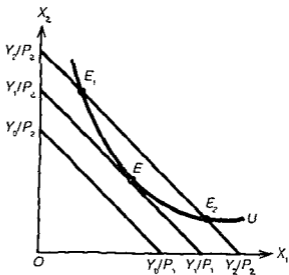
चित्र 15 5

6. लकास्टर का विशेषता माग सिद्धात
(LANCASTER'S ATTRIBUTES OR CHARACTERISTICS DEMAND THEORY)

प्रो लकास्टर ने वस्तुओ की विशेषताओ पर आधारित एक नए उपभोक्ता सिद्धात का 1966 मे प्रतिपादन किया। इस सिद्धात के अनुसार, वस्तुओ की विशेषताए न कि स्वय वस्तुए उपयोगिता देती है और वस्तुओ को विशेषताओ के समूह (bundle) समझा जाता है। बैड का उदाहरण लीजिए जिसकी विशेषताओ मे स्वाद, कैलोरी, प्रोटीन, आदि शामिल है। फिर भी, विभिन्न वस्तुओ मे अन्य विशेषताओ के साथ विभिन्न मिश्रणो (mixtures) मे एक समान विशेषता हो सकती है। सेब, आम, सतरे, आदि की अनेक किस्मो मे मिठास, सुगध, रसीलापन, पोष्टको, आदि के विभिन्न समूह होते है। एक 'गोल्डन' सेब मे एक 'मीठे लाल' सेब की तुलना मे विशेषताओ का भिन्न समूह होता है। लकास्टर के अनुसार, प्रत्येक वस्तु वाछनीय विशेषताए उत्पादित करने के लिए एक उपभोग टेकनॉलाजि प्रस्तुत करती है।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

लकास्टर के माग सिद्धात की व्याख्या करने के लिए हम नीचे वर्णित मान्यताए लेते है।

1 सेबो की A, B और C तीन किस्मे या ब्रेड है।

2 उनकी केवल दो विशेषताए है मिठास और रसीलापन (रसदार)।

चित्र 15.6

3 मिठास और रसीलापन पैदा करने के लिए सेबों की केवल यही तीन किस्में हैं।

4 मिठास और रसीलापन मे मापे जा सकते हैं।

5 एक ब्रैंड की कीमत दूसरे से भिन्न है।

6 उपभोक्ता की आय दी हुई है।

7 उपभोक्ता का उद्देश्य विशेषताओं के एक मिश्रित समूह के साथ अपनी उपयोगिता को अधिकतम करना है।

सिद्धांत (The Theory)
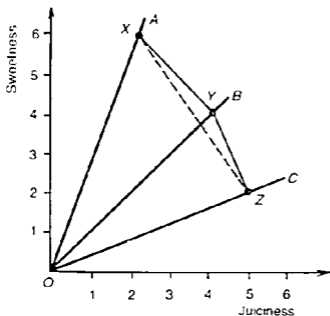
ये मान्यताएं दी होने पर, एक उपभोक्ता जो सेब की केवल एक किस्म का उपभोग करता है वह तालिका I में वर्णित मिठास और रसीलापन की विशेषताओं का उस किस्म में पाये गये अनुपात में ही उपभोग कर सकेगा।

तालिका 15.1 . सेब की विभिन्न किस्मों की विशेषताएं

किस्म	मिठास	रसीलापन
A	6	2
B	4	4
C	2	5

चित्र 15.6 में अनुलम्ब अक्ष पर मिठास और समानान्तर अक्ष पर रसीलापन मापे गए हैं। यदि सेब की प्रत्येक किस्म की तालिका में दिखाई गई विशेषताएं हों, तो एक किस्म की अधिक मात्राएं उपभोक्ता को चित्र में OA OB और OC वस्तु किस्मों द्वारा प्रदर्शित विशेषताओं के संयोग प्रदान करेंगी।

उपभोक्ता की आय और सेब के प्रत्येक ब्रैंड की कीमत दी होने पर, मान लीजिए उपभोक्ता A की OX मात्रा अथवा B की OY मात्रा या C की OZ मात्रा खरीद सकता है। X और Y तथा Y और Z बिन्दुओं को मिला कर उपभोक्ता सेब की तीनों किस्मों की विभिन्न मात्राओं का संयोग करके दोनों विशेषताओं के भिन्न मिश्रण उपभोग कर सकता है। XY रेखा उपभोक्ता की बजट रेखा या विशेषता संभावना सीमा (attributes possibility frontier) अथवा दक्षता सीमा (efficiency

frontier) है जो उन सयोगों को दर्शाती है जिन्हे उपभोक्ता सेब की A और B किस्मों के विभिन्न मिश्रणों पर अपनी दी हुई आय व्यय करके प्राप्त कर सकता है। ऐसा ही yz बजट रेखा के लिए है, जो B और C किस्मों से सबधित है। इस प्रकार, बजट रेखा XYZ दोनो विशेषताओं के विभिन्न सयोगों को दर्शाती है जिन्हे उपभोक्ता सेब की तीनों किस्मों की कीमतें और उसकी आय दी होने पर प्राप्त कर सकता है।

X और Z के बीच बिन्दुकित रेखा दो विशेषताओ के बीच सयोगो को दर्शाती है जिन्हे उपभोक्ता अपनी समस्त आय A और C किस्मों के सयोगों पर व्यय करके प्राप्त कर सकता है। क्योंकि यह रेखा XZ दक्षता सीमा XYZ के नीचे स्थित है, इसलिए उपभोक्ता दोनों विशेषताओं पर अन्य सयोगो की तुलना मे उतनी ही आय व्यय करके कम मात्राए प्राप्त करता है। इस कारण, एक *विवेकी उपभोक्ता नीचे की इस सीमा की उपेक्षा करेगा।*

उपभोक्ता अपनी रुचियों या अधिमानो के सदर्भ मे अपने बजट के भीतर उपभोग अवसरो का मूल्याकन करके दोनो विशेषताओ के सयोगो को चुनता है। उपभोक्ता के अधिमान एक उदासीनता वक्र द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। विशेषता स्थान मे उपभोक्ता के उदासीनता वक्र और बजट सीमा मे स्पर्श वस्तु की किस्मो के सयोग को दर्शाता है जो उसे विशेषताओं के प्रदर्शित सयोग को प्रदान करता है। वह विशेषताओं के उस सयोग का चुनाव करेगा जहा बजट रेखा या सीमा उच्चतम सभव उदासीनता वक्र को स्पर्श करेगी। इसे चित्र 15 7 में दर्शाता गया है जहा OB और OC वस्तु किरणों के बीच उदासीनता वक्र I_2 बजट रेखा XYZ के YZ भाग को E बिन्दु पर स्पर्श करता है।

. दोनो विशेषताओं का निश्चित सयोग मालूम करने के लिए, बिन्दु E से OC किरण के समानातर OB किरण के F बिन्दु पर मिलती हुई एक रेखा खींची गई है, और इसी प्रकार की रेखा E से किरण OC के समानातर OB के बिन्दु G पर मिलती हुई खींची गई है। उपभोक्ता सेब की दोनो किस्मों की दोनो विशेषताओं के इष्टतम मिश्रण को बिन्दु E पर ब्रेड B की इकाइयो को O से F पर OB किरण के साथ गति करके खरीदता है और फिर F से E पर गति करके ब्रैड C की इकाइया खरीदता है।

चित्र 15 7

इसी प्रकार दूसरी ओर, दोनों ब्रैड की विशेषताओं के इष्टतम मिश्रण को ब्रेड C के लिए O से G बिन्दु पर गति करके और ब्रैड B के लिए G से E पर गति करके प्राप्त किया जा सकता है।

दोनों प्रकार से समान निष्कर्ष निकलता है जिसके अनुसार उपभोक्ता OF (=GE) ब्रैड B की इकाइया और OG (= FE) ब्रेड C की इकाइया खरीदता है। इस प्रकार, उपभोक्ता B ब्रैंड से रसीलापन की OK इकाइया और C ब्रेड से रसीलापन की KL इकाइया, तथा C से मिठास
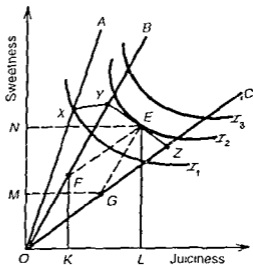
की OM इकाइया और B से MN इकाइया प्राप्त करता है।

यह ध्यान देने योग्य है कि उपभोक्ता I_1 उदासीनता वक्र पर नहीं हो सकता क्योंकि यह उसकी बजट सीमा XYZ से नीचे है तथा वह केवल सेब का A ब्रैड ही X बिन्दु पर खरीद सकता है जब कि मान्यता के अनुसार उसे दो ब्रैड का मिश्रण खरीदना है। फिर, वह I_3 वक्र पर भी नहीं हो सकता क्योंकि यह उसकी बजट रेखा XYZ से ऊपर स्थित है। इस लिए वह केवल I_2 वक्र के बिन्दु E पर ही अपनी उपयोगिता को अधिकतम करता है जहा यह वक्र उसकी बजट रेखा XYZ को स्पर्श करता है।

यह विशेषता सिद्धात वस्तु की कीमत, आय तथा क्वालिटी में परिवर्तनो का उपभोक्ता द्वारा वस्तु की किस्मो के चुनाव पर प्रभावो की व्याख्या उदासीनता वक्र विश्लेषण की तरह करता है।

कीमत प्रभाव अथवा माग का नियम (The Price Effect of low of Demand)

लकास्टर के सिद्धान्त मे उपभोक्ता की माग और विशेषताओ के चुनाव पर वस्तु के एक ब्रैड की कीमत मे परिवर्तन की व्याख्या की जा सकती है।

कीमत में कमी (Fall in Price)—अन्य किस्मो (या वस्तुओ) की कीमतें तथा उपभोक्ता की आय दी होने पर मान लीजिए कि चित्र 15 8 मे उपभोक्ता E बिन्दु पर सतुलन मे है जहा बजट रेखा XYZ का भाग YZ उदासीनता वक्र I_1 को स्पर्श करता है। वह ब्रैड C से OG (=FE) विशेषताए और ब्रैड B से OF (=GE) विशेषताए प्राप्त कर रहा है। अब यदि ब्रैड B की कीमत कम हो जाती है, उपभोक्ता की आय दी होने पर किरण OB का बिन्दु Y किरण के साथ ऊपर की ओर Y_1 पर गति कर जाएगा, जिससे एक नयी बजट सीमा XYZ बन जाती है। OXY_1Z सभाव्य क्षेत्र कहलाता है। नई सतुलन स्थिति बिन्दु E_1 पर है जहा ऊचा उदासीनता वक्र I_2 इस क्षेत्र के भाग Y_1Z को स्पर्श करता है। परिणामस्वरूप, उपभोक्ता ब्रैड B की पहले से अधिक मात्रा OF_1 और ब्रैड AC की पहले से कम मात्रा OG_1 खरीदता है। लकास्टर इसे दक्षता प्रभाव (efficiency effect) कहता है जो B की कीमत कम होने से B और C ब्रैड के मिश्रण मे परिवर्तन है। यह उदासीनता वक्र विश्लेषण के स्थानापन्न प्रभाव के समान है सिवाय इसके कि यह विशेषताओ मे स्थानापन्नता है।

चित्र 15.8

B और C के ब्रैड-मिश्रण का नया सयोग है ब्रैड B से OF_1 (=G_1E_1) विशेषताए और ब्रैड C से OG_1 (=F_1E_1) विशेषताए। इस प्रकार, ब्रैड B की कीमत मे कमी का प्रभाव यह हुआ है कि इसकी माग मे वृद्धि हुई है और ब्रैड C की माग मे कमी। यह माग के नियम की व्याख्या है जब एक ब्रैड या वस्तु की कीमत कम
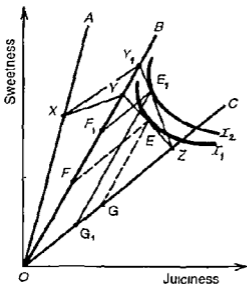
होती है। इसके विपरीत कीमत मे वृद्धि से होता है।

कीमत में वृद्धि (Rise in Price)[4] ब्रैड B की कीमत मे वृद्धि को चित्र 15.9 मे दर्शाया गया है, जहा प्रारभ मे उपभोक्ता है बजट रेखा XYZ ओर I_2 वक्र के स्पर्श बिन्दु E पर सतुलन मे है। मान लीजिए कि B ब्रैड की कीमत मे वृद्धि हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप OB किरण पर Y बिन्दु नीचे O की ओर गति करके Y_0 बिन्दु पर पहुचता है। अब नीचे की बजट रेखा XY_0Z को I_1 वक्र E_0 बिन्दु पर स्पर्श करता है जहा उपभोक्ता सतुलन मे है। अब वह ब्रैड B के स्थान पर ब्रैड C को *स्थानापन्न करता है तथा ब्रैड C की* GG_1 ($OG_1 > OG$) अधिक मात्रा खरीदता है और ब्रैड B की FF_1 ($OF_1 < OF$) पहले से कम मात्रा खरीदता है। यह B ब्रैड की कीमत बढने का लकाम्टर का दक्षता प्रभाव है। B की कीमत बढने का विशेषताओ से सबधित स्थानापन्नता प्रभाव भी होता है क्योकि उपभोक्ता रसीलापन को मिठास के स्थान पर स्थानापन्न करता है जब वह ब्रेड C से अधिक रसीलापन GG_1 को कम मिठास FF_1 से स्थानापन्न करता है।
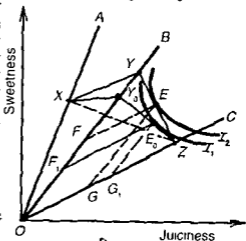
चित्र 15.9

यदि ब्रैड B की कीमत उस स्तर तक बढती है जहा बजट रेखा एक सरल रेखा XZ हो जाती है, *तो उपभोक्ता A और C ब्रैड-मिश्रण को खरीदेगा और ब्रैड B बिल्कुल नहीं खरीदा जाएगा।* परिणामस्वरूप, ब्रैड B की कीमत बहुत अधिक हो जाने से वह मार्किट से बाहर हो जाएगा। ब्रैड B का उत्पादक अपनी कीमत कम कर के मार्किट को पुन प्राप्त कर सकता है जब वह XZ बजट रेखा से *ऊपर OB किरण के किसी भी बिन्दु* पर होता है।

आय प्रभाव (The Income Effect)

उपभोक्ता की आय मे परिवर्तन का वस्तुओ अथवा ब्रैड की माग पर प्रभाव, *उनकी कीमते दी होने पर, माग के विशेषता* सिद्धात द्वारा भी वर्णन किया जा सकता है जिसे चित्र 15.10 में दर्शाया गया है। *विश्लेषण को सरल रखने के लिए केवल दो* ब्रैड B और C लिए जाते है, जबकि उनकी *कीमते दी हुई है। प्रारभ मे, उपभोक्ता E* बिन्दु पर सतुलन मे है जहा उसकी बजट रेखा YZ उदासीनता वक्र I_1 को स्पर्श करती है। वह B का OF (=GE) और C का OG
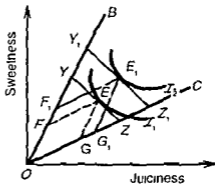
चित्र 15.10

4 विद्यार्थी इस विश्लेषण को छोड सकते हैं।

(= FE) विशेषता ब्रैड-मिश्रण खरीदता है। मान लीजिए कि उसकी आय बढ जाती है जिससे OB किरण पर बिन्दु Y बढकर Y_1 पर चला जाता है और किरण OC पर बिन्दु Z बढ कर Z_1 पर चला जाता है। अब उसका नया संतुलन E_1 बिन्दु पर होता है जहा बजट रेखा Y_1Z_1 ऊचे उदासीनता वक्र I_2 को स्पर्श करती है। परिणामस्वरूप आय बढने से वह B का OF_1 (=G_1E_1) और C और का OG_1 (=F_1E_1) ऊचा विशेषता ब्रैड-मिश्रण खरीदता है। इस प्रकार, उपभोक्ता की आय में वृद्धि का यह प्रभाव होता है कि वह दोनो ब्रैड और उनकी विशेषताओ की पहले से अधिक मात्राए खरीद कर अपनी उपयोगिता को अधिकतम करता है।

उपभोक्ता की आय कम होने पर इसके विपरीत प्रभाव होगा।

वस्तु अथवा ब्रैंड के गुण में परिवर्तन (Change in Quality of Brand or Commodity)

माग का विशेषता सिद्धात उपभोक्ता के व्यवहार पर एक ब्रैड या वस्तु के गुण मे परिवर्तन के प्रभाव की भी व्याख्या करता है। मान लीजिए कि सेब के केवल दो ब्रैड A और B है जिनकी मिठास और रसीलापन विशेषताए तालिका 1 मे दिए गए अनुपात है। फिर, यह भी मान लिया जाता है कि उपभोक्ता केवल B ब्रैड का उपभोग करता है क्योकि इसमे मिठास और रसीलापन विशेषताओ की समान इकाइया है। इस लिए, वह वस्तु किरण OB के बिन्दु Y पर अपनी उपयोगिता को अधिकतम करता है जहा उसका उदासीनता वक्र I_1 स्पर्श करता है, जैसा कि चित्र 15.11 मे दर्शाया गया है।

चित्र 15.11
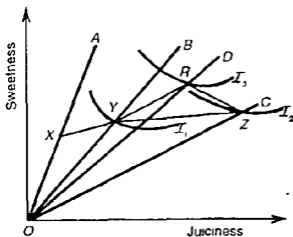
अब मान लीजिए कि एक उत्पादक सेब का नया ब्रैड C उत्पादित करता है जिसमें मिठास की अपेक्षा अधिक रसीलापन है। इसे चित्र मे OC किरण द्वारा दिखाया गया है। इस ब्रैड की अन्य ब्रैड की तुलना मे कीमत भी कम है। ये मान्यताए दी होने पर, उपभोक्ता अपने अधिमान को B से C ब्रैड की ओर परिवर्तित कर देता है जिससे उसकी बजट रेखा XY किरण OC के बिन्दु Z तक बढकर XYZ हो जाती है। अब उपभोक्ता Z बिन्दु पर अपनी उपयोगिता को अधिकतम करता है जहा ऊचा उदासीनता वक्र I_2 इसे स्पर्श करता है।

अब हम एक ऐसी स्थिति लेते है जिसमे एक उत्पादक एक नयी ब्रैड या वस्तु का मार्किट मे प्रवेश करता है, जिसमे दोनो विशेषताओ की अधिक इकाइया है और जो उपभोक्ता को उपयोगिता का ऊचा स्तर प्रदान करता है। इसे चित्र 15.11 मे वस्तु किरण OD खीच कर दर्शाया गया है। इसमे बजट सीमा ऊपर की ओर बढ कर XYRZ हो जाती है और उपभोक्ता ऊचे उदासीनता वक्र I_3 पर चला जाता है जहा वह R बिन्दु को स्पर्श करता है। अब उपभोक्ता केवल इसी ब्रैड की दोनो

विशेषताओ की अधिक इकाइयो का उपभोग करके अपनी उपयोगिता को अधिकतम करता है, *जब कि उसकी आय और ब्रेड की कीमत दी हुई है।*

लकास्टर के माग सिद्धात का आलोचनात्मक मूल्याकन (Critical Appraisal of Lancaster's Demand Theory)

मार्शल के माग सिद्धात उदासीनता वक्र विश्लेषण और प्रकरित अधिमान सिद्धात की तुलना मे लकास्टर का नया माग सिद्धात निम्न कारणो से न केवल श्रेष्ठ है बल्कि उन पर सुधार है।

1 पूर्व सिद्धात उपभोक्ता की माग की केवल अकेली वस्तुए के लिए व्याख्या करते है। परन्तु लकास्टर का माग सिद्धात इन सिद्धातो से श्रेष्ठ है क्योकि यह वस्तुओ या उनके ब्रैड मे पाई जाने वाली विशेषताओ पर बल देता है। एक उपभोक्ता किसी वस्तु को केवल खरीदने के लिए ही नहीं खरीदता बल्कि इसलिए खरीदता है कि उसमे कुछ विशेषताए पाई जाती है जो उसे उपयोगिता प्रदान करती है।

2 *लकास्टर का विशेपता सिद्धात उपभोक्ता व्यवहार के अन्य सिद्धातो पर सुधार है क्योकि यह* इस तथ्य की व्याख्या करता है कि उपभोक्ता केवल एक अकेली वस्तु को न खरीद कर वस्तुओ के मिश्रित समूह (बडल) को खरीदता है जिनकी विभिन्न प्रकार की विशेषताए होती है। यह अधिक वास्तविक है क्योकि, उदाहरण के तौर पर, एक उपभोक्ता केवल एक सब्जी का ही उपभोग नहीं करता परन्तु विभिन्न प्रकार की सब्जिया, जिनकी विशेषताए विभिन्न होती है, खरीदता है।

3 माग के क्लासिकी और नव-क्लासिकी सिद्धात इस प्रश्न का उत्तर प्रदान नहीं करते कि उपभोक्ता एक वस्तु के विशेष ब्रैड को अन्य की अपेक्षा अधिमान क्यो देता है। लकास्टर के सिद्धात के अनुसार ऐसा इस लिए है कि एक विशेष ब्रैड मे अन्य ब्रैड की अपेक्षा अधिक विशेषताए पाई जाती है, जो उपभोक्ता की उपयोगिता को अधिकतम करती है।

4 यह नया माग सिद्धात कपनियों और मार्किट के शोधकर्त्ताओ के लिए एक व्यवहारिक औज़ार प्रदान करता है जिससे वे वस्तुओ की नई किस्मों के लिए विशेषताओ की पहचान करते है। यदि किसी वस्तु का नया ब्रैड चालू किया जाता है जिसकी पहले से बेहतर या अधिक विशेषताए है तो उपभोक्ता इस ब्रैड को अन्य पर अधिमान देगा और खरीदेगा। क्लासिकी और *नव-क्लासिकी सिद्धात उपभोक्ता व्यवहार के इस पहलू की व्याख्या करने मे विफल रहे।*

5 लकास्टर का माग सिद्धात स्थानापन्नो और पूरको की धारणाओ के प्रति एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। लकास्टर के अनुसार, स्थानापन्न वे वस्तुए है जिनकी कुछ समान विशेषताए होती है। वे वस्तुए जिनकी समान विशेषताए नहीं होती वे असबधित है। दूसरी ओर वे वस्तुए पूरक है जिनकी विशेषताओ को दो या अधिक वस्तुए इकट्ठी या मिश्रित करके प्राप्त किया जाता है। उदाहरणार्थ कॉफी, चीनी और दूध, तथा मोमबत्ती और दियासलाई पूरक वस्तुए है।

इसकी कमिया *(Its Weaknesses)*

—लकास्टर के माग सिद्धात की कुछ कमिया भी है जैसे,

(1) किसी वस्तु अथवा ब्रैड को खरीदते समय उपभोक्ता उसकी विशेषताओं के बारे मे जो विचार करता है, सर्वथा व्यक्तिपरक (subjective) है। एक वस्तु की विशेषताए एक उपभोक्ता से दूसरे उपभोक्ता के लिए भिन्न हो सकती है। इस लिए एक वस्तु के विभिन्न ब्रैड से प्राप्त होने वाली विशेषताओ की इकाइयो के बारे मे निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है और न ही ऐसी विभिन्नताओं का माप करना और मापना सभव है।

(2) इस सिद्धात मे वही कमिया पाई जाती है जो उदासीनता वक्र विश्लेषण मे विद्यमान है, क्योकि इसमे एक वस्तु की विभिन्न किस्मो की विशेषताओ के संयोगो के लिए उपभोक्ता अधिमानो *को मापने की आवश्यकता होती है, जिनका सही माप नहीं किया जा सकता है।*

(3) इस नए सिद्धात की एक अन्य त्रुटि यह है कि जब उपभोक्ता किसी वस्तु को खरीदते है तो वे उसकी मात्राओ के लिए व्यय करते है न कि उनमे पाए जाने वाली विशेषताओ के लिए।

इन कमियो के बावजूद, लकास्टर का माग का नेया सिद्धात स्थानापन्न और पूरक की धारणाओ, मार्किट मे किसी वस्तु अथवा उसके ब्रैड के प्रवेश तथा माग सिद्धात के विभिन्न पहलूओ की व्याख्याओ द्वारा आर्थिक सिद्धात मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

प्रश्न

1 माग सिद्धात की व्यावहारिक धारणा (pragmatic approach) की विवेचना कीजिए।

2 माग के स्थिर लोच फलन और गत्यात्मक माग फलन का विवेचन करिए।

3 अनुभवसिद्ध (empirical) माग फलन की व्याख्या कीजिए। ऐसे माग फलन की क्या सीमाए है?

4 परोक्ष उपयोगिता फलन की व्याख्या करिए। यह प्रत्यक्ष उपयोगिता फलन (उदासीनता वक्र) से कैसे भिन्न है?

5 आर स्टोन की रेखीय व्यय प्रणाली (LES) की विवेचना कीजिए।

6 *लकास्टर की माग सिद्धात की विशेषता धारणा की व्याख्या कीजिए। यह उपयोगिता सिद्धात,* उदासीनता वक्र प्रणाली और प्रकटित अधिमान सिद्धान्त से कैसे श्रेष्ठ है।

7 लकास्टर के माग सिद्धात के अनुसार उपभोक्ता माग पर कीमत प्रभाव और आय प्रभाव की व्याख्या करिए।

8 उपभोक्ता व्यय फलन पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

भाग तीन

उत्पादन सिद्धान्त

अध्याय 16

उत्पादन फलन : परंपरागत सिद्धान्त

(PRODUCTION FUNCTION : THE TRADITIONAL APPROACH)

1. प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

परपरागत उत्पादन सिद्धान्त मे एक वस्तु के उत्पादन के लिए प्रयोग मे आने वाले स्रोतो को 'उत्पादन के साधन' कहते है। उत्पादन के साधनो को आजकल आगत (inputs) कहते है जिनके अन्तर्गत उत्पादन की प्रक्रिया मे भूमि, श्रम, पूँजी, और सगठन की सेवाएँ आती है। निर्गत (output) शब्द विभिन्न आगतो द्वारा उत्पादन की गई वस्तु का निर्देश करता है। उत्पादन का सिद्धान्त एक निश्चित निर्गत के उत्पादन के लिए विभिन्न आगतो के सयोगो की समस्याओ से सबध रखता है जबकि प्रौद्योगिकी दी हुई हो। आगतो और निर्गतो के प्रौद्योगिकीय (technological) *सम्बन्ध* को उत्पादन-फलन कहते है। इस अध्याय मे परपरागत विधि से उत्पादन सिद्धान्त का अध्ययन किया जा रहा है और अगले अध्याय मे सममात्रा-समलागत विश्लेषण के रूप मे आधुनिक दृष्टिकोण से व्याख्या की जाएगी।

2 उत्पादन फलन
(THE PRODUCTION FUNCTION)

उत्पादन फलन, आगतो एव निर्गतो की मात्राओ के फलनात्मक (functional) सबध को व्यक्त करता है। यह बताता है कि समय की एक निश्चित अवधि मे आगतो के परिवर्तन से निर्गतो मे किस प्रकार और कितनी मात्रा मे परिवर्तन होता है। प्रो स्टिगलर के शब्दो मे, "उत्पादन फलन उत्पादकीय सेवाओ की आगत की दरो और वस्तु के उत्पादन की दर के बीच सबध को दिया गया नाम है। यह अर्थशास्त्री के तकनीकी ज्ञान का साराश है।"[1] मूलत उत्पादन फलन एक प्रौद्योगिकीय या इजीनियरिंग धारणा है, जिसे एक तालिका, ग्राफ और समीकरण के रूप मे व्यक्त किया जा सकता है, जो प्रौद्योगिकी दी होने पर, उत्पादन मे प्रयोग की गई आगतो के विभिन्न सयोगो से प्राप्त उत्पादन की मात्रा को दर्शाता है। समीकरण के रूप मे इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

$$Q = f(L, M, N, C, \bar{T}) \qquad (1)$$

जहा Q प्रति समय अवधि मे एक वस्तु का उत्पादन है, L श्रम M मैनेजमैंट या सगठन, N

1 "The production function is the name given to the relationship between rates of input of productive services and the rate of output of product It is the economist's summary of technical knowledge" J G Stigler, *op cit*, p 106

प्राकृतिक साधन या भूमि, C पूजी, $\overline{T}$ दी हुई प्रौद्योगिकी और f फलनात्मक सबध के लिए है।

बहुत सी आगतों वाला उत्पादन फलन एक रेखा चित्र मे नहीं दर्शाया जा सकता है। फिर, विभिन्न आगतो के विशिष्ट मूल्य दिए होने पर, ऐसे उत्पादन फलन को गणितीयरूप में हल करना कठिन होता है। इसलिए, अर्थशास्त्री दो-आगत उत्पादन फलन का प्रयोग करते है। यदि दो आगते, श्रम और पूजी, ली जाएँ, तो उत्पादन फलन इस रूप मे होता है,

$$Q = f(L\ C) \tag{2}$$

उत्पादन की तकनीकी अवस्थाओ द्वारा निर्धारित उत्पादन फलन दो प्रकार का होता है स्थिर (rigid) या लचीला। प्रथम का सबध अल्पकाल मे और दूसरे का दीर्घकाल मे होता है।

अल्पकालीन उत्पादन फलन (The Short-Run Production Function)

अल्पकाल मे, उत्पादन की तकनीकी स्थितिया स्थिर होती है जिससे एक निश्चित उत्पादन की मात्रा के लिए प्रयोग किए जाने वाली विभिन्न आगते स्थिर अनुपातो में होती है। फिर भी, अल्पकाल मे भी अधिक उत्पादन करने के लिए अन्य आगतों की मात्राओ को स्थिर रखते हुए किसी एक आगत की मात्राए बढाई जा सकती हैं। उत्पादन फलन के इस पक्ष को परिवर्तनशील अनुपात का नियम (law of variable proportions) कहते है। श्रम और पूजी, दो आगतो, के लिए उत्पादन फलन जिसमे श्रम परिवर्तनशील और पूजी स्थिर हो, इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है,

चित्र 16 1

$$Q = f(L, \overline{C}) \tag{3}$$

जहा $\overline{C}$ दी हुई प्रौद्योगिकी के लिए है।

इस उत्पादन फलन को चित्र 16 1 मे दर्शाया गया है, जहा वक्र की ढलान श्रम के सीमात उत्पाद को व्यक्त करती है। उत्पादन फलन के साथ-साथ गति श्रम मे वृद्धि होने से उत्पादन मे वृद्धि को दर्शाती है, $\overline{C}_1$ नियोजित पूजी की मात्रा दी होने पर। यदि दिए हुए समय पर, पूजी की मात्रा बढ़कर $\overline{C}_2$ हो जाती है, तो उत्पादन फलन $Q = f(L, \overline{C}_1)$ ऊपर सरककर $Q = f(L, \overline{C}_2)$ हो जाता है, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

दूसरी ओर, यदि श्रम को स्थिर आगत (साधन) और पूजी को परिवर्तनशील आगत मान लिया जाता है, तो उत्पादन फलन इस रूप मे होता है,

Q = f (L, C̄₂)
Q = f (L, C̄₁)
Output
O
Labour

चित्र 16.2

$$Q = f(C\ \overline{L}) \tag{4}$$

इस उत्पादन फलन को चित्र 16.2 मे दर्शाया गया है, जहा वक्र की ढलान पूजी के सीमान
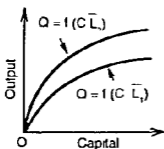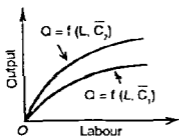
उत्पाद को व्यक्त करती है। उत्पादन फलन के साथ गति पूजी मे वृद्धि से उत्पादन मे वृद्धि को दर्शाती है, श्रम की दी हुई $\bar{L}_1$ नियोजित होने पर। यदि दिए हुए समय पर, श्रम की मात्रा बढ़कर $\bar{L}_2$ हो जाती है, तो $Q=f(C, \bar{L}_1)$ उत्पादन फलन ऊपर को सरककर $Q=f(C, \bar{L}_2)$ हो जाता है।

दीर्घकालीन उत्पादन फलन (The Long-Run Production Function)

दीर्घकाल मे सभी आगते परिवर्तनशील होती है। एक या अधिक आगतो को परिवर्तित करके उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। फर्म अपने प्लाट और उत्पादन के पैमाने को बदल सकती है। समीकरण (1) और (2) दीर्घकालीन उत्पादन फलनो को व्यक्त करते है। तकनीक का स्तर दिया होने पर, श्रम और पूजी की मात्राओ का एक सयोग उत्पादन का एक विशेष स्तर उत्पादित करता है। दीर्घकालीन उत्पादन फलन चित्र 16.3 मे दर्शाया गया है जहा OC पूजी और OL श्रम का सयोग वस्तु की $100\,Q$ मात्रा उत्पादित करता है। पूजी और श्रम की आगतो मे OC_1 और OL_1 पर वृद्धि से उत्पादन बढ़कर $200\,Q$ हो जाता है उत्पादन फलन सममात्रा वक्र $100\,Q$ और $200\,Q$ के रूप मे दिखाया गया है।
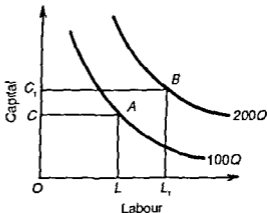
चित्र 16.3

दीर्घकाल मे फर्म अपने पैमाने के अनुसार सब आगतो को घटा या बढ़ा सकती है। इसे पैमाने के प्रतिफल (returns to scale) कहते हैं। जब उत्पादन उसी अनुपात मे बढ़ता है जिसमे कि आगतो की मात्रा, तो पैमाने का प्रतिफल स्थिर होता है। जब उत्पादन मे वृद्धि अनुपात मे आगतो मे वृद्धि से अधिक हो, तो बढ़ते पैमाने का प्रतिफल होता है और जब उत्पादन मे वृद्धि अनुपात मे आगतो मे वृद्धि से कम हो तो घटते पैमाने का प्रतिफल होता है।

हम उत्पादन फलन की सहायता से स्थिर पैमाने के प्रतिफल को स्पष्ट करते है

$$Q=f(L, M, N, C, \bar{T})$$

$\bar{T}$ दी होने पर, यदि सब आगतो L M N C की मात्राएँ n गुणा बढ़ा दी जाएँ, तो उत्पादन Q भी n गुणा बढ़ जाता है। तब उत्पादन-फलन यह बन जाता है

$$nQ=f(nL\ nM\ nN\ nC)$$

इसे रेखीय समरूप उत्पादन-फलन या प्रथम कोटि का समरूप फलन (linear and homogeneous production function of the first degree) कहते हैं। यदि समरूप फलन k की कोटि का हो तो उत्पादन-फलन

$$n^k\ Q=f(nL\ nM\ nN\ nC)$$

यदि k बराबर 1 हो, तो यह स्थिर पैमाने के प्रतिफल की स्थिति होगी, यदि 1 से k अधिक हो

तो यह बढते पैमाने के प्रतिफल की स्थिति होगी और यदि 1 से कम हो, तो घटते पैमाने के प्रतिफल की स्थिति होगी।

इस प्रकार, एक उत्पादन फलन दो प्रकार का होता है (i) प्रथम कोटि का रेखीय समरूप जिसमे उत्पादन बिल्कुल उसी अनुपात मे परिवर्तन करेगा जिस अनुपात मे आगते परिवर्तित होगी। आगतो को दुगुणा करने से उत्पादन भी दुगुणा होगा और विलोमश। ऐसा उत्पादन-फलन पैमाने के लिए प्रतिफल दर्शाता है। (ii) एक से कम या अधिक कोटि का गैर-समरूप (non-homogeneous) उत्पादन-फलन। एक से अधिक कोटि का उत्पादन फलन पैमाने के बढते प्रतिफल से और एक से कम कोटि का उत्पादन फलन पैमाने के घटते प्रतिफल से सबधित होता है।

अनुभवजन्य उपकल्पना पर आधारित एक महत्त्वपूर्ण उत्पादन-फलन—कॉब-डगलस उत्पादन-फलन है (Cobb-Douglas Production Function)[2] मूल रूप से, अमरीका मे इसका व्यवहार समस्त निर्माणकारी उद्योग मे किया गया था, परन्तु समस्त अर्थव्यवस्था या उसके किसी एक भाग पर भी इसका व्यवहार किया जा सकता है। कॉब-डगलस उत्पादन फलन यह है

$$Q = AC^{a} L^{1-a}$$

जहाँ Q उत्पादन है, L श्रम है, C लगाई हुई पूजी और A तथा α धनात्मक स्थिराक (positive constants) है। इस फलन मे L और C के घाताको (exponents) का जोड एक है। फलन रेखीय और समरूप है।

उत्पादन फलन मे सभी परिवर्तनशील आगते प्रवाह है, जो समय की प्रति इकाई पर मापे जाते है। यह सीमा सबध है, जो फर्म को तकनीकी उत्पादन सभावनाओ की वर्तमान सीमाओ की ओर सकेत करता है। फिर, उत्पादन फलन कुल उत्पादन को कम किए बिना, जिस ढग से एक आगत को दूसरे आगत के साथ स्थानापन्न कर सकती है उसको बताता है। परन्तु उत्पादन फलन मे आगतो की कीमतो को नहीं लिया जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

उत्पादन फलन भौतिक आगतो तथा निर्गतो के प्रौद्योगिकीय सम्बन्धो को प्रकट करता है, इस लिए कहते है कि इसका सबध इजीनियरिंग के क्षेत्र से है। प्रोफेसर स्टिगलर (Stigler) इस प्राय स्वीकृत विचार से सहमत नहीं। उद्यमी का काम है कि उत्पादन की इच्छित मात्रा के लिए वह आगतो के ठीक ढग के सयोग को छाँट ले। इसके लिए उसे अपनी आगतो और समय की निश्चित अवधि मे निश्चित उत्पादन मे प्रयोग की जाने वाली तकनीक की कीमतो का ज्ञान होना जरूरी है। ये सब तकनीकी सभावनाएँ व्यावहारिक विज्ञानो से प्राप्त होती है। इन्हे केवल इजीनियर हल नहीं कर सकते। "उद्यमी उत्पादकीय सेवाएँ भी प्रदान करते है जो बहुत मानकीकृत (standardised) नहीं होतीं। कुछ लोगो को ऐसे श्रमिको का समूह मिल सकता है, जो जान तोड कर काम करते है, दूसरे ग्राहको को आकर्षित करने मे और कुछ अन्य मुद्रा उधार लाने मे कुशल होते है। इनमे से प्रत्येक का उत्पादन-फलन भिन्न होगा। यदि हम वस्तु को बेचने, हड़तालो को तय करने और वस्तु के भविष्य-रूप का पहले से अनुमान करने जैसी क्रियाओ का हिसाब लगाएँ तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि जिसे हम तकनीक कहते है, उसका अधिकाश व्यापार-ज्ञान और बुद्धि की बाते है जिन्हे सर्वश्रेष्ठ इजीनियरिंग के स्कूलो मे भी नहीं सीखा जा सकता।" उत्पादन फलन वास्तव मे अर्थशास्त्री के प्रौद्योगिकी ज्ञान का साराश है, जैसा कि प्रो स्टिगलर ने कहा है।

2 इसका विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में देखिए।

3. परिवर्तनशील अनुपातो का नियम
(THE LAW OF VARIABLE PROPORTIONS)

यदि एक आगत (input) परिवर्तनशील हो और अन्य सब आगते स्थिर, तो फर्म का उत्पादन फलन परिवर्तनशील अनुपात के नियम को प्रकट करता है। यदि अन्य साधनो को स्थिर रख कर एक परिवर्तनशील साधन की इकाइयो की सख्या बढा दी जाए, तो उत्पादन किस प्रकार परिवर्तित होता है इस नियम का विषय है। मान लीजिए कि भूमि, प्लाट और उपकरण स्थिर साधन हैं ओर श्रम परिवर्तनशील साधन है। अधिक उत्पादन करने के लिए मजदूरो की सख्या लगातार बढाई जाती है, तो स्थिर और परिवर्तनशील साधनो मे अनुपात बदलता जाता है ओर परिवर्तनशील अनुपात का नियम लागू होने लगता है। नियम यह है, "अन्य आगतो की मात्रा को स्थिर रखकर जब एक परिवर्तनशील आगत की मात्रा को समान मात्रा मे लगातार बढाया जाता है, तो कुल उत्पादन बढता है, परन्तु एक निश्चित सीमा के बाद घटती दर पर।" नियम की परिभाषा यो भी की जा सकती है, *अपरिवर्तनशील साधनो की मात्रा को स्थिर रखते हुए जब परिवर्तनशील साधनो की और अधिक इकाइयो का प्रयोग किया जाता है, तो एक ऐसा बिन्दु आता है जिसके बाद पहले सीमान्त उत्पादन, फिर औसत उत्पादन और अन्त मे कुल उत्पादन घट जाएगा।* परिवर्तनशील अनुपात का नियम या असमान आनुपातिक प्रतिफल का नियम (law of non-proportional returns) घटते प्रतिफल का नियम भी कहलाता है। परन्तु, जैसाकि हम आगे देखेंगे, घटते प्रतिफल का नियम केवल, अधिक व्यापक परिवर्तनशील अनुपात के नियम की, एक अवस्था है (The law of diminishing returns is only one phase of the more comprehensive law of variable proportions)।

हम तालिका 16 1 की सहायता से नियम को स्पष्ट करते है, जहाँ स्थिर साधन 4 एकड भूमि पर परिवर्तनशील साधन श्रम की इकाइयाँ लगाई जाती है ओर परिणामी उत्पादन प्राप्त होता है। उत्पादन फलन पहली दो स्तम्भो में दिखाया गया है। कुल उत्पादन के स्तम्भ (column) से औसत उत्पादन और सीमान्त उत्पादन निकाला गया है। स्तम्भ (2) को स्तम्भ (1) की अनुरूप इकाई से विभक्त करके प्रति श्रमिक औसत उत्पादन प्राप्त होता है। सीमान्त उत्पादन एक अधिक श्रमिक लगाने से कुल उत्पादन मे होने वाली वृद्धि है। 3 श्रमिक 36 इकाइयो का उत्पादन करते है और 4 श्रमिक 48 का। इस प्रकार सीमान्त उत्पादन 12 अर्थात् (48—36) इकाइयाँ है।

तालिका 16 1 चार एकड भूमि से भौतिक इकाइयो मे गेहूँ का उत्पादन

1 श्रमिकों की सख्या	2 कुल उत्पादन	3 औसत उत्पादन	4 सीमान्त उत्पादन	
1	8	8	8	अवस्था I
2	20	10	12	
3	36	12	16	
4	48	12	12	अवस्था II
5	55	11	7	
6	60	10	5	
7	60	8 6	0	अवस्था III
8	60	7	4	

तालिका के विश्लेषण से पता चलता है कि पहले पहल कुल, औसत और सीमान्त उत्पादन बढते है, फिर अधिकतम हो जाते है ओर अन्त मे घटने लगते है। कुल उत्पादन तब अधिकतम होता है जब श्रम की 7 इकाइयो का प्रयोग किया जाता है और इसके बाद घट जाता है। आगत
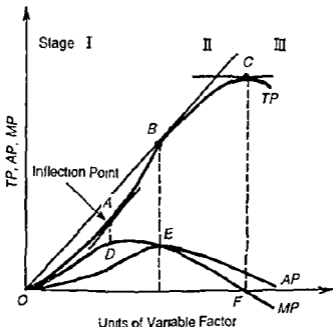
चित्र 16.4

उत्पादन चौथी इकाई तक बढ़ता जाता है जबकि सीमान्त उत्पादन श्रम की तीसरी इकाई पर अधिकतम है और इसके बाद वे भी गिरने लगते हैं। यह ध्यान रहे कि घटते उत्पादन का बिन्दु, कुल औसत और सीमान्त उत्पादन के लिए एक ही नहीं होता। सीमान्त उत्पादन पहले घटने लगता है, औसत उत्पादन उसके बाद और अन्त में कुल उत्पादन घटता है। इस निरीक्षण से स्पष्ट है कि घटते प्रतिफल की प्रवृत्ति अन्त में तीनों उत्पादकता सिद्धान्तों में पाई जाती है।

परिवर्तनशील अनुपात के नियम को चित्र 16.4 में दर्शाया गया है। पहले *TC* वक्र बढ़ती दर से बिन्दु *A* तक ऊपर की ओर बढ़ता है, जहा इसकी ढलान सबसे अधिक होती है। बिन्दु *A* के पश्चात कुल उत्पादन घटती दर से बढ़ता है, जब तक कि यह उच्चतम बिन्दु *C* तक नहीं पहुच जाता है, और फिर यह गिरना शुरू कर देता है।

TP वक्र को स्पर्श रेखा जिस बिन्दु *A* पर छूती है उसे मोड़ बिन्दु (inflection point) कहते है जहा तक कुल उत्पादन बढ़ती दर से वृद्धि करता है और इस बिन्दु से ही यह घटती दर से वृद्धि करना प्रारभ करता है।

TP के साथ सीमान्त उत्पादन MP तथा औसत उत्पादन AP वक्र भी बढ़ते हैं। जब TP की ढाल A बिन्दु पर अधिकतम होती है तो MP वक्र भी अपने अधिकतम बिन्दु D पर पहुँच जाता है और उसके बाद गिरने लगता है। AP वक्र पर अधिकतम बिन्दु E है जहाँ यह MP वक्र से मिलता है। यह बिन्दु TP वक्र पर बिन्दु B से भी मिलता है जहाँ से कुल उत्पादन वृद्धि धीमी हो जाती है। जब TP वक्र अपने अधिकतम बिन्दु C पर पहुँच जाता है तो बिन्दु F पर MP वक्र शून्य हो जाता है, और जब TP गिरना शुरू करता है तो MP ऋणात्मक हो जाता है। जब कुल उत्पादन शून्य हो जाए, तब औसत उत्पादन भी शून्य होता है। कुल औसत और सीमान्त उत्पादन के बढ़ते घटते

और ऋणात्मक पक्ष वास्तव मे परिवर्तनशील अनुपात के नियम की अवस्थाएँ है जिन पर नीचे विचार किया जा रहा है।

प्रथम अवस्था (First Stage) या बढते प्रतिफल (Increasing Returns)—पहली अवस्था मे, औसत *उत्पादन अधिकतम और सीमान्त उत्पादन के बराबर पहुँच जाता है जबकि चार श्रमिक लगाए* जाते है, जैसा कि तालिका 16 1 मे दिखाया गया है। इस अवस्था को चित्र मे मूल बिन्दु O से E तक व्यक्त किया गया है, जहाँ MP और AP वक्र मिलते है। इसमे TP वक्र भी तेजी से बढता है। इस प्रकार इस अवस्था का सम्बन्ध बढते औसत प्रतिफल से है। यहाँ लगाए गए श्रमिकों के अनुपात मे भूमि बहुत अधिक है। इसलिए इस अवस्था मे भूमि पर खेती करना लाभदायक नहीं है।

इस नियम की प्रथम अवस्था मे बढते हुए प्रतिफल का मुख्य कारण यह है कि प्रारम्भ मे परिवर्तनशील साधन की अपेक्षा स्थिर साधन की मात्रा अधिक होती है। जब स्थिर साधन पर परिवर्तनशील साधन की अधिक इकाइयों को लगाया जाता है तो स्थिर साधनो का अधिक गहन प्रयोग होता है जिससे उत्पादन तेजी से बढता है। इसी तथ्य को इस प्रकार भी समझाया जा सकता है कि प्रारभ मे परिवर्तनशील साधन की पर्याप्त इकाइयाँ न लगने से स्थिर साधन का अधिकतम प्रयोग नहीं होता परन्तु जब परिवर्तनशील साधन की उचित मात्रा मे इकाइयाँ लगाई जाती है तो श्रम विभाजन तथा विशेषीकरण के प्रति इकाई उत्पादन मे वृद्धि होती है और बढते प्रतिफल का नियम लागू होता है। बढते प्रतिफल का एक कारण यह भी होता है कि *स्थिर साधन* अविभाज्य (indivisible) होता है जिसका अभिप्राय यह है कि वह एक निश्चित न्यूनतम आकार मे अवश्य प्रयोग किया जाए। जब ऐसे स्थिर साधन पर परिवर्तनशील साधन की अधिक इकाइयाँ *लगाई जाती है, तो उत्पादन अनुपात से अधिक बढता है। ये कारण बढते प्रतिफल के नियम की* ओर सकेत करते है।

तीसरी अवस्था *(Third Stage)* **या ऋणात्मक सीमात प्रतिफल** *(Negative Marginal* Returns)—उत्पादन तीसरी अवस्था मे भी नहीं हो सकता, क्योंकि इस अवस्था मे कुल उत्पादन घटने लगता है और सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है। आठवा श्रमिक लगाने पर वास्तव मे कुल उत्पादन 60 इकाइयो से घटकर 55 इकाइयाँ हो जाती है और सीमान्त उत्पादन (–) 4 इकाइयाँ। चित्र मे यह अवस्था बिन्दुकित रेखा CF से शुरू होती है जहाँ MP वक्र X-अक्ष के नीचे है। *यहाँ भूमि के अनुपात मे श्रमिकों की सख्या बहुत अधिक है जिसके कारण खेती करना असभव* है।

जब बिन्दु E के बाएँ को उत्पादन होता है, तो परिवर्तनशील आगत के अनुपात मे स्थिर साधन अधिक मात्रा मे है। बिन्दु F के दाई ओर परिवर्तनशील साधन अधिकता से प्रयोग किया जा रहा है। इसलिए उत्पादन हमेशा इन अवस्थाओ के बीच की अवस्था मे होगा।

दूसरी अवस्था *(Second Stage)* **या घटते प्रतिफल** *(Law of Diminishing Returns)* **का नियम**—पहली और तीसरी अवस्था के बीच की दूसरी अवस्था महत्त्वपूर्ण है। यह घटते प्रतिफल के नियम (Law of Diminishing Returns) की अवस्था है। अवस्था दो तब शुरू होती है जब औसत उत्पादन अपनी अधिकतम सीमा पर हो जहाँ सीमान्त उत्पादन का बिन्दु शून्य होता है। इस बिन्दु पर कुल उत्पादन उच्चतम है। तालिका मे इस अवस्था को उस जगह पर दिखाया गया *है जहाँ भूमि को जोतने के लिए श्रमिकों की सख्या 4 से बढाकर 7 कर दी जाती है। चित्र मे यह* BE और CF के बीच की स्थिति है। यहाँ भूमि कम है और गहनता से प्रयोग की जाती है। अधिक उत्पादन के लिए और अधिक श्रमिक लगाए जाते है। इस प्रकार कुल उत्पादन घटती दर पर बढता है और औसत तथा सीमान्त प्रतिफल घट जाते है। इस अवस्था मे सीमान्त उत्पादन धुर तक औसत उत्पादन से कम है। केवल यही अवस्था है जिसमे उत्पादन सभव और लाभदायक है *क्योकि कुल उत्पादन अधिकतम होता है। अत यह कहना ठीक नहीं है कि घटते प्रतिफल के*

नियम का दूसरा नाम परिवर्तनशील अनुपात का नियम है। वास्तव में, घटते प्रतिफल का नियम परिवर्तनशील अनुपात के नियम की एक अवस्था (phase) है। इस अर्थ में घटते प्रतिफल के नियम की बैनहम (Benham) ने यह परिभाषा दी है, "साधनों के एक संयोग में जैसे एक साधन का अनुपात बढ़ता है, तो एक बिन्दु के बाद उस साधन का औसत और सीमान्त उत्पादन घट जाएगा।"[3]

मान्यताएँ (Assumptions)—यह नियम निम्न मान्यताओं पर आधारित है

(i) साधनों (आगतों) के संयोग के अनुपातों का परिवर्तन किया जा सकता है।

(ii) एक साधन परिवर्तनशील होता है जबकि अन्य स्थिर रहते हैं।

(iii) परिवर्तनशील साधनों की सब इकाइयाँ समरूप होती हैं।

(iv) प्रौद्योगिकी में कोई परिवर्तन नहीं होता। यदि उत्पादन की तकनीक में परिवर्तन हो जाता है, तो *उत्पादन वक्र उसी के अनुसार सरक जाएँगे। परन्तु अन्त में नियम तो लागू होता ही है।*

(v) नियम यह मानकर चलता है कि स्थिति अल्पकालीन है क्योंकि दीर्घकालीन में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं।

(vi) वस्तु को भौतिक इकाइयों (जैसे क्विंटल, टन आदि) में मापा जाता है। यदि वस्तु को मुद्रा में मापा जाए तो कीमत बढ़ जाने पर उत्पादन में कमी होने पर भी घटते प्रतिफल की अपेक्षा बढ़ते प्रतिफल होंगे।

घटते प्रतिफल के नियम की व्यावहारिकता (Application of the Law of Diminishing Returns)—घटते प्रतिफल की प्रवृत्ति पुराना आर्थिक सिद्धान्त है जिसे फ्रांसीसी अर्थशास्त्री टर्गट (Turgot) ने 18वीं शताब्दी में प्रारम्भ किया था। माल्थस (Malthus) और रिकार्डो (Ricardo) ने इसका आगे विकास किया और मार्शल ने इस सिद्धान्त को बहुत ही परिष्कृत और उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया। मार्शल के शब्दों में, "भूमि को जोतने में लगाई गई पूँजी और श्रम की मात्रा में वृद्धि से सामान्य रूप से उत्पादन की मात्रा में वृद्धि अनुपात में कम होती है, जब तक कि ऐसा न हो कि उसके साथ ही कृषि की कलाओं में भी सुधार हो जाए।" मार्शल ने इस नियम को कृषि, खान, वन और बिल्डिंग उद्योगों पर लागू किया था।

सामान्य रूप में नियम (The Law in General Form)—परन्तु घटते प्रतिफल का नियम केवल कृषि और निस्सारक (extractive) उद्योगों पर ही लागू नहीं होता बल्कि इसका व्यवहार तो सार्वभौमिक है।

यदि उत्पादन के साधनों के संयोग के अनुपातों को बदल दिया जाए तो उस साधन का औसत और सीमान्त उत्पादन घट जाएगा। या तो स्थिर साधनों की अपेक्षा परिवर्तनशील साधन का अनुपात बढ़ जाने से, या फिर स्थिर साधनों की अपेक्षा परिवर्तनशील साधन की कमी के कारण साधनों का संयोग बिगड़ सकता है। या यह भी सम्भव हो सकता है कि अविभाज्य साधन का उसकी अधिकतम क्षमता से अधिक प्रयोग किया जा रहा हो। प्रत्येक स्थिति में उत्पादन की अमितव्ययिताएँ आ जाती हैं जो लागत को अधिक और उत्पादन को कम कर देती हैं। उदाहरणार्थ, यदि और मशीनें लगाकर एक प्लांट बढ़ा दिया जाए तो वह सभालना कठिन हो जाता है। उच्चस्तरीय नियंत्रण और देखभाल शिथिल हो जाती है और घटता प्रतिफल शुरू हो जाता है। या फिर प्रशिक्षित श्रम या कच्चे माल की कमी हो सकती है जिससे उत्पादन घट जाता है।

वास्तव में अन्य साधनों की तुलना में एक साधन की कमी घटते प्रतिफल के नियम का मूल कारण है। दुर्लभता का तत्त्व साधनों में पाया जाता है, क्योंकि उन्हें एक-दूसरे के स्थान पर

3 As the proportion of one factor in a combination of factors is increased, after a point the average and marginal product of that factor will diminish

स्थानापन्न नहीं किया जा सकता। श्रीमती जोन राबिनसन इसकी व्याख्या इस प्रकार करती है, "घटते प्रतिफल का नियम वास्तव में जो व्यक्त करता है वह यह है कि उत्पादन के एक साधन को अन्य के स्थान पर स्थानापन्न करने की एक निश्चित सीमा है। दूसरे शब्दों में, साधनों में स्थानापन्नता की लोच अनन्त नहीं है।" मान लीजिए कि पटसन की कमी है। क्योंकि पटसन को किसी अन्य वस्तु से स्थानापन्न नहीं किया जा सकता, इसलिए लागत बढ़ जाएगी और घटता प्रतिफल शुरू हो जाएगा। इसका कारण है कि उद्योग के लिए पटसन की पूर्ति पूर्ण लोचदार नहीं है। यदि दुर्लभ साधन कठोरता से स्थिर है और किसी अन्य साधन से बिल्कुल भी स्थानापन्न नहीं किया जा सकता (अर्थात् इसकी स्थानापन्नता की लोच शून्य है), तो घटता प्रतिफल तुरन्त शुरू हो जाएगा। यदि कोई फैक्टरी बिजली की शक्ति से चलती है और उसका कोई स्थानापन्न नहीं है, तो बार-बार, जैसाकि भारत में होता है, बिजली फेल होने से उत्पादन घट जाएगा और लागत अनुपात में बढ़ जाएगी क्योंकि फैक्टरी के पहले से कम घंटे चलने पर भी स्थिर लागतों पर खर्च होता ही रहेगा। यदि साधनों में स्थानापन्नता की लोच अनन्त हो, तो स्थिर लागतों से अनन्त उत्पादन किया जा सकता है। इसका अभिप्राय होगा कि सब साधन एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न हैं और घटते प्रतिफल का नियम बिल्कुल भी लागू नहीं होता। यदि ऐसा होता, तो भारत जैसे देश में न तो जनसंख्या की समस्या होती, न खाद्य-समस्या और न ही गृह-प्रबन्ध की समस्या। भूमि के बजाय सरलता से श्रम और पूँजी को स्थानापन्न करके इन समस्याओं को हल कर लिया जाता। परन्तु वास्तव में कोई दो साधन पूर्ण स्थानापन्न नहीं होते। यही कारण है कि घटते प्रतिफल का नियम सब उद्योगों पर लागू होता है।

घटते प्रतिफल के नियम का महत्त्व (Importance of the Law of Diminishing Returns)—विक्स्टीड (Wicksteed) के शब्दों में घटते प्रतिफल का नियम **"उतना ही सार्वभौमिक है जितना कि जीवन का नियम।"**[4] इस नियम की सार्वभौमिक व्यावहारिकता ने अर्थशास्त्र को विज्ञान के क्षेत्र में पहुँचा दिया है।

यह नियम अर्थशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों का आधार है। माल्थस (Malthus) का जनसंख्या का सिद्धान्त इस तथ्य से ही निकलता है कि जनसंख्या में वृद्धि की अपेक्षा खाद्य-सामग्री की पूर्ति अधिक तेजी से नहीं बढ़ती। कारण कि कृषि के क्षेत्र में घटते प्रतिफल का नियम कार्यशील रहता है। वास्तव में, माल्थस के नैराश्य के लिए ही यही नियम उत्तरदायी है।

रिकार्डो (Ricardo) का लगान का सिद्धान्त भी इस नियम पर आधारित है। रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के अनुसार भूमि के विषय में घटते प्रतिफल के नियम की क्रियाशीलता के कारण भूमिपति घटिया भूमि जोतने को विवश होते हैं जिससे लगान बढ़ता है। गहन खेती में भूमि के एक निश्चित टुकड़े पर श्रम और पूँजी की मात्राओं को लगाने से, इस नियम के क्रियाशील होने के कारण, उत्पादन उसी अनुपात में नहीं बढ़ता।

इसी प्रकार, माँग सिद्धान्त में ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता का नियम और वितरण के सिद्धान्त में ह्रासमान सीमान्त भौतिक उत्पादकता का नियम इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

अल्पविकसित देशों में (In Under-developed Countries)—सबसे बढ़कर अल्पविकसित देशों की समस्याओं को समझने के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। ऐसे देशों में कृषि ही लोगों का प्रमुख व्यवसाय है। जनसंख्या में वृद्धि के साथ भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता है। परिणामस्वरूप, भूमि पर और अधिक लोग काम करते हैं, जबकि भूमि एक स्थिर साधन है। इसमें श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता घट जाती है। यदि यह प्रक्रिया चलती रहे तथा भूमि पर श्रम की मात्रा और बढ़ा दी जाए, तो सीमान्त उत्पादकता शून्य या ऋणात्मक भी हो सकती है। यह

4 The law of diminishing returns "is as universal as the life of life itself."

अल्पविकसित देशो मे अपने गहन रूप मे घटते प्रतिफल के नियम की क्रियाशीलता को स्पष्ट करता है। हाल मे, मॉरिस डोब (Maurice Dobb) और रैगनर नर्क्से (Ragnar Nurkse) जैसे अर्थशास्त्रियो ने इस अनुत्पादक श्रम का उपयोग करने का यह सुझाव दिया है कि इसे खेतो से हटाकर ऐसे व्यवसायो मे लगा दिया जाए, जहाँ इसकी सीमान्त उत्पादकता धनात्मक हो। नर्क्से के अनुसार अनुत्पादक श्रम मे 'सगुप्त बचत सभाव्य' (concealed saving potential) होती है। घटते प्रतिफल के नियम को, जो इसी श्रम का परिणाम है, इसी श्रम के माध्यम से स्थगित रखा जा सकता है। प्रथम, इसे भूमि से हटा लिया जाए और फिर इसे नहरे खोदने और सडके तथा बाँध आदि बनाने मे लगा दिया जाए। इस प्रकार घटते प्रतिफल के नियम का अध्ययन विशेष रूप से अल्पविकसित देशो मे बहुत महत्त्व रखता है।

4 पैमाने के प्रतिफल का नियम
(THE LAW OF RETURNS TO SCALE)

पैमाने के प्रतिफल का नियम दीर्घकालीन मे निर्गतो (outputs) और आगतों (inputs) के माप के सबध को वर्णित करता है जबकि सब आगते समान अनुपात मे बढा दी जाएँ। माँग मे दीर्घकालीन परिवर्तन को पूरा करने के लिए फैक्टरी मे अधिक स्थान, मशीनो और श्रम का प्रयोग करके फर्म अपने उत्पादन का पैमाना बढाती है।

मान्यताएँ (Assumptions)—यह नियम इन मान्यताओ पर आधारित है

(i) सब साधन (आगते) परिवर्तनशील है परन्तु उद्यम (enterprise) स्थिर है।

(ii) एक श्रमिक दिये हुए औज़ार और उपकरणो से काम करता है।

(iii) प्रोद्योगिकीय परिवर्तन नहीं होते।

(iv) पूर्ण प्रतियोगिता है।

(v) वस्तु मात्राओ मे मापी जाती है, मुद्रा मे नहीं।

इन मान्यताओ के दिए होने पर, जब सब आगते अपरिवर्तित अनुपात मे बढाई जाती है और उत्पादन के पैमाने का विस्तार किया जाता है, तो उत्पादन पर प्रभाव तीन अवस्थाएँ प्रकट करता है। प्रथम, पैमाने का प्रतिफल बढ जाता है क्योंकि कुल उत्पादन मे वृद्धि सब आगतो मे वृद्धि के अनुपात से अधिक होती है। दूसरे, पैमाने का प्रतिफल स्थिर हो जाता है क्योकि कुल उत्पादन मे वृद्धि आगतो मे वृद्धि से ठीक समान अनुपात मे होती है। तीसरे, पैमाने का प्रतिफल घट जाता है क्योंकि कुल उत्पादन मे वृद्धि सब आगतो मे वृद्धि से अनुपात मे कम होती है। पैमाने के प्रतिफल का यह नियम नीचे की तालिका 16 2 और चित्र की सहायता से समझाया गया है।

तालिका 16 2 : भौतिक इकाइयो में पैमाने का प्रतिफल

इकाई	उत्पादन का पैमाना	कुल प्रतिफल	सीमान्त प्रतिफल	
1	1 श्रमिक + 2 एकड भूमि	8	8	बढता प्रतिफल
2	2 " + 4 "	17	9	
3	3 " + 6 "	27	10	
4	4 " + 8 "	38	11	स्थिर प्रतिफल
5	5 " + 10 "	49	11	
6	6 " + 12 "	59	10	घटता प्रतिफल
7	7 " + 14 "	68	9	
8	8 " + 16 "	76	8	

चित्र 16 5

यह तालिका प्रकट करती है कि शुरू मे जब उत्पादन का पैमाना 1 श्रमिक + 2 एकड भूमि है, तो कुल उत्पादन 8 है। उत्पादन बढाने के लिए जब उत्पादन का पैमाना दुगुना (2 श्रमिक + 4 एकड भूमि) कर दिया जाता है, तो कुल प्रतिफल दुगुने से अधिक हो जाता है। वह 17 हो जाता है। अब यदि पैमाना तिगुना (3 श्रमिक + 6 एकड भूमि) कर दिया जाए, तो प्रतिफल तिगुने से अधिक अर्थात् 27 हो जाता है। **यह पैमाने के बढ़ते प्रतिफल** को प्रकट करता है। यदि उत्पादन के पैमाने को और बढा दिया जाए तो कुल प्रतिफल उस ढग से बढेगा कि सीमान्त प्रतिफल स्थिर हो जाता है। उत्पादन के पैमाने की चौथी और पाचवीं इकाई का सीमान्त प्रतिफल 11 है अर्थात् **पैमाने का प्रतिफल स्थिर है**। इसके बाद उत्पादन के पैमाने मे वृद्धि का परिणाम घटता प्रतिफल होगा। छठी, सातवीं, आठवीं इकाइयो पर कुल प्रतिफल पहले की अपेक्षा कम दर पर बढता है और सीमान्त प्रतिफल उत्तरोत्तर घटकर 10, 9, 8 हो जाता है।
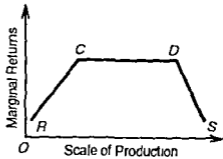
साथ के चित्र 16 5 मे *RS* पैमाने के प्रतिफल का वक्र है जहाँ *R* से *C* तक प्रतिफल बढता है, *C* से *D* तक स्थिर रहता है और *D* से आगे घटने लगता है।

पैमाने का प्रतिफल पहले बढता, फिर स्थिर और अन्त मे घटता क्यो है?

(1) **पैमाने का बढता प्रतिफल** (Increasing Returns to Scale)--उत्पादन के साधनो की अविभाज्यता के कारण पैमाने का प्रतिफल बढता है। अविभाज्यता का अर्थ है कि मशीने, प्रबधकर्त्ता, श्रम, वित्त आदि बहुत छोटे आकार मे प्राप्त नहीं होते। वे निश्चित न्यूनतम आकारो मे ही मिलते हे। जब एक व्यापार इकाई का विस्तार होता है, तो पैमाने का प्रतिफल बढ जाता है *क्योंकि अविभाज्य साधनो को उनकी अधिकतम क्षमता पर लगाया जाता है।*

पैमाने के बढते प्रतिफल विशेषीकरण और श्रम विभाजन से भी होते है। जब फर्म के पैमाने का विस्तार किया जाता है, तो श्रम विभाजन और उपकरणों के विशेषीकरण का पैमाना बढ जाता है। काम को छोटे-छोटे भागो मे बाँटा जा सकता है और श्रमिक प्रक्रियाओं के पहले से छोटे क्षेत्रो पर ध्यान केन्द्रित कर सकते है। इसके लिए विशेषीकृत उपकरण लगाए जा सकते है। इस प्रकार विशेषीकरण दक्षता बढती है और इससे पैमाने का प्रतिफल बढता है।

फिर, जब फर्म का विस्तार होता है तो वह उत्पादन की आन्तरिक किफायतो का उपभोग करती है। वह पहले से अच्छी मशीने लगा सकती हे, अधिक आसानी से वस्तुएँ बेंच सकती है, सस्ती दर पर मुद्रा उधार ले सकती है, अधिक कुशल प्रबधक और श्रमिको की सेवाएँ प्राप्त कर सकती है। ये सब किफायते पैमाने के प्रतिफल को अनुपात से अधिक बढा देने मे सहायता करती है।

केवल इतना ही नहीं, बाहरी किफायतो के कारण भी फर्म पैमाने के बढते प्रतिफल का उपभोग करती है। *जब अपनी वस्तु की दीर्घकालीन बढी हुई माँग को पूरा करने के लिए उद्योग अपना और* विस्तार करता है तो बाहरी किफायते प्रकट होती हैं जिनका उद्योग की सब फर्मे बाँटकर उपभोग करती हे। जब बहुत-सी फर्मे एक स्थान पर केन्द्रित हो जाती है, तो कुशल श्रम, उधार और यातायात की सुविधाएँ आसानी से मिलने लगती है। प्रधान उद्योग की सहायता के लिए सहायक उद्योग उत्पन्न हो जाते हे। व्यापार-पत्रिकाएँ, शोध और प्रशिक्षण केन्द्र खुल जाते हे, जो फर्मों की

उत्पादन दक्षता को बढाने मे सहायक होते है। इस प्रकार ये बाहरी किफायतें भी पैमाने के बढते प्रतिफल का कारण बनती है।

(2) पैमाने का स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scale)—परन्तु पैमाने का यह बढता प्रतिफल अनिश्चित काल के लिए नहीं चलता रहता। जब फर्म का और विस्तार किया जाता है, तो आन्तरिक और बाहरी अमितव्ययिताए तथा आन्तरिक और बाहरी किफायतो के प्रति-सतुलन (counter-balance) करती है। प्रतिफल समान अनुपात मे बढता है जिससे उत्पादन के एक बडे क्षेत्र मे पैमाने का प्रतिफल स्थिर रहता है। यहाँ पैमाने के प्रतिफल का वक्र क्षैतिज (horizontal) हो जाता है (देखिए चित्र 16 5 मे *CD*)। इसका अभिप्राय है कि उत्पादन के सब स्तरो पर पैमाने का प्रतिफल स्थिर रहता है। पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते है जब आतरिक अमितव्ययिताए और किफायते निष्प्रभावित हो जाती है और उत्पादन उसी अनुपात मे बढता है। दूसरा कारण बाहरी किफायतो और अमितव्ययिताओ का सतुलित होना है। फिर, जब उत्पादन के साधन पूर्णतया विभाज्य, स्थानापन्न और समरूप हो और दी हुई कीमतो पर उनकी आपूर्तिया पूर्णतया लोचदार हो तो पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते है।

पैमाने के स्थिर प्रतिफल का सिद्धान्त एक रेखीय तथा समरूप उत्पादन-फलन या प्रथम कोटि के समरूप फलन का निर्देश करता है और वितरण के सिद्धान्तो मे आइलर प्रमेय (Euler's Theorems) को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है।

(3) पैमाने का घटता प्रतिफल (Diminishing Returns to Scale)—पैमाने का स्थिर प्रतिफल केवल एक गुजरती हुई अवस्था है क्योंकि अन्त मे पैमाने का प्रतिफल घटने लगता है। अविभाज्य साधन अकुशल और कम उत्पादक बन जाते है। व्यापार भारी-भरकम हो सकता है जिससे ताल-मेल और देखभाल की समस्याएँ खडी हो जाती है। प्रबन्ध का विस्तार होने से नियत्रण और कठोरताओं की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती है। इन आन्तरिक अमितव्ययिताओ के साथ पैमाने की बाहरी अमितव्ययिताए मिल जाती है। ये ऊँची साधन कीमतो या साधनो की घटती उत्पादकता से उत्पन्न होती है। जब उद्योग का विस्तार जारी रहता है, तो प्रशिक्षित श्रम, भूमि, पूँजी आदि की माँग बढ जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता के कारण मजदूरी, लगान और ब्याज की दरें बढ जाती हैं। कच्चे माल की कीमते भी बढ जाती है। यातायात और मार्किटिंग की समस्याएँ पैदा हो जाती है। इन सब कारणो से लागतें बढने लगती हैं और फर्मों के विस्तार से पैमाने का प्रतिफल घटने लगता है, जिसके कारण पैमाने को दुगुना कर देने से उत्पादन दुगुना नहीं होता।

वास्तव मे, ऐसे उदाहरण ढूँढ सकना सभव नहीं है जहाँ सब साधनो मे बढने की प्रवृत्ति हो। सब साधनो के बढ जाने पर भी उद्यम अपरिवर्तित रहता है। ऐसी स्थिति मे उत्पादन मे परिवर्तन केवल पैमाने मे परिवर्तन के कारण नहीं माना जा सकता। उत्पादन मे परिवर्तन का कारण साधनों के अनुपातो का बदल जाना भी है। इस प्रकार, वास्तविक जगत् मे परिवर्तनशील अनुपातो का नियम लागू होता है।

5. पैमाने की किफायतें या मितव्ययिताए (ECONOMIES OF SCALE)

पैमाने की किफायत तब होती है जब उत्पादन की बडी मात्रा प्रति इकाई कम लागत से सबद्ध होती है। डा. मार्शल ने पैमाने की किफायतो के दो वर्ग किए आतरिक किफायते और बाह्य किफायते।

आन्तरिक किफायते वे है जो किसी फर्म को आतरिक तौर से प्राप्त होती हैं जब वह अपने आकार को या अपने उत्पादन को बढाती है। वे "किसी एक अकेली फैक्टरी या फर्म को ही प्राप्त होती है। और उनका अन्य फर्मों के कार्यों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वे उस फर्म के उत्पादन के

पैमाने के विस्तार का परिणाम होती है और तब तक उपलब्ध नहीं होतीं, जब तक कि उत्पादन नहीं बढता। वे किन्हीं आविष्कारो का परिणाम नहीं होतीं बल्कि उत्पादन के उन ज्ञात तरीको का परिणाम होती है जिन्हे एक छोटी फर्म बेकार समझती है।" बाह्य किफायते वे है जो किसी फर्म को उस समय उपलब्ध होती है जब समस्त उद्योग का उत्पादन बढता है। "जब किसी उद्योग अथवा उद्योग-समूह मे उत्पादन का पैमाना बढता है तो वे किफायते अनेक फर्मों अथवा उद्योगो को समान रूप से उपलब्ध होती है। इन किफायतो पर किसी एक फर्म का एकाधिकार नहीं होता, बल्कि जब कुछ अन्य फर्मों का विस्तार होता है तो उसे भी ये प्राप्त हो जाती है।"

आधुनिक अर्थशास्त्री पैमाने की किफायतो को वास्तविक और आर्थिक आतरिक ओर बाह्य किफायतो मे वर्गीकृत करते है।

(क) वास्तविक आतरिक किफायते (Real Internal Economies)

वास्तविक आतरिक किफायते एक बडी फर्म द्वारा प्रयोग किए गए साधनो, कच्चे मालो, विभिन्न प्रकार के श्रम ओर विभिन्न प्रकार की स्थिर या परिचाली पूजी की भौतिक मात्रा मे कमी से सबधित होती है। वास्तविक आतरिक किफायते जो एक फर्म के प्रसार से प्राप्त होती है वे निम्न है

1 श्रम किफायते (Labour Economies)

जब एक फर्म का प्रसार होता है, तो वह अधिक श्रम-विभाजन और विशेषीकरण से श्रम किफायते प्राप्त करती है। जब एक फर्म का आकार बढता है, तो इससे श्रम विभाजन की आवश्यकता होती है और प्रत्येक वर्कर को एक विशेष कार्य सौप दिया जाता है तथा अधिक दक्षता एव उत्पादकता के लिए प्रक्रियाओ को उप-क्रियाओ मे विभाजित किया जाता है। इससे आगे, प्रत्येक वर्कर की दक्षता मे वृद्धि होती है, वस्तुओ को उत्पादित करने मे समय की बचत होती है और बडी सख्या मे श्रम-बचतकारी मशीनो के आविष्कार होते है, जैसा कि एडम स्मिथ ने कहा। अत श्रम-विभाजन ओर विशेषीकरण एक बडी फर्म की अधिक उत्पादकीय दक्षता लाते है और प्रति इकाई लागत मे कमी होती है।

2 तकनीकी किफायते (Technical Economies)

तकनीकी किफायतो का सबध एक बडी फर्म द्वारा सभी प्रकार की मशीनो और उपकरणो के प्रयोग से होता है। वे बेहतर मशीनो और उत्पादन तकनीको के प्रयोग से उत्पन्न होती है जो उत्पादन बढाती है और प्रति इकाई लागत कम करती है। तकनीकी किफायतो को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जाता है

(i) अविभाज्यता की किफायते (Economies of Indivisibility)—जोन रोबिनसन साधन अविभाज्यता की बचतो की चर्चा करती है। स्थिर पूजी ऐसा एक साधन है। एक मशीन, उपकरण या प्लाट एक स्थिर न्यूनतम आकार अथवा क्षमता मे प्रयोग होना चाहिए ताकि उसका उपयोग उचित ठहराया जा सके। इस अर्थ मे पूजी पदार्थ अविभाज्य होते है। ऐसी मशीने पर्याप्त रूप से थोडे उत्पादन की अपेक्षा बडे उत्पादन मे अधिक दक्षता से प्रयोग की जा सकती है, क्योकि उन्हे अपेक्षाकृत छोटी इकाइयो मे विभाजित नहीं किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, एक कार जोडने वाला स्वचालित प्लाट एक व्यवहार्य प्रस्थापना नहीं है, यदि जोडने वाली कारो की सख्या थोडी है, क्योकि प्लाट का बहुत बडा भाग निष्क्रिय रहेगा। कारो की एक बडी मात्रा जोडने वाली एक बडी फर्म अपने प्लाट को पूर्ण क्षमता तक उपयोग करके प्रति इकाई कम लागते उपलब्ध कर सकती है।

प्रो. केर्नक्रास (Cairncross) ने तकनीकी किफायतो को पाँच भागो मे बाँटा है

(i) **उत्कृष्ट तकनीक की किफायतें** (Economics of superior technique)—केवल एक बडी फर्म ही बहुत कीमती मशीने खरीद और लगा सकती है। इस तरह की मशीनें छोटी मशीनो की तुलना मे अधिक उत्पादन करती है। इन मशीनो की ऊँची लागत उस बडे उत्पादन पर विभक्त हो जाती है जिसके उत्पादन मे वे सहायक होती है। इस प्रकार जो बडी फर्म महँगे तथा उत्कृष्ट प्लाट एव उपकरण काम मे लाती है, उसके उत्पादन की प्रति इकाई लागत कम हो जाती है और परिणामत छोटी फर्म के मुकाबले उसे तकनीकी उत्कृष्टता का लाभ प्राप्त होता है।

(ii) **संवर्द्धित परिमाणो की किफायतें** (Economics of increased dimensions)—बडी मशीनो का सस्थापन अपने आप मे बडी फर्म को अनेक लाभ पहुँचाता है। छोटी मशीनो की तुलना मे बडी मशीनो के चलाने की लागत कम होती है। छोटी मशीनो के मुकाबले बडी मशीनो के निर्माण की लागत भी अपेक्षाकृत कम होती है। एक तल्ला (single decker) दो बसो की तुलना मे दो-तल्ला (double decker) एक बस के विनिर्माण की लागत कम होती है। फिर, एक-तल्ला बस की अपेक्षा दो-तल्ला बस मे अधिक सवारियाँ बैठ सकती है, पर एक-तल्ला बस की भाँति दो-तल्ला बस के लिए भी केवल एक चालक और एक सचालक ही चाहिए। इस प्रकार दो-तल्ला बस की प्रचालन लागतें कम होती है।

(iii) **सबधित प्रक्रियाओ की किफायतें** (Economies of linked processes)—उत्पादन की विविध प्रक्रियाओ को सम्बद्ध करके बडी फर्म अपने उत्पादन की प्रति इकाई लागत घटा सकती है। उदाहरण के लिए, एक बडी 'शूगर मिल' अपने गन्ने के फार्म लगा सकती है, चीनी बना सकती है, उसे बोरियो मे भर सकती है, और अपने ही परिवहन एव वितरण विभागो के माध्यम से उसका परिवहन और वितरण कर सकती है। इस प्रकार उत्पादन तथा विक्रय की विविध प्रक्रियाओं को सम्बद्ध करके बडी फर्म मध्यस्थो पर होने वाले खर्च बचा लेती है और परिणामत उत्पादन की प्रति इकाई लागत घटा लेती है।

(iv) **गौण-उत्पादन के प्रयोग की किफायतें** (Economies of the use of by-products)—छोटी फर्म की अपेक्षा बडी फर्म के पास अधिक साधन होते है और वह अपने अवशेष पदार्थों को गौण-उत्पादन के रूप मे उपयोग कर सकती है। उदाहरण के लिए, गन्ने से चीनी बनाने के बाद जो शीरा बचता है, एक प्लाट लगाकर उससे सिरिट बनाई जा सकती है।

(v) **बिजली उपभोग मे किफायतें** (Economies in power consumption)—एक बडी फर्म जो बडी मशीनो को निरतर चलाती है, वह छोटी मशीनों की तुलना मे बिजली की बचत करती है।

3 **विपणन (क्रय-विक्रय) की किफायतें** (Marketing Economies)

बडी फर्म को क्रय-विक्रय की किफायते भी उपलब्ध होती हैं। वह अपनी ज़रूरत की आगतें (inputs) थोक मे खरीदती है जिससे उसे उचित दामो पर अच्छी किस्म की आगतें प्राप्त हो जाती है, माल जल्दी पहुँच जाता है और परिवहन की छूट आदि मिल जाती है। बडे सगठन के कारण वह बढिया माल का उत्पादन करती है जिसे उसका पैकिंग विभाग विक्रय के लिए आकर्षक पैकिंग मे प्रस्तुत करता है। इसका अपना बिक्री विभाग भी हो सकता है जिसमे विशेषज्ञ होते है जो विविध माध्यमो से प्रचार तथा विज्ञापन द्वारा दक्षता से बिक्री करते है। इस प्रकार अपनी उत्कृष्ट सौदा-शक्ति और दक्षतापूर्ण पैकिंग तथा विक्रय-सगठन के माध्यम से बडी फर्म क्रय-विक्रय की किफायतें प्राप्त करती है।

4 प्रबन्धकीय किफायतें (Managerial Economies)

बडी फर्म विविध विभागो की देख-रेख तथा प्रबन्ध के लिए विशेषज्ञ नियुक्त कर सकती है। उस मे विनिर्माण, सयोजन, पैकिग, विपणन, सामान्य प्रशासन आदि के लिए अलग-अलग अध्यक्ष हो सकता है। इससे कार्यात्मक (functional) विशेषीकरण होता है जो फर्म की उत्पादक दक्षता बढाता है। बडी फर्मे एक उच्च कोटि के यन्त्रीकरण की प्रबध तकनीके लागू करती है, जैसे कि टेलीफोन, टेलेक्स मशीने, टी वी स्क्रीन, और कम्प्यूटर। ये तकनीके निर्णयकरण प्रक्रिया मे समय की बचत करती है और सूचना को तैयार करने की गति, मात्रा एव शुद्धता को बढाती है। ये प्रबधकीय किफायते प्रबन्ध की प्रति इकाई लागत भी घटाती है क्योकि फर्म का विस्तार होने पर विविध विभागीय प्रबन्धक उसी वेतन पर बडे उत्पाद का प्रबन्ध करेगे जिस पर कि वे छोटे उत्पाद का प्रबन्ध करते थे।

5 जोखिम उठाने की किफायते (Risk-bearing Economies)

बडी फर्म ऐसी स्थिति मे होती है कि वह छोटी फर्म की अपेक्षा अपनी जोखिमे अधिक फैला सकती है। वह अनेक प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन कर सकती है और उन्हे विभिन्न क्षेत्रो मे बेच सकती है। अपनी वस्तुओ के विविधीकरण द्वारा बडी फर्म अपनी जोखिमे घटा सकती है क्योकि वह एक वस्तु से होने वाली हानि का प्रतिसतुलन अन्य वस्तुओ के लाभो से कर सकती है। वह अपने उत्पादन अनेक बाजारो मे भेज सकती है और इस प्रकार यदि एक बाज़ार मे माँग गिर गई है तो उसका प्रतिसतुलन वह दूसरे बाज़ारो मे बढी हुई माँग से कर लेती हे। फिर यदि दूसरे बाज़ारो मे उस फर्म की वस्तुओं की माँग स्थिर भी रहती है तो भी वह एक वस्तु पर हानि को आसानी से सहन कर सकती है।

विद्युत शक्ति तथा कच्चे माल की पूर्ति के लिए एक ही स्रोत पर पूर्ण रूप से निर्भर होकर एक फर्म बहुत बडी जोखिम उठाती है। यदि वह विद्युत शक्ति की पूर्ति के लिए अन्य प्रबन्ध कर ले और कच्चे माल की पूर्ति के लिए विभिन्न स्रोत रखे तो वह जोखिमो से बच सकती हे। उदाहरणार्थ, बडी फर्म अपना जॅनरेटर लगा कर उन हानियो से बच सकती है, जो बिजली बन्द हो जाने के कारण होती है।

6 अनुसधान की किफायते (Economies of Research)

छोटी फर्म की अपेक्षा बडी फर्म के पास अधिक साधन होते है और वह अपनी स्वय की अनुसधान प्रयोगशाला स्थापित कर सकती है तथा प्रशिक्षित अनुसधानकर्ता रख सकती हे। जब वे नई उत्पादन तकनीको अथवा प्रक्रियाओं का आविष्कार करते है तो वे तकनीके उस फर्म की सपत्ति बन जाती है जिन्हे वह उत्पादन बढाने और लागते घटाने के लिए उपयोग करती है।

7 कल्याणकारिता की किफायते (Economies of Welfare)

सब फर्मों को अपने श्रमिको के लिए कल्याण सुविधाएँ प्रदान करनी पडती है। परन्तु क्योकि बडी फर्म के पास अधिक साधन होते है इसलिए वह फैक्टरी के भीतर तथा बाहर अच्छी काम करने की सुविधाएँ प्रदान कर सकती है। वह फैक्टरी के परिसर मे आर्थिक सहायता प्राप्त केन्टीन चला सकती है, काम करने वाली औरतो के शिशुओ के लिए बालगृह तथा श्रमिको के लिए मनोरजनशाला प्रदान कर सकती है। वह फैक्टरी के बाहर मनोरजन क्लब तथा श्रमिको के परिवारो के लिए सस्ते मकान, शैक्षणिक एव चिकित्सा सुविधाएँ भी प्रदान कर सकती है। यद्यपि इस तरह की सुविधाओ पर बहुत खर्च होता है तो भी इन से श्रमिको की उत्पादक दक्षता बढती है जो उत्पादन बढाने और लागते घटाने मे सहायक होती है।

(ख) आर्थिक आन्तरिक किफायतें (Pecuniary Internal Economics)

एक बड़ी फर्म को आर्थिक या मौद्रिक किफायतें केवल उसके साधनों की बाजार कीमतों में कमियों से प्राप्त होती हैं। ये उत्पन्न होती हैं जब (i) यह अपने आपूर्तिकर्ताओं (suppliers) से कच्चे मालों को बड़ी मात्राओं में कम कीमतों पर खरीदती है। (ii) यह बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं से कम ब्याज दरों पर ऋण लेती है, क्योंकि उसके पास अधिक परिसम्पत्ति और अच्छी साख होती है। (iii) यह पूंजी बाजार में प्रिमियम पर शेयर और कम ब्याज पर ऋणपत्र जारी करके पूंजी इकट्ठी करती है। (iv) यह विभिन्न संचार माध्यमों में बड़े पैमाने पर रियायती दरों पर विज्ञापन करती है। (v) यह रियायती परिवहन दरों पर अपनी वस्तु की बड़ी मात्राएं भेजती है। इस प्रकार, अपनी वस्तु के उत्पादन और वितरण में प्रयोग किए गए साधनों के लिए कम कीमतें देने से एक बड़ी फर्म आर्थिक किफायतें प्राप्त करती है, जब उसका आकार बढ़ता है और वह बड़ी मात्रा में उन साधनों को खरीदती है।

(ग) वास्तविक बाह्य किफायतें (Real External Economics)

प्रो. स्टाइनर के अनुसार, एक उद्योग में फर्म को बाह्य वास्तविक बाह्य किफायतें इसके उत्पादन पर तकनीकी प्रभावों के कारण प्राप्त होती हैं, जो इसके वास्तविक उत्पादन लागत को कम करती हैं। ये एक उद्योग में फर्मों को प्राप्त लाभों को व्यक्त करती हैं जो फर्मों की तकनीकी परस्पर निर्भरता द्वारा प्राप्त होते हैं। *वास्तविक बाह्य किफायतें उत्पन्न होती हैं जब एक उद्योग एक विशेष क्षेत्र में केन्द्रित होता है,* आविष्कार करता है और उत्पादन प्रक्रियाओं में विशेषीकरण करता है। इन बाह्य किफायतों की नीचे व्याख्या की गई है।

1. तकनीकी किफायतें (Technical Economies)

तकनीकी बाह्य किफायतें विशेषीकरण से उत्पन्न होती हैं। जब उद्योग का आकार बढ़ता है, तो फर्में विभिन्न प्रक्रियाओं में विशेषीकरण करना प्रारम्भ कर देती हैं जिससे समस्त उद्योग को लाभ पहुँचता है। *उदाहरण के लिए, सूती कपड़े के उद्योग में कुछ फर्में सूती धागे के विनिर्माण में,* कुछ छपाई में, कुछ और रंगाई में, कुछ बड़े थान बनाने में, कुछ धोतियाँ बनाने में और कुछ कमीजों का कपड़ा आदि बनाने में विशेषीकरण कर सकती हैं। परिणामतः विभिन्न क्षेत्रों में विशेषीकरण करने वाली फर्मों की उत्पादक दक्षता बढ़ती है और उत्पादन की प्रति इकाई लागत घट जाती है।

फिर, उद्योग को औजार, उपकरण और कच्चे माल सप्लाई करने के लिए और प्लांटों एवं उपकरणों के रख-रखाव और मरम्मत के लिए विशेष सेवाएं उपलब्ध करवाने हेतु सहायक उद्योग विकसित हो जाते हैं, जिससे सभी फर्मों की प्रति इकाई लागत कम हो जाती है।

2. सूचना की किफायतें (Economies of Information)

जब एक उद्योग फैलता है, तो यह मार्किट सूचना को इकट्ठा करने और प्रसार करने, उद्योग की वस्तु का विपणन करने और फर्मों को परामर्श सेवाएं प्रदान करने में विशेषीकरण करता है। *अनुसंधान प्रयोगशालाएँ स्थापित करने के लिए बड़ी फर्म की अपेक्षा उद्योग बेहतर स्थिति में होता है* क्योंकि वह अधिक साधनों को एकत्र कर सकता है। वह ऊँचे वेतन पर अधिक अनुभवी अनुसन्धान करने वाले व्यक्ति रख सकता है। नए आविष्कारों के रूप में उनके अनुसंधान के परिणाम एक वैज्ञानिक पत्रिका के माध्यम से सब फर्मों को पहुँचा दिए जाते हैं। उद्योग एक सूचना केन्द्र भी स्थापित कर सकता है जो एक पत्रिका प्रकाशित करे जिसमें कच्चे माल की प्राप्यता, आधुनिक मशीनों, उद्योग के उत्पाद की निर्यात सम्भाव्यताओं के सम्बन्ध में सूचना दे और फर्मों की

जरूरत की अन्य सूचना भी प्रदान करे। इन सब से फर्मों की उत्पादक दक्षता बढाने में और लागतें घटाने में सहायता मिलती है।

3 *गौण-उत्पादन की किफायतें* (Economics of By-products)

जब एक उद्योग एक क्षेत्र मे केन्द्रित होता है, तो वह बडी मात्रा मे रद्दी पदार्थ जैसे चीनी उद्योग मे शीरा और इस्पात उद्योग मे रद्दी लोहा निकालता है। उद्योग में नई फर्में प्रवेश करती हे जो इन रद्दी पदार्थों को उचित कीमतों पर खरीदती है और उनका गौण-पदार्थ बनाने मे प्रयोग करती है। उद्योग में फर्में दो प्रकार से अपनी प्रति इकाई लागत को कम करती हे प्रथम, उन्हे रद्दी पदार्थों को निपटाने मे कोई व्यय नहीं करना पडता है, और द्वितीय, वे गौण-पदार्थों का निर्माण करने वाली फर्मों को रद्दी पदार्थ बेचकर कुछ राशि कमाती हैं।

(घ) **आर्थिक बाह्य किफायतें** (Pecuniary External Economies)

एक उद्योग मे फर्मों को आर्थिक बाह्य किफायतें साधन कीमतो मे कमियो से उत्पन्न होती हे। वे फर्मों के बीच परस्पर निर्भरता को व्यक्त करती है। *साधन कीमतो मे कमिया अनेक स्रोतो से* उत्पन्न होती है (1) स्थानीय शिक्षण सस्थाए उद्योग द्वारा आवश्यक विषयो मे विशेषीकरण द्वारा सभी फर्मों को प्रशिक्षित श्रम उपलब्ध करवा कर। (2) स्थानीय प्रबध परामर्शदाता विशेषज्ञों का विकास करके। (3) समान आवश्यकताओं वाली फर्में आवश्यक दक्षताओं वाले वर्करो ओर मैनेजरो का एक सघ बनाकर जिससे स्थानीय श्रम मार्किट की आवश्यकताए पूरी हों। (4) उद्योग की विशेष आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए परिवहन और सचार ढाचे का विकास करके। सडक परिवाहक फर्मों को रियायती दरों पर विशेष सुविधाए प्रदान करके तथा रेले माल के लदाई और ढुलाई के लिए *अतिरिक्त माल डिब्बे उपलब्ध करवा कर। (5) बिजली कपनी या बोर्ड फर्मों* को रियायती दरो पर पर्याप्त और निरतर बिजली सप्लाई करके। (6) बैक, अन्य वित्तीय सस्थाए ओर बीमा कपनिया क्षेत्र मे अपनी शाखाए खोलकर फर्मों को समय पर और सस्ती साख और बीमा सुविधाए प्रदान करके।

(च) **आन्तरिक तथा बाह्य किफायतो मे सम्बन्ध** (Relation between Internal and External Economies)

आन्तरिक तथा बाह्य किफायतो का सम्बन्ध केवल स्थितिपरक ही है। उदाहरण के लिए, कुछ फर्में बाह्य किफायतों का लाभ उठा रही है, परन्तु यदि वे सब इकट्ठी मिल जाएँ तो उनके लिए सभी बाह्य किफायतें आन्तरिक बन जाती है। फिर, यदि एक फर्म की किसी आन्तरिक किफायत का लाभ कोई दूसरी फर्म उठाने लगे तो दूसरी फर्म के लिए वह बाह्य किफायत बन जाती है। एक उदाहरण लीजिए, यदि कोई चीनी मिल स्पिरिट विनिर्माण के लिए स्वय शीरे को प्रयोग मे लाती है, तो यह आन्तरिक किफायत है। परन्तु यदि कोई दूसरी फर्म स्पिरिट विनिर्माण के लिए उस शीरे को खरीद लेती है, तो खरीदने वाली फर्म के लिए वह बाह्य किफायत बन जाती हे।

प्राय बाह्य किफायतों से आन्तरिक किफायतें उत्पन्न होती हैं। *जैसा कि श्रीमती रॉबिन्सन* ने लक्ष्य किया है, "बडे पैमाने के उद्योग की किफायतों का परिणाम यह हो सकता है कि फर्म का इष्टतम परिमाण बदल जाए और जब फर्म अपने को नए इष्टतम परिमाण के अनुरूप समायोजित करने के लिए अपना पुनर्सगठन करे तो और किफायतें प्राप्त हो जाएँ।" प्रो राबर्टसन ने इन्हे आन्तरिक-बाह्य किफायतें कहा है। वे आन्तरिक किफायतें तो इसलिए होती है कि वे फर्म के आकार पर निर्भर करती है, और बाह्य इसलिए कि वे उद्योग के आकार पर निर्भर करती हे।"[5]

5 J Robinson, *The Economics of Imperfect Competition*, 1933

6. पैमाने की अमितव्ययिताएं
(DISECONOMIES OF SCALE)

पैमाने की अमितव्ययिता या हानि उस समय पाई जाती है जब अधिक उत्पादन से प्रति इकाई लागत बढती है। पैमाने की किफायतें अनिश्चित रूप से निरन्तर नहीं उपलब्ध होती रह सकतीं। किसी फर्म अथवा उद्योग के जीवन मे ऐसा समय आता है जब आगे विस्तार से किफायतो की बजाय अमितव्ययिताए उत्पन्न होने लगती है। आन्तरिक तथा बाह्य अमितव्ययिताए, वास्तव मे, बडे पैमाने के उत्पादन की सीमाए है। उनकी नीचे चर्चा की जा रही है।

(क) वास्तविक आतरिक अमितव्ययिताए (Real Internal Diseconomies)

जब एक फर्म इष्टतम स्तर से आगे फैलती है, तो अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती है जैसे साधनो की कमिया, समन्वय और प्रबध का अभाव, विपणन ओर तकनीकी समस्याए आदि। इनसे प्रति इकाई उत्पादन लागत बढती है। इस प्रकार वास्तविक आतरिक अमितव्ययिताए निम्न कारको से उत्पन्न होती हैं।

(1) **प्रबन्धकीय अमितव्ययिताए** (Managerial Diseconomies)—यदि प्रबन्धकवर्ग व्यापार की उचित देख-रेख करने और उस पर नियत्रण रखने मे असफल रहे, तो फर्म का आगे विस्तार रुक जाता है। एक सीमा के बाद फर्म भारी-भरकम बन जाती है, ओर इसलिए काबू से बाहर हो जाती है। देख-रेख मे शिथिलता आ जाती है। श्रमिक दक्षतापूर्वक काम नहीं करते, अपव्यय होने लगता है निर्णय लेना कठिन हो जाता है, श्रमिकों तथा प्रबन्धक वर्ग मे तालमेल समाप्त हो जाता है और प्रति इकाई लागत बढ जाती है।

(2) **विपणन की अमितव्ययिताए** (Marketing Diseconomies)—जब किसी फर्म का एक निश्चित सीमा से अधिक विस्तार हो जाता है, तो क्रय-विक्रय सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। हो सकता है कमी के कारण कच्चा माल पर्याप्त मात्रा मे न उपलब्ध हो। लोगो की रुचियो मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप फर्म की वस्तुओ की माँग गिर सकती है और हो सकता है कि फर्म अल्पावधि मे उनकी रुचियों के अनुरूप परिवर्तन करने मे समर्थ न हो। हो सकता है कि बाजार की स्थितियों मे होने वाले परिवर्तनों का पूर्वानुमान करने मे बाज़ार सगठन असफल रहे। इस से विक्रय गिर सकता है।

(3) **तकनीकी अमितव्ययिताए** (Technical Diseconomies)—बडे पैमाने की फर्म प्राय भारी पूँजी उपकरणों को चलाती हे जो अविभाज्य होते हैं। जब फर्म इष्टतम स्तर से आगे अपने आकार को बढाती हे तो उसके प्लाट ओर उपकरणो मे बार-बार रूकावटें होने के कारण, फर्म अपने प्लाट को अधिकतम क्षमता पर चलाने मे असफल रहती है। उसके पास अधिक्षमता अथवा निष्क्रिय क्षमता हो सकती है। इस कारण प्रति इकाई लागत बढती है।

(4) **जोखिम उठाने की अमितव्ययिताए** (Diseconomies of Risk-taking)—ज्यो-ज्यो किसी फर्म के उत्पादन का पैमाना बढता है, त्यो-त्यो जोखिमे भी बढ जाती हैं। विक्रय प्रबधक अथवा उत्पादन प्रबधक की निर्णय सबधी एक गलती से बिक्री अथवा उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड सकता है जिससे भारी नुकमान उठाना पड सकता है।

(ख) आर्थिक आतरिक अमितव्ययिताए (Pecuniary Internal Diseconomies)

आर्थिक आनरिक अमितव्ययिताए उत्पन्न होनी है जब वस्तु के उत्पादन और वितरण मे प्रयोग किया जा रहे साधनो की कीमतो मे वृद्धि होती है। जब एक फर्म फैलती है, तो उसे अधिक श्रम, कच्चे माल, वित्त आदि की आवश्यकता पड सकती है। परन्तु प्रशिक्षित कम और दक्ष वर्कर ऊची

मजदूरी दरो पर उपलब्ध हो सकते है। कच्चे माल की कमिया उत्पन्न हो सकती हैं जो फर्म को ऊची कीमतो पर खरीदनी पड सकती है। अधिक वित्त ऊची ब्याज दर पर उपलब्ध हो सकता है। फर्म के प्रसार के साथ विपणन, विक्रय और परिवहन व्यय बढ सकते है। ये सभी भौतिक साधन प्रति इकाई लागत बढाते है।

(ग) आर्थिक बाह्य अमितव्ययिताए (Pecuniary External Diseconomies)

आर्थिक बाह्य अमितव्ययिताए केवल एक उद्योग के साधनो की बाजार कीमतो मे वृद्धियो द्वारा उत्पन्न होती है। जब एक उद्योग का प्रसार होता है, तो श्रम, पूजी, उपकरण, कच्चे माल आदि की माग फर्मों की ओर से बढती है। लेकिन उद्योग के केन्द्रीकरण और अत्यधिक प्रसार से श्रम, पूजी, उपकरण, कच्चे माल, बिजली, परिवहन आदि की कमिया उत्पन्न हो जाती है जिनसे इन साधनो की कीमतो मे वृद्धि होती है तथा फर्मों की प्रति इकाई लागते बढती है। ये अमितव्ययिताए उद्योग मे प्रत्येक फर्म को बाह्य कारणों से होती है क्योकि साधनो की कीमतो मे वृद्धिया किसी एक अकेली फर्म के प्रसार द्वारा नहीं होती, बल्कि समस्त उद्योग के प्रसार के कारण होती है।

प्रश्न

1. उत्पादन फलन क्या है? अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उत्पादन फलन मे क्या अन्तर है?
2. घटते प्रतिफल के नियम की व्याख्या कीजिए। यह किन स्थितियो मे लागू होता है?
3. "जब साधनो के एक सयोग मे एक साधन के अनुपात मे वृद्धि की जाती है, तो एक बिन्दु के पश्चात, उस साधन की सीमात और औसत उत्पाद कम होगी।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
4. पैमाने के प्रतिफल नियम की व्याख्या कीजिए।
5. वास्तविक आतरिक किफायतो और आर्थिक आतरिक किफायतो की व्याख्या कीजिए।

अध्याय 17

उत्पादन-फलन : सममात्रा-समलागत सिद्धान्त
(PRODUCTION FUNCTION THE ISOQUANT-ISOCOST APPROACH)

पिछले अध्याय में परम्परागत विश्लेषण की दृष्टि से विभिन्न उत्पादन-फलन स्पष्ट किए गए हैं। इस अध्याय में सममात्रा-समलागत सिद्धान्त की सहायता से उनकी व्याख्या की जा रही है। जिस तकनीक का यहाँ प्रयोग किया जा रहा है, वह उपभोग-सिद्धान्त में प्रयुक्त उदासीनता वक्र तकनीक से मिलती-जुलती है।

1 सममात्रा-वक्र या समोत्पाद-वक्र
(ISOQUANTS OR ISOPRODUCT CURVE)

सममात्रा-वक्र वह है जिस पर श्रम और पूंजी के विभिन्न संयोग समान उत्पादन प्रकट करते हैं। एक समोत्पाद-वक्र वह वक्र होता है जिस पर उत्पादन की अधिकतम प्राप्त-योग्य दर स्थिर होती है।[1] इसे उत्पादन उदासीनता वक्र (production indifference curve) या स्थिर उत्पादन वक्र भी कहते है।* जिस प्रकार एक उदासीनता वक्र किन्हीं दो वस्तुओं के सम-उपयोगिता (iso-utility) प्रदान करते हैं, ठीक उसी प्रकार एक सममात्रा-वक्र उत्पादन के दो साधनों के ऐसे विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है जो उत्पादक को समय की प्रति इकाई उत्पादन का समान स्तर प्रदान करते हैं। नीचे दी गई तालिका 17 1 एक ऐसी फर्म की उपकल्पित अनुसूची प्रस्तुत करती है, जो एक वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन करती है।

तालिका 17 1 सममात्रा-अनुसूची (Isoquant Schedule)

संयोग	पूंजी की इकाइयाँ	श्रम की इकाइयाँ	कुल उत्पादन (इकाइयों में)
A	9	5	100
B	6	10	100
C	4	15	100
D	3	20	100

इस तालिका को चित्र 17 1 में दिखाया गया है, जहाँ श्रम की इकाइयाँ X-अक्ष पर और पूँजी की इकाइयाँ Y-अक्ष पर मापी गई हैं। पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे संयोगों को क्रमश A B C और D के रूप में दिखाया गया है। इन सब बिन्दुओं को मिला देने से IQ वक्र बन जाता है। यह सममात्रा वक्र है। फर्म इस वक्र के बिन्दु A पर पूँजी की 9 और श्रम की 5 इकाइयों के संयोग से

1 An isoproduct curve is a curve along which the maximum achievable rate of production is constant K J Cohen and R M Cyert *Theory of Firm*, p 113

* Iso का अर्थ है समान, इसलिए इसे सममात्रा वक्र (equal quantity curve) या समोत्पाद वक्र (equal product curve या Isoproduct curve) भी कहते हैं।

उत्पादन की 100 इकाइयों का उत्पादन कर सकती है। इस प्रकार बिन्दु *B* पूँजी की 6 और श्रम की 10 इकाइयों के, बिन्दु *C* पूँजी 4 और श्रम की 15 इकाइयों के तथा बिन्दु *D* पूँजी की 3 ओर श्रम की 20 इकाइयों के ऐसे सयोगो को प्रकट करते है जो 100 इकाइयों के समान उत्पादन करते है।

चित्र 17 1

उत्पादन की विभिन्न मात्राओं को प्रकट करने वाले कई सममात्रा-वक्रो को सममात्रा मानचित्र (isoquant map) कहते है। चित्र 17 1 में IQ IQ_1, IQ_2 वक्र एक सममात्रा मानचित्र को प्रदर्शित करते है। वक्र IQ वस्तु की 100 इकाइयो, वक्र IQ_1 वस्तु की 200 इकाइयों और वक्र IQ_2 वस्तु की 300 इकाइयो के उत्पादन को प्रकट करते है जो दो साधनो के नितान्त भिन्न सयोगों से उत्पादित की जा सकती है।
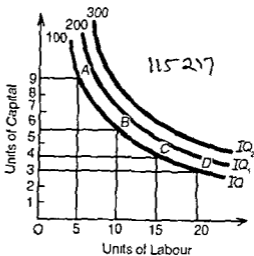
(क) सममात्रा-वक्र बनाम उदासीनता-वक्र (Isoquants vs Indifference Curves)

सममात्रा-वक्र कई प्रकार से उदासीनता वक्र के सदृश होता है। इसमे दो साधन श्रम ओर पूँजी उपभोग की दो वस्तुओ का स्थान ले लेते है। सममात्रा-वक्र सब बिन्दुओ पर उत्पादन के समान स्तर को प्रकट करता है जबकि उदासीनता वक्र सब बिन्दुओ पर सतुष्टि के समान स्तर को। जेसा कि हम आगे अध्ययन करेंगे, सममात्रा-वक्रो की विशेषताएँ उदासीनता वक्रो की विशेषताओं से बिल्कुल मिलती-जुलती है। हाँ, सममात्रा ओर उदासीनता वक्रो मे कुछ भिन्नताएँ भी है।

प्रथम, एक उदासीनता वक्र सतुष्टि को प्रकट करता है जिसको भौतिक इकाइयो मे नहीं मापा जा सकता। सममात्रा-वक्र उत्पादन को भौतिक इकाइयो मे मापता है।

दूसरे, उदासीनता मानचित्र पर हम केवल यह बता सकते है कि एक ऊँचा उदासीनता वक्र नीचे उदासीनता वक्र की अपेक्षा अधिक सतुष्टि प्रदान करता है परन्तु यह नहीं बता सकते कि एक उदासीनता वक्र की अपेक्षा दूसरे से कितनी अधिक या कम सतुष्टि प्राप्त होती है जबकि सममात्रा मानचित्र मे यह आसानी से बताया जा सकता है कि एक नीचे सममात्रा-वक्र की तुलना मे ऊँचे सममात्रा-वक्र पर उत्पादन की कितनी मात्रा अधिक है। चित्र 17 1 मे IQ का उत्पादन से, IQ_1 पर उत्पादन दुगुना ओर IQ_2 पर उत्पादन तिगुना है।

अन्तिम, क्योकि उदासीनता वक्रो पर सतुष्टि भौतिक इकाइयो में नहीं मापी जा सकती, इसलिए उन्हें कल्पित सख्याएँ 1, 2, 3, 4 आदि दी जाती है।[2] उदासीनता वक्रो से सममात्रा-वक्रो को एक और लाभ यह है कि उन्हे भौतिक इकाइयो मे अकित किया जा सकता है जैसेकि चित्र

2 सममात्रा-वक्रों के विश्लेषण को एक निर्गत दो आगत उत्पादन फलन (one output two-input production function) भी कहते हैं।

17 1 में 100, 200, 300 जिसमे प्रत्येक वक्र का अनुरूप उत्पादन स्तर प्रकट होता है।

(ख) सममात्रा-वक्रो की विशेषताएँ (Properties of Isoquants)

सममात्रा-वक्रो की कुछ विशेषताएँ होती है जो उदासीनता वक्रो की विशेषताओ से मिलती-जुलती है।

(1) सममात्रा-वक्रो की ढलान ऋणात्मक होती है (Isoquants are negatively inclined)—यदि उनकी ढलान ऋणात्मक न हो तो कई असगत व्यर्थताएँ खडी हो जाती है। यदि सममात्रा वक्र का ढलान ऊपर की ओर दाएँ को हो, तो इसका मतलब है कि पूँजी और श्रम दोनो बढते है परन्तु वे उतना ही उत्पादन करते है।

चित्र 17 2 (A) मे *IQ* वक्र पर सयोग *B* जिसमे श्रम और पूँजी की मात्रा अधिक है ($OC_1 + OL_1 > OC + OL$), पहले से अधिक उत्पादन देगा। इसलिए *IQ* वक्र पर बिन्दु *A* और *B* समान उत्पादन के बिन्दु नहीं हो सकते।

मान लीजिए कि सममात्रा-वक्र अनुलम्ब है, जेसाकि चित्र 17 2 (B) मे, तो उसका अर्थ होगा कि श्रम की दी हुई एक निश्चित मात्रा पूँजी की भिन्न-भिन्न इकाइयो से सयोग करती है। क्योकि यहाँ *OL* श्रम और *OC* पूँजी का सयोग जितनी मात्रा का उत्पादन करता है, उसकी अपेक्षा *OL* श्रम और OC_1 पूँजी अधिक मात्रा का उत्पादन करेगा इसलिए *IQ* वक्र स्थिर उत्पादन-वक्र नहीं हो सकता।
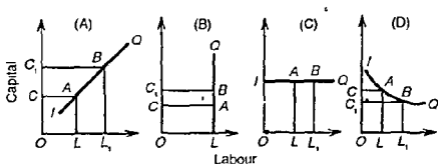
चित्र 17 2

चित्र 17.2 (C) को लीजिए। यहाँ सममात्रा-वक्र *X*-अक्ष के समानान्तर है। इसका अभिप्राय है कि श्रम की अधिक मात्रा पूँजी की उतनी मात्रा मे सयोग करती है। यहाँ *OI* पूँजी और OL_1 श्रम का सयोग *OI* पूँजी और *OL* श्रम की अपेक्षा अधिक मात्रा का उत्पादन करेगा। इसलिए क्षैतिज वक्र समोत्पाद वक्र नहीं हो सकता।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सममात्रा-वक्र की ढलान अवश्य नीचे की ओर दाए को होगी, जैसाकि चित्र 17 2 (D) मे दिखाया गया है, जहाँ *IQ* वक्र पर *A* और *B* समान मात्रा के बिन्दु है। जब पूँजी की मात्रा *OC* से घटकर OC_1 होती है तो श्रम की मात्रा *OL* से बढकर OL_1 हो जाती है जिससे उत्पादन की मात्रा स्थिर रहती है।

(2) एक सममात्रा-वक्र दूसरे के ऊपर दाई ओर उत्पादन के ऊँचे स्तर को प्रकट करता है (A higher isoquant above and to the right of another represents a higher level of output)—एक सममात्रा-वक्र, जो दूसरे से अधिक ऊँचाई पर दाएँ को स्थित होता है, उत्पादन के अधिक ऊँचे स्तर को प्रकट करता है। चित्र 17 3 मे, IQ_1 वक्र पर बिन्दु *B* का सयोग *IQ* वक्र के बिन्दु *A* की अपेक्षा

चित्र 17.5

shown on isoquants are arbitrary)—सममात्रा-वक्रों पर उत्पादन की 100, 200, 300 आदि इकाइयाँ कल्पित होती हैं। इन वक्रों पर 5, 10, 15, 20 या 1,000, 2,000, 3,000 या उत्पादन की कोई भी इकाइयाँ दिखाई जा सकती हैं।
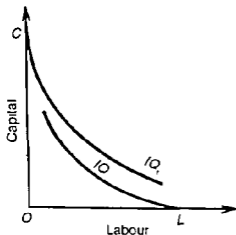
(7) **कोई सममात्रा-वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श नहीं कर सकता** (No isoquant can touch either axis)—यदि एक सममात्रा-वक्र X-अक्ष को स्पर्श करता है तो इसका अभिप्राय है कि पूँजी के बिना, केवल श्रम की सहायता से उत्पादन किया जा रहा है। तर्क की दृष्टि से यह असगत है क्योंकि केवल श्रम की OL इकाइयाँ कुछ भी उत्पादन करने की क्षमता नहीं रखतीं। इसी प्रकार केवल पूंजी की OC इकाइयाँ भी श्रम के प्रयोग के बिना कुछ भी उत्पादन नहीं कर सकतीं। इसलिए चित्र 17.5 वाले IQ और IQ_1 वक्र सममात्रा-वक्र नहीं हो सकते।

(8) **प्रत्येक सममात्रा-वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर होता है** (Each isoquant is convex to the origin)—जब वस्तु की 100 इकाइयों के उत्पादन के लिए श्रम की अधिक इकाइयाँ लगाई जाती हैं तो पूँजी की अपेक्षाकृत कम इकाइयाँ प्रयोग की जाती हैं। इसका कारण यह है कि दोनों साधनों की स्थानापन्नता की दर घट जाती है। चित्र 17.6 में, वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन करने के लिए, उत्पादक संयोग A से जैसे-जैसे B C और D पर आता है, वह श्रम की अतिरिक्त इकाइयों के लिए पूँजी की अपेक्षाकृत और कम इकाइयों को छोड़ता है। उत्पादन के उसी 100 इकाइयों के स्तर को बनाए रखने के लिए, पूँजी की पहले से कम BR और श्रम की अपेक्षाकृत RC इकाइयाँ अधिक प्रयोग की जाती हैं। यदि उत्पादक इसी उत्पादन को संयोग D से उत्पादित करता है तो वह पूँजी की कम मात्रा CT तथा श्रम की अपेक्षाकृत अधिक TD मात्रा लगाएगा। इस प्रकार घटती स्थानापन्नता की दर के कारण सममात्रा-वक्र उन्नतोदर होते हैं। यह बात चित्र 17.6 में IQ के नीचे की त्रिभुजों के क्रमश छोटे आकार के होने से भी स्पष्ट हो जाती है $\Delta ASB > \Delta BRC > \Delta CTD$।
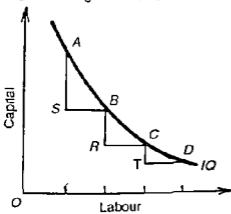
चित्र 17.6

(9) **प्रत्येक सममात्रा-वक्र अण्डाकार** (Each isoquant is oval-shaped)—यह अण्डाकार होता है जिसका अभिप्राय है कि किसी बिन्दु पर यह प्रत्येक अक्ष से पीछे हटने लगता है। यह आकार इस तथ्य का परिणाम है कि यदि उत्पादक आवश्यकता से अधिक श्रम, या पूँजी या दोनों का प्रयोग करता है, तो अन्त में कुल उत्पादन घट जाएगा। फर्म सममात्रा-वक्रों के उन्हीं भागों में

उत्पादन करेगी जो मूल के उच्चतोदर और कूट रेखाओं (ridge lines) के बीच मे स्थित है। यही उत्पादन का मितव्ययी क्षेत्र (economic region of production) है।

चित्र 17 7 मे अण्डाकार सममात्रा-वक्र दिखाए गए है। वक्र *OA* और *OB* कूट-रेखाएँ है। इनके बीच मे, उत्पादन की 100, 200, 300, 400 इकाइयो के लिए प्रयोग की जा सकने वाली पूँजी और श्रम की सभव मितव्ययी इकाइयाँ है। उदाहरणार्थ, श्रम की *OT* इकाइयाँ और पूँजी की *ST* इकाइयाँ वस्तु की 100 इकाइयो का उत्पादन कर सकती है परन्तु इतना ही उत्पादन पूँजी की उतनी ही मात्रा *OT* और पूँजी की कम मात्रा *VT* से भी प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए केवल एक नासमझ उत्पादक ही सममात्रा-वक्र 100 के बिन्दुकित क्षेत्र (dotted area) मे उत्पादन करेगा। सममात्रा-वक्रों के बिन्दुकित भाग निरर्थक और बेकार खर्च के क्षेत्र है। वे उत्पादन के लाभदायक क्षेत्र नहीं है। ऊपर के बिन्दुकित भाग मे आवश्यकता से अधिक पूँजी और नीचे के बिन्दुकित भाग मे आवश्यकता से अधिक श्रम लगाए गए है। इसलिए अण्डाकार वक्रो के *GH JK, LM NP* भाग सममात्रा-वक्र है।
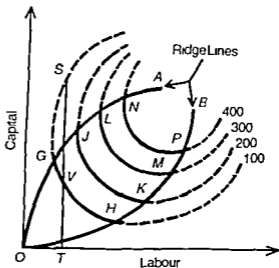
चित्र 17 7

2. समलागत वक्र (ISOCOST CURVES)

दिये हुए दो साधनो के सयोग से फर्म के उत्पादन की सभावनाओ को प्रकट करने वाले सममात्रा वक्रों का अध्ययन कर लेने के बाद हम साधनों की कीमतो पर आते है जिन्हे समलागत-वक्र कहते है। इन वक्रो को व्यय-रेखाएँ (outlay lines), आगत कीमत रेखाएँ (input-price lines), साधन-लागत रेखाएँ (factor cost lines), स्थिर व्यय रेखाएँ (constant outlay lines) आदि भी कहते है। प्रत्येक समलागत-वक्र दो साधनो के भिन्न-भिन्न सयोगों को प्रकट करता है जिन्हे एक फर्म दी हुई मुद्रा की मात्रा से प्रत्येक साधन की दी हुई कीमत पर खरीद सकती है।

चित्र 17 8 (A) में तीन समलागत वक्र दिखाए गए है जो क्रमश रु 50, 75 और 100 के कुल व्यय को प्रकट करते है। फर्म रु 75 से पूँजी की *OC* या श्रम की *OD* मात्रा प्राप्त कर सकती है। *OC* मात्रा *OD* की $\frac{2}{3}$ है जिसका अभिप्राय है कि पूँजी की एक इकाई से श्रम की एक इकाई की कीमत $1\frac{1}{2}$ गुणा कम है। *CD* रेखा पूजी और श्रम के कीमत अनुपात को प्रकट करती है। यदि
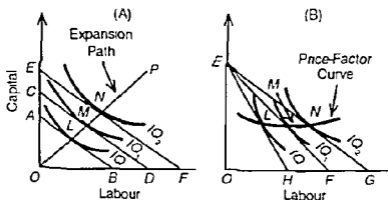
चित्र 17.8

साधनों की कीमतें स्थिर रहें और कुल व्यय बढ़ा दिया जाए तो समलागत वक्र ऊपर की ओर दाएँ को सरक जाएगा जैसे CD के समानान्तर EF, और यदि कीमतों को स्थिर रखते हुए कुल व्यय घटा दिया जाए तो यह वक्र नीचे की ओर बाएँ को सरक जाएगा जैसे AB। समलागत-वक्र सरल रेखाएँ होती हैं क्योंकि साधन कीमतें स्थिर रहती हैं, चाहे फर्म का कुल व्यय कुछ भी हो। समलागत-वक्र दो साधनों के सभी संयोगों के बिन्दु-पथ का वर्णन करते हैं जिनसे कुल लागत समान होती है।* यदि श्रम (L) की प्रति इकाई लागत w है और पूँजी (C) की प्रति इकाई लागत r तो कुल लागत $TC = wL + rC$। समलागत रेखा की ढलान श्रम और पूँजी की कीमतों का अनुपात होती है w/r।

यह बिन्दु जिस पर समलागत रेखा और समलागत वक्र एक दूसरे को स्पर्श करती हैं, एक निश्चित उत्पादन के लिए न्यूनतम-लागत संयोग को प्रकट करता है। यदि सब स्पर्श बिन्दुओं जैसे L M N को मिला दिया जाए तो इससे फर्म का न्यूनतम-व्यय वक्र या फर्म का विस्तार मार्ग (expansion path) OP बनता है। यह प्रकट करता है कि फर्म का विस्तार होने पर दो साधनों के अनुपातों में किस प्रकार परिवर्तन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ चित्र 17.8 (A) में न्यूनतम लागत पर 100 (IQ) इकाइयों या 300 (IQ_2) इकाइयों के उत्पादन के लिए दो साधनों, श्रम और पूँजी का अनुपात 200 (IQ_1) इकाइयों के लिए प्रयोग किये जाने वाले श्रम और पूँजी के अनुपात से भिन्न है।[3]

उदासीनता वक्र विश्लेषण के कीमत आय वक्र की भाँति, यदि एक साधन की कीमत स्थिर रहे और दूसरा साधन सस्ता हो जाए तो समलागत रेखा दाईं ओर फैल जाएगी। यदि एक साधन दूसरे की अपेक्षा महंगा हो जाता है, तो समलागत रेखा बाईं ओर अन्दर को सिकुड़ जाएगी। पूंजी की कीमत दी होने पर, यदि श्रम की कीमत कम हो जाती है, तो समलागत रेखा EF चित्र के पैनल (B) में दाईं ओर फैलकर EG हो जाएगी, और यदि श्रम की कीमत बढ़ जाती है, तो समलागत रेखा EF बाईं ओर अन्दर को सिकुड़कर EH हो जाएगी। यदि संतुलन बिन्दुओं L M N को एक रेखा द्वारा मिलाया जाए तो वह कीमत-साधन वक्र (price factor curve) कहलाती है।

* The isocost curves represent the locus of all combinations of the two factors which result in the same total cost.

3 इसका विस्तृत अध्ययन न्यूनतम लागत संयोग में किया गया है।

3. तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर का नियम (THE PRINCIPLE OF MARGINAL RATE OF TECHNICAL SUBSTITUTION)

तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर का नियम (MRTS) उत्पादन फलन पर आधारित है, जहाँ दो साधनो को परिवर्तीय अनुपातो मे इस ढग से स्थानापन्न किया जा सकता है कि उत्पादन के स्थिर स्तर का उत्पादन किया जा सके।

दो साधनो C (पूँजी) और L (श्रम) मे तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर ($MRTS_{LC}$) वह है जिस पर उत्पादन की मात्रा मे परिवर्तन किए बिना वस्तु X के उत्पादन मे C के स्थान पर L को स्थानापन्न किया जा सकता है। हम जैसे-जैसे सममात्रा-वक्र पर नीचे की ओर दाएँ को आते है, तो उस वक्र पर प्रत्येक बिन्दु पूँजी के स्थान पर श्रम की स्थानापन्नता को व्यक्त करता है। *MRTS* पूँजी की उन निश्चित इकाइयों की हानि है जिनकी उस वस्तु पर श्रम की अतिरिक्त इकाइयो से ठीक क्षति-पूर्ति हो जाएगी।* दूसरे शब्दो मे, पूँजी के लिए श्रम की तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर एक बिन्दु पर सममात्रा-वक्र की ढलान है। इसलिए,

सममात्रा वक्र की ढलान $= MRTS_{LC} = -\Delta C/\Delta L$ इसे *सममात्रा अनुसूची की सहायता से* समझा जा सकता है।

तालिका 17 2 सममात्रा अनुसूची

सयोग	श्रम	पूँजी	$MRTS_{LC}$	उत्पादन
1	5	9	—	100
2	10	6	3 5	100
3	15	4	2 5	100
4	20	3	1 5	100

तालिका 17 2 यह प्रदर्शित करती है कि उत्पादन को 100 इकाइयो पर स्थिर रखने के लिए दूसरे सयोग मे पूँजी की 3 इकाइयाँ घटा देने पर श्रम की 5 अतिरिक्त इकाइयो की आवश्यकता है, $MRTS_{LC} = 3 \quad 5$ तीसरे सयोग मे पूँजी की 2 इकाइयो की हानि की क्षति-पूर्ति श्रम की 5 इकाइयो से होती है, इत्यादि।

चित्र 17 9 मे तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर बिन्दु B पर AS/SB, बिन्दु G पर BT/TG और बिन्दु H पर GR/RH है।

तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर को यो भी व्यक्त कर सकते है कि यह श्रम के सीमान्त भौतिक उत्पादन का पूँजी के सीमान्त भौतिक उत्पादन से अनुपात है।**

या $MRTS_{LC} = MP_L / MP_c$
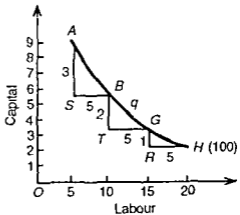
चित्र 17 9

*MRTS is the loss of certain units of capital which will just be compensated for by additional units of labour at that point

**The ratio of marginal physical product of labour to the marginal physical product of capital

यद्यपि उत्पादन स्थिर रहता है, तो भी स्थानापन्नता की प्रक्रिया परिवर्तन लाती है। पूजी की कुछ इकाइया हटाने से उत्पादन कम होता है, जो श्रम की अतिरिक्त इकाइया लगाने मे पुन प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार, पूजी की इकाइया हटाने से उत्पादन मे कमी ($dC \times MP_C$) बराबर है उत्पादन मे श्रम की अतिरिक्त इकाइया लगाने से उत्पादन मे लाभ ($dL \times MP_L$)। इसलिए, $-dC/dL = MP_L/MP_C$, जहा MP_l और MP_c श्रम ओर पूजी की सीमात उत्पादकताए है।

इन सबधो को गणितीयरूप में व्यक्त किया जा सकता है। एक दिए हुए उत्पादन q के लिए, सममात्रा वक्र पर उत्पादन फलन है $q = f(C, L)$।

सममात्रा वक्र की ढलान है $MRTS_{LC} = -dC/dL$, जहा d परिवर्तन है। उत्पादन फलन का कुल अवकल (differential) है,

$dq = MP_C \ dC \times MP_L \ dL$

परन्तु एक सममात्रा वक्र के साथ गति के लिए dq उत्पादन स्थिर है। इस प्रकार ऊपर के समीकरण में $dq = O$ स्थानापन्न करके,

$O = MP_C \ dC \times MP_L \ dL$

क्योंकि परिभाषा द्वारा $MRTS_{LC} = -dC/dL$

$MRTS_{LC} = -dC/dL = MP_l/MP_c$

अत तकनीकी स्थानापन्नता की सीमात दर बराबर है श्रम की पूजी के साथ सीमात उत्पादकता के अनुपात के।

चित्र 17 9 मे, सममात्रा वक्र AH की q पर ढलान $= BT/TG$ मान लीजिए कि पूजी की BT इकाइया हटाने से, उत्पादन की एक इकाई कम हो जाती है। यह पूजी की सीमात उत्पादकता का उलट है, अर्थात् $1/MP_C$ और उत्पादन की इस इकाई की हानि की क्षतिपूर्ति करने के लिए श्रम की TG इकाइया चाहिए। यह श्रम की सीमात उत्पादकता का उलट है। अर्थात् $1/MP_L$ इस प्रकार बिन्दु q पर

$$MRTS_{LC} = q = \frac{BT}{TG} = \frac{1}{MP_C} + \frac{1}{MP_L} = \frac{MP_L}{MP_C}$$

चित्र 17·9 मे सममात्रा वक्र AH यह प्रकट करता है कि वस्तु X की 100 इकाइयो के उत्पादन के लिए साधन सयोग मे जैसे-जैसे श्रम की इकाइया उत्तरोत्तर बढाई जाती हैं पूजी की इकाइयो में कमी कम होती जाती है। इसका मतलब है कि तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर घटती जाती है। तकनीकी स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर ($DMRTS$) का यह सिद्धान्त उदासीनता के स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर के नियम के समानान्तर है। तालिका 17 2 और चित्र 17 9 से साधनों की घटती सीमान्त स्थानापन्न योग्यता की प्रवृत्ति स्पष्ट है। $MRTS_{LC}$ 3 5 से 1 5 तक घटती जाती है, जबकि चित्र 17 9 मे, अनुलम्ब रेखाओं के नीचे सगमात्रा-वक्रों पर त्रिभुज छोटे होते जाते हे, ज्यों-ज्यों हम सममात्रा-वक्र पर नीचे की ओर आते हैं $GR < BT < AS$ जैसाकि ऊपर परिभाषा दी जा चुकी हे, पूँजी के लिए श्रम की $MRTS$ उनकी सीमान्त भौतिक उत्पादकताओं के अनुपात के बराबर होती है। उत्पादन को स्थिर रखने के लिए पूँजी की इकाइयो की हानि की क्षतिपूर्ति के पूर्ति के लिए ज्यों-ज्यों श्रम की अधिक इकाइयों को प्रयोग किया जाता है, त्यों-त्यों श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पादकता घटती है और पूँजी की सीमान्त भौतिक उत्पादकता बढती है। इसलिए जब पूँजी के स्थान पर श्रम को स्थानापन्न करते है, तो तकनीकी स्थानापन्नता की दर घट जाती है। इसका अभिप्राय है कि सममात्रा-वक्र हर बिन्दु पर मूल बिन्दु के उन्नतोदर होता है।

सीमाएँ (Limitations)—तकनीकी स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर ($MRTS$) का नियम इस मान्यता पर आधारित है कि श्रम और पूँजी को अस्थिर (non-constant) दर पर स्थानापन्न किया जा सकता है। यह मान्यताए वास्तविक हैं क्योंकि उत्पादक इकाइयो मे ऐसी दशाएँ होती है। पर

इस नियम की दो सीमाएँ भी है एक, जहाँ श्रम और पूँजी मे स्थानापन्नता बिलकुल सभव न हो और दूसरे, जहाँ वे एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न हो। इनकी विवेचना नीचे की जा रही है।

(1) **साधनो का निश्चित अनुपातो मे प्रयोग** (Use of factors in fixed proportions)--चित्र 17 10 (A) में उत्पादन की तकनीकी स्थितियाँ निश्चित अनुपातो मे श्रम और पूँजी के प्रयोग की
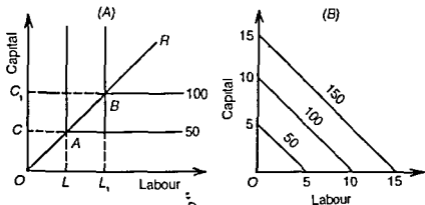
चित्र 17 10

अपेक्षा रखती है। इस प्रकार बिन्दु A पर उत्पादन की 50 इकाइयो का उत्पादन करने के लिए, पूँजी की OC और श्रम की OL इकाइयो का प्रयोग होता है। 100 इकाइयो के उत्पादन के लिए, पूँजी *की OC_1 और श्रम की OL_1 इकाइयो की जरूरत है। उत्पादन की मात्रा दुगुनी करने के लिए पूँजी* और श्रम की दुगुनी इकाइयो का प्रयोग किया जाता है। L के आकार का सममात्रा वक्र यह बतलाता है कि उत्पादन को बढाने के लिए श्रम और पूजी दोनो मे आनुपातिक वृद्धि की *आवश्यकता है। ऐसी स्थिति मे साधन पूरक होते है और बिल्कुल भी स्थानापन्न नहीं किए जा* सकते। सममात्रा वक्रो के अनुलम्ब भाग पर पूँजी के लिए श्रम की स्थानापन्नता की दर शून्य है, क्योकि समभात्रा-वक्रो का ढलान बिल्कुल नहीं है, जबकि क्षैतिज भाग मे तकनीकी स्थानापन्नता *की सीमान्त दर अनन्त है।*

(2) **पूर्ण स्थानापन्न साधन** (Perfect substitute factors)--चित्र 17 10 (B) में इसके विपरीत स्थिति दिखाई गई है, जहाँ पूँजी और श्रम पूर्ण स्थानापन्न है। सममात्रा-वक्र उत्पादन की क्रमश 50, 100 और 150 इकाइयो को प्रकट करते है। उत्पादन की 50 इकाइयो का उत्पादन करने के लिए या तो पूँजी की 5 और श्रम की शून्य इकाई या फिर श्रम की 5 और पूँजी की शून्य इकाई का प्रयोग होता है। इसी प्रकार श्रम या पूँजी की 10 और 15 इकाइयाँ उत्पादन की क्रमश 100 और 150 इकाइयो का उत्पादन कर सकती है। इस प्रकार सममात्रा-वक्रो के सब बिन्दुओ पर पूँजी के लिए श्रम की तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर (*MRTS*) स्थिर है, और श्रम और पूजी दोनो एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न है। यह बहुत ही अवास्तविक स्थिति है क्योकि श्रम और पूँजी समान *साधन नहीं और इसलिए वे पूर्ण स्थानापन्न नहीं है।*

निष्कर्ष (Conclusion)--हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि दो साधनो मे तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर न तो शून्य होती है और न अनन्त और न ही स्थिर बल्कि यह घटती जाती है क्योकि सममात्रा-वक्र न तो L के आकार के होते हैं और न ही सरल रेखाएँ, बल्कि वे मूल बिन्दु के उन्नतोदर (convex) होते है।

4. साधन स्थानापन्नता की लोच (ELASTICITY OF SUBSTITUTION)

साधन स्थानापन्नता या तकनीकी स्थानापन्नता (technical substitution) की लोच दो साधनों के बीच स्थानापन्न योग्यता की कोटि को मापती है*। इस सिद्धान्त के निर्माता जे आर हिक्स ने इसकी परिभाषा यों की है "यह उस स्थिति का माप है जिसमें अन्य साधनों के स्थान पर एक परिवर्तनशील साधन को स्थानापन्न किया जा सकता है।"[4] यदि एक वस्तु की इकाई के लिए दो साधन निश्चित अनुपातों में (1 मशीन + 2 श्रमिक) चाहिए, तो उनकी स्थानापन्नता की लोच शून्य होती है। यदि श्रम और पूँजी लगभग समरूप हों, जिससे एक दूसरे का पूर्ण स्थानापन्न हो, तो उन दोनों में स्थानापन्नता की लोच अनन्त होती है। जब श्रम की मात्रा में वृद्धि से पूँजी की सीमान्त उत्पादकता उसी अनुपात में बढ़ जाए जिस अनुपात में कुल उत्पादन बढ़ता है, तो स्थानापन्नता की लोच इकाई कहलाती है। अत स्थानापन्नता की लोच (*es*) का मूल्य शून्य और अनन्त में कहीं भी हो सकता है। σ का मूल्य जितना अधिक होगा उतनी ही दो साधनों के बीच स्थानापन्नता अधिक होगी।

पर श्रीमती जोन राबिन्सन ने स्थानापन्नता की लोच की यह परिभाषा की है, "यह साधनों की मात्राओं के अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन को, उनकी सीमान्त भौतिक उत्पादकताओं के अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन से विभक्त करने पर प्राप्त होती है।"[5] यदि श्रम (*L*) और पूँजी (*C*) दो साधन हों और उनकी सीमान्त भौतिक उत्पादकताओं के अनुपात को *r* द्वारा व्यक्त किया जाए तो स्थानापन्नता की लोच है,

$$es = \frac{d\ (C/L)}{C/L} \div \frac{dr}{r}$$ जहाँ *d* परिवर्तन को प्रकट करती है।

प्रोफेसर हिक्स अपने *Revised Version* में एक प्रकार से राबिन्सन की परिभाषा को स्वीकार करता है जब वह कहता है कि पूर्ण प्रतियोगिता और पैमाने के स्थिर प्रतिफल में "जहाँ केवल दो साधन हों, तो हम इस प्रकार एक वक्र खींच सकते हैं कि एक अक्ष पर साधनों की प्रयोग की गई मात्राओं के अनुपात को मापा जाए और साधनों के प्रति इकाई मूल्यों के अनुपात को दूसरे अक्ष पर। इस वक्र की लोच को हम स्थानापन्नता की लोच कहते हैं।"

क्योंकि दो साधनों की सीमान्त भौतिक उत्पादकता के अनुपात को तकनीकी सीमान्त उत्पादकता की दर (*MRTS*) कहते हैं, इसलिए स्थानापन्नता की लोच के सिद्धान्त की सममात्रा-वक्र विश्लेषण की भाषा में यों परिभाषित की जा सकती है, साधनों के अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन को तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर में आनुपातिक परिवर्तन से विभक्त करना।**

गणितीय विधि से, दो साधनों श्रम और पूँजी में स्थानापन्नता की लोच है,

$$es_{LC} = \frac{\text{Percentage in capital / labour ratio}}{\text{Percentage change in } MRTS_{LC}}$$

या $$es_{LC} = \frac{d(C/L)/(C/L)}{d(MRTS_{LC})/MRTS_{LC}}$$

*Elasticity of substitution measures the degree of substitutability between two factors

4 It is a measure of the ease with which the varying factor can be substituted for others —*Hicks*

5 "The proportionate change in the ratio of the amounts of the factors divided by the proportionate change in the ratio of their marginal physical productivities"—*Joan Robinson*

**It is the proportionate change in the ratio of the factors divided by proportionate change in the marginal rate of technical substitution

या $$es_{LC} = \frac{d(C/L)}{d(MRTS_{LC})} \times \frac{MRTS_{LC}}{C/L}$$

यह परिभाषा प्रकट करती है कि तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर मे साधनो के अनुपात से उलट परिवर्तन होता है। यदि हम तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर ($MRTS_{LC}$) को Y-अक्ष पर अंकित करे और पूँजी-श्रम अनुपात को X-अक्ष पर, तो परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाला वक्र TS स्थानापन्नता वक्र है जो चित्र 17.11 मे स्थानापन्नता की लोच को मापता है। बिन्दु M पर OM किरण की ढलान C/L है। इसी प्रकार, R बिन्दु पर OR किरण की ढलान C/L है। इसलिए TS वक्र का MR भाग $d(C/L)$ है। बिन्दु M पर स्पर्श रेखा (tangent) t_1 की ढलान
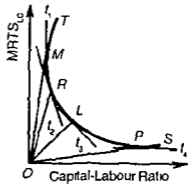
चित्र 17.11

$MRTS_{LC}$ और बिन्दु R पर स्पर्श रेखा t_2 की ढलान भी $MRTS_{LC}$. अत इन दोनो स्पर्श रेखाओ की ढलानो के बीच का अन्तर $d(MRTS_{LC})$ है। इस प्रकार, जिस क्षेत्र मे स्थानापन्नता वक्र TS चपटा है, उसमे स्थानापन्नता की लोच बहुत अधिक होती है जैसे कि L और P के बीच मे। इस स्थिति मे, पूँजी और श्रम अच्छे स्थानापन्न (good substitutes) है। जहाँ स्थानापन्नता वक्र प्रपाती (steep) हो, स्थानापन्नता की लोच कम होती है जैसे TS वक्र पर R और L के बीच। यहाँ श्रम ओर पूँजी अच्छे स्थानापन्न नहीं है। M बिन्दु पर जहाँ स्थानापन्नता वक्र अनुलम्ब है, स्थानापन्नता की लोच शून्य बन जाती है क्योकि $MRTS_{LC}$ मे एक निश्चित प्रतिशत परिवर्तन नहीं होता। S स्थानापन्नता की अनन्त लोच का बिन्दु है, जहाँ $MRTS_{LC}$ मे एक निश्चित प्रतिशत परिवर्तन से पूँजी-श्रम अनुपात मे बहुत ही अधिक परिवर्तन हो जाता है। बिन्दु L के गिर्द स्थानापन्नता की लोच इकाई है क्योकि $MRTS$ मे एक निश्चित प्रतिशत परिवर्तन से पूँजी-श्रम अनुपात मे बराबर का परिवर्तन होता है।

स्थानापन्नता की लोच के इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि जब स्थानापन्नता की लोच इकाई हो, तो उत्पादन स्थिर प्रतिफल के नियम का पालन करता है, इकाई से अधिक लोच, बढते प्रतिफल ओर इकाई से कम लोच, घटते प्रतिफल से सम्बन्ध प्रकट करती है।

5 परिवर्तनशील अनुपातो का नियम
(THE LAW OF VARIABLE PROPORTIONS)

सममात्रा वक्र विश्लेषण की सहायता से हम परिवर्तनशील अनुपातो के नियम के व्यवहार या उस अल्पकालीन उत्पादन-फलन की व्याख्या कर सकते है जबकि एक साधन स्थिर हो, और दूसरा परिवर्तनशील।*

मान लीजिए कि पूँजी स्थिर साधन है और श्रम परिवर्तनशील साधन है। चित्र 17.12 मे OA और OB कूट रेखाएँ है तथा इनके बीच पूँजी एव श्रम की आर्थिक दृष्टिकोण से सभव इकाइया, उत्पादन की 100, 200, 300, 400 एव 500 इकाइयाँ उत्पादित करने के लिए लगाई जा सकती है।

*नियम की परिभाषा, मान्यताओं और कारणों के लिए पिछले अध्याय में इस नियम की परम्परागत व्याख्या का अध्ययन कीजिए।

इसका अभिप्राय है कि सममात्रा वक्रों के इन भागो मे पूँजी एव श्रम की उत्पादकता धनात्मक है। दूसरी ओर, जहाँ ये कूट रेखाएँ सममात्रा वक्रो को काटती है, साधनो का सीमान्त उत्पाद शून्य है। उदाहरणार्थ, H बिन्दु पर पूँजी का सीमात उत्पाद शून्य है तथा बिन्दु L पर श्रम का सीमात उत्पाद शून्य है। जिस सममात्रा वक्र का भाग कूट रेखा से बाहर होगा, उस साधन का सीमात उत्पाद ऋणात्मक होगा। उदाहरण के तौर पर, पूँजी का सीमात उत्पाद G बिन्दु पर तथा श्रम का सीमान्त उत्पाद R बिन्दु पर ऋणात्मक है।

परिवर्तनशील अनुपातो का नियम यह बताता है कि उत्पादन की तकनीक दी होने पर, एक परिवर्तनशील साधन जैसे श्रम की अधिक से अधिक इकाइया एक स्थिर साधन, जैसे पूँजी, पर लगाने से उत्पादन मे अनुपात से अधिक वृद्धिया होगी, जब तक कि एक विशेष बिन्दु नहीं आ जाता है और उसके बाद उत्पादन मे अनुपात से कम वृद्धिया होगी। क्योकि यह नियम उत्पादन में वृद्धियों के बारे में बताता है, इसलिए यह सीमात उत्पाद से सबधित है। इस नियम को समझाने के लिए पूँजी को स्थिर साधन तथा श्रम को परिवर्तनशील साधन लिया गया है। चित्र मे सममात्रा वक्र उत्पादन के विभिन्न स्तर दर्शाते है। OC पूँजी की स्थिर मात्रा है जो एक समानान्तर रेखा CD
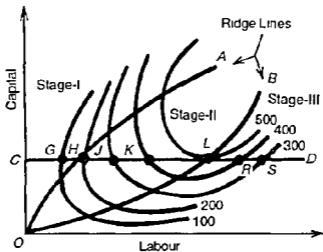
चित्र 17 12

द्वारा दिखाई गई है। जब हम इस रेखा पर दाईं ओर C से D की ओर चलते हैं तो इस पर विभिन्न बिन्दु पूँजी की स्थिर मात्रा OC के साथ लगातार बढती हुई श्रम की मात्राओ के सयोगो के प्रभाव को दिखाते है।

प्रारभ मे जब हम C से G और H पर पहुँचते है, तो यह परिवर्तनशील अनुपातो के नियम की प्रथम स्टेज, बढते सीमान्त प्रतिफल (increasing marginal returns), को दिखाती है। जब OC पूँजी के साथ CG श्रम लगाया जाता है तो उत्पादन 100 होता है। उत्पादन की 200 इकाइयाँ उत्पादित करने के लिए, श्रम की मात्रा GH बढा दी जाती है जबकि पूँजी की मात्रा OC स्थिर ही रहती है। उत्पादन तो दुगुना हो जाता है परन्तु श्रम की मात्रा उत्पादन के अनुपात मे नहीं बढाई गई है, $GH > CG$ इसका मतलब है कि श्रम शक्ति मे छोटी वृद्धियो से उत्पादन मे समान वृद्धिया हुई है। अत C से H परिवर्तनशील अनुपातो के नियम की प्रथम स्टेज है जिसमे सीमान्त उत्पाद बढता है क्योकि जब अधिक उत्पादन किया जाता है तो श्रम का प्रति इकाई उत्पादन बढता है।

परिवर्तनशील अनुपातो के नियम की दूसरी अवस्था सममात्रा-वक्रो का वह भाग है जो दो कूट-रेखाओ OA और OB के बीच स्थित है। जब श्रम की अधिक मात्रा लगाई जाती है तो लगाई गई श्रम की मात्रा की वृद्धि के अनुपात से कुल उत्पादन मे कम वृद्धि होती है। यह H और L बिन्दुओ के बीच घटते सीमान्त प्रतिफलो की स्टेज है। उत्पादन को 200 से 300 इकाइयो पर लाने के लिए श्रम की HJ मात्रा लगाई जाती है। फिर, उत्पादन को 300 से 400 बढाने के लिए श्रम की JK मात्रा तथा 400 से 500 बढाने के लिए श्रम की और अधिक मात्रा KL अपेक्षित है। अत उत्पादन की 100 इकाइयाँ बढाने के लिए हर बार परिवर्तनशील साधन (श्रम) की उत्तरोत्तर अधिक इकाइयाँ स्थिर साधन (पूँजी) के लिए लगानी पडती है, $KL > JK > HJ$ जिसका अभिप्राय है कि H और K के बीच श्रम का सीमान्त उत्पाद क्रमश कम होता जाता है जब इसकी अधिक इकाइयाँ लगाई जाती है। यह परिवर्तनशील अनुपातो के नियम की दूसरी अवस्था है जिसे घटते प्रतिफल की अवस्था कहते है।

यदि श्रम की मात्रा और बढा दी जाए, तो हम नीची कूट-रेखा OB के बाहर आ जाते हे और परिवर्तनशील अनुपातो के नियम की तीसरी अवस्था मे प्रवेश करते हे। इस क्षेत्र मे, जो कूट रेखा OB के आगे स्थित है, स्थिर साधन (पूजी) की तुलना मे परिवर्तनशील साधन (श्रम) बहुत अधिक है। इस प्रकार श्रम से बहुत अधिक काम लिया जा रहा है और उसका सीमात उत्पाद ऋणात्मक हो गया है। दूसरे शब्दो मे, जब श्रम की मात्रा LR और RS बढाई जाती है तो उत्पादन बढने की अपेक्षा 500 से 400 से 300 इकाइयाँ कम हो जाता है। यह ऋणात्मक सीमान्त प्रतिफल की स्टेज है।

हम उसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि परिवर्तनशील अनुपातो के नियम की दूसरी अवस्था मे उत्पादन करना ही फर्म के लिए लाभदायक है क्योकि कूटरेखा के बाए और दाए के भागो मे जो नियम की क्रमश पहली और तीसरी अवस्था बनाते है, उत्पादन करना हानिकर होगा।

6. पैमाने के प्रतिफल के नियम (THE LAWS OF RETURNS TO SCALE)

पैमाने के प्रतिफल के नियमो की भी सममात्रा वक्रो की धारणा से व्याख्या की जा सकती है। पैमाने के प्रतिफल के नियमो से अभिप्राय साधनो के पेमाने मे परिवर्तन के उत्पादन पर प्रभावो से है जब साधनो के सयोग किसी अनुपात मे परिवर्तित किए जाते है। यदि दो साधनो, श्रम और पूँजी, को समान अनुपात मे बढा देने से उत्पादन बिल्कुल उसी अनुपात मे बढता है, तो पैमाने के प्रतिफल *स्थिर* होते है। यदि उत्पादन मे समान वृद्धिया प्राप्त करने के लिए, दोनो साधनो को बडी आनुपातिक इकाइयो मे बढा दिया जाता है, तो पैमाने के **घटते** प्रतिफल होते है। यदि उत्पादन मे समान वृद्धिया प्राप्त करने के लिए, दोनो साधनो को थोडी आनुपातिक इकाइयो मे बढा दिया जाता है, तो पैमाने के बढते प्रतिफल होते है।

पैमाने के प्रतिफलो के चित्र मे एक प्रसार पथ (expansion path) पर 'उत्पादन-के-बहु-स्तर' क्रमिक (successive) सममात्रा वक्रो के बीच अन्तर द्वारा दिखाया जा सकता है, अर्थात्, सममात्रा वक्र जो उत्पादन के ऐसे स्तर दर्शाते हो जो उत्पादन के किसी आधार स्तर के गुणज (multiples) है, जैसे 100, 200, 300 आदि।

पैमाने के बढते प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

चित्र 17 13 पैमाने के बढते प्रतिफलो को दर्शाता है जहा उत्पादन की समान वृद्धिया प्राप्त करने के लिए, दोनो साधनो, श्रम और पूजी, की उत्तरोत्तर कम आनुपातिक वृद्धिया चाहिए। जैसे चित्र मे

उत्पादन की 100 इकाइयों के लिए चाहिए $3C + 3L$
उत्पादन की 200 इकाइयों के लिए चाहिए $5C + 5L$
उत्पादन की 300 इकाइयों के लिए चाहिए $6C + 6L$

जिससे प्रसार पथ OR पर $OA > AB > BC$ इस स्थिति मे, उत्पादन फलन एक से अधिक कोटि का समरूप है।[6]

पैमाने के बढते प्रतिफल मशीनो, प्रबधकर्त्ता, श्रम, वित्त आदि मे अविभाज्यताओ के कारण पाए जाते है। कुछ उपकरणो या क्रियाओ के न्यूनतम आकार होते है और उन्हे छोटे आकारो मे विभाजित नहीं किया जा सकता है। जब कोई व्यावसायिक इकाई फैलती है, तो पैमाने के प्रतिफल बढते है क्योकि अविभाज्य साधनो को उनकी पूरी क्षमता तक लगाया जाता है।

चित्र 17 13

पैमाने के बढते प्रतिफल विशेषीकरण और श्रम विभाजन का भी परिणाम होते है। जब फर्म का पैमाना फैलता है तो विशेषीकरण और श्रम विभाजन का क्षेत्र विस्तृत होता है जिससे दक्षता बढती है और पैमाने के प्रतिफलो मे वृद्धि होती है। आगे, जब फर्म फैलती है तो उसे उत्पादन की आन्तरिक किफायते प्राप्त होती है जिससे वह बेहतर मशीने लगा सकती है, अधिक आसानी से वस्तुओ को बेच सकती है, सस्ती दर पर मुद्रा उधार ले सकती है, अधिक कुशल प्रबधको और श्रमिको की सेवाए प्राप्त कर सकती है। ये सभी किफायते पैमाने के प्रतिफलो को अनुपात से अधिक बढाने मे सहायक होती है।
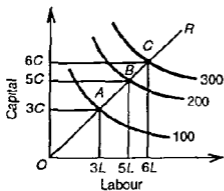
केवल इतना ही नहीं, बाहरी किफायतो के कारण भी फर्म पैमाने के बढते प्रतिफलो के लाभ उठाती है। जब अपनी दीर्घकालीन माग को पूरा करने के लिए उद्योग अपना विस्तार करता है तो बाहरी किफायते उत्पन्न होती है, जिनके उद्योग की सभी फर्मो को लाभ होते है। जैसे बहुत सी फर्मों के एक स्थान पर केन्द्रित होने से कुशल श्रम, उधार और यातायात की सुविधाओ का आसानी से मिलना। सहायक उद्योगो की स्थापना, व्यापार पत्रिकाओ, शोध और अनुसधान केन्द्रो का खुलना आदि जो फर्मों की उत्पादन दक्षता को बढाने मे सहायक होते है। इस प्रकार की बाहरी किफायतो से पैमाने के प्रतिफल बढते है।

पैमाने के घटते प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale)

चित्र 17 14 घटते प्रतिफलो को दर्शाता है, जहा उत्पादन मे समान वृद्धिया प्राप्त करने के लिए, उत्तरोत्तर श्रम और पूजी दोनो की आनुपातिकता से *अधिक* वृद्धिया चाहिए। जैसे चित्र मे

उत्पादन की 100 इकाइयों के लिए चाहिए $2C + 2L$
उत्पादन की 200 इकाइयों के लिए चाहिए $5C + 5L$
उत्पादन की 300 इकाइयों के लिए चाहिए $9C + 9L$

6 The production function is homogeneous of degree greater than one

चित्र 17.14

जिससे प्रसार पथ OR पर $OG < GH < HK$

इस स्थिति में, उत्पादन फलन एक से कम कोटि का समरूप है। पैमाने के घटते प्रतिफल निम्न-लिखित कारणों से प्रारंभ हो सकते है। अविभाज्य साधन अकुशल और कम उत्पादक हो सकते है। व्यापार भारी-भरकम हो सकता है जिससे ताल-मेल और देखमाल की समस्याएँ खडी हो जाती हैं। प्रबन्ध का विस्तार होने से नियत्रण और कठोरताओ की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हे। इन आन्तरिक अमितव्ययिताओं के साथ पैमाने की बाहरी अमितव्ययिताए मिल जाती है। ये ऊँची साधन कीमतों या साधनों की घटती उत्पादकता से उत्पन्न होती है। जब उद्योग का विस्तार जारी रहता है, तो प्रशिक्षित श्रम, भूमि, पूँजी आदि की माँग बढ जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता के कारण मज़दूरी, लगान ओर ब्याज की दरें बढ जाती हैं। कच्चे माल की कीमतें भी बढ जाती है। यातायात और मार्केटिंग की समस्याएँ पैदा हो जाती हे। इन सब कारणों से लागतें बढने लगती हैं और फर्मों के विस्तार से पैमाने का प्रतिफल घटने लगना है।
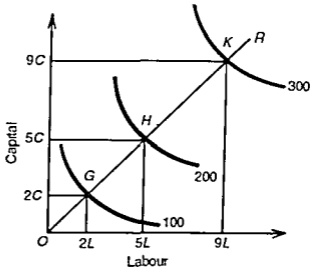
पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scale)

चित्र 17.15

चित्र 17.15 पैमाने के स्थिर प्रतिफल दर्शाता है, जहा सममात्रा वक्रो 100, 200 और 300 के बीच अन्तर OR प्रसार पथ पर समान है, अर्थात् $OD = DE = EF$ इसका अभिप्राय है कि यदि श्रम और पूंजी दोनो साधनों की इकाइयों को दुगुना कर दिया जाता हे तो उत्पादन भी दुगुना हो जाना है। उत्पादन को तिगुना करने के लिए दोनों साधनों की इकाइयों को तिगुना कर दिया जाता हे। जैसे चित्र मे

उत्पादन की 100 इकाइयों के लिए चाहिए $1(2C + 2L) = 2C + 2L$
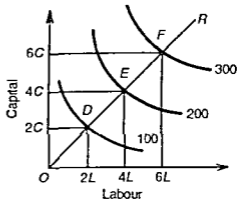
उत्पादन की 200 इकाइयों के लिए चाहिए
$2(2C+2L)=4C+4L$

उत्पादन की 300 इकाइयों के लिए चाहिए
$3(2C+2L)=6C+6L$

पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते है जब एक फर्म द्वारा प्राप्त आतरिक किफायतें और आतरिक अमितव्ययिताएं निष्प्रभावित हो जाती है, जिससे उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ता है। दूसरा कारण बाहरी किफायतों और बाहरी अमितव्ययिताओं का बराबर होना है। पैमाने के स्थिर प्रतिफल इस कारण भी होते है जब उत्पादन के साधन विभाज्य, स्थानापन्न और समरूप हो तथा दी हुई कीमतों पर उनकी आपूर्तियां पूर्ण लोचदार होती है। इसलिए पैमाने के स्थिर प्रतिफलों के लिए उत्पादन फलन समरूप एक कोटि का होता है।
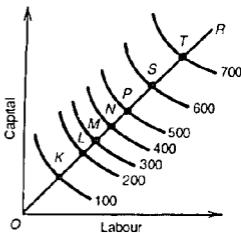
चित्र 17 16

हमने ऊपर पैमाने के तीनों नियमों की अलग-अलग व्याख्या इस मान्यता पर की है कि फर्म की तीन प्रक्रियाएं है और प्रत्येक प्रक्रिया उत्पादन के समस्त रेंजो पर एक ही प्रतिफल दर्शाती है, जैसे कि चित्र 17 13 केवल बढ़ते प्रतिफल, चित्र 17 14 केवल घटते प्रतिफल और चित्र 17 15 केवल स्थिर प्रतिफल। फिर भी, उत्पादन की तकनीकी स्थितियां ऐसी हो सकती है कि पैमाने के प्रतिफल उत्पादन की विभिन्न रेंजो पर बदल सकते है। कुछ रेंज पर, हमें पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त हो सकते है, जबकि दूसरी रेंज पर हमे पैमाने के बढ़ते या घटते प्रतिफल प्राप्त हो सकते है।

इसे समझाने के लिए हम मूल बिन्दु से एक विस्तार पथ *OR* खींचते है। उत्पादन की समान वृद्धियों अर्थात् 100, 200, 300 इत्यादि को प्रकट करने वाले क्रमिक सममात्रा विस्तार पथ को टुकड़ो में बाँट देते है। जैसे-जैसे हम विस्तार पथ के साथ-साथ चलते है, क्रमिक सममात्रा वक्रो में अन्तर घटता जाता है। यह पैमाने के बढ़ते प्रतिफल की स्थिति है। चित्र 17 16 में यह अवस्था *K* से *M* तक दिखाई गई है जहाँ *KL* और *LM* में अन्तर क्रमिक रूप से घटता जाता है, $LM<KL$ इस प्रकार, फर्म को उत्पादन की समान वृद्धियों का उत्पादन करने के लिए श्रम और पूँजी की कम मात्रा में वृद्धि की जरूरत पड़ती है।

यदि सममात्रा-वक्रो के दो खण्डो का अन्तर समान हो तो पैमाने का प्रतिफल स्थिर होता है। यदि श्रम और पूँजी की मात्रा दुगुनी कर दी जाए तो उत्पादन भी दुगुना हो जाएगा। इस प्रकार जब उत्पादन 300 से बढ़कर 400, और 500 इकाइयों पर आता है, तो इन उत्पादन के स्तरों को प्रकट करने वाले सममात्रा वक्र बिन्दु *P* तक, विस्तार पथ पर समान खण्ड काटते है अर्थात् $MN=NP$

यदि पैमाने का प्रतिफल घटता हुआ हो, तो विस्तार पथ पर दो सममात्रा-वक्रो के बीच की दूरी बड़ी हो जाएगी। $ST>PS$ इसका अभिप्राय है कि उत्पादन में समान वृद्धियों के लिए श्रम और पूँजी की मात्रा में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि चाहिए। इस प्रकार, एक ही प्रसार पथ पर *K* से *M* तक पैमाने के बढ़ते प्रतिफल है, *M* से *P* तक पैमाने के स्थिर प्रतिफल हैं और *P* से *T* तक पैमाने के घटते प्रतिफल है।

7. पैमाने के प्रतिफल और साधन के प्रतिफल मे सबध
(RELATION BETWEEN RETURNS TO SCALE AND RETURNS TO A FACTOR)

एक साधन के प्रतिफल का सबध अल्पकालीन उत्पादन फलन से है जब अधिक उत्पादन करने के लिए एक साधन को परिवर्तित और दूसरे साधन को स्थिर रखा जाता है, तो परिवर्तनशील साधन के सीमात प्रतिफल या सीमात भौतिक उत्पादकता कम होते है। दूसरी ओर, पैमाने के प्रतिफल का सबध दीर्घकालीन उत्पादन फलन से होता है, जब एक फर्म अपने एक या अधिक साधनो को परिवर्तित करके अपने उत्पादन के पैमाने को बदलती है। पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते है जब उत्पादन उसी अनुपात मे बढता है जिस अनुपात मे साधनो की इकाइया बढती है। पैमाने के प्रतिफल बढते है जब उत्पादन मे वृद्धि अनुपात मे साधनो की इकाइयो मे वृद्धि से अधिक होती है। पैमाने के प्रतिफल घटते हैं यदि उत्पादन में वृद्धि अनुपात में साधनो की इकाइयों मे वृद्धि से कम होती है।

हम एक साधन के प्रतिफल और पैमाने के प्रतिफल मे सबध की विवेचना निम्नलिखित मान्यताओ के आधार पर करते हैं

1 उत्पादन के केवल दो साधन, श्रम और पूजी है।
2 श्रम परिवर्तनशील साधन है और पूजी स्थिर साधन है।
3 उत्पादन फलन समरूप है।

ये मान्यताए दी होने पर, हम पहले पैमाने के स्थिर प्रतिफल और एक परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल को चित्र 17 17 द्वारा समझाते है जहा OS प्रसार पथ है जो पैमाने के स्थिर प्रतिफल दर्शाता है, क्योकि प्रसार पथ पर दो सममात्रा वक्रो 100 ओर 200 के बीच अन्तर बराबर है, अर्थात् $OM = MN$ उत्पादन की 100 इकाइया उत्पादित करने के लिए $OC + OL$ पूजी और श्रम की मात्राए लगाने से फर्म M बिन्दु पर पहुचती है। उत्पादन की दुगुनी (200) इकाइयों के लिए श्रम और पूँजी की दुगुनी मात्राए $OC_2 + OL_2$ लगाने से फर्म N बिन्दु पर पहुचती है। इस प्रकार, पैमाने के प्रतिफल स्थिर हैं क्योकि $OM = MN$

यह सिद्ध करने के लिए कि परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल कम होते है। हम पूँजी की OC मात्रा को स्थिर साधन लेते है जिसे CC_1 रेखा द्वारा दिखाया गया है। C को स्थिर रखते हुए यदि श्रम की मात्रा को LL_2 द्वारा दुगुना कर दिया जाता है, तो हम K बिन्दु पर पहुचते हैं जो सममात्रा वक्र 200 की अपेक्षा एक नीचे सममात्रा वक्र 150 पर स्थित है। C को स्थिर रखते हुए, यदि उत्पादन को 100 से 200 इकाइया करके दुगुना करना हो, तो श्रम की L_1 इकाइयों की आवश्यकता पडेगी। परन्तु $L_1 > L_2$ इस प्रकार, C को स्थिर रख कर श्रम की इकाइया दुगुनी करने से, उत्पादन दुगुने से कम होता है। यह P बिन्दु पर 200 इकाइयों की बजाय K बिन्दु पर 150 इकाइया है। यह दर्शाता है कि परिवर्तनशील साधन, श्रम के

चित्र 17 17

सीमात प्रतिफल कम हुए है। जैसाकि स्टोनियर और हेग ने व्यक्त किया है, "इसलिए, यदि उत्पादन फलन सदैव प्रथम कोटि का समरूप हो तो और यदि पेमाने के प्रतिफल सदैव स्थिर हों तो सीमात भौतिक उत्पादकता (प्रतिफल) सदैव कम होंगे।"[7]

चित्र 17 18
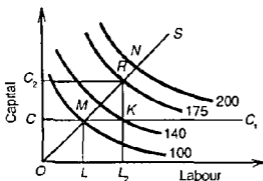
पैमाने के घटते प्रतिफल और परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल मे सबध को चित्र 17 18 द्वारा समझाया गया है, जहा प्रसार पथ OS पैमाने के घटते प्रतिफल दर्शाता है क्योकि इसका खड $MN > OM$ इसका अभिप्राय है कि उत्पादन को दुगुना 100 से 200 करने के लिए दोनों साधनों की दुगुने से अधिक मात्राए चाहिए। विकल्प मे, यदि साधनों को $OC_2 + OL_2$ पर दुगुना कर दिया जाता है, तो वे फर्म को उत्पादन के कम स्तर सममात्रा वक्र 175 के बिन्दु R पर ले जाएगे जो सममात्रा वक्र 200 से नीचे है। यह पैमाने के घटते प्रतिफल दर्शाता है। यदि C को स्थिर रखा जाए ओर परिवर्तनशील साधन, श्रम, की मात्रा को LL_2 द्वारा दुगुना कर दिया जाए, तो हम बिन्दु K पर पहुचते है, जो उत्पादन के और नीचे स्तर सममात्रा वक्र 140 द्वारा दिखाया गया है। यह सिद्ध करता है कि परिवर्तनशील साधन, श्रम के सीमान्त प्रतिफल (या सीमात भौतिक उत्पादकता) कम होते है।

अब हम पैमाने के बढते प्रतिफल और परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल के बीच सबध लेते हैं। इसे चित्र 17 19 (A) और (B) मे दर्शाया गया है। पेनल (A) मे, प्रसार पथ OS पैमाने के बढते प्रतिफल को व्यक्त करता है, क्योकि भाग $OM > MN$ इसका मतलब है कि उत्पादन को 100 से 200 करने के लिए, दोनो साधनो की दुगुनी से कम मात्राए चाहिए। यदि C को स्थिर रखा जाता है और परिवर्तनशील साधन, श्रम, की मात्रा को LL_2 द्वारा दुगुना कर दिया जाता है, तो उत्पादन का K स्तर सममात्रा 200 से नीचे सममात्रा वक्र 160 पर पहुचता है जो घटते सीमात प्रतिफल को व्यक्त करता है।

यदि पैमाने के प्रतिफल तेजी (strongly) से बढते है, अर्थात् वे बहुत धनात्मक है, तो वे परिवर्तनशील साधन, श्रम, के घटते प्रतिफलो को निष्क्रिय कर देगे। ऐसी स्थिति बढ़ते सीमात प्रतिफल लाती है। इसकी पेनल (B) द्वारा व्याख्या की गई है जहा प्रसार पथ OS पर भाग $OM > MN$ पैमाने के बढते प्रतिफल दर्शाता है। जब परिवर्तनशील साधन, श्रम, को LL_2 मात्रा द्वारा दुगुना किया जाता है, C को स्थिर रख कर, तो हम सममात्रा वक्र 250 के बिन्दु K पर पहुचते है जो सममात्रा वक्र 200 से ऊपर स्थित है। यह सिद्ध करता है कि परिवर्तनशील साधन, श्रम के सीमात प्रतिफलो मे वृद्धि हुई है जबकि पैमाने के प्रतिफल बढ रहे है।

निष्कर्ष (Conclusion)—ऊपर के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एक समरूप उत्पादन फलन के अन्तर्गत जब एक स्थिर साधन का परिवर्तनशील साधन के साथ सयोग किया जाए, तो परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल घटते है जब पेमाने के प्रतिफल स्थिर, घटते और

7 A W Stonier and D C Hague, *op cit* p 227

चित्र 17 19 (A & B)

बढते रहते है। फिर भी, यदि पैमाने के तेजी से बढते प्रतिफल हो, तो परिवर्तनशील साधन के सीमात प्रतिफल घटने की बजाय बढने है।

8 इष्टतम साधन सयोग का चुनाव या साधनो का न्यूनतम लागत सयोग (CHOICE OF OPTIMAL COMBINATION OF FACTORS OR LEAST COST COMBINATION OF FACTORS)

एक लाभ अधिकतमकरण फर्म को साधनों के इष्टतम सयोग के दो चुनावों का सामना करना पडता है प्रथम, एक दिए हुए उत्पादन के लिए अपनी लागत को न्यूनतम करना, और द्वितीय, एक दी हुई लागत के लिए अपने उत्पादन को अधिकतम करना। इस प्रकार, साधनों के न्यूनतम लागत सयोग से अभिप्राय एक फर्म द्वारा एक दी हुई लागत से वस्तु की सबसे अधिक मात्रा उत्पादित करना और न्यूनतम लागत से वस्तु की एक दी हुई मात्रा उत्पादित करना, जब साधनों का एक इष्टतम तरीके से सयोग किया गया हो। हम इन दोनो स्थितियों का अलग-अलग अध्ययन करते है।

एक दिए हुए उत्पादन के लिए लागत का न्यूनतम करना (Cost Minimisation for a Given Output)

उत्पादन सिद्धात में, लाभ अधिकतमकरण फर्म उस समय सतुलन में होती है, जब लागत-कीमत फलन दिया होने पर, वह साधनो के न्यूनतम लागत सयोग के आधार पर अपने लाभो को अधिकतम करती है। इसके लिए, वह उस सयोग का चुनाव करेगी जो एक दिए हुए उत्पादन के लिए अपनी उत्पादन लागत को न्यूनतम करती है। ये उस फर्म के लिए इष्टतम सयोग होगा।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

यह विश्लेषण इन मान्यताओं पर आधारित है

(1) दो साधन, पूँजी और श्रम है।
(2) पूँजी एव श्रम की सब इकाइयाँ समरूप हैं।
(3) पूँजी और श्रम की इकाइयों की कीमते क्रमश (r) और (w) दी हुई और स्थिर है।

(4) लागत व्यय भी दिया हुआ है।
(5) फर्म एक अकेली वस्तु का उत्पादन करती है।
(6) वस्तु की कीमत दी हुई और स्थिर है।
(7) फर्म का उद्देश्य लाभ अधिकतम करना है।
(8) साधन मार्किट में पूर्ण प्रतियोगिता है।

ये मान्यताएं दी होने पर, उत्पादन के एक दिए हुए स्तर के लिए साधनों के न्यूनतम लागत संयोग का बिन्दु वहां होता है जहां एक सममात्रा वक्र एक समलागत रेखा को स्पर्श करता है। चित्र 17.20 में, समलागत रेखा GH सममात्रा वक्र 200 को बिन्दु M पर स्पर्श करती है। फर्म दी हुई लागत-व्यय GH के बिन्दु M पर उत्पादन की 200 इकाइयां OC पूँजी और OL श्रम के संयोग से उत्पादित करती है। इस बिन्दु M पर, फर्म 200 इकाइयां उत्पादित करने के लिए अपनी लागत को न्यूनतम कर रही है। सममात्रा वक्र 200 पर कोई और संयोग, जैसे R या T बिन्दु पर जो ऊंची समलागत रेखा KP पर है, उत्पादन की ऊंची लागत को दर्शाता है। समलागत रेखा EF कम लागत दिखाती है, परन्तु इस पर 200 उत्पादन प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसलिए, फर्म न्यूनतम-लागत बिन्दु M को चुनेगी, जो उत्पादन की 200 इकाइयां उत्पादित करने के लिए न्यूनतम-लागत साधन संयोग है। इस प्रकार, फर्म के लिए इष्टतम संयोग M है।
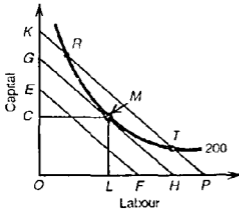
चित्र 17.20

उत्पादक के संतुलन के लिए समलागत और सममात्रा वक्रों का स्पर्श बिन्दु एक महत्त्वपूर्ण शर्त तो है परन्तु आवश्यक शर्त नहीं है। फर्म के संतुलन के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं। प्रथम, आवश्यक शर्त यह है कि समलागत रेखा का ढलान सममात्रा वक्र के ढलान के बराबर हो। समलागत रेखा का ढलान श्रम और पूँजी की कीमतों का अनुपात (w/r) है और सममात्रा वक्र का ढलान श्रम और पूँजी की तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर ($MRTS_{LC}$) है, जो आगे श्रम की सीमान्त उत्पाद या पूँजी की सीमान्त उत्पाद के अनुपात (MP_L/MP_C) के बराबर है। इसलिए इष्टतमता के लिए संतुलन शर्त को इस प्रकार लिखा जा सकता है,

$$\frac{w}{r} = \frac{MP_L}{MP_C} = MRTS_{LC}$$

दूसरी शर्त यह है कि स्पर्श-बिन्दु पर सममात्रा वक्र मूल बिन्दु के अवश्य उन्नतोदर (convex) होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, संतुलन की स्थिरता के लिए संतुलन बिन्दु पर पूँजी के लिए श्रम की तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर ($MRTS_{LC}$) घटती हुई होनी चाहिए। चित्र 17.21 में, S संतुलन का बिन्दु नहीं हो सकता, क्योंकि सममात्रा वक्र IQ_1 उस बिन्दु पर, जहाँ वह समलागत रेखा GH को स्पर्श करता है, मूल बिन्दु के नतोदर (concave) है। बिन्दु S पर दोनों साधनों के लिए तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर बढ़ती है यदि IQ_1 वक्र पर दाईं या बाईं ओर गति की जाती है। फिर, उत्पादन का वही स्तर कम लागत CD या EF पर उत्पादित किया जा सकता है तथा C या F पर कोण (corner) हल होगा। यदि फर्म CF लागत पर उत्पादन करने का निर्णय लेती है, तो

वह समस्त उत्पादन केवल OF श्रम से कर सकती है। दूसरी ओर, यदि वह और कम लागत CD पर उत्पादन करने का निर्णय लेती है, तो समस्त उत्पादन केवल OC पूँजी से किया जा सकता है। परन्तु दोनो स्थितिया असभव है क्योकि केवल श्रम या केवल पूँजी से कुछ भी उत्पादित नहीं किया जा सकता है। इसलिए फर्म बिन्दु M पर उत्पादन का वही स्तर उत्पादित कर सकती है जहा सममात्रा वक्र IQ उन्नतोदर है और GH समलागत रेखा के साथ स्पर्श करती है। यह विश्लेषण यह मानकर चलता है कि दोनो सममात्रा वक्र समान उत्पादन का स्तर व्यक्त करते है, $IQ = IQ_1$
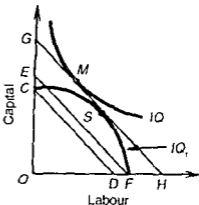
चित्र 17 21

दी हुई लागत के लिए उत्पादन को अधिकतम करना (Output Maximisation for a Given Cost)

लागत व्यय और दोनों साधनो की कीमते दी होने पर, फर्म अपने लाभो को अधिकतम करने के लिए अपने उत्पादन को अधिकतम कर सकती है। यह विश्लेषण ऊपर दी गई मान्यताओ पर आधारित है ओर फर्म के सतुलन की शर्ते भी वही है जिनकी ऊपर विवेचना की गई है। फिर भी इनकी सक्षिप्त व्याख्या की जा रही है।[8]

1 चित्र 17 22 मे, फर्म P बिन्दु पर सतुलन मे है जहा सममात्रा वक्र 200 समलागत रेखा CL को स्पर्श करता है। इस बिन्दु पर, लागत-व्यय CL दिया होने पर, फर्म OM पूँजी और ON श्रम के इष्टतम सयोग से उत्पादन की 200 इकाइया अधिकतम कर रही है। परन्तु यह CL समलागत रेखा के बिन्दु E या F पर नहीं हो सकती, क्योकि दोनो बिन्दु उत्पादन की 200 इकाइयो की बजाय कम इकाइया दर्शाते है। ऐसा इस कारण कि वे नीचे के सममात्रा वक्र 100 पर स्थित है। लेकिन फर्म अधिकतम उत्पादन के इष्टतम साधन सयोग स्तर पर CL समलागत रेखा के साथ बिन्दु E अथवा F से गति करके P बिन्दु पर पहुच सकती है। इस गति मे फर्म को अतिरिक्त लागत व्यय नहीं करना पडता है क्योंकि वह उसी समलागत रेखा पर रहती है। फर्म इससे अधिक उत्पादन जैसे सममात्रा वक्र 300 को प्राप्त नहीं कर सकती है, क्योंकि उसके लिए अधिक लागत व्यय करना पडता है जो उसकी क्षमता से परे
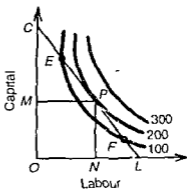
चित्र 17 22

8 इस समस्या पर यदि स्वतत्र प्रश्न आए तो परीक्षार्थियों को विस्तार से मान्यताए और शर्तो की व्याख्या करनी चाहिए और चित्र 17 21 भी बनाना चाहिए।

है। इसलिए $OM + ON$ इष्टतम साधन सयोग के साथ फर्म का सतुलन बिन्दु P ही होगा। बिन्दु P पर सममात्रा वक्र 200 की ढलान बराबर है समलागत रेखा CL की ढलान के। इसका अभिप्राय है

$$w/r = MP_l/MP_c = MRTS_{lc}.$$

2 फर्म के सतुलन की दूसरी शर्त है कि सममात्रा वक्र समलागत वक्र के साथ स्पर्श बिन्दु पर उन्नतोदर हो, जैसाकि ऊपर चित्र 17 21 की व्याख्या की गई है।

9. साधन कीमत मे परिवर्तन के साथ साधन स्थानापन्नता: उत्पादन में दोहरा प्रभाव (FACTOR SUBSTITUTION WITH A CHANGE IN FACTOR PRICE DUAL EFFECT IN PRODUCTION)

ऊपर के विश्लेषण मे, हमने दोनो साधनो, श्रम और पूँजी, की कीमतो को स्थिर लिया। अब यदि एक साधन की कीमत कम होती है, दूसरे साधन की कीमत स्थिर रखी जाती है, तो लागत-न्यूनतम फर्म सापेक्षतया महगे साधन को सस्ते साधन के साथ स्थानापन्न करेगी। यह उत्पादन मे स्थानापन्नता प्रभाव है। जब एक साधन की कीमत गिरती है, तो उसकी माग बढेगी और उत्पादन मे भी वृद्धि होगी। यह उत्पादन प्रभाव है। इस प्रकार, केवल एक अकेले साधन की कीमत मे कमी का कुल प्रभाव स्थानापन्नता प्रभाव और उत्पादन प्रभाव का जोड होता है। ये उत्पादन सिद्धात मे दोहरे प्रभाव कहलाते है।

कुल साधन-कीमत प्रभाव (Total Factor-Price Effect)

पहले हम साधन-कीमत प्रभाव और उसके पश्चात् उसके दोहरे प्रभाव का अध्ययन करते है। यहॅं विश्लेषण निम्न मान्यताओ पर आधारित है

(1) श्रम और पूँजी दो साधन है।

(2) श्रम और पूँजी की सभी इकाइया समरूप है।

(3) श्रम की कीमत गिरती है।

(4) पूँजी की कीमत स्थिर रहती है।

(5) फर्म द्वारा कुल व्यय अपरिवर्तित रहता है।

(6) साधन मार्किट मे पूर्ण रोजगार है।

(7) फर्म केवल एक वस्तु X का उत्पादन करती है।

ये मान्यताए दी होने पर, कुल साधन-कीमत प्रभाव को चित्र 17 23 मे दर्शाया गया हे जहा मूल समलागत रेखा FG है और फर्म S बिन्दु पर सममात्रा वक्र 100 के साथ सतुलन में है।
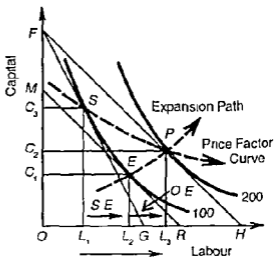
चित्र 17 23

वस्तु की 100 इकाइया उत्पादित करने के लिए, वह OC_1 पूँजी और OL_1 श्रम की इकाइयो का प्रयोग करती है। जब श्रम की कीमत (मजदूरी दर) गिरती है, पूँजी की कीमत स्थिर (*ब्याज दर*) स्थिर रहने पर, तो समलागत रेखा *FG* घडी की विपरीत दिशा की तरह घूमकर *FH* हो जाती है। अब फर्म *P* बिन्दु पर सतुलन मे है, जहाँ नई समलागत रेखा *FH* ऊँचे सममात्रा वक्र 200 को स्पर्श करती है। वस्तु के उत्पादन के इस ऊँचे स्तर को उत्पादित करने के लिए, फर्म श्रम की इकाइयो को OL_1 से बढाकर OL_3 कर देती है या L_1L_3 बढा देती है। यदि *S* और *P* सतुलन बिन्दुओ को एक रेखा द्वारा मिला दिया जाए तो यह साधन-कीमत वक्र (factor-price curve) कहलाता है जो *साधन-कीमत प्रभाव को दर्शाता है। साधन-कीमत प्रभाव स्थानापन्नता प्रभाव और उत्पादन* प्रभाव का सयुक्त परिणाम होता है।

स्थानापन्नता प्रभाव और उत्पादन प्रभाव को अलग करना (Separation of Substitution Effect and Output Effect)

स्थानापन्नता प्रभाव और उत्पादन प्रभाव को कुल साधन-कीमत प्रभाव से अलग करने के लिए, हम समलागत रेखा *FH* के नीचे और इसके समानातर एक समलागत रेखा *MR* खींचते है जो सममात्रा वक्र 100 को *E* बिन्दु पर छूती है। यह रेखा *MR* यह दर्शाती है कि जब श्रम की कीमत कम होती है ओर श्रम पहले से सस्ता होता है, तो फर्म का कुल व्यय कम हो जाता है। अब फर्म *E* बिन्दु पर सतुलन मे है, जो सापेक्ष साधन कीमतो के नए सेट को व्यक्त करता है जहा पूँजी की अपेक्षा श्रम सापेक्षतया सस्ता है। क्योकि पूँजी की अपेक्षा श्रम सस्ता हो गया है, इसलिए फर्म श्रम को पूँजी के स्थान पर स्थानापन्न करती है। परिणामस्वरूप, वह उसी सममात्रा वक्र 100 पर बिन्दु *S* से *E* पर गति करती है। यह गति स्थानापन्नता प्रभाव के कारण है जिससे फर्म पूँजी की C_1C_2 इकाइयो के स्थान पर श्रम की L_1L_2 इकाइयो को स्थानापन्न करती है। अत L_1L_2 श्रम की कीमत कम होने का S E स्थानापन्नता प्रभाव है।

क्योकि यह मान्यता है कि फर्म का कुल व्यय परिवर्तित नहीं होता, इसलिए अब समलागत रेखा *MR* ऊँची समलागत रेखा *FH* पर शिफ्ट कर जाती है और *P* बिन्दु पर ऊँचे सममात्रा वक्र 200 के साथ स्पर्श करती है। यह बिन्दु सापेक्ष साधन कीमतो के नए सेट को व्यक्त करता है। वास्तव मे, लागत-व्यय रेखा *FH* दर्शाती है कि जब श्रम की कीमत कम होती है, तो इससे फर्म के वास्तविक कुल व्यय मे वृद्धि होती है क्योकि श्रम पहले से सस्ता हो गया है। इसके परिणामस्वरूप, फर्म सममात्रा वक्र 100 पर उत्पादन के कम स्तर बिन्दु *E* से सममात्रा वक्र 200 पर ऊँचे उत्पादन स्तर बिन्दु *P* पर प्रसार पथ के साथ गति करती है। इस प्रकार, फर्म उत्पादन प्रभाव या प्रसार प्रभाव के कारण क्रमश दोनो साधनो श्रम और पूँजी की C_1C_2 और L_2L_3 अधिक मात्राए प्रयोग करती है। अत L_2L_3 श्रम की कीमत कम होने का *(O E)* उत्पादन प्रभाव है।

ऊपर का विश्लेषण स्पष्ट करता है कि फर्म द्वारा श्रम के प्रयोग मे वृद्धि के रूप मे मापा गया श्रम की कीमत मे कमी का कुल कीमत प्रभाव L_1L_3 है जो बराबर है स्थानापन्नता प्रभाव L_1L_2 जमा उत्पादन प्रभाव L_2L_3 अत $L_1L_3 = L_1L_2 + L_2L_3$

1 स्थानापन्न साधन (Substitute Factors)

अब हम ऐसे दो साधनो को लेते है जो एक दूसरे के साथ स्थानापन्न है। यदि एक स्थानापन्न की कीमत गिरती है, तो दूसरे स्थानापन्न की माग कम होती है। ऊपर के चित्र 17.23 मे श्रम और पूजी स्थानापन्न है। श्रम की कीमत (मजदूरी) कम होने से, कम पूँजी और अधिक श्रम प्रयोग किया जाता है। इसे फर्म की बिन्दु *S* से *P* पर गति द्वारा या कीमत-साधन वक्र (price-factor curve) की ढलान द्वारा दिखाया गया है। जब दो साधन स्थानापन्न हो और जब एक स्थानापन्न की

कीमत कम होती है, तो उत्पादन प्रभाव से स्थानापन्नता प्रभाव बड़ा होता है। चित्र 17 23 में, श्रम की कीमत कम होने से फर्म पूँजी की C_1C_3 इकाइयों के स्थान पर श्रम की L_1L_2 इकाइयां स्थानापन्न करती है। अत L_1L_2 स्थानापन्नता प्रभाव है। साथ ही, फर्म के उत्पादन स्तर में वृद्धि होती है वह प्रसार पथ के साथ बिन्दु E से P तक गति करती है। इस प्रकार, L_2L_3 उत्पादन प्रभाव है जो C_2C_3 कम पूँजी और L_2L_3 अधिक श्रम के प्रयोग का परिणाम है। (यह ध्यान देने योग्य है कि स्थानापन्नता प्रभाव में फर्म द्वारा पूँजी के प्रयोग में कमी C_1C_3 उत्पादन प्रभाव में कमी C_2C_3 से अधिक है।) चित्र 17 23 से स्पष्ट है कि जब दो साधन स्थानापन्न हो और उनमें से एक की कीमत कम हो जाए तो स्थानापन्नता प्रभाव $L_1L_2 > L_2L_3$ उत्पादन प्रभाव।

2. पूरक साधन (Complementary Factors)

यदि दो साधन एक दूसरे के पूरक है, तो एक साधन की कीमत में कमी दूसरे साधन की मात्रा में वृद्धि भी लाती है। इसे चित्र 17 24 में दर्शाया गया है जहा श्रम की कीमत में कमी से श्रम ओर पूँजी दोनों की अधिक इकाइया प्रयोग की जाती हैं। यह प्रसार पथ की ऊपर की ओर प्रपाती (steep) ढलान से स्पष्ट है। जब फर्म बिन्दु E से P पर गति करती है, तो वह पूँजी की C_1C_3 अधिक इकाइया और श्रम की L_2L_3 अधिक इकाइया प्रयोग करती है ताकि वह अधिक उत्पादन कर सके। अत श्रम की कीमत कम होने का उत्पादन प्रभाव L_2L_3 है। दूसरी ओर, जब फर्म सममात्रा वक्र

चित्र 17 24

100 पर बिन्दु S से E पर स्थानापन्नता प्रभाव L_1L_2 के कारण गति करती है, तो वह पूँजी की C_1C_2 अधिक इकाइया ओर श्रम की L_1L_2 अधिक इकाइया प्रयोग करती है। चित्र से यह स्पष्ट है कि जब श्रम ओर पूँजी पूरक होते है, तो श्रम की कीमत में कमी का उत्पादन प्रभाव $L_2L_3 > L_1L_2$ स्थानापन्नता प्रभाव।

निष्कर्ष (Conclusion)—निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि इष्टतम उत्पादन के उत्पादन के लिए उत्पादक विभिन्न साधनों को ऐसे ढग से प्रयोग करेगा कि न्यूनतम-लागत संयोग बन जाए। इस प्रकार एक साधन की कीमत में कमी का उसकी मात्रा पर दो तरह से प्रभाव पड़ेगा। प्रथम, वह उस साधन के स्थान पर, जो महँगा हो गया है, सस्ते साधन को स्थानापन्न करेगा। दूसरे, जब एक साधन की कीमत गिरती है, तो उस पर खर्च किए गए अन्तिम रुपए में प्राप्त सीमान्त उत्पादकता बढ़ जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि उत्पादक न्यूनतम-लागत संयोग प्राप्त करने के लिए उस रुपये को अन्य प्रयोगों से हटाकर उस साधन पर खर्च करे जो अपेक्षाकृत सस्ता हो

गया है। परन्तु यदि दोनों साधन एक-दूसरे के पूरक हैं तो वह दोनों पर ही समान रूप में खर्च करे।

10. इष्टतम प्रसार पथ के चुनाव (CHOICE OF OPTIMAL EXPANSION PATH)

इष्टतम प्रसार पथ के चुनाव का संबंध उत्पादन के साधनों के संयोगों से है जो सापेक्ष साधन कीमतें स्थिर रहने पर, फर्म को न्यूनतम लागत पर उत्पादन की विभिन्न मात्राएं उत्पादित करने देते हैं। इसका विश्लेषण दीर्घकाल और अल्पकाल से संबंधित किया जाता है।

दीर्घकाल में इष्टतम प्रसार पथ *(Optimal Expansion Path in the Long Run)*

दीर्घकाल में फर्म अपने उत्पादन को बढ़ाने के लिए अपनी पुरानी मशीनें, उपकरण, प्लांट, उत्पादन का पैमाना, संगठन और प्रबंध को बदल सकती है। फर्म का उद्देश्य अपनी लागतों को न्यूनतम या लाभों को अधिकतम करने के लिए इष्टतम प्रसार पथ का चुनाव करना है। प्रसार पथ फर्म के संतुलन के विभिन्न बिन्दुओं का बिन्दुपथ है, जब वह अपना उत्पादन बढ़ाने के लिए अपने *कुल व्यय में परिवर्तन करती है, जबकि सापेक्ष साधन कीमतें स्थिर रहती हैं।* दूसरे शब्दों में, प्रसार पथ यह दर्शाता है कि साधन अनुपात कैसे परिवर्तित होते हैं जब सापेक्ष साधन कीमतें स्थिर रहते हुए, उत्पादन में परिवर्तन होता है। "उत्पादन फलन और साधन कीमतें (w, r) दिए होने पर, इष्टतम उत्पादन पथ क्रमिक (successive) समलागत रेखाओं और क्रमिक सममात्रा वक्रों के स्पर्श बिन्दुओं द्वारा निर्धारित होता है।"

यह *विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं* पर आधारित है

1. श्रम और पूँजी उत्पादन के दो साधन हैं, जो परिवर्तनशील हैं।
2. श्रम और पूँजी की सभी इकाइयां समरूप हैं।
3. श्रम की कीमत (w) स्थिर है।
4. पूँजी की कीमत (r) स्थिर है।
5. अपने उत्पादन में वृद्धि करने के लिए फर्म अपने कुल व्यय को बढ़ाती है।

ये मान्यताएं दी होने पर, अपने लाभों को अधिकतम करने या न्यूनतम लागत संयोग प्राप्त करने के लिए, फर्म अपने श्रम और पूँजी का संयोग इस ढंग से करती है कि उनके सीमांत उत्पाद (MP) का अनुपात उनकी कीमतों के अनुपात के बराबर हो, अर्थात् $MP_L/MP_C = w/r$ यह समानता समलागत रेखा और सममात्रा वक्र के बीच स्पर्श बिन्दु पर होती है। इसकी चित्र 17.25 में व्याख्या की गई है, जहाँ C_1L_1, C_2L_2 और C_3L_3 विभिन्न समलागत रेखाएँ हैं। C_2L_2 रेखा C_1L_1 से अधिक व्यय और C_3L_3 रेखा C_2L_2 से और अधिक व्यय व्यक्त करती है। वे एक दूसरे के समानांतर दर्शायी गई हैं जो स्थिर साधन कीमतों को बताती हैं। इनको स्पर्श
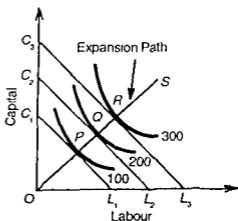
चित्र 17.25
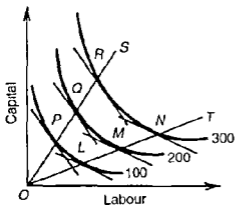
चित्र 17 26

चित्र 17 27

करते हुए तीन सममात्रा वक्र 100, 200 और 300 हैं, जो उत्पादन के क्रमिक ऊँचे स्तरों को दर्शाते है। फर्म P बिन्दु पर सतुलन मे है, जहाँ सममात्रा वक्र 100 इसके अनुकूल समलागत रेखा C_1L_1 को स्पर्श करता है और इसी प्रकार दो अन्य सममात्रा वक्र 200 और 300 क्रमश समलागत वक्रो C_2L_2 और C_3L_3 को बिन्दुओ Q एव R पर स्पर्श करते है। प्रत्येक स्पर्श बिन्दु श्रम और पूँजी के इष्टतम सयोग को व्यक्त करता है जो उत्पादन का एक इष्टतम स्तर है। इन सतुलन बिन्दुओ P, Q और R को मिलाती हुई रेखा OS फर्म का प्रसार पथ है। फर्म अपने साधनो की कीमते स्थिर रखते हुए अपने उत्पादन को इस रेखा के साथ बढाती है। मूल से खींची गई यह सीधी रेखा प्रसार पथ OS का अभिप्राय एक समरूप उत्पादन फलन है या पैमाने के स्थिर प्रतिफल है। ऐसा प्रसार पथ समबिन्दुरेखा (isocline) कहलाता है, जो बिन्दुओं का बिन्दुपथ है जिसके साथ $MRTS_{LC} = MP_l/MP_c = w/r$ इस प्रकार, OS दीर्घकाल मे फर्म के लिए इष्टतम प्रसार पथ है।

परन्तु प्रसार पथ का चुनाव साधन कीमतो के अनुपात पर निर्भर करता है। यदि साधन कीमतो का अनुपात बढता है, तो समलागत रेखाएँ चपटी हो जाती है, जैसाकि चित्र 17 26 मे दिखाया गया है, और प्रसार पथ OT होगा। यदि प्रारभ मे समलागत रेखाओं की ढलान प्रपाती (steep) है और प्रसार पथ OS है, तो साधन कीमतो के अनुपात मे वृद्धि होने से फर्म का इष्टतम प्रसार पथ बदलकर OT हो जाता है। दोनो प्रसार पथ समरूप उत्पादन फलन दर्शाते है।
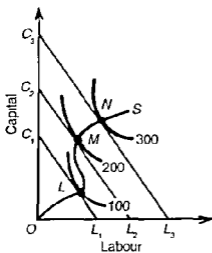
यदि उत्पादन फलन गैर-समरूप है, तो इष्टतम प्रसार पथ मूल से एक सीधी रेखा नहीं होगा। बल्कि, यह एक टेढी-मेढी रेखा OS होगी, जैसाकि चित्र 17 27 मे दिखाया गया है। यह फर्म का इष्टतम प्रसार पथ है, क्योंकि स्पर्श बिन्दुओ L, M और N पर समलागत रेखाओं (w/r) और सममात्रा वक्रो ($MRTS_{lc}$) की ढलानें बराबर है।

अल्पकाल मे इष्टतम प्रसार पथ (Optimal Expansion Path in the Short Run)

अल्पकाल मे फर्म अपने उत्पादन को बढाने के लिए केवल परिवर्तनशील साधनो को बदल

सकती है न कि स्थिर साधनो को, जबकि साधन कीमते स्थिर हो। मान लीजिए कि पूँजी स्थिर साधन है और श्रम परिवर्तनशील साधन, अन्य मान्यताएँ दी होने पर। फर्म इष्टतम प्रसार पथ OS नहीं चुन सकती है। यह अपने उत्पादन को केवल CC' रेखा के साथ बढा सकती, जैसा कि चित्र 17 28 मे दिखाया गया है। यह इष्टतम प्रसार पथ नहीं है, क्योंकि बिन्दु P, S और T समबिन्दु रेखा पर नहीं है।
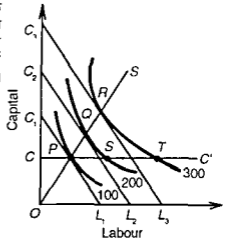
चित्र 17 28

11 बहुवस्तु फर्म (THE MULTIPRODUCT FIRM)

अभी तक हम दो साधनो ओर एक वस्तु के उत्पादन फलन का अध्ययन कर रहे थे। परन्तु अधिकतर फर्मे एक से अधिक वस्तु का उत्पादन करती हे। ऐसी किसी फर्म को बहुवस्तु फर्म कहते हे। सुविधा के लिए हम एक फर्म लेते है जो दो वस्तुएँ X और Y का उत्पादन करती हे। बहुत-सी फर्मे केवल दो वस्तुएँ या सयुक्त वस्तुएँ, जेसे दूध और मक्खन, पेन और पैसिल आदि का उत्पादन करती है। दो वस्तुएँ उत्पादित करने के लिए, फर्म को निर्णय लेना होता है कि उन्हे किस अनुपात मे *उत्पादित करना चाहिए।* इसके लिए, *उत्पादन सभावना वक्र (या सीमा या रूपातरण वक्र)* की धारणा का प्रयोग किया जाता है। दो वस्तुओ के इष्टतम सयोग को जानने के लिए, इन वस्तुओ की कीमतो पर आधारित फर्म के कुल आगम (revenue) का ध्यान रखना होता है। उत्पादन सभावना वक्र और समआगम (isorevenue) वक्र के स्पर्श बिन्दु पर एक बहुवस्तु फर्म सतुलन मे होती है, दो वस्तुओ ओर दो साधनो की कीमते दी होने पर।

इसकी मान्यताएँ (Its Assumptions)

बहुवस्तु फर्म का विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित हे

1 फर्म दो वस्तुएँ X और Y को विभिन्न मात्राओ मे उत्पादित करती है।
2 श्रम और पूँजी दो साधनो के सयोग द्वारा वस्तुएँ उत्पादित होती है।
3 उत्पादन तकनीक मे कोई परिवर्तन नहीं हे।
4 उत्पादन के दो साधनो की कीमते (w ओर r) दी हुई ओर स्थिर है।
5 दो वस्तुओ की कीमते (P_x और P_y) दी हुई और स्थिर है।
6 फर्म का उद्देश्य अपने लाभो को अधिकतम करना है।

ये मान्यताएँ दी होने पर, फर्म को यह निर्णय लेना होता है कि वह प्रत्येक वस्तु की कितनी मात्रा का उत्पादन करे। क्योंकि फर्म की केवल X ओर Y दो वस्तुएँ है, इसलिए वह केवल X या केवल Y या X ओर Y का कोई सयोग उत्पादित कर सकती है। फिर, प्रत्येक वस्तु श्रम ओर पूँजी दोनो साधनों द्वारा उत्पादित की जानी है। तब दो उत्पादन फलन हे

$$X = f_1(L\ C)$$

और $$Y = f_2(L\ C)$$

X और Y के सभावित सयोग चित्र 17 29 मे दिखाए गए है जो उत्पादन सभावना वक्र PP_1 दर्शाता

चित्र 17.29

है। बिन्दु P पर, फर्म श्रम और पूँजी की दी हुई इकाइयों से केवल वस्तु Y उत्पादित करती है। इसी प्रकार, बिन्दु P_1 पर फर्म केवल वस्तु X उत्पादित करती है। परन्तु फर्म को दोनों वस्तुओं का उत्पादन करना है। इसलिए, उत्पादन सभावना वक्र पर कोई बिन्दु B उत्पादन सयोग वस्तु Y का OC और वस्तु X का OD व्यक्त करता है। इस प्रकार, E बिन्दु Y का OF और X का OG उत्पादन सयोग व्यक्त करता है।
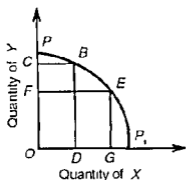
उत्पादन सभावना वक्र न केवल उत्पादन सयोगों को बल्कि रूपान्तरण की दर को भी दर्शाता है जब फर्म एक उत्पादन सभावना बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर गति करती है। साधनों की स्थिर मात्राएँ दी होने पर, जिस दर पर एक वस्तु का दूसरी वस्तु मे रूपातरण होता है उसे रूपातरण की सीमात दर (MRT) कहते हैं। उत्पादन सभावना वक्र के किसी बिन्दु पर MRT उस वक्र की ढलान है। इसको इस प्रकार लिखा जाता है,

$$-\frac{dY}{dX} = \frac{MP_{LY}}{MP_{LX}} = \frac{MP_{CY}}{MP_{CX}}$$

एक उत्पादन सभावना वक्र पर MRT बढती है जब हम दाईं से बाईं ओर गति करते है क्योंकि वक्र नतोदर (concave) है। उत्पादन सभावना वक्र जो मूल वक्र के दाईं ओर ऊपर को स्थित होते है वे दो वस्तुओं की ऊँची उत्पादन सभावनाओं को दर्शाते है।

यह मान लिया जाता है कि दोनों वस्तुओं के लिए श्रम और पूँजी की कीमतें (w और r) स्थिर है। इस प्रकार, बिन्दु B और E समान लागत के है क्योंकि दोनों के लिए कुल लागत समान है। अत PP_1 वक्र को एक समलागत वक्र (equal cost curve) माना जा सकता है।

श्रम और पूँजी की स्थिर मात्राएँ दी होने पर, दो वस्तुओं का इष्टतम सयोग वह है जो फर्म को अधिकतम आगम दे। यदि P_x और P_y दो वस्तुओं X और Y की क्रमश विक्रय कीमते है, तो फर्म का कुल आगम है $TR = XP_x + YP_y$

फर्म के कुल आगम (TR) को सरल रेखाओं TR, T_1R_1, और T_2R_2 द्वारा चित्र 17.30 मे व्यक्त किया गया है। इनको सम-आगम वक्र (iso-revenue curves) कहते है क्योंकि इन पर दो वस्तुओं के सभी सयोग विक्रय करने से फर्म को समान आगम प्रदान करते है। दूसरे शब्दों मे, सम-आगम वक्र दो आगतों के सभी सभव सयोगों के बिन्दु पथ को दर्शाते है जिनमे समान कुल आगम प्राप्त होता है। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि सभी सम-आगम वक्रो पर समान आगम प्राप्त होता है। जो सम-आगम रेखाएँ दाईं ओर मूल बिन्दु से दूर होंगी उन पर कुल आगम अधिक होगा, $TR < T_1R_1 < T_2R_2$. दोनों वस्तुओं की कीमतें दी हुई एव निश्चित होने के कारण ही सम-आगम रेखाएँ सरल रेखाएँ होती है। इस प्रकार हर सम-आगम रेखा दो वस्तुओं की दी हुई कीमतों के अनुपात को व्यक्त करती है, अर्थात् सम-आगम रेखा की ढाल P_x/P_y है।

बहुवस्तु फर्म का सतुलन (Equilibrium of the Multiproduct Firm)

एक बहुवस्तु फर्म दो वस्तुओं के इष्टतम सयोग से सतुलन की स्थिति मे उस समय होगी जब यह अपने दिए हुए साधनों के प्रयोग से उन वस्तुओं को बेचकर अधिकतम आगम प्राप्त करती है।

उत्पादन सभावना वक्र साधनों के प्रयोग की अधिकतम सभावनाओ को व्यक्त करता है जबकि सम-आगम रेखा अधिकतम लाभ को। फर्म दो साधनो द्वारा दो वस्तुओं के इष्टतम सयोग मे उस बिन्दु पर होगी जहाँ कि समआगम रेखा उत्पादन सभावना वक्र को स्पर्श करती है। चित्र 17 30 मे E इष्टतम सयोग का बिन्दु है जहाँ T_1R_1 सम-आगम रेखा, उत्पादन सभावना वक्र AB को स्पर्श करती है। फर्म वस्तु X की OX_1 मात्रा तथा Y_1 की OY मात्रा बेचकर अधिकतम लाभ (आगम) प्राप्त करती है क्योकि कीमतो के अनुसार E सबसे ऊँची सम-आगम रेखा पर स्थित है। यदि फर्म E की अपेक्षा उत्पादन सभावना वक्र AB के किसी अन्य बिन्दु जैसे D पर उत्पादन करे तो उसे अधिकतम लाभ नहीं होगा क्योकि वह नीचे के सम-आगम वक्र TR पर पहुँच जाएगी। इसके अतिरिक्त D बिन्दु पर TR, वक्र AB को स्पर्श नहीं करता बल्कि काटता है इसलिए D सतुलन बिन्दु नहीं हो सकता। इसी प्रकार, फर्म रेखा T_2R_2 पर भी नही पहुँच सकती क्योकि यह सम-आगम रेखा उसके उत्पादन सभावना वक्र, AB की पहुँच से बाहर है।
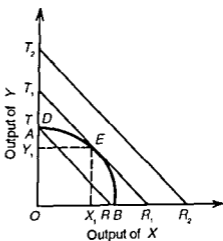
चित्र 17 30

चित्र 17 31

इष्टतम सयोग की दूसरी शर्त यह हे कि सतुलन बिन्दु पर दोनो वस्तुओ के कीमत अनुपात उनकी रूपातरण की सीमात दर के बराबर हो अर्थात् $MRT_{xy} = P_x/P_y$ E बिन्दु पर यह शर्त भी पूरी होती है क्योकि T_1R_1 तथा AB की ढलान इस बिन्दु पर बराबर है।

इष्टतम सयोग की पहली और दूसरी शर्तें महत्त्वपूर्ण है परन्तु सतुलन के लिए आवश्यक शर्त यह है कि उत्पादन सभावना वक्र नतोदर (concave) हो। चित्र 17 30 मे सतुलन बिन्दु E पर यह शर्त भी पूरी हो जाती है। इसको और भी स्पष्टतया समझने के लिए हम एक उन्नतोदर (convex) वक्र AB चित्र 17 31 मे लेते है जिसे सम-आगम रेखा TR बिन्दु M पर स्पर्श करती है। परन्तु M अधिकतम आगम का बिन्दु नहीं क्योकि M से A की ओर या B की ओर, AB वक्र पर फर्म को M की अपेक्षा अधिक आगम प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति मे वह A या B पर उत्पादन करेगी, परन्तु उसके लिए A पर उत्पादन करना अधिक लाभदायक होगा क्योकि बिन्दु B ऊँची सम-आगम रेखा T_1R_1 को स्पर्श करता है। यदि फर्म इस स्थिति को स्वीकार करती है तो वह केवल Y वस्तु का उत्पादन ही करेगी, X का बिल्कुल नहीं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि दिए हुए साधनो से दो वस्तुओ का इष्टतम सयोग तभी
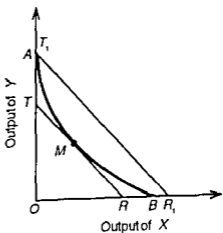
सम्भव है जबकि उत्पादन सम्भावना वक्र मूल विन्दु के नतोदर हो, जैसे चित्र 17.30 में दर्शाया गया है।

12. कॉब-डगलस उत्पादन फलन (THE COBB-DOUGLAS PRODUCTION FUNCTION)

कॉब-डगलस उत्पादन फलन पाल डगलस और सी डी कॉब[9] द्वारा अमरीकी निर्माणकारी उद्योग के आनुभविक अध्ययन पर आधारित है। यह रेखीय प्रथम कोटि का उत्पादन फलन है जो निर्माणकारी उद्योग के समस्त उत्पादन के लिए केवल दो आगतो, श्रम और पूँजी, को लेता है। कॉब-डगलस उत्पादन फलन को इस प्रकार व्यक्त किया जाता है,

$$Q = AL^{\alpha}C^{\beta}$$

जहा Q उत्पादन है और L तथा C क्रमश श्रम और पूँजी की आगते है। A, α और β धनात्मक प्राचल (positive parameters) है, जहाँ $\alpha > 0$, $\beta > 0$

समीकरण बताता है कि उत्पादन सीधे तौर से L और C पर निर्भर करता है, और उत्पादन का वह भाग जिसकी व्याख्या L और C द्वारा नहीं की जा सकती, उसकी A द्वारा व्याख्या की जाती है जो 'अवशेष' (residual) है जिसे प्राय तकनीकी परिवर्तन कहा जाता है।

जो उत्पादन फलन कॉब-डगलस ने हल किया उसमे निर्माणकारी उद्योग की वृद्धि मे श्रम का भाग 3/4 और पूजी का भाग 1/4 था, जिससे C-D उत्पादन फलन है,

$$Q = AL^{3/4}C^{1/4}$$

जो पैमाने के स्थिर प्रतिफल दर्शाता है क्योंकि L और C के मूल्यों का जोड (3/4 + 1/4) एक के बराबर है, अर्थात् $(\alpha + \beta = 1)$

C-D फलन मे श्रम का गुणाक (Coefficient) α उत्पादन (Q) मे प्रतिशतता वृद्धि को मापता है, जो C को स्थिर रखकर, L मे एक प्रतिशत वृद्धि से होती है। इसी प्रकार, β उत्पादन मे वृद्धि प्रतिशतता है जो C मे एक प्रतिशत से होती है, L को स्थिर रखकर।

पैमाने के स्थिर प्रतिफल को दर्शाता C-D उत्पादन फलन चित्र 17.32 मे दिखाया गया है। श्रम आगत को समानान्तर अक्ष पर और पूँजी को अनुलम्ब अक्ष पर लिया गया है। उत्पादन की 100 इकाइयाँ उत्पादित करने के लिए पूँजी की OC_1 इकाइयो और श्रम की OL_1 इकाइयो का प्रयोग किया गया है। यदि उत्पादन को बढाकर 200 इकाइयाँ करना हो तो पूँजी एव श्रम की दुगुनी आगतो की आवश्यकता पडेगी। OC_2 बिल्कुल OC_1 का दुगुना है तथा OL_2 दुगुना है OL_1 का। इसी प्रकार उत्पादन की 300 इकाइयाँ उत्पादित करने के लिए, श्रम तथा पूँजी की इकाइयाँ पहले उत्पादन 100 से तीन गुणा होगी। OC_3 और OL_3 क्रमश OC_1 तथा OL_1 से तिगुनी है।
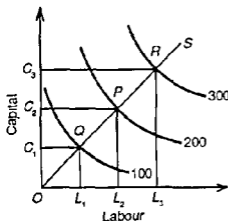
चित्र 17.32

इसके वर्णन करने का अन्य तरीका यह है

9 C W Cobb and P H Douglas, 'A Theory of Production', *A E R* (Supplement) 1928

कि विस्तार पथ लिया जाए जो Q, P, R सन्तुलन बिन्दुओ को एक रेखा द्वारा मिलाए। OS ऐसी माप-रेखा है। यह बताती है कि सममात्रा-वक्र 100, 200 तथा 300 एक-दूसरे से सम-अन्तर पर है। अत विस्तार पथ OS पर $OQ = QP = PR$, जो यह दर्शाता है कि जब पूंजी एव श्रम आगतो को कुछ मात्राओ मे बढाया जाए तो उत्पादन भी उसी अनुपात मे बढता है।

C-D उत्पादन फलन की विशेषताएँ (Properties of C-D Production Function)

C-D उत्पादन फलन की निम्नलिखित विशेषताएँ है।

(1) **पैमाने के स्थिर प्रतिफल** (Constant Returns to Scale)—C-D फलन पैमाने के स्थिर प्रतिफल दर्शाती है। उसे सिद्ध करने के लिए, L और C की मात्राओं को n-गुणा करते हैं। तब बढ़ा हुआ उत्पादन Q^* होगा,

$$Q^* = A(nL)^{\alpha}(nC)^{\beta}$$
$$= n^{\alpha+\beta}(AL^{\alpha}C^{\beta})$$
$$= n^{\alpha+\beta}\,Q \qquad [\;Q = AL^{\alpha}C^{\beta}]$$
$$= nQ \qquad [\;\alpha+\beta = 1]$$

इस प्रकार मूल उत्पादन Q बढकर Q^* स्तर हो गया है, जब आगतो को गुणक n द्वारा बढ़ाया गया है। इसका अभिप्राय है कि जब आगते n-गुणा बढा दी जाती है, तो उत्पादन भी nQ जितना बढता है। यह दर्शाता है कि C-D फलन रेखीय और समरूप प्रथम कोटि का है $(\alpha+\beta=1)$ क्योंकि $(\alpha+\beta)$ का मूल्य ≥ 1 या ≤ 1 भी हो सकता है, इसलिए C-D फलन बताता है कि यदि $\alpha+\beta > 1$ तो पैमाने के प्रतिफल बढ रहे है, और यदि $\alpha+\beta < 1$, तो पैमाने के प्रतिफल घट रहे है।

(2) **साधनो का औसत उत्पाद और सीमात उत्पाद** (AP and MP of Factors)—C-D उत्पादन फलन बताता है कि साधनो का AP और MP साधनो के अनुपात का फलन है। श्रम के MP को C-D उत्पादन फलन से व्युत्पन्न किया जा सकता है

$$MP_L = \frac{\partial Q}{\partial L} = \alpha AL^{\alpha-1}C^{\beta}$$
$$= \alpha(AL^{\alpha}C^{\beta})L^{-1}$$
$$= \alpha QL^{-1} \qquad [\;Q = AL^{\alpha}C^{\beta}]$$
$$= \alpha\frac{Q}{L} = \alpha(AP_L)$$

जहाँ AP_L श्रम का औसत उत्पाद है।

क्योंकि C-D उत्पादन फलन स्थिर मूल्य मानती है, $AP_L = f(C/L)$ इसका मतलब है कि जितनी देर तक C/L स्थिर रहता है, AP_L वही रहता है, चाहे उत्पादन मे C और L की कितनी ही मात्राए प्रयोग की जाए। इसलिए, यही MP_L पर लागू होता है, क्योकि $MP_L = \alpha(AP_L) = f(C/L)$

इसी प्रकार, पूँजी के सीमात उत्पादन (MP_C) के लिए,

$$MP_C = \frac{\partial Q}{\partial C} = \beta(AP_C) = f(C/L)$$

(3) **पूँजी और श्रम के बीच स्थानापन्नता की सीमात दर** MRS_{LC} (The Marginal Rate of Substitution between C and L)—MRS_{LC} को C-D उत्पादन फलन से व्युत्पन्न किया जा सकता है,

$$MRS_{LC} = \frac{\partial Q/\partial L}{\partial Q/\partial C} = \frac{\alpha(Q/L)}{\beta(Q/C)} = \frac{\alpha}{\beta}\,\frac{C}{L}$$

(4) **साधन स्थानापन्नता की लोच** (The Elasticity of Factor Substitution)—C-D उत्पादन फलन की साधन स्थानापन्नता की लोच एक के बराबर है।

इसका प्रमाण (Its Proof) C और L के बीच स्थानापन्नता की लोच (es) परिभाषित की गई है,

$$es = \frac{d\,(C/L)/(C/L)}{d\,(MRS)/(MRS)}$$

ऊपर (3) में दिए गए MRS_{ll} के मूल्य स्थानापन्न करके,

$$es = \frac{d\,(C/L)/(C/L)}{d\left(\frac{\alpha}{\beta}\ \frac{C}{L}\right)\Big/\left(\frac{\alpha}{\beta}\ \frac{C}{L}\right)}$$

क्योंकि α/β स्थिर है, यह अवकलज (derivate) को प्रभावित नहीं करता है जिससे

$$es = \frac{d\left(\frac{C}{L}\right)\left(\frac{\alpha}{\beta}\right)}{\left(\frac{\alpha}{\beta}\right)\ d\left(\frac{C}{L}\right)} = 1$$

जब स्थानापन्नता की लोच इकाई है, तो उत्पादन फलन एक कोटि का समरूप है, अर्थात् पैमाने के स्थिर प्रतिफल है। चित्र 17.11 में TS वक्र पर बिन्दु L जो मूल 0 से 45° पर है स्थानापन्नता की इकाई लोच व्यक्त करता है जहाँ $MRTS$ में एक दिया हुआ प्रतिशत परिवर्तन पूँजी-श्रम अनुपात (C/L) में समान अनुपातिक परिवर्तन लाता है।

(5) **आइलर प्रमेय** (Euler's Theorem)—वितरण पर आइलर प्रमेय की व्यवहार्यता C-D उत्पादन फलन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। यदि उत्पादन फलन $Q = f(C, L)$ एक कोटि का समरूप है, तो आइलर प्रमेय के अनुसार

$$Q = \frac{\partial Q}{\partial Q}C + \frac{\partial Q}{\partial L}L$$

जहाँ $\partial Q/\partial C$ पूँजी का सीमांत उत्पाद है और $\partial Q/\partial L$ श्रम का सीमांत उत्पाद है। $\partial Q/\partial C\ C$ कुल उत्पाद Q में पूँजी का हिस्सा है और $\partial Q/\partial L\ L$ कुल उत्पाद Q में श्रम का हिस्सा। सिद्ध करने के लिए, मान लीजिए

$$Q = f(C\,L) = AC^{\alpha}L^{\beta} \qquad [A,\ \alpha \text{ and } \beta \text{ are constants}]$$

$$\frac{\partial Q}{\partial C} = A\alpha C^{\alpha-1}L^{\beta}$$

$$\frac{\partial Q}{\partial L} = AC^{\alpha}\beta L^{\beta-1}$$

$$\frac{\partial Q}{\partial C} + \frac{\partial Q}{\partial L}L = C(A\alpha C^{\alpha-1}L^{\beta}) + L(AC^{\alpha}\beta L^{\beta-1})$$

$$= A\alpha C^{\alpha}L^{\beta} + AC^{\alpha}\beta L^{\beta}$$

$$= AC^{\alpha}L^{\beta}(\alpha + \beta)$$

$$= Q(\alpha + \beta) \qquad [\ Q = AC^{\alpha}L^{\beta}]$$

अत $$\frac{\partial Q}{\partial C}C+\frac{\partial Q}{\partial L}L=(\alpha+\beta)Q$$

क्योंकि C-D उत्पादन फलन $\alpha+\beta=1$ है, सभी साधनो का पारितोषक $(\alpha+\beta)\ Q=Q$ होने पर, कुल उत्पादन पूरी तरह से खप जाता है।

(6) **साधन गहनता** (Factor Intensity)—C-D उत्पादन फलन मे, α/β अनुपात साधन गहनता को मापता है। जितना अधिक यह अनुपात होगा, उतनी श्रम गहन तकनीक होगी और जितना यह अनुपात कम होगा, उतनी ही उत्पादन की तकनीक पूँजी गहन होगी।

(7) **उत्पादन की दक्षता** (The Efficiency of Production)—C-D उत्पादन फलन मे A गुणाक उत्पादन के साधनो के सगठन मे दक्षता को मापने मे सहायता करता है। यदि दो फर्मों के α, β, L और C समान है, परन्तु वे वस्तु की विभिन्न मात्राएँ उत्पादित करती है, तो दूसरी फर्म की अपेक्षा यह अन्तर अधिक दक्ष फर्म के बेहतर सगठन के कारण हो सकता है। अधिक दक्ष फर्म का दूसरी फर्म की तुलना मे A बड़ा होगा।

(8) **गुणात्मक फलन** (Multiplicative Function)—C-D उत्पादन फलन गुणात्मक फलन है। इसका अर्थ है कि यदि एक आगत का मूल्य शून्य है, तो उत्पादन भी शून्य होगा। यह विशेषता इस तथ्य को उजागर करती है कि एक फर्म मे उत्पादन के लिए सभी आगते महत्त्वपूर्ण है।

(9) **L और C से सबधित α और β उत्पादन लोचे है** (α and β are Output Elasticities with respect to L and C)—C-D उत्पादन फलन मे, C को स्थिर मानते हुए, L से सबधित α उत्पादन (Q) की आशिक लोच है, और L को स्थिर मानते हुए, C से सबधित β उत्पादन (Q) की आशिक लोच है। अत L और C से सबधित α और β इकट्ठे उत्पादन की लोच को मापते है।

C-D उत्पादन फलन की आलोचनाएँ (Criticisms of C-D Production Function)

C-D उत्पादन फलन की ऐरो, चेनेरी, मिनहास और सोलो द्वारा आलोचना की गई जिनकी निम्न विवेचना है।

1 C-D उत्पादन फलन केवल दो आगतो श्रम और पूँजी पर विचार करता है तथा कच्चे माल आदि अन्य महत्त्वपूर्ण आगते जो उत्पादन मे प्रयोग की जाती हैं उनकी उपेक्षा करता है। इसलिए फलन को दो से अधिक आगतो के लिए सामान्यीकरण करना सभव नहीं है।

2 C-D उत्पादन फलन मे, पूँजी के माप की समस्या उत्पन्न होती है क्योंकि यह केवल उत्पादन के लिए उपलब्ध पूँजी की मात्रा को लेता है। परन्तु उपलब्ध पूँजी का पूरा प्रयोग केवल पूर्ण रोजगार की अवधियों मे ही किया जा सकता है। यह अवास्तविक है क्योंकि कोई भी अर्थव्यवस्था सदैव पूर्ण रोजगार मे नहीं होती है।

3 कॉब-डगलस उत्पादन-फलन की आलोचना इस कारण की जाती है कि यह पैमाने के स्थिर प्रतिफल को प्रदर्शित करता है। पैमाने के स्थिर प्रतिफल वास्तविक नहीं है, पैमाने के बढते प्रतिफल या घटते प्रतिफल उत्पादन मे लागू होते है। सभी उद्योगो का उत्पादन मे आनुपातिक परिवर्तन लाने के लिए आगतों को परिवर्तित करना सम्भव नहीं। कुछ आगते सीमित मात्राओ मे पाई जाती है और वे अन्य आगतो के अनुपात में नहीं बढाई जा सकतीं। दूसरी ओर, मशीने, उद्यमी जैसे कुछ आगते अविभाज्य होती है। जब उत्पादन बढता है तो अविभाज्य साधनो से उनकी अधिकतम क्षमता तक काम लिया जा सकता है। इससे प्रति इकाई लागत कम होती है क्योंकि उनमे उत्पादन के बडे पैमाने की किफायते प्राप्त होती है। अत जब आगतों की पूर्ति सीमित हो तथा अविभाज्यताएँ विद्यमान हो, तो पैमाने के स्थिर प्रतिफल सम्भव नहीं। व्यावहारिकता मे जब भी उत्पादन प्रक्रिया मे आगतो की विभिन्न मात्राओं को बढाया जाता है, तो

विशेषीकरण तथा पैमाने की किफायतों के कारण बढ़ते पैमाने के प्रतिफल प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त, कोई भी उद्यमी यह नहीं चाहेगा कि वह आगतों की मात्राओं को केवल इसलिए बढ़ाए कि उससे उत्पादन में आनुपातिक वृद्धि प्राप्त हो। हमेशा उसका प्रयत्न यह होता है कि वह उत्पादन में अनुपात से अधिक वृद्धि प्राप्त करे, यद्यपि पैमाने के घटते प्रतिफल के नियम की सम्भावना को भी कम नहीं किया जा सकता।

4 कॉब-डगलस फलन की एक मुख्य कमी समूहन (aggregation) समस्या की है। यह समस्या उस समय पैदा होती है जब इस फलन को एक उद्योग में प्रत्येक फर्म पर तथा समस्त उद्योग पर लागू किया जाता है। इसी अवस्था में, नीची या ऊँची समूहन की कोटि के अनेक उत्पादन फलन होंगे। अत उत्पादन फलन वह नहीं मापता जिसको मापने का यह उद्देश्य रखता है।

5 कॉब-डगलस फलन साधनों की स्थानापन्नता की मान्यता पर आधारित है और साधनों की पूरकता को शामिल नहीं करता है। क्योंकि साधनों की पूरकता अल्पकाल में सम्भव होती है, इसलिए यह फलन दीर्घकाल के लिए अधिक उपयुक्त है। परन्तु कॉब-डगलस फलन स्वयं ही समय-तत्त्व को नहीं लेता है। यह इसकी सबसे बड़ी कमी है।

6 यह फलन साधन मार्किट में पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है, जो अवास्तविक है। फिर भी यदि इस मान्यता को न लिया जाए, तो α और β गुणांक साधन हिस्सों को व्यक्त नहीं करते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)—अत निर्माणकारी उद्योग में कॉब-डगलस उत्पादन-फलन की व्यावहारिकता के बारे में संदेह किया जाता है। यह तो कृषि में भी लागू नहीं होता, जहाँ गहन खेती के लिए आगतों की मात्राएँ बढ़ाने से उत्पादन में अनुपात से अधिक वृद्धि होती है। फिर भी, इस बात से इकार नहीं किया जा सकता कि पैमाने के स्थिर प्रतिफल किसी भी एक फर्म, उद्योग व अर्थ-व्यवस्था के जीवन में एक अवस्था होती है। यह और बात है कि यह अवस्था कुछ देर बाद और थोड़े समय के लिए आए।

इसका महत्त्व (Its Importance)

इन आलोचनाओं के बावजूद, C-D फलन का निर्माणकारी उद्योगों और अन्तर-उद्योग तुलनाओं के आनुभविक अध्ययनों में विस्तृत प्रयोग किया गया है। दूसरे, अर्थशास्त्रियों द्वारा कॉब-डगलस फलन, कुल उत्पादन में श्रम एवं पूँजी के सापेक्ष भागों को निर्धारित करने के लिए किया गया है। तीसरे, आइलर प्रमेय को प्रमाणित करने के लिए इसका प्रयोग किया गया है। चौथे, इसके पैरामीटर α और β लोच-गुणांकों (elasticity coefficients) को लक्ष्य करते हैं जो अन्त क्षेत्रक तुलनाओं में प्रयोग किए जाते हैं। पाचवे, यह फलन रेखीय समरूप है जिसका मूल्य एक के बराबर लिया जाता है जो पैमाने के स्थिर प्रतिफल को व्यक्त करता है। यदि यह एक से अधिक हो तो पैमाने के बढ़ते प्रतिफल और यदि एक से कम हो तो पैमाने के घटते प्रतिफल पाए जाते हैं। अन्तिम, अर्थशास्त्रियों ने इस फलन को दो से अधिक चरों पर भी फैलाया है।

13. CES उत्पादन फलन
(THE CES PRODUCTION FUNCTION)

ऐरो, चेनेरी, मिनहास और सोलो[10] ने अपने 1961 के प्रसिद्ध लेख में स्थानापन्नता की स्थिर लोच (constant elasticity of substitution—CES) फलन का विकास किया। इस फलन के तीन चर Q

10 K J Arrow H B Chenery B S Minhas and R M Solow "Capital-Labour Substitution and Economic Efficiency", *R E & S*, August 1961

C और L है और तीन प्राचल (parameters) A, α और θ (theta) है। इसे इस रूप में व्यक्त किया जा सकता है,

$$Q = A\,[\alpha C^{-\theta} + (1-\alpha)\,L^{-\theta}]^{-1/\theta}$$

जहाँ Q कुल उत्पादन, C पूँजी, और L श्रम है। A दक्षता प्राचल है जो तकनीकी स्थिति और उत्पादन के सगठनात्मक पहलू व्यक्त करता है। यह दर्शाता है कि तकनीकी और/या सगठनात्मक परिवर्तनो से, दक्षता प्राचल से उत्पादन फलन शिफ्ट करता है। α (alpha) वितरण प्राचल या पूँजी गहनता साधन गुणाक है जो कुल उत्पादन मे सापेक्ष साधन हिस्सों से सबधित है। θ (theta) स्थानापन्नता प्राचल है जो स्थानापन्नता की लोच को निर्धारित करता है। और $A > 0$; $0 < \alpha < 1$, $\theta > -1$

इसकी विशेषताएँ (Its Properties)

CES उत्पादन फलन की निम्नलिखित विशेषताएँ हे

1 CES उत्पादन फलन एक कोटि का समरूप है। यदि CES उत्पादन फलन मे C और L आगतों को n-गुणा बढा दे, तो उत्पादन Q भी n-गुणा बढेगा, जैसे

$$A\,[\alpha(nC)^{-\theta} + (1-\alpha)(nL)^{-\theta}]^{-1/\theta} = A\,\{n^{-\theta}[\alpha C^{-\theta} + (1-\alpha)\,L^{-\theta}]\}^{-1/\theta}$$

$$= (n^{-\theta})^{-1/\theta}\,Q = nQ$$

इस प्रकार कॉब-डगलस उत्पादन फलन की तरह, CES फलन पैमाने के स्थिर प्रतिफल दर्शाता है।

2 CES उत्पादन फलन मे, सभी रेखीय समरूप उत्पादन फलनो की तरह C और L चरो में औसत और सीमात उत्पाद शून्य कोटि के समरूप है। उदाहरणार्थ, C और L आगतो की सीमात उत्पादकताएँ है

$$\frac{\partial Q}{\partial C} = \frac{\alpha}{A^{\theta}}\left(\frac{Q}{C}\right)^{1+\theta} \qquad \text{और} \qquad \frac{\partial Q}{\partial L} = \frac{1-\alpha}{A^{\theta}} = \left(\frac{Q}{L}\right)^{1+\theta}$$

3 ऊपर की विशेषता से, एक समामात्रा वक्र की ढलान, अर्थात् श्रम (L) के लिए पूँजी (C) की $MRTS$ को मूल के उन्नतोदर (convex) दिखाया जा सकता है,

$$MRTS \text{ of } C \text{ for } L = -\frac{\partial C}{\partial L} = -\frac{MP_L}{MP_C} = -\frac{(1-\alpha)}{\alpha}\left(\frac{C}{L}\right)^{1+\theta}$$

4 CES उत्पादन फलन मे प्राचल θ (theta) स्थानापन्नता की लोच को निर्धारित करता है। इस फलन मे, स्थानापन्नता की लोच

$$\sigma = \frac{1}{1+\theta}$$

यह दर्शाता हे कि स्थानापन्नता की लोच स्थिर है जिसका आकार θ प्राचल के मूल्य पर निर्भर करता है। यदि $\theta = 0$ तब $\sigma = 1$, यदि $\theta = \infty$ तब $\sigma = 0$ यदि $\theta = -1$ तो $\sigma = \infty$ यह व्यक्त करता है कि जब $\sigma = 1$ तो CES उत्पादन फलन कॉब-डगलस उत्पादन फलन बन जाता है। यदि $\theta > 0$ तब $\sigma = -1$ और यदि $\theta < \infty$, तो $\sigma < 1$ इस तरह CES उत्पादन फलन के लिए समामात्रा वक्र समकोण से लेकर सीधी रेखाओं तक होते हे जब स्थानापन्नता की लोच 0 से ∞ तक होती है।

5 ऊपर के परिणामस्वरूप, यदि आगते L और C एक दूसरे के साथ स्थानापन्न किए जा सकते है, एक दिए हुए उत्पादन के लिए C मे वृद्धि से कम L की आवश्यकता होगी। अत एक आगत की MP मे वृद्धि होगी जब दूसरी आगत में वृद्धि की जाती है।

6 CES उत्पादन फलन मे आइलर प्रमेय को भी सिद्ध किया जाता है ताकि कुल उत्पादन मे C और L दोनो साधनो के सापेक्ष हिस्से वितरित किए जा सके।

CES फलन बनाम C-D फलन (CES Function Vs C-D Function)

CES फलन और C-D फलन में कुछ मूल भिन्नताएं हैं।

1 C-D फलन इस अवलोकन पर आधारित है कि मजदूरी दर प्रति व्यक्ति उत्पादन का स्थिर अनुपात है। ($Q/L = \alpha W$) दूसरी ओर, CES फलन इस अवलोकन पर आधारित हे कि प्रति व्यक्ति उत्पादन मजदूरी दर का बदलता अनुपात है ($Q/L = \alpha W^{b}$)

2 C-D उत्पादन फलन को अपेक्षा CES फलन अधिक प्राचलो पर आधारित है ओर इस प्रकार साधनों को स्थानापन्न या पूरक होने देता हे। दूसरी ओर, C-D फलन साधनो की स्थानापन्नता की मान्यता पर आधारित हे ओर साधनो की पूरकता की उपेक्षा करता है। इस प्रकार, CES फलन का क्षेत्र ओर व्यावहारिता विस्तृत हे।

3 C-D फलन केवल दो आगतो पर लागू होता हे जबकि CES उत्पादन फलन दो से अधिक आगतो पर फैलाया जा सकता है।

4 CES फलन मे स्थानापन्नता की लोच स्थिर हे लेकिन आवश्यक नहीं कि इकाई के बराबर हो। यह O से ∞ तक होती है। परन्तु C-D फलन इकाई के बराबर लोच से सबंधित हे।

5 CES फलन पैमाने के स्थिर, बढते ओर घटते प्रतिफलो की व्याख्या करता है, जबकि C-D उत्पादन फलन केवल पैमाने के स्थिर प्रतिफलो की व्याख्या करता हे।

CES उत्पादन फलन की सीमाएँ (Limitations of CES Production Function)

CES फलन की कुछ सीमाएँ भी हैं।

1 CES उत्पादन फलन केवल दो आगतो को लेता है। यह दो से अधिक आगतो पर भी फैलाया जा सकता है। परन्तु यह गणितीय रूप मे बहुत कठिन और जटिल बन जाता है जब इसका प्रयोग दो से अधिक आगतो पर किया जाए।

2 वितरण प्राचल या पूँजी गहन साधन गुणाक, α, घात रहित (dimensionless) नहीं है।

3 यदि CES फलन मे आकडे लगाए जाते है, तो दक्षता प्राचल A का मूल्य 0 से अथवा Q, C ओर L की इकाइयो से स्वतत्र नहीं रखा जा सकता है।

4 यदि CES फलन एक फर्म के उत्पादन फलन को वर्णन करने मे प्रयोग किया जाता है, तो यह उद्योग मे सभी फर्मो का कुल उत्पादन फलन वर्णन करने मे प्रयोग नहीं किया जाता है।

14. उत्पादन फलन बनाम उत्पादन प्रक्रिया
(PRODUCTION FUNCTION VS PRODUCTION PROCESS)

एक उत्पादन फलन ओर एक उत्पादन प्रक्रिया मे भेद करना जरूरी हे।

एक उत्पादन फलन साधन आगतो और निर्गतो के बीच एक तकनीकी सबध को बताता है। यह एक ऐसा सबध है जो साधन आगतो के सभी प्राप्य योग्य ओर तकनीकी तोर से दक्ष सयोगों को दर्शाता है।"[11] एक उत्पादन फलन को चित्र मे एक सममात्रा वक्र के प्रयोग द्वारा व्यक्त किया जाता हे। एक सममात्रा वक्र का प्रत्येक बिन्दु एक विशेष पूँजी-श्रम अनुपात का प्रयोग करती हुई, उत्पादन के एक विभिन ढग या प्रक्रिया वाली तकनीक को व्यक्त करता हे।

इस प्रकार, एक उत्पादन प्रक्रिया उत्पादन का एक विशिष्ट ढग है जो एक उत्पादन स्तर

11 उत्पादन फलन की विस्तृत व्याख्या के लिए पिछला अध्याय देखिए।

उत्पादित करने के लिए स्थिर अनुपातों में साधनों के एक संयोग का प्रयोग करती है। यह मानते हुए कि वस्तु X की 100 इकाइयाँ उत्पादित करने के लिए दो साधनों, श्रम और पूँजी, का प्रयोग किया जाता है, उत्पादन प्रक्रियाएँ तालिका 17.3 के अनुसार हो सकती हैं।

तालिका 17.3 उत्पादन प्रक्रियाएँ

आगतें	A	B	C
श्रम	2	4	6
पूँजी	4	2	1
उत्पादन	100	100	100
पूँजी-उत्पादन अनुपात	2.0	0.5	0.16

तालिका 17.3 A, B और C तीन उत्पादन प्रक्रियाएँ दिखाती हैं जो वस्तु X की 100 इकाइयां उत्पादित कर सकती हैं। इन्हें चित्र 17.33 में मूल बिन्दु O से एक किरण से लेकर श्रम और पूँजी की इकाइयों द्वारा निर्धारित बिन्दु तक दर्शाया गया है। मूल से खींची गई किरण की ढलान उस उत्पादन प्रक्रिया के लिए पूँजी-श्रम अनुपात है। अत बिन्दु a उत्पादन प्रक्रिया A को व्यक्त करता है। इसी प्रकार, बिन्दु b और c क्रमश B और C उत्पादन प्रक्रियाओं को दर्शाते हैं। a, b और c बिन्दुओं को मिलाती हुई एक रेखा सममात्रा वक्र $100X$ है। उत्पादन फलन के समतल उन्नतोदर सममात्रा वक्र के विरुद्ध, यह सममात्रा वक्र एक समतल वक्र नहीं है। दो प्रक्रियाओं के बीच इस वक्र की ढलान का स्थिर मूल्य है जो उस समय परिवर्तित करता है जब यह वक्र दूसरी प्रक्रिया पर आता है। इस प्रकार, प्रत्येक बिन्दु a, b और c पर एक कोण बन जाता है जहाँ निर्देशांक (coordinates) उन अनुपातों को व्यक्त करते हैं जिनमें, श्रम और पूँजी, दो साधन एक उत्पादन प्रक्रिया में इकट्ठे किए जाते हैं।
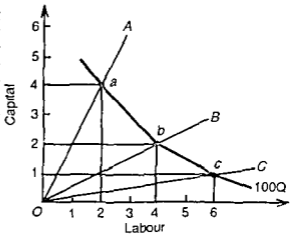
चित्र 17.33

A, B और C तीन उत्पादन प्रक्रियाओं को दर्शाता हुआ सममात्रा वक्र $100Q$ रेखीय उत्पादन प्रक्रियाओं (पैमाने के स्थिर प्रतिफल) को व्यक्त करता है, क्योंकि श्रम और पूँजी के संयोगों को दुगुना करने से उत्पादन भी दुगुना होकर 200 इकाइयां हो जाएगा। ऐसी स्थिति में, Oa, Ob और Oc रेखाएँ अपनी-अपनी लंबाइयों के अनुरूप उत्तर-पूर्व दिशा में बढ़ जाएगी जो श्रम और पूँजी की दुगुनी इकाइयों को दर्शाएगी और उनके नए संयोग बिन्दु सममात्रा वक्र $200Q$ बनाएगी। इसे छोटे पैमाने पर खींचे गए चित्र 17.34 में दिखाया गया है जहाँ OA किरण के भाग की लंबाई $Oa = aa$, और इसी प्रकार क्रमश OB और OC किरणों पर $Ob = bb$, तथा $Oc = CC$,

उत्पादन फलन में, जो समतल सममात्रा वक्र दिखाया जाता है, यह मान लिया जाता है कि यह तकनीकी तौर से दक्ष है। इसका मतलब है कि श्रम और पूँजी के दिए हुए किसी भी संयोग से उत्पादन का अधिकतम स्तर प्राप्त किया जाता है। दूसरे शब्दों में, एक सममात्रा वक्र पर सभी बिन्दु उत्पादन के तकनीकी तौर से दक्ष बिन्दु हैं। यही परिणाम केवल तकनीकी तौर से दक्ष प्रक्रियाओं को चलाकर उपलब्ध किए जा सकते हैं। एक उत्पादन प्रक्रिया तकनीकी तौर से दक्ष

होती है यदि वह कम से कम एक साधन का कम प्रयोग करती है और दूसरी उत्पादन प्रक्रिया की तुलना मे अन्य साधनो का अधिक प्रयोग नहीं करती है। उदाहरणार्थ, यदि *B* उत्पादन प्रक्रिया *A* उत्पादन प्रक्रिया जिसका संयोग $2L + 4C$ है कि तुलना मे, $3L + 4C$ संयोग का प्रयोग करती है, तो *A* की तुलना मे *B* तकनीकी तौर से अदक्ष है।

दूसरी ओर, यदि एक उत्पादन प्रक्रिया दूसरी की तुलना मे एक साधन की कम इकाइयाँ और दूसरे साधन की अधिक इकाइयाँ प्रयोग करती है, तो दोनो प्रक्रियाएँ तकनीकी तौर से दक्ष है। इस प्रकार, ऊपर दी गई तालिका मे तीनो उत्पादन प्रक्रियाएँ तकनीकी तौर से दक्ष है। इसे तीनो प्रक्रियाओ की पूँजी-श्रम अनुपातो की तुलना द्वारा भी सिद्ध किया जा सकता है, जो ऊपर की तालिका के अनुसार उत्पादन प्रक्रिया *A* के ऊँचे अनुपात 2 0 से उत्पादन प्रक्रिया *C* के कम 0 16 के बीच है। इसका अर्थ है कि उत्पादन प्रक्रिया *C* अन्य दो प्रक्रियाओ से तकनीकी तौर से अधिक दक्ष है और उत्पादन प्रक्रिया *A* की अपेक्षा *B* अधिक दक्ष है।
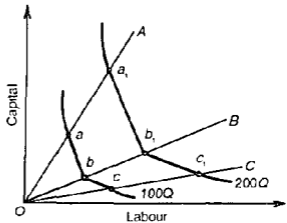
चित्र 17 34

प्रश्न

1 साधन के प्रतिफल और पैमाने के प्रतिफल मे भेद कीजिए। एक साधन के प्रतिफल क्या होगे यदि पैमाने के प्रतिफल बढ रहे, स्थिर और घटते हो?

2 समरूप उत्पादन फलन क्या है? किसी ऐसे उत्पादन फलन की विशेषताओ की विवेचना कीजिए।

3 उत्पादन फलन क्या है? व्याख्या कीजिए कि एक उत्पादक उत्पादन के साधनो का न्यूनतम लागत या इष्टतम संयोग कैसे प्राप्त करता है?

4 एक बहुवस्तु फर्म साधन आगतो और वस्तु-मिश्र के इष्टतम संयोग को कैसे प्राप्त कर सकती है? चित्र सहित व्याख्या करिए।

5 कॉब-डगलस और CES उत्पादन फलनो मे भेद कीजिए। दोनो मे से कौन सी बेहतर है और क्यो?

6 एक समउत्पाद वक्र क्या है? एक फर्म की संतुलन शर्तो की सममात्रा धारणा द्वारा विश्लेषण कीजिए।

7 एक उत्पादक के संतुलन की प्रथम कोटि और द्वितीय कोटि (degree) की शर्तो की व्याख्या करिए। इस संदर्भ मे उपभोक्ता संतुलन और उत्पादक संतुलन मे क्या कोई भेद है?

8 टिप्पणी लिखिए स्थानापन्नता की साधन लोच, तकनीकी स्थानापन्नता की सीमांत दर, इष्टतम प्रसार पथ का चुनाव, उत्पादन फलन और उत्पादन प्रक्रिया मे भेद।

अध्याय 18

तकनीकी उन्नति और उत्पादन फलन
(TECHNICAL PROGRESS AND PRODUCTION FUNCTION)

1 अर्थ
(MEANING)

तकनीकी उन्नति या प्रोद्योगिकी परिवर्तन मे उत्पादन की नई विधियाँ खोजना, नई वस्तुओ का विकास करना, और विपणन, प्रबध ओर सगठन की नई तकनीकें आरभ करना शामिल है। तकनीकी उन्नति उत्पादन फलन मे परिवर्तन की समानार्थक है। दो आगते मानते हुए, जब तकनीकी उन्नति होती है, तो वह श्रम ओर पूँजी की उत्पादकता मे वृद्धि लाती है। इसे चित्र मे सममात्रा वक्र के मूल की ओर शिफ्ट ओर उसकी ढलान मे परिवर्तन द्वारा दिखाया जाता है। यह व्यक्त करता है कि अधिक उत्पादन या तो उन्हीं आगतों से अथवा कम आगतो से किया जा सकता है।

2. तकनीकी उन्नति का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF TECHNICAL PROGRESS)

प्रो हिक्स[1] प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने तकनीकी उन्नति को तटस्थ, श्रम-बचतकारी और पूँजी-बचतकारी वर्गीकृत किया।

हिक्स का तकनीकी उन्नति का वर्गीकरण श्रम और पूजी के बीच स्थानापन्नता की सीमात दर (MRS_{LC}) की धारणा पर आधारित हे। स्थानापन्नता की सीमात दर श्रम के सीमात उत्पाद (MP_L) का पूजी के सीमात उत्पाद (MP_C) के साथ अनुपात द्वारा दी जाती है, श्रम ओर पूजी की सापेक्ष कीमतें (w/r) स्थिर रहते हुए।

तटस्थ तकनीकी उन्नति (Neutral Technical Progress)

हिक्स के अनुसार, एक तकनीकी उन्नति तटस्थ है, यदि एक स्थिर पूजी-श्रम अनुपात पर MP_L का MP_C के साथ अनुपात अपरिवर्तित रहता है। हिक्स की तटस्थ तकनीकी उन्नति की चित्र 18 1 मे व्याख्या की गई है जहाँ मूल से किरण या प्रसार पथ OR पूँजी-श्रम अनुपात दर्शाता हैं और सममात्रा वक्र (उत्पादन फलन) $Q = 100$ E बिन्दु पर साधन-कीमत रेखा CL को स्पर्श करता है। तकनीकी उन्नति के परिणामस्वरूप, फर्म उत्पादन का वही स्तर प्राप्त करने के लिए श्रम और पूजी दोनो ही कम मात्राए प्रयोग करती है। इसे सममात्रा वक्र $Q = 100$ को अपने समानातर $Q_1 = 100$

1 J R Hicks *The Theory of Wages* 1932

चित्र 18 1

पर नीचे शिफ्ट करते दिखाया गया है। यह E_1 बिन्दु पर साधन-कीमत अनुपात रेखा C_1L_1 को स्पर्श करता है, जो वहीं प्रसार पथ OR पर स्थित है। इस बिन्दु पर $MRS_{LC} = MP_L/MP_C$ इस तरह तकनीकी उन्नति तटस्थ है। प्रसार पथ OR पर सममात्रा वक्र Q और Q_1 की ढलानें बिन्दु E और E_1 पर क्रमश समान रहती है। इसका मतलब है कि MP_L और MP_C उसी अनुपात में बढ़ते है, जिससे MRS_{LC} अपरिवर्तित साधन-कीमत अनुपात (w/r) पर स्थिर है। तटस्थ तकनीकी उन्नति के साथ अब वही उत्पादन, $Q = Q_1 = 100$ पहले $OC_2 + OL_2$ की अपेक्षा कम आगतों $OC_3 + OL_3$ से उत्पादित होता है।
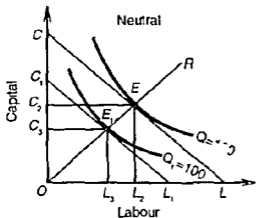
इस प्रकार हिक्स-तटस्थ तकनीकी उन्नति जो कुल उत्पादन फलन $Q = f(C, L, t)$ मे शिफ्ट दिखाता है, उसे इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है,

$$Q = A(t) f(C, L)$$

जहाँ Q C और L क्रमश कुल उत्पादन ओर पूजी एव श्रम आगतो को प्रकट करते है तथा $A(t)$ तकनीकी उन्नति का सूचक है जो दीर्घकाल मे बदलाव (shifts) के सचयी प्रभावो को मापता है और t का बढता हुआ फलन हे।

हिक्स तटस्थता की उपरोक्त परिभाषा से हम श्रम-बचतकारी और पूजी-बचतकारी तकनीकी उन्नति को परिभाषित कर सकते है, जिसे जोन रॉबिन्सन ने पक्षपाती तकनीकी उन्नति (biased technical progress) कहा है।

चित्र 18 2

श्रम-बचतकारी तकनीकी उन्नति
(Labour-Saving Technical Progress)

एक तकनीकी उन्नति श्रम-बचतकारी या पूजी-उपयोगी या पूजी-गहन (deepening) होती है यदि स्थिर w/r पर MP_L की सापेक्षता मे MP_C को बढाती है। इससे मूल प्रसार पथ OR पर स्पर्श बिन्दु E नए प्रसार पथ OR_1 के बिन्दु E_2 पर शिफ्ट कर जाता है जैसाकि चित्र 18 2 मे दिखाया गया है। प्रसार पथ OR पर बिन्दु E_1

* समानातर कीमत रेखाए CL और C_1L_1 स्थिर साधन कीमत अनुपातों (w/r) को दिखाती हैं।

सतुलन बिन्दु नहीं है क्योंकि तकनीकी उन्नति के बाद सममात्रा वक्र $Q_1 = 100$ साधन-कीमत रेखा C_1L_1 को इस बिन्दु पर स्पर्श नहीं करता है। इसलिए, फर्म के लिए लाभदायक होगा कि वह श्रम के स्थान पर पूजी को स्थानापन्न करे और सममात्रा वक्र $Q_1 = 100$ के बिन्दु E_2 पर चली जाए। बिन्दु E_2 पर श्रम के लिए पूजी को स्थिर w/r पर स्थानापन्न किया जाता है, जिससे पूजी-श्रम अनुपात बढ़ता है जिसे पुराने प्रसार पथ OR के बाईं ओर नए प्रसार पथ OR_1 द्वारा दिखाया गया है। इस प्रकार, L_2L_3 श्रम की बचत होती है।

पूजी-बचतकारी तकनीकी उन्नति (Capital-Saving Technical Progress)

एक तकनीकी उन्नति पूजी-बचतकारी (या श्रम उपयोगी या श्रम-गहन) होती है यदि स्थिर w/r पर MP_C की सापेक्षता मे MP_L को बढाती है। यह मूल प्रसार पथ OR के स्पर्श बिन्दु E को नए प्रसार पथ OR_1 के बिन्दु E_2 पर शिफ्ट करती है जैसाकि चित्र 18.3 में दिखाया गया है। प्रसार पथ OR पर बिन्दु E_1 सतुलन बिन्दु नहीं है क्योंकि तकनीकी उन्नति के बाद सममात्रा वक्र $Q_1 = 100$ साधन-कीमत रेखा C_1L_1 को इस बिन्दु पर स्पर्श नहीं करता है। इसलिए फर्म के लिए लाभदायक होगा कि वह पूजी के स्थान पर श्रम को स्थानापन्न करे और सममात्रा वक्र $Q_1 = 100$ के बिन्दु E_2 पर गति करे। E_2 बिन्दु पर पूँजी के लिए श्रम को स्थिर w/r पर स्थानापन्न किया जाता है, जिससे पूजी-श्रम अनुपात गिरता है, जिसे पुराने प्रसार पथ OR के दाईं ओर नए प्रसार पथ OR_1 द्वारा दिखाया गया है। इस प्रकार C_2C_3 पूजी की बचत की जाती है।
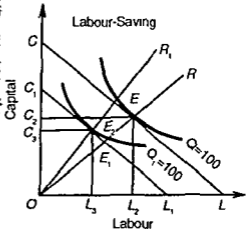
चित्र 18.3

3. असमाविष्ट और समाविष्ट तकनीकी उन्नति
(DISEMBODIED AND EMBODIED TECHNICAL PROGRESS)

तकनीकी उन्नति असमाविष्ट या समाविष्ट हो सकती है।

असमाविष्ट तकनीकी उन्नति (Disembodied Technical Progress)

असमाविष्ट तकनीकी उन्नति पूर्णतया सगठनात्मक है, जिससे बिना नया निवेश किए, अपरिवर्तित आगतो द्वारा अधिक उत्पादन किया जाता है। असमाविष्ट, तकनीकी उन्नति का सबध उत्पादन फलन का ऊपर की ओर सरकने से है जो दीर्घकाल मे पूजी और श्रम के बीच सतुलन को स्थिर रखती है। ऐसी तकनीकी उन्नति के लिए उत्पादन फलन है

$$Q = F(C, L, t) \tag{1}$$

जहाँ Q उत्पादन तथा C और L क्रमश पूजी और श्रम की आगतें है। t तकनीकी उन्नति है।

हिक्स-तटस्थ तकनीकी उन्नति को आधार मान कर, सोलो ने विशेष रूप मे उत्पादन फलन को इस प्रकार व्यक्त किया,

$$Q = A(t) F(C\ L) \tag{2}$$

जहाँ $A(t)$ तकनीकी उन्नति का सूचक है, जो उत्पादन फलन में सतत निरंतर ऊपर की ओर सरकने को बताता है। ऐसे उत्पादन फलन से अभिप्राय है कि तकनीकी उन्नति इस अर्थ में संगठनात्मक है कि उत्पादकता पर उसके प्रभाव के लिए आगतों की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं चाहिए। वर्तमान आगतों को सुधारा जाता है या अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया जाता है। वे दीर्घकाल में केवल उत्पादन फलन को ऊपर की ओर सरकाती हैं।

ये मानते हुए कि $A(t)$ तटस्थता और घातीय तौर (neutrally and exponentially) λ दर पर वृद्धि करता है, उत्पादन फलन को कॉब-डगलस रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$Q = Ae^{\lambda t} C^{\beta} L^{1-\beta} \tag{3}$$

जहाँ β पूजी से संबध उत्पादन की लोच है और $(1-\beta)$ श्रम से संबध उत्पादन की लोच है। पैमाने के स्थिर प्रतिफल होने पर β और $(1-\beta)$ के मूल्यों का जोड़ एक होता है।

असमाविष्ट तकनीकी उन्नति में, पूजी को समरूप माना जाता है और तकनीकी उन्नति बाहर (अर्थव्यवस्था) से प्रवाहित होती है। उत्पादकता पूजी स्टॉक की मात्रा पर निर्भर करती है, न कि उसकी आयु पर। असमाविष्ट तकनीकी उन्नति उत्पादन के सभी साधनों या एक विशेष प्रकार के पहले से ही विद्यमान साधनों की उत्पादकता को सुधारती है। समस्त तकनीकी उन्नति पूजी बढ़ाने वाली (capital augmenting) होती है, जिसमें, किसी एक या अन्य ढंग द्वारा, वर्तमान पूजी को अधिक उत्पादक बनाया जाता है।

असमाविष्ट तकनीकी उन्नति की चित्र द्वारा व्याख्या करने के लिए, मान लीजिए कि एक प्रति व्यक्ति उत्पादन फलन है जो दीर्घकाल में ऊपर की ओर सरकता है। उत्पादन फलन (2) को L से भाग देने से,

$$\frac{Q}{L} = A(t) f \left(\frac{C}{L}\right) \tag{4}$$

चित्र 18.4 में प्रति व्यक्ति उत्पादन फलन $A(t)_0 f(C/L)$ दीर्घकाल में λ दर पर ऊपर की ओर $A(t)_1 f(C/L)$ तथा $A(t)_2 f(C/L)$ पर सरकता है, जो पूजी और श्रम में असमाविष्ट तकनीकी उन्नति से होता है, जब पूजी-श्रम अनुपात (C/L) में दी हुई प्रतिशतता वृद्धि से प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ता है। यह दर्शाता है कि तकनीकी उन्नति पूजी-बढ़ाने वाली होती है।
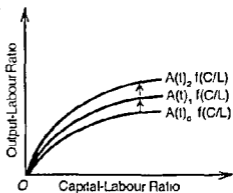
चित्र 18.4

समाविष्ट तकनीकी उन्नति (Embodied Technical Progress)

समाविष्ट तकनीकी उन्नति पिछली अवधि में निर्मित मशीनों की तुलना में केवल नई मशीनों की उत्पादकता को सुधारती है जो किसी भी अवधि में निर्मित की गई हो। परन्तु यह पहले से ही विद्यमान मशीनों की उत्पादकता को नहीं बढ़ाती है। इस प्रकार, पुरानी मशीनों की अपेक्षा नई मशीनें अधिक उत्पादक हैं। पूजी स्टॉक में विभिन्न वर्षों की मशीनें शामिल होती हैं।

पूजी-समाविष्ट तकनीकी उन्नति के अन्तर्गत, पूजी स्टॉक को समरूप नहीं समझा जाता है। दूसरे शब्दों में, तकनीकी उन्नति नई मशीनों में 'समाविष्ट' होती है जिसे वर्तमान मशीनों पर लागू नहीं किया जा सकता है। मशीनों में उनके निर्माण की तिथि पर नवीनतम तकनीक समाविष्ट

(शामिल) होती है। इस कारण, विभिन्न तिथियों पर निर्मित मशीने गुणात्मक रूप में असमान होती है और प्रत्येक तिथि पर निर्मित मशीनो के लिए एक अलग उत्पादन फलन होता है। कुल उत्पादन विभिन्न तिथियो की प्रयोग की जा रही सभी मशीनों के उत्पादन का जोड है। उत्पादन फलन रेखीय समरूप है। इसमें दो समय चर शामिल हे (1) सामान्य अर्थ में समय के लिए t चर, और (2) t समय पर प्रयोग की जा रही मशीनो की तिथियो के लिए v चर।

ऐसा पूजी-समाविष्ट उत्पादन फलन है,

$$Qt = F(Jt, Lt)$$

जहा J तकनीकी तौर से उन्नत मशीनो को व्यक्त करता है, जिसे पूजी जेली (capital jelly) कहते है।

J चर कुल पूजी स्टॉक है जो एक तकनीकी उन्नति कारक द्वारा भारित प्रत्येक मशीन के साथ है। थोडी अवधियो की मशीने (छोटी v) को थोडा भार प्राप्त होता है, नई मशीनो (बडी अवधियो V के साथ) की तुलना मे। उस प्रकार J को ऐसे लिखा जा सकता है,

$$Jt = \sum_{v=0}^{t} Cvt\ (1+\lambda c)^{v}$$

जहाँ C_{vt} समय $t \geq v$ में अभी भी चालू v तिथियो की मशीनो की सख्या को व्यक्त करता है। समय t मे सबसे पुरानी मशीन की $v=0$ है। तकनीकी वृद्धि कारक λc है जो प्रति वर्ष एक स्थिर वृद्धि दर को व्यक्त करता है। $(1+\lambda c)^{v}$ तकनीकी उन्नति के समायोजन को व्यक्त करता है जो तिथि C_{vt} की प्रत्येक मशीन को तकनीकी तोर से उन्नत मशीन J की समान इकाइयो मे परिवर्तित करता है।

अब उत्पादन की वृद्धि पर J और L आगतो की वृद्धि दरो द्वारा निर्धारित होती है,

$$Q = \eta_j j + \eta_l L$$

जहाँ Q $(dQ/dt)/Q$, j $(dJ/dt)/J$ और L $(dL/dt)/L$ है η_j ओर η_l क्रमश J और L आगतों से सबंधित उत्पादन की लोचे है।

इसकी सीमाएँ (Its Limitations)

समाविष्ट तकनीकी उन्नति धारणा की कुछ सीमाए हे।

1 यह विश्लेषण पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है और इस कारण यह साधन मार्किट अपूर्णताओ पर विचार करने मे असफल है।

2 यह धारणा इस उपकल्पना पर आधारित है कि मशीने विभिन्न प्रकार की है ओर नई मशीने पुरानी मशीनो से बेहतर है। परन्तु यह विश्लेषण सामान्य-मे-पूजी (capital in-general) का विवेचन नहीं करता है तो पूजी स्टॉक का समूहन (aggregation) कहलाता है।

3 एक अन्य मान्यता जिस पर यह विश्लेषण आधारित है स्थिर श्रम आवश्यकताओं से सबधित है। यह एक अर्थव्यवस्था जिसमे प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिक है ओर पूजी-श्रम अनुपात कम हो सकता है, उसके लिए यह अवास्तविक है।

4 यह धारणा केवल नई मशीनों में समाविष्ट तकनीकी उन्नति पर ध्यान केन्द्रित करती है और जानकारी तथा अन्वेषण मे निवेश की प्रक्रिया द्वारा नवप्रर्वतनो (innovations) को प्रेरित करने की समस्याओं की उपेक्षा करती है।

निष्कर्ष (Conclusion)—इन कमियो के बावजूद, असमाविष्ट तकनीकी उन्नति जिसमें पूजी स्टॉक को पूर्णतया समरूप माना गया है, इसके विपरीत समाविष्ट तकनीकी उन्नति मे नई मशीने पुरानी मशीनो से बेहतर है और तकनीकी उन्नति नई मशीनो मे समाविष्ट हे। असमाविष्ट तकनीकी उन्नति मे पूजी-श्रम अनुपात उत्पादन फलन के साथ सभी अवधियो मे परिवर्तित होते

है। परन्तु समाविष्ट तकनीकी उन्नति मे, जब एक बार एक मशीन निर्मित की जाती है तो उसकी स्थिर श्रम आवश्यकताएँ होती है।

प्रश्न

1 आप तकनीकी उन्नति से क्या समझते है? तटस्थ, पूजी-बचतकारी, और श्रम-बचतकारी तकनीकी उन्नति की चित्रो की सहायता से व्याख्या कीजिए।

2 असमाविष्ट तकनीकी उन्नति की व्याख्या कीजिए। यह समाविष्ट तकनीकी उन्नति से किस प्रकार भिन्न है?

3 समाविष्ट तकनीकी उन्नति की विवेचना करिए।

भाग चार
वस्तु-कीमत निर्धारण

अध्याय 19

लागतों की प्रकृति तथा लोच
(THE NATURE OF COSTS AND COST ELASTICITY)

फर्म की लागत उसकी पूर्ति को निर्धारित करती है। पूर्ति और माँग द्वारा कीमत निर्धारित होती है। कीमत निर्धारण की प्रक्रिया और पूर्ति की शक्तियों को समझने के लिए हमें लागत की प्रकृति को समझना होगा। इस अध्याय में हम लागतों की कुछ महत्त्वपूर्ण धारणाओं, लागतों के परम्परागत और आधुनिक सिद्धांत और लागतों की लोच का अध्ययन करेंगे।

1. लेखांकन और आर्थिक लागतें
(ACCOUNTING AND ECONOMIC COSTS)

किसी फर्म द्वारा एक वस्तु के उत्पादन में किए गए कुल मुद्रा व्यय को मुद्रा लागतें (money costs) कहते हैं। इसमें श्रम की मजदूरी और वेतन, कच्चे माल की लागत, मशीनों और उपकरणों का खर्च, मशीनों के मूल्यह्रास और घिसने और न चलने का व्यय, बिल्डिंग तथा अन्य पूंजी-पदार्थ और बिल्डिंग का किराया, उधार ली हुई पूंजी का ब्याज, बिजली, ईंधन, यातायात और विज्ञापन, तथा बीमे का खर्च और सब प्रकार के कर शामिल हैं। ये लेखांकन लागतें है जो एक उद्यमी उत्पादन के विभिन्न साधनों को भुगतान करने के लिए ध्यान में रखता है। ये मुद्रा लागतें सुनिश्चित लागतें (explicit costs) कहलाती है जो एक लेखाकार फर्म की लेखा पुस्तकों में दर्ज करता है। लेकिन एक अन्य प्रकार की भी आर्थिक लागते होती है जिन्हें अंतर्निहित लागते (imputed costs) कहते हैं। उद्योग के अपने स्रोतों और सेवाओं का आरोपित मूल्य (imputed value) अंतर्निहित लागत है। प्रबन्धकर्त्ता-मालिक का वेतन, जो वेतन न लेकर सामान्य लाभ से ही संतुष्ट है, यदि बिल्डिंग उद्योगपति की अपनी हो, तो उसका अनुमानित किराया, और मार्किट की ब्याज दर पर उद्योगपति की अपनी लगाई हुई पूंजी का ब्याज, लागत में आते हैं। अत आर्थिक लागतों में लेखाकन लागतें जमा अंतर्निहित लागतें शामिल होती है, अर्थात्, सुनिश्चित तथा अंतर्निहित दोनों प्रकार की लागतें।

2 उत्पादन लागते
(PRODUCTION COSTS)

उत्पादन की इन कुल लागतो को दो भागों मे बाँटा जाता है परिवर्तनशील लागतें और स्थिर लागतें।

कुल परिवर्तनशील लागतें (Total variable costs)—वे खर्च होते है जो फर्मों का उत्पादन में परिवर्तन होने पर परिवर्तित हो जाते है। अधिक उत्पादन के लिए श्रम, कच्चे माल, शक्ति, ईंधन आदि उपकरणों की अधिक मात्रा की जरूरत होती है, जिनसे उत्पादन का खर्च बढ जाता है। जब

उत्पादन कम हो जाता है, तो परिवर्तनशील लागतें भी घट जाती हैं और उत्पादन के बिल्कुल बन्द हो जाने पर वह समाप्त हो जाती है। मार्शल ने परिवर्तनशील लागतों को उत्पादन की प्रमुख लागतें (*prime costs*) कहा है।

कुल स्थिर लागतें (Total fixed costs)—जिन्हें मार्शल पूरक लागतें (supplementary costs) कहता है, उत्पादन के वे खर्च होते हैं, जो उत्पादन में परिवर्तन होने पर परिवर्तित नहीं होते। किराए और ब्याज का भुगतान, अवमूल्यन खर्च, स्थायी स्टॉफ की मजदूरी और वेतन स्थायी लागतें हैं, जो अस्थायी रूप से उत्पादन बन्द हो जाने पर भी फर्म को खर्च करनी पड़ती हैं। क्योंकि ये लागतें उत्पादन के सामान्य खर्चों के अतिरिक्त होती हैं, इसलिए इन्हें व्यापार की भाषा में **उपरि लागतें** (overhead costs) कहते हैं।

कुल लागत, परिवर्तनशील लागत और स्थिर लागत के संबंध को तालिका 19.1 में दिखाया गया है जिसमें पहला स्तम्भ (column) 0 से 10 इकाई तक उत्पादन के भिन्न स्तरों को प्रकट करता है। स्तम्भ (2) बताता है कि उत्पादन के भिन्न स्तरों पर स्थिर लागत रु 300 रहती है। स्तम्भ (3) से कुल परिवर्तनशील लागतें हैं, जो शून्य उत्पादन पर शून्य है और उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ लगातार बढ़ती जाती है। प्रारम्भ में वे तेज़ी से बढ़ती है, पर बाद में, जब फर्म बड़े पैमाने की किफायतों का उपभोग करती है तो वे धीमी हो जाती हैं, और आगे चल कर उत्पादन में और वृद्धि होने पर, पैमाने की अमितव्ययिताओं (diseconomies) के कारण परिवर्तनशील लागतें फिर तेज़ी से बढ़ने लगती हैं। चौथे स्तम्भ का सम्बन्ध कुल लागत से है जो स्तम्भ (2) और (3) का जोड़ है अर्थात् $TC = TFC + TVC$। जब फर्म उत्पादन प्रारम्भ करती है तो परिवर्तनशील लागतों के साथ-साथ कुल लागतों में भी परिवर्तन होता जाता है।

तालिका 19.1 अल्पकालीन लागत फलन (Cost Function in the Short Run)

कुल उत्पादन (*TO*) (1)	कुल स्थिर लागत (*TFC*) (2)	कुल परिवर्तनशील लागत (*TVC*) (3)	कुल लागत (*TC*) (4) (2 + 3)	औसत स्थिर लागत (*AFC*) (5) (2 ÷ 1)	औसत परिवर्तनशील लागत (*AVC*) (6) (3 ÷ 1)	औसत लागत या औसत कुल लागत (*ATC*) (or *AC*) (7) (5 + 6) या (4 ÷ 1)	सीमान्त लागत (*MC*) (8) (4 में)
	रुपये	रुपये	रुपये	रुपये	रुपये	रुपये	रुपये
0	300	0	300	300	0	300	—
1	300	300	600	300	300	600	—
2	300	400	700	150	200	350	100
3	300	450	750	100	150	250	50
4	300	500	800	75	125	200	50
5	300	600	900	60	120	180	100
6	300	720	1020	50	120	170	120
7	300	890	1190	42.9	127.1	170	170
8	300	1100	1400	37.5	137.5	175	210
9	300	1350	1650	33.3	150	183.3	470
10	300	2000	2300	30	200	230	650

लागतो के सबध को चित्र 19 1 मे दिखाया गया है जहाँ समानातर वक्र FC और Y-अक्ष के बीच का अतर कुछ स्थिर लागतो को मापता है और कुल परिवर्तनशील लागते FC वक्र से ऊपर का भाग है, अर्थात्, TC और TFC के बीच का अतर। इस प्रकार OQ_1 उत्पादन स्तर पर, $TC = TFC + TVC$ बराबर है $Q_1L = Q_1P + PL$ इसी प्रकार OQ_2 उत्पादन स्तर पर $Q_2M = Q_2S + SM$

महत्त्व (Importance)—स्थिर और परि- वर्तनशील लागतो मे यह भेद केवल अल्पकाल मे ही सही होता है। अल्पकालीन मे कोई फर्म अपनी वस्तु को घाटे मे बेच सकती है परन्तु वह तब तक उत्पादन करती रहेगी, जब तक कि वह परिवर्तनशील लागतो को पूरा कर लेती है। दीर्घकालीन मे समस्त लागते परिवर्तनशील होती है क्योकि फर्म अपनी लगी हुई मशीनें, उपकरण, श्रम की मात्रा आदि को परिवर्तित कर सकती है। इस प्रकार दीर्घकालीन मे सब लागते परिवर्तनशील बन जाती है और वर्तमान कीमत पर फर्म को इन्हे पूरा करना पडेगा अन्यथा इसका अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। इसलिए दीर्घकाल मे परिवर्तनशील और स्थिर लागतो मे भद समाप्त हो जाता है।
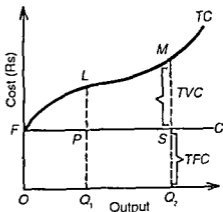
चित्र 19 1

3. वास्तविक लागत
(REAL COSTS)

उत्पादक के दृष्टिकोण से उत्पादन के खर्च मुद्रा-लागत है परन्तु वे इस बारे मे कुछ नहीं बताते कि इन लागतो के पीछे क्या है। मार्शल का विचार था कि एक वस्तु के उत्पादन मे समाज के विभिन्न सदस्यो द्वारा किया गया **प्रयत्न और त्याग** (efforts and sacrifices) उत्पादन की वास्तविक लागते है। पूजीपति द्वारा बचत करने और मुद्रा को लगाने, श्रमिक द्वारा अपने अवकाश को छोडने और भूमिपति द्वारा भूमि के प्रयोग के लिए किए गए प्रयत्न और त्याग कुल मिलाकर वास्तविक लागते बनाते है।

परन्तु वास्तविक लागते कभी उत्पादन के मुद्रा खर्चों के बराबर नहीं होतीं। मार्शल ने स्वय यह लिख कर इस बात को स्वीकार किया था कि "यदि मुद्रा की क्रय-शक्ति प्रयत्न की भाषा मे लगभग, स्थिर रहती है और यदि प्रतीक्षा के लिए पारिश्रमिक की दर लगभग स्थिर रहती है, तो लागतो की मुद्रा माप वास्तविक लागतो के अनुरूप होती है परन्तु इस प्रकार की अनुरूपता को आसानी से नहीं मान लिया जा सकता।" जो काम अरुचिकर होता है, उसकी मजदूरी अधिक नहीं होती और जो काम हल्का होता है उसकी मज़दूरी कम नहीं होती। पाँच रुपये बचाने वाले व्यक्ति के त्याग को पाँच रुपये मजदूरी पाने वाले श्रमिक के कष्टपूर्ण प्रयत्न के समान भी नहीं किया जा सकता। इस प्रकार अल्पकालीन या दीर्घकालीन मे मुद्रा लागते और उत्पादन की वास्तविक लागते एक-दूसरे के अनुरूप नहीं होतीं बल्कि यह हमे अवास्तविकता के जजाल और भ्रमपूर्ण उपकल्पना मे ले जाती है।

4. अवसर-लागत (OPPORTUNITY COST)

वह लागत होती है जो एक की बजाय दूसरी वस्तु को लेने में अवसर छिन जाने या वैकल्पिक त्याग में अथवा एक के स्थान पर दूसरी साधन-सेवा का प्रयोग करने में आती है। क्योंकि स्रोत दुर्लभ है, इसलिए एक साथ सब वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। अत यदि एक वस्तु के उत्पादन में उन्हें प्रयोग करना है, तो अन्य प्रयोगों से उनको हटा लेना होगा। इस प्रकार एक की लागत दूसरे की लागत का वैकल्पिक त्याग है। बैनहम (Benham) के शब्दों में, "किसी वस्तु की अवसर लागत वह दूसरा सबसे अच्छा विकल्प है जिसका उन्हीं साधनों से या उनके समान उतनी ही मुद्रा लागत के साधनों के समूह से उसकी अपेक्षा उत्पादन किया जा सकता था।"[1] गेहूं के उगाने के लिए भूमि के प्रयोग की लागत उस वैकल्पिक फसल का मूल्य है जो उस पर लगाई जा सकती थी। श्रम की वास्तविक लागत वह है जो उसे किसी अन्य रोज़गार में मिल सकती थी। पूँजीपति के लिए पूजी की लागत वह ब्याज है जो उसे कहीं और मिल सकता था। प्रबन्धकर्ता की सामान्य कमाई वह है जो उद्योगपति को किसी संयुक्त स्टॉक कम्पनी के प्रबन्धक के रूप में मिल सकती थी। इस प्रकार वास्तविक लागत छिने हुए अवसर या वैकल्पिक त्याग की लागत है।

अवसर लागत में सुनिश्चित (explicit) और अंतर्निहित (implicit) दोनों प्रकार की लागतें शामिल होती हैं। सुनिश्चित लागतें वे सीधे खर्चे हैं जो एक फर्म को वस्तुएं एवं सेवाएं खरीदने के लिए किए जाते हैं। उसमें मजदूरी और वेतन, कच्चे माल, बिजली, ईंधन, विज्ञापन, परिवहन और कर के खर्च शामिल हैं। अंतर्निहित लागतें उद्यमी द्वारा अपने ससाधनों और सेवाओं का आरोपित (imputed) मूल्य हैं। दूसरे शब्दों में, स्वनियोजित (self-employed) और निजी स्वामित्व (self owned) ससाधन अपने सबसे बढ़िया वैकल्पिक प्रयोग में जो कमा सकते थे, वे उनकी अंतर्निहित लागतें हैं। इस प्रकार अंतर्निहित मजदूरी, लगान और ब्याज का संबंध सबसे ऊँची मजदूरी, लगान और ब्याज से है, जो एक उद्यमी अपने श्रम, बिल्डिंग और पूजी का स्वयं प्रयोग न करके दूसरों को उधार देकर अथवा उनकी सेवा में लगाकर प्राप्त कर सकता था। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि केवल अंतर्निहित लागतें ही अवसर लागत में शामिल होती हैं और सुनिश्चित लागतें इसमें शामिल नहीं होतीं। वास्तव में, किसी भी फर्म की अवसर लागत में सभी त्यागे गये विकल्प (alternatives forgone) चाहे वे सुनिश्चित अथवा अंतर्निहित हों, शामिल होते हैं।

चित्र 19 2

अवसर लागत की धारणा को चित्र 19 2 में उत्पादन संभावना वक्र PP_1 द्वारा व्याख्या की गई है। इस वक्र के संयोग A पर फर्म OL_1 श्रम और OK_1 पूजी का प्रयोग करती है। यदि वह L_1L_2 अधिक श्रम प्रयोग करना चाहती है तो उसे K_1K_2 पूजी का त्याग करना पड़ेगा।
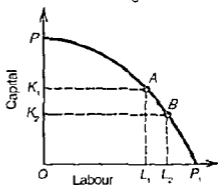
[1] "The opportunity cost of any thing is the next best alternative that could be produced instead by the same factors or by an equivalent group of factors costing the same amount of money." Benham

इस प्रकार, L_1L_2 श्रम की अवसर लागत K_2K_2 पूजी की मात्रा है।

इसका महत्त्व (Its Importance)—अवसर लागत की धारणा का आर्थिक समस्याओं मे बहुत व्यवहार होता है। साधन-कीमतो के निर्धारण मे यह लागू होती है। उपभोग और सार्वजनिक व्यय मे भी इसका व्यवहार किया जा सकता है। सिनेमा देखने की लागत वह पैन है जिसे खरीदने से विद्यार्थी को वचित रहना पडता है। समाज के लिए, हथियारो की फैक्टरी की लागत नागरिको के वे लाभ है जिनका त्याग करना पडता है। अन्तिम, अवसर लागत कीमत के तथ्य की व्याख्या करती है क्योकि वस्तुएँ और साधन सेवाएँ दुर्लभ है, उनका वैकल्पिक प्रयोग किया जाता है और इसलिए उनकी कीमत होती है। यदि उनकी प्रचुरता हो तो ऐसे विकल्प नहीं होगे जिनका त्याग किया जाए, इसलिए ना ही अवसर लागत और ना ही कीमत होगी।

इसकी सीमाएँ (Its Limitations)—फिर भी अवसर लागत की धारणा कुछ सीमाओ से मुक्त नहीं है। प्रथम, यह उन साधन सेवाओ पर लागू नहीं होती जो स्थिर है। किसी निश्चित या स्थिर साधन का कोई विकल्प नहीं होता, इसलिए इसकी अवसर लागत शून्य है। दूसरे, यदि साधनो की गति रोक दी जाए, या वे अन्य विकल्पात्मक व्यवसायो मे जाने को तैयार न हो, तो उनकी कीमतो मे अवसर लागत नहीं झलकती। तीसरे, एक व्यक्ति और समाज की लागतो मे अन्तर हो सकता है। नगर के बीच मे एक धुएँ वाली फैक्टरी का वैकल्पिक त्याग, स्वास्थ्य सकट के रूप मे बहुत अधिक हो सकता है जिसका मुद्रा माप सभव नहीं। चौथे, त्यागे हुए विकल्प प्राय स्पष्ट रूप से भी नहीं जाने जा सकते। यदि विकल्प आसानी से जाने जा सके तब त. कोई समस्या ही नहीं। यदि साधन सघन (lumpy) हो जैसेकि आधुनिक जटिल उत्पादन व्यवस्था मे, तो एक बार लगाए जाने के बाद उनका कोई वैकल्पिक प्रयोग नहीं हो सकता। टिकाऊ पूँजी उपकरणो की कोई अवसर लागत नहीं होती। परन्तु इसकी लागत उस वस्तु की कीमत मे प्रवेश नहीं करती जिसका उत्पादन करने मे यह सहायक है। अन्तिम, यह पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है जो वास्तव मे नहीं पाई जाती है।

5 निजी और सामाजिक लागते
(PRIVATE AND SOCIAL COSTS)

निजी और सामाजिक लागतो की धारणा का प्रयोग सर्वप्रथम पीगु (Pigou) ने अपनी पुस्तक *The Economics of Welfare* (1932) मे किया था। निजी लागते एक फर्म द्वारा एक वस्तु या सेवा के उत्पादन पर किया गया खर्च है। इनमे सुनिश्चित और अतर्निहित दोनो प्रकार की लागते शामिल होती है। फिर भी, एक फर्म की उत्पादन क्रियाएँ, दूसरो के लिए आर्थिक लाभ अथवा हानि ला सकती है। उदाहरणार्थ, स्टील, रबड और रसायन जैसी वस्तुओं का उत्पादन वातावरण को प्रदूषित करता है जिससे सामाजिक लागते होती है। दूसरी ओर, शिक्षा, सफाई, पार्क आदि की सेवाओ का निर्माण सामाजिक लाभ लाता है। उदाहरणार्थ, शिक्षा को ही लीजिए, जो न केवल प्राप्तकर्त्ताओ को ऊँची आय और अन्य सतुष्टियाँ प्रदान करती है बल्कि समाज को अधिक प्रबुद्ध (enlightened) शहरी भी प्रदान करती है। यदि हम उत्पादन को निजी लागतो और वातावरणीय प्रदूषण जैसी दूसरो पर हानियो को इकट्ठा जोड दे तो हमे सामाजिक लागते प्राप्त होगी।[2]

2 निजी और सामाजिक लागतों के विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए अध्याय 44

लागत फलन अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों में पाया जाता है। अल्पकालीन लागते वे उत्पादन लागते होती है जिन पर एक फर्म एक दी हुई अवधि में कार्य करती है जब एक या अधिक उत्पादन के साधनों की मात्राएँ स्थिर होती है। इसलिए फर्म की कुछ स्थिर लागते और कुछ परिवर्तनशील लागते होती है। दूसरी ओर, "दीर्घकालीन लागते नियोजन लागते अथवा प्रत्याशित लागते होती है, इसलिए कि वे उत्पादन के प्रसार के लिए इष्टतम सभावनाएँ प्रस्तुत करती है और इस प्रकार उद्यमी को अपनी भावी क्रियाओ को नियोजित करने मे सहायक होती है।" दीर्घकाल मे, उत्पादन के स्थिर साधन बिल्कुल नहीं होते है ओर इसलिए न ही स्थिर लागते होती है। दीर्घकाल मे, सभी साधन परिवर्तशील होने के कारण, सभी लागते परिवर्तनशील होती है। इसलिए फर्म के स्थिर पूजी साधन दिए होने पर, वह भविष्य के लिए नियोजन करती है। परन्तु वह प्रत्येक प्लाट से सबधित *अल्पकालीन लागत वक्रो पर सचालन करती है।*

लागत फलन दिए होने पर, हम लागतो के परपरागत और आधुनिक सिद्धातो की विवेचना करते है।

7 लागतो का परपरागत सिद्धात
(THE TRADITIONAL THEORY OF COSTS)

लागतो का परपरागत सिद्धात अल्पकाल ओर दीर्घकाल मे लागत वक्रो के व्यवहार का विश्लेषण करता है ओर इस निष्कर्ष पर पहुचता है कि अल्पकालीन और दीर्घकालीन लागत वक्र U-आकार के होते है लेकिन दीर्घकालीन लागत वक्र अल्पकालीन लागत वक्रो की अपेक्षा चपटे होते है।

(क) फर्म के अल्पकालीन लागत वक्र (Firm's Short-Run Cost Curves)

अल्पकालीन वह समय होता हे जिसमे फर्म अपनी मशीने, उपकरण और उत्पादन के पैमाने को परिवर्तित नहीं कर सकती। बढती हुई माँग को पूरा करने के लिए, फर्म अपने उत्पादन को अधिक श्रम और कच्चा माल लगाकर या वर्तमान श्रम शक्ति से अधिक समय काम कराकर ही बढा सकती है।

उत्पादन का पैमाना स्थिर होने के कारण, अल्पकालीन कुल लागते (*TC*) कुल स्थिर लागतो (*TFC*) और कुल परिवर्तनशील लागतो (*TVC*) मे विभक्त की जाती है

$$TC = TFC + TVC$$

कुल लागते (Total Costs)—कुल लागते एक वस्तु की दी हुई मात्रा को उत्पादित करने मे एक *फर्म के कुल खर्चे है। उनमे लगान, ब्याज, मजदूरी, कर, कच्चे माल, बिजली, पानी, विज्ञापन आदि* के खर्च शामिल होते है।

कुल स्थिर लागते (Total Fixed Costs)—*ये उत्पादन की वो लागते है जो उत्पादन के साथ* परिवर्तित नहीं होती है। ये उत्पादन के स्तर से स्वतत्र होती हैं। वास्तव मे, फर्म को ये लागते उठानी ही पडती है, यदि फर्म थोडे समय के लिए उत्पादन बद भी कर देती हे। इनमें भूमि ओर बिल्डिंग लगान पर लेने, उधार ली गई मुद्रा पर ब्याज, इशोयरैंस, सम्पत्ति कर, मूल्यह्रास, स्थायी स्टाफ की मजदूरी और वेतन, आदि भुगतान शामिल होते है। इन्हे **उपरि लागते** (overhead costs) भी कहते है।

कुल परिवर्तनशील लागते (Total Variable Costs)—वे लागते है जो उत्पादन के साथ सीधे तौर मे बदलती है। वे उत्पादन के बढने के साथ बढती है ओर उत्पादन के कम होने के साथ कम होती हे। उनमें कच्चे माल, बिजली, पानी, कर, अस्थायी श्रम का नियोजित करना, विज्ञापन आदि के खर्चे शामिल होते है। उन्हे प्रत्यक्ष लागते (direct costs) भी कहते है।

इन तीनो लागतो से सबधित लागत वक्रो को चित्र 19.4 में दिखाया गया है। *TC* एक निरतर वक्र है जो यह दर्शाता है कि उत्पादन बढने के साथ-साथ कुल लागतें बढती है। यह वक्र अनुलब अक्ष को मूल से ऊपर एक विन्दु पर काटता है और बाएं से दाएं ऊपर को निरतर बढता है। ऐसा इस कारण कि जब फर्म कुछ भी उत्पादन नहीं करती, उसे स्थिर लागतें उठानी पड़ती है। *TFC* वक्र को उत्पादन अक्ष के समानातर दिखाया गया है क्योंकि कुल स्थिर लागते प्रत्येक उत्पादन स्तर पर समान रहती है। *TVC* वक्र उलटा S-आकार का होता है और मूल *O* से आरभ होता है, क्योंकि जब उत्पादन शून्य है तो कुल परिवर्तनशील लागते भी शून्य होती है। उत्पादन के बढने के साथ वे बढती है। जब तक फर्म स्थिर साधनों के अनुपात में परिवर्तनशील साधन कम प्रयोग करती है, कुल परिवर्तनशील लागतें घटती दर से बढती है। परन्तु एक विन्दु के बाद स्थिर साधनों के अनुपात मे परिवर्तनशील साधनों के अधिक प्रयोग से, वे तीव्रता से बढती है। ऐसा परिवर्तनशील अनुपातो के नियम के लागू होने से होता है। क्योंकि *TFC* वक्र समानातर सीधी रेखा है, इसलिए *TVC* वक्र के साथ-साथ *TC* वक्र समान अनुलब अतर पर चलता है।
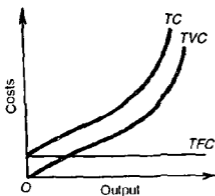
चित्र 19.4

अल्पकालीन औसत लागतें (Short-Run Average Costs)

फर्म के अल्पकालीन विश्लेषण में, कुल लागतों से औसत लागतें अधिक महत्त्वपूर्ण है। उत्पादन की जो इकाइया फर्म उत्पादित करती है वे उसे समान लागत की मात्रा पर प्राप्त नहीं होती है। परन्तु उन्हें समान कीमत पर बेचना पडता है। इसलिए फर्म को प्रति इकाई लागत या औसत लागत का जानना बहुत जरूरी है। फर्म की अल्पकालीन औसत लागतो में औसत स्थिर लागते, औसत परिवर्तनशील लागतें और औसत कुल लागतें शामिल होती हैं।

औसत स्थिर लागतें (Average Fixed Costs)—औसत स्थिर लागतें कुल स्थिर लागतों को कुल उत्पादन से विभक्त करने पर प्राप्त होती है

$$AFC = \frac{TFC}{Q}$$

क्योंकि उत्पादन के सब स्तरों पर कुल स्थिर लागते उतनी ही रहती हैं, उत्पादन के बढने पर औसत स्थिर लागते कम हो जाती हैं। इसलिए *AFC* वक्र की ढलान नीचे की ओर दाएँ को होती है और वह आयताकार अतिपरवलय (rectangular hyperbola) होता है जैसाकि चित्र 19.5 में दिखाया गया है।

अल्पकालीन औसत परिवर्तनशील लागतें (Short-Run Average Variable Costs)—औसत परिवर्तनशील लागत, कुल परिवर्तनशील लागत को कुल उत्पादन से विभक्त करने पर प्राप्त होती है

$$SAVC = \frac{TVC}{Q}$$

औसत परिवर्तनशील लागतें उत्पादन के बढ़ने के साथ पहले कम होती हैं, जब परिवर्तनशील साधनों की अधिक मात्राएँ स्थिर प्लांट और उपकरणों पर लागू की जाती हैं। परन्तु अन्ततः वे घटते प्रतिफल के नियम के कारण बढ़ना प्रारंभ कर देती हैं। इसलिए *SAVC* वक्र U-आकार का होता है, जैसाकि चित्र 19.5 में दर्शाया गया है।
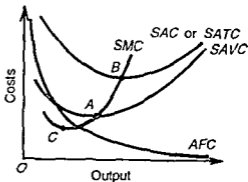
चित्र 19.5

अल्पकालीन कुल औसत लागतें (Short-Run Total Costs)—*SAC* या *SATC* किसी दी हुई उत्पादन मात्रा को उत्पादित करने की औसत लागतें हैं। यदि उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर कुल लागतों को उत्पादित की गई वस्तु की इकाइयों से विभक्त कर दें तो ये प्राप्त होती हैं

$$SAC \text{ या } SATC = \frac{TC}{Q} = \frac{TFC}{Q} + \frac{TVC}{Q} = AFC + AVC$$

इस प्रकार, कुल औसत लागतें औसत स्थिर लागतों तथा औसत परिवर्तनशील लागतों का जोड़ हैं और उनके प्रभाव को व्यक्त करती हैं। पहले, उत्पादन के कम स्तरों पर औसत कुल लागतें ऊँची होती हैं, क्योंकि औसत स्थिर और औसत परिवर्तनशील लागतें दोनों ही अधिक होती हैं। परन्तु जब उत्पादन बढ़ता है तो औसत कुल लागतें तीव्रता से गिरती हैं। ऐसा औसत स्थिर लागतों और औसत परिवर्तनशील लागतों में नियमित कमी के कारण होता है, जब तक कि वे न्यूनतम बिन्दु पर नहीं पहुँच जाती हैं। यह आन्तरिक किफायतों, वर्तमान प्लांटों, श्रम के बेहतर प्रयोग आदि के परिणामस्वरूप होता है। चित्र में न्यूनतम बिन्दु *B* इष्टतम क्षमता को व्यक्त करता है। जब उस बिन्दु के बाद उत्पादन बढ़ता है, तो औसत कुल लागतें तीव्रता से बढ़ती हैं, क्योंकि बढ़ रही औसत परिवर्तनशील लागतों में वृद्धि की तुलना में औसत स्थिर लागतों में कमी मामूली-सी होती है। *SAC* वक्र का ऊपर की ओर गति करता भाग क्षमता से अधिक उत्पादन और प्रबंध, श्रम आदि की आतंरिक अमितव्ययिताओं के परिणामस्वरूप होता है। इस प्रकार *SAC* वक्र U-आकार का है, जैसाकि चित्र से स्पष्ट है।

SAC वक्र की U-आकृति की व्याख्या परिवर्तनशील अनुपात के नियम (law of variable proportions) द्वारा भी की जाती है। यह नियम बताता है कि जब अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रख कर, एक परिवर्तनशील साधन की मात्रा को बढ़ाया जाये तो कुल उत्पादन बढ़ता है। परन्तु एक निश्चित सीमा के बाद घटता चला जाता है। अल्पकालीन में किसी भी फर्म की मशीनें, उपकरण और उत्पादन का पैमाना परिवर्तित नहीं होने, इसलिए ये इसके स्थिर साधन हैं। जबकि श्रम, कच्चा माल जैसे साधन परिवर्तनशील होते हैं। स्थिर साधनों पर इन परिवर्तनशील साधनों की मात्रा को लगातार बढ़ाते चले जाने से ही, परिवर्तनशील अनुपात का नियम लागू होता है। जब एक परिवर्तनशील साधन जैसे श्रमिकों की मात्रा को समान इकाइयों में बढ़ाया जाता है तो एक सीमा तक उत्पादन बढ़ता है, जब तक कि मशीनों, उपकरणों आदि स्थिर साधनों का उनकी पूरी क्षमता तक प्रयोग नहीं होता। इस अवस्था में उत्पादन बढ़ने के साथ फर्म की औसत लागतें कम होती जाती हैं। क्योंकि उसे कई प्रकार की आन्तरिक किफायतों के कारण भी बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते हैं। बढ़ते प्रतिफल के नियम की क्रियाशीलता के कारण श्रमिकों की संख्या को और

बढाने से फर्म मशीनो की इष्टतम क्षमता पर जब पहुँचती है तो उसका उत्पादन भी इष्टतम होता है और इसी स्तर पर औसत लागत न्यूनतम होगी जो चित्र 19.5 मे *SAC* वक्र का न्यूनतम बिन्दु *B* दर्शाती है। इस अवस्था के बाद यदि फर्म श्रमिको की सख्या को और बढाने का प्रयत्न करती है तो मशीनो, उपकरणो व प्रबन्ध आदि स्थिर साधनों का क्षमता से अधिक प्रयोग होगा जिससे आन्तरिक अलाभो के कारण घटते प्रतिफल प्राप्त होगे ओर औसत लागते तीव्र गति के साथ बढती चली जायेगी। अत फर्म मे परिवर्तनशील अनुपात का नियम लागू होने के कारण भी अल्पकालीन ओसत लागत वक्र U-आकृति का होता है।

सीमान्त लागत (*MC*) —फर्म के उत्पादन के सही स्तर को निर्धारित करने की आधारभूत धारणा सीमान्त लागत है। उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत मे होने वाली वृद्धि सीमान्त लागत है। $MC = \Delta TC/\Delta Q$ बीजगणित से, यह उत्पादन की $n+1$ इकाइयो ओर n इकाइयो की लागतो का अन्तर होती है, $MC_n = TC_{n+1} - TC_n$ क्योकि कुल स्थिर लागते उत्पादन के साथ नहीं बदलतीं, इसलिए सीमात स्थिर लागत शून्य होती है। इसलिए सीमात लागत को कुल परिवर्तनशील लागतो अथवा कुल लागतो से गणना की जा सकती है। दोनो तरह से परिणाम समान ही होगा। क्योकि कुल परिवर्तनशील लागते या कुल लागते पहले गिरती है और फिर बढती है, इसलिए सीमात लागत भी उसी प्रकार व्यवहार करती है और *SMC* वक्र भी U-आकार का होता है, जैसाकि चित्र 19.5 मे दिखाया गया है।

अल्पकालीन लागत वक्रो मे सबध (Relationships of Short-Run Cost Curves)

अल्पकालीन लागत वक्रो के बीच सबधो को चित्र 19.5 द्वारा व्यक्त किया गया है।

(क) *AFC* वक्र निरतर गिरता जाता है ओर दोनो अक्षो से समान दूरी पर गति करता है परन्तु *X-अक्ष अथवा Y-अक्ष को छूता नहीं है। यह rectangular hyperbola है।*

(ख) *SAVC* वक्र पहले गिरता है, फिर *A* बिन्दु पर न्यूनतम होता है ओर उसके पश्चात् बढता है। जब *SAVC* वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु *A* पर पहुचता है, तो *SMC* वक्र उसके बराबर होता है, अर्थात् उस बिन्दु पर काटता है।

(ग) *SAC* वक्र पहले गिरता है, न्यूनतम बिन्दु *B* पर पहुचता है और उसके बाद ऊपर की ओर बढता है। जब *SAC* वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु *B* पर पहुचता है तो *SMC* वक्र उसके बराबर होता है, क्योंकि $SAC = AFC + SAVC$, इसलिए *SAC* और *SAVC* वक्रो के बीच अनुलब दूरी *AFC* वक्र होती है। अत अलग से एक *AFC* वक्र खींचने की कोई आवश्यकता नहीं है। जब उत्पादन कम होता है तो *SAC* ओर *SAVC* वक्रो के बीच की अनुलब दूरी कम होती जाती है, क्योंकि *AFC* वक्र निरतर गिरता है।

(घ) **AC और MC वक्रो मे सबध** (Relation between *AC* and *MC* Curves)—*AC* और *MC* वक्रो मे सीधा सबध होता है। *AC* और *MC* वक्र दोनो *U*-आकार के होते है, जैसाकि चित्र 19.6 मे दिखाया गया है। जब *AC* वक्र गिरता है तो *AC* वक्र से *MC* वक्र नीचे होता है। ऐसा इसलिए कि *MC* मे कमी उत्पादन की एक इकाई से सबधित होती है, जबकि *AC* के बारे मे यही कमी उत्पादन की सभी इकाइयो मे फैलती है। यह कारण है कि *AC* मे कमी कम होती है ओर *MC* मे अधिक। यह इस तथ्य की भी व्याख्या करता है कि *AC* वक्र के अपने न्यूनतम बिन्दु *B* पर पहुचने से पहले *MC* वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु *C* पर पहुचता है। अत जब *MC* वक्र ऊपर को बढना प्रारभ करता है तो *AC* वक्र अभी गिर रहा होता है।

जब *AC* वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु पर होता है, तो *MC* वक्र उसके बराबर होता है और उसे नीचे से उसके न्यूनतम बिन्दु *B* पर काटता है, जैसाकि चित्र 19.6 से स्पष्ट है।

जब *AC* वक्र ऊपर की ओर बढ रहा होता है, तो *MC* वक्र उससे ऊपर होता है परन्तु *MC* वक्र

में वृद्धि *AC* वक्र से अधिक होती है। ऐसा इसलिए कि *MC* मे वृद्धि उत्पादन की एक इकाई के कारण होती है, जबकि *AC* के लिए यही वृद्धि उत्पादन की सभी इकाइयो में फैलती है।

यह ध्यान देने योग्य है कि जब *AC* बढ़ती या कम होती है, तो हम *MC* वक्र की दिशा (direction) के बारे में कुछ नहीं कर सकते। जब *AC* कम हो रही होती है, तो यह आवश्यक नहीं कि *MC* भी अवश्य कम हो। *MC* बढ़ या कम हो सकती है, पर यह निश्चित है कि *AC* वक्र से *MC* वक्र नीचे होगा। इसी प्रकार, जब *AC* बढ़ रही होती है, तो यह आवश्यक नहीं कि *MC* भी अवश्य बढ़े। *MC* बढ़ या कम हो सकती है लेकिन यह निश्चित है कि *MC* वक्र *AC* वक्र से ऊपर होगा। परन्तु यदि *AC* स्थिर है तो *MC* अवश्य स्थिर होगी, अर्थात्, *AC* और *MC* वक्र एक समानातर रेखा होगा।
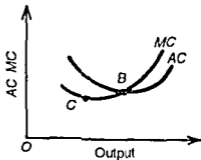
चित्र 19 6

AC और *MC* मे यह सबंध अल्पकाल और दीर्घकाल दोनो मे लागू होगा। दोनो अवस्थाओ मे केवल *AC* और *MC* वक्रो के आकार मे अतर होगा।

(घ) *SMC* और *SAVC* वक्रो मे सबंध (Relation between *SMC* and *SAVC* Curves)—*SMC* वक्र का *AVC* और *SAC* वक्रो के साथ निकट का सबंध है। जब तक *SMC* वक्र *SAVC* और *SAC* वक्रो के नीचे स्थित होता है, यह गिरता जाता है और इसकी गिरने की दर *SAVC* और *SAC* वक्रो की दर से अधिक होती है। परन्तु जहाँ *MC* वक्र उनको काटता है उन बिन्दुओ से *SAVC* और *SAC* वक्र ऊपर की ओर बढने लगते है जैसाकि चित्र 19 7 मे क्रमश बिन्दु *M* और *L* है। ये दोनो वक्रो के न्यूनतम बिन्दु है। परन्तु *AVC* वक्र का न्यूनतम बिन्दु *M*, वक्र *SAC* के न्यूनतम बिन्दु *L* के बाई ओर है जिसमे से *SMC* वक्र पहले गुजरता है। इसका कारण यह है कि $SAC = SAVC + AFC$ इसलिए जब *SAVC* अपने न्यूनतम बिन्दु पर होती है तो *AFC* कम हो रही होती है और *SAC* को अपने न्यूनतम बिन्दु तक पहुंचने मे समय लगता है। इस तरह *M* और *L* क्रमश *SAVC* और *SAC* वक्रो के न्यूनतम बिन्दु है। इन बिन्दुओ के बाद *SMC* वक्र तेजी के साथ ऊपर की ओर बढ़ता है और *SAVC* तथा *SAC* वक्रो से ऊपर होता है।
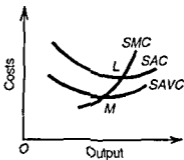
निष्कर्ष इस प्रकार, एक फर्म के अल्पकालीन वक्र *SAVC*, *AFC*, *SAC* और *SMC* होते है। इन चार वक्रो मे से *AFC* वक्र फर्म के उत्पादन स्तर को निर्धारण करने मे कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। यही कारण है कि इसकी लागत विश्लेषण मे उपेक्षा की जाती है।

चित्र 19 7

(ख) फर्म के दीर्घकालीन लागत वक्र (Firm's Long-Run Cost Curves)

दीर्घकाल में उत्पादन के स्थिर साधन नहीं होते हैं, इसलिए स्थिर लागतें भी नहीं होती है, फर्म अपने प्लांट का आकार या पैमाना बदल सकती है और कम अथवा अधिक साधन लगा सकती है। इस तरह दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होते है। अत सभी लागतें परिवर्तनशील है।

LAC वक्र—फर्म का दीर्घकालीन औसत कुल लागत या *LAC* वक्र सभी सभव अल्पकालीन औसत लागत वक्रो (*SAC*) से उत्पादन के विभिन्न स्तरो को उत्पादित करने की न्यूनतम औसत लागत को दर्शाता है। अत *SAC* वक्रो से *LAC* वक्र को व्युत्पन्न किया जाता है। *LAC* वक्र को इस प्रकार समझा जा सकता है यह एक वैकल्पिक अल्पकालीन स्थितियों की शृखला है, जिनमें से फर्म किसी एक मे जा सकती है। प्रत्येक *SAC* वक्र एक विशेष आकार के प्लांट को व्यक्त करता है जो उत्पादन की एक विशेष रेंज के लिए उपयुक्त है। इसलिए फर्म, विभिन्न प्लांटो का उस स्तर तक ही प्रयोग करेगी, जहाँ तक उत्पादन मे वृद्धि के साथ अल्पकालीन औसत लागते कम होती जाएगी। वह फर्म सब प्लांटों का इकट्ठा प्रयोग करके उत्पादन की न्यूनतम अल्पकालीन औसत लागत के स्तर के बाद और उत्पादन नहीं करेगी।

मान लीजिए कि फर्म के तीन प्लांट है जिन्हें SAC_1, SAC_2 और SAC_3 वक्रो द्वारा चित्र 19 8 मे व्यक्त किया गया है। प्रत्येक वक्र फर्म के पैमाने को प्रकट करता है। SAC_1 छोटे पैमाने की सूचना देता है जबकि SAC_2 वक्र से SAC_3 पर जाना यह बताता है कि फर्म का आकार बढ गया है।

चित्र 19 8
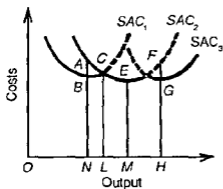
फर्म का यह पैमाना दिए होने पर, वह उत्पादन की प्रति-इकाई की न्यूनतम लागत तक उत्पादन करेगी। उत्पादन की *ON* मात्रा के लिए फर्म SAC_1 या SAC_2 प्लाट का प्रयोग कर सकती है। पर फर्म SAC_1 द्वारा प्रकट किए गए प्लाट का प्रयोग करेगी क्योकि उत्पादन की *ON* मात्रा के उत्पादन की औसत लागत *NB* है जो इस मात्रा के SAC_2 प्लाट पर उत्पादन की लागत *NA* से कम है। यदि फर्म को उत्पादन की *OL* मात्रा का उत्पादन करना हो, तो वह दोनों मे से किसी एक प्लाट पर उत्पादन करेगी। परन्तु *OL* उत्पादन के लिए फर्म को SAC_2 प्लाट का प्रयोग करना लाभदायक रहेगा क्योकि इस प्लांट से निम्नतम औसत लागत *ME* पर उत्पादन की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा *OM* प्राप्त की जा सकती है। हाँ, *OH* उत्पादन के लिए फर्म को SAC_3 प्लाट का प्रयोग करना पडेगा क्योकि SAC_2 प्लाट की औसत लागत *HF* से SAC_3 प्लाट की औसत लागत *HG* कम है। अत दीर्घकाल में फर्म उत्पादन की किसी भी मात्रा का उत्पादन करने के लिए उस प्लाट का प्रयोग करेगी जिस पर प्रति-इकाई लागत न्यूनतम होती है। यदि फर्म अपने पैमाने को क्रमश SAC_1, SAC_2 और SAC_3 वक्रो द्वारा व्यक्त की गई अवस्थाओ मे फैलाती है, तो इन वक्रो के गहरी तरगों जैसे (thick wave-like) भाग दीर्घकालीन औसत लागत वक्र बनाते है। *SAC* वक्रो के बिन्दुकित (dotted) भाग दीर्घकालीन मे कोई महत्त्व नहीं रखते क्योंकि प्लाटो के इन भागो पर उत्पादन करने की बजाय फर्म प्लाट के पैमाने को बदल देगी।

परन्तु दीर्घकालीन औसत लागत वक्र *LAC* को *SAC* वक्रो के साथ जुडे हुए समतल (smooth) वक्र के रूप मे इस प्रकार दिखाया जाता है कि वह किसी-न-किसी बिन्दु पर उन वक्रो को स्पर्श करे

जैसाकि चित्र 19 9 मे, जहाँ वक्र SAC_1, SAC_2, SAC_3, SAC_4 और SAC_5 अल्पकालीन औसत लागत वक्र है। LAC वक्र इन SAC वक्रो को स्पर्श करता है पर एक वक्र को केवल उसके न्यूनतम बिन्दु पर ही। चित्र 19 9 मे वक्र SAC_3 के निम्नतम बिन्दु E पर LAC स्पर्श करता है, और OQ इष्टतम उत्पादन है। यह प्लाट SAC_3 जो न्यूनतम लागत QE पर इष्टतम उत्पादन OQ उत्पादित करता है, इष्टतम प्लाट है और जो फर्म इस इष्टतम प्लाट से इष्टतम उत्पादन का न्यूनतम लागत से उत्पादन करती हे,
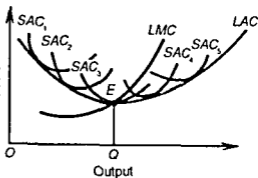
चित्र 19 9

इष्टतम् फर्म कहलाती है। यदि फर्म उत्पादन की इष्टतम मात्रा OQ से कम उत्पादन करती है, तो वह अपने प्लाटो को पूरी क्षमता तक नहीं चला रही और यदि OQ से अधिक उत्पादन करती है, तो वह क्षमता से अधिक प्लाटो को चला रही है। दोनो अवस्थाओ मे औसत उत्पादन लागत ऊँची होने के कारण फर्म न्यूनतम लागत QE पर ही उत्पादन करेगी। क्योंकि SAC_2 और SAC_4 प्लाटो की औसत उत्पादन लागते SAC_3 प्लाट से अधिक है।

LAC वक्र को लिफाफा वक्र (envelope curve) कहते है क्योकि यह सब SAC वक्रो को लपेट लेता है। स्टोनियर और हेग के अनुसार, "एक प्रकार से वेष्टन शब्द भ्रामक है। शारीरिक रूप से लिफाफा उस पत्र से भिन्न होता है जो उसमे है। परन्तु दीर्घकालीन लागत लिफाफा वक्र का हर बिन्दु उन अल्पकालीन लागत वक्रो का भी बिन्दु होता है जिन्हे वह लपेटता है।"[4] प्रोफेसर चैम्बरलेन के अनुसार, "यह प्लाट वक्रो का बना होता है, इसलिए यह प्लाट वक्र है। परन्तु इसे "योजना" वक्र कहना अधिक उचित है क्योकि दीर्घकाल मे फर्म उत्पादन के पैमाने का विस्तार करने की योजना बनाती है।

LMC वक्र—फर्म का दीर्घकालीन सीमात लागत (LMC) वक्र SAC वक्रो से व्युत्पन्न किया जाता है, जैसाकि चित्र 19 10 मे दर्शाया गया है जहाँ SAC_1, SAC_2 और SAC_3 वक्र क्रमश बिन्दुओ C, E और D पर LAC वक्र द्वारा स्पर्श होते है। X-अक्ष पर इन बिन्दुओ से क्रमश CQ_1, EQ_2 और DQ_3 लब गिराओ। जब A, E और B बिन्दुओ पर, जहाँ SMC_1, SMC_2 और SMC_3 वक्र इन अनुलब रेखाओ को काटते है, उन्हे मिला दिया जाए तो वे LMC वक्र को ट्रेस करते है। SAC_2 और LAC वक्रो को LMC वक्र न्यूनतम बिन्दु E पर काटता है, जिससे $LMC = LAC =$

चित्र 19 10

4 A W Stonier and D C Hague *A Textbook of Economic Theory* 2nd Ed 1962
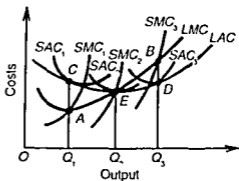
$SAC_2 = SMC_2$ इस प्रकार, सीमांत और औसत लागत वक्रों में सामान्य संबंध पाए जाते हैं। E के बाईं ओर $LAC > LMC$ और इसके दाईं ओर $LMC > LAC$

8. *SAC* वक्र की अपेक्षा *LAC* अधिक चपटा (*LAC* CURVE FLATTER THAN *SAC* CURVE)

यद्यपि *LAC* वक्र U के आकार का होता है, फिर भी, यह *SAC* वक्र की अपेक्षा अधिक चपटा होता है। इसका अभिप्राय है कि *LAC* वक्र पहले धीरे-धीरे नीचे को जाता है और न्यूनतम बिन्दु आने के बाद धीरे-धीरे ऊपर चढ़ता है। व्यक्तिगत साधनों के मितव्ययी प्रयोग, बढ़े हुए विशेषीकरण और तकनीकी रूप से बढ़िया मशीनों और साधनों के प्रयोग से पैमाने की कुछ किफायतें प्राप्त होने के कारण शुरू में *LAC* वक्र धीरे-धीरे नीचे को ढालू होता है। दीर्घकालीन में पैमाने के प्रतिफल का नियम फर्म के उत्पादन पर लागू होता है जिसके कारण प्रारम्भ में उत्पादन के साधनों की अविभाज्यता के द्वारा पैमाने का प्रतिफल बढ़ता है। जब फर्म का विस्तार होता है तो अविभाज्य साधनों से उनकी अधिकतम क्षमता के अनुसार काम लिया जाता है जिससे प्रति इकाई लागत कम होती है। चैम्बरलेन ऊपर व्यक्त किए गए कॉलडर और जॉन रॉबिन्सन की अविभाज्यता की धारणा को स्वीकार नहीं करता। वह विशेषीकरण और श्रम-विभाजन को पैमाने के बढ़ते प्रतिफल का कारण मानता है। जब फर्म के पैमाने का विस्तार होता है तो श्रम और उपकरणों का विशेषीकरण बढ़ जाता है। काम छोटे-छोटे भागों में बाँटा जाता है और श्रमिक, प्रक्रियाओं के छोटे क्षेत्रों की ओर ध्यान दे सकते हैं। इसके लिए विशेषीकृत (specialised) उपकरण लगाए जाते हैं और दक्षता बढ़ती है जिससे पैमाने का प्रतिफल बढ़ता है और औसत लागत कम होती है। इतना ही नहीं, फर्म *बाहरी किफायतों के कारण* भी पैमाने के बढ़ते प्रतिफल का उपभोग करती है। जब दीर्घकालीन में उद्योग का विस्तार होता है तो बहुत-सी बाहरी किफायतें प्रकट होती हैं जिनका उद्योग की सभी फर्में बाँटकर उपभोग करती हैं जैसे कुशल श्रम, उधार, परिवहन आदि की सुविधाएँ जिनसे प्रति इकाई दीर्घकालीन लागत कम होती जाती है।

जब दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का न्यूनतम बिन्दु आ जाता है तो उसके बाद उत्पादन के पैमाने के विस्तार के साथ उत्पादन के एक निश्चित क्षेत्र में *LAC* वक्र चपटा हो जाता है। तब मितव्ययिताएँ और अमितव्ययिताएँ एक-दूसरे को संतुलित करती हैं और *LAC* वक्र का आधार डिस्क-आकार हो जाता है। पैमाने का और विस्तार होने पर तालमेल, प्रबन्ध, श्रम और यातायात की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनसे *LAC* वक्र बढ़ना शुरू कर देता है। कॉलडर के अनुसार ऐसा तब होता है जब उत्पादन के पैमाने के बहुत अधिक बढ़ने से अविभाज्य साधन दक्षतारहित और कम उत्पादक बन जाते हैं। जबकि चैम्बरलेन का यह कथन है कि प्रबन्ध और नियन्त्रण की कठिनाइयाँ उत्पन्न होने से प्रति इकाई लागत बढ़ती है। इन आन्तरिक अमितव्ययितायों के साथ बाहरी अमितव्ययिताएं भी मिल जाती हैं जो ऊँची साधन कीमतों या साधनों की घटती उत्पादकता से उत्पन्न होती है। जब उद्योग का विस्तार जारी रहता है तो प्रशिक्षित श्रम, पूँजी आदि की माँग बढ़ जाती है जिससे मजदूरी, ब्याज, लगान आदि बढ़ते हैं। कच्चे माल की कीमतें भी चढ़ जाती हैं। यातायात और मार्किटिंग की समस्या भी पैदा हो जाती है। इन सब कारणों से जब पैमाने का प्रतिफल घटता है तो लागतें बढ़ने लगती हैं। दोनों में से हर स्थिति में *LAC* वक्र *SAC* वक्र की अपेक्षा अधिक धीरे गिरता या चढ़ता है क्योंकि दीर्घकालीन में सब लागतें परिवर्तनशील बन जाती हैं और स्थिर लागत कोई नहीं होती। प्लांट और उपकरण बदले तथा उत्पादन के अनुरूप बनाए जा सकते हैं। वर्तमान साधनों को पूरी तरह और अधिक दक्षता से काम में लाया जा सकता है जिसके कारण अल्पकालीन की अपेक्षा दीर्घकालीन में औसत स्थिर तथा

चित्र 19 11

औसत परिवर्तनशील दोनो ही लागते कम होती है। यही कारण है कि *SAC* वक्र की अपेक्षा *LAC* वक्र अधिक चपटा होता है।

इसी प्रकार, *SMC* वक्र की अपेक्षा *LMC* वक्र अधिक चपटा होता है क्योकि सब लागते परिवर्तनशील होती है और स्थिर लागत कोई नहीं होती। अल्पकालीन में सीमान्त लागत स्थिर और परिवर्तनशील दोनो लागतो से सम्बन्धित होती है। परिणामस्वरूप *SMC* वक्र *LMC* वक्र की अपेक्षा अधिक तेजी से गिरता और चढता है। *LMC* वक्र का *LAC* वक्र से सामान्य सम्बन्ध ही होता है। यह पहले गिरता है और *LAC* वक्र के नीचे होता है। फिर चढता है और *LAC* वक्र को न्यूनतम बिन्दु *E* पर काटता है और फिर सदैव *LAC* वक्र से ऊपर रहता है जैसाकि चित्र 19 11 मे दिखाया गया है।
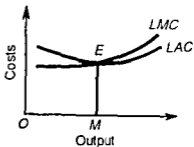
9. लागतो का आधुनिक सिद्धात (THE MODERN THEORY OF COSTS)

लागतो का आधुनिक सिद्धात लागतो के परपरागत सिद्धात से लागत वक्रो के आकार में भिन्न है। परपरागत सिद्धात मे, लागत वक्र U-आकार के होते है। परन्तु आधुनिक सिद्धात मे जो आनुभविक प्रमाणो (empirical evidences) पर आधारित है *SAVC* वक्र और *SMC* वक्र एक दूसरे के साथ मेल खाते है और उत्पादन के एक विस्तृत रेज पर एक समानातर सीधी रेखा होते है। जहाँ तक *LAC* और *LMC* वक्रो की बात है, वे U-आकार की बजाय *L*-आकार के होते है। हम अल्पकालीन और दीर्घकालीन लागत वक्रो की प्रकृति की विवेचना करते है।

(1) अल्पकालीन लागत वक्र (Short-Run Cost Curves)—परपरागत सिद्धात की तरह, लागतो के आधुनिक सिद्धात मे *AFC, SAVC, SAC* और *SMC* अल्पकालीन लागत वक्र होते है। वे भी कुल लागतो से व्युत्पन्न किए जाते है जो कुल स्थिर लागतो और कुल परिवर्तनशील लागतो में विभाजित होती है।

परन्तु आधुनिक सिद्धात मे, *SAVC* ओर *SMC* वक्रो की U-आकृति न होकर तश्तरी (Saucer) या कटोरा (bowl) आकृति होती है। क्योकि *AFC* वक्र आयताकार अतिपरवलय (rectangular hyperbola) होता है, इसलिए *SAC* वक्र की आकृति आधुनिक व्याख्या मे भी U-आकार की होती है। अर्थशास्त्रियो ने *SAC* वक्रो के इस व्यवहार ढाचे की आनुभविक अध्ययनो के आधार पर जाच की है। उनके अनुसार, एक आधुनिक फर्म ऐसा प्लाट चुनती है जो वह उपलब्ध परिवर्तनशील प्रत्यक्ष साधनो से सुगमता के साथ चला सकती है। ऐसे प्लाट मे कुछ रिजर्व क्षमता और बहुत लोचशीलता पाई जाती है। फर्म अपनी वस्तु की माग मे वृद्धि को पूरा करने हेतु, विस्तृत रेज मे अधिकतम उत्पादन की दर उत्पादित करने के लिए, इस प्रकार के प्लाट को स्थापित करती है। तश्तरी-आकार के *SAVC* और *SMC* वक्रो को चित्र 19 12 मे दिखाया गया है। प्रारभ मे, दोनो वक्र पहले बिन्दु *A* तक गिरते है और *SAVC* वक्र से ऊपर *SMC* वक्र स्थित होता है। *SAVC* वक्र का गिरता भाग, स्थिर साधन के बेहतर उपयोग और परिणामस्वरूप परिवर्तनशील साधन (श्रम) की दक्षताओ और उत्पादकता मे वृद्धि के कारण, लागतो मे कमी को दर्शाता है। बेहतर दक्षताओ के साथ कच्चे मालो के अपव्यय भी कम होते है तथा समस्त प्लाट के बेहतर उपयोग पर पहुच जाते
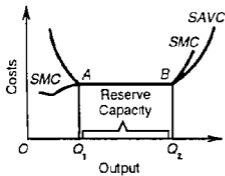
चित्र 19 12

है। जहाँ तक उत्पादन की Q_1Q_2 रेंज पर तश्तरी आकार के *SAVC* वक्र के चपटे भाग का संबध है, आनुभविक प्रमाण यह व्यक्त करता है कि इस विस्तृत रेंज में एक प्लांट का कार्यकरण पैमाने के स्थिर प्रतिफल दर्शाता है। तश्तरी-आकृति के *SAVC* वक्र का कारण यह है कि स्थिर साधन विभाज्य है। *SAV* लागतें एक बडी रेंज पर उस बिन्दु तक स्थिर होती है जिस पर समस्त स्थिर साधन प्रयोग होता है। फिर, फर्म की *SAV* लागतें उत्पादन के एक विस्तृत रेंज पर स्थिर होती है क्योंकि जो प्लांट चालू रखे जाते है उनमे श्रम और पूँजी के इष्टतम संयोग से हटने की आवश्यकता नहीं है। अत उत्पादन की इस बडी रेंज पर *SAVC* वक्र चपटा होगा, *SMC* वक्र इसके बराबर होगा और प्रति इकाई उत्पादन स्थिर होगा। इसलिए फर्म प्लांट की Q_1Q_2 रिजर्व क्षमता के बीच उत्पादन करती रहेगी, जैसाकि चित्र 19 12 मे दिखाया गया है।

B बिन्दु के बाद, *SAVC* और *SMC* वक्र ऊपर की ओर चढना प्रारभ करते है। जब फर्म Q_2 से आगे उत्पादन की ऊँची दरे प्राप्त करने के लिए अपने प्लांट के सामान्य या लोड फैक्टर से परे हटती है, तो इससे *SAVC* और *SMC* दोनो बढती हैं। लागतो मे वृद्धि पुराने और कम दक्ष प्लांट को ओवरटाइम चलाने से हो सकती है, जिससे बार-बार मशीनो का खराब होना, कच्चे माल का अपव्यय, श्रम उत्पादकता मे कमी और ओवरटाइम कार्य करने से श्रम लागत में वृद्धि का होना है। *B* बिन्दु के आगे *SAVC* वक्र के बढते भाग मे *SMC* वक्र उससे ऊपर होता है।

अल्पकालीन औसत कुल लागत वक्र *SAC* या *SATC* को उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर *AFC* वक्र और *SAVC* वक्र को अनुलब तौर से जोडकर प्राप्त किया जाता है। जैसाकि चित्र 19 13 मे दर्शाया गया है *SAC* वक्र उत्पादन के *Q* स्तर तक गिरता चला जाता है। इस स्तर पर प्लांट की रिज़र्व क्षमता पूरी तरह से समाप्त हो जाती है। इस उत्पादन स्तर के पश्चात्, *SAC वक्र उत्पादन* बढने के साथ ऊपर की ओर गति करता है। उत्पादन के *Q* स्तर तक *SAC* वक्र की समतल और निरतर गिरावट, इस कारण है कि *AFC* वक्र आयताकार अतिपरवलय है और *SAVC* वक्र पहले गिरता है और फिर रिज़र्व क्षमता के रेंज के बीच समानांतर हो जाता है।
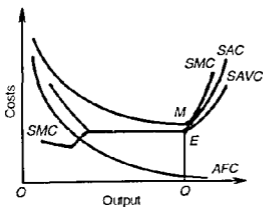
चित्र 19 13

उत्पादन स्तर Q के आगे, यह सीधा ऊपर की ओर बढ़ना शुरू कर देता है। परन्तु SAC वक्र का न्यूनतम बिन्दु M, जहाँ SMC वक्र इस को काटता है, $SAVC$ वक्र के बिन्दु E के दाईं ओर है। ऐसा इस कारण कि $SAVC$ वक्र E बिन्दु से सीधा ऊपर बढ़ना प्रारम्भ करता है, जबकि AFC वक्र बहुत कम दर से गिर रहा है।

(2) दीर्घकालीन लागत वक्र (Long-Run Cost Curves)—दीर्घकालीन औसत लागत के बारे में आनुभविक प्रमाण बताते हैं कि LAC वक्र L-आकृति का होता है न कि U-आकृति का। शुरू में LAC वक्र तीव्रता से गिरता है परन्तु एक बिन्दु के पश्चात् वक्र चपटा रहता है, या अपने दाएँ हाथ के छोर पर नीचे की ओर धीरे से ढालू हो सकता है। अर्थशास्त्रियों ने LAC वक्र के L-आकृति के होने के लिए निम्नलिखित कारण दिए हैं।

1. उत्पादन और प्रबंधकीय लागतें (Production and Managerial Costs)

दीर्घकाल में, समस्त लागतें परिवर्तनशील होने के कारण, जब औसत लागतों पर उत्पादन के प्रसार के प्रभाव पर विचार किया जाता है, तो फर्म की उत्पादन और प्रबंधकीय लागतों को ध्यान में रखा जाता है। जब उत्पादन बढ़ता है तो उत्पादन लागतें लगातार कम होती जाती हैं, जबकि प्रबंधकीय लागतें उत्पादन के बहुत बड़े पैमाने पर बढ़ सकती हैं। परन्तु उत्पादन लागतों में कमी प्रबंधकीय लागतों में वृद्धि से अधिक होने के कारण, उत्पादन बढ़ने के साथ LAC वक्र गिरता है। हम LAC वक्र की L-आकृति को समझने के लिए उत्पादन और प्रबंधकीय लागतों के व्यवहार का विश्लेषण करते हैं।

उत्पादन लागतें (Production Costs)—जब एक फर्म अपने उत्पादन के पैमाने को बढ़ाती है, तो प्रारम्भ में उसकी उत्पादन लागतें तीव्रता से कम होती हैं और फिर धीरे-धीरे। ऐसा फर्म द्वारा बड़े पैमाने की तकनीकी किफायतें प्राप्त करने से होता है। शुरू में, ये किफायतें भारी होती हैं। परन्तु उत्पादन के एक विशेष स्तर के बाद जब अधिकतर या सभी किफायतें प्राप्त हो जाती हैं, तो फर्म न्यूनतम इष्टतम पैमाने या न्यूनतम दक्ष पैमाने पर पहुँच जाती है। उद्योग की प्रौद्योगिकी दी होने पर, फर्म न्यूनतम दक्ष पैमाने से अधिक उत्पादन स्तर पर निम्न कारणों से कुछ तकनीकी किफायतों का लाभ उठा सकती है (क) आगे और विकेन्द्रीकरण तथा श्रम की उत्पादकता और कुशलताओं में सुधार से, (ख) फर्म के एक विशेष आकार पर पहुँचने के बाद कम मरम्मत लागतों से, और (ग) दूसरी फर्मों से खरीदने की बजाय, स्वयं कुछ साज-सामान और उपकरण का सस्ता उत्पादन करके, जिनकी फर्म को आवश्यकता होती है।

प्रबंधकीय लागतें (Managerial Costs)—आधुनिक फर्मों में, प्रत्येक प्लांट के बिना रुकावट के कार्यकरण के लिए एक प्रबंधकीय ढांचा होता है। प्रबंध के विभिन्न स्तर होते हैं, जिनमें से प्रत्येक की एक अलग प्रबंध तकनीक होती है जो उत्पादन के एक विशेष स्तर पर लागू होती है। इस प्रकार, एक प्लांट के लिए एक प्रबंध ढांचा दिया होने पर, इसकी प्रबंधकीय लागतें उत्पादन के बढ़ने के साथ पहले गिरती हैं और उत्पादन के केवल बहुत बड़े पैमाने पर वे धीरे-धीरे बढ़ती हैं।

संक्षेप में, उत्पादन के बहुत बड़े पैमानों पर, उत्पादन लागतें बिना रुकावट के गिरती हैं और प्रबंधकीय लागतें धीरे-धीरे बढ़ती हैं। परन्तु उत्पादन लागतों में कमी प्रबंधकीय लागतों में वृद्धि को अधिक निष्प्रभावित करती है जिससे LAC वक्र उत्पादन के बहुत बड़े पैमाने पर निर्विघ्न गिरता है या चपटा हो जाता है। इससे LAC वक्र की L-आकृति उत्पन्न होती है।

इस प्रकार का LAC वक्र खींचने के लिए हम तीन अल्पकालीन औसत लागत वक्र SAC_1, SAC_2 और SAC_3 लेते हैं जो समान प्रौद्योगिकी के तीन प्लांटों को व्यक्त करते हैं, जैसाकि चित्र 19.14 में दर्शाया गया है। प्रत्येक SAC वक्र में उत्पादन लागतें, प्रबंधकीय लागतें, अन्य स्थिर लागतें और सामान्य लाभ के लिए अतिरिक्त राशि शामिल होती है। प्रत्येक प्लांट का पैमाना (SAC) एक

चित्र 19 14
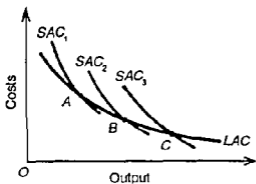
विशिष्ट लोड फैक्टर क्षमता से प्रतिबधित होता, जिससे *A, B* और *C* बिन्दु प्रत्येक प्लाट के उत्पादन के न्यूनतम इष्टतम पैमाने को व्यक्त करते हैं। एक बडी सख्या के *SACs* के *A, B, C* आदि जैसे सभी बिन्दुओं को मिलाने से हमें एक निर्विघ्न निरतर *LAC* वक्र प्राप्त होता है, जैसाकि चित्र 19 14 से स्पष्ट है। यह वक्र उत्पादन के बहुत बडे पैमाने पर ऊँचे की ओर नहीं मुडता। यह *SAC* वक्रों को नहीं घेरता बल्कि प्रत्येक प्लाट के उत्पादन के इष्टतम पैमाने पर उन्हें काटता है।

2. तकनीकी उन्नति (Technical Progress)

लागतों के आधुनिक सिद्धात मे *LAC* वक्र की *L*-आकृति होने का एक अन्य कारण तकनीकी उन्नति है। लागतों का परपरागत सिद्धात तकनीकी उन्नति की मान्यता को नहीं लेता है, जब वह U-आकृति के *LAC* वक्र की व्याख्या करता है। परन्तु दीर्घकालीन लागतों से सबधित आनुभविक परिणाम फर्मों मे तकनीकी उन्नति के कारण पैमाने की विस्तृत मितव्ययिताओ के होने की पुष्टि करते हैं। जिस समय अवधि के बीच तकनीकी उन्नति हुई है, दीर्घकालीन औसत लागतों की गिरने की प्रवृत्ति को दर्शाते है। अमितव्ययिताओं के बारे मे प्रमाण बहुत कम निश्चित है। इसलिए पैमाने के अन्तिम छोर पर ऊपर की ओर *LAC* का मोड नहीं देखा गया है। तकनीकी उन्नति के कारण *LAC* वक्र की *L*-आकृति को चित्र 19 15 में समझाया गया है।

मान लीजिए कि फर्म LAC_1 वक्र पर प्रति इकाई OC_1 लागत से OQ_1 उत्पादन करती है। यदि फर्म की वस्तु की माग बिना तकनीकी परिवर्तन के बढकर OQ_2 हो जाती है, तो फर्म प्रति इकाई OC' लागत पर LAC_1 वक्र के साथ OQ_2 उत्पादन करेगी। यदि फर्म मे तकनीकी उन्नति होती है, तो वह दीर्घकालीन औसत लागत वक्र LAC_2 नया प्लाट लगाएगी। इस प्लाट पर वह कम प्रति इकाई लागत OC_2 पर OQ_2 उत्पादन करती है। इसी प्रकार, यदि फर्म अपनी वस्तु की माग मे और वृद्धि को पूरा करने के लिए अपने उत्पादन को OC_3 तक बढाने का निर्णय लेती है तो तकनीकी उन्नति इतने उन्नत स्तर तक पहुच चुकी है कि वह LAC_3 वक्र वाला
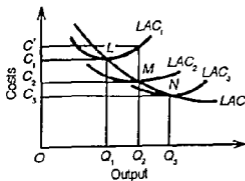
चित्र 19.15

प्लाट लगाती है। अब यह और भी कम प्रति इकाई लागत OC_3 पर OQ_3 उत्पादन करती है। यदि इन दीर्घकालीन U-आकृति के औसत लागत वक्रो LAC_1, LAC_2 और LAC_3 के L, M और N बिन्दुओ को रेखा द्वारा जोड दिया जाए, तो इससे एक नीचे की ओर धीरे से ढालू L-आकृति का LAC वक्र बनता है।

3 जानकारी (Learning)—L-आकृति वाले दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का एक और कारण जानकारी प्रक्रिया है। जानकारी अनुभव से प्राप्त होती है। यदि इस सदर्भ में अनुभव को उत्पादित वस्तु की मात्रा से मापा जा सकता है, तो जितना अधिक उत्पादन होगा, प्रति इकाई लागत उतनी ही कम होगी। जानकारी के परिणाम बढते हुए प्रतिफल की तरह है। पहला, बडे स्तर पर किए गए कार्य से प्राप्त जानकारी को भुलाया नहीं जा सकता। दूसरा, जानकारी होने से उत्पादकता की दर बढ जाती है। तीसरा, अनुभव को उत्पादित किए गए कुल उत्पादन द्वारा तब से आका जाता है जबसे फर्म ने शुरू मे उत्पादन प्रारम्भ किया था। जब फर्में नई वस्तुएँ उत्पादित करना शुरू करती है, तो करने से जानकारी (learning by doing) देखी गयी है। जब वे पहली इकाई उत्पादित कर लेती है, तो उत्पादन के लिए जितना समय चाहिए उसे कम कर लेती है, और इस प्रकार वे प्रति इकाई लागते कम करती है। उदाहरणार्थ, यदि फर्म जहाज के ढाचे बनाती है, तो दीर्घकालीन औसत लागतो मे देखी गई गिरावट एक विशेष प्रकार के जहाज के ढाचे का उत्पादन करने के अनुभव के कारण होती है न कि सामान्य जहाज के ढाचो मे। इसलिए व्यक्ति "एक जानकारी वक्र" बना सकता है जो कि फर्म द्वारा हवाई जहाज के ढाचे बनाने से लेकर अभी तक बनाए गए कुल हवाई जहाज के ढाचो की तुलना मे प्रति ढांचे की लागत से सम्बन्धित है। चित्र 19 16 एक जानकारी वक्र LAC दर्शाता है जो एक दिए हुए उत्पादन की लागत को समस्त समय अवधि के ऊपर कुल उत्पादन से सबधित करता है। वस्तु बनाने के साथ बढ रहे अनुभव से लागते गिरती जाती है जब इसकी अधिक से अधिक मात्रा उत्पादित की जाती है। जब फर्म जानकारी की सभी सभावनाओ का उपयोग कर लेती है, तो लागते न्यूनतम स्तर, M पर पहुच जाती है, जैसाकि चित्र में दिखाया गया है। इस प्रकार, करने से जानकारी के कारण LAC वक्र L-आकृति का होता है।
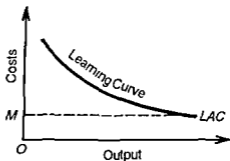
चित्र 19 16

चित्र 19 17

चित्र 19 18

LAC और LMC वक्रों में संबंध (Relation between LAC and LMC Curves)

आधुनिक लागत-सिद्धांत में, यदि LAC वक्र उत्पादन के बहुत बड़े पैमानों पर भी निर्विघ्न और लगातार गिरता है, तो LAC वक्र की समस्त लंबाई के नीचे LMC वक्र स्थित होगा, जैसाकि चित्र 19 17 में दिखाया गया है।
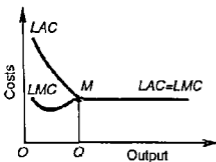
यदि प्लांट के एक न्यूनतम इष्टतम पैमाने या प्लांट के एक न्यूनतम दक्ष पैमाने के बिन्दु तक, जिसके बाद पैमाने की और किफायतें नहीं पाई जाती हैं, तो LAC वक्र X-अक्ष के समानांतर हो जाता है। इस स्थिति में, LAC वक्र से नीचे LMC वक्र स्थित होता है जब तक न्यूनतम दक्ष पैमाने का बिन्दु, M नहीं पहुंच जाता है और इस बिन्दु के बाद LAC वक्र में LMC वक्र मिल जाता है, जैसाकि चित्र 19 18 में दर्शाया गया है।

निष्कर्ष (Conclusion)

अधिकतर आनुभविक लागत अध्ययन ये सुझाव देते हैं कि परंपरागत सिद्धांत द्वारा उपकल्पित U-आकृति के लागत वक्र वास्तविकता में नहीं देखे जाते हैं। इन अध्ययनों से दो मुख्य परिणाम निकलते हैं। प्रथम, SAVC और SMC वक्र उत्पादन के एक विस्तृत रेंज पर स्थिर हैं। द्वितीय, उत्पादन के नीचे स्तरों पर LAC वक्र तीव्रता से गिरता है और जब उत्पादन का पैमाना बढ़ता है तो बाद में व्यवहारिकता में स्थिर रहता है। इसका मतलब है कि LAC वक्र U-आकृति का न होकर, L-आकृति का है। बहुत कम अवस्थाओं में पैमाने की अमितव्ययिताएँ पाई गई और वे भी उत्पादन के बहुत ऊंचे स्तरों पर।

10. दीर्घकालीन कुल लागत वक्र को उत्पादन फलन या प्रसार पथ से व्युत्पन्न करना (DERIVATION OF LTC FROM PRODUCTION FUNCTION OR EXPANSION PATH)
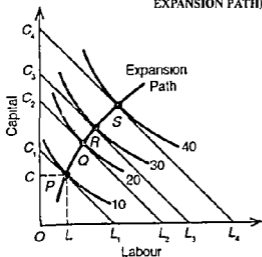
चित्र 19 19

हम दीर्घकालीन कुल लागत वक्र को उत्पादन फलन या प्रसार पथ से व्युत्पन्न कर सकते हैं। चित्र 19 19 पर विचार कीजिए जिसमें यह मान लिया गया है कि एक फर्म दो साधनों, पूँजी और श्रम, से अपनी एक वस्तु का उत्पादन करती है। यह भी मान्यता है कि साधन कीमतें स्थिर हैं, जिन्हें समानांतर समलागत वक्रों C_1L_1, C_2L_2, C_3L_3 और C_4L_4 द्वारा दर्शाया गया है। फर्म के समोत्पाद वक्र 10, 20, 30 और 40 वस्तु X के

उत्पादन स्तरों को व्यक्त करते है। उत्पादन की 10 इकाइयां उत्पादित करने के लिए न्यूनतम-लागत साधन संयोग को P द्वारा दिखाया गया है, जहाँ सममात्रा वक्र 10 समलागत रेखा C_1L_1 को स्पर्श करता है। इसी तरह, उत्पादन की 20 इकाइयों का न्यूनतम लागत साधन संयोग Q द्वारा, उत्पादन की 30 इकाइयों का न्यूनतम-लागत साधन संयोग R द्वारा, और उत्पादन की 40 इकाइयों का न्यूनतम-लागत साधन संयोग S द्वारा व्यक्त किया गया है। इन स्पर्श बिन्दुओं को मिलाने से प्रसार पथ EP प्राप्त होता है। उत्पादन फलन और साधन-कीमत अनुपात दिए होने पर, प्रसार पथ साधनों के संयोगों को दर्शाता है जो फर्म को न्यूनतम लागत पर वस्तु के उत्पादन के विभिन्न स्तर उत्पादित करने की क्षमता प्रदान करते है।

केवल श्रम और पूँजी दो साधनों पर आधारित प्रसार पथ दिया होने पर, दीर्घकालीन कुल लागत वक्र व्युत्पन्न किया जा सकता है। प्रसार पथ पर प्रत्येक बिन्दु दीर्घकाल में वस्तु X की एक निश्चित मात्रा उत्पादित करने के लिए साधनों के न्यूनतम-लागत संयोग को दर्शाता है। चित्र 19.20 वस्तु X की न्यूनतम कुल लागत को दिखाता है जहाँ A B C और D बिन्दु चित्र 19.19 के बिन्दु P, Q, R और S के साथ मेल खाते है। चित्र 19.19 में बिन्दु P लीजिए जो उत्पादन स्तर 10 के साथ मेल खाता है। यह बिन्दु P समलागत रेखा C_1L_1 पर है जिसका मतलब है कि पूँजी की OC इकाइयों और श्रम की OL इकाइयों के संयोग की लागत, चित्र 19.20 में X की 10 इकाइयां उत्पादित करने की लागत OT_1 के बराबर है। इसी प्रकार, उत्पादन की 20 इकाइयां और कुल लागत OT_2, संयोग B प्रदान करते हैं, उत्पादन की 30 इकाइयां और कुल लागत OT_3, संयोग C, और उत्पादन की 40 इकाइयां और कुल लागत OT_4, संयोग D प्रदान करते है। A, B C और D बिन्दुओं के मिलाने से दीर्घकालीन कुल लागत वक्र LTC प्राप्त होता है।

चित्र 19.20

11. LAC और LMC वक्रों को LTC वक्र से व्युत्पन्न करना (DERIVATION OF LAC AND LMC CURVES FROM LTC CURVE)

दीर्घकालीन कुल लागत वक्र (LTC) से दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) वक्र और दीर्घकालीन सीमांत लागत (LMC) वक्र निम्न ढंग से व्युत्पन्न किए जा सकते है।

LAC वक्र की व्युत्पत्ति (Derivation of LAC Curve)—चित्र 19.21 LTC वक्र से LAC वक्र की व्युत्पत्ति दर्शाता है। औसत कुल लागत (ATC) = TC/Q चित्र पर, एक निश्चित उत्पादन की औसत लागत कुल लागत वक्र पर मूल (origin) से एक रेखा या किरण (ray) की ढलान द्वारा दिखाई जाती है। चित्र का पैनल (A), कुल लागत वक्र LTC दिखाता है। OQ_1 उत्पादन स्तर पर
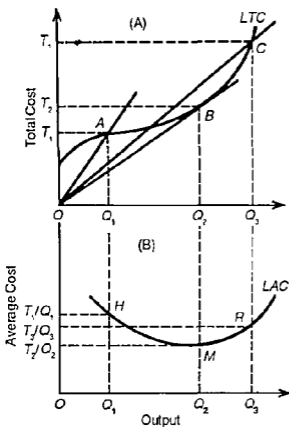
चित्र 19 21

कुल लागत OT_3 है। अत इस उत्पादन स्तर पर औसत कुल लागत, $ATC = OT_1/OQ_1$ यह LTC वक्र पर बिन्दु A पर मूल O से खींची गई किरण की ढलान है, जो प्रपाती (steep) है। OQ_1 उत्पादन की औसत कुल लागत T_1/Q_1 को चित्र के पेनल (B) में बिन्दु H पर अंकित (plot) किया गया है। OQ_2 उत्पादन स्तर पर, औसत कुल लागत न्यूनतम है क्योंकि मूल से LTC वक्र के बिन्दु B पर किरण उसको स्पर्श करती (tangent) है। इस बिन्दु पर, किरण की ढलान छोटी है ओर औसत कुल लागत OT_2/OQ_2 है। इसे पेनल (B) में, बिन्दु M पर T_2/Q_2 अंकित किया गया है। LTC वक्र के बिन्दु C पर किरण की ढलान अधिक है, जो यह दर्शाती है कि बिन्दु B की तुलना में OQ_3 उत्पादन स्तर पर औसत कुल लागत OT_3/OQ_3 ऊँची है। इसी चित्र के पेनल (B) में बिन्दु R पर T_3/Q_3 अंकित किया गया है। H, M और R बिन्दुओं को मिलाने से LAC वक्र प्राप्त होता है जो प्रारंभ में ऊँचा है, फिर गिरता है, न्यूनतम बिन्दु M पर पहुंचता है और उसके पश्चात् बढ़ना शुरू कर देता है।

LMC वक्र की व्युत्पत्ति (Derivation of LMC Curve)—दीर्घकालीन सीमांत लागत (LMC), वक्र की व्युत्पत्ति को दीर्घकालीन कुल लागत (LTC) वक्र से चित्र 19 22 में दर्शाया गया है। वस्तु की एक इकाई में परिवर्तन से कुल लागत में जो परिवर्तन होता है, वह सीमांत लागत है। चित्र में, LTC वक्र के किसी एक विशेष बिन्दु पर खींची गई एक स्पर्श रेखा (tangent) की ढलान सीमांत लागत है। चित्र 19 22 के पेनल (A) में, OQ उत्पादन स्तर पर LTC वक्र के बिन्दु A पर एक स्पर्श रेखा खींचिए। जहाँ स्पर्श रेखा की ढलान प्रपाती है जिसका मतलब है कि LMC ऊँची है। परन्तु B बिन्दु पर स्पर्श रेखा की ढलान सबसे छोटी है, जिससे उत्पादन-स्तर OQ_1 पर LMC न्यूनतम है, जैसाकि चित्र के पेनल (B) में अंकित किया गया है। LTC वक्र के बिन्दु C पर मूल से किरण स्पर्श करती है। परन्तु इसकी ढलान बिन्दु B की अपेक्षा प्रपाती है। इसका मतलब है कि OQ_2 उत्पादन स्तर पर LMC बढ़ रही है क्योंकि चित्र 19 22 में बिन्दु C पर किरण की ढलान बराबर है बिन्दु B पर चित्र 19 21 में, इसलिए OQ_2 उत्पादन स्तर पर, $LMC = LAC$ लेकिन चित्र 19 22 में, LTC वक्र पर बिन्दु C के बाईं ओर LMC वक्र की ढलान कम है। इसलिए, मूल से OQ_2 उत्पादन स्तर तक

LAC वक्र से *LMC* वक्र नीचे है और OQ_2 स्तर पर *LMC* वक्र बराबर है *LAC* वक्र के तथा उसे नीचे से काटता है। चित्र 19 22 मे *LTC* वक्र के बिन्दु *D* पर स्पर्श रेखा बहुत प्रपाती है, इसलिए *LMC* वक्र तिरछा ऊपर की ओर चढता है और OQ_3 उत्पादन स्तर पर *LMC* > *LAC*

12. पैमाने की किफायते और *LAC* वक्र (ECONOMIES OF SCALE AND THE *LAC* CURVE)

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (*LAC*) की आकृति (shape) मूल रूप से पैमाने की आतरिक किफायतो और अमित-व्ययिताओ पर निर्भर करती है, जबकि *LAC* वक्र का सरकना (shift) पैमाने की बाहरी किफायतो और अमितव्ययिताओ पर निर्भर करता है।

LAC वक्र प्रारभ मे धीरे-धीरे गिरता है और फिर एक न्यूनतम बिन्दु पर पहुचने के बाद धीरे-धीरे ऊपर चढता है। प्रारभ मे *LAC* वक्र इसलिए नीचे की ओर ढालू होता है क्योकि एक फर्म को पैमाने की कुछ आतरिक किफायते उपलब्ध होती है, जैसे अविभाज्य साधनो का किफायती प्रयोग, बढ रहा विशेषीकरण, तकनीकी तौर से अधिक दक्ष मशीनो का प्रयोग, बेहतर प्रबधकीय और विपणन सगठन और बाह्य मितव्ययिताओ के लाभ आदि। ये सभी किफायते पैमाने के बढते प्रतिफल लाती है। इसका अर्थ है कि जब उत्पादन बढता है, तो *LAC* वक्र गिरता है जैसा कि चित्र 19 23 मे दर्शाया गया है जहां *LAC* वक्र धीरे-धीरे *M* बिन्दु तक गिरता है।

चित्र 19 22

पैमाने की बचते केवल उस बिन्दु तक पाई जाती है जो *LAC* वक्र का इष्टतम बिन्दु है। *यदि फर्म इस इष्टतम बिन्दु से आगे अपने उत्पादन को बढाती है, तो पैमाने की अमितव्ययिताए उत्पन्न होती है।* पैमाने की अमितव्ययिताए समन्वय के अभाव, प्रबध की अदक्षताओ, विपणन की समस्याओ और साधनो की कीमतो मे वृद्धियो से उत्पन्न होती है जब फर्म अपने पैमाने का प्रसार करती है।
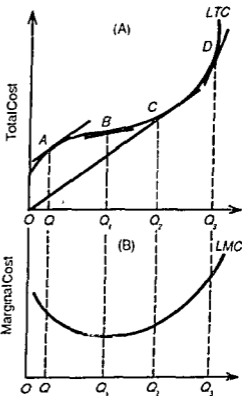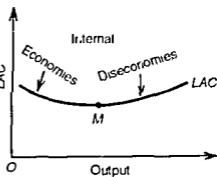
चित्र 19 23

परिणामस्वरूप, पैमाने के प्रतिफल घटते है, जो LAC वक्र को ऊपर की ओर मोड देते है, जैसा कि चित्र मे दिखाया गया है जहाँ LAC वक्र M बिन्दु के बाद ऊपर की ओर गति करना प्रारंभ कर देता है। इस प्रकार, पैमाने की आतरिक किफायते और अमितव्ययिताए LAC वक्र की आकृति की बनावट मे विद्यमान होती है क्योंकि वे फर्म की अपनी क्रियाओ से प्राप्त होती है जब वह अपने उत्पादन के स्तर को बढाती है। वे केवल दीर्घकाल से सबधित होती है।

दूसरी ओर, पैमाने की बाह्य किफायतें और अमितव्ययिताए LAC वक्र की स्थिति को प्रभावित करती है। बाह्य किफायते एक फर्म को बाहर से अन्य फर्मों की क्रियाओं द्वारा प्राप्त होती है जब समस्त उद्योग फैलता है। वे एक उद्योग मे फर्मों की परस्पर निर्भरता को व्यक्त करती है। वे फर्म को उस समय प्राप्त होती है जब उद्योग मे अन्य फर्में आविष्कार करती है और उत्पादन प्रक्रियाओं मे विशेषीकरण करती है जिससे इसकी प्रति इकाई लागत कम होती है। वे एक फर्म को उद्योग मे साधन कीमतो मे कमियों से भी प्राप्त होती है जिससे प्रति इकाई लागत कम होती है और LAC वक्र नीचे की ओर सरक जाता है जैसाकि चित्र 19 24 मे LAC वक्र को LAC_1 पर शिफ्ट करना दिखाया गया है।

चित्र 19 24
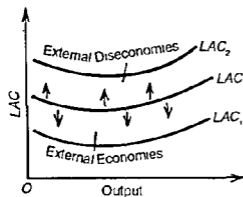
इसके विपरीत, बाह्य अमितव्ययिताए LAC वक्र को ऊपर की ओर सरका देती है। बाह्य अमितव्ययिताए केवल एक उद्योग द्वारा प्रयोग किए गए साधनों की बाजार कीमतों मे वृद्धि से उत्पन्न होती है। जब उद्योग फैलता है, तो श्रम, पूँजी, उपकरण, कच्चे माल, बिजली आदि की माग बढती है और जब कमियों के कारण उद्योग इन साधनों की माग को पूरा करने मे असमर्थ होता है तो फर्मों की प्रति इकाई लागत बढती है। परिणामस्वरूप, LAC वक्र ऊपर की ओर सरक जाता है जैसा कि चित्र 19.24 में LAC वक्र के ऊपर की ओर LAC_2 पर शिफ्ट करना दिखाया गया है।

13. लागतों की लोच (ELASTICITY OF COSTS)

यदि उत्पादन Q कुल लागत T द्वारा उत्पादित होता है जो लागत फलन होता है $T = f(Q)$ कुल लागत की लोच कुल लागत मे आनुपातिक परिवर्तन तथा उत्पादन मे आनुपातिक परिवर्तन का अनुपात होता है।

इसे इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$\kappa = \frac{dT}{T} \div \frac{dQ}{Q} = \frac{dT}{T} \times \frac{Q}{dQ} = \frac{dT}{dQ} \cdot \frac{Q}{T} = \frac{dT}{dQ} \div \frac{T}{Q} = \frac{MC}{AC}$$

5 वे SAC वक्रों की स्थिति को भी प्रभावित करती है क्योंकि दीर्घकाल में SAC वक्र प्लाटों को व्यक्त करते है।

चित्र 19 25

अत लागत-लोच (κ) सीमात लागत (dt/dQ) का औसत लागत (T/Q) के साथ अनुपात के बराबर होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि $MC \gtreqless MC$ तो $k \gtreqless 1$ इसका मतलब यह है कि जब $MC > AC$ हो तो $k > 1$ चित्र मे, जब MC वक्र AC वक्र से ऊपर होता है तो $k > 1$ जैसा कि चित्र 19 25 मे बिन्दु E के दाईं ओर का क्षेत्र है। यह ह्रासमान प्रतिफल व्यक्त करता है। जब $MC = AC$ तो $k = 1$ चित्र मे यह स्थिति बिन्दु E जहा MC वक AC वक्र को व्यक्त नीचे से काटता है। यह स्थिर प्रतिफल की अवस्था है। जब $MC < AC$ तो $k < 1$ यह चित्र मे E बिन्दु के बाईं ओर का क्षेत्र है, जहा MC वक्र गिर रहा है और AC वक्र से नीचे है। यह बढ़ते प्रतिफल की अवस्था है।
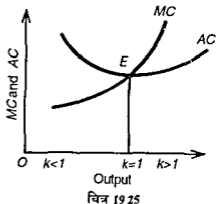
क्योकि औसत लागत एव सीमात लागत उत्पादन से सबद्ध कुल लागत से व्युत्पन्न की जाती है, AC वक्र तथा MC वक्र के आकार कुल लागत वक्र आकार से भी जाने जा सकते है। यदि एक दिए उत्पादन Q स्तर पर P कुल लागत वक्र पर बिन्दु हो, तब ओसत लागत OP की ढलान तथा P पर स्पर्श रेखा (tangent) सीमात लागत पढ़नी चाहिए। यह चित्र 19 26 मे दर्शाया गया है। चित्र आगे यह भी बताता है कि कुल लागत की लोच उत्पादन की वृद्धि के साथ निरन्तर इकाई से कम से लेकर इकाई से अधिक तक बढ़ती जाती है। पहले, थोडे उत्पादनो के लिए लागत-लोच इकाई से कम होती है और अन्त मे, बडे उत्पादनो के लिए यह इकाई से अधिक होती है। दूसरे शब्दो मे, यदि उत्पादन का एक निश्चित स्तर मान लो $Q = \alpha$ लिया जाए तो उत्पादन $Q < \alpha$ के लिए $k < 1$, और उत्पादन $Q > \alpha$ के लिए $k > 1$ यह चित्र 19 26 मे दर्शाया गया है।

चित्र 19 26
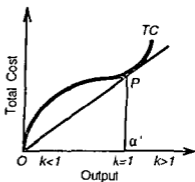
औसत लागत की लोच (Elasticity of Average Cost)—कुल लागत की लोच k है

$E(T) = \frac{dT}{dQ} \frac{Q}{T}$, और औसत लागत है T/Q इसलिए, T को T/Q से स्थानापन्न करके

$$E(T/Q) = \frac{d(T/Q)}{dQ} \frac{Q}{T/Q}$$

$$= \frac{d}{dQ} (T/Q) \frac{Q^2}{T}$$

$$= \frac{Q^2}{T}\left(\frac{Q\frac{dT}{dQ} - T}{Q^2}\right)$$

$$= \frac{Q^2}{T}\,\frac{1}{Q^2}\left(Q\frac{dT}{dQ} - T\right)$$

$$= \frac{Q}{T}\,\frac{dT}{dQ} - 1 = \kappa - 1$$

इससे ये निष्कर्ष निकलते हैं (1) यदि κ (कुल लागत की लोच) इकाई से अधिक, बराबर या कम हो तो औसत लागत की लोच शून्य से अधिक, बराबर या कम होती है। (2) कुल लागत की लोच औसत लागत की लोच से इकाई से अधिक होती है, अर्थात् $E(T/Q) = \kappa - 1$ or $\kappa - E(T/Q) = 1$

सीमांत लागत की लोच (Elasticity of Marginal Cost)—जैसाकि हम जानते हैं, कुल लागत की लोच है $E(T) = dT/dQ\ \ Q/T$ इसलिए, सीमांत लागत है dT/dQ T को dT/dQ से स्थानापन्न करके

$$E\left(\frac{dT}{dQ}\right) = d\,\frac{(dT/dQ)}{dQ}\;\frac{Q}{(dT/dQ)}$$

$$= \frac{d}{dQ}(dT/dQ)\;\frac{Q}{(dT/dQ)} \qquad (1)$$

क्योंकि κ निम्न द्वारा दिया है,

$k = Q/T\ \ dT/dQ$ or $Tk/Q = dT/dQ$ (2)

(2) का मूल्य (1) में स्थानापन्न करने से, हमें प्राप्त होता है,

$$E\left(\frac{dT}{dQ}\right) = \frac{d}{dQ}\left(\frac{dT}{dQ}\right)\frac{Q^2}{T_k}$$

प्रश्न

1 अल्पकालीन और दीर्घकालीन औसत लागत वक्रों की प्रकृति की विवेचना करिए। दीर्घकालीन लागत वक्र अल्पकालीन लागत वक्र की अपेक्षा चपटा क्यों है?

2 अल्पकाल और दीर्घकाल में एक फर्म के परम्परागत लागत वक्रों की चित्रों सहित व्याख्या करिए।

3 लागतों के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

4 औसत प्रति इकाई लागत वक्र के U-आकार के होने का क्या आधार है?

5 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र L-आकृति का क्यों है? इस सम्बंध में आनुभविक अध्ययनों के परिणामों की विवेचना करिए।

6 दीर्घकालीन कुल लागत वक्र से दीर्घकालीन औसत और सीमांत वक्रों को व्युत्पन्न कीजिए।

7 प्रसार पथ क्या है? एक प्रसार पथ से एक दीर्घकालीन कुल लागत वक्र व्युत्पन्न करिए।

8 पैमाने की मितव्ययिताएं और अमितव्ययिताएं दीर्घकालीन लागत वक्र को कैसे प्रभावित करती हैं?

9 टिप्पणी लिखिए लागत की लोच, अवसर लागत, तश्तरी-आकृति का औसत लागत वक्र।

अध्याय 20

आगम की धारणा
(THE CONCEPT OF REVENUE)

1 कुल, औसत और सीमात आगम
(TOTAL, AVERAGE AND MARGINAL REVENUE)

फर्म का आगम और लागते मिल कर लाभ को निर्धारित करती हे। इसलिए अब हम आगम की धारणा का अध्ययन करते है।

'आगम' शब्द किसी फर्म द्वारा एक वस्तु की निश्चित मात्रा को विभिन्न कीमतो पर बेचने से प्राप्त आमदनी को बलाता है। आगम धारणा का सम्बन्ध कुल आगम, ओसत आगम और सीमात आगम से है।

कुल आगम (total revenue) एक वस्तु को दी हुई कीमत पर बेचने से फर्म को प्राप्त कुल आमदनी होती है। यदि एक फर्म वस्तु की दो इकाइया रु 18 पर बेचती है, तो कुल आगम $2 \times 18 =$ रु 36 है। इस प्रकार प्रति इकाई कीमत को, बेची गई इकाइयो से गुणा करने पर कुल आगम आ जाता है अर्थात् $R = PQ$, जहाँ R कुल आगम है, P कीमत और Q मात्रा।

औसत आगम (average revenue या A) वस्तु की कुछ इकाइयो को बेचने से प्राप्त ओसत आमदन होती है। कुल आगम को, बेची गई इकाइयो की सख्या से विभक्त करने पर, औसत आगम प्राप्त होता है। हमारे ऊपर के उदाहरण मे, ओसत आगम $36 \div 2 =$ रु 18 है। वास्तव मे एक फर्म का औसत आगम उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर वस्तु की कीमत होती है क्योकि

$$R = PQ$$
$$A = R/Q = PQ/Q = P$$

तथा $P = f(Q)$

इस प्रकार फलन सबध $P = f(Q)$ औसत आगम वक्र है जो बताता है कि कीमत माँगी गई मात्रा का फलन है। यह माँग वक्र भी होता है।

सीमात आगम (marginal revenue या M) किसी फर्म की बेच मे थोडी वृद्धि के परिणामस्वरूप कुल आगम मे होने वाली वृद्धि है। बीजगणित से, n की बजाय $n+1$ इकाइयाँ बेचने से R मे वृद्धि M है। $M = dR/dQ$, जहा d परिवर्नन को प्रकट करती है।

2. औसत आगम और सीमान्त आगम वक्रो मे सम्बन्ध
(RELATION BETWEEN *AR* AND *MR* CURVE)

क्योंकि हमारा सम्बन्ध प्रमुख रूप से औसत आगम और सीमान्त आगम के आपसी सम्बन्ध से है, इसलिए हम अपनी चर्चा मे कुल आगम को नहीं लेगे। शुद्ध प्रतियोगिता, एकाधिकार तथा अन्य मार्किट स्थितियो मे औसत आगम और सीमान्त आगम के सम्बन्ध पर आगे विचार किया जा रहा है।

चित्र 20 1
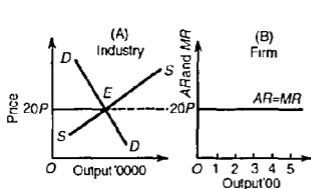
(1) शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत (Under Pure Competition)—औसत आगम वक्र *X*-अक्ष के समानान्तर एक सरल रेखा होती है और सीमान्त आगम वक्र इसके अनुरूप होता है। इसका कारण यह है कि शुद्ध (या पूर्ण) प्रतियोगिता में समरूप वस्तु को बेचने वाली फर्मों की सख्या बहुत अधिक होती है। मार्किट की माँग और पूर्ति की शक्तियाँ कीमत निर्धारित करती है जिसके कारण पूरे उद्योग मे एक ही कीमत पाई जाती है। यह *OP* है जैसाकि चित्र 20 1 (A) मे दिखाया गया है। मार्किट की वर्तमान कीमत *OP* पर हर फर्म जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। इस प्रकार फर्म की वस्तु की माँग अनन्त लोचदार बन जाती है। क्योंकि माँग वक्र फर्म का औसत आगम वक्र है, इसलिए *OP* कीमत पर *AR* वक्र *X*-अक्ष के समानान्तर है जिसे चित्र 20 1 (B) मे दिखाया गया है और *MR* वक्र इसके अनुरूप है। इसे तालिका 20 1 मे दिखाया गया है। जहाँ उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर *AR* और *MR* रु 20 पर स्थिर रहते है। माँग और पूर्ति की स्थितियो मे कुछ भी परिवर्तन होने से वस्तु की मार्किट कीमत मे परिवर्तन हो जाएगा जिसके परिणामस्वरूप फर्म का *AR* वक्र समानान्तर हो जाएगा।

तालिका 20 1: शुद्ध प्रतियोगिता में सीमान्त एव औसत आगम

उत्पादन की इकाइयाँ (Q)	औसत आगम (कीमत) AR(P)	कुल आगम (TR)	सीमान्त आगम (MR)
1	रु 20	रु 20	रु 20
2	20	40	20
3	20	60	20
4	20	80	20
5	20	100	20
6	20	120	20
7	20	140	20

(2) एकाधिकार या अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत (Under Monopoly or Imperfect Competition)—एकाधिकार या अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत लागत वक्र नीचे को ढालू उद्योग का माँग वक्र होता है तथा इसका सीमात आगम वक्र इसके नीचे स्थित होता है। एकाधिकार के अन्तर्गत औसत आगम और सीमात आगम का सम्बन्ध तालिका 20 2 की सहायता से समझा जा सकता है। औसत आगम की अपेक्षा सीमान्त आगम कम है। एकाधिकारी की वस्तु की माँग दी हुई होने पर, वह कीमत (औसत आगम) कम करके अपनी विक्रय की मात्रा बढा

सकता है, इससे सीमान्त आगम भी कम हो जाता है परन्तु सीमान्त आगम में कमी की दर औसत आगम मे कमी की दर से अधिक है। तालिका 20 2 मे, *AR* एक बार मे रु 2 कम होता है जबकि *MR* रु 4 कम हो जाता है। इसे चित्र 20 2 में दिखाया गया है जिसमे *MR* वक्र, *AR* वक्र से नीचे है और *AR* से *Y*-अक्ष पर खींचे गए लम्ब के मध्य मे स्थित है। नीचे की ओर ढालू सरल रेखा *AR* तथा *MR* का सम्बन्ध हमेशा यही होगा।
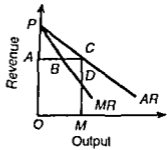
चित्र 20 2

तालिका 20 2 एकाधिकार मे सीमान्त एव औसत आगम

उत्पादन की इकाइया (Q)	औसत आगम (कीमत) AR (P)	कुल आगम (TR)	सीमान्त आगम (MR)
1	रु 20	रु 20	रु 20
2	18	36	16
3	16	48	12
4	14	56	8
5	12	60	4
6	10	60	0
7	8	56	- 4

इसे सिद्ध करने के लिए, *AR* वक्र के बिन्दु *C* से *Y*-अक्ष और *X*-अक्ष पर क्रमश *CA* और *CM* लम्ब गिराओ। *MR* को *CA* रेखा बिन्दु *B* पर और *CM* को बिन्दु *D* पर काटती है। हमे सिद्ध करना है कि $AB = BC$ चित्र 20.2 मे आयत *ACMO* उत्पादन *OM* का *CM* कीमत पर कुल आगम है और क्षेत्र *PDMO* भी उत्पादन *OM* का कुल सीमात आगम (ΣMR) के रूप मे कुल आगम को प्रकट करता है, इसलिए

$ACMO = PDMO$

या $ABDMO + \Delta BCD = ABDMO + \Delta PAB$

या $\Delta BCD = \Delta PAB$

परन्तु $\angle PAB = \angle BCD$, being right angles

और $\angle PBA = \angle CBD$ being vertically opposite $\angle s$

इस प्रकार $\Delta BCD = \Delta PAB$

अत $AB = BC$

इसलिए, *AR* वक्र से खींचे गए लब के आधे मे से *MR* वक्र गुजरेगा।

यदि *AR* वक्र *U* के आकार का हो तो उसके अनुरूप *MR* वक्र निकाला जा सकता

चित्र 20.3

चित्र 20.4

है। पहले AR वक्र पर स्पर्श-रेखा खींचकर और फिर ऊपर बताए गए सामान्य तरीके से उसके अनुरूप MR वक्र निकाला जा सकता है, जैसे चित्र 20.3
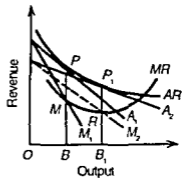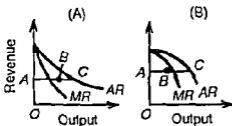
AR वक्रित (curved) औसत आगम वक्र है और OB उत्पादन पर सीमांत आगम निकालने के लिए AR को बिन्दु P पर स्पर्श करती हुई A_1 स्पर्श-रेखा खींची गयी है। अब A_1 स्पर्श-रेखा औसत आगम वक्र है जिस पर इसके अनुरूप सरल रेखा सीमान्त आगम वक्र M_1 खींचा गया है। इसी प्रकार उत्पादन OB_1 पर, P_1 बिन्दु से A_2 स्पर्श रेखा खींची गई है और इसके अनुरूप सरल रेखा सीमांत आगम वक्र M_2 है। बिन्दु M और R का मार्ग—जहाँ सरल रेखा-सीमान्त आगम वक्र M_1 और M_2, PB और P_1B_1 को काटते है—वक्र MR बनाता है जो AR वक्र के न्यूनतम बिन्दु में से गुजरता है।

यदि AR वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर (convex) हो जैसे चित्र 20.4 (A) में, तो MR वक्र AR वक्र के किसी बिन्दु से Y-अक्ष पर गिराए गए लम्ब को आधे से अधिक दूरी पर काटेगा। MR वक्र CA के मध्य बिन्दु B के बाएँ से गुजरता है।

दूसरी ओर, यदि AR वक्र मूल बिन्दु के नतोदर (concave) हो, तो MR वक्र Y-अक्ष पर गिराए गए लम्ब को आधे से कम दूरी पर काटेगा। चित्र 20.4 (B) मे, MR वक्र CA के मध्य बिन्दु B के दाएँ से गुजरता है।

औसत आगम, सीमान्त आगम तथा लोच (*AR, MR* and Elasticity)—एकाधिकारी या अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत AR वक्र और इसके अनुरूप MR वक्र का सच्चा संबंध AR वक्र की लोच पर निर्भर करता है। हम जानते है कि चित्र 20.5 मे C बिन्दु पर लोच[1],
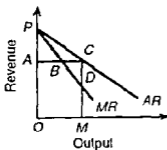
चित्र 20.5

$$E = \frac{CM}{PA} = \frac{CM}{CD}$$

($PA = CD$, समान त्रिभुजों के भुज)

$$\therefore \quad E = \frac{CM}{CM - DM} = \frac{AR}{AR - MR}$$

(CM और DM क्रमश AR और MR हैं)

$$E = \frac{A}{A - M}$$, जहाँ E लोच है, A औसत आगम और M सीमान्त आगम।

हल करने से

$$EA - EM = A$$
$$EA - A = EM$$
$$A(E-1) = EM$$

1 इस सूत्र को जानने के लिए 'माँग की लोच' अध्याय में 'बिन्दु विधि' देखिए।

$$A = \frac{EM}{E-1}$$

$$A = M\frac{E}{E-1}$$

इसी प्रकार सीमान्त आगम (M) को भी निकाला जा सकता है

$$E = \frac{A}{A-M}$$

हल करने से $E(A-M) = A$

$EA - EM = A$

या $EM = EA - A$

$$M = \frac{EA-A}{E}$$

$$M = \frac{A(E-1)}{E}$$

$$M = A\frac{E-1}{E}$$

इस सूत्र के आधार पर AR और MR के सम्बन्ध को चि. 20 6 (A) में समझाया गया है। औसत आगम वक्र PA के बिन्दु P पर माँग की लोच = 1 इस सूत्र के अनुसार

$$MR = AR\,\frac{1-1}{1} = AR\,\frac{0}{1} = 0$$

MR वक्र शून्य होता है जबकि यह X-अक्ष को बिन्दु F पर स्पर्श करता है। इस प्रकार, जब AR वक्र की लोच इकाई के बराबर होती है तो MR हमेशा शून्य होता है।

यदि AR वक्र की लोच इसकी पूरी लम्बाई तक अतिपरवलय (rectangular hyperbola) की
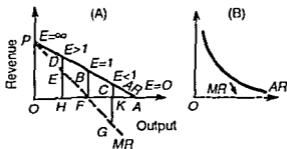
चित्र 20 6

भांति इकाई के बराबर हो, तो MR वक्र X-अक्ष पर पडेगा जैसाकि चित्र 20 6 (B) मे बिन्दुकित रेखा द्वारा दिखाया गया है।

यदि D बिन्दु पर AR की लोच इकाई से अधिक, मान लीजिए 3 हो, तो $MR = AR\frac{3-1}{3} = \frac{2}{3}$ इससे पता चलता है कि जब AR एक से अधिक हो, तो MR हमेशा धनात्मक होता है। चित्र 20 6 (A) मे यह EH है।

जब AR वक्र की लोच इकाई से कम, मान लीजिए, 1/2 हो, तो AR = ½ - 1/½ $= -\frac{1}{2} / \frac{1}{2} = -1$ यह प्रकट करता है कि MR ऋणात्मक है। AR वक्र के बिन्दु D पर लोच इकाई से कम है और MR ऋणात्मक KG है।

यदि AR की लोच अनन्त (E = ∞) हो, तो बिन्दु P पर चित्र 20 6 (A) में MR उसके अनुरूप होता है, जैसे चित्र में बिन्दु P पर।

अन्तिम, यदि AR वक्र की लोच शून्य हो, तो AR तथा MR मे अन्तर बडा हो जाता है और MR अक्ष-X के नीचे स्थित होता है।[3]
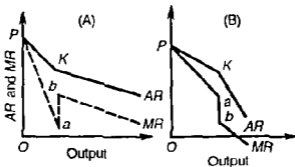
चित्र 20 7

(3) अल्पाधिकार के अन्तर्गत (Under Oligopoly)—अल्पाधिकार के अन्तर्गत औसत और सीमान्त आगम वक्रो का ढलान नीचे की ओर समतल नहीं होता। उनमे किंक (kinks) होते है क्योंकि अल्पाधिकार में विक्रेताओ की सख्या कम होती है, इसलिए एक विक्रेता द्वारा कीमत मे की गई कमी या वृद्धि के प्रभाव से अन्य फर्मों के व्यवहार मे परिवर्तन होगा। यदि एक फर्म अपनी वस्तु की कीमत बढा देती है, तो अन्य फर्में पुरानी कीमत की अपेक्षा अधिक लाभ उठाने के लिए उसका अनुकरण नहीं करेगी। इसलिए कीमत बढाने वाले विक्रेता की वस्तु की माँग मे कमी हो

2 AR और MR वक्रों का यह सबध विशुद्ध (pure) एकाधिकार की विचित्रता है, जहाँ एकाधिकारी फर्म के पास कोई स्थानापन्न नहीं होता। हाँ, अमरीकन अर्थशास्त्री AR तथा MR के सबध की उसी सामान्य ढग से व्याख्या करते हैं जैसे ऊपर के पृष्ठों में की गई है परन्तु अंग्रेज अर्थशास्त्री श्रीमती जॉन राबिन्सन और उसके अनुयायी स्टोनियर और हेग विशुद्ध एकाधिकार को साधारण (simple) एकाधिकार से अलग रखते हैं। विशुद्ध एकाधिकार में AR और MR वक्र चित्र 20 6 (B) की आकृति के होंगे क्योंकि इसमें स्थानापन्न बिल्कुल नहीं पाए जाते, जबकि एकाधिकार में AR वक्र कम लोचदार होता है।

3 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत AR और MR का यह सबध एक अपवाद के साथ ठीक होता है कि एकाधिकार के AR वक्र की अपेक्षा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का AR वक्र अधिक लोचदार होता है।

जाएगी। चित्र 20 7 (A) मे, बिन्दु K के बाद उसका औसत आगम वक्र लोचदार हो जाता है और इसका अनुरूप MR वक्र a से b तक असतत (discontinuous) रूप से बढता है और फिर नए ऊँचे स्तर b पर यह अपने मार्ग पर लगातार बढ़ता है।

दूसरी ओर, यदि अल्पाधिकारी विक्रेता अपनी वस्तु की कीमत घटा देता है, तो उसके प्रतियोगी अपनी वस्तुओ की कीमत घटाने मे उसका अनुकरण करते है ताकि वे अपनी बेच को बढा सके। चित्र 20 7 (B) मे उसका AR वक्र बिन्दु K के बाद कम लोचदार बन जाता है। इसके अनुरूप वक्र MR का a से b तक अनुलम्बात्मक पतन होता है और फिर यह अपेक्षाकृत नीचे स्तर पर ढालू हो जाता है।

3 आगम वक्रो का महत्त्व
(IMPORTANCE OF REVENUE CURVES)

आर्थिक विश्लेषण के लिए AR तथा MR वक्र महत्त्वपूर्ण औज़ार है। मार्किट की सब स्थितियों मे, AR वक्र उत्पादक के लिए कीमत रेखा है। फर्म के AR वक्र को AC वक्र से सबधित करके यह पता लगाया जा सकता है कि फर्म सामान्य से बहुत अधिक या सामान्य लाभ उठा रही है अथवा घाटे मे चल रही है। यदि AR वक्र सतुलन बिन्दु पर AC वक्र को स्पर्श करता है तो फर्म सामान्य लाभ कमा रही है। यदि AR वक्र सतुलन बिन्दु पर AC वक्र से ऊपर स्थित है, तो फर्म सामान्य लाभ से बहुत अधिक लाभ ले रही है। यदि AR वक्र सतुलन बिन्दु पर AC वक्र से नीचे स्थित है, तो फर्म घाटे में चल रही है।

उनके सबध से यह भी जाना जा सकता है कि फर्म अपनी पूर्ण क्षमता के अनुसार उत्पादन कर रही है या क्षमता से कम। यदि AR वक्र AC वक्र को न्यूनतम बिन्दु पर स्पर्श करता है (जैसाकि विशुद्ध प्रतियोगिता मे), तो फर्म अपनी पूर्ण क्षमता के अनुसार उत्पादन कर रही है। जहाँ ऐसा नहीं है (एकाधिकार या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे), वहाँ फर्म क्षमता से कम उत्पादन कर रही है।

MR वक्र को जब MC वक्र काटता है, तो यह मार्किट की सब स्थितियो मे फर्म की सतुलन स्थिति को निर्धारित करता है। आपस मे काटने का यह बिन्दु वास्तव मे फर्म की कीमत, उत्पादन, लाभ या हानि को निर्धारित करता है।

साधन-सेवाओं के विषय मे औसत-आगम सिद्धातो का प्रयोग उनकी कीमतो के निर्धारण मे सहायक है। साधनो की कीमतो के निर्धारण मे AR और MR वक्रो का आकार उल्टे U के समान होता है और वे औसत और सीमात आगम उत्पादकता वक्र (ARP और MRP) बन जाते है और भिन्न-भिन्न मार्केट स्थितियो मे फर्म के सतुलन की व्याख्या करने मे उपयोगी औज़ार होते है।

प्रश्न

1 सिद्ध कीजिए कि माँग की लोच = $\frac{\text{औसत आगम}}{\text{औसम आगम} - \text{सीमान्त आगम}}$

2 औसत आगम एव सीमात आगम वक्रो के सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए और इनकी माँग की लोच पर निर्भरता की विवेचना कीजिए।

3 पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता मे औसत आगम और सीमात आगम वक्रो के परस्पर सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए।

अध्याय 21

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत पूर्ति वक्र
(SUPPLY CURVE UNDER PERFECT COMPETITION)

कीमतों के निर्धारण और वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन के अध्ययन में पूर्ति-वक्र एक विश्लेषणात्मक साधन है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थितियों में पूर्ति-वक्र की प्रकृति का अध्ययन इस अध्याय का प्रमुख लक्ष्य है। परन्तु पहले पूर्ति के सिद्धान्त की व्याख्या की जा रही है।

1. पूर्ति का नियम
(THE LAW OF SUPPLY)

'पूर्ति' शब्द का तात्पर्य है एक वस्तु की वे विभिन्न मात्राएँ जिन्हें दी हुई समय की एक निश्चित अवधि में उत्पादक विभिन्न कीमतों पर बेचने को तैयार होते हैं। माँग की तरह पूर्ति भी हमेशा किसी निश्चित कीमत पर होती है और समय की किसी निश्चित अवधि से संबंध रखती है। परन्तु माँग के विपरीत, कीमत और पूर्ति का एक-दूसरे से सीधा संबंध होता है। जितनी कम कीमत होगी, पूर्ति भी उतनी ही कम होगी और कीमत जितनी अधिक होगी, पूर्ति भी उतनी ही अधिक। यह पूर्ति का नियम है जो कीमत और बिक्री के लिए प्रस्तुत मात्राओं के फलनात्मक (functional) संबंध को प्रकट करता है।

माँग के नियम की भाँति, पूर्ति के नियम को अनुसूची और वक्र की सहायता से समझाया जाता है। पूर्ति-अनुसूची वह है जो यह बताए कि विभिन्न कीमतों पर एक दी हुई वस्तु की, बिक्री के लिए समय की प्रति इकाई कितनी विभिन्न मात्राएँ प्रस्तुत की जाती हैं। तालिका 21.1 में सेबों के लिए एक उपकल्पित पूर्ति अनुसूची दिखाई गई है। इसके अनुसार रु 5 कीमत पर 400 कि.ग्रा. वस्तु बेची जाती है और कीमत के कम होने पर पूर्ति भी कम होकर अन्तत 50 कि.ग्रा. हो जाती है।

तालिका 21.1

कीमत रु में प्रति किलोग्राम	पूर्ति की मात्रा किलोग्राम में
5	400
4	300
3	200
2	100
1	50

यदि हम इस पूर्ति-अनुसूची को चित्र में व्यक्त करें, तो हमें पूर्ति वक्र S प्राप्त होता है जैसेकि चित्र 21.1 (A) में। पूर्ति-वक्र का ढलान धनात्मक (positive) होता है। यह ऊपर की ओर दाएँ को जाता है। वक्र S_1 कीमत P पर पूर्ति की बढ़ी हुई मात्रा को प्रकट करता है। यह (S_1) वक्र मूल-वक्र S के दाएँ को और उससे नीचे है, जहाँ सब कीमतों पर अधिक मात्रा बेची जाती है, जबकि वक्र S_2 कीमत P पर पूर्ति की घटी हुई मात्रा को प्रकट करता है।

अपवाद (Exceptions)—पूर्ति के नियम के कुछ अपवाद भी हैं, जिनके कारण कीमत गिरने पर पूर्ति बढ़ जाती है और कीमत बढ़ने पर पूर्ति कम हो जाती है।

प्रथम, जब यह आशा हो कि कीमतें बहुत गिर जाएँगी तो विक्रेता अपना स्टॉक खत्म करने के
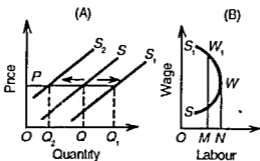
चित्र 21 1

लिए अधिक मात्रा बेचेंगे। अल्पकालीन में ऐसा होता है।

द्वितीय, दीर्घकालीन में पूर्ति लागतों में परिवर्तनों से प्रभावित होती है और लागतें प्रौद्योगिकी (technology) में परिवर्तन से प्रभावित होती हैं।

तृतीय, आदतों, रुचियों, फैशनों और मौसम में परिवर्तन तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय हलचलों से भी वस्तुओं की पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है।

अन्तिम, कभी-कभी किसी वस्तु या सेवा की कीमत बढ़ने से उसकी पूर्ति कम हो जाती है। श्रम-सेवा के विषय में विशेष रूप से ऐसा होता है। जब मजदूरी एक ऐसे स्तर तक पहुँच जाती है जहाँ श्रमिक सतुष्ट अनुभव करते हैं, तो अधिक अवकाश का उपभोग करने के लिए वे पहले से कम काम करेंगे। उनमें यह प्रवृत्ति भी होगी कि वे अपने बच्चों को काम पर भेजने की बजाय पढ़ाएँ। ऐसी स्थिति में पूर्ति वक्र का ढलान पीछे की ओर होगा जैसाकि चित्र 21 1 (B) में SS_1 दिखाया गया है। मजदूरी की WN दर पर, श्रम की पूर्ति ON है। परन्तु जब मजदूरी बढ़ने लगती है, तो श्रम की पूर्ति घट जाती है। मजदूरी की W_1M दर पर श्रम की पूर्ति घटकर OM हो जाती है।[1]

2 पूर्ति की लोच
(ELASTICITY OF SUPPLY)

पूर्ति पर लोच का सिद्धात भी लागू होता है। कीमत में परिवर्तन होने से विक्रेताओं की ओर से पूर्ति में परिवर्तन की कोटि या अनुक्रियाशीलता की मात्रा को पूर्ति की लोच कहते हैं। (The elasticity of supply is the degree or responsiveness of change in supply to a change in price on the part of sellers) पूर्ति की लोच का गुणाक है

$$Es = \frac{\text{पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन}}{\text{पूर्ति की मात्रा}} \div \frac{\text{कीमतों में परिवर्तन}}{\text{कीमत}}$$

1 विस्तृत विवेचन के लिए उदासीनता-वक्र प्रणाली के Uses में श्रम की व्यक्तिगत पूर्ति की समस्याएँ भी देखिए।

$= \frac{\Delta q}{q} \div \frac{\Delta p}{p} = \frac{\Delta q}{\Delta p} \cdot \frac{p}{q}$ जहाँ q पूर्ति की मात्रा है, और p कीमत, तथा Δ परिवर्तन को प्रकट करता है। पूर्ति की लोच का गुणाक (coefficient) हमेशा धनात्मक होता है।

पूर्ति की लोच की पाँच अवस्थाएँ होती है

(i) इकाई से अधिक पूर्ति लोच (Supply-Elasticity Greater than Unity)—जब कीमत मे परिवर्तन से, पूर्ति मे अनुपात से अधिक परिवर्तन हो तो पूर्ति की लोच इकाई से अधिक होगी। चित्र 21 2 (A) मे कीमत मे परिवर्तन CA की अपेक्षा पूर्ति मे परिवर्तन BD अधिक है। वक्र S_1 पूर्ति की सापेक्ष लोच दर्शाता है।

(ii) इकाई के बराबर पूर्ति-लोच (Supply-Elasticity Equal to Unity)—जब कीमत मे
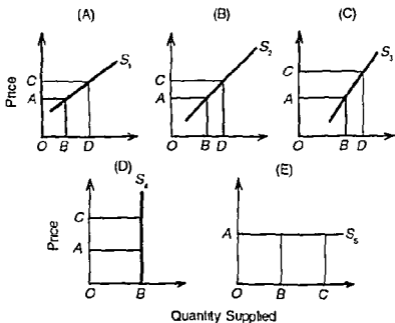
चित्र 21 2

परिवर्तन से पूर्ति की मात्रा मे ठीक उसी अनुपात मे परिवर्तन होता है, $BD = CA$, तो पूर्ति की लोच इकाई के बराबर होगी। चित्र 21.2 (B) मे वक्र S_2 जो 45° रेखा है पूर्ति की इकाई लोच बताता है।

(iii) इकाई से कम पूर्ति लोच (Supply-Elasticity Less than Unity)—जब कीमत मे परिवर्तन होने से पूर्ति की मात्रा मे अनुपात से कम परिवर्तन हो तो पूर्ति की लोच इकाई से कम या निरपेक्ष होती है। चित्र 21 2 (C) मे $BD = CA$। अत S_3 वक्र कम लोच वाला है।

(iv) पूर्णतया बेलोच पूर्ति (Perfectly Inelastic Supply)—जब कीमत मे परिवर्तन होने से पूर्ति की मात्रा मे बिल्कुल कोई परिवर्तन न हो तो पूर्ति लोचरहित होती है। चित्र 21 2 (D) मे अनुलम्ब वक्र S_4 निरपेक्ष पूर्ति को प्रकट करता है।

(v) पूर्णतया लोचदार पूर्ति (Perfectly Elastic Supply)—जब कीमत मे परिवर्तन न होने पर

भी वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन हो तो पूर्ति की लोच अनन्त या पूर्णतया लोचदार होती है, जैसे चित्र 21.2 (E) में है।

3 पूर्ति की लोच का माप
(MEASUREMENT OF FLASTICITY OF SUPPLY)

पूर्ति की लोच को बिन्दु विधि द्वारा चित्र 21.3 द्वारा समझाया गया है। पूर्ति वक्र S_1 के बिन्दु P पर पूर्ति की लोच निम्न फार्मूला द्वारा मापी जाती है

$E_s = \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}$, जहां $\frac{\Delta q}{\Delta p}$ पूर्ति वक्र S_1 की ढलान है जो $\frac{OB}{BP}$, और $\frac{p}{q} = \frac{BP}{OB}$ इस प्रकार, S_1 पूर्ति वक्र की बिन्दु P पर लोच है

$$\frac{OB}{BP} \times \frac{BP}{OB} = 1 \text{ (इकाई)}$$

इसी प्रकार, पूर्ति वक्र S_2 के बिन्दु P पर लोच है

$$\frac{AB}{BP} \times \frac{BP}{OB} = \frac{AB}{OB} < 1 \text{ (इकाई से कम)}$$

और S_3 पूर्ति वक्र के बिन्दु P पर लोच है

$$\frac{A_1B}{BP} \times \frac{BP}{OB} = \frac{A_1B}{OB} > 1 \text{ (इकाई से अधिक)}$$
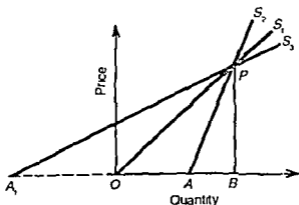
चित्र 21.3

4. पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म एवं उद्योग का अल्पकालीन पूर्ति वक्र (THE SHORT-RUN SUPPLY CURVE OF THE FIRM AND INDUSTRY UNDER PERFECT COMPETITION)

अल्पकाल ऐसा समय होता है जिसमें उत्पादन के स्थिर साधनों जैसे प्लाट, मशीनरी आदि में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इसलिए फर्म केवल परिवर्तनशील साधनों की मात्रा बढाकर उत्पादन बढा सकती है। एक फर्म का पूर्ति वक्र विभिन्न वैकल्पिक कीमतों पर एक वस्तु की बिक्री के लिए प्रस्तुत की गई विभिन्न मात्राओं को प्रकट करता है। पूर्ण प्रतियोगी फर्म वस्तु की उतनी मात्रा बेचेगी जिस पर उसकी सीमांत लागत और कीमत ($MC = AR$) बराबर होंगे। पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत फर्म के लिए उद्योग द्वारा निश्चित होती है, इसलिए कीमत रेखा X-अक्ष के समानान्तर होती है, जैसे चित्र 21.4 में P, P_1, P_2 अल्पकालीन में फर्म, कम से कम, अपनी परिवर्तनशील लागत को अवश्य पूरा करेगी। इस प्रकार, फर्म का अल्पकालीन पूर्ति वक्र उसके सीमान्त लागत (MC) वक्र का वह भाग होता है जो औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) वक्र से ऊपर स्थित हो। इसे चित्र 21.4 (A) में दिखाया गया है जहाँ SMC वक्र बिन्दु B पर AVC वक्र को काटता है और OQ_2 मात्रा बेची जाती है। उत्पादन की इससे कम मात्रा पर SMC वक्र, AVC वक्र के नीचे स्थित है। फर्म OQ_2 से कम उत्पादन नहीं करेगी क्योंकि इसमें फर्म B के दाएँ को अपनी AVC को ही पूरा करेगी। कीमत OP पर फर्म OQ मात्रा बेचेगी और सामान्य लाभ उठाएगी। अपेक्षाकृत ऊँची OP_1 कीमत पर OQ_1 मात्रा बेचने से फर्म को सामान्य से बहुत अधिक लाभ होगा। इस प्रकार SMC वक्र का वह भाग जो ऊपर की ओर दाएँ को है तथा AVC वक्र को काटने के बिन्दु से ऊपर स्थित है, फर्म का अल्पकालीन पूर्ति वक्र है।
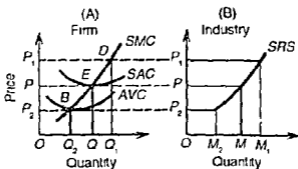
चित्र 21.4

पूर्ण प्रतियोगी उद्योग का अल्पकालीन पूर्ति वक्र SRS फर्मों के उन सीमांत लागत वक्रों का पार्श्व योग (lateral summation) है, जो AVC वक्रों के न्यूनतम बिन्दुओं से ऊपर स्थित होते हैं जैसाकि चित्र 21.4 (B) में दर्शाया गया है। यदि यह मान लिया जाए कि उद्योग की सब फर्मों के लागत वक्र समरूप है और उद्योग में 100 फर्में है तो उद्योग की OP_2 कीमत पर पूर्ति $OM_2 = OQ_2 \times 100$, कीमत OP पर पूर्ति $OM = OQ \times 100$ और OP_1 कीमत पर पूर्ति $OM_1 = OQ \times 100$ होगी। यदि कीमत OP_2 से कम हो जाए तो उद्योग पूर्ति को बिल्कुल बन्द कर देगा। इस प्रकार उद्योग का

अल्पकालीन पूर्ति वक्र *SRS* सदैव बाएँ से दाएँ ऊपर को ढलान वाला होता है क्योंकि फर्मों के सीमांत लागत वक्र सदैव ऊपर की ओर गतिशील होते हैं। निष्कर्ष यह है कि फर्मों के अल्पकालीन सीमांत लागत वक्रों का ढलान धनात्मक होता है, इसलिए पूर्ण प्रतियोगी उद्योग के अल्पकालीन पूर्ति वक्र का ढलान ऊपर की ओर होता है।

उद्योग के पूर्ति वक्र की ढलान उद्योग की फर्मों के सीमांत लागत वक्रों के ढलान पर निर्भर करती है। नीची कीमतों पर उद्योग का पूर्ति वक्र अधिक लोचदार होता है और ऊँची कीमतों पर कम लोचदार। हाँ, यदि उद्योग की फर्मों की लागतों में बहुत थोड़ा अन्तर हो तो पूर्ति वक्र अधिक लोचदार होगा और यदि लागतें बहुत भिन्न हैं, तो पूर्ति वक्र कीमतों के एक बड़े क्षेत्र में, कम लोचदार होगा।

यदि उद्योग की सब फर्में एक साथ परिवर्तनशील साधनों का विस्तार या संकुचन कर दें जिससे उनकी कीमतों में परिवर्तन हो जाता है, तो अल्पकालीन पूर्ति वक्र नीचे या ऊपर की ओर सरक सकता है। यदि फर्म के साधनों के विस्तार से उनकी कीमतें बढ़ जाती हैं, तो फर्मों के लागत वक्रों के ऊपर को सरकने से उद्योग का पूर्ति वक्र भी ऊपर को सरक जाएगा। दूसरी ओर फर्मों द्वारा साधनों के कम प्रयोग से उनकी कीमत गिर जाएगी और फर्मों के लागत वक्र तथा उद्योग का पूर्ति वक्र नीचे को सरक जाएँगे।

5. पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति वक्र (THE LONG-RUN SUPPLY CURVE OF THE INDUSTRY UNDER PERFECT COMPETITION)

पूर्ण प्रतियोगी उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति वक्र एक वस्तु की विभिन्न कीमतों पर बिक्री के लिए प्रस्तुत की गई विभिन्न मात्राओं को प्रकट करता है। दीर्घकालीन में, फर्में वर्तमान प्लांट और उपकरणों को बदल सकती हैं, या उद्योग में आ सकती हैं, और उद्योग को छोड़ भी सकती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि कीमत हमेशा सीमांत लागत के बराबर होती है और न्यूनतम औसत लागत के भी (कीमत = *LMC* = *LAC*)। हाँ, फर्मों के उद्योग में आने या जाने से साधनों की कीमत का प्रभाव पड़ता है जिससे व्यक्तिगत फर्मों के लागत वक्र सरक जाते हैं। इस प्रकार, दीर्घकालीन में पूर्ति वक्रों का ढलान ऊपर को, क्षैतिज या नीचे को हो सकता है जो इस बात पर निर्भर करता है कि उद्योग प्रतिफल के किस नियम के अन्तर्गत चल रहा है।

बढ़ती लागत का उद्योग (Increasing Cost Industry)—बढ़ती लागत का उद्योग वह होता है जिसका दीर्घकालीन पूर्ति वक्र बाएँ से दाएँ ऊपर की ओर ढालू होता है, जब उद्योग के प्रसार करने से साधन कीमतें बढ़ती हैं। जब उद्योग बढ़ती लागत या घटते प्रतिफल के नियम के अन्तर्गत चल रहा हो तो नई फर्मों के आने से उद्योग के विस्तार का परिणाम यह होगा कि साधनों की माँग बढ़ जाएगी जिससे उनकी कीमत बढ़ेगी और उनसे फर्मों के लागत वक्र ऊपर को सरक जाएँगे। इसका मतलब है कि औसत लागत वक्रों का न्यूनतम बिन्दु पहले से ऊँचा हो जाएगा। लागत वक्रों के ऊपर को सरकने का कारण यह होता है कि बाहरी अमितव्ययिताएँ (diseconomies) जैसे कच्चे माल, प्लांट और उपकरण, श्रम की मजदूरी आदि की कीमतों में वृद्धि होती है। इससे दीर्घकालीन उद्योग के पूर्ति वक्र का ढलान नीचे की ओर दाएँ को हो जाता है। चित्र 21.5 (A) में संतुलन की मूल कीमत *OP* है जिस पर प्रत्येक फर्म *OQ* मात्रा का, और चित्र के भाग (B) में समस्त उद्योग *OM* मात्रा का उत्पादन करता है जो *OQ* को फर्मों की संख्या से गुणा करने पर प्राप्त होता है। जब भाग (B) में माँग *D* से बढ़कर D_1 हो जाती है तो उद्योग का संतुलन बिन्दु *B* बन जाता है। कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है। जब भाग (A) में *SMC* वक्र कीमत रेखा P_1 को *G* बिन्दु पर काटती है तो

वर्तमान फर्में अल्पकाल में उत्पादन बढ़ाकर OQ_2 कर देती हैं। फर्में प्रति इकाई GH लाभ कमाती हैं। इन लाभों से आकर्षित होकर दीर्घकाल में, नई फर्में उद्योग में प्रवेश करती हैं। क्योंकि यह बढ़ती लागत का उद्योग है, साधन कीमतें बढ़ती हैं और फर्मों के लागत वक्र LAC, SAC और SMC ऊपर सरक कर LAC_1, SAC_1 और SMC_1 हो जाते हैं। उद्योग के उत्पादन में वृद्धि से उद्योग का अल्पकालीन पूर्ति वक्र S से S_1 पर सरक जाता है और माँग वक्र D_1 को बिन्दु C पर काटता है जिससे नई संतुलन कीमत भाग (B) में OP_1 होती है। इस OP_1 कीमत पर, फर्म E_1 बिन्दु पर संतुलन में है जहाँ $P_1 = LAC_1 = SAC_1 = SMC_1$, प्रत्येक फर्म OQ_1 उत्पादन कर रही है और उद्योग का उत्पादन ON है। उद्योग के प्रारम्भिक और नए संतुलन के बिन्दु A और C को मिलाने से दीर्घकालीन पूर्ति वक्र LRS बन जाता है जिसका ढलान ऊपर की ओर दाएँ को है जो यह प्रकट करता है कि जब उद्योग का विस्तार होता है तो लागत बढ़ जाती है, जैसाकि भाग (B) में।

चित्र 21.5 (A) में, अधिक ऊँचे लागत वक्रों LAC_1, SAC_1 और SMC_1 का दाईं ओर सरकना इस
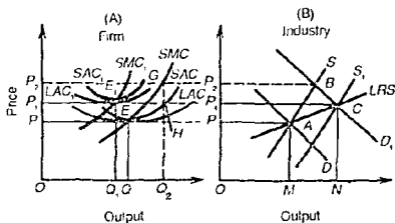
चित्र 21.5

धारणा के कारण दिखाया गया है कि उत्पादन की अपेक्षाकृत ऊँची लागत पर ध्यान न देकर फर्में अधिक उत्पादन इसलिए करती हैं क्योंकि परिवर्तनशील साधनों के अनुपात में स्थिर साधनों की कीमत कम बढ़ती है। यदि परिवर्तनशील साधनों के अनुपात में स्थिर साधनों की कीमतें अधिक बढ़ जाएँ तो लागत वक्र ऊपर की ओर बाएँ को धकेल दिए जाएँगे। फर्में आकार में छोटी हो जाएँगी और पहले से कम उत्पादन करेंगी। यदि साधन कीमतों में आनुपातिक वृद्धि होती है, तो लागत वक्र सीधे ऊपर को धकेले जाएँगे और फर्मों का नया उत्पादन पहले जितना ही होगा।

स्थिर लागत उद्योग (Constant Cost Industry)—स्थिर लागत उद्योग वह होता है जब उद्योग का उत्पादन बढ़ने पर साधन कीमतें स्थिर रहती हैं और उसका दीर्घकालीन पूर्ति वक्र समानान्तर होता है। स्थिर लागत उद्योग पर बाहरी मितव्ययिताओं और अमितव्ययिताओं का ऐसे ढंग से प्रभाव पड़ता है कि वे एक-दूसरे का प्रति-संतुलन कर देते हैं जिससे दीर्घकालीन में उद्योग की लागत स्थिर रहती है। दूसरे शब्दों में, ऐसी स्थिति में विभिन्न साधनों की पूर्ति पूर्ण लोचदार होती है। जब दीर्घकालीन उद्योग में नई फर्म आती है, तो उन्हें साधन उसी कीमत पर प्राप्त हो जाते हैं। इसके विपरीत, फर्मों की संख्या घट जाने से भी साधन कीमतों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसलिए

लागत वक्रो मे कोई परिवर्तन नहीं होता और वे बिल्कुल नहीं सरकते। ऐसी परिस्थितियो मे, LAC वक्र का न्यूनतम बिन्दु अपरिवर्तित रहता है। चित्र 21 6 के भाग (B) मे उद्योग A बिन्दु पर सतुलन मे होता है जहा इसका अल्पकालीन पूर्ति वक्र S इसके माँग वक्र D को काटता है। यह OM मात्रा OP कीमत पर उत्पादित करके बेचता है। इस कीमत पर, फर्म E बिन्दु पर दीर्घकालीन सतुलन मे होती है, जहाँ $P = LAC = SAC = SMC$ और OQ उत्पादन करती है जैसाकि भाग (A) मे दिखाया गया है। मान लीजिए कि उद्योग कि माग D से बढकर D_1 हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप, नया सतुलन बिन्दु B अधिक ऊँची कीमत OP_1 निर्धारित करता है। इस ऊँची कीमत पर वर्तमान फर्मे उत्पादन को OQ_1 तक बढाती है जब G बिन्दु पर SMC वक्र कीमत रेखा P_1 को काटता है जिससे फर्मे प्रति इकाई GH लाभ कमाती है। इन लाभो से आकर्षित होकर, नई फर्मे उद्योग मे प्रवेश करेंगी, पूर्ति बढाएगी और उद्योग का अल्पकालीन पूर्ति वक्र दाईं ओर S से S_1 को सरक जाता है। यह माग वक्र D_1 के साथ नया सतुलन बिन्दु C स्थापित करता है तथा कीमत पुन OP पर स्थापित होती है। इस कीमत पर भाग (A) मे प्रत्येक फर्म अपने मूल दीर्घकालीन सतुलन बिन्दु E पर वापिस आ जाती है। ऐसा इसलिए कि स्थिर लागत उद्योग के अन्तर्गत, साधन कीमते स्थिर रहती है और साधनो की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है। सतुलन बिन्दुओ A और C को मिलाने मे भाग (B) मे LRS वक्र प्राप्त होता है जो समानातर है और व्यक्त करता है कि जब उद्योग बढता है तो लागते स्थिर रहती है। उद्योग के प्रसार को LRS वक्र के साथ OM से ON पर उत्पादन मे वृद्धि द्वारा दिखाया गया है जबकि प्रत्येक फर्म का उत्पादन OQ पर स्थिर रहता है। यह फर्मो की सख्या मे वृद्धि के कारण है जो प्रत्येक समान उत्पादन OQ कर रही है।
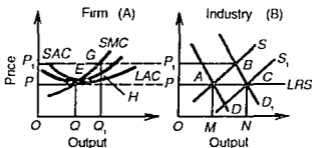
चित्र 21 6

घटती लागत का उद्योग (Decreasing Cost Industry)—घटती लागत उद्योग मे दीर्घकालीन पूर्ति वक्र नीचे की ओर ढालू होता है, क्योंकि उद्योग के प्रसार से साधन कीमते गिरती है। इसे चित्र 21 7 मे दर्शाया गया है। भाग (B) मे, D और S वक्रो के काटन से उद्योग A बिन्दु पर मूल सतुलन मे है जिससे OM उत्पादन और OP कीमत निर्धारित होते है। इस कीमत पर प्रत्येक फम E बिन्दु पर दीर्घकालीन सतुलन मे है और OQ उत्पादन करती है। माँग के D से D_1 बढने से नया सतुलन B बिन्दु पर होता है और कीमत बढकर OP_2 होती है। परिणामस्वरूप, वर्तमान फर्मे उत्पादन को OQ_2 बढाती है और प्रति इकाई GH लाभ कमाती है। इन लाभो से आकर्षित होकर, नई फर्मे उद्योग मे प्रवेश करती है, उद्योग के उत्पादन को बढाती है और साधन कीमतो को कम करती है जिससे उद्योग का पूर्ति वक्र S से S_1 को सरक जाता है, जो D_1 वक्र के साथ C बिन्दु पर नया सतुलन स्थापित करता है। A और C बिन्दुओ को मिलाने से नीचे की ओर ढालू LRS वक्र
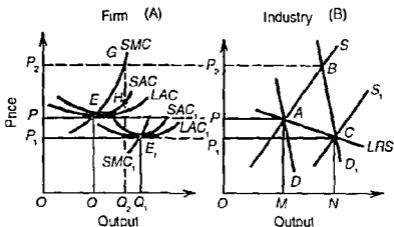
चित्र 21 7

प्राप्त होता है। अब कीमत गिरकर OP_1 हो जाती है। कीमत मे कमी साधन कीमतो मे कमी के कारण होती है, जो प्रशिक्षित सस्ता श्रम, सस्ती और बेहतर विपणन और परिवहन सुविधाओ आदि जैसी बाहरी किफायतो के पाए जाने से होती है। बाहरी किफायतो के होने से लागते कम होती है, जिनसे लागत वक्र *LAC SAC* और *SMC* से सरक कर नीची कीमत OP_1 पर LAC_1, SAC_1 और SMC_1 हो जाते है। फर्म अब E_1 बिन्दु पर भाग (B) मे सतुलन मे है जहाँ $P_1 = LAC_1 = SAC_1 = SMC_1$। प्रत्येक फर्म के लागत वक्र दाईं ओर शिफ्ट करते दिखाए गए है जिससे उसका उत्पादन बढकर OQ_1 होता है और उद्योग का उत्पादन *ON*। इसका अभिप्राय है कि लागतो के गिरने से फर्मों की सख्या मे कमी हुई है, क्योकि कुछ फर्मे अपनी औसत लागतें पूरा न करने के कारण प्रतियोगिता से बाहर हो गई है, जबकि अन्य फर्मों ने अपने उत्पादन बढा लिए है।

अत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि पूर्ण प्रतियोगिता मे दीर्घकालीन पूर्ति वक्र की ढाल ऊपर, क्षैतिज या नीचे की ओर होगी। यह इस बात पर निर्भर करता है कि उद्योग बढती, स्थिर या घटती लागतो के नियम के अन्तर्गत कार्य करता है।

6. पूर्ण प्रतियोगिता और पूर्ति वक्र की असगति
(INCOMPATIBILITY OF SUPPLY CURVE AND PERFECT COMPETITION)

मार्शल ने यह बताया कि यदि बाहरी किफायते दीर्घकालीन औसत लागत वक्रो को परस्पर निर्भर बना दे, तो बढते प्रतिफलो या घटती लागतो के अन्तर्गत दीर्घकालीन नीचे की ओर ढालू पूर्ति वक्र पूर्ण प्रतियोगिता के साथ मेल खाता है। पर पीगू (Pigou), सराफा (Saraffa)[2] और कॉलडर (Kaldor) ने प्रतियोगी सतुलन ओर बढते प्रतिफल की अनुरूपता की सभावना को चुनौती दी है क्योकि फर्मों के दीर्घकालीन औसत लागत वक्र एक-दूसरे से स्वतत्र होते है। पीगू और कॉलडर दोनो का कहना है कि बढते प्रतिफल बाहरी और आन्तरिक किफायतो का परिणाम होते है, जो

2 P Saraffa, 'The Laws of Returns under Competition Conditions', *E J*, 1926, reprinted in *Readings in Price Theory*, A E A, 1950

एक-दूसरे से स्वतन्त्र होने के कारण अनिश्चित विस्तार का कारण होते है। इससे प्रतियोगी सतुलन एक गणितीय असभावना है।

जब उत्पादन का पैमाना बढता है तो घटती लागतो के नियम के अन्तर्गत चलने वाले उद्योग की औसत लागते गिरने लगती है। *यदि स्थिर साधन अविभाज्य हो, तो वे उत्पादन की औसत* लागत को घटा सकते है परन्तु एक निश्चित बिन्दु के बाद वे लागतो को बढा भी सकते है। प्रोफेसर कॉलडर के अनुसार उद्यमी एक अविभाज्य साधन हे, जो धीरे-धीरे ऐसे निर्णयो से दब जाता है जिन्हे वह ठीक रूप से और उचित समय पर नहीं कर सकता। इससे दक्षता घट जाती है और लागते बढ जाती है। कॉलडर उद्यमी के कार्यों को अनिश्चितता उठाना, देखभाल और समन्वय के अन्तर्गत विभक्त करता है। इनमे से केवल समन्वय (coordination) स्थिर साधन है। शेष दोनो परिवर्तनशील है। समन्वय उद्यमी का प्रमुख कार्य है, जो स्थिर और अविभाज्य इकाई है और जहाँ श्रम का कोई विभाजन सभव नहीं है। इसमे सन्देह नहीं कि एक से अधिक उद्यमी अधिक दक्षता से चितन और कार्य कर सकते है परन्तु यदि उनकी सख्या बहुत हो जाए तो किसी लाभदायक निर्णय पर पहुँचना कठिन हो जाता है। ई ए जी राबिन्सन लिखते है, "कोई भी व्यक्ति, जिसने कमेटियो के साथ व्यापार किया है, जानता है कि पाँच व्यक्ति किसी निर्णय पर पहुँच सकते हैं, पन्द्रह व्यक्तियो को एक व्यक्ति, जिसने अपने मन मे फैसला कर लिया है, मना सकता है परन्तु पच्चीस व्यक्तियो की व्यापार कमेटी एक वादविवाद करने वाली सभा बन जाती है।" परन्तु एक फर्म के सफल कार्यकरण के लिए निर्णय करने मे समन्वय अत्यन्त आवश्यक है। एक विभाग अन्य विभागो को प्रभावित करता और उनसे प्रभावित होता है इसलिए सब निर्णय एक साथ किए जाते है। जब फर्मे आकार मे विस्तार करती है तो विभिन्न विभागो के समन्वय मे कठिनाई होती है। निर्णय करने मे देर लगती है। प्रबध करना मुश्किल हो जाता है। दक्षता घट जाती है और लागते बढ जाती है। जैसाकि राबिन्सन ने कहा है, "एक पलटन कमाडर की गलती केवल तुरन्त 'जैसे थे' *की माँग करती है। परन्तु फौज के एक कमाडर की गलती को ठीक करने के लिए कई दिनो के* परिश्रम की जरूरत पड सकती है।" जब समन्वय की ये समस्याएँ खडी होती है, तो वे उद्यमियो की योग्यता, वस्तु की प्रकृति, वस्तु के मार्किट ओर उसका उत्पादन करने वाली फर्म पर निर्भर करती है। एक पुरानी फर्म के सामने बढती लागतो की यह समस्या उस समय नहीं आती जब उसका प्रबन्ध एक अनुभवी उद्यमी के हाथ मे हो और जो एक प्रामाणिक वस्तु का उत्पादन करती है जिसकी माँग रुचियो और फैशन मे परिवर्तन के अनुकूल लगातार ढलती रहती है। ऐसी दक्ष फर्म प्रतियोगी फर्मो से बढ जाएगी, उनके मार्किट पर अधिकार कर लेगी, उनके लाभ को कम कर देगी और अन्त मे उन्हे उद्योग छोडने पर मजबूर कर देगी। फर्मो की सख्या घट जाएगी और पूर्ण प्रतियोगिता समाप्त हो जाएगी।

प्रोफेसर चैम्बरलेन इस बात से सहमत नहीं है कि अविभाज्य साधनो के होने से दीर्घकालीन औसत लागते बढ जाती है। उसके अनुसार, दीर्घकालीन मे सब साधन परिवर्तनशील होते है। *फिर पूर्ण प्रतियोगिता मे हर फर्म के लिए वस्तुओ और साधनो की कीमतो का निर्धारण मार्किट* की शक्तियाँ करती है और वहाँ समन्वय की बहुत कम सम्भावना होती है। उद्यमी का प्रमुख कार्य न्यूनतम औसत लागत के अनुसार उत्पादन को ढालना है। एक बार ऐसा हो जाने पर फर्म को किसी और समायोजन (adjustment) की जरूरत नहीं, जब तक कि मार्किट की कीमतो मे परिवर्तन न हो। अत कीमते इसलिए नहीं बढती कि उद्यमी एक अविभाज्य साधन है "बल्कि इसलिए बढती हैं कि वह यह नहीं चाहता कि जो कार्य वह करता है उनमे दूसरे भी हाथ बटाएँ जिससे उसकी फर्म का आकार इन कार्यो को करने की उसकी अपनी योग्यता तक या मिल सकने वाली पूँजी अथवा उधार लेने की योग्यता या दोनो तक सीमित रहता है।" अधिक विशेषीकरण

और अधिक दक्ष तकनीकों के प्रयोग पर प्रत्येक फर्म खर्च करती है। जब उत्पादन बढ़ता है तो धीरे-धीरे जटिलताएँ भी बढ़ती हैं और किफायतें में अलाभ बढ़ जाते हैं। परन्तु उद्योग की सब फर्मों के विषय में ऐसा नहीं होता। अन्य फर्मों की अपेक्षा एक या दो फर्में तब भी अपनी लागतें कम कर सकेंगी, उद्योग के एक बड़े भाग का उत्पादन कर, कम कीमत पर बेच सकेंगी। जबकि अन्य फर्में साधारण लाभ भी नहीं उठा सकेंगी और उद्योग को छोड़ जाएंगी। फर्मों की संख्या घट जाएगी और पूर्ण प्रतियोगिता समाप्त हो जाएगी क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता उद्योग में बहुत-सी फर्मों के होने की धारणा पर आधारित है। अन्त में, यदि कुछ फर्मों में प्रतियोगिता चलती रहती है तो सबसे दक्ष फर्म, जो प्रतियोगी बिक्री में अपनी प्रतियोगी फर्मों को हरा सकेगी, एकाधिकारी फर्म बन कर प्रकट होगी। इस प्रकार प्रतियोगी संतुलन और घटती लागतों के अन्तर्गत दीर्घकालीन नीचे की ओर ढालू पूर्ति एक दूसरे के साथ मेल नहीं खा सकेंगे।

प्रो. सराफा भी मार्शल के इस मत से सहमत नहीं होता कि पूर्ण प्रतियोगी फर्में आन्तरिक और बाहरी किफायतों का लाभ उठाती हैं। उसके अनुसार दीर्घकाल में फर्म की औसत लागतों के कम होने का कारण केवल बाहरी किफायतें ही हैं। वास्तव में, बाहरी किफायतें फर्म के आंशिक संतुलन के विश्लेषण में कोई महत्त्व नहीं रखती हैं क्योंकि वे सामान्य औद्योगिक वृद्धि का परिणाम होती हैं। उसके अनुसार वे किफायतें जो व्यक्तिगत फर्म के दृष्टिकोण से बाहरी हैं परन्तु समस्त उद्योग के लिए आन्तरिक, ऐसी श्रेणी में आती हैं जो प्राय कम ही पाई जाती हैं। इसलिए सराफा पूर्ण प्रतियोगिता में बाहरी किफायतों को बढ़ते प्रतिफल का कारण नहीं मानता है। व्यवहार में, किसी भी फर्म के सम्मुख, जो अपने उत्पादन को बढ़ाना चाहती है, मुख्य प्रश्न लागतें कम करने का नहीं होता बल्कि बढ़ी हुई उत्पादन-मात्रा को बेचने का होता है।

यदि मार्शल की बढ़ते प्रतिफल की धारणा को मान भी लिया जाए तो पूर्ण प्रतियोगिता में किसी एक फर्म की प्रति इकाई उत्पादन लागत कम होने से फर्म का इतना विस्तार हो जाएगा कि वह अन्त में समस्त मार्किट पर कब्जा कर लेगी और एकाधिकार फर्म बन जाएगी। इस समस्त विवाद को प्रो. सैम्यूलसन ने इस प्रकार स्पष्ट किया है "फर्मों की निरन्तर लागतें कम होने जाने पर उनमें से एक या कुछ एक अपने उत्पादन का इतना प्रसार करेंगी कि वह उद्योग के कुल उत्पादन की मार्किट का एक महत्वपूर्ण भाग होगा। तब हम निम्न तीन बातों में से किसी एक को पाएंगे (1) अकेला एकाधिकारी जो उद्योग पर प्रभुत्व रखता है। (2) कुछ एक बड़े विक्रेता जो मिलकर उद्योग पर प्रभुत्व रखते हैं और जो बाद में अल्पाधिकारी कहलाएंगे। (3) किसी प्रकार की प्रतियोगिता की अपूर्णता जो अर्थशास्त्री के "पूर्ण" प्रतियोगिता के मॉडल से महत्त्वपूर्ण रूप से भिन्न होती है जिसमें किसी भी फर्म का *उद्योग की कीमत पर कोई नियंत्रण नहीं होता है।"*

7. एकाधिकार या अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत पूर्ति वक्र (SUPPLY CURVE UNDER MONOPOLY OR IMPERFECT COMPETITION)

अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार के अन्तर्गत कोई विशिष्ट पूर्ति वक्र नहीं होता है। इसका कारण यह है कि कीमत का निर्धारण उत्पादन के साथ ही हो जाता है। पूर्ण प्रतियोगिता के विपरीत, एकाधिकार में कीमत उत्पादक को नहीं दी जाती। वह कीमत निर्धारक है जो कि कीमत को अपने अधिकतम लाभ के लिए निर्धारित कर सकता है और उसके द्वारा किए जाने वाले उत्पादन अथवा पूर्ति का निर्धारण उसकी वस्तु के लिए उपभोक्ता माँग द्वारा किया जाता है। अतः एकाधिकार के अन्तर्गत पूर्ति वक्र की बात करना ही असम्भव है। *इसे चित्र 21.8 और 21.9 की सहायता से सिद्ध* किया जा सकता है।

चित्र 21.8

चित्र 21.8 में एकाधिकार के अन्तर्गत उत्पादक द्वारा दो माग वक्रों AR_1 और AR_2 का सामना किया जाता है। उसका MC वक्र दिया होने पर जब E_1 बिन्दु पर $MC = MR_1$ है, तो इष्टतम उत्पादन OQ_1 का निर्धारण किया जाता है। कीमत OP_1 (= Q_1A) है। जब माग वक्र AR_2 है, तो बिन्दु E_2 पर MC और MR_2 की समानता से इष्टतम उत्पादन OQ_2 का निर्धारण किया जाता है। कीमत वही OP (= $Q_2B = Q_1A$) रहेगी। इससे पता चलता है कि एकाधिकार के अन्तर्गत उत्पादक द्वारा सप्लाई किया गया उत्पादन उसकी वस्तु की माग स्थिति पर निर्भर करता है। और उसके लिए कोई विशेष पूर्ति वक्र नहीं बनाया जा सकता है।
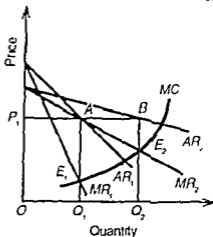
चित्र 21.9

चित्र 21.9 में उस स्थिति को दर्शाया गया है जहा दिया गया उत्पादन दो विभिन्न कीमतों से सम्बद्ध है। जब माग वक्र AR_1 है, तो OQ उत्पादन का निर्धारण OP (= QA) पर किया जाता है तथा इसमें सतुलन उस बिन्दु E पर होता है जहा $MC = MR_1$ होती है।

जब माग वक्र AR_2 है, तो वही उत्पादन OQ उस बिन्दु E पर निर्धारित किया जाता है जहा $MC = MR_2$ है परन्तु इसे अधिक कीमत OP_1 (= QB) पर बेचा जाता है। यह स्थिति तब होती है जब माग दो अवधि में अलग-अलग होती है और उत्पादक द्वारा वही मात्रा भिन्न-भिन्न कीमतों पर बेची जाती है। प्रथम अवधि में माग वक्र AR_1 लोचशील है और वह OP कीमत पर OQ मात्रा की बिक्री करता है। दूसरी अवधि में माग वक्र AR_2 कम लोचशील है और वह वही मात्रा OQ ऊँची कीमत OP_1 पर बेचता है।
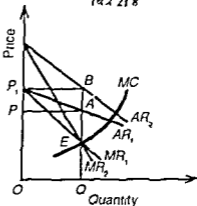
ये दोनों विवरण यह स्पष्ट करते हैं कि एकाधिकार में कोई विशिष्ट पूर्ति वक्र नहीं होता है।

प्रश्न

1. ऐसी दशा समझाइए जिसमें पूर्ति वक्र पीछे की ओर ढालू होता है।
2. स्पष्ट कीजिए कि अल्पकाल में फर्म और उद्योग का पूर्ति वक्र दाईं और ऊपर को ढालू होता है।
3. इस तथ्य का विवेचन कीजिए कि दीर्घकालीन पूर्ति वक्र का आकार उत्पादन के नियमों पर निर्भर करता है सिद्ध कीजिए कि बढ़ते प्रतिफल और पूर्ण प्रतियोगिता असगत हैं।
4. एकाधिकार में पूर्ति वक्र की प्रकृति की व्याख्या करिए।
5. "एकाधिकार के अन्तर्गत कोई अकेला पूर्ति वक्र नहीं होता है।" विवेचना करिए।
6. यह सिद्ध कीजिए कि पूर्ण प्रतियोगिता में बढ़ते प्रतिफल सभव नहीं हैं।

अध्याय 22

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म तथा उद्योग का संतुलन
(EQUILIBRIUM OF THE FIRM AND INDUSTRY UNDER PERFECT COMPETITION)

पिछले अध्यायों में हम आगम, लागत माग एव पूर्ति वक्रो की प्रकृति पर विचार कर चुके है। अब पूर्ण प्रतियोगी मार्किट मे फर्म और उद्योग के सतुलन के अध्ययन मे हम उनका प्रयोग करेंगे।

1. पूर्ण प्रतियोगिता
(PERFECT COMPETITION)

सबसे पहले पूर्ण प्रतियोगी मार्किट की प्रकृति का अध्ययन लाभदायक होगा। इसकी हम पहले भी चर्चा करते रहे है। पूर्ण प्रतियोगी मार्किट वह होता है जिसमे क्रेताओ और विक्रेताओं की सख्या बहुत बडी हो और जो किसी समय पर मार्किट का पूर्ण ज्ञान रखते हुए किसी भी प्रकार के बनावटी बधनो के बिना, किसी समरूप वस्तु की खरीद और बेच मे लगे हो। जोन राबिन्सन (Joan Robinson) के शब्दों मे, "पूर्ण प्रतियोगिता तब पाई जाती है जबकि प्रत्येक उत्पादक की *उत्पादन के लिए माँग पूर्णतया सापेक्ष हो। इसके अन्तर्गत, प्रथम विक्रेताओ की सख्या अधिक होती* है, जिससे किसी भी एक विक्रेता का उत्पादन वस्तु के कुल उत्पादन का एक बहुत तुच्छ भाग होता है, और दूसरे, सभी क्रेता विभिन्न प्रतियोगी विक्रेताओं के बीच चुनाव करने के सम्बन्ध में समान दृष्टि रखते हैं जिससे मार्किट पूर्ण हो जाती है।"

पूर्ण प्रतियोगी मार्किट की ये शर्ते है

(1) क्रेताओं और विक्रेताओ की बडी सख्या (Large Number of Buyers and Sellers)—पहली शर्त यह है कि क्रेताओ और विक्रेताओ की सख्या इतनी बडी हो कि कोई भी एक व्यक्ति कुल उद्योग के उत्पादन और कीमत को प्रभावित न कर सके। दूसरे शब्दो मे, वस्तु की कुल माँग की तुलना मे व्यक्तिगत क्रेता की माग इतनी कम होती है कि वह अकेला बाजार की माग को प्रभावित नहीं कर सकता। इसी प्रकार एक विक्रेता की पूर्ति कुल उत्पादन का इतना थोडा भाग होती है कि वह अकेला कुल पूर्ति को प्रभावित नहीं कर सकता। दूसरे शब्दो मे, एक विक्रेता वस्तु की पूर्ति को बढाकर या कम करके वस्तु की कीमत को प्रभावित करने मे असमर्थ होता है। वह उत्पादन समायोजक (output adjuster) होता है। अत अपने व्यक्तिगत प्रयत्न मे कोई भी एक व्यक्ति कीमत मे परिवर्तन नहीं ला सकता। उसे सम्पूर्ण उद्योग के लिए नियत कीमत को स्वीकार करना पडता है। वह कीमत-स्वीकर्त्ता (price-taker) होता है।

(2) फर्मों को आने-जाने की स्वतत्रता (Freedom of Entry or Exit of Firms)—अगली शर्त यह है कि फर्मों को उद्योग मे आने या उसे छोडने की स्वतत्रता हो। इसका मतलब है कि जब उद्योग मे बहुत अधिक लाभ होता है, तो उससे आकर्षित होकर नई फर्मे उद्योग मे आ जाती है।

यदि उद्योग मे हानि हो रही हो तो, कुछ फर्में उसे छोड जाती है। दीर्घकालीन मे यह शर्त तब पूरी होती है जबकि सब फर्मों को सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

(3) **समरूप वस्तु** (Homogeneous Product)—प्रत्येक फर्म समरूप वस्तु का उत्पादन और विक्रय करती है जिससे एक क्रेता का अन्य उत्पादकों की अपेक्षा किसी एक विक्रेता की वस्तु के लिए अधिमान नहीं होता। यह तभी सभव है जब भिन्न-भिन्न विक्रेताओं द्वारा उत्पादन की गई वस्तु की इकाइयाँ पूर्ण स्थानापन्न हो। दूसरे शब्दो मे, विक्रेताओ की वस्तुओ की प्रतिलोच अनन्त होती हे (cross elasticity is infinite)। किसी भी विक्रेता की स्वतन्त्र कीमत-नीति नहीं होती। नमक, गेहू, रूई और कोयले जैसी वस्तुओ की प्रकृति समरूप होती है। वह अपनी वस्तु की कीमत नहीं बढा सकता। यदि वह कीमत बढाए, तो उसके ग्राहक उसे छोड जायेगे और वस्तु को उसकी वर्तमान कम कीमत पर अन्य विक्रेताओ से खरीद लेगे।

ये दोनों शर्तें मिलकर व्यक्तिगत विक्रेता या फर्म के औसत आगम वक्र को पूर्ण लोचदार बना देती हे और वह X-अक्ष के समानान्तर हो जाता है (चित्र 22 1 मे $MR = AR$ वक्र देखिए)। इसका मतलब है कि एक फर्म किसी वस्तु की वर्तमान कीमत पर उसकी कम या अधिक मात्रा तो बेच सकती है परन्तु उसकी कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती क्योंकि वस्तु समरूप है और विक्रेताओं की सख्या बहुत बडी है।

(4) **कृत्रिम बधनो का अभाव** (Absence of Artificial Restrictions)—अगली शर्त यह है कि वस्तुओं की खरीद और बेच मे पूरी छूट होती है। विक्रेता जिसको भी चाहे अपनी वस्तु स्वतत्रता से बेच सकते है और क्रेता जिससे भी चाहे, वस्तु स्वतत्रता से खरीद सकते है। दूसरे शब्दो मे, क्रेताओ और विक्रेताओ की ओर से कोई भेदभाव नहीं होता। और फिर, माग-पूर्ति की स्थितियो के अनुसार कीमते स्वतत्रता से बदल सकती है। उत्पादक, सरकार या किसी अन्य एजेसी की ओर से वस्तुओं की पूर्ति, माग या कीमत को नियत्रित करने का कोई प्रयत्न नहीं होता। कीमतों मे उतार-चढाव बिना रोकटोक होता है।

(5) **लाभ अधिकतमकरण उद्देश्य** (Profit Maximisation Goal)—हर एक फर्म का एक ही उद्देश्य होता हे कि वह अपने लाभ को अधिकतम करे।

(6) **वस्तुओं और साधनो की पूर्ण गतिशीलता** (Perfect Mobility of Goods and Factors)—पूर्ण प्रतियोगिता की एक और शर्त यह है कि वस्तुए और साधन एक से दूसरे उद्योग मे स्वतन्त्रतापूर्वक आ-जा सके। वस्तुए वहा जाने मे स्वतन्त्र होती हे जहाँ उनकी कीमत उच्चतम हो। साधन भी कम कीमत देने वाले उद्योग से ऊँची कीमत देने वाले उद्योग मे जा सकते हे।

(7) **मार्किट की स्थितियो का पूर्ण ज्ञान** (Perfect Knowledge of Market Conditions)—इस शर्त का अभिप्राय है कि क्रेताओं ओर विक्रेताओं मे निकट का सपर्क होता है। क्रेताओ और विक्रेताओ को उन कीमतो का पूरा ज्ञान होता है जिन पर वस्तुए खरीदी या बेची जा रही है, और उन कीमतों का भी ज्ञान होता हे जिन पर दूसरे खरीदने और बेचने को तैयार है। उन्हे उस स्थान का भी पूरा ज्ञान होता है जहाँ वस्तुओ का क्रय-विक्रय हो रहा हे। मार्किट की स्थितियों का ऐसा ज्ञान विक्रेता को अपनी वस्तु मार्किट की वर्तमान कीमत पर बेचने को ओर क्रेता को उसे उस कीमत पर खरीदने को विवश करता है।

(8) **यातायात लागतो का अभाव** (Absence of Transport Costs)—अन्तिम शर्त यह है कि वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने मे कोई लागत नहीं आती। पूर्ण प्रतियोगिता के लिए यह शर्त आवश्यक है क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता इस बात की अपेक्षा रखती है कि किसी भी समय वस्तु की कीमत हर जगह पर समान हो। यदि वस्तु की कीमत में यातायात की लागत भी पडती है तो एक समरूप वस्तु की कीमते भिन्न-भिन्न होगी, जो इस बात पर निर्भर करेगी कि पूर्ति के स्थान से यातायात की लागत कितनी हे।

पूर्ण प्रतियोगिता बनाम शुद्ध प्रतियोगिता (Perfect Competition vs Pure Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता और विशुद्ध प्रतियोगिता में प्राय अन्तर किया जाता है, परन्तु दोनों में थोड़ा-सा ही अन्तर है। पहली पाच शर्तों का सबध विशुद्ध प्रतियोगिता से है जबकि पूर्ण प्रतियोगिता के अस्तित्व के लिए बाकी तीन शर्तें भी आवश्यक हैं। चैम्बरलेन के अनुसार, विशुद्ध प्रतियोगिता का अर्थ है, ऐसी प्रतियोगिता जिसमें एकाधिकार के तत्वों का मिश्रण नहीं है जबकि पूर्ण प्रतियोगिता में एकाधिकार के अभाव में अन्य कई प्रकार की पूर्णता भी निहित है। आजकल पूर्ण प्रतियोगिता का व्यावहारिक महत्त्व अधिक नहीं है क्योंकि प्रमुख खाद्य वस्तुओं और कच्चे माल के मार्किट को छोड़ कर पूर्ण प्रतियोगी मार्किट नहीं के बराबर है। इसीलिए चैम्बरलेन कहते है कि "पूर्ण प्रतियोगिता एक असाधारण अवस्था है।" (Perfect competition is a rare phenomenon)

यद्यपि वास्तविक जगत् में पूर्ण प्रतियोगिता की शर्तें पूरी नहीं होतीं फिर भी, पूर्ण प्रतियोगिता के अध्ययन का सामान्य कारण यह है कि इससे अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझने में सहायता मिलती है, जहाँ प्रतियोगी व्यवहार से ससाधनों का श्रेष्ठतम आवटन और उत्पादन का दक्षतम सगठन करता है। *पूर्ण प्रतियोगी उद्योग का उपकल्पित आदर्श किसी भी अर्थव्यवस्था की आर्थिक* सस्थाओं के चालन और सगठन को समझने का आधार प्रदान करता है।

2. फर्म और उद्योग का सतुलन
(EQUILIBRIUM OF THE FIRM AND INDUSTRY)

फर्म की सतुलन की शर्तें (Conditions of Equilibrium of the Firm)—एक फर्म उस समय सतुलन की स्थिति में होती है, जब वह अपने उत्पादन के स्तर में परिवर्तन नहीं करना चाहती है। वह न तो अपने उत्पादन के स्तर को बढाना चाहती है और न घटाना। फर्म सतुलन में अपनी सीमात लागतों को सीमात आगम के बराबर लाकर अधिकतम लाभ कमाती है। फर्म की लाभ अधिकतम करने की शर्त को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है $\pi = TR - TC$ (देखिए चित्र 22 4) जहा π फर्म के लाभ है, *TR* कुल आगम और *TC* कुल लागत। रेखा चित्र के रूप में, फर्म के सतुलन की दो शर्तें है (1) *MC* वक्र को *MR* वक्र के बराबर होना चाहिए। यह प्रथम कोटि और आवश्यक शर्त है। परन्तु यह पर्याप्त शर्त नहीं है जो पूरी की जाए फिर भी फर्म सतुलन में नहीं हो सकती। (2) *MR* वक्र को *MC* वक्र अवश्य नीचे से काटे और सतुलन बिन्दु के बाद वह *MR* वक्र से ऊपर हो। यह द्वितीय कोटि की शर्त है।*

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में, एक फर्म का *MR* वक्र उसके *AR* वक्र के अनुरूप होता है। *MR* वक्र *X*-अक्ष के समानान्तर होता है। इसलिए फर्म उस समय सतुलन की स्थिति में होती है, जब $MC = MR = AR$ (कीमत)।

चित्र 22 1 (A) में *MR* वक्र को *MC* वक्र पहले बिन्दु *A* पर काटता है। यह $MC = MR$ की शर्त को पूरा करता है, परन्तु यह अधिकतम लाभ का बिन्दु नहीं है क्योंकि *A* के बाद *MC* वक्र *MR* वक्र से नीचे रहता है। न्यूनतम उत्पादन, फर्म के लिए लाभदायक नहीं है क्योंकि *OM* से अधिक उत्पादन करके फर्म अपेक्षाकृत अधिक लाभ उठा सकती है। *B* अधिकतम लाभ बिन्दु है जहा दोनों शर्तें पूरी हो जाती है। *A* और *B* बिन्दुओं के बीच फर्म को अपना उत्पादन बढाने से लाभ होता है क्योंकि $MR > MC$, अर्थात् वह अपनी कुल लागतों की अपेक्षा कुल आगम में अधिक वृद्धि कर रही है जिससे उसके कुल लाभ बढ रहे है। हाँ, OM_1 पर पहुँचकर फर्म आगे उत्पादन बद कर देगी।

* ये सामान्य शर्तें है जो पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार और एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में लागू होती है।
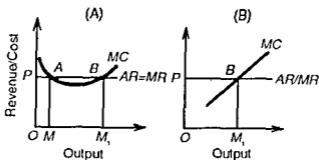
चित्र 22 1

OM_1 उत्पादन का वह स्तर है जहाँ सतुलन की दोनों शर्तें पूरी हो जाती है अर्थात् $MC = MR$ और MR को MC वक्र नीचे से काटता है। यदि फर्म OM_1 से अधिक उत्पादन करना चाहती है, तो उसे हानि उठानी पडेगी क्योंकि सतुलन बिन्दु B के बाद $MC > MR$, अर्थात् TR से TC अधिक बढ रही है। यही निष्कर्ष उस समय भी ठीक उतरते है जब MC वक्र एक सरल रेखा हो, जैसाकि चित्र 22 1 (B) मे दिखाया गया है। मात्रा में बहुत थोडी वृद्धि या कमी लाभ को अधिक नहीं करेगी। "इसका मतलब है कि उत्पादन उस स्तर पर है जहाँ लाभ वक्र (चित्र मे नहीं दिखाया गया) न तो पहाडी के ऊपर को जा रहा है और न नीचे को। परन्तु ऐसे समतल स्थान पर जहाँ पहाडी की चोटी (अधिकतम लाभ), उच्चस्थली और घाटियों (न्यूनतम लाभ) की वही विशेषताएँ है, इसलिए वे समतल है अर्थात् वे शून्य सीमात लाभ के बिन्दु है जहाँ सीमात लागत और सीमात आगम बराबर है।"

उद्योग के सतुलन की शर्तें (Conditions of Industry Equilibrium)

एक उद्योग उस समय सतुलन की स्थिति मे होता है जबकि (*i*) फर्मों की उद्योग मे आने या उसे छोडने की प्रवृत्ति न हो, (*ii*) जब प्रत्येक फर्म भी सतुलन मे हो। पहली शर्त का मतलब है कि उद्योग की सब फर्मों के औसत लागत वक्र उनके औसत आगम वक्रो पर स्थित है। वे केवल **सामान्य** लाभ उठा रही है, जो फर्मों के औसत लागत वक्रो मे शामिल है। दूसरी शर्त का मतलब है कि MC और MR बराबर है तथा MR को MC वक्र नीचे से काटता है।

एक पूर्ण प्रतियोगी उद्योग मे इन दो शर्तों का सतुलन बिन्दु पर होना आवश्यक है अर्थात्

$$MC = MR \quad (1)$$
$$AC = AR \quad (2)$$
$$AR = MR$$
$$MC = AC = AR$$

ऐसी स्थिति उद्योग के पूर्ण सतुलन (full equilibrium) को प्रकट करती है।*

* ये दोहरी शर्तें एकाधिकार और एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे पूरी नहीं होगी क्योंकि AR वक्र MR वक्र के ऊपर स्थित होता है। वे वह पहली शर्त ही पूरी होती है।

(क) फर्म का अल्पकालीन संतुलन (Short-Run Equilibrium of The Firm)

अल्पकालीन, समय की वह अवधि है जिसमें अधिकतम लाभ उठाने के लिए या हानि को न्यूनतम करने के लिए कोई फर्म उत्पादन के परिवर्तनशील साधनों में परिवर्तन करके अपने उत्पादन के स्तर को बदल सकती है। उद्योग में फर्मों की संख्या स्थिर होती है क्योंकि न तो वर्तमान फर्में उसे छोड़ सकती हैं, और न ही नई फर्में उसमें आ सकती हैं।

फर्म संतुलन में तब होती है जब यह अधिकतम लाभ कमा रही हो जो कुल आगम और कुल लागत का अन्तर होता है। इसके लिए आवश्यक है कि वह दो शर्तें पूरी करे (1) $MC = MR$ और MR वक्र को MC वक्र को संतुलन बिन्दु पर नीचे से काटे और ऊपर की ओर चला जाए। जिस कीमत पर प्रत्येक फर्म अपने उत्पादन को बेचती है वे माग और पूर्ति की मार्किट शक्तियों द्वारा निश्चित होती है। प्रत्येक फर्म उस कीमत पर जितना चाहे बेच सकती है। परन्तु प्रतियोगिता के कारण वह बाजार कीमत से ऊंची कीमत पर बिल्कुल नहीं बेच सकेगी। इसलिए उस कीमत पर फर्म का माग वक्र समानान्तर होगा ताकि फर्म के लिए $P = D = AR = MR$

सीमांत विश्लेषण तथा कुल लागत-आगम विश्लेषण की सहायता से फर्म के अल्पकालीन संतुलन की व्याख्या की जा सकती है। हम पहले समरूप तथा भिन्न लागत स्थितियों के अन्तर्गत सीमांत विश्लेषण को लेते हैं।

(i) समरूप लागत स्थितियाँ (Identical Cost Conditions)—समरूप लागत स्थितियों के अन्तर्गत फर्म तथा उद्योग के संतुलन का विश्लेषण इन मान्यताओं पर आधारित है कि सब साधन स्थिर हैं और स्थिर साधन दी हुई कीमतों पर आसानी से मिलते हैं जिनके कारण फर्मों के लागत वक्र समरूप होते हैं। मान लीजिए कि प्रतियोगी मार्किट में, उद्योग की वस्तु की OP कीमत माग वक्र D तथा पूर्ति वक्र S के E बिन्दु पर संतुलन द्वारा निर्धारित होती है जैसेकि चित्र 22.2 (A) में दिखाया गया है जिसके कारण फर्मों का औसत आगम वक्र (AR) उनके सीमांत आगम वक्र (MR) के अनुरूप होता है जैसेकि चित्र 22.2 (B) में। इस कीमत पर प्रत्येक फर्म L बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है जहाँ (i) SMC वक्र बराबर है MR और AR के, (ii) SMC वक्र MR वक्र को नीचे से L बिन्दु पर काटता है। प्रत्येक फर्म अधिकतम औसत कुल लागत QL पर उत्पादन की OQ मात्रा का उत्पादन करेगी और सामान्य लाभ कमाएगी। कोई भी फर्म सामान्य लाभ उस समय कमाती है
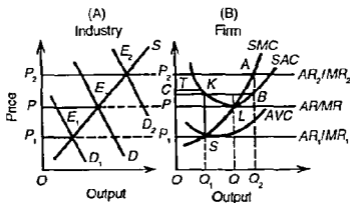
चित्र 22.2

जब MR रेखा AC रेखा के न्यूनतम बिन्दु पर स्पर्श करे।[1]

यदि न्यूनतम औसत कुल लागतों (SAC) से कीमत बढ जाए, तो प्रत्येक फर्म सामान्य से बहुत अधिक लाभ कमाएगी। मान लीजिए कि कीमत बढ़कर OP_2 हो जाती है जहाँ कि SMC वक्र नए सीमात आगम वक्र $MR_2(=AR_2)$ को नीचे से बिन्दु A पर चित्र 22.2 (B) में काटता है जो फर्म का नया सतुलन बिन्दु है। इस स्थिति मे प्रत्येक फर्म OQ_2 मात्रा का उत्पादन करती है और सामान्य से अधिक लाभ कमाती है जो आयत P_2ABC के क्षेत्र के बराबर है।

यदि कीमत गिरकर OP_1 हो जाती है तो फर्म को P_1SKT के बराबर हानि होगी। फर्म अल्पकाल में OP_1 कीमत पर OQ_1 वस्तु की मात्रा उत्पादित करती और बेचती रहेगी जब तक कि कीमत फर्म की औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) को पूरा करती है। इसलिए S फर्म का बन्द होने का बिन्दु (shut-down point) है जिस पर फर्म SK प्रति इकाई के बराबर हानि उठा रही है। यदि कीमत OP_1 से नीचे गिरती है तो फर्म बन्द हो जाएगी क्योंकि वह न्यूनतम औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) को भी पूरा नहीं कर सकेगी। इसलिए OP_1 बन्द होने की कीमत (shut-down price) है।

इस विवेचन के आधार पर हम निष्कर्ष रूप मे कह सकते हैं कि फर्म का सामान्य से अधिक लाभ या सामान्य लाभ कमाना या घाटे में चलना वस्तु की कीमत पर निर्भर करता है।

(2) **भिन्न लागत स्थितियाँ** (Different Cost Conditions)—यदि उद्यमियों की दक्षता में अन्तर हो, तो फर्मों के लागत वक्र एक-दूसरे से भिन्न होंगे। अधिक दक्ष उद्यमियों वाली फर्में अन्य फर्मों की अपेक्षा कम लागत पर उत्पादन करेंगी। इस प्रकार एक निश्चित कीमत पर एक वस्तु को बेचने वाली फर्में भिन्न-भिन्न लागतों पर भिन्न-भिन्न मात्राओं का उत्पादन करेंगी। हम फर्मों को पाँच प्रकारों में बाट सकते है जैसाकि चित्र 22.3 में दिखाया गया है।
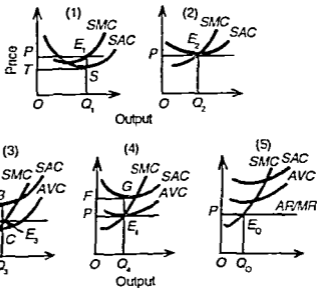
चित्र 22.3

1 सामान्य लाभ की धारणा के विस्तृत अध्ययन के लिए 'लाभ' का अध्याय देखिए।

पहले प्रकार की फर्में, जिनके उद्यमी सबसे अधिक दक्ष हैं, चित्र के पैनल (1) में बिन्दु E_1 पर सतुलन की स्थिति में हैं जहाँ वे OQ_1 मात्रा का उत्पादन करती हैं और सामान्य से अधिक लाभ $PTSE_1$ प्राप्त करती हैं।

दूसरे प्रकार की फर्में E_2 बिन्दु पर पेनल (2) में अल्पकालीन सतुलन में हैं जहाँ $SMC = MR = SAC = AR$ (कीमत)। इस प्रकार वे उत्पादन के OQ_2 स्तर पर सामान्य लाभ प्राप्त करती हैं।

तीसरे प्रकार की फर्में पेनल (3) में, जिनके उद्यमी अभी भी दक्ष हैं, ओसत परिवर्तनशील लागत Q_3C को तथा थोड़ी बहुत औसत स्थिर लागत को उत्पादन के OQ_3 स्तर पर पूरा कर लेती हैं क्योंकि ऐसी फर्में ओसत कुल लागत के BE_3 भाग को पूरा नहीं कर पातीं जो कीमत से अधिक है, इसलिए फर्म को APE_3B हानि होती है।

चौथे प्रकार की फर्में पैनल (4) में, केवल अपनी परिवर्तनशील लागत (AIC) को ही पूरा कर पाती है। AIC वक्र कीमत रेखा को E_4 पर स्पर्श करता है। अल्पकाल में ऐसी फर्में बन्द होने की अपेक्षा उत्पादन की OQ_4 मात्रा का उत्पादन करके और FPE_4G हानि उठाकर भी कार्य करती रहेंगी।

क्योंकि पाँचवे प्रकार की फर्में पेनल (5) में, उत्पादन के OQ_6 (अर्थात् किसी भी) स्तर पर ओसत परिवर्तनशील लागत भी पूरी नहीं कर पातीं इसलिए उन्हें तो बन्द हो जाना पड़ेगा।

निष्कर्ष यह कि भिन्न लागत स्थितियों के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न प्रकार की फर्में या तो सामान्य से अधिक लाभ उठाती हैं या सामान्य लाभ या फिर घाटे में चलती हैं।

(3) कुल लागत-आगम विश्लेषण (Total Cost-Revenue Analysis)—फर्मों के अल्पकालीन सतुलन को कुल लागत तथा कुल आगम वक्रों की सहायता से भी स्पष्ट किया जा सकता है। फर्म उत्पादन के उस स्तर पर अपने लाभ को अधिकतम बना सकती है, जहाँ जब कुल आगम और कुल लागत में अन्तर अधिकतम हो। इसे चित्र 22.4 में दिखाया गया है, जहाँ TR कुल आगम वक्र है और TC कुल लागत वक्र। कुल आगम वक्र ऊपर को ढालू सरल रेखा है और वक्र बिन्दु O से प्रारम्भ होता है। इसका कारण यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म अपने उत्पादन की कम या अधिक मात्रा को एक निश्चित कीमत पर बेचती है। यदि फर्म कोई उत्पादन न करे, तो कुल आगम शून्य होगा। फर्म जितना अधिक उत्पादन करेगी, उसके कुल आगम में उतनी ही वृद्धि होगी। इसलिए TR वक्र रेखीय (linear) और ऊपर को ढालू है।

फर्म उत्पादन के उस स्तर पर अपने लाभ को अधिकतम बना सकेगी, जहाँ TR वक्र और TC वक्र के बीच का अन्तर अधिकतम होगा। रेखागणित से, यह वह स्तर है जहाँ कुल लागत वक्र पर खींची गई स्पर्श-रेखा (tangent) की ढलान कुल आगम वक्र की ढलान के बराबर होता है। चित्र 22.4 में उत्पादन के OQ स्तर पर लाभ की मात्रा को TP द्वारा मापा गया है। A और B बिन्दुओं के बीच उत्पादन की OQ से कम या अधिक मात्रा पर फर्म का लाभ कम हो जाता है। यदि फर्म उत्पादन की OQ_1 मात्रा तक उत्पादन करती है, तो उसको अधिकतम हानि होती है क्योंकि TC वक्र TR से ऊपर है। OQ_1 पर उसके लाभ शून्य है। ऐसी ही स्थिति Q_2 पर पाई जाती है क्योंकि MR कुल आगम TR वक्र की ढलान के बराबर होता है और MC कुल सीमान्त लागत TC की स्पर्श-रेखा की ढलान के बराबर होता है, इसलिए यह परिणाम निकलता है कि जहाँ कुल लागत और आगम वक्रों की ढलान बराबर हों जैसे P और T पर, वहाँ $MC = MR$ यहाँ यह स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि बढ़ती सीमान्त-लागत (जहाँ TC वक्र TR में नीचे स्थित हो) के क्षेत्र में अधिकतम लाभ का बिन्दु स्थित होता है और अधिकतम हानि का बिन्दु, घटती सीमान्त-लागत के क्षेत्र में (जहाँ TC वक्र TR के ऊपर स्थित हो)।

फर्म के अधिकतम लाभ वाले उत्पादन-स्तर को जानने की एक अन्य विधि कुल लाभ वक्र द्वारा है। कुल लाभ वक्र कुल आगम और कुल लागत वक्रों के अन्तर को उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर
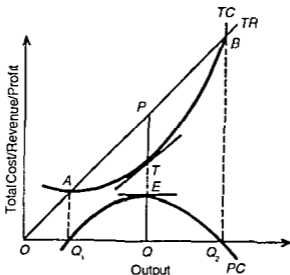
चित्र 22 4

दर्शाता है। चित्र 22 4 मे PC कुल लाभ वक्र है जिसका उच्चतम बिन्दु E अधिकतम लाभ EQ जो OQ उत्पादन पर दिखाता है, जो TR एव TC वक्रो के अन्तर TP के बराबर है। OQ_1 उत्पादन-स्तर तक PC वक्र X-अक्ष के नीचे है जो ऋणात्मक लाभ या फर्म का हानि स्तर है। Q_1 पर लाभ शून्य है क्योकि PC वक्र इस बिन्दु पर X-अक्ष को काटता है। Q_1 से Q के बीच लाभ उत्पादन के साथ-साथ उत्तरोत्तर बढते चले जाते है और OQ उत्पादन पर लाभ अधिकतम है, अर्थात् EQ यदि फर्म इस स्तर के आगे उत्पादन बढाती है तो उसके लाभ कम होते जाएगे और OQ_2 पर शून्य हो जाएगे।

कुल लागत-आगम वक्रो के प्रयोग से फर्म के सतुलन की व्याख्या उससे अधिक प्रकाश नहीं डालती, जो सीमान्त लागत-आगम से पडता है। वह केवल ऐसे कुछ सीमात निर्णयों मे लाभदायक है, जहाँ उत्पादन के एक निश्चित क्षेत्र मे कुल-आगम वक्र भी रेखीय हो। परन्तु वह फर्म के सतुलन को भारी-भरकम और विश्लेषण को कठिन बना देता है, विशेष रूप से उस समय जब हमे उत्पादन की मात्रा मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप लागत और आगम मे होने वाले परिवर्तन की तुलना करनी पडती है। फिर अधिकतम लाभो को एकदम नहीं जाना जा सकता। उसके लिए कई स्पर्श रेखाए खींचनी पडती है जो वास्तविक कठिनाई है।

(ख) उद्योग का अल्पकालीन सतुलन (Short-Run Equilibrium of the Industry)

एक उद्योग सतुलन मे होता है जब इसका कुल उत्पादन स्थिर रहता है और उसके बढने अथवा कम होने की कोई प्रवृत्ति नहीं होती। यदि सभी फर्मे सतुलन मे हो तो उद्योग भी सतुलन मे होता है। अल्पकाल मे उद्योग का पूर्ण सतुलन (full equilibrium) होने के लिए, सभी फर्मो को केवल सामान्य लाभ कमाने जरूरी है। इसके लिए शर्त है $SMC = MR = AR$ (= Price) $= SAC$ परन्तु उद्योग का पूर्ण सतुलन अचानक ही होता है, क्योंकि अल्पकाल मे कुछ फर्मे सामान्य से अधिक लाभ कमा रही होती है और कुछ हानि उठा रही होती है। फिर भी, अल्पकाल मे उद्योग
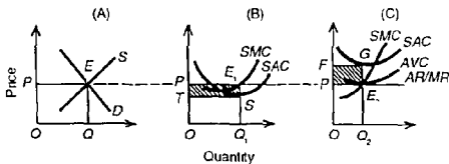
चित्र 22 5

सतुलन मे होता है जब उसकी वस्तु की माग और पूर्ति की मात्राए उस कीमत पर बराबर होती है जो मार्किट को साफ (clear) कर देती है। इसे चित्र 22 5 मे दर्शाया गया है जहाँ पेनल (A) मे उद्योग E बिन्दु पर सतुलन मे है जहाँ उसका माग वक्र D उसके पूर्ति वक्र S को काटता है जो OP कीमत निर्धारित करते है जिससे कुल उत्पादन OQ मार्किट से साफ हो जाता है। परन्तु चालू कीमत OP पर कुछ फर्मे PE_1ST सामान्य से अधिक लाभ कमा रही है जैसा कि पेनल (B) से स्पष्ट है, जबकि कुछ अन्य फर्मे FGE_2P हानि उठा रही है जेसाकि चित्र के पेनल (C) मे दर्शाया गया है।

(ग) फर्म का दीर्घकालीन सतुलन (Long-Run Equilibrium of the Firm)

दीर्घकालीन मे, अल्पकालीन की अपेक्षा अधिक समायोजन (adjustments) दिए जा सकते है। फर्म अपने प्लाट की क्षमता और उत्पादन के पेमाने को परिवर्तित परिस्थितियो के अनुसार व्यवस्था कर सकती है। इसलिए सभी लागतें परिवर्तनशील होती है। फर्मे केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर सकती है। यदि कीमत दीर्घकालीन औसत लागत से अधिक हो, तो फर्मे असामान्य लाभ कमायेगी जिनसे आकर्षित होकर उद्योग मे नई फर्मे आ जाएगी और फर्मो में प्रतियोगिता से असामान्य लाभ समाप्त हो जाएगे। यदि कीमत दीर्घकालीन औसत लागत से कम हो, तो कुछ फर्मे उद्योग को छोड जाएगी। परिणाम यह होगा कि कोई भी फर्म सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त नहीं कर सकती। इस प्रकार, "दीर्घकाल मे फर्मे सतुलन मे होनी है जब उन्होंने अपने प्लाटों को इस ढग से समायोजित किया होता है कि वे अपने दीर्घकालीन AC वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर उत्पादन करती है जो (इस बिन्दु पर) मार्किट कीमत द्वारा परिभाषित माग (AR) वक्र को स्पर्श करता है" ताकि वे सामान्य लाभ कमाती है।

हम यह मान लेते है कि सब उद्यमी बराबर की क्षमता रखते है। सब साधन समरूप है और स्थिर तथा समान कीमतो पर मिल सकते है, अत फर्मो के लागत वक्र समरूप है। प्रत्येक फर्म उत्पादन के उस स्तर पर सतुलन मे होगी, जहाँ LMC वक्र MR के बराबर होगा और MR को नीचे से काटेगा तथा उसी रेखा पर AR वक्र LAC वक्र के न्यूनतम बिन्दु के बराबर होगा अर्थात् $LMC = MR = AR = LAC$ अपने न्यूनतम बिन्दु पर। दीर्घकाल मे एक फर्म मार्किट की माग एव लागत स्थितियों के अनुसार अपने पेमाने तथा प्लाट की क्षमता को बदल सकती है। मान लीजिए कि फर्म SAC_1 वक्र द्वारा व्यक्त प्लाट चला रही है, जेसे चित्र 22 6 (B)। OP_1 कीमत पर फर्म बिन्दु A पर सतुलन मे है जहाँ $SMC_1 = LMC = MR_1 = AR_1 = P_1$ इस कीमत पर यह OM_1 उत्पादन पर प्रति इकाई AB हानि उठा रही है। क्योंकि सभी फर्मो की लागते समरूप है, कुछ फर्मे जो हानि नहीं
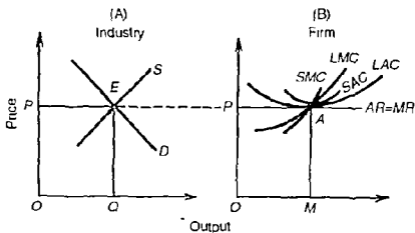
चित्र 22.7

= LAC न्यूनतम बिन्दु पर। इस स्तर पर फर्में सामान्य लाभ कमाती है और उनके उद्योग को छोडने या नई फर्मों के प्रवेश करने की कोई प्रेरणा नहीं है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दीर्घकाल मे उद्योग मे प्रत्येक फर्म भी सतुलन मे है। यदि फर्म और उद्योग दोनो ही दीर्घकालीन सतुलन मे है तो वे अल्पकाल मे भी सतुलन मे होते है।

यद्यपि दीर्घकालीन मे पूर्ण प्रतियोगी उद्योग मे सभी फर्मों के लागत वक्र समान होते है फिर भी फर्मे विभिन्न दक्षता की हो सकती है। बेहतर प्रबधन जैसे बेहतर ससाधन प्रयोग करने वाली फर्मों को उन्हे अधिक वेतन देना पडता है अन्यथा वे नई फर्मों के पास चले जाएगे जो उन्हे अधिक वेतन देगे। इस प्रकार, प्रतियोगिता की शक्तियां अधिक दक्ष फर्मों को उनकी अवसर लागत पर बेहतर ससाधनो को ऊँची कीमते देगी। परिणामस्वरूप, अधिक दक्ष फर्मो का LAC वक्र ऊपर को शिफ्ट कर जाएगा और उन्हे उद्योग द्वारा निश्चित ऊँची दीर्घकालीन कीमत पर अधिक उत्पादन बेच कर लाभ होगा। ससाधनो को ऊँची कीमते न दे सकने के कारण कम दक्ष फर्मे प्रतियोगिता द्वारा उद्योग मे बाहर हो जाएगी। नई फर्मे जो उन्हे अधिक कीमते दे सकती है और नई ऊँची मार्किट कीमत द्वारा आकर्षित होकर उद्योग मे प्रवेश करेंगी। परन्तु उद्योग की नई दीर्घकालीन सतुलन कीमत पर, सभी फर्मे न्यूनतम LAC पर उत्पादन करेंगी। इसे चित्र 22.8 मे दर्शाया गया है जहाँ उद्योग का मूल सतुलन E बिन्दु पर चित्र के पैनल (A) मे OP कीमत पर है तथा अधिक दक्ष फर्मे अन्य फर्मों की तरह पैनल (B) मे A बिन्दु पर सतुलन मे है। क्योंकि उद्योग सतुलन मे है, इसलिए नई फर्मे विद्यमान नहीं है क्योंकि वे OP कीमत पर अपनी लागतो को पूरा करने की क्षमता नहीं रखती है। जब अधिक दक्ष फर्मे अपने ससाधनो को ऊँची कीमते देती है तो उनका LAC वक्र ऊपर को सरक कर LAC हो जाता है। उद्योग की दीर्घकालीन कीमत OP_1 निश्चित होने से अधिक दक्ष फर्मे पैनल (B) मे $P_1 = LAC_1$ के न्यूनतम बिन्दु A_1 पर सतुलन मे है। अब वे अधिक उत्पादन OM_1 कर रही है यद्यपि वे सामान्य लाभ कमा रही है। नई फर्मे भी पैनल (C) मे A_1 बिन्दु पर सामान्य लाभ कमा रहा है। परन्तु वे अधिक दक्ष फर्मों द्वारा उत्पादित मात्रा OM_1 से कम OM_1 उत्पादित कर रही है।
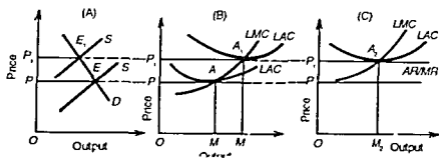
चित्र 22.8

3. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत समाधन आवटन (RESOURCE ALLOCATION UNDER PERFECT COMPETITION)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत समाधन आवटन की समस्या के दो पहलू है आंशिक और सामान्य।

आंशिक सतुलन के अन्तर्गत समाधन आवटन (Resource Allocation under Partial Equilibrium)

दीर्घकाल में एक पूर्ण प्रतियोगी अर्थव्यवस्था उपभोक्ता सतुष्टि को अधिकतम करने के लिए अपने समाधनों का आवटन बहुत दक्ष तरीके से करती है। इसलिए, निम्न कारणों से पूर्ण प्रतियोगिता सामाजिक तौर से समाधनों का इष्टतम आवटन लाती है

1 दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म न्यूनतम लागत प्लाट का निर्माण करती है और इसको उत्पादन के इष्टतम स्तर पर चलाती है ताकि प्रति इकाई लागत (*LAC*) न्यूनतम हो।

2 फर्में अपने प्लाटों को पूर्ण क्षमता तक चलाती हैं ताकि उद्योगों के बीच और उद्योगों में समाधनों का आवटन अधिक दक्षता के साथ हो।

3 उद्योग में पैमाने की पर्याप्त किफायतें नहीं होती है।

4 उपभोक्ता अधिमानों को न्यूनतम कीमतों पर वस्तुओं की अधिकतम मात्राओं द्वारा पूरा किया जाता है।

5 उपभोक्ताओं की आय और रुचिया दी होने पर समग्र उपभोक्ता सतुष्टि को अधिकतम किया जाता है, क्योंकि उपभोक्ताओं की मांगों के अनुसार उनमें वस्तुओं का वितरण होता है।

6 लोचशील वस्तु और साधन कीमतों के कारण समाधनों का इष्टतम आवटन होता है। इसमें अर्थव्यवस्था में समाधन पूर्ण रोजगार में लगे होते हैं।

7 समाधनों का इष्टतम आवटन होता है क्योंकि कीमत वस्तु की सीमात लागत के बराबर होती है।

8 फर्में अपने लाभों को अधिकतम करती हैं जिसका मतलब है कि वे केवल सामान्य लाभ ही कमाती है। यह शर्त इस समीकरण से पूरी होती है

$LMC = P = AP = MR = LAC$ अपने न्यूनतम बिन्दु पर।

पूर्ण प्रतियोगी उद्योग की ये शर्तें दी होने पर, हम समाधनों के इष्टतम आवटन की नीचे व्याख्या करते हैं।

एक पूर्ण प्रतियोगी मार्किट मे फर्मे कीमत-स्वीकारक (price-takers) और मात्रा-समायोजक (quantity adjuster) होती है। वे उद्योग की कुल माग और कुल पूर्ति द्वारा निर्धारित कीमत को स्वीकार करती है। प्रत्येक फर्म और समस्त उद्योग के लिए ऐसी स्थिति को चित्र 22 9 (A) और (B) मे दर्शाया गया है। पेनल (A) मे, OP कीमत, उद्योग द्वारा निश्चित की जाती है जो प्रत्येक फर्म द्वारा स्वीकार की जाती है जिसमे उसका माग वक्र ($AR = MR$) एक समानातर रेखा होता है, जैसाकि पेनल (B) मे दिखाया गया है। फर्म का लाभ-अधिकतमकरण उत्पादन स्तर OM है क्योकि वह इस मात्रा को सप्लाई करने का निर्णय लेती है जो इसके सीमात वक्र (जो इसका पूर्ति वक्र है) द्वारा व्यक्त होती है। इस प्रकार, बिन्दु A पर कीमत और सीमात लागत की समानता एक पूर्ण प्रतियोगी फर्म द्वारा ससाधनों के इष्टतम आवटन की शर्त को पूरा करती है, अर्थात् $LMC = P = AR = MR$
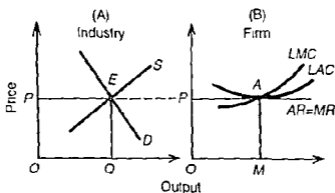
चित्र 22 9

पूर्ण प्रतियोगी मार्किट मे ससाधनो के इष्टतम आवटन की एक और महत्वपूर्ण शर्त यह है कि प्रत्येक फर्म सामान्य लाभ अवश्य कमाए। यह मानते हुए कि पैमाने की पर्याप्त किफायतें नहीं हैं, जब कीमत सीमात लागत के बराबर होती है तो वह LAC के न्यूनतम स्तर के बराबर भी अवश्य हो। यह पेनल (B) में दिखाया गया है जहाँ कीमत रेखा $P = AR = MR$ को तथा LAC वक्र को भी उसके न्यूनतम बिन्दु A पर LMC वक्र नीचे से काटता है। इस बिन्दु पर P कीमत रेखा LAC वक्र को स्पर्श करती है। प्रत्येक फर्म लाभ-अधिकतमकरण उत्पादन OM करती है और उसे OP कीमत पर बेचती है तथा सामान्य लाभ कमाती है। इससे ससाधनो का इष्टतम आवटन होता है क्योकि पूर्ण सतुलन की शर्त पूरी होती है, अर्थात् $LMC = P = AR = MR = LAC$ अपने न्यूनतम पर। यदि पर्याप्त पैमाने की किफायतें उपलब्ध हो, तो LAC वक्र नीचे की ओर ढालू होगा तथा दीर्घकालीन सतुलन नहीं होगा। छोटी फर्मे जिनकी लागतें ऊँची होंगी, वे प्रतियोगिता द्वारा उद्योग को छो. जाएगी। अन्तत इससे पूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकार भी हो सकता है।

हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि जब प्रतियोगी उद्योग मे प्रत्येक फर्म उस बिन्दु पर उत्पादित करती है जहाँ $P = LMC$, तो ससाधनो का इष्टतम आवटन होता है। फिर, जब प्रत्येक फर्म अपने LAC वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर उत्पादन करती है और केवल सामान्य लाभ ही कमाती है तथा उपभोक्ता वस्तु को न्यूनतम कीमत पर प्राप्त करते है, तो भी ससाधनों का इष्टतम आवटन होता है।

सामान्य सतुलन के अन्तर्गत ससाधन आवटन (Resource Allocation Under General Equilibrium)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत ससाधन आवटन की व्याख्या करने का अन्य तरीका यह मान्यता है कि अर्थव्यवस्था केवल दो वस्तुएँ उत्पादित करती है और उन्हे इष्टतमतौर से उस बिन्दु पर आवटन करती है, जहाँ एक उदासीनता वक्र उत्पादन सभावना या रूपातरण वक्र को स्पर्श करता है। यह विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित है

(1) बाजार मे तैयार वस्तुओ की माग मे पूर्ण प्रतियोगिता होती है।
(2) सभी वस्तुओ का समाज मे अनुपम रूप से वितरण होता है।
(3) समाज मे रुचियाँ एव प्रौद्योगिकी अपरिवर्तित रहती है।
(4) समाज का प्रत्येक सदस्य हर वस्तु की अधिक मात्रा को प्राथमिकता देता है न कि कम को।
(5) ससाधनो के नियोजन का स्तर दिया हुआ है।
(6) उपभोग एव उत्पादन मे कोई बाह्य प्रभाव नहीं होते।
(7) समुदाय के उदासीनता वक्र एक दूसरे को नहीं काटते।
(8) अर्थव्यवस्था मे केवल दो ही वस्तुओ, X तथा Y, का उत्पादन होता है।

ये मान्यताएँ दी होने पर चित्र 22 10 पर ध्यान दीजिए। इसमे वस्तु X का उत्पादन क्षैतिज अक्ष पर तथा वस्तु Y का उत्पादन अनुलम्ब अक्ष पर मापा गया है। I I_1 तथा I_2 समुदाय उदासीनता वक्र है जो इन वस्तुओ के समाज को उपलब्ध होने वाले विविध सयोगो को प्रदर्शित करते है। किसी भी बिन्दु पर उदासीनता वक्र वस्तुओ का ढलान इन दो X तथा Y के बीच स्थानापन्नता की दर को (MRS_{xy}) प्रकट करता है। TC उत्पादन वक्र है जो दिए हुए ससाधनो तथा प्रौद्योगिकी से सभव विविध उत्पादन सयोगो को प्रकट करते है। किसी भी बिन्दु पर उत्पादन सभावना वक्र का ढलान वस्तु Y की सामाजिक सीमात लागत से वस्तु X की सामाजिक सीमात लागत (SMC) के अनुपात को मापता है। उत्पादन सभावना वक्र का ढलान दो वस्तुओ X तथा Y के बीच रूपान्तरण की सीमात दर है। इस प्रकार $MRT_{xy} = MSC_x/MSC_y$ और कीमत रेखा PL है जिसका ढलान P_x/P_y को प्रकट करता है।

समाज बिन्दु E पर इष्टतम उत्पादन की स्थिति उपलब्ध कर लेता है, जहाँ पर कि रूपान्तरण वक्र TC उच्चतम सभव समुदाय उदासीनता वक्र I_1 को स्पर्श करता है। इस इष्टतम स्तर पर समाज वस्तु X का OX_1 तथा वस्तु Y का OY_1 उत्पादन एव उपभोग करता है। यदि TC वक्र पर बिन्दु E से परे कोई भी गति होगी, तो समुदाय अपेक्षाकृत अधिक नीचे उदासीनता वक्र पर, जैसे कि I वक्र पर, और इष्टतम से अपेक्षाकृत नीचे स्तर पर आ जाएगा।
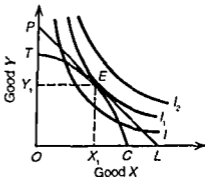
चित्र 22 10

यह इष्टतम उत्पादन वास्तव मे प्रतियोगी उत्पादन है। क्योकि मान्यता यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता है और बाह्य प्रभावो का अभाव है, इसलिए सारे बाजार मे दोनो वस्तुओ की कीमते एकसार रहती है। इस प्रकार माग पक्ष की ओर से, बिन्दु E पर सतुलन स्थापित हो जाता है जहाँ कि कीमत रेखा PL तटस्थता वक्र I_1 को स्पर्श करती है। इस प्रकार बिन्दु E पर

$$MRS_{xy} = P_x/P_y \quad (1)$$

पूर्ति पक्ष की ओर से, प्रतियोगितामूलक सतुलन के लिए इस बात की जरूरत है कि कीमत रेखा का ढलान निश्चय से रूपान्तरण वक्र के ढलान के बराबर हो,

$$P_x/P_y = MRT_{xy} \qquad (2)$$

पूर्ण बाजार मे MRT_{xy} बराबर है सीमात निजी लागत Y की (MC_y) और X की सीमात निजी लागत (MC_x) का अनुपात। क्योकि मान्यता यह है कि उत्पादन मे बाह्य प्रभाव नहीं है, इसलिए उत्पादन की सीमात निजी लागत (MC_{xy}) उत्पादन की सीमान्त सामाजिक लागत (MSC_{xy}) के बराबर है। इस प्रकार रूपान्तर वक्र का ढलान बताता है कि

$$MRT_{xy} = MC_x/MC_y = MSC_x/MSC_y$$

समीकरण (1) और (2) से निष्कर्ष निकलता है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत ससाधन इष्टतम तौर से चित्र 22.10 मे बिन्दु E पर आवटित होते है जहाँ रूपातरण वक्र, सामाजिक उदासीनता वक्र और कीमत रेखा एक दूसरे को स्पर्श करते है,

$$MRT_{xy} = MRS_{xy} = P_x/P_y$$

प्रश्न

1 रेखाचित्रो की सहायता से बताइए कि एक फर्म व उद्योग के दीर्घकालीन सतुलन मे क्या शर्ते है।

2 "कोई भी उत्पादक सतुलन की दशा मे नहीं हो सकता जब तक कि सीमात आगम और सीमात लागत बराबर न हो।" इस पर टिप्पणी कीजिए।

3 "सीमात लागत और सीमात आगम मे समानता की शर्त सतुलन के लिए आवश्यक है लेकिन अपने आप मे सतुलन (अधिकतम लाभ) प्राप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है।" समझाइए।

4 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत ससाधनो का इष्टतम आवटन कैसे होता है? व्याख्या करिए।

5 पूर्ण प्रतियोगिता मे आर्थिक दक्षता कैसे उपलब्ध की जाती है? इसकी व्याख्या कीजिए।

अध्याय 23

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत-निर्धारण
(PRICING UNDER PERFECT COMPETITION)

पिछले अध्यायों में माग एव पूर्ति वक्रो का अध्ययन करने के पश्चात्, प्रस्तुत अध्याय में हम इनके द्वारा पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत, वस्तुओं की कीमत-निर्धारण का विवेचन करते हैं।

1 सतुलन कीमत
(EQUILIBRIUM PRICE)

मार्किट में सौदा करने वाली दो पार्टियाँ होती है—एक क्रेता और दूसरी विक्रेता। इन दोनों पार्टियों में समझौता होने पर ही वस्तु किसी निश्चित कीमत पर बेची और खरीदी जाती है। इस प्रकार वस्तु की कीमत-निर्धारण पर क्रेताओं और विक्रेताओं का प्रभाव पड़ता है अर्थात् माग एव पूर्ति का।

क्रेताओं पर माग का नियम लागू होता है जिसके अनुसार कीमत बढ़ने पर माग कम हो जाती है और कीमत कम होने पर माग बढ़ जाती है। पूर्ति की ओर पूर्ति का नियम लागू होता है जिसके अनुसार कीमत बढ़ने पर पूर्ति मे वृद्धि होती है और कीमत कम होने पर वस्तु की कीमत घट जाती है। इस प्रकार माग और पूर्ति दो विरोधी शक्तियाँ हैं, जो एक-दूसरे से विपरीत चलती है। जहाँ वे एक-दूसरे के बराबर होती है, वहीं कीमत निर्धारित होती है और उस कीमत को सतुलन कीमत कहते है। इस कीमत पर वस्तु की खरीदी और बेची गई मात्रा को सतुलन मात्रा कहते है। जब कीमत सतुलन कीमत से कम या अधिक होती है तो सतुलन-उत्पादन मे विचलन हो जाता है जिससे अन्तत फिर सतुलन कीमत स्थापित हो जाती है। कीमत-निर्धारण की इस प्रक्रिया को तालिका 23 1 तथा चित्र 23 1 द्वारा समझाया गया है।

नीचे तालिका मे सेब की माग और पूर्ति अनुसूची व्यक्त की गई है। जब सेबों की कीमत 10 रुपया प्रति किलोग्राम होती है तो मार्किट में सेबों की माग 120 कि ग्रा तथा पूर्ति 20 कि ग्रा है।

तालिका 23 1 माग-पूर्ति अनुसूची

	कीमत (रुपये) (Price in Rs)	माग की मात्रा (Quantity Demanded)		पूर्ति की मात्रा (Quantity Supplied)	
	10	120		20	
	20	100		30	
	30	80		45	
सतुलन कीमत →	40	60	=	60	← सतुलन मात्रा
	50	40		80	
	60	20		120	

कीमत के बढने से माग कम होती जाती है तथा पूर्ति बढती जाती है। जब कीमत 40 रुपये प्रति किलोग्राम होती है तो माग एव पूर्ति दोनो 60 कि ग्रा होती है। यही सतुलन-मात्रा है, जो 40 रु सतुलन-कीमत को निर्धारित करती है। एक बार सतुलन-कीमत स्थापित हो जाने से उसमें परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं पाई जाती है। यदि किसी समय कीमत 40 रु से अधिक या कम हो जाती है तो माग एव पूर्ति की शक्तियाँ इसे पुन 40 रु पर ही लाएगी। उदाहरणार्थ, यदि कीमत 40 रु से कम होकर 30 रु हो जाती है तो माग बढकर 80 कि ग्रा और पूर्ति कम होकर 45 कि ग्रा हो जाती है। सेबो की थोडी मात्रा के लिए अधिक माग होने से क्रेताओ मे प्रतियोगिता के कारण कीमत बढकर 40 रु हो जाती है। इससे माग कम होकर 60 कि ग्रा तथा पूर्ति भी बढकर 60 कि ग्रा हो जाती है। इस प्रकार सतुलन कीमत पुन स्थापित हो जाती है। इसके विपरीत कीमत 50 रु होने पर माग 40 कि ग्रा और पूर्ति 80 कि ग्रा होने से, जब हर विक्रेता अपनी वस्तु को पहले बेचने का प्रयत्न करता है तो वह कीमत थोडी सी कम कर देता है और दूसरे भी ऐसा करते जाते है, जब तक कि कीमत 40 रु नहीं हो जाती और पुन माग एव पूर्ति मे सतुलन स्थापित नहीं हो जाता है।

चित्र 23 1

चित्र 23 1 मे सतुलन-कीमत एव उत्पादन को दर्शाया गया है, जहाँ DD_1 माग वक्र है और SS_1 पूर्ति वक्र है। दोनो E बिन्दु पर काटते है जो सतुलन-बिन्दु है। OP सतुलन कीमत है जो OQ सतुलन-मात्रा पर बेची और खरीदी जाती है। यदि कीमत OP से कम होकर OP_2 हो जाती है तो माग $P_2d_1 >$ पूर्ति P_2s_1 मे अधिक हो जाती है जिससे s_1d_1 अतिरिक्त माग होती है। माग से पूर्ति अधिक होने के कारण क्रेताओ मे प्रतियोगिता से कीमत OP_2 से बढकर सतुलन कीमत OP पर आ जाती है। यदि कीमत OP से बढकर OP_1 हो जाती है तो (पूर्ति) $P_1s > P_1d$ (माग), जिससे ds अतिरिक्त पूर्ति मार्केट मे उत्पन्न होती है। कम माग होने पर विक्रेता अतिरिक्त पूर्ति को बेचने के लिए कीमत कम करते जाते है, जब तक कि पुन सतुलन कीमत स्थापित नहीं हो जाती। इससे सिद्ध होता है कि कीमत माग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है और जब एक बार सतुलन कीमत स्थापित हो जाती है तो उसमें विचलन होने से माग और पूर्ति की शक्तियाँ पुन कीमत सतुलन की स्थिति मे ले आती है।
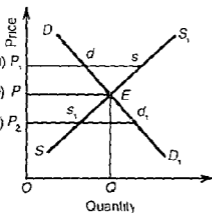
2. कीमत सिद्धांत में समय-तत्त्व का महत्त्व (IMPORTANCE OF TIME ELEMENT IN PRICE THEORY)

मार्शल प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने कीमत-निर्धारण मे समय-तत्त्व के महत्त्व का विश्लेषण किया। जब माग मे वृद्धि या कमी होती है तो पूर्ति मे वृद्धि या कमी उसी समय नहीं हो जाती। पूर्ति मे परिवर्तन तकनीकी तत्त्वों पर निर्भर करते है जिनमे परिवर्तन होने मे समय लगता है, इसलिए पूर्ति का माग के साथ समायोजन एकदम नहीं हो जाता। समय-अवधि कितनी होगी, यह इस बात

पर निर्भर करता है कि उत्पादन के पैमाने, आकार एव सगठन में माग के अनुसार परिवर्तन करना सम्भव है या नहीं। फिर वस्तु की प्रकृति के अनुसार भी समय-अवधि का कीमत-निधारण मे महत्त्व होता है। नाशवान वस्तुओ का कीमत निर्धारण थोडी समय-अवधि में अधिक महत्त्व रखता है, जबकि टिकाऊ वस्तुओ के लिए लम्बी समय-अवधि का अधिक महत्त्व होता है। कीमत निर्धारण मे मार्शल ने माग एव पूर्ति मे सतुलन को चार समय-अवधियो मे बाटा ह बाजार-अवधि (Market Period), अल्प-अवधि (Short Period), दीर्घ-अवधि (Long Period), और चिर कालिक अवधि (Secular Period)।

अब हम इन समय-अवधियो का क्रमश विवेचन करते है।

(1) बाजार-अवधि कीमत (Market Period Price)—बाजार-अवधि अति अल्प-अवधि होती है जिसमे वस्तु की पूर्ति स्थिर होने के कारण कीमत माग द्वारा निर्धारित होती है। यह समय-अवधि कुछ दिनो या सप्ताह की होती हे जिसमे वस्तु के स्टॉक से ही माग के अनुसार पूर्ति को बढाया जा सकता हे। ऐसा टिकाऊ वस्तुओ के लिए सम्भव होता है। नाशवान वस्तुओ की समय-अवधि एक दिन की होती है। उदाहरणार्थ, सब्जी की माग यदि बढ जाती है तो उसको उसी दिन नहीं बढाया जा सकता, इसलिए सब्जी की पूर्ति स्थिर होने पर कीमत माग द्वारा ही निर्धारित होती हे।

बाजार-अवधि मे जो कीमत पाई जाती है वह बाजार कीमत कहलाती है जो वस्तु की प्रकृति के अनुसार दिन मे कई बार, प्रतिदिन, सप्ताह मे कई बार या सप्ताह के बाद परिवर्तित होती हे। मार्शल ने बाजार कीमत की इस प्रकार व्याख्या की है "बाजार मूल्य प्राय ऐसी घटनाओ एव कारणों से प्रभावित होता है जो अस्थायी हो। इनकी क्रिया आकस्मिक तथा अल्पकालीन होती है, उनकी अपेक्षा जो दृढतापूर्वक चलते रहते है।"[1] वास्तव मे बाजार कीमत किसी वस्तु की वह कीमत है जो मार्किट मे किसी निश्चित समय पर माग एव पूर्ति की अन्तर्क्रिया (interaction) द्वारा निर्धारित होती है। बाजार-कीमत का निर्धारण नाशवान तथा टिकाऊ वस्तुओ के लिए अलग-अलग किया जाता है।

नाशवान वस्तुएँ (Perishable Commodities)—नाशवान वस्तुएँ जैसे दूध, सब्जी, मछली आदि की कीमत मुख्यत माग द्वारा प्रभावित होती है। इन पर पूर्ति का कोई प्रभाव नहीं पडता क्योकि इनकी पूर्ति स्थिर होती है। अत माग बढने पर नाशवान वस्तुओ की कीमत मे वृद्धि होती है और माग कम होने पर कीमत कम हो जाती है। चित्र 23.2 मे नाशवान वस्तु मछली का कीमत-निर्धारण व्यक्त किया गया है। MS पूर्ति वक्र हे जो वस्तु की OQ स्थिर मात्रा को बाजार अवधि मे दिखाता है। D प्रारम्भिक माग वक्र है जो MS पूर्ति वक्र को E बिन्दु पर काटता है जिससे बाजार कीमत OP निर्धारित होती है। यदि माग D से बढकर D_1 हो जाती है तो नया सतुलन E_1 पर होता है जो पहले से

चित्र 23 2

1 The market value is often influenced by passing events and causes whose action is fitful and short-lived than by those which work persistently"—Alfred Marshall, *op cit* p 350
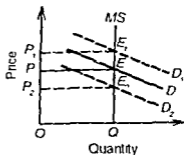
अधिक कीमत OP_1 को दर्शाता है। इसके विपरीत, माग के D से D_2 कम होने पर कीमत भी OP से कम होकर OP_2 हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि बाजार कीमत माग द्वारा ही निर्धारित होती है जबकि पूर्ति OQ स्थिर ही रहती है। नाशवान वस्तुओं जैसे सब्जी, दूध, मछली, बर्फ आदि की गर्मियों में जितनी बार भी माग बढ़ेगी या कम होगी, कीमत भी उतनी बार ही बढ़ेगी या कम होगी।

टिकाऊ वस्तुएँ (Durable Commodities)—बहुत-सी वस्तुएँ टिकाऊ होती हैं जिन्हें स्टॉक में रखा जाता है और माग बढ़ने के साथ-साथ जब कीमत में वृद्धि होती है तो स्टॉक में से उनकी पूर्ति को कुछ सीमा तक बढ़ाया जा सकता है। ऐसी वस्तुएँ कपड़ा, गेहूँ, चाय आदि होती हैं। इस प्रकार की वस्तुओं के दो कीमत स्तर होते हैं

एक, न्यूनतम कीमत जिससे कम कीमत होने पर विक्रेता अपनी वस्तुओं को बिल्कुल नहीं बेचेगा। इसे सुरक्षित कीमत (reserve price) कहते हैं। दूसरे, अधिकतम कीमत जिस पर विक्रेता वस्तु की सारी मात्रा बेचने को तैयार होगा।

कोई भी विक्रेता अपनी वस्तु की सुरक्षित कीमत निश्चित करते समय निम्नलिखित तत्त्वों का ध्यान रखता है (*i*) **वस्तु का टिकाऊपन** (Durability of the commodity)—सुरक्षित कीमत वस्तु के टिकाऊपन पर निर्भर करती है। जितनी वस्तु अधिक टिकाऊ होगी, उतनी सुरक्षित कीमत अधिक होगी। (*ii*) **भविष्य में कीमत** (Prices in future)—सुरक्षित कीमत भविष्य में कीमतों में होने वाले परिवर्तनों पर निर्भर करती है। यदि वस्तु की कीमत बढ़ने की आशा हो तो विक्रेता ऊँची सुरक्षित कीमत निश्चित करेंगे और कीमत गिरने की सम्भावना होने पर कम कीमत रखेंगे। (*iii*) **भविष्य में उत्पादन लागत** (Future cost of production)—सुरक्षित कीमत भविष्य में उत्पादन लागत पर निर्भर करती है। यदि विक्रेताओं को भविष्य में लागतें बढ़ने की आशा हो तो वे सुरक्षित कीमत अधिक रखेंगे। (*iv*) **भण्डार में रखने का व्यय** (Expenses on storage)—सुरक्षित कीमत वस्तु को भण्डार में रखने के व्यय एवं समय द्वारा भी निर्धारित होती है। जितना भण्डार में रखने का व्यय और समय अधिक होगा उतनी ही सुरक्षित कीमत कम होगी और विलोमश (vice versa)। (*v*) **तरलता अधिमान** (Liquidity perference)—सुरक्षित कीमत का अधिक या कम होना विक्रेताओं के तरलता के लिए अधिमान पर निर्भर करता है। जितना नकदी अधिमान अधिक होगा, उतनी ही सुरक्षित कीमत कम होगी क्योंकि मुद्रा की अधिक आवश्यकता के कारण वे वस्तु को जल्दी बेचने का यत्न करेंगे। इसके विपरीत, नकदी अधिमान कम होने पर सुरक्षित कीमत भी अधिक होगी। (*vi*) **भविष्य में मांग** (Demand in future)—सुरक्षित कीमत भविष्य में माग पर भी निर्भर करती है। यदि विक्रेता को भविष्य में माग बढ़ने की आशा है तो वह सुरक्षित कीमत अधिक रखेगा और कम माग की सम्भावना होने पर कम कीमत रखेगा।

इस प्रकार दो कीमत स्तर होने पर विक्रेता न्यूनतम सुरक्षित कीमत पर तो वस्तु की कोई भी मात्रा नहीं बेचेगा, जबकि अधिकतम कीमत स्तर पर वह वस्तु की समस्त मात्रा बेचने को तैयार होगा। ज्यों-ज्यों वस्तु की माग बढ़ने से कीमत बढ़ेगी, विक्रेता वस्तु के भण्डार में से अधिक मात्रा बेचता जाएगा जब तक कि माग बढ़ कर अधिकतम कीमत पर नहीं पहुँच जाती जिस पर वह वस्तु का पूर्ण भण्डार बेच देगा। इसके पश्चात् माग में वृद्धि होने से पूर्ति में वृद्धि सम्भव नहीं। यह कारण है कि टिकाऊ वस्तु का पूर्ति वक्र इस स्तर पर अनुलम्ब (vertical) हो जाता है।

चित्र 23.3 में SMS_1 बाजार-अवधि का पूर्ति वक्र है। OQ_1 वस्तु का कुल भण्डार है। OS न्यूनतम या सुरक्षित कीमत है जिस पर विक्रेता वस्तु को बिल्कुल नहीं बेचता। जब माग वक्र D, पूर्ति वक्र SMS_1 को E बिन्दु पर काटता है तो OP कीमत निर्धारित होती है जिस पर वस्तु की OQ मात्रा बेची जाती है तथा QQ_1 विक्रेता के भण्डार में रहती है। माग कम होकर D_2 होने पर कीमत OP से कम होकर OP_2 हो जाती है जिस पर OQ_2 मात्रा बेची जाती है और Q_2Q_1 वस्तु की मात्रा भण्डार में

रखी जाती है। केवल माग के D_1 होने पर ही विक्रेता वस्तु का सारा भण्डार अधिकतम कीमत OP_1 पर बेचने को तैयार होता है। यदि माग D_1 से ऊपर हो जाती है तो उससे कीमत ही बढेगी क्योकि बाजार-अवधि मे OQ_1 से अधिक मात्रा नहीं बेची जा सकती।

चित्र 23 3

इस प्रकार बाजार-अवधि मे पूर्ति की अपेक्षा माग का कीमत निर्धारण पर अधिक प्रभाव पडता है क्योकि अति अल्पकालीन अवधि मे विक्रेता उत्पादन को नहीं आँकते।

(2) अल्प-अवधि कीमत (Short Period Price)--अल्प-अवधि कुछ महीनों का समय होता है जिसमे माग के अनुकूल पूर्ति को परिवर्तित किया जा सकता है। ऐसा, परिवर्तनशील साधनो मे परिवर्तन करके ही सम्भव होता है। उदाहरणार्थ, यदि पूर्ति मे वृद्धि करनी हो तो फर्म श्रम, कच्चा माल आदि अधिक लगाकर वर्तमान मशीने, प्लाट आदि स्थिर साधनो से काम की पारी (shift) को बढाकर अधिक उत्पादन कर सकती है। *अल्पकालीन मे उत्पादन का पैमाना, सगठन एव स्थिर साधनो को परिवर्तित करना* सम्भव नहीं होता, इसलिए परिवर्तनशील साधनो की मात्राओ मे माग के अनुसार वृद्धि या कमी करके पूर्ति मे वृद्धि या कमी की जाती है।

अल्प-अवधि मे कीमत निर्धारण माग एव पूर्ति की शक्तियो द्वारा होता है। अल्पकालीन पूर्ति वक्र बाए से दाए साधारण पूर्ति वक्र की तरह ऊपर की ओर ढलान वाला होता है।[2] जब माग बढती या कम होती है तो पूर्ति वक्र के साथ सतुलन होने पर अल्पकालीन कीमत निर्धारित होती है जिसे अल्पकालीन सामान्य कीमत भी कहते है। चित्र 23 4 मे अल्पकालीन सतुलन कीमत के निर्धारण को दिखाया गया है। D मूल माग वक्र है और MS बाजार-अवधि का पूर्ति वक्र। इनका सतुलन बिन्दु P पर होता है जिससे PQ कीमत पर वस्तु की OQ मात्रा बेची व खरीदी जाती है।[3] मान लीजिए कि (कपडे की) माग मे वृद्धि हो जाती है जिसे D_1 वक्र द्वारा व्यक्त किया गया है। इसका परिणाम यह होता है कि बाजार कीमत तुरन्त PQ से बढकर $P'Q$ हो जाएगी। बाजार-अवधि मे पूर्ति स्थिर होने के कारण उसे OQ से अधिक करना सम्भव नहीं। हाँ, अल्प-अवधि मे अधिक श्रमिक, कच्चा माल आदि लगाकर वर्तमान मशीनो व प्लाटो की सहायता से बढाया जा सकता है। *इस प्रकार परिवर्तनशील साधनो की मात्रा बढने मे पूर्ति मे वृद्धि SRS* पूर्ति वक्र के अनुरूप होगी। पूर्ति वक्र SRS नये माग वक्र D_1 को P_1 बिन्दु पर काटता है और इस प्रकार P_1Q_1 अल्पकालीन कीमत या अल्पकालीन **सामान्य कीमत** (short-run normal price) निर्धारित होती है जिस पर OQ_1 मात्रा बेची व खरीदी जाती है। यह अल्पकालीन कीमत (P_1Q_1) मूल बाजार कीमत PQ से अधिक है परन्तु माग के बढने के बाद की बाजार कीमत $P'Q$ से कम है।
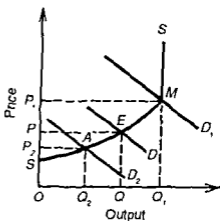
2 पूर्ति वक्र की ढलान ऊपर को होने का कारण पिछले अध्याय में देखिए।

3 चित्र जटिल न हो जाए, इसलिए कीमत को Y-अक्ष पर न दिखा कर कीमत रेखाएँ PQ P_1Q_1 P_2Q_2 अनुलम्ब (vertical) ली गई हैं।

चित्र 23 4
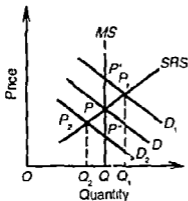
अब मान लीजिए कि कपडे की माग मे कमी होती है। माग वक्र D से D_2 हो जाएगा। बाजार कीमत PQ से गिरकर P_2Q_2 हो जाएगी। अल्प-अवधि मे उद्योग की सभी फर्में परिवर्तनशील साधनो जैसे श्रम, कच्चा माल आदि को कम लगाएगी तथा पूर्ति को कम कर देगी। इसलिए SRS वक्र का D_2 के साथ P_2 बिन्दु पर सतुलन होगा जिससे P_2Q_2 कीमत पर वस्तु की कम मात्रा OQ_2 क्रय-विक्रय होगी। परन्तु P_2Q_2 कीमत मूल बाजार कीमत PQ से कम है परन्तु बाद की बाजार कीमत $P''Q$ से अधिक है। अत अल्प-अवधि मे माग की अपेक्षा पूर्ति का कुछ अधिक महत्त्व होता है क्योंकि माग के अनुसार पूर्ति मे वृद्धि या कमी परिवर्तनशील साधनो में वृद्धि या कमी द्वारा की जा सकती है।

(3) **दीर्घ अवधि कीमत या सामान्य कीमत** (Long Period Price or Normal Price)—दीर्घ अवधि कई वर्षों की होती है जिसमें पूर्ति को माग के अनुसार पूर्णतया समायोजित किया जा सकता है। दीर्घकाल मे स्थिर साधनो को परिवर्तित करके पूर्ति को माग के अनुरूप किया जाता है। यह ऐसा समय होता है जिसमे पुरानी मशीनो, उपकरणो, प्लाटो आदि को हटाकर नयी मशीने, उपकरण, आदि लगाए जा सकते है। नयी फर्में उद्योग मे प्रवेश कर सकती है तथा पुरानी फर्में उद्योग को छोड सकती है। फर्मों का उत्पादन का पैमाना, सगठन एव प्रबन्ध भी परिवर्तित किए जा सकते है। इस प्रकार दीर्घकाल मे हर दृष्टिकोण से पूर्ति को माग के अनुरूप किया जा सकता है।

दीर्घकालीन कीमत को सामान्य कीमत भी कहते है। सामान्य कीमत वह कीमत होती है जिसकी दीर्घ अवधि मे पाए जाने की सम्भावना होती है, जो दीर्घकाल मे स्थिर रहती है। मार्शल के शब्दो मे, सामान्य या स्वाभाविक मूल्य वह है जो आर्थिक शक्तियाँ दीर्घकालीन में लाने की प्रवृत्ति रखती हैं।" (Normal or natural value is that which economic forces would tend to bring about in the long run) वास्तव मे सामान्य कीमत, अत्यधिक कीमत और बहुत नीची कीमत के बीच की कीमत है जिसकी दीर्घकाल में पाए जाने की सम्भावना होती है। यह वह कीमत है जिसके चारों ओर अन्य कीमतें घूमती है।

दीर्घकालीन या सामान्य कीमत माग एव पूर्ति के सतुलन द्वारा निर्धारित होती है। दीर्घकाल मे फर्मों तथा उद्योग के सतुलन के लिए यह आवश्यक है कि वस्तु की सामान्य कीमत सीमात लागत एव औसत लागत के बराबर हो। यदि कीमत न्यूनतम औसत लागत से ऊँची हो तो सभी फर्में अधिसामान्य लाभ (super-normal profits) कमाएगी जिनसे आकर्षित होकर नयी फर्म उद्योग में प्रवेश कर जाएगी, पूर्ति बढेगी और कीमत कम होकर न्यूनतम औसत लागत के बराबर हो जाएगी। इसके विपरीत, कीमत के औसत लागत से कम हो जाने पर फर्मों को हानि होगी। कुछ फर्में जो हानि नहीं उठा सकेगी वे उद्योग को छोड जाएगी, पूर्ति कम हो जाएगी तथा कीमत बढकर न्यूनतम औसत लागत के बराबर हो जाएगी। अत दीर्घकालीन कीमत या सामान्य कीमत सदैव न्यूनतम औसत लागत के बराबर ही होती है। इसे चित्र 23.5 द्वारा समझाया गया है जिसमें LAC तथा LMC दीर्घकालीन औसत एव सीमात लागत वक्र है। दीर्घकालीन सतुलन E बिन्दु पर होता है जहाँ $LMC = MR = AR = LAC$ न्यूनतम बिन्दु पर। OP कीमत निर्धारित होती है जिस

पर वस्तु की OQ मात्रा फर्मों द्वारा बेची जाती है। यही सामान्य कीमत है जिसकी दीर्घकाल मे होने की प्रवृत्ति होगी। यदि कीमत OP से बढ़कर OP_1 हो जाती है तो फर्में वस्तु की OQ_1 पहले से अधिक मात्रा बेचेंगी जिससे उन्हें वस्तु की प्रति इकाई पर AB अतिरिक्त लाभ होगा। इस लाभ मे आकर्षित होकर नई फर्में उद्योग मे प्रवेश कर जाएगी, जिससे वस्तु की पूर्ति और बढ़ेगी और कीमत कम होकर OP हो जाएगी जहाँ E बिन्दु पर दीर्घकालीन सतुलन होगा। इसके विपरीत, कीमत OP से कम होकर OP_2 होने पर वस्तु की पूर्ति Q_2Q कम हो जाएगी। फर्मों को वस्तु की प्रति इकाई पर CD हानि होगी जिसे उठा न सकने के कारण बहुत-सी फर्में उद्योग को छोड़ जाएगी जिससे पूर्ति और कम होगी, कीमत मे वृद्धि होगी और अन्तत कीमत OP हो जाएगी जहाँ E बिन्दु पर पुन दीर्घकालीन सतुलन होगा।
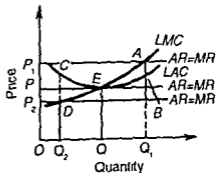
चित्र 23 5

दीर्घकालीन कीमत तथा प्रतिफल के नियम (Long-Run Price and the Laws of Returns)—दीर्घकालीन कीमत के विश्लेषण मे यह जानना आवश्यक होता है कि यह कीमत बाजार-कीमत मे अधिक, कम या बराबर कब होती है, अर्थात् दीर्घकालीन कीमत पर प्रतिफल के नियमों का क्या प्रभाव पड़ता है। यदि उद्योग घटते प्रतिफल या बढ़ती लागत के नियमो के अनुसार उत्पादन करता हो तो दीर्घकालीन कीमत मूल बाजार कीमत से अधिक होगी। स्थिर प्रतिफल या स्थिर लागत का नियम लागू होने पर दीर्घकालीन कीमत मूल बाजार कीमत के बराबर ही होगी, जबकि बढ़ते प्रतिफल या घटती लागत का नियम लागू होने पर दीर्घकालीन कीमत मूल बाजार कीमत से कम होगी। विभिन्न उत्पादन-नियमो के अन्तर्गत माग मे वृद्धि होने पर दीर्घकालीन कीमत-निर्धारण की व्याख्या नीचे चित्रो की सहायता से की गई है।

जब उद्योग पर घटते प्रतिफल या बढ़ती लागत का नियम (law of diminishing returns or increasing costs) लागू होता है तो दीर्घकालीन पूर्ति वक्र LRS बाए से दाए ऊपर को ढलान वाला होता है जैसाकि चित्र 23 6 मे दिखाया गया है। MS बाजार-अवधि का पूर्ति वक्र है। SRS अल्प-अवधि पूर्ति वक्र है। D मूल माग वक्र है जो बाजार-अवधि के पूर्ति वक्र को P बिन्दु पर काटता है जिससे PQ मूल बाजार कीमत निर्धारित होती और वस्तु की OQ मात्रा बेची व खरीदी जाती है। माग के बढ़ कर D_1 होने से बाजार कीमत बढ़ कर $P'Q$ हो जाती है। अल्पकाल मे जब परिवर्तनशील साधनों द्वारा पूर्ति OQ से बढ़कर OQ_1 होती है तो कीमत $P'Q$ से कम होकर P_1Q_1 होती है। दीर्घकालीन मे

चित्र 23 6

चित्र 23 7

उत्पादन के पैमाने, सगठन आदि के बढने से जब पूर्ति मे OQ_1 से OQ_2 वृद्धि होती है तो दीर्घकालीन कीमत P_2Q_2 निर्धारित होती है। यह कीमत मूल बाजार कीमत PQ से अधिक है क्योंकि उद्योग बढती लागत के नियम के अन्तर्गत कार्य करता है जिसके अनुसार उत्पादन बढने के साथ लागते भी प्रति इकाई बढती है।[4]
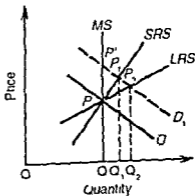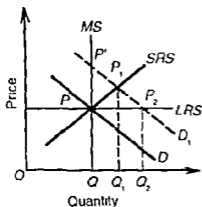
उद्योग पर स्थिर प्रतिफल या लागत का नियम (law of constant returns or costs) लागू होने पर दीर्घकालीन पूर्ति वक्र x-अक्ष के समानान्तर चित्र 23 7 के *LRS* वक्र की तरह होता है। जब माग मे *D* से D_1 की वृद्धि होती है तो बाजार कीमत *PQ* से बढकर *P'Q* हो जाती है। अल्प-अवधि मे जब पूर्ति *OQ* से बढकर OQ_1 होती है तो कीमत *P'Q* से गिरकर P_1Q_1 हो जाती है। दीर्घकाल मे पूर्ति के OQ_2 तक बढ जाने से कीमत घटकर P_2Q_2 हो जाती है। यह कीमत मूल बाजार कीमत के बराबर है ($P_2Q_2 = PQ$)। इसका कारण यह है कि उद्योग पर स्थिर लागत का नियम लागू होने से जब उत्पादन मे वृद्धि की जाती है तो प्रति इकाई लागत स्थिर रहती है।

यदि उद्योग पर बढते प्रतिफल या घटती लागतो का नियम (law of increasing returns or diminishing costs) लागू होता हो तो दीर्घकालीन पूर्ति वक्र बाए से दाए नीचे की ओर ढलान वाला होता है जैसाकि चित्र 23 8 मे *LRS* वक्र है। *PQ* मूल बाजार-कीमत है और *OQ* वस्तु की क्रय-विक्रय की जा रही मात्रा। मांग के *D* से D_1 बढ जाने पर बाजार-कीमत एकदम बढ कर *P'Q* हो जाती है। अल्प अवधि मे पूर्ति मे *OQ* से OQ_1 वृद्धि होने पर, कीमत गिरकर *P' Q* से P_1Q_1 हो जाती है। दीर्घकाल मे जब पूर्ति और बढकर OQ_2 हो जाती है तो कीमत गिरकर P_2Q_2 हो जाती है। दीर्घकाल कीमत मूल बाजार कीमत से कम है, $P_2Q_2 < PQ$। इसका कारण यह है कि उद्योग पर बढते प्रतिफल का नियम लागू होने से जब उत्पादन मे वृद्धि होती है तो प्रति इकाई लागत कम होती जाती है।

चित्र 23 8

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि दीर्घकालीन कीमत मूल बाजार कीमत से अधिक, बराबर या कम होगी, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उद्योग पर घटते प्रतिफल, स्थिर प्रतिफल या बढते

4 माग में कमी की व्याख्या इसके विपरीत होगी।

प्रतिफल का नियम लागू होता है।

(4) चिरकालिक अवधि (Secular Period)—चिरकालिक अवधि अति लम्बे समय की होती है। मार्शल के अनुमार यह दस वर्ष से भी ऊपर का समय है जिसमे माँग मे परिवर्तनो का पूर्ति के साथ पूर्ण समायोजन हो सकता है। इतनी लम्बी समय अवधि मे होने वाले तकनीकी, जनसख्या, कच्चे माल एव माँग आदि मे परिवर्तनो को जानना सम्भव नहीं, इसलिए मार्शल ने चिरकालिक अवधि मे कीमत-निर्धारण का विश्लेषण नहीं किया।

निष्कर्ष (Conclusion)—ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कीमत सिद्धात मे समय-तत्त्व का महत्त्व यह है कि कीमत-निर्धारण मे माग एव पूर्ति मे से कौन-सी शक्ति अधिक प्रबल होती है, यह समय अवधि पर निर्भर करता है। साधारणतया, समय-अवधि जितनी कम होती है, कीमत-निर्धारण में माग का प्रभाव उतना ही अधिक होता है और जितनी समय-अवधि अधिक होती है, कीमत-निर्धारण में पूर्ति का प्रभाव उतना ही अधिक होता है।

3 बाजार कीमत तथा सामान्य कीमत मे तुलना
(COMPARISON BETWEEN MARKET PRICE AND NORMAL PRICE)

बाजार कीमत तथा सामान्य कीमत मे निम्नलिखित अन्तर पाए जाते है —

(1) बाजार कीमत वह कीमत होती है जो किसी एक दिन अथवा बहुत कम दिन मार्किट मे पाई जाती है। यह बहुत अल्पकालीन कीमत होती है जो किसी एक विशेष समय मे प्रवर्तमान होती है। दूसरी ओर, सामान्य कीमत वह कीमत होती है जिसकी दीर्घकाल मे पाए जाने की प्रवृत्ति होती है।

(2) बाजार कीमत के निर्धारण मे माग सक्रिय होती है जबकि पूर्ति निष्क्रिय होती है। बाजार कीमत मांग के गिरने या बढने के साथ गिरती या बढती है जबकि पूर्ति स्थिर रहती है। दूसरी ओर, सामान्य कीमत के निर्धारण मे पूर्ति अधिक सक्रिय होती है क्योकि यह दीर्घकाल मे माग मे परिवर्तन के अनुसार पूरी तरह से तालमेल रखने की प्रवृत्ति रखती है।

(3) बाजार कीमत अस्थायी घटनाओ द्वारा प्रभावित होती है। यह दिन या सप्ताह मे अनेक बार बदलती घटनाओ द्वारा परिवर्तित होती है। एक बहुत गर्मी वाले दिन अचानक वर्षा हो जाने से बर्फ की माग कम हो सकती है और बर्फ की कीमत कम। इस प्रकार बाजार कीमत केवल अस्थायी तौर से ही पाई जाती है। दूसरी ओर, सामान्य कीमत स्थायी तत्त्वो का परिणाम होती है जो माग एव पूर्ति मे परिवर्तन लाते है। उपभोक्ताओ की रुचियों, आदतो, अधिमानो आदि मे परिवर्तनों से माग मे परिवर्तन हो सकता है जबकि उत्पादन के स्थिर साधनो के परिवर्तन से पूर्ति मे परिवर्तन हो सकता है। इस प्रकार सामान्य कीमत एक स्थायी एव स्थिर कीमत होती है। इसलिए बाजार कीमत की सामान्य कीमत के इर्द-गिर्द घूमने की प्रवृत्ति होती है जैसा कि चित्र 23 9 मे दिखाया
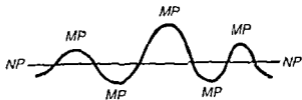
चित्र 23 9

गया है यहाँ *NP* सामान्य कीमत है तथा *MP* बाजार कीमत है।

(4) बाजार कीमत औसत उत्पादन लागत से ऊपर या नीचे हो सकती है। अत फर्म असामान्य लाभ कमा सकती है या हानि उठा सकती है। दूसरी ओर, सामान्य कीमत सदैव *LAC* के न्यूनतम बिन्दु के बराबर होती है। इसलिए सामान्य कीमत के अन्तर्गत फर्म केवल सामान्य लाभ ही कमा सकती है।

(5) सभी वस्तुओ, चाहे वे पुन उत्पादित की जा सकती हो या न की जा सकती हो, की बाजार कीमत होती है। *परन्तु पुन उत्पादित की जा सकने वाली वस्तुओं की ही सामान्य कीमत होती है।* यदि कोई वस्तु पुन निर्मित नहीं की जा सकती तो उसकी दीर्घकाल मे पूर्ति नहीं बढाई जा सकती है जब इसकी माग मे वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ, टैगोर द्वारा बनाया गया एक चित्र यदि किसी दुकानदार के पास पडा हो तो उसकी सामान्य कीमत नहीं हो सकती क्योकि टैगोर जीवित नहीं है और उस जैसा चित्र पुन नहीं बन सकता। यह चित्र केवल बाजार कीमत पर ही बेचा जा सकता है जो किसी समय उसकी माग पर निर्भर करती है।

(6) बाजार कीमत किसी भी समय पर बाजार मे पाई जाने वाली वास्तविक कीमत होती है। दूसरी ओर, सामान्य कीमत मनगढन्त कीमत होती है। यह अमूर्त तथा भ्रम होती है जो अवास्तविक है। यह मृगतृष्णा की भाति होती है। सागर मे छोटी-छोटी तरगें वास्तविक है परन्तु दूर क्षितिज मे दिखाई देने वाला सागर का शान्त जल भ्रम है जो मृगतृष्णा के समान है जो कभी भी शान्त नहीं होता है। सागर की छोटी-छोटी तरगें बाजार कीमत के समान है जबकि दूर क्षितिज मे दिखाई देता शान्त जल सामान्य कीमत के समान है। जैसाकि स्टोनियर एव हेग ने व्यक्त किया है, "व्यवहार मे, दीर्घकालीन सामान्य कीमत कभी भी नहीं आएगी। दीर्घकालीन सतुलन की कुछ शर्तो के अन्दर साधारणतया एक परिवर्तन होगा, इससे पूर्व कि उस तक पहुँचा जा सके। कल की तरह दीर्घकाल कभी भी नहीं आता है", और जो कीमत बाजार मे पाई जाती है वह सदैव बाजार कीमत होती है न कि सामान्य कीमत।

प्रश्न

1 प्रतियोगी मार्किट मे मार्शल के कीमत निर्धारण के समय अवधि विश्लेषण का चित्रों सहित महत्त्व का विवेचन कीजिए।

2 सामान्य कीमत की परिभाषा कीजिए। दीर्घकालीन सामान्य कीमत सदैव उद्योग की न्यूनतम औसत लागतों के बराबर क्यों होनी चाहिए?

3 बाजार कीमत तथा सामान्य कीमत मे भेद करिए। सामान्य कीमत कैसे निर्धारित की जाती है?

परिशिष्ट

प्रतिनिधि, संतुलन और इष्टतम फर्म

(REPRESENTATIVE, EQUILIBRIUM AND OPTIMUM FIRM)

1 प्रतिनिधि फर्म

(THE REPRESENTATIVE FIRM)

जब बढ़ते प्रतिफलो के नियम के अधीन किसी वस्तु का उत्पादन किया जा रहा हो, तो उस वस्तु की दीर्घकालीन सामान्य कीमत के निर्धारण मे जो कठिनाइयाँ आती है उन्हे हल करने के लिए प्रोफेसर मार्शल ने प्रतिनिधि फर्म की सकल्पना प्रस्तुत की।

मार्शल यह मानता था कि बढ़ते प्रतिफलो की प्राप्ति प्रतियोगी स्थितियो मे ही हो सकती है क्योंकि उद्योग मे सभी फर्मो का आकार एक जैसा नहीं होगा। प्रत्येक फर्म विकास की अलग-अलग अवस्था मे होगी। दूसरे शब्दो मे, दीर्घकालीन मे बाजार मे अनेक फर्मे होती है और उनमे से प्रत्येक का विकास एक विशिष्ट जीवन-चक्र मे से गुजर कर होता है।

न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागतों के स्तर पर ही दीर्घकालीन सामान्य कीमत निर्धारित होती है। समस्या यह है कि जब उद्योग मे विभिन्न आकारो की अनेक फर्मे हो तो किस फर्म की दीर्घकालीन औसत लागते न्यूनतम होगी जो अन्तत दीर्घकालीन सामान्य कीमत को निर्धारित करेगी? क्या इस कीमत को अधिकतम दक्ष फर्म की न्यूनतम औसत लागते निर्धारित करेगी अथवा न्यूनतम दक्ष फर्म की? परन्तु दीर्घकालीन सामान्य कीमत को न तो अधिकतम दक्ष फर्म की न्यूनतम औसत लागत निर्धारित करेगी और न ही न्यूनतम दक्ष फर्म की। अधिकतम दक्ष फर्म की स्थिति मे, न्यूनतम औसत लागते न्यूनतम होगी जिससे दीर्घकालीन सामान्य कीमत इतनी कम होगी कि अन्य फर्मो को हानियाँ उठानी पड़ेगी (क्योंकि उनकी औसत लागते कीमत से अधिक होगी)। इसलिए यह दीर्घकालीन कीमत नहीं हो सकती क्योंकि दीर्घकालीन मे फर्मे हानि नहीं उठा सकतीं। उन्हे सामान्य लाभ प्राप्त होने ही चाहिए। दीर्घकालीन सामान्य कीमत, न्यूनतम दक्ष फर्म की न्यूनतम औसत लागत के बराबर भी नहीं हो सकती क्योंकि इसकी न्यूनतम औसत लागते उच्चतम होगी जबकि अन्य फर्मो की लागते इसकी अपेक्षा कम होगी और इसलिए वे अन्य फर्मे अधिसामान्य (supernormal) लाभ अर्जित करेगी। यह भी दीर्घकालीन सामान्य कीमत नहीं हो सकती क्योंकि यह आवश्यक है कि दीर्घकालीन मे सभी फर्मे केवल सामान्य लाभ ही अर्जित करे। इन कठिनाइयों के परिणामस्वरूप मार्शल ने एक ऐसी प्रतिनिधि फर्म की सकल्पना की जिसकी न्यूनतम औसत लागते, दीर्घकालीन सामान्य कीमत को निर्धारित करे ताकि सभी फर्मे केवल सामान्य लाभ ही अर्जित कर सके।

मार्शल के अनुसार प्रतिनिधि फर्म न तो ऐसी नई फर्म है जो "व्यापार मे जमने के लिए सघर्ष कर रही है" और न ही "ऐसी फर्म है जिसका व्यापार बहुत फैला हुआ है और जिसके पास बड़ी-बड़ी सुव्यवस्थित कर्मशालाएँ (वर्कशाप) है।" वह ऐसी फर्म होती है जो "काफी लम्बे समय से व्यापार मे रही हो और जो बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर चुकी हो तथा जिसका सामान्य योग्यता से प्रबध किया जा रहा हो और जिसकी उन आन्तरिक एव बाह्य किफायतो तक सामान्य पहुँच हो जो उत्पादन की उस कुल मात्रा से सबध रखती है।" प्रतिनिधि फर्म ऐसी दीर्घकालीन औसत फर्म है जिसे हम व्यापक सर्वेक्षण के बाद चुन कर आसानी से पहचान सकते है, चाहे निजी प्रबंध के

अन्तर्गत हो, और चाहे सयुक्त पूँजी प्रबध के अन्तर्गत। स्थिर स्थिति मे फर्मों का उत्थान-पतन होता है, परन्तु प्रतिनिधि फर्म का आकार अनाक्रान्त (Virgin) वन के प्रतिनिधि वृक्ष की भाँति सदा एक जैसा रहता है। इस प्रकार प्रतिनिधि फर्म अपरिवर्तित रहती है, बशर्ते कि बाह्य वातावरण स्थिर रहे, और वह स्थायी रूप से एक जैसी आन्तरिक तथा बाह्य किफायतों का लाभ उठाती रहती है। यह आवश्यक है कि बाजार मे उत्पादन की कुल मात्रा के समानान्तर उसके उत्पादन का आकार बदले और इसकी प्रति इकाई लागत बाजार मे औसत इकाई लागत का प्रतिनिधित्व करे। इसे चित्र 1 द्वारा समझाया गया है।
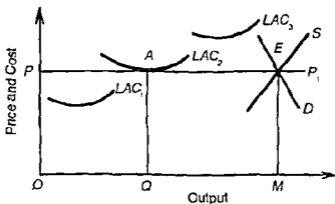
चित्र 1

यह मान कर कि उद्योग मे तीन फर्मे है जिनके दीर्घकालीन वक्र LAC_1, LAC_2 और LAC_3 दिखाए गए है। D और S क्रमश उद्योग के माग और पूर्ति वक्र है जो E बिन्दु पर काटते है तथा OP ($=ME$) कीमत और OM मात्रा निर्धारित करते है। इस प्रकार, फर्मों के लिए PP_1 कीमत दी हुई है। LAC_2 वक्र वाली प्रतिनिधि फर्म है जिसकी कीमत QP ओसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु A के बराबर है और यह सामान्य लाभ कमा रही है। यह कीमत उद्योग द्वारा नियत कीमत के बराबर है $QA = OP$ ($=ME$) फर्म एक की औसत लागत LAC_1 सामान्य कीमत OP से कम होने के कारण, यह सामान्य से अधिक लाभ कमा रही है जिसके द्वारा आकर्षित होकर नई फर्मे उद्योग मे प्रवेश करेंगी। इससे पूर्ति बढेगी ओर परिणामस्वरूप लागते भी बढेंगी। उद्योग का प्रसार होगा जिससे फर्मों की लागतें प्रतिनिधि फर्म की औसत लागत के बराबर हो जाएगी तथा सभी फर्मे सामान्य लाभ कमाएगी। फर्म तीन का LAC_3 वक्र सामान्य कीमत रेखा PP_1 से ऊपर होने के कारण यह हानि उठा रही है जिससे ऐसी सभी फर्मे उद्योग को छोड जाएगी। पूर्ति कम होगी और परिणामस्वरूप लागते भी कम होगी तथा प्रतिनिधि फर्म की ओसत लागत के बराबर हो जाएगी तथा सभी फर्मे सामान्य लाभ कमाएगी।

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)

अर्थशास्त्रियों ने प्रतिनिधि फर्म की धारणा की कटु आलोचना की है और अब इसे त्याग दिया गया है।

(1) प्रतिनिधि फर्म, मार्शल की काल्पनिक सकल्पना है। जैसा कि प्रोफेसर रैग्नर फ्रिश (Frisch) ने लक्ष्य किया, "यह मनगढन्त है और ऐसी युक्ति है जिसके द्वारा समग्र रूप मे बाजार के विकास पर शीघ्रता एव आसानी से तर्क किया जाए।"

(2) रॉबिन्स के अनुसार "प्रतिनिधि फर्म" शब्द अपने आप मे अस्पष्ट है क्योकि मार्शल ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि क्या यह प्रतिनिधि प्लाट से अथवा तकनीकी उत्पादन इकाई से सबध रखता है अथवा प्रतिनिधि व्यापार सगठन से।"

(3) फिर रॉबिन्स इस सकल्पना को अनावश्यक मानता है। उसके अनुसार, "हमे प्रतिनिधि फर्म अथवा प्रतिनिधि उत्पादक की कल्पना करने की वैसे ही कोई जरूरत नहीं है जैसे कि प्रतिनिधि कीमत अथवा भूमि, प्रतिनिधि मशीन अथवा प्रतिनिधि वर्कर की कल्पना करने की जरूरत नहीं है।"

(4) प्रोफेसर राबर्ट्सन इस बात पर मार्शल से सहमत नहीं है कि प्रतिनिधि फर्म "अनाक्रान्त वन मे प्रतिनिधि वृक्ष" के समान होती है। व्यापार निर्देशिका मे ऐसी फर्म खोज पाना सभव नहीं है जिसका स्थायी अस्तित्व हो। राबर्ट्सन के शब्दो मे, "प्रतिनिधि फर्म, किसी विशिष्ट फर्म को लक्ष्य न करके ऐसी स्थिति को लक्ष्य करती है जिसे एक या अधिक फर्मे विभिन्न क्षणो मे प्राप्त कर सकती हैं। यह लहर के शिखर के जलकणो के समान होती है, विभिन्न क्षणो मे जल के विभिन्न कण शिखर पर स्थित होते हे। इसी प्रकार, हो सकता है कि जो फर्म आज प्रतिनिधि है, वह कल प्रतिनिधि न रहे और कोई अन्य फर्म ही इसका स्थान ले ले।"

(5) प्रतिनिधि फर्म केवल एक अमूर्त विचारणा है। प्रोफेसर शूम्पीटर के अनुसार वह न तो ओसत फर्म होती है ओर न ही सीमात तथा न ही प्रमुख फर्म होती है।

(6) पीगू, सराफा तथा कालडॅर ने प्रतिनिधि फर्म की सकल्पना की आलोचना ओर उसे इस आधार पर अमान्य ठहराया है कि जब कोई फर्म बढते प्रतिफलो के नियम के अन्तर्गत चल रही है और आन्तरिक एव बाह्य किफायतों का लाभ उठा रही है, तो वह उद्योग के कुल उत्पादन के प्रमुख भाग का उत्पादन करेगी, उसकी औसत लागते घटा देगी और उसे अन्य फर्मो की अपेक्षा कम कीमत पर बेचेगी। अन्तत वह अपनी सभी प्रतिद्वन्द्वी फर्मो को परास्त कर सकेगी ओर एकाधिकार फर्म बन जाएगी।

(7) प्रोफेसर जे के मेहता ने मार्शल द्वारा दी गई प्रतिनिधि फर्म की दो त्रुटिया बताई है। प्रथम, मार्शल ने यह स्पष्ट नहीं किया कि प्रतिनिधि फर्म की सकल्पना स्थिर या गतिशील आर्थिक स्थितियों मे या दोनो मे लागू होती हे। दूसरे, मार्शल ने प्रतिनिधि फर्म को सदेव सतुलन की अवस्था मे माना है जो न तो फेलती हे ओर न ही आकार मे कम होती है।[1]

(8) प्रो गिलबाउ (Guillebaud) के अनुसार, मार्शल का प्रतिनिधि फर्म का विश्लेषण स्थिर स्थितियो के अन्तर्गत दीर्घकालीन सतुलन से सबद्ध है परन्तु यह सतुलन को ले जाने वाली प्रक्रिया की कोई व्याख्या नहीं करता हे। इसलिए यह विश्लेषण स्थिर उपकल्पना और वास्तविक ससार के बीच सकल्पनात्मक अर्ध-मार्ग घर की तरह है।

इन कारणों से अर्थशास्त्रियो ने ऐसी फर्म के वास्तविकता मे पाए जाने पर सदेह प्रकट किया हे। अत उनके अनुसार आधुनिक कीमत सिद्धात मे प्रतिनिधि फर्म को कोई स्थान नहीं है।

इसकी व्यावहारिक उपयोगिता (Its Practical Utility)

इस सकल्पना की कटु आलोचना होने के बावजूद कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियो विशेषकर, प्रो जे के मेहता ने, प्रतिनिधि फर्म को उपयोगी सिद्ध किया है।

रैग्नर फ्रिश के अनुसार, "यदि मार्केट मे बहुत फर्मे हो और प्रत्येक का विकास एक विशिष्ट जीवन-चक्र मे से गुजर कर होता हो तो उनमे से बहुत सी किसी एक या दूसरे समय मे अपने विकास की ऐसी स्टेज मे से गुजरती हे जिसमे वह प्रतिनिधि फर्म के समान होती हे। प्रो मेहता'

1 J K Mehta *Studies in Advanced Economic Theory* op cit ch XVIII

उत्पादन स्थिर रहता है। परन्तु समस्त उद्योग के सतुलन में होने पर भी व्यक्तिगत फर्में सतुलन मे नहीं भी हो सकतीं। फिर भी, ऐसी सभावना पाई जाती है कि उद्योग मे एक ऐसी फर्म हो जिसका उत्पादन स्थिर हो और जो उद्योग की तरह ही अधिकतम लाभ कमा रही हो तथा सतुलन की स्थिति मे हो। पीगू ऐसी फर्म को सतुलन फर्म कहता है। उसके अनुसार, "सतुलन फर्म का यह अभिप्राय है कि जब भी समस्त उद्योग सतुलन मे हो तो कोई एक फर्म पाई जा सकती है जो स्वय व्यक्तिगत रूप से X के निरतर उत्पादन के साथ सतुलन मे होगी, तथा उद्योग सामान्य पूर्ति कीमत P के प्रत्युत्तर मे Y का निरतर उत्पादन कर रहा है।"[3]

सतुलन फर्म की सकल्पना को एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। मान लीजिए कि सूती कपडा उद्योग मे क, ख, ग एव घ चार फर्में है। जैसाकि नीचे तालिका मे दिखाया गया है तीन वर्षों 1988, 1989 एव 1990 मे उद्योग का उत्पादन 3,000 लाख मीटर पर स्थिर रहता है। फर्म ग के उत्पादन मे भी इन वर्षों मे कोई परिवर्तन नहीं होता है और यह 750 लाख मीटर पर ही स्थिर रहता है जबकि अन्य फर्मों का उत्पादन इन तीन वर्षों में घटता या बढता रहता है। यही ग फर्म पीगू की सतुलन फर्म कही जा सकती है।

तालिका 1

फर्म	1988 मे उत्पादन	1989 मे उत्पादन	1990 मे उत्पादन
क	500 लाख मीटर	600 लाख मीटर	650 लाख मीटर
ख	950 " "	800 " "	700 " "
ग	750 " "	750 " "	750 " "
घ	800 " "	850 " "	900 " "
समस्त उद्योग	3,000 " "	3,000 " "	3,000 " "

पीगू की यह सतुलन फर्म न तो बाहरी किफायतो या अलाभो और न ही उद्योग के उत्पादन पैमाने मे प्रभावित होती है। सतुलन फर्म की पूर्ति कीमत इसकी सीमात उत्पादन लागत के बराबर होती है। पीगू के अनुसार, उद्योग की पूर्ति कीमत सतुलन फर्म की सीमात लागत एव औसत लागत के बराबर होनी चाहिए। यदि उद्योग की पूर्ति कीमत सतुलन फर्म की सीमात लागत से अधिक पाई जाती है तो फर्म असामान्य लाभ अर्जित करेगी तथा यह सतुलन फर्म नहीं रहेगी। दूसरी ओर, यदि उद्योग की पूर्ति कीमत सतुलन फर्म की सीमात लागत से कम होगी तो फर्म को हानि उठानी पडेगी और वह अन्तत उद्योग को छोड जाएगी।

साथ मे, उद्योग की पूर्ति कीमत सीमात फर्म की औसत उत्पादन लागत के बराबर भी होनी चाहिए। यदि उद्योग की पूर्ति कीमत सतुलन फर्म की औसत लागत से अधिक होती है तो उद्योग असामान्य लाभ अर्जित करेगा। इन लाभो से आकर्षित होकर नई फर्म उद्योग मे प्रवेश कर जाएगी। परिणामस्वरूप, फर्म सतुलन फर्म नहीं रहेगी। इसके विपरीत, यदि उद्योग की पूर्ति कीमत सतुलन फर्म की औसत लागत से कम होती है तो उद्योग को हानि उठानी पडेगी जिसके परिणामस्वरूप कुल फर्में उद्योग को छोड जाएगी तथा सतुलन फर्म नहीं रहेगी। अत उद्योग की वस्तु की सामान्य पूर्ति कीमत सतुलन फर्म की सीमात लागत एव औसत उत्पादन लागत के बराबर अवश्य होनी चाहिए। ये दोनों शर्तें सतुलन फर्म के पाए जाने के लिए मूलभूत तथा सामान्य व्यवहार की है।[4]

3 A C Pigou *op cit*, p 790
4 *Ibid*, p 794

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)

पीगू की सतुलन फर्म आलोचनाओं से मुक्त नहीं है। यह मार्शल की प्रतिनिधि फर्म की तरह ही अवास्तविक सकल्पना है।

1 श्रीमती जोन राबिन्सन पीगू के इस विचार से सहमत नहीं होती कि सतुलन फर्म के सिवाय यदि सभी फर्में सतुलन में न भी हों तो उद्योग सतुलन मे होगा। उद्योग सतुलन में तभी होगा यदि प्रसार कर रही फर्मों के उत्पादन में वृद्धि सकुचित हो रही फर्मों के उत्पादन मे कमी के बराबर होती है। पीगू स्वय ऐसी सभावना को मानता है जब वह लिखता है "समस्त उद्योग सतुलन की अवस्था में होगा, व्यक्तिगत फर्मों मे प्रसार एव सकुचन की प्रवृत्ति लोप हो जाएगी, परन्तु यह निश्चित है कि बहुत सी व्यक्तिगत फर्में स्वय सतुलन मे नहीं होगी और सभवत कोई भी नहीं होगी।"

2 प्रो जे के मेहता सतुलन फर्म की सकल्पना को प्रतिनिधि फर्म की सकल्पना से श्रेष्ठ नहीं समझते हैं। उनके लिए दोनों सकल्पनाएँ इस बात मे समान हैं कि वे उद्योग की समान शर्तों को लेती है अर्थात् जब उद्योग सतुलन मे होता है तो उनकी पूर्ति कीमत सतुलन फर्म तथा प्रतिनिधि फर्म की सीमान्त एव औसत लागत के बराबर होती है।

अन्तिम, यह मान्यता कि सतुलन फर्म बाहरी किफायतों तथा अमितव्ययिताओं और उद्योग के उत्पादन के पैमाने द्वारा प्रभावित नहीं होती है, अवास्तविक है। वास्तविकता तो यह है कि कोई फर्म कितनी भी दक्ष क्यों न हो सदैव बाहरी किफायतों या अमितव्ययिताओं और उद्योग के पैमाने द्वारा प्रभावित होती है।

इन आलोचनाओं के बावजूद, सतुलन फर्म की सकल्पना ने इष्टतम फर्म की सकल्पना तक पहुँचने में अर्थशास्त्रियों की सहायता की है।

3. इष्टतम फर्म
(OPTIMUM FIRM)

एक उद्योग मे किसी एक समय-अवधि में एक विशेष आकार की फर्म होती है जो अन्य फर्मों की अपेक्षा अधिक दक्षता से कार्य करती है। यह फर्म दीर्घकालीन न्यूनतम औसत लागत पर अपनी वस्तुओं का उत्पादन करती है। इसकी न तो अपने उत्पादन को बढाने और न ही कम करने की प्रवृत्ति होती है और यह सामान्य लाभ ही कमाती है इसे इष्टतम फर्म कहते हैं। इष्टतम फर्म की धारणा प्रो इ ए जी. राबिन्सन द्वारा विकसित की गई है। वह इष्टतम फर्म को ऐसी फर्म परिभाषित करता है जिसकी तकनीक और सगठन करने की योग्यता की वर्तमान अवस्थाओं मे "प्रति इकाई औसत उत्पादन लागत न्यूनतम होती है, जब वे सभी लागतें जो दीर्घकाल से सबधित होती हैं शामिल की जाती है।" आर.टी बाई (R.T Bye) के शब्दों में "इष्टतम फर्म व्यापारिक उद्यम का वह सगठन है, जो प्रोद्योगिकी और अपनी वस्तु के लिए मार्किट की दी हुई परिस्थितियों में अपनी वस्तु को दीर्घकाल में प्रति इकाई न्यूनतम औसत लागतों पर उत्पादित कर सकती है।"

अल्प अवधि को छोड़कर, फर्म के लिए इष्टतम एक निश्चित बिन्दु नहीं है। यह निरपेक्ष न होकर एक सापेक्ष सकल्पना है। फर्म के लिए एक दिए हुए साधनों के सेट (set) के साथ जो इष्टतम है वह साधनो के सयोगों के परिवर्तन मे इष्टतम नहीं भी हो सकता है। नवप्रवर्तन, आविष्कार और अच्छी साख सुविधाएँ इष्टतम फर्म के आकार को ऊँचा भी कर सकती है। इसके विपरीत, साधनों की प्राप्यता मे कठिनाई और अन्य कमियाँ इष्टतम स्तर को नीचे भी ला सकती है। अत किसी भी फर्म का इष्टतम आकार समाधनो के एक सेट मे समाधनों के दूसरे सेट मे सर्वथा भिन्न हो सकता है। प्रो बीचम (Beacham) के अनुसार, "एक आदर्श सगार मे सभी फर्मों को उस बिन्दु

तक वृद्धि करनी चाहिए जिस पर वे उत्पादकीय ससाधनों का सबसे प्रभावी और मितव्ययी उपयोग कर रही हैं। अर्थात्, सभी फर्मों को बढ़ना चाहिए जब तक कि वे इष्टतम आकार तक नहीं पहुंच जाती हैं।*

एक इष्टतम फर्म इष्टतम पैमाना प्लांट (optimum scale plant) पर कार्य करती है। इष्टतम पैमाना प्लांट वह होता है जहाँ फर्म की दीर्घकालीन औसत लागत (*LAC*) अपने न्यूनतम बिन्दु पर होती है, वस्तु की कीमत इस न्यूनतम *LAC* को पूरा करती है, फर्म सामान्य लाभ कमा रही है तथा फर्म की संतुलन शर्त यह होती है जहाँ $SMC = LMC = MR = \text{Price} = SAC = LAC$ इसके अतिरिक्त किसी और अवस्था होने पर, फर्म या तो इष्टतम पैमाने से कम या अधिक के प्लाट को चला रही होगी। परिणामस्वरूप, फर्म इष्टतम आकार की नहीं होगी। यदि फर्म इष्टतम से कम आकार का प्लांट चलाती है तो वह पैमाने की किफायतों का अधिकतम लाभ नहीं उठा रही होती है। दूसरी ओर, यदि फर्म इष्टतम से अधिक आकार के प्लाट को चलाती है तो पैमाने की हानियों के कारण इसकी प्रति इकाई उत्पादन लागत में वृद्धि होती है। एक उद्योग में इष्टतम फर्म के पाए जाने की ऊपर दी गई संतुलन शर्त केवल पूर्ण प्रतियोगिता में ही पाई जाती है।

एक पूर्ण प्रतियोगी फर्म का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाने के लिए न्यूनतम लागत से अधिकतम उत्पादन होता है। उद्योग में सभी फर्मों के लिए समरूप लागतों की मान्यता होने पर, प्रत्येक फर्म दीर्घकाल में इस उद्देश्य को पूरा करने का प्रयत्न करती है। दीर्घकाल में एक फर्म मार्किट की माग एव कीमत स्थितियों के अनुसार अपने उत्पादन के पैमाने तथा प्लाट की क्षमता को बदल सकती है। मान लीजिए कि फर्म चित्र 2 (B) में SAC_1 वक्र द्वारा व्यक्त प्लाट चला रही है। OP_1 कीमत पर फर्म बिन्दु *A* पर संतुलन में है जहाँ $SMC_1 = LMC = MR_1 = AR_1 = P_1$ इस कीमत पर यह OM_1 उत्पादन पर प्रति इकाई *AB* हानि उठा रही है। इसलिए इस फर्म का SAC_1 प्लाट इष्टतम पैमाने का प्लाट नहीं है, क्योंकि सभी फर्मों की लागतें समरूप हैं, कुछ फर्में जो हानि नहीं उठा सकेंगी, उद्योग को छोड जाएंगी। परिणामस्वरूप, पूर्ति कम हो जाएगी तथा उद्योग का पूर्ति वक्र S_1 बाईं ओर *S* वक्र के रूप में शिफ्ट कर जाएगा जैसाकि चित्र 2 (A) से स्पष्ट है। अत कीमत बढ़कर *OP* हो जाएगी ज्हाँ उद्योग *Q* पर संतुलन में है तथा फर्म *E* बिन्दु पर चित्र 2 (B) में।
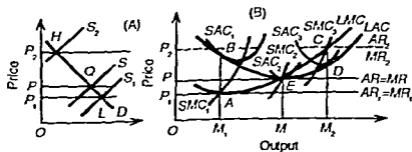
चित्र 2

यदि कीमत OP_2 हो और फर्म SAC_3 वक्र द्वारा व्यक्त प्लाट चला रही है तो वह *C* बिन्दु पर सतुलन में होती है जहाँ $SMC_3 = LMC = MR_2 = AR_2 = P_2$. OP_2 कीमत होने पर फर्म OM_2 उत्पादन पर प्रति इकाई *DC* अति-सामान्य लाभ (supernormal profits) कमाती है। इसलिए इसका SAC_3 प्लांट भी इष्टतम प्लांट नहीं है। इन अति-सामान्य लाभों से आकर्षित होकर नई फर्में

उद्योग मे प्रवेश कर जाएगी जिसमे पूर्ति बढेगी और उद्योग का पूर्ति वक्र S_1 से S पर शिफ्ट कर जाएगा तथा कीमत गिरकर OP हो जाएगी जैसाकि चित्र 2 (A) मे दिखाया गया है।

इस OP कीमत पर फर्म SAC_2 वक्र द्वारा व्यक्त प्लाट चला रही है तथा E बिन्दु पर सतुलन मे है। इस बिन्दु पर इष्टतम फर्म की सतुलन शर्त पूरी हो जाती है, अर्थात् $SMC_2 = LMC = MR = AR = P = SAC_2 = LAC$ अपने न्यूनतम बिन्दु पर। यह सामान्य लाभ कमा रही है। अत SAC_2 प्लाट ही इष्टतम पैमाने का प्लाट है। क्योकि हमने उद्योग की सभी फर्मों की समान लागते मानी है इसलिए सभी फर्मे इष्टतम होगी। इस कीमत OP पर न तो किसी फर्म की उद्योग को छोडने और न ही प्रवेश करने की प्रवृत्ति होगी। अत पूर्ण प्रतियोगिता मे दीर्घकाल मे इष्टतम प्लाट चलाती है और इष्टतम फर्मे होती है।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)

इष्टतम फर्म की सकल्पना की निम्नलिखित कारणो से आलोचना की गई है

1 यह धारणा पूर्ण प्रतियोगिता पर आधारित है जो कठिनाई से पाई जाती है। फिर, पूर्ण प्रतियोगिता की कोटि (degree) का मूल्याकन करना सभव नहीं है।

2 शुम्पीटर के अनुसार, यह मान लिया जाता है कि यदि एक मार्किट मे पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है तो सभी फर्मे इष्टतम आकार की है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि पूर्ण प्रतियोगिता की शर्तों के अभाव मे फर्मे इष्टतम आकार की ओर गति नहीं करेंगी।

3 आनुभविक प्रमाण के आधार पर ठीक प्रकार से यह बताना कठिन है कि उद्योग मे इष्टतम फर्म कौन सी है।

4 इष्टतम फर्म की सकल्पना व्यावहारिक नहीं है क्योकि सभी फर्मे दीर्घकाल मे इष्टतम आकार की नहीं हो सकती है।

इष्टतम फर्म का आकार निर्धारित करने वाले तत्त्व (Factors Determining the Size of an Optimum Firm)

इष्टतम फर्म के आकार को निर्धारित करने वाले निम्नलिखित तत्त्व होते है

1 प्लाट का आकार (Size of plant)—इष्टतम फर्म का आकार उसके द्वारा प्रचालित प्लाट के आकार पर निर्भर करता है जो आगे फर्म द्वारा अपनाई गई प्रौद्योगिकी पर निर्भर करता है। जितना बडा प्लाट होगा उतना ही बडा फर्म का आकार होगा।

2 प्रबध (Management)—इष्टतम फर्म का आकार उसकी प्रबधकीय योग्यता पर निर्भर करता है। कुशल और योग्य प्रबधक फर्म की वृद्धि करके प्रति इकाई औसत लागत को न्यूनतम पर लाकर इष्टतम फर्म के आकार को बढाते है।

3 वित्त (Finance)—जिन फर्मों को वित्त सस्ता और उचित राशि मे प्राप्त होता है और वे उसका फर्म की वृद्धि करने में प्रयोग करती है, उन इष्टतम फर्मों का आकार बडा होता है।

4 विपणन (Marketing)—इष्टतम फर्म का आकार कुशल विपणन पर बहुत निर्भर करता है, अर्थात् उसकी विज्ञापन कला, एजेटो, सेल्स कर्मियों, आदि पर।

5 मार्किट (Market)—वस्तु के लिए मार्किट जितनी बडी होगी, इष्टतम फर्म का आकार उतना ही बडा होगा।

5 एकाधिकार में, कीमत के MR से अधिक $(P > MR)$ होने के कारण एकाधिकारी ऐसा प्लाट चलाएगा जिसमे उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होते हैं वही उसका इष्टतम प्लाट होगा जिसके LAC वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर वह उत्पादन करता है। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्म इष्टतम प्लाट के LAC वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर उत्पादन करती है तथा केवल सामान्य लाभ ही कमाती है, और इसमें अतिरिक्त क्षमता (excess capacity) पाई जाती है। परन्तु इष्टतम फर्म की धारणा पूर्ण प्रतियोगिता से ही सबधित है।

6 बदलती परिस्थितियाँ (Changing conditions)—जो फर्म बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियो के अनुकूल अपनी नीतियो में परिवर्तन कर लेती है उसका इष्टतम आकार अन्य फर्मों की अपेक्षा बडा होता है।

प्रश्न

1 मार्शल की प्रतिनिधि फर्म की धारणा की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। यह पीगू की सतुलन फर्म की धारणा से कैसे भिन्न है?

2 पीगू की सतुलन फर्म की व्याख्या कीजिए। यह मार्शल की प्रतिनिधि फर्म पर कैसे सुधार है?

3 इष्टतम फर्म की धारणा की व्याख्या कीजिए। इष्टतम फर्म के आकार को निर्धारित करने वाले कौन से कारक है?

अध्याय 24

परस्पर निर्भर कीमतें
(INTERDEPENDENT PRICES)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादन के कीमत-निर्धारण के विश्लेषण मे हम यह मान्यता लेकर चले थे कि एक वस्तु की कीमत अन्य वस्तुओ की कीमतो से स्वतन्त्र होती है। परन्तु यह अयास्तविक बात है। वस्तुएँ या तो स्थानापन्न होती हैं, या फिर पूरक। परस्पर सम्बद्ध होने के कारण एक वस्तु की कीमत, या माँग या पूर्ति मे परिवर्तन अन्य वस्तुओ की कीमत को प्रभावित करेगा। हम इस प्रकार की परस्पर निर्भर कीमतो की स्थितियों पर विचार कर रहे है।[1]

1 सयुक्त माँग
(JOINT DEMAND)

सयुक्त माँग किन्हीं ऐसी दो या अधिक वस्तुओ अथवा सेवाओ के सबध को बताती है जो एक साथ (इकट्ठी) मागी जाती है। कारो तथा पैट्रोल की, पैनो तथा स्याही की और चाय तथा चीनी की माँग, स्युक्त माँग है।

जिन वस्तुओं की सयुक्त माँग होती है वे वस्तुएँ पूरक (complementary) कहलाती है। एक वस्तु की कीमत बढ जाने से दूसरी वस्तु की माँग गिर जाती है, और विलोमश भी। उदाहरण के लिए, कारो की कीमतों मे वृद्धि कारो की माँग को और साथ ही पैट्रोल की माँग को गिरा देगी और पैट्रोल की कीमत घटा देगी, बशर्ते कि पैट्रोल की पूर्ति अपरिवर्तित रहे। दूसरी ओर, यदि कारो के
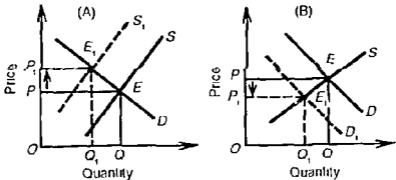
चित्र 24 1

1 यह अध्याय सबधित वस्तुओं की कीमत निर्धारण से भी सबद्ध है।

उत्पादन की लागत गिरने से कारों की कीमत गिर जाती है तो उनकी माँग बढ जाएगी और इसलिए पैट्रोल की माँग और कीमत बढ जाएगी बशर्ते कि पैट्रोल की उपलब्ध पूर्तियाँ अपरिवर्तित रहें। इसे चित्र 24 1 (A) और (B) में दिखाया गया है।

चित्र 24 1 (A) में कारों के लिए और 24 1 (B) में पैट्रोल के लिए मार्किट दिखाई गई है। जब कारों की कीमत OP से बढकर OP_1 पर पहुँचती है, तो उनकी माँग OQ से गिर कर OQ_1 पर आ जाती है। पैट्रोल की माँग गिर जाती है जैसा कि चित्र 24 1 (B) में बिन्दुकित वक्र D_1 द्वारा दिखाया गया है जिससे माँग की मात्रा OQ से गिर कर OQ_1 रह जाती है। परिणामस्वरूप, पैट्रोल की कीमत भी OP से गिर कर OP_1 पर आ जाती है। इस प्रकार सयुक्त माँग वाली वस्तुओं की कीमतें, कारों की माँग की लोच की कोटि और पैट्रोल की पूर्ति पर निर्भर करती हुई, विपरीत दिशाओं में चलती हैं।

पर यदि एक वस्तु (कार) की माँग गिरेगी, तो दूसरी वस्तु (पैट्रोल) की माँग भी गिर जाएगी। परिणामस्वरूप, दोनों वस्तुओं की कीमतें गिरेंगी। दूसरी ओर, यदि एक वस्तु (कार) की माँग बढेगी, तो वह दूसरी वस्तु (पैट्रोल) की माँग को भी बढा देगी, और परिणामस्वरूप दोनों वस्तुओं की कीमतें बढ जाएँगी। चित्र 24 2 (A) में दिखाया गया है कि कारों की माँग OQ से गिर कर OQ_1 रह जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि पैट्रोल की माँग, जैसा कि चित्र 24 2 (B) में दिखाया गया है, OP से गिर कर OP_1 रह जाती है। दोनों चित्र यह भी व्यक्त करते हैं कि कारों तथा पैट्रोल की कीमतें OP से गिर कर OP_1 हो जाती हैं। ये कीमतें किस सीमा तक परिवर्तित होंगी, यह बात वस्तुओं की माँग की लोच की कोटि (degree) और साथ ही वस्तुओं की दुर्लभता अथवा प्रचुरता की कोटि पर निर्भर करेगी।
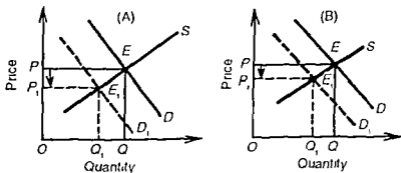
चित्र 24 2

परन्तु वे कौन-सी शक्तियाँ हैं जो सयुक्त माँग की वस्तुओं की माँग एव पूर्ति अनुसूचियों के पीछे होती हैं? सयुक्त रूप में माँगी जाने वाली वस्तुओं के उत्पादन की सीमान्त लागत तो जानी जा सकती है, परन्तु उनकी अलग-अलग माँग अनुसूचियों का अनुमान लगाना कठिन है। उपरोक्त समस्या को हल करने में सीमान्त विश्लेषण सहायता करता है। एक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता का हिसाब लगाने के लिए हम दो वस्तुओं के दो अलग-अलग सयोग लेते हैं जिनमें एक वस्तु की मात्रा को विभिन्न अनुपातों में लिया जाता है जब कि दूसरी वस्तु की मात्रा स्थिर रखी जाती है।

"हम उत्पादन के साधनों के विविध सभव सयोग ले सकते हैं और ऐसी दो स्थितियाँ सीमाबद्ध कर सकते हैं जिनमें एक साधन की विभिन्न मात्राओं को अन्य साधनों की समान मात्राओं के साथ नियुक्त किया जाए। जिस स्थिति में परिवर्ती साधन की अधिक मात्रा नियुक्त की जाती है उसमें

जो अतिरिक्त उत्पादन उपलब्ध होगा, उसे उस साधन की उस अतिरिक्त मात्रा का सीमान्त उत्पादन (अथवा सीमान्त उपयोगिता) माना जा सकता है। हम कह सकते है कि इस साधन की नियुक्ति बढाकर उस बिन्दु पर पहुँचा दी जाएगी जिस पर यह सीमान्त उत्पादन उस कीमत के लगभग बराबर होगा जो उसके लिए अदा करनी पडेगी।[2]

"हम सयुक्त माँग की वस्तुओ, पैन तथा स्याही के उदाहरण की सहायता से बात स्पष्ट करते है

1 पैन + 1 स्याही की दवात = रु 4 के बराबर उपयोगिता

2 पैन + 1 स्याही की दवात = रु 6 50 के बराबर उपयोगिता

इसलिए एक पैन की अतिरिक्त (सीमान्त) इकाई की उपयोगिता रु 2 50 के बराबर है। इसी प्रकार, स्याही की मात्रा परिवर्तित करके और पैन की मात्रा स्थिर रख कर स्याही की सीमान्त उपयोगिता निकाली जा सकती हैं।

इस प्रकार कीमत उस बिन्दु पर स्थिर होगी जहाँ एक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता उस वस्तु के उत्पादन की सीमान्त लागत के बराबर होती है, और एक वस्तु की कीमत अथवा माँग दूसरी वस्तु की कीमत अथवा माँग को ऊपर चित्रो 24 1 तथा 24 2 मे दिखाए गए ढग से प्रभावित करेगी।

इसी विधि से, उत्पादन के संयुक्त माँग वाले प्रत्येक साधन के सीमान्त उत्पाद का अलग-अलग अनुमान लगाया जा सकता है। मकान बनाने के लिए सीमेंट, ईंटो, लोहे की वस्तुओ और लकडी जैसे इमारती सामान की सयुक्त माँग होती है, और एक साधन की मात्रा मे परिवर्तन करके तथा अन्य साधनो की मात्रा स्थिर रख कर प्रत्येक साधन की सीमान्त उत्पादकता का हिसाब लगाया जा सकता है।

व्युत्पन्न माग (Derived Demand)—उत्पादक वस्तुओ की सयुक्त माँग को व्युत्पन्न माँग कहा जाता है क्योकि किसी साधन की माँग उस तैयार वस्तु से व्युत्पन्न माँग होती है जिसके उत्पादन मे वह साधन सहायक हो। श्रम के लिए माँग, व्युत्पन्न माँग होती है। यह उस वस्तु की माँग पर निर्भर करती है जिसके बनाने मे यह सहायक हो। राज, मजदूर, बढई, नल साजो की माँग, मकानो की माँग से व्युत्पन्न होती है। यद्यपि इन सब की माँग सयुक्त होती है। मकानो के लिए माँग बढने या घटने पर मकान बनाने के लिए आवश्यक इस प्रकार के श्रम की माँग बढेगी या घटेगी। भवन-निर्माण की माँग कीमत, मकानो की माँग कीमत से व्युत्पन्न होती है।

मार्शल ने कुछ ऐसी स्थितियों की कल्पना की है जहाँ एक विशिष्ट साधन (जैसे कि राज) अन्य साधनो के साथ सयुक्त रूप से माँगे जाने पर, अपनी पूर्ति रोक कर अपनी कीमत (पारिश्रमिक) बढा सकता है। मान लीजिए कि मकान बनाने के लिए लगाए गए राज यह धमकी देते है कि यदि उनकी मजदूरी नहीं बढाई गई तो वे अपनी पूर्ति रोक देगे। मार्शल के अनुसार, जिन वर्करो की अन्य साधनो के साथ सयुक्त रूप से माँग होगी, वे वर्कर अपनी मजदूरी बढवाने मे सफल होगे, *बशर्ते कि (i) वर्करो के उस समूह की माँग लोचहीन हो, (ii) उस वस्तु की माँग लोचहीन हो* जिसके उत्पादन मे वर्करो का वह वर्ग सहायक होता है, (iii) इस वर्ग का मजदूरी बिल, कुल मजदूरी बिल के इतने थोडे अनुपात मे हो कि उनकी मजदूरी में की गई बढोतरी से वस्तु के उत्पादन की कुल लागत पर विशेष प्रभाव न पडे, अथवा (iv) यदि अन्य सहयोगशील साधन दबाए जाने योग्य हो, अर्थात् अन्य वर्करो की मजदूरी घटाई जा सके अथवा अन्य साधनो की पूर्ति करने वालों को कम कीमत स्वीकार करने को विवश किया जा सके।

इस प्रकार यदि उक्त शर्तों मे से कोई भी शर्त पूरी हो जाएगी, तो उत्पादन का कोई साधन अपना पारिश्रमिक बढवाने मे सफल होगा।

2 H D Henderson, *Supply and Demand* p 70

संयुक्त वस्तुए परिवर्तित अनुपातो के साथ (Joint Products with Varied Proportions)—दूसरी श्रेणी मे ऊन तथा गोश्त जैसी संयुक्त वस्तुए आती है, जिनके अनुपात परिवर्तित किए जा सकते है। ऐसी वस्तुओ की स्थिति मे वस्तुओं के अनुपात बदल कर कीमत निर्धारित की जा सकती है। उदाहरण के लिए, भेडो से ऊन तथा गोश्त प्राप्त होते है परन्तु उनके अनुपात भेडो की नस्लों के अनुसार अलग-अलग होते है। भेडो के उचित सकरीकरण (cross-breeding) द्वारा कृषक ऐसी भेडे पाल सकते है जो कृषको की आवश्यकतानुसार, गोश्त की अपेक्षा ऊन अधिक दे अथवा ऊन की अपेक्षा गोश्त अधिक दे।

मान लीजिए कि आस्ट्रेलिया के एक कृषक को गोश्त की अपेक्षा ऊन की अधिक जरूरत है। वह देखता है कि एक विशेष नस्ल की भेडो की एक निश्चित सख्या ऊन तथा गोश्त की दी हुई मात्रा प्रदान करती है, और कि दूसरी नस्ल की भेडे अधिक ऊन और कम गोश्त देती है। उसे अतिरिक्त भेडो के पालन मे अतिरिक्त व्यय से अतिरिक्त ऊन प्राप्त होती है। भेडे चराने की अतिरिक्त लागत ही ऊन की सीमान्त लागत है। यदि उस कृषक को ऊन की अपेक्षा अधिक गोश्त की जरूरत है, तो इस तरीके से गोश्त की सीमान्त लागत निकाली जा सकती है। इस प्रकार, प्रत्येक वस्तु की कीमत को अलग-अलग प्रत्येक वस्तु की सीमान्त लागत तथा सीमान्त उपयोगिता की समानता निर्धारित करेगी। सयुक्त वस्तुओं की इस कीमत-निर्धारण की क्रिया को स्पष्ट करने के लिए हम एक सख्यात्मक उदाहरण लेते है।

मान लीजिए कि आस्ट्रेलियाई कृषक को भेडों की एक नस्ल की उस हर भेड को पालने मे 90 पाउड लागत आती है जो कि ऊन की 11 इकाइयाँ और गोश्त की 13 इकाइयाँ देती है, जब दूसरी नस्ल की हर भेड पर 80 पाउड लागत पडती है जो ऊन की 10 और गोश्त की 11 इकाइयाँ देती है। यदि वह पहली किस्म की 10 भेडे और दूसरी किस्म की 11 भेडे पालता है, तो गोश्त की एक इकाई की सीमान्त लागत 2 2 पाउड होगी जैसा कि नीचे तालिका मे दिखाया गया है।

तालिका 24.1

नस्ल	ऊन की इकाइया	गोश्त की इकाइया	कुल लागत (पाउड)
I	110	130	900
II	110	121	880
अन्तर	—	9	20

गोश्त की प्रति इकाई लागत = 2 2 पाउड

अब ऊन की प्रति इकाई लागत निकालने के लिए, मान लीजिए कि वह भेडो की दो और किस्मे पालता है जिनकी प्रति भेड लागत पहले जितनी है, अर्थात 90 पाउड तथा 80 पाउड। वह पहली किस्म की 11 भेडे पालता है जो प्रत्येक ऊन की 11 इकाइयाँ और गोश्त की 13 इकाइयाँ देती है। इसी प्रकार, वह दूसरी किस्म की 13 भेडे पालता है जो प्रत्येक ऊन की 10 और गोश्त की 11 इकाइयाँ देती है। इस स्थिति मे ऊन की प्रति इकाई सीमान्त लागत 5 5 पाउड होगी जैसा कि नीचे स्पष्ट किया जा रहा है

तालिका 24 2

नस्ल	ऊन की इकाइयाँ	गोश्त की इकाइयाँ	कुल लागत (पाउड)
I	121	143	990
II	130	143	1040
अन्तर	9	—	50

ऊन की प्रति इकाई लागत = 5 5 पाउड

इस तरह के परिवर्तनीय अनुपातो वाली मयुक्त वस्तुओ की कीमतो का परस्पर सम्बन्ध चित्र 24 4 मे व्यक्त किया गया है। S_W ऊन का पूर्ति वक्र (सीमान्त लागत वक्र) है और S_M गोश्त का पूर्ति वक्र है। मान लीजिए कि D वक्र दोनों वस्तुओ का मूल माँग वक्र है। परिणामस्वरूप P_W कीमत पर ऊन की Q_W मात्रा बेची जाती है और P_M कीमत पर गोश्त की Q_M मात्रा बेची जाती है। मान लीजिए कि ऊन की माँग बढ जाती है जिसे D वक्र को ऊपर की ओर D_1 वक्र पर सरकने द्वारा दिखाया गया है। इससे ऊन की कीमत बढ कर P_{1W} और उसकी पूर्ति बढ कर Q_{1W} हो जाएगी। परन्तु इस ऊँची माँग-कीमत से ऊन की पूर्ति मे वृद्धि होगी, उससे गोश्त की पूर्ति मे आनुपातिक वृद्धि नहीं होगी।' गोश्त की पूर्ति मे प्रतिशतता वृद्धि पूर्ण रूप से इस बात पर निर्भर करेगी कि दोनो वस्तुओ के बीच अनुपात किस समय तक परिवर्तित किए जा सकते है।
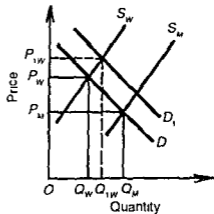
चित्र 24 4

3 सम्मिश्र अथवा स्पर्धी माँग (COMPOSITE OR RIVAL DEMAND)

जिस वस्तु के अनेक वैकल्पिक प्रयोग किए जा सके, उसकी माँग सम्मिश्र माँग कहलाती है। यह चमडे, इस्पात, कोयले, कागज इत्यादि वस्तुओ की ही नहीं अपितु भूमि, श्रम तथा पूँजी जैसे उत्पादन के साधनो की भी विशिष्टता है। उदाहरण के तौर पर, रेलो, फैक्ट्रियो, घरेलू प्रयोग आदि के लिए कोयले की माँग रहती है। सम्मिश्र माँग मे एक वस्तु के विभिन्न प्रयोगो मे स्पर्धा रहती है। अत उस वस्तु का प्रत्येक प्रयोग उसके अन्य प्रयोगो से स्पर्धा रखता है। इसलिए इसे स्पर्धी माँग (प्रतियोगी माँग) भी कहते है।

सम्मिश्र माँग मे वस्तु की कीमत को स्थानापन्नता का नियम निर्धारित करता है। मार्शल ने इसे इन शब्दो मे प्रस्तुत किया है, "यदि किसी व्यक्ति के पास कोई ऐसी वस्तु हो जिसके कि वह अनेक प्रयोग कर सकता है, तो वह उस वस्तु को उसके विभिन्न प्रयोगो मे इस प्रकार वितरित करेगा कि सभी प्रयोगो मे उसकी सीमान्त उपयोगिता एक जैसी हो।" इस प्रकार सम्मिश्र वस्तु की सीमान्त उपयोगिता उसके सब वैकल्पिक प्रयोगों में एक जैसी होती है और उसकी कीमत उसकी इस सीमान्त उपयोगिता के बराबर होगी परन्तु यह आवश्यक है कि वह कीमत दीर्घकाल मे उस वस्तु के उत्पादन की सीमान्त लागत को पूरा कर दे।

परन्तु ऐसी वस्तु के एक प्रयोग की माँग मे परिवर्तन का अन्य वैकल्पिक प्रयोगो पर क्या प्रभाव पडता है? मान लीजिए कि रेलो की कोयले की माँग बढ जाती है। इसका तत्कालीन प्रभाव यह होगा कि अन्य प्रयोगो के लिए कोयले की पूर्ति घटेगी जिससे इसकी कीमत बढ जाएगी। इसे चित्र 24 5 (A) तथा (B) मे दिखाया गया है। चित्र 24 5 (A) रेलो की कोयले की माँग को और चित्र 24 5 (B) अन्य प्रयोगो की कोयले की माँग को व्यक्त करता है। दोनों मे, मूल सतुलन कीमत OP है। रेलो की कोयले के लिए बढी हुई माँग से उसकी अन्य प्रयोगों के लिए पूर्ति घट जाती है जिस
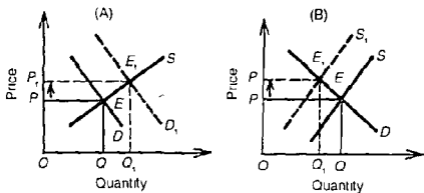
चित्र 24 5

S पूर्ति वक्र के बाईं और S_1 वक्र पर सरकने द्वारा दिखाया गया है।

परिणामस्वरूप कोयले के अन्य प्रयोग कर्त्ता अधिक ऊँची कीमत OP_1 पर कोयले की कम मात्रा OQ_1 खरीदते है परन्तु चित्र 24 5 (A) मे रेलो की कोयले की सवर्द्धित माँग स माँग वक्र दाएँ को D_1 पर शिफ्ट कर जाता है। रेलो को अधिक ऊँची कीमत OP_1 पर कोयले की भी अधिक मात्रा OQ_1 प्राप्त होती है। कोयले की कीमत अन्य प्रयोगो मे किस सीमा तक बढती है, यह इस बात पर निर्भर करेगी कि कोयले के लिए माँग की तीव्रता की कोटि क्या है? और उन प्रयोगो मे कोयले की कितनी मात्रा की जरूरत है।

4. सम्मिश्र या स्पर्धी पूर्ति
(COMPOSITE OR RIVAL SUPPLY)

जब दो या दो से अधिक वस्तुएँ किसी एक ही जरूरत को पूरा करती है, तो उनकी पूर्ति सम्मिश्र पूर्ति कहलाती है। मक्खन और जैम, गेहूँ तथा चावल, चाय और कॉफी, गोश्त तथा हैम, इसके विशेष उदाहरण है। जहाँ तक श्रम और मशीनरी का सबध है, ये दोनो सम्मिश्र पूर्ति के अन्तर्गत आते है। जिन वस्तुओं तथा साधनों की पूर्ति सम्मिश्र होती है, वे एक-दूसरे के स्थानापन्न होते है। उनकी पूर्ति को स्पर्धी पूर्ति भी कहा जाता है क्योकि वे एक ही आवश्यकता को पूरा करने के लिए एक दूसरे से स्पर्धा करते है।

प्रत्येक स्थानापन्न की कीमत को स्थानापन्नो की कुल माँग के अनुपात मे उनकी कुल पूर्ति निर्धारित करेगी। "उनकी कीमते एक दूसरी मे थोडे-बहुत निश्चित "अन्तर" पर एक साथ बढती या घटती है, प्रत्येक की कीमत, दीर्घकाल मे, ऐसे बिन्दु पर समायोजित हो जाती है जहाँ उसके उत्पादन की सीमान्त लागत, कुल मिलाकर उपभोक्ताओ के लिए उसकी सीमान्त उपयोगिता के बराबर हो।"

सम्मिश्र पूर्ति वाली दो वस्तुओ की कीमतो की परस्पर निर्भरता चित्र 24 6 (A) तथा (B) मे दिखाई गई है। हम चाय और कॉफी को लेते है। मान लीजिए कि चाय की अच्छी फसल हुई है। परिणामस्वरूप चाय की पूर्ति बढेगी और उसकी कीमत गिर जाएगी। इससे कॉफी की माँग घटेगी जिससे कॉफी की कीमत गिरेगी। चित्र 24 6 (A) मे चाय की और 24 6 (B) मे कॉफी की मार्किट को व्यक्त किया गया है। दोनो मे, मूल सतुलन कीमत OP है। चाय की पूर्ति बढने पर, पूर्ति वक्र S दाएँ को शिफ्ट कर S_1 हो जाता है। परिणामस्वरूप कम कीमत OP_1 पर चाय की अधिक मात्रा
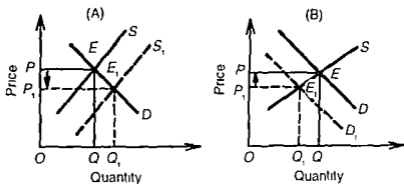
चित्र 24 6

OQ_1 की पूर्ति होती है। अब चाय की सापेक्षता मे कॉफी महँगी है। परिणामस्वरूप कॉफी की मॉंग D मे गिरकर D_1 रह जाती है। अब कम कीमत OP_1 पर कॉफी की कम मात्रा OQ_1 की पूर्ति होती है। इस प्रकार सम्मिश्र पूर्ति वाली वस्तुओ की कीमतें एक ही दिशा मे चलती हैं।

प्रश्न

1 सयुक्त माग वाली वस्तुओ के अन्तर्गत कीमत निर्धारण प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

2 सयुक्त पूर्ति वाली वस्तुए क्या होती है? सयुक्त पूर्ति वाली वस्तुओं की कीमते निर्धारित करन मे कान से नियम शामिल होते है?

3 निम्न पर टिप्पणी लिखिए (क) व्युत्पन्न माग, (ख) सम्मिश्र माग (ग) स्पर्धी पूर्ति।

अध्याय 25

एकाधिकार
(MONOPOLY)

1. अर्थ
(MEANING)

एकाधिकार वह मार्किट स्थिति है जिसमें एक वस्तु का एक विक्रेता होता है तथा अन्य विक्रेताओं के प्रवेश पर रुकावट होती है। वस्तु का कोई निकट स्थानापन्न नहीं होता। हर अन्य वस्तु के साथ माँग की प्रति लोच (cross elasticity) बहुत कम होती है। इसका अभिप्राय यह है कि कोई अन्य फर्म समान वस्तु का उत्पादन नहीं करती है। अतः एकाधिकारी फर्म स्वयं उद्योग होती है और एकाधिकारी का माँग वक्र उद्योग का माँग वक्र होता है। इसलिए, उसकी अपनी वस्तु का माँग वक्र अपेक्षाकृत स्थिर होता है और उसकी ढलान नीचे दाएँ झुकाव वाली होती है जबकि उसके ग्राहकों की रुचियाँ और आय दी हुई होती है। इसका मतलब है कि वस्तु की अधिक मात्रा ऊँची कीमत की अपेक्षा कम कीमत पर बेची जा सकती है। वही कीमत बनाने वाला (price-maker) है, जो अपने अधिकतम लाभ के लिए कीमत नियत कर सकता है। पर, इसका यह अर्थ नहीं है कि वह कीमत और उत्पादन दोनों को नियत कर सकता है। वह दोनों में से कोई एक बात कर सकता है। जब वह एक बार अपने उत्पादन के स्तर को चुन लेता है, तो उसकी कीमत को उसका माँग वक्र *निर्धारित करता है। या, जब वह अपनी वस्तु की कीमत निर्धारित कर देता है, तो उसके उत्पादन* का स्तर इस बात से निर्धारित होता है कि उपभोक्ता उस कीमत पर वस्तु की कितनी मात्रा खरीदेंगे। स्थिति कुछ भी हो, एकाधिकारी का उद्देश्य यह होता है कि वह अपने लाभ को अधिकतम बनाए।

2. एकाधिकार के स्रोत और प्रकार
(SOURCES AND TYPES OF MONOPOLY)

एकाधिकार के अनेक स्रोत हो सकते हैं और इसके कई प्रकार हैं (1) सरकार द्वारा एक फर्म को अपने आविष्कार को बनाने, प्रयोग करने अथवा बेचने का पेटेंट अधिकार, (2) एकमात्र उत्पादन प्रक्रिया के लिए एक महत्त्वपूर्ण कच्चे माल का नियंत्रण, (3) एक फर्म द्वारा प्राकृतिक एकाधिकार है जब वह पैमाने की बढ़ती मितव्ययिताओं के कारण प्रति इकाई कम लागत पर समस्त मार्किट की पूर्ति करती है जैसे कि गैस, बिजली, आदि, (4) सरकार अपने नियमन (regulation) के अन्तर्गत कार्य करने हेतु एक निजी फर्म को एकमात्र अधिकार प्रदान करती है। ऐसी निजी स्वामित्व और सरकारी नियमन एकाधिकार अधिकतर सार्वजनिक उपयोगिताओं में पाए जाते हैं और वे कानूनी एकाधिकार कहलाते हैं जैसे कि परिवहन, संचार, आदि में, (5) सरकार द्वारा

स्वामित्व और नियमन एकाधिकार हो सकते हैं जैसे डाक सेवाएं, नगरपालिका के आधीन जल और मल व्यवस्था आदि, (6) सरकार केवल एक फर्म को लाइसेंस प्रदान कर सकती है और विदेशी प्रतिद्वन्द्वियों से संरक्षण प्रदान करे, और (7) एक वस्तु का एकमात्र उत्पादक नई फर्मों के प्रवेश को रोकने हेतु सीमा-कीमत निर्धारण नीति अपनाए।

जिस प्रकार के एकाधिकार का ऊपर वर्णन किया गया है, वह साधारण या अपूर्ण एकाधिकार है। विशुद्ध, या पूर्ण एकाधिकार भी होता है जिस पर हम अब विचार करेंगे। परन्तु हम प्रमुख रूप से साधारण एकाधिकार और विभेदक एकाधिकार का ही विस्तृत विवेचन करेंगे।

3 विशुद्ध एकाधिकार (PURE MONOPOLY)

विशुद्ध एकाधिकार में एक फर्म ऐसी वस्तु का उत्पादन और क्रय करती है जिसका कोई स्थानापन्न नहीं होता। हर अन्य वस्तु के साथ माँग की प्रतिलोच शून्य होती है। ट्रिफिन (Robert Triffin) के शब्दों में, "शुद्ध एकाधिकार वह होता है जिसमें एकाधिकारी की वस्तु की प्रतिलोच शून्य होती है।" एकाधिकारी का बिल्कुल कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं होता। उसकी कीमत-उत्पादन नीति अन्य उद्योगों में फर्मों को प्रभावित नहीं करती न ही दूसरे उसको प्रभावित करते हैं।

विशुद्ध एकाधिकारी "उस समय होता है जब कोई उत्पादक इतना शक्तिशाली हो कि उपभोक्ता की पूरी आय को ले ले, चाहे उसका अपना उत्पादन का स्तर कुछ भी क्यों न हो। यह तभी होगा जब एकाधिकारी की फर्म के औसत आगम वक्र (AR) की लोच इकाई हो, अर्थात आयताकार अतिपरवलय (rectangular hyperbola) हो। और यह वक्र ऐसे स्तर पर हो कि उपभोक्ता अपनी सारी आय को फर्म की वस्तु पर खर्च कर दें, चाहे वस्तु की कीमत कुछ भी हो। क्योंकि फर्म के औसत लागत वक्र की लोच इकाई के बराबर है, इसलिए प्रत्येक कीमत पर फर्म की वस्तु पर कुल व्यय उतना ही होगा। विशुद्ध एकाधिकारी हमेशा सब उपभोक्ताओं की पूरी आय लेता रहता है।"[1]

चित्र 25.1 में विशुद्ध एकाधिकारी का माँग वक्र AR है। क्योंकि AR एक आयताकार अतिपरवलय (rectangular hyperbola) है, इसलिए MR वक्र X-अक्ष के ऊपर पड़ता है। एकाधिकारी या तो कीमत निर्धारित कर सकता है या उत्पादन। यदि वह OP कीमत निश्चित करता है, तो उत्पादन के बेचे जाने वाले स्तर OA को उसके ग्राहक निर्धारित करते हैं। यदि वह OA उत्पादन का स्तर निश्चित करता है, तो वस्तु के लिए दी जाने वाली कीमत OP को उसके ग्राहक निर्धारित करेंगे। इस प्रकार, एक विशुद्ध एकाधिकारी भी, जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है, एक साथ कीमत और उत्पादन दोनों को निश्चित नहीं कर सकता।

चित्र 25.1

क्योंकि एक विशुद्ध एकाधिकारी हमेशा एक समाज की पूरी आय को प्राप्त करता रहता है, इसलिए उसका लाभ उस समय अधिकतम होगा,

1 Stonier and Hague, *op. cit.*

जब उसकी कुल लागतें निम्नतम हों। इसका अभिप्राय है कि उसका लाभ उस समय अधिकतम होगा जब वह बहुत ही थोड़े उत्पादन को, केवल एक इकाई को, बहुत ही ऊँची कीमत पर बेचे और इस प्रक्रिया में उपभोक्ताओं की समस्त आय को खींच ले। पर यह तो सभव नहीं है। इसलिए विशुद्ध एकाधिकार केवल सैद्धान्तिक सभावना है। इसलिए हम अब साधारण या अपूर्ण एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत-उत्पादन नीतियों के अध्ययन पर आते हैं।

4 एकाधिकार कीमत-निर्धारण (MONOPOLY PRICE DETERMINATION)

हम अल्पकाल और दीर्घकाल में एकाधिकार कीमत निर्धारण का अध्ययन करते हैं।

इसकी मान्यताएं (Its Assumptions)

एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत, उत्पादन और लाभ के निर्धारण का विश्लेषण इन मान्यताओं (assumptions) पर आधारित है

(1) समरूप वस्तु का एक ही उत्पादक या विक्रेता है।

(2) वस्तु के कोई निकट स्थानापन्न नहीं हैं।

(3) साधन मार्किट में शुद्ध प्रतियोगिता है जिससे प्रत्येक आगत (input) जो वह क्रय करता है उसकी कीमत उसे दी होती है।

(4) एकाधिकारी विचारशील प्राणी है जिसका उद्देश्य न्यूनतम लागतों से अधिकतम लाभ कमाना है।

(5) माग पक्ष की ओर बहुत क्रेता हैं परन्तु कोई भी अपने व्यक्तिगत कार्यों से वस्तु की कीमत को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं होता। इस प्रकार उपभोक्ता के लिए वस्तु की कीमत दी हुई निश्चित होती है।

(6) एकाधिकारी विभेदक कीमतें नहीं लेता। वह सब उपभोक्ताओं के साथ समान व्यवहार करता है और सबसे अपनी वस्तु के बदले में समान कीमत लेता है।

(7) एकाधिकार-कीमत अनियन्त्रित होती है। एकाधिकारी की शक्ति पर कोई बंधन नहीं होते।

(8) उसे अपनी मार्किट में अन्य फर्मों के प्रवेश का भय नहीं होता है।

कीमत-उत्पादन निर्धारण (Price-Output Determination)

इन मान्यताओं के दिए हुए होने पर, एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत, उत्पादन और लाभों को माँग और पूर्ति की शक्तियाँ निर्धारित करती हैं। वस्तु की पूर्ति पर एकाधिकारी का पूरा नियन्त्रण होता है। वह कीमत बनाने वाला भी है जो अपने अधिकतम लाभ के अनुकूल कीमत निश्चित कर सकता है। पर वह एक साथ कीमत और उत्पादन को निश्चित नहीं कर सकता। वह या तो कीमत निश्चित करके उत्पादन के निर्धारण को उस कीमत पर उपभोक्ता-माँग पर छोड़ सकता है, या वह उत्पादन के स्तर को निश्चित करके कीमत-निर्धारण को अपनी वस्तु की उपभोक्ता-माँग पर छोड़ सकता है। इस प्रकार वह कितनी कीमत निश्चित करे और कितने उत्पादन का निर्णय करे, यह माग की स्थितियां निर्धारित करती हैं।

माँग वक्र, जिसका एकाधिकारी को सामना करना पड़ता है, निश्चित होता है और उसकी ढलान नीचे की ओर दाएँ को होती है। यह उसका *AR* वक्र है। इसका अनुरूप *MR* वक्र भी नीचे की ओर ढालू तथा इसके नीचे स्थित होता है। परन्तु जिस ढग से या जिस सीमा तक एकाधिकारी कीमत या उत्पादन को प्रभावित कर सकेगा, वह उसकी वस्तु की माँग की लोच पर निर्भर करेगा।

यदि उसकी वस्तु की माँग बहुत लोचदार है, तो वह कीमत में थोड़ी कमी करके अधिक मात्रा बेच सकेगा। दूसरी ओर, यदि माँग कम लोचदार है, तो वह कीमत को बढ़ाना चाहेगा और कम मात्रा बेचकर अधिक लाभ उठाएगा।

अपनी वस्तु की माँग दी हुई होने पर, एकाधिकारी इस माँग के विरुद्ध सबसे अधिक लाभदायक उत्पादन को चुन सकता है। उसकी उत्पादन की लागतें बढ़ती हुई, घटती हुई या स्थिर हो सकती है। लागत वक्रों की प्रकृति—सरल रेखा, उन्नतोदर या नतोदर—कुछ भी हो, एकाधिकार सन्तुलन उस बिन्दु पर होगा जहाँ सीमान्त लागत (MC) सीमान्त आगम (MR) के बराबर होगी $\partial R/\partial Q = \partial C/\partial Q$। एकाधिकारी का लाभ उस कीमत पर अधिकतम होता है, जहाँ कुल आगम और कुल लागतों में अन्तर अधिकतम हो $\text{Max}\ \pi = R - C$। वह उस स्थिति को तभी प्राप्त कर सकता है जब वह अपने उत्पादन को ऐसे ढंग से नियमित करे कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से उसके कुल आगम में वृद्धि उस इकाई का उत्पादन करने में उसकी कुल लागत में वृद्धि के ठीक बराबर हो। दूसरे शब्दों में, एकाधिकारी को अधिकतम लाभ तब होता है, जब वह MR = MC लाता है। वह या तो माँग-कीमत और विभिन्न मात्राओं के उत्पादन की लागत का अनुमान लगाकर ऐसा कर सकता है, या फिर परीक्षण प्रक्रिया (trial and error process) से।

रेखागणितीय भाषा में, एकाधिकार सतुलन से उस बिन्दु पर होगा, जहाँ MC वक्र MR वक्र को नीचे से या बाएँ से काटता है और AR वक्र पर इस बिन्दु से गिराया गया लम्ब कीमत को निर्धारित करेगा। इसका मतलब है कि कीमत > MC = MR। वास्तव में एकाधिकार कीमत = MC $\frac{E}{E-1}$ क्योंकि AR (कीमत) = MR $\frac{E}{E-1}$ और MC = MR, इसलिए एकाधिकार कीमत

MC = $\frac{E}{E-1}$ इस प्रकार यह MC और माँग की लोच का फलन है। अब हम अल्पकाल और दीर्घकाल में एकाधिकार-कीमत के निर्धारण पर विचार करेंगे।

अल्पकालीन एकाधिकार सतुलन
(Short Run Monopoly Equilibrium)

अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म उस समय सतुलन में होती है जब उसके लाभ अधिकतम या हानियाँ न्यूनतम हो जाएँ। प्रतियोगी सतुलन की भाँति, इस विश्लेषण पर भी कुल आगम-कुल लागत तथा सीमान्त आगम लागत की दृष्टि से विचार किया जा सकता है।

कुल आगम-लागत दृष्टिकोण (Total Revenue-cost Approach)—चित्र 25.2 में, TC कुल लागत वक्र है जो उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ कुल लागतों में वृद्धि को प्रकट करता है। TR कुल आगम वक्र है जो शुरू में ऊपर को चढ़ता है, फिर चपटा हो जाता है और बाद में नीचे को ढालू, और एक दिए हुए बिन्दु के बाद कुल प्राप्तियों में कमी होना बताता है। एकाधिकारी का लाभ उस उत्पादन पर अधिकतम होगा, जहाँ TR और TC में अन्तर अधिकतम है। यह वह स्तर होगा जहाँ TR और TC वक्रों का ढलान बराबर होता है। इसके अनुसार *P* सतुलन बिन्दु है जिसे TR और TC वक्रों पर क्रमश *P* और *T* पर स्पर्श रेखाएँ निर्धारित करती है। एकाधिकारी MP कीमत पर OM उत्पादन बेचेगा। उसके लाभ *PT* होंगे। उत्पादन का कोई भी अन्य स्तर उसके लाभ को बढ़ाने की बजाय कम कर देगा।

2 देखिये अध्याय 'आगम की धारणा'।

जब उसकी कुल लागतें निम्नतम हों। इसका अभिप्राय है कि उसका लाभ उस समय अधिकतम होगा जब वह बहुत ही थोड़े उत्पादन को, केवल एक इकाई को, बहुत ही ऊँची कीमत पर बेचे और इस प्रक्रिया में उपभोक्ताओं की समस्त आय को खींच ले। पर यह तो संभव नहीं है। इसलिए विशुद्ध एकाधिकार केवल सैद्धान्तिक सम्भावना है। इसलिए हम अब साधारण या अपूर्ण एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत-उत्पादन नीतियों के अध्ययन पर आते हैं।

4 एकाधिकार कीमत-निर्धारण
(MONOPOLY PRICE DETERMINATION)

हम अल्पकाल और दीर्घकाल में एकाधिकार कीमत निर्धारण का अध्ययन करते हैं।

इसकी मान्यताएं (Its Assumptions)

एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत, उत्पादन और लाभ के निर्धारण का विश्लेषण इन मान्यताओं (assumptions) पर आधारित है

(1) समरूप वस्तु का एक ही उत्पादक या विक्रेता है।

(2) वस्तु के कोई निकट स्थानापन्न नहीं है।

(3) साधन मार्किट में शुद्ध प्रतियोगिता है जिससे प्रत्येक आगत (input) जो वह क्रय करता है उसकी कीमत उसे दी होती है।

(4) एकाधिकारी विचारशील प्राणी है जिसका उद्देश्य न्यूनतम लागतों से अधिकतम लाभ कमाना है।

(5) माँग पक्ष की ओर बहुत क्रेता हैं परन्तु कोई भी अपने व्यक्तिगत कार्यों से वस्तु की कीमत को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं होता। इस प्रकार उपभोक्ता के लिए वस्तु की कीमत दी हुई निश्चित होती है।

(6) एकाधिकारी विभेदक कीमतें नहीं लेता। वह सब उपभोक्ताओं के साथ समान व्यवहार करता है और सबसे अपनी वस्तु के बदले में समान कीमत लेता है।

(7) एकाधिकार-कीमत अनियन्त्रित होती है। एकाधिकारी की शक्ति पर कोई बंधन नहीं होते।

(8) उसे अपनी मार्किट में अन्य फर्मों के प्रवेश का भय नहीं होता है।

कीमत-उत्पादन निर्धारण (Price-Output Determination)

इन मान्यताओं के दिए हुए होने पर, एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत, उत्पादन और लाभों को माँग और पूर्ति की शक्तियाँ निर्धारित करती हैं। वस्तु की पूर्ति पर एकाधिकारी का पूरा नियन्त्रण होता है। वह कीमत बनाने वाला भी है जो अपने अधिकतम लाभ के अनुकूल कीमत निश्चित कर सकता है। पर वह एक साथ कीमत और उत्पादन को निश्चित नहीं कर सकता। वह या तो कीमत निश्चित करके उत्पादन के निर्धारण को उस कीमत पर उपभोक्ता-माँग पर छोड़ सकता है, या वह उत्पादन के स्तर को निश्चित करके कीमत-निर्धारण को अपनी वस्तु की उपभोक्ता-माँग पर छोड़ सकता है, इस प्रकार वह कितनी कीमत निश्चित करे और कितने उत्पादन का निर्णय करे, यह माँग की स्थितियाँ निर्धारित करती हैं।

माँग वक्र, जिसका एकाधिकारी को सामना करना पड़ता है, निश्चित होता है और उसकी ढलान नीचे की ओर दाएँ को होती है। यह उसका *AR* वक्र है। इसका अनुरूप *MR* वक्र भी नीचे की ओर ढालू तथा इसके नीचे स्थित होता है। परन्तु जिस ढंग से या जिस सीमा तक एकाधिकारी कीमत या उत्पादन को प्रभावित कर सकेगा, यह उसकी वस्तु की माँग की लोच पर निर्भर करेगा।

यदि उसकी वस्तु की माँग बहुत लोचदार है, तो वह कीमत मे थोडी कमी करके अधिक मात्रा बेच सकेगा। दूसरी ओर, यदि माँग कम लोचदार है, तो वह कीमत को बढाना चाहेगा और कम मात्रा बेचकर अधिक लाभ उठाएगा।

अपनी वस्तु की माँग दी हुई होने पर, एकाधिकारी इस माँग के विरुद्ध सबसे अधिक लाभदायक उत्पादन को चुन सकता है। उसकी उत्पादन की लागते बढ़ती हुई, घटती हुई या स्थिर हो सकती है। लागत वक्रो की प्रकृति—सरल रेखा, उन्नतोदर या नतोदर—कुछ भी हो, एकाधिकार सतुलन उस बिन्दु पर होगा जहाँ सीमान्त लागत (MC) सीमान्त आगम (MR) के बराबर होगी $\partial R/\partial Q = \partial C/\partial Q$। एकाधिकारी का लाभ उस कीमत पर अधिकतम होता है, जहाँ कुल आगम और कुल लागतो मे अन्तर अधिकतम हो Max π = R–C। वह उस स्थिति को तभी प्राप्त कर सकता है जब वह अपने उत्पादन को ऐसे ढग से नियमित करे कि एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से उसके कुल आगम मे वृद्धि उस इकाई का उत्पादन करने मे उसकी कुल लागत मे वृद्धि के ठीक बराबर हो। दूसरे शब्दो मे, एकाधिकारी को अधिकतम लाभ तब होता है, जब वह MR = MC लाता है। यह या तो माँग-कीमत और विभिन्न मात्राओ के उत्पादन की लागत का अनुमान लगाकर ऐसा कर सकता है, या फिर परीक्षण प्रक्रिया (trial and error process) से।

रेखागणितीय भाषा मे, एकाधिकार सतुलन से उस बिन्दु पर होगा, जहाँ MC वक्र MR वक्र को नीचे से या बाएँ से काटता है और AR वक्र पर इस बिन्दु से गिराया गया लम्ब कीमत को निर्धारित करेगा। इसका मतलब है कि कीमत > MC = MR। वास्तव मे एकाधिकार कीमत = MC

$\frac{E}{E-1}$ क्योंकि AR (कीमत) = MR $\frac{E}{E-1}$ और MC = MR, इसलिए एकाधिकार कीमत

MC = $\frac{E}{E-1}$ इस प्रकार यह MC और माँग की लोच का फलन है। अब हम अल्पकाल और दीर्घकाल मे एकाधिकार-कीमत के निर्धारण पर विचार करेगे।

अल्पकालीन एकाधिकार सतुलन
(Short Run Monopoly Equilibrium)

अल्पकाल मे एकाधिकारी फर्म उस समय सतुलन मे होती है जब उसके लाभ अधिकतम या हानियाँ न्यूनतम हो जाएँ। प्रतियोगी सतुलन की भाँति, इस विश्लेषण पर भी कुल आगम-कुल लागत तथा सीमान्त आगम लागत की दृष्टि से विचार किया जा सकता है।

कुल आगम-लागत दृष्टिकोण (Total Revenue-cost Approach)—चित्र 25 2 मे, TC कुल लागत वक्र है जो उत्पादन मे वृद्धि होने के साथ-साथ कुल लागतो मे वृद्धि को प्रकट करता है। TR कुल आगम वक्र है जो शुरू मे ऊपर को चढता है, फिर चपटा हो जाता है और बाद मे नीचे को ढालू, और एक दिए हुए बिन्दु के बाद कुल प्राप्तियो मे कमी होना बताता है। एकाधिकारी का लाभ उस उत्पादन पर अधिकतम होगा, जहाँ TR और TC मे अन्तर अधिकतम है। यह वह स्तर होगा जहाँ TR और TC वक्रों का ढलान बराबर होता है। इसके अनुसार *P* सतुलन बिन्दु है जिसे TR और TC वक्रो पर क्रमश *P* और *T* पर स्पर्श रेखाएँ निर्धारित करती है। एकाधिकारी MP कीमत पर OM उत्पादन बेचेगा। उसके लाभ *PT* होगे। उत्पादन का कोई भी अन्य स्तर उसके लाभ को बढ़ाने की बजाय कम कर देगा।

2 देखिये अध्याय 'आगम की धारणा'।

चित्र 25 2

सीमान्त दृष्टिकोण (Marginal Approach)—अल्पकालीन में, एकाधिकारी कीमत में भी परिवर्तन कर सकता है और अपनी वस्तु की मात्रा में भी। यदि वह अधिक उत्पादन करना चाहता है, तो वह परिवर्तनशील साधनों के प्रयोग को बढ़ा कर ऐसा कर सकता है। वह उत्पादन की दो शिफ्टें लगा सकता है, श्रम या कच्चे माल की मात्रा बढ़ा सकता है, इत्यादि। परन्तु वह अपने स्थिर प्लांट और उपकरण को नहीं बदल सकता। दूसरी ओर, यदि वह अपने उत्पादन को सीमित करना चाहता है, तो वह कुछ श्रमिकों की छुट्टी कर सकता है, काम के घंटे घटा सकता है और परिवर्तनशील साधनों का प्रयोग कम कर सकता है। जो भी हो, उसकी कीमत, औसत परिवर्तनशील लागतों (AVC) से कम नहीं हो सकती। इसका मतलब है कि वह अल्पकालीन में तब तक हानि उठाता रह सकता है, जब तक वह अपने उत्पादन की AVC को पूरा करता है। पहले की भाँति सतुलन उस बिन्दु पर होता है जहाँ *SMC* वक्र MR वक्र को नीचे से काटता है, वहाँ लाभ अधिकतम होते हैं या हानियाँ न्यूनतम। चित्र 25 3 में *SAC* या *SMC* अल्पकालीन औसत और सीमान्त लागत वक्र है। AVC औसत परिवर्तनशील लागत वक्र है। *D* माँग वक्र या औसत आगम वक्र (AR) है जिसका सीमान्त आगम वक्र *MR* है।

चित्र 25 3 अल्पकालीन एकाधिकार सतुलन को बिन्दु *E* पर प्रकट करता है जहाँ *SMC* वक्र MR वक्र को नीचे से काटता है। एकाधिकारी MP कीमत पर उत्पादन की OM मात्रा बेचता है। कीमत MP अल्पकालीन औसत लागत MA से अधिक है। इसलिए एकाधिकारी उत्पादन की प्रति इकाई पर *AP* लाभ कमाता है। इस प्रकार एकाधिकारी के कुल लाभ *AP* × *CA* = क्षेत्रफल *CAPB* है।

चित्र 25 4 में एकाधिकारी का अल्पकालीन सतुलन दिखाया गया है जब वह केवल सामान्य
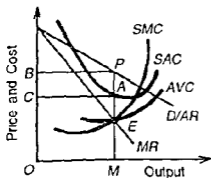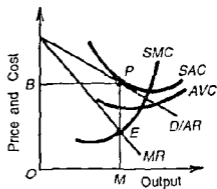
चित्र 25 3 चित्र 25 4

लाभ कमाता है। *SMC* वक्र और MR वक्र की *E* बिन्दु पर समानता *OM* उत्पादन निर्धारित करती है जिसे वह *MP* कीमत पर बेचता है। क्योंकि *SAC* वक्र AR वक्र को इस उत्पादन के स्तर पर स्पर्श करता है, इसलिए एकाधिकारी सामान्य लाभ कमाता है। एकाधिकारी यह जानता है कि *OM* के अलावा उत्पादन का कोई और स्तर उसे हानि देगा क्योंकि *SAC* वक्र AR वक्र से ऊंचा होगा।

चित्र 25 5 उस अल्पकालीन स्थिति को प्रकट करता है जिसमें एकाधिकारी को हानि होती है। पहले की भाँति समीकरण *SMC* = MR सन्तुलन बिन्दु *E* को निर्धारित करता है। परन्तु माँग की स्थितियों द्वारा निश्चित की गई एकाधिकार कीमत MP उत्पादन की अल्पकालीन औसत लागत *PM* को पूरा नहीं करती। यह केवल औसत परिवर्तनशील लागत *MP* को ही पूरा कर पाती है, जो माँग वक्र *D* और AVC वक्र के स्पर्श बिन्दु *P* द्वारा प्रकट होती है। इस प्रकार *PA* प्रति इकाई हानि है जो एकाधिकारी को उठानी पड़ती है। कुल हानि बराबर है $BP \times PA$ = *BPCA*। इस चित्र में, *P* वह बिन्दु है जहाँ फर्म को बन्द कर देना पड़ेगा। यदि मार्किट माँग स्थितियाँ कीमत को घटाकर *MP* से नीचे की ओर ले जाएँ, तो एकाधिकारी अस्थायी रूप से उत्पादन बन्द कर देगा। फर्म बन्द हो जाएगी।
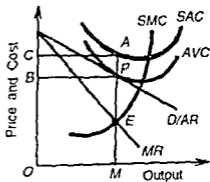
चित्र 25.5

दीर्घकालीन एकाधिकार सन्तुलन (Long-Run Monopoly Equilibrium)

दीर्घकाल में एकाधिकारी व्यवसाय में केवल तभी रह सकता है यदि वह सामान्य से अधिक लाभ कमाने की क्षमता रखता है। यदि वह अल्पकाल में हानि उठा रहा था, तो दीर्घकाल में उसके पास पर्याप्त समय होता है जिसमें वह अपने लाभ अधिकतम करने के लिए अपने वर्तमान प्लाट में परिवर्तन कर सकता है। यह मानते हुए कि नई फर्मों का प्रवेश नहीं होता, वह इष्टतम पैमाना प्लाट से छोटा, इष्टतम पैमाना प्लाट अथवा इष्टतम पैमाना प्लाट से बड़ा प्लाट लगा सकता है। प्रत्येक प्लाट का पैमाना उसके माग वक्र और उसके अनुरूप MR वक्र की स्थिति पर निर्भर करती है। प्रत्येक प्लाट के लिए उत्पादन का सबसे लाभदायक स्तर उस बिन्दु पर होगा जहां MR वक्र को *LMC* वक्र नीचे से काटता है और *SMC* वक्र इस बिन्दु में से गुजरता है। फिर, उत्पादन के इस स्तर पर *LAC* वक्र को *SAC* वक्र अवश्य स्पर्श करे। विभिन्न आकार के इष्टतम प्लाटो पर एकाधिकार सतुलनों का विवेचन नीचे किया गया है।

(1) इष्टतम आकार से छोटा प्लाट (Smaller than the Optimum Size Plant)

चित्र 25 6 पहली स्थिति को समझाता है, जब एकाधिकारी इष्टतम आकार से छोटा प्लाट लगाता है। मान लीजिए कि दीर्घकाल में एकाधिकारी दस प्लाट लगाता है, जिसे SAC_1 और SMC_1 वक्र प्रकट करते है। इस प्लाट पर *OM* उत्पादन पर दीर्घकालीन लाभ अधिकतम है जहा *E* बिन्दु पर *LMC* = MR है। क्योंकि इस स्तर पर *LAC* वक्र को SAC_1 वक्र *A* बिन्दु पर स्पर्श करता है, इसलिए SMC_1 वक्र भी *LMC* वक्र और MR वक्र के बराबर ($SMC_1 = LMC = MR$) होता है, जहा सतुलन बिन्दु *E* पर है। इस प्रकार, जब एकाधिकारी फर्म दीर्घकालीन सतुलन में होती है तो
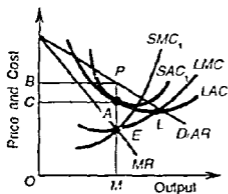
चित्र 25.6
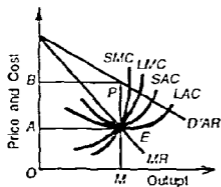
वह अल्पकालीन सन्तुलन में भी होती है। दीर्घकाल में अपने प्लांट को परिवर्तित करके, एकाधिकारी OB (= MP) कीमत पर OM उत्पादन बेचता है और $BPAC$ एकाधिकार लाभ कमाता है। यह प्लांट इष्टतम से छोटे आकार का है, क्योंकि एकाधिकारी LAC वक्र के न्यूनतम बिन्दु L पर उत्पादन नहीं कर रहा है। इसमें कुछ अतिरिक्त क्षमता है। वह अपनी वस्तु की छोटे आकार की मार्किट के कारण पैमाने की मितव्ययिताओं का पूर्ण लाभ उठाने में असमर्थ है।

(2) इष्टतम आकार का प्लांट (Optimum Size Plant)

इष्टतम आकार के प्लांट की स्थिति चित्र 25.7 में दर्शायी गई है। मान लीजिए कि मार्किट का आकार बड़ा है। एकाधिकारी इसका लाभ उठाएगा और एक इष्टतम आकार का प्लांट लगा कर उसे उसकी पूर्ण क्षमता तक प्रयोग करेगा। वह E बिन्दु पर सन्तुलन पर होता है, जहां वक्र SMC = MR = LMC = SAC = न्यूनतम LAC क्योंकि MR वक्र बराबर होता है LAC और SAC वक्रों के न्यूनतम बिन्दु E पर और LMC और SMC दोनों वक्र इस बिन्दु में से गुजरते हैं, इसलिए फर्म इष्टतम आकार की है और अल्पकाल एवं दीर्घकाल दोनों में संतुलन में है। नए इष्टतम बिन्दु के साथ, वह OM इष्टतम उत्पाद का उत्पादन और विक्रय OB (= MP) कीमत पर करती है और $ABPE$ सामान्य से अधिक लाभ कमाती है।

चित्र 25.7

(3) इष्टतम आकार से बड़ा प्लांट (Larger than the Optimum Size Plant)

तीसरी स्थिति में, एकाधिकारी इष्टतम आकार से बड़ा प्लांट लगाता है। वह ऐसा प्लांट तब लगाता है जब उसकी वस्तु की मार्किट बहुत विशाल हो जाती है। इष्टतम स्तर से अधिक उत्पादित करने से उसे अधिक लाभ होगा। परन्तु इससे उसके प्लांट का अति उपयोग होगा, जिससे उत्पादन की अमितव्ययिताएं (diseconomies) उत्पन्न होंगी और प्रति इकाई लागत ऊंची होगी। ऐसी स्थिति को चित्र 25.8 में दर्शाया गया है, जहां SAC_1 और SMC_1 वक्र इष्टतम आकार से बड़े प्लांट को व्यक्त करते हैं। एकाधिकार सन्तुलन E बिन्दु पर होता है जहां MR वक्र को LMC और SMC_1 वक्र नीचे से काटते हैं। एकाधिकारी MP (= OB) कीमत पर वस्तु की OM मात्रा उत्पादित और विक्रय करता है तथा $BPCA$ सामान्य से अधिक लाभ कमाता है। एकाधिकारी फर्म

अपनी क्षमता का अति उपयोग कर रही है क्योंकि *LAC* और SAC_3 वक्रों के बीच स्पर्श बिन्दु *C* वक्र *LAC* के न्यूनतम बिन्दु के दाईं ओर है जिसमें से *LMC* वक्र गुजरता है।

चित्र 25 8

निष्कर्ष (Conclusion)

निष्कर्ष यह है कि दीर्घकाल में फर्मों का प्रवेश बन्द होने के साथ, एकाधिकारी सामान्य से अधिक लाभ कमाने हेतु अपनी मार्किट के आकार के अनुसार इष्टतम, इष्टतम से कम अथवा इष्टतम से अधिक आकार का प्लांट चला सकता है। परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता की तरह, यह आवश्यक नहीं कि वह इष्टतम पैमाने के प्लांट को *LAC* वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर अवश्य चलाए।
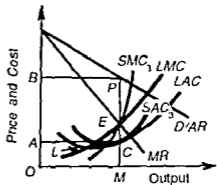
5 बहुप्लांट एकाधिकार फर्म (MULTIPLANT MONOPOLY FIRM)

एक एकाधिकारी एक से अधिक प्लांट चला सकता है। अल्पकाल में वह एक ही प्रकार के या भिन्न आकारों के कई प्लांट चला सकता है। परन्तु दीर्घकाल में वह उन्हीं प्लांटों को चलाएगा, जो इकट्ठे मिल कर अपेक्षाकृत अधिक लाभ देते हैं। लाभ अधिक्तम करने वाले उत्पादन को उत्पादित करने के लिए, वह प्रत्येक प्लांट को इस ढंग से चलाएगा कि प्रत्येक प्लांट की MC प्लांटों के सयुक्त उत्पादनों को बेचने से प्राप्त MR के बराबर हो।

इसकी मान्यताएं (Its Assumptions)

यह विश्लेषण निम्न मान्यताओं पर आधारित है

(1) एकाधिकार फर्म दो प्लांट 1 और 2 चलाती है।

(2) प्लांट 2 से प्लांट 1 अधिक दक्षता वाला है। दूसरे शब्दों में, प्लांट 1 की उत्पादन लागतें प्लांट 2 की तुलना में कम हैं।

(3) एकाधिकारी दोनों प्लांटों पर समान वस्तु को उत्पादित करता है।

(4) मार्किट मांग वक्र और उसका समरूप MR वक्र दोनों के बारे में एकाधिकारी को मालूम हैं।

कीमत-उत्पादन निर्धारण (Price-Output Determination)

ये मान्यताएं दी होने पर प्रत्येक फर्म के कीमत-उत्पादन सयोग और लाभ चित्र 25 9 (A) (B) और (C) में दिखाए गए हैं। MC_1 और AC_1 प्लांट 1 के क्रमश सीमांत लागत और औसत लागत वक्र हैं और प्लांट 2 के वक्र MC_2 और AC_2 लागत वक्र हैं। MC_1 और MC_2 वक्रों का पार्श्व योग चित्र के भाग (C) में ΣMC वक्र द्वारा दिखाया गया है। *D/AR* मार्किट मांग वक्र है और MR इसके अनुरूप सीमांत आगम वक्र है। *OQ* उत्पादन का लाभ अधिक्तमकरण स्तर जो वक्र ΣMC के MR वक्र को बिन्दु *E* पर काटने से प्राप्त होता है। अब एकाधिकारी *OQ* उत्पादन करता है, क्योंकि $MC_1 = MC_2 = \Sigma MC = MR$ वह *OQ* उत्पादन का इस ढंग से दोनों प्लांटों में आवंटन करता है कि दोनों प्लांटों की सीमांत लागतें बराबर हो जाएं। ऐसा अनुलम्ब अक्ष पर *E* से *F* पर एक लम्ब खींचकर
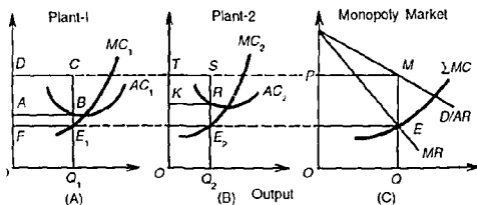
चित्र 25.9

किया जाता है, जो MC_1 और MC_2 वक्रों को क्रमश E_1 और E_2 पर काटता है। इस प्रकार एकाधिकारी दोनों प्लांटों को OQ_1 और OQ_2 उत्पादन की मात्राएं आवंटित करता है और कुल उत्पादन $OQ = OQ_1 + OQ_2$ है। इसे वह OP कीमत पर बेचता है। क्योंकि प्लांट 1 की उत्पादन लागतें कम हैं, इसलिए वह इस पर अधिक उत्पादन OQ_1 और प्लांट 2 पर कम उत्पादन OQ_2 उत्पादित करता है जिस पर उत्पादन लागतें ऊंची हैं। परिणामस्वरूप, वह प्लांट 1 से अधिक लाभ $ABCD$ और प्लांट 2 से कम लाभ $KRST$ कमाता है।

6 प्रवेश का भय होने पर एकाधिकार कीमत-निर्धारण (MONOPOLY PRICING WITH THREAT OF ENTRY)

कई बार, एकाधिकारी को अपने क्षेत्र में नई फर्मों के आ जाने का भय होता है। हो सकता है कि कीमत के एक निश्चित क्षेत्र में उसकी वस्तु का कोई निकट स्थानापन्न न हो, परन्तु यदि वह बहुत ऊँचे स्तर पर कीमत निश्चित करता है, तो संभावित प्रतिद्वन्द्वियों का भय समाप्त नहीं किया जा सकता। अधिक लाभ से आकर्षित होकर वे एकाधिकृत उद्योग में आ सकते हैं। इस प्रकार वे एकाधिकारी को बहुत अधिक कीमत वसूल करने से रोक सकते हैं। एकाधिकारी के लिए सरकार के दखल का भय भी बना रहता है। प्रौद्योगिकीय उन्नति के निकट स्थानापन्नों का विकास हो सकता है जिससे उसकी स्थिति कमजोर हो सकती है। हमेशा बने रहने वाले इन खतरों के अन्तर्गत काम करते हुए एकाधिकारी किस कीमत-उत्पादन नीति को अपनाए?

ऐसी स्थिति में, हमेशा एक अधिकतम कीमत होती है जिसे सीमा कीमत (limit price) कहते हैं। एकाधिकारी इस कीमत से अधिक वसूल नहीं कर सकता अन्यथा नई फर्में आ जाएँगी। इस कीमत के अनुरूप एक सीमा उत्पादन (limit output) भी होता है, नई फर्मों को आकर्षित किए बिना, एकाधिकारी इससे अधिक उत्पादन नहीं कर सकता। सीमा कीमत या उससे अधिक कीमत वसूल करके और सीमा उत्पादन या उससे अधिक उत्पादन करके एकाधिकारी अपने लाभ को अधिकतम बनाता रह सकता है। इस सीमा कीमत से अधिक वसूल करने या सीमा उत्पादन से कम उत्पादन करने के प्रयत्न का परिणाम होगा कि फर्में एकाधिकारी उद्योग में प्रवेश कर जाएँगी।

एकाधिकारी के लिए यह हिसाब लगाना कठिन है कि यह सीमा कीमत क्या हो? इसका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है जो एकाधिकारी के नए प्रवेश वाली फर्मों को उसकी वर्तमान

और भविष्य कीमत-नीति के प्रति व्यवहार के पूर्व-अनुमान पर आधारित होगा। मान लीजिए कि एकाधिकारी इस सीमा कीमत और उत्पादन को निश्चित कर देता है परन्तु देखता है कि कीमत पर उसे पहले से कम लाभ प्राप्त होगा। ऐसी स्थिति में उसके सामने दो ही रास्ते हैं या तो वह इस सीमा कीमत को वसूल करता रहे और कम एकाधिकार लाभ कमाता रहे ताकि नई फर्में न आएँ, या फिर अब अधिक कीमत वसूल करता रहे, अधिक लाभ उठाए, नई फर्मों को आकर्षित करे और दीर्घकालीन में अन्य फर्मों को लाभ में भागी बना ले। वास्तविक एकाधिकारी पहला रास्ता अपनाएगा। वह थोड़ा कम लाभ कमाने को अधिमान देगा बजाय इसके कि दूसरे नासमझी के रास्ते को अपनाकर नई फर्मों के प्रवेश को प्रोत्साहित करे।

इस स्थिति को चित्र 25.10 में दिखाया गया है, जहाँ OM उत्पादन और MP (= OA) कीमत पर एकाधिकारी-लाभ अधिकतम है। मान लीजिए कि यह बहुत अधिक कीमत है जिस पर एकाधिकारी को नई फर्मों के आने का भय है। केवल OA से कम कीमत और OM से अधिक उत्पादन पर ही एकाधिकारी इस प्रवेश के खतरे को मिटा सकता है। हम मान लेते हैं कि यह सीमा कीमत OB (= LR) और सीमा उत्पादन OL है। क्योंकि OB कीमत OA से कम है, इसलिए एकाधिकारी अधिक उत्पादन OL बेच सकता है। इस प्रकार वह कम लाभ $BRCG$ कमाता है। परन्तु यदि एकाधिकारी OA कीमत ही वसूल करने पर अड़ा रहे, तो वह अपेक्षाकृत अधिक लाभ नहीं कमा सकेगा क्योंकि दीर्घकाल में, नई फर्में आकर उसके लाभ को बाँट लेंगी। यह ध्यान रहे कि OB से कीमत बढ़ते ही नई फर्में आ जाएँगी।

चित्र 25.10

इसलिए एकाधिकारी समझ से काम लेगा और इस कीमत-उत्पादन सीमा को पार नहीं करेगा। वास्तव में सीमा कीमत औसत आगम वक्र D पर R और N के बीच कहीं भी हो सकती है। यदि सीमा कीमत बिन्दु N पर पहुँच जाती है, तो यह एकाधिकारी के LAC के बराबर है, और इस कीमत पर जमे रहने की सम्भावना बहुत कम होगी। वह केवल सामान्य लाभ कमाने की बजाय एक या दो प्रतियोगियों को सहन कर सकता है। परन्तु यह सैद्धान्तिक सम्भावना ही है क्योंकि नई फर्मों के आने से उसका एकाधिकार समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार यह मान लेने पर कि कीमत D वक्र पर R और N के बीच के भाग में रहती है, सामान्य से अधिक लाभ कमाता है चाहे ये लाभ उनसे कम हैं जो उसे नए प्रवेश का भय न होने पर प्राप्त होते हैं। परन्तु यह पहले से अधिक उत्पादन बेचता है। इस विश्लेषण को दुर्बल एकाधिकार (weak monopoly) भी कहते हैं।
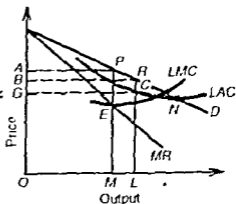
7. एकाधिकार कीमत विभेद (MONOPOLY PRICE DISCRIMINATION)

(1) अर्थ (Meaning)

कीमत-विभेद का अर्थ है, भिन्न-भिन्न ग्राहकों से भिन्न-भिन्न कीमतें वसूल करना या एक ही उत्पादन की भिन्न-भिन्न इकाइयों के लिए भिन्न-भिन्न कीमतें वसूल करना। जोन रॉबिन्सन के शब्दों

में, "विभिन्न क्रेताओं को एक प्रकार के अकेले नियन्त्रण में उत्पादित वस्तु को विभिन्न कीमतों पर बेचने की क्रिया, कीमत-विभेद कहलाती है।"[3] कीमत विभेद उस समय सभव है जब एकाधिकारी भिन्न-भिन्न मार्किटों में ऐसे ढग से विक्रय करता है कि वस्तु की किसी भी इकाई को सस्ते मार्किट से महँगे मार्किट में ले जाना समव न हो। परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता में, यदि दो मार्किटों को अलग भी रखा जा सके, तो भी कीमत विभेद समव नहीं होता। क्योंकि हर मार्किट में मार्किट माँग पूर्ण लोचदार होती है, इसलिए हर विक्रेता उस मार्किट में बेचने का प्रयत्न करेगा, जहाँ उसे अधिक कीमत मिल सके। प्रतियोगिता दोनों मार्किटों में कीमत को बराबर के स्तर पर ले आएगी। इस प्रकार, कीमत-विभेद वहीं सभव है, जहाँ मार्किट अपूर्ण हो।

(2) कीमत विभेद के प्रकार (Types of Price Discrimination)

कीमत-विभेद कई प्रकार का होता है।

प्रथम, व्यक्तिगत (personal) जो उपभोक्ताओं की आय पर आधारित होता है। डॉक्टर और वकील भिन्न-भिन्न ग्राहकों से उनकी आय के आधार पर भिन्न-भिन्न फीस लेते हैं। अमीरों से अधिक फीस ली जाती है और गरीबों से कम।

दूसरे, कीमत-विभेद वस्तु की प्रकृति (nature of product) पर आधारित हो सकता है। एक ही पुस्तक का पेपरबैक सस्करण डी-लक्स सस्करण की अपेक्षा सस्ता होता है क्योंकि पेपरबैक को बहुत लोग खरीदते हैं और डी-लक्स को पुस्तकालय खरीदते हैं। बिना ब्रैड की वस्तुएँ, जैसे खुली चाय-पत्ती, ब्रैडयुक्त जैसे ब्रुक बाड या लिपटन चाय की अपेक्षा सस्ती बिकती है। सामान्य आकार की टूथपेस्टों की अपेक्षा मितव्ययी आकार (economy Size) की टूथपेस्टें सस्ती होती हैं। इस प्रकार का कीमत-विभेद सेवाओं के विषय में भी पाया जाता है जब पहाड़ों पर गर्मियों की अपेक्षा सर्दियों में होटलों की दरें बहुत कम होती हैं। मौसम बीत जाने पर ड्राईक्लीन करने वाले तीन कपड़ों को ड्राईक्लीन करके दो के पैसे लेते हैं, जबकि मौसम में वे शीघ्र सेवा के अधिक दाम लेते हैं।

तीसरे, उपभोक्ता की आयु, स्त्री-पुरुष-भेद और पद (status) से भी कीमत-विभेद का सबध है। नाई बच्चों के बाल काटने के कम पैसे लेते हैं। कई सिनेमाघर केवल स्त्रियों को कम दरों पर सिनेमा देखने देते हैं। वर्दी पहने हुए फौजियों को कम दरों पर सिनेमाघरों में प्रवेश मिल जाता है।

चौथे, कीमत-विभेद सेवा के समय (time of service) पर भी आधारित होता है। कई जगहों पर, जैसे नई दिल्ली में, सिनेमाघर, सुबह के शो के लिए, दोपहर बाद होने वाले शो से आधी दरें लेते हैं।

पाँचवे, भौगोलिक या स्थानीय विभेद (geographical or local discrimination) भी होता है जबकि एकाधिकारी एक मार्किट की अपेक्षा दूसरे मार्किट में अधिक कीमत पर बेचता है।

अन्तिम, विभेद वस्तु प्रयोग (use discrimination) पर भी आधारित हो सकता है। रेलवे वाले भिन्न-भिन्न श्रेणी के डिब्बे के लिए या भिन्न-भिन्न सेवाओं के लिए भिन्न-भिन्न दरें वसूल करते हैं। एक ही मार्ग पर रुई की गाँठों की अपेक्षा कोयले के यातायात के कम पैसे लगते हैं। राज्य बिजली बोर्ड घरेलू उपयोग की अपेक्षा उद्योग में प्रयोग के लिए बिजली की कम दरें वसूल करते हैं।

(3) कीमत विभेद की शर्तें (Conditions for Price Discrimination)

कीमत-विभेद के लिए इन शर्तों का पूरा होना जरूरी है

(1) मार्किट अपूर्णताएँ (Market Imperfections)—कीमत-विभेद उस समय सभव होता है जब

3 "The act of selling the same article, produced under single control, at different prices to different buyers is known as price discrimination"—*The Economics of Imperfect Competition*, p 179

मार्किट में कुछ हद तक अपूर्णता हो। व्यक्तिगत विक्रेता केवल उसी समय अपने मार्किट को बाट करके अलग रख सकता है जब मार्किट अपूर्ण हो। अज्ञानता या सुस्ती के कारण उपभोक्ता एक मार्किट से दूसरी मार्किट में आसानी से नहीं जाते।

(2) प्रतिद्वन्द्वी विक्रेताओं में सहमति (Agreement between rival sellers)—उस समय भी कीमत-विभेद होता है, *जब विक्रेता एकाधिकारी हो, या जब प्रतिद्वन्द्वी विक्रेता इस बात पर* समझौता कर ले कि वे वस्तुएँ विभिन्न कीमतों पर बेचेंगे। प्रत्यक्ष सेवाओं के विक्रय में प्राय ऐसा हो सकता है। वही सर्जन एक अमीर आदमी से शल्यक्रिया (operation) की अधिक फीस ले सकता है और गरीब से कम। ऐसे स्थानों पर, जहाँ कई सर्जन और चिकित्सक हो तो वे मरीजों से उनकी आय के अनुसार फीस लेते है। हर श्रेणी के रोगी के लिए फीस की दर निश्चित होती है। वकील अपने ग्राहकों में खतरे या मुद्रा की मात्रा के अनुपात में मुकदमे की फीस लेते है। ऐसी सेवाओं के विषय में भी कीमत-विभेद सभव है जिनका पुनर्विक्रय न हो सकता हो।

(3) भौगोलिक या टैरिफ बंधन (Geographical or tariff barriers)—भौगोलिक आधार पर भी विभेद हो सकता है। एकाधिकारी अपने देश और विदेश में ग्राहकों से विभेद कर सकता है जबकि वह अपने देश की मार्किट की अपेक्षा विदेश में कम कीमत पर वस्तु को बेचता है। इस प्रकार के विभेद को राशि-पातन (dumping) कहते है जो केवल उस स्थिति में सभव है जब प्रशुल्क बधनो के कारण विदेश में बेची गई वस्तु का वापिस अपने देश में आना रोक दिया जाए। कई बार यातायात की लागत इतनी अधिक होती है कि वह "डम्प" की हुई वस्तुओं को वापिस आने से रोक देती है। *भौगोलिक विभेद पीगू की विभेद की इस पहली शर्त को पूरा करता है कि* "एक मार्किट में बेची गई वस्तु की कोई भी इकाई किसी दूसरी मार्किट में न लाई जा सके।"

(4) विभिन्न वस्तुएँ *(Differentiated products)—विभेद उस समय भी होता है जब क्रेताओं को* भिन्नित वस्तुओं के सम्बन्ध में एक ही सेवा की जरूरत होती है। रेलवे वाले कोयले और ताँबे के *यातायात के लिए अलग-अलग दरें वसूल करते है, क्योंकि वे जानते है कि एक ताँबे के व्यापारी* के लिए यह असभव है कि वह सस्ती दर पर भेजने के लिए ताँबे को कोयले में बदल दे। इससे पीगू की दूसरी शर्त पूरी हो जाती है कि "एक मार्किट के उचित माँग की किसी भी इकाई को दूसरे मार्किट मे नहीं ले जाया जा सकता।" यह बात सेवाओं के विक्रेताओं की आय, सैक्स, पद और आय पर आधारित विभेद के सम्बन्ध में भी लागू होती है। *उदाहरण के लिए, एक अमीर आदमी* इलाज की सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए गरीब नहीं बन सकता।

(5) क्रेताओं की अज्ञानता (Ignorance of buyers)—विभेद वहाँ भी हो सकता है, जब छोटे उत्पादक आदेशानुसार बनाई गई वस्तुओं को बेचते है। वे भिन्न-भिन्न क्रेताओं से भिन्न-भिन्न दर वसूल करते हैं जो इस बात पर निर्भर करती है कि वस्तु के लिए उनकी माँग की तीव्रता कितनी है। जूते बनाने वाले उसी जूते के उन ग्राहकों से अधिक दाम लेते हैं जो दूसरों से जल्दी चाहते है। एक ही प्रकार के जूतों के लिए भिन्न-भिन्न क्रेताओं से अलग-अलग कीमतें वसूल की जाती है क्योंकि खरीदने वाले यह नहीं जान पाते कि दूसरों से क्या कीमत ली गई है।

(6) वस्तुओं में कृत्रिम अन्तर (Artificial differences between goods)—एक एकाधिकारी एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न मात्राओं में प्रस्तुत करके कृत्रिम अन्तर पैदा कर सकता है। वह उसे अलग-अलग नामों और लेबलों के अन्तर्गत प्रस्तुत कर सकता हे, एक अमीर प्रकृति के क्रेताओं के लिए और दूसरी सामान्य लोगों के लिए। इस प्रकार असल में एक ही वस्तु के लिए वह अलग-अलग कीमतें ले सकता है। कपड़े धोने का साबुन बनाने वाला साबुन की थोड़ी मात्रा को कागज में लपेट कर, और उसे नया नाम देकर अधिक कीमत ले सकता है। वह 16 रुपये प्रति किलोग्राम खुले साबुन के मुकाबले में रु 17 प्रति किलोग्राम पर बेच सकता है।

(7) माँग में अन्तर *(Differences in demand)*—कीमत-विभेद के लिए अलग-अलग मार्किटों में

माँग का अन्तर बहुत अधिक होना चाहिए। माँग की लोच में अन्तर के आधार पर भिन्न-भिन्न मार्किटों में भिन्न-भिन्न कीमतें वसूल की जा सकती हैं। जहाँ माँग अधिक लोचदार होती है, वहाँ कम कीमत ली जाती है और जहाँ माँग कम लोचदार होती है, वहाँ अधिक कीमत वसूल की जाती है।

4 एकाधिकार विभेद में कीमत निर्धारण (Price Determination under Monopoly Discrimination)[4]

कीमत विभेद तब होता है जब एकाधिकारी अपनी वस्तु या सेवा को दो वर्गों में बाँट लेता है और हर वर्ग के लिए अलग-अलग कीमत वसूल करता है। हम उस एकाधिकारी को लेते हैं जो अपनी वस्तु को दो मार्किटों में बेचता है।

यह विश्लेषण इन शर्तों पर आधारित है

(i) एकाधिकारी का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है। इसलिए, वह उतना उत्पादन करता है जिस पर उसका सीमान्त आगम (MR) उसकी सीमान्त लागत (MC) के बराबर होता है। क्योंकि वह दो अलग मार्किटों में बेचता है, इसलिए वह हर मार्किट में मात्रा का ऐसे ढंग से समायोजन करता है कि दोनों मार्किटों में **सीमान्त आगम बराबर** हो। वस्तु के उत्पादन की सीमान्त लागत दी हुई होने पर, **अधिकतम लाभदायक एकाधिकार उत्पादन उस बिन्दु पर निर्धारित होगा, जहाँ दोनों मार्किटों को मिलाकर कुल सीमान्त आगम सीमान्त लागत के बराबर होगा या एकाधिकार** लाभ $= MR_1 = MR_2 = MC$। यदि मार्किट दो (2) की अपेक्षा मार्किट एक (1) में सीमान्त आगम अधिक है, तो एकाधिकारी मार्किट दो में कम मात्रा बेचेगा और इस मात्रा को मार्किट एक में ले आएगा। इससे मार्किट दो में कीमत अधिक होने लगेगी और मार्किट एक में कम, उस बिन्दु तक जिस पर दोनों मार्किटों में सीमान्त आगम बराबर हो।

(ii) हर मार्किट में क्रेताओं की संख्या बहुत अधिक है और उनमें पूर्ण प्रतियोगिता है।

(iii) एक मार्किट से दूसरे मार्किट में वस्तु के दोबारा बिकने की कोई संभावना नहीं है।

(iv) एकाधिकारी का माँग वक्र हर मार्किट में नीचे की ओर ढालू है जिसका अभिप्राय है कि दोनों मार्किटों में वस्तु को बेचने का उसका एकाधिकार स्थापित हो चुका है।

(v) अन्तिम, कीमत-विभेद के लिए **सबसे आवश्यक शर्त यह है कि दोनों मार्किटों में माँग की लोचें भिन्न-भिन्न हों।** यदि माँग की लोचें समान होंगी, तो सीमान्त आगम भी समान होंगे। यह निष्कर्ष इस सूत्र से निकलता है, $MR = AR \dfrac{E-1}{E}$। यदि हर मार्किट में AR समान है, तो माँग की लोच भी समान होगी और दोनों मार्किटों में सीमान्त आगम भी समान होंगे। ऐसी स्थिति में, एकाधिकारी उत्पादन की चाहे जितनी मात्रा एक मार्किट से दूसरे मार्किट में ले जाए, कुल आगम उतना ही रहेगा। इस प्रकार, विभेद की जरूरत नहीं रह जाती। इसलिए, विभेद उसी समय लाभदायक हो सकता है जब एकाधिकार-वस्तु की दो मार्किटों में माँग की लोचें भिन्न-भिन्न हों। इसका मतलब है कि हर मार्किट में वसूल की जाने वाली कीमत एक दूसरी से अवश्य भिन्न होनी चाहिए। कम लोचदार माँग वाले मार्किट में कीमत अधिक होगी और अधिक लोचदार माँग वाले मार्किट में कम।[5]

चित्र 25.11 कीमत-विभेद के अन्तर्गत कीमत और उत्पादन निर्धारण को प्रकट करता है। एकाधिकारी अपनी वस्तु को दो मार्किटों, 1 और 2 में बेचता है। मार्किट न. 1 में वस्तु की अधिक

4 इसे तीसरी कोटि का कीमत विभेद कहते हैं।

5 "The sub-markets will be arranged in ascending order of their elasticities, the highest price being charged in the least elastic market and the lowest price in the most elastic market." *Joan Robinson*
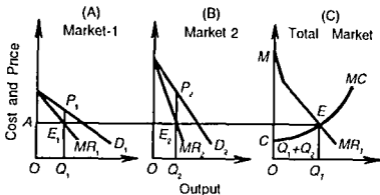
चित्र 25 11

लोचदार माँग है और मार्किट 2 में कम लोचदार माँग है। इसके अनुसार, मार्किट न 1 में माँग वक्र D_1 और उसके अनुरूप सीमान्त आगम वक्र MR_1 है, मार्किट 2 में इन वक्रों के अनुरूप वक्र D_2 और MR_2 है। चित्र 25 11 (C) कुल सीमान्त आगम वक्र MR_T को प्रकट करता है जो MR_1 और MR_2 वक्रों के पार्श्वयोग (lateral summation) से खींचा गया है। MR_T और MC वक्रों का आपस में काटने का बिन्दु E उत्पादन के सतुलन स्तर OQ_T को निर्धारित करता है। एकाधिकार सीमान्त लागत Q_TE को प्रत्येक मार्किट के सीमान्त आगम के बराबर करके इस उत्पादन (OQ_T) को दोनों मार्किटों में बाँटता है। सीमान्त लागत Q_TE को MR_1 के, और MR_2 के बराबर करने के लिए क्षैतिज अक्ष के समानान्तर EA रेखा खींचिए। यह MR_1 को E_1 पर और MR_2 को E_2 पर काटती है जो हर मार्किट में उत्पादन के विक्रय के लिए सतुलन बिन्दु बन जाते हैं। इस प्रकार मार्किट 1 में बेची गयी मात्रा OQ_1 और मार्किट 2 में बेची गयी मात्रा OQ_2 है, जिससे $OQ_1 + OQ_2$ मात्रा कुल उत्पादन OQ_T के बराबर है। अधिक लोचदार (विदेशी) मार्किट में कीमत Q_1P_1 और कम लोचदार (घरेलू) मार्किट में कीमत Q_2P_2 है। $Q_2P_2 > Q_1P_1$

निष्कर्ष रूप में, हम कह सकते है कि कीमत विभेद के अन्तर्गत एकाधिकारी अपनी वस्तु को माँग की भिन्न-भिन्न लोच वाली दो अलग-अलग मार्किटों में बेचता है जिससे वह उस समय अधिकतम लाभ प्राप्त करता है जब वह लोचदार माँग वाली विदेशी मार्किट में कम कीमत पर अधिक मात्रा और कम लोचदार माँग वाली घरेलू मार्किट में अधिक कीमत पर कम मात्रा बेचता है। इसका अर्थ है कि जब दो मार्किटों में सीमान्त आगम बराबर और कीमतें भिन्न हों, तो कीमत-विभेद सभव और लाभदायक होता है।

(5) राशि पातन (Dumping)

एक और प्रकार का कीमत-विभेद होता है जिसे 'डम्पिग' कहते हैं। यह वर्तमान शताब्दी के शुरू की दशाब्दियों में चलता था। डम्पिग तब होता है जब एकाधिकारी अपने उत्पादन के एक भाग को विदेशी मार्किट में बहुत कम कीमत पर और बाकी भाग को अपने देश में बहुत अधिक कीमत पर बेचे। घरेलू मार्किट नियन्त्रित या सुरक्षित होती है और विदेशी मार्किट स्वतन्त्र या खुली।

इसकी मान्यताएं (Its Assumptions)—'डम्पिग' के अन्तर्गत कीमत-उत्पादन निर्धारण विश्लेषण की निम्न धारणाएँ हैं (i) कुल उत्पादन स्थिर नहीं होती, उसमें परिवर्तन हो सकता है, (ii) दोनों मार्किटों में सीमान्त आगम बराबर हो, और (iii) विदेशी मार्किट पूर्ण प्रतियोगी हो और घरेलू मार्किट एकाधिकारात्मक, जिससे एकाधिकारी के सामने विदेशी मार्किट में माँग वक्र पूर्ण लोचदार

चित्र 25 12

और घरेलू मार्किट में माँग वक्र कम लोचदार हो।
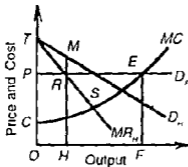
एकाधिकार की तरह, इसमें कुल सीमान्त आगम वक्र और वस्तु के उत्पादन के सीमान्त लागत वक्र की समानता कीमत और उत्पादन का निर्धारण करेगी। चित्र 25 12 'डम्पिंग' के अन्तर्गत कीमत-उत्पादन निर्धारण को स्पष्ट करता है। एकाधिकारी के सामने विदेशी मार्किट माँग वक्र क्षैतिज रेखा PD_f है, जो MR वक्र भी है क्योंकि विदेशी मार्किट को पूर्ण लोचदार मान लिया गया है। कम लोचदार माँग-वक्र नीचे की ओर ढालू D_H और उसके अनुरूप सीमान्त आगम वक्र MR_H है। दोनों MR वक्रों के पार्श्व-योग से कुल सीमान्त आगम वक्र $TRED_f$ बन जाता है। एकाधिकारी द्वारा उत्पादन की जाने वाली वस्तु की मात्रा का निर्धारण करने के लिए, हम सीमान्त लागत वक्र MC को लेते हैं। E सतुलन बिन्दु है, जहाँ MC वक्र सयुक्त सीमांत आगम वक्र $TRED_f$ के बराबर है। इस प्रकार, दोनों मार्किटों में विक्रय के लिए OF मात्रा का उत्पादन होगा। अब, क्योंकि EF सीमान्त लागत है, इसलिए घरेलू मार्किट में R पर सतुलन स्थापित होगा, जहाँ सीमान्त लागत EF सीमान्त आगम वक्र MR_H के बराबर है। HM कीमत पर OH मात्रा बेची जाएगी और बाकी मात्रा HF विदेशी मार्किट में OP कीमत पर बेची जाएगी। इस प्रकार एकाधिकारी अधिक लोचदार माँग वाली विदेशी मार्किट में कम कीमत पर अधिक मात्रा और कम लोचदार माँग वाली घरेलू मार्किट में अधिक कीमत पर कम मात्रा बेचता है। उसके कुल लाभ $TREC$ के बराबर है।

यदि खुले (विदेशी) मार्किट में प्रतियोगिता के कारण कीमत OP से नीचे गिर जाए, तो पहले से कम मात्रा का उत्पादन होगा। F बाईं ओर को चला जाएगा। दूसरी ओर, खुली मार्किट में कीमत के OP से बढ़ जाने पर, एकाधिकारी अधिक लाभ उठाने के लिए पहले से अधिक उत्पादन करेगा। विदेशी मार्किट कीमत में वृद्धि एकाधिकारी के लिए तब तक लाभदायक रहेगी, जब तक कि वह उसकी वस्तु की माँग पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती, क्योंकि उत्पादन का विस्तार करने से उसे लाभ ही होगा। यदि निर्यात वस्तु की कीमत S से नीचे गिर जाती है, तो एकाधिकारी विदेश में बेचना बन्द कर देगा।

6 कीमत-विभेद समाज के लिए हानिकारक या लाभदायक (Price Discrimination Harmful or Beneficial to Society)

पीगू और रॉबिन्सन ने उन परिस्थितियों का विश्लेषण किया है जिनमें कीमत-विभेद समाज के लिए हानिकर या लाभदायक होता है। कई बार, जहाँ पूर्ण प्रतियोगिता या साधारण एकाधिकार होता है, वहाँ किसी एक विशेष वस्तु का उत्पादन सम्भव नहीं होता क्योंकि इसका औसत लागत

वक्र (AC) इसके माँग वक्र (AR) से ऊपर स्थित होता है। परन्तु कीमत-विभेद के अन्तर्गत यह हो सकता है कि औसत लागत वक्र किसी बिन्दु पर औसत आगम वक्र से नीचे स्थित हो। इस प्रकार, यदि कीमत विभेद न हो, तो समाज कुछ वस्तुओं और सेवाओं से वंचित रह जाएगा। जैसाकि श्रीमती **रोबिन्सन** ने स्पष्ट किया है, "हो सकता है कि, *उदाहरण के लिए, यदि कीमत-विभेद* की मनाही हो, तो रेलवे ही न बनाई जाए या गाँव का डाक्टर चिकित्सा ही शुरू न करे। *समाज के दृष्टिकोण से* यह बिल्कुल आवश्यक है कि फर्म केवल उतना लाभ न उठाए जो मूल निवेश को न्यायसगत बनाने के लिए काफी हो बल्कि पर्याप्त लाभ उठाए जिससे प्लाट की दक्षता को बनाए रखा जा सके।" *यदि एक डाक्टर सब मरीजो* से एक जैसी फीस लेता है, तो उसकी आय इतनी कम होगी कि उसे निजी चिकित्सा छोडकर किसी हस्पताल मे नौकरी करनी पडेगी। इस प्रकार, उस विशेष क्षेत्र मे जहाँ वह चिकित्सा करता है, समाज को उसकी सेवाएँ नहीं मिल पाएँगी। हाँ, यदि वह अमीर रोगियो से अधिक फीस लेता है, तो उसकी आय इतनी अधिक हो सकती है कि उसे उसी क्षेत्र मे रहने को प्रेरित करे। इसी प्रकार रेलो का अस्तित्व इस बात पर निर्भर करता है कि वे कुछ ग्राहको से अन्य ग्राहको की अपेक्षा अधिक ऊँची दरे वसूल करे।
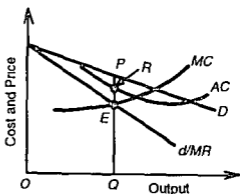
चित्र 25 13

यदि घटती औसत लागतो के अन्तर्गत विभेद हो, तो यह वास्तव मे उपभोक्ताओ के लिए लाभदायक होता है क्योकि इसके परिणामस्वरूप मार्किट के लिए उत्पादन बढ जाता है। इसे चित्र 25 13 मे *दिखाया गया है, जहाँ D विभेदक एकाधिकारी का औसत आगम वक्र (AR) है और d/MR साधारण* माँग वक्र, जो विभेदक का MR वक्र बन जाता है। औसत लागत वक्र AC मार्किट माँग वक्र MR से ऊपर स्थित है। इसलिए *D* वक्र पर किसी कीमत स्तर पर उत्पादन सभव नहीं है। परन्तु कीमत *विभेद के अन्तर्गत उत्पादन हो सकता है क्योकि माँग वक्र* AC वक्र के नीचे की ओर ढालू भाग से ऊपर स्थित है। सतुलन बिन्दु *E* पर स्थापित होता है जहाँ MC = MR और *QP* कीमत पर *OQ* उत्पादन और विक्रय होता है तथा विभेदक उत्पादन का प्रति इकाई *RP* लाभ कमाता है।

यदि आर्थिक कल्याण को बढावा देने मे सहायक हो, तो कीमत-विभेद उचित ठहरता है। यदि कीमत-विभेद से किसी सार्वजनिक उपयोगी सेवा का, जैसे टेलीफोन, तार या रेल यातायात का, उत्पादन हो, तो प्राय सरकारे कीमत-विभेद की अनुमति दे देती है और उसे बढावा भी देती है।

कीमत-विभेद समाज के लिए भी हितकर है क्योकि जब अमीरो से अधिक और गरीबो से कम दरे वसूल की जाती है, तो इससे व्यक्तिगत आयो की असमानता के अन्तर को कम करने मे सहायता मिलती है। सार्वजनिक उपयोगी सेवाओ मे ऊँची आय वर्ग के लोगो से वसूल की गई कीमते आय के पुनर्वितरण का साधन बनती है क्योकि सरकार इस कोष को कम आय वर्ग को राज्य सहायता देने के लिए प्रयोग कर सकती है। इस प्रकार, कीमत-विभेद *सामाजिक कल्याण* को बढावा देता है।

कीमत-विभेद केवल लाभदायक ही नहीं बल्कि उचित भी है जबकि कोई देश घर की अपेक्षा

विदेश मे सस्ती कीमत पर एक वस्तु को बेचता है। यदि विदेशी मार्किट लोचदार है, तो कम कीमत पर अधिक विक्रय होगा। इसका मतलब है कि उत्पादन मे विस्तार होगा, अर्थव्यवस्था के अधिक स्रोतो का प्रयोग होगा, समाज को अधिक रोजगार और आय की प्राप्ति होगी। इस प्रकार का कीमत-विभेद उस समय विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध होता है, जब उद्योग पर घटती लागतो का नियम लागू होता हो। इसका मतलब है कि पैमाने की अधिक मितव्ययिताओ का उपयोग होना, जिससे लागते घट जाएँगी और घरेलू मार्किट मे भी कीमत कम हो जाएगी। सभव है कि कीमत-विभेद के बिना वस्तु का उत्पादन ही न होता। उस स्थिति मे, यदि वह वस्तु विदेश से मँगाई जाती तो इससे अर्थव्यवस्था को मौद्रिक और वास्तविक दोनो रूपो मे अधिक महँगी पडती। उस वस्तु के उत्पादन मे प्रयोग किये जाने वाले अपने देश के स्रोत बेकार रहते और विदेश से आय प्राप्त करने की बजाय अपने देश का धन विदेश मे चला जाता। सभव है, पैमाने की किफायते तभी प्राप्त हुई हो जब एकाधिकारी ने विदेशी मार्किट के लिए उत्पादन शुरू किया हो। अत कीमत-विभेद सर्वथा उचित है।

कीमत-विभेद उस समय हानिकारक भी होता है जब इससे विभिन्न प्रयोगो मे साधनो का कुवितरण हो जाए जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन, रोजगार और आय अधिकतम नहीं हो पाते। फिर, इससे साधन ऐसी दिशा मे भी लग सकते है जहाँ सामाजिक दृष्टि से उनका इष्टतम प्रयोग न हो। इससे साधनो की हानि होती है। क्योकि लोगो को थोडी मात्राओ के लिए अपेक्षाकृत ऊँची कीमते देनी पडती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी, जब कीमत-विभेद डम्पिग का रूप धारण कर लेता है, तो यह जान बूझकर दूसरे देश की अर्थव्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर देता है क्योकि यह विदेशी उत्पादको की जडे काटकर उन्हे व्यापार बन्द करने को विवश कर देता है। ऐसा विभेद बहुत ही अनुचित है।

8. एकाधिकार शक्ति की कोटि और माप (DEGREE OF MONOPOLY POWER AND ITS MEASUREMENT)

एकाधिकार मे एकाधिकारी अपनी उच्च सौदेबाजी की शक्ति द्वारा अधिक एकाधिकार लाभ कमाने की क्षमता रखता है। वह अपने हित के लिए मार्किट से लाभ उठाने की बेहतर स्थिति मे होता है। वह अपने वास्तविक और सभावित प्रतियोगियो पर प्रतिबध लगाकर अधिक लाभ उठाता है। इस प्रकार, एकाधिकार शक्ति से अभिप्राय एक एकाधिकारी द्वारा अपनी कीमत-उत्पादन नीतियो से अपने प्रतियोगियो पर प्रतिबध लगाना है।

एकाधिकार शक्ति का माप (Measurement of Monopoly Power)

एकाधिकार शक्ति को मापने के दो महत्त्वपूर्ण तरीके है। प्रथम, सीमात लागत और कीमत मे अन्तर। क्योकि एकाधिकार मे, कीमत से सीमात लागत सदैव कम होती है, इसलिए इन दोनो मे जितना अधिक अन्तर होगा उतनी ही अधिक एकाधिकार शक्ति होगी। द्वितीय, एकाधिकार-अतिसामान्य लाभो और पूर्ण प्रतियोगिता अतिसामान्य लाभो मे अन्तर भी एकाधिकार शक्ति का माप माना जाता है। इन दोनो मे जितना अधिक अन्तर होगा, उतनी अधिक एकाधिकार की कोटि होती है। अर्थशास्त्रियों ने एकाधिकार शक्ति को मापने के अन्य तरीके भी सुझाए है परन्तु कुछेक का विवेचन किया जा रहा है। परन्तु कोई एक तरीका पूर्ण नहीं है।

(1) लर्नर का माप (*Lerner's Measure*)

एकाधिकार शक्ति की माप की शुरू-शुरू की विधियो मे से एक वह है जिसे प्रोफेसर ए. पी.

लर्नर (Prof A P Lerner) ने सौदेबाजी की शक्ति के रूप मे व्यक्त किया है। कीमत और सीमान्त लागत का अन्तर एकाधिकार शक्ति की कोटि का माप होता है। यदि कीमत P हो और सीमान्त लागत MC, तो एकाधिकार शक्ति की कोटि को मापने का फार्मूला होगा (P – MC)/P। एक विक्रेता की एकाधिकार शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपनी सीमान्त लागत से कितनी अधिक कीमत पर अपनी वस्तु को बेचने की योग्यता रखता है। कीमत और सीमान्त लागत मे अन्तर जितना अधिक होगा, एकाधिकार-शक्ति भी उतनी ही अधिक होगी। एक प्रतियोगी विक्रेता के पास एकाधिकार शक्ति बिल्कुल नहीं होती, क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत P = MC। सब स्थितियो मे ऊपर के फार्मूले से शून्य (zero) प्राप्त होगा। परन्तु यदि विक्रेता एक एकाधिकारी हो, तो कीमत और सीमान्त लागत मे हमेशा अन्तर होगा।[6] इस प्रकार एकाधिकारी-शक्ति का सूचक शून्य और एक के बीच मे कहीं बदलता रहेगा। उदाहरण के लिए, यदि P = रु 4 हो और MC = रु 2, तो एकाधिकार शक्ति का सूचक 1/2 अर्थात् (4 – 2)/4 होगा।

परन्तु अपनी सौदेबाजी की कीमत को बढ़ाने के लिए एक विक्रेता अपनी वस्तु की कीमत आसानी से नहीं बढा सकता। कीमत बढाकर लाभ को अधिक बनाने का उसका प्रयत्न कीमत मे वृद्धि से विक्रय मे कमी द्वारा निष्प्रभाव (neutralize) हो सकता है। इसलिए, एकाधिकार शक्ति की कोटि को माँग की लोच के द्वारा मापा जा सकता है और उसका समीकरण है

$$\text{अधिकार-शक्ति की कोटि } (DMP) = \frac{E(P - MC)}{P}$$

क्योकि अधिकतम लाभ के लिए MC = MR, इसलिए समीकरण यह बन जाता है

$$DMP = \frac{E(P - MR)}{P}$$

ऊपर के समीकरण[7] मे $MR = P\frac{E-1}{E}$ स्थानापन्न करने पर

$$DMP = \frac{E\left(P - P\frac{E-1}{E}\right)}{P} = \frac{PE + P}{E} = \frac{PE - PE + P}{EP} = \frac{1}{E}$$

या माँग की लोच का विलोम,

$$\frac{P}{P - MR}$$

लर्नर के माप को चित्र 25 14 मे दर्शाया गया है जहाँ AC और MC फर्म के क्रमश औसत और सीमात लागत वक्र हैं, जब कि D और MR इसके माग और औसत आगम वक्र है। एकाधिकारी फर्म अपने लाभो को
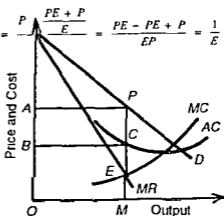
चित्र 25 14

6 उद्योग का माग वक्र D या AR हमेशा नीचे की ओर ढालू और सतुलन बिन्दु से ऊपर स्थित होता है, जहाँ MR = MC

7 इसके प्रमाण के लिए देखिए अध्याय 'आगम की धारणा'।

C = MR पर अधिकतम करती है। वह MP कीमत पर *OM* मात्रा बेचती है। *PE/PM* अनुपात को एकाधिकार शक्ति की कोटि कहते हैं। एकाधिकार की शक्ति माग की लोच का विलोम है,

अर्थात् $\frac{P - MR}{P}$

चित्र 25 14 से $P = PM$ जबकि $MR = EM$ फार्मूले को पुन लिखने से

$$DMP = \frac{P - MR}{P}$$

$$= \frac{PM - EM}{PM}$$

$$DMP = \frac{PE}{PM}$$

यह फार्मूला प्रकट करता है कि एकाधिकार शक्ति की कोटि, माँग की कीमत लोच के प्रतीप (reciprocal) होती है। माँग की कीमत लोच जितनी कम होगी, एकाधिकार शक्ति की कोटि उतनी ही अधिक होगी। लोच जितनी अधिक होगी, एकाधिकार की शक्ति उतनी ही कम। यदि उदाहरण के लिए, *माँग की कीमत लोच 2 है, तो एकाधिकार शक्ति की कोटि 1/2 होगी। दूसरी ओर यदि* लोच गुणक 1/2 है, तो एकाधिकार शक्ति 2 होगी।

इसकी सीमाएँ (Its Limitations)—रोचक होते हुए भी, एकाधिकार शक्ति की इस माप की कई सीमाए है

प्रथम, एकाधिकार शक्ति पूर्ण रूप से कीमत और लागत के अन्तर पर निर्भर नहीं है। यह एकाधिकारी द्वारा किए गए उत्पादन के नियन्त्रण पर भी निर्भर करती है। यदि वस्तु की माँग कम लोचदार है, तो कीमत और लागत में अधिक अन्तर भी हो सकता है। परन्तु इस परिणाम को प्राप्त करने के लिए, उत्पादन मे कमी थोड़ी भी हो सकती है। उत्पादन पर नियन्त्रण का कारण यह भी हो सकता है कि या तो वर्तमान प्लाट या उपकरण का पूरा प्रयोग नहीं हो रहा या फिर फर्म ने कम पूँजी लगाई है। दो फर्मों का एकाधिकार की कोटि को प्रकट करने वाला सूचक समान हो सकता है। परन्तु सम्भव है कि एक फर्म अपने प्लाट या उपकरण का प्रयोग न करती हो, और दूसरी ने कम पूँजी लगाई हो। ऊपर का फार्मूला एकाधिकार शक्ति के इन महत्त्वपूर्ण पक्षों की व्याख्या नहीं कर पाता।

दूसरे, लर्नर का फार्मूला एकाधिकार प्रतियोगिता मे कीमत-रहित प्रतियोगिता और मिश्रित अल्पाधिकार *(differentiated oligopoly) को मापने में असमर्थ है। मिश्रित वस्तु को बेचने वाली* फर्म की *एकाधिकार शक्ति की कोटि कीमत परिवर्तन की बजाय कीमत-रहित प्रतियोगिता के* फलस्वरूप ऊँची हो सकती है। विक्रय के प्रयत्नों को तीव्र करके और अपनी वस्तु की किस्म मे परिवर्तन करके फर्म अपनी वस्तु की माँग को बढा सकती है। फिर, दो फर्मों का एकाधिकार शक्ति सूचक एक ही हो सकता है। परन्तु हो सकता है कि एक फर्म, दूसरी फर्म की अपेक्षा अधिक तीव्र कीमत-रहित प्रतियोगिता में लगी हो। इस प्रकार हो सकता है कि वह अपनी वस्तु की बडी मात्रा बेच रही हो। लर्नर का फार्मूला समस्या के इस पक्ष पर कोई प्रकाश नहीं डालता।

तीसरे, इस फार्मूले के *अनुसार पूर्ण एकाधिकार शक्ति की स्थिति की व्याख्या करना भी कठिन* है। माँग की कीमत लोच उपभोक्ता की माँग पर कीमत में परिवर्तन के आय और स्थानापन्नता प्रभावों को मापती है। जब एक विक्रेता अपनी वस्तु की कीमत बढा देता है, तो उसका उपभोक्ता पर दो तरह से प्रभाव पड़ता है। पहला, आय-प्रभाव है। वस्तु की कीमत बढने से उपभोक्ता की

आय कम हो जाती है और वे वस्तु की अपनी खरीद को घटा देते हैं। दूसरा, स्थानापन्नता-प्रभाव है, जब कीमत में वृद्धि उपभोक्ताओं को अपनी माँग किसी अन्य वस्तु पर ले जाने को प्रेरित करती है। इन दो प्रभावों में से, स्थानापन्नता प्रभाव पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रमुख होता है। परन्तु पूर्ण एकाधिकार के अन्तर्गत जहाँ पूर्ण प्रतियोगिता नहीं होती, स्थानापन्नता-प्रभाव शून्य हो जाता है और आय-प्रभाव ही एकमात्र प्रभाव रह जाता है। इस प्रकार, एकाधिकार के अन्तर्गत माँग की कीमत-लोच केवल आय-प्रभाव को मापती है जो ऋणात्मक या धनात्मक हो सकती है। लर्नर के माप की सबसे बड़ी कमी यह है कि वह एकाधिकार शक्ति की कोटि के साथ लोच का कोई निश्चित गुणांक (coefficient) नहीं जोड़ता।

चौथे, लर्नर का माप स्थैतिक है। यह स्पष्ट नहीं करता कि सीमान्त लागत का स्तर उत्तम प्रौद्योगिकी के कारण होता है या पुराने उत्पादन के ढगों के।

अन्तिम, लर्नर का माप उद्योग में पूँजी-श्रम अनुपात में दीर्घकालीन परिवर्तनों द्वारा भी प्रभावित होता है।

इन त्रुटियों के बावजूद डनलप तथा कैलेस्की ने एकाधिकार शक्ति की कोटि को मापने के लिए इस सूचक का प्रयोग किया। डनलप ने चुने हुए उद्योगों में और कैलेस्की ने सारी अर्थव्यवस्था के लिए।

(2) ट्रिफिन का माप (Triffin's Measure)

प्रोफेसर राबर्ट ट्रिफिन (Prof Robert Triffin) ने लर्नर के माप में माँग की कीमत लोच की बजाय कीमत-प्रतिलोच (Cross-elasticity) का सुझाव देकर सुधार किया है। माँग की कीमत-प्रतिलोच दो फर्मों की वस्तुओं में स्थानापन्नता की कोटि को उस समय मापती है, जब एक फर्म की वस्तु की कीमत में परिवर्तन दूसरी फर्म की वस्तु की माँग को प्रभावित करती है। जब एक फर्म की वस्तु तथा अन्य सभी फर्मों की वस्तु में माँग की प्रतिलोच शून्य होती है, तो प्रतिलोच का प्रतीप अनन्त (infinity) होगा और फर्म की पूर्ण एकाधिकार शक्ति होगी। ट्रिफिन के अनुसार विशुद्ध एकाधिकार में माँग की प्रतिलोच शून्य होती है और एकाधिकारी पूर्ण एकाधिकार शक्ति का लाभ उठाता है। दूसरी ओर पूर्ण प्रतियोगिता में प्रतिलोच अनन्त होती है, इसलिए फर्म की एकाधिकार शक्ति शून्य होती है।

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)—लर्नर के माप की भाँति ट्रिफिन का माप भी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए अनुपयोगी है। विशुद्ध प्रतियोगिता की भाँति विशुद्ध एकाधिकार भी अवास्तविक होता है।

दूसरे, किसी भी फर्म की माँग की प्रतिलोच का निश्चित गुणांक (coefficient) निकालना सम्भव नहीं होता।

तीसरे, कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार विशुद्ध प्रतियोगिता में भी एक फर्म की माँग की प्रतिलोच शून्य होती है क्योंकि इसकी वस्तु के कई पूर्ण स्थानापन्न होते हैं। अत विशुद्ध प्रतियोगिता में एक फर्म की कीमत-उत्पादन नीति में परिवर्तन होता है तो अन्य फर्में इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देतीं। ऐसा होने पर हम यह कह सकते हैं कि विशुद्ध प्रतियोगिता में माँग की प्रतिलोच शून्य होने पर फर्म को एकाधिकार शक्ति प्राप्त होती है।

अत माँग की प्रति-लोच द्वारा एकाधिकार-शक्ति को मापने की विधि सही नहीं क्योंकि विशुद्ध प्रतियोगिता एवं विशुद्ध एकाधिकार दोनों में ही इसका गुणांक शून्य होता है। परन्तु एकाधिकार शक्ति केवल एकाधिकार में ही पाई जाती है, न कि विशुद्ध प्रतियोगिता में।

(3) बेन का माप (Bain's Measure)

प्रोफेसर जे एस बेन (Prof J S Bain) का सुझाव है कि सामान्य से अधिक लाभों का आकार एकाधिकार शक्ति की कोटि होती है। वह कीमत और औसत लागत के अन्तर को एकाधिकार शक्ति का माप लेता है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग में नई फर्मों के आने से अतिसामान्य लाभ (supernormal profits) समाप्त हो जाते हैं। इसलिए जब विशुद्ध प्रतियोगिता होती है, तो एकाधिकार शक्ति की कोटि शून्य होती है। इसलिए केवल एकाधिकार के अन्तर्गत, जब नई फर्मों के आने का भय न हो, तभी एकाधिकार लाभ अधिकतम होते है और एकाधिकार शक्ति की कोटि पूर्ण (absolute) होती है। पर, जहाँ फर्मों के आने का भय न हो, वहाँ एकाधिकार-शक्ति की कोटि को मापा जाता है। विक्रेता की शक्ति जितनी अधिक होगी, वह उतना ही अधिक लाभ प्राप्त करेगा और नई फर्मों के आने का भय भी नहीं होगा।

बेन के माप को चित्र 25 14 में व्यक्त किया गया है, जहाँ एकाधिकारी फर्म MP कीमत पर OM वस्तु की मात्रा बेचती है। कीमत और औसत लागत (AC) में अन्तर प्रति इकाई उत्पादन OM पर PC है जो $ABCP$ के बराबर है। यह अतिरिक्त लाभ है जो एकाधिकार शक्ति को मापता है।
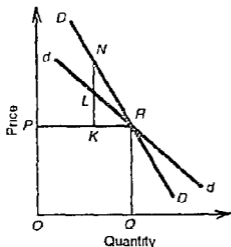
चित्र 25 15

इसकी सीमाएँ (Its Limitations)—परन्तु यह माप भी कमियों से मुक्त नहीं है। प्रथम, एक फर्म की शुद्ध आय (net income) का हिसाब लगाना कठिन है। यह इस बात पर निर्भर करती है कि इसके स्थिर साधनों की लागत की ऋणमुक्ति कितनी है। दूसरे, फर्म के लाभ का हिसाब लगाने के लिए अन्य कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता है जैसे फर्म की शुद्ध आय में से ब्याज और प्रबन्ध की मजदूरी को घटाना। अन्तिम, फर्म को होने वाले सभी लाभ एकाधिकारी लाभ नहीं होते। फर्में, चाहे प्रतियोगी हों या एकाधिकारी, प्राय. माँग और लागत की स्थितियों में परिवर्तन होने पर अप्रत्याशित लाभ कमाती है। इसलिए विशुद्ध एकाधिकारी लाभ निकालने के लिए ऐसे लाभों को फर्म के कुल शुद्ध लाभों में से निकाल देना चाहिए।

4 रोथ्सचाइल्ड का माप (Rothschild's Measure)

रोथ्सचाइल्ड एकाधिकार शक्ति की कोटि को एक फर्म के माग वक्र की ढलान का उद्योग के माँग वक्र की ढलान के साथ अनुपात से मापता है। चित्र 25 15 में dd एक फर्म का माग वक्र है जो उद्योग के मांग वक्र DD से लोचदार है। इस प्रकार

$$DMP = \frac{\text{Slope of } dd}{\text{Slope of } DD} = \frac{KL / KR}{KN / KR} = \frac{KL}{KN}$$

क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता मे एक फर्म का माग वक्र क्षैतिज (horizontal) होता है, इसलिए रोथसचाइल्ड का सूचकांक शून्य के बराबर होता है। शुद्ध एकाधिकार मे फर्म और उद्योग मे कोई अन्तर न होने से यह सूचकांक एक के बराबर होता है। इसलिए एकाधिकार शक्ति की कोटि शून्य और एक के बीच रहती है।

इसकी कमिया (Its Weaknesses)—रोथसचाइल्ड का माप अन्य मापो की तुलना मे अधिक है।

1 उत्पादन की सबद्ध रेंज के लिए माग वक्र की सही आकृति का अनुमान लगाना सभव नहीं है।

2 यह सूचकांक अपेक्षा रखता है कि सभी प्रतियोगी अपनी कीमतो को स्थिर रखते है या वे अपनी कीमतो का पुन समायोजन करते हैं ताकि उन्हें एकाधिकारी द्वारा ली जा रही कीमत के बराबर रखा जा सके।

3 यह माप केवल माग से सबधित घटकों पर आधारित है और पूर्ति एव लागत स्थितियो की उपेक्षा करता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि एकाधिकार शक्ति का कोई एक विश्वसनीय और सही माप नहीं है। जिनका पहले वर्णन हो चुका है उन घटकों के अतिरिक्त, एकाधिकार शक्ति विक्रेता की मार्किट का आकार, प्रतिद्वद्वी फर्मों की सख्या और उनके मे विभेद पर निर्भर करती है। परन्तु चैम्बरलेन का यह मत है कि एकाधिकार शक्ति की सापेक्ष शक्ति मापी नहीं जा सकती है क्योंकि यह एक व्यक्ति के स्वास्थ्य की स्थिति को मापने के समान है। इन कठिनाइयों के बावजूद एकाधिकार सूचक के रूप मे एकाधिकार लाभ अन्य मापो की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक और वास्तविक है।

9 एकाधिकार का नियत्रण और नियमन
(CONTROL AND REGULATION OF MONOPOLY)

एकाधिकार का नियत्रण और नियमन करने की तीन विधिया है। प्रथम, सरकार एकाधिकार के विरुद्ध कानून और प्रतिबधक व्यापार प्रणाली कानून अपना सकती है। द्वितीय, सरकार प्रत्यक्ष तौर से प्राकृतिक एकाधिकार स्वय चला सकती है या कीमत सीमाए लगाकर एकाधिकारी का नियमन कर सकती है। तृतीय, करारोपण द्वारा सरकार एकाधिकारी का नियमन कर सकती है।

इनके अलावा कुछ भय होते है जो एकाधिकारी को बहुत ऊची कीमत लेने से रोकते है। इन तत्त्वों का हम विस्तार से विवेचन करते है।

(1) सभावित प्रतिद्वद्वियों का भय (Fear of potential rivals)—सभावित प्रतिद्वद्वियो का भय एकाधिकारी को अपने ग्राहकों से बहुत ऊँची कीमत वसूल करने से रोक सकता है। यदि वह बहुत ऊँची कीमत निश्चित करता है, तो वह सामान्य से बहुत अधिक कमाएगा। इन एकाधिकारी लाभो से आकर्षित होकर नई फर्में एकाधिकृत उद्योग मे बलपूर्वक घुस जाएगी। एकाधिकारी नहीं चाहता कि नई फर्में आएँ, इसलिए वह उचित कीमत वसूल करेगा और इस प्रकार सामान्य लाभ कमाएगा।

(2) सरकारी नियमन का भय (Fear of government regulation)—यही बात सरकार के सभावित नियमन पर लागू होती है। एकाधिकारी अच्छी तरह जानता है कि सामान्य से बहुत अधिक कीमते या लाभ वसूल करने पर सरकार का ध्यान आकर्षित हो जाएगा। सरकारी नियमन का खतरा मोल लेने की बजाय वह अपने आप नीची कीमत निश्चित करेगा और कम एकाधिकारी लाभ कमाएगा।

(3) राष्ट्रीयकरण का भय (Fear of nationalisation)—राष्ट्रीयकरण का भय भी एकाधिकारी को परम एकाधिकार शक्ति का प्रयोग करने से रोकता है। यदि वह वस्तु या सेवा जिसका एकाधिकारी उत्पादन करता है, सार्वजनिक उपयोगी सेवा है तो डर सभावना है कि सार्वजनिक

हितों को ध्यान में रखते हुए राज्य उस एकाधिकारी संगठन को अपने हाथ में ले सकता। इस दिशा में एकाधिकारी बहुत ऊँची कीमत वसूल करने से रुक जाएगा।

(4) जनता की प्रतिक्रिया का भय (Fear of public reaction)—एकाधिकारी इस बात से भी सावधान होता है कि यदि वह बहुत ऊँची कीमत वसूल करेगा और बहुत अधिक लाभ कमाएगा तो जनता से उसकी प्रतिक्रिया होगी। संसद में उस एकाधिकारी फर्म के विरुद्ध आवाज उठाई जा सकती है और एकाधिकार के विरुद्ध कानून बनाने के लिए दबाव डाला जा सकता है।

(5) बहिष्कार का भय (Fear of boycott)—यह भी हो सकता है कि लोग एकाधिकृत वस्तु या सेवा का बहिष्कार कर दें और उसके स्थान पर अपनी सेवाएँ आरम्भ कर लें। उदाहरण के लिए, यदि किसी बड़े शहर में टैक्सी चलाने वाले मिलकर अधिक दरें वसूल करना शुरू कर दें तो लोग टैक्सी सेवा का बहिष्कार कर सकते हैं और हो सकता है कि सहकारी संस्था बनाकर अपनी टैक्सी सेवाएँ चालू कर दें। स्वाभाविक है कि ऐसे भय एकाधिकारी फर्मों को उचित कीमत वसूल करने और साधारण लाभ कमाने पर मजबूर करते हैं।

(6) स्थानापन्नों का भय (Fear of substitutes)—किन्तु स्थानापन्नों का भी भय होता है। वास्तव में स्थानापन्नों का भय ही सबसे अधिक शक्तिशाली साधन है, जो एकाधिकारी फर्मों को बहुत अधिक कीमत वसूल करने और सामान्य से बहुत अधिक लाभ कमाने से रोकता है। केवल विशुद्ध एकाधिकार के अन्तर्गत ही ऐसा माना है कि वस्तु का बिल्कुल कोई स्थानापन्न नहीं होता। क्योंकि विशुद्ध प्रतियोगिता की तरह विशुद्ध एकाधिकार भी अवास्तविक होता है, इसलिए एकाधिकार वस्तु का स्थानापन्न तो होता है, चाहे वह निकट स्थानापन्न न हो। परन्तु बहुत निकट स्थानापन्नों के निकल आने का भय एकाधिकारी के मन में सदैव उपर होता है, जो उसकी दमन शक्ति पर अंकुश का काम करता है।

(7) माँग की लोचों का अन्तर (Difference in elasticities of demand)—एकाधिकारी वस्तु की अल्पकालीन और दीर्घकालीन माँग की लोचों का अन्तर भी एकाधिकार शक्ति को सीमित करता है। अल्पकाल में, एकाधिकारी बहुत ऊँची कीमत वसूल कर सकता है क्योंकि ग्राहक अपनी आदतों, रुचियों और आय को किसी और स्थानापन्न से समायोजित करने में कुछ समय लेंगे। इसलिए अल्पकाल में, एकाधिकार वस्तु की माँग कम लोचदार होती है। परन्तु दीर्घकाल में सार्वजनिक मत, नए स्थानापन्नों के उत्पन्न होने का भय, सरकार द्वारा नियंत्रण इत्यादि का भय एकाधिकारी को नीची कीमत निश्चित करने पर विवश करेगा। वह अपने माँग वक्र को लोचदार बनायेगा और कम कीमत पर अधिक मात्रा बेचेगा।

कानून द्वारा एकाधिकार का नियंत्रण (Control of Monopoly through Legislation)

सरकार एकाधिकार को एकाधिकार-विरुद्ध कानून और प्रतिबंधक व्यापार प्रणाली कानून द्वारा नियंत्रित करने का प्रयत्न करती है। ये उपाय इन दिशाओं में निम्न कार्य करते हैं - (i) प्रतिबंधक व्यापार प्रणालियों को हटाना और ऊँची कीमतें निश्चित करना, (ii) मार्किट बाँट समझौतों के भय को कम करना, (iii) अनुचित प्रतियोगिता को समाप्त करना, (iv) एकाधिकारी द्वारा मार्किट के बहुत बड़े हिस्से के नियंत्रण को रोकना, (v) अनुचित कीमत विभेद को रोकना, (vi) एकाधिकारी द्वारा मार्किट प्रभुत्व से बचने के लिए विलयों (mergers) को रोकना, और (vii) अन्य व्यापारियों को हानि से बचाने के लिए उत्पादक और परचून विक्रेता के बीच एकमात्र समझौतों को रोकना।

कीमत नियमन और कराधान द्वारा एकाधिकार का नियंत्रण (Control of Monopoly Through Price Regulation and Taxation)

अब हम दो स्थितियों को लेते हैं, जहाँ सरकार यह महसूस करती है कि एकाधिकारी बहुत

अधिक कीमत वसूल कर रहा है और वह कीमत नियमन एव कराधान द्वारा उसे नीचे लाने का यत्न करती है।

(1) नियमित एकाधिकार कीमत निर्धारण (Regulated Monopoly Pricing)

एकाधिकार का नियमन करने के लिए सरकार कीमत सीमा लगाती है ताकि एकाधिकार कीमत प्रतियोगी कीमत के बराबर या निकट हो। ऐसा सरकार एक नियमन करने वाला प्राधिकारी अथवा आयोग नियुक्त करती है, जो एकाधिकार वस्तु के लिए एकाधिकार कीमत से कम कीमत निश्चित करता है, जिससे उपभोक्ता के लिए कम कीमत और वस्तु की अधिक मात्रा होती है। इसे चित्र 25 16 में दर्शाया गया है। एकाधिकार के नियमन से पहले, एकाधिकारी MP (= OA) कीमत पर OM उत्पादन बेचकर PA × OM लाभ कमाता है। मान लीजिए कि राज्य आयोग प्रतियोगी स्तर पर QK (= OB) अधिकतम कीमत निश्चित करता है। अब एकाधिकारी का नया माग वक्र BKD बन जाता है और इसके अनुरूप MR वक्र BKHMR बनता है। इस प्रकार, एकाधिकारी पूर्ण प्रतियोगी उत्पादक की तरह व्यवहार करता है। वह इस कीमत (QK) पर OQ वस्तु उत्पादन और विक्रय करता है क्योंकि उसका सतुलन बिन्दु K है जहाँ MC वक्र उसके MR वक्र BKHMR को नीचे से काटता है। कीमत नियमन के परिणामस्वरूप, एकाधिकारी अपने उत्पादन को OM से बढ़ाकर OQ कर देता है। फिर भी वह सामान्य से अधिक लाभ KG × OQ कमाता है, जो अनियमित कीमत MP पर PA × OM लाभ जो वह अर्जित करता था उससे कम है।
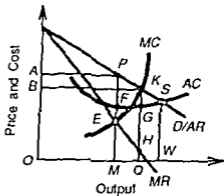
चित्र 25 16

यदि राज्य आयोग AC के बराबर कीमत WS निश्चित करता है जहा AC वक्र D/AR वक्र को S बिन्दु पर काटता है, तो एकाधिकारी मार्किट में उत्पादन की अधिक मात्रा OW विक्रय के लिए रखेगा। इस स्तर पर, वह केवल सामान्य लाभ कमाएगा क्योंकि वस्तु की कीमत औसत लागत के बराबर है। ऐसी स्थिति में, एकाधिकारी उतने समय तक उत्पादन करता रहेगा जब तक वह अपने पूँजी निवेश पर उचित प्रतिफल प्राप्त करता है। परन्तु आयोग उसको OW से अधिक उत्पादन बढ़ाने पर बाध्य नहीं कर सकता, क्योंकि एकाधिकारी हानि के अन्तर्गत उत्पादन नहीं करेगा।

(2) कराधान (Taxation)

एकाधिकार-शक्ति को नियन्त्रित करने का एक और तरीका कराधान है। एकाधिकारी के उत्पादन का ध्यान रखे बिना कर एकमुश्त भी लगाया जा सकता है। या वह उत्पादन के अनुपात में भी हो सकता है, उत्पादन की मात्रा में वृद्धि के साथ कर की मात्रा भी बढ़ जाए।

एकमुश्त कर (Lumpsum Tax)—एकमुश्त कर लगा कर सरकार एकाधिकार लाभों को वस्तु का उत्पादन अथवा कीमत प्रभावित किए बिना कम या समाप्त भी कर सकती है। एकाधिकार फर्म पर लगाए गए एकमुश्त राशि कर को चित्र 25 17 में दिखाया गया है, जहाँ कर लगने से पहले AC तथा MC औसत लागत तथा सीमान्त लागत वक्र है। एकाधिकारी MP कीमत पर

चित्र 25 17
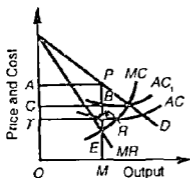
OM उत्पादन बेचकर सामान्य से बहुत अधिक लाभ APRT कमाता है। वास्तव में एकमुश्त कर का लगाया जाना एकाधिकारी फर्म के लिए एक स्थिर लागत है क्योंकि इसका उत्पादन की मात्रा से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए इससे कर की मात्रा TC के बराबर औसत लागत बढ जाती है और AC वक्र ऊपर को सरक कर AC_1 बन जाता है परन्तु सीमान्त लागत पर कोई प्रभाव नहीं पडता। इस प्रकार एकमुश्त कर लगने का प्रभाव यह होता है कि एकाधिकार लाभ APRT से घटकर APBC हो जाता है। कर का सारा बोझ एकाधिकारी को स्वय उठाना पडेगा। वह किसी भी स्टेज पर इसके किसी भी भाग को कीमत बढाकर और उत्पादन को घटाकर अपने ग्राहकों पर नहीं डाल सकेगा। क्योंकि कर लगने से एकाधिकारी के सीमान्त लागत वक्र और सीमान्त आगम वक्र पर कोई प्रभाव नहीं पडता, इसलिए वर्तमान कीमत उत्पादन सयोग मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन करने से केवल हानि ही होगी।

विशिष्ट कर (Specific Tax)—सरकार एकाधिकारी की वस्तु पर एक विशिष्ट या प्रति इकाई कर लगाकर भी एकाधिकार लाभों को कम कर सकती है।

एकाधिकारी उत्पादन की प्रति इकाई पर कर लगाने का प्रभाव यह होता है कि औसत और सीमान्त लागत वक्र दोनों ही, कर की मात्रा के बराबर, ऊपर को सरक जाते है। चित्र 25 18 इस स्थिति को प्रकट करता है। कर लगने से पहले एकाधिकारी फर्म के औसत लागत और सीमान्त लागत वक्र AC और MC हैं। फर्म MP कीमत पर वस्तु की OM मात्रा बेचकर BPGK लाभ कमाती है। मान लीजिए कि सरकार एक निश्चित कर लगा देती है जो फर्म के लिए परिवर्तनशील लागत होने के कारण लागत वक्रो को ऊपर की ओर AC_1 तथा MC_1 पर ले जाता है। एकाधिकारी का नया सतुलन बिन्दु E_1 है जहाँ MC_1 वक्र MR वक्र को काटता है। नई कीमत M_1P_1 > MP (पुरानी कीमत) और उत्पादन OM_1 < OM (मूल उत्पादन)। इस स्थिति में, एकाधिकारी कर भार के कुछ भाग को वस्तु की ऊँची कीमत और थोडे उत्पादन के रूप में उपभोक्ताओं पर शिफ्ट कर देता है। क्योंकि कर के कुछ भाग का बोझ एकाधिकारी पर भी पडता है, इसलिए उसका लाभ BPGK से कम होकर RP_1CF हो जाता है। इस प्रकार का कर एकाधिकार वस्तु की कीमत

चित्र 25 18

चित्र 25 19

परन्तु एकाधिकार मे सतुलन ऊपर उठते, नीचे गिरते या समानान्तर अवस्था मे MC वक्र द्वारा MR वक्र को नीचे से काटने पर स्थापित होता है। ऐसा MR वक्र की बाएँ से दाएँ नीचे की ओर ढलान के कारण है जिसे ऊपर उठता, नीचे गिरता या समानान्तर MC वक्र हर स्थिति मे नीचे से काट सकता है। इन तीनो अवस्थाओ को चित्रो द्वारा व्यक्त किया गया है। चित्र 25 20 (A) बढती हुई लागतो मे एकाधिकार सतुलन को दर्शाता है, जहाँ ऊपर उठता हुआ MC वक्र MR को *E* बिन्दु पर काटता है। चित्र 25 20 (B) मे नीचे की ओर ढालू MC वक्र MR वक्र को *E* बिन्दु पर उसके नीचे से काटता है जबकि चित्र 25 20 (C) मे समानान्तर MC (= AC) वक्र MR को फिर नीचे से *E* बिन्दु पर काटता है। तीनों अवस्थाओ मे *QP* कीमत निर्धारित होती है जिस पर *OQ* वस्तु की मात्रा बेची जाती है। परन्तु हर अवस्था मे उत्पादन *OQ* एक-दूसरे से भिन्न है। इसी प्रकार लाभो *PABC* मे भी भिन्नता पाई जाती है।
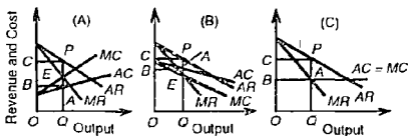
चित्र 25 20

(5) पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार मे एक और अन्तर यह पाया जाता है कि दीर्घकाल मे एक प्रतियोगी फर्म केवल सामान्य लाभ ही कमाती है। जबकि एक एकाधिकारी फर्म सामान्य से अधिक लाभ कमाती है। अल्पकाल मे तो प्रतियोगी फर्म सामान्य से अधिक लाभ कमा सकती है, देखिए चित्र 25 19 परन्तु दीर्घकाल मे ऐसा सम्भव नहीं होता क्योकि सामान्य से अधिक लाभ से आकर्षित होकर नई फर्मे उद्योग मे प्रवेश कर जाती है और इस प्रकार प्रतिस्पर्धा के कारण असामान्य लाभ समाप्त हो जाते है, देखिए चित्र 25 21 (A)। इसके विपरीत एकाधिकार मे यदि फर्म अल्पकाल मे हानि की स्थिति मे होती है तो भी दीर्घकाल मे वह सामान्य से अधिक लाभ कमाएगी, क्योकि एकाधिकार मे नई फर्मे उद्योग मे प्रवेश नहीं कर सकतीं। चित्र 25 21 (B) में
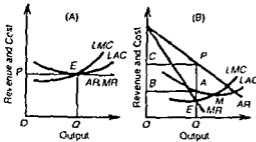
चित्र 25 21

एकाधिकार फर्म दीर्घकाल में *PABC* सामान्य से अधिक लाभ कमा रही है।

(6) दोनों बाजार अवस्थाओं में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर फर्मों के आकार से सम्बन्धित है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल सतुलन मे कीमत दीर्घकालीन सीमान्त लागत तथा न्यूनतम दीर्घकाल औसत लागत के बराबर होती है (Price AR = MR = *LMC* = *LAC* at its minimum)। जिसका अभिप्राय यह है कि दीर्घकालीन मे पूर्ण प्रतियोगी फर्में इष्टतम आकार की होती हैं और वे अपनी पूर्ण क्षमता तक उत्पादन करती हैं। जबकि एकाधिकारी फर्में दीर्घकाल मे इष्टतम से कम आकार की होती है क्योंकि इसमे उत्पादन दीर्घकालीन सीमान्त लागत और सीमान्त आगम की समानता (*LMC* = MR) तक तो होता है परन्तु उस स्तर पर *LAC* वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु पर नहीं होती। इन दोनों अवस्थाओ को चित्र 25 21 (A) एव (B) द्वारा व्यक्त किया गया है। चित्र 25 21 (A) मे पूर्ण प्रतियोगी सतुलन अवस्था दिखाई गई है, जहाँ *LMC* = MR = AR = *LAC* अपने न्यूनतम बिन्दु *E* पर। फर्म इष्टतम आकार की है। चित्र 25 21 (B) एकाधिकारी फर्म के सतुलन को दर्शाता है। इसमे फर्म *E* बिन्दु पर सतुलन मे है परन्तु यहाँ कीमत *OP* न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत के बराबर नहीं। *LAC* का न्यूनतम बिन्दु *M*, सतुलन बिन्दु *E* के दाईं ओर है। इसका अभिप्राय यह है कि एकाधिकार फर्म मे अतिरिक्त क्षमता *E* से *M* तक है और यह अपनी पूर्ण क्षमता तक उत्पादन नहीं कर रही है।

(7) दोनों बाजार अवस्थाओ मे कीमत विभेद का भी अन्तर होता है। एकाधिकारी तो अपने ग्राहकों से एक ही वस्तु के लिए भिन्न-भिन्न कीमते ले सकता है क्योंकि एक तो उसका कोई भी प्रतियोगी नहीं होता और दूसरे जब वह यह अनुभव करता है कि उसकी वस्तु की माँग की लोच विभिन्न मार्किटो मे भिन्न होती है। परन्तु कोई भी प्रतियोगी उत्पादक कीमत विभेद नहीं कर सकता क्योंकि उसकी वस्तु का माँग वक्र पूर्ण लोचदार होता है। इसलिए कि यदि वह अपने कुछ ग्राहकों से अधिक कीमत लेने का प्रयत्न करता है तो उसके वही ग्राहक किसी और विक्रेता से बाजार कीमत पर वस्तु खरीद लेंगे। अत एकाधिकार मे तो कीमत विभेद सम्भव है जबकि पूर्ण प्रतियोगिता मे यह सम्भव नहीं।

(8) **क्या एकाधिकार कीमत प्रतियोगिता कीमत से अधिक ऊँची होती है?** सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से एकाधिकार कीमत पूर्ण प्रतियोगिता कीमत से अधिक होती है और उत्पादन की मात्रा पूर्ण प्रतियोगिता से कम। इसका कारण यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता मे माँग और पूर्ति की शक्तियो से कीमत निर्धारण उद्योग द्वारा होता है। एक फर्म का माँग वक्र पूर्णतया लोचदार होता है जिसके अनुसार एक उत्पादक तब तक उत्पादन करता जाता है जब तक कि उसकी सीमान्त लागत (MC) उद्योग द्वारा निश्चित कीमत AR और MR के बराबर नहीं हो जाती। परन्तु एक एकाधिकारी का माँग वक्र (AR) सापेक्षतया कम लोचदार होता है जिसकी ढलान नीचे दाईं ओर होती है और सीमान्त आगम वक्र (MR) इससे नीचे स्थित होता है। इसलिए MC वक्र एव MR वक्र के बीच सतुलन उत्पादन के नीचे स्तर पर हो जाता है। इस प्रकार एकाधिकार में प्रतियोगिता की अपेक्षा
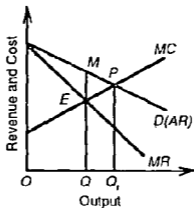
चित्र 25 22

उत्पादन कम होता है परन्तु कीमत अधिक होती है, क्योंकि कीमत (AR) > MR = MC। इसे चित्र 25 22 में व्यक्त किया गया है जहाँ पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का सतुलन माँग वक्र D(AR) तथा पूर्ति वक्र MC के एक दूसरे को काटने से P बिन्दु पर होता है। इस प्रकार Q_1P कीमत पर वस्तु की OQ_1 मात्रा बेची व खरीदी जाती है। यह मानकर कि एकाधिकार एव प्रतियोगिता मे लागत अवस्थाएँ समान हे, हम इन्हीं वक्रो को एकाधिकार के लिए लेते है, जिसके अनुसार जब MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटता है तो एकाधिकार सतुलन E बिन्दु पर होता है। OQ एकाधिकारी का उत्पादन है जो वह QM कीमत पर बेचता है। चित्र से स्पष्ट है कि एकाधिकार कीमत QM पूर्ण प्रतियोगिता कीमत Q_1P से अधिक है परन्तु एकाधिकार उत्पादन OQ पूर्ण प्रतियोगी उत्पादन OQ_1 से कम है।

यदि हम स्थिर लागतो को ले तो यह पूर्ण प्रतियोगी उत्पादन से बिल्कुल आधा होगा। इसको सिद्ध करने के लिए हम एकाधिकार एव प्रतियोगी उद्योग में समान तथा स्थिर लागतो की मान्यता लेते है। चित्र 25 23 मे AR (D) प्रतियोगी उद्योग का माँग वक्र है और AC (= MC) इसका पूर्ति वक्र। दोनों का P बिन्दु पर सतुलन होता है जिससे पूर्ण प्रतियोगिता मे QP (= OA) कीमत पर वस्तु की OQ मात्रा बेची और खरीदी जाती है। इसी चित्र मे एकाधिकारी फर्म का सतुलन E बिन्दु पर होता है, जहाँ MC वक्र MR को नीचे से काटता है और Q_1P_1 (= OB) एकाधिकार कीमत निर्धारित होती है जिस पर

चित्र 25 23
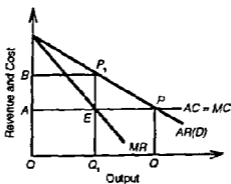
OQ_1 वस्तु की मात्रा बेची जाती है। जैसा कि चित्र से स्पष्ट है, एकाधिकार कीमत Q_1P_1 पूर्ण प्रतियोगिता कीमत QP से अधिक है तथा एकाधिकार उत्पादन OQ_1 पूर्ण प्रतियोगिता उत्पादन OQ से कम है। ध्यान देने योग्य बात यह कि एकाधिकार उत्पादन प्रतियोगिता उत्पादन से बिल्कुल आधा है। माँग और लागतो की इससे भिन्न शर्तें होने पर एकाधिकार उत्पादन प्रतियोगिता उत्पादन के आधे से अधिक या कम भी हो सकता है। परन्तु एकाधिकार कीमत सदैव पूर्ण प्रतियोगिता कीमत से ऊँची ही होगी।

(9) पूर्ण प्रतियोगिता एव एकाधिकार मे अन्तिम अन्तर यह है कि एकाधिकार कीमत के पूर्ण प्रतियोगिता कीमत से अधिक होने के कारण उपभोक्ता की बेशी (consumer's surplus) मे हानि होती है। इसे भी चित्र 25 23 द्वारा समझाया गया है। मान लीजिए कि जब कीमत $QP (= OA)$ होती है तो उपभोक्ता की बचत BP_1PA क्षेत्र है। एकाधिकार की स्थिति मे जब कीमत QP से बढ़कर Q_1P_1 हो जाती है तो उपभोक्ता की बेशी का BP_1EA भाग एकाधिकारी लाभ के रूप मे ले जाता है। क्योंकि अब केवल उपभोक्ता OQ_1 वस्तु की मात्रा ही Q_1P_1 कीमत पर खरीद सकते है तो P_1PE उपभोक्ता की बेशी में शुद्ध हानि है। क्योंकि Q_1Q वस्तु की मात्रा उपभोक्ता नहीं खरीद सकता (यह उसे उपलब्ध ही नहीं होती) इसलिए P_1PE उपभोक्ता के कल्याण मे शुद्ध हानि है।

परन्तु यह आवश्यक नहीं कि एकाधिकार कीमत सदैव ही पूर्ण प्रतियोगिता कीमत से ऊँची हो। यदि एकाधिकारी फर्म बढ़ते प्रतिफल के नियम के अन्तर्गत उत्पादन करती हो तो उसे कई प्रकार की किफायतें प्राप्त होती है जिससे उत्पादन लागत कम हो जाती है। वह कम उत्पादन लागत होने से पहली ऊँची कीमत की अपेक्षा अपनी वस्तु की कीमत कम कर देना अधिक उपयुक्त समझेगा। कीमत कम हो जाने से जब माँग बढ़ेगी तो वह वस्तु की अधिक मात्रा बेचकर पहले से भी अधिक लाभ कमाएगा। ऐसी अवस्था में एकाधिकार कीमत पूर्ण प्रतियोगिता कीमत से कम हो सकती है और उत्पादन अधिक। इसे चित्र 25 24 मे दर्शाया गया है जहा AR (D) प्रतियोगी उद्योग का माग वक्र है और S उसका पूर्ति वक्र। सतुलन E बिन्दु पर होता है जहा दोनो वक्र काटते है। OP कीमत पर OQ मात्रा बेची जाती है। मान लीजिए कि एकाधिकार फर्म का सीमात लागत वक्र भी पूर्ण प्रतियोगिता का पूर्ति वक्र (S) ही था। अब यह फर्म एक नया प्लाट लगाती है जिससे उसे बहुत अधिक उत्पादन की मितव्ययिताए प्राप्त होती है। इसके परिणामस्वरूप, इस फर्म का सीमात लागत वक्र S वक्र के नीचे रहता है। यह नया सीमात वक्र चित्र मे MC है जो MR वक्र को E_1 बिन्दु पर नीचे से काटता है। इस सतुलन बिन्दु पर एकाधिकारी फर्म अधिक उत्पादन OQ_1 कम कीमत OP_1 पर बेचती है, जबकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कम उत्पादन OQ अधिक कीमत OP पर बेचा जाता है।
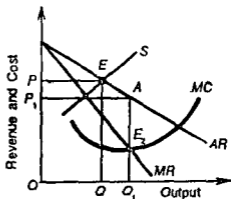
चित्र 25 24

11. एकाधिकार के अन्तर्गत साधन आवटन (RESOURCE ALLOCATION UNDER MONOPOLY)

एक पूर्ण प्रतियोगी फर्म और एक एकाधिकार फर्म के बीच तुलना एकाधिकार के अन्तर्गत साधन आवटन की ओर निर्देश करती है, अर्थात् क्या एकाधिकार से कल्याण में वृद्धि होती है या कमी। वास्तव में, एकाधिकार से साधनों का कुआवटन होता है। इस तथ्य का निरीक्षण करने के लिए हम एकाधिकार और पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत, उत्पादन और लाभों की तुलना करते हैं।

दीर्घकाल में एक पूर्ण प्रतियोगी मार्किट में कीमत = (AR = MR) = *LMC* = *LAC* अपने न्यूनतम बिन्दु पर होती है। इसका मतलब यह है कि दीर्घकाल में उद्योग में प्रतियोगी फर्में केवल सामान्य लाभ कमाती है। वे इष्टतम आकार की होती हैं और अपनी पूर्ण क्षमता तक उत्पादन कर रही होती है। परन्तु एकाधिकार में दीर्घकालीन सतुलन कीमत *LMC* और MR वक्रों के कटाव बिन्दु से ऊंची होती है, अर्थात, $P > LMC = MR$ फिर, *LAC* वक्र का न्यूनतम बिन्दु *LMC* और MR वक्रों के सतुलन बिन्दु के दाईं ओर होता है। इससे यह मालूम होता है कि एकाधिकार फर्म इष्टतम से कम आकार की होती है, अपनी पूर्ण क्षमता तक उत्पादन नहीं करती है और असामान्य लाभ कमाती है। ये दोनो स्थितिया चित्र 25 21 (A) और (B) में दर्शायी गई है।[8] क्योंकि एकाधिकारी फर्म में अतिरिक्त क्षमता पाई जाती है, इसलिए एकाधिकारी फर्म के साधनों का अल्प-आवटन होता है और अर्थव्यवस्था के साधनों का कुआवटन।

परन्तु इन तुलनाओं को निश्चित बनाने हेतु, हम यह मान्यता लेते है कि एकाधिकार फर्म और पूर्ण प्रतियोगी उद्योग दोनों के लागत वक्र और आगम वक्र समान है। चित्र 25 22 लीजिए जहा *D/AR* पूर्ण प्रतियोगी उद्योग का माग वक्र है और *MC* इसका पूर्ति वक्र है। दोनों एक दूसरे को बिन्दु *P* पर काटते है, तथा Q_1P कीमत पर OQ_1 मात्रा बेची जाती है। एकाधिकार फर्म का सतुलन *E* बिन्दु पर होता है जहा MR वक्र को MC वक्र नीचे से काटता है। एकाधिकारी *QM* कीमत पर *OQ* वस्तु की मात्रा का उत्पादन और विक्रय करता है। चित्र यह दर्शाता है कि एकाधिकार कीमत *QM* प्रतियोगी कीमत Q_1P से अधिक है और एकाधिकार उत्पादन *OQ* प्रतियोगी उत्पादन OQ_1 से कम है। इस प्रकार, एकाधिकार के अन्तर्गत उपभोक्ताओं की स्थिति खराब होती है, क्योंकि उन्हें पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में जहा कम कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा उपलब्ध होती है, एकाधिकार में उन्हें कम मात्रा के लिए ऊंची कीमत देनी पड़ती है, जो उपभोक्ताओं के कल्याण में कमी है।

यह भी दिखाया जा सकता है कि एकाधिकार के अन्तर्गत पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में एक साधन आगत का कम उपयोग होता है। एक पूर्ण प्रतियोगी साधन मार्किट में, एक साधन आगत, जैसे श्रम, की कीमत दी होती है। एक पूर्ण प्रतियोगी मार्किट में एक फर्म के लिए श्रम का माग वक्र *VMP* होता है। एकाधिकारी के लिए श्रम का माग वक्र *MRP* होता है। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगी और एकाधिकारी दोनों के माग वक्र घटते भौतिक सीमात प्रतिफलों (diminishing physical marginal returns) के कारण नीचे की ओर ढालू होते हैं। फिर, एकाधिकारी का *MRP* वक्र पूर्ण प्रतियोगी के *VMP* वक्र के नीचे होता है, क्योंकि *MR* वक्र सदैव एकाधिकारी की कीमत से नीचे होता है . $P(AR) > MR$। चित्र 25 25, मजदूरी दर दी होने पर, एकाधिकार के अन्तर्गत एक साधन आगत श्रम के अल्प-उपयोग की व्याख्या करता है। एकाधिकारी फर्म *E* बिन्दु पर सतुलन में है, जहा *MRP* वक्र मजदूरी दर WW_1 के बराबर है। फर्म *OL* श्रमिक नियुक्त करती है। परन्तु एक पूर्ण प्रतियोगी फर्म OL_1 श्रमिकों को काम पर लगाती है, जब *E* बिन्दु पर इसका *VMP* वक्र

8 इन चित्रों (25 21, 25 22 और 25 23) को यथा स्थान खींचें और उनके वर्णन करें, जैसाकि ऊपर के खण्ड में दिखाया गया है।

मजदूरी दर के बराबर होता है। इस प्रकार, एकाधिकारी फर्म साधन आगत श्रम की LL_1 कम इकाइयां नियुक्त करती है। इसका मतलब है कि घटते भौतिक सीमांत प्रतिफलों की मान्यता दी होने पर, एकाधिकार के अन्तर्गत उत्पादकीय साधनों का अल्प-उपयोग होता है।

चित्र 25 25

फिर, एकाधिकार उपभोक्ता के कल्याण को कम करता है। ऐसा इसलिए कि पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में एकाधिकार में कीमत अधिक और उत्पादन कम होता है। उपभोक्ता के कल्याण में कमी को *उपभोक्ता की बेशी के रूप में चित्र 25 23* द्वारा दिखाया गया है। मान लीजिए कि *उपभोक्ता OQ_1 वस्तु की मात्रा के लिए OB कीमत देने को तैयार है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत* वह कम कीमत OA पर अधिक मात्रा OQ प्राप्त करता है। इस प्रकार, वह BP_1PA क्षेत्र के बराबर उपभोक्ता की बेशी प्राप्त करता है। अब मान लीजिए कि इस वस्तु के उत्पादन के लिए एकाधिकार स्थापित हो जाता है। परिणामस्वरूप, एकाधिकारी ऊंची कीमत OB निश्चित करता है, कम मात्रा OQ_1 बेचता है और BP_1EA क्षेत्र लाभों के रूप में ले जाता है। क्योंकि उपभोक्ता ऊंची कीमत OB ($=Q_1P_1$) पर वस्तु की केवल OQ_1 मात्रा खरीद सकता है और वस्तु की QQ_1 मात्रा उसे उपलब्ध नहीं है, इसलिए त्रिकोण P_1PE उसके कल्याण में शुद्ध हानि है $BP_1PA\text{-}BP_1EA = P_1PE$ यह उपभोक्ता की बेशी में शुद्ध हानि है।

ऊपर के विवेचन से निष्कर्ष यह है कि एकाधिकार में साधनों का कुआवंटन और अल्प-उपयोग तथा उपभोक्ता के कल्याण में कमी होती है।

प्रश्न

1 एक एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत कैसे निश्चित करता है? क्या यह आवश्यक है कि एकाधिकार कीमत प्रतियोगी कीमत से सदैव ऊंची हो?

2 एकाधिकार में विभेदात्मक कीमत निर्धारण समझाइए। क्या विभेदात्मक कीमत निर्धारण आर्थिक दृष्टिकोण से न्यायोचित है?

3 एकाधिकार में कीमत विभेद के लिए कौन-सी शर्तों का पाया जाना आवश्यक है? किन अवस्थाओं में कीमत विभेद लाभदायक हो सकता है परन्तु लाभदायक नहीं?

4 पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार में अन्तर बतलाइए। एकाधिकार में साधन आवंटन कैसा होता है?

5 एकाधिकार शक्ति से क्या अभिप्राय है? एकाधिकार शक्ति को कैसे नियमन और नियंत्रित किया जा सकता है?

6 एकाधिकार शक्ति क्या है और उसे कैसे मापा जाता है? लर्नर की विधि की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
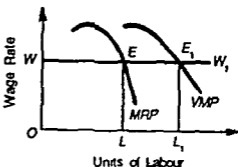
अध्याय 26

एकक्रेताधिकार तथा द्विपक्षीय एकाधिकार
(MONOPSONY AND BILATERAL MONOPOLY)

1. एकक्रेताधिकार कीमत निर्धारण
(MONOPSONY PRICING)

एकक्रेताधिकार बाज़ार उस स्थिति को निर्दिष्ट करता है जिसमे किसी वस्तु या सेवा का कोई एक ही क्रेता हो। यह उस स्थिति पर लागू होता है, जहाँ वस्तु के खरीदने मे एकाधिकार का तत्त्व हो। उदाहरणार्थ, जहाँ किसी वस्तु के उपभोक्ता सगठित होते है अथवा जहाँ कोई समाजवादी सरकार आयातो को नियमित करती है, अथवा जहाँ कोई व्यक्ति सयोगवश किसी ऐसी वस्तु मे रुचि रखता है जिसकी किसी और को ज़रूरत नहीं,[1] अथवा जहाँ किसी अलग-थलग इलाके मे कोई अकेली बडी फैक्ट्री श्रेणीकृत श्रम की एकमात्र खरीदार हो, वहाँ एकक्रेताधिकार होता है। प्रोफेसर लाईभास्की (*Liebhafsky*) के शब्दो मे एकक्रेताधिकार की औपचारिक परिभाषा यो दी जा सकती है कि "एकक्रेताधिकार उस एकमात्र क्रेता की स्थिति है जो उस उत्पाद के लिए अन्य क्रेताओ से प्रतियोगिता नहीं रखता जिसे वह खरीदना चाहता है, और कि यह ऐसी स्थिति है जिसमे अन्य क्रेताओ का बाज़ार मे प्रवेश असंभव है।"

एकक्रेताधिकार कीमत-निर्धारण का विश्लेषण उस विश्लेषण से मिलता-जुलता है जो कि एकाधिकार कीमत-निर्धारण का है। जिस प्रकार वस्तु के विक्रय के लिए दी जाने वाली राशि द्वारा एकाधिकारी उस वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है, ठीक उसी प्रकार एकक्रेताधिकारी अपनी खरीदारी की पूर्ति कीमत को क्रय की मात्रा से प्रभावित कर सकता है। फिर, एकाधिकारी का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना है, जबकि एकक्रेताधिकारी का उद्देश्य अधिकतम अधिशेष उपलब्ध करना है। एकाधिकारी अधिकतम लाभ उठाने के लिए अपनी सीमान्त लागत को अपनी सीमान्त आय के बराबर रखता है। एकक्रेताधिकारी अपने क्रयो को ऐसे ढग से नियमित करता है कि उनकी सीमान्त लागत उनकी उपयोगिता के बराबर रहे, जिससे उसका उपभोक्ता-अधिशेष[2] अधिकतम हो जाता है।

एक क्रेताधिकार के अन्तर्गत कीमत-निर्धारण की व्याख्या चित्र 26.1 मे की गई है। उद्योग का पूर्ति वक्र ही एकक्रेताधिकारी का औसत लागत वक्र है। वह उद्योग से ही वस्तु खरीदता है। चित्र मे यह वक्र *AC/S* द्वारा दिखाया गया है। MC इसका तदनुरूप सीमान्त लागत वक्र है। MU

1 Joan Robinson, *op cit*, p 218

2 क्योंकि एकक्रेताधिकारी क्रय करने वाला है, इसलिए उसका अधिशेष उपभोक्ता बेशी (consumer's surplus) है।

एकक्रेताधिकारी का सीमान्त उपयोगिता वक्र है। एकक्रेताधिकारी का सतुलन E पर स्थापित होता है जहाँ एकक्रेताधिकारी के लिए वस्तु की सीमान्त उपयोगिता उसकी सीमान्त लागत के बराबर है। वह MB कीमत पर OM मात्रा खरीदता है जो उस उत्पादन की पूर्ति कीमत है। एकक्रेताधिकारी को प्राप्त अधिशेष क्षेत्र $DEBA$ है जो कि जितना भुगतान ($ODEM$) वह करने को तैयार है और जितना भुगतान ($OAMB$) वह वास्तव मे करता है, दोनो का अन्तर है $DEBA = ODEM - OABM$।
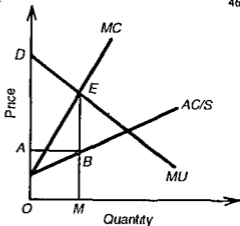
चित्र 26 1

2. एकक्रेनाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना (COMPARISON BETWEEN MONOPSONY AND PERFECT COMPETITION)

उसी सरल रेखा सीमान्त उपयोगिता (माग) वक्र तथा औसत लागत (पूर्ति) वक्र के दिए हुए होने पर, एकक्रेताधिकार के अन्तर्गत क्रय की गई वस्तु तथा पूर्ण प्रतियोगी खरीद के अन्तर्गत क्रय की गई वस्तु की कीमनो तथा मात्राओं की तुलना निम्नलिखित ढग से की जा सकती है।

(क) यदि पूर्ति कीमत स्थिर रहे, तो औसत तथा सीमान्त लागत वक बराबर होगे जेसे कि चित्र 26 2 मे दिखाया गया है। अत एकक्रेताधिकार के अन्तर्गत ME कीमत पर क्रय की गई वस्तु की OM मात्रा पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत क्रय की गई मात्रा के बराबर होगी क्योकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के क्षैतिज AR = MR वक्रो को MC वक्र E बिन्दु पर नीचे से काटेगा।*

(ख) बढ़ती पूर्ति कीमत के अन्तर्गत जब कि औसत तथा सीमान्त लागत वक्र ऊपर की ओर ढालू होते है, पूर्ण प्रतियोगी क्रेता की अपेक्षा एकक्रेताधिकारी कम कीमत का भुगतान करेगा और प्रतियोगी मात्रा के आगे से कुछ अधिक मात्रा का क्रय करेगा। इसे चित्र 26 3 मे दिखाया गया है। AC/S पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग का पूर्ति वक्र है और MU/D उसका माग वक्र
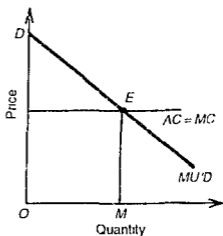
चित्र 26 2

*देखिए अध्याय 22 में चित्र 22 । (B)

है। दोनों के बीच सतुलन बिन्दु P पर स्थापित होता है जहा QP कीमत पर OQ मात्रा क्रय की जाती है। एकक्रेताधिकार मे सतुलन E बिन्दु पर स्थापित होता है, और एकक्रेताधिकारी की कीमत MB पूर्ण प्रतियोगी कीमत QP से कम है और उसकी OM मात्रा पूर्ण प्रतियोगी उत्पादन OQ के आधे से कुछ अधिक है।

(ग) चित्र 26.4 मे घटती कीमत पूर्ति की स्थिति दिखाई गई है जहाँ औसत तथा सीमान्त लागत वक्र नीचे की ओर ढालू है। यहाँ पूर्ण प्रतियोगी खरीद की तुलना मे एक एकक्रेता- धिकारी कम कीमत पर अधिक क्रय करता है। MB एकक्रय कीमत है जो कि पूर्ण प्रतियोगी कीमत PQ से कम है, परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता खरीदी गई मात्रा OQ की अपेक्षा एकक्रेताधिकारी की खरीदी गई मात्रा OM अधिक है।

(घ) यदि माँग वक्र पूर्ण लोचदार हो जैसा कि चित्र 26.5 मे है, तो एकक्रेताधिकार कीमत, पूर्ण प्रतियोगी कीमत की ठीक आधी के बराबर होगी, $MB = \frac{1}{2}\ QP$। एकक्रेताधिकारी पूर्ण प्रतियोगी उत्पादन के ठीक आधे के बराबर क्रय करेगा, $OM = \frac{1}{2} OQ$।
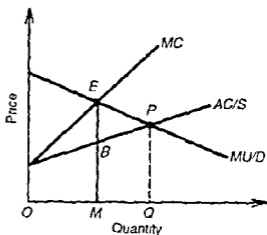
चित्र 26.3
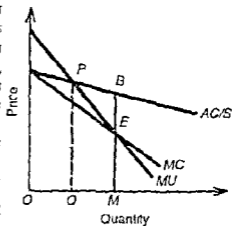
चित्र 26.4

3 द्विपक्षीय एकाधिकार (BILATERAL MONOPOLY)

द्विपक्षीय एकाधिकार एक ऐसी मार्किट स्थिति है जिसमे एक अकेला उत्पादक (एकाधिकारी) उस वस्तु के अकेले खरीदार (एकक्रेताधिकारी) का सामना करता है। हम नीचे द्विपक्षीय एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत-उत्पादन और लाभ निर्धारण का विश्लेषण करते है।

3 द्विपक्षीय एकाधिकार श्रम मार्किट मे भी पाया जाता है। उसके विश्लेषण के लिए देखिए अध्याय 39

इसकी मान्यताए

(Its Assumptions)

यह विश्लेषण निम्न मान्यताओ पर आधारित है

1 एक ही वस्तु है जिसके निकट स्थानापन्न नहीं है।

2 एकाधिकारी इसका अकेला उत्पादक या विक्रेता है।

3 एकक्रयाधिकारी इसका अकेला खरीदार है।

4 एकाधिकारी और एकक्रयाधिकारी दोनो को अपने-अपने निजी लाभो को अधिकतम करने की स्वतन्त्रता है।
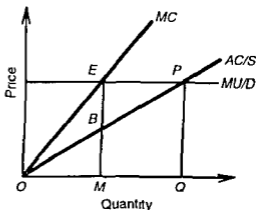
चित्र 26 5

कीमत निर्धारण

(Price Determination)

ये मान्यताए दी होने पर, द्विपक्षीय एकाधिकार मे कीमत और उत्पादन निर्धारण को चित्र 26 6 मे दर्शाया गया है। इसमे एकाधिकारी की वस्तु का माग वक्र D है और MR उसके अनुरूप सीमात आगम वक्र है। MC एकाधिकारी का सीमात लागत वक्र है। एकाधिकारी का MC वक्र एकक्रयाधिकारी का पूर्ति वक्र S है। इसका ऊपर की ओर ढालू होना यह दर्शाता है कि यदि एकक्रयाधिकारी वस्तु की अधिक मात्रा खरीदना चाहता है तो उसे ऊची कीमत देनी होगी। इसलिए जब वह वस्तु की अधिक इकाइया खरीदता है, तो उसका सीमात व्यय बढता है। इसे ऊपर की ओर ढालू ME वक्र द्वारा दिखाया गया है,[4] जो कुल पूर्ति वक्र MC/S का सीमात व्यय वक्र है। D वक्र एकक्रयाधिकारी का सीमात उपयोगिता (MU) वक्र है।

पहले हम चित्र 26 6 मे एकाधिकारी की सतुलन स्थिति को लेते है। वह E बिन्दु पर सतुलन मे है जहा उसके MR वक्र को उसका MC वक्र नीचे से काटता है। उसकी लाभ अधिकतम करने की कीमत OP_1 (= MS) है जिस पर वह वस्तु की OM मात्रा बेचता है। एकक्रयाधिकारी B बिन्दु पर सतुलन मे है जहाँ उसका सीमात व्यय वक्र ME माग वक्र D/MU को काटता है। वह वस्तु की OQ इकाइयों को पूर्ति वक्र MC/S द्वारा निर्धारित OP_2 (=QA) कीमत पर खरीदता है। इस प्रकार एकाधिकारी और एकक्रयाधिकारी के बीच कीमत पर मतभेद है। एकाधिकारी ऊची कीमत OP_1 लेना चाहता है और एकक्रयाधिकारी नीची कीमत OP_2 देना चाहता है। सैद्धातिक दृष्टिकोण से, मार्किट मे कीमत के लिए अनिर्धारणता है। वास्तव मे, वस्तु की बेची गई वास्तविक मात्रा और इसकी कीमत दोनो पक्षो की सापेक्ष सौदा करने की शक्ति पर निर्भर करती है। जितनी अधिक एकाधिकारी की सौदाकारी की सापेक्ष शक्ति होगी, उतनी ही कीमत OP_1 के निकट होगी तथा जितनी अधिक एकक्रयाधिकारी की सौदाकारी की सापेक्ष शक्ति होगी, उतनी ही कीमत OP_2 के निकट होगी। इस प्रकार कीमत OP_1 और OP_2 के बीच कहीं टिकेगी।

यदि एकाधिकार और एकक्रयाधिकार फर्मे एक अकेली फर्म मे विलय हो जाती है और

4 वास्तव में एकक्रयाधिकारी का पूर्ति वक्र S उसका AC वक्र है और ME उसका MC वक्र है।

चित्र 26 6

एकक्रयाधिकारी एकाधिकारी फर्म को अपने आधीन कर लेता है, तो एकक्रयाधिकारी का *MC/S* वक्र उसका सीमांत लागत वक्र बन जाता है। इस प्रकार, विलय हुई फर्म अपने लाभों को *F* बिन्दु पर अधिकतम करेगी जहा उसके *D/MU* वक्र को उसका *MC/S* वक्र काटता है। वह OP_3 कीमत पर *OT* उत्पादन की आपूर्ति और उपयोग करेगी। ऐसी स्थिति मे, विलय हुई फर्म एकाधिकार उत्पादन *OM* से बहुत अधिक उत्पादन *OT* प्राप्त करती है और इसके लिए एकाधिकार कीमत OP_1 से कम कीमत OP_3 लेती है।
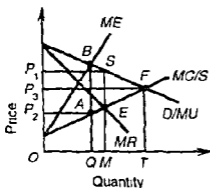
फिर भी, ऐसा सभव है कि एकाधिकारी फर्म का एकक्रयाधिकारी फर्म में विलय न हो सके। इसलिए अर्थशास्त्रियो ने द्विपक्षीय एकाधिकार समस्या का एक और हल सुझाया है जिसे संयुक्त लाभ अधिकतमकरण (Joint Profit Maximisation) कहते है। इसके अन्तर्गत, एकाधिकारी और एकक्रयाधिकारी एक दूसरे को बेची और खरीदी जाने वाली वस्तु की मात्रा पर तो समझौता कर लेते है, परन्तु कीमत के बारे में सहमत नहीं होते। इस आधार पर, वे सयुक्त लाभ अधिकतम करना चाहते है क्योंकि वे समझते है कि उनके एक दूसरे की आवश्यकताओं और आकाक्षाओ के बारे मे सूचना प्राप्त है। इस द्विपक्षीय एकाधिकार मॉडल को चित्र 26 7 द्वारा समझाया गया है, जहा एकाधिकारी *A* बिन्दु पर संतुलन में है जब उसका वक्र MC = MR वक्र। वह OP_1 (= *QB*) कीमत पर *OQ* मात्रा बेचना चाहता है। दूसरी ओर, एकक्रयाधिकारी *B* बिन्दु पर सन्तुलन में है, जब उसका माग वक्र *D/MU* = ME वक्र। वह OP_2 (= *QA*) कीमत पर *OQ* मात्रा बेचना चाहता है। दोनों की सापेक्ष समझौता करने की शक्ति पर निर्भर करते हुए, वस्तु की कीमत P_2 और P_1 के बीच कहीं भी हो सकती है और इस प्रकार वह अनिर्धारित है। परन्तु उनके संयुक्त लाभ $P_1P_2 \times OQ$ हैं, जो एकाधिकारी और एकक्रयाधिकारी के बीच निम्न अनुपात में बांटे जा सकते है .
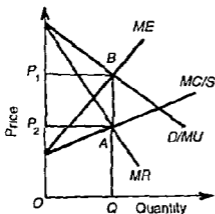
चित्र 26 7

$$\frac{P_x - P_2}{P_1 - P_2} \Big/ \frac{P_1 - P_x}{P_1 - P_2} = \frac{P_x - P_2}{P_1 - P_x}$$

जहा P_1 और P_2 के बीच P_r कोई भी कीमत है।

सयुक्त लाभो की बाट भी एक सैद्धातिक सभावना है जैसे कि द्विपक्षीय एकाधिकार समस्या का हल, जो अनिर्धारित है।

प्रश्न

1 एकक्रेताधिकारी से क्या तात्पर्य है? एकक्रयण कीमत तथा उत्पाद कैसे निर्धारित होते हैं?
2 एकक्रेताधिकार एव पूर्ण प्रतियोगी कीमत-निर्धारण में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3 "द्विपक्षीय एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत-उत्पाद स्थिति अनिर्धारित होती है।" विवेचन कीजिए।

अध्याय 27

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता
(MONOPOLISTIC COMPETITION)

अब तक हम पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु-कीमत निर्धारण पर विचार करते रहे है। परन्तु ये अति स्थितिया है और व्यवहार मे नहीं पाई जातीं। वास्तव मे इन दोनो स्थितियो के बीच मार्किट स्थितिया भी है। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एडवर्ड एच चैम्बरलेन ने 1933 मे *The Theory of Monopolistic Competition* और केम्ब्रिज विश्वविद्यालय की जोन रोबिन्सन ने 1933 मे ही स्वतत्र रूप से अपनी *The Economics of Imperfect Competition* मे पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार का सश्लेषण (synthesis) प्रस्तुत किया। आगे जो विश्लेषण दिया जा रहा है, वह प्रमुख रूप से चैम्बरलेन की पुस्तक पर ही आधारित है।

1. अर्थ
(MEANING)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता उस मार्किट स्थिति से सबध रखती है जिसमे एक विभेदीकृत वस्तु (differentiated product) की कई फर्में विक्रेता हो। "बहुत ही समान वस्तुओ का उत्पादन करने वाली फर्मों मे तीव्र प्रतियोगिता तो होती है, पर पूर्ण नहीं होती।"[1] कोई विक्रेता अन्य विक्रेताओ की कीमत-उत्पादन नीतियो पर विशेष प्रभाव नहीं डाल सकता और न ही दूसरो के कार्यों का उस पर कोई प्रभाव पडता है। इस प्रकार एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता उन अनेक विक्रेताओ में प्रतियोगिता का निर्देश करती है जो पूर्ण-स्थानापन्नो (perfect substitutes) का तो नहीं, पर निकट-स्थानापन्नो (close substitutes) का उत्पादन करते है।

2. इसकी विशेषताएं
(ITS FEATURES)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित है

(1) **विक्रेताओं की अधिक संख्या** (Large number of sellers)—एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में विक्रेताओ की सख्या अधिक होती है। वे 'बहुत और पर्याप्त छोटे' होते हैं (they are many and small enough)। परन्तु उत्पादन के बडे भाग पर किसी एक का नियन्त्रण नहीं होता। कोई भी विक्रेता अपनी उत्पादन नीति मे परिवर्तन करके दूसरे के विक्रय पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डाल सकता और न ही उनसे प्रभावित होता है। इस प्रकार विक्रेताओं की कीमत-उत्पादन नीतियों में कोई स्वीकृत परस्पर-निर्भरता नहीं होती और हर विक्रेता

1 There is competition which is keen, though not perfect, between many firms making very similar products —A W Stonier and D C Hague, *op cit*, p 182

अपने कार्यों में स्वतन्त्र रास्ता अपनाना है।

(2) वस्तु-विभेदीकरण (Product differentiation)—एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता है, वस्तु-विभेदीकरण। "यदि अन्य विक्रेताओं से एक विक्रेता की वस्तुओं (या सेवाओं) को अलग करने का कोई महत्त्वपूर्ण आधार हो, तो एक सामान्य श्रेणी की वस्तु को विभेदीकृत कर दिया जाता है।" विभेदीकरण का ऐसा आधार वास्तविक या काल्पनिक हो सकता है परन्तु जब तक क्रेताओं के लिए उसका महत्त्व रहता है, वे तब तक एक वस्तु को दूसरी पर अधिमान देते हैं। वास्तव में वस्तु विभेदीकरण का अर्थ है कि वस्तुओं में एक-दूसरे से कुछ न कुछ अन्तर है। वे समरूप नहीं बल्कि भिन्न रूप होती हैं, जिससे प्रत्येक फर्म का एक विभेदीकृत वस्तु के उत्पादन और विक्रय में निरपेक्ष एकाधिकार होता है। परन्तु एक ही श्रेणी की एक वस्तु तथा अन्य वस्तुओं में थोड़ा-सा अन्तर होता है। वस्तुएँ पूर्ण-स्थानापन्न तो नहीं होतीं पर ऊँची प्रतिलोच वाली निकट-स्थानापन्न होती हैं। वस्तु विभेदीकरण वस्तु की कुछ अपनी विशेषताओं पर आधारित होता है जैसे, एकमात्र पेटेंट, ट्रेड मार्क, ट्रेड नाम, पैकेज अथवा कन्टेनर की विशेषताएं यदि कोई हों, अथवा क्वालिटी, डिजाइन, रंग अथवा स्टाइल की कोई विशिष्टता। यह वस्तु के विक्रय से सबद्ध स्थितियों के बारे में भी हो सकती है। इनका हम विवेचन करते हैं।

(क) वस्तु की क्वालिटी में परिवर्तन करके (By changing the quality of the product)—उत्पादन की ओर से, वस्तु की क्वालिटी उसे अन्य वस्तुओं से भिन्नित करती है, जैसे प्रयुक्त माल, कार्यकुशलता, टिकाऊपन, परिमाण, आकार, डिजाइन, रंग, सुगन्ध, पैकिंग, इत्यादि। उपभोक्ताओं की रुचियों और अधिमानों के अनुकूल वस्तु को बनाने के उद्देश्य से क्वालिटी परिवर्तनों द्वारा वस्तु विभेदीकरण किया जाता है। उत्पादक इस तरह अपनी वस्तु की ओर अधिक ग्राहकों को आकर्षित करने की भी आशा करता है। क्रेताओं की आय और सबधित वस्तुओं की कीमतें दी हुई होने पर, वह यह भी आशा कर सकता है कि वह क्वालिटी परिवर्तन से पहले की अपेक्षा अधिक कीमत वसूल करेगा।

(ख) विज्ञापन एवं प्रचार द्वारा (By advertisement and propaganda)—वितरण की ओर से, वस्तु के बारे में विज्ञापन और प्रचार, जो बिक्री-प्रोत्साहन तकनीक कहलाती है, एक वस्तु को अन्य वस्तुओं से भिन्नित करती है। विज्ञापन से क्रेताओं के मन पर मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया होती है और इस प्रकार एक काल्पनिक अन्तर पैदा हो जाता है, जो एक वस्तु की अन्य वस्तुओं से श्रेष्ठ बना देता है। इसके अतिरिक्त, दुकान कहाँ स्थित है, वह देखने में कैसी लगती है, काउंटर सेवा कैसी है, इत्यादि बातें भी बिक्री को बढ़ाने में सहायता देती हैं। वस्तु की दरों की वृद्धि से वस्तु विभेदीकरण करने का उद्देश्य वस्तु की माग को प्रभावित करना और उसे कम लोचदार बनाना है।

(ग) पेटेंट अधिकार तथा ट्रेड मार्क द्वारा (By patent rights and trade marks)—पेटेंट अधिकार और ट्रेड मार्क भी वस्तु विभेदीकरण को बढ़ावा देते हैं। कॉपीराइट भी यही काम करते हैं। कोडक और कोका कोला पेटेंट अधिकारों के उदाहरण हैं जो अमरीका की कांग्रेस ने उनके आविष्कारकों को दिए हैं। हमाम, लक्स, रैक्सोना, पीअर्स, गोदरेज इत्यादि साबुनों के ट्रेड मार्क हैं जो उपभोक्ता को इस बात में सहायता देते हैं कि वह उस साबुन को चुन ले जिसके लिए बाकी साबुनों की अपेक्षा उसका अधिमान अधिक है।

(3) फर्मों के प्रवेश और निकास की स्वतन्त्रता (Freedom of entry and exit of firms)—एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की एक और विशेषता है, फर्मों के प्रवेश या निकास की स्वतन्त्रता। क्योंकि फर्मों का आकार छोटा होता है और वे निकट-स्थानापन्नों का उत्पादन कर सकती हैं, इसलिए यह संभव हो जाता है कि दीर्घकाल में वे किसी उद्योग या समूह में आ जाएँ या उसे छोड़ जाएँ। वास्तव में, वस्तु विभेद से नई फर्मों का प्रवेश घटने की बजाय बढ़ता ही है, क्योंकि अन्य फर्मों की अपेक्षा हर फर्म एक अलग वस्तु का उत्पादन करती है।

(4) माँग वक्र की प्रकृति (Nature of demand curve)—एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में किसी भी एक फर्म का वस्तु के उत्पादन के एक छोटे भाग से अधिक पर नियन्त्रण नहीं होता। इसमें संदेह नहीं कि वस्तु विभेदीकरण का तत्त्व रहता है, फिर भी, वस्तुएं निकट-स्थानापन्न तो होती ही हैं। इसलिए, वस्तु की कीमत घटाकर एक फर्म अन्य प्रतियोगियों के ग्राहकों को आकर्षित कर अपनी बिक्री को बढा सकती है, बशर्ते कि प्रतियोगी भी कीमतें न घटा दें। इस प्रकार कीमत बढा देने पर उस फर्म के ग्राहक दूसरी फर्मों के पास चले जाएँगे। इसमें संदेह नहीं कि कीमत में कमी करने से फर्म की बिक्री बढ जायेगी, परन्तु इससे अन्य फर्मों की कीमत-नीतियों पर विशेष प्रभाव नहीं पडेगा, क्योंकि हर फर्म के बहुत थोडे ग्राहक ही टूटेंगे। इसी प्रकार, कीमत बढा देने से उस फर्म की माँग में तो महत्त्वपूर्ण कमी हो जाएगी परन्तु इससे उसके ग्राहकों में से बहुत थोड़े-थोड़े ग्राहक ही प्रतियोगी फर्मों के पास जाएंगे। इसलिए, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी फर्म के माँग वक्र (औसत आगम वक्र) का ढलान नीचे की ओर दाएँ को होता है। कीमतों के उस क्षेत्र में, जिसमें वह अपनी वस्तु की किसी मात्रा को बेच सकता है, माँग अधिक लोचदार होती है, पर पूर्ण लोचदार नहीं होती। एक व्यक्तिगत फर्म के माँग वक्र की लोच एक तो इस बात पर निर्भर करती है कि प्रतियोगी फर्मों की वस्तुओं में प्रतिलोच (cross-elasticity) का मूल्य कितना है। और दूसरे, इस बात पर कि उद्योग में विक्रेताओं की सख्या कितनी है और कुल उद्योग की माँग में प्रत्येक का कितना योगदान है। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत माँग की प्रतिलोच अधिक होती है और फर्म का माँग वक्र अधिक लोचदार होगा क्योंकि उस स्थिति में वस्तुएं निकट-स्थानापन्न होती हैं। ऐसा वक्र D (AR) और साथ ही उसका अनुरूप MR वक्र चित्र 27.1 (A) में दिखाया गया है।
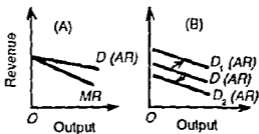
चित्र 27.1

दूसरी अवस्था में, वक्र D (AR) यह प्रकट करता है कि यदि प्रतियोगी फर्में अपनी कीमतों में परिवर्तन न करें, तो एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म को कीमत बढ़ाने से, उनकी तुलना में, अपने विक्रय में अधिक हानि और कीमत कम करने से अधिक लाभ होगा।

परन्तु कोई फर्म विभिन्न कीमतों पर अपनी वस्तु की कितनी मात्राएँ बेच सकती है, यह इस बात पर निर्भर है कि उपभोक्ताओं की आय कितनी है, वस्तु के लिए उनकी रुचियों की तीव्रता कितनी है, स्थानापन्नों तथा स्थानापन्नों की कीमतों के लिए उपभोक्ताओं का अधिमान कितना है। फर्म अपनी वस्तु की प्रकृति और विज्ञापन के लिए व्यय को परिवर्तित करके अपनी बिक्री को प्रभावित कर सकती है। इन स्थितियों में से किसी में भी परिवर्तन होने पर माँग वक्र ऊपर या नीचे

को सरक जाएगा। उपभोक्ताओं की आय या वस्तु के लिए उनकी रुचियों में तीव्रता के बढ़ने से माँग वक्र ऊपर को और घटने से नीचे को सरक जाएगा। इसी तरह प्रतियोगी फर्मों द्वारा कीमतों में वृद्धि (या कमी) उनकी वस्तुओं के लिए उपभोक्ताओं के अधिमानों को घटा (या बढ़ा) देगी जिसका परिणाम यह होगा कि व्यक्तिगत फर्म की बिक्री बढ़ (या घट) जाएगी। प्रतिद्वन्द्वी वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि से माँग वक्र ऊपर को सरक कर D_1 (AR) पर आ जाएगा और अन्य फर्मों की वस्तुओं की कीमतों में कमी से माँग वक्र नीचे को सरक कर D_2 (AR) पर चला जाएगा, जैसा कि चित्र 27.1 (B) में दिखाया गया है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत माँग वक्र, जिसका फर्म को सामना करना पड़ता है, कीमतों के सबंधित रेंज में अधिक लोचदार होता है। इसका अभिप्राय है कि वस्तु विभेदीकरण के कारण कीमत पर फर्म का कुछ नियन्त्रण होता है और फर्मों के बीच कीमत-भिन्नक (price differentials) होते हैं। इसके बावजूद, भिन्नित-वस्तु की मार्किट कीमत का सामान्य स्तर माँग वक्र के ढलान को निर्धारित करता है। जहाँ तक यह कीमत पर नियन्त्रण कर सकती है, वहाँ तक तो फर्म एकाधिकार से समानता रखती है और क्योंकि इसका माँग वक्र मार्किट की स्थितियों से प्रभावित होता है, इसलिए वह पूर्ण प्रतियोगिता से समानता रखती है। अत ऐसी स्थिति को विशेष रूप से एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता माना गया है।

3 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का कीमत निर्धारण (PRICE DETERMINATION OF A FIRM UNDER MONOPOLISTIC COMPETITION)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के सन्तुलन का सामान्य विश्लेषण अल्पकालीन और दीर्घकालीन में किया जाता है।

(क) अल्पकालीन सन्तुलन (Short-run Equilibrium)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का अल्पकालीन विश्लेषण इन मान्यताओं पर आधारित है

(i) विक्रेताओं की सख्या अधिक होती है और वे एक-दूसरे से स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हैं। प्रत्येक अपने क्षेत्र में एकाधिकारी होता है,

(ii) प्रत्येक विक्रेता की वस्तु अन्य वस्तुओं से विभेदीकृत (या भिन्नित) होती है,

(iii) फर्म का निश्चित माँग वक्र (AR) होता है जो लोचदार होता है,

(iv) विचाराधीन वस्तु के उत्पादन के लिए साधन सेवाओं की पूर्ति पूर्ण लोचदार होती है,

(v) अल्पकालीन में हर फर्म का लागत वक्र अन्य फर्मों के लागत वक्रों से भिन्न होता है,

(vi) उद्योग में कोई नई फर्म प्रवेश नहीं करती।

इन मान्यताओं के दिए हुए होने पर, प्रत्येक फर्म ऐसी कीमत और उत्पादन निश्चित करती है जिससे उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो। सन्तुलन कीमत और उत्पादन उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहाँ अल्पकालीन सीमान्त लागत सीमान्त आगम के बराबर होती है।

क्योंकि अल्पकालीन में लागतें भिन्न होती हैं, इसलिए अपेक्षाकृत कम प्रति इकाई लागतों वाली फर्म केवल सामान्य लाभ कमाएगी। यदि यह केवल औसत परिवर्तनशील लागत को ही पूरा कर पाती है, तो उसे हानि उठानी पड़ती है।

चित्र 27.2 (A) में, अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र (SMC) सीमान्त आगम वक्र (MR) को E बिन्दु पर काटता है। यह सन्तुलन बिन्दु, कीमत QA (= OP) और उत्पादन की OQ मात्रा निर्धारित करता है। परिणामस्वरूप, फर्म सामान्य से अधिक लाभ, $PABC$ क्षेत्र द्वारा प्रकट किए गए, कमाती है।

चित्र 27 2 (B) भी उसी सतुलन बिन्दु, और कीमत तथा उत्पादन को प्रकट करता है। परन्तु इस स्थिति मे फर्म केवल अपनी अल्पकालीन औसत इकाई लागत (SAC) को ही पूरा कर पाती है जैसा कि माँग वक्र D और अल्पकालीन औसत इकाई लागत वक्र SAC स्पर्श-बिन्दु A पर प्रकट करते है। फर्म सामान्य लाभ कमाती है।
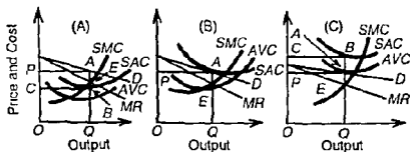
चित्र 27.2

चित्र 27 2 (C) उस स्थिति को प्रकट करता है जहाँ फर्म अल्पकालीन औसत इकाई लागत को भी पूरा नहीं कर पाती और हानि उठाती है। SMC और MR वक्रो की E बिन्दु पर समानता द्वारा निर्धारित की गई कीमत QA है जो केवल औसत परिवर्तनशील लागत को ही पूरा कर पाती है। माँग वक्र D और औसत परिवर्तनशील लागत वक्र AVC का स्पर्श बिन्दु A फर्म के बन्द हो जाने का बिन्दु (shut-down point) है। यदि फर्म कीमत को QA से नीचे ले आती है, तो इसे आगे उत्पादन बन्द करना पडेगा। हाँ, इस कीमत पर फर्म कीमत फर्म अल्पकालीन मे क्षेत्र $CBAP$ के बराबर इस आशा से हानि उठा लेगी कि दीर्घकालीन मे वह अपनी लागतो को कम कर सकेगी।

यह आवश्यक नहीं कि अल्पकालीन मे सब फर्मे समान कीमते वसूल करे और उतनी ही मात्रा का उत्पादन करे जितना कि हमने ऊपर दिखाया है। यह तो केवल अपने ज्यामितीय उदाहरण को सरल बनाने के लिए हमने किया है। वस्तु विभेदीकरण होने के कारण कीमतो और मात्राओ की एकरूपता की आशा नहीं की जा सकती। हर फर्म अपनी-अपनी अल्पकालीन लागतो के अनुसार कार्य करती है और अपने *SMC* वक्र को अपने *MR* वक्र के बराबर करती है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि एक फर्म अन्य फर्मों से बहुत ही भिन्न कीमत नियत करती है। क्योकि उस वस्तु के निकट-स्थानापन्न हैं, इसलिए उसकी कीमत उन अन्य फर्मों की कीमतो के आस-पास ही होगी जो उससे मिलती-जुलती वस्तु का उत्पादन करती हैं।

(ख) दीर्घकालीन सतुलन (Long-run Equilibrium)

दीर्घकालीन मे, समायोजन प्रक्रिया दो तरह से हो सकती है (i) उद्योग या समूह के भीतर, और (ii) प्रवेश के खुला रहने पर।

(i) उद्योग के भीतर समायोजन (Adjustments within)—दीर्घकालीन मे, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत समायोजन प्रक्रिया विशुद्ध प्रतियोगिता प्रक्रिया से मिलती-जुलती होती है। हर फर्म अपनी सीमान्त लागत को अपने सीमान्त आगम के बराबर बनाती है। माँग वक्र अधिक लोचदार होता है और हर फर्म अपनी लागत स्थितियो के अनुसार अपने उत्पादन का समायोजन

करती है। वह अपने उत्पादन के पैमाने को बदल सकती है। यद्यपि हर फर्म का अपना कीमत-उत्पादन स्तर होता है, फिर भी, वह सामान्य स्तर से बहुत भिन्न नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्येक फर्म समरूप वस्तु का उत्पादन करती है। इसलिए उसे इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि भिन्नित वस्तु का उत्पादन करने वाले सारे समूह का समस्त कीमत-उत्पादन ढाँचा कैसा है। यदि कुल उत्पादन कुल माँग से बढ़ जाए, तो कीमतें गिर जाएँगी। माँग वक्र, जिसका हर फर्म को सामना करना पड़ता है, नीचे हो जाएगा और पहले से नीचे स्तर पर फर्म का LMC वक्र उसके अपेक्षाकृत नए नीचे *MR* वक्र के बराबर होगा। यदि इस कीमत-उत्पादन समायोजन की प्रक्रिया में एक फर्म अपने उत्पादन की दीर्घकालीन औसत लागत को पूरा नहीं कर पाती तो वह बन्द हो जाएगी और समूह को छोड़ देगी क्योंकि दीर्घकालीन में कोई भी फर्म हानि में नहीं रह सकती। इसके विपरीत, यदि कुल माँग वस्तु के कुल उत्पादन से बढ़ जाए तो कीमतें बढ़ जाएँगी। हर फर्म का माँग वक्र ऊपर को हो जाएगा और फर्म अपनी कीमत और उत्पादन का समायोजन अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर पर करेगी, जहाँ उसका LMC वक्र नए ऊँचे वक्र MR के बराबर होगा। इस प्रकार का समायोजन तब तक होता रहेगा, जब तक समूह की हर फर्म के लाभ सामान्य नहीं हो जाते, जैसा कि चित्र 27.3 (B) में दिखाया गया है, जब LAC_1 वक्र D_1 वक्र को A_1 बिन्दु पर स्पर्श करता है।

(ii) **प्रवेश खुला रहने पर** (With open entry)—विशुद्ध प्रतियोगिता की भाँति एकाधिकारात्मक प्रतियोगी उद्योग में फर्मों के आने या उसे छोड़ जाने की मान्यता को स्वीकार कर लेने पर, समायोजन प्रक्रिया का परिणाम यह होगा कि सब फर्में केवल सामान्य लाभ ही कमा सकेंगी। यह वास्तविक धारणा है क्योंकि दीर्घकालीन में, कोई भी फर्म सामान्य से अधिक लाभ या फिर हानि नहीं उठा सकती, इसलिए कि प्रत्येक फर्म समान वस्तु का उत्पादन करती है।

यदि एकाधिकारात्मक प्रतियोगी उद्योग में फर्में सामान्य से अधिक लाभ कमा रही है, तो उस समूह में नई फर्में प्रवेश करेंगी। नई फर्मों के आने से वर्तमान मार्किट अधिक विक्रेताओं में विभाजित हो जाएगी जिससे हर फर्म वस्तु की पहले से कम मात्रा बेचेगी। परिणाम यह होगा कि व्यक्तिगत फर्मों के माँग वक्र नीचे की ओर बाएँ को सरक जाएँगे। साथ ही नई फर्मों के आने से माँग बढ़ जाएगी और इसलिए साधन-सेवाओं की कीमतें भी, जिससे व्यक्तिगत फर्मों के लागत वक्र ऊपर को सरक जाएँगे। माँग वक्रों के नीचे आने और लागत वक्रों के ऊपर उठने की यह दोहरी समायोजन प्रक्रिया सामान्य से अधिक लाभों को कम कर देगी। इस प्रकार दीर्घकालीन में, हर फर्म केवल सामान्य लाभ ही कमा सकेगी। इस स्थिति को आमने-सामने चित्र 27.3 (A) और (B) में दिखाया गया है।

नई फर्मों के आने से पहले फर्म की माँग और लागत स्थितियाँ चित्र 27.3 (A) में प्रकट की गई है, जहाँ फर्म वस्तु की *OQ* मात्रा को कीमत *QA* (= *OP*) पर बेचती है और *PABC* सामान्य से अधिक लाभ कमाती है। जब समूह में नई फर्में आ जाती है, तो माँग वक्र नीचे की ओर सरक कर D_1 पर आ जाता है और दीर्घकालीन सीमान्त तथा औसत लागत वक्र ऊपर को सरक कर LMC_1 और LAC_1 बन जाते हैं जैसा कि चित्र 27.3 (B) में दिखाया गया है। परिणाम यह होता है कि दो विरोधी शक्तियाँ अधिक लाभ को दबाकर समाप्त कर देती है। फर्म, माँग वक्र D_1 और दीर्घकालीन औसत लागत वक्र LAC_1 के स्पर्श बिन्दु A_1 पर केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक फर्म पहले (*OQ*) से कम उत्पादन OQ_1 करती है और अपेक्षाकृत कम कीमत OP_1 पर बेचती है, जिससे उद्योग में नई फर्मों का आना बन्द हो जाता है।

यदि एकाधिकारी प्रतियोगिता में फर्में अतिरिक्त लाभ नहीं कमा सकतीं, तो वे हानि भी नहीं उठाती रह सकतीं। ऐसी स्थिति में, घाटे वाली फर्में उद्योग को छोड़ जाएँगी। पूर्ति कम हो जाएगी और कीमत बढ़ जाएगी। दूसरी ओर, फर्मों के चले जाने से साधनों की बहुतायत हो जाएगी। अन्त में कीमत में वृद्धि और लागत में कमी हानि को समाप्त कर देगी। अन्तिम स्थिति वह होगी जो
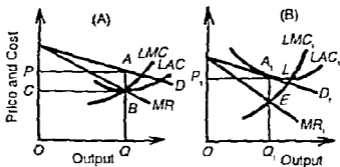
चित्र 27.3

चित्र 27.3 (B) में दिखाई गई है, जहाँ प्रत्येक फर्म और समस्त उद्योग दीर्घकालीन सन्तुलन में होंगे।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकालीन सन्तुलन विश्लेषण एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य को प्रकट करता है कि प्रत्येक फर्म और समस्त उद्योग इष्टतम उत्पादन का उत्पादन नहीं करेंगे। अतिरिक्त क्षमता हमेशा रहेगी क्योंकि फर्में प्लांटों का चालन उनकी अधिकतम क्षमता तक नहीं कर सकतीं और इस प्रकार बड़े पैमाने के उत्पादन की मितव्ययिताओं का पूरी तरह उपभोग नहीं कर सकतीं। यह बात चित्र 27.3 (B) में स्पष्ट है, जहाँ माँग वक्र D_1 और LAC_1 वक्र का स्पर्श बिन्दु निम्नतम स्तर L पर नहीं है, बल्कि L_1 है जिसके दायीं ओर L है। इसका कारण यह है कि माँग वक्र क्षैतिज नहीं है नीचे की ओर दाएं को ढालू है। इस प्रकार एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकालीन में भी प्रत्येक फर्म की ऐसी क्षमता होती है जिसका उपयोग नहीं हो पाता।

4. चैम्बरलेन का समूह संतुलन (CHAMBERLIN'S GROUP EQUILIBRIUM)

उद्योग और समूह की धारणा (Concept of Industry and Group)

'उद्योग' शब्द एक समरूप (homogeneous) वस्तु का उत्पादन करने वाली सब फर्मों को निर्दिष्ट करता है। परन्तु एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु विभेदीकृत (differentiated) होती है। इसलिए एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में 'उद्योग' कोई नहीं होता बल्कि एक समान वस्तु का उत्पादन करने वाली फर्मों का 'समूह' होता है। प्रत्येक फर्म एक भिन्न वस्तु उत्पादित करती है और वह स्वयं उद्योग होती है। चैम्बरलेन बहुत निकट सबंधित वस्तुओं को उत्पादित करने वाली फर्मों को इकट्ठा करता है और उन्हें वस्तु समूह कहता है। इस प्रकार, उद्योग को परिभाषित करते हुए चैम्बरलेन फर्मों को वस्तु समूहों में इकट्ठा करता है, जैसे कारें, सिगरेट, आदि। चैम्बरलेन के अनुसार, "शुरू-शुरू में आयोजित समूह वह है जिसे साधारणतया अपूर्ण प्रतियोगी मार्किट का रचित समझा जाता है कई मोटर गाड़ियाँ बनाने वाले, बर्तन बनाने के उत्पादक, पत्रिका-प्रकाशक, या जूतों के परचून व्यापारी समूह के भीतर प्रत्येक उत्पादक एकाधिकारी है, फिर भी, उसकी मार्किट उसके प्रतियोगियों के साथ परस्पर जुड़ी हुई है और उसे उनसे किसी प्रकार भी अलग नहीं किया जा

सकता।" वस्तु समूह मे प्रत्येक वस्तु की प्रति-लोच ऊँची होती है तथा जब समूह की अन्य वस्तुओ की कीमत मे परिवर्तन होता है, तो वह माग वक्र को सरका (शिफ्ट) देती है। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे उद्योग के माग और लागत वक्र अस्पष्ट धारणाए बन जाते है, क्योकि कीमतो का एक "झुण्ड" होता है। ट्रिफिन के अनुसार, "वस्तु विभेदीकरण उद्योग की धारणा को उसकी निश्चितता और उसकी उपयोगिता से वचित कर देता है।"

समूह सतुलन सिद्धात (Group Equilibrium Theory)

चैम्बरलेन दीर्घकालीन समूह सतुलन का अपने सिद्धान्त का विकास दो प्रकार के माग वक्रो *DD* और *dd* को मानकर करता है, जैसे कि चित्र 27 4 में दिखाया गया है। समस्त समूह का माग वक्र *DD* है। यह इस मान्यता पर खींचा गया है कि सभी फर्में एक समान कीमत लेती है और समान आकार की है। *dd* एक व्यक्तिगत फर्म का माग वक्र है। दोनो माग वक्र विकल्पो को दर्शाते है जिनका एक फर्म सामना करती है जब वह अपनी कीमत को बदलती है। चित्र मे फर्म *OQ* उत्पादन *OP* कीमत पर बेच रही है। वस्तु विभेदीकरण के साथ समूह का सदस्य होने के रूप मे, फर्म अपनी कीमत को दो कारणो से कम करके अपनी बिक्री को बढा सकती है। प्रथम, वह महसूस करती है कि अन्य फर्में अपनी-अपनी कीमते कम नहीं करेगी, और दूसरे, वह अन्य फर्मों के कुछ ग्राहक आकर्षित कर लेंगी। दूसरी ओर, यदि वह अपनी कीमत *OP* से ऊपर बढाती है, तो उसके विक्रय कम हो जाएगे क्योकि समूह मे अन्य फर्में अपनी कीमतें बढाने मे इसका अनुसरण नहीं करेंगी और वह दूसरी फर्मों के पास अपने कुछ ग्राहक खो देंगी। इसलिए

चित्र 27 4

फर्म का अधिक लोचदार माग वक्र *dd* होता है। परन्तु यदि वस्तु समूह मे सभी फर्में एक साथ ही अपनी कीमतो को घटा (या बढा) देती है, तो फर्म का कम लोचदार माग वक्र *DD* होगा।
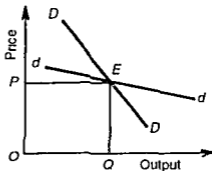
इसकी मान्यताए (*Its Assumptions*)

चैम्बरलेन का समूह सतुलन विश्लेषण निम्न मान्यताओ पर आधारित है

(1) फर्मो की सख्या अधिक है।

(2) क्रेताओं की सख्या अधिक है।

(3) प्रत्येक फर्म एक विभेदीकृत वस्तु का उत्पादन करती है जो अन्य फर्मों की वस्तु के निकट स्थानापन्न है।

(4) प्रत्येक फर्म की स्वतत्र कीमत नीति है और वह पर्याप्त लोचदार माग वक्र का सामना करती है, और यह भी आशा रखती है कि उसके प्रतिद्वद्वी उसके कार्यों पर ध्यान नहीं देगे।

(5) प्रत्येक फर्म को अपने माग और लागत वक्रो की जानकारी है।

(6) साधन कीमतें और प्रोद्योगिकी स्थिर है।

(7) प्रत्येक फर्म का उद्देश्य अल्पकालीन और दीर्घकालीन लाभ अधिकतम करना है।

(8) किसी भी एक अकेली फर्म द्वारा किया गया कीमत का समायोजन समस्त समूह को

प्रभावित करता है परन्तु प्रत्येक फर्म जिस प्रभाव को अनुभव करती है, वह नगण्य (negligible) होता है। यह सगति मान्यता (symmetry assumption) है।

(9) जैसा कि चैम्बरलेन ने कहा है, "शोर्यपूर्ण मान्यता (heroic assumption) यह है कि समस्त समूह मे सब वस्तुओ के माँग और लागत वक्र दोनो ही समरूप होते है केवल इस बात की जरूरत होती है कि उपभोक्ता के अधिमान विभिन्न वस्तुओ मे समान रूप से बँट जाएँ और कि उनका अन्तर इतना अधिक नहीं होना चाहिए जिससे कि लागत में बहुत अन्तर पड जाए।" यह समता मान्यता (uniformity assumption) है।

ये मान्यताए और DD और dd दोनो प्रकार के माग वक्र दिए होने पर, चेम्बरलेन फर्मो के समूह सतुलन की व्याख्या करता है। वह इन माग वक्रो के अनुरूप MR वक्रो को ओर LAC के अनुरूप LMC वक्र को नहीं खींचता है।

(क) अल्पकाल सतुलन (Short-run Equilibrium)—अल्पकाल एक स्थिति है जिसमे किसी भी फर्म की अपनी कीमत ओर उत्पादन परिवर्तित करने की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती है। अल्पकाल सतुलन फर्म के MR ओर MC की समानता पर होता है। फिर, कीमत- उत्पादन सयोग उस विन्दु पर होता है जहा फर्म का माग वक्र dd समूह माग वक्र DD को काटता है। ऐसी स्थिति को चित्र 27 5 में दर्शाया गया है। फर्म OQ उत्पादन को OP कीमत पर बेचती है, जब इसका माग वक्र dd समूह माग वक्र DD को A विन्दु पर काटता है। $QP (= QA)$ कीमत पर फर्म लाभ अधिकतमकरण उत्पादन OQ करती है क्योंकि उसका MC वक्र MR वक्र को BA के बीच किसी भी जगह काटता है। फर्म $PABC$ असामान्य लाभ कमाती है। क्योंकि यह मान्यता है कि सभी फर्मों के लागत ओर माग वक्र समरूप है, इसलिए चित्र 27 5 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे सभी फर्मों का अल्पकालीन समूह सतुलन व्यक्त करता है।
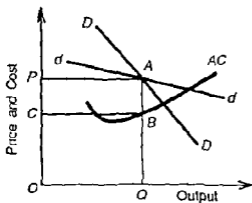
चित्र 27 5

(ख) दीर्घकाल सतुलन (Long-run Equilibrium)—वास्तव मे, चैम्बरलेन का समूह सतुलन दीर्घकाल से सबद्ध है जिसका वह दो स्थितियो के अन्तर्गत अध्ययन करता है (i) जब नई फर्मो का प्रवेश बद होता है, ओर (ii) जब नई फर्मो का प्रवेश खुला होता है। हम इनकी नीचे विवेचना करते है।

(1) प्रवेश बद के साथ सतुलन (Equilibrium with Entry Closed)

चित्र 27 6 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे समूह के दीर्घकालीन सतुलन को दर्शाता है जब यह माना जाता है कि नई फर्मो का प्रवेश बद है। दीर्घकालीन सतुलन का समायोजन बिन्दु A से प्रारम्भ होता है, जहा dd ओर DD वक्र एक दूसरे को काटते है ओर $QA (= OP)$ अल्पकालीन सतुलन कीमत स्तर है जिस पर प्रत्येक फर्म वस्तु की OQ मात्राए बेचती है। इस कीमत-उत्पादन स्तर पर प्रत्येक फर्म सामान्य से अधिक लाभ $PABC$ कमाती है। dd वक्र को अपना माग वक्र

चित्र 27.6

समझते हुए प्रत्येक फर्म अपनी बिक्री और लाभों को बढ़ाने के उद्देश्य से अपनी कीमत में कमी कर देती है, इस मान्यता पर कि अन्य फर्में इसके प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं करेंगी। लेकिन अपनी माग की मात्रा को dd वक्र के साथ बढ़ाने की बजाय यह DD वक्र के साथ गति करती है। वास्तव में, प्रत्येक फर्म एक ही ढंग से सोचती और कार्य करती है जिससे DD वक्र के साथ-साथ dd वक्र नीचे को सरक जाता है। नीचे की ओर dd वक्र का सरकना तब तक चलता रहता है, जब तक कि वह d_1d_1 वक्र का रूप धारण नहीं कर लेता है और LAC वक्र को A_1 बिन्दु पर स्पर्श करता है। यह दीर्घकालीन सतुलन स्थिति है, जहा प्रत्येक फर्म केवल Q_1A_1 कीमत पर OQ_1 वस्तु की मात्रा बेच कर केवल सामान्य लाभ ही कमाएगी। यदि d_1d_1 वक्र LAC वक्र के नीचे सरक जाता है, तो प्रत्येक फर्म हानि उठाएगी। दीर्घकाल मे ऐसी स्थिति नहीं चलती रह सकती और हानि को समाप्त करने के लिए कीमत को बढ़ाकर Q_1A_1 स्तर पर लाना पड़ेगा। इस प्रकार, प्रत्येक फर्म उप-इष्टतम आकार की होगी और LAC वक्र द्वारा व्यक्त इष्टतम प्लाट चलाएगी।
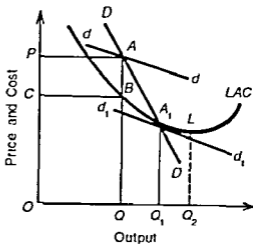
(2) प्रवेश खुला के साथ सतुलन (Equilibrium with Open Entry)

समूह सन्तुलन की व्याख्या करने के लिए हम अब चित्र 27.7 को लेते हैं जब नई फर्में समूह मे प्रवेश करती हैं। कीमत समायोजन dd वक्र के साथ दिखाए गए हैं और फर्मों के प्रवेश को DD वक्र के सरकने से दिखाया गया है।

मान लीजिए कि प्रारंभिक अल्पकालीन सन्तुलन S पर है जहाँ DD और dd वक्र काटते हैं और वर्तमान फर्में सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त करती हैं। दीर्घकालीन मे, नई फर्में समूह मे आकर प्रत्येक फर्म की बिक्री को कम कर देती है और माँग वक्र DD को $D'D'$ पर धकेल देती हैं। नया सन्तुलन A पर स्थापित होता है, जहाँ समूह का माँग वक्र $D'D'$ वक्र LAC को स्पर्श करता है। नया कीमत-उत्पादन सयोग QA और OQ है। परन्तु यह अधिकतम लाभ का बिन्दु नहीं है। इसलिए प्रत्येक फर्म कीमत घटा देती है और dd वक्र $D'D'$ के साथ तब तक नीचे को सरकता जाता है, जब तक d_1d_1 नहीं बन जाता। क्योंकि सब फर्में एक ही साथ, एक-दूसरे के ज्ञान के बिना, कीमतें घटाती रही हैं, नया सन्तुलन पहले से नीचे सन्तुलन स्तर A_1 पर स्थापित होता है, जहाँ समूह का माँग वक्र $D'D'$, फर्म के माँग वक्र d_1d_1 को काटता है। इस स्तर पर, प्रत्येक फर्म Q_1A_1 कीमत पर वस्तु की OQ_1 मात्रा बेचती है, और क्योंकि LAC वक्र सन्तुलन बिन्दु से ऊपर स्थित है, इसलिए BCA_1P क्षेत्र द्वारा प्रकट की गई हानि उठाती है।

परन्तु कुछ फर्में देर तक हानि उठाती नहीं रह सकतीं। परिणामस्वरूप, ऐसी फर्में समूह को छोड़ जाएँगी। ऐसा होने पर पूर्ति घट जाती है और माँग बढ़ जाती है। DD वक्र दाईं ओर को सरक कर D_1D_1 पर आता है और सन्तुलन A पर स्थापित होता है जहाँ प्रत्येक फर्म का माँग वक्र d_1d_1 वक्र LAC का स्पर्श करता है। यह समूह की दीर्घकालीन स्थिर सन्तुलन स्थिति होगी। प्रत्येक
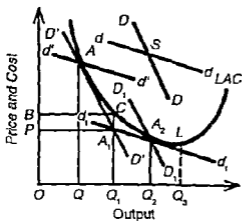
चित्र 27 7

फर्म Q_2A_2 कीमत वसूल करेगी, वस्तु की OQ_2 मात्राएँ बेचेगी और सामान्य लाभ प्राप्त करेगी।

इस प्रकार समूह सतुलन दो शर्तो से निश्चित होता है प्रथम, d_1d_1 वक्र अवश्य LAC वक्र का स्पर्श करे, और दूसरे, D_1D_1 वक्र अवश्य स्पर्श-बिन्दु पर d_1d_1 और LAC दोनो वक्रो को काटे। परन्तु d_1d_1 और LAC वक्रों का स्पर्श-बिन्दु इष्टतम उत्पादन का स्तर नहीं है। LAC वक्र का न्यूनतम बिन्दु L स्पर्श-बिन्दु A_2 के दाईं ओर है क्योकि माँग वक्र क्षैतिज नहीं है, बल्कि नीचे की ओर ढालू है। इस प्रकार, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म सतुलन मे होती है और वह इष्टतम फर्म है यद्यपि उसमे अतिरिक्त क्षमता होती है जिसे चित्र 27 7 मे A_2L द्वारा दर्शाया गया है।

समूह सतुलन की आलोचनाए (Criticisms of Group Equilibrium)

चैम्बरलेन के समूह सतुलन सिद्धान्त की आलोचना उनके अपने अनुयायियों ने ही की है, जैसे रॉबर्ट ट्रिफिन (Robert Triffin), फ्रिज मैक्लप (Fritz Machlup) और आर्थर स्मिथीज़ (Arthur Smithies)।

1 ट्रिफिन ने तो "समूह" के विचार को ही अस्वीकार कर दिया है। उसके अनुसार एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का सिद्धान्त केवल फर्म के सतुलन की व्याख्या कर सकता है। यह स्थानापन्नों की शृखला (chain) मे, अन्तर को स्पष्ट किए बिना उद्योग के संतुलन की व्याख्या नहीं कर सकता। जब वस्तु विभेदीकरण होता है तो प्रत्येक फर्म स्वय एक उद्योग होती है। इसलिए उद्योग के मांग और लागत वक्र खींचने के लिए भिन्नित वस्तुओ को जमा करना सभव नहीं है। ऐसा योग अर्थहीन बन जाता है जब निकट स्थानापन्नो के लिए जिनसे वस्तु समूह बना हो, एक कीमत हो।

2 एण्ड्रयूज ने चैम्बरलेन की आलोचना उद्योग की धारणा त्याग देने पर की है। उसके अनुसार, उद्योग की धारणा को अस्वीकारना अनावश्यक और अवाछनीय है क्योकि इसका आर्थिक विश्लेषण और वास्तविक विश्व स्थितियो मे बहुत महत्त्व है।

3 उलझन तब भी उत्पन्न होती है जब चैम्बरलेन प्रत्येक फर्म को एकाधिकारात्मक मानता है जिसका अभिप्राय समूह की वस्तुओ मे माँग की कम प्रति-लोच है; और दूसरी ओर, जब वह धारणा बना लेता है कि समूह की फर्में करीब-करीब परस्पर-निर्भर है, जिसका अभिप्राय यह है कि समूह की वस्तुओं मे माँग की प्रति-लोच अधिक है। यह विश्लेषण को अस्पष्ट बनाता है क्योकि यह एक ही समूह मे वस्तुओ के लिए लोच के सही मूल्य को स्पष्ट नहीं करता है।

4 यह समझा जाता है कि चैम्बरलेन की माँग और लागत दोनो वक्रो की समरूपता की "शौर्यपूर्ण" मान्यता (heroic assumption) चैम्बरलेन द्वारा दी गई स्पर्श-शर्त (tangency condition) से मेल नहीं खाती। सब फर्मों की माँग और लागत वक्रों की समरूपता का मतलब है कि वस्तु समरूप है ओर उस स्थिति मे माँग वक्र क्षैतिज होता है तथा स्पर्श LAC के न्यूनतम बिन्दु पर होता है। इसलिए समरूपता की मान्यता (uniformity assumption) ठीक नहीं है।

5 इसी प्रकार, एक फर्म के कीमत-समायोजन के अन्य फर्मों पर नगण्य प्रभाव की सगति मान्यता (symmetry assumption) भी स्पर्श-हल से मेल नहीं खाती। वास्तव मे, विशुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत, जहाँ माँग वक्र क्षैतिज हो, वहीं व्यक्तिगत फर्म की कीमत-नीति का प्रभाव नगण्य हो सकता है। इसलिए स्पर्श-बिन्दु औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर होगा।

6 सबसे कडी आलोचना फैलनर (Fellner) ने की है जो एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के साथ-साथ चैम्बरलेन के वस्तु-विभेदीकरण विषयक दृष्टिकोण पर भी आपत्ति करता है। विशुद्ध प्रतियोगिता की भाँति, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता भी दुर्लभ मार्किट स्थिति है। इस प्रकार वस्तु विभेदीकरण ऐसे मार्किट की विशेषता है जिसमे "थोडे प्रतियोगियो मे प्रतियोगिता हो" (competition among the few)।

7 कालडर ने चैम्बरलेन की उसकी इस मान्यता के लिए आलोचना की है कि फर्मे वस्तु समूह मे प्रवेश करती है। उसके अनुसार, खुले प्रवेश का अर्थ है कि एक फर्म अपने प्रतिद्वन्द्वियो की तरह एक पूर्ण समरूप वस्तु का उत्पादन कर सकती है। कालडर का यह तर्क है कि ऐसी स्थिति मे एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे वस्तु विभेदीकरण के साथ खुला प्रवेश की मान्यता टिक नहीं सकती है।

8 एण्ड्रयूज ने चैम्बरलेन की आलोचना ऋणात्मक ढाल वाला *dd* माग वक्र खींचने पर की है। *उसके अनुसार, चैम्बरलेन का dd वक्र केवल तब लागू होता है जब एक फर्म अल्पकाल मे अन्तिम* उपभोक्ताओ को अपनी वस्तु सीधे बेचती है। अल्पकाल के लिए ही उपभोक्ता एक वस्तु के साथ जुडे रहेगे जिसकी कीमत उसके निकट स्थानापन्नो से ऊची होती है। लेकिन दीर्घकाल मे उपभोक्ता कम महगे स्थानापन्न खरीदेगे। इसलिए एक नीचे की ओर ढालू माग वक्र *dd* केवल दीर्घकाल मे ही हो सकता है, यदि उपभोक्ता अविवेकी हो।

9 समूह सतुलन के विश्लेषण मे *dd* और *DD* वक्रो की चैम्बरलेन की प्रस्तावना भी दोषपूर्ण है क्योकि इससे *dd* और *DD* वक्रो मे परिवर्तन का सम्बन्ध स्पष्ट नहीं होता। परिणाम यह होता है कि समूह मे फर्मो की सख्या और आकार पर या कीमत पर अथवा माँग या लागत मे परिवर्तन नहीं बताया जा सकता। इस कारण, आर्चिबाल्ड समूह सतुलन के सिद्धान्त को अपूर्ण मानता है।

5 अतिरिक्त क्षमता का सिद्धान्त
(THEORY OF EXCESS CAPACITY)

अतिरिक्त क्षमता का विचार हाल ही मे शुरू नहीं हुआ है बल्कि विक्सैल (Wicksell) और केर्नस (Cairnes) की प्रारंभिक कृतियो मे मिलता है। सराफा (Piero Saraffa) और श्रीमती रोबिन्सन ने भी इसकी रूपरेखा दी। परन्तु चैम्बरलेन ने बहुत ही व्यवस्थित ढग से इसका प्रतिपादन किया और चैम्बरलेन का अनुकरण कॉलडर, काहन (Kahn), हैरड (Harrod) और कैसल्स (Cassels) ने किया।

अतिरिक्त (या अप्रयुक्त) क्षमता के सिद्धान्त का सम्बन्ध दीर्घकालीन मे एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के साथ है। इसकी यह परिभाषा दी जाती है "कि दीर्घकालीन मे, इष्टतम उत्पादन और वास्तव मे प्राप्त किए गए उत्पादन का अन्तर" अतिरिक्त क्षमता है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत माँग वक्र (AR) दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) को उसके न्यूनतम बिन्दु पर स्पर्श करता है और सतुलन की सब शर्तें पूरी हो जाती है LMC = MR और AR (कीमत) = न्यूनतम LAC। इसका अभिप्राय यह है कि नई फर्मों का प्रवेश वर्तमान फर्मों को इस बात के लिए विवश करता है कि वे न्यूनतम औसत कुल लागतो के निम्नतम बिन्दु पर अपने

चित्र 27 8

उत्पादन के साधनों का सबसे अधिक प्रयोग करे। चित्र 27 8 में, बिन्दु E पर असाधारण लाभ प्रतियोगिता के कारण समाप्त हो जाएँगे क्योंकि MR = LMC = AR = LAC न्यूनतम बिन्दु E पर और उत्पादन का दक्षतम स्तर OQ होगा जिसका समाज उपभोग करेगा। यह आदर्श अथवा इष्टतम उत्पादन है, जिसका दीर्घकालीन में फर्में उत्पादन करती है।
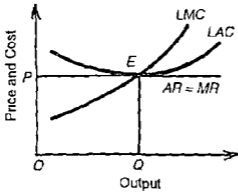
पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में व्यक्तिगत फर्म के सामने माँग वक्र क्षैतिज नहीं होता, बल्कि नीचे की ओर ढालू होता है। नीचे की ओर ढालू माँग वक्र LAC वक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु पर स्पर्श नहीं कर सकता। सतुलन की दोहरी शर्त LMC = MR = AR (d) = न्यूनतम LAC पूरी नहीं होगी। इसलिए, फर्में जब सामान्य लाभ कमाती है, तब भी इष्टतम आकार से कम होगी। कोई फर्म आदर्श उत्पादन नहीं करना चाहेगी, क्योंकि सतुलन उत्पादन से अधिक उत्पादन करने से सीमान्त आगम (MR) से दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) बढ जाएगी। इस प्रकार, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म इष्टतम से कम आकार की होगी और वह अतिरिक्त क्षमता के अन्तर्गत कार्य करेगी। इसे चित्र 27 9 मे दिखाया गया है, जहाँ एकाधिकारात्मक प्रतियोगी फर्म का माँग वक्र d है और उसके अनुरूप सीमान्त आगम वक्र MR_1 है। LAC और LMC दीर्घकालीन औसत लागत और सीमान्त लागत वक्र है। फर्म बिन्दु E_1 पर सतुलन में है, जहाँ LMC वक्र MR_1 वक्र को नीचे से काटता है और Q_1A_1 कीमत पर OQ_1 उत्पादन निश्चित होता है। OQ_1 संतुलन उत्पादन तो है परन्तु आदर्श उत्पादन नहीं है, क्योंकि LAC वक्र को d वक्र बिन्दु A_1 पर स्पर्श करता है, जो न्यूनतम बिन्दु L के बाएँ को स्थित है। यदि फर्म OQ_1 से अधिक उत्पादन करने का प्रयत्न करेगी, तो उसे हानि होगी क्योंकि सतुलन बिन्दु E_1 से परे, LMC > MR_1 इस प्रकार, फर्म की ऋणात्मक अतिरिक्त क्षमता (negative excess capacity) है जिसे QQ_1 मापता है और एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के

चित्र 27 9

अन्तर्गत काम करते हुए फर्म उसका उपयोग नहीं कर सकती।

चित्र 27.9 की सहायता से दोनों सतुलन स्थितियों की तुलना प्रकट करती है कि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत कोई भी फर्म अपनी पूरी क्षमता पर काम नहीं कर सकती। चिरकालिक अतिरिक्त क्षमता और अपव्यय रहेगे। ऐसा इसलिए कि पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा प्रत्येक फर्म कम उत्पादन करती है और अधिक कीमत वसूल करती है। प्रथम, एकाधिकारात्मक प्रतियोगी उत्पादन पूर्ण प्रतियोगिता उत्पादन से कम है $OQ_1 < OQ$, दूसरे, एकाधिकारात्मक प्रतियोगी कीमत पूर्ण प्रतियोगिता कीमत से अधिक है, $Q_1A_1 > QE$।

चैम्बरलेन की अतिरिक्त क्षमता की धारणा (Chamberlin's Concept of Excess Capacity)

चैम्बरलेन की अतिरिक्त क्षमता की व्याख्या पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत आदर्श उत्पादन (ideal output) से भिन्न है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म अपने LAC वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर उत्पादन करती है और उसका समानातर माग वक्र इस बिन्दु पर स्पर्श करता है। उसका उत्पादन आदर्श है और दीर्घकाल मे कोई अतिरिक्त क्षमता नहीं है। क्योकि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत, वस्तु विभेदीकरण के कारण फर्म का माग वक्र नीचे की ओर ढालू होता है, इसलिए फर्म का दीर्घकालीन सतुलन LAC वक्र के न्यूनतम बिन्दु के बाईं ओर होता है। चैम्बरलेन के अनुसार, जब तक एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु समूह मे प्रवेश की स्वतत्रता और कीमत प्रतियोगिता पाई जाती है, फर्म के माग वक्र और LAC वक्र के बीच स्पर्श बिन्दु से आदर्श उत्पादन होता है। ऐसा इस कारण कि उपभोक्ता वस्तु विभेदीकरण चाहते है और वे एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्राप्य विविध प्रकार की वस्तुओं और उनके चुनाव के बदले बढ़ी हुई उत्पादन लागते स्वीकार करने को तैयार होते है। चैम्बरलेन बल देता है कि कीमत प्रतियोगिता और खुला प्रवेश के साथ एक एकाधिकारात्मक प्रतियोगी फर्म की वास्तविक दीर्घकालीन औसत उत्पादन लागत और न्यूनतम LAC के बीच अन्तर वस्तु विभेदीकरण के कारण "भिन्नता की लागत" को व्यक्त करता है। वह औसत उत्पादन लागत मे इस अन्तर को "अतिरिक्त क्षमता" का माप नहीं मानता है।

चैम्बरलेन के अतिरिक्त क्षमता विश्लेषण को दो भागो मे बाटा जा सकता है (1) कीमत प्रतियोगिता के साथ समूह मे प्रवेश, और (2) गैर-कीमत प्रतियोगिता के साथ प्रवेश।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

चैम्बरलेन की अतिरिक्त क्षमता की धारणा निम्न मान्यताओं पर आधारित है

(i) फर्मों की सख्या बहुत है।

(ii) प्रत्येक फर्म अन्य फर्मों से स्वतन्त्र रहकर, समान वस्तु का उत्पादन करती है।

(iii) वह कम कीमत वसूल करके अन्य फर्मों के ग्राहकों को आकर्षित कर सकती है और कीमत बढ़ाकर अपने कुछ ग्राहकों को खो देगी।

(iv) वस्तुओं के विभिन्न प्रकारो मे उपभोक्ताओं के अधिमान काफी समानता से बँटे होते हैं।

(v) वस्तु पर किसी फर्म का सस्थानक-एकाधिकार (institutional monopoly) नहीं होना।

(vi) फर्मों को प्रवेश करने की स्वतत्रता है।

(vii) सब फर्मों के दीर्घकालीन लागत वक्र समरूप तथा U के आकार के होते हैं।

(1) कीमत प्रतियोगिता के साथ अतिरिक्त क्षमता (Excess Capacity with Price Competition)

ये मान्यताए दी होने पर, सक्रिय कीमत प्रतियोगिता के साथ चैम्बरलेन की आदर्श उत्पादन

चित्र 27 10
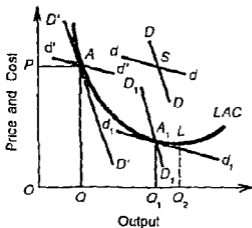
और अतिरिक्त क्षमता की धारणाओं की चित्र 27 10 में व्याख्या की गई है। मान लीजिए कि प्रारंभिक अल्पकालीन सतुलन S बिन्दु पर है जहा फर्मों का माग वक्र dd और समूह माग वक्र DD काटते हैं, और वर्तमान फर्में सामान्य से अधिक लाभ कमा रही हैं। ऐसा इस कारण कि बिन्दु S के अनुरूप OP कीमत वक्र LAC के ऊपर है। असामान्य लाभों से आकर्षित होकर दीर्घकाल में नए फर्में समूह में प्रवेश करती हैं। वे समान वस्तुएं उत्पादित करती हैं जिससे समूह में प्रत्येक फर्म की बिक्री कम हो जाती है और समूह का माग वक्र DD से $D'D'$ पर सरक जाता है। नया सतुलन A बिन्दु पर स्थापित होता है, जहा $D'D'$ वक्र LAC वक्र को स्पर्श करता है। फर्मों में प्रतियोगिता से कीमत कम होती है तथा प्रत्येक फर्म का $d'd'$ वक्र $D'D'$ वक्र के साथ-साथ नीचे की ओर d_1d_1 पर सरकता जाता है जब तक कि यह LAC वक्र के साथ A_1 बिन्दु पर स्पर्श नहीं करता है। साथ ही $D'D'$ वक्र भी नीचे की ओर D_1D_1 पर धकेल दिया जाता है और यह d_1d_1 वक्र और LAC वक्र दोनों को A_1 बिन्दु पर काटता है। यह समूह की दीर्घकालीन स्थिर सतुलन की स्थिति है। प्रत्येक फर्म Q_1A_1 कीमत पर आदर्श उत्पादन OQ_1 कर रही है, सामान्य लाभ कमा रही है और इसमें कोई अतिरिक्त क्षमता नहीं है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत आदर्श उत्पादन OQ_2 है, जो LAC के न्यूनतम बिन्दु L पर स्थापित होता है। पूर्ण प्रतियोगी उत्पादन और एकाधिकारात्मक प्रतियोगी उत्पादन में उत्पादन अन्तर Q_1Q_2 लागत अन्तर है, जो वस्तु विभेदीकरण में उपभोक्ता विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का आनद लेने के लिए देने को तैयार है। इस प्रकार, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत खुला प्रवेश और सक्रिय कीमत प्रतियोगिता होने के साथ अतिरिक्त क्षमता नहीं होती है।

(2) कीमत-रहित प्रतियोगिता के साथ अतिरिक्त क्षमता (Excess Capacity with Non-Price Competition)

चैम्बरलेन के अनुसार, अतिरिक्त क्षमता तब पाई जाती है, जब एक एकाधिकारात्मक प्रतियोगी मार्किट में फर्मों के खुले प्रवेश के बावजूद सक्रिय कीमत प्रतियोगिता नहीं होती है। ऐसी स्थिति के लिए वह निम्न कारण देता है (i) कीमत निश्चित करते समय फर्में माग का ध्यान न रखकर लागतों का ध्यान रखें। (ii) वे अधिकतम लाभों का उद्देश्य न रखकर साधारण लाभों को ही लक्ष्य बनाएं। (iii) वे "जियो और जीने दो" की नीति अपनाएं और कीमत में कमी न करें। (iv) वे रस्मी या गुप्त समझौते, खुली कीमत सस्थाएं, निष्ठा एव वफादारी के निर्माण के लिए व्यापार सस्था क्रियाएं, और कीमत को कायम रखना अपना सकती हैं। (v) उत्पादक व्यापारियों से समान कीमतें ले सकते हैं। (vi) कीमत कटौती से ध्यान हटाने के लिए फर्में वस्तु का अत्यधिक विभेदीकरण

अपना सकती है। (vii) व्यावसायिक या पेशेवराना नैतिकता फर्मों को सक्रिय कीमत प्रतियोगिता करने से रोकती है।

जब इन घटको के पाए जाने के कारण कोई कीमत प्रतियोगिता नहीं होती, तो *dd* वक्र का कोई महत्त्व नहीं रह जाता और फर्मों का सबध केवल समूह के वक्र *DD* से होता है। मान लीजिए कि प्रारम्भिक अल्पकालीन सतुलन *S* बिन्दु पर है जहा फर्में सामान्य से अधिक लाभ कमा रही है क्योंकि बिन्दु *S* के अनुरूप *OP* कीमत LAC वक्र से ऊपर है। समूह मे नई फर्मों के प्रवेश से, असामान्य लाभ फर्मों में प्रतियोगिता के कारण समाप्त हो जाएगे। नई फर्में मार्किट को आपस मे बाट लेगी तथा चित्र 27 10 मे *DD* वक्र बाईं ओर सरककर *D'D'* हो जाएगा, जहा वह LAC वक्र के साथ *A* बिन्दु पर स्पर्श करेगा। यह बिन्दु *A* समूह मे सभी फर्मों के लिए कीमत प्रतियोगिता के न होने पर, स्थिर सतुलन का बिन्दु है। इस बिन्दु पर सभी फर्में सामान्य लाभ कमा रही हे। प्रत्येक फर्म *QA* (= *OP*) कीमत पर *OQ* मात्रा का उत्पादन और विक्रय कर रही है। चैम्बरलेन के विश्लेषण मे, OQ_1 "आदर्श उत्पादन" है। परन्तु कीमत प्रतियोगिता के बिना समूह मे प्रत्येक फर्म *OQ* उत्पादन कर रही है। इस प्रकार कीमत-रहित एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे QQ_1 अतिरिक्त क्षमता व्यक्त करती है।

प्रोफेसर चैम्बरलेन निष्कर्ष देते है कि, जब दीर्घकालीन मे एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमते नहीं गिरतीं और लागते बढ जाती है तो इन दोनों को अतिरिक्त उत्पादन क्षमता को बढाकर बराबर किया जाता है क्योंकि इसमे स्वय शोधकता (automatic corrective) नहीं होती। उत्पादकों द्वारा गलत गणना या माँग और लागत स्थितियो मे अचानक परिवर्तन हो जाने से, विशुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत ऐसी अतिरिक्त क्षमता प्रकट हो सकती है। परन्तु यह अतिरिक्त क्षमता एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की विशेषता है, जहाँ दीर्घकालीन मे हानि के साथ इसका *विकास हो सकता है। कीमते हमेशा लागत* को पूरा करती है और *हो सकता है कि कीमत* प्रतियोगिता के कार्यकरण की असफलता के माध्यम से यह वास्तव मे स्थायी और सामान्य बन जाय। अतिरिक्त क्षमता को कभी समाप्त नहीं किया जा सकता। परिणाम होता है, ऊँची कीमते तथा अपव्यय। ये एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अपव्यय होते है।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)

चैम्बरलेन के अतिरिक्त क्षमता सिद्धान्त की आलोचना इसकी अनावश्यक मान्यताओ के कारण की गई है।

1 यह मान्यता ठीक नहीं है कि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म द्वारा किए गए कीमत परिवर्तन का अन्य फर्मों पर समान रूप से विस्तार हो जाएगा। क्योंकि प्रत्येक उत्पादक अपने क्षेत्र मे एकाधिकारी है, इसलिए वह अन्य उत्पादको के कीमत और वस्तु परिवर्तनो को महत्त्व नहीं देगा। प्रत्येक उत्पादक उस कीमत और उत्पादन को निश्चित करने का प्रयत्न करेगा जिस पर उसे अधिकतम लाभ की आशा होगी। इसलिए, जो उत्पादक अपनी वस्तु की कीमत मे परिवर्तन करता है, उसका माँग वक्र खींचते समय अन्य उत्पादकों की कीमतो और वस्तुओ को दिया हुआ नहीं माना जा सकता। अत उसका 'वास्तविक माँग वक्र' अनिश्चित होता है, क्योंकि उसके लिए कीमत और माँगी गई मात्रा मे वास्तविक सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव नहीं।

2 यह मान्यता है कि नई फर्मों के आने से, दीर्घकालीन मे, माँग वक्र नीचे को चला जाता है, परन्तु सिद्धान्त सभावी प्रतिद्वन्द्वियो पर ध्यान देने मे असफल रहता है, क्योंकि समूह मे सभावी प्रवेशको के भय से उत्पादक केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त करना चाहेगा। हो सकता है कि इससे

उसका माँग वक्र अधिक लोचदार हो जाए और वह अतिरिक्त क्षमता की स्थिति मे ही रहे।

3 फिर यह मान्यता भी अवास्तविक है कि उपभोक्ताओ के अधिमान समान रूप से वितरित होते है और नई फर्मों के आने से अतिरिक्त लाभ समाप्त हो जाएँगे। इसका अभिप्राय है कि माँग और लागत वक्र स्पर्श करते है। परन्तु पैमाने की मितव्ययिताओ के होते हुए, व्यक्तिगत फर्म के माँग और लागत वक्र एक-दूसरे को स्पर्श नहीं कर सकते, जब सभाव्य प्रतियोगिता हो। स्पर्शिता की शर्त केवल उसी समय पूरी होती है जब पैमाने की मितव्ययिताओ का अभाव हो ओर माँग वक्र क्षैतिज बन जाएँ। परन्तु ऐसा केवल पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत ही हो सकता है। इसलिए यदि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे पैमाने की मितव्ययिताए बिल्कुल न हो (अर्थात् LAC वक्र क्षैतिज हो) तो अतिरिक्त क्षमता नहीं होगी। लेकिन लाभ समाप्त हो जाएगे जब तक माग वक्र लोचदार हो न कि पूर्ण लोचदार।

4 सस्थानिक-एकाधिकार (institutional monopoly)[2] के अभाव की मान्यता से फर्मो के लागत वक्रो की समानता की मान्यता प्राप्त होती है जो एक वस्तु को दूसरी से पूर्णतया अलग करती है। परन्तु सस्थानिक-एकाधिकार हमेशा वर्तमान रहते है ओर प्रमुख रूप से मार्किट अपूर्णताओ के कारण होते हे। यदि वस्तु के भिन्न-भिन्न प्रकारो के लिए उपभोक्ताओं के अधिमान दिए हुए हो, तो सस्थानिक-एकाधिकार अतिरिक्त क्षमता को रोकने का प्रयत्न करेगा। परन्तु नई फर्मो के लिए पुरानी फर्मो के अतिरिक्त लाभो को समाप्त करना सभव नहीं होगा।

5 यह मान्यता भी ठीक नहीं है कि प्रत्येक फर्म केवल एक अकेली वस्तु का उत्पादन करती है। वास्तव मे, उत्पादक किसी एक अकेली वस्तु के उत्पादन मे नहीं बल्कि कई भिन्नित वस्तुओ के उत्पादन मे विशेषीकरण करते है। वस्तु की दो या अधिक किस्मो का उत्पादन करके फर्म अविभाज्यताओ को पार कर लेती है ओर इस प्रकार अपव्यय और अतिरिक्त क्षमता से बच जाती है। क्योकि प्रत्येक फर्म एक ही वस्तु की विभिन्न किस्मे उत्पादित करती है, इसलिए प्रत्येक फर्म द्वारा उत्पादन की गई प्रत्येक किस्म का भाग कम हो जाएगा' वस्तु के प्रत्येक प्रकार के लिए माँग वक्र बहुत अधिक लोचदार हो जाएगा, कीमते बढ जाएँगी और लाभ समाप्त हो जाएँगे। इस प्रकार अतिरिक्त क्षमता न्यूनतम हो जाएगी।

6 जब एक समूह के बीच फर्मो के विलय या सगठन के लिए दबाव बढता हे, तो एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का स्पर्श हल (tangency solution) समाप्त हो जाता है। यदि फर्मो मे विलय की प्रवृत्ति पाई जाती हे, तो वे सयुक्त विभेदीकृत वस्तु को अधिक सस्ती और लाभदायकता मे उत्पादित कर सकती है। ये उत्पादन के साज-समान को आपस मे बाट सकती हे ओर अधिक समय के लिए प्रयोग कर सकती है। क्योकि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे विभेदीकृत वस्तुए निकट स्थानापन्न होती हे, इसलिए उनका उत्पादन करने हेतु उत्पादन सुविधाओ के थोडे से भाग को परिवर्तित करने की आवश्यकता होती है। अत फर्मो के विलय या सगठन की ओर दबाव से स्पर्श हल समाप्त हो जाएगा।

7 हैरड के अनुसार, अतिरिक्त क्षमता की धारणा से अभिप्राय है कि उद्यमी असगतिपूर्ण कार्य करता है क्योकि वह अपने उत्पादन का निर्धारण करने के लिए अल्पकालीन MR वक्र ओर दीर्घकालीन MC वक्र का प्रयोग करता है। तब वह ऐसी कीमत निश्चित करता है कि नई फर्मे प्रवेश करती है और उसके MR वक्र को नीचे सरका देती है। इस प्रकार यह सिद्धात इस मान्यता पर आधारित है कि उद्यमी विवेकी है परन्तु साथ ही अदूरदर्शी है। इसलिए वह फर्म का इष्टतम उत्पादन निर्धारित करने के लिए दीर्घकालीन MR ओर MC वक्रो के प्रयोग का सुझाव देता है और यह निष्कर्ष देता हे कि अपूर्ण प्रतियोगिता आमतोर पर अतिरिक्त क्षमता करने की प्रवृत्ति नहीं

2 सस्थानिक एकाधिकारों में पेटेंट, कापीराइट, ट्रेड मार्क या ट्रेड नाम शामिल होते हैं।

रखती है। इसलिए अर्थशास्त्रियों को इस सामान्यतया स्वीकृत सिद्धांत को त्याग देना चाहिए।

(1) इसका महत्त्व (Its Importance)

इन सीमाओं के बावजूद अतिरिक्त क्षमता के सिद्धान्त का व्यावहारिक महत्त्व बहुत है। प्रोफेसर **कॉलडर** ने इसे "बौद्धिक रूप से आश्चर्यजनक", "बहुत ही प्रतिभासम्पन्न" और "क्रान्तिकारी सिद्धान्त" कहा है।[3]

यह परम्परा के विरुद्ध एक नई सभावना को प्रदर्शित करता है कि पूर्ति में वृद्धि होने से कीमत में वृद्धि हो सकती है। "प्रतियोगिता के अपव्यय", जो अब तक रहस्य बने हुए थे, इस सिद्धान्त द्वारा खोल दिए गए हैं। उनका सम्बन्ध एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता से है, न कि पूर्ण प्रतियोगिता से जैसा कि पुराने अर्थशास्त्री गलती से समझते थे। यह इस प्रस्थापना (proposition) की सत्यता को स्थापित करता है कि पूर्ण प्रतियोगिता और बढ़ते प्रतिफल मेल नहीं खाते और निस्सन्देह इस बात को सिद्ध करता है कि घटती लागतों का परिणाम, अन्त मे, एकाधिकार या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता है। जब एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता होती है, तो फर्मों की सख्या अधिक होगी। परन्तु प्रत्येक फर्म का आकार उसकी अपेक्षा छोटा होगा जो पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत होता है। कम दक्षता की फर्मों के बढ़ने से इससे ससाधनों का अपव्ययी (wasteful) प्रयोग होता है। ऐसी फर्में आवश्यकता से अधिक मानव-शक्ति, उपकरण और कच्चे माल का प्रयोग करती हैं। इसका परिणाम होता है अतिरिक्त या उपयोग न की गई क्षमता।

अधिकतर अतिरिक्त क्षमता का कारण स्थिर कीमतें होती हैं। परन्तु जहाँ कीमतें स्थिर नहीं होतीं, वहाँ नए प्रतियोगियों के प्रवेश से माँग की लोच बढ़ जाएगी, कीमतें और लाभ कम हो जाएँगे। यदि उपभोक्ताओं मे क्रियाहीनता वर्तमान है, तो लागतों से कीमतें अधिक हो जाएँगी और लाभों के कम होने की सभावना नहीं होती। इस प्रकार, जैसा कि आज की दुनिया में होता है, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्मों की अतिरिक्त क्षमता और अपव्यय तो रहेंगे ही।

6 विक्रय लागतें
(SELLING COSTS)

विज्ञापन, विक्रय कला, मुफ्त सैम्पल और सेवा, घर-घर जाकर प्रचार करने इत्यादि पर व्यय विक्रय लागतें होती हैं। **पूर्ण प्रतियोगिता** के अन्तर्गत, जहाँ वस्तुएँ समरूप होती हैं, विक्रय की कोई समस्या नहीं होती। फर्म बाजार की चालू कीमत पर अपनी वस्तु की कितनी भी चाहे मात्रा बेच सकती है। इसलिए, विज्ञापन की जरूरत नहीं होती। हाँ, यदि सब फर्में अधिक विक्रय करना चाहती हैं, तो उनमें प्रतियोगिता से कीमतें गिरेंगी, जब तक कि नया सतुलन बिन्दु नहीं आ जाता। इस कीमत पर प्रत्येक फर्म जितनी भी मात्राएँ बेचना चाहे, बेच सकती है।

एकाधिकार के अन्तर्गत भी विक्रय लागतों की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वहाँ प्रतियोगिता नहीं होती। परन्तु कभी-कभी एकाधिकारी अपनी वस्तु का विज्ञापन देता है ताकि लोग उसकी वस्तु की कीमत और प्रयोग से परिचित हो जाएँ और उसकी वस्तु को खरीदते रहें।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत जहाँ वस्तु विभेदीकृत होती है, बिक्री को बढ़ाने के लिए विक्रय लागतें आवश्यक हैं। उपभोक्ताओं को अन्य वस्तुओं के अधिमान में एक वस्तु खरीदने के लिए राज़ी करने मे ये लागतें उठाई जाती हैं। **चैम्बरलेन** ने उनकी यह परिभाषा दी है "कि ये वे लागतें होती हैं जो माँग वक्र की स्थिति या आकार को बदलने के लिए उठाई जाती हैं।"[4] वह

3 It is an intellectually striking a highly ingenious and revolutionary doctrine
4 Costs incurred in order to alter the position or shape of the demand curve for a product

सब प्रकार के विज्ञापनों को विक्रय लागतों का समानार्थक समझता है। परन्तु आजकल की व्यापार शब्दावली में विक्रय लागत शब्द विज्ञापन से अधिक व्यापक है और इसमें विज्ञापन के अतिरिक्त विक्रय करने वालों का खर्च, विक्रेताओं को प्रदर्शन के लिए छूट, मुफ्त सेवा, मुफ्त सैम्पल, इनामी कूपन और उपहार आदि शामिल है।

विज्ञापन दो प्रकार का होता है, सूचनात्मक (informative) और प्रतियोगी (competitive)। सूचनात्मक विज्ञापन का उद्देश्य होता है क्रेताओं को वस्तु के अस्तित्व और प्रयोग से परिचित करना। समाचारपत्रों में बहुत-से विज्ञापन इस प्रकार के होते हैं। वे वस्तु के बारे में सामान्य व तकनीकी सूचना देते हैं और इस बात का प्रयत्न नहीं करते कि क्रेताओं को अपनी वस्तु खरीदने के लिए तैयार करें। इस प्रकार के विज्ञापन साधारण क्रेता के लिए होते हैं ताकि वह वस्तु के विभिन्न ब्रॉडों में से विचारशील चुनाव कर सके। वनस्पति घी सस्था, चाय बोर्ड या कॉफी बोर्ड के विज्ञापन, सूचनात्मक प्रकार के होते हैं क्योंकि वे समूह की सब फर्मों की बिक्री बढाने में मदद देते हैं।

दूसरी ओर, प्रतियोगी विज्ञापन का उद्देश्य होता है अन्य फर्मों की वस्तुओं के मुकाबले में एक विशेष फर्म की वस्तु की बिक्री बढाना। आकर्षक पोस्टर, छोटे चलचित्र, व्यावसायिक-प्रसारण जिनमें एक प्रसिद्ध फिल्म स्टार एक विशेष वस्तु की तारीफ में कुछ करता हुआ और क्रेताओं से उसी वस्तु को उसके श्रेष्ठतम होने के कारण खरीदने का आग्रह करता हुआ दिखाया जाता है प्रेरक (persuasive) या प्रतियोगी विज्ञापन होता है। इसका उद्देश्य, अन्य फर्मों की लागत पर एक फर्म की बिक्री को बढाना होता है। हम इस प्रकार की विक्रय लागतों पर विचार करेंगे।

इन दो प्रकार के विज्ञापनों में से पहले सामाजिकता की दृष्टि से उन सब स्थितियों में लाभदायक है जहाँ विज्ञापित वस्तुएँ उपयोगी हों। इस प्रकार सूचनात्मक विज्ञापन ज्ञान बढाते हैं। परन्तु, प्रतियोगी विज्ञापन सामाजिक दृष्टि से अच्छे नहीं होते हैं क्योंकि उनसे साधनों की व्यर्थ हानि होती है।

उत्पादन लागतें बनाम विक्रय लागतें (Production Costs *vs* Selling Costs)—क्योंकि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म को विक्रय लागतें खर्च करनी पड़ती है, इसलिए फर्म की कुल लागतों में उत्पादन लागतें और विक्रय लागतें शामिल होती हैं। उत्पादन लागतों में वे सब खर्च शामिल होते हैं, जो एक विशेष वस्तु को बनाने और उसे उपभोक्ताओं के लिए गन्तव्य स्थान पर भेजने में पडते हैं। ये सब साधनों, जैसे भूमि, श्रम, पूँजी और सगठन की सेवाओं पर किए गए कुल खर्चे हैं जोकि वस्तु के निर्माण में लगते हैं और इनमें साथ ही पैकिंग, यातायात और सेवा के दाम भी शामिल होते हैं। विक्रय लागतें वे होती हैं जो एक विशेष वस्तु के लिए उपभोक्ता के अधिमान को बदलने के लिए उठाई जाती हैं। उनका उद्देश्य होता है, दी हुई कीमत पर एक वस्तु की माँग को दूसरी की अपेक्षा बढाना। प्रोफेसर चैम्बरलेन दोनों में अन्तर इन शब्दों में करता है, "पहली (उत्पादन) लागतें उपयोगिताएँ बनाती हैं ताकि माँग को पूरा किया जा सके और दूसरी माँग वक्रों को ही बनाती और सरकाती हैं।" स्पष्टतया "वे लागतें जो एक वस्तु के माँग वक्र को बदलती हैं, विक्रय लागतें होती हैं और जो उसे नहीं बदलती, उत्पादन लागतें होती हैं।"[5] दूसरे शब्दों में, "वस्तु को माँग के अनुकूल बनाने की लागतें उत्पादन लागतें और माँग को वस्तु के अनुकूल बनाने की लागतें विक्रय लागतें होती हैं।"[6]

पर, उत्पादन लागतों और विक्रय लागतों में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, बाँधने के लिए प्रयोग में आने वाले काचाभ पत्र (Cellophane wrapper) की लागत क्या

5 "Those which alter the demand curve for a *product* are selling costs and those which do not, are production costs."

6 "Those made to adapt the product to the demand are production costs *and* those made to adapt the demand to the product are selling costs."

है? उत्पादन लागत है या विक्रय लागत? वास्तव मे, "समस्त कीमत व्यवस्था मे शुरू से अन्त तक दोनो प्रकार की लागते आपस मे बँधी रहती है जिससे किसी भी स्तर पर, जैसे निर्माण के स्तर पर, यह नहीं कहा जा सकता कि एक कहाँ पर समाप्त होती है और दूसरी कहाँ से शुरु होती है।"

विक्रय लागत वक्र और उसका उत्पादन लागतों पर प्रभाव (The Curve of Selling Costs and Its Influence on Production Costs)

विक्रय लागतो का वक्र आर्थिक विश्लेषण का एक औजार है जिसका प्रचलन चैम्बरलेन ने किया। यह वस्तु की प्रति इकाई औसत विक्रय लागत का वक्र होता है। *यह औसत लागत वक्र से मिलता-जुलता* और उसी की भाँति U के आकार का होता है। परिवर्ती अनुपातो के नियम (law of variable proportions) के प्रभाव के अन्तर्गत विक्रय लागत वक्र पहले गिरता है, न्यूनतम बिन्दु पर पहुँच जाता है और फिर ऊपर गति करता है *जैसा कि चित्र 27.11 मे दिखाया गया है।*

चित्र 27.11

SC विक्रय लागतो का वक्र है। AQ वस्तु की OA इकाइयो के विक्रय की औसत लागत है, क्योंकि विक्रय की कुल लागत $OAQS$ है। SC वक्र के न्यूनतम बिन्दु M पर OB इकाइयो के विक्रय की प्रति इकाई लागत BM है जो SC वक्र के QM के बीच के भाग के किसी भी बिन्दु से कम है। इस M बिन्दु के बाद OC इकाइयो की औसत विक्रय लागत RC है, क्योंकि इस मात्रा को बेचने की कुल लागत $OCRT$ है। वास्तव मे, प्रति इकाई विक्रय लागत और कुल विक्रय लागत न्यूनतम बिन्दु M के बाद बढ जाती है। चैम्बरलेन के अनुसार वक्र का आकार और वह सही बिन्दु, जहा से इसकी गति ऊपर को होगी, इस बात पर निर्भर करते है कि वस्तु की प्रकृति, उसकी कीमत, प्रतियोगी स्थानापन्नो की प्रकृति क्या है तथा विक्रेताओ की आय और विज्ञापन द्वारा अपनी रुचियो में परिवर्तन करने की अनिच्छा कितनी है। पर, विक्रय लागत वक्र के चढते भाग की एक सीमा है। जब बिक्री तृप्ति बिन्दु (saturation point) पर पहुँच जाती है, तो अन्त मे यह अनुलम्ब (vertical) हो जाती है।
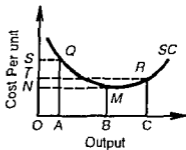
शुरू मे, विक्रय लागतो की क्रमिक (successive) मात्राएँ लगाने से कुल बिक्री मे अनुपात से अधिक वृद्धि होती है जिससे औसत विक्रय लागत कम होती जाती है। इसके दो कारण है। प्रथम, क्योंकि एक वस्तु के किसी विशेष ब्रॉड, मान लीजिए ब्रुक बाड चाय, के प्रति उपभोक्ताओं का विशेष लगाव होता है, इसलिए उपभोक्ताओ की उसी को खरीदने की आदत होती है। उसी वस्तु की दूसरी प्रकार, *मान लीजिए, टाटा चाय के पक्ष मे विज्ञापन का उद्देश्य उनकी आदत को तोडना* और ब्रुक बाड चाय से उपभोक्ताओ के लगाव को समाप्त करना होता है। हो सकता है कि समाचारपत्रो मे प्रतिमास एक दो बार दिए गए विज्ञापनो का उपभोक्ताओं पर कोई प्रभाव न पडे। उपभोक्ताओं को अपने ब्रॉड के अनुकूल ढालने के लिए उत्पादक को अधिक कुल विक्रय खर्च उठाना पडेगा। जो समाचारपत्रो में बार-बार विज्ञापन देने, व्यावसायिक प्रसारण करने, मुफ्त सैम्पलो, *उपहार या इनामी कूपनो के रूप मे हो सकता है।* केवल तभी विक्रय बढेगा।

दूसरे, विक्रय को बढाने पर जितना अधिक कुल व्यय किया जाता है, दक्ष विक्रय करने वालो, आकर्षक विज्ञापनो ओर पैकिंग आदि के रूप मे विज्ञापन की उतनी ही आन्तरिक मितव्ययिताएँ प्रकट हो जाती है। उदाहरण के लिए, जितनी अधिक बार और जितना बडा विज्ञापन होगा, प्रति

पृष्ठ विज्ञापन की दरें उतनी ही कम होंगी। इस प्रकार ये दोनों घटक एक निश्चित बिन्दु तक प्रति इकाई औसत विक्रय लागतों को कम करेंगे।

हमारे चित्र 27.11 में, इस क्रांतिक (critical) उत्पादन बिन्दु M के बाद, औसत विक्रय लागतें बढ़ने लगती हैं और इसके फिर, दो कारण हैं एक, पक्के ग्राहकों को इसे खरीदते रहने की प्रेरणा देने के लिए क्रमश बढ़ते हुए विक्रय-वृद्धि खर्च उठाने पड़ते हैं। पुराने ग्राहकों को उसी वस्तु को खरीदते रहने को प्रेरित करने के प्रयत्नों पर विक्रय को बढ़ावा देने के लिए अधिक खर्च की आवश्यकता होती है, केवल इसलिए नहीं कि ग्राहकों को किसी अन्य वस्तु को खरीदने से रोका जाए बल्कि इसलिए भी कि पुराने ग्राहक उसी वस्तु की अधिक मात्रा खरीदें। दूसरे, नए ग्राहकों और उसी वस्तु के अन्य ब्रॉंड से लगाव रखने वालों को आकर्षित करने के लिए अधिक विक्रय व्यय की जरूरत होती है। समाचारपत्रों में बार-बार विज्ञापनों के द्वारा तथा रेडियो, सिनेमा और टैलीविजन के माध्यम से उन्हें इस विशेष ब्रॉंड की श्रेष्ठता का विश्वास दिलाना पड़ता है। स्वाभाविक है कि ऐसे प्रयत्नों पर अधिक विक्रय खर्च की जरूरत होती है। इन शक्तियों के परिणामस्वरूप वस्तु की प्रति इकाई औसत विक्रय लागत बढ़ जाती है।

हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि एक वस्तु पर किए गए विक्रय व्यय की प्रतिक्रिया में शक्तियों के दो समूह कार्यशील होते हैं जो एक निश्चित बिन्दु तक बढ़ते प्रतिफल और उसके बाद घटते प्रतिफल देते हैं।

आनुपातिक विक्रय लागतें (Proportional Selling Costs)—औसत विक्रय लागत का प्रभाव यह होता है कि उत्पादन की औसत कुल लागत बढ़ जाती है। यदि औसत विक्रय लागत बेची गई वस्तु के अनुपात में हो, तो औसत कुल लागत वक्र औसत उत्पादन लागत वक्र से ऊपर समान दूरी पर स्थित होगा। उदाहरण के लिए, जब एक टूथपेस्ट के साथ, इरेस्मिक के पाँच ब्लेडों का पैकेट मुफ्त दिया जाता है, तो टूथपेस्ट के बनाने वालों द्वारा उठाई गई पाँच इरेस्मिक ब्लेडों की लागत आनुपातिक विक्रय लागतों को प्रकट करती है। टूथपेस्ट की प्रति इकाई उत्पादन लागत और ब्लेडों के एक पैकेट की प्रति इकाई विक्रय लागत को जोड़ने पर 'एक टूथ-पेस्ट और पाँच ब्लेड' की प्रति इकाई कुल लागत बनती है। ब्लेडों की लागत के बराबर औसत उत्पादन लागत बढ़ जाएगी और तब तक उतनी ही रहेगी जब तक फर्म इस अनुपात में विक्रय करती रहेगी। इसे चित्र 27.12 में दिखाया गया है जहाँ APC वक्र औसत उत्पादन लागत को प्रकट करता है और AC औसत कुल लागत वक्र [= औसत उत्पादन लागत (APC) + औसत विक्रय लागत (ASC)] है। क्योंकि विक्रय लागतें शुरू से अन्त तक आनुपातिक हैं, इसलिए उत्पादन के सब स्तरों पर वे समान रहेंगी। OQ उत्पादन पर वे BA हैं और उत्पादन के OM स्तर भी वे पहले जितनी DC (= BA) ही रहती हैं, और औसत कुल लागत MC (= QA) भी उतनी रहती है। यह ध्यान रहे कि APC और AC वक्रों के अनुरूप MC वक्र भी (चित्र में नहीं दिखाए गए) उसी अनुपात में गति करेंगे।
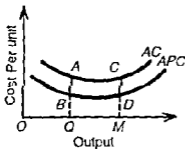
चित्र 27.12

हमने यह मान लिया है कि उत्पादक आनुपातिक विक्रय लागतें उठाता रहता है परन्तु यह वास्तविक नहीं है। वास्तव में, एक उत्पादक केवल थोड़े समय के लिए ही आनुपातिक विक्रय

लागते अपनाएगा जब तक कि उसका पुराना स्टॉक समाप्त नहीं हो जाता, और इस प्रक्रिया मे नए ग्राहको को भी आकर्षित करता है और पुराने ग्राहको को वस्तु की अधिक मात्रा खरीदने को भी प्रेरित करता है।

स्थिर विक्रय लागते (Fixed Selling Costs)--स्थिर प्रकार की भी विक्रय लागते होती है जैसे एक महीने के लिए किसी छोटे चलचित्र को किसी सिनेमा मे चलवाना या केवल रविवार को समाचारपत्र मे विज्ञापन देना। शुरू मे प्रति इकाई औसत कुल लागत अधिक होगी और बाद मे ज्यो-ज्यो उत्पादन बढेगा यह घटती जाएगी और फिर एक बिन्दु के बाद बढना शुरू करेगी और फिर इससे आगे उत्पादन मे वृद्धि होने पर औसत कुल लागत वक्र धीरे-धीरे औसत उत्पादन लागत वक्र के अधिक निकट होता जाता है। इसका मतलब है कि विक्रय मे वृद्धि होने पर स्थिर विक्रय लागतो का एक बडे उत्पादन पर फैलाव हो जाता है और बाद मे कम होता जाता है, जैसा कि चित्र 27 13 मे दिखाया गया है, जहाँ APC औसत उत्पादन लागत वक्र को प्रकट करता है और AC औसत कुल लागत वक्र को जिसमे विक्रय लागत भी शामिल है। APC और AC के अनुरूप MC वक्र उसी प्रकार निकाले जाएँगे और उनका अपनी क्रमिक औसत लागत वक्रो से वही सम्बन्ध होगा। जोड देने पर वे एक मिश्रित MC वक्र बना देंगे, जिसे चित्र मे नहीं दिखाया गया।
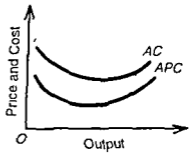
चित्र 27 13

कभी-कभी कुछ सिलाई और ड्राईक्लीनिग की फर्मे अपने उपभोक्ताओ को फ्री होम-डिलिवरी की सेवा प्रदान करती है। परन्तु ऐसी स्थितियो मे, औसत और सीमान्त लागतो पर होम-डिलिवरी सेवा के प्रभाव का हिसाब लगाना कठिन होता है।

माग वक्र पर विक्रय लागतो का प्रभाव (Influence of Selling Costs on the Demand Curve)

विक्रय लागतो का उद्देश्य एक फर्म या समूह की वस्तु के लिए माँग वक्र को प्रभावित करना होता है। उत्पादक अपनी बिक्री को बढाने के लिए विक्रय लागत उठाता है। इसलिए सब विक्रय लागते व्यक्तिगत विक्रेता के माँग वक्र को दाईं ओर ले जाती है। इस विश्लेषण मे माँग वक्र के बाईं ओर जाने का तो बिल्कुल सवाल ही पैदा नहीं होता। जब फर्म की वस्तु के लिए माँग वक्र दाएँ को सरकता है, तो यह इन दो मे से किसी एक का परिणाम होता है कि या तो पुराने ग्राहक, उसी वस्तु की अधिक मात्रा खरीदने को प्रेरित होते है, या विज्ञापन से आकर्षित होकर नए ग्राहक उस वस्तु को खरीदने लगे हैं विक्रय लागतो को उठाने से पहले के माँग वक्र की अपेक्षा समस्त नया माँग वक्र कम या अधिक लोचदार हो सकता है, या उसके कुछ भाग कम या अधिक लोचदार हो सकते है। यदि क्रेताओ को अन्य वस्तुओ के मुकाबले मे इस वस्तु की श्रेष्ठता का विश्वास हो गया है, तो पुराने माँग वक्र की अपेक्षा नया माँग वक्र ऊपर के भागो मे कम लोचदार होगा। इस फर्म की वस्तु की कीमत बढने से इसके बहुत कम ग्राहक टूटेंगे। दूसरी ओर, यदि वस्तु की ओर पुराने तथा नए ग्राहक अधिक आकर्षित होते है, परन्तु साथ ही अधिक कीमत देने को तैयार नहीं है, तो नया माँग वक्र अपने नीचे के भाग मे बहुत अधिक लोचदार होगा। इसके अतिरिक्त, पुराने ओर नए ग्राहको के क्रय स्वभाव भी माँग वक्र के आकार को प्रभावित करते है। यदि वे वस्तु परिवर्तन की बजाय कीमत परिवर्तन से अधिक प्रभावित होते है, तो नया माँग वक्र बहुत ही लोचदार होगा। इसके

विपरीत, यदि वे कीमत परिवर्तन से बहुत प्रभावित नहीं होते, तो पुराने माँग वक्र की अपेक्षा नया माँग वक्र कम लोचदार होगा। जो विश्लेषण आगे दिया जा रहा है, उसमें आसानी के लिए सरल रेखा माँग वक्रो को लिया गया है। जब पुराने माँग वक्र के समानान्तर नया माँग वक्र खींचा जाता है, तो अपेक्षाकृत ऊँचे वक्र की, प्रत्येक कीमत स्तर पर, माँग की लोच कम होगी। इसका मतलब है कि उपभोक्ताओ को इस वस्तु की श्रेष्ठता का विश्वास हो चुका है और वे ऊँची कीमत देने को तैयार है।[7]

विक्रय लागतों के अन्तर्गत कीमत-उत्पादन निर्धारण (Price-Output Determination under Selling Costs)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत अपने उत्पादन की अधिक मात्रा बेचने के लिए एक व्यक्तिगत फर्म के सामने कई चुनाव होते है। वह वस्तु की कीमत को कम करके ऐसा कर सकती है; वह वस्तु की गुणात्मकता में सुधार कर सकती है, विक्रय को बढ़ावा देने वाले अधिक प्रयत्नो को अपना सकती है, या फिर एक साथ इन तीनो तरीको का सहारा ले सकती है या एक का अन्य से मिश्रण कर सकती है।[8] परन्तु हम केवल विक्रय लागतो पर विचार करेंगे। लेकिन यह समस्या भी जटिल है क्योंकि दो आयाम (two dimensional) के चित्र मे, प्रत्येक कीमत पर उत्पादन के प्रत्येक स्तर को व्यक्त करना, और AR, MR, MC और AC वक्रो को दिखाना जटिल बन जाता है। अत सरलता के लिए, माँग वक्र और औसत कुल लागत वक्रो को औसत उत्पादन लागत वक्र के साथ-साथ लिया गया है। आगे जो विश्लेषण दिया जा रहा है, उसमे फर्म या समूह की कीमत-उत्पादन नीति पर विक्रय लागत के प्रभाव की चर्चा है।

(क) विक्रय लागतों के अन्तर्गत फर्म का सतुलन (Firm's Equilibrium under Selling Costs)

यह मान लिया जाता है कि जब एक फर्म विक्रय लागत उठाती है, तो (i) इसका माँग वक्र ऊपर की ओर दाएँ को चला जाता है, (ii) औसत कुल लागत वक्र औसत उत्पादन लागत वक्र से ऊपर स्थिर होता है, और (iii) फर्म अधिकतम शुद्ध लाभ प्राप्त करती है।

चित्र 27 14

क्योंकि चित्र में MC और MR वक्र नहीं दिखाए गए, इसलिए शुद्ध लाभ निकालने का फार्मूला है : शुद्ध लाभ = (कीमत × उत्पादन) – (उत्पादन लागत + विक्रय लागत)

अर्थात् नए माँग वक्र और औसत कुल लागत वक्र गुणा उस कीमत पर बेची गई वस्तु की इकाइयों की संख्या।

(1) कीमत परिवर्तन, उत्पादन- मात्रा और विक्रय लागतें स्थिर हैं (Price Changes, Product and Selling Costs remain Constant)—यह मानकर कि केवल कीमत मे परिवर्तन होता है और बिक्री स्थिर रहती है, हम पहले आनुपातिक विक्रय
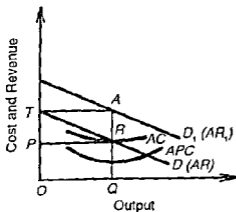
7 देखिए चित्र 27 1 (B) । इसे यहाँ भी प्रस्तुत कीजिए।
8 इन सब चुनावों के लिए पाठक देखें Chamberlin, *op cit*, pp 140-149

लागतों (proportional selling costs) के विषय को लेते हैं। $D(AR)$ मूल माँग वक्र है और D_1 (AR_1) नया माग वक्र है। APC औसत उत्पादन लागत वक्र है और AC कुल औसत लागत वक्र जिसमे विक्रय लागत भी शामिल है। फर्म QA कीमत पर अपने उत्पादन OQ को अधिक्तम करती है और चित्र 27.14 में दिखाए $PRAT$ क्षेत्र द्वारा मापे गए शुद्ध लाभ प्राप्त करती है।

(2) विक्रय लागतें स्थिर, कीमत और मात्रा बदलते हैं (Selling Costs Fixed, Price and Product Vary)— मान लीजिए कि एक फर्म अपनी वस्तु का विज्ञापन देने मे रु 1000 खर्च करती है। हर बार मुद्रा की इतनी मात्रा खर्च करने पर इसकी वस्तु के लिए माँग वक्र ऊपर की ओर दाएँ को चला जाता है जिससे वह पहले से अधिक मात्रा बेच लेती है और अधिक लाभ प्राप्त करती है। चित्र 27.15 मे, APC उत्पादन लागत वक्र है और हर बार रु 1000 विज्ञापन पर खर्च करने से कुल औसत लागत वक्र AC_1 और AC_2 बन जाते है। विक्रय लागत खर्च करने से पहले D(AR) मूल माँग वक्र है तथा नए माँग वक्र D_1 (AR_1) और D_2 (AR_2) है। मूल सतुलन स्थिति वह है जब OP कीमत पर वस्तु की OA मात्रा बिकती है। फर्म सामान्य से अधिक $TSRP$ लाभ प्राप्त करती है। अब जब पहली बार
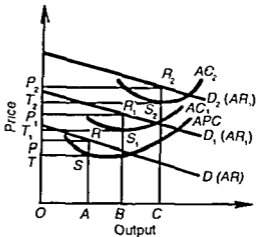
चित्र 27.15

विक्रय लागत खर्च की जाती है, तो सतुलन-स्थिति कीमत OP_1 पर OB उत्पादन के विक्रय द्वारा $T_1S_1R_1P_1$ लाभ देती है। विज्ञापन मे रु 1000 और खर्च करने पर वस्तु की OC मात्राएँ OP_2 कीमत पर बिकती है और लाभ बढ़कर $T_2S_2R_2P_2$ हो जाता है। इसी प्रकार फर्म अपनी वस्तु के विज्ञापन पर तब तक रु 1000 खर्च करती चलेगी, जब तक इससे कुल आगम में कुल लागत की अपेक्षा अधिक वृद्धि होती है और लाभ अधिकतम नहीं होता। यदि फर्म उस स्तर के बाद विज्ञापन पर और खर्च करती है, तो लागत की अपेक्षा आगम मे कम वृद्धि होगी। विक्रय लागत बढाने से फर्म को लाभ की बजाय हानि होगी। चित्र 27.15 मे, फर्म उस अधिकतम लाभ की स्थिति मे पहुँचती है जब OP_2 कीमत पर OC वस्तु बिकती है और फर्म सामान्य से अधिक $T_2S_2R_2P_2$ लाभ प्राप्त करती है। विज्ञापन पर और खर्च करने से लाभ कम हो जाएँगे।

(ख) विक्रय लागतों के साथ समूह सतुलन (Group Equilibrium with Selling Costs)

विक्रय लागतों के साथ समूह सतुलन की मान्यताए वही है जो एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत है परन्तु केवल इतना अन्तर है कि औसत लागत वक्र की बजाय हम उस औसत लागत वक्र को, जिसमे विक्रय लागत भी शामिल होती है, लेते है। समूह में सब फर्मों के लिए माँग वक्रो, उत्पादन लागत वक्रो, और औसत लागत वक्रो को समरूप मान लिया जाता है। फर्म के सतुलन की भाँति हम केवल विक्रय लागतो के साथ समूह सतुलन पर विचार करेंगे।

(1) कीमत-परिवर्तन, उत्पादन मात्रा और विक्रय लागते स्थिर हैं (Price Changes, Product and Selling Costs remain Constant)—मान लीजिए कि समूह मे प्रत्येक फर्म समान विक्रय

चित्र 27.16
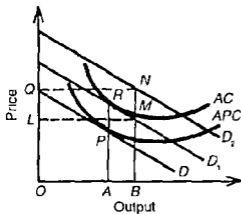
लागतें उठाती है जिसमें कुल औसत लागत वक्र AC उत्पादन लागत वक्र APC से ऊपर शुरू से अन्त तक समान दूरी पर स्थित रहता है। चित्र 27.16 में मूल माँग वक्र *D* है। प्रत्येक फर्म AP कीमत पर अपनी वस्तु की *OA* मात्रा बेचती है और केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती है। अब प्रत्येक फर्म विज्ञापन पर एक निश्चित मात्रा खर्च करके अधिक लाभ कमाने के लिए विक्रय को बढ़ाने की योजना बनाती है। परिणामस्वरूप माँग वक्र ऊपर को सरक कर D_2 बन जाता है। इस प्रक्रिया में प्रत्येक फर्म *OQ* कीमत पर *OB* मात्रा बेचकर *LMNQ* लाभ प्राप्त करती है। इन लाभों से आकर्षित होकर नई फर्में समूह में आ जाएँगी या वर्तमान फर्में अधिक उत्पादन करेंगी। इसमें माँग वक्र D_2 नीचे की ओर सरक कर D_1 हो जाएगा और *AC* को *R* बिन्दु पर स्पर्श करेगा। इस स्थिति में प्रत्येक फर्म पहले से ऊंची कीमत *AR* पर पहले वाला उत्पादन *OA* बेचती है।

(2) **वस्तु परिवर्तित होती है, कीमत और विक्रय लागत स्थिर रहती है** (Product Varies, Price and Selling Costs remaining Constant)—इस स्थिति में मान्यताएँ वहीं हैं जो समूह-सतुलन के अन्तर्गत हैं। *सब फर्मों के लागत वक्र समरूप हैं और वे समान कीमत पर विक्रय करती हैं।* जब एक फर्म स्थिर विक्रय लागत उठाती है, तो वह सामान्य से अधिक लाभ कमाती है। परन्तु ये लाभ अस्थायी होते हैं क्योंकि या तो नई फर्में आ जाती हैं या वर्तमान फर्में उत्पादन बढ़ा देती हैं जिससे लाभ कम हो जाते हैं। यदि अन्य फर्में भी अपनी वस्तु के विज्ञापन पर उतनी ही मात्रा खर्च करें, तो वे कीमत रेखा और औसत लागत वक्र, जिसमें विक्रय लागत भी शामिल है, के स्पर्श बिन्दु पर पहुँच जाएँगी। इस प्रकार सब फर्में सामान्य लाभ प्राप्त करेंगी।

चित्र 27.17
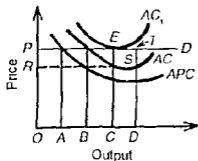
इसे चित्र 27.17 में दिखाया गया है, जहाँ APC उत्पादन लागत वक्र है और AC मिश्रित उत्पादन तथा विक्रय लागत वक्र है। *PD* स्थिर कीमत वक्र को प्रकट करता है। विक्रय खर्च से पहले, समूह विक्रय वस्तु की *OA* मात्राएँ गुणा समूह में फर्मों की संख्या के बराबर बेचता है। मान लीजिए कि एक फर्म अधिक विक्रय तथा अधिक लाभ के लिए विज्ञापन का सहारा लेती है जिससे वह AC वक्र पर आ जाती है। इस प्रकार वह अन्य फर्मों के ग्राहकों को आकर्षित कर लेती है और अपनी वस्तु की *OD* मात्रा बेचकर *RSTP* के बराबर अनिश्चित लाभ का उपभोग करती है। इसलिए, अन्य फर्में उसका अनुकरण करेंगी और विज्ञापन पर खर्च करेंगी। इससे AC वक्र ऊपर को सरक कर AC_1 वक्र बन जाएगा और कीमत रेखा *PD* को *E* पर स्पर्श करेगा। समूह के लिए यह

(4) एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत, अदक्ष फर्मों की सख्या बहुत अधिक होती है। प्रत्येक फर्म द्वारा ली गई कीमत उसकी दीर्घकालीन सीमांत लागत से अधिक होती है क्योंकि AR और MR दोनों वक्र एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में नीचे की ओर ढालू होते है। फर्म की सतुलन स्थिति होती है कीमत = LAC > LMC = MR। इसलिए मार्किट में फर्मों को ससाधन कम आवटित होते है और अर्थव्यवस्था में वे कुआवटित होते है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत, दीर्घकालीन में सभी फर्में दक्षतम आकार वाली होती है क्योंकि कीमत = LAC = LMC = MR। फिर, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत, एक अदक्ष फर्म को अपनी कीमत घटानी पडेगी ताकि वह अधिक विक्रय करे और विस्तार कर सके। इसके लिए उसे अपनी प्रति इकाई औसत लागते घटानी पडेगी। परन्तु हो सकता है कि एक अदक्ष फर्म इस स्थिति में न हो कि वह अपनी प्रति इकाई औसत लागते घटा सके और अपनी कीमत कम कर सके। अत इस प्रकार की फर्में अपने ग्राहको के बल पर अस्तित्व तो बनाए रख सकती है परन्तु अपनी प्रतिद्वन्द्वी फर्मों के ग्राहको को आकर्षित नहीं कर सकतीं। हरेक कस्बे में परचून की अनेक छोटी-छोटी दुकाने होती है जो अपने ग्राहको की सद्भावना पर निर्भर करती हैं। वे ग्राहक या तो अज्ञान के कारण, या फिर परिवहन लागतों के कारण उन अधिक दक्ष फर्मों तक नहीं जाना चाहते जो कि वही वस्तु कम कीमत पर बेचती है। परन्तु इस तरह की अदक्ष फर्मों का अस्तित्व सामाजिक अपव्यय है।

(5) अन्तिम, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में सभी फर्मों के पास अतिरिक्त क्षमता होती है। क्योंकि एक एकाधिकारात्मक प्रतियोगी फर्म का माग वक्र नीचे की ओर ढाल वाला होता है, इसलिए इसका LAC वक्र के साथ स्पर्श बिन्दु सदैव इसके न्यूनतम बिन्दु (देखे चित्र 27 10) से बाईं ओर होगा। इस प्रकार, जब फर्म दीर्घकालीन सतुलन में होती है, तो वह अपने इष्टतम प्लाट का कम प्रयोग करती है। इससे उद्योग में आवश्यकता से अधिक फर्में पाई जाती है। सभी फर्में इष्टतम क्षमता से नीचे कार्य करती हैं और सभी फर्में प्रतियोगी कीमतों से अधिक कीमत वसूल करती हैं। नीचे की ओर ढालू माँग वक्र के कारण फर्मों के इष्टतम उत्पादन में असफलता समाज के दृष्टिकोण से साधनों का स्पष्ट अपव्यय है।

निष्कर्ष (Conclusion)

ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता बिल्कुल अपव्ययी है और आर्थिक कल्याण को कम करती है। इसके कुछ गुण भी है। उदाहरणार्थ, सूचनात्मक विज्ञापन उपभोक्ताओं के लिए लाभदायक है और वस्तु विभेदीकरण उपभोक्ताओं को वस्तुओं के विस्तृत चुनाव प्रदान करता है।

8. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत-रहित प्रतियोगिता (NON-PRICE COMPETITION UNDER MONOPOLISTIC COMPETITION)

कीमत-रहित प्रतियोगिता से अभिप्राय एक एकाधिकारात्मक प्रतियोगी फर्म द्वारा उन प्रयत्नों से है, जिनसे वह अपनी वस्तु की बिक्री और लाभों को कीमत में कटौती किए बिना बढाती है। ये प्रयत्न है वस्तु विभिन्नता और विक्रय व्यय। एकाधिकारात्मक प्रतियोगी अपनी वस्तु की भौतिक विशेषताओं को अथवा प्रोत्साहक प्रोग्रामों को परिवर्तित करके उसमे परिवर्तन ला सकता है। वस्तु विभिन्नता और विक्रय व्यय फर्म के माग वक्र को कम लोचदार बनाते है और उत्पादन लागत को बढाते है। परिणामस्वरूप, लाभों की मात्रा भी परिवर्तित हो जाएगी, जिसे फर्म अपने MR और MC के बराबर होने पर वस्तु की मात्रा उत्पादित करके कमाती है। अपनी बिक्री और लाभों में वृद्धि के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, फर्म अपनी वस्तु की विशेषताओं को परिवर्तित करने की बजाय

विज्ञापन और प्रोत्साहन पर अधिक व्यय कर सकती है। या, अपनी वस्तु की विशेषताओं को इस ढग से बदल सकती है कि वह ग्राहको को अधिक आकर्षित करे। या, यदि ससाधन अनुमति दे, तो वह विज्ञापन और वस्तु विभिन्नता दोनों पर अधिक व्यय करे।

वस्तु विभिन्नता (Product Variation)

वस्तु विभिन्नता कोई भी परिवर्तन होता है, जो किसी वस्तु की भौतिक विशेषताओ अथवा उन स्थितियो को परिवर्तित करता है जिनके अन्तर्गत वस्तु बेची जाती है। उपभोक्ताओ को जो वस्तु *या सेवा प्रदान की जाती है उसकी विशेषताओ मे क्वालिटी, ब्रैंड नाम, पैकेजिंग, सेवा समझौते* और वारण्टिया सम्मिलित होते है। जब भी एकाधिकारात्मक प्रतियोगी वस्तु विभिन्नता लाता है, तो उसके आगम और लागत वक्र सरक जाएगे। वह अपने लाभो को निम्न तरीको से अधिकतम करता है

(क) वह अपनी वस्तु के साथ सबधित लागत और आगम वक्रो को निर्धारित करता है।

(ख) ऊपर की सूचना के आधार पर, वह वस्तु को बेचने से जो अधिकतम लाभ कमा सकता है उन्हे वह निर्धारित करता है।

(ग) वह उस उत्पादन मात्रा को चुनता है, जो उसे सबसे अधिकतम लाभ कमाने का अवसर देता है।

सही वस्तु विभिन्नता जो उसके लाभ अधिकतम करेगी, दो दिशाओ की ओर ले जा सकती है (1) वह निर्णय कर सकता है कि उसकी वस्तु की विशेषताओ मे एक उच्च लागत परिवर्तन उसकी वस्तु की माग में वृद्धि करके उसके लाभ बढाएगे। (2) या, प्रौद्योगिकीय (technological) प्रयत्न द्वारा वस्तु की क्वालिटी बढा सकता है, जो उसकी वस्तु की माग मे वृद्धि की तुलना मे लागतो को अधिक कम करके उसके लाभ बढाए।

हम ऊपर बताई गई प्रथम स्थिति को चित्र 27.18 द्वारा दर्शाते है, जहाँ वस्तु विभिन्नता से पहले एकाधिकारात्मक प्रतियोगी का माग वक्र D_1 है और AC_1 उसका औसत लागत वक्र है। चित्र को सरल रखने के लिए उसके MC और MR वक्र नहीं दिखाए गए है। वह $OP (= Q_1E_1)$ कीमत पर वस्तु की OQ_1 मात्रा बेच रहा है और $PABE_1$ असामान्य लाभ कमा रहा है। जब वह वस्तु विभिन्नता लाता है तो उसका माग वक्र D_1 ऊपर दाई ओर D_2 पर सरक जाता है और कम लोचदार बन जाता है। वस्तु की स्थिर कीमत PL कीमत रेखा के रूप मे दी होने पर, वह अब उसी कीमत $OP (= Q_2E_2)$ पर अधिक मात्रा OQ_2 बेचता है। परन्तु वस्तु विभिन्न करने के प्रयत्न मे उसकी वस्तु की उत्पादन लागत भी बढ गई है। इसे L_1 वक्र के ऊपर की ओर L_2 वक्र पर सरक जाने के रूप मे दिखाया गया है। यद्यपि उत्पादन लागतों में वृद्धि हुई है, एकाधिकारात्मक प्रतियोगी वस्तु विभिन्नता से पहले की तुलना मे
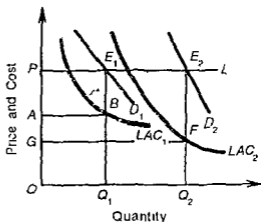
चित्र 27.18

अब अधिक लाभ $PGFE_1$ कमाता है $PGFE_1 > PABE_1$। ऐसा इस कारण कि वस्तु विभिन्नता के परिणामस्वरूप उसके विक्रय Q_1Q_2 बढ़े हैं और उसकी वस्तु की माग में भी वृद्धि हुई है।

विक्रय प्रोत्साहन (Sales Promotion)

विक्रय प्रोत्साहन से अभिप्राय एक एकाधिकारात्मक प्रतियोगी द्वारा विज्ञापन, प्रचार और व्यक्तिगत विक्रय करके अपनी वस्तु के माग वक्र को ऊपर की ओर सरकाना है। इसे विज्ञापन और प्रचार पर विक्रय व्यय भी कहते हैं, जो एक फर्म अपने प्रतिद्वद्वियों की तुलना में अपनी वस्तु को खरीदने के लिए उपभोक्ताओं को प्रेरित करते हैं। चैम्बरलेन प्रत्येक किस्म के विज्ञापन को विक्रय लागतों का पर्यायवाची मानता है। परन्तु वर्तमान में, विक्रय लागतों में विज्ञापन के अतिरिक्त सेल्समैन पर व्यय, परचून विक्रेताओं को दुकान पर वस्तु प्रदर्शित करने के लिए छूटें, तथा मुफ्त सेवा, मुफ्त सैंपल, पुरस्कार कूपन और ग्राहकों को उपहार शामिल हैं। इस प्रकार, वस्तु विभिन्नता और विक्रय प्रोत्साहन के बीच रेखा खींचना कठिन है।

एक एकाधिकारात्मक प्रतियोगी एक ऐसा विक्रय प्रोत्साहन प्रोग्राम बनाने का प्रयत्न करेगा जो उसके लाभों को अधिकतम करता है। इसके लिए वह निम्न कदम अपनाता है

(i) वह प्रत्येक विक्रय प्रोत्साहन प्रोग्राम के साथ सबधित लागत और आगम वक्रों की पहचान करता है।

(ii) ऊपर की सूचना के आधार पर वह अधिकतम लाभों को निर्धारित करता है, जो वह प्रत्येक प्रोग्राम से अर्जित करता है।

(iii) वह तब उस प्रोग्राम को चुनता है जो उसे बहुत अधिकतम लाभ देता है।

गैर-कीमत प्रतियोगिता में समूह सतुलन (Group Equilibrium under Non-price Competition)

वास्तव में एक एकाधिकारात्मक प्रतियोगी वस्तु विभिन्नता और विक्रय प्रोत्साहन के अन्तर्गत अपने लाभों को अलग-अलग अधिकतम नहीं कर सकता है। क्योंकि ये दोनों निर्णय स्वतन्त्र हैं, इसलिए ये एक साथ लिए जाते हैं। फिर, वस्तु विभिन्नता और विक्रय व्यय दोनों उसके माग और लागत वक्रों को सरकाते हैं। परन्तु चित्र में यह दिखाना सम्भव नहीं है कि वस्तु विभिन्नता और विक्रय प्रोत्साहन का कौन-सा सयोग उसके लाभों को अधिकतम करेगा। चैम्बरलेन ने अपने समूह सतुलन विश्लेषण में गैर-कीमत प्रतियोगिता के अन्तर्गत लाभ अधिकतम करने की इस समस्या को सुलझाया है। यदि एक एकाधिकारात्मक प्रतियोगी समूह में प्रवेश बंद हो, तो कुछ फर्में एकाधिकार तत्त्वों के कारण दूसरों की अपेक्षा अधिक लाभ कमाती हैं। उनके द्वारा वस्तु विभिन्नता और विक्रय प्रोत्साहन प्रयत्न उनके प्रतियोगियों के लिए अपनी वस्तुओं के पूर्ण स्थानापन्न उत्पादित करना और बेचना
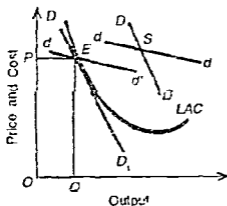
चित्र 27.19

असभव बना देते है।

यदि समूह मे फर्मों का प्रवेश खुला हो, तो प्रवेशक फर्मों की प्रतियोगिता लाभो को सामान्य लाभो के स्तर तक नीचे ला देगी। इसे चित्र 27 19 मे दर्शाया गया है जहा समूह मे कीमत-रहित प्रतियोगिता के कारण *dd* वक्र (जो व्यक्तिगत फर्म से सबद्ध होता है) का कोई महत्त्व नहीं है और फर्मों का सबध केवल समूह माग वक्र *DD* से है। मान लीजिए कि प्रारभिक सतुलन *S* बिन्दु पर है, जहा फर्में सामान्य से अधिक लाभ कमा रही है, क्योंकि *OP* कीमत के अनुरूप *S* बिन्दु LAC वक्र से ऊपर है। चित्र को सरल रखने के लिए अतिसामान्य लाभ नहीं दिखाए गए है। समूह मे नई फर्मों के प्रवेश से अतिसामान्य लाभ समाप्त हो जाएगे। बडी सख्या मे फर्में मार्किट को आपस मे बाट लेगी। परिणामस्वरूप, *DD* वक्र दाईं ओर धकेल दिया जाएगा और वह D_1D_1 वक्र बन जाएगा, जहा वह *E* बिन्दु पर LAC वक्र के साथ स्पर्श करेगा। यह समूह मे सभी फर्मों के लिए कीमत-रहित प्रतियोगिता के अन्तर्गत स्थिर सतुलन का बिन्दु है, और वे केवल सामान्य लाभ कमा रही है। प्रत्येक फर्म *OP* (= *QE*) कीमत पर वस्तु की *OQ* मात्रा बेच रही है।

9 पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे अन्तर
(DIFFERENCES BETWEEN PERFECT COMPETITION AND MONOPOLISTIC COMPETITION)

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे कुछ समानताएँ तथा असमानताएँ है।

समानताएँ (Similarities)—दोनो बाजार स्थितियो मे निम्नलिखित समानताएँ पाई जाती है

(1) पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता दोनो ही के अन्तर्गत फर्मों की बडी सख्या होती है।

(2) दोनो मे, फर्में एक दूसरी से प्रतियोगिता रखती है।

(3) दोनो मे, फर्मों को आने-जाने की स्वतत्रता होती है।

(4) दोनो मे, सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय की समानता के बिन्दु पर सतुलन स्थापित होता है।

(5) दोनो बाजार स्थितियो मे, फर्म अल्पकालीन मे सामान्य से अधिक लाभ अथवा हानियाँ उठा सकती है। परन्तु दीर्घकालीन मे फर्में केवल सामान्य लाभ अर्जित करती है।

असमानताएँ (Dissimilarities)—पर, पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे कुछ असमानताएँ भी होती है जिनकी विवेचना नीचे की जा रही है

(1) पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत, प्रत्येक फर्म समरूप वस्तु का उत्पादन तथा विक्रय करती है ताकि कोई भी क्रेता दूसरे विक्रेताओ की अपेक्षा किसी एक विक्रेता की वस्तु को अधिमान न दे सके। दूसरी ओर, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तुओ मे अन्तर लाया जाता है। वस्तुएँ मिलती-जुलती तो होती है पर ठीक एक जैसी नहीं होतीं। वे निकट स्थानापन्न वस्तुएँ होती है। उनके डिजाइन, रग, महक, पैकिग आदि मे अन्तर होता है।

(2) पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत, समस्त उद्योग की माँग तथा पूर्ति की शक्तियाँ कीमत निर्धारित करती है। प्रत्येक फर्म को उस कीमत पर अपनी वस्तु बेचनी पडती है। वह अपने एक मात्र कार्य से कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती। उसे अपना उत्पादन उस कीमत पर समायोजित करना पडता है। इस प्रकार प्रत्येक फर्म कीमत स्वीकार करती है और मात्रा को समायोजित करती है। दूसरी ओर एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत, प्रत्येक फर्म की अपनी कीमत-नीति होती है। वह एक समूह मे वस्तु के कुल उत्पादन के थोडे हिस्से से अधिक पर नियत्रण नहीं रख सकती।

(3) ज्यामितीय रूप से, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का माँग वक्र (AR) पूर्ण लोचदार होता है और सीमान्त आय वक्र (MR) इसके बराबर होता है। इसके मुकाबले, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का माँग वक्र लोचदार एव नीचे की ओर ढालू होता है तथा इसके अनुरूप (MR) वक्र इसके नीचे स्थिर रहता है। इसका मतलब है कि फर्म को अपनी प्रतियोगी फर्मों को आकर्षित कर अपने विक्रय बढाने के लिए अपनी वस्तु की कीमत घटानी पड़ेगी, बशर्ते कि प्रतियोगी फर्में अपनी कीमते न घटाएँ।

(4) यद्यपि दोनो बाजार स्थितियो की सतुलन स्थितियाँ एक जैसी है, फिर भी दोनो के बीच कीमत-सीमान्त लागत सबध मे अन्तर रहते है। जब पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत MC = MR, तो कीमत भी उनके बराबर होती है क्योकि कीमत (AR) = MR ऐसा इसलिए होता है कि AR वक्र *X*-अक्ष के क्षैतिज होता है। क्योंकि AR वक्र नीचे की ओर दाएँ को ढालू होता है, इसलिए एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत MR वक्र इसके नीचे रहता है। इसलिए कीमत (AR) > MR = MC।

(5) दोनो बाजार स्थितियों मे एक और अन्तर उनके आकार से सबध रखता है। दीर्घकालीन मे, प्रतियोगी फर्मों का आकार इष्टतम होता है और वे अपनी पूर्ण क्षमता पर उत्पादन करती है क्योकि अपने न्यूनतम पर कीमत (AR) = LMC = LAC। परन्तु एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत, फर्मों का आकार इष्टतम से कम होता है और उनमें अतिरिक्त क्षमता रहती है क्योकि AR वक्र नीचे की ओर ढालू है ओर अपने न्यूनतम बिन्दु पर LAC वक्र पर स्पर्श नहीं कर सकता। फर्म की सतुलन शर्त है कीमत (AR) = LAC > LMC = MR।

(6) पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे एक और अन्तर विक्रय लागतों से सबध रखता है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत, जहाँ वस्तु समरूप होती है विक्रय की कोई समस्या नहीं होती। फर्म, चालू बाजार कीमत पर, अपनी वस्तु की चाहे जितनी मात्रा बेच सकती है। परन्तु एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत, जहाँ विभेदीकृत वस्तुएं होती है, विक्रय बढाने के लिए विक्रय लागते भी उठानी पडती है। ये लागते इसलिए उठाई जाती है कि क्रेता को एक वस्तु के अभिमान मे दूसरी वस्तु खरीदने को प्रेरित किया जा सके।

(7) दोनो बाजार स्थितियों में अन्तिम अन्तर यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का उत्पादन कम और कीमत अधिक होती है। इसे चित्र 27 9 मे दिखाया गया है जहाँ *d* तथा MR, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के औसत तथा सीमान्त आय वक्र है, ओर AR = MR प्रतियोगी फर्म के। LMC तथा LAC वक्र दोनो फर्मों के लिए समान मान लिए गए है। एकाधिकारात्मक प्रतियोगी फर्म का सतुलन E_1 बिन्दु पर और पूर्ण प्रतियोगी का सतुलन *E* बिन्दु पर स्थापित होता है। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म OQ_1 उत्पादन विक्रय करती है जो कि प्रतियोगी फर्म के उत्पादन के विक्रय *OQ* से कम है जबकि इसकी Q_1A_1 कीमत, प्रतियोगी फर्म की कीमत *QE* से अधिक है।

10. एकाधिकार और एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में अन्तर (DIFFERENCES BETWEEN MONOPOLY AND MONOPOLISTIC COMPETITION)

बाजार की इन दो विभिन्न अवस्थाओ मे कुछ समानताएँ तथा कुछ असमानताएँ पायी जाती है जिनका हम क्रमश विवेचन करते है।

समानताएँ (Similarities)—एकाधिकार तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे निम्नलिखित समानताएँ पाई जाती हैं

(i) दोनो मे सतुलन MC एव MR के एक-दूसरे के बराबर होने के बिन्दु पर होता है और MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटता है।

(ii) दोनो मे माँग वक्र (AR) नीचे दायीं ओर ढाल वाला होता है और उसके अनुरूप MR वक्र माँग वक्र के नीचे स्थित होता है।

(iii) दोनो बाजार अवस्थाओ मे सतुलन बिन्दु कीमत रेखा (AR) से नीचे स्थित होता है।

(iv) दोनो अवस्थाओ मे अतिरिक्त क्षमता पाई जाती है अर्थात् LAC को AR इसके न्यूनतम बिन्दु पर स्पर्श नहीं करता।

(v) दोनो मे ही उत्पादक कीमत-निर्माता (price-maker) होते है। वे अपनी इच्छानुसार कीमत को घटा या बढा सकते है।

असमानताएँ (Dissimilarities)—एकाधिकार एव एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे समानताओ की अपेक्षा असमानताएँ अधिक पाई जाती है, जो निम्नलिखित है

(i) एकाधिकार मे एक वस्तु का उत्पादक केवल एक ही होता है, जबकि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे उत्पादको की सख्या बहुत होती है।

(ii) एकाधिकार मे फर्म और उद्योग मे कोई अन्तर नहीं पाया जाता। एकाधिकारी फर्म ही उद्योग होता है। इसके विपरीत एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे अनेक फर्मे होती है तथा उद्योग को 'समूह' (group) कहते है।

(iii) एकाधिकार मे एक ही वस्तु का उत्पादन होता है जिसमे किसी प्रकार का वस्तु विभेदीकरण नहीं पाया जाता है। एकाधिकार प्रतियोगिता मे हर उत्पादक विभिन्न वस्तुओ का उत्पादन करता है। वस्तुएँ समरूप (identical) नहीं होतीं बल्कि समान (similar) होती है। वे एक-दूसरे के पूर्ण-स्थानापन्न न होकर निकट-स्थानापन्न होती है। वस्तुएँ आकार, डिज़ाइन, रग, सुगध, पैकिंग आदि के कारण एक-दूसरे से भिन्न होती है जिससे वस्तु विभेदीकरण पाया जाता है।

(iv) एकाधिकार मे विक्रय लागते नहीं पाई जातीं क्योकि एकाधिकारी का कोई प्रतियोगी नहीं होता। हाँ, प्रारम्भ मे जब एकाधिकार फर्म स्थापित होती है तो एकाधिकारी अपनी वस्तु की उपभोक्ताओ को सूचना देने के लिए सम्भवत कुछ पैसा विज्ञापन पर व्यय करे। परन्तु वह विज्ञापन पर केवल एक बार ही यह व्यय करेगा, पुन नहीं। दूसरी ओर, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे फर्मों की सख्या अधिक होने पर प्रतियोगिता के कारण विक्रय लागतो पर व्यय करना अनिवार्य होता है।

(v) एकाधिकारी एक ही वस्तु की विभिन्न ग्राहको से भिन्न-भिन्न कीमते ले सकता है और इस प्रकार कीमत-विभेद की नीति अपना सकता है। परन्तु एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में 'प्रतियोगिता' का तत्त्व होने के कारण कीमत-विभेद सभव नहीं हो सकता।

(vi) एकाधिकार मे वस्तु के निकट स्थानापन्न नहीं होते, जिस कारण वस्तु की माँग कम लोचदार होती है। इसलिए एकाधिकारी का माँग वक्र प्रपाती अर्थात् कम लोचदार होता है। इसके विपरीत, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे वस्तुएँ निकट स्थानापन्न होती है जिससे हर फर्म की वस्तु की माँग अधिक लोचदार होती है और उसका माँग वक्र चपटा होता है।

(vii) ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष भी प्राप्त होता है कि एकाधिकारी की वस्तु की कीमत एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे वस्तु की कीमत से अधिक होती है। फिर, वस्तु की कीमत निश्चित करने मे जितनी स्वतन्त्रता एकाधिकारी को होती है, उतनी एकाधिकारात्मक प्रतियोगी फर्म को नहीं होती।

(viii) एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे दीर्घकाल मे फर्मे समूह मे प्रवेश कर सकती है और उससे बाहर भी जा सकती है क्योकि इस बाजार अवस्था मे प्रतियोगिता का अश भी पाया जाता है। परन्तु एकाधिकार मे एकाधिकारी का वस्तु की कीमत या पूर्ति पर पूर्ण नियत्रण होने के कारण

कोई भी फर्म एकाधिकारी उद्योग में प्रवेश नहीं कर सकती।

(ix) एकाधिकार में फर्मों के प्रवेश का भय होने के कारण एकाधिकारी दीर्घकाल में भी सामान्य से अधिक लाभ कमाता है, जबकि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्में दीर्घकाल में सामान्य लाभ ही कमाती हैं, क्योंकि फर्में समूह के अन्दर आ और जा सकती हैं।

प्रश्न

1 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए। इसके अन्तर्गत फर्म के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन सतुलन की व्याख्या कीजिए।

2 'एकाधिकार' तथा 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' में क्या अन्तर है, समझाइए। एकाधिकारी प्रतियोगिता की दशा में किस प्रकार मूल्य निर्धारित होता है, वक्रो की सहायता से स्पष्ट कीजिए।

3 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत 'समूह-सतुलन' की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। समूह और उद्योग में अन्तर बताइए।

4 क्या यह सत्य है कि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्मों में बहुत 'अतिरिक्त क्षमता' पाई जाती है और फिर भी वे 'अल्प आकार' की होती हैं?

5 'विक्रय लागतें' क्या होती हैं? विक्रय लागतो के अन्तर्गत फर्म के सतुलन की व्याख्या कीजिए।

6 पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में प्रमुख समानताओं एव भेद को स्पष्ट कीजिए। जहाँ जरूरत हो वहाँ आरेखीय निरूपण कीजिए।

7 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत-रहित प्रतियोगिता का विवेचन कीजिए।

8 "एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता आर्थिक कल्याण का हनन करती है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

अध्याय 28

द्वयाधिकार तथा अल्पाधिकार
(DUOPOLY AND OLIGOPOLY)

I. द्वयाधिकार मॉडल
(DUOPOLY MODELS)

1. द्वयाधिकार का अर्थ
(MEANING OF DUOPOLY)

द्वयाधिकार अल्पाधिकार सिद्धान्त का वह विशेष पक्ष है जिसमें केवल दो विक्रेता होते हैं।[1] दोनों विक्रेता पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होते हैं और दोनों में किसी प्रकार का कोई समझौता नहीं होता। यद्यपि उनके बीच कोई समझौता नहीं होता, फिर भी, एक की कीमत और उत्पादन में परिवर्तन से दूसरे पर प्रभाव पड़ेगा और हो सकता है कि उससे प्रतिक्रियाओं (reactions) की एक शृंखला बन जाय। पर, हो सकता है कि एक विक्रेता यह मान ले कि उसके कार्यों से प्रतिद्वन्द्वी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और उस स्थिति में वह कीमत पर अपने प्रत्यक्ष प्रभाव को ही लेता है। दूसरी ओर, यदि प्रत्येक विक्रेता अपनी नीति के दूसरे विक्रेता की नीति पर और उसकी नीति के अपनी नीति पर प्रभाव को ध्यान में रखता है, तो कीमत पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रभावों का विचार करता है। फिर, यह भी हो सकता है कि विक्रय के लिए प्रस्तुत की गई मात्रा या उसकी कीमत के कारण एक प्रतिद्वन्द्वी विक्रेता की नीति में कोई परिवर्तन न हो। इस प्रकार परस्पर-निर्भरता को छोड़कर या उसे स्वीकार करके द्वयाधिकार पर विचार किया जा सकता है। कूर्नो-एज्वर्थ (Cournot-Edgeworth) हल का सम्बन्ध पहले से है जिसमें परस्पर-निर्भरता की उपेक्षा की गई है जबकि चैम्बरलेन का हल दूसरे से सम्बन्ध रखता है जिसमें परस्पर-निर्भरता को मान्यता दी गई है।

हम छह द्वयाधिकार माडलों की व्याख्या कर रहे हैं। ये सभी गैर-कपटसंधिपूर्ण (non-collusive) मॉडल हैं जहाँ फर्में बिना किसी अनकहे अथवा औपचारिक (tacit or formal) समझौते के स्वतन्त्र रूप से कार्य करती हैं।

1 "When there are exactly two sellers in the market this is a special case of oligopoly called duopoly" Cohen, K J and Cyert, R M, *Theory of the Firm* 2e, 1975

2 कूर्नो मॉडल
(THE COURNOT MODEL)

सन् 1838 में, पहले-पहल फ्रांसीसी अर्थशास्त्री ए ए कूर्नो ने द्वयाधिकार समस्या का निश्चित (determinate) हल किया था। उसने दो फर्मों A और B द्वारा साथ-साथ स्थित दो खनिज जल के झरनों से पानी निकालने का उदाहरण लिया।

मान्यताएँ (*Assumptions*)—कूर्नो मॉडल इन मान्यताओं पर आधारित है

(1) दो स्वतन्त्र विक्रेता होते हैं।

(2) वे एक समरूप (homogeneous) वस्तु का उत्पादन और विक्रय करते है, जो खनिज जल है।

(3) कुल उत्पादन का पूर्ण विक्रय आवश्यक है क्योंकि वस्तु विनाशशील और संग्रह न की जाने वाली है।

(4) क्रेताओं की संख्या अधिक होती है।

(5) प्रत्येक विक्रेता वस्तु के मार्किट माग वक्र का ज्ञान रखता है।

(6) उत्पादन की लागत शून्य मान ली जाती है।

(7) दोनों फर्मों की समान लागतें और समान मांगे है।

(8) प्रत्येक विक्रेता इस बात का निर्णय करता है कि वह प्रत्येक अवधि मे, कितनी मात्रा का उत्पादन और विक्रय करना चाहता है।

(9) परन्तु प्रत्येक अपने प्रतिद्वन्द्वी के उत्पादन से सम्बन्ध रखने वाली योजना के बारे में कुछ नहीं जानता है।

(10) साथ ही, प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतिद्वन्द्वी की पूर्ति (उत्पादन) को स्थिर मान लेता है।

(11) उनमें से कोई भी अपनी वस्तु की कीमत नियत नहीं करता, परन्तु प्रत्येक मार्किट-माँग-कीमत स्वीकार कर लेता है जिस पर वस्तु बेची जा सकती है।

(12) नई फर्मों का प्रवेश बंद है।

(13) प्रत्येक विक्रेता का लक्ष्य अधिकतम शुद्ध आगम अथवा लाभ प्राप्त करना होता है।

ये मान्यताएं दी होने पर, मान लीजिए कि दो फर्में A और B दो खनिज जल झरनों में से पानी निकाल रही हैं। उनका मार्किट माग वक्र DD_1 है और सीमांत आगम वक्र MR_1 है जैसा कि चित्र 28 1 मे दर्शाया गया है। A और B दोनों की सीमांत लागतें शून्य है जिससे वह समानान्तर अक्ष के साथ मेल खाता है। मान लीजिए कि फर्म A अकेली उत्पादक है। ऐसी स्थिति में जब इसका MR_1 वक्र बिन्दु A पर MC वक्र (समानांतर अक्ष) के बराबर होता है तो वह OA ($= 1/2\ OD_1$) मात्रा उत्पादित करती है और बेचती है। वह AS ($= OP$) एकाधिकार कीमत लेती है और $OASP$ एकाधिकार लाभ प्राप्त करती है। अब फर्म B मार्किट में प्रवेश करती है और
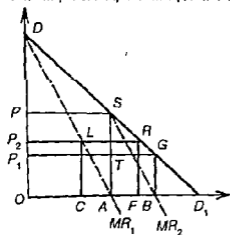
चित्र 28 1

यह आशा रखती है कि A अपने उत्पादन स्तर OA को नहीं बदलेगी। इसलिए वह माग वक्र के SD_1 भाग को अपना माग वक्र मानती है। इसका सीमांत आगम वक्र MR_1 है जो इसके MC वक्र (समानांतर अक्ष) को B बिन्दु पर काटता है। अत वह $BG (= OP_1)$ कीमत पर AB मात्रा $(= 1/2\, OD_1 = BD_1)$ बेचती है और $BGTA$ लाभ कमाने की आशा रखती है।

फर्म A को यह मालूम पड़ता है कि B के प्रवेश से कीमत OP से कम होकर OP_1 हो गई है। परिणामस्वरूप, इसके सभावित लाभ गिरकर OP_1TA हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में, वह अपनी कीमत और उत्पादन का समायोजन करने का प्रयत्न करती है। यह मानकर कि फर्म B वही मात्रा $AB (= BD_1)$ बेचती रहेगी, A फर्म $1/2\, OB$ बेचती है। इस प्रकार, इसकी मात्रा में $OA (= 1/2\, OD_1)$ से $1/2\, OB$ की कमी कीमत को बढ़ा देती है, जिसे चित्र को सरल रखने के लिए नहीं दिखाया गया है। A के उत्पादन में कमी के परिणामस्वरूप B प्रतिक्रिया (react) करती है और अपने उत्पादन को $1/2\, (OD_1 - 1/2\, OB)$ बढ़ा देती है जिससे कीमत गिर जाती है। इस प्रकार, फर्म A का अपने उत्पादन को कम करना जिससे कीमत के बढ़ने तथा B का प्रतिक्रिया द्वारा अपने उत्पादन को बढ़ाना जिससे कीमत के कम होने से अन्तत सतुलन कीमत OP_2 आ जाएगी। इस कीमत पर, खनिज जल का कुल उत्पादन OF होता है, जो दोनों फर्मों में बराबर-बराबर विभक्त होता है। प्रत्येक मार्किट माग का 1/3 भाग बेचती है, अर्थात् A फर्म OC बेचती है और B फर्म CF। इस कीमत पर A के लाभ $OCLP_2 = CFRL$ फर्म B के लाभों के।

स्पष्ट है कि दोनों फर्में कुल उत्पादन OD_1 का 2/3 बेचती हैं। यदि n फर्में हों तो उत्पादन की दर कुल उत्पादन के $n/n+1$ गुणा होगी। दोनों फर्मों A और B का कुल उत्पादन $2/2+1 = 2/3$ है। अत A + B का कुल उत्पादन है $OD_1 (1 - 1/2 + 1/4 - 1/8 + 1/16 - 1/32 + 1/64 \quad) = 2/3\, OD_1 = OF$

कूर्नो के द्वयाधिकार हल की पूर्ण प्रतियोगितात्मक हल के साथ तुलना की जाती है। द्वयाधिकार फर्में A और B सतुलन में OP_2 कीमत लेती हैं और OF मात्रा बेचती है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत शून्य कीमत पर कुल उत्पादन OD_1 होगा। कीमत शून्य है क्योंकि सीमांत लागत शून्य है। जब MR वक्र समानांतर अक्ष जो MC वक्र है को चित्र में A बिन्दु पर काटता है तो कीमत शून्य होती है। A और B फर्मों के बीच कुल उत्पादन OD_1 बराबर बाटा जाएगा $OD_1 = OA + AD_1$ तथा $OA = AD_1$ कूर्नो हल में OP_2 कीमत पूर्ण प्रतियोगी शून्य कीमत और सीमांत लागत (MC) से अधिक होती है तथा उत्पादन OF पूर्ण प्रतियोगी उत्पादन OD_1 से कम होता है। परन्तु कूर्नो हल में उत्पादन OF एकाधिकारात्मक उत्पादन OA से अधिक होता है परन्तु कीमत OP_2 एकाधिकार कीमत OP से कम होती है। गणितीय रूप में, कूर्नो के हल में उत्पादन एकाधिकार उत्पादन का 4/3 और पूर्ण प्रतियोगिता का 2/3 होगा।

निष्कर्ष (Conclusion)—कूर्नो मॉडल को दो से अधिक फर्मों पर भी बढ़ाया जा सकता है। जब अधिक फर्में अल्पाधिकार उद्योग में प्रवेश करती जाती हैं, तो उद्योग की कीमत और उत्पादन पूर्ण प्रतियोगी उत्पादन OD_1 और शून्य कीमत तक पहुच जाएगा।

कूर्नो मॉडल प्रतिक्रिया वक्रों के रूप में (Cournot Model in terms of Reaction Curves)

कूर्नो के मूल मॉडल की मान्यताओं पर आधारित, अर्थशास्त्रियों ने प्रतिक्रिया वक्रों के रूप में एक बेहतर हल दिया है। यह व्याख्या एक अतिरिक्त मान्यता लेती है कि एक द्वयाधिकार फर्म अपनी प्रतिद्वंद्वी फर्म की उत्पादन सबधी चालों के विरुद्ध स्वय प्रतिक्रिया करती है।

अत यह मानकर कि जब A उत्पादन करती है तो B प्रतिक्रिया नहीं करेगी, विलोमश (vice versa), उत्पादन प्रतिक्रिया वक्रों (output reaction curves) को अनुलब अक्ष पर A के उत्पादन को और समानांतर अक्ष पर B के उत्पादन को माप कर खींचे जा सकते हैं। चित्र 28 2 में A का

प्रतिक्रिया वक्र AL है और B का प्रतिक्रिया वक्र RB है। मान लीजिए कि A फर्म OG उत्पादित करती है। यह मानते हुए कि A अपने OG उत्पादन के स्तर का परिवर्तन नहीं करेगी, B फर्म OH उत्पादित करके प्रतिक्रिया करती है। तब A इस धारणा पर प्रतिक्रिया करती है कि B अपने उत्पादन OH को परिवर्तित नहीं करती, तो वह OE उत्पादन करती है। A द्वारा उत्पादन में इस परिवर्तन की प्रतिक्रिया B करती है, जब वह OF उत्पादित करती है। हम यह देखते हैं कि B की चालों की A पर प्रतिक्रिया उसके उत्पादन की कमी में व्यक्त होती है, और A की चालों की B पर प्रतिक्रिया उसके उत्पादन में वृद्धि द्वारा व्यक्त होती है। एक के उत्पादन की दूसरे के उत्पादन पर प्रतिक्रिया की प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक कि दोनों ही कूर्नो बिन्दु C पर नहीं पहुँच जाते, जहाँ दोनों A एवं B समान उत्पादन करते हैं। A का उत्पादन OM के बराबर है, और B का उत्पादन OF के। यही निष्कर्ष उस समय भी प्राप्त होता है यदि हम नीचे दाएँ से ऊपर बाएँ को चित्र 28 2 में गतिमान हों। अत. प्रतिक्रिया वक्र विश्लेषण कूर्नो मॉडल का स्थिर और अद्वितीय सतुलन जानने में सहायक होता है।
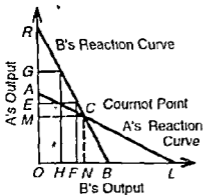
चित्र 28 2

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)

कूर्नो के मॉडल की निम्नलिखित आलोचनाए की गई है

1 कूर्नो के हल मे प्रधान दोष यह है कि प्रत्येक विक्रेता यह मान लेता है कि उसके प्रतिद्वन्द्वी की पूर्ति स्थिर रहती है, जबकि वह उसे बार-बार परिवर्तित होते देखता है। एक फ्रासीसी गणितज्ञ जोसेफ बर्ट्रेंड (Joseph Bertrand) ने 1883 मे कूर्नो की आलोचना करते हुए बताया कि विक्रेता अपने उन सब ग्राहको को, जो टूटकर B के पास चले गए है, वापिस लाने के लिए अपनी कीमत को B द्वारा नियत की गई कीमत से कम रखेगा और कीमत घटाने का यह सिलसिला चलता रह सकता है, जब तक कि कीमत शून्य पर नहीं पहुँच जाती। इस प्रकार बर्ट्रेण्ड ने यह दलील दी कि कीमतो के गिरने की कोई सीमा नहीं होगी, क्योकि हर विक्रेता अपना उत्पादन दुगुना करके अपने प्रतिद्वन्द्वी से कम बोली दे सकता है। इससे कीमत दीर्घकाल मे प्रतियोगात्मक स्तर पर आ जाएगी।

2 यह स्थैतिक मॉडल है क्योकि यह उस अवधि के बारे मे चुप है जिसमे एक फर्म प्रतिक्रिया करती है और अपने उत्पादन को दूसरी फर्म की चालो के अनुसार समायोजित (adjust) करती है।

3 कूर्नो का हल अवास्तविक है क्योंकि शून्य उत्पादन लागत मानता है।

4 यह बद मॉडल है क्योकि यह फर्मों के प्रवेश की उपेक्षा करता है।

5 यह मान्यता भी अवास्तविक है कि प्रत्येक द्वयाधिकारी दूसरे की उत्पादन प्रतिक्रिया के बिना कार्य करता है। वास्तव मे यह क्रिया-द्वारा-न-सीखना मॉडल है।

6 मार्शल के अनुसार, कूर्नो मॉडल कोई "सर्वमान्य हल देने मे असमर्थ है।" ऐसा इसलिए कि एक वास्तविक द्वयाधिकार मार्किट को पाना सभव नहीं है जहा प्रत्येक द्वयाधिकारी स्वतंत्र रूप से कार्य करता हो और उत्पादन ही क्रिया का एकमात्र प्राचल (parameter) नहीं है।

3 बर्ट्रेंड मॉडल
(THE BERTRAND MODEL)

सन् 1883 में एक फ्रांसीसी गणितज्ञ जोसेफ बर्ट्रेंड ने कूर्नो की इस बात पर आलोचना की कि एक द्वयाधिकार फर्म अपनी प्रतिद्वंद्वी फर्म की पूर्ति को स्थिर मानती है। इसके विपरीत उसने अपना मॉडल प्रस्तुत किया कि प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतिद्वंद्वी की कीमत को स्थिर मानता है, जबकि कूर्नो मॉडल की अन्य सभी मान्यताएं विद्यमान है।[2]

मान लीजिए कि A और B दो विक्रेता है। पहले A मार्किट मे प्रवेश करता है और अपने-आप को एकाधिकारी मानता है, तथा लाभ अधिकतम करने के लिए अपनी वस्तु की कीमत को एकाधिकार स्तर पर निश्चित करता है। तब B इस मान्यता पर मार्किट मे प्रवेश करता है कि A अपनी एकाधिकार कीमत लेता रहेगा और उत्पादन की वही मात्रा बेचता रहेगा। इसलिए B अपनी वस्तु की कीमत कम कर देता है। परिणामस्वरूप, A के कुछ ग्राहको को B ले जाता है। अब A यह सोचता है कि B यही कीमत लेता रहेगा, इसलिए वह अपनी कीमत को B के कीमत स्तर से कम कर देता है, जिससे वह B के कुछ ग्राहकों को खींच लेता है। इस प्रकार, वे कीमत युद्ध जारी रखेंगे जब तक कि दोनो उत्पादन और कीमत के पूर्ण प्रतियोगी स्तर पर नहीं पहुच जाते है। जब एक बार कीमत प्रतियोगी स्तर पर पहुच जाती है, दोनो मे से कोई भी कीमत को और कम करना अथवा बढाना न चाहेगा। यदि दोनो मे से एक द्वयाधिकारी प्रतियोगी स्तर से कम कर देता है, तो उसे हानि होगी। दूसरी ओर, यदि उनमे से एक प्रतियोगी कीमत से ऊपर कीमत बढाता है, तो वह अपना समस्त व्यवसाय अपने प्रतिद्वंद्वी के पास खो देगा यदि उसका प्रतिद्वंद्वी प्रतियोगी कीमत लेता रहता है। इस प्रकार, प्रतियोगी कीमत पर स्थिर सतुलन प्राप्त होता है, जहा कुल उत्पादन दोनों द्वयाधिकारियों में बराबर-बराबर बट जाता है।

बर्ट्रेंड मॉडल को चित्र 28.3 मे दर्शाया गया है। *OD* दोनो विक्रेताओं A और B का कीमत अक्ष है, तथा *DA* और *DB* उनके क्रमश माग वक्र है। विक्रेता A उत्पादन की अधिकतम मात्रा *OA* बेच सकता है और *OB* मात्रा B बेच सकता है। इस प्रकार, कुल प्रतियोगी उत्पादन $OA + OB$ है। यदि वे इकट्ठे मिलकर मार्किट को बाटना चाहते है, तो वे कीमत *OP* पर $1/2 (OA + OB) = OE + OC$ बेचते हैं। मान लीजिए दोनों के बीच कोई समझौता नहीं है, तथा A पहले से ही *OP* कीमत पर *OE* मात्रा बेच रहा है। अब B सोचता है कि A अपनी कीमत को नहीं बदलेगा। अत वह कम कीमत OP_1 निश्चित करता है तथा *OF* मात्रा बेचने के लिए A के कुछ ग्राहको को अपनी ओर खींच लेता है। A विक्रेता अपनी बिक्री में कमी पाकर अपनी कीमत को B की OP_1 कीमत से कम करके OP_2 पर ले आता है। इस प्रकार, वह B के कुछ ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित करके *OG* मात्रा बेचता है। अब प्रतिक्रिया करने की B की बारी है जो और कम कीमत OP_3 निश्चित करता है तथा A के कुछ ग्राहकों
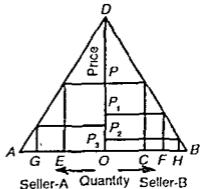
चित्र 28.3

2 कूर्नो मॉडल में दी गई सभी मान्यताएँ यहाँ दीजिए, सिवाए (10) के।

को आकर्षित करके उत्पादन की अधिक मात्रा *OH* बेचता है। A और B दोनों की ओर से एक-दूसरे के प्रति यह प्रतिक्रियाओं की शृंखला उतनी देर तक जारी रहेगी, जब तक कि दोनों अपने समस्त उत्पादन *OA* और *OB* शून्य प्रतियोगी कीमत पर बेच नहीं देते है। बर्ट्रेंड मॉडल में यह स्थिर संतुलन है। A अथवा B दोनों में किसी की ओर से भी कीमत बढ़ाने की चाल में इस मान्यता पर हानि होने की सम्भावना होगी कि उसका प्रतिद्वंद्वी अपनी कीमत को नहीं बढ़ाएगा और प्रतियोगी कीमत लेता रहेगा। दूसरी ओर, यदि A अथवा B अपनी कीमत प्रतियोगी कीमत से कम करता है, तो वह हानि उठाएगा। अतः दोनों अवस्थाओं में A तथा B विक्रेता शून्य प्रतियोगी कीमत से अधिक अथवा कम कीमत लेने की प्रवृत्ति नहीं रखेंगे। इस प्रकार, द्वयाधिकार सतुलन स्थिर होता है।

बर्ट्रेंड मॉडल प्रतिक्रिया वक्रों के रूप में (Bertrand Model in terms of Reaction Curves)

बर्ट्रेंड मॉडल की प्रतिक्रिया वक्रों के रूप में भी व्याख्या की जा सकती है। चित्र 28.4 में, विक्रेता A का प्रतिक्रिया वक्र *A* है और विक्रेता B का प्रतिक्रिया वक्र *B* है। समानान्तर अक्ष A की कीमतों को मापता है और अनुलंब अक्ष B की कीमतों को 45° रेखा A और B दोनों की कीमतों की समानता को दिखाने के लिए खींची गई है। मान लीजिए कि A विक्रेता B की अपेक्षा कम कीमत OA_1 लेता है। अब B प्रतिक्रिया करता है और वह OA_1 से अधिक कीमत OB_1 लेता है। इस बढ़ी हुई कीमत के प्रति प्रतिक्रिया करके A और अधिक कीमत OA_2 लेता है। दोनों विक्रेताओं के बीच यह क्रिया और प्रतिक्रिया की प्रक्रिया चालू रहेगी जब तक कि वे मार्किट-सतुलन बिन्दु *E* पर नहीं पहुंच जाते, जब दोनों बराबर कीमत लेंगे, अर्थात् $OA_3 = OB_3$। यदि इनमें से कोई एक विक्रेता सतुलन कीमत से अधिक कीमत लेता है, तो उनके बीच प्रतियोगिता क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं की शृंखलाएं लगेगी। परिणामस्वरूप, दोनों विक्रेताओं की कीमतें कम हो जाएगी और सतुलन पुनः *E* बिन्दु पर स्थापित हो जाएगा। अतः *E* स्थिर सतुलन बिन्दु है।
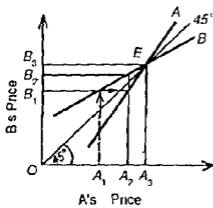
चित्र 28.4

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)

निम्नलिखित कारणों से बर्ट्रेंड मॉडल की आलोचनाएं की गई है

1. यह स्थैतिक मॉडल है जो द्वयाधिकारियों द्वारा कीमत चालों की क्रिया और प्रतिक्रिया की प्रक्रिया में अन्तर्ग्रस्त समय अवधि की व्याख्या नहीं करता है।

2. शून्य उत्पादन लागत की मान्यता अवास्तविक है क्योंकि कोई भी फर्म अपनी वस्तु को शून्य प्रतियोगी कीमत पर बेचने को तैयार नहीं होगी। जब उत्पादन में उत्पादन लागतें शामिल होती है, तभी दोनों विक्रेता सतुलन कीमत पर सामान्य लाभ अर्जित कर सकेंगे।

3. यह बंद मॉडल है जो फर्मों के प्रवेश को नहीं लेता है। यह मान्यता कि फर्मों का प्रवेश बंद है मॉडल को अवास्तविक बना देता है, क्योंकि द्वयाधिकारी उद्योग में कीमतों में वृद्धि से फर्मों का प्रवेश होता है।

4 यह मान्यता कि प्रत्येक द्वयाधिकारी दूसरे की कीमत प्रतिक्रिया के बिना कार्य करता है, अवास्तविक है। वास्तव में, यह क्रिया-द्वारा-न-सीखना मॉडल है।

4. ऐज्वर्थ मॉडल
(THE EDGEWORTH MODEL)

ऐज्वर्थ ने 1897 में प्रतिपादित अपने द्वयाधिकार मॉडल का विश्लेषण इस मान्यता पर किया कि प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतिद्वंद्वी की कीमत को स्थिर मानता है। उसने कूर्नो मॉडल की सभी मान्यताओं को लिया सिवाय इसके कि प्रतिद्वंद्वी का उत्पादन स्थिर रहता है।[3] फिर भी, कूर्नो की मान्यताओं में तीन और जोड़ दी गई है प्रथम, दोनों विक्रेताओं की सीमित उत्पादकीय क्षमता है। द्वितीय, अल्पकाल में वस्तु की भिन्न कीमतें हो सकती है। तृतीय, कुल मार्किट दोनों विक्रेताओं के बीच बराबर-बराबर बाटी गई है।

मॉडल की मान्यताए दी होने पर, ऐज्वर्थ हल की चित्र 28.5 द्वारा व्याख्या की गई है। विक्रेता A का माग वक्र *DA* है और विक्रेता B का *DB*। अनुलब अक्ष *OD* दोनों की कीमत का सामान्य वक्र है। कुल मार्किट माग को दोनों मे बराबर-बराबर बाटा गया है ताकि $OA = OB$। परन्तु वे क्रमश OA_2 और OB_2 से अधिक उत्पादन नहीं कर सकते है क्योंकि उनकी सीमित उत्पादकीय क्षमता है। यदि फर्म A मार्किट में पहले प्रवेश करती है तो वह OP_1 कीमत पर OA_1 इकाइया बेचती है और OA_1EP_1 एकाधिकार लाभ कमाती है। यह कीमत-उत्पादन सयोग लाभ

चित्र 28.5

अधिकतमकरण का है क्योंकि बिन्दु A_1 बिन्दुओ *O* और *A* के आधे भाग में स्थित है। *MR* वक्र, जो सरलता के कारण दिखाया नहीं गया है, वह समानातर अक्ष को जो *MC* वक्र है, उसे A_1 बिन्दु पर काटता है। अब B फर्म प्रवेश करती है, यह मानकर कि A अपनी कीमत को परिवर्तित नहीं करेगी। इसलिए वह OP_1 कीमत से थोडी-सी कम कीमत लेगी ताकि कुछ ग्राहक A से हटकर इसके पास आ जाए, क्योंकि यह फर्म मानती है कि A अपनी कीमत परिवर्तित नहीं करेगी। फर्म A जब यह पाती है कि उसकी बिक्री कम हो रही है तो वह भी अपनी कीमत कम कर देगी, यह मानकर कि B अपनी कीमत को नहीं बदलेगी। इससे दोनों में कीमत युद्ध प्रारंभ हो जाएगा जब तक कि दोनों फर्में OP_2 कीमत पर नहीं पहुच जाती है। इस कीमत पर दोनों फर्में A और B अपने क्षमता उत्पादन OA_2 और OB_2 करती है तथा अपने OA_2GP_2 और OB_2FP_2 लाभों को क्रमश अधिकतम करती है।

ऐज्वर्थ के अनुसार, OP_2 को स्थिर कीमत नहीं समझना चाहिए। ऐसा इसलिए कि दोनों में से किसी भी एक फर्म की कीमत बढ़ाकर OP_1 करने की प्रेरणा होती है ताकि वह एकाधिकार लाभ
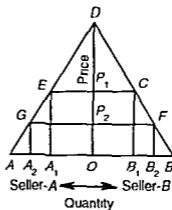
3 कूर्नो मॉडल की सभी मान्यताओं को यहाँ दीजिए, सिवाय (10) के।

अर्जित कर सके। यह पुन दोनो फर्मों के बीच कीमत युद्ध प्रारभ करता है।

इस प्रकार, ऐज्वर्थ के अनुसार, "हम उसी स्थिति में आ जाते हे जिसमें चले थे और फिर से नया चक्र शुरू करने को तैयार हे।" ऐज्वर्थ के हल मे, कीमत OP_1 तथा OP_2 के बीच डोलती रहती है और एक क्षण के लिए भी नहीं रुकती। इस प्रकार द्वयाधिकार की यह स्थिति अनिश्चित और अस्थिर सतुलन की हे, जहाँ प्रतियोगी और एकाधिकारात्मक स्तरो के बीच कीमत मे लगातार परिवर्तन होता रहता है। ऐज्वर्थ के शब्दो में, "एक अनिश्चित भाग रहेगा जिसमें मूल्य का सूचक अनिश्चित समय के लिए डोलता बल्कि थर्राता रहेगा।"

परन्तु प्रोफेसर चैम्बरलेन इस बात पर ऐज्वर्थ से सहमत नहीं है कि OP_2 स्थिर सतुलन का बिन्दु नहीं है, बल्कि वह तो हे ही स्थिर सतुलन का बिन्दु, क्योंकि एक क्रेता या क्रेताओं के समूह की स्थिति अधिक कीमत वाले विक्रेता के पास जाने से अपेक्षाकृत बुरी हो जाएगी, इसलिए वह वर्तमान प्रबध को अधिमान देगा और परिवर्तन नहीं करना चाहेगा। ऐज्वर्थ के हल मे कीमत इसलिए लगातार नहीं डोलती कि विक्रेताओ की सख्या कम हे बल्कि इसलिए डोलती हे कि प्रक्रिया मे कोई निश्चित या मुकाबले पर बोली नहीं दी जाती। कीमते कम तो प्रतियोगिता के कारण होती हे, परन्तु उन्हे एक विक्रेता अपनी इच्छा से बढा देता है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि जब कीमत गिरती हे, तो दोनो विक्रेताओ की मार्किट मिलकर एक बन जाती है और कीमत मे थोडी-सी कमी करके एक विक्रेता स्वतन्त्रता से दूसरे के ग्राहकों को तोड लेता है। परन्तु कीमत बढाने के लिए दोनो की मार्किट एक-दूसरे से बिल्कुल अलग होती हे जिससे एक अपने उत्पादन को OP_2 कीमत पर और दूसरा अपने उत्पादन को OP_1 कीमत पर बेचता है।

ऐज्वर्थ के हल ने कूर्नो मॉडल को इस दृष्टि से सुधार दिया हे कि निर्णय चर (decision variable) उत्पादन की बजाय कीमत है, चाहे इसका परिणाम अनिश्चितता (indeterminacy) ही होती हे।

5 स्टेक्लबर्ग मॉडल (THE STACKELBERG MODEL)

जर्मनी के अर्थशास्त्री स्टेक्लबर्ग[4] ने द्वयाधिकार समस्या का हल इस मान्यता पर सुझाया कि प्रत्येक विक्रेता दूसरे की क्रियाओ की परस्पर निर्भरता को मानता है। प्रत्येक विक्रेता या अपने-आप को नेता (leader) अथवा अनुयायी समझता है। प्रत्येक विक्रेता नेता और अनुयायी दोनो होने पर अधिकतम लाभ, जो वह प्राप्त कर सकता है, निर्धारित करता है। तब वह वही भूमिका निभाएगा जो उसे अधिकतम लाभ प्रदान करती हे। इस प्रकार, यदि उनकी इच्छाए एक दूसरे के साथ मेल खाती हो, तो मार्किट सतुलन मे होता हे।

स्टेक्लबर्ग का हल प्रतिक्रिया वक्रो पर आधारित हे। प्रत्येक प्रतिक्रिया वक्र प्रत्येक विक्रेता के उत्पादन को उसके प्रतिद्वद्वी के उत्पादन का फलन व्यक्त करता है। अत यदि विक्रेता A का उत्पादन Q_A और विक्रेता B का उत्पादन Q_B हो, तो विक्रेता A का प्रतिक्रिया फलन होगा है $Q_A = f(Q_B)$, और विक्रेता B का $Q_B = f(Q_A)$। ये प्रतिक्रिया फलन व्यक्तिगत द्वयाधिकारियों के लाभ उदासीनता मानचित्रो (profit indifference maps) से व्युत्पन्न किए जाते है। इस प्रकार, A का प्रतिक्रिया फलन Q_A का मूल्य देता है जो B के उत्पादन (Q_B) के कोई विशिष्ट मूल्य के लिए A के लाभ को अधिकतम करता हे। इसी प्रकार, A के उत्पादन (Q_A) के कोई विशिष्ट मूल्य के लिए B के उत्पादन का मूल्य B के लाभ को अधिकतम करता है। इसे आगे चित्रो मे दर्शाया गया है जहा

4 H Von Stackelberg, *The Theory of Market Economy* 1952

विक्रेता A का नेतागिरी बिन्दु L_A फर्म B के प्रतिक्रिया वक्र पर स्थित है, और विक्रेता B का नेतागिरी बिन्दु L_B फर्म A के प्रतिक्रिया वक्र पर स्थित है।

स्टेकलबर्ग मॉडल मे निम्न चार सभावनाए शामिल है। ये प्रत्येक द्वयाधिकारी द्वारा नेतागिरी और अनुयायी की दोनो भूमिकाए निभाने से अपने लाभ को अधिकतम करने की इच्छा पर निर्भर करती है।

(1) **विक्रेता A नेता और B अनुयायी** (Seller A a Leader and B a Follower)—ऐसी स्थिति मे, द्वयाधिकारी अवरोधी व्यवहार ढाचे अपनाते है ओर हल निश्चित होता है। इसे चित्र 28 6 मे दर्शाया गया है जहा 'चर' को कीमत लिया गया है। इस स्थिति मे, प्रत्येक विक्रेता अपनी कीमत बढाएगा यदि प्रतिद्वद्वी की कीमत बढती है। यदि विक्रेता A नेता की भूमिका निभाते हुए अपनी कीमत L_B से ऊपर बढाता है, तो B उसका अनुकरण करते हुए अपनी कीमत L_A से ऊपर बढाता जाता है। इस प्रकार दोनो सतुलन बिन्दु E पर पहुच जाते है। अत हल निश्चित होता है।
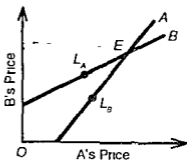
(2) **विक्रेता B नेता और A अनुयायी** (Seller B a Leader and A a Follower)—ऐसी स्थिति मे भी हल निश्चित होता है क्योकि दोनो विक्रेता अवरोधी व्यवहार ढाचा अपनाते है। इसे भी चित्र 28 6 द्वारा समझाया गया है। अब विक्रेता B नेता की भूमिका निभाते हुए जब अपनी कीमत L_A से ऊपर बढाता है तो A उसका अनुकरण करते हुए अपनी कीमत L_B से ऊपर बढाता जाता है जब तक कि दोनो सतुलन बिन्दु E पर नहीं पहुच जाते है। इस प्रकार, हल फिर निश्चित होता है।

चित्र 28 6

(3) **A और B दोनो नेता** (Both A and B Leaders)—जब दोनो A और B अपने को नेता समझते हो तो प्रत्येक इस मान्यता पर चलता है कि दूसरे का व्यवहार उसके प्रतिक्रिया फलन द्वारा नियत्रित होता है। परन्तु वास्तव मे, दोनो मे से कोई भी दूसरे के प्रतिक्रिया फलन का अनुसरण नहीं करता है। इस प्रकार कोई सतुलन स्थिति नहीं होती है। इसे **स्टेकलबर्ग असतुलन** कहते है। इसे चित्र 28 7 मे दर्शाया गया है, जहा 'चर' को **उत्पादन की मात्रा लिया गया है**। प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतिद्वद्वी के उत्पादन मे वृद्धि से हानि उठाता है। एक विक्रेता का लाभ अधिकतमकरण उत्पादन गिरता है जब उसके प्रतिद्वद्वी का उत्पादन बढता है। यदि B नेता के रूप मे कार्य करता है और अपने उत्पादन को L_A से ऊपर बढाता है, तो A पर उसकी प्रतिक्रिया यह होगी कि वह अपने उत्पादन को L_B से नीचे की ओर कम करेगा। लेकिन B का अनुसरण करते हुए A ऐसा नहीं करता है क्योकि वह भी अपने-आप को नेता समझता है। इसलिए वह
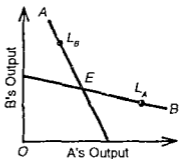
चित्र 28 7

अपने उत्पादन को L_B से नीचे की ओर कटौती नहीं करता है। इसलिए बिन्दु L पर सतुलन की कोई सभावना नहीं है। यही स्टेक्लबर्ग असतुलन है।

(4) **A और B दोनों अनुयायी (Both A and B Followers)**—यदि दोनों A और B अनुयायी हो तो हल निश्चित होता है क्योंकि प्रत्येक यह जानकर अनुसरण करता है कि दूसरा भी अनुसरण करेगा। मान लीजिए कि चित्र 28 6 में विक्रेता B यह सोचता है कि A ने अपनी वस्तु की कीमत L_A से ऊपर बढा दी है, तो B उसका अनुसरण करते हुए अपनी वस्तु की कीमत L_B से बढा देगा। अब A की बारी है B का अनुसरण करने की। वह L_A से ऊपर अपनी वस्तु की कीमत और बढाता है और B उसका अनुसरण करते हुए L_A से ऊपर और कीमत बढाता है। इस प्रकार दोनों अपनी कीमतें बढाते जाएगे जब तक कि वे सतुलन बिन्दु F पर नहीं पहुच जाते हैं। अत अनुयायी हल निश्चित होता है।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)

स्टेकलबर्ग हल द्वयाधिकार समस्या को सबधित मार्किट ढाचा के एक परिवार के साथ सफलतापूर्वक जोडता है। परन्तु इसकी कुछ कमिया भी हैं।

1 स्टेकलबर्ग मॉडल द्वयाधिकारियों के बीच कपटसधि (collusion) और समन्वय (coordination) की समस्या को शामिल नहीं करता है, जिसमें अवास्तविक परिणाम प्राप्त होते हैं। यद्यपि नेतृत्व सतुलनो मे, जो ऊपर (1) और (2) मे वर्णन किए गए हैं, कपटसधि अथवा अपने-आप समन्वय का अश सम्मिलित है, फिर भी वे मनगढन्त किस्म के समन्वय को व्यक्त करते हैं। ऐसा इसलिए कि नेतृत्व अपने-आप को परपरागत किस्म के प्रतिक्रिया वक्र पर एक बिन्दु चुनने को दर्शाता है। ऐसे नेतृत्व सतुलनो का सयुक्त लाभ अधिकतमकरण से सबद्ध कोई विशेष अर्थ नहीं होता है।

2 फिर प्रतिक्रिया वक्रो के काटने के सतुलन बिन्दु प्रतिद्वद्वी विक्रेता के व्यवहार से सबद्ध गलत और मनगढन्त धारणाओं पर आधारित है। ये इस मान्यता पर आधारित है कि प्रतिद्वद्वी के 'चर' का मूल्य विक्रेता की अपनी चालों के बावजूद दिया होता है। कटाव-बिन्दु सतुलन प्रतिद्वद्वी के नेतृत्व का अनुसरण करने के परस्पर यत्न का परिणाम है। परन्तु एक विक्रेता द्वारा प्रतिक्रिया वक्र पर चुना गया बिन्दु प्रतिद्वद्वी विक्रेता की नीतियों को ढालने मे कोई भूमिका नहीं निभाता है। अत जिस मान्यता पर यह विश्लेषण आधारित है वह मनगढन्त और गलत है।

3 स्टेकलबर्ग असतुलन जो दोनों विक्रेताओं द्वारा नेतृत्व करने के यत्न का परिणाम है गलत तर्क और मनगढन्त मान्यताओं पर आधारित है। यह इस मान्यता का परिणाम हो सकता है कि प्रतिद्वद्वी विक्रेता एक प्रतिक्रिया वक्र पर गति करता है जो वास्तव मे उसके लिए है ही नहीं। अथवा, यह इस तर्क का परिणाम हो सकता है कि प्रतिद्वद्वी विक्रेता को उस वक्र पर प्रतिक्रिया करने पर बाध्य किया जाता है जो उसके लिए नहीं है और इस प्रकार उसे अनुयायी बनने पर मजबूर किया जाता है।

अत स्टेकलबर्ग हल के प्रतिक्रिया वक्र, जो कल्पनाओं पर आधारित है, उन्होंने इस सिद्धात को कमजोर और अवास्तविक बना दिया है।

निष्कर्ष (Conclusion)—इन कमियों के बावजूद स्टेकलबर्ग का मॉडल द्वयाधिकारियों के बीच परस्पर निर्भरता के महत्त्व को दर्शाता है। यदि वे इसे मानते है तो वे लाभ अर्जित कर सकते है और यदि वे इसकी उपेक्षा करते है तो दोनों हानि उठाते है। यदि वे कपटसधि करते है तो वे अपने लाभों को सयुक्त रूप मे अधिकतम कर सकते है।

6 होटलिंग मॉडल
(HOTELLING MODEL)

हेरड होटलिग ने अपने लेख *Stability in Competition (1929)* मे *द्वयाधिकार समस्या का एक* निश्चित ओर स्थिर हल पेश किया।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

यह मॉडल निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित है

(1) A और B दो विक्रेता विभिन्न स्थानों पर स्थित है।

(2) दोनों समरूप स्टेडर्ड वस्तु बेचते हे जो खरीदारो की दृष्टि मे विभेदीकृत होती है क्योकि दोनों A ओर B विभिन्न स्थानो पर स्थित है।

(3) दोनो विक्रेताओं की अपनी-अपनी मार्किट क्षेत्रो मे विभाजित है।

(4) प्रत्येक विक्रेता अपनी मार्किट के क्षेत्र में अर्द्ध-एकाधिकारात्मक स्थिति मे है।

(5) दोनों विक्रेता शून्य सीमात लागत पर उत्पादन करते है।

(6) माग पूरी तरह लोचदार है।

(7) *मार्किट रेखीय है जहा खरीदार समान रूप से लम्बाई की एक रेखा L पर एक-समान फैले* हुए है, जो एक नगर मे मुख्य गली अथवा पारमहाद्वीपी (Transcontinental) रेल रोड हो सकती है।

(8) किसी भी खरीदार की दोनों मे से किसी भी विक्रेता के लिए अधिमान नहीं हे, सिवाय कीमत जमा परिवहन लागतों के।

(9) परिवहन लागते, खरीदारों और विक्रेताओ के बीच दूरियों के अनुपात मे परिवर्तित होती है।

(10) वस्तु की प्रत्येक इकाई के लिए दी गई कीमत समान हे।

मॉडल (The Model)

ऊपर दी गई मान्यताए होने पर, होटलिग मॉडल को चित्र 28 8 द्वारा समझाया गया है। दोनो विक्रेताओं के व्यवसाय के स्थान A ओर B मार्किट रेखा L की लम्बाई के साथ हैं, जो कुल क्षेत्रो मे विभाजित है। विक्रेता A के बाई ओर a खरीदार है तथा B विक्रेता के दाई ओर b खरीदार हे, ओर उनके बीच $x + y$ खरीदार हे। अत कुल बिक्री है $L = a + x + y + b$

प्रत्येक खरीदार को विक्रेता के व्यवसाय के स्थान पर जाना पडता है और वस्तु को अपने घर तक लाने की c प्रति इकाई दूरी की परिवहन लागते देनी होनी हे। इस प्रकार, एक खरीदार जो A से y दूरी पर स्थित है उसे परिवहन लागतो के रूप मे cy वस्तु की प्रति इकाई अवश्य देनी पडती है।

दोनो विक्रेताओं को अपनी कीमते निश्चित करने में कुछ स्वय निर्णय लेने की छूट हे। उदाहरणार्थ, A कभी भी अपनी कीमत इतनी ऊची निश्चित नहीं करेगा कि a खरीदारो मे से कोई भी जो उसके बाईं ओर हे, वे B से खरीदना कम महगा पाते हो और अपनी खरीदारियों को अपने घर भेज सकते हो। दोनो A और B विक्रेताओं की अपनी क्रमश a ओर b सुरक्षित मार्किट हे। कीमतों के कोई विशेष जोडे के लिए चित्र मे रेखा L पर स्थित बिन्दुओ A ओर B के बीच स्थित $x + y$ खरीदार बिन्दु R द्वारा विभाजित होंगे। ऐसा इस कारण कि दी गई कीमते अवश्य बराबर होनी चाहिए $p_1 + cx = p_2 + cy$, जहा p_1 ओर p_2
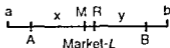
चित्र 28 8

क्रमश A ओर B विक्रेताओं की कीमते है। A का लाभ $p_1(a+x)$ है और B का लाभ $p_2(b+y)$ है। यदि ये लाभ अभिव्यक्तिया (expressions) अधिकतम की जाती है, तो सदैव स्थिर, अद्वितीय ओर निश्चित कीमते होती है। अत अल्पकाल मे, निश्चित स्थिर सतुलन होता है।

दीर्घकाल मे, द्वयाधिकारी अपने प्लाट अथवा क्रय बिन्दुओं को पुन स्थापित कर सकते है। प्रत्येक विक्रेता अपनी सुरक्षित मार्किट का प्रसार करने का यत्न करेगा। A को प्रेरणा होती है कि वह अपनी सुरक्षित मार्किट a को जहा तक सभव हो B के निकट करे, ओर B को प्रेरणा होती है कि वह अपनी सुरक्षित मार्किट b को जहा तक सभव हो A के निकट करे। A का B की ओर यह आकर्षण, A के लाभो को B की लागत पर बढाता है। यदि सुरक्षित मार्किट a इतनी बढती है कि B के समीप A हो जाता है, तो A की वस्तु की बिक्री की मात्रा ओर कीमत दोनो बढती है, जबकि B की कम होती है। A के दृष्टिकोण से उसका B के निकट होने पर तीव्र प्रतियोगिता उसके अधिक सख्या मे खरीदारो द्वारा क्षतिपूर्ति कर देती है। ऐसा ही B के साथ होता है, जो अपनी सुरक्षित मार्किट b का प्रसार करने के प्रयत्न मे A के समीप हो जाता है ओर इस प्रकार अपनी वस्तु की मात्रा ओर कीमत दोनो मे वृद्धि करता है। इनके परिणामस्वरूप दोनो A ओर B चित्र मे रेखा L के मध्य मे M बिन्दु पर स्थित होगे। यदि M के दाई ओर A स्थित है, तो A के बाई ओर B स्थित हो सकता है ओर बडी सुरक्षित मार्किट प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार, यदि M के बाई ओर B स्थित है तो A उसके दाई ओर स्थित हो सकता है ओर एक बडी सुरक्षित मार्किट प्राप्त कर सकता है। अत दोनो A ओर B अन्तत मार्किट के मध्य मे M पर स्थित होगे। इस प्रकार, होटलिग का हल द्वयाधिकारियो की कीमत ओर स्थिति दोनो के रूप मे स्थिर ओर निश्चित है।

होटलिग का हल कुछ व्यवहारिक निहितार्थों की ओर सकेत करता है। सामाजिक कल्याण के दृष्टिकोण से A ओर B रेखीय मार्किट के चतुर्थक बिन्दुओं पर स्थित होना चाहिए ताकि परिवहन लागत न्यूनतम की जा सके। परन्तु वे मध्य बिन्दु पर स्थित है जिससे परिवहन लागते अधिकतम होती हैं। इस प्रकार का द्वयाधिकारियो के बीच प्रतिबद्ध आदर्श वस्तु विभेदीकरण के विरुद्ध होता है। अत होटलिग हल सामाजिक कल्याण के साथ टकराता है।

7 चैम्बरलेन मॉडल (अल्प ग्रुप मॉडल)
(THE CHAMBERLIN MODEL—SMALL GROUP MODEL)

चेम्बरलेन ने स्थिर द्वयाधिकार हल प्रस्तुत किया जिसमे दो विक्रेताओ की परस्पर निर्भरता को स्वीकार किया। उसने कूर्नो ओर बर्ट्रेंड दोनो के हलो की आलोचना की ओर इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि दोनो मे से कोई हल पूरी तरह से इस सिद्धात के अनुसार नहीं है कि प्रत्येक विक्रेता अपने लाभ को अधिकतम करना चाहता है। ऐसा करने के लिए वह कीमत पर अपने कुल प्रत्यक्ष ओर अप्रत्यक्ष प्रभाव पर विचार करेगा। जब तक विक्रेता अपने प्रतिद्वद्वी की कीमत अथवा उत्पादन मे परिवर्तनो के प्रति निष्क्रिय (passive) होता है, तो यह एक प्रत्यक्ष प्रभाव है। दूसरी ओर, जब एक विक्रेता अपने प्रतिद्वद्वी की कीमत अथवा उत्पादन के प्रति प्रतिक्रिया करता है, तो प्रभाव अप्रत्यक्ष होता है। चैम्बरलेन के अनुसार, जब विक्रेताओ के बीच परस्पर निर्भरता को स्वीकार किया जाता है, तो एक विक्रेता की कीमत अथवा उत्पादन मे परिवर्तन के प्रत्यक्ष ओर अप्रत्यक्ष दोनो प्रभाव एकाधिकार कीमत और उत्पादन के साथ उद्योग के *स्थिर* सतुलन को लाते है।

चम्बरलेन हल को उत्पादन समायोजन ओर कीमत समायोजन दोनो रूपो मे चित्र 28 9 द्वारा वर्णन किया गया है। मान लीजिए कि पहले विक्रेता A मार्किट मे एक एकाधिकारी के रूप मे मार्किट मे प्रवेश करता है ओर OA उत्पादन OP, कीमत पर बेचकर अपने लाभ को अधिकतम
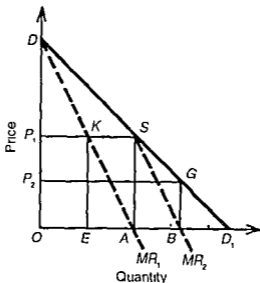
चित्र 28 9

करता है। इस प्रकार, वह $OASP_1$ एकाधिकार लाभ अर्जित करता है। अब विक्रेता B उसके बाद मार्किट मे प्रवेश करता है ओर मार्किट माग वक्र DD_1 का SD_1 भाग अपना माग वक्र समझता है। कूर्नो की मान्यता के अन्तर्गत कि उसका प्रतिद्वद्वी अपने उत्पादन को परिवर्तित नहीं करेगा, वह AB उत्पादन को OP_2 (= BG) कीमत पर बेचेगा। यहा से चैम्बरलेन के हल और कूर्नो के हल मे अन्तर उत्पन्न होता है। कूर्नो मॉडल मे प्रत्येक प्रतिद्वद्वी स्वतत्र तोर से कार्य करता है। परन्तु चैम्बरलेन उनम परस्पर निर्भरता मानता है। इसलिए A विक्रेता B की चालो के प्रति प्रतिक्रिया नहीं करता है और B के अस्तित्व के साथ समझौता करता है। इस प्रकार वह अपने उत्पादन को B के AB उत्पादन के बराबर करने का निर्णय करता है और उसे OA से कम कर OE कर देता है। B विक्रेता भी परस्पर निर्भरता स्वीकार करता है ओर यह मानता है कि EA उत्पादन ऊची कीमत OP_1 पर बेचकर वह एकाधिकार लाभ मे हिस्सा लेगा। अत परस्पर निर्भरता मानते हुए, प्रत्येक विक्रेता एकाधिकार उद्योग का OA उत्पादन बराबर बाट लेते है A विक्रेता OE मात्रा बेचकर और B विक्रेता EA मात्रा बेचकर। वे कुल एकाधिकार लाभ $OASP_1$ को भी आपस मे बराबर बाट लेते है A विक्रेता $OEKP_1$ और B विक्रेता $EASK$ लाभ OP_1 एकाधिकार कीमत पर अर्जित करते है। इसलिए OP_1 (= AS) पूर्णरूप से स्थिर कीमत है क्योकि कोई भी विक्रेता भिन्न रूप से व्यवहार करके अपने और अपने प्रतिद्वद्वी के लिए तबाही ला सकता है।

चेम्बरलेन यह भी व्यक्त करता है कि यदि विक्रेता उत्पादन की बजाय अपनी कीमतो का समायोजन करे, तो भी यही परिणाम प्राप्त होगा। हम चित्र 28 9 को लेते है। मान लीजिए कि कीमत OP_1 और OP_2 के बीच कहीं भी है। अपने लाभ को अधिकतम बनाने के लिए यदि A अपनी कीमत बढाकर OP_1 कर दे, तो B भी तुरन्त ऐसा ही करेगा। इस प्रकार B भी अधिकतम

लाभ प्राप्त करने के लिए अपनी कीमत को बढ़ाकर OP_1 पर ले आता है। जब OP_1 कीमत एक बार नियत हो जाती है, तो कोई भी विक्रेता इसे घटाएगा नहीं क्योंकि प्रत्येक विक्रेता जानता है कि ऐसा करने से लाभ कम हो जाएगा। सतुलन फिर निश्चित और स्थिर हो जाता है।

चेम्बरलेन के हल मे यह मान लिया गया है कि दोनो विक्रेताओ मे एक प्रकार का समझौता रहता है। यद्यपि यह समझौता लिखित रूप मे नहीं होता, फिर भी प्रत्येक विक्रेता को इतनी समझ तो होती ही है कि परस्पर-निर्भरता के महत्त्व को समझ सके। हर विक्रेता विवेकशीलता से काम लेता है, अपनी नाक से आगे देखता है और इस बात को समझता है कि एकाधिकार लाभो को बाँट कर लेना उसके अपने हित मे है। इस प्रकार चैम्बरलेन मॉडल मे विक्रेता स्वतन्त्र तो होते है, पर फिर भी, उनमे एक प्रकार का समझौता रहता है, जिससे स्थिर सतुलन, एक प्रकार का एकाधिकारात्मक सतुलन स्थापित होता है।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)

चैम्बरलेन मॉडल मे कुछ कमिया पाई जाती है

1 यह बद मॉडल है जिसमे कूर्नो और बर्ट्रेड मॉडलो की तरह फर्मों के प्रवेश की उपेक्षा की गई है।

2 इस मॉडल मे प्रतिद्वद्वियो द्वारा शून्य दबाव लागतो के सयुक्त लाभ बाटना पाया जाता है। लेकिन दोनो विक्रेताओ द्वारा लाभ बाटने मे समस्याए उत्पन्न हो सकती है।

3 फैलनर चेम्बरलेन मे सहमत नहीं है कि द्वयाधिकार परस्पर निर्भरता मे एकाधिकार हल सभव है। एक फर्म अक्सर मार्किट माग वक्र की लोच को वास्तविकता से कम आकती है और अपने माग वक्र की लोच को वास्तविकता से अधिक आकती है। मार्किट माग वक्र को कम आकने से मार्किट MR वक्र का गलत अनुमान होता है। इससे समझोता की हुई फर्म एकाधिकार कीमत से अधिक कीमत लेती है। एक ऊची कीमत जो अधिक लाभ देती है वह उद्योग मे फर्मों का प्रवेश ला सकती है जिससे चेम्बरलेन हल असभव हो सकता है।

II. अल्पाधिकार
(OLIGOPOLY)

1 अर्थ
(MEANING)

अल्पाधिकार वह मार्किट स्थिति होती है जिसमे समरूप अथवा विभेदीकृत वस्तुए बेचने वाली थोड़ी सी फर्मे होती है।[5] अल्पाधिकार मार्किट मे फर्मों की निश्चित सख्या बताना कठिन है। तीन, चार अथवा पाच फर्मे हो सकती है। इसीलिए इसे अल्प के बीच प्रतियोगिता (competition among the few) भी कहते है। मार्किट मे थोड़ी सी फर्मे होने पर, किसी एक की कार्यवाही दूसरो को प्रभावित कर सकती है। एक अल्पाधिकार उद्योग या तो समरूप अथवा विभिन्न प्रकार की वस्तुए उत्पादित कर सकता है। पहली किस्म को शुद्ध अथवा पूर्ण अल्पाधिकार और दूसरी को अपूर्ण

5 Oligopoly is a market situation in which the number of sellers dealing in a homogeneous or differentiated product is small

अथवा विभेदीकृत अल्पाधिकार करते है। शुद्ध अल्पाधिकार मुख्य तौर से ऐसी औद्योगिक वस्तुओ के उत्पादको मे पाई जाती है जैसे ऐलुमिनियम, सीमेट, तावा, स्टील, जस्ता, आदि। अपूर्ण अल्पाधिकार ऐसी उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादकों जैसे कारो, सिगरेट, साबुन, टी वी , रवड टायर, आदि में पाई जाती है।

2 अल्पाधिकार की विशेषताए
(CHARACTERISTICS OF OLIGOPOLY)

विक्रेताओ की सख्या कम होने के अलावा, अधिकतर अल्पाधिकारात्मक उद्योगो की समान विशेषताए होती है जिनकी व्याख्या नीचे की जा रही है।

(1) **परस्पर निर्भरता** (Inter-dependence)—एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में विक्रेताओ के बीच परस्पर निर्भरता पाई जाती है। प्रत्येक एकाधिकारात्मक फर्म जानती है कि कीमत, विज्ञापन, वस्तु विशेषताओ आदि द्वारा मे परिवर्तनो से प्रतिद्वद्वी चालो की प्रतिक्रियाए करते है। जब विक्रेताओ की सख्या कम होती है, तो प्रत्येक विक्रेता समस्त उद्योग के कुल उत्पादन के एक बडे भाग को उत्पादित करता है और मार्किट स्थितियो पर स्पष्ट प्रभाव डाल सकता है। वह अधिक या कम मात्रा का विक्रय करके समस्त अल्पाधिकार मार्किट की कीमत को घटा या बढा सकता है और अन्य विक्रेताओं के लाभो को प्रभावित कर सकता है। इसका मतलब है कि प्रत्येक विक्रेता अन्य विक्रेताओं की कीमत सबधी चालो से परिचित है और जानता है कि उनकी चालो का उसके अपने लाभ पर और अपनी कीमत सबधी चाल का प्रतिद्वद्वियों पर क्या प्रभाव पडता है। इस प्रकार अपनी कीमत-उत्पादन नीतियो के सबध मे सब विक्रेताओ मे पूर्ण परस्पर निर्भरता होती है। **उद्योग के हर अन्य विक्रेता पर प्रत्येक विक्रेता का प्रत्यक्ष और निश्चित प्रभाव पडता है।**

(2) **विज्ञापन** (Advertisement)—निर्णय करने मे इस परस्पर निर्भरता का प्रमुख कारण यह है कि एक उत्पादक का भाग्य उद्योग में अन्य उत्पादको की नीतियो और भाग्य पर निर्भर करता है। इसलिए अल्पाधिकार मे फर्मे विज्ञापन पर बहुत व्यय करती है। जेसा कि प्रो बामोल ने सकेत किया है, "अल्पाधिकार मे विज्ञापन जीवन एव मृत्यु का विषय बन सकता है।" उदाहरण के लिए यदि सब अल्पाधिकारी अपनी वस्तुओ के विज्ञापन पर लगातार बहुत खर्च करते रहे ओर एक विक्रेता उनके मुकाबले मे न आ पाए, तो उसके ग्राहक धीरे-धीरे उसके प्रतियोगियो की वस्तुओ को खरीदने लगेगे। दूसरी ओर, यदि एक अल्पाधिकारी अपनी वस्तु का विज्ञापन देता है, तो दूसरे अपने विक्रय को बनाए रखने के लिए उसका अनुकरण करेगे। यही तो हम वास्तव मे पाते है कि समाचारपत्रों मे कार, रवड टायर, बिजली की वस्तुओ, सिगरेटो ओर बहुत-सी दूसरी अल्पाधिकार वस्तुओ का विज्ञापन होता है।

(3) **प्रतियोगिता** (Competition)—अल्पाधिकारी मार्किट मे प्रतियोगिता पाई जाती है। क्योंकि अल्पाधिकार मे थोडे से विक्रेता होने है, इसलिए एक विक्रेता की चाल एकदम दूसरों को प्रभावित करती है। इसलिए प्रत्येक विक्रेता सदैव सतर्क रहता है ओर अपने प्रतिद्वद्वियों की चालों पर गुप्त नजर रखता है ताकि अपनी प्रति-चाले (counter moves) कर सके। यही वास्तविक प्रतियोगिता है। सच्ची प्रतियोगिता जीवन का सघर्ष होता है जिसमे प्रतियोगी के विरुद्ध प्रतियोगी डटा हो। यह स्थिति अल्पाधिकार मार्किट मे पाई जाती है।

(4) **फर्मो के प्रवेश पर प्रतिबध** (Barriers to entry of firms)—क्योंकि एक अल्पाधिकारात्मक उद्योग मे तीव्र प्रतियोगिता होती है, इसलिए इसमे फर्मो के प्रवेश अथवा निकास पर कोई रुकावट नहीं होती है। फिर भी, दीर्घकाल मे फर्मों के प्रवेश मे कुछ रुकावटे होती है जो नई फर्मों को उद्योग मे प्रवेश करने से रोकती है। वे निम्न हो सकती है (i) कुछ बडी फर्मों द्वारा पैमाने की मितव्ययिताओ

का लाभ उठाना, (ii) आवश्यक और विशेषीकृत (specialised) आगतो पर नियन्त्रण, (iii) प्लाट लागतो, विज्ञापन लागतो आदि के कारण ऊंची पूजी आवश्यकताए, (iv) एकमात्र पेटेंट और लाइसेंस, और (v) अप्रयुक्त क्षमता का पाया जाना जो उद्योग को अनाकर्षक (unattractive) बनाती है। जब ऐसी प्राकृतिक और कृत्रिम रुकावटो से फर्मों का प्रवेश रुकता अथवा प्रतिबंधित होता है, तो एकाधिकारात्मक उद्योग दीर्घकाल मे असामान्य लाभ कमाता है।

(5) **एकरूपता का अभाव** (Lack of uniformity)—अल्पाधिकार की एक विशेषता यह है कि इसमें फर्मों मे एकरूपता नहीं पायी जाती। फर्में एक दूसरे से आकार मे भिन्न होती है। कई बहुत बड़ी और अन्य छोटे आकार की होती है, जो भिन्नित वस्तुए ही बनाती है। ऐसी स्थिति अव्यवस्थित (asymmetrical) कहलाती है। यह अमरीकन अर्थव्यवस्था मे एक सामान्य बात है। वस्तुओं मे समरूपता तथा फर्मों मे एकरूपता अल्पाधिकार में कम ही पाई जाती है।

(6) **माँग वक्र** (Demand curve)—ऐसी स्थिति मे अल्पाधिकारी की वस्तु के लिए माँग वक्र बनाना आसान नहीं है। क्योंकि अल्पाधिकार के अन्तर्गत एक उत्पादक के सही व्यवहार ढाचे का निश्चितता मे निर्धारण नहीं किया जा सकता, इसलिए उसका माँग वक्र भी सही-सही और पूरी निश्चयात्मकता से नहीं खींचा जा सकता। पूर्ण प्रतियोगिता मे एक उत्पादक की वस्तु के लिए माँग वक्र निश्चित होता है क्योंकि उसकी अपनी स्वतन्त्र नीति कोई नहीं होती और उसे उद्योग द्वारा नियत की गई कीमत स्वीकार करनी पडती है। उद्योग का माँग वक्र नीचे की ओर दाएँ को ढालू होता है और व्यक्ति का माँग वक्र क्षैतिज होता है। एकाधिकार मे उत्पादक के प्रतियोगी नहीं होते, इसलिए उसके माँग वक्र का ढलान निश्चित रूप से नीचे की ओर होता है। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे भी एक उत्पादक समूह के अन्य उत्पादको की चालो की चिन्ता नहीं करता और उसका माँग वक्र भी एक निश्चित होता है। अल्पाधिकार मे एक व्यक्तिगत विक्रेता के माँग वक्र का क्या आकार होगा, यह बहुत ही अनिश्चित होता है, क्योंकि एक विक्रेता की कीमत या उत्पादन की चालो की अन्य विक्रेताओ पर अप्रत्याशित प्रतिक्रिया होती है जिसका उलटकर उसकी अपनी कीमत या उत्पादन पर प्रभाव पड सकता है। कीमत या उत्पादन के प्रारम्भिक परिवर्तन से इस प्रकार क्रिया-प्रतिक्रिया की जो शृंखला शुरू हो जाती है, वह केवल अनुमान का ही विषय है। इस प्रकार प्रतियोगी अल्पाधिकारियो की परस्पर निर्भरता के परिणामस्वरूप विरोधी अनुमानो की एक जटिल व्यवस्था उत्पन्न हो जाती है जो माँग वक्र की अनिश्चितता (indeterminateness) का प्रमुख कारण है।

यदि अल्पाधिकारी विक्रेता का अपनी वस्तु के लिए कोई निश्चित माँग वक्र ही नहीं होता, तो वह विक्रय कैसे करता है? सभवत, उसका विक्रय उसकी अपनी वर्तमान कीमत और उसके प्रतियोगियो की कीमतो पर निर्भर करता है। पर, कई अनुमानित माँग वक्रो की कल्पना की जा सकती है। उदाहरण के लिए, भिन्नित (differentiated) अल्पाधिकार मे, जहाँ प्रत्येक विक्रेता अपनी वस्तु की अलग कीमत नियत करता है, एक विक्रेता द्वारा कीमत मे की गई कमी का परिणाम यह हो सकता है कि उसके प्रतियोगी विक्रेता अपनी वस्तु की कीमत मे उसके बराबर अधिक या कम कमी करें या कोई कमी ही न करें। प्रत्येक स्थिति में प्रतियोगिता और एकाधिकार माँग वक्रो के क्षेत्र मे विक्रेता अपना एक माँग वक्र खींच सकता है। बदले की भावना से की गई कीमतो की गतियो को छोडकर, अल्पाधिकार के अन्तर्गत कीमत मे कमी या वृद्धि के लिए विक्रेता का माँग वक्र न तो पूर्ण या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के माँग वक्र की अपेक्षा अधिक लोचदार होता है और न ही एकाधिकार के माँग वक्र से कम लोचदार। फिर, वह अनिश्चित और अनिर्धारित हो सकता है। इस स्थिति को चित्र 28 10 मे दिखाया गया है, जहाँ *KD*, लोचदार माँग वक्र है और *MD* कम लोचदार माँग वक्र है। अल्पाधिकारी का माँग वक्र बिन्दुकित विकित (dotted kinked) *KPD* है। कारण बिल्कुल सरल है। यदि एक विक्रेता अपनी वस्तु की कीमत घटा देता है, तो उसके प्रतियोगी भी अपनी वस्तुओ की कीमते घटा देते है जिससे वह अपने विक्रय को नहीं बढा पाता।

इसलिए, व्यक्तिगत विक्रेता का वस्तु के लिए माँग वक्र वर्तमान कीमत P के ठीक नीचे कम लोचदार होगा (जहाँ KD_1 और MD वक्र एक-दूसरे को काटते हुए दिखाए गए हैं)। परन्तु जब वह अपनी वस्तु की कीमत बढ़ाता है, तो अन्य विक्रेता उसका अनुकरण नहीं करते ताकि वे पुरानी कीमत पर अधिक लाभ प्राप्त कर सकें। इसलिए, एक व्यक्तिगत विक्रेता अपनी वस्तु की माँग में तीव्र कमी का अनुभव करेगा। इसलिए कीमत P के ऊपर उसका माँग वक्र KP भाग में बहुत लोचदार होगा। इसलिए, वर्तमान कीमत P पर एक अल्पाधिकारी का कल्पित माँग वक्र कोण वाला (corner) या विकिंत (kinked) होगा। ऐसा माग वक्र कीमत में कमी की अपेक्षा कीमत में वृद्धि के लिए बहुत अधिक लोचदार है।
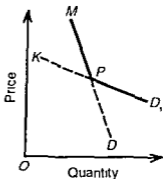
चित्र 28.10

(7) कीमत-निर्धारण व्यवहार का कोई अद्वितीय ढाचा नहीं (No unique pattern of pricing behaviour)—अल्पाधिकारियों में परस्पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाली स्पर्धा में दो विरोधी उद्देश्य सामने आते हैं। प्रत्येक स्वतन्त्र रहना और अधिकतम सभव लाभ प्राप्त करना चाहता है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए वे लगातार अनिश्चितता से एक-दूसरे की कीमत-उत्पादन गतियों की क्रिया और प्रतिक्रिया करते हैं। दूसरी ओर, फिर अधिकतम लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से, *अनिश्चितता के तत्व को समाप्त या कम करने के लिए प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतियोगियों से* सहयोग करना चाहता है। सब प्रतियोगी कीमत-उत्पादन परिवर्तनों के सम्बन्ध में चुपचाप या रस्मी समझौता कर लेते हैं। इससे अल्पाधिकार के भीतर ही एक प्रकार का एकाधिकार बन जाता है। यह भी हो सकता है कि वे एक विक्रेता को अपना नेता मान लें और उसके इशारे पर अन्य विक्रेता कीमत को घटाएँ या बढ़ाएँ। ऐसी स्थिति में, एक व्यक्तिगत विक्रेता का माग वक्र उद्योग के माग वक्र का हिस्सा होता है और उसकी लोच भी उद्योग के माग वक्र वाली होती है। इन विरोधी रवैयों के दिए होने पर, अल्पाधिकार-मार्किट में कीमत-निर्धारण व्यवहार सबधी किसी अद्वितीय ढाचे का पूर्वानुमान करना सभव नहीं है।

3 अल्पाधिकार मे कीमत निर्धारण
(PRICE DETERMINATION UNDER OLIGOPOLY)

अल्पाधिकार की विशेषताओं के सदर्भ मे, एकाधिकारात्मक फर्मों द्वारा कीमत और उत्पादन निर्धारण का अध्ययन हम आगे करते हैं। प्रो मैक्लप[6] ने एकाधिकारियों की विस्तृत श्रेणिया दी हैं। परन्तु हम अपना विश्लेषण स्विज़ी (Sweezy)[7] के गैर-कपटसधि (non-collusive) एकाधिकार मॉडल (विकिंत माग वक्र) और कार्टल और कीमत नेतृत्व कपटसधि एकाधिकार मॉडलों तक सीमित रखेंगे।

6 F Machulp *The Economics of Sellers Competition* 1952
7 Paul M Sweezy "Demand under Conditions of Oligopoly", *JPE*, 47 1939

I स्विज़ी का किंकित माग वक्र (स्थिर कीमत) मॉडल (The Sweezy Model of Kinked Demand Curve—Rigid Prices)

प्रो स्विज़ी ने अपने 1939 में छपे लेख में एकाधिकारात्मक मार्किटो मे अक्सर पाई जाने वाली कीमत स्थिरताओ की व्याख्या करने के लिए किंकित माग वक्र के विश्लेषण को पेश किया। स्विज़ी यह मानता है कि यदि एकाधिकारात्मक फर्म अपनी कीमत को कम करती है, तो उसके प्रतिद्वंद्वी अपने ग्राहकों को खोने के भय से अपनी कीमत मे बराबर की कटौती द्वारा प्रतिक्रिया करेंगे। इस प्रकार, अपनी कीमत को कम करने वाली फर्म अपनी माग को अधिक नहीं बढा सकेगी। इसलिए माग वक्र का यह भाग कम लोचदार होता है। दूसरी ओर, यदि एकाधिकारात्मक फर्म अपनी कीमत बढाती है, तो उसके प्रतिद्वंद्वी उसका अनुसरण न करते हुए अपनी कीमतो मे परिवर्तन नहीं करेंगे। इस प्रकार, उस वस्तु की मागी गई मात्रा मे काफी गिरावट आएगी। इसलिए माग वक्र का यह हिस्सा सापेक्षतया लोचदार होता है। इन दोनों स्थितियों मे, एकाधिकारात्मक फर्म के माग वक्र में वर्तमान कीमत पर किंक होता है, जो कीमत स्थिरता को दर्शाता है।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

कीमत स्थिरता का किंकित माग वक्र सिद्धात निम्न मान्यताओ पर आधारित है

(1) एकाधिकारात्मक उद्योग मे कुछ फर्मे है।

(2) एक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु अन्य फर्मो की वस्तु की निकट स्थानापन्न है।

(3) वस्तु एक गुणवत्ता (क्वालिटी) वाली है। वस्तु विभेदीकरण नहीं है।

(4) विज्ञापन व्यय नहीं है।

(5) वस्तु की एक निश्चित या वर्तमान मार्किट कीमत होती है जिस पर सब विक्रेता संतुष्ट होते हैं।

(6) प्रत्येक विक्रेता का व्यवहार अपने प्रतिद्वंद्वियों के व्यवहार पर निर्भर करता है।

(7) यदि कोई विक्रेता अपनी वस्तु की कीमत घटाकर अपने विक्रय को बढाने का प्रयत्न करता है तो अन्य विक्रेता उसका अनुकरण करेंगे और अपनी वस्तुओ की कीमतें घटाकर उसके उस प्रयत्न को निष्फल कर देंगे।

(8) यदि वह कीमत बढा देता है तो दूसरे उसका अनुकरण नहीं करेंगे, बल्कि वे उसी कीमत पर जमे रहेंगे और कीमत बढाने वाले विक्रेता को छोडकर आने वाले ग्राहकों की जरूरतों को पूरा करेंगे।

(9) सीमान्त आगम वक्र के बिन्दुकित भाग के बीच से सीमान्त लागत वक्र गुजरता है। इसलिए सीमान्त लागत मे परिवर्तन, उत्पादन और कीमत को प्रभावित नहीं करते हैं।

मॉडल (The Model)

ये मान्यताए दी होने पर, एकाधिकारात्मक मार्किट में कीमत-उत्पादन संबध की चित्र 28.11 में व्याख्या की गई है। चित्र मे *KPD* एक किंकित माँग वक्र है, और OP_0 अल्पाधिकार मार्किट में एक विक्रेता की वर्तमान कीमत है *OR* मात्रा के लिए वर्तमान कीमत OP_0 के अनुरूप *P* से शुरू करके, इससे ऊपर कीमत में कोई भी वृद्धि उसके विक्रय को काफी मात्रा में घटा देगी क्योंकि यह आशा नहीं की जाती कि उसके प्रतिद्वंद्वी उसकी कीमत वृद्धि का अनुकरण करेंगे। इसका कारण यह है कि किंकित माँग वक्र का *KP* भाग लोचदार है और उसके अनुरूप *MR* वक्र का *KA* भाग धनात्मक (positive) है। इसलिए कीमत वृद्धि से उसका कुल विक्रय ही नहीं बल्कि उसका कुल आगम और लाभ भी कम हो जाएँगे।

दूसरी ओर, यदि विक्रेता अपनी वस्तु की कीमत घटाकर OP_0 (= *P*) से नीचे ले जाता है, तो उसके प्रतिद्वंद्वी भी अपनी कीमतें कम कर देंगे। यद्यपि उसका विक्रय बढ जाएगा, फिर भी, उसका

लाभ पहले से कम होगा। इसका कारण यह है कि P से नीचे किंकित माँग वक्र का PD भाग कम लोचदार है और उसके अनुरूप सीमान्त आगम वक्र का R से नीचे का भाग ऋणात्मक (negative) है। इस प्रकार कीमत बढाने और घटाने की दोनो स्थितियो मे विक्रेता को हानि होती है। वह वर्तमान मार्किट कीमत OP_0 पर रहेगा जोकि स्थिर (rigid) रहती है।

चित्र 28 11

किंकित माँग वक्र के कार्यकरण को समझने के लिए, अब हम अल्पाधिकार मार्किट मे कीमत स्थिरता पर लागत और माँग स्थितियो मे परिवर्तन के प्रभावो का विश्लेषण करते है।

लागतो मे परिवर्तन (Changes in Costs)—अल्पाधिकार मे किंकित माँग वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत एक निश्चित सीमा मे लागत परिवर्तन वर्तमान कीमत को प्रभावित नहीं करते। मान लीजिए कि उत्पादन की लागत कम हो जाती है जिससे नया MC वक्र दाएँ को MC_1 पर चला जाता है, जैसे चित्र 28 12 मे दिखाया गया है। यह AB अन्तर मे MR वक्र को काटता है जिससे लाभ-अधिकतम उत्पादन OR है जिसे OP_0 कीमत पर बेचा जा सकता है। यह ध्यान रहे कि कीमत चाहे कितनी कम हो जाए, नया MC वक्र MR वक्र को हमेशा 'अन्तर' मे काटेगा, क्योकि ज्यो-ज्यो कीमते गिरती है, अन्तर AB दो कारणो से अधिक चोडा होता जाता है। (i) जैसे-जैसे लागत गिरती है, वैसे-वैसे माँग वक्र का KP भाग अधिक लोचदार होता जाता है क्योकि यह अधिक निश्चित है कि एक विक्रेता द्वारा की गई कीमत वृद्धि का अनुकरण उसके प्रतिद्वद्वी नहीं करेगे और उसका विक्रय बहुत घट जाएगा। (ii) लागतो मे कमी होने से किंकित वक्र का निचला भाग PD पहले से अधिक बेलोचदार होगा क्योकि यह अधिक निश्चित है कि एक विक्रेता द्वारा की गई कीमत मे कमी के अनुकरण मे अन्य विक्रेता भी कीमत कम कर देगे।

इसलिए कोण KPD बिन्दु P पर समकोण बनने लगता है, ओर AB अन्तर बढ जाता है जिससे बिन्दु A से नीचे कोई भी MC वक्र MR को अन्तर के भीतर ही काटेगा। कुल परिणाम यह होता है कि उसी कीमत OP_0 पर उतना ही उत्पादन OR रहता है ओर एकाधिकारात्मक विक्रेताओ को अधिक लाभ प्राप्त होते है।

चित्र 28 12

यदि उत्पादन की लागत बढ जाए, तो सीमान्त लागत वक्र पुराने MC

चित्र 28.13

वक्र के बाएँ को MC_1 पर चला जाता है। जब तक ऊँचा MC वक्र A बिन्दु तक अन्तर के भीतर MR वक्र को काटता है, कीमत-स्थिति स्थिर रहेगी। हाँ, लागतो मे वृद्धि होने से कीमत अनिश्चितकाल के लिए स्थिर नहीं रह सकती और यदि MC वक्र बिन्दु A से ऊपर चला जाए तो वह MR वक्र को KA भाग मे काटेगा जिससे कम मात्रा अधिक कीमत पर बेची जाएगी। निष्कर्ष यह है कि अल्पाधिकार मे कीमत स्थिरता हो सकती है जब लागतो मे परिवर्तन होते है जब तक MR वक्र को MC वक्र उसके अनिरतर भाग मे काटता है। परन्तु कीमत स्थिरता के पाए जाने की सभावना बढती लागतो की अपेक्षा घटती लागतो मे अधिक होती है।
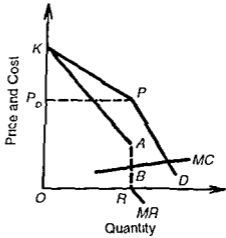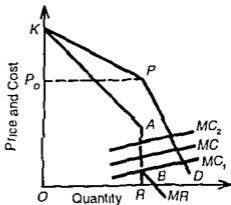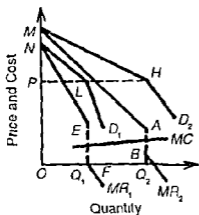
मॉग मे परिवर्तन (Changes in Demand)—अब हम चित्र 28 13 की सहायता से मॉग मे परिवर्तन के साथ कीमत स्थिरता की व्याख्या करेगे। D_2 मूल मॉग वक्र है, MR_2 उसके अनुरूप सीमान्त आगम वक्र, और MC सीमान्त लागत वक्र है। मान लीजिए कि मॉग में कमी हो जाती है जिसे D_1 वक्र प्रकट करता है और MR_1 इसका सीमान्त आगम वक्र है। जब मॉग कम हो जाती है, तो एक विक्रेता कीमत कम कर देता है और उसकी कीमत घटाने की इस चाल का उसके प्रतिद्वंद्वी अनुकरण करते है। इससे नए मॉग वक्र का नीचे का भाग LD_1 पुराने मॉग वक्र के नीचे के भाग HD_2 की अपेक्षा अधिक बेलोचदार बन जाता है। यह L पर बने कोण को समकोण के निकट पहुँचा देगा। परिणाम यह होगा कि MR_2 वक्र के AB अन्तर की अपेक्षा MR_1 वक्र का EF अन्तर अधिक बडा हो जाएगा। इसलिए, सीमान्त लागत वक्र MC नीचे के सीमान्त आगम वक्र MR_1 को अन्तर EF के भीतर काटेगा। इस प्रकार यह प्रकट होता है कि अल्पाधिकार उद्योग में मॉग कम होने पर भी एक स्थिर कीमत रहती है। क्योंकि दोनो माग वक्रो के किक H और L का स्तर बराबर है, इसलिए माग मे कमी के बाद भी वही कीमत OP कायम रहती है। परन्तु उत्पादन स्तर OQ_2 से कम होकर OQ_1 हो जाता है।

इस स्थिति को उलट कर माग मे वृद्धि को D_1 और MR_1 मूल माग और सीमात आगम वक्र तथा D_2 और MR_2 ऊँचे माग और सीमात आगम वक्र मानकर दिखाया जा सकता है। इसमे OP कीमत कायम रहती है, परन्तु उत्पादन OQ_1 से बढकर OQ_2 हो जाता है। जब तक MR वक्रो को MC वक्र अनिरतर हिस्से मे काटता है, कीमत स्थिरता होगी। जब मॉग बढ जाती है तो एक विक्रेता अपनी कीमत को बढाना चाहेगा और यह आशा की जाती है कि दूसरे उसका अनुकरण करेगे। इससे पुराने मॉग वक्र के NL भाग की अपेक्षा नए मॉग वक्र का ऊपर का भाग MH लोचदार हो जाएगा। इसलिए H पर स्थित कोण एक अधिकोण, जो समकोण से दूर है, बन जाता है। MR_2 वक्र मे AB अन्तर कम हो जाता है और MC वक्र MR_2 को अन्तर से ऊपर काटता है, जो अपेक्षाकृत ऊँची कीमत को प्रकट करता है। हाँ, यदि सीमान्त लागत वक्र MR_2 के अन्तर मे से गुजरे, तो कीमत स्थिरता होती है।

निष्कर्ष (Conclusion)—किकित मॉग वक्र का समस्त विश्लेषण यह बताता है कि अल्पाधिकारात्मक मार्किट मे कीमत स्थिरता उस समय रहती है, जब सब विक्रेता कीमत मे कमी करे। माग और लागतो मे परिवर्तन सामान्य स्थितियो मे कीमत स्थिरता लाते है जब तक कि MR वक्र को MC वक्र उसके अनिरतर भाग मे काटता है। परन्तु कीमत स्थिरता की बजाय कीमत वृद्धि बढती लागत अथवा बढती माग मे पाई जा सकती है।

कीमत स्थिरता के कारण (Reasons for Price Stability)

कुछ अल्पाधिकारात्मक मार्किटों में कीमत स्थिरता के कई कारण होते है

प्रथम, हो सकता है कि अल्पाधिकारात्मक उद्योग के विक्रेताओं ने अनुभव द्वारा यह सीख लिया हो कि कीमत युद्ध बेकार है और इसलिए वे कीमत स्थिरता को अधिमान देने लगे हो।

दूसरे, हो सकता है कि वे वर्तमान कीमतो, उत्पादनों और लाभों से सतुष्ट हों और अनावश्यक अनिश्चितता और असुरक्षा में उलझने से बचना चाहते हों।

तीसरे, सभव है कि नई फर्मों को उद्योग में आने से रोकने के लिए वे वर्तमान कीमत-स्तर पर रहने को अधिमान दे।

चौथे, विक्रेता कीमत को घटाने की बजाय वर्तमान कीमत पर अपने विक्रय बढ़ाने के प्रयत्नों को तीव्र कर सकते हैं।

हो सकता है कि वे कीमत-स्पर्धा की अपेक्षा कीमत-रहित प्रतियोगिता (non-price competition) को अच्छा समझे।

पाँचवे, अपनी वस्तु के विज्ञापन पर मुद्रा की बडी मात्रा खर्च करने के बाद कीमत को इसलिए न बढ़ाना चाहे कि कहीं वह अपने कठोर परिश्रम के फल से वंचित न हो जाए। स्वाभाविक है कि वह वस्तु की वर्तमान कीमत पर रहना चाहेंगे।

छठे, यदि समझौते या गुटबन्दी के माध्यम से एक स्थिर कीमत नियत कर दी गई है, तो कोई भी विक्रेता इसे इस भय से कीमत को नहीं छेड़ेगा कि कहीं फिर से खुला कीमत युद्ध न छिड जाए और इस प्रकार वह स्वय अनिश्चितता और असुरक्षा के भवर मे न फस जाए।

अन्तिम, अल्पाधिकार मार्किट मे किंकित माग वक्र विश्लेषण कीमत स्थिरता लाता है।

इसकी कमियां (Its Shortcomings)

परन्तु अल्पाधिकार कीमत निर्धारण मे किंकित माँग वक्र का सिद्धान्त दोषों से रहित नहीं है।

(1) यदि हम इसकी सब मान्यताओं को स्वीकार भी कर लें, तो यह सभव नहीं कि सीमान्त आगम वक्र मे अन्तर इतनी बडा होगा कि सीमान्त लागत वक्र उसमे से गुजर सके। माँग या लागत मे कमी होने की स्थितियों मे भी यह घट सकता है जिससे कीमत अस्थिर हो जाएगी।

(2) स्टिगलर के अनुसार इसकी एक बडी कमी यह है कि "सिद्धान्त यह नहीं बताता कि वे कीमतें जिनमें परिवर्तन हुआ है, फिर से क्यों स्थिर हो जाती है, और स्थिरता क्यो प्राप्त करती है और धीरे-धीरे एक नया किंक क्यों बनाती है।" उदाहरण के लिए चित्र 28 12 मे किंक P पर बनता है क्योंकि OP_0 वर्तमान कीमत है। परन्तु सिद्धान्त हमें यह नहीं बताता कि OP_0 कीमत कैसे स्थापित हुई।

(3) कीमत स्थिरता मायावी हो सकती है, क्योंकि वह मार्किट के वास्तविक व्यवहार पर आधारित नहीं है। विक्रय सदैव सूची कीमतों के अनुसार नहीं होता है। प्राय प्रचार-पट पर लगी कीमतों से भिन्न कीमतें ली जाती है जैसे कमीशन या छूट देकर। अल्पाधिकारी विक्रेता बाह्य तौर से कीमत स्थिर रख सकता है, परन्तु वस्तु की मात्रा या क्वालिटी को कम करके। अत कीमत *स्थिरता भ्रमजनक है।*

(4) फिर, कई वस्तुएँ जो स्थिर कीमतो को दर्शाती है, उनके लिए वास्तविक विक्रय कीमतो को साँख्यकीय तौर से एकत्र करना सभव नहीं है। इसलिए इसमें सशय ही है कि अल्पाधिकार में कीमत स्थिरता वास्तविक रूप में पायी जाती है।

(5) किंकित माँग वक्र दो मान्यताओं पर आधारित है। प्रथम, अन्य फर्म कीमत कटौती का अनुसरण करेगी तथा दूसरे, वे कीमत वृद्धि का अनुसरण नहीं करेगी। स्टिगलर ने प्रामाणिक आधार पर यह सिद्ध किया है कि स्फीतिकारी काल मे आगतों (input) की कीमतो मे वृद्धि केवल

एक फर्म में ही नहीं पाई जाती बल्कि समस्त उद्योग में होती है। इसलिए समान लागतों वाली सभी फर्में कीमत वृद्धि में एक दूसरे का अनुसरण करेंगी। स्टिगलर के शब्दों में, "ऐतिहासिक आधार पर एक फर्म के लिए यह विश्वास करना कम सभव है कि कीमत वृद्धियाँ प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा अनुरूप नहीं की जाएँगी तथा कीमत कमियाँ अनुरूप की जाएँगी।"

(6) इसके अतिरिक्त प्रोफेसर स्टिगलर ने अनुभव से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष भी निकाला है कि उन अल्पाधिकारात्मक उद्योगों में जहाँ विक्रेताओं की संख्या या तो बहुत कम हो या कुछ-कुछ ज्यादा हो, वहाँ किंकित माँग वक्र की सम्भावना नहीं होती।

(7) आलोचकों का यह मत है कि किंकित माग वक्र विश्लेषण अल्पकाल में लागू होता है, जब प्रतिद्वंद्वियों की प्रतिक्रियाओं का ज्ञान कम होता है। परन्तु प्रतिद्वंद्वियों की प्रतिक्रियाओं का दीर्घकाल में सही अनुमान लगाना कठिन है। इसलिए यह सिद्धात दीर्घकाल में लागू नहीं होता है।

(8) कुछ आलोचकों के अनुसार, किंकित माग विश्लेषण एक अल्पाधिकारात्मक उद्योग में उसकी प्रारंभिक अवस्थाओं में लागू होता है अथवा उस उद्योग में जिसमें नए और पहले से अज्ञात प्रतिद्वंद्वी मार्किट में प्रवेश करते हैं।

(9) अन्तिम, किंकित माग वक्र विश्लेषण केवल मंदी में ही लागू होता है। जब स्फीति की अवधि में माग में वृद्धि होती है, तो अल्पाधिकारात्मक फर्म कीमत बढा देगी और अन्य फर्में उसका अनुसरण करेंगी। ऐसी स्थिति में, अल्पाधिकारी का माग वक्र उलटे किंक वाला होगा। ऐसा उलटा किंक उसकी प्रत्याशाओं (expectations) पर आधारित होगा कि उसके सभी प्रतियोगी उसका अनुसरण करेंगे जब वह अपनी वस्तु की कीमत बढाएगा और स्फीतिकारी स्थिति के कारण कोई भी उसका अनुसरण नहीं करेगा जब वह कीमत कम करेगा। इसे चित्र 28.14 में दर्शाया गया है जहा KPD उलटा किंकित माग वक्र है। इसका अनुरूप MR वक्र $KABM$ है जो KA और BM हिस्सों से बना है तथा AB भाग इसका अन्तर है। MC वक्र क्रमश इसके तीनों हिस्सों L, E और H में से गुजरता है। क्षेत्र ALE और BHE अनिश्चितता के क्षेत्र हैं। क्या फर्म L, E और H पर उत्पादन चालू रखने का निर्णय लेती है उसके लाभ और हानि के शेष पर निर्भर करता है। L से E की ओर गति हानि की ओर ले जाती है क्योंकि $MC > MR$। दूसरी ओर, E से H की ओर गति से लाभ होता है क्योंकि $MR > MC$। यदि फर्म कीमत को Q_1P_1 पर बढाती है और उत्पादन को OQ_1 पर कम करती है तथा E से L को गति करती है, तो इसकी हानि कम हो जाएगी। यदि यह कीमत को Q_2P_2 पर कम करती है और उत्पादन को OQ_2 पर बढाती है, तथा E से H पर गति करती है, तो वह लाभ बढाएगी। इस प्रकार, कीमत स्थिरता नहीं होगी।
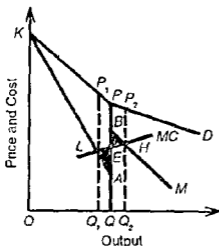
चित्र 28.14

II कपटसंधिपूर्ण अल्पाधिकार (Collusive Oligopoly)

कपटसधिपूर्ण अल्पाधिकार एक ऐसी स्थिति है जिसमे एक विशेष उद्योग मे फर्में अपने सयुक्त लाभो को अधिकतम करने और आपस मे मार्किट को बाटने के उद्देश्य से एक इकाई बनने के लिए मिलने का निर्णय करती हैं। पहले को सयुक्त लाभ अधिकतमकरण कार्टेल और दूसरे को मार्किट बाट कार्टेल कहते है। एक अन्य प्रकार की कपटसधि नेतृत्व कहलाती है जो गुप्त समझौतो पर आधारित होती है। इसके अन्तर्गत, एक फर्म कीमत नेता का काम करती है और वस्तु के लिए कीमत निश्चित करती है जबकि अन्य फर्में उसका अनुसरण करती हे। कीमत नेतृत्व तीन प्रकार का होता है निम्न लागत फर्म, प्रधान फर्म ओर बैरोमीट्रिक फर्म।

(क) कार्टेल (Cartels)

एक उद्योग मे स्वतत्र फर्मों के सगठन को कार्टेल कहते हे। कार्टेल कीमतो, उत्पादनो, बिक्रियो, वस्तुओ के वितरण ओर लाभ अधिकतमकरण सबधी समान नीतियो का अनुसरण करता है। कार्टेल ऐच्छिक या अनिवार्य ओर खुले या गुप्त हो सकते है जो इस बात पर निर्भर करते है कि उनके बनाने के सबध मे सरकार की क्या नीति है। इस प्रकार, कार्टेल कई प्रकार के होते हे और प्रत्येक के प्रकार पर निर्भर करते हुए, वे भिन्न समान नीतियो का अनुसरण करने के लिए अनेक ढग अपनाते है। हम नीचे सबसे समान प्रकार के दो कार्टेल की विवेचना करते है (1) सयुक्त लाभ अधिकतमकरण अथवा पूर्ण कार्टेल, और (2) मार्किट बाट कार्टेल।

1 सयुक्त लाभ अधिकतमकरण कार्टेल

(Joint Profit Maximisation Cartel)

एक अल्पाधिकारात्मक मार्किट मे अनिश्चितता पाए जाने के कारण प्रतिद्वंद्वी फर्मों को एक पूर्ण कार्टेल बनाने की प्रेरणा मिलती है। पूर्ण कपटसधि का अत्यत रूप पूर्ण कार्टेल है। इसमे, समरूप वस्तु बनाने वाली फर्में उद्योग मे एक केन्द्रीय कार्टेल बोर्ड की स्थापना करती है। व्यक्तिगत फर्में *अपने कीमत-उत्पादन निर्णय इस केन्द्रीय बोर्ड को सौप देते है। बोर्ड अपने सदस्यो के लिए उत्पादन* कोटा, ली जाने वाली कीमत ओर उद्योग के लाभो का वितरण निर्धारित करता हे। क्योकि केन्द्रीय बोर्ड कीमते, उत्पादन, विक्रय और लाभ वितरण निर्धारित करता है, इसलिए यह एक एकाधिकारी की तरह कार्य करता है जिसका मुख्य उद्देश्य अल्पाधिकारात्मक उद्योग के सयुक्त लाभो को अधिकतम करना होता है।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

सयुक्त लाभ अधिकतमकरण कार्टेल का विश्लेषण निम्न मान्यताओ पर आधारित है

1 केवल दो फर्में A ओर B एकाधिकारात्मक उद्योग मे है जो कार्टेल बनाती है।
2 प्रत्येक फर्म समरूप वस्तु बनाती है जो एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न है।
3 क्रेताओ की सख्या बहुत हे।
4 वस्तु का मार्किट माग वक्र दिया हुआ है और इसकी कार्टेल को जानकारी है।
5 फर्मों के लागत वक्र भिन्न हे, परन्तु कार्टेल को इनका ज्ञान है।
6 वस्तु की कीमत कार्टेल की नीति निर्धारित करती है।
7 कार्टेल का उद्देश्य सयुक्त लाभ अधिकतमकरण है।

संयुक्त लाभ अधिकतमकरण हल (Joint Profit Maximisation Solutions)

ये मान्यताएं, मार्किट माग वक्र और उसके अनुरूप MR वक्र दिए होने पर, संयुक्त लाभ अधिकतम होंगे जब उद्योग का MR वक्र उद्योग के MC वक्र के बराबर होता है। चित्र 28.15 इस स्थिति की व्याख्या करता है जहा D मार्किट (अथवा कार्टेल) का माग वक्र है और MR इसका अनुरूप सीमात आगम वक्र। उद्योग का सीमात लागत वक्र ΣMC है जो A और B फर्मों के MC वक्रों के पार्श्व-योग (lateral summation) से प्राप्त होता है $\Sigma MC = MC_a + MC_b$ संयुक्त लाभों को अधिकतम करने वाला कार्टेल हल E बिन्दु पर निर्धारित होता है जहा ΣMC वक्र उद्योग के MR वक्र को काटता है। परिणामस्वरूप, कुल उत्पादन OQ है जो OP (= QF) कीमत पर बेचा जाता है। जैसे एकाधिकार के अन्तर्गत, कार्टेल बोर्ड प्रत्येक फर्म के MC वक्र को उद्योग के MR वक्र के साथ बराबर करके औद्योगिक उत्पादन का आवटन करेगा। प्रत्येक फर्म के हिस्से को औद्योगिक उत्पादन से प्राप्त करने के लिए बिन्दु E से एक सीधी रेखा अनुलब अक्ष पर खींचे, जो फर्मों B और A के वक्रों MC_b और MC_a को क्रमश E_b और E_a बिन्दुओं पर काटती है। इस प्रकार, फर्म A का कुल उत्पादन में हिस्सा OQ_a और फर्म B का OQ_b है कुल उत्पादन $OQ = OQ_a + OQ_b$। कीमत OP और उत्पादन OQ फर्मों A और B के बीच OQ_a OQ_b अनुपात मे वितरित, एकाधिकार हल है। कम लागतों वाली फर्म A अधिक उत्पादन OQ_a बेचती है जो ऊँची लागतों वाली B फर्म से अधिक है $OQ_a > OQ_b$। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि B की अपेक्षा A फर्म अधिक लाभ प्राप्त करेगी। संयुक्त अधिकतम लाभ, फर्म A के लाभ $RSTP$ और फर्म B के लाभ $ABCP$ का जोड है। यह एक फड में इकट्ठा कर लिया जाएगा और कार्टेल बोर्ड द्वारा उस समझौते के अनुसार दोनों फर्मों में बाटा जाएगा जो कार्टेल के बनाने के समय किया गया था। इस प्रकार का एकत्रीकरण समझौता दोनों फर्मों के लिए उनके संयुक्त लाभ को अधिकतम करने को सभव बनाएगा बशर्ते कि स्वतत्र रूप से उनके द्वारा अर्जित कुल लाभ पूर्वोक्त (former) से अधिक नहीं है।
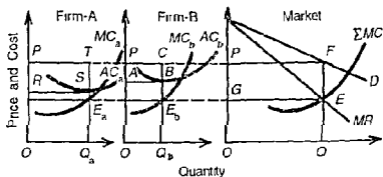
चित्र 28.15

इसके लाभ (Its Advantages)

कार्टेल के रूप मे अल्पाधिकारात्मक फर्मों द्वारा पूर्ण कपटसधि के कुछ लाभ भी है। यह प्रतिद्वंद्वियों के बीच कीमत युद्ध को हटाता है। जो फर्में कार्टेल बनाती है वे उपभोक्ताओं की लागत पर लाभ उठाती है क्योंकि उपभोक्ताओं से वस्तु की अधिक कीमत ली जाती है। कार्टेल एव

एकाधिकार संगठन की तरह कार्य करता है जो फर्मों के संयुक्त लाभों को अधिकतम करता है। सामान्य तौर से संयुक्त लाभ कुल लाभों से अधिक होते हैं। कुल लाभ फर्में उस समय अर्जित करती हैं यदि वे कार्टेल न बनाकर स्वतंत्र रूप से कार्य करें।

कार्टेल की कठिनाइयाँ (Difficulties of a Cartel)

ऊपर का विश्लेषण पूर्ण कपटसंधि पर आधारित है जिसमें सभी फर्में अपने व्यक्तिगत कीमत-उत्पादन निर्णयों को एक केन्द्रीय कार्टेल बोर्ड को सौंप देती हैं, जो एक बहु-प्लांट एकाधिकारी की तरह कार्य करता है। परन्तु यह केवल अल्पकाल में सैद्धान्तिक संभावना होती है क्योंकि वास्तव में संयुक्त लाभ अधिकतमकरण का उद्देश्य एक कार्टेल द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। दीर्घकाल में अनेक कठिनाइयां पाई जाती हैं जो कार्टेल को भंग कर देती हैं। वे निम्न प्रकार की हैं

1. **गलत मार्किट माग वक्र (Inaccurate market demand curve)**—मार्किट माग वक्र का सही अनुमान लगाना कठिन है। प्रत्येक फर्म यह सोचती है कि उसका माग वक्र मार्किट माग वक्र से अधिक लोचदार है, क्योंकि उसकी वस्तु उसके प्रतिद्वंद्वियों की वस्तु की पूर्ण स्थानापन्न है। इसलिए यदि मार्किट माग वक्र का कम अनुमान किया जाता है तो इसका अनुरूप *MR* वक्र भी कम अनुमानित होगा जिससे कार्टेल द्वारा मार्किट कीमत का गलत अनुमान होगा।

2. **गलत मार्किट MC वक्र (Inaccurate market *MC* curve)**—इसी प्रकार, मार्किट *MC* वक्र का अनुमान गलत हो सकता है। कारण यह कि व्यक्तिगत फर्में अपने *MC* वक्रों के बारे में गलत आंकड़े कार्टेल को दे सकते हैं। ऐसा संभव है कि व्यक्तिगत फर्में कार्टेल बोर्ड को कम-लागत आंकड़े दे ताकि वे उत्पादन और लाभों का अधिक भाग ले सकें। इससे अन्ततः कार्टेल टूट सकता है।

3. **कार्टेल निर्माण धीमी प्रक्रिया (Cartel formation slow process)**—कार्टेल का निर्माण एक धीमी प्रक्रिया है, जो फर्मों के बीच, विशेषकर यदि उनकी संख्या बहुत अधिक हो, समझौता करने में लंबी अवधि लेता है। इसी दौरान, वस्तु के लागत ढांचे और मार्किट माग में परिवर्तन हो सकते हैं। इससे कार्टेल का समझौता निरर्थक हो जाता है और वह टूट जाता है।

4. **चोरी-छिपे कोटा बेचना (Secretly sell quota)**—यदि किसी फर्म की वस्तु कार्टेल के अन्य सदस्यों की वस्तु की अपेक्षा उपभोक्ता अधिक पसंद करते हैं, तो उसकी मार्किट माग कार्टेल द्वारा निश्चित उसके कोटे से अधिक हो सकती है। इसलिए वह अपने कोटा से अधिक वस्तु की मात्रा चोरी-छिपे बेच सकती है, और यदि बाकी की फर्में भी उसका अनुसरण करें तो कार्टेल टूट जाएगा।

5. **बड़ी संख्या में फर्में (Firms in large numbers)**—एक कार्टेल में जितनी अधिक फर्मों की संख्या होगी, उतनी कम दीर्घ समय तक उसके टिके रहने की संभावना होगी, क्योंकि उनमें आपस में अविश्वास, धमकियां और सौदेबाजी बढ़ने लगेंगे। इसलिए कार्टेल टूट जाएगा।

6. **संयुक्त लाभ वितरण में समस्याएं (Problems in joint profits distribution)**—सिद्धान्त में तो कार्टेल के सदस्य संयुक्त लाभ अधिकतमकरण पर मान जाते हैं। परन्तु व्यवहार में, वे लाभ वितरण पर कभी-कभार समझौते पर टिके रहते हैं। बड़ी फर्में कम कीमत, ऊंचा उत्पादन कोटा और अधिक लाभ चाहती हैं। इस प्रकार, संयुक्त लाभ वितरण में कार्टेल समझौते के विरुद्ध जब ऐसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं तो कार्टेल टूट जाता है।

7. **कीमत स्थिरता (Price stickiness)**—कार्टेल द्वारा वस्तु के लिए निश्चित कीमत बदली नहीं जा सकती है, यदि मार्किट स्थितियां इसकी अपेक्षा रखती भी हो। ऐसा इसलिए कि कार्टेल के सदस्यों को सम्मत कीमत पर आने में दीर्घ समय लगता है। कीमत में यह स्थिरता अक्सर कार्टेल को तोड़ देती है जब कुछ सदस्य इसको छोड़ जाते हैं।

8 **कीमत कम करना** (Price cut)—कीमत स्थिरता के कारण कुछ कार्टेल-सदस्य चोरी-छिपे अपनी वस्तु की कीमत मे कटौती अथवा कोटा समझौते का उल्लघन कर देते है। फर्मों द्वारा अपने लाभ बढाने के लिए इस प्रकार के गुप्त व्यापार कार्टेल को भग करने मे सहायक होते है।

9 **बाहरी गड़बड़** (Outside disturbances)—जब तक कार्टेल की सभी सदस्य फर्मे सहयोग पर दृढता से कायम नहीं रहती है तो बाहरी गडबडें जैसे माग में बहुत तीव्र कमी कार्टेल को तोड सकती है।

10 **फर्मों का प्रवेश** (Entry of Firms)—जब तक कार्टेल वस्तु की कीमत तथा सदस्यो के लाभ बढाता है, तो वह उद्योग मे नई फर्मों के प्रवेश के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। यद्यपि नई फर्मों के प्रवेश को रोका भी दिया जाए, तो यह केवल अल्पकालीन स्थिति होनी है क्योंकि कार्टेल की सफलता दीर्घकाल में फर्मों के प्रवेश को लाएगी। इससे कार्टेल टूट जाएगा। यदि नई फर्मों को प्रवेश करने की अनुमति दी जाती है तो कार्टेल अनियन्त्रणीय हो जाएगा, छोडने वालो की सख्या बढ जाएगी और कार्टेल का अत हो जाएगा।

11 **अलाभकारी फर्मे** (Uneconomic firms)—कार्टेल बोर्ड के अनुरोध के बावजूद कुछ ऊची-लागत अलाभकारी फर्मे कार्टेल को छोडने अथवा बद कर जाने से इनकार कर सकती है। इससे कार्टेल का लाभ अधिकतम करने का स्तर गिरने की सभावना हो सकती है और इस तरह कार्टेल टूट जाता है।

12 **स्थानापन्न की उत्पत्ति** (Emergence of substitutes)—ऊची कीमत निश्चित करने और वस्तु की मात्रा को कम करने की कार्टेल की नीति से दीर्घकाल मे स्थानापन्नताओं की उत्पत्ति हो सकती है। अन्य फर्मे सस्ते स्थानापन्नो का आविष्कार और उत्पादन कर सकते है, जिन्हे उपभोक्ता स्वीकार कर सकते है। इससे कार्टेल की वस्तु की माग कम हो सकती है, वह अधिक लोचदार हो सकती है, इसके सयुक्त लाभ कम कर सकती है, और कार्टेल को तोड सकती है।

13 **सरकारी हस्तक्षेप** (Government interference)—कार्टेल सरकारी हस्तक्षेप और नियमन (regulation) के भय से अधिक कीमत न निश्चित करके अपने सयुक्त लाभो को अधिकतम नहीं कर सकता है।

14 **जन प्रतिष्ठा** (Public reputation)—इसी प्रकार, कार्टेल अच्छी लोक प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए अपनी वस्तु की बहुत ऊची कीमत नहीं ले सकता और न ही अपने सयुक्त लाभ अधिकतम कर सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)—अत व्यक्तिगत फर्मो के कार्टेल को छोडने की सभावनाए बहुत अधिक होती है जिनके अनेक कारण हो सकते है जैसे कोटा के आवटन और लाभो के वितरण पर सदस्य फर्मों के झगडे और विरोध जो आगे सयुक्त लाभ अधिकतमकरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है जिससे कार्टेल समझौता टूट जाता है। एक कार्टेल के कार्यकरण की इन समस्याओं के अलावा एक समरूप वस्तु की अपेक्षा एक विभेदीकृत वस्तु के लिए एक कार्टेल को लबे समय तक बनाना और चलाना अधिक कठिन होता है। ऐसा इसलिए कि विभेदीकृत वस्तु की गुणवत्ताओ मे भिन्नताओ को निबेडना और सुधारना सभव नहीं है।

2 मार्किट बाट कार्टेल (Market Sharing Cartel)

अल्पाधिकारात्मक मार्किट मे एक और प्रकार की पूर्ण कपटसधि व्यवहार में पाई जाती है जिसका सबध एक कार्टेल की सदस्य फर्मों द्वारा मार्किट बाट से है। एक कार्टेल बनाने हेतु फर्मे मार्किट बाट समझौता करती है, परन्तु अपने उत्पादन के स्टाइल, विक्रय क्रियाओं और अन्य निर्णयो से सबधित स्वतत्रता की काफी मात्रा अपने पास रखती है। मार्किट बाट के मुख्य ढग दो

है (क) गैर-कीमत प्रतियोगिता, और (ख) कोटा प्रणाली। इनकी विवेचना नीचे की जाती है।

(क) गैर-कीमत प्रतियोगिता कार्टेल (Non-Price Competition Cartel)

अल्पाधिकारात्मक फर्मों के बीच गैर-कीमत प्रतियोगिता समझौता एक ढीली किस्म का कार्टेल है। इस प्रकार के कार्टेल के अन्तर्गत, कम-लागत फर्में कम कीमत के लिए और उच्च-लागत फर्में ऊंची कीमत के लिए ज़ोर देती हैं। परन्तु अन्त में वे एक समान कीमत पर समझौता कर लेती हैं जिसके नीचे अपनी वस्तु को नहीं बेचेंगी। ऐसी कीमत उन्हें कुछ लाभ अवश्य देती है। फर्में एक-दूसरे के साथ गैर-कीमत के आधार पर प्रतियोगिता कर सकती हैं, जिसमें अपनी वस्तु के रंग, शक्ल, डिज़ाइन, पैकिंग आदि को परिवर्तित करना और अपनी भिन्न विज्ञापन और अन्य विक्रय क्रियाओं को अपनाना सम्मिलित है। इस प्रकार, प्रत्येक फर्म गैर-कीमत आधार पर मार्किट की बांट करती है और अपनी वस्तु को सहमत समान कीमत पर बेचती है।

इस प्रकार का कार्टेल सहज भाव से अस्थिर होता है क्योंकि यदि एक कम-लागत फर्म समान कीमत से कम कीमत लेकर अन्य फर्मों को धोखा देती है, तो वह अन्य सदस्य फर्मों के ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित करके अधिक लाभ कमाएगी। अन्य फर्मों को इस बात का पता चलता है, तो वे कार्टेल को छोड़ जाएंगी। एक कीमत युद्ध प्रारम्भ हो जाएगा और अन्त में न्यूनतम लागत वाली फर्म उद्योग में रह जाएगी।

यदि कार्टेल बनाने वाली फर्मों के लागत वक्र भिन्न होते हैं, तो कम-लागत वाली फर्में समान कीमत पर टिकी नहीं रह सकतीं। वे गुप्त कीमत रियायतों द्वारा मार्किट में अपने हिस्से को बढ़ाने का प्रयत्न कर सकती हैं। वे बेहतर विक्रय प्रोत्साहन विधियों को अपना सकती हैं। ऐसी नीतियां उनकी मांग-लागत स्थितियों को और परिवर्तित करने की सम्भावना रखती हैं। परिणामस्वरूप, फर्मों में कीमत परिवर्तन अधिक सामान्य हो जाते हैं। अन्त में, कार्टेल समझौता निरर्थक हो जाता है और एक कीमत युद्ध प्रारम्भ होता है।

(ख) कोटा समझौता द्वारा मार्किट बांट (Market Sharing by Quota Agreement)

फर्मों में मार्किट बांट का दूसरा तरीका कोटा समझौता है। एक अल्पाधिकारात्मक उद्योग में सभी फर्में एक सहमत एक समान कीमत लेने हेतु एक कपटसंधि में प्रवेश करती हैं। परन्तु मुख्य समझौते का संबंध सदस्य फर्मों के बीच समान रूप से मार्किट को बांटना है ताकि प्रत्येक फर्म अपने विक्रयों पर लाभ प्राप्त करे।

इसकी मान्यताएं (Its Assumptions)

यह विश्लेषण निम्न मान्यताओं पर आधारित है

1. केवल दो फर्में हैं जो कोटा प्रणाली के आधार पर मार्किट बांट समझौता करती हैं।
2. प्रत्येक फर्म एक समरूप वस्तु का उत्पादन और विक्रय करती है जो एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न है।
3. क्रेताओं की संख्या बहुत बड़ी है।
4. वस्तु का मार्किट मांग वक्र दिया हुआ है और उसकी कार्टेल को जानकारी है।
5. प्रत्येक फर्म का अपना मांग वक्र है जिसकी लोच मार्किट मांग वक्र की लोच के बराबर है।
6. दोनों फर्मों के लागत वक्र समान हैं।
7. दोनों फर्में मार्किट की बराबर की बांट करती हैं।
8. प्रत्येक फर्म सहमत एक-समान कीमत पर वस्तु बेचती है।
9. नई फर्मों के प्रवेश का कोई भय नहीं है।

मार्किट बाट हल (Market Sharing Solution)

ऊपर वर्णित मान्यताएं दी होने पर, दो फर्मों के बीच बराबर मार्किट बाट की चित्र 28 16 मे व्याख्या की गई है जहा D मार्किट माग वक्र है और d/MR इसके अनुरूप सीमात आगम वक्र है। ΣMC उद्योग का कुल MC वक्र है। d/MR वक्र को ΣMC वक्र E बिन्दु पर काटता है जो QA (= OP) कीमत और OQ कुल उत्पादन उद्योग के लिए निर्धारित करता है। यह मार्किट बाट कार्टेल मे एकाधिकार हल है।

चित्र 28 16
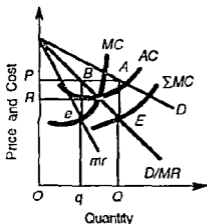
उद्योग का उत्पादन दोनो फर्मों के बीच बराबर-बराबर कैसे बाटा जाएगा? अब मान लीजिए कि d/MR प्रत्येक फर्म का माग वक्र है और mr इसका अनुरूप सीमात आगम वक्र है। AC और MC उनके समान लागत वक्र है। mr वक्र को MC वक्र e बिन्दु पर काटता है, जिससे प्रत्येक फर्म का लाभ अधिकतमकरण उत्पादन Oq है। क्योकि उद्योग का कुल उत्पादन OQ है जो $2 \times Oq$ $= OQ = 2Oq$) है, इसलिए कोटा समझौते के अनुसार दोनों फर्मों के बीच समान रूप से बाटा जाता है। इस प्रकार, प्रत्येक विक्रेता Oq उत्पादन को समान कीमत qB (= OP) पर बेचता है और प्रति इकाई RP लाभ कमाता है। प्रत्येक फर्म द्वारा अर्जित लाभ $RP \times Oq$ है और दोनों द्वारा अर्जित लाभ $RP \times 2\,Oq$ अथवा $RP \times OQ$ है।

परन्तु वास्तव मे, एक अल्पाधिकारात्मक उद्योग मे दो से अधिक फर्में होती है जो मार्किट को समान रूप में नहीं बाटती है। फिर, उनके लागत वक्र भी समरूप नहीं होते है। जब उनके लागत वक्र भिन्न होते हैं, तो उनके मार्किट के हिस्से भी विभिन्न होते है, प्रत्येक फर्म अपने MC और MR वक्रों के अनुसार एक स्वतन्त्र कीमत लेगी। ये सहमत एक समान कीमत पर समान मात्रा नहीं बेचेंगी। अपनी लागत स्थितियो पर निर्भर करते हुए, वे लाभ अधिकतमकरण कीमत से थोडी-सी कम या अधिक कीमत भी ले सकती है। परन्तु प्रत्येक लाभ अधिकतमकरण कीमत के बिल्कुल नजदीक कीमत रखने का यत्न करेगी। यही तत्त्व अन्तत मार्किट बांट समझौते को तोडने का कारण होना है।

प्रवेश का भय (Threat of Entry)—यहाँ तक हमारा विश्लेषण उस कपटसंधि अल्पाधिकार तक सीमित रहा है जिसके अन्तर्गत नई फर्मों के आने का कोई भय नहीं था। मान लीजिए कि उद्योग मे नई फर्मों के आने का भय लगातार बना रहता है। ऐसी स्थिति मे, यदि फर्में कीमत OP पर सहमत होती है तो उद्योग मे नई फर्में आ जाएँगी और उनके विक्रय तथा लाभ को कम कर देंगी। इसका परिणाम यह हो सकता है कि उद्योग मे अतिरिक्त क्षमता और अलाभकारी फर्मे हो जाएँ। अतिरिक्त क्षमता और अलाभकारी फर्मों का अस्तित्व औसत लागत वक्र AC को ऊँचा उठा कर (चित्र 28 16 मे नहीं दिखाया गया) कीमत के स्तर B पर ले आएगा, और फर्में केवल सामान्य लाभ कमाएगी और प्रत्येक Oq से कम बेचेगी।

यदि वर्तमान अल्पाधिकारी समझदार हो, तो वे अधिकतम लाभ देने वाली कीमत OP से कम

कीमत वसूल करके नई फर्मों के प्रवेश के विरुद्ध रोकथाम कर लेगे। इस तरीके मे कपटसन्धि अल्पाधिकारी वर्तमान में अपेक्षाकृत कम कीमत वसूल करके दीर्घकाल मे अधिक लाभ प्राप्त कर सकेगे और नई फर्मो के प्रवेश को हमेशा के लिए रोककर मार्किट पर अपना पूर्ण नियन्त्रण बनाए रखेगे।

हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हे कि पूर्ण कपटसधि अल्पाधिकार के अन्तर्गत कीमत व्यवहार का कोई निश्चित ढाचा नहीं होता। परिणामी कीमत और उत्पादन इस बात पर निर्भर करते है कि *कपटसधि अल्पाधिकारियो की लाभ अधिकतमकरण कीमत के प्रति क्या प्रतिक्रिया है* और वर्तमान तथा भावी प्रतिद्वद्वियो के प्रति उनका रवैया कैसा है।

(ग) कीमत नेतृत्व (Price Leadership)

कीमत नेतृत्व एक उद्योग मे अल्पाधिकारात्मक फर्मों की अपूर्ण कपटसधि (imperfect collusion) होती है जिसमे सब फर्में एक बडी फर्म के दिखाए हुए मार्ग का अनुसरण करती है।

फर्मो मे एक गुप्त समझौता होता है कि वे उद्योग के नेता (अर्थात् बडी फर्म) द्वारा नियत की गई कीमत पर अपनी वस्तु को बेचेगी। कभी-कभी एक रस्मी मीटिंग मे नेता फर्म के साथ एक निश्चित समझौता भी हो जाता है। यदि वस्तुएँ समरूप हो, तो कोई समान कीमत नियत कर दी जाती है। विभेदीकृत वस्तुओ की स्थिति मे भी समान कीमते हो सकती है। कीमत मे जो भी परिवर्तन करना हो, नेता फर्म समय-समय पर उसकी घोषणा करती है। अमरीका मे कीमत-नेतृत्व उद्योगो के उदाहरण ये है बिस्कुट, सीमेण्ट, सिगरेट, आटा, खाद, पैट्रोलियम, दूध, नकली रेशम, स्टील इत्यादि। इनका सम्बन्ध विशुद्ध और विभेदीकृत दोनो प्रकार के अल्पाधिकार से है।

कीमत नेतृत्व विभिन्न प्रकार का होता है। परन्तु तीन सबसे सामान्य कीमत नेतृत्व मॉडल है, जिनकी यहा विवेचना की जा रही है।

1 कम-लागत कीमत नेतृत्व मॉडल (Low-Cost Price Leadership Model)

कम-लागत कीमत नेतृत्व मॉडल मे एक अल्पाधिकारात्मक फर्म अन्य फर्मों की अपेक्षा कम लागते होने पर कम कीमत निश्चित करती है, जिसका अन्य फर्मों को अनुसरण करना पडता है। इस प्रकार, कम-लागत फर्म कीमत नेता बन जाती है।

इसकी मान्यताएं (Its Assumptions)

कम-लागत फर्म मॉडल निम्न मान्यताओ पर आधारित है.

1 A और B दो फर्मे है।
2 उनकी लागते भिन्न है। A कम-लागत फर्म है और B उच्च-लागत फर्म है।
3 उनके समरूप माग और MR वक्र है। उनका माग वक्र मार्किट मांग वक्र का 1/2 है।
4 क्रेताओ की सख्या बहुत बडी है।
5 मार्किट (उद्योग) माग वक्र की दोनो फर्मों को जानकारी है।

मॉडल (The Model)

ये मान्यताए दी होने पर, दोनो फर्मे एक गुप्त समझौता करती है जिसके अनुसार, उच्च-लागत B फर्म कीमत नेता फर्म A द्वारा निश्चित की गई कीमत का अनुसरण करेगी और मार्किट को समान रूप से बाटेगी। दोनो फर्मे जिस कीमत का अनुसरण करेगी, उसे चित्र 28 17 मे दिखाया गया है। D उद्योग का माग वक्र है और d/MR उसके अनुरूप सीमात आगम वक्र है, जो दोनो फर्मों के लिए माग वक्र है और mr उनका सीमात आगम वक्र है। कम-लागत फर्म A के लागत वक्र AC_a और

चित्र 28.17

MC_a है और उच्च-लागत फर्म B के AC_b और MC_b है।
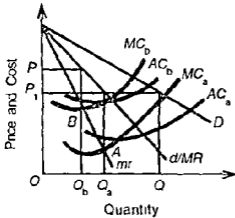
यदि दोनों फर्में स्वतंत्र रूप से कार्य करें, तो उच्च-लागत फर्म B प्रति इकाई OP कीमत लेगी और OQ_b मात्रा बेचेगी, जो बिन्दु *B* द्वारा निर्धारित होती है, जहां *mr* वक्र को उसका MC_b वक्र काटता है। इसी प्रकार, कम-लागत फर्म A प्रति इकाई OP_1 कीमत लेगी और OQ_a मात्रा बेचेगी, जो बिन्दु *A* द्वारा निर्धारित होती है, जहां *mr* वक्र को उसका MC_a वक्र काटता है। क्योंकि दोनों फर्मों के बीच गुप्त समझौता है, इसलिए उच्च-लागत फर्म B के पास कोई विकल्प नहीं सिवाय इसके कि वह कीमत-नेता फर्म A का अनुसरण करे। इसलिए वह अधिक मात्रा OQ_a कम कीमत OP_1 पर बेचेगी, यद्यपि वह अधिकतम लाभ नहीं कमाएगी। दूसरी ओर, कीमत नेता फर्म A कीमत OP_1 पर OQ_a मात्रा ही बेचकर बहुत अधिक लाभ कमाएगी। क्योंकि दोनों A और B फर्में समान मात्रा OQ_a बेचती हैं, इसलिए कुल मार्किट माग OQ दोनों के बीच समान रूप से बाटी जाती है $OQ = 2\,OQ_a$। यदि B फर्म कीमत OP पर टिकी रहती है तो इसके विक्रय शून्य होंगे क्योंकि वस्तु के समरूप होने के कारण इसके सभी ग्राहक फर्म A के पास चले जाएगे।

कीमत-नेता फर्म A फर्म B को मार्किट से बाहर धकेल सकती है यदि वह OP_1 से नीचे कीमत निश्चित करती है, जो फर्म B की औसत लागत AC_b से नीचे है। ऐसी स्थिति में, फर्म A एकाधिकारी फर्म बन जाएगी। परन्तु उसे कानूनी समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। इसलिए, इसके हित में होगा कि OP_1 कीमत ही निश्चित करे और फर्म B के साथ मार्किट बाटे और उसे सहन करे ताकि अपने लाभ अधिकतम कर सके।

कीमत-नेता मॉडल असमान मार्किट बाट के साथ

(Price Leadership Model with Unequal Market Share)

कीमत नेता मॉडल असमान मार्किट बाट होने पर, दोनों फर्मों के माग वक्र और लागत वक्र भिन्न होंगे। कम-लागत फर्म का माग वक्र उच्च-लागत फर्म की अपेक्षा अधिक लोचदार होगा। उच्च-लागत फर्म ऊची कीमत पर कम मात्रा बेचकर अपने लाभो को अधिकतम करेगी, जबकि कम-लागत फर्म कम कीमत पर अधिक मात्रा बेच कर अपने लाभ अधिकतम करेगी। यदि वे समान कीमत समझौता करते हैं, तो उच्च-लागत फर्म के हित में होगा कि कीमत नेता द्वारा निश्चित कम कीमत पर अधिक मात्रा बेचकर, वह अधिकतम लाभो में कुछ कम कमाए। ऐसा तभी सभव है जब तक कि नेता फर्म द्वारा निश्चित की गई कीमत उच्च-लागत फर्म की *AC* को पूरा करती है।

असमान मार्किट बाट के साथ कीमत नेतृत्व मॉडल की चित्र 28.18 में व्याख्या की गई है जहा विश्लेषण को सरल बनाने के लिए मार्किट माग वक्र नहीं दिखाया गया है। चित्र में कम-लागत फर्म A का माग वक्र D_a है और उसका सीमांत आगम वक्र MR_a है। उच्च- लागत फर्म B के माग और

MR वक्र क्रमश D_b और MR_b है। कम-लागत फर्म A कीमत OP और वस्तु की मात्रा OQ_a निश्चित करती है जब इसके MR_a वक्र को इसका MC_a वक्र A बिन्दु पर काटता है। इसी प्रकार, उच्च-लागत फर्म B की कीमत OP_1 और मात्रा OQ_b निर्धारित होते है जब इसके MR_b वक्र को इसका MC_b वक्र B बिन्दु पर काटता है। कीमत नेता फर्म A का अनुसरण करते हुए जब B फर्म कीमत OP स्वीकार करती है तो यह अधिक मात्रा OQ_{b1} बेचती है और अधिकतम से कम लाभ कमाती है। इस फर्म को इतनी मात्रा OP कीमत पर बेचने से उतने समय तक लाभ होगा, जब तक कि यह कीमत उसकी औसत लागत को पूरा करती है। यदि यह फर्म नेता-फर्म का अनुसरण न करके OQ_b मात्रा अपनी लाभ अधिकतमकरण कीमत OP_1 पर बेचने का यत्न करती है, तो यह बंद करनी पडेगी, क्योंकि इसके ग्राहक कम-लागत फर्म की ओर चले जाएगे, जो कम कीमत OP लेती है। परन्तु यदि नेता और अनुयायी फर्मो के बीच मार्किट बाट के बारे मे कोई समझौता नहीं है, तो अनुयायी फर्म नेता फर्म की कीमत (OP) अपना सकती है और मार्किट मे कीमत कायम करने के लिए जितनी मात्रा चाहिए उससे कम (OQ_{b1} से कम) उत्पादन कर सकती है और इस प्रकार नेता को गैर-लाभ-अधिकतमकरण स्थिति मे धकेल सकती है।
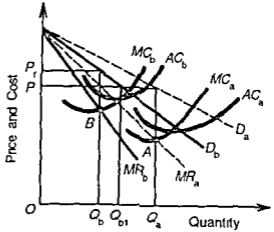
चित्र 28 18

2 प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व मॉडल (Dominant Firm Price Leadership Model)

कीमत-नेतृत्व की एक विशिष्ट स्थिति वह है जहाँ उद्योग मे एक बडी फर्म प्रधान होती है और कई छोटी फर्मे पाई जाती है। प्रधान फर्म समस्त उद्योग के लिए कीमत निश्चित कर देती है और छोटी फर्मे जितना चाहे, वस्तु का उतना विक्रय करती है और बाकी मार्किट को प्रधान फर्म स्वय पूरा करती है। इसलिए प्रधान फर्म ऐसी कीमत चुनेगी जिससे उसको अधिक लाभ हो।

इसकी मान्यताएँ (Its Assumptions)

प्रधान फर्म मॉडल निम्न मान्यताओ पर आधारित है

(1) अल्पाधिकारात्मक उद्योग मे एक बडी प्रधान फर्म और अनेक छोटी फर्मे है।

(2) प्रधान फर्म मार्किट कीमत निश्चित करती है।

(3) अन्य सभी फर्मे शुद्ध प्रतियोगियों की तरह कार्य करती है और वे निश्चित कीमत को स्वीकार करती है। उनके माँग वक्र पूर्ण लोचदार होते है क्योकि वे प्रधान फर्म की कीमत पर वस्तु बेचती है।

(4) प्रधान फर्म ही केवल वस्तु के मार्केट माँग वक्र का अनुमान लगाने मे समर्थ है।

(5) प्रधान फर्म अपने द्वारा निश्चित की गई कीमत पर अन्य फर्मो की पूर्तियों की पूर्व-सूचना की सामर्थ्य रखती है।

मॉडल (The Model)

ये मान्यताएं दी होने पर, जब प्रत्येक फर्म प्रधान फर्म द्वारा निश्चित की गई कीमत पर अपनी वस्तु बेचती है, तो उसका माग वक्र उस कीमत पर पूर्ण लोचदार होता है। इस प्रकार, उसका MR वक्र समानातर माग वक्र के बराबर होता है। फर्म उतना उत्पादन करेगी जिस पर उसकी सीमात लागत उसके सीमात आगम के बराबर होती है। सभी छोटी फर्मों के MC वक्रो के पार्श्व योग (lateral summation) से उनका कुल पूर्ति वक्र स्थापित होता है। ऐसी सभी फर्मे प्रतियोगितात्मक रूप मे व्यवहार करती है जबकि प्रधान फर्म निष्क्रियता से व्यवहार करती है। वह कीमत निश्चित करती है और छोटी फर्मों को उस कीमत पर जितना भी वे बेचना चाहे अनुमति देती है।

प्रधान फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व मॉडल की चित्र 28 19 द्वारा व्याख्या की गई है जहा DD_1 मार्किट माग वक्र है। ΣMC_s सभी छोटी फर्मों का कुल पूर्ति वक्र है। प्रत्येक कीमत पर ΣMC_s को DD_1 से घटाने पर, हमे प्रधान फर्म का माग वक्र $PNMBD_1$ प्राप्त होता है जिसे चित्र 28 19 मे निर्दिष्ट प्रकार से खींचा जा सकता है।

मान लीजिए कि प्रधान फर्म OP कीमत निश्चित करती है। इस कीमत पर वह छोटी फर्मों को PS मात्रा की पूर्ति द्वारा समस्त मार्किट माग को पूरा करने की अनुमति देती है। परन्तु प्रधान फर्म स्वय इस कीमत OP पर कुछ भी सप्लाई नहीं करेगी। इसलिए बिन्दु P इसके माग वक्र का प्रारंभिक बिन्दु है। अब OP से कम कीमत OP_1 लीजिए। जब छोटी फर्मों का पूर्ति वक्र ΣMC_s उनके समानातर माग वक्र P_1R को C बिन्दु पर काटता है, तो वे $P_1C(=OQ_s)$ मात्रा OP_1 कीमत पर सप्लाई करेंगी। क्योंकि OP_1 कीमत पर कुल मागी गई मात्रा $P_1R(=OQ)$ है और छोटी फर्मे $P_1C(=OQ_s)$ मात्रा सप्लाई करती है, तो $CR(=Q_sQ)$ मात्रा प्रधान फर्म द्वारा सप्लाई की जाएगी। समानातर रेखा P_1R पर $P_1N=CR$ लेने से, प्रधान फर्म की सप्लाई $P_1N(=OQ_d)$ हो जाती है।

चित्र 28 19

इस प्रकार, माग वक्र DD_1 से समानातर दूरी P_1 से N तक घटाने से हम प्रधान फर्म के माग वक्र पर N बिन्दु व्युत्पन्न (derive) करते है। छोटी फर्मे OP_2 कीमत से नीचे कुछ भी सप्लाई नहीं करती है, क्योंकि उनका ΣMC_s वक्र इस कीमत से ऊचा है, इसलिए प्रधान फर्म का माग वक्र MB रेंज पर समानातर रेखा P_2B के साथ मिल जाता है और फिर BD_1 हिस्से पर मार्किट माग वक्र के साथ। इस प्रकार, प्रधान फर्म का माग वक्र $PNMBD_1$ है।*

प्रधान फर्म को उस उत्पादन पर अधिकतम लाभ

* PNMBD, वक्र की व्युत्पत्ति को विद्यार्थी छोड सकते हैं, जिससे कीमत-निर्धारण की व्याख्या पर कोई प्रभाव नहीं पडेगा।

की प्राप्ति होगी, जहाँ उसका सीमान्त लागत वक्र MC_d उसके सीमान्त आगम वक्र MR_d के बराबर होगा। इससे F सतुलन बिन्दु स्थापित होता है, जहाँ प्रधान फर्म उत्पादन की OQ_d मात्रा OP_1 कीमत पर बेचती है। छोटी फर्में इस कीमत पर OQ_s उत्पादन को बेचेंगी, क्योंकि बिन्दु C पर ΣMC_s अर्थात् छोटी फर्मों का सीमान्त लागत वक्र समानांतर कीमत रेखा P_1R के बराबर होता है। उद्योग का कुल उत्पादन $OQ = OQ_d + OQ_s$ होगा। यदि प्रधान फर्म OP_2 कीमत निर्धारित करती है, तो छोटी फर्में P_2A और प्रधान फर्म AB विक्रय करेगी। यदि कीमत OP_2 से नीचे निश्चित की जाए, तो प्रधान फर्म समस्त उद्योग की माँग को पूरा करेगी और छोटी फर्मों का विक्रय शून्य होगा। ऊपर का विश्लेषण यह बताता है कि कीमत उत्पादन हल स्थिर है, क्योंकि छोटी फर्में कीमत-स्वीकर्त्ता (Price taker) के रूप मे निष्क्रियता से व्यवहार करती है।

प्रधान फर्म के कीमत नेतृत्व का वास्तविक टैस्ट यह है कि अन्य फर्में कहा तक उसके नेतृत्व का अनुसरण करती है। जिस क्षण फर्में उसके नेतृत्व का अनुसरण करना बद कर देती है, यह मॉडल भग हो जाता है। इसके अलावा, यदि अन्य फर्मों के लागत वक्र भिन्न हो, तो एक समान कीमत सभी फर्मों के अल्पकालीन लाभों को अधिकतम नहीं कर सकती है।

प्रधान फर्म मॉडल कीमत-नेतृत्व के कई रूप हो सकते है। छोटी फर्मों मे दो या अधिक बडी फर्में हो सकती है, जो विभिन्न कीमतो पर मार्किट-बाँट के लिए कपटसधि मे शामिल हो सकती है। वस्तु विभेद हो सकता है। फिर भी, जो निष्कर्ष ऊपर प्राप्त हुए है, वे ऐसी सब स्थितियों मे कीमत-उत्पादन नीतियो की व्याख्या करने मे सहायक है।

3 **बेरोमिट्रिक कीमत नेतृत्व मॉडल** (Barometric Price Leadership Model)

बेरोमिट्रिक कीमत नेतृत्व मे कोई एक नेता फर्म तो नहीं होती है, पर कोई एक फर्म, मान लीजिए जिसका उद्यमी सबसे अधिक बुद्धिमान है, कीमत और लागत स्थितियों का हिसाब लगाकर पहले कीमत परिवर्तन की घोषणा कर देती है। एक मौन समझौते के अनुसार उद्योग की अन्य फर्में भी उस प्रकार अपनी कीमतो मे परिवर्तन कर देती है। बेरोमिट्रिक कीमत नेता न्यूनतम लागत वाली *प्रधान फर्म अथवा उद्योग मे सबसे बडी फर्म नहीं हो सकती। यह वह फर्म होती है, जो उद्योग मे* लागत और माग स्थितियो और समस्त अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थितियो मे परिवर्तनो का पूर्वानुमान लगाने मे एक बेरोमीटर की तरह कार्य करती है। एक औपचारिक अथवा अनौपचारिक मौन समझौते के आधार पर, उद्योग मे अन्य फर्में ऐसी फर्म को नेता के रूप मे स्वीकार करती है और वस्तु मे कीमत परिवर्तन करने के लिए इसका अनुसरण करती है।

बेरोमिट्रिक कीमत नेतृत्व निम्न कारणो से विकसित होता है

1 अल्पाधिकारात्मक फर्मों मे गला-काट प्रतियोगिता और तीव्र कीमत परिवर्तनों के पूर्व अनुभव की प्रतिक्रिया के कारण, वे एक फर्म को कीमत नेता स्वीकार करती है।

2 अधिकतर फर्मों के पास उद्योग की लागत और माग स्थितियो की गणना करने की निपुणता नहीं होती है। इसलिए वे उनके अनुमान लगाने का काम एक नेता फर्म को सौंप देती है, जिनके पास ऐसा करने की योग्यता होती है।

3 *अल्पाधिकारात्मक फर्में अपने मे से एक फर्म को बेरोमिट्रिक नेता फर्म के रूप मे स्वीकारती* है, जो प्रत्यक्ष लागतो या स्टाइल मे तथा गुणवत्ता मे और समूची आर्थिक स्थितियों मे परिवर्तनो के बारे मे बेहतर ज्ञान और पूर्वानुमान लगाने की शक्ति रखती है।

यह आवश्यक नहीं कि जिस फर्म को बेरोमिट्रिक नेता चुना जाता है वह उसी उद्योग में से हो, बल्कि किसी अन्य उद्योग की फर्म भी बेरोमिट्रिक नेता चुनी जा सकती है।

4. अल्पाधिकार में कीमत-रहित प्रतियोगिता
(NON-PRICE COMPETITION IN OLIGOPOLY)

अल्पाधिकारात्मक मार्किटों में कोई अधिक सक्रिय कीमत प्रतियोगिता नहीं होती है। कभी-कभार फर्मों में कीमत युद्ध होते है, जो फर्मों के बीच संचार माध्यमों की विफलता के कारण पाये जाते है। अक्सर, एक अल्पाधिकारात्मक मार्किट में कीमतें स्थिर होती है। इसलिए फर्मों के बीच प्रतियोगिता वस्तु के मार्किट हिस्से को बढ़ाने के लिए होती है। अल्पाधिकारात्मक फर्में यह जानती है कि यदि वे कीमत कटौती द्वारा अपना मार्किट हिस्सा बढ़ाने के यत्न करें, तो उनके बीच प्रतियोगिता से कीमत में असमाप्त होने वाली कमी होगी और इस प्रक्रिया में सभी हानि उठाएंगे। इसलिए, कीमत द्वारा प्रतियोगिता करने की बजाय वे गैर-कीमत प्रतियोगिता को अपनाते है।

गैर-कीमत प्रतियोगिता से अभिप्राय एक अल्पाधिकारात्मक फर्म द्वारा उन प्रयत्नों से है जिनसे वह कीमत कटौती के सिवाय किसी अन्य साधनों से अपनी बिक्रियों को बढ़ाती है। अन्य साधन है विज्ञापन, वस्तु विभेदीकरण और ग्राहक सेवा। इनमे आगे सम्मिलित है प्रचार, विक्रय प्रोत्साहन और निजी विक्रय, वस्तु क्वालिटी, शैलीगत और सुरुचिपूर्ण क्वालिटी, ब्रैंड नाम और पैकेजिंग, सेवा समझौता, वारंटी, गारंटी, उधार पर बेचना, किश्तों पर बेचना, आदि। इस प्रकार, गैर-कीमत प्रतियोगिता में एक अल्पाधिकारी वस्तु की क्वालिटी, उसके टेक्नोलॉजिकल स्तर और सेवा मार्केटिंग तथा प्रोत्साहन साधनों द्वारा अपनी वस्तु के बारे में प्रतिद्वंद्वियों की अपेक्षा ग्राहकों के मन में काल्पनिक अंतर उत्पन्न करता है।

अर्थशास्त्री गैर-कीमत प्रतियोगिता के विभिन्न आयामों को वस्तु विभेदीकरण में इकट्ठा करते है। एक अल्पाधिकारी फर्म अपनी वस्तु की मांग को बढ़ाने और अपने मांग वक्र को कम लोचदार करने के लिए अपनी वस्तु को अपने प्रतिद्वंद्वियों की अपेक्षा भिन्न करना चाहती है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए, वह अनेक प्रकार से सफल वस्तु विभेदीकरण करने का यत्न करती है। वह वस्तु की विशेषताओं की अपेक्षा उसके विज्ञापन और प्रोत्साहन पर अधिक व्यय कर सकती है। अथवा, वह अपनी वस्तु की विशेषताओं और पैकिंग को इस ढंग से परिवर्तित करे कि वह ग्राहकों को अधिक पसंद आए।

वस्तु विशेषताएं (Product Attributes)

वस्तु विभिन्नता के लिए फर्म अपनी वस्तु के लिए एक ब्रैंड नाम अथवा ब्रैंड मार्क चुन सकती है, जिससे उसमें विशिष्टता उत्पन्न हो और ग्राहकों द्वारा वस्तु को पहचानना सरल हो सके। फर्म वस्तु की ऐसी विशेषताएं चुने जिन्हें क्रेता अधिक महत्त्व देते है, जो उसके प्रतिद्वंद्वी प्रदान नहीं कर सकते है। अपने टेक्नोलॉजिकल प्रयत्नों द्वारा अपनी वस्तु की क्वालिटी और विशेषताएं बढ़ाने के लिए फर्म वस्तु और प्रक्रिया विकास दोनों कर सकती है। इसी प्रकार, वह अपने टेक्नोलॉजिकल यत्नों को अपने लक्षित क्रेताओं की विशेष आवश्यकताओं की ओर कर सकती है।

विज्ञापन और प्रोत्साहन (Advertising and Promotion)

विज्ञापन और प्रोत्साहन का मुख्य उद्देश्य वस्तु के मांग वक्र को ऊपर दाईं ओर शिफ्ट करना है। इस प्रकार, अल्पाधिकारात्मक फर्म प्रत्येक कीमत पर अधिक बेच सकती है। विज्ञापन एक वस्तु को दूसरी से भिन्न करता है और अन्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिक परिचित बनाता है। इस प्रकार, विज्ञापन एक फर्म की वस्तु की बिक्री को उसके प्रतिद्वंद्वियों के विरुद्ध बढ़ाता है। आवर्त

इश्तहार, टी वी पर एक फिल्म स्टार अथवा एक मॉडल द्वारा एक विशेष वस्तु की प्रशंसा में कुछ शब्द कहना और रेडियो पर व्यापारिक प्रसारणों का उद्देश्य एक वस्तु की बिक्री को दूसरों की लागत पर बढ़ाना है।

अर्थशास्त्री एक फर्म द्वारा विज्ञापन और प्रोत्साहन यत्नों को माग की विज्ञापन लोच (Advertising Elasticity of Demand) द्वारा मापते है। माग की विज्ञापन लोच विक्रयों की प्रतिक्रियाशीलता को विज्ञापन और प्रोत्साहनार्थ व्यय में परिवर्तनों को मापती है।[8] इस प्रकार विज्ञापन लोच

$$E_a = \frac{\Delta Q}{\Delta A} \cdot \frac{A}{Q}$$

जहा Q विक्रय अथवा माग है और A विज्ञापन और प्रोत्साहनार्थ व्यय है।

E_a धनात्मक है क्योंकि विज्ञापन व्यय विक्रय बढ़ाते हैं। जितनी ऊंची विज्ञापन लोच होगी, उतनी अधिक फर्म को विज्ञापन करने की प्रेरणा होगी। वास्तव में E_a विज्ञापन की प्रभावशीलता का माप है। ज्यू-ज्यू विज्ञापन व्यय बढ़ते है, उनकी प्रभावशीलता भी बढ़ती है। परन्तु एक अल्पाधिकारात्मक फर्म के लिए, जितना अधिक उद्योग मे फर्म का हिस्सा होगा, उतनी कम माग की विज्ञापन लोच होने की संभावना होगी। यदि प्रतिद्वंद्वी फर्में फर्म के विज्ञापन व्ययों में वृद्धि के विरुद्ध अपने विज्ञापन व्यय बढ़ाकर प्रतिक्रिया करती हैं, तो ये व्यय एक दूसरे को काट देंगे, जिससे माग की विज्ञापन लोच कम हो जाएगी।

विपणन मार्ग (Marketing Channels)

परंपरागत अल्पाधिकार सिद्धात मे, विपणन मार्गों के बारे मे कोई सकेत नहीं मिलता, जो वस्तु के प्रोत्साहन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह इस अंतर्निहित मान्यता पर आधारित है कि खरीदारों को वस्तु सीधे बेची जाती है। आधुनिक अल्पाधिकारात्मक फर्मों के कार्य के बारे मे आनुभविक प्रमाण यह स्पष्ट करते हैं कि विभिन्न प्रकार के विपणन मार्ग होते है जो प्रतिद्वंद्वियों के मुकाबले एक वस्तु की बिक्री को बढ़ाने मे सहायक होते है। विपणन मार्ग वस्तु के प्रवाह, उसके भुगतान, उसकी सूचना और फर्म से अन्तिम खरीदार को प्रोत्साहनार्थ सदेश भेजना समन्वित करते है।

इस प्रकार विभिन्न प्रकार की गैर-कीमत प्रतियोगिता एक अल्पाधिकारात्मक फर्म की वस्तु का मार्किट हिस्सा बढ़ाने मे सहायक होती है।

प्रश्न

1 चित्रों की सहायता से एक अल्पाधिकारात्मक मार्किट की मुख्य विशेषताओं की व्याख्या कीजिए और विकिंत माग वक्र का सामना करती हुई एक फर्म के सतुलन की विवेचना करिए।

2 कई अर्थशास्त्रियों का यह मत है कि एक अल्पाधिकारी के माग वक्र में विंक होता है। इसके कारण बताइए। एक चित्र मे विकिंत माग वक्र और ऐसे वक्र का सामना करते हुए एक फर्म के सतुलन को दिखाइए।

3 एक प्रधान फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व के अन्तर्गत कीमत और उत्पादन के निर्धारण की व्याख्या कीजिए।

4 एक अल्पाधिकारात्मक मार्किट मे कीमत नेतृत्व की स्थितियों मे कीमत निर्धारण की व्याख्या करिए।

5 कार्टेल की परिभाषा दीजिए। एक कार्टेल सयुक्त लाभों को कैसे अधिकतम करता है? उन घटकों का वर्णन कीजिए जो कार्टेल के भंग होने की ओर ले जाते हैं।

8 Advertising elasticity of demand measures the responsiveness of sales to changes in advertising and promotional expenses

6 कूर्नो के द्वयाधिकार मॉडल की विशेषताओं की व्याख्या करिए। इसकी क्या सीमाएं है?

7 द्वयाधिकार समस्या के स्टेकलबर्ग हल की विवेचना करिए।

8 द्वयाधिकार का बर्ट्रेंड हल दीजिए। यह कूर्नो के हल से कैसे भिन्न है?

9 द्वयाधिकार समस्या के होटलिंग हल की विवेचना कीजिए।

10 गैर-कीमत प्रतियोगिता से आप क्या समझते है? यह अल्पाधिकारात्मक मार्किट मे मार्किट बाट को कैसे हल करती है?

11 टिप्पणी लिखिए मार्किट बाट कार्टेल, बेरोमिट्रिक कीमत नेतृत्व, चैम्बरलेन का द्वयाधिकार मॉडल।

अध्याय 29

वेन का सीमा कीमत निर्धारण सिद्धांत
(BAIN'S LIMIT PRICING THEORY)

1 भूमिका
(INTRODUCTION)

जो एस वेन पहला अर्थशास्त्री है जिसने 1949 में अपने एक लेख[1] में सीमा कीमत निर्धारण सिद्धांत को प्रतिपादित किया। इसे उसने आगे 1956 में अपनी पुस्तक *Barriers to New Competition* और फिर 1959 में अपनी दूसरी पुस्तक *Industrial Organisation* में इस सिद्धान्त को परिमार्जित और संशोधित किया। अपने मूल लेख में, बेन ने यह दर्शाया कि कपटसंधि (collusion) वाली अल्पाधिकार फर्मों को अन्य फर्मों के संभावित प्रवेश का भय हो सकता है। एक निश्चित रेंज में उनकी वस्तुओं के स्थानापन्न नहीं हो सकते है। लेकिन यदि कीमत को बहुत ऊंचे स्तर पर निश्चित किया जाता है, तो संभावित विरोधी फर्मों द्वारा प्रवेश का भय होता है। ऊंचे लाभों द्वारा आकर्षित होकर, वे उद्योग में प्रवेश कर सकती है। ऐसी परिस्थिति में, सदैव अधिकतम कीमत होती है जिसे सीमा कीमत कहते हैं। स्थापित फर्में अन्य फर्मों का प्रवेश आकर्षित किए बिना इस कीमत को चार्ज कर सकती है।

अपनी *Barriers to New Competition* में बेन ने अधिक तथ्यपूर्ण विस्तृत विवरण और सामग्री देकर नई फर्मों के प्रवेश को रोकने के लिए सीमा कीमत निर्धारण के सिद्धांत को विकसित किया। अपनी पुस्तक *Industrial Organisation* में उसने अपने सिद्धान्त का बेहतर और अधिक परिष्कृत विवरण दिया। हम बेन की पुस्तकों में वर्णन किए गए उसके सिद्धान्त की विवेचना कर रहे हैं।

2 बेन का सीमा कीमत सिद्धांत
(LIMIT PRICE THEORY OF BAIN)

बेन ने अपनी पुस्तक *Barriers to New Competition* (1959) में एक अल्पाधिकार उद्योग में नई फर्मों के प्रवेश को रोकने के लिए सीमा कीमत निर्धारण के सिद्धान्त को विकसित किया है। कपटसंधि में मिलकर फर्मों के एक ग्रुप द्वारा सीमा कीमत निश्चित की जाती है, जो उच्चतम सामान्य कीमत होती है। यह वह कीमत है जो स्थापित (established) फर्में उद्योग में किसी अन्य फर्म के प्रवेश को प्रेरित किए बिना चार्ज कर सकती हैं। यह कीमत अल्प-काल में लाभ-अधिकतमकरण कीमत से कम हो सकती है, और ग्रुप के बाहर और अन्दर फर्मों की सापेक्ष लागतों, और उद्योग में मांग स्थितियों पर निर्भर करेगी। बेन सीमा कीमत को प्रतियोगी कीमत से ऊपर अधिकतम कीमत मानता है, जो स्थापित फर्मों द्वारा निश्चित की जाती है। ऐसी कीमत

1 Joe S Bain "A Note on Pricing in Monopoly and Oligopoly", *A E R* March 1949

नई फर्मों के प्रवेश पर रुकावट (या अवरोध या बाधा) (barrier) का काम करती है। उद्योग में नए प्रवेशकों के ऊपर स्थापित फर्मों को प्राप्त होने वाले लाभ प्रवेश की रुकावटें हैं।

इसकी मान्यताएं (Its Assumptions)

बेन का मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

1 दीर्घकाल में कीमत और उत्पादन के समायोजन (adjustments) होते हैं।

2 उद्योग में स्थापित अल्पाधिकार फर्में हैं।

3 उद्योग के उत्पादन के लिए मांग वक्र, नई फर्म के प्रवेश द्वारा अथवा स्थापित अल्पाधिकार फर्मों द्वारा कीमत समायोजनों से, प्रभावित नहीं होता है।

4 स्थापित फर्मों के बीच प्रभावशाली कपटसंधि है। यह कपटसंधि प्रधान नेता फर्म पर आधारित है।

5 ग्रुप में अन्य फर्में एकीकृत कीमत नीति का अनुसरण करती हैं।

6 नेता फर्म सीमा कीमत अथवा प्रवेश-रोक कीमत निश्चित करती है जिसके नीचे प्रवेश नहीं हो सकता है।

7 केवल एक संभावित प्रवेशक (entrant) फर्म है जिसकी लागतें अन्य संभावित प्रवेशकों की तुलना में कम हैं।

बेन मॉडल (The Bain Model)

बेन अपने सीमा कीमत-निर्धारण मॉडल को प्रवेश की शर्तों से प्रारंभ करता है। यह प्रीमियम अथवा प्रतिशतता है जिससे स्थापित फर्में ग्रुप में नई फर्म के प्रवेश को आकर्षित किए बिना, कीमत को प्रतियोगी कीमत से ऊपर बढ़ा सकती हैं। प्रतीकात्मक रूप में, प्रवेश की शर्त,

$$E = \frac{P_L - P_C}{P_C} \text{ और } P_L = P_C(1 + E)$$

जहां P_L सीमा कीमत है और P_C प्रतियोगी कीमत है। फार्मूला यह दर्शाता है कि E प्रीमियम है जो स्थापित फर्में नई फर्म के प्रवेश को आकर्षित किए बिना सीमा कीमत (P_L) लेने के लिए प्राप्त करती हैं। जब स्थापित फर्में P_L को P_C से ऊपर निश्चित करती हैं, वे सामान्य लाभों से अधिक कमाती हैं, क्योंकि प्रतियोगी कीमत $P_C = LAC$ है, जिसमें सामान्य लाभ शामिल हैं। अतः E प्रतियोगी कीमत, P_C, से ऊपर सीमांत (अथवा धनिधनता या प्रीमियम) है, जो स्थापित फर्में ऊंची सीमा कीमत, P_L, निश्चित करके कमाती है।

बेन के अनुसार, प्रवेश की स्थिति में शामिल समय अवधि लंबी है, जिसमें मांग, साधन कीमतों आदि की बदलती परिस्थितियों की एक विशेष रेंज सम्मिलित होती है। यह समय अवधि 5 से 10 वर्षों तक की रेंज की हो सकती है। जितना लंबा समय एक नई फर्म को अपने आपको स्थापित करने में चाहिए, उतना उसके प्रवेश का भय कम होगा। अतः उतना ही बड़ा सीमा कीमत (P_L) और प्रतियोगी कीमत (P_C) में अंतराल होगा। यह अंतराल (gap) **प्रवेश अंतराल या प्रवेश रुकावट** कहलाता है।

प्रवेश की रुकावटों और सीमा कीमत-निर्धारण में आधारभूत संबंध को समझने के लिए, बेन के विश्लेषण को प्रवेश के स्रोतों और प्रवेश-रोक कीमत के निर्धारण में बांटा जाता है।

प्रवेश रुकावटों के स्रोत और सीमा कीमत-निर्धारण (Sources of Entry Barriers and Determination of Limit Prices)

बेन प्रवेश रुकावटों के चार मुख्य स्रोतों का विवेचन करता है वस्तु विभेदीकरण, पैमाने की मितव्ययिताएं, निरपेक्ष लागत लाभ, और पूंजी की अधिक राशि। अपनी पुस्तक *Industrial*

Organisation में बेन पूंजी की अधिक राशि को निरपेक्ष लागत लाभों में शामिल करता है। इसलिए हम भी इसका अलग विवेचन नहीं कर हैं।[2]

वस्तु विभेदीकरण (Product Differentiation)

वस्तु विभेदीकरण एक नई फर्म के प्रवेश की रोक को निम्नलिखित तरीकों से प्रदान करता है

1 यदि क्रेताओं के स्थापित फर्मों की वस्तुओं के लिए अधिमान है।

2 प्रवेशक फर्म को स्थापित फर्मों के साथ प्रतियोगिता करने के लिए विज्ञापन और प्रोत्साहन के लिए बड़े निवेश करने पड़ते हों, जो नई प्रवेशक फर्म की वित्तीय सीमाओं के परे हों।

3 स्थापित फर्मों के लोकप्रिय ब्रैंड हों। इस प्रकार नई फर्म के लिए स्थापित फर्मों के ग्राहकों की ब्रैंड निष्ठा (brand loyalty) के साथ प्रतियोगिता करना कठिन हो सकता है।

4 यदि स्थापित फर्मों के अपनी वस्तुओं को बेचने के लिए विशेष विक्रय मार्ग है और उनके थोक विक्रेताओं के साथ एकमात्र खरीद समझौते है, तो नई प्रवेशक फर्म बाजार में अपने आप को स्थापित करने में कठिनाई पाएगी।

सीमा कीमत निर्धारण (Limit Price Determination)—प्रवेश की रुकावट के रूप में वस्तु विभेदीकरण को चित्र 29.1 की सहायता से समझाया गया है। यह मानकर कि औसत लागतें स्थिर हैं, *LAC* स्थापित फर्म का दीर्घकालीन औसत लागत वक्र है। ग्रुप, या जिसे बेन सबसे श्रेष्ठ फर्म कहता है, का माग वक्र *DD* है। P_L इस फर्म द्वारा निश्चित सीमा कीमत है और Q_L सीमा उत्पादन है। यदि फर्म P_L कीमत लेती है, तो सभावित प्रवेशक फर्म का माग वक्र D_E है जो इसे अल्पाधिकार मार्किट में प्रवेश नहीं करने देता है, क्योंकि D_E वक्र *LAC* को *A* बिन्दु पर स्पर्श करता (टैंजेंट) है (इससे फर्म का कोई भी उत्पादन स्तर ऐसा नहीं है जो फर्म की औसत उत्पादन लागत से अधिक हो। यदि स्थापित फर्म कीमत को बढ़ाकर P_H कर देती है, जो प्रवेश प्रेरक कीमत (entry inducing price) है, तो उसका उत्पादन गिरकर Q_1 हो जाएगा। यह सभावित प्रवेशक फर्म को मार्किट में प्रवेश करने की प्रेरणा देती है, और उसका माग वक्र ऊपर उठकर D_{E1} हो जाता है। नई फर्म Q_E स्तर तक कोई भी वस्तु की मात्रा उत्पादित कर सकती है। P_L कीमत की जितनी राशि P_C से अधिक होती है वह प्रवेश अतराल अथवा प्रवेश रोक की "ऊंचाई" है, जो चित्र में *G* है।
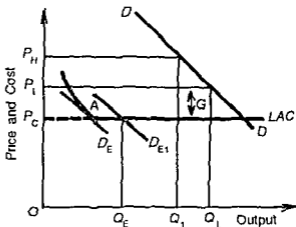
चित्र 29.1

2 इनके अतिरिक्त बेन कुछ निरपेक्ष प्रवेश रुकावटों की भी चर्चा करता है सीमित कच्चे माल की सप्लाई और कानूनी रुकावटें। कानूनी रुकावटों में पेटेंट अधिकार, ट्रेड मार्क, लाइसैंसिंग, टैरिफ आदि शामिल होते हैं जो एक शुद्ध एकाधिकार मॉडल में पाए जाते हैं।

पैमाने की मितव्ययिताएं (Economies of Scale)

पैमाने की मितव्ययिताएं, अविभाज्यताओं के पाए जाने और उत्पादन एवं प्रबंधन दोनों में विशिष्टीकरण और श्रम विभाजन के लाभों से, उत्पन्न होती हैं। वे R & D, विपणन और वितरण को भी प्रभावित करती हैं। पैमाने की मितव्ययिताओं के सीमा कीमत के स्तर पर प्रभाव निम्न पर निर्भर करते हैं (क) संभावित प्रवेशक फर्म के प्रवेश के पश्चात् स्थापित फर्मों की प्रतिक्रियाओं के बारे में प्रवेशक फर्म की प्रत्याशाएं (expectations), और (ख) प्रवेश कर रही फर्म के व्यवहार के बारे में स्थापित फर्मों की प्रत्याशाएं।

बेन संभावित प्रवेशक फर्म की छः संभव प्रत्याशाओं का वर्णन करता है (1) वह स्थापित फर्मों से अपेक्षा रखती है कि वे प्रवेश-पश्चात स्तर पर कीमत स्थिर रखती हैं। (2) वह स्थापित फर्मों से अपेक्षा रखती है कि वे प्रवेश-पश्चात स्तर पर उत्पादन को स्थिर रखें। (3) वह स्थापित फर्मों से अपेक्षा रखती है कि वे अंशतः (partly) अपने उत्पादन को कम करें और अंशतः अपनी कीमत को गिरने दें, परन्तु ऊपर की दोनों संभावनाओं से कम। (4) वह स्थापित फर्मों द्वारा बदले की अपेक्षा रखती है ताकि वे अपने प्रवेश-पूर्व उत्पादन को बढ़ा दें। (5) वह स्थापित फर्मों से अपेक्षा रखती है कि वे अपने उत्पादन को पर्याप्त कम कर दें ताकि कीमत प्रवेश-पूर्व स्तर से ऊपर बढ़े। (6) वह उद्योग में बिना किसी स्थापित फर्म द्वारा देखे, प्रवेश करने की अपेक्षा रखती है, क्योंकि इसका प्लांट बहुत छोटे पैमाने का होता है ताकि स्थापित फर्म न तो अपना उत्पादन और न ही अपनी मार्किट कीमत को परिवर्तित करे।

ऊपर वर्णित छः संभव संभावित प्रवेशक फर्म द्वारा प्रत्याशाओं में से, बेन तीसरी को सबसे वास्तविक और संभावित मानता है। ऐसा इसलिए कि प्रवेशक फर्म स्थापित फर्मों से अपेक्षा रखती है कि वे अंशतः अपने उत्पादन को कम करेंगी और अंशतः कीमत को गिरने देंगी। इन संभव स्थितियों में से हम केवल दो की विवेचना करेंगे।

(1) **स्थिर कीमत** (Price Constant)

इस स्थिति में, प्रवेशक फर्म प्रवेश-पश्चात स्तर पर स्थिर कीमत की अपेक्षा रखती है। इस फर्म का पैमाना प्लांट और माँग वक्र दिए होने पर, स्थापित फर्में प्रवेशक फर्म को उस कीमत पर जो भी वस्तु की मात्रा सुनिश्चित कर सकती है, उसकी अनुमति देती हैं। परिणामस्वरूप, स्थापित फर्मों के कुल उत्पादन में इतने उतने कम हो जाएंगे जितनी उत्पादन की मात्रा निवेशक फर्म बेचेगी।

इसे चित्र 29.2 में दर्शाया गया है जहां DD स्थापित फर्मों का माँग वक्र है जो इष्टतम पैमाने के प्लांटों पर Q उत्पादन करती हैं और उसे प्रतियोगी कीमत P_c पर बेचती हैं। यदि स्थापित फर्में सीमा (प्रवेश-रोक) कीमत P_L लेती हैं, तो सीमा उत्पादन Q_L है। सीमा कीमत P_L पर वे अपने इष्टतम पैमाने के
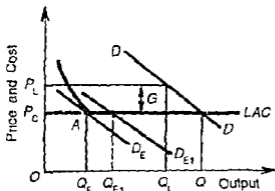
चित्र 29.2

प्लाट पर उत्पादन से $Q-Q_L$ कम उत्पादन की मात्रा बेचेगी। यह कीमत सभावित प्रवेशक फर्म को मार्किट मे प्रवेश करने से रोकेगी जब वह अपने न्यूनतम पैमाने के प्लाट पर Q_E उत्पादन कर रही है। प्रवेशक फर्म का माग वक्र D_E है जो मार्किट माग वक्र DD के समानान्तर है। यह D_E वक्र LAC वक्र को A बिन्दु पर स्पर्श करता है, जिससे इस फर्म का कोई भी उत्पादन का स्तर ऐसा नहीं है जिस पर कीमत फर्म की औसत लागत से अधिक हो। P_L और P_c कीमतो के बीच अतराल G **पैमाना रुकावट** (scale barrier) अथवा प्रवेश अतराल है, जो फर्म को मार्किट में प्रवेश करने से रोकता है। यदि प्रवेशक फर्म अपने पैमाना प्लाट को बढाती है, तो स्थापित फर्में इसे Q_E वस्तु की मात्रा बेचने की अनुमति देकर, इसे समायोजित (accommodate) कर लेगी, जब इसका माग वक्र D_{E_1} हो। ऐसा करने से, स्थापित फर्में अपने विक्रय को उतना कम कर देगी जितनी उत्पादन की मात्रा प्रवेशक फर्म बेचेगी। दूसरे शब्दों मे, स्थापित फर्में स्थिर कीमत P_c पर प्रवेश-पूर्व उत्पादन स्तर OQ की बजाय $Q_{E_1}-Q$ बेचेगी और प्रवेशक फर्म OQ_{E_1} बेचेगी।

(2) स्थिर मात्रा (Quantity Constant)

इस स्थिति मे, प्रवेशक फर्म स्थापित फर्मों से अपेक्षा रखती है कि वे प्रवेश-पूर्व स्तर पर अपने उत्पादन की मात्रा को स्थिर रखती है। प्रवेश को रोकने के लिए, स्थापित फर्में सीमा उत्पादन Q_L उत्पादित करेगी और उसे सीमा कीमत P_L पर बेचेगी, उनके इष्टतम पैमाने के प्लाट दिए होने पर, जैसा कि चित्र 29.3 मे दर्शाया गया है। सभावित प्रवेशक फर्म का न्यूनतम इष्टतम प्लाट Q_E उत्पादन करता है जो मुश्किल से अपनी औसत उत्पादन लागत को पूरा करती है। अत इस फर्म के लिए G पैमाना रुकावट अथवा प्रवेश अतराल है। यदि स्थापित फर्में अपने उत्पादन को Q_L स्तर पर रखती है और नई फर्म को मार्किट मे प्रवेश की अनुमति प्रदान करती है और अपने न्यूनतम इष्टतम उत्पादन Q_E को बेचने देती है, तो मार्किट मे कुल उत्पादन Q_E मात्रा में बढेगा। यह $OQ = OQ_E + OQ_L$ होगा। परिणामस्वरूप, मार्किट कीमत प्रतियोगी कीमत P_c मे थोडा-सा नीचे गिरेगी क्योंकि स्थापित फर्में अपने उत्पादन को प्रवेश-पूर्व स्तर पर रखती है और प्रवेशक फर्म के जोडे गए उत्पादन को कीमत कम करने की अनुमति प्रदान करती है।
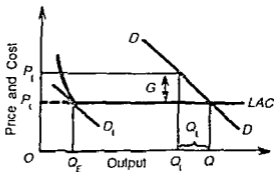
चित्र 29.3

निरपेक्ष लागत लाभ (Absolute Cost Advantages)

बेन के अनुसार, निरपेक्ष लागत रुकावटे निम्न से उत्पन्न हो सकती है (1) गोपनीयता अथवा पेटेंट द्वारा कायम स्थापित फर्मों द्वारा श्रेष्ठ उत्पादन तकनीकों का नियत्रण, (2) ससाधनो के श्रेष्ठ भडारो का स्थापित फर्मों द्वारा एकमात्र स्वामित्व, (3) प्रवेशक फर्म द्वारा आवश्यक उत्पादन के साधन जैसे प्रबधन सेवाए, श्रम, उपकरण, सामग्री, आदि को प्राप्त करने की क्षमता या ऐसी अनुकूल शर्तों पर उपयोग न कर सकना जो स्थापित फर्मों को प्राप्त होती है, (4) स्थापित फर्मों का

कच्चे पदार्थों के स्रोतों के पास कार्य करना, (5) प्रवेशक फर्म की निवेश के लिए तरल निधियों की कम अनुकूल पहुंच, जो ऊंची प्रभावशाली ब्याज लागतों अथवा आवश्यक मात्राओं में निधियों की सरल उपलब्धता में प्रतिबिंबित होती है, (6) स्थापित फर्मों की उत्पादन प्रक्रियाओं के अनुलंब एकत्रीकरण के कारण कम लागतें, और (7) स्थापित फर्मों द्वारा बड़ी मात्राओं में विक्रय अथवा थोक विक्रेताओं के साथ एक मात्र खरीद समझौतों के कारण कच्चे पदार्थों की कम कीमतें। इन सभी अलाभों में, बेन केवल पूँजी को नई निवेशक फर्म के लिए अधिक निधियां प्राप्त करना एकमात्र सबसे महंगा समझता है।

यदि स्थापित फर्मों को ये निरपेक्ष लागत लाभ प्राप्त होते हैं, तो वे नई फर्मों के प्रवेश की रुकावटों का काम करते हैं। ये लागत लाभ दिए होने पर, स्थापित फर्में उन कीमतों पर लाभ कमा सकेंगी जो सम्भावित प्रवेशक फर्म की लागतों से कम होती हों। इस फर्म का प्रवेश, इसकी औसत उत्पादन लागत से थोड़ा-सा नीचे सीमा कीमत निश्चित करके, रोका जा सकता है। इसे चित्र 29 4 में दर्शाया गया है जहां LAC स्थापित फर्मों का दीर्घकालीन औसत लागत वक्र है। ये सीमा कीमत (या प्रवेश रोक कीमत) P_L निश्चित करती हैं और मार्किट माग वक्र DD इस कीमत पर Q_L सीमा उत्पादन निश्चित करता है। LAC_E सम्भावित प्रवेशक फर्म का दीर्घकालीन औसत लागत वक्र है जो सीमा कीमत P_L से भी ऊंचा है। इस फर्म का मांग वक्र D_E है जो मार्किट मांग वक्र DD के समानांतर है। यह मांग वक्र (D_E) सम्भावित प्रवेशक फर्म के LAC_E से नीचे स्थित है, जिससे यह फर्म किसी भी उत्पादन स्तर पर अपनी उत्पादन लागत को पूरा नहीं कर पाती है। अत यह लाभ नहीं कमा सकती। इस प्रकार, इस फर्म का अल्पाधिकार मार्किट में प्रवेश करना असम्भव है। G प्रवेश अंतराल है जो यह दर्शाता है कि स्थापित फर्में प्रवेश आकर्षित किए बिना सीमा कीमत को अपने LAC से ऊपर निश्चित कर सकती हैं।
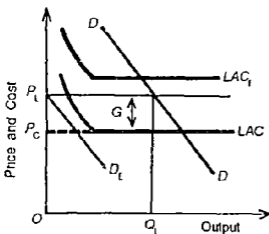
चित्र 29.4

निष्कर्ष (Conclusion)

प्रवेश रुकावट के तीनों स्रोतों को यदि इकट्ठा लिया जाए तो सीमा कीमत विश्लेषण काफी जटिल बन जाता है। वे एक दूसरे को सुदृढ़ कर सकते हैं अथवा उनके प्रभावों को निष्क्रिय कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, पैमाने की बड़ी मितव्ययिताएं और वस्तु विभेदीकरण प्रवेश की बहुत ऊंची रुकावट खड़ी कर सकते हैं, जैसा कि चित्र 29 5 में ऊंची सीमा कीमत P_H और प्रतियोगी कीमत P_C के बीच बड़ा प्रवेश अंतराल दर्शाता है। सीमा उत्पादन Q_H बहुत कम है। अत स्थापित फर्मों द्वारा बहुत बड़ा प्रवेश अंतराल और कम उत्पादन एकाधिकार स्थितियां उत्पन्न करती हैं। परिणामस्वरूप, प्रवेश वर्जित होना है क्योंकि प्रवेश रुकावट बहुत ऊंची (high barrier) है।

दूसरे छोर पर, एक बड़ी सम्भावित प्रवेशक फर्म जिसके पास पैमाने की अधिक मितव्ययिताएं

3. इसकी आलोचनाएं
(ITS CRITICISMS)

बेन प्रथम अर्थशास्त्री है जिसने प्रवेश के भय से सीमा कीमत-निर्धारण सिद्धान्त प्रतिपादित किया। बावजूद इसके, उसके मॉडल में निम्न कमियां पाई जाती हैं

1. सिलबर्टमन के अनुसार, बेन ने अल्पाधिकार की स्थितियों के अन्तर्गत कीमत सतुलन का एक सामान्य सिद्धान्त निर्मित नहीं किया। उसने कुछ आनुभविक अध्ययनों में मुख्य तौर से यह स्थापित किया कि एक उद्योग में कौन से घटक नई प्रतियोगिता में रुकावटें खड़ी करते हैं।

2. कोटमियानिस के अनुसार, बेन के मॉडल की एक बड़ी कमी यह है कि यह केवल नई फर्मों के प्रवेश पर अपने अध्ययन को केन्द्रित करता है। वह फर्मों के अधिकरण (take-overs), स्थापित फर्मों द्वारा क्षमता का प्रसार, और प्रतिकूल प्रवेश (cross entry) को अपने अध्ययन में सम्मिलित नहीं करता है।

3. बेन प्रवेश का दर का पूर्वानुमान लगाने अथवा उसे मापने के लिए स्पष्ट कसौटियां नहीं देता है।

4. यह सभावित प्रवेशक फर्म के आकार और लाभदायकता की व्याख्या नहीं करता है जो प्रवेश के भय को प्रभावित कर सकते हैं।

5. बेन केवल एक अकेली प्रवेशक फर्म पर विचार करता है, जब कि एक या दो प्रवेशक फर्मों की तुलना में एक बड़े ग्रुप का अधिक भय होता है। कुछ बहुत निकट अथवा समरूप फर्में प्रौद्योगिकी (technological) निकटता के कारण प्रवेश का अधिक भय प्रस्तुत कर सकती हैं। बेन इन सभी स्थितियों पर विचार नहीं करता है।

6. कोटमियानिस के अनुसार, बेन यह देखने में असफल रहा कि वस्तु विभेदीकरण और पैमाने की मितव्ययिताएं विशेष परिस्थितियों में प्रवेश की सभावना को बढ़ा सकती हैं।

प्रश्न

1. सीमा कीमत-निर्धारण से आप क्या समझते हैं? बेन किन स्थितियों में प्रवेश रुकावटों के अनुसार सीमा कीमत-निर्धारण करता है?

2. प्रवेश रुकावटें क्या होती हैं? बेन भिन्न-भिन्न प्रवेश रुकावटों का विश्लेषण सीमा कीमत-निर्धारण में करता है?

3. सीमा कीमत किसे कहते हैं? इसका कौन-सी विभिन्न स्थितियों में बेन निर्धारण करता है?

4. बेन के सीमा कीमत-निर्धारण का संक्षिप्त आलोचनात्मक विवरण दीजिए।

अध्याय 30

पूर्ण लागत कीमत निर्धारण और लाभ अधिकतमकरण सिद्धांत

(PROFIT MAXIMISATION AND FULL COST PRICING THEORIES)

1. भूमिका
(INTRODUCTION)

फर्म के नव-क्लासिकी सिद्धात का मुख्य उद्देश्य लाभ अधिकतमकरण रहा है। परन्तु अधिकतर आनुभविक प्रमाण फर्मो के अन्य उद्देश्यों की ओर सकेत करते है जैसे विक्रय अधिकतमकरण, उत्पादन अधिकतमकरण, सतुष्टि अधिकतमकरण, उपयोगिता अधिकतमकरण, आदि। इनमे से कुछ सिद्धातों की विवेचना अगले अध्याय मे की जाएगी। यह अध्याय फर्म के नव-क्लासिकी सिद्धात और हाल-हिच तथा एड्रयूज़ द्वारा पूर्ण लागत अथवा औसत लागत कीमत निर्धारण के रूप मे इसके प्रथम शोधन का विवेचन करता है।

2 लाभ अधिकतमकरण सिद्धात
(PROFIT MAXIMISATION THEORY)

फर्म के नव-क्लासिकी सिद्धात मे एक व्यावसायिक फर्म का मुख्य उद्देश्य लाभ अधिकतमकरण है। फर्म अपने लाभो को अधिकतम करती है जब वह दो नियमों को सतुष्ट करती है (1) MC = MR और (2) MR वक्र को MC वक्र नीचे से काटता है। अधिकतम लाभों का अभिप्राय शुद्ध लाभों से है जो उत्पादन की औसत लागत से ऊपर आधिक्य होते है। यह वह राशि है जो उद्यमी के पास उत्पादन के सभी साधनो को भुगतान करने के बाद बचती है, जिसमें प्रबधन की मजदूरी भी शामिल है। दूसरे शब्दो मे, यह उसके सामान्य लाभो से ऊपर अवशिष्ट (residual) आय है।[1] फर्म की लाभ अधिकतमकरण की शर्त को इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है

Maximise $\pi(Q)$

जहाँ $\pi(Q) = R(Q) - C(Q)$

जहाँ $\pi(Q)$ लाभ है, $R(Q)$ आगम, $C(Q)$ लागतें, और Q उत्पादन की बेची गई इकाइयां।

ऊपर वर्णित दोनों सीमात नियम और लाभ अधिकतमकरण शर्त पूर्ण प्रतियोगिता फर्म और एकाधिकार फर्म दोनों पर लागू होते है।

1 सामान्य लाभो की धारणा के लिए "लाभ" का अध्याय देखिए।

इसकी मान्यताएं (Its Assumptions)

लाभ अधिकतमकरण का सिद्धात निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित है

1 फर्म का उद्देश्य लाभों को अधिकतम करना है जहा फर्म के आगम और लागतो का अन्तर लाभ है।

2 उद्यमी स्वय ही फर्म का मालिक है।

3 उपभोक्ताओं की रुचिया और आदतें दी हुई और स्थिर है।

4 उत्पादन की तकनीके दी हुई है।

5 फर्म एक अकेली, पूर्णतया विभाज्य और स्टेडर्ड वस्तु का उत्पादन करती है।

6 प्रत्येक कीमत पर वस्तु की कितनी मात्रा बेची जा सकती है इसका फर्म को पूर्ण ज्ञान होता है।

7 फर्म को अपनी माग और लागतों के बारे मे निश्चितता से मालूम है।

8 नयी फर्में केवल दीर्घकाल मे ही उद्योग मे प्रवेश कर सकती है। अल्पकाल में फर्मों का प्रवेश सभव नहीं है।

9 फर्म अपने लाभों का अधिकतमकरण कुछ काल-क्षितिज (time horizon) मे करती है।

10 अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों मे फर्म अपने लाभो का अधिकतमकरण करती है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत लाभ अधिकतमकरण

(Profit Maximisation under Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म अनेक उत्पादको मे से एक होती है। वह वस्तु की मार्किट कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती है। वह कीमत-लेने वाली (price taker) और मात्रा-समायोजक (quantity adjuster) होती है। वह केवल बेचे जाने वाली वस्तु के बारे मे निर्णय ले सकती है, जिसे वह मार्किट कीमत पर बेच सकती है। इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का MR वक्र बराबर होता है AR वक्र। MR वक्र *X*-अक्ष के समानातर होता है क्योंकि कीमत मार्किट द्वारा निश्चित की जाती है और फर्म उस कीमत पर अपनी वस्तु की मात्रा बेचती है। इस प्रकार फर्म सतुलन मे होती है जब MC = MR = AR (कीमत)। लाभ अधिकतमकरण वाली फर्म का सतुलन चित्र 30 1 मे दर्शाया गया है जहा MR वक्र को MC वक्र पहले बिन्दु *A* पर काटता है। यह MC = MR की शर्त को पूरा करता है परन्तु यह अधिकतम लाभ का बिन्दु नहीं है क्योंकि *A* के बाद MC वक्र नीचे रहता है MR वक्र के। फर्म के लिए न्यूनतम उत्पादन *OM* लाभदायक नहीं है क्योंकि *OM* से अधिक उत्पादन करके फर्म अपेक्षाकृत अधिक लाभ उठा सकती है। परन्तु OM_1 पर पहुचकर फर्म आगे उत्पादन बद कर देगी। OM_1 उत्पादन का वह स्तर है जहा सतुलन की दोनो शर्ते पूरी हो जाती है। यदि फर्म OM_1 से अधिक उत्पादन करना चाहती है तो उसे हानि उठानी पड़ेगी
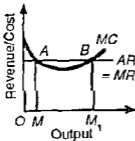
चित्र 30 1

क्योंकि सतुलन बिन्दु *B* के बाद सीमात आगम से सीमात लागत बढ जाती है। इस प्रकार फर्म अपने लाभ को M_1B कीमत पर तथा OM_1 उत्पादन स्तर पर अपने लाभो को अधिकतम करती है।

एकाधिकार के अन्तर्गत लाभ अधिकतमकरण (Profit Maximisaton under Monopoly)

एकाधिकार मे एक वस्तु का एक विक्रेता (अथवा उत्पादक) होने पर, एकाधिकार फर्म स्वय

उद्योग होती है। इसलिए इसका माग वक्र दाईं ओर नीचे ढालू होता है, यह मानकर कि इसके ग्राहकों की रुचिया और आमदनिया दी हुई है। वह कीमत बनाने वाली (price-maker) होती है जो अपने अधिकतम लाभ के लिए कीमत निश्चित कर सकती है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह कीमत और उत्पादन की मात्रा दोनों ही निश्चित कर सकती है। यह दोनों मे से एक बात कर सकती है। यदि फर्म अपने उत्पादन स्तर को चुन लेती है, तो उसकी कीमत को उसकी वस्तु की मार्किट माग निर्धारित करती है। अथवा, यदि वह अपनी वस्तु की कीमत निश्चित करती है, तो उसके उत्पादन का स्तर इस बात से निर्धारित होता है कि उपभोक्ता उस कीमत पर वस्तु की कितनी मात्राए खरीदेंगे। स्थिति कुछ भी हो, एकाधिकार फर्म का अन्तिम उद्देश्य अपने लाभों को अधिकतम करना है। एकाधिकार फर्म की सतुलन की शर्तें है (1) MC = MR < AR (कीमत), और (2) MR वक्र को MC वक्र नीचे से काटता है।
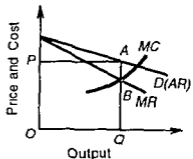
चित्र 30 2

चित्र 30.2 मे लाभ अधिकतम करने का उत्पादन स्तर *OQ* है और लाभ अधिकतम करने की कीमत *OP* है। यदि *OQ* से अधिक उत्पादन किया जाता है तो MR से MC अधिक होगी तथा लाभ का स्तर गिरेगा। यदि लागत और माग की स्थितिया समान रहे तो फर्म को कीमत और उत्पादन परिवर्तित करने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं होता है और फर्म सतुलन मे होती है।

लाभ अधिकतमकरण सिद्धात की आलोचनाए (Criticisms of Profit Maximisation Theory)

अर्थशास्त्रियो ने लाभ अधिकतमकरण सिद्धात की निम्नलिखित आधार पर कडी आलोचनाए की है

1 **लाभ अनिश्चित** (Profits uncertain)—अधिकतम लाभ के सिद्धान्त मे यह माना गया है कि फर्में अपने अधिकतम लाभ के स्तर के बारे मे निश्चित है। परन्तु लाभ सबसे अधिक अनिश्चित है क्योकि ये आय-प्राप्ति और भविष्य मे होने वाली लागतो के अन्तर से प्राप्त होते है। अत फर्मों के लिए अनिश्चितता की परिस्थितियो के अन्तर्गत अपने लाभो को अधिकतम कर पाना सम्भव नहीं है।

2 ***आतरिक सगठन से कोई सबद्धता नहीं*** (*No relevance to internal organisation*)—फर्म के इस उद्देश्य की फर्म के आन्तरिक सगठन से थोडी या सीधे रूप मे कोई सबद्धता नहीं है। उदाहरणार्थ, कुछ प्रबन्धक स्पष्ट तौर पर इतना अधिक व्यय करते है कि यदि उस व्यय को बचाया जाए तो फर्म के मालिक का धन और लाभ को अधिकतम किया जा सकता है। निगमो के प्रबन्धको को प्रबन्धकीय कार्रवाइयो के उद्देश्यो के रूप मे फर्म की कुल परिसम्पत्तियो की बढोत्तरी और बिक्री पर बल देते देखा गया है। इसके अलावा फर्मो के प्रबन्धक माग कम होने पर लागत कम करने और कार्यकुशलता बढाने के अभियान शुरू करते है। स्टॉकधारियो के बहुत अधिक धन के प्रतिकूल प्रबन्धकीय कार्यवाहिया एक स्थापित तथ्य मानी जाती है।

3 **पूर्ण ज्ञान नहीं** (No perfect knowledge)—अधिकतम लाभ की परिकल्पना इस मान्यता पर आधारित है कि सभी फर्मो को न केवल उनकी अपनी अपितु अन्य फर्मों की लागतो और आगमो का भी पूर्ण ज्ञान होता है। परन्तु वास्तव मे फर्मो को उन परिस्थितियो का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता जिसके अन्तर्गत वे कार्य करती है। अधिक से अधिक उन्हे अपनी उत्पादन-लागत का पता हो सकता है लेकिन वे बाजार माग वक्र के बारे मे निश्चित नहीं हो सकते। वे सदा अनिश्चितता की परिस्थितियो मे कार्य करती है और इस तरह अधिकतम लाभ का सिद्धान्त

कमजोर है, क्योंकि इस सिद्धान्त में यह माना गया है कि फर्म हर चीज के बारे में निश्चित है।

4 आनुभविक प्रमाण अस्पष्ट (Empirical evidence vague)—लाभ अधिकतमकरण पर आनुभविक प्रमाण अस्पष्ट है। बहुत सी फर्में लाभों को एक मुख्य उद्देश्य नहीं मानती है। आधुनिक फर्मों का कार्य इतना जटिल होता है कि वे केवल लाभ अधिकतमकरण के बारे में ही नहीं सोचती है। उनकी मुख्य समस्याएं नियंत्रण और प्रबंधन की होती है। इन फर्मों के प्रबंध का कार्य उद्यमियों द्वारा नहीं बल्कि मैनेजर और शेयरहोल्डरों द्वारा किया जाता है। वे क्रमश अपने वतन और लाभांशों में अधिक रुचि रखते हैं। क्योंकि आधुनिक फर्मों में स्वामित्व का नियंत्रण से पर्याप्त पृथक्करण (separation) होता है, इसलिए उनका कार्यकरण लाभों को अधिकतम करने के लिए नहीं किया जाता है।

5 फर्में MC और MR के बारे में नहीं जानती (Firms do not know about MC and MR)—वास्तविक व्यावसायिक जगत में फर्में सीमांत लागत और सीमांत आगम के आगणन की चिंता नहीं करती है। बहुत-सी तो इन शब्दों से परिचित नहीं होती है। अन्य अपने लागत और आगम वक्रों के बारे में नहीं जानती है। और कुछ अन्य को अपने लागत ढाचे के बारे में पर्याप्त सूचना नहीं होती है। हाल और हिच (Hall and Hitch) का प्रयोगसिद्ध प्रमाण यह दर्शाता है कि फर्मों के प्रबंधकों को सीमान्त लागत और सीमान्त आगम का ज्ञान नहीं है।[2] आखिर वे अनुमान लगाने वाली लालची मशीनें नहीं है। जैसाकि सी जे हाकिन्स ने ठीक ही कहा है, "यह तर्क देना कि सभी फर्मों का उद्देश्य अधिकतम लाभ के अलावा और कुछ नहीं है, तर्कशास्त्र अथवा अन्तर्दृष्टि में उसी तरह कोई बेहतर आधार नहीं रखता जिस तरह यह तर्क देना कि सभी विद्यार्थियों का उद्देश्य सही और गलत तरीके से परीक्षा में अधिकतम अंक प्राप्त करना होता है।"[3]

6 औसत लागत का नियम लाभों को अधिकतम करता है (Principle of average cost maximises profits)—हाल और हिच ने यह जाना कि फर्में अपने अल्पकालीन लाभों को अधिकतम करने के लिए MC और MR की समानता का नियम लागू नहीं करती है। परन्तु वे दीर्घकाल में लाभों को अधिकतम करने का उद्देश्य रखती है। इसके लिए वे सीमांत नियम को लागू न करके अपनी कीमतें औसत लागत नियम पर निश्चित करती हैं। इस नियम के अनुसार, कीमत = AVC + AFC + profit margin (जो सामान्य तौर से 10% होता है) इस प्रकार, लाभ अधिकतमकरण फर्म का मुख्य उद्देश्य औसत लागत नियम के आधार पर कीमत निश्चित करना और उसी कीमत पर अपना उत्पादन बेचना है।

7 स्थैतिक सिद्धांत (Static theory)—फर्म का नव-क्लासिकी सिद्धान्त स्थैतिक प्रकृति का है। यह अल्प अवधि अथवा दीर्घ अवधि की मियाद (duration) के बारे में नहीं बताता है। नव-क्लासिकी फर्म का समय-अंतराल समान और स्वतंत्र समय अवधियों का होता है। निर्णयों को कालगत तौर से स्वतंत्र लिया जाता है। यह लाभ अधिकतमकरण सिद्धान्त की बड़ी कमी है। वास्तव में निर्णय "कालगत तौर से परस्पर निर्भर" होते हैं। इसका अभिप्राय है कि किसी एक अवधि में निर्णय पिछली अवधियों के निर्णयों द्वारा प्रभावित होते हैं, जो आगे फर्म के भविष्य में निर्णयों को प्रभावित करेंगे। इस परस्पर निर्भरता की नव-क्लासिकी सिद्धान्त द्वारा उपेक्षा की गई है।[4]

8 अल्प-एकाधिकार फर्म पर लागू नहीं (Not applicable to oligopoly firm)—वास्तव में आर्थिक सिद्धान्त में अधिकतम लाभ का उद्देश्य पूर्णतया प्रतियोगी या एकाधिकारी या एकाधिकारी प्रतियोगात्मक फर्मों के लिए है। परन्तु अल्प-एकाधिकार फर्म के मामले में इसकी आलोचना के कारण इसे छोड़ दिया गया है। इस प्रकार इस सिद्धान्त में अर्थशास्त्रियों द्वारा जो विभिन्न उद्देश्य

2 R Hall and C Hitch, "Price Theory and Business Behaviour", in P W S Andrews and T Wilson (eds), *Studies in the Price Mechanism* 1952

3 C J Hawkins, *Theory of the Firm*, 1973

4 A Koutsoyiannis, *Modern Microeconomics*, 2/e, 1975

लाए गए हैं वे अल्प-स्वाधिकार या द्वि-स्वाधिकार से ही सम्बन्धित हैं।

9 विभिन्न उद्देश्य (Varied objectives)—नव-क्लासिकी फर्मों और आधुनिक निगमों के उद्देश्यों के मध्य भिन्नता का आधार इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि अधिकतम लाभ का उद्देश्य उद्यमी के व्यवहार से सम्बन्धित है जबकि आधुनिक निगम शेयरधारकों और प्रबन्धकों की अलग-अलग भूमिका के कारण भिन्न उद्देश्यों से प्रेरित होते हैं। इनमें शेयरधारक व्यावहारिक रूप से प्रबन्धकों की कार्यवाही पर कोई प्रभाव नहीं डालते। 1932 के शुरू में बर्ले और मीन्स[5] ने बताया कि प्रबन्धकों के उद्देश्य शेयरधारकों से भिन्न होते हैं। प्रबन्धकों की अधिकतम लाभ प्राप्त करने में कोई रुचि नहीं होती। वे फर्म को शेयरधारकों की बजाय अपने हित में चलाते हैं। शेयरधारक प्रबन्धकों पर ज्यादा प्रभाव नहीं डाल सकते क्योंकि उन्हें कम्पनियों के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं होती। अधिकांश शेयरधारक कम्पनी की वार्षिक आम बैठक में उपस्थित नहीं हो सकते। इस प्रकार आधुनिक फर्में अपने आन्तरिक संगठन से सम्बन्धित उद्देश्यों से प्रेरित होती हैं।

3 पूर्ण लागत अथवा औसत लागत कीमत निर्धारण का सिद्धान्त (THEORY OF FULL-COST OR AVERAGE COST PRICING)

सन् 1939 में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के हाल और हिच ने लाभ में अधिकतमकरण की धारणा पर कड़ा प्रहार किया। इसके लिए 38 उद्यमियों की प्रश्नावली के उत्तर को अपना आधार बनाया। इनमें से 33 निर्माता 3 फुटकर व्यापारी और 2 निर्माण-कर्ता थे। हाल और हिच ने उनसे उनकी माग और लोचशीलता तथा उनकी अनुमानित सीमान्त लागत और सीमान्त आय को समान करने के लिए किए गए प्रयासों के बारे में जानकारी प्राप्त की। उनके उत्तरों से पता चला कि उनमें से अधिकांश ने प्रकट और निश्चित रूप से भी माग की लोच अथवा सीमान्त लागत का अनुमान लगाने के लिए कोई प्रयास नहीं किए। उन्होंने कीमत निर्धारण की प्रक्रिया में इनकी प्रासंगिकता पर कोई विचार नहीं किया।

अपने आनुभविक अध्ययन के आधार पर हिच और हाल यह निष्कर्ष निकालते हैं कि अल्प-विक्रेताधिकार के अन्तर्गत अधिकतर उद्यमी सीमान्त लागत और सीमान्त आय के समानता के ढंग से न करके अपने विक्री मूल्यों का आधार "पूर्ण लागत" को मानते हैं और इसमें लाभ के अंश को शामिल करते हैं। इस प्रकार पूर्ण औसत लागत पर आधारित कीमत वह "सही मूल्य" है जोकि अल्पाधिकार के अन्तर्गत "सही प्रतियोगिता" के विचार पर आधारित किया जाना चाहिए।

परन्तु पूर्ण लागत क्या है? पूर्ण लागत पूर्ण औसत लागत है जिसमें औसत प्रत्यक्ष (परिवर्तनशील) लागतें (AVC) जमा औसत ऊपरी लागतें (AFC) जमा और लाभ के लिए सामान्य राशि (normal margin)। इस प्रकार, कीमत, $P = AVC + AFC + \text{Profit margin}$ (सामान्यतया 10%)। हाल और हिच के अनुसार फर्मों को पूर्ण लागत कीमत निर्धारण नीति का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करने के कुछ कारण हैं (i) उत्पादकों में मौन अथवा खुला कपटपूर्ण समझौता, (ii) उपभोक्ताओं की प्राथमिकताएं जानने में असफलता (iii) कीमत में परिवर्तन से प्रतियोगियों की प्रतिक्रिया (iv) निवेशकों का नैतिक दृष्टिकोण और (v) मूल्यों के घटने अथवा बढ़ने के प्रभावों की अनिश्चितता। ये सभी कारण अल्पाधिकार वाले उत्पादकों को पूर्ण लागत कीमत के अलावा अन्य कीमत का निर्धारण करने से रोकते हैं।

इस प्रकार फर्में पूर्ण लागत नियम के आधार पर अपनी कीमत निश्चित करती हैं और मार्जिन

5 A. A. Berle and G. Means, *The Modern Corporation and Private Property* 1932

चित्र 30.3
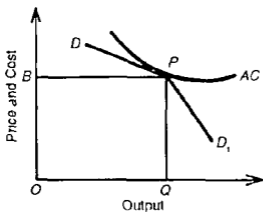
जितनी माग करती है उस कीमत पर बेचती है। उन्होंने यह देखा कि बावजूद माग और लागतों में परिवर्तनों के अल्पाधिकार मार्किट में कीमतें स्थिर होती है। उन्होंने कीमतों की स्थिरता को किंकित माग वक्र के प्रयोग द्वारा समझाया। यह किंक उस बिन्दु पर होता है जहा चित्र 30.3 में वास्तव में पूर्ण लागत सिद्धांत पर निर्धारित कीमत $QP (= OB)$ है। इसमें ऊपर कीमत में किसी भी वृद्धि से फर्म की बिक्री कम हो जाएगी क्योंकि इसके प्रतियोगी अपनी कीमतो में वृद्धि में इसका अनुसरण नहीं करेंगे। ऐसा इसलिए कि किंकित माग वक्र का PD भाग लोचशील है। दूसरी ओर, यदि फर्म QP के नीचे कीमत को कम कर देती है तो इसके प्रतियोगी भी अपनी कीमतों को कम कर देंगे। फर्म की बिक्री बढ जाएगी, परन्तु इसके लाभ पहले से कम हो जाएंगे। ऐसा इसलिए कि वक्र का PD_1 भाग कम लोचशील है। इस प्राकर, कीमत बढने और कीमत घटने दोनों स्थितियों में फर्म को हानि होगी। अत जब तक उत्पादन के प्रत्यक्ष साधनों (जैसे कच्चा माल आदि) की कीमतो मे परिवर्तन नहीं होते है तब तक फर्म QP कीमत पर स्थिर रहेगी।

क्योंकि AC वक्र उत्पादन के बड़े रेंज में गिरता है, इसलिए कीमत में परिवर्तन उत्पादन के उलट होता है। जितना उत्पादन का स्तर कम होगा उतनी ही अधिक औसत लागत होगी और उतनी ही अधिक वस्तु की कीमत। परन्तु हाल और हिच इस सभावना को नहीं मानते कि अल्पाधिकार फर्में कम उत्पादन करती है और ऊची कीमतें लेती हैं। इसके लिए वे तीन कारण देते हैं (क) अल्पाधिकार फर्में कीमत स्थिरता को प्राथमिकता देती है, (ख) वे किंक के कारण कीमत को नहीं बढा सकती हे, और (ग) वे जहा तक सभव हो पलाट को पूर्ण क्षमता तक चलाना चाहती है।

हाल और हिच ने स्थिर कीमत के इस तथ्य के दो अपवादों का उल्लेख किया है (i) यदि माग बहुत कम हो जाती है और कुछ समय के लिए ऐसी ही रहती हे, तो उत्पादन को बनाये रखने की आशा से कीमत मे कमी आ सकती है। ऐसा तभी हो सकता है जब माग वक्र का निचला भाग काफी अधिक लोचवाला होता है। कीमतो मे कमी का कारण यह है कि जब कोई फर्म आपत्ति में होती है तो अपनी कीमतो मे कमी करके अन्य फर्मों को कीमतो मे कमी करने के लिए बाध्य करती है। (ii) कोई परिस्थितिया जो कि साधन कीमतो अथवा प्रोद्योगिकी मे परिवर्तनों के कारण उतनी मात्रा से सभी फर्मों के AC वक्रो को घटा या बढा देती है जिससे पूर्ण लागत-मूल्य $QP (= OB)$ का पुनर्मूल्यन हो सकता है। परन्तु मजदूरी और कच्चे माल की लागतों की तुलना में कीमतों में कमी या वृद्धि की कोई सभावना नहीं होती है।

एड्रयूज की व्याख्या (Andrews' Version)

हाल-हिच की व्याख्या इस मान्यता पर आधारित है कि अल्पाधिकार मार्किट में ली जाने वाली कीमत पहले से ही फर्म द्वारा निश्चित की जाती है। फिर, किंकित माग वक्र विश्लेषण को जटिल

बनाता है। इसलिए विवरण को सरल बनाने हेतु, एन्ड्रयूज़[6] द्वारा दी गई पूर्ण लागत कीमत निर्धारण की व्याख्या को हम दे रहे हैं।

प्रो एड्रयूज़ यह व्याख्या करता है कि किसी प्रकार एक विनिर्माण फर्म पूर्ण लागत अथवा औसत लागत के आधार पर वास्तव मे अपनी वस्तु की विक्रय कीमत को निश्चित करती है। फर्म औसत प्रत्यक्ष लागतो (AVC) को जानने के लिए चालू कुल लागतो को चालू कुल उत्पादन मे विभाजित करती है। ये औसत परिवर्ती लागते है जो उत्पादन के विस्तृत रेज पर स्थिर मान ली जाती है। दूसरे शब्दों मे, AVC वक्र उत्पादन अक्ष के कुछ भाग की लबाई में समानातर होता है, यदि प्रत्यक्ष लागत साधनो की कीमते दी हुई हो।

एक फर्म सामान्य तौर से एक विशेष वस्तु के लिए जो कीमत बताएगी वह अनुमानित प्रत्यक्ष उत्पादन लागतो जमा एक लागत निर्धारण-सीमा (costing margin) अथवा मूल्य बढाव (mark-up) के बराबर होगी। लागत-निर्धारण सीमा सामान्य तौर से उत्पादन के अप्रत्यक्ष साधनो की लागतो [आगतो (inputs)] को पूरा करेगा और समस्त उद्योग को देखते हुए, शुद्ध लाभ के सामान्य स्तर को प्रदान करेगा।

मूल्य बढाव अथवा लागत निर्धारण-सीमा के लिए यह फार्मूला है,

$$M = \frac{P - AVC}{AVC} \text{ ताकि } P = AVC\,(1 + M)$$

जहा M मूल्य बढाव, P कीमत और AVC औसत परिवर्ती लागत है।

मान लीजिए कि फर्म की AVC = रु 100 और फर्म $M = 0.25$ अथवा 25% रखती है। फर्म निश्चित करेगी, कीमत P रु $100\,(1 + 0.25)$ = रु 125 जब एक बार यह कीमत फर्म द्वारा चुनी जाती है तो मूल्य बढाव स्थिर रहेगा चाहे उसका उत्पादन स्तर कुछ भी हो, उसका सगठन दिया होने पर। परन्तु उत्पादन के अप्रत्यक्ष साधनों की कीमतो मे कोई सामान्य स्थायी परिवर्तनो से इस (M) मे परिवर्तन की सभावना होगी।

फर्म की क्षमता पर निर्भर करते हुए और उत्पादन के प्रत्यक्ष साधनो (मजदूरी और कच्चे माल) की कीमते दी होने पर, कीमत मे परिवर्तन न होने की सभावना होगी, चाहे उत्पादन का कोई भी स्तर हो। उस कीमत पर, फर्म की अधिक या कम स्पष्ट मार्किट होगी और वह उस मात्रा को बेचेगी जो इसके ग्राहक उससे मागते है।

परन्तु उत्पादन का स्तर कैसे निर्धारित होता है? यह निम्न तीन में से किसी भी एक ढग से निर्धारित होता है (क) क्षमता उत्पादन की प्रतिशतता के रूप में, अथवा (ख) पिछली उत्पादन अवधि में बेचे गए उत्पादन के रूप मे, अथवा न्यूनतम या औसत उत्पादन के रूप मे जो भविष्य मे फर्म बेचने की सभावना रखती है। यदि फर्म नयी है अथवा एक वर्तमान फर्म है जो एक नई वस्तु को प्रारभ करती है, तो इन तीनो मे से पहली और तीसरी व्याख्या सगत होगी। ऐसे हालात मे यह सभव है कि पहली लगभग तीसरी के साथ मेल खाएगी, क्योंकि प्लाट की क्षमता प्रत्याशित भविष्य की बिक्रियो पर निर्भर करेगी।

पूर्ण लागत कीमत निर्धारण की एड्रयूज़ व्याख्या चित्र 30.4 मे दर्शायी गई है जहा AC औसत प्रत्यक्ष अथवा परिवर्ती लागत वक्र है जो उत्पादन के एक विस्तृत रेंज मे समानातर सीधी रेखा है। MC इसके अनुरूप सीमान्त लागत वक्र है। मान लीजिए कि फर्म उत्पादन का OQ स्तर चुनती है। उत्पादन के इस स्तर पर, QC फर्म की पूर्ण लागत है जो QV औसत प्रत्यक्ष लागत जमा लागत निर्धारण-सीमा (costing margin) VC से बनी है। इसलिए फर्म की बिक्री कीमत $OP = QC$। फर्म

6 P W S Andrews, *Manufacturing Business* 1949

4. सीमांतवादी विवाद
(THE MARGINALIST CONTROVERSY)

ऊपर हमने सीमान नियम पर आधारित फर्म के नव-क्लासिकी सिद्धान की विस्तृत विवेचना की। अब हम इस सिद्धात के पक्ष और विपक्ष मे किए गए तर्कों का अध्ययन करते है।

फर्म का नव-क्लासिकी सिद्धात दो नियमों पर आधारित है MC = MR और MR वक्र को MC वक्र नीचे से काटता है। फर्म का उद्देश्य अपने लाभो को अधिकतम करना है तथा इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सीमात विश्लेषण एक उपयुक्त औजार है। 1930 की दशाब्दी तक यह फर्म का स्वीकृत सिद्धात था। 1939 मे हाल और हिच ने लाभ अधिकतमकरण की धारणा पर तीव्र प्रहार किया। इसके पश्चात फर्म के नव-क्लासिकी सिद्धात के पक्ष और विपक्ष मे तीव्र विवाद प्रारभ हो गया। हाल और हिच, एड्रयूज़, लेस्टर, गोर्डन आदि अर्थशास्त्रियो ने इस परपरागवादी सिद्धात की उसकी अवास्तविक मान्यताओं और सीमातक व्यवहारवादी नियमों के लिए कटु आलोचनाए की। दूसरी ओर, आस्टिन, रोबिन्सन, काहन, मैक्लप आदि ने इस सिद्धात का समर्थन किया। हम उनके तर्को की आगे विवेचना करते है।

सीमांतवादी सिद्धात के विरुद्ध तर्क (Arguments against the Marginalist Theory)

फर्म के नव-क्लासिकी सिद्धात के विरुद्ध तर्क उसकी अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है।

1 यह मान लिया जाता है कि फर्म का स्वामी एक उद्यमी होता है जो उसका सचालन करता है। वह अकेला निर्णय करने वाला होता है, जो क्या उत्पादित करना है, कितना उत्पादित करना है, किनके लिए उत्पादन करना है, किस व्यक्ति को किस कार्य के लिए काम पर लगाना है और कितना वेतन देना है? के निर्णय स्वय करता है। वह विवेकी पुरुष होता है जो सही निर्णय लेता है, जो उसके लाभो को अधिकतम करेगे। वास्तव मे, फर्म का स्वामी-उद्यमी सर्वशक्तिमान होता है, जो अकेला ही फर्म का प्रबध करता है।

ऊपर वर्णित मान्यताए अवास्तविक है, क्योंकि एक आधुनिक फर्म मे स्वामित्व से प्रबधन अलग होता है। फर्म एक इकाई नहीं मानी जाती, जिसमे केवल लाभ अधिकतमकरण करने का एक निर्णयकारक का केवल एक ही उद्देश्य नहीं होता है। बल्कि फर्म व्यक्तियो का एक समूह होती है, जो अपने-अपने क्षेत्रो मे विशिष्टीकरण करते है। वे फर्म के आतरिक सगठन से संबद्ध बहुविध लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निर्णयकरण प्रक्रिया मे लगे होते है।

2 नव-क्लासिकी सिद्धात की एक अन्य अवास्तविक मान्यता यह है कि फर्म का केवल एक उद्देश्य अपने लाभो को अधिकतम करना है। इसे प्राप्त करने के लिए, फर्म दो जुडवा नियमो का पालन करती है MC = MR और MR वक्र को MC वक्र नीचे से काटता है। आलोचकों का यह मत है कि आधुनिक फर्मे MC और MR की गणना करने का कष्ट नहीं उठाती है। बहुत-सी फर्मो को तो इनके बारे मे ज्ञान भी नहीं है। कुछ को तो अपने माग और लागत वक्रों के बारे मे मालूम नहीं है।

आधुनिक फर्मो का केवल एक लक्ष्य लाभ अधिकतम करना नहीं है। परन्तु मैनेजरो के बहुविध लक्ष्य होते है, जैसे विक्रय अधिकतमकरण, उत्पादन अधिकतमकरण, उपयोगिता अधिकतमकरण, वृद्धि अधिकतमकरण, सतुष्टि अधिकतमकरण, आदि।

फिर, लाभ अधिकतमकरण पर आनुभविक प्रमाण अस्पष्ट है। अधिकतर फर्मे लाभो को मुख्य लक्ष्य नहीं मानती है। आधुनिक फर्मो का कार्यकरण इतना जटिल है कि वे नियत्रण और प्रबधन के लिए अधिक चिन्तित होती है। वे फर्मे मैनेजरो और शेयरहोल्डरो द्वारा प्रबधित और नियत्रित होती है न कि स्वामी-उद्यमियो द्वारा। वे क्रमश अपनी आमदनियो और लाभाशो मे अधिक

दिलचस्पी रखते है। क्योकि आधुनिक फर्मों मे स्वामित्व और नियत्रण मे काफी पृथकता होती है, इसलिए वे लाभो को अधिकतम करने के लिए सचालित नहीं होती है।

3 फर्म का नव-क्लासिकी सिद्धात यह मानकर चलता है कि फर्म अपने अधिकतम लाभो के स्तर के बारे मे निश्चित होती है। उसको अपनी लागतो और आगमो के बारे मे पूरी जानकारी होती है और भविष्य मे भी वे कितनी होगी। इस प्रकार, वह **निश्चितता** की स्थितियो मे अपने निर्णय लेती है। परन्तु यह मान्यता भी अवास्तविक है, क्योकि फर्म जिन अवस्थाओ मे कार्य करती है उनका उसे पर्याप्त और सही ज्ञान नहीं होता है। अधिक से अधिक, वह अपनी लागतो के बारे मे जानती है। लेकिन वह मार्किट माग वक्र के बारे मे कभी भी निश्चित नहीं हो सकती है। वास्तव मे, फर्म सदैव अनिश्चितता की स्थितियो मे कार्य करती है।

फर्म को भविष्य के लिए निर्णय लेने पडते है, और भविष्य के बारे मे ज्ञान आवश्यक तौर से अपूर्ण होता है। क्योकि वह भविष्य मे अपनी लागते व्यय करती है और आगम प्राप्त करती है, इसलिए उनकी सही राशिया अनिश्चित होती है। जितनी लबी उत्पादन अवधि होगी, उतने ही अनिश्चित आगम, लागते और लाभ होगे। अनिश्चितता की स्थितियो मे विवेकी निर्णयकरण लागतो, आगमो और कीमतो के बारे मे व्यक्तिगत प्रत्यशाओ और प्रत्याशित लाभो की सभाव्यताओ पर निर्भर करता है।

4 फर्म के नव-क्लासिकी सिद्धात के आलोचक इसकी **स्थैतिक** (static) प्रकृति की ओर सकेत करते है। सिद्धात की अल्पकालीन और दीर्घकालीन दोनो सदर्भो मे व्याख्या की जाती है। परन्तु यह अल्पकाल ओर दीर्घकाल की अवधि की व्याख्या नहीं करता है। फर्म की समय सीमा मे समरूप और स्वतत्र समय अवधिया शामिल होती है। निर्णयो को अस्थायी रूप से स्वतत्र लिया जाता है और यह परपरावादी सिद्धात की सभवत सबसे महत्त्वपूर्ण कमी है। लेकिन निर्णय अस्थायी रूप मे परस्पर निर्भर होते है एक अवधि मे लिए गए निर्णय पिछली अवधियो मे लिए गए निर्णयो से प्रभावित होते है ओर वे आगे फर्म के भविष्य के निर्णयो को प्रभावित करेगे। परपरावादी सिद्धात इस परस्पर निर्भरता की उपेक्षा करता है।

5 प्रो मैक्लप, जो फर्म के नव-क्लासिकी सिद्धात के प्रमुख समर्थको मे से एक है, ने स्वय स्वीकार किया है कि नव-क्लासिकी सिद्धात मे फर्म की सीमान मात्राओ—लागत ओर आगम—की सही सख्यात्मक गणना वास्तविक फर्मों के व्यवहार की व्याख्या और पूर्वकथन करने के उद्देश्य को पूरा करना के लिए नहीं है। बल्कि, इसका उद्देश्य अवलोकित (observed) (उद्धृत, भुगतान और प्राप्त की गई) कीमतो मे परिवर्तनो की व्याख्या ओर पूर्वकथन करना है, जो मजदूरी दरो, ब्याज दरो, आयात शुल्को, उत्पादन शुल्को, आदि जैसी स्थितियो के विशेष परिवर्तनो के प्रभावो के रूप मे प्रस्तुत किए जाते है। इस कारण-प्रभाव सबध मे, फर्म केवल एक सैद्धातिक लिक, एक मानसिक रचना है, जो इस बात की व्याख्या करने में सहायता करती है कि कैसे कारण से प्रभाव पर पहुचा जाता है। यह फर्म के व्यवहार की व्याख्या करने से सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार, फर्म का नव-क्लासिकी सिद्धात अवलोकन-योग्य प्रक्रियाओ के वास्तविक वर्णन के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

सीमानवादी सिद्धात के पक्ष मे तर्क (Arguments for the Marginalist Theory)

फर्म के नव-क्लासिकी सिद्धान के पक्ष मे निम्नलिखित तर्क दिए जाते है

1 नव-क्लासिकी सिद्धात के पक्ष मे प्रथम तर्क आवश्यक तौर से रीतिशास्त्रीय है। फ्रीडमैन के अनुसार, एक सिद्धात के टैस्ट के लिए पूछा और उत्तर दिया जाने वाला प्रश्न यह है कि "एक सिद्धात का उद्देश्य क्या है, ओर एक अच्छे सिद्धात के लिए कोन-सी कसौटिया है?" उत्तर यह है कि एक सिद्धात का उद्देश्य पूर्वकथन करना है, जो प्रमाण द्वारा टेस्ट-योग्य (परीक्षणीय) और सिद्ध किए जाते है। इन कसौटियो के आधार पर, एक सिद्धात की मान्यताओ की वास्तविकता सर्वथा

असंगत बात है। इसलिए, एक सिद्धान्त का निर्णय उसकी मान्यताओं की वास्तविकता के आधार पर नहीं करना चाहिए, बल्कि उसके द्वारा किए जा सकने वाले पूर्वकथनों के आधार पर करना चाहिए। फ्रीडमैन यह तर्क देता है कि फर्म का नव-क्लासिकी सिद्धान्त इस कसौटी पर पूरा उतरता है और इसलिए पूर्णतया स्वीकार-योग्य है।

2 फर्म के परम्परावादी सिद्धान्त के पक्ष में आनुभविक प्रमाण ये व्यक्त करते हैं कि आधुनिक फर्में अपनी लेखांकन विधियों में सीमान्तवादी नियमों को लागू करती हैं। अमरीका में 110 'सर्वोत्तम प्रबंधित कम्पनियों' का इयर्ले (Earley) का अध्ययन यह बताता है कि फर्में अपने निर्णयकरण में सीमान्त लेखांकन विधियों और लागत-लेखांकन नियमों का अनुसरण करती हैं।

3 हाल और हिच ने फर्म के परम्परावादी सिद्धान्त की लाभ अधिकतमकरण मान्यता की आलोचना की है। परन्तु जैसा कि आस्टिन, रॉबिन्सन और काहन ने संकेत किया, लाभ अधिकतमकरण के तत्त्व हाल और हिच द्वारा अनुसंधान की गई अनेक फर्मों के कीमत निर्धारण निर्णयों में पाए गए। फिर, हाल और हिच ने अपने विश्लेषण में स्वयं बताया कि व्यक्तिगत माँग वक्र में विकुंचित कीमत लाभ-अधिकतमकरण कीमत होती है जहाँ MC वक्र MR वक्र के असतत (discontinuous) भाग में काटता है। इस प्रकार सीमान्तवादी धारणा के कटु आलोचक भी लाभ अधिकतमकरण नियम से अपने-आप को बचा नहीं सके।

4 प्रो. मैक्लप[9] जिसने 1946 में फर्म के नव-क्लासिकी सिद्धान्त पर प्रहार से बचाव किया, 1966 में अमरीकी अर्थ ऐसोसिएशन को अपने अध्यक्षीय भाषण में यह व्यक्त किया कि फर्म के व्यवहारवादी और प्रबंधकीय सिद्धान्तों के विकास और फर्म के परम्परावादी सिद्धान्त के विरुद्ध "1946 के युद्ध" के बावजूद, अर्थशास्त्री "सीमान्तवाद को समाप्त करने अथवा त्यागने पर विवश नहीं कर सके।" उसने आगे कहा "पाठ्य पुस्तकों को देखो और आप यह पाओगे कि सीमान्तवाद ने व्यष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन पर प्रभुत्व बनाए रखा है।"

फर्म के परम्परावादी सिद्धान्त पर वैकल्पिक धारणाएं मुख्यतया उद्योगों से सबंधित हैं, जहाँ थोड़ी फर्में हैं और प्रतियोगिता प्रभावहीन है। परन्तु ये धारणाएं सारी प्रतियोगिता की स्थितियों के अन्तर्गत कीमत निर्धारण के सीमान्तवादी हल का गम्भीरता से विरोध नहीं करती हैं। इसलिए मैक्लप यह सुझाव देता है कि हमारा रवैया लाभ अधिकतमकरण की मान्यता के साथ लगे रहना होना चाहिए, क्योंकि यह सरलतम है और यह बहुत कम विस्तृत सूचना के सबसे बड़े क्षेत्र पर लागू होती है।

5 यह कहना सही नहीं कि आधुनिक फर्मों ने सीमान्तवाद और लाभ अधिकतम करने के लक्ष्य को त्याग दिया है। बल्कि लाभ अधिकतमकरण को फर्म के व्यवहारवादी और प्रबंधकीय सिद्धान्तों में एक लक्ष्य शामिल किया गया है। जैसा कि सिटोव्स्की ने व्यक्त किया, "व्यावसायिकों के व्यवहार के आनुभविक अध्ययन जहाँ-तहाँ लाभ अधिकतमकरण की मान्यता को परिवर्तित अथवा सीमित करने की आवश्यकता का सुझाव देते हैं न कि इसे हटा देने का। इसलिए, हम इस मान्यता को रखेंगे कि फर्म का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना है।"[10] वह सन्तुष्टि अधिकतमकरण सिद्धान्त में लाभ अधिकतमकरण मान्यता को कार्यकारी उपकल्पना (working hypothesis) के रूप में प्रयोग करता है। इसी प्रकार, साईर्ट और मार्च के व्यवहारिक मॉडल और विलियमसन के प्रबंधकीय विवेकी मॉडल में सीमान्तवाद को प्रबंधकवाद से इस प्रकार मिला दिया गया है कि दोनों मॉडल एक ही फार्मूला में मुद्रा लाभों को अन्य प्रबंधकीय लक्ष्यों में एकीकृत कर देते हैं।

9 *Theories of the Firm Marginalism Behaviouralism Managerialism*
10 T Scitovsky *Welfare and Competition* 1952

निष्कर्ष यह निकलता है कि अर्थशास्त्रियो ने सीमातवाद के विवाद को फर्म के व्यवहारवादी और प्रबधकीय सिद्धात द्वारा सुलझाने का यत्न किया है।

प्रश्न

1 फर्म के लाभ अधिकतमकरण सिद्धात की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2 औसत लागत कीमत निर्धारण सिद्धात का आलोचनात्मक विवेचन करिए।
3 पूर्ण-लागत कीमत निर्धारण से आप क्या समझते है? पूर्ण-लागत कीमत निर्धारण की आलोचनात्मक व्याख्या करिए।
4 फर्म के सिद्धात मे सीमातवादी विवाद पर प्रकाश डालिए।

अध्याय 31

फर्म के व्यवहार-संबंधी और प्रबंधकीय सिद्धांत
(BEHAVIOURAL AND MANAGERIAL THEORIES OF THE FIRM)

1. भूमिका
(INTRODUCTION)

इस अध्याय में कुछ महत्त्वपूर्ण फर्म के व्यवहार-संबंधी और प्रबंधकीय सिद्धांतों का विश्लेषण किया जा रहा है। वे हैं साइमन का संतुष्टिकरण सिद्धांत, सायर्ट तथा मार्च का व्यवहार-संबंधी सिद्धांत, विलियमसन का प्रबंधकीय विवेक सिद्धांत, मैरिस का वृद्धि अधिकतमकरण सिद्धांत, और बॉमल का विक्रय अधिकतमकरण सिद्धांत। ये उन मान्यताओं और उद्देश्यों पर आधारित है, जो लाभ अधिकतमकरण के नव-क्लासिकी सिद्धांत से सर्वथा भिन्न हैं। ये सिद्धांत आधुनिक बड़े निगमों में मालिकों और मैनेजरों के बीच भेद मानते हैं। ये अनिश्चितता की अवस्थाओं के अन्तर्गत फर्मों में निर्णयकरण प्रक्रिया पर विचार करती हैं, जब कि इसके विपरीत फर्म के नव-क्लासिकी सिद्धांत में लागत और मांग के पूर्ण ज्ञान की स्थितियों पर विचार किया जाता है। हम फर्म के इन व्यवहार-संबंधी और प्रबंधकीय सिद्धांतों का नीचे विवेचन करते हैं।

2. साइमन का संतुष्टिकरण सिद्धांत
(SIMON'S SATISFICING THEORY)

नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो. साइमन[1] प्रथम अर्थशास्त्री हैं जिसने 1955 में फर्म के व्यवहार-संबंधी सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उसके अनुसार, फर्म का मुख्य उद्देश्य लाभों को अधिकतम करना नहीं है, बल्कि संतुष्टिकरण अथवा संतोषजनक लाभ है। साइमन के शब्दों में, "हमें फर्म का उद्देश्य लाभों का अधिकतम करना नहीं समझना चाहिए, बल्कि लाभ का एक निश्चित स्तर अथवा दर प्राप्त करना है जो बिक्री का एक निश्चित स्तर अथवा मार्किट का एक निश्चित भाग निर्धारित करती है।" अनिश्चितता की स्थितियों में एक फर्म यह नहीं जान सकती कि लाभ अधिकतम हो रहे हैं या नहीं।

फर्म के व्यवहार का विश्लेषण करते हुए, साइमन संगठनात्मक व्यवहार की व्यक्तिगत व्यवहार के साथ तुलना करता है। उसके अनुसार, एक व्यक्ति की तरह एक फर्म का अपना अभिलाषा स्तर (aspiration level) होता है। फर्म लाभों का एक "लक्ष्य" अथवा एक निश्चित न्यूनतम स्तर प्राप्त करने की अभिलाषा रखती है। उसका अभिलाषा स्तर उसके विभिन्न उद्देश्यों जैसे उत्पादन, कीमत, बिक्री, लाभ, आदि और उसके पिछले अनुभव पर आधारित होता है। वह भविष्य में अनिश्चितताओं

1. H. A. Simon, "A Behavioural Model of Rational Choice", *Q. J. E.* Feb. 1955 and "Theories of Decision Making in Economics and Behavioural Science", *A. E. R.*, June 1959

का भी ध्यान रखती है। अभिलाषा स्तर सन्तोषजनक और असंतोषजनक परिणामों के बीच सीमा को परिभाषित करता है। इस संदर्भ में फर्म को तीन वैकल्पिक स्थितियों का सामना करना पड सकता है। वे हैं (क) वास्तविक उपलब्धि अभिलाषा स्तर से कम हो, (ख) वास्तविक उपलब्धि अभिलाषा स्तर से अधिक हो, और (ग) वास्तविक उपलब्धि अभिलाषा स्तर के बराबर हो।

प्रथम स्थिति में, जब वास्तविक उपलब्धि अभिलाषा स्तर से कम होती है तो ऐसा आर्थिक क्रियाओं में विस्तृत उतार-चढ़ावों अथवा फर्म के उपलब्धि स्तर में गुणात्मक गिरावट के कारण हो सकता है।

दूसरी स्थिति में, जब वास्तविक उपलब्धि अभिलाषा स्तर से अधिक होती है, तो फर्म अपने प्रशंसनीय कार्य से संतुष्ट होती है। तीसरी स्थिति में भी फर्म संतुष्ट होती है, जब वास्तविक उपलब्धि अभिलाषा स्तर से मेल खाती है।

परन्तु पहली स्थिति में फर्म संतुष्ट नहीं होती है। ऐसा इसलिए हो सकता है कि फर्म ने अपना अभिलाषा स्तर बहुत ऊंचा निश्चित किया हो। इसलिए वह इसे नीचे की ओर संशोधित करेगी और अपने लक्ष्यों को पूरा करने हेतु एक छानबीन प्रक्रिया (search activity) प्रारंभ कर देगी ताकि भविष्य में अभिलाषा स्तर को प्राप्त किया जा सके। इसी प्रकार, यदि फर्म यह पाती है कि अभिलाषा स्तर आसानी से प्राप्त किया जा सकता है तो अभिलाषा स्तर को ऊपर की ओर बढ़ा दिया जाता है। ऐसी छानबीन प्रक्रिया से फर्म के प्रबंधक द्वारा निश्चित अभिलाषा स्तर को पहुंचने में फर्म सफल हो जाएगी।

पिछले अनुभव और व्यावहारिक नियमों को मार्गदर्शक के रूप में प्रयोग करके संभावित विकल्पों के क्रम द्वारा छानबीन प्रक्रिया की जा सकती है। परन्तु छानबीन क्रिया लागत रहित मामला नहीं है। छानबीन क्रिया के लाभ को उसकी लागत के साथ अवश्य संतुलित करना चाहिए। और जब एक बार छानबीन स्पष्ट करती है कि क्रिया सन्तोषजनक हो गई है तो वह फिलहाल छोड़ दी जाएगी। इस प्रकार, फर्म के अभिलाषा स्तर को समय-समय पर हालात के अनुकूल बनाया जाता है। फर्म लाभ अधिकतम नहीं कर रही होती, क्योंकि लागत के कारण कुछ हद तक वह अपनी छानबीन क्रियाओं को सीमाबद्ध करती है। विवेकशीलता से व्यवहार करते हुए फर्म अधिकतम करने की बजाए संतुष्टिकरण करती है।

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)

इस सिद्धांत की कुछेक कमियां है

1. साइमन के संतुष्टिकरण सिद्धांत की मुख्य कमजोरी यह है कि उसने लाभों के 'लक्ष्य' स्तर के बारे में विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया है, जिनको प्राप्त करने के लिए एक फर्म अभिलाषा करती है। जब तक इसका पता न चले यह बताना संभव नहीं है कि लाभ अधिकतमकरण और संतुष्टिकरण के उद्देश्यों के बीच विरोध के स्पष्ट क्षेत्र कौन से है।

2 साइमन की "संतुष्टिकरण" धारणा से बॉमल और क्वेंट सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार, यह "प्रतिबंधित" अधिकतमकरण है जिसमें केवल प्रतिबंध है और कोई अधिकतमकरण नहीं।

3 साइमन "एक विशेष स्तर या लाभ की दर" पर आधारित फर्म के कार्य के एक संतुष्ट स्तर की व्याख्या नहीं करता है। यह लाभ अधिकतमकरण मॉडल से किसी भी तरह श्रेष्ठ नहीं है। लाभ अधिकतमकरण मॉडल लाभों के इष्टतम स्तर का सुझाव देता है। परन्तु साइमन के मॉडल में फर्म में क्रियाशील ग्रुपों पर निर्भर अनेक "संतुष्टि स्तर" हो सकते हैं। फर्म के लिए एक ऐसी लाभ दर

2 A. Silberston, "Price Behaviour of Firms", *E.J.*, March 1970

3 W. J. Baumol and R. E. Quant, "Rules of Thumb and Optimally Imperfect Decisions", *A.E.R.* March 1964

का चुनाव करना बहुत कठिन है, जो फर्म में कार्यरत सभी ग्रुपों को सतुष्ट कर सके। इस प्रकार, साइमन के मॉडल का क्रियात्मक मूल्य सीमित है।

बावजूद इन कमियों के साइमन का सिद्धात पहला व्यवहार-सबधी मॉडल था जो बाद में अन्य मॉडलों का आधार बना।

3 सायर्ट और मार्च का व्यवहार-सबधी सिद्धात (BEHAVIOURAL THEORY OF CYERT AND MARCH)

सायर्ट और मार्च[4] ने फर्म के व्यवहार के बारे में एक व्यवस्थित सिद्धात दिया है। एक आधुनिक बडी निगम में स्वामित्व से प्रबध अलग होता है। इसमें फर्म को एक अकेली इकाई नहीं माना जाता, जिसका एक अकेले निर्णय करने वाले उद्यमी द्वारा केवल लाभ अधिकतमकरण का अकेला उद्देश्य पूरा करना होता है। इसके विपरीत, सायर्ट और मार्च आधुनिक व्यावसायिक फर्म को व्यक्तियों का एक समूह (ग्रुप) मानते है जो निर्णय करने की प्रक्रिया में लगे होते है जिनका सबध इसके आतरिक ढाचे से होता है जिसके बहुविध लक्ष्य (multiple goals) होते है। वे न केवल फर्म के आतरिक सगठन पर बल्कि अनिश्चितता की समस्या पर भी विचार करते है। वे फर्म के नव-क्लासिकी सिद्धात में निश्चितता की मान्यता को अस्वीकार करते है। वे इस बात पर बल देते है कि आधुनिक व्यावसायिक फर्म इतनी जटिल है कि इसमें कार्य कर रहे व्यक्तियों के पास आतरिक और बाहरी दोनों प्रकार की घटनाओं के बारे में सीमित सूचना और अपूर्ण दूरदर्शिता होती है। इस सिद्धात के मुख्य अश निम्नलिखित है।

सगठनात्मक लक्ष्य (Organisational Goals)

सायर्ट और मार्च ने आधुनिक व्यावसायिक फर्म को एक जटिल सगठन माना है जिसमें निर्णय लेने की प्रक्रिया को उन चरों (variables) में विश्लेषित करना चाहिए जो सगठनात्मक लक्ष्यों, आशाओं और पसदों को प्रभावित करते है। वे फर्म को प्रबधकों, कर्मचारियों, शेयरहोल्डरों, सप्लायरों, ग्राहकों आदि की सगठनात्मक सहमिलन (organisational coalition) के रूप में देखते है। इस दृष्टिकोण से, फर्म को पाच विभिन्न लक्ष्य रखने वाली माना जा सकता है

(1) उत्पादन लक्ष्य (Production goal)—उत्पादन का लक्ष्य उत्पादन से सबधित सहमिलन के सदस्यों की माग का प्रतिनिधित्व करता है। यह स्थिर रोजगार, कार्यक्रम की सरलता, स्वीकार्य लागत के विकास का पालन, और वृद्धि जैसी बातों की ओर दबावों को दर्शाता है। यह लक्ष्य उत्पादन निर्णयों से सबधित है।

(2) मालसूची लक्ष्य (Inventory goal)—यह लक्ष्य मालसूची से सबधित सहमिलन के सदस्यों की मागों को प्रस्तुत करता है। यह विक्रेताओं और ग्राहकों से प्राप्त होने वाली मालसूची पर होने वाले दबावों से प्रभावित होता है। यह लक्ष्य उत्पादन तथा बिक्री क्षेत्रों में होने वाले निर्णयों से सबधित है।

(3) बिक्री लक्ष्य (Sales goal)—बिक्री का लक्ष्य, बिक्री से सबधित उन सहमिलन के सदस्यों की माग को पूरा करना है, जो सगठन की स्थिरता के लिए बिक्री को आवश्यक मानते है।

(4) मार्किट भाग लक्ष्य (Market share goal)—मार्किट भाग लक्ष्य, बिक्री लक्ष्य का एक विकल्प है। यह सहमिलन के बिक्री प्रबधक वर्ग की मागों से सबधित है, जो कि मुख्य रूप से सगठन की तुलनात्मक सफलता और उसकी वृद्धि में दिलचस्पी रखते है। बिक्री लक्ष्य की तरह मार्किट भाग लक्ष्य बिक्री निर्णयों से सबधित है।

4 R M Cyert and J C March, *A Behavioural Theory of the Firm* 1963

(5) लाभ लक्ष्य (*Profit goal*)—*लाभ लक्ष्य एक अभिलाषा स्तर* (aspiration level) के रूप मे है जो कि लाभ की मुद्रा मात्रा से सबधित है। यह लाभ के हिस्से और निवेश पर होने वाले प्रतिफल के रूप मे भी हो सकता है। इस प्रकार लाभ का लक्ष्य कीमत निर्धारण और ससाधन आवटन (allocation) निर्णयो से सबधित है।

सायर्ट और मार्च लक्ष्यो की सख्या को पाच तक सीमित करते है क्योकि उनके अनुसार इनकी सख्या को तेजी से बढाने पर घटते प्रतिफल का बिन्दु प्रारभ हो जाता है। उनके अनुसार सभी लक्ष्यो की सतुष्टि करनी चाहिए, क्योकि वे सगठन की कीमत, उत्पादन और बिक्री कूटनीति निर्णयो से सबद्ध है। यद्यपि किसी भी सगठन मे सभी लक्ष्य अवश्य सतुष्ट किए जाने चाहिए, फिर भी प्राथमिकता की एक निहित श्रेणी होती है जो जिस ढग से छानबीन क्रिया होती है उसमे प्रतिबिबित होती है। यदि इनमे से एक लक्ष्य प्राप्त नहीं होता और उसके लिए जिम्मेदार व्यक्ति सतुष्ट नहीं होता है, तो उस लक्ष्य को पूरा करने के लिए एक साधन की छानबीन की जाएगी। छानबीन काफी सीमित होगी ओर सगठन समस्या को ठीक करने के लिए **व्यावहारिक नियमों** का प्रयोग करेगा। व्यावहारिक नियम फर्म के पिछले अनुभवो और उसमे कार्य कर रहे लोगो पर आधारित होते है।

विरोधात्मक लक्ष्य (Conflicting Goals)

फर्म के भीतर व्यक्तियो के अभिलाषा स्तर जो इन लक्ष्यो को निर्धारित करते है वे सगठनात्मक ज्ञान के परिणामस्वरूप समयोपरि (over time) परिवर्तित होते है। इस प्रकार, ये लक्ष्य सगठनात्मक सहमिलन मे सौदेबाजी ज्ञान (bargaining-learning) प्रक्रिया की उत्पत्ति माने जाते है। परन्तु यह आवश्यक नहीं हे कि विभिन्न लक्ष्यो का मैत्रीपूर्ण ढग से समाधान किया जा सके। इन लक्ष्यो के बीच विरोध हो सकते है। इस प्रकार सगठनात्मक सहमिलन विरोधात्मक हितो (conflicting interests) का सहमिलन है।

विरोधात्मक हितो को सहमिलन के सदस्यो को **अतिरिक्त भुगतानों** (side payments) का वितरण करके ठीक किया जा सकता है। अतिरिक्त भुगतान नकदी के रूप मे अथवा अन्य प्रकार से हो सकते है। अधिकतर ये नीति अतिरिक्त भुगतानो (policy side payments) के रूप मे होते है अर्थात सगठन के नीति निर्णयो मे भाग लेना। परन्तु कुल अतिरिक्त भुगतानो की वास्तविक राशि सहमिलन के लिए निश्चित नहीं होती है, बल्कि यह सदस्यो की माग और सहमिलन के स्वरूप पर निर्भर करती है। सदस्यो की मागे केवल दीर्घकाल मे ही वास्तविक अतिरिक्त भुगतानो के बराबर होती है। लेकिन व्यवहारिक सिद्धात अतिरिक्त भुगतानो और मागो के बीच अल्पकालीन सबध तथा साधन मार्किटो मे अपूर्णताओ पर ध्यान देता है। अल्पकाल मे, नई मागे निरतर की जा रही होती है, ओर सहमिलन के लक्ष्यो को लगातार उनके अनुकूल, कम या अधिक सीमा तक, बनाया जाता है। सगठनात्मक सहमिलन के सदस्यो की मागो का परस्पर मेल खाना आवश्यक नहीं है। परन्तु सभी मागे एक साथ ही नहीं की जाती है और सगठन इन मागो को सिलसिलेवार लेकर कायम रह सकता है। समस्या उस समय उत्पन्न होगी जब सगठन अपने सदस्यो की मागो को सिलसिलेवार भी पूरा कर नहीं सकता है, क्योकि इसके पास ऐसा करने के लिए ससाधनो का अभाव होता है।

सतुष्टिकरण व्यवहार (Satisficing Behaviour)

अतिरिक्त भुगतानो के अलावा, सगठन के विरोधात्मक लक्ष्यो का निरतर पुनरीक्षण (review) द्वारा *समाधान* किया जाता है। ऐसा इसलिए कि सहमिलन के सदस्यो के **अभिलाषा स्तर** अनुभव के साथ बदलते है। वास्तव मे, सतुष्टिकरण की प्रक्रिया के साथ अभिलाषा स्तर परिवर्तित होते है। सगठन मे प्रत्येक व्यक्ति का अपने प्रत्येक लक्ष्य के लिए एक सतुष्टिकरण स्तर होता है। यदि ये

लक्ष्य प्राप्त हो जाएं, तो वे और अधिक के लिए प्रयत्न नहीं करेंगे। परन्तु यदि ये प्राप्त नहीं होते है तो अभिलाषा स्तरो को नीचे की ओर सशोधित कर दिया जाता है। यदि ये स्तर बढ जाते है, तो अभिलाषा स्तरो को ऊपर की ओर बढा दिया जाता है। दोनो परिस्थितियो मे, कार्यकरण के सतोषजनक स्तरो को तदनुसार परिवर्तित किया जाता है।

सगठनात्मक मंदी (Organisational Slack)

यदि सहमिलन के विभिन्न सदस्यो को दिए गए भुगतान पर्याप्त हो तो एक सहमिलन सुदृढ और कार्यशील होता है। इसके लिए, सभी सदस्यो की मांगो को पूरा करने हेतु पर्याप्त ससाधनो की आवश्यकता होती है। ऐसा सामान्यतया सभव नहीं होता है, क्योंकि सहमिलन को कायम रखने के लिए सगठन के पास उपलब्ध कुल ससाधनो और आवश्यक कुल भुगतानो के बीच अन्तर उत्पन्न हो जाता है। कुल उपलब्ध ससाधनो और कुल आवश्यक भुगतानो के बीच अन्तर को सायर्ट और मार्च सगठनात्मक मंदी कहते हैं। मंदी में, सगठन के रख-रखाव के लिए आवश्यकता से अधिक सहमिलन के सदस्यो को, भुगतान शामिल है।

जब सगठन मार्किट अपूर्णताओं के अतर्गत कार्य करता है, तो कई प्रकार की मंदी पाई जाती है। शेयरहोल्डरो को सगठन मे रखने के लिए जितना लाभाश चाहिए, उससे अधिक देना। ग्राहको से कम कीमत लेना ताकि वे फर्म की वस्तुओ को खरीदते रहें। वर्करो को फर्म मे रखने के लिए जितनी मजदूरियां चाहिए, उससे अधिक देना। प्रबधको को सगठन मे रखने के लिए जितनी सुविधाए चाहिए, उनसे अधिक सेवाए और निजी विलासिताए प्रदान करना। ऐसे सभी भुगतान फर्म के लिए मंदी भुगतान होते है, जो सहमिलन का प्रत्येक सदस्य समय-समय पर प्राप्त करता है। सायर्ट और मार्च के अनुसार, इसलिए मंदी विशेष तौर से शून्य नहीं है, बल्कि यह धनात्मक होती है। साधारणतया सहमिलन के कुछ सदस्य अन्य सदस्यो की अपेक्षा मंदी का अधिक हिस्सा प्राप्त करते है। सामान्य तौर से, सहमिलन के वे सदस्य जो कि पूर्णकालिक (full time) होते है, वे सहमिलन के अन्य सदस्यो की अपेक्षा अधिक मंदी सचित करते है।

सगठनात्मक मंदी रचनात्मक भूमिका निभाती है। यह सहमिलन को अस्तित्व मे रखती है। यह फर्म को 'सकट' जैसी स्थिति मे कायम रखने मे सहायक होती है और उसे बाह्य परिवर्तनो के अनुकूल बनाती है। फर्म को जो आघात पहुचते है, सगठनात्मक मंदी उन्हे 'कुशन' (cushion) की तरह समा लेती है। व्यवसाय मे समृद्धि की अवधियों मे मंदी भुगतान बढा दिए जाते है और व्यवसाय के बुरे दिनो मे कम कर दिए जाते है। इस प्रकार, सगठनात्मक मंदी स्थिरीकरण और अनुकूली (stabilisation and adaptive) दोनों भूमिकाए निभाती है।

निर्णयकरण प्रक्रिया (Decision-making Process)

सायर्ट-मार्च मॉडल मे निर्णयकरण प्रक्रिया उच्च मैनेजमैंट (top management) और प्रबध के नीचे स्तरो पर निर्भर करती है। उच्च मैनेजमैंट सगठनात्मक लक्ष्यो को निश्चित करता है और दिए हुए ससाधनो का विभिन्न विभागो को, फर्म के कुल बजट मे उनके हिस्से पर आधारित, आबटन करता है। बजट का हिस्सा प्रत्येक मैनेजर की निपुणता और सौदा करने की शक्ति पर निर्भर करता है। सौदा करने की शक्ति प्रत्येक विभाग की पिछली उपलब्धि द्वारा निर्धारित की जाती है। आबटन की इस प्रक्रिया मे, उच्च मैनेजमैंट अपने पास कुछ निधियां रखता है ताकि वह किसी भी विभाग को अपनी इच्छानुसार आबटित कर सके।

निचले स्तर पर निर्णयकरण प्रक्रिया प्रबध को कार्य करने मे विभिन्न कोटि की स्वतत्रता प्रदान करती है। जब एक बार प्रत्येक विभाग को बजट का हिस्सा आबटित कर दिया जाता है, तो प्रत्येक मैनेजर को अपनी इच्छा अनुसार उसके पास निधियो को खर्च करने की काफी स्वतत्रता होती है। मैनेजरो द्वारा लिए गए निर्णय निचले स्तर का स्टाफ कार्यान्वित करता है, जो उसके अनुभवों और

पूर्व निर्धारित लिखित नियमों के आधार पर किए जाते है।

निर्णयकरण प्रक्रिया सगठन मे निर्मित सूचनाओ और प्रत्याशाओ (expectations) पर भी निर्भर करती है। सूचना निर्णयकारक की सुविधा प्रदान करने के लिए होती है। सूचना लागत-रहित क्रिया नहीं होती है। जब भी कोई समस्या उत्पन्न होती है तो "छानबीन प्रक्रिया" प्रारम की जाती है, क्योकि छानबीन सूचना को ढूढने और एकत्र करने मे सहायता करती है। सूचना प्रत्येक विभाग की अभिलाषा अर्थात माग को निर्धारित करती है, जो आगे उच्च मैनेजमैट को लक्ष्य निर्धारित करने मे सहायता करती है। सगठनात्मक प्रत्याशाए निर्णयकारक की आशाओ और इच्छाओं से सबधित होती हैं।

सूचनाए और प्रत्याशाए दी होने पर, उच्च मैनेजमैट, मेनेजरो द्वारा प्रस्तुत प्रोजेक्टो का निरीक्षण और निर्णय करता है। वह दो कसौटियो के आधार पर इनका मूल्याकन करता है। प्रथम, बजटरी अवरोध है, जो प्रोजेक्ट के लिए निधियो की उपलब्धता है, दूसरी, सुधार कसौटी है क्या प्रोजेक्ट वर्तमान प्रोजेक्ट से श्रेष्ठ है? निर्णयकरण मे, उच्च मैनेजमेट यह नियम अपनाती है जिससे भूतकाल मे स्थिति से भविष्य मे स्थिति बेहतर हो। इस प्रकार, सायर्ट और मार्च का व्यवहारवादी मॉडल एक अनुकूली विवेकी प्रणाली (adaptive rational system) है।

कीमत व्यवहार के लिए मॉडल के निहितार्थ (Implications of the Model for Price Behaviour)

प्रो सिलर्बस्टन[5] और प्रो हाकिन्स[6] ने सायर्ट-मार्च मॉडल के कीमत व्यवहार सबधी निम्नलिखित निहितार्थ निकाले है

सायर्ट और मार्च ने एक अल्पाधिकार फर्म की कार्य प्रक्रिया को दर्शाने के लिए एक सरलीकृत मॉडल का विकास किया है जब वह कीमत, उत्पादन, आदि पर अपने निर्णय लेती है। इस मॉडल मे यह माना गया है कि प्रत्येक फर्म के लाभो, उत्पादन और बिक्रियों के लक्ष्यो के तीन सैट है, तथा प्रत्येक समय-अवधि मे उसे कीमत, उत्पादन और बिक्री प्रयत्न पर तीन मूल निर्णय लेने होते है। प्रत्येक अवधि के प्रारभ मे फर्म का वातावरण उसके पिछले इतिहास को व्यक्त करता है। अनुभव के सदर्भ मे इसके अभिलाषा स्तरो को सशोधित किया जाता है और सगठनात्मक मदी की अनुमति दी जाती है। प्रत्येक फर्म माग और उत्पादन लागतो का अनुमान लगाती है और अपने उत्पादन स्तर को चुनती है। यदि उत्पादन का यह स्तर लाभ का अभिलाषित स्तर नहीं देता है, तो वह लागतो को कम करने के तरीको की छानबीन करती है, माग का पुन अनुमान लगाती है और यदि आवश्यकता हो तो अपने लाभ लक्ष्य को कम कर देती है। यदि फर्म अपने लाभ लक्ष्य को कम करती है, तो वह कीमत भी कम कर देगी। दूसरी फर्म इसी प्रकार व्यवहार करेंगी।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)

सायर्ट और मार्च के व्यवहार सबधी सिद्धात का फर्म के सिद्धात मे एक महत्त्वपूर्ण योगदान है जो कि प्रबधकीय निर्णय लेने मे बहुविध, परिवर्तन हो रहे और स्वीकार्य लक्ष्यों की ओर ध्यान केन्द्रित करता है और अधिकतमकरण को सतुष्टिकरण से बदलता है।

फिर भी, कोटसियानिस[7] और हाकिन्स ने सायर्ट और मार्च के इस सिद्धात की कटु आलोचना की है।

1 हाकिन्स ने उल्लेख किया है कि व्यवहार सबधी धारणा की आलोचना इस बात पर आधारित है कि यह एक अखरोट को तोडने के लिए हथौडे का इस्तेमाल करता है। क्या हमे

5 A Silberston "Price Behaviour of Firms" *E J*, March 1970
6 C J Hawkins *The Theory of the Firm*
7 A Koutsoyiannis, *op cit*, pp 400-401

वास्तव मे कपनियो की दर्पण छवि बनाने की आवश्यकता है और क्या वास्तव मे ही उनके व्यवहार की भविष्यवाणी करने के लिए निर्णय लेने की प्रक्रिया को जोडने की आवश्यकता है? क्या सीमित प्रयोजनो के लिए सरल मॉडल पर्याप्त नहीं होगे?

2 अर्थशास्त्रियो ने प्रश्न किया है। "क्या वास्तव मे यह सिद्धात है?" यह विशेष मामलो से सबधित है जबकि एक सिद्धात से फर्म के व्यवहार के सामान्य मोटे अनुमान की आशा की जाती है। इस प्रकार एक फर्म के सिद्धात के रूप मे यह असफल है।

3 व्यवहार सबधी सिद्धात द्वि-अधिकारी फर्म से सबधित है और बाजार ढाचे के सिद्धात के रूप मे असफल होती है। "यह फर्मों की परस्पर निर्भरता और एक दूसरे पर प्रभाव की व्याख्या नहीं करता है। न ही यह इस बात की व्याख्या करता है कि फर्मों का परस्पर सबध किस ढग से उद्योग स्तर पर उत्पादन और कीमत के सतुलन की ओर ले जाता है। इस प्रकार उद्योग मे एक स्थिर सतुलन को प्राप्त करने की स्थितिया निर्धारित नहीं होती है।"

4 सिद्धात न तो फर्मों के प्रवेश की शर्तों और न ही वर्तमान फर्मों के व्यवहार पर अन्य फर्मों के सभावित प्रवेश की आशका के प्रभावो पर ध्यान देता है।

5 व्यवहार सबधी सिद्धात फर्मों के अल्पकालीन व्यवहार की व्याख्या करता है और उनके दीर्घकालीन व्यवहार की उपेक्षा करता है। इस प्रकार यह आविष्कारो और नवप्रवर्तनो के गत्यात्मक पहलुओ की व्याख्या नहीं कर सकता है जो दीर्घकाल से सबधित होते हैं।

6 कोटसियानिस के अनुसार, व्यवहार सबधी सिद्धात की धारणाओ से कोई सुनिश्चित पूर्वानुमान नहीं निकाले जा सकते है। सतुष्टिकरण व्यवहार, सिद्धात को, व्यावहारिक तौर से, पुनरुक्तिपूर्ण (tautological) ढाचा बनाता है जो कुछ भी फर्में करती दिखाई देती है उसे सतुष्टिकरण की दशाओ पर तर्कसगत बनाया जा सकता है।

इन आलोचनाओ के बावजूद हाकिन्स का मत है कि बहुत कम लोग यह सदेह करेगे कि व्यवहार सबधी सिद्धात फर्म के सिद्धात के नए दृष्टिकोणो मे से बहुत नाटकीय है। इसमे जो नाटकीय है वह इस मान्यता को खत्म करते है कि फर्म का लक्ष्य किसी भी चीज को अधिकतम करना है यहा तक कि उपयोगिता को।

4. विलियमसन का प्रबंधकीय विवेक सिद्धांत (WILLAMSON'S MANAGERIAL DISCRETION THEORY)

विलियमसन[8] ने प्रबधकीय-उपयोगिता-अधिकतमकरण मॉडल का विकास किया है। यह प्रबंधकीय सिद्धातो मे से एक है जिसको उपयोगिता अधिकतमकरण (utility maximisation) सिद्धात भी कहते हैं।

बडी आधुनिक फर्मों मे, शेयरधारको और प्रबन्धको के दो अलग-अलग समूह होते है। शेयर-धारक अपने निवेश पर अधिकतम प्रतिफल चाहते है जिससे कि अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके। दूसरी ओर प्रबन्धक अपने उपयोगिता कार्यों मे अधिकतम लाभ की अपेक्षा अन्य पहलुओ पर भी ध्यान देते है। इस प्रकार प्रबधक न केवल अपनी आय अपितु अपने स्टाफ की सख्या और उन पर किए जाने वाले व्यय मे भी रुचि रखते है। अत विलियमसन का सिद्धान्त प्रबन्धको की उपयोगिता के अधिकतम होने से सम्बन्धित है जो कि स्टाफ पर होने वाले व्यय तथा उनको मिलने वाली आय एव विवेक-निधियो पर निर्भर है। "जहा तक पूजी बाजार मे दबाव और वस्तु बाजार मे प्रतियोगिता अपूर्ण है, इसलिए प्रबन्धक अपने विवेक से लाभो के अलावा अन्य उद्देश्यो को प्राप्त करते हैं।"

8 O E Williamson, *The Economics of Discretionary Behaviour Managerial Objectives in a Theory of the Firm*, 1964

प्रबंधक एक विस्तृत रेंज के चरों से उपयोगिता प्राप्त करते हैं। इसके लिए विलियमसन व्यय प्राथमिकताओं (expense preferences) की धारणा को प्रस्तुत करता है। इसका अभिप्राय है कि "प्रबंधक, फर्म के कुछ संभावित लाभों को उन मदों पर अनावश्यक व्यय करने के लिए जिनसे वे व्यक्तिगत तौर से फायदा उठाते हैं, प्रयोग करके संतुष्टि प्राप्त करते हैं।" अधिकतम उपयोगिता के अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रबन्धक फर्मों के संसाधनों को तीन प्रकार से दिशा निर्देश देते हैं

1 प्रबन्धक अपने स्टाफ तथा उनका वेतन बढ़ाना चाहता है। अधिक स्टाफ का महत्त्व इसलिए होता है क्योंकि इससे प्रबन्धक को अधिक वेतन, अधिक प्रतिष्ठा और अधिक सुरक्षा मिलती है। प्रबंधकों द्वारा स्टाफ व्यय को S द्वारा दिखाया जाता है।

2 अपनी उपयोगिता को अधिकतम करने के लिए प्रबन्धक सुन्दर लड़कियों को निजी सचिव बनाने, कम्पनी कारों, कम्पनी फोनों, कर्मचारियों के लिए अन्य सुविधाएं प्रदान कराने में लग जाते हैं। विलियमसन ने ऐसे व्ययों को 'प्रबन्धन-शिथिलता' (management slack –M) माना है।

3 प्रबन्धक अग्रिम निवेश करने के लिए अथवा जो कम्पनी परियोजना उनको भाती है उन्हें विशाल करने के लिए "विवेकाधीन कोष" (discretionary funds) बनाना चाहते हैं। विवेकाधीन लाभ अथवा निवेश (D) वह राशि है जो कि कर और शेयरधारकों को लाभांश देने के बाद फर्म के प्रभावी नियन्त्रण के लिए प्रबन्धक के पास शेष रहती है।

इस प्रकार प्रबन्धक का उपयोगिता फलन निम्नलिखित है

$$U = f(S\ M\ D)$$

यहां U उपयोगिता फलन है, S स्टाफ व्यय है, M प्रबन्धन-शिथिलता और D विवेकाधीन निवेश है। ये निर्णय चर (S, M, D) धनात्मक (positive) उपयोगिता प्रदान करते हैं और फर्म सदा उनके मूल्य $S \geq 0$ $M \geq 0$ $D \geq 0$ प्रतिबंध की शर्त के अधीन चुनती है। विलियमसन यह मानता है कि घटती सीमांत उपयोगिता का नियम लागू होता है। इसलिए जब S M और D प्रत्येक में वृद्धि की जाती है, तो वे प्रबंधक को उपयोगिता की छोटी वृद्धियां देती हैं।

इसके अलावा, विलियमसन कीमत (P) को उत्पादन (X), स्टाफ (S) के व्यय और वातावरण की स्थिति के फलन के रूप में मानता है जिसे वह मांग परिवर्तन पैरामीटर (E) कहता है, ताकि

$$P = f(X\ S, E)$$

यह सम्बन्ध निम्नलिखित प्रतिबन्ध की शर्तों के अधीन है

(क) मांग फलन को ऋणात्मक ढाल वाला माना गया है $\delta P/\delta Y < O$, (ख) स्टाफ के व्ययों से फर्म की वस्तु की मांग बढ़ने में सहायता मिलती है $\delta P/\delta S > O$ तथा (ग) मांग परिवर्तन पैरामीटर E में वृद्धि से मांग बढ़ती है $\delta P/\delta E > O$

ये संबंध बताते हैं कि X के लिए मांग P के साथ ऋणात्मक तौर से संबंधित है, परन्तु S और E के साथ धनात्मक तौर से संबंधित है। जब मांग बढ़ती है, तो उत्पादन और स्टाफ पर व्यय भी बढ़ेंगे जो फर्म की लागतों को बढ़ा देंगे, और परिणामस्वरूप कीमत बढ़ेगी और विलोमश।

अपने मॉडल को औपचारिक रूप देने के लिए, विलियमसन चार विभिन्न प्रकार के लाभों को लेता है वास्तविक, रिपोर्टिड, न्यूनतम आवश्यक लाभ, और विवेकाधीन (discretionary) लाभ। यदि R = revenue, C = total production costs और T = taxes, तो वास्तविक लाभ,

$$\pi_A = R - C - S$$

यदि प्रबधात्मक आय (M) को वास्तविक लाभों से घटा दिया जाए तो प्राप्त होते हैं, रिपोर्टिड लाभ,

$$\pi_r = \pi_A - M = R - C - S - M$$

न्यूनतम आवश्यक लाभ, π_o, टैक्स देने के बाद लाभों का न्यूनतम स्तर है जो शेयरहोल्डरों को

अवश्य प्राप्त होने चाहिएं ताकि वे फर्म के शेयरों को अपने पास रख सकें। विवेकाधीन लाभ (D) वे होते हैं जो प्रबंधक के पास कर और शेयरहोल्डरों को लाभांश देने के बाद बचते हैं, इसलिए

$$D = \pi_r - \pi_0 - T$$

विलियमसन के उपयोगिता अधिकतमकरण मॉडल को चित्र द्वारा व्यक्त करने के लिए, सरलता के लिए यह मान लिया जाता है कि

$$W = f(S, D)$$

ताकि विवेकाधीन लाभों (D) को अनुलंब अक्ष पर और स्टाफ व्यय (S) को क्षैतिज अक्ष पर चित्र 31.1 पर मापा गया है। FC संभाव्यता वक्र है जो प्रबंधक को प्राप्य D और S के संयोगों को दर्शाता है। इसे लाभ-स्टाफ वक्र भी कहते हैं। UU_1 और UU_2 वक्र प्रबंधक के उदासीनता वक्र है जो D और S के संयोगों को दिखाते है। जब हम लाभ-स्टाफ वक्र पर विन्दु F से ऊपर की ओर गति करते है, तो लाभ ओर स्टाफ व्यय दोनों बढ़ते है जब तक कि बिन्दु P नहीं पहुंच जाता है। फर्म के लिए P लाभ अधिकतमकरण का बिन्दु है, जहां SP अधिकतम लाभ का स्तर है जब OS स्टाफ व्यय किए जाते है। परन्तु फर्म का सतुलन
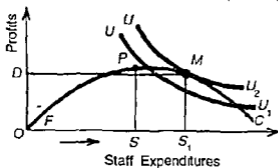
चित्र 31.1

तब होता है जब प्रबंधक का उच्चतम वक्र UU_2 और FC वक्र एक दूसरे को M बिन्दु पर स्पर्श करते है। इस बिन्दु M पर प्रबंधक की उपयोगिता अधिकतम हो जाती है। विवेकाधीन लाभ OD = (S_1 M) अधिकतमकरण लाभों SP से कम है, परन्तु स्टाफ पारिश्रमिक (emoluments) OS_1 अधिकतम हो जाता है। विलियमसन यह बताता है कि कर, व्यावसायिक स्थितियों में परिवर्तन आदि कारक संभाव्यता वक्र को प्रभावित करके इष्टतम स्पर्श बिन्दु, जैसे चित्र में M, को शिफ्ट कर सकते है। इसी प्रकार स्टाफ, उसके पारिश्रमिक, शेयरहोल्डरों के लाभों में परिवर्तन आदि घटक उपयोगिता फलन की आकृति परिवर्तित करके इष्टतम स्थिति को शिफ्ट कर सकते है।

इसका आलोचनात्मक मूल्यांकन (Its Critical Appraisal)

विलियमसन ने अपने उपयोगिता अधिकतमकरण सिद्धांत का अनेक प्रमाणों द्वारा समर्थन किया है जो उसके मॉडल के साथ सामान्य तौर से मेल खाते है। इस प्रकार उसका सिद्धांत आनुभविक तौर से अन्य प्रबंधकीय सिद्धांतों की तुलना में अधिक सही है।

यह मॉडल बोमल के विक्रय-अधिकतमकरण सिद्धांत से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि यह बोमल के सिद्धांत में पाए जाने वाले तत्त्वों की भी व्याख्या करता है। बोमल की तरह विलियमसन विक्रय अधिकतमकरण को एक एकल मापदण्ड नहीं लेता बल्कि प्रबंधक का एक साधन मानता है जिससे स्टाफ और उसकी आय को बढ़ाया जा सके। यह व्याख्या अधिक वास्तविक है।

फिर, विलियमसन के मॉडल में लाभ अधिकतमकरण मॉडल की तुलना में उत्पादन अधिक और कीमत और लाभ कम होते है। सिलबर्सटन ने यह दर्शाया है कि विलियमसन का मॉडल पूर्ण अथवा शुद्ध प्रतियोगिता की स्थितियों में सामान्य लाभ अधिकतमकरण मॉडल के परिणामों को सुरक्षित रखता है।

इसकी कमिया (Its Weaknesses)—परन्तु इस मॉडल की कुछ धारणात्मक कमिया है।

प्रथम, विलियमसन अपने सभाव्यता वक्र की व्युत्पत्ति के आधार को स्पष्ट नहीं करता है। विशेषकर, वह लाभ-स्टाफ सबध मे प्रतिबध (constraint) को दर्शाने मे असफल रहा है, जैसा कि सभाव्यता वक्र की आकृति द्वारा दिखाया गया है।

दूसरे, वह उपयोगिता वक्र मे स्टाफ और प्रबधक के पारिश्रमिको को इकट्ठा कर देता है। इस प्रकार प्रबधक के गैर-आर्थिक और आर्थिक लाभो को मिला देने से उपयोगिता फलन अस्पष्ट बन जाता है। इन कठिनाइयो को तीन-आयामी (three dimensional) चित्र द्वारा दूर किया जा सकता है। परन्तु यह विश्लेषण को बहुत जटिल बना देगा।

तीसरे, यह मॉडल अल्पाधिकार परस्पर निर्भरता और अल्पाधिकार स्पर्धा पर विचार नहीं करता है।

चौथे, हाकिन्स के अनुसार, अधिकतर अर्थशास्त्री विलियमसन के प्रबधकीय विवेक सिद्धात को आगे बढाने के इच्छुक नहीं है, इस ज्ञान के कारण कि इतने घटक (जैसे लाभ, बिक्री, उत्पादन, वृद्धि, स्टाफ की सख्या और बढिया आफिसो और कारो पर व्यय) उद्योग मे लोगो को उपयोगिता देते है कि वे ऐसे मॉडल पर समाप्त हो जाए जो कोई सुनिश्चित परिणाम देने मे असमर्थ हो।

5. मैरिस का वृद्धि अधिकतमकरण मॉडल (GROWTH MAXIMISATION MODEL OF MARRIS)

रोबिन मैरिस ने अपनी पुस्तक *The Economic Theory of Managerial Capitalism*[9] (1964) मे फर्म का एक सुव्यवस्थित वृद्धि अधिकतमकरण सिद्धात विकसित किया है। वह इस प्रस्थापना पर विचार करता है कि आधुनिक बडी फर्मे प्रबधको द्वारा चलाई जाती है और शेयरहोल्डर मालिक है जो फर्मो के प्रबध के बारे मे निर्णय लेते है। प्रबधक फर्म की वृद्धि दर को अधिकतम करने का उद्देश्य रखते है, और शेयरहोल्डर अपने लाभाशो और शेयर कीमतो को अधिकतम करने का उद्देश्य रखते है। फर्म की ऐसी वृद्धि पर और शेयर-कीमतो के बीच सबध स्थापित करने के लिए, मैरिस एक सतत अवस्था (steady state) मॉडल विकसित करता है जिसमे प्रबधक एक स्थिर वृद्धि दर चुनता है जिस पर फर्म के विक्रय, लाभ, परिसपत्तिया, आदि बढते है। यदि वह ऊची वृद्धि दर चुनता है तो उसे विज्ञापन और R & D पर अधिक खर्च करना पडेगा ताकि वह अधिक माग और नयी वस्तुओ का निर्माण कर सके। इसलिए, वह फर्म के प्रसार के लिए कुल लाभो का अधिक अनुपात अपने पास रखेगी। परिणामस्वरूप लाभाशो के रूप मे शेयरहोल्डरो को वितरित किए जाने वाले लाभ कम हो जाएगे और शेयर कीमते गिर जाएगी। फर्म को अधिकार मे लेने (take-over) का भय (threat) प्रबधको मे अस्पष्ट और बडे आकार मे दिखाई देगा। क्योकि प्रबधक अपनी नौकरी की सुरक्षा और फर्म की वृद्धि के लिए अधिक चिंतित होते है, इसलिए वे ऐसी वृद्धि दर चुनेगे जो फर्म के शेयरो के मार्किट मूल्य को अधिकतम करेगी, शेयरहोल्डरो को सतोषजनक लाभाश देगी, और फर्म को दूसरी किसी फर्म द्वारा अधिकार मे लेने से बचाएगी। दूसरी ओर, मालिक (अर्थात शेयरहोल्डर) भी फर्म की सतुलित वृद्धि चाहते है, क्योकि इससे उन्हे अपनी पूजी पर उचित प्रतिफल प्राप्त होता है। अत प्रबधको और शेयरहोल्डरो के लक्ष्य मेल खाते है और दोनो फर्म की सतुलित वृद्धि को प्राप्त करने का प्रयत्न करते है।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

मैरिस का मॉडल निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित है

1 यह एक दिया हुआ कीमत ढाचा मानता है।

9 प्रस्तुत विश्लेषण इस पुस्तक पर आधारित है। उसके लेख R T Marris, "A Model of the Managerial Enterprise", *Q J E*, 1963 के लिए देखें A Koutsoyiannis, Ch 16

2 उत्पादन-लागते दी हुई है।
3. अल्पाधिकार परस्पर निर्भरता नहीं है।
4. साधन कीमते दी हुई है।
5 फर्में विविधीकरण द्वारा वृद्धि करती है।
6 सभी मुख्य चर जैसे लाभ, विक्रय और लागते एक ही दर पर वृद्धि करती है।

मॉडल (The Model)

ये मान्यताए दी होने पर, फर्म का उद्देश्य अपनी सतुलित वृद्धि दर (G) को अधिकतम करना है। G स्वय दो घटको पर निर्भर करती है प्रथम, फर्म की वस्तु के लिए माग की वृद्धि दर (GD), और द्वितीय, पूजी आपूर्ति की वृद्धि दर (GS)। इस प्रकार, $G = GD = GS$

बावजूद इसके कि आधुनिक बडी फर्मों मे स्वामित्व प्रबधन से अलग है, फिर भी मालिको और प्रबधकों का एक सामूहिक उद्देश्य फर्म की सतुलित वृद्धि है। मैरिस के अनुसार, फर्म के प्रबधक (मैनेजर) और स्वामी के दो विभिन्न उपयोगिता फलन है। प्रबधक के उपयोगिता फलन मे उसकी आमदनिया, शक्ति, नौकरी सुरक्षा, आदि शामिल है। दूसरी ओर, स्वामी के उपयोगिता फलन में लाभ, पूजी, उत्पादन, मार्किट का भाग, आदि शामिल है।

इस प्रकार, एक बडी फर्म के प्रबधक का उद्देश्य अपनी उपयोगिता को अधिकतम करना है, और उसकी उपयोगिता फर्म की वृद्धि दर पर निर्भर करती है। यद्यपि फर्म की वृद्धि को कायम रखना उसका मुख्य उद्देश्य है, उसका उद्देश्य अपनी नौकरी की सुरक्षा करना भी है। प्रबधक की नौकरी-सुरक्षा शेयरहोल्डरो की सतुष्टि पर निर्भर करती है जिनका सबध फर्म की शेयर कीमतो और लाभांशो को अधिक से अधिक ऊचा रखना है। इस प्रकार, प्रबधकों का उद्देश्य फर्म की वृद्धि दर को अधिकतम करना है, और शेयरहोल्डर, जो फर्म के मालिक है, शेयर कीमतो और लाभांशो के रूप मे अपने लाभो को अधिकतम करने का उद्देश्य रखते है। मैरिस उस साधन का विश्लेषण करता है जिसके द्वारा फर्म अपने वृद्धि अधिकतमकरण उद्देश्य को पूरा करने का प्रयत्न करती है। फर्म नई वस्तुओ का निर्माण करके जो आगे नई मागे निर्मित करती है, अपने आकार में वृद्धि करती है। मैरिस इसे **विभेदक विविधीकरण** (differentiated diversification) कहता है। नई वस्तुओ को आरभ करना विविधीकरण की दर, विज्ञापन व्यय, R & D व्यय, आदि पर निर्भर करता है।

मैरिस माग पक्ष की ओर से वृद्धि और लाभो के बीच सबध नई वस्तुओ मे विविधीकरण द्वारा स्थापित करता है। वृद्धि और लाभो के बीच सबध वृद्धि के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न होते है। इस वृद्धि-लाभ सबध मे, लाभो को वृद्धि निर्धारित करती है। जब फर्म की वृद्धि दर नीची होती है, तो दानो मे सबध धनात्मक (positive) होता है। जब नई वस्तुए आरभ की जाती है, फर्म प्रसार (वृद्धि) करती है और लाभ बढते है। नई वस्तुओ मे अधिक विविधीकरण होने से जब वृद्धि दर और बढती है तो वृद्धि-लाभ सबध ऋणात्मक हो जाता है। ऐसा प्रबधकीय अवरोध (managerial constraint) के कारण होता है जो प्रबधकीय वृद्धि की दर पर सीमा निश्चित करती है जो आगे फर्म की वृद्धि को रोकती है। फर्म की प्रबधकीय योग्यता का एकदम अधिक सख्या मे परिवर्तनों का सामना कर सकना सीमित होता है। नई वस्तुओं के विकास और विपणन करने के लिए एक बडी प्रबधकीय टीम को विकसित करना सभव नहीं है। विविधीकरण की ऊची दर के लिए R & D और विज्ञापन पर अधिक व्यय चाहिए। परिणामस्वरूप, एक निश्चित वृद्धि दर के बाद, ऊची वृद्धि दर से नीची लाभ दर प्राप्त होती है। इसे चित्र 31 2 मे दर्शाया गया है जहा GD वक्र पहले बढता है, उच्चतम बिन्दु M तक पहुचता है और उसके बाद गिरना प्रारभ करता है। वृद्धि-लाभों का एक अन्य पहलू पूजी सप्लाई की वृद्धि दर है। शेयरहोल्डरो का उद्देश्य पूजी स्टाक की वृद्धि दर को अधिकतम करना है। इसकी वृद्धि के लिए वित्त का मुख्य स्रोत लाभ है। अत पूर्ति की ओर

वृद्धि को लाभ निर्धारित करते हैं। लाभो का ऊचा स्तर पुनर्निवेश के लिए प्रत्यक्ष तौर से अधिक निधिया प्रदान करता है। यह पूजी बाजारो से अधिक निधियो को एकत्रित करने देता है। इस प्रकार, यह वृद्धि की ऊची दर के लिए निधिया प्रदान करता है। यह लाभो और वृद्धि के बीच प्रत्यक्ष और धनात्मक सबध देता है। इसे चित्र 31 2 मे मूल से सीधी रेखा GS द्वारा दिखाया गया है।

फर्म के सतुलन के लिए, वृद्धि-माग और वृद्धि-पूर्ति सबध अवश्य सतुष्ट होना चाहिए। यह तब होता है, जब दोनो वक्र *GD* और *GS* ऐसे बिन्दु पर काटते है जहा वृद्धि-लाभो का सयोग इष्टतम हल देता है। मान लीजिए कि चित्र मे GS_2 वक्र *GD* वक्र को बिन्दु *M* पर काटता है, जहा लाभ अधिकतम होते है। यह बिन्दु इष्टतम हल प्रदान नहीं करता है क्योकि प्रबधक अधिक वृद्धि की इच्छा करते है जो दीर्घकालीन लाभ अधिकतम करने के साथ मेल नहीं खाते है। वे जिस सीमा तक वृद्धि दर को *M* बिन्दु से आगे बढा सकते है, वह उनकी नौकरी-सुरक्षा की इच्छा पर निर्भर करता है। उनकी नौकरी सुरक्षा सकट स्थिति मे होती है यदि शेयरहोल्डर यह महसूस करते है कि शेयर कीमते और लाभाश कम हो रहे है और अन्य फर्मों द्वारा उसे अधिकार मे लेने का भय है। यह पूजी सप्लाई (*GS*) की वृद्धि दर को प्रभावित करेगा।
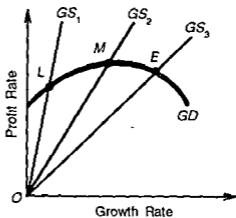
चित्र 31 2

मैरिस के अनुसार, धारण अनुपात (retention ratio) पूजी सप्लाई की वृद्धि दर को निर्धारित करता है। धारित लाभो का कुल लाभो के साथ अनुपात, धारण अनुपात है। यदि धारण अनुपात बहुत नीची है तो इसका मतलब है कि लगभग सभी लाभ शेयरहोल्डरो को वितरित कर दिए गए है। परिणामस्वरूप, फर्म की वृद्धि के लिए प्रबधको के पास सीमित निधिया उपलब्ध है और वृद्धि दर बहुत नीची होगी। वृद्धि-पूर्ति वक्र बहुत तिरछा होगा जैसा कि GS_1 वक्र है। फर्म का सतुलन बिन्दु *L* होगा जहा GS_1 वक्र *GD* वक्र को काटता है। यह भी फर्म का इष्टतम सतुलन बिन्दु नहीं है, क्योकि इस बिन्दु पर वृद्धि दर कम है और लाभ अधिकतम स्तर से नीचे है।

फर्म की वृद्धि के लिए, प्रबधको को अधिक धारित लाभ चाहिए ताकि वे फर्म की वृद्धि के लिए अधिक निधिया निवेश कर सके। ये धारित अनुपात को बढाते है, जो आगे ऊचे लाभो और ऊची वृद्धि दरो को लाता है जब तक कि अधिकतम लाभ का बिन्दु *M* नहीं पहुच जाता है। यह भी फर्म का इष्टतम सतुलन बिन्दु नहीं हे क्योकि प्रबधक यह महसूस करते है कि ऊची वृद्धि दर ओर ऊचे लाभो का यह सयोग शेयरहोल्डरो द्वारा अनुमोदित होता है और उनकी नौकरी सुरक्षा को कोई भय नहीं है। इसलिए वे धारण अनुपात को और बढाने के लिए प्रोत्साहित होगे, अधिक निधिया निवेश करेंगे, प्रसार करेंगे और फर्म की वृद्धि दर को बढाएगे। परिणामस्वरूप, वृद्धि-पूर्ति वक्र चपटा हो जाएगा और GS_3 की आकृति अपनाएगा, जैसा कि चित्र 31.2 मे जहा वह *DS* वक्र को बिन्दु *E* पर काटता है। इस बिन्दु पर, शेयरहोल्डरो को वितरित लाभ गिरते हैं। परन्तु वे शेयरहोल्डरो को सतुष्ट करने के लिए पर्याप्त है। इससे शेयरो की कीमते गिरने और फर्मों द्वारा इस फर्म को अधिकार मे लेने के कोई भय नहीं होने है। प्रबधको के लिए भी नौकरी सुरक्षा होती है।

इस प्रकार, बिन्दु E फर्म के इष्टतम सतुलन का बिन्दु है। यदि प्रबधक इस स्तर से ऊचा धारण अनुपात अपनाते है, तो वितरित लाभ और गिरेंगे और शेयरहोल्डर सतुष्ट नहीं होगे जो प्रबधकों की नौकरी सुरक्षा को खतरे मे डाले देगे। वर्तमान शेयरहोल्डर प्रबधको को बदलने के बारे मे निर्णय ले सकते है। यदि शेयरहोल्डरों को कम लाभ वितरित करने से शेयरो की बाजार कीमतो मे गिरावट आती है, तो इस से फर्म को अन्य फर्मे अधिकार मे ले सकती है।

मैरिस मूल्याकन अनुपात (valuation ratio) के रूप मे भी फर्म को अन्य फर्मों द्वारा अधिकार मे लेने के सदेव विद्यमान भय की व्याख्या करता है, जो उसकी वृद्धि दर पर प्रतिबध के रूप में कार्य करता है। मूल्याकन अनुपात फर्म के शेयरो की बाजार कीमत का उनके बुक मूल्य के साथ अनुपात है। मैरिस के अनुसार, फर्मे एक बिन्दु के बाद वृद्धि करने से बचने का प्रयत्न करेंगी क्योंकि ऊची स्थिर देयताए वित्तीय सुरक्षा के लिए खतरा होती हैं, और उनके मन मे एक न्यूनतम मूल्याकन अनुपात की आवश्यकता होती है जो फर्म को अधिकार मे लेने के विरुद्ध रक्षा और शेयरहोल्डरों को उचित प्रतिफल की दर प्रदान करता है। नये शेयरो के जारी करने की दर भी मूल्याकन अनुपात को प्रभावित करती है। मूल्याकन अनुपात और वृद्धि दर के बीच सबंध की चित्र 31.3 मे व्याख्या की गई है, जहा मूल्याकन अनुपात को अनुलब अक्ष पर और वृद्धि दर को क्षैतिज अक्ष पर लिया गया है। मूल्याकन अनुपात की आकृति परवलयिक (parabolic) दिखाई गई है जो V है। यह स्टाक मार्किट व्यवहार के कारण है और वृद्धि दर G का फलन है। मूल्याकन अनुपात का शिखर बिन्दु M है जब वृद्धि दर G_1 है। मूल्याकन अनुपात के शिखर पर, जब वृद्धि दर बढती है तो लाभ दर मे बढोत्तरी हो रही है। मूल्याकन अनुपात का शिखर दीर्घकालीन लाभ अधिकतमकरण के अनुरूप होता है। फिर भी, फर्म की वृद्धि दर का मूल्याकन अनुपात के शिखर बिन्दु M के अनुरूप G_1 वृद्धि दर से अधिक होने की सभावना होती है। ऐसा इसलिए कि प्रबधक ऊचे मूल्याकन अनुपात के लाभ को फर्म की ऊची वृद्धि दर के विरुद्ध विनिमय करने को तैयार रहेंगे। अत वे ऊंची वृद्धि दर G_2 और उसके अनुरूप मूल्याकन अनुपात V_1 को चुनेगे। यह न्यूनतम मूल्याकन अनुपात है जो फर्म को अधिकार में लेने के विरुद्ध उसकी रक्षा करता है और शेयरहोल्डरों को उचित प्रतिफल की दर प्रदान करता है।
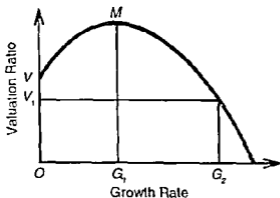
चित्र 31.3

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)

मैरिस के वृद्धि अधिकतमकरण मॉडल की कडी आलोचनाए कोटसियानिस और हान्नि द्वारा उसकी मान्यताओं के कारण की गई हैं।

1 मैरिस फर्म के लिए दिया हुआ कीमत ढाचा की मान्यता लेता है। इसलिए वह इस बात की व्याख्या नहीं करता है कि मार्किट में वस्तुओं की कीमतें कैसे निर्धारित की जाती है। यह मॉडल की बडी कमी है।

2 इस मॉडल की एक और कमी यह है कि यह गैर-कपटसंधि (non-collusive) मार्किट में फर्मों की अल्पाधिकार परस्पर निर्भरता की समस्या की उपेक्षा करता है।

3 यह मॉडल गैर-कीमत प्रतियोगिता द्वारा निर्मित निर्भरता का विश्लेषण भी नहीं करता है।

4 मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि फर्में नई वस्तुओं का निर्माण करके निरतर वृद्धि कर सकती है। यह अवास्तविक है क्योंकि कोई भी फर्म उपभोक्ताओं को कोई भी वस्तु नहीं बेच सकती है। उपभोक्ताओं की विशेष ब्रैंड के लिए प्राथमिकता होती है जो अन्य नई वस्तुओं के मार्किट में आने से बदल जाती है।

5 कोटसियानिस के अनुसार, मूलरूप में मैरिस का मॉडल उन फर्मों पर लागू होता है जो उपभोक्ताओं की वस्तुए उत्पादित करती हैं। यह मॉडल विनिर्माण व्यवसायों अथवा व्यापारियों के व्यवहार का विश्लेषण नहीं करता है।

6 मैरिस अपने मॉडल मे विज्ञापन और R & D व्ययो को इकट्ठा करता है। यह मॉडल की बहुत बडी कमी है क्योंकि एक दी हुई समय अवधि में इन दो चरों की प्रभावशालिता समान नहीं है।

7 मैरिस यह मानता है कि फर्मों के अपने R & D विभाग होते है जिन पर वे नई वस्तुए निर्मित करने के लिए बहुत व्यय करते है। परन्तु वास्तव मे, अधिकतर फर्मों के ऐसे विभाग नहीं होते हैं। वस्तु विविधीकरण के लिए वे अन्य फर्मों के आविष्कारों का अनुकरण करती हैं और पेटेंटिड आविष्कारो के प्रयोग के लिए वे रायल्टी देती है।

8 यह मान्यता की सभी चर जैसे लाभ, विक्रय, और लागतें एक ही दर से बढते है, अत्यधिक अवास्तविक है।

9 यह संदेहपूर्ण है कि एक फर्म स्थिर दर से वृद्धि करती रहेगी, जैसा कि मैरिस मानता है। यह अब अधिक गति मे वृद्धि कर सकती है और बाद मे धीमी गति से।

10 उस वृद्धि दर पर पहुचना कठिन है जो फर्म के शेयरो के बाजार मूल्य को अधिकतम करती है और जिस दर पर फर्म का किसी अन्य फर्म द्वारा अधिकार किया जा सकता है।

6. बोमल का विक्रय अधिकतमकरण मॉडल
(BAUMOL'S SALES MAXIMISATION MODEL)

प्रो बोमल ने अपनी पुस्तक *Business Behaviour Value and Growth* (1967) में विक्रय अधिकलमकरण पर आधारित फर्म का प्रबधकीय सिद्धात प्रस्तुत किया है। उसने विक्रय अधिकलमकरण के दो मॉडलों की व्याख्या की है एक स्थैतिक मॉडल और दूसरा गत्यात्मक मॉडल। हम केवल उसके स्थैतिक मॉडल के रूपान्तर एकल वस्तु विज्ञापन रहित, विज्ञापन के साथ और बहुवस्तु मॉडलों का विश्लेषण करेंगे।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

यह मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

1 फर्म की एक समय अवधि सीमा है।

2 फर्म दीर्घकाल मे अपने कुल विक्रय आगम को अधिकतम करने का उद्देश्य रखती है जो उसके लाभ प्रतिबध (profit constraint) से बाध्य है।

3 फर्म का न्यूनतम लाभ प्रतिबध उसके शेयरों के बाजार मूल्य के रूप मे प्रतियोगितात्मक तौर से निश्चित किया जाता है।

4 फर्म अल्पाधिकारात्मक है जिसके लागत वक्र *U*-आकृति के है और माग वक्र नीचे की ओर ढालू है। इसके कुल लागत और आगम वक्र भी परपरागत किस्म के है।

मॉडल (The Model)

अमरीका मे अल्पाधिकार फर्मों की अपनी जाचों से बोमल ने पाया कि वे विक्रय अधिकतमकरण

के उद्देश्य का पालन करती है। बोमल के अनुसार, आधुनिक निगमो मे स्वामित्व और नियत्रण के अलग हो जाने से, लाभो की लागत पर भी, कपनी विक्रय बढाकर, प्रबधक प्रतिष्ठा और ऊंचे वेतन चाहते है। अनेक फर्मों का परामर्शदाता होने के कारण, बोमल ने यह देखा कि जब व्यवसायी प्रबधको से पूछा गया कि उनका व्यवसाय पिछले वर्ष कैसा रहा, तो वे अक्सर उत्तर देते, "हमारे विक्रय तीन मिलियन डॉलर बढ गए।" फिर, कोई अन्य प्रबधक यह उत्तर देते, "उनके विक्रय बढे (अथवा कम) रहे।" अपने लाभो के बारे मे यदि बात करते तो केवल बाद मे विचार के रूप में। अत, बोमल के अनुसार, आगम अथवा विक्रय अधिकतमकरण, न कि लाभ अधिकतामकरण, फर्मो के वास्तविक व्यवहार से मेल खाता है। परन्तु प्रबधन का अल्पकालीन एव दीर्घकालीन ध्येय विक्रय अधिकतम माना जाता है। विक्रय अधिकतम केवल साधन ही नहीं है बल्कि साध्य भी है। अपने सिद्धान्त के पक्ष मे वह अनेक तर्क देता है। उसके अनुसार, एक फर्म अपनी बिक्री के आकार को बहुत महत्त्व देती है तथा बिक्री के कम होने पर बहुत चिन्तित होती है। यदि फर्म की बिक्री कम होनी प्रारभ हो जाती है तो बैंक, ऋणदाता, तथा पूँजी मार्किट उसे वित्त प्रदान करने को तैयार नहीं होते है। इसके अपने वितरक और व्यापारी इसकी वस्तुओ मे दिलचस्पी लेना बद कर देते है, तथा उपभोक्ता भी इसकी वस्तुओं को नहीं खरीदना चाहते क्योंकि यह घाटे मे जा रही होती है। परन्तु यदि फर्म की बिक्री अधिक हो तो फर्म का आकार बढता है जिसका अभिप्राय इसके लाभ अधिक है।

एकल वस्तु के साथ मॉडल (Model with Single Product)—अधिकतम विक्रय से बोमल का अभिप्राय अधिकतम कुल आगम है। इसका अर्थ उत्पादन की अधिक मात्राओ का विक्रय नहीं बल्कि मौद्रिक विक्रय (रुपये, डालर, आदि) मे वृद्धि है। विक्रय अधिकतम लाभ के बिन्दु तक बढ सकता है जहाँ सीमान्त लागत और सीमान्त आगम बराबर होते है। परन्तु यदि इससे आगे बढा दिया जाए तो लाभ कम करके मौद्रिक आय बढ सकती है। पर अल्पाधिकारी फर्म यह चाहती है कि उसके मौद्रिक विक्रय बढे चाहे उसे न्यूनतम लाभ हो। न्यूनतम लाभो से अभिप्राय अधिकतम लाभो से कम लाभ है। न्यूनतम लाभ फर्म की विक्रय अधिकतम करने की आवश्यकता द्वारा निर्धारित होते है और बिक्री में हो रही वृद्धि को कायम रखने के लिए है। यह भविष्य की बिक्री मे रुपया लगाने के लिए भी आवश्यक होते है। फिर, वे फर्म की अन्य वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तथा शेयर पूजी पर लाभाँश देने के लिए भी जरूरी होते है। अत न्यूनतम लाभ एक फर्म के अधिकतम लाभ के प्रतिबध का कार्य करते है। बोमल के अनुसार, "अधिकतम आगम केवल उस उत्पादन पर प्राप्त होगा जहाँ माँग की लोच इकाई के बराबर होगी अर्थात् यहाँ सीमान्त आगम शून्य होगा।
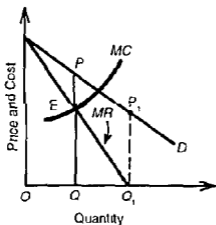
चित्र 31.4

यही शर्त है जो अधिकतम लाभ नियम की सीमान्त लागत सीमान्त आगम समान होने की शर्त का स्थान लेती है।" यह चित्र 31 4 मे दिखाया गया है जहाँ लाभ अधिकतम फर्म *OQ* मात्रा उत्पादित करती है जिसके MC तथा MR वक्र *P* बिन्दु पर मिलते है। परन्तु विक्रय-अधिकतम फर्म *OQ*, मात्रा उत्पादित करेगी जहाँ MR वक्र शून्य है।

बामोल के मॉडल को चित्र 31 5 मे दिखाया गया है, जहाँ *TC* कुल लागत वक्र है, *TR* कुल आगम वक्र, *TP* कुल लाभ वक्र तथा *MP* न्यूनतम लाभ अथवा लाभ प्रतिबध रेखा है। फर्म *TP* वक्र के सबसे ऊँचे बिन्दु *B* के अनुरूप उत्पादन को *OQ* स्तर पर अपने लाभ को अधिकतम करती है। परन्तु फर्म का उद्देश्य अपने विक्रय को अधिकतम करना होता है, न कि लाभो को। इसका विक्रय-अधिकतम उत्पादन *OK* है, जहाँ *TR* वक्र के सबसे ऊँचे बिन्दु पर कुल आगम *KL* अधिकतम है। यह विक्रय अधिकतम उत्पादन *OK*, लाभ अधिकतम उत्पादन *OQ* से अधिक है। परन्तु विक्रय अधिकतम, न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध द्वारा बाध्य होती है (Sales maximisation is subject to minimum profit constraint)। मान लो कि न्यूनतम लाभ स्तर *MP* रेखा द्वारा दर्शाया गया है। *OK* उत्पादन विक्रय अधिकतम नहीं करेगा क्योकि न्यूनतम लाभ *OM* कुल लाभ *KS* द्वारा पूरे नही किए जा रहे। विक्रय अधिकतम के लिए फर्म को उत्पादन का वह स्तर उत्पादित करना चाहिए जो केवल न्यूनतम लाभ ही पूरे नहीं करता बल्कि इसके अनुरूप अधिकतम आगम भी प्रदान करता है। यह *OD* उत्पादन का स्तर है, जहाँ न्यूनतम लाभ *DC* (= *OM*) कुल आगम की *DE* मात्रा के कीमत *DE/OD* (कुल आगम/कुल उत्पादन) पर अनुरूप है।
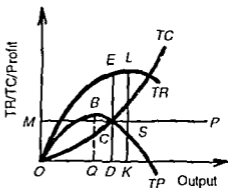
चित्र 31.5

अल्पाधिकार का बोमल मॉडल यह बताता है कि अधिकतम विक्रय-उत्पादन *OD* से अधिकतम लाभ-उत्पादन *OQ* थोडा होगा और कीमत अधिक होगी। विक्रय अधिकतम मे कीमत कम होने का कारण यह है कि कुल आगम तथा कुल उत्पादन दोनो ही ऊँचे है, जबकि लाभ अधिकतम मे कुल उत्पादन कुल आगम की अपेक्षा बहुत कम है। मान लीजिए कि चित्र मे *QB* को *TR* के साथ रेखा द्वारा जोड दिया जाय। बोमल के अनुसार, "*यदि न्यूनतम लाभ के बिन्दु पर फर्म आवश्यक न्यूनतम से अधिक लाभ कमाती है, तो विक्रय अधिकतम करने वाले को अपनी कीमत कम करने तथा भौतिक उत्पादन बढाने से लाभ होगा।*"

विज्ञापन के साथ मॉडल (Model with Advertising)—आगे बोमल ने यह दर्शाया है कि विक्रय अधिकतमकरण के अन्तर्गत लाभ प्रतिबध भी विज्ञापन मे प्रभावशील होता है ओर इस प्रकार फर्म के आगम को बढाता है। चित्र 31 6 मे विज्ञापन पर व्यय को क्षैतिज अक्ष पर और कुल आगम, लागते और लाभ अनुलम्ब अक्ष पर लिए गए है। *TR* कुल आगम वक्र है। 45° रेखा *ADC* विज्ञापन लागत वक्र है। *OC* के बराबर अन्य लागतो की एक स्थिर राशि को *ADC* वक्र मे जमा करने से हमे कुल लाभ वक्र *TP* प्राप्त होता है, जो *TR* वक्र और *TC* वक्र के बीच का अन्तर है। *MP* न्यूनतम लाभ प्रतिबध रेखा है। लाभ अधिकतमकरण फर्म *OQ* विज्ञापन पर खर्च करेगी और इसका कुल आगम *OS* (= *QA*) होगा। दूसरी ओर, लाभ प्रतिबध *MP* दिया होने पर, विक्रय अधिकतमकरण

फर्म OD विज्ञापन पर व्यय करेगी और कुल आगम $OT (= DE)$ कमाएगी। इस प्रकार, विक्रय अधिकतमकरण फर्म विज्ञापन पर लाभ-अधिकतम फर्म से अधिक व्यय करती है ($OD > OQ$), और उससे अधिक आगम कमाती है ($DE > QA$), लाभ प्रतिबंध स्तर MP पर। अत विक्रय अधिकतम करने वाली फर्म को अपने विज्ञापन व्यय को बढाने मे सदैव लाभ होगा जब तक कि लाभ प्रतिबंध उसे रोक नहीं देता है।

चित्र 31.6
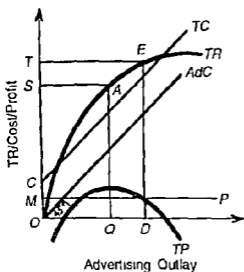
स्थिर लागतो के साथ मॉडल (Model with Fixed Costs)—बोमल की विक्रय-अधिकतमकरण फर्म लाभ-अधिकतमकरण फर्म से अधिक वास्तविक है, क्योंकि यह स्थिर लागतो मे परिवर्तनो से प्रभावित होती है, जैसा कि वास्तविक व्यवसायिक फर्मों के बारे मे पाया जाता है। नव-क्लासिकी लाभ- अधिकतमकरण सिद्धात यह मानता है कि अल्पकाल मे स्थिर लागतो मे परिवर्तनो से उत्पादन प्रभावित नहीं होता है। उदाहरणार्थ, ऐसी फर्म पर एकमुश्त (lumpsum) कर लगाने से उसकी कीमत और उत्पादन प्रभावित नहीं होंगे। बल्कि यह एकमुश्त कर का सारा भार उठा लेगी। परन्तु बोमल यह बल देकर कहता है कि यदि एकमुश्त कर लगाने से स्थिर लागते अल्पकाल मे बढती है तो विक्रय अधिकतमकरण फर्म अपनी वस्तु की कीमत बढाएगी और उत्पादन कम कर देगी। इसे चित्र 31 7 मे समझाया गया है जहा TP फर्म का कुल लाभ वक्र है। न्यूनतम लाभ प्रतिबंध रेखा MP है जो यह व्यक्त करती है कि OQ_1 उत्पादन बेचकर फर्म को न्यूनतम लाभ OM अवश्य कमाने चाहिए। मान लीजिए कि सरकार LT राशि के बराबर फर्म पर एकमुश्त कर लगाई है, जिससे इसका लाभ वक्र TP नीचे की ओर TP_1 पर चला जाता है और फर्म अपना उत्पादन OQ_1 से कम कर OQ_2 कर देती है। फर्म अपनी वस्तु की कीमत बढा देगी और कर को उपभोक्ताओं

चित्र 31 7

को हस्तातरित कर देगी। लेकिन एकमुश्त कर के कारण स्थिर लागतें बढ़ने से लाभ अधिकतमकरण उत्पादन OQ मे कोई परिवर्तन नहीं होता है।

दूसरी ओर, बिक्री कर जैसा विशिष्ट कर (specific tax) लगाने से लाभ वक्र नीचे बाईं ओर शिफ्ट कर जाएगा, जैसा कि चित्र 31 8 मे दर्शाया गया है। लाभ प्रतिबध रेखा MP दी होने पर, विक्रय अधिकतमकरण फर्म अपने उत्पादन को OQ_2 से कम कर OQ_3 कर देगी। यह कीमत बढा देगी और कर को उपभोक्ताओ को हस्तातरित कर देगी। लाभ-अधिकतमकरण फर्म भी अपने उत्पादन को OQ से कम करके OQ_1 कर देगी और उसकी कीमत बढा देगी। परन्तु विक्रय अधिकतमकरण फर्म के उत्पादन मे कमी लाभ-अधिकतमकरण फर्म की अपेक्षा अधिक होगी, $Q_3Q_2 > QQ_1$।
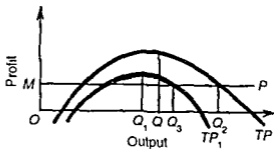
चित्र 31 8

बहुवस्तु मॉडल (Model with Multiproducts)—बोमल ने दर्शाया है कि जहा फर्मे बहुत वस्तुए उत्पादित करती है, विक्रय अधिकतमकरण फर्म अलाभदायक आगतो और निर्गतो से बच सकती है। इसे चित्र 31 9 मे व्यक्त किया गया है, जहा वस्तु X को क्षैतिज अक्ष पर और वस्तु Y को अनुलम्ब अक्ष पर मापा गया है। PP_1 वक्र X और Y के सभी सयोगो को व्यक्त करता है जो एक स्थिर व्यय अथवा कुल लागतो मे उत्पादित की जा सकती है। वक्र R_1 R_2 और R_3 सम-आगम वक्र है जो प्रत्येक वक्र पर X और Y के सभी सयोगो मे एक स्थिर आगम देते है। PP_1 और R_2 वको का स्पर्श बिन्दु T लाभ अधिकतमकरण का बिन्दु है। यही आगम अधिकतमकरण का बिन्दु है क्योकि यह उच्चतम प्राप्य सम-आगम वक्र R_2 पर स्थित है जो PP_1 द्वारा व्यक्त किए हुए व्यय के साथ मेल खाता है। इस प्रकार, दोनो प्रकार की फर्मे एक ही परिणाम देती हैं जब वे एक जैसी आगते समान मात्राओ मे प्रयोग करती है और उन्हे बिल्कुल एक जैसे ही ढग से नियुक्त करती है।

लेकिन बोमल के अनुसार, विक्रय अधिकतमकरण फर्म अपने आगम को बढाने के लिए लाभो के अधिकतम स्तर और लाभो के न्यूनतम स्तर (अर्थात लाभ प्रतिबध) के बीच अन्तर का प्रयोग करेगी। वह इस अन्तर को "त्यागने-योग्य लाभो का फड" कहता है। "अत प्रत्येक समय फर्म अपने कुल आगम को बढाने के लिए किसी वस्तु के उत्पादन को बढाती है, तो फर्म को त्यागने-योग्य लाभो की अपनी निधियो को अधिक मात्रा मे इस्तेमाल करना आवश्यक होता है। इस त्यागने-योग्य लाभो के फड को विभिन्न निर्गतो, मार्किटो, आगतो आदि के बीच इस तरह अवश्य आबटित किया जाना चाहिए, जिससे कुल डॉलर विक्रय अधिकतम होते है। यह सबध सकेत करता है कि विक्रय-अधिकतमकरण फर्म मे भी सापेक्षतया अलाभदायक आगतो और निर्गतो
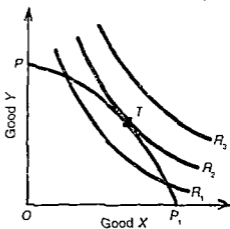
चित्र 31 9

से बचना चाहिए, चाहे कुल व्यय और कुल आगम का स्तर कुछ भी हो।"

मॉडल के निहितार्थ अथवा श्रेष्ठता (Implications or Superiority of the Model)

बोमल के विक्रय-अधिकतमकरण मॉडल के कुछ महत्त्वपूर्ण निहितार्थ भी हैं जो इसे फर्म के लाभ-अधिकतमकरण मॉडल में श्रेष्ठ बनाते है।

1 विक्रय-अधिकतमकरण फर्म लाभो की अपेक्षा अधिक विक्रय को प्राथमिकता देती है। क्योकि यह अपने आगम को अधिकतम उस समय करती है जब इसका MR शून्य होता है, तो यह लाभ अधिकतमकरण फर्म की तुलना मे कम कीमत लेती है।

2 ऊपर से यह निष्कर्ष निकलता है कि विक्रय-अधिकतमकरण उत्पादन अधिक होगा लाभ-अधिकतमकरण उत्पादन से।*

3 न्यूनतम लाभ प्रतिबध दिया होने पर, लाभ-अधिकतमकरण फर्म की तुलना मे विक्रय-अधिकतमकरण फर्म अधिक आगम कमाने के लिए विज्ञापन पर अधिक व्यय करेगी।[10]

4 अल्पकालीन और दीर्घकालीन कीमत निर्धारण के बीच भी विरोध हो सकता है। अल्पकाल मे जब उत्पादन बढाया नहीं जा सकता, तो आगम को कीमत बढाकर बढाया जा सकता है। परन्तु दीर्घकाल मे, विक्रय-अधिकतमकरण फर्म के हित मे होगा कि वह कीमत को कम रखे ताकि वह मार्किट के बड़े भाग के लिए अधिक प्रभावशाली ढग से प्रतियोगिता कर सके और इस प्रकार अधिक आगम कमाए।

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)

बोमल के विक्रय-अधिकतमकरण मॉडल की कुछ कमियां है।

1 रोसनबर्ग (Rosenberg) ने बामोल द्वारा विक्रय अधिकतम के लिए लाभ प्रतिबन्ध की आलोचना की है। रोसनबर्ग ने सिद्ध किया है कि एक फर्म के लाभ प्रतिबन्ध को निश्चित रूप से दिखाना कठिन है। इसे रोसनबर्ग के कुछ परिवर्तित चित्र द्वारा 31 10 मे दिखाया गया है।
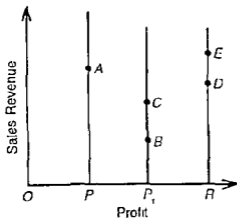
चित्र 31 10

अनुलम्ब अक्ष पर फर्म के विक्रय आगम तथा समानान्तर अक्ष पर लाभ लिए गए है। *R* लाभ प्रतिबन्ध है। लाभ प्रतिबन्ध से नीचे कोई भी दो सयोगो मे से अधिक लाभ वाला चुना जाएगा। उदाहरण के तौर पर, लाभ स्तर *P* पर *A* की अपेक्षा लाभ स्तर P_1 पर *B* को अधिमान दिया जाएगा। फिर, एक ही लाभ रेखा P_1 पर दो सयोगो *B* और *C* मे से *B* की अपेक्षा *C* को अधिमान दिया जाएगा क्योकि *C* पर बिक्री अधिक होती है। इसी प्रकार, प्रतिबन्ध रेखा *R* पर *D* तथा *E* बिन्दुओं मे से *E* को *D* की अपेक्षा अधिमान दिया जाएगा जो अधिक बिक्री का स्तर है। अत बामोल के मॉडल में विक्रय अधिकतम

* ऊपर के दोनों पैरा चित्र 31 4 द्वारा समझाइए।

10 विक्रय अधिकतमकरण की लाभ अधिकतमकरण पर श्रेष्ठता को "स्थिर लागतो के साथ मॉडल" तथा "बहुवस्तु मॉडल" द्वारा भी समझाइए।

तथा न्यूनतम लाभ संयोग को चुनना बहुत कठिन है। जब तक लाभ प्रतिबन्ध से अधिक होते हैं, वे सदैव बिक्री को बढ़ाने के लिए विज्ञापन पर खर्च कर दिए जाएँगे।

2 शैपर्ड (Shepherd) के अनुसार एक अल्पाधिकार फर्म को विकिंत माग वक्र का सामना करना पड़ता है। यदि विकं काफी बड़ा हो तो कुल आगम और लाभ एक ही उत्पादन स्तर पर अधिकतम होंगे। इसलिए, विक्रय अधिकतम करने वाली और लाभ अधिकतम करने वाली दोनों फर्में उत्पादन के भिन्न स्तरों को उत्पादित नहीं कर रही होंगी। परन्तु हाकिन्स ने दर्शाया है कि यदि फर्म किसी भी प्रकार की गैर-कीमत प्रतियोगिता जैसे अच्छी पैकिंग, फ्री सर्विस, विज्ञापन, आदि में व्यस्त होती है तो शैपर्ड के निष्कर्ष अमान्य हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, जब विक्रय-अधिकतमकरण फर्म विज्ञापन पर अधिक खर्च करती है, तो उसका उत्पादन लाभ-अधिकतमकरण फर्म से अधिक होगा। ऐसा इसलिए कि विक्रय-अधिकतमकरण फर्म के माग वक्र का विकं लाभ-अधिकतमकरण फर्म के विकं की दाईं ओर होगा।

3 हाकिन्स ने यह दर्शाया है कि बोमल का निष्कर्ष कि एक विक्रय अधिकतमकर्त्ता एक लाभ अधिकतमकर्त्ता से सामान्यतया अधिक उत्पादित और विज्ञापित करेगा, अमान्य है। हाकिन्स के अनुसार, एक विक्रय अधिकतमकर्त्ता अधिक, कम या समान उत्पादन और अधिक, कम अथवा समान विज्ञापन बजट चुन सकता है। यह कीमत कटौतियों पर निर्भर न होकर माग की विज्ञापन के साथ अनुक्रियाशीलता (responsiveness) पर निर्भर करता है। यह निष्कर्ष फर्मों द्वारा केवल एक वस्तु अथवा वस्तुओं के एक ग्रुप के उत्पादन के लिए है।

4 बहुवस्तुओं के लिए, बोमल तर्क देता है कि आगम और लाभ अधिकतमकरण के समान परिणाम होते हैं। परन्तु विनियममन ने यह दर्शाया है कि विक्रय अधिकतमकरण के लाभ अधिकतमकरण से परिणाम भिन्न होते हैं।

5 बोमल के मॉडल की एक अन्य त्रुटि यह है कि यह अल्पाधिकारी फर्मों की कीमतों की परस्पर निर्भरता की उपेक्षा करता है।

6 कोटसियानिस के अनुसार, बोमल का यह मॉडल अवलोकित मार्किट अवस्थाओं, जिनमें कीमत को काफी समय अवधियों के लिए बेलोच माग की रेंज में रखा जाता है, की व्याख्या करने में असफल होता है।

7 यह मॉडल न केवल वास्तविक प्रतियोगिता बल्कि विरोधी अल्पाधिकारात्मक फर्मों से सभावित प्रतियोगिता के भय की भी उपेक्षा करता है।

8 फिर, कोटसियानिस के अनुसार, मॉडल यह नहीं दर्शाता है कि एक उद्योग जिसमें सभी फर्में विक्रय अधिकतमकर्त्ता है, कैसे सतुलन प्राप्त करेगा। बोमल फर्म और उद्योग के बीच सबध स्थापित नहीं करता है।

इन कमियों के बावजूद, इसमें कोई सशय नहीं कि विक्रय अधिकतमकरण आधुनिक व्यवसायिक विश्व में फर्मों का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

प्रश्न

1 सायर्ट और मार्च के व्यवहारवादी सिद्धात की व्याख्या करिए। इस मॉडल के एक अल्पाधिकार फर्म के कीमत व्यवहार के लिए क्या निहितार्थ हैं?

2 आधुनिक फर्मों के कौन से लक्ष्य हैं? इनमें विरोध कैसे उत्पन्न होते हैं और उनको कैसे सुलझाया जाता है?

3 विलियमसन के प्रबधकीय विवेकी मॉडल की व्याख्या कीजिए। यह लाभ अधिकतमकरण मॉडल से कहा तक भिन्न है?

4 मैरिस के वृद्धि अधिकतमकरण मॉडल की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

5 मैरिस के मॉडल में एक अल्पाधिकार फर्म अपनी वृद्धि दर को कैसे अधिकतम करती है?

6 अल्पाधिकारी फर्में अपने विक्रयों को कैसे अधिकतम करती हैं? बोमल का विक्रय अधिकतमकरण मॉडल लाभ अधिकतमकरण मॉडल से कैसे श्रेष्ठ है?

7 बोमल के विक्रय अधिकतमकरण मॉडल की आलोचनात्मक व्याख्या करिए।

8 टिप्पणी लिखिए साइमन का सन्तुष्टिकरण मॉडल, विलियमसन का उपयोगिता अधिकतमकरण मॉडल।

अध्याय 32

खेल सिद्धांत तथा कीमत निर्धारण
(GAME THEORY AND PRICE DETERMINATION)

1. प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

आर्थिक सिद्धांत में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त, जिसका हाल में विकास हुआ है, "खेल सिद्धान्त" है। इसे पहले-पहल न्यूमन तथा मार्गेन्स्टर्न ने 1944 में प्रकाशित अपनी महत्त्वपूर्ण कृति *Theory of Games and Economic Behaviour* में प्रस्तुत किया था, जो विचारों के इतिहास में एक "विरल घटना" समझी जाती है।

द्वयधिकार, अल्पाधिकार तथा द्वि-पार्श्व-एकाधिकार की समस्याओं का हल खोजने के प्रयत्न में खेल सिद्धान्त बनाया गया। इन सब स्थितियों में भाग लेने वालों के विरोधी स्वार्थों और तरकीबों के कारण, एक निश्चित या निर्धारक हल (determinate solution) ढूँढना कठिन है। सब सम्भव स्थितियों के अन्तर्गत मार्किट में भाग लेने वालों के विचारशील व्यवहार के आधार पर, 'खेल सिद्धान्त' विभिन्न संतुलन हलों पर पहुँचने का प्रयत्न करता है। "हल की तात्कालिक दृष्टि यह है कि प्रत्येक भाग लेने वाले के लिए तर्कयुक्त रूप से नियमों का एक सैट हो, जो यह बताए कि उत्पन्न होने वाली हर सम्भव स्थिति में उसे कैसे व्यवहार करना चाहिए।"[1]

खेल सिद्धान्त के पीछे यह भाव स्थित रहता है कि खेल में भाग लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उस स्थिति का सामना करना पड़ता है जिसका परिणाम केवल उसकी अपनी तरकीबों अथवा कूटनीतियों (strategies) पर ही नहीं बल्कि विरोधी की तरकीबों पर भी निर्भर करता है। शतरंज या पोकर के खेलों, सैनिक लड़ाइयों तथा आर्थिक मार्किटों में हमेशा ऐसा होता है। हम यहाँ प्रमुख रूप से द्वयधिकार समस्या के हलों पर विचार करेंगे। परन्तु खेल-सिद्धान्त का विश्लेषण शुरू करने से पहले खेल सिद्धान्त के कुछ मूल नियमों पर विचार कर लेना लाभदायक होगा।

एक खेल (game) के निश्चित नियम और तरीके होते हैं जिनका, दो या अधिक भाग लेने वाले पालन करते हैं। खेल में भाग लेने वाले को खिलाड़ी (player) कहते हैं। एक तरकीब (strategy) नियमों का ऐसा विशिष्ट प्रयोग है जिसका कोई निश्चित परिणाम हो। चाल (move) खिलाड़ी करता है जिससे विकल्पों वाली स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उस विकल्प को, जिसे खिलाड़ी वास्तव में चुनता है, चुनाव (choice) कहते हैं। प्रत्येक खिलाड़ी द्वारा अन्य खिलाड़ी के सम्बन्ध में लड़ाई गई विभिन्न तरकीबें उसकी कूट-युक्ति या प्रदेयक (pay-off) होती है। संतुलन बिन्दु खेल का पल्याण बिन्दु (saddle point) होता है। दो प्रकार के खेल होते हैं स्थिर-राशि (constant sum) तथा स्थिरेतर-राशि (non-constant sum)। स्थिर-राशि खेल में एक खिलाड़ी को जितना लाभ होता है, दूसरे को उतनी ही हानि होती है। उसमें भाग लेने वालों के लाभ समान रहते हैं जबकि

1. J. Von Newmann and O. Morgenstern, *op. cit.*, p. 31

स्थिरेतर-राशि खेल मे प्रत्येक खिलाडी के लाभ होते है और वे अपने लाभो को बढाने के लिए एक-दूसरे को सहयोग दे सकते है।

2. दो व्यक्ति स्थिर-राशि या शून्य-राशि[2] खेल (TWO-PERSON CONSTANT-SUM OR ZERO-SUM GAMES)

दो व्यक्तियो द्वारा खेला जाने वाला स्थिर-राशि खेल निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित है

मान्यताएँ (Assumptions)--(i) एक द्वयधिकारात्मक (duopolistic) स्थिति होती है जिसमे *A* और *B* दो पक्षो मे से प्रत्येक अपने लाभ को अधिकतम बनाने का प्रयत्न करती है।

(ii) प्रत्येक स्थिर-राशि लाभ प्राप्त करने मे लगी रहती है जिससे एक को जितना लाभ होता है, दूसरी को उतनी ही हानि होती है।

(iii) एक फर्म का स्वार्थ दूसरी से एकदम उलट होता है।

(iv) प्रत्येक फर्म अपनी तरकीब के विरुद्ध लडाई जाने वाली अन्य फर्म की तरकीब का अनुमान लगा सकती है जिससे दोनो के कूटनीति आराधक (pay-off matrix) का निर्माण होता है।

(v) प्रत्येक फर्म यह मान लेती है कि विरोधी फर्म समझदारी से चाल चलेगी, इसलिए वह उस चाल के उलट चाल चलने और किसी सम्भव हानि से अपने को बचाने का प्रयत्न करेगी।

कूटनीति आराधक तथा तरकीबे (Pay-off Matrix and Strategies)—मान लीजिए कि अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए, फर्म *A* के पास तीन तरकीबे है। मान लो वे है, अपनी वस्तु की श्रेणी मे सुधार करना, उसका विज्ञापन देना और उसकी कीमत घटाना। लाभ को बढाने के लिए उसकी प्रतियोगी फर्म के पास भी यही तीन वैकल्पिक तरकीबे है।

दो खिलाडियो वाले खेल मे हमेशा पहला खिलाडी चाल शुरू करता है जिसे अधिकतमकार (maximiser) कहते है, जिसकी प्रतिक्रिया दूसरे खिलाडी द्वारा की जाती है जिसे न्यूनतमकार (minimiser) कहते है। समानान्तर पढने पर तीन पंक्तियो का सम्बन्ध *A* की तीन तरकीबो से है, ऊपर से नीचे पढने पर तीन कालमो का सम्बन्ध *B* की तरकीबो से है।

यह दिखाने के लिए, कि फर्म *A* और *B* किस प्रकार विभिन्न तरकीबो का चुनाव करेगी, हम तालिका 32.1 मे दिए सख्यात्मक उदाहरण पर विचार करते है। यदि *A* तरकीब न 1 लगाती है, तो उसके हिसाब से *B* तरकीब न 3 लडाएगी और *A* के लाभ को घटाकर न्यूनतम मूल्य या सुरक्षा मूल्य (security value) 4 पर ले जाएगी। इसे पक्ति नं 1 के अन्त मे और कालम न 3 के शुरू मे लिखा गया है। यदि *A* तरकीब न 2 लडाती है, तो *A* की तरकीब का प्रतिकार (counteract) करने के लिए, *B* अपनी तरकीब न 1 लगाएगी जिससे *A* को न्यूनतम लाभ 2 प्राप्त करना होगा। अन्त मे, जब *A* तरकीब न 3 को चुनती है तो *B* तरकीब नं 3 का प्रयोग करती है और *A* के प्रदेयक (pay-off) को घटाकर 8 पर ले आती है।

तालिका 32.1 : प्रदेयक आधारक
(Pay-off Matrix)

A's Strategy →	↓ *B* की तरकीब 1	2	3	*Row Min*
1	5	7	4	4
2	2	3	6	2
3	10	9	8	8
Col Max	10	9	8	8=8

2 स्थिर राशि को ही शून्य राशि इसलिए कहा जाता है क्योंकि दोनो खिलाडियों (फर्मों) के लाभ में खेल के दौरान परिवर्तन नहीं किया जाता।

न हो। ऐसी स्थिति अनिश्चित होती है क्योंकि 'न्यून-पंक्ति' और 'अधिक-कालम' में कोई सन्तुलन बिन्दु नहीं होता। आगे प्रदेयक आधारक में इसे स्पष्ट किया गया है।

यदि प्रदेयक 7 की प्राप्ति के लिए *A* फर्म तरकीब नं 1 को चुनती है, तो प्रदेयक 8 की प्राप्ति के लिए *B* को तरकीब नं 3 चुनने से कोई नहीं रोक सकता। यदि प्रदेयक 6 के लिए *A* तरकीब नं 3 को चुनती है, तो *B* अधिक लाभ 10 प्राप्त करने के लिए तरकीब नं 1 को चुन सकती है, इत्यादि। इस प्रदेयक आधारक में कोई सतुलन (पत्याण) बिन्दु नहीं है। यदि दोनों फर्मों में से कोई फर्म अपनी तरकीब लगाती है, तो दूसरी की तरकीब उसका प्रतिकार कर देगी। यदि *A* अपनी अधिकन्यूने (maximin) तरकीब पर जमी रहती है, तो *B* न्यूनाधिके (minimax) से भिन्न कोई तरकीब चुनकर लाभ प्राप्त करेगी। *A* के प्रदेयक 6 के विरुद्ध उसका प्रदेयक 10 होगा। ऐसी स्थिति का हल केवल अधिकन्यूने-न्यूनाधिक तरकीबों को अपनाने से हो सकता है। जब *A* अधिकन्यूने तरकीब लगाती है, तो उसे 6 लाभ होना है जबकि न्यूनाधिके तरकीब लगाने से *B* को 7 लाभ होना है। प्रत्येक को यह भय रहता है कि कहीं दूसरी को उसके चुनाव का पता न लग जाए, इसलिए वह एक निश्चित न्यूनतम लाभ के विषय में निश्चिन्त होकर सुरक्षित रहना चाहती है। 7 और 6 का अन्तर 1, अनिर्धारकता (indeterminacy) की सीमा को मापता है। इसका कारण यह है कि अधिकन्यूने और न्यूनाधिके समान नहीं हैं, $6 \neq 7$, अतः हल स्थिर नहीं है।

तालिका 32.2 : प्रदेय आधारक
(Pay-off Matrix)

A's Strategy →	↓ *B's Strategy* 1	2	3	*Raw Min*
1	5	7	4	4
2	2	3	5	2
3	10	6	8	6
Col. Max.	10	7	8	$6 \neq 7$

इससे एक आधारभूत निष्कर्ष की प्राप्ति होती है कि जहाँ प्रत्येक आधारक में कोई पत्याण बिन्दु नहीं होता न्यूनाधिके से अधिकन्यूने हमेशा अधिक होता है, जैसाकि तालिका 32.2 से स्पष्ट है। इसका कारण यह है कि खेल में खिलाड़ी (फर्म) *A* न्यूनतमों की पंक्ति से हमेशा अधिकतम को चुनता है और *B* हमेशा अधिकतमों के कालम से न्यूनतम को चुनता है। इसलिए, यह जरूरी है कि अधिकन्यूने से न्यूनाधिके अधिक हो।

मिश्रित तरकीबें (Mixed Strategies)—परन्तु फर्मों को मिश्रित तरकीबें अपनाने की स्वतंत्रता देकर भी, पत्याण बिन्दु के बिना द्वयधिकार समस्या हल की जा सकती है। मिश्रित तरकीब का सम्बन्ध चुनाव करने में संभावितात्मक (probabilistic) आधार पर संभावना (chance) के तत्त्व का समावेश करने से है। यह "वह संभाविता वितरण है जो प्रत्येक विशुद्ध तरकीब के चुनाव को ऐसे ढंग से निश्चित संभाविता प्रदान करती है कि प्रत्येक भाग लेने वाले के लिए संभाविताओं का जोड़ एक के बराबर होता है। यह ठीक ऐसा है जैसे किसी खिलाड़ी को फेंकने के लिए पाँसा (dice) दे दिया जाए और चुनी जाने वाली तरकीब उसके आधार पर निश्चित कर दी जाए। प्रत्येक खिलाड़ी के पास मिश्रित तरकीबों का एक जोड़ा होता है, जो संतुलन स्थिति स्थापित करता है। अपने प्रतिद्वन्द्वी के विरुद्ध प्रत्येक खिलाड़ी खेल का इष्टतम प्रत्याशित मूल्य प्रदेयक (highest expected pay-off) प्राप्त करने का प्रयत्न करता है; और इसलिए अपनी मिश्रित तरकीब के सम्बन्ध में संभाविताओं के ऐसे सैट की खोज में रहता है कि अधिकतम प्रत्याशित प्रदेयक प्राप्त कर सके। इसे इष्टतम मिश्रित तरकीब (optimal mixed strategy) कहते हैं। यदि खेल का मूल्य *V* हो, तो *A* अपनी मिश्रित तरकीब लड़ाकर अधिकतम प्रत्याशित प्रदेयक *V* प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा, जबकि उसी मिश्रित तरकीब को खेलकर *B* प्रयत्न करेगा कि *A* के प्रत्याशित प्रदेयक को न्यूनतम *V* पर रखे।

उदाहरण के लिए तालिका 32 3 मे प्रदेयक आधारक का प्रयोग किया गया है, जहाँ द्वयधिकारी के पास तरकीबे न 1 और 2 है। तालिका मे कोई पल्याण बिन्दु नहीं है। किसी हल पर पहुँचने के लिए दोनो खिलाडी पाँसे फेकने का खेल खेलते है। नियम यह है कि यदि A पाँसा फेके और 1 या 2 पडे तो वह तरकीब न 1 को चुनेगा ओर 3, 4, 5, 6 पडे, तो तरकीब न 2 को। इस नियम के अनुसार A के तरकीब 1 को चुनने की सभाविता 1/3 है और तरकीब 2 को चुनने की सभाविता 2/3 है। B भी यही तरकीबे अपनाएगा परन्तु इससे उलट सभाविताओ के साथ A के प्रत्याशित प्रदेयक को न्यूनतम V पर रख सके। इस प्रकार प्रत्येक को दोनो सभाविताएँ चुननी पडेगी। A के लिए V खेल का प्रत्याशित मूल्य

$$= 1/3 \times 2/3 \times 6 + 1/3 \times 1/3 \times 4 + 2/3 \times 2/3 \times 2 + 2/3 \times 1/3 \times 6 = 36/9 = 4$$

इसी प्रकार B के लिए V खेल का प्रत्याशित मूल्य

$$= 2/3 \times 1/3 \times 6 + 2/3 \times 2/3 \times 2 + 1/3 \times 1/3 \times 4 + 1/3 \times 2/3 \times 6 = 36/9 = 4$$

प्रत्येक द्वयधिकारी अपने लाभ की बजाय अपने 'लाभ की गणितीय आशा' (mathematical expectation of profit) को अधिकतम बनाने का प्रयत्न करेगा। प्रत्येक द्वयधिकारी का प्रत्याशित प्रदेयक या गणितीय आशा खेल के मूल्य ($V = 4$) के बराबर होगी, जबकि दोनो अपनी इष्टतम सभाविताओ को अपनाते है। यदि A अपनी इष्टतम मिश्रित तरकीब का प्रयोग करे, तो B चाहे जिस तरकीब का चुनाव करे, A का प्रत्याशित प्रदेयक V से कम नहीं होगा। इसी प्रकार यदि B अपनी इष्टतम तरकीब का प्रयोग करे तो, A चाहे जिस तरकीब को चुने, B की हानि V से अधिक नहीं हो सकती। इस प्रकार, जब मिश्रित तरकीबो का प्रयोग किया जाता है, तो समस्या सदैव निर्धारित होती है।

तालिका 32.3 प्रदेयक आधारक
(Pay-off Matrix)

	B's Strategies	↓ *1*	*2*
A's Strategies	*B's Probabilities* / *A's Probabilities*	2/3	1/3
→ *1*	1/3	*6*	*4*
2	2/3	*2*	*6*

3. स्थिरेतर-राशि खेल
(NON-CONSTANT-SUM GAMES)

बहुत-सी आर्थिक समस्याए स्थिरेतर प्रकार की होती हैं जिनमें दो से अधिक खिलाडी होते हें। परन्तु द्वि-व्यक्ति स्थिरेतर-राशि खेलो या n-व्यक्ति खेलो का विश्लेषण बहुत ही जटिल है। हम यहाँ सक्षेप मे द्वि-व्यक्ति स्थिरेतर-राशि खेलो पर विचार करेगे और n-व्यक्ति खेलो के अध्ययन को बिल्कुल छोड देगे क्योंकि अभी तक उनके अध्ययन का समुचित विकास नहीं हुआ है।

स्थिर-राशि खेलो मे कोई भी खिलाडी सयुक्त प्रदेयक (combined pay-off) को प्रभावित नहीं कर पाता। परन्तु स्थिरेतर-राशि खेलो मे, यदि खिलाडी A (एक) इष्टतम मिश्रित तरकीब को अपनाता है तो B उसी मिश्रित तरकीब का अनुसरण न करके अपने प्रत्याशित प्रदेयक को बढा सकता है। हल, दोनो खिलाडियो की कपटसन्धि (collusion) या कपटसन्धि न होने मे रहता है। पहले को सहयोगी स्थिरेतर-राशि खेल (co-operative non-constant-sum game) और दूसरे को असहयोगी स्थिरेतर-राशि खेल (non-co-operative non-constant-sum game) कहते है।

सहकारी स्थिरेतर-राशि खेलों में दो खिलाड़ियों के लिए सबसे अधिक विचारशील बात यह है कि दोनों कपटसन्धि कर लें और एक-दूसरे के प्रदेयक को कम किए बिना, अपने संयुक्त प्रदेयक को बढ़ा लें। परन्तु समस्या उतनी सरल है नहीं जितनी प्रतीत होती है। यह आशा नहीं की जा सकती कि खिलाड़ी विचारशीलता से काम लेंगे, विशेष रूप से तब, जबकि समस्या उनके संयुक्त लाभ को न्यायपूर्ण ढंग से बाँटने की हो। नेश कसौटी (Nash criterion) दोनों खिलाड़ियों के लिए u_1 और u_2 को शून्य पर मूल्यांकन करके उचित विभाजन करने का प्रयत्न करता है। उचित विभाजन से इन तुष्टिगुणों का गुणन u_1u_2 अधिकतम हो जाता है।

यदि कपटसन्धि को समाप्त कर दिया जाए, तो हम असहकारी स्थिरेतर-राशि खेलों के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, जहाँ प्रत्येक खिलाड़ी दूसरे खिलाड़ी की तरकीब के बारे में अपने अनुमान पर क्रिया करता है। असहकारी स्थिरेतर-राशि खेल कई प्रकार के होते हैं। दो खिलाड़ी, जैसाकि होने की सम्भावना है, अपने स्वार्थों से चालित होकर ऐसी तरकीबों को चुन सकते हैं जो परस्पर हानिकर हों। प्रोफेसर टक्कर (Tucker) की **कैदी की दुविधा** (prisoner's dilemma) स्थिरेतर-राशि खेल की रोचक स्थिति है, जहाँ दो कैदियों को पूछताछ के लिए अलग-अलग बुलाया जाता है। प्रत्येक सावधान होता है कि यदि दोनों में से कोई भी अपराध स्वीकार न करे, तो दोनों को छोड़ दिया जाएगा। परन्तु प्रत्येक को चेतावनी दी जाती है कि जो अपने अपराध को स्वीकार कर लेगा, उसे छोड़ दिया जाएगा और दूसरे को, जो अपराध स्वीकार नहीं करेगा, भारी दण्ड दिया जाएगा। इस प्रकार दोनों ही अपने आपको बचाने की कोशिश में अपराध स्वीकार कर लेंगे और दण्ड पाएँगे। यह सरल उदाहरण यह बताने के लिए महत्त्वपूर्ण है कि सरकार द्वारा अपनाए गए कराधान, राशनिंग आदि विभिन्न तरीकों का थोड़ा-बहुत उद्देश्य सहकारिता प्राप्त करना होता है, केवल जो अपनी सुरक्षा करने के प्रयत्न में प्रत्येक खिलाड़ी को उस समय हानि में बचा सकती है, जबकि इस बात का कोई आश्वासन न हो कि दूसरे वैसा व्यवहार करेंगे जैसा आपस के हितों की माँग हो।

असहकारी स्थिरेतर-राशि खेल पल्याण बिन्दुओं के साथ कई जोड़े तरकीबों के हो सकती है, परन्तु हो सकता है कि उनके प्रदेयक समान न हों। फिर, यदि a_{11} और b_{11} तथा a_{22} और b_{22} सतुलन तरकीबों के जोड़ हों तो यह आवश्यक नहीं कि a_{11} और b_{22} या a_{22} और b_{11} भी संतुलन जोड़े हों। यदि खिलाड़ी तरकीबों के संतुलन जोड़े नहीं चुनते, तो हो सकता है दोनों घाटे में रहें। यह भी सम्भव है कि स्थिरेतर राशि खेल में एक खिलाड़ी अपनी तरकीब को 'धमकी सूचना' (threat information) के रूप में, या अपने विरोधी से किसी प्रकार की ऐसी अर्द्ध-कपटसन्धि करने के लिए उसे सूचना देने के उद्देश्य से प्रचारित कर दे, जो दोनों के लिए परस्पर लाभदायक हो।

4. खेल सिद्धान्त की सीमाएँ
(LIMITATIONS OF GAME THEORY)

खेल सिद्धान्त की उस रूप में कई सीमाएँ है जिसमें मूल्य सिद्धान्त पर उसका व्यवहार किया जाता है।

प्रथम, खेल सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक फर्म अपनी तरकीब के विरुद्ध लड़ाई जाने वाली अन्य फर्म की तरकीब का ज्ञान रखती है और एक सम्भव हल के लिए कूटयुक्ति आधारक (pay-off matrix) का निर्माण कर सकती है। यह एक अत्यन्त अवास्तविक मान्यता है जिसमें कोई यथार्थता नहीं है। एक उद्यमी को अपनी सभी तरकीबों के बारे में पूरा ज्ञान नहीं होता। ऐसी स्थिति में वह अपने प्रतिद्वन्द्वी की तरकीबों के बारे में पूरा ज्ञान कैसे रख सकता है। वह तो अपनी तथा अपने प्रतिद्वन्द्वी की तरकीबों का केवल अनुमान ही लगा सकता है।

दूसरे, खेल का सिद्धान्त इस धारणा पर आधारित है कि द्व्यधिकारी समझदार व्यक्ति है। प्रत्येक प्रतिद्वन्द्वी यह मान कर चलता है कि दूसरा प्रतिद्वन्द्वी हमेशा समझदारी के साथ चाल

चलेगा और फिर वह उससे उलटे चाल चलता है। यह एक अवास्तविक धारणा है क्योंकि उद्यमी सदैव विवेकशीलता के साथ कार्य नहीं करते। परन्तु यदि एक उद्यमी समझदार नहीं है तो वह न तो अधिक्न्यूने और न ही न्यूनाधिके तरकीब अपना सकता है। इस प्रकार वह खेल नहीं खेल सकता और समस्या का हल सभव नहीं।

तीसरे, एक प्रतिद्वन्द्वी द्वारा दूसरे के प्रति अपनाई गई विभिन्न तरकीबें विचार की अनन्त शृखलाओं को जन्म देती है जोकि नितान्त अयथार्थिक है। उदाहरणार्थ, तालिका 32.1 में विचार की शृखलाओं का कोई अन्त नहीं, जब A एक तरकीब चुनता है और B उससे उलट दूसरी तरकीब अपनाता है। इस प्रकार हर उद्यमी को अपनी और अपने प्रतिद्वन्द्वी की तरकीबों पर बार-बार विचार करना पडता है जिससे विचारो की अनन्त शृखलाएँ अपेक्षित होती हैं, जो किसी भी एक व्यक्ति के लिए सभव नहीं।

चौथे, द्वि-व्यक्ति स्थिर-राशि खेल को समझना तो आसान, परन्तु जब विश्लेषण का तीन या चार व्यक्तियो के खेलो पर विस्तार किया जाता है, तो वह जटिल और कठिन बन जाता है। फिर, खेल सिद्धान्त का चार से अधिक खिलाडियो वाले खेलों के सम्बन्ध में विकास नहीं हुआ है। बहुत-सी आर्थिक समस्याओ में कई खिलाडी होते हैं। उदाहरण के लिए, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में विक्रेताओं की सख्या बहुत अधिक होती है और खेल सिद्धान्त इसका कोई हल नहीं देता।

पाँचवें, द्वयधिकार के भी सम्बन्ध मे व्यावहारिकता की दृष्टि से, अपनी स्थिर-राशि खेल की धारणा के साथ खेल सिद्धान्त अवास्तविक है क्योंकि इसका अर्थ है कि 'स्वार्थों के दाँव' (stakes of interest) निरपेक्ष रूप से माप्य तथा स्थानातरयोग्य (measurable and transferable) हैं। फिर न्यूनाधिके-नियम, जो स्थिर-राशि खेल का हल देता है, यह मानकर चलता है कि प्रत्येक खिलाडी सबसे बुरी स्थिति का सर्वोत्तम उपयोग करता है। यदि सबसे बुरी स्थिति पैदा न हो तो सर्वोत्तम स्थिति को भला कैसे जाना जा सकता है? फिर अधिकाश उद्यमी अनुकूल मार्किट स्थितियों के अस्तित्व के अनुमान पर कार्य करते है, और सबसे बुरी स्थिति का सर्वोत्तम उपयोग करने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

छठे, शून्येतर राशि (non-zero sum) खेलो को निश्चित बनाने के लिए, वास्तविक मार्किट स्थितियों में मिश्रित तरकीबों का प्रयोग मिलाने की सभावना नहीं है। इसमें सदेह नहीं कि तरकीबो का अटकलपच्चू चुनाव गुप्तता (secrecy) और अनिश्चितता (uncertainty) ला देता है, पर अधिकाश उद्यमी, जो व्यापार मे गुप्तता को पसद करते है, अनिश्चितता से बचना चाहते है। हाँ यह सभव है कि कोई अल्पाधिकारी यह चाहे कि उसके प्रतिद्वन्द्वी उसके व्यापार भेदों और तरकीबो को जान लें, जिसमे उसका उद्देश्य अधिकतम सयुक्त लाभ प्राप्त करने के लिए उनसे कपटसन्धि (collusion) करना होता है।

अत अन्य द्वयधिकार मॉडलो की तरह, खेल सिद्धान्त भी द्वयधिकार समस्या का सतोषजनक हल प्रदान करने मे सफल नहीं होता। प्रो वाटसन के अनुसार, "यद्यपि खेल सिद्धान्त 1944 से काफी विकसित हुआ है, इसका अल्पाधिकार सिद्धान्त के प्रति योगदान निराशाजनक रहा है।"[3]

खेल सिद्धान्त इन सीमाओ के बावजूद कुछ जटिल आर्थिक समस्याओं का हल प्रदान करने मे सहायक है, चाहे गणितीय तकनीक के रूप मे ही सही, यह अभी अपने विकास की अवस्था मे है।

5 खेल सिद्धान्त का महत्त्व
(IMPORTANCE OF GAME THEORY)

द्वयधिकार मे कीमत निर्धारण के लिए खेल सिद्धान्त के निम्नलिखित महत्त्व हे

1 खेल सिद्धान्त द्वयधिकारियों को किसी तरह सहमत होने के लिए मार्ग-प्रदर्शक का कार्य

3 D Watson *op cit* p 369

करता है। यह इस बात की व्याख्या करने में सहायक होता है कि द्वयधिकार कीमतें क्यों एक स्थिर (rigid) ढंग से लागू की जाती हैं। यदि कीमतें अक्सर परिवर्तित हों, तो सहमत समझौते नहीं पाए जाएंगे और उन्हें लागू करना कठिन हो जाएगा।

2 खेल सिद्धान्त व्यापार में स्वहित (self-interest) के महत्त्व को उजागर करता है। खेल सिद्धान्त में, स्वहित को आर्थिक प्रतियोगिता के तत्त्व द्वारा अपनाया जाता है ताकि प्रणाली को पल्याण बिन्दु (saddle point) तक लाया जा सके। यह पूर्ण प्रतियोगी मार्किट के अस्तित्व को दर्शाता है।

3 खेल सिद्धान्त इस बात की व्याख्या करने का प्रयत्न करता है कि द्वयधिकार समस्या कैसे निर्धारित नहीं हो सकती है। इसके लिए यह स्थिर-राशि-दो-व्यक्ति खेल के अन्तर्गत बिना पल्याण बिन्दु के हल का प्रयोग करता है। साथ ही, द्वयधिकार समस्या का बिना पल्याण बिन्दु का हल, सम्भाविता आधार पर प्रत्येक फर्म द्वारा मिश्रित तरकीबें अपनाकर, किया जाता है। इस प्रकार, द्वयाधिकार समस्या को सदैव निर्धारित दिखाया जाता है।

4 जब दो से अधिक फर्में होती हैं, तब भी खेल सिद्धान्त को मार्किट सतुलन की व्याख्या करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसका हल या तो कपटसंधि अथवा ना-कपट संधि में पाया जाता है। इन्हें सहयोगी स्थिरेतर-राशि खेल और असहयोगी स्थिरेतर-राशि खेल कहते हैं।

5 खेल सिद्धान्त में "कैदी की दुविधा" सामूहिक निर्णयकरण और सहयोग की आवश्यकता की ओर सकेत करती है।

6 खेल सिद्धान्त में एक खिलाड़ी को एक अकेला व्यक्ति या वास्तविक जगत में एक सगठन समझना चाहिए जो कुछ ससाधनों के दिए होने पर निर्णय करता है। खेल सिद्धान्त में कूटनीति यह है कि इस बात का पूर्ण विवरण होता है कि प्रत्येक स्थिति में खेल खेलने पर एक खिलाड़ी क्या करेगा। उदाहरणार्थ, एक फर्म का सचालक अपने सेल स्टाफ को कहता है कि किस प्रकार विज्ञापन अभियान प्रारम्भ किया जाए और वे बाद में प्रतियोगी फर्मों की विभिन्न क्रियाओं की प्रतिक्रिया में क्या कार्यवाही करें।

7 प्रदेयक मूल्यों का महत्त्व इस बात में पाया जाता है कि ये खिलाड़ी की ओर से वैकल्पिक चुनावों की एक शृखला के परिणाम का पूर्वानुमान लगाते हैं। इस प्रकार, एक प्रदेयक आधारक का एक खिलाड़ी को पूर्ण ज्ञान का अर्थ है कि सभी साधनों के पूर्ण पूर्वानुमान वैकल्पिक कूटनीतियों के परिणामों को प्रभावित करते हैं।

8 खेल सिद्धान्त व्यापार, श्रम और प्रबधन की समस्याओं को हल करने में सहायक होता है। वास्तव में, एक व्यापारी अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए सदैव अपने विपक्षियों की कूटनीति का अनुमान लगाने का प्रयत्न करता है। इसी प्रकार, प्रबधन ऊची मजदूरी के लिए श्रम सघ की सौदेबाजी की समस्या का हल खेल सिद्धान्त द्वारा करने का प्रयत्न करता है। प्रबधन ऐसी समस्या को हल करने के लिए सबसे लाभदायक प्रति-कूटनीति अपनाएगा। फिर, उत्पादक ऐसा निर्णय लेते हैं जिनमें लाभों के अनुमान को उत्पादन की लागत के विरुद्ध सतुलित किया जा सके।

प्रश्न

1 खेल सिद्धान्त द्वारा द्वयधिकार का निश्चित हल दीजिए।

2 यह दिखाइए कि किस प्रकार द्वयधिकार समस्या का हल यह मान कर किया जा सकता है कि द्वयधिकारी दो व्यक्ति शून्य राशि में लगे हों?

3, एक उपयुक्त उदाहरण सहित यह बताइए कि किस प्रकार द्वि-व्यक्ति स्थिर-राशि खेल का हल बिना पल्याण बिन्दु के प्राप्त किया जा सकता है?

4 न्यूनाधिक तरकीब (minimax strategy) क्या होती है? क्या आप समझते हैं कि यह फर्मों के व्यवहार की अर्थपूर्ण व्याख्या करती है?

अध्याय 33

आगत-निर्गत विश्लेषण
(INPUT-OUTPUT ANALYSIS)

1. प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

आगत-निर्गत आयोजन की एक नई तकनीक है जिसका आविष्कार प्रोफेसर वैसिली डब्ल्यू लियोन्तिफ (Professor Wassily W Leontief) ने 1951 में किया। अर्थव्यवस्था की परस्पर-निर्भरताओं तथा जटिलताओ को समझने के लिए अन्त उद्योग (inter-industry) के सम्बन्धो का विश्लेषण करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है और इस विश्लेषण से, इस प्रकार पूर्ति और माँग मे सतुलन बनाए रखने की स्थितियो को समझा जा सकता है। इस प्रकार यह तकनीक अर्थव्यवस्था के सामान्य सतुलन की व्याख्या करती है। इसे "अन्त उद्योग विश्लेषण" भी कहते है।

आगत-निर्गत विधि का विश्लेषण करने से पहले, 'आगत' तथा 'निर्गत' शब्दो का अर्थ समझ लिया जाए। प्रो जे आर हिक्स के अनुसार, आगत "वह वस्तु है जिसे उद्यम के लिए खरीदा जाता है" और निर्गत वह है "जिसे उद्यम बेचता है।" एक आगत प्राप्त होती है, जबकि निर्गत का उत्पादन किया जाता है। आगत तो फर्म के खर्च को प्रकट करती है और निर्गत उसकी आमदनी को। आगतो के मुद्रा मूल्यो का जोड एक फर्म की कुल लागत होती है और निर्गतो के मुद्रा मूल्यो का जोड फर्म का कुल आगम (revenue) होता है।

आगत-निर्गत विश्लेषण यह बताता है कि समस्त आर्थिक व्यवस्था मे औद्योगिक अन्त सम्बन्ध और अन्तर्निर्भरताएँ होती है। एक उद्योग की आगत दूसरे उद्योग की निर्गत होती है। और विलोमश भी, जिससे अन्त मे उनके आपसी सम्बन्धो के कारण समस्त अर्थव्यवस्था मे पूर्ति और माँग का सन्तुलन स्थापित हो जाता है। 'इस्पात उद्योग' के लिए कोयला आगत है और कोयला उद्योग के लिए इस्पात आगत है, वैसे ये अपने-अपने उद्योग की निर्गतें है। आर्थिक-क्रिया का अधिकाश भाग मध्यवर्ती वस्तुओ (आगतो) के उत्पादन मे लगा रहता है जिनका अन्तिम वस्तुओ (निर्गतो) के उत्पादन मे फिर प्रयोग होता है। भिन्न-भिन्न उद्योगो के बीच "भँवर और प्रति-धाराओ" मे वस्तुओ के प्रवाह होते है। बीच की वस्तुओं के बडे अन्त उद्योग प्रवाहो से पूर्ति पक्ष बनता है और अन्तिम वस्तुओ से माँग-पक्ष। साराश यह, आगत-निर्गत विश्लेषण का अर्थ है कि सतुलन की स्थिति मे, समस्त अर्थव्यवस्था के कुल उत्पादन का मुद्रा मूल्य अन्त उद्योग आगतो के मुद्रा मूल्य की राशि तथा अन्त उद्योग निर्गतो के मुद्रा मूल्यो की राशि के जोड के बराबर होना जरूरी है।

2. प्रमुख विशेषताएँ
(MAIN FEATURES)

आगत-निर्गत विश्लेषण सामान्य सतुलन का उत्कृष्टतम रूप है। कुल मिलाकर, इसके प्रमुख तत्व तीन है। प्रथम, आगत-निर्गत विश्लेषण उस अर्थव्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित करना है जो सतुलन

मे हो। आंशिक सतुलन विश्लेषण पर यह लागू नहीं होता। दूसरे, यह माँग-विश्लेषण से कोई वास्ता नहीं रखता। यह केवल उत्पादन की तकनीकी समस्याओं पर विचार करता है। अन्तिम, यह अनुभाविक अन्वेषण पर आधारित है।

आगत-निर्गत विश्लेषण के दो भाग होते है आगत-निर्गत तालिका का निर्माण और आगत-निर्गत मॉडल का प्रयोग।

3. स्थैतिक आगत-निर्गत मॉडल
(STATIC INPUT-OUTPUT MODEL)

आगत-निर्गत विश्लेषण किसी एक विशेष वर्ष मे समस्त अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध रखती है। यह भिन्न-भिन्न उत्पादक क्षेत्रो के बीच वस्तुओ और सेवाओ के प्रवाहो के, विशेष रूप मे अन्त उद्योग प्रवाहो के, मूल्यो को प्रकट करती है।

इसकी मान्यताएँ (Assumptions)

यह विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित है

(i) समस्त अर्थव्यवस्था दो क्षेत्रो मे विभक्त होती है, 'अन्त उद्योग क्षेत्रो' तथा 'अन्तिम माँग क्षेत्रो'। दोनो का आगे उपक्षेत्रो मे विभाजन किया जा सकता है।

(ii) किसी भी अन्त उद्योग क्षेत्र के कुल उत्पादन का सामान्य रूप से आगतो के रूप मे अन्य अन्त उद्योग क्षेत्रो या उसी क्षेत्र और अन्तिम माँग क्षेत्रो द्वारा प्रयोग किया जा सकता है।

(iii) किन्हीं दो वस्तुओ का सयुक्त उत्पादन नहीं होता। प्रत्येक उद्योग केवल एक समरूप वस्तु का उत्पादन करता है।

(iv) कीमते, उपभोक्ता माँग और साधन पूर्तियाँ दी हुई है।

(v) पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते है।

(vi) उत्पादन की बाह्य मितव्ययिताएँ तथा अमितव्ययिताएँ नहीं पायी जातीं।

(vii) आगतो के सयोग स्थिर निश्चित अनुपातो मे प्रयोग किए जाते है। आगतों-निर्गतों के स्तर स्थिर अनुपात मे रहते है। इसका अर्थ है कि भिन्न-भिन्न वस्तुओ मे स्थानापन्नता नहीं होती और न ही कोई प्रौद्योगिकी उन्नति होती है। उत्पादन के स्थिर आगत गुणाक होते है।

समझने के लिए, एक त्रि-क्षेत्र अर्थव्यवस्था को लिया जा रहा है जिसमे कृषि और उद्योग, ये दो तो अन्त उद्योग क्षेत्र है, और तीसरा घरेलू क्षेत्र है जो कि अन्तिम माँग क्षेत्र है।

आगे दी गई तालिका 33.1 ऐसी अर्थव्यवस्था का सरलीकृत चित्र प्रस्तुत करती है।

इस तालिका मे कृषि, औद्योगिक क्षेत्रो तथा मूल्य-वृद्धि की कुल निर्गत को पक्तियो (बाए से दाए) मे रखा गया है और कृषि, औद्योगिक क्षेत्रो तथा मूल्य-वृद्धि मे बाँट दिया गया है। इन क्षेत्रों की आगतों को स्तभो मे रखा गया है। प्रथम पक्ति का जोड-प्रकट करता है कि कृषि निर्गत का मूल्य प्रति वर्ष 300 है। इसमे से, पक्ति (1) स्तम्भ (1) यह दिखाता है कि 50 कृषि क्षेत्र द्वारा उत्पादित किया जाता है और उपभोग में लाया जाता है। पक्ति (1) स्तम्भ (2) 150 की राशि कृषि द्वारा औद्योगिक क्षेत्र को बेची जाती है। तथा पक्ति (1) स्तम्भ (3) यह दिखाता है कि 100 की राशि कृषि द्वारा अन्तिम माँग या उपभोग के लिए बेची जाती है। इसी प्रकार, दूसरी पक्ति औद्योगिक क्षेत्र की प्रति वर्ष 500 के मूल्य की कुल निर्गत के वितरण को प्रकट करती है। स्तम्भ (1), (2), (3) से स्पष्ट है कि उत्पादन की गई वस्तुओ की 100 इकाइयाँ कृषि को, 250 उद्योग को स्वय, और 150 अन्तिम उपभोग के लिए घरेलू क्षेत्र को बेची जाती है।

(ऊपर से नीचे पढते हुए) स्तम्भों को लीजिए। पहला स्तम्भ कृषि-उद्योग की आगत या लागत ढाँचे का विवरण बताता है। 300 के मूल्य की कृषि-निर्गत का उत्पादन, कृषि वस्तुओं की 50,

औद्योगिक वस्तुओ की 100, और श्रम या/तथा प्रबन्धक से की गई 150 मूल्य की क्रय की गई इकाइयो से होता है। दूसरे शब्दो मे कह सकते है कि कृषि क्षेत्र से 300 का आगम प्राप्त करने के लिए 300 लागत आती है। इसी प्रकार, दूसरा स्तम्भ औद्योगिक क्षेत्र के आगत ढाँचे की व्याख्या करता है (अर्थात 150 + 250 + 100 = 500)। इस प्रकार "एक स्तम्भ अनुरूप उद्योग के उत्पादन फलन पर एक बिन्दु देता है।" अन्तिम माँग स्तम्भ यह प्रकट करता है कि उपभोग और सरकारी खर्च के लिए क्या मिल सकता है। इस स्तम्भ के अनुरूप तीसरी पक्ति को शून्य दिखाया गया है। इसका मतलब है कि श्रम का सीधा उपभोग नहीं होता। ध्यान देने योग्य है कि मूल्य-वृद्धि तथा अन्तिम माँग के कुल जोड एक दूसरे के बराबर होने है, अर्थात 250

तालिका 33 1 आगत-निर्गत तालिका

(मूल्य के रूप मे)

क्षेत्र	क्रय-क्षेत्र (1) कृषि को आगत	(2) उद्योग को आगत	अन्तिम माँग	कुल निर्गत या कुल आगम
विक्रय क्षेत्र				
1 कृषि	50	150	100	300
2 उद्योग	100	250	150	500
3 मूल्य-वृद्धि	150	100	0	250
कुल आगत या कुल लागत	300	500	250	1050

दो प्रकार के सम्बन्ध उस ढग को निर्धारित करते है, जिसमे अर्थव्यवस्था व्यवहार करती है और स्रोतो के प्रवाह के एक निश्चित नमूने को धारण कर लेती है। वे है

(i) अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र की आन्तरिक स्थिरता या सतुलन, तथा

(ii) प्रत्येक क्षेत्र या अन्तर्क्षेत्रीय सम्बन्धो की बाह्य स्थिरता।

प्रोफेसर लियोनतिफ इन्हे 'सतुलन और सरचना मे आधारभूत सम्बन्ध' (fundamental relation of balance and structure) कहता है। इनकी गणितीय अभिव्यक्ति **सतुलन समीकरण** (balance equation) **या सरचनात्मक समीकरण** (structural equation) कहलाती है।

मान लीजिए, उद्योग न i की कुल निर्गत X_i को उद्योगो की विभिन्न सख्या 1, 2, 3 n मे विभाजित करे तथा D_i अन्तिम माँग हो, तो सतुलन समीकरण यह बनता है

$$X_i = x_{i_1} + x_{i_2} + x_{i_3} \quad + x_{i_n} + D_i \qquad (1)$$

और मान लीजिए Y_i मात्रा, जो 'बाहरी क्षेत्र' (outside sector) मे खप जाती है, को भी ध्यान मे रखा जाए तो उद्योग न i का सतुलन समीकरण यह बन जाएगा

$$X_i = x_{i_1} + x_{i_2} + x_{i_3} + \quad + x_{i_n} + D_i + Y_i$$

अथवा $$\sum_{j=1}^{n} x_{ij} + Y_i = X_i \qquad (2)$$

यह ध्यान रहे कि उद्योग i की वस्तुओ के उपभोग, निवेश और निर्यात (आयातो को निकाल कर) इत्यादि के प्रवाहो के कुल जोड को Y_i प्रकट करता है। इसे **वस्तुओ का अन्तिम बिल** (final bill of goods) *भी कहते है जिसे भरना निर्गत का काम है।* सतुलन समीकरण माँग और पूर्ति के बीच सतुलन की स्थितियो को दर्शाता है। यह एक उद्योग से अन्य उद्योगो को तथा अन्य उद्योगो से एक

उद्योग की निर्गतों और आगतों के प्रवाहों को व्यक्त करता है।

विश्लेषण में सतुलन समीकरणों की प्रणाली योजना की आन्तरिक सगति की शर्तों को प्रदान करती है। उनके बिना योजना सभव नहीं हो सकती क्योंकि यदि ये शर्तें पूरी नहीं होती, तो कुछ वस्तुओं की कमी और अन्य का आधिक्य होगा।

क्योंकि x_{ij} उद्योग i के उद्योग न 2 द्वारा खपाई गई राशि को व्यक्त करता है, इससे निष्कर्ष निकलता है कि x_{ij} उद्योग i के उद्योग न j द्वारा खपाई गई राशि को व्यक्त करता है। उद्योग i का "तकनीकी गुणाक" या "आगत गुणाक" इसे निर्दिष्ट किया जाता है

$$a_{ij} = \frac{x_{ij}}{X_j} \quad (3)$$

जहां x_{ij} उद्योग i से उद्योग j को प्रवाह है, X_j उद्योग j की कुल निर्गत है और a_{ij} स्थिराक है जिसे i उद्योग में तकनीकी गुणाक या प्रवाह गुणाक कहते है। तकनीकी गुणाक एक उद्योग के निर्गत की एक की इकाइयों की सख्या जिन्हें अन्य उद्योग के निर्गत की एक इकाई उत्पादित करने को दर्शाता है। समीकरण (3) "सरचनात्मक समीकरण" कहलाता है। यह बताता है कि एक उद्योग की निर्गत सभी उद्योगों द्वारा खपाई जाती है जो समस्त अर्थव्यवस्था के प्रवाह ढाँचे को दर्शाता है। अनेक सरचनात्मक समीकरण अर्थव्यवस्था की वर्तमान प्रौद्योगिकी स्थितियों का सक्षिप्त विवरण देते है।

अपने उदाहरण में, द्वि-क्षेत्र आगत-निर्गत तालिका 33 1 से a_{ij} की आगणना करने के लिए, समीकरण (3) का प्रयोग करके, हम प्रौद्योगिकी गुणाक आव्यूह (technology coefficient matrix) प्राप्त करते हैं जिसे तालिका 33.2 में दिखाया गया है।

तालिका 33 2 : प्रौद्योगिकी गुणाक आव्यूह

	कृषि	उद्योग
कृषि	50/300 = 0 17	150/500 = 0.30
उद्योग	100/300 = 0.33	250/500 = 0.50

तालिका 33 1 के पहले स्तभ की प्रत्येक वस्तु को पहली पक्ति के कुल जोड से विभक्त करके, दूसरे स्तंभ की प्रत्येक वस्तु को दूसरी पक्ति के कुल जोड से विभक्त करके, और इसी तरह आगे भी, इन आगत गुणाकों को निकाला गया है।[1] क्योंकि ये गुणाक स्थिर मान लिए गए है इसलिए आगत-निर्गत तालिका का प्रयोग, कुल निर्गत मे किसी क्षेत्रीय परिवर्तन के समस्त अर्थव्यवस्था पर पडने वाले प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभावों को मापने के लिए किया जा सकता है। इसको बीजगणितीय युगपत समीकरणों द्वारा आगत-निर्गत प्रणाली को व्यक्त करके किया जाता है।

4. गत्यात्मक आगत-निर्गत मॉडल (DYNAMIC INPUT-OUTPUT MODEL)

अब तक हमने खुले स्थैतिक मॉडल का अध्ययन किया है। "मॉडल उस समय गत्यात्मक बन जाता है, जब 'वस्तुओं के अन्तिम बिल' के निवेश भाग को निर्गत से जोडकर उसे बन्द कर दिया जाए।"[2]

1. मूल्य-वृद्धि तथा अन्तिम माँग को प्रौद्योगिकी गुणाक आव्यूह मे दिखाया जा सकता है क्योंकि सभी गुणाकों का जोड अवश्य एक के बराबर होना चाहिए। लेकिन तालिका रूप मे इसको नहीं किया जाता है।

2 J Sandee, A *Demonstration Planning Model for India*

लियोनतिफ गत्यात्मक आगत-निर्गत मॉडल स्थैतिक मॉडल का सामान्यीकरण है और उन्हीं मान्यताओं पर आधारित है। गत्यात्मक मॉडल मे, एक दी हुई अवधि की निर्गत स्टॉक मे चली जानी चाहिए अर्थात् पूँजी वस्तुएँ और स्टॉक बारी से n उद्योगो मे वितरित हो जाते है। सतुलन समीकरण यह है

$$X_i(t) = x_{i_1}(t) + x_{i_2} + (t) + x_{i_3}(t) \quad + x_{i_n}(t)$$
$$+ (S'_{i_1} + S'_{i_2} + S'_i + \quad S'_{i_n}) + D_i(t) + Y_i(t) \tag{4}$$

यहाँ $X_i(t)$, t अवधि के उद्योग न , के निर्गत के कुल प्रवाह को प्रकट करता है, जिसका तीन उद्देश्यो के लिए प्रयोग किया जाता है

(i) उस अवधि मे अर्थव्यवस्था के n उद्योगो $x_{i_1}(t), x_{i_2}(t)$ इत्यादि मे उत्पादन के लिए।

(ii) n उद्योगों मे पूँजी वस्तुओ के स्टॉक मे शुद्ध वृद्धि (addition) करने के लिए अर्थात् S'_i जिसे यो भी लिख सकते है $\Delta S_i(t) = S_i(t+1) - S_i(t)$ जहाँ $S_i(t)$, चालू अवधि (t) मे पूँजी के सचित स्टॉक को प्रकट करता है, और $S_i(t+1)$ अगले वर्ष के स्टॉक को, और

(iii) अगली अवधि की उपभोग माँग $D_i(t+1)$ के रूप मे।

यदि हम मूल्यह्रास (depreciation) और टूट-फूट को छोड दे तो $S_i(t+1) - S_i(t)$ चालू उत्पादन मे से पूँजी स्टॉक मे शुद्ध वृद्धि है। इसलिए समीकरण (4) को इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$X_i(t) = x_{i1}(t) + x_{i2}(t) + x_{i3}(t) + \quad x_{in}(t) + S_i(t+1) - S_i(t) + D_i(t) + Y_i(t)$$

$Y_i(t)$, अवधि t मे बाह्य क्षेत्र की खपत की मात्रा को प्रकट करता है।

जैसे स्थैतिक मॉडल मे प्रौद्योगिकी गुणाक निकाला था, ठीक उसी ढग से पूँजी गुणाक भी निकाला जा सकता है। उद्योग न j द्वारा प्रयोग की गई वस्तु न i का पूँजी गुणाक यों व्यक्त किया जाता है

$$b_{ij} = \frac{S_{ij}}{X_j}$$

प्रति गुणन से, हमे प्राप्त होता है

$$S_{ij} = b_{ij} X_j \tag{5}$$

जहाँ S_{ij} उद्योग न j द्वारा प्रयोग की गई वस्तु न i के पूँजी स्टॉक की मात्रा को व्यक्त करता है। X_j उद्योग j की कुल निर्गत है, और b_{ij} स्थिराक है जिसे पूँजी गुणाक या स्टॉक गुणाक कहते है। गत्यात्मक मॉडल मे समीकरण सरचनात्मक समीकरण है।

यदि b_{ij} गुणाक शून्य हो तो इसका मतलब होगा कि उद्योग को किसी स्टॉक की आवश्यकता नहीं है और गत्यात्मक मॉडल तब स्थैतिक मॉडल बन जाता है। फिर, b_{ij} न तो ऋणात्मक हो सकता है और न ही अनन्त। यदि पूँजी गुणाक ऋणात्मक हो, तो आगत वास्तव मे उद्योग की निर्गत होती है।

5. आगत-निर्गत विश्लेषण की सीमाएँ
(LIMITATIONS OF INPUT-OUTPUT ANALYSIS)

आगत-निर्गत विश्लेषण की अपनी त्रुटियाँ है।

(1) इसका ढाँचा लियोनतिफ की इस मूल धारणा पर स्थित है कि उत्पादन का आगत गुणाक स्थिर होता है, जिसे हमने ऊपर पैमाने के स्थिर प्रतिफल और उत्पादन की स्थिर तकनीक मे अलग-अलग तोड दिया है। पैमाने के स्थिर प्रतिफल की मान्यता स्थिर अर्थव्यवस्था मे सही होती है, जबकि उत्पादन की स्थिर तकनीक प्रौद्योगिकी मे सही उतरती है। ये मान्यताएँ वास्तविकता की

हत्या कर देती है। तथाकथित गत्यात्मक मॉडल में भी वे अन्त: उद्योग विश्लेषण का गतिशीलता से प्रतिपादन नहीं करतीं। यह मॉडल हमें इस बारे में कुछ नहीं बताता कि स्थितियों में परिवर्तन होने पर तकनीकी गुणाक में कैसे परिवर्तन होगा। फिर, हो सकता है कि कुछ उद्योगों की एकरूप पूँजी संरचनाएँ हों, कुछ की भारी पूँजी आवश्यकताएँ हों, जबकि कुछ पूँजी का प्रयोग ही न करें। उत्पादन की तकनीकों के प्रयोग में ऐसे परिवर्तन उत्पादन के स्थिर गुणाकों की धारणा को अवास्तविक बना देते हैं।

(2) फिर, उत्पादन के स्थिर गुणाक की यह मान्यता साधन स्थानापन्नता की सम्भाव्यताओं की उपेक्षा करती है। वास्तव में, अल्पकाल में भी कुछ स्थानापन्नताओं की सदैव सम्भाव्यताएँ होती हैं, जबकि दीर्घकाल में स्थानापन्नता सम्भाव्यताएँ सापेक्षतया अधिक होती हैं।

(3) इससे भी बढ़कर, आगत-निर्गत मॉडल की स्थिरता, अड़चनों, बढ़ती लागतों इत्यादि की स्थितियों पर विचार नहीं करती।

(4) आगत-निर्गत मॉडल अत्यन्त सरलीकृत तथा सीमित है क्योंकि यह अर्थव्यवस्था के केवल उत्पादन पक्ष पर ही सारा बल देता है। यह हमें इस बारे में कुछ नहीं बताता कि अर्थव्यवस्था में केवल आगतें और निर्गतें एक विशेष ढाँचे की ही क्यों होती हैं।

(5) "अन्तिम माँग" या "वस्तुओं के बिल" के सम्बन्ध में एक और कठिनाई उत्पन्न होती है। इस मॉडल में सरकार तथा उपभोक्ताओं के क्रय दिए हुए मान लिए जाते हैं और उन्हें वस्तुओं का विशिष्ट बिल समझ लेते हैं। अन्तिम माँग को स्वतन्त्र चर समझा जाता है। इसलिए, हो सकता है कि या तो यह सब साधनों का आनुपातिक उपयोग न कर पाए, या फिर इसे उनकी उपलब्ध पूर्ति से अधिक की जरूरत पड़ जाए। उत्पादन के गुणाक की स्थिरता मानकर यह विश्लेषण इस कठिनाई को हल नहीं कर पाता।

(6) इस विश्लेषण में कीमत-समायोजन सम्बन्धी कोई यन्त्र नहीं पाया जाता, जो अव्यावहारिक है।

(7) यह विश्लेषण प्रति इकाई निर्गत के उत्पादन के लिए आगत की एक स्थिर मात्रा के आधार पर क्रियाशील होता है, जो वास्तविक नहीं है। क्योंकि साधन अधिकतर अविभाज्य होते हैं इसलिए निर्गतों में वृद्धियाँ सदैव आगतों में आनुपातिक वृद्धियाँ अपेक्षित नहीं रखतीं।

(8) अन्तिम, आगत-निर्गत मॉडल समीकरणों पर पनपता है जिन पर आसानी से नहीं पहुँचा जा सकता। पहली बात तो यह है कि समीकरणों का नमूना तैयार करना पड़ता है, फिर आवश्यक भारी-भरकम आँकड़े इकट्ठे करने पड़ते हैं। समीकरणों के लिए ऊँचे गणित का ज्ञान अपेक्षित है और ठीक आँकड़ों को निश्चित करना भी उतना आसान नहीं है। इससे आगत-निर्गत मॉडल अमूर्त और कठिन बन जाता है।

6. महत्त्व
(IMPORTANCE)

परन्तु इन सीमाओं के बावजूद आगत-निर्गत की धारणा अर्थशास्त्र में अत्यन्त व्यावहारिक मूल्य और महत्त्व रखती है।

(1) आगत-निर्गत तालिका से एक उत्पादक उन वस्तुओं की किस्में और मात्राएँ जान सकता है जिन्हें वह स्वयं तथा अन्य फर्में क्रय-विक्रय करती हैं। इस तरीके से वह आवश्यक समायोजन कर सकता है और उत्पादकों की तुलना में अपनी स्थिति को सुधार सकता है।

(2) आगत-निर्गत तालिका से गुटबंदी के प्रति सम्भव झुकावों के बारे में, फर्मों और उद्योगों के आपसी सम्बन्धों का भी पता लगाया जा सकता है।

(3) आगत-निर्गत तालिका से, लम्बी हड़ताल, युद्ध और व्यापार चक्र की प्रतिक्रिया का आसानी से सबोध हो सकता है।

(4) राष्ट्रीय आय का हिसाब लगाने के लिए भी आगत-निर्गत विश्लेषण का प्रयोग होने लगा है "क्योंकि यह समष्टि-समूहो और मुद्रा प्रवाहो का अधिक विस्तृत हल प्रदान करता है।"

हम प्रो हुसविज (Husweız) के शब्दों में निष्कर्ष दे सकते हैं कि "इस प्रकार का विश्लेषण अर्थशास्त्र के विज्ञान के विकास के लिए आश्चर्यजनक मूल्य और महत्त्व का है तथा यह स्वाभाविक ही है कि इसकी व्यावहारिकता के क्षेत्र और इसकी रीति से सबधित कुछ पहलुओं पर वाद-विवाद पाया जाए।"

प्रश्न

1 उदाहरणो सहित आगत-निर्गत विश्लेषण की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
2 लियोनतिफ़ के स्थैतिक आगत-निर्गत मॉडल की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

अध्याय 34

रेखीय प्रोग्रामिंग
(LINEAR PROGRAMMING)

1 प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

रेखीय प्रोग्रामिंग एक गणितीय विधि है जिसका गणितज्ञ जार्ज डैनज़िग (George Dantzig) ने, सेनाओं को पूर्ति पहुँचाने की समस्या से सम्बन्धित अमरीका की वायु सेना के विभिन्न कार्य-कलापों की योजना बनाने के लिए, 1947 में विकसित किया था। फर्म के आर्थिक सिद्धान्त, प्रबन्धात्मक अर्थशास्त्र, अन्तःप्रादेशिक व्यापार, सामान्य सतुलन विश्लेषण, कल्याण अर्थशास्त्र और विकास आयोजन में प्रयोग के लिए भी इसका विकास हुआ है। इस अध्याय में फर्म से सम्बन्धित रेखीय प्रोग्रामिंग की व्याख्या की जा रही है। अन्तिम खण्ड में इष्टतमीकरण (optimisation) तकनीक के रूप में सीमात विश्लेषण और रेखीय प्रोग्रामिंग का अध्ययन किया गया है।

2. अर्थ
(MEANING)

अधिकतमीकरण तथा न्यूनतमीकरण की समस्याओं को इष्टतमीकरण (optimisation) की समस्याएँ भी कहते हैं। इन समस्याओं को हल करने के लिए अर्थशास्त्रियों द्वारा जो तकनीकें अपनाई जाती है उन्हें रेखीय प्रोग्रामिंग कहते हैं। रेखीय असमानताओं के रूप में कुछ सरोधनों (constraints) के रहते हुए, इष्टतम निर्णयों के विश्लेषण के लिए यह एक गणितीय तकनीक है। गणितीय भाषा में यह उन सब समस्याओं पर लागू होती है जिनमें, कुछ चरों के रूप में व्यक्त रेखीय असमानताओं का व्यवस्था के रहते हुए, अधिकतमीकरण (maximisation) तथा न्यूनतमीकरण (minimisation) के हलों की जरूरत होती है।[1] यदि x और y, दो चर (*variables*), z के फलन (*function*) हों, तो z का मूल्य उस समय अधिकतम होगा, जब उस बिन्दु से की गई किसी भी गति से z का मूल्य कम हो जाए। z का मूल्य उस समय न्यूनतम होता है, जबकि किसी भी गति से z का मूल्य अधिक हो जाए। जब निर्गत के आकार के साथ प्रति इकाई लागत और कीमत में परिवर्तन हो, तो समस्या रेखीय नहीं होती और *यदि निर्गत के साथ उनमें परिवर्तन नहीं होता, तो समस्या रेखीय होती है।* इस प्रकार प्रोग्रामिंग की परिभाषा यों दी जा सकती है कि यह वह विधि है जो दी हुई निर्गत के

1 "It is a mathematical technique for the analysis of optimum decision subject to *certain constraints* in the form of linear inequalities Mathematically speaking, it applies to those *problems* which require the solution of maximisation or minimisation problems subject to a system of linear inequalities stated in terms of certain variables "

उत्पादन के लिए साधनों के इष्टतम संयोग या दिए हुए प्लांट और उपकरण से उत्पादन की जाने वाली वस्तु के इष्टतम संयोग का निर्णय करती है।[2] एक वस्तु के उत्पादन में तकनीकी विविधता का निर्णय करने के लिए भी इसका प्रयोग होता है।

3. शर्तें एवं सामान्यीकरण
(CONDITIONS AND GENERALISATION)

रेखीय प्रोग्रामिंग तकनीक का प्रयोग कुछ शर्तों और सामान्यीकरण पर निर्भर करता है।

प्रथम, एक निश्चित उद्देश्य होता है। यह उद्देश्य लाभ या आय को अधिकतम बनाना या लागतों को न्यूनतम करना हो सकता है। इसे उद्देश्य फलन (objective function) या कसौटी फलन (criterion function) कहते हैं। यदि एक मात्रा अधिकतम बनती है तो उसकी ऋणात्मक मात्रा न्यूनतम बन जाती है। प्रत्येक अधिकतमीकरण समस्या का द्वैध (dual) न्यूनतमीकरण की समस्या होती है। मूल समस्या प्रमुख (primal) समस्या है, जिसकी हमेशा एक द्वैध होती है। यदि प्रमुख समस्या का सम्बन्ध अधिकतमीकरण से हो, तो द्वैध का न्यूनतमीकरण से होगा और विलोमश भी।

दूसरे, उद्देश्य को पूरा करने के लिए वैकल्पिक उत्पादन प्रक्रियाएँ (processes) होनी चाहिए। प्रक्रिया या सक्रियता (activity) का विचार रेखीय प्रोग्रामिंग में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रक्रिया "किसी आर्थिक काम को करने की विशिष्ट विधि है।" यह "किसी प्रकार की भौतिकी क्रिया होती है, जैसे किसी वस्तु का उपभोग करना, किसी का संग्रह करना, किसी का क्रय करना, किस वस्तु को फेंक देना और एक विशेष ढंग से किसी वस्तु का उत्पादन करना।" रेखीय प्रोग्रामिंग तकनीक निर्णय करने वाली एजेन्सी की इस बात में सहायता करती है कि वह उद्देश्य को पूरा करने के लिए सबसे अधिक दक्ष तथा मितव्ययी प्रक्रिया चुन सके।

तीसरे, समस्या के कुछ संरोधन (constraints) या अवरोधक (restraints) भी जरूर होते हैं। वे समस्या की स्थितियों से सम्बन्धित सीमाएँ या बाधाएँ होती हैं जो यह बताती हैं कि क्या-क्या नहीं किया जा सकता और क्या-क्या करना आवश्यक है। इन्हें असमानताएँ (inequalities) भी कहते हैं। उत्पादन में प्रायः वे भूमि, श्रम और पूँजी की दी हुई मात्राएँ होती हैं, जिनका एक निश्चित उद्देश्य को पूरा करने के लिए दक्षतम प्रक्रिया में प्रयोग होता है।

चौथे, 'चुनाव चर' (choice variables) भी होते हैं। ये वे मदें हैं जिनका चुनाव किया जाता है, ताकि उद्देश्य फलन को अधिकतम या न्यूनतम बनाया जा सके और सब अवरोधों को सन्तुष्ट किया जा सके।

अन्तिम, सम्भाव्य (feasible) और इष्टतम (optimal) हल होते हैं। उपभोक्ता की आय और वस्तुओं की कीमतें दी हुई होने पर, वस्तुओं के सब सम्भव संयोग, जिन्हें वह सम्भाव्यता से खरीद सकता है, सम्भाव्य हल होते हैं। उपभोक्ता के लिए, दो वस्तुओं के सम्भाव्य हल वे सब संयोग होते हैं, जो बजट रेखा पर या उससे बाएँ को स्थित हों जबकि समलागत रेखा (isocost line) पर के या तो उस पर या उसके दाएँ को स्थित होते हैं।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सम्भाव्य हल वह है, जो सब अवरोधों को सन्तुष्ट करे। सब सम्भाव्य हलों में से श्रेष्ठतम हल इष्टतम हल (optimum solution) होता है। यदि एक सम्भाव्य हल उद्देश्य फलन को अधिकतम या न्यूनतम बनाता है तो वह इष्टतम हल होता है। सब सम्भव सम्भाव्य हलों में से इष्टतम हल ढूँढने का श्रेष्ठतम उपलब्ध तरीका सिम्पलैक्स विधि (simplex method) है।

2 "Linear programming is a method to decide the optimum combination of factors to produce a given output or the optimum combination of products to be produced by given plant and equipment."

सिम्प्लैक्स विधि नाम से प्रसिद्ध यह तरीका अत्यन्त गणितीय और तकनीकी है। जो रेखीय प्रोग्रामिंग का प्रमुख लक्ष्य इष्टतम हलों को ढूँढना और उनकी विशेषताओं का अध्ययन करना है।

4. फर्म के सिद्धान्त पर उपयोग
(APPLICATION TO THE THEORY OF THE FIRM)

फर्म का नवक्लासिकी सिद्धान्त तक समय में एक या दो चरों को लेकर निर्णयकरण की समस्या का विश्लेषण करता है। इसका संबध एक समय में एक उत्पादन प्रक्रिया से होता है। रेखीय प्रोग्रामिंग में उत्पादन फलन आर्थिक सिद्धान्त के इन सीमित क्षेत्रों के परे चला जाता है। यह उत्पादन प्रक्रिया में जो विभिन्न क्षमता सीमाएं और बाधाएं उत्पन्न होती हैं उन पर विचार करता है। यह लागतों का न्यूनतमीकरण अथवा लाभों का अधिकतमीकरण करने के लिए विभिन्न जटिल उत्पादकीय प्रक्रियाओं के बीच चुनाव करता है।

मान्यताएँ (Assumptions)—फर्म का रेखीय प्रोग्रामिंग विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

(i) निर्णय करने वाली संस्था को कुछ संरोधनों (constraints) या साधन बाधाओं (restrictions) का सामना करना पड़ता है। हो सकता है कि वे उधार, कच्चा माल या उसके कार्यकलापों पर स्थान संरोधन (space constraints) हों। संरोधनों का प्रकार वास्तव में समस्या की प्रकृति पर निर्भर करता है। अधिकांश रूप से वे उत्पादन प्रक्रिया के स्थिर साधन होते हैं।

(ii) यह वैकल्पिक उत्पादन प्रक्रियाओं की संख्या सीमित मानकर चलता है।

(iii) इसकी एक मान्यता यह है कि भिन्न-भिन्न चरों में रेखीय सम्बन्ध होते हैं जिसका मतलब है कि एक प्रक्रिया के अंतर्गत आगत-निर्गत के बीच स्थिर आनुपातिकता होती है।

(iv) आगत-निर्गत कीमतें और गुणांक दिए हुए तथा स्थिर होते हैं। वे निश्चित रूप से ज्ञात होते हैं।

(v) योगशीलता (additivity) की धारणा भी रेखीय प्रोग्रामिंग के मूल में स्थिर रहती है जिसका मतलब है कि सब फर्मों द्वारा प्रयोग किए गए कुल साधन प्रत्येक व्यक्तिगत फर्म द्वारा प्रयोग किए गए साधनों के जोड़ के बराबर होते हैं।

(vi) रेखीय प्रोग्रामिंग तकनीकें वस्तुओं और साधनों में निरन्तरता और विभाज्यता को भी मानती है।

(vii) संस्थानिक साधन भी स्थिर मान लिए जाते हैं।

(viii) प्रोग्रामिंग के लिए एक निश्चित अवधि मान ली जाती है। सुविधा और अधिक सही परिणामों के लिए अवधि सामान्य रूप से छोटी होती है हालाँकि अपेक्षाकृत लम्बी अवधि की संभावना को समाप्त नहीं कर दिया जाता।

ये मान्यताएं दी होने पर फर्म के सिद्धान्त पर रेखीय प्रोग्रामिंग का उपयोग निम्नलिखित तीन समस्याओं के हल के लिए किया जाता है।

(1) उत्पादन का अधिकतमीकरण (Maximisation of Output)

हम मान लेते हैं कि एक फर्म X और Y आगतों के प्रयोग से एक वस्तु Z का उत्पादन करने के लिए बनाई जाती है। इसका उद्देश्य है कि उत्पादन को अधिकतम बनाए। इसके पास दो वैकल्पिक उत्पादन प्रक्रियाएँ C (पूँजी-गहन) और L (श्रम-गहन) हैं। अवरोध, लागत-व्यय MP रेखा है जैसाकि चित्र 34.1 में दिखाया गया है। रेखीय प्रोग्रामिंग तकनीक से सम्बन्धित (ऊपर बताई गई) शेष सभी मान्यताएँ लागू होती हैं। चित्र 34.1 की भाषा में समस्या की व्याख्या की जा रही है।

आगत (साधन) Y की इकाइयाँ प्रति अवधि अनुलब अक्ष पर मापी गई है और आगत X की इकाइयाँ प्रति अवधि समानातर अक्ष पर दिखाई गई हैं। यदि प्रक्रिया C को X आगत की प्रति इकाई के साथ Y की 2 इकाइयों की जरूरत है तो वह वस्तु Z की 50 इकाइयो का उत्पादन करेगी। यदि X और Y आगतों को दुगना करके X की 2 इकाइयाँ और Y की 4 इकाइयाँ कर दी जाएँ, तो निर्गत भी दुगनी होकर Z की 100 इकाइयाँ हो जाएँगी। a और b द्वारा प्रकट किए गए X और Y के ये सयोग पूँजी-गहन प्रक्रिया रेखा OC पर उत्पादन पैमाना स्थापित करते है। दूसरी ओर, वस्तु Z की उतनी ही इकाइयाँ (50) प्रक्रिया L द्वारा X की 3 और Y की एक इकाई के सयोग से उत्पादन की जा सकती है और Z की 100 इकाइयाँ X और Y को दुगना करके X की 2 और Y की 6 इकाइयों से उत्पादित की जा सकती है। ये उत्पादन पैमाने श्रम-गहन की प्रक्रिया रेखा OL पर स्थापित होते है जिन्हें आगतो के c और d सयोग प्रकट करते हैं। यदि 50 इकाई स्तर पर OC और OL रेखीय किरणों (linear rays) पर a और c बिन्दुओ को मिला दिया जाए तो वे सममात्रा वक्र (isoquant) $IacS_1$ बनाते है (जिसे बिन्दुकित दिखाया गया है।) 100-इकाई उत्पादन स्तर के अनुरूप सममात्रा वक्र I_1bdS है। लागत-व्यय अवरोध को समलागत वक्र MP प्रकट करता है और फर्म की उत्पादन क्षमता की एक सीमा निश्चित कर देता है। त्रिभुज Obd द्वारा प्रकट किए क्षेत्र के भीतर फर्म दोनो उपलब्ध C और L तकनीकों मे से किसी भी एक के द्वारा उत्पादन कर सकती है। इस "सभाव्य हलों के क्षेत्र" के बाहर फर्म उत्पादन नहीं कर सकेगी। फर्म के उत्पादन को अधिकतम बनाने वाला "इष्टतम हल" उस बिन्दु पर होगा, जहाँ अधिकतम उत्पादन के सममात्रा वक्र को समलागत वक्र स्पर्श करता है। चित्र में समलागत वक्र MP प्रक्रिया किरण (process ray) OC के बिन्दु b पर सममात्रा I_1bdS को स्पर्श करता है। इससे प्रकट होता है कि फर्म आगत Y की 4 इकाइयो और आगत X की 2 इकाइयों का प्रयोग करके पूँजी-गहन तकनीक का प्रयोग करेगी और Z वस्तु की 100 इकाइयो का उत्पादन करेगी।
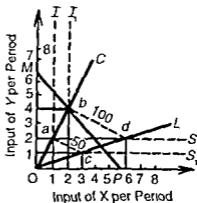
चित्र 34 1

(2) आगम का अधिकतमीकरण (Maximisation of Revenue)

दूसरी फर्म को लीजिए जिसका उद्देश्य फलन सीमित क्षमताओं के कुछ सरोधनो के रहते हुए, उसके आगम को अधिकतम बनाना है। मान लीजिए परियोजना Y तथा Y_1 दो वस्तुओं का उत्पादन करती है। इसके चार विभाग है जिनमे प्रत्येक की क्षमता स्थिर है। मान लीजिए कि इन चारो विभागो का सम्बन्ध वस्तु के निर्माण, सग्रह, पालिशिंग और पैकिंग से है जिन्हें हम A B C D नाम देते हैं। समस्या को चित्र 34.2 मे दिखाया गया है।

A B C, D सरोधनों के रहते हुए X और Y का उत्पादन होता है। सरोधन A वस्तु X के उत्पादन को OA तक सीमित कर देता है। सरोधन B वस्तु Y के उत्पादन को OB तक सीमित करता है। सरोधन C दोनों वस्तुओ, X और Y, के उत्पादन को क्रमश OC_1 तथा OC तक, जबकि सरोधन D उन दोनो के उत्पादन को OD_1 और OD तक सीमित करता है। $OATSRB$ क्षेत्र X और Y के उन

चित्र 34 2

सब संयोगों को व्यक्त करता है जिनका, किसी भी संरोधन का अतिक्रमण (violation) किए बिना, उत्पादन किया जा सकता है। यह सभाव्य उत्पादन (feasible production) का क्षेत्र है जिसके अन्दर X और Y का उत्पादन हो सकता है परन्तु इस क्षेत्र के बाहर किसी भी बिन्दु पर किसी संयोग के उत्पादन की कोई सभावना नहीं है।
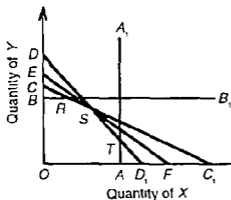
सभाव्यता क्षेत्र के अन्दर समलाभ रेखा (isoprofit line) लेकर इष्टतम हल (optimum solution) ढूँढ़ा जा सकता है। समलाभ रेखा X और Y के उन सब संयोगो को प्रकट करती है, जो फर्म को समान लाभ प्रदान करते है। इष्टतम हल बहुभुज $OATSRB$ के अन्दर उच्चतम समलाभ रेखा EF के बिन्दु S पर स्थित है। S के अतिरिक्त कोई भी अन्य बिन्दु सभाव्य उत्पादन के क्षेत्र से बाहर स्थित होगा।

(3) लागत का न्यूनतमीकरण (Minimisation of Cost)

आहार समस्या पहली आर्थिक समस्या थी जिसका रेखीय प्रोग्रामिंग द्वारा हल लागत के न्यूनतमीकरण द्वारा किया गया था। मान लीजिए कि एक उपभोक्ता मार्किट कीमतो पर ब्रैड तथा मक्खन खरीदता है। समस्या यह है कि दोनों खाद्यो की विभिन्न मात्राओं से कुल पोषक द्रव्य (nutrients) की प्राप्ति की लागत को न्यूनतम बनाया जाए।

चित्र 34.3
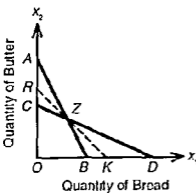
आहार समस्या का बिन्दुरेखीय हल चित्र 34 3 मे दिया गया है। ब्रैड (x_1) और मक्खन (x_2) क्रमश दोनो अक्षों पर मापे गए हैं। AB रेखा कम ब्रैड तथा अधिक मक्खन के संयोग को, और CD रेखा अधिक ब्रैड तथा कम मक्खन के संयोग को प्रकट करती है। सभाव्य हल (feasible solution) गहरी रेखा AZD पर, या उससे ऊपर स्थित है। इष्टतम हल Z बिन्दु पर है, जहाँ समलागत (बिन्दुकित) रेखा RK है, जो AB और CD के आपस में काटने के बिन्दु Z में से गुजरती है। यदि ब्रैड महँगी हो, तो सभाव्य हल A पर हो सकता है और यदि मक्खन अपेक्षाकृत महँगा हो, तो D पर हो सकता है। परन्तु इस समस्या मे यह हल Z पर होगा क्योकि यहीं लागत का न्यूनतमीकरण होता है।

5. रेखीय प्रोग्रामिंग की सीमाएँ
(LIMITATIONS OF LINEAR PROGRAMMING)

रेखीय प्रोग्रामिंग अर्थशास्त्र मे बहुत ही लाभदायक साधन सिद्ध हुआ है। परन्तु इसकी अपनी सीमाएँ है।

वास्तव मे, अनेक सरोधनो के कारण वास्तविक समस्याएँ रेखीय प्रोग्रामिग तकनीक द्वारा प्रत्यक्षत हल नहीं की जा सकतीं। प्रथम, एक विशिष्ट उद्देश्य फलन को परिभाषित करना सरल काम नहीं है। दूसरे, यदि एक विशेष उद्देश्य फलन निर्धारित कर भी दिया जाए तो दिए हुए उद्देश्य की पूर्ति के मार्ग मे प्रचलित विभिन्न सामाजिक, सस्थानिक वित्तीय और अन्य सरोधनो को जानना कोई आसान काम नहीं है। तीसरे, एक विशिष्ट उद्देश्य और सरोधनो का सैट दिए होने पर, यह सभव है कि सरोधन रेखीय असमानताओ के रूप मे प्रत्यक्षत व्यक्त न किए जा सके। चौथे, यदि ऊपर वर्णित समस्याएँ पार करने योग्य भी हो तो एक मुख्य समस्या विभिन्न स्थिर गुणाँको के सबद्ध मूल्यो के आगणन की है जो एक रेखीय प्रोग्रामिग समस्या जैसे कीमते, आदि मे प्रवेश करती है। पाँचवे, इस तकनीक की मुख्य कमी यह है कि यह आगतो और निर्गतो मे रेखीय सम्बन्ध की मान्यता पर आधारित है जिसका अभिप्राय यह है कि विभिन्न आगतो और निर्गतो मे योग, गुणन तथा विभाज्यता के सम्बन्ध पाए जाते है। परन्तु ये सम्बन्ध प्रत्येक रेखीय प्रोग्रामिग समस्या पर लागू नहीं होते क्योकि बहुत-सी समस्याओ मे अरेखीय (non-linear) सम्बन्ध पाए जाते है। छठे, यह तकनीक वस्तु तथा साधन बाजारो मे पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है। परन्तु वास्तव मे पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था नहीं पाई जाती। सातवे, रेखीय प्रोग्रामिग अर्थव्यवस्था मे स्थिर प्रतिफलो की मान्यता लेकर चलती है, पर वास्तव मे या तो प्रतिफल घटते हुए या बढते हुए होते है। अन्तिम, यह एक अत्यन्त गणितीय और जटिल तकनीक है। रेखीय प्रोग्रामिग के साथ समस्या का हल एक स्पष्ट निर्दिष्ट चर के अधिकतमीकरण या न्यूनतमीकरण की अपेक्षा करता है। एक रेखीय प्रोग्रामिग समस्या का हल सिम्पलेक्स विधि (simplex method) जैसे जटिल तरीकों से भी प्राप्त किया जाता है, जिनमे बहुत से गणितीय परिगणन करने पडते है। इसके लिए विशेष सगणन-तकनीक (computational technique) जैसे विद्युत सगणक (electric computer) या डेस्क गणक (desk calculator) की जरूरत होती है। ऐसे सगणक केवल महँगे ही नहीं होते बल्कि उन्हे चलाने के लिए विशेषज्ञो की भी आवश्यकता पडती है। रेखीय प्रोग्रामिग मॉडल अधिकतर 'परीक्षण और चूक' हल (trial and error solutions) प्रस्तुत करते है और विभिन्न आर्थिक समस्याओ के वास्तव मे इष्टतम हल ढूँढना कठिन होता है।

6 गणितीय नोट रेखाचित्र हल
(MATHEMATICAL NOTE GRAPHIC SOLUTIONS)

नीचे रेखीय प्रोग्रामिग की कुछ समस्याओ का गणितीय एव रेखाचित्र हलो का पूर्ण वर्णन किया जाता है।

1 आगम का अधिकतमीकरण (Maximisation of Revenue)

एक फर्म लीजिए जो दी हुई कीमतो 12 रु तथा 15 रु पर क्रमश दो वस्तुओ X एव Y को प्रति इकाई उत्पादित करती है। वस्तु X उत्पादित करने के लिए, फर्म को A आगत की 12 इकाइयाँ, B आगत की 6 इकाइयाँ तथा C आगत की 14 इकाइयाँ चाहिए। वस्तु Y के लिए A आगत की 4 इकाइयाँ, B आगत की 12 इकाइयाँ तथा C आगत की 12 इकाइयाँ चाहिए। कुल उपलब्ध A की 48 इकाइयाँ है, B की 72 इकाइयाँ तथा C की 84 इकाइयाँ है। इस रेखीय प्रोग्रामिग समस्या के आगत-निर्गत आकडो को तालिका 34 1 मे दिखाया गया है।

तालिका 34 1 · आगत-निर्गत आकडे

आगत	वस्तु की इकाई उत्पादित करने के लिए आगतो की सख्या		कुल प्राप्य आगतो की इकाइयाँ
	X वस्तु	Y वस्तु	
A	12	4	48
B	6	12	72
C	14	12	84
कीमत प्रति इकाई	रु 12	रु 15	—

प्रत्येक रेखीय प्रोग्रामिंग समस्या के तीन भाग होते है। ऊपर लिखी समस्या के वे इस प्रकार है।

(i) **उद्देश्य फलन** (Objective Function)—उद्देश्य फलन यह बताता है कि यदि दो वस्तुएँ X और Y प्रति इकाई रु 12 तथा रु 15 आगम लाती है तो इन वस्तुओ की कितनी मात्राएँ उत्पादित की जाएँ कि फर्म अधिकतम आगम या आय अर्जित कर सके। इसे इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$\text{Maximise } R = 12X + 15Y$$

(ii) **सरोधन** (The Constraints)—ऊपर की तालिका को अब समीकरणो के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है जो सरोधनो को व्यक्त करते है जिनके अन्तर्गत फर्म कार्य करती है। ये **सरचनात्मक सरोधन** (*structural constraints*) कहलाते है।

पहले हम आगत A को लेते है। आगत A की अधिकतम उपलब्ध मात्रा 48 इकाई है। परन्तु दोनो वस्तुओ X एव Y की मात्राएँ 48 इकाइयो से अधिक नहीं हो सकती है। गणितीय रूप में, क्योंकि $12X+4Y$ इकाई 48 से अधिक नहीं हो सकती, इसलिए आगत A का सरोधन होगा $12X+4Y \leq 48$। इसी प्रकार के तर्क द्वारा B एव C आगतो के सरोधनो की असमानताओ को लिखा जा सकता है। अत हमारी समस्या के तीन सरचनात्मक सरोधन है

$$12X + 4Y \leq 48 \quad (1)$$

$$6X + 12Y \leq 72 \quad (2)$$

$$14X + 12Y \leq 84 \quad (3)$$

(iii) **अऋणात्मक सरोधन** (Non-negative Constraints)—रेखीय प्रोग्रामिंग समस्या मे अऋणात्मक सरोधन भी होते है जो इस मान्यता पर निर्भर है कि समस्या के हल मे कोई चरो के ऋणात्मक मूल्य नहीं हो सकते है। इसका अभिप्राय है कि X और Y वस्तुओ का उत्पादन शून्य या धनात्मक हो सकता है परन्तु यह ऋणात्मक नहीं हो सकता। अत हमारी समस्या के अऋणात्मक सरोधन है $X \geq 0$ तथा $Y \geq 0$

समस्या का रेखाचित्र हल (*The Graphic Solution of the Problem*)

रेखाचित्र हल के लिए हम ऊपर वर्णित समस्या को पुन लिखते है

Maximise $R = 12X + 15Y$

Subject to (*i*)

$$12X + 4Y \leq 48 \quad (1)$$

$$6X + 12Y \leq 72 \quad (2)$$

$$14X + 12Y \leq 84 \quad (3)$$

(*ii*) $X \geq 0, Y \geq 0$

प्रत्येक असमानता को रेखाचित्र द्वारा व्यक्त करने के लिए, हम तीनो समीकरणो के असमानता चिन्हो (≤) को छोडकर बराबर (=) के चिन्ह लेते है। अत समीकरण (1) को यूँ लिखते है

$$12Y+4Y=48$$

यह मान कर कि वस्तु X केवल आगत A की सभी 48 इकाइयों द्वारा उत्पादित की जाती है तथा वस्तु Y बिल्कुल नहीं तो

$$12X+0=48 \text{ (at the maximum)}$$

या $X=4$ (जब $Y=0$)

इसी प्रकार यह मान कर कि सभी 48 इकाइयो से केवल Y वस्तु ही उत्पादित की जाती है तो

$$0+4Y=48$$

या $Y=12$ (जब $X=0$)

समीकरण $12X+4Y=48$ को चित्र 34 4 मे AB रेखा द्वारा व्यक्त किया गया है जहाँ $OA=12Y$ तथा $OB=4X$ रेखा AB पर कोई भी बिन्दु जैसे T समीकरण $12X+4Y=48$ को सतुष्ट करता है जबकि इस रेखा AB के नीचे तथा बाईं ओर का क्षेत्र असमानता $12X+4Y\leq 48$ को सतुष्ट करता है।

इसी प्रकार समीकरण $6X+12Y=72$ को हल करने पर $X=12$ तथा $Y=6$ प्राप्त होते हैं जिन्हे चित्र 34 4 मे CD रेखा द्वारा अंकित किया गया जहाँ $OC=6Y$ तथा $OD=12X$ और समीकरण $14X+12Y=84$ को हल करने पर हमे प्राप्त होता है, $X=6$ तथा $Y=7$ जिन्हे चित्र 34 4 मे EF रेखा द्वारा दिखाया गया है जहाँ $OE=7Y$ तथा $OF=6X$

सभाव्य क्षेत्र (Feasible Region)—चित्र 34 4 यह दिखाता है कि छायाकित (shaded) क्षेत्र मे सभी बिन्दु जो एक दूसरे को काटती हुई तीनो रेखाओ द्वारा घिरे हुए है प्रत्येक तीनों असमानताओं
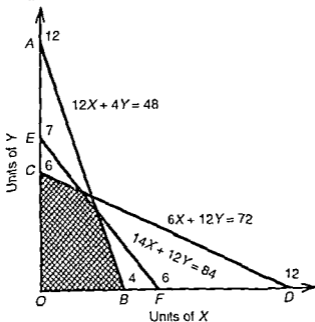
चित्र 34 4

को सतुष्ट करेगे। बिन्दु S पर EF रेखा CD रेखा को काटती है तथा बिन्दु T पर CD रेखा AB को काटती है। इस प्रकार $OBTSC$ क्षेत्र जो तीनो रेखाओ के एक-दूसरे को काटने वाले S एव T बिन्दुओ के बाईं ओर नीचे स्थित है, तीनों समीकरणों की असमानताओं को सतुष्ट करता है। यह छायाकित (shaded) क्षेत्र उत्पादन का सभाव्य क्षेत्र कहलाता है तथा प्रत्येक बिन्दु जो इस क्षेत्र के अन्दर या इसकी सीमा पर होता है समस्या का सभाव्य हल व्यक्त करता है।

इष्टतम हल (Optimum Solution)—विभिन्न बिन्दु B, T, S, C जो सभाव्य हल को व्यक्त करते है, इनमे से कौन-सा इष्टतम बिन्दु है जो फर्म के आगम को अधिकतम करेगा? इस बिन्दु को बीज गणित द्वारा कैसे जाना जा सकता है ?

हम समीकरणो (1) एव (2) से बिन्दुओ B तथा C के अक्षाको (coordinates) को जानते है जिनके अनुसार $OB = 4X$ तथा $OC = 6Y$ बिन्दु T के अक्षाको को निर्धारित करने के लिए हम समीकरणों (1) एव (2) को युगपत समीकरणो के रूप मे लेते है। (क्योंकि रेखाएँ AB तथा EF बिन्दु T पर काटती है) और इनको हल करते है

$$12X + 4Y = 48 \qquad (1)$$

$$14X + 12Y = 84 \qquad (3)$$

समीकरण (1) को 3 से गुणा करके तथा समीकरण (3) को उसमे से घटाकर

$$36X + 12Y = 144$$

$$14X + 12Y = 84$$

$$22X \quad = 60$$

$$X = 2\ 73$$

समीकरण (1) मे $X = 2\ 73$ के मूल्य को लगाकर,

$$12 \times 2\ 73 + 4Y = 48$$

$$32\ 76 + 4Y = 48$$

$$4Y = 48 - 32\ 76$$

या
$$4Y = 15\ 24$$

$$Y = 3\ 81$$

अत बिन्दु T के अक्षाक $X = 2\ 73$, तथा $Y = 3\ 81$ है। इसी प्रकार बिन्दु S के अक्षाको को समीकरणों (3) एव (2)* द्वारा हल करने पर $X = 1\ 5$ तथा $Y = 5\ 25$

X तथा Y के इष्टतम सयोग ढूँढने के लिए X और Y की कीमतो (क्रमश 12 रु एवं 15 रु) को इन अक्षाको के बिन्दु के मूल्यो को जो ऊपर निकाले गए है स्थानापन्न करते है। बिन्दु B पर $X = 4$ तथा $Y = 0$ इनको उद्देश्य फलन (रु) $f = 12X + 15Y$ मे स्थानापन्न करने से

$$(\text{रु } 12)(4) + (\text{रु } 15)(0) = \text{रु } 48 \qquad (4)$$

बिन्दु T पर $X = 2\ 73$ तथा $Y = 3\ 81$ होने पर, इसी प्रकार प्राप्त करते है

$$(\text{रु } 12)(2\ 73) + (\text{रु } 15)(3\ 81) = \text{रु } 89\ 91 \qquad (5)$$

बिन्दु S पर $X = 1.5$ तथा $Y = 5.25$ होने पर हमे प्राप्त होता है

$$(\text{रु } 12)(1.5) + (\text{रु } 15)(5.25) = 96\ 75 \qquad (6)$$

बिन्दु C पर $X = 0$ तथा $Y = 6$ होने पर

$$(\text{रु } 12\ (0) + (\text{रु } 15)(6) = \text{रु } 90 \qquad (7)$$

* $14X + 12Y = 84$
  $6X + 12Y = 72$

समीकरणो (4), (5), (6) एवं (7) से मालूम होता है कि समीकरण (6) अधिकतम आगम रु 96 75 देता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दोनो वस्तुओ X तथा Y की कीमते दी होने पर और उनकी आगतो की मात्राएँ भी दी होने पर, फर्म का कुल आगम बिन्दु S पर अधिकतम होता है। अत S ही इष्टतम बिन्दु है।

समस्या का द्वैध (Dual of the Problem)

प्रत्येक प्रमुख (primal) समस्या का अपना द्वैध होता है। ऊपर के उदाहरण मे प्रमुख आगम के न्यूनतमीकरण से सबद्ध है। इसका द्वैध लागत का अधिकतमीकरण है। एक प्रमुख समस्या के द्वैध को हल करने के लिए निम्नलिखित सोपानो (steps) की आवश्यकता होती है (1) स्तभो (columns) और पक्तियो (rows) को एक दूसरे के साथ बदल दिया जाता है। (2) सरोधनो मे असमानताओ की दिशा को उलट दिया जाता है। यदि प्रमुख का चिह्न ≤ हो तो द्वैध का चिह्न ≥ यह होता है। (3) चरो की सख्या उलट दी जाती है।

तालिका 34 1 मे प्रमुख समस्या को उसके द्वैध के रूप मे निम्नलिखित ढग से सैट किया गया है

	प्रमुख समस्या (Primal Problem)		द्वैध समस्या (Dual Problem)
Maximise Revenue	$R = 12X + 15Y$	Minimise Cost	$C = 48A + 72B + 84C$
Subject to	$12X + 4Y \le 48$	Subject to	$12A + 6B + 14C \ge 12$
	$6X + 12Y \le 72$		$4A + 12B + 12C \ge 15$
	$14X + 12Y \le 84$		$A \ge 0, B \ge 0, C \ge 0$
	$X \ge 0, Y \ge 0$		

विद्यार्थी इस द्वैध समस्या का हल आहार समस्या के किए गए हल की तरह स्वय करे।

2 लागत का न्यूनतमीकरण—आहार समस्या का हल (Minimisation of Cost—Solution of the Diet Problem)

आहार समस्या पहली आर्थिक समस्या थी जिसका रेखीय प्रोग्रामिग द्वारा हल लागत के न्यूनतमीकरण द्वारा किया गया। मान लीजिए कि एक उपभोक्ता मार्किट कीमतो पर ब्रैड और मक्खन खरीदता है। समस्या यह है कि दोनो खाद्यो की विभिन्न मात्राओ मे कुल पोषक पदार्थों की प्राप्ति की लागत को न्यूनतम बनाया जाए।

तालिका 34 2 : आहार समस्या के आँकडे

पोषाहार-तत्व	पोषक-द्रव्य प्रति इकाई ब्रैड x_1	पोषक-द्रव्य प्रति इकाई मक्खन x_2	न्यूनतम आदर्श
कैलोरी (1,000)	1	2	3
प्रोटीन (25 ग्राम)	2	8	8
कीमत (रु प्रति इकाई)	2	6	(?)

मान लीजिए कि x_1 और x_2 क्रमश ब्रैड और मक्खन को प्रकट करते है जिनमे से प्रत्येक मे कैलोरी (calories) की मात्राएँ और प्रोटीन के ग्राम तालिका 34 2 मे दिए है। ब्रैड के पोषक द्रव्य प्रति आधा किलोग्राम 1000 कैलोरी और प्रोटीन की 50 ग्राम मात्रा है, और मक्खन के 2000 कैलोरी और 200 ग्राम प्रोटीन प्रति आधा किलोग्राम है। आदर्श आहार मे प्रतिदिन 3000 कैलोरी और 200 ग्राम प्रोटीन चाहिए। 500 ग्राम ब्रैड की मार्किट कीमत रु 2 और मक्खन की प्रति 500 ग्राम कीमत रु 6 है।

समस्या यह है कि ऊपर तालिका के अन्तिम कालम मे दिए गए न्यूनतम पोषाहार-आदर्श के अनुसार सबसे श्रेष्ठ आहार और प्रश्नचिन्ह (?) द्वारा प्रकट की गई न्यूनतम लागत क्या होगी।

आहार की कुल लागत

$$\left.\begin{array}{ll}\text{Minimise} & C = 2x_1 = 6x_2 \\ \text{Subject to} & x_1 + 2x_2 \geq 3 \\ & 2x_1 + 8x_2 \geq 8 \\ \text{और} & x_1 \geq 0, x_2 \geq 0\end{array}\right\} \quad (1)$$

न्यूनतम की जाने वाली लागत C है, जो दोनों x_1 और x_2 चरों का रेखीय फलन (linear function) है। पार्श्व सम्बन्ध 3 और 8 असमानताएँ हैं जो दिए हुए आहार के प्राप्त किए जाने वाले न्यूनतम पोषाहार आदर्श को प्रकट करती हैं। समस्या रेखीय है क्योंकि रेखीय असमानताओं के रहते हुए अऋणात्मक चर (non-negative variables) न्यूनतम बनाने हैं। तीनों में से किन्हीं दो स्थितियों से हल प्राप्त हो सकता है। उदाहरण के लिए, एक पार्श्व सम्बन्ध (side relation) के रहते हुए लागत C को न्यूनतम बनाया जा सकता है $x_1 + 2x_2 = 3$ इसको हल करने पर $x_1 = 3$ तथा $x_2 = 3/2 = 1.5$ चित्र 34.5 में इसे AB रेखा द्वारा व्यक्त किया गया है जहाँ $OA = 1.5x_2$ तथा $OB = 3x_1$

दूसरा पार्श्व सम्बन्ध है $2x_1 + 8x_2 = 8$ और इसे हल करने पर, $x_1 = 4$ तथा $x_2 = 1$ प्राप्त होते हैं। इसे चित्र 34.5 में CD रेखा द्वारा खींचा गया है जो इस समीकरण को सतुष्ट करता है जहाँ $OC = 1x_2$ तथा $OD = 4x_1$
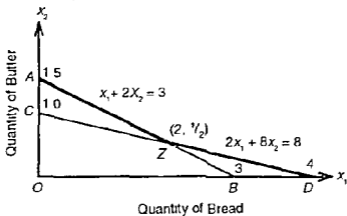
चित्र 34.5

अत: चित्र 34.5 में x_1 (ब्रेड) समानान्तर अक्ष पर तथा x_2 (मक्खन) अनुलम्ब अक्ष पर मापे गए हैं। AB रेखा समीकरण $x_1 + 2x_2 = 3$ तथा CD रेखा समीकरण $2x_1 + 8x_2 = 8$ को व्यक्त करती हैं। सभाव्य हल मोटी रेखा AZD पर या उसके ऊपर होगा। यह हमारी समस्या में Z बिन्दु पर होगा है जहाँ दोनों रेखाएँ AB तथा CD काटती हैं।

यह मालूम करने के लिए कि सभाव्य हल Z पर ही होगा है या A अथवा D बिन्दु पर, हम समस्या के दोनों समीकरणों को युगपत समीकरणों के रूप में हल करते हैं

$$x_1 + 2x_2 = 3 \quad (1)$$

$$2x_1 + 8x_2 = 8 \quad (2)$$

समीकरण (1) को 4 से गुणा करके तथा समीकरण (2) को इसमें से घटाकर

$$\begin{array}{r} 4x_1 + 8x_2 = 12 \\ 2x_1 + 8x_2 = 8 \\ \hline 2x_1 \quad = 4 \\ x_1 = 2 \end{array}$$

$x_1 = 2$ मूल्य को समीकरण (1) में स्थानापन्न करके,

$$2 \times 2 + 8x_2 = 8$$
$$4 + 8x_2 = 8$$
$$8x_2 = 8 - 4$$
या $$x_2 = 1/2$$

अत: Z के अक्षांक हैं $X_1 = 2$ तथा $x_2 = 1/2$ हमें बिन्दु A के अक्षांकों का मालूम है, वे है, $x_1 = 0$ तथा $x_2 = 1.5$ तथा बिन्दु D के अक्षांक हैं, $x_1 = 4$ तथा $x_2 = 0$

x_1 (ब्रैड) तथा x_2 (मक्खन) के इष्टतम संयोगों को मालूम करने के लिए हम x_1 (रु 2) तथा x_2 (रु 6) के मूल्यों को बिन्दु A Z तथा D के अक्षांकों में स्थानापन्न करते है। बिन्दु A पर $x_1 = 0$ तथा $x_2 = 1.5$ और इन्हें उद्देश्य फलन $C = 2x_1 + 6x_2$ में स्थानापन्न करने से

(रु 2) (0) + (रु 6) (1.5) = रु 9 (3)

इसी प्रकार Z पर (रु 2) (2) + (रु 6) (1/2) = रु 7 (4)

बिन्दु D पर (रु 2) (4) + (रु 6) (0) = रु 8 (5)

ऊपर के हल से स्पष्ट होगा कि समीकरण (4) न्यूनतम मूल्य रु 7 देता है। अत इस आहार समस्या का इष्टतम हल है $x_1 = 2, x_2 = 1/2, Z = 7$ (न्यूनतम) जो यह बताता है कि एक व्यक्ति की दैनिक न्यूनतम पोषक आवश्यकताएँ जब पूरी होती हैं जब वह 2 ब्रैड तथा 250 ग्राम मक्खन न्यूनतम लागत रु 7 से पूरा करता है।

इसका द्वैध (Its Dual)

प्रत्येक न्यूनतमीकरण समस्या के अनुरूप उसकी अधिकतमीकरण समस्या होती है, जिसे द्वैध कहते है। हमारी आहार समस्या की प्रमुख समस्या है, $C = 2x_1 + 6x_2$ जोकि न्यूनतम है, बशर्ते कि

$$\left.\begin{array}{l} x_1 + 2x_2 \geq 3 \\ 2x_1 + 8x_2 \geq 8 \\ x_1 0 \geq 0,\ x_2 \geq 0 \end{array}\right\} \quad (1)$$

और

इस आहार समस्या में न्यूनतम लागत पर ब्रैड और मक्खन की कुछ निश्चित मात्राएँ प्राप्त करके 3000 कैलोरी और 200 ग्राम प्रोटीन प्राप्त करने है। मान लीजिए कि दोनों पोषक द्रव्यों की प्रति इकाई कीमतें y_1 और y_2 है। द्वैध समस्या आहार के कुल मूल्य पर P का अधिकतम बनाने की है

$$\left.\begin{array}{ll} \text{Maximise} & P = 3y_1 + 8y_2 \\ \text{Subject to} & y_1 + 2y_2 \leq 2 \\ & 2y_1 + 8y_2 \leq 6 \\ \text{और} & y_1 \geq 0, y_2 \geq 0 \end{array}\right\} \quad (2)$$

इससे प्रकट होता है कि ब्रैड पर खर्च $y_1 + 2y_2$ है जो र 2 प्रति आधा किलोग्राम से अधिक नहीं हो सकता और मक्खन का खर्च $2y_1 + 8y_2$ है जो र 6 प्रति आधा किलोग्राम से अधिक नहीं हो सकता। द्वैध में प्रमुख (primal) समस्या का पार्श्व-सम्बन्धों में पक्षान्तरण (transposed) हो जाता है अर्थात् प्रमुख समस्या में कीमतें र 2 और र 6 न्यूनतम होती हैं और न्यूनतम पोषाहार आदर्श 3 और 8 पार्श्व-सम्बन्ध हैं, जबकि द्वैध में वे उलट स्थानों पर आते हैं।

ऊपर समीकरण (2) में दिए गए द्वैध का हल है

$$y_1 + 2y_2 = 2 \quad (i)$$

$$2y_1 + 8y_2 = 6 \quad (ii)$$

समीकरण (i) को 4 से गुणा करके तथा समीकरण (ii) को इसमें से घटाकर

$$4y_1 + 8y_2 = 8$$

$$2y_1 + 8y_2 = 6$$

$$2y_1 = 2$$

$$y_1 = 1$$

$y_1 = 1$ को समीकरण (i) में स्थानापन्न करने से,

$$1 + 2y_2 = 2$$

$$2y_2 = 2 - 1$$

$$y_2 = 1/2$$

y_1 तथा y_2 के इष्टतम संयोगों को मालूम करने के लिए, y_1 (र 3) तथा y_2 (र 8) के मूल्यों को A एवं D बिन्दुओं के अक्षांशों में स्थानापन्न करते हैं।

चित्र 34.6

समीकरण $y_1 + 2y_2 = 2$ को हल करने पर, $y_1 = 2$ तथा $y_2 = 1$ ताकि चित्र 34.6 में $OA = 1y_2$ तथा $OB = 2y_1$। इसी प्रकार समीकरण $2y_1 + 8y_2 = 6$ से $y_1 = 3$ तथा $y_2 = 3/4$ या 0.75 मूल्य प्राप्त होते हैं जो चित्र 34.6 में $OC = 0.75y_2$ तथा $OD = 3y_1$ है। अतः बिन्दु A पर, $y_1 = 1$ तथा $y_1 = 0$ और इन्हें उद्देश्य फलन $P = 3y_1 + 8y_2$ में स्थानापन्न करने से,
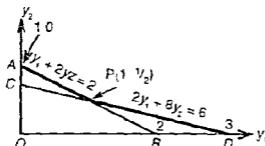
$$(र\ 3)\ (0) + (र\ 8)\ (1) = र\ 8 \quad (iii)$$

इसी प्रकार बिन्दु P पर, (र 3) (1) + (र 8) (1/2) = र 7 . (iv)

बिन्दु D पर, (र 3) (3) + (र 8) (0) = र 9 . (v)

अतः समीकरण (iv) न्यूनतम मूल्य र 7 देता है।

सब व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए प्रमुख और द्वैध समस्याओं का एक ही हल होता है अर्थात् न्यूनतम Z = अधिकतम P

प्रमुख समस्या का हल था

$x_1 = 2, x_2 = 1/2, Z = 7$ (आहार की न्यूनतम लागत)

प्रतीप (2) का हल यह आता है

$y = 1, y_1 = 1/2, P = 7$ (आहार का अधिकतम मूल्य)

प्रमुख समस्या और उसकी द्वैध दोनों में ही, इष्टतम हल के लिए प्रतिदिन उतने ही खर्च रु 7 की आवश्यकता है, चाहे वह आहार के लागत के न्यूनतमीकरण के माध्यम से हो, चाहे आहार के मूल्य के अधिकतमीकरण के माध्यम से।

3 लाभ अधिकतमीकरण समस्या (Profit Maximisation Problem)

एक अन्य रेखीय प्रोग्रामिंग की समस्या लाभ अधिकतमीकरण को लेते हैं। मान लीजिए कि एक छोटा उत्पादक है जो X एवं Y दो वस्तुएँ दो विभिन्न मशीनों A एवं B पर उत्पादित करता है। वस्तु X को उत्पादित करने के लिए 3 घण्टे मशीन A पर तथा 2 घण्टे मशीन B पर कार्य चाहिए, जबकि वस्तु Y के लिए 3 घण्टे मशीन A पर और 4 घण्टे मशीन B पर कार्य चाहिए। मशीन A 18 घण्टे रोज चलाई जाती है जबकि मशीन B 16 घण्टे रोज। उत्पादक वस्तु X की प्रत्येक इकाई पर रु 30 लाभ अर्जित करता है तथा वस्तु Y की प्रत्येक इकाई पर रु 40 लाभ अर्जित करता है। वह प्रत्येक वस्तु की कितनी इकाइयाँ प्रतिदिन उत्पादित करे कि उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो?

इस समस्या को अच्छी प्रकार समझने के लिए तालिका 34.3 में दर्शाया गया है।

तालिका 34.3 लाभ अधिकतमीकरण समस्या के लिए आकड़े

मशीन	वस्तु		कुल काम का समय
	X	Y	
A	3 घण्टे	3 घण्टे	18 घण्टे
B	2 घण्टे	4 घण्टे	16 घण्टे
प्रत्येक से लाभ	रु 30	रु 40	–

रेखाचित्र हल के लिए इस रेखीय प्रोग्रामिंग समस्या को पुन ऐसे लिखा जा सकता है

Maximise $P = 30X + 40Y$ (Rs)

Subject to (i) $3X + 3Y \leq 18$

या $X + Y \leq 6$ (1)

$2X + 4Y \leq 16$

या $X + 2Y \leq 8$ (2)

(ii) $X \geq 0$ और $Y \geq 0$

समीकरण $X + Y = 6$ को हल करने पर, $X = 6$ तथा $Y = 6$ यह चित्र 34.7 में AB रेखा द्वारा व्यक्त किया गया है जहाँ $OA = 6Y$ तथा $OB = 6X$

इसी तरह समीकरण $X + 2Y = 8$ को हल करने पर, $X = 8$ तथा $Y = 4$ है। इसे रेखा CD द्वारा दिखाया गया है जहाँ $OC = 4Y$ तथा $OD = 8X$ है।

छायांकित क्षेत्र $OBPC$ दोनों समीकरणों (1) एवं (2) की शर्तों को सतुष्ट करता है तथा यह सभाव्य क्षेत्र है। इस क्षेत्र में प्रत्येक बिन्दु गणितीय असमानताओं को सतुष्ट करता है।

यह मालूम करने के लिए कि O B P या C में से कौन-सा बिन्दु संभाव्य हल व्यक्त करता है जहाँ लाभ अधिकतम होता है, दोनों समीकरणों को युगपत् समीकरण मान कर हल करते हैं

$$X + Y = 6 \quad (i)$$

$$X + 2Y = 8 \quad (ii)$$

चित्र 34.7

समीकरण (*i*) को 2 से गुणा करने पर तथा समीकरण (*ii*) को इसमें से घटाने पर,

$$2X + 2Y = 12$$
$$X + 2Y = 8$$
$$X \quad = 4$$

$X = 4$ को समीकरण (*i*) में स्थानापन्न करने पर,

$$4 + Y = 6$$
$$Y = 6 - 4$$
या $$Y = 2$$
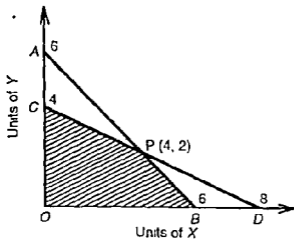
अत बिन्दु P के अक्षाक है $X = 4$ तथा $Y = 2$ जैसा कि ऊपर आगणित किया है, बिन्दु के अक्षाक है $X = 6$ तथा $Y = 0$, और बिन्दु C के अक्षाक हैं $X = 0$ तथा $Y = 4$ अधिकतम लाभ मालूम करने के लिए सभाव्य क्षेत्र के बिन्दुओं O B, P एव C पर इनके अक्षाकों के मूल्य की सहायता से गणना की जा सकती है।

बिन्दु O पर लाभ शून्य है।

बिन्दु B पर लाभ = (रु 30) (6) + (रु 40) (0) = रु 180

बिन्दु P पर लाभ = (रु 30) (4) + (रु 40) (2) = रु 200

बिन्दु C पर लाभ = (रु 30) (0) + (रु 40) (4) = रु 160

अत उत्पादक बिन्दु P पर X की 4 इकाइयाँ तथा Y की 2 इकाइयाँ प्रति दिन उत्पादित करके अधिकतम रु 200 लाभ कमाएगा। इसलिए इष्टतम हल है $X = 4$, $Y = 2$ तथा $P =$ रु 200 (अधिकतम)।

7. सीमातवाद और रेखीय प्रोग्रामिंग इष्टतमीकरण तकनीकों के रूप में (MARGINALISM AND LP AS TECHNIQUES OF OPTIMISATION)

अर्थ (Meaning)—इष्टतमीकरण से यह अभिप्राय है कि ससाधनों का बहुत दक्षता के साथ प्रयोग करना, कुछ सरोधनों के दिए होने पर। यह एक विश्लेषणात्मक तकनीक है जो एक उपभोक्ता अथवा उत्पादक जैसे निर्णयकर्ता द्वारा प्रयोग की जाती है, निर्णयकर्ता के रूप में एक उपभोक्ता वस्तुओं का श्रेष्ठतम सयोग खरीदना चाहता है, उपयोगिता या सतुष्टि के अधिकतमीकरण का उद्देश्य और उसकी मुद्रा आय सरोधन के रूप में दिए होने पर। इसी प्रकार, निर्णयकर्ता के रूप में एक उत्पादक सबसे उपयुक्त उत्पादन स्तर निर्धारित करना चाहता है, लाभ अधिकतमीकरण करने का उद्देश्य और कच्चे माल, पूँजी, आदि के सरोधन दिए होने पर। इसके विपरीत, एक फर्म का उद्देश्य अपनी औसत आय का न्यूनतमीकरण करने का उद्देश्य हो सकता है जबकि मानवशक्ति, सेल्ज़, आदि सरोधन दिए हों। अत इष्टतमीकरण का सबध किसी उद्देश्य के चर के लिए अधिकतम अथवा न्यूनतम के निर्धारण से होता है।

अर्थशास्त्रियों ने इष्टतमीकरण के लिए अनेक तरीके निकाले हैं। लेकिन व्यष्टि अर्थशास्त्र में केवल

दो कार्यकारी विधिया प्रयोग मे लाई जाती है। वे है
सीमातवाद अथवा सीमात विश्लेषण और रेखीय प्रोग्रामिंग।

सीमातवाद (Marginalism)

सीमातवाद के अन्तर्गत इष्टतमता प्रक्रिया की कुजी औसत और सीमात मात्राओ के बीच सबध है। यह उपभोक्ताओ और उत्पादको दोनो पर ही निर्णयकर्ताओ के रूप मे लागू होता है। आर्थिक विश्लेषण चुनाव का तर्क है। यह उस समय लागू होता है जब भी एक विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सीमित ससाधनो को विभिन्न ध्येयो के बीच आबटित करना होता है। उपभोक्ता की रुचिया और अधिमान दिए होने पर, वह अपनी उपयोगिता अथवा सतुष्टि को अधिकतम करने के लिए अपनी सीमित आय को विभिन्न वस्तुओ पर व्यय करके इष्टतम करता है। उपभोक्ता की इष्टतमता की प्रक्रिया घटती सीमात उपयोगिता नियम पर आधारित है। इस नियम के अनुसार, अपनी दी हुई आय को आवटित करने के लिए एक उपभोक्ता उसे इस ढग से व्यय करता है कि सभी खरीदी गई वस्तुओं की कुल उपयोगिता अधिकतम होती है। इसके लिए व्यय की प्रति इकाई सीमात उपयोगिता सभी वस्तुओ के लिए समान होनी चाहिए। इसे आनुपातिकता नियम भी कहते है जिसे निम्नलिखित ढग से व्यक्त किया जाता हे

$$\frac{MU_A}{P_A} = \frac{MU_B}{P_B} = \frac{MU_C}{P_C} = \quad = \frac{MU_N}{P_N}$$

जहा MU वस्तुओ A, B, C और N की सीमात उपयोगिता है और P कीमत है। इस प्रकार, उपभोक्ता अपनी उपयोगिता को अधिकतम करता हे जब खरीदी गई वस्तुओ की सीमात उपयोगिता और कीमत अनुपात बराबर हो। इसके लिए उपभोक्ता स्थानापन्नता के नियम के अनुसार कार्य करता है। इसके अनुसार उपभोक्ता कम सीमात उपयोगिता वाली वस्तु के स्थान पर दूसरी अधिक सीमात उपयोगिता वाली वस्तु को तब तक स्थानापन्न करता रहेगा जब तक कि प्रत्येक की सीमात उपयोगिता उस वस्तु की कीमत के अनुपात में नहीं आ जाती और सब वस्तुओ की कीमतों का अनुपात उनकी सीमात उपयोगिता के बराबर नहीं हो जाता है।

उत्पादक की इष्टतमता की प्रक्रिया न्यूनतम लागत नियम पर आधारित है। प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना है। इसके लिए, उसके पास उपलब्ध विभिन्न सीमित ससाधनों को वह ऐसे अनुपात मे इकट्ठा करेगा कि उत्पादन की एक निश्चित मात्रा न्यूनतम लागत पर उत्पादित की जाती है। इसे प्राप्त करने के लिए वह विभिन्न साधनो की सीमात उत्पादकताओं को उनके कीमत अनुपातो के बराबर करने का प्रयत्न करेगा। इसके लिए आनुपातिक नियम है

$$\frac{MP_A}{P_A} = \frac{MP_B}{P_B} = \frac{MP_C}{P_C} = \quad = \frac{MP_N}{P_N}$$

जहा MP आगतो (inputs) a b c और N की सीमात उत्पादकता है और P कीमत है। इस प्रकार, एक वस्तु के दिए हुए लागत व्यय से उत्पादित करने के लिए और आगते (साधन) दी हुई होने पर, उत्पादक की इष्टतमता प्रक्रिया मे आगतो के सयोग ऐसे अनुपातो मे शामिल होते है कि एक आगत की एक रुपये के बराबर MP प्रत्येक आगत की एक रुपये की MP के बराबर होती है। एक दिए उत्पादन के न्यूनतम लागत सयोग को प्राप्त करने के लिए, वह महंगी आगत के स्थान पर सस्ती आगत का स्थानापन्न करता है। यदि वह देखता है कि A आगत की एक रुपये के बराबर MP अधिक है, B आगत की MP से, तो वह A पर अधिक और B पर कम व्यय करेगा। वह इस प्रकार व्यय करता जाएगा जब तक कि न्यूनतम लागत सयोग प्राप्त नहीं होता है और वह तब अपना लाभ अधिकतम करता है।

एक फर्म को इष्टतमकर्ता के रूप में लीजिए। फर्म का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना है। इसके लिए वह प्राप्त आगम और लागतों पर व्यय के संरोधन दिए होने पर, अधिक या कम उत्पादन करती है। सीमान्त विश्लेषण यह बताता है कि जब तक $MR > MC$ तो लाभ बढ़ता है और इष्टतम स्तर पर पहुंचने के लिए फर्म अधिक उत्पादन करती जाएगी। यदि $MR < MC$ हो, तो उत्पादन इष्टतम स्तर से आगे हो जाता है जिससे फर्म को हानि होती है। इसलिए इष्टतम स्तर प्राप्त करने और लाभ अधिकतम करने के लिए, $MC = MR$ अवश्य होना चाहिए। ज्यामितीय रूप में जब $MC = MR$, तो MR वक्र को MC वक्र अवश्य नीचे से काटे। ये दो शर्तें सभी मार्किटों जैसे पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता और अल्पाधिकार में लागू होती हैं। फिर भी, पूर्ण प्रतियोगितात्मक फर्म में $MR = MR$ = Price (AR) जबकि अन्य मार्किटों में $MC = MR$ < Price (AR)। पूर्ण प्रतियोगितात्मक मार्किट में, फर्म अल्पकाल में अतिसामान्य लाभ (supernormal profit) कमा सकती है। लेकिन दीर्घकाल में, यह केवल सामान्य लाभ ही कमा सकती है जिसके लिए शर्त है $LMC = MR = AR = LAC$ अपने न्यूनतम बिन्दु पर।

ऊपर वर्णित इष्टतमता समस्याओं के हल के लिए सीमांत विश्लेषण के सामान्य औजार तालिकाएं, चित्र और समीकरण हैं।*

8. सीमांतवाद और रेखीय प्रोग्रामिंग (MARGINALISM AND LP)

ऊपर हमने रेखीय प्रोग्रामिंग और सीमांतवाद का अध्ययन इष्टतमता की तकनीकों के रूप में किया। इन दोनों तकनीकों में कुछ समानताएं और भेद भी पाए जाते हैं जिनकी विवेचना नीचे की जा रही है।

समानताएं (Similarities)—सीमांतवाद और रेखीय प्रोग्रामिंग में निम्नलिखित समानताएं पाई जाती हैं:

1. सीमांतवाद और रेखीय प्रोग्रामिंग दोनों तकनीकें यह दर्शाती हैं कि किस प्रकार उपभोक्ता और उत्पादक निर्णयकर्ताओं के रूप में क्रमश: उपयोगिता को अधिकतम और लाभ को अधिकतम अथवा लागतों को न्यूनतम करने के लिए योजना या प्रोग्राम बनाते हैं।

2. प्रत्येक तकनीक में संरोधन दिए होने पर, दोनों तकनीकों के उद्देश्य अधिकतमता अथवा न्यूनतमता समस्याओं के इष्टतम हल ढूंढने के होते हैं।

3. दोनों तकनीकें तार्किक युक्तियों पर आधारित हैं। वे इस मान्यता पर आधारित हैं कि उपभोक्ता अथवा उत्पादक जो भी आर्थिक एजेंट के रूप में निर्णय लेते हैं, वे विवेकशीलता से कार्य करते हैं।

4. सीमांतवाद और रेखीय प्रोग्रामिंग दोनों ही अधिकतमीकरण अथवा न्यूनतमीकरण के उद्देश्य फल को प्राप्त करने के लिए गणितीय समीकरणों और चित्रों द्वारा व्यक्त करते हैं।

भेद (Differences)—इन समानताओं के बावजूद, सीमांतवाद और रेखीय प्रोग्रामिंग में निम्नलिखित भेद पाए जाते हैं जो रेखीय प्रोग्रामिंग को सीमांत विश्लेषण से श्रेष्ठ करते हैं।

1 फर्म का सीमांत विश्लेषण दो मान्यताओं पर आधारित है : (क) एक निरंतर उत्पादन फलन, और (ख) साधन आगतें पूर्णतया स्थिर नहीं होतीं परन्तु स्थानापन्न की जाती हैं। परन्तु रेखीय

* ऊपर वर्णित विश्लेषण से सम्बन्धित तालिकाओं और चित्रों के लिए विद्यार्थी आवश्यकतानुसार पुस्तक के भाग दो में सम-सीमान्तिकी उपयोगिता विश्लेषण और उत्पादन फलन अध्यायों को देखें। गणितीय व्याख्या के लिए वे R. G. D. Allen, *Mathematical Analysis for Economists* अथवा A.C. Chiang *Fundamental Methods of Mathematical Economics* को देख सकते हैं।

प्रोग्रामिंग में, एक फर्म द्वारा निर्णय एक सीमित संख्या में प्रक्रियाओं के बीच चुनाव के होते हैं जो सीमांत विश्लेषण की मान्यताओं की तुलना में अधिक जटिल और कम लोचशील हो सकते हैं।

2 सीमांत विश्लेषण यह मानता है कि उत्पादन फलन फर्म द्वारा पहले में ही चुना होता है। परन्तु रेखीय प्रोग्रामिंग में समस्या का इष्टतम हल ढूंढने से पहले फर्म उत्पादन फलन को चुनती है।

3 सीमांत विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि फर्म केवल एक वस्तु का उत्पादन करती है। परन्तु रेखीय प्रोग्रामिंग में एक बहु-वस्तु फर्म तथा बहु-वस्तु प्लांट की क्रियाओं का भी विश्लेषण किया जाता है।

4 सीमांत विश्लेषण में, इष्टतमता की समस्याओं के हल तालिकाओं, चित्रों और सरल गणितीय समीकरणों में दिखाए जाते हैं। लेकिन रेखीय प्रोग्रामिंग में इष्टतमता समस्याओं के हल विशेष गणितीय समीकरणों और ग्राफों द्वारा निकाले जाते हैं।

5 सीमांत विश्लेषण में, एक अधिकतमीकरण अथवा न्यूनतमीकरण समस्या का हल रेखीय समानताओं द्वारा सीमित होता है। लेकिन रेखीय प्रोग्रामिंग में, प्रतिबंधित गणितीय फलनों के साथ रेखीय असमानताओं को इष्टतमता समस्याओं के अधिकतमीकरण या न्यूनतमीकरण के हल के लिए प्रयोग किया जाता है।

6 सीमांत विश्लेषण में, उपभोक्ता की आय दी होने पर विभिन्न वस्तुओं के उपभोग से प्राप्त उपयोगिता का इष्टतमीकरण किया जाता है ताकि उसके व्यय उसकी उपलब्ध आय के बराबर हों। परन्तु रेखीय प्रोग्रामिंग में उसका व्यय उसकी उपलब्ध आय से कम या बराबर भी हो सकता है।

7 सीमांतवाद के अन्तर्गत इष्टतमता की समस्या का हल प्राय अरेखीय वक्रों द्वारा दिखाया जाता है जबकि रेखीय प्रोग्रामिंग में उन्हें सीधी रेखा वक्रों द्वारा दर्शाया जाता है।

8 सीमांत विश्लेषण कोना (corner) हलों को समझाने में असफल रहा है, जबकि रेखीय प्रोग्रामिंग कोना हलों की भी व्याख्या करता है जब दिए हुए फलन असतत (discontinuous) होते हैं।

9 सीमांत विश्लेषण अक्सर असंभव परिणाम भी दे सकता है यद्यपि इष्टतम समस्या के हल के लिए अधिकतमीकरण की समस्याओं की शर्तें भी पूरी हो जाती है, अर्थात् $MC = MR$ और MR वक्र को MC वक्र नीचे से काटता हो। चित्र 34 8 को लीजिए जहां MR वक्र को MC वक्र E बिन्दु पर काटता है। परन्तु MC और MR की समानता के इस बिन्दु पर, MC ऋणात्मक है जो ऋणात्मक उत्पादन (-) OQ देता है। परन्तु ऐसा संभव नहीं क्योंकि कोई भी फर्म ऋणात्मक उत्पादन नहीं कर
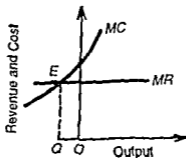
चित्र 34.8

सकती है। दूसरी ओर, रेखीय प्रोग्रामिंग में ऐसी कोई सभावना नहीं पाई जाती है।

प्रश्न

1 (क) एक उदाहरण द्वारा बताइए कि आप किस प्रकार एक दिए हुए रेखीय प्रोग्राम का द्वैध (dual) प्राप्त कर सकते हैं?

(ख) एक रेखीय प्रोग्राम के हल और उसके द्वैध के बीच क्या सबध है?

[सकेत खण्ड 6 में आहार समस्या की व्याख्या करिए और दूसरे भाग में आगम के अधिकतमीकरण के अन्तिम खण्ड का अध्ययन कीजिए।]

2 निम्नलिखित रेखीय प्रोग्रामिंग समस्या का ग्राफीय हल दीजिए

Maximise	$Z = 2.5X + Y$
Subject to	$3X + 5Y \leq 15$
	$5X + 2Y \leq 10$
	$X \geq 0, Y \geq 0$

3 रेखीय प्रोग्रामिंग के अन्तर्गत, आधारभूत धारणाओं को समझाइए। उत्पादन की समस्याओं से सबधित एक फर्म के निर्णयों में इस सिद्धान्त के व्यावहारिक प्रयोग की व्याख्या करिए।

4 उत्पादन सिद्धान्त पर रेखीय प्रोग्रामिंग मार्ग की व्याख्या कीजिए।

5 निम्न रेखीय प्रोग्रामिंग समस्या का ग्राफ द्वारा हल कीजिए

Maximise	$Z = 2X + 5Y$
Subject to	$X + 4Y \leq 24$
	$3X + Y \leq 21$
	$X + Y \leq 9$
	$X \geq 0, Y \geq 0$

भाग पाँच

साधन कीमत-निर्धारण
(FACTOR PRICING)

अध्याय 35

वितरण के सिद्धान्त
(THEORIES OF DISTRIBUTION)

1. व्यक्तिगत वितरण तथा फलनात्मक वितरण
(PERSONAL DISTRIBUTION AND FUNCTIONAL DISTRIBUTION)

अर्थशास्त्र में वितरण का सम्बन्ध आय के व्यक्तिगत वितरण तथा फलनात्मक वितरण से है। व्यक्तिगत वितरण का सबंध उन शक्तियों से है जो किसी देश में विभिन्न व्यक्तियों में आय और सम्पत्ति के बँटवारे को शासित करती हैं। व्यक्तिगत वितरण में राष्ट्रीय आय के वितरण के ढाँचे को तथा भिन्न-भिन्न वर्गों द्वारा राष्ट्रीय आय के जो हिस्से प्राप्त होते हैं उनका अध्ययन करते हैं। राष्ट्रीय आय में मजदूरी अर्जित करने वाले वर्ग का क्या हिस्सा है, लगान अर्जित करने वाले वर्ग का तथा उद्यमी वर्ग का क्या हिस्सा है? एक व्यक्ति की मजदूरी दूसरे की अपेक्षा क्यों अधिक या कम है? मकान या भूमि के एक टुकड़े का किराया या लगान दूसरे की अपेक्षा क्यों कम या अधिक है? ये और अन्य ऐसी समस्याओं का आय के व्यक्तिगत वितरण में अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में, आय के व्यक्तिगत वितरण के अन्तर्गत हम आय एवं सम्पत्ति में असमानता की समस्या, उसके प्रभाव तथा उसको कम या दूर करने के उपायों का अध्ययन करते हैं।

दूसरी ओर, फलनात्मक वितरण या साधन-हिस्सा वितरण उत्पादन के प्रत्येक साधन द्वारा कुल राष्ट्रीय आय के हिस्से की व्याख्या करता है। दूसरे शब्दों में, इसका सबंध उत्पादन के साधनों को उनकी सेवाओं के लिए बाँटे गए पुरस्कार से है। लगान, मजदूरी, ब्याज और लाभ क्रमश भूमि, श्रम, पूँजी और उद्यम की सेवाओं के पुरस्कार हैं। गणितीय भाषा में यह कहा जा सकता है $P = F(A, B, C, D)$, जहाँ कुल उत्पादन या आय P फलन F है, A भूमि, B श्रम, C पूँजी तथा D संगठन का। अत फलनात्मक वितरण विभिन्न उत्पादन के साधनों के हिस्सों तथा कीमतों को निर्धारित करने वाली शक्तियों का अध्ययन करता है।

व्यक्तिगत वितरण तथा फलनात्मक वितरण में इन स्पष्ट भिन्नताओं के पाए जाने के बावजूद दोनों में निकट का सबंध है। एक देश में व्यक्तिगत वितरण अन्तत आय के फलनात्मक वितरण द्वारा प्रभावित होता है। यदि उत्पादन के साधनों को पुरस्कार न्यायोचित है तो व्यक्तिगत आय का *वितरण भी न्यायोचित होता। परिणामस्वरूप, व्यक्तिगत आय ऊँची होती है।* सेवाओं एवं वस्तुओं के लिए माँग अधिक होती है जिससे अधिक निवेश, अधिक रोजगार, और अधिक उत्पादन तथा अधिक राष्ट्रीय आय होते हैं। ऊँची व्यक्तिगत आयों से अभिप्राय है ऊँचा रहन-सहन का स्तर तथा उत्पादन में अधिक दक्षता का होना। दूसरी ओर यदि आय का फलनात्मक वितरण न्यायोचित नहीं है तथा उत्पादन के साधनों के शोषण पर आधारित है तो व्यक्तिगत आय भी अन्यायपूर्ण

होगी। परिणामस्वरूप, अधिकतर लोग गरीब होंगे। आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण में कमी होगी तथा गरीबों और अमीरों में निरंतर संघर्ष के कारण देश में शान्ति एवं समृद्धि में रुकावट होगी। इस अध्याय में हम फलनात्मक वितरण की समस्याओं का अध्ययन करते हैं।

साधन-कीमत निर्धारण की समस्या क्लासिकी अर्थशास्त्रियों से लेकर नव-केन्जवादियों तक चर्चा का विषय रही है परन्तु उसके संबंध में अब तक कोई एकमत स्थापित नहीं हो पाया है। प्रोफेसर कॉलडर[1] ने वितरण के सिद्धान्तों को चार प्रमुख वर्गों में बाँटा है एक, रिकार्डो का या क्लासिकी सिद्धान्त, दो, मार्क्स-सिद्धान्त, तीन, नवक्लासिकी या सीमान्तवादी सिद्धान्त जिसके दो उपवर्ग हैं (i) सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त, और (ii) 'एकाधिकार की कोटि' का सिद्धान्त, और चार, केन्ज़ का सिद्धान्त। आगे इन सिद्धान्तों पर विचार किया जा रहा है। परन्तु इससे पूर्व हम साधन कीमत निर्धारण और बाजार कीमत निर्धारण में अन्तर बताएंगे।

2. साधन कीमत तथा बाजार कीमत निर्धारण में अन्तर
(DIFFERENCES BETWEEN FACTOR PRICING AND PRODUCT PRICING)

यद्यपि वस्तु कीमत निर्धारण की तरह साधन कीमत निर्धारण माँग और पूर्ति की शक्तियों पर आधारित है, तो भी दोनों में आधारभूत अन्तर पाए जाते हैं जो साधन कीमत निर्धारण को एक अलग सिद्धान्त बनाते हैं। वे इस प्रकार हैं

(i) एक वस्तु तथा एक साधन की माँग की प्रकृति में अन्तर होते हैं। एक वस्तु की माँग प्रत्यक्ष होती है जो उसकी सीमान्त उपयोगिता पर आधारित होती है, जबकि एक साधन की माँग व्युत्पन्न माँग (derived demand) होती है, वह उन वस्तुओं से व्युत्पन्न होती है जिनको एक साधन बनाने में सहायता करता है।

(ii) एक वस्तु की पूर्ति उसकी मुद्रा उत्पादन लागत (money cost of production) पर निर्भर करती है, जबकि एक साधन की पूर्ति उसकी अवसर लागत (opportunity cost) पर निर्भर करती है जोकि इसकी न्यूनतम आय है जो यह अगले श्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग में कमा सकता है।

(iii) कुछ साधनों, जैसे श्रम एवं उद्यमी का कीमत निर्धारण सामाजिक एवं मानवीय तत्वों द्वारा प्रभावित होता है, जबकि वस्तु कीमत निर्धारण इनके द्वारा नाम मात्र ही प्रभावित होता है।

इन स्पष्ट अन्तरों के बावजूद, जैसाकि प्रोफेसर वाटसन (Watson) ने कहा है, "वस्तु कीमतों का सिद्धान्त तथा साधन कीमतों का सिद्धान्त दोनों ही एक समूचे सिद्धान्त के भाग हैं। फर्मों की लागतें साधन कीमतों एवं प्रौद्योगिकी पर निर्भर करती हैं। उपभोक्ताओं की माँगें उनके स्वादों तथा उनकी आयों पर निर्भर करती हैं जो वे अपने साधनों को बेचकर प्राप्त करते हैं, अर्थात् अपनी उत्पादकीय सेवाएँ। आगे, उपभोक्ता माँगें प्रौद्योगिकीय के साथ साधनों की सीमान्त उत्पादकताएँ निर्धारित करती हैं।"

3. क्लासिकी अथवा रिकार्डो सिद्धान्त
(THE CLASSICAL OR RICARDIAN THEORY)

रिकार्डो का वितरण सिद्धांत, जो समस्त अर्थव्यवस्था पर लागू होता है, विभेदक लगान (differential rent) के नियम पर आधारित है। प्रोफेसर कॉलडर ने सीमान्त नियम (marginal principle) और आधिक्य नियम (surplus principle) की भाषा में रिकार्डो के सिद्धान्त की व्याख्या की है।

1 Nicholas Kaldor, Alternative Theories of Distribution, *R E S*, Vol XXIII, No 2, 1955-56

'सीमान्त नियम' राष्ट्रीय उत्पादन में लगान के भाग की व्याख्या करता है और 'आधिक्य नियम' बाकी भाग के मजदूरी और लगान में विभाजन की।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)—इस सिद्धान्त की मुख्य मान्यताए ये है

(i) कि अनाज के उत्पादन मे समस्त भूमि का प्रयोग होता है और "कृषि मे वार्यशील शक्तिया उद्योग मे वितरण निर्धारित करने का काम करती हैं", (ii) कि भूमि पर घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है, (iii) कि भूमि की पूर्ति की मात्रा स्थिर होती है, (iv) कि अनाज की माग पूर्ण अलोचशील है, (v) कि पूजी और श्रम एक परिवर्तनशील आगते (स्थिर गुणक) है, (vi) कि तकनीकी ज्ञान की स्थिति दी हुई है और कृषि मे कोई सुधार नहीं होते, (vii) कि सभी श्रमिकों को निर्वाह-मजदूरी दी जाती है, (viii) कि श्रम की पूर्ति कीमत स्थिर तथा दी हुई है, (ix) कि श्रम की माग, पूजी के सचय पर निर्भर करती है। श्रम की माग तथा श्रम की पूर्ति-कीमत दोनों ही श्रम की सीमान्त उत्पादकता से स्वतन्त्र होती है, (x) कि पूर्ण प्रतियोगिता होती है।

तीन वर्ग (Three Groups)—इन मान्यताओ के आधार पर रिकार्डो का सिद्धान्त अर्थव्यवस्था मे तीन वर्गों के परस्पर सम्बन्धो पर आधारित है। वे है (i) भूमिपति, (ii) पूजीपति, तथा (iii) श्रमिक—जिनमे भूमि की समस्त उपज बाटी जाती है। जैसाकि रिकार्डो ने स्वय अपनी पुस्तक के प्राक्कथन मे लिखा, "भूमि की जो कुछ भी उपज श्रम, मशीन एव पूजी के सयुक्त रूप से लागू करने पर इसके तल से प्राप्त की जाती है—समाज के तीन वर्गों मे बाट दी जाती है जिनके नाम है भूमिपति, इसकी खेती के लिए आवश्यक भण्डार या पूजी का मालिक, तथा श्रमिक जिनके परिश्रम से इस पर खेती की जाती है।" इन तीन वर्गों मे कुल राष्ट्रीय उत्पादन क्रमश लगान, लाभ और मजदूरी के रूप मे बाट दिया जाता है।

लगान, लाभ एव मजदूरी का बटवारा (Division of rent profit and wages)—*अनाज का* कुल उत्पादन दिया होने पर, प्रत्येक साधन का भाग निर्धारित हो सकता है। श्रम का प्रति इकाई लगान श्रम के औसत और सीमान्त उत्पादन का अन्तर होता है। या, कुल लगान श्रम के औसत उत्पादन तथा श्रम के सीमान्त उत्पादन का अन्तर × (गुणा) भूमि पर लगाई गई श्रम और पूजी की मात्रा। श्रम के सीमान्त उत्पादन और मजदूरी की दर का अन्तर 'लाभ' होता है। मजदूरी कोष (wage fund) – निर्वाह (subsistence) स्तर पर काम मे लगाए गए मजदूरो की सख्या के आधार पर मजदूरी की दर निधारित की जाती है। इस प्रकार उत्पादन और विक्रय किए गए कुल अनाज मे से, पहला हक है लगान का और शेष [उत्पादन घटा लगान (produce minus rent)] मजदूरी और लाभ मे विभाजित कर दिया जाता है जबकि ब्याज लाभ मे ही शामिल होता है। इसे चित्र 35 1 मे दिखाया गया है, जहा अनाज की मात्रा को अक्ष क्षैतिज मापता है और कृषि मे
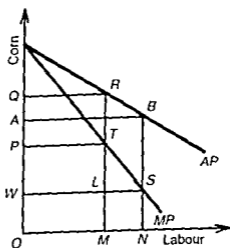
चित्र 35 1

लगाई गई श्रम और पूंजी की मात्रा को अनुलव अक्ष मापता है। श्रम के औसत उत्पादन को *AP* वक्र प्रकट करता है और श्रम के सीमान्त उत्पादन को *MP* वक्र। पूंजी और श्रम की *OM* मात्रा से अनाज की कुल *OQRM* मात्रा का उत्पादन होता है। जब *OM* श्रम की मात्रा काम पर लगाई जाती है तो इसका औसत उत्पादन *RM* और सीमान्त उत्पादन *TM* होता है। लगान श्रम की प्रति इकाई औसत उत्पादन (*AP*) तथा सीमान्त उत्पादन (*MP*) का अन्तर होने से *RT* (= *RM*-*TM*) है। कुल लगान आयत *PQRT* द्वारा दिखाया गया है, जो प्रति इकाई लगान (*RT*) गुणा काम पर लगाए गए श्रमिको की सख्या *PT* (= *OM*) के बराबर है। अत अनाज का कुल उत्पादन *OQRM* में से *PQRT* उत्पादन भूमि के मालिक को लगान के रूप में जाना है और बाकी उत्पादन *OPTM* श्रम तथा पूजी मे बाटा जाएगा।

रिकार्डो के अनुसार श्रम का भाग निर्वाह-मजदूरी द्वारा निर्धारित होता है। चित्र मे *OW* प्रति श्रमिक निर्वाह मजदूरी है क्योकि उसे निर्वाह के लिए अनाज की *OW* मात्रा चाहिए। *WL* श्रम का पूर्ति वक्र है जो *OW* निर्वाह मजदूरी दर पर अनन्त लोचदार (infinitely elastic) है। इस प्रकार कुल उत्पादन मे *OWLM* श्रम का हिस्सा है (काम पर लगाए गए श्रमिक (*OM*) गुणा मजदूरी दर (*OW*), बाकी का उत्पादन *WPTL* लाभ है। अत लाभ कुल उत्पादन मे से लगान तथा मजदूरी घटाने पर अतिरेक के बराबर है $WPTL = OQRM - (PQRT + OWLM)$

यदि श्रम के भाग *OWLM* मे वृद्धि होती है, तो वह एक ही शर्त पर हो सकती है कि लाभ की दर कम हो जाए। जब *OWLM* मे वृद्धि के परिणामस्वरूप लाभ की दर गिरने लगती है, तो परिणाम यह होता है कि पूजी का निर्माण रुक जाता है और स्थिर अवस्था पैदा हो जाती है। जब मजदूरी बढती है तो जरूरी है कि लाभ कम हो जाएगा। हो सकता कि उस समय ऐसा न हो, जब कृषि को सरक्षण प्रदान कर दिया जाए या निर्माणकारी उद्योग पर कर लगा या बढा दिए जाए। तकनीकी प्रगति होने पर भी *OWLM* बढ सकता है। तकनीकी प्रगति *MP* और *AP* वक्रो को ऊपर की ओर दाए को सरकाने का प्रयत्न करती है। परिणाम यह होता है कि लाभ और मजदूरी दोनों की दर बढ जाती है। मजदूरी की दर मे वृद्धि, आबादी और अनाज की माग को बढाने की प्रेरणा देती है जो बदले मे अनाज की कीमत बढा देती है। अनाज की बढी हुई माग को पूरा करने के लिए अधिक श्रम काम पर लगाया जाता है, परन्तु अपेक्षाकृत ऊची मजदूरी पर। रिकार्डो के अनुसार, "मजदूरी मे वृद्धि का एकमात्र समुचित और स्थायी कारण वह बढती हुई कठिनाई जो आदमियो की बढती हुई सख्या के लिए अन्न तथा जरूरते जुटाने मे होती है। इसका परिणाम यह होता है कि श्रम की लागतें बढ जाती है, श्रम के *MP* और *AP* कम हो जाते है तथा घटते प्रतिफल का नियम क्रियाशील हो जाता है। इन साधनो से अनाज की कीमत और बढने लगती है जिसमे लगान बढ जाता है। लगान और मजदूरी की वृद्धि के लाभ कम होते जाते है जब तक कि वे समाप्त नहीं हो जाते। इसे चित्र 36.1 मे दर्शाया गया है जब श्रम की मात्रा *OM* से बढकर *ON* हो जाती है तथा कुल उत्पादन *OABN* हो जाता है। इसमे से *OWSN* कुल मजदूरी है तथा *WABS* लगान। लाभ बिल्कुल नहीं है।

स्थिर अवस्था (Stationary state)—रिकार्डो के अनुसार अर्थव्यवस्था मे लाभ की दर मे निरन्तर कमी की प्रवृत्ति पाई जाती है जिससे अन्तत देश स्थिर अवस्था मे पहुच जाता है। जब लाभों की वृद्धि से पूजी-सचय अधिक होता है तो कुल उत्पादन बढता है जिससे मजदूरी कोष बढता है। मजदूरी कोष बढने से जनसंख्या बढती है जिससे अनाज की माग बढती है और अनाज की कीमत भी। जब जनसंख्या बढती है तो अनाज के लिए बढ रही माग को पूरा करने के लिए घटिया किस्म की भूमियो पर खेती की जाती है। बढिया किस्म की भूमियो पर लगान बढते है और इन पर उत्पादित उपज का बहुत बडा भाग खपा लेते है। इससे पूजीपतियो और श्रमिको के भाग कम हो जाते है जिससे लाभ कम होते है और मजदूरी की निर्वाह-स्तर तक गिरने की प्रवृत्ति होती है। बढ

रहे लगान और घट रहे लाभो की यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक कि सीमान्त भूमि से उत्पादन काम पर लगाए गए श्रमिक की निर्वाह मजदूरी को पूरा नहीं करता। तब लाभ शून्य होते है और स्थिर अवस्था आ जाती है। ऐसी अवस्था में पूजी-सचय रुक जाता है, जनसख्या मे वृद्धि नहीं होती, मजदूरी दर निर्वाह-स्तर पर होती है, लगान ऊचा होता है तथा आर्थिक प्रगति रुक जाती है।

रिकार्डो के सिद्धान्त मे स्थिर अवस्था की ओर गति को चित्र 35.2 मे दर्शाया गया है, जो उसकी वितरण की धारणा को और भी स्पष्ट करता है। जनसख्या को क्षैतिज अक्ष पर मापा गया है और कुल उत्पादन घटा लगान को अनुलम्ब अक्ष पर। वक्र OP जनसख्या फलन है जो कुल उत्पादन घटा लगान को जनसख्या का फलन प्रदर्शित करता है। जनसख्या के बढने के साथ-साथ OP वक्र घटते प्रतिफल का नियम लागू होने से चपटा होता जाता है। मूल से किरण OW स्थिर वास्तविक मजदूरी मापती है। क्षैतिज रेखा जिस पर जनसख्या ली गई है और मजदूरी दर रेखा OW का अनुलम्ब (vertical) अन्तर जनसख्या के विभिन्न स्तरो पर कुल मजदूरी बिल मापता है। इस प्रकार, ON_1, ON_2 और ON_3 जनसख्या स्तरो पर W_1N_1, W_2N_2 और W_3N_3 क्रमश कुल मजदूरी बिल है। जब मजदूरी बिल W_1N_1 है, तो लाभ P_1W_1 है, अर्थात् कुल उत्पादन घटा लगान + कुल
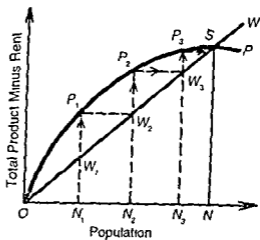
चित्र 35.2

मजदूरी बिल $= P_1N_1 + W_1N_1 = P_1W_1$ जब लाभ P_1W_1 है तो निवेश प्रोत्साहित होता है। श्रम की माग बढ कर ON_2 हो जाती है जो मजदूरी बिल को W_2N_2 पर बढा देता है परन्तु लाभ कम होकर P_2W_2 हो जाते है। इस प्रकार श्रम की माग ON_3 पर बढने से मजदूरी बिल और बढता है और W_3N_3 हो जाता है परन्तु लाभ कम होकर P_3W_3 हो जाते है। यह प्रकिया तब तक चलती रहेगी जब तक कि अर्थव्यवस्था S बिन्दु पर नहीं पहुच जाती और स्थिर अवस्था प्रारभ हो जाती है। ऐसी स्थिति मे लाभ बिल्कुल समाप्त हो जाते है और समस्त उत्पादन, लगान और मजदूरी मे वितरित हो जाता है।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)—रिकार्डो के सिद्धान्त मे कई त्रुटियां पाई जाती है

1 **फलनात्मक सिद्धान्त नहीं** (Not a functional theory)—रिकार्डो का वितरण सिद्धान्त तीन साधनो से सम्बन्धित सिद्धान्त है, जो काफी स्पष्ट रूप से अलग तीन वर्गों, मजदूरो, भूमिपतियों और पूजीपतियो के भाग निर्धारित करता है। प्रत्येक का भाग निश्चित करने मे, रिकार्डो की धारणा यह है कि भूमि का हिस्सा प्रमुख होता है और शेष भाग को यह श्रम और पूजी का हिस्सा समझता है। यह दृष्टिकोण गलत था क्योकि यह वितरण के फलनात्मक सिद्धान्त को प्रस्तुत करने मे अर्थात् प्रत्येक साधन का उसकी सेवा के आधार पर अलग-अलग पुरस्कार निर्धारित करने मे असफल रहा।

2 **भूमि केवल अनाज ही उत्पन्न नहीं करती** (Land does not produce corn only)—यह मान लिया जाता है कि भूमि केवल वस्तु अर्थात् अनाज के उत्पादन के लिए ही प्राप्त हो सकती है परन्तु यह एक प्राचीन विचार है। यह विचार उस समय और भी पिछड़ा हुआ प्रतीत होता है, जब हम यह कहते हैं कि उत्पादन के अन्य साधनों को केवल भूमि का उत्पादन ही सहारा देता है।

3 **श्रम और पूंजी स्वतंत्र साधन** (Labour and capital independent factors)—यह धारणा भी नहीं अपनाई जा सकती कि पूंजी और श्रम स्थिर गुणक होते हैं। इस धारणा का खण्डन इसी तथ्य में हो जाता है कि पूंजी और श्रम स्वतन्त्र चर (variables) साधन हैं।

4 **लाभ से ब्याज भिन्न** (Interest separate from profits)—रिकार्डो के वितरण सिद्धान्त का एक गंभीर दोष यह है कि वह ब्याज को स्वतन्त्र पुरस्कार के रूप में नहीं लेता। ब्याज को लाभों में ही शामिल मान लिया गया है। यह गलतफहमी इस विचार से पैदा होती है कि पूंजीपति और उद्यमी अलग-अलग व्यक्ति नहीं होते। वास्तव में, उद्यमी वह चालक शक्ति है, जो पूंजी और श्रम दोनों का नियोजन और निर्देश करती है।

5 **घटते प्रतिफल नियम को अनावश्यक महत्त्व** (Undue importance to law of diminishing returns)—रिकार्डो का सिद्धान्त घटते प्रतिफल के नियम पर मुख्यत आधारित है। उन्नत राष्ट्रों में कृषि-उत्पादन की तीव्र वृद्धि ने यह सिद्ध कर दिया है कि रिकार्डो ने भूमि के सम्बन्ध में घटते प्रतिफलों के निवारण में प्रोद्योगिकीय प्रगति की क्षमताओं का कम मूल्यांकन किया। इस प्रकार उसने घटते प्रतिफल के नियम को अनावश्यक महत्त्व दिया।

6 **जनसंख्या वृद्धि के साथ मजदूरी बढ़ती है** (Wages rise with population increase)—रिकार्डो की यह धारणा कि जनसंख्या बढ़ने के कारण मजदूरी दर में कोई वृद्धि नहीं होती, निर्मूल है। प्रथम, पश्चिमी समाज में प्रवर्तमान जनसंख्या की प्रवृत्तियों ने माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त को गलत साबित कर दिया है। दूसरा, मजदूरी का जनसंख्या के साथ ऐसा सम्बन्ध नहीं पाया जाता जैसाकि रिकार्डो ने बताया। इसके विपरीत विकसित देशों में मजदूरी दर बढ़ी है तथा उसके बढ़ने के साथ जनसंख्या में कमी हुई है।

7. **भूमि के प्रतियोगात्मक कीमत निर्धारण की उपेक्षा** (Neglect of competitive pricing of land)—इस सिद्धान्त का कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि यह सिद्धान्त प्रतियोगी कीमत निर्धारण के माध्यम से पूर्ति और माग तथा आर्थिक संगठन के रूप में उत्पादन के साधनों का पुरस्कार देने की समस्या पर विचार नहीं करता।

निष्कर्ष (Conclusion)—इन दुर्बलताओं के बावजूद, प्रोफेसर कॉलडर के अनुसार, रिकार्डो की रुचि केवल वितरणात्मक भागों की समस्या में ही नहीं थी बल्कि इस विश्वास में भी थी कि आर्थिक व्यवस्था के कार्यकरण को समझने की कुंजी वितरण सिद्धान्त के हाथ में है अर्थात् उन शक्तियों की कुंजी, जो प्रगति की दर, संरक्षण के प्रभावों, और कराधान के अन्तिम आपात (incidence) आदि को निर्धारित करती है। "वितरणात्मक भागों का नियमन करने वाले नियमों" के माध्यम से रिकार्डो उसको बनाने का प्रयत्न कर रहा था जिसे हम आजकल "एक सरल समष्टि-आर्थिक मॉडल" कहते हैं। इस दृष्टि से रिकार्डो और केन्ज के वितरण सिद्धान्तों में समरूपता है।

4. मार्क्स सिद्धान्त
(THE MARXIAN THEORY)

मार्क्स का सिद्धान्त अतिरेक मूल्य (suplus value) के विश्लेषण पर आधारित है। किसी अन्य वस्तु की भांति श्रम-शक्ति भी एक वस्तु है। इसका मूल्य श्रम की वह मात्रा है जिसका, एक मजदूर के भरण-पोषण के लिए आवश्यक जीवन-निर्वाह के साधनों के उत्पादन में, वह प्रयोग करता है।

वास्तव मे श्रम-शक्ति उससे अधिक उत्पादन करती है। श्रम के निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुओं का मूल्य उस श्रम द्वारा उत्पादित उत्पादन के मूल्य के कभी बराबर नहीं होता। यदि एक मजदूर दस घण्टे प्रतिदिन काम करता है, परन्तु अपने निर्वाह की वस्तुओं का उत्पादन करने में उसे केवल छह घण्टे लगते है, तो उसे छह घण्टे श्रम के बराबर मजदूरी दी जाएगी। चार घण्टे के श्रम का अन्तर शुद्ध लाभ, ब्याज और लगान के रूप में पूंजीपति की जेब में चला जाता है। मार्क्स इस अदत्त (unpaid) काम को 'अतिरेक मूल्य' और उस अतिरिक्त श्रम को, जिसके लिए मजदूर को कुछ नहीं मिलता, 'अतिरेक श्रम' कहता है। यह श्रम-अतिरेक पूंजीपति के लाभ को बढ़ाता है। पूंजीपति का मुख्य उद्देश्य अतिरेक मूल्य को बढ़ाना है जो उसके लाभों में वृद्धि करता है। इसके लिए वह तीन तरीके अपनाता है (क) अतिरेक श्रम के कार्यकारी घण्टों को बढ़ाने के लिए काम के दिन को लम्बा करके यदि काम के घण्टे 10 से 12 बढा दिए जाते हैं, तो अतिरेक श्रम अपने-आप 4 से 6 घण्टे बढ जाएगा। (ख) मजदूरों के निर्वाह के लिए जो उत्पादन चाहिए उसके घण्टे कम करके। यदि निर्वाह के लिए उत्पादन के घण्टे 6 से कम करके 4 कर दिए जाते है तो अतिरेक श्रम फिर 4 से 6 घण्टे बढ जाएगा। (ग) श्रम की गति बढाकर अर्थात् श्रम की उत्पादकता में वृद्धि करके। इसके लिए प्रौद्योगिकी परिवर्तन चाहिए जो कुल उत्पादन को बढाने तथा उत्पादन की लागत को कम करने मे सहायक होता है। मार्क्स के अनुसार, सभावना यह है कि पूंजीपति इन तीनों तरीकों में से श्रम की उत्पादकता बढाने का तरीका चुनेगा क्योंकि अन्य दोनों तरीकों की कार्यकारी (working) घण्टों के बढाने और मजदूरी घटाने की अपनी सीमाएं हैं। इसलिए श्रम की उत्पादकता में सुधार लाने के लिए पूंजीपति अतिरेक मूल्य की बचत करते है और पूंजी का बड़ा स्टॉक प्राप्त करने के लिए उसे पुन निवेश करते है और इस प्रकार पूँजी सचय करते हैं। मार्क्स के शब्दों में, "Accumulate, accumulate' That is Moses and the Prophets" और "Save, save i e , reconvert the greatest possible portion of surplus value or surplus product into capital" पूंजीपति के यही आदर्श है।

पूंजी की मात्रा भी लाभों को निर्धारित करती है। जैसे कि मार्क्स का कहना है "पूंजी वह मृत श्रम है जो एक मांसखोर जन्तु की भांति जीवित श्रम का खून चूसकर ही जीवित रहती है और वह जितना अधिक श्रम को चूसती है उतना ही अधिक जीवित रहती है।" लाभ के उद्‌भव की व्याख्या करने तथा मजदूरी एव लाभों के सम्बन्ध का विश्लेषण करने के लिए मार्क्स पूंजी को स्थिर पूंजी तथा 'परिवर्ती पूंजी' में बाटता है। स्थिर पूंजी (c) कच्चे माल, मशीनों इत्यादि को व्यक्त करती है जो श्रम की उत्पादकता की सीधे सहायक होती है। वह पूंजी, जो मजदूरी के रूप में श्रम-शक्ति को खरीदने में लगी होती है, परिवर्ती पूंजी (v) कहलाती है। परिवर्ती पूंजी ही अतिरेक मूल्य का प्रमुख स्रोत है, जबकि मशीनों का मूल्य धीरे-धीरे वस्तु में चला जाता है। अतिरेक मूल्य को s द्वारा व्यक्त किया जाना है। अत उत्पादन का कुल मूल्य = स्थिर पूंजी (c) + परिवर्ती पूंजी (v) + अतिरेक मूल्य (s), या $(c + v) + s$

स्थिर पूंजी परिवर्ती अनुपात c/v 'पूंजी की सगठित सरचना (organic composition of capital)' कहा गया है। अतिरेक मूल्य की दर [शोषण की कोटि (degree of exploitation)] को s/v के रूप मे परिभाषित किया गया है, अर्थात् अतिरेक मूल्य का परिवर्ती पूंजी से अथवा लाभों का मजदूरी में अनुपात। इसके परिणामस्वरूप मार्क्स ने सकेत किया है कि लाभ की दर एकमात्र अतिरेक मूल्य की दर पर ही निर्भर नहीं है। यदि पूंजी की सगठित सरचना मे परिवर्तन हो जाए तो लाभ की दर मे परिवर्तन हो सकता है, भले ही अतिरेक मूल्य स्थिर रहे। लाभ की दर और पूंजी की सगठित सरचना का एक-दूसरे के साथ उलटा सबध होता है। जब c/v बढती है तो लाभ की दर (r) कम होती है और उसके उलट तकनीकी प्रगति का प्रभाव सामान्य रूप से स्थिर पूंजी से परिवर्ती पूंजी का अनुपात बढाने की दिशा में पूंजी की सगठित सरचना को बदलने के लिए होता है। इसलिए
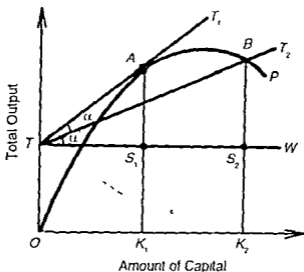
चित्र 35.3

जब पूँजी की OK_1 मात्रा मशीनों पर लगाई जाती है तब कुल उत्पादन AK_1 के बराबर होता है और उद्यमियों को कुल लाभ AS_1 के बराबर प्राप्त होता है जबकि लाभ की दर, $\tan_\alpha = AS_1/TS_1$ है। यदि उद्यमी लाभ को बढ़ाने की आशा से OK_1 से अधिक मात्रा पूँजी पर व्यय करते हैं तो कुल लाभ AS_1 से कम होकर BS_2 हो जाता है। तब लाभ की दर कम हो जाती है। स्पष्ट है कि OK_2 पूँजी लगाने से लाभ की दर $\tan_0 = BS_2/TS_2$ रह जाती है जो कि पहली लाभ की दर AS_1/TS_1 की अपेक्षा कम है। अत अधिक पूँजी को मशीनों पर लगाने से लाभ की दर कम हो जाती है।

इस प्रकार श्रम-शोषण की उतनी ही कोटि के साथ, अतिरेक मूल्य की उतनी ही दर, अपने लाभों को घटती दर में प्रकट करती है क्योंकि "जैसे-जैसे प्रोद्योगिकीय प्रगति सजीव श्रम के स्थान एकत्रित श्रम को स्थानापन्न करती जाएगी, वैसे-वैसे अतिरेक मूल्य की दी हुई दर द्वारा प्रदान की गई लाभों की दर घटती जाएगी अर्थात यदि सजीव श्रम की शोषण-दर में तदनुरूप वृद्धि नहीं होती तो लाभों की दर घटती जाएगी।" लाभो की घटती दर की इस प्रवृत्ति को विफल करने के लिए पूँजीपति मजदूरी घटाकर, कार्यकारी दिन को लम्बा करके और 'त्वरण' (speed ups) इत्यादि के द्वारा शोषण की कोटि (degree of exploitation) बढ़ाते हैं। परन्तु क्योंकि प्रत्येक पूँजीपति नई श्रम-बचत तथा लागत घटाने की युक्तियों का प्रचलन करने में लगा रहता है, इसलिए कुल उत्पादन से श्रम का (अत अतिरेक मूल्य का) अनुपात और भी कम हो जाता है। लाभों की दर भी और घट जाती है। यह प्रक्रिया चलती रहती है जब तक कि लाभ समाप्त नहीं हो जाते और संकट (crisis) प्रारम्भ हो जाता है।

इसकी आलोचना (Its Criticisms)—मार्क्स के विश्लेषण के कुछ दोष तो एकदम स्पष्ट हैं।

1 **लगान और ब्याज अलग-अलग पुरस्कार** (Rent and interest as separate rewards)—वह लगान और ब्याज को अलग-अलग पुरस्कार नहीं समझता बल्कि 'उन्हें अतिरेक मूल्य का एक खंड मात्र' मानता है।

2 **उद्यमी के कार्य की चर्चा नहीं** (Role of entrepreneur not discussed)—लाभ निर्धारण के लिए उसमें उद्यमियों के कार्य और महत्त्व की चर्चा नहीं की गई है।

3. **पूँजी की बढ़ती संगठित संरचना का नियम अन्तर्विरोधी** (Law of increasing organic composition of capital inherently contradictory)—मार्क्स का 'पूँजी की बढ़ती संगठित संरचना' का नियम अन्तर्विरोधों (inherent contradictions) से ग्रस्त है। यदि परिवर्ती पूँजी ही सब लाभों का स्रोत है, तो स्थिर पूँजी, जैसे मशीनें, लगाना व्यर्थ है। मार्क्स स्वयं अनुभव करता है कि 'यह अन्तर्विरोध मौजूद है' परन्तु वह इसका कोई हल नहीं देता।

4. **पूँजी की संगठित संरचना के नियम से लाभ की गिरती दर का नियम निकालना सम्भव नहीं** (Not possible to derive law of falling rate of profit from the law of organic composition of capital)—जैसा कि प्रोफेसर कॉलन्डर ने बताया है पूँजी की संगठित संरचना के नियम से लाभ की गिरती दर का नियम नहीं निकाला जा सकता। क्योंकि मार्क्स की धारणा यह है कि श्रम की पूर्ति कीमत (मजदूरी की दर) अपरिवर्तित रहती है इसलिए जब पूँजी की संगठित संरचना में वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ता है तो उसमें लाभ की दर अपेक्षाकृत अधिक या कम नहीं होगी। "क्योंकि यदि यह भी मान लिया जाय कि प्रति व्यक्ति-पूँजी की तुलना में प्रति व्यक्ति उत्पादन अपेक्षाकृत धीरे बढ़ता है, तो भी प्रति व्यक्ति 'अतिरिक्त मूल्य' अवश्य ही प्रति व्यक्ति उत्पादन की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ेगा और इस प्रकार उस अवस्था में भी लाभ की बढ़ती दर प्राप्त कर सकता है, जब श्रम की प्रति इकाई स्थिर पूँजी की क्रमिक वृद्धि की घटती उत्पादकता हो।"

5. **लाभों के घटने की प्रवृत्ति सही नहीं** (Falling tendency of profits not correct)—जोन रॉबिन्सन के अनुसार, मार्क्स की "लाभों के घटने की प्रवृत्ति की व्याख्या कुछ भी तो स्पष्ट नहीं करती।" मार्क्स का कहना है कि ज्यों-ज्यों विकास अग्रसर होता है त्यों-त्यों पूँजी की प्रांगारिक संरचना में वृद्धि होती है, जो लाभों की दर को घटा देती है। परन्तु मार्क्स यह समझाने में असमर्थ रहा कि प्रौद्योगिकीय नवप्रवर्तन पूँजी की बचत करने वाले भी हो सकते हैं, और पूँजी-उत्पादन अनुपातों में कमी तथा उत्पादकता में वृद्धि होने पर मजदूरी के साथ-साथ लाभ भी बढ़ सकते हैं।

मार्क्स और रिकार्डो के सिद्धान्त में अन्तर—दोनों सिद्धान्तों में कुछ आधारभूत अन्तर हैं

(i) मार्क्स घटते प्रतिफल नियम में विश्वास नहीं रखता तथा लगान और लाभ में कोई भेद नहीं करता, वह लगान को लाभ के भाग में ही शामिल कर लेता है। परन्तु रिकार्डो की भाँति मार्क्स भी ब्याज को लाभ का ही हिस्सा मानता है।

(ii) मार्क्स सामान्य वस्तुओं के रूप में श्रम की पूर्ति कीमत को स्थिर मानता है जबकि रिकार्डो अनाज के रूप में मजदूरी की दर को स्थिर समझता है।

(iii) रिकार्डो के अनुसार लगान और मजदूरी का अन्तर लाभ होते हैं जबकि मार्क्स समझता है कि श्रम की पूर्ति कीमत (मजदूरी या लागत) से श्रम के उत्पादन का अतिरेक लाभ होते हैं।

(iv) रिकार्डो के सिद्धान्त में, मजदूरी कोष में से जीवन निर्वाह स्तर के बराबर मजदूरी दी जाती है जबकि मार्क्स के विश्लेषण में 'श्रम की आरक्षित सेना' (बेरोजगार जो समाज में हमेशा रहते हैं) मजदूरी की दर को निर्वाह स्तर से ऊपर जाने से रोकती है।

(v) दोनों दृष्टिकोणों में एक और अन्तर पूँजी-संचय के मूल में स्थित उद्देश्य के बारे में है। रिकार्डो की दृष्टि में पूँजीपति लाभ की ऊँची दर के आकर्षण से संचय करता है, परन्तु मार्क्स की दृष्टि में पूँजीपतियों के लिए संचय एक आवश्यकता है क्योंकि उनमें आपस में प्रतियोगिता होती है।

अन्तिम, रिकार्डो समझता है कि घटते प्रतिफल के नियम की क्रियाशीलता के कारण लाभों का घटती दर की ओर झुकाव होता है जबकि मार्क्स की दृष्टि में यह प्रवृत्ति "पूँजी की बढ़ती संगठित संरचना के नियम" अर्थात परिवर्ती पूँजी से स्थिर पूँजी के अनुपात पर आधारित होती है।

5 कलैस्की का एकाधिकार कोटि-सिद्धान्त या नव-क्लासिकी सिद्धान्त (KALECKI'S DEGREE OF MONOPOLY THEORY OR NEO-CLASSICAL THEORY)

प्रो कलैस्की ने वितरण के एक सिद्धान्त का विकास किया है जो लर्नर के 'एकाधिकार कोटि' के सिद्धान्त पर आधारित है। सिद्धान्त यह बताता है कि "समस्त आवर्त (turnover) में सकल पूजीपति आय और वेतनो का सापेक्ष भाग अत्यन्त सन्निकटन (approximation) से 'एकाधिकार की औसत कोटि' के बराबर होता है।"

लर्नर की एकाधिकार माप की व्यष्टि कोटि को लेते हुए, कलैस्की उसको अपने समष्टि मॉडल पर लागू करता है। लर्नर की एक एकल (single) फर्म की एकाधिकार की कोटि को इस प्रकार मापा जाता है

$$\mu = p - m/p \qquad (1)$$

जहा μ एकाधिकार की कोटि, p कीमत ओर m सीमात लागत है।

कलैस्की सीमात लागत (m) और औसत लागत (a) मे समानता मानता है। अत ऊपर के समीकरण में a को m के स्थान पर स्थानापन्न करने से,

$$\mu = p - a/p \text{ or } p\mu = (p - a) \qquad (2)$$

जहा $(p-a)$ ब्याज, लाभो, मूल्यह्रास और वेतनो का जोड है। दूसरे शब्दो मे, यह सकल पूजीपति आय जमा मालिक के उत्पादन की प्रति इकाई वेतन।

मालिक की कुल सकल पूजीपति आय को निकालने के लिए, फर्म के कुल उत्पादन x को समीकरण (2) के दोनो भागों से गुणा किया जाता है। इस प्रकार

$$xp\mu = x(p - a) \qquad (3)$$

जहा $x(p-a)$ एक फर्म के मालिक की कुल सकल पूजीपति आय है।

अर्थव्यवस्था में सभी फर्मों की कुल सकल पूजीपति आय को जानने के लिए, समीकरण (3) के दोनो भागो को Σ (सिगमा जो सभूहन या योग को व्यक्त करता है) म गुणा कर देते हैं। इस प्रकार समीकरण (3) बन जाता है।

$$\Sigma xp\mu = \Sigma x(p - a) \qquad (4)$$

जहा अभिव्यक्ति $\Sigma x(p-a)$ अर्थव्यवस्था मे सभी फर्मों की कुल सकल पूजीपति आय है, Σxp अर्थव्यवस्था मे सभी उत्पादित एव बेची गई वस्तुओ के उत्पादन का कुल मूल्य है। दूसरे शब्दो में, Σxp अर्थव्यवस्था का समस्त आवर्त (turnover) है जिसे कलैस्की T द्वारा व्यक्त करता है। T में सकल राष्ट्रीय आय जमा बिक्री योग्य कच्चे मालो की समस्त लागत सम्मिलित होती है। समीकरण (4) के दोनो भागो को T द्वारा भाग देने से,

$$\frac{\Sigma xp\mu}{T} = \frac{\Sigma x(p-a)}{T}$$

या

$$\frac{\Sigma xp\mu}{\Sigma xp} = \frac{\Sigma x(p-a)}{T} \qquad (\Sigma xp = T) \qquad (5)$$

ऊपर के समीकरण के बाए भाग की अभिव्यक्ति $\Sigma xp\mu/\Sigma xp$ जो एकाधिकार की कोटि μ की भारित (weighted) औसत है जिसे इस प्रकार $\bar{\mu}$ लिखा जा सकता है।

अत समीकरण (5) ऐसे लिखा जा सकता है

$$\bar{\mu} = \Sigma x\,(p - a)/T \qquad (6)$$

जो यह दर्शाता है कि एकाधिकार की समष्टि-कोटि ($\bar{\mu}$) बराबर है, अर्थव्यवस्था की कुल सकल पूंजीपति आय [$\Sigma x\,(p - a)$] तथा अर्थव्यवस्था के समस्त आवर्त (T) के अनुपात के।

एकाधिकार कोटि μ, जिस पर यह समीकरण आधारित है, की परिभाषा यों दी गई है कि यह मूल लागतों की कीमत का अनुपात होती है जो वास्तव में मजदूरी से कुल लाभों का अनुपात है। ऊपर दिया गया समीकरण एकाधिकार औसत कोटि को प्रकट करता है और स्वतन्त्र प्रतियोगिता की स्थिति में, जहां μ शून्य के बराबर होता है, सही नहीं ठहर सकता। एकाधिकार की स्थिति में यह तभी सही हो सकता है, जब यह मान लिया जाए कि (1) उद्योग पूर्ण क्षमता के बिन्दु से नीचे काम करते हैं और (2) कि उत्पादन के सबंधित रेंज में उत्पादन की मूल लागतें प्रति इकाई स्थिर रहती है। इस प्रकार यह फार्मूला वास्तविक है, इसलिए कि कोई भी उद्योग अपनी पूर्ण क्षमता तक उत्पादन नहीं करता क्योंकि अपूर्ण-प्रतियोगिता या एकाधिकार के अन्तर्गत माग वक्र (AR) औसत लागत वक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु से बाएं को स्पर्श करता है। यह अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों में लागू होता है। आविष्कारों तथा पूंजी और श्रम में स्थानापन्नता की लोच का आय के वितरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि सीमांत लागत वक्र का औसत लागत वक्र के साथ एक मेल होता है। हां, यदि तकनीकी प्रगति उद्यमों के आकार में परिवर्तन करके एक उद्योग के एकाधिकार की कोटि को प्रभावित करती है तो एकाधिकार की कोटि के माध्यम से आय के वितरण पर प्रभाव पड़ता है।

इसके पश्चात कलेस्की सकल राष्ट्रीय आय में मजदूरी के सापेक्ष भाग के लिए समीकरण व्युत्पन्न करता है। वास्तव में अभिव्यक्ति $\Sigma x\,(p - a)$ मजदूरी बिल देने के बाद सकल राष्ट्रीय आय का भाग है। यदि राष्ट्रीय आय को Y द्वारा और मजदूरी बिल को W द्वारा व्यक्त किया जाता है, तब $Y - W$ भी सकल राष्ट्रीय आय दर्शाता है। समीकरण (6) को ऐसे लिखा जा सकता है

$$\bar{\mu} = Y - W/T \qquad (7) \qquad [\ \Sigma x(p - a) = Y - W]$$

समीकरण (7) में दोनों भागों को T/W से गुणा करने से,

$$\bar{\mu}\ T/W = (Y - W/T)\ T/W$$

या $\bar{\mu}\ T/W = (Y - W)/W$

या $\bar{\mu}\ T/W = Y/W - 1$

या $1 + \bar{\mu}\ T/W = Y/W$

राष्ट्रीय आय में मजदूरी का भाग W/Y जानने के लिए, हम ऊपर के समीकरण का उलटा लिखते हैं

$$W/Y = \frac{1}{1 + \bar{\mu}\ T/W} \qquad (8)$$

समीकरण (8) बताता है कि राष्ट्रीय आय में मजदूरी का भाग एकाधिकार की कोटि के साथ विपरीत परिवर्तित करता है। फिर, मजदूरी का भाग भी T/W पर निर्भर करता है। इस प्रकार, कलेस्की के अनुसार, सकल राष्ट्रीय आय में मजदूरी का सापेक्ष भाग दीर्घकाल में एकाधिकार की कोटि, मजदूरी इकाई लागत के अनुपात में, कच्चे मालों की कीमतों तथा औद्योगिक सरचना द्वारा निर्धारित होता है। एकाधिकार की कोटि में वृद्धि राष्ट्रीय आय में मजदूरी के सापेक्ष भाग को कम करती है। मजदूरी के अनुपात में आधारभूत कच्चे मालों की कीमतों में वृद्धि राष्ट्रीय आय में मजदूरी के सापेक्ष भाग को कम करती है लेकिन बहुत कम अनुपात में। अत एकाधिकार की कोटि और कच्चे मालों की कीमतें विपरीत दिशा में चलती हैं। तेजी में कच्चे मालों की कीमतें

में वृद्धि को एकाधिकारी की कोटि में कमी क्षतिपूर्ति करती है, जबकि सुस्ती में कच्चे माला की कीमतों में गिरावट को एकाधिकार की कोटि में वृद्धि क्षतिपूर्ति करती है।

औद्योगिक सरचना ओर कच्चे माल की कीमतों के इकाई मजदूरी लागतों के सबध के बारे में निश्चित तौर से कहना कठिन है। परन्तु व्यापार चक्र में कुछ निश्चित तौर पर कहा जा सकता है। मदी के दौरान मजदूरी के अनुपात में कच्चे माल की कीमतें गिरती हैं और वे राष्ट्रीय आय में मजदूरी के सापेक्ष भाग को बढाती है जबकि औद्योगिक सरचना में परिवर्तन मजदूरी के सापेक्ष भाग पर उल्टा प्रभाव डालता है, और विलोमश। अत कच्चे माल की कीमते, एकाधिकार की कोटि, और औद्योगिक सरचना की परस्पर क्रिया और प्रतिक्रिया अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों में होती रहती है जिससे राष्ट्रीय आय में मजदूरी का भाग स्थिर रहता है।

इसकी आलोचनाएँ (Its Criticisms)—कलैस्की के सिद्धान्त की कटु आलोचना की गई है।

1 **एकाधिकार की कोटि सही ढग से परिभाषित नहीं** (Degree of monopoly not properly defined)—कालडर ने कलैस्की की इस बात पर आलोचना की है कि उसने एकाधिकार की कोटि को जिस प्रकार परिभाषित किया है, अर्थात् कीमत का मूल लागतों के साथ अनुपात, उसके अनुसार इस प्रकार की अस्पष्ट परिभाषाओं पर आधारित प्रतिस्थापनाए वास्तविक से दूर होती हैं तथा उनका कोई व्याख्यात्मक मूल्य नहीं होता है।

2 **मूल लागतें जमा कुछ कीमत बढ़ाकर कीमतों को निर्धारित करते हैं** (Prime costs plus mark-up determine prices)—सकल लाभ का (कीमत बढाकर) एकाधिकार की कोटि के साथ एकीकरण करने से वह सभी फर्मों को, जो पूजी से श्रम के बडे अनुपात का प्रयोग करती है, एकाधिकारी बना देता है। परन्तु यह सही दृष्टिकोण नहीं है क्योंकि हाल और हिच ने अनुभव से यह ज्ञात किया है कि कई अल्प-अधिकार फर्में मूल लागत जमा कुछ कीमत बढाकर (mark up) (लाभ) द्वारा कीमते निर्धारित करती हैं।

3 **मूल लागतें स्थिर नहीं** (Prime costs not constant)—सिद्धान्त यह मानता है कि सभी फर्मों की मूल लागतें स्थिर होती है। परन्तु सभी फर्मों की मूल लागतें बराबर नहीं होती हैं। परिणामस्वरूप, उद्योग के पूर्ति वक्र की ढाल धनात्मक होगी बावजूद इस बात के कि सभी फर्मों की मूल लागतें स्थिर है।

4 **श्रम सघो के प्रभाव की उपेक्षा** (Neglects the influence of trade unions)—फैल्प्स ब्राउन तथा हार्ट[2] के अनुसार यह सिद्धान्त आय वितरण पर श्रम सघों के प्रभाव की अवहेलना करता है। श्रम मार्किट 'नर्म' एव 'सख्त' होती है। 'सख्त मार्किटों' में श्रम सघ मालिको को मोल कर मजदूरी बढा सकते हैं, परन्तु 'नर्म मार्किटों' मे वे ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि मालिक वस्तुओं की कीमतें बढा सकते हैं। इसलिए कलैस्की द्वारा राष्ट्रीय आय में श्रम के हिस्से के कारण वास्तविक नहीं है।

5 **सिद्धान्त नहीं बल्कि व्याख्या** (Not a theory but an explanation)—प्रो रैडर का मत यह है कि यह एक सिद्धात न होकर केवल राष्ट्रीय आय में श्रम के हिस्से की व्याख्या है। यह सिद्धात एकाधिकार शक्ति की कोटि को प्रभावित करने वाले कुछ तत्त्वों का विवेचन करता है।

6 **तकनीकी उन्नति के कार्य की उपेक्षा** (Neglect of the role of technical progress)—कलैस्की का सिद्धात आय वितरण में तकनीकी उन्नति के प्रभाव को नहीं लेता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि तकनीकी उन्नति आय वितरण में सदैव एक महत्त्वपूर्ण घटक रहा है। 1929-57 में सयुक्त राज्य अमरीका की वृद्धि दर में इसका 18 प्रतिशत प्रति वर्ष का योगदान था।

7 **अनेक तत्त्वों की अवहेलना** (Ignores many factors)—जे पैन (J Pen) ने कलैस्की की एकाधिकार-कोटि की प्रकृति के लिए आलोचना की है। उसके अनुसार, कलैस्की एकाधिकार-कोटि

2 E H Phelps Brown and P E Hart 'The Share of Wages in National Income', *AEJ* 62, 1952

को प्रतियोगिता की कोटि द्वारा निर्धारित सरचनात्मक विशिष्टता मानता है। परन्तु लाभो, ब्याज तथा मजदूरी को प्रभावित करने वाली अन्य शक्तिया भी होती है। वे है फर्मो मे लागत भिन्न पाए जाने, पूजी की कमी तथा श्रम सघो के प्रभाव। कलेस्की अपने सिद्धान्त मे इन सभी तत्त्वो की अवहेलना करता है।

8 **छोटी फर्मों को भी उच्च लाभ सीमाओं की आवश्यकता** (Small firms also require higher profit margins)—जे पैन इस बात के लिए भी कलेस्की की आलोचना करता है कि ऊची लाभ सीमा केवल बडे निगमो को ही प्राप्त होती है। पैन के अनुसार, "सामान्य तौर मे यह सिद्ध नहीं हो सका है कि यह (लाभ सीमा) छोटी फर्मों की अपेक्षा बडी फर्मों के लिए ऊची होती है। प्राय व्यापार मे रहने के लिए छोटी फर्मों को ऊची लाभ सीमा की आवश्यकता होती है।"

9 **कम व्याख्या** (Little explanation)—जान पैन एकाधिकारी की कोटि को पुनरुक्ति (Tautology) मानता है जहा सभी घटक जो लाभ, ब्याज, लगान और मजदूरो के वेतनो को प्रभावित करते है इसी चर मे मिलते है। उसके अनुसार, "एकाधिकार की कोटि आकस्मिक घटको का एक प्रकार का कूडे-करकट का कनस्तर है और इसलिए कम व्याख्या करता है।"

10 **व्यष्टि कोटियो का समष्टि कोटि मे इकट्ठा करना कठिन** (Difficult to aggregate micro degrees into macro degree)—कलेस्की बहुत सरलता से एकाधिकार की व्यष्टि कोटियो को एकाधिकार की समष्टि कोटि मे समूहन करने की कठिनाइयो को समाप्त कर देता है।

इन आलोचनाओ के बावजूद, कलेस्की का सिद्धान्त वास्तविक है क्योकि यह बताता है कि ससार मे पूर्ण-प्रतियोगिता न होकर एकाधिकार पाया जाता है और एकाधिकार शक्ति किस प्रकार आय के वितरण को प्रभावित करती है।

6. वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
(THE MARGINAL PRODUCTIVITY THEORY OF DISTRIBUTION)*

सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त वितरण का नव-क्लासिकी सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार *एक साधन का पुरस्कार उसके सीमान्त उत्पादन के बराबर होता है। सीमान्त उत्पादन,* जिसे सीमान्त भौतिक उत्पादन भी कहते है, कुल उत्पादन मे वह वृद्धि है जो साधन की एक अतिरिक्त इकाई लगाने से होती है, जबकि अन्य सब साधन स्थिर रहे। यदि उत्पादन की इस वृद्धि को वस्तु की वर्तमान कीमत से गुणा कर दिया जाए, तो उस साधन का सीमान्त मूल्य उत्पाद (marginal value product—*MVP*) निकल आता है। परन्तु प्रोफेसर मैकल्प (Prof Machlup) का कहना है कि "साधनो की इकाइयो को उनके मार्किट मूल्य के रूप मे मापने से, सीमान्त उत्पादकता विश्लेषण बिल्कुल *व्यर्थ* बन जाता है। हमे यह नहीं भूलना चाहिए कि वितरण सिद्धान्त का भाग होने के नाते सीमान्त उत्पादकता विश्लेषण का काम साधनो या सेवाओ के मार्किट मूल्यो की व्याख्या करना है। मार्किट मूल्यो के रूप मे इन सेवाओ की परिभाषा देना उनकी व्याख्या करने के समान है।"[3] इसलिए, अच्छा यह है कि एक साधन के सीमान्त उत्पादन को उसके सीमान्त आगम उत्पाद (marginal revenue product—*MRP*) के रूप मे मापा जाए, जिसकी परिभाषा यो दी जा सकती है कि सीमान्त आगम उत्पाद वह वृद्धि है, जो उत्पादन के एक साधन की एक और इकाई लगाने से कुल आगम मे होती है, जबकि अन्य साधन अपरिवर्तित रहे।

* यही मजदूरी का सीमात उत्पादकता सिद्धान्त है। इसकी व्याख्या करते समय "साधन" के स्थान पर "श्रम" और "पुरस्कार" के स्थान पर "मजदूरी" शब्दों का प्रयोग करिए।

3 Fritz Machlup, On the Meaning of Marginal Product, in *Readings in the Theory of Income Distribution*, pp 164-5

सामान्य नियम है कि एक साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता उस साधन सेवा की इकाइयों मे वृद्धि के साथ घट जाती है। शुरू-शुरू की अवस्थाओं में जब अन्य साधनों को स्थिर रखते हुए एक परिवर्ती साधन की इकाइयाँ काम पर लगाई जाती है, तो कुछ समय के लिए कुल आगम उत्पाद (total revenue product) में आनुपातिकता से अधिक वृद्धि हो सकती है। परन्तु एक समय आएगा, जब सीमान्त आगम उत्पाद घटना शुरू करेगा और अन्त मे उस साधन सेवा की कीमत के बराबर हो जाएगा। घटते MRP की यह प्रवृत्ति हमें परिवर्तनशील अनुपातो के नियम (law of variable proportions) से प्राप्त होती है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कार्य करने वाली फर्म को, किसी एक साधन विशेष की एक इकाई की कीमत (पुरस्कार) उतनी ही देनी पडती है जितनी कि उद्योग देता है। अधिकतम लाभ प्राप्ति के लिए, फर्म स्थानापन्नता के नियम पर चलती है। सस्ती साधन सेवाएँ महँगी साधन सेवाओं को हटाने का प्रयत्न करती है। उदाहरण के लिए, यदि फर्म देखती है कि मशीनो को महँगे श्रम के स्थान पर स्थानापन्न करना अधिक लाभदायक है, तो वह ऐसा कर देगी। महँगे साधनो के स्थान पर सस्ते साधनो की स्थानापन्नता तब तक चलती रहेगी, जब तक कि प्रत्येक साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता उस साधन की कीमत के बराबर नहीं हो जाती। इस स्टेज पर उत्पादन के साधनों को उनके दक्षतम सयोग (most efficient combination) अथवा न्यूनतम लागत सयोग में काम पर लगाया जाता है और फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होते है।

इसलिए यह जरूरी है कि सतुलन में, एक साधन-सेवा की कीमत उसकी अपनी सीमान्त आगम उत्पादकता के बराबर होगी। यदि एक साधन इकाई का सीमान्त आगम उत्पाद उसकी कीमत (उसे काम पर लगाने की लागत) से अधिक हो, तो फर्म के लिए उस साधन की और इकाइयों को लगाना लाभदायक होगा। ज्यों-ज्यो अधिक इकाइयाँ लगाई जाती हैं, त्यों-त्यो सीमान्त *आगम उत्पाद घटता जाता है, जब तक कि वह कीमत के बराबर नहीं हो जाता।* फर्म के लिए यह अधिकतम लाभ का बिन्दु है। परन्तु यदि इस बिन्दु के बाद और इकाइयाँ लगाई जाएँ, तो सीमान्त आगम उत्पाद उसकी कीमत से कम हो जाएगा और फर्म को हानि उठानी पड़ेगी। (आनुपातिक प्रतिफल के नियम की व्यावहारिकता से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है।)

फिर, एक ही साधन-सेवा की भिन्न-भिन्न इकाइयों मे भी स्थानापन्नता होती है। साधन मार्किट मे पूर्ण गतिशीलता होने के कारण, एक साधन-सेवा की इकाइयाँ उस प्रयोग से, जहाँ उनकी सीमान्त आगम उत्पादकता कम है, दूसरे उद्योग में जहाँ वह उत्पादकता अधिक हो जाने का प्रयत्न करती रहती हैं, जब तक कि भिन्न-भिन्न प्रयोगो म सब इकाइयो की सीमान्त आगम उत्पादकता समान नहीं हो जाती।

पर, अन्तिम विश्लेषण मे, यह जरूरी है कि एक साधन इकाई की कीमत उसकी सीमान्त तथा औसत *आगम उत्पादकता दोनों मे से प्रत्येक के समान हो।* यदि किसी भी समय एक साधन इकाई की कीमत उसकी औसत आगम उत्पादकता से अधिक हो, तो फर्मों को हानि होगी। परिणाम यह होगा कि कुछ फर्मे उद्योग को छोड जाएँगी *और उससे साधन-सेवा की* कीमत गिर कर अधिकतम औसत आगम उत्पादकता के स्तर पर आ जाएगी। इसके विपरीत, यदि कीमत *औसत आगम उत्पादकता से कम हो जाए, तो फर्में* अतिरिक्त (अधिक) लाभ प्राप्त करेंगी। इन अधिक लाभो से आकर्षित होकर नई फर्में उद्योग में प्रवेश कर इस
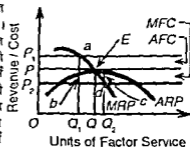
चित्र 35.4

साधन-सेवा के लिए मुकाबले पर आ जाएँगी। यह कीमत को ऊपर की ओर औसत आगम उत्पादकता के स्तर तक धकेल देगी। अल्पकालीन में इस सतुलन से भिन्न स्थिति हो सकती है परन्तु दीर्घकालीन मे, एक साधन-सेवा की कीमत उसकी सीमान्त और औसत आगम उत्पादकता के बराबर होगी। इसे चित्र 35 4 मे दिखाया गया है।

बिन्दु E पर, ARP वक्र MRP वक्र के बराबर है और दोनो, साधन सेवा के औसत लागत और सीमान्त लागत के बराबर है। इसलिए प्रत्येक साधन-सेवा को OQ इकाइयों के लिए OP कीमत दी जाएगी। मान लीजिए कि साधन-कीमत बढकर OP_1 हो जाती है। इस कीमत पर फर्म को प्रति इकाई ab हानि होगी क्योंकि साधन-इकाइयों की उनकी औसत आगम उत्पादकता (ARP) से अधिक कीमत दी जा रही है। इससे कुछ फर्मे उद्योग को छोड जाएँगी और साधन कीमत गिरकर फिर E बिन्दु पर आ जाएगी। दूसरी ओर, यदि साधन कीमत गिरकर OP_2 पर आ जाए, तो फर्मो को प्रति इकाई dc लाभ प्राप्त होगा। जब इस लाभ से आकर्षित होकर नई फर्मे उद्योग मे आएँगी, तो कीमत फिर बढकर OP पर चली जाएगी। ये कीमत परिवर्तन केवल अल्पकालीन मे ही सम्भव है। दीर्घकालीन मे, सतुलन स्थिति E बनी रहेगी।[4]

सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of the Theory)—वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त कई मान्यताओ पर आधारित है। इसकी मान्यताएँ है

(i) कि साधन-सेवा की सब इकाइयाँ समरूप होती है,
(ii) कि उन्हे एक-दूसरी के स्थान पर स्थानापन्न किया जा सकता है,
(iii) कि साधन भिन्न-भिन्न स्थानो और रोज़गारो मे पूर्णतया आ-जा सकते है,
(iv) कि साधन मार्किट मे तथा वस्तु मार्किट मे पूर्ण प्रतियोगिता है,
(v) कि पूरे साधन और स्रोत रोज़गार मे लगे है,
(vi) कि भिन्न-भिन्न साधन-सेवाओ की इकाइयों मे भाज्यता है,
(vii) कि उद्यमी अधिकतम लाभ से प्रेरित है,
(viii) कि सिद्धान्त दीर्घकालीन मे लागू होता है, और
(ix) कि यह नियम परिवर्तनशील अनुपातों के नियम पर आधारित है।

इसकी आलोचना (Its Criticisms)—अपनी अवास्तविक मान्यताओ के कारण, अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो मे से वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त सबसे अधिक आलोचना का विषय रहा है।

1 **एक साधन की सभी इकाइयाँ समरूप नहीं होतीं** (All units of a factor are not homogeneous)—यह धारणा अवास्तविक है कि साधन-सेवा की सब इकाइयाँ समरूप होती है। हम जानते है कि श्रमिको मे श्रम की दक्षता भिन्न-भिन्न होती है। इसी प्रकार भूमि का एक टुकडा उर्वरता मे दूसरे से भिन्न होता है। इसलिए यह धारणा ठीक नहीं है कि एक ही सेवा की भिन्न-भिन्न साधन इकाइयाँ समरूप होती है। वास्तव मे, समरूपता की बजाय भिन्नरूपता का नियम है। निष्कर्ष यह कि कोई दो साधन-इकाइयाँ समरूप नहीं होतीं, इसलिए उन्हे एक-दूसरी के स्थान पर स्थानापन्न नहीं किया जा सकता। एक टेक्सटाइल इजीनियर को एक चीनी के प्रौद्योगिक (technologist) की जगह नहीं रखा जा सकता।

2 *साधन पूर्णतया गतिशील नहीं होते* (*Factors are not perfectly mobile*)—इस सिद्धान्त की धारणा यह भी है कि साधन भिन्न-भिन्न स्थानो और रोज़गारो मे पूरी स्वतत्रता से आ-जा सकते है। परन्तु वास्तव मे, साधन बहुत ही कम गतिशील होते है। एक उद्योग या स्थान से साधनों की कहीं और गति अपने-आप नहीं हो जाती। एक उद्योग मे विशेषीकरण की कोटि जितनी अधिक होती है, एक उद्योग मे दूसरे मे साधन गतिशीलता उतनी ही कम होती है। यही कारण है कि

4 इसी अध्याय के चित्र 35 7 (A) (B), (C) द्वारा भी इस समझाया जा सकता है।

प्रत्येक व्यवसाय मे और हर स्थान पर एक ही साधन-सेवा की, अथवा भिन्न-भिन्न साधन-सेवाओं की भी, इकाइयों को उनकी सीमान्त उत्पादकताओं के समान अदायगी नहीं की जाती।

3 **पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पाई जाती** (There is no perfect competition)—यह सिद्धांत, पूर्ण प्रतियोगिता की एक ओर अवास्तविक धारणा पर आधारित है, जो न तो साधन मार्किट में मिलती है और न ही वस्तु मार्किट में। पूर्ण प्रतियोगिता एक वास्तविकता नहीं बल्कि भ्रांति है। इसकी बजाय अपूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का नियम है जिसमें साधनों का शोषण होता है जिन्हें उनकी सीमान्त उत्पादकता से बहुत कम अदायगी की जाती है। हाँ, प्रोफेसर चैम्बरलेन ने सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को अपूर्ण प्रतियोगिता पर लागू किया है।

4 **साधनों की पूर्ण सेवा-नियुक्ति नहीं होती** (Factors are not fully employed)—इस सिद्धान्त में यह भी माना जाता है कि उद्योग में पूरे साधन रोजगार में लगे होते हैं अन्यथा बेरोज़गारी की स्थिति में साधन इकाइयाँ अपने सीमान्त उत्पादन से कम कीमत पर भी अपनी सेवाएँ देने को तैयार होंगी। पूर्ण रोज़गार की इस धारणा से सिद्धान्त स्थितिशील बन जाता है। इसके विपरीत केन्ज़ ने बताया है कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोज़गार की बजाय अल्प रोज़गार होता है और कुल रोज़गार इस बात पर निर्भर करता है कि एक समाज में प्रभावी माँग (effective demand) कितनी है। सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त ज्यादा से ज्यादा एक फर्म पर लागू हो सकता है।

5 **सभी साधन विभाज्य नहीं होते** (All factors are not divisible)—यह धारणा भी सही नहीं ठहरती कि साधन इकाइयों में भाज्यता होती है और इसलिए उन्हें थोड़ी-थोड़ी मात्राओं में बढ़ाया या घटाया जा सकता है। एक अविभाज्य, बड़े या भारी (lumpy) साधन को कम-ज्यादा नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए एक फर्म के उद्यमी को कैसे घटाया या बढ़ाया जा सकता है। फिर, एक बड़ी फैक्टरी में एक साधन इकाई बढ़ाने या घटाने से कुल उत्पादकता पर व्यावहारिक रूप में कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। घरेलू उत्पादन में यह ठीक हो सकता है। इस प्रकार, साधनों को थोड़ी-बहुत मात्रा में कम या ज्यादा करके उसकी सीमान्त उत्पादकता और कीमतों में समानता नहीं लाई जा सकती।

6 **उत्पादन एक ही साधन का परिणाम नहीं होता** (Production is not the result of one factor alone)—इसी बात से निकली हुई एक और आलोचना टॉसिग (Taussig) और डेवनपोर्ट (Devonport) ने रखी है कि एक वस्तु के उत्पादन का कारण किसी एक साधन, भूमि, श्रम या पूंजी को नहीं माना जा सकता। बल्कि वह तो साधनों और उनकी इकाइयों के सम्मिलित कार्यकरण का परिणाम होता है। इसलिए प्रत्येक साधन इकाई की अलग-अलग सीमान्त उत्पादकता की सगणना नहीं की जा सकती।

7 **लाभ प्रयोजन ही मुख्य प्रयोजन नहीं होता** (Profit motive is not the main motive)—यह सिद्धान्त इस धारणा को भी लेकर चलता है कि उद्यमी अधिकतम लाभ के उद्देश्य से प्रेरित होते हैं और यही कारण है कि एक साधन सेवा की उस समय और इकाइयाँ काम में लगाई जाती हैं जब फर्म देखती है कि साधन-सेवा का सीमान्त उत्पादन उसकी कीमत से अधिक है। परन्तु जैसाकि प्रोफेसर शूम्पीटर ने संकेत किया है, एक व्यापार-साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा, विजय का निश्चय और चीज़ों को बनाने और उन्हें करवाने की प्रसन्नता उद्यमी क्रियाओं का पथ-प्रदर्शन करती है। इसलिए यह कहना ठीक नहीं कि लाभ के प्रयोजन उद्यमी का पथ-प्रदर्शन करते हैं।

8 **अल्पकालीन में लागू नहीं होती** (Not applicable in the short run)—यह सिद्धान्त केवल दीर्घकालीन में लागू होता है, जबकि साधन-सेवाओं के पुरस्कार उनके सीमान्त आगम उत्पादन के बराबर होते हैं। परन्तु वास्तव में अल्पकालीन समस्याओं से हमारा संबध रहता है। जैसाकि केन्ज़ ने कहा था "दीर्घकालीन में हम सब मृत होते हैं।" यह धारणा साधन-सेवाओं के कीमत-निर्धारण की समस्या को अवास्तविक बना देती है।

9 **तकनीकी परिवर्तन की उपेक्षा** (Neglect of technical changes)—सीमांत उत्पादकता का सिद्धांत तकनीकी परिवर्तन के प्रभाव की उपेक्षा करके सापेक्ष भागों के निर्धारण पर कोई भी प्रकाश डालने मे असफल रहता है। प्रोफेसर हिक्स ने बताया है कि एक श्रम-बचत नवप्रवर्तन (innovation) श्रम की सापेक्षता मे पूंजी-बचत प्रवर्त्तन के विषय मे इससे उलट हो सकता है। परन्तु तकनीकी परिवर्तन मे कभी-कभी निश्चित अनुपातो मे, सहकारी साधनों की जरूरत पड़ती है, जैसे एक मशीन पर दो मजदूरों की। बहुतायत मे मिलने वाला और सस्ता श्रम भी मालिक को उस मशीन पर दो से अधिक मजदूर लगाने को प्रेरित नहीं कर सकता। इस प्रकार सीमांत उत्पादकता का सिद्धांत तकनीकी परिवर्तन की समस्याओं का विश्लेषण करने मे असमर्थ है।

10 **साधनों की पूर्ति स्थिर नहीं है** (Supply of factors is not fixed)—वितरण का यह सिद्धांत दी हुई मात्राओं के रूप मे साधनों की पूर्ति को पूर्ण लोचरहित मान लेता है। साधनों की पूर्ति अल्पकालीन मे स्थिर होती है, न कि दीर्घकालीन मे। इसलिए, यह सिद्धांत आत्मविरोधी है क्योंकि यह सिद्धांत दीर्घकाल मे लागू होता है और दीर्घकालीन मे भी साधनों की पूर्ति को स्थिर मान लेता है। यह सिद्धान्त साधनों की अकेली माँग का सिद्धान्त है, इसलिए इसे समस्त साधन मार्किट पर लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसके लिए तो ऐसे सिद्धांत की जरूरत है, जो साधनों की पूर्ति और माँग दोनों का सिद्धांत हो।

11 **आय की असमानताओं का कोई औचित्य नहीं** (No justification for inequalities in income)—आय के वितरण मे जो असमानताएँ वर्तमान रहती हैं, उन्हे उचित सिद्ध करने के लिए सीमांत उत्पादकता सिद्धांत का अक्सर प्रयोग किया जाता है। सिद्धांत कहता है कि प्रत्येक साधन की कीमत उसके सीमांत आगम उत्पादन के बराबर होती है जिससे पुरस्कार अनिवार्य रूप से वास्तविक पुरस्कार के बराबर होता है। प्रत्यक्ष, एक व्यक्ति को उतना ही प्राप्त होता है जितना वह उत्पादन करता है। यह मूल उपधारणा इस प्रस्थापना पर टिकी हुई है कि एक व्यक्ति को उतना ही प्राप्त होता है जितना वे स्रोत, जिनका वह स्वामी है, उत्पादन करते है और कि सब व्यक्तियों को समान अवसर प्राप्त है। परन्तु किन्हीं दो व्यक्तियों के पास न तो वही स्रोत होते है और न ही उन्हे समान अवसर मिलते है। इस प्रकार, आय के वर्तमान वितरण को सीमांत उत्पादकता नियम के आधार पर उचित नहीं ठहराया जा सकता।

12 **साधनों के कुल भुगतानों का जोड़ कुल उत्पादन के बराबर नहीं होता** (The sum of factor payments is not equal to the product)—क्योंकि प्रत्येक साधन को उसके सीमान्त उत्पादन के अनुसार अदायगी की जाती है, इसलिए निष्कर्ष यह निकलता है कि साधनों के कुल भुगतानों का जोड़ कुल उत्पादन के बराबर होगा। वास्तविकता मे, सीमान्त उत्पादनों का जोड़ कुल उत्पादन से अधिक होता है। इस प्रकार, जो अतिरेक रहता है, वह साधनों के सहकारी कार्यकरण का परिणाम होता है। यदि किसी भी समय उत्पादन क्रिया से एक महत्त्वपूर्ण साधन इकाई को निकाल लिया जाए, तो वह समस्त व्यापार को पूर्ण रूप से अव्यवस्थित कर देगी। इस साधन इकाई को निकाल लेने से कुल उत्पादन मे उस इकाई के सीमान्त उत्पादन से अधिक कमी हो जाएगी। इस प्रकार सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त साधन-सेवा कीमत निर्धारण का सही माप नहीं देता।

निष्कर्ष (Conclusion)—निष्कर्ष मे हम कह सकते है कि सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त साधन-सेवाओं की कीमतें निर्धारित करने की उचित व्याख्या नहीं है। यह साधन कीमत निर्धारण के माँग पक्ष का कथन करता है और इसलिए एकांगी है। पूर्ण प्रतियोगिता और पूरे स्रोतों के रोज़गार मे लगे होने की आयन्त्रित (restricted) धारणाओं के अन्तर्गत काम करता है और इस प्रकार अवास्तविक है। यह स्थैतिक है और इस बात को सही मान लेता है कि एक साधन इकाई की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है। इस प्रकार यह सिद्धान्त गतिशील अर्थव्यवस्था मे साधन कीमत निर्धारण की व्याख्या करने मे असफल रहता है।

7. केन्जीय या कालडर का वितरण सिद्धान्त
(THE KEYNESIAN OR KALDOR'S THEORY OF DISTRIBUTION)

केन्ज ने स्वय वितरण का सिद्धान्त नहीं बनाया था। "वितरण के केन्ज-सिद्धान्त" के विकास का श्रेय प्रोफेसर कालडर को जाता हे जिसका कहना है कि कीमतो ओर मजदूरी के बीच सम्बन्ध निर्धारण के लिए गुणक के नियम का प्रयोग हो सकता है, जबकि उत्पादन और रोजगार के स्तर दिए हुए हो। परन्तु केन्ज ने कीमतो और मजदूरी के बीच सम्बन्ध को स्थिर रखकर, रोजगार का स्तर निर्धारण करने के लिए इसका व्यवहार किया था।

प्रोफेसर कालडर अपने सिद्धान्त का निर्माण निम्नलिखित मान्यताओं पर करता हे

(i) पूर्ण रोजगार की स्थिति है जिसमे कुल उत्पादक या आय (Y) दी हुई है।

(ii) राष्ट्रीय आय या उत्पाद मे केवल मजदूरी (W) और लाभ (P) शामिल होते है। (W) मे शारीरिक श्रम और वेतन दोनो आते हे, जबकि P मे सम्पत्ति-स्वामियों ओर उद्यमियो की आय सम्मिलित है।

(iii) पूजीपतियो की अपेक्षा मजदूरो की सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति अधिक होती हे जिसके परिणामस्वरूप पूजीपतियो की अपेक्षा मजदूरो की सीमान्त बचत प्रवृत्ति थोडी होती है।

(iv) निवेश-उत्पादन अनुपात (I/Y) एक स्वतन्त्र चर है।

(v) अपूर्ण-प्रतियोगिता अथवा एकाधिकार शक्ति के तत्त्व पाए जाते हे।

इन मान्यताओ के आधार पर कालडर राष्ट्रीय आय का वितरण केवल श्रमिको ओर पूजीपतियो मे करता है।

Sw को मजदूरी मे समस्त बचते ओर Sp को लाभो मे से समस्त बचते लेते हुए,

$$Y \equiv W + P$$

परन्तु $$I \equiv S$$

और $$S \equiv Sw + Sp$$

निवेश दिया होने पर और साधारण आनुपातिक बचत फलन मानते हुए, $Sw = swW$ और $Sp = spP$, हमे यह समीकरण प्राप्त होता है

$$I = spP + swW$$
$$= spP + sw\,(Y - P) \qquad \text{क्योंकि } W = Y - P$$
$$= spP + swY - swP$$
$$= (sp - sw)P + swY$$

जिससे निवेश का राष्ट्रीय आय से अनुपात

$$\frac{I}{Y} = \frac{(sp - sw)P + swY}{Y} \text{ or } \frac{I}{Y} = (sp - sw) \cdot \frac{P}{Y} + sw \qquad (1)$$

और (1) से लाभ का राष्ट्रीय आय से अनुपात P/Y इस प्रकार निकाला जा सकता हे

$$(sp - sw)\,P/Y = I/Y - sw$$

या $$\frac{P}{Y} = \frac{1}{sp - sw} \times \frac{I}{Y} - \frac{sw}{sp - sw} \qquad (2)$$

इस प्रकार मजदूरो और पूजीपतियो की सीमान्त बचत प्रवृत्तिया दी हुई होने पर, राष्ट्रीय आय मे लाभ का भाग कुल उत्पादन से निवेश के अनुपात पर निर्भर करता है। जब तक $sp > sw$ है तो

I/Y में वृद्धि होने से राष्ट्रीय आय में लाभों के भाग में वृद्धि होगी। इसकी चित्र 35.5 द्वारा व्याख्या की गई है।

आय का पूर्ण रोजगार स्तर Y_0 दिया होने पर, बचत-आय अनुपात तथा निवेश-आय अनुपात क्रमश: S/Y_0 और I/Y_0 हैं। स्थिर लाभ-आय अनुपात रेखा PP है जिस पर अर्थव्यवस्था सतुलन में है। यदि आय में वृद्धि होती है तो S/Y_0 तथा I/Y_0 वक्र ऊपर को सरककर S/Y_1 तथा I/Y_1 हो जाते हैं। परन्तु राष्ट्रीय आय में लाभ का भाग स्थिर ही रहता है जैसा कि PP रेखा द्वारा दिखाया गया है। यदि केवल I/Y वक्र ही सरकता है तथा बचत-आय अनुपात S/Y_0 स्तर पर ही रहता है तो कीमतों में स्फीतिकारी वृद्धि होगी। इससे लाभ आय अनुपात बढ़ जाएगा और बचत-आय वक्र ऊपर सरककर S/Y_1 हो जाएगा। यदि निवेश-आय अनुपात तथा
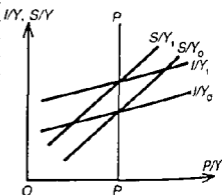
चित्र 35.5

बचत-आय अनुपात वक्रों में ऐसा सम्बन्ध चलता रहता है तो अर्थव्यवस्था अपने आपको पूर्ण रोजगार के स्तर पर कायम रखेगी तथा आय में लाभ का भाग स्थिर रहेगा।

प्रोफेसर कालडर के अनुसार इस मॉडल का व्याख्यात्मक मूल्य इस बात पर निर्भर करता है कि निवेश को या बल्कि निवेश का उत्पादन से अनुपात I/Y को, sp और sw के संबंध में निश्चल, एक स्वतन्त्र चर (variable) के रूप में समझा जाए। पूर्ण रोजगार की धारणा के साथ-साथ यह इस बात को प्रकट करता है कि नकद मजदूरी के स्तर के संबंध में कीमतों के स्तर को माग निर्धारित करती है। निवेश के स्तर में वृद्धि, माग और कीमतों के स्तर को बढा देगी, मुद्रा मजदूरी स्थिर रहने पर। परिणामस्वरूप, राष्ट्रीय आय में लाभ का भाग बढ़ेगा परन्तु मजदूरी का भाग कम होगा। इसके विपरीत, निवेश में कमी कुल माग को कम कर देगी, कीमतों और लाभ सीमाओं में गिरावट लाएगी, परन्तु मजदूरी का भाग बढा देगी। अत "नम्य (flexible) कीमतें [या बल्कि नम्य लाभ सीमाएं (profit margins)] मानते हुए व्यवस्था पूर्ण रोजगार पर स्थिर होती है।"

यह मॉडल उस समय क्रियाशील होता है, जब दोनों बचत प्रवृत्तियां विभिन्न ($sp \neq sw$) हों, और मजदूरी में से सीमान्त बचत प्रवृत्ति sw की अपेक्षा लाभों में से सीमान्त बचत प्रवृत्ति sp बड़ी हो, $sp > sw$ स्थिरता की अवस्था है। यदि sw से sp कम हो, कीमतों से कम होने से माग में कमी होगी और कीमतों में सचयी गिरावट आएगी। इसी प्रकार कीमतों में वृद्धि भी सचयी होगी।

फिर, व्यवस्था की 'स्थिरता की कोटि' (degree of stability) सीमान्त बचत प्रवृत्तियों के अन्तर पर निर्भर करती है अर्थात् $1/(sp-sw)$ पर जो कालडर की परिभाषा के अनुसार 'आय वितरण की सवेदनशीलता का गुणाक' (coefficient of sensitivity of income distribution) है। यदि दोनों सीमान्त प्रवृत्तियों (sp और sw) में थोड़ा अन्तर हो, तो गुणाक ($1/sp-sw$) बड़ा होगा और निवेश-उत्पादन अनुपात (I/Y) में थोड़े परिवर्तनों से आय वितरण (P/Y) में अपेक्षाकृत बड़े परिवर्तन होंगे, और विलोमश। यदि मजदूरी में से सीमान्त बचत प्रवृत्ति शून्य ($sw = 0$) हो, तो

लाभों की मात्रा निवेश की राशि तथा पूंजीपति उपभोग के बराबर होगी, अर्थात् $P = \frac{1}{sp} I$

यह 'अक्षय भण्डार' (widow's cruse) है जहां उद्यमियों के उपभोग में वृद्धि उनके कुल लाभ को

बिल्कुल उपभोग के बराबर बढा देती है।

प्रोफेसर कालडर के सिद्धान्त में $S_w = 0$ एक 'विशिष्ट स्थिति' है जिसमे 'मजदूरी अवशिष्ट' (residue) है तथा लाभ निवेश की प्रवृत्ति और पूजीपति के उपभोग के प्रवृत्ति से शासित होने के कारण राष्ट्रीय आय पर एक प्रकार के 'पूर्व प्रभार' (prior charge) को प्रकट करते हैं। यदि किसी दीर्घकालिक समय मे I/Y और S_p को स्थिर मान लिया जाए तो मजदूरी का भाग भी स्थिर होगा। दूसरे शब्दो मे, जब उत्पादन प्रति व्यक्ति बढता है, तो वास्तविक मजदूरी अपने-आप बढ जाएगी। यदि मजदूरी में से बचत की प्रवृत्ति, S_w धनात्मक हो तो कुल लाभो की मात्रा मे S_w की कमी हो जाएगी (जोकि मजदूरो की बचतो की राशि है)। जब मजदूरो की बचतें घट जाती हैं, तो कुल लाभ निवेश में परिवर्तन की अपेक्षा, अधिक मात्रा मे बढ जाता है, और आय मे मजदूरी का भाग कम हो जाएगा। दूसरी ओर जब श्रमिकों की बचतें बढती हैं निवेश में परिवर्तन की अपेक्षा कुल लाभ अधिक मात्रा में कम होते हैं और आय मे मजदूरी का भाग बढ जाता है।

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)

कालडर के आय-वितरण के सिद्धान्त की निम्नलिखित कारणों से आलोचना की गई है

(1) कालडर यह मानता है कि लाभ और मजदूरी के भाग निवेश-आय अनुपात I/Y पर निर्भर करते हैं। परन्तु कालडर के अनुसार यह धारणा कुछ विशेष स्थितियों मे ही सही रहती है

प्रथम, कि वास्तविक मजदूरी की दर एक निश्चित न्यूनतम निर्वाह दर से कम नहीं हो सकती। दूसरे, लाभों का भाग 'जोखिम बीमा दर' से कम नहीं हो सकता जोकि पूजीपतियों को निवेश की प्रेरणा देने के लिए लाभ की न्यूनतम दर होती है। तीसरे, लाभ का भाग 'एकाधिकार कोटि की दर' से कम नहीं हो सकता अर्थात् अपूर्ण प्रतियोगिता, गुटबन्दी समझौता आदि के कारण उत्पादन पर लाभ की न्यूनतम दर। दूसरी ओर तीसरी वाले वैकल्पिक सीमाएं हैं, दोनों में से जो अधिक होगी वही लागू होगी। अन्तिम, पूजी-उत्पादन अनुपात लाभ की दर से स्वतन्त्र होना चाहिए अन्यथा I/Y स्वय लाभ की दर पर निर्भर हो जाएगा। यदि ये शर्तें पूरी नहीं होती हैं तो निवेश-आय अनुपात (I/Y) स्वय लाभ की दर (P/Y) पर निर्भर करेगा।

(2) कालडर का सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की धारणा पर आधारित है। यह अवास्तविक है क्योंकि यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार के स्तर से नीचे आय के फलनात्मक वितरण को समझाने मे असमर्थ है।

(3) कालडर का सिद्धान्त वितरण पर तकनीकी उन्नति के प्रभाव की उपेक्षा करता हैं। यह मान लेने पर भी कि मजदूर अपनी मजदूरी मे से बचत नहीं करते $(S_w = 0)$, उद्यमियों के कुल लाभों को 'अक्षय भण्डार' द्वारा बिल्कुल समान राशि से बढाना सम्भव नहीं। वास्तव में तकनीकी प्रगति लाभों को बढाने मे सहायक होती है।

(4) कालडर मॉडल की अन्य कमजोरी यह है कि सभी लाभो को पूजीपतियों के कारण ही बताता है। इस तरह इसका अभिप्राय यह है कि मजदूरो की बचतें पूर्ण रूप से पूजीपतियों को उपहार के रूप मे हस्तान्तरित की जाती हैं। यह स्पष्टतया असगत है क्योंकि ऐसी हालत मे कोई भी व्यक्ति बिल्कुल बचत नहीं करेगा।

(5) कालडर का सिद्धान्त इस बात मे भी कमजोर है कि यह लगान और ब्याज के रूप में भूमि और पूजी के सापेक्ष भागों की उपेक्षा करता है।

(6) कालडर अपने सिद्धान्त मे कीमतो को इस प्रकार लेता है कि वे लागतों को पूरा करती हैं ओर लाभ की एक समान दर प्रदान करती हैं। परन्तु लाभ का एक हिस्सा निर्धारित किए बिना लाभ की दर नहीं जानी जा सकती हैं। इसीलिए, सापेक्ष हिस्से श्रम द्वारा माग निर्धारित करती हैं। यदि मजदूरी दी हुई हो तो कीमतें एक समान लाभ की दर द्वारा निर्धारित होती हैं। इसलिए माग की शक्तियां सापेक्ष हिस्सों को निर्धारित करती हैं न कि कीमतें।

(7) कालडर का आय-वितरण का सिद्धान्त इसलिए भी अवास्तविक है क्योंकि यह मानव पूंजी को नहीं लेता जो राष्ट्रीय आय मे वितरणात्मक हिस्से निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। यह सिद्धान्त बताता है कि I/Y मे वृद्धि होने से राष्ट्रीय आय मे लाभ का भाग बढता है परन्तु मजदूरी का भाग कम होता है। श्रम का भाग मजदूरी कम होने से, श्रमिकों की अवस्था शोचनीय हो जाएगी। इससे अर्थव्यवस्था की वास्तविक आय तथा उत्पादन कम हो जाएगा। मैकोरमिक (McCormik) के शब्दों में, "सिद्धान्त की मानव पूजी न समावेश कर सकने की कमी सिद्धान्त को अत्यधिक साधारण बना देती है, जो वास्तविक जगत की जटिलताओं को समझना कठिन कर देती है।"

जे पैन के शब्दो मे यह निष्कर्ष देते हैं कि कालडर का आय-वितरण का सिद्धान्त बहुत भ्रान्तिजनक है। इसका बीजगणित सही है परन्तु तर्क की बनावट झूठी है।

प्रश्न

1 रिकार्डो के समष्टि वितरण सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करिए।

2 मार्क्स के समष्टि वितरण सिद्धान्त की विवेचना करिए। यह कालडर के सिद्धान्त से किस प्रकार भिन्न है?

3 वितरण के नव-क्लासिकी सिद्धान्तों में कलैस्की के सिद्धान्त का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।

4 कालडर के आय वितरण के सिद्धान्त की विवेचना करिए।

5 वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की विवेचना करिए।

अध्याय 36

आइलर प्रमेय : संकलन समस्या
(EULER'S THEOREM ADDING-UP PROBLEM)

1 अर्थ और हल
(MEANING AND SOLUTION)

आइलर प्रमेय अथवा उत्पादन समाप्ति प्रमेय (product exhaustion theorem) यह बताती है कि क्योंकि उत्पादन के साधन अपने सीमांत उत्पादन के बराबर पुरस्कार पाते हैं, इसलिए वे कुल उत्पादन को पूर्ण रूप से समाप्त कर देंगे। जिस तरीके से कथन को हल किया जाता है उसे संकलन समस्या (adding-up problem) कहते हैं। 18वीं शताब्दी मे एक स्विट्जरलैंड निवासी गणितज्ञ लैनहर्ड आइलर (Leonhard Euler) द्वारा विकसित आइलर प्रमेय की सहायता से प्रो विक्स्टीड (Wicksteed) ने अपनी पुस्तक *The Coordination of the Laws of Distribution* मे यह सिद्ध किया कि प्रत्येक साधन को उसकी सीमांत उत्पादकता के अनुसार भुगतान कुल उत्पादन को पूर्णतया समाप्त कर देता है।

मान लीजिए कि C और L उत्पादन के दो साधनों, क्रमश पूंजी एवं श्रम, की मात्राएं हे तथा P इन साधनों का कुल उत्पादन है, तो $P = f(C\ L)$ दूसरे शब्दों मे, यदि C तथा L का रेखीय समरूप फलन f (linear homogeneous function) P हो, तो समीकरण होगा

$$P = \frac{\partial f}{\partial C}C + \frac{\partial f}{\partial L}L \qquad (1)$$

यदि C और L सभी आगतों (inputs) की मात्राओं को k-गुणा बढ़ा दिया जाता है तो उत्पादन P भी k-गुणा बढ़ेगा। इस प्रकार उत्पादन फलन बनता है

$$kP = f(kC\ kL)$$

By taking the total* derivate of kP with respect to k, we have

$$\frac{dk}{dk}P = \frac{\partial f}{\partial kC}\frac{dkC}{dk} + \frac{\partial f}{\partial kL}\frac{dkL}{dk}$$

or

$$P = \frac{\partial f}{\partial kC}C + \frac{\partial f}{\partial kL}L \qquad \left[\text{By eliminating } \frac{dk}{dk}\right]$$

$$P = \frac{\partial f}{\partial C}C + \frac{\partial f}{\partial L}L \qquad [\ k = 1]$$

* इसे partial derivate द्वारा भी हल किया जा सकता है। देखिये अध्याय 17

जहा $\partial f/\partial C$ पूजी का सीमात उत्पादन है तथा $\partial f/\partial L$ श्रम का सीमात उत्पादन। $\partial f/\partial C.C$ कुल उत्पादन P में पूजी का हिस्सा है और $\partial f/\partial L\, L$ श्रम का हिस्सा।

ऊपर का समीकरण यह बताता है कि पूजी का सीमात उत्पादन ($\partial f/\partial C$) गुणा पूजी की लगाई गई इकाइया (C) जमा श्रम का सीमात उत्पादन ($\partial f/\partial l$) गुणा श्रम की नियुक्त की गई इकाइया पूर्णरूप से कुल उत्पादन (P) के बराबर होती है।

2 आइलर प्रमेय का रेखीय चित्रण
(DIAGRAMMATIC REPRESENTATIOIN OF EULER'S THEOREM)

आइलर प्रमेय को चित्र 36 1 म रेखाकित किया गया है जहा श्रम को क्षेतिज अक्ष पर और कुल उत्पादन को अनुलम्ब अक्ष पर लिया गया है। वक्र OP कुल उत्पादन वक्र अथवा उत्पादन फलन $P = f(C\ L)$ है। OP वक्र के बिन्दु G पर स्पर्श रेखा T पैमाने के स्थिर प्रतिफल (constant returns to scale)[1] व्यक्त करती है। बिन्दु G पर OP वक्र की ढलान बराबर है
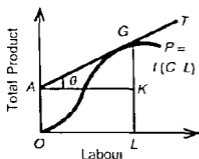
चित्र 36 1

$$\frac{\partial f}{\partial L} = \tan\theta = \frac{GK}{AK} \quad [\quad P = f(C, L)]$$

$$= \frac{GK}{OL} \qquad (\because OL = AK)$$

$$\text{अब } \frac{\partial f}{\partial L} L = \frac{GK}{OL}\ OL = GK \quad ...(2)$$

$$(\because\ L = OL)$$

जो कुल उत्पादन GL म श्रम का हिस्सा है।

समीकरण (1) से

$$\frac{\partial f}{\partial C}C = P - \frac{\partial f}{\partial l}L$$

$$= P - GK \qquad (GK \text{ समीकरण 2})$$

$$= GL - GK \qquad (\text{ कुल उत्पादन } P = GL)$$

$$= KL$$

जो कुल उत्पादन GL म पूजी का हिस्सा है।

इस प्रकार

$$P = \frac{\partial f}{\partial C}C + \frac{\partial f}{\partial L}L$$

or $$GL = GK + KL$$

अत कुल उत्पादन (GL) उत्पादन के दोनों साधनों, श्रम(GK) और पूजी (KL) म पूर्णतया वितरित हो जाता है।

1 "उत्पादन फलन" अध्याय में चित्र 1 के बिन्दु e को देखिए।

मान्यताएँ (Assumptions)

सकलन समस्या अथवा आइलर प्रमेय की ये मान्यताए है

प्रथम, कि प्रथम कोटि का रेखीय समरूप फलन होता है जिसका मतलब है, पैमाने का स्थिर प्रतिफल है।

दूसरे, उत्पादन के साधन पूर्णतया विभाजित होते है।

तीसरे, साधन पूरक होते है अर्थात् यदि एक परिवर्तनशील साधन बढता है तो वह स्थिर साधनों की सीमान्त उत्पादकता को भी बढाता है।

चौथे, साधनो के सापेक्ष हिस्से स्थिर और उत्पादन के स्तर से स्वतन्त्र होते है।

पाँचवे, अर्थव्यवस्था जोखिमरहित और स्थैतिक होती है, जहाँ कोई लाभ नहीं होते है।

छठे, पूर्ण प्रतियोगिता होती है।

अन्तिम, यह दीर्घकाल मे लागू होता है।

इसकी व्याख्या (Its Explanation)

विक्सटीड ने आइलर प्रमेय की सहायता से सिद्ध किया कि जब प्रत्येक साधन को उसके सीमान्त उत्पादन के अनुसार भुगतान कर दिया जाता है तो कुल उत्पादन पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है। यह रेखीय समरूप फलन की मान्यता पर आधारित है। विक्सटीड ने बढते, स्थिर और घटते प्रतिफलों के नियमो मे भेद नहीं किया। उसका मत था कि पूर्ण प्रतियोगिता और पैमाने के स्थिर प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन समाप्ति प्रमेय व्यापक तौर से सही ठहरता है।

ऐंजवर्थ ने विक्सटीड के हल का मज़ाक उडाया था और पेरेटो ने स्थिर प्रतिफल के पैमाने की मान्यता पर आपत्ति की। विक्सेल, वालरस तथा बेरोन ने भी उसकी आलोचना की। उन्होंने यह बताया कि उत्पादन फलन से एक क्षैतिज दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (*LRAC*) नहीं प्राप्त होता बल्कि एक U-शक्ल का *LRAC* वक्र प्राप्त होता है। U-शक्ल का *LRAC* वक्र पहले पैमाने के घटते प्रतिफल, फिर स्थिर प्रतिफल और अन्त मे बढते प्रतिफल को व्यक्त करता है।

विक्सेल ने सिद्ध किया कि दीर्घकाल मे पूर्ण प्रतियोगिता की स्थितियों के अन्तर्गत उत्पादन समाप्ति समस्या उस समय सही ठहरती है, जब लाभ शून्य हो। वह इसे फर्म के दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (*LRAC*) के न्यूनतम बिन्दु पर सतुलन की शर्त मानता था, जहाँ पर कि रेखीय समरूप उत्पादन फलन सन्तुष्ट होता है। मान लीजिए कि अन्य सब साधनों को उनके सीमान्त उत्पादनों का भुगतान कर चुकने के बाद एक उद्यमी के पास अपने साधन के सीमान्त उत्पादन से अधिक बच जाता है, तब सब साधनों के मालिक भाडे पर लेने वाले (*hiring*) एजेण्ट बनना चाहेंगे और इस प्रक्रिया मे साधनों के कुल उत्पादन और पुरस्कार का अन्तर समाप्त हो जाएगा। इसके विपरीत, अन्य साधनो को उनके सीमान्त उत्पादनों का भुगतान कर चुकने के बाद, एक उद्यमी के पास उसके अपने सीमान्त
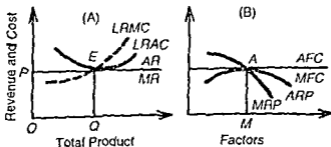
चित्र 36 2

उत्पादन से कम अवशेष (residue) बचता है, तो वह उत्पादक नहीं रहेगा और सीमान्त उत्पादन प्राप्त करने के लिए अपनी सेवाओं को बेच देगा। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म उस स्तर पर उत्पादन करेगी, जहाँ कुल उत्पादन का साधन-सेवाओं के सीमान्त उत्पादन के अनुसार पूर्णरूप से वितरण होगा।

उत्पादन समाप्ति प्रमेय का यह हल एक फर्म की दीर्घकालीन लाभरहित पूर्ण प्रतियोगी सतुलन स्थिति पर आधारित है, जबकि फर्म अपने $LRAC$ वक्र के न्यूनतम बिन्दु E पर कार्य करती है जैसा कि चित्र 36 2 (A) में दिखाया गया है। इस बिन्दु पर फर्म पूर्ण सतुलन में है और उसके साधनों की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) साधनों की सयुक्त सीमान्त लागत (MFC) के बराबर है। यह चित्र के (B) भाग में दिखाया गया है जहाँ MRP = MFC बिन्दु A पर। इस बिन्दु A पर कुल उत्पादन OQ पूर्णरूप से साधनों में वितरित हो जाता है और कुछ भी बाकी नहीं बचता।

जैसाकि ऊपर बताया गया है, एक रेखीय और समरूप उत्पादन फलन में उत्पादन समाप्ति समस्या हल होती है $P = \frac{\partial P}{\partial C}C + \frac{\partial P}{\partial L}L$ यदि घटते प्रतिफल हो तो साधनों को कुल उत्पादन में कम बाँटा जाएगा $P > \frac{\partial P}{\partial C}C + \frac{\partial P}{\partial L}L$ ऐसी स्थिति में उद्योग में असामान्य लाभ होंगे जो नई फर्मों को आकर्षित कर उद्योग में ले आएँगे। परिणामस्वरूप, उत्पादन बढ जाएगा, कीमतें गिर जाएँगी और इस प्रकार दीर्घकाल में लाभ समाप्त हो जाएँगे। इस प्रकार, साधनों के सीमान्त उत्पादनों द्वारा निर्धारित उनके वितरणात्मक भाग (distributive shares) कुल उत्पादन को पूर्णरूप से समाप्त कर देंगे।

इसकी आलोचनाएँ (Its Criticisms)

वास्तव में स्थिर प्रतिफल का पैमानाप्रतियोगी सतुलन से मेल नहीं खाता क्योंकि दीर्घकालीन में यदि फर्म का लागत वक्र क्षैतिज (horizontal) हो और कीमत रेखा पर पड़े, तो फर्म का आकार अनिर्धारित होता है। यदि यह कीमत रेखा से नीचे हो, तो फर्म एकाधिकार सस्था बन जाती है, और यदि यह कीमत रेखा से ऊपर हो तो फर्म बन्द हो जाती है।

जबकि पैमाने के बढते प्रतिफल की स्थिति में कुल उत्पादन से अधिक का वितरण होगा क्योंकि साधनों को दुगुना कर देने से कुल उत्पादन की मात्रा दुगुने से अधिक बढ जाएगी। परन्तु बढते प्रतिफल पूर्ण प्रतियोगिता के अनुरूप नहीं होते, क्योंकि उत्पादन की मितव्ययिताओं से उत्पादन की लागत कम हो जाती है और एकाधिकार की स्थापना होने लगती है।

समस्त विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि साधन-सेवाएँ पूर्ण रूप से विभाज्य होती हैं। क्योंकि उद्यमी बदला नहीं जा सकता, इसलिए हमने उसे स्वतन्त्र साधन नहीं माना है। वास्तव में स्थैतिक अर्थव्यवस्था में उद्यमता नहीं होती। जब $LARC$ वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर पूर्ण सतुलन होता है, तो कोई अनिश्चितता नहीं होती और लाभ बिल्कुल समाप्त हो जाते हैं। इसलिए सकलन समस्या (adding up problem) के हल के लिए एक उद्यमी-रहित अर्थव्यवस्था की मान्यता उचित है। परन्तु यदि अनिश्चितता एक बार प्रकट हो जाए, तो उद्यमी अवशेष (residue) का अधिकारी बन जाता है और उत्पादन समस्या की समाप्ति जाती रहती है।

अपूर्ण या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत कुल उत्पादन का जोड़ प्रत्येक साधन को दिए गए भाग से अधिक होता है, अर्थात् C और L से P बडा है। अपूर्ण श्रम मार्किट को लीजिए, उसमें औसत तथा सीमान्त मजदूरी वक्र (AW और MW) ऊपर को ढालू होते हैं और औसत तथा सीमान्त आगम उत्पाद वक्र (ARP और MRP) उल्टे U के आकार के होते हैं। जैसे चित्र 36.3 में

दिखाया गया है। सतुलन E बिन्दु पर स्थापित होता है जहाँ MRP वक्र MW वक्र को ऊपर से काटता है। फर्म QA मजदूरी देकर श्रम की OQ इकाइयाँ लगाती है। यह मजदूरी QA श्रम के सीमान्त आगम उत्पाद QE से कम है। इस प्रकार वर्करों को उनके सीमान्त उत्पादन से कम दिया जाता है। यह दलील केवल श्रम पर ही नहीं बल्कि उद्योग के लिए स्थिर प्रतिफल के पैमाने के अन्तर्गत भी सब भागो पर लागू होती है।

पर उत्पादन समाप्ति प्रमेय एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत सही ठहरती है, जबकि फर्म सतुलन मे हो। सतुलन पर सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को काटता है और औसत आगम वक्र औसत लागत वक्र को स्पर्श करता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि साधनो के लिए कुल खर्च और कुल आगम उत्पाद (total revenue product) समान होगे। अब यदि साधनों के उत्पादन को स्थिर रखते हुए उनमे थोडा परिवर्तन कर दिया जाए, तो साधनो के कुल खर्च मे वृद्धि से आगम उत्पाद (revenue product) मे लगभग आनुपातिक वृद्धि होगी। इस प्रकार, सतुलन मे यदि लागत वक्र मे शामिल प्रत्येक साधन को उसके सीमान्त आगम उत्पाद का भुगतान किया जाए, तो फर्म का कुल उत्पादन उन्हीं मे समाप्त हो जाएगा। परन्तु यदि एकाधिकार हो, तो सीमान्त उत्पादन के अनुसार भुगतान करने से कुल उत्पादन समाप्त नहीं होगा।
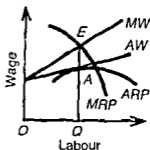
चित्र 36.3

इसका महत्त्व (Its Importance)

आइलर प्रमेय वितरण सिद्धान्त मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उत्पादन के विभिन्न साधनो के सयोग से कुल उत्पादन होता है। प्रश्न यह है कि कुल उत्पादन साधनों के बीच कैसे वितरित किया जाए? यदि उत्पादन फलन प्रथम कोटि का समरूप हो तो आइलर प्रमेय इस प्रश्न का हल कर सकता है। यह प्रत्येक साधन को उत्पादक द्वारा कुल उत्पादन के आवटन की तथा विभिन्न आगतो के बीच कुल व्यय को वितरित करने की दीर्घकालीन समस्या का हल प्रदान करती है। प्रमेय यह भी सुझाती है कि एक फर्म को किस प्रकार विभिन्न आगतो को नियुक्त करना चाहिए। यह हमे बताती है कि फर्म को अपनी आगते उस सीमा तक नियुक्त करनी चाहिए जहा साधन का पुरस्कार उसके सीमात आगम उत्पाद के बराबर होता है।

प्रश्न

1 एक उत्पादन फलन को कौन-सी विशेषताए (मान्यताए) अवश्य पूरी करनी चाहिए ताकि कुल उत्पादन समाप्त हो जाए, जब प्रत्येक साधन का उसके सीमात उत्पाद के मूल्य के बराबर कीमत दी जाती है?

2 उत्पादन समाप्ति प्रमेय की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

3 आइलर प्रमेय द्वारा उत्पादन के वितरण की समस्या को कैसे हल किया जाता है?

अध्याय 37

विभिन्न मार्किट स्थितियों में साधन कीमत निर्धारण*
(FACTOR PRICING UNDER DIFFERENT MARKET CONDITIONS)

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त समय-समय पर अर्थशास्त्रियों द्वारा संशोधित किए जाने के कारण सर्वप्रिय रहा है। परन्तु जैसाकि ऊपर विवेचन किया गया, यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साधन-कीमत निर्धारण की समस्या को केवल माँग पक्ष की ओर से अध्ययन करता है और पूर्ति पक्ष की उपेक्षा करता है। साधन-कीमत निर्धारण की समस्या के एक पूर्ण सिद्धान्त को माँग एवं पूर्ति दोनों ही पक्षों की ओर से अध्ययन करना चाहिए। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साधन-कीमत निर्धारण के सिद्धान्त का अध्ययन आगे किया जा रहा है जिसे साधन-कीमत निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त साधन-कीमत निर्धारण के कुछ अन्य वास्तविक भेद भी हैं जिनका अपूर्ण प्रतियोगिता से सम्बन्ध है (i) साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता और वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता, (ii) साधन बाजार पूर्ण प्रतियोगी और वस्तु बाजार एकाधिकारी, (iii) साधन बाजार में एकक्रयाधिकार (monopsony) और वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता, तथा (iv) साधन बाजार में एकक्रयाधिकार तथा वस्तु बाजार में एकाधिकार। इनकी भी विवेचना इसी अध्याय में की गयी है।[1]

1. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साधन कीमत निर्धारण
(FACTOR PRICING UNDER PERFECT COMPETITION)

एक उत्पादन के साधन की कीमत, एक वस्तु की कीमत के समान, माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। यद्यपि प्रत्येक साधन की माँग एवं पूर्ति की शर्तें अलग-अलग होती है, फिर भी अर्थशास्त्रियों ने इस सम्बन्ध में कुछ सामान्य नियम निर्धारित किए हैं जिनके आधार पर यह विश्लेषण किया जा रहा है।

मान्यताएँ (Assumptions)—पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साधन कीमत निर्धारण का विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

(i) साधन बाजार तथा वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।
(ii) साधन-सेवाओं के क्रेताओं एवं विक्रेताओं की संख्या अधिक है।
(iii) एक साधन की सभी इकाइयाँ समरूप (homogeneous) हैं।
(iv) उत्पादन के साधन पूर्णतया गतिशील है।
(v) साधनों तथा साधनों की इकाइयों में पूर्ण स्थानापन्नता पाई जाती है।
(vi) सभी साधन-इकाइयाँ विभाज्य है।

* यह वितरण के आधुनिक सिद्धान्त से भी स्पष्ट है।
1 साधन कीमत और बाजार कीमत निर्धारण में अन्तर के लिए अध्याय 35 देखिए।

(vii) साधन सेवाओं के क्रेताओं और विक्रेताओं को बाजार की अवस्थाओं का पूर्ण ज्ञान है।

(viii) साधन सेवाओं के क्रेताओं एवं विक्रेताओं को बाजार में प्रवेश करने तथा छोड़ने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है।

(ix) परिवर्ती अनुपात का नियम (law of variable proportions) लागू होता है।

साधन सेवा की माँग (Demand for Factor Service)—किसी भी साधन सेवा की माँग व्युत्पन्न माँग होती है जोकि उस वस्तु की माँग पर निर्भर करती है जिसे यह साधन बनाने में सहायता करता है। यदि वस्तु के लिए माँग अधिक हो तो साधन के लिए माँग भी अधिक होगी। इसके विपरीत, यदि वस्तु की माँग कम है तो साधन के लिए माँग भी कम होगी। वास्तव में, किसी साधन सेवा की माँग केवल उसकी वस्तु की माँग पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि उसकी माँग की लोच पर निर्भर करती है। वस्तु की माँग की लोच जितनी अधिक होती है, उस साधन सेवा की माँग की लोच भी अधिक होगी जो इसके उत्पादन में प्रयोग की गई है। इसके विपरीत, वस्तु की माँग की लोच कम होने पर इससे सबंधित साधन सेवा की माँग की लोच भी कम होगी।

एक साधन सेवा की माँग की लोच इस बात पर निर्भर करती है कि यह साधन कहाँ तक किसी अन्य साधन द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है। जितने सस्ते और अच्छे इसके स्थानापन्न होंगे, उतनी ही अधिक इसकी माँग की लोच होगी। इसका अभिप्राय यह है कि एक साधन सेवा की माँग दूसरे साधनों की कीमतों पर भी निर्भर करती है। उदाहरणार्थ, यदि श्रम की अपेक्षा मशीनें सस्ती हो जाती हैं तो वे श्रम के स्थान पर स्थानापन्न की जा सकती हैं। यदि मशीनें बहुत महँगी हों तो भी मजदूरी बढ़ने से श्रम की माँग कम नहीं होगी, यदि श्रम के लिए माँग कम लोचदार हो।

वास्तव में, एक फर्म की साधन सेवा के लिए माँग उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। सीमान्त उत्पादकता से अभिप्राय सीमान्त भौतिक उत्पाद (marginal physical product—MPP) से है जो कम हो जाती है, जबकि साधन सेवा की अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु साधन सेवा के सीमान्त भौतिक उत्पाद का कोई अर्थ नहीं होता, जब तक उसे मुद्रा में व्यक्त न किया जाए। क्योंकि मार्किट पूर्ण प्रतियोगी होती है, इसलिए फर्म साधन की प्रत्येक इकाई को बाजार कीमत पर बेचती है। इस प्रकार, साधन सेवा के सीमान्त उत्पाद का मूल्य (value of marginal product) इसके सीमान्त भौतिक उत्पाद को इसकी कीमत से गुणा करके निकाला जाता है, VMP = MPP × Price। परन्तु VMP उपभोक्ता की साधन सेवा का मूल्यांकन है। हमें फर्म द्वारा साधन सेवा के मूल्यांकन को भी दृष्टिगोचर रखना है अर्थात् साधन सेवा की सीमान्त इकाई कुल आगम में कितनी वृद्धि करती है। यह साधन का सीमान्त आगम उत्पाद (marginal revenue product—MRP) है जो साधन सेवा के सीमान्त भौतिक उत्पाद को सीमान्त आगम से गुणा करके प्राप्त किया जाता है, MRP = MPP × MR। क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत (*AR*) सीमान्त आगम के बराबर होती है इसलिए *VMP = MRP*। तालिका 37.1 में एक साधन सेवा की उपकल्पित माँग सूची दी गई है।

साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होने के कारण उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर उत्पादन की प्रति इकाई कीमत समान ही रहती है, अर्थात् रु 5 (देखिए स्तम्भ 4)। साधन की दूसरी इकाई काम पर लगाने के बाद कुल उत्पादन घटती दर से बढ़ता है। परिवर्ती अनुपातों का नियम लागू होने से सीमान्त भौतिक उत्पाद (MPP) भी गिरता है और इसके साथ सीमान्त उत्पाद मूल्य (VMP) का मूल्य भी गिरता है। सीमान्त आगम उत्पाद (MRP) फर्म का माँग वक्र है। परन्तु इसका ऋणात्मक झुकाव (negatively inclined) वाला भाग, जो दाईं ओर नीचे को जाता है, एक फर्म का साधन सेवा के लिए माँग वक्र है। पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त उत्पाद का मूल्य सीमान्त आगम उत्पाद के बराबर होता है (VMP = MRP), इसलिए VMP तथा MRP वक्र अनुरूप (coincide) होते हैं जोकि चित्र 37.1 में दिखाया गया है।

तालिका 37.1 : एक साधन सेवा के लिए माँग सूची

(1) साधन की इकाइयाँ	(2) कुल उत्पादन	(3) सीमान्त भौतिक उत्पाद (MPP)	(4) उत्पादन की प्रति इकाई कीमत (रुपये)	(5) = (3 × 4) सीमान्त उत्पाद का मूल्य (VMP) (रुपये)	(6) = (2 × 4) कुल आगम	(7) सीमान्त आगम उत्पाद (MRP)
1	10	10	5	50	50	50
2	25	15	5	75	125	75
3	37	12	5	60	185	60
4	45	8	5	40	225	40
5	50	5	5	25	250	25
6	53	3	5	15	265	15
7	53	0	5	0	265	0

साधन सेवा की पूर्ति (Supply of Factor Service)—एक साधन का मालिक एक विशेष कीमत पर *साधन की जितनी इकाइयाँ बेचता है, वह साधन सेवा की पूर्ति कीमत होती है।* एक साधन की पूर्ति तथा कीमत में सीधा संबंध पाया जाता है। ऐसा अल्पकाल में होता है, जब साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार नहीं होती। अधिक कीमत पर इसकी अधिक मात्रा और कम कीमत पर इसकी कम मात्रा की पूर्ति की जाएगी। इस प्रकार एक साधन का पूर्ति वक्र बाएँ से दाएँ ऊपर को ढलान वाला होता है, अर्थात् इसका झुकाव धनात्मक (positive) होता है। इसका कारण यह है कि एक साधन सेवा की मार्किट में पूर्ति उसकी अवसर लागत (opportunity cost) या स्थानान्तरण आय (transfer earning) पर निर्भर करती है जो किसी साधन सेवा द्वारा अपने अगले श्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग में अर्जित राशि होती है। जब किसी साधन सेवा की अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो इसकी अवसर लागत बढ़ने की संभावना होती है। इसकी अधिक इकाइयों का एक मार्किट में प्रयोग करने के लिए, उन इकाइयों को अन्य वैकल्पिक प्रयोगों से हटाना पड़ेगा। इस तरह उन इकाइयों को इस प्रयोग में कम प्राप्त होगा जिससे उनका मूल्य अन्य प्रयोगों में बढ़ जाएगा।

एक साधन सेवा की पूर्ति की लोच, एक फर्म की साधन सेवा के क्रेता के रूप में उसके सापेक्ष महत्त्व द्वारा निर्धारित होगी। (The elasticity of supply of a factor service will be determined by the relative importance of a firm as a buyer of the factor service)। पूर्ण प्रतियोगी साधन बाज़ार में एक उत्पादकीय सेवा के बहुत से क्रेता होते हैं। अतः एक एकल (single) फर्म कुल साधन सेवा का केवल थोड़ा-सा भाग ही खरीदती है और किसी भी प्रकार से उसकी बाज़ार कीमत को *प्रभावित नहीं करती। यह एक साधन सेवा की कीमत को दी हुई मानती है और उस कीमत पर* जितनी इकाइयों की आवश्यकता होती है लगाती है। इस प्रकार फर्म के लिए दीर्घकाल में साधन सेवा की पूर्ति दी हुई कीमत पर पूर्णतया लोचदार होती है। इसके परिणामस्वरूप फर्म के लिए उत्पादकीय सेवा की औसत साधन लागत (average factor cost) तथा सीमान्त साधन लागत (marginal factor cost) साधन की कीमत के बराबर होती है, AFC = MFC = Price of the Factor Service। इस संबंध को तालिका 37.1 द्वारा दिखाया गया है। साधन सेवा का पूर्ति वक्र (AFC) X-अक्ष के समानान्तर होगा और सीमान्त साधन वक्र (MFC) इसके अनुरूप, जैसाकि चित्र 37.1 में दिखाया गया है।[2]

2 *MFC* is the addition to total cost by employing an additional unit of a given factor services

तालिका 37 2

(1) साधन की इकाइयाँ	(2) साधन की कीमत (रुपये)	(3) कुल लागत (रुपये)	(4) औसत साधन लागत (AFC) (रुपये)	(5) सीमान्त साधन लागत (MFC) (रुपये)
1	5	5	5	—
2	5	10	5	5
3	5	15	5	5
4	5	20	5	5

साधन कीमत का निर्धारण (Determination of Factor Price)—साधन सेवा की माँग एव पूर्ति की ऊपर वर्णित स्थितियाँ दी हुई होने पर फर्म एक साधन की अधिक इकाइयो को तब तक उत्पादन के लिए लगाती रहेगी, जब तक कि साधन की अतिरिक्त इकाइयो से प्राप्त अतिरिक्त आगम (MRP) उनके लगाने से जो अतिरिक्त लागत (MFC) होती है, उससे अधिक है।[3] यह उस बिन्दु पर अधिकतम लाभ अर्जित करेगी जिस पर सीमान्त आगम उत्पाद (MRP) सीमान्त साधन लागत (MFC) के बराबर होता है। यदि फर्म इस स्तर से कम साधन की इकाइयों को लगाती है तो MFC से MRP अधिक होगा तथा इसके लिए साधन की और अधिक इकाइयों की लागत लाभदायक होगी क्योकि वे लागतो की अपेक्षा आगम मे अधिक वृद्धि करेगी। यदि फर्म MRP तथा MFC की समानता के स्तर से आगे और अधिक इकाइयाँ लगाने का निश्चय करती है तो वह हानि मे होगी क्योकि आगम से लागते बढ जाएँगी। अत पूर्ण प्रतियोगी साधन बाजार मे फर्म तब सतुलन मे होगी, जब MRP = MFC जिसका अभिप्राय दो शर्तों से है प्रथम, MRP = MFC, और द्वितीय, सतुलन बिन्दु पर MRP वक्र MFC वक्र को ऊपर से काटे।

एक साधन सेवा का कीमत-निर्धारण चित्र 37 1 मे वर्णन किया गया है। इसमे VMP = MRP माँग वक्र है तथा AFC= MFC साधन सेवा का पूर्ति वक्र है। फर्म के लिए साधन सेवा की कीमत *OP* दी हुई और स्थिर होने पर, MFC वक्र को MRP वक्र ऊपर से *E* बिन्दु पर काटता है। यह फर्म का सतुलन बिन्दु है जिस पर यह साधन सेवा की *OQ* इकाइयाँ लगाती है। MFC वक्र को MRP वक्र *R* बिन्दु पर भी काटता है। परन्तु यह सतुलन बिन्दु नहीं हो सकता क्योकि MRP वक्र MFC वक्र को नीचे से काटता है। यह फर्म के लिए अधिकतम लाभ का बिन्दु नहीं है क्योंकि *R* बिन्दु के आगे MFC से MRP अधिक होता है। अत पूर्ण प्रतियोगी साधन बाजार मे *E* सतुलन बिन्दु है, जबकि MRP = VMP = MFC = AFC = Price।

चित्र 37 1

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साधन तथा वस्तु मार्किटो मे एक फर्म अल्पकाल मे लाभ या हानि की अवस्था मे हो सकती है। परन्तु दीर्घकाल मे यह सामान्य लाभ ही अर्जित कर सकती है। इन तीनो स्थितियो को रेखाचित्र मे दर्शाने के लिए हमे सीमान्त आगम उत्पाद वक्र (MRP) के तदनुरूप औसत आगम उत्पाद (average revenue product) वक्र खींचना पडेगा।
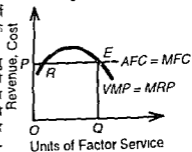
3 The firm will continue to employ more units of a factor service so long as the additional revenue obtained from an additional unit of the factor service exceeds the extra cost of employing it

चित्र 37.2 (A) में, फर्म बिन्दु *A* पर सतुलन में है जहाँ MFC वक्र को MRP वक्र ऊपर से काटता है। फर्म *OP* कीमत पर साधन सेवा की *OQ* इकाइयाँ लगाती है। इस स्थिति में, औसत साधन लागत *QA* औसत आगम उत्पाद *QB* से *BA* (= *QA–QB*) प्रति साधन इकाई अधिक है। अत फर्म अल्पकाल में *PABC* हानि उठाती है। दीर्घकाल मे कुछ फर्में, जो हानि नहीं उठा सकती,
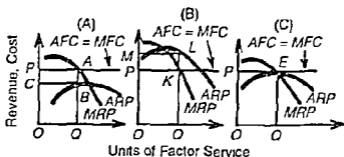
चित्र 37.2

उद्योग को छोड जाएँगी। इसके परिणामस्वरूप, साधन सेवा के लिए माँग कम हो जाएगी, इसकी कीमत कम हो जाएगी और AFC वक्र नीचे को सरक जाएगा। दूसरी ओर, कुछ फर्मों के उद्योग को छोड जाने से उद्योग का उत्पादन कम हो जाएगा, वस्तु की कीमत बढ़ेगी तथा ARP एवं MRP वक्र ऊपर को सरक जाएँगे। इस प्रकार AFC (= MFC) वक्र के नीचे सरकने तथा ARP एवं MRP वक्रों के ऊपर सरकने से एक नया सतुलन बिन्दु *E* स्थापित हो जाएगा जहाँ MRP वक्र के सबसे ऊँचे बिन्दु पर AFC वक्र स्पर्श करता है तथा MRP वक्र भी इसी बिन्दु में से गुजरता है। इस प्रकार दीर्घकाल में सभी फर्में केवल सामान्य लाभ कमाती हैं जैसाकि चित्र 37.2 (C) में दिखाया गया है।

चित्र 37.2 (B) में फर्म बिन्दु *K* पर सतुलन में है। यहाँ MFC वक्र को MRP वक्र ऊपर से काटता है। फर्म अल्पकाल में *OP* कीमत पर *OQ* साधन की इकाइयाँ लगा कर *PKLM* असामान्य लाभ अर्जित कर रही है। क्योंकि औसत आगम उत्पादन *QL*, औसत साधन लागत *QK* से प्रति साधन इकाई *KL* (= *QL–QK*) अधिक है, इसलिए दीर्घकाल में अधिक लाभों द्वारा आकर्षित होकर नई फर्में इस उद्योग में प्रवेश कर जाएँगी। इससे उद्योग द्वारा प्रयोग की जा रही साधन सेवा की माँग बढ़ जाएगी। इसके परिणामस्वरूप, इस साधन सेवा की कीमत बढ जाएगी तथा AFC वक्र ऊपर को सरक जाएगा। दूसरी ओर, नई फर्मों के प्रवेश से उद्योग के उत्पादन में वृद्धि होगी, वस्तु की कीमत कम हो जाएगी तथा ARP एव MRP वक्र नीचे सरक जाएँगे। इस प्रकार AFC (= MFC) वक्र के ऊपर की ओर तथा ARP एव MRP वक्रों के नीचे की ओर सरक जाने से सामान्य लाभों की दीर्घकालीन सतुलन स्थिति आ जाएगी, जहाँ AFC वक्र ARP वक्र को उसके सबसे ऊँचे बिन्दु *E* पर स्पर्श करता है जैसाकि चित्र 37.2 (C) में दिखाया गया है। *E* पूर्ण सतुलन (full equilibrium) का बिन्दु है जहाँ सभी फर्में और सारा उद्योग सतुलन में है। फर्मों में उद्योग को छोडने या उसमें प्रवेश करने की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती है तथा सभी फर्में सामान्य लाभ अर्जित करती हैं। ऐसी अवस्था में AFC = MFC = MRP = ARP दीर्घकाल में एक दूसरे के बराबर होते हैं।

2. अपूर्ण प्रतियोगिता में साधन कीमत निर्धारण
(FACTOR PRICING UNDER IMPERFECT COMPETITION)

अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार के अन्तर्गत साधन कीमत निर्धारण का तीन श्रेणियो में अध्ययन किया जाता है

(1) जब साधन बाजार पूर्ण प्रतियोगी और वस्तु बाजार अपूर्ण प्रतियोगी या एकाधिकारात्मक हो,

(2) जब साधन बाजार मे एकक्रयाधिकार और वस्तु बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता हो, तथा

(3) साधन बाजार मे एकक्रयाधिकार और वस्तु बाजार मे एकाधिकार हो।

हम अपूर्ण प्रतियोगिता मे साधन कीमत निर्धारण के इन तीनों विभेदो की विवेचना नीचे करते है।

(1) साधन बाजार पूर्ण प्रतियोगी तथा वस्तु बाजार अपूर्ण प्रतियोगी या एकाधिकारी (Factor market perfectly competitive and product market imperfectly competitive or monopolistic)—एक पूर्ण प्रतियोगी साधन बाजार मे साधन सेवा के लिए फर्म को कीमत दी हुई होती है जो साधन की फर्म द्वारा खरीदी जाने वाली इकाइयो को प्रभावित नहीं करती, जिस कारण साधन का पूर्ति या लागत वक्र X-अक्ष के समानान्तर होता है, अर्थात् AFC = MFC। परन्तु वस्तु बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार होने के कारण MRP वक्र सीमान्त उत्पाद के मूल्य (VMP) वक्र से नीचे स्थित होगा। हमे ज्ञात है कि वस्तु बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार होने पर सीमान्त आगम (MR) वस्तु की कीमत (AR) से कम होता है, इसलिए सीमान्त आगम उत्पाद (MRP) सीमान्त उत्पाद के मूल्य (VMP) से कम होगा, MRP < VMP क्योकि MR < P (अपूर्ण प्रतियोगिता मे AR तथा MR वक्र दोनो ही नीचे की ओर ढालू होते है)।

फर्म उस स्थान पर सतुलन मे होगी जहाँ MRP = MFC। यह चित्र 37.3 मे E बिन्दु द्वारा दिखाया गया है जहाँ फर्म OP कीमत पर साधन सेवा की OQ इकाइयाँ लगाती है। यहाँ OQ इकाइयाँ लगाने का सीमान्त आगम उत्पाद QE है जोकि सीमान्त उत्पाद के मूल्य QA से कम है। अत साधन सेवा को उसके सीमान्त उत्पाद के मूल्य (VMP) से EA मात्रा कम प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त जब फर्म MRP को MFC के बराबर करती है तो यह साधन सेवा की कम इकाइयों को, वस्तु बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण, लगाती है। इस प्रकार, यह साधन की OQ इकाइयाँ लगाती है, जबकि पूर्ण प्रतियोगी वस्तु बाजार मे यह E_1 बिन्दु पर OQ_1 इकाइयाँ लगाएगी जहाँ VMP = MFC। इस कारण अपूर्ण प्रतियोगी वस्तु बाजार मे साधन के लिए माँग Q_1Q कम होगी।
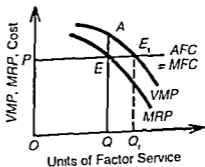
चित्र 37.3

(2) साधन बाजार में एकक्रयाधिकार तथा वस्तु बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता (Monopsony in the factor market and perfect competition in product market)—एकक्रयाधिकारी मार्किट मे एक विशेष साधन का एकल क्रेता होता है। क्योकि इस स्थिति मे फर्म ही साधन की मार्किट होती है, इसलिए एकक्रयाधिकारी के लिए साधन सेवा की पूर्ति इसकी मार्किट के प्रति पूर्ति के बराबर होती है। अत फर्म के लिए पूर्ति वक्र (AFC) बाएँ से दाएँ ऊपर की ओर ढालू होता है। फर्म साधन सेवा

की अधिक इकाइयों को प्रति इकाई अधिक कीमत देकर लगाती है। इसलिए, AFC वक्र का MFC वक्र भी ऊपर की ओर ढालू होगा तथा AFC वक्र के ऊपर रहेगा जैसाकि चित्र 37 3 में दिखाया गया है। AFC तथा MFC के सम्बन्ध को तालिका 37 3 में दर्शाया गया है। स्तम्भ (columns) (1) तथा (2), विभिन्न कीमतों पर साधन की इकाइयों की पूर्ति व्यक्त करते हैं। स्तम्भ (3), साधन की प्रत्येक इकाई को लगाने की कुल लागत को दिखाता है [स्तम्भ (1) × (2)]। स्तम्भ (4), औसत साधन लागत (AFC) को व्यक्त करता है जो स्तम्भ (3) (कुल लागत) को स्तम्भ (1) (साधन सेवा की इकाइयाँ) द्वारा विभक्त करके प्राप्त की गई है। परिणाम यह है कि स्तम्भ (4) स्तम्भ (1) के बराबर है, अर्थात् AFC = Price। स्तम्भ (5) सीमान्त साधन लागत (MFC) को दर्शाता है जो एक अतिरिक्त साधन इकाई को लगा करके कुल लागत में वृद्धि है। यह स्तम्भ (3) में दिखाई गई कुल लागत में क्रमश अन्तर है, जैसे दूसरी इकाई की सीमान्त साधन लागत 12 = 22−10। इस प्रकार तालिका यह स्पष्ट करती है कि MFC > AFC = Price

तालिका 37 3

(1) साधन सेवा की इकाइयाँ	(2) साधन सेवा की कीमत	(3) = (2 × 1) कुल लागत	(4) = 3 − 1 औसत साधन लागत (AFC)	(5) सीमान्त साधन लागत (MFC)
1	10	10	10	—
2	11	22	11	12
3	12	36	12	14
4	13	52	13	16

क्योंकि हम वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता मान रहे हैं, इसलिए सीमान्त उत्पाद का मूल्य (VMP) सीमान्त आगम उत्पाद (MRP) के बराबर होगा (देखिए तालिका 37 4)। फर्म के लिए वस्तु की कीमत दी हुई होने पर वह इसकी कीमत को प्रभावित किए बिना कोई भी मात्रा बेच सकती है। यही कारण है कि VMP = MRP तथा ये दोनों वक्र तद्रूप होते हैं जैसे चित्र 37 4 में दिखाया गया है।
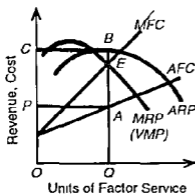
चित्र 37 4

चित्र 37 4 में फर्म E बिन्दु पर सतुलन में है, जहाँ MFC वक्र को MRP वक्र ऊपर से काटता है और इस बिन्दु पर दोनों बराबर होते हैं। फर्म OP ($=QA$) कीमत पर साधन सेवा की OQ इकाइयाँ लगाती है। साधन बाजार में एकक्रयाधिकार होने के कारण यह $PABC$ असामान्य लाभ अर्जित करती है। इस स्थिति में, साधन का एकक्रयाधिकार शोषण (monopsonistic exploitation) होता है क्योंकि साधन सेवा को उसके सीमान्त आगम उत्पाद (MRP) से कम प्राप्त होता है। OQ इकाइयों के लिए साधन को QA ($=OP$) कीमत दी जा रही है जबकि इसका सीमान्त आगम उत्पाद QE है। साधन को दी गई कीमत तथा उसके सीमान्त आगम उत्पाद का अन्तर AE

(= $QA-QE$) प्रति इकाई साधन का एकक्रयाधिकारात्मक शोषण है।

(3) **साधन बाजार मे एकक्रयाधिकार तथा वस्तु बाजार मे एकाधिकार** (Monopsony in the factor market and monopoly in the product market)—जब साधन बाजार मे एकक्रयाधिकार तथा वस्तु बाजार मे एकाधिकार हो तो MRP < VMP और MFC > AFC इसका अभिप्राय यह है कि साधन बाजार मे साधन सेवा का सीमान्त उत्पाद मूल्य उसके सीमान्त आगम उत्पाद से अधिक है और औसत साधन लागत से सीमान्त साधन लागत अधिक है। दोनो स्थितियो मे, MRP वक्र VMP वक्र के नीचे रहेगा तथा औसत साधन लागत AFC वक्र सीमान्त साधन लागत वक्र के ऊपर रहेगा। जैसाकि चित्र 37 5 मे दिखाया गया है। पहले की तरह ही फर्म E बिन्दु पर सतुलन मे है जहाँ MFC वक्र को MRP वक्र ऊपर से काटता है और इसके बराबर होता है। फर्म साधन सेवा की OQ इकाइयो को QP की कीमत पर लगाती है, यह कीमत QP साधन के सीमान्त आगम उत्पाद QE से कम है। इस प्रकार साधन बाजार मे अपनी एकक्रयाधिकारात्मक स्थिति के कारण, फर्म साधन सेवा की प्रयोग की गई इकाइयो का PE (= $QE-QP$) शोषण करती है। दूसरी ओर, वस्तु बाजार मे फर्म की एकाधिकारात्मक स्थिति होने के कारण, साधन की MRP इसकी VMP से कम होती है तथा फर्म साधन सेवा की इकाइयो को EA मात्रा मे और शोषित करती है। इस प्रकार कुल शोषण PA होता है। हम यह निष्कर्ष दे सकते है कि साधन बाजार मे एकक्रयाधिकारी तथा वस्तु बाजार मे एकाधिकार होने पर फर्म द्वारा प्रयोग मे लाया गया साधन दोहरा शोषित होता है। प्रथम, साधन का MRP उसकी कीमत से अधिक होने के कारण, तथा दूसरे, साधन का VMP उसके MRP से अधिक होने के कारण।
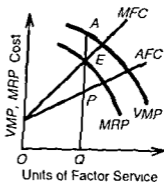
चित्र 37 5

प्रश्न

1 जब किसी उत्पादन के साधन के बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता हो तो उसका पारिश्रमिक किस प्रकार निर्धारित होगा? यह चित्र द्वारा समझाइए।

2 वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त समझाइए तथा आधुनिक सिद्धान्त से तुलना कीजिए।

3 एक साधन की कीमत निर्धारण के लिए कौन से नियम अपनाए जाते है जब (क) एक फर्म वस्तु बाजार मे एकाधिकारी हो और साधन बाजार मे एकक्रयाधिकारी, (ख) वस्तु बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता और साधन बाजार मे एकक्रयाधिकार हो, और (ग) वस्तु बाजार मे एकाधिकार और साधन बाजार मे प्रतियोगिता हो।

4 वितरण मे विभिन्न मार्किट अवस्थाओ के निहित तत्त्वो (implications) की विवेचना कीजिए।

5 "सतुलन मे सभी साधन अपने सीमात उत्पाद के मूल्य के बराबर भुगतान प्राप्त करते है।" आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

6 साधन कीमत निर्धारण कैसे होता है जब साधन बाजार और वस्तु बाजार दोनो ही पूर्ण प्रतियोगी हो?

अध्याय 38

लगान
(RENT)

1. अर्थ
(MEANING)

साधारण बोलचाल की भाषा में, अंग्रेजी के 'रेण्ट' (rent) शब्द का प्रयोग 'किराए' के अर्थ में होता है, जो उस भुगतान को प्रकट करता है जो किसी भूमि, मकान या दुकान के प्रयोग के बदले में दिया जाता है। यह किसी टैक्सी या मशीन के भाड़े को भी प्रकट करता है। अक्सर इसका अर्थ वह भुगतान समझा जाता है जोकि एक निश्चित राशि के बदले सब प्रकार की निजी सम्पत्ति को पट्टे पर देने से सम्पत्ति के मालिकों को दिया जाता है। परन्तु एक मालिक को जो कुछ प्राप्त होता है, वह शुद्ध लगान (pure rent) नहीं होता। वह वास्तव में संविदा (ठेके का) लगान (contract rent) या सकल लगान (gross rent) होता है जिसमें ये शामिल होते हैं (i) सुधारों में नियोजित पूँजी का ब्याज, (ii) मूल्यह्रास तथा अनुरक्षण (maintenance) का खर्च, (iii) प्रबन्ध की मजदूरी, (iv) भाड़े और पट्टे पर देने तथा पूँजी लगाने में जोखिम उठाने के पुरस्कार के रूप में कुछ लाभ, और (v) आर्थिक लगान जो (i) से (iv) तक सकल लगान में से घटाने पर प्राप्त आधिक्य (surplus) होता है।

इस प्रकार, अर्थशास्त्र में 'रेण्ट' या 'लगान' का अर्थ आधिक्य है अर्थात्, मार्शल के शब्दों में, "वह आय है जो भूमि तथा प्रकृति के अन्य निःशुल्क उपहारों के स्वामित्व से प्राप्त होती है।"[1] यह प्रकृति की उदारता या भूमि की माँग के सम्बन्ध में उसकी दुर्लभता के कारण लगान उत्पादन की लागत से ऊपर का आधिक्य होता है।

आधुनिक अर्थशास्त्री 'लगान' शब्द का प्रयोग आर्थिक आधिक्य (economic surplus) के अर्थ में करते हैं जिसका मतलब है उत्पादन के एक साधन की वह अतिरिक्त कमाई जो उसे उसके वर्तमान प्रयोग में रखने के लिए न्यूनतम आवश्यक राशि से अधिक है।[2] यह भेदक आधिक्य (differential surplus) नहीं होता अर्थात् भूमि की बढ़िया और घटिया श्रेणी का अन्तर नहीं होता जैसाकि रिकार्डो का तात्पर्य था। फिर, यह केवल भूमि पर ही नहीं बल्कि सभी अन्य साधन सेवाओं पर भी प्राप्त होता है। भूमि का एक टुकड़ा जो अपने वर्तमान प्रयोग में रु 200 प्राप्त करता है, अपने श्रेष्ठतम प्रयोग में ज्यादा से ज्यादा रु 150 प्राप्त कर सकता है। रु 50 का यह अन्तर आर्थिक लगान है। यदि उसका कोई अन्य वैकल्पिक प्रयोग न हो, तो उसकी स्थानान्तरण कमाई शून्य होगी और उसकी वर्तमान समस्त कमाई, रु 200 आर्थिक लगान है। इसी प्रकार मजदूरी में भी लगान

1 "The income derived from the ownership of land and other free gifts of nature is commonly called rent."—*Marshall*

2 Rent as an economic surplus means the earning of a factor of production in excess of the minimum amount to keep it in its present use

तत्त्व रहता है जबकि एक मजदूर अपने वर्तमान पेशे मे उससे अधिक कमाता है जो वह किसी अन्य वैकल्पिक पेशे मे कमा सकता है, जब एक बचत करने वाला ब्याज की मार्किट दर प्राप्त करता है यद्यपि वह कम दर पर उधार देने को तैयार है, तो ब्याज मे लगान का तत्त्व होता है, और एक उद्यमी उससे अधिक लाभ प्राप्त कर सकता है जो उसके उद्योग मे रहने के लिए आवश्यक हो। इस प्रकार आर्थिक लगान वह तत्त्व है जो अकेली भूमि की विशेषता नहीं है बल्कि सब साधनों की आय मे प्रवेश कर जाता है।

2. रिकार्डो का लगान सिद्धान्त
(THE RICARDIAN THEORY OF RENT)

इग्लैड निवासी डेविड रिकार्डो (David Ricardo) 19वीं शताब्दी का प्रतिभाशाली अर्थशास्त्री था जिसने एक व्यवस्थित लगान सिद्धान्त की स्थापना की। उसका सिद्धान्त अनेक प्रकार से लगान के आधुनिक दृष्टिकोण का आधार है।

रिकार्डो के अनुसार, लगान "भूमि की कुल उपज का वह भाग है जो भूमिपति को भूमि की मूल और अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के बदले प्राप्त होता है।"[3] पर, प्राय इसे "पूजी के ब्याज और लाभ से गड़बड़ा दिया जाता है और, साधारण बोलचाल की भाषा मे, इस शब्द का व्यवहार उस समस्त वार्षिक भुगतान के लिए किया जाता है जो एक किसान अपने भूमिपति को करता है।" इस परिभाषा में दो परिणाम स्पष्ट है कि अपनी प्रकृति, स्थिति, वातावरण और सरचना के सबध में भूमि की मूल और स्थायी विशेषताएँ होती हैं, और कि लगान केवल भूमि के प्रयोग का भुगतान है। परिणामस्वरूप ये तत्त्व इस बात को प्रकट करते है कि भूमि की विस्तृत और गहन खेती दोनो से तथा भूमि की स्थिति से भूमिपति को लगान की प्राप्ति होती है।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)—रिकार्डो का लगान सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित है

(1) अर्थव्यवस्था मे पूर्ण प्रतियोगिता है।
(2) भूमि की पूर्ति सीमित है।
(3) घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है।
(4) लगान केवल भूमि से ही प्राप्त होता है।
(5) कृषि ऐतिहासिक क्रम से की जाती है अर्थात पहले अच्छी भूमि और फिर उससे कम उपजाऊ भूमि और इसी क्रम से।
(6) लगान दीर्घकाल मे प्राप्त होता है।
(7) श्रम और पूजी एक एकल (single) साधन है।
(8) लगान कीमत-निर्धारित है।

लगान की उत्पत्ति (Emergence of Rent)—मान लीजिए कि किसी नए देश में, जहाँ केवल गेहूँ की उपज होती है, समृद्ध और उपजाऊ भूमि की बहुतायत है। जब तक यह श्रेष्ठतम (*A* श्रेणी भूमि) उपलब्ध रहेगी तब तक कोई लगान उत्पन्न नहीं होगा। जनसख्या मे वृद्धि गेहूँ की माँग को और कीमत को भी बढा देगी और यह आवश्यक हो जाएगा कि घटिया प्रकार की *B* श्रेणी भूमि पर खेती की जाए। अब *A* श्रेणी भूमि पर लगान उत्पन्न हो जाएगा। इस प्रकार जनसख्या मे प्रत्येक वृद्धि से उत्तरोत्तर घटिया प्रकार *C* इत्यादि श्रेणी की भूमि की जोताई आवश्यक होती जाएगी।

3 Rent is that portion of the produce of the earth which is paid to the landlord for the use of the original and indestructible powers of the soil "—*Ricardo*

अन्त में जोती जाने वाली C श्रेणी भूमि पर कोई लगान उत्पन्न नहीं होता। इस लगान-रहित या सीमान्त भूमि की उपज छोड़कर उससे अन्य श्रेणियों की भूमि की उपज जितनी-जितनी अधिक है वह उनका लगान है। इस प्रकार रिकार्डो के अर्थ में लगान भेदक आधिक्य (differential surplus) है जोकि श्रेष्ठ और सीमान्त भूमि की उपज का अन्तर होता है।

ऊपर जिस **विस्तृत खेती** (extensive cultivation) की चर्चा की गई है, उसके अन्तर्गत लगान की उत्पत्ति के उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि श्रम और पूँजी की वही समान मात्राएँ A श्रेणी की भूमि पर 25, B श्रेणी की भूमि पर 20, और C श्रेणी की भूमि पर 15 क्विंटल गेहूँ का उत्पादन करती हैं। जब तक केवल भूमि A पर खेती होती है, तब तक कोई लगान उत्पन्न नहीं होता। जब भूमि B को खेती में लाया जाता है, तो भूमि A के किसान को 5 क्विंटल (25–20) गेहूँ लगान प्राप्त होता है, जब भूमि C पर खेती होती है, तो B पर 5 क्विंटल (20–15) और A पर 10 क्विंटल (25–15) लगान उत्पन्न होता है जबकि C लगान-रहित भूमि बन जाती है। इस प्रकार ज्यों-ज्यों घटिया (श्रेणी की) भूमियाँ खेती में लाई जाती हैं, त्यों-त्यों बढ़िया भूमियों के लगान बढ़ते जाते हैं।

गहन खेती (intensive cultivation) के विषय में, भूमि के उसी टुकड़े पर श्रम और पूंजी की उत्तरोत्तर मात्राएँ लगाने से, एक बिन्दु के बाद, अनुपात से कम प्रतिफल प्राप्त होते हैं जब तक कि श्रम और पूँजी की अन्तिम मात्रा से उपज उसकी कीमत के बराबर नहीं हो जाती। उसी उदाहरण को लेते हुए, यदि श्रम और पूँजी की पहली मात्रा से 25, दूसरी से 20 और तीसरी से 15 क्विंटल उपज होती है, तो प्रत्येक अवस्था में लगान क्रमश 10, 5 और 0 होगा।

लागतों और कीमतों के रूप में समस्त विश्लेषण की व्याख्या चित्र 38 1 की सहायता से की गई है, जहाँ गेहूँ की मात्राओं को OX और लागतों तथा कीमतों को OY मापता है, AC और MC क्रमश औसत और सीमान्त लागत वक्र हैं।

शुरू-शुरू में हम मान लेते हैं कि A श्रेणी भूमि की खेती होती है। गेहूँ की पूर्ति तथा माँग की स्थितियाँ OP कीमत निर्धारित करती हैं जहाँ MCa और ACa वक्र मिलते हैं और बिन्दु a पर सीमांत आगम Pa के बराबर हो जाते हैं। यहाँ कोई आधिक्य या लगान नहीं है क्योंकि उत्पादन की OA मात्रा वर्तमान कीमत OP पर केवल लागतों को ही पूरा कर पाती है। मान लीजिए कि आबादी बढ़ने और भूमि पर घटते प्रतिफल का नियम लागू होने से गेहूँ की माँग बढ़ जाती है और उसकी कीमत भी बढ़कर OP_1 पर चली जाती है। बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए भूमि के इस टुकड़े की गहन खेती में श्रम और पूँजी की अधिक इकाइयाँ लगाई जाएँगी। ऐसा करने में
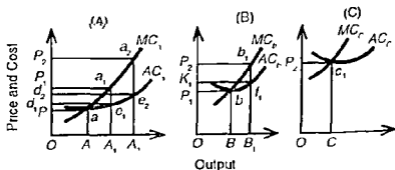
चित्र 38 1

लागत बढ़ जाती है और MCa वक्र नई कीमत रेखा P_1a_1 को a_1 बिन्दु पर मिलता है। लगान, क्योंकि, कीमत और औसत लागत का अन्तर है, इसलिए इस भूमि को प्रति इकाई a_1e_1 लगान प्राप्त होने लगता है। इसे कुल उत्पादन से गुणा कर देने पर, हमे $a_1e_1d_1P_1$ क्षेत्र के बराबर कुल लगान प्राप्त होता है। यदि जनसख्या मे और वृद्धि होने के साथ कीमत OP_2 पर चली जाए, तो और अधिक गहनता से खेती करनी पड़ेगी और गेहूँ का कुल उत्पादन बढ़कर OA_2 हो जाएगा। कीमत रेखा P_2a_2 और वक्र MCa का a_2 पर नया सतुलन होगा, जो लगान को बढ़ाकर $a_2e_2d_2P_2$ पर ले जाएगा।

विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान कैसे उत्पन्न होता है, इसे भी चित्र 38। मे दिखाया गया है, जहाँ MCa तथा ACa वक्र भूमि A के अनुरूप, MCb तथा ACb वक्र भूमि B के, और MCc तथा ACc भूमि C के अनुरूप है। शुरू मे A श्रेणी की भूमि पर खेती होती है परन्तु इसे OP कीमत पर कोई लगान प्राप्त नहीं होता, क्योंकि इस कीमत पर वह केवल अपनी लागत ही पूरी कर पाती है, $P =$ MCa = ACa जब जनसख्या मे वृद्धि होती है और उसके परिणामस्वरूप माँग बढ़ने से कीमत भी बढ़कर OP_1 पर चली जाती है, तो B श्रेणी भूमि की जोताई आवश्यक हो जाती है। अब B श्रेणी भूमि सीमान्त भूमि बन जाती है जो केवल OP_1 ($= Bb$) कीमत को ही पूरा कर पाती है, चित्र (B) से A श्रेणी की भूमि अन्त सीमान्त भूमि (intramarginal land) बन जाती है और $a_1e_1d_1P_1$ के बराबर लगान प्राप्त करना शुरू कर देती है। जब जनसख्या मे और अधिक वृद्धि होने के परिणामस्वरूप कीमत बढ़कर OP_2 पर चली जाती है, तो गेहूँ की बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए C श्रेणी भूमि पर भी खेती की जाती है। अब यह भूमि लगान-रहित या सीमान्त भूमि बन जाती है, चित्र (C) मे $OP_2 (= C_1)$ कीमत, बिन्दु c_1 पर MCc के तथा ACc लागत के बराबर हो जाती है। B श्रेणी भूमि पर $b_1f_1K_1P_2$ लगान प्राप्त होने लगता है और A श्रेणी भूमि पर अपेक्षाकृत अधिक लगान $a_2e_2d_2P_2$ के बराबर प्राप्त होता है और C श्रेणी भूमि सीमान्त या लगान रहित है।

रिकार्डो के अर्थ मे, भूमियो की स्थिति (situation) के अन्तर से भी लगान उत्पन्न होता है। सारी भूमि को समान श्रेणी की और समान उपजाऊ मान लेने पर, मार्किट से दूर स्थित तथा समीप स्थित भूमियो मे गेहूँ की यातायात लागतो का अन्तर लगान उत्पन्न करता है। गेहूँ की माँग बढ़ने के साथ-साथ ज्यो-ज्यो मार्किट से अधिक-अधिक दूरी पर स्थित भूमि की जोताई होती है, त्यो-त्यो गेहूँ के यातायात का खर्च बढ़ता जाता है। मार्किट से अधिक दूरी पर स्थित भूमियो की अपेक्षा समीप की भूमियाँ गेहूँ के यातायात पर कम खर्च करके लगान प्राप्त करती है। यदि भूमि A मार्किट के निकट स्थित हो और भूमियाँ B और C मार्किट से क्रमबद्ध (graduated) दूरी पर हो, और गेहूँ के एक ट्रक भार की लागत क्रमश रु 100, 150, और 200 हो, तो A और B का लगान क्रमश रु 100, 50 होगा। हाँ, C श्रेणी की भूमि पर कोई लगान प्राप्त नहीं होगा। इस प्रकार जो लगान प्राप्त होता है, उसे स्थिति लगान (situation rent) कहते है।

रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचनाए (Criticisms of the Ricardian Theory)—रिकार्डो के लगान-सिद्धान्त की, प्रमुख रूप से उसकी अवास्तविक मान्यताओ के आधार पर, कड़ी आलोचना की गई है।

(1) भूमि की कोई मूल और अविनाशी शक्तियाँ नहीं होतीं (There are no original and indestructible powers of soil)—यह मान लिया गया है कि "भूमि की मूल और अविनाशी शक्तियो" के प्रयोग के बदले मे किया गया भुगतान लगान होता है। परन्तु यह निर्णय करना कठिन है कि भूमि की कौन-सी शक्तियाँ मूल है, और कौन-सी मानव क्रिया का परिणाम। यदि मानव से गैर-आबाद किसी एकदम नए देश को छोड़ दिया जाए, तो इस विश्व मे कोई भूमि ऐसी नहीं मिलेगी जो अपने प्राकृतिक रूप मे रह गई हो। फिर इस अणु युग मे भूमि की कोई अविनाशी

शक्तियाँ भी नहीं रह गई हैं। भूमि की उर्वरता भी खेती के श्रेष्ठ तरीकों को अपनाकर बढ़ाई जा सकती है और उत्पादन की समुचित तकनीकों का प्रयोग न करके घटाई जा सकती है। इस प्रकार मूल और अविनाशी शक्तियों की धारणा संदिग्ध है।

(2) श्रेष्ठतम भूमि पर पहले खेती नहीं की जाती (The best land is not cultivated first)—फिर ऐतिहासिक तथ्यों से रिकार्डो की इस धारणा का समर्थन नहीं होता कि श्रेष्ठतम भूमि को पहले जोता-बोया जाता है। 19वीं शताब्दी के अन्त में, अमरीकी अर्थशास्त्री एच. सी. कैरे (H C Carey) ने अमरीकी बस्तियों के अपने सर्वेक्षण के माध्यम से यह सिद्ध किया था कि जोताई का क्रम उससे उल्टा होता है जिसे रिकार्डो ने अपने सिद्धान्त का आधार समझा था। अर्थात्, घटिया भूमि को पहले जोता-बोया जाता है क्योंकि उसका प्रबन्ध करना आसान होता है और पेड़-पौधों को साफ करने में विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। अधिक समृद्ध भूमियों को केवल तब छेड़ा जाता है जब बसने वालों की शक्ति और सम्पदाएँ बढ़ जाती हैं। कैरे बलपूर्वक कहता है कि "हमें इस नियम के किसी अपवाद का ज्ञान नहीं है और हमें पूर्ण विश्वास है कि ऐसा अपवाद न तो कोई है और न ही हो सकता है।" उसे रिकार्डो का विचार ऊटपटाँग लगता है क्योंकि "रिकार्डो ने एक नई बस्ती बसने की प्रगति को कभी उस रूप में नहीं देखा था जिसमें कि अब हम उस खिड़की से देखते हैं, जिसके सामने हम लिख रहे हैं।"[4]

(3) दुर्लभता न कि उपजाऊपन लगान की उत्पत्ति का कारण है (Scarcity and not fertility is the cause of emergence of rent)—रिकार्डो का सिद्धान्त इस धारणा पर आधारित है कि भूमियों की उर्वरता भिन्न-भिन्न होती है। इस बात से तो कोई इनकार नहीं कर सकता, परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि अधिक उपजाऊ भूमि अधिक लगान प्राप्त करती है और कम उपजाऊ भूमि कम। लगान की उत्पत्ति का कारण यह नहीं है कि भूमि उपजाऊ होती है बल्कि यह है कि भूमि अपनी माँग के संबंध में दुर्लभ होती है। क्योंकि भूमि की पूर्ति स्थिर होती है, इसलिए कृषि-वस्तुओं की माँग में परिवर्तन होने से उनकी कीमतों में परिवर्तन हो जाता है जोकि भूमि की माँग में परिवर्तन कर देती है और इस प्रकार लगान में परिवर्तन लाती है। इसलिए भेदक नियम (differential principle) की बजाय दुर्लभता नियम (scarcity principle) के माध्यम से लगान-उत्पत्ति की समस्या को लेना वास्तविक है।

(4) लगान-रहित भूमि कोई नहीं होती (There is no no-rent land)—अपने सिद्धान्त की व्याख्या के लिए रिकार्डो इस धारणा को लेकर चलता है कि भूमि लगान-रहित भी होती है। परन्तु वास्तव में ऐसी कोई भूमि नहीं होती। हाँ, यह हो सकता है कि कोई ऐसी सीमान्त भूमि हो जो वस्तु के उत्पादन की लागत मात्रा को ही पूरा कर पाए। लगान-सिद्धान्त के अध्ययन के लिए लगान रहित भूमि की धारणा का प्रयोग आवश्यक नहीं है यदि भूमि का एक टुकड़ा एक प्रयोग में लगान प्राप्त नहीं करता तो उसे किसी दूसरे प्रयोग में लगाया जा सकता है, जहाँ वह आधिक्य प्राप्त कर लेगा।

(5) घटते प्रतिफल के नियम को रोका जा सकता है (Law of diminishing returns can be held in abeyance)—सिद्धान्त इस धारणा को लेकर चलता है कि घटते प्रतिफल का नियम क्रियाशील रहता है। परन्तु प्रौद्योगिकी और संगठनात्मक सुधारों ने केवल इंग्लैंड में ही नहीं बल्कि समस्त यूरोप के मुख्य भूभाग में इस नियम की क्रियाशीलता को रोक दिया है। रिकार्डो इस बात का पूर्व-अनुमान नहीं कर पाया कि प्रबल शक्तियाँ घटते प्रतिफल के नियम को रोकने में महत्त्वपूर्ण काम करेंगी और कृषि-उत्पादकता को कई गुना बढ़ा देंगी।

(6) पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पाई जाती (Perfect competition is not found)—रिकार्डो का

4. H C Carey, *The Past the Present and the Future* pp 31-39

सिद्धान्त पूर्ण तथा स्वतन्त्र प्रतियोगिता की धारणा पर आधारित है। कृषि के क्षेत्र में भी पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पाई जाती और भूमिपतियों द्वारा वसूल किया गया *लगान आर्थिक लगान* से बहुत अधिक होता है।

(7) लगान अल्पकाल में भी उत्पन्न होता है (Rent also arises in the short-run)—सब क्लासिकी सिद्धान्तों की भाँति यह सिद्धान्त भी केवल दीर्घकाल में लागू होता है। यह बात अवास्तविक है क्योंकि लगान तो अल्पकाल में भी उस समय उत्पन्न होता है, जब साधन की पूर्ति स्थिर हो और मार्शल इसे आभास-लगान (quasi-rent) कहता है।

(8) लगान केवल भूमि के प्रयोग का ही भुगतान नहीं है (Rent is not a payment for the use of land only)—रिकार्डो के अनुसार, केवल भूमि के प्रयोग के बदले में किया गया भुगतान ही लगान है। परन्तु केवल भूमि ही ऐसा साधन नहीं है जो अपनी माँग के सम्बन्ध में स्थिर हो। समय की एक अवधि में अन्य साधनों की पूर्ति भी स्थिर होती है और इस प्रकार वे भी आधिक्य प्राप्त करते हैं जो लगान होता है। मार्शल ने ठीक ही कहा था कि "लगान एक बड़ी जाति की प्रमुख उपजाति होती है।" (Rent is a leading species of a large genus)।

(9) श्रम और पूँजी एक एकल समरूप साधन नहीं (Land and labour are not single homogeneous factor)—रिकार्डो के सारे विश्लेषण में श्रम और पूँजी को एक एकल समरूप साधन के रूप में लिया गया है जिसकी क्रमिक मात्राएँ भूमि पर व्यवहार की जाती हैं और लगान वह अवशेष है जो श्रम और पूँजी के संयुक्त भाग का भुगतान कर चुकने के बाद रहता है। यह तर्क असंगत प्रतीत होता है क्योंकि पूँजी और श्रम दो अलग-अलग साधन हैं जो भिन्न-भिन्न पुरस्कार प्राप्त करते हैं, और फिर रिकार्डो ने यह भी तो स्पष्ट नहीं किया कि भूमि के साथ पूँजी और श्रम का किस अनुपात में प्रयोग होता है।

(10) लगान कीमत-निर्धारित नहीं है (Rent is not price-determined)—यह तर्क भी बहुत अधिक आलोचना का विषय रहा है कि लगान को कीमत निर्धारित करती है। क्योंकि गेहूँ की कीमत सीमान्त भूमि पर उत्पादन की लागत के बराबर होती है और वह भूमि लगान-रहित है, इसलिए लगान कीमत में प्रवेश नहीं करता। वास्तव में, भूमि के मालिक को कीमत के रूप में कुछ भुगतान तो करना ही पड़ता है ताकि उसे उसकी भूमि को किसी दूसरे प्रयोग में स्थानान्तरण करने की प्रेरणा दी जा सके। यह भुगतान वस्तु के उत्पादन की लागत में प्रवेश कर जाएगा और यहाँ से कीमत में प्रवेश करेगा। एक किसान भूमिपति को लगान का जो भुगतान करता है, वह उत्पादन के कुल खर्च में शामिल होता है और स्पष्ट रूप से कीमत में प्रवेश कर जाता है। एक उद्योग या प्रयोग के दृष्टिकोण से भूमि के टुकड़े की केवल स्थानान्तरण लागत ही कीमत में प्रवेश करती है। परन्तु अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से क्योंकि भूमि की स्थानान्तरण लागत (transfer cost) कोई नहीं होती, इसलिए समस्त कमाई लगान होती है जोकि उत्पादन की लागत में और इसलिए कीमत में प्रवेश नहीं करती। परन्तु लगान और कीमत की चर्चा करते समय हमारा सम्बन्ध समस्त अर्थ-व्यवस्था से उतना नहीं होता जितना व्यक्तिगत किसान या उद्योग से होता है।[5]

निष्कर्ष (Conclusion)—इन कमियों के बावजूद, रिकार्डो का लगान सिद्धान्त कुछ बातें एकदम स्पष्ट रूप में सामने रखता है, जो नीति की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। रिकार्डो लगान को अनिवार्य रूप से "अनर्जित आय" (unearned income) मानता था। ज्यों-ज्यों भूमि के उत्पादन की माँग बढ़ती जाती है और घटिया भूमियों को खेती में लाती रहती है, त्यों-त्यों भूमि के मालिकों को इस (लगान या अनर्जित आय) की और-और अधिक प्राप्ति होती है। इसी आधार पर एक अमरीकन लेखक हेनरी जार्ज (Henry George) ने अपनी पुस्तक *Progress and Poverty* (1879)

5 इस बात को समझने के लिए पाठक पहले 'स्थानान्तरण आय' (transfer earnings) के सिद्धान्त का अध्ययन करें।

में भूमि पर एक एकल कर (single tax) की सिफारिश की थी। इसका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि भूमि पर, चाहे वह खेती की हो या शहरी, कर लगा दिया गया है। क्योंकि यह तर्क दिया जाता है कि लगान भूमि के मालिक की ओर से किसी त्याग की माँग नहीं करता और उत्पादन की लागत से ऊपर आधिक्य होता है, इसलिए सारे लगान या उसके एक भाग को ले लेने से न तो भूमि की पूर्ति घटेगी और न ही उसकी उत्पादकता। बल्कि इससे आय और सम्पत्ति की असमानताएँ घटाने में सहायता मिलती है।

सैद्धान्तिक स्तर पर भी, लगान का तथाकथित आधुनिक सिद्धान्त रिकार्डो के सिद्धान्त का विस्तार और संशोधन (amplification and modification) मात्र है। आधुनिक अर्थशास्त्री लगान को केवल भूमि पर सीमित करने की बजाय, सब साधनों पर लागू करते हैं, प्रत्येक निर्णय के स्तर पर, वे स्थानान्तरण आय (transfer earnings) के विचार का प्रयोग करते हैं और पूर्ण प्रतियोगिता की धारणा के अन्तर्गत समस्त विश्लेषण किया जाता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में सब क्रान्तिकारी परिवर्तनों के बावजूद रिकार्डो सिद्धान्त के दो प्रमुख मत, एक तो कृषि में घटते प्रतिफल का और दूसरा जनसंख्या में वृद्धि का, रिकार्डो के समय की अपेक्षा अल्पविकसित देशों में आज सत्य हैं। प्रोफेसर रॉबर्टसन के शब्दों में, निष्कर्ष कहा जा सकता है "रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की शक्ति और विश्वसनीयता किसी भी प्रकार नष्ट नहीं हुई है।"[6]

3. लगान का आधुनिक सिद्धांत
(MODERN THEORY OF RENT)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने दो तरीकों से रिकार्डो के लगान सिद्धान्त में विस्तार और सुधार करने का प्रयत्न किया है:

(1) रिकार्डो के विश्लेषण में घटिया भूमियों की तुलना में बढ़िया भूमियाँ भेदक आधिक्य (differential surplus) प्राप्त करती हैं। परन्तु आधुनिक विश्लेषण में लगान उत्पन्न होने का कारण यह है कि भूमि अपनी माँग की अपेक्षा दुर्लभ है। भूमि के समरूप या भिन्न रूप होने से लगान की उत्पत्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। लगान तो दुर्लभता के नियम के अनुसार उत्पन्न होता है। इसलिए लगान निर्धारित करने के लिए किसी विशेष सिद्धांत की आवश्यकता नहीं है। माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा इसकी भी उसी प्रकार व्याख्या की जा सकती है जिस प्रकार अन्य साधन-सेवाओं के पुरस्कारों की जाती है।

(2) रिकार्डो के सिद्धान्त की धारणा यह है कि भूमि किसी एक फसल, मान लीजिए गेहूँ, के उत्पादन के लिए विशिष्ट होती है। इसका मतलब है कि भूमि का कोई दूसरा वैकल्पिक प्रयोग नहीं हो सकता। हो सकता है कि समस्त समाज के दृष्टिकोण से यह बात हो। पर एक व्यक्ति या उद्योग के दृष्टिकोण से भूमि पर विभिन्न प्रकार की फसलें उगाई जा सकती हैं या बिल्डिंग इत्यादि के लिए भूमि के प्रयोग को स्थानान्तरित भी किया जा सकता है। इस प्रकार अपनी स्थानान्तरण आय से जो अधिक आय भूमि को प्राप्त होती है, वह आधुनिक आर्थिक विचार के अनुसार लगान है।

लगान केवल भूमि की ही विशेषता नहीं है बल्कि अन्य सब साधनों के विषय में भी उत्पन्न होता है जोकि अपनी स्थानान्तरण आय (transfer earnings) से अधिक प्राप्त करते हैं। जबकि रिकार्डो ने लगान की समस्या को एक दृढ़ एकतरफा (rigid one-sided) समस्या के रूप में उठाया था, वहाँ आधुनिक अर्थशास्त्री इसे एक सर्वतोमुखी सर्वव्यापी समस्या मानते हैं। हम आधुनिक लगान सिद्धान्त के इन पक्षों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण कर रहे हैं।

6. "The Ricardian Theory of Rent has by no means lost its vitality and serviceableness."—Robertson

(1) माँग तथा पूर्ति विश्लेषण (Demand and Supply Analysis)—आधुनिक विश्लेषण लगान-निर्धारण की समस्या को जाने-पहचाने माँग तथा पूर्ति के ढाँचे में रखकर हल करता है। यह इस बात को मानकर चलता है कि पूर्ण प्रतियोगिता, समरूप वस्तु तथा सारी भूमि एक प्रकार की होती है।

माँग पक्ष (Demand side)—भूमि की माँग एक व्यक्तिगत किसान, उद्योग या समस्त अर्थव्यवस्था की माँग का निर्देश करती है और सीमान्त आगम उत्पादकता पर निर्भर होती है। एक फर्म या किसान भूमि की सीमान्त आगम उत्पादकता के बराबर लगान का भुगतान करेगा। ज्यों-ज्यों अधिक भूमि प्रयोग में लाई जाती है, त्यों-त्यों घटते प्रतिफल के नियम के कारण भूमि की सीमान्त आगम उत्पादकता (marginal revenue productivity) घटती जाती है। इसलिए माँग वक्र सामान्य ढंग से नीचे की ओर ढालू होता है जिसका मतलब है कि अधिक भूमि का प्रयोग केवल अपेक्षाकृत कम लगान पर किया जाएगा, जबकि अन्य बातें समान रहें। भूमि के लिए उद्योग का माँग वक्र सब फर्मों के अलग-अलग माँग वक्रों का जोड़ होगा। समाज का माँग वक्र भूमि को प्रयोग करने वाले सब उद्योगों के माँग वक्रों के जोड़ से बनता है।

पूर्ति पक्ष (Supply side)—पूर्ति के पक्ष में भी एक फर्म, एक उद्योग और समस्त अर्थव्यवस्था की दृष्टि से हमें भूमि की पूर्ति पर विचार करना पड़ता है। एक किसान के लिए भूमि की पूर्ति पूर्ण लोचदार (perfectly elastic) होती है क्योंकि उद्योग लगान निर्धारित करता है, इसलिए पूर्ति वक्र X-अक्ष के समानान्तर होता है। चालू लगान का भुगतान करके वह जितनी चाहे उतनी भूमि पर खेती कर सकता है। परन्तु उसी कृषि-फसल को उगाने वाले उद्योग के लिए भूमि की पूर्ति कम लोचदार होती है और पूर्ति वक्र का आकार सामान्य जैसा ही होता है। इसका मतलब है कि अधिक लगान देकर भूमि को अन्य प्रयोगों से हटा लिया जा सकता है और भूमि की पूर्ति बढ़ाई जा सकती है। समस्त अर्थव्यवस्था के लिए, भूमि की पूर्ति पूर्ण रूप से बेलोच होती है। लगान कम, ज्यादा या शून्य कुछ भी हो, भूमि की पूर्ति अपरिवर्तित रहती है।

सम्बन्धित पूर्ति वक्र के साथ फर्म, उद्योग और अर्थव्यवस्था का भूमि-माँग वक्र लगान निर्धारित करता है। इसे चित्र 38.2 की सहायता से स्पष्ट किया गया है।

चित्र 38.2 (A) प्रकट करता है कि फर्म की माँग D से बढ़कर D_1 हो जाने पर, यद्यपि फर्म द्वारा
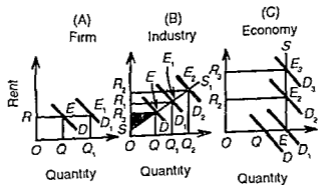
चित्र 38.2

प्रयोग की गई भूमि की मात्रा Q से बढ़कर Q_1 हो जाती है, फिर भी लगान की मात्रा (OR) उतनी ही रहती है।

चित्र 38.2 (B) उद्योग की स्थिति को प्रकट करता है, जहाँ माँग वक्र D_1 पूर्ति वक्र SS_1 को काटता है और OQ_1 भूमि के लिए OR_1 लगान का भुगतान किया जाता है। यदि माँग बढ़कर D_2 हो जाए, तो लगान बढ़कर OR_2 हो जाएगा और किसी दूसरे प्रयोग से भूमि की Q_1Q_2 मात्रा हटाकर कुल OQ_2 मात्रा भूमि की पूर्ति होगी। यदि माँग गिरकर D_3 पर चली जाए तो इसके विपरीत स्थिति होगी अर्थात् लगान कम होकर OR_3 हो जाएगा और Q_1Q भूमि किसी अन्य प्रयोग मे चली जाएगी।

चित्र 38.2 (C) अर्थव्यवस्था के लिए लगान-निर्धारण को प्रकट करता है, जहाँ ES भूमि का पूर्ति वक्र है जो पूर्ण रूप से बेलोच है। जहाँ से रिकार्डो चला था वहीं से शुरू करके हम मान लेते हैं कि एक देश में खेती के योग्य भूमि की OE मात्रा है जिसकी कोई पूर्ति-कीमत नहीं है। प्रारम्भिक अवस्थाओं में जब तक सारी भूमि पर खेती नहीं होने लगती, तब तक कोई लगान नहीं होगा। उदाहरण के लिए, D माँग पर, लगान से मुक्त OQ भूमि पर खेती होती है। D_1 माँग तक वास्तव में भूमि की पूर्ति लगान से मुक्त रहती है। परन्तु जब माँग, मान लीजिए जनसंख्या में वृद्धि और कृषि-उत्पादन की कीमतों में वृद्धि के कारण, इस बिन्दु से आगे बढ़कर D_2 और D_3 पर चली जाती है तो माँग और पूर्ति वक्रों के आपस में काटने से OR_2 तथा OR_3 लगान निर्धारित होता है। क्योंकि भूमि की मात्रा स्थिर है, इसलिए केवल कीमत (लगान) निर्धारित करने की ज़रूरत है। इसे विशुद्ध **दुर्लभता लगान** (pure scarcity rent) कहते हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत, एक निश्चित समय पर अर्थव्यवस्था में लगान की एक ही दर वर्तमान रहेगी। यदि संतुलन लगान OR_2 हो और लगान बढ़कर OR_3 हो जाए तो कुछ भूमिपति अपनी भूमि लगान पर बिल्कुल नहीं दे सकेंगे। वे लगान को घटाकर OR_2 पर ले आएँगे। दूसरी ओर, यदि लगान OR_2 से नीचे गिर जाता है तो भूमि की माँग बढ़ जाएगी और कृषकों में प्रतियोगिता से लगान बढ़कर OR_2 हो जाएगा। क्योंकि भूमि की पूर्ति स्थिर है, इसलिए भूमि की वर्तमान पूर्ति को मार्किट में लाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक लगान की जरूरत नहीं और इसलिए कोई अधिक लगान नहीं दिया जाएगा।

निष्कर्ष यह निकलता है कि सारी भूमि एक ही श्रेणी की नहीं है, इसलिए भूमि की पूर्ति पूर्ण लोचदार नहीं हो सकती। क्योंकि भूमि की पूर्ति पूर्ण लोच्दार नहीं हो सकती, इसलिए भूमि आवश्यक लगान प्राप्त करेगी। इसे **दुर्लभता लगान** (scarcity rent) कहते हैं क्योंकि भूमि की माँग के सम्बन्ध में इसकी पूर्ति दुर्लभ है और जब मार्शल ने यह कहा था कि "एक प्रकार से सब लगान दुर्लभता लगान होते हैं और सब लगान भेदक लगान होते हैं", तो उसका मतलब यह था कि भूमि क्योंकि दुर्लभ है, इसलिए भेदक लगान उत्पन्न होता है।

(2) लगान स्थानान्तरण आय के रूप में (Rent as Transfer Earning)—लगान के आधुनिक सिद्धान्त का दूसरा पक्ष यह है कि उसके अनुसार एक साधन-इकाई या उसकी स्थानान्तरण आय से अधिक वास्तविक आय का अन्तर लगान होता है, जो अधिशेष लगान (rent as a surplus) भी है। उसकी स्थानान्तरण आय वह न्यूनतम कीमत है जो उसे उसके वर्तमान प्रयोग में रखने के लिए आवश्यक है। यदि उसे उसकी यह न्यूनतम कीमत नहीं मिलती तो वह अपने को अगले अधिकतम लाभ में स्थानान्तरण कर देगी। इस प्रकार स्थानान्तरण आय (वैकल्पिक या अवसर लागत) मुद्रा की वह न्यूनतम मात्रा है, जो एक साधन अपने अगले अधिकतम लाभदायक प्रयोग (या व्यवसाय) में प्राप्त कर सकता है।[7] कुछ उदाहरण लीजिए। यदि एक वर्कर अपने वर्तमान पेशे में ₹ 200

7 Transfer earnings (alternative or opportunity costs) are the minimum amount of money that a factor can earn in its next most profitable use (or occupation)

कमाता है और किसी दूसरे व्यवसाय में सम्भवतः रु 165 कमा सकता है, तो रु 15 उसका आर्थिक लगान है। यदि एक व्यक्ति को उधार पर देने को प्रेरित करने के लिए ब्याज की न्यूनतम दर 3% हो परन्तु उसे 6% मिल जाए, तो 3% का अन्तर आर्थिक लगान के रूप में होता है। इसी प्रकार, भूमि का एक टुकड़ा गेहूँ की खेती से रु 1,000 प्रति एकड़ प्राप्त करता है, परन्तु गन्ना उगाने के लिए स्थानान्तरण करने पर केवल रु 800 प्राप्त कर सकता है। स्पष्ट है कि रु 200 आर्थिक लगान है। इसी प्रकार स्थानान्तरण आय का यह सिद्धान्त उद्यमता पर भी लागू किया जा सकता है। इस प्रकार आधुनिक विश्लेषण में लगान केवल भूमि की विशेषता नहीं है बल्कि *अन्य साधन-सेवाओं* के विषय में भी लगान उत्पन्न होता है। जैसा कि श्रीमती जॉन रॉबिन्सन ने व्यक्त किया "लगान की धारणा का सार अर्जित आधिक्य की संकल्पना है जो एक उत्पादन के साधन का एक विशेष भाग है जो उसे अपना कार्य करने को प्रेरित करने के लिए आवश्यक न्यूनतम से ऊपर प्राप्त होता है।"[8] इस परिभाषा में आवश्यक न्यूनतम से अभिप्राय स्थानान्तरण आय है। अतः आर्थिक लगान = वास्तविक आय—स्थानान्तरण आय।

एक फर्म के लिए साधन इकाइयों की पूर्ति पूर्ण लोचदार होती है। यह X-अक्ष के समानान्तर होती है। जैसे कि चित्र 38.3 (A) में। फर्म के लिए साधन-इकाई की कीमत दी हुई होती है जिस पर वह जितनी चाहे, उतनी ही इकाइयाँ काम पर लगा सकती है। इस स्थिति में वास्तविक आय (actual earning) *OQER*, स्थानान्तरण आय (transfer earning) होती है। क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता होती है, इसलिए एक साधन-इकाई किसी अन्य फर्म में *OR* से कम या अधिक नहीं कमा सकती। इसलिए लगान शून्य है। वास्तविक आय *OQER* में से स्थानान्तरण आय *OQER* घटा देने पर कोई लगान प्राप्त नहीं होता।

एक उद्योग के लिए साधन-इकाइयों की पूर्ति कम लोचदार होती है जैसे चित्र 38.3 (B) में, पूर्ति वक्र ऊपर की ओर दाएँ को ढलु है। इसका मतलब है कि साधन (मान लीजिए भूमि) की अतिरिक्त मात्राओं को उसके अन्य वैकल्पिक प्रयोगों से उद्योग में आकर्षित करने के लिए और अधिक कीमतें देनी पड़ेंगी। चित्र 38.3 (B) में, *OQ* साधन-इकाइयाँ उतनी ही कीमत OR_1 प्राप्त करेंगी जो उनके माँग और पूर्ति वक्र निर्धारित करते हैं। वास्तविक आय $OQER_1$ है, परन्तु वे न्यूनतम कीमत *OS* पर भी काम कर सकती हैं, क्योंकि उनकी स्थानान्तरण आय *OQES* है। इस प्रकार, $OQER_1$ (A.E.)$-$OQES (T.E.)$=SER_1$ जो लगान है।
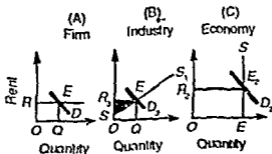
चित्र 38.3

8. "The essence of the concept of rent is conception of a surplus earned by a particular part of a factor of production over and above the minimum necessary to induce it to do its work." —Joan Robinson

हाँ, यदि प्रयोग की दृष्टि से कोई साधन उद्योग के लिए विशिष्ट (specific) है, तो इसका कोई वैकल्पिक प्रयोग नहीं होगा और इसलिए स्थानान्तरण आय कुछ नहीं होगी। इसकी समस्त वास्तविक आय लगान होगी। इस स्थिति मे उस (विशिष्ट) साधन की पूर्ति उद्योग के लिए पूर्ण बेलोच होगी। वास्तव मे, एक साधन-इकाई की स्थानान्तरण आय समय की एक अवधि में उसके वैकल्पिक प्रयोग पर निर्भर करेगी। यदि अवधि छोटी है तो इकाई एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में नहीं जा सकती, उस स्थिति मे उसकी स्थानान्तरण आय शून्य होगी और उसकी वर्तमान प्रयोग मे वास्तविक आय लगान होगी। इस अर्थ में OEE_2R_2 दीर्घकाल मे, एक साधन- इकाई अपने वर्तमान प्रयोग से अगले अधिकतम लाभदायक प्रयोग में जा सकती है और उस स्थिति में उसकी वास्तविक आय का एक अंश ही लगान होगा जोकि चित्र (B) मे छायांकित SER_1 क्षेत्र है। अत लगान विशिष्टता से भी उत्पन्न होता है (Rent also arises from specificity)।

समस्त अर्थव्यवस्था के लिए, साधन की माँग पूर्ण बेलोच होती है। साधन की पूर्ति स्थिर होती है और उसकी आय को बढाकर उसकी पूर्ति बढाई नहीं जा सकती। यह विशेषता अन्य साधनों की अपेक्षा भूमि की अधिक निजी है। क्योंकि भूमि का लगान कुछ भी हो, उसकी पूर्ति उतनी ही रहती है। इसका मतलब है कि समाज के दृष्टिकोण से भूमि की कोई पूर्ति कीमत नहीं होती। इस की स्थानान्तरण लागत शून्य होती है अर्थात् सरकार देश की भूमि पडोसी देश को लगान पर नहीं दे सकती। ऐसी स्थिति मे भूमि की समस्त आय लगान होती है। चित्र 38.3 (C) मे S पूर्ण बेलोच पूर्ति वक्र है और OE साधन की स्थिर पूर्ति है। इसकी वास्तविक आय माँग वक्र D_2 के पूर्ति वक्र S को E_2 बिन्दु पर मिलने से निर्धारित होती है, और इस प्रकार इसकी कुल वास्तविक आय $OE E_2R_2$ है। क्योंकि स्थानान्तरण आय शून्य है, इसलिए साधन की समस्त प्राप्ति OEE_2R_2 आर्थिक लगान है।

इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार लगान तब उत्पन्न होता है, जबकि एक साधन-सेवा दुर्लभ हो और उसकी वास्तविक तथा स्थानान्तरण आय मे अन्तर हो। लगान केवल भूमि की विशिष्टता नहीं है।

4. लगान और कीमत
(RENT AND PRICE)

लगान और कीमत का सम्बन्ध एक पुराना विवाद है। रिकार्डो के अनुसार लगान कीमत को निर्धारित नहीं करता बल्कि कीमत द्वारा निर्धारित होता है। लगान बढिया और सीमान्त भूमि की उपज के बीच भेदक आधिक्य है। गेहूँ की कीमत सीमान्त भूमि पर उत्पादन की लागत के बराबर होती है। क्योंकि सीमान्त भूमि लगान-रहित भूमि होती है, इसलिए उपकल्पना से लगान गेहूँ की कीमत में प्रवेश नहीं करता। दूसरी ओर लगान कीमत-निर्धारित (price-determined) होता है। जब गेहूँ की कीमत बढने लगती है तो वर्तमान *A* श्रेणी भूमि की अधिक गहनता से जोताई होती है और घटिया भूमियो पर भी खेती होने लगती है। परिणामस्वरूप, बढिया भूमियाँ लगान प्राप्त करने लगती हैं। सीमान्त भूमि पर उत्पादन की लागत से ऊपर गेहूँ की कीमत मे वृद्धि से ही यह सभव होता है कि सीमान्त भूमिपति लगान प्राप्त करे। गेहूँ की कीमत जितनी अधिक होगी, लगान भी उतना ही अधिक होगा। रिकार्डो की इस प्रसिद्ध कहावत "कि गेहूँ इसलिए ऊँचा नहीं है कि लगान दिया जाता है बल्कि लगान इसलिए दिया जाता है कि गेहूँ ऊँचा है"[9] से यह स्पष्ट है कि कीमत लगान-निर्धारित (rent-determined) नहीं होती बल्कि लगान कीमत-निर्धारित (price determined) होता है।

9 "Corn is high not because rent is paid but rent is paid because corn is high."—*Ricardo*

आधुनिक मत (Modern View)—आधुनिक विश्लेषण के अनुसार भूमि के वैकल्पिक प्रयोग है। भूमि अपने अधिकतम लाभदायक वैकल्पिक प्रयोग मे जो प्राप्त कर सकती है, वह भूमि की *स्थानान्तरण लागत होती है।* *भूमि की स्थानान्तरण लागत उत्पादन की लागत का भाग होती है* और इस प्रकार कीमत मे प्रवेश कर जाती है। यह समझने के लिए कि लगान कीमत मे प्रवेश करता है या नहीं, हम समाज, उद्योग और व्यक्तिगत उत्पादक की दृष्टि से इसका विश्लेषण करते है।

समाज की दृष्टि से भूमि की पूर्ति स्थिर होती है और उसका कोई वैकल्पिक प्रयोग नहीं होता। इसकी पूर्ति-कीमत *या स्थानान्तरण लागत शून्य होती है और प्रकृति से समाज को यह मुफ्त* मिलती है। इसलिए समस्त समाज के लिए, कुल उत्पादित वस्तुओ की वास्तविक लागत मे लगान शामिल नहीं होता। बल्कि जब भूमि की माँग बढती है, तो भूमि की पूर्ति स्थिर होने के कारण लगान बढ जाता है। इस प्रकार लगान कीमत-निर्धारित होता है।

एक विशेष उद्योग के दृष्टिकोण से, स्थानान्तरण लागत उत्पादन की लागत का भाग होती है और इस प्रकार कीमत में प्रवेश कर जाती है। एक उद्योग के लिए भूमि की पूर्ति कम लोचदार होती है और भूमि को अन्य प्रयोगो से उद्योग मे आकर्षित करने के लिए उद्योग को इतना तो करना ही पडेगा कि वह भूमिपतियो को कम से कम उतना भुगतान तो करे जितना उन्हे अगले अधिकतम लाभदायक प्रयोग से प्राप्त हो सकता था। यदि उद्योग इतने लगान का भुगतान करने को तैयार नहीं है, तो भूमि पट्टे पर नहीं मिलेगी। मान लीजिए कि खाँड की माँग बढ जाने के कारण खाँड के उद्योग को गन्ने की खेती के लिए अधिक भूमि की जरूरत है। मक्के की खेती से भूमि लेने के लिए इसे कम से कम उतना भुगतान करने को तैयार होना पडेगा, जितना भूमि को मक्के की खेती के अन्तर्गत मिल सकता है। स्वाभाविक है कि गन्ने के उत्पादन मे स्थानान्तरण के लिए *भूमि एक न्यूनतम स्थानान्तरण कीमत की अपेक्षा करती है। यह स्थानान्तरण कीमत या लागत* गन्ने के उत्पादन की लागत में प्रवेश कर जाएगी। इस प्रकार भूमि की प्राप्ति के रूप मे स्थानान्तरण लागत कीमत-निर्धारक है, जबकि इससे ऊपर की अधिकता लगान कीमत-निर्धारित है। (Transfer cost as the earning of land is price-determining, while the excess over it, rent, is price-determined)

एक व्यक्ति के दृष्टिकोण से समस्त लगान उत्पादन की लागत होता है और कीमत मे प्रवेश कर जाता है क्योकि यह एक आवश्यक भुगतान होता है। किसी और की भूमि को प्रयोग करने के लिए, उसे उसका लगान देना पडता है जो उसके लिए लागत है और उस फसल की कीमत मे शामिल है जिसे कि वह उगाता है। यदि वह स्वामी कृषक है, तो भूमि को पट्टे पर न देने से जो भुगतान उसे छोडना पडता है, वह उसकी भूमि की *स्थानान्तरण लागत है जो समान रूप से उत्पादन की* लागत मे प्रवेश कर जाती है परन्तु उसकी उपस्थिति छिपी होती है।

अन्तिम विश्लेषण मे, लगान न तो पूर्णरूप से कीमत-निर्धारित होता है और न ही पूर्णरूप से कीमत-निर्धारक। लगान और कीमत दोनों ही भूमि की माँग के सम्बन्ध में उसकी सापेक्ष दुर्लभता (relative scarcity) से निर्धारित होते है। यदि भूमि की पूर्ति स्थिर हो, तो लगान कीमत-निर्धारक नहीं होता। यदि भूमि की पूर्ति पूर्ण से कम लोचदार हो, जैसाकि उद्योग या प्रयोग के दृष्टिकोण से होती है, तो भूमि की प्राप्ति का कुछ भाग कीमत-निर्धारक और कुछ भाग कीमत-निर्धारित हो सकता है। एक उत्पादक की दृष्टि से, यदि भूमि की पूर्ति पूर्ण लोचदार हो, तो लगान कीमत मे प्रवेश कर जाता है।

समय-अवधि की दृष्टि से भी समस्या देखी जा सकती है। *अल्पकाल में, भूमि की पूर्ति स्थिर* होती है, इसलिए लगान कीमत-निर्धारित होता है। दीर्घकाल मे, साधनों की पूर्ति की भाँति भूमि की पूर्ति भी, *अन्य प्रयोगो से हटाकर उद्योग की दृष्टि से बढाई जा सकती है।* प्रत्येक साधन को

उसकी स्थानान्तरण लागत के बराबर भुगतान किया जाएगा और लगान उत्पादन की लागत में प्रवेश नहीं करेगा।

5. आभास-लगान (QUASI-RENT)

अर्थ (Meaning)—आर्थिक साहित्य में आभास-लगान के सिद्धान्त का समावेश मार्शल ने किया था। उसने रिकार्डो के भूमि-लगान सिद्धान्त को अल्पकाल में, अन्य स्थिर पूर्ति वाले साधनों पर भी लागू किया। मार्शल के शब्दों में, "आभास लगान मानव द्वारा बनाई गई मशीनों और उपकरणों से प्राप्त आय है।"[10] कुछ टिकाऊ साधन ऐसे होते है जिनकी पूर्ति अल्पकाल में बढ़ाई या घटाई नहीं जा सकती। भूमि की भाँति मशीनों, जहाजों, मकानों और मानवीय योग्यता की पूर्ति स्थिर है, परन्तु केवल अल्पकाल में। क्योंकि उनकी पूर्ति स्थिर होती है, इसलिए जब उसकी माँग बढ़ती है, तो वे आधिक्य प्राप्त करते है जो लगान तो नहीं पर लगान जैसा होता है जिसका कारण यह है कि दीर्घकाल में उनकी पूर्ति बढ़ाई जा सकती है। मार्शल ने इसे आभास-लगान की संज्ञा दी।

इसका निर्धारण (Its Determination)—अल्पकाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि एक फर्म अपनी मूल (प्रमुख) (prime) या परिवर्तनशील लागतों को पूरा करे। ये लागते वे खर्च होते हैं जो स्थिर साधनों जैसे, मशीनों को चलाने के लिए मजदूरी, कच्चे माल तथा अन्य परिवर्तनशील आगतों पर उठाने पड़ते है। फर्म तब तक वस्तु का उत्पादन करती जा सकती है, जब तक कि वह उत्पादन की मूल लागतों को पूरा कर लेती है, चाहे पूरक लागतों में से किसी को भी पूरा नहीं कर पाती (दीर्घकाल में दोनों को पूरा कर लेने की आशा से)। पर यदि माँग में वृद्धि के कारण वस्तु की अल्पकाल कीमत बढ़ जाती है, तो फर्म अपनी पूरक लागतों का कुछ भाग पूरा कर लेगी। ये पूरक लागते आभास-लगान का स्रोत है, क्योंकि अपनी मूल लागतों से ऊपर फर्म जितना भी आधिक्य प्राप्त करती है, वह बिल्कुल आभास-लगान है। इस प्रकार आभास-लगान मशीनों जैसे स्थिर निवेशों की आय है और अल्पकाल में कीमत-निर्धारित होती है। दीर्घकाल में सब लागतें मूल लागत होती है और उन्हें पूरा करना आवश्यक होता है अन्यथा फर्म बन्द हो जाएगी। क्योंकि दीर्घकाल में कोई पूरक लागतें नहीं होती और आभास-लगान उन्हीं की प्राप्ति होता है, इसलिए उपकल्पना से दीर्घकाल में, आभास-लगान उत्पन्न नहीं होता। चित्र 38.4 आभास-लगान की उत्पत्ति की व्याख्या करता है।

चित्र 38.4

AVC औसत परिवर्तनशील-लागत वक्र अथवा मार्शल के अनुसार औसत-मूल लागत वक्र है, AC औसत कुल लागत वक्र है, और MC इन लागत वक्रों का सीमांत लागत वक्र है। Pd, P_1d_1 और P_2d_2 वक्र औसत आगम (AR) = सीमांत आगम (MR) वक्र है। OP कीमत पर फर्म वस्तु की OQ मात्रा का उत्पादन करके अपनी मूल औसत लागत

10 Quasi-rent is income derived from machines and other appliances made by man."—*Marshall*
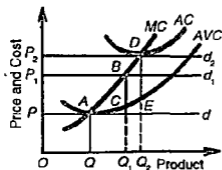
AQ को पूरा कर पाती है और उस कीमत पर आभास-लगान शून्य है। यदि कीमत OP से ऊपर बढ़कर OP_1 या OP_2 पर चली जाए, तो आभास-लगान उत्पन्न हो जाएगा।
OP_1 कीमत पर वह प्रति इकाई CB होगा और OQ_1 उत्पादन का कुल आभास-लगान $CB \times OQ_1$ होगा, OP_2 कीमत पर वह प्रति इकाई ED और कुल आभास-लगान $ED \times OQ_2$ होगा।

दीर्घकाल में यदि कीमत OP_2 से ऊपर बढ़ जाती है तो नई फर्मों के आने से आभास-लगान समाप्त हो जाएगा, कीमत के OP_2 से नीचे गिर जाने पर भी कुछ फर्मों के बंद हो जाने से आभास-लगान समाप्त हो जाएगा और अन्त में OP_2 कीमत ही चालू रहेगी। इस प्रकार आभास-लगान केवल एक अल्पकालीन घटना होती है।

आभास-लगान का विचार मानव-निर्मित उपकरणों की ही विशेषता नहीं है, बल्कि यह उन सब मनुष्यों पर भी लागू होता है जो अपने क्षेत्र में विशिष्ट योग्यताएँ रखते हैं। एक नव-प्रवर्तन (innovation) के कारण एक उत्पादक अतिरिक्त लाभ प्राप्त कर सकता है। जब तक वह नव-प्रवर्तन सामान्य नहीं बन जाता, तब तक वह आधिक्य प्राप्त करता है, जो आभास-लगान है। इसी प्रकार, टेनिस या क्रिकेट का एक खिलाड़ी अथवा कोई गायक अपनी विशिष्ट प्रतिभा के कारण बहुत अधिक कमाई कर सकता है जिसे उस समय तक आभास-लगान कहा जा सकता है, जब तक कि समान कुशलता के प्रतियोगी प्रकट नहीं हो जाते।

आधुनिक आर्थिक विश्लेषण में स्थानान्तरण आय के रूप में भी आभास-लगान की व्याख्या की जाती है। स्थानान्तरण आय मुद्रा की वह न्यूनतम राशि होती है, जो एक साधन अगले अधिकतम लाभदायक प्रयोग या रोजगार में स्वीकार करने को तैयार होता है। उदाहरण के लिए एक अभिनेता फिल्मों में रु 2 लाख प्रति चलचित्र अभिनय करने को तैयार हो सकता है, परन्तु उसके सुन्दर अभिनय के कारण उसे रु 3 लाख प्राप्त होते हैं। इस प्रकार जब तक उसकी सेवाओं की माँग ऊँची रहती है, तब तक रु 1 लाख उसका आभास-लगान होगा।

क्या आभास-लगान शून्य से नीचे जा सकता है? (Can Quasi-Rent fall below Zero")—मार्शल ने आभास-लगान की दूसरी परिभाषा यह दी है "कि स्थिर उपकरणों के प्रतिस्थापन और अनुरक्षण की गुंजाइश छोड़कर उसका शुद्ध प्रतिफल आभास-लगान होता है।"[11] मार्शल की इस परिभाषा का उत्तर देते हुए आर. ओपाई (R. Opie) ने यह मत प्रकट किया है कि जब निवेश खराब होने लगता है और उसकी ठीक देखभाल नहीं होती, तो आभास-लगान ऋणात्मक (negative) होता है। फ्लक्स (Flux) का भी यही मत था। परन्तु ऊपर हम देख चुके हैं कि आभास-लगान ऋणात्मक नहीं हो सकता क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कोई भी उत्पादक अपनी प्रमुख लागतों को छोड़ना बर्दाश्त नहीं कर सकता। वास्तव में आभास-लगान शुद्ध निवेश पर आधिक्य या घाटा नहीं होता बल्कि स्थिर निवेशों की कुल आय है और इसलिए वह हमेशा धनात्मक (positive) होना है।

लगान, आभास-लगान तथा ब्याज में भेद (Distinction between Rent, Quasi-Rent and Interest)—आभास-लगान को प्राय लगान, ब्याज और लाभ से भिन्न माना जाता है। आभास-लगान दो से अधिक रूपों में लगान से मिलता-जुलता है। आभास-लगान उस समय उत्पन्न होता है जब मानव-निर्मित वस्तुओं की माँग बढ़ती है, जबकि लगान भूमि के उत्पादन की माँग बढ़ने पर उत्पन्न होता है। अल्पकाल में, जैसे मानव-निर्मित उपकरणों की पूर्ति स्थिर होती है, वैसे ही भूमि की पूर्ति भी स्थिर होती है। स्थानान्तर आय का आभास-लगान निर्धारित करने में उतना ही महत्त्व है, जितना लगान-निर्धारण में होता है। भूमि के लगान की भाँति आभास-लगान कीमत-निर्धारित होता है, न कि कीमत-निर्धारक। पर दोनों में कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर है। आभास-लगान अल्पकाल में, मानव-निर्मित उपकरणों का उस समय भुगतान होता है, जब उनकी

11 "Quasi-rent is the net return to a fixed equipment after making allowances for replacement and maintenance."—*Marshall*

पूर्ति अस्थायी रूप से स्थिर हो। लगान भूमि जैसे प्राकृतिक उपहारों का भुगतान है जिनकी पूर्ति अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में स्थिर होती है। आभास-लगान अस्थायी घटना है, जो दीर्घकाल में उस समय समाप्त हो जाती है, जब मानव-निर्मित वस्तुओं की पूर्ति बढ़ती है। क्योंकि भूमि की पूर्ति बढ़ाई नहीं जा सकती, इसलिए लगान दोनों अवधियों में बना रहता है।

आभास-लगान और ब्याज भी एक-दूसरे से सबधित रहते है। आभास-लगान (sunk) या विशिष्ट पूँजी का प्रतिफल होता है, जबकि ब्याज स्वतन्त्र या चल (floating) पूँजी का प्रतिफल है। आय की भाँति आभास-लगान अल्पकाल में उत्पन्न होता है, जबकि ब्याज अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों में उत्पन्न होता है। दीर्घकाल को छोड़कर, स्थिर पूँजी की मात्रा नहीं बढ़ाई जा सकती, परन्तु चल पूँजी अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों में बढ़ाई जा सकती है। आभास-लगान कीमत-निर्धारित होता है, जबकि ब्याज कीमत-निर्धारक।

अल्पकाल मे, आभास-लगान अनावश्यक भुगतान होता है क्योंकि फर्म में स्थिर पूँजी पहले से मौजूद होती है। इससे किसी अतिरिक्त लागत की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए, आभास-लगान उत्पादन की लागत का भाग नहीं होता। दीर्घकाल में, आभास-लगान सामान्य लाभों में मिल जाता है जोकि आवश्यक भुगतान होता है और उत्पादन की लागत में प्रवेश कर जाता है।

वास्तव में, ब्याज, आभास-लगान और लगान में केवल कोटि (degree) का ही अन्तर होता है। स्थायी रूप से स्थिर साधन समय की अवधि की अपेक्षा के बिना लगान प्राप्त करता है, जो साधन अल्पकाल में स्थायी तौर से स्थिर होता है, आभास-लगान प्राप्त करता है, और वह साधन जो किसी अवधि में बिल्कुल स्थिर नहीं होता, ब्याज प्राप्त करता है, जैसाकि मार्शल ने संकेत किया था, "प्रत्येक वर्ग धीरे-धीरे दूसरे में बदल जाता है और इस प्रकार भूमि का लगान भी अपने आप में स्वतन्त्र वस्तु के रूप में नहीं देखा जाता बल्कि एक बड़ी जाति की मुख्य उपजाति में देखा जाता है।"[12]

प्रश्न

1. आधुनिक आर्थिक विश्लेषण में लगान की धारणा को समझाइए। लगान की धारणा किस प्रकार उद्योग पर लागू से समस्त अर्थव्यवस्था पर लागू से भिन्न होती है?

2. 'आभास-लगान' क्या है? फर्म के प्रतियोगी संतुलन सिद्धान्त में इसके महत्त्व का मूल्यांकन कीजिए।

3. 'हस्तान्तरित आय' से आप क्या समझते हैं? साधन मूल्य निर्धारण सिद्धांत में इसकी भूमिका बताइए। चित्रों द्वारा स्पष्ट समझाइए।

4. "गेहूँ इसलिए ऊँचा नहीं कि लगान दिया जाता है बल्कि लगान इसलिए दिया जाता है कि गेहूँ ऊँचा है।" (रिकार्डो) इस कथन का लगान के आधुनिक सिद्धान्त की दृष्टि से परीक्षण कीजिए।

5. "आभास-लगान सर्वव्यापी है।" विवेचन करिए।

6. इस विचार की विवेचना करिए कि आर्थिक लगान एक साधन की वास्तविक आय और स्थानान्तरण आय का अन्तर है और यह दिखाइए कि जितना अधिक लोचशील एक साधन का पूर्ति वक्र होगा, उतना ही कम लगान होगा?

12 "Each group shades into the other gradually, and thus even the rent of land is seen, not a thing by itself but as the leading species of a large genus." A. Marshall, *Principles of Economics*, 8th Ed., p 412

अध्याय 39

मजदूरी
(WAGES)

1. अर्थ
(MEANING)

शारीरिक या मानसिक, किसी भी प्रकार की श्रम-सेवा का भुगतान, मजदूरी होती है। यद्यपि साधारण बोलचाल की भाषा मे हम यह कहते है कि दफ्तर का अधिकारी, मत्री या अध्यापक वेतन प्राप्त करता है, वकील या डाक्टर फीस लेता है और दक्ष तथा अदक्ष श्रमिक को मजदूरी मिलती है, फिर भी अर्थशास्त्र मे ऐसा कोई भेद नहीं किया जाता और यह कहा जाता है कि वे सब मजदूरी प्राप्त करते है। दूसरे शब्दो मे, फीस, कमीशन और वेतन मजदूरी मे शामिल है। यह और बात है कि कुछ को मजदूरी वास्तविक मजदूरी के रूप मे अधिक और मुद्रा के रूप मे कम और विलोमश मिले। इस समस्या को हम बाद मे लेगे।

मजदूरी साप्ताहिक, पाक्षिक अथवा मासिक दी जा सकती है और आशिक मजदूरी वर्ष के अन्त मे बोनस (bonus) के रूप मे भी। इन्हे कालपरक मजदूरी (time-wages) कहते है। परन्तु बोनस, नियत मजदूरी (task wage) भी हो सकती है, जबकि किसी काम के निश्चित अवधि के भीतर या उससे पहले ही पूरा हो जाने पर उसका भुगतान किया जाता है। काम की मात्रा के अनुसार भी मजदूरी दी जा सकती है, जैसे जूतो की फैक्टरी या सिलाई विभाग मे निर्माण किए गए प्रति जोडा जूतो या पैन्टो के लिए। कभी-कभी अतिरिक्त समय मे काम करके भी कालपरक मजदूरी को बढाया जाता है। इस अतिरिक्त समय के काम की मजदूरी को अधिकाल मजदूरी या ओवर टाइम मजदूरी कहते है। कभी-कभी अल्प-वैतनिक कर्मचारियों के हित मे राज्य की ओर से कुछ या सभी उद्योगो मे मजदूरी नियमित की जाती है, जोकि वह न्यूनतम मजदूरी होती है जिससे जीवन का एक न्यूनतम स्तर सुनिश्चित होता है।

पर प्रमुख समस्या श्रम-सेवा की कीमत निर्धारित करने की है। इस सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियो ने समय-समय पर कई सिद्धान्त प्रस्तुत किए है। कुछ समय तक, लगभग 1870 तक, जीवन-निर्वाह (subsistence) जीवन-स्तर (standard of living) सिद्धान्त, मजदूरी कोष (wages fund) तथा अवशेषभागी (residual claimant) सिद्धान्त लोकप्रिय रहे।* इसके बाद 1930 तक मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त अधिक प्रचलित रहा। 1930 के बाद अर्थशास्त्रियो ने मार्शल के इस कथन मे अधिक दिलचस्पी ली कि "मजदूरी माँग-कीमत अथवा पूर्ति-कीमत से शासित नहीं होती बल्कि वह तो माँग और पूर्ति को शासित करने वाले कारण के परे समुदाय से शासित होती है।" किसी भी अन्य सेवा की कीमत की भाँति, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी भी श्रम की

* मार्क्स के श्रम सिद्धात के लिए अध्याय 35 में "मार्क्स सिद्धात" पढिए।

माँग और पूर्ति के द्वारा निर्धारित होती है। आधुनिक सिद्धान्त के रूप मे यही सिद्धान्त स्थिर है। परन्तु मजदूरी के किसी सिद्धान्त के वास्तविक होने के लिए आवश्यक है कि मालिकों और कर्मचारियो के उन वर्तमान सघो को ध्यान मे रखा जाए जो मजदूरी के निर्धारण को प्रभावित करते है। पुराने सिद्धान्तो को छोडकर, मजदूरी के आधुनिक सिद्धान्त से लेकर इन सब मतो पर, हम नीचे विचार कर रहे है।

2. आधुनिक सिद्धान्त . प्रतियोगी बाजार में मजदूरी-निर्धारण (DETERMINATION OF WAGES IN A COMPETITIVE MARKET: MODERN THEORY)

किसी भी कीमत की भाति, मजदूरी की दर भी, श्रम के लिए माँग और उसकी पूर्ति के द्वारा निर्धारित होती है। ट्रेड यूनियनो के अभाव और पूर्ण प्रतियोगिता मान लेने पर श्रम के लिए माँग और उसकी पूर्ति मजदूरी को निर्धारित करती है।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)—यह सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

(1) व्यवसाय की पूर्ण स्वतत्रता है। कोई भी नियोजक किसी को भी नियुक्त कर सकता है और कोई भी वर्कर किसी भी मालिक के पास काम कर सकता है।

(2) श्रम बाजार मे अनेक नियोजक और अनेक वर्कर हैं और कोई भी अकेला मजदूरी को प्रभावित नहीं कर सकता है।

(3) वर्करो की विभिन्न रोज़गारो मे पूर्ण गतिशीलता पाई जाती है।

(4) अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोज़गार पाया जाता है। रिक्त स्थान उसी समय भर जाते है।

(5) वर्करो और नियोजको को श्रम बाजार का पूर्ण ज्ञान है। वर्करो को यह मालुम है कि रिक्त स्थान कहा है, मजदूरी दरें क्या है। इसी प्रकार नियोजको को वर्करो के बारे मे मालूम है कि वे किस मजदूरी दर पर और कहा उपलब्ध है।

श्रम की माग (Demand for Labour)—नियोजक (employers) श्रम की माँग इसलिए करते है ताकि श्रम की सेवाओ से वस्तुओं के उत्पादन मे सहायता मिले। इस प्रकार श्रम जिन वस्तुओं के उत्पादन मे सहायता देता है, उन वस्तुओ की माँग के द्वारा श्रम की माँग निर्धारित होती है। यदि एक वस्तु की माँग मे उतार या चढाव की आशा हो, तो उस वस्तु का उत्पादन करने वाले श्रम की माँग में भी उतार या चढाव आ जाएगा। इसलिए श्रम की माग उस वस्तु से व्युत्पन्न (derive) होनी है जिसका वह उत्पादन करता है।

वास्तव मे श्रम की माँग आवश्यक नहीं है, बल्कि श्रम की मांग की लोच महत्त्वपूर्ण है जो उसकी वस्तु की माँग की लोच पर निर्भर करती है। एक वस्तु की माँग जितनी अधिक लोचदार होगी, उस वस्तु का उत्पादन करने वाले श्रम की माँग भी उतनी ही अधिक लोचदार होगी। मजदूरी की दर में 1% कमी होने पर काम पर लगाए गए श्रमिकों की सख्या में जितने प्रतिशत वृद्धि होती है, वह श्रम की माँग-लोच होती है पर इसका यह मतलब नहीं कि रोज़गार मे प्रतिशतता वृद्धि उसी अनुपात मे होगी जिस अनुपात में मजदूरी की दर गिरती है, हो सकता है कि रोज़गार मे अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हो जाए। हाँ, यदि एक वस्तु के उत्पादन में श्रम की थोडी मात्रा लगी हो, तो उस प्रकार के श्रम की माँग बेलोच होगी। ऐसी फैक्ट्रियों में, जो स्वचालित मशीनों का प्रयोग करती हैं, एक विशेष प्रकार के अत्यधिक दक्ष श्रम को बहुत ही सीमित मात्रा मे लगाया जाता है और उस प्रकार का श्रम मिलना आसान नहीं होता। इस प्रकार के श्रम की माँग बेलोच होती है। अन्तिम, श्रम की माँग की लोच इस बात पर निर्भर करती है कि श्रम तथा अन्य साधन-सेवाओं के बीच स्थानापन्नता की कोटि (degree of substitution) कितनी है। श्रम के

लिए स्थानापन्न जितने अधिक सस्ते और अच्छे होंगे, श्रम की माँग उतनी ही अधिक लोचदार होगी। यदि मशीनें सस्ती तथा आसानी से प्राप्त होने वाली हैं, तो उन्हें श्रम के स्थान पर स्थानापन्न किया जा सकता है। मजदूरी की दर में वृद्धि से श्रम के स्थान पर अधिक मशीनों के प्रयोग में प्रोत्साहन मिलेगा। इसके विपरीत मजदूरी की दर घटने पर, कम से कम उन मशीनों के स्थान पर जो घिस गई हैं, अधिक श्रम काम में लगाया जाएगा। यदि मशीनों की लागत बहुत अधिक हो, या एक विशेष प्रकार का श्रम अत्यावश्यक हो (अर्थात जिसका कोई स्थानापन्न न हो), तो उसकी मजदूरी बढ़ने से उसकी माँग कम नहीं होगी। इस प्रकार के श्रम की माँग बेलोच होती है।

विशिष्ट रूप से, श्रम की माँग उसकी उत्पादकता के कारण होती है। श्रम की एक इकाई से फर्म के कुल आगम में जितनी वृद्धि होती है, वह उस इकाई की सीमान्त आगम उत्पादकता (marginal revenue productivity) है। किसी भी समय मजदूरी की दर उसकी सीमान्त आगम उत्पादकता के बराबर होती है। जब तक मजदूरी की दर से श्रम का सीमान्त आगम उत्पादन अधिक रहता है, तब तक अधिक श्रम लगाना लाभदायक होता है क्योंकि इसमें लागतों की अपेक्षा आगम अधिक बढ़ता है। परिवर्तनशील अनुपातों के नियम पर आधारित होने के कारण, एक बिन्दु के बाद श्रम के अधिक लगाने से उसका सीमान्त आगम उत्पादन घटने लगता है। यही कारण है कि श्रम का माँग वक्र नीचे की ओर बाएँ से दाएँ को ढालू होता और सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र (MRP) के रूप में दिखाया जाता है। श्रम के लिए माँग वक्र रोज़गार के प्रत्येक स्तर पर श्रम के सीमान्त आगम उत्पादन की अनुसूची (schedule) होती है। वह अनुसूची यह भी प्रकट करती है कि मजदूरी की प्रत्येक सभव दर पर फर्म श्रम की कितनी मात्रा को रोज़गार पर लगाएगी।

श्रम की पूर्ति (Supply of Labour)—श्रम की पूर्ति का अर्थ है श्रमिकों की वह सख्या जो मजदूरी की प्रत्येक सभव दर पर रोज़गार के लिए अपने को प्रस्तुत करेगी। मजदूरी और श्रम की मात्रा के बीच सीधा सबध होता है। सामान्य रूप से मजदूरी के ऊँचे स्तरों पर श्रम की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा प्रस्तुत होती है। यही कारण है कि पूर्ति का माँग वक्र ऊपर की ओर बाएँ से दाएँ को ढालू होता है। एक उद्योग को ऐसे ही पूर्ति वक्र का सामना करना पड़ता है। वह ऊँची मज़दूरी देकर ही अधिक श्रम आकर्षित कर सकता है।

हाँ, श्रम की पूर्ति कई साधनों पर निर्भर करती है, जैसे जनसख्या वृद्धि की दर, जनसख्या की आयु तथा स्त्री-पुरुष भेद के अनुसार विभाजन, काम के घंटे, शिक्षण और प्रशिक्षण की सामान्य अवधि, बालक तथा स्त्री रोज़गार के सबध में कानून, स्त्री रोज़गार के विषय में समाज का रुख, काम तथा अवकाश के प्रति श्रम का सामान्य रवैया, और श्रम की गतिशीलता।

अन्तिम साधन को पहले लीजिए। श्रम की गतिशीलता श्रम की लोच की पूर्ति को निर्धारित करती है। यदि श्रम गतिशील हो, तो उसकी पूर्ति लोचदार होगी। इस प्रकार के श्रम की मजदूरी की दर में थोड़ी-सी वृद्धि से आकर्षित होकर अन्य व्यवसायों से श्रमिकों की एक बड़ी सख्या आ जाएगी और मजदूरी की दर में कमी होने से श्रमिक अन्य व्यवसायों में जाने लगेंगे। विशेष कुशलता और योग्यता की आवश्यकता के कारण, यदि व्यवसायों के बीच श्रम कम गतिशील है, तो उसकी पूर्ति बेलोच होगी। क्योंकि न तो मजदूरी की दर बढ़ने पर श्रमिक एक व्यवसाय में आकर्षित होंगे और न ही मजदूरी की दर घटने पर उसे छोड़कर जाएँगे। जो हो, अवधि जितनी अल्प होगी, श्रम का पूर्ति वक्र भी उतना ही कम लोचदार होगा, और अवधि जितनी दीर्घ होगी, श्रम का पूर्ति वक्र उतना ही अधिक लोचदार होगा।

पीछे की ओर ढालू श्रम का पूर्ति वक्र (Backward sloping supply curve of labour)—श्रम की पूर्ति के लिए एक और महत्त्वपूर्ण साधन काम-अवकाश अनुपात (work-leisure ratio) होता है। कम मजदूरी के स्तर पर श्रमिक अधिक घंटे काम करेंगे। मजदूरी की दर बढ़ने पर श्रमिकों को अधिक पैसे मिलते हैं और प्रत्येक वर्कर के जीवन में ऐसा समय आता है जब वह यह अनुभव

करता है कि उसकी जरूरतें आसानी से पूरी हो जाती हैं। यदि समय मजदूरी की दर इस स्तर से बढ़ जाती है, तो वह कम घंटे काम और अधिक अवकाश को अधिमान देगा। ऐसी स्थिति में श्रम का पूर्ति वक्र "पीछे की ओर ढालू" (backward sloping) होगा। जब मजदूरी की दर बढ़ती है, तो श्रमिकों की इस प्रवृत्ति में दो बातें दिखाई देती हैं। प्रथम, स्थानापन्नता प्रभाव होता है। जब मजदूरी की दर बढ़ती है, तो श्रम को प्रति घंटा काम के लिए अधिक प्राप्ति होती है और श्रमिक अवकाश के स्थान पर काम को स्थानापन्न करता है। मजदूरी की दर बढ़ने से अधिक काम करने और अवकाश घटाने की प्रेरणा मिलती है। दूसरा, आय-प्रभाव होता है। जब मजदूरी की दर काफी बढ़ जाती है तो श्रमिक अनुभव करते हैं कि वे पहले से अच्छी स्थिति में हैं और वे अधिक अवकाश का उपभोग करना चाहते हैं। पहला प्रभाव अवकाश की इच्छा को घटाता है और दूसरा उसे बढ़ाता है। शुरू की अवस्थाओं में, जब मजदूरी की दर बढ़ती है, तो स्थानापन्नता-प्रभाव अधिक शक्तिशाली होता है परन्तु बाद में जब मजदूरी की दर एक निश्चित बिन्दु से आगे बढ़ती है, तो आय-प्रभाव अधिक शक्तिशाली हो जाता है। इसका कारण यह है कि जैसे-जैसे आय बढ़ती है, वैसे-वैसे अतिरिक्त मनोरंजन की इच्छा तीव्र होती जाती है और इससे आय-प्रभाव अधिक शक्तिशाली हो जाता है, अतिरिक्त आय की इच्छा की तीव्रता कम हो जाती है जिससे स्थानापन्नता-प्रभाव कमजोर पड़ जाता है। यह सब धीरे-धीरे होता है और धीरे-धीरे पूर्ति-वक्र पीछे की ओर ढालू हो जाता है। ऐसा वक्र एक व्यक्तिगत श्रमिक के संबंध में भी हो सकता है और समस्त अर्थव्यवस्था के लिए भी। परन्तु दोनों अवस्थाओं में अन्तर रहता है। एक व्यक्तिगत श्रमिक के लिए श्रम का पूर्ति वक्र केवल उस अवस्था में पीछे की ओर ढालू होता है, जबकि व्यवसाय में श्रमिकों की संख्या में परिवर्तन न हो सकता हो। अल्पकाल में ऐसा होता है। परन्तु अर्थव्यवस्था के विषय में, अल्पकालीन की बजाय दीर्घकाल में श्रम का पूर्ति वक्र पीछे की ओर अधिक मुड़ता है। इसमें संदेह नहीं कि दीर्घकालीन में जनसंख्या बढ़ती है परन्तु विकसित देशों में आय-प्रभाव से श्रमिकों का अधिकांश भाग प्रभावित होता है क्योंकि राष्ट्रीय औसत मजदूरी की दर बढ़ती रहती है।[1] आगे जो विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमें हम सामान्य पूर्ति वक्र ले रहे हैं।

एक उद्योग में मजदूरी की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होगी, जहां श्रम के लिए माँग उसकी पूर्ति के बराबर होगी। चित्र 39.1 (A) में मजदूरी OW दर पर, OE श्रमिक काम पर लगाए जाते हैं। इस संतुलन बिन्दु से कोई विचलन (deviation) नहीं हो सकता। संतुलन बिन्दु से ऊपर मजदूरी की दर OW_2 अधिक श्रमिकों को काम के लिए प्रस्तुत करने को प्रेरित करेगी और फर्मों को रोज़गार घटाना पड़ेगा। इस प्रकार, मजदूरी घटकर OW पर आ जाएगी। इसके विपरीत, मजदूरी के स्तर में कमी होने पर श्रमिक उद्योग को छोड़कर चले जाएँगे और उन्हें रोकने के लिए फर्में ऊँची मजदूरी देंगी और मजदूरी का संतुलन स्तर फिर वापिस आ जाएगा। पर यदि उद्योग की ओर से श्रम के लिए माँग D_1 या D_2 बढ़ या घट जाती है, तो उसके अनुसार मजदूरी की दर बढ़ या घटकर OW_2 या OW_1 पर चली जाएगी, परन्तु केवल अल्पकाल में। दीर्घकाल में, संतुलन अन्त में मजदूरी के OW स्तर पर ही फिर से स्थापित होगा।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी निश्चित समय पर सब फर्मों के लिए मजदूरी की दर दी हुई होती है जिसे उद्योग के श्रम के माँग और पूर्ति वक्र निर्धारित करते हैं। इस प्रकार, मजदूरी की वर्तमान दर पर फर्म के लिए श्रम का पूर्ति वक्र पूर्ण लोचदार होता है। फर्म के लिए संतुलन बिन्दु वह होगा, जहाँ सीमान्त आगम उत्पाद वक्र MRP श्रम के क्षैतिज पूर्ति वक्र WS को काटता है। दूसरे शब्दों में, यह वह बिन्दु है जहाँ श्रम को लगाने की लागत (मजदूरी की दर) नियोजक (employer) के लिए उस श्रम के सीमान्त आगम उत्पाद के बराबर होती है। पूर्ण संतुलन के लिए

1. और अधिक विश्लेषण तथा चित्रों के लिए देखिए अध्याय 'उदासीनता वक्र', चित्र 9.51 to 9.55
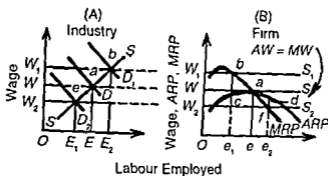
चित्र 39 I

यह आवश्यक है कि श्रम का सीमान्त आगम उत्पाद (MRP) उसकी सीमान्त लागत (सीमान्त मजदूरी) के बराबर हो, और औसत आगम उत्पाद (ARP) श्रम की औसत लागत (औसत मजदूरी) के बराबर हो। क्योंकि औसत मजदूरी (AW) = सीमान्त मजदूरी औसत (MW) (क्षैतिज मजदूरी रेखा *WS* द्वारा व्यक्त)

और सीमान्त आगम उत्पाद (MRP) = औसत मजदूरी (MW)

औसत आगम उत्पाद (ARP) = औसत मजदूरी (AW)

∴ MRP = MW = AW = ARP

चित्र 39 I (B) मे *a* पूर्ण संतुलन का बिन्दु है। जहाँ श्रमिको की *Oe* सख्या काम पर लगाई जाती है। श्रमिको की Oe_2 सख्या काम पर लगाकर एक फर्म श्रम प्रति इकाई *fd* लाभ प्राप्त करेगी, जबकि मजदूरी की दर ARP वक्र के उच्चतम बिन्दु से नीचे W_2S_2 पर हो। और यदि मजदूरी की दर ARP वक्र से ऊपर W_1S_1 पर हो, तो Oe_1 श्रमिको को काम पर लगाने से फर्म को श्रम की प्रति इकाई *cb* हानि होगी। जब मजदूरी की दर *WS* होगी, तो फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होंगे। केवल अल्पकाल में एक फर्म लाभ या हानि की स्थिति में रह सकती है। दीर्घकाल मे, हानि की स्थिति मे कुछ फर्में उद्योग को छोड जाएगी और मजदूरी की दर गिरकर *WS* पर आ जाएगी। जहाँ बिन्दु *a* पर वह ARP वक्र के बराबर होगी। इसके विपरीत स्थिति मे, लाभो से आकर्षित होकर नई फर्मे उद्योग मे आ जाएँगी और पुरानी फर्में विस्तार करना चाहेगी। श्रम के लिए माँग बढ जाएगी और इस प्रकार मजदूरी की दर को धकेल पर *WS* पर ले जाएगी, जहाँ वह ARP के बराबर होगी। इस प्रकार, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी की दर हमेशा श्रम के सीमान्त तथा औसत आगम उत्पाद के बराबर होगी।

3. अपूर्ण श्रम-बाजार : श्रम-बाजार मे एकक्रयाधिकार
(IMPERFECT LABOUR MARKET : MONOPSONY IN LABOUR MARKET)

श्रम-बाजार मे एकक्रयाधिकार वह स्थिति है, जहाँ एक विशेष प्रकार के श्रम को खरीदने के लिए केवल एक फर्म होती है।

एकक्रयाधिकारात्मक स्थितियाँ उस समय उत्पन्न होती है, जब श्रम-बाजार अपूर्ण हो। ऐसी स्थिति मे व्यावसायिक और भौगोलिक दोनो दृष्टियो से श्रम मे गतिहीनता होती है। इसका कारण यह है कि एक विशेष क्षेत्र मे श्रम एक विशिष्ट प्रकार का होता है। वह एक विशेष प्रकार के काम

के लिए प्रशिक्षित होता है और उस फर्म को छोड़कर, जिसके लिए कि वह प्रशिक्षित है, कोई अन्य फर्म उसकी सेवाओं का उपयोग नहीं कर सकती। श्रम को एक स्थान या व्यवसाय से अन्यत्र जाने से रोकने वाली कुछ शक्तियाँ हो सकती हैं, जैसे अज्ञानता, सुस्ती, सामाजिक तथा पारिवारिक विचार, मालिक की ओर से श्रमिकों को मकान या उनके बच्चों को मुफ्त शिक्षा तथा नौकरी के लिए प्राथमिकता आदि के रूप में दी गई सुविधाएँ। एकक्रयाधिकार बाजार में फर्म के सामने पूर्ति वक्र ऊपर की ओर दाएँ को ढालू होता है।

श्रम का पूर्ति वक्र मजदूरी दर को व्यक्त करता है। यह श्रम की औसत लागत भी है जिस पर श्रमिक नियुक्त किए जाते हैं। ऊपर की ओर ढालू पूर्ति वक्र से अभिप्राय यह है कि एकक्रयाधिकारी अधिक वर्कर आकर्षित करने के लिए ऊँची मजदूरी दे। जब श्रम का औसत लागत वक्र ऊपर की ओर जा रहा होता है तो सीमांत लागत वक्र भी ऊपर की ओर अधिक तेजी से बढ़ रहा होता है।*

चित्र 39.2 में, S_L ($=AC_L$) श्रम का पूर्ति वक्र है और MC_L इसका श्रम-सीमांत लागत वक्र है। MRP_L श्रम का सीमांत आगम उत्पाद वक्र है जो एकक्रयाधिकारी के लिए श्रम का माँग वक्र है। अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए, एकक्रयाधिकारी बिन्दु A तक श्रम को काम पर लगाएगा जहाँ $MRP_L = MC_L$। इस बिन्दु पर वह OE वर्करों को OW ($=EB$) मजदूरी दर पर लगाता है। परन्तु यह मजदूरी दर (EB) श्रम के सीमांत आगम उत्पाद (EA) से BA कम है। यह दर्शाता है कि OE वर्कर लगाने पर एकक्रयाधिकारी प्रति वर्कर BA लाभ कमाता है। दूसरे शब्दों में, वह $WBAW_1$ असामान्य लाभ श्रम शोषण द्वारा प्राप्त करता है।

यदि असंगठित श्रम एक यूनियन बना ले, तो वह एकक्रयाधिकारी शोषण को समाप्त कर सकती है। सामूहिक सौदेबाजी से यूनियन सब श्रमिकों के लिए मजदूरी की ऊँची दर नियत कर सकती है। और उस स्तर पर एकक्रेयाधिकारी जितने भी चाहे, उतने ही श्रमिक काम पर लगा सकता है। इसमें उसके सामने पूर्ति वक्र क्षैतिज होगा जैसाकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत होता है। श्रम की सीमान्त लागत बराबर होगी, औसत लागत के और सतुलन उस बिन्दु पर स्थापित होगा जहाँ MRP_L वक्र यूनियन मजदूरी के बराबर होगा।

चित्र 39.2

मान लीजिए चित्र 39.2 में यूनियन और एकक्रयाधिकारी ऊँची मजदूरी दर OW_2 पर मान जाते हैं। इससे श्रम का पूर्ति वक्र W_2C रेखा के साथ क्षैतिज (horizontal) बन जाता है। यह एकक्रयाधिकारी के AC_L और MC_L दोनों वक्र होंगे। अब एकक्रयाधिकारी बिन्दु C पर चला जाएगा जहाँ MRP_L वक्र रेखा W_2C को काटता है तथा OE_1 रोजगार स्थापित होता है। यूनियन मजदूरी की दर को OW से OW_2 तक ही नहीं बल्कि रोजगार के स्तर को भी OE से OE_1 तक बढ़ा सकी है। इस स्थिति में एकक्रयाधिकारात्मक शोषण बिल्कुल नहीं रहता क्योंकि प्रत्येक श्रमिक को अपने MRP_L के बराबर मजदूरी की OW_2 दर प्राप्त होती है जिसे बिन्दु C पर MRP_L के साथ W_2S_2 की समानता प्रकट करती है। वास्तव में यूनियन श्रमिकों के लिए उस समय लाभदायक होगी, जब वह OW तथा OW_1 के बीच मजदूरी की दर नियत करे क्योंकि उससे यूनियन OE की अपेक्षा

* इस सम्बन्ध के लिए विद्यार्थी अध्याय 3 में तालिका 17.3 को देखें जहाँ AFC श्रम की AC तथा MFC श्रम की MC है और वक्र बनाए।

अधिक श्रमिकों को काम पर लगा सकती है।

परन्तु यदि यूनियन अपने सदस्यों के लिए मजदूरी की अपेक्षाकृत ऊँची OW_1 दर प्राप्त करने का निर्णय करे, तो श्रम का **अनन्त लोचदार** पूर्ति वक्र W_1A होगा। यह A बिन्दु पर MRP_L वक्र के बराबर होगा और काम पर लगाई गई श्रम की मात्रा OE होगी, जितनी यूनियन बनने से पहले थी। इस प्रकार रोजगार के OE स्तर पर यूनियन अपने सदस्यों के लिए ऊँची मजदूरी के रूप में पर्याप्त लाभ प्राप्त कर लेती है। $WBAW_1$ द्वारा प्रकट किया गया एकक्रयाधिकारात्मक शोषण समाप्त हो जाता है, जो अब श्रमिकों को मिलता है। यदि यूनियन मजदूरी की दर को OW_1 से भी ऊपर ले जाए, तो काम पर लगे श्रमिकों की संख्या मूल संख्या OE से कम हो जाएगी। यदि यूनियन अपने सदस्यों की सीमान्त उत्पादकता बढ़ाने में भी सहायक हो, तो MRP_L ऊपर की ओर सरक जाएगा और तब यदि मजदूरी की दर OW_1 भी से ऊपर नियत कर दी जाए, तो भी रोजगार की स्थिति पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा। परन्तु यह केवल एक सैद्धान्तिक संभावना ही है।

परन्तु मजदूरी और रोज़गार दोनों की वृद्धि द्वारा अपने सदस्यों को दोहरा लाभ पहुँचाने के लिए यूनियन, वास्तव में, मजदूरी की दर OW तथा OW_1 के बीच नियत करेगी। ऐसा करने में वह एकक्रयाधिकारात्मक शोषण समाप्त कर देती है, जबकि प्रत्येक श्रमिक को उसके सीमान्त आगम उत्पादन के बराबर मजदूरी प्राप्त होती है।

4 यूनियन तथा मजदूरी सामूहिक सौदेबाजी
(UNIONS AND WAGES COLLECTIVE BARGAINING)

एक ट्रेड यूनियन का प्रमुख कार्य मजदूरी की दर को बढ़ाना तथा अपने सदस्यों की कार्यकरण स्थितियों को सुधारना है। यह व्यक्तिगत सौदेबाजी के स्थान पर सामूहिक सौदेबाजी को ले आती है और श्रमिकों की एक ही श्रेणी के लिए समस्त उद्योग में मजदूरी की दरों को समान बना देती है।

पूर्ण प्रतियोगी श्रम बाजार के अन्तर्गत, एक विशेष उद्योग में मजदूरी को माँग और पूर्ति की शक्तियाँ नियत करती है, पर यूनियनें अल्पकालीन में श्रम की पूर्ति घटा कर मजदूरी बढ़वा सकती हैं।

इसे चित्र 39 3 (A) और (B) में दिखाया गया है। चित्र के (A) भाग में OW मजदूरी की दर है जिसे बिन्दु a पर श्रम की माँग और पूर्ति की समानता OE निर्धारित करती है। चित्र के भाग (B) में मजदूरी की दी हुई OW या WS दर पर, फर्म इस श्रम की Oe इकाइयों को काम पर लगाती है। यदि इस उद्योग में लगे श्रमिक यूनियन बना ले, तो वे अल्पकाल में श्रम की माँग को प्रभावित नहीं कर सकते। वे संतुलन दर OW से ऊपर मजदूरी की दर की माँग कर सकते है परन्तु इससे काम पर लगे श्रमिकों की संख्या घट जाएगी।

मान लीजिए कि यूनियन मजदूरी की OW_1 दर की माँग करती है। इससे श्रम का पूर्ति वक्र पूर्ण लोचदार बन जाएगा और चित्र 39 3 (A) में वह S की बजाय W_1S हो जाएगा। नई संतुलन स्थिति n पर स्थापित होगी, जहाँ माँग वक्र D पूर्ति वक्र W_1S को काटता है और उद्योग में लगे श्रमिकों की संख्या OE से घट कर OE_1 हो जाती है। फर्म के लिए मजदूरी की W_1S_1 दर दी हुई होने पर फर्म पहले से कम श्रमिक काम पर लगाएगी, $Oe_1 < Oe$ [चित्र 39 3 (B) में]।

यदि यूनियन-मजदूरी की बढ़ी हुई दर को बनाए रखना चाहती है, तो उसे श्रम की पूर्ति घटानी पड़ेगी। वह कई तरह से ऐसा कर सकती है। जैसे, नियुक्त श्रमिकों को अन्य उद्योगों में काम ढूँढने का प्रोत्साहन देकर, नए आने वालों के लिए सदस्यता-शुल्क बढ़ाकर, शिशिक्षुता (apprenticeship) की अवधि बढ़ाकर और आप्रवास (immigration) इत्यादि पर नियंत्रणों को प्रोत्साहन देकर।
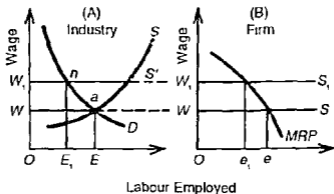
चित्र 39.3

सबसे ऊपर, पूर्ति में कमी श्रम के लिए माँग की लोच पर निर्भर करती है। यदि श्रम के लिए माँग बिल्कुल बेलोच है, तो पूर्ति में थोडी ही कमी होगी। परन्तु एक उद्योग के विषय में इस स्थिति के सामान्य होने की सम्भावना नहीं है।

पर यदि यूनियन *MRP* (श्रम के लिए माँग) वक्र को ऊपर की ओर दाएँ को सरका सके तो मजदूरी की दर में भी ठोस वृद्धि होगी और रोज़गार में भी विस्तार होगा। परन्तु श्रम की माँग को बढाना यूनियनों के लिए कोई आसान काम नहीं है। यह दीर्घकाल में ही सम्भव होता है, जबकि प्रौद्योगिक परिवर्तन उद्योग की वस्तु की माँग को बढा देते हैं। तब वृद्धि के लिए सामूहिक सौदेबाजी से यूनियन मजदूरी बढाने की माँग कर सकती है।

मार्शल ने ऐसी कुछ स्थितियाँ प्रकट की हैं, जब एक विशेष वर्ग के श्रमिकों की यूनियन उनकी पूर्ति को रोकने की धमकी देकर अपने सदस्यों की मजदूरी बढवा सकती है। ऐसा तब सम्भव है जबकि (i) श्रमिकों के उस समूह की सेवाओं के लिए माँग बेलोच हो, या (ii) जिस वस्तु के उत्पादन में श्रमिकों का वह समूह सहायता देता है, उस वस्तु के लिए माँग बेलोच हो, या (iii) इस वर्ग का मजदूरी-बिल संस्था के कुल मजदूरी बिल का बहुत थोडा भाग हो जिससे उस वर्ग की मजदूरी बढा देने से वस्तु के उत्पादन की कुल लागत पर कोई ठोस प्रभाव न पडे, और (iv) अन्य सहयोगी साधनों को कम किया जा सके अर्थात् श्रमिकों के अन्य वर्ग की मजदूरी घटाई जा सके या कच्चे माल की पूर्ति करने वालों को कम कीमत स्वीकार करने के लिए विवश किया जा सके। यदि इनमें से कोई भी शर्त पूरी हो जाती है तो यूनियन (मजदूरी बढवाने में) सफल हो जाएगी। यह केवल अल्पकाल में ही संभव होता है। दीर्घकाल में, मालिक श्रमिकों के इस समूह को हटाने के तरीके का प्रयोग करके स्थानापन्नों के लिए प्रयत्न कर सकता है।

पूर्ण प्रतियोगी श्रम-बाजार में श्रम के सीमान्त आगम उत्पादन के बराबर मजदूरी दी जाती है। परन्तु प्रतियोगिता पूर्ण नहीं होती और श्रम को सीमान्त आगम उत्पादन से बहुत कम भुगतान किया जाता है। सामूहिक सौदेबाजी में एक ट्रेड यूनियन मजदूरी को सीमान्त आगम उत्पादन के स्तर तक बढा सकती है। मजदूरी की दर के बढ कर श्रम के सीमान्त आगम उत्पादन के बराबर हो जाने से रोज़गार पर या उत्पादन पर कोई उल्टा प्रभाव नहीं पड़ेगा। यह मान लेने पर कि मालिकों में संगठन नहीं है, एक शक्तिशाली यूनियन उद्योग को सीमान्त आगम उत्पादन के बराबर मजदूरी देने के लिए विवश कर सकती है। ऐसी स्थिति में हड़ताल तोड़ने वाले गद्दार मजदूरों को

लाना भी कठिन होता है।

एकक्रयाधिकार-श्रम की सेवाओं के एकक्रयाधिकारी के विषय में श्रमिकों को उनके सीमान्त आगम उत्पाद (MRP_L) से कम ही भुगतान किया जाएगा और काम पर लगाए गए श्रमिकों की संख्या भी उससे बहुत कम होगी, जो पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत होती है। चित्र 39.2 में एकक्रेताधिकारी द्वारा मजदूरी की OW दर पर श्रम की OE मात्रा काम पर लगाई जाएगी, जबकि यदि श्रम-बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होती तो मजदूरी की OW_1 दर पर श्रम की OE_1 मात्रा नियुक्त होगी।[2] यदि श्रमिक संगठित हों, तो उनकी यूनियन मजदूरी की दर और साथ ही में रोज़गार को प्रतियोगी बाज़ार स्तर तक बढ़ा सकती है। परन्तु यदि यूनियन मजदूरी की दर को OW_1 से ऊपर धकेलने का प्रयत्न करेगी तो रोज़गार घट कर OE हो जाएगा। यदि यूनियन संघ-बन्द (closed shop) की नीति का अनुसरण करती है और रोज़गार के स्तर को बढ़ाने की चिन्ता नहीं करती, तो वह मजदूरी की दर को अधिक से अधिक OW_1 तक बढ़ा सकती है। परन्तु ऐसी स्थिति अनावश्यक है। इसका मतलब है कि ट्रेड यूनियन के पास श्रमिकों की सेवाओं को बेचने का एकाधिकार है और उद्देश्य यह है कि मजदूरी की OW_1 दर माँग कर एकक्रेताधिकारी शोषण को मिटा दे। यह द्विपार्श्व एकाधिकार (bilateral monopoly) की स्थिति है।

द्विपार्श्व एकाधिकार (Bilateral Monopoly)—यह वह स्थिति है जहां श्रम का एकल (single) क्रेयता (एकक्रयाधिकारी) का सामना एक एकल श्रम संघ (एकाधिकारी विक्रेता) से होता है। यहां मजदूरी-श्रम संयोग सौदाबाजी शक्ति, राजनैतिक प्रभाव और दोनों पक्षों की आर्थिक शक्ति पर निर्भर करता है। जिस सीमा के अन्तर्गत सौदे का निपटान होता है उसे "समझौता रेंज" अथवा "संविदा क्षेत्र" कहते हैं। एकक्रयाधिकारी उस बिन्दु पर अपना लाभ अधिकतम करेगा जहां माग किए गए श्रम की MRP बराबर होती है श्रम की MC अर्थात् $MRP_L = MC_L$। चित्र 39.4 में यह बिन्दु A है जहां वह OW मजदूरी दर देने को तैयार होता है जिस पर OE श्रम की मात्रा काम पर लगाई जाएगी (S_L श्रम का पूर्ति वक्र है)।

क्योंकि श्रम संघ एक एकाधिकारी है इसलिए वह अपने सदस्यों की सेवाएं उस बिन्दु पर बेचेगा जहां सीमान्त लागत बराबर होगी सीमान्त आगम के। चित्र में श्रम का पूर्ति वक्र (S_L) श्रम संघ का सीमान्त लागत वक्र MC_U है। श्रम का माग वक्र (D_L) श्रम संघ का औसत आगम वक्र AR_U है जिसका सीमान्त आगम वक्र MR_U है। MC_U वक्र बिन्दु B पर MR_U वक्र को नीचे काटता है तथा OW_1 संघ मजदूरी दर निर्धारित होती है। इस मजदूरी दर पर एकक्रयाधिकारी OE_1 वर्करों को काम पर लगाने के लिए तैयार होगा।

चित्र 39.4

संविदा क्षेत्र की सीमाएं OW और OW_1 मजदूरी दरें हैं तथा WW_1 दोनों पक्षों का संविदा क्षेत्र है। यदि श्रम संघ OW मजदूरी दर स्वीकार करने को तैयार नहीं होता है, तो वह हड़ताल कर देगा। इसलिए एकक्रयाधिकारी इस मजदूरी से ऊपर समझौता करने का प्रयत्न करेगा। दूसरी

2 यहाँ चित्र 39.2 पुनः अवश्य बनाएं।
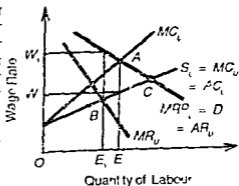
ओर, यदि उसे अधिकतम मजदूरी दर OW_1 देने को मजबूर किया जाता है तो वह काम बंद कर देगा। इसलिए श्रम संघ OW_1 से नीचे मजदूरी दर के लिए सौदा करेगा। ऐसी स्थिति मजदूरी-रोजगार समस्या का निर्धारित हल प्रस्तुत नहीं करती है। वास्तविक मजदूरी दर दोनों पक्षों की सौदेबाजी की शक्ति पर निर्भर करेगी और वह BCA सीमा के अन्दर अथवा उस पर किसी जगह होगी। जैसा कि ऐजवर्थ (Edgeworth) ने कहा, "संविदा क्षेत्र की सीमाओं के अन्तर्गत, वास्तविक मजदूरी दर अनिर्धारित होती है।"

प्रश्न

1 पूर्ण तथा अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण की प्रक्रिया की तुलना कीजिए।

2 'एकक्रयाधिकारात्मक शोषण' को परिभाषित कीजिए और उन अवस्थाओं का वर्णन कीजिए जिनके अन्तर्गत यह हो सकता है।

3 मार्क्स के श्रम सिद्धान्त की व्याख्या करिए।

4 मजदूरी के सीमांत उत्पादकता सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

5 ऐसा क्यों है कि अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी श्रम के सीमांत उत्पाद के बराबर नहीं होती है?

6 मजदूरी निर्धारण में श्रम संघों की क्या भूमिका है? चित्रों द्वारा समझाइए।

7 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी कैसे निर्धारित होती है?

अध्याय 40

ब्याज
(INTEREST)

1 अर्थ
(MEANING)

साधारण बातचीत मे, एक ऋणी द्वारा उधार ली गई मुद्रा के बदले ऋणदाता का किया गया भुगतान ब्याज कहलाता है और इसे प्रतिशत वार्षिक दर के रूप मे व्यक्त किया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र मे अरस्तू (Aristotle) के समय से अब तक बहुत ही भिन्न-भिन्न मत प्रकट किए गए हैं। अरस्तू ने केवल पशुपालन और पशु-प्राशन (stock-raising) इन दो को ही वैध उद्योगो के रूप मे मान्यता दी थी जिनका उत्पादन उधार दिया जा सकता था और उन पर ही ब्याज लिया जा सकता था। उसका अनुसरण करते हुए समस्त मध्य-युगो मे ब्याजखोरी को अवैध और दण्डनीय अपराध समझा जाता था।

अर्थशास्त्र मे कई तरह से ब्याज की परिभाषा दी गई है। आमतौर पर, पूँजी की सेवा या प्रयोग के बदले किए गए भुगतान को ब्याज समझा जाता है। यदि मालिक पूँजी को अपने पास रखे, तो वह आगे उत्पादन के लिए उसका प्रयोग कर सकता है और अपनी पूँजी के लगाने के माध्यम से जो अतिरिक्त उत्पादन उसे प्राप्त होता है, उसमे ब्याज शामिल रहता है क्योंकि यदि वह अपनी पूँजी किसी और को उधार दे देता, तो उसे बदले मे ब्याज मिलता। कार्वर (Carver) के शब्दो में, "ब्याज वह आय है जो पूँजी के मालिक को प्राप्त होती है।" (Interest is the income which goes to the owner of capital)

मिल (Mill) के शब्दो मे, "ब्याज केवल उपभोग-स्थगन का पुरस्कार है।" (Interest is the remuneration for mere abstinence) क्लासिकी अर्थशास्त्रियो के अनुसार, केवल उपभोग को स्थगित करके ही पूँजी का निर्माण किया जा सकता है। क्योंकि उपभोग का परिवर्तन अरुचिकर तथा कष्टकर होता है, इसलिए ऋणदाता को ब्याज के रूप में पुरस्कार दिया जाता है। जब लोग उपभोग का परिवर्तन करते है, तो वे बचत करते है और इस प्रकार ब्याज बचत का पुरस्कार बन जाता है। पर अमीरो को बचत करने के लिए कोई परित्याग या स्थगन नहीं करना पडता। इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए मार्शल ने स्थगन (abstinence) शब्द के स्थान पर 'प्रतीक्षा' (waiting) शब्द को स्थानापन्न कर दिया और इस प्रकार मार्शल के अनुसार ब्याज प्रतीक्षा का पुरस्कार है।

जॉन रे (John Rae) तथा बाम बावर्क (Bohm Bawerk) के नेतृत्व में आस्ट्रिया वालो ने, जिसका बाद मे अमरीका मे फिशर (Fisher) ने अनुकरण किया था, यह माना कि ब्याज बट्टा (agio) या समय-अधिमान (time preference) का पुरस्कार होता है। लोग भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को अधिमान देते है और इसलिए वे वर्तमान वस्तुओ को अधिक महत्त्व प्रदान करते है। इसलिए उन्हे वस्तुओ के उपभोग को वर्तमान से भविष्य मे स्थगित करने की प्रेरणा देने के लिए यह

आवश्यक है कि ब्याज के रूप में उनकी क्षतिपूर्ति की जाए। इस प्रकार, ब्याज उन्हीं वस्तुओं के वर्तमान उपभोग (उपयोगिता) और भविष्य उपभोग का अन्तर है।

केन्ज (Keynes) के अनुसार, ब्याज एक विशुद्ध मौद्रिक विषय अर्थात् मुद्रा के प्रयोग के बदले किया जाने वाला भुगतान है। वह मुद्रा की तरलता को छोड़ने का पुरस्कार है। केन्ज के शब्दों में, "वास्तविक मुद्रा का स्वामित्व हमारी व्याकुलता को शान्त करता है, और मुद्रा का परित्याग कराने के लिए हमें जो प्रीमियम या पुरस्कार चाहिए, वह हमारी व्याकुलता की कोटि (degree) का माप है। इस प्रकार ब्याज वह पुरस्कार है जो पैसे वालों को अपनी नकदी का परित्याग करने को प्रेरित करने के लिए दिया जाता है।"

पर नव-क्लासिकी अर्थशास्त्रियों की परिभाषा के अनुसार ब्याज वह कीमत है जो ऋण-योग्य निधियों (loanable funds) के प्रयोग के लिए दी जाती है। "परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने ब्याज के संबंध में इन विभिन्न और विवादास्पद मतों से बचने के प्रयत्न में, ब्याज की व्याख्या उत्पादकता, बचत, तरलता, अधिमान और मुद्रा के रूप में की है।" दूसरे शब्दों में, ब्याज, पूँजी, बचत, मुद्रा की तरलता के परित्याग तथा मुद्रा की पूर्ति का एक साथ पुरस्कार है।

2. कुल तथा शुद्ध ब्याज
(GROSS AND PURE INTEREST)

मूलधन को छोड़कर ऋणी जो भुगतान ऋणदाता को करता है, उसे कुल ब्याज कहते हैं। यह संयुक्त राशि है जिसमें निम्नलिखित भुगतान शामिल होते हैं

(i) **विशुद्ध या शुद्ध ब्याज** (Pure or net interest)—यह वह भुगतान है जो केवल पूँजी या मुद्रा के प्रयोग के बदले किया जाता है। असली आर्थिक दृष्टि से ब्याज यही है। सामान्य रूप से विभिन्न बाजारों में भी यह समान होना है।

(ii) **जोखिम का पुरस्कार** (Reward for risk-taking)—ऋणदाता जब उधार देता है तो वह जोखिम में पड़ता है। कुल ब्याज में जोखिम का पुरस्कार शामिल होता है। जोखिम की मात्रा जितनी अधिक होगी, ब्याज की दर भी उतनी ही अधिक होगी। सुरक्षित ऋणों की अपेक्षा असुरक्षित ऋणों में अधिक जोखिम होती है, इसीलिए असुरक्षित ऋणों पर प्रीमियम की दर अधिक होती है।

(iii) **असुविधा का पुरस्कार** (Reward for inconvenience)—जब एक ऋणदाता मुद्रा उधार देता है, तो वह एक निश्चित काल के लिए उसके प्रयोग से वंचित हो जाता है। उसकी मुद्रा ताले में बन्द हो जाती है और अधिक लाभदायक उद्देश्य के लिए उसे प्रयोग में नहीं लाया जा सकता। *या, यदि उसे अपने व्यक्तिगत प्रयोग के लिए मुद्रा की जरूरत पड़ जाए, तो उसे किसी* अन्य स्रोत में उसका प्रबन्ध करने की असुविधा उठानी पड़ेगी। ब्याज की दर नियत करते समय ऋणदाता ऐसी असुविधाओं के पुरस्कार को भी शामिल कर लेता है।

(iv) **प्रबन्ध का पुरस्कार** (Reward for management)—ऋणदाता को ऋणियों के ठीक हिसाब-किताब रखने के लिए कुछ खर्च करना पड़ता है। उसे खाते रखने की पुस्तकें खरीदनी पड़ती हैं और स्टॉक भी रखना पड़ता है। उसे ऋणियों को याद कराने के लिए लिखा-पढ़ी करनी पड़ती है और कभी-कभी ऋण वसूल करने के लिए मुकदमा भी करना पड़ता है। ऋणदाता ऋणी से जो भुगतान वसूल करता है, उसमें प्रबन्ध का खर्च भी शामिल होता है।

कुल ब्याज में से जोखिम, प्रबन्ध तथा असुविधा के पुरस्कार को निकालकर ऋणदाता के पास जो कुछ बचता है, वह विशुद्ध ब्याज होता है।

3. समय अधिमान सिद्धान्त
(TIME PREFERENCE THEORY)

समय अधिमान सिद्धान्त फिशर के नाम से सबद्ध है जो ब्याज को समाज की एक डॉलर की वर्तमान आय को भविष्य की एक डॉलर आय के अधिमान का सूचक परिभाषित करता है।[1] एक समान राशि एव समान निश्चितता की भविष्य की आय पर वर्तमान आय के लिए अधिमान जो लोग रखते हैं वह समय अधिमान है।[2] लोगो मे बचत और उधार द्वारा उपभोग के लिए रखी गई आय को बदलने की प्रवृत्ति समय के साथ-साथ पाई जाती है। ब्याज वह कीमत है, जो लोगो को वर्तमान आय के लिए न कि भविष्य की आय के लिए दी जाती है। यह सीमान्त समय अधिमान (marginal time preference) या अधीरता (impatience) या तत्परता (willingness) तथा लागत पर सीमान्त प्रतिफल (marginal return over cost) या उत्पादकता (productivity) या अवसर (opportunity) की दरों द्वारा निर्धारित होता है। इनका हम नीचे अध्ययन करते हैं।

तत्परता या अधीरता नियम (Willingness or Impatience Principle)—सीमान्त समय अधिमान दर या तत्परता अथवा अधीरता नियम निम्नलिखित पर निर्भर करता है (i) आय का आकार, (ii) आय का वितरण, (iii) आय की बनावट, (iv) भविष्य मे आय के उपभोग की निश्चितता, (v) व्यक्तियो की निजी विशिष्टताएँ जैसे दूरदर्शिता, उपभोग पर आत्मसयम इत्यादि। यदि आय का आकार बड़ा हो तो व्यक्ति वर्तमान आवश्यकताओं को अधिक सतुष्ट करेगे और भविष्य को कम अधिमान देगे। आय का वितरण तीन विभिन्न ढगो से हो सकता है प्रथम, सदैव आय समान रहे, दूसरे, यह भविष्य मे कम हो जाए, तीसरे, यह भविष्य मे शनै-शनै बढे। यदि आय सदैव समान रहती है तो अधीरता की दर (rate of impatience), दूरदर्शिता और आय के आकार द्वारा निर्धारित होगी। जब एक व्यक्ति की आयु बढने के साथ-साथ उसकी आय भी बढती है तो वर्तमान आय कम होगी और उसकी अधीरता की दर अधिक, और विलोमश। आय की प्रकृति या बनावट भी इसी प्रकार होती है। जहाँ तक भविष्य की आय के उपभोग की निश्चितता का सम्बन्ध है, यदि भविष्य अनिश्चित हो तो अधीरता की दर ऊँची होगी, और विलोमश। जब अधीरता या तत्परता की दर इस प्रकार निर्धारित होती है तो यह ब्याज दर के बराबर होती है। यदि तत्परता की दर बाजार की ब्याज दर से अधिक हो तो एक व्यक्ति उधार लेगा और इस राशि को अपनी अधिक जरूरी आवश्यकताओ को पूरा करने पर खर्च कर देगा। इसके विपरीत, यदि तत्परता की दर बाजार ब्याज दर से कम हो तो वह अपनी आय को उधार देकर लाभ कमाएगा। वह उधार देकर या लेकर अपनी आय को तब तक परिवर्तित करता रहेगा, जब तक कि उसकी तत्परता की दर बाजार ब्याज दर के बराबर नहीं हो जाती। फिशर ने निष्कर्ष दिया "केवल समय अधिमान ही ब्याज के लिए उत्तरदायी हो सकेगा क्योकि जहाँ कोई वर्तमान तथा भविष्य के लिए उदासीन हो, ब्याज उत्पन्न नहीं हो सकता।"

निवेश अवसर नियम (Investment Opportunity Principle)—ब्याज दर का दूसरा निर्धारक लागत पर सीमान्त प्रतिफल की दर या निवेश अवसर नियम है। लागत पर सीमान्त प्रतिफल की दर इस बात पर निर्भर करती है कि किस सीमा तक आय-प्रवाह पूँजी उपयोग मे परिवर्तनो द्वारा स्थानान्तरित किया जाए। यदि एक व्यक्ति के सम्मुख एक-दूसरे के साथ स्थानापन्न किए जा सकने वाले दो आय-प्रवाहो के रूप मे दो निवेश अवसर विद्यमान हों, तो "लागत" से अभिप्राय एक

1 Fisher defines interest as an index of the community's preference for a dollar of present over a dollar of future income

2 Time preference is the preference that people have for present income over future income of an equal amount and equal certainty

आय-प्रवाह को हटाने की हानि है और "प्रतिफल" एक आय-प्रवाह को दूसरे के स्थान पर स्थानापन्न करने का लाभ है। लागत पर प्रतिफल की दर वह बट्टा दर है जिस पर दो निवेश अवसरों के वर्तमान शुद्ध मूल्य समान हो जाते हैं।[3] फिशर के अनुसार निवेश अवसरों का श्रेणीकरण ब्याज दर पर निर्भर करता है। किसी भी निवेश अवसर का एक विशेष ब्याज दर पर दूसरी की अपेक्षा ऊँचा वर्तमान मूल्य हो सकता है। इसलिए, यदि लागत पर प्रतिफल की दर एक अवसर के लिए बाजार-ब्याज दर से अधिक हो तो दूसरा अवसर छोड़ दिया जाएगा।

समय अधिमान का निर्धारण (Determination of Time Preference)—समय अधिमान सिद्धान्त को फिशर द्वारा दिए गए मानचित्रों का मापान्तर करके रेखाचित्र में दिखाया गया है। इसके लिए वर्तमान आय को भविष्य की आय से अधिमान या उदासीनता वक्रों द्वारा सम्बद्ध किया जाता है और निवेश के अवसर या पूँजी की शुद्ध उत्पादकता को रूपान्तरण वक्रों (transformation curves) द्वारा व्यक्त किया जाता है। एक (उदासीनता वक्र या) तत्परता वक्र (willingness curve) तथा रूपान्तरण वक्र के एक-दूसरे को छूने का बिन्दु एक आय-प्रवाह के अधिकतम मूल्य को व्यक्त करता है। यहाँ आय से अभिप्राय एक मिश्रित वस्तु से है, जो समान रूप में आनुपातिक वस्तुओं की संख्या से बनी हुई है।

समय अधिमान का निर्धारण चित्र 40.1 में दिखाया गया है, जहाँ Wc_1, Wc_2 और Wc_3 तत्परता वक्र हैं। 45° रेखा आय-प्रवाह रेखा है जोकि स्थिर है। आय के सीमान्त ह्रास उपयोगिता नियम (law of diminishing marginal utility of income) के कारण तत्परता वक्र उन्नतोदर (convex) है। उसकी ढलान समाज के समय अधिमान को व्यक्त करती है। धनात्मक समय अधिमान का अर्थ है कि तत्परता वक्रों की 45° आय-प्रवाह रेखा पर ढलान इकाई से अधिक (greater than unity) है जो तत्परता वक्र 45° रेखा के गिर्द समरूप है। वे तटस्थ समय अधिमान को व्यक्त करते हैं। इस प्रकार चित्र 40.1 में, तत्परता वक्र Wc_3 ऋणात्मक (negative) समय अधिमान को प्रकट करता है, तत्परता वक्र Wc_2 धनात्मक (positive) समय अधिमान को तथा Wc_1 तत्परता वक्र तटस्थ (neutral) समय अधिमान को व्यक्त करता है।

चित्र 40.1

अवसर या रूपान्तरण वक्र *TC* शुद्ध निवेश अवसर या पूँजी की शुद्ध उत्पादकता को व्यक्त करता है। *TC* वक्र मूल के नतोदर (concave) है क्योंकि भविष्य की आय प्राप्त करने के लिए जब वर्तमान आय का परित्याग किया जाता है तो प्रतिफल घटते जाते हैं। ब्याज दर तत्परता वक्र तथा रूपान्तरण वक्र के स्पर्श बिन्दु पर निर्धारित होती है। चित्र में यह बिन्दु *E* है, जहाँ *TC* वक्र Wc_1 वक्र को स्पर्श करता है। *E* पर ब्याज दर धनात्मक है क्योंकि इस बिन्दु पर स्पर्श रेखा F_2P_2 की ढलान इकाई से अधिक है। परन्तु *R* बिन्दु ब्याज दर शून्य है क्योंकि F_1P_1 रेखा की ढलान ऋणात्मक इकाई (minus unity) है। दूसरे शब्दों में, इस बिन्दु पर समय अधिमान तटस्थ है और पूँजी की शुद्ध उत्पादकता शून्य है, क्योंकि

3 The rate of return over cost is that discount rate at which the present net values of the investment opportunities are equalised

यदि हम इस बिन्दु पर एक तत्परता वक्र खींचे तो (यह II_{c_3} की शक्ल का होगा) यह 45° रेखा के गिर्द समरूप होगा।

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)—शूम्पीटर ने फिशर के समय अधिमान सिद्धान्त की इन शब्दों में प्रशंसा की है "यह ब्याज के साहित्य में एक उच्चतम उपलब्धि है, जहाँ तक इसके अपने ढाँचे में पूर्णता का सम्बन्ध है।"[4] फिर भी इस सिद्धान्त में कई त्रुटियाँ पाई जाती है।

(i) फिशर का सिद्धान्त बहुत सामान्य-सा है और यह ब्याज दर पर बैंकिंग प्रणाली के प्रभाव को स्पष्ट नहीं करता।

(ii) तत्परता नियम भ्रान्तिजनक है क्योंकि यह आय में से उपभोग पर बहुत अधिक बल देता है।

(iii) यह सिद्धान्त ब्याज दरों पर प्रत्याशाओं (*expectations*) के प्रभाव की उपेक्षा करता है। ब्याज दरें बढ़ने पर भी भविष्य में ऊँचे प्रतिफलों की प्रत्याशाएँ निवेश को प्रोत्साहित कर सकती हैं।

(iv) पूँजीकरण (capitalisation) पर अधिक बल देने के कारण भी फिशर की आलोचना की गई है। पूँजीकरण सदैव मूल्यों का वास्तविक निर्देश नहीं करता। पुन विक्रय बाजारों (resale markets) तथा जमाबन्दी बाजारों (rental markets) की पूँजीकृत दरों (capitalised rates) में अन्तर हो सकते है। उदाहरणार्थ, पिछड़े हुए क्षेत्रों में जायदाद पर किराये का प्रतिफल उनकी पूँजीकृत दरों के मूल्यों पर हो सकता है परन्तु खुले बाजार में उनकी पूँजीकृत दरें बहुत नीची होंगी।

(v) फिशर, पूँजीकरण के चक्र को भंग करने में सफल नहीं हुआ। चालू ब्याज दरों पर आय को पूँजीकृत करके उसमें से मूल्य को व्युत्पन्न (derive) किया जाता है। परन्तु जब मूल्य को ब्याज दर से गुणा किया जाता है तो यह मूल आय के बराबर होता है जोकि स्वयं ब्याज का आधार है। अत यह सिद्धान्त चक्रीय तर्क (circular reasoning) पर आधारित है और ब्याज दर निर्धारण के आधारभूत कारणों तक नहीं पहुँचता।

4. ब्याज का क्लासिकी सिद्धान्त (THE CLASSICAL THEORY OF INTEREST)

क्लासिकी सिद्धान्त के अनुसार, पूंजी की पूर्ति और माँग के द्वारा ब्याज की दर निर्धारित होती है। पूंजी की पूर्ति समय-अधिमान के द्वारा और पूंजी की माँग पूंजी की प्रत्याशित उत्पादकता के द्वारा निर्धारित होती है। समय अधिमान और पूंजी की उत्पादकता दोनों ही प्रतीक्षा या बचत पर निर्भर करते है। इसलिए इस सिद्धान्त को बचत का पूर्ति और माँग सिद्धान्त भी कहते हैं।

माँग पक्ष (Demand side)—पूंजी की माँग उत्पादन और उपभोग के उद्देश्यों के लिए होती है। उपभोग की माँग को छोड़ दिया जाए, तो निवेशक पूंजी की माँग इसलिए करते है कि पूंजी उत्पादक होती है। परन्तु पूंजी की उत्पादकता परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के अधीन होती है। पूंजी की अतिरिक्त इकाइयां उतनी उत्पादक नहीं होतीं जितनी कि प्रारम्भिक इकाइयां। एक ऐसी अवस्था आती है जब व्यापार में पूंजी की एक अतिरिक्त इकाई लगाना कुछ लाभदायक हो सकता है परन्तु उससे अधिक नहीं। मान लीजिए कि एक निवेशक एक फैक्टरी में रु 1,00,000 लगाता है और 20% प्राप्ति (yield) की आशा करता है। उतनी ही मात्रा की एक और किश्त उतनी उत्पादक नहीं होगी जितनी कि पहली, और हो सकता है कि उससे उसे 15% की प्राप्ति हो। सम्भव है तीसरी किश्त की प्राप्ति 10% रह जाए। यदि उसने मुद्रा 10% पर उधार ली है, तो

4 "It is the peak achievement so far as perfection within its own frame is concerned, of the literature of interest "—*Schumpeter*

वह और पूजी नहीं लगाएगा क्योंकि उसके लिए ब्याज की दर पूजी की सीमान्त उत्पादकता के बिल्कुल बराबर है। इससे प्रकट होता है कि ब्याज की ऊची दर पर पूजी की माग कम और ब्याज की नीची दर पर पूजी की माग अधिक होती है। इस प्रकार पूजी के लिए माग का ब्याज की दर से प्रतीप सम्बन्ध होता है। और पूजी के लिए माग वक्र का ढलान ऊपर की ओर बाए से दाए को होता है। पर पूजी के लिए माग को निर्धारित करने वाले कुछ और तत्त्व भी होते है, जैसे जनसख्या की वृद्धि, तकनीकी प्रगति, युक्तिकरण (rationalization) की प्रक्रिया, समाज का जीवन-स्तर आदि।

पूर्ति पक्ष (Supply side)—पूजी की पूर्ति बचत पर निर्भर करती है, ना कि समाज की बचत करने की इच्छा और शक्ति पर। कुछ लोग ब्याज की दर पर ध्यान दिए बिना बचत करते है। यदि ब्याज की दर शून्य हो, तो भी बचत करते रहेंगे। कुछ ऐसे होते है जो इसलिए बचत करते है कि ब्याज की वर्तमान दर उन्हे बचत की प्रेरणा देने के लिए काफी है। यदि ब्याज की दर उस स्तर से गिर जाए, तो वे अपनी बचतो को घटा देंगे। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे समाची बचत करने वाले भी होते है जो ब्याज की दर बढ जाने पर बचत करने को प्रेरित होंगे। अन्तिम दो श्रेणियो के बचत करने वालो को कुर्बानी, उपभोग स्थगन, या प्रतीक्षा करनी पडती है, जबकि वे ब्याज प्राप्त करने के लिए वर्तमान उपभोग से वचित रहते है। ब्याज की दर जितनी अधिक होगी, समाज की बचते भी उतनी ही अधिक होगी और निधियो की पूर्ति बढ जाएगी। इस प्रकार पूजी का पूर्ति वक्र ऊपर की ओर दाए को चलता है।

इसका निर्धारण (Its Determination)—आय का स्तर दिया हुआ मान लेने पर, पूजी के माग और पूर्ति वक्रो के परस्पर काटने से ब्याज की दर निर्धारित होती है। इसे चित्र 40.2 में दिखाया गया है। I और S वक्र E बिन्दु पर आपस मे काटते है। जो सतुलन बिन्दु है, जबकि ब्याज की OR दर पर पूजी की OQ मात्रा की माग और पूर्ति होती है। यदि कभी ब्याज की दर OR से बढकर OR_1 हो जाए, तो निवेश निधियो के लिए माग गिर जाएगी और निधियो की पूर्ति बढ जाएगी। क्योकि माग की अपेक्षा पूजी की पूर्ति अधिक है $R_1s > R_1d$ इसलिए ब्याज की दर गिर कर सतुलन स्तर OR पर आ जाएगी। यदि ब्याज की दर गिर कर OR_2 पर जाए, तो स्थिति इसके विपरीत होगी। पूर्ति की अपेक्षा पूजी के लिए माग अधिक है ($R_2d_1 > R_2s_1$) और ब्याज दर बढकर OR हो जाएगी। अन्तिम स्थिति वह होगी, जहा ब्याज की सतुलित दर के द्वारा बचत और निवेश मे समानता लाई जाती है।
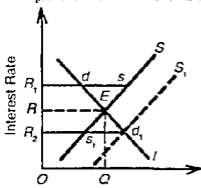
चित्र 40.2

यदि किसी समय बचते OQ से बढ जाती है, तो ब्याज की दर OR के नीचे चली जाएगी क्योंकि पूजी के लिए माग उतनी ही रहती है। उसे चित्र मे S वक्र के नीचे एक पूर्ति वक्र S_1 द्वारा दिखाया गया है जो I वक्र को d_1 पर काटता है तथा ब्याज दर गिरकर OR_2 हो जाती है। ब्याज की नीची दर पर लोग कम बचत करेंगे, परन्तु नियोज्य निधियो के लिए माग बढ जाएगी जो ब्याज की दर को बढाकर सतुलन स्तर OR पर ले जाएगी।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)—मार्शल और पीगू द्वारा प्रस्तुत किए गए क्लासिकी अर्थशास्त्रियो के ब्याज के 'विशुद्ध' या 'वास्तविक' सिद्धान्त की केन्ज ने कडी आलोचना की है।

(1) **आय स्थिर नहीं बल्कि परिवर्तनशील होती है** (Income is not constant but is

variable)—क्लासिकी सिद्धान्त का एक बड़ा दोष यह है कि यह आय के स्तर को दिया हुआ मान लेता है और यह समझता है कि ब्याज वह यन्त्र है जो नियोज्य निधियों के लिए माग और बचतों के माध्यम से निधियों की पूर्ति के बीच सतुलन स्थापित करता है। केन्ज़ के अनुसार आय स्थिर नहीं बल्कि परिवर्तनशील होती है और ब्याज की दर में परिवर्तनों के द्वारा नहीं बल्कि आय में परिवर्तनों के द्वारा बचत और निवेश में समानता लाई जाती है।

(2) बचत और निवेश अनुसूचिया स्वतन्त्र नहीं होती (Saving and investment schedules are not independent)—इस सिद्धान्त में ब्याज की दर के निर्धारक बचत के माग और पूर्ति वक्र दोनों एक-दूसरे से स्वतन्त्र माने गए हैं। इसका मतलब है कि यदि माग में परिवर्तन हो जाए, तो पूर्ति वक्र में परिवर्तन लाए बिना ही माग वक्र, I से ऊपर या नीचे सरक सकता है। परन्तु केन्ज़ के अनुसार दोनों वक्र एक-दूसरे से स्वतन्त्र नहीं होते। उदाहरण के लिए, यदि किसी आविष्कार के कारण माग वक्र ऊपर को सरक जाए, तो आय बढ़ेगी जिससे बचतें अधिक होंगी और इस प्रकार पूर्ति वक्र भी सरक जाएगा। इसी प्रकार, एक पूर्ति वक्र में परिवर्तन माग वक्र में परिवर्तन कर देगा।

(3) आय पर निवेश के प्रभाव की उपेक्षा करता है (Neglects the effects of investment on income)—क्लासिकी सिद्धान्त आय के स्तर पर पड़ने वाले निवेश के प्रभाव को छोड़ देता है। उदाहरण के लिए, ब्याज की दर में वृद्धि निवेश में कमी ला देगी क्योंकि उससे निवेश कम लाभदायक रह जाएगा। इसका मतलब होगा कि उत्पादन, रोजगार तथा आय में कमी हो जाएगी। आय में कमी होने से बचतें घट जाएगी। यह तथ्य क्लासिकी सिद्धान्त के इस कथन के एकदम उलट है कि बचत ब्याज की दर का सीधा फलन है। दूसरी ओर ब्याज की कम दर निवेश क्रिया को प्रोत्साहन देती है, उत्पादन, रोजगार और आय तथा बचतों को भी बढ़ाती है। परन्तु केन्ज़ यह नहीं मानता कि निवेश ब्याज की दर पर निर्भर करता है। वह तो पूजी की सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करता है। केन्ज़ का तर्क यह है कि यदि ब्याज की दर गिर कर शून्य हो जाए तो भी उस अवस्था में निवेश नहीं होगा, जब लाभों के लिए व्यापार प्रत्याशाए निचले स्तर पर हो जैसाकि मन्दी में होता है।

(4) यह अनिश्चित सिद्धान्त है (It is an indeterminate theory)—क्योंकि बचतें आय के स्तर पर निर्भर करती हैं, इसलिए ब्याज की दर तब तक ज्ञात नहीं हो सकती, जब तक कि आय का स्तर पहले से ज्ञात न हो। और ब्याज की दर को पहले से जाने बिना स्वय आय-स्तर का ज्ञान नहीं हो सकता। ब्याज की अपेक्षाकृत नीची दर से निवेश, उत्पादन, रोज़गार, आय और बचतें बढ जाएगी। इसलिए प्रत्येक आय-स्तर के लिए एक पृथक बचत वक्र खींचना पड़ेगा। यह समस्त चक्रवादी तर्क है और ब्याज की समस्या का कोई हल नहीं देता। यही कारण है कि केन्ज़ ने ब्याज के क्लासिकी सिद्धान्त को अनिश्चित बताया है।

(5) बचत के अन्य साधनों की उपेक्षा करता है (Neglects other sources of savings)—इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों ने चालू आय की बचतों को भी बचतों की पूर्ति-अनुसूची में शामिल कर लिया है जिससे यह सिद्धान्त अपर्याप्त बनकर रह गया है। पूजी की पूर्ति को ब्याज-लोचदार समझकर, हो सकता है कि ब्याज की दर में वृद्धि होने पर लोग अपनी पहले की बचतों को ऋण पर दे दें और इस प्रकार पूजी की पूर्ति को बढ़ा दें। इसी प्रकार, बैंकों द्वारा दिया जाने वाला ऋण भी पूजी की पूर्ति का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। धीमी व्यापार क्रिया की अवधि में बैंक अधिक ऋण देते हैं। पूजी की पूर्ति अनुसूची में इन साधनों की उपेक्षा करने से क्लासिकी सिद्धान्त अधूरा रह जाता है।

(6) पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित (Based on unrealistic assumption of full employment)—क्लासिकी सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित

है। पूर्ण रोजगार अर्थव्यवस्था मे, लोगो की बचत की प्रेरणा देने के लिए, बचत, प्रतीक्षा या उपभोग स्थगन के पुरस्कार रूप में ब्याज आवश्यक है। परन्तु केन्ज़ के अनुसार, नियम यह है कि पूर्ण नहीं बल्कि अल्प-रोजगार होता है और जहा समाधन बेरोजगार हो, वहा आवश्यक नहीं कि ब्याज बचत को प्रेरणा दे सके।

(7) **मौद्रिक तत्त्वो की उपेक्षा करता है।** (Neglects monetary factors)—क्लासिकी सिद्धान्त शुद्ध या वास्तविक सिद्धान्त है जो पूजी की सीमान्त उत्पादकता तथा समय अधिमान जैसे वास्तविक तत्त्वों पर विचार करता है, और ब्याज दर के निर्धारण मे मौद्रिक तत्त्वो की बिल्कुल उपेक्षा करता है। क्लासिकी अर्थशास्त्री मुद्रा को केवल वस्तुओ एव सेवाओ पर विनिमय का माध्यम या आवरण (veil) मानते थे तथा मुद्रा को मूल्य का सचय (store) समझने में असमर्थ रहे। दूसरी ओर, केन्ज़ ने ब्याज के निर्धारण को एक मौद्रिक विषय मानकर उसकी व्याख्या की।

(8) **सतुलन एव बाजार ब्याज दरो मे स्वत समानता नहीं पाई जाती** (There is no automatic equality between equilibrium and market rates of interest)—क्लासिकी विचारधारा के अनुसार बाजार ब्याज दर तथा सतुलन (या स्वाभाविक) ब्याज सदैव बराबर होती है। दोनो मे कोई भी अन्तर केवल अस्थायी होता है जो दीर्घकाल में समाप्त हो जाता है। केन्ज़ इन दोनों ब्याज दरो मे अन्तर को आकस्मिक तथा अस्थायी नहीं मानता। बैंक साख (bank credit) के प्रसार द्वारा उधार-योग्य निधियो की पूर्ति बढाने से बाजार ब्याज दर मे सतुलन दर से कमी लाई जाती है और विलोमश भी। अत बाजार ब्याज दर तथा सतुलन ब्याज दर मे समानता लाने के लिए कोई स्वचालित यन्त्र (automatic mechanism) नहीं पाया जाता।

(9) **ब्याज की परिभाषा पर मतभेद** (Difference over the definition of interest)—ब्याज की दर की परिभाषा और निर्धारण के सम्बन्ध मे भी क्लासिकी अर्थशास्त्रियों से केन्ज़ का मतभेद है। उसके अनुसार ब्याज सग्रह (hoarding) का पुरस्कार नहीं बल्कि एक निश्चित अवधि के लिए पूजी की तरलता के परित्याग का पुरस्कार है। यह वह 'कीमत' है, जो मुद्रा की प्राप्त हो सकने वाली मात्रा के साथ मुद्रा के लिए माग का सतुलन स्थापित करती है। वह इस बात से सहमत नहीं कि पूजी के लिए माग और उसकी पूर्ति के द्वारा ब्याज की दर निर्धारित होती है।

इस प्रकार केन्ज़ क्लासिकी सिद्धान्त को एकदम गलत और अपर्याप्त कह कर उसका परित्याग कर देता है।

5. ब्याज का ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त
(THE LOANABLE FUNDS THEORY OF INTEREST)

नवक्लासिकी या ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त ऋण-योग्य निधियों या साख की माग और पूर्ति के रूप मे ब्याज-निर्धारण की व्याख्या करता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज की दर ऋण की वह कीमत है, जो ऋण-योग्य निधियो के माग ओर पूर्ति वक्रों के द्वारा निर्धारित की जाती है। प्रोफेसर लर्नर के शब्दो मे, "यह वह कीमत है जो 'साख' की पूर्ति या बचत जमा एक निश्चित अवधि मे मुद्रा की मात्रा मे शुद्ध वृद्धि को 'साख' के लिए माग या निवेश जमा उस अवधि मे शुद्ध सग्रह को समान बनाती है।" हम ऋण योग्य-निधियो की माग ओर पूर्ति के पीछे कार्यशील शक्तियो का विश्लेषण करते है।

ऋण-योग्य निधियो की माग (Demand for Loanable Funds)—ऋण-योग्य निधियों के लिए माग के प्रमुख रूप से तीन स्रोत है सरकार, व्यापारी ओर उपभोक्ता, जिन्हे निवेश, सग्रह और उपभोग के लिए उनकी जरूरत होती है। सरकार सार्वजनिक निर्माण कार्य करने के लिए या युद्ध की तैयारियो के लिए निधिया उधार लेती है। व्यापारी पूजी वस्तुओं को खरीदने और निवेश

प्रोजेक्ट प्रारम्भ करने के लिए उधार लेते है। इस प्रकार के उधार **ब्याज-लोच** (interest elastic) होते है और अधिकतर ब्याज की दर के मुकाबले मे लाभ की प्रत्याशित दर पर निर्भर करते है। उपभोक्ताओ की ओर से ऋण-योग्य निधियो की माग स्कूटर, मकान आदि जैसी टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओ को खरीदने के लिए होती है। *व्यक्तिगत ऋण भी ब्याज-लोच होते है। ब्याज की ऊची दर* की अपेक्षा नीची दर पर उधार लेने की प्रवृत्ति अधिक होती है, ताकि शीघ्र उनके उपभोग का आनन्द लिया जा सके। क्योंकि निधियो की इस माग को अधिकतर पल्ले की बचतो मे से या वर्तमान मे निर्बचत (dissaving) करके पूरा किया जाता है, इसलिए इसे चित्र 40 3 मे *DS* (dissaving) वक्र द्वारा प्रकट किया गया है। सरकार और व्यापारी दोनो के लिए निवेश निधियो का माग वक्र, *I* वक्र के रूप मे दिखाया गया है। इसका ढलान नीचे की ओर है जो यह प्रकट करता है कि ब्याज की ऊची दर पर कम और नीची दर पर अधिक निधिया उधार ली जाती है। अन्तिम, निष्क्रिय (idle) नकदी या तरल रूप मे सग्रह करने के लिए निधियो की माग होती है। वे भी **ब्याज-लोच** होते है और उन्हे *H* (hoarding) वक्र के द्वारा दिखाया गया है। इन *H DS* तथा *I* का पार्श्वयोग (lateral summation) हमे ऋण-योग्य निधियो का कुल माग वक्र ΣD देता है।

ऋण-योग्य निधियो की पूर्ति (Supply of Loanable Funds)—ऋण-योग्य निधियो की पूर्ति बचतो, विमग्रह तथा बैक-उधार से होती है। बचत के प्रमुख स्रोत निजी बचते, व्यक्तिगत और फर्मों की बचते होती है। यद्यपि **व्यक्तिगत** (निजी) बचते आय-स्तर पर निर्भर करती है, फिर भी, आय के स्तर को दिया हुआ मान लेने पर वे ब्याज-लोच मानी जाती है। ब्याज की दर जितनी ऊची होगी, बचत के लिए उतनी ही अधिक प्रेरणा मिलेगी और विलोमश भी। फर्मों की बचते फर्मों के वे अवितरित लाभ है जो कुछ सीमा तक ब्याज की चालू दर पर निर्भर करते है। यदि ब्याज की दर ऊची है, तो ये उधार लेने पर अकुश का काम करेगे और इस प्रकार बचत को बढावा देगे। चित्र 40 3 मे बचतो को *S* वक्र के रूप म प्रकट किया गया है। सग्रह से निकलने वाली या उनमे जोडी जाने वाली निधियो की मात्रा दूसरा स्रोत है। ऐसी निधिया ब्याज की दर से सीधा सम्बन्ध रखती है। ब्याज की दर जितनी अधिक ऊची होगी, सग्रह मे से उतनी ही अधिक निधिया बाहर आएगी और विलोमश भी। इन निधियों को विसग्रह (dishoarding) वक्र *DH* द्वारा प्रकट किया गया है। अन्तिम, ऋण-योग्य निधियो की पूर्ति का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत बेको से प्राप्त होने वाला उधार है। कुछ सीमा तक बेक साख भी ब्याज-लोच होता है। ब्याज की नीची दर की उपेक्षा ऊची दर पर अधिक निधिया उधार दी जाती है। इस वक्र को *M* वक्र के रूप मे दिखाया गया है। यदि इन *DH M* तथा *S* वक्रो का पार्श्वयोग कर दिया जाए, तो हमे ऋण-योग्य निधियो का कुल पूर्ति वक्र ΣS प्राप्त होता है।

चित्र 40.3

इसका निर्धारण (Its Determination)—चित्र 40 3 मे ऋण-योग्य निधियो का कुल माग वक्र ΣD तथा ऋण-योग्य निधियो का कुल पूर्ति वक्र ΣS, एक दूसरे को बिन्दु *E* पर काटते है और ब्याज की *OR* दर निश्चित करते है। इस दर पर निधियों की *OQ* मात्रा उधार ली और दी जाती है।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)—प्रोफेसर रॉबर्टसन के अनुसार ऋण-योग्य
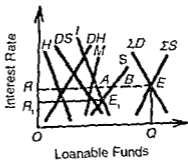
निधि सिद्धान्त ब्याज की दर निर्धारण की 'सामान्य बुद्धि व्याख्या' है। परन्तु यह सिद्धान्त भी कुछ दोषों से मुक्त नहीं है।

(i) **सतुलन दर अस्थिर सतुलन को प्रकट करती है** (Equilibrium rate reflects unstable equilibrium)—ऋण-योग्य निधियों के लिए माग और पूर्ति अनुसूचिया ब्याज की *OR* सतुलित दर निर्धारित करती है। ब्याज की यह दर पूर्ति पक्ष के सब तत्त्वों को माग पक्ष के सब अनुरूप तत्त्वों के बराबर नहीं कर पाती। इस प्रकार, सतुलन दर *OR* अस्थिर सतुलन को प्रकट करती है। स्थिर सतुलन के लिए यह आवश्यक है कि सतुलन की *OR* दर पर प्रत्याशित (ex ante या planned) निवेश प्रत्याशित बचतों के बराबर हो। चित्र 40 3 मे निवेश *I* प्रत्याशित बचत *S* से *AB* मात्रा में बढ जाता है। वे E_1 बिन्दु पर बराबर है परन्तु वहा दर OR_1 अपेक्षाकृत कम है।

(ii) **अनिर्धारित सिद्धान्त** (Indeterminate theory)—प्रोफेसर हैनसन का कहना है कि ब्याज में क्लासिकी और केन्द्रीय सिद्धान्तो की भाति ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त भी अनिर्धारित है। ऋण-योग्य निधियों का पूर्ति वक्र, बचतों, विसग्रह तथा बेक से प्राप्त मुद्रा से बनता है। क्योंकि बचते पिछली आय और नई मुद्रा तथा चालू आय की सक्रिय बाकी राशियो के साथ परिवर्तित होती रहती है, इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि ऋण-योग्य निधियों का कुल पूर्ति वक्र भी आय के साथ परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार जब तक आय-स्तर पहले से ज्ञात न हो, तब तक ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त भी अनिर्धारित रहता है।[5]

(iii) **नकदी शेष लोचदार नहीं** (Cash balances not elastic)—ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त यह बतलाता है कि ऋण-योग्य निधियों की पूर्ति को बचतो मे से नकदी शेषो को निकालकर बढाया जा सकता है तथा बचतो मे नकद शेषो को जमा करके कम किया जा सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि नकदी शेष काफी लोचदार है। परन्तु यह सही दृष्टिकोण नहीं लगता क्योंकि समाज के पास कुल नकदी शेषो की मात्रा स्थिर होती है और किसी भी समय कुल मुद्रा की पूर्ति के बराबर होती है। जब कभी भी नकदी शेषो मे परिवर्तन होते है तो वे वास्तव में मुद्रा के वेग परिचलन (velocity of circulation) में पाए जाते है, न कि समाज के पास नकदी शेषों की मात्रा में।

(iv) **बचते ब्याज बेलोच** (Savings interest inelastic)—यह सिद्धान्त बचतों पर ब्याज दर के प्रभाव पर अधिक बल देता है। यह बचतों को ब्याज-लोच मानता है। सामान्य तौर से, लोग ब्याज अर्जित करने के लिए बचत नहीं करते बल्कि सतर्कता उद्देश्य की पूर्ति के लिए करते है। इस प्रकार, बचते ब्याज बेलोच होती है।

(v) **वास्तविक और मौद्रिक तत्त्वो को जोडना गलत** (Wrong to combine real and monetary factors)—ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त की आलोचना इस कारण भी की जाती है कि यह मौद्रिक तत्त्वों को वास्तविक तत्त्वो के साथ जोड देता है। बचत तथा निवेश जैसे वास्तविक तत्त्वो को बैंक साख तथा विसग्रह (dishoarding) जैसे मौद्रिक तत्त्वो के साथ, बिना आय स्तर मे परिवर्तन लाए, जोड देना सही नहीं है। इस प्रकार यह सिद्धान्त अवास्तविक बन जाता है।

6. इसकी क्लासिकी सिद्धान्त से श्रेष्ठता
(ITS SUPERIORITY OVER CLASSICAL THEORY)

इन कमियो के बावजूद, ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त क्लासिकी सिद्धान्त से कई बातो मे श्रेष्ठ तथा अधिक वास्तविक है।

प्रथम, क्लासिकी सिद्धान्त ब्याज का वास्तविक सिद्धान्त है जो ब्याज पर मौद्रिक प्रभावो की

5 A H Hansen, *A Guide to Keynes* p 141

उपेक्षा करता है। वास्तविक एव मौद्रिक तत्त्वो का समावेश करने के कारण ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त क्लासिकी सिद्धान्त से श्रेष्ठ बन जाता है।

दूसरे, क्लासिकी अर्थशास्त्री बैंक साख के कार्य की उपेक्षा करते है जोकि ब्याज दर को प्रभावित करने वाली मुद्रा पूर्ति का अग है। दूसरी ओर बैंक साख ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त मे एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में ब्याज दर को प्रभावित करती है। इसलिए भी यह सिद्धान्त श्रेष्ठ है।

तीसरे, क्लासिकी अर्थशास्त्री अपने ब्याज-सिद्धात में सग्रह के कार्य पर ध्यान नहीं देते। ऋण-योग्य निधियों की माग मे मुद्रा के सग्रह करने की इच्छा शामिल करके, ऋण-योग्य निधि सिद्धात अधिक वास्तविक बन जाता है और हमें केन्ज के तरलता अधिमान सिद्धात के निकट ले आता है।

चौथे, क्लासिकी अर्थशास्त्रियो के अनुसार मुद्रा केवल एक आवरण (veil) है अर्थात् ब्याज दर को प्रभावित करने वाला एक निष्क्रिय तत्त्व है। ऋण-योग्य निधि सिद्धात क्लासिकी ब्याज-सिद्धान्त से श्रेष्ठ है क्योंकि यह ब्याज-दर निर्धारण में मुद्रा को एक सक्रिय तत्त्व मानता है।

7 केन्ज का ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धात (KEYNES LIQUIDITY PREFERENCE THEORY OF INTEREST)*

केन्ज की परिभाषा के अनुसार ब्याज की दर सग्रह का पुरस्कार नहीं होती बल्कि एक निश्चित अवधि के लिए मुद्रा की तरलता को छोडने का पुरस्कार होती है। "यह वह 'कीमत' है जो नकदी की प्राप्य मात्रा के साथ नकदी के रूप मे सम्पत्ति रखने की इच्छा का सतुलन स्थापित करती है।"[6] दूसरे शब्दो मे, केन्ज के अर्थ मे मुद्रा की पूर्ति मुद्रा की माग ब्याज की दर को निर्धारित करती है। इस प्रकार क्लासिकी अर्थशास्त्रियो के वास्तविक सिद्धात से बिल्कुल अलग, यह सिद्धात ब्याज का मुद्रा सिद्धान्त कहलाता है।

मुद्रा की पूर्ति (Supply of money)—ब्याज की दर के दोनो निर्धारको म से, मुद्रा की पूर्ति का सबध किसी एक समय सब उद्देश्यो के लिए देश की मुद्रा की कुल मात्रा से होता है। यद्यपि मुद्रा की पूर्ति एक कोटि तक ब्याज की दर का फलन होती है, फिर भी, मौद्रिक प्राधिकारी उसे स्थिर मान लेती हैं अर्थात् मुद्रा का पूर्ति वक्र पूर्ण बेलोच मान लिया जाता है।

मुद्रा की माग (Demand for money)—ब्याज की दर के दूसरे निर्धारक, मुद्रा के लिए माग के स्थान पर केन्ज ने एक नया शब्द **तरलता अधिमान** दिया और उसका ब्याज-सिद्धात इसी नाम से प्रसिद्ध है। 'तरलता अधिमान' मुद्रा को नकदी के रूप में रखने की इच्छा है। नकद मुद्रा हमारी **"व्याकुलता को शान्त करती है"** और इसके बदले मे ब्याज की जो दर मागी जाती है वह **'हमारी व्याकुलता की कोटि का माप है'**। "ब्याज-दर वह पुरस्कार है जो सग्रहीत मुद्रा की बजाय किसी रूप मे सम्पत्ति रखने को प्रेरित करने के लिए लोगों को दी जाती है।"[7] तरलता अधिमान जितना अधिक होगा, नकदी के धारको (holders) को अपनी तरल सम्पत्ति छोडने को प्रेरित करने के लिए, उतनी ही अधिक ब्याज की दर देनी पडेगी। तरलता अधिमान जितना कम होगा, नकदी के धारको को उतनी ही कम ब्याज की दर दी जाती है।

केन्ज के अनुसार लोगो के तरल नकदी रखने की इच्छा के तीन उद्देश्य होते हैं—(1) लेनदेन

6 "It is the 'price' which equilibrates the desire to hold wealth in the form of cash with the available quantity of cash" —J M Keynes *The General Theory of Employment Interest and Money* p 167

7 "The rate of interest is the premium which has to be offered to induce people to hold the wealth in some form other than hoarded money" Keynes in S E Harris (ed) *The New Economics* p 187

उद्देश्य, (2) सतर्कता उद्देश्य और (3) सट्टा उद्देश्य।

(1) **लेनदेन उद्देश्य** (Transactions motive)—लेनदेन उद्देश्य का सम्बन्ध निजी और व्यापार सम्बन्धी लेनदेन के चालू सौदों के लिए नकदी की जरूरत से है। इसे पुन आय तथा व्यापार उद्देश्यों मे विभक्त किया जाता है। आय उद्देश्य का प्रयोजन यह होता है कि "आय की प्राप्ति और उसके भुगतान के बीच के समय को पूरा किया जा सके।" और इसी प्रकार व्यापार उद्देश्य का प्रयोजन "व्यवसाय लागतो के खर्च करने और विक्रय से प्राप्त आय के बीच के समय को पूरा करना है।" यदि खर्च उठाने और आय की प्राप्ति के बीच का समय कम होगा, तो लोग चालू लेनदेन के लिए कम नकदी रखेंगे और विलोमश भी। हा, मुद्रा के लिए लेनदेन माग मे परिवर्तन होते रहेंगे जो आय प्राप्त करने वालो और व्यापारियों की प्रत्याशाओ पर निर्भर करेंगे। वे आय के स्तर, रोज़गार और कीमतो, व्यापारावर्त (business turnover), आय की प्राप्ति और उसके भुगतान के बीच की सामान्य अवधि, वेतन या आय की मात्रा और ऋण मिलने की सभावना पर निर्भर करते है।

(2) **सतर्कता उद्देश्य** (Precautionary motive)—सतर्कता उद्देश्य का सम्बन्ध "आडे समय के उन आकस्मिक खर्चों और लाभप्रद क्रयो के अपूर्वदृष्टि अवसरों के लिए प्रबन्ध करने की इच्छा से होता है।" अप्रत्याशित जरूरतों को पूरा करने के लिए व्यक्ति और व्यापारी कुछ नकदी रिजर्व मे रखते है। व्यक्ति तो बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी तथा अन्य अपूर्वदृष्टि (unforeseen) सभाव्यताओं की व्यवस्था करने के लिए कुछ नकदी रखते है। इसी प्रकार, व्यापारी प्रतिकूल स्थितियो को पार करने के लिए या अप्रत्याशित सौदो से लाभ उठाने के लिए कुछ नकदी रिजर्व मे रखते है। "सतर्कता उद्देश्य से रखी गई नकद मुद्रा कुछ-कुछ उस पानी के समान है जो तालाब मे रिजर्व मे रखा जाता है।" मुद्रा के लिए सर्तकता माग आय के स्तर, व्यापार क्रिया, अप्रत्याशित लाभप्रद सौदो के अवसरो, नकदी की प्राप्यता और तरल सम्पत्ति को बैक रिजर्व मे रखने की लागत आदि पर निर्भर करती है।

केन्ज के अनुसार, लेनदेन और सतर्कता उद्देश्य सापेक्षतया ब्याज बेलोच होते है, परन्तु ये बहुत अधिक आय-लोच है। इन दोनों उद्देश्यों के लिए रखी गई मुद्रा की राशि (M_1) आय के स्तर (Y) का फलन (L_1) है, और इसे ऐसे व्यक्त किया जाता है $M_1 = L_1 (Y)$

(3) **सट्टा उद्देश्य** (Speculative motive)—सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा इसलिए रखी जाती है कि "भविष्य के सबध मे मार्किट की तुलना मे अधिक जानकारी द्वारा लाभ कमाये जा सके।" जिन व्यक्तियों और व्यापारियो के पास लेनदेन और सतर्कता उद्देश्यों के लिए मुद्रा रखने के बाद नकदी बच जाती है, उसे वे बाडो मे निवेश करके सट्टाप्रद लाभ प्राप्त करना चाहते है। सट्टा उद्देश्य के लिए रखी गई मुद्रा मूल्य का एक सचय है जो उपयुक्त अवसर पर ब्याज-धारक बाडो या प्रतिभूतियो मे निवेश की जा सकती है।

बाड कीमतो और ब्याज की दर का एक-दूसरे के साथ विपरीत सम्बन्ध होता है। कम बाड कीमतें ऊची ब्याज दरो को और ऊची बाड कीमते कम ब्याज दरो को व्यक्त करती है। एक बाड पर निश्चित ब्याज प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, यदि रु 100 के बाड पर 4 प्रतिशत ब्याज दिया जाता है और मार्किट ब्याज दर 8 प्रतिशत हो जाती है तो इस बाड का बाजार मूल्य गिरकर रु 50 हो जाता है। यदि मार्किट ब्याज-दर कम होकर 2 प्रतिशत हो जाती है तो बाजार मे बाड का मूल्य बढकर रु 200 हो जाएगा।

केन्ज के अनुसार, बाड कीमतो या चालू मार्किट ब्याज की दर मे परिवर्तन सबधी प्रत्याशाए मुद्रा की सट्टा माग को निर्धारित करती है। मुद्रा की सट्टा माग ब्याज दर का घटता हुआ फलन है। जितनी अधिक ब्याज-दर होगी, उतनी कम मुद्रा की सट्टा माग होगी और विलोमश भी। बीजगणितीय रूप मे, केन्ज ने मुद्रा की सट्टा माग को इस प्रकार व्यक्त किया $M_2 = L_2 (r)$, जहा M_2 मुद्रा की सट्टा माग है और (r) ब्याज दर। रेखागणितीय रूप मे, यह एक समतल वक्र है जो बाईं ओर से दाईं ओर ढालू

होता है (जैसा कि पिछले अध्याय के अन्तिम चित्र 39 4 में दिखाया गया है)।

परन्तु ब्याज की बहुत नीची दर पर, जैसे कि 2 प्रतिशत, मुद्रा की सट्टा माग पूर्णतया लोचदार बन जाती है। तरलता पाश या जाल (liquidity trap) कहते है जिसमें वक्र का अन्तिम भाग उस ब्याज दर पर क्षैतिज अक्ष के समानान्तर हो जाता है। ऐसा इसलिए कि ब्याज की बहुत नीची दर पर लोग मुद्रा को बाडो मे निवेश करने की अपेक्षा नकदी मे रखने को अधिमान देते है क्योंकि बांडो को क्रय करने का मतलब है कि निश्चित हानि उठाना।

मुद्रा की कुल माग (Total demand for money)—मुद्रा की कुल माग ऊपर वर्णित तीन उद्देश्यो से मिलकर बनती है। यदि कुल तरल मुद्रा को M से प्रकट किया जाए, लेनदेन तथा सतर्कता उद्देश्यो को मिलाकर M_1 से और सट्टा उद्देश्य के लिए रखी गई मुद्रा को M_2 से, तो $M = M_1 + M_2$, क्योकि $M_1 = L_1(Y)$ और $M_2 = L_2(r)$ इसलिए मुद्रा का कुल माग फलन $M = L(Y, r)$ होता है।

ब्याज की दर का निर्धारण (Determination of rate of interest)—ऊपर मुद्रा की माग और पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्त्वो का अध्ययन किया गया है। किसी वस्तु या सेवा की कीमत की भाति ब्याज की दर उस स्तर पर निर्धारित होती है, जहा मुद्रा की माग मुद्रा की प्राप्य पूर्ति के बराबर होती है। चित्र 40 4 में, अनुलम्ब रेखा Q_1M मुद्रा की पूर्ति को व्यक्त करती है और L मुद्रा का कुल माग वक्र या तरलता अधिमान वक्र (liquidity preference curve) है। दोनो E बिन्दु पर एक-दूसरे को काटते है जहा ब्याज की सतुलन दर OR स्थापित होती है। यदि सतुलन की इस स्थिति मे कोई विचलन होता है तो ब्याज दर के माध्यम मे सतुलन स्तर F पुन स्थापित हो जाएगा।

चित्र 40 4

E_1 अस्थिर सतुलन की स्थिति है जहा मुद्रा की पूर्ति OM मुद्रा की माग OM_1 से अधिक है। परिणामस्वरूप, ब्याज दर OR_1 से कम होना पारम्भ कर देगी जब तक कि सतुलन ब्याज दर OR पर पहुच नहीं जाती है। इसी प्रकार OR_2 ब्याज दर के स्तर पर, मुद्रा की माग OM मुद्रा की पूर्ति OM से अधिक है। इस कारण, OR_2 ब्याज दर बढना प्रारम्भ कर देगी जब तक कि यह सतुलन दर OR पर नहीं आ जाती है।

यदि मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि कर दी जाती है लेकिन तरलता अधिमान वक्र L वही रहता है, तो ब्याज दर कम हो जाएगी। इसे चित्र 40 5 में दिखाया गया है। वक्र L दिया होने और मुद्रा की पूर्ति QM होने पर, ब्याज की दर OR_5 निर्धारित होती है। मुद्रा की पूर्ति में QM से Q_1M_1 तथा Q_2M_2 पर वृद्धि होने से, ब्याज दर OR_5 से OR_3 से OR_2 पर गिर जाती है। परन्तु मुद्रा की पूर्ति मे और वृद्धि होने से ब्याज दर पर कोई प्रभाव नहीं पडेगा क्योकि OR_2 ब्याज दर पर तरलता अधिमान वक्र L पूर्णतया लोचदार है। इस

चित्र 40.5

चित्र 40.6

प्रकार जब मुद्रा की पूर्ति बढ़कर Q_1M_1 हो जाती है तो E_2 सतुलन बिन्दु के अनुरूप ब्याज दर OR_2 पर स्थिर रहती है।
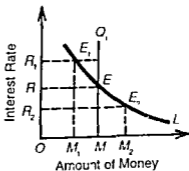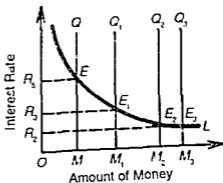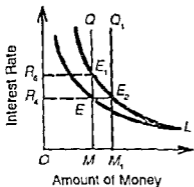
यदि मुद्रा की पूर्ति दी हुई होने पर, मुद्रा की माग बढ़ती है और तरलता अधिमान वक्र ऊपर को सरक जाता है, तो ब्याज दर बढ़ती है। चित्र 40.6 मे दर्शाया गया है। मुद्रा का पूर्ति वक्र QM दिया होने पर जब वक्र L ऊपर को सरक जाता है तो नया सतुलन बिन्दु E_1 होता है जो OR_6 ब्याज दर निर्धारित करता है। यह ब्याज दर इससे पहली OR_4 ब्याज दर से अधिक है जिसका सतुलन बिन्दु E है। यदि तरलता अधिमान मे वृद्धि से मुद्रा की पूर्ति भी उसी अनुपात मे बढ़कर Q_1M_1 हो जाती है तो ब्याज दर मे कोई परिवर्तन नहीं होता और वह OR_4 ही रहती है सिवाय इसके कि नया सतुलन बिन्दु E_2 पर होता है। अत केन्ज का सिद्धान्त यह बताता है कि ब्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहा तरलता अधिमान वक्र मुद्रा के पूर्ति वक्र के बराबर होता है।

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)—हैनसन, राबर्ट्सन, नाइट, हैजलिट, हट्ट तथा अन्य अर्थशास्त्रियो ने केन्ज के ब्याज सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की है। इसे विभिन्न नाम दिए है, जैसे, "एक कॉलिज के खजाची का सिद्धान्त" (a college bursar's theory), "बहुत कहे तो एक अपर्याप्त सिद्धान्त और कम से कम कहना चाहे तो एक भ्रान्तिजनक विवरण" (at best an inadequate and at worst a misleading account) तथा "पूर्वप्रतिष्ठित, वाणिज्यवादी और सामान्य मनुष्य का अर्थशास्त्र" (preclassical, mercantilist, and man-in-the-street economics)।

(1) **कॉलिज खजाची का सिद्धान्त** (College bursar's theory)—केन्ज के विश्लेषण की एक भ्रान्ति तो यह है कि मुद्रा के लिए माग को प्रमुख रूप मे सट्टा उद्देश्य के लिए तरलता अधिमान के साथ जोड़ा गया है, जिससे ब्याज की दर का सीधा सम्पर्क स्थापित किया गया है। सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि बहुत से धनी और चालाक व्यक्ति होते है जो ब्याज की दर गिरने पर बाड बेचकर अधिक नकद मुद्रा रखेंगे और ब्याज की दर बढ़ जाने की स्थिति मे कम नकदी तथा अधिक बाड रखेंगे। परन्तु प्रोफेसर राबर्ट्सन यह नहीं मानते कि व्यक्ति तथा उद्यमी दोनो द्वारा स्रोतों के प्रयोग के रूप मे बाड ही मुद्रा का एकमात्र विकल्प है और मुद्रा का वह सिद्धान्त जो इस बात पर बल देता है कि इस बात का कार्यकरण बाड मार्किट के माध्यम से किया जाए, एक कॉलिज के खजाची का सिद्धान्त है और वास्तविकता या सम्पूर्णता से रहित प्रतीत होता है।

(2) **अपर्याप्त तथा भ्रान्तिजनक सिद्धान्त** (Inadequate and misleading theory)—यह सिद्धान्त हमे इस बारे मे कुछ नहीं बताता कि वह क्या है जो सामान्य दर और ब्याज की वास्तविक दर को निर्धारित करता है। मुद्रा की बजाय बाड रखने मे निहित जोखिम या लागत की अनिश्चितता मापने के रूप मे ब्याज की वास्तविक दर की सगतिपूर्वक व्याख्या नहीं की जा सकती। यदि कोई अनिश्चितता न होती, तो वास्तविक दर सामान्य स्तर मे नीचे एक किसी निश्चित स्तर पर स्थित रहती। इन्हीं कारणों से राबर्ट्सन समझता है कि तरलता अधिमान सिद्धान्त "बहुत कहे तो एक अपर्याप्त सिद्धान्त और कम से कम कहना चाहे तो भ्रान्तिजनक विवरण" है।

(3) **कार्यपद्धति-विषयक भ्रान्ति मे पड़ना है** (Falls into methodological fallacy)—जैसे तरलता छोड़ने की कीमत के रूप मे ब्याज की दर की व्याख्या की जाती है, ठीक वैसे ही अण्डो या किसी भी अन्य वस्तु की कीमत की व्याख्या उनके लिए सापेक्ष अधिमान के द्वारा की जा सकती है। परन्तु एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है मुद्रा की मात्रा मे परिवर्तन से वस्तु की कीमत मे उसी अनुपात मे

परिवर्तन हो जाएगा, परन्तु बाडो की कीमत मे परिवर्तन होने पर थोडी अस्थायी हलचल से अधिक परिवर्तन नहीं होगा। वास्तव मे, जब हम ऋणों की ब्याज दर पर सट्टे के प्रभाव की चर्चा करते हैं, तो कीमत-स्तर और ब्याज की किसी भी दर मे कोई फलनात्मक सम्बन्ध नहीं होता। परिणामस्वरूप, ब्याज की दर पर किसी भी मुद्रा परिवर्तन का कोई सीधा या स्थायी प्रभाव नहीं पडता। इस प्रकार, मुद्रा की मात्रा और ब्याज की दर मे एक निश्चित फलनात्मक सम्बन्ध मानकर, केन्ज का सिद्धान्त "कार्यपद्धति-विषयक भ्रान्ति" मे पड जाता है।

(4) **सम्पत्ति-सचय के रूप मे मुद्रा व्यर्थ नहीं होती** (Money as a store of wealth is not barren)—केन्ज मानता है कि सट्टा-उद्देश्यो के लिए रखी गई नकद मुद्रा ही फलदायक होती है, जबकि सम्पत्ति-सचय के रूप मे मुद्रा व्यर्थ रहती है। यह एक भ्रमपूर्ण विचार है। जैसाकि प्रोफेसर डब्ल्यू एच हट्ट ने बताया है, "मुद्रा उतनी ही उत्पादक होती है जितनी कि दूसरी सब परिसम्पत्तियाँ और उत्पादक भी ठीक उसी अर्थ मे। मुद्रा परिसम्पत्तियों के लिए माग उत्पादक ससाधनों के लिए माग होती है।"

(5) **असगत सिद्धान्त** (Inconsistent theory)—प्रोफेसर नाइट ने उन तथ्यों को ध्यान मे रखते हुए केन्ज के सिद्धान्त की आलोचना की है जोकि इस सिद्धान्त द्वारा अपेक्षित तथ्यो के एकदम असगत है। प्रोफेसर हैजलिट ने भी इस बात की चर्चा की है, पर नाइट को उसका श्रेय नहीं दिया। केन्ज के सिद्धान्त के अनुसार, मदी के निम्न तल पर ब्याज की दर अधिकतम होनी चाहिए, क्योकि गिरती हुई कीमतो के कारण उस समय तरलता अधिमान प्रबलतम होता है, इसलिए सम्पत्ति-धारकों को नकदी छोडने की प्रेरणा देने के लिए अपेक्षाकृत अधिक पुरस्कार देना होगा। परन्तु तथ्य इसके एकदम उलट होते है। मदी मे अल्पकालीन ब्याज दरे निम्नतम होती है क्योकि निवेश के अवसर अस्थायी रूप मे बन्द होते है और ऋणदाताओ के पास अपनी नकदी के लिए कोई निकास नहीं होते। इसके विपरीत केन्ज की अल्पकालीन ब्याज दरे तेजी (boom) के शिखर पर निम्नतम होनी चाहिए, क्योकि लोग नकद मुद्रा को अपने पास रखने की बजाय अपनी मुद्रा का निवेश करना चाहेगे। क्योकि तरलता अधिमान निम्नतम होता है, इसलिए उसे लेने के लिए बहुत ही थोडा पुरस्कार देना होगा। परन्तु वास्तव मे, तेजी के शिखर पर ब्याज की दर अधिकतम होती है।

(6) **तरलता के लिए बचत आवश्यक** (Saving essential for liquidity)—केन्ज मानता है कि ब्याज की दर केवल बचत या प्रतीक्षा का अपने आप मे प्रतिफल नहीं है बल्कि तरलता छोडने का पुरस्कार है। निवेश करने हेतु ब्याज पर निधियो को प्राप्त करने के लिए बचत जरूरी है। प्रोफेसर वाइनर के शब्दों मे, "बचत के बिना कोई तरलता छोडने के लिए नहीं हो सकती। ब्याज की दर तरलता के बिना बचत का प्रतिफल होती है।"

(7) **ब्याज दर के लिए तरलता आवश्यक नहीं** (Liquidity not essential for interest rate)—ब्याज की प्रकृति की व्याख्या करने मे 'तरलता अधिमान' शब्द न तो सहायक ही है और न आवश्यक ही। यह शब्द स्पष्टीकरण करने की बजाय गडबड पैदा करता है। यह केवल अस्पष्ट ही नहीं बल्कि परस्पर विरोधी भी है। क्योकि, जैसाकि प्रोफेसर हैजलिट ने बताया है, "यदि एक व्यक्ति अपने पैसे को जमा खाते के अथवा अल्पकालीन राज्यकोष बिलो के रूप मे रखता है, तो उसे उन पर ब्याज का भुगतान होता है, इसलिए उसे ब्याज भी मिलता है और 'तरलता' भी। फिर केन्ज के इस सिद्धान्त की क्या स्थिति है कि ब्याज तरलता को छोडने का 'पुरस्कार' होता है?"

(8) **तरलता पाश का गलत विचार** (Wrong notion of liquidity trap)—केन्ज का तरलता पाश का विचार भी गलत है। वास्तव मे यह हो सकता है कि ब्याज की नीची दर पर तरलता अधिमान वक्र लोचदार होने की बजाय पूर्ण बेलोच हो। हम जानते है कि मदी मे सब प्रत्याशाए अत्यन्त निराशाजनक होती है। इसलिए यह तर्क ठीक नहीं है कि ब्याज की दर के सम्बन्ध मे यह प्रत्याशाए होंगी कि ब्याज दर बढ जाएगी।

(9) वास्तविक तत्त्वों की उपेक्षा (Ignores real factors)—केन्ज के विश्लेषण में सबसे बड़ी भ्रान्ति यह है कि वह ब्याज की दर के निर्धारण में वास्तविक तत्त्वों को छोड़ देता है। वह ब्याज की दर को विशुद्ध मुद्रा तत्त्व के रूप में लेता है और इस प्रकार केवल "व्यापारियों की पूर्व-क्लासिकी मान्यता या उस धारणा पर, जो एक साधारण आदमी की धारणा रही है", ही लौट आता है। नट विक्सैल पहला अर्थशास्त्री था जिसने ब्याज का वास्तविक तथा मुद्रा सिद्धान्त प्रस्तुत किया और केन्ज के लिखने से पहले उस सिद्धान्त का इर्विंग फिशर, लुडविग वान मिसिस तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने इसका परिष्करण तथा परिवर्तन किया। प्रोफेसर हैजलिट ठीक ही कहता है कि "केन्ज ने कोई नई बात नहीं दी। उसने छिछले पानी में केवल गड़बड़ी की और जिस प्रकार का ब्याज सिद्धान्त उसने प्रस्तुत किया वह पूर्व-क्लासिकी, वाणिज्यवादी और साधारण मनुष्य का अर्थशास्त्र है।"

(10) अनिर्धारित सिद्धान्त (Indeterminate theory)—क्लासिकी सिद्धान्त की भांति केन्ज का सिद्धान्त भी अनिर्धारित है। केन्ज निश्चयपूर्वक कहता है कि तरलता अधिमान तथा मुद्रा की मात्रा ब्याज की दर को निर्धारित करते हैं। परन्तु यह बात ठीक नहीं है क्योंकि आय के प्रत्येक स्तर पर एक नया तरलता अधिमान वक्र खींचना पड़ेगा। इसलिए, जब तक आय स्तर पहले से ज्ञात न हो, तब तक मुद्रा की माग और पूर्ति वक्र हमें यह नहीं बता सकते कि ब्याज की दर क्या होगी। इस प्रकार प्रोफेसर हैनसन के अनुसार, "क्लासिकी सिद्धान्त की वह आलोचना, जो केन्ज ने की है, उसके अपने सिद्धान्त पर भी समान रूप से लागू होती है।"

(11) अपूर्ण सिद्धान्त (Incomplete theory)—हिक्स, मॉमर्स, लर्नर, हैनसन तथा अन्य अर्थशास्त्रियों का मत है कि चार कारण हैं जो आय के स्तर के साथ ब्याज की दर को निर्धारित करते है . (i) पूंजी की सीमान्त उत्पादकता फलन (MEC), (ii) बचत फलन (या उपयोग फलन) (iii) तरलता अधिमान फलन और (iv) मुद्रा की मात्रा का फलन। यद्यपि केन्ज के विश्लेषण में ये चारों तत्त्व पाए जाते हैं, फिर भी, केन्ज उन्हें ब्याज के सिद्धान्त में नहीं लाता। वह केवल अन्तिम दो तत्त्वों को लेता है और पहले दो को छोड़ देता है। इस प्रकार केन्ज ब्याज का सुगठित और निश्चित सिद्धान्त देने में असफल रहता है।

(12) ब्याज दर तथा मुद्रा की मात्रा के सम्बन्ध में गड़बड़ी (Confusion regarding relation between interest rate and quantity of money)—केन्ज के विश्लेषण में, ब्याज की दर और मुद्रा की मात्रा के बीच सम्बन्ध के बारे में गड़बड़ है। एक ओर तो वह कहता है कि मुद्रा के लिए माग उलट अनुपात में ब्याज की दर पर निर्भर करती है और दूसरी ओर कहता है कि ब्याज की न्यूनतम दर उलट अनुपात में मुद्रा की मात्रा पर निर्भर करती है। अपने समस्त विश्लेषण में केन्ज इन दोनों प्रस्तावनाओं (propositions) में कोई अन्तर नहीं करता और उन्हें प्राय. समान रूप से प्रयोग करता है। केन्ज के विश्लेषण में यह एक आधारभूत गलती है क्योंकि पूर्वोक्त (former) संबंध व्यक्ति के लिए और उत्तरोक्त (latter) संबंध मार्किट के लिए सही ठहरता है।

निष्कर्ष (Conclusion)—निष्कर्ष यह है कि केन्ज का सिद्धान्त केवल अनिर्धारित ही नहीं बल्कि ब्याज की दर के निर्धारण की अपर्याप्त व्याख्या भी है। यह सिद्धान्त ब्याज की दर को एक विशुद्ध मुद्रा तत्त्व के रूप में लेता है और वास्तविक तत्त्वों को छोड़कर सिद्धान्त को और भी संकुचित तथा अवास्तविक बना देता है।

8. इसकी ऋण-योग्य निधि के सिद्धान्त से श्रेष्ठता
(ITS SUPERIORITY OVER THE LOANABLE FUNDS THEORY)

केन्ज के सिद्धान्त की आलोचना के बावजूद यह ऋण-योग्य निधि के सिद्धान्त से कई बातों में श्रेष्ठ समझा जाता है।

(1) केन्जीय सिद्धान्त स्टॉक विश्लेषण है। यह एक समय मे, स्टॉक या मुद्रा की मात्राओ का विवरण है, जबकि ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त एक समय-अवधि मे कुछ प्रवाहो या मुद्रा की मात्राओ का विवरण है। मुद्रा के स्टाक तथा प्रवाह-रूपो की यह व्याख्या केन्जीय विश्लेषण मे मुद्रा की स्थिर पूर्ति का कारण बनती है और ऋण-योग्य सिद्धान्त मे मुद्रा की परिवर्ती पूर्ति का। क्योंकि किसी एक समय में मुद्रा की मात्रा स्थिर होती है, इसलिए अर्थशास्त्री ब्याज दर के प्रति स्टॉक मार्ग को अधिमान देते है। इस प्रकार, तरलता अधिमान सिद्धान्त ऋण-योग्य निधि के सिद्धान्त से श्रेष्ठ है।

(2) तरलता अधिमान सिद्धान्त ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त से अधिक वास्तविक है क्योंकि यह व्यावसायिक ससार मे ब्याज दर के आचरण के अधिक समीप है। यह सिद्धान्त व्यापारिक प्रत्याशाओं और ब्याज दर मे सम्बन्ध तथा मुद्रा को नकदी मे रखने के लिए विभिन्न उद्देश्यों का स्पष्टतया वर्णन करता है।

(3) ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त के सभी चर (variables) जैसे बचत, निवेश, सग्रह (hoarding) विसग्रह (dishoarding), आशिक सतुलन विश्लेषण के रूप मे है, जबकि केन्जीय प्रणाली में मुद्रा की माग एवं पूर्ति की सामान्य निर्धारण प्रणाली के अश के रूप मे व्याख्या की गई है। अत ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त एक सामान्य निर्धारण प्रणाली मे पूरा नहीं उतरता।

(4) ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त मे बचत एव निवेश अनावश्यक है और ब्याज दर $H + DS$ [(सग्रह + निर्बचत (dissaving)] तथा $M + DH$ (मुद्रा की पूर्ति + सग्रह) द्वारा निर्धारित हो सकती है, जबकि केन्जीय सिद्धान्त मे बचते ब्याज बेलोच है और निवेश निधिया मुद्रा की पूर्ति पर निर्भर करते है। इस कारण केन्जीय सिद्धान्त ऋण-योग्य निधियों के सिद्धान्त से श्रेष्ठ है।

9. ब्याज की क्लासिकी, ऋण-योग्य निधियो तथा केन्जीय सिद्धातो की अनिर्धारितता (INDETERMINACY OF THE CLASSICAL, LOANABLE FUNDS AND THE KEYNESIAN THEORIES OF INTEREST)

केन्ज ने ब्याज के क्लासिकी सिद्धान्त की इस कारण आलोचना की कि वह अनिर्धारण है क्योंकि वह ब्याज दर को आय स्तर के साथ सम्बद्ध नहीं करता। हैनसन के अनुसार, "केन्ज की क्लासिकी सिद्धान्त की आलोचना समान रूप से उसके अपने सिद्धान्त पर लागू होती है" तथा ऋण-योग्य निधि के सिद्धान्त पर भी। हम इन सिद्धान्तो की अनिर्धारितता की प्रकृति की नीचे व्याख्या करते है।

ब्याज के क्लासिकी सिद्धान्त मे, जब तक आय स्तर पहले से ज्ञात न हो, तब तक ब्याज दर को जानना सभव नहीं क्योंकि बचते आय के स्तर पर निर्भर करती है, तथा आय स्तर को जाना नहीं जा सकता, जब तक कि पहले ब्याज दर ज्ञात न हो। ब्याज की कम दर निवेश, उत्पादन, रोजगार, आय तथा बचतो मे वृद्धि करेगी। इसलिए प्रत्येक आय स्तर के लिए एक अलग पूर्ति वक्र खींचना पड़ेगा। यह सारा तर्क चक्रीय (circular) है जो ब्याज सिद्धान्त को अनिर्धारित बना देता है।

यही तर्क ब्याज के ऋण-योग्य निधि के सिद्धान्त पर लागू होता है। ऋण-योग्य निधियो की पूर्ति अनुसूची (schedule) बचतो, विसग्रह तथा बैको से प्राप्त मुद्रा से बनती है। क्योंकि बचते पिछली आय, नई मुद्रा तथा चालू आय की सक्रिय बाकी राशियो के साथ परिवर्तित होती रहती है, इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि ऋणयोग्य निधियों की कुल पूर्ति अनुसूची भी आय के साथ परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार जब तक आय स्तर पहले से ज्ञात न हो, तब तक ऋण-योग्य निधि सिद्धान्त अनिर्धारित रहता है।

चित्र 40.7

इन दोनो सिद्धान्तों की अनिश्चितता की प्रकृति चित्र 40.7 द्वारा समझाई गई है। क्लासिकी सिद्धान्त बचत अनुसूचियो का एक समूह विभिन्न आय स्तरो पर प्रदान करता है तथा ऋण योग्य निधि सिद्धान्त विभिन्न आय स्तरों पर निवेश अनुसूचियों के एक समूह को व्यक्त करता है। ये दोनों अनुसूचिया आय स्तरो को विभिन्न ब्याज दरों के साथ सबद्ध करती है। चित्र मे हम बचत तथा निवेश को क्षैतिज अक्ष पर तथा ब्याज दर को अनुलम्ब अक्ष पर लेते है। दोनों सविन्यासो (formulations) की बचत अनुसूचिया S_1Y_1 तथा S_2Y_2 दिखाई गई है तथा II निवेश माग अनुसूची है। निवेश माग अनुसूची II तथा बचत अनुसूची S_1Y_1 दी हुई होने पर, जब आय Y_1 हो तो बचत तथा निवेश OR ब्याज दर बराबर होते है। इसी प्रकार आय Y_1 होने पर बचत अनुसूची S_1Y_1 निवेश माग अनुसूची II के बराबर OR_1 पर ब्याज दर होती है। ये सतुलन की अवस्थाए विभिन्न आय स्तरो पर विभिन्न ब्याज दरों के साथ सम्बन्ध को बताती है परन्तु ब्याज दर के निर्धारण के बारे में कुछ नहीं बतलाती। वे यह प्रकट करती हैं कि ब्याज दर बचतो, निवेश तथा आय स्तर का फलन है। जब तक आय स्तर ज्ञात न हो, ब्याज दर का निर्धारित करना सभव नहीं होता। अत. क्लासिकी तथा ऋण-योग्य निधियों के सिद्धान्त अनिर्धारित है।

ब्याज का केन्जीय सिद्धान्त भी अनिर्धारित है क्योकि तरलता अधिमान अनुसूची आय स्तर के साथ सबद्ध नहीं होती। जब तक आय स्तर पहले से ही ज्ञात न हो, मुद्रा के माग तथा पूर्ति वक्र यह नहीं बता सकते कि ब्याज दर क्या होगी। केन्जीय सविन्यास केवल यह बतलाता है कि तरलता अधिमान अनुसूचियो का समूह विभिन्न आय स्तरों पर विभिन्न ब्याज दरो के साथ किस प्रकार सबद्ध होता है। चित्र 40.8 मे, विभिन्न आय स्तरो पर तरलता अधिमान अनुसूचियों के समूह LY, L_1Y_1 तथा L_2Y_2 खींचे गये हैं। एक पूर्णतया बेलोच मुद्रा का पूर्ति वक्र MQ इस मान्यता पर खींचा गया है कि मुद्रा की पूर्ति मुद्रा प्राधिकारी द्वारा दी हुई मात्रा में चालू की गई है। यदि आय स्तर Y हो, तो तरलता अधिमान अनुसूची LY मुद्रा की पूर्ति अनुसूची MQ के बराबर OR ब्याज दर पर होती है। यदि आय स्तर बढकर Y_1 हो जाता है तो तरलता अधिमान अनुसूची भी ऊपर की ओर सरककर L_1Y_1 हो जाती है और MQ के साथ OR_1 ब्याज दर पर बराबर होती है। यदि आय कम होकर Y_2 हो जाती है तो तरलता अधिमान वक्र नीचे की ओर सरक कर L_2Y_2 हो जाता है तथा OR_2 ब्याज दर पर MQ वक्र के बराबर होता है। अत केन्जीय सिद्धान्त विभिन्न आय स्तरों को विभिन्न ब्याज दरो के साथ सबद्ध करता है परन्तु यह नहीं बताता कि ब्याज दर क्या होगी। इस प्रकार यह सिद्धान्त भी अनिर्धारित है।
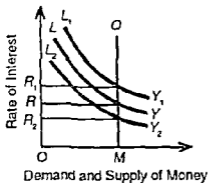
चित्र 40.8

10. ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त
(MODERN THEORY OF INTEREST)

ऊपर के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि ब्याज का कोई एकल सिद्धान्त पर्याप्त तथा निर्धारित नहीं है। एक पर्याप्त सिद्धान्त के निर्धारण के लिए यह आवश्यक है कि वह ब्याज दर को प्रभावित करने वाले सभी वास्तविक तथा मुद्रा तत्त्वों का अध्ययन करके उनका समावेश करे। केन्ज़ के सब औजारों का उपयोग करते हुए हिक्स ने ब्याज सिद्धान्त का ऐसे ढंग से प्रस्तुतीकरण किया है जिसमे एक सम्पूर्ण तथा निर्धारित ब्याज सिद्धान्त मे उत्पादकता, मितव्ययिता (thrift), तरलता अधिमान और मुद्रा की पूर्ति सभी तत्त्वों को आवश्यक माना गया है। हैनसन के अनुसार, "एक सतुलन की अवस्था प्राप्त होती है जब नकदी शेषो की इच्छित मात्रा मुद्रा की मात्रा के बराबर होती है, जब पूजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज की दर के बराबर होती है और अन्तिम, जब निवेश की मात्रा बचत की सामान्य या इच्छित मात्रा के बराबर होती है। और ये तत्त्व परस्पर सम्बन्धित है।" अत ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त मे ऋण-योग्य निधियों के सिद्धान्त का तरलता अधिमान सिद्धान्त के साथ समन्वय करने के लिए बचत, निवेश, तरलता अधिमान एव मुद्रा की मात्रा का आय के विभिन्न स्तरो पर एकीकरण किया गया है। दोनो सविन्यासो के चारो चरो को इकट्ठा करके दो नए वक्र बनाए गए है। एक *IS* वक्र है जो ऋण-योग्य निधियो के प्रवाह चरो (या क्लासिकी सिद्धान्त के वास्तविक तत्त्वों) को व्यक्त करता है तथा दूसरा *LM* वक्र है जो तरलता अधिमान सविन्यासो के स्टॉक चरो को प्रकट करता है। *IS* तथा *LM* वक्र मे सतुलन निश्चित हल प्रदान करता है।

IS वक्र (The *IS* Curve)—*IS* वक्र ऋण-योग्य निधियो के सविन्यास से व्युत्पन्न (derive) किया गया है। यह वक्र बचत अनुसूचियो (schedules) तथा निवेश अनुसूचियो के परस्पर सम्बन्ध की व्याख्या करता है। दूसरे शब्दो मे, यह वक्र आय स्तरो तथा ब्याज दरो के विभिन्न सयोगो पर बचत तथा निवेश की समानता दर्शाता है। चित्र 40 9 (A) मे, बचत पर ब्याज का प्रभाव तुच्छ मान लेने
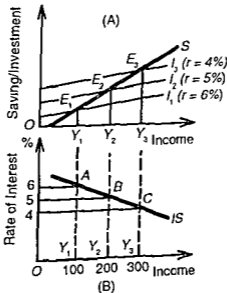
चित्र 40 9

के कारण, आय के सम्बन्ध में बचत वक्र S स्थिर अवस्था में खींचा गया है। बचत वक्र यह प्रकट करता है कि आय के बढ़ने के साथ बचत बढ़ती है, अर्थात् बचत आय का बढ़ता हुआ फलन है। दूसरी ओर, निवेश ब्याज दर तथा आय स्तर पर निर्भर करता है। ब्याज दर का स्तर दिया होने पर, निवेश का स्तर आय के स्तर के साथ बढ़ता है। 5 प्रतिशत ब्याज दर पर, निवेश वक्र I_2 है। यदि ब्याज दर कम करके 4 प्रतिशत कर दी जाती है तो निवेश वक्र ऊपर को सरककर I_3 हो जाएगा। निवेश दर को बढ़ाना पड़ेगा ताकि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता को कम करके नीची ब्याज दर के साथ बराबर किया जा सके। अतः निवेश वक्र I_3 आय के प्रत्येक स्तर पर अधिक निवेश को दर्शाता है। इसी प्रकार जब ब्याज दर बढ़ाकर 6 प्रतिशत कर दी जाती है तो निवेश वक्र नीचे सरककर I_1 हो जाएगा। निवेश दर में कमी करना आवश्यक है ताकि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता को बढ़ाकर ऊंची ब्याज दर के बराबर किया जा सके। चित्र 40.9 (A) के बिल्कुल नीचे चित्र (B) में आय के प्रत्येक स्तर को विभिन्न ब्याज दरों से चिह्नित करके IS वक्र खींचा गया है। इस IS वक्र का प्रत्येक बिन्दु आय के स्तर को व्यक्त करता है, जहां ब्याज की विभिन्न दरों पर बचत निवेश के बराबर होती है। ब्याज दर को अनुलम्ब अक्ष पर तथा आय के स्तर को समानान्तर अक्ष पर लिया गया है। यदि ब्याज दर 6 प्रतिशत हो तो S वक्र I_1 वक्र को E_1 पर काटता है जिसमें OY_1 आय स्तर निर्धारित होता है। इस आय स्तर से, जो 100 करोड़ रुपए है, हम एक खण्डित (dashed) रेखा नीचे की ओर खींचते हैं जो 6 प्रतिशत से बढ़ाई गई रेखा को A बिन्दु पर काटती है। 5 प्रतिशत ब्याज दर पर S वक्र I_2 वक्र को E_2 पर काटता है जिससे OY_2 (200 करोड़ रुपए) आय निर्धारित होती है। नीचे के चित्र (B) में, बिन्दु B आय स्तर 200 करोड़ रुपए तथा 5 प्रतिशत ब्याज दर के बराबर है। इसी प्रकार, बिन्दु C ब्याज की 4 प्रतिशत दर पर S तथा I_3 वक्रों के सतुलन के बराबर है। इन बिन्दुओं A, B एवं C को एक रेखा द्वारा मिलाने से हमें IS वक्र प्राप्त होता है। यह IS वक्र बाएं से दाएं नीचे की ओर ढालू होता है क्योंकि ब्याज दर के गिरने के साथ-साथ निवेश में वृद्धि होती है और आय में भी।

LM वक्र (The LM Curve)—LM वक्र ब्याज दरों और आय स्तरों के सभी संयोग बताता है जिन पर मुद्रा की मांग और पूर्ति बराबर होते हैं। LM वक्र केन्जीय सविन्यास की तरलता अधिमान अनुसूची तथा मुद्रा की पूर्ति अनुसूची से चित्र 40.10 (A) एवं (B) में व्युत्पन्न किया गया है। आय के 100 करोड़ रुपए, 200 करोड़ रुपए तथा 300 करोड़ रुपए स्तरों पर क्रमशः L_1Y_1, L_2Y_2 और L_3Y_3 तरलता अधिमान वक्रों का एक समूह खींचा गया है। मुद्रा पूर्ति के पूर्णतया बेलोच वक्र MQ के साथ मिलकर ये वक्र हमें LM वक्र प्रदान करते हैं। LM वक्र में बिन्दुओं की एक शृंखला मिली होती है,
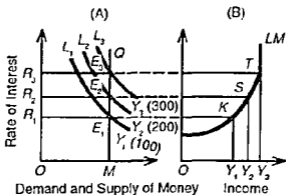
चित्र 40.10

जिस पर प्रत्येक बिन्दु ब्याज-आय स्तर को व्यक्त करता है, जहा मुद्रा की माग (L) मुद्रा की पूर्ति (M) के बराबर होती है। यदि आय स्तर Y_1 (100 करोड रुपए) हो तो OR_1 ब्याज दर पर मुद्रा की माग L_1Y_1 मुद्रा की पूर्ति QM के बराबर होती है। Y_2 (200 करोड रुपए) आय स्तर पर L_2Y_2 तथा QM वक्र OR_2 ब्याज दर पर बराबर होते है। इसी प्रकार Y_3 (300 करोड रुपए) आय स्तर पर L_3Y_3 तथा QM वक्र OR_3 ब्याज दर पर बराबर होते है। मुद्रा की पूर्ति, तरलता अधिमान, आय स्तर तथा ब्याज दर चित्र 40 10 (B) मे दिखाए गए LM वक्र के लिए सामग्री प्रदान करते है। मान लीजिए कि Y_1 (100 करोड रुपए) आय स्तर है, जो चित्र (B) में आय अक्ष पर अकित किया गया है। 100 करोड रुपए की आय तरलता अधिमान वक्र L_1Y_1 द्वारा व्यक्त मुद्रा की माग को उत्पन्न करती हे। चित्र 40 10 (A) के E_1 बिन्दु से, जहा L_1Y_1 वक्र MQ वक्र को काटता है, दाई ओर एक खण्डित रेखा बढाइए जो चित्र 40 10 (B) मे Y_1 से ऊपर खींची गई रेखा को K बिन्दु पर मिले। इसी प्रकार चित्र 40 10 (B) मे बिन्दु S एव T भी निश्चित किए जा सकते है। इन सभी बिन्दुओ K, S एव T को एक रेखा द्वारा मिलाने से हमे LM प्राप्त होता है। यह वक्र विभिन्न आय स्तरो को ब्याज दरो के साथ सबद्ध करता है परन्तु यह नहीं दर्शाता कि ब्याज दर क्या होगी।

LM वक्र बाएँ से दाएँ ऊपर की ओर ढालू होता है क्योंकि मुद्रा की मात्रा दी हुई होने पर तरलता के लिए बढ रहा अधिमान अपने आपको ऊची ब्याज दर मे अभिव्यक्त करता है। यह LM वक्र धीरे-धीरे पूर्णतया बेलोच हो जाता है क्योंकि जब आय के ऊचे स्तरो पर लेन-देन तथा सतर्कता उद्देश्यो के लिए माग बढती है तो दी हुई मुद्रा की पूर्ति में से सट्टा उद्देश्य की माग पूरी करने के लिए कुछ भी नहीं बचता। यह भी ध्यान देने योग्य है कि बिल्कुल बाई और LM वक्र ब्याज दर के साथ पूर्णतया लोचदार है, चित्र 40 10 (B) मे T से ऊपर का भाग। आय स्तर मे कमी होने पर लेन-देन तथा सतर्कता उद्देश्यो के लिए मुद्रा की माग भी कम हो जाती है। इस प्रकार मुद्रा की अधिक मात्रा निष्क्रिय शेषो के रूप में प्राप्त होती है परन्तु इससे ब्याज दर कम नहीं होती क्योकि हम ऐसी सीमा पर पहुच चुके होते है जिनके बाद ब्याज दर और नहीं गिर सकती। जिस निम्न सीमा तक ब्याज दर गिरेगी, वह केन्ज़ीय तरलता पाश है जिसका ऊपर केन्ज़ के ब्याज सिद्धान्त मे विस्तृत वर्णन किया गया है।

ब्याज दर का निर्धारण (Determination of the rate of interest)—IS तथा LM वक्र आय स्तरो तथा ब्याज दरो से सम्बद्ध होते है। अपने आप मे वे न तो आय स्तर और न ही ब्याज दर के बारे में बता सकते है। केवल उनका काटना ही ब्याज दर को निर्धारित करता है। इसे चित्र 40 11 मे व्यक्त किया गया है, जहा LM तथा IS वक्र E बिन्दु पर काटते है और OY आय स्तर के अनुरूप OR ब्याज दर निर्धारित होती है। ये आय स्तर तथा ब्याज दर वास्तविक (बचत-निवेश) बाजार तथा मुद्रा (की माग एव पूर्ति) बाजार मे साथ-साथ सतुलन स्थापित करते है। यह सामान्य सतुलन की स्थिति एक निश्चित समय मे पाई जाती है। यदि किसी सतुलन अवस्था मे कोई विचलन हो तो कुछ शक्तिया इस प्रकार कार्य करेगी कि सतुलन अवस्था पुन स्थापित हो जाएगी। OY_1 आय स्तर पर, वास्तविक बाजार मे ब्याज दर Y_1B है तथा मुद्रा बाजार मे Y_1A। जब वास्तविक बाजार की ब्याज दर मुद्रा बाजार की ब्याज दर से अधिक हो ($Y_1B > Y_1A$) तो व्यापारी मुद्रा
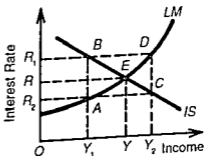
चित्र 40 11

बाजार में से कम ब्याज दर पर उधार लेंगे तथा उधार ली गई निधियों को पूजी बाजार में ऊंची दर पर निवेश कर देंगे। इससे निवेश गुणक द्वारा आय का स्तर बढकर OY हो जाएगा तथा ब्याज दर का संतुलन स्तर OR प्राप्त हो जाएगा। दूसरी ओर, OY_2 आय स्तर पर वास्तविक बाजार में ब्याज दर मुद्रा बाजार में ब्याज दर से कम होने पर ($Y_2C < Y_2D$), व्यापारी पूजी बाजार में निवेश करने की अपेक्षा मुद्रा बाजार में ऋणमुक्त होने का यत्न करेंगे। इसके परिणामस्वरूप निवेश कम होगा और इसके गुणक प्रभाव द्वारा आय कम होकर OY हो जाने पर पुन ब्याज की सतुलन दर OR स्थापित हो जाएगी।

IS तथा LM वक्रों में परिवर्तन (Changes in IS and LM curves)—IS वक्र या LM वक्र या दोनो में परिवर्तन होने पर सतुलन स्थिति बदल जाती है और उसी के अनुसार ब्याज दर निर्धारित होती है। इन दोनों वक्रों में परिवर्तनों के प्रभावों को चित्र 40 12 में दिखाया गया है। मान लीजिए कि IS और LM मूल वक्र है। ये E बिन्दु पर काटते है, जहा OR ब्याज दर OY आय स्तर पर निर्धारित होती है। यदि निवेश माग वक्र ऊपर की ओर सरक जाता है या बचत वक्र नीचे की ओर, तो IS वक्र दाई ओर सरक कर IS_1 हो जाएगा। LM वक्र दिया हुआ होने पर, नए सतुलन बिन्दु E_1 पर ब्याज दर OR_1 तथा आय स्तर OY_1 होगा। यदि मुद्रा की मात्रा बढा दी जाती है या तरलता अधिमान वक्र नीचे सरक जाता है, तो LM वक्र दाईं ओर सरक कर LM_1 वक्र हो जाएगा। यह IS_1 वक्र को E_2 बिन्दु पर काटता है। जिससे नई सतुलन ब्याज दर OR तथा आय स्तर OY_2 होता है। इस प्रकार, LM वक्र दिया हुआ होने पर, जब IS वक्र दाई ओर सरक जाता है तो आय बढती है और इसके साथ ब्याज दर बढती है। दूसरी ओर IS वक्र दिया हुआ होने पर, जब LM वक्र दाईं ओर सरकता है तो आय बढ़ती है परन्तु ब्याज दर गिरती है।

चित्र 40.12

अत, हिक्स-हैनसन विश्लेषण ब्याज का एक सम्पूर्ण तथा निर्धारित सिद्धान्त है जिसमें उत्पादकता, मितव्ययिता, तरलता अधिमान तथा मुद्रा की पूर्ति पर आधारित दो निर्धारक IS और LM वक्र, ब्याज के निर्धारण में कार्य करते है।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)

हिक्स-हैनसन के आधुनिक ब्याज सिद्धात की निम्नलिखित कमिया हैं।

1 **स्थैतिक सिद्धात** (Static Theory)—यह स्थैतिक सिद्धात है, जो अर्थव्यवस्था के अल्पकालीन व्यवहार की व्याख्या करता है। इस प्रकार, यह इस बात की व्याख्या करने में असफल है कि अर्थव्यवस्था दीर्घकाल में कैसे कार्य करती है।

2 **ब्याज पर लोचशील नहीं** (Interest Rate not Flexible)—यह सिद्धात इस मान्यता पर आधारित है कि ब्याज पर लोचशील है और LM एव IS में परिवर्तनों के साथ परिवर्तित होती है। परन्तु ऐसा सदैव नहीं हो सकता यदि ब्याज दर दृढ (rigid) हो, क्योंकि समायोजन तत्र (adjustment mechanism) नहीं होगा।

3 **निवेश ब्याज-लोच नहीं** (Investment not Interest Elastic)—यह सिद्धांत यह मानता है कि निवेश ब्याज-लोच है। परन्तु यदि निवेश ब्याज-लोचरहित हो, जैसाकि सामान्यतया व्यवहार में होता है, तो हिक्स-हैनसन सिद्धात सही नहीं ठहरता।

4 **अत्यत बनावटी** (Highly Artificial)—पेटिनकिन के अनुसार, हिक्स-हेनसन सिद्धात अत्यत बनावटी और अधिक सरल है क्योंकि यह अर्थव्यवस्था को वास्तविक और मौद्रिक क्षेत्रों में बाटती है। वास्तव में अर्थव्यवस्था के वास्तविक और मौद्रिक क्षेत्र एक दूसरे के साथ इस प्रकार परस्पर सबधित और परस्पर निर्भर होते है, कि वे एक दूसरे के साथ क्रिया और प्रतिक्रिया करते हैं।

5 **बद मॉडल** (Closed Model)—प्रो रोवन (Rowan) के अनुसार, हिक्स-हेनसन मॉडल एक बद मॉडल है जो अतरराष्ट्रीय व्यापार के प्रभाव पर विचार नहीं करता है। यह नीति समस्याओं के अध्ययन के लिए इसकी उपयोगिता को सीमित करता है।

6 **कीमत स्तर बर्हिजात चर** (Price Sevel Exogenous Variable)—इस मॉडल में कीमत स्तर को बर्हिजात चर माना गया है। यह अवास्तविक है क्योंकि कीमत परिवर्तन एक अर्थव्यवस्था में ब्याज दरों और आय के निर्धारण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

परन्तु ये कमिया एक अर्थव्यवस्था में ब्याज दर के निर्धारण की *व्याख्या करने में IS-LM तकनीक की उपयोगिता को कम नहीं करती हैं।*

11. केन्द्रीय सिद्धान्त से श्रेष्ठता
(SUPERIORITY OVER KEYNESIAN THEORY)

ऊपर वर्णित ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त केन्ज के तरलता अधिमान सिद्धान्त से कई बातो मे श्रेष्ठ है।

(1) केन्ज का ब्याज का सिद्धान्त केवल मुद्रा सिद्धान्त है जो ब्याज दर के निर्धारण मे वास्तविक तत्त्वो की उपेक्षा करता है। ब्याज का आधुनिक सिद्धात केन्ज के सिद्धात से केवल श्रेष्ठ ही नहीं बल्कि अधिक वास्तविक भी है क्योकि यह ब्याज के निर्धारण मे मुद्रा तथा वास्तविक दोनो ही तत्त्वो का अध्ययन करता है। जहाँ केन्ज ब्याज निर्धारण मे केवल तरलता अधिमान तथा मुद्रा की पूर्ति पर विचार करता है, वहाँ आधुनिक सिद्धान्त इन दोनो तत्त्वो के साथ-साथ मितव्ययिता तथा उत्पादकता पर भी ब्याज निर्धारण मे विचार करता है। इस प्रकार ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त केन्द्रीय सिद्धान्त से श्रेष्ठ है।

(2) केन्ज का तरलता अधिमान सिद्धान्त एक अनिश्चित सिद्धान्त है, जबकि आधुनिक सिद्धान्त ब्याज का निश्चित सिद्धान्त है। केन्द्रीय सिद्धान्त मे तरलता अधिमान अनुसूची आय स्तर से सबद्ध नहीं है। यह आय स्तर को जाने बिना ब्याज दर को निर्धारित करता है। परन्तु जब तक आय-स्तर पहले से ही ज्ञात न हो, मुद्रा के माँग एव पूर्ति वक्र ब्याज दर के स्तर के बारे मे बता नहीं सकते। "वास्तव मे, ब्याज दर आय के स्तर के साथ प्रणाली का निर्धारक नहीं है बल्कि निर्धारित है ब्याज दर तथा आय का स्तर परस्पर निर्धारित होते है।"[8] यही ब्याज का आधुनिक सिद्धात प्रदर्शित करता है और केन्ज के सिद्धान्त से अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करता है।

(3) अन्तिम, आधुनिक सिद्धात केन्द्रीय ब्याज सिद्धान से श्रेष्ठ है क्योकि यह बहुत मे नीति सबधी तत्त्वो (*Policy implications*) की व्याख्या करता है, जो केन्ज का सिद्धान्त न कर सका।

मान लीजिए कि चित्र 40 13 मे मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि होती है, जिससे *LM* वक्र दाई ओर सरक कर LM_1 वक्र हो जाता है। इसका IS_2 वक्र पर यह प्रभाव पडता है कि ब्याज दर R_2Y_2 से कम होकर R_3Y_3 हो जाती है और आय का स्तर निवेश मे वृद्धि द्वारा OY_2 से बढकर OY_3 हो जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मुद्रा नीति आय के स्तर को बढाने मे सफल रही क्योकि IS_2 वक्र सापेक्षतया ब्याज-लोच है। यदि *LM* वक्र उस क्षेत्र से ऊपर **पूर्णतया बेलोच** हो, जहाँ IS_1 वक्र इसे R_1 बिन्दु पर काटता है, तो इसका कुल माँग को बढाने के लिए राजकोषीय साधनो का क्या प्रभाव होगा। मान लीजिए कि सरकारी करो को कम करती है, अपने व्यय को बढाती है, या दोनो ही ढग

8 The rate of interest is, in fact, along with the level of income a determinate and not a determinant of the system The rate of interest and the level of income are *mutually determined*"

चित्र 40 13

अपनाती है। इस स्थिति में, IS_2 वक्र दाई ओर IS_3 वक्र के रूप में सरक जाएगा, तथा ब्याज दर बढ़कर R_5 हो जाती है क्योंकि मुद्रा की लेनदेनों की माँग आय स्तर को बिना प्रभावित किए बढ़ती है। OY_2 पर आय का स्तर स्थिर रहता है। यह पूर्ण रोजगार की स्थिति है।

अब हम संतुलन बिन्दु R लेते हैं, जहाँ IS_0 वक्र LM वक्र को काटता है। मुद्रा पूर्ति में वृद्धि का ब्याज दर, निवेश तथा आय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। निर्मित मुद्रा केवल निष्क्रिय शेषों में ही वृद्धि करती है। आय स्तर OY_0 तथा ब्याज दर RY_0 स्थिर रहते हैं क्योंकि IS_0 वक्र सापेक्षतया ब्याज-बेलोच है और LM वक्र पूर्णतया लोचदार है। यह घोर मंदी में तरलता पाश की अवस्था है। ऐसे हालात में, मुद्रा नीति सहायक नहीं हो सकती। इसके लिए राजकोषीय साधन जैसे करों में कमी, सरकारी व्यय में वृद्धि आदि, IS_0 वक्र को दाईं ओर IS_1 वक्र के रूप में परिवर्तित करके पुनरुत्थान (revival) करने में सहायक हो सकते हैं। संतुलन स्थिति से R_1 पर चले जाने से ब्याज दर बढ़कर RY_0 से R_1Y_1 हो जाती है तथा आय के स्तर में OY_0 से OY_1 वृद्धि हो जाती है। यदि हम IS_1 वक्र को LM_1 वक्र से संबद्ध करें तो ब्याज दर में RY_0 की अपेक्षा मामूली सी वृद्धि होगी (R_4Y_4) परन्तु आय के स्तर में वृद्धि (OY_4) बहुत अधिक होगी। इस प्रकार ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त मुद्रा तथा राजकोषीय नीतियों को समझाने में लाभदायक सिद्ध हुआ है, जिसे केन्ज के सिद्धान्त न कर सके।

12. विकसैल का सिद्धान्त ब्याज की संतुलक एवं बाजार दर
(THE WICKSELL THEORY—NATURAL AND MARKET RATE OF INTEREST)

विकसैल[9] पहला अर्थशास्त्री था जिसने संतुलक (natural) ब्याज दर तथा बाजार ब्याज दर के बीच संबंध के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा की। अपनी *Interest and Prices* नामक पुस्तक में उसने "साधारण दर", "सामान्य दर" तथा "वास्तविक दर" जैसे शब्दों को संतुलक दर के पर्याय के रूप में प्रयोग किया है। उसने इसे इन शब्दों में परिभाषित किया है, "ब्याज की वह दर सामान्य या संतुलक वास्तविक दर कहलाएगी जिस दर पर उधार पूंजी की माग और बचतों की पूर्ति पूर्णरूप से परस्पर मेल रखती हो और जो दर कमोबेश नई निर्मित पूंजी पर प्रत्याशित आय के अनुरूप हो।" यह वह दर है और स्थिर मुद्रा पूर्ति और स्थिर कीमतों के साथ मेल रखती है। दूसरी ओर, ब्याज की बाजार दर वह मुद्रा दर है जो ऋण-बाजार में पाई जाती है। यह ब्याज की वह दर है जो बैंक और उधारदाता वसूल करते हैं। यह दर मुद्रा की माग और पूर्ति पर निर्भर करती है।

मान्यताएं (Assumptions)—विकसैल का सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

1. अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार है।
2. निवेश ब्याज की दर का घटता फलन है।
3. बचत ब्याज की दर का बढ़ता फलन है।

विकसैल का मत है कि ब्याज की संतुलक दर निश्चय से घटती-बढ़ती रहती है। इसे अज्ञात कर्जों की माग निर्धारित करती है और कर्जों की माग, आगे, नए निवेश की प्रत्याशित लाभदायकता

9 Knut Wicksell, *Interest and Prices A Study of the Causes Regulating the Value of Money* 1988, and *Lectures on Political Economy* Vol II 1906 both translated from Swedish, the former by R F Kahn, 1936 and the later by E Classen, 1935

पर निर्भर करती है। वे सभी साधन जो निवेश की प्रत्याशित लाभदायकता को प्रभावित करते है, ब्याज की सतुलक दर मे परिवर्तन लाते है। वे साधन हैं, उत्पादक दक्षता मे परिवर्तन अथवा तक्नीकी प्रगति, घरेलू और विदेशी माग मे परिवर्तन, पूजी, श्रम तथा भूमि की पूर्ति मे परिवर्तन, इत्यादि। ब्याज की सतुलक दर का दूसरा निर्धारक बचतो की स्थिर पूर्ति है जिसे सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि सब उद्यमो और सब प्रयोगो मे सतुलक दर एक समान ही हो, तथा वर्तमान भूमि से भावी भूमि का अनुपात वर्तमान श्रम से भावी श्रम के अनुपात के बराबर हो। यदि इन सबधो मे कोई विचलन होगा, तो पूजी का मूल्य बदल जाएगा और पूजी वस्तु उद्योगो तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योगो के सबधों मे परिवर्तन ला देगा।

विक्सैल ने लक्ष्य किया है कि सतुलक दर वही नहीं होती जो बाजार दर होनी है। अल्पकालीन में दोनों दरो मे असमानताए होती है जो कीमत स्तर मे परिवर्तन ला देती है। ब्याज की बाजार दर स्थिर होती है और ऋण-योग्य निधियों की माग मे परिवर्तनों से धीरे-धीरे प्रभावित होती है। दीर्घकालीन मे, दोनों दरों मे असमानताए अपने आप ऐसी शक्तियो को जन्म देती हैं जो दोनो में समानता ला देती हैं।

विक्सैल का मत है कि जब अर्थव्यवस्था असतुलन की अवस्था मे होती है, तो सतुलक दर बाजार दर से भिन्न हो जाती है। परिणामत, "सचयी प्रक्रिया" उत्पन्न हो जाती है जिससे पूजी उधार लेने की लागत और नए निवेश की प्रत्याशित लाभदायकता मे भेद प्रकट हो जाता है। सचयी प्रक्रिया असतुलन की वह स्थिति है जिसमे निवल निवेश धनात्मक होता है और एक अवधि से दूसरी अवधि तक निरन्तर बढता चलता है। ऐसा तब होता है जब सतुलक दर की अपेक्षा बाजार-दर नीची होती है। इसे चित्र 40.14 मे दिखाया गया है जहा वक्र I निवेश माग वक्र अथवा ऋणो का माग वक्र है और S बचतों का पूर्ति वक्र अथवा ऋण-योग्य निधियो का वक्र है। मान लीजिए कि ब्याज

चित्र 40.14

की प्राकृतिक दर R है और ब्याज की बाजार दर R_1 है। इस प्रकार ब्याज की बाजार दर R_1 पर निवेश माग (अथवा ऋणो के लिए माग) बचतों की पूर्ति से AB बढ जाती है। इसका मतलब है कि बैंक कर्जों का विस्तार होता है और निवेश वस्तुओ की माग बढाने के लिए निधिया प्रयोग मे लाई जाती है। जब ब्याज की बाजार-दर बढती है, तो मुद्रा-आय का विस्तार होता है और मुद्रा की लेन-देन माग बढ जाती है जिससे उधार देने के लिए मुद्रा की उपलब्ध पूर्ति कम हो जाती है। यह मान लेने पर कि मुद्रा पूर्ति मे आगे और वृद्धि नहीं होती, ब्याज की बाजार (या मुद्रा) दर चित्र 40.14 में E बिन्दु पर ब्याज की सतुलक दर के बराबर हो जाती है। इसके विपरीत, यदि ब्याज की बाजार दर सतुलक दर की अपेक्षा अधिक है, तो बैंक-कर्जों की माग गिर जाती है जिससे ब्याज की बाजार दर तब तक गिरती जाएगी जब तक कि वह सतुलक दर के बराबर नहीं आती।
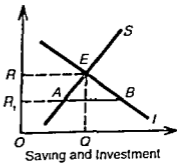
विक्सैल का मत है कि नव प्रवर्तनो (innovations) और तक्नीकी प्रगति के कारण कर्जों की माग बढने से भी असतुलन की सचयी प्रक्रिया शुरू हो सकती है क्योकि नव-प्रवर्तनों एव तक्नीकी प्रगति से नए निवेश की प्रत्याशित लाभदायकता बढ जाती है। इसे चित्र 40.15 में दिखाया गया है। प्रारम्भिक मौद्रिक सतुलन को S तथा I वक्रो की समानता द्वारा बिन्दु E पर दिखाया गया है जहा सतुलक तथा बाजार दोनों ही दरें ब्याज दर R पर समान है। कर्जों की बढ़ी हुई माग को निवेश माग वक्र के ऊपर की ओर I से I_1 पर सरकने द्वारा दिखाया गया है। इससे सतुलक दर

चित्र 40.15
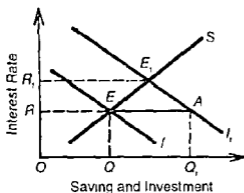
बढ़कर R_1 हो जाती है जब S तथा I_1 वक्र E_1 बिन्दु पर परस्पर काटते हैं। यदि मौद्रिक प्राधिकारी बाजार दर R को बढ़ाकर संतुलक दर R_1 के स्तर तक नहीं लाते तो बैंक ब्याज की बाजार दर (R) पर अपने उधार देने को बढ़ा देते हैं। बढ़ी हुई मौद्रिक माँग कीमतों को बढ़ा देगी। जब कीमतें बढ़ेंगी, तो बाजार दर R पर क्षैतिज अक्ष पर समस्त माँग भी बढ़ेगी। चित्र 40.15 की शब्दावली में, बाजार दर R पर बैंकों द्वारा कर्जों की पूर्ति OQ (= RE) है और जब निवेश निधियों की माँग बढ़कर I_1 हो जाती है, तो बैंक मुद्रा पूर्ति में QQ_1 (= EA) की वृद्धि कर देते हैं। इस प्रकार क्षैतिज रेखा EA पूर्ण लोचदार पूर्ति फलन है जो A पर I_1 वक्र के बराबर हो जाता है और बढ़ी हुई निवेश माँग को बैंक से QQ_1 कर्जे पूरा करते हैं। जब मुद्रा पूर्ति बढ़ती है, तो पूँजी वस्तुओं की माँग बढ़ती है जो आगे वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग बढ़ा देती है और परिणामस्वरूप वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतें बढ़ा देती है। मुद्रा प्रसार की यह प्रक्रिया और कीमतों में स्फीतिकारी वृद्धि अन्त में बाजार दर R को बढ़ाकर ब्याज की संतुलक दर R_1 के स्तर तक बढ़ा देगी। विक्सेल के विश्लेषण में व्यापार संबंधी उतार-चढ़ावों को ब्याज की संतुलक एवं बाजार दरों में विचलन तक ही बनाया गया है। अर्थव्यवस्था में विस्तार तब होता है जब बाजार दर से संतुलक दर ऊँची हो, और विलोमशः भी। नीचे की ओर अथवा ऊपर की ओर परिवर्तन की संचयी प्रक्रिया में बैंक-साख का विस्तार तथा संकुचन बहुत महत्त्वपूर्ण भाग अदा करते हैं। जब दोनों दरें समान हो जाती हैं, तो संचयी प्रक्रिया रुक जाती है। परन्तु कीमतें अपने मूल स्तर पर वापस नहीं आएँगी, फिर भी अर्थव्यवस्था में नई संतुलन स्थिति आ जाएगी जहाँ बाजार दर तथा संतुलक दर बराबर होंगी।

समीक्षात्मक मूल्यांकन (A Critical Appraisal)

विक्सेल ने ब्याज सिद्धान्त, परिमाण सिद्धान्त, समग्र माँग और समस्त पूर्ति, तथा आधुनिक बैंकिंग प्रणाली, इन सब का एकीकरण किया। इस प्रकार उसने मौद्रिक सिद्धान्त में चालू कुछ संधारणाओं का पूर्वानुमान लगाया। विक्सेल ने अपने सिद्धान्त में तीन स्थितियों का उल्लेख किया। प्रथम, संतुलक (संतुलन) दर तथा बाजार (बैंक) दर की समानता, दूसरे, प्रत्याशित बचत एवं निवेश की समानता। तीसरे, स्थिर कीमत स्तर। आधुनिक मौद्रिक विश्लेषण में इन समरूप स्थितियों को "मौद्रिक संतुलन" कहा जाने लगा है। विक्सेल ही ऐसा व्यक्ति था जिसने बचत तथा निवेश में संबंध के आधार पर समस्त माँग और समस्त पूर्ति में असमानताओं को कीमत स्तर में परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी ठहराया। इस तरह से, उसने मुद्रा तथा कीमतों की समस्या के लिए आय विषयक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। ओहलिन का मत है कि "इस दृष्टिकोण में उत्पाद के समस्त सिद्धान्त का भ्रूण (अपरिपक्व रूप) निहित है।"

फिर विक्सेल ने ही मौद्रिक सिद्धान्त में ब्याज की दर के महत्त्व पर बल दिया। प्रोफेसर हैनसन ने लिखा है कि "ब्याज की दर पर संकेन्द्रण करके उसने परिमाण सिद्धान्त की संकीर्ण आधारशिलाएं ही खिसका दीं।"[10] फिर विक्सेल ने संतुलक ब्याज दर तथा बाजार ब्याज दर के संतुलन पर बल

10 A. H. Hansen, *Monetary Theory and Fiscal Policy* p. 71

देकर ब्याज के मौद्रिक तथा अमौद्रिक सिद्धांतों को एकीकृत कर दिया। इस प्रकार उसने ब्याज के उस निश्चायक सिद्धान्त का मार्ग प्रशस्त किया, जिसे आगे चलकर हिक्स तथा हैनसन ने विकसित किया और जो ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त माना जाता है।

फिर, विकसैल की सचयी प्रक्रिया अब विकसैल प्रभाव के नाम से प्रसिद्ध हो चुकी है। यह ब्याज-दर पर बैक साख निर्माण के महत्त्व पर बल देती है। श्रीमती रोबिन्सन ने विकसेल प्रभाव को "पूजी सचय के समस्त सिद्धान्त की कुजी" कहा है।

फिर, विकसैल ऐसा परिमाण सिद्धान्तवादी था जो "ऐसा सिद्धान्त प्रस्तुत करना चाहता था जो आत्मसगत भी हो और तथ्यो से पूरी तरह मेल भी खाता हो।" सचयी प्रक्रिया के दौरान बेकिग प्रणाली तथा अल्पकालीन स्फीतियो के बीच शृखला का जो विश्लेषण विकसैल ने किया है, वह फ्रीडमैन की *Studies in the Quantity Theory of Money* मे अति स्फीति स्थिति के अध्ययनो मे मिलता है। इसी प्रकार उस निरुद्ध (suppressed) स्फीति का श्रेय भी विकसैलीय सचयी प्रक्रिया को दिया जा सकता है जो सयुक्त राज्य अमरीका मे मौद्रिक प्राधिकारियो द्वारा अपनाई गई नीतियो के कारण युद्ध के बाद के वर्षों मे 1945-51 तक रही। इस प्रकार विकसैल आधुनिक मौद्रिक सिद्धान्तवादियों का पूर्वगामी था।

परन्तु आलोचको ने उसे छोडा नहीं है और उसके सिद्धान्त मे कुछ दोष बताए है। प्रोफेसर ऐक्ले (Prof Ackley) का कहना है कि "विकसेल का विश्लेषण सरल परिमाण सिद्धान्त से निष्कर्षो मे भिन्न नहीं है, अपितु केवल उस प्रक्रिया मे भिन्न है जिसके द्वारा उसके निष्कर्ष उपलब्ध हुए है। सतुलन मे, कीमते मुद्रा-पूर्ति के समानुपातिक थीं और काल पर्यन्त दोनो ही स्थिर थीं। सतुलन में, मौद्रिक लेनदेनो के अपेक्षाकृत बडे परिमाण की वित्तव्यवस्था करने के लिए न तो कोई निष्क्रिय-शेष पूजी बाजार मे प्रवाहित हो रहे थे और न ही नकदी शेषो मे वृद्धि करने की जरूरत थी।"[11] इस प्रकार विकसैल ने केवल लेनदेनो तथा सतर्कता उद्देश्यो की ही बात सोची और मुद्रा रखने के सट्टा उद्देश्य की उपेक्षा कर दी। प्रोफेसर हैनसन[12] का मत है कि "इसके अतिरिक्त भी, उसके सिद्धान्त में एक कमी यह है कि वह आय निर्धारण का पर्याप्त सिद्धान्त नहीं है। यह आय के केवल एक निर्धारक निवेश फलन से ही सम्बन्ध रखता है।"

हैनसन ने आगे यह भी लक्ष्य किया है कि विकसैल के विश्लेषण में "उपभोग फलन पर आधारित, गुणक विश्लेषण का भी अभाव है। और फिर, विकसेल के अधिकाश कार्य मे निवेश की ब्याज लोचता के सम्बन्ध में बहुत अधिक आशावादी दृष्टिकोण स्पष्ट झलकता है और ब्याज की दर से नकदी धारणो के लिए माग के सबध मे उसकी दृष्टि बहुत धुधली रही। वह यह बात समझने में असमर्थ रहा कि कुछ स्थितियो मे निवेश फलन ब्याज बेलोच हो सकता है जबकि तरलता अधिमान फलन बहुत अधिक ब्याज लोचदार हो सकता है। विकसैल ने उन स्थितियों को भी स्पष्ट रूप से नहीं समझा जिनके अन्तर्गत ब्याज दर नीति व्यर्थ हो जाती है। यही कारण है कि उसने ब्याज दर मे हेर-फेर द्वारा समस्त माग के प्रवाह तथा कीमतो के स्तर को नियन्त्रित करने की बैकिग प्रणाली की शक्ति को बहुत अधिक बढा-चढा कर प्रस्तुत किया है।"

प्रश्न

1 ब्याज के किसी एक सिद्धान्त की परिभाषा कीजिए जिसमे ब्याज की दर निर्धार्य है।

2 "ब्याज का क्लासिकी सिद्धान्त अनिश्चित है।" इस पर टिप्पणी कीजिए।

11 G Ackley, *op cit* p 61
12 A H Hansen *op cit* p 89

3 तरलता अधिमान तथा समय अधिमान में अन्तर स्पष्ट कीजिए और समझाइए कि ब्याज की दर किस प्रकार निर्धारित होती है।

4 स्पष्ट कीजिए कि ब्याज का क्लासिकी सिद्धान्त और केन्ज का ब्याज का सिद्धान्त दोनों ही अनिश्चित हैं।

5 ब्याज के निर्धारण में 'स्टाक' तथा 'प्रवाह' धारणाओं में भेद कीजिए। ब्याज का एक पूर्ण तथा संतोषजनक सिद्धान्त प्रतिपादित करने के लिए कौन-से विभिन्न तत्त्वों की हमें आवश्यकता पड़ती है?

[संकेत दोनों भागों का उत्तर ब्याज के आधुनिक सिद्धांत के विश्लेषण में दिया गया है।]

6 ब्याज के उधारदेय कोष सिद्धान्त का आलोचनात्मक निरीक्षण करिए।

7 ब्याज के तरलता अधिमान सिद्धान्त का वर्णन कीजिए। ब्याज का निर्धारण समय अधिमान से अथवा तरलता अधिमान से होता है? पूर्णत समझाइए।

8 ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। केन्स सिद्धान्त से यह किस प्रकार उत्तम है? पूर्णत समझाइए।

9 विकसैल के संतुलन और बाजार दर के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करिए।

अध्याय 41

लाभ
(PROFITS)

1. अर्थ
(MEANING)

साधारण बोलचाल की भाषा में आय के उस आधिक्य (surplus) को लाभ कहते हैं, जो उत्पादन का खर्च छोड़ कर उद्यमी को प्राप्त होता है। यह वह मात्रा होती है जो उत्पादन की प्रक्रिया में प्रयोग की गई सब साधन सेवाओं का भुगतान करने के बाद व्यापारी के पास बचती है। परन्तु यह सम्भव है कि आर्थिक दृष्टि से ऐसे सब खर्चों का हिसाब लगाने में उसने सावधानी से काम न लिया हो। इसलिए व्यापारी के कुल लाभ को अर्थशास्त्री उसके विशुद्ध या शुद्ध लाभ (pure or net profit) से पृथक् मानते हैं, क्योंकि कुल लाभ (gross profit) में निम्नलिखित सारभूत अंश शामिल रहते हैं।

(1) भूमि का किराया (Rent on land)—यह सम्भव है कि व्यापारी ने फैक्टरी लगाने के लिए अपनी ही भूमि का प्रयोग किया हो, ताकि वह किसी अन्य भूमिपति को उसका किराया देने के झंझट से बच जाए। यह किराया उसके लाभ में शामिल होता है। यह अस्पष्ट (implicit) या आरोपित (imputed) किराया है, जो उसके लाभ का भाग नहीं होता। यदि वह किसी अन्य व्यक्ति से भूमि किराए पर लेता तो उसका किराया देता। शुद्ध लाभ का हिसाब लगाते समय कुल लाभ में शामिल किराया निकाल देना चाहिए।

(2) पूँजी पर ब्याज (Interest on capital)—इसी प्रकार यह भी सम्भव है कि दूसरे व्यक्तियों से रुपया उधार लेने की असुविधा से बचने के लिए व्यापारी ने अपनी ही पूँजी का प्रयोग किया हो। अस्पष्ट ब्याज, फिर से, उसके कुल लाभ में शामिल रहता है। यदि अपने व्यापार में लगाने के लिए उसने पूँजी की उतनी ही मात्रा उधार ली होती तो वह उस पर ब्याज देता। इसलिए उसका शुद्ध लाभ जानने के लिए कुल लाभ में से इस अस्पष्ट ब्याज को घटा देना चाहिए।

(3) प्रबंध की मजदूरी (Wages of management)—यह सम्भव है कि व्यापारी स्वयं ही समस्त व्यापार का संगठन, तालमेल और प्रबंध करता रहा हो, परन्तु उत्पादन के सब खर्चों का भुगतान करने के बाद प्राप्त आय से ही वह संतुष्ट हो गया हो। यदि फर्म के प्रबंध का काम वह स्वयं न करता, तो उसे एक मैनेजर रखना पड़ता जिसे मजदूरी दी जाती। इस प्रकार, उसके कुल लाभ में यह अस्पष्ट मजदूरी शामिल है जिसे शुद्ध लाभ का हिसाब लगाते समय निकाल देना चाहिए। सब संयुक्त स्टॉक कम्पनियों में हिस्सेदारों को लाभ प्राप्त होते हैं और उनमें सब प्रबन्धक तथा प्रबंध-संचालक (managing directors) वैतनिक (salaried) व्यक्ति होते हैं, जिनके वेतन फर्मों के खर्चों में शामिल रहते हैं।

(4) **मूल्यह्रास प्रभार** (Depreciation charges)—उत्पादन की प्रक्रिया में मशीनें और प्लांट घिसते रहते हैं और बेकार हो जाते हैं। उसकी मरम्मत और उनके स्थान पर नई मशीनें लगाने का खर्च उत्पादन की लागत का अंश होता है। इसलिए शुद्ध लाभ का हिसाब लगाते समय उसे भी कुल लाभ में से निकाल देना चाहिए।

(5) **बीमा प्रभार** (Insurance charges)—आग, दुर्घटना तथा अन्य प्रकार की हानियों के विरुद्ध हर फर्म बीमा कराती है जिसके लिए बीमा कम्पनियों को वह प्रति वर्ष बड़े-बड़े प्रीमियम देनी है। इनका खर्च व्यापार संस्था की आय पर पड़ता है, इसलिए वे कुल लाभ का अंश नहीं होते।

दीर्घकाल में भी ये सब तत्त्व कुल लाभ में शामिल होते हैं क्योंकि ये अपेक्षाकृत अधिक स्थिर हैं। कुल लाभ में होते रहने वाले सामान्य तथा जोरदार परिवर्तनों का कारण यह है कि कुल लाभ में शुद्ध लाभ शामिल रहते हैं।

(6) **शुद्ध लाभ** (Net profits)—शुद्ध, सत्य, आर्थिक या विशुद्ध लाभ वह अवशेष (residue) है जो ऊपर गिनाई गई मदों को लाभ में से निकाल देने पर उद्यमी के पास बचता है। शुद्ध लाभ में निम्नलिखित तत्त्व शामिल रहते हैं

(i) **अनिश्चितता को वहन करने का पुरस्कार** (Reward for uncertainty bearing)—एक उद्यमी को प्राप्त होने वाला लाभ उन जोखिमों और अनिश्चितताओं को उठाने का पुरस्कार होता है जो बीमा-योग्य नहीं होते। वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था में अनिश्चितता वहन करना उद्यमी के प्रमुख कार्यों में से एक है जिससे लाभ प्राप्त होते हैं।

(ii) **समन्वय करने का पुरस्कार** (Reward for co-ordination)—उत्पादन की वर्तमान व्यवस्था सही अनुपातों में साधनों की सही मात्रा का समन्वय स्थापित करने की है। उनका ठीक ढंग से संयोग करने वाला उत्पादक न्यूनतम लागतों से अधिकतम मात्रा का उत्पादन कर सकता है और इस प्रकार अधिकतम लाभ प्राप्त करता है।

(iii) **योग्यता का पुरस्कार** (Reward for ability)—व्यापारी को प्राप्त होने वाले कुल लाभ में उसकी योग्यता का पुरस्कार भी शामिल होता है। अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठ व्यापारिक योग्यता वाला उद्यमी दूसरों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त करता है।

(iv) **नवप्रवर्तन के लिए पुरस्कार** (Reward for innovation)—किसी नई वस्तु या उत्पादन की तकनीक निकाल कर नवीनता प्रस्तुत करने वाला उद्यमी दूसरों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त करता है।

(v) **एकाधिकार-लाभ** (Monopoly gains)—कुछ उद्यमी चलते-पुर्जे होते हैं जो अपनी वस्तु को दूसरों से भिन्न और श्रेष्ठ प्रतीत होने वाले रूप में प्रस्तुत करके अपनी वस्तु के विक्रय को बढ़ावा देते हैं। इस प्रक्रिया में वे अपनी वस्तु की कीमतों में वृद्धि करने में भी सफल हो जाते हैं। इस प्रकार जब वे अपने पक्ष में अर्द्ध-एकाधिकारात्मक (semi monopolistic) स्थितियाँ बना लेते हैं, तो उनके लाभ बढ़ जाते हैं।

(vi) **अप्रत्याशित लाभ** (Windfalls)—एक उद्यमी को प्राप्त होने वाले लाभों में आकस्मिक या अवसरजन्य लाभ भी शामिल हो सकते हैं। सम्भव है कि अचानक युद्ध शुरू हो जाने से या श्रम-विषयक किसी झगड़े के परिणामस्वरूप कुछ फर्मों के कुछ समय के लिए बन्द हो जाने के कारण अचानक उस उद्यमी की वस्तु के लिए माँग बढ़ जाए। इसलिए उसे अपेक्षाकृत ऊँचे लाभ प्राप्त होते हैं जो आकस्मिक या दैविक लाभ होते हैं।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि एक व्यापारी के लाभ से एक अर्थशास्त्री के दृष्टिकोणानुसार लाभ बिल्कुल भिन्न होता है। एक अर्थशास्त्री केवल शुद्ध लाभ से सम्बन्ध रखता है जोकि व्यापारी के कुल लाभ में से उसकी अपनी भूमि, श्रम और पूँजी का पारिश्रमिक निकाल देने पर प्राप्त होता है।

2. लाभ की प्रकृति
(NATURE OF PROFIT)

लाभ की प्रकृति अर्थशास्त्रियों के लिए एक अत्यन्त पेचीदा और कठिन समस्या रही है। 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण मे प्रोफेसर टॉसिग (Taussig) ने इसे **"मिश्रित तथा विवादग्रस्त आय"** (mixed and vexed income) के रूप में कहा है। यह मिश्रित आय तो इसलिए है क्योंकि यह कई स्रोतो से मिलकर बनती है ओर विवादग्रस्त इसलिए कि अर्थशास्त्री यह निर्णय नहीं कर पाते कि लाभ के किस स्रोत को शामिल किया जाए ओर किस को छोड़ा जाए। प्रो गोरडन के अनुसार, अब भी यह "निश्चित रूप से आर्थिक सिद्धान्त के सबसे कम सतोषजनक भागो मे से एक है।"[1] प्रारम्भिक क्लासिकी अर्थशास्त्री यह समझते थे कि लाभ उस पूँजीपति को प्राप्त होता है जो पूँजी देता है और व्यापार का मालिक है। वे ब्याज और लाभ मे भेद नहीं करते थे। अधिक से अधिक यह होता था कि व्यापार की कुल आय मे से सब आवश्यक भुगतान करने के बाद अवशेष द्वारा लाभ निर्धारित होते थे।

लाभो की प्रकृति की प्रथम व्यवस्थित व्याख्या मार्शल ने उद्यमियो की माँग ओर पूर्ति के रूप में की। मार्शल मानता था कि लाभ "वह ओसत पारिश्रमिक है जो उद्यमियों की पर्याप्त पूर्ति को अस्तित्व में लाने तथा अस्तित्व मे रखने के लिए आवश्यक है।" दीर्घकाल मे एक उद्यमी केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर सकता है, जोकि उत्पादन की लागत का एक भाग होते हैं। इस प्रकार लाभ मजदूरी के समान होते है। परन्तु मार्शल द्वारा दी गई व्याख्या एकतरफा है क्योंकि वह उन साधनो की उपेक्षा करती हे जो उद्यमियो के लिए माँग को निर्धारित करते है। वह उन ऊँचे लाभो की व्याख्या करने में भी असफल रहती है जो दीर्घकाल में कुछ प्रतियोगी उद्योगो मे निरन्तर प्राप्त होते रहते है और जो एकाधिकारात्मक व्यापार सस्थाओ द्वारा कमाए जाते है।

अमरीका के प्रोफेसर वाकर (Walker) की दृष्टि मे लाभ दूसरों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ योग्यता वाले उद्यमी के "उत्पादन कार्य का निश्चित प्रतिफल" (determinate return for a production function performed by an entrepreneur with a superior ability) है। उद्यमी को श्रम से पृथक् माना जाता है ओर लाभ उसकी सगठनात्मक और समन्वय स्थापित करने की क्रियाओ का पुरस्कार है। हॉले (Hawley) के अनुसार, लाभ उस जोखिम का पुरस्कार है जो उद्यमी उठाता हे। जोखिम जितनी अधिक होगी, लाभ भी उतना ही अधिक होगा परन्तु यह विश्लेषण व्यापार-सस्थाओ के स्वामित्व और नियत्रण को उलझा देता है। आधुनिक बडी कम्पनियो मे स्वामित्व हिस्सेदारों का होता हे जबकि सक्रिय नियत्रण वैतनिक प्रबधको के हाथ मे रहता है।

क्लार्क, नाइट ओर शूम्पीटर के अनुसार, "लाभ वह आय है जा गत्यात्मक जगत् में अन्तर्निहित परिवर्तन, अनिश्चितता और सघर्ष से उत्पन्न होती है ओर प्रतियोगी शक्तियो का विलबित कार्यकरण जिसे समाप्त करने का प्रयत्न करता है।"[2] सघर्षरहित स्थैतिक (static) जगत् में, सब साधन अपने सीमान्त उत्पादन के आरोपित (imputed) मूल्य के बराबर पुरस्कार प्राप्त करते है, और मालिक को प्रबधात्मकता की मजदूरी से अधिक कुछ नहीं मिलता। परन्तु गत्यात्मक जगत् मे सघर्ष, नवप्रवर्तन और अनिश्चितता की निरन्तर पुनरावृत्ति होती रहती है, जिसके परिणामस्वरूप प्रबन्धात्मकता के सामान्य अर्जन की अपेक्षा एक आधिक्य की प्राप्ति होती है। यही वास्तविक

1 "It confessedly remains one of the least satisfactory parts of economic doctrine " R A Gordon "Enterprise, Profits and the Modern Corporation" in *Readings in Income Distribution* (Ed) W Fellner and A F Haley

2 It is an income which arises out of change, uncertainty and friction inherent in a dynamic world and which the belated operation of competitive forces tends to eliminate '

लाभ है। लाभों की प्रकृति की यह अफलनात्मक (non-functional) व्याख्या है। एक विशेष उद्यमता के फलन के कारण नहीं, बल्कि संघर्ष (friction), नवप्रवर्तन (innovation) और अनिश्चितता (uncertainty) के कारण लाभ उत्पन्न होते हैं।

मार्क्सवादी* अर्थशास्त्री वेब्लन (Veblen) तथा हॉब्सन (Hobson) लाभ को अनर्जित आय (unearned income) मानते हैं और मुट्ठी-भर पूँजीपतियों द्वारा स्थापित संस्थानिक एकाधिकारों (institutional monopolies) की उसका कारण। एकाधिकारात्मक लाभ इसलिए उत्पन्न होते हैं कि एकाधिकारी उत्पादन को नियंत्रित कर सकता है और उत्पादन की औसत लागत से अपनी वस्तु की बहुत अधिक कीमत रखता है। हॉब्सन के अनुसार, प्रतियोगी स्थितियों के अन्तर्गत भी एकाधिकारात्मक तत्त्व उस समय खोजा जा सकता है, जबकि अपनी श्रेष्ठ सौदेबाजी की शक्ति के माध्यम से एक उद्यमी उत्पादन के अन्य साधनों का तिरस्कार करके अधिक लाभ प्राप्त करता है। इसमें काफी सच्चाई है। परन्तु यह दृष्टिकोण अन्य दोनों से पूर्णतया स्वतंत्र नहीं है। जब कुल लागत और अवसर लागत (opportunity cost) के अन्तर के रूप में लाभ उत्पन्न होते हैं, तो वे लाभ इस श्रेणी में आते हैं। मार्शल की दृष्टि से लाभ तब भी उत्पन्न हो सकते हैं, जब लाभों का परिणाम उद्यमियों की दुर्लभता से सम्बन्धित हो, जोकि संस्थागत रुकावटों के अस्तित्व का परिणाम होती है। लाभ के गत्यात्मक दृष्टिकोण में अनिश्चितता, नवप्रवर्तन और संघर्ष की स्थितियों की प्रकृति भी संस्थागत होती है। लाभों की प्रकृति को विस्तारपूर्वक समझने के लिए हम आगे लाभ के कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की चर्चा कर रहे हैं।

1. गत्यात्मक सिद्धान्त (The Dynamic Theory)

सन् 1900 में प्रोफेसर जे. बी. क्लार्क (J. B. Clark) ने लाभ के गत्यात्मक सिद्धान्त की प्रस्थापना की थी। उसके अनुसार, वस्तु की कीमत तथा उत्पादन की लागत का अन्तर लाभ होता है। परन्तु गत्यात्मक परिवर्तन के परिणामस्वरूप लाभ की उत्पत्ति होती है। गत्यात्मक स्थिति में, "पाँच सामान्य परिवर्तन होते रहते हैं जिनमें से प्रत्येक समाज के ढाँचे पर प्रतिक्रिया करता है।" वे परिवर्तन ये हैं : (i) जनसंख्या में वृद्धि होती रहती है, (ii) पूँजी बढ़ती रहती है, (iii) उत्पादन की विधियों में सुधार होता रहता है, (iv) औद्योगिक संस्था का रूप बदलता रहता है, कम दक्ष दुकानें आदि क्षेत्र से निकलती जाती हैं और केवल दक्षतम ही बचती हैं। (v) उपभोक्ताओं की आवश्यकताएँ बढ़ती रहती हैं।

स्थैतिक अवस्था में प्रतियोगिता इन पाँचों प्रकार के परिवर्तनों को समाप्त करने का प्रयत्न करती है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन के प्रत्येक साधन को केवल उतना ही प्राप्त होता है जितना कि वह उत्पादन करता है। विक्रय कीमत और उत्पादन की लागत दोनों बराबर होती हैं और इसलिए कोई लाभ नहीं होता। उद्यमियों को जो कुछ मिलता है वह केवल प्रबन्ध की मजदूरी (wages of management) होती है। स्थैतिक अवस्था वस्तुओं, मजदूरी, ब्याज, लाभ और उनकी दरों की स्वाभाविक तथा वास्तविक कीमतों के बीच स्वाभाविक समायोजन (adjustment) की अवस्था होती है। यदि दोनों के बीच कोई विचलन (deviation) हो, तो प्रतियोगिता उनमें समानता ला देती है।

इस प्रकार लाभ पूर्णतया पाँच गत्यात्मक परिवर्तनों—अर्थात् जनसंख्या, पूँजी, उत्पादन की तकनीक, व्यापार संगठन के रूप और लोगों की आवश्यकताओं में परिवर्तनों—का परिणाम होते हैं। स्पष्ट है कि क्लार्क के अनुसार, इन सब परिवर्तनों से दो सामान्य निष्कर्ष प्राप्त होते हैं : "एक तो यह कि मूल्य, मजदूरी और ब्याज स्थैतिक स्तरों से भिन्न होंगे, और दूसरे यह कि स्थैतिक स्तर

* मार्क्स के लाभ सिद्धान्त के लिए अध्याय 35 में "मार्क्स सिद्धान्त" का अध्ययन कीजिए। यही मार्क्स का श्रम सिद्धान्त है।

स्वय भी हमेशा बदलते रहेंगे।" विशेष प्रकार का गत्यात्मक परिवर्तन एक आविष्कार होता है। एक आविष्कार से उद्यमी उत्पादन को बढा और लागतो को घटा सकता है। विक्रय कीमत और उत्पादन की लागतो के बीच विचलन से लाभ प्रकट होते है। परन्तु ऐसे लाभ अस्थायी होते है, क्योकि प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप अन्य उद्यमी भी उस आविष्कार को अपना लेते है। उत्पादन बढ जाता है और कीमते गिर जाती है। दूसरी ओर, साधनो की सेवाओं की प्राप्ति के लिए प्रतियोगिता उनकी मजदूरी और ब्याज की दरो को बढा देती है। लागते बढ जाती है। कीमतो के गिरने और लागतो के बढ़ने की यह दोहरी प्रवृत्ति लाभों को समाप्त कर देती है। इस प्रकार, "लाभ ऐसी भ्रान्तिजनक राशि है जिसे उद्यमी पकडते तो है, पर रोककर नहीं रख पाते। यह उनकी अगुलियो मे से खिसक जाती है ओर समाज के सब सदस्यो पर अपने को अर्पित कर देती है।" गत्यात्मक स्थिति मे, "यदि प्रतियोगिता बिना किसी प्रतिबन्ध या बाधा के कार्य करे, तो विशुद्ध व्यापारिक लाभ उतने ही शीघ्र समाप्त हो जाएँगे जितने शीघ्र की वे प्रकट होते है।"[3] परन्तु, वास्तव मे, उद्यमी इसलिए लाभ प्राप्त करते है कि समाज गतिशील है और निरन्तर परिवर्तन होते है तथा हमेशा समायोजन होता रहता है। लाभो के आकर्षण के परिणामस्वरूप सुधार होता है और सुधार से मजदूरी का स्तर बढता है, परन्तु वास्तविक मजदूरी हमेशा उस मानक दर (standard rate) से पीछे रहती है जिसका परिणाम यह होता है कि लाभ प्रकट होते हैं।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)—क्लार्क द्वारा प्रस्तुत किए गए लाभ के गत्यात्मक सिद्धान्त की **प्रोफेसर नाइट** ने निम्नलिखित तर्कों के आधार पर कडी आलोचना की है

1. **परिवर्तन प्रत्याशित नहीं** (Changes not foreseen)—यह सिद्धान्त प्रत्याशित परिवर्तन और अप्रत्याशित परिवर्तन मे कोई अन्तर नहीं कर पाता। यदि क्लार्क द्वारा मान लिये गए पाँच सामान्य परिवर्तनो को पहले ही पूर्व ज्ञात मान लिया जाए ताकि उनका मार्ग पहले से बताया जा सके, तो उन परिवर्तनो के प्रभावो पर आधारित सारी दलील टिक ही नहीं सकेगी। वास्तव मे, सब परिवर्तन प्रत्याशित नहीं होते। कुछ प्रत्याशित होते है और कुछ प्रत्याशित नहीं होते। समस्या को स्पष्ट रूप से समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसके प्रभावो को समस्त परिवर्तन के प्रभावो से पृथक् रखा जाए।[4]

2 **स्वाभाविक स्थितिया स्थैतिक स्थितिया नहीं** (Natural conditions not static conditions)—गतिशील समाज मे 'स्वाभाविक' कीमतो और दरो के प्रयोग पर प्रोफेसर नाइट ने आपत्ति की है। उसके अनुसार हो सकता है कि एक समाज गत्यात्मक हो और फिर भी उसकी स्वाभाविक कीमते उत्पादन की लागतो के बराबर हो जिससे उद्यमी किसी प्रकार का लाभ उठा सकने की स्थिति मे न हो। क्लार्क के लिए "स्थैतिक स्थितियो के रूप मे 'स्वाभाविक' स्थितियो को परिभाषित करना भ्रामक है।"

3 **अप्रत्याशित परिवर्तनो से लाभ होते हैं** (Unpredictable changes lead to profits)—क्लार्क का यह तर्क भी परिवर्तन के पूर्वज्ञान पर आधारित है कि लाभो के आकर्षण से सुधार होता है। परन्तु जब आविष्कार तथा नए प्राकृतिक स्रोत खोजने के सट्टा तत्त्व को समाप्त कर दिया जाता है, तो लाभ समाप्त हो जाते है और जो कुछ बचता है वह केवल मजदूरी, ब्याज और लगान होता है। इसका कारण यह है कि सब सुधार प्रत्याशित होते है। प्रोफेसर नाइट के अनुसार गत्यात्मक परिवर्तन केवल उस समय लाभों को प्रकट करते है जब ऐसे परिवर्तन और उनके परिणाम अप्रत्याशित हो। "इसलिए परिवर्तन लाभो का कारण नहीं हो सकते, क्योंकि यदि परिवर्तन का नियम ज्ञात हो, जेसाकि वस्तुत ज्ञात होता है, तो लाभ बिल्कुल उत्पन्न नहीं हो सकते।" फिर परिवर्तन और लाभ मे सबध भी अनिश्चित और अप्रत्यक्ष होता है। यदि भविष्य अनिश्चित हो,

3 J B Clark, *The Distribution of Wealth* (1900)
4 F H Knight, *Risk Unceratnty and Profit*

तो परिवर्तन के परिणामस्वरूप लाभ प्रकट हो सकते हैं। जब तक भविष्य के विषय में पूर्वज्ञान रहेगा, तब तक प्रतियोगिता लाभों को समाप्त करने का प्रयत्न करेगी।

4 **लाभ गत्यात्मक परिवर्तन के बिना** (Profits without dynamic changes)—क्लार्क द्वारा बताए गए पाँच गत्यात्मक परिवर्तनों की अनुपस्थिति में भी लाभ प्रकट हो सकते हैं। यदि भविष्य में होने वाले उतार-चढ़ाव अप्रत्याशित हों, तो प्रतियोगिता ठीक काम नहीं कर सकेगी और अनिवार्य रूप से लाभ प्रकट होंगे। इसलिए, प्रोफेसर नाइट का मत है कि "मूलरूप से गत्यात्मक परिवर्तन या कोई भी अन्य परिवर्तन लाभों का कारण नहीं होता बल्कि वास्तविक स्थितियों का उन स्थितियों से विचलन, लाभों का कारण होता है जोकि प्रत्याशित होती है और जिनके आधार पर व्यापार व्यवस्थाएँ की जाती हैं। लाभ के संबंध में एक संतोषजनक व्याख्या के लिए हम फिर से 'गत्यात्मक' सिद्धान्त से भविष्य की अनिश्चितता के सिद्धान्त पर धकेल दिए गए प्रतीत होते हैं।"

5 **लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार** (Profit the reward for risk-taking)—प्रोफेसर क्लार्क इस बात की भी कोई चर्चा नहीं करता कि लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार होता है। "Insurance and Profits" शीर्षक एक लेख में वह निर्देश करता है कि जोखिम के पुरस्कार रूप में जो लाभ होता है, वह पूँजीपति को होता है, न कि उद्यमी को। क्लार्क का कथन है कि "कहने की ज़रूरत नहीं कि व्यापार का खतरा पूँजीपति पर पड़ता है। उद्यमी तो खाली हाथ होता है। जिस आदमी के पास कुछ हो ही न, उसे काहे की जोखिम?" परन्तु वह यह नहीं बताता कि जब पूँजीपति को लाभ प्राप्त होता है, तो लाभ का ब्याज से क्या संबंध होगा? वास्तव में, लाभ उद्यमी को प्राप्त होता है।

6 **लाभ और प्रबंधकर्ता की मजदूरी के बीच कृत्रिम भेद** (Superfluous distinction between profit and wages of management)—प्रोफेसर टॉसिग ने बताया है कि क्लार्क का गत्यात्मक सिद्धान्त लाभों तथा प्रबंधकर्ता की मजदूरी के बीच कृत्रिम भेद उत्पन्न करता है। उनके अनुसार, एक संस्थापित उद्योग के दैनिक कार्य में भी उसी निर्णय और प्रशासनिक योग्यता की आवश्यकता होती है जिनका कि तीव्र प्रगति की स्थितियों के अन्तर्गत एक उद्यमी प्रयोग करता है। स्थैतिक अवस्था में उद्यमी को प्रबन्धकर्ता की मजदूरी मिलती है क्योंकि ऐसी स्थिति में कोई जोखिम नहीं होती। परन्तु यह दृष्टिकोण ठीक नहीं है क्योंकि स्थैतिक अवस्था में भी कुछ अप्रत्याशित जोखिम तो रहती ही है जिसके लिए लाभ के रूप में उद्यमी को पुरस्कार मिलना ही चाहिए। इस प्रकार गत्यात्मक सिद्धान्त लाभ और प्रबन्धकर्त्ता की मजदूरी के बीच व्यर्थ का भेद उत्पन्न करता है।

7 **लाभ एक संघर्षात्मक आधिक्य** (Profit a frictional surplus)—प्रोफेसर ए. के. दासगुप्ता के अनुसार, क्लार्क की आर्थिक गत्यात्मकता से सम्बन्धित धारणा, वास्तव में, तुलनात्मक स्थैतिकी (comparative statics) की धारणा है। "अर्थव्यवस्था की विधिवत् प्रगति में लाभ को केवल एक प्रावस्था (stage) समझा जाता है। अन्तिम विश्लेषण में वह 'संघर्षात्मक आधिक्य' ही ठहरता है जिसका महत्त्व केवल आर्थिक स्तर को बढ़ाने की दृष्टि से है।"[5]

2. शूम्पीटर का नवप्रवर्तन सिद्धान्त (The Innovation Theory)

प्रोफेसर शूम्पीटर[6] समझता है कि नवप्रवर्तन के परिणामस्वरूप होने वाले गत्यात्मक परिवर्तनों से लाभ उत्पन्न होते हैं। शुरू में वह एक पूँजीपति बन्द अर्थव्यवस्था को लेता है जो स्थैतिक संतुलन में हो। एक "वृत्तीय प्रवाह" (circular flow), जो सदैव के लिए अपनी पुनरावृत्ति करता रहता है, इस संतुलन की विशिष्टता प्रदान करता है। ऐसी स्थैतिक अवस्था में पूर्ण प्रतियोगितात्मक संतुलन होता है। उसमें प्रत्येक वस्तु की कीमत उसके उत्पादन की लागत के ठीक बराबर होती है और कोई असामान्य लाभ नहीं होता। केवल बाह्यजात कारण, जैसे मौसम की स्थितियाँ, इस वृत्तीय

5 *The Conception of Surplus in Theoretical Economics* p 186
6 *The Theory of Economic Development*

प्रवाह मे परिवर्तन ला सकती है परन्तु वह भी अस्थाई रूप से और अर्थव्यवस्था फिर वृत्तीय प्रवाह की स्थिति मे आ जाती है। वृत्तीय प्रवाह की स्थिति मे वस्तुओ का उत्पादन एक स्थिर दर पर होता है। इस नित्य होने वाले कार्य को वैतनिक प्रबन्धक करते है। एक उद्यमी ही नवप्रवर्तन के द्वारा इस वृत्तीय प्रवाह के मार्गों मे गडबड पैदा करता है। इस प्रकार शूम्पीटर के मतानुसार नवप्रवर्तक पूँजीपति नहीं बल्कि उद्यमी होता है। उद्यमी साधारण प्रबन्धात्मक योग्यता का व्यक्ति नहीं होता बल्कि ऐसा व्यक्ति होता है जो किसी एकदम नई वस्तु का प्रचलन करता है। वह निधियाँ तो प्रदान नहीं करता परन्तु उनके प्रयोग का निर्देश करता है। अपने आर्थिक कार्य के लिए उसे दो चीजो की जरूरत होती है एक, नई वस्तुओ का उत्पादन करने के लिए तकनीकी ज्ञान के अस्तित्व की, और दूसरे, उधार में उत्पादन के साधनो पर व्यवस्था की क्षमता।

वह बैको से ऋण लेता है और वर्तमान तकनीकी ज्ञान का उपयोग करने के लिए अपनी योग्यता का प्रयोग करता है। इससे नवप्रवर्तन् होता है जो अर्थव्यवस्था मे उत्पादन के वृत्तीय प्रवाह मे गडबड पैदा कर देता है और परिणामस्वरूप लाभ प्रकट होते है। इस प्रकार पूँजीपति से उद्यमी का कार्य नितान्त पृथक् होता है। उद्यमी केवल नवप्रवर्तन लाता है, जोखिम नहीं उठाता। जोखिम उठाना केवल पूँजीपति का काम है या फिर ऋण देने वाले बैंको का। यदि उद्यमी ही पूँजीपति भी हो, तो भी वह दो कार्य करता है जो नितान्त भिन्न-भिन्न होते है। इसलिए उद्यमी को जोखिम के नहीं बल्कि नवप्रवर्तन के पुरस्कार के रूप मे ही लाभ प्राप्त होते है।

शूम्पीटर के अनुसार नवप्रवर्तन मे ये बाते शामिल हो सकती है (i) नई वस्तु का प्रचलन, (ii) उत्पादन की नई विधि का प्रचलन, (iii) नए मार्किट खोलना, (iv) कच्चे माल के लिए नए स्रोतो को खोज निकालना, (v) उद्योग का पुनर्संगठन।

जब उद्यमी इनमे से किसी भी एक नवप्रवर्तन का प्रचलन करता है, तो उसके परिणामस्वरूप वस्तु के उत्पादन की लागत उसके विक्रय मूल्य से कम हो जाती है। इससे लाभ प्रकट होते हैं। जब तक यह विशेष नवप्रवर्तन गुप्त रहता है, तब तक उद्यमी लाभ प्राप्त करता रहता है। परन्तु यह स्थिति अनिश्चित काल तक नहीं चल सकती। अन्य उद्यमी उस नवप्रवर्तन पर टिड्डी दल की भाँति टूट पडते हैं। साधन-सेवाओ के लिए प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप उत्पादन की लागत बढ जाती है जबकि उत्पादन मे वृद्धि होने से कीमते गिर जाती है। इस दोहरी प्रवृत्ति का परिणाम यह होता है कि लाभ समाप्त हो जाते है।

एक नवप्रवर्तन के कारण लाभो का प्रकट होना किसी एक ही उद्योग की विचित्रता नहीं होती। एक क्षेत्र मे होने वाला नवप्रवर्तन अन्य क्षेत्रो मे भी नवप्रवर्तन को प्रोत्साहित करता है। कारो के उद्योग से राजमार्गों के निर्माण, रबड-टायर और पैट्रोलियम की वस्तुओ आदि मे नए निवेश की लहर दौड सकनी है। लाभ नवप्रवर्तन के कार्य और कारण दोनो ही होते है। लाभों से आकर्षित होकर उद्यमी नवप्रवर्तन करते है और जब उद्यमी नवप्रवर्तन करते है तो लाभ प्रकट होते है।

कभी एक उद्योग मे और कभी दूसरे मे लाभ प्रकट और समाप्त होते रहते है। उनकी स्थिति अस्थायी होती है और वे उस उद्यमी को प्राप्त होने है जो नवप्रवर्तन करता है। परन्तु जब वह नवप्रवर्तन सामान्य बन जाता है, तो लाभ समाप्त हो जाते है।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)—शूम्पीटर के नवप्रवर्तन सिद्धान्त की ये आलोचनाए की गई है

1 **शेयरधारक लाभ कमाते हैं** (Shareholders earn profits)—शूम्पीटर लाभ को जोखिम उठाने का पुरस्कार नहीं मानता। उसके अनुसार, जोखिम उठाना उद्यमी का नहीं बल्कि पूँजीपति का काम है। परन्तु अपनी बाद की पुस्तक *Capitalism, Socialism and Democracy* मे शूम्पीटर सकेत करता है कि 19वीं शताब्दी की पूँजीपति अर्थव्यवस्थाओ का तीव्र आर्थिक विकास आशिक रूप से इसलिए हुआ कि नवप्रवर्तन करने वाले उद्यमी जोखिम उठाने वाले भी थे। आधुनिक कपनियों मे

शेयरधारक जोखिम उठाते हैं और इस प्रकार लाभ प्राप्त करते हैं।

2 लाभ अनिश्चितता का पुरस्कार (Profit the reward for uncertainty)—शूम्पीटर के नवप्रवर्तन सिद्धान्त में अनिश्चितता के तत्त्व को कोई स्थान प्राप्त नहीं। लाभ को अनिश्चितता का पुरस्कार नहीं समझा जाता और यह दृष्टिकोण ठीक नहीं, क्योंकि प्रत्येक नवप्रवर्तन का सम्बन्ध अनिश्चितता से रहता है। यदि अनिश्चितता के तत्त्व के बिना नवप्रवर्तन होता है, तो नवप्रवर्तन का पुरस्कार लाभ नहीं बल्कि केवल प्रबन्धन की मजदूरी (wages of management) होना है।

3 अधूरी व्याख्या (Incomplete explanation)—नवप्रवर्तन ही उद्यमी का एकमात्र कार्य नहीं होता जिसके बदले उसे लाभ की प्राप्ति होनी है। उद्यमी को अपनी संगठनात्मक योग्यता (organisational ability) के कारण लाभों की प्राप्ति होती है, जबकि वह व्यापार लागतों को कम कर सके। इस प्रकार, शूम्पीटर का सिद्धान्त लाभों की उत्पत्ति की अधूरी व्याख्या है।

3 जोखिम सिद्धान्त (The Risk Theory)

लाभ का जोखिम सिद्धान्त एफ बी हॉलि (F B Hawley)[7] के नाम से सम्बद्ध है, जो जोखिम उठाने को उद्यमी का प्रमुख कार्य समझता है। लाभ वह अवशेष (residual) आय है जो उद्यमी को उस समय प्राप्त होती है जब वह जोखिम उठाता है। उद्यमी अपने व्यापार को जोखिम में डालता है और उसके बदले लाभ के रूप में पुरस्कार प्राप्त करता है क्योंकि जोखिम उठाना एक कष्टप्रद कार्य है। 'जोखिम के बीमांकिक (actuarial) मूल्य से अधिक भुगतान की अतिरिक्त मात्रा लाभ है।'[8] यदि केवल सामान्य प्रतिफल की प्राप्ति हो, तो कोई भी उद्यमी जोखिम उठाने को तैयार नहीं होगा। इसलिए जोखिम उठाने का पुरस्कार जोखिम के वास्तविक मूल्य से अधिक होना चाहिए। हॉलि के शब्दों में, "किसी व्यापार से लाभ, या [स्वयं उपक्रमी (undertaker) अथवा दूसरों द्वारा जुटाए गए] भूमि, श्रम तथा पूँजी के प्रतिफल का भुगतान करने के बाद उत्पादन का अवशेष प्रबन्धन या समन्वय (management or coordination) का पुरस्कार नहीं होता, बल्कि उन जोखिमों और जिम्मेदारियों का पुरस्कार होता है जोकि उद्यमी उठाता है। और क्योंकि सामान्य रूप से कोई भी अपने को जोखिम के बीमांकिक मूल्य के लिए जोखिम में नहीं डालता, इसलिए उद्योग को समग्र रूप में उतनी शुद्ध आय की प्राप्ति होती है जो व्यापार से प्राप्त कुल लाभों और हानियों के अन्तर के बराबर हो। स्पष्ट रूप से पूर्व निर्धारित न होने के कारण यह शुद्ध आय निश्चय ही लाभ होगी।"[9]

हॉले का कहना है कि बीमा कम्पनी को एक निश्चित स्थिर राशि का भुगतान करके उद्यमी कई जोखिमों से बच सकता है। परन्तु बीमे के द्वारा वह सब प्रकार की जोखिमों से छुटकारा नहीं पा सकता क्योंकि यदि वह ऐसा कर सके, तो वह उद्यमी नहीं रह जाएगा और केवल प्रबन्धन की मजदूरी ही प्राप्त करेगा तथा उसे लाभों की प्राप्ति नहीं होगी। परन्तु जब उद्यमी अपनी जोखिम को बीमा कम्पनी पर स्थानान्तरित कर देता है, तो वह जोखिम उठाने के अपने कार्य को बीमा कम्पनी पर डाल देता है और वह लाभ प्राप्त करती है। बीमा कम्पनी का पुरस्कार वह प्रीमियम नहीं, जो उसे मिलता है बल्कि उस प्रीमियम और कम्पनी को होने वाली अन्तत हानि का अन्तर उसका पुरस्कार होता है। इसलिए जोखिम उठाने का, विशेष रूप में 'विचारपूर्वक चुनी गई' जोखिमों को, पुरस्कार ही लाभ होता है।

परन्तु क्योंकि सब व्यक्ति जोखिम नहीं उठा सकते, इसलिए जोखिम उद्यमियों की पूर्ति में अवरोधक का कार्य करते हैं। जो व्यवसाय में रहते हैं, वे जोखिम के बीमांकिक मूल्य से अधिक

7 *Enterprise and the Productive Process*, 1907
8 "Profit is an excess of payment above the actuarial value of the risk"—*Hawley*
9 *Ibid.*, pp 106-107

अतिरिक्त भुगतान प्राप्त कर सकते है। "एकाधिकार लाभ का प्रमुख स्रोत इस तथ्य मे निहित है कि भिन्न-भिन्न उद्यमियो के लिए किसी दिए हुए व्यवसाय के बीमाकिक जोखिम उन उद्यमियो की योग्यता और परिस्थितियो मे अन्तर के कारण, एक-से नहीं होते।"

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)—अन्य सिद्धान्तो की भाँति लाभ के जोखिम सिद्धान्त की भी निम्नलिखित कारणो से आलोचना की गई है

1 **जोखिम का अर्थ अस्पष्ट** (Meaning of risk unclear)—हॉले ने जोखिम का अर्थ स्पष्ट नहीं किया। नाइट के अनुसार, जोखिम दो प्रकार के होते है एक बीमा-योग्य और दूसरे ऐसे जिनका बीमा नहीं हो सकता। विशिष्ट जोखिम बीमा-योग्य होते है। इस प्रकार के जोखिम लाभो को उत्पन्न नहीं कर सकते क्योकि प्रीमियम का भुगतान करके उद्यमी इस प्रकार के जोखिम को पूरा कर लेता है। नाइट इस बात पर हॉले से सहमत नहीं कि जोखिमो का बीमा कराकर उद्यमी अपना कार्य बीमा कम्पनी पर डाल देता है और उसकी बजाय बीमा कम्पनी लाभ प्राप्त करती है। बीमा करने वाले को लाभ नहीं होता बल्कि उद्यमी को होता है। जिन जोखिमो का बीमा नहीं हो सकता, केवल वही जोखिम अनिश्चित होते है जोकि लाभो को उत्पन्न करते है। इस प्रकार प्रोफेसर नाइट के अनुसार लाभ अनिश्चितता उठाने का ही पुरस्कार होते है।

2 **लाभ उद्यमीय योग्यता का पुरस्कार** (Profits the reward of entrepreneurial ability) —जोखिम उठाना ही उद्यमी का एकमात्र:वह कार्य नहीं जिसके परिणामस्वरूप लाभ प्रकट होते है। उद्यमियो की सगठन और समन्वय करने की योग्यता के कारण भी लाभ प्रकट होते है। इस कार्य से उद्योग की लागते कम हो जाती है। आशिक रूप से यह भी नवप्रवर्तन का पुरस्कार होता है।

3 **लाभ जोखिम से बचने का पुरस्कार** (Profits the reward of avoiding risks)—कार्वर (Carver) के अनुसार, वे उद्यमी लाभ प्राप्त कर सकते है जोकि जोखिमो से बच जाते है। अत लाभ जोखिम उठाने के कारण नहीं बल्कि इसलिए प्राप्त होते है कि योग्य उद्यमी जोखिमो से बच जाते है। जो उद्यमी जितने अधिक जोखिमो से बच जाता है, उसे उतने ही अधिक लाभो की प्राप्ति होती है।

4 **लाभ की राशि जोखिम के आकार से सबद्ध नहीं** (Amount of profit not related to size of risk)—लाभ की राशि उठाई गई जोखिम के आकार से किसी भी प्रकार सबद्ध नहीं होती। यदि ऐसा होता तो प्रत्येक उद्यमी अधिक लाभ उठाने के लिए अपने को बहुत बड़े जोखिमो मे डाल देता।

5 **विशाल व्यापार साम्राज्य स्थापित करने के लिए** (To found large business empire)—कुछ उद्यमियो के लिए जोखिम उठाना इस इच्छा के अधीन है कि एक विशाल व्यापार साम्राज्य की स्थापना और सृजन करने तथा कार्य कराने की प्रसन्नता प्राप्त की जाए।

6 **अधूरा सिद्धान्त** (Incomplete theory)—यह सिद्ध करने के लिए कोई अनुभवजन्य प्रमाण नहीं मिलता कि जोखिमपूर्ण उद्यमो मे उद्यमी को अधिक लाभ प्राप्त होता है। एक तरह तो सभी उद्यमो मे जोखिम होता है, क्योकि उनमे अनिश्चितता का तत्त्व मोजूद रहता है और प्रत्येक उद्यमी का लक्ष्य अधिक लाभ कमाना होता है। इस प्रकार, हॉले का जोखिम सिद्धान्त भी लाभ का एक अूधरा सिद्धान्त है।

4 अनिश्चितता उठाने का सिद्धान्त (The Theory of Uncertainty bearing)

प्रोफेसर फ्रैंक एच नाइट (Frank H Knight) लाभ को उन जोखिमो और अनिश्चितताओ का पुरस्कार मानता है जिनका बीमा नहीं हो सकता। वह बीमा-योग्य और बीमा-अयोग्य जोखिमो मे भेद करता है। कुछ जोखिमो को उस सीमा तक मापा जा सकता है, जहाँ तक कि उनके घटित

होने की साख्यिकीय गणना की जा सके। आग लगने, माल के चोरी होने और दुर्घटना से मृत्यु होने के जोखिम बीमा-योग्य है। इस प्रकार के जोखिम बीमा कपनी उठाती है। कुछ विशिष्ट जोखिम ऐसे होते है जिनका हिसाब नहीं लगाया जा सकता। अनिश्चितता मौजूद होने के कारण उनके घटित होने की सभावना का साख्यिकीय आगणन नहीं हो सकता। इस प्रकार के जोखिम कीमतो, माँग, पूर्ति इत्यादि मे होने वाले परिवर्तनो से सम्बन्ध रखते है। कोई भी बीमा कपनी इस प्रकार की जोखिमो से होने वाली प्रत्याशित हानि का हिसाब नहीं लगा सकती और इसलिए वे जोखिम बीमा-अयोग्य होते हैं। प्रोफेसर नाइट के अनुसार, लाभ ऐसी ही बीमा-अयोग्य जोखिमो और अनिश्चितताओ को उठाने का पुरस्कार होता है। यह अन्तर यथार्थ (ex-post) तथा प्रत्याशित (ex-ante) आमदनियो मे अनिश्चितता से उत्पन्न होता है।

लाभ वह अवशेष है जो अन्य साधन सेवाओ की सविदात्मक (ठेका से प्राप्त) (contractual) आय को निकालने के बाद बचता है। प्रतियोगितामूलक अर्थव्यवस्था मे, यदि उद्यमी सावधानी से प्रतियोगिता करे और साधन-सेवाओ की कीमतो को उनके सीमात उत्पादन के मूल्य के बराबर तक न बढाएँ, तो उन्हे धनात्मक लाभ होगा। यदि, दूसरी ओर, वे भारी प्रत्याशाओ के बारे मे आशावादी हो, तो लाभ ऋणात्मक होंगे, क्योकि साधन-सेवाओ को उनके पूर्व अनुमानित सीमान्त उत्पादनो से अधिक भुगतान किया जाता है। धनात्मक या ऋणात्मक लाभ उद्यमी के अनिश्चितता की स्थिति का मुकाबला करने के निर्णय को प्रकट करते है। "निर्णायक कुशलताओ की इस अत्यन्त अन्तिम योग्यता मे गलती की सीमा ही एक मात्र सच्ची अनिश्चितता को बनाती है   और इस अर्थ मे अनिश्चितता लाभ शब्द के सही प्रयोग की व्याख्या करती है।"

पर, अनिश्चितता सारे समाज मे पायी जाती है और लाभ, धनात्मक या ऋणात्मक, एक प्रकार से सब साधन-सेवाओ को होता है। दूसरे शब्दो मे कह सकते है कि सब प्रकार की आय मे लाभ का अश रहता है। परन्तु लाभ और सविदात्मक आय के अन्तर्गत सामाजिक आय का विभाजन उद्यमीय योग्यता (entrepreneurial ability) की पूर्ति पर निर्भर करता है। जब उद्यमीय योग्यता की पूर्ति कम होती है, तो लाभ की मात्रा बढ जाती है। उद्यमीय योग्यता की पूर्ति घटते प्रतिफल के अधीन चलती है और घटते प्रतिफल लाभ की मात्रा को कम कर देते है। उद्यमता पर घटते प्रतिफल का व्यवहार व्यापार मे विद्यमान अनिश्चितता की मात्रा के सिवाय कुछ नहीं है।

अनिश्चितता उठाना एक गत्यात्मक स्थिति मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। उद्यमी इस कार्य को या तो दूसरो को सौंप देता है या स्वय अपने पर ले लेता है। लाभ की प्रत्याशा एक प्रकार से उद्यमीय अनिश्चितता उठाने की पूर्ति कीमत होती है। प्रतियोगितामूलक अर्थव्यवस्था मे, जहाँ कोई जोखिम नहीं होता, प्रत्येक उद्यमी की पूर्ति कीमत न्यूनतम होती है। यदि उसका पुरस्कार इससे कम हो जाए, तो उद्यमी-सेवाओ की पूर्ति बन्द हो जाएगी। परन्तु अनिश्चितता के मौजूद रहने से न्यूनतम पूर्ति कीमत बढ जाती है जोकि वास्तव मे जोखिम का प्रीमियम होता है जिसे उद्यमी पाने की आशा करता है। यह लाभ है। परन्तु नवप्रवर्तन और बाहरी शक्तियो के कारण होने वाले परिवर्तन, जैसे जलवायु सम्बन्धी और अन्य अप्रत्याशित परिवर्तन, निरन्तर इन प्रत्याशाओ मे उलटफेर करते रहते है जिससे दीर्घकाल मे प्रत्येक उद्यमी को केवल सामान्य लाभ की प्राप्ति होती है। नाइट के अनुसार, "लाभ के परिवर्तन के साथ सम्बन्ध मे केवल इतना तथ्य है कि प्रबन्धात्मक ढग के निर्णय या तो परिवर्तन उत्पन्न करते है या परिवर्तन के अनुसार ढल जाते है या फिर दोनो कार्य करते है।" केवल अपूर्व-कथ्य (unpredictable) परिवर्तन ही लाभों को उत्पन्न करते है। पूर्वकथ्य (predictable) होने के कारण जनसख्या और पूँजी मे परिवर्तन अपूर्ण प्रतियोगिता या लाभ को उत्पन्न नहीं करते। इस प्रकार गत्यात्मक परिवर्तन द्वारा उत्पन्न की गई बीमा-अयोग्य जोखिमो और अनिश्चितताओ के कारण लाभ होता है।

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)—अन्य सिद्धान्तो की अपेक्षा नाइट का लाभ का सिद्धात

अधिक विस्तृत है क्योंकि यह जोखिम, आर्थिक परिवर्तन और व्यापार-विषयक योग्यता के सिद्धान्तों को मिला देता है। परन्तु इसकी अपनी कमियाँ भी है।

1 **उद्यमता की धारणा स्पष्ट नहीं** (No clear notion of entrepreneurship)—इसमे उद्यमता के विषय मे कोई स्पष्ट धारणा नहीं है। अनिश्चितता उठाने को ही उद्यमी का एकमात्र कार्य समझा जाता है। परन्तु आधुनिक व्यापार कपनियों मे नियत्रण से स्वामित्व अलग होता है। निर्णय करने का कार्य वैतनिक प्रबधको द्वारा किया जाता है जोकि समस्त कपनी का नियत्रण और सगठन करते है, जबकि स्वामित्व हिस्सेदारो के हाथ मे रहता है जिन्हे अन्त मे व्यापार की अनिश्चितताएँ उठानी पडती है। नाइट इन दोनो को अलग नहीं रखता और इसीलिए उसका सिद्धान्त अवास्तविक बन जाता है।

2 **निगमो के नियत्रको के लाभ वितरण का हल नहीं** (No solution to distribution of profit among controllers of corporations)—इसी के स्वाभाविक परिणाम के रूप मे, यह सिद्धान्त निगमो के नियत्रक और मालिक वर्गों मे लाभ के विभाजन या वितरण की समस्या को हल नहीं कर पाता और इस प्रकार लाभ के निर्धारण की समस्या को हल किए बिना ही छोड देता है।

3 **अनिश्चितता-वहन को मापने का अनुभवजन्य प्रमाण नहीं** (No empirical evidence to measure uncertainty bearing)—एक फर्म को प्राप्त होने वाली लाभ की मात्रा निकालने के लिए अनिश्चितता-वहन को मापने का कोई अनुभवजन्य प्रमाण स्वय प्रोफेसर नाइट को भी नहीं मिला। इस प्रकार अनिश्चितता उठाने का सिद्धान्त एक गोलमोल ढग से ही लाभो के प्रकट होने की व्याख्या करता है।

4 **जनसख्या और पूजी मे परिवर्तन अप्रत्याशित** (Changes in population and capital unpredictable)—नाइट का यह कथन, कि जनसख्या और पूँजी मे होने वाले परिवर्तन पूर्वकथ्य होते है, केवल उस समय सही होता है जबकि हम सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर विचार करते है। परन्तु उसका लाभ-विषयक अध्ययन एक फर्म के सम्बन्ध मे है जिसके लिए जनसख्या और पूँजी मे होने वाले परिवर्तन अप्रत्याशित होते है तथा नाइट के अनुसार उन परिवर्तनो के परिणामस्वरूप लाभ धनात्मक या ऋणात्मक हो सकते है।

5 **लाभ अवशेष आय नहीं** (Profit not a residual income)—नाइट का यह दृष्टिकोण भी आलोचना का विषय रहा है कि लाभ वह अवशेष आय है, जो उद्यमी को उसके अपने निर्णय के आधार पर प्राप्त होती है। प्रोफेसर जे एफ वैस्टन (Weston) के अनुसार, "यह आवश्यक नहीं कि निर्णय करने वालो की अवशेष आय प्राप्तकर्त्ताओं के रूप मे क्षतिपूर्ति की जाए। निर्णय करना एक आर्थिक सेवा है। इस सेवा की क्षतिपूर्ति की व्याख्या करने वाले नियम अन्य सेवाओ की क्षतिपूर्ति की व्याख्या करने वाले नियमो से मिलते-जुलते है। निर्णय के प्रयोग का विक्रय स्थिर कीमत या परिवर्तनशील कीमत के आधार पर हो सकता है।" विशेषज्ञ प्रबन्धक इसी ढग से अपनी सेवाओ का विक्रय करते है।

6 **अनिश्चितता-वहन उत्पादन का पृथक साधन नहीं** (Uncertainty bearing not a separate factor of production)—भूमि श्रम या पूँजी की भाँति अनिश्चितता उठाना उत्पादन का एक अलग साधन नहीं माना जा सकता। यह एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण है जो उत्पादन की वास्तविक लागत का भाग बनता है। परन्तु उद्यमी-योग्यता की तो बात ही अलग है, एक साधन-सेवा की पूर्ति भी उसकी वास्तविक लागत की बजाय उसकी अवसर लागत पर निर्भर करती है।

7 **एकाधिकार लाभ का अध्ययन नहीं करता** (Does not study monopoly profit)—यह सिद्धान्त एकाधिकारात्मक लाभ पर कोई प्रकाश नहीं डालता। प्रतियोगितामूलक फर्मों की अपेक्षा एकाधिकारात्मक फर्में बहुत अधिक लाभ प्राप्त करती है ओर वे लाभ अनिश्चितता के विद्यमान होने के कारण नहीं होते।

इन कमियों के बावजूद नाइट के अनिश्चितता उठाने के सिद्धान्त को लाभों की प्रकृति की एकमात्र सतोषजनक व्याख्या माना जाता है।

5. शैकल का सिद्धान्त (Shackle's Theory)

प्रोफेसर शैकल[10] ने अनिश्चितता की स्थितियों के अन्तर्गत प्रत्याशाओं (expectations) के प्रवेश द्वारा प्रो नाइट के सिद्धान्त को आगे बढ़ाया है। शैकल के अनुसार, प्रत्याशाएं दो प्रकार की होती है सामान्य और विशेष। सामान्य प्रत्याशाएं (general expectations) समस्त अर्थव्यवस्था के सामान्य चरो से सबद्ध होती है। उनका सबध भविष्य के समष्टि चरों से होता है जैसे सामान्य कीमत स्तर, सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP), भुगतान सतुलन आदि। दूसरी ओर, विशेष प्रत्याशाएं (particular expectations) का सबध किसी एक फर्म अथवा उद्योग के विशेष चरो से होता है। वे ऐसे व्यष्टि चरों से सबधित होते हैं जैसे एक फर्म द्वारा एक विशेष विपणन (marketing) कूटनीति अपनाने से उसकी भविष्य में प्रतिक्रिया (reaction), एक प्रतियोगी फर्म की भावी कीमत-निर्धारण नीति, आदि।

व्यवसायी समुदाय के निर्णय सामान्य तौर से सामान्य प्रत्याशाओं पर आधारित होते है। यदि वह उन्हे अनुकूल समझता है तो निवेश करेगा। परन्तु सामान्य प्रत्याशाओं में "व्यक्तिपरक निश्चितता" (subject certainty) पाई जाती है। ऐसी प्रत्याशाओं को पूरा करने में लगभग 12 मास का समय लगता है। क्योंकि सामान्य प्रत्याशाओं की व्यक्तिपरक निश्चितता होती है और उनकी समय अवधि भी उचित होती है, इसलिए व्यवसायी समुदाय समग्र अर्थव्यवस्था के लिए कीमत और आय वृद्धियों का सही अनुमान लगाने में सफल होता है। वह उपयुक्त मालसूची (inventory) नीतियां अपनाकर अप्रत्याशित लाभ (windfall profits) कमाता है।

परन्तु विशेष प्रत्याशाओं में "व्यक्तिपरक अनिश्चितता" पाई जाती है तथा समय अवधि भी पर्याप्त लबी, 100 से 150 मास के बीच, होती है। विशेष प्रत्याशाओं के अन्तर्गत एक फर्म अथवा उद्योग या तो नवप्रवर्तन लाभ या एकाधिकार लाभ कमा सकती है जो उसकी नीतियों और प्रतियोगियों पर निर्भर करते है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत जब एक समान वस्तु के क्रेताओं और विक्रेताओं की सख्या बहुत अधिक होती है, तो जो फर्म नई उत्पादन तकनीकों अथवा नई वस्तुओं अथवा प्रबधन की नई तकनीकों द्वारा नवप्रर्वतन करती है वह नवप्रर्वतक के लाभ कमाती है। दूसरी ओर, जब एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत विभेदीकृत वस्तु होती है, तो विपणन नीति द्वारा फर्म को लाभ होते है। विशेष प्रत्याशाओं के अन्तर्गत व्यक्तिपरक अनिश्चितता तथा लबी समय अवधि होने पर जब एक फर्म दूसरे प्रतियोगियों की वस्तुओं की तुलना में अपनी वस्तुओं के बारे में विपणन, विज्ञापन आदि के सही निर्णय लेती है तो उसे एकाधिकार लाभ होते है। इस प्रकार, लाभ चाहे एकाधिकार अथवा नवप्रर्वतन के हो, वे व्यक्तिपरक अनिश्चितता के अन्तर्गत उत्पन्न होते है, जो एक फर्म द्वारा सही निर्णय लेने पर निर्भर करते है।

अब प्रश्न यह उठता है कि एक फर्म में ऐसे निर्णय कौन लेता है और उनका आधार क्या है? शैकल के अनुसार, अनिश्चितता के अन्तर्गत निर्णय लेने का कार्य एक फर्म के उद्यमी द्वारा किया जाता है। नित्यक्रम (routine types) के निर्णय फर्मों में अपने-अपने विभागों के प्रधानों द्वारा लिए जाते है।

जहा तक निर्णय लेने का आधार है, शैकल मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनाता है। उसके अनुसार, उद्यमी अपने निर्णय के भावी परिणामों के बारे में परिकल्पनाओं (hypotheses) का निर्माण करता है। इसके लिए वह एक "तटस्थ बिन्दु" (neutral point) की कल्पना करता है जिसके दाईं ओर वह

10 G L S Shackle, *Expectations in Economics*, 1952 and *Uncertainty in Economics and Other Reflections*, 1954

उन परिकल्पनाओं को रखता है जो प्रसन्नदायक है और बाईं ओर चिन्तादायक परिकल्पनाओं को। सभी प्रसन्नदायक अथवा चिन्तादायक परिणाम जो तटस्थ बिन्दु के निकट होते हैं "बहुत विश्वमनीय" (plausible) है और उनकी "सभाव्य विस्मय" (potential surprise) की कोटि (degree) कम होती है। परन्तु अधिक प्रसन्नदायक और अधिक चिन्तादायक परिकल्पनाएं जो तटस्थ बिन्दु के दोनों ओर दूर गति कर रही है उनकी सभाव्य विस्मय की कोटि बढती जाती है। यदि एक परिकल्पना को लिया जाए तो वह उसकी विश्वसनीयता और उसकी सापेक्ष प्रसन्नदायकता अथवा चिन्तादायकता का सयोग है। अत जब उद्यमी तटस्थ बिन्दु के दाईं ओर गति करता है तो परिकल्पना, अविश्वसनीयता की तुलना मे प्रसन्नदायकता मे अधिक तीव्रता से वृद्धि करती है। परन्तु एक बिन्दु के बाद, परिकल्पना की बढ रही अविश्वसनीयता को उसकी बढ रही प्रसन्नदायकता प्रतिकार (offset) कर देती है। अन्तत, प्रसन्नता पक्ष की ओर एक शिखर परिकल्पना (peak hypothesis) होगी। दूसरी ओर, जब उद्यमी तटस्थ बिन्दु के बाईं ओर गति करता है तो परिकल्पना, विश्वसनीयता की तुलना मे चिन्तादायकता मे अधिक तीव्रता से वृद्धि करती है। परन्तु एक बिन्दु के पश्चात, परिकल्पना की बढ रही विश्वसनीयता को उसकी बढ रही चिन्तादायकता प्रतिकार कर देती है। अन्तत, चिन्ता पक्ष की ओर भी एक शिखर परिकल्पना होगी। शैकल प्रसन्नता पक्ष के शिखर को "फोकस लाभ" (focus gain) तथा चिन्ता-पक्ष शिखर को "फोकस हानि" कहता है। यदि फोकस हानि से फोकस लाभ अधिक होता है तो उद्यमी सकारात्मक (positive) निर्णय लेगा। वह निवेश करेगा और लाभ कमाएगा। इसके विपरीत, यदि फोकस लाभ से फोकस हानि अधिक होती है तो उद्यमी ऋणात्मक निर्णय लेगा। वह निवेश करने से हिचकिचाएगा क्योंकि उसकी विशेष प्रत्याशाओं की उसके प्रतिकूल होने की सभावना होगी। इस प्रकार, शैकल के सिद्धान्त मे उद्यमी का निर्णयकरण न तो अविवेकी है और न ही सनकपूर्ण। परन्तु यह उसके अर्न्तज्ञान पर आधारित है।

इसका समीक्षात्मक मूल्याकन (Its Critical Appraisal)—प्रो शैकल ने लाभ का एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया जो अत्यन्त अपूर्व है। परन्तु इसमे नाइट के अनिश्चितता लाभ सिद्धान्त, शुम्पीटर के नवप्रवर्तन लाभ सिद्धान्त तथा लाभ के एकाधिकार सिद्धान्त के अश पाए जाते है। फिर भी, यह एक निर्णय-निर्माण सिद्धान्त है जो उद्यमी के मनोविज्ञान पर आधारित है। जैसा कि प्रो कियरस्टैड (Kierstead) ने व्यक्त किया है, "स्वय प्रोफेसर शैकल प्रभावपूर्ण ढग से आत्मविश्लेषण की विधि का प्रयोग करता है, परन्तु आत्मविश्लेषण उसे खोज करने की अनुमति दे सकता है कि वह किस प्रकार एक निर्णय लेता है, यह किसी निश्चितता से नहीं बता सकता है कि एक उद्यमी अथवा प्रबधक बोर्ड कैसे निर्णय लेता है।"[11]

6 लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (The Marginal Productivity Theory of Profit)

किसी भी अन्य साधन की भाँति, उद्यमी के पारिश्रमिक के निर्धारण की भी, उसकी सीमान्त आगम उत्पादकता के रूप मे, व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया है। ऐजवर्थ (Edgeworth) चैपमैन (Chapman), स्टिगलर (Stigler), और हाल मे स्टोनियर तथा हेग (Stonier and Hague) ने इस सिद्धान्त की सहायता से लाभ-निर्धारण की व्याख्या की है। इस सिद्धान्त के अनुसार, लाभ एक उद्यमी के पुरस्कार के रूप मे उसकी सीमान्त आगम उत्पादकता द्वारा निर्धारित होता है। जितनी उद्यमता की सीमान्त आगम उत्पादकता अधिक होगी, उतने ही लाभ अधिक होंगे तथा जितनी सीमान्त आगम उत्पादकता कम होगी, लाभ भी उतने ही कम होंगे।

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)—लाभ का सीमान्त-उत्पादकता सिद्धान्त भी आलोचनाओं से बच नहीं पाया।

11 B S Kierstead, *Capital Interest and Profit* 1959

प्रथम, जैसा कि ऊपर कहा गया है, भूमि, श्रम या पूँजी की भाँति, एक फर्म के विषय में उद्यमता की सीमान्त आगम उत्पादकता का सिद्धान्त व्यर्थ है क्योंकि अन्य साधनों से भिन्न, एक फर्म में, एक ही उद्यमी हो सकता है।

दूसरे, यह सिद्धान्त एक उद्योग में उद्यमियों की समरूपता की अवास्तविक धारणा पर आधारित है। उद्यमियों की दक्षता भिन्न-भिन्न होती है। इसलिए सब उद्यमियों के लिए एक ही सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र नहीं हो सकता। इस प्रकार यह सिद्धान्त लाभ की सही-सही व्याख्या करने में असफल रहता है।

तीसरे, इसके निष्कर्ष रूप में, क्योंकि उद्यमियों की दक्षता भिन्न-भिन्न होती है, इसलिए सबको केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त नहीं हो सकते। दूसरों की अपेक्षा अधिक दक्षता वाले उद्यमी सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त करेंगे। यह योग्यता का लगान होगा जो उनके द्वारा प्राप्त किए गए लाभों में शामिल रहेगा। इस पक्ष पर यह सिद्धान्त कोई प्रकाश नहीं डालता।

चौथे, यह सिद्धान्त इस बात को भी स्पष्ट नहीं कर पाता कि कुछ उद्यमियों को कभी-कभी आकस्मिक या अवसर लाभ और एकाधिकारात्मक लाभ क्यों प्राप्त होते हैं।

पाँचवें, यह सिद्धान्त सम्पूर्ण रूप से एक स्थैतिक सिद्धान्त है जिसके अनुसार, दीर्घकाल में, सब उद्यमी केवल सामान्य लाभ प्राप्त करते हैं। परन्तु वास्तविक संसार गत्यात्मक है जिसमें कुछ उद्यमी सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त करते हैं।

छठे, यह सिद्धान्त एक पक्षीय है क्योंकि यह केवल उद्यमियों की माँग को ही लेता है तथा पूर्ति पक्ष की उपेक्षा करता है।

7 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत लाभों का निर्धारण—आधुनिक सिद्धान्त (Determination of Profits under Perfect Competition—Modern Theory)

किसी अन्य साधन-सेवा के पुरस्कार की भाँति लाभ भी माँग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होते हैं। यह सिद्धान्त उद्यमी को स्वयं ही व्यावसायिक उपक्रमी तथा लाभ को उसकी शुद्ध आय के रूप में परिभाषित करता है। उद्यमी के पुरस्कार के रूप में लाभ उद्यमियों की माँग एवं पूर्ति द्वारा प्रभावित होते हैं, जिनका हम नीचे अध्ययन करते हैं।

उद्यमियों के लिए माँग (Demand for Entrepreneurs)—उद्यमियों के लिए माँग इन तत्त्वों पर निर्भर करती है (i) अर्थव्यवस्था में औद्योगिक विकास का स्तर, (ii) उद्योग में अनिश्चितता का तत्त्व, (iii) उत्पादन का पैमाना, तथा (iv) उद्यमता की सीमान्त आगम उत्पादकता।

यदि औद्योगिक प्रगति का स्तर ऊँचा हो तो उत्पादन का पैमाना बड़ा होता है तथा दक्षता एवं उत्पादकता में वृद्धि होती है। लाभों में बढ़ने की प्रवृत्ति पाई जाती है तथा अर्थव्यवस्था में उद्यमियों की माँग बढ़ती है। इसी प्रकार, यदि अनिश्चितता का तत्त्व अर्थव्यवस्था में अधिक है तो अधिक लाभ कमाने की संभावनाएँ भी अधिक होंगी तथा उद्यमियों के लिए माँग भी बढ़ेगी। परन्तु इन सभी तत्त्वों में से माँग को प्रभावित करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व उद्यमता की सीमान्त आगम उत्पादकता (marginal revenue productivity of entrepreneurship) है।

भूमि, श्रम या पूँजी के विषय में, किसी एक साधन से एक फर्म को प्राप्त होने वाली सीमान्त आगम उत्पादकता का हिसाब लगाया जा सकता है। सीमान्त आगम उत्पादकता का सिद्धान्त पहले से यह मानकर चलता है कि फर्म किसी साधन की अल्पतम इकाई की माँग कर सकती है। परन्तु उद्यमी के सम्बन्ध में यह असंभव है क्योंकि उद्यमी एक स्थिर और अविभाज्य साधन है। एक फर्म केवल एक ही उद्यमी रख सकती है। बहुत करें, तो फर्म एक से अधिक व्यक्ति रख सकती है, जोकि मिलकर प्रबंधन तथा अनिश्चितता उठाने आदि के उद्यमीय कार्य करें। यह तरीका लागतें कम कर सकता है, उत्पादन बढ़ा सकता है परन्तु किसी भी प्रकार एक फर्म के उद्यमियों की संख्या

नहीं बढ़ा सकता। फिर, ऐसा कोई मापदण्ड भी नहीं है जिसके द्वारा या तो उद्यमी द्वारा निर्णय करने मे शामिल समय से, या भौतिक इकाइयो के रूप मे, उद्यमता की मात्रा का माप किया जा सके। इसलिए यह सभव नहीं कि एक फर्म के लिए उद्यमता की सीमान्त आगम उत्पादकता का हिसाब लगाया जा सके।

परन्तु एक उद्योग के लिए उद्यमता की सीमान्त आगम उत्पादकता का हिसाब लगाना कठिन नहीं है। एक उद्योग मे फर्मों की सख्या मे परिवर्तन होने के साथ उद्यमियो की मात्रा बदल जाती है। साधारण माँग-वक्र की भाँति उद्यमियो का सीमान्त आगम उत्पादकता-वक्र नीचे की ओर ढालू होता है। इसलिए, यह उद्यमियो का माँग वक्र होता है। एक उद्योग मे ज्यो-ज्यो उद्यमियो की सख्या बढ़ेगी, त्यो-त्यो प्रत्येक के द्वारा प्राप्त किया गया लाभ कम होता जाएगा। यह बात है भी वास्तविक, क्योंकि फर्मों की सख्या मे वृद्धि के साथ उत्पादन बढ जाता है, कीमते गिर जाती है जिससे लाभ कम हो जाते है।

उद्यमियो की पूर्ति (Supply of Entrepreneurs)—उद्यमियो की पूर्ति कई तत्त्वो पर निर्भर करती है। ये है (i) पूँजी की प्राप्यता, (ii) प्रबधकीय तथा तकनीकी सेविवर्ग का पाया जाना, (iii) जनसख्या का आकार, (iv) उद्यमियो की सख्या, (v) उद्योग मे अनिश्चितता का अश, (vi) आय का वितरण, (vii) औद्योगिक अनुभव, और (viii) समाज की अवस्था।

उद्यमता सदैव पूँजी की पूर्ति द्वारा आकर्षित होती है क्योंकि इसके बिना कोई भी व्यवसाय प्रारम्भ नहीं किया जा सकता। अन्य बाते समान रहने पर, जितनी अधिक पूँजी प्राप्य होगी, उतनी ही अधिक उद्यमियो की पूर्ति अधिक होगी। पूँजी तो पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो सकती है परन्तु एक उद्यमी को सफलतापूर्वक व्यवसाय चलाने के लिए मैनजरों तथा तकनीकी सेविवर्ग (personnel) पर अधिकतर निर्भर रहना पडता है। यदि प्रशिक्षित प्रबधकीय तथा तकनीकी सेविवर्ग उपलब्ध हो तो उद्यमियो की पूर्ति अवश्य बढ़ेगी। जनसख्या का आकार एक अन्य तत्त्व है जो उद्यमता को प्रभावित करता है। जनसख्या का आकार अधिक होने पर विभिन्न वस्तुओ की माग भी अधिक होगी, जो अधिक लोगों को उद्यमता की ओर आकर्षित करेगी तथा उद्यमियो की पूर्ति बढ़ेगी। यदि एक उद्योग में उद्यमियो की सख्या पहले ही अधिक हो तो लाभ कम हो सकते है तथा इस विशेष उद्योग के लिए उद्यमियों की पूर्ति कुछ समय के लिए रुक सकती है। फिर भी, अर्थव्यवस्था के लिए दीर्घकाल में उद्यमियों की पूर्ति बढ सकती है, जब सफल उद्यमियों की सताने व सम्बन्धी उसी उद्योग या किसी अन्य उद्योग मे उद्यमता का कार्य अपनाते है। यह वश-परम्परा या दक्ष उद्यमियो के अन्तर्गत काम करने से औद्योगिक अनुभव ग्रहण करके सभव हो सकता है। यदि अर्थव्यवस्था मे अनिश्चितता का अश बहुत अधिक हो तो लाभ की प्रत्याशाए भी अधिक होगी तथा उद्यमियो की पूर्ति बढ़ेगी। इसके विपरीत, यदि लोग बहुत सावधान है तथा अनिश्चितताएँ एव जोखिम उठाने से डरते है तो लाभ की प्रत्याशाएँ कम होने के कारण उद्यमियो की पूर्ति भी कम होगी। यदि समाज मे आय का असमान वितरण हो तो उद्यमियो की पूर्ति अधिक होगी क्योकि वर्तमान उद्यमी पहले ही अति सामान्य लाभ अर्जित कर रहे है। दूसरी ओर आय का कुछ समान वितरण होने पर, उद्यमी ऊँचे लाभ अर्जित नहीं कर रहे होंगे तथा उनकी पूर्ति मे वृद्धि नहीं होगी। उद्यमियों की पूर्ति को प्रभावित करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण और अन्तिम तत्त्व समाज की दशा है जिसमे ऊपर वर्णित सभी तत्त्व पाए जाते है। इसके अतिरिक्त, इसमे राजनैतिक स्थिरता, आर्थिक दशाएँ तथा समाज मे कानूनी ढाँचा भी सम्मिलित होते हैं। उद्यमियो की बढ रही पूर्ति के लिए राजनैतिक स्थिरता का होना बहुत आवश्यक है। आर्थिक क्षेत्र मे, तीव्र आर्थिक उतार-चढ़ाव व्यावसायिक प्रत्याशाए तथा विश्वास को क्षति पहुँचाता है जिससे उद्यमियो की पूर्ति पर बुरा प्रभाव पडता है। इसी प्रकार, व्यावसायिक गृहो के प्रति कठोर अधिनियम, ऊँचे कम्पनी कर आदि उद्यमियो की पूर्ति को रोकते है, जबकि कम तथा नीचे कर, साख सुविधाएँ आदि सहायक नीतियाँ

उद्यमी सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त कर सकेंगे क्योंकि नई फर्मों को उद्योग में आने की छूट नहीं है और इसलिए प्रतियोगिता नहीं है, जो सामान्य से अधिक लाभो को समाप्त कर दे।*

नाइट के सिद्धान्त के अनुसार यदि लाभ को बीमा अयोग्य जोखिमो और अनिश्चितताओ का पुरस्कार मान लिया जाए, तो पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल मे कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। यह स्थैतिक अवस्था है जिसमे जनसंख्या, पूँजी, प्रौद्योगिकी, रुचियो, व्यापार संगठन और आय मे परिवर्तन नहीं होता। इसलिए किसी प्रकार की जोखिम या अनिश्चितता नहीं होती। उद्यमता का सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र शून्य होगा। इसलिए लाभ भी शून्य होंगे। पर, स्थैतिक अवस्था मे भी लाभ होते है क्योंकि प्रतियोगिता की अपूर्णता के कारण लाभ पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाते। इसलिए उद्यमियो को जिन लाभो की प्राप्ति होती है, वे विशुद्ध लाभ नहीं बल्कि एकाधिकारात्मक लाभ होते है। प्रबन्धक-उद्यमी प्रबंधन की मजदूरी प्राप्त करते है और पूँजीपति-उद्यमी ब्याज प्राप्त करते है। उद्यमी दीर्घकालीन लाभ प्राप्त करते है क्योंकि आज की दुनिया गत्यात्मक और परिवर्तनशील है और इसलिए उत्पादन और वस्तुओं के विक्रय मे अनिश्चितता पायी जाती है तथा प्रतियोगिता कभी पूर्ण नहीं होती। और उद्यमता का सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र धनात्मक होता है।

3 सामान्य लाभ की धारणा
(THE CONCEPT OF NORMAL PROFITS)

सामान्य लाभ की धारणा आर्थिक सिद्धान्त मे एक महत्त्वपूर्ण विश्लेषणात्मक साधन है। फर्म के सिद्धान्त और लाभ की प्रकृति की व्याख्या करने के लिए इस धारणा का विस्तृत प्रयोग किया गया है। मार्शल की परिभाषा के अनुसार सामान्य लाभ, "औसत व्यापार योग्यता और शक्ति की पूर्ति कीमत" (supply price of average business ability and energy) है। यह लाभो की वह उचित या सामान्य दर है जिसका, समुचित व्यापार योग्यता के व्यक्तियो को एक उद्योग मे आकर्षित करने के लिए, होना जरूरी है। यह वह पुरस्कार है जिसे एक उद्यमी, दीर्घकाल मे, उस समय प्राप्त करने की आशा करता है, जबकि उद्योग संतुलन मे होता है ताकि वह उत्पादन की लागत मे शामिल हो जाए। आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने स्थानान्तरण आय (transfer earning) के रूप मे इसकी व्याख्या की है। यदि यह मान लिया जाए कि सब उद्यमी समान दक्षता वाले है, तो उनके उद्योग में टिके रहने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हे सामान्य लाभ प्राप्त होते रहे। इस प्रकार सामान्य लाभ इस उद्योग की स्थानान्तरण आय है जिसकी उद्यमियों को प्राप्ति तो कम से कम होनी ही चाहिए, अन्यथा वे किसी दूसरे उद्योग मे चले जाएँगे। स्टोनियर और हेग के अनुसार, सामान्य लाभ वे होते है "जो एक उद्यमी को एक उद्योग मे टिके रहने की प्रेरणा देने को पर्याप्त हो।"[12]

इस परिभाषा मे, जो मार्शल की परिभाषा से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं है, यह निहित है कि किसी भी उद्योग मे, दीर्घकाल मे सब उद्यमियो के लाभ अवश्य समान होंगे। यदि कोई उद्योग सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त कर रहा है, तो नई फर्में उस उद्योग की ओर आकर्षित होंगी और प्रतियोगिता लाभो को समाप्त कर देगी। इसके विपरीत, यदि एक उद्योग में फर्में हानि उठा रही है तो उनमे से कुछ उद्योग को छोड जाएँगी, पूर्ति गिर जाएगी, कीमतें बढेंगी और फर्मे सामान्य लाभ प्राप्त करना शुरू कर देंगी। इसलिए श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने सामान्य लाभ की यह

* चित्र 41 4 का भी अध्ययन कीजिए।

12 "Normal profits are those which are just sufficient to induce an *entrepreneur* to stay in the industry."—*Stonier and Hague*

परिभाषा दी है कि यह "लाभ का वह स्तर है जिस पर व्यापार में नई फर्मों के आने और पुरानी फर्मों के उसे छोड़ जाने की कोई प्रवृत्ति नहीं होती।"[13]

इस व्याख्या के अनुसार, सामान्य लाभ भी उत्पादन की औसत लागत का भाग समझे जाते हैं। क्योंकि यह मान लिया जाता है कि सब उद्यमी सामान्य लाभों की समान मात्रा ही प्राप्त करते हैं, इसलिए, उत्पादन के स्तर से स्वतन्त्र, ये मुद्रा की एक स्थिर राशि होते हैं। इसे चित्र 41.3 में स्पष्ट किया गया है।
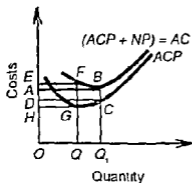
चित्र 41.3

ACP उत्पादन का औसत लागत वक्र है और $AC = (ACP + NP)$ वह औसत लागत वक्र है जिसमें सामान्य लाभ भी शामिल है। ज्यों-ज्यों मात्रा बढ़ती है, त्यों-त्यों वक्रों के बीच की अनुलम्ब दूरी (vertical distance) घटती जाती है जिसका मतलब है कि उत्पादन की प्रति इकाई पर सामान्य लाभ कम हो जाता है। OQ उत्पादन पर प्रति इकाई सामान्य लाभ GF है और OQ_1 उत्पादन पर लाभ CB है। परन्तु उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर कुल सामान्य लाभ समान रहते हैं। क्षेत्र $EFGH = ABCD$ जो यह प्रकट करता है कि उत्पादन के सब स्तरों पर सामान्य लाभ मुद्रा की एक स्थिर राशि है। इस प्रकार हमारे फर्म सबंधी इस समस्त विश्लेषण में सामान्य लाभ AC वक्र में शामिल रहते हैं।

प्रोफेसर नाइट के अनुसार, "सामान्य लाभ का सिद्धान्त सतुलन की स्थिति से सम्बन्ध रखता है जिसमें सब परिवर्तनों और जोखिमों का हिसाब और पूर्व-अनुमान लगाया जा सकता है। सतुलन की स्थिति में, फर्मों के लिए उद्योग में आने या उसे छोड़ने की कोई प्रेरणा नहीं होती। सब साधन पूर्ण रूप से नियुक्त (employed) होते हैं। अनिश्चितता बिल्कुल नहीं होती। विशुद्ध लाभ समाप्त हो जाएँगे और उद्यमी केवल प्रबंधन की मजदूरी प्राप्त करेंगे। वास्तव में प्रबंधन की मजदूरी ही सामान्य लाभ होते है।

दीर्घकाल में, गत्यात्मक अवस्था में भी उस समय तक सामान्य लाभों के पाये जाने की प्रवृत्ति रहेगी, जब तब कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थितियों के अन्तर्गत परिवर्तनों के प्रभावों का हिसाब तथा पूर्व-अनुमान लगाया जा सके। अल्पकाल में, कुछ दक्ष उद्यमी किसी प्रकार की अनिश्चितता के न होने पर भी सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। पर, मार्किट अपूर्णताओं के होने और परिवर्तनों के समान रूप से एवं निरंतर घटित न होने के कारण, दीर्घकालीन में भी असाधारण लाभों की प्राप्ति की सम्भावना पाई जाती है। परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अनिश्चितता और परिवर्तन की स्थिति में उद्यमी सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त कर लेते हैं। एकाधिकार के अन्तर्गत असाधारण लाभ उस समय स्थायी बन जाते हैं, जबकि वस्तु का कोई स्थानापन्न न हो, उसकी माँग स्थिर हो और अनिश्चितता मौजूद रहे। अब हम एकाधिकार लाभों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

13 "It is that level of profit at which there is no tendency for new firms to enter the trade or for old firms to disappear out of it." *Joan Robinson*

4 एकाधिकार लाभ
(MONOPOLY PROFITS)

एकाधिकार लाभ इसलिए प्रकट होते हैं कि एकाधिकारी के पास वस्तु की पूर्ति या कीमत के विनियमन (regulate) करने की शक्ति होती है। एकाधिकार लाभो के प्रकट होने के इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी होते है। सम्भव हे कि किसी एक फर्म के पास एक वस्तु के उत्पादन का प्राकृतिक (natural) अधिकार हो। यह भी हो मकता है कि एक फर्म को एक वस्तु के कुल उत्पादन या एक प्रक्रिया के प्रयोग का पेटेण्ट (patent) अधिकार प्राप्त हो। या फिर सभव है कि एक फर्म अपना इतना अधिक विस्तार कर ले कि वह अन्य प्रतियोगियो को मार्किट से निकाल बाहर करे। ट्रेड यूनियनो के अभाव मे, श्रम मार्किट मे अपनी एकाधिकारात्मक स्थिति के कारण भी एक फर्म एकाधिकार प्राप्त कर सकती है।

हाँ, नवप्रवर्तन और अनिश्चितताएँ ही सामान्य लाभो से ऊपर के उस आधिक्य को जन्म देती है जिसे एकाधिकार लाभो के रूप मे विशिष्टता प्रदान की जाती है। कोई फर्म जब नवप्रवर्तन करती है, तो उसे अनिश्चितता का सामना करना पडता है। परन्तु जब नवप्रवर्तन सफल हो जाता है, तो फर्म एकाधिकार लाभ प्राप्त करने लगती है। परन्तु जब नवप्रवर्तन को पेटेण्ट करा दिया जाता है, तो फर्म को जो लाभ प्राप्त होता है, वह सही अर्थ में एकाधिकार-लाभ नहीं होता। यदि वह फर्म उस प्रक्रिया को दूसरी फर्मों को बेचती है, तो जो उस फर्म को मिलता है वह आर्थिक लगान होता है। उस रहस्य (या नवप्रवर्तन) को बताने के बदले वह फर्म जो कीमत वसूल करेगी, वह "कुल लाभो के—एकाधिकारात्मक जमा सामान्य लाभो के—प्रवाह के पूँजीकृत मूल्य के, जिसे कि फर्म वसूल करने की आशा रखती है, बराबर होगी।"[14] विशुद्ध लाभो को नहीं, केवल लगान को पूँजीकृत (capitalised) किया जा सकता है। एकाधिकार लाभों का यह लगान-पक्ष तब प्रकट होता है, जब नवप्रवर्तन से सबधित अनिश्चितताएँ समाप्त हो जाती है।

रॉबिन्सन के अनुसार, उद्यमी वर्ग मे सृजनात्मक योग्यता (creative ability) की दुर्लभता के कारण यह एकाधिकार आधिक्य होता है। यह दुर्लभता तत्त्व सृजनात्मक योग्यता वाले उद्यमी को मजदूरो से बलपूर्वक लाभ (forced gains) प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करता है। उद्यमियो की दुर्लभता के परिणामस्वरूप अपूर्ण प्रतियोगिता प्रकट होती है और यह सभव है कि कुछ उद्यमी मजदूरों को उनकी सीमान्त उत्पादकता से कम भुगतान करके अधिक आधिक्य प्राप्त कर ले। यह आधिक्य या 'बलपूर्वक लाभ' वास्तव मे एकाधिकार आधिक्य है।

परन्तु प्रोफेसर नाइट के अनुसार एकाधिकार लाभों की प्राप्ति इसलिए होती है कि व्यवसाय मे अनिश्चितता वर्तमान रहती है। उन उद्योगो मे, जहाँ अनिश्चितता अधिकतम होती है, सफलतापूर्वक अनिश्चितता उठाने वाले उद्यमी सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त करते हैं। अन्य उद्यमियो के स्थिति का ठीक अनुमान लगाने मे असफल रहने के कारण ही यह आधिक्य प्रकट होता है। इसका परिणाम यह होता है कि सफल उद्यमी दूसरो की अपेक्षा सस्ती दरो पर उत्पादन के साधन प्राप्त कर लेते है और इस प्रकार उस आधिक्य को प्राप्त करते है, जो एकाधिकार आधिक्य कहा जा सकता है। इस प्रकार कीमतो मे एकक्रयाधिकार (monopsony) या एकाधिकारात्मक प्रवृतियो से एकाधिकार लाभ उत्पन्न होते है, या फिर, अनिश्चितताओं की उपस्थिति मे गत्यात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया मे उत्पन्न होते है, जिसमे कि दीर्घकालीन सतुलन नहीं आता।

14 "The price asked by the firm for passing on the secret would approximate the capitalised value of the flow of total profits—monopoly plus normal profits—expected to be realised by the firm."

5. लाभो मे समानता की प्रवृत्ति
(TENDENCY OF PROFITS TO EQUALITY)

दीर्घकाल में, पूर्ण प्रतियोगितामूलक उद्योगो मे सामान्य लाभ समान हो जाएँगे और विशुद्ध लाभ (pure profits) शून्य होंगे। यदि सब उद्योगो मे नई फर्मों के आने पर कोई प्रतिबन्ध न हो, साधन-सेवाएँ पूर्ण रूप से गतिशील और विभाज्य हो, उनके स्वामियो को मार्किट स्थितियो का पूर्ण ज्ञान हो और कोई भी विक्रेता मार्किट-कीमतो को प्रभावित न कर सके, तो कीमते और उत्पादन उस स्थिति की ओर अग्रसर होने लगेगी, जहाँ दीर्घकाल में प्रत्येक वस्तु की कीमत उसके उत्पादन की औसत लागत के बराबर हो जाएगी। यदि कोई उद्योग अल्पकाल में असाधारण लाभ प्राप्त कर रहा है, तो उन लाभो से अन्य उद्योगो की फर्में आकर्षित होंगी और उस उद्योग मे आ जाएँगी। परिणामत वस्तु की पूर्ति बढ जाएगी, कीमतें गिरेंगी और न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत के बराबर हो जाएँगी। इसके विपरीत, ऋणात्मक लाभ वाले उद्योग को कुछ फर्में छोड जाएँगी जिससे वस्तु की पूर्ति कम हो जाएगी जिसका परिणाम यह होगा कि कीमते बढेंगी और न्यूनतम दीर्घकालीन ओसत लागत के बराबर हो जाएँगी। यह प्रवृत्ति तब तक चलती रहेगी, जब तक कि सब उद्योगो मे लाभ समान नहीं हो जाते। इस प्रकार दीर्घकालीन स्थैतिक (static) अवस्था मे सब उद्योग केवल सामान्य लाभ प्राप्त करेंगे और विशुद्ध लाभ शून्य हो जाएँगे।

क्लार्क (Clark) के अनुसार, स्थैतिक अवस्था में जनसंख्या, पूँजी, उत्पादन के साधन, व्यापार सगठन के प्रकार ओर उपभोक्ता की आवश्यकताएँ स्थिर रहती है। यदि उनमे परिवर्तन होता भी है, तो प्रतियोगिता की शक्तियाँ इन पाँच प्रकार के परिवर्तनो को समाप्त करने का प्रयत्न करती है, जिससे प्रत्येक साधन-सेवा उतनी ही प्राप्त कर पाती है जितना वह उत्पादन करती है। विक्रय कीमत और उत्पादन की लागत बराबर हो जाती है और विशुद्ध लाभ नहीं रह जाते। जो कुछ उद्यमियो को प्राप्त होता है, वह केवल प्रबधन की मजदूरी होती है जोकि सामान्य लाभ है। क्लार्क के मत से हम चाहे पूर्णतया सहमत न हो, परन्तु उसका विश्लेषण यह निर्देश करता है कि स्थैतिक अवस्था मे लाभो की प्रवृत्ति शून्य पर आ जाने की होती है।

शुम्पीटर का मत भी इससे मिलता-जुलता है। स्थैतिक अवस्था के अन्तर्गत प्रतियोगी सतुलन मे प्रत्येक वस्तु की कीमत उस वस्तु के उत्पादन की लागत के ठीक बराबर होती है और लाभ बिल्कुल नहीं होते। एक नवप्रवर्तन से होने वाले गत्यात्मक परिवर्तन के कारण लाभ उत्पन्न होते है। वे लाभ तब तक प्राप्त होते रहते है, जब तक कि नवप्रवर्तन सामान्य नहीं बन जाते।

पर इस विचार के आधुनिक सूत्र को आगे बढाया जाए, तो यह सभव है कि अल्पकाल मे, अन्तर्कालीन (transitional) अवधि के अन्तर्गत, या उस समय जब पूर्ण प्रतियोगिता न रहे, लाभ धनात्मक या ऋणात्मक हो। यदि संस्थानिक अथवा कानूनी प्रतिबन्धो के द्वारा उद्योग की पुरानी फर्मों को प्रवेश से सुरक्षित रखा जाए, तो वे दीर्घकाल मे भी धनात्मक लाभ प्राप्त कर सकती है या नई फर्मो की अपेक्षा पुरानी फर्में किसी महत्त्वपूर्ण सेवा को कम कीमत पर प्राप्त कर ले, तो तब भी वे धनात्मक लाभ प्राप्त कर सकती है। अल्पकाल मे, स्थिर साधनो मे परिवर्तन के अभाव के कारण फर्मों को धनात्मक या ऋणात्मक लाभ हो सकता है।

प्रोफेसर नाइट का सिद्धान्त यह प्रकट करता है कि जब अनिश्चितता वर्तमान हो, तो दीर्घकाल मे भी लाभो के समान होने की प्रवृत्ति नहीं होती। एक उद्योग मे प्रवर्तमान अनिश्चितता की कोटि उद्यमियो द्वारा प्राप्त किए गए लाभो मे बहुत अधिक अन्तर ला देती है। दीर्घकाल मे लाभ तब बराबर होते है, जबकि परिवर्तन पूर्व-कथ्य (predictable) हो और अनिश्चितताएँ न रहे।

निष्कर्ष रूप मे हम कह सकते है कि उस विशिष्ट स्थैतिक अवस्था मे ही लाभो के समान या शून्य होने की प्रवृत्ति होती है जिसमे पूर्ण प्रतियोगिता हो और अनिश्चितता न हो। परन्तु

वास्तविक जगत् गतिशील है, जहाँ एकक्रयाधिकार या एकाधिकारात्मक प्रवृत्तियाँ पायी जाती है और पूर्ण प्रनियोगिता प्राय नहीं होती। इसलिए लाभ न्यूनतम या शून्य नहीं होते बल्कि वे धनात्मक या ऋणात्मक होते हे।

6 लाभ और उत्पादन की लागत (PROFITS AND COST OF PRODUCTION)

प्राय यह समस्या उठाई जाती हे कि लाभ उत्पादन का अश होते है या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि हम 'लाभ' शब्द का क्या अर्थ लेते हे ओर उद्यमी को पुरस्कार के रूप मे लाभ किस प्रकार प्रकट होते है। यदि लाभो से अभिप्राय प्रबधन की मजदूरी या सामान्य लाभ है, तो वे निर्विवाद रूप से उत्पादन की लागत मे शामिल होते हे। उस आवश्यक भुगतान को सामान्य लाभ कहते हे, जो उद्योगो मे टिके रहने के लिए उद्यमियों को अवश्य प्राप्त होना चाहिए। अल्पकाल के अन्तर्गत, यह हो सकता है कि उद्यमी को हानि हो रही हो और उसे प्रबधन की मजदूरी भी छोडनी पडे। परन्तु दीर्घकाल मे यह आवश्यक है कि कीमत उत्पादन के सामान्य खर्चों को पूरा कर दे। यदि उद्योग मे कुछ उद्यमी उत्पादन के अपने सामान्य खर्चों को पूरा नहीं कर पाते, तो वे उद्योग को छोड जाएँगे, वस्तु की पूर्ति कम हो जाएगी और कीमत तब तक बढती रहेगी, जब तक कि सब उद्यमी सामान्य लाभ प्राप्त करने नहीं लगते। यदि वह प्रबन्धन की अपनी मजदूरी प्राप्त करने की स्थिति मे नहीं है, तो कोई भी उद्यमी जोखिम और अनिश्चितताएँ नहीं उठाएगा। इस प्रकार प्रबधन की मजदूरी या सामान्य लाभ एक आवश्यक भुगतान है जो वस्तु के उत्पादन की लागत का अश होता है।

हा, विशुद्ध लाभ (pure profit) उत्पादन की लागत से बढा हुआ आधिक्य (surplus) होते है। यह वह राशि होती है जोकि उसके द्वारा उत्पादन की प्रक्रिया मे प्रयोग की गई सब साधन-सेवाओ का भुगतान करने के बाद उद्यमी के पास बच जाती है। परन्तु सब उद्यमियो मे समान दक्षता नहीं होती। प्रत्येक उद्योग मे हमेशा कोई न कोई सीमान्त या न्यूनतम दक्षता वाला ऐसा उद्यमी होता हे जो केवल प्रबन्धन की मजदूरी को ही पूरा कर पाता है ओर विशुद्ध लाभ बिल्कुल नहीं कमा पाता। उसकी कमाई उत्पादन की लागत मे शामिल हो जाती है क्योकि यदि उसे एक न्यूनतम पुरस्कार (सामान्य लाभ) नहीं मिलता, तो वह अपनी सेवाओं को किसी अन्य वैकल्पिक धन्धे मे स्थानान्तरण कर देगा। इसलिए भूमि की भाँति, सीमान्त उद्यमी की स्थानान्तरण आय (transfer earning) से अधिक जो कुछ अन्य उद्यमियो को प्राप्त होता है, वह विशुद्ध लाभ नहीं होता बल्कि लाभ मे लगान तत्त्व (rent element) होता है।

चित्र 41.4

इसे चित्र 41 4 मे दिखाया गया है, जहाँ S एक उद्योग मे उद्यमता का पूर्ति वक्र है और D उद्यमता का माँग वक्र। पूर्ण प्रतियोगितामूलक स्थितियो के अन्तर्गत OQ उद्यमी लाभ की समान दर OP प्राप्त करते है। परन्तु कोई भी उद्यमी OR से कम दर पर उद्योग मे रहने को तैयार नहीं होगा। वह उद्यमी सीमान्त उद्यमी है जिसे केवल OR लाभ प्राप्त होता है और वह (OR लाभ) उत्पादन की लागत का अश है। अन्य उद्यमियो द्वारा उठाए गए लाभ मे PER क्षेत्र कुल लगान तत्त्व है। यदि उद्यमता की पूर्ति पूर्ण लोचदार हो, जैसाकि चित्र 41.2 मे, तो यह लगान
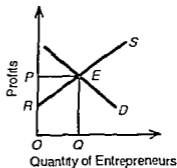
तत्त्व समाप्त हो जाएगा और सब उद्यमी केवल प्रबंधन की मजदूरी प्राप्त करेंगे। परन्तु इसकी सम्भावना बहुत कम रहती है।

निष्कर्षत यह कहना अधिक वास्तविक प्रतीत होता है कि एक विशेष उद्योग में एक उद्यमी को रखने के लिए विशुद्ध लाभों का कुछ भाग भी आवश्यक भुगतान होता है।

7. लाभ का लगान सिद्धान्त
(RENT THEORY OF PROFITS)

लगान तथा लाभ कीमत द्वारा निर्धारित अतिरेक भुगतान (surplus payments) होते हैं। लाभ अवशेष (residual) आय है, जबकि लगान संविदात्मक (contractual) आय है। लगान तथा लाभ में स्पष्टतया विभेद करने के लिए हम उनकी प्रकृतियों का अध्ययन करते हैं।

लगान से साधारणतया अभिप्राय उन भुगतानों से है, जो सभी प्रकार की सम्पत्ति एवं टिकाऊ वस्तुओं को एक निश्चित राशि पर पट्टे पर देकर इनके मालिक प्राप्त करते हैं। परन्तु एक मालिक को इनके लिए जो राशि प्राप्त होती है वह शुद्ध लगान नहीं, बल्कि संविदा अथवा ठेका (contract) लगान है। आर्थिक लगान, एक उत्पादन के साधन को उसकी न्यूनतम पूर्ति कीमत से अधिक दिया जाने वाला अतिरेक भुगतान है। यह एक साधन की वास्तविक आय तथा उसकी पूर्ति कीमत या स्थानान्तरण आय का अन्तर है। किसी साधन की वास्तविक आय उसके द्वारा अपनी सेवाओं को बेचने से प्राप्त कीमत है। इसकी स्थानान्तरण आय, इस साधन को किसी अन्य प्रयोगों में स्थानान्तरण न करके इसको वर्तमान प्रयोग में रखने के लिए दी जाने वाली न्यूनतम कीमत है। अत लगान एक अतिरेक है, जो कोई भी साधन अपनी हस्तान्तरण आय से अधिक अर्जित करता है।

लाभ वह अवशेष है जो व्यवसाय की कुल आय में से सभी आवश्यक भुगतान करने के बाद प्राप्त होता है। यह एक व्यावसायिक फर्म की उत्पादन लागतों से ऊपर प्राप्त होने वाला अतिरेक है। वास्तव में लाभ, एक फर्म के स्वामियों द्वारा सप्लाई किए गए उत्पादन के साधनों को प्राप्त हो रहे, लगान है। ये स्वामी फर्म के आगम के अवशेष दावेदार (residual claimants) हैं। इस तरह, लाभ एक फर्म के स्वामियों द्वारा असंविदात्मक (noncontractual) आधार पर ससाधनों को आपूर्रित करने के लिए प्राप्त वास्तविक राशि तथा इन ससाधनों की अवसर लागत का अन्तर है। ये नवप्रवर्तन करने तथा अनिश्चितता वहन करने का पुरस्कार है।

लाभ लगान होते हैं जब हम लगान को उद्यमी की उसकी न्यूनतम पूर्ति कीमत से अधिक आधिक्य भुगतान के रूप में परिभाषित करते हैं (Profits are rents when we define rent as the surplus payment to the entrepreneur in excess of his minimum supply price) इसको समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि लगान कैसे उत्पन्न होता है। लगान उतनी देर तक उत्पन्न होता रहता है जितनी देर तक एक साधन की वास्तविक आय उसकी स्थानान्तरण आय या न्यूनतम पूर्ति कीमत से अधिक होती है। यह आगे साधन की पूर्ति की लोच पर निर्भर करती है। लगान की उत्पत्ति के लिए साधन की पूर्ति कम लोचदार होनी चाहिए। यदि इसकी पूर्ति पूर्ण लोचदार हो तो यह लगान के रूप में कोई अतिरेक अर्जित नहीं करेगा क्योंकि साधन की वास्तविक आय उसकी स्थानान्तरण आय के बराबर होगी। यदि साधन की पूर्ति पूर्णतया बेलोच हो तो इसकी समस्त आय लगान के रूप में होगी।[15] लाभों की लगान के रूप में उत्पत्ति को चित्र 41.5 में व्यक्त किया गया है, जहाँ *SS*, वक्र उद्यमियों की पूर्ति तथा *DD*, वक्र उनकी माँग को

15 इसकी क्रिया के लिए, अध्याय 'लगान' में चित्र 38.3 से सम्बन्धित सामग्री पढ़िए।
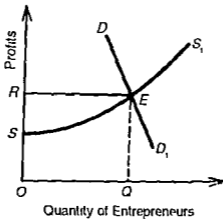
चित्र 41.5

दर्शाना है। E सतुलन बिन्दु है, जहाँ उद्यमियो की पूर्ति उनकी माँग के बराबर होती है। सभी उद्यमी समान पुरस्कार OR प्राप्त करते है। उद्योग मे उद्यमियो के कुल लाभ $OQER$ क्षेत्र द्वारा दिखाए गए है जो उनकी वास्तविक आय (actual earnings) है। OS न्यूनतम पूर्ति कीमत है जिसके नीचे कोई भी उद्यमी उद्योग मे कार्य करने को इच्छुक नहीं होगा। अत $OQES$ उनकी स्थानान्तरण आय (transfer earning) वह न्यूनतम राशि है जो उद्यमियो को वर्तमान उद्योग मे रखने के लिए अवश्य दी जाए। इस प्रकार क्षेत्र SER ($= OQER - OQES$) उद्यमियो के लाभो मे कुल लगान अश है। यदि पूर्ति वक्र X-अक्ष के समानान्तर हो तो त्रिभुज SER अदृश्य हो जाता और कोई लगान न होता। लगान तथा लाभो में यह सम्बन्ध दीर्घकाल मे लागू होता है।

अल्पकाल मे, उद्यमियो की पूर्ति स्थिर होती है तथा उस काल मे लाभो के रूप मे उनको जो प्राप्ति होती है वह लगान के समान हो सकती है। उनको जो भुगतान इस प्रकार होता है, वह आभास लगान (quasi rent) कहलाता है क्योकि उद्यमियो की पूर्ति मे वृद्धि और वैकल्पिक प्रयोगो मे मूल्य होने के लिए समय बहुत थोडा होता है। जब उद्यमी की सेवाओ के लिए अल्पकाल मे माँग बढती है तो उसकी पूर्ति स्थिर होने के कारण जो अतिरिक्त आय वह अर्जित करता है, वह आभास लगान कहलाता है। रिचर्ड डेविस (Richard Davis)[16] लाभ को अनारोपित (unimputable) आभास लगान समझता है। इसे चित्र 41 6 मे समझाया गया है। $PABE$ क्षेत्र अल्पकाल मे अतिसामान्य लाभों (supernormal profits) को व्यक्त करता है, जोकि फर्म का अनारोप्य अतिरेक है। DE उत्पादन का प्रति इकाई आभास लगान है

चित्र 41.6

16 R M Davis "The Current State of Profit Theory", *A E R*, June 1952
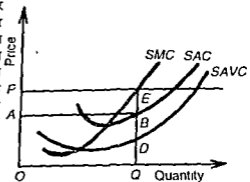
जोकि फर्म अल्पकालीन औसत परिवर्ती लागत (SAVC) से ऊपर अर्जित करती है। जिन परिसम्पत्तियों पर फर्म का स्वामित्व होता है, आभास लगान उन पर आरोपित (imputed) है। *BE* उत्पादन का प्रति इकाई लाभ है जोकि *DE* उत्पादन का प्रति इकाई आभास लगान का भाग है। *DE* अल्पकाल संविदात्मक (contractual) सम्बन्धों का परिणाम है। इस प्रकार, लाभ *BE* अनारोपित आय है।

जिस प्रकार अन्य प्रयोगों से भूमि की अधिक पूर्ति के लिए लगान एक आवश्यक भुगतान है, उसी प्रकार व्यवसाय मे उद्यमियों की अधिक पूर्ति को प्रेरित करने के लिए लाभ आवश्यक भुगतान है। परन्तु अल्पकाल मे आभास लगान अनावश्यक भुगतान है। इसके लिए साधन स्वामी को अतिरिक्त लागत की आवश्यकता नहीं होती। अत उद्यमी द्वारा अर्जित आभास लगान उत्पादन की लागत का भाग नहीं होता। दीर्घकाल मे आभास लगान अदृश्य हो जाता है, तथा सामान्य लाभों में सम्मिलित हो जाता है, जोकि आवश्यक भुगतान है और उत्पादन की लागत का अग होते है।

लगान और लाभों मे एक और अन्तर समय के दृष्टिकोण से है। भूमि की पूर्ति बेलोच होने के कारण लगान भूमि के प्रयोग के भुगतान के रूप मे अल्प एव दीर्घ दोनो कालो में पाया जाता है। अल्पकाल मे फर्में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अपनी न्यूनतम अल्पकालीन औसत लागत से ऊपर अतिसामान्य लाभ अर्जित कर सकती है। परन्तु दीर्घकाल में नई फर्मों के उद्योग में प्रवेश से अतिसामान्य लाभ प्रतियोगिता के कारण समाप्त हो जाते है तथा फर्में न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत के बराबर कीमत लेती है। अत वे शून्य शुद्ध लाभ (zero net profits) अर्जित करती है जिन्हे सामान्य लाभ भी सबोधित किया जाता है। सामान्य लाभ केवल प्रबधन की मजदूरी होने है और उद्यमियो को उद्योग मे रखने के लिए आवश्यक भुगतान है। यदि लगान को एक साधन का अतिरेक भुगतान मान लिया जाए तो यह दीर्घकाल मे अदृश्य नहीं होगा, जब उस साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार बन जाती है। फिर लाभ ऋणात्मक भी हो सकते है। अल्पकाल में फर्में हानि उठा सकती है, जब वे अपनी औसत परिवर्ती लागत को ही पूरा कर पाती है। दीर्घकाल मे कुछ फर्में, जो हानिया सहन नहीं कर सकतीं, उद्योग को छोड जाएँगी जिसके परिणामस्वरूप वस्तु की पूर्ति कम हो जाएगी, कीमत बढेगी और न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत के बराबर हो जाएगी। इस प्रकार दीर्घकाल मे, न तो असामान्य लाभ और न ही हानियाँ होगी, सिवाय सामान्य लाभो या शून्य शुद्ध लाभो के।

लगान एव लाभो मे अन्तर इस बात से उत्पन्न होता है कि क्या वे उत्पादन की लागत का एक भाग है या नहीं। जहा तक लगान का सम्बन्ध है, इस बात पर निर्भर करता है कि हम इसे किस दृष्टिकोण से देखते है। समाज के दृष्टिकोण से लगान उत्पादित वस्तुओ की उत्पादन लागत मे सम्मिलित नहीं होता क्योकि भूमि की पूर्ति कीमत या स्थानान्तरण लागत शून्य होती है। उद्योग के दृष्टिकोण से, भूमि की न्यूनतम पूर्ति कीमत उत्पादन लागत में शामिल होती है। चित्र 41 6 में, *OQES* उत्पादन लागत का भाग है जबकि इससे अधिक, *RES* लगान है। व्यक्ति के दृष्टिकोण से, सारी आय लगान होती है तथा उत्पादन लागत का भाग है क्योकि लगान एक आवश्यक भुगतान है। लाभ क्या उत्पादन लागत मे सम्मिलित होते है या नहीं, इस बात पर निर्भर करता है कि हम 'लाभ' से क्या अर्थ लेते है। लाभ प्रबन्धन की मजदूरी के रूप मे या सामान्य लाभ के अर्थ में उत्पादन लागत का अंश होते है। परन्तु शुद्ध लाभ उत्पादन लागत से ऊपर अतिरेक होते है क्योंकि वे सभी उत्पादन के साधनो को भुगतान करने के बाद अवशेष होते है।

लगान तथा लाभों में एक और अन्तर इस बात मे भी पाया जाता है कि लगान स्थैतिक (static) होता है और लाभ गत्यात्मक (dynamic)। लगान संविदात्मक आय है जो समयपर्यन्त स्थिर होती है। दूसरी ओर, लाभ एक गत्यात्मक अवस्था में अनिश्चितता वहन करने का परिणाम होते है। वे

उद्यमियों की प्रत्याशाओ पर निर्भर करते है। अनिश्चितताएँ, जो नवप्रवर्तनो तथा बाह्य शक्तियो के कारण उत्पन्न होती है, जोकि इन प्रत्याशाओ का लगातार सशोधन करती रहती है जिससे उद्यमी लाभ कमाते है। इस प्रकार जहाँ लगान साधन या भूमि की भी लोचदार पूर्ति के कारण स्थैतिक अवस्था मे उत्पन्न होता है, वहाँ लाभ गत्यात्मक अवस्था मे उत्पन्न होते है।

अन्तिम, लाभ तथा लगान के भेद को आर्थिक प्रगति के दृष्टिकोण से भी देखा जाता है। दुर्लभता तत्त्व (scarcity element) के रूप मे लगान आर्थिक प्रगति के साथ बढने की प्रवृत्ति रखता है, जब भूमि या अन्य साधनो की माँग मे वृद्धि होती है। लाभ भी रहन-सहन के स्तर मे सुधारो तथा नवप्रवर्तनों के कारण बढने की प्रवृत्ति रखते है। एक नवप्रवर्तक फर्म तब तक अधिक लाभ कमाती है, जब तक कि अन्य फर्मे नवप्रवर्तनो को अपना नहीं लेतीं। अनिश्चितता का तत्त्व बढता है और श्रेष्ठ योग्यता वाले उद्यमी लाभ के रूप मे अधिक पुरस्कार अर्जित करते है। दूसरे शब्दो मे, आर्थिक प्रगति से अभिप्राय राष्ट्रीय आय मे वृद्धि तथा लाभो के रूप मे उद्यमियो के अश मे वृद्धि है। लाभो की सभावना, नई माँगो तथा नई मार्किटो के उद्‌भव के साथ जो रहन-सहन के स्तर मे सुधार होते है, उनसे बढती है। इस प्रकार लगान एव लाभो मे आर्थिक प्रगति के साथ बढने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

प्रश्न

1 "एक स्थैतिक दशा मे लाभ नहीं हो सकता।" टिप्पणी कीजिए।

2 लगान, आभास-लगान तथा लाभ का पारस्परिक अन्तर समझाइए और स्पष्ट कीजिए कि गत्यात्मक दशाओ मे लाभ किस प्रकार निर्धारित होता है।

3 शुद्ध लाभ किसे कहते है? इस विचार की विवेचना करिए कि पूर्ण प्रतियोगिता मे लाभ उत्पन्न नहीं होते। [सकेत लाभ शुद्ध लाभ के रूप मे दीर्घकाल मे नहीं होते यद्यपि अल्पकाल मे असाधारण लाभ पाए जाते है। "फर्म का सतुलन" अध्याय भी देखिए।]

4 प्रतियोगी बाजार मे लाभ कैसे निर्धारित होते है? स्थैतिक अवस्था मे उनके शून्य होने की प्रवृत्ति क्यो पाई जाती है?

5 नाइट के लाभ सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करिए।

6 *शैकल के लाभ सिद्धान्त की व्याख्या करिए।*

भाग छः
सामान्य संतुलन और कल्याण अर्थशास्त्र
(GENERAL EQILIBRIUM AND WELFARE ECONOMICS)

अध्याय 42

सामान्य संतुलन सिद्धान्त
(GENERAL EQUILIBRIUM THEORY)

1. प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

प्रस्तुत अध्याय मे वालरसीय सामान्य सतुलन सिद्धान्त, ग्राफीय 2×2×2 सामान्य सतुलन मॉडल और सामान्य सतुलन की अस्तित्व, स्थिरता और द्वितीयता की समस्याओं का अध्ययन किया गया है। आशिक सतुलन, सामान्य सतुलन तथा सतुलन की अन्य सबद्ध धारणाओं की विवेचना "सतुलन की धारणा" नामक अध्याय मे पुस्तक के प्रथम भाग मे की गई है।

2. सामान्य सतुलन के अस्तित्व, स्थिरता और अद्वितीयता की समस्याएं
(PROBLEMS OF EXISTENCE, STABILITY AND UNIQUENESS OF GENERAL EQUILIBRIUM)

अस्तित्व, स्थिरता और अद्वितीयता की समस्याए सामान्य सतुलन विश्लेषण मे सम्मिलित हैं। उनकी विवेचना नीचे आशिक सतुलन के माग ओर पूर्ति वक्रो द्वारा की जाती है और उनके परिणामो को सामान्य सतुलन विश्लेषण पर लागू किया जाता है।

1 सामान्य सतुलन का अस्तित्व (Existence of General Equilibrium)

सामान्य सतुलन के अस्तित्व की समस्या मार्किट मे क्रेताओं और विक्रेताओं के व्यवहार से सबधित होती है और यह किस प्रकार उनके माग और पूर्ति वक्रो को प्रभावित करता है। एक सतुलन उस समय होता है जब माग और पूर्ति वक्र एक धनात्मक (positive) कीमत पर बराबर होते है। ऐसी कीमत सतुलन कीमत कहलाती है। कीमत पर माग और पूर्ति की मात्रा सतुलन मात्रा कहलाती है। सतुलन कीमत पर न तो आधिक्य माग (excess demand) और न ही आधिक्य पूर्ति (excess supply) होती है। उस कीमत पर आधिक्य माग शून्य होती है। प्रतीकात्मक तौर से,

$$E_D = Q_D - Q_s = 0$$

जहा E_D आधिक्य माग है, Q_D माग की मात्रा और Q_s पूर्ति की मात्रा। आधिक्य माग वह बिन्दु है जहा एक विशेष कीमत पर पूर्ति वक्र को माग वक्र काटता है। सतुलन के अस्तित्व के लिए दोनों वक्रों को एक दूसरे को एक धनात्मक कीमत पर काटना चाहिए। एक धनात्मक कीमत पर सामान्य सतुलन के अस्तित्व की दो शर्तें है

1 इस कीमत पर सभी उपभोक्ता अपनी सतुष्टिया अधिकतम करते है और सभी उत्पादक अपने लाभो को अधिकतम करते है।

2 इस कीमत पर सभी मार्किटे खाली (clear) हो जाती है, अर्थात् एक धनात्मक कीमत पर वस्तु और साधन मार्किटो दोनो मे कुल माग और कुल पूर्ति की मात्राए बराबर होती है।
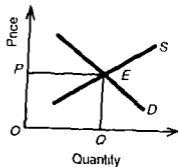
चित्र 42 1

चित्र 42 1 सामान्य सतुलन के अस्तित्व को चित्रित करता है जब पूर्ति वक्र S को माग वक्र D बिन्दु E पर काटता है तथा OP कीमत निर्धारित होती है जो धनात्मक कीमत है। यह कीमत मार्किट मे माग और पूर्ति की OQ मात्रा को बराबर करती है। इस चित्र को वस्तु बाजार और साधन बाजार दोनो पर लागू होती समझनी चाहिए जहा एक समय और एक साथ सतुलन होता है।

ऐरो और डेबरो[1] के अनुसार, जब पूर्ण प्रतियोगिता मार्किटो मे असंगतिया और पैमाने के न बढ़ रहे प्रतिफल नहीं पाए जाते हो तो सामान्य सतुलन का अस्तित्व होता है।

2 सामान्य संतुलन की स्थिरता (Stability of General Equilibrium)

सामान्य सतुलन की स्थिरता तब पाई जाती है जब माग और पूर्ति के बीच समानता दी हुई कीमत पर भग हो जाती है, और आधिक्य माग या आधिक्य पूर्ति, कीमत को और इसलिए माग और पूर्ति को, सतुलन कीमत और मात्रा पर ले जाती है। रेखागणितीय तौर से, सतुलन तब स्थिर होता है जब पूर्ति वक्र को माग वक्र ऊपर से काटता है। संतुलन की स्थिरता को चित्र 42 2 मे दर्शाया गया है जहा D माग वक्र S पूर्ति वक्र को ऊपर से E बिन्दु पर काटता है जो सतुलन विन्दु है। OP सतुलन कीमत पर वस्तु की OQ मात्रा खरीदी और बेची जाती है। यदि कीमत OP से OP_2 पर गिर जाती है तो माग $P_2d_1 > P_2s_1$ पूर्ति और s_1d_1 आधिक्य माग होती है। क्योंकि पूर्ति से माग अधिक होती है, क्रेताओं मे कम पूर्ति के लिए प्रतियोगिता OP_2 कीमत को बढा कर सतुलन कीमत OP पर ला देगी। यदि कीमत OP से बढकर OP_1 हो जाती है तो पूर्ति $P_1s > P_1d$ माग जिससे ds आधिक्य पूर्ति होती है। क्योंकि पूर्ति से माग कम है इसलिए प्रत्येक विक्रेता अपनी कीमत को थोडा-सा कम करके अपनी वस्तु बेचने का प्रयत्न करेगा। अन्तत, विक्रेताओ मे प्रतियोगिता OP_1 कीमत को सतुलन कीमत OP पर ले आएगी। इस प्रकार OP कीमत पर बिन्दु E सतुलन की स्थिरता को दर्शाता है।

चित्र 42 2

1 K J Arrow and G Debreu "Existence of an Equilibrium for a Competitive Economy", *Econometrica*, Vol 22 1954

चित्र 42.3

दूसरी ओर, अस्थिर संतुलन वह स्थिति होती है जिसमें जब एक बार संतुलन कीमत में गड़बड़ होती है तो वह पुनः कभी भी स्थापित नहीं हो सकती है। रेखागणितीय तौर से, जब पूर्ति वक्र को माग वक्र नीचे से काटता है तो अस्थिर असंतुलन होता है। इसे चित्र 42.3 द्वारा समझाया गया है, जहा D माग वक्र ऊपर की ओर ढाल वाला है और S पूर्ति वक्र को E बिन्दु पर नीचे से काटता है तथा OP सतुलन कीमत निर्धारित होती है। यदि कीमत OP से बढ़कर OP_1 हो जाती है तो माग $P_1d > P_1s$ पूर्ति। जब पूर्ति से माग अधिक होती है तो कीमत ऊपर की ओर और बढ़ती है तथा कीमत में वृद्धि आधिक्य माग को समाप्त नहीं करेगी। यह समस्या को केवल और गंभीर करेगी क्योंकि सतुलन स्थिति E कभी भी पुनः प्राप्त नहीं होगी। इसी प्रकार नीचे की ओर भी अस्थिरता पाई जाती है। जब कीमत OP से गिर कर OP_2 हो जाती है तो d_1s_1 आधिक्य पूर्ति होती है जो कीमत को और गिराती है तथा सतुलन स्थिति E को पुनः प्राप्त करने की कोई सम्भावना नहीं होती है।

बहु संतुलन (multiple equilibria) भी स्थिर और अस्थिर सतुलन की स्थितियों को दर्शाते हैं। मार्शल ने टेढ़े-मेढ़े माग और पूर्ति वक्रों की सहायता से अनेक स्थिर और अस्थिर स्थितियों की व्याख्या की जैसा कि चित्र 42.4 में दर्शाया गया है। वह स्थिर स्थिति की शर्त को इन शब्दों में वर्णन करता है, "माग और पूर्ति वक्रों के काटने के बिन्दु के अनुरूप माग और पूर्ति का संतुलन इस बात के अनुसार स्थिर या अस्थिर होता है कि माग वक्र उस बिन्दु के ठीक दाए को पूर्ति वक्र के नीचे या ऊपर कहा स्थित है।"

चित्र 42.4

बहु सतुलन की शर्तों को चित्र 42.4 में दिखाया गया है जहा उसी माग वक्र DD_1 और पूर्ति वक्र SS_1 पर सतुलन के तीन बिन्दु A, B और C हैं। बिन्दु A और C स्थिर सतुलन के है। बिन्दु A स्थिर सतुलन का है क्योंकि जब कीमत OP_3 से ऊपर बढ़ती है तो माग से पूर्ति अधिक होती है। विक्रेताओं में अपनी आधिक्य पूर्ति बेचने की प्रतियोगिता कीमत को नीचे की ओर धकेलती है और सतुलन पुनः कीमत OP_3 पर स्थापित हो जाता है। यदि कीमत OP_3 से कम होती है तो पूर्ति से माग अधिक होती है। कम पूर्ति के लिए क्रेताओं के बीच प्रतियोगिता में कीमत पुनः बढ़कर OP_3 सतुलन स्तर पर आ जाती है। इसी प्रकार, बिन्दु C पर स्थिरता पाई जाती है। जब कीमत OP_1 से ऊपर बढ़ती है तो माग से पूर्ति अधिक होने के कारण, विक्रेताओं में प्रतियोगिता कीमत को नीचे सतुलन स्तर OP_1 पर ले आती।

यदि कीमत OP_1 से नीचे गिर जाती है तो, पूर्ति से माग अधिक होने पर क्रेताओ मे प्रतियोगिता कीमत को बढाकर सतुलन स्तर OP_1 पर ले जाएगी। इन दोनो स्थितियो के बीच अस्थिर सतुलन का बिन्दु B है। यदि कीमत OP_2 से ऊपर बढती है तो आधिक्य माग होती है तथा कम पूर्ति के लिए क्रेताओं के बीच प्रतियोगिता से कीमते सतुलन बिन्दु से ऊपर ही ऊपर बढती चली जाएगी। दूसरी ओर, यदि कीमत OP_2 से नीचे गिरती है तो आधिक्य पूर्ति होती है। विक्रेताओ मे अपनी-अपनी अधिक पूर्ति बेचने की प्रतियोगिता कीमत को कम करती जाएगी जब तक कि बिन्दु C पर नया स्थिर सतुलन प्राप्त नहीं हो जाता है।

ऊपर का विश्लेषण मार्शल की स्थिरता शर्तो पर आधारित है। परन्तु वालरस के दृष्टिकोण से स्थिर और अस्थिर सतुलन की स्थितिया उलट हो जाती है। जहा पूर्ति वक्र को माग वक्र ऊपर से काटता है वहा सतुलन अस्थिर होगा और जहा वह नीचे से काटता है वहा सतुलन स्थिर होगा। अत वालरस के लिए A की स्थिति अस्थिर असतुलन की, B स्थिर सतुलन की तथा C पुन अस्थिर असतुलन की होगी। ऐसा इसलिए की मार्शल की स्थिरता की शर्तें कीमत-निर्भर धारणा पर आधारित है जब कि वालरस की मात्रा-निर्भर धारणा पर आधारित है।[2]

फिर भी, वालरस के सामान्य सतुलन मे बाजार सतुलन की स्थिरता सदैव पाई जाती है। यह पुनरावृत्ति (repetitive) प्रक्रिया द्वारा प्राप्त की जाती है। यदि अस्थिर सतुलन हो तो प्रत्येक मार्किट अपने सतुलन मूल्य पर समायोजित होगी। जब इस मात्रा-कीमत प्रक्रिया की पुनरावृत्ति होती है तो अर्थव्यवस्था "टटोलने" (groping) अथवा परीक्षण-प्रणाली (trial and error) द्वारा सामान्य सतुलन प्राप्त कर लेती है। ऐरो और हरविक्ज[3] ने वालरस सिस्टम की आनुभविक जाच द्वारा यह दर्शाया है कि वालरस सिस्टम स्थिर है, जब कि कुछ अन्य अध्ययनो ने इसे अस्थिर दर्शाया है। ऐरो और डेबरो के अनुसार, वालरस का सामान्य सतुलन सिस्टम स्थिर होता है यदि पैमाने के प्रतिफल स्थिर अथवा घट रहे हो, उपभोग और उत्पादन के बहिर्भाव न हो और सभी वस्तुए सकल (gross) स्थानापन्न हो, अर्थात् एक वस्तु की कीमत मे वृद्धि से अन्य वस्तुओ की धनात्मक आधिक्य माग होती है।

3 सामान्य सतुलन की अद्वितीयता (Uniqueness of General Equilibrium)

सतुलन अद्वितीय तब होता है जब कीमतो और मात्राओ का केवल एक सैट सतुलन की शर्तों को पूरा करता है। उदाहरणार्थ, चित्र 42 1 मे व्यक्त E बिन्दु पर सतुलन स्थिर और अद्वितीय भी है क्योकि कवल एक कीमत OP और मात्रा OQ मार्किट की स्थिरता लाती है जो अद्वितीय है।

सतुलन की अद्वितीयता को आधिक्य माग की धारणा द्वारा भी वर्णन किया जाता है। आधिक्य माग (E_D) माग (Q_D) और पूर्ति (Q_S) का अन्तर होती है $E_D = Q_D - Q_S$

चित्र 42.5

रेखागणितीय तौर से, आधिक्य माग को आधिक्य माग वक्र द्वारा दर्शाया जाता है जिसे एक कीमत पर माग और पूर्ति वक्रो के अन्तर के आधार पर खींचा जाता है। चित्रो 42 2, 42 3 और 42 4 के लिए
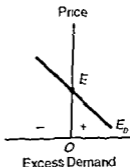
2 इनके विस्तृत अध्ययन के लिए मार्शल और वालरस की सतुलन की शर्तों को पुस्तक म ऊपर "सतुलन की धारणा" अध्याय मे देख।

3 K Arrow and L Hurwicz, "On the Stability of the Competitive Equilibrium" *Econometrica*, 1958

चित्र 42.6

चित्र 42.7

आधिक्य माग वक्रों को आगे चित्रों 42.5 से 42.7 तक पुन खींचा गया है।*

चित्र 42.2 को लीजिए। OP कीमत पर जब S वक्र को D वक्र ऊपर से काटता है, तब बिन्दु E पर दोनों वक्र सतुलन में है। यहा आधिक्य माग शून्य है, अर्थात् $E_D = O$ उस क्षेत्र में जहा S से D अधिक है ($P_2 d_1 > P_2 s_1$), आधिक्य माग धनात्मक (positive) है और जहा D से S अधिक है ($P_1 s > P_1 d$), आधिक्य माग ऋणात्मक (negative) है।** सामान्य D और S वक्रों के लिए आधिक्य माग वक्र की ढलान ऋणात्मक (बाए से दाए नीचे की ओर) होती है, $E_D < O$। जब आधिक्य माग वक्र की ढलान कीमत अक्ष को काटने के बिन्दु पर ऋणात्मक होती है, जैसा कि चित्र 42.5 में बिन्दु E पर, तो सतुलन स्थिर और अद्वितीय होता है।

अब चित्र 42.3 लीजिए जहा पूर्ति वक्र को माग वक्र नीचे से काटता है। यहा सतुलन कीमत OP से नीचे आधिक्य माग धनात्मक है और इससे ऊपर ऋणात्मक है। इसलिए आधिक्य माग वक्र की ढलान धनात्मक होगी, $E_D > O$ जब आधिक्य माग वक्र की ढलान कीमत अक्ष को काटने के बिन्दु पर धनात्मक होती है, जैसा कि चित्र 42.6 मे बिन्दु E पर, तो सतुलन अद्वितीय और अस्थिर होता है।

चित्र 42.7 बहु सतुलन को व्यक्त करता है जब इसे चित्र 42.4 के आधार पर आधिक्य माग के अनुसार खींचा गया है। वक्र E_D अनुलम्ब कीमत अक्ष को P_1, P_2 और P_3 बिन्दुओं पर काटता है जो बहु सतुलनों को व्यक्त करते हैं। P_1 और P_3 बिन्दुओं पर जहा E_D वक्र की ढलान ऋणात्मक है, दोनों सतुलन स्थितिया अद्वितीय और स्थिर है। परन्तु बिन्दु P_2 पर E_D वक्र की ढलान धनात्मक है जो अद्वितीय परन्तु अस्थिर सतुलन को व्यक्त करता है।

सतुलन के अद्वितीय और स्थिर ऊपर वर्णित विश्लेषण को एक-साथ वस्तु और साधन मार्किटों के परस्पर सबध और परस्पर निर्भरताओं को लेकर सामान्य सतुलन की ओर बढाया जा सकता है।

3. वालरसीय सामान्य सतुलन मॉडल (THE WALRASIAN GENERAL EQUILIBRIUM MODEL)

फ्रांस का अर्थशास्त्री लियोन वालरस प्रथम व्यक्ति था जिसने गणितीय रूप में अपनी पुस्तक

* विद्यार्थी चित्र 42.2 के साथ 42.5, चित्र 42.3 के साथ 42.6, और चित्र 42.4 के साथ 42.7 अवश्य देखें।

** ऋणात्मक आधिक्य माग "आधिक्य पूर्ति" होती है।

Elements of Pure Economics (1874)[4] मे एक सामान्य सतुलन का मॉडल विकसित किया। वालरस ने तर्क दिया कि सभी मार्किटो मे सभी कीमते और मात्राए एक दूसरे को प्रभावित करके एक साथ निर्धारित होती है। वालरस ने सभी मार्किटो मे व्यक्तिगत क्रेताओ और विक्रेताओ की पारस्परिक क्रियाओ का वर्णन करने के लिए युगपत् समीकरणो के एक सिस्टम का प्रयोग किया और उसने यह कहा कि सभी सबद्ध वस्तुओ और साधनो की कीमते और मात्राए इनके द्वारा एक साथ निर्धारित की जा सकती है।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)

वालरसीय सामान्य सतुलन मॉडल निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित है

1. वस्तु और साधन दोनो मार्किटो मे पूर्ण प्रतियोगिता है।
2. उपभोक्ताओ की रुचिया दी हुई और स्थिर है।
3. कोई सयुक्त वस्तुए नहीं है।
4. कोई उन्नति नहीं होती है।
5. न ही निवेश और न ही अपनिवेश (disinvestment) होता है।
6. पैमाने के प्रतिफल स्थिर है।
7. एक साधन सेवा की सभी इकाइया समरूप है।
8. उत्पादन के साधन पूर्णतया गतिशील है।
9. ससाधनो का पूर्ण रोजगार है।
10. उपभोग अथवा उत्पादन के बाहेर्भाव (externalities) नहीं है।
11. सभी वस्तुओं का एक दूसरे के साथ सकल प्रतिस्थापन है।

वालरस का सिस्टम अथवा मॉडल (The Walrasian System or Model)

ऊपर की मान्यताए दी होने पर, वालरस ने परस्पर-निर्भर वस्तु बाजार और साधन सेवा बाजार मे भेद करके समीकरणो की एक प्रणाली का निर्माण किया। वस्तु बाजार मे, उपभोक्ता वस्तुओ को खरीदते है जो फर्मों द्वारा सप्लाई की जाती है और वे आगे अपनी सेवाओ को फर्मो के पास बेचते है। इसी प्रकार, फर्मे अपनी निर्मित वस्तुओं को उपभोक्ताओ को बेचते है और वस्तुओ का निर्माण करने के लिए उपभोक्ताओ से साधन सेवाए खरीदते है। इस प्रकार, उपभोक्ताओ और फर्मो के लिए समीकरणो के परस्पर-निर्भर सैट होते है। प्रणाली मे अज्ञात चर (unknown variables) सभी वस्तुओ और सभी साधन सेवाओ की कीमते और मात्राए है।

वालरसीय मॉडल का वर्णन करने के लिए हम उसी के सकेत-चिह्न प्रयोग कर रहे है

a, b, c ... n वस्तुओ को निर्दिष्ट करते है।
p_a, p_b, p_c ..., n वस्तुओ की सबद्ध कीमतो को निर्दिष्ट करते है।
t, p, q ... m तैयार वस्तुओ के निर्माण के लिए m उत्पादन के साधनो को निर्दिष्ट करते है।
p_t, p_p, p_q ..., m उत्पादन के साधनो की सबद्ध कीमतो को निर्दिष्ट करते है।

मुद्रा से सबद्ध जटिलताओ से बचने के लिए, वालरस एक वस्तु a का प्रयोग करता है जिसे वह numeraire (लेखा की इकाई) कहता है और सभी वस्तुओ की कीमतो को इसकी इकाइयो के रूप मे व्यक्त करता है। numeraire की कीमतो को $p_a = 1$ मानता है।

साधन सेवाओ की प्रारभिक मात्राए (q_t, q_p, q_q ...) दी हुई कीमतो (p_t, p_p, p_q ...) दी होने पर,

4 Leon Walras *Elements of Pure Economics*, tran by W Jaffe 1954

प्रत्येक उपभोक्ता अपनी सतुष्टि को तब अधिकतम करता है जब साधन सेवाओं की मात्राए (O_t, O_p, O_q) गुणा उनकी कीमतें (p_t, p_p, p_q) बराबर होती हैं माग की गई वस्तुओं की मात्राए (d_a, d_b, d_c) गुणा उनकी कीमतें (p_a, p_b, p_c)। इस प्रकार समीकरण बन जाता है

$$O_t p_t + O_p p_p + O_q p_q + \quad = d_a p_a + d_b p_b + d_c p_c +$$

यह बजट समीकरण है।

अब हमें उपभोक्ता वस्तुओं के लिए m अज्ञात व्यक्तिगत माँग फलन चाहिए जो निर्भर करता है एक वस्तु की कीमत और अन्य सभी वस्तुओ की कीमतो पर जिन्हे वह खरीद सकता है, और उन कीमतो पर जिन्हे वह अपनी साधन सेवाए फर्मों को प्रदान करके प्राप्त करता है। ये सबध समीकरणो के निम्नलिखित सैट द्वारा व्यक्त किए जा सकते हैं

$$d_a \quad = f_a(p_t, p_p, p_q, \quad p_a, p_b, p_c \quad)$$
$$d_b \quad = f_b(p_t, p_p, p_q, \quad p_a, p_b, p_c \quad)$$

अब हम साधन सेवाओं के लिए n अज्ञात व्यक्तिगत पूर्ति समीकरणों के एक सेट का निर्माण करते है

$$O_t \quad = f_t(p_t, p_p, p_q, \quad p_a, p_b, p_c \quad)$$
$$O_p \quad = f_p(p_t, p_p, p_q, \quad p_a, p_b, p_c \quad)$$

व्यक्तियो और फर्मों के व्यक्तिगत माग और पूर्ति फलनो का जोड करके हमे प्राप्त होते है

(1) m निर्मित वस्तुओं के लिए मार्किट माग समीकरण है

$$D_a \quad = \Sigma d_a = F_a(p_t, p_p, p_q, \quad p_a, p_b, p_c \quad)$$
$$D_b \quad = \Sigma d_b = F_b(p_t, p_p, p_q, \quad p_a, p_b, p_c \quad)$$

(2) n साधन सेवाओ के लिए मार्किट पूर्ति समीकरण हैं

$$O_t \quad = \Sigma O_t = F_t(p_t, p_p, p_t, \quad p_a, p_b, p_c, \quad)$$
$$O_p \quad = \Sigma O_p = F_p(p_t, p_p, p_q, \quad p_a, p_b, p_c, \quad)$$

वालरसीय मार्किट सतुलन तब होता है जब निर्मित वस्तुओं के लिए मार्किट माग समीकरण बराबर होते हैं साधन सेवाओं के मार्किट पूर्ति समीकरणों के। इस प्रकार (1) और (2) से हमें प्राप्त होता है

$$D_a = O_t$$
और $$D_b = O_p$$

फिर वालरस की प्रणाली में, साधन सेवाओ की मागी गई मात्राए अवश्य बराबर होनी चाहिए उनकी पूर्ति की मात्राओं के तथा निर्मित वस्तुओ की कीमतें बराबर होनी चाहिए उनकी औसत उत्पादन लागतो के। ये दो शर्तें हमें समीकरणो के दो और सेट प्रदान करती हैं

1 साधन सेवाओं की माग की मात्राए अवश्य बराबर होनी चाहिए उनकी पूर्ति की मात्राओं के ताकि n साधन सेवाओ के लिए मार्किट खाली (clear) हो जाती है

$$O_t = a_t D_a + b_t D_b + c_t D_c +$$
$$O_p = a_p D_a + b_p D_b + c_p D_c +$$

2 उत्पादन की औसत लागतों और m निर्मित वस्तुओं की कीमतों का बराबर होना

$$a_t p_t + a_p p_p + a_q p_q + \quad = 1$$
$$b_t p_t + b_p p_p + b_q p_q + \quad = p_b$$

इस प्रकार $2m+2n$ समीकरण हैं। इन समीकरणों में एक स्वतंत्र समीकरण इस अर्थ मे नहीं है कि *यह अपने-आप ही सतुष्ट नहीं हो जाता यदि प्रत्येक व्यक्ति के लिए बजट समीकरण कायम* रहता है। हमारे पास बाकी $2m+2n-1$ स्वतंत्र समीकरण रह जाते है और ये पूरी तरह से निर्धारित की जाने वाले अज्ञातो की सख्या के बराबर हैं (1) सप्लाई की गई साधन सेवाओ की n मात्राए, (2) मागी गई निर्मित वस्तुओं की m मात्राए, (3) साधन सेवाओं की n कीमते, और (4) निर्मित वस्तुओं की $m-1$ कीमते, क्योंकि $pa=1$ परिभाषा द्वारा है।

क्योंकि स्वतंत्र समीकरणों की सख्या अज्ञातो की सख्या के बराबर है, इसलिए वालरस का सामान्य सतुलन मॉडल निर्धारित है। परन्तु अज्ञातों और समीकरणो की सख्या में समानता मॉडल के हल के अस्तित्व के लिए एक आवश्यक *शर्त नहीं है। यह न ही अद्वितीय और न ही आवश्यक* शर्त है। ऐसा इसलिए कि वालरसीय प्रणाली साधन-सेवाओं और वस्तुओ की ऋणात्मक कीमतो तथा वस्तुओ एव साधनों की ऋणात्मक मात्राओं को शामिल नहीं करती है। इस मॉडल मे निरपेक्ष (absolute) कीमतो को निर्धारित करना भी सभव नहीं है। फिर, वालरस का माडल अनिर्धारित है क्योंकि समीकरणों में से एक समीकरण दूसरो से स्वतंत्र नहीं है जिससे जब यह मान लिया जाता है कि $pa=1$ तब कम अज्ञातो की तुलना मे कम स्वतंत्र समीकरण होते है।

वालरस ने अपनी सामान्य सतुलन प्रणाली के निर्धारण और स्थिरता की समस्याओं को tatonnement अथवा टटोलना (groping) से हल किया है। मान लीजिए कि सब क्रेता विक्रेता उन मात्राओं की घोषणा कर देते हैं जो वे दी हुई कीमतो पर खरीदना या बेचना चाहते है। पूर्ण प्रतियोगात्मक मार्किटों में, व्यापार एक नीलाम (auction) समझना चाहिए। नीलाम करने वाला कीमते निश्चित करता है और व्यापारी उनके अनुसार बोली देते है। परन्तु कीमते और इकरारनामे *तब तक अंतिम नहीं होते जब तक कि सतुलन कीमतो का एक सैट नहीं पहुच जाता है।* यदि कीमतो के किसी सैट के लिए किसी वस्तु की माँग अधिक होती है तो नीलाम करने वाला उस वस्तु की कीमत कुछ बढ़ा देता है और अधिक पूर्ति होने पर कीमत कम कर देता है। वे तब तक ऐसी घोषणाएँ करते रहते है जब तक वे ऐसी कीमत पर नहीं पहुच जाते जो सामान्य मार्किट में सतुलन ले आए। उत्पादक सेवाओं को खरीदने और बेचने के विषय मे वालरस की धारणा यह थी कि उत्पादक "टिकटे" देते है जिनसे दी गई कीमत पर वे सेवाओ की दी गई मात्राएँ खरीद सकते है। ये टिकटे साधनों को खरीदने वालो (उत्पादको) और बेचने वालो (उपभोक्ताओ अर्थात् साधनों के स्वामियों) को अस्थायी रूप से बाँध लेती है। केवल उस अवस्था में समस्त व्यवस्था की कीमते सतुलन में आएँगी जब स्वीकृत कीमते ऐसी हो कि उन पर सेवाओं की माँग और पूर्ति बराबर हो जाए। इस प्रकार वालरस का मॉडल सामान्य और मार्किट सतुलन के निर्धारण और स्थिरता को प्रकट करता है।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)—निर्धारण की समस्या के अलावा, वालरस के सामान्य सतुलन की कुछ और सीमाए है।

प्रथम, यह अनेक वास्तविक धारणाओ पर आधारित है जो समार मे वर्तमान वास्तविक स्थितियो से उलट है। पूर्ण प्रतियोगिता, जो इस मॉडल का आधार है, मिथ्या है।

दूसरे, यह मॉडल स्थैतिक है। *इस मॉडल मे सब उपभोक्ता और उत्पादक, समय के किसी भी* प्रकार के विलम्ब के बिना, हर रोज वस्तुओ की उतनी ही मात्रा का उपभोग और उत्पादन करते है। उनकी रुचियाँ, अधिमान और उद्देश्य वही रहते है, और उनके आर्थिक निर्णय पूरी तरह एक-दूसरे के अनुरूप होते है। वास्तव मे, ऐसा कुछ नहीं होता। उत्पादक और उपभोक्ता कभी भी एक ढग से न तो सोचते है, और न ही एक ढग से कार्य करते है। रुचियों और अधिमानों मे निरन्तर परिवर्तन होते रहते है। प्रतिफल का पैमाना हमेशा स्थिर नहीं होता और कोई दो साधन-सेवाए समरूप नहीं होतीं। इस प्रकार हर उत्पादक की लागत स्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती

है। क्योंकि वालरस की दी हुई स्थितियाँ निरन्तर बदलती रहती है, इसलिए सामान्य सतुलन की ओर गति रुक जाती है और इसकी प्राप्ति हमेशा चाहपूर्ण कल्पना ही रही है।

अन्तिम, आर्थिक सिद्धान्त से कई धारणाओं को निकाला नहीं जा सकता क्योंकि वालरस का समस्त मॉडल युगपत् समीकरणों (simultaneous equations) का सैट है जो उन धारणाओं के अभाव में समाप्त हो जाता है। इस प्रकार यह मॉडल समीकरणों के आधार पर पनपता है जो इसे भारी-भरकम और कठिन बना देते है। इसलिए अर्थशास्त्र के साधारण विद्यार्थी के लिए इस सिद्धान्त की उपयोगिता समाप्त हो जाती है।

4. 2 × 2 × 2 ग्राफीय सामान्य सतुलन मॉडल
(2 × 2 × 2 GRAPHICAL GENERAL EQUILIBRIUM MODEL)

नीचे हम एक स्थिर (static) पूर्ण प्रतियोगी अर्थव्यवस्था की रेखाचित्रीय (ग्राफीय) स्थिति का अध्ययन करते है जिसमे दो उपभोक्ता, दो वस्तुए और दो साधन है। इसे 2×2×2 सतुलन मॉडल कहते है।

इसकी मान्यताएँ (Its Assumptions)

यह मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

1 साधन और वस्तु मार्किटो मे पूर्ण प्रतियोगिता है।

2 दो समरूप और पूरी तरह से विभाज्य उत्पादन के साधन श्रम (L) और पूजी (L) है। दोनो निश्चित मात्राओ मे उपलब्ध है।

3 दोनो साधन सदैव पूर्ण रोजगार में है।

4 केवल दो समरूप उपभोक्ता वस्तुए X और Y अर्थव्यवस्था में उत्पादित की जाती हैं। ये वस्तुए निश्चित मात्राओं मे उपलब्ध होती है। प्रत्येक वस्तु का उत्पादन फलन दिया हुआ है और परिवर्तित नहीं होता है। प्रत्येक उत्पादन फलन पैमाने के स्थिर प्रतिफल दर्शाता है। किसी भी सममात्रा वक्र (isoquant) के साथ तकनीकी स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर (MRTS) होती है। इसका मतलब है कि सममात्रा वक्र मूल के उन्नतोदर (convex) है।

5 उत्पादन के बहिर्भाव (externalities) नहीं है।

6 अर्थव्यवस्था मे A और B दो उपभोक्ता है जो X और Y की सभी मात्राओं का उपभोग करते हैं। प्रत्येक उपभोक्ता का मूल के उन्नतोदर उदासीनता वक्रो का एक सैट है।

7 उपभोग के बहिर्भाव नहीं है।

8 प्रत्येक उपभोक्ता अपनी दी हुई आय पर अपनी उपयोगिता को अधिकतम करने का उद्देश्य रखता है।

9 उपभोक्ता उत्पादन के दोनो साधनों के स्वामी है।

10 प्रत्येक फर्म (उत्पादक) एक दिया हुआ उत्पादन फलन होने पर अपने लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य रखती है।

ये मान्यताए दी होने पर, अर्थव्यवस्था उस समय सामान्य सतुलन मे होती है जब दो वस्तु मार्किटें और दो साधन मार्किटें, और दो उपभोक्ता तथा दो फर्में व्यक्तिगत रूप से और एक साथ सतुलन कीमतों के एक सैट पर सतुलन में हो। इस सामान्य सतुलन मॉडल के हल के लिए तीन विशेषताए होती है - (i) विनिमय का सामान्य सतुलन, (ii) उत्पादन का सामान्य सतुलन, और (iii) विनिमय और उत्पादन दोनों में सामान्य सतुलन। इनकी ग्राफीय विवेचना नीचे की जा रही है।

(i) विनिमय (उपभोग) का सामान्य सतुलन

(General Equilibrium of Exchange or Consumption)

विनिमय के सामान्य सतुलन के लिए यह आवश्यक है कि दो वस्तुओ के बीच स्थानापन्नता की सीमांत दर (MRS) प्रत्येक उपभोक्ता के लिए समान हो जो उन दोनो का उपभोग करता है। इसका मतलब है कि दो उपभोक्ता वस्तुओं के बीच MRS उनके कीमत अनुपात के बराबर हो। क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता मे प्रत्येक उपभोक्ता का उद्देश्य अपनी उपयोगिता को अधिकतम करना है इसलिए वह X और Y वस्तुओ के लिए अपनी MRS को उनके कीमत अनुपात (P_X/P_Y) के बराबर करेगा। इस मॉडल मे दो उपभोक्ता A और B, दो वस्तुए X और Y और कीमत अनुपात P_X/P_Y दिए होने पर, सामान्य सतुलन उस समय प्राप्त होता है जब X और Y का A उपभोक्ता इस तरह चुनाव करता है कि $_AMRS_{XY} = P_X/P_Y$, और B उपभोक्ता X और Y को इस तरह कि $_BMRS_{XY} = P_X/P_Y$। अत दोनो उपभोक्ताओ के सामान्य सतुलन की शर्त है $_AMRS_{XY} = {_BMRS_{XY}} = P_X/P_Y$

बक्स चित्र 42 8 विनिमय की सतुलन दशा की व्याख्या करता है। A और B दो उपभोक्ताओं को लीजिए, जिनके पास क्रमश X और Y वस्तुओ की निश्चित मात्राएँ है। O_A उपभोक्ता A का मूल बिन्दु है और O_B उपभोक्ता B का मूल बिन्दु है (समझने के लिए चित्र को उलटकर देखिए)। दोनो अक्षो O_A तथा O_B की अनुलब भुजाएँ वस्तु Y को प्रकट करती है और क्षैतिज भुजाएँ वस्तु X को। A_1, A_2 और A_3 वक्र A के उदासीनता मानचित्र को प्रकट करते है और B_1, B_2, और B_3 वक्र B उदासीनता मानचित्र को। इस बक्स के भीतर का कोई भी बिन्दु दोनो उपभोक्ताओ के बीच दोनों वस्तुओ के सभव वितरण को प्रकट करता है। बिन्दु E को लीजिए, जहाँ A_1 तथा B_1 उदासीनता वक्र आपस मे काटते है। इस स्थिति पर, A के पास Y वस्तु की O_AY_A इकाइयाँ और X वस्तु की O_AX_A इकाइयाँ है। B को Y की O_BY_B तथा X की O_BX_B इकाइयाँ प्राप्त होती है। E बिन्दु पर, दोनो वस्तुओ के बीच स्थानापन्नता की सीमान्त दर उनकी कीमतो के अनुपात के बराबर नहीं है क्योंकि दोनो वक्रो का ढलान बराबर नहीं है।* इसलिए, दो उपभोक्ताओ A और B के बीच X और Y दो वस्तुओ के सतुलन विनिमय का बिन्दु E नहीं है। परन्तु दोनो के बीच विनिमय का आधार है।

मान लीजिए कि A तो वस्तु X की ओर B वस्तु Y की अधिक मात्रा लेना चाहता है और वे E बिन्दु से R बिन्दु पर आ जाते है। R बिन्दु पर, A को X की अधिक मात्रा प्राप्त होती है, जबकि B को Y की अधिक मात्रा प्राप्त होती है। B की स्थिति मे कोई सुधार नहीं होता क्योकि वह उसी उदासीनता वक्र B_1 पर रहता है, परन्तु A की स्थिति R पर पहले से बहुत अच्छी है क्योंकि वह A_1 से अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे उदासीनता वक्र A_3 पर आ गया है। पर, यदि A और B दोनो E से P पर आ जाएँ, तो A की स्थिति पहले जैसे ही रहती है क्योंकि वह उसी उदासीनता वक्र A_1 पर है। B की स्थिति पहले से बहुत अच्छी हो जाती है क्योंकि वह ऊंचे उदासीनता वक्र B_3 पर चला जाता है। केवल
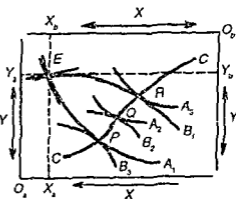
चित्र 42.8

* इसे दोनों वक्रों पर खींची गई स्पर्श रेखाओं (tangents) द्वारा देखा जा सकता है।

उस समय ये दोनों अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे उदासीनता वक्रो क्रमश A_2 और B_2 पर होंग, जब वे E से Q पर जाएगे।

इस प्रकार, P, Q और R तीन विनिमय के विचारणीय बिन्दु है। जब इन सब बिन्दुओ को CC रेखा द्वारा जोडा जाता हे तो यह सविदा वक्र (contract curve) बन जाता है। विनिमय का सामान्य सतुलन सदेव सविदा वक्र पर होगा जहा $_A MRS_{XY} = {}_B MRE_{XY}$ विनिमय का यह सामान्य सतुलन अद्वितीय नहीं है क्योकि यह सविदा वक्र के किसी भी बिन्दु पर हो सकता है।

(ii) **उत्पादन का सामान्य सतुलन** (General Equilibrium of Production)

उत्पादन का सामान्य सतुलन तब होता है जब भी वस्तु X के उत्पादन मे श्रम और पूजी के बीच तकनीकी स्थानापन्नता की सीमात दर ($MRTS_{LK}$) वस्तु Y के उत्पादन मे $MRTS_{LK}$ के बराबर होती है $_X MRTS_{LK} = {}_Y MRTS_{LK}$

चित्र 42 9

बक्स चित्र 42 9 उत्पादन के सामान्य सतुलन को स्पष्ट करता है। अर्थव्यवस्था को दो वस्तुओ X ओर Y के उत्पादन के लिए दो साधन श्रम (L) ओर पूजी (K) निश्चित मात्रा मे उपलब्ध है। O_X श्रम-साधन का मूल बिन्दु है। श्रम को क्षेतिज अक्ष पर मापा गया हे ओर O_Y पूजी-साधन का मूल बिन्दु है, जिसे अनुलम्ब अक्ष पर मापा गया है। दोनों अक्षो के क्षेतिज बाजू O_X तथा O_Y वस्तु X को, और अनुलम्ब बाजू वस्तु Y को प्रकट करते है।
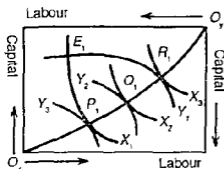
प्रत्येक वस्तु का उत्पादन फलन एकसार समान मात्रा वक्रो से प्राप्त होता है जिनकी विशेषता माप के स्थिर प्रतिफल तथा तकनीकी स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दरे (MRTS) है। वस्तु X के लिए, जिसका मूल बिन्दु O_X है, के सममात्रा वक्र X_1, X_2 ओर X_3 हे, ओर वस्तु Y के लिए, जिसका मूल-बिन्दु O_Y है के सममात्रा वक्र Y_1, Y_2 ओर Y_3 है। यदि प्रारभ मे अर्थव्यवस्था E_1 बिन्दु पर है तो वह X और Y के उत्पादन को अधिक्तम नहीं करेगी, क्योंकि बिन्दु E_1 पर Y_1 की ढलान से X_1 की ढलान अधिक है $_X MRTS_{LK} > {}_Y MRTS_{LK}$। श्रम को पूजी के लिए स्थानापन्न करके, फर्मे बिन्दु E_1 से या तो बिन्दु R_1 पर या बिन्दु P_1 पर चली जाएगी। इन दोनों मे से एक वस्तु का उत्पादन स्थिर रहेगा और दूसरी का उत्पादन बढेगा। इस प्रकार, श्रम ओर पूजी का स्थानापन्न करने से फर्मे बिन्दु Q_1 पर जा सकती हे तथा X ओर Y दोनों वस्तुओं का उत्पादन बढा सकती है। वस्तु Y का सममात्रा वक्र P_1, Q_1 तथा R_1 बिन्दुओ पर, वस्तु Y के सममात्रा वक्र पर स्पर्शज्या है ओर इसलिए $_X MRTS_{LK} = {}_Y MRTS_{LK}$ की शर्त को पूरा करता हे। इन स्पर्श-बिन्दुओं को मिलाने से स्पेस मे उत्पादन सविदा वक्र $O_X P_1 Q_1 R_1 O_Y$ बन जाता हे। यह श्रम और पूजी के सभी सयोगो को दर्शाता है जो सविदा वक्र पर $_X MRTS_{LK} = {}_Y MRTS_{LK}$ को बराबर करता है। परन्तु उत्पादन का यह सामान्य सतुलन भी अद्वितीय नहीं है क्योकि यह सविदा वक्र के किसी भी बिन्दु पर हो सकता है।

इस उत्पादन सविदा वक्र से हम आगत स्पेस से उत्पादन स्पेस मे उत्पादन सभावना वक्र अथवा रूपान्तरण वक्र अनुरेखित कर सकते है। चित्र 42 9 के $O_X P_1 Q_1 R_1 O_Y$ सविदा वक्र से सम्बद्ध उत्पादन सभावना वक्र चित्र 42 10 मे TC के रूप मे अकित है। यह वक्र वस्तु X तथा Y के उन

विविध सयोगो को प्रकट करता है जो श्रम तथा पूजी की निश्चित मात्राओं से उत्पादन किए जा सकते है। चित्र 42 9 मे सविदा वक्र तथा आगत स्पेस मे बिन्दु P पर ध्यान दीजिए। Y_3 सममात्रा Y वस्तु की 600 इकाइयो को ओर X_1 सममात्रा X की 100 इकाइयो को प्रकट करता है। इन्हे चित्र 42 10 में उत्पादन स्पेस में बिन्दु P के रूप मे चित्राकित किया गया है। इसी प्रकार चित्र 42 9 के Q_1 तथा R_1 बिन्दु चित्र 42 10 मे उत्पादन स्पेस मे क्रमश Q तथा R बिन्दुओं के रूप मे आरेखित किए है। P, Q तथा R बिन्दुओ को मिलाकर हम X तथा Y वस्तुओ के लिए उत्पादन सभावना वक्र TC व्युत्पन्न करते हे। श्रम तथा पूजी की मात्राए तथा दी हुई प्रौद्योगिकी के होने पर अर्थव्यवस्था TC वक्र से ऊपर किसी भी बिन्दु पर नहीं पहुच सकती। और न ही TC वक्र के भीतर अर्थव्यवस्था का कोई बिन्दु हो सकता है क्योकि इसका मतलब होगा कि दोनो साधन सम्पन्नताओ का पूरा उपयोग नहीं हो रहा है। इसलिए X और Y के उत्पादन को अधिकतम करने के लिए जरूरी है कि अर्थव्यवस्था TC वक्र पर रहे। फिर चित्र 42 10 मे उत्पादन सभावना वक्र पर किसी भी बिन्दु का ढलान Y मे X के रूपान्तरण की सीमान्त दर (MRT) को प्रकट करता है। दूसरे शब्दो मे यह बताता है कि पूँजी तथा श्रम की पर्याप्त मात्रा स्थानान्तरित करके वस्तु Y की एक और इकाई का उत्पादन करने के लिए वस्तु Y का उत्पादन कितना घटाया जाए।
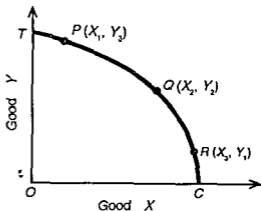
चित्र 42 10

पूर्ण प्रनियोगिता के अन्तर्गत एक लाभ अधिकतम-करण करने वाली फर्म उस समय उत्पादन के सतुलन मे होगी जब समआगम (isorevenue) रेखा उसके रूपान्तरण (transformation) वक्र को स्पर्श करती है। इसका मतलब है कि फर्म के सतुलन के लिए X और Y दोनो वस्तुओ के बीच रूपान्तरण की सीमात दर उसके कीमत अनुपात के बराबर होनी चाहिए $MRT_{XY} = P_X/P_Y$ यह नियम चित्र 42 11 द्वारा समझाया गया है। MRT_{XY} को रूपान्तरण वक्र PP_1 की किसी भी बिन्दु पर ढलान द्वारा मापा
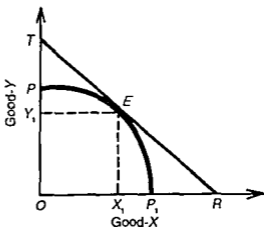
चित्र 42 11

जाता है। *TR* समआगम रेखा है जिसकी ढलान P_X/P_Y दर्शाती है। *E* बिन्दु पर रूपान्तरण वक्र PP_1 की ढलान और समआगम रेखा *TR* की ढलान बराबर है। इस प्रकार, $MRT_{XY} = P_X/P_Y$ अत प्रत्येक फर्म *X* की OX_1 मात्राओ और *Y* वस्तु की OY_1 मात्राओ का उत्पादन और विक्रय करके अपने उत्पादन को अधिकतम करती है।

वास्तव मे, *X* के लिए *Y* की MRT बराबर होती है वस्तु *X* की सीमात लागत (MC_X) तथा वस्तु *Y* की सीमात लागत (MC_Y) के अनुपात के, अर्थात् $MRT_{XY} = MC_X/MC_Y$ परन्तु प्रत्येक फर्म उत्पादन का वह स्तर उत्पादित करती है जिस पर उसकी सीमात लागत उसकी मार्किट कीमत के बराबर होती है। इस प्रकार, प्रत्येक फर्म के लिए $P_X = MC_X$ और $P_Y = MC_Y$। अत $MC_X/MC_Y = P_X/P_Y$.

(iii) **विनिमय और उत्पादन का सामान्य सतुलन** (General Equilibrium of Exchange and Production)

अब हम पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत विनिमय और उत्पादन के एक साथ सामान्य सतुलन का अध्ययन करते है। इसके लिए यह आवश्यक है कि दो वस्तुओ के बीच स्थानापन्नता की सीमात दर (MRS) उनके बीच रूपान्तरण की सीमात दर (MRT) दोनो बराबर हो। क्योकि पूर्ण प्रतियोगिता मे उपभोक्ताओ और फर्मों के लिए दो वस्तुओ के कीमत अनुपात बराबर होते हैं, इसलिए सभी उपभोक्ताओं के MRS सभी फर्मों के MRT के समान होंगे। परिणामस्वरूप, दोनो वस्तुओ का दक्षता के साथ उत्पादन और विनिमय किया जाएगा। साकेतिक रूप मे, $MRS_{XY} = P_X/P_Y$ और $MRT_{XY} = P_X/P_Y$। इसलिए, $MRS_{XY} = MRT_{XY}$

चित्र 42 12 मे उपभोग और उत्पादन के सामान्य सतुलन को दर्शाया गया है। *X* और *Y* दोनो वस्तुओ के लिए *TC* रूपान्तरण वक्र (या उत्पादन सभावना सीमा) है। *TC* वक्र पर कोई भी बिन्दु *X* और *Y* के बीच MRT (MRT_{XY}) व्यक्त करता है जहा उत्पादन का सामान्य सतुलन होगा। *TC* वक्र पर कोई बिन्दु *Q* लीजिए ताकि *X* और *Y* के कुल उत्पादन क्रमश *OX* और *OY* होते हैं। ये उत्पादन आगे विनिमय के लिए एक एज्वर्थ बक्स चित्र के आयामो (dimensions) को निर्धारित करते है। बिन्दु *Q* से दोनो अक्षो पर *X* और *Y* लम्ब गिराइए। अब *O* उपभोक्ता A का मूल धन जाता है जिसे O_A नाम देते है। इसी प्रकार *Q* उपभोक्ता B का मूल बन जाता है। इसे O_B कहते है। क्योकि प्रत्येक उपभोक्ता का सुनिश्चित अधिमान फलन है, इसलिए विनिमय बक्स मे *A* और *B* उदासीनता वक्र खींचे गए है।

चित्र 42 12

वक्र A_1, A_2 और A_3 उपभोक्ता A का उदासीनता मैप दर्शाता है और वक्र B_1, B_2 और B_3 उपभोक्ता B का। उपभोक्ता A और B के इन उदासीनता वक्रो के स्पर्श (टेजेंट) बिन्दु *E*, *F* और *G* है। इन बिन्दुओं को जोडने से एक उपभोक्ता सविदा वक्र O_AEFGO_B इस सविदा वक्र पर प्रत्येक बिन्दु
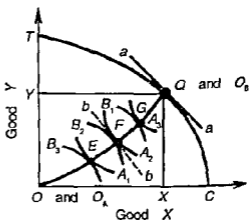
विनिमय का सामान्य सतुलन बिन्दु है, जहा ${}_{A}MRS_{XY} = {}_{B}MRS_{XY} = P_X/P_Y$

विनिमय और उत्पादन का एक साथ सामान्य सतुलन वहा होगा जहा ${}_{A}MRS_{XY} = {}_{B}MRS_{XY} = MRT_{XY}$ यह तब होता है जब विनिमय के सतुलन बिन्दु F पर खींची गई टेजेट *bb* समानान्तर है वक्र *TC* के बिन्दु *Q* पर खींची गई टेजेट *aa* के। परन्तु *aa* और *bb* टेजेटो के एक दूसरे के साथ *F* बिन्दु पर समानान्तर होने की सामान्य सतुलन की शर्त अद्वितीय हल नहीं प्रदान करती है। ऐसा इसलिए कि *E* अथवा *G* प्रत्येक बिन्दु पर खींची गई टेजेट भी टेजेट *bb* के समानान्तर हो सकती है।

प्रश्न

1 सामान्य सतुलन के अस्तित्व, स्थिरता और अद्वितीयता की व्याख्या करिए।
2. वालरस के सामान्य सतुलन मॉडल की व्याख्या करिए। क्या यह निर्धारण-योग्य है?
3 सामान्य सतुलन के 2 × 2 × 2 ग्राफीय मॉडल की व्याख्या करिए।

अध्याय 43

कल्याण अर्थशास्त्र की प्रकृति
(NATURE OF WELFARE ECONOMICS)

1. प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

आधुनिक वर्षों मे कल्याण अर्थशास्त्र से सम्बन्धित साहित्य बहुत तेजी से बढा है। "अधिकतम लोगों के लिए अधिकतम प्रसन्नता" (the greatest happiness of the greatest number) के फार्मूले के रूप मे पहले-पहल उपयोगितावादियों (utilitarians) ने "कल्याण" के बारे में बात की थी। परेटो (Pareto) ने सामान्य इष्टतम स्थितियों (general optimum conditions) के आधार पर सामाजिक कल्याण को अधिकतम बनाने के प्रश्न पर विचार किया। नवक्लासिकी अर्थशास्त्री मार्शल और पीगू ने अपने कल्याण अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों मे अर्थव्यवस्था के विशेष क्षेत्रों पर ध्यान दिया। अर्थशास्त्र के सम्बन्ध मे प्रोफेसर राबिन्स के नैतिक तटस्थता (ethical neutrality) के मत के परिणामस्वरूप आर्थिक अध्ययन के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में कल्याण अर्थशास्त्र का विकास हुआ। प्रोफेसर कॉलडर, हिक्स तथा स्किटोवस्की (Scitovsky) ने सब मूल्य निर्णयों (value judgements) से बचकर 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' (compensation principle) की सहायता से नए कल्याण अर्थशास्त्र (New Welfare Economics) की नींव रखी। दूसरी ओर, प्रोफेसर बर्गसन और सैम्युल्सन तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने मूल्य निर्णयों का परित्याग किए बिना समाज कल्याण फलन (social welfare function) के विचार को विकसित किया। आगे जो चर्चा की जा रही है, उसमे हम पहले कल्याण अर्थशास्त्र की कुछ मूल धारणाओं का वर्णन करेंगे और उसके बाद आधुनिक कल्याण अर्थशास्त्र को समझने के लिए परेटो द्वारा व्यक्त कल्याण स्थितियों को लेंगे।

कल्याण अर्थशास्त्र क्या है? (What is Welfare Economics?)

प्रोफेसर स्किटोवस्की की परिभाषा के अनुसार, कल्याण अर्थशास्त्र "आर्थिक सिद्धान्त के सामान्य शरीर का वह भाग है जो प्रमुख रूप से नीति से सम्बन्ध रखता है।"[1] इस प्रकार, यह एक आदर्शवादी अध्ययन (normative study) है, जो निर्णय तथा सुझाव (judgement and prescription) से संबद्ध रहता है। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वह "यथार्थ" अध्ययन (positive study) नहीं है। इसके कुछ नियम और आदर्श है जिनके आधार पर अर्थशास्त्री निर्णय तथा आर्थिक नीतियों की स्थापना कर सकते हैं। पर, ऐसी कल्याण प्रस्थापनाओं (propositions) की स्थापना करना कठिन है, जो विशुद्ध रूप से यथार्थ हों। यथार्थ अध्ययन मे, जैसाकि डॉ जे डी वी ग्राफ ने संकेत किया है, "पकवान (पुडिंग) का असली प्रमाण उसे खाने पर ही मिल सकता है। दूसरी

1 "Welfare economics is that part of the general body of economic theory which is concerned primarily with policy " Scitovsky, The State of Welfare Economics, *A E R.* 1951

ओर, कल्याण केक खाने में इतना सख्त है कि उसे पकाने के पहले हमें उसके उपकरणों के गुणों की जाँच करनी चाहिए।"[2] इसलिए डॉ. लिट्टल (I.M.D. Little) ने ठीक ही कहा है कि कल्याण अर्थशास्त्र आदर्शवादी अध्ययन है। परन्तु इन सबसे कल्याण अर्थशास्त्र का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। स्पष्टता के लिए हमें व्यक्तिगत कल्याण और समाज कल्याण तथा सामान्य कल्याण और आर्थिक कल्याण का अन्तर समझना पड़ेगा।

सामान्य कल्याण तथा आर्थिक कल्याण (General Welfare and Economic Welfare)—सामान्य कल्याण से अभिप्राय उन सभी आर्थिक तथा गैर-आर्थिक वस्तुओं तथा सेवाओं से है जो किसी समाज में रह रहे व्यक्तियों को उपयोगिताएँ या सतुष्टियाँ प्रदान करती हैं। इस दृष्टिकोण से सामान्य कल्याण एक बहुत विस्तृत, जटिल तथा अव्यावहारिक धारणा बन जाती है। इसलिए पीगू सामान्य कल्याण के विचार को आर्थिक कल्याण तक ही सीमित रखना उचित समझता है। पीगू के अनुसार आर्थिक कल्याण सामान्य कल्याण का वह भाग है "जोकि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा के मापदण्ड से सबंधित किया जा सकता है।"[3] दूसरे शब्दों में, पीगू के दृष्टिकोण से आर्थिक कल्याण का अर्थ है एक व्यक्ति द्वारा आर्थिक वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रयोग से सतुष्टि या उपयोगिता प्राप्त करना या उनसे जो मुद्रा में विनिमय की जा सकती हैं।

परन्तु डॉ. ग्राफ, पीगू के आर्थिक कल्याण के विचार से दो कारणों से सहमत नहीं है। प्रथम, मुद्रा आर्थिक कल्याण के माप के रूप में संतोषजनक तथा सही नहीं है क्योंकि कीमत स्तर में परिवर्तनों के साथ मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन होते हैं। दूसरे, आर्थिक कल्याण विनिमय-योग्य वस्तुओं तथा सेवाओं पर निर्भर नहीं करता क्योंकि जहाँ तक एक व्यक्ति के मन की स्थिति है, आर्थिक तत्त्वों को गैर-आर्थिक तत्त्वों से अलग करना सभव नहीं है।

इस सबध में प्रोफेसर रॉबर्ट्सन का विचार है कि "कल्याण की धारणा कई मानसिक स्थितियों का समावेश करती है, कुछ केवल 'शारीरिक', कुछ अधिक आध्यात्मिक प्रकृति की और कुछ उद्देश्यों के लिए, उन्हें विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करना रोचक हो सकता है। परन्तु 'आर्थिक' श्रेणी उनमें सम्मिलित नहीं होगी। इस विचार से, मन की कोई आर्थिक स्थितियाँ नहीं है। परन्तु मन की स्थितियाँ स्वय आर्थिक नहीं है।"[4]

वास्तव में, एक व्यक्ति का कल्याण आर्थिक तथा गैर-आर्थिक दोनों ही तत्त्वों पर निर्भर करता है। क्योंकि गैर-आर्थिक तत्त्वों की गणना सभव नहीं है, इसलिए डा. ग्राफ का मत है कि कल्याण सिद्धान्त में गैर-आर्थिक तत्त्वों को स्थिर मानते हुए केवल आर्थिक तत्त्वों पर ही विचार करना चाहिए। आर्थिक तथा सामान्य कल्याण में पीगू द्वारा किये गए भेद को स्वीकार करते हुए, रॉबर्ट्सन आर्थिक कल्याण शब्द के स्थान पर *ecfare* शब्द का प्रयोग करना अधिक अच्छा समझता है। दूसरी ओर, बोल्डिंग आर्थिक कल्याण को विनिमय-योग्य वस्तुओं एव सेवाओं की अवसर लागत (opportunity cost) के रूप में परिभाषित करता है। इन सभी विचारधाराओं से स्पष्ट होता है कि सभी अर्थशास्त्री पीगू के आर्थिक विचार से किसी-न-किसी रूप में सहमत हैं।

2 "The proof of the pudding is indeed in the eating. The welfare cake on the other hand, is so hard to taste that we must sample its ingredients before baking." J.V. Graaf, *Theoretical Welfare Economics* 1957

3 "Economic welfare is that part of general welfare which can be brought directly or indirectly into relation with the measuring rod of money." —*Pigou*

4 "The concept of welfare embraces many states of mind, some merely sensual", some of a more spiritual nature and for some purposes, it may be interesting to sort them out into different classes. But the class "economic" will not be one of them. On this view there are no economic states of mind. But the states of mind themselves are not economic."—*Robertson*

व्यक्ति कल्याण तथा समाज कल्याण (Individual Welfare and Social Welfare)—प्रोफेसर पीगू के अनुसार, एक व्यक्ति का कल्याण उसके मन की स्थिति या चेतना में रहता है, जो कि उसकी सतुष्टियो या उपभोगिताओ से बनती है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री अधिमानों के एक दिए हुए पैमाने के रूप में उसकी व्याख्या करते हैं। जब एक व्यक्ति की स्थिति पहले से अच्छी हो जाए, या जब वह समझने लगे कि उसके कल्याण में वृद्धि हो गई है, तब हम उपकल्पना (hypothesis) के रूप में यह कहते है कि व्यक्ति का कल्याण बढ गया है। परन्तु यह सभव नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति से यह पूछा जाए कि उसका कल्याण बढा है या नहीं। जब कभी एक व्यक्ति का अब तक अप्राप्य वस्तुओ का चुनाव सूचक (choice index) विस्तृत हो जाता है, तो यह कहा जाता है कि उसका कल्याण बढ गया है, बशर्ते कि उसकी रुचियों मे परिवर्तन न हुआ हो। इस प्रकार डा मिशन (Mishan) चुनाव-विस्तार सूचक का सुझाव देता है।

समाज कल्याण से तात्पर्य एक ग्रुप या सोसाइटी का कल्याण है जिसमे सब व्यक्ति शामिल है। एक तरह से, वह व्यक्ति-कल्याणों का योग होता है। परन्तु व्यक्ति की भाँति समाज का मन या चेतना नहीं है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति दूसरो से भिन्न रूप से सोचता और काम करता है। इसलिए, समाज का कोई चुनाव-विस्तार सूचक (social choice expansion index) समाज कल्याण को प्रकट नहीं कर सकता। इस प्रकार समाज कल्याण का तात्पर्य है एक समाज के सब व्यक्तियों की सतुष्टियों या उपयोगिताओ का समष्टीकरण (aggregation)। समाज कल्याण की माप के सबंध मे दो प्रमुख धारणाएँ हैं।

प्रथम, "परेटो उन्नति अथवा सुधार" (Pareto Improvement) से सबंधित है जिससे समाज कल्याण उस समय बढ़ता है, जब किसी भी व्यक्ति की स्थिति पहले से बुरी हुए बिना समस्त समाज की स्थिति पहले से अच्छी हो जाए। इस प्रस्थापना में यह बात भी शामिल है कि एक या अधिक व्यक्तियों की स्थिति पहले से अच्छी हो जाती है, तो सभव है कि कुछ व्यक्ति पहले से न तो अच्छी और न ही बुरी स्थिति मे हो। यह अन्तर्वैयक्तिक तुलनाओ (interpersonal comparisons) से मुक्त है। हिक्स, कालडर और सिटोवस्की से परेटो के अर्थ में क्षतिपूर्ति सिद्धान्त द्वारा समाज कल्याण की व्याख्या की है।

दूसरे, समाज कल्याण उस समय बढता है, जब कल्याण का वितरण किसी रूप में पहले से अच्छा हो। समाज में दूसरों की अपेक्षा कुछ व्यक्तियों की स्थिति पहले से अच्छी बना देता है जिससे कल्याण का अपेक्षाकृत अधिक उचित वितरण हो जाता है।

पर डॉ ग्राफ ने एक और धारणा का वर्णन किया है जिसे उसने पैतृक धारणा (paternal concept) की सज्ञा दी है। एक राज्य या पैतृक सत्ता अपने ही विचार के अनुसार समाज कल्याण को अधिकतम बनाती है और समाज के व्यक्तियो के विचारों पर कोई ध्यान नहीं देती। अर्थशास्त्री समाज कल्याण के माप के लिए इस धारणा का प्रयोग नहीं करते क्योंकि यह तानाशाही शासन से सम्बद्ध होती है और प्रजातन्त्र के साथ मेल नहीं खाती।

इस प्रकार आर्थिक कल्याण का अर्थ है वह समाज कल्याण जिससे परेटो उन्नति या वितरणात्मक उन्नति या दोनों प्रकार की उन्नति हो।

2. मूल्य निर्णय
(VALUE JUDGEMENTS)

ऐसी सभी नैतिक निर्णय और वक्तव्य—जो सिफारिशी, प्रभावात्मक और मनवाने का काम करते हैं—मूल्य निर्णय होते हैं।[5] डा ब्रैंड (Brandt) के अनुसार, एक निर्णय मूल्य निर्णय होता है यदि वह

5 All ethical judgements and statements which perform recommendatory, influential and persuasive functions are value judgements

किसी निर्णय के लिए आवश्यक हो या उसका विरोध करे जिसको साधारण तौर पर निम्नलिखित विषयो मे से किसी एक को प्रतिपादित किया जा सके, जैसे 'वह एक अच्छी बात है' अथवा 'सामान्य तौर से आवश्यक है', 'निन्दनीय है', और 'सामान्य तौर से प्रशसनीय है'।[6] मूल्य निर्णय भावोत्तेजक (emotive) ढग से तथ्यो का वर्णन करते है और लोगो को अपन विश्वासो और रुचियो को बदलने की प्रेरणा देते है। "इस परिवर्तन से आर्थिक कल्याण मे वृद्धि होगी", "आर्थिक विकास तेजी से होना चाहिए", "आय विषमताओ को कम करने की जरूरत है"—इस प्रकार के सभी वक्तव्य मूल्य निर्णय होते है।

'कल्याण' एक नीति-विषयक शब्द है। इसलिए सब कल्याण प्रस्थापनाएँ (propositions) नैतिक होती है, जिनमे मूल्य निर्णय पाए जाते हैं। 'सन्तुष्टि', 'उपयोगिता' जैसे शब्दो की प्रकृति भी नैतिक होती है, क्योकि वे भावोत्तेजक है। इसी प्रकार, 'आर्थिक' के स्थान पर 'समाज', 'समुदाय' या 'राष्ट्रीय' जैसे अत्यन्त भावोत्तेजक शब्द का प्रयोग भी नैतिक होता है। क्योकि कल्याण अर्थशास्त्र नीति उपायो से सम्बन्ध रखता है, इसलिए इसमे ऐसी नैतिक शब्दावली रहती है जैसे कि "समाज कल्याण" या "समाज लाभ" या "समाज हित"। इस प्रकार कल्याण अर्थशास्त्र तथा नीतिशास्त्र अलग नहीं किए जा सकते। डॉ लिट्टल के अनुसार, "उन्हे इसलिए अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि कल्याण शब्दावली मूल्य शब्दावली है।" क्योकि कल्याण प्रस्थापनाओ मे मूल्य निर्णय पाए जाते है, इसलिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या अर्थशास्त्रियो को अर्थशास्त्र में मूल्य निर्णय करने चाहिए?

इस विषय पर अर्थशास्त्रियो मे मतभेद है। उपयोगिता की मान्यता तथा उपयोगिता की अनिवार्य अन्त वैयक्तिक तुलनाओ (interpersonal comparisons) से नवक्लासिकी अर्थशास्त्रियो का सम्बन्ध था। सतुष्टि के लिए समान क्षमता (equal capacity for satisfaction) के मार्शल के सिद्धान्त पर आधारित पीगू की आय-वितरण नीति का तात्पर्य है कि उपयोगिता की अन्त वैयक्तिक तुलनाएँ सभव थीं।[7] 1932 मे प्रोफेसर रॉबिन्स ने इस मत पर सीधा प्रहार किया। उसका विचार था कि यदि अर्थशास्त्र को वास्तविक तथा वैज्ञानिक अध्ययन रहना है, तो अर्थशास्त्रियो को चाहिए कि अन्त वैयक्तिक तुलनाएँ न करे, क्योंकि नीति-विषयक सिफारिशे कुछ लोगो की स्थिति पहले से अच्छी और दूसरो की स्थिति पहले से बुरी बना देती है। इसलिए अन्त वैयक्तिक तुलनाएँ करना सभव नहीं अर्थात् एक व्यक्ति के कल्याण की दूसरे व्यक्ति के कल्याण के साथ तुलना नहीं की जा सकती।

रॉबिन्स के मत से सहमत होकर अधिकाश अर्थशास्त्रियो ने अन्त वैयक्तिक तुलनाओं से बचने के लिए परेटो के क्रमसख्यात्मक (ordinal) माप की विधि को अपना लिया था। कालडर, हिक्स तथा सिकिटोवस्की ने क्षतिपूर्ति सिद्धान्त बनाया, जो मूल्य निर्णयों से मुक्त था। इसके अनुसार, अर्थशास्त्री, दक्षता विचारों (efficiency considerations) के आधार पर, नीति-विषयक सिफारिशे कर सकते है। आर्थिक दक्षता का वस्तुपरक परीक्षण (objective test) यह है कि एक परिवर्तन से हानि उठाने वालो की अपेक्षा लाभ उठाने वाले अधिक क्षतिपूर्ति कर सकते हैं। परन्तु बढी हुई दक्षता के इस अर्थ मे मूल्य निर्णय निहित है क्योंकि एक परिवर्तन से लाभ उठाने वाले हानि उठाने वालो की क्षतिपूर्ति कर सकते है। क्षतिपूर्ति के विचार मे ही मूल्य सुझाव (value prescriptions) निहित है। अत नए कल्याण अर्थशास्त्र के प्रवर्तक भी मूल्य मुक्त (value free) कल्याण अर्थशास्त्र का निर्माण करने मे असफल रहे है।

प्रोफेसर बर्गसन भी रॉबिन्स के मत से सहमत है कि अन्त वैयक्तिक तुलनाओ मे मूल्य निर्णय शामिल होते है। परन्तु ऐरो (Arrow) और सैम्युलसन के साथ-साथ उसका भी यह मत है कि

6 R B Brandt, in *The Structure of Economic Science*, 1966, (ed) S Krupp
7 पीगू की कल्याण दशाए अथवा शर्तें अगले अध्याय मे देखें।

मूल्यवादी निर्णयों का समावेश किए बिना कल्याण अर्थशास्त्र में कोई अर्थपूर्ण स्थापना नहीं की जा सकती। इस प्रकार, कल्याण अर्थशास्त्र आदर्शवादी अध्ययन (normative study) बन जाता है, जो किसी भी प्रकार अर्थशास्त्रियों को उसके वैज्ञानिक अध्ययन से नहीं रोकता।

परेटो का सामान्य इष्टतम सिद्धान्त (general optimum theory) भी मूल्य मुक्त नहीं है। वह बताता है कि वह स्थिति इष्टतम होती है जिसमें यह सम्भव नहीं कि साधनों का पुनर्विभाजन करके भी कम से कम एक व्यक्ति को पहले से बुरी स्थिति में पहुँचाए बिना प्रत्येक व्यक्ति को पहले से अच्छी स्थिति में लाना सम्भव नहीं होता। इस कल्याण प्रस्थापना में कुछ मूल्य निर्णय वर्तमान है। 'परेटो का इष्टतम' व्यक्ति के कल्याण से सम्बद्ध है। इष्टतम स्थिति प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति अपने कल्याण का उत्तम निर्णायक होता है। यदि साधनों के किसी भी पुनर्विभाजन के द्वारा कम से कम एक व्यक्ति की स्थिति पहले से अच्छी हो जाए और दूसरों की स्थिति पहले से बुरी न होने पाए, तो कहते है कि समाज के कल्याण में वृद्धि हुई है। ये सब निर्णय मूल्य निर्णय है जिनसे इस बात के बावजूद, कि उनमें उपयोगिता के क्रमसंख्यात्मक (ordinal) माप की विधि का प्रयोग किया था, परेटो बच नहीं पाया।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट निष्कर्ष यह निकलता है कि कल्याण अर्थशास्त्र तथा नीतिशास्त्र अलग नहीं है तथा अन्त वैयक्तिक तुलनाएँ या मूल्य निर्णय भी अर्थशास्त्र से अलग नहीं किए जा सकते है। सभी प्रजातन्त्रात्मक देश कल्याणकारी राज्य के आदर्श को अपनाते है और इस प्रकार के वैधानिक तरीके, जैसे मुफ्त शिक्षा, शराब पर भारी प्रशुल्क, अनिवार्य राष्ट्रीय बीमा आदि, मूल्य निर्णय है। अर्थशास्त्रियों से आराम कुर्सी में बैठे रहने वाले विद्वान होने की आशा नहीं की जा सकती। वह आलोचना कर सकता है और दक्षता, वितरण तथा औचित्य के आधार पर नीति विषयक सिफारिशें भी कर सकता है। ऐसी सब सिफारिशों में मूल्य निर्णय निहित रहते है परन्तु उनका जनमत के अनुरूप होना आवश्यक है। हम प्रोफेसर स्किटोवस्की के इस मत से पूर्णतया सहमत है कि "इतना सब होने पर भी, यह काम समाज विज्ञान का है कि मूल्य निर्णय और कल्याण वितरण की सिफारिशे करे, और अर्थशास्त्री केवल एक समाज-वैज्ञानिक ही नहीं बल्कि इस विषय का प्रतिपादन करने के लिए सम्भवत सब समाज-वैज्ञानिकों से योग्यतम है।"

3. यथार्थ अर्थशास्त्र तथा कल्याण अर्थशास्त्र
(POSITIVE ECONOMICS AND WELFARE ECONOMICS)

यथार्थ अर्थशास्त्र 'क्या है' (what is) से सबद्ध है। इसके अपने सामान्यीकरण (generalisations), नियम या सिद्धान्त होते हैं, जो कारण तथा परिणाम में कारण विषयक (causal) सबध बतलाते है। यथार्थ या शुद्ध अर्थशास्त्र विज्ञान के रूप में वास्तविक घटनाओं की व्याख्या करता है। दूसरी ओर, कल्याण अर्थशास्त्र आदर्शवादी अध्ययन है यह भी कारण और परिणाम में कारणविषयक सम्बन्धों से सबद्ध है, परन्तु कारण परिणाम सबध से निष्कर्ष निकालने के अतिरिक्त यह विभिन्न परिणामों का मूल्यांकन (evaluation) करता है और आदर्शवादी दृष्टिकोण से उनमें विभेद करता है।

दूसरे शब्दों में, कल्याणकारी अर्थशास्त्र का सबध नीति से है अर्थात् निर्णय और उपचार (judgement and prescription) से। प्रोफेसर स्किटोवस्की के शब्दों में, "कल्याण अर्थशास्त्र सामान्य आर्थिक सिद्धान्त का वह भाग है जो मुख्यत नीति से सबद्ध है जब कभी भी अर्थशास्त्री नीति की सिफारिश करता है, उदाहरणार्थ, जब वह पूर्ण रोजगार का समर्थन करता है या आर्थिक मामलों में सरकारी हस्तक्षेप का विरोध करता है, तो वह एक कल्याण कथन करता है।" अत यथार्थ अर्थशास्त्र का काम व्याख्या करना और कल्याण अर्थशास्त्र का सुझाव अथवा उपचार करना

है।

यथार्थ तथा कल्याण अर्थशास्त्र मे सबध (Relation between Positive and Welfare Economics)—"19वीं शताब्दी के पिछले भाग तक कल्याण तथा यथार्थ अर्थशास्त्र मे कोई भेद नहीं था। आर्थिक ग्रन्थ काफी हद तक समालोचना-ढग के बिना विश्लेषण को सिफारिश के साथ सयोजित करते थे, और प्राय विश्लेषण की गई नीति को सिफारिशो के अधीनस्थ कर दिया जाता था।"[8] सीनियर (Senior) ने 19वीं शताब्दी के अन्त मे तथा रॉबिन्स ने 20वीं शताब्दी मे यह व्यक्त किया कि अर्थशास्त्र का कार्य कल्याण की खोज करना नहीं बल्कि सामान्य सिद्धात प्रतिपादित करना है। सीनियर के अनुसार, "एक राजनीतिक अर्थशास्त्री का व्यवसाय न तो सिफारिश करना और न ही मना करना होता है बल्कि सामान्य सिद्धान्तों को व्यक्त करना होता है जिनकी उपेक्षा करना आत्मघाती है लेकिन विषयो के सचालन मे उनका एकमात्र या सिद्धान्त के मुख्य निर्देशक के रूप मे भी प्रयोग करना न तो उचित है और न ही सभवता व्यावहारिक।" रॉबिन्स यथार्थ तथा कल्याण के जाँच के क्षेत्रो मे "तार्किक खाई" पाता है क्योकि वे विवरण के समान स्तर पर नहीं है क्योकि अर्थशास्त्र जाँचने योग्य तत्त्वो से मतलब रखता है और 'कल्याण' मूल्यनो तथा बाध्यताओ (valuations and obligations) से वह उनको अलग न रखने या उनमे अनिवार्य अन्तर को स्वीकार न करने का कोई कारण नहीं पाता। रॉबिन्स इस निष्कर्ष पर पहुँचता है "सभी तर्क-वितर्क जो दिया गया है, यह है कि दोनो प्रकार के सामान्य सिद्धान्तो मे कोई तार्किक सबध नहीं है, और कि दूसरो के निष्कर्षों का समर्थन करने के लिए एक के सिद्धान्तो का आह्वान करने से कोई लाभ नहीं होगा।"

यह विचारधारा कि यथार्थ विज्ञान कल्याण अर्थशास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, जीवन की वास्तविकताओं से बहुत दूर है। अर्थशास्त्र आदर्शवादी पहलू मे अलग नहीं किया जा सकता। विज्ञान के रूप मे अर्थशास्त्र का सम्बन्ध मानव कल्याण से है। जैसाकि पीगू ने कहा है, "मार्शल यह विचार रखता था कि अर्थशास्त्र का मुख्य महत्त्व इस कारण नहीं है कि यह हमे बौद्धिक व्यायाम प्रदान करता है और न ही इसलिए कि यह सत्य की खोज का साधन है। इसका महत्त्व तो इस बात मे निहित है कि यह नीतिशास्त्र का दास तथा व्यवहार का सेवक है।" इसी विचार के आधार पर पीगू अर्थशास्त्र को केवल ज्ञानदायक (light-giving) ही नहीं बल्कि फलदायक (fruit-giving) भी मानता है। प्रोफेसर बोल्डिंग का यथार्थ तथा कल्याणकारी अर्थशास्त्र के बारे मे यह मत है कि रॉबिन्स "कल्याण के अध्ययन को अर्थशास्त्र से छीनता दिखाई देता है क्योकि कल्याण स्वय मे एक ध्येय (end) है। फिर भी, अर्थशास्त्री सदैव धन तथा कल्याण की समस्याओ मे दिलचस्पी लेते रहे है। अत इससे स्पष्ट है कि कल्याण का अध्ययन आर्थिक विश्लेषण के क्षेत्र मे आता है या नहीं, पर यह निश्चय ही निकटवर्ती है।"

यह सिद्ध करके कि कल्याण अर्थशास्त्र, यथार्थ अर्थशास्त्र का भाग है, अब हम यह अध्ययन करते है कि कहाँ तक कल्याण प्रस्थापनाओ (propositions) मे यथार्थ अर्थशास्त्र का प्रयोग किया जाता है। यथार्थ अर्थशास्त्र की प्रस्थापनाओं की तरह कल्याण अर्थशास्त्र की प्रस्थापनाएँ स्वय-सिद्ध कथनो तथा मान्यताओं (axioms and assumptions) के समूहो से व्युत्पन्न (derive) की जाती है। वास्तविक ससार की प्रत्यक्ष वस्तुओं का अवलोकन करके यथार्थ विज्ञान की प्रस्थापनाओ का परीक्षण किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, अन्य बाते समान रहते हुए माँग का नियम हमें बताता है कि कीमत मे कमी से माँग मे वृद्धि होती है और कीमत मे वृद्धि से माँग मे कमी। यह प्रस्थापना मार्किट मे प्रत्यक्ष वस्तुओं का अवलोकन करके परीक्षित की जा सकती है। कल्याण अर्थशास्त्र की स्थापनाएँ भी किसी स्वीकार्य कसोटी के चुनाव पर आधारित है। एक बार जब एक उचित कल्याण कसोटी

8 M W Reder *Studies in the Theory of Welfare Economics* 1947

(criterion) चुन ली जाती है तो प्रस्थापना विशुद्ध तौर से यथार्थ प्रकृति की हो जाती है। परन्तु कठिनाई उस समय उत्पन्न होती है, जब यह जानने का यत्न किया जाता है कि एक विशिष्ट कल्याण कसौटी अपनाने से कल्याण में वृद्धि हुई है या नहीं। किसी भी प्रकार का आर्थिक परिवर्तन कुछ व्यक्तियों को दूसरों की लागत पर लाभ पहुँचायेगा। फिर जब एक व्यक्ति वस्तुओं के एक समूह को दूसरे की अपेक्षा अधिमान देता है तो चुनाव अत्यन्त व्यक्तिगत होता है जिसका मात्रात्मक माप सम्भव नहीं है। कल्याण अर्थशास्त्र में कोई ऐसा सूत्र नहीं जिसमें एक समाज के विभिन्न व्यक्तियों पर एक विशिष्ट आर्थिक पुनर्संगठन के प्रभावों की मात्रात्मक तुलना की जा सके और यह जाँच की जा सके कि परिवर्तन पहले से अच्छा है या बुरा। डॉ. ग्राफ ने ठीक ही कहा है, "बाजार कीमत या व्यक्तिगत उपभोग की किसी मद की तरह कल्याण एक दृष्टिगोचर मात्रा नहीं है। यह एक अन्य प्रकार की ही बात है। यद्यपि सिद्धान्त में नहीं, तो व्यवहार में एक कल्याण प्रस्थापना का परीक्षण करना अत्यन्त कठिन है।"

क्योंकि कल्याण प्रस्थापनाओं की प्रामाणिकता का परीक्षण करना कठिन होता है, इसलिए कल्याण अर्थशास्त्र के लिए एक अलग कार्य पद्धति का प्रयोग होना चाहिए—यथार्थ अर्थशास्त्र के निष्कर्षों के विरुद्ध कल्याण अर्थशास्त्र की मान्यताओं का परीक्षण करना। जैसाकि ग्राफ ने स्पष्ट किया, "जहाँ यथार्थ अर्थशास्त्र में एक सिद्धान्त के परीक्षण का साधारण तरीका उसके निष्कर्षों का परीक्षण करना होता है, वहाँ एक कल्याण प्रस्थापना के परीक्षण का साधारण तरीका उसकी मान्यताओं का परीक्षण करना है। उदाहरणार्थ, यदि हम इस मान्यता पर चलें कि एक दिया हुआ पुनर्संगठन कुछ लोगों को पहले से अच्छी स्थिति में कर देता है, दूसरों को बुरी स्थिति में किए बिना तो कल्याण अर्थशास्त्र में मात्रात्मक माप की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस पूर्वकथित तथ्य का यह अभिप्राय है कि समस्त समाज पहले से अच्छी स्थिति में हो जाता है और कोई भी पहले से बुरी स्थिति में नहीं होता है। इस मान्यता के उचित होने पर भी, यह कल्याण कसौटी समस्त समाज को स्वीकार्य नहीं भी हो सकता। इस प्रकार, ऐसी कल्याण प्रस्थापनाओं का स्थापित करना कठिन है जिन्हें कि यथार्थ अर्थशास्त्र की तरह मान्य दशाओं (assumed conditions) के आधार पर भी परीक्षित किया जा सके। प्रोफेसर ग्राफ का यह कथन उचित है कि यथार्थ अर्थशास्त्र में "पकवान (पुडिंग) का असली प्रमाण उसे खाने पर ही मिल सकता है। दूसरी ओर, कल्याण केक खाने में इतना सख्त है कि उसे पकाने से पहले हमें उसके उपकरणों के गुणों की जाँच करनी चाहिए।"

प्रश्न

1 कल्याणात्मक अर्थशास्त्र तथा वास्तविक अर्थशास्त्र में क्या कोई आधारभूत भेद है? कल्याणात्मक अर्थशास्त्र की सङ्कल्पना में किन विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है?

2 कल्याण की परिभाषा दीजिए। कहाँ तक आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का मापक अथवा सूचक माना जा सकता है? आर्थिक कल्याण एवं कुल कल्याण में विरोध का उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

3 उन कठिनाइयों का परीक्षण कीजिए जो इस तथ्य से उत्पन्न होती हैं कि कल्याणकारी अर्थशास्त्र मूल्य निर्णयों से सम्बद्ध है।

4 "कल्याण अर्थशास्त्र को सदैव कुल कल्याण का एक भाग समझा जाता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

अध्याय 44

पीगू का कल्याण अर्थशास्त्र और वहिर्भाव
(PIGOVIAN WELFARE ECONOMICS AND EXTERNALITIES)

प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

कल्याण अर्थशास्त्र पर प्रथम मानक ग्रन्थ प्रोफेसर ए सी पीगू का *The Economics of Welfare* है। पीगू कल्याण अर्थशास्त्र का पिता माना जाता है, क्योंकि जैसाकि डा लिट्ल ने सकेत किया है, "कल्याण अर्थशास्त्र पीगू से प्रारम्भ हुआ। उससे पहले हमारे पास आनन्द अर्थशास्त्र था और उससे पहले धन अर्थशास्त्र।"[1] पीगू के कल्याण अर्थशास्त्र को सुविधापूर्वक तीन भागो मे बाँटा जा सकता है (1) कल्याण की धारणा, (2) कल्याण दशाएँ, तथा (3) सीमान्त निजी और सीमान्त सामाजिक लागतो एव प्रतिफलो मे विचलन का विश्लेषण। हम क्रमश इनका अध्ययन करते है।

1 *कल्याण धारणा* (Concept of Welfare)

पीगू के अनुसार एक व्यक्ति के मन या चेतना मे कल्याण रहता है जोकि उसकी सतुष्टियो या उपयोगिताओ से बनता है। इस प्रकार, जिस सीमा तक एक व्यक्ति की इच्छाओ की पूर्ति होती है, वह आवश्यक तौर से उसके कल्याण का आधार है। सामाजिक कल्याण एक समाज मे सभी व्यक्तियो के कल्याणो का एकत्रीकरण समझा जाता है। क्योकि सामान्य कल्याण एक बहुत विस्तृत, जटिल तथा अव्यावहारिक धारणा है, इसलिए पीगू अपने अध्ययन की सीमा को आर्थिक कल्याण तक ही सीमित कर देता है। जैसे कि वह स्वय ही कहता है कि आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का किसी भी तरह सूचक नहीं है क्योकि कुल कल्याण के बहुत से अन्य तत्त्व, जैसे काम की गुणवत्ता, व्यक्ति का वातावरण, मानवीय सबध, पद, निवास तथा सरकारी सुरक्षा आदि आर्थिक कल्याण मे वर्तमान नहीं होते। इसलिए वह आर्थिक कल्याण को सामाजिक (सामान्य) कल्याण का वह भाग परिभाषित करता है, *जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा के मापदण्ड से सबधित किया जाता है।*[2] अत पीगू के विचार मे, आर्थिक कल्याण से अभिप्राय एक व्यक्ति द्वारा विनिमय-योग्य वस्तुओ और सेवाओ के प्रयोग से प्राप्त सतुष्टि या उपयोगिता है।

2 पीगू की कल्याण की दशाएँ (Pigovian Welfare Conditions)

पीगू आर्थिक कल्याण एव राष्ट्रीय आय को आवश्यक तौर से सवर्ग (coordinate) मानता है। इस आधार पर वह कल्याण को अधिकतम करने के लिए दो दशाएँ निश्चित करता है।

1 Welfare Economics began with Pigou Before that we had Happiness Economics and before that, Wealth Economics' —*I M D Little*

2 Economic Welfare is that part of social (general) welfare that can be brought directly or indirectly into relation with the measuring rod of money

प्रथम, पहली दशा यह व्यक्त करती है कि जब राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो कल्याण बढ़ता है। रुचियाँ और आय-वितरण दिए होने पर, राष्ट्रीय आय में वृद्धि कल्याण में वृद्धि को व्यक्त करती है। पीगू का मत है कि अधिकतर अवस्थाओं में राष्ट्रीय आय बढ़ेगी यद्यपि काम की अनुपयोगिता (disutility) में भी वृद्धि होती है।

द्वितीय, कल्याण को अधिकतम करने हेतु राष्ट्रीय आय का वितरण भी महत्त्वपूर्ण है। यदि राष्ट्रीय आय स्थिर रहती है तो आय का अमीरों से गरीबों को हस्तांतरण कल्याण की उन्नति करेगा। पीगू के अनुसार, ऐसे हस्तांतरणों का गरीबों की अपेक्षा अमीरों पर कम प्रभाव पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप गरीबों की आर्थिक हालत सुधर जाती है। कल्याण की यह दशा पीगू की दोहरी धारणाओं *"संतुष्टि के लिए समान क्षमता"* (equal capacity for satisfaction) तथा "आय की ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता" (diminishing marginal utility of income) पर आधारित है। पीगू तर्क करता है कि भिन्न लोग उसी वास्तविक आय में से समान संतुष्टि प्राप्त करते हैं और कि जो लोग अब अमीर हैं वे प्रकृति में उन लोगों से भिन्न हैं जो अब गरीब हैं क्योंकि उनकी मूलभूत प्रकृति में उपभोग की अधिक क्षमताएँ हैं। आय पर ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता का नियम लागू होने पर, *आय के अमीरों से गरीबों को हस्तांतरण, अमीरों की कम तीव्र आवश्यकताओं की लागत* पर गरीबों की अधिक तीव्र आवश्यकताओं की संतुष्टि करके, सामाजिक कल्याण की वृद्धि करेंगे। अतः आर्थिक समानता ही कल्याण को अधिकतम करती है।

दोहरा मापदण्ड (Dual Criterion)—सामाजिक कल्याण में उन्नति को जानने के लिए पीगू एक दोहरा मापदण्ड अपनाता है

प्रथम, राष्ट्रीय आय में वृद्धि का लाया जाना, या कुछ वस्तुओं को बढ़ाकर दूसरी वस्तुओं को कम किए बिना या साधनों की ऐसी क्रियाओं में स्थानान्तरण करके, जिनमें उनका सामाजिक मूल्य अधिक हो, कल्याण में उन्नति माना जाता है, बशर्ते कि गरीबों के हिस्से में कमी नहीं हो।

दूसरे, अर्थव्यवस्था का कोई भी पुनर्संगठन, जो राष्ट्रीय आय को कम किए बिना गरीबों के हिस्से को बढ़ाता है, सामाजिक कल्याण में उन्नति माना जाता है।

पीगू की दशाओं की मान्यताएँ (Assumptions of Pigovian Conditions)—पीगू की कल्याण की दशाएँ और दोहरा मापदण्ड निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैं, जिनमें से कुछ का पहले ही संकेत किया जा चुका है।

(1) प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं पर किए गए अपने व्यय से अपनी संतुष्टि को अधिकतम करने का यत्न करता है।

(2) यह भी मान्यता है कि वैयक्तिक-अभ्यन्तर (intra-personally) और अन्त वैयक्तिक (inter-personally) रूप से संतुष्टियाँ तुलना-योग्य हैं।

(3) यह मान लिया जाता है कि आय की ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता का नियम लागू होता है। इसका अर्थ यह है कि आय बढ़ती है तो आय की सीमान्त उपयोगिता कम होती है। इसके परिणामस्वरूप, अतिरिक्त आय में उपयोगिता में एक गरीब व्यक्ति को लाभ, एक अमीर व्यक्ति की हानि से अधिक होता है, यदि आय राशि को समान मान लिया जाय तथा आय का हस्तांतरण अमीर से गरीब को हो।

(4) एक और मान्यता 'संतुष्टि के लिए समान क्षमता' की है जिसका अभिप्राय यह है कि विभिन्न लोग समान वास्तविक आय से समान संतुष्टि प्राप्त करते हैं।

ये मान्यताएँ दी होने पर पीगू की अधिकतम सामाजिक कल्याण की दशाओं को उसके दोहरे मापदण्ड के आधार पर पूरा किया जा सकता है।

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)—यद्यपि पीगू की *The Economics of Welfare* कल्याण अर्थशास्त्र का प्रथम सुस्पष्ट विश्लेषण है, फिर भी, उसकी 'कल्याण दशाओं' की निम्नलिखित

आलोचनाएँ की गई हैं।

(1) 'अधिकतम' (maximisation) **की धारणा स्पष्ट नहीं है।** पीगू कल्याण के अधिकतम करने पर बल देता है परन्तु वह अधिकतम की धारणा को स्पष्ट नहीं करता। उसका 'अधिकतम' वास्तव मे इष्टतम ही है परन्तु यह एक स्थिर बिन्दु है जो सही नहीं, क्योंकि 'इष्टतम' स्थिर नहीं होता। वह तो राष्ट्रीय आय के बढ़ने के साथ बढ़ता है और कम होने के साथ कम होता है।

(2) **'कल्याण' को पीगू गणन-सख्यात्मक** (cardinal) **विधि से मापता है।** पीगू के अनुसार कल्याण को उपयोगिता या सतुष्टि द्वारा मापा जाता है। सामाजिक कल्याण विनिमय-योग्य वस्तुओ एव सेवाओ की व्यक्तिगत उपयोगिताओ का कुल जोड माना गया है। अर्थशास्त्री इस धारणा से सहमत नहीं क्योंकि उपयोगिता का मात्रात्मक माप नहीं हो सकता। यही कारण है कि आधुनिक अर्थशास्त्री उपयोगिता को क्रम-सख्यात्मक (ordinal) विधि से मापते हैं।

(3) **राष्ट्रीय आय कल्याण का सही मापदण्ड नहीं है।** पीगू की 'कल्याण दशाएँ' राष्ट्रीय आय से सम्बद्ध है। परन्तु राष्ट्रीय आय का आगणन करना आसान काम नहीं। फिर, राष्ट्रीय आय के बढ़ने मात्र से ही सामाजिक कल्याण में वृद्धि नहीं हो जाती। सभव है कि स्फीति के कारण राष्ट्रीय आय मे वृद्धि दृष्टिगोचर हो और उससे गरीबो की स्थिति पहले से भी बुरी हो जाए। इन्हीं कारणो से आधुनिक अर्थशास्त्री राष्ट्रीय आय के स्थान पर 'चुनाव' के आधार पर कल्याण को मापते है। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु के B समूह की अपेक्षा A समूह का चुनाव करता है तो निस्सदेह उसको A से अधिक उपयोगिता या सतुष्टि प्राप्त होती है। इस प्रकार उसके कल्याण मे वृद्धि होती है।

(4) प्रोफेसर रॉबिन्स के अनुसार 'मनुष्य की समान क्षमता' की मान्यता पीगू की **कल्याण की धारणा को यथार्थ अध्ययन नहीं बनाती है।** उसके शब्दों मे यह मान्यता नीति-विषयक सिद्धात पर निर्भर करती है, न कि वैज्ञानिक प्रदर्शन पर, यह मूल्य का निर्णय नहीं है।

(5) **पीगू कल्याण के नीतिविषयक सम्बन्ध को स्पष्ट नहीं करता है।** कल्याणकारी अर्थशास्त्र का नीतिशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है परन्तु पीगू इसको स्पष्ट नहीं करता। कल्याणकारी अर्थशास्त्र आवश्यक तौर से आदर्शवादी अध्ययन है जिसमे मूल्य निर्णय तथा अन्त वैयक्तिक (interpersonal) तुलनाएँ की जाती है। इन धारणाओ को अपनी 'कल्याण' धारणा के साथ सम्बद्ध न करने के कारण पीगू का "कल्याण का अर्थशास्त्र" कल्याण के कारणों का वास्तविक अध्ययन नहीं समझा जाता।

इन त्रुटियों के कारण आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने 'क्षतिपूर्ति सिद्धात' तथा 'सामाजिक कल्याण फलन' की विचारधाराओ को प्रतिपादित किया है, जो कल्याण अर्थशास्त्र को नया स्वरूप देने के प्रयास है।

3 **सीमात निजी व सीमात सामाजिक लागतों एव प्रतिफलो के विवेचन का विश्लेषण, अथवा बहिर्भावो या बाह्य प्रभावो का विश्लेषण** (Analysis of Divergences between Private and Social Costs and Returns, or of Externalities or External Effects)

सीमात निजी व सामाजिक लागतो एव प्रतिफलों (लाभों) के बीच विचलन बहिर्भाव (externalities) या बाह्य प्रभाव (external effects) या बाह्य मितव्ययिताएँ एव अमितव्ययिताएँ (external economies and diseconomies) कहलाते है। "एक बाह्य प्रभाव तब होना माना जाता है, जब भी एक फर्म का उत्पादन या एक व्यक्ति की उपयोगिता किसी अन्य फर्म या व्यक्ति की क्रिया ऐसे साधन पर निर्भर करती है जिसे **बेचा या खरीदा नहीं जाता है, कम से कम वर्तमान मे ऐसा साधन विनिमय-योग्य नहीं होता है** बाह्य प्रभावो को (व्यक्तियो और फर्मों के बीच) **अविनियमित परस्पर निर्भरताएँ** (untraded interdependencies) भी कहा जाता है, जोकि पारस्परिक या एक-दिशात्मक (uni-directional) हो सकती हैं। बहिर्भाव उत्पादन में उत्पादन और उत्पादन म

उपभोग की ओर जाते है। वे उपभोग से उपभोग और उपभोग से उत्पादन की ओर भी जा सकते है। बहिर्भाव धनात्मक और ऋणात्मक होते है। लाभदायक बहिर्भाव धनात्मक (positive) बहिर्भाव कहलाते है। महगे बहिर्भाव ऋणात्मक (negative) कहलाते है। दूसरे शब्दों मे, यदि निजी लाभों से सामाजिक लाभ अधिक होते है तो यह धनात्मक बहिर्भाव या बाह्य मितव्ययिता होती है। यदि निजी लागतो से सामाजिक लागतें अधिक होती हैं तो यह ऋणात्मक बहिर्भाव अथवा बाह्य अमितव्ययिता होती है। वास्तव मे, बहिर्भाव (externalities) मार्किट अपूर्णताएँ होती है, जहाँ वस्तु की सेवा या असेवा के लिए मार्किट कोई कीमत प्रदान नहीं करती है। इन बहिर्भावों मे साधनो का कुवितरण होता है जिससे उत्पादन या उपभोग इष्टतम स्तर से कम रह जाता है। इस प्रकार, बाह्य प्रभावों के कारण अधिकतम सामाजिक कल्याण नहीं हो पाता। पीगू को इस बात का श्रेय है कि उसने इन बाह्य प्रभावों के कारणों का विश्लेषण ही नहीं किया बल्कि सामाजिक एव निजी लागतों और लाभों के विचलनो को दूर करने के उपाय भी बताए, जिनका हम नीचे विवेचन करते है।

सामाजिक एव निजी लागतो और प्रतिफलो मे विचलनो के कारण (Causes of Divergences between Social and Private Costs and Returns)—पीगू के अनुसार, अज्ञान या दृढताओ के प्रतिबन्धो से मुक्त अपने हित मे निजी और सामाजिक लागतो और प्रतिफलों मे समानता आती है। परन्तु कुछ व्यावसायिक व्यवहार दृढताओ (rigidities) को जन्म देते है जिनसे निजी और सामाजिक लागतो और प्रतिफलो मे विचलन उत्पन्न हो जाते है जोकि माँग मे परिवर्तनो, रुचियो, व्यापारिक उतार-चढावो युद्ध तथा नये उद्योगों के उत्थान द्वारा और विस्तृत हो जाते है। बाह्य मितव्ययिताओ तथा अमितव्ययिताओं के पाये जाने से निजी उत्पाद (private product) तथा सामाजिक उत्पाद (social product) मे भिन्नता होती है, जिससे सामाजिक और निजी लागतों तथा लाभों मे विचलन पाया जाता है। अब हम इन बाह्य मितव्ययिताओ तथा अमितव्ययिताओं का विश्लेषण करते है।

(1) **उत्पादन की बाह्य मितव्ययिताएँ** (External economies of production)—जब कोई फर्म किसी सेवा के समस्त लाभ या लागत का स्वय प्रयोग किए बिना, दूसरी फर्मों को उस सेवा या लाभ या लागत प्रदान करती है तो यह उत्पादन की बाह्य मितव्ययिता है। उत्पादन की बाह्य मितव्ययिताएँ एक या अधिक फर्मों की औसत लागतो की कमी के रूप में किसी अन्य फर्म की क्रियाओ के परिणामस्वरूप प्राप्त होती है।

उत्पादन की बाह्य मितव्ययिताएँ उस समय उत्पन्न होती हैं, जब एक फर्म का प्रसार उद्योग मे अन्य फर्मों के लिए प्रशिक्षित श्रम, कच्चा माल, आदि आगतें नीची दरों पर प्राप्त करना सभव बना देता है। इन सभी स्थितियों मे, सामाजिक सीमान्त लाभ निजी सीमान्त लाभों मे अधिक होते है और निजी लागतें सामाजिक लागतों से अधिक होती हैं। ऐसा इसलिए कि प्रसार कर रही फर्म न तो व्यय की गई लागतो और न ही प्रदान किए गए लाभो के लिए अन्य फर्मों से कुछ लेती है।[3]

(2) **उत्पादन की बाह्य अमितव्ययिताएँ** (External diseconomies of production)—उत्पादन की बाह्य अमितव्ययिताएँ भी निजी और सामाजिक लागतों तथा लाभो मे विचलन लाती है, जब किसी वस्तु या सेवा का एक फर्म द्वारा उत्पादन उद्योग मे दूसरी फर्मों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। प्रो पीगू का वायु-दूषण का उदाहरण इन भिन्नताओ को स्पष्ट करता है। मान लीजिए कि एक फैक्ट्री किसी घनी आबादी या आवास क्षेत्र मे स्थित है और यह धुआँ उत्पन्न करती है। फैक्ट्री का धुआँ उस इलाके के निवासियो का स्वास्थ्य, मकान, घरेलू वस्तुएँ तथा उनके वस्त्र खराब करता है। इसके परिणामस्वरूप वहाँ के निवासियो की निर्वाह लागतें कई तरह से बढ़ जाती है, जैसे कपड़ों की धुलाई, घरेलू वस्तुओं तथा कमरो की सफाई, तथा मकानों की सफाई और रोगन एव बढ़ी हुई

3 चित्र द्वारा व्याख्या के लिए देखिए अध्याय 48 मे चित्र 48.5

चिकित्सा पर अधिक व्यय के रूप मे। ये सामाजिक लागते है जिनके लिए फैक्ट्री इलाके के निवासियो की क्षतिपूर्ति नहीं करती और इस तरह स्वय लाभ उठाती है। इस प्रकार निजी लागते सामाजिक लागतो से कम है, और फैक्ट्री के निजी लाभ *सामाजिक लाभो से अधिक है* क्योकि फैक्ट्री का मालिक क्षेत्र के निवासियो द्वारा किए गए व्यय से बच जाता है और इससे निजी लाभ कमाता है। इस प्रकार, निजी लागतो और लाभो की तुलना मे सामाजिक लागते अधिक और लाभ कम होते है।[4]

(3) उपभोग की बाह्य मितव्ययिताएँ (External economies of consumption)—उपभोग की बाह्य मितव्ययिताएँ विभिन्न उपभोक्ताओ द्वारा सतुष्टियो की गैर-मार्किट परस्पर-निर्भरताओ से प्राप्त आनन्द से उत्पन्न होती है। एक वस्तु या सेवा के उपभोग मे वृद्धि, जो दूसरे उपभोक्ताओ के *उपभोग ढाँचे और इच्छाओ पर अनुकूल प्रभाव डालती है, उपभोग की बाह्य मितव्ययिता है।* जब एक व्यक्ति टेलीविजन सैट खरीदता है तो उसके पडोसियो की सतुष्टि मे वृद्धि होती है, जब वे और उनके बच्चे विभिन्न प्रोग्रामो को देखते है। यह उपभोग मे बाह्य मितव्ययिता का उदाहरण है जिसमे सामाजिक लाभ निजी लाभ से अधिक है और सामाजिक लागत निजी लागत से कम है, क्योकि टेलीविजन सैट के मालिक को पडोसियो से कुछ भी प्राप्त नहीं होता—प्रोग्राम देखने के बदले मे उनसे कुछ नहीं उपलब्ध किया जाता।

(4) उपभोग की बाह्य अमितव्ययिताएँ (External diseconomies of consumption)—जब एक उपभोक्ता द्वारा किसी वस्तु या सेवा के उपभोग से दूसरे उपभोक्ताओ के उपभोग ढाँचे और इच्छाओ पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है तो यह उपभोग की बाह्य अमितव्ययिता होती है। उपभोग की अमितव्ययिताएँ विशेष तौर से पहनावे से सबधित फैशनो और प्रत्यक्ष उपभोग वस्तुओ से *उत्पन्न होती है। जब किसी इलाके मे एक धनी महिला नए स्टाइल का पहरावा पहनती है तो इससे* पहले प्रयोग किए जा रहे कपडो का तिरस्कार केवल वह ही नहीं करती बल्कि दूसरी औरते भी करती है, जो पहनावे मे उसका अनुकरण करती है। इससे सामाजिक लागते उसकी निजी लागतो मे अधिक होती है और सामाजिक लाभ निजी लाभो से कम होते है। वे व्यक्ति जो अपने धनी पडोसियो के उपभोग ढाँचे को अपनाने की सामर्थ्य नहीं रखते, असतोष तथा ईर्ष्या का अनुभव करते है जिसके परिणामस्वरूप उनकी उत्पादकीय क्षमता कम हो जाती है तथा सामाजिक एव निजी लागतो और लाभो मे तीव्र भिन्नताएँ उत्पन्न हो जाती है। अन्य उदाहरण लाउडस्पीकरो से शोर अनुत्रास (noise nuisance) है।

(5) सार्वजनिक वस्तुएँ (Public goods)—सामाजिक तथा निजी लागतो एव लाभो मे भिन्नताओ का एक कारण सार्वजनिक वस्तुएँ भी होती है जिनकी पीगू ने बिल्कुल उपेक्षा की है। प्रोफेसर बामोल सार्वजनिक वस्तु को परिभाषित करता है कि "यह वह है जिसका एक व्यक्ति द्वारा उपभोग किसी अन्य व्यक्ति के लिए उसकी उपयोगिता को कम नहीं करता।" सार्वजनिक वस्तुओ का उपभोग सयुक्त और समान होता है। सरकार द्वारा प्रदान की गई कुछ सेवाए जैसे राष्ट्रीय रक्षा, जन सुरक्षा, न्याय हेतु न्यायालय, रोग नियत्रण, आदि सार्वजनिक वस्तुए है। इनके लाभ अविभाज्य होते है। ये प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध होती है चाहे एक व्यक्ति उनके लिए कुछ देता है या नहीं। इसलिए वे बहिष्कार नियम (exclusion principle) के अधीन नहीं आती है। सार्वजनिक वस्तुओ की दूसरी विशेषता यह है कि उनके लाभ शून्य सीमात लागत पर उपलब्ध होते है। अर्थात् उनके लाभ एक अतिरिक्त प्रयोगकर्ता को बिना अतिरिक्त लागत के प्रदान किए जा सकते है। उदाहरणार्थ, न्याय प्रदान करने की लागत बढती नहीं जब एक अतिरिक्त व्यक्ति न्यायालय से न्याय की माग करता है। सार्वजनिक वस्तुओ की तीसरी विशेषता यह है कि वे बहिर्भाव अथवा सामाजिक और

4 चित्र द्वारा व्याख्या के लिए देखिए चित्र 48 6

निजी लाभों में विचलन लाते हैं। बहिर्भाव उस समय उत्पन्न होते हैं जब एक व्यक्ति सार्वजनिक वस्तु की व्यवस्था करता है तो वह दूसरे व्यक्तियों को लाभ प्रदान करता है और इस प्रकार सामाजिक लाभ उत्पन्न करता है जो उसके निजी लाभ से अधिक होते हैं। उदाहरणार्थ, जब कोई व्यक्ति अपने निजी प्रयास से अपने घर के सामने गली में नगरपालिका द्वारा बिजली का खम्बा लगवाता है तो गली के सभी निवासी उससे लाभ उठाते हैं। इसके परिणामस्वरूप, सामाजिक लाभ उसके निजी लाभ से अधिक होते हैं।

उपचारी उपाय (Remedial measures)—निजी और सामाजिक लागतों और लाभों में समानता लाने के लिए पीगू राज्य हस्तक्षेप के पक्ष में था। उत्पादन तथा उपभोग में होने वाले बहिर्भावों के कारण जो अन्तर इन लागतों और लाभों में उत्पन्न होते हैं, उन्हें पीगू करों, आर्थिक सहायता तथा अन्य सामाजिक नियन्त्रण उपायों द्वारा बन्द करने का सुझाव देता है, जिनका अब विश्लेषण किया जाता है।

(1) सामाजिक नियन्त्रण उपाय (Social control measures)—सर्वप्रथम, पीगू आदर्श उत्पाद (ideal output) या इष्टतम कल्याण की प्राप्ति के लिए सामाजिक नियन्त्रण के उपाय सुझाता है। उसके अनुसार, राष्ट्रीय लाभांश अधिकतम होगा, जब सामाजिक शुद्ध उत्पाद (social net product) के मूल्य सभी सम्भव प्रयोगों में समान हों। यदि साधनों के सामाजिक शुद्ध उत्पाद का मूल्य एक प्रयोग में दूसरे प्रयोग की अपेक्षा कम हो तो साधनों को उत्पादन के अधिक लाभदायक ढंगों में स्थानान्तरण करके राष्ट्रीय लाभांश बढ़ाया जा सकता है। ऐसा सामाजिक नियन्त्रण द्वारा ही सम्भव हो सकता है। उदाहरण के तौर पर, सरकार धुआँ उत्पन्न करने वाली फैक्ट्री को उचित सुविधाएँ प्रदान करके फैक्ट्री के मालिक को आवास क्षेत्र से बाहर फैक्ट्री ले जाने को कह सकती है। ऐसा करने से धुआँ अनुत्पात (smoke nuisance) से उत्पन्न होने वाली सामाजिक तथा निजी लागतों एवं लाभों में भिन्नताएँ राज्य हस्तक्षेप से दूर हो जाती हैं। उपभोग की अमितव्ययिताओं के बारे में, राज्य लाउडस्पीकरों के प्रयोग को विशेष अवसरों तक सीमित करके शोर अनुत्पात समाप्त कर सकता है। अल्पाधिकार या अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में पीगू किसी भी प्रकार के सामाजिक नियन्त्रण अथवा राष्ट्रीयकरण के पक्ष में था।

(2) कर तथा सब्सिडी (Taxes and subsidies)—इसके अतिरिक्त पीगू ने सामाजिक तथा निजी लागतों एवं लाभों के अन्तर को समाप्त करने के लिए करों या सब्सिडी के प्रयोग का सुझाव दिया। उसके अनुसार, उत्पादन तथा उपभोग की बाह्य अमितव्ययिताओं की सभी अवस्थाओं में राज्य कर लगा सकता है। उदाहरणार्थ, सरकार प्रत्येक परिवार पर कर लगाकर फैक्ट्री के मालिक को आवास क्षेत्र से चले जाने के लिए के कर एकत्रित राशि दे सकती है। उत्पादन की बाह्य मितव्ययिताओं की अवस्था में, राज्य उत्पादकों को आर्थिक सहायता देकर राष्ट्रीय लाभांश में वृद्धि करके आदर्श उत्पाद को प्राप्त कर सकता है। जबकि उपभोक्ताओं को कर-छूटें देकर सरकार उनकी वस्तुओं के उपभोग की क्षमता में वृद्धि करके, उनकी सन्तुष्टियाँ अधिकतम करने में सहायक हो सकती है।

इनकी व्याख्या माँग और पूर्ति के वक्रों द्वारा की जाती है। एक पूर्ण प्रतियोगी मार्किट के माँग और पूर्ति वक्र केवल प्रत्यक्ष निजी लाभ और लागत व्यक्त करते हैं परन्तु बहिर्भाव नहीं। यदि बहिर्भाव विद्यमान हों तो पूर्ण प्रतियोगी मार्किट एक सामाजिक इष्टतम स्तर प्रदान नहीं करेगी। सरकार कर लगाकर और सब्सिडी देकर बहिर्भावों का आन्तरिकीकरण (internalisation) कर सकती है। मान लीजिए कि निजी लागतों से सामाजिक लागतें अधिक होती हैं जिसका अभिप्राय है कि ऋणात्मक बहिर्भावों का होना। ऐसी स्थिति में, उद्योग द्वारा वस्तु का अति उत्पादन (overproduction) होता है जितना कि समाज को चाहिए। इस को कम करने के लिए, पीगू ने वस्तु पर कर लगाने का सुझाव दिया। इसे चित्र 44.1 में दर्शाया गया है जहाँ D और S क्रमशः मार्किट

माग और पूर्ति वक्र है। वे E बिन्दु पर काटते है और OQ उत्पादन प्राप्त होता है। वक्र S में वस्तु के उत्पादकों द्वारा व्यय की गई केवल प्रत्यक्ष लागतें शामिल है। इसमें ऋणात्मक बहिर्भाव शामिल नहीं है। जब वे मार्किट पूर्ति वक्र S में सम्मिलित अथवा आन्तरिकृत (internatised) किए जाते है तो पूर्ति वक्र S_1 बन जाता हे। अब वक्र D वक्र S_1 को बिन्दु E_1 पर काटता है तथा OQ_1 उत्पादन निर्धारित होता है जो OQ से कम है। यह उत्पादन का सामाजिक इष्टतम स्तर है। उत्पादकों पर वस्तु की प्रति इकाई T कर लगाने से वस्तु का *उत्पादन OQ से OQ_1 कम हो जाएगा जो OQ उत्पादन* के साथ सबधित ऋणात्मक बहिर्भावों को भी कम कर देगा। इस प्रकार अति उत्पादन समाप्त हो जाएगा और सामाजिक लागते और निजी लागते बराबर हो जाएगी।
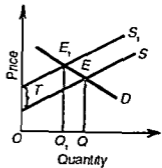
चित्र 44 1

जब निजी लाभों से सामाजिक लाभ अधिक होते है तो वे धनात्मक बहिर्भाव है। ऐसी स्थिति मे, वस्तु का कम उत्पादन होता है जितना समाज को चाहिए। इसे बढाने के लिए, पीगू ने उत्पादक को वस्तु की प्रति इकाई सब्सिडी प्रदान करने का सुझाव दिया। इसे चित्र 44.2 मे दर्शाया गया है जहा D और S क्रमश मार्किट माग और पूर्ति वक्र है। ये बिन्दु E पर काटते है और OQ उत्पादन निर्धारित होता है। परन्तु यह उत्पादन का सामाजिक इष्टतम स्तर नहीं है। वस्तु के उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए जिससे धनात्मक बहिर्भाव प्राप्त होते है, उत्पादक को सरकार B के बराबर सब्सिडी प्रदान करती है *जिससे माग वक्र D ऊपर को सरक्कर D_1 हो जाता* है। इससे उत्पादित की गई वस्तु की मात्रा OQ से बढ कर OQ_1 हो जाती है जो सामाजिक इष्टतम स्तर है। इस प्रकार सामाजिक एव निजी लागतो और लाभो मे समानता लाने के लिए कर और सब्सिडी सबसे प्रभावशाली उपाय है।
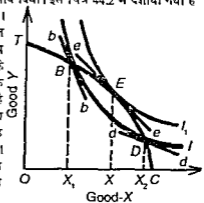
चित्र 44.2

(3) **सार्वजनिक वस्तुए** (Public goods)—यदि एक सार्वजनिक वस्तु के सभावित उपभोक्ताओं की सख्या अत्यधिक हो तो उसे किसी जन प्राधिकारी (public authority) की सहायता से ही उपभोक्ताओ मे बाटा जा सकता है। क्योंकि सार्वजनिक वस्तुओं के लाभ अविभाज्य होते है, इसलिए *सरकार को चाहिए कि वह ऐसे तरीके अपनाए जिनसे* सार्वजनिक वस्तुओं की लागते जनता मे बाटी जा सके ताकि प्रत्येक व्यक्ति उनका उपभोग करके पहले से अच्छी स्थिति मे हो। इसके अतिरिक्त, यदि एक सार्वजनिक वस्तु से सभावित लाभ उसकी लागतो से अधिक हो, जिनमे सरकार द्वारा अपनी क्रिया के क्षेत्र के विस्तार से आरोपित (imputed) लागते भी शामिल हो तो लोक क्रिया (public activity) के क्षेत्र मे यह वृद्धि आर्थिक कल्याण के आधार पर पूर्णरूप से न्यायसगत है।

(4) **एकीकरण** (Unitisation)—एक अन्य उपाय उत्पादन मे बहिर्भावों का आतरिक्करण है। एक ही क्षेत्र मे जब तेल उत्पादन मे फर्मे लगाई जाती है तो उनसे अत्यधिक बरमाकरण (drilling) और पम्पिग होते है, जिनसे उत्पादन अमितव्ययिताएँ होती हैं। फर्मों के विलयन

(merger) से उत्पादन की अमितव्ययिताओं के बिना तेल बडी कुशलता के साथ उत्पादित किया जा सकता है।

(5) सम्पत्ति अधिकार (Property rights)—प्रो रोनल्ड कोस (Ronald Coase) ने यह व्यक्त किया है कि बहिर्भावो का मुख्य स्रोत सम्पत्ति अधिकारों का असगत आवटन (inappropriate assignment) है। उसके अनुसार यदि सम्पत्ति अधिकार स्पष्टतया परिभाषित किए जाते है तो प्रभावित व्यक्ति बहिर्भाव को आन्तरिककृत करने के लिए नीतिया अपनाएगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि सम्पत्ति अधिकार विक्रेय (marketable) हों ताकि निजी सौदेबाजी की जा सके। उसके अनुसार मार्किट तत्र परेटो इष्टतम की ओर ले जा सकता है।

4 पीगू की आदर्श उत्पाद धारणा (Pigou's Concept of Ideal Output)

पीगू की आदर्श उत्पाद की धारणा आर्थिक प्रणाली के इष्टतम कल्याण से सबध रखती है। पीगू ने राष्ट्रीय लाभाश को कल्याण का सूचक माना है। पीगू के अनुसार, जब सभी ससाधनो के सीमान्त सामाजिक उत्पाद का मूल्य सभी सभव प्रयोगो मे समान हो, तो राष्ट्रीय लाभाश अधिकतम हो जाता है। जहाँ पूर्ण प्रतियोगिता होती है, वहाँ इष्टतम या आदर्श उत्पाद की स्थिति अपने आप आ जाती है। पर, यदि अन्य प्रयोगो की अपेक्षा किसी भी एक प्रयोग मे ससाधनो के सामाजिक सीमान्त उत्पाद का मूल्य कम हो तो सामाजिक नियत्रण अथवा करो अथवा सब्सिडी द्वारा ससाधनो को उत्पाद के अधिक लाभप्रद प्रकारो मे स्थानान्तरित कर आदर्श उत्पाद की स्थिति उपलब्ध की जाती है।

प्रो बोमोल (Baumol)[5] ने पीगू की आदर्श उत्पाद विषयक धारणा की नई व्याख्या की है और परेटो के समस्त सतुलन से उसका सबध जोडा है। उसकी परिभाषा के अनुसार आदर्श उत्पाद वह उत्पादन है जिस पर कि अर्थव्यवस्था के ससाधनो का विविध प्रयोगो मे ऐसा पुनर्विभाजन नहीं हो सकता जो समाज को पहले की अपेक्षा बेहतर स्थिति मे पहुँचा दे। आदर्श उत्पाद की यह परिभाषा उस परेटियन स्थिति से मिलती-जुलती है जिसके अनुसार कल्याण तब अधिकतम होता है जब किसी भी आर्थिक पुनर्सगठन द्वारा कम-से-कम एक व्यक्ति की स्थिति को, दूसरो की स्थिति मे परिवर्तन किए बिना, पहले से बेहतर बना दिया जाए।

बोमोल ने कल्याण अर्थशास्त्र के आधुनिक विश्लेषणात्मक औजारो की शब्दावली मे आदर्श उत्पाद की समस्या का विवेचन किया है। उसका विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित है—(1) बाजार मे तैयार वस्तुओं की माग मे पूर्ण प्रतियोगिता होती है। (2) सभी वस्तुओं का समाज मे अनुपम रूप से वितरण होता है। (3) समाज मे रुचियाँ एव प्रौद्योगिकी अपरिवर्तित रहती है। (4) समाज का प्रत्येक सदस्य हर वस्तु की अधिक मात्रा को प्राथमिकता देता है न कि कम को। (5) ससाधनो के नियोजन का स्तर दिया हुआ है। (6) उपभोग एव उत्पादन मे कोई बाह्य प्रभाव नहीं होते। (7) समुदाय के उदासीनता वक्र एक दूसरे को नहीं काटते। (8) अर्थव्यवस्था मे केवल दो ही वस्तुओ, X तथा Y, का उत्पादन होता है।

इन मान्यताओ के दिए हुए होने पर, बोमोल ने आरेखीय रूप से सिद्ध किया है कि समाज किस प्रकार आदर्श उत्पाद की स्थिति पर पहुँचता है। चित्र 44.3 पर ध्यान दीजिए। इसमे वस्तु X का उत्पादन क्षैतिज अक्ष पर तथा वस्तु Y का उत्पादन अनुलम्ब अक्ष पर मापा गया हे। I, I_1 तथा I_2 समुदाय उदासीनता वक्र है जो इन वस्तुओ के समाज को उपलब्ध होने वाले विविध सयोगो को प्रदर्शित करते है। किसी भी बिन्दु पर उदासीनता वक्र वस्तुओं का ढलान इन दो X तथा Y के बीच स्थानापन्नता की दर को (MRS_{xy}) प्रकट करता है। TC रूपान्तरण वक्र है जो दिए हुए ससाधनो

5 W J Baumol, *Welfare Economics and Theory of the State*, 2nd Ed, 1965

तथा प्रोद्योगिकी से सभव विविध उत्पादन सयोगो को प्रकट करता है। किसी भी बिन्दु पर रूपान्तरण वक्र की ढलान वस्तु Y की सामाजिक सीमान्त लागत से वस्तु X की सामाजिक सीमान्त लागत (SMC) के अनुपात को मापती है। रूपान्तरण वक्र की ढलान, हमारे द्वारा लिए गए उदाहरण मे, दो वस्तुओं X तथा Y के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर है। इस प्रकार MRT_{xy} MSC_x/MSC_y कीमत रेखा PL है जिसकी ढलान P_x/P_y को प्रकट करती है।

बिन्दु E पर समाज आदर्श उत्पाद की स्थिति उपलब्ध कर लेता है, जहाँ पर कि रूपान्तरण वक्र TC उच्चतम सभव समुदाय उदामीनता वक्र I_1 को स्पर्श करता है। इस इष्टतम स्तर पर समाज वस्तु X का OX_1 तथा वस्तु Y का OY_1 उत्पादन एव उपभोग करता है। यदि TC वक्र पर बिन्दु E से परे कोई भी गति होगी, तो समुदाय अपेक्षाकृत अधिक नीचे उदामीनता वक्र पर, जैसे कि I वक्र पर, और कल्याण के अपेक्षाकृत नीचे स्तर पर आ जाएगा।

यह सिद्ध किया जा सकता है कि यह आदर्श उत्पाद वास्तव मे प्रयोगितामूलक उत्पादन है। क्योंकि मान्यता यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता हे और बाह्य प्रभावों का अभाव है, इसलिए सारे बाजार मे दोनो वस्तुओं की कीमते एकसार रहती है। इस प्रकार माँग पक्ष की ओर से, बिन्दु E पर सन्तुलन स्थापित हो जाता है जहा कि कीमत रेखा PL तटस्थता वक्र I_1 को स्पर्श करती है। इस प्रकार बिन्दु E पर

$$MRS_{xy} = P_x / P_y \qquad (1)$$

पूर्ति पक्ष की ओर से, प्रतियोगितामूलक सन्तुलन के लिए इस बात की जरूरत है कि कीमत रेखा की ढलान निश्चय से रूपान्तरण वक्र की ढलान के बराबर हो, अर्थात्

$$P_x / P_y = MRT_{xy} \qquad (2)$$

पूर्ण बाजार मे MRT_{xy} सीमान्त निजी लागत Y की (MC_y) से X की सीमान्त निजी लागत (MC_x) के अनुपात के बराबर है। क्योंकि मान्यता यह है कि उत्पादन मे बाह्य प्रभाव नहीं हे, इसलिए उत्पादन की सीमान्त निजी लागत उत्पादन की सीमान्त सामाजिक लागत के बराबर है। इस प्रकार रूपान्तरण वक्र का ढलान बताता है कि

$$MRT_{xy} = MC_x / MC_y = MSC_x / MSC_y$$

(1) तथा (2) से निष्कर्ष निकलता है कि प्रतियोगितामूलक उत्पादन उस स्थान पर निर्धारित होता है जहाँ कीमत रेखा तथा तटस्थता वक्र परस्पर स्पर्शज्या हो अर्थात् $MRT_{xy} = P_x/P_y = MRS_{xy}$ यह स्थान चित्र 44.3 मे बिन्दु E है। वास्तव मे यह प्रतियोगितामूलक सतुलन ही परेटियन समस्त संतुलन अथवा परेटियन इष्टतमता है। परन्तु आदर्श उत्पाद उस स्थान पर निर्धारित होता है जहा रूपान्तरण वक्र अनधिमान वक्र का स्पर्श करता है। परन्तु बाह्य प्रभावो के अभाव मे ही ऐसा होता है कि प्रतियोगितामूलक उत्पादन तथा आदर्श उत्पाद की स्थिति एक ही हो, जिसे चित्र 44.3 मे E से दिखाया गया है।

चित्र 44.3

पर यदि वस्तु X का उत्पादन करने वाले उद्योग मे बाह्य प्रभाव विद्यमान होंगे तो इसकी सीमान्त सामाजिक लागत इसकी सीमान्त निजी लागत से भिन्न (diverge) हो जाएगी। इस प्रकार इस उद्योग मे सीमान्त सामाजिक लागत तथा वस्तु Y का उत्पादन करने वाले उद्योग मे सामाजिक सीमान्त लागत के बीच अनुपात उनकी कीमतो मे अनुपात के बराबर नहीं होगा। दूसरे शब्दो मे, रूपान्तरण
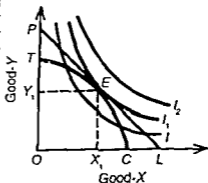
वक्र तथा कीमत रेखा परस्पर स्पर्शज्या (tangent) नहीं होंगे।

पहले उस स्थिति पर विचार कीजिए जहाँ वस्तु X के उत्पादन में बाह्य मितव्ययिताएँ पाई जाती हैं। उत्पादन में सतुलन के लिए आवश्यक कीमत-रेखा चित्र 44.4 में bb रेखा से दिखाई गई है। इस रेखा का ढलान रूपान्तरण वक्र TC के ढलान से अधिक है जिसका मतलब है कि सीमान्त निजी लागत, सीमान्त सामाजिक लागत से अधिक है। अब इस बात पर ध्यान दीजिए कि वस्तु X के उत्पादन में बाह्य अलाभ विद्यमान हैं। कीमत रेखा को dd रेखा द्वारा दिखाया गया है जिसकी ढलान रूपान्तरण वक्र की ढलान से कम है। यहाँ सीमान्त निजी लागत की अपेक्षा सीमान्त सामाजिक लागत अधिक है।

बाह्य प्रभावों के अभाव में बिंदु E आदर्श उत्पाद का बिन्दु है जहाँ उदासीनता वक्र I_1 तथा रूपान्तरण वक्र TC एक दूसरे को स्पर्श करते हैं। यही प्रतियोगितामूलक उत्पादन की भी स्थिति है, क्योंकि ec, कीमत रेखा उदासीनता वक्र I_1 तथा रूपान्तरण वक्र (TC) परस्पर स्पर्श करते हैं। यदि उत्पादन की बाह्य मितव्ययिताओं की स्थितियों में वस्तु X का उत्पादन किया जाता है, तो सतुलन बिन्दु B होगा जो E के बाईं ओर स्थित है। यहाँ कीमत रेखा bb उदासीनता वक्र I के बिन्दु B पर स्पर्शज्या है जहाँ वस्तु X का उत्पादन OX_1' है जो उसके आदर्श उत्पाद OX के मुकाबले बहुत कम है। यदि बाह्य अलाभों की स्थितियों में वस्तु X का उत्पादन किया जाएगा तो सतुलन का बिन्दु D होगा जो E के दाईं ओर है। यहाँ कीमत रेखा dd उदासीनता वक्र I को बिन्दु D पर स्पर्श करती है जहाँ वस्तु X का उत्पादन OX_2' है जो उसके आदर्श उत्पाद OX के मुकाबले बहुत अधिक है। बिन्दु B तथा D आदर्श उत्पाद नहीं हो सकते क्योंकि वे अपेक्षाकृत नीचे उदासीनता वक्र पर स्थित है जबकि बिन्दु E अपेक्षाकृत ऊँचे अधिमान वक्र I_1 पर स्थित है।
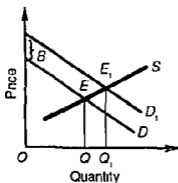
चित्र 44.4

पीगू की भांति बोमोल का सुझाव है कि करों तथा सब्सिडी की प्रणाली द्वारा बाह्य प्रभाव ठीक किए जा सकते हैं और आदर्श उत्पाद उपलब्ध किया जा सकता है। यदि वस्तु X का उत्पादन आदर्श उत्पाद से अधिक हो, जैसा कि बिन्दु D पर है, तो उत्पादन की प्रत्येक इकाई पर भारी कर लगाकर उत्पादन घटाया जा सकता है। इसके विपरीत यदि वस्तु X का उत्पादन आदर्श उत्पाद से कम है जैसा कि बिन्दु B पर है, तो उत्पादन की प्रत्येक इकाई पर सब्सिडी देकर उसका उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। आदर्श उत्पाद की स्थिति तभी उपलब्ध हो सकती है जब कर के रूप में इकट्ठी की गई राशि सरकार द्वारा सब्सिडी के रूप में दी गई राशि के बराबर हो।

प्रश्न

1 सीमान्त सामाजिक लागतों तथा लाभों का सीमान्त निजी लागतों तथा लाभों से विचलन के कारण बताइए। इस विचलन को कैसे दूर किया जा सकता है?

2 पीगू की कल्याण की दशाओं की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

3 बहिर्भाव (externalities) क्या हैं? वे सामाजिक और निजी लाभों और लागतों में विचलन (deviation) कैसे लाते हैं? उन्हें दूर करने के उपाय सुझाइए।

4 आदर्श उत्पाद की धारणा पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

अध्याय 45

नया कल्याण अर्थशास्त्र
(NEW WELFARE ECONOMICS)

इस अध्याय में परेटो के कल्याण सिद्धांत की विवेचना की जानी है जोकि कल्याणकारी अर्थशास्त्र का आधार है। इसके पश्चात क्षतिपूर्ति सिद्धान्त, समाज कल्याण फलन, ऐरो के असंभवता प्रमेय तथा कल्याण अर्थशास्त्र के राजनैतिक पहलू का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाएगा।

1. परेटियन इष्टतम
(THE PARETIAN OPTIMUM)

परेटो पहला अर्थशास्त्री था जिसने समाज कल्याण अधिकतम के वस्तुगत परीक्षण (Objective test) का पता लगाया। परेटियन मापदण्ड (Paretian Criterion) यह बताता है कि हम उस समय यह कहते है कि कल्याण बढ़ (या घट) गया है, जब दूसरों की स्थिति में परिवर्तन किए बिना कम से कम एक व्यक्ति को पहले से अच्छी (या बुरी) स्थिति में ले आया जाए।[1] परेटो के शब्दों में "हम यह परिभाषा दे सकते हैं कि अधिकतम संतुष्टि (कल्याण) की स्थिति वह है जहाँ किसी भी प्रकार का थोड़ा परिवर्तन करना असम्भव हो, इसलिए कि सब व्यक्तियों की संतुष्टियाँ, जो स्थिर रहती हैं, उनको छोड़ कर या तो सब बढ़ जाएँ या सब घट जाएँ।" वितरण के कुछ नियमों के दिए होने पर, ऐसे किसी भी आर्थिक पुनर्संगठन को समाज कल्याण बढ़ाने वाला माना जाता है जिससे कुछ व्यक्तियों के कल्याण में वृद्धि हो जाए और दूसरों के कल्याण में कमी न होने पाए। उदासीनता वक्र विश्लेषण की शब्दावली में, इष्टतम स्थिति वह होती है जिसमें यह संभव न हो कि एक व्यक्ति को अपेक्षाकृत ऊँचे उदासीनता वक्र पर लाया जाए, बिना किसी दूसरे व्यक्ति को अपेक्षाकृत नीचे उदासीनता वक्र पर लाए। क्रम-संख्यात्मक उपयोगिता (ordinal utility) की शब्दावली में कल्याणकारी स्थिति की परिभाषा देकर, परेटो ने उपयोगिता के गणन संख्यात्मक (cardinal) माप की धारणा को रद्द कर दिया और ऐसा करके उसने उपयोगिता की अन्तःवैयक्तिक तुलना (interpersonal comparison) की जरूरत को समाप्त कर दिया। हम सैम्यूल्सन के उपयोगिता संभावना वक्र (utility possibility curve) या सीमा (frontier) की सहायता से परेटो के सिद्धांत की व्याख्या करते हैं।

मान लीजिए कि A और B दो व्यक्ति हैं जो वस्तु X के एक दिए हुए बंडल का सम्मिलित रूप से प्रयोग करते हैं। चित्र 45.1 में क्षैतिज अक्ष पर A की उपयोगिता और अनुलम्ब अक्ष पर B की उपयोगिता को दिखाया गया है। इस प्रकार BA वक्र व्यक्तिगत उपयोगिताओं के सब संयोगों का उपयोगिता संभावना वक्र है। परेटो का सिद्धांत बताता है कि कोई परिवर्तन जो उत्पादन संभावना वक्र BA पर C से F बिन्दु पर गति लाता है वह सुधार है, क्योंकि वह दोनों व्यक्तियों की स्थिति

1 Welfare is said to increase (or decrease) if at least one person is made better off (or worse off) with no change in the positions of others
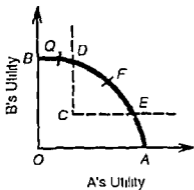
चित्र 45.1

सुधारता है जिससे उनका कल्याण अधिकतम होता है। इसी प्रकार, बिन्दु C से BA वक्र के D, या E तक गति लाने वाला कोई परिवर्तन सुधार होगा, क्योंकि इससे कम से कम एक व्यक्ति की स्थिति पहले से अच्छी और दूसरे की स्थिति पहले से बुरी नहीं होगी। परन्तु बिन्दु C से खण्ड DE के बाहर की गति परेटो उन्नति नहीं होगी। उदाहरण के लिए, C बिन्दु से Q बिन्दु तक गति होने पर B का कल्याण बढ़ेगा, परन्तु A के कल्याण को घटाकर।*

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)—परेटो का सिद्धांत, जैसाकि डॉ ग्राफ ने बताया है, कोई अन्त वैयक्तिक तुलनाएँ नहीं करता। वह एक बहुत विशाल नैतिक निश्चित मत पर आधारित है कि "हमें सबके प्रति नेकी करनी चाहिए।" परन्तु इसकी भी अपनी कमियाँ है।

(1) अनन्त संख्या में परेटो इष्टतम हो सकते हैं (There can be an infinite number of Paretian optima)—इनमे से प्रत्येक का कल्याण-स्तर विभिन्न हो सकता है जैसाकि स्वय परेटो ने सकेत किया है, "अनन्त बिन्दु हो सकते है जिन पर व्यक्तिगत कल्याणो के अधिकतमो की प्राप्ति हो सकती है।" यह मापदण्ड इस बात की व्याख्या नहीं करता कि यह कैसे निर्धारित हो सकता है कि एक इष्टतम स्थिति की अपेक्षा दूसरी इष्टतम स्थिति अच्छी है या बुरी। प्रोफेसर बोल्डिग ने परेटो मापदण्ड की यह उपमा दी है कि वह ऐसा पर्वत है जिसके कई शिखर है और यदि 'ऊँचाई' कल्याण को प्रकट करे, तो प्रत्येक शिखर एक इष्टतम स्थिति को व्यक्त करेगा। यदि हमे सबसे ऊँचे शिखर का चुनाव करना हो, तो उसमे अन्त वैयक्तिक तुलनाएँ विद्यमान रहेंगी। "यदि इस सभावना को अस्वीकार कर दिया जाए, तो एक एकल (single) शिखर का पता लगाने का कोई तरीका नहीं रह जाता, उस अवस्था मे अधिक से अधिक इतना किया जा सकता है कि उस शिखर के आर-पार जगला लगा दिया जाय और यह कह दिया जाए कि वह अनिश्चितता की उस धुन्ध मे जगले पर कहीं स्थित है, जो पर्वत को ढाँपे हुए है।[2] इसलिए कल्याण के इष्टतम बिन्दुओ में से श्रेष्ठतम का पता लगाना सभव नहीं। इस प्रकार, डॉ. लिट्ल के अनुसार, परेटो के इष्टतम अपेक्षाकृत महत्त्वहीन है।

(2) परेटो का मापदण्ड मूल्य निर्णयो से मुक्त नहीं है (The Paretian criterion is not free from value judgements)—यह कहना अपने आप मे एक मूल्य निर्णय है कि किसी अन्य व्यक्ति के पहले से बुरी स्थिति मे ले जाए बिना हर व्यक्ति को पहले से अच्छी स्थिति मे नहीं लाया जा सकता। यद्यपि परेटो ने उपयोगिता की क्रम सख्यात्मक माप विधि का प्रयोग किया था, फिर भी, वह एक मूल्य-मुक्त सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं कर सका।

(3) परेटो कल्याण मे स्पष्ट परिवर्तनो का ही मूल्याकन करता है (Pareto evaluates only unambiguous changes in welfare)—परेटो ने अन्त वैयक्तिक तुलनाओ से बचने का प्रयत्न करते

* इस और आगे के अध्यायों में चित्रों को समझने के लिए विद्यार्थी विभिन्न बिन्दुओं से X अक्ष और Y अक्ष पर रेखाए खींचे, परन्तु वे परीक्षा में ऐसा न करें। उदाहरणार्थ, जब दोनों उपभोक्ता C से F पर जाते है तो दोनो की उपयोगिता बढ़ती है। D पर B की उपयोगिता बढ़ेगी और A की पहले जितनी रहेगी। इसके विपरीत, E पर B की उपयोगिता में कोई परिवर्तन नहीं होगा परन्तु A की उपयोगिता में वृद्धि होगी। बिन्दु Q पर, B की उपयोगिता बढ़ेगी और A की उपयोगिता कम होगी इसलिए यह परेटो इष्टतम नहीं होगा।

2 K. E Boulding, "Welfare Economics" in *A Survey of Contemporary Economics* (Vol II,) (Ed) B F Haley

हुए कल्याण में होने वाले केवल "असन्दिग्ध" (स्पष्ट) परिवर्तनों का ही मूल्यांकन किया है। इस प्रकार परेटो का कल्याण मापदण्ड आर्थिक-नीति-विषयक सिफारिशें करने के लिए किसी काम का नहीं। उदाहरण के लिए, चित्र 45.1 में C से DE खण्ड के किसी भी बिन्दु पर गति हमेशा कल्याण में 'असन्दिग्ध' वृद्धि नहीं होती। उपयोगिता सम्भावना वक्र BA पर DE के बाहर भी अन्य इष्टतम कल्याण स्थितियाँ हो सकती हैं। बोल्डिंग के अनुसार, समाज कल्याण में दो प्रकार के परिवर्तन होते हैं (i) एक तो वे जिनके द्वारा व्यापार के माध्यम से सब या कम से कम एक व्यक्ति को लाभ होता है तथा (ii) दूसरे वे जिनके द्वारा स्पर्धा के माध्यम से एक व्यक्ति की लागत पर दूसरे को लाभ होता है। परेटो का सिद्धान्त व्यापार के माध्यम से प्राप्त होने वाले कल्याण इष्टतम से सम्बन्ध रखता है जिससे अन्य व्यक्ति को पहले से बुरी स्थिति में लाए बिना सब या एक व्यक्ति पहले से अच्छी स्थिति में आ जाता है। परन्तु यह मत अवास्तविक है क्योंकि सब आर्थिक नीतियाँ एक प्रकार से कुछ व्यक्तियों को लाभ और दूसरों को हानि पहुँचाती है। इस प्रकार, परेटो के मापदण्ड में विश्वव्यापी सत्यता का अभाव है और वह कल्याणकारी अर्थशास्त्र को बेकार तथा निर्जीव बना देता है।

निष्कर्ष (Conclusion)—पर उतनी ही महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बैरोन (Barone) ने परेटो के मापदण्ड को वास्तविक बनाने के प्रयत्न में क्षतिपूरक भुगतान के विचार का समावेश किया। उसके अनुसार, ऐसा परिवर्तन जो एक व्यक्ति की स्थिति पहले से अच्छी और दूसरे की स्थिति पहले से बुरी बनाता है, आर्थिक कल्याण तक ले जा सकता है, जब लाभ प्राप्त करने वाला हानि प्राप्त करने वाले की क्षतिपूर्ति कर देता है ताकि प्रत्येक अपनी मूल कल्याण स्थिति पर आ जाए। परन्तु न तो बैरोन ने और न ही उसके बाद कॉलडर तथा हिक्स ने वास्तविक भुगतान का आग्रह किया। सिटोवस्की ने अवश्य यह सुझाव दिया कि क्षतिपूरक भुगतान वास्तव में किया जाए। परन्तु इन सब प्रयत्नों से कल्याणकारी अर्थशास्त्रियों को विशुद्ध धनात्मक आधार पर परेटो के विपरीत आर्थिक नीति परिवर्तनों के मूल्यांकन में कोई सहायता नहीं मिली।

2. क्षतिपूर्ति मापदण्ड
(THE COMPENSATION CRITERIA)

हिक्स, कॉलडर तथा सिटोवस्की ने क्षतिपूर्ति मापदण्डों की प्रस्थापना की है। इन्हें नया कल्याण अर्थशास्त्र भी कहते हैं। परेटो के उपयोगिता के क्रम-सख्यात्मक माप तथा इस बात को, कि उसकी अन्त: वैयक्तिक तुलनाएँ असभव है, स्वीकार करते हुए उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया कि मूल्य निर्णय किए बिना भी कल्याण में वृद्धि की जा सकती है।

मान्यताएँ (Assumptions)—विभिन्न क्षतिपूर्ति मापदण्ड निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

(i) प्रत्येक व्यक्ति की सतुष्टियाँ दूसरों से स्वतन्त्र होती है जिससे वह अपने कल्याण का सबसे अच्छा निर्णायक स्वय है।

(ii) उत्पादन तथा उपभोग में बाहरी प्रभावों का अभाव रहता है।

(iii) प्रत्येक व्यक्ति की रुचियाँ स्थिर है।

(iv) उत्पादन और विनिमय की समस्याओं को वितरण की समस्या से अलग किया जा सकता है।

(v) यह मान लिया जाता है कि उपयोगिता की माप क्रम-सख्यात्मक (ordinal) होती है और अन्त: वैयक्तिक तुलनाएँ असभव हैं।

कॉलडर-हिक्स मापदण्ड (Kaldor-Hicks Criterion)—इन मापदण्डों में पहला कॉलडर-हिक्स का मापदण्ड कहलाता है। कॉलडर के अनुसार, समाज कल्याण में वृद्धि का परीक्षण यह है कि यदि

कुछ व्यक्ति पहले से अच्छी और दूसरे पहले से बुरी स्थिति में आ जाते हैं, तो परिवर्तन से लाभ प्राप्त करने वाले हानि प्राप्त करने वालों की अपेक्षाकृत अधिक क्षतिपूर्ति कर सकते हैं और फिर भी स्वय पहले से अच्छी स्थिति में हो सकते हैं। क्षतिपूर्ति के वास्तविक भुगतान को राजनैतिक या नैतिक निर्णय समझा गया है। कॉलडर के शब्दों में "सब स्थितियों में जहाँ एक निश्चित आर्थिक नीति भौतिक उत्पादकता मे, और इस प्रकार कुल राष्ट्रीय आय की, वृद्धि लाती है यह संभव है कि किसी को भी पहले से बुरी स्थिति में ले जाए बिना पहले से अच्छी स्थिति में लाया जा सकता है या कुछ भी हो, कुछ व्यक्तियों को तो पहले से अच्छी स्थिति में तो लाया ही जा सकता है , इतना ही पर्याप्त है कि यह प्रकट कर दिया जाए कि परिणामस्वरूप जिन्हें हानि होती है, यदि उनकी पूर्ण रूप से क्षतिपूर्ति कर दी जाए तो फिर भी बाकी समुदाय पहले से अच्छी स्थिति में होगा।" हिक्स ने इसी सिद्धान्त को थोड़े भिन्न रूप में यो प्रस्तुत किया है "यदि परिवर्तन से A की स्थिति पहले से इतनी अच्छी हो जाए कि B की हानि के लिए उसकी क्षतिपूर्ति भी कर सके और फिर भी उसके पास कुछ बच जाए, तो पुनर्संगठन निश्चित तौर से सुधार है।"

इस प्रकार, कॉलडर-हिक्स मापदण्ड का तात्पर्य है कि यदि एक आर्थिक परिवर्तन से अपेक्षाकृत अधिक वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है तो उनका ऐसे ढंग से वितरण किया जा सकता है कि कुछ व्यक्तियों की स्थिति पहले से अच्छी हो जाए और किसी की भी स्थिति पहले से बुरी न हो। राजनैतिक या नैतिक विषय होने के कारण, वास्तविक पुनर्वितरण का होना ज़रूरी नहीं। इतना ही काफी है कि पुनर्संगठन ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न कर देता है कि पुनर्वितरण किया जा सकता है।

दो व्यक्तियों के लिए सैम्यूल्सन के उपयोगिता संभावना वक्र की सहायता से इस मापदण्ड की व्याख्या की जा सकती है। यदि A और B दो व्यक्ति हों, तो प्रत्येक संभावना वक्र उनके उपयोगिता स्तरों के सब सयोगों के बिन्दु पथ को प्रकट करेगा। प्रत्येक वक्र वस्तुओं के दिए हुए निश्चित बंडल से संबंध रखता है और प्रत्येक वक्र पर विभिन्न बिन्दु, निश्चित वस्तु बंडल के लागत रहित इकमुश्त (cost-less lumpsum) पुनर्वितरण से प्राप्त होते हैं।

मान लीजिए कि क्रमश B_1A_1 तथा B_2A_2 उपयोगिता संभावना वक्रों द्वारा प्रकट किए वस्तुओं के X तथा Y दो बंडल हैं जैसाकि चित्र 45.2 में दिखाया गया है। Q_2 द्वारा व्यक्त वस्तुओं के दिए हुए बंडल से प्रारम्भ करके, परेटो मापदण्ड की भाषा में ऐसा कोई भी परिवर्तन, जिससे C, D या E किसी भी बिन्दु पर गति हो जाए, परेटो उन्नति है। परन्तु Q_2 से Q_1 पर गति परेटो मापदण्ड से नहीं आँकी जा सकती क्योंकि उससे B की लागत पर A के कल्याण में उन्नति होती है। परन्तु Q_2 से Q_1 पर गति को कॉलडर-हिक्स मापदण्ड के अनुसार आँका जा सकता है। ऐसा करने के लिए, (i) B को पूछा जाए कि वह इसको रोकने के लिए कितना भुगतान करने को तैयार होगा, और (ii) A से पूछा जाए कि वह उसको छोड़ने के लिए कितना भुगतान करने को तैयार होगा। यदि (ii)> (i), तो परिवर्तन कल्याण में वृद्धि करता है क्योंकि A संभवता से B की हानि की क्षतिपूर्ति भी कर देगा और फिर भी Q_2 की अपेक्षा Q_1 पर पहले से अच्छी स्थिति में होगा। कॉलडर-हिक्स मापदण्ड के अनुसार, कल्याण में सुधार आँकने का सरल तरीका यह है कि प्रारंभिक बंडल नए बंडल को प्रकट करने वाले उपयोगिता संभावना वक्र से नीचे स्थित होना चाहिए। इस प्रकार Q_2 से Q_1 पर गति कॉलडर-हिक्स मापदण्ड को संतुष्ट करती है क्योंकि Q_2 उपयोगिता संभावना वक्र B_1A_1 के आखिरी बंडल Q_1 से नीचे स्थित है। इसे भिन्न शब्दों में यों प्रकट कर सकते हैं कि यह अनुमान किया जा सकता है कि Q_1 पर गति करने से उसी उपयोगिता संभावना वक्र B_1A_1 पर D बिन्दु बनता है जोकि स्पष्ट रूप में Q_2 से श्रेष्ठ है। क्षतिपूर्ति के बाद हम D से Q_1 पर आ सकते हैं।

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)—बामोल, सैम्यूल्सन, लिट्ल तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने इस क्षतिपूर्ति मापदण्ड की आलोचनाएं की हैं।

चित्र 45.2

(1) स्किटोवस्की मापदण्ड (Scitovsky Criterion)—प्रोफेसर स्किटोवस्की ने अपने एक पूर्ववर्ती लेख[3] में बताया है कि कॉलडर-हिक्स मापदण्ड से अन्तर्विरोध (contradiction) पैदा होता है। यदि एक परिवर्तन कॉलडर-हिक्स टैस्ट मे पूरा उतर जाए परन्तु क्षतिपूर्ति का वास्तविक भुगतान न किया जाए, तो उसका परिणाम यह हो सकता है कि परिवर्तन से पहले और बाद में आय का भिन्न ढंग से पुनर्वितरण हो। इसलिए कॉलडर-हिक्स मापदण्ड के अनुसार विपरीत गति (reverse movement) का प्राप्त होना सभव है। ऐसी अवस्था मे प्रत्येक स्थिति दूसरे से अच्छी होगी। कॉलडर-हिक्स मापदण्ड मे यह एक अन्तर्विरोध है जिसे स्किटोवस्की विरोधाभास (Scitovsky Paradox) कहते है। इसे चित्र 45.2 की सहायता से समझा जा सकता है। यदि A और B, ये दोनों व्यक्ति Q_2 पर हो, तो Q_1, जोकि A के लिए पहले से अच्छी और B के लिए पहले से बुरी स्थिति है, सुधार होगी, क्योंकि पुनर्वितरण के द्वारा Q_1 से दोनों उसी उपयोगिता सभावना वक्र के D पर जा सकते है और यह पुनर्वितरण Q_1 से अच्छा है। इसी प्रकार, यह तर्क दिया जा सकता है Q_1 से Q_2 की स्थिति अच्छी है क्योंकि पुनर्वितरण B_2A_2 उपयोगिता सभावना वक्र के बिन्दु F पर ले जा सकता है और यह स्थिति A और B दोनो के लिए पहले से अच्छी है। इस प्रकार Q_1 और Q_2 ये दोनो स्थितियाँ एक-दूसरी से अच्छी ठहरती है जोकि एक अन्तर्विरोध है। इसे स्किटोवस्की का प्रतिकूलता टैस्ट (reversal test) कहते है। स्किटोवस्की इस अन्तर्विरोध को ये सुझाव देकर दूर करता है कि एक परिवर्तन से कल्याण मे वृद्धि उस समय मानी जाती है जब (i) कॉलडर-हिक्स मापदण्ड सतुष्ट हो जाए अर्थात् लाभ प्राप्त करने वाले हानि प्राप्त करने वालो की क्षतिपूर्ति कर सके और (ii) हानि प्राप्त करने वाले इतनी क्षमता न रखते हो कि वे लाभ प्राप्त करने वालो को उस परिवर्तन के अस्वीकार करने के लिए घूस दे सके। इस प्रकार, स्किटोवस्की के दोहरे मापदण्ड के अनुसार कॉलडर-हिक्स टैस्ट की सतुष्टि और प्रतिकूलता टैस्ट की असतुष्टि जरूरी है। इसलिए Q_2 से C पर गति उन्नति है क्योंकि A और B दोनो आगे D पर जा सकते है, जहाँ उनकी स्थिति पहले से अच्छी है, परन्तु C से Q_1 पर गति उन्नति नहीं होगी।
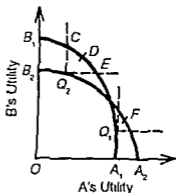
(2) **केवल परिभाषा है, टैस्ट नहीं** (Only a definition, not a test)—डॉ लिट्टल के अनुसार, कॉलडर-हिक्स क्षतिपूर्ति सिद्धान्त कल्याण मे वृद्धि का "टैस्ट" नहीं बल्कि उसकी परिभाषा मात्र है क्योंकि वह आय वितरण की उपेक्षा करता है। वास्तव मे, जहाँ उत्पादकीय दक्षता की समस्या शामिल हो, वहाँ वितरण की समस्या को छोड़ा नहीं जा सकता। आय वितरण का निर्देश किए बिना यह कहना व्यर्थ है कि "वस्तुओ का एक बडल" दूसरे से बडा है क्योंकि वस्तुओ के दो बडलो की किसी भी तुलना मे उनकी मार्किट कीमतो पर उनके मुद्रा मूल्य शामिल रहते है।

(3) **वितरणात्मक पक्ष की उपेक्षा** (Neglects distributional aspect)—वितरण को उत्पादन से अलग करने के प्रयत्न मे, इस सिद्धान्त ने सभावित कल्याण तथा वास्तविक कल्याण को गडबडा दिया है। यह केवल ऐसे सभावित परिवर्तन की माप करता है, जो वस्तुओ के किसी विशेष बडल मे परिवर्तन से जुड़ा हुआ हो। वास्तविक कल्याण केवल वस्तुओ और सेवाओं के उत्पादन पर ही नहीं बल्कि उनके वितरण पर भी निर्भर करता है। क्षतिपूर्ति सिद्धान्त वितरणात्मक पक्ष की उपेक्षा करके गलती करता है। यह सभावित कल्याण की माप करता है जिससे कोई व्यावहारिक मतलब

3 "A Note on Welfare Propositions in Economics", *R E S* 1941

हल नहीं होता।

(4) **दो से अधिक वस्तुओं पर लागू नहीं** (Not applicable to more than two commodities)—प्रोफेसर बामोल का मत है कि जब दो से अधिक वस्तुओं का प्रश्न हो, तो इष्टतम उत्पादन सम्भव नहीं होता, जब तक कि भिन्न-भिन्न वस्तुओं की माप करने के लिए मूल्यों का कोई सामान्य पैमाना न हो। परन्तु ऐसा पैमाना आय-वितरण पर निर्भर करता है जिसकी यह सिद्धान्त उपेक्षा करता है। प्रोफेसर बामोल का कथन है कि ऐसी स्थिति में हमें ऐसे मापदण्ड पैमाने का प्रयोग करना पड़ता है जो "हमारे हाथों में मुड़ जाता है और खिंच कर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।"

(5) **अन्त वैयक्तिक तुलनाएं सम्मिलित** (Involves interpersonal comparisons)—कॉलडर, हिक्स और उनके अनुयायी अपने मूल्य-मुक्त (value-free) मापदण्डों को ढूँढने के प्रयत्न में असफल रहे हैं। कॉलडर-हिक्स सिद्धान्त इस धारणा पर आधारित है कि अमीर और गरीब दोनों के हाथ में "मुद्रा का सामाजिक मूल्य" समान होता है। फिर, मुद्रा का वास्तविक हस्तान्तरण नहीं होता बल्कि वह उनके पास रहती है जिनकी स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी होती है। इस प्रकार, इस सिद्धान्त में नीतिशास्त्र की एक उपयोगितावादी स्कीम पाई जाती है और इसमें उपयोगिता की अन्त वैयक्तिक तुलनाएं शामिल रहती हैं। वास्तव में, जैसा कि डॉ नाथ ने संकेत किया है, प्रोफेसर कॉलडर तथा उसके अनुयायियों के प्रयत्न तो पहले ही बेकार हो गए क्योंकि "किसी नैतिक आधार को लेकर चले बिना कोई उपाय प्राप्त नहीं हो सकते।"[4]

(6) **दीर्घकाल में वास्तविक आय वितरण प्रभाव महत्त्वहीन** (Insignificant real income distributional effects in the long run)—डॉ लिट्ल ने प्रोफेसर हिक्स की आलोचना की है कि उसने दीर्घकालीन कल्याण समायोजनों (adjustments) का सुझाव दिया है जिनके वास्तविक आय वितरण प्रभाव महत्त्वहीन होंगे। फिर, वे प्रभाव लक्ष्यहीन भी होंगे जो दीर्घकालीन में समाप्त हो जाएंगे। सिटोवस्की इस बात में डॉ लिट्ल से सहमत है कि "कुछ परिवर्तनों के जो शायद कालडर-हिक्स मापदण्ड में पूरे उतरेंगे उनके पर्याप्त वास्तविक आय वितरण प्रभाव होंगे, जिसे *यह मान लेना अधिक से अधिक एक इच्छामूलक विचार ही हो सकता है कि वे दूसरे परिवर्तनों* के प्रभावों से आपस में समाप्त हो जाएंगे।" पर हाँ, यदि समय की अवधि काफी लम्बी हो, तो वे लोग भी जिनकी स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी है, मर जाएँगे और तब यह सिद्धान्त व्यर्थ हो जाएगा।

(7) **वास्तविक क्षतिपूर्ति के भुगतान की उपेक्षा** (Ignores the payment of actual compensation)—यह सिद्धान्त वास्तविक क्षतिपूर्ति के भुगतान पर विचार नहीं करता। यह केवल सम्भावित क्षतिपूर्ति को मान्यता देता है जिसके द्वारा कल्याण में वास्तविक वृद्धि की माप नहीं हो सकती। इसलिए यह आवश्यक है कि वास्तविक भुगतान किया जाए ताकि कोई भी व्यक्ति घाटे में न रहे। परन्तु वास्तविक भुगतान में कई समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। प्रथम, एक निश्चित परिवर्तन के परिणामस्वरूप होने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लाभ या हानि का हिसाब लगाने के लिए हमें इस बात का ज्ञान होना जरूरी है कि प्रत्येक व्यक्ति का उपयोगिता पैमाना (utility scale) क्या है। पर सब के उपयोगिता पैमानों को जानना सम्भव नहीं है। दूसरे, एक निश्चित परिवर्तन से एक व्यक्ति की भावुकता पर इतनी गहरी चोट भी पड़ सकती है कि मौद्रिक पुरस्कार के द्वारा उसकी क्षतिपूर्ति करना असम्भव हो जाए। फिर, वास्तविक क्षतिपूर्ति के भुगतान में कई प्रशासकीय समस्याएँ शामिल रहती हैं, जो इस सिद्धान्त को अव्यवहार्य बना देती हैं।

(8) **राजनैतिक दृष्टि से क्षतिपूर्ति भुगतान सम्भव नहीं** (Compensation payments not possible politically)—प्रोफेसर सिटोवस्की ने कॉलडर के इस मत की भी आलोचना की है कि आय के समान वितरण को बनाए रखने के लिए राज्य पूर्णरूप से उत्तरदायी है। यदि एक समुदाय में

4 S K Nath, "Are Formal Welfare Criteria Required?", *E.J.*, 1964

आय का असमान वितरण होता है, तो राज्य क्षतिपूर्तियों की व्यवस्था के माध्यम से उसे स्वाभाविक रूप में ठीक कर देता है। दूसरी ओर, एक स्वतंत्र उद्यम अर्थव्यवस्था में, एक निश्चित आर्थिक पुनर्संगठन के दक्षता तथा साम्यता (equity) पर पड़ने वाले प्रभावों को अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि राजनैतिक दृष्टि से क्षतिपूर्ति भुगतान सम्भव नहीं होते। प्रोफेसर सिटोवस्की ने निष्कर्ष दिया है कि नया कल्याण अर्थशास्त्र कुछ समुदायों में नीति के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों का पथ-प्रदर्शन करता है, परन्तु उसमें विश्वव्यापी सत्यता नहीं है।

(9) *कल्याण के संतोषजनक मापदण्ड नहीं (Not satisfactory criteria of welfare)*—डॉ लिट्ल काल्डर-हिक्स मापदण्ड तथा सिटोवस्की मापदण्ड को कल्याण के संतोषजनक मापदण्ड नहीं मानता। यह कल्याण में संभावित परिवर्तन की बजाय वास्तविक परिवर्तन के पक्ष में है और अपने मापदण्ड को इन शब्दों में प्रस्तुत करता है, "एक परिवर्तन आर्थिक दृष्टि से उस समय जरूरी होता है, जब उसके परिणामस्वरूप कल्याण का अच्छा पुनर्वितरण हो जाए और तब जबकि यकमुश्त (lumpsum) हस्तान्तरण के द्वारा मुद्रा पुनर्वितरण की नीति सबको उतनी अच्छी स्थिति में न ला सके जितना पुनर्वितरण होने पर वे होते।"

इस प्रकार, तथाकथित नए कल्याण अर्थशास्त्र को जन्म देने वाले विभिन्न क्षतिपूर्ति मापदण्ड कल्याण में वृद्धि के लिए एक व्यापक सत्य-मापदण्ड प्रस्तुत करने के प्रयत्न हैं। पर ये सभी प्रयत्न असफल रहे क्योंकि ये एक मूल्य-मुक्त मापदण्ड (value-free criterion) देने में सफल नहीं हो सके।

3. समाज कल्याण फलन (THE SOCIAL WELFARE FUNCTION)

प्रोफेसर बर्गसन[5] *ने समाज कल्याण फलन सिद्धांत सबसे पहले प्रस्तुत किया और बाद में* सैम्यूलसन, टिंटनर (Tintner) तथा ऐरो (Arrow) ने इस सिद्धांत का विकास किया। उनका मत है कि मूल्य निर्णयों (value judgements) का समावेश किए बिना कल्याण अर्थशास्त्र में कोई अर्थपूर्ण प्रस्थापनाएँ (meaningful propositions) नहीं की जा सकतीं। समाज कल्याण की धारणा कल्याण अर्थशास्त्र का वैज्ञानिक दृष्टि से आदर्शवादी अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न है।

समाज कल्याण फलन उन साधनों को प्रकट करता है जिन पर एक समाज का कल्याण निर्भर माना जाता है। प्रोफेसर बर्गसन की परिभाषा के अनुसार, यह "या तो समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण का फलन होता है, या फिर, समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उपभोग की गई वस्तुओं तथा प्रदान की गई सेवाओं का फलन है।"[6] अपने मूलरूप में बर्गसन का समाज कल्याण फलन पूरी तरह सामान्य ढंग से प्रस्तुत किया है। यह वह फलन है जो समाज कल्याण तथा उन सब सम्भव चरों (variable) के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है, जोकि प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण को प्रभावित करते हैं जैसे प्रत्येक व्यक्ति की सेवाएँ तथा उपभोग। यह माना जा सकता है कि यह "प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण का फलन है जो क्रमानुसार उस व्यक्ति की निजी श्रेष्ठ स्थिति तथा समुदाय के सब सदस्यों में वितरित कल्याण के सम्बन्ध में उसके निजी मूल्यांकन पर निर्भर करता है।" इस प्रकार, समाज कल्याण फलन समाज के कल्याण का क्रम-संख्यात्मक सूचक तथा व्यक्तिगत उपयोगिता का फलन होता है। इसे यों प्रकट करते हैं

$$W = f\,(U_1, U_2, \quad U_n),$$

जहां W समाज का आर्थिक कल्याण, f फलन और U_1 से U_n तक 1, 2, n व्यक्तियों की

5 A. Bergson, "A Reformation of Certain Aspects of Welfare Economics", *Q J E*, 1938

6 W is "a function either of the welfare of each member of the community or of the quantities of products consumed and services rendered by each member of the community"—*Bergson*

उपयोगिताओं के स्तर है। *W* इन उपयोगिताओं का बढ़ता फलन है।

दोनों अक्षों पर वस्तुओं को मापते हुए, 'सद्व्यवहारयुक्त सामाजिक उदासीनता वक्रों' (well behaved social indifference curves) की शृंखला (series) खींचकर समाज कल्याण फलन चित्र पर प्रकट किया जा सकता है। प्रत्येक उदासीनता वक्र उन व्यक्तियों में उपयोगिताओं के विभिन्न वितरणों को प्रकट करता है जिनका समाज कल्याण स्तर समान होता है। ऐसे वक्रों से नीति बनाने वाले को यह जानने में सहायता मिलती है कि एक विशेष आर्थिक नीति से उन्नति होगी या नहीं। यदि एक परिवर्तन व्यक्तियों को अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे उदासीनता वक्र पर ले जाता है, तो समाज कल्याण में वृद्धि हुई मानी जाती है।

रेखाकृति के रूप में समाज कल्याण फलन चित्र 45.3 द्वारा समझाया गया है। FF_1 उपयोगिता सीमा (utility frontier) है, जो अर्थव्यवस्था के लिए साधनों से प्राप्त सभी सम्भव उपयोगिता संयोगों की सीमा (boundary of all utility combinations possible) को व्यक्त करती है। यह एक-दूसरे पर आच्छादित कई उपयोगिता सम्भावना वक्रों को लपेट लेता है (उपयोगिता सम्भावना वक्रों के लिए चित्र 45.2 देखिए)। चित्र 45.3 में *W*, W_1 और W_2 समाज कल्याण फलन को व्यक्त करते हुए वक्रों का परिवार है। प्रत्येक कल्याण वक्र दो व्यक्तियों *A* तथा *B* की उपयोगिताओं के कल्याण संयोगों के पथ-बिन्दु (locus) व्यक्त करता है, जिनके प्रति दोनों व्यक्ति उदासीन हैं। प्रत्येक कल्याण वक्र सामाजिक कल्याण के स्तर को दर्शाता है। कल्याण वक्र W_1 वक्र *W* से, तथा W_2 वक्र W_1 से सामाजिक कल्याण का ऊँचा स्तर दिखाता है। अधिकतम सामाजिक कल्याण या इष्टतम स्थिति वह है, जहाँ उपयोगिता सीमा FF_1 कल्याण वक्र W_1 को छूती है। चित्र में, बिन्दु *E* सर्वाधिक अधिकतम सामाजिक कल्याण की स्थिति या परमानंद बिन्दु (bliss point) को दर्शाता है। समाज के पास दी हुई प्रौद्योगिकी
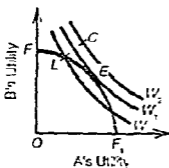
चित्र 45.3

(given technology) तथा आगतों की स्थिर मात्राओं (fixed quantities of inputs) के संरोधक (constraints) होते हुए, जितने भी कल्याण संयोग प्राप्त हैं, उनमें से *E* अधिकतम सामाजिक मूल्य है। बिन्दु *L* नीचे के कल्याण वक्र *W* पर स्थित है तथा सामाजिक कल्याण के निम्न स्तर को व्यक्त करता है, जबकि बिन्दु *C* कल्याण वक्र W_2 पर होने के कारण समाज की उपयोगिता सीमा (utility frontier of society) FF_1 से बाहर स्थित है। अतः *E* बिन्दु ही अधिकतम सामाजिक कल्याण को व्यक्त करता है।

इसकी मान्यताएँ (Its Assumptions)—बर्गसन का समाज कल्याण फलन कुछ निश्चित मान्यताओं पर आधारित है:

(1) यह सिद्धांत मान लेता है कि समाज कल्याण प्रत्येक व्यक्ति के धन तथा आय पर निर्भर करता है और प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण उसकी निजी सम्पत्ति और आय पर तथा समाज के सदस्यों में कल्याण के वितरण पर निर्भर करता है।

(2) यह बाहरी मितव्ययिताओं और अमितव्ययिताओं तथा उनके परिणामी प्रभावों की

* The social welfare function is regarded as "a function of each individual's, which in turn depends both on his personal well-being and on his appraisal of the distribution of welfare among all members of the community."

* It is an ordinal index of society's welfare and is a function of individual utilities.

उपस्थिति मानकर चलता है।

(3) यह व्यक्तिगत कल्याण को प्रभावित करने वाले चरो के सयोगो के क्रम-सख्यात्मक क्रमबद्धता (ranking) पर आधारित है।

(4) इस फलन मे उपयोगिता की अन्त वैयक्तिक (interpersonal) तुलनाएँ, जिनमें मूल्य निर्णय शामिल होते है, पाई जाती हैं।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)—इन मान्यताओ से समाज कल्याण फलन, प्रोफेसर मैम्यूल्सन के अनुसार, "उतना ही व्यापक, रिक्त तथा आवश्यक बन गया है (as broad and empty as) जितनी की स्वय भाषा।" अन्य अर्थशास्त्रियो ने "कल्याण अर्थशास्त्र मे प्रमुख योगदान के रूप मे" इसका स्वागत किया है, जबकि डॉ लिट्ल की राय मे यह "कल्याण अर्थशास्त्र की औपचारिक *गणितीय व्यवस्था को पूर्ण बनाता है।" सिटोवस्की इसे "पूर्ण रूप से सामान्य"* मानता है और उसका लक्ष्य—कल्याण अर्थशास्त्र की प्रमुख समस्याओं का ओपचारिक और दृढ पुनर्कथन (formal and rigorous restatement)—समझता है। उदाहरण के लिए, समाज कल्याण फलन का समावेश परेटो इष्टतमता मे पाई जाने वाली अनिश्चितता को दूर कर सकता है। परन्तु इस फलन की कुछ सीमाएँ भी है।

(1) **व्यावहारिक नीति से कोई सबध नहीं** (No relation to practical policy)—डॉ लिट्ल इसे सर्वसत्तात्मक राज्य (totalitarian state) मे अव्यवहार्य समझता है और लोकतत्रीय राज्य मे तो और भी अधिक अव्यवहार्य, "जहाँ उतने ही अस्पष्ट कल्याण फलन होते है जितने भी वहा व्यक्ति हो। इसे कल्याण की पूर्णरूप से सामान्य निरपेक्ष व्यवस्था के लिए आवश्यक ओपचारिक साधन के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है जिसका व्यावहारिक नीति से कोई सबध नहीं है।"

(2) **समाज कल्याण फलन निर्माण कठिन** (Difficult to construct social welfare function)—कल्याण फलन के निर्माण तथा आकृति के सम्बन्ध मे एक और कठिनाई उत्पन्न होती है। प्रत्येक व्यक्ति के अधिमानो को जोडने से समाज कल्याण फलन का निर्माण होता है। परन्तु समस्या यह है कि व्यतिगत अधिमानो को समान महत्त्व दिया जाए या भिन्न-भिन्न। इससे समाज कल्याण फलन का निर्माण एक कठिन कार्य बन जाता है।

(3) **समीकरण और वक्र मनमाने तथा काल्पनिक** (Equations and curves arbitrary and imaginary)—समाज कल्याण फलन को समीकरणो या समाज-उदासीनता वक्रो के रूप मे प्रकट करने से समस्या को हल करने मे सहायता नहीं मिलती क्योकि व्यक्तिगत कल्याण फलन ज्ञात नहीं हो सकते। इसलिए समाज कल्याण फलन को प्रकट करने वाले सब समीकरण तथा वक्र मनमाने तथा काल्पनिक होते है।

(4) **आनुभाविक महत्त्व रहित** (Without empirical significance)—डा लिट्ल के अनुसार, अधिकतम की धारणा बिना किसी सभावित आनुभविक महत्त्व के है, इसलिए अच्छा यह है कि इसे प्रयोग ही न किया जाए। एक अधिकतम स्थिति को परिभाषित करने के यत्न के बिना, सुधार के लिए इष्टतम दशाओं को पर्याप्त दशाओ के रूप मे व्युत्पन्न करना अधिक अर्थपूर्ण (meaningful) है।

(5) **व्यक्तिगत अधिमानो द्वारा समाज कल्याण फलन निर्माण सभव नहीं** (Not possible to construct social welfare function based on individual preferences)—प्रोफेसर ऐरो ने बताया है कि यदि व्यक्तियों को दो से अधिक विकल्पों मे से चुनाव करना पडे, तो क्रमसख्यात्मक अधिमानो के आधार पर समाज कल्याण फलन के निर्माण से परस्पर विरोधी परिणाम प्राप्त होते है। मान लीजिए कि एक समाज मे तीन व्यक्ति *A B C* है जिन्हे 1, 2, 3 सख्या वाली तीन सभव *X Y Z* सामाजिक स्थितियो मे से चुनाव करना है। प्राप्त आँकडे आगे की तालिका 45.1 मे दिखाए गए है। A तो *Y* को *Y* की अपेक्षा, ओर *Y* को *Z* की अपेक्षा अधिक अधिमान देता है, इसलिए वह *X* को

Z की अपेक्षा अधिक अधिमान देता है। B का अधिमान Y के लिए Z की अपेक्षा, Z के लिए X की अपेक्षा और इसलिए Y के लिए X की अपेक्षा अधिक है। C का अधिमान Z के लिए X की अपेक्षा, X के लिए Y की अपेक्षा और इसलिए Z के लिए Y की अपेक्षा अधिक है। यदि व्यक्तिगत अधिमानों को समान महत्त्व दिया जाए, तो बहुमत नियम (majority rule) के आधार पर समाज-फलन बनाया जा सकता है। परन्तु बहुमत नियम से परस्पर विरोधी परिणाम प्राप्त होते हैं। दो व्यक्ति (A तथा C) X को Y की अपेक्षा अधिक अधिमान देते हैं और दो व्यक्ति (B तथा C) Z को X की अपेक्षा अधिक अधिमान देते हैं। यह बहुमत नियम के विरोधाभास को स्पष्ट कर देता है, जोकि प्रोफेसर ऐरो के अनुसार, गत्यावरोध (deadlock) और इसलिए सामाजिकता की दृष्टि से अनपेक्षित निष्क्रियता (undesired inaction) को जन्म देता है। इस प्रकार, एक ऐसे समाज कल्याण फलन का निर्माण संभव नहीं, जो सब व्यक्तियों के अधिमानों पर ध्यान देता हो।

(6) **कल्याण अर्थशास्त्र की मुख्य समस्याओं को हल करने में सहायक नहीं** (Not helpful in solving the main problems of welfare economics)—प्रोफेसर बामोल के अनुसार, "समाज कल्याण फलन कल्याणकारी निर्णयों का संग्रह करने के लिए उस सम्मान तथा हिदायतों के सैट से लैस होकर नहीं आता जिसकी इसे जरूरत पड़ती है।" इस प्रकार कल्याण अर्थशास्त्र की प्रमुख समस्याओं को हल करने में यह बहुत सहायक नहीं है।

4. ऐरो की असंभवता प्रमेय
(ARROW'S IMPOSSIBILITY THEOREM)

बर्गसन (Bergson) ने अपने सामाजिक कल्याण फलन में दिखाया है कि वैकल्पिक आर्थिक स्थितियों का सामाजिक श्रेणीकरण केवल उपयोगिता की ऐसी अन्तर्वैयक्तिक तुलनाएं करके ही किया जा सकता है जो कि इस तरह के फलन में समाविष्ट है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या वह ऐसा आरोपित फलन है जो डिक्टेटर की रुचियों को प्रकट करता है अथवा ऐसा फलन है जो किसी प्रजातन्त्रात्मक ढंग से समाज के अधिमानों को व्यक्त करता है। के. जे. ऐरो ने अपने "सामाजिक चुनाव एवं व्यक्तिगत मूल्य" (*Social Choice and Individual Values*) में दिखाया है कि यदि व्यक्तिगत अधिमान संगत भी हों, तब भी सामाजिक कल्याण फलन उपलब्ध करना असम्भव है। उसने सुझाया है कि व्यक्तियों के अधिमान व्यक्त करने के लिए कम-से-कम पाँच शर्तें अथवा कसौटियाँ हैं जिनका सामाजिक चुनावों द्वारा पूरा किया जाना जरूरी है। वे कसौटियाँ निम्नलिखित हैं

1. **सामूहिक विवेकशीलता** (Collective rationality)—सभी संभव विकल्प सामाजिक चुनाव से व्युत्पन्न होने चाहिएँ जो आगे विवेकशीलता पर आधारित हों। एक सामाजिक चुनाव करने के लिए नियम को समाज के समक्ष सभी संभव विकल्पों की क्रमबद्धता से व्युत्पन्न किया जा सकता है। इस क्रमबद्धता को दो शर्तें अवश्य पूरी करनी चाहिएँ (i) संगति (consistency) और (ii) सकर्मकता (transitivity)। संगति का संबंध इस आवश्यकता से है कि व्यक्तियों के अधिमान पूरी तरह परिमापित होते हैं, अर्थात प्रत्येक विकल्प दूसरे प्रत्येक के संबंध में श्रेणीबद्ध किया जाता है। दूसरी शर्त यह है कि सामाजिक चुनावों को सकर्मकता की शर्त पूरी करनी चाहिए। यदि एक व्यक्ति Y की अपेक्षा X को और Z की अपेक्षा Y को प्राथमिकता देता है तो वह Z की अपेक्षा X को प्राथमिकता दे। इस प्रकार, व्यक्तिगत अधिमानों की तरह, सामाजिक अधिमान भी पूर्णतया क्रमबद्ध होने चाहिएँ।

2. **व्यक्तिगत अधिमानों की अनुक्रियाशीलता** (Responsiveness to individual preferences) —सामाजिक चुनावों का व्यक्तिगत अधिमानों से सीधा संबंध होना चाहिए। इसका मतलब कि

जिस दिशा मे व्यक्तिगत चुनाव परिवर्तित होते है उसी दिशा मे सामाजिक चुनाव भी परिवर्तित हो। व्यक्तिगत चुनाव समाज मे से व्युत्पन्न करने चाहिए।

3 ना-आरोपण (Non-imposition)—रीति-रिवाजो द्वारा अथवा समाज के बाहर से सामाजिक चुनावो का आरोपण नहीं होना चाहिए। वे व्यक्तिगत अधिमानों से ही व्युत्पन्न हो। उदाहरणार्थ, यदि अधिकतर व्यक्ति A को B पर अधिमान नहीं देते हैं, तो समाज को उसका अनुकरण नहीं करना चाहिए।

4 *गैर-डिक्टेटराना* (*Non-dictatorship*)—*सामाजिक चुनाव डिक्टेटराना नहीं होने चाहिए।* वे समाज के भीतर किसी एक व्यक्ति द्वारा आरोपित न किए जाए। दूसरे शब्दो मे, सामाजिक चुनाव किसी एक व्यक्ति की क्रमबद्धता पर आधारित नहीं होने चाहिए।

5 असम्बद्ध विकल्पो से स्वतन्त्रता (Independence of irrelevant alternatives)—सामाजिक चुनावो का असबद्ध विकल्पो से स्वतन्त्र होना जरूरी है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि यदि किसी एक विकल्प का बहिष्कार कर दिया जाए, तो उससे अन्य विकल्पों के श्रेणीकरण पर कोई प्रभाव नहीं पडेगा।

ऐरो ने दर्शाया है कि इन पाँचो शर्तो को पूरा करना, और कम-से-कम एक शर्त का उल्लघन किए बिना व्यक्तिगत अधिमानों के प्रत्येक सेट के लिए सकर्मक सामाजिक चुनाव प्राप्त कर सकना सभव नहीं है। दूसरे शब्दो में कहा जा सकता है कि सामाजिक चुनाव असगत अथवा अप्रजातान्त्रिक है क्योकि कोई भी मतदान प्रणाली इन पाँचो शर्तों को पूरा नहीं होने देती। इसे **ऐरो असभवता प्रमेय** (Arrow Impossibility Theorem) कहा जाने लगा है।

ऐरो के सामान्य असभवता प्रमेय को समझने के लिए, मान लीजिए कि समाज मे A B C नाम के तीन व्यक्ति है। उन्हे तीन वैकल्पिक स्थितियो का श्रेणीकरण करने को कहा गया है। वे अपना मत देते समय प्रथम चुनाव सूचित करने को 3 का अक, दूसरा चुनाव सूचित करने को 2 का अक और तीसरा सूचित करने को 1 का अक लिखते है। मान लीजिए उनके मतदान का ढग वह है जो तालिका 45 1 मे दिखाया गया है।

तालिका 45 1

व्यक्ति	वैकल्पिक स्थितियाँ		
	X	*Y*	*Z*
A	*3*	*2*	*1*
B	*1*	*3*	*2*
C	*2*	*1*	*3*

इस तालिका से पता चलता है कि प्रत्येक व्यक्ति के अधिमान सगत है। A नामक व्यक्ति *Y* की अपेक्षा *X* को, *Z* की अपेक्षा *Y* को, और इसलिए *Z* की अपेक्षा *X* को अधिमान देता है। B नामक व्यक्ति *Z* की अपेक्षा *Y* को, *X* की अपेक्षा *Z* को, और इसलिए *X* की अपेक्षा *Y* को अधिमान देता है। C नामक व्यक्ति *X* की अपेक्षा *Z* को, *Y* की अपेक्षा *X* को और इसलिए *Y* की अपेक्षा *Z* को अधिमान देता है। परन्तु बहुमत मतदान से असकर्मक सामाजिक ढाचे प्राप्त होने है। A तथा C नामक दो व्यक्ति *Y* की अपेक्षा *X* को प्राथमिकता देते है। A तथा B नामक दो व्यक्ति *Z* की अपेक्षा *Y* को प्राथमिकता देते है। फिर, B तथा C नामक व्यक्ति *X* की अपेक्षा *Z* को प्राथमिकता देते है। अत अधिकाश व्यक्ति (बहुमत) *Y* की अपेक्षा *X* को, और *Z* की अपेक्षा *Y* को और इसलिए *X* की अपेक्षा *Z* को भी प्राथमिकता देते हैं। इसे चित्र 45 4 मे व्यक्त किया गया है जो बहु-नुकीला ढाँचा (multiple-peaked pattern) दर्शाता है। यह बहुमत नियम विरोधाभास को स्पष्ट करता है जो बहुमत का निर्माण करने वाले व्यक्तियो के नियमों से असगति रखता है। इस प्रकार ऐरो स्पष्ट करता है कि मतदान की प्रजातन्त्रीय प्रक्रिया के प्रयोग से परस्पर विरोधी कल्याण कसौटियाँ बनती है। इस प्रकार, यदि एक भी शर्त का अभाव हो, तो सामाजिक कल्याण फलन को सूत्रबद्ध

चित्र 45.4

करना सभव नहीं है।

इसकी आलोचनाएँ (Its Criticisms) — सैम्यूल्सन, लिट्टल तथा अन्य कल्याण अर्थशास्त्रियों ने ऐरो के सामान्य असभवता प्रमेय की आलोचना की है।

(1) सामाजिक कल्याण फलन से सबद्ध नहीं (Not related to social welfare function)—लिट्टल के अनुसार, ऐरो के नकारात्मक निष्कर्षों की कल्याण अर्थशास्त्र में कोई सगति नहीं है। उसका असभवता प्रमेय केवल निर्णय करने की प्रक्रिया से सबधित है और उसका सामाजिक कल्याण फलन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(2) अन्तर्वैयक्तिक तुलनाओं का हल नहीं (No solution to interpersonal comparisons)—मिशन के अनुसार, एक सतोषजनक सामाजिक कल्याण फलन की खोज में ऐरो उपयोगिता की अन्तर्वैयक्तिक तुलना की समस्या को सुलझाने में असफल रहता है। बल्कि उसकी बहुमत नियम की विधि में अन्तर्वैयक्तिक तुलनाएँ पाई जाती हैं। यदि बहुमत व्यक्ति Y की अपेक्षा X को प्राथमिकता देते हैं, तब X के पक्ष में बहुमत निर्णय का मतलब है कि Y की अपेक्षा X को प्राथमिकता केवल उपयोगिता को अधिकतम करने के उद्देश्य से दी जाती है तथा एक व्यक्ति का चुनाव दूसरे व्यक्ति की तुलना में समान उपयोगिता का होता है।

(3) गणितीय राजनीति (Mathematical politics)—सैम्यूल्सन का मत है कि ऐरो ने एक ऐसे "राजनैतिक व्यवस्था फलन" की असभवता सिद्ध की है जो अपने निकट लाए जाने वाले किन्हीं अन्तर्वैयक्तिक भेदों का समाधान कर सकेगा और साथ ही कुछ तर्कसगत एव वाछनीय स्वय-सिद्ध सिद्धान्तों को भी सतुष्ट करेगा। इस प्रकार एरो का निष्कर्ष दृढ़ आधार प्रमेय है जिसे सैम्यूल्सन ने "गणितीय राजनीति" कहा है।

(4) सामाजिक चुनाव एकमात्र विकल्प नहीं (Social choice not the only alternative)—बोमोल ने स्पष्ट किया है कि ऐरो की जरूरतें उसकी अपेक्षा अधिक कड़ी हैं जैसी वे पहले-पहल देखने में प्रतीत होती हैं और कि असगत अथवा "अप्रजातन्त्रात्मक" चुनाव करना ही एकमात्र विकल्प नहीं है।

(5) बहुमत मतदान ढाचा अवास्तविक (Majority voting pattern unrealistic)—फिर, ऐरो का प्रमेय बहुमत मतदान के ढाँचे पर आधारित है जो कि मतदान प्रणाली की सभाव्यता पर ध्यान नहीं देता जिसमें सर्वसम्मति की जरूरत है और जो मतों के क्रय-विक्रय तक की अनुमति देता है।

इन आलोचनाओं के बावजूद ए के सेन (A K. Sen) का सुनिश्चित मत है कि "ऐरो का निष्कर्ष न केवल व्यक्तिगत मूल्यों के सयोजन के ऐसे तरीकों पर—जैसे कि बहुमत निर्णयों का तरीका—लागू होता है, अपितु किसी भी ऐसे तरीके पर भी लागू होता है जिसकी हम कल्पना कर सकें। प्रमेय पूर्ण रूप से सामान्य है और इसी में इसकी सुन्दरता तथा महत्ता निहित है। हम इस बात में स्वतन्त्र हैं कि हम अधिमानों के सयोजन का कोई भी तरीका चुन लें।

5. कल्याण अर्थशास्त्र के राजनीतिक पहलू (POLITICAL ASPECTS OF WELFARE ECONOMICS)

हाल के वर्षों में अर्थशास्त्रियों ने उस ढग की जाच करने में रुचि ली है जिसके द्वारा राजनीतिक

संस्थाए सामाजिक कल्याण संबधी व्यक्तिगत विचारो को समन्वित करने का कार्य कर रही हैं। इन अध्ययनो मे पता चला है कि मतदान विधिया कैसे समन्वय का कार्य करती है। एन्थोनी डाउन्स (A Downs)[9] तथा बुकैनन (Buchanan) और टुलॉक (Tullock)[10] उन अर्थशास्त्रियो मे प्रमुख है जिन्होने लोकतांत्रिक प्रक्रियाओ के मतदान-नमूनो को तैयार किया है। कल्याण अर्थशास्त्र के राजनीतिक पहलुओ सबधी इन विचारो का अध्ययन करने से पहले हम कल्याण की वृद्धि हेतु व्यक्तियो की राजनीतिक भागीदारी का अध्ययन करे।

स्थानीय, राज्य अथवा राष्ट्रीय स्तर पर दल के कार्यकर्ता अथवा मतदाता के रूप मे राजनीतिक भागीदारी के द्वारा व्यक्ति, कल्याण बढाने वाले कार्यों मे अपना योगदान दे सकता है। ऐसे अधिकतम कारण के कार्य सडको, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओ और नशीले पदार्थों पर नियन्त्रण जैसी सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओ के रूप मे हो सकते है।

राजनीतिक भागीदारी को चित्र 45 5 मे पेरेटो इष्टतमता के रूप मे चित्रित किया जा सकता है। मान ले दो व्यक्ति A और B है जिन्हे सरकार द्वारा दो वस्तुए X तथा Y एक निश्चित मात्रा मे दी गई है। Oa उपभोक्ता A का मूल और Ob उपभोक्ता B का मूल स्थान है। इस रेखाचित्र की दो धुरियो Oa तथा Ob की अनुलब भुजाए वस्तु Y और क्षैतिज भुजाए वस्तु X को दर्शाती है। A उपभोक्ता के उदासीनता मापचित्र को A_1, A_2 तथा A_3 वक्रो द्वारा तथा B के मापचित्र को B_1, B_2 और B_3 वक्रो द्वारा दर्शाया गया है। मान ले कि दोनो व्यक्ति बिन्दु E पर है। यह परेटो इष्टतमता की स्थिति नहीं है क्योकि दोनो उदासीनता वक्रो A_1 तथा B_1 की ढलान समान नहीं है। अत उन्हे E स्थान से P, Q अथवा R पर लाने के लिए सरकार के किसी भी पुनर्गठन को दोनो उपभोक्ता अपनी सर्वसम्मति प्रदान करेगे। ऐसी राजनीतिक कार्रवाई प्रत्येक स्थिति मे परेटो इष्टतम होगी।
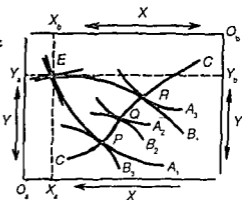
चित्र 45.5

मान ले A और B दो व्यक्तियो की बजाय दो समूहो का प्रतिनिधित्व करते है तथा समूह A मे समूह B की अपेक्षा अधिक मतदाता है। कोई पुनर्गठन जो उन्हे A_1 और B_1 वक्रो के क्षेत्र के भीतर E स्थान से किसी ओर स्थानान्तरित कर देता है और ऐसी स्थिति मे पुन परेटो इष्टतम होगा जिसे दोनो समूहो से सर्वसम्मत समर्थन प्राप्त होगा।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि सरकारी कार्रवाई को सभी लोगो का समर्थन प्राप्त नहीं होता है क्योकि सरकार की इन कार्रवाईयो से कुछ व्यक्तियो को कोई लाभ नहीं होता है। अत राजनीतिक कार्रवाई परेटो इष्टतम नहीं है। यदि किसी सरकारी कार्रवाई से अधिकाश लोग सतुष्ट होते है तो भी कुछ लोग असन्तुष्ट भी होगे जिसके कारण परेटो इष्टतमता की स्थिति सम्भव नहीं होगी। इस प्रकार राजनीतिक भागीदारी के आधार पर किसी समाज-कल्याण कार्य की योजना तैयार करना सम्भव नहीं है।

9 *An Economic Theory of Democracy*, 1957
10 *The Calculus of Consent* 1962

अर्थशास्त्रियों ने इस राजनीतिक भागीदारी को लोकतान्त्रिक मतदान-प्रक्रिया अथवा प्रतिनिधित्व लोकतन्त्र की धारणा तक व्यापकता दी है। प्रतिनिधि-लोकतन्त्र के सिद्धांत के सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादक एन्थॉनी डाउन्स है। डाउन्स मानता है कि राजनीतिक कार्रवाई विवेकपूर्ण होती है तथा मतदाता और राजनीतिज्ञ दोनों ही अपने-अपने हित के लिए कार्य करते है। एक मतदाता द्वारा एक उम्मीदवार को अन्य उम्मीदवार की अपेक्षा चुनने का सीधा सा अभिप्राय यह है कि वह अन्य उम्मीदवार की नीतियों से होने वाले लाभों की अपेक्षा अपने समर्थित उम्मीदवार की नीतियों से होने वाले अपेक्षित लाभों को अधिक आंक रहा है। इस प्रकार मतदाता प्रत्येक उम्मीदवार की नीतियों की लागतों और उनसे होने वाले अपेक्षित लाभों का अनुमान लगाने में समर्थ है। राजनीतिज्ञ का उद्देश्य सत्ता में रहने के लिए अधिकतम मत प्राप्त करना है।

डाउन्स का विश्लेषण दो दलीय लोकतन्त्रों पर आधारित है जिसमें निर्धारित अन्तराल के बाद चुनाव होते है। मतदाता उस दल का समर्थन करते हैं जिसे वह अपने व्यक्तिगत कल्याण के लिए अधिक हितकारी समझते हैं। सरकार उन दलों की होती है जो इन मतदाताओं के बल पर सत्ता में रहते है। सरकार को मतदाताओं द्वारा दल A अथवा B को अधिमान का संकेत मतों से पता चलता है। इन चुने हुए प्रतिनिधियों को अपने मतदाताओं की ओर से विशिष्ट सार्वजनिक नीतियों पर अपना मत देने का अधिकार होता है। मान लें ऐसे दो उम्मीदवार है जो विधान-मण्डल के चुनाव में खड़े होते हैं। जैसा कि चित्र 45.6 में दिखाया गया है लोगों का सामाजिक अधिमान वर्तमान राष्ट्रीय उत्पादन के O से 100 प्रतिशत के बीच के मौजूदा उपभोग के सामाजिक रूप में पसन्द किए गए स्तर का निर्धारण करता है। दो व्यक्तियों में से A का अधिमान A_1 और B का अधिमान B_1 से दिखाया गया है। जैसाकि स्पष्ट है, B_1 सर्वोत्तम सामाजिक अधिमान दर्शा रहा है। यदि B उम्मीदवार चुना जाता है, तो कोई समस्या नहीं है क्योंकि वह लोगों के सामाजिक अधिमान का प्रतिनिधित्व कर रहा है। कोई सार्वजनिक नीति प्रस्ताव जिसे सर्वसम्मति से अपनाया जाता है, पैरेटो इष्टतमता और कल्याण की वृद्धि करने वाला होगा।
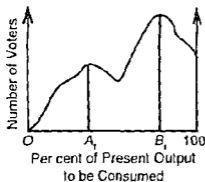
चित्र 45.6

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)— सर्वसम्मति नियम की कई कारणों से आलोचना की जाती है। सामूहिक कार्रवाई से संगठनात्मक लागतें आती हैं जिसे प्रत्याशित लाभों से पूरा किया जाना चाहिए। जब सीमान्त संगठनात्मक लागतें सामूहिक कार्रवाई से प्राप्त सीमांत लाभों से अधिक हो जाती हैं, तो कल्याण इष्टतम नहीं होगा। इसके अलावा सर्वसम्मति के नियम से अभिप्राय एक व्यक्ति का नियम है जो एक व्यक्ति अथवा समूह के लोगों को सार्वजनिक कार्रवाई से प्राप्त पूर्ण सामाजिक लाभ को त्यागने के लिए बाध्य करेगा। यही कारण है कि नट विकसैल (Wicksell) ने सामाजिक वरीयता के निर्धारण के लिए मतदाताओं के योग्य बहुमत को सही माना है।

दूसरी ओर सामान्य बहुमत का नियम है। सामान्य बहुमत के नियम के अन्तर्गत, सार्वजनिक कार्रवाई से बहुमत के कल्याण को होने वाला लाभ अल्पमत के कल्याण को होने वाली हानि से अधिक होना चाहिए। परन्तु पैरेटो इष्टतमता प्राप्त करने के लिए, बहुमत के प्रत्येक सदस्य का लाभ अल्पमत के प्रत्येक सदस्य को होने वाली हानि के बराबर होना चाहिए। तथापि, वह सार्वजनिक कार्रवाई जिसे अल्पमत असुविधाजनक समझते हैं तथा बहुमत वाले इस कार्रवाई को

बहुत कम पसन्द करते है, तो इससे सम्पूर्ण कल्याण कम हो जाएगा। इस सम्बन्ध मे डाउन्स अल्पमतो वालो के विलय की चर्चा करता है। वह तर्क देता है कि एक तीव्र अल्पमत राजनीतिक दलो को इतना प्रभावित कर सकता है कि सार्वजनिक कार्रवाई मे योग्य बहुमत का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

एक विकल्प के रूप मे, बुकैनन और टुलॉक ने बहुमत के शासन मे 'मध्यम' मतदाता द्वारा निभाई गई महत्त्वपूर्ण भूमिका का पता लगाया है। ऐसा मतदाता विधानमण्डल मे चुने गए प्रतिनिधियो के आचरण और सार्वजनिक कार्रवाई के लिए सामाजिक नीति के विकास पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है।

तथापि, अर्थशास्त्रियो के बहुमत ने बहुमत-अल्पमत की समस्या के समाधान के रूप मे मतदान व्यापार अथवा "लॉग रोलिग" (log rolling) का सुझाव दिया। मान ले कि अल्पमत विधायक *A* मुद्दे पर कडा रख रखते है। *A* मुद्दे पर और मतदान आकृष्ट करने के लिए वे अन्य विधायको को बाद मे किसी अन्य तारीखो को उठाए जाने वाले *B C, D* जैसे मुद्दो पर समर्थन देने का वायदा कर सकते है। इस प्रकार "लॉग रोलिग" विनिमय की मौलिक प्रमेय की तरह है जो कि व्यापार का निर्धारण परस्पर लाभ के आधार पर निर्धारित करती है।

यह सार्वजनिक कार्रवाई की क्वालिटी मे सुधार कर सकती है जो सार्वजनिक निर्णय मे रचनात्मक तत्त्व है। जब "लॉग रोलिग" के आधार पर विधायको द्वारा उच्च मूल्यो पर आधारित सार्वजनिक नीति चुनी जाती है, तो परेटो ईष्टतमता के अनुसार इसके फलस्वरूप कल्याण मे वृद्धि होती है।

प्रश्न

1 सक्षेप मे विभिन्न क्षतिपूर्ति नियमो की विवेचना कीजिए जो उपयोगिता की अन्तर्वैयक्तिक तुलनाओ से बचने के लिए समय-समय पर सुझाए गए है।

2 सामान्य कल्याण मे सुधार करने के लिए कॉलडर-हिक्स मापदण्ड की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

3 निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए

(1) स्किटोवस्की दोहरा मापदण्ड, (2) सामाजिक कल्याण फलन, (3) ऐरो का असभवता प्रमेय, (4) कल्याण अर्थशास्त्र के राजनैतिक पहलू, (5) परेटियन इष्टतम।

4 कल्याण अर्थशास्त्र के सामाजिक पहलुओं पर एक प्रस्ताव लिखिए।

5 मतदान व्यवहार सामाजिक कल्याण को कैसे प्रभावित करता है?

6 यह दिखाइए कि पेरेटो मापदण्ड अतर्वैयक्तिक तुलना की उपेक्षा करता है, और सक्षेप में विवेचना कीजिए कि कोई अन्य मापदण्ड इस समस्या को सुलझाते हैं।

[सकेत दूसरे भाग मे काल्डर-हिक्स मापदण्ड की विवेचना करिए।]

अध्याय 46

सामाजिक कल्याण का अधिकतमकरण
(MAXIMISATION OF SOCIAL WELFARE)

प्रोफेसर बेटर (Bator) ने अपने "The Simple Analytics of Welfare Maximisation"[1] शीर्षक पेपर में सामाजिक कल्याण के अधिकतमकरण की समस्या का अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत तथा व्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यह पूर्ण प्रतियोगिता अर्थव्यवस्था की स्थैतिक दीर्घकालीन सामान्य सतुलन-स्थितियो का साराश है। इसमे परेटो की इष्टमता की स्थितियों को सामाजिक कल्याण फलन के साथ जोड दिया गया है और यह सामाजिक कल्याण के अधिकतमकरण की समस्या का निश्चित एव अनुपम हल प्रदान करता है।

इसकी मान्यताए (Its Assumptions)—बेटर का विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

1 दो समरूप तथा पूर्णतया विभाज्य आगतें, श्रम (*L*) तथा पूजी (*K*) है। इन दोनों की पूर्ति स्थिर मात्राओ मे की जाती है।

2 अर्थव्यवस्था में केवल दो ही समरूप वस्तुओं, *X* तथा *Y*, का उत्पादन होता है। प्रत्येक वस्तु का उत्पादन फलन दिया हुआ है जो परिवर्तित नहीं होता। प्रत्येक उत्पादन फलन एक जैसा है। पैमाने के स्थिर प्रतिफल को दिखाता है। और किसी भी सममात्रा (isoquant) वक्र पर तकनीकी स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर को प्रकट करता है। जिसका अर्थ है कि सममात्रावक्र मूल-बिन्दु के उन्नतोदर (convex) है।

3 अर्थव्यवस्था मे A तथा B दो व्यक्ति हैं। इनमे से प्रत्येक के एकमार उदासीनता वक्रों का सैट है जो मूल-बिन्दु के उन्नतोदर है और स्थिर क्रमिक अधिमान फलनों को प्रकट करता है।

4 एक ऐसा सामाजिक कल्याण फलन है जो उनके (A, B के) अपने अधिमान पैमानों मे A तथा B की स्थितियो पर आधारित है अर्थात् $W = W(W_A, W_B)$। यह सभी स्थितियों के अधिमान क्रमबद्धता को बेजोड ढग से प्रस्तुत करता है।

इन सभी मान्यताओं के दिए हुए होने पर (i) *X* तथा *Y* के उत्पादन मे श्रम की आगत के, (ii) *X* तथा *Y* के उत्पादन मे पूजी की आगत के, (iii) *X* तथा *Y* की उत्पादित कुल मात्रा के, और (iv) A तथा B दोनो व्यक्तियों में *X* तथा *Y* के वितरण के कल्याण को अधिकतम बनाने वाले मूल्यों को निर्धारित करने की समस्या है। नीचे इनका क्रमश विश्लेषण किया जा रहा है।

1. उत्पादन फलनों से उत्पादन संभावना वक्र
(FROM PRODUCTION FUNCTIONS TO PRODUCTION POSSIBILITY CURVE)

बाक्स के आकार का चित्र 46 1 उत्पादन के सामान्य सन्तुलन को स्पष्ट करता है। अर्थव्यवस्था को

1 *American Economic Review* मार्च 1957 में प्रकाशित।

दो वस्तुओं X तथा Y के उत्पादन के लिए दो आगतो श्रम (L) तथा पूजी (K) स्थिर मात्रा मे उपलब्ध है। O_X श्रम-आगत का मूल बिन्दु है जिसे क्षैतिज अक्ष पर मापा गया है और O_Y पूजी आगत का मूल बिन्दु है, जिसे अनुलम्ब अक्ष पर मापा गया है। दोनो अक्षो के क्षैतिज बाजू O_X तथा O_Y तो वस्तु X को और अनुलम्ब बाजू वस्तु Y को प्रकट करता है।

चित्र 46 1

प्रत्येक वस्तु का उत्पादन फलन एकसार समान मात्रा वक्रो से प्राप्त होता है जिनकी विशेषता पैमाने के स्थिर प्रतिफल तथा तकनीकी स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दरे (MRTS) है। वस्तु X के लिए, जिसका मूल बिन्दु O_X है, ये सममात्रा वक्र X_1, X_2 और X_3 है और वस्तु Y के लिए, जिसका मूल-बिन्दु O_Y है ये सममात्रा वक्र Y_1, Y_2 और Y_3 है। वस्तु X का सममात्रा वक्र P_1, Q_1 तथा R_1 बिन्दुओ पर वस्तु Y के सममात्रा वक्र पर स्पर्शज्या है और इसलिए $_X MRTS_{LK} = _Y MRTS_{LK}$ की शर्त को पूरा करता है। इन स्पर्श-बिन्दुओ को मिलाने से आगत स्पेस मे उत्पादन संविदा वक्र $O_X P_1 Q_1 R_1 O_Y$ बन जाता है। इस संविदा वक्र पर विविध बिन्दु दक्षता बिन्दु पथ के है जहा वस्तु X के उत्पादन मे वृद्धि का मतलब है वस्तु Y के उत्पादन मे आवश्यक कमी होना।
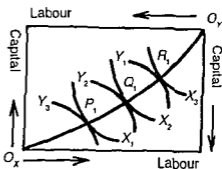
चित्र 46 2

इस उत्पादन संविदा वक्र से हम आगत स्पेस से उत्पादन स्पेस मे उत्पादन सभावना वक्र अथवा रूपान्तरण वक्र अनुरेखित कर सकते है। चित्र 46 1 के $O_X P_1 Q_1 R_1 O_Y$ संविदा वक्र से सम्बद्ध उत्पादन सभावना वक्र चित्र 46 2 मे TC के रूप मे अकित है। यह वक्र वस्तु X तथा Y के उन विविध सयोगो को प्रकट करता है जो श्रम तथा पूजी की स्थिर मात्राओ से उत्पादन किए जा सकते है। चित्र 46 1 मे संविदा वक्र तथा आगत स्पेस मे बिन्दु P_1 पर ध्यान दीजिए। Y_3 सममात्रक Y आगत की 600 इकाइयो को और X_1 सममात्रा X की 100 इकाइयो को प्रकट करता है। इन्हे चित्र 46 2 मे उत्पादन स्पेस मे बिन्दु P के रूप मे चित्राकित किया गया है। इसी प्रकार चित्र 46 1 के Q_1 तथा R_1 बिन्दु चित्र 46 2 मे उत्पादन स्पेस मे क्रमश Q तथा R बिन्दुओ के रूप मे ट्रेस किए गए है। P, Q तथा R बिन्दुओ को मिलाकर हम वस्तु X तथा Y के लिए उत्पादन सभवता वक्र TC व्युत्पन्न करते है। श्रम तथा पूजी की मात्राएँ तथा स्थिर प्रौद्योगिकी के दिए हुए होने पर अर्थव्यवस्था TC वक्र से ऊपर
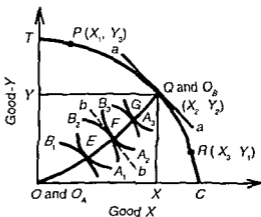
किसी भी बिन्दु पर नहीं पहुंच सकती। और न ही *TC* वक्र के भीतर अर्थव्यवस्था का कोई बिन्दु हो सकता है क्योंकि इसका मतलब होगा कि दोनो साधन सम्पन्नताओ का पूरा उपयोग नहीं हो रहा है। इसलिए समुदाय कल्याण के अधिकतमकरण के लिए जरूरी है कि अर्थव्यवस्था *TC* वक्र पर रहे। चित्र फिर 46 2 मे उत्पादन सभवता वक्र पर किसी भी बिन्दु का ढलान *Y* मे *X* के रूपान्तरण की सीमान्त दर (MRT) को प्रकट करता है। दूसरे शब्दो मे यह बताता है कि पूजी तथा श्रम की पर्याप्त मात्रा स्थानान्तरित करके वस्तु *X* की एक और इकाई का उत्पादन करने के लिए वस्तु *Y* का उत्पादन कितना घटाया जाए।

2. उत्पादन सभावना वक्र से ग्रैण्ड उपयोगिता सभावना वक्र (FROM THE PRODUCTION POSSIBILITY CURVE TO THE GRAND UTILITY POSSIBILITY CURVE)

अगला कदम यह है कि जिस अर्थव्यवस्था मे दो व्यक्ति *A* तथा *B* और दो ही वस्तुए *X* तथा *Y* है, उस अर्थव्यवस्था मे विनिमय की सामान्य सतुलन दर का वर्णन किया जाए। इसके लिए, हम उत्पादन सभावना वक्र से ग्रैण्ड उपयोगिता सभावना वक्र व्युत्पन्न करते है। ऐसा करने के लिए हम चित्र 46 2 के उत्पादन सभावना वक्र *TC* के उत्पादन स्पेस (output space) से उपयोगिता स्पेस (utility space) मे उपभोग सविदा वक्र चित्राकित करते है।

रूपान्तरण वक्र *TC* पर कोई भी ऐसा बिन्दु *Q* लीजिए ताकि *X* तथा *Y* के कुल उत्पादन क्रमश *OX* तथा *OY* हो। *X* तथा *Y* के ये उत्पादन *A* तथा *B* को प्राप्य दोनो वस्तुओ की मात्रा को निर्धारित करते है। ये उत्पादन, आगे, एज्वर्थ के विनिमय बक्साकार आरेख (diagram) के आयाम निर्धारित करते है। बिन्दु *Q* से दोनो अक्षो पर *X* तथा *Y* लम्ब गिराओ। अब *O* बिन्दु उपभोक्ता *A* का मूल बिन्दु बन गया है इसे O_A कह लीजिए। इसी प्रकार *Q* बिन्दु उपभोक्ता *B* का मूल बिन्दु बन जाता है जिसे O_B मान लीजिए। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का सुनिश्चित अधिमान फलन है, इसलिए विनिमय बॉक्स मे *A* तथा *B* के उदासीनता वक्र खींचे गए है। A_1, A_2 और A_3 वक्र *A* व्यक्ति के अधिमान क्षेत्र को व्यक्त करते है और B_1, B_2 और B_3 वक्र *B* व्यक्ति के अधिमान क्षेत्र को व्यक्त करते है। *A* तथा *B* के उदासीनता वक्रो की टेंजेंट के बिन्दु पथ *E, F* तथा *G* है। इन बिन्दुओ को मिलाने से हमे उपभोग सविदा वक्र $O_A EFG O_B$ उपलब्ध होता है। यह वक्र टेंजेंट के विविध बिन्दुओ का रेखा पथ है जो विनिमय की उन विभिन्न स्थितियो को प्रकट करता है जो *A* तथा *B* के लिए *X* तथा *Y* की स्थानापन्नता की सीमान्त दरो (MRS) को बराबर करती है, अर्थात् ${}_A MRS_{XY} = {}_B MRS_{XY}$, इस प्रकार उपभोग सविदा वक्र का कोई भी बिन्दु विनिमय की इष्टतम शर्तों को सतुष्ट करता है परन्तु सविदा वक्र पर गति से एक व्यक्ति की स्थिति दूसरे से बेहतर हो जाती है। इस प्रकार इस सविदा वक्र पर प्रत्येक बिन्दु परेटो-इष्टतमता बिन्दु है।
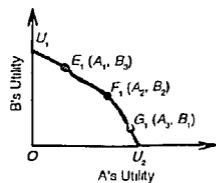
चित्र 46.3

चित्र 46.2 मे सविदा वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर *A* तथा *B* के उपयोगिता स्तरो का निरीक्षण करके हम उपयोगिता सभावना वक्र अथवा सीमा को रूपान्तरण वक्र *TC* पर उत्पादन बिन्दु *Q* के सापेक्ष व्युत्पन्न कर सकते है। *Q* के सापेक्ष उपयोगिता वक्र को चित्र 46.3 मे U_1, U_2 के रूप

मे अकित किया गया है। इस वक्र पर बिन्दु E_1 चित्र 46 2 मे A_1, B_1 वक्रो पर बिन्दु E के समरूप है। बिन्दु E_1 निकालने का तरीका इस प्रकार है। यदि वक्र A_1 की उपयोगिता 100 इकाइया तथा B_1 वक्र की उपयोगिता 450 इकाइया हो और क्षैतिज अक्ष A की उपयोगिता को तथा अनुलम्ब अक्ष B की उपयोगिता को व्यक्त करे तो बिन्दु E_1 निकल आता है। F_1 बिन्दु A_2, B_2 वक्रो पर, बिन्दु F के समरूप है और G_1 बिन्दु A_3, B_3 वक्रो पर बिन्दु G के समरूप है। इन बिन्दुओ को मिलाने से उपयोगिता सभावना वक्र U_1U_2 प्राप्त हो जाता है जैसा कि चित्र 46 3 मे दिखाया गया है। यह वक्र B की किसी भी अन्य स्तर पर उपयोगिता के लिए A की अधिकतम उपयोगिता के बिन्दुओ का पथ है।

कल्याण अधिकतमकरण की शर्त के अनुसार विनिमय तथा उत्पादन का एक साथ सामान्य सतुलन होना चाहिए। इस शर्त का मतलब यह कि X तथा Y की स्थानापन्नता की सीमान्त दर अवश्य ही दोनो के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर के बराबर हो। पर उपयोगिता सभावना वक्र के अनेक बिन्दुओ मे से केवल एक बिन्दु ही ऐसा है जो इस शर्त को पूरा करता है। यह बिन्दु चित्र 46 3 मे U_1U_2 वक्र पर F_1 बिन्दु है जो चित्र 46 2 मे सविदा वक्र F के समरूप है। इसे चित्र 46 2 मे TC वक्र के बिन्दु Q पर aa टेजेट खींचकर निकाला गया है। बिन्दु Q पर इस टेजेंट की ढलान X तथा Y के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर को व्यक्त करती है। बक्साकार आरेख मे बिन्दु F पर टेजेट bb की ढलान A तथा B व्यक्तियो द्वारा X तथा Y की स्थानापन्नता की सीमान्त दर को व्यक्त करती है। क्योकि दोनो टेजेट aa तथा bb एक दूसरी के समानान्तर है, इसलिए चित्र 46 2 मे बिन्दु F और चित्र 46 3 मे बिन्दु F_1 विनिमय तथा उत्पादन के एक साथ सामान्य सन्तुलन की शर्त को पूरा करते है, अर्थात् ${}_A MRS_{XY} = {}_B MRS_{XY} = MRT_{XY}$

चित्र 46 2 के उत्पादन सभावना वक्र TC पर कोई भी और बिन्दु P अथवा R लेकर हम एक एज्वर्थ का बक्साकार आरेख तथा उपभोक्ता सविदा वक्र निर्मित कर सकते है। इससे एक ओर उपयोगिता सभावना वक्र खींचा जा सकता है तथा विनिमय एव उत्पादन की परेटो इष्टतमता का एक ओर बिन्दु निकाला जा सकता है। मान लीजिए कि ऐसा उपयोगिता सभावना वक्र U_3U_4 है जिस पर समानुरूपी बिन्दु K है, जैसा कि चित्र 46 4 मे दिखाया गया है। चित्र 46 3 का उपयोगिता सभावना वक्र U_1U_2, जिस पर परेटो इष्टतमता बिन्दु F_1 है, भी इस चित्र मे खींचा गया है। F_1 तथा K बिन्दुओ को मिलाकर, हम ग्रैण्ड उपयोगिता सभावना वक्र GU व्युत्पन्न करते है। ग्रेण्ड उपयोगिता सभावना वक्र विनिमय एव उत्पादन के परेटो इष्टतमता बिन्दुओ का रेखा पथ है।
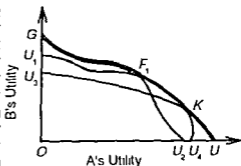
चित्र 46 4

3. ग्रैण्ड उपयोगिता सभावना वक्र से सीमित आनन्द बिन्दु तक
(FROM THE GRAND UTILITY CURVE TO THE POINT OF CONSTRAINED BLISS)

यह पता लगाने के लिए कि ग्रैण्ड उपयोगिता सभावना वक्र पर परेटो इष्टतमता बिन्दुओ मे से

कौन-सा बिन्दु अधिकतम सामाजिक कल्याण को व्यक्त करता है, हमें सामाजिक कल्याण फलन खींचना होगा। चित्र 46.5 में तीन सामाजिक कल्याण फलनों के रूप में, अथवा समाज के सामाजिक उदासीनता वक्रों के रूप में W, W_1 और W_2 दिखाए गए हैं। प्रत्येक सामाजिक कल्याण फलन A की उपयोगिता तथा B की उपयोगिता के उन विविध संयोगों को व्यक्त करता है जो सतुष्टि का एक समान स्तर प्रदान करते है। परन्तु सामाजिक कल्याण फलन पर गति से एक व्यक्ति की स्थिति बेहतर और दूसरे की स्थिति बिगड जाती है। इस प्रकार सामाजिक कल्याण फलन में उपयोगिता की अन्तर्वैयक्तिक (interpersonal) तुलनाए पायी जाती है।

यदि यह मान लिया जाए कि W, W_1 तथा W_2 ऐसे सामाजिक कल्याण फलन है जो समाज के लिए वर्तमान है, तो सामाजिक कल्याण उस स्थल पर अधिकतम होगा जहा ग्रैण्ड उपयोगिता सभावना वक्र किसी सामाजिक कल्याण वक्र को स्पर्श करेगा। चित्र 46.5 में अधिकतम सामाजिक कल्याण का बिन्दु F है जो वक्र W_1 तथा वक्र GU की टेंजेंट से निर्धारित हुआ है। इसे सीमित आनन्द (constrained bliss) का बिन्दु कहते है क्योकि यदि GU वक्र पर बिन्दु F से परे गति होगी तो कुल सामाजिक कल्याण घट जाएगा। ग्रैण्ड सभावना वक्र GU पर बिन्दु P अथवा R ले लीजिए। ये बिन्दु कल्याण के अपेक्षाकृत नीचे स्तर को व्यक्त करते है क्योकि वे अपेक्षाकृत नीचे सामाजिक कल्याण वक्र W पर स्थित है। जो बिन्दु सीमित आनन्द के बिन्दु F के नीचे स्थित है वे सभी गैर-परेटो इष्टमता के बिन्दु है। और जो बिन्दु इस बिन्दु से ऊपर स्थित है जैसे कि W_2 वक्र पर बिन्दु C वे सभी बिन्दु दी हुई साधन सम्पन्नताओं एव प्रोद्योगिकी के कारण समाज की पहुच के बाहर है। इस प्रकार F बिन्दु अधिकतम सामाजिक कल्याण का वह बिन्दु है जहा उत्पादन, विनिमय और उत्पादन एव विनिमय के सामान्य सन्तुलन की शर्तें एक साथ पूरी हो जाती है।
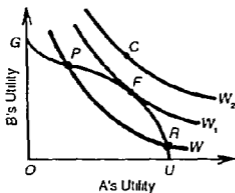
चित्र 46.5

प्रश्न

1 "परेटो की इष्टतम सामाजिक कल्याण की शर्तें वास्तव में पूर्ण प्रतियोगिता अर्थव्यवस्था की स्थैतिक सामान्य दीर्घकालीन सन्तुलन परिस्थितियों का साराश मात्र है।" इस कथन का विवेचन कीजिए।

2 उपयोगिता सभावना सीमा कैसे निकाली जाती है? ऐसी सीमा पर स्थित बिन्दु से क्या पता चलता है? पूर्ण सतर्कतापूर्वक स्पष्ट कीजिए कि क्या अधिकतम सामाजिक कल्याण निर्धारित करने के लिए उपयोगिता सभावना सीमा पर्याप्त है?

अध्याय 47

परेटियन इष्टतम की सीमांत दशाएँ

(MARGINAL CONDITIONS OF PARETIAN OPTIMUM)

अधिकाश अर्थशास्त्री इस बात को स्वीकार करते है कि कल्याण मापदण्डो तथा समाज कल्याण फलन के रूप मे कल्याण अर्थशास्त्र के पुन प्रस्थापन के प्रयत्न लगभग व्यर्थ सिद्ध हुए है। इसलिए, आधुनिक कल्याण अर्थशास्त्र के कुछ प्रमुख व्याख्याताओ, जैसे हिक्स, लर्नर, लैग (Lange) तथा अन्य अर्थशास्त्रियो ने परेटो के अर्थ मे कल्याण इष्टतम की कुछ स्थितियाँ निर्धारित कर दी है। परेटो इष्टतम के अनुमार, समाज कल्याण उस समय अधिकतम होता है, जब किसी दूसरे व्यक्ति को पहले से बुरी स्थिति मे लाए बिना किसी भी व्यक्ति की स्थिति पहले से अच्छी बनाना सभव न हो। परेटो के समाज इष्टतम का पता लगाने के लिए, टिक्स ने सीमान्त दशाएँ निर्धारित की है जो वस्तुओ तथा सेवाओ के उत्पादन, उपभोग तथा वितरण से सबध रखती है। हम प्रोफेसर रैडर[1] (Reder) द्वारा बताई गई सात सीमान्त दशाओं को चित्रात्मक रूप मे उद्धृत करते हैं।

इनकी मान्यताएँ (Their Assumptions)—ये सीमान्त अथवा प्रथम कोटि (first order) की दशाएँ निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित हैं

(i) कि प्रत्येक व्यक्ति वस्तुओं के भिन्न-भिन्न सयोगो के बीच चुनाव करने मे स्वतन्त्र होता है और किसी पर निर्भर नहीं करता, जबकि उसका क्रमसख्यात्मक (ordinal) उपयोगिता फलन दिया हुआ होता है,

(ii) कि प्रत्येक उत्पादन इकाई दूसरी से स्वतन्त्र होती है,

(iii) कि प्रत्येक उत्पादक का उत्पादन फलन दिया हुआ है अर्थात् तकनीकी ज्ञान स्थिर रहता है,

(iv) कि प्रत्येक वस्तु के उत्पादन मे सब साधन प्रयोग मे लाए जाते है,

(v) कि प्रत्येक वस्तु विभाज्य होती है,

(vi) कि सब व्यक्ति प्रत्येक वस्तु की कुछ मात्रा खरीदते है,

(vii) कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी सतुष्टि को अधिकतम करने का प्रयास करता है,

(viii) कि प्रत्येक फर्म अपने लाभ को अधिकतम तथा अपनी उत्पादन लागतो को न्यूनतम करने का प्रयास करती है, और

(ix) कि उत्पादन के साधन पूर्णतया गतिशील हैं।

इन मान्यताओ के दिए हुए होने पर, कल्याण इष्टतम की दशाओ पर अब विचार किया जा रहा है।

1 M W Reder *Studies in the Theory of Welfare Economics* Ch 2

1. विनिमय की इष्टतम दशा
(THE OPTIMUM CONDITION OF EXCHANGE)

"प्रत्येक व्यक्ति के लिए किन्हीं दो वस्तुओं के बीच स्थानापन्नता की सीमान्त दर समान होनी चाहिए जिनका कि वह उपभोग करता है।"[2] इसका मतलब है कि दो उपभोक्ता वस्तुओं के बीच स्थानापन्नता की सीमान्त दर (MRS) अवश्य उनकी कीमतों के अनुपात के बराबर होनी चाहिए। (MRS किसी भी बिन्दु पर उदासीनता वक्र का ढलान है जोकि एक वस्तु, मान लीजिए Y की उस मात्रा को प्रकट करता है, जिसे एक व्यक्ति के उसी उदासीनता वक्र पर रहने के लिए, Y की प्रत्येक इकाई के लिए स्थानापन्न करना आवश्यक है।

बक्स चित्र 47 । विनिमय की इष्टतम दशा की व्याख्या करता है। A और B दो व्यक्तियों को लीजिए, जिनके पास क्रमश: X और Y वस्तुओं की निश्चित मात्राएँ हैं। O_a उपभोक्ता A का मूल बिन्दु है और O_b उपभोक्ता B का मूल बिन्दु है (समझने के लिए चित्र को उलटकर देखिए)। दोनों अक्षों O_a तथा O_b की अनुलम्ब भुजाएँ वस्तु Y को प्रकट करती हैं और क्षैतिज भुजाएँ वस्तु X को। A_1, A_2 और A_3 वक्र A उदासीनता मानचित्र को प्रकट करते हैं और B_1, B_2, और B_3 वक्र B के उदासीनता मानचित्र को। इस बक्स के भीतर का कोई भी बिन्दु दोनों व्यक्तियों के बीच दोनों वस्तुओं के सम्भव वितरण को प्रकट करता है। बिन्दु E को लीजिए, जहाँ A_1 तथा B_1 उदासीनता वक्र आपस में काटते हैं। इस स्थिति पर, A के पास Y वस्तु की O_aY_a इकाइयाँ और X वस्तु की O_aX_a इकाइयाँ हैं। B को Y की O_bY_b तथा X की O_bX_b इकाइयाँ प्राप्त होती हैं। E बिन्दु पर, दोनों वस्तुओं के बीच *स्थानापन्नता की सीमान्त दर उनकी कीमतों के अनुपात के बराबर नहीं है* क्योंकि दोनों वक्रों की ढलान बराबर नहीं है।[3] इसलिए, दो व्यक्तियों A और B के बीच X और Y दो वस्तुओं के इष्टतम विनिमय का बिन्दु E नहीं है। आइए, हम ऐसे बिन्दु को ढूँढने का प्रयत्न करें, जहाँ एक व्यक्ति की स्थिति पहले से अच्छी हो जाए जबकि दूसरे की स्थिति पहले से बुरी न होने पाए।

मान लीजिए कि A तो वस्तु X की और B वस्तु Y की अधिक मात्रा लेना चाहता है। प्रत्येक की स्थिति पहले से अच्छी हो जाएगी और दूसरे की स्थिति बुरी नहीं होगी, बशर्ते कि वह अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे उदासीनता वक्र पर चला जाए। मान लीजिए कि वे E बिन्दु से R बिन्दु पर आ जाते हैं। R बिन्दु पर, A को Y की कुछ थोड़ी मात्रा का परित्याग करने से X की अधिक मात्रा प्राप्त होती है। जबकि B को X की कुछ मात्रा का परित्याग करने पर Y की अधिक मात्रा प्राप्त होती है। B की स्थिति में कोई सुधार नहीं होता क्योंकि वह उसी उदासीनता वक्र B_1 पर रहता है, परन्तु A की स्थिति R पर पहले से बहुत अच्छी है क्योंकि वह A_1 से अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे उदासीनता वक्र A_3 पर आ गया है। पर,

चित्र 47 ।

2 The marginal rate of substitution between any two products must be the same for every individual who consumes both

3 E पर दोनों वक्रों A_1 तथा B_1 की स्पर्श रेखाएं (tangents) खींचकर इसे टैस्ट कर सकते हैं।

यदि A और B दोनो E से P पर आ जाएँ, तो A की स्थिति पहले जैसे ही रहती है क्योकि वह उसी उदासीनता वक्र A_1 पर है। B की स्थिति पहले से बहुत अच्छी हो जाती है क्योकि वह B_1 से B_2 पर चला गया है। केवल उस समय दोनो अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे उदासीनता वक्रो पर होगे, जब वे E से Q पर आ जाएँ।

इस प्रकार P, Q तथा R विनिमय के तीन विचारणीय बिन्दु है। सविदा वक्र (contract curve) CC इन स्पर्श-बिन्दुओ का मार्ग है, जो विनिमय की उन विभिन्न स्थितियो को प्रकट करता है जो X और Y की स्थानापन्नता की सीमान्त दरो मे समानता लाती है। इसलिए CC वक्र पर कोई भी बिन्दु विनिमय की इष्टतम दशा को सतुष्ट करता है। परन्तु सविदा वक्र CC के साथ-साथ दोनो मे से किसी भी दिशा मे गति, एक व्यक्ति को दूसरे की लागत पर पहले से अच्छा बनाती है। इस प्रकार सविदा वक्र पर प्रत्येक बिन्दु, परेटो के अर्थ मे, इष्टतम समाज कल्याण को प्रकट करता है, परन्तु अधिकतम समाज कल्याण का असली इष्टतम बिन्दु अनिश्चित रहता है। यदि सविदा वक्र के Q बिन्दु की स्थिति पर दोनो समझौता कर ले, तो यह **अधिकतम समाज कल्याण** का निश्चित बिन्दु हो सकता है। परन्तु इसमे एक मूल्य निर्णय शामिल है। वास्तव मे, जैसा कि प्रोफेसर बोल्डिग ने बताया है, "इस मान्यता मे कि इष्टतम बिन्दु सविदा वक्र पर ही स्थित होना चाहिए अपने आप मे एक महत्त्वपूर्ण मूल्य निर्णय है कि लोग जो चाहते है, वह उन्हे अवश्य मिलना चाहिए।" यदि मूल्य निर्णय मान लिए जाए तो परेटो का गैर-इष्टतम (non-optimum) बिन्दु, जैसे कि E, अधिकतम समाज कल्याण की स्थिति माना जा सकता है। क्योकि मूल्य निर्णय परेटो की भावना के विरुद्ध है, इसलिए अधिकतम समाज कल्याण की स्थिति अनिश्चित रहती है।

2. साधन स्थानापन्नता की इष्टतम दशा
(THE OPTIMUM CONDITION OF FACTOR SUBSTITUTION)

यह दशा, जो साधनो के इष्टतम आवटन से सबध रखती है, माँग करती है कि **किन्हीं ऐसी दो फर्मों के लिए किन्हीं दो साधनो के बीच तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर समान होनी चाहिए,** जिनके द्वारा उसी वस्तु के उत्पादन के लिए इन दोनो साधनो का प्रयोग किया जाता है।[4] सममात्रा वक्र के किसी भी बिन्दु पर तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर, उत्पादन के दिए हुए स्तर को बनाए रखने के लिए, एक के स्थान पर दूसरे साधन की स्थानापन्नता-दर होती है। इस स्थिति को ऊपर के बक्स चित्र 47.1 मे दिखाया जा सकता है, जहाँ हम X और Y को दो साधन मान सकते है और A तथा B दो फर्में। मान लीजिए A_1, A_2 और A_3 फर्म A के सममात्रा वक्र (isoquants) है और B_1, B_2 और B_3 फर्म B के सममात्रा वक्र। सममात्रा वक्रो की ढलान X और Y के बीच तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर (MRTS) को व्यक्त करती है। मान लीजिए कि E बिन्दु पर प्रारम्भिक उत्पादन का सगठन होता है। इस स्तर पर, वस्तु की A_1 इकाइयो का उत्पादन करने के लिए, A फर्म X की $OaXa$ तथा Y की $OaYa$ इकाइयो का प्रयोग करती है। इसी प्रकार उसी वस्तु की B_1 इकाइयो का उत्पादन करने के लिए B फर्म X की $ObXb$ तथा Y की $ObYb$ इकाइयो का प्रयोग करती है। परन्तु E बिन्दु पर दोनो साधनो के बीच तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर समान नहीं है। सममात्रा वक्रो के बीच स्पर्श बिन्दुओ की गति के द्वारा ही साधनो के इष्टतम आवटन की शर्त पूरी होती है। CC रेखा ऐसी P Q और R स्पर्श रेखाओ के मार्ग को प्रकट करती है। इस प्रकार CC वक्र के किसी भी बिन्दु पर प्रत्येक साधन का इष्टतम उपयोग हो जाएगा।

फिर CC वक्र के साथ दोनो मे से किसी भी दिशा मे गति, एक फर्म के उत्पादन को दूसरी फर्म

4 The marginal rate of technical substitution (MRTS) between any two factors must be the same for any two firms using both these factors to produce the same product

की लागत पर बढ़ाती है। इसलिए यह दशा यह संकेत करती है कि साधन चाहे किसी भी संयोग में प्रयोग किए जाएँ, वह संयोग दक्ष (efficient) होगा।

3. विशेषीकरण की इष्टतम कोटि की दशा (THE CONDITION OF OPTIMUM DEGREE OF SPECIALISATION)

इस दशा के लिए, आवश्यक है कि "किन्हीं दो वस्तुओं का उत्पादन करने वाली दो फर्मों के लिए उन दो वस्तुओं के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर समान हो।"[5] रूपान्तरण की सीमान्त दर (MRT) वह दर है जिस पर एक वस्तु का परित्याग करना पड़ेगा ताकि संसाधनों की उसी मात्रा से दूसरी वस्तु का अधिक मात्रा में उत्पादन किया जा सके। यह एक चित्र में किसी बिन्दु पर रूपान्तरण वक्र के ढलान के द्वारा मापी जाती है। यह स्थिति उस समय संतुष्ट होती है, जब दोनों वस्तुओं का ऐसे संयोगों में उत्पादन किया जाए कि रूपान्तरण वक्रों के ढलान बराबर हों।
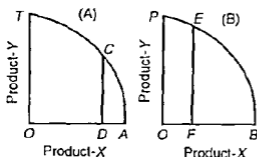
चित्र 47.2

इसे सिद्ध करने के लिए, मान लीजिए कि क्रमश चित्र 47.2 (A) और (B) में फर्म *A* का रूपान्तरण वक्र *TA* तथा फर्म *B* का रूपान्तरण वक्र *PB* है। रूपान्तरण वक्र या उत्पादन संभावना वक्र (production possibility curve) पर प्रत्येक बिन्दु दो वस्तुओं की अधिकतम संभव मात्राओं को एक साथ प्रकट करता है। क्योंकि यह मूल बिन्दु के नतोदर (concave) है, इसलिए इसका मतलब है कि एक वस्तु का अधिक उत्पादन करने के लिए दूसरी वस्तु की अधिक मात्रा का परित्याग करना पड़ेगा।
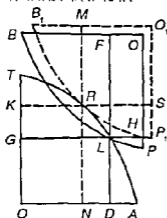
चित्र 47.3

मान लीजिए कि फर्म *A*, वस्तु *X* की *OD* मात्रा और वस्तु *Y* की *DC* मात्रा का उत्पादन करती है और फर्म *B*, वस्तु *X* की *OF* और *Y* की *FE* मात्रा का उत्पादन करती है। दोनों फर्म वस्तु *X* तथा *Y* की क्रमश $OD + OF$ तथा $DC + FE$ के बराबर कुल मात्राओं का उत्पादन करती हैं। चित्र 47.2 (B) को चित्र 47.2 (A) के ऊपर रखकर, *X* और *Y* की इन कुल मात्राओं को चित्र 47.3 में दिखाया गया है। ये मात्राएँ क्रमश *GH* तथा *FD* हैं। क्योंकि दोनों रूपान्तरण वक्र *TA* तथा

5 The marginal rate of transformation between any two products must be the same for any two firms that produce both

PB एक दूसरे को L बिन्दु पर काटते है, इसलिए रूपान्तरण की सीमान्त दर बराबर नहीं है। अत L बिन्दु इष्टतम दशा का बिन्दु नहीं है क्योंकि दोनों वक्र एक-दूसरे की स्पर्श रेखाएँ नहीं है। परन्तु यदि ऊपर स्थित चित्र को थोडा-सा ऊपर को सरका दिया जाए जैसाकि बिन्दुकित चित्र द्वारा दिखाया गया है ताकि इसका रूपान्तरण वक्र P_1B_1 बिन्दु R पर TA को स्पर्श करे, तो दोनो वक्रो के ढलान मेल खाते है। यह दशा सतुष्ट हो जाती है क्योंकि R पर दोनो वस्तुओं के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर समान है। दोनों फर्मों के लिए यह विशेषीकरण की इष्टतम दशा है क्योंकि उनके द्वारा उत्पादन की गई X की कुल मात्रा $KS > GH$ से तथा Y की कुल मात्रा $MN > FD$ से। यह बात नहीं कि दोनो फर्मों के लिए R ही उत्पादन का एकमात्र इष्टतम बिन्दु है। वास्तव मे, इष्टतम सयोग की ऐसी कई शृखलाएँ (series) हो सकती है, जहाँ दोनो रूपान्तरण वक्र एक-दूसरे को स्पर्श कर सकते है।

4. इष्टतम साधन-वस्तु उपयोग की दशा
(THE CONDITION OF OPTIMUM FACTOR-PRODUCT UTILISATION)

इस दशा मे, "किसी एक साधन तथा किसी एक वस्तु के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर किन्हीं दो फर्मों के लिए समान होनी चाहिए जोकि उस साधन का प्रयोग तथा वस्तु का उत्पादन करती हैं।"[6] इसका मतलब है कि एक विशेष वस्तु के उत्पादन करने में किसी साधन की सीमान्त उत्पादकता सब फर्मों के लिए समान होनी चाहिए। यदि एक वस्तु का उत्पादन करने के लिए एक साधन की सीमान्त उत्पादकता कम हो, तो साधन की कुछ इकाइयो को अधिक उत्पादक फर्म मे स्थानान्तरण करने से कुल उत्पादन बढ जाएगा। इसे चित्र 47.4 की सहायता से स्पष्ट किया जा रहा है। मान लीजिए कि फर्म A का रूपान्तरण वक्र OA है और फर्म B का रूपान्तरण वक्र OB, जिसे OA रूपान्तरण वक्र के ऊपर इस ढग से उलट कर स्थित किया गया है कि अक्ष एक-दूसरे के समानान्तर रहते है। वास्तव मे, ये कुल

चित्र 47.4

उत्पादकता वक्र है और इनके ढलान दिए हुए साधन को वस्तु मे परिवर्तित करने की सीमान्त दर को प्रकट करते है। दो फर्मों द्वारा उत्पादन की जा रही Z वस्तु को अनुलम्ब अक्ष पर और इसके उत्पादन मे प्रयोग किए साधन L को क्षैतिज अक्ष पर लिया गया है। दोनों रूपान्तरण वक्रो को आपस मे काटने का F बिन्दु इष्टतम दशा का बिन्दु नहीं है क्योंकि वे दोनो वक्र एक-दूसरे के स्पर्शीय नहीं है। इष्टतम दशा प्राप्त करने के लिए OB वक्र को ऊपर की ओर सरकाइए ताकि वह E बिन्दु पर $O1$ वक्र को स्पर्श करे। यह इष्टतम साधन-वस्तु उपभोग का बिन्दु है क्योंकि OA तथा O_1B_1 दोनो रूपान्तरण वक्रो के ढलान बराबर है और वस्तु की मात्रा अब DC से बढकर KH हो गई है।
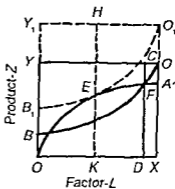
5 वस्तु स्थानापन्नता की इष्टतम दशा
(THE OPTIMUM CONDITION OF PRODUCT SUBSTITUTION)

वस्तु स्थानापन्नता की इष्टतम दशा के लिए आवश्यक है कि "किन्हीं दो वस्तुओ का उपभोग करने

6 The marginal rate of transformation between any factor and any product must be the same for any pair of firms using the factor and producing the product

वाले किसी भी व्यक्ति के लिए उन वस्तुओं के बीच स्थानापन्नता की सीमान्त दर उनके बीच (समुदाय के लिए) रूपान्तरण सीमान्त दर के बराबर हो।"[7] इसका मतलब है कि दो वस्तुओ के बीच स्थानापन्नता की सीमान्त दर उनके बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर के बराबर होनी चाहिए। इसे चित्र 47 5 मे दिखाया गया है। मान लीजिए कि AB वक्र दो वस्तुओ X तथा Y के बीच समुदाय रूपान्तरण वक्र (community transformation curve) है। इस चित्र मे O_1X_1 तथा O_1Y_1 को अक्ष मानकर, दो वस्तुओ के व्यक्तिगत उपभोक्ता के उदासीनता वक्र I_1 तथा I_2 के रूप मे प्रकट किए गए है।

चित्र 47.5
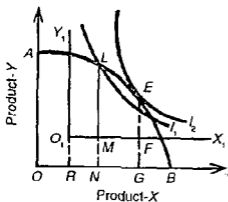
मान लीजिए कि उत्पादन L पर होता है, जहाँ समुदाय X की ON तथा Y की NL मात्राओं का उत्पादन करता है और उपभोक्ता X की O_1M तथा Y की ML मात्राएँ खरीदता है। परन्तु सामाजिकता की दृष्टि से L इष्टतम बिन्दु नहीं क्योंकि उस पर रूपान्तरण की सीमान्त दर (MRT) स्थानापन्नता की सीमान्त दर (MRS) के बराबर नहीं है। AB तथा I_1 वक्र एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते है। L से E पर परिवर्तन, AB तथा I_2 वक्रो को समान बना देता है। इस प्रकार E बिन्दु उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों के लिए इष्टतम स्थिति को व्यक्त करता है, क्योकि MRS = MRT इसका मतलब है कि वह दर जिस पर उपभोक्ता X को Y के स्थान पर स्थानापन्न करने के लिए तैयार है, उस दर के बराबर है जिस पर उत्पादक X को Y मे रूपान्तरित कर सकते है। हमारे चित्र की भाषा मे, जब उपभोक्ता अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे उदासीनता वक्र I_2 पर आ जाता है, जो E बिन्दु पर रूपान्तरण वक्र का स्पर्श- रेखीय (tangential) है, तो समुदाय द्वारा उत्पादन की गई X की OG तथा Y की GE मात्राओ मे से उपभोक्ता क्रमश X की O_1F तथा Y की FE मात्राओ का उपभोग करता है। X की OR तथा Y की GF शेष मात्राएँ समुदाय के अन्य उपभोक्ताओ के लिए बच जाती है।

6. साधन-प्रयोग की तीव्रता के लिए इष्टतम दशा (THE OPTIMUM CONDITION FOR INTENSITY OF FACTOR USE)

किसी भी दी हुई समय की अवधि मे एक साधन के इष्टतम आवटन से इस दशा का सबध है। इसके लिए आवश्यक है कि काम के पुरस्कार तथा अवकाश के बीच स्थानापन्नता की सीमात दर काम के घटो और परिणामी वस्तु के बीच रूपान्तरण की सीमात दर के बराबर हो।[8] दी हुई समय की एक अवधि मे एक व्यक्ति को काम और अवकाश मे से चुनाव करने की समस्या का हमेशा सामना करना पडता है। यदि वह अधिक अवकाश का उपभोग करता है, तो उसे काम के लिए कम आय प्राप्त होती है और विलोमश । क्योंकि अवकाश और आय मे विपरीत सबध है, इसलिए उसका

7 The marginal rate of substitution between any pair of products for any person consuming both must be the same as the marginal rate of transformation (for the community) between them

8 The marginal rate of substitution between the rate of reward for work and leisure must be equal to the marginal rate of transformation between hours of work and the resulting product

एक उदासीनता मानचित्र होता है जो अवकाश तथा आय के विभिन्न सयोगो को प्रकट करता है। एक उदासीनता वक्र पर प्रत्येक विन्दु अवकाश और आय के बीच स्थानापन्नता की सीमात दर को प्रकट करता है। इसी प्रकार, साधन इकाई के प्रत्येक मालिक का वस्तु तथा उत्पादन में सहायक साधन इकाई के बीच खर्च विए गए समय का एक रूपान्तरण वक्र होता है। इस वक्र पर प्रत्येक बिन्दु वस्तु और काम के घटो के बीच रूपातरण की सीमात दर को व्यक्त करता है। इस दशा की सतुष्टि के लिए काम और अवकाश के बीच स्थानापन्नता की सीमात दर, काम और वस्तु के बीच रूपान्तरण की सीमात दर के बराबर होनी चाहिये। यदि अवकाश और काम के बीच स्थानापन्नता की सीमात दर की अपेक्षा काम ओर वस्तु के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर अधिक है, तो साधन इकाई के समय को अवकाश से काम मे स्थानान्तरित करके वस्तु के उत्पादन को बढाया जा सकता है। इष्टतम दशा उस समय आती है, जब एक साधन-स्वामी को भुगतान किया गया पुरस्कार साधन की सीमात उत्पादकता के मूल्य के बराबर होता है। इसे चित्र 47 6 की सहायता से स्पष्ट किया जाता है।

TC काम और उत्पादन का रूपान्तरण वक्र है। *C* को साधन का शून्य विन्दु मानकर, साधन इकाइयाँ *समानांतर अक्ष पर दाएँ से बाएँ को क्षैतिज रूप मे* मापी गई है। उत्पादन इकाइयाँ अनुलब अक्ष पर मापी गई है। इस प्रकार, *TC* वक्र काम ओर उत्पादन के बीच रूपान्तरण की घटती सीमान्त दर को प्रकट करता है। दूसरी ओर, प्रत्येक उदासीनता वक्र आय (काम से) ओर अवकाश के विभिन्न सयोगो को दर्शाता है। इम अवस्था मे, आय को क्षैतिज अक्ष के साथ ओर अवकाश को (घटो मे) अनुलब अक्ष पर मापा गया है। उदासीनता वक्र की उन्नतोदरता (convexity) आय और अवकाश के बीच स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर को व्यक्त करती है। यह सीमान्त दशा उस विन्दु पर सतुष्ट होती है, जहाँ रूपान्तरण वक्र तथा उदासीनता वक्र एक-दूसरे के स्पर्शरेखीय (tangent) है अर्थात् जहाँ उनकी ढलाने समान है। स्पष्ट है कि *L* बिन्दु इष्टतम स्थिति का बिन्दु नहीं हो सकता क्योकि इस बिन्दु पर *TC* तथा I_1 वक्र आपस मे एक-दूसरे को काटते है। आय (काम से) और अवकाश के बीच स्थानापन्नता की सीमान्त दर तथा काम और उत्पादन मे रूपान्तरण की सीमान्त दर केवल तभी समान होती है जब व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे उदासीनता वक्र *I* पर आ जाता है, जहाँ पर I_2 वक्र *P* विन्दु पर *TC* वक्र के स्पर्श-रेखीय है। इस प्रकार यह दशा *P* बिन्दु पर सतुष्ट होती है।
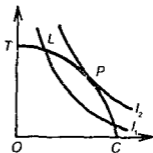
चित्र 47.6

7. इष्टतम अन्त कालिक दशा
(THE OPTIMUM INTERTEMPORAL CONDITION)

इस दशा के लिए आवश्यक है कि "साधनो और वस्तुओ के प्रत्येक जोडो के बीच रूपान्तरण की सीमात अल्पकालिक दर तथा साधनो के प्रत्येक जोडे के बीच और वस्तुओ के प्रत्येक जोडे के बीच स्थानापन्नता की सीमात अल्पकालिक दर भी अवश्य जोखिमरहित प्रतिभूतियो पर ब्याज की दर

के बराबर होनी चाहिए।"[9] इसलिए, जोखिम या अनिश्चितता के अभाव मे उत्पादको के बीच ऋण के लेने तथा ऋण देने से इस दशा का सम्बन्ध है। इस दशा का मतलब है कि ब्याज की वह दर, जिस पर एक व्यक्तिगत उत्पादन एक दी हुई पूजी की मात्रा उधार लेने को तैयार है, उधार लेने वाले उत्पादक के लिए उस (पूँजी) की सीमात उत्पादकता के बराबर होनी चाहिए। इसे चित्र 47 6 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। समानातर अक्ष मुद्रा को आय के रूप मे और अनुलब अक्ष क्रय शक्ति के रूप मे, प्रत्येक भिन्न-भिन्न समय पर, मापता है। I_1 तथा I_2 व्यक्तिगत ऋणदाता के भिन्न-भिन्न आय स्तरो से सम्बन्धित 'समय (काल) उदासीनता वक्र' है। काल उदासीनता के वक्र पर प्रत्येक विन्दु वर्तमान तथा भविष्य की आयो के बीच स्थानापन्नता की घटती सीमात दर को व्यक्त करता है। इसका मतलब है कि व्यक्ति आय की हर उस इकाई पर अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा प्रतिफल (प्रीमियम) चाहता है जिसे वह भविष्य मे प्रयोग के लिए छोडता है। *TC* व्यक्तिगत ऋणी का 'काल-उत्पादन सभावना वक्र' (time production possibility curve) है। इस नतोदर (concave) वक्र पर प्रत्येक विन्दु कालपर्यन्त (through time) पूँजी की घटती सीमात उत्पादकता को प्रकट करता है। यह दशा उस समय सतुष्ट होती है जब काल उदासीनता वक्र तथा काल उत्पादन सभावना वक्र एक-दूसरे के स्पर्शरेखीय होते है। क्योकि दोनो वक्र L पर एक-दूसरे को आपस मे काटते है, इसलिए वह इष्टतम दशा का विन्दु नहीं हो सकता। P विन्दु इष्टतम दशा को प्रकट करता है क्योंकि इस विन्दु पर TC ओर I_2 वक्रो की ढलाने समान है।

इन सब सीमान्त स्थितियो को एक सम्पूर्ण सिद्धान्त मे यू इकट्ठा किया जा सकता है **किन्हीं दो वस्तुओं और साधनो के बीच स्थानापन्नता की सीमात दरें उनके रूपान्तरण की सीमांत दरो के बराबर और उनकी कीमतो के अनुपात एक-दूसरे के बराबर होने आवश्यक हैं।**

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)—ये सीमान्त या प्रथम कोटि दशाएँ (marginal or first order conditions) अधिकतम कल्याण तक पहुँचने के लिए आवश्यक हें, पर कल्याण अधिकतम के लिए पर्याप्त नहीं है। उनकी अपेक्षा ये वास्तव मे न्यूनतम दशा पर ले जा सकती हे। उन्नतोदर (convex) रूपान्तरण वक्र तथा नतोदर (concave) उदासीनता वक्र आर्थिक न्यूनतम (economic minimum) को व्यक्त करेंगे। इसलिए, अधिकतम कल्याण प्राप्त करने के लिए प्रथम कोटि दशाओ के साथ द्वितीय कोटि दशाओं को सतुष्ट करने की जरूरत रहती है। द्वितीय कोटि दशाओं के लिए आवश्यक है कि सब उदासीनता वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर और सब रूपान्तरण वक्र मूल विन्दु के नतोदर हो। परन्तु दोनो दशाओ की सतुष्टि से भी अधिकतम स्थिति की प्राप्ति निश्चित नहीं हो सकती। जैसाकि प्रोफेसर बोल्डिग ने सकेत किया है, "सीमात दशाओ मे ऐसा कुछ नहीं जो राई ओर पहाड (एक पहाडी के शिखर और माउन्ट एवरेस्ट) मे अन्तर कर सके।" इसलिए हिक्स की कल्याण की कुल दशाएँ सतुष्ट होनी चाहिए, जो, यदि हम बोल्डिग द्वारा दिए गए रूपक का प्रयोग करे तो एवरेस्ट शिखर का पता लगा लेती है। कुल दशाओ (total conditions) के लिए आवश्यक है कि "यदि कल्याण को अधिकतम होना है, तो यह असभव होना चाहिए कि जिसका अन्यथा उत्पादन नहीं हुआ हे उस वस्तु के उत्पादन से, अथवा जिसका अन्यथा प्रयोग नहीं हुआ है उस साधन का प्रयोग करके कल्याण को बढाया जा सके।" डॉ. मिशन (Dr Mishan) इन कुल दशाओ को 'सत्य पर्याप्त दशाएँ' (true sufficient conditions) मानता है जोकि, यदि सीमात तथा द्वितीय कोटि दशाओ के साथ सतुष्ट हो जाएँ तो आर्थिक कल्याण के अधिकतमीकरण तक ले जा सकती है। परन्तु अधिकतम, कई इष्टतम दशाओ मे से एक हो सकती है। इस प्रकार कुल दशाओं मे मूल्य निर्णय विद्यमान रहते है, जबकि परेटो इष्टतम की परिमापी सीमात दशाएँ मूल्य निर्णयों को

9 The marginal temporal rate of transformation between every pair of factors and products as well as the marginal temporal rate of substitution between every pair of factors and between every pair of products must be equal to the rate of interest on riskless securities

निकाल देती है। वास्तव मे, सीमाल दशाएँ भी मूल्य निर्णयो से मुक्त नहीं है। (चित्र 47 1 में) सविदा वक्र पर प्रत्येक बिन्दु परेटो इष्टतम को प्रकट करता है और उनमे से चुनाव करने मे मूल्य निर्णय विद्यमान रहते हैं।

सब सीमात दशाए पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत पूर्णरूप से सतुष्ट होती है। परन्तु वास्तविकता मे पूर्ण प्रतियोगिता की ये आवश्यकताए कभी भी पूरी नहीं होती है क्योकि अल्पाधिकार, द्वयाधिकार तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता वास्तविक जगत मे पाये जाते हैं। परन्तु एकाधिकार (या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता) के अन्तर्गत परेटो की इष्टतम दशाएँ कभी प्राप्त नहीं हो सकतीं क्योकि भिन्न-भिन्न उपभोक्ताओ की स्थानापन्नता की सीमान्त दरे समान नहीं होगी, भिन्न-भिन्न फर्मों की रूपान्तरण की सीमान्त दरे समान नहीं होगी, वस्तुओं और साधनो के बीच स्थानापन्नता की सीमान्त दरे उनके रूपान्तरण की सीमान्त दरो के बराबर नहीं होंगी, और न ही उनकी कीमतो के अनुपात समान होगे। सीमान्त दशाओ के सन्तुष्ट न होने का प्रमुख कारण यह है कि एकाधिकार के अन्तर्गत कीमन हमेशा सीमान्त लागत से अधिक होती है, $P > MC = MR$, जिससे ससाधनों का कुआबटन हो जाता है।

समाजवादी हल (The Socialist Solution)—क्योकि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत परेटो इष्टतमता की दशाए सतुष्ट नहीं होती है, इसलिए यह इस तर्क को शक्ति प्रदान करता है कि प्रत्येक परेटो इष्टतम आवटन पूर्ण प्रतियोगी होता है और प्रत्येक प्रतियोगी सतुलन परेटो इष्टतम है। परन्तु जैसा कि डा मिशन ने स्पष्ट किया है "इष्टतम दशाओ को प्राप्त करने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता न तो आवश्यक और न ही पर्याप्त शर्त है।" इसलिए लैग और लर्नर जैसे अर्थशास्त्रियो ने यह सिद्ध किया है कि समाजवाद के अन्तर्गत परेटो इष्टतम प्राप्त करने के लिए दक्ष ससाधन आवटन सभव है। यदि पूजीवाद मे उत्पादन के साधनो का स्वामित्व समाप्त कर दिया जाता है तो पूजीवाद की तरह समाजवाद स्थितियो का निर्माण कर सकता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था मे, योजना सत्ता पूजीवादी मार्किट का स्थान लेती है तथा वस्तुओ ओर सेवाओ की कीमतो के समायोजन द्वारा उनकी माग और पूर्ति को बराबर करती है। ससाधनो के विवेकपूर्ण आवटन को परीक्षण-प्रणाली (trial and error) द्वारा लेखाकन (accounting) कीमते स्थापित करके प्राप्त किया जाता है। तब प्लाट प्रबधको को सीमात नियम का अनुसरण करने के निर्देश देकर इष्टतम उत्पादन और इष्टतम साधन अनुपात प्राप्त किए जा सकते है। जब इस प्रकार एक बार आवटन दक्षता प्राप्त कर ली जाती है तो कल्याण की इष्टतम दशाए पूर्णरूप से सतुष्ट हो जाती है।

प्रश्न

1 दो उपभोक्ता (A और B) दो पदार्थों (X और Y) की एक स्थिर मात्रा के भागी है और आपस मे विनिमय कर रहे है। एक चतुष्कोणी रेखाचित्र मे दिखाइए कि सविदा वक्र पर पहुँचने तक विनिमय चलता रहेगा। क्या इस वक्र पर दोनो की कुल उपयोगिता अधिकतम होगी? इस वक्र पर उनकी स्थिति कैसे निर्धारित होगी?

2 कल्याण इष्टतम की क्या दशाए (शर्तें) है? क्या इन शर्तों को सतुष्ट करने के लिए समाजवाद आवश्यक है?

3 स्थैतिक अवस्था मे इष्टतम सामान्य कल्याण की सीमात और कुल दशाओ की व्याख्या और विवेचना करिए।

अध्याय 48

परेटो इष्टतमता और पूर्ण प्रतियोगिता
(PARETO OPTIMALITY AND PERFECT COMPETITION)

1. प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत परेटो इष्टतम सभव होता है। इसलिए अर्थशास्त्री यह मानते है कि "प्रत्येक प्रतियोगितामूलक सतुलन परेटो इष्टतम और प्रत्येक परेटो इष्टतम प्रतियोगितामूलक सतुलन होता है।"[1] इसको समझने के लिए हम पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत परेटो इष्टतमता प्राप्त करने हेतु आवश्यक दशाओ (अथवा शर्तो) का अध्ययन करते है।

एक आवटन परेटो इष्टतम होता है यदि कम से कम एक व्यक्ति की स्थिति खराब किये बिना ससाधनो का पुर्नावटन सभव नहीं होता है।[2] परेटो इष्टतमता का सबध विनिमय या उपभोग मे दक्षता, उत्पादन मे दक्षता, और समग्र परेटो दक्षता (अथवा उपभोग और उपभोग दोनो मे दक्षता) से सबधित है। इनकी विवेचना नीचे की जाती है।

1. विनिमय मे दक्षता (Efficiency in Exchange)

परेटो इष्टतमता की प्रथम दशा का सबध विनिमय अथवा उपभोग मे दक्षता से है। इसके लिए शर्त यह है कि "प्रत्येक व्यक्ति के लिए किन्हीं दो वस्तुओ के बीच स्थानापन्नता की सीमात दर समान होनी चाहिए जिनका वह उपभोग करता है।" इसका मतलब है कि दो उपभोक्ता वस्तुओ के बीच स्थानापन्नता की सीमात दर (MRS) अवश्य उनकी कीमतो के अनुपात के बराबर होनी चाहिए। क्योकि पूर्ण प्रतियोगिता मे प्रत्येक उपभोक्ता अपनी उपयोगिता को अधिकतम करने का उद्देश्य रखता है, इसलिए वह दो वस्तुओ X और Y के लिए अपनी MRS को उनके कीमत अनुपात (P_X/P_Y) के बराबर करेगा।

मान लीजिए कि दो उपभोक्ता A और B है जो दो वस्तुए X और Y खरीदते है और प्रत्येक के सामने कीमत अनुपात P_X/P_Y है। अत A उपभोक्ता X और Y का चुनाव इस प्रकार करेगा कि उसकी $_AMRS_{XY} = P_X/P_Y$। इसी प्रकार, B उपभोक्ता X और Y का चुनाव इस प्रकार करेगा कि उसकी $_BMRS_{XY} = P_X/P_Y$। इसलिए, विनिमय मे दक्षता की शर्त है $_AMRS_{XY} = {_BMRS_{XY}} = P_X/P_Y$।

बाक्स चित्र 48.1 विनिमय की इष्टतम दशा की व्याख्या करता है। A और B दो व्यक्तियो को लीजिए, जिनके पास क्रमश X और Y वस्तुओ की निश्चित मात्राएँ है। O_A उपभोक्ता A का मूल

1 Every competitive equilibrium is a Pareto-optimum and every Pareto-optimum is a competitive equilibrium

2 An allocation is Pareto-optimal if it is not possible to reallocate resources without making at least one person worse off

बिन्दु है और O_b उपभोक्ता B का मूल बिन्दु है (समझने के लिए चित्र को उलटकर देखिए)। दोनो अक्षों O_a तथा O_b की अनुलंब भुजाएँ वस्तु Y को प्रकट करती है और क्षैतिज भुजाएँ वस्तु X को। A_1, A_2 और A_3 वक्र A उदासीनता मानचित्र को प्रकट करते है और B_1, B_2 और B_3 वक्र B के उदासीनता मानचित्र को। इस बक्स के भीतर का कोई भी बिन्दु दोनो व्यक्तियो के बीच दोनो वस्तुओ के सभव वितरण को प्रकट करता है। बिन्दु E को लीजिए, जहाँ A_1 तथा B_1 उदासीनता वक्र आपस मे काटते है। इस स्थिति पर, A के पास Y वस्तु की $O_a Y_a$ इकाइयाँ और X वस्तु की $O_a X_a$ इकाइयाँ है। B को Y की $O_b Y_b$ तथा X की $O_b X_b$ इकाइयाँ प्राप्त होती है। E बिन्दु पर, दोनों वस्तुओ के बीच स्थानापन्नता की सीमान्त दर उनकी कीमतो के अनुपात के बराबर नहीं है क्योकि दोनो वक्रो का ढलान बराबर नहीं है। इसलिए, दो व्यक्तियो A और B के बीच X और Y दो वस्तुओ के इष्टतम विनिमय का बिन्दु E नहीं है। आइए, हम ऐसे बिन्दु को ढूँढने का प्रयत्न करे, जहाँ एक व्यक्ति की स्थिति पहले से अच्छी हो जाए जबकि दूसरे की स्थिति पहले से बुरी न होने पाए।

चित्र 48 1

मान लीजिए कि A तो वस्तु X की और B वस्तु Y की अधिक मात्रा लेना चाहता है। प्रत्येक की स्थिति पहले से अच्छी हो जाएगी और दूसरे की स्थिति बुरी नहीं होगी, बशर्ते कि वह अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे उदासीनता वक्र पर चला जाए। मान लीजिए कि वे E बिन्दु से R बिन्दु पर आ जाते है। R बिन्दु पर, A को Y की कुछ थोडी मात्रा का परित्याग करने से X की अधिक मात्रा प्राप्त होती है। जबकि B को X की कुछ मात्रा का परित्याग करने पर Y की अधिक मात्रा प्राप्त होती है। B की स्थिति मे कोई सुधार नहीं होता क्योकि वह उसी उदासीनता वक्र B_1 पर रहता है, परन्तु A की स्थिति R पर पहले से बहुत अच्छी है क्योकि वह A_1 से अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे उदासीनता वक्र A_3 पर आ गया है। पर, यदि A और B दोनो E से P पर आ जाएँ, तो A की स्थिति पहले जैसे ही रहती है क्योकि वह उसी उदासीनता वक्र A_1 पर है। B की स्थिति पहले से बहुत अच्छी हो जाती है क्योकि वह B_1 से B_3 पर चला गया है। केवल उस समय दोनो अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे उदासीनता वक्रो पर होगे, जब वे E से Q पर आ जाएँ।

इस प्रकार P, Q तथा R विनिमय के तीन विचारणीय बिन्दु हैं। सविदा वक्र (contract curve) CC इन स्पर्श-बिन्दुओ का मार्ग है, जो विनिमय की उन विभिन्न स्थितियों को प्रकट करता है जो X और Y की स्थानापन्नता की सीमान्त दरो मे समानता लाती है। इसलिए CC वक्र पर कोई भी बिन्दु विनिमय की इष्टतम दशा को सतुष्ट करता है। परन्तु सविदा वक्र CC के साथ-साथ दोनो मे से किसी भी दिशा मे गति, एक व्यक्ति को दूसरे की लागत पर पहले से अच्छा बनाती है। इस प्रकार सविदा वक्र पर प्रत्येक बिन्दु, परेटो के अर्थ मे, इष्टतम समाज कल्याण को प्रकट करता है।

2 उत्पादन मे दक्षता (Efficiency in Production)

परेटो इष्टतमता के लिए दूसरी शर्त उत्पादन मे दक्षता से सबधित है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादन मे दक्षता दिखाने के लिए तीन आवटन नियम है।
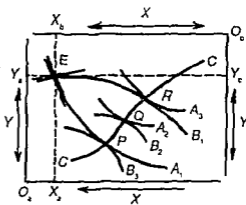
प्रथम नियम (First Rule)—प्रथम नियम का सबंध साधनों के इष्टतम आबटन से है। इसके अनुसार, किन्हीं दो साधनों के बीच तकनीकी स्थानापन्नता की सीमात दर (MRTS), किन्हीं दो फर्मों द्वारा उन साधनों के प्रयोग से एक ही वस्तु का उत्पादन करने के लिए, बराबर होनी चाहिए। मान लीजिए कि दो फर्में A और B है जो एक वस्तु उत्पादित करने के लिए श्रम (L) और पूजी (K) दो साधनों का प्रयोग करती है। दोनों साधनों की कीमते दी होने पर, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म सतुलन में होती है जब एक सममात्रा (isoquant) वक्र की ढलान समलागत (isocost) रेखा की ढलान के बराबर होती है। एक सममात्रा वक्र की ढलान श्रम और पूजी की MRTS है और समलागत रेखा की ढलान श्रम और पूजी की कीमतों का अनुपात है। अत फर्म A की सतुलन की शर्त है $_{A}MRTS_{LK} = P_L/P_K$ और फर्म B की $_{B}MRTS_{LK} = P_L/P_K$ इस प्रकार, उत्पादन मे दक्षता का प्रथम नियम है $_{A}MRTS_{LK} = {}_{B}MRTS_{LK} = P_L/P_K$

द्वितीय नियम (Second Rule)—इस नियम के अनुसार "किसी एक साधन तथा किसी एक वस्तु के बीच रूपान्तरण की दर किन्हीं दो फर्मों के लिए समान होनी चाहिए जो कि उस साधन का प्रयोग तथा वस्तु का उत्पादन करती है।" इसका मतलब है कि एक विशेष वस्तु के उत्पादन करने मे किसी साधन की सीमात उत्पादकता सब फर्मों के लिए समान होनी चाहिए। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म उत्पादन के एक साधन को उस बिन्दु तक लगाएगी जिस पर उसका सीमात मूल्य उत्पाद (VMP) उसकी कीमत के बराबर होता है। यदि फर्म A मे वस्तु X के उत्पादन मे साधन L (श्रम) का सीमात भौतिक उत्पाद MP है, तो इसका VMP = MP गुणा वस्तु X की कीमत, अर्थात् VMP = $_{A}MP_{XL}\ P_X$ इस प्रकार, फर्म A मे श्रम की कीमत (P_L) है

$$P_L = {}_{A}MP_{XL}\ P_X \text{ or } P_L/P_X = {}_{A}MP_{XL} \qquad (1)$$

इसी प्रकार फर्म B मे श्रम की कीमत (P_L) है

$$P_L = {}_{B}MP_{XL}\ P_X \text{ or } P_L/P_X = {}_{B}MP_{XL} \qquad (2)$$

क्योकि दोनो फर्मों मे श्रम की कीमत (P_L) और वस्तु की कीमत (P_X) समान है, इस लिए प्रत्येक फर्म अपनी MP को P_L/P_X के बराबर करेगी। इस प्रकार, समीकरण (1) और (2) से

$$_{A}MP_{XL} = {}_{B}MP_{XL} = P_L/P_X$$

अत सतुलन मे प्रत्येक फर्म की समान वस्तु X उत्पादित करने मे साधन श्रम (L) की समान MP होती है।

तृतीय नियम (Third Rule)—उत्पादन में दक्षता के लिए तीसरा नियम यह है कि "किन्हीं दो वस्तुओं का उत्पादन करने वाली दो फर्मों के लिए उन दो वस्तुओं के बीच रूपान्तरण की दर (MRT) समान हो।" यदि दो फर्मे A और B दोनो वस्तुए X और Y उत्पादित करती है तो इस शर्त के अनुसार $_{A}MRT_{XY} = {}_{B}MRT_{XY}$

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक लाभ अधिकतम करने वाली फर्म सतुलन मे होगी जब समआगम (isorevenue) रेखा रूपान्तरण वक्र को स्पर्श करती है। इसका मतलब है कि सतुलन के लिए दो वस्तुओं X और Y के बीच MRT उनके कीमत अनुपात के बराबर हो, अर्थात $MRT_{XY} = P_X/P_Y$ अत फर्म A के लिए इष्टतम दशा होगी $_{A}MRT_{XY} = P_X/P_Y$ और फर्म B के लिए यह होगी $_{B}MRT_{XY} = P_X/P_Y$. इस प्रकार $_{A}MRT_{XY} = {}_{B}MRT_{XY} = P_X/P_Y$

इस नियम की चित्र 48 2 मे व्याख्या की गई है। किन्हीं दो वस्तुओ के बीच MRT वह दर है जिस पर एक वस्तु का परित्याग करना पड़ेगा ताकि ससाधनो की उसी मात्रा से दूसरी वस्तु का अधिक मात्रा मे उत्पादन किया जा सके। इसे चित्र में PP_1 रूपान्तरण (transformation) वक्र की ढलान पर किसी बिन्दु द्वारा मापा जाता है। TR समआगम रेखा है जिसकी ढलान P_X/P_Y को

दर्शाती है। बिन्दु E पर PP_1 रूपान्तरण वक्र की ढलान और TR समआगम रेखा की ढलान दोनो बराबर है जिससे $MRT_{XY} = P_X/P_Y$ अत प्रत्येक फर्म वस्तु X की OX_1 मात्रा को तथा वस्तु Y की OY_1 मात्रा को उत्पादित और बेचकर अपने उत्पाद को इष्टतम बनाती है।

वास्तव मे, Y के लिए X की MRT बराबर है, वस्तु X की सीमात लागत (MC_X) और वस्तु Y की सीमात लागत (MC_Y) के अनुपात के। परन्तु प्रत्येक फर्म उत्पादन का वह स्तर उत्पादित करती है जिस पर इसकी सीमात लागत इसकी कीमत के बराबर होती है। इसलिए, प्रत्येक फर्म के लिए $P_X = MC_X$ और $P_Y = MC_Y$ अत $MC_X/MC_Y = P_X/P_Y$
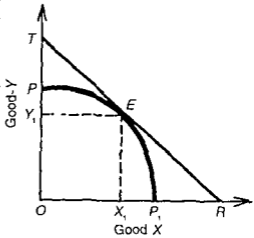
चित्र 48 2

3 **विनिमय और उत्पादन में दक्षता · वस्तु मिश्रण** (Efficiency in Exchange and Production Product Mix)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत परेटो इष्टतमता यह भी अपेक्षित रखती है कि दो वस्तुओ के बीच स्थानापन्नता की सीमात दर (MRS) उनके बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर के अवश्य बराबर हो। इसका मतलब है कि उपभोग और उत्पादन मे इकट्ठी दक्षता। क्योकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उपभोक्ताओ और फर्मों के लिए दो वस्तुओ के कीमत अनुपात समान है, इसलिए सभी व्यक्तियो की MRS सभी फर्मों की MRT के समरूप होगी। परिणामस्वरूप, दोनो वस्तुओ का दक्षता के साथ उत्पादन और विनिमय होगा। समीकरणों के रूप मे $MRS_{XY} = P_X/P_Y$ और $MRT_{XY} = P_X/P_Y$ इसलिए $MRS_{XY} = MRT_{XY}$

चित्र 48 3 उपभोग और उत्पादन मे समग्र परेटो इष्टतमता को चित्रित करता है। PP_1 दो वस्तुओ X और Y के लिए रूपान्तरण वक्र अथवा उत्पादन सभावना सीमा है। PP_1 वक्र पर कोई भी बिन्दु X और Y वस्तुओ के बीच MRT को दर्शाता है जो X और Y को उत्पादित करने की सापेक्ष अवसर लागत को व्यक्त करता है, अर्थात MC_X/MC_Y वक्र I_1 और I_2 उदासीनता वक्र है जो इन दो वस्तुओ के लिए उपभोता रुचियो को बतलाते है। किसी
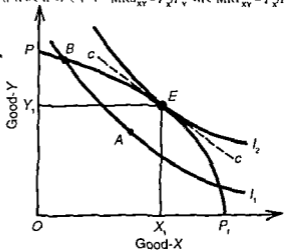
चित्र 48.3

बिन्दु पर उदासीनता वक्र की ढलान X और Y के बीच MRS को दर्शाती है। बिन्दु E पर परेटो इष्टतमता प्राप्त होती है जहा रूपान्तरण वक्र PP_1 और उदासीनता वक्र I_2 की ढलानें बराबर हैं। दोनो वक्रो की ढलानो मे समानता को CC कीमत रेखा द्वारा दिखाया गया है जो यह बताती है कि बिन्दु E पर $MRS_{xy} = MRT_{xy} = P_x/P_y$ अथवा $MU_x/MU_y = MC_x/MC_y = P_x/P_y$

उत्पादन सभावना सीमा PP_1 दी होने पर, अन्य कोई उदासीनता वक्र नहीं है जो परेटो दक्षता को सतुष्ट करता है। बिन्दु A अदक्षता उत्पादन का है क्योकि यह PP_1 वक्र से नीचे है। बिन्दु B उत्पादन सभावना सीमा पर है परन्तु यह नीचे के उदासीनता वक्र I_1 पर है जहा उपभोक्ता की सतुष्टि अधिकतम नहीं होती है। इसलिए, परेटो इष्टतमता केवल बिन्दु E पर ही पाई जाती है जहा उपभोग और उत्पादन दोनो मे दक्षता होती है, जब समाज वस्तु X की OX_1 मात्रा और वस्तु Y की OY_1 मात्रा का उपभोग और उत्पादन करता है।

अत परेटो इष्टतमता की प्राप्ति के लिए आवश्यकता शर्तों का सबध उपभोग मे दक्षता, उत्पादन मे दक्षता और उपभोग एव उत्पादन दोनो मे दक्षता से है। ये शर्ते प्राप्त होंगी यदि (1) प्रत्येक उपभोक्ता और उत्पादक के लिए द्वितीय-क्रम की शर्तें पूरी होती है, (2) कोई उपभोक्ता सतुष्ट नहीं होता है, (3) उपभोग अथवा उत्पादन मे बाह्य प्रभाव नहीं होते है, (4) अविभाज्यताएँ नहीं होती है, तथा साधन और वस्तु मार्किटों मे अपूर्णताए नहीं होती है।

2. परेटो इष्टतमता की अप्राप्यता अथवा मार्किट विफलता (NON-ATTAINMENT OF PARETO OPTIMALITY OR MARKET FAILURE)

परेटो इष्टतमता की दशाए जिन मान्यताओं पर आधारित है (इनका वर्णन ऊपर पैरा मे किया गया है) वे वास्तव मे नहीं पाई जाती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता के कार्यकरण मे अनेक बाधाओं के पाए जाने के कारण परेटो इष्टतमता अप्राप्य होती है। हम इन बाधाओ की नीचे विवेचना करते है जिनसे *मार्किट विफलता* होती है।

1 एकाधिकार (Monopoly)
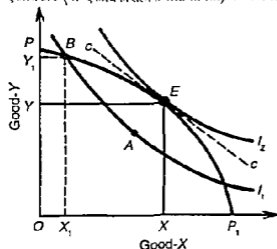
एकाधिकार (या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता) के अन्तर्गत परेटो की इष्टतम दशाएँ कभी प्राप्त नहीं हो सकतीं क्योकि भिन्न-भिन्न उपभोक्ताओं की स्थानापन्नता की सीमान्त दरें समान नहीं होंगी, भिन्न-भिन्न फर्मों की रूपान्तरण की सीमान्त दरें समान नहीं होंगी, वस्तुओ और साधनों के बीच स्थानापन्नता की सीमान्त दरें उनके रूपान्तरण की सीमान्त दरो के बराबर नहीं होंगी, और न ही उनकी कीमतो के अनुपात समान होंगे। सीमान्त दशाओं के सन्तुष्ट न होने का प्रमुख कारण यह है कि एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत हमेशा

चित्र 48.4

सीमान्त लागत से अधिक होती है, $P > MC = MR$, जिससे समाधनों का कुआबटन (malallocation) हो जाता है।

इसकी व्याख्या ऊपर चित्र 48.4 द्वारा की जाती है जहाँ परेटो की विनिमय तथा उत्पादन की इष्टतम दशाएँ बिन्दु E पर पूरी होती हैं। इस बिन्दु पर $MRS_{xy} = MRT_{xy}$ क्योंकि रूपान्तरण वक्र PP_1 की ढलान उदासीनता वक्र I_1 की ढलान के बराबर है जैसाकि स्पर्श रेखा CC दर्शाती है। अब मान लो कि वस्तु X एकाधिकार के अन्तर्गत उत्पादित की जाती है जबकि वस्तु Y पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादित होती है। एकाधिकार उत्पादन बिन्दु B पर होता है जहाँ पूर्ण प्रतियोगिता वस्तु X की कम मात्रा तथा वस्तु Y की अधिक मात्रा उत्पादित की जाएगी। पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु X की OX मात्रा तथा वस्तु Y की OY मात्रा E बिन्दु पर उत्पादित होती है, जबकि एकाधिकार में X की OX_1 मात्रा तथा Y की OY_1 की मात्रा B बिन्दु पर उत्पादित होती है। बिन्दु B पर X की Y के लिए रूपान्तरण की सीमान्त दर (MRT) X की Y के लिए स्थानापन्नता की सीमान्त दर (MRS) से कम है। ऐसा इसलिए कि एकाधिकार में X की कीमत उसकी सीमान्त आगम (MR) से अधिक होती है, $P_x > MR_x$ अत एकाधिकार पाए जाने के कारण परेटो इष्टतमता पूरी नहीं होती है, क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा इसमें X की कम मात्रा उत्पादित होती है।

2. बहिर्भाव (Externalities)

उपभोग तथा उत्पादन में बहिर्भावों के पाए जाने से भी परेटो इष्टतमता अप्राप्य होती है। बहिर्भाव मार्किट अपूर्णताएँ होती हैं जहाँ वस्तु की सेवा या असेवा के लिए कोई कीमत प्रदान नहीं करती है। इन बहिर्भावों से साधनों का कुवितरण होता है जिससे उपभोग या उत्पादन परेटो के इष्टतम स्तर से कम रह जाता है। बहिर्भावों से सामाजिक लागतों और निजी लागतों में तथा सामाजिक लाभों और निजी लाभों में विचलन पाए जाते हैं। जब सामाजिक और निजी लागतों तथा लाभों में विचलन पाए जाते हैं तो परेटो इष्टतमता प्राप्त नहीं होती है।[3]

उपभोग तथा उत्पादन की बाह्य मितव्ययिताओं (External Economies) के अन्तर्गत निजी लाभ की अपेक्षा सामाजिक लाभ अधिक तथा निजी लागत की अपेक्षा सामाजिक लागत कम होती है। इसलिए एक उत्पादक इष्टतम से कम वस्तु का उत्पादन करेगा। एक उत्पादक की स्थिति को चित्र 48.5 में दिखाया गया है जहाँ PMC उद्योग का निजी सीमांत लागत वक्र है। SMC सामाजिक सीमांत लागत वक्र है जिसमें उत्पादन की बाह्य मितव्ययिताएं शामिल हैं। D माँग वक्र है जिसे PMC वक्र बिन्दु E पर काटता है और उत्पादन की वास्तविक मात्रा OQ निर्धारित होती है। परन्तु परेटो इष्टतम उत्पादन OQ_1 है जो SMC वक्र के माँग वक्र D को E_1 बिन्दु पर काटने से निर्धारित होता है। अत उद्योग
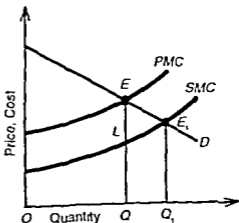
चित्र 48.5

3 बहिर्भावों के विस्तृत अध्ययन के लिए अध्याय 44 का खड 3 देखें।

सामाजिक इष्टतम उत्पादन OQ_1 में Q_1Q कम मात्रा उत्पादित करता है। समाज को शुद्ध हानि (net loss) ELE_1 क्षेत्र के बराबर होती है।

दूसरी ओर, उत्पादन की बाह्य अमितव्ययिताओं (external diseconomies) के अन्तर्गत निजी लाभों की अपेक्षा समाजिक लाभ कम तथा निजी लागतों की अपेक्षा सामाजिक लागतें अधिक होती हैं। इसलिए एक उत्पादक अपने साधनों का अतिआबंटन (overallocation) करेगा। इसे चित्र 48 6 द्वारा व्यक्त किया गया है जहाँ PMC वक्र D माग वक्र को E बिन्दु पर काटता है और OQ वस्तु की मात्रा निर्धारित होती है। वक्र SMC, जिसमें उत्पादन की बाह्य अमितव्ययिताएं शामिल हैं, माग वक्र D को E_1 बिन्दु पर काटता है और सामाजिक इष्टतम उत्पादन स्तर OQ_1 निर्धारित होता है। इस प्रकार, उद्योग परेटियन इष्टतम स्तर OQ_1 से Q_1Q अधिक उत्पादित करता है। उद्योग द्वारा अतिउत्पादन होने से समाज को E_1GE क्षेत्र के बराबर शुद्ध लाभ (net gain) होता है।
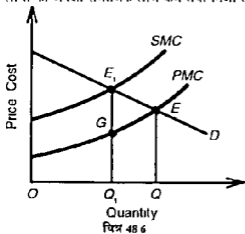
चित्र 48 6

उपभोग में बहिर्भाव भी परेटो इष्टतमता की अप्राप्यता लाते हैं। उपभोग मे बाह्य मितव्ययिता होने पर एक वस्तु अथवा सेवा के उपभोग से अन्य उपभोक्ताओं की उपयोगिता (संतुष्टि अथवा कल्याण) में वृद्धि होती है। जब एक व्यक्ति टी वी सैट लगाता है तो उसके पड़ौसियों की सतुष्टि वृद्धि होती है क्योंकि वे उसके घर में मुफ्त टी वी प्रोग्राम देख सकते हैं। ऐसी स्थिति मे निजी लाभ और लागत से सामाजिक लाभ अधिक और लागतें कम होती है। परन्तु टी. वी. के मालिक को पड़ौसियों के कारण जो असुविधा होती है उससे वह अपने टी वी सैट का कम प्रयोग करेगा।

उपभोग की बाह्य अमितव्ययिताएं तब उत्पन्न होती है जब एक व्यक्ति द्वारा एक वस्तु या सेवा के उपभोग से अन्य उपभोक्ताओं की उपयोगिता कम (असतुष्टि अथवा कल्याण में हानि) होती है। उपभोग अमितव्ययिताएं ड्रैस फैशन और दिखावटी उपभोग की वस्तुओं से होती है जो कुछ उपभोक्ताओं की उपयोगिता को कम करते है। सिगरेट पीने वाले न सिगरेट पीने वालो की उपयोगिता को कम करते है और स्टिीरियो-सिस्टम के शोर से पड़ौसियों को जो हानि होती है, ये कुछ और उदाहरण है। ऐसी उपभोग अमितव्ययिताएं परेटो इष्टतमता लाने में रुकावट डालती हैं। चित्र 48 7 (A) और (B) द्वारा इन्हें समझाया गया है। मान लीजिए कि दो उपभोक्ता A और B हैं जो X और Y दो वस्तुएं खरीदते है। उपभोक्ता A चित्र (A) में 80 उपयोगिता के IC वक्र के E बिन्दु पर सतुलन में है और उपभोक्ता B चित्र (B) में 50 उपयोगिता के IC वक्र के बिन्दु C पर सतुलन में है। जब उपभोग के बहिर्भाव नहीं होते तो ${}_AMRS_{XY} = {}_BMRS_{XY}$ ऐसा इसलिए कि बिन्दु E और C पर स्पर्श रेखाए (टेनेट) एक दूसरे के समानान्तर हैं।

मान लीजिए कि (i) A की उपयोगिता B के उपभोग द्वारा प्रभावित नहीं होती है, और (ii) B की उपयोगिता A के वस्तु X के उपभोग द्वारा प्रभावित होती है, परन्तु वस्तु Y की नहीं होती है। ये दो शर्तें दी होने पर मान लीजिए कि पुर्नवितरण इस प्रकार होता है कि A उपभोक्ता वस्तु X की कम मात्रा का उपभोग करता है। अब वह बिन्दु E से D पर उसी IC वक्र 80 पर गति करता है। क्योंकि B की उपयोगिता A द्वारा X के उपभोग पर निर्भर करती है इसलिए B वक्र IC 50 के C बिन्दु से IC वक्र 60 के F बिन्दु पर जाता है। इससे B की वस्तु X के लिए उपयोगिता बढ़ती है। B के IC वक्र 50 के IC वक्र 60 पर जाने से कुल कल्याण (उपयोगिता) 130 (= A's 80 + B's 50) से बढ़कर 140 (= A's 80 + B's 60) हो जाता है, बावजूद इसके कि A और B दोनों के लिए MRS_{XY} नये सतुलन पर समान नहीं है। IC वक्रो 80 और 60 के क्रमश बिन्दुओं D और F पर
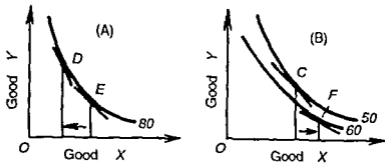
चित्र 48 7

टेंजेट एक दूसरे के समानान्तर नहीं है। उपभोक्ता A उसी *IC* वक्र 80 पर रहता है जिससे उसकी उपयोगिता मे कोई अन्तर नहीं आता है परन्तु उपभोक्ता B ऊचे *IC* वक्र पर चला जाता है जिसका उपयोगिता स्तर 60 है। इससे उसकी उपयोगिता बढी है। इस प्रकार परेटो इष्टतमता प्राप्त नहीं हुई है क्योकि एक उपभोक्ता B की उपयोगिता दूसरे उपभोक्ता A की उपयोगिता कम किए बिना बढी है।

3 सार्वजनिक वस्तुए (Public Goods)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत परेटो इष्टतमता की अपर्याप्तता अथवा मार्किट विफलता का एक महत्त्वपूर्ण कारण सार्वजनिक वस्तुओ का पाया जाना है। एक सार्वजनिक वस्तु वह होती है जिसका एक व्यक्ति द्वारा उपभोग किसी अन्य व्यक्ति के लिए उसकी उपयोगिता को कम नहीं करता है। एक सार्वजनिक वस्तु का उपभोग सयुक्त और समान होता है। एक सार्वजनिक वस्तु के लिए परेटियन शर्त यह है कि उसका सीमात सामाजिक लाभ उसकी सीमात सामाजिक लागत के बराबर होना चाहिए। परन्तु एक सार्वजनिक वस्तु की विशेषताए ऐसी होती है कि एक पूर्ण प्रतियोगिता मार्किट मे परेटो इष्टतमता का बिन्दु प्राप्त नहीं किया जा सकता है। सार्वजनिक वस्तुए धनात्मक बहिर्भाव (positive externalities) उत्पन्न करती है। बहिर्भाव तब प्रारभ होता है जब एक सार्वजनिक वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का उपभोग करने की सीमात लागत जो शून्य होती है उससे अधिक कीमत ली जा रही हो। यह परेटियन कल्याण अधिकतम करने के मापदण्ड का उल्लघन करता है जिसके अनुसार सीमात सामाजिक लागत और सीमात सामाजिक लाभ बराबर होते हैं। ऐसा इसलिए कि एक सार्वजनिक वस्तु के लाभ अवश्य ही शून्य सीमात सामाजिक लागत के बराबर प्रदान किए जाने चाहिए।

फिर, *सार्वजनिक वस्तुओ का विश्लेषण इस अवास्तविक मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता* अपनी इच्छा से उनके लिए माग कीमतें बताते है। यदि ऐसा हो तो सरकार सार्वजनिक वस्तुओं का वित्त प्रबधन करने के लिए उपभोक्ताओ से उतनी राशि लेगी जितनी वे देने को इच्छुक होते है। इससे सरकार अधिक दक्षता और साम्यता प्राप्त कर सकती है। परन्तु सार्वजनिक वस्तुए सामान्य तौर से करो और सब्सिडियो द्वारा वित्त प्रबधित की जाती है जिनसे परेटो इष्टतमता नहीं आती है।

पुन , सार्वजनिक वस्तुओं पर "बहिष्करण सिद्धान्त" लागू नहीं होता है जिसका मतलब यह है कि उनके लाभ सभी को प्राप्य होते है चाहे कोई व्यक्ति उनके लिए कुछ देता है अथवा नहीं। परन्तु कुछ सार्वजनिक वस्तुओ के लिए बहिष्करण का प्रयोग किया जाता है। एक पुल का उदाहरण

लीजिए जो एक सार्वजनिक वस्तु है जिसका प्रयोग केवल उनके लिए प्रतिबंधित होता है जो मार्ग कर (toll tax) देते हैं। इससे परेटो इष्टतमता नहीं आती क्योंकि पुल की सेवाएं केवल उन्हीं तक ही सीमित होती हैं जो मार्ग कर देते हैं। परेटो इष्टतमता के लिए पुल की सेवाएं प्रत्येक उपभोक्ता को शून्य कीमत पर उपलब्ध होनी चाहिए।

जिन सार्वजनिक वस्तुओं के लिए बहिष्करण सिद्धान्त लागू नहीं किया जाता है, उनकी सेवाओं के लिए भुगतान स्वैच्छिक होते हैं। ऐसी स्थिति में बहुत से उपभोक्ता उनके प्रयोग के लिए भुगतान करने को टालने की प्रवृत्ति रखते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि उनके लाभ मुफ्त प्राप्त किए जा सकते हैं। ऐसे सभी प्रयोगकर्त्ता "मुफ्त सवार" (free riders) कहलाते हैं। इसलिए जब ऐसी सार्वजनिक वस्तु का निर्माण होता है तो इष्टतम से बहुत कम इसके उपभोक्ताओं को उपलब्ध होगा। जिन टी वी स्वामियों ने अपने डिश एनटेना (dish antenna) लगा हुए हैं वे, उदाहरणार्थ, स्टार टी वी सिगनल का बिना कोई भुगतान किए प्रयोग करते हैं जबकि केबल ओपरेटर (cable operators) उसके लिए भुगतान करते हैं तो टी वी स्वामी "मुफ्त सवार" हैं।

सार्वजनिक वस्तुओं के लिए मार्किट विफलता को परेटो इष्टतमता की दक्षता शर्तों द्वारा भी वर्णन किया जा सकता है। मान लीजिए कि एक अर्थव्यवस्था में दो व्यक्ति A और B हैं और दो वस्तुएं X और Y हैं, जिनमें X सार्वजनिक वस्तु है। परेटो की दक्षता शर्त पूरी होती है जब $MRT_{XY} = {}_AMRS_{XY} = {}_BMRS_{XY}$. क्योंकि दोनों व्यक्ति A और B सार्वजनिक वस्तु X का प्रयोग एक ही समय में कर सकते हैं इसलिए अधिकतम कल्याण की संतुलन शर्त होती है $MRT_{XY} = {}_AMRS_{XY} + {}_BMRS_{XY}$. यह समीकरण बताता है कि सार्वजनिक वस्तु X का इष्टतमता से कम उत्पादन और कम उपभोग होगा तथा परेटो इष्टतमता प्राप्त नहीं होती है।

4. पैमाने के बढ़ते प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

तकनीकी बहिर्भावों के कारण पैमाने के बढ़ते प्रतिफल होते हैं जिनसे पूर्ण प्रतियोगिता में मार्किट विफलता होती है। जब पैमाने के बढ़ते प्रतिफल होते हैं तो उनसे या तो एकाधिकार अथवा हानियाँ होती हैं। पैमाने के बढ़ते प्रतिफल के अन्तर्गत जब उत्पादन बढ़ता है तो दीर्घकालीन औसत लागत वक्र एक संबद्ध रेंज में गिरता है। जब LAC वक्र गिरता है तो LMC वक्र उससे नीचे होता है (LMC < LAC) तथा फर्मों को पूर्ण प्रतियोगिता में हानि होती है। परन्तु वे दीर्घकाल में हानियां नहीं उठा सकतीं और उद्योग को छोड़ जाती हैं। यदि यह स्थिति कुछ देर कायम रहती है तो एक फर्म एकाधिकारी बन जाती है। चित्र 48.8 ऐसी स्थिति को व्यक्त करता है। LAC वक्र के नीचे LMC वक्र समस्त रेंज में दिखाया गया है। LMC वक्र (जो पूर्ण प्रतियोगिता में पूर्ति वक्र होता है) AR वक्र (जो पूर्ण प्रतियोगिता में माँग वक्र होता है) को P बिन्दु पर काटता है जिसमें वस्तु की OQ मात्रा QP कीमत पर उत्पादित की जाती है। क्योंकि LAC वक्र कीमत QP से ऊपर है इसलिए उत्पादक को प्रति इकाई PA हानि होती है। इस हानि को न उठा सकने के कारण फर्म उद्योग को छोड़ जाएगी और अन्ततः एकाधिकार की स्थिति हो जाएगी। क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत P = LMC = LAC, ऊपर की स्थिति में P= LAC > LMC होने पर परेटो इष्टतमता नहीं होती है।
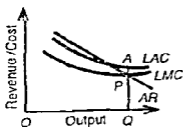
चित्र 48.8

5 अविभाज्यताएँ (Indivisibilities)

परेटो इष्टतमता उपभोग तथा उत्पादन मे प्रयोग की गई वस्तुओ एव साधनो की पूर्ण विभाज्यता की मान्यता पर आधारित है। वास्तविकता मे, वस्तुएँ एव साधन पूर्णतया विभाज्य नहीं हैं। बल्कि वे अविभाज्य होते है। अविभाज्यता की समस्या ऐसी वस्तुओं एव सेवाओ के उत्पादन मे उत्पन्न होती है जो एक से अधिक व्यक्ति द्वारा सयुक्त रूप से प्रयोग होती है। एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण एक इलाके मे अनेक व्यक्तियो द्वारा एक विशेष सडक का प्रयोग है। वहाँ रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति उस सडक का प्रयोग करता है। परन्तु समस्या यह है कि सडक की मरम्मत तथा अनुरक्षण की लागते कैसे बाँटी जाएँ। वास्तव मे, कोई भी व्यक्ति सडक की मरम्मत और अनुरक्षण मे दिलचस्पी नहीं रखेगा। अत सामाजिक लागते एव लाभ एक-दूसरे से विचलन करेगे तथा परेटो इष्टतमता प्राप्त नहीं होगी।

3. द्वितीय श्रेष्ठ का सिद्धान्त (THE THEORY OF SECOND BEST)

यदि परेटो इष्टतमता की सभी दशाएँ प्राप्त हो जाती है तो वह प्रथम श्रेष्ठ (first best) हल कहलाता है। परन्तु बहुल सी ऐसी सरोधन (बाधाएँ) है जैसे एकाधिकार, बहिर्भाव तथा अविभाज्यताएँ, जिनके कारण परेटो इष्टतमता प्राप्त नहीं होती है। द्वितीय श्रेष्ठ[4] के हल की खोज करते हुए लिप्सी (Lipsey) और लैकेस्टर (Lancaster)[5] ने यह दर्शाया कि द्वितीय श्रेष्ठ हल शेष अर्थव्यवस्था मे प्रतियोगी व्यवहार को सम्मिलित नहीं करता है। "द्वितीय श्रेष्ठ का सिद्धान्त यह बताता है कि यदि सस्थानिक सरोधनो (institutional constraints) के कारण परेटो इष्टतमता की एक या एक से अधिक प्रथम-कोटि की दशाएँ सतुष्ट नहीं की जा सकतीं तो सामान्य रूप में परेटो की शेष दशाएँ सतुष्ट करना न तो आवश्यक है और न ही वाछनीय है।"

चित्र 48 9

परेटो इष्टतमता के अन्तर्गत उपभोग और उत्पादन मे दक्षता पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादन सीमा पर होती है। परन्तु अर्थव्यवस्था मे सरोधनो के कारण इनमे दक्षता प्राप्त करना सभव नहीं होता है। इसलिए सरोधनो के रहते हुए दूसरी श्रेष्ठ दशा यह है कि उत्पादन सीमा के अन्दर गति की जाए न कि उसके किसी बिन्दु पर। द्वितीय श्रेष्ठ सिद्धान्त को चित्र 48 9 मे वर्णन किया गया है, जहा X और Y दो वस्तुओं के लिए PP_1 समाज की उत्पादन सभावना सीमा है। I_1, I_2
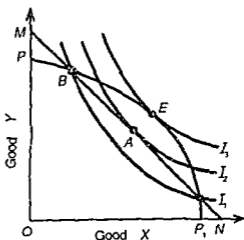
4 यह वाक्यांश J E Meade ने *Trade and Welfare* 1955 में प्रयोग किया था।

5 R G Lipsey and R K Lancaster, 'The Theory of Second Best', *R E S*, Vol 24, Nov 1957

एवं I_3 समाज के उदासीनता वक्र हैं। बिन्दु E परेटो इष्टतम है जहां समाज का कल्याण इष्टतम है क्योंकि समाज की $MRTS_{xy}$ सभी व्यक्तियों की MRS_{xy} के बराबर है। समाज उच्चतम उदासीनता वक्र I_2 पर है और X और Y दोनों वस्तुओं की अधिकतम मात्राओं का उत्पादन और उपभोग करता है।

परन्तु कोई सरोधक, बहिर्भावों या अविभाज्यताओं के रूप में, विद्यमान है जो इस परेटो इष्टतम बिन्दु को अप्राप्य बनाता है। ऐसा सरोधक रेखा MN द्वारा व्यक्त किया गया है। इस सरोधक के दिए होने पर, इष्टतम बिन्दु का उत्पादन संभावना सीमा PP_1 पर पाया जाना आवश्यक नहीं है। मान लीजिए कि समाज बिन्दु B पर है जो सरोधक रेखा पर और उत्पादन संभावना सीमा PP_1 पर भी है। यहां बिन्दु E की अपेक्षा वस्तु Y की बहुत अधिक मात्रा और वस्तु X की बहुत कम मात्रा उत्पादित की जाती है। ऐसी स्थिति में यदि संसाधनों का पुनर्आवंटन किया जाता है तो सरोधन के होते हुए बिन्दु A बिन्दु B से श्रेष्ठ स्थिति व्यक्त करता है, यद्यपि यह PP_1 वक्र पर नहीं है। ऐसा इसलिए कि बिन्दु A ऊंचे उदासीनता वक्र I पर है जबकि बिन्दु B उससे नीचे उदासीनता वक्र I_1 पर स्थित है जो बिन्दु A की अपेक्षा कम कल्याण दर्शाता है। अतः समाज में सरोधक के होते हुए भी, बिन्दु A द्वितीय श्रेष्ठ इष्टतम स्थिति को व्यक्त करता है। इससे निष्कर्ष यह प्राप्त होता है कि यदि समाज का उद्देश्य इष्टतम आर्थिक कल्याण करना है, तो वास्तविकता में पूर्ण प्रतियोगिता न पाई जाने पर, श्रेष्ठ स्थिति का E बिन्दु पर होना आवश्यक नहीं है।

इसका महत्त्व (Its Importance)—द्वितीय श्रेष्ठ का सिद्धान्त आर्थिक नीति में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत परेटो दक्षता बढ़ती है। लेकिन मार्किट अपूर्णताएं पाई जाने से यह कम होती है। इसलिए अर्थशास्त्रियों का मत है कि यदि नीति द्वारा सरकार इन अपूर्णताओं को समाप्त करके पूर्ण प्रतियोगी मार्किट पुनः बनाती है तो इससे आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी। द्वितीय श्रेष्ठ का सिद्धान्त उस स्थिति में लागू होता है जब मार्किटें घनिष्ठ रूप में संबंधित होती हैं, अर्थात वे ब्रेड और मक्खन जैसी पूरक वस्तुओं का उत्पादन और उपभोग करती है, अथवा एक मार्किट दूसरी मार्किट को मध्यवर्ती वस्तु सप्लाई करती है, जैसे मारुति कार फैक्टरी को टायर या अन्य मध्यवर्ती वस्तुओं के निर्माता सप्लाई करते हैं। इनसे वस्तुओं की अपूर्ण मार्किट होते हुए भी आर्थिक कल्याण अधिकतम होता है।

प्रश्न

1. क्या आप इस मत से सहमत हैं कि कल्याण अर्थशास्त्र में परिवारों और परिवारों, फर्मों और फर्मों तथा परिवारों और फर्मों के बीच समायोजन पाये जाते हैं? यह विचार कहां तक परेटो इष्टतमता की शर्तों से संबंधित है?

2. परेटो इष्टतमता के लिए कौन-सी दशाएं आवश्यक हैं? परेटो इष्टतमता की स्थिति प्राप्त करने के मार्ग में कौन-सी बाधाएं पाई जाती हैं?

3. द्वितीय श्रेष्ठ के सिद्धान्त पर टिप्पणी लिखिए।

अध्याय 48 क

सार्वजनिक उद्यमों की कीमत-निर्धारण
(Pricing of Public Enterprises)

1 प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

सार्वजनिक उद्यमो की कीमत-निर्धारण नीति का विषय काफी विवादास्पद है। यह नीति सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो (PSEs) द्वारा दी जाने वाली वस्तुओ व सेवाओ की किस्म पर आधारित होती है। इस सन्दर्भ में PSEs की कीमत-निर्धारण नीतियो को चार वर्गो मे बाटा जा सकता है। प्रथम, सार्वजनिक उपयोगिता के मामले मे PSEs द्वारा प्रदान की गई सेवाए। द्वितीय, न-लाभ न-हानि नीति। तृतीय, सीमात लागत कीमत-निर्धारण। चतुर्थ, लाभ-कीमत नीति।

आइए PSEs की इन कीमत-निर्धारण नीतियो पर चर्चा करे।

2. सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओ की कीमत-निर्धारण
(PRICING OF PUBLIC UTILITIES SERVICES)

बहुत से नियम हैं जो सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओ की कीमत-निर्धारण करते हैं। शिक्षा, मल निकासी, सड़के आदि जैसी सार्वजनिक उपयोगिताए जो लोगो को नि शुल्क दी जाती हैं और उनकी लागत सामान्य कराधान द्वारा वसूली जाती है। डाल्टन (Dalton) इसे सामान्य कराधान नियम (General Taxation Principle) कहता है। इस प्रकार की सेवाए शुद्ध सार्वजनिक वस्तुए हैं जिनके लाभ की कीमत नहीं आकी जा सकती क्योंकि वे अविभाज्य हैं। व्यक्तिगत लाभार्थियो की पहचान कर पाना तथा उनसे सेवाओ के लिए शुल्क लेना सभव नहीं है। कुछ मामलो मे लाभार्थियो का पता लगाया जा सकता है परन्तु उनसे शुल्क नहीं लिया जा सकता। उदाहरण के लिए किसी रेल लाइन के ऊपर बने पुल का उपयोग करने वालो का पता लगाया जा सकता है परन्तु कर लेने वाले प्राधिकरण के लिए सडक-कर वसूल कर पाना असुविधाजनक होगा और सडक का उपयोग करने वालों के लिए भी, क्योंकि इसमें समय बहुत लगेगा। इसका सबसे अच्छा तरीका यही है कि इसके लिए वित्त का प्रबन्ध सामान्य कराधान द्वारा किया जाए। जे एफ ड्यू (J F Due) ने नि शुल्क सार्वजनिक सेवाएँ प्रदान करने तथा उनकी लागतो को सामान्य कराधान द्वारा प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित चार नियमों का वर्णन किया। पहला, ऐसी सेवाए जिनके नि शुल्क प्रबन्ध मे बरबादी बहुत

कम है। **दूसरा,** जहां शुल्क लेने से सेवा की उपयोगिता सीमित हो जाएगी। **तीसरा,** जहां कर वसूली की लागत ऊंची है। **चौथा,** जहां सेवाओं पर कर-भार के वितरण का ढांचा असमान है। ये नियम कुछ आवश्यक सार्वजनिक सेवाओं पर लागू होते हैं, जैसे शिक्षा, मल निकासी, सड़क आदि। परन्तु शुद्ध सार्वजनिक वस्तुओं में सम्मिलित सेवाओं को छोड़कर अन्य सेवाओं के मामले में नि:शुल्क सेवा से संसाधनों की बरबादी बढ़ सकती है।

इसीलिए, डाल्टन सेवा की **अनिवार्य लागत नियम** (Compulsory Cost of Service Principle) की वकालत करता है जहां सरकार को सेवा प्रदान करने के लिए लोगों से शुल्क लेना चाहिए। यह अनिवार्य है चूंकि मल निकासी, गलियों की सफाई, गलियों में रोशनी की व्यवस्था आदि जैसी नगर सेवाएं अवमूल्यांकित (underpriced) हैं। क्षेत्र विशेष के हर परिवार को इन सेवाओं के लिए शुल्क देना चाहिए। परन्तु चूंकि ये सार्वजनिक उपयोगिता सेवाएं हैं, इसलिए इन पर थोड़ा-सा शुल्क लेना चाहिए और लागत तथा राजस्व के बीच अंतराल (gap) बना रहता है। यह अंतराल सामान्य कराधान द्वारा पूरा किया जाता है। यह सेवाओं का उपयोग करने वालों के लिए एक प्रकार की सरकारी सहायता है।

फिर भी डाल्टन सार्वजनिक उपयोगिताओं के लिए **स्वैच्छिक कीमत नियम** (Voluntary Price Principle) के पक्ष में हैं। इस नियम के अनुसार, सार्वजनिक सेवा के उपभोक्ताओं को सार्वजनिक उद्यमों द्वारा निश्चित कीमत अदा करनी होती है। किसी विशेष सेवा में सार्वजनिक उद्यम का एकाधिकार हो सकता है और वह उसकी कीमत भी निश्चित कर सकता है, जैसे बिजली, पानी आदि की आपूर्ति करने वाले उद्यम। परन्तु चूंकि यह सेवा सार्वजनिक है, इसलिए वह उसकी कीमत उत्पादन लागत से कम रख सकता है ताकि कल्याण पर विपरीत प्रभाव न पड़े।

इस प्रकार की सार्वजनिक सेवाओं की कीमत निर्धारण का सामान्य नियम यह है कि, संसाधनों के आबंटन को बिना नुकसान पहुँचाए, लागत वसूल कर ली जाए। यह उत्पादक क्षमता स्थिर रखते हुए, विक्रय कीमत को अल्पकालीन सीमांत लागत के बराबर रखते हुए किया जाता है। परन्तु पानी तथा बिजली जैसी व्यवस्थाओं को समय-समय पर बड़े निवेश की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार के मामलों में उत्पादन बढ़ने के साथ औसत लागतें घटती हैं और ली जाने वाली वास्तविक कीमत, औसत लागत से कम होती है। यह कीमत लेने पर सार्वजनिक उद्यम को घाटा होता है। ऐसी स्थिति में, सेवा उपलब्ध कराने की लागत वसूलने के लिए सार्वजनिक कीमत में संशोधन किया जाता है। यह प्राय: बढ़ते खण्ड टैरिफ (increasing block tariff) अथवा बहु-भाग (multi-part) टैरिफ तथा समयोपयोगी (time of use) दर ढांचे द्वारा किया जाता है।

बढ़ते खण्ड टैरिफ के अन्तर्गत पानी अथवा बिजली के उपभोग का कीमत-निर्धारण, पानी व बिजली की एक निश्चित सीमा तक प्रयोग के लिए एक न्यून प्रारंभिक दर पर किया जाता है तथा उससे अधिक मात्रा के लिए प्रति खण्ड (block) उच्च दर पर किया जाता है। खण्डों की संख्या 3 से 10 तक हो सकती है। उदाहरण के लिए, घरेलू बिजली के लिए प्रथम 100 यूनिट पर 1 रुपया प्रति यूनिट की दर से शुल्क लिया जाता है, जबकि अगले 200 यूनिट

के खण्ड पर 2 रुपया प्रति यूनिट तथा इससे अगले 400 यूनिट के खण्ड पर 4 रुपये प्रति यूनिट।

समयोपयोगी दर ढाचे के अन्तर्गत उपभोक्ता उच्च माग के दौरान प्रीमियम अदा करते हैं। इससे सेवा की उपयोगिता क्षमता समग्र रूप से बढ जाती है तथा सार्वजनिक उद्यम का लाभ भी बढता है। परन्तु दर ढाचे का मुख्य लाभ यह है कि यह उपभोक्ता को माग की कमी की अवधि में परिवर्तन के लिए प्रोत्साहित करता है, जैसे टेलीफोन की समयोपयोगी दर दिन में परिवर्तित होती है। भारत मे STD की दरे रात 11 बजे से सुबह 6 बजे तक 1/4, प्रात 6 से 7 तक 1/3, प्रात 7 से 8 तक 1/2 और प्रात 8 से रात 7 बजे तक के लिए पूरा शुल्क, रात 7 से 8 तक 1/2 और 8 से 11 बजे तक 1/3 शुल्क लिया जाता है। इसी प्रकार, विकासशील देशों मे पानी की कृषि के लिए आपूर्ति-दरें भी मौसम के अनुसार बदलती हैं, जबकि विकसित देशो मे घर को गर्म रखने के लिए प्राकृतिक गैस की आपूर्ति-दरो मे परिवर्तन मौसम के अनुसार होता रहता है।

3 सीमात लागत कीमत-निर्धारण नियम (MARGINAL COST PRICING RULE)

सार्वजनिक उद्यमो का एक मुख्य उद्देश्य आर्थिक कुशलता अथवा समाज कल्याण को अधिकतम करना भी होता है। यदि कोई सार्वजनिक उद्यम किसी वस्तु अथवा सेवा के उत्पादन मे एकाधिकार रखता है तो वह आर्थिक रूप से कुशल नहीं होगा, क्योंकि उसका उत्पादन (MC = MR) पर होता है। तथापि, ससाधन आवटन की ओर अधिक कुशलता के लिए यह पता लगाना आवश्यक है कि क्या सार्वजनिक उद्यम घटते अथवा बढते प्रतिफल के अधीन चल रहा है। यदि घटते प्रतिफल के अतर्गत कीमत सीमात लागत के बराबर हो तो सार्वजनिक उद्यम लाभ अर्जित करेगा तथा यदि वह बढते प्रतिफल के अतर्गत चल रहा है तो हानि उठाएगा। इस प्रकार, सार्वजनिक उद्यमो पर सीमात लागत कीमत-निर्धारण नियम उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार लागू होता है। एक सार्वजनिक उद्यम प्राय एकाधिकार अथवा अर्ध-एकाधिकार की स्थिति में होता है जिसमे उसके AR तथा MR वक्र नीचे की ओर ढालू होते हैं। ऐसी स्थिति मे कीमत (AR) सदैव सीमात लागत से अधिक रहती है AR (P) > MC = MR। यदि औसत लागत से कीमत कम या अधिक हो तो उत्पादन इष्टतम मे नहीं होगा क्योंकि उद्यम या तो सामान्य से अधिक लाभ कमा रहा होगा अथवा हानि। इस प्रकार, उत्पादन तब भी इष्टतम नहीं होगा यदि वस्तु की कीमत सामान्य लागत के बराबर होती है। इष्टतम ससाधन आवटन प्राप्त करने के लिए उद्यम का उत्पादन बढाना होगा। यह तभी सम्भव है जब सीमात लागत-कीमत-निर्धारण नियम अपनाया जाए।

इसे चित्र 1 मे चित्रित किया गया है जो घटते प्रतिफल अथवा बढती लागत को दर्शाता है। यदि उद्यम का एकाधिकार है तो यह MP कीमत पर OM उत्पादन विक्रय करेगा। यह कीमत इसकी सीमात लागत (ME) से EP अधिक है जब E बिन्दु पर MC = MR है। सीमात लागत कीमत-निर्धारण नियम के लागू करने से K बिन्दु पर MC = AR (कीमत) हो जाता है। इस प्रकार बढा हुआ उत्पादन MS, कम कीमत SK पर बेचा जाता है। चित्र से पता चलता

है कि MP कीमत पर उद्यम उत्पादन की प्रति इकाई AP लाभ अर्जित करता है। यह उत्पादन सीमात लागत कीमत-निर्धारण नियम से कम होता है, OM < OS। इस प्रकार, एकाधिकार होने पर ससाधन का इष्टतम आवटन नहीं होता है। दूसरी ओर यदि औसत लागत कीमत-निर्धारण नियम का पालन किया जाए तो बिन्दु R पर AC = AR होती है। कीमत QR तक और कम हो जाती है जिससे वस्तु की माग बढ जाती है और साथ ही साथ उद्यम के ससाधन भी बढते हैं। साधनो का कुआवटन होता है।
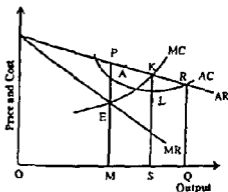
चित्र 1

इस प्रकार K बिन्दु पर सीमात लागत-कीमत सयोग से इष्टतम ससाधन आवटन हो जाता है। यद्यपि उद्यम उत्पादन की प्रति इकाई LK हानि उठा रहा है। फिर भी इस हानि को पूरा करने के लिए सरकार वस्तु के उपभोक्ताओ पर कर लगा कर उद्यम को क्षतिपूर्ति कर सकती है।

यदि उद्यम बढते प्रतिफल अथवा घटती लागत के अतर्गत चल रहा है तो सीमात लागत कीमत-निर्धारण नियम अपनाने पर भी हानि होगी। यह चित्र 2 मे दर्शाया गया है। जहा MC वक्र अपनी पूरी लम्बाई मे AC वक्र के नीचे रहता है। यदि उद्यम MC = MR नियम पर चले तो OM उत्पादन को MP कीमत पर बेचा जाता है। यह उत्पादन की प्रति इकाई AP लाभ अर्जित करता है। परन्तु सीमात लागत कीमत-निर्धारण नियम SK कीमत तथा OS उत्पादन सयोग बिन्दु K पर स्थापित करता है जहा MC = AR (कीमत)। परन्तु *यह उत्पादन की OS प्रति इकाई पर KL* हानि उठाता है। फिर भी, सीमात लागत कीमत-निर्धारण के अन्तर्गत उद्यम का OS इष्टमत उत्पादन है।
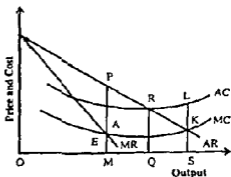
चित्र 2

सीमात लागत कीमत-उत्पादन सयोग औसत लागत कीमत-निर्धारण के अतर्गत कीमत-उत्पादन सयोग से श्रेष्ठ भी है। दूसरे की अपेक्षा पहले मे कीमत SK < QR तथा उत्पादन OS > OQ है। परन्तु घटती लागत के नियम के अतर्गत जो उद्यम सीमात लागत कीमत-निर्धारण नियम अपनाता है, वह प्रति इकाई उत्पादन पर KL हानि उठाता है, क्योकि AC वक्र AR (कीमत) वक्र से ऊपर है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उद्यम MC कीमत-निर्धारण नियम न अपनाए जो OS उत्पादन पर इष्टतम ससाधन आवटन देता है।

इस समस्या के कई हल सुझाए गए हैं। हॉटलिंग (Hotelling) का सुझाव है कि सरकार

को इस प्रकार के घटती लागत वाले सार्वजनिक उद्यमों की हानि को पूरा करने के लिए एकमुश्त कर लगाकर आर्थिक सहायता देनी चाहिए। एकमुश्त कर उपभोक्ता अथवा फर्म के लिए सीमात स्थितियो का उल्लघन नहीं करते हैं।

यदि एकमुश्त कर, जैसे कि पोल कर, न लगाया जा सके तो **द्वि-भाग टैरिफ** (two-part tariff) हानि पूरा करने का दूसरा रास्ता है। इसके अनुसार, उपभोक्ता से जो कीमत ली जाती है उसके दो भाग होते हैं। पहला भाग सीमात लागत के बराबर कीमत के रूप मे होता है तथा दूसरा भाग सभी उपभोक्ताओ द्वारा प्रति अवधि पर एकमुश्त कर के रूप मे दिया जाता है। उदाहरण के लिए, कोई मनोरजन-उद्यान प्रवेश शुल्क ले सकता है और फिर वहा अन्दर प्रत्येक आकर्षण जैसे झूले, बच्चो की गाडी आदि पर अलग से शुल्क ले सकता है, जैसा अप्पू घर दिल्ली मे किया जा रहा है। प्रवेश शुल्क अर्थात् निर्धारित राशि अकारणो के लगाने तथा उनके रखरखाव की लागत निकालने के लिए ली जाती है तथा परिवर्ती प्रभार (variable charges) मनोरजन के विभिन्न सामान की परिचालन लागतो को वसूलने के लिए लगाया जाता है।

इसकी सीमाए (Its Limitations)

सार्वजनिक उद्यमों की हानि की क्षतिपूर्ति के लिए चाहे कोई भी तरीका अपनाया जाए सीमात लागत कीमत-निर्धारण से जुडी कुछ कठिनाइया सामने आती ही हैं।

1. *सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक कठिनाइया* **(Conceptual and Practical Difficulties)**—सघन (lumpy) अथवा अविभाज्य तत्त्वो के बारे मे सही-सही अनुमान लगाना मुश्किल है। ये सभी साधन दीर्घकाल मे परिवर्ती होते हैं। परन्तु 'सघन' साधन स्थिर होते हैं तथा उनकी सीमात लागत बहुत अधिक होती है। उदाहरण के लिए, किसी 'फ्लाई ओवर' के मामले मे यह लागत बहुत ऊची होती है। परन्तु जहा तक इसके प्रयोग का प्रश्न है किसी अतिरिक्त वाहन द्वारा 'फ्लाई ओवर' के प्रयोग की सीमात लागत नगण्य (negligible) है। इस प्रकार सीमात लागत की गणना का काम कठिन है।

2 **प्रशासनिक कठिनाई (Administrative Difficulty)**—हैण्डरसन (Henderson) सीमात लागत सिद्धात को प्रशासनिक रूप से अव्यवहारिक होने के कारण अस्वीकार करता है। वह लिखता है, "सीमात लागत का सिद्धात कीमत-निर्धारण के एकमात्र अथवा यहा तक कि मुख्य सिद्धात के रूप मे प्रशासनिक कठिनाइयो के कारण अयोग्य है। यह किसी स्पष्ट तथा निश्चित नियम की पूर्ति करने मे विफल हैं।"

3 **प्रबधकीय कठिनाई (Managerial Difficulty)**—जब कोई सार्वजनिक उद्यम हानि उठा रहा हो तो यह सीमात लागत कीमत-निर्धारण के कारण ही नहीं होता बल्कि एक सामान्य-पूर्व अकुशलता का परिणाम होता है। व्यवहार मे हानि के लिए किन्हीं दो कारणो को पृथक् करना कठिन होता है।

4 **अन्यायोचित (Inequitable)**—सीमात लागत कीमत-निर्धारण का नियम अन्यायोचित है। जब किसी उद्यम की हानि सामान्य कराधान द्वारा पूरी की जाती है तो यह एक प्रकार की सरकारी आर्थिक सहायता होती है जो किसी वस्तु अथवा सेवा के लिए उपभोक्ता प्राप्त करते हैं। परन्तु यह सहायता गैर-उपभोक्ताओं के खर्चे पर होती है जो कर के रूप मे सरकार द्वारा

उनसे भी लिया जाता है। इस प्रकार, सीमांत लागत कीमत-निर्धारण अन्यायोचित है।

5. संसाधनों का विचलन (Diversion of Resources)—जब सरकार सार्वजनिक उद्यमों की हानि की क्षतिपूर्ति के लिए आर्थिक सहायता कराधान द्वारा देती है तो देश के संसाधनों को अन्य अधिक उत्पादक उपयोगो से हटाया जाता है इससे आर्थिक विकास पर विपरीत प्रभाव पडता है।

6. द्वितीय श्रेष्ठ समस्या (Second Best Problem)—सार्वजनिक उद्यमो के लिए *सीमात लागत कीमत-निर्धारण की एक अन्य समस्या 'द्वितीय श्रेष्ठ' की है। जब सभी* उद्योगो में सभी कीमते सीमात लागत के बराबर होती हैं तो इसे **प्रथम श्रेष्ठ** इष्टतम कहा जाता है। यह तभी सभव है जब प्रत्येक उद्यम सीमात लागत कीमत-निर्धारण नियम को अपनाए। परन्तु यह भी सभव है कि कुछ सार्वजनिक उद्यमो का एकाधिकार हो और सीमात लागत से कीमत अधिक हो और कीमत को सीमात लागत के स्तर तक नीचे लाना असभव हो सकता है। इस बारे मे प्रथम श्रेष्ठ स्थिति प्राप्त नहीं की जा सकती है। तब द्वितीय श्रेष्ठ स्थिति क्या है? यह है अगली श्रेष्ठ स्थिति जो वास्तव मे प्राप्त की जा सके। इसका कोई सैद्धातिक जवाब नहीं है क्योकि द्वितीय श्रेष्ठ हल की वस्तुत प्रकृति को पहचानना सम्भव नहीं है।

7. कराधान के विपरीत प्रभाव (Adverse Effects of Taxation)—अतिरिक्त कराधान द्वारा सरकार जो सार्वजनिक उद्यमो को आर्थिक सहायता प्रदान करती है, उससे लोगो तथा देश की *अर्थव्यवस्था* पर विपरीत प्रभाव पडता है। लोगो को अतिरिक्त कर के रूप मे अधिक देना पड़ता है तथा इससे उनकी बचत और कार्य करने की क्षमता पर बुरा असर पड़ता है।

**8 *द्वि-भाग टैरिफ मे समस्याएं (Problems in Two-Part Tariff)*—*सीमात लागत* कीमत निर्धारण नियम मे द्वि-भाग टैरिफ अपनाने से कुछ विशेष कठिनाइया सामने आती हैं, विशेषकर कुछ सार्वजनिक सेवाओ के मामले मे।

(क) आर्थिक हानि (Economic Loss)—कुछ सार्वजनिक उपयोगिताओ जैसे राष्ट्रीय उद्यान, चिडियाघर, मनोरजन उद्यान आदि मे परिचालन की कुल स्थिर लागत अधिक होती हैं। इस प्रकार की सेवाओ के लिए सीमात लागत कीमत-निर्धारण नियम आधिक हानिकारक हो सकता है क्योकि राजस्व की प्राप्ति से स्थिर परिसपत्तियो मे किया गया निवेश वसूल कर पाना कठिन होगा।

(ख) भीड़-भाड़ लागते (Congestion Cost)—किसी सेवा क्षमता से अधिक उपयोग जैसे कि मनोरजन उद्यान, चिडियाघर, सग्रहालय, पुस्तकालय आदि मे अधिक भीड-भाड अथवा लोगो के आवश्यकता से अधिक सचय इकट्ठे होने से सन्तुष्टि घट जाती है। इस प्रकार के प्रदूषण से भीड-भाड की लागते बढ जाती है, जिनके बारे मे अनुमान लगाना कठिन है।

9. अवरोधन परिस्थितिया (Restrictive Conditions)—प्रो ग्राफ (Graaf) के अनुसार, सीमात लागत कीमत-निर्धारण नियम से तब तक इष्टतम स्थिति प्राप्त नहीं की जा सकती जब तक कुछ अवरोधक परिस्थितियों का ध्यान न रखा जाए। ये हैं तकनीकी तटस्थता, कोई वहिर्भाव (*externalities*) न हो, साधनो की पूर्ण विभाज्यता तथा सभी उदय सीमात लागत-कीमत (MC = Price) की समानता के नियम का पालन करें। परन्तु इतनी शर्तों का पालन कर पाना सभव नहीं है, यहा ससाधनो का इष्टतम आवटन नहीं हो सकता। अत उसने

यह निष्कर्ष निकाला है कि सार्वजनिक उद्यम का राष्ट्रीयकृत उद्योग द्वारा एक ऐसी कीमत-निर्धारित करने की सभावना की जा सकती है जो उचित कीमत कहलाए—एक ऐसी कीमत जो सपत्ति के आवंटन पर प्रभाव को ध्यान में रखकर नियत की गई हो तथा ससाधनों के आवटन पर इसके प्रभाव का ध्यान मे रख कर निर्धारित की गई हो।

निष्कर्ष (Conclusion)

सीमात लागत कीमत-निर्धारण की कठिनाइयो से निपटने के लिए व्यस्ततम (peak-load) कीमत-निर्धारण नियम का सुझाव दिया गया है। इसके अनुसार किसी वस्तु अथवा सेवा की कीमत, वस्तु अथवा सेवा के प्रयोग की तीव्रता को ध्यान मे रखकर निर्धारित की जाए, जैसे टेलीफोन सेवाए।

4 न-लाभ न-हानि नीति (NO-PROFIT NO-LOSS POLICY)

लुईस, कोस, डर्बिन, हेडर्सन तथा लिटल जैसे अर्थशास्त्रियो ने न-लाभ न-हानि नीति की सिफारिश की या सार्वजनिक उद्यमो के लिए लाभ-अलाभ स्थिति (break-even) का नियम सुझाया है। उनका मानना है कि सार्वजनिक उद्यम सार्वजनिक हित के लिए हैं न कि लाभ कमाने के लिए। लुईस के अनुसार सार्वजनिक उद्यमों की कीमत-निर्धारण नीति ऐसी होनी चाहिए कि वे न तो हानि उठाए और न ही अपने पूजीगत प्रभारो (capital charges) के बाद लाभ कमाए। उसने आगे कहा कि अर्थशास्त्रियो का सहयोग सीमात लागत कीमत-निर्धारण नियम के लिए नहीं है बल्कि 'उतना प्रभार लो जितना लोग देंगे' (charging what the traffic will bear) की एक प्रणाली है ताकि उपभोक्ता अपनी भुगतान क्षमता के अनुसार स्थिर लागतों के लिए अपना योगदान दे सके। लुईस इस नीति की इस आधार पर सिफारिश करता है कि यह सार्वजनिक उद्यमों के आवश्यकता से अधिक तथा आवश्यकता से कम फैलाव को रोकती है तथा स्फीति व अवस्फीति की प्रवृत्तियो से बचाती है। दूसरे, अर्थशास्त्रियो के विचार म सार्वजनिक उद्यमो को एक वर्ष को दूसरे वर्ष के साथ लेकर लाभ करना चाहिए। उन्हे अपनी सेवाओ अथवा वस्तुओं की कीमत इस प्रकार निर्धारित करनी चाहिए कि वह कई वर्षों तक लाभ-अलाभ स्थिति तक बने रहे और उन्हे न तो हानि हो और न ही लाभ।

न-लाभ न-हानि नीति का अर्थ है कि उद्यम के उत्पादन अथवा सेवा की कीमत उसकी कुल लागत वसूलने के लिए पर्याप्त हो। कुल लागत में उद्यम द्वारा किए गए सभी प्रकार के खर्च आ जाते हैं। उनमे अल्पकालिक व दीर्घकालिक स्थिर तथा परिवर्तित उत्पादन लागते, चालू तथा प्रतिस्थापन लागते, मूल्यह्रास प्रभार, पूजी पर ब्याज तथा विज्ञापन, विक्रय एव वितरण खर्चे आते हैं। यह लागतें उत्पादन की औसत कुल लागतों के बराबर कीमत रखकर वसूल की जा सकती हैं अथवा द्वि-भाग नीति अपनाकर प्राप्त की जा सकती हैं।

पूर्ण लागत अथवा औसत लागत कीमत-निर्धारण नीति की वकालत निम्नलिखित आधार पर की जा सकती है। किसी सार्वजनिक उद्यम की पूर्ण लागत कीमते इसकी उत्पादन की कुल औसत लागतो पर आधारित होती हैं जिनका उद्यम के लेखाकन खातों से आसानी से

अनुमान लगाया जा सकता है। वेहतर तो यही है कि विशिष्ट वस्तुओ (ment goods) व पूर्ण-लागत कीमत-निर्धारित की जाए जैसे कि राष्ट्रीय मार्ग, सार्वजनिक यातायात, शिक्ष सार्वजनिक पुस्तकालय, संग्रहालय, मनोरंजन उद्यान आदि। इन सभी सेवाओ के लिए मु सुविधा अथवा रियायती कीमत की जगह पूरी कीमत ली जानी चाहिए। पूर्ण-लागत कीमत हानि की क्षतिपूर्ति हो जाती है और कोई लाभ या कोई हानि नहीं होते।

इसके अलावा, पूर्ण-लागत कीमत उत्पादन की कुल औसत लागतो को पूरा कर लेती और सार्वजनिक उद्यम मे लगे पूजी निवेश पर उचित प्रतिफल भी मिल जाता है। घट प्रतिफल के अतर्गत पूर्ण-लागत कीमत निर्धारण चित्र 1 मे दर्शाया गया है जहा वक्र AC व AR को R बिन्दु पर काटता है जो OQ उत्पादन तथा QR कीमत निर्धारित करता है। य कीमत उद्यम को लाभ-अलाभ स्थिति (break-even) तक पहुच कर समस्त औसत लागत को पूरा कर लेती है। यह सामान्य लाभ अर्जित करता है।

यदि कोई उद्यम सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओ मे एकाधिकार रखता है तो बढ़ प्रतिफल व घटती लागतों को दर्शाते हुए पैमाने की बढती किफायतें प्राप्त कर सकता है। इ चित्र 2 मे दर्शाया गया है जहा औसत लागत कीमत-निर्धारण नियम के अन्तर्गत AC वक्र AI वक्र को विन्दु R पर काटता है तथा QR कीमत पर OQ सेवाएं उपलब्ध कराता है।

इसकी सीमाए (Its limitations)

इसमें सन्देह नहीं कि औसत लागत कीमत-निर्धारण नियम न-लाभ न-हानि की ओर ले जाता है तथापि इसकी कुछ सीमाए हैं ·

1. यह कीमत-निर्धारण नीति ससाधनों के कुआवटन की ओर ले जाती हैं जब उपभोक्त सीमात लागत पर अतिरिक्त इकाइया नहीं खरीदते।

2 यदि मांग वक्र AR अपनी पूरी लम्बाई मे AC वक्र के नीचे रहता है तो सार्वजनि उद्यम औसत लागत कीमत-निर्धारण पर कोई उत्पादन नहीं देता। कुल लागतें बिल्कुल भ पूरी नहीं हो पाएगी।

3 दीर्घकाल में सही-सही मूल्यह्रास के वितरण की कठिनाई भी उत्पन्न हो जाती है।

द्वि-भाग अथवा बहु-भाग टैरिफ (Two-Part or Multi-Part Tariff)

औसत लागत की ऊपरलिखित कठिनाइयों को दूर करने के लिए लुईस, कोस तथा हैंडर्सन द्वि-भाग अथवा बहु-भाग टैरिफ नीति का समर्थन करते हैं। वे लागतों को ऊपरी लागतों तथा प्रत्यक्ष लागतों में बाट देते हैं। बड़े बुनियादी उद्यमों जैसे दूर सचार, बिजली, पानी आदि में ऊपरी तथा छोटी प्रत्यक्ष लागते अधिक होती हैं। उनके बारे में उत्पादन बढने के साथ औसत लागतें घटती है तथा औसत लागतो से कम कीमत के कारण वित्तीय हानि होती है। इस हानि से बचने के लिए, सार्वजनिक उद्यमों को द्वि-भाग अथवा बहु-भाग टैरिफ कीमत-निर्धारण फार्मूला अपनाना चाहिए। उदाहरण के लिए, सेवा अथवा वस्तु की कीमत, सेवा उपलब्ध कराने की लागत निकालने तथा बहु-भाग टैरिफ के बढ़ने के लिए संशोधित किया जाता है। दूसरा रास्ता यह है कि एक निश्चित राशि वार्षिक किराए के रूप मे ली जाए, जैसे बिजली उपभोक्ताओं से और उसके ऊपर प्रति माह खर्च की गई वास्तविक इकाइयो पर शुल्क लिया जाए।

इसके दोष (Its Defects)

द्वि-भाग अथवा बहु-भाग टैरिफ में शुल्क लेने की व्यवस्था में कुछ दोष हैं

1. विभिन्न वस्तुओं तथा उपभोक्ताओ के बीच ऊपरी लागतो को वितरित करना कठिन है। दूसरे शब्दों मे, उपभोक्ताओं से वस्तु और सेवा की कितनी कीमत ली जाए।

2 द्वि-भाग अथवा बहु-भाग टैरिफ नीति वहीं लागू होती है जहा उपभोक्ता एक ही सार्वजनिक उद्यम से लगातार खरीदे तथा बदले मे उद्यम उन्हे औसत लागत कीमत पर बेचे।

3 यह नीति पक्षपातपूर्ण है जो उचित व न्यायोचित नहीं । उदाहरण के लिए, उद्योगों से लिया जाने वाला बिजली का शुल्क कृषि क्षेत्र में लिए जाने वाले शुल्क से अधिक है।

निष्कर्ष (Conclusion)— इन सीमाओ के बावजूद द्वि-भाग अथवा बहु-भाग टैरिफ कीमत-निर्धारण तथा औसत लागत कीमत-निर्धारण नीतियां दोनो की कुल लागतो को वसूलने का उद्देश्य रखती हैं। परन्तु दोनो के मामलो मे ससाधनो का आवटन इष्टतम नहीं है। ऐसा केवल सीमात लागत कीमत-निर्धारण नियम के अतर्गत होता है, क्योंकि एक उद्यम ससाधनों का इष्टतम आवटन करने योग्य होता है।

5 लाभ-कीमत नीति (PROFIT-PRICE POLICY)

भारत जैसे विकासशील देश मे जहा सार्वजनिक उद्यमो को आर्थिक विकास मे मुख्य भूमिका निभानी होती है वहा ये उद्यम लाभ-कीमत नीति अपनाते हैं। लाभ-कीमत नीति भारत मे सर्वप्रथम डॉ वी के आर वी राव ने जून 1959 मे रखी थी। ऊटी मे योजना पर हुई ए.आई सी सी की विचारगोष्ठी में प्रस्तुत एक नोट मे उन्होने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के लिए न-लाभ न-हानि सिद्धान्त का स्पष्ट रूप से खण्डन करते हुए लाभ-कीमत नीति का विचार प्रस्तुत किया था। इस प्रकार की नीति अपनाकर सरकार नागरिकों पर कर बोझ डालने की बजाय अपने ससाधनों का उपयोग करेगी। उनके अनुसार सार्वजनिक उद्यम लाभ के आधार पर चलाए जाए, न केवल इसलिए कि ये उद्यम आर्थिक कीमत पाए बल्कि सरकार के निवेश व खर्चों के एक भाग का वित्तपोषण करने के लिए पर्याप्त ससाधन समाज के लिए जुटाए। इस प्रकार, सार्वजनिक उद्यमो के सबध मे लाभ-कीमत नीति कार्य करती है। सार्वजनिक उद्यमों में न-लाभ न-हानि का सिद्धान्त समाजवादी अर्थव्यवस्था के साथ विशेषरूप से मेल नहीं रखता है और इसे भारत जैसी मिश्रित अर्थव्यवस्था मे यदि लागू किया जाए तो इसके विकास में बाधा बनेगा। अपने मत के पक्ष मे डॉ राव ने पूर्व सोवियत रूस का उदाहरण दिया। रूस मे सार्वजनिक उद्यमों ने वित्त के विकास में दोहरी भूमिका निभाई अपने विस्तार के लिए लाभ का पुन निवेश तथा सरकारी बजट मे योगदान।

लाभ-कीमत नीति के लिए तर्क (Arguments for a Profit-Price Policy)

लाभ-कीमत नीति के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए गए हैं

1 जब सरकार सार्वजनिक उद्यमो मे बड़ा निवेश करती है तो वह देश की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए अपने ससाधनों को बढाने के लिए लाभ के रूप में प्रतिफल चाहती है।

2 प्रत्येक निजी उद्यम का उद्देश्य लाभ कमाना होता है। अत यह जरूरी हो जाता है कि सार्वजनिक उद्यम भी लाभ अर्जित करें और किसी आर्थिक सहायता के लिए राज्य पर निर्भर न रहे।

3 जब सार्वजनिक उद्यम निजी उद्यमों के साथ-साथ कार्य करते हैं तथा ऐसे कुछ क्षेत्रों में मुकाबला करते हैं, जैसे तेल, इस्पात, उपभोक्ता वस्तुए, जहाजरानी, उड्डयन आदि तो उन्हें भी निजी उद्यमो की तरह लाभ अर्जित करना चाहिए।

4 यहा तक कि ऐसे सार्वजनिक उद्यमो के लिए भी, जहा उनका अधिकार है, न-लाभ न-हानि नीति अपनाना अथवा उपभोक्ताओ से वस्तु अथवा सेवा के बदले कम कीमत लेना वाछनीय नहीं होगा। क्योंकि इसकी गारटी नहीं है कि इस वस्तु अथवा सेवा के उपभोक्ता इस कारण अधिक बचत करेगे। इसलिए सबसे अच्छा यही है कि ऐसी कीमत ली जाए जिससे उद्यम को न्यूनतम लाभ हो जो अन्तत सरकार के पास पूजी निर्माण के काम आए।

5 सार्वजनिक उद्यमो को लाभ-कीमत नीति पर चलाने से सरकार का सामान्य राजस्व बढेगा। जैसा भारतीय योजना आयोग ने बताया, ''जब कराधान की अपनी सीमाए निश्चित हो तो सार्वजनिक उद्यमो के लाभ को राजकोष मे लिया जाना चाहिए। जब निजी उद्यम अपने लाभ का एक भाग सामान्य राजस्व के रूप मे सरकार को देते हैं, तो सार्वजनिक क्षेत्र को ही इसकी छूट क्यो दी जाए।''

6 यदि वे लाभ-कीमत नीति पर चले तो सार्वजनिक उद्यम पर्याप्त लाभ कमा सकते हैं जो पुन निवेश के काम आ सकता है तथा उसका कुछ भाग सरकार अपनी अन्य योजनाओ मे भी लगा सकती है। इससे अन्य बाहरी स्रोतों से उधार नहीं लेना पड़ता और ब्याज भरने अथवा घाटे की वित्त व्यवस्था से भी बचा जा सकता है।

7 इसके अतिरिक्त उद्यमो द्वारा कमाए गए लाभ से विकास के लिए पर्याप्त धन जुटाया जा सकता है, सयत्रो का विस्तार तथा उन्हे आधुनिक बनाया जा सकता है।

कौन-सी लाभ-कीमत नीति अपनानी चाहिए? (Which Profit-Price Policy should be followed?)

जहा तक एक सार्वजनिक उद्यम द्वारा वास्तविक लाभ-कीमत नीति अपनाने का प्रश्न है, डॉ वी.के.आर.वी राव का कहना है, ''सामान्यत जहा तक किसी एक उद्यम का प्रश्न है उसे ऐसी नीति अपनानी चाहिए जो उसके निजी प्रतिद्वदी उद्यम द्वारा अपनाई गई है। इसका यह कदापि अर्थ नहीं है कि यही अन्तिम कीमत होगी। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए अन्तिम कीमत न केवल प्रबन्धक, निदेशक बोर्ड अथवा जो भी निर्णायक प्राधिकारी द्वारा, बल्कि सरकार द्वारा निर्धारित की जाए जो अन्य उद्यमो की प्राप्तियो व लागतो को भी ध्यान में रखे। जहा तक प्रबन्धक का प्रश्न है उसका उद्देश्य वही होना चाहिए जो निजी प्रबन्धक का होता है अर्थात् औद्योगिक लाभ का अधिकतमकरण करना।'' इस प्रकार सार्वजनिक उद्यमो को लाभ की एक उचित दर का लक्ष्य बनाना चाहिए। हालाकि सभी उद्यमों के लिए लाभ की एक ही दर निर्धारित करना कठिन है। इसके अलावा सभी सार्वजनिक उद्यम एक साथ ही लाभ नहीं कमा सकते जिसके कुछ कारण हैं

पहला, वे सार्वजनिक उद्यम जो लाभ-अलाभ (break-even) स्थिति तक पहुचते ही नहीं वे लाभ कैसे कमाएगे, क्योकि उनकी ऊपरी लागतें बहुत अधिक होगी।

दूसरा, भारी उद्योगो के मामले में गर्भावधि (gestation) बहुत अधिक होती है। इसलिए उन्हे लाभ-अलाभ स्थिति तक पहुचने तथा लाभ कमाने के लिए एक लम्बे समय तक प्रतीक्षा करनी पडती है। ज्यादा से ज्यादा इस प्रकार के उद्यम ऐसा कर सकते हैं कि हानि न हो और अपनी लागते पूरी करे।

तीसरा, सार्वजनिक उपयोगिताओ के बारे मे मुख्य उद्देश्य जनकल्याण होता है न कि लाभ कमाना। ऐसे उद्यम सीमात लागत व कीमत को बराबर करने का प्रयास करते हैं। वे निवेश पर प्रतिफल की बजाय उत्पादन पर अधिक ध्यान देते हैं।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)

कुछ अर्थशास्त्री सभी सार्वजनिक उद्यमो के लिए लाभ-कीमत नीति का समर्थन नहीं करते। कुछ सार्वजनिक उपयोगिताओं के लिए न-लाभ न-हानि नीति का समर्थन करते हैं या सीमात लागत कीमत निर्धारण नियम का। अन्य लाभ-कीमत नीति को कुछ शर्तों के साथ समर्थन देते हैं।

ऐसे मामलो मे जहा सार्वजनिक उद्यमो की वस्तु निजी क्षेत्र में उत्पादन के कच्चे माल के रूप मे प्रयोग होती है, वहा लाभ-कीमत नीति का निजी क्षेत्र के उद्योगो के विकास पर विपरीत प्रभाव पडेगा।

इसके अतिरिक्त जहा सार्वजनिक उद्यमो की वस्तुओ की कीमत, लाभ की दृष्टि से रखी गई है, वहा एक महत्वपूर्ण सवाल यह उठता है कि ऐसी वस्तुओ के उपभोक्ता सरकार के फायदे के लिए अप्रत्यक्ष रूप से विशेष कर क्यो अदा करे?

ऐसे उद्यम जहा सरकार का एकाधिकार अथवा अर्ध-एकाधिकार है वहा उनकी इच्छा वस्तुओ के लिए उपभोक्ताओ से बहुत ऊची कीमत वसूल कर लाभ कमाने की रहती है। इस प्रकार की लाभ-कीमत नीति समाज के लिए हानिकारक होगी क्योकि ऊची कीमतो से ऊची लागत की अर्थव्यवस्था बन जाएगी। इसका उपाय लाभ-कीमत नीति को समाप्त करना नहीं है बल्कि इस नीति को उपभोक्ता तथा अर्थव्यवस्था के हित के लिए नियमित करना है।

प्रश्न

1. सार्वजनिक (लोक) उपयोगिता सेवाओं के लिए किस कीमत-निर्धारण नीति को अपनाना चाहिए? विवेचना कीजिए।
2. इसकी विवेचना कीजिए कि क्या सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को सीमात लागत कीमत निर्धारण अथवा औसत लागत कीमत-निर्धारण नियम का अनुसरण करना चाहिए।
3. क्या लोक उद्योगों को लाभ-कीमत नीति अथवा न-लाभ न-हानि नीति पर चलना चाहिए? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिए।

भाग सात
समष्टि अर्थशास्त्र
(MICRO ECONOMICS)

अध्याय-49
राष्ट्रीय आय : धारणाएँ और माप
(NATIONAL INCOME CONCEPTS AND MEASUREMENT)

1 प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

'*राष्ट्रीय आय*' एक *अनिश्चित शब्द है जिसे राष्ट्रीय लाभांश, राष्ट्रीय उत्पाद और* राष्ट्रीय व्यय के साथ पर्यायवाची रूप मे प्रयोग किया जाता है। इसी आधार पर राष्ट्रीय आय की भिन्न-भिन्न परिभाषाए दी जाती हैं। साधारण भाषा मे राष्ट्रीय आय से अभिप्राय किसी देश मे एक वर्ष मे उत्पादित वस्तुओ और सेवाओ के कुल मूल्य से है। दूसरे शब्दो मे, *एक देश मे वर्ष भर मे आर्थिक क्रियाओ से अर्जित आय की कुल मात्रा* को राष्ट्रीय आय कहा जाता है। इसम सभी साधनों को दी गई मजदूरी, ब्याज, लगान एव लाभ सम्मिलित किए जाते हैं।

1 राष्ट्रीय आय की परिभाषाए (Definitions of National Income)

राष्ट्रीय आय की परिभाषाओ को दो श्रेणियो मे बाटा जा सकता है। प्रथम, मार्शल, पीगू तथा फिशर की परम्परागत परिभाषाए और दूसरे, आधुनिक परिभाषाए।

मार्शल की परिभाषा—मार्शल के अनुसार, "किसी एक देश का श्रम तथा पूजी उसके *प्राकृतिक साधनो पर क्रियाशील होकर प्रति वर्ष भौतिक और अभौतिक वस्तुओ का एक* शुद्ध योगफल पैदा करता है, जिसमे सभी प्रकार की सेवाए सम्मिलित होती हैं। यही उस देश की वास्तविक शुद्ध वार्षिक आय या देश का राजस्व या राष्ट्रीय लाभाश है।" इस परिभाषा मे 'शुद्ध' शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है कि उत्पादन करते समय *मशीनो की टूट-फूट, मूल्य-ह्रास तथा कच्चे माल और अर्धनिर्मित वस्तुओ के क्षय को* कुल राष्ट्रीय आय मे से घटाना पड़ता है, तभी शुद्ध राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है और इसमे विदेशी निवेश से होने वाली आय को जोड़ा जाता है।

इसकी त्रुटियां (Its Defects)—यद्यपि मार्शल की परिभाषा सरल और विस्तृत है, *फिर भी इसमे कई त्रुटिया पाई जाती हैं।*

प्रथम, आधुनिक युग मे उत्पादित वस्तुए और सेवाए इतनी अधिक और भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं कि उनका मूल्याकन करना बहुत कठिन होता है जिससे राष्ट्रीय आय का आगणन सही नही हो सकता।

दूसरे, *राष्ट्रीय आय के अनुमान मे दोहरी गणना की त्रुटि का भय भी बना रहता है।*

दोहरी गणना से अभिप्राय किसी वस्तु या सेवा,, जैसे कच्चा माल या श्रम आदि का राष्ट्रीय आय में से दो या अधिक बार गिने जाने की सम्भावना से है। उदाहरणार्थ, एक किसान 2,000 रुपये की गेहूं एक आटे की मिल को बेचता है, जो आगे गेहूं का आटा थोक व्यापारी को और थोक व्यापारी परचून व्यापारियों को, जो आगे ग्राहकों को आटा बेचते हैं। यदि हर बार गेहूं या आटे की कीमत की गणना कर ली जाए तो यह 8,000 रुपये होगी। वास्तव में 2,000 रुपये की ही वृद्धि हुई। परन्तु ऐसी गलती की सम्भावना सदैव पाई जाती है।

तीसरे, राष्ट्रीय आय का अनुमान इस कारण भी सही नहीं होता क्योंकि बहुत-सी उत्पादित वस्तुएं बाजार में बिकने नहीं आतीं और उनको उत्पादक ही सीधे उपभोग में प्रयोग कर लेता है या अन्य वस्तुओं के बदले में विनिमय कर लेता है। ऐसा भारत जैसे कृषि प्रधान देशों में होता है। इस प्रकार अगणित राष्ट्रीय आय का परिमाण यथार्थ से कम रह जाता है।

पीगू की परिभाषा—पीगू ने राष्ट्रीय आय की परिभाषा में उस आय को सम्मिलित किया है जो मुद्रा में मापी जा सके। पीगू के शब्दों में, "राष्ट्रीय आय समाज की वस्तुपरक (objective) आय का वह भाग है जो मुद्रा में मापा जा सकता है और इसमें विदेशों से प्राप्त आय भी सम्मिलित होती है।" यह परिभाषा मार्शल की परिभाषा से अधिक अच्छी है, क्योंकि इसमें मार्शल की परिभाषा में निहित कठिनाइयां नहीं पाई जातीं। यह व्यावहारिक भी सिद्ध हुई है। राष्ट्रीय आय की गणना करते समय इस परिभाषा में बताई गई दो बातों के अनुसार ही आजकल आगणन होता है। प्रथम, दोहरी गणना से बचते हुए, उन वस्तुओं और सेवाओं को राष्ट्रीय आय में शामिल किया जाता है जो मुद्रा में मापी जा सकती हैं। दूसरे, विदेशों से प्राप्त आय को राष्ट्रीय आय में सम्मिलित किया जाता है।

इसकी त्रुटियां (Its Defects)—पीगू की परिभाषा परिशुद्ध, सरल और व्यावहारिक होने पर भी आलोचनारहित नहीं है।

प्रथम, पीगू की परिभाषा के अनुसार हमें व्यर्थ ही उन पदार्थों का, जिनका मुद्रा विनिमय हो सके और उन पदार्थों का जिनका मुद्रा द्वारा विनिमय न हो सके, भेद करना पड़ता है। परन्तु वास्तव में ऐसे पदार्थों के मूल रूप में कोई अन्तर नहीं होता, चाहे उनका मुद्रा से विनिमय हो सके या न हो सके।

दूसरे, इस परिभाषा के अनुसार जब केवल वही वस्तुएं और सेवाएं राष्ट्रीय आय के आगणन में शामिल की जाती हैं जिनका मुद्रा-विनिमय होता है, तब राष्ट्रीय आय का माप सही नहीं होता। पीगू के अनुसार किसी स्त्री का नर्स के रूप में कार्य करना तो राष्ट्रीय आय में शामिल होगा लेकिन उसी स्त्री का घर में बच्चों का पालन-पोषण करने का काम राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं होता क्योंकि वह इसमें कुछ वेतन प्राप्त नहीं करती। इसी प्रकार पीगू का यह भी विचार है कि जब कोई व्यक्ति अपनी महिला सेक्रेटरी से विवाह कर लेता है तो वह कोई वेतन प्राप्त नहीं करती, जिससे राष्ट्रीय

आय कम हो जाती है। इस प्रकार पीगू की परिभाषा से कई विरोधाभास उत्पन्न होते हैं।

तीसरे, पीगू की परिभाषा केवल विकसित देशों में ही क्रियाशील हो सकती है, जहा कि वस्तुओ और सेवाओ का मुद्रा-विनिमय होता है। इसके अनुसार ससार के पिछडे और अविकसित देशों मे जहा वस्तु-विनिमय अधिक होता है, राष्ट्रीय आय का ठीक-ठीक आगणन सम्भव नही क्योंकि यह सदैव वास्तविक स्तर से कम ही निकलेगी। अत पीगू की परिभाषा का सीमित क्षेत्र है।

फिशर की परिभाषा—फिशर 'उपभोग' को राष्ट्रीय आय का आधार मानते है, जबकि मार्शल और पीगू उत्पादन को फिशर के अनुसार, "राष्ट्रीय लाभाश अथवा आय मे केवल अन्तिम उपभोक्ताओ द्वारा प्राप्त सेवाए सम्मिलित होती हैं, चाहे वे भौतिक या मानवीय वातावरण से प्राप्त हो। इस प्रकार एक पियानो या ओवरकोट जो मेरे लिए इस वर्ष बनाया गया है, इस वर्ष की आय का भाग नही है, वरन् पूजी मे वृद्धि है। केवल इन वस्तुओ द्वारा मेरे लिए इस वर्ष की गई सेवाए ही आय हैं।" फिशर की परिभाषा को मार्शल तथा पीगू की परिभाषाओ से उत्तम माना जाता है, क्योंकि फिशर की परिभाषा मे उचित आर्थिक कल्याण का बोध होता है। आर्थिक कल्याण उपभोग पर निर्भर करता है और हमारे जीवन स्तर का द्योतक उपभोग ही है।

इसकी त्रुटियां (Its Defects) —परन्तु इस परिभाषा मे कम व्यावहारिकता पाई जाती है क्योंकि वस्तुओ और सेवाओ को मुद्रा मे मापने की बहुत-सी कठिनाइया हैं।

प्रथम, शुद्ध उत्पादन की अपेक्षा शुद्ध उपभोग के मुद्रा मूल्य का अनुमान लगाना आसान नही। एक ही देश मे एक वस्तु के उपभोक्ता अनेक व्यक्ति होते हैं और वे भी भिन्न-भिन्न स्थानो पर जिनके कुल उपभोग का मुद्रा मे मूल्याकन करना कठिन होता है।

दूसरे, उपभोग की बहुत-सी वस्तुए टिकाऊ होती हैं जिनका प्रयोग कई वर्षों तक चलता रहता है। यदि फिशर के पियानो या ओवरकोट के उदाहरण को ले तो उनके अनुसार वर्ष भर मे जितनी सेवा उनके द्वारा हुई उसका मूल्य ही राष्ट्रीय आय मे सम्मिलित किया जायेगा। यदि एक ओवरकोट की कीमत 100 रुपये है और यह 10 वर्ष चलेगा तो फिशर केवल 10 रुपये ही एक वर्ष की राष्ट्रीय आय मे शामिल करेगा जबकि मार्शल तथा पीगू 100 रुपये को उस वर्ष की राष्ट्रीय आय मे शामिल करेंगे, जिस वर्ष यह बनाया गया। इसके बावजूद भी यह निश्चित तौर से नही कहा जा सकता कि ओवरकोट 10 वर्ष ही चलेगा। इससे अधिक समय भी चल सकता है और कम भी। इस प्रकार राष्ट्रीय आय का अनुमान सही नही होगा।

तीसरे, टिकाऊ वस्तुओ का अक्सर हस्तान्तरण होता रहता है जिससे उनके स्वामित्व और मूल्य मे भी परिवर्तन होता जाता है। इससे ऐसी वस्तुओं के नया मूल्य को उपभोग के दृष्टिकोण से मापना कठिन हो जाता है। जैसे कि एक स्कूटर का मालिक उसे अधिक कीमत पर बेचता है और जो व्यक्ति खरीदता है वह कुछ वर्ष उसका प्रयोग करके लगभग स्कूटर की वास्तविक कीमत पर ही आगे बेच देता है। ऐसी अवस्था मे स्कूटर का असली मूल्य राष्ट्रीय आय मे लिया जाय या ब्लैक मूल्य और उसके बाद न्यू-न्यू

हस्तातरण होता जाता है तो कौन-सी कीमत स्कूटर की औसत आय के अनुसार एक वर्ष मे राष्ट्रीय आय मे सम्मिलित की जाये ।

इस प्रकार मार्शल, पीगू व फिशर की परिभाषाए नितान्त त्रुटिहीन नही हैं। फिर भी, मार्शल तथा पीगू की परिभाषाए हमे आर्थिक कल्याण को प्रभावित करने वाले कारणो को बताती हैं, जबकि फिशर की परिभाषा भिन्न-भिन्न वर्षों के आर्थिक कल्याण की तुलना करने मे सहायक सिद्ध होती है ।

आधुनिक दृष्टिकोण से राष्ट्रीय आय की परिभाषा साईमन कुज्नेट्स ने इन शब्दो मे की है - "राष्ट्रीय आय वस्तुओ और सेवाओ का वह शुद्ध उत्पादन है जो एक वर्ष की अवधि मे देश की उत्पादन प्रणाली मे अन्तिम उपभोक्ताओ के हाथो मे पहुचता है।" जबकि सयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट मे राष्ट्रीय आय की परिभाषा आगणन की प्रणाली के आधार पर की गई है । एक देश मे एक वर्ष मे शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन के दृष्टिकोण से, विभिन्न साधनो के भागो के योग के दृष्टिकोण से तथा शुद्ध राष्ट्रीय व्यय के दृष्टिकोण से ।[1] व्यावहारिक तौर पर राष्ट्रीय आय की गणना करते समय इन तीनो मे से किसी भी परिभाषा को अपनाया जा सकता है क्योंकि यदि विभिन्न मदो को ठीक प्रकार से आगणन मे लिया जाए तो इनसे समान राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है ।

2 राष्ट्रीय आय की धारणाए (Concepts of National Income)

राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित कई अवधारणाए हैं जैसे, सकल राष्ट्रीय उत्पाद (gross national product), शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (net national product), साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय आय (net national income at factor cost) साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (net domestic product at factors cost), वैयक्तिक आय (personal income), उपभोग्य आय (disposable income) तथा वास्तविक आय (real income) । इनका विवेचन क्रमश नीचे दिया गया है ।

(क) सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product)

सकल राष्ट्रीय उत्पाद एक वर्ष मे चालू उत्पादन से अन्तिम वस्तुओ और सेवाओ के बहाव का बाजार मूल्य पर कुल माप है जिसमे विदेशो से शुद्ध आय शामिल होती है । GNP मे चार प्रकार की अन्तिम वस्तुए और सेवाए सम्मिलित होती हैं -

(1) लोगो की तुरन्त आवश्यकताए सतुष्ट करने के लिए उपभोक्ता वस्तुए और सेवाए, (2) पूजी पदार्थों मे सकल निजी घरेलू निवेश जिसमे स्थिर पूजी निर्माण, आवास निर्माण तथा निर्मित एव अर्द्धनिर्मित वस्तुओ की मालसूचिया, (3) सरकार द्वारा

[1] इनकी विस्तृत व्याख्या नीचे की गई है ।

[2] सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) ही सकल राष्ट्रीय आय (Gross National Income) होती है ।

उत्पादित वस्तुएं और सेवाएं, और (4) वस्तुओं और सेवाओं का शुद्ध निर्यात, अर्थात वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात और आयात के मूल्य मे अन्तर, जिसे विदेशो से शुद्ध आय मे कहा जाता है।

कुल राष्ट्रीय उत्पाद की इस धारणा मे कुछ विशेष बातो पर ध्यान देना आवश्यक है।

प्रथम, सकल राष्ट्रीय उत्पाद मुद्रा का माप है जिसमे देश मे वर्ष भर मे उत्पादित सभी प्रकार की सेवाओं और वस्तुओं को चालू कीमतो पर मुद्रा द्वारा माप कर जोड दिया जाता है। परन्तु इस तरीके से सकल राष्ट्रीय उत्पाद मे कीमतों के बढ़ने व कम होने में कमी या वृद्धि आ जाती है, जो वास्तविक नही होती। इस कमी को दूर करने के लिए एक ऐसा आधार वर्ष (जैसे 1960) ले लिया जाता है, जब कीमतें सामान्य होती हैं और सकल राष्ट्रीय उत्पाद का समायोजन (adjustment) आधार वर्ष के सूचकाक के अनुसार किया जाता है। इस प्रकार जो सकल राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होता है, वह आधार वर्ष की कीमतो पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP at 1960 prices) कहलायेगा।

दूसरे, अर्थव्यवस्था के सकल उत्पादन की गणना करते समय केवल अन्तिम पदार्थों की बाजार कीमत ही लेनी चाहिए। बहुत से पदार्थ उपभोक्ताओ तक पहुचते हुए कई स्टेजो से गुजरते हैं। यदि उनकी हर स्टेज पर गिनती कर ली जाये तो वे कई बार राष्ट्रीय उत्पाद में सम्मिलित हो जायेंगे। जिससे सकल राष्ट्रीय उत्पाद बहुत बढ़ जायेगा। अत दोहरी गणना से बचने के लिए मध्यवर्ती पदार्थों को न लेकर केवल अन्तिम पदार्थों को ही लेना चाहिए।

तीसरे, सकल राष्ट्रीय उत्पाद मे मुफ्त वस्तुओ और सेवाओ को शामिल नहीं किया जाता क्योंकि उनकी बाजार कीमत का ठीक अनुमान नही होता। जैसे मा का बच्चे को पालना, प्राध्यापक का अपने पुत्र को पढाना, सगीत शास्त्री का मित्रो को सगीत सुनाना, शिल्पी का अपने शौक के लिए मूर्ति निर्माण करना आदि।

चौथे, सकल राष्ट्रीय उत्पाद मे ऐसे सौदे नहीं लिए जाते जो चालू वर्ष के उत्पादन से प्राप्त नही होते व जिनका उत्पादन मे कोई योग नही होता। पुरानी वस्तुओ, पुरानी कम्पनियो के शेयर व ऋण-पत्रो तथा परिसम्पत्तियो का क्रय-विक्रय सकल राष्ट्रीय उत्पाद मे सम्मिलित नही किया जाता क्योकि इनसे राष्ट्रीय उत्पादन में कोई वृद्धि नही होती। केवल वस्तुओ का हस्तातरण ही होता है। इसी प्रकार सामाजिक सुरक्षा के अधीन प्राप्त होने वाले भुगतान जैसे बेरोजगारी, बीमा भत्ता, बुढापे मे प्राप्त होने वाली पैन्शन तथा सार्वजनिक ऋण पर ब्याज भी सकल राष्ट्रीय उत्पाद मे शामिल नही किए जाते क्योकि प्राप्तकर्ता उनके बदले मे कोई सेवा प्रदान नही करते। परन्तु मशीनो, सयन्त्रो तथा अन्य पूजी पदार्थो मे होने वाले मूल्यह्रास को सकल राष्ट्रीय उत्पाद से घटाया नहीजाता।

पांचवें, पूजी परिसम्पत्तियो मे बाजार मूल्यो के उतार-चढाव से होने वाले परिवर्तनो के कारण जो लाभ व हानिया होती हैं, उन्हें सकल राष्ट्रीय उत्पाद मे शामिल नही किया

जाता, बशर्ते कि वे चालू उत्पादन या आर्थिक क्रिया के कारण न हो। उदाहरणार्थ, यदि किसी मकान या भूमि का मूल्य स्फीति के कारण बढ़ जाता है तो उसे बेचने से जो लाभ प्राप्त होता है, सकल राष्ट्रीय आय का भाग नहीं होगा। परन्तु यदि चालू वर्ष में मकान का एक भाग नया बनाया जाता है तो इससे मकान के मूल्य में जो वृद्धि (बनाये गये भाग की लागत को कम करके) होती है, वह सकल राष्ट्रीय उत्पाद का भाग होगी। इसी प्रकार जिन परिसम्पत्तियों में होने वाले मूल्य परिवर्तनों का पहले से ही अनुमान लगाया जा सकता है और बाद व आय के विरुद्ध बीमा हो जाता है, उन्हें भी सकल राष्ट्रीय उत्पाद में सम्मिलित नहीं किया जाता।

अन्तिम, सकल राष्ट्रीय उत्पाद में अवैध क्रियाओं से प्राप्त आय को शामिल नहीं किया जाता। यद्यपि जिन वस्तुओं का काला बाजार होता है, उनकी कीमत भी होती है और वे लोगों की आवश्यकताएं पूरी करती हैं, परन्तु सामाजिक दृष्टिकोण से लाभदायक न होने के कारण उनके क्रय-विक्रय से प्राप्त आय को राष्ट्रीय आय से बाहर ही रखा जाता है। परन्तु ऐसा करने के मुख्य दो कारण हैं। प्रथम, यह मालूम नहीं होता कि ये वस्तुएं चालू वर्ष में उत्पादित हुईं या पिछले वर्षों में। दूसरा, इनमें से बहुत-सी वस्तुएं विदेशों में बनी होती हैं जो तस्करी से प्राप्त होती हैं। इनको राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद की तीन विधियां (Three methods to GNP)—सकल राष्ट्रीय उत्पाद के बारे में आधारभूत तत्वों का अध्ययन करने के बाद, यह जानना आवश्यक हो जाता है कि इसका आगणन कैसे किया जाता है। इसके लिए तीन विधियों का प्रयोग किया जाता है। एक, व्यय विधि, दूसरी आय विधि, और तीसरी, मूल्य बढ़ाव विधि।

(1) सकल राष्ट्रीय उत्पाद की आय विधि (Income Method to GNP)

आय विधि द्वारा सकल राष्ट्रीय उत्पाद मापने के लिए वर्ष भर में उत्पादन-साधनों को मुद्रा में दिए गए पुरस्कार शामिल किए जाते हैं। इस विधि में सकल राष्ट्रीय उत्पाद निम्नलिखित मदों का जोड़ होता है :

(i) **मजदूरी तथा वेतन** (Wages and salaries)—श्रमिकों और प्रबन्धकर्ताओं द्वारा सब प्रकार की मजदूरी और वेतन जो वे उत्पादन क्रिया करके कमाते हैं, इसके अन्तर्गत आते हैं। इसमें सभी प्रकार के अंशदान जैसे ओवरटाईम, कमीशन, भविष्य निधियां, बीमा आदि में वर्ष में प्राप्त या जमा की गई राशियां सम्मिलित होती हैं।

(ii) **किराए** (Rents)—भूमि, दुकान, मकान, फैक्टरी आदि के किराए तथा ऐसी सभी परिसम्पत्तियों के अनुमानित किराए, जिन्हें मालिक स्वयं इस्तेमाल करते हैं, कुल किराए में शामिल किया जाता है।

(iii) **ब्याज** (Interest)—देश के व्यक्तियों द्वारा भिन्न स्रोतों से प्राप्त ब्याज शामिल किया जाता है। इसमें किसी व्यापारी द्वारा अपने कार्य में जो निजी पूंजी लगाई

जाती है जिसे वह उधार नहीं लेता, उसका अनुमानित ब्याज भी जोड़ा जाता है। परन्तु सरकारी कर्जों से प्राप्त ब्याज सम्मिलित नहीं किया जाता क्योंकि वह केवल राष्ट्रीय आय का हस्तान्तरण ही होता है।

(iv) लाभांश (Dividends)—GNP में कम्पनियों से शेयर होल्डरों द्वारा अर्जित लाभांश भी शामिल होते हैं।

(v) अवितरित निगम लाभ (Undistributed corporate profits)—लाभ जो कम्पनियों द्वारा अपने पास रखे जाते हैं और बांटे नहीं जाते GNP में शामिल होते हैं।

(vi) मिश्रित आय (Mixed incomes)—इसमें अनिगमित व्यवसायों (unincorporated businesses), मालेदारियों और स्वरोजगार में लगे व्यक्तियों के लाभ सम्मिलित होते हैं। ये सभी GNP का भाग होते हैं।

(vii) प्रत्यक्ष कर (Direct taxes)—व्यक्तियों, निगमों और अन्य व्यवसायों पर लगाए गए कर GNP में शामिल होते हैं।

(viii) परोक्ष कर (Indirect taxes)—सरकार कई प्रकार के परोक्ष कर लगाती है जैसे उत्पादन शुल्क (excise duties) एवं बिक्री कर। इन करों को वस्तुओं की कीमतों में ही सम्मिलित कर लिया जाता है। परन्तु इनसे प्राप्त राजस्व सरकारी खजाने में जाता है, उत्पादन साधनों को प्राप्त नहीं होता। इसलिए इनसे प्राप्त आय सकल राष्ट्रीय उत्पाद में जमा कर दी जाती है।

(ix) मूल्यह्रास (Depreciation)—हर निगम मशीनों, संयन्त्रों तथा अन्य पूंजी पदार्थों की टूट-फूट, घिसाई आदि के कारण होने वाले खर्चों को मूल्यह्रास के रूप में रखता है। यह राशि भी उत्पादन साधनों की आय का भाग न होने के कारण सकल राष्ट्रीय उत्पाद में सम्मिलित की जाती है।

(x) विदेशों से अर्जित शुद्ध आय (Net income earned from abroad)—यह वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात और आयात के मूल्य का अन्तर होती है। यदि यह अन्तर धनात्मक हो तो इसे GNP में जमा कर लिया जाता है और यदि यह ऋणात्मक हो तो इसे GNP से घटा दिया जाता है।

इस प्रकार GNP according to Income Method = wages and salaries + rents + interest + dividends + undistributed corporate profits + mixed incomes + direct taxes + indirect taxes + depreciation + net income from adroad

(II) सकल राष्ट्रीय उत्पाद की व्यय विधि (Expenditure Method to GNP)

व्यय के दृष्टिकोण से सकल राष्ट्रीय उत्पाद वर्ष भर में वस्तुओं और सेवाओं पर किए गए व्यय का कुल जोड़ होता है जिसमें निम्नलिखित मदें शामिल होती हैं

(i) निजी उपभोग व्यय (Private consumption expenditure)—देश के लोगों द्वारा अपने व्यक्तिगत उपभोग पर सब प्रकार का व्यय इसमें सम्मिलित होता है। इसके

अन्तर्गत टिकाऊ वस्तुओं जैसे घड़ी, साईकल, रेडियो आदि पर खर्च, उपभोग योग्य वस्तुओं जैसे दूध, रोटी, घी, कपड़े आदि पर खर्च व सब प्रकार की सेवाओं जैसे स्कूल, डाक्टर, वकील की फीस तथा यातायात आदि पर किए गए खर्च सम्मिलित होते हैं। ये सब अन्तिम वस्तुएं ली जाती हैं।

(ii) **सकल घरेलू निजी निवेश** (Gross domestic private investment)—इसके अन्तर्गत निजी उद्यम द्वारा नये निवेश पर और पुरानी पूंजी का प्रतिस्थापन करने के लिए व्यय आता है। इसमें आवास निर्माण, फैक्टरियों की बिल्डिंग, हर प्रकार की मशीनरी, यन्त्रों, व पूंजी पदार्थों पर किए गए खर्च शामिल होते हैं। विशेषकर, इसमें माल सूची में हुई वृद्धि या कमी को भी जमा किया जाता है या घटा दिया जाता है। मालसूची में वर्ष भर में उत्पादित परन्तु न बेची गई निर्मित व अर्धनिर्मित वस्तुएं तथा कच्चे माल के भण्डार शामिल होते हैं जिनका लेखा सकल राष्ट्रीय उत्पाद में करना जरूरी होता है। इसमें शेयर तथा स्टॉक के वित्तीय विनिमय को नहीं लिया जाता क्योंकि इनका क्रय-विक्रय वास्तविक निवेश नहीं होता, परन्तु मूल्यह्रास को जोड़ा जाता है।

(iii) **विदेशी निवेश** (Net foreign investment)—शुद्ध विदेशी निवेश से अभिप्राय निर्यात और आयात का अन्तर या निर्यात आधिक्य (surplus) है। हर देश कुछ वस्तुएं विदेशों को निर्यात करता है और कुछ विदेशों से आयात करता है। आयात की गई वस्तुएं देश में उत्पादित न होने के कारण राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं की जा सकती परन्तु निर्यात वस्तुएं देश में ही निर्मित होती हैं। इसलिए निर्यात और आयात वस्तुओं के अन्तर-मूल्य को सकल राष्ट्रीय उत्पाद में सम्मिलित किया जाता है चाहे, यह धनात्मक हो या ऋणात्मक।

(iv) **वस्तुओं व सेवाओं पर सरकारी व्यय** (Government expenditure on goods and services)—देश की सरकार द्वारा वस्तुओं और सेवाओं पर किया गया व्यय भी सकल राष्ट्रीय उत्पाद का भाग होता है। केन्द्रीय, प्रान्तीय व स्थानीय सरकारें अपने कर्मचारियों, पुलिस तथा सेना पर बहुत व्यय करती है। सरकारों को दफ्तरों का काम चलाने के लिए उपभोग वस्तुओं पर भी व्यय करना पड़ता है जिसमें कागज, पैन, पैन्सिल और कई प्रकार की स्टेशनरी, कपड़ा, फर्नीचर, कारें, आदि शामिल होते हैं। इसमें सरकारी उद्यमों पर किया जा रहा खर्च भी आता है। परन्तु अन्तरण भुगतानों पर व्यय नहीं जोड़ा जाता क्योंकि ये चालू वर्ष में उत्पादित सेवाओं और वस्तुओं के बदले में नहीं दिए जाते।

इस प्रकार GNP according to Expenditure Method = Private Consumption Expenditure (C) + Gross Domestic Private Investment (I) + Net Foreign Investment $(X-M)$ + Government Expenditure on goods and Services (G) = $C+I+(X-M)+G$, जहां X निर्यात हैं और M आयात।

(III) मूल्य बढ़ाव द्वारा GNP (Value Added by GNP)

GNP को मापने का अन्य तरीका मूल्य बढ़ाव द्वारा होता है GNP का आगणन करते समय चालू कीमतों पर एक वर्ष में उत्पादित की गई अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं के मुद्रा मूल्य को लिया जाता है। दोहरी गणना से बचने का यह एक उपाय है। परन्तु एक मध्यवर्ती (intermediate) और अन्तिम वस्तु में सही भेद करना कठिन होता है। उदाहरणार्थ, कच्चे माल, अर्धनिर्मित वस्तुएं, ईंधन, सेवाएं आदि एक उद्योग द्वारा अन्य उद्योगों को आगतों (inputs) के रूप में बेची जाती है। वे एक उद्योग के लिए अन्तिम वस्तुएं और अन्य उद्योगों के लिए मध्यवर्ती वस्तुएं हो सकती हैं। इसलिए, दोहरेपन से बचने के लिए, अन्तिम वस्तुओं के निर्माण में प्रयोग की गई मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्य को अर्थव्यवस्था के प्रत्येक उद्योग के कुल उत्पादन के मूल्य में से घटा देना चाहिए। अत उत्पादन की प्रत्येक स्टेज में भौतिक निर्गतों (outputs) के तथा आगतों के मूल्य में अन्तर को मूल्य बढ़ाव कहते हैं।[3] यदि अर्थव्यवस्था में सभी उद्योगों के ऐसे अन्तरों को जोड़ दिया जाए तो मूल्य बढ़ाव द्वारा GNP प्राप्त हो जाती है। इसकी गणना नीचे तालिका I में दिखाई गई है

तालिका I मूल्य बढ़ाव द्वारा GNP (रु० करोड़)

	उद्योग (1)	कुल निर्गत (उत्पादन) (2)	मध्यवर्तीक्रम (3)	मूल्य बढ़ाव (4)=(2—3)
1	कृषि	30	10	20
2	विनिर्माण	70	45	25
3	अन्य	55	25	30
	कुल	155	80	75

तालिका इस मान्यता पर बनाई गई है कि अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन केवल तीन क्षेत्रों में ही होता है। कृषि, विनिर्माण तथा अन्य क्षेत्र। प्रत्येक क्षेत्र के कुल उत्पादन के मूल्य में से उसकी मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्य को घटा दिया गया है जिससे समस्त अर्थ-व्यवस्था का मूल्य बढ़ाव प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था के कुल उत्पादन का मूल्य जो 155 करोड़ रु० है उसमें से मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य 80 करोड़ रु० घटाने से 75 करोड़ रुपये मूल्य बढ़ाव द्वारा GNP प्राप्त होता है।

कुल मूल्य बढ़ाव अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पाद (gross domestic product) के मूल्य के बराबर होता है। इस मूल्य बढ़ाव में से मुख्य भाग मजदूरी और वेतन, किराया, ब्याज और लाभ के रूप में जाता है, एक छोटा भाग अप्रत्यक्ष-कर के रूप में

[3]The difference between the value of material outputs and inputs at each stage of production is called the value added

सरकार को जाता है और शेष रकम मूल्य ह्रास के लिए होती है। इसे तालिका II में दिखाया गया है।

तालिका II सकल घरेलू उत्पाद (GNP)

	रु० करोड़
1 मजदूरी और वेतन	45
2 किराये से आय	3
3 शुद्ध ब्याज	4
4 कम्पनियों के लाभ	8
5. अप्रत्यक्ष कर	7
6 मूल्य ह्रास	8
सकल घरेलू उत्पाद	75

इस प्रकार तालिका I और II से ज्ञात होता है कि अर्थव्यवस्था का कुल सकल मूल्य बढ़ाव उसके सकल घरेलू उत्पाद के मूल्य के बराबर होता है। यदि सकल मूल्य बढ़ाव में से मूल्यह्रास घटा दिया जाए तो, शुद्ध (net) मूल्य बढ़ाव प्राप्त होता है जो 67 करोड़ रु० (75-8) है। जो बाजार कीमतों पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (net domestic product) है। फिर, यदि 7 करोड़ रु० के अप्रत्यक्ष करों को 67 करोड़ रु० के शुद्ध घरेलू उत्पाद में घटा दिया जाता है तो 60 करोड़ रु० का साधन लागत पर शुद्ध मूल्य बढ़ाव (net value added at factor cost) जो साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद के बराबर है। इसे तालिका III में दर्शाया गया है।

तालिका III : साधन लागत पर मूल्य बढ़ाव

	रु० करोड़
1 उत्पादन का बाजार मूल्य	155
2. घटा मध्यवर्ती वस्तुओं की लागत	80
3 सकल मूल्य बढ़ाव	75
4 घटा मूल्यह्रास	8
5 शुद्ध मूल्य बढ़ाव या बाजार कीमतों पर शुद्ध घरेलू उत्पाद	67
6 घटा अप्रत्यक्ष कर	7
7. साधन लागत पर शुद्ध मूल्य बढ़ाव	60

60 करोड़ रु० का साधन लागत पर शुद्ध मूल्य बढ़ाव साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद के बराबर होता है जैसा कि तालिका II में 1 से 4 मदों को जमा करने से स्पष्ट होता है : 45+3+4+8 = 60 करोड़ रु०।

यदि सकल मूल्य बढ़ाव में विदेशों से शुद्ध आय जमा कर दी जाए तो सकल राष्ट्रीय आय (GNI) प्राप्त होती है। मान लीजिए कि विदेशों से शुद्ध आय 5 करोड़ रु० है। अतः सकल राष्ट्रीय आय, GNI = 75 + 5 = 80 करोड़ रु०।

इसका महत्त्व (Its Importance)— राष्ट्रीय आय को मापने की मूल्य बढ़ाव विधि उत्पाद और आय विधियों से अधिक वास्तविक है क्योंकि यह मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्य को घटा कर दोहरी गणना की समस्या को दूर करती है। अतः यह विधि राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में मध्यवर्ती वस्तुओं के महत्त्व को स्थापित करती है। दूसरे, मूल्य बढ़ाव से संबद्ध राष्ट्रीय आय लेखों का अध्ययन करने से प्रत्येक उत्पादन क्षेत्र का GNP के मूल्य को योगदान जाना जा सकता है। उदाहरणार्थ यह बता सकता है कि क्या पिछले वर्ष की तुलना में चालू वर्ष में कृषि अधिक योगदान दे रही है या विनिर्माण का भाग कम हो रहा है या तृतीयक (टर्शियरी) क्षेत्र का बढ़ रहा है। तीसरे, यह विधि बहुत ही लाभदायक है क्योंकि यह विभिन्न प्रकार के वस्तु क्रयों को जोड़ कर प्राप्त किए गए GNP अनुमानों की पड़ताल करने का साधन प्रदान करती है।

इसकी कठिनाइयां (Its Difficulties)—फिर भी, कुछ सार्वजनिक सेवाओं जैसे पुलिस, सेना, स्वास्थ्य, शिक्षा, आदि के बारे में मूल्य बढ़ाव के आगणन में कठिनइयां उत्पन्न होती हैं जिनका मुद्रा में सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। इसी प्रकार, सिंचाई और विद्युत परियोजनाओं द्वारा अर्जित किए गए लाभों का मूल्य बढ़ाव में योगदान का अनुमान लगाना कठिन होता है।

(ख) बाजार कीमतों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP at Market Prices)

जब एक देश में एक वर्ष में उत्पादित कुल उत्पादन को उसी वर्ष की प्रचलित बाजार कीमतों से गुणा कर दिया जाए जो बाजार कीमतों पर GNP प्राप्त होता है। अतः बाजार कीमतों पर GNP से अभिप्राय एक देश में वर्ष भर में उत्पादित अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं के सकल मूल्य जमा विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय से है। इसमें ऊपर सकल राष्ट्रीय उत्पाद के अन्तर्गत वर्णित (1) से (4) मदें बाजार कीमतों पर सम्मिलित होती हैं।

(ग) साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP at Factor Cost)

साधन लागत पर GNP एक देश में एक वर्ष में विभिन्न उत्पादन के साधनों द्वारा उत्पादित और प्राप्त होने वाली आय के मुद्रा मूल्य का जोड़ है। इसमें वे सभी मदें शामिल होती हैं जो ऊपर GNP की आय विधि घटा अप्रत्यक्ष कर में दी गई हैं। बाजार कीमतों पर GNP में सरकार द्वारा वस्तुओं पर लगाये गये अप्रत्यक्ष कर सदैव सम्मिलित होते हैं जिनसे उनकी कीमतें बढ़ जाती हैं। परन्तु साधन लागत पर GNP वह आय है जो उत्पादन के साधन केवल अपनी सेवाओं के बदले प्राप्त करते हैं। यह उत्पादन लागत है। इसलिए, साधन लागत पर GNP प्राप्त करने के लिए बाजार कीमतों पर GNP में से

अप्रत्यक्ष कर घटा दिये जाते हैं। फिर, ऐसा अवसर होता है कि उत्पादक के लिए एक वस्तु की उत्पादन लागत, बाजार में वैसी ही वस्तु की कीमत से अधिक होती है। ऐसे उत्पादकों को संरक्षण देने के लिए, सरकार उनको सहायिकी (subsidy) के रूप में मुद्रा सहायता प्रदान करती है जो वस्तु की उत्पादन लागत और बाजार कीमत का अन्तर होती है। इसके परिणामस्वरूप, उत्पादक के लिए वस्तु की कीमत कम हो जाती है और वैसी ही वस्तु की बाजार कीमत के बराबर हो जाती है। उदाहरणार्थ, यदि चावल की बाजार कीमत 3 रुपये प्रति कि० ग्रा० है लेकिन कुछ क्षेत्रों में चावल उत्पादकों की उत्पादन-लागत 3 रु० 50 पैं० प्रति कि०ग्रा० है तो सरकार उन्हें 50 पैसे प्रति कि०ग्रा० के हिसाब से सहायिकी देती है ताकि वे अपनी उत्पादन लागत पूरी कर सकें। अत: साधन लागत पर GNP प्राप्त करने के लिए बाजार कीमतों पर GNP में सहायिकी जमा कर दी जाती हैं। अत GNP at factor cost = GNP at market prices— indirect taxes + subsidies

(घ) शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product—NNP)

GNP में उपभोग वस्तुओं और निवेश वस्तुओं के कुल उत्पादन का मूल्य शामिल होता है। परन्तु उत्पादन की प्रक्रिया में स्थिर पूंजी की कुछ राशि प्रयोग हो जाती है। कुछ स्थिर संयत्र घिस जाते हैं, कुछ मशीनें टूट या खराब हो जाती हैं और अन्य प्रौद्योगिकी परिवर्तनों के कारण अप्रचलित हो जाती हैं। इनकी मरम्मत और प्रतिस्थापन के लिए जो राशि रखी जाती है उसे मूल्यह्रास (depreciation) या पूंजी उपभोग भत्ता (capital consumption allowance) कहते हैं। शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त करने के लिए GNP में से मूल्यह्रास घटा दिया जाता है। अत: NNP = GNP— depreciation

(ङ) बाजार कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP at Market Prices)

बाजार कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद एक देश में एक वर्ष में अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं का बाजार कीमतों पर शुद्ध मूल्य होता है। यदि बाजार कीमतों पर GNP में से मूल्यह्रास घटा दिया जाए तो बाजार कीमतों पर NNP प्राप्त होती है। अत: NNP at market prices = GNP at market prices—depreciation

(च) साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP at Factor Cost)

किसी देश में एक वर्ष में उत्पादन के साधनों के सहयोग से जो वस्तुओं का शुद्ध उत्पादन साधन कीमतों पर प्राप्त होता है, उसे साधन लागत पर राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं। इसमें उत्पादन के साधनों को मजदूरी व वेतन, लगान, ब्याज तथा लाभ के रूप में प्राप्त आय सम्मिलित होती है। इसीलिए साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय आय को साधनों के भागों के अनुसार राष्ट्रीय आय (National Income by distributive shares) कहते हैं

या केवल राष्ट्रीय आय। **बाजार मूल्यों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद और साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में सम्बन्ध** (Relation between NNP at market price and NNP at factor cost)

बाजार मूल्यों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद व साधन लागतों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता है। बाजार मूल्यों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद सदैव लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद से अधिक होता है, क्योंकि वस्तुओं के बाजार मूल्यों में अप्रत्यक्ष कर शामिल होते हैं। अतः बाजार मूल्यों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में से यदि अप्रत्यक्ष कर निकाल दिये जाएं तो साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होता है (NNP at factor cost = NNP at market prices — indirect taxes)

कई बार ऐसा भी होता है कि कई उत्पादकों की वस्तु की लागत अधिक होती है परन्तु प्रतियोगिता के कारण वे अधिक कीमत पर अपनी वस्तु को बेच नहीं पाते। ऐसी अवस्था में सरकार उनको सहायिकी (subsidy) द्वारा सहायता करती है। इससे ये उद्योग कम कीमत पर वस्तु बेचने में समर्थ हो जाते हैं और घाटे को सरकार मुद्रा के रूप में पूरा कर देती है। जैसे खादी का हथकरघे का बना कपड़ा उत्पादक को लागत के अनुसार पांच रुपये प्रति मीटर पड़ता है परन्तु वह उसे 4 रुपये प्रति मीटर बेचता है और एक रुपया प्रति मीटर का घाटा सरकार पूरा करती है। इस प्रकार उत्पादन लागत को जानने के लिए कपड़े की बाजार कीमत में उत्पादन की राशि को जमा कर दिया जाता है। अतः NNP at factor cost = NNP at market prices — indirect taxes + subsidies

आजकल सरकारें भी कई प्रकार के सार्वजनिक कारखाने खोलकर लाभ कमाती हैं जो कि साधनों के मालिकों को प्राप्त न होकर सरकारी खजाने में जमा होता है। इसलिए साधन लागत पर राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त करने के लिए सरकारी लाभ को बाजार मूल्य पर राष्ट्रीय आय में से घटा दिया जाता है। इस प्रकार NNP at factor cost = NNP at market prices — indirect taxes + subsidies — government surpluses = national income

(छ) घरेलू आय या उत्पाद (Domestic Income or Product)

उत्पादन के साधनों द्वारा देश के अन्दर देश के ही स्रोतों (resources) से अर्जित या उत्पादित आय को घरेलू आय या उत्पाद कहते हैं। घरेलू आय में निम्नलिखित मदें शामिल होती हैं (i) मजदूरियां और वेतन, (ii) किराये जिनमें मकान किराये भी शामिल हैं, (iii) ब्याज, (iv) लाभांश, (v) अवितरित निगम लाभ जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के आधिक्य भी शामिल हैं (vi) मिश्रित आय जिसमें अनिगमित व्यवसायों, साझेदारियों और स्वरोजगार में लगे व्यक्तियों के लाभ शामिल हैं, (vii) प्रत्यक्ष कर।

क्योंकि घरेलू आय में विदेशों से अर्जित आय सम्मिलित नहीं होती है इसलिए घरेलू

आय = राष्ट्रीय आय − विदेशो से अर्जित शुद्ध आय ।

यदि घरेलू आय मे विदेशो मे अर्जित शुद्ध आय जमा कर दी जाए जो राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है राष्ट्रीय आय = घरेलू आय + विदेशों मे अर्जित शुद्ध आय । परन्तु विदेशो से अर्जित शुद्ध आय धनात्मक या ऋणात्मक हो सकती है । यदि निर्यात आयात से अधिक हो तो विदेशो मे अर्जित शुद्ध आय धनात्मक होगी । ऐसी अवस्था मे राष्ट्रीय आय घरेलू आय से अधिक होती है । दूसरी ओर, जब आयात निर्यात से अधिक होते हैं तो विदेशो से अर्जित शुद्ध आय ऋणात्मक होगी और घरेलू आय राष्ट्रीय आय से अधिक होती है ।

घरेलू आय शुद्ध या सकल हो सकती है । यदि विशेषतौर से न कहा जाए तो इसका सम्बन्ध साधन लागत पर शुद्ध घरेलू आय से होता है और इसे बाजार कीमतो पर शुद्ध घरेलू आय मे भेद किया जा सकता है जैसा कि ऊपर (घ) के अन्तर्गत ।

(ज) निजी आय (Private Income)

निजी आय से अभिप्राय निजी व्यक्तियो द्वारा उत्पादकीय या अन्य स्रोतो से प्राप्त तथा निगमो द्वारा रखी गई आय से है । इसे साधन लागत पर NNP से कुछ मदें घटाकर और कुछ जोडकर निकाली जा सकती है । जोड मे अन्तरण भुगतान जैसे पेन्शनें, बेरोजगारी भत्ता, बीमारी और अन्य सामाजिक सुरक्षा लाभ, उपहार और विदेशों से भेजी गई धनराशि, लाटरियो या घुडदौडो मे अप्रत्याशित (windfall) लाभ और सार्वजनिक ऋण पर ब्याज शामिल होते हैं । कटौतियो मे सरकारी विभागों से आय, सार्वजनिक उद्यमो मे आधिक्य (surpluses), कर्मचारियो का सामाजिक सुरक्षा स्कीमों जैसे भविष्य निधियो, जीवन बीमा आदि मे अशदान सम्मिलित होता है । अत. Private income = national income or NNP at factor cost + transfer payments + interest on public debt − social security − profits and surpluses of public undertakings

(झ) वैयक्तिक आय (Personal Income)

वैयक्तिक आय किसी देश मे एक वर्ष मे निजी व्यक्तियों द्वारा प्रत्यक्ष करो को देनेमे पहले सभी स्रोतो से प्राप्त आय होती है । वैयक्तिक आय राष्ट्रीय आय के बराबर कभी नहीं होती है क्योंकि इसमे अन्तरण भुगतान शामिल किये जाते है जबकि राष्ट्रीय आय मे वे शामिल नहीं होते । राष्ट्रीय आय मे से अविनरित निगम लाभ, लाभ कर और कर्मचारियो का सामाजिक सुरक्षा स्कीमो को अशदान घटा कर वैयक्तिक आय निकाली जाती है । ये तीनों अग राष्ट्रीय आय मे इसलिए घटा दिये जाते हैं क्योंकि वे व्यक्तियो को प्राप्त नहीं होते । परन्तु व्यवसायिक और सरकारी अन्तरण भुगतान, उपहार और विदेशों से भेजी गई धनराशि, अप्रत्याशित लाभ और सार्वजनिक ऋण पर ब्याज जो व्यक्तियो के लिए आय के स्रोत हैं राष्ट्रीय आय मे सम्मिलित किये जाते हैं । अत personal income = national income − undistributed corporate profits

—profits taxes—social security contributions + transfer payments + interest on public debt

वैयक्तिक आय निजी आय से इस बात मे भिन्न है कि यह निजी आय से कम होती है क्योंकि इसमें अवितरित निगम लाभ और लाभ कर शामिल नही होते। अत Personal income = Private income – undistributed corporate profits – profit taxes

(ञ) प्रयोज्य आय (Disposable Income)

प्रयोज्य आय से अभिप्राय उस वास्तविक आय से है जो व्यक्तियो व परिवारो द्वारा उपभोग पर व्यय की जा सकती है। वैयक्तिक आय पूरे तौर पर उपभोग पर खर्च नहीं की जा सकती क्योंकि वह आय-कर देने से पहले की आय होती है। इसलिए प्रयोज्य आय को जानने के लिए वैयक्तिक आय मे से प्रत्यक्ष कर घटा दिये जाते हैं। अत Disposable Income = Personal Income — direct taxes परन्तु सारी प्रयोज्य आय उपभोग पर व्यय नही हो जाती बल्कि इसका कुछ भाग बचा लिया जाता है। इसलिए प्रयोज्य आय, उपभोग व्यय और बचत मे बट जाती है। Disposable Income = *Consumption expenditure + savings*

(त) वास्तविक आय (Real Income)

जब राष्ट्रीय आय को एक आधार वर्ष की कीमतो के सामान्य स्तर पर व्यक्त किया जाए तो उसे वास्तविक आय कहते हैं। राष्ट्रीय आय चालू कीमतो पर उत्पादित वस्तुओ एव सेवाओ का मुद्रा मूल्य होता है। परन्तु यह अर्थव्यवस्था की वास्तविक स्थिति को नही बताती है। सम्भव है कि इस वर्ष पिछले वर्ष की अपेक्षा व[illegible] ओ और सेवाओं का शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन कम हुआ हो, परन्तु इस वर्ष कीमतो के बढने के कारण राष्ट्रीय आय मे वृद्धि हुई हो। इसके विपरीत, यह भी सम्भव है कि शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन तो बढा हो परन्तु कीमत स्तर गिर गया हो, इससे राष्ट्रीय आय मे पिछले वर्ष की अपेक्षा कमी प्रतीत होगी। इन दोनो हालातो मे राष्ट्रीय आय देश की वास्तविक स्थिति नही बताती। इसी त्रुटि को दूर करने के लिए वास्तविक आय की धारणा प्रचलित हुई है।

देश की किसी वर्ष की वास्तविक आय जानने के लिए एक ऐसा वर्ष आधार वर्ष (base year) लिया जाता है, जब सामान्य कीमत स्तर न तो अधिक और न कम हो तथा उसको 100 के बराबर मान लिया जाता है। अब जिस वर्ष की वास्तविक राष्ट्रीय आय जाननी हो, उस वर्ष की कीमतो के सामान्य स्तर को आधार वर्ष की कीमतो पर मूल्याकन किया जाता है। इसके लिए निम्नलिखित फार्मूले का प्रयोग किया जाता है।

$$\text{NNP for the current year} = \frac{\text{Base year index } (=100)}{\text{Current year index}}$$

मान लो कि 1960 आधार वर्ष है और 1966 की राष्ट्रीय आय 20,000 करोड़ रुपये है एव इस वर्ष का सूचकांक 250 है। अत

$$1966 \text{ मे वास्तविक राष्ट्रीय आय } = \frac{20,000}{250} \times 100 = 8,000 \text{ करोड़ रुपये।}$$

इसे स्थिर कीमतो पर राष्ट्रीय आय भी कहते है।

(घ) प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income)

किसी देश से एक वर्ष मे व्यक्तियो की औसत आय को उस देश की उस वर्ष की प्रति व्यक्ति आय कहते हैं। यह धारणा भी चालू कीमतो पर और स्थिर कीमतों पर आय की माप मे सम्बन्ध रखती है। जैसे यदि चालू कीमतो पर 1981 की प्रति व्यक्ति आय मालूम करनी हो तो उस वर्ष की राष्ट्रीय आय को उसी वर्ष की जनसंख्या पर विभाजित कर दिया जाता है।

$$1981 \text{ की प्रति व्यक्ति आय} = \frac{1981 \text{ की राष्ट्रीय आय}}{1981 \text{ की जनसंख्या}}$$

इसी प्रकार देश की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय जानने के लिए भी इसी सूत्र का प्रयोग किया जाता है

$$1981 \text{ की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय} = \frac{1981 \text{ की वास्तविक राष्ट्रीय आय}}{1981 \text{ की जनसंख्या}}$$

इस धारणा मे देश के लोगो की औसत आय व रहन-सहन के स्तर का पता लगता है। परन्तु यह विश्वसनीय नही होती क्योंकि हर देश मे राष्ट्रीय आय का असमान वितरण होने के कारण इसका अधिक भाग धनी वर्गों को जाता है, जिससे साधारण व्यक्ति को जो आय प्राप्त होती है, वह प्रति व्यक्ति आय की राशि मे कम है।

3 राष्ट्रीय आय मापने की विधिया (Methods of Measuring National Income)

राष्ट्रीय आय के माप की चार विधिया पाई जाती हैं। किसी भी विधि का अपनाया जाना उस देश मे आकड़ो की उपलब्धि एव उद्देश्य पर निर्भर करता है।

(1) उत्पादन विधि (Product Method)—इसी विधि के अनुसार देश मे वर्ष भर मे उत्पादित सभी अन्तिम वस्तुओ और सेवाओं के कुल मूल्य को बाजार कीमतो पर जोड़ा जाता है। कुल उत्पादन को जानने के लिए सभी आर्थिक क्रियाओ से प्राप्त उत्पादन के आकड़े लिये जाते हैं जिनका बाजार कीमतो पर मूल्याकन किया जाता है जैसे कृषि उत्पादन, वनो से प्राप्त लकड़ी, खानो से प्राप्त खनिज पदार्थ, छोटे-बड़े उद्योगो मे उत्पादित पदार्थ, यातायात, सचार, बैंक, बीमा कम्पनियो, वकीलो, डाक्टरो, अध्यापको द्वारा उत्पादन मे किया गया योगदान इत्यादि। इसमे अन्तिम वस्तुओ एव सेवाओ को ही सम्मिलित किया जाता है तथा मध्यवर्ती वस्तु और सेवाओं को छोड़

दिया जाता है।[4]

(2) **आय विधि** (Income Method)—इस विधि के अनुसार एक वर्ष मे देश के सभी नागरिको द्वारा प्राप्त शुद्ध आय को जोडा जाता है अर्थात् सभी उत्पादन साधनो द्वारा प्राप्त शुद्ध किराया, शुद्ध मजदूरी, शुद्ध ब्याज तथा शुद्ध लाभ को जोड लिया जाता है। परन्तु आय के रूप मे प्राप्त अन्तरण भुगतानो को इसमे सम्मिलित नही किया जाता। आय के आकडे भिन्न-भिन्न स्रोतो से प्राप्त किए जाते हैं, जैसे ऊची आय वालों के आय-कर विभाग से, श्रमिको के उनके मजदूरी बिलो से।[5]

(3) **व्यय विधि** (Expenditure Method)—इस विधि के अनुसार वर्ष भर मे समाज द्वारा किए गए कुल खर्च को जोड़ा जाता है, जिसमे वैयक्तिक उपभोग व्यय, शुद्ध घरेलू निवेश, वस्तुओं और सेवाओ पर सरकारी व्यय तथा शुद्ध विदेशी निवेश शामिल होते हैं। यह धारणा इस मान्यता पर आधारित है कि राष्ट्रीय आय सदैव राष्ट्रीय व्यय के बराबर होती है।[6]

(4) **मूल्य बढ़ाव विधि** (Value Added Method)—एक अन्य विधि उद्योगो द्वारा मूल्य बढाव की है। उत्पादन की प्रत्येक स्टेज मे भौतिक आगतो (outputs) और निर्गतो (inputs) का अन्तर मूल्य बढाव होता है। यदि अर्थव्यवस्था मे सभी उद्योगो के ऐसे अन्तर जोड लिए जाए तो सकल घरेलू उत्पाद प्राप्त हो जाता है जिसमे विदेशो से शुद्ध आय जमा करने से सकल राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होता है।[7]

4 राष्ट्रीय आय के माप मे कठिनाइया (Difficulties in the Measurement of National Income)

किसी भी देश की राष्ट्रीय आय का आगणन करना एक जटिल समस्या है जिसमे निम्नलिखित कठिनाइया पाई जाती हैं।

(1) **राष्ट्र की परिभाषा** (Definition of income)—प्रथम कठिनाई 'राष्ट्र' की परिभाषा है। हर राष्ट्र की अपनी राजनीतिक सीमाए होती हैं परन्तु राष्ट्रीय आय मे राष्ट्र की सीमाओं से बाहर विदेशो मे कमाई गई देशवासियो की आय भी सम्मिलित होती है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय के दृष्टिकोण से 'राष्ट्र' की परिभाषा राजनीतिक सीमाओ को पार कर जाती है। इस समस्या को सुलझाना कठिन है।

(2) **कुछ सेवाए** (Some services)—राष्ट्रीय आय सदैव मुद्रा मे ही मापी जाती है परन्तु बहुत-सी वस्तुए और सेवाए ऐसी होती जिनका मुद्रा मे मूल्याकन करना मुश्किल होता है, जैसे किसी व्यक्ति द्वारा अपने शौक के लिए चित्र बनाना, मा का अपने

[4]विस्तार के लिए 'सकल राष्ट्रीय उत्पाद' के अन्तर्गत प्रथम पैरा दें।
[5]विस्तार के लिए GNP की आय-विधि देखें।
[6]विस्तार के लिए GNP की आय विधि देखें।
[7]विस्तार के लिए मूल्य बढ़ाव द्वारा GNP देखें।

अधिक घण्टे काम करता है तो यह कहना कुछ ठीक ही होगा कि पहले की वास्तविक आय कम बताई गई है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय वस्तु के उत्पादन की वास्तविक लागत को नही लेती।

(8) सार्वजनिक सेवाए (Public services)—राष्ट्रीय आय की परिगणना में बहुत-सी सार्वजनिक सेवाए भी ली जाती हैं, जिनका ठीक-ठीक हिसाब लगाना कठिन होता है। पुलिस तथा सैनिक सेवाओ का आगणन कैसे किया जाए? युद्ध के दिनो मे तो सेना क्रियाशील होती है जबकि शान्ति मे छावनियो मे ही विश्राम करती है इसी प्रकार सिंचाई तथा शक्ति परियोजनाओ से प्राप्त लाभो का मुद्रा के रूप मे राष्ट्रीय आय मे योगदान का हिसाब लगाना भी एक कठिन समस्या है।

(9) पूजी लाभ या हानियां (Capital gains or losses)—जो सम्पत्ति मालिको को उनकी पूजी परिसम्पत्तियो के बाजार मूल्य मे वृद्धि, कमी या माग मे परिवर्तनो से होती हैं वे GNP मे शामिल नही की जाती है क्योकि ऐसे परिवर्तन चालू आर्थिक क्रियाओ के कारण नही होते हैं। जब पूजी लाभो या हानिया चालू प्रवाह या उत्पादकीय क्रियाओ के अप्रवाह के कारण होते हैं तो उन्हें GNP मे सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार पूजी लाभो या हानियो की राष्ट्रीय आय मे आगणन करने की बहुत कठिनाई होती है।

(10) मालसूची परिवर्तन (Inventory changes)—सभी मालसूची परिवर्तन चाहे वे ऋणात्मक हो या धनात्मक GNP मे शामिल किये जाते हैं। परन्तु समस्या यह है कि फर्में अपनी मालसूचियो को उनकी मूल लागतो के हिसाब से दर्ज करती हैं न कि उनकी प्रतिस्थापन लागत के हिसाब से। जब कीमतें बढती हैं तो मालसूचियो के अकित मूल्य मे लाभ होता है। इसके विपरीत कीमतें गिरने पर हानि होती है। अत GNP का सही हिसाब लगाने के लिए मालसूची समायोजन की आवश्यकता होती है जो कि बहुत कठिन काम है।

(11) मूल्यह्रास (Depreciation)—जब पूजी मूल्यह्रास को GNP मे से घटा दिया जाता है तो NNP प्राप्त होती है। परन्तु मूल्यह्रास की गणना की समस्या बहुत मुश्किल है। उदाहरणार्थ, यदि कोई ऐसी पूजी परिसम्पत्ति है जिसकी प्रत्याशित आयु बहुत अधिक जैसे 50 वर्ष है, तो उसकी चालू मूल्यह्रास दर का हिसाब लगा सकना बहुत कठिन होगा। और यदि परिसम्पत्तियो की कीमतो में प्रत्येक वर्ष परिवर्तन होता जाए, तो यह कठिनाई और भी बढ जाती है। मालसूचियो के विपरीत, मूल्यह्रास मूल्यांकन कर पाना बहुत कठिन और जटिल तरीका होता है।

5. विकासशील अर्थव्यवस्था मे राष्ट्रीय आय मापने की समस्याए (Problems of Measurement of National Income in a Developing Economy)

एक विकासशील अर्थव्यवस्था मे राष्ट्रीय आय की विभिन्न विधियों द्वारा मापने के विश्वसनीय और पूर्ण आकड़े निम्नलिखित समस्याओ के कारण प्राप्त नही होते हैं -

(1) **अमौद्रिक क्षेत्र** (Non-monetised sector)—अल्पविकसित देशो में एक महत्वपूर्ण अमौद्रिक क्षेत्र होता है जिसके कारण राष्ट्रीय आय का हिसाब लगाना कठिन है। कृषि क्षेत्र मे जो उत्पादन होता है, उसका बहुत-सा भाग या तो वस्तुओ से विनिमय कर लिया जाता है या फिर व्यक्तिगत उपभोग के लिए रख लिया जाता है। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय कम बताई जाती है।

(2) **व्यावसायिक विशिष्टीकरण का अभाव** (Lack of occupational specialisation)—ऐसे देशो मे व्यावसायिक विशिष्टीकरण का अभाव होता है जिससे वितरणात्मक हिस्सो (distributive shares) या औद्योगिक उद्गम (industrial origin) के द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना करना कठिन हो जाता है। उपज के अतिरिक्त किसान ऐसी अनेक वस्तुओ का उत्पादन करते है, जैसे कि अडे, दूध, वस्त्र आदि जिन्हें राष्ट्रीय आय के अनुमान मे कभी शामिल नही किया जाता।

(3) **अशिक्षितता** (Illiteracy) अल्पविकसित देशो मे लोग अधिकतर अशिक्षित होते हैं और हिसाब-किताब नही रखते, और यदि हिसाब-किताब रखें भी तो अपनी सही आय बताने को तैयार नही होते। ऐसी स्थिति मे मोटे तौर पर ही अनुमान लगाया जा सकता है।

(4) **बाजारेतर लेन-देन** (Non-market of transactions)—राष्ट्रीय आय के आगणन मे केवल उन वस्तुओ और सेवाओ को सम्मिलित किया जाता है जिनका वाणिज्य मे प्रयोग होता है। परन्तु अल्पविकसित देशो मे गावो मे रहने वाले लोग प्राथमिक वस्तुओ से उपभोग-वस्तुओ का निर्माण करते हैं और बहुत से खर्चो से बच जाते हैं। वे अपनी झोपडिया, वस्त्र, औजार तथा अन्य आवश्यक वस्तुए स्वय बना लेते हैं। इसी प्रकार शहरी क्षेत्रो मे कई लोग अपने बगीचो मे ही सब्जिया उगाते हैं जो वे स्वय उपभोग करते हैं। इस प्रकार, अल्पविकसित देशो मे अपेक्षाकृत कम वस्तुओ का मार्केट के मार्ग से प्रयोग होता है और इसलिए वे राष्ट्रीय आय के आगणन मे शामिल नही होती।

(5) **आंकड़ों का न मिलना** (Non-availability of data) एक विकासशील अर्थ-व्यवस्था मे पर्याप्त और सही उत्पादन और लागतो सबधी आकडे उपलब्ध नही होते हैं। ऐसे आकडे फसलो, वन, मछली पालन, पशु पालन, और छोटे दुकानदारो, छोटे व्यवसायो, निर्माण मजदूरो की क्रियाओ से सबद्ध होते हैं। आय विधि से राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए न कमाई गई आमदनियो और सेवा क्षेत्र मे लगे लोगो की आमदनियो के बारे मे आकडे प्राप्त नही होते हैं। ग्रामीण और शहरी जनसख्या के उपभोग और निवेश खर्चों के आकडे व्यय विधि द्वारा राष्ट्रीय आय मापने के लिए उपलब्ध नही होते हैं। फिर ऐसे देशो में विभिन्न प्रकार के आकडे इकट्ठे करने के लिए कोई सस्था भी नही होती है।

6. राष्ट्रीय आय विश्लेषण का महत्व (Importance of National Income Analysis)

राष्ट्रीय आय के आकड़ों का किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के लिए बहुत महत्व होता है। आजकल राष्ट्रीय आय आकड़ो को अर्थव्यवस्था के लेखे समझा जाता है जिन्हें सामाजिक लेखे (social account) कहते हैं। इनमें शुद्ध राष्ट्रीय आय तथा शुद्ध राष्ट्रीय व्यय का लेखा होता है जोकि अन्ततः बराबर होता है। सामाजिक लेखे हमें यह बताते हैं कि विभिन्न व्यक्तियों की आय, उद्योगों की वस्तुओं तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्रय-विक्रय से किस प्रकार राष्ट्र की आय, उत्पाद व व्यय के कुल जोड़ बनते हैं। इनके मुख्य तत्त्व एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं और हर विशेष लेखा दूसरे किसी लेखे की शुद्धता की जाच-पड़ताल करने में प्रयोग किया जा सकता है सामाजिक लेखे के आधार पर ही राष्ट्रीय आय के आकड़ो का निम्नलिखित महत्त्व पाया जाता है।

(1) राष्ट्रीय नीतियों में (In national policies)—राष्ट्रीय आय के आकड़े राष्ट्रीय नीतियों का आधार होते हैं जैसे रोजगार सम्बन्धी नीति। क्योंकि इनके द्वारा ही इस बात का पता चलता है कि औद्योगिक उत्पादन, निवेश, बचत आदि किस दिशा की ओर बदल रहे हैं और अर्थव्यवस्था को सही पथ पर लाने के लिए उपयुक्त पग उठाये जा सकते हैं।

(2) आर्थिक नियोजन में (In economic planning)—इस आर्थिक नियोजन युग में राष्ट्रीय आय के आकड़ों का बहुत अधिक महत्त्व है। आर्थिक नियोजन के लिए देश की कुल आय, उत्पाद, बचत, उपभोग तथा विभिन्न स्रोतों से सम्बन्धित आकड़ों का उपलब्ध होना बहुत आवश्यक है। इनके बिना नियोजन सम्भव नहीं। इसी प्रकार अर्थशास्त्री अल्पकालीन व दीर्घकालीन आर्थिक मॉडल या दीर्घकालीन नियोजन मॉडल बनाते हैं जिनमें राष्ट्रीय आय के आकड़ों का विस्तृत रूप से प्रयोग किया जाता है।

(3) अन्वेषण में (In research)—राष्ट्रीय आय के आकड़ो का प्रयोग अन्वेषण करने वाले अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों द्वारा भी किया जाता है। वे देश के आयात-निर्यात, आय, बचत, उपभोग, निवेश, रोजगार आदि के विभिन्न आकड़ो का प्रयोग करते हैं जोकि सामाजिक लेखा से प्राप्त होते हैं।

(4) प्रति व्यक्ति आय का आधार (Basis of per capita income)—राष्ट्रीय आय के आकड़े ही देश की प्रति व्यक्ति आय का आधार होते हैं। प्रति व्यक्ति आय देश के आर्थिक कल्याण का द्योतक है। इसके अधिक होने पर आर्थिक कल्याण अधिक समझा जाता है और प्रति व्यक्ति आय के कम होने पर कम।

(5) आय वितरण में (In income distribution)—राष्ट्रीय आय के आकड़ो से देश में आय के वितरण का पता चलता है। मजदूरी, किराया, ब्याज तथा लाभ के आंकड़ो से विभिन्न श्रेणियों में आय की असमानता के बारे में ज्ञान होता है। इसी प्रकार आय के प्रादेशिक वितरण का भी पता चलता है। सरकार इनके आधार पर ही आय के असमान वितरण तथा प्रादेशिक असन्तुलनों को दूर करने के लिए पग उठा सकती है।

इन वैयक्तिक तथा प्रादेशिक असन्तुलनों को दूर करने के लिए सरकार द्वारा अधिक कर लगाया जाये और सार्वजनिक व्यय बढ़ाया जाये, इस बात का निर्माण भी राष्ट्रीय आय के आंकड़ों के आधार पर ही सम्भव होता है।

(6) राष्ट्रीय आय की धारणाओं में परस्पर सम्बन्ध (Interrelationships among different concepts of national income)—राष्ट्रीय आय की विभिन्न धारणाओं में परस्पर सम्बन्ध समीकरणों के रूप में निम्नलिखित ढंग से दिखाए जा सकते हैं:

(1) कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP)=कुल राष्ट्रीय व्यय (GNE)

(2) बाजार कीमतों पर GNP=साधन लागत पर GNP+अप्रत्यक्ष कर—सहायिकियां।

(3) बाजार कीमतों पर NNP=बाजार कीमतों पर GNP—मूल्यह्रास या पूंजी उपभोग भत्ता।

(4) बाजार कीमतों पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP)=बाजार कीमतों पर NNP—विदेश से शुद्ध साधन आय।

(5) साधन लागत पर NNP या राष्ट्रीय आय या राष्ट्रीय उत्पाद=बाजार कीमतों पर NNP—अप्रत्यक्ष कर+सहायिकियां।

(6) साधन लागत पर NDP या घरेलू आय या घरेलू उत्पाद=राष्ट्रीय आय—विदेश से शुद्ध साधन आय।

(7) निजी आय=साधन लागत पर NNP+सरकारी और व्यवसाय अंतरण भुगतान+उपहार और धन राशि के रूप में विदेश से चालू हस्तांतरण+अप्रत्याशित लाभ+विदेश से शुद्ध साधन आय+सार्वजनिक ऋण पर ब्याज एवं उपभोक्ता ब्याज—सामाजिक सुरक्षा अंशदान—सरकारी विभागों और सम्पत्ति से आय—सार्वजनिक निगमों के लाभ और आधिक्य।

या

निजी आय=निजी क्षेत्र को घरेलू उत्पाद से प्राप्त आय+सार्वजनिक ऋण पर ब्याज+विदेश से शुद्ध साधन आय+अंतरण भुगतान+शेष विश्व से चालू हस्तांतरण।

(8) निजी क्षेत्र को घरेलू उत्पाद से प्राप्त आय=साधन लागत पर NDP—सरकारी विभागों को घरेलू उत्पाद से प्राप्त आय—गैरविभागीय उपक्रमों की बचतें।

(9) वैयक्तिक आय=निजी आय—निजी निगम क्षेत्र की बचत (या अवितरित निगम लाभ)—निगम कर (या लाभ कर)।

(10) प्रयोज्य आय या वैयक्तिक प्रयोज्य आय=वैयक्तिक आय—परिवारों द्वारा दिए गए प्रत्यक्ष कर (या प्रत्यक्ष वैयक्तिक कर) एवं विविध फीस, जुर्माने, आदि।

या

प्रयोज्य आय=साधन लागत पर NDP+अंतरण भुगतान+विदेश से शुद्ध आय—निगम कर—अवितरित निगम लाभ—सामाजिक सुरक्षा भुगतान—प्रत्यक्ष वैयक्तिक कर।

या

प्रयोज्य आय = राष्ट्रीय आय + अंतरण भुगतान + विदेश से शुद्ध आय — निगम कर — अवितरित निगम लाभ — सामाजिक सुरक्षा भुगतान — प्रत्यक्ष वैयक्तिक कर — अप्रत्यक्ष कर + सहायिकिया।

7 कुछ समस्याओं के हल (Some Solved Problems)

(1) भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित नीचे दिए गए आकडो से गणना करें (क) साधन लागत पर GNP, (ख) साधन लागत पर NNP, (ग) साधन लागत पर NDP, और (घ) बाजार कीमतो पर NDP।

	रु करोड
(i) बाजार कीमतो पर GNP	97 503
(ii) विदेश से शुद्ध साधन आय	(—) 201
(iii) पूजी उपभोग भत्ता	5,699
(iv) शुद्ध अप्रत्यक्ष कर	10,576

हल (Solution)

(क) बाजार कीमतो पर GNP = 97,503

साधन लागत पर GNP = बाजार कीमतो पर GNP — अप्रत्यक्ष कर

= 97,503 — 10,576 = 86 927

(ख) साधन लागत पर NNP = साधन लागत पर GNP — मूल्यह्रास

= 86,927 — 5,699 = 81,228

(ग) साधन लागत पर NDP = साधन लागत पर NNP — विदेश से शुद्ध साधन लागत

= 81,228 — (— 201) = 81,429

(घ) बाजार कीमतो पर NDP = साधन लागत पर NDP + अप्रत्यक्ष कर

= 81,429 + 10,576 = 92,005

(2) भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित निम्नलिखित आकड़ो से अनुमानित करो (क) बाजार कीमतो पर GNP, (ख) निजी आय, (ग) वैयक्तिक आय, और (घ) वैयक्तिक प्रयोज्य आय।

	रु करोड
(i) साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP)	81,429
(ii) सरकारी क्षेत्र को घरेलू उत्पाद से प्राप्त आय	2,333
(iii) बाहर (विदेश) से शुद्ध साधन आय	(—) 201
(iv) परोक्ष कर	12,876
(v) सहायिकिया (subsidies)	2,300

(v) बाहर से शुद्ध निजी दान	30
(vi) बाहर से अर्जित शुद्ध आय	80
(vii) परोक्ष कर	1,330
(viii) व्यक्तियों पर प्रत्यक्ष कर	335
(ix) सहायिकिया	100
(x) निगम लाभो पर कर	222
(xi) *निगमों के अवितरित लाभ*	*105*

हल (Solution)

प्रथम, साधन लागत पर NNP की गणना करो क्योंकि उदाहरण मे साधन लागत पर NDP दिया हुआ है। अत

साधन लागत पर NDP	= 15,480
+ बाहर स अर्जित शुद्ध आय	= 80
साधन लागत पर NNP	= 15,560

बाजार कीमतों पर NNP

साधन लागत पर NNP	= 15,560
+ परोक्ष कर	= 1,330
—सहायिकियां	= −100
बाजार कीमतों पर NNP	= 16,790

अब, प्रयोज्य वैयक्तिक आय प्राप्त करने के लिए निजी आय और वैयक्तिक आय की गणना करो।

निजी आय

साधन लागत पर NNP	= 15,560
+ सरकार द्वारा अन्तरण भुगतान	= 240
+ बाहर से शुद्ध निजी दान	= 30
+ राष्ट्रीय ऋण पर व्याज	= 170
—सरकार को घरेलू उत्पाद से प्राप्त आय	= −140
निजी आय	= 15,860

वैयक्तिक आय

निजी आय	= 15,860
—निगम लाभों पर कर	= —222
—निगमों के अवितरित लाभ	= —105
वैयक्तिक आय	=15,533

प्रयोज्य वैयक्तिक आय

वैयक्तिक आय	=15,533
—व्यक्तियों पर प्रत्यक्ष कर	= —335
प्रयोज्य वैयक्तिक आय	=15198

प्रश्न

1 राष्ट्रीय आय की निम्नलिखित धारणाओं में अन्तर कीजिए और उनमें एक दूसरे के साथ सम्बन्ध बतलाइए (क) GNP व NNP, (ख) बाजार कीमतों पर राष्ट्रीय आय तथा साधन लागतों पर राष्ट्रीय आय, (ग) शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद और शुद्ध घरेलू उत्पाद, (घ) प्रयोज्य आय एवं निजी आय।

2 राष्ट्रीय आय को मापने की उत्पाद और व्यय विधियों की व्याख्या करिए। किस आधार पर वे समान परिणाम देते हैं ?

3 GNP का अनुमान लगाने में कौन सी मुख्य सैद्धान्तिक समस्याएं आती हैं ? उनको कैसे दूर किया जा सकता है ?

4 GNP व NNP के लिए मूल्य बढाव विधि की व्याख्या कीजिए।

5 राष्ट्रीय आय का अर्थव्यवस्था में क्या महत्त्व है और उसके मापने के लिए कौन-सी विधियां अपनाई जाती हैं।

अध्याय-50
आर्थिक कल्याण और राष्ट्रीय आय
(ECONOMIC WELFARE AND NATIONAL INCOME)

आर्थिक कल्याण क्या है ? (What is Economic Welfare?)

आर्थिक कल्याण तथा राष्ट्रीय आय मे सम्बन्ध जानने से पहले आर्थिक कल्याण को परिभाषित करना आवश्यक है। 'कल्याण' एक मानसिक स्थिति है जो मानवीय प्रसन्नता एव सन्तुष्टि की द्योतक है। वास्तव मे, कल्याण मानवीय मानसिक स्थिति की एक प्रसन्न अवस्था है। पीगू व्यक्तिगत कल्याण को व्यक्ति द्वारा अनुभव की गई सभी सतुष्टियो का कुल जोड मानता है और सामाजिक कल्याण को व्यक्तिगत कल्याणो का कुल जोड। वह कल्याण को आर्थिक कल्याण और आर्थिकेतर कल्याण (non-economic welfare) मे बांटता है। आर्थिक कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा मे मापा जा सकता है। क्योकि कल्याण शब्द बहुत विस्तृत है, इसलिए पीगू आर्थिक कल्याण को ही महत्त्व प्रदान करता है। उसके शब्दो मे, "हमारी जांच की सीमा सामाजिक (सामान्य) कल्याण के उस भाग तक सीमित हो जाती है जिसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर से मुद्रा के माप-दण्ड के साथ लाया जा सकता है।" इसके विपरीत, आर्थिकेतर कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे मुद्रा मे मापा नही जा सकता, जैसे नैतिक कल्याण।

परन्तु आर्थिक व आर्थिकेतर कल्याण मे मुद्रा के आधार पर भेद करना ठीक नही। पीगू भी इस बात को स्वीकार करता है। इसके अनुसार आर्थिकेतर कल्याण को दो प्रकार से सशोधित किया जा सकता है। प्रथम, आय के अर्जित करने के तरीके से। काम करने के अधिक घण्टे व खराब हालात आर्थिकेतर कल्याण को कम कर देंगे। दूसरे, आय के व्यय करने के ढग से। आर्थिक कल्याण मे यह मान लिया जाता है कि भिन्न-भिन्न उपभोग वस्तुओ पर किए गए खर्चे समान सन्तुष्टि प्रदान करते हैं, परन्तु वास्तव मे ऐसा नहीं होता क्योकि जब खरीदी गई वस्तुओ से सन्तुष्टि कम होती है तो आर्थिकेतर कल्याण कम होता है जिससे कुल कल्याण मे भी कमी आती है परन्तु पीगू का यह विचार है कि ऐसे प्रभावो की परिगणना करना सम्भव नहीं होता। क्योकि आर्थिकेतर कल्याण को मुद्रा द्वारा मापा नहीं जा सकता, इसलिए अर्थशास्त्री को इस मान्यता पर चलना चाहिए कि आर्थिक कारणो का प्रभाव जो आर्थिक कल्याण पर पडता है वह कुल कल्याण पर भी लागू होगा। अत. पीगू इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि आर्थिक कल्याण बढ़ने से कुल कल्याण मे भी वृद्धि होती है और उसकी कमी से कुल कल्याण मे कमी होती है।

परन्तु ऐसा सदैव सम्भव नही क्योकि जो कारण आर्थिक कल्याण मे वृद्धि करते हैं वे आर्थिकेतर कल्याण को कम भी कर सकते हैं। इसलिए कुल कल्याण मे वृद्धि अनुमान से कम हो सकती है। जैसे, आय के बढ़ने से आर्थिक कल्याण एव कुल कल्याण दोनो बढ़ते हैं और आय के कम होने से वे कम होते हैं। परन्तु आर्थिक कल्याण केवल आय की मात्रा पर ही निर्भर नही करता बल्कि आय के अर्जित करने और उसके व्यय करने के ढगो पर भी निर्भर करता है। जब श्रमिक कारखानो मे काम करके अधिक आय कमाते हैं, पर गन्दी बस्तियो और दूषित वातावरण मे रहते हैं तो उनका आर्थिक कल्याण चाहे बढ़ा हो लेकिन कुल कल्याण मे वृद्धि नही मानी जा सकती। इसी प्रकार उनका व्यय भी आय के अनुरूप बढ़ने से कुल कल्याण मे वृद्धि नहीं मानी जा सकती, यदि वे शराब, सिगरेट आदि हानिकारक वस्तुओ पर बढ़ी हुई आय व्यय करते हैं। अत आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का निर्देशक नही हो सकता।

आर्थिक कल्याण व राष्ट्रीय आय मे सम्बन्ध (Relation Between Economic Welfare and National Income)

आर्थिक कल्याण तथा राष्ट्रीय आय दोनो ही मुद्रा मे मापे जाने के कारण पीगू इनमे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता है। जब राष्ट्रीय आय बढ़ती है तो आर्थिक कल्याण मे वृद्धि होती है और राष्ट्रीय आय मे कमी होने से आर्थिक कल्याण मे भी कमी होती है। आर्थिक कल्याण पर राष्ट्रीय आय के प्रभाव का दो प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है एक, राष्ट्रीय आय के आकार मे परिवर्तन होने से, दो, राष्ट्रीय आय के वितरण में परिवर्तन होने से।

(1) राष्ट्रीय आय के आकार में परिवर्तन धनात्मक या ऋणात्मक हो सकता है। राष्ट्रीय आय मे धनात्मक परिवर्तन होने से इसके आकार मे वृद्धि होती है जिससे लोग अधिक वस्तुओं व सेवाओं का उपभोग करते हैं। इससे आर्थिक कल्याण मे वृद्धि होती है। जबकि राष्ट्रीय आय मे ऋणात्मक परिवर्तन होने से इसका आकार जब कम होता है तो लोगो को कम वस्तुओं व सेवाए उपभोग के लिए प्राप्त होती हैं जिससे आर्थिक कल्याण कम हो जाता है। परन्तु यह सम्बन्ध कई एक बातो पर निर्भर करता है।

क्या राष्ट्रीय आय मे परिवर्तन वास्तविक है या मौद्रिक ? यदि राष्ट्रीय आय मे परिवर्तन कीमतो मे परिवर्तन के कारण होता है तो आर्थिक कल्याण मे वास्तविक परिवर्तन को मापना कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ, कीमतो मे वृद्धि से जब राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होती है तो आर्थिक कल्याण मे वृद्धि सम्भव नहीं, क्योकि सभव है कि अर्थ-व्यवस्था मे वस्तुओ एव सेवाओ के उत्पादन मे वृद्धि न हुई हो। कीमतें बढने से आर्थिक कल्याण मे कमी होने की सम्भावना अधिक पाई जा सकती है। राष्ट्रीय आय मे वास्तविक वृद्धि होने पर ही आर्थिक कल्याण मे वृद्धि होती है।

दूसरे, राष्ट्रीय आय मे वृद्धि किस प्रकार हुई है। यदि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि श्रमिको का शोषण करके हुई हो तो आर्थिक कल्याण मे वृद्धि नही कही जा सकती। जैसे, मजदूरो

द्वारा अधिक घण्टे काम करके उत्पादन बढाना, उन्हें न्यूनतम मजदूरी से कम वेतन देना, जिससे उन्हे अपने बच्चो तथा स्त्रियो को भी काम करने पर विवश करना पड़े, उन्हे कारखाने तक आने-जाने व रहने की सुविधाएं न देना तथा उनका गन्दी बस्तियो मे रहना आदि। यदि ऐसी परिस्थितियो मे राष्ट्रीय आय बढ़ती है तो आर्थिक कल्याण मे वृद्धि नहीं होगी।

तीसरे, यदि प्रति व्यक्ति आय को भी दृष्टिगोचर न रखा जाय तो राष्ट्रीय आय आर्थिक कल्याण का विश्वसनीय सूचकाक नही हो सकता। सम्भव है कि राष्ट्रीय आय के बढने के साथ जनसख्या भी उसी गति से बढ़े और प्रति व्यक्ति आय मे कोई वृद्धि न हो। ऐसी स्थिति मे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि से आर्थिक कल्याण मे वृद्धि नही होगी। परन्तु इससे यह निष्कर्ष नही निकालना चाहिए कि प्रति व्यक्ति आय के बढने से आर्थिक कल्याण बढता है और प्रति व्यक्ति आय कम होने से आर्थिक कल्याण कम होता है।

सम्भव है कि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होने से प्रति व्यक्ति आय मे भी वृद्धि हुई हो परन्तु यदि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि पूजी पदार्थों के उत्पादन के कारण हुई हो तथा देश मे उपभोग वस्तुओ का उत्पादन कम होने से उनकी कमी पाई जाती है तो राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होने पर भी आर्थिक कल्याण मे वृद्धि नही होगी क्योकि लोगो का आर्थिक कल्याण उनके द्वारा प्रयोग की गई उपभोग की वस्तुओ पर निर्भर करता है, न कि पूजीगत पदार्थों पर। इसी प्रकार युद्धकाल मे जब राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय मे अत्यधिक वृद्धि होती है तो भी आर्थिक कल्याण मे वृद्धि नही होती क्योकि युद्ध के दिनो मे देश की सारी उत्पादन क्षमता युद्ध-सामग्री बनाने मे व्यस्त होती है तथा उपभोग वस्तुओ की कमी पाई जाती है जिससे लोगो का रहन-सहन का स्तर गिर जाता है और आर्थिक कल्याण कम हो जाता है।

प्राय राष्ट्रीय आय एव प्रति व्यक्ति आय बढ़ने पर भी आर्थिक कल्याण पहले से कम हो जाता है। ऐसा तब होता है जब राष्ट्रीय आय की वृद्धि से धनी वर्गों की आय मे वृद्धि होती है और गरीबो को उसका कोई लाभ प्राप्त नही होता। अर्थात् राष्ट्रीय आय बढ़ने से अमीर अधिक अमीर होते हैं तथा गरीब और गरीब। इस प्रकार जब धनियो का कल्याण बढ़ता है तो गरीब का कल्याण कम होता है क्योकि अमीरो की अपेक्षा गरीबो की सख्या अधिक होती है, इसलिए कुल आर्थिक कल्याण मे कमी होती है।

अन्तिम, राष्ट्रीय आय के बढने से आर्थिक कल्याण पर जो प्रभाव पड़ता है वह इस बात पर भी निर्भर करता है कि लोगो का व्यय करने का ढग कैसा है। यदि आय बढने पर लोग कार्यकुशलता बढाने वाली आवश्यकताओ एव सुविधाओ जैसे दूध, घी, अण्डे, पक्के आदि पर व्यय करते हैं तो आर्थिक कल्याण मे वृद्धि होगी। परन्तु इसके विपरीत शराब, जुए आदि हानिकारक वस्तुओ पर व्यय करने मे आर्थिक कल्याण मे कमी होती है। वास्तव मे, राष्ट्रीय आय मे वृद्धि से आर्थिक कल्याण मे होने वाली वृद्धि या कमी लोगो की रुचियो मे होने वाले परिवर्तनो पर निर्भर करती है। यदि फैशन व रुचियो मे परिवर्तन अच्छी वस्तुओ के उपभोग की ओर होता है तो आर्थिक कल्याण बढ़ता है

अन्यथा बुरी वस्तुओं के उपभोग में कम होता है।

ऊपर के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि राष्ट्रीय आय तथा आर्थिक कल्याण में घनिष्ट सम्बन्ध है, फिर भी, यह निश्चयात्मक तौर से नहीं कहा जा सकता कि राष्ट्रीय आय अथवा प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने से आर्थिक कल्याण में भी वृद्धि होगी। राष्ट्रीय आय की वृद्धि से आर्थिक कल्याण में वृद्धि या कमी होना कई एक तत्वों पर निर्भर करता है जैसे जनसंख्या की वृद्धि की दर, आय के अर्जित करने के ढंग, काम की अवस्थाएं, व्यय करने का तरीका, फैशन व रुचियां आदि।

(2) राष्ट्रीय आय के वितरण में परिवर्तन दो प्रकार से होता है। प्रथम, धन का हस्तान्तरण गरीबों से अमीरों की ओर। दूसरा, अमीरों से गरीबों की ओर। जब राष्ट्रीय आय बढ़ने से धन का हस्तान्तरण पहली किस्म से होता है तो आर्थिक कल्याण में कमी होती है। ऐसा तब होता है जब सरकार धनी वर्गों को अधिक लाभ पहुंचाती है और गरीबों पर अवरोही (regressive) कर लगाए जाते हैं।

राष्ट्रीय आय के वितरण तथा आर्थिक कल्याण का वास्तविक सम्बन्ध दूसरे प्रकार के हस्तांतरण से है, जब धन अमीरों से गरीबों की ओर जाता है। राष्ट्रीय आय का गरीबों के पक्ष में पुनर्वितरण अमीरों के धन को कम करके और गरीबों की आय को बढ़ाकर किया जा सकता है। धनी वर्गों की आय को कई प्रकार के तरीके अपनाकर कम किया जा सकता है जैसे, आय, सम्पत्ति आदि पर आरोही (progressive) कर लगाना, एकाधिकार का नियन्त्रण करना, सामाजिक सेवाओं का राष्ट्रीयकरण करना तथा अमीरों द्वारा प्रयोग की जाने वाली महंगी और विलासिताओं की वस्तुओं पर कर लगाना इत्यादि। इसके विपरीत गरीबों की आय को भी कई प्रकार से बढ़ाया जा सकता है जैसे, न्यूनतम मजदूरी दर निश्चित करके, गरीबों द्वारा प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं का उत्पादन बढ़ा कर, ऐसी वस्तुओं की कीमतें निश्चित करके, वस्तुओं के उत्पादकों को वित्तीय सहायता देकर, वस्तुओं का वितरण सहकारी स्टोरों द्वारा करके तथा गरीबों को निःशुल्क शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा व कम किराये पर मकान प्रदान करके। उपर्युक्त उपायों से जब राष्ट्रीय आय का वितरण गरीबों के पक्ष में होता है तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है। पीगू ने इस विचार को इन शब्दों में व्यक्त किया है, "कोई भी कारण, जो वास्तविक आय के बहुत अधिक भाग की गरीबों के हक में वृद्धि करता है, यदि वह किसी भी दृष्टिकोण से राष्ट्रीय लाभांश के आकार में कमी नहीं लाता तो सामान्यतः आर्थिक कल्याण को बढ़ाएगा।

परन्तु यह आवश्यक नहीं कि राष्ट्रीय आय के समान वितरण से आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो। इसके विपरीत यदि अमीरों के प्रति अपनाई जाने वाली नीति विवेकपूर्ण न हो तो आर्थिक कल्याण में कमी की अधिक सम्भावना पाई जाती है। बहुत अधिक ऊंची दर पर लगाए गए आरोही कर उत्पादन क्षमता तथा पूंजी निवेश व निर्माण पर बुरा प्रभाव डालते हैं जिससे राष्ट्रीय आय कम हो जाती है। इसी प्रकार सरकारी प्रयत्नों द्वारा जब गरीबों की आय में वृद्धि होने पर यदि वे उसका प्रयोग शराब, जुए आदि बुरी

वस्तुओ पर व्यय करते हैं या उनकी जनसख्या मे वृद्धि हो जाती है तो आर्थिक कल्याण मे कमी होती है परन्तु ये दोनो बातें वास्तविक नहीं, केवल भय मात्र हैं क्योकि जब सरकार अमीरो पर कई प्रकार के आरोही कर लगाती है तो इस बात का विशेष ध्यान रखती है कि उनका उत्पादन तथा निवेश पर बुरा प्रभाव न पड़े। दूसरी ओर जब किसी गरीब व्यक्ति की आय बढ़ती है तो उसका यह प्रयत्न होता है कि वह अपने बच्चो को अच्छी शिक्षा दे और अपना रहन-सहन का स्तर ऊचा करे। अत हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि से आर्थिक कल्याण मे भी वृद्धि होती है बशर्ते कि गरीबो की आय कम न होकर बढ़े और वे अपने रहन-सहन के स्तर को सुधारें तथा अमीरो की आय इस प्रकार कम हो कि उत्पादन क्षमता, निवेश व पूजी-सचय में कमी न आने पावे।

राष्ट्रीय आय आर्थिक कल्याण के माप के रूप मे (National Income as a Measure of Economic Welfare)

GNP आर्थिक कल्याण का सतोषजनक माप नही है क्योकि राष्ट्रीय आय के अनुमानो मे कुछ सेवाए तथा उत्पादन क्रियाए सम्मिलित नही होती हैं जो कल्याण को प्रभावित करती हैं। नीचे कुछ ऐसे घटको की व्याख्या की जा रही है जो मानव कल्याण को प्रभावित करते हैं लेकिन GNP अनुमानो में शामिल नही किए जाते हैं।

विश्राम (Leisure) —समाज के कल्याण को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व विश्राम है परन्तु इसे GNP मे सम्मिलित नही किया जाता है। उदाहरणार्थ, काम करने के अधिक घण्टे लोगो की प्रसन्नता को कम कर सकते हैं क्योकि उनका विश्राम कम हो जाता है। इसके विपरीत, प्रति सप्ताह काम करने के कम घण्टे विश्राम को बढा देते हैं और लोगो को प्रसन्न रखते हैं। समाज द्वारा अधिक या कम विश्राम लेने से अर्थव्यवस्था का कुल उत्पादन प्रभावित होता है। परन्तु राष्ट्रीय आय के अनुमानो मे विश्राम का मूल्य नहीं लिया जाता है।

जीवन की कोटि (Quality of life)—GNP के अनुमानो मे जीवन की कोटि सम्मिलित नही होती है जो समाज के कल्याण को प्रतिबिम्बित करती है। अति भीड़ वाले शहरो मे जीवन तनावो से भरा होता है। सडको पर बहुत भीड होती है जिससे समय का नाश होता है। रोज दुर्घटनाए होती हैं जो लोगो को अपग कर देती हैं या मार देती हैं। वातावरण दूषित हो जाता है। परिवहन, निवास, विद्युत, जल आदि की समस्याए उत्पन्न होती है। अपराध बढ़ते हैं। जीवन जटिल बन जाता है और जीवन की कोटि मे गिरावट आती है। परिणामत', सामाजिक कल्याण कम होता है। परन्तु शहरी जीवन के ये सभी तनाव राष्ट्रीय आय के अनुमानो मे शामिल नही किए जाते हैं। दूसरी ओर, ऐसे स्थानो पर जहा भीड नहीं होती और लोग स्वच्छ वायु तथा प्रकृति की सुन्दरता का सेवन करते हैं वहा जीवन की कोटि मे वृद्धि होती है। परन्तु यह भी GNP मे प्रतिबिम्बित नही होती है।

मार्किटेतर लेनदेन (Non-market transactions)—कुछ मार्किटेतर लेनदेन कल्याण मे वृद्धि करते हैं परन्तु वे राष्ट्रीय आय के अनुमानो मे शामिल नही किए जाते हैं। गृहणी की घर मे सेवाए और सामाजिक क्रियाए जैसे धार्मिक उत्सव लोगों के कल्याण को प्रभावित करते हैं परन्तु वे GNP के अनुमानो मे सम्मिलित नही की जाती क्योंकि ऐसी सेवाए प्रदान करने मे कोई मार्किट लेनदेन नही आते हैं।

बहिर्भाव (Externalities)—इस प्रकार, बहिर्भाव भी कल्याण को बढाने या कम करने की प्रवृत्ति रखते हैं परन्तु वे भी GNP अनुमानो मे सम्मिलित नही किए जाते हैं। एक बहिर्भाव व्यक्तिगत उत्पादन तथा उपभोग के परिणामस्वरूप किसी अन्य व्यक्तियो पर लागत या लाभ होता है। परन्तु एक बहिर्भाव की लागत या लाभ मुद्रा द्वारा नहीं मापी जा सकती क्योंकि यह मार्किट क्रियाओ मे शामिल नही होती है। बाह्य लाभ का एक उदाहरण एक व्यक्ति को अपने पड़ोसी के उत्तम बगीचे को देखने से प्राप्त प्रसन्नता है। बाह्य लागत का एक उदाहरण औद्योगिक प्लाटो द्वारा दूषित वातावरण है। पहला कल्याण मे वृद्धि करने की ओर दूसरा कल्याण को कम करने की प्रवृत्ति रखता है। क्योंकि बहिर्भाव बिना लेनदेन की परस्पर निर्भरताए होती हैं इसलिए वे राष्ट्रीय आय के अनुमानो मे सम्मिलित नही की जाती हैं।

उत्पादन की प्रकृति (Nature of production)—GNP के अनुमानों मे विभिन्न वस्तुओ द्वारा समाज को भिन्न-भिन्न सतुष्टि के स्तर प्रदान करने की क्षमता प्रतिबिम्बित नही होती है। एक अणु बम्ब या एक नदी के ऊपर डैम बनाने पर किया गया समान व्यय राष्ट्रीय आय मे समान वृद्धि करता है परन्तु ये समाज को सतुष्टि के भिन्न-भिन्न स्तर प्रदान करते हैं। एक बम्ब कल्याण मे वृद्धि नही करता जबकि एक डैम वृद्धि करता है।

रहन-सहन का स्तर (Standard of living)—GNP के अनुमान समाज के रहन-सहन के स्तर को भी व्यक्त नही करते हैं। यदि राष्ट्रीय व्यय का अधिक भाग युद्ध का सामान बनाने और पूजी पदार्थों पर खर्च किया जाता है, तथा कम भाग उपभोक्ता वस्तुओ के निर्माण पर तो यह अन्तर राष्ट्रीय आय के अनुमानो मे दिखाई नहीं देता है। परन्तु उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे कमी लोगो के कल्याण को कम करने की प्रवृत्ति रखती है, जबकि युद्ध के सामान और पूजी पदार्थों पर किया गया व्यय वर्तमान मे कल्याण को नही बढाता है।

ऊपर वर्णित सीमाओ के दृष्टिकोण से, GNP कल्याण के माप के रूप मे प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है। फिर भी, कुछ अर्थशास्त्रियो ने GNP की परिभाषा को विस्तृत करने का प्रयत्न किया है ताकि यह आर्थिक कल्याण का माप हो सके। इस ओर प्रथम प्रयास प्रोफेसर नोरधोस (Nordhaus) और टोबिन ने 1972 मे किया। इन्होंने आर्थिक कल्याण का माप (Measure of Economic Welfare—*MEW*) निर्मित किया है जिसे सैम्यूलसन शुद्ध आर्थिक कल्याण (Net Economic Welfare—*NEW*) कहते हैं।

नोरधोस और टोबिन के अनुसार, उन्होंने *MEW* में सभी उपभोग जिससे मानव कल्याण होता है, उसे मापने का यत्न किया है। *MEW* के मूल्य का अनुमान लगाने के लिए वे उपभोग में से कुछ मदें घटा देते हैं जो कल्याण प्रदान नहीं करती हैं। जैसे, **शोचनीय आवश्यकताएं (regrettable necessities)** जिनमें सुरक्षा, पुलिस, सफाई आदि पर सरकारी व्यय और प्रतिदिन स्कूटर, बस या गाडी द्वारा घर से कार्य-स्थान जाने का निजी व्यक्तियों का व्यय शामिल है, दूसरे, सभी घरेलू टिकाऊ वस्तुओं पर उपभोक्ता व्यय जिनमें स्कूटर, कार, टी. वी., रेडियो, कपड़े धोने की मशीन, फ्रिज आदि शामिल हैं, और तीसरे ऋणात्मक बहिर्भावों (negative externalities) से उत्पन्न अनुमानित लागतें जो शहरीकरण, भीड़-भाड़ और दूषण के कारण पाई जाती हैं।

इन मदों को घटाने के बाद, नोरधोस और टोबिन निम्न तीन मदें उपभोग में जमा कर देते हैं। ये हैं (1) मार्किटेतर क्रियाओं के मूल्य, (value of non-market activities); (2) वास्तविक तौर से उपभोग की गई टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य के अनुमान, और (3) विश्राम के मूल्य के अनुमान।

MEW के अनुमान लगाने में नोरधोस और टोबिन विश्राम के मूल्यांकन पर अधिक बल देते हैं। इसके लिए वे दो विधियां अपनाते हैं वैकल्पिक लागत विधि तथा यथार्थ मूल्य विधि। प्रथम विधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि जब कोई व्यक्ति अधिक विश्राम लेने का चुनाव करता है तो ऐसा सदैव अधिक आय त्यागने की लागत पर होता है। एक घण्टे के विश्राम का अर्थ है एक घण्टे की मजदूरी त्यागना। उनके अनुमानों के अनुसार, वैकल्पिक लागत द्वारा मापे गए विश्राम का मूल्य कई वर्षों से निरन्तर बढ़ रहा है क्योंकि समय के साथ प्रति घण्टा वास्तविक मजदूरी दर निरन्तर बढ़ रही है। यथार्थ मूल्य विधि विश्राम के मूल्य को एक घण्टे के विश्राम द्वारा प्रदान किए गए वास्तविक आनन्द (उपयोगिता) द्वारा मापती है।

ऐसी मूल्यांकन विधियां प्रयोग करके, नोरधोस और टोबिन ने संयुक्त राज्य अमरीका में *MEW* का जो 1965 का अनुमान लगाया वह 1200 बिलियन डॉलर था जो उसी वर्ष की GNP से दुगुना था। 1929-65 की अवधि में प्रति व्यक्ति *MEW* का अनुमान 1 1 प्रतिशत प्रतिवर्ष था जबकि प्रतिव्यक्ति GNP का अनुमान 1 7 प्रतिशत था। ये अनुमान स्पष्ट करते हैं कि इस अवधि में अमरीका के आर्थिक कल्याण में अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

परन्तु ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि *MEW* की धारणा GNP को प्रतिस्थापित करती है। अधिकतर यह GNP की पूरक है जिसमें आर्थिक कल्याण को GNP के साथ संबंधित करने के लिए इसमें मार्किटेतर क्रियाएं भी सम्मिलित की गई हैं।

प्रश्न

1. राष्ट्रीय आय के आकार तथा वितरण की प्रणाली मे परिवर्तन आर्थिक कल्याण की प्रणाली को किस प्रकार प्रभावित करते हैं, समझाइए। उदाहरण दीजिए।
2. राष्ट्रीय लाभांश के आकार और वितरण में परिवर्तन का कल्याण पर प्रभाव की विवेचना कीजिए।
3. आर्थिक कल्याण के विचारो का मूल्यांकन कीजिए। इसका किसी देश की राष्ट्रीय आय से संबंध स्पष्ट कीजिए।
4. गरीबों के हित मे, राष्ट्रीय लाभांश के वितरण मे हुए परिवर्तन के, आर्थिक कल्याण पर जो प्रभाव होते हो, उनकी पूर्ण रूप से व्याख्या कीजिए।

अध्याय-51
सामाजिक लेखांकन
(SOCIAL ACCOUNTING)

1. अर्थ (MEANING)

अर्थशास्त्र में 'सामाजिक लेखांकन' शब्द का समावेश सबसे पहले 'जे० आर० हिक्स' (J. R. Hicks) ने 1942 में किया था। उसके अनुसार, इसका अर्थ समस्त समाज अथवा राष्ट्र के लेखांकन के अतिरिक्त कुछ नहीं है—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार निजी लेखाकन किसी व्यक्तिगत फर्म का लेखांकन होता है। सामाजिक लेखाकन जिसे राष्ट्रीय आय लेखांकन भी कहते हैं, वह प्रणाली है जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के पारस्परिक सम्बन्धो को साख्यिकीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है ताकि समस्त अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थितियों को पूरी तरह समझा जा सके। यह आर्थिक ढांचे के अध्ययन की पद्धति है। यह किसी समाज की अर्थव्यवस्था की प्रकृति के बारे में सूचना प्रस्तुत करने की तकनीक है, इसका उद्देश्य केवल यह नहीं होता कि उस समाज की अतीत या वर्तमान समृद्धि के बारे में जाना जाए, अपितु यह भी होता है कि अर्थव्यवस्था को प्रभावित (या नियमित) करने वाली सामूहिक (या राज्य की) नीति के लिए निर्देशक रेखाए प्राप्त की जाए। एडी (Edey), पीकॉक (Peacock), तथा कूपर (Cooper) के शब्दो मे, "सामाजिक लेखाकन का सबध मनुष्यों तथा मानव-सस्थाओं की क्रियाओ का ऐसे तरीको से साख्यिकीय वर्गीकरण करने से है जिनसे समस्त अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझने मे सहायता मिलती है। पर, 'आर्थिक लेखांकन' शब्द मे अध्ययनो के क्षेत्र के अन्तर्गत आर्थिक क्रिया का केवल वर्गीकरण ही नही आता, अपितु इस प्रकार से एकत्रित की गई सूचना को आर्थिक प्रणाली के कार्यकरण की जाँच-पड़ताल पर लागू करना भी आता है।" दूसरे शब्दो मे, सामाजिक लेखांकन समस्त अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो की आर्थिक क्रियाओ का सांख्यिकीय विवरण प्रस्तुत करता है और उनके आपसी सबध को सूचित करता है तथा विश्लेषण के लिए ढांचा प्रदान करता है।

आर्थिक क्रियाओ के प्रमुख प्रकार ये हैं—उत्पादन, उपभोग, पूजी-सचय, सरकार द्वारा किए गए लेनदेन तथा शेष विश्व के साथ किए गए लेनदेन। ये सामाजिक लेखांकन के घटक हैं। यदि किसी देश के इन पाच क्रियाओ से सम्बद्ध आय तथा व्यय लेखा-रूप में प्रस्तुत कर दिए जाए, तो ये अर्थव्यवस्था के मूल ढाचे को प्रकट करने वाले प्रवाहों के बन्द

नेटवर्क को प्रदर्शित करेंगे। ये प्रवाह सदैव मौद्रिक रूप मे ही प्रस्तुत किए जाते हैं। इन प्रवाहो का वर्गीकरण निम्नलिखित ढग से किया जाता है—

(1) उत्पादन-लेखा (Production account)— उत्पादन-लेखा अर्थव्यवस्था के व्यवसाय क्षेत्र से सबध रखता है। इसमे सब प्रकार की उत्पादक क्रियाए अर्थात् विनिर्माण, व्यापार आदि सम्मिलित हैं। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक एव निजी कम्पनिया, स्वत्वाधिकारी फर्मे तथा एकल साझेदारिया और सरकारी स्वामित्व व्यवसाय आते हैं। क्योकि समस्त उत्पादक क्रियाए इसी क्षेत्र के भीतर होती हैं, इसलिए सभी भुगतान इस क्षेत्र से अन्य क्षेत्रो की ओर प्रवाहित होते हैं। व्यवसाय क्षेत्र का उत्पादन-लेखा तालिका 1 मे दिखाया गया है।

तालिका 1 : उत्पादन-लेखा

	भुगतान	रु० (करोड)		प्राप्तियां	रु० (करोड)
1	वैयक्तिक क्षेत्र को—अर्थात् मजदूरी आदि के भुगतान (II-5)	279	5	उपभोग व्यय (II-1)	219
2	सरकार को भुगतान (III-5)	12	6	सरकारी क्रय (III-1)	30
3	व्यवसाय बचत (IV-3)	9	7	सकल निजी घरेलू निवेश (IV-1)	36
4	वस्तुओं तथा सेवाओं के आयात (V-2)	9	8	वस्तुओं तथा सेवाओं के निर्यात (V-1)	24
	सकल राष्ट्रीय आय (GNI)	309		सकल राष्ट्रीय व्यय (GNP)	309

टिप्पणी कोष्ठकों मे दिए गए अक तदनुरूपी तालिका तथा मद सख्या से सम्बन्ध रखते हैं।

वैयक्तिक (personal) क्षेत्र के भुगतानो मे किराया, ब्याज, लाभाश, मजदूरी, वेतन, कर्मचारियों को दिया जाने वाला मुआवजा और मालिको की आय शामिल होती है। 'सरकार को भुगतान' मद् के अन्तर्गत उत्पादको के वे शुद्ध भुगतान आते हैं जो वे करो तथा सामाजिक सुरक्षा भुगतानो के रूप मे सरकार को करते हैं। व्यवसाय बचत उत्पादको की प्रतिधारित (retained) आय या कम्पनी बचत को दर्शाती है। अन्तिम मद् उन भुगतानो से सम्बन्ध रखती है जो वस्तुओं और सेवाओं के आयातों के बदले विदेशी क्षेत्र को किए जाते हैं। उक्त सभी अकों का जोड सकल राष्ट्रीय आय (GNI) बनती है।

उत्पादन-लेखे के आय पक्ष मे वे प्राप्तिया आती हैं जो घरेलू या वैयक्तिक क्षेत्र में वस्तुओं एव सेवाओं के विक्रय से व्यवसाय क्षेत्र को उपलब्ध होती हैं। सरकारी क्रय से तात्पर्य उन वस्तुओं तथा सेवाओं से है जो व्यवसाय क्षेत्र द्वारा सरकार को बेची जाती

हैं। सकल पूंजी घरेलू निवेश के अन्तर्गत पूंजी वस्तुओं का सकल प्रवाह (स्थायी पूंजी निर्माण) तथा स्टॉकों मे होने वाले शुद्ध परिवर्तन आते हैं। शुद्ध निर्यात उस आय को निर्दिष्ट करते हैं जो व्यवसाय क्षेत्र बाकी विश्व को वस्तुए तथा सेवाए बेचकर अर्जित करता है। इन सब मद्दो का जोड व्यय के माध्यम से सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) बनता है।

(2) उपभोग लेखा (Consumption account)—उपभोग लेखा घरेलू अथवा वैयक्तिक क्षेत्र के आय तथा व्यय का लेखा प्रस्तुत करता है। घरेलू क्षेत्र के अन्तर्गत सभी उपभोक्ता और लाभ न कमाने वाली सस्थाए आती हैं, जैसे कि क्लब तथा सघ। उपभोग लेखा तालिका II मे दिखाया गया है।

तालिका II उपभोग लेखा

भुगतान	रु० (करोड)	प्राप्तिया	रु० (करोड)
1 उपभोग व्यय (I-5)	219	5 कारोबार, मजदूरी, वेतन आदि से प्राप्तिया (I-1)	279
2 सरकार को किये गये भुगतान (III-6)	45	6 सरकार से प्राप्तिया (III-2)	6
3. वैयक्तिक बचत (IV-6)	15		
4. विदेशियो को अन्तरण भुगतान (V-2)	6		
वैयक्तिक परिव्यय एव बचत	285	वैयक्तिक आय	285

टिप्पणी कोष्ठकों मे दिए गए अक तदनुरूपी तालिका तथा मद सख्या से सम्बन्ध रखते हैं।

उपभोग लेखा मे बाई ओर दिखाई गई प्रमुख मद घरेलू उपभोक्ताओं का वह व्यय है जो वे अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए व्यवसाय क्षेत्र से वस्तुए तथा सेवाए खरीदने मे करते हैं। सरकार को किए जाने वाले भुगतानो के अन्तर्गत करो की तथा विशेष बीमा अदायगिया सम्मिलित है। अगली मद घरेलू क्षेत्र द्वारा निवेश के लिए प्रयोग मे आने वाली वैयक्तिक बचत को दिखाती है। 'विदेशियो को अन्तरण' मद के अन्तर्गत विदेशी प्रतिभूतियों मे निवेश अथवा आवासियो द्वारा शिक्षा या विदेश-यात्रा पर किया गया व्यय आता है। लेखा मे दाईं ओर प्रमुख मद के अन्तर्गत व्यवसाय एव घरेलू उपभोक्ताओं की वह आय दिखाई गई है, जो उन्हे मजदूरी तथा वेतन, लाभ, ब्याज, लाभाश, किराए, चालू अन्तरणों से प्राप्तियो आदि के रूप मे होती है। सरकार से मिलने वाली आय के अन्तर्गत अन्तरण भुगतान (transfer payments) तथा सार्वजनिक ऋण पर ब्याज के भुगतान शामिल है।

(3) सरकारी लेखा (Government account)—सरकारी लेखा का सम्बन्ध सरकारी क्षेत्र के व्यय तथा आय से है। किसी देश के केन्द्रीय राज्य एव स्थानीय प्राधिकरण सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। सरकारी लेखा तालिका III में दिखाया गया है।

तालिका III सरकारी लेखा

भुगतान	रु० (करोड़)	प्राप्तियाँ	रु० (करोड़)
1 व्यवसाय को भुगतान (I-6)	30	5 व्यवसाय से प्राप्तियां (I-2)	12
2 व्यक्तियों को भुगतान (II-6)	6		
3 सरकारी आधिक्य (IV-5)	15	6 व्यक्तियों से प्राप्तियां (II-2)	45
4 विदेशियों को भुगतान (V-4)	6		
सरकारी परिव्यय और आधिक्य	57	सरकारी प्राप्तियां	57

टिप्पणी कोष्ठकों में दिए गए अंक तदनुरूपी तालिका तथा मद संख्या से सम्बन्ध रखते हैं।

केवल मद न० 3 को छोड़कर इस तालिका की सभी मदों की व्याख्या तालिका I तथा II में दिए गए लेखों के अन्तर्गत की जा चुकी है। इस मद से तात्पर्य वह निवेश है जो सरकार अपने आधिक्य (surplus) या बचत में से करती है। परन्तु, लक्ष्य करने की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि राजकीय स्वामित्व के उद्यमों को सरकारी क्षेत्र में नहीं रखा गया है क्योंकि उन्हें व्यवसाय क्षेत्र के अन्तर्गत इसलिए रख लिया गया है कि निजी उद्यमों की भांति सार्वजनिक उपक्रम भी विक्रय के लिए वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करते हैं।

(4) पूंजी-लेखा (Capital account)—पूंजी-लेखा से पता चलता है कि बचत घरेलू एवं विदेशी निवेश के बराबर होती है। बचत का देश के भीतर स्थायी पूंजी एवं मालसूचियों में तथा/अथवा अन्तर्राष्ट्रीय परिसम्पत्तियों में निवेश किया जाता है। पूंजी-लेखा तालिका IV में दिखाया गया है। सकल निजी निवेश के अन्तर्गत पूंजी वस्तुओं का सकल प्रदाह एवं स्टाकों में होने वाला शुद्ध परिवर्तन शामिल है। शुद्ध विदेशी निवेश से तात्पर्य चालू लेखा पर होने वाला विदेशी आधिक्य है। दाईं ओर सकल बचत है जिसमें व्यवसाय एवं निजी बचतें तथा सरकारी आधिक्य सम्मिलित हैं।

तालिका IV पूंजी लेखा

भुगतान	रु० (करोड)	प्राप्तियां	रु० (करोड)
1 सकल घरेलू निवेश (I-7)	36	3 व्यवसाय बचत (I-3)	9
2 शुद्ध विदेशी निवेश (V-5)	3	4 वैयक्तिक बचत (II-3)	15
		5 सरकारी आधिक्य (III-3)	15
सकल निवेश	39	सकल बचत	39

टिप्पणी कोष्ठको मे दिए गए अक तदनुरूपी तालिका तथा मद सख्या से सम्बन्ध रखते हैं।

(5) विदेशी लेखा (Foreign account)—विदेशी लेखा किसी देश के शेष विश्व के साथ किए गए लेन-देनो को दिखाता है। इस लेखे के अन्तर्गत वस्तुओ तथा सेवाओ का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एव अन्तरण भुगतान आते हैं और यह लेखा एक प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान-शेष का चालू खाता होता है। विदेशी लेखा अथवा शेष-विश्व लेखा तालिका V मे दिखाया गया है। सरलता की दृष्टि से, माल भाडा एव बीमा जैसी सेवाए अलग से नही दिखाई गई हैं। पूर्ववर्ती लेखो के अन्तर्गत सभी मदो की व्याख्या की जा चुकी है। यह ध्यान मे रखने की बात है कि विदेशी लेखा मे "निर्यातो" को (बाईं ओर) भुगतानो के अन्तर्गत दिखाया गया है और आयातो को (दाईं ओर) प्राप्तियो के अन्तर्गत दिखाया गया है। इसका कारण यह है कि किसी देश के नागरिक निर्यातो के बदले जो राशि प्राप्त करते हैं, उसको वे आयातो तथा अन्तरण भुगतानो के बदले बाहर के देशो को दे देते हैं। यहा भुगतानो तथा प्राप्तियो का सबध शेष विश्व के साथ होता है, न कि स्वय देश के साथ।

तालिका V विदेशी लेखा

भुगतान	रु० (करोड)	प्राप्तियां	रु० (करोड)
1 वस्तुओ और सेवाओ का निर्यात (I-8)	24	2 वस्तुओ और सेवाओ का आयात (I-4)	9
		3 व्यक्तियो द्वारा विदेशियो को अन्तरण भुगतान (II-4)	6
		4 सरकार द्वारा विदेशियो को अन्तरण भुगतान (III-4)	6
		5. शुद्ध विदेशी निवेश (IV-2)	3
विदेशियो से शुद्ध प्राप्तिया	24	विदेशियो को शुद्ध भुगतान	24

टिप्पणी कोष्ठको मे दिए गए अक तदनुरूपी तालिका तथा मद सख्या से सम्बन्ध रखते हैं।

ऊपर जिस पच-लेखा प्रणाली का विवरण दिया गया है, वह उत्पादन, उपभोग, सरकारी लेनदेन, पूजी सचय तथा शेष विश्व से लेनदेन के रूप में अर्थव्यवस्था के प्रवाहो से सबध रखती है। इन पर आधारित लेखे कार्यात्मक लेखे (functional accounts) कहलाते हैं क्योंकि वे लेनदेन के कार्यों के अनुसार उनके वर्गीकरण पर आधारित हैं।

सामाजिक लेखो का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Social Accounts)

निजी लेखो की भाति सामाजिक लेखा भी दोहरी प्रविष्टि पद्धति पर प्रस्तुत किए जाते हैं। आजकल इस बात पर एकमत है कि सामाजिक लेखो को सयुक्त राष्ट्र की सिफारिशो के अनुसार, सामाजिक लेखाकन तालिका के रूप में प्रस्तुत किया जाए। सामाजिक लेखाकन तालिका को सामाजिक लेखा आधारक (matrix) कहते है। लेन-देन आधारक को उन सामाजिक खातो के लिए काम मे लाया जाता है जिनमे प्रत्येक पक्ति में अन्य क्षेत्रो को किए गए भुगतान रहते हैं और प्रत्येक स्तम्भ मे अन्य क्षेत्रो से प्राप्त आय दर्ज की जाती है। प्रत्येक प्रविष्टि एक विशेष पक्ति मे भी की जाती है और एक विशेष खाने में भी। सतुलन के लिए आवश्यक है कि सामाजिक खातो की प्रत्येक पक्ति का कुल जोड सामने के खाने के कुल जोड के बराबर हो। सामाजिक खातो का आधारक तालिका VI मे दिखाया गया है जो तालिका I से V तक दिए गए खातो मे भुगतानो और प्राप्तियो के प्रवाहो मे सबध को व्यक्त करता है। तालिका VI मे प्रत्येक खाते की एक पक्ति है जो किए गए भुगतान दर्शाती है और प्रत्येक खाते का एक खाना है जिसमे प्राप्तिया दिखाई गई है। इनकी व्याख्या आगे की जा रही है।

पक्ति 1 मे व्यवसाय क्षेत्र द्वारा किए गए भुगतान दिखाए गए हैं, जिनमे 279 करोड रुपये की राशि का भुगतान तो उपभोग क्षेत्र को मजदूरी तथा वेतन आदि के रूप मे किया गया है और 12 करोड रुपये का करो के रूप मे, सरकार को किया गया भुगतान है 9 करोड रुपये फर्मो के पूजी लेखा मे कम्पनी बचत (अवितरित लाभ) तथा 9 करोड रुपए विदेशो से वस्तुओ तथा सेवाओ के आयात के लिए है।

पक्ति 2 मे घरेलू क्षेत्र द्वारा व्यापार क्षेत्र को किए गए भुगतान दिखाए गए है जिनमे 219 करोड रुपये व्यवसाय क्षेत्र से खरीदी गई वस्तुओ तथा सेवाओ का भुगतान है, 45 करोड रुपये सरकार को करो के रूप मे एव बीमा किस्तो के रूप मे चुकाए गए हैं, 15 करोड रुपये घरेलू उपभोक्ताओ द्वारा बचत के रूप मे निवेश (पूजी) क्षेत्र मे और 6 करोड रुपये विदेशी प्रतिभूतियो मे तथा विदेशो मे शिक्षा, यात्रा आदि पर व्यय मे लगाए गए है।

पक्ति 3 सरकारी क्षेत्र के बाह्य प्रवाह से सम्बन्ध रखती है। सरकार वस्तुओ तथा सेवाओ को खरीदने के लिए व्यवसाय क्षेत्र को 30 करोड रुपये का भुगतान करती है, सार्वजनिक ऋण पर शुद्ध ब्याज, भुगतानो के रूप मे तथा पेन्शन, ग्रैच्युटी आदि के लिए अन्तरण भुगतान के रूप मे 6 करोड रुपये चुकाती है, सरकारी आधिक्य मे से 15 करोड

तालिका VI सामाजिक लेखा का प्रवाह [illegible]

प्राप्ति ↓ / भुगतान →	लेखे 1 व्यवसाय	2 घ[illegible]	3 [illegible]	4 पूंजी	5 [illegible]	(करोड) कुल
उत्पादन या व्यवसाय	—	279	[illegible]	9	9	309
घरेलू या उपभोग	219	—	45	15	6	285
सरकार	30	6	—	15	6	57
पूजी	36	—	—	—	3	39
विदेश	24	—	—	—	—	24
कुल	309	285	57	39	24	714

रुपये निवेश के लिए खर्च किए जाते हैं और 6 करोड रुपये विदेशो से उनसे प्राप्त वस्तुओ तथा सेवाओ के बदले चुकाए जाते है। इस अन्तिम मद के अन्तर्गत वह व्यय भी शामिल है जो विदेशो मे दूतावासो के रख-रखाव पर और विदेशो को भेजे जाने वाले शिष्ट मडलो पर किया जाता है।

पक्ति 4 अर्थव्यवस्था के पूजी लेखा से सम्बन्ध रखती है जिसमे पूजी वस्तुओ तथा माल सूचियो (inventories) मे शुद्ध परिवर्तन के लिए व्यवसाय क्षेत्र को 36 करोड रुपये का भुगतान किया गया है और 3 करोड रुपये के विदेशो मे किए गए शुद्ध निवेश है।

पक्ति 5 का सम्बन्ध शेष विश्व लेखा अथवा विदेशी लेखा से है जिनमे विदेशियो को वस्तुओं तथा सेवाओ के विक्रय अथवा निर्यात से प्राप्त 24 करोड रुपये का भुगतान है।

इसी प्रकार तालिका VI के आधार पर प्रत्येक स्तम्भ के अनुसार प्रत्येक क्षेत्र की प्राप्तियो की व्याख्या की जा सकती है।

तालिका VI मे प्रस्तुत की गई सामाजिक लेखा आधारक से तीन बातें और प्रकट होती हैं। प्रथम, प्रत्येक आयताकार खाने से पता चलता है कि एक क्षेत्र के लेखा को किए गए भुगतान दूसरे क्षेत्र के लेखा से प्राप्त आय के बराबर हैं। उदाहरणार्थ, तालिका मे पंक्ति के अनुसार जो उत्पादन क्षेत्र द्वारा घरेलू क्षेत्र को किया गया 279 करोड़ रुपये का भुगतान है, उसे स्तम्भ के अनुसार घरेलू क्षेत्र की प्राप्ति के रूप मे दिखाया गया है। दूसरे, पंक्ति के अनुसार जो उत्पादन क्षेत्र द्वारा किया गया 309 करोड़ रुपये का कुल भुगतान है वह स्तम्भ-अनुसार इस क्षेत्र की कुल आय के बराबर है। तीसरे, सामाजिक लेखाकन आधारक मे सभी क्षेत्रो के कुल भुगतान सभी क्षेत्रो की कुल आय (प्राप्तियो) के बराबर हैं। तालिका मे पंक्ति-अनुसार और स्तम्भो के अनुसार उनकी राशि 714 करोड़ रुपये है।

सामाजिक लेखाकन का महत्व (Importance of Social Accounting)

सामाजिक लेखाकन किसी अर्थव्यवस्था के ढाचे और विभिन्न क्षेत्रो के सापेक्ष महत्त्व तथा प्रवाहो को समझने मे सहायक है। यह वर्तमान और भविष्य—दोनो मे—सरकारी नीतियो के मूल्याकन एव निर्माण का साधन है।

सामाजिक लेखाकन के उपयोग निम्नलिखित हैं—

(1) लेनदेनों के वर्गीकरण मे (In classfying transactions)—किसी देश की आर्थिक क्रिया मे असख्य लेनदेन पाए जाते हैं जो "क्रय-विक्रय से, आय के भुगतान तथा प्राप्ति से, निर्यात-आयात से, करो के भुगतान आदि" से सम्बन्ध रखते हैं। सामाजिक लेखाकन का विशेष गुण यह है कि वह इन विभिन्न प्रकार के लेनदेनो का उचित वर्गीकरण कर इन्हे साररूप मे प्रस्तुत करता है और इनमे राष्ट्रीय आय, व्यय, बचत, निवेश, उपभोग व्यय, उत्पादन व्यय, सरकारी व्यय, विदेशो के भुगतान एव प्राप्तियो आदि के समूह निकालता है।

(2) आर्थिक ढाचे को समझने में (In understanding economic structure)—सामाजिक लेखाकन हमे आर्थिक ढाचा समझने मे सहायता देता है। यह हमे न केवल राष्ट्रीय आय का ज्ञान कराता है अपितु उत्पादन एव उपभोग के आकार, कराधान एवं बचत के स्तर तथा विदेशी व्यापर पर अर्थव्यवस्था की निर्भरता के बारे मे भी जानकारी देता है।

(3) विभिन्न क्षेत्रों और प्रवाहों को समझने में (In understanding different sectors and flows)—सामाजिक लेखे विभिन्न क्षेत्रो के सापेक्ष महत्त्व और अर्थव्यवस्था मे प्रवाहो पर भी प्रकाश डालते है। उनसे हमे पता चलता है कि राष्ट्रीय लेखो मे अन्य क्षेत्रो की अपेक्षा उत्पादन क्षेत्र, उपभोग क्षेत्र, निवेश क्षेत्र अथवा शेष विश्व क्षेत्र का योगदान अधिक है या नही।

(4) विभिन्न धारणाओं में सम्बन्धों को स्पष्ट करने हेतु (In clarifying relations between different concepts)—सामाजिक लेखे ऐसी सम्बद्ध धारणाओ के बीच सम्बन्धो को स्पष्ट करने मे भी सहायक होते हैं जैसे कि साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद तथा बाजार कीमतो पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद।

(5) अन्वेषक का मार्गदर्शन करने में (In guiding the investigator)—सामाजिक लेखे आर्थिक अन्वेषक का मार्गदर्शन भी करते हैं क्योंकि वे यह बताते हैं कि अर्थव्यवस्था के व्यवहार का विश्लेषण करने के लिए किस प्रकार के आकड़े सग्रह किए जाएं। इस तरह के आंकड़ो का सबध सकल राष्ट्रीय उत्पाद, वस्तुओं तथा सेवाओ पर सरकारी व्यय, निजी उपभोग व्यय, सकल निजी निवेश आदि से हो सकता है।

(6) आय वितरण प्रवृत्तियों को समझाने में (In explaining trends in income distribution)—सामाजिक लेखो के घटकों में होने वाले परिवर्तन अर्थव्यवस्था के भीतर आय वितरण की प्रवृत्तियो का मार्गदर्शन करते हैं।

(7) स्थिर कीमतों पर परिवर्तनों को समझाने में (In explaining movements at constant prices)—सकल राष्ट्रीय उत्पाद मे होने वाले परिवर्तन, जो स्थिर कीमतो पर आंके और जनसख्या की प्रति व्यक्ति आय मे व्यक्त किए जाते हैं उनको दर्शाते हैं जो जीवन-स्तर मे होते हैं। इसी प्रकार, स्थिर कीमतो पर मूल्यांकित सकल राष्ट्रीय उत्पाद को प्रति व्यक्ति कार्यकारी जनसख्या से सम्बद्ध करके उत्पादकता के स्तर में होने वाले परिवर्तनों को मापा जा सकता है।

(8) अर्थव्यवस्था के कार्यकरण का चित्र प्रदान करते हैं (Provide a picture of the workings of economy)—सामाजिक लेखे अर्थव्यवस्था के कार्यकरण का वास्तविक चित्र प्रदान करते हैं। "भविष्य में अर्थव्यवस्था के सम्भावित परिणामो के प्रक्षेपित पूर्वानुमान तैयार करने के लिए भी ढांचे के रूप मे इनका प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार सामाजिक लेखे आन्तरिक रूप से तथा अन्य ज्ञात तथ्यों के सबध में पूर्वानुमानों की स्थिरता को सुनिश्चित करते हैं।"

(9) विभिन्न क्षेत्रों के परस्पर सम्बन्धों को समझाने में (In explaining interrelations among different sectors)—सामाजिक लेखे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की परस्पर-निर्भरता को समझने की भी क्षमता प्रदान करते हैं। *सामाजिक लेखो के* आधारक (matrix) का अध्ययन करने से इस बात का ज्ञान होता है।

(10) सरकारी नीतियों के प्रभावों का अनुमान लगाने में (In estimating the effects of government policies)—सामाजिक लेखो का सबसे अधिक महत्व यह है कि वे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो पर सरकारी नीतियों के प्रभावों का अनुमान लगाते हैं और राष्ट्रीय आय लेखे अर्थव्यवस्था मे होने वाले जिन परिवर्तनो को प्रकट करते हैं, उन परिवर्तनो के अनुरूप नई नीतियां निर्धारित करने मे सहायक होते हैं। इनका प्रमुख कार्य इस बात मे सरकार की सहायता करना है कि वह आर्थिक स्थितियों को आंके, उनकी दिशा निर्धारित करे अथवा उन्हें नियंत्रित करे और ऐसी नई नीतियां निर्धारित

करे जिनका उद्देश्य राष्ट्रीय आय को अधिकतम बनाना हो, पर जो साथ ही रोजगार को ऊचे स्तर पर बनाए रखे, आय एव धन की असमानताओं को घटाए, कीमतों को अनुचित रूप से न बढने दे, विदेशी विनिमय को सुरक्षित रखें इत्यादि।

(11) **बड़े व्यापारी सगठनों मे सहायक** (Helpful in big business organisations)—बडे-बड़े व्यापार सगठन सामाजिक लेखो का इसलिए भी उपयोग करते हैं कि अपने कार्य को आर्के और अर्थव्यवस्था के विविध क्षेत्रो के बारे मे प्राप्त साख्यिकीय सूचना के आधार पर अपनी प्रत्याशाओ मे सुधार करें।

(12) **अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों मे लाभदायक** (Useful for international purposes)—सामाजिक लेखाकन अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से भी उपयोगी है। विश्व के विभिन्न देशो के सामाजिक लेखो का तुलनात्मक अध्ययन करके हम उन देशो का अल्प विकसित, कम विकसित तथा विकसित शीर्षको के अन्तर्गत वर्गीकरण कर सकते हैं। सयुक्त राष्ट्र की विविधि एजेन्सिया सामाजिक लेखो के आधार पर ही ससार के गरीब देशो के लिए सहायता की व्यवस्था करती हैं।

सराश यह है कि सामाजिक लेखे "सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के व्यवहार का विश्लेण करने के लिए आर्थिक पूर्वानुमानो के लिए तथा आर्थिक नीति की समस्याओ को सुलझाने के लिए अपेक्षित आर्थिक मॉडलो का आधार हैं।"

सामाजिक लेखाकन की कठिनाइया (Difficulties of Social Accounting)

सामाजिक लेखे तैयार करने मे *निम्नलिखित कठिनाइयां आती हैं :*

(1) **आरोपण** (Imputations)—जब सामाजिक लेखे तैयार किए जाते हैं, तो सब प्रकार की आय तथा भुगतानो को मुद्रा के रूप मे मापा जाता है। परन्तु बहुत-सी ऐसी वस्तुए तथा सेवाए हैं जिन्हे मुद्रा के रूप मे आरोपित करना कठिन है। उदाहरणार्थ, घर मे गृहिणी द्वारा प्रदान की गई सेवाए, किसी व्यक्ति द्वारा शौक के तौर पर की गई पेंटिंग, किसी अध्यापक द्वारा घर पर अपने बच्चो को पढाना, इत्यादि, इसी प्रकार की सेवाए हैं। इसी प्रकार कई ऐसे उत्पादन एव सेवाए हैं जिनका व्यापार या बाजार मे क्रय-विक्रय नहीं होता। जैसे, वे सब्जिया जो घर की शाकवाटिका मे उगाई जाती हैं और परिवार द्वारा उपभोग की जाती है, उस मकान का किराया-मूल्य जिसमे मालिक स्वय रहता है, खेत की उपज का वह भाग जिसे किसान अपने उपभोग के लिए रख लेता है, इत्यादि। ऐसे सभी लेनदेन, जिनका क्रय-विक्रय नही होता और जिनका मूल्य मुद्रा मे नही आका जाता, सही-सही सामाजिक लेखे तैयार करने मे समस्याए प्रस्तुत करते हैं।

(2) **दोहरी गणना** (Doble counting)—सामाजिक लेखे तैयार करने मे सबसे बडी कठिनाई दोहरी गणना की है जो इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि अन्तिम तथा मध्यवर्ती वस्तुओं मे अन्तर नही किया जा सकता। उदाहरणार्थ, जिस आटे को बेकरी मे उपयोग किया जाता है वह तो मध्यवर्ती वस्तु है और जिसे घर मे प्रयोग किया जाता है वह अन्तिम वस्तु है। इसी प्रकार "यदि किसी नवनिर्मित बिल्डिंग को सरकार खरीदती है,

तो ऐसे अर्थव्यवस्था के उपभोग निवेश के अन्तर्गत रखा जाता है। दूसरी ओर, यदि इसी बिल्डिंग को कोई निजी फर्म खरीदे तो वह उस वर्ष का उत्पन्न निवेश होगा।" इस प्रकार सामाजिक लेखों में एक ही वस्तु उपभोग तथा निवेश के रूप में दिखाई जाती है। इस तरह की समस्याएं सामाजिक लेखे तैयार करने में कठिनाइयां प्रस्तुत करती हैं।

(3) सार्वजनिक सेवाएं (Public services)—सामाजिक लेखों में एक और समस्या अनेक सार्वजनिक सेवाओं के आकलन की रहती है। वे सेवाएं पुलिस सेना, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि से सम्बन्ध रखती हैं। इसी प्रकार, बहु-उद्देशीय नदी-घाटी परियोजनाओं के योगदान सामाजिक लेखों में 'फिट' नहीं किए जा सकते क्योंकि उनके विविध लाभों का मौद्रिक रूप में हिसाब लगाना कठिन है।

(4) मालसूची समायोजन (Inventory adjustments)—मालसूचियों में होने वाले सभी परिवर्तनों को, चाहे वे ऋणात्मक हों चाहे धनात्मक, उत्पादन लेखों में माल-सूची मूल्यांकन समायोजन द्वारा समायोजित किया जाता है। परन्तु इसमें कठिनाई यह है कि फर्में अपनी मालसूचियां उनकी मूल लागतों के हिसाब से दर्ज करती हैं उनकी प्रतिस्थापन लागतों के हिसाब से नहीं। जब कीमतें बढ़ती हैं तो मालसूचियों के अंकित मूल्य में लाभ होता है। परन्तु जब कीमतें गिरती हैं तो मालसूचियों के अंकित मूल्य पर हानि होती है। इसलिए सामाजिक लेखांकन के अन्तर्गत व्यवसाय लेखों में मालसूचियों का सही हिसाब लगाने के लिए मालसूची मूल्यांकन समायोजन की जरूरत होती है जो कि एक बहुत ही कठिन काम है।

(5) मूल्य-ह्रास (Depreciation)—सामाजिक लेखांकन के अन्तर्गत व्यापार-लेखों में एक और समस्या मूल्यह्रास के आकलन की है। उदाहरणार्थ, यदि कोई ऐसी पूंजी परिसम्पत्ति है जिसकी प्रत्याशित आयु बहुत अधिक, जैसे 50 वर्ष है तो उसकी चालू मूल्य ह्रास-दर का हिसाब लगा सकना बहुत कठिन होगा। और यदि परिसम्पत्तियों की कीमतों में प्रत्येक वर्ष परिवर्तन होता जाए तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है। मालसूचियों के विपरीत सामाजिक लेखों में मूल्य-ह्रास मूल्यांकन समायोजन कर पाना बहुत ही कठिन है।

प्रश्न

1. सामाजिक लेखांकन मॉडल की आवश्यक विशेषताओं को बताइए तथा मुख्य कमियों को इंगित करिए जो इसके प्रयोग में हटानी चाहिए।
2. सामाजिक लेखांकन की विशेषताओं को दीजिए और राष्ट्रीय आय प्रवाहों के अध्ययन में इसका प्रयोग दिखाइए।
3. आप सामाजिक लेखांकन से क्या समझते हैं? सामाजिक लेखे कैसे प्राप्त किए जाते हैं? आर्थिक विश्लेषण में सामाजिक लेखांकन के महत्त्व की विवेचना करिए।

अध्याय-52
रोजगार का क्लासिकी सिद्धान्त
(THE CLASSICAL THEORY OF EMPLOYMENT)

I प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

सन् 1936 मे प्रकाशित अपनी *General Theory of Employment, Interest and Money* मे जॉन मेनर्ड केन्ज (John Maynard Keynes) ने क्लासिकी आधार तत्वों पर सीधा प्रहार किया। उसने एक नये अर्थशास्त्र का विकास किया, जिसने आर्थिक विचारधारा तथा नीति मे क्रान्ति ला दी। क्लासिकी विचारधारा की पृष्ठभूमि म *General Theory* लिखी गई थी। 'परम्परावादियों' (classicists) से केन्ज का तात्पर्य "रिकार्डो के अनुयायियो से था अर्थात् उनसे जिन्होंने रिकार्डो के अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त अपनाये तथा उन्हें सम्पूर्णता प्रदान की थी।" इनमे विशेष रूप से जे० एस० मिल, मार्शल तथा पीगू शामिल हैं। केन्ज ने उस प्रथागत तथा संस्थापित अर्थशास्त्र का खण्डन किया, जो एक शताब्दी से अधिक समय तक निर्मित हुआ था और 'बड़ी मदी' से पहले तक आर्थिक विचारधारा तथा नीति पर अपना प्रभुत्व जमाए था। क्योंकि केन्जवादी अर्थशास्त्र क्लासिकी अर्थशास्त्र की आलोचना पर आधारित है, इसलिए उपरोक्त के उस स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है, जो रोजगार के सिद्धान्त मे सन्निहित है।

रोजगार का क्लासिकी सिद्धान्त (Classical Theory of Employment)

क्लासिकी सिद्धान्त यह मानता है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे बिना स्फीति के पूर्ण रोजगार पाया जाता है। मजदूरी-कीमत नम्यता (flexibility) की होने पर, आर्थिक प्रणाली मे स्वतः (automatic) शक्तियां पाई जाती है जो पूर्ण रोजगार कायम रखने की प्रवृत्ति रखती हैं और उसी स्तर पर उत्पादन करती हैं। अत पूर्ण रोजगार एक सामान्य स्थिति मानी जाती है और इस स्तर से विचलन कुछ असामान्य स्थिति होती है जो अपने आप पूर्ण रोजगार की ओर अग्रसर होती है।

मान्यताएं (Assumptions)—रोजगार और उत्पादन का क्लासिकी सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है—

1. बिना स्फीति के पूर्ण रोजगार पाया जाता है।
2. बिना विदेशी व्यापार के एक बद अबन्ध नीति वाली (laissez faire) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पाई जाती है।

3. श्रम और वस्तु बाजारो मे पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।
4. श्रम समरूप होती है।
5. अर्थव्यवस्था का कुल उत्पादन, उपभोग और निवेश खर्चों मे विभाजित है।
6. मुद्रा की मात्रा दी हुई है।
7. मजदूरी और कीमतें नम्य हैं।
8. मुद्रा मजदूरी और वास्तविक मजदूरी का सीधा और समानुपातिक (proportional) संबंध है।
9. पूंजी स्टॉक और प्रौद्योगिकी ज्ञान दिये हुए हैं।

से का बाजार नियम (Say's law of market)—से का बाजार नियम रोजगार के क्लासिकी सिद्धान्त का मर्म है। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ के फ्रांसीसी लेखक जीन बैप्टिस्ते से (Jean Bapiste Say) ने यह प्रस्थापना प्रस्तुत की कि "पूर्ति स्वयं अपनी मांग पैदा कर लेती है" (supply creates its own demand)। यही से का नियम कहलाता है। से के शब्दो मे, "उत्पादन ही वस्तुओ के लिए मार्किट पैदा करता है। ज्यो ही किसी वस्तु का उत्पादन होता है, त्यों ही, उसी क्षण से, वह अपने मूल्य की पूरी मात्रा मे अन्य वस्तुओं के लिए मार्किट प्रदान करती है। दूसरी वस्तु की पूर्ति जितना एक वस्तु की माग के अनुकूल होती है, उतना कुछ और नही।" अपने मूल रूप मे यह नियम वस्तु-विनिमय अर्थव्यवस्था (barter economy) पर लागू होता है, जहां अन्ततः वस्तुओ के बदले वस्तुओं का विक्रय होता है। मार्केट मे लाई गई प्रत्येक वस्तु किसी अन्य वस्तु के लिए माग होती है। से के अनुसार, क्योंकि कार्य करना अरुचिकर है, इसलिए यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु को अपनी इच्छित वस्तु से विनिमय नही करना चाहता, तो वह उस वस्तु का उत्पादन करने के लिए काम नही करेगा। अत वस्तुओं की पूर्ति के कार्य मे ही उनकी माग अन्तर्निहित है। ऐसी स्थिति मे सामान्य से अधिक उत्पादन नही हो सकता, क्योंकि वस्तुओ की पूर्ति कुल माग से अधिक नही होगी। परन्तु हो सकता है कि एक विशेष वस्तु का अधिक उत्पादन हो जाए, क्योंकि उत्पादक उस वस्तु की मात्रा का गलत आगणन कर लेता है जिसकी दूसरों को जरूरत है। परन्तु यह स्थिति अस्थायी होती है, क्योंकि समय पर हो उत्पादन घटाकर, उस विशेष वस्तु के अतिरिक्त उत्पादन को ठीक किया जा सकता है। जेम्स मिल (James Mill) ने से के नियम को इन शब्दो मे प्रस्तुत किया है, "उपभोग उत्पादन का सह-विस्तारी है और माग का कारण तथा एकमात्र कारण उत्पादन ही होता है। उत्पादन माग को उत्पन्न किये बिना कभी पूर्ति का निर्माण नही करता और वह भी दोनों को एक ही समय तथा समान मात्रा मे उत्पन्न करता है ... वार्षिक उत्पादन की मात्रा चाहे कितनी भी क्यों न हो, वह वार्षिक माग की मात्रा से नही बढ़ सकती।" इस प्रकार पूर्ति स्वयं अपनी माग उत्पन्न करती है और सामान्य अधिक उत्पादन तथा इसीलिए सामान्य बेरोजगारी नहीं हो सकती।

मुद्रा के पाये जाने पर यह आधारभूत नियम बदल नही जाता। जैसा कि प्रोफेसर हैन्सन (Hansen) ने कहा है, "से का मार्किट नियम, अपने व्यापक रूप मे, स्वतंत्र वस्तु-

विनिमय अर्थव्यवस्था की ही व्याख्या है। इस दृष्टिकोण से, यह नियम इस सत्य को प्रकाशित करता है कि माग का मुख्य स्रोत साधन-आय का वह प्रवाह है, जो स्वयं उत्पादन की प्रक्रिया से उत्पन्न होता है।" जब उत्पादक उत्पादन-प्रक्रिया मे प्रयोग होने वाले विविध आगतों (भूमि, श्रम और पूंजी) को उपलब्ध करते हैं, तो वे आवश्यक आय का सृजन करते हैं जो लगान, मजदूरी तथा ब्याज के रूप मे साधन-स्वामियों को प्राप्त होती है। यही आगे, उत्पादित वस्तुओं के लिए माग पैदा करती है। इस प्रकार पूर्ति स्वयं अपनी माग उत्पन्न करती है।

उपर्युक्त तर्क इस धारणा पर आधारित है कि साधन-स्वामियों द्वारा अर्जित समस्त आय उन वस्तुओं के क्रय मे खर्च हो जाती है जिनके उत्पादन मे वे सहायक होते हैं। "किसी-किसी मनकी कजूस को छोड़कर, लोग मुद्रा को केवल अपने निमित्त नहीं चाहते। यदि वे अपने उत्पादन अथवा सेवाओं को मुद्रा के बदले बेचते हैं, तो वह मुद्रा शीघ्र ही अन्य वस्तुओं पर खर्च कर दी जाएगी।"[1] उसका जो भाग खर्च नही होता, वह बच जाता है और उसका स्वत निवेश हो जाता है। इस प्रकार बचत निश्चय से निवेश के बराबर होगी। यदि दोनों मे कोई अन्तर रहता है, तो ब्याज की दर के माध्यम से समानता स्थापित हो जाती है। क्लासिकी अर्थशास्त्री ब्याज को बचत का पुरस्कार मानते हैं। ब्याज की दर जितनी ऊची होगी, बचत भी उतनी ही अधिक होगी और निवेश कम भी। इसके विपरीत, ब्याज की दर जितनी नीची होगी, निवेश के लिए निधियों की माग भी उतनी ही अधिक होगी और विलोमत भी। यदि किसी दिये हुए निश्चित समय पर निवेश से बचत बढ़ जाती है, तो ब्याज की दर गिर जाएगी। निवेश बढ़ेगा और बचत तब तक घटती जाएगी जब तक कि पूर्ण रोजगार के स्तर पर पहुंचकर दोनों समान नही हो जाते।

ऐसा इसलिए कि बचत ब्याज दर का बढ़ता फलन (function) मानी जाती है और निवेश ब्याज दर का घटता फलन माना जाता है।

बचत और निवेश मे समानता का तरीका चित्र 52.1 मे दिखाया गया है जहां SS बचत वक्र है और II निवेश वक्र है। दोनों वक्र E बिन्दु पर काटते हैं जहा Or ब्याज दर है और बचत तथा निवेश दोनों OA के बराबर हैं। यदि निवेश में वृद्धि होती है तो निवेश वक्र दाईं ओर को सरक कर $I'I'$ होता है और Or ब्याज दर पर OC निवेश बचत OA से अधिक है। क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के अनुसार, बचत वक्र SS अपनी पहले वाली

चित्र 52.1

[1]G. Ackley, *Macroeconomic Theory*, p 208
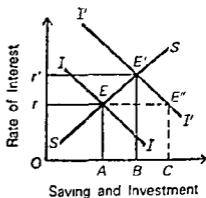
स्थिति में ही रहता है जब निवेश में वृद्धि होती है। बचत और निवेश समानता कायम रखने के लिए ब्याज दर बढ़ेगी। यह चित्र में Or से बढ़कर Or' दिखाई गई है। इस ब्याज दर पर, बचत वक्र निवेश SS निवेश वक्र $I'I'$ को E' पर काटता है। परिणामत, बचत और निवेश दोनों OB पर बराबर होते हैं।

मुद्रा अर्थव्यवस्था में से के नियम की वैधता मुद्रा के क्लासिकी परिमाण सिद्धांत पर भी निर्भर करती है जो यह बताता है कि कीमत स्तर मुद्रा की पूर्ति का फलन है। बीजगणितीय रूप में, $MV=PT$ जहा M, V, P और T क्रमश मुद्रा की पूर्ति, मुद्रा का सचलन वेग, कीमत स्तर और मुद्रा द्वारा किया गया लेनदेन (या कुल उत्पादन) है। यह समीकरण बताता है कि अर्थव्यवस्था में कुल मुद्रा-स्फीति MV बराबर है उत्पादन का कुल मूल्य PT यह मान कर कि V और T स्थिर हैं मुद्रा की पूर्ति (M) में परिवर्तन से कीमत स्तर (P) में समानुपातिक परिवर्तन होता है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि मुद्रा विनिमय का माध्यम है।

मुद्रा की मात्रा, कुल उत्पादन और कीमत स्तर को चित्र 52 2 (A) में दिखाया गया है जहा कीमत स्तर को समस्तर (horizontal) अक्ष पर लिया गया है और कुल उत्पादन को अनुलम्ब अक्ष पर लिया गया है। MV मुद्रा पूर्ति वक्र है जो रेक्टेंगुलर हाइपरबोला (rectangular hyperbola) होता है। ऐसा इसलिए कि समीकरण $MV=PT$ वक्र के

चित्र 52 2

सभी बिंदुओ पर विद्यमान है। उत्पादन स्तर OQ दिया होने पर, मुद्रा की मात्रा के साथ मेल खाता हुआ केवल एक कीमत स्तर OP होगा जैसा कि MV वक्र पर m बिन्दु है। यदि मुद्रा की मात्रा बढ़ती है, तो MV वक्र दाईं ओर सरक कर M_1V वक्र हो जाएगा, परिणामस्वरूप, कीमत स्तर OP से बढ़कर OP_1 हो जाएगा, वही उत्पादन स्तर OQ दिया होने पर। कीमत स्तर में यह वृद्धि मुद्रा की मात्रा में वृद्धि के बिल्कुल समानुपातिक है, अर्थात्, $PP_1=mm$

कुल उत्पादन OQ और कुल मुद्रा की मात्रा MV की सहायता से कीमत स्तर निर्धारित करके, मुद्रा मजदूरी के साथ मेल खाती हुई वास्तविक मजदूरी का निर्धारण किया जा सकता है। यह चित्र 52 2 (B) में समझाया गया है जहा W/P मजदूरी कीमत रेखा या वास्तविक मजदूरी रेखा है। जब कीमत स्तर OP है तो मुद्रा मजदूरी OW है। जब कीमत स्तर बढ़कर OP_1 हो जाता है, तो मुद्रा मजदूरी भी बढ़कर OW_1 हो जाती है। मजदूरी कीमत संयोजन (combination) $OW_1=OP_1$ चित्र 52 3 (A) के
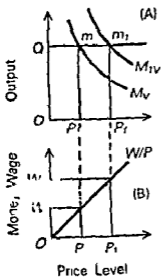
वास्तविक मजदूरी स्तर W/P से मेल खाता है।

पीगू का मत (Pigou's version)—रोजगार के क्लासिकी सिद्धान्त को अन्तिम रूप प्रदान करने का श्रेय पीगू को है जिसने से के नियम को श्रम मार्किट के प्रसग में सूत्र-बद्ध किया। पीगू के अनुसार, स्वतन्त्र प्रतियोगिता के अन्तर्गत आर्थिक प्रणाली की प्रवृत्ति यह रहती है कि श्रम मार्किट में अपने-आप पूर्ण रोजगार प्रदान करे। मजदूरी के ढाचे में कठोरता तथा स्वतत्र मार्किट-अर्थव्यवस्था के कार्यकरण में हस्तक्षेप से बेरोजगारी आती है। जब ट्रेड यूनियनों को मान्यता देकर और न्यूनतम मजदूरी नियम आदि बनाकर राज्य हस्तक्षेप करता है तथा श्रम एकाधिकारात्मक रवैया अपना लेता है, तो मजदूरी बढ़ जाती है और बेरोजगारी आती है। यदि सरकार के हस्तक्षेप हटा दिये जाए और प्रतियोगिता की शक्तियों को स्वतत्रता से कार्य करने दिया जाए, तो मजदूरी-दरों को घटाने-बढाने से पूर्ण रोजगार हो जाएगा। जैसा कि पीगू ने लक्ष्य किया है, "पूर्ण रूप से स्वतत्र प्रतियोगिता के रहते ' सदैव एक ऐसी प्रवृत्ति प्रबल रूप से कार्यशील रहेगी जिसमें मजदूरी की दरें माग के साथ इस तरह सम्बद्ध हो कि प्रत्येक व्यक्ति रोजगार में लगा रहे।"[2] पीगू द्वारा प्रस्तुत समीकरण $N=\frac{qY}{W}$ समस्त प्रस्थापना की व्याख्या कर देता है। इस समीकरण में N रोजगार में लगे श्रमिकों की सख्या है, q मजदूरी तथा वेतनों के रूप में अर्जित राष्ट्रीय आय का भाग है, Y राष्ट्रीय आय है और W मजदूरी की दर है। W को घटाकर N को बढाया जा सकता है। इस प्रकार, पूर्ण रोजगार की कुजी यह है कि मुद्रा-मजदूरी घटा दी जाए। इसे चित्र 52.3 में स्पष्ट किया गया है। चित्र के भाग (A) में S श्रम का पूर्ति वक्र है और D श्रम के लिए माग वक्र है। E पर दोनों वक्रो का कटान पूर्ण रोजगार के बिन्दु N_F को तथा वास्तविक मजदूरी W/P को प्रकट करता है जिस पर कि पूर्ण रोजगार उपलब्ध होता है। यदि वास्तविक मजदूरी को अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे स्तर W/P_1 पर रखा जाए, तो श्रम के लिए माग से पूर्ति sd बढ जाती है और N_0N_F श्रम बेरोजगार रहता है। तभी बेरोजगारी समाप्त होती है और पूर्ण रोजगार का स्तर प्राप्त होता है जबकि मजदूरी को घटाकर W/P पर ले आया जाए। यह चित्र के भाग (B) में दिखाया गया है। MPL
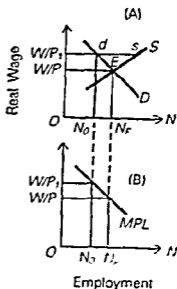
चित्र 52.3

[2] A. C. Pigou, *Theory of Unemployment*, p 252.

श्रम की सीमान्त उत्पादकता का वक्र है, जो माग वक्र की तरह नीचे की ओर जाता है। इसका कारण यह है कि जब अधिक श्रम रोजगार पर लगाया जाता है तो उसकी सीमान्त उत्पादकता कम हो जाती है। क्योंकि हर श्रमिक को मजदूरी उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही प्राप्त होती है इसलिए मजदूरी के W/P_1 से W/P होने पर अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर N_F को प्राप्त होती है।

रोजगार के क्लासिकी मॉडल मे, मुद्रा-मजदूरी तथा वास्तविक मजदूरी में परिवर्तन प्रत्यक्षतः सम्बद्ध तथा समानुपाती होते हैं।[1] जब मुद्रा-मजदूरी म कटौती होती है तो वास्तविक मजदूरी भी उतनी ही मात्रा मे घट जाती है, जो बेरोजगारी को कम कर देती है और अन्त मे अर्थव्यवस्था मे पूर्ण रोजगार ले आती है। यह सम्बन्ध इस धारणा पर आधारित है कि कीमतें मुद्रा की मात्रा के समानुपातिक होती हैं। तर्क यह दिया जाता है कि प्रतियोगितामूलक अर्थव्यवस्था म मुद्रा-मजदूरी मे कमी उत्पादन की लागत तथा वस्तुओं की कीमत घटा देती है जिससे उनकी माग बढ़ जाती है। वस्तुओं की बढ़ी हुई माग को पूरा करने के लिए, उनका उत्पादन करने को अधिक श्रमिक रोजगार पर लगाए जाते हैं।

रोजगार जब बढ़ता जाता है तो कुल उत्पादन भी बढ़ता है जब तक कि पूर्ण रोजगार की स्थिति नही प्राप्त होती। परन्तु जब अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार स्तर पर होती है तो कुल उत्पादन स्थिर हो जाता है। अतः पूजी का स्टॉक, प्रौद्योगिकी ज्ञान और साधन दिये होने पर कुल उत्पादन और रोजगार की मात्रा म एक निश्चित सम्बन्ध पाया जाता है। कुल उत्पादन मजदूरों की सख्या का बढ़ता फलन है। इसे चित्र 52.4 मे दिखाया गया है जहा $Q = f(K'T'N)$ जिसमे कुल उत्पादन Q फलन (f) है पूजी स्टॉक K का, प्रौद्योगिकी ज्ञान T का और मजदूरों की सख्या N का। यह उत्पादन फलन दर्शाता है कि कुल उत्पादन, पूजी स्टॉक तथा प्रौद्योगिकी ज्ञान दिये होने पर, मजदूरों की सख्या का बढ़ता फलन है। चित्र मे कुल उत्पादन OQ चित्र 52.3 के पूर्ण रोजगार स्तर N_F के अनुरूप है।

Output
Q
f(K,T,N)
O
N_F
Employment
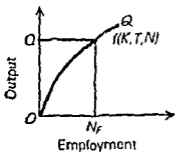
चित्र 52.4

क्लासिकी अर्थशास्त्री यह विश्वास रखते थे कि सामान्य प्रतियोगी हालात मे बिना स्फीति के पूर्ण रोजगार कायम किया जाएगा। श्रमिकों मे मजदूर काम पर लगने के लिए आपस मे प्रतियोगिता होने पर भी मजदूरी पूर्ण रोजगार स्तर से अधिक नही हो सकती और अर्थव्यवस्था मे लागत-स्फीति की कोई सभावना नही होगी। फिर, ये का

[1] मुद्रा मजदूरी का कीमत स्तर से विभाजन करने से वास्तविक मजदूरी प्राप्त होती है, अर्थात् W/P.

नियम लागू होने के कारण, उत्पादन का पूर्ण रोजगार स्तर इसी स्तर तक माग पैदा करेगा। समस्त माग मे वृद्धि ही स्फीति का कारण होती है। लेकिन ब्याज की दर का यान्त्र (mechanism) समस्त माग को कुल उत्पादन से अधिक बढने मे रोकता है। पुनः स्फीति इस कारण भी होती है जब मुद्रा की मात्रा मे इतनी वृद्धि होती है कि बढ रहा उत्पादन उसे खपा नही सकता। लेकिन यह भी सभव नही है क्योंकि मुद्रा की मात्रा में वृद्धि केवल निरपेक्ष (absolute) कीमत स्तर बढ़ाती है न कि सापेक्ष कीमतें। अत क्लासिकी प्रणाली मे बिना स्फीति के पूर्ण रोजगार पाया जाता है।

पूर्ण क्लासिकी मॉडल का साराश[6] (A Summary of the Complete Classical Model)

सुगम रूप मे, क्लासिकी सिद्धान्त मे उत्पादन और रोजगार का निर्धारण अर्थव्यवस्था के श्रम, वस्तुओ और मुद्रा बजारो मे होता है।

श्रम बाजार मे, श्रम की माग और श्रम की पूर्ति अर्थव्यवस्था मे रोजगार का स्तर निर्धारित करती हैं। दोनो वास्तविक मजदूरी दर (W/P) के फलन हैं। श्रम के माग और पूर्ति वक्रो का कटान बिन्दु संतुलन मजदूरी दर और पूर्ण रोजगार का स्तर निर्धारित करता है। वे चित्र 52 3 मे W/P और N_F हैं।

दूसरी ओर, पूजी स्टॉक और प्रौद्योगिकी ज्ञान दिए होने पर कुल उत्पादन रोजगार के स्तर पर निर्भर करता है। इसे उत्पादन फलन $Q=f(K, T, N)$ द्वारा दिखाया गया है जो चित्र 52 4 में कुल उत्पादन OQ को पूर्ण रोजगार स्तर N_F के अनुरूप है तथा यह चित्र 6 3 के पूर्ण रोजगार स्तर N_F के बराबर है। फिर, ब्याज दर का तत्र बचत और निवेश की समानता लाता है ताकि पूर्ण रोजगार स्तर पर वस्तुओं की मागी गई मात्रा पूर्ति की मात्रा के बराबर हो सके, जैसा कि चित्र 6 1 मे दिखाया गया है।

मुद्रा बाजार मे सतुलन, समीकरण $MV=PT$ द्वारा व्यक्त किया गया है। यह कीमत स्तर का उत्पादन के पूर्ण रोजगार स्तर के साथ समरूपता की व्याख्या करता है। चित्र 52 2 (A) मे OP, कीमत स्तर OQ उत्पादन स्तर के समरूप है।

क्लासिकी सिद्धान्त की केन्ज द्वारा आलोचना (Keynes' Criticism of Classical Theory)

रोजगार के क्लासिकी सिद्धान्त की अवास्तविक धारणाओं के कारण केन्ज ने इस सिद्धान्त की बहुत कड़ी आलोचना की है। उसने अपनी *General Theory* में लिखा है कि "क्लासिकी सिद्धान्त विशेष स्थिति की [illegible] परिस्थितियों [illegible] चलता है, वे [illegible] आर्थिक समाज से सम्बन्ध नहीं रखता जिसमें हम वस्तुत: रहते हैं। [illegible] परिणाम यह

[illegible]
[illegible] विस्तार से लिखिए।

होता है कि जब हम उन्हें यथार्थ अनुभवो पर लागू करते हैं, तो उनका शिक्षण भ्रमोत्पादक तथा विनाशकारी सिद्ध होता है।'' हम अपनी अर्थव्यवस्था से जिस प्रकार के व्यवहार की आशा रखते हैं, वह उसी ढग को व्यक्त करता है। परन्तु यह मान लेना कि वस्तुत ऐसा होता है, कठिनाइयों से आख मूद लेना है।" केन्ज ने निम्नलिखित कारणो से क्लासिकी सिद्धान्त पर प्रहार किया है .

(1) **अल्परोजगार सन्तुलन** (Underemployment equilibrium)—केन्ज ने *अर्थव्यवस्था मे पूर्ण* रोजगार सतुलन की आधारभूत क्लासिकी धारणा अस्वीकार कर दी। उसने इस धारणा को अवास्तविक बताया। वह पूर्ण रोजगार को एक विशिष्ट स्थिति मानता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था मे सामान्य स्थिति अल्परोजगार की रहती है। इसका कारण यह है कि पूजीवाद समाज से के नियमानुसार नही काम करता और पूर्ति सदैव माग से बढ जाती है। हम देखते हैं कि वर्तमान मजदूरी दर पर, या उससे भी कम पर, लाखो श्रमिक काम करने को तैयार रहते हैं, पर उन्हें काम नही मिलता। इस प्रकार पूजीवादी अर्थव्यवस्थाओ मे अनैच्छिक बेरोजगारी का अस्तित्व (जिसे क्लासिकी अर्थशास्त्री एकदम मानते ही नही) यह सिद्ध करता है कि अल्परोजगार सतुलन एक सामान्य स्थिति है और पूर्ण रोजगार सन्तुलन की स्थिति असाधारण तथा आकस्मिक है।

(2) **सामान्य से अधिक उत्पादन सम्भव** (Over-production possible)—केन्ज ने से के बाजार नियम का खण्डन किया कि पूर्ति स्वय अपनी माग पैदा करती है। उसकी धारणा है कि साधन-स्वामियो द्वारा अर्जित समस्त आय उन वस्तुओ के क्रय मे खर्च नहीं होती जिनके उत्पादन मे वे सहायक होते हैं। अर्जित आय का कुछ भाग बचा लिया जाता है, जो अपने आप निवेश नही हो जाता क्योंकि बचत तथा निवेश पृथक-पृथक कार्य हैं। इसलिए जब समस्त अर्जित आय उपभोक्ता वस्तुओ पर खर्च नही होती और उसका कुछ अश बच जाता है, तो कुल माग मे कमी हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप सामान्य अत्युत्पादन होता है, क्योंकि वह सब विक्रय नहीं हो पाता जिसका कि उत्पादन हुआ है। इससे, आगे चलकर, सामान्य बेरजोगारी आती है। इस प्रकार केन्ज ने इस नियम का सहारा लेकर, कि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति एक से कम रहती है, से के नियम को निरर्थक ठहराया।

(3) **अर्थव्यवस्था में स्वत समायोजन असम्भव** (Self-adjustment impossible in the economy)—केन्ज क्लासिकी अर्थशास्त्रियो के इस विचार से सहमत नहीं है कि पूर्ण रोजगार सतुलन की स्वत तथा स्वय समायोजित प्रक्रिया के लिए अबन्ध नीति (laissez faire) आवश्यक है। उसने लक्ष्य किया है कि अपने समाज के असमान ढाचे के कारण पूंजीवादी प्रणाली स्वत तथा स्वय समायोजित नहीं है। उसमे दो प्रधान वर्ग होते हैं, धनी तथा गरीब। धनियो के पास बहुत धन होता है परन्तु वे उस सारे धन को उपभोग पर नही व्यय करते। गरीबो के पास उपभोक्ता वस्तुएं खरीदने के लिए मुद्रा का अभाव होता है। इस प्रकार कुल पूर्ति के मुकाबले कुल माग की सामान्य न्यूनता

रहती है जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में अत्युत्पादन तथा बेरोजगारी आती है। वस्तुत. 'बड़ी मन्दी' इसी का परिणाम थी। यदि पूँजीवादी व्यवस्था स्वतः तथा स्वयं समायोजित होती, तो ऐसा कभी न होता। इसलिए केन्ज ने इस बात का समर्थन किया कि अर्थव्यवस्था के भीतर पूर्ति तथा माँग का समायोजन करने के लिए राजकोषीय तथा मौद्रिक विधियों के माध्यम से राज्य हस्तक्षेप करे।

(4) आय परिवर्तनों द्वारा बचत और निवेश में समानता (Equality between saving and investment through income changes)—क्लासिकी अर्थशास्त्रियों का यह विश्वास था कि पूर्ण रोजगार के स्तर पर बचत तथा निवेश बराबर होते हैं तथा यदि उनमें किसी प्रकार का विचलन हो, तो ब्याज की दर का तन्त्र उनमें समानता ला देता है। केन्ज का मत है कि बचत का स्तर ब्याज की दर पर नहीं बल्कि आय के स्तर पर निर्भर करता है। इसी प्रकार, निवेश को ब्याज की दर ही नहीं बल्कि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता भी निर्धारित करती है। यदि व्यवसाय प्रत्याशाएं कम हों, तो ब्याज की नीची दर से निवेश नहीं बढ़ेगा। यदि निवेश से बचत बढ़ जाए, तो इसका मतलब है कि लोग उपभोग पर अपेक्षाकृत कम व्यय करते हैं। परिणामत. माँग गिर जाती है। अत्युत्पादन होता है और निवेश, आय, रोजगार तथा उत्पादन में कमी हो जाती है। इससे बचत घट जाएगी और अन्तत आय के अपेक्षाकृत निम्न स्तर पर बचत तथा निवेश में समानता स्थापित हो जाएगी। इस प्रकार ब्याज की दर की अपेक्षा आय में परिवर्तनों से बचत तथा निवेश में समानता आती है।

(5) मजदूरी कटौती का खण्डन (Refutation of wage cut)—केन्ज ने पीगू के इस सिद्धांत का खंडन किया कि मुद्रा-मजदूरी में कटौती करने से अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार उपलब्ध किया जा सकता है। पीगू के विश्लेषण में सबसे बड़ी भ्रान्ति यह रही थी उसने उस तर्क को, जो विशिष्ट उद्योग पर लागू होता है, समस्त अर्थव्यवस्था पर लागू कर दिया। मजदूरी की दर में कमी लागतों तथा माँग को घटाकर एक उद्योग में तो रोजगार बढ़ा सकती है परन्तु समस्त अर्थव्यवस्था के लिए इस प्रकार की नीति से रोजगार घट जाता है। जब मजदूरी में सामान्य कटौती होती है, तो श्रमिकों की आय घट जाती है। परिणामत कुल माँग गिर जाती है जिससे रोजगार में कमी आती है।

व्यावहारिक दृष्टि से भी केन्ज ने मजदूरी में कटौती करने की नीति का कभी समर्थन नहीं किया। आज के युग में श्रमिकों ने मजदूर ट्रेड यूनियनें बना ली हैं जो मजदूरी घटाने की नीति का विरोध करती हैं। वे इसके विरोध में हड़तालें करेंगे। परिणाम-स्वरूप अर्थव्यवस्था में जो अशान्ति उत्पन्न होगी उससे उत्पादन तथा आय घटेगी। फिर, सामाजिक न्याय की माँग भी यही है कि यदि रोजगार को न छेड़ा जाए तो मजदूरी भी नहीं घटनी चाहिए।

केन्ज ने इस क्लासिकी मत को भी नहीं स्वीकार किया कि मुद्रा-मजदूरी तथा वास्तविक मजदूरी के बीच प्रत्यक्ष समानुपातिक सम्बन्ध होता है। उसके अनुसार इन दोनों में उल्टा संबंध होता है। जब मुद्रा-मजदूरी गिरती है तो वास्तविक मजदूरी बढ़ती

है, और विशेषतः भी। इसलिए, जैसाकि परम्परावादियों का विश्वास था, वैसा नहीं होगा और मुद्रा मजदूरी में कमी होने से वास्तविक मजदूरी घटेगी नहीं बल्कि बढ़ेगी ही, क्योंकि मुद्रा-मजदूरी में कटौती से उत्पादन की लागत तथा कीमतें पूर्वोक्त की अपेक्षा अधिक घटेंगी। इस प्रकार परम्परावादियों का यह मत ठिक नहीं पाता कि वास्तविक मजदूरी में कमी होने से रोजगार बढ़ेगा। पर, केन्ज का यह विश्वास था कि मुद्रा-मजदूरी में कमी करने की बजाय मौद्रिक तथा राजकोषीय विधियों के माध्यम से रोजगार को अधिक बढ़ाया जा सकता है। फिर, मजदूरी तथा कीमत घटाने के संस्थानिक विरोध इतने प्रबल होते हैं कि इस प्रकार की नीति को अमल में नहीं लाया जा सकता।

(6) राज्य हस्तक्षेप का समर्थन (Support of state intervention)—केन्ज पीगू के इस मत से भी सहमत नहीं हैं कि "हमारी उत्पादकीय शक्ति के पूर्ण रूप से उपयोग कर सकने की असफलता के लिए केवल अस्थायी कुसमायोजन (frictional maladjustments) ही उत्तरदायी है।" पूंजीवादी व्यवस्था ऐसी है कि यदि उसे अकेले छोड़ दिया जाए, तो वह उत्पादकीय शक्तियों का पूर्ण प्रयोग करने में असमर्थ रहती है। इसलिए राज्य की ओर से हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है। आर्थिक क्रिया के स्तर को बढ़ाने के लिए राज्य सीधे निवेश कर सकता है, अथवा निजी निवेश को अनुपूरित कर सकता है। वह ट्रेड यूनियनों को मान्यता देने वाले, न्यूनतम मजदूरी नियत करने वाले और सामाजिक सुरक्षा उपायों के माध्यम से श्रमिकों को राहत देने वाले कानून बना सकता है। 'इसलिए' जैसा कि डिल्लर्ड का मत है, "श्रम यूनियनों तथा उदार श्रम विधान का विरोध करना अर्थशास्त्र की दृष्टि से भले ही अच्छा समझा जाए, परन्तु राजनैतिक दृष्टि से बुरा है।" अतः पूर्ण रोजगार उपलब्ध करने के लिए अर्थव्यवस्था के साधनों का पूरी तरह प्रयोग करने के लिए केन्ज राज्य-कार्रवाई का समर्थन करता है।

(7) अल्पकालीन विश्लेषण (Short-run analysis)—परम्परावादी स्वय-समायोजित प्रक्रिया के माध्यम से दीर्घकाल में पूर्ण रोजगार में विश्वास करते थे। केन्ज में इतना धैर्य नहीं था कि दीर्घकाल की प्रतीक्षा कर सके, क्योंकि वह तो यह मानता था कि "दीर्घकाल में तो हम सब मर जाते हैं।" जैसाकि शुम्पीटर ने लक्ष्य किया है, "उसका जीवन-दर्शन मूलतः अल्पकालीन दर्शन था।" उसका विश्लेषण अल्पकालीन साधनों तक सीमित है परम्परावादियों के विपरीत, वह यह मान लेता है कि रुचियाँ, स्वभाव, उत्पादन की तकनीकें, श्रम की पूर्ति इत्यादि अल्पावधि के दौरान स्थिर रहती है और इसलिए वह मांग पर दीर्घकालीन प्रभावों को छोड़ देता है। यह मानकर कि उपभोग मांग स्थिर रहती है, वह इस बात पर बल देता है कि बेरोजगारी दूर करने के लिए निवेश मांग बढ़ाई जाए। परन्तु इस प्रकार जो संतुलन स्तर प्राप्त होता है, वह पूर्ण रोजगार की बजाय अल्परोजगार का स्तर होता है।

(8) सट्टा मांग का महत्त्व (Importance of speculative demand)—क्लासिकी अर्थशास्त्री विश्वास रखते थे कि लेनदेन तथा सतर्कता उद्देश्यों के लिए मुद्रा की मांग की जाती है। वे मुद्रा की सट्टा मांग को नहीं मानते थे क्योंकि सट्टा उद्देश्य के लिए

रखी गई मुद्रा निष्क्रिय शेषों से सम्बद्ध है। परन्तु केन्ज इस मत से सहमत नहीं है। उसने मुद्रा की सट्टा माग के महत्व पर बल दिया। उसने यह बताया कि लेनदेन और सतर्कता उद्देश्यों के लिए रखी गई परिसम्पत्तियों से अर्जित ब्याज, नीची ब्याज दर बहुत कम हो सकता है। परन्तु नीची ब्याज दर पर मुद्रा की सट्टा माग बहुत अधिक होगी। इसलिए ब्याज की दर एक विशेष न्यूनतम स्तर से नहीं गिरेगी और मुद्रा की सट्टा माग पूर्णतया ब्याज लोचदार होगी। यह केन्ज का तरलता पाश (liquidity trap) है जिसका क्लासिकी अर्थशास्त्री विश्लेषण करने में असमर्थ थे।

इस संदर्भ में केन्ज ने यह भी स्पष्ट किया कि ब्याज दर धनात्मक होने पर, बचत की निवेश से अधिक होने की सभावना रहती है। तरलता पाश ब्याज दर को एक निश्चित न्यूनतम दर से नीचे गिरने से रोकता है। यह चित्र 52.5 में दर्शाया गया है जहा SS बचत वक्र है और II निवेश वक्र। यदि तरलता पाश Or_1 ब्याज दर पर हो तो यह ब्याज दर को Or तक गिरने से रोकता है और बचत और निवेश की समानता I बिन्दु पर नहीं लाई जा सकती। Or_1 ब्याज दर पर तरलता पाश की अवस्था में निवेश से बचत I_1S_1 अधिक है। अत. अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर E पर स्थापित नहीं होगी जहा बचत और निवेश बराबर है बल्कि अल्प रोजगार सतुलन स्तर जहा निवेश से बचत अधिक होती है।

चित्र 52.5

केन्ज ने आगे बताया कि ब्याज दर शून्य पर गिर जाने से भी निवेश से बचत अधिक होगी। इसे भी चित्र 52.5 में दर्शाया गया है जहा II वक्र बाई ओर सरक कर $I_1 I_1$ हो जाता है और निवेश में गिरावट दिखाता है। ऐसी सभावना मंदी में पाई जाती है। शून्य ब्याज दर (O) पर निवेश से बचत I_oS_o अधिक है। इस स्थिति में, क्लासिकी बचत और निवेश वक्र E' बिन्दु पर काटते हैं जब ब्याज दर Or' ऋणात्मक है। यह असगत स्थिति है।

(9) **मुद्रा निष्प्रभावी नहीं** (Money not neutral)—क्लासिकी अर्थशास्त्री मुद्रा को निष्प्रभावी मानते थे। इसलिए उन्होंने मौद्रिक सिद्धान्त में उत्पादन, रोजगार और ब्याज दर को शामिल नहीं किया था। उनके अनुसार, उत्पादन और रोजगार का स्तर और ब्याज की सतुलन दर वास्तविक शक्तियों द्वारा निर्धारित होते हैं। केन्ज ने क्लासिकी मत की आलोचना की कि मौद्रिक सिद्धान्त मूल्य सिद्धान्त से भिन्न है। उसने मौद्रिक सिद्धान्त को मूल्य सिद्धान्त के साथ जोड़ दिया और ब्याज सिद्धान्त को
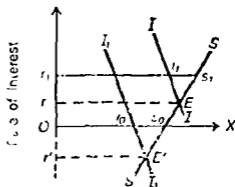
मौद्रिक सिद्धान्त के क्षेत्र में ला दिया जो उसने ब्याज दर को मौद्रिक तत्त्व मानकर किया। उसने उत्पादन सिद्धान्त द्वारा मौद्रिक सिद्धान्त को मूल्य सिद्धान्त के साथ जोड़ा। ऐसा उसने ब्याज दर के माध्यम से मुद्रा की मात्रा और कीमत स्तर में संबंध स्थापित करके किया। उदाहरणार्थ, जब मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होती है तो ब्याज दर गिरती है, निवेश बढ़ता है, आय और उत्पादन बढ़ते हैं, मांग बढ़ती है, साधन लागतें और मजदूरी बढ़ते हैं, सापेक्ष कीमतें बढ़ती हैं और आखिरकार सामान्य कीमत स्तर में वृद्धि होती है। इस प्रकार, केन्ज ने अर्थव्यवस्था के मौद्रिक और वास्तविक क्षेत्रों को जोड़ दिया।

प्रश्न

1. क्लासिकी अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता क्यों थी कि प्रतियोगितात्मक अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की अवस्था अपने आप बनी रहेगी? केन्ज ने किन कारणों से इस मान्यता का खण्डन किया?
2. रोजगार के क्लासिकी सिद्धान्त का वर्णन करिए। किन कारणों से केन्ज ने इसकी आलोचना की?

अध्याय-53
'से' का वाजार नियम
(SAY'S LAW OF MARRETS)

1. प्रस्तावना (INTRODUCTION)

'से' का बाजार नियम रोजगार सिद्धान्त का आधार है। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ मे फ्रांसीसी अर्थशास्त्री जे० बी० 'से' ने यह धारणा व्यक्त की "पूर्ति स्वय अपनी मांग पैदा करती है" (Supply creates its own demand) जिसके कारण अर्थव्यवस्था मे अत्याधिक उत्पादन और बेरोजगारी की समस्या पैदा नहीं होती। यदि किसी कारण अत्यधिक उत्पादन के कारण श्रमिकों को हटा दिया जाता है और अर्थव्यवस्था मे बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो यह अल्पकालीन स्थिति है। दीर्घकाल मे, वस्तुओं की माग और पूर्ति एक-दूसरे के समान हो जाते हैं।

'से' के शब्दों मे, उत्पादन ही वस्तुओं के लिए मार्किट पैदा करता है। ज्यों ही किसी वस्तु का उत्पादन होता है, त्यों ही उसी क्षण से, वह अपने मूल्य की पूरी मात्रा मे अन्य वस्तुओं के लिए मार्किट पैदा करता है। दूसरे वस्तु की पूर्ति जितनी एक वस्तु की माग के अनुकूल होती है, उतना कुछ और नहीं।

इस परिभाषा से निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं :

उत्पादन ही वस्तुओं को मार्किट (माग) है—उत्पादक वस्तुए उत्पादित करता है। वह साधनों पर व्यय करता है और परिणामस्वरूप उपभोग प्रक्रिया वस्तुओं के लिए माग पैदा करती है। इस तरह वस्तुओं की पूर्ति के साथ माग भी बढ़ती रहती है। उदाहरणार्थ, जब उत्पादक वस्तुए उत्पादित करता है वह श्रमिकों को इसके बदले पारिश्रमिक देता है। जबकि श्रमिक अपने जीवन-निर्वाह के लिए यही वस्तुए बाजार मे खरीदते हैं। इस प्रकार पूर्ति अपनी माग स्वय पैदा करती है।

वस्तु-विनिमय का आधार—अपने मूलरूप मे यह नियम वस्तु-विनिमय अर्थव्यवस्था पर लागू होता है। उत्पादक जो वस्तुए मार्किट मे लाता है वह इसे अन्य वस्तुओं से विनिमय के लिए लाता है। से की यह धारणा थी कि लोगों का उत्पादन करने का एकमात्र उद्देश्य अपने उपभोग स्तर को कायम रखना था। अतः अर्थव्यवस्था मे जो वस्तुए उत्पादित होती थी उनमे माग अन्तर्निहित रहती थी।

इस नियम का विश्लेषण वस्तु-विनिमय के आधार पर किया जाता है, परन्तु यह माना जाता है कि मुद्रा द्वारा क्रय-विक्रय करने से इस प्रकिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरे शब्दों मे, मुद्रा वस्तु-विनिमय प्रणाली से अधिक कार्यशील है। जब कोई वस्तु उत्पादित की जाती है तो इसके उत्पादन मे योगदान देने वाले व्यक्तियों को आय

दी जाती है। उत्पादक को अपनी उत्पादित वस्तुओ की बिक्री से जो आय प्राप्त होती है, वह अर्थव्यवस्था मे रोजगार के सभी स्तरो पर उत्पादित की जाने वाली वस्तु की लागत के समान है। ऐसा तभी सम्भव है यदि साधनो मे योगदान देने वाले व्यक्ति अपनी उत्पादकता के समान पारितोषिक लेने को तैयार हो। इसका अर्थ यह नही कि प्रत्येक अतिरिक्त श्रमिक अवश्य ठीक उसी वस्तु को खरीदे जिसे वह स्वय बनाता है। इसका एकमात्र अर्थ यह है कि उसको रोजगार पर लगाने स प्राप्त होने वाली नवीन आय पर्याप्त माग उत्पन्न करेगी और नई उत्पादित वस्तुओ की खपत शीघ्र हो जाएगी।

सामान्य से अधिक उत्पादन असम्भव—*जब तक उत्पादन ठीक दिशाओ मे होता रहेगा* तब तक जो कुछ भी उत्पादित किया जायेगा, सारा बेचने मे कोई कठिनाई नही होगी। 'से' के अनुसार, क्योकि कार्य करना अरुचिकर है, इसलिए यदि कोई व्यक्ति अपनी इच्छित वस्तु को किसी अन्य वस्तु से विनिमय नही करना चाहता तो वह अन्य वस्तुओ को उत्पादित करने में कम रुचि लेगा। अत वस्तुओ की पूर्ति म ही उनकी माग बनी रहती है। ऐसी स्थिति मे, सामान्य से अधिक उत्पादन नही हो सकता। यदि किसी कारण वस्तुओ का अधिक उत्पादन हो जाता है तो यह अस्थायी स्थिति है क्योकि उत्पादक ऐसी वस्तुओ को कालान्तर में बनाना बद कर देगा और ऐसी वस्तुए उत्पादित करना शुरू कर देगा जिससे लाभ हो सकता है। सक्षेप मे, बाजार नियम अत्यधिक उत्पादन की सम्भावना को अस्वीकार करता है, और माग मे कमी की सम्भावना को नही मानता। अधिक से अधिक साधनो को रोजगार मे लगाने से अधिकतम लाभप्रद स्थिति होगी, जब *तक पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं आ जाती।* लेकिन साधन जुटाने वाले अपनी भौतिक उत्पादकता से अधिक पारितोषिक न लेने पर सहमत हो। सक्षेप मे, सामान्य बेरोजगारी नही हो सकती यदि श्रमिक काम के अनुसार मजदूरी स्वीकार करे।

बचत-निवेश समानता—विनिमय-अर्थव्यवस्था मे 'से' के बाजार नियम का अर्थ है कि पूर्ण रोजगार को स्थापित करने के लिए आय अपने आप इस दर से व्यय की जाती है जिससे साधनो को काम पर लगाया जा सके। साधारणत लोग अपनी आय को उपभोग पर खर्च डालते है परन्तु समाज मे कुछ लोग अपनी आय मे से बचाते है लेकिन यह रोजगार की स्थिति मे रुकावट नही। उत्पादक वस्तुओ मे निवेश करना बचत है क्योकि यह आय प्रजनन मे बाधा नही और इसलिए पूर्ति स्वय अपनी माग पैदा करती है।

ब्याज-दर निर्धारक तत्व—'से' ने समाज मे बचत और निवेश मे समानता स्थापित करने के लिए ब्याज की दर को निर्धारक तत्व माना। यह माना जाता है कि जब उत्पादक उत्पादन प्रक्रिया मे प्रयोग होने वाले विभिन्न साधनो (जैसे भूमि, श्रम और पूजी) को उपलब्ध करता है तो वे आवश्यक आय पैदा करते हैं जो साधन स्वामियो को लगान, मजदूरी तथा ब्याज के रूप मे प्राप्त होती है। यही आवश्यक आय उत्पादित वस्तुओ के लिए माग पैदा करती है। इस प्रकार पूर्ति स्वय अपनी माग पैदा करने मे सहायक होती है। यह तर्क इस धारणा पर आधारित है कि साधन-स्वामियों द्वारा अर्जित आय उन वस्तुओ को खरीदने मे खर्च हो जाती है जिनके उत्पादन मे वे सहायक होते हैं। उसका

जो भाग खर्च नही होता, वह बच जाता है और निवेश मे लगा दिया जाता है। इस प्रकार बचत एव निवेश निश्चय ही बराबर रहते हैं। यदि दोनो मे अन्तर रहता है तो ब्याज दर द्वारा समानता लाई जाती है।

यदि किसी कारणवश बचत अधिक होने की स्थिति है तो ब्याज दर द्वारा बचत को घटाया जायेगा तथा निवेश मे वृद्धि की जायेगी जब तक बचत-निवेश मे समानता स्थापित नही हो जाती। ऐसी स्थिति मे, ब्याज की दर को घटाया जायेगा। ब्याज की दर को घटाने के परिणामस्वरूप लोगो मे बचत अधिक करने की प्रवृत्ति कम होती जायेगी और निवेश अधिक करने की प्रवृत्ति हो जायेगी। बचतो मे वृद्धि करने से कम उपभोग करने की प्रवृत्ति होगी और उपभोग वस्तुओ की माग पहले से कम हो जायेगी और कीमतें भी प्रभावित होगी। कीमतो के कम होने से उत्पादक के लाभ भी कम हो जायेंगे।

अन्य स्थिति मे, यदि निवेश में वृद्धि से बचतें कम रह जाए, तब ब्याज की दर बढा-कर *निवेश की मात्रा को नियमित किया जायेगा।*[1]

श्रम बाजार मे बेरोजगारी—प्रो० पीगू ने 'से' के बाजार नियम को श्रम बाजारो पर लागू किया। पीगू के अनुसार, मजदूरी को कम करके बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है। बेरोजगारी कुछ समय के लिए हो सकती है। कम मजदूरी देकर अधिक श्रमिको को काम पर लगाया जा सकता है जिससे श्रम की माग बढेगी। लेकिन श्रमिक सघो द्वारा सामूहिक दबाव के कारण बेकारी की अवस्था होने पर न्यूनतम मजदूरी स्वीकार कर लेने मे अस्थायी बेरोजगारी अवश्य दूर हो जायेगी। सक्षेप रूप से, न्यूनतम मजदूरी के लिए श्रम सघ ही अन्तिम रूप मे उत्तरदाई है क्योंकि ऐसा हो सकता है कि कुछ श्रमिक मजदूरी कटौती को स्वीकार कर लें परन्तु अन्य श्रमिक इसे स्वीकार न करें।[2]

'से' नियम की प्रस्थापनाए और उसमे निहितता (*Propositions and Implications of Say's Law*)

'से' नियम की धारणाए और उसमे निहित तत्व 'बाजार नियम' का एक यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं जो निम्नलिखित हैं :

(1) **अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार**—यह नियम इस धारणा पर आधारित है कि अर्थव्यवस्था मे पूर्ण रोजगार है और बेरोजगार साधनो को उत्पादन मे लगाने से उनको पारिश्रमिक मिलने लग जाता है जिससे की उत्पादन की मात्राओं में वृद्धि होती जाती है। उत्पादन मे वृद्धि होने से और अधिक साधनो को रोजगार मे लगाया जाता है। कुल उत्पादन तब तक बढता जायेगा जब तक पूर्ण रोजगार का स्तर नही पहुच जाता। पूर्ण रोजगार की स्थिति मे उत्पादन अधिकतम हो जाता है। पूजी सयन्त्र, तकनीकी ज्ञान और स्रोत होने पर कुल उत्पादन और रोजगार मे सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

[1]यहाँ पिछले अध्याय से चित्र 52 1द्वारा वर्णन करिए।
[2]पीगू द्वारा दिया गया समीकरण और चित्र 52 3भी दीजिए।

(2) साधनों का समुचित उपयोग—अर्थव्यवस्था मे पूर्ण रोजगार की स्थिति मे बेकार पड़े साधनो का भी समुचित उपयोग उत्पादन मे वृद्धि मे सहायक रहेगा। इस प्रकार आय के प्रजनन मे बेकार पड़े साधनो का समुचित उपयोग होगा।

(3) पूर्ण प्रतियोगिता—'से' के नियम के अनुसार बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता होनी चाहिए जिससे स्वतन्त्र रूप से माग और पूर्ति द्वारा वस्तुओ का उत्पादन हो सके। पूर्ण प्रतियोगिता मे अन्य स्थितिया निम्नलिखित है।

(क) बाजार में स्वय समायोजन—पूर्णप्रतियोगिता के अन्तर्गत जितनी पूर्ति होगी उतनी ही उसकी माग बनी रहेगी। श्रम बाजार मे माग और पूर्ति मे समायोजन मजदूरी द्वारा लाया जाता है। दूसरी तरफ, पूजी बाजार मे बचत-निवेश की समानता ब्याज दर मे उतार-चढ़ाव द्वारा लाई जाती है और किसी भी समय असन्तुलन की स्थिति आशिक ही रहती है।

(ख) बाजार का आकार— पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार का आकार विस्तृत माना गया है। इसी कारण पूर्ति के लिए माग सदैव बनी रहती है।

(ग) मुद्रा का तटस्थ कार्य—'से' का बाजार नियम वस्तु-विनिमय अर्थव्यवस्था की धारणा पर आधारित है परन्तु मुद्रा को तटस्थ मानकर चलता है। मुद्रा का किसी भी प्रकार से उत्पादन पर प्रभाव नही पड़ता।

(घ) स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था—'से' का बाजार नियम अर्थव्यवस्था को एक स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था मानकर चलता है—जिसमे सरकारी हस्तक्षेप या सरकारी कानून लागू नही होते। स्वत समायोजन के कारण माग और पूर्ति परस्पर बराबर रहते हैं।

(4) सचय का अभाव—इस धारणा के अनुसार बचत और निवेश बराबर रहते हैं। जितनी आय प्रजनन से होती है वह सारी की सारी उपभोग पर खर्च नही होती। कुछ बच जाता है जिसे पूजी वस्तुओं मे लगा दिया जाता है। अत सचय की अर्थव्यवस्था मे प्रवृत्ति नही पनपती। दूसरे शब्दो मे, 'बचत' एक सामाजिक गुण है। जितना बचा लिया जाता है उसे निवेश मे लगाने से उत्पादन मे वृद्धि होती है।

से के नियम की आलोचनाए (Criticism of Say's Law)

'से' के बाजार नियम की प्रमुख धारणा कि 'पूर्ति स्वय माग पैदा करती है' व्यावहारिक रूप से आधुनिक अर्थव्यवस्थाओ पर लागू नही होती जिसके परिणाम-स्वरूप 'सामान्य से अधिक उत्पादन' एव 'सामान्य बेरोजगारी' नही हो सकती और 1929-33 की विश्वव्यापी मन्दी के समय ये अवास्तविक सिद्ध हुई थी। केन्ज ने अपनी पुस्तक '*General Theory*' मे इन धारणाओ की कड़ी आलोचना की जिसकी व्याख्या निम्नलिखित है :

(1) पूर्ति स्वय मांग पैदा नहीं करती (Supply does not create its demand)— 'से' के बाजार नियम की धारणा कि "उत्पादन ही वस्तुओं की मांग है," और जितना भी अर्थव्यवस्था मे उत्पादन होता है, सारा ही बिक जाता है, आधुनिक अर्थव्यवस्थाओ

की दिशा में लागू करना गलत है क्योंकि जिस दिशा में उत्पादन बढ़ता है माग उतनी नहीं बढ़ पाती। यह आवश्यक नहीं कि अर्थव्यवस्था में कुछ ही वस्तुए उत्पादित होती हैं और सिर्फ उन्हीं का ही उपभोग किया जाता है।

(2) **स्वय-समायोजन असम्भव** (Self-adjustment not possible)—'से' का नियम एक 'स्वय-समायोजित प्रक्रिया' के माध्यम से दीर्घकाल में पूर्ण रोजगार स्थापित करना है। केन्ज में इतना धैर्य नहीं था कि लम्बी अवधि की प्रतीक्षा कर सके, क्योंकि उसके विचार में, "दीर्घकाल में तो हम सब मर जाते हैं। अ। बेरोजगारी तभी दूर की जा सकती है जबकि निवेश को बढ़ाया जाए और जिस स्तर पर निवेश बढ़ाया जाए, वह स्तर पूर्ण रोजगार का न होकर अल्परोजगार का हो।

(3) **मुद्रा तटस्थ नहीं** (Money not neutral)—से' के अनुसार बाजार में वस्तु-विनिमय प्रणाली है अतः मुद्रा का उत्पादन क्रियाओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। केन्ज ने मुद्रा को प्रमुखता देते हुए 'से' की विचारधारा की आलोचना की है। उसके अनुसार मुद्रा ही विनिमय का साधन है और धन का सचय भी करती है जिसके कारण माग और पूर्ति में असन्तुलन रहता है।

(4) **अधिक उत्पादन सम्भव** (Over-production possible)—'से' ने अपना बाजार नियम इस धारणा पर आधारित किया कि 'पूर्ति अपनी माग स्वय पैदा करती है' जिसके कारण सामान्य से अधिक उत्पादन एव सामान्य बेरोजगारी नहीं हो सकती। केन्ज के अनुसार समस्त आय उन वस्तुओं को खरीदने में खर्च नहीं होती जितना साधन उपभोग करते हैं। कुछ भाग खर्च में से बच जाता है और स्वय निवेशित नहीं होता क्योंकि बचत-निवेश हमेशा समान नहीं रहते। अतः सामान्य से अधिक उत्पादन सम्भव है।

(5) **अल्परोजगार की स्थिति** (Under employment situation)—केन्ज पूर्ण रोजगार को एक विशेष स्थिति मानता है जबकि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में अल्परोजगार की स्थिति बनी रहती है। क्योंकि इन अर्थव्यवस्थाओं में श्रमिकों को काम नहीं मिलता या न्यूनतम मजदूरी पर कार्य करना नहीं चाहते। इसलिए 'अल्परोजगार' एक सामान्य स्थिति है। केन्ज ने रोजगार उत्पन्न करने के लिए अर्थव्यवस्था के बेकार साधनों का उपयोग करने की बात कही।

(6) **राज्य हस्तक्षेप** (State intervention)—केन्ज का मत था कि पूर्ति के मुकाबले माग सदैव कम रहती है। इसलिए अर्थव्यवस्था में सामान्य से अधिक उत्पादन और बेरोजगारी रहती है। ऐसी स्थितियां विश्वव्यापी मन्दी के दौरान उत्पन्न हुई। अतः अर्थव्यवस्था में पूर्ति और माग में समायोजन के लिए राज्य राजकोषीय एव मौद्रिक नीतियों द्वारा हस्तक्षेप करे।

(7) **आय द्वारा समानता** (Equality through income)—'से' के नियम के अनुसार बचत-निवेश सदैव बराबर रहते हैं और यदि किसी स्थिति में असमानता हो जाए तब ब्याज दर द्वारा समानता लाई जाती है। केन्ज के अनुसार बचत-निवेश समानता आय में परिवर्तनों द्वारा लाई जाती है क्योंकि बचत ब्याज दर से नहीं आय के स्तर पर निर्भर

करती है और निवेश भी ब्याज दर पर नहीं बल्कि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारण होता है। यदि निवेश बढ़ जाता है तो लोग व्यय कम कर देंगे और वस्तुओं की माग प्रभावित होगी। निवेश के कारण उत्पादन बढ़ेगा। परन्तु बचत और रोजगार कम हो जाएंगे। यह समानता आय के स्तरों में परिवर्तन द्वारा स्थापित होगी।

(8) **मजदूरी कटौती समाधान नहीं (Wage-cut no solution)**—केन्ज ने मजदूरी मे कटौती करके पूर्ण रोजगार की धारणा की आलोचना की। क्योंकि यह धारणा एक उद्योग पर लागू की जा सकती है न की समस्त अर्थव्यवस्था पर। केन्ज ने बेरोजगारी का कारण 'प्रभावी' माग मे कमी को माना और इसमे वृद्धि से रोजगार बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मजदूरी मे कमी करने की अपेक्षा राजकोषीय एव मौद्रिक नीतियो द्वारा भी रोजगार बढाया जा सकता है।

(9) **माग स्वय अपनी पूर्ति पैदा करती है (Demand creates its own supply)**—'से' के बाजार नियम के अनुसार, 'पूर्ति स्वय अपनी माग पैदा करती है'। परन्तु केन्ज ने इसके विपरीत मत की स्थापना की और वह यह कि 'माग स्वए अपनी पूर्ति पैदा करती है।' प्रभावी माग की कमी के परिणामस्वरूप बेरोजगारी आती है, क्योकि लोग अपनी समस्त आय को उपभोग पर खर्च नही करते। 'से' के अनुसार, उपभोग और 'निवेश-उत्पादन' दोनो ही पूर्ति के लिए माग पैदा करने मे सहायक हैं। लेकिन केन्ज ने इसका खडन किया। जो उसके शब्दो मे, अतिरिक्त श्रमिक आय प्राप्त करते हैं वह बाजार मे उपभोग वस्तुओ की अतिरिक्त माग करेंगे, परन्तु उनकी अतिरिक्त माग सारे उत्पादन की खपत करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। कमाई हुई अतिरिक्त आय का कुछ भाग बचा लिया जाता है, क्योकि उपभोग-माग, आय मे वृद्धि के समान नही बढ़ेगी।

प्रश्न

1. जे० बी० से के बाजार नियम की व्याख्या कीजिए। किन कारणो से केन्ज ने इसकी आलोचना की?
2. जे० बी० से के बाजार नियम की व्याख्या करिए और उसके निहित तत्त्व बतलाइए। केन्ज ने किन आधारो पर इसकी आलोचना की?

अनुसार, "समस्त मांग फलन रोजगार के किसी दिए हुए स्तर को रोजगार के उस स्तर से प्रत्याशित आय (proceeds expected) के साथ सम्बद्ध करता है।" तालिका I समस्त माग अनुसूची को व्यक्त करती है।

तालिका I समस्त मांग अनुसूची

रोजगार का स्तर (N) (लाख मे)	समस्त मांग कीमत (D) (रु० करोड)
20	230
25	240
30	250
35	260
40	270
45	280
50	290

इस तालिका से स्पष्ट है कि रोजगार के स्तर मे वृद्धि होने पर प्रत्याशित आय (ADP) बढ़ती है और रोजगार के अपेक्षाकृत निम्न स्तरो पर वह घटती जाती है। जब 45 लाख व्यक्ति रोजगार पर लगाए जाते है, तो समस्त माग कीमत 280 करोड रुपये है और जब 25 लाख व्यक्तियो को काम पर लगाया जाता है, तो यह 240 करोड रु० होती है। केन्ज के अनुसार, समस्त माग फलन रोजगार के स्तर का बढ़ता हुआ फलन है और उसे यो प्रकट किया जाता है $D=f(N)$, जहा D वह आय है जिसे उद्यमी लोग N व्यक्तियों को काम पर लगा कर प्राप्त करने की आशा रखते है।

ऊपर दी गई अनुसूची के आधार पर समस्त माग वक्र खीचा जा सकता है। यह बाए से दाए ऊपर की ओर ढालू होता है क्योंकि ज्यो ज्यो रोजगार का स्तर बढ़ता है, त्यो-त्यो समस्त माग कीमत भी बढ़ती है। (देखिए चित्र 54 । मे AD वक्र)।

समस्त पूर्ति कीमत (*Aggregate supply price*)—जब कोई उद्यमी श्रम की एक निश्चित मात्रा को रोजगार देता है, तो उसे कुछ निश्चित मात्रा मे अन्य सहयोगशील साधनो की भी जरूरत पडती है जैसे कि भूमि, पूजी, कच्चा माल इत्यादि, जिन्हे श्रम के साथ-साथ पारिश्रमिक देना पडता है। इस प्रकार रोजगार के प्रत्येक स्तर पर उत्पादन की कुछ मुद्रा लागतें (जिनमे सामान्य लाभ भी शामिल है) होती हैं, जिन्हे पूरा करना उद्यमी के लिए आवश्यक हो जाता है। "श्रम के रोजगार के किसी दिए हुए स्तर पर 'समस्त पूर्ति कीमत' मुद्रा की वह कुल राशि है जिसे कि अर्थव्यवस्था मे, कुल मिलाकर सब उद्यमी, उन व्यक्तियो की दी हुई संख्या द्वारा उत्पादित उत्पादन के विक्रय से प्राप्त करने की आशा रखते है उन्हे काम पर लगाना लाभप्रद हो।"

रोजगार का स्तर भी बढता है। परन्तु जब अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर पर पहुँ जाती है, तो समस्त पूर्ति वक्र लाम्बिक (vertical) हो जाता है। समस्त पूर्ति कीमत मे वृद्धि होने पर भी और अधिक रोजगार प्रदान करना सम्भव नही, क्योकि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार का स्तर प्राप्त कर चुकी है, जैसे चित्र 54 । मे AS वक्र है।

प्रभावी माग का निर्धारण (Determination of Effective Demand)

हम प्रभावी माग के दोनो निर्धारको का अलग-अलग अध्ययन कर चुके है और अब इस स्थिति मे हैं कि अर्थव्यवस्था मे रोजगार के स्तर निर्धारण की प्रक्रिया का विश्लेषण कर सकें। रोजगार का स्तर उस बिन्दु पर निर्धारित होना है, जहा समस्त माग कीमत बराबर हो समस्त पूर्ति कीमत के। दूसरे शब्दो मे, यह वह बिन्दु होता है जहा उद्यमियो की प्रत्याशित आय उस आय के बराबर होती है, जो उन्हे अवश्य प्राप्त होगी और जहा उनके लाभ अधिकतम होते हैं। इस बिन्दु को प्रभावी माग कहते हैं और इस बिन्दु पर उद्यमी सामान्य लाभ प्राप्त करते हैं। जब तक समस्त पूर्ति कीमत की अपेक्षा समस्त मांग कीमत अधिक रहती है, तब तक अतिरिक्त लाभो की प्राप्ति की सभावना अधिक होती है। जब और अधिक श्रमिको को रोजगार प्रदान किया जाता है, तो आवश्यक आय (लागतो) की अपेक्षा प्रत्याशित आय अधिक बढती है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी, जब तक कि समस्त माग कीमत समस्त पूर्ति कीमत के बराबर नही हो जाती और प्रभावी माग का बिन्दु नही आ जाता। यह बिन्दु अर्थव्यवस्था मे रोजगार तथा उत्पादन के स्तर को निर्धारित करता है। पर यह आवश्यक नही कि यह पूर्ण रोजगार का ही बिन्दु हो बल्कि यह अल्परोजगार सतुलन का बिन्दु भी हो सकता है। यदि उद्यमी इस बिन्दु के बाद और रोजगार प्रदान करने का प्रयत्न करेंगे तो समस्त माग कीमत से समस्त पूर्ति कीमत बढ जाएगी जिसका मतलब होगा कि कुल आय की अपेक्षा कुल लागतें अधिक हैं और हानि उठानी पड रही है। इसलिए उद्यमी प्रभावी माग के बिन्दु के बाद तब तक श्रमिको को काम पर नही लगायेंगे, जब तक कि नये सतुलन बिन्दु पर समस्त पूर्ति कीमत को पूरा करने के लिए समस्त माग कीमत नही बढ़ जाती और यह पूर्ण रोजगार का बिन्दु हो सकता है। यदि समस्त माग कीमत इससे भी और आगे बढा दी जाए, तो स्फीति आ जाएगी क्योकि पूर्ण रोजगार के स्तर से आगे रोजगार तथा उत्पादन मे वृद्धि करना सभव नही। तालिका III प्रभावी माग बिन्दु निर्धारण को स्पष्ट करती है।

तालिका III मे स्पष्ट है कि जब तक समस्त पूर्ति कीमत की अपेक्षा समस्त माग कीमत अधिक रहती है, तब तक उद्यमियो के लिए और अधिक श्रमिको को रोजगार पर लगाना लाभप्रद है। जब उद्यमी रु० 215 करोड, रु० 230 करोड तथा रु० 245 करोड की आवश्यक आय के मुकाबले रु० 230 करोड, रु० 240 करोड रु० 250 करोड की आय प्राप्त की आशा रखते हैं, तो वे क्रमश 20 लाख, 25 लाख, 30 लाख श्रमिको को रोजगार प्रदान करेंगे। परन्तु आवश्यक आय तथा प्रत्याशित आय, दोनों ही, रु० 260 करोड हो जाती हैं, तो रोजगार का स्तर बढकर 35 लाख पर पहुंच जाता है। यही प्रभावी

बढ़ाकर N_F पर ले जाना उद्यमियों के लिए लाभप्रद नही रहेगा क्योंकि प्रत्याशित आय से आवश्यक आय (लागत) बढ़ जाती है अर्थात् $C_1N_F > R_1N_F$ और उन्हें हानि उठानी पड़ेगी। इस प्रकार प्रभावी माग का बिन्दु E अर्थव्यवस्था में रोजगार के वास्तविक स्तर को निर्धारित करता है और यह अल्परोजगार सतुलन का स्तर होता है।

केन्ज मानता है कि प्रभावी माग के इन दो निर्धारको मे से समस्त पूर्ति फलन दिया हुआ होता है क्योंकि यह उत्पादन की तकनीकी स्थितियो, कच्चे माल, मशीनो इत्यादि की प्राप्यता पर निर्भर करता है जो कि अल्पकाल मे परिवर्तित नही होते। इसलिए अर्थव्यवस्था मे रोजगार का स्तर निर्धारित करने मे *समस्त माग फलन ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण* कार्य करता है। केन्ज के अनुसार, समस्त माग फलन उपभोग फलन तथा निवेश फलन पर निर्भर रहता है। हो सकता है कि या तो उपभोग व्यय, या निवेश व्यय, या फिर दोनो मे कमी होना बेरोजगारी का कारण हो। इस प्रकार, प्रभावी माग के नियम मे समस्त माग फलन ही 'प्रभावी' तत्त्व ठहरता है। प्रोफेसर डिल्लर्ड इसे माग के नियम का मर्म मानता है।
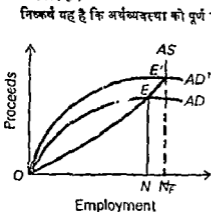
निष्कर्ष यह है कि अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोजगार के स्तर तक उठाने के लिए आवश्यक है कि समस्त माग बढा कर प्रभावी माग का बिन्दु ऊचा उठाया जाए। इसे चित्र 54 2 मे स्पष्ट किया गया है, जहा E प्रभावी माग का बिन्दु है जो रोजगार के ON स्तर को निर्धारित करता है। यदि अर्थव्यवस्था के लिए पूर्ण रोजगार का स्तर ON_F हो, तो इसके लिए आवश्यक है कि प्रभावी माग का बिन्दु ऊचा उठाया जाए। यह तभी सभव है जब समस्त माग वक्र को उठाकर AD' पर ले जाया जाए, जहा वह समस्त पूर्ति वक्र AS को बिन्दु E' पर काटे। यह प्रभावी माग का नया बिन्दु है जो अर्थव्यवस्था को रोजगार का अनुकूलतम स्तर (optimum level) ON_F प्रदान करता है। यदि समस्त माग फलन को इस बिन्दु से ऊपर उठा दिया जाए, तो अर्थव्यवस्था को स्फोति का सामना करना पड़ेगा क्योंकि सब वर्तमान साधन पूर्ण रूप से लगे हुए हैं और अल्पकाल के दौरान इस पूर्ति को नहीं बढ़ाया जा सकता जैसा कि चित्र मे AS वक्र के अनुलम्ब (vertical) भाग से स्पष्ट है।

चित्र 54 2

प्रभावी मांग का महत्त्व (Importance of Effective Demand)

केन्ज का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान 'प्रभावी माग का नियम' है। यह केन्ज के रोजगार सिद्धान्त का आधार है। डॉ० क्लेन (Klein) ने केन्जवादी क्रान्ति का प्रभावी श्रेय एकमात्र मांग के सिद्धान्त के विकास को दिया है।

(1) रोजगार निर्धारक (Determinant of employment)—अर्थव्यवस्था मे रोजगार के स्तर को प्रभावी माग निर्धारित करती है। जब प्रभावी माग बढ़ती है तो रोजगार भी बढ़ता है और प्रभावी मांग के घटने पर रोजगार का स्तर भी गिर जाता है। इस प्रकार, प्रभावी माग मे कमी होने से बेरोजगारी आती है। प्रभावी माग रोजगार के संतुलन स्तर पर कुल उत्पादित उत्पादन पर किए गए कुल व्यय को व्यक्त करती है। यह कुल उत्पादन के मूल्य को प्रकट करती है, जो कि राष्ट्रीय आय के बराबर होता है। राष्ट्रीय आय राष्ट्रीय व्यय के बराबर होती है। राष्ट्रीय व्यय मे उपभोग-वस्तुओं तथा निवेश वस्तुओ पर किया गया व्यय सम्मिलित होता है। इस प्रकार, प्रभावी माग तथा रोजगार के स्तर के प्रमुख निर्धारक उपभोग एव निवेश हैं। सक्षेप मे, प्रभावी माग = राष्ट्रीय उत्पादन का मूल्य = रोजगार की मात्रा - राष्ट्रीय आय = राष्ट्रीय व्यय = उपभोग वस्तुओ पर व्यय + निवेश वस्तुओं पर व्यय।

प्रभावी माग के केन्जवादी विश्लेषण मे उपभोग तथा निवेश व्यय निजी क्षेत्र से सबद्ध रहता है क्योंकि केन्ज सरकारी व्यय को स्वायत्त (autonomous) मानता है। परन्तु केन्ज के बाद के अर्थशास्त्री सरकारी व्यय को भी प्रभावी माग का अग स्वीकार करते हैं। इस प्रकार, प्रभावी माग (D) = निजी उपभोग व्यय (C) + निजी निवेश व्यय (I) + दोनों पर सरकारी व्यय (G)।

निष्कर्ष रूप मे हम कह सकते हैं कि प्रभावी माग के नियम का महत्त्व इस बात मे निहित है कि यह बेरोजगारी के कारण तथा उपचार का निर्देश करता है। प्रभावी मांग में कमी होने से बेरोजगारी आती है और इसे उपभोग व्यय अथवा/तथा निवेश व्यय को बढ़ाकर दूर किया जा सकता है और यदि रोजगार का अपेक्षित स्तर लाने मे निजी व्यय अपर्याप्त तथा असमर्थ रहें, तो सरकारी व्यय द्वारा उसे उपलब्ध किया जा सकता है। इस प्रकार, प्रभावी माग का नियम रोजगार-सिद्धान्त का आधार है।

(2) 'से' के नियम तथा पूर्ण रोजगार सिद्धान्त का खण्डन (Repudiation of Say's law and full employment thesis)—प्रभावी माग का नियम से के इस मार्किट-नियम का खण्डन करता है कि पूर्ति स्वय अपनी मागें पैदा करती है और कि पूर्ण रोजगार का होना अर्थव्यवस्था में एक सामान्य स्थिति होती है। यह नियम लक्ष्य करता है कि सामान्य स्थिति अल्परोजगार सतुलन की रहती है और सयोगवश कभी-कभी पूर्ण रोजगार सतुलन की स्थिति आ जाती है। किसी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे पूर्ति स्वय अपनी माग पैदा करने मे असमर्थ रहती है क्योंकि समस्त अर्जित आय वस्तुओं तथा सेवाओं के उपभोग पर खर्च नही की जाती। फिर, बचत तथा निवेश के सबध मे भिन्न-भिन्न व्यक्ति निर्णय करते हैं। परिणामत पूर्ण रोजगार के पाए जाने की सभावना नहीं रहती और किसी एक समय पर प्रभावी माग का बिन्दु अल्परोजगार सतुलन को ही व्यक्त करता है।

(3) मजदूरी कटौती का खण्डन (Repudiation of wage cut) यह नियम पीगू के इस मत का भी खण्डन करता है कि मुद्रा-मजदूरी मे कटौती करने से पूर्ण रोजगार उपलब्ध किया जा सकता है। मुद्रा-मजदूरी कटौती वस्तुओं तथा सेवाओं पर व्यय

घटा देगी जिसके परिणामस्वरूप प्रभावी माग मे और इसलिए रोजगार के स्तर मे गिरावट आएगी। इस प्रकार इस नियम का महत्त्व इस बात मे निहित है कि यह से के नियम तथा पूर्ण रोजगार सतुलन के क्लासिकी सिद्धान्त का खण्डन करता है।

(4) निवेश का कार्यभाग (Role of investment)—प्रभावी माग का नियम अर्थव्यवस्था मे रोजगार के स्तर निर्धारण मे निवेश के महत्त्वपूर्ण कार्य को प्रकट करता है। प्रभावी माग के दो निर्धारक हैं उपभोग व्यय तथा निवेश व्यय। जब आय बढती है, तो उपभोग व्यय भी बढता है परन्तु आय मे वृद्धि की अपेक्षा कम। इस प्रकार आय तथा उपभोग मे अन्तर पड जाता है जिससे रोजगार की मात्रा घट जाती है। अर्थव्यवस्था मे प्रभावी माग का पूर्ण रोजगार स्तर उपलब्ध करने के लिए, उपभोग व्यय अथवा निवेश व्यय बढाकर हम इस अन्तर को भर सकते हैं। क्योंकि अल्पकाल के दौरान उपभोग प्रवृत्ति स्थिर रहती है, अत उपभोग व्यय मे वृद्धि करना सभव नही। इसलिए निवेश बढाकर प्रभावी माग तथा फ्लस्वरूप, रोजगार का स्तर बढाया जा सकता है। इसी मे निवेश का महत्त्व निहित है।

(5) सभाव्य प्रचुरता के बीच गरीबी का विरोधाभास (The paradox of poverty in the midst of potential plenty)—प्रभावी माग का महत्त्व इस बात मे निहित है कि वह आधुनिक पूजीवाद मे 'सभाव्य प्रचुरता के बीच गरीबी' के विरोधाभास की व्याख्या करता है। प्रभावी माग को प्रमुख रूप से समस्त माग फलन निर्धारित करता है जो कि उपभोग व्यय तथा निवेश व्यय से निर्मित होता है। आधारभूत नियम यह है कि जब आय बढती है, तो उपभोग भी बढता है परन्तु अपेक्षाकृत कम अनुपात मे (अर्थात् उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति एक से कम होती है)। इससे आय तथा उपभोग के बीच अन्तर पड जाता है, जिसे निवेश व्यय द्वारा भरना आवश्यक है। यदि इस अन्तर को भरने के लिए समुचित निवेश नही हो पाता, तो इसमे प्रभावी माग की न्यूनता हो जाएगी जिसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी उत्पन्न होगी।

इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि गरीब समाज मे आय तथा उपभोग के बीच का अन्तर कम होता है क्योंकि वहा उपभोग की प्रवृत्ति अधिक होती है। इसलिए थोडे निवेश व्यय के माध्यम से इस अन्तर को भरकर उस समाज को अपने सब साधनो को लगाने मे कठिनाई नही होगी।

इसके विपरीत, धनी समाज मे आय तथा उपभोग के बीच का अन्तर बहुत अधिक होता है क्योंकि वहा उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति कम होती है। इसलिए आय तथा रोजगार का स्तर ऊचा रखने के उद्देश्य से आय तथा उपभोग का अन्तर भरने के लिए उस समाज को बडे निवेश व्यय की आवश्यकता रहेगी। परन्तु धनी समाज मे इस अन्तर को भरने के लिए निवेश माग पर्याप्त नही होती और इसलिए वहा समस्त माग की न्यूनता उत्पन्न हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप व्यापक बेरोजगारी फैल जाती है। जब समस्त माग गिर जाएगी तो सभाव्य धनी समाज को अपना वास्तविक उत्पादन घटाने पर बाध्य होना पडेगा, जब तक कि वह इतना दरिद्र न हो जाए कि उपभोग की अपेक्षा

उत्पादन का आधिक्य (surplus) निवेश की वास्तविक मात्रा के बराबर आ जाए। फिर, इस प्रकार के समाज में पूंजी-परिसम्पत्ति का संचित स्टॉक होता है जो कि निवेश को हतोत्साहित करता है क्योंकि प्रत्येक नया निवेश पहले से वर्तमान पुराने पूंजी-परिसम्पत्ति की बड़ी पूर्ति से होड़ लेता है। निवेश मांग की यह अपर्याप्तता उपभोग के लिए मांग पर संचयी रूप से प्रतिक्रिया करती है और इसका आगे यह परिणाम होगा कि रोजगार, उत्पादन तथा आय और भी कम हो जाएंगी। इस प्रकार, जैसा कि केन्ज ने कहा है, "समाज जितना ही अधिक धनी होगा "आर्थिक व्यवस्था के दोष भी उतने ही सुव्यक्त तथा प्रचण्ड होंगे", जो कि संभाव्य प्रचुरता के बीच प्रभावी माग की न्यूनता के कारण बड़े पैमाने पर बेरोजगारी लाते हैं।

प्रश्न

1. आप प्रभावी मांग से क्या समझते हैं? इसके महत्त्व की विवेचना कीजिए।
2. "तार्किक दृष्टि से प्रभावी माग का नियम केन्ज के रोजगार सिद्धान्त का प्रारंभिक बिन्दु है।" विवेचना कीजिए।
3. 'समस्त माग और समस्त पूर्ति फलनों का कटाव उत्पादन और रोजगार के सन्तुलन स्तर को निर्धारित करता है।" विवेचना कीजिए।

अध्याय-55
उपभोग फलन
(THE CONSUMPTION FUNCTION)

1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

उपभोग फलन केन्द्रवादी अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण औजार है। इस अध्याय में उपभोग फलन, उसकी तकनीकी विशेषताओं, उसके महत्त्व और उसके सापेक्ष तथा निरपेक्ष निर्धारकों के साथ-साथ केन्ज के उपभोग के मनोवैज्ञानिक नियम पर विचार किया गया है।

1 उपभोग फलन का अर्थ (Meaning of Consumption Function)

उपभोग फलन अथवा उपभोग प्रवृत्ति आय-उपभोग सम्बन्ध को दर्शाता है। यह "कुल उपभोग तथा समस्त राष्ट्रीय आय, इन दो समूहों, के बीच फलनात्मक सबध है।" प्रतीकात्मक रूप से इस सबध को यों प्रकट किया जाता है, $C = f(Y)$, यहा C उपभोग है, Y आय है तथा f फलनात्मक सबध है। इस प्रकार उपभोग फलन C तथा Y के बीच फलनात्मक सबध को प्रकट करता है, जहा C पर निर्भर है और Y एक स्वतन्त्र 'चर' है अर्थात् C को Y निर्धारित करता है। यह सबध इस धारणा पर आधारित है कि अन्य बातें समान रहती हैं, इसलिए केवल आय उपभोग सबध पर ही विचार किया जाता है और उपभोग पर पडने वाले सभी प्रभावों को स्थिर मान लिया जाता है।

वास्तव में, उपभोग प्रवृत्ति अथवा उपभोग फलन आय के विभिन्न स्तरों के अनुरूप उपभोग व्यय की विविध मात्राओं की अनुसूची ली जा रही है।

तालिका 1 उपभोग अनुसूची

(रु० करोड़ में)

आय (Y)	उपभोग $C = f(Y)$
0	20
60	70
120	120
180	170
240	220
300	270
360	320

इस तालिका से स्पष्ट है कि उपभोग आय का बढ़ता हुआ फलन है क्योंकि आय में वृद्धि के साथ-साथ उपभोग व्यय बढ़ता जाता है। यहां यह दिखाया गया है कि जब मंदी के दौरान आय शून्य होती है, तो लोग अपनी पहले की बचतों में से उपभोग पर व्यय करते हैं क्योंकि जीवित रहने के लिए उन्हें खाना तो पड़ेगा ही। जब अर्थव्यवस्था में 60 करोड़ रुपये की मात्रा में आय प्रजनित होती है, तो वह समाज के उपभोग व्यय को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं होती और परिणामत उपभोग व्यय की रु० 70 करोड़ की राशि आय के रु० 60 करोड़ से बढ़ जाती है (रु० 10 करोड़ बचतों में से खर्च करने पड़ते हैं)। जब उपभोग व्यय तथा आय दोनों ही रु० 120 करोड़ पर पहुंच कर समान हो जाते हैं, तो यह आधारभूत उपभोग स्तर (basic consumption level) बन जाता है। इसके बाद, आय को 60, 60 करोड़ रुपये की मात्राओं में और उपभोग व्यय को 50, 50 करोड़ की मात्राओं में बढ़ता हुआ दिखाया गया है। इसका मतलब है कि, जैसाकि केन्ज ने माना है, अल्पकाल के दौरान उपभोग फलन स्थिर होता है। चित्र 55 1 में आरेखीय ढंग से उपभोग फलन स्पष्ट किया गया है। इस चित्र में आय को क्षैतिज अक्ष पर और उपभोग अनुलम्ब-अक्ष पर मापा गया है। 45° पर उठने वाली रेखा एकता-रेखा (unity line) है, जहां सब स्तरों पर आय तथा उपभोग बराबर हैं। वक्र C रेखीय उपभोग फलन है, जो इस धारणा पर आधारित है कि उपभोग में समान मात्राओं में (रु० 50 करोड़) परिवर्तन होता है। इसका ऊपर की ओर दाएं को ढालू होना प्रकट करता है कि उपभोग आय का बढ़ता हुआ फलन है। B सम-भेदन बिन्दु (break-even point) है, जहां $C = Y$ अथवा $OY_1 = OC_1$। जब आय बढ़कर OY_2 हो जाती है, तो उपभोग भी बढ़कर OC_2 तक पहुंच जाता है, परन्तु आय में वृद्धि की अपेक्षा उपभोग में वृद्धि कम होती है अर्थात् $CC_2 \geqslant Y_1Y_2$ आय के जिस भाग का उपभोग नहीं किया जाता, वह बचत है जैसाकि 45° की रेखा तथा वक्र C के बीच अनुलम्ब दूरी (SS') द्वारा दिखाया गया है। "इस प्रकार, उपभोग फलन केवल उपभोग पर व्यय की गई राशि को ही नहीं बल्कि बचत की मात्रा को भी मापता है। इसका कारण यह है कि उपभोग प्रवृत्ति वस्तुत उपभोग न करने की प्रवृत्ति मात्र भी तो है। इसलिए 45° की रेखा को शून्य-बचत रेखा माना जा सकता है और वक्र C की आकृति तथा स्थिति उपभोग तथा बचतों में आय के विभाजन को व्यक्त करती है।"
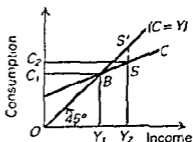
चित्र 55 1

2 उपभोग फलन के गुण अथवा तकनीकी विशेषताएं (Properties or Technical Attributes of Consumption Function)

उपभोग फलन की दो तकनीकी विशेषताएं अथवा गुण हैं औसत उपभोग प्रवृत्ति और सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति।

(1) **औसत उपभोग प्रवृत्ति** (The average propensity to consume)—"औसत उपभोग प्रवृत्ति की परिभाषा यों दी जा सकती है कि यह आय के किसी विशेष स्तर से उपभोग व्यय का अनुपात है।" उपभोग व्यय को आय से विभक्त करके निकाला जा सकता है अर्थात् $APC = C/Y$ यह उपभोग की गई आय के अनुपात अथवा प्रतिशतता के रूप में व्यक्त की जाती है। विविध आय स्तरों पर APC तालिका II के कॉलम 3 में दिखाई गई है। ज्यों-ज्यों आय बढ़ती है, त्यों-त्यों APC घटती जाती है क्योंकि उपभोग पर व्यय की गई आय का अनुपात कम होता जाता है। परन्तु APS (औसत बचत प्रवृत्ति) के सम्बन्ध में स्थिति इसके उलट रहती है और वह (APS) आय में वृद्धि के साथ-साथ बढ़ती है (देखिए, कालम 4)। इस प्रकार, APC भी हमें APS का ज्ञान कराती है, $APS = 1 - APC$

आरेखीय रूप में, औसत उपभोग प्रवृत्ति वक्र C का कोई भी बिन्दु होता है। चित्र 55.2 (A) में, वक्र C पर APC को बिन्दु R मापता है और वह है OC'/OY। वक्र C का दाईं ओर को चपटा हो जाना घटती APC को प्रकट करता है।
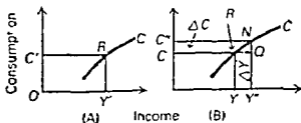
चित्र 55.2

(2) **सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति** (The marginal propensity to consume)—"सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति की परिभाषा यों दी जा सकती है कि यह उपभोग में परिवर्तन का आय में परिवर्तन से अनुपात होता है अथवा यों कि यह आय में परिवर्तन होने पर औसत उपभोग प्रवृत्ति में परिवर्तन की दर है।" इसे उपभोग में परिवर्तन को आय में परिवर्तन से विभक्त करके निकाला जा सकता है अथवा $MPC = \Delta C/\Delta Y$। MPC आय के सभी स्तरों पर स्थिर रहती है, जैसाकि तालिका II के कॉलम 5 में दिखाया गया है। यह 0.83 अर्थात् 83 प्रतिशत है क्योंकि उपभोग में परिवर्तन का आय में परिवर्तन से अनुपात $\Delta C/\Delta Y = 50/60$ है। फार्मूला $1 - MPC$ के द्वारा MPC

से सीमान्त बचत प्रवृत्ति निकाली जा सकती है। हमारे उदाहरण में यह 0 17 है (देखिए कालम 6)।

आरेखीय रूप से, सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति को वक्र C की ढलान (gradient or slope) द्वारा मापा जाता है। इसे चित्र 55.2 (B) में NQ/RQ द्वारा दिखाया गया है, जहां NQ तो उपभोग में परिवर्तन (ΔC) है और RQ आय में परिवर्तन (ΔY) है, अथवा $C'C''/Y'Y''$।

तालिका 11

Income (Y)	Consumption (C)	$APC=C/Y$	$APS=S/Y=(1-APC)$	$MPC=\Delta C/\Delta Y$	$MPS=\Delta S/\Delta Y=(1-MPC)$
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
120	120	$\frac{120}{120}$ = 1 or 100%	0	—	—
180	170	$\frac{170}{180}$ = 0 92 or 92%	0 08	$\frac{50}{60}$ = 0 83	0.17
240	220	$\frac{220}{240}$ = 0 91 or 91%	0 09	$\frac{50}{60}$ = 0 83	0.17
300	270	$\frac{270}{300}$ = 0 90 or 90%	0 10	$\frac{50}{60}$ = 0 83	0 17
360	320	$\frac{320}{360}$ = 0 88 or 88%	0 12	$\frac{50}{60}$ = 0 83	0 17

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का महत्व Importance of MPC)—केन्द्रवादी विश्लेषण में MPC को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया जाता है। MPC का आर्थिक महत्त्व इस बात में निहित है कि आय के अपेक्षित स्तर को बनाए रखने के लिए योजनाबद्ध निवेश के माध्यम से, आय तथा उपभोग के बीच के अन्तर को भरती है। फिर, इसका महत्त्व गुणक सिद्धान्त में स्थित है। MPS जितनी ही अधिक होगी, गुणक भी उतना ही अधिक होगा, और विलोमश: भी। इसकी निम्नलिखित विशेषताएं हैं

(क) सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति हमेशा धनात्मक होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब आय बढ़ती है तो वह सारी-की-सारी उपभोग पर व्यय नहीं की जाती, इसके विपरीत, जब आय घटती है तो उपभोग-व्यय उसी अनुपात में नहीं घटता और वह कभी भी शून्य नहीं होता।

(ख) सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति हमेशा इकाई से कम होती है। गणितीय तौर पर, सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का मूल्य, $O<MPC1$ रहता है। यह व्यावहारिक दृष्टि से भी

बहुत अधिक महत्त्व है। यह धारणा हमें यह बताती है कि "उपभोग आय का बढ़ता हुआ फलन है।" उपभोग में वृद्धि आय में वृद्धि से अपेक्षाकृत कम रहती है। यह धारणा निम्नलिखित स्थितियों की व्याख्या करने में सहायक है (i) सिद्धान्तिक तौर पर अल्प-रोजगार सन्तुलन की व्याख्या, (ii) अत्यधिक विकसित औद्योगिक अर्थव्यवस्था में सन्तुलन।

ऊपर दिए गए विवरण से स्पष्ट है कि आय के सभी स्तरों पर आय तथा उपभोग के बीच का अन्तर इतना अधिक होता है कि इसे आसानी से निवेश द्वारा भरा नहीं जा सकता, जिसका सम्भवतः परिणाम यह होता है कि अर्थव्यवस्था अल्परोजगार की स्थिति में रहती है। तालिका से स्पष्ट है कि जब आय 120 करोड़ रु० से बढ़कर 180 करोड़ रु० हो जाती है तो अर्थव्यवस्था में उपभोग का स्तर बढ़कर 120 करोड़ से 170 करोड़ रु० हो जाता है जो कि यह बताता है कि आय में वृद्धि की अपेक्षा उपभोग में वृद्धि अपेक्षाकृत कम है।

(ग) निर्धन वर्ग की सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (*MPC*) अधिक होती है। क्योंकि उनकी आय का स्तर कम होने के कारण सारी आय अपने उपभोग पर व्यय कर देते हैं जबकि धनिकों की *MPC* हमेशा कम होती है क्योंकि इस वर्ग के लोगों की आय का स्तर निर्धनों से बहुत अधिक होता है और वे सारी-की-सारी आय अपने उपभोग पर व्यय नहीं कर पाते। यही कारण है कि अल्पविकसित देशों में *MPC* अधिक होती है और विकसित देशों में कम।

3. केन्ज का उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम (Keynes's Psychological Law of Consumption)

केन्ज ने उपभोग के आधारभूत मनोवैज्ञानिक नियम की प्रस्थापना की है, जोकि उपभोग फलन का आधार है। उसने लिखा है, "आधारभूत मनोवैज्ञानिक नियम—जिस पर हम मानव स्वभाव के सम्बन्ध में अपने ज्ञान तथा अनुभव के विस्तृत तथ्यों के आधार पर बहुत अधिक विश्वास के साथ निर्भर रहने के अधिकारी हैं—यह है कि नियम के अनुसार तथा सामान्यतौर से लोग इस बात के इच्छुक होते हैं कि जब उनकी आय बढ़े, तो वे अपना उपभोग बढ़ाएं परन्तु उतना नहीं जितना कि उनकी आय में वृद्धि होती है।" इस नियम का अभिप्राय है कि लोगों की प्रवृत्ति यह रहती है कि वे उपभोग पर आय में पूर्ण वृद्धि की अपेक्षा कम व्यय करें।

नियम की प्रस्थापनाएं (Propositions of the Law)—इस नियम से सबद्ध तीन प्रस्थापनाएं हैं

(1) **जब आय बढ़ती है, तो उपभोग व्यय भी बढ़ता है परन्तु आय वृद्धि से अपेक्षाकृत थोड़ी मात्रा में।** इसका कारण यह है कि ज्यों-ज्यों आय में वृद्धि होती है, त्यों-त्यों हमारी आवश्यकताएं पूरी होती जाती हैं जिससे उपभोक्ता वस्तुओं पर और अधिक व्यय करने की जरूरत नहीं रहती। इसका यह मतलब नहीं कि आय में वृद्धि होने पर उपभोग व्यय घट जाता है। वास्तव में, आय में वृद्धि होने पर उपभोग व्यय बढ़ता है परन्तु अपेक्षाकृत कम अनुपात में।

(2) **आय में हुई वृद्धि उपभोग व्यय तथा बचत के बीच किसी न किसी अनुपात में विभक्त हो जाती है।** यह निष्कर्ष ऊपर दी गई प्रस्थापना से प्राप्त होता है, क्योंकि आय में हुई समस्त वृद्धि उपभोग पर नहीं व्यय होती और उसका शेष भाग बचत में चला जाता है। इस प्रकार, उपभोग तथा बचत साथ-साथ चलते हैं।

(3) **आय में वृद्धि होने से उपभोग तथा बचत दोनों में वृद्धि होती है।** इसका मतलब यह है कि बढ़ी हुई आय से उपभोग अथवा बचत में पहले की अपेक्षा कमी होने की सम्भावना नहीं है। यह ऊपर दी गई प्रस्थापनाओं पर आधारित है, क्योंकि जब आय बढ़ती है, तो उपभोग भी बढ़ता है परन्तु पहले की अपेक्षा कम मात्रा में, जिसके परिणामस्वरूप बचत में वृद्धि होती है। इस प्रकार आय में वृद्धि होने पर उपभोग तथा बचत दोनों बढ़ जाते हैं।

तालिका III की सहायता से इस नियम की तीनों प्रस्थापनाएं स्पष्ट की जा सकती हैं।

प्रस्थापना (1)—आय में 60, 60 करोड़ रुपये की वृद्धि होती है और उपभोग व्यय पचास-पचास करोड़ रुपये बढ़ता है। हां, आय में वृद्धि के साथ उपभोग व्यय भी बढ़ता जा रहा है अर्थात् रु० 180, 240, 300, 360 करोड़ के मुकाबले क्रमशः रु० 170, 220, 270 तथा 320 करोड़ है।

प्रस्थापना (2)—प्रत्येक स्थिति में आय में हुई रु० 60 करोड़ की वृद्धि उपभोग तथा

बचत के बीच किसी न किसी अनुपात में (रु० 50 करोड़ तथा रु० 10 करोड़ में) विभाजित हो जाती है।

तालिका III

(रु० करोड़ों में)

आय (Y)	—	उपभोग (C)	= बचत (S)
0		20	−20
60		70	—10
120		120	0
180		170	10
240		220	20
300		270	30
360		320	40

प्रस्थापना (3)—ज्यों-ज्यों आय रु० 120 करोड़ से बढ़कर रु० 180, रु० 240, रु० 300 तथा इसमें 360 करोड़ पहुंचती है, त्यों-त्यों उपभोग भी रु० 120 से बढ़कर रु० 170, रु० 220, रु० 270, रु० 320 करोड़ हो जाता है और साथ ही साथ बचत में शून्य से बढ़कर क्रमश: रु० 10, 20, 30 तथा 40 करोड़ हो जाती है। आय में वृद्धि होने पर न तो उपभोग घटा है और न ही बचत।
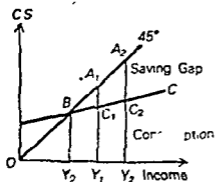
चित्र 55.3

आरेखीय रूप से, इन तीनों प्रस्थापनाओं को चित्र 55.3 में स्पष्ट किया गया है। यहां आय को क्षैतिज माप पर की गई है और उपभोग तथा बचत को अनुलम्ब अक्ष पर मापा गया है। C उपभोग फलन वक्र है और 45° की रेखा आय को प्रकट करती है।

प्रस्थापना (1)—जब आय OY_0 से बढ़कर OY_1 हो जाती है, तो उपभोग भी BY_0 से बढ़कर C_1Y_1 हो जाता है परन्तु आय में वृद्धि की अपेक्षा उपभोग में कम वृद्धि होती है, अर्थात् $C_1Y_1 < A_1Y_1$ $(= OY_1)$ और यह अन्तर A_1C_1 है।

प्रस्थापना (2) : जब आय बढ़कर OY_1 तथा OY_2 हो जाती है, तो यह वृद्धि उपभोग C_1Y_1 तथा C_2Y_2 और बचत A_1C_1 तथा A_2C_2 के बीच किसी-न-किसी अनुपात में

विभाजित हो जाती है।

प्रस्थापना (3)—आय में वृद्धियां OY_1 तथा OY_2 के परिणामस्वरूप उपभोग $C_2Y_2 > C_1Y_1$ बढ़ता है और बचत $A_2C_2 > A_1C_1$ बढ़ती है। वक्र C के नीचे बढ़ते हुए क्षेत्र और 45° की रेखा तथा C वक्र के बीच के बचत-अन्तर से यह बात स्पष्ट है।

इस नियम की मान्यताएं (Its Assumptions)—केन्ज़ का नियम निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

(1) **यह नियम मनोवैज्ञानिक तथा संस्थानिक अवस्थाओं को स्थिर मान लेता है** (It assumes a constant psychological and institutional complex)—यह नियम इस धारणा पर आधारित है कि उपभोग व्यय को प्रभावित करने वाली मनोवैज्ञानिक तथा संस्थानिक अवस्थाएं स्थिर रहती हैं। ये अवस्थाएं हैं—आय वितरण, रुचियां, स्वभाव, सामाजिक प्रथाएं कीमत-परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि, इत्यादि। अल्पकाल में इनमें परिवर्तन नहीं होता और उपभोग केवल आय पर निर्भर रहता है। इन अवस्थाओं की स्थिरता ही स्थिर उपभोग फलन का आधारभूत कारण है।

(2) **यह सामान्य परिस्थितियों का वर्तमान होना मानकर चलता है** (It assumes the existence of normal conditions)—यह नियम सामान्य परिस्थितियों में ही सही ठहरता है। पर, यदि अर्थव्यवस्था को युद्ध, क्रान्ति अथवा अति-स्फीति जैसी असामान्य तथा असाधारण परिस्थितियों का सामना करना पड़े, तो यह नियम लागू नहीं होता। ऐसी स्थिति में लोग समस्त बढ़ी हुई आय को उपभोग पर खर्च कर सकते हैं।

(3) **यह नियम अबध पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का वर्तमान होना मानकर चलता है** (It assumes the existence of a laissez-faire capitalist economy)—यह नियम पूंजीवादी धनी अर्थव्यवस्था में लागू होता है जहां कि सरकार की ओर से कोई हस्तक्षेप नहीं होता। लोगों को बढ़ी हुई आय खर्च करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। जहां राज्य निजी उद्यम तथा उपभोग व्ययों का नियमन करता है, वहां यह नियम समाप्त हो जाता है। इस प्रकार, यह नियम समाजवादी अथवा राज्य-नियन्त्रित तथा नियमित अर्थव्यवस्थाओं में लागू नहीं होता।

प्रोफेसर कुरिहारा का मत है कि "इन धारणाओं पर आधारित केन्ज़ के नियम को मोटे-तौर पर सामान्य अल्प-अवधि में स्वतन्त्र उपभोक्ताओं का लगभग वास्तविक समष्टि व्यवहार माना जा सकता है।"

केन्ज़ के नियम के निहित तत्त्व अथवा उपभोग फलन का महत्त्व (Implications of Keynes' law or importance of consumption function)[1]—केन्ज़ का मनोवैज्ञानिक नियम कई महत्त्वपूर्ण संकेत करता है, जो वास्तव में उपभोग फलन के

[1] उपभोग फलन के महत्त्व पर विचार करते समय विद्यार्थियों को चाहिए कि 'मनोवैज्ञानिक नियम' शब्द को छोड़ कर उसकी बजाय 'उपभोग-फलन' शब्द का प्रयोग करें।

महत्त्व को लक्ष्य करते हैं क्योंकि उपभोग फलन उस नियम पर आधारित है। इसके निहित तत्त्व निम्नलिखित हैं :

(1) **से के नियम का खण्डन** (Invalidates Say's law)—से का नियम कहता है कि पूर्ति स्वयं अपनी माग पैदा करती है। इसलिए सामान्य अत्युत्पादन अथवा सामान्य बेरोजगारी हो ही नही सकती। केन्ज का मनोवैज्ञानिक नियम से के नियम का खण्डन करता है क्योंकि जब आय बढ़ती है, तो उपभोग भी बढ़ना है परन्तु अपेक्षाकृत कम मात्रा मे। दूसरे, जितना उत्पादन (आय) होता है, वह सब मार्किट से उठाया नही जाता (व्यय), क्योंकि आय (व्यय से) बढ जाती है। इस प्रकार, पूर्ति स्वयं अपनी माग पैदा करने मे असफल रहती है। बल्कि, वह तो माग से बढ़ जाती है जिससे सामान्य अत्युत्पादन होता है और मार्किट मे वस्तुओ की भरमार हो जाती है। परिणाम यह होता है कि उत्पादक उत्पादन बन्द कर देते हैं और सामूहिक बेरोजगारी फैलती है।

(2) **राज्य-हस्तक्षेप की आवश्यकता** (Need for state intervention)—जो कुछ ऊपर कहा गया है उसका स्वाभाविक निष्कर्ष यह कि मनोवैज्ञानिक नियम राज्य द्वारा हस्तक्षेप करने की आवश्यकता पर बल देता है। से का नियम अबाध नीति के अस्तित्व पर आधारित है और इसके खण्डन का अर्थ है कि आर्थिक व्यवस्था स्वय-समायोजित नही है। इसलिए जब आय की पूर्ण वृद्धि के बराबर उपभोग मे वृद्धि नही होती और परिणामत सामान्य अत्युत्पादन तथा सामूहिक बेरोजगारी आती है, तो अर्थव्यवस्था मे राज्य-हस्तक्षेप की आवश्यकता उत्पन्न होती है ताकि सार्वजनिक नीति के माध्यम से सामान्य अत्युत्पादन तथा बेरोजगारी को रोका जा सके।

(3) **निवेश का निर्णायक महत्त्व** (Critical importance of investment)—केन्ज का मनोवैज्ञानिक नियम इस महत्त्वपूर्ण बात पर बल देता है कि आय की पूर्ण वृद्धि को लोग उपभोग पर नही व्यय कर पाते। यह प्रवृत्ति आय तथा उपभोग के बीच अन्तर उत्पन्न कर देती है जिसे या तो निवेश से या फिर उपभोग को बढाकर ही भरा जा सकता है। यदि दोनो मे से कोई भी न बढ पाए तो उत्पादन तथा रोजगार अनिवार्य रूप से गिर जाएगे। क्योंकि अल्पकाल मे उपभोग फलन स्थिर रहता है, इसलिए *आय तथा* उपभोग के बीच का अन्तर केवल निवेश बढाकर ही भरा जा सकता है। इस प्रकार, केन्ज के सिद्धान्त म मनोवैज्ञानिक नियम निवेश के महत्त्वपूर्ण कार्य पर बल देता है। निवेश की अपर्याप्तता के परिणामस्वरूप बेरोजगारी आती है और बेरोजगारी पर काबू पाने का इलाज निवेश मे वृद्धि करना है।

(4) **अल्प-रोजगार सतुलन पाया जाना** (Existence of underemployment equilibrium)—केन्ज की *अल्प-रोजगार सतुलन की अवस्था भी उपभोग के मनो-वैज्ञानिक* नियम पर आधारित है। प्रभावी मांग का बिन्दु—जो रोजगार के स्तर को निर्धारित करता है—पूर्ण रोजगार का नहीं बल्कि अल्प-रोजगार का बिन्दु होता है क्योंकि लोग अपनी आय मे हुई पूर्ण वृद्धि को उपभोग पर नहीं व्यय करते और समस्त मांग मे न्यूनता बनी रहती है। पर, यदि राज्य निवेश मे उतनी ही वृद्धि कर दे जितना

कि आय तथा उपभोग के बीच अन्तर है, तो पूर्ण रोजगार सतुलन का स्तर उपलब्ध किया जा सकता है।

(5) पूंजी की सीमान्त उत्पादकता की घटती प्रवृत्ति (Declining tendency of the marginal efficiency of capital)—मनोवैज्ञानिक नियम अवध अर्थव्यवस्था मे पूजी की घटती सीमात उत्पादकता की प्रवृत्ति को भी लक्ष्य करता है। जब आय मे वृद्धि होती है और उपभोग उतनी ही मात्रा मे नही बढ़ता, तो उपभोक्ता वस्तुओ के लिए माग गिर जाती है। इसके परिणामस्वरूप मार्किट मे वस्तुओ की भरमार हो जाती है। उत्पादक उत्पादन घटा देंगे, जिससे आगे पूजी वस्तुओं की माग घट जाएगी और परिणामत लाभ की प्रत्याशित दर तथा व्यापार प्रत्याशाए घट जाएगी। इसका मतलब है पूजी की सीमान्त उत्पादकता मे कमी। यदि उपभोग प्रवृत्ति न बढ़े, तो पूजी की सीमान्त उत्पादकता की घटती प्रवृत्ति की इस प्रक्रिया को रोकना सभव नही है। परन्तु ऐसी सभावना केवल दीर्घकाल मे ही हो सकती है और तब उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम सही नही ठहरता।

(6) स्थायी अति-बचत अथवा अल्प-निवेश अन्तर का खतरा (Danger of permanent over-saving or under-investment gap)—केन्ज का मनोवैज्ञानिक नियम लक्ष्य करता है कि पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे सदा अति-बचत अथवा अल्प-निवेश अन्तर के प्रकट होने का खतरा बना रहता है, क्योकि जब लोग धनी हो जाते हैं, तो आय तथा उपभोग के बीच का अन्तर बढ जाता है। बचत मे वृद्धि तथा निवेश मे कमी की इस दीर्घकालीन प्रवृत्ति को दीर्घकालीन गतिरोध (secular stagnation) की सज्ञा दी गई है। जब लोग अमीर होते हैं तो उनकी उपभोग प्रवृत्ति कम होती है और वे अधिक बचत करते हैं। इसका मतलब है कम माग जिसके परिणामस्वरूप निवेश घट जाता है। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था मे दीर्घकालीन गतिरोध की प्रवृत्ति रहती है।

(7) आय प्रजनन की अनन्य प्रकृति (Unique nature of income propagation)—यह तथ्य, कि समस्त बढ़ी हुई आय उपभोग पर नही व्यय होती, गुणक सिद्धान्त की भी व्याख्या करता है। गुणक सिद्धान्त अथवा आय प्रजनन की प्रक्रिया इस बात का ज्ञान कराती है कि जब अर्थव्यवस्था मे निवेश की प्रारम्भिक मात्रा लगाई जाती है, तो इसके परिणामस्वरूप आय की क्रमिक अपेक्षाकृत छोटी वृद्धिया प्राप्त होती हैं। इसका कारण यह है कि लोग अपनी आय की पूर्ण वृद्धि को उपभोग पर नही व्यय करते। वास्तव में, गुणक का मूल्य उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति से निकाला जाता है, अर्थात् गुणक $= 1 1/- MPC$। MPC जितनी अधिक होगी गुणक का मूल्य भी उतना ही अधिक होगा और विलोमशः भी।

(8) व्यापार-चक्रों के मोड़ बिन्दुओं की व्याख्या (Explanation of the turning points of the business cycles)—यह नियम व्यापार-चक्र के मोड बिन्दुओ की व्याख्या करता है। पूर्ण रोजगार स्तर तक पहुचने मे पहले ही, अर्थव्यवस्था नीचे की ओर मुडना शुरू कर देती है क्योंकि लोग अपनी आय की पूर्ण वृद्धि को उपभोग पर

नही व्यय कर पाते। इससे माग गिर जाती है, अत्युत्पादन होता है, बेरोजगारी आती है और पूजी की सीमान्त उत्पादकता घट जाती है। चित्र 55 4 (A) मे इस निम्नवर्ती मोड की गति दिखाई गई है। जब आय सतुलन बिन्दु (break-even point) से $Y'Y''$
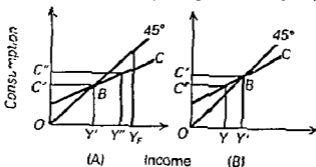
चित्र 55 4

अधिक हो जाती है, तो उपभोग व्यय अपेक्षाकृत छोटी मात्रा $C'C''$ ($C'C'' < Y'Y''$) मे बढता है। अर्थव्यवस्था मे पूर्ण रोजगार स्तर Y_F तक पहुचने से पहले निम्नवर्ती मोड (down turn) प्रारम्भ हो जाएगा, क्योंकि 45° की रेखा तथा वक्र C के बीच का अन्तर बढता जाता है।

इसके विपरीत, अर्थव्यवस्था मे पूर्ण मदी की अवस्था तक पहुचने से पहले ही अर्थ-व्यवस्था मे ऊपर का मोड शुरू हो जाएगा, क्योंकि जब आय घटती है, तो उपभोग भी घटता है परन्तु आय मे होने वाली कमी की अपेक्षा कम। अपनी आय घट जाने पर भी लोग उपभोक्ता वस्तुए खरीदते रहते हैं। इसलिए जब मदी के दौरान समाज मे वस्तुओ का अतिरिक्त स्टॉक समाप्त हो जाता है, तो वस्तुओ पर उपभोक्ता व्यय होते रहने से पुनः प्रवर्तन (revival) होता है इसे चित्र 55 4 (B) की सहायता से स्पष्ट किया गया है, जहा सतुलन स्तर बिन्दु B के नीचे वक्र C, 45° की आय रेखा से ऊपर स्थित है। यह तथ्य कि उपभोग फलन वक्र C, आय रेखा से ऊपर स्थित है, इस बात को स्पष्ट करता है कि आय के गिरकर शून्य पर पहुचने से पहले ही पुन प्रवर्तन प्रारम्भ हो जाएगा।

(9) प्रेरित निवेश कार्यभाग (Role of Induced investment)—अल्पविकसित देशो मे जब राष्ट्रीय आय बढती है तब उपभोग व्यय भी बढता है परन्तु राष्ट्रीय आय और उपभोग व्यय का अन्तर बहुत कम रहता है। अत इन देशो मे सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति अधिक रहती है। और इन देशो मे विकास कार्यों पर अधिक निवेश पर बल दिया जाता है जिससे आय का स्तर दीर्घकाल मे बढे। प्रेरित निवेश द्वारा ही आय एव रोजगार को बढ़ाया जा सकता है। ज्यो-ज्यो आय एव रोजगार का स्तर बढेगा त्यो-त्यो उपभोग स्तर भी बढेगा और मनोवैज्ञानिक नियम लागू होना शुरू होगा।

(10) **मदी की व्याख्या** (Explanation of depression)—दूसरी तरफ, विकसित देशो मे सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति कम रहती है क्योकि ऐसे देशो की आय बहुत

अधिक होती है और उनका उपभोग व्यय अपेक्षाकृत बहुत कम रहता है। अतः बचत का स्तर अधिक रहता है। बचत का स्तर अधिक होने से कुल पूर्ति कुल माग से बढ़ जाती है जिससे अर्थव्यवस्था मे मन्दी और बेरोजगारी की स्थिति बनी रहती है।

(11) **मजदूरी का प्रभाव** (Effect of wage)—मजदूरी की दरो मे परिवर्तन का उपभोग पर सीधा प्रभाव पडता है और मनोवैज्ञानिक नियम लागू होने लग जाता है। जब मजदूरी दरो मे वृद्धि होती है तो श्रमिक बढी हुई आय मे से अधिक खर्च करते हैं। लेकिन यदि कीमत स्तर मे वृद्धि हो जाए तो वास्तविक मजदूरी कम हो जाती है। इसी प्रकार मजदूरी कटौती की अवस्था मे भी उपभोग व्यय घट जाता है।

4 उपभोग फलन के निर्धारक (Determinants of the Consumption Function)

केन्ज ने दो प्रमुख साधन बताए हैं जो कि उपभोग फलन को प्रभावित करते हैं और उसकी ढलान तथा स्थिति को निर्धारित करते हैं। वे इस प्रकार हैं:

(i) व्यक्तिपरक तत्त्व (subjective factors), और

(ii) वस्तुपरक तत्त्व (objective factors)।

व्यक्तिपरक तत्त्व (subjective factors) आर्थिक व्यवस्था के आन्तरिक तत्त्व होते हैं। इनमे मानव प्रकृति की मनोवैज्ञानिक विशिष्टताए, सामाजिक व्यवहार तथा सस्थाए और सामाजिक प्रबंध शामिल हैं। "समय की अल्प-अवधि पर्यन्त उनमे महत्त्व-पूर्ण परिवर्तन होने की सभावना नही होती, सिवाय तब जबकि असामान्य अथवा क्रान्तिकारी हालात हो।" इसलिए वे वक्र C की ढलान तथा स्थिति को निर्धारित करते हैं, जो कि अल्पकाल मे पर्याप्त स्थिर रहता है।

वस्तुपरक तत्त्व (objective factors) आर्थिक व्यवस्था के बहिर्जात (exogenous) अथवा बाहरी होते हैं। इसलिए उनमे तेजी से परिवर्तन हो सकते हैं और वे उपभोग फलन (अर्थात् वक्र C) मे महत्त्वपूर्ण विचलन (shifts) ला सकते हैं।

(i) **उपभोग फलन में व्यक्तिपरक तत्त्व** (Subjective factors in the consumption function)—केन्ज के व्यक्तिपरक तत्त्व मूल रूप से उपभोग फलन मे निहित रहते हैं और उसके रूप अथवा ढलान तथा स्थिति को निर्धारित करते हैं। जैसाकि पहले ही ऊपर कहा जा चुका है, व्यक्तिपरक तत्त्व हैं—मानव प्रकृति की मनोवैज्ञानिक विशिष्टताए, सामाजिक व्यवहार तथा सस्थाए, विशेष रूप से मजदूरी तथा लाभाश भुगतानो और अवितरित आमदनियो के सम्बन्ध मे व्यापारिक फर्मों के व्यवहार ढाचे और आय के वितरण को प्रभावित करने वाले सामाजिक प्रबन्ध।

(1) **व्यक्तिगत प्रयोजन** (Individual motives)—सबसे पहले आठ प्रयोजन आते हैं, जो 'व्यक्तियो को अपनी आय मे से व्यय करने से रोकते हैं।' वे इस प्रकार हैं:

(i) अदृष्टपूर्व (unforeseen) आकस्मिक व्यय के लिए आरक्षणों (reserve) के निर्माण की इच्छा,

(ii) प्रत्याशित भावी आवश्यकताओ अर्थात् वृद्धावस्था, बीमारी आदि के लिए व्यवस्था करने की इच्छा,

(iii) ब्याज तथा मूल्य वृद्धि के रूप मे बढ़ी हुई भावी आय का उपभोग करने की इच्छा,

(iv) जीवन-स्तर बढ़ाने के उद्देश्य से धीरे-धीरे बढ़ते व्यय का आनन्द लेने की इच्छा,

(v) काम-काज करने के लिए स्वतन्त्रता तथा शक्ति की भावना का आनन्द लेने की इच्छा,

(vi) सट्टा अथवा अन्य व्यवसाय परियोजनाओ को चलाने के लिए सफल योजना-सचालन शक्ति प्राप्त करने की इच्छा,

(vii) सम्पत्ति छोड कर मरने की इच्छा,

(viii) कजूसी की सहज प्रवृत्ति को सतुष्ट करने की इच्छा।

(2) व्यवसाय प्रयोजन (Business motives)—व्यक्तिपरक तत्वो पर व्यवसायिक निगमो तथा सरकारो के व्यवहार का भी प्रभाव पडता है। केन्ज ने व्यावसायिक निगमो तथा सरकारो के द्वारा किए जाने वाले सचय के लिए चार प्रयोजन गिनाए हैं :

(i) उद्यम (enterprise) अर्थात् बड़े-बड़े कार्य करने और विस्तार की लालसा,

(ii) तरलता (liquidity) अर्थात् आपातकालीन स्थितियो तथा कठिनाइयो का सफलतापूर्वक सामना करने की इच्छा,

(iii) आय-वृद्धि (income raise) अर्थात् अपेक्षाकृत अधिक आय प्राप्त करने तथा सफल प्रबध प्रदर्शित करने की इच्छा,

(iv) वित्तीय दूरदर्शिता (financial prudence)— अर्थात् मूल्यह्रास तथा अप्रचलन (obsolescence) को पाटने के लिए समुचित वित्तीय साधन प्रदान करने तथा ऋण चुकाने की इच्छा।

ये साधन अल्पकाल के दौरान स्थिर रहते हैं और उपभोग फलन को स्थिर रखते हैं।

(ii) वस्तुपरक तत्व (Objective factors)—उन वस्तुपरक तत्वो पर नीचे विचार किया जा रहा है जोकि तेजी से परिवर्तित होते हैं और उपभोग मे महत्त्वपूर्ण विचलन (shifts) लाते हैं। पहले हम उन तत्वो को लेते हैं, जो केन्ज ने दिए हैं।

(1) मजदूरी स्तर पर परिवर्तन (Changes in the wage level)—यदि मजदूरी दरें बढ जाए, तो उपभोग फलन ऊपर को सरक जाएगा। क्योकि श्रमिको की उपभोग की प्रवृत्ति ऊची होती है, इसलिए वे अपनी बढ़ी हुई आय मे से अधिक व्यय करते हैं और इससे वक्र C ऊपर को सरक जाता है। पर, यदि मजदूरी दरो में वृद्धि के साथ-साथ कीमत-स्तर मे समानुपातिक से अधिक वृद्धि हो जाए, तो वास्तविक मजदूरी दर घट जाएगी और इसमे वक्र C नीचे को सरक जाएगा। मजदूरी दर मे कटौती करने से भी समाज का उपभोग फलन कम हो जाएगा क्योकि आय, रोजगार तथा उत्पादन गिर जाएगा। इससे वक्र नीचे को सरक जाएगा।

(2) अप्रत्याशित लाभ अथवा हानियां (Windfall gains or losses)—स्टॉक मार्किट में अप्रत्याशित परिवर्तनों के परिणामस्वरूप होने वाले लाभों अथवा हानियों से उपभोग फलन ऊपर को या नीचे को सरक जाता है। उदाहरणार्थ, 1925 के बाद, अमरीकी अर्थव्यवस्था में स्टॉक मार्किट में तेजी के कारण आश्चर्यजनक अप्रत्याशित लाभों का परिणाम यह हुआ कि स्टॉक होल्डरों का उपभोग व्यय लगभग बढ़ी हुई आय के अनुपात में बढ़ा और परिणामतः उपभोग फलन ऊपर को सरक गया। इसी प्रकार, स्टॉक मार्किट में अप्रत्याशित हानियां C वक्र को नीचे की ओर सरका देती हैं।

(3) राजकोषीय नीति में परिवर्तन (Changes in fiscal policy)—राजकोषीय नीति में कराधान तथा सार्वजनिक व्यय के रूप में होने वाले परिवर्तन उपभोग फलन को प्रभावित करते हैं। भारी वस्तु-कराधान लोगों की प्रयोज्य आय (disposable income) को घटाकर उपभोग फलन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान वास्तव में यही हुआ था, जबकि भारी अप्रत्यक्ष कराधान, राशनिंग तथा कीमत-नियंत्रणों के कारण उपभोग फलन ऊपर की ओर सरक गया था, दूसरी ओर, कल्याण-कारी प्रोग्रामों पर सार्वजनिक व्यय की नीति के साथ-साथ आरोही कराधान की नीति आय के वितरण में परिवर्तन करके उपभोग फलन को ऊपर की ओर सरका देती है।

(4) प्रत्याशाओं में परिवर्तन (Changes in expectations)—भावी प्रत्याशाओं में परिवर्तन भी उपभोग प्रवृत्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। यदि निकट भविष्य में युद्ध शुरू होने का भय हो, तो भावी दुर्लभता तथा बढ़ती कीमतों की प्रत्याशा से लोग टिकाऊ तथा अर्द्ध-टिकाऊ वस्तुओं का संग्रह शुरू कर देते हैं। परिणामतः लोग अपनी चालू आवश्यकताओं से बहुत अधिक क्रय करते हैं और उपभोग फलन ऊपर को सरक जाता है। इसके विपरीत, यदि भविष्य में कीमतों के गिरने की संभावना हो, तो लोग केवल वही वस्तुएं खरीदेंगे जो बहुत आवश्यक होंगी। इसके परिणामस्वरूप उपभोग मांग गिर जाएगी और उपभोग फलन नीचे की ओर सरक जाएगा।

(5) ब्याज की दर में परिवर्तन (Changes in the rate of interest)—ब्याज की मार्किट दर में ठोस परिवर्तन उपभोग फलन को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने का महत्वपूर्ण साधन है। ब्याज की दर उपभोग फलन को कई तरह प्रभावित कर सकती है। ब्याज की दर में वृद्धि के परिणामस्वरूप ऋण-पत्रों की कीमत गिर जाएगी, जो बॉंड होल्डरों की उपभोग की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करेगी। इसका यह प्रभाव भी हो सकता है कि एक प्रकार की परिसम्पत्ति किसी दूसरी के लिए स्थानापन्न कर दी जाय। ऋण-पत्रों में निवेश की बजाय लोगों को बचत करने का प्रोत्साहन मिले। यदि किराया खरीद (hire-purchase) पद्धति पर वे रेफ्रीजरेटर, स्कूटर इत्यादि टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं का क्रय कर रहे हैं, तो ब्याज की दर बढ़ने पर वे अपने क्रय स्थगित कर देंगे। उन्हें किस्तों में अधिक भुगतान करना पड़ेगा और इस प्रकार उनका उपभोग फलन नीचे को सरक जाएगा। केन्ज ने लिखा है "दीर्घ अवधि पर्यन्त, ब्याज की दर में ठोस परिवर्तन संभवतः सामाजिक स्वभावों को पर्याप्त मात्रा में बदल देते हैं।"

इन पाच तत्त्वो के अतिरिक्त, केन्ज ने मूल्यह्रास के सम्बन्ध मे लेखांकन कार्य प्रणाली (accounting practice) मे परिवर्तनो की भी गणना की है। इस साधन को हैन्सन ने अस्वीकार कर दिया है, जिसका मत है कि 'यह ऐसा साधन नही है जिसके सम्बन्ध मे यह समझा जाए कि वह अल्पकाल मे तीव्र गति से बदल जाता है और उसे यहा शामिल करना केन्ज की भूल थी।" जो हो, हम यहा केन्ज के अनुयायियो द्वारा गिनाए गए कुछ अन्य वस्तुपरक घटको का उल्लेख कर रहे हैं।

(6) निगमों की वित्तीय नीतियां (Financial policies of corporations)—आय प्रतिधारण (income retentio), लाभांश भुगतानो तथा पुनर्निवेशो के सबध मे नियमो की वित्तीय नीतियां उपभोग फलन को कई तरह प्रभावित करती हैं। यदि निगम आरक्षणो (reserves) के रूप मे अधिक मुद्रा रखेंगे, तो शेयर-होल्डरो को किए जाने वाले भुगतान कम होगे। इससे शेयर-होल्डरो की आय घट जाएगी और उपभोग फलन नीचे की ओर सरक जाएगा। फिर, "निगम लाभो तथा लाभाश भुगतानो मे अन्तराल (lag) उपभोग पुनर्व्यय तथा आय प्रजनन की गुणक प्रक्रिया को धीमा कर देता है। ' क्योकि निगम बचतें—व्यक्तिगत निगमो के दृष्टिकोण से वे चाहे जितनी भी दूरदर्शी हो—उपभोग व्ययो को केवल घटाती ही नही बल्कि उसे, जैसाकि केन्ज ने कहा है, "और अधिक निवेश ढूढ निकालने को एकदम व्यर्थ भी बना सकती हैं।"

(7) तरल परिसम्पत्ति धारण (Holding of liquid assets)—उपभोक्ताओ के पास नकदी शेषो, बचत खातो तथा सरकारी ऋण-पत्रो के रूप मे तरल परिसम्पत्ति की मात्रा भी उपभोग फलन को प्रभावित करती है। यदि लोगो के पास तरल-परिसम्पत्तिया होगी तो उनकी प्रवृत्ति अपनी चालू आय मे से अधिक व्यय करने की होगी और उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ जाएगी, और विलोमश भी। पीगू का विचार था कि मुद्रा मजदूरी मे कटौती होने पर कीमतें गिर जाती हैं और ऐसी परिसम्पत्तियो का वास्तविक मूल्य बढ़ जाता है। इससे उपभोग फलन ऊपर की ओर सरकने लगता है। इसे पीगू प्रभाव कहते हैं। परन्तु यह आवश्यक नही कि मुद्रा-मजदूरी कटौती के मार्ग से ही पीगू प्रभाव हो इस प्रकार की सचित बचतो के वास्तविक मूल्य मे सीधे, कीमतो मे कमी होने से, वृद्धि होती है और कीमत-स्फीति के माध्यम से उनका मूल्य घट जाता है। पहली अवस्था मे परिसम्पत्ति-धारी उपभोग पर अधिक व्यय करते हैं और दूसरी अवस्था मे कम। पर यदि कम-आय वर्ग के व्यक्तियो के पास ऐसी तरल परिसम्पत्तिया होगी तो उपभोग फलन ऊपर की ओर सरकेगा, क्योकि उनकी उपभोग की प्रवृत्ति ऊँची होती है।

(8) आय का वितरण (Distribution of income)—समाज मे आय का वितरण भी उपभोग फलन का रूप निर्धारित करता है। यदि धनियो तथा गरीबो के बीच आय वितरण मे अधिक असमानताएं हो तो उपभोग फलन कम रहता है, क्योकि धनियो की तो उपभोग की प्रवृत्ति ही कम होती है और गरीब बहुत कम आय के कारण उपभोग पर अधिक व्यय नहीं कर पाते। यदि आरोही कराधान तथा अन्य राजकोषीय विधियो के माध्यम से आय तथा धन की असमानताओ को कम कर दिया जाए, तो उपभोग फलन

ऊपर को सरक जाएगा क्योंकि गरीबों की आय में वृद्धि होने पर उनका उपभोग व्यय धनियों के व्यय में होने वाली कमी की अपेक्षा अधिक बढ़ेगा। 'फिर यदि राजनैतिक अथवा मानवीय कारणों से आय के वितरण में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया जाए तो उपभोक्ताओं के स्वभावों में ऐसे परिवर्तन हो सकते हैं जो समस्त उपभोग फलन की स्थिति अथवा रूप को सम्भवतः रूप में बदल सकते हैं।

(9) **बचत-विषयक मनोवृत्ति** (Attitude toward saving) —बचत के प्रति लोगों की मनोवृत्ति भी उपभोग फलन को प्रभावित करती है। यदि वे वर्तमान उपभोग की अपेक्षा भावी उपभोग को अधिक महत्त्व देते हैं, तो वे अधिक बचत करेंगे और उपभोग फलन नीचे को सरक जाएगा। उपभोग फलन को नीचा रखने के लिए अनिवार्य जीवन बीमा, भविष्यनिधि कोष तथा अन्य सामाजिक बीमा स्कीमों के माध्यम से राज्य इस प्रवृत्ति को और सबल बना सकता है। अधिक बचतकारी अर्थव्यवस्था में उपभोग फलन कम रहता है।

(10) **ड्यूसनबरी सिद्धान्त** (Duesenberry hypothesis) – जेम्स ड्यूसनबरी ने उपभोग फलन को प्रभावित करने वाले सापेक्ष आय (relative income) सिद्धान्त की प्रस्थापना की है। इस सिद्धान्त का प्रथम भाग प्रदर्शनकारी प्रभाव से सम्बन्ध रखता है। मनुष्यों की यह प्रवृत्ति होती है कि वे न केवल 'अपने से अधिक धनी व्यक्तियों के स्तर पर' रहना चाहते हैं, बल्कि उनसे भी आगे बढ़ जाना चाहते हैं अर्थात् प्रवृत्ति यह रहती है कि निरन्तर अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे उपभोग स्तर की ओर बढ़ा जाए और अपने धनी पड़ोसियों के उपभोग आदर्शों का अनुकरण किया जाए, बल्कि उनसे भी आगे बढ़ा जाए। अतः उपभोग अधिमान परस्पर निर्भर रहते हैं। इस प्रकार प्रदर्शनकारी प्रभाव उपभोग फलन को ऊपर ले जाता है। दूसरा भाग 'पिछली उच्चतम आय की परिकल्पना' (past peak of income hypothesis) है, जो बचत में अल्पकालीन उतार-चढ़ावों की व्याख्या करता है। कोई समाज जब एक बार एक विशेष आय स्तर तथा जीवन स्तर पर पहुँच जाता है, तो वह मंदी के दौरान उपभोग के अपेक्षाकृत नीचे स्तर पर नहीं उतरना चाहता। वह बचतों में कमी करके, और विद्यमान उपभोग का स्तर कायम रखा जाता है। इसलिए अल्पकाल के दौरान उपभोग फलन में कोई विवर्तन (shift) नहीं होता। जब अल्पकाल के दौरान आय बढ़ती या घटती है तो उसी उपभोग फलन पर केवल ऊपर या नीचे को गति होती है। दी. दीर्घकाल में उपभोग फलन यथा-स्थिति ऊपर या नीचे को सरकने लगता है।

प्रोफेसर हैन्सन के शब्दों में यह निष्कर्ष निकलता है कि 'कुछ वस्तुपरक घटकों में होने वाले अत्यन्त असामान्य अथवा क्रान्तिकारी परिवर्तनों को छोड़कर—युद्ध, भूकम्प, हड़तालों, क्रान्तियों इत्यादि जैसी—असाधारण घटनाओं द्वारा उत्पन्न प्रत्याशाओं, कराधान ढाँचे में किए गए बड़े परिवर्तनों, अप्रत्याशित लाभों अथवा हानियों को इस प्रकार के प्रबल परिवर्तनों को छोड़कर 'किसी दी हुई आय में से उपभोग प्रवृत्ति' में होने वाला विचलन केवल गौण महत्त्व ही रखता है।"

(5) उपभोग प्रवृत्ति बढाने के उपाय (Measures to Raise the Propensity to Consume)

क्योंकि समाज मे कुछ मनोवैज्ञानिक तथा संस्थानिक कारण विद्यमान रहते हैं, इसलिए अल्पकाल के दौरान उपभोग की प्रवृत्ति स्थिर रहती है। परन्तु "रोजगार निवेश मे वृद्धि के साथ-साथ ही बढ सकता है, बशर्ते कि निश्चय से उपभोग प्रवृत्ति मे परिवर्तन न हो," यह बात केन्ज ने लक्ष्य की है। इसलिए आवश्यक है कि उन विधियों का अध्ययन किया जाए, जोकि उपभोग प्रवृत्ति को बढाती हैं।

(1) **आय का पुनर्वितरण** (Income redistribution)—गरीबो के हक मे आय का पुनर्वितरण उपभोग प्रवृत्ति मे वृद्धि करता है क्योंक धनियो की तुलना मे निम्न-आय वर्गों का उपभोग अधिक होता है। इसलिए धनियो से आय तथा धन गरीबो को हस्तातरित करके उपभोग प्रवृत्ति बढाई जा सकती है। अपनी कराधान तथा सार्वजनिक व्यय सम्बन्धी नीतियो के माध्यम से राज्य इस काम को कर सकता है। आय, व्यय, जागीरो, पूजी-लाभो इत्यादि पर आरोही कर लगा कर, गरीबो को अधिक सुविधाए प्रदान करने के लिए राज्य अपेक्षाकृत अधिक राजस्व जुटा सकता है। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार के कराधान से निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव न पडे।

दूसरे, न्यायसगत सार्वजनिक व्यय प्रोग्राम के माध्यम से राज्य गरीबो की आय बढा सकता है। सार्वजनिक निर्माण कार्य शुरू करके बेरोजगारो को अधिक रोजगार के अवसर प्रदान कर राज्य आय को बढा सकता है। मुफ्त शिक्षा, मुफ्त दोपहर के खाने, मुफ्त स्वास्थ्य सेवाओ, कम किराए के मकानो आदि की व्यवस्था श्रमिको की आय बढाने मे अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होती है और उनके उपभोग व्यय को बढाती है। राज्य द्वारा किए गए इस प्रकार के सामाजिक व्यय भी श्रमिको की दक्षता बढाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप आगे उनकी मजदूरी मे वृद्धि होती है।

(2) **वर्धित मजदूरी** (Increased wages)—यदि मजदूरी बढा दी जाए, तो उपभोग फलन को ऊपर की ओर सरकाने मे उसका प्रत्यक्ष प्रभाव पडेगा। परन्तु ऊची मजदूरी की नीति अर्थव्यवस्था मे रोजगार के स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है क्योंकि अल्पकाल मे श्रम की सीमान्त आगम (revenue) उत्पादकता बढाना सम्भव नही है। यदि ऐसी स्थिति मे मजदूरी बढा दी जाए, तो लागतें बढ जाएगी और सभावना यह है कि अर्थव्यवस्था को बेरोजगारी का सामना करना पडेगा क्योंकि श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता मे तो वृद्धि होगी नही। इसलिए दीर्घकालीन मजदूरी नीति ऐसी होनी चाहिए कि श्रम उत्पादकता मे वृद्धि के साथ-साथ मजदूरी भी बढे। इससे अर्थ-व्यवस्था मे उपभोग का स्तर बढने लगेगा।

(3) **सामाजिक सुरक्षा विधियाँ** (Social security measures)—सामाजिक सुरक्षा विधियाँ दीर्घकाल मे उपभोग फलन बढाती हैं। बेरोजगारी सहायता, चिकित्सा सुविधाओ, वृद्धावस्था-पेन्शन इत्यादि के लिए की गई व्यवस्थाए भावी अनिश्चितताओ को दूर करती हैं और लोगो की बचत करने की प्रवृत्ति कम हो जाती है। इसलिए राज्य

को चाहिए कि लोगो की उपभोग प्रवृत्ति बढ़ाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक सामाजिक सुरक्षा की सुविधाए प्रदान करे। बेरोजगारी सहायता तथा वृद्धावस्था-पेंशन मन्दी के दौरान भी ऊंचा उपभोग व्यय बनाये रखती हैं और इस प्रकार अर्थव्यवस्था मे पुनरुत्थान (revival) लाने मे सहायक होती हैं। इसलिए सामाजिक सुरक्षा की विधियां समृद्धि तथा मन्दी—दोनो ही—की अवधियो मे उपभोग फलन बढाती हैं।

(4) ऋण सुविधाए (Credit facilities)—सस्ती तथा सुगम ऋण सुविधाए उपभोग फलन को ऊपर ले जाने मे सहायक होती हैं। जब लोगो को ऋण आसानी से तथा सस्ते प्राप्त हो सकते हैं, तो वे स्कूटर, टैलीविजन, रैफीजरेटर आदि टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुए अधिक खरीदते हैं। इससे उपभोग की प्रवृत्ति बढती है। इन चीजो को किस्तो पर अथवा किश्त-खरीद प्रणाली पर खरीदने का भी वही प्रभाव होता है। इस प्रकार, ऋण सुविधाए टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओ की उपभोग प्रवृत्ति बढाने में कई प्रकार से सहायक होती हैं।

(5) विज्ञापन (Advertisement)—आजकल उपभोग प्रवृत्ति बढाने मे विज्ञापन एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपाय है। रेडियो, टैलीविजन, सिनेमा, समाचारपत्र इत्यादि विविध माध्यमो से विज्ञापन तथा प्रचार उपभोक्ताओ को वस्तुओ के प्रयोगो से परिचित कराते हैं। उपभोक्ता उनकी ओर आकर्षित होते हैं और उन्हे खरीदने लगते हैं। इससे उनकी उपभोग प्रवृत्ति बढती है।

(6) परिवहन के साधनों का विकास (Development of the means of transport)—परिवहन के सुविकसित साधन भी उपभोग फलन को ऊपर ले जाते हैं। वस्तुओ को निर्माण केन्द्रो से देश के विभिन्न भागो मे पहुचाना आसान हो जाता है। मार्किट का परिमाण बढता है। परिवहन लागतो के घटने से कीमतें भी गिर सकती हैं। लोगो को अपने-अपने शहरो मे चीजें मिलने लगती हैं। इन सब की प्रवृत्ति उपभोग फलन को बढाना है।

(7) शहरीकरण (Urbanisation)—उपर्युक्त का स्वाभाविक परिणाम यह है कि शहरीकरण उपभोग प्रवृत्ति बढाने मे सहायक होता है। जब शहरीकरण होता है, तो लोग ग्रामीण क्षेत्रो से नगर-क्षेत्रो मे चले जाते हैं। वे नई वस्तुओ से चकाचौंध होते हैं और प्रदर्शनकारी प्रभाव से प्रभावित होते हैं। यह उपभोग फलन को ऊपर ले जाता है। इसलिए राज्य को चाहिए कि उपभोग फलन को बढाने के उद्देश्य से सुचिन्तित शहरीकरण की नीति अपनाए।

प्रश्न

1. उपभोग प्रवृत्ति की अवधारणा की व्याख्या कीजिए और यह व्यक्त कीजिए कि यह रोजगार के सिद्धान्त मे कैसे महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।
2. केन्ज के मनोवैज्ञानिक नियम की व्याख्या कीजिए तथा इसके निहित तत्त्वो की विवेचना कीजिए।

अध्याय-56
निवेश फलन
(THE INVESTMENT FUNCTION)

1. निवेश और पूंजी का अर्थ
(MEANING OF INVESTMENT AND CAPITAL)

साधारण बोलचाल की भाषा में निवेश का अर्थ है उन शेयरों, स्टॉक, ऋण-पत्रों तथा प्रतिभूतियों को खरीदना, जो पहले से स्टॉक-मार्किट में विद्यमान हों। परन्तु यह वास्तविक निवेश नहीं है क्योंकि यह तो वर्तमान परिसम्पत्तियों का हस्तान्तरण मात्र है। केन्ज़वादी शब्दावली में, विनियोजन का सम्बंध उस वास्तविक विनियोजन से है, जो पूंजी-पदार्थों में वृद्धि करे। यह पूंजी वस्तुओं के उत्पादन तथा क्रय को बढ़ाकर आय तथा उत्पादन के स्तर में वृद्धि करता है। निवेश में, इस प्रकार, नए प्लांट, बांध, सड़कों, बिल्डिंगों इत्यादि जैसे सार्वजनिक निर्माण कार्य, शुद्ध विदेशी निवेश, मालसूचिया और नई कम्पनियों के स्टॉक तथा शेयर, शामिल रहते हैं। जोन रॉबिन्सन के शब्दों में, "पूंजी निवेश से तात्पर्य है पूंजी में वृद्धि, जो तब होती है जबकि कोई नया मकान बनाया जाए अथवा कोई नई फैक्टरी लगाई जाए। निवेश का अर्थ है वस्तुओं के वर्तमान स्टॉक में वृद्धि करना।"

दूसरी ओर, पूंजी का सम्बन्ध वास्तविक परिसम्पत्तियों जैसे फैक्टरियों, प्लांटों, उपस्करों (equipment), और निर्मित तथा अर्द्धनिर्मित वस्तुओं की मालसूचियों से है। यह कोई पहले से उत्पादित आगत (input) होती है जो अन्य वस्तुएं उत्पादित करने के लिए उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग की जा सकती हैं। एक अर्थव्यवस्था में उपलब्ध पूंजी की मात्रा, पूंजी का स्टॉक होता है। अतः पूंजी एक स्टॉक धारणा है।

समय की एक अवधि के दौरान, वास्तविक पूंजी परिसम्पत्तियों का उत्पादन या प्राप्ति निवेश होता है। उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि एक फर्म की पूंजी परिसम्पत्तियां 31 मार्च 1987 को रु० 100 करोड़ हैं और यह 1987-88 वर्ष में रु० 10 करोड़ की दर से निवेश करती है। अगले वर्ष के अन्त में (31 मार्च 1988) इसकी कुल पूंजी रु० 110 करोड़ होगी। प्रतीकात्मक रूप में, मान लीजिए कि I निवेश है और K वर्ष t में पूंजी है, तब $I_t = K_t - K_{t-1}$

पूंजी और निवेश एक-दूसरे के साथ शुद्ध निवेश द्वारा सम्बद्ध होते हैं। एक वर्ष में नई पूंजी परिसम्पत्तियों पर किया गया कुल व्यय सकल निवेश होता है। परन्तु प्रत्येक वर्ष कुछ पूंजी स्टॉक टूट-फूट जाता है और मूल्यह्रास एवं अप्रचलन के लिए खप जाता है। शुद्ध (net) निवेश = सकल (gross) निवेश घटा मूल्यह्रास और अप्रचलन खर्च या प्रति-

स्थापन (replacement) निवेश। यह अर्थव्यवस्था के वर्तमान पूजी स्टॉक मे शुद्ध जमा होना है। यदि सकल निवेश बराबर है मूल्यह्रास के तो शुद्ध निवेश शून्य होता है तथा अर्थव्यवस्था के पूजी स्टॉक मे कोई वृद्धि नही होती है। यदि सकल निवेश मूल्यह्रास से कम है तो अर्थव्यवस्था मे विनिवेश (disinvestment) होता है तथा पूजी स्टॉक कम हो जाता है। अत अर्थव्यवस्था के वास्तविक स्टॉक मे वृद्धि के लिए, सकल निवेश अवश्य मूल्यह्रास से अधिक होना चाहिए, अर्थात् शुद्ध निवेश होना चाहिए।

निवेश के प्रकार प्रेरित और स्वायत्त (Types of Investment Induced and Autonomous)

निवेश दो प्रकार का होता है

(1) प्रेरित निवेश (Induced investment)—वास्तविक निवेश प्रेरित हो सकता है। प्रेरित निवेश लाभ अथवा आय प्रयोजित होता है।[1] लाभों को प्रभावित करने वाले साधन—जैसे कि कीमतें, मजदूरी तथा ब्याज मे परिवर्तन—'प्रेरित-निवेश' पर प्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार, माग भी इसे प्रभावित करती है। जब आय बढती है तो उपभोग माग भी बढती है और इसे पूरा करने के लिए निवेश बढता है। अन्तिम विश्लेषण मे, प्रेरित-निवेश आय का फलन होता है, अर्थात् $I=f(Y)$। यह आय लोचात्मक होता है। यह आय मे वृद्धि या पतन के साथ बढता या घटता है, जैसाकि चित्र 56 1 मे दिखाया गया है। I_1I_1 निवेश वक्र है, जो आय के विविध स्तरो पर प्रेरित-निवेश को व्यक्त करता है। OY_1 आय पर प्रेरित निवेश शून्य है। जब आय बढकर OY_3 हो जाती है तो प्रेरित निवेश I_3/Y_3 है। जब आय गिरकर Y_2O हो जाती है तो प्रेरित निवेश को भी घटाकर I_2Y_2 पर ले आती है।
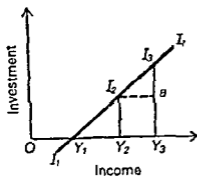
चित्र 56 1

प्रेरित-निवेश को आगे दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है: औसत निवेश प्रवृत्ति और सीमान्त निवेश प्रवृत्ति।

(i) औसत निवेश प्रवृत्ति (Average propensity to invest)—निवेश का आय मे अनुपात औसत निवेश प्रवृत्ति कहलाता है, अर्थात् I/Y है। यदि आय रु० 40 करोड और निवेश रु० 4 करोड है, तो $I/Y = 4/40 = 0\ 1$. चित्र 11.1 की भाषा में, OY_3 आय स्तर पर औसत निवेश प्रवृत्ति I_3Y_3/OY_3 है।

(ii) सीमान्त निवेश प्रवृत्ति (Marginal propensity to invest)—निवेश मे

[1] Induced investment is income or profit motivated.

परिवर्तन का आय मे परिवर्तन से अनुपात सीमान्त निवेश प्रवृत्ति कहलाता है, अर्थात् $\Delta I/\Delta Y$ है। यदि निवेश मे परिवर्तन (ΔI) = रु० 2 करोड और आय मे परिवर्तन (ΔY) रु० 10 करोड, तो $\Delta I/\Delta Y = 2/10 = 0{\cdot}2$ चित्र 11 1' में, $\Delta I/\Delta Y = I_2 a/Y_1 Y_2$।

(2) स्वायत्त निवश (Autonomous investment)—स्वायत्त निवेश आय के स्तर से स्वतन्त्र होता है और इस प्रकार आय बेलोच होता है। इसे बहिर्जात (exogenous) घटक—जैसे कि नवप्रवर्तन, आविष्कार, जनसख्या तथा श्रम शक्ति की वृद्धि, अनुसधान, सामाजिक तथा कानूनी सस्थाए, मौसम परिवर्तन, युद्ध, क्रान्ति इत्यादि प्रभावित करते हैं। परन्तु माग मे परिवर्तन से यह नहीं प्रभावित होता। बल्कि यह माग को प्रभावित करता है। आर्थिक तथा सामाजिक उपरिव्ययो मे सरकार अथवा निजी उद्यम द्वारा किया गया निवेश स्वायत्त होता है। बिल्डिग, बाध, सडको, नहरो, स्कूलो, हस्पतालो इत्यादि पर किया गया व्यय इस प्रकार के निवेश मे शामिल रहता है। क्योकि इन परियोजनाओ मे निवेश सामान्य रूप से सार्वजनिक नीति से संबद्ध रहता है, इसलिए स्वायत्त निवेश को सार्वजनिक निवेश समझा जाता है। दीर्घकाल मे, सब प्रकार का निजी निवेश स्वायत्त बन जाता है क्योकि उसे बहिर्जात घटक प्रभावित करते हैं। आरेखीय रूप मे, चित्र 56 2 मे, स्वायत्त निवेश को क्षैतिज अक्ष के समानान्तर वक्र $I_1 I'$ के रूप मे दिखाया गया है। यह प्रकट करता है कि आय के सब स्तरो पर निवेश की मात्रा OI_0 स्थिर रहती है। वक्र का ऊपर की ओर सरक कर $I_2 I''$ पर चले जाना, आय के सब स्तरो पर OI_2 को स्थिर दर से, निवेश के निरन्तर प्रवाह को प्रकट करता है। पर आय निर्धारण के लिए 45° की रेखा वाले चित्र मे, स्वायत्त वक्र का वक्र C पर अध्यारोपित (superimposed) किया जाता है।
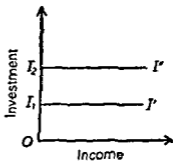
चित्र 56 2

निवेश के निर्धारक (Determinants of Investment)

किसी नई पूजी परिसम्पत्ति मे निवेश करने का निर्णय इस बात पर निर्भर करता है कि क्या नई पूजी पर प्रत्याशित प्रतिफल की दर इस परिसम्पत्ति को खरीदने के लिए जो निधिया चाहिए उन पर दी गई ब्याज दर से अधिक या कम या बराबर है। जब प्रत्याशित प्रतिफल की दर ब्याज दर से अधिक होती है तो नई पूजी परिसम्पत्तियो को प्राप्त करने के लिए निवेश किया जाएगा।

वास्तव मे किसी भी निवेश निर्णय को लेते समय तीन कारकों को लिया जाता है। वे हैं: पूजी परिसम्पत्ति की लागत, इसके जीवनकाल मे प्रत्याशित प्रतिफल की दर, तथा

किया जा सकता है। पूंजी की सीमान्त उत्पादकता तथा ब्याज की दर की तुलना वास्तव में पूंजी सम्पत्ति की पूर्ति कीमत तथा उसकी माग के बीच तुलना है। पूर्ति कीमत पूंजी सम्पत्ति की मूल लागत होती है जबकि माग कीमत "चालू ब्याज दर पर बट्टा की गई प्रत्याशित भावी आयो का जोड है।"[5] यह मान लिया जाता है प्रत्याशित आय (भावी) 2000 रु० है और पूर्ति कीमत 20,000 रु० तो पूंजी की सीमान्त उत्पादकता,

$$= \frac{2000}{20,000} \times \frac{100}{1} = 10\%$$

अत पूंजी की सीमान्त उत्पादकता को प्रतिशत मे लेते हैं और यह किसी पूंजी परिसम्पत्ति पर दिए हुए निश्चित निवेश से प्रत्याशित लाभ की प्रतिशतता होती है। उदाहरणार्थ, यदि पूर्ति कीमत 1000 रु० है और उसका समय सिर्फ दो वर्ष मान लिया जाता है जबकि प्रथम वर्ष मे प्रत्याशित आय 550 रु० और द्वितीय वर्ष मे 605 रु० आय प्राप्त होने की आशा है, और पूंजी की सीमान्त उत्पादकता 10 प्रतिशत है

$$S_p = \frac{R_1}{(1+i)} + \frac{R_2}{(1+i)^2}$$

$$1000 \text{ रु०} = \frac{550}{(1.10)} + \frac{605}{(1.10)^2}$$

$$1000 \text{ रु०} = 500 + 500$$

इस प्रकार $R_1/(1+i)$ पूंजी परिसम्पत्ति का वर्तमान मूल्य (present value) है। यह ब्याज दर पर निर्भर करता है जिस पर बट्टा किया जाता है। मान लीजिए कि एक मशीन से एक वर्ष मे 100 रु० प्राप्त करने की आशा है और ब्याज दर 5 प्रतिशत प्रति वर्ष है। इस मशीन का वर्तमान मूल्य (PV) है $R_1/(1+i)$ - 100/ (1.05) = 95.24 रु०। यदि मशीन से 100 रु० दो वर्ष बाद प्राप्त करने आशा हो तो उसका वर्तमान मूल्य है 100/ (1.05)^2 = 90.70 रु०। एक पूंजी परिसम्पत्ति का वर्तमान मूल्य ब्याज दर से विपरीत संबंध रखता है। ब्याज दर कम होने पर वर्तमान मूल्य अधिक होगा तथा ब्याज दर अधिक होने पर वर्तमान मूल्य कम होगा। उदाहरणार्थ, यदि ब्याज दर 5 प्रतिशत है तो एक परिसम्पत्ति का वर्तमान मूल्य रु० 100 एक वर्ष के लिए 95.24 रु० होगा, 7 प्रतिशत पर 93.45 रु० और 10 प्रतिशत पर 90.91 रु० होगा।

वास्तव मे MEC एक नए पूंजी पदार्थ की लागत पर प्रत्याशित प्रतिफल की दर होती है। यह जानने के लिए कि क्या किसी पूंजी पदार्थ में निवेश करना लाभदायक है, यह आवश्यक होता है कि उस पूंजी परिसम्पत्ति के वर्तमान मूल्य को उसकी लागत या पूर्ति कीमत से तुलना की जाए। यदि उसका वर्तमान मूल्य उसकी खरीदने की लागत से अधिक होता है तो उसको खरीदना लाभदायक है। इसके विपरीत यदि उसका वर्तमान मूल्य उसकी लागत से कम है तो इस पूंजी पदार्थ में निवेश करने से कोई लाभ न होगा।

[5]It is the sum of expected future yields discounted at the current rate of interest

जब MEC की ब्याज की बाजार दर से तुलना की जाए तो यही परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। यदि किसी पूंजी परिसम्पत्ति की MEC ब्याज की बाजार दर से अधिक होती है तो उस पूंजी परिसम्पत्ति पर निवेश करना लाभदायक होता है, और विलोमशः। यदि ब्याज की बाजार दर पूंजी परिसम्पत्ति की MEC के बराबर होती है तो फर्म इष्टतम पूंजी स्टॉक रखती है। यदि MEC ब्याज दर से अधिक होती है तो फर्म की प्रवृत्ति निधियों को उधार लेने की होगी ताकि वह नई पूंजी परिसम्पत्तियों में निवेश कर सके। यदि MEC ब्याज दर से कम होती है तो कोई भी फर्म पूंजी परिसम्पत्तियों में निवेश करने के लिए उधार नहीं लेगी। अतः एक फर्म के लिए इष्टतम पूंजी स्टॉक रखने के लिए संतुलन अवस्था यह है जहां MEC ब्याज दर के बराबर होती है। MEC और ब्याज दर में कोई असंतुलन पूंजी स्टॉक में परिवर्तन लाकर दूर किया जा सकता है या MEC में या ब्याज दर में या दोनों में। क्योंकि पूंजी स्टॉक धीरे-धीरे बदलता है इसलिए संतुलन लाने के लिए ब्याज दर में परिवर्तन अधिक महत्त्वपूर्ण है। ऊपर के तर्क जो एक फर्म पर लागू किए गए हैं समान रूप में एक अर्थव्यवस्था पर भी लागू होते हैं।

चित्र 56.3 एक अर्थव्यवस्था का MEC वक्र दर्शाता है। इसकी ऋणात्मक ढलान (बाएं से दाएं नीचे की ओर) है जो यह व्यक्त करती है कि ऊंची MEC पर कम पूंजी स्टॉक होता है। या, जब पूंजी स्टॉक बढ़ता है तो MEC गिरती है। ऐसा उत्पादन में घटते प्रतिफल का नियम लागू होने से होता है जिससे पूंजी की सीमान्त उत्पादकता कम होती है। चित्र में जब पूंजी स्टॉक OK_1 होता है तो MEC है Or_1 जब पूंजी स्टॉक OK_1 से बढ़ कर OK_2 होता है तो MEC कम होकर Or_1 से Or_2 हो जाती है। पूंजी स्टॉक में K_1 K_2 की शुद्ध वृद्धि अर्थव्यवस्था में शुद्ध निवेश को व्यक्त करती है।

चित्र 56.3
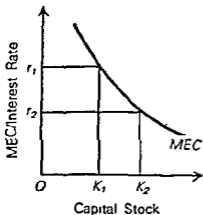
फिर अर्थव्यवस्था में इष्टतम पूंजी स्टॉक प्राप्त करने के लिए, MEC को अवश्य ब्याज दर के बराबर होना चाहिए। यदि, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, वर्तमान पूंजी स्टॉक OK_1 हो तो MEC है Or_1 और Or_1 ब्याज दर। अर्थव्यवस्था में हर कोई निधियां उधार लेगा और उन्हें पूंजी परिसम्पत्तियों में निवेश करेगा। ऐसा इस कारण कि $MEC(Or_1)$ ब्याज दर (Or_2) से अधिक है। ऐसा तब तक होता रहेगा जब तक कि MEC कम होकर ब्याज दर के बराबर नहीं हो जाती है। जब MEC ब्याज दर के बराबर होती है तो अर्थव्यवस्था इष्टतम पूंजी स्टॉक के स्तर पर पहुंच जाती है। MEC में कमी वास्तविक पूंजी स्टॉक में OK_1 से OK_2 पर वृद्धि के कारण होती है। अर्थव्यवस्था के पूंजी स्टॉक में K_1 K_2 की वृद्धि शुद्ध निवेश है। परन्तु

अर्थव्यवस्था में इष्टतम पूंजी स्टॉक का आकार ब्याज दर निर्धारित करता है और *MEC* इच्छित पूंजी स्टॉक को ब्याज दर के साथ सबद्ध करता है। अत *MEC* वक्र की ऋणात्मक ढलान यह बतलाती है कि ब्याज दर के गिरने के साथ पूंजी का इष्टतम स्टाक बढता है।

प्रत्याशाए (Expectations)—पूंजी की सीमान्त उत्पादकता को सबसे अधिक माग पक्ष प्रभावित करता है। प्रत्याशित आय व्यापारिक प्रत्याशाओ द्वारा निर्धारित होती है। जिस प्रकार निवेश करते समय भावी प्रत्याशाओ का अनुमान लगा लिया जाता है कि इससे भविष्य मे प्रत्याशित आय बढेगी या घटेगी। इस प्रकार प्रत्याशित आय अल्प कालीन व दीर्घकालीन प्रत्याशाओ द्वारा प्रभावित होती है। भविष्य मे प्राप्त होने वाली प्राप्तिया सदैव वर्तमान पर निर्भर करती हैं। वर्तमान प्रत्याशाए भविष्य मे उत्पादन के स्वरूप मे परिवर्तन का आधार होती हैं। इनका समय कुछ दिन, सप्ताह, महीना हो सकता है। इस समय के दौरान कितना उत्पादन हुआ और बिका, का सम्बन्ध आने वाले महीनो मे उत्पादन क्षेत्र मे लाभ या हानि का द्योतक (Indicator) होता है।

दीर्घकालीन प्रत्याशाओ का सम्बन्ध भविष्य मे उत्पादन प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले तत्वों से है। दीर्घकाल मे, उत्पादन के पैमाने को बदला जाता है। दीर्घकालीन प्रत्याशाओं को प्रभावित करने वाले तत्व जैसे बाजार प्रतियोगिता, श्रम बाजार मे असन्तुलन, प्राकृतिक प्रकोप, युद्ध की सभावनाए, निर्यात बाजार का कार्यक्षेत्र, प्रमुख हैं। दीर्घकालीन प्रत्याशाओ के बारे मे सदैव अनिश्चितताए बनी रहती है। उदाहरणार्थ, यदि कारखाना लगाना है तो उसकी भावी कार्य अवधि, कच्चा माल और मशीनो की टूट-फूट इत्यादि स्थितियो के बारे मे पूर्वानुमान लगाना भी एक कठिन कार्य होगा। क्योंकि हो सकता है कि अर्थव्यवस्था मे मन्दी चल रही हो। ऐसी स्थिति मे वर्तमान पूंजी परिसम्पत्तियो में निवेश दर को और अधिक बढाना असम्भव हो जाता है। अत निवेश-कर्त्ता जानते हैं कि दीर्घकालीन भविष्य के सम्बन्ध मे उनका व्यक्तिगत अनुमान व्यावसायिक दृष्टि से बेकार सिद्ध होगा। ऐसी अवस्था मे वे बडे उद्योगपतियो की नीतियो का अनुसरण करेंगे। अनिश्चितता के कारण जोखिम भी बना रहता है। जोखिम यही होता है कि भविष्य मे वर्तमान कीमतें ठीक-ठीक प्रतिबिम्बित नही होती और आर्थिक अस्थिरता की स्थिति बनी रहती है।

दीर्घकालीन प्रत्याशाओ की प्रचलित स्थिति स्टाक बाजार मे प्रतिभूतियो और ऋण पत्रो के क्रय-विक्रय मे प्रतिबिम्बित होती है। यदि भविष्य मे प्रत्याशित आय बढने की सम्भावना है तो स्टाक की कीमतें ऊची होने लगती है अन्यथा प्रत्याशित आय मे कमी की सभावना से स्टॉक की कीमतें गिरने लग जाती हैं। यह केवल वित्तीय लेन देन है। नवीन पूंजी परिसम्पत्तियो का सम्बन्ध वास्तविक निवेश मे है और स्टॉक बाजार इसे प्रभावित करता है। जब स्टॉक बाजार मे प्रतिभूतियों के भाव कम हो जाते हैं तब नए बाडा मे निवेश करना व्यर्थ है तब पूर्ति कीमत (नवीन पूंजी परिसम्पत्तियो की निर्माण-लागत) माग कीमत (ब्याज की प्रचलित दर पर बट्टा वर्तमान पूंजी परिसम्पत्तियो

पर) से बढ़ जाती है। दूसरे शब्दों में, पूंजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज दर से कम हो जाती है। ऐसी अवस्था में निवेश-प्रेरणा प्रतिकूल प्रभाव डालती है। यदि स्टॉक बाजार में प्रतिभूतियों के भाव अधिक हो जाते हैं तब ऊंची कीमतों पर नई प्रतिभूतियां बिकने से निवेश प्रक्रिया प्रभावित होती है और पूंजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज दर से बढ़ जाती है।

निवेश की सीमान्त उत्पादकता (The Marginal Efficiency of Investment —MEI)

निवेश की सीमान्त उत्पादकता (*MEI*) प्रतिफल की वह प्रत्याशित दर है जो किसी पूंजी परिसम्पत्ति पर दिए हुए निवेश से, ब्याज की दर को छोड़कर सभी लागतें पूरी करने के बाद, प्राप्त होती है। *MEC* की भांति, यह वह दर है जो किसी पूंजी परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत को उसकी प्रत्याशित आय के बराबर लाती है। किसी परिसम्पत्ति पर किया जाने वाला निवेश इस बात पर निर्भर करेगा कि बाजार में निधियों की प्राप्ति के लिए ब्याज की दर कितनी है। यदि ब्याज की दर अधिक होगी, तो निवेश का स्तर कम रहेगा। ब्याज की दर कम होने से निवेश अधिक होगा। इस प्रकार *MEI* निवेश को ब्याज की दर से सम्बद्ध करता है। *MEI* वक्र यह दिखाता है कि ब्याज की विविध दरों पर निवेश की माग की मात्रा कितनी होगी। यही कारण है कि इसे निवेश मांग अनुसूची या वक्र कहा जाता है जिसकी ढलान ऋणात्मक होता है, जैसा कि चित्र 56.4 में दिखाया गया है। ब्याज की Or_1 दर पर निवेश की मात्रा OI' है। जब ब्याज की दर गिरकर Or_2 हो जाती है तो निवेश बढ़कर OI'' हो जाता है।

ब्याज की दर गिरने से निवेश किस सीमा तक बढ़ेगा, यह *MEI* वक्र की निवेश माग वक्र की लोच पर निर्भर करता है। *MEI* वक्र जितना ही कम लोचदार होगा, ब्याज की दर गिरने के परिणामस्वरूप निवेश में वृद्धि भी उतनी ही कम होगी और विलोमतः भी।

चित्र 56.4 में अनुलम्ब अक्ष ब्याज की दर तथा निवेश की सीमान्त उत्पादकता को मापता है, क्षैतिज अक्ष निवेश की मात्रा को मापता है, *MEI* तथा *MEI'* निवेश माग वक्र है। चित्र के भाग A में *MEI* वक्र कम लोचदार है, इसलिए निवेश में $I'\ I''$ मात्रा की वृद्धि होती है जो कि भाग B में दिखाई गई निवेश की I_1I_2 वृद्धि से कम है जहां *MEI'* वक्र लोचदार है। इस प्रकार, *MEI* वक्र के रूप (Shape) तथा स्थिति के दिए हुए होने पर ब्याज की दर गिरने पर निवेश का आकार बढ़ जाएगा।

दूसरी ओर ब्याज की दर दी हुई होने पर, *MEI* जितना अधिक ऊंचा होगा, निवेश का आकार भी उतना ही अधिक होगा। निवेश की अपेक्षाकृत अधिक सीमान्त उत्पादकता का मतलब है कि *MEI* वक्र दाईं ओर को सरक जाएगा। जब वर्तमान परिसम्पत्तियां घिस जाती हैं, तो उनके स्थान पर नई परिसम्पत्तियां लगाई जाती हैं और निवेश का स्तर बढ़ जाता है। परन्तु प्रेरित निवेश कुल व्यय के वर्तमान स्तर पर निर्भर करता है। इसलिए जब कुल व्यय बढ़ता है, तो प्रेरित निवेश भी बढ़ जाता है। बढ़ा हुआ कुल व्यय
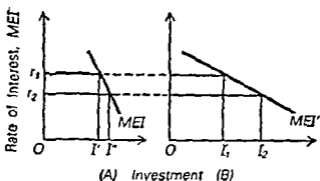
चित्र 56.4

MEI को दाईं ओर सरका देना है जिसका मतलब है कि ब्याज दर के किसी दिए हुए स्तर पर निवेश को अधिक प्रेरणा मिलती है। इसे चित्र 56.5 में स्पष्ट किया गया है जहां MEI_1 तथा MEI_2 वक्र अर्थव्यवस्था में कुल क्रय के दो विभिन्न स्तरों को दर्शाते हैं। हम मान लेते हैं कि जब कुल क्रय की मात्रा 200 करोड़ रुपये है तो ब्याज की Or_1 दर पर OI अर्थात् 20 करोड़ रुपये का निवेश होता है और इस स्तर पर MEI_1 निवेश की सीमान्त उत्पादकता को बताती है। यदि कुल क्रय बढ़कर 500 करोड़ रुपये हो जाता तो MEI वक्र दाईं ओर को सरककर MEI_2 पर चला जाता है और ब्याज की उसी Or_1 दर पर प्रेरित निवेश OI_2 अर्थात् 50 करोड़ रुपये हो जाता है।
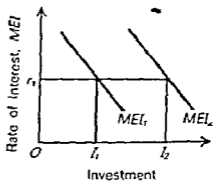
चित्र 56.5

MEC (पूंजी स्टॉक) तथा MEI (निवेश) में सम्बन्ध (Relation between the MEC (Capital Stock) and the MEI (Investment)

प्रोफेसर लर्नर[6] (Lerner) ने बहुत पहले 1946 में यह लक्ष्य किया था कि केवल विवरण प्रस्तुत करने में ही नहीं अपितु विश्लेषण में केन्ज ने गलती की थी क्योंकि वह पूंजी की सीमान्त उत्पादकता (MEC) तथा निवेश की सीमान्त उत्पादकता (MEI) में ठीक अन्तर नहीं कर सका था। लर्नर के बाद, गार्डनर एक्ले (Gardener Ackley)[7] तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने इन दोनों धारणाओं को बहुत स्पष्ट रूप से परिभाषित और

[6] A P Lerner, *The Economics of Control*, 1946
[7] G Ackley, *op cit*, Ch. 17.

इनमे स्पष्ट अन्तर किया है।

MEC पूंजी को दी हुई पूर्ति कीमत पर आधारित है और *MEI* इस कीमत में प्रेरित परिवर्तनों पर आधारित है। *MEC* पूंजी की सभी क्रमिक इकाइयों पर प्रतिफल की दर को प्रकट करती है और उसका पूंजी के वर्तमान स्टॉक से कोई सम्बन्ध नहीं होता। दूसरी ओर, *MEI* पूंजी के वर्तमान स्टॉक के अतिरिक्त पूंजी की केवल इकाइयों पर प्रतिफल की दर है। *MEC* में, पूंजी का स्टॉक चित्र में क्षैतिज अक्ष पर लिया जाता है जबकि *MEI* में निवेश की मात्रा क्षैतिज अक्ष पर ली जाती है। *MEC* 'स्टॉक' विषयक धारणा है और *MEI* 'प्रवाह' विषयक धारणा है।

MEC ब्याज-दर के प्रत्येक स्तर पर अर्थव्यवस्था के इष्टतम पूंजी स्टॉक को निर्धारित करती है। पूंजी का स्टॉक दिया हुआ होने पर, *MEI* प्रत्येक ब्याज दर पर अर्थव्यवस्था के निवेश को निर्धारित करती है। शुद्ध निवेश वह वृद्धि है जो वर्तमान पूंजी स्टॉक में होती है जिसके परिणामस्वरूप वास्तविक पूंजी स्टॉक बढ़ जाता है। इसलिए अर्थव्यवस्था में तब तक निवेश किया जाता रहेगा जब तक कि पूंजी स्टॉक इष्टतम स्तर पर नहीं पहुंच जाता। अर्थव्यवस्था में इष्टतम पूंजी स्टॉक उपलब्ध करने के लिए किए जाने वाले निवेश की मात्रा उत्पादन के उस नियम पर निर्भर करेगी जिसके अन्तर्गत पूंजी वस्तु उद्योग चल रहा है।

प्रेरित निवेश को प्रभावित करने वाले अन्य (ब्याज दर से भिन्न) कारक[8]
(Factors other than the Interest Rate Affecting Inducement to Invest)

ब्याज की दर के अतिरिक्त भी अनेक ऐसे कारक हैं जो प्रेरित निवेश को प्रभावित करते हैं। वे निम्नलिखित हैं

(1) अनिश्चितता-तत्त्व (Element of uncertainty) केन्ज़ के अनुसार ब्याज की दर की अपेक्षा *MEC* अधिक अस्थिर है। इसका कारण यह है कि पूंजी परिसम्पत्तियों की प्रत्याशित आय व्यापार-प्रत्याशाओं पर निर्भर करती है। ये व्यापार-प्रत्याशाएं बहुत अनिश्चित होती हैं। "व्यापार-समुदाय के सामान्य मिजाज (मूड), अफवाहों, तकनीकी विकास के समाचारों, राजनैतिक घटनाओं की प्रतिक्रिया स्वरूप व्यापार-प्रत्याशाएं बहुत शीघ्र एवं प्रचण्ड रूप से बदल सकती है, यहां तक कि डायरेक्टरों के चरित्र-दोष भी आय की प्रत्याशित दर को अचानक बढ़ा या गिरा सकते हैं।"[9] परिणामत किसी पूंजी परिसम्पत्ति के जीवन भर के प्रत्याशित वार्षिक प्रतिफलों का हिसाब लगाना कठिन है। जैसा कि स्वयं केन्ज़ ने लिखा है, "यदि हम स्पष्ट बात करें तो हमें यह मानना होगा कि किसी रेलवे, तांबे की खान, कपड़ा फैक्टरी, किसी पेटेन्ट औषधि, अटलान्टिक लाइनर, लन्दन की किसी बड़ी बिल्डिंग के दस वर्ष बाद के या केवल पांच ही वर्ष बाद के प्रतिफल को

[8] ये कारक *MEC* को भी प्रभावित करते हैं। इन्हें अन्तर्जात तथा बहिर्जात कारकों में विभक्त किया जा सकता है। कारक 1 से 5 तक अन्तर्जात हैं और शेष बहिर्जात हैं।

[9] F S Brooman, *Macroeconomics*, 4/e, 1970

आकने के हमारे ज्ञान का आधार बहुत कम या कभी-कभी नहीं के बराबर होता है।"[10] फिर अनिश्चितता के कारण, निवेश परियोजनाओं की चुकाई अवधि प्रायः कम होती है। तेजी से होने वाले औद्योगिकीय विकासों के कारण पूजी परिसम्पत्तियों का अपनी प्रत्याशित आयु से पहले ही प्रयोग होना बन्द हो जाता है। मूल्य ह्रास की दर भी स्थिर नहीं रहती और बहुत बदलती रहती है। इसलिए फर्मों की प्रवृत्ति यह होती है कि वे निवेश तभी करें जब वे अल्पावधि में पूंजी परिव्यय (outlay) को वसूल कर सकें। इन कारकों से निवेश फलन में अस्थिरता आती है।

हार्वे (Harvey) तथा जानसन[12] (Johnson) ने लक्ष्य किया है कि MEI वक्र के गिर्द अनिश्चितता का क्षेत्र होता है। यह एक तो बाजार-अपूर्णताओं के कारण और दूसरे इसलिए होता है कि पूंजी परिसम्पत्तियों में प्रतिफल व्यापार-प्रत्याशाओं पर आधारित होते हैं। इस चित्र 56.6 में स्पष्ट किया गया है जहां अनिश्चितता क्षेत्र दो MEI वक्रों अर्थात् MEI_1 तथा MEI_2 के बीच स्थित है। MEI_1 वक्र के दिए हुए होने पर, यदि ब्याज की दर Or_1 से गिरकर Or_2 रह जाती है, तो निवेश OI_1 से बढ़कर OI_2 हो जाता है। यदि MEI_1 वक्र सरक कर MEI_2 पर पहुंच जाता है, तो निवेश वास्तव में गिर कर OI_3 हो जाता है। पर, यदि MEI वक्र MEI_1 से सरक कर MEI' पर चला जाता है जबकि ब्याज की दर Or_1 से गिरकर Or_2 हो जाती है, तो हो सकता है कि निवेश उसी OI_1 स्तर पर रहे। इसलिए व्यापारी MEI_1 वक्र के गिर्द तो अधिकतम आशावादी होते हैं और MEI_2 वक्र के गिर्द अधिकतम निराशावादी। "निष्कर्ष यह है कि MEI वक्र प्राय: इतना प्रबल होता है कि निवेश निर्णयों पर ब्याज की दर का मामूली प्रभाव पड़ता है।"
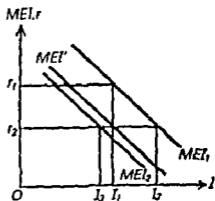
चित्र 56.6

(2) पूंजी वस्तुओं का वर्तमान स्टॉक (Existing stock of capital goods)—यदि पूंजी वस्तुओं का वर्तमान स्टॉक बड़ा होगा, तो वह सम्भाव्य (potential) निवेशकों को वस्तुओं का निर्माण करने से हतोत्साहित करेगा। पुनः यदि पूंजी-परिसम्पत्ति के वर्तमान स्टॉक में अतिरिक्त अथवा निष्क्रिय क्षमता (excess or idle capacity) होगी, तो प्रेरित निवेश नहीं होगा। यदि मशीनों का वर्तमान स्टॉक अपनी पूर्ण क्षमता तक कार्य कर रहा है तो उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं के लिए मांग में वृद्धि इस प्रकार की पूंजी

[10] J. M. Keynes, *op. cit.* p. 150

[11] J. Harvey and M. Johnson, *Introduction to Macroeconomics*, 1971.

वस्तुओं के लिए माग को बढ़ा देगी और निवेश की प्रेरणा को बढा देगी।

(3) आय का स्तर (Level of income)—यदि मुद्रा मजदूरी दरों तथा अन्य साधन कीमतो मे वृद्धि के माध्यम से अर्थव्यवस्था मे आय-स्तर बढ जाता है, तो वस्तुओ के लिए मांग बढ जाएगी, जो कि आगे निवेश की प्रेरणा को बढा देगी। इसके विपरीत, आय स्तरो के घटने पर निवेश की प्रेरणा घट जाएगी।

(4) उपभोक्ता मांग (Consumer demand)—वस्तुओ के लिए वर्तमान तथा भावी माग अर्थव्यवस्था मे पूजी-निवेश के स्तर को बहुत ही प्रभावित करती है। यदि उपभोक्ता वस्तुओ के लिए चालू मांग बहुत तेजी से बढ रही है, तो अधिक निवेश होगा। यदि हम वस्तुओ के लिए भावी माग को भी लें, तो वह भी उनकी चालू माग से पर्याप्त मा तक प्रभावित होगी और दोनो निवेश के स्तर को भी प्रभावित करेंगी। यदि माग म होगी तो निवेश कम होगा, और विलोमशः भी।

(5) तरल परिसम्पत्तियां (Liquid assets)—निवेशको के पास तरल परिसम्पत्तियो की मात्रा भी निवेश की प्रेरणा को प्रभावित करती है। यदि उनके पास बडी मात्रा मे तरल परिसम्पत्तिया हैं तो निवेश की प्रेरणा अधिक होगी। यह स्थिति विशेष रूप से उन फर्मों के सम्बन्ध मे होती है जो कि बडी मात्रा मे आरक्षित निधिया तथा अवितरित लाभ रखती हैं। इसके विपरीत, जिन निवेशको के पास तरल परिसम्पत्तिया नही होंगी, उनकी निवेश की प्रेरणा कम होती है।

(6) आविष्कार तथा नवप्रवर्तन (Inventions and innovations)—आविष्कार तथा नवप्रवर्तन निवेश की प्रेरणा को बढाते हैं। यदि आविष्कारो तथा प्रौद्योगिकीय (technological) सुधारो के परिणामस्वरूप उत्पादन की अधिक कुशल विधिया प्राप्त होती हैं, जो लागतो को कम कर देती हैं तो नई पूंजी परिसम्पत्तियो की पूजी की सीमात उत्पादकता बढेगी। पूजी की बढी हुई सीमात उत्पादकता फर्मों को प्रेरित करेगी कि वे नई पूजी परिसम्पत्तियो तथा सम्बध परिसम्पत्तियो मे अधिक निवेश करें। नई प्रौद्योगिकियो के अभाव का अर्थ होगा निवेश की कम प्रेरणा। नवप्रवर्तन मे नए क्षेत्रो का खुलना भी सम्मिलित रहता है। इसके लिए परिवहन के साधनो का विकास, मकानो का निर्माण आदि आवश्यक हैं जिनसे नई निवेश सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार निवेश प्रेरणा बढती है।

(7) नई वस्तुएं (New products)—विक्रय तथा लागतो के रूप मे नई वस्तुओ की प्रकृति भी उनकी पूजी की सीमान्त उत्पादकता और इसलिए निवेश को प्रभावित करती है। यदि किसी नई वस्तु की विक्रय प्रत्याशाएं ऊंची और प्रत्याशित आय लागतो की अपेक्षा अधिक होगी, तो पूजी की सीमात उत्पादकता ऊंची होगी जो इस उद्योग तथा सबद्ध उद्योगो मे निवेश को प्रोत्साहन देगी। उदाहरण के लिए, टैलीविजन के आविष्कार ने इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग को इन पूजी-परिसम्पत्तियो मे अधिक निवेश को प्रोत्साहन दिया होगा, और यदि उन्हें यह आशा रही होगी कि लागतो की अपेक्षा लाभ अधिक होंगे तो टैलीविजन सेटो का उत्पादन करने मे उनका प्रयोग किया होगा। इस

प्रकार, नई वस्तुओं की अनुरक्षण तथा संचालन (maintenance and operating) लागतें निवेश को प्रेरणा बढ़ाने के लिए आवश्यक हैं।

(8) जनसंख्या की वृद्धि (Growth of population)—तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या का अर्थ है अर्थव्यवस्था में सब प्रकार की वस्तुओं के लिए विस्तारशील मार्किट। बढ़ रही जनसंख्या की माग को पूरा करने के लिए सब प्रकार के उपभोक्ता-वस्तु उद्योगों में विनियोजन बढ़ेगा। दूसरी ओर, घट रही जनसंख्या का परिणाम यह होता है कि वस्तुओं के लिए मार्किट छोटा हो जाता है जिससे निवेश की प्रेरणा कम हो जाती है।

(9) नए क्षेत्रों का विकास (Development of new territories)—अर्थव्यवस्था मे यदि पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास किया जाता है तब ऐसी स्थिति में निवेश के नए स्रोत बन जाते हैं अर्थात् निवेश प्रेरित होता है। नए क्षेत्रों के विकास में व्यापारिक तथा औद्योगिक प्रक्रिया अधिक तीव्रता से पनपती हैं। जिससे निवेश और पूंजी की सीमान्त उत्पादकता प्रभावित होते हैं।

(10) लागतें (Costs)—लागतों का निवेश की प्रेरणा और पूंजी की सीमान्त उत्पादकता पर प्रभाव पड़ता है। यदि भविष्य में यह आशंका होगी कि लागतें भी बढ़ेंगी तो उद्यमी पहले की अपेक्षा निवेश भी कम करेंगे जिसके परिणामस्वरूप पूंजी की सीमांत उत्पादकता भी कम हो जायेगी। यदि लागतों में कमी की सम्भावना पाई जाती है तो उद्यमी प्रत्याशित आय बढ़ने की आशा से अधिक निवेश करेंगे और पूंजी की सीमांत उत्पादकता भी बढ़ेगी।

(11) कीमतें और प्रतिफल (Prices and returns)—कीमतें एवं प्रतिफल भी निवेश की प्रेरणा को प्रभावित करते हैं। यदि भविष्य में वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाने की सम्भावना है तो उद्यमी निवेश अधिक करेंगे क्योंकि उनके प्रतिफल बढ़ेंगे जिससे पूंजी की सीमान्त उत्पादकता भी बढ़ेगी। दूसरी ओर यदि भविष्य में वस्तुओं की कीमतें कम होने की सम्भावना में उद्यमी निवेश कम करेंगे, क्योंकि प्रतिफल कम होने की सम्भावना बढ़ जायेगी।

(12) उपभोग प्रवृत्ति (Propensity to consume)—उपभोक्ता की उपभोग प्रवृत्ति में परिवर्तन का निवेश पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि आय में वृद्धि होती है तो उपभोक्ता पहले से अधिक व्यय करेंगे, जिससे उपभोग वस्तुओं और पूंजीगत वस्तुओं की मांग बढ़ जायगी। उत्पादक उन वस्तुओं का उत्पादन अधिक करेंगे जिनकी उपभोक्ता अधिक माग करेंगे। इस प्रकार निवेश प्रेरित होगा।

(13) राज्य नीति (State policy)—सरकार की आर्थिक नीतियां भी देश में निवेश की प्रेरणा पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। यदि राज्य निगमों पर भारी आरोही कर लगा देता है, तो निवेश की प्रेरणा घट जाती है, और विलोमशः भी। भारी अप्रत्यक्ष कराधान से वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती हैं और उनकी माग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप निवेश की प्रेरणा घट जाती है, और विलोमशः भी। यदि राज्य उद्योगों के राष्ट्रीकरण की नीति अपनाता है तो निजी उद्यम निवेश करने को

हतोत्साहित होगा। दूसरी ओर, राज्य यदि ऋण, विपणन तथा अन्य सुविधाएं प्रदान करके निजी उद्यम को प्रोत्साहन देता है तो निवेश की प्रेरणा बढ़ेगी।

(14) राजनैतिक वातावरण (Political environment)—राजनैतिक परिस्थितियां भी निवेश की प्रेरणा को प्रभावित करती है. यदि देश में राजनैतिक अस्थिरता रहती है, तो निवेश की प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। सत्ता हथियाने के संघर्ष में, विरोधी दल प्रतिकूल ट्रेड यूनियन क्रियाओं के माध्यम से अशान्ति उत्पन्न कर सकते हैं, जिससे व्यापार में अनिश्चितता उत्पन्न हो जाती है। दूसरी ओर, स्थिर सरकार व्यापारी वर्ग में विश्वास उत्पन्न करती है जिससे निवेश की प्रेरणा बढ़ जाती है। इसी प्रकार, क्रान्ति अथवा किसी अन्य देश से युद्ध का खतरा निवेश की प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, जबकि शान्ति तथा समृद्धि उसे बढ़ाते हैं।

निवेश को बढ़ाने के उपाय (Measures to Stimulate Investment)

अर्थव्यवस्था में रोजगार का स्तर उपभोग तथा निवेश पर निर्भर करता है। इनमें से उपभोग की अपेक्षा निवेश अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि अल्पकालीन के दौरान उपभोग फलन स्थिर रहता है, इसलिए निवेश में वृद्धि करके रोजगार को बढ़ाया जा सकता है। जहां तक सार्वजनिक निवेश का संबंध है, राज्य उपलब्ध साधनों के अनुरूप इसमें वृद्धि कर सकता है। समस्या तो निजी निवेश को बढ़ाने की होती है, जो कि मन्दी के दौरान बहुत कम रहता है। सामान्य रूप से, निजी निवेश को प्रोत्साहन देने के लिए निम्नलिखित विधियां सुझाई गई हैं:

(1) सस्ती मुद्रा नीति (Cheap money policy)—सस्ती मुद्रा नीति अपनाकर निजी निवेश को बढ़ाया जा सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि ब्याज की दर जान-बूझ कर घटाई जाए जिससे व्यापारी लोगों को अधिक निवेश करने का प्रोत्साहन मिलता है। *परन्तु ब्याज की दर की वह निम्न सीमा खोजना कठिन है जो निजी निवेश को प्रेरित कर सके।* इसलिए निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए, केन्ज ने पूंजी की सीमान्त उत्पादकता बढ़ाने को अधिक महत्त्व दिया है। मंदी को रोकने में सफल होने के लिए, वह सस्ती मुद्रा नीति के साथ-साथ राजकोषीय नीति का समर्थन करता है।

(2) निगम करों में कमी (Reduction in corporate taxes)—निगम-करों से निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए यह सुझाव दिया गया है कि "लाभों से प्राप्त होने वाली आय पर या तो कर लगाया ही न जाए, या फिर ऐसे ढंग से कर लगाया जाए कि नया निवेश न रुके।" परन्तु जो लोग पुनर्निवेश नहीं करते, उनके प्रतिधारित अर्जनों (retained earnings) पर कर लग ए जाए। उपरोक्त विधि जरूरी है क्योंकि संभावना यही रहती है कि निगम आय-कर घटाने या हटाने से राज्य का राजस्व घट जाएगा और इस प्रकार समस्त मांग तथा निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसलिए राज्य को चाहिए कि यदि वह निगम कर घटाने का तरीका अपनाता है तो राजस्व के अन्य स्रोत खोज निकालने का प्रयत्न करे।

(3) समुद्दीपन नीति (Pump priming policy)—समुद्दीपन नीति निजी निवेश बढ़ाने के उद्देश्य से सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर सरकारी व्यय से सबंध रखती है। मंदी के दौरान जब सरकार बैंकिंग व्यवस्था से उधार लेती है, तो निष्क्रिय नकदी शेष सक्रिय हो जाते हैं, बैंक जमा बढ़ते हैं और नई साख का निर्माण होता है। "इस प्रकार, 'समुद्दीपन' वित्त प्रबंधन की विधि ही पुनरुत्थान (recovery) में सहायक होती है। यह न केवल सस्थानिक बचतकर्ताओं के निवेश को सुगम ही बनाती है, बल्कि उधार जमा तथा सामान्य व्यापार पुनरुत्थान को प्रोत्साहन देकर मौद्रिक नीति की अनुपूर्ति (supplement) भी करती है।"[12] फिर, व्यय-विधि व रूप से यह निजी निवेश को अधिगुणक (super-multiplier) के क्रियाकरण के माध्यम से प्रेरित करती है। जब एक बार, सार्वजनिक व्यय प्रारंभ हो जाता है तो वह त्वरण सिद्धांत से सशक्त बनाए गए गुणक नियम के मार्ग से आय तथा उपभोग व्ययों को सचयी ढग से बढ़ाता चलता है। पर सरकारी व्यय की 'समुद्दीपन' नीति केवल तभी सफल होती है, जबकि सार्वजनिक व्यय द्वारा प्रेरित निजी निवेश अधिक हो। अन्यथा निजी निवेश को प्रेरित करने की यह नीति असफल रहेगी, जैसाकि 1930 के बाद के वर्षों में अमेरिका में हुआ।

(4) मजदूरी कटौती (Wage reduction)—परम्परावादी अर्थशास्त्रियों का विश्वास था कि मुद्रा मजदूरी में कटौती निवेश को बढ़ाने में सहायक होती है। जब मुद्रा-मजदूरी घटाई जाती है, तो उत्पादन लागतें कम हो जाती हैं, माग बढ़ती है और निवेश को प्रोत्साहन मिलता है। परन्तु क्लासिकल मत मजदूरी की कटौती के आय पक्ष की उपेक्षा कर देता है। केन्ज के अनुसार परम्परावादियों का तर्क समस्त अर्थव्यवस्था पर नहीं बल्कि एक फर्म या उद्योग पर लागू होता है। मुद्रा मजदूरी दरों में सामान्य कटौती के परिणामस्वरूप आय तथा समस्त माग घट जाती है। फिर, ट्रेड यूनियनें मजदूरी कटौतियों का विरोध करेंगी और अर्थव्यवस्था में अशान्ति फैलेगी। इस प्रकार मजदूरी कटौतियों की नीति अनुपयोगी है। यही कारण है कि केन्ज ने मुद्रा कटौती नीति की बजाय लचीली मुद्रा-नीति का समर्थन किया है।

(5) कीमत-समर्थन नीति (Price-support policy)—कीमतों में उतार-चढ़ाव निजी निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। इसलिए निजी निवेश को प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यक है कि कीमतें स्थिर रहें। इसके लिए, क्लेन (Klein) ने सुझाव दिया है कि सरकार कीमत-समर्थन नीति अपनाए। जब आवश्यक वस्तुओं की कीमतें गिरने लगें तो सरकार को चाहिए कि उन्हें खरीदे और उनका स्टॉक कर ले। इस तरह से अतिरिक्त पूर्ति हटा ली जाएगी, कीमतें स्थिर हो जाएगी और निवेश को प्रोत्साहन मिलेगा। इसके विपरीत, जब कीमतें तेजी से बढ़ने लगें, तो सरकार को चाहिए कि उन स्टॉक की हुई वस्तुओं को मार्किट में लाए जिससे उनकी कीमतें स्थिर हो जाएगी और इस प्रकार निवेश पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। परन्तु यह नीति तभी सफल होगी, जबकि सरकार

[12] K. Kurihara, *op cit*, p 260. मोटे छपे शब्द मेरे हैं।

के पास गोदाम हो और पर्याप्त मात्रा मे कोष हो।

(6) **अनुसंधान को बढ़ावा** (Promotion of research)—सरकार को चाहिए कि अनुसधान को बढावा दे और इस उद्देश्य के लिए सस्थाए खोले। उसे चाहिए कि विविध उद्योगो पर किए गए अनुसधान की उपलब्धिया निजी उद्यमो को प्रदान करे ताकि वे उनसे लाभ उठा सकें। इस मतलब के लिए सरकार शोध पत्रिकाए प्रकाशित करे।

(7) **एकाधिकार सबंधी प्रवृत्तियों की समाप्ति** (Abolition of monopolistic tendencies)—बडी फर्मों की यह प्रवृत्ति रहती है कि वे उत्पादन के क्षेत्र मे अपना एकाधिकार जमाना चाहती हैं। छोटी फर्मों की निवेश नीतियो पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पडता है। इसलिए क्लेन (Klein) ने सुझाव दिया है कि सरकार को चाहिए कि बडी फर्मों की एकाधिकार सबधी प्रवृतियो को कुचलने के लिए उपयुक्त कदम उठाए। इस प्रकार की नीति प्रतियोगिता को तथा निवेश को प्रोत्साहित करेगी।

प्रश्न

1 *MEC* को वट्टा की दर क्यो व्यक्त किया जाता है? यह धारणा निवेश व्यवहार समझाने में कहा तक सहायक होती है?
2 बहिर्जात तथा अन्तर्जात कारको का वर्णन करो जो निवेश फलन को सरकाते हैं।
3 आप प्रेरित निवेश से क्या समझते हैं? प्रेरित निवेश के निर्धारको की विवेचना कीजिए।
4. *MEC* से क्या अभिप्राय है? कौन से तत्त्व इसको प्रभावित करते हैं?
5. निवेश को निर्धारण करने वाले कारको और समष्टि-अर्थशास्त्र के सदर्भ मे निवेश फलन की प्रकृति की विवेचना कीजिए।
6. निवेश फलन का राष्ट्रीय आय के निर्धारण मे क्या स्थान और महत्त्व है? इस फलन की अस्थिरता का क्या कारण है?

अध्याय-57
बचत तथा निवेश अमानता
(SAVING AND INVESTMENT EQUALITY)

सब अर्थशास्त्री यह मानने हैं कि बचत तथा निवेश मे समानता पाई जाती है, परन्तु उनमे इस बात पर मतभेद है कि यह समानता किस प्रकार स्थापित होती है। हम इस समस्या के सम्बन्ध मे विचारधाराओ—एक क्लासिकी और दूसरी केन्ज़वादी विचार-धारा—का अध्ययन करेंगे।

क्लासिकी विचारधारा (Classical View)

परम्परावादियो का विश्वास था कि अर्थव्यवस्था मे पूर्ण रोजगार पाया जाता है, जहा बचत और निवेश हमेशा समान होते हैं। उनके अनुसार, बचत और निवेश ब्याज की दर के फलन हैं। बीजगणितीय रूप मे, $S=f(r)$ और $I=f(r)$ जहां r ब्याज दर है, S बचत और I निवेश है। अत $S=I$ यदि किसी अवधि मे पूर्ण रोजगार नही है, तो इन दोनो के बीच असमानता साफ झलकेगी और इसे ब्याज दर के यान्त्र (mechanism) से दूर [illegible] या जा सकता है। जब ब्याज की दर बढती हैं, तो बचत बढ़ती है और निवेश घट जाता है। दूसरी ओर ब्याज की दर गिरने पर बचत घटती है और निवेश बढ जाता है। यदि किसी भी समय निवेश की अपेक्षा बचत कम होती है, तो ब्याज की दर बढती है, निवेश घट जाता है और बचत तब तक बढ़ती जाती है जब तक कि बचत और निवेश बराबर नहो हो जाते। इसके विपरीत, जब निवेश की अपेक्षा बचत अधिक होती है तो ब्याज की दर घटती है और बचत तब तक घटती जाती है, जब तक की नई ब्याज दर पर दोनो बराबर नही हो जाते। इसे चित्र 57.1 मे स्पष्ट किया गया है जहां बचत तथा निवेश क्षैतिज अक्ष पर और ब्याज की दर अनुलम्ब अक्ष पर मापी गई है। SS' बचत वक्र है, जो ब्याज की दर मे वृद्धि के साथ ऊपर की ओर दाएं को चलता
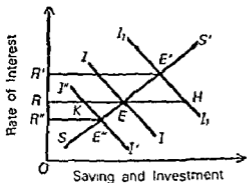
57.1

है। II निवेश वक्र है। जब ब्याज की दर OR होती है तो दोनों एक-दूसरे को बिन्दु E पर काटते हैं। अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार संतुलन में है क्योंकि बचत तथा निवेश RE के बराबर हैं। मान लीजिए कि निवेश बढ़कर RH पर पहुंच जाता है (I_1I_1 वक्र द्वारा व्यक्त) परन्तु बचत RE है, जो RH निवेश से कम है। ब्याज की दर को बढ़ाकर OR' कर देने से दोनो में समानता लाई जासकती है, जहां कि SS' वक्रबिन्दु E' पर I_1I_1 वक्र को काटता है। इसके विपरीत, यदि निवेश RE से गिर कर RK ($I''I''$ वक्र द्वारा व्यक्त) हो जाता है तो बचत $RE > RK$ और ब्याज की दर OR'' से गिर कर E'' पर बचत तथा निवेश में समानता स्थापित कर देती है।

क्लासिकी विचारधारा की केन्ज द्वारा आलोचना (Keynes' criticism of the classical view)—बचत तथा निवेश समानता सम्बन्धी क्लासिकी विचारधारा की केन्ज ने निम्नलिखित आलोचनाएं की हैं :

(i) केन्ज इस क्लासिकी विचारधारा से सहमत नहीं है कि बचत तथा निवेश के बीच समानता ब्याज दर के यान्त्र के माध्यम से स्थापित होती है। उसके अनुसार, ब्याज की दर नहीं बल्कि आय में परिवर्तन दोनो में समानता लाते हैं।

(ii) उसका इस बात पर भी परम्परावादियो से मतभेद है कि ब्याज की दर के मार्ग से लाई गई यह समानता केवल निवेश वक्र को सरकाती है और बचत वक्र नहीं बदलता। केन्ज का मत है कि जब कभी निवेश वक्र परिवर्तित होता है तो बचत वक्र में भी परिवर्तन होता है। उदाहरणार्थ, निवेश में वृद्धि गुणक प्रभाव के माध्यम से आय वृद्धि लाती है, परिणामत बचत भी बढ़ती है।

(iii) फिर, केन्ज इस परम्परावादी विचार का भी खण्डन करता है कि पूर्ण रोजगार स्तर पर बचत तथा निवेश समान होते हैं। उसका मत है कि क्योंकि पूर्ण रोजगार का होना एक असाधारण स्थिति है, इसलिए बचत-निवेश समानता अपूर्ण रोजगार स्तर पर पाई जाती है।

केन्जवादी विचारधारा (The Keynesian View)

बचत निवेश समानता के सबंध में केन्ज ने दो विचार प्रस्तुत किए हैं। पहला विचार है बचत तथा निवेश के बीच लेखांकन अथवा परिभाषित समानता (accounting or definitional equality) जिसे राष्ट्रीय आय लेखांकन के लिए काम में लाया जाता है। यह हमें बताता है कि सब समयों में और आय के किसी भी स्तर पर वास्तविक बचत तथा वास्तविक निवेश हमेशा समान होते हैं। दूसरा विचार फलनात्मक समानता (functional equality) का है। इस रूप मे, बचत तथा निवेश केवल आय के संतुलन स्तर पर समान होते हैं। दूसर शब्दो मे, फलनात्मक दृष्टि से, बचत तथा निवेश केवल बराबर ही नहीं बल्कि संतुलन में भी होते हैं। हम नीचे इन विचारधाराओं का विस्तृत अध्ययन कर रहे हैं।

लेखांकन अथवा पारिभाषित समानता (The Accounting or Definitional Equality)—केन्ज ने अपनी पुस्तक *General Theory* में लिखा है, "बचत तथा निवेश, समस्त समुदाय के लिए, मात्रा में अनिवार्यतः समान होते हैं क्योंकि वे एक ही चीज के विभिन्न पक्ष हैं।"[1] इसे स्पष्ट करने के लिए उसने बचत और निवेश की परिभाषा ऐसे ढंग से दी कि उनकी समानता स्थापित हो जाए। चालू अवधि में, बचत और निवेश को चालू आय से, चालू उपभोग के आधिक्य (surplus) के रूप में पारिभाषित किया गया है ($Y_t - C_t$) ताकि वे अनिवार्यतः समान रहें।

सूत्र के रूप में,

$$S_t = Y_t - C_t \cdots (i)$$
$$I_t = Y_t - C_t \cdots (ii)$$

$Y_t - C_t$ समीकरण (i) तथा (ii) में समान है, इसलिए $S_t = I_t$, यहां S बचत है, I निवेश है, Y आय है, C उपभोग है और t चालू अवधि है।

केन्ज एक और तरीके से भी यह समानता स्थापित करता है। उसकी परिभाषा के अनुसार, चालू अवधि में आय (Y_t) बराबर है चालू उपभोग (C_t) तथा चालू निवेश (I_t); और चालू अवधि में बचत (S_t) बराबर है चालू उपभोग से चालू आय की अधिक मात्रा।

इस प्रकार $Y_t = C_t + I_t \cdots (i)$

$$Y_t = S_t + C_t \cdots (ii) \quad (S = Y_t - C_t)$$

इसलिए (i) और (ii) से हमें प्राप्त होता है

$$C_t + I_t = S_t + C_t$$

अथवा $I_t = S_t$

बचत और निवेश समरूप हैं क्योंकि वे ऐसे पारिभाषित की गई हैं कि वे सदैव बराबर हैं।

आलोचना (Criticism)—बचत और निवेश के बीच इस समानता की, अथवा यों कहिए कि एकरूपता (indentity) की—जिसे केन्ज ने अपनी *General Theory* में स्थापित किया है—कड़ी आलोचना की गई है।

प्रथम, हैबर्लर (Haberler) के अनुसार, "यदि हम इन परिभाषाओं को स्वीकार कर लें...तो समय की किसी भी अवधि पर्यन्त S तथा I अनिवार्यतः समान होंगे, क्योंकि उनकी समरूप परिभाषा दी गई है' तब यह निरर्थक है कि उनके बीच अन्तर की बात की जाए या वैसा मतलब निकाला जाए।" ओहलिन (Ohlin) ने भी बचत तथा निवेश के बीच के संबंध को 'पारिभाषिक समानता' बताया है। इस प्रकार, यह समरूपता-संबंध स्वयंसिद्ध (truism) है और समायोजनकारी यन्त्र नहीं रह जाता।

[1]Saving and Investment are necessarily equal in amount for the community as whole, being different aspect of the same thing."

दूसरे, बचत तथा निवेश के बीच लेखाकन समता समयपश्चता के बिना (lagless) का विश्लेषण है, जो बचत-निवेश सबध की प्रक्रिया की व्याख्या करने में असमर्थ है। इस दृष्टि से बचत-निवेश समानता स्थैनिक विश्लेषण मात्र रह जाती है। बचत तथा निवेश के बीच समायोजन की यथार्थ प्रावैगिक (dynamic) प्रक्रिया समझाने मे केन्ज असफल रहा है।

तीसरे, यह समझना कठिन है कि यह समानता वास्तव मे कैसे लाई जा सकती है क्योंकि बचत और निवेश के निर्णय लोगो के विभिन्न वर्गों द्वारा लिए जाते हैं। निवेश निर्णय व्यवसायियों द्वारा इस आधार पर लिए जाते है कि उन्हे उधार ली गई पूजी पर कितना ब्याज देना पडता है और वे उससे कितने प्रतिफल की प्रत्याशा रखते हैं। दूसरी ओर, बचत करने के निर्णय असख्य व्यक्तिगत परिवारो द्वारा बचत के लिए विभिन्न चालू और भावी आवश्यकताओ पर आधारित होते हैं। इसलिए अर्थव्यस्था मे कुल बचत और कुल निवेश का समान होना सम्भव नही है सिवाय सयोग मे।

चौथे, लुट्ज (Lutz) के अनुसार, केन्जीय बचत और निवेश की परिभाषाएं हमें स्फीतिकारी साख मे से निवेश के वित्तीयन (finance) करने या ऐच्छिक बचतो की चालू पूर्ति को निवेश मे से विसग्रह (dishoarding) द्वारा वित्तीयन करने मे भेद नही करने देती।

अन्तिम जैसा कि ओहलिन ने लक्ष्य किया है, बचत तथा निवेश मे समानता प्रत्याशित समानता नही, बल्कि वास्तविक समानता है।

तालिका I : बचत-निवेश समानता

(रु० करोड मे)

आय	बचत	निवेश	आय गतिया
100	—15	10	विस्तार
200	0	20	
300	15	30	
400	30	40	
500	45	50	
600	60	60	सतुलन
700	75	70	सकुचन
800	90	80	
900	105	90	

फलनात्मक समानता (The functional equality)—फलनात्मक अथवा अनुसूची (schedule) के अर्थ मे बचत और निवेश मे समानता लाने का कार्य आय का समायोजनकारी यान्त्र (adjusting mechanism) करता है, जो कि ब्याज की दर मे परिवर्तनो से सम्बन्धित क्लासिकी विचारधारा मे नितान्त भिन्न है। इस रूप मे, केवल

आय के सतुलन स्तर पर बचत तथा निवेश समान होते हैं। आय फलनात्मक रूप से बचत और निवेश के साथ सबद्ध रहती है। जब निवेश की अपेक्षा बचत बढ जाती है, तो आय घट जाती है और जब बचत की अपेक्षा निवेश बढ जाता है तो आय बढ जाती है। आय, बचत तथा निवेश मे परिवर्तनो की यह प्रार्वेगिक प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी, जब तक कि बचत तथा निवेश के बीच न केवल समानता, बल्कि सतुलन भी स्थापित नही हो जाता। इसे तालिका I मे दिखाया गया है।

यह तालिका प्रकट करती है कि जब तक बचत की अपेक्षा निवेश अधिक है, तब तक आय बढती चलती है, जब तक कि वह रु० 600 करोड के सतुलन स्तर पर नही पहुच जाती, जहा बचत और निवेश मे से प्रत्येक रु० 60 करोड के बराबर हो जाता है। परन्तु इस बिन्दु के बाद बचत निवेश से बढ जाती है और पुन सतुलन तभी स्थापित होता है, जब आय घट कर वापिस रु० 600 करोड पर आती है।

बचत-निवेश समानता की सतुलन प्रक्रिया चित्र 57 2 मे दिखाई गई है। क्षैतिज अक्ष पर आय और अनुलम्ब अक्ष पर बचत तथा निवेश मापे गए हैं। SS बचत वक्र है और II निवेश वक्र। जब आय OY' है, तो बचत की अपेक्षा निवेश अधिक है, $I_1Y' > S'Y'$ अपेक्षाकृत अधिक निवेश के परिणामस्वरूप गुणक प्रक्रिया के मार्ग से आय तथा बचत मे तब तक वृद्धि होती चलेगी, जब तक कि सतुलन आय स्तर OY पर बचत तथा निवेश समान नही हो जाते, सतुलन आय स्तर OY को II तथा SS वक्रो के आपस मे काटने का बिन्दु E प्रकट करता है। जब आय OY'' हो जाती है, तो निवेश की अपेक्षा बचत बढ जाती है। इसके परिणामस्वरूप गुणक की विपरीत प्रक्रिया के मार्ग से आय तब तक घटती चलेगी, जब तक कि OY आय स्तर पर बचत और निवेश बराबर नही हो जाते। जब कभी बचत तथा निवेश के बीच का अन्तर उत्पन्न होता है, तो आय तब तक बढती या घटती रहती है, जब तक कि सतुलन स्तर नही आता। इस प्रकार, केवल सतुलन की स्थिति मे ही बचत और निवेश समान होते हैं।

चित्र 57 2
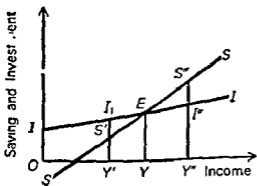
इस दृष्टिकोण के सबध मे लिखते हुए प्रोफेसर कुरिहारा (Kurihara) ने कहा है कि "सामान्य सतुलन विश्लेषण मे केन्द्रवादी बचतो तथा निवेश अनुसूचियो का वही स्थान है जो आंशिक सतुलन विश्लेषण मे मार्शल के पूर्ति तथा माग वक्रो का है आधुनिक आय विश्लेषण बचत तथा निवेश के फलनात्मक या अनुसूची विषयक सिद्धान्तो को काम मे लाता है, ताकि मूल आकड़ो मे जीवन का सचार कर सके, अर्थात् समस्त अर्थव्यवस्था के

व्यवहार पर बल दे सके, बजाय इसके कि उस व्यवहार के सांख्यिकीय परिणाम पर बल दे।"

प्रश्न

1. बचत और निवेश के परस्पर सम्बन्धों के यथार्थ तथा प्रत्याशित दृष्टिकोणों की आलोचनात्मक व्याख्या करिए।
2. "बचत और निवेश सदैव बराबर होते हैं।" "बचत और निवेश सतुलन मे बराबर होते हैं।" इन कथनों की व्याख्या कीजिए।
3. निम्न कथनों की व्याख्या करिए और उनमे सगति कीजिए .
   (क) बचत निवेश के सदैव समरूप है।
   (ख) बचत निवेश के बराबर तभी होती है जब अर्थव्यवस्था सतुलन मे हो।

अध्याय-58

गुणक की धारणा

(THE CONCEPT OF MULTIPLIER)

1 प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

गुणक की धारणा का विकास पहले-पहल आर० एफ० काह्न (R F. Kahn) ने जून 1931 के *Economic Journal* में प्रकाशित अपने "The Relation of Home Investment to Unemployment" शीर्षक लेख में किया था। काह्न का गुणक रोजगार गुणक है। केन्ज ने काह्न से विचार ग्रहण किया और निवेश गुणक (investment multiplier) को व्यवस्थित किया।

1. निवेश गुणक सिद्धान्त (Investment Multiplier Theory)

केन्ज अपने गुणक सिद्धान्त को अपने रोजगार सिद्धान्त का अभिन्न अंग मानता है। केन्ज के अनुसार, गुणक "उपभोग प्रवृत्ति के दिए हुए होने पर समस्त रोजगार एवं आय और निवेश के बीच यथार्थ सम्बन्ध स्थापित करता है। यह हमें बताता है कि जब निवेश में कोई वृद्धि की जाएगी, तो आय में जो वृद्धि होगी वह निवेश में की गई वृद्धि की K गुणा होगी", अर्थात् $\Delta Y = K\Delta I$। हैनसन के शब्दों में, "केन्ज का निवेश-गुणक ऐसा गुणांक है, जो निवेश में हुई वृद्धि को आय की वृद्धि से सबद्ध करता है।" अर्थात् $K = \Delta Y/\Delta I$, जहां Y आय है, I निवेश है, Δ परिवर्तन (वृद्धि या ह्रास—increment or decrement) है, और K गुणक है।

गुणक सिद्धान्त में, महत्त्वपूर्ण तत्त्व गुणक-गुणांक (multiplier coefficient) K है, जो उस शक्ति को संकेत करता है जिससे प्रारम्भिक निवेश व्यय को गुणन कर आय में अन्तिम वृद्धि प्राप्त की जाती है। गुणक के मूल्य को सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति निर्धारित करती है। सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति जितनी अधिक होगी, गुणक का मूल्य भी उतना ही अधिक होगा और विलोमशः भी। गुणक और सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति के बीच सम्बन्ध यों प्रकट किया जा सकता है :

$$Y = C + I$$

अथवा $$Y = cY + I \qquad (\because C = cY)$$

$$\Delta Y = C\Delta Y + \Delta I$$

$$\Delta Y - c\,\Delta Y = \Delta I$$

$$\Delta Y\,(1-c) = \Delta I$$

$$\Delta Y = \frac{1}{1-c} \Delta I$$

$$\frac{\Delta Y}{\Delta I} = \frac{1}{1-c}$$

$$K = \frac{1}{1-c} \qquad (\because K = \frac{\Delta Y}{\Delta I})$$

$$K = \frac{1}{MPS} \qquad (\because c = MPC)$$

क्योंकि $\Delta C / \Delta Y$ सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (c) है, इसलिए परिभाषा के अनुसार: गुणक K बराबर है, $1 - 1/MPC$। सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) से भी गुणक निकाला जा सकता है और यह MPS का व्युत्क्रम (reciprocal) होता है अर्थात् $K = 1/MPS$।

तालिका I : गुणक का मूल्य निकालना
(Derivation of the Multiplier)

$\Delta C/\Delta Y (MPC)$ सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति	$\Delta S/\Delta Y (MPS)$ सीमान्त बचत प्रवृत्ति	K (गुणक गुणांक)
0	1	1
$\frac{1}{2}$	$\frac{1}{2}$	2
$\frac{2}{3}$	$\frac{1}{3}$	3
$\frac{3}{4}$	$\frac{1}{4}$	4
$\frac{4}{5}$	$\frac{1}{5}$	5
$\frac{8}{9}$	$\frac{1}{9}$	9
$\frac{9}{10}$	$\frac{1}{10}$	10
1	0	∞ (अनन्त)

यह तालिका स्पष्ट करती है कि गुणक का परिणाम MPC के साथ सीधा तथा MPS के साथ विपरीत परिवर्तित होता है। क्योंकि MPC हमेशा शून्य से अधिक और एक से कम (अर्थात् $0 < MPC < 1$) होती है, इसलिए गुणक का मूल्य हमेशा एक और अनन्त के बीच (अर्थात् $1 < K < \infty$) रहता है। यदि गुणक एक है, तो इसका अर्थ है कि आय में हुई समस्त वृद्धि की बचत की जा रही है और कुछ भी नहीं व्यय किया जाता क्योंकि MPC शून्य है। दूसरी ओर, अनन्त गुणक का मतलब है कि MPC बराबर है एक के और आय में हुई समस्त वृद्धि उपभोग पर व्यय की जाती है। यह अर्थव्यवस्था में शीघ्र ही पूर्ण रोजगार ला देगी और फिर असीमित स्फीतिकारी उत्चक्र (spiral) उत्पन्न कर देगी। परन्तु ऐसा बहुत कम होता है, इसलिए गुणक गुणांक एक तथा अनन्त के बीच विचरण करता है।

गुणक का कार्यकरण (Working of the Multiplier)—गुणक आगे (forward) तथा पीछे (backward) दोनों ही क्रियाएं करता है। पहले हम इसकी आगे की क्रिया का अध्ययन करेंगे। गुणक सिद्धान्त निवेश में परिवर्तन के उस संचयी प्रभाव की व्याख्या करता है जो उसके उपभोग व्यय पर प्रभाव के माध्यम से आय पर पड़ता है।

हम पहले **क्रम-विश्लेषण** (sequence analysis) को लेते हैं, जो आय प्रजनन की प्रक्रिया का "चलचित्र" (motion picture) दिखाता है। निवेश में हुई वृद्धि से उत्पादन बढ़ता है, जो आय का निर्माण करता है और उपभोग व्यय का प्रजनन करता है। प्रक्रिया कम होती शृंखलाओं (dwindling series) में तब तक चलती रहती है, जब तक आय तथा व्यय में और वृद्धि असम्भव न हो जाए। जैसा कि केन्ज ने स्पष्ट किया है, यह स्थैतिक ढांचे में समयान्तर-रहित तात्कालिक प्रक्रिया (lagless instantaneous process) है।

मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था में MPC सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति है और निवेश में

तालिका II. क्रम गुणक
(Sequence Multiplier)

(रु० करोड़ों में)

चक्र (Round)	निवेश में वृद्धि (Increment in Investment) ΔI	आय में वृद्धि (Increment in Income) ΔY	उपभोग में वृद्धि (Increment in Consumption) $\Delta C = C\Delta Y$	बचत में वृद्धि (Increment in Saving) $\Delta S = \Delta Y - \Delta S$
0				
1	100 →	100 →	50	50
2	—	50 →	25	25
3	—	25 →	12 50	12 50
4	—	12 5 →	6 25	6 25
5	—	6 25 →	3 12	3 12
0	—	0 →	0	0
अन्ततः	100	200	100	100

रु० 100 करोड की वृद्धि की जाती है। इससे उत्पादन तथा आय मे तुरन्त रु० 100 करोड की वृद्धि हो जाएगी। इस नई आय का आधा भाग उपभोग वस्तुओ पर तुरन्त खर्च हो जाएगा जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन तथा आय मे उतनी ही मात्रा मे वृद्धि हो जाएगी और इसी प्रकार आगे भी। यह प्रक्रिया तालिका II मे प्रदर्शित की गई है।

यह प्रकट करती है कि प्राथमिक चक्र मे, निवेश की रु० 100 करोड की वृद्धि से आय मे उतनी ही वृद्धि हो जाती है। इसमे से रु० 50 की बचत की जाती है और रु० 50 करोड उपभोग पर व्यय किए जाते हैं, जो दूसरे चक्र मे आय को उतनी ही मात्रा मे बढ़ा देते हैं। आय प्रजनन की यह कम हो रही प्रक्रिया द्वितियक चक्रो मे तब तक चलती रहती है, जब तक कि निवेश रु० 100 करोड से बढ़कर रु० 200 करोड पर नही पहुच जाता। गुणक फार्मूला से भी यह स्पष्ट है, $\Delta Y = K \Delta I$, अथवा 200 2 × 100, जहां $K=2$(. $MPC=\frac{1}{2}$) और $\Delta I=$ रु० 100 करोड। निवेश मे वृद्धि के परिणामस्वरूप आय प्रजनन की यह प्रकिया आरेखीय रूप मे चित्र 58 1 मे दिखाई गई है।
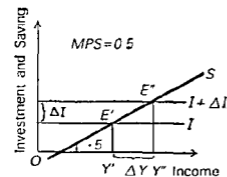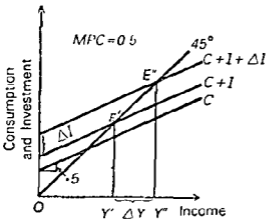
चित्र 58 1 और चित्र 58 2

C वक्र का ढलान 0 5 है जो यह प्रकट करता है कि MPC बराबर है, 1/2 (आधा)। $C+I$ निवेश वक्र है जो 45° की रेखा को E' बिन्दु इस प्रकार काटता है कि आय का पुराना सतुलन स्तर OY' है। अब निवेश मे ΔI की वृद्धि होती है जिसे $C+I$ तथा $C+I+\Delta I$ वक्रो के बीच का अतर व्यक्त करता है। यह वक्र 45° की रेखा को E'' पर काटता है और नई आय OY'' देता है। इस प्रकार ΔY द्वारा प्रकट की गई आय मे $Y' Y''$ वृद्धि उस अन्तर से दुगुनी है, जो $C+I$ और $C+I+\Delta I$ के बीच है, क्योकि $MPC=1/2$ है। यही परिणाम तब भी प्राप्त होता है जब MPS को लिया जाए, क्योकि जब आय बढ़ती है तो आय के नए सतुलन स्तर पर

नए निवेश के बराबर पहुचने के लिए बचतें भी बढ़ती हैं। इसे चित्र 58 2 मे दिखाया गया है। S बचत फलन है जिसका ढलान 0 5 प्रकट करता है कि $MPC = 1/2$ है। I पुराना निवेश वक्र है, जो S को E' पर इस प्रकार काटता है कि आय का पुराना सतुलन स्तर OY' है। निवेश मे वृद्धि ΔI, नये निवेश वक्र $I+\Delta I$ के रूप मे वक्र I के ऊपर दिखाई गई है जिसे S वक्र E'' पर काटता है और आय का नया सतुलन स्तर OY'' देता है। आय मे हुई वृद्धि Y' Y'' निवेश मे हुई वृद्धि ΔI से ठीक दुगुनी है, क्योंकि $MPS=1/2$ है।

पीछे की ओर कार्यकरण (Backward Operation)—उपर्युक्त विश्लेषण गुणक के आगे के कार्यकरण से सम्बन्धित है। पर, यदि निवेश बढ़ने की बजाय घट जाए तो गुणक पीछे की ओर क्रिया करता है। निवेश मे कमी होने से आय तथा उपभोग घटेंगे, जो आगे, आय तथा उपभोग मे तब तक सचयी कमी (cumulative decline) होती चलेगी, जब तक कि समस्त आय मे कमी निवेश मे प्रारम्भिक कमी का गुणित (multiple) नही रह जाता। मान लीजिए कि निवेश रु० 100 घट जाता है। $MPC=0\ 5$ और $K=2$ होने पर, उपभोग व्यय तब तक घटता जाएगा, जब तक कि समस्त आय मे रु० 200 करोड की कमी नही हो जाती। गुणक फार्मूला के अनुसार, $-\Delta\ I=K(-\ \Delta\ I)$, हमे प्राप्त होता है, $-200=2\ (-100)$।

गुणक के पीछे की ओर कार्यकरण के कारण आय मे कमी का आकार MPC के मूल्य पर निर्भर रहता है। MPC जितनी अधिक होगी, आय मे सचयी कमी भी उतनी ही अधिक होगी और विलोमश भी। इसके विपरीत, MPS जितनी अधिक होगी, फार्मूला का मूल्य उतना ही कम होगा और आय मे सचयी कमी भी उतनी ही थोडी होगी और विलोमश. भी।

इस प्रकार, कम उपभोग प्रवृत्ति (अथवा अधिक बचत प्रवृत्ति) वाले समाज की अपेक्षा अधिक उपभोग प्रवृत्ति (अथवा कम बचत प्रवृत्ति) वाले समाज को गुणक की विपरीत क्रिया (reverse operation) से अधिक हानि होगी।

आरेखीय रूप मे पीछे की क्रिया को चित्र 58 1, तथा 58 2 के अनुसार स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र 58 1 को लीजिए, जब निवेश घटता है, तो निवेश फलन $C+I+I\Delta I$ नीचे की ओर सरक कर $C+I$ पर आ जाता है। परिणामत., सतुलन स्तर भी E'' से सरक कर E' पर आ जाता है और आय OY'' से घटकर OY' हो जाती है। क्योंकि MPC 0 5 है, इसलिए आय मे कमी Y'' Y' निवेश मे हुई कमी से ठीक दुगुनी है जिसे कि $C+I+\Delta I$ और $C+I$ के बीच का अन्तर व्यक्त करता है। इसी प्रकार, चित्र 58 2 मे, जब निवेश घटता है, तो निवेश फलन $I+\Delta I$ नीचे की ओर सरक कर I वक्र पर आ जाता है और आय OY'' से घटकर OY' हो जाती है। क्योंकि MPS 0.5 है, इसलिए आय मे हुई कमी Y'' Y', निवेश मे हुई कमी से दुगुनी है, जिसे कि $I+\Delta I$ और I वक्रो के बीच का अन्तर मापता है।

गुणक की मान्यताएं (Assumptions of the Multiplier)

केन्ज का गुणक-सिद्धान्त कुछ मान्यताओं के अन्तर्गत कार्य करता है, जो गुणक के कार्यकारण को परिसीमित करती हैं। वे मान्यताएं निम्नलिखित हैं

(1) स्वायत्त निवेश में परिवर्तन होता है और प्रेरित निवेश का अभाव रहता है।

(2) सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति स्थिर रहती है।

(3) उपभोग चालू आय का फलन होता है।

(4) गुणक प्रक्रिया में काल सम्बन्धी अन्तराल (time lags) नहीं होते। निवेश में (वृद्धि या कमी) से तुरन्त ही आय में गुणित (multiple) वृद्धि (या कमी) होती है।

(5) गुणक प्रक्रिया को पूर्ण होने देने के लिए निवेश के स्तर को धीरे-धीरे स्थिर रखा जाता है।

(6) निवेश में निवल (net) वृद्धि होती है।

(7) निवेश में वृद्धि के कारण आय में वृद्धि होने पर उपभोक्ता वस्तुओं के लिए प्रभावी माग के अनुसार उनकी पूर्ति उपलब्ध रहती है।

(8) उपभोक्ता-वस्तु उद्योगों में अतिरिक्त क्षमता रहती है जिसमें उपभोक्ता वस्तुओं की उस बढ़ी हुई माग को पूरा किया जा सकता है जो कि निवेश बढ़ने पर आय में हुई वृद्धि का परिणाम होती है।

(9) उत्पादन के अन्य साधन भी अर्थव्यवस्था के भीतर ही आसानी से उपलब्ध होते हैं।

(10) जिस अर्थव्यवस्था में गुणक प्रक्रिया कार्यकारण करती है, वह औद्योगीकृत होती है।

(11) ऐसी बन्द अर्थव्यवस्था होती है जिस पर विदेशी प्रभावों का कोई अन्तर नहीं पड़ता।

(12) कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होते।

(13) निवेश पर उपभोग का त्वरक प्रभाव (acceleration effect) छोड़ दिया जाता है।

(14) अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार से अपेक्षाकृत कम स्तर होता है।

गुणक के रिसाव (Leakages of Multiplier)

रिसाव आय-सरिता के सभाव्य विचलन (potential diversions) हैं, जो नए निवेश के गुणक प्रवाह को दुर्बल बनाते हैं। सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति के दिए हुए होने पर, आय-सरिता में रिसावों के कारण, प्रत्येक चक्र में आय में होने वाली वृद्धि घटती जाती है और अन्तत आय प्रजनन समाप्त हो जाता है (देखिए तालिका I!) महत्त्वपूर्ण रिसाव निम्नलिखित हैं :

(1) बचत (Saving)—बचत गुणक-प्रक्रिया का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रिसाव है। क्योंकि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति एक से कम होती है, इसलिए आय में हुई समस्त वृद्धि

उपभोग पर नहीं व्यय होती। इसका कुछ भाग बचा लिया जाता है जो आय-सरिता में से रिस जाता है और अगले चक्र में आय में होने वाली वृद्धि घट जाती है। इस प्रकार सीमान्त बचत प्रवृति जितनी अधिक होगी, गुणक का आकार उतना ही कम और आय-सरिता में से रिसाव की मात्रा उतनी ही अधिक होगी, और विलोमश: भी। उदाहरणार्थ, यदि $MPS = 1/6$, तो गुणक 6 होगा, फार्मूला $K = 1/MPS$ के अनुसार और $1/3$ MPS से 3 का गुणक प्राप्त होगा।

(2) **प्रबल तरलता अधिमान** (Strong liquidity preference)—यदि लेन-देन सतर्कता तथा सट्टा उद्देश्यों के लिए प्रबल तरलता अधिमान की सन्तुष्टि के लिए बढ़ी हुई आय को निष्क्रिय नक़दी शेषों (idle cash balances) के रूप में संग्रह करने को अधिमान देते हैं, तो यह आय-सरिता में से रिसाव का कार्य करेगा। जब आय बढ़ती है तो लोग निष्क्रिय बैंक जमा (idle bank deposits) में संग्रह करेंगे और गुणक प्रक्रिया रुक जाएगी।

(3) **पुराने स्टॉक तथा प्रतिभूतियों का क्रय** (Purchase of old stocks and securities)—यदि बढ़ी हुई आय का कुछ भाग उपभोक्ता वस्तुओं का क्रय करने की बजाय पुराने स्टॉक तथा प्रतिभूतियों के क्रय में व्यय होगा तो उपभोग व्यय गिर जाएगा और आय पर उसका सचयी (cumulative) प्रभाव पहले से कम रहेगा। दूसरे शब्दों में, जब लोग पुराने स्टॉक और शेयर खरीदेंगे, तो उपभोग व्यय में कमी होने से गुणक का आकार कम हो जाएगा।

(4) **ऋण-विलोपन** (Debt cancellation)—यदि बढ़ी हुई आय का कुछ भाग, आगे उपभोग पर व्यय होने की बजाय बैंकों का ऋण चुकाने के काम आता है, तो आय का उतना भाग आय-सरिता में से रिसाव कर जाता है। यदि बढ़ी हुई आय का वह भाग अन्य ऋणदाताओं को चुका दिया जाता है जो इसे बचत या संग्रह कर लेते हैं, तो गुणक प्रक्रिया रुक जाएगी।

(5) **कीमत-स्फीति** (Price inflation)—जब बढ़े हुए निवेश से कीमत-स्फीति बढ़ती है, तो बढ़ी हुई आय का गुणक प्रभाव अधिक ऊंची कीमतों में बिखर जाता है। उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि का मतलब है कि उन पर व्यय की मात्रा बढ़ जाएगी। परिणाम यह होगा कि ऊंची कीमतें बढ़ी हुई आय को सोख लेंगी और वास्तविक उपभोग तथा आय घट जाएगी। इस प्रकार कीमत-स्फीति एक महत्वपूर्ण रिसाव है, जो बढ़ी हुई आय तथा उपभोग में वृद्धि को उत्पादन तथा रोजगार बढ़ाने के बजाय ऊंची कीमतों पर बिखेर देता है।

(6) **शुद्ध आयात** (Net imports)—यदि राष्ट्र आयात पर खर्च करता है तो यह राष्ट्रीय आय में से रिसाव का कार्य करते हैं। दूसरे शब्दों में, आयात पर किया गया खर्च राष्ट्रीय हानि होती है। यह गुणक मूल्य को कम कर देता है। उदाहरणार्थ, यदि $MPC = 8/10$ हो और आयात पर खर्च की जाने वाली राशि (आयात उपभोग प्रवृत्ति) $MPM = 2/10$ है तो ऐसी अवस्था में गुणक कम हो जाएगा।

$$\text{गुणक का मूल्य} = \frac{1}{1-\frac{8}{10}} = 5$$

$$\text{आयात पर किया गया खर्च} = \frac{8}{10} - \frac{2}{10} = \frac{6}{10}$$

$$\text{इस अवस्था में गुणक का मूल्य} = \frac{1}{1-\frac{6}{10}} = \frac{10}{4} = 2.5$$

जो पहले की अपेक्षा आधा रह जाता है।

इसे चित्र 58.3 में दर्शाया गया है जहां समानान्तर अक्ष पर राष्ट्रीय आय और अनुलम्ब अक्ष पर आयात पर किया गया खर्च या रिसाव व अन्तःप्रवाह (इन्जेक्शन) को लिया गया है। $(I+X)$ अन्तःप्रवाह रेखा है और $(S+M)$ रिसाव रेखा है। स्पष्ट है कि $(I+X)$ रेखा स्थिर निवेश को बताती है। बिन्दु E आय के सतुलन को व्यक्त करता है जहां $(I+X) = (S+M)$। यदि आयात खर्च बढ़ जाता है तो रिसाव-रेखा $(S+M)$ ऊपर की तरफ सरक कर $(S+M)_1$ हो जाती है। और रिसाव बढ़ कर EE_1 हो जाता है। अब नया सतुलन E_1 पर होता है और आय स्तर OY से कम कर OY_1 हो जाता है।
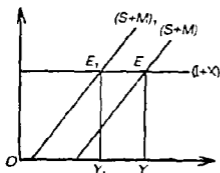
चित्र 58.3

(7) **अवितरित लाभ** (Undistributed profits)—यदि संयुक्त स्टॉक कम्पनियों को प्राप्त होने वाले लाभ हिस्सेदारों में लाभांश के रूप में नहीं वितरण किए जाते और आरक्षित कोष (*reserve fund*) के रूप में रख लिए जाते हैं तो यह आय-सरिता से रिसाव है। कम्पनियों के पास अवितरित लाभों का होना आय को, और इसलिए उपभोग को घटाता है जिससे गुणक प्रक्रिया दुर्बल हो जाती है।

(8) **कराधान** (Taxation)—कराधान नीति भी गुणक प्रक्रिया को दुर्बल बनाने में एक महत्वपूर्ण साधन है। आरोही करों के प्रभाव से करदाताओं की प्रयोज्य आय (disposable income) कम हो जाती है और उनका उपभोग व्यय घट जाता है। इस प्रकार वस्तु कराधान से वस्तुओं की कीमतें बढ़ने लगती हैं और बढ़ी हुई आय का कुछ भाग ऊंची कीमतों पर खर्च हो जाता है। इस प्रकार, बढ़ा हुआ कराधान आय-सरिता को कम करता है और गुणक के आकार को घटा देता है।

(9) **उपभोग वस्तुओं के अतिरिक्त स्टॉक** (Excess stocks of consumption goods)—यदि उपभोग वस्तुओं के लिए बढ़ी हुई मांग को उपभोग वस्तुओं के वर्तमान

अतिरिक्त स्टॉकों मे से पूरा किया जाएगा, तो उत्पादन रोजगार तथा आय मे और वृद्धि नहीं होगी और जब तक पुराने स्टॉक समाप्त नही होते, तब तक गुणक प्रक्रिया रुकी रहेगी।

(10) सार्वजनिक निवेश प्रोग्राम (Public investment programmes)—यदि निवेश मे वृद्धि के परिणामस्वरूप आय मे हुई वृद्धि पर सार्वजनिक व्ययो का प्रभाव पड़ता है, तो निम्नलिखित कारणों से यह निजी उद्यम को वह आगे इस आय को निवेश करने की प्रेरणा देने मे असमर्थ रहेगा।

(i) सार्वजनिक निवेश प्रोग्राम श्रम तथा माल के लिए माग बढा देंगे जिससे निर्माण की लागतें बढ जाएगी और कुछ निजी परियोजनाए चालू करना अलाभप्रद होगा।

(ii) सरकार द्वारा उधार-ग्रहण ब्याज की दर को बढा सकता है और इस प्रकार निजी निवेश को हतोत्साहित कर सकता है, बशर्ते कि उसके साथ-साथ मुद्रा प्राधिकरण पर्याप्त रूप से उदार साख नीति न अपनाए।

(iii) सरकारी कार्यक्रम की शत्रुता अथवा राष्ट्रीयकरण का भय उत्पन्न करके निजी निवेशको के विश्वास को आघात पहुचा सकते हैं।

गुणक की आलोचना (Criticism of the Multiplier)

निम्नलिखित आधार लेकर केन्ज के बाद के अर्थशास्त्रियो ने गुणक सिद्धान्त की कडी आलोचना की है।

(1) प्रोफेसर हैज़लेर ने केन्ज के गुणक को पुनरुक्ति-मात्र (tautological) बताकर उसकी आलोचना की है। यह स्वत सिद्ध सत्य है, जो $K = \frac{1}{1-\frac{\Delta C}{\Delta Y}}$ के रूप मे गुणक को निश्चित रूप से सत्य परिभाषित करता है। जैसाकि प्रोफेसर हैनसन ने लक्ष्य किया है, "इस प्रकार का गुणाक केवल गणितीय गुणक (अर्थात् स्वत सिद्ध) है और सही व्यवहार गुणक नही है, जो उस व्यवहार आदर्श पर आधारित हो जो उपभोग तथा आय के बीच प्रमाण्य सम्बन्ध स्थापित करता है। मात्र गणितीय गुणक, $\frac{1}{1-\frac{\Delta C}{\Delta Y}}$ पुनरुक्ति ही है।"

(2) केन्ज का गुणक सिद्धान्त तात्कालिक (instantaneous) प्रक्रिया है जिसमे समय-पश्चता (time lag) नही है। यह काल रहित (timeless) स्थैतिक सतुलन विश्लेषण है जिसमे आय पर निवेश मे परिवर्तन का कुल प्रभाव तात्कालिक होता है जिसमे उपभोग वस्तुओ का उत्पादन उसी समय होता है और उपभोग व्यय भी तुरन्त कर दिया जाता है। परन्तु तथ्यो से इसकी पुष्टि नही होती, क्योंकि आय की प्राप्ति और आय का उपभोग वस्तुओं पर व्यय होने एव उपभोग वस्तुओ के उत्पादन करने के बीच

समय-पश्चता सदैव पाया जाता है। इस प्रकार, "काल-रहित गुणक विश्लेषण सक्रमण (*transition*) की उपेक्षा करता है और केवल नए सतुलन आय स्तर की ही व्याख्या करता है।" और इसीलिए यह अयथार्थिक है।

(3) हैजलिट् (Hazlitt) के अनुसार, केन्ज का गुणक "एक विलक्षण धारणा है जिसके सबध मे केन्जवादी अर्थशास्त्रियो ने केन्जवादी पद्धति की अन्य सब बातो की अपेक्षा अधिकतम विवाद खडा किया है।" यह एक कल्पना मात्र है क्योकि निवेश तथा आय के बीच सही-सही, सम्बन्ध कभी हो ही नही सकता। इस प्रकार वह इसे "बेकार सैद्धान्तिक खिलौना" (*worthless theoretical toy*) समझता है।

(4) गुणक सिद्धान्त की एक दुर्बलता यह भी है कि यह उपभोग व्यय मे परिवर्तनो के माध्यम से आय पर पडने वाले निवेश के प्रभावो का अध्ययन करता है। परन्तु यह निवेश पर उपभोग के प्रभाव की उपेक्षा कर जाता है, जिसे त्वरण नियम (acceleration principle) कहा गया है। हिक्स (Hicks), सैम्यूलसन (Samuelson) तथा अन्य अर्थशास्त्रियो ने सिद्ध किया है कि गुणक तथा त्वरक की परस्पर क्रिया ही ऐसी है, जो व्यापार उतार-चढावा पर नियत्रण करने मे सहायक होती है।

(5) गोर्डन (Gordon) ने लक्ष्य किया है इस गुणक-सिद्धान्त की सबसे बडी दुर्बलता यह है कि यह एकमात्र उपभोग पर बल देता है। इस धारणा को अधिक यथार्थिक बनाने के लिए वह इस पक्ष मे है कि 'सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति' के बजाय 'सीमान्त व्यय प्रवृत्ति' शब्द प्रयोग किया जाए। उसे सीमान्त व्यय (अथवा उपभोग) प्रवृत्ति की स्थिरता के सबध मे भी आपत्ति है क्योकि गत्यात्मक अर्थव्यवस्था मे इसके स्थिर रहने की सम्भावना नही होती। यदि इसे स्थिर मान लिया जाए, तो यह सम्भव नही कि "निजी निवेश अथवा सार्वजनिक व्यय मे दी हुई वृद्धि के सम्बन्ध मे गुणक प्रभावो का बहुत ठीक पूर्व-कथन किया जा सके।"

(6) इस परिकल्पना के आधार पर कि *MPC* एक से कम और शून्य से अधिक होती है, केन्ज का गुणक सिद्धान्त उपभोग तथा आय के बीच रेखीय सबध स्थापित करता है। आय से सम्बन्धित उपभोग के व्यवहारो के आनुभविक अध्ययन बताते हैं कि दोनो के बीच का सम्बन्ध जटिल तथा अरेखीय है। जैसाकि गार्डनर एक्ले ने लक्ष्य किया है, "यह सम्बन्ध केवल चालू आय से चालू उपभोग तक ही नही जाता बल्कि इसमें भूतकाल की तथा प्रत्याशित आय और उपभोग की कुछ जटिल औसत भी पाई जाती है। आय के अतिरिक्त अन्य साधन भी हैं जिन पर विचार करना चाहिए।"

गुणक सिद्धान्त की आलोचना करने मे अन्य अर्थशास्त्री भी पीछे नही रहे हैं। प्रोफेसर हार्ट (Hart) इसे "पाचवा बेकार पहिया" (a useless fifth wheel) मानता है। स्टिग्लर (Stigler) के अनुसार, यह केन्ज के सिद्धान्त का अस्पष्टतम भाग (fuzziest part of Keynes' theory) है, जबकि हैजलिट् इसे ऐसा "निरर्थक उपकरण" (rubbish apparatus) बताता है, जो पाठ्य पुस्तको से निकाल दिया जाना चाहिए।

परन्तु इतनी कटु आलोचना के बावजूद, गुणक सिद्धान्त की आर्थिक समस्याओं के

सम्बन्ध में पर्याप्त व्यावहारिक उपयोगिता है जिसका उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

गुणक का महत्व (Importance of multiplier)—आय तथा रोजगार सिद्धान्त के सम्बन्ध में केन्ज का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान गुणक की धारणा है। जैसाकि रिचर्ड गुडविन (Richard Goodwin) ने ठीक ही कहा है, "लॉर्ड केन्ज ने गुणक की खोज निकालने का काम नहीं किया, यह श्रेय तो आर० एफ० काहन को ही जाता है। परन्तु केन्ज ने इसे सड़क-निर्माण के विश्लेषण के साधन से आय-निर्माण के विश्लेषण के साधन में रूपान्तरण करके यह कार्य सौंपा जो कि यह आज भी कर रहा है। इसने आर्थिक विचार के ढांचे के माध्यम से स्वच्छ वायु का संचार प्रारम्भ कर दिया।" इसका महत्व निम्नलिखित बातों में निहित है :

(1) **निवेश में** (In investment)—गुणक सिद्धान्त आय तथा रोजगार के सिद्धांत में निवेश के महत्व को दर्शाता है। क्योंकि अल्पकाल के दौरान उपभोग फलन स्थिर रहता है, इसलिए निवेश दर में उतार-चढ़ावों के कारण ही आय तथा रोजगार में उतार-चढ़ाव आते हैं। निवेश में कमी के परिणामस्वरूप आय तथा रोजगार में गुणक प्रक्रिया से संचयी कमी आती है। इस प्रकार यह निवेश के महत्व को प्रकट करता है और आय प्रजनन की प्रक्रिया की व्याख्या करता है।

(2) **व्यापार चक्र में** (In trade cycles)—जब ब्याज की दर में परिवर्तनों के कारण आय तथा रोजगार के स्तर में उतार-चढ़ाव आते हैं, तो गुणक प्रक्रिया व्यापार-चक्र की विभिन्न स्टेजों पर प्रकाश डालती है। जब निवेश में कमी होती है, तो आय तथा रोजगार संचयी ढंग से घटने लगते हैं जिसके परिणामस्वरूप प्रतिसार (recession) और अन्ततः मन्दी आती है। इसके विपरीत निवेश में वृद्धि पुनरुत्थान (revival) लाती है और यदि यह प्रक्रिया चलती रहे, तो तेजी (boom) लाती है। इस प्रकार, गुणक को व्यापार चक्रों में एक आवश्यक औजार समझा जाता है।

(3) **बचत निवेश समानता** (Saving-investment equality)—यह बचत तथा निवेश के बीच समानता लाने में भी सहायक होता है। यदि बचत तथा निवेश के बीच अन्तर होता है, तो निवेश में वृद्धि गुणक प्रक्रिया के मार्ग से, प्रारम्भिक निवेश में वृद्धि की अपेक्षा अधिक मात्रा में, आय को बढ़ाती है। आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप बचत भी बढ़ती है और निवेश के बराबर हो जाती है।

(4) **आर्थिक नीतियों का निर्माण** (Formulation of economic policies)—गुणक आर्थिक नीतियों के निर्माण में, आधुनिक सरकारों के हाथों में, एक महत्वपूर्ण औजार है। इस प्रकार, यह नियम पहले से यह मान लेता है कि आर्थिक मामलों में राज्य-हस्तक्षेप हो।

(i) **पूर्ण रोजगार उपलब्ध करने के लिए** (To achieve full employment)—राज्य निर्णय करता है कि बेरोजगारी दूर करने और पूर्ण रोजगार उपलब्ध करने के लिए अर्थव्यवस्था में निवेश की कितनी मात्रा बढ़ाई जाए। निवेश में प्रारम्भिक वृद्धि से आय तथा रोजगार में जो वृद्धि होती है, वह निवेश में हुई वृद्धि का K गुणा होती है। यदि

निवेश की एक अकेली मात्रा पूर्ण रोजगार लाने को अपर्याप्त हो, तो इस मतलब के लिए राज्य निवेश की लगातार मात्राएं तब तक करता रह सकता है; जब तक कि पूर्ण रोजगार स्तर नहीं आ जाता।

(ii) व्यापार-चक्रों पर नियंत्रण करने के लिए (To control trade cycles)—आय तथा रोजगार पर प्रभाव के आधार पर राज्य किसी व्यापार-चक्र में तेजियों तथा मन्दियों पर नियंत्रण कर सकता है। जब अर्थव्यवस्था को स्फीतिकारी दबावों का सामना करना पड़ता है, तो निवेश में कमी करके, राज्य उन पर काबू पा सकता है, जिसके (निवेश में कमी के) परिणामस्वरूप गुणक प्रक्रिया के मार्ग से आय तथा रोजगार में सचयी कमी आ जाती है। दूसरी ओर, अवस्फीतिकारी स्थिति में निवेश में वृद्धि गुणक प्रक्रिया के माध्यम से आय तथा रोजगार का स्तर बढ़ाने में सहायक हो सकती है।

(iii) घाटे का वित्त-प्रबंधन (Deficit financing)—गुणक सिद्धान्त घाटे के वित्त-प्रबन्धन के महत्त्व को स्पष्ट करता है। मंदी की अवस्था में, ब्याज की दर घटाने की सस्ती मुद्रा नीति नहीं सहायक होती क्योंकि पूंजी की सीमांत उत्पादकता इतनी कम होती है कि ब्याज की नीची दर निजी निवेश को प्रोत्साहन देने में असमर्थ रहती है। ऐसी स्थिति में, घाटे के बजट द्वारा बढ़ा हुआ सार्वजनिक व्यय पूंजी निवेश में K गुणा वृद्धि करके आय तथा रोजगार बढ़ाने में सहायक होता है।

(iv) सार्वजनिक निवेश (Public investment)—उपर्युक्त चर्चा सार्वजनिक निवेश नीति में गुणक के महत्त्व को प्रकट करती है। सार्वजनिक निवेश लोक-कल्याण में वृद्धि करने वाले सार्वजनिक निर्माण कार्य (public works) तथा अन्य निर्माण कार्यों पर, राज्य-व्यय से सम्बन्ध रखता है। यह स्वायत्त (autonomous) और लाभ उद्देश्य से मुक्त होता है। इसलिए अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी तथा अवस्फीतिकारी दबावों पर काबू पाने और पूर्ण रोजगार को उपलब्ध करने तथा बनाए रखने में यह अपेक्षाकृत अधिक शक्ति से लागू होता है। क्योंकि निजी निवेश लाभों के उद्देश्य से प्रेरित होता है, इसलिए वह तभी सहायक हो सकता है जब सार्वजनिक निवेश उसके अनुकूल स्थिति उत्पन्न कर दे। फिर, आर्थिक क्रिया को निजी उद्यम की सनक तथा अनिश्चितताओं पर नहीं छोड़ा जा सकता। अतः सार्वजनिक निवेश में गुणक का महत्त्व इस बात में निहित है कि वह आय तथा रोजगार का निर्माण अथवा नियंत्रण करता है। मंदी के दौरान जहां MPC अधिक होती है (अथवा MPS कम होता है), राज्य सार्वजनिक निवेश बढ़ाकर आय तथा रोजगार पर अधिकतम गुणक प्रभाव प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत, अति-पूर्ण रोजगार की अवधिया में, जहां MPS अधिक होती है (अथवा MPC कम होती है), निवेश में कमी करने से आय तथा रोजगार के स्तरों पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। श्रेष्ठतम नीति यह है कि जहां MPC कम हो (अथवा MPS अधिक हो), वहां आय तथा रोजगार में धीरे-धीरे कमी लाने के लिए निवेश घटाया जाए। पर महत्वपूर्ण बात यह है कि सार्वजनिक निवेश का समय ऐसा हो कि गुणक अपनी पूरी शक्ति से कार्य कर सके और आय-सरिता के रिसने की गुंजाइश न रहे। फिर सार्वजनिक निवेश को चाहिए कि

वह निजी निवेश को उखाड़ कर न फेंके बल्कि उसकी अनुपूर्ति करे ताकि निजी निवेश को मदी के दौरान बढाया जा सके और स्फीति मे घटाया जा सके। परिणामतः गुणक की आगे तथा पीछे की क्रिया, दोनो स्थितियो मे सहायक होगी।

(5) सरकारी हस्तक्षेप (Government interference)—गुणक सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि आय के स्तर मे सन्तुलन बनाए रखने के लिए सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है जबकि आय के स्तर मे वृद्धि के लिए निवेश मे वृद्धि आवश्यक है। मुद्रा स्फीति या अवस्फीति की स्थिति मे भी सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है।

2. प्रावैगिक या समयावधि गुणक (Dynamic or Period Multiplier)

केन्ज का गुणक का तार्किक सिद्धान्त समय-पश्चता (time lag) के बिना तात्कालिक (instantaneous) प्रक्रिया है। यह समय रहित स्थैतिक सतुलन विश्लेषण है जिसमे आय पर निवेश मे परिवर्तन का कुल प्रभाव तात्कालिक होता है जिससे उपभोग वस्तुओ का उत्पादन उसी समय होता है और उपभोग व्यय भी तुरन्त कर दिया जाता है। परन्तु तथ्यो से उसकी पुष्टि नही होती, क्योकि आय की प्राप्ति और आय का उपभोग वस्तुओ पर व्यय होने तथा उपभोग वस्तुओ को उत्पादित करने के बीच समय-पश्चता हमेशा पाया जाता है। इस प्रकार, काल-रहित गुणक विश्लेषण सक्रमण (transition) की उपेक्षा करता है और केवल नए सतुलन आय स्तर की ही व्याख्या करता है तथा इसलिए अवास्तविक है।

तालिका III प्रावैगिक या कालावधि गुणक (रु करोड)

समय महीनो मे	ΔI (निवेश मे वृद्धि)	$\Delta C = c\Delta Y = 0.5$ (उपभोग मे वृद्धि)	ΔY (आय मे वृद्धि)
0	0	0	0
$t+1$	100	0	100
$t+2$	100	50	100+50
$t+3$	100	25	150+25
⋮	.	.	
$t+n$	100	100	200

प्रावैगिक गुणक आय प्रजनन की प्रक्रिया मे समय-पश्चतो से सबधित है। गुणक प्रक्रिया को पूरा करने के लिए आय और उपभोग मे समायोजनो की शृखला (series of adjustments) कई महीनें या वर्ष भी ले सकती है, जो कालावधि की मान्यता पर निर्भर करती है। इसे तालिका III मे वर्णित किया गया है जहां प्रत्येक पश्कर एक

महीने का है और रु. 100 करोड़ के प्रारंभिक निवेश को रु 200 करोड की आय प्रजनन करने मे सत्रह चक्कर लगते हैं, $MPC=0.5$ दी होने पर। इस प्रकार गुणक प्रक्रिया को पूरा होने में सत्रह महीने लगेंगे।

यह तालिका दर्शाती है कि यदि $MPC=0.5$ पर स्थिर रहती है तो निवेश मे रु. 100 करोड की प्रारंभिक वृद्धि पहले महीने $(t+1)$ मे आय को रु. 100 करोड बढ़ा देगी। इसमे से रु 50 करोड उपभोग पर व्यय कर दी जाएगी। यह दूसरे महीने $(t+2)$ मे आय में रु 50 करोड की वृद्धि करेगी और इसमें से रु 25 करोड उपभोग पर व्यय किए जाएगे। यह तीसरे महीने $(t+3)$ मे आय में रु 25 करोड की वृद्धि करेगी और आय मे क्रमिक वृद्धिया प्रत्येक महीने मे छोटी ही छोटी होती जाएगी जब तक कि 17 वें महीने मे आय मे रु 0.001 करोड की वृद्धि होगी। इसे समीकरण के रूप में निम्नलिखित भी समझाया जा सकता है :

$$\Delta Y=\Delta I+\Delta Ic+\Delta Ic^2+\Delta Ic^3+\cdots+\Delta Ic^{n-1} \text{ (जहां } c=MPC)$$

$$\Delta Y=100+100\,(0.5)+100\,(0.5)^2+100(0.5)^3+\cdots+100\,(0.5)^{n-1}$$

$$\Delta Y=\frac{1-.5^2}{1-.5}100=\frac{1}{1-.5}=\text{रु. } 200 \text{ करोड।}$$

प्रावैगिक आय प्रजनन की यह प्रक्रिया मान लेती है कि उपभोग समय-पश्चता (lag) होता है पर निवेश समय-पश्चात नही होता, जिससे उपभोग, पिछली अवधि की आय का फलन, अर्थात् $C_t=f(Y_{t-1})$ है और निवेश काल (t) तथा स्थिर स्वायत्त निवेश (ΔI) का फलन, अर्थात् $I_t=f(Y_t\Delta I)$ चित्र 58.4 मे $C+I$ कुल मांग फलन है और 45° की रेखा कुल पूर्ति फलन है। यदि हम t_0 अवधि मे शुरू करें जबकि आय की OY_0 मात्रा पर संतुलन स्तर है और निवेश मे ΔI वृद्धि कर दी जाए, तो t अवधि मे आय, बढ़ाए हुए निवेश की मात्रा के बराबर बढ़ जाती है (t_0 से t तक पहुच जाती है) बढ़े हुए निवेश को नए कुल मांग फलन $C+I+\Delta I$ द्वारा दिखाया गया है परन्तु t_0 अवधि मे उपभोग पीछे रह जाता है और अभी भी मूल आय E_0 के बराबर है। परन्तु Y_0 स्तर पर कुल मांग Y_0t_0 से बढ़कर Y_0t पर पहुच जाती है। अब पूर्ति की उपेक्षा $t_0t\ (=\Delta I)$ मात्रा के बराबर मांग बढ़ जाती है।
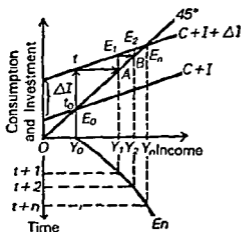
चित्र 58.4

$t+1$ अवधि मे नया निवेश आय को बढ़ाकर OY_1 तक पहुंचा देता है और उपभोग को बढ़ाकर t से E_1 पर ले जाता है। परन्तु इस स्तर पर कुल मांग Y_1E_1 है जिसकी मात्रा कुल पूर्ति से AE_1 अधिक है। यह $t+2$ अवधि मे आय को आगे OY_2 तक बढ़ाएगी और उपभोग को E_1E_2 तक बढ़ा देगी। यह आगे माग को बढ़ाकर Y_2E_2 तक ले जाएगी जिसके परिणामस्वरूप कुल पूर्ति की अपेक्षा कुल माग BE_2 अधिक हो जाएगी। आय प्रजनन की यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी, जब तक कि $C+I+\Delta I$ कुल माग फलन E_n पर nth अवधि मे कुल पूर्ति फलन 45° की रेखा के बराबर नही हो जाता और OY_n पर आय का नया स्तर नही निर्धारित हो जाता। E_o से E_n तक सीढ़ीनुमा पथ आय प्रजनन का प्रावैगिक मार्ग है, जो गुणक की प्रावैगिक प्रक्रिया को व्यक्त करता है। चित्र का नीचे का भाग गुणक प्रक्रिया के काल विस्तार को दर्शाता है जो $Y_o E_n$ वक्र द्वारा $t+1$ से $t+^n$ अवधि मे आय की Y_o से Y_n वृद्धि को व्यक्त करता है। इससे यह अर्थ निकलता है कि उन्नत अर्थव्यवस्था मे, जहां कि सब प्रकार की अनिश्चितताएं तथा कठोरताएं विद्यमान रहती हैं, वहां प्राप्य आय से उपभोग काफी पीछे रह जाता है और यह प्रत्येक चक्कर को बढ़ा देता है और इस प्रकार आय प्रजनन की गति को धीमा कर देता है।

3. रोजगार गुणक (Employment Multiplier)

सन् 1931 मे आर० एफ० काह्न (R F Kahn) ने पहले-पहल रोजगार गुणक की धारणा का प्रवर्तन किया। रोजगार गुणक वह अनुपात है जो रोजगार मे कुल वृद्धि तथा प्राथमिक रोजगार मे कुल वृद्धि के बीच होता है, अर्थात् $K'=\Delta N/\Delta N_1$ जहां K' रोजगार गुणक है, ΔN कुल रोजगार मे हुई वृद्धि है और ΔN_1 प्राथमिक रोजगार मे वृद्धि है। इस प्रकार, "रोजगार गुणक एक ऐसा गुणाक है जो सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर प्राथमिक रोजगार की वृद्धि को कुल रोजगार प्राथमिक तथा द्वितीयक रोजगार मिलाकर, की परिणामी वृद्धि से सम्बद्ध करता है।" इसे स्पष्ट करने के लिए, मान लीजिए कि सार्वजनिक निर्माण कार्यों मे 2,00,000 अतिरिक्त व्यक्ति नियुक्त किए जाते हैं जिससे (द्वितीयक) रोजगार मे 4,00,000 की वृद्धि होती है। कुल रोजगार 6,00,000 बढ़ जाता है। रोजगार गुणक होगा $=6,00,000/2,00,000=3$।

बीजगणित से, केन्ज का गुणक $\Delta Y=K\Delta I$, काह्न के $\Delta N=K'\Delta N_1$ के समान है। परन्तु केन्ज बताता है कि कोई सामान्य कारण नहीं है कि $K=K'$ मान लिया जाए क्योंकि यदि प्रक्रिया मे मजदूरी न कमाने वालो की आय मजदूरी कमाने वालों की आय से अधिक अनुपात मे बढ़ जाए, तो मजदूरी इकाइयो के रूप मे आय रोजगार की अपेक्षा अधिक बढ़ जाएगी। फिर घटते प्रतिफलो की स्थिति मे रोजगार की अपेक्षा कुल उत्पादन कम अनुपात मे बढ़ेगा। संक्षेप मे, मजदूरी आय के रूप मे सबसे अधिक बढ़ेगी, रोजगार उससे कम और उत्पादन सबसे कम। फिर भी, हैन्सन के अनुसार, जैसा कि केन्ज का

आय तथा रोजगार सिद्धान्त बतलाता है, तीनों ही, आय, रोजगार और उत्पादन इकट्ठे बढ़ने और घटने लगेंगे। हैन्सन इस निष्कर्ष पर पहुचता है कि व्यावहारिक दृष्टि से यदि मान लिया जाए कि रोजगार गुणक K' निवेश गुणक K के बराबर है तो तथ्यो को कोई बड़ी हानि नही पहुचती।

पर यदि पूर्ण रोजगार की ओर उत्पादन बढ़ेगा, तो घटते प्रतिफलो के कारण श्रम का प्रति इकाई उत्पादन कम हो जाएगा। ऐसी स्थिति मे जब उत्पादन और रोजगार बढाने मे गुणक कार्य कर रहा है तो K से K' बडा होगा। परन्तु यदि गुणक विपरीत दिशा मे कार्य कर रहा है तो K से K' छोटा होगा।

डिल्लर्ड के अनुसार, सार्वजनिक निर्माण कार्यों से प्राथमिक तथा द्वितीयक रोजगार के बीच सबंध दिखाने के लिए रोजार गुणक उपयोगी है। परन्तु केन्ज की गुणक धारणा काहन की धारणा से अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि गुडविन (Goodwin) के शब्दो मे, "केन्ज ने इसे सड़क निर्माण के विश्लेपण के औजार से आय निर्माण के विश्लेषण के औजार मे बदलकर इसे वह कार्यभाग सौंपा, जो कि यह आज कर रहा है।"

प्रश्न

1. 'उपभोग प्रवृत्ति' से क्या अभिप्राय है ? उपभोग प्रवृत्ति तथा निवेश गुणक मे सबंध की व्याख्या कीजिए।
2. "सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति जितनी अधिक होगी, उतना ही अधिक गुणक का मूल्य होगा।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. "गुणक केन्ज़ीय रोजगार तथा आय सिद्धान्त का आधारभूत भाग है।" इस कथन की पूरी तरह से व्याख्या कीजिए।
4. किसी विश्लेषणात्मक प्रयोजनो के लिए आय प्रजनन सिद्धान्त मे 'रिसावो' और 'समय-पश्चता' (lags) की धारणाओ का प्रयोग किया जाता है ?
5. गुणक को परिभाषित कीजिए और इसका अतिगुणक मे भेद करिए। वह ढग बताइए जिसके द्वारा गुणक केन्ज़ीय रोजगार सिद्धान्त मे प्रयोग किया गया है।
6. केन्ज के गुणक सिद्धान्त की व्याख्या करिए और उसकी अल्पविकसित देशो पर व्यवहार्यता बताइए।

अध्याय-59
त्वरण का नियम तथा अतिगुणक
(THE PRINCIPLE OF ACCELERATION AND THE SUPER-MULTIPLIER)

1. प्रस्तावना (INTRODUCTION)

टी० एन० कार्वर प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने 1903 में उपभोग और शुद्ध निवेश में सम्बन्ध को समझा। परन्तु ऐफ्टेलियन (Aftalion) ने इस सिद्धान्त का 1909 में विस्तार से विश्लेषण किया। 'त्वरण सिद्धान्त' नाम अर्थशास्त्र में पहली बार 1917 में जे० एम० क्लार्क ने प्रयोग किया। इसको आगे हिक्स, सैम्यूलसन, और गुडविन ने व्यापार चक्रों से सम्बद्ध विकसित किया।

त्वरण का नियम (The Principle of Acceleration)

त्वरण नियम इस तथ्य पर आधारित है कि पूंजी वस्तुओं की माग उन उपभोग वस्तुओं की माग से व्युत्पन्न (derived) होती है जिनके उत्पादन में वे सहायक होती हैं। त्वरण सिद्धान्त उस प्रक्रिया को स्पष्ट करता है जिसके द्वारा उपभोग वस्तुओं की माग में वृद्धि (या कमी) से पूंजी वस्तुओं के निवेश में वृद्धि (या कमी) होती है। कुरीहारा के अनुसार, "त्वरण गुणाक प्रेरित निवेश और उपभोग व्यय में प्रारम्भिक परिवर्तन के बीच अनुपात है।"[1]

सूत्र रूप में, $B=\Delta I/\Delta C$ or $\Delta I=B\Delta C$, जहा B त्वरण गुणाक है, ΔI निवेश में शुद्ध परिवर्तन है और ΔC उपभोग व्यय में शुद्ध परिवर्तन है। यदि रु० 10 करोड के उपभोग व्यय में वृद्धि से रु० 30 करोड की निवेश में वृद्धि होती है, तो त्वरण गुणाक 3 होता है।

त्वरण सिद्धान्त के इस विवरण को हिक्स ने अधिक विस्तार से इस प्रकार व्यक्त किया है कि यह त्वरक गुणाक प्रेरित निवेश द्वारा उत्पादन में जो परिवर्तन होना है उसका अनुपात है। अत त्वरक $v=\Delta I/\Delta Y$ या पूंजी-उत्पादन अनुपात। यह उत्पादन में सबद्ध परिवर्तन (ΔY) और निवेश में परिवर्तन (ΔI) पर निर्भर करता है। यह दर्शाता है कि पूंजी वस्तुओं के लिए माग केवल उपभोग वस्तुओं से ही व्युत्पन्न नही होती है बल्कि राष्ट्रीय उत्पादन की किसी भी प्रत्यक्ष माग से।

[1] "The acceleration coefficient is the ratio between induced investment and an initial change in consumption expenditure" —K Kurihara

एक अर्थव्यवस्था में, पूंजी का इच्छित स्टॉक उत्पादन की माग में परिवर्तन पर निर्भर करता है। उत्पादन में किसी परिवर्तन से पूंजी स्टॉक मे परिवर्तन होगा। आगे यह परिवर्तन उत्पादन में परिवर्तन के v गुणा के बराबर होता है। अत $\triangle I=v\triangle Y$, जहाँ v त्वरक है। यदि एक मशीन का मूल्य रु० 4 लाख होता है और यह रु० 1 लाख के मूल्य का उत्पादन करती है, तब v का मूल्य 4 होता है। एक उद्यमी जो अपने उत्पादन को प्रति वर्ष रु० 1 लाख बढ़ाना चाहता है उसे इस मशीन पर रु० 4 लाख अवश्य व्यय करने चाहिए। यह समान रूप से एक अर्थव्यवस्था पर भी लागू होता है जहां यदि त्वरक का मूल्य एक से अधिक हो तो उत्पादन की प्रति इकाई अधिक पूंजी चाहिए, ताकि शुद्ध निवेश में वृद्धि, जो उत्पादन मे वृद्धि के कारण पाई जाती है, अधिक हो। अर्थव्यवस्था मे सकल निवेश बराबर होता है प्रतिस्थापन निवेश जमा शुद्ध निवेश। प्रतिस्थापन (replacement) निवेश स्थिर होने पर, सकल (gross) निवेश उत्पादन के प्रत्येक स्तर के अनुरूप परिवर्तित होगा।

त्वरण सिद्धान्त को ब्रूमैन (Broomen) द्वारा दिए गए निम्न समीकरण से व्यक्त किया जा सकता है :

$$I_{gt}=v\,(Y_t-Y_{t-1})+R$$
$$=v\triangle Y_t+R$$

जहां I_{gt} काल t में सकल निवेश है, v त्वरक है, Y_t काल t में राष्ट्रीय उत्पादन है, Y_{t-1} पिछली अवधि $(t-t)$ में राष्ट्रीय उत्पादन है, और R प्रतिस्थापन निवेश है।

समीकरण यह बताया है कि अवधि t के दौरान सकल निवेश निर्भर करता है उत्पादन में अवधि $t-1$ से t तक परिवर्तन पर गुणा त्वरण (v) जमा प्रतिस्थापन निवेश (R)।

शुद्ध निवेश (I_n) निकालने के लिए, समीकरण के दोनो ओर से R को घटा देना चाहिए ताकि t अवधि में शुद्ध निवेश होता है :

$$I_{nt}=v\,(Y_t-Y_{t-1})$$
$$=v\triangle Y_t$$

यह समीकरण $\triangle I=v\triangle Y$ के सिवाय और कुछ नहीं है क्योंकि $\triangle Y=Y_t-Y_{t-1}$ वास्तव में, हिक्स द्वारा परिभाषित त्वरक $\triangle I=v\triangle Y$ और सैम्यूलसन द्वारा परिभाषित त्वरक $\triangle I=\beta\triangle C$ में कोई विशेष अन्तर नहीं है। हिक्स उत्पादन में अन्तिम वृद्धि $(\triangle Y)$ को लेता है जबकि सैम्यूलसन उपभोग वस्तुओं की मांग में वृद्धि $(\triangle C)$ को लेता है। हिक्स के मॉडल में शुद्ध निवेश $I_{nt}=v\,(Y_t-Y_{t-1})$ जबकि सैम्यूलसन के मॉडल में $I_{nt}=\beta\,(C_t-C_{t-1})$ परन्तु त्वरण सिद्धान्त को अन्तिम उत्पादन (Y) में समझाना प्रथागत बन गया है।

यदि $Y_t>Y_{t-1}$ हो तो t अवधि के दौरान शुद्ध निवेश धनात्मक होता है। दूसरी ओर, यदि $Y_t\triangle Y_{t-1}$ हो तो शुद्ध निवेश ऋणात्मक होता है या t अवधि के दौरान विनिवेश (disinvestment) होता है।

त्वरण सिद्धान्त का कार्यकरण (Operation of the Acceleration Principle)

त्वरण सिद्धान्त का कार्यकरण नीचे तालिका I में दिए गए उदाहरण की सहायता से समझाया गया है।

तालिका I : त्वरण सिद्धान्त का कार्यकरण $v=4$

अवधि वर्षों में (1)	कुल उत्पादन (Y) (2)	इच्छित पूंजी (3)	प्रतिस्थापन निवेश (R) (4)	+	शुद्ध निवेश (I_n) (5)	=	सकल निवेश (I_g) (6)
t	100	400	40		0		40
$t+1$	100	400	40		0		40
$t+2$	105	420	40		20		60
$t+3$	115	460	40		40		80
$t+4$	130	520	40		60		100
$t+5$	140	560	40		40		80
$t+6$	145	580	40		20		60
$t+7$	140	560	40		—20		20
$t+8$	130	520	40		—40		0
$t+9$	125	500	40		—20		20

यह तालिका t से लेकर $t+9$ तक की समय अवधि में कुल उत्पादन, पूंजी स्टॉक, शुद्ध निवेश तथा सकल निवेश में परिवर्तनों को दिखाती है। त्वरण का मूल्य $v=4$ मान कर, इच्छित (desired) पूंजी स्टॉक प्रत्येक समय में उत्पाद का 4 गुणा है जैसाकि स्तम्भ (3) में दिखाया गया है। प्रतिस्थापन निवेश समय t में पूंजी स्टॉक का 10 प्रतिशत माना गया है जो प्रत्येक अवधि में 40 करोड़ रु० दिखाया गया है। स्तम्भ (5) में शुद्ध निवेश एक अवधि और पिछली अवधि में उत्पादन में परिवर्तन का v गुणा है। उदाहरणार्थ, अवधि $t+3$ में शुद्ध निवेश$=v\ (Y_{t+3}-Y_{t+2})$ या $40=4\ (115-105)$, इसका अभिप्राय यह है कि त्वरक का मूल्य 4 दिया होने पर, अन्तिम उत्पादन में 10 करोड़ रु० की वृद्धि होने पर पूंजी वस्तुओं की मांग में 40 करोड़ रु० की वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप पूंजी वस्तुओं की कुल मांग बढ़ कर 80 करोड़ रु० हो जाती है (स्तम्भ 6) जो 40 करोड़ रु० प्रतिस्थापन निवेश (स्तम्भ 4) तथा 40 करोड़ रु० शुद्ध निवेश (स्तम्भ 5) के जोड़ से प्राप्त होती है। जब तक अन्तिम वस्तुओं (उत्पादन) की मांग में वृद्धि होती है तब तक शुद्ध निवेश धनात्मक होता है। परन्तु जब यह कम होनी प्रारम्भ हो जाती है तो शुद्ध निवेश ऋणात्मक होता है। ऊपर तालिका में कुल उत्पादन

(स्तम्भ 2) में अवधि $t+1$ से $t+4$ तक बढ़ती दर से वृद्धि होती है और इसी प्रकार शुद्ध निवेश में। फिर अवधि $t+5$ से $t+6$ तक यह घटती दर से बढ़ता है और शुद्ध निवेश कम होता है। अवधि $t+7$ से $t+9$ तक कुल उत्पादन गिरता है और शुद्ध निवेश ऋणात्मक हो जाता है।

त्वरण सिद्धान्त को रेखाकृति द्वारा चित्र 59.1 में दर्शाया गया है जहां ऊपर के भाग में कुल उत्पादन वक्र Y $t+4$ अवधि तक बढ़ती दर से बढ़ता जाता है। फिर $t+6$ अवधि तक घटती दर से बढ़ता है। इसके बाद यह गिरना प्रारम्भ कर देता है। चित्र से नीचे के भाग में I_n वक्र दिखाता है कि अवधि $t+4$ तक उत्पाद बढ़ने से शुद्ध निवेश में वृद्धि होती है क्योंकि उत्पादन बढ़ती हुई दर से बढ़ रहा है। परन्तु जब अवधि $t+4$ और $t+6$ के बीच में उत्पादन घटती दर से बढ़ता है तो शुद्ध निवेश कम होता जाता है। जब $t+7$ अवधि में उत्पादन कम होना प्रारम्भ करता है तो शुद्ध निवेश ऋणात्मक हो जाता है। वक्र I_g अर्थव्यवस्था के सकल निवेश को दर्शाता है। इसका व्यवहार शुद्ध निवेश वक्र से समान ही है। परन्तु दोनों में एक अन्तर है कि सकल निवेश ऋणात्मक नहीं है और जब अवधि $t+8$ में यह शून्य हो जाता है तो I_g वक्र ऊपर की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर देता है। ऐसा इस कारण कि शुद्ध निवेश ऋणात्मक होने पर भी प्रतिस्थापन निवेश (R) एक ही दर से अर्थव्यवस्था में हो रहा है।
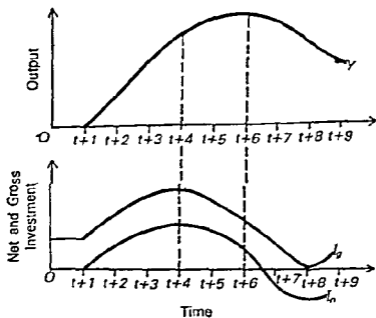
चित्र 59.1

इसकी मान्यताएं (Its Assumptions)

त्वरण सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

1. यह स्थिर पूजी-उत्पादन अनुपात मानता है।
2. यह मानता है कि ससाधन आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं।
3. प्लांटो मे कोई अतिरिक्त या निष्क्रिय क्षमता नही पाई जाती है।
4. यह माना जाता है कि बढी हुई माग स्थायी होती है।
5. यह भी मान्यता है कि पूजी और साख की पूर्ति लोचदार है।
6. उत्पादन में वृद्धि से शुद्ध निवेश म शीघ्र ही वृद्धि हो जाती है।
7. इच्छित पूजी स्टॉक और वास्तविक पूजी स्टॉक म कोई अन्तर नही पाया जाता है।

इसकी आलोचनाए (Its Criticisms)

त्वरण-नियम की कठोर मान्यताओ के कारण अर्थशास्त्रियों ने कड़ी आलोचना की है। इसकी सीमाए निम्नलिखित हैं

(1) त्वरण-नियम स्थिर पूजी उत्पादन अनुपात (capital-output ratio) पर आधारित है। परन्तु आधुनिक गतिशील जगत् मे यह अनुपात स्थिर नही रहता। आविष्कार तथा उत्पादन की तकनीकों मे निरन्तर सुधार होते रहते हैं जिनसे पूजी उपस्कर का प्रति इकाई उत्पादन बढ जाता है। अथवा, वर्तमान पूजी-उपस्कर से अधिक गहनता से काम लिया जा सकता है। फिर, कीमतो, मजदूरी, ब्याज के सम्बन्ध मे व्यापारियो की प्रत्याशाओ मे परिवर्तनो से भावी माग पर प्रभाव पड़ता है और पूजी-उत्पादन अनुपात बदल जाता है। इस प्रकार, पूजी-उत्पादन अनुपात स्थिर नही रहता बल्कि व्यापार-चक्र की विभिन्न प्रावस्थाओ मे परिवर्तित हो जाता है।

(2) त्वरण-नियम मान लेता है कि साधन उपलब्ध रहते हैं (resources are available)। साधन लोचदार होने चाहिए ताकि उन्हे पूजी वस्तु उद्योगों मे लगाया जा सके जिनसे वे विस्तार कर सकें। यह तभी सभव है जबकि अर्थव्यवस्था मे बेरोजगारी हो। परन्तु जब अर्थव्यवस्था एक बार पूर्ण रोजगार के स्तर पर पहुच जाती है, तो पर्याप्त साधनो की अप्राप्यता के कारण पूजी-वस्तु उद्योग विस्तार नही कर पाते। इससे त्वरक नियम का कार्यकरण सीमित हो जाता है।

(3) त्वरण-सिद्धात मान लेता है कि प्लाटो मे अप्रयुक्त (unused) या अतिरिक्त (excess) क्षमता नही होती। यदि कुछ मशीनें अपनी पूर्ण क्षमता के अनुसार कार्य नही कर रही हैं और निष्क्रिय पडी हैं, तो उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि होने से नई पूजी वस्तुओ के लिए माग नही बढ़ेगी। ऐसी स्थिति मे त्वरण-नियम नहीं काम करेगा। फिर, यह सिद्धान्त आर्थिक प्रतिसार (recession) मे लागू नहीं होगा क्योंकि उसमे अतिरिक्त क्षमता पाई जाती है।

(4) त्वरण-नियम इस मान्यता पर आधारित है कि इच्छित और वास्तविक पूजी स्टॉकों मे कोई अन्तर नही पाया जाता और यदि हो भी तो एक ही अवधि मे समाप्त हो

जाता है। परन्तु यदि पूंजी वस्तुएं उत्पादित कर रहे उद्योग पहले से ही पूर्ण क्षमता पर काम कर रहे हैं तो एक अवधि में ही अन्तर समाप्त करना सम्भव नहीं हो सकता है।

(5) पूर्ण क्षमता के पाए जाने की मान्यता का अभिप्राय यह है कि उत्पादन की बढ़ी माग एकदम प्रेरित निवेश लाती है। इसलिए त्वरण नियम निवेश के समय का हिसाब (timing of investment) लगाने में असफल होता है। उत्तम रूप में, यह निवेश की मात्रा की व्यवस्था करता है। वास्तव में, नया निवेश प्रजनन करने से पहले समय-पश्चता (time lag) हो सकती है। उदाहरणार्थ, यदि समय-पश्चता चार वर्ष हो तो नये निवेश का प्रभाव एक वर्ष में नहीं बल्कि चार वर्षों में प्रतीत होगा।

(6) फिर, पूंजी वस्तुओं की प्राप्ति में समय का हिसाब उनकी उपलब्धि और लागत तथा वित्त की प्राप्यता और लागत पर निर्भर करता है।

(7) यह मान लिया जाता है कि उपभोक्ता वस्तुओं की मांग में वृद्धि का पहले से अनुमान नहीं किया गया था और पिछले निवेशों में उनके लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। यदि भावी माग का पूर्वानुमान करके पूंजी उपस्कर पहले ही लगा दिया गया है, तो इससे प्रेरित निवेश नहीं होगा और त्वरण प्रभाव शून्य रहेगा।

(8) यह सिद्धान्त आगे यह भी मान लेता है कि नई उपभोग मांग स्थायी होती है यदि यह आशा हो कि उपभोक्ता वस्तुओं के लिए माग अस्थायी है, तो उत्पादक नई पूंजी वस्तुओं में निवेश नहीं करेंगे। इसकी बजाय, वे वर्तमान पूंजी उपस्कर को और अधिक गहनता से चलाकर बढ़ी हुई माग पूरी कर सकते हैं। इसलिए त्वरण नहीं सफल होगा।

(9) त्वरण नियम मान लेता है कि साख की पूर्ति लोचदार होती है, ताकि जब प्रेरित उपभोग के परिणामस्वरूप प्रेरित निवेश हो, तो पूंजी वस्तु उद्योगों में निवेश के लिए सस्ती साख आसानी से मिल सके। यदि सस्ती साख पर्याप्त मात्रा में नहीं उपलब्ध होगी, तो ब्याज की दर ऊंची होगी और पूंजी वस्तुओं में बहुत कम निवेश होगा। इस प्रकार, त्वरण पूर्ण रूप से नहीं काम करेगा।

इस मान्यता का आगे अभिप्राय यह है कि निवेश के लिए फर्म वित्त के बाह्य स्रोतों का प्रयोग करते हैं। परन्तु आनुभविक प्रमाण ने दिखाया है कि फर्म आन्तरिक स्रोतों को बाह्य स्रोतों की अपेक्षा अधिमान देती हैं। त्वरण नियम की यह कमी है कि यह लाभों की आन्तरिक स्रोतों के रूप में उपेक्षा करता है। वास्तव में लाभों का स्तर निवेश का मुख्य निर्धारक होता है।

(10) त्वरण नियम की एक मुख्य त्रुटि यह है कि यह उद्यमियों द्वारा निर्णय लेने में प्रत्याशाओं के कार्यभार (role of expectations) की उपेक्षा करता है। निवेश निर्णय केवल माग द्वारा ही प्रभावित नहीं होते हैं। ये भावी प्रत्याशाओं जैसे स्टॉक बाजार परिवर्तनों, राजनैतिक हलचलों, अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं, आर्थिक वातावरण, आदि द्वारा भी प्रभावित होते हैं।

(11) त्वरण नियम की एक कमी यह भी है कि यह निवेश में प्रौद्योगिकीय कारकों

(technological factors) की अवहेलना करता है। प्रौद्योगिकीय परिवर्तन पूंजी-बचाऊ या श्रम-बचाऊ हो सकते हैं। इसलिए वे निवेश की मात्रा को कम या अधिक कर सकते हैं। फिर, जैसा कि प्रो० नोक्स (Knox) ने कहा है, "पूंजी उपस्कर स्थूल (bulky) हो सकता है, और अतिरिक्त प्लांट को लगाना केवल तब उचित है जब उत्पादन में काफी वृद्धि हुई हो। यह कारण और भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि जो बढ़ाया जाता है वह मशीनों का सम्मिश्रण होता है न कि एक मशीन।"[2]

निष्कर्ष (Conclusion)—इन सीमाओं के बावजूद गुणक सिद्धान्त की अपेक्षा त्वरण का नियम आय-प्रजनन की प्रक्रिया को अधिक वास्तविक तथा स्पष्ट बनाता है। गुणक, उपभोग के मार्ग से आय पर विनियोजन में परिवर्तन का प्रभाव दिखाता है, जबकि त्वरण निवेश तथा आय पर उपभोग के प्रभाव को व्यक्त करता है। इस प्रकार, त्वरण पूंजी वस्तु उद्योगों में उतार-चढ़ावों के परिणामस्वरूप आय तथा रोजगार में होने वाले तीव्र उतार-चढ़ावों की व्याख्या करता है। परन्तु यह नीचे के मोड़ बिन्दुओं की अपेक्षा ऊपर के मोड़ बिन्दुओं की अधिक अच्छी व्याख्या कर सकता है। चक्रीय उतार-चढ़ावों को समझने के लिए आय प्रजनन की प्रक्रिया के पूर्ण विश्लेषण के लिए सैम्यूलसन, हिक्स तथा गुडविन जैसे अर्थशास्त्रियों ने गुणक तथा त्वरक को मिला दिया है।

अतिगुणक या गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया (The Super-Multiplier or The Multiplier-Accelerator Interaction)

हिक्स ने आय पर प्रारम्भिक निवेश का कुल प्रभाव मापने के लिए गुणक तथा त्वरक को गणितीय विधि से मिला दिया है और उसे अतिगुणक[3] का नाम दिया है। गुणक और त्वरक का इकट्ठा प्रभाव लीवर प्रभाव (leverage effect) भी कहलाता है जो अर्थ-व्यवस्था को आय प्रजनन के बहुत ऊंचे या नीचे स्तर पर ले जा सकता है।

अतिगुणक को प्रेरित उपभोग (cY या $\Delta C/Y$ या MPC) और प्रेरित निवेश (vY या $\Delta I/\Delta Y$ या MPI) दोनों को जोड़कर निकाला जाता है। हिक्स निवेश को स्वायत्त निवेश और प्रेरित निवेश में बांटता है ताकि निवेश $I = Ia + vY$, जहां Ia स्वायत्त निवेश और vY प्रेरित निवेश है।

$t+1$ अवधि में अर्थव्यवस्था में 100 की मात्रा में स्थिर निवेश किया जाता है परन्तु तात्कालिक प्रेरित उपभोग अथवा निवेश नहीं होता। $t+2$ अवधि में, अवधि 1 की 100 आय में से 50 का प्रेरित उपभोग होता है, क्योंकि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति 0 5 है, जबकि आय 100 में से 40 का प्रेरित निवेश होता है क्योंकि ($v = 0\ 4$)। अवधि $t+1$ से $t+2$ तक आय में वृद्धि है (50 + 40) 90 विभिन्न अवधियों में आय में वृद्धि की इस प्रकार गणना की जा सकती है—

[2]वहां तालिका और चित्र द्वारा त्वरण नियम की व्याख्या करिए।

[3]J. R. Hicks, *A Contribution to the Theory of the Trade Cycle*, 1950.

तालिका II : गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया (रु० करोड़)

अवधि (t) (1)	प्रारम्भिक निवेश (2)	प्रेरित उपभोग ($c=0.5$) (3)	प्रेरित निवेश ($v=0.4$) (4)	आय में वृद्धि ($\Delta Y=c+v$) (5)	आय में कुल वृद्धि (6)
0	0	0	0	0	
$t+1$	100	—	—	100	100
$t+2$	100	50	40	90	190
$t+3$	100	45	36	81	271
$t+4$	100	40.5	32.4	72.9	343.9
$t+5$	100	36.45	29.16	65.61	409.51
...	...	..		...	...
$t+n$	100	0	0	0	1,000

$\Delta Y_{t+2}=c\Delta Y_{t+1}+v\Delta Y_{t+1}=0.5\times100+0.4\times100=90$ इसी प्रकार अवधि $t+3$ में आय में वृद्धि होगी : $\Delta Y_{t+3}=c\Delta Y_{t+2}+v\Delta Y_{t+2}=0.5\times90+0.4\times90=45+36=81$ आय में कुल वृद्धि (स्तम्भ 6) को जानने के लिए चालू अवधि में आय में वृद्धि (स्तम्भ 5) को पिछली अवधि में कुल आय में वृद्धि (स्तम्भ 6) में जमा कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ, अवधि $t+2$ में कुल आय में वृद्धि जो 190 है (स्तम्भ 6) उसे इस अवधि में आय में वृद्धि 90 (स्तम्भ 5) को पिछली अवधि $t+1$ में कुल आय में वृद्धि 100 (स्तम्भ 6) में जमा करके प्राप्त किया गया है। इसी प्रकार, अवधि $t+3$ में कुल आय में वृद्धि 271 = इस अवधि में आय में वृद्धि 81 जमा 190 अवधि $t+2$ (स्तम्भ 6) से। आय प्रजनन की यह सचयी प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक कि $t+n$ अवधि में प्रेरित उपभोग, प्रेरित निवेश और आय में वृद्धि घटते-घटते शून्य पर नहीं पहुंच जाते। यदि $t+1$ अवधि से $t+n$ अवधि तक उपभोग, निवेश और आय में होने वाली वृद्धि को जोड़ें, तो कुल आय बढ़कर रु० 1000 करोड़ हो जाती है, कुल उपभोग बढ़कर रु० 500 करोड़ और कुल निवेश बढ़कर रु० 400 करोड़, रु० 100 करोड़ का प्रारम्भिक निवेश होने पर।
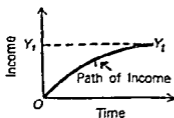
चित्र 59.2

चित्र 59.2 में आय का प्रावैगिक मार्ग दिखाया गया है। आय को अनुलम्ब अक्ष पर और समय को क्षैतिज अक्ष पर मापा गया है। OY_t वक्र अतिगुणक 10 होने पर आय का समय-पथ प्रकट करता है। समय के साथ यह वक्र बढ़ता है और आय के नये सन्तुलन स्तर OY_1 पर पहुंचता है और चपटा हो जाता है। यह दर्शाता है कि आय घटती दर से बढ़ती है।

व्यापार-चक्रों में गुणक-त्वरक परस्परक्रिया का उपभोग (Use of Multiplier-Accelerator Interaction in Business Cycles)

MPC तथा त्वरक के विभिन्न मूल्यों के रहते हुए गुणक-त्वरक चक्रीय उतार-चढ़ावों के रूप में विभिन्न परिणाम दे सकता है। मान लीजिए कि *MPC* 0 5 है और त्वरक-गुणाक (accelerator coefficient) 2 है। पूर्ववत् धारणाओं तथा प्रारम्भिक निवेश 100 करोड रुपये दिए हुए होने पर हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि आय में किस तरह परिवर्तन होते हैं। तालिका III आय प्रजनन की इस प्रक्रिया को स्पष्ट करती है।

तालिका III : गुणक त्वरक परस्परक्रिया (रु० करोड)

अवधि (1)	प्रारम्भिक निवेश (2)	प्रेरित उपभोग ($c=0 5$) (3)	प्रेरित निवेश ($v=2$) (4)	आय में वृद्धि (2+3+4 (5)
$t+0$	0	0	0	0
$t+1$	100	—	—	100
$t+2$	100	50	100	250
$t+3$	100	125	150	375 00
$t+4$	100	187 50	125	412 50
$t+5$	100	206 25	37 50	343 75
$t+6$	100	171 88	—68 74	203 14
$t+7$	100	101.57	—140 62	60 95
$t+8$	100	30 48	—142 18	—11 70
$t+9$	100	—5 48	—72 66	21 49
$t+10$	100	10 75	33 20	143 95

रु० 100 करोड

तालिका यह प्रकट करती है कि अवधि $t+1$ में आय में वृद्धि प्रारम्भिक निवेश की मात्रा के बराबर होती है। आय में यह वृद्धि अवधि $t+2$ में रु० 50 करोड की उपभोग में वृद्धि (स्तम्भ 3) लाती है, क्योंकि *MPC*=0 5 है। उपभोग में यह वृद्धि रु० 100 करोड का निवेश प्रेरित करती है, त्वरक गुणांक 2 होने पर 100=50×2 (स्तम्भ 4), तथा आय रु० 250 करोड तक बढ जाती है (स्तम्भों 2+3+4 का जोड। अर्थात् 100+50+100=250) आय में यह वृद्धि पुन. उपभोग में रु० 125 करोड की वृद्धि लाती है (स्तम्भ 3) जो रु० 250 करोड का आधा है क्योंकि *MPC*= 0 5 परन्तु अवधि t में पिछली अवधि की आय का फलन है। इसलिए $t+3$ अवधि में उपभोग में वास्तविक वृद्धि, $t+3$ अवधि और $t+2$ अवधि में उपभोग के बीच

का अन्तर है, अर्थात् 125 — 50 = 75। यदि उपभोग में इस वृद्धि (रु० 75 करोड़) को त्वरक के मूल्य 2 से गुणा कर दें, तो प्रेरित निवेश 150 = 75 × 2 (स्तम्भ 4) अवधि $t+3$ में प्राप्त होता है। अतः अवधि $t+3$ में स्तम्भों 2+3+4 का जोड़ रु० 375 करोड़ आय की वृद्धि प्रकट करता है। इसी प्रकार $t+4$ अवधि में रु० 412.50 करोड़ की आय का सृजन होता है। इस अवधि में आय में वृद्धि अधिकतम है जो व्यापार चक्र के शिखर को दर्शाती है। इसके बाद आय गिरना शुरू कर देती है जब तक कि वह $t+8$ अवधि में तल अथवा अपकर्ष (trough) अर्थात् रु० (—) 11.70 करोड़ पर नहीं पहुंच जाती है। अवधि $t+9$ में यह फिर बढ़ने लगती है जो व्यापार चक्र की पुनरुत्थान (revival) अवस्था को प्रकट करती है। आय का यह व्यवहार पहले बढ़ना, फिर गिरना और फिर स्थिर विस्तार से बढ़ना गुणक तथा त्वरक के मिश्रित कार्यकरण को दर्शाता है। पर, व्यापार चक्र का वास्तविक व्यवहार गुणक तथा त्वरक के मूल्यों पर निर्भर करता है जैसा कि सैम्यूलसन ने अपने मॉडल में व्यक्त किया है।[4]

प्रोफेसर कुरिहारा ने इस सम्बन्ध में लक्ष्य किया है कि इकाई से कम सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति इस प्रश्न का उत्तर प्रदान करती है कि पूर्ण आपतन (collapse) से पहले अथवा पूर्ण रोजगार की स्थिति से पहले संचयी प्रक्रिया क्यों समाप्त हो जाती है ?[5] हैनसन के अनुसार इसका कारण यह तथ्य है कि प्रत्येक अवधि में होने वाली आय की वृद्धि का बड़ा भाग प्रत्येक अगली अवधि में उपभोग पर नहीं व्यय होता। इससे अन्ततः प्रेरित निवेश की मात्रा में कमी होती है और जब इस तरह की कमी प्रेरित उपभोग में वृद्धि से बढ़ जाती है, तो आय में पतन शुरू हो जाता है। इस प्रकार, प्रोफेसर हैनसन लिखता है कि "यह तो बचत की सीमान्त प्रवृत्ति ही है, जो तब भी विस्तार-प्रक्रिया को रोक देती है जबकि गुणक प्रक्रिया के शिखर पर त्वरक की प्रक्रिया द्वारा विस्तार को बढ़ाया जाता है।"[6]

प्रश्न

1. अतिगुणक की धारणा को परिभाषित कीजिए। एक मुक्त, खुली अर्थव्यवस्था में इसके कार्यकरण की व्याख्या कीजिए।
2. आय निर्धारण सिद्धान्त में गुणक तथा त्वरक की परस्पर क्रिया को समझाइए। इस आधार पर व्यापार चक्र की संतोषजनक व्याख्या कहां तक की जा सकती है ?
3. त्वरक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। इसकी मान्यताओं का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

[4]ऊपर तालिका में लिये गए c और v के मूल्यों से सम्बन्धित चित्र 1 (C) सैम्यूलसन के मॉडल का है। c और v के अन्य मूल्यों से सम्बद्ध चित्रों को अगले अध्याय में दिए गए हैं।

[5]K. K. Kurihara, *Monetary Theory and Public Policy* pp. 233-34

[6]A. H. Hansen *Business Cycles and National Income*, p. 170.

अध्याय-60
रोजगार का केन्ज़ीय सिद्धान्त—पूर्ण मॉडल
(KEYNESIAN THEORY OF EMPLOYMENT—COMPLETE MODEL)

1. प्रस्तावना (INTRODUCTION)

केन्ज ने अपनी *General Theory* के 18वें अध्याय मे अपना रोजगार सिद्धान्त पुन व्यक्त किया है। पिछले अध्यायो मे हम केन्ज की पद्धति के निर्भर तथा स्वतंत्र चरो का विश्लेषण कर चुके हैं। अब, जैसा कि केन्ज ने किया था, हम भी उन्हे इकट्ठे मिला कर रोजगार का सिद्धान्त सक्षेप मे प्रस्तुत करते हैं।

रोजगार का केन्ज़ीय सिद्धान्त (The Keynesian Theory of Employment)

केन्ज के सिद्धान्त मे, रोजगार प्रभावी माग (effective demand) पर निर्भर करता है। प्रभावी माग का परिणाम है उत्पादन। उत्पादन आय का निर्माण करती है। आय से रोजगार प्रदान किया जाता है। क्योकि केन्ज प्रभावी माग, उत्पादन, आय तथा रोजगार मे परस्पर सम्बन्ध मानकर चलता है, इसलिए वह रोजगार को आय का फलन समझता है।

प्रभावी मांग दो कारको द्वारा निर्धारित होती है: (क) समस्त पूर्ति फलन—उत्पादन की भौतिक अथवा तकनीकी परिस्थितियो पर निर्भर करता है, जो कि अल्पकाल मे परिवर्तित नही होती। यह उत्पादन की मात्रा और रोजगार के स्तर को दर्शाता है। रोजगार किसी विशेष स्तर पर उत्पादन के बेचने से प्राप्त होने वाली आय से सम्बद्ध है। ज्यो-ज्यो उत्पादन बढता है प्रत्याशित बिक्री भी बढ़ती है, त्यो-त्यो रोजगार का स्तर भी बढता है। परन्तु जब अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर पर पहुच जाती है तो समस्त पूर्ति कीमत तो बढ़ती जाती है परन्तु रोजगार मे और अधिक वृद्धि नही होती। केन्ज के अनुसार समस्त पूर्ति फलन रोजगार के स्तर का बढ़ता फलन है। समस्त पूर्ति फलन उत्पादन की भौतिक या तकनीकी दशाओ पर निर्भर करता है जो अल्पकाल मे परिवर्तित नहीं होती है। इसलिए केन्ज समस्त पूर्ति फलन को स्थिर मानता है और मदी तथा बेरोजगारी को दूर करने के लिए अपना सारा ध्यान समस्त माग फलन पर केन्द्रित करता है।

प्रभावी माग का दूसरा निर्धारक समस्त माग कीमत है। यह रोजगार के किसी विशेष स्तर पर उत्पादित उत्पादन की बिक्री द्वारा प्रत्याशित आय से सम्बन्धित है। मदी और बेकारी को दूर करने के लिए समस्त मांग फलन पर ध्यान दिया जाता है। अतः समस्त

माग रोजगार के स्तर को निर्धारित करती है और इसमे दो प्रकार के व्यय शामिल होते हैं : उपभोग व्यय (C) तथा निवेश व्यय (I)।

उपभोग व्यय, आय और उपभोग प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। आय के बढ़ने से सामान्यत उपभोग व्यय बढ जाता है अन्यथा उल्टा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। आय मे वृद्धि के साथ-साथ उपभोग व्यय तथा रोजगार का स्तर भी बढ़ेगा।

उपभोग का दूसरा निर्धारक उपभोग प्रवृति है। यह समस्त उपभोग एव आय के बीच सम्बन्ध व्यक्त करता है। बीजगणित के रूप मे, $C=f(Y)$ जहा C उपभोग है, f फलन सम्बन्ध और Y आय है। केन्ज के अनुसार, जब आय मे वृद्धि होती है तो उपभोग मे भी वृद्धि होती है परन्तु वास्तव मे उपभोग मे वृद्धि आय मे वृद्धि से कम होती है। दूसरे शब्दो मे, सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) घटती जाती है। यह धारणा केन्ज के मनोवैज्ञानिक *नियम का आधार है*। उपभोग प्रवृत्ति को *अन्य तत्त्व, जैसे लोगो की मनोवैज्ञानिक* भावनाए, रुचिया, स्वभाव, इच्छाए और सामाजिक ढांचा आदि प्रभावित करते हैं और सामाजिक ढाचा आय के वितरण को निर्धारित करता है। ये सभी तत्त्व अल्पकाल मे स्थिर रहते हैं। अत रोजगार निवेश पर निर्भर करता है।

ब्याज की दर और पूजी की सीमान्त उत्पादकता निवेश को निर्धारित करते हैं। ब्याज की दर को घटाकर निवेश और रोजगार मे वृद्धि की जा सकती है। ब्याज की दर को मुद्रा की माग तथा मुद्रा की पूर्ति निर्धारित करती है। मुद्रा की माग तीन उद्देश्यों के लिए की जाती है।

(i) लेनदेन उद्देश्य—जब कुल उत्पादन के साथ-साथ रोजगार मे वृद्धि होती है तब मजदूरी भी बढ़ती है एव लेनदेन के लिए मुद्रा की माग भी बढ जाती है। आय प्राप्ति और उसके व्यय मे अन्तर को पूरा करने के लिए नकदी, जमा की आवश्यकता होती है। व्यक्तियों की भांति, व्यावसायिक फर्मों को भी बैंक-खाते रखने की आवश्यकता होती है ताकि वे व्यय के भुगतान और तैयार वस्तुओ को बेचने से प्राप्त होने वाली नकदी के अन्तर को पूरा कर सकें। ज्यों-ज्यों व्यापारिक क्रियाए बढ़ती हैं, नकदी रखने के लेनदेन उद्देश्यो में भी वृद्धि होती जाती है। एक व्यापारी द्वारा दूसरे व्यापारी को किए गए भुगतान उतने ही अधिक होंगे जितनी अधिक अवस्थाओ मे से वस्तुओं का क्रय-विक्रय होगा। इस प्रकार, अन्य बातें समान रहने पर, व्यावसायिक एकीकरण (business *integration*) मुद्रा की माग को घटा देगा।

(ii) सतर्कता उद्देश्य—आकस्मिक जरूरतो को पूरा करने के लिए व्यक्ति और व्यापारिक फर्में अतिरिक्त नकदी को आरक्षित रखती हैं। जब कोई व्यक्ति बाजार वस्तुए खरीदने के लिए जाता है तो वह सामान्यत उस विशेष राशि से अधिक मुद्रा ले जाता है—जितनी उसको आवश्यकता होती है उससे थोडी अधिक। क्योंकि हो सकता है कि उसकी वस्तु विशेष को खरीदने की योजना आखिर बदल जाए और अन्य वस्तुए खरीदे। व्यापार मे आकस्मिक ऋण चुकाने के लिए अथवा लाभदायक खरीद करने के अदृष्ट अवसरो (unforeseen) के लिए तत्काल ही नकदी की आवश्यकता पड़

सकती है। सतर्कता उद्देश्यों की तृप्ति के लिए रखी गई मुद्रा की मात्रा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों और फर्मों के लिए भिन्न होगी।

यद्यपि व्यवसायिक उद्देश्यों के लिए और सतर्कता उद्देश्यों के लिए मुद्रा की माग में कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर हैं, फिर भी मुद्रा और ब्याज की दर के पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन करते समय केन्ज ने इन दोनों को इकट्ठा कर दिया है। जबकि लेनदेन के लिए नकदी न्यूनतम सीमा तक रखी जायेगी फिर भी एक ऐसा स्पष्ट स्तर भी होता है जहा नियमित व्यय का भुगतान करने के लिए नकदी रखने की सुविधा पर ब्याज की दरों में परिवर्तनों का अधिक प्रभाव नहीं पडता। इसी प्रकार सतर्कता के लिए रखी गई नकदी उन आकस्मिक घटनाओं के स्वरूप पर भी निर्भर करती है जिनकी आशका की जानी हो और इस पर ब्याज की दर में हुए छोटे-छोटे परिवर्तनों का भी प्रभाव कम हो जाता है इसलिए ये दोनों उद्देश्य आय-लोच हैं।

(iii) सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माग ब्याज की दर पर निर्भर करती है, जो वास्तव में, ब्याज दर का घटता फलन होती है। ब्याज की दर जितनी ऊंची होगी, मुद्रा की सट्टा माग उतनी ही कम होगी, और इसके विपरीत। क्योंकि तरलता अधिमान सट्टोरियों द्वारा भावी ब्याज दरों पर निर्भर करता है, इसलिए ब्याज दर को नीचा लाने के लिए तरलता अधिमान को कम करना सम्भव नहीं होता। ब्याज दर का दूसरा निर्धारक मुद्रा की पूर्ति है जिसे अल्पकाल में मुद्रा प्राधिकरण स्थिर मानता है।

पूजी की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि करके निवेश को बढाया जा सकता है। पूजी की सीमान्त उत्पादकता से अभिप्राय नए निवेश से प्राप्त होने वाली लाभ की प्रत्याशित दर है। पूजी की सीमान्त उत्पादकता (MEC) तो पूजी-परिसम्पत्तियों की पूर्ति कीमत और उनकी प्रत्याशित आय पर निर्भर करती है। पूजी की सीमान्त उत्पादकता तब बढ सकती है, जब पूजी-परिसम्पत्तियों की पूर्ति कीमत गिरे अथवा उनकी प्रत्याशित आय बढे। क्योंकि पूजी-परिसम्पत्तियों की पूर्ति कीमत अल्पकाल में स्थिर रहती है, इसलिए इसका कम होना सम्भव नहीं होता। दूसरी ओर उनकी प्रत्याशित आय व्यापारियों की प्राप्तियों की आशाकाओं पर निर्भर करती है। यह भी एक मनोवैज्ञानिक कारक है जिस पर MEC को बढाने लिए निर्भर नहीं किया जा सकता है। अत MEC को बढा कर निवेश में वृद्धि करने की सम्भावना नहीं होती है।

केन्ज के अनुसार, मदी के दौरान, जब पूजी की सीमान्त उत्पादकता कम होती है, तो ब्याज की दर में कमी निजी निवेश को प्रेरित करने में असमर्थ रहेगी। इसलिए निवेश परियोजनाओं पर सार्वजनिक व्यय के माध्यम से राज्य निवेश में वृद्धि कर सकता है। इस प्रकार, जब एक बार निवेश बढने लगता है, तो रोजगार तथा आय में वृद्धि होती है। बढी हुई आय से उपभोग वस्तुओं के लिए माग बढती है जिससे रोजगार तथा आय में और वृद्धि होती है। एक बार शुरू हो जाने पर, गुणक प्रक्रिया के माध्यम से रोजगार तथा आय में सचयी रूप से तब तक वृद्धि होती है, जब तक कि वे सतुलन स्तर पर नहीं पहुंच जाते। केन्ज के अनुसार, रोजगार का यह सतुलन स्तर वास्तव में अल्प-रोजगार

का ही स्तर होगा क्योंकि जब आय बढ़ती है, तो उपभोग भी बढ़ता है परन्तु आय में हुई वृद्धि की अपेक्षा कम मात्रा में। उपभोग फलन का यह आचरण आय तथा उपभोग के अन्तर को बढ़ा देता है, जिसे साधारणतः इसलिए नहीं भरा जा सकता क्योंकि अपेक्षित निवेश का अभाव रहता है। अकेले निजी निवेश पर भरोसा रखकर अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोजगार के स्तर पर नहीं लाया जा सकता। पूर्ण रोजगार-आय सतुलन स्तर तब स्थापित हो सकता है, जब सरकार आय-उपभोग के अन्तर को भरने के लिए पूर्ण रोजगार के अनुरूप सार्वजनिक निवेश की मात्रा बढ़ाए।
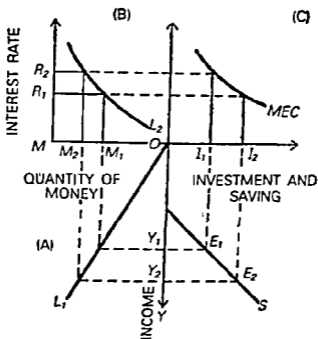
चित्र 60 1

केन्ज का आय, उत्पादन एव रोजगार का पूर्ण मॉडल अब चित्रो द्वारा व्यक्त किया जाता है। ब्याज दर, MEC और निवेश मे सम्बन्ध चित्र 60.1 के भाग (C) और (B) मे दर्शाया गया है। मुद्रा की कुल माग क्षैतिज अक्ष पर M से आगे मापी गई है। चित्र के भाग (A) मे लेनदेन और सतर्कता माग OY_1 और OY_2 आय स्तरो पर L_1 वक्र द्वारा दिखाई गई है। अतः OY_1 आय स्तर पर, लेनदेन मांग OM_1 द्वारा और OY_2 आय स्तर पर OM_2 द्वारा दी गई है। भाग (B) मे L_2 वक्र मुद्रा की सट्टा मागे की ब्याज दर का फलन प्रकट करता है। जब ब्याज दर OR_2 है, तो मुद्रा की सट्टा माग MM_2 है। ब्याज दर के OR_1 पर गिरने से, मुद्रा की सट्टा मांग बढ़ कर MM_1 हो जाती है। चित्र का भाग (C), निवेश को ब्याज दर एव MEC का फलन दिखाता है।

MEC दो होने पर, जब ब्याज दर OR_2 होती है तो निवेश का स्तर OI_1 है। परन्तु जब ब्याज दर गिर कर OR_1 होती है तो निवेश बढ कर OI_2 हो जाता है।

केन्द्रीय विश्लेषण मे, रोजगार तथा आय का स्तर बचत और निवेश मे समानता के बिन्दु पर निर्धारित होता है। बचत आय का फलन है, अर्थात् $S=f(Y)$, इसे आय का उपभोग पर आधिक्य पारिभाषित किया जाता है, $S=Y-C$, और आय उपभोग तथा निवेश के बराबर है .

$$Y=C+I$$
$$\text{या} \quad Y-C=I$$
$$Y-C=S$$
$$\therefore \quad I=S$$

इस प्रकार आय का संतुलन स्तर वहां स्थापित होता है जहां बचत और निवेश बराबर होते हैं। इसे ऊपर चित्र के भाग (D) मे दर्शाया गया है, जहा O से दाईं और क्षैतिज अक्ष निवेश तथा बचत को और नीचे की ओर OY अक्ष आय को दिखाता है। S बचत वक्र है। रेखा I_1E_1 निवेश वक्र है। ऐसा विचार करें कि यह E से आगे बढाई जा सकती है जैसा कि एक S और I चित्र पर। जो S वक्र को E_1 पर छूती है*। अत OY_1 रोजगार और आय का सतुलन स्तर है। केन्ज के अनुसार, यह अल्परोजगार सतुलन है। यदि OY_2 आय का पूर्ण रोजगार स्तर मान लिया जाए तो बचत और निवेश मे संतुलन E_2 पर होगा जहा I_2E_2 निवेश और बचत Y_2E_2 बराबर हैं।[1]

केन्ज के रोजगार और आय सिद्धान्त का समस्त पूर्ति $(C+S)$ तथा समस्त माग $(C+I)$ की समानता द्वारा चित्र 60 2 मे वर्णन किया गया है। चित्र मे आय और रोजगार क्षैतिज अक्ष पर और निवेश अनुलम्ब अक्ष पर लिए गए हैं। स्वायत्त निवेश लिया गया है। $C+I$ समस्त माग वक्र है जिसको उपभोग फलन C पर आय के सभी स्तरो पर एक समान निवेश को जोडकर खीचा गया है। $45°$ रेखा समस्त पूर्ति वक्र है जिसे$(Y=C+S)$ दिखाया गया है। अर्थव्यवस्था E बिन्दु पर सतुलन मे है जहा $C+I$ समस्त माग वक्र $45°$ रेखा को काटता है। यह प्रभावी माग का बिन्दु है जहा आय और रोजगार का सतुलन स्तर OY_1 निर्धारित होता है। यह अल्प रोजगार का स्तर है न कि पूर्ण रोजगार का। अर्थव्यवस्था मे कोई स्वचालित शक्तिया नही पाई जाती जो इन दो वक्रो को आय के पूर्ण रोजगार स्तर पर काटने से दे सकती हैं। यदि यह पूर्ण रोजगार स्तर होता है तो यह आकस्मिक ही होगा। केन्ज अल्परोजगार स्तर को एक सामान्य अवस्था मानता था और पूर्ण रोजगार को एक विशेष अवस्था।

*इसको समझने के लिए चित्र को ऐसे अपने सामने रखें कि शब्द INCOME आपकी ओर हो।

[1] IS—LM तकनीक द्वारा केन्ज का पूर्ण मॉडल IS—LM के अध्याय मे वर्णन किया गया है।

अध्याय-61
क्लासिकी और केन्ज़ीय मॉडलो की तुलना
(COMPARISON OF CLASSICAL AND KEYNESIAN MODELS)
1. प्रस्तावना (INTRODUCTION)

प्रस्तुत अध्याय मे हम क्लासिकी और केन्ज़ीय आय और रोजगारो के सिद्धान्तो की तुलना[1] निम्नलिखित तथ्यो के आधार पर करते हैं।

(1) रोजगार का स्तर (Level of employment)—परम्परवादी यह मानते थे कि अर्थव्यवस्था मे पूर्ण रोजगार की स्थिति रहती है और पूर्ण रोजगार से कम की अवस्था असाधारण समझी जाती थी। इसलिए उन्होंने इसे आवश्यक समझा ही नही कि रोजगार का कोई विशिष्ट सिद्धान्त अलग से बनाया जाए। दूसरी ओर, केन्ज यह मानता है कि अर्थव्यवस्था मे पूर्ण रोजगार का होना एक विशेष स्थिति है। उसने रोजगार का एक सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत किया जो प्रत्येक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर लागू होता है।

(2) से का नियम (Say's law)—क्लासिकी विश्लेषण से के इस मार्किट-नियम पर आधारित था कि 'पूर्ति स्वय अपनी माग पैदा कर लेती है'। इस प्रकार परम्परावादियो ने अत्युत्पादन की सभावना ही खत्म कर दी। प्रोफेसर स्वीज़ी (Sweezy) के अनुसार, "केन्ज की सबसे बडी उपलब्धि यह थी कि उसने आग्ल-अमरीकी अर्थशास्त्र को इस क्रूर सिद्धान्त से मुक्ति दिलाई।" केन्ज ने इसके विपरीत मत की स्थापना की और वह यह कि माग स्वय अपनी पूर्ति पैदा करती है। प्रभावी माग की न्यूनता के परिणाम-स्वरूप बेरोजगारी आती है क्योंकि लोग अपनी समस्त आय को उपभोग पर खर्च नहीं करते। इस प्रकार, आर्थिक सिद्धान्त मे केन्ज का क्रान्तिकारी योगदान यह है कि उसने प्रभावी माग तथा उपभोग फलन के नियमों का विकास किया।

(3) अबंध नीति (Laissez faire)—क्लासिकी अर्थशास्त्र स्वय व्यवस्थापी आर्थिक व्यवस्था की अबन्ध नीति पर आधारित था जिसमे सरकार का कोई दखल नही होता। केन्ज ने अबन्ध नीति को छोड दिया क्योंकि उसका विश्वास था कि प्रबुद्ध स्वार्थ (enlightened self-interest)—सदैव सार्वजनिक हित को लेकर नहीं चलता और इसी नीति के परिणामस्वरूप 'बडी मन्दी' आई थी। इसीलिए वह राज्य द्वारा हस्तक्षेप के पक्ष मे था और उसने निजी निवेश की कमी से उत्पन्न अन्तर को भरने के लिए सार्वजनिक निवेश के महत्त्व पर बल दिया।

[1] क्लासिकी और केन्ज़ीय सिद्धांतो की तुलना से सबद्ध जो तर्क दिए जा रहे हैं उनका यथास्थान क्रमश, अध्याय 6 और अध्याय 19 मे दिए गए चित्रो द्वारा वर्णन करें।

(4) **मजदूरी कटौती (Wage cut)**—प्रमुख क्लासिकी अर्थशास्त्रियों में से पीगू ने बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए मजदूरी में कटौती की नीति का समर्थन किया था। परन्तु केन्ज ने सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों ही, दृष्टि से इस प्रकार की नीति का विरोध किया। सैद्धान्तिक दृष्टि से, मजदूरी में कटौती की नीति बेरोजगारी को दूर करने की बजाय बढ़ाती है। व्यवहारिक दृष्टि से, श्रमिक मुद्रा-मजदूरी में कटौती स्वीकार करने को तैयार नहीं होते। इसलिए अर्थव्यवस्था में रोजगार का स्तर बढ़ाने के लिए केन्ज ने लचीली मजदूरी नीति की तुलना में लचीली मुद्रा-नीति का अनुमोदन किया।

(5) **बचत (Saving)**—परम्परावादी बचत तथा मितव्ययिता (thrift) पर बल देते थे क्योंकि वे मानते थे कि कि इससे आर्थिक वृद्धि के लिए पूंजी-निर्माण,होता है। केन्ज की दृष्टि में बचत एक निजी गुण तथा सार्वजनिक दोष है। कुल बचत में वृद्धि होने से कुल उपभोग तथा माग घट जाती है जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में रोजगार का स्तर गिर जाता है। इस प्रकार, केन्ज ने बेरोजगारी दूर करने के लिए सार्वजनिक बचत की बजाय सार्वजनिक *व्यय का अनुमोदन किया। उसने इस तरह इस 'बुर्जुआ तर्क के अन्तिम* स्तम्भ को भी खण्ड-खण्ड कर दिया' कि असमान आय के परिणामस्वरूप बचत बढ़ती है और वृद्धि के लिए पूंजी-निर्माण होता है।

(6) **बचत-निवेश समानता (Saving investment equality)**—क्लासिकी अर्थशास्त्री यह मानते थे कि बचत व निवेश हमेशा समान रहते हैं। यदि किसी स्थिति में बचत निवेश से बढ़ जाती है तो यह समानता ब्याज दर द्वारा लाई जाती है। लेकिन केन्ज इस विचारधारा से सहमत नहीं था। उसके अनुसार, बचत-निवेश समानता ब्याज दर द्वारा नहीं बल्कि आय में परिवर्तनों द्वारा लाई जा सकती। वास्तव में निवेश ब्याज दर द्वारा नहीं अपितु पूंजी की सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होता है।

(7) **व्यापार चक्र (Trade cycles)**—क्लासिकी अर्थशास्त्री व्यापार चक्रों की कोई समुचित व्याख्या नहीं प्रस्तुत कर पाए। वे व्यापार चक्रों के मोड़ बिन्दुओं (turning points) का सतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं कर सके और सामान्य रूप से तेजी तथा मंदी की बात करते रहे। व्यापार चक्र विश्लेषण में केन्ज का वास्तविक योगदान यह है कि उसने चक्रों के मोड़ बिन्दुओं के संबंध में अपनी व्याख्या दी और मनोवृत्ति में परिवर्तन किया कि चक्र पर नियन्त्रण करने के लिए सरकार क्या करे और क्या न करे।

(8) **मुद्रा सिद्धान्त (*Monetary theory*)**—परम्परावादियों ने *कृत्रिम रूप से मुद्रा* सिद्धान्त को मूल्य सिद्धान्त से पृथक कर दिया था। दूसरी ओर, केन्ज ने मौद्रिक सिद्धान्त तथा मूल्य सिद्धान्त का समाकलन किया। उसने ब्याज सिद्धान्त को भी मौद्रिक सिद्धान्त के क्षेत्र में ला दिया। वह ब्याज की दर को शुद्ध रूप से एक मौद्रिक तत्त्व मानता है। उसने मुद्रा के लिए माग को परिसम्पत्ति के रूप में ग्रहण किया और अल्पकाल में ब्याज की दर के निर्धारण की व्यवस्था करने के लिए उसे लेन-देन माग, एहतियाती माग तथा सट्टा माग में विभक्त किया। उत्पादन के सिद्धान्त के माध्यम से मूल्य-सिद्धान्त तथा मौद्रिक

सिद्धान्त का समाकलन करके मुद्रा को अतटस्थ बना दिया, जो कि मुद्रा के तटस्थता विषयक क्लासिकी विचार के विपरीत था।

(9) मुद्रा की तटस्थता (Neutrality of money)—क्लासिकी अर्थशास्त्री मुद्रा की तटस्था की धारणा को मानते थे। वे मुद्रा को विनिमय का साधन मानते थे। सामान्य कीमत स्तर का निर्धारण उस स्तर पर होगा जहां वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय होगा। लेकिन केन्ज ने इसे अलग स्थितियों मे लिया। प्रथम स्थिति मे उसने पूर्ण रोजगार की स्थिति को लिया—जबकि मुद्रा की मात्रा में वृद्धि से कीमत स्तर मे आनुपातिक वृद्धि परन्तु उत्पादन इस स्तर पर स्थिर रहे। दूसरी विशेष स्थिति मे अर्थव्यवस्था में तरलता अधिमान हो और अर्थव्यवस्था मे ब्याज की दर और ज्यादा न घटे जबकि अर्थव्यवस्था में मुद्रा-पूर्ति को बढ़ाया जा रहा हो।

(10) समष्टि विश्लेषण (Macro analysing)—क्लासिकी अर्थशास्त्र एक व्यष्टि विश्लेषण था जिसे उन्होंने सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर लागू करने का प्रयत्न किया। दूसरी ओर केन्ज ने आर्थिक समस्याओ के प्रति समष्टि मार्ग अपनाया। उसने कुल आय, रोजगार, उत्पादन, उपभोग, मांग, पूर्ति, बचत तथा निवेश का समष्टिगत-प्रावैगिक (macro-dynamic) अनुस्थापन किया। जैसा कि प्रोफेसर हैनसन ने कहा है, "सामान्य सिद्धान्त ने हमें अर्थशास्त्र को स्थैतिक की अपेक्षा प्रावैगिक रूप मे ग्रहण करने मे सहायता दी है।"

(11) नीतियाँ (Policies)—क्योंकि क्लासिकी अर्थशास्त्री अबन्ध नीति के समर्थक थे, इसलिए उन्हें राजकोषीय नीति अथवा मौद्रिक नीति मे कोई विश्वास नहीं था। वे संतुलित बजट नीति मे विश्वास रखते थे। इसके विपरीत, केन्ज ने क्रमश सस्ती मुद्रा तथा महगी मुद्रा के साथ-साथ अवस्फीति के दौरान घाटे के बजटो और स्फीति के दौरान बेशी बजटों (surplus budgets) के महत्त्व पर बल दिया। इस प्रकार वह एक व्यावहारिक अर्थशास्त्री था जिसके "मॉडल स्फीतिकारी तथा अवस्फीतिकारी उपाख्यानों और समृद्ध तथा मंदी की अर्थव्यवस्थाओ को स्पष्ट करते हैं।" फिर, क्लासिकी अर्थशास्त्र सार्वजनिक वित्त को पूर्ण रोजगार के लिए बाधा मानते थे। अत उन्होंने सार्वजनिक वित्त के कार्य क्षेत्र को सीमित रखा। उनके अनुसार, सार्वजनिक वित्त मे सरकार का कार्यभार अधिक रहता है और अर्थव्यवस्था मे प्रतियोगिता सीमित हो जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता न रहने के कारण बेकारी बढ़ जाती है। लेकिन केन्ज ने क्लासिकी विचारधारा का विरोध किया। उसके अनुसार, आर्थिक क्रियाओ को नियन्त्रित करने के लिए और स्फीति या अवस्फीति एवं बेरोजगारी की स्थितियो मे राजकोषीय नीतियों का विशेष महत्त्व है। विश्व की सभी पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं ने केन्ज के नीति उपायों को अपना लिया।

निष्कर्ष रूप में, हम कह सकते हैं कि *General Theory* उद्‌विकासी नहीं है बल्कि आर्थिक विचार तथा नीति दोनों ही दृष्टियों से क्रान्तिकारी है और क्लासिकी विचारधारा से यथार्थतः भिन्न है।

केन्ज के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Keynesian Theory)

केन्जवादी सिद्धान्त के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक महत्त्व के बावजूद, उसके सही मूल्यांकन के लिए आवश्यक है कि उसकी सफलताओं तथा दुर्बलताओं की परीक्षा की जाए। प्रोफेसर कुरिहारा (Kurihara) के अनुसार, "केन्ज ने विश्लेषण के आवश्यक औजार प्रदान करते समय"...उतनी समस्याएं सुलझाई नहीं जितनी खड़ी कर दी हैं।" "इस बात से कोई नहीं इनकार करेगा कि केन्ज ने अर्थशास्त्रियों की एक पूरी पीढ़ी के लिए नई राहें खोल दीं," परन्तु अब बहुत सारे अर्थशास्त्री यह समझते हैं कि "उसका विश्लेषण ऐसी विशिष्ट समस्याओं को सुलझाने के लिए पर्याप्त नहीं है जैसे कि चक्रीय पूर्वानुमान (cyclical forecasts) तथा नियंत्रण, स्थायी स्फीति, पूर्ण रोजगार की तेजी बनाए रखना, दीर्घकालिक वृद्धि, अरेखीय संरचनात्मक सम्बन्ध (non-linear structural relations) तथा समष्टिफलनात्मक वितरण (macro-functional distribution)। ये समस्याएं सामान्य रूप से *General Theory* की स्कीम के बाहर रहती हैं।" इसके अतिरिक्त, केन्जवादी विश्लेषण के हर अंश की आलोचना की गई है, जैसेकि समस्त मांग, समस्त पूर्ति, उपभोग फलन, निवेश फलन, मौद्रिक सिद्धान्त इत्यादि। हम कुछ बड़ी-बड़ी आलोचनाओं का नीचे अध्ययन कर रहे हैं।

(1) समस्त मांग (Aggregate demand)—केन्ज ने स्थापना की है कि रोजगार का स्तर समस्त मांग के स्तर पर निर्भर करता है जिसे कि मांगे निष्क्रिय (inactive) उपभोग मांग सक्रिय निवेश मांग निर्धारित करती हैं और बेरोजगारी समस्त मांग की कमी से उत्पन्न होती है। प्रोफ़ेसर शैलसिंजर (*Schlesinger*) के अनुसार, समस्त मांग का केन्जवादी सिद्धान्त कुछ ऐसे स्वाभाविक दोषों से ग्रस्त है जो उसके रोजगार-सिद्धान्त को अयथार्थिक बना देते हैं। उसका मत है कि "इसमें सन्देह नहीं कि कुल मांग कुछ हद तक पूर्ति के पक्ष के सम्बन्धों से प्रभावित होती है, इसलिए केन्ज द्वारा किया गया मांग का विश्लेषण इस दृष्टि से अत्यन्त सरल था कि उसमें इस सम्भावना को छोड़ दिया गया कि परिव्यय की कुल मात्रा को, विभिन्न क्षेत्रों में प्रवर्तमान सापेक्ष-कीमतें, अंशतः निर्धारित करती हैं।"

(2) समस्त पूर्ति (Aggregate supply) प्रोफ़ेसर पिटिंकिन समझता है कि केन्ज द्वारा किया गया समस्त पूर्ति फलन का विश्लेषण अपर्याप्त है। समस्त पूर्ति को अल्पकाल में स्थिर मान लिया गया है। फिर केन्जवादी-क्रॉस रेखाचित्र (*Keynesian cross* diagram) में समस्त पूर्ति फलन को 45° की रेखा से व्यक्त करना यह अर्थ देता है कि "मांग स्वयं अपनी पूर्ति को उत्पन्न करती है।" दूसरे शब्दों में, इसका मतलब है कि समस्त पूर्ति को समस्त मांग शासित करती है। पिटिंकिन के अनुसार, "तर्क का यह ढंग भी केन्ज द्वारा वस्तु मार्किट के पूर्ति पक्ष की सामान्य उपेक्षा से फोकट में प्राप्त होने वाली एक और भ्रान्ति है।"

(3) प्रभावी मांग (Effective demand)—अर्थशास्त्रियों ने केन्ज के प्रभावी मांग के नियम की आलोचना दो कारणों से की है। प्रथम, जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है,

समस्त पूर्ति को स्थिर मान लेने के कारण। दूसरे, इसकी आलोचना इस कारण से की गई है कि यह प्रभावी माग तथा रोजगार की मात्रा के बीच प्रत्यक्ष फलनात्मक सम्बन्ध मान लेता है। हैजलिट्ट (Hazlitt) के अनुसार, रोजगार की मात्रा प्रभावी माग का फलन नहीं है बल्कि वह तो मजदूरी-दरों, कीमतों तथा मुद्रा की पूर्ति के पारस्परिक सम्बन्धों पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, पूर्ण रोजगार तब भी उपलब्ध किया जा सकता है जबकि प्रभावी माग कम हो, बशर्ते कि मजदूरी दरें इतनी लचीली हो कि कीमतों के साथ उन्हे जल्दी से समायोजन किया जा सके। इस प्रकार प्रभावी माग तथा रोजगार के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध की धारणा भ्रान्तिमय है। प्रोफेसर बर्न्स (Prof Burns) के अनुसार, केन्ज के सिद्धान्त का निर्धारण "मधुर किन्तु भयप्रद मायाजाल को व्यक्त करता है।"

(4) उपभोग फलन (Consumption function)—यद्यपि केन्ज का उपभोग फलन "आर्थिक विश्लेषण के औजारो मे युगान्तरकारी योगदान" समझा जाता है, फिर भी, वह निर्दोष नहीं है। जैसा कि केन्ज ने कहा है, "सम्बन्ध केवल चालू आय चालू उपभोग तक ही नही जाता," बल्कि, जैसाकि प्रोफेसर टेक्ले ने स्पष्ट किया है, "इसमे भूत तथा प्रत्याशित आय और उपभोग की कुछ जटिल औसत पाई जाती है।" स्लिक्टर (Slichter) के अनुसार "उपभोग के स्तर को वास्तविक आय के स्तर के अतिरिक्त अन्य स्थितिया काफी हद तक निर्धारण करती हैं" जिन्हें केन्ज ने बिल्कुल छोड दिया है। वे ये हैं, सम्पत्ति प्रभाव, प्रौद्योगिकीय परिवर्तन, शिक्षा, प्रत्याशाए, पूजी परिसम्पत्तियो के प्रति प्रवृत्तिया इत्यादि। पर, हम इस बात पर हैजलिट्ट से सहमत नहीं हैं कि यह "एक बेकार तथा अवैध धारणा है।"

(5) निवेश फलन (Investment function)—केन्ज की आलोचना इसलिए भी की गई है कि उसने निवेश तथा ब्याज की दर के बीच फलनात्मक सम्बन्ध स्थापित किया। निवेश की मात्रा के निर्धारण मे ब्याज की दर का प्रभाव बहुत अनिश्चित होता है। यही कारण था कि निवेश के स्तर को निर्धारित करने के लिए केन्ज ने ब्याज की दर तथा पूजी की सीमान्त उत्पादकता के बीच परस्पर सम्बन्ध का प्रचलन करके अपने विश्लेषण को अधिक जटिल बना दिया। केन्ज ने रोजगार की मात्रा के निर्धारण में एकमात्र निवेश फलन पर निर्भर रहकर और उपभोग फलन को स्थिर मानकर गलती की। यह पक्की तरह सिद्ध हो चुका है कि अल्पकाल के दौरान भी उपभोग प्रवृत्ति बढाने का रोजगार की मात्रा पर अच्छा प्रभाव पडता है। फिर, केन्ज ने पूजी-स्टॉक तथा निवेश के बीच संबंध की भी उपेक्षा की।

अन्तिम, उसका निवेश-सिद्धान्त निवेश के प्रौद्योगिकीय प्रगति पर पडने वाले प्रभाव के सम्बन्ध मे विचार करने मे असमर्थ है। प्रोफेसर स्लिक्टर के अनुसार, "उसका निवेश सिद्धान्त संग्रह करने की प्रवृत्ति को बढा-चढा कर प्रस्तुत करता है और अकारण यह मान लेता है कि निवेश के सुअवसर खोज निकालने या उत्पन्न करने की क्षमता अर्थव्यवस्था मे थोड़ी ही होती है।" इस प्रकार केन्ज अर्थव्यवस्था पर पडने वाले प्रौद्योगिकी

के प्रभाव को नजर-अन्दाज कर जाता है।

(6) ब्याज की दर (Rate of interest)—केन्ज़ोत्तरकालीन अर्थशास्त्रियों ने केन्ज़ के ब्याज-दर निर्धारण-सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की है। केन्ज़ ने मुद्रा की माग तथा पूर्ति मे ब्याज की दर निर्धारित कराई है। मुद्रा के लिए माँग लेनदेन उद्देश्य, एहतियाती उद्देश्य तथा सट्टा उद्देश्य से उत्पन्न होती है। मुद्रा के लिए केवल सट्टा माँग ब्याज लोचदार समझी जाती है, जबकि लेन-देन माग ब्याज-बेलोच मानी जाती है। हैनसन के अनुसार, मुद्रा के मात्रा सिद्धान्तियों की भांति केन्ज़ ने भी मुद्रा की लेन देन माँग को ब्याज-बेलोच मान लिया। परन्तु वह गलत था क्योंकि यह भी ब्याज-लोचदार होती है, चाहे ब्याज की ऊँची दरो पर ही हो।

केन्ज़ के द्वारा किया गया सट्टा माग का विश्लेषण बहुत सकुचित है क्योंकि उसने अपने को नकदी तथा बांडों तक सीमित रखा और वह अन्य प्रकार की परिसम्पत्तियों के सम्बन्ध में विचार करने मे असमर्थ रहा। मुद्रा के लिए केन्ज़वादी सट्टा-माँग में मुद्रा-भ्रम (money illusion) है जिसका अर्थ है कि मुद्रा की बढ़ी हुई पूर्ति ब्याज की केवल नीची दरों पर ही खपाई जाती है।

फिर, केन्ज़ ने उसे भी छोड़ दिया है जिसे पिटिंकिन समस्त माँग पर, "वास्तविक शेष प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रभाव" (direct influence of real balance effect) कहता है। जब लोगों का धन बढ़ता है, तो यह उपभोग को और इसलिए मुद्रा के लिए माँग को, प्रभावित करता है।

इससे भी आगे, केन्ज़ मुद्रा के लिए माँग पर कीमत प्रत्याशाओं के प्रभाव के सम्बन्ध मे नहीं विचार कर सका। उसने मजदूरी तथा कीमतों को दिया हुआ मान लिया। प्रोफेसर फ्रीडमैन मुद्रा के लिए माँग को अन्य साधनों के बीच कीमतों के स्तर मे परिवर्तन की दर पर निर्भर माना है। सामान्य परिस्थितियों के अन्तर्गत मुद्रा के लिए माँग स्थिर रहती है, परन्तु अति-स्फीति के दौरान कीमत स्तर प्रत्याशाओं के प्रभावों से मुद्रा के लिए माँग गिर जाती है।

अन्तिम, हैरड ने भी केन्ज़ के सिद्धान्त की इस बात के लिए आलोचना की है कि उसने 'स्टॉक' की भाषा मे अपने सिद्धान्त की स्थापना की और "प्रवाह" पक्ष को छोड़ दिया। इस दुर्बलता के उत्पन्न होने का कारण यह है कि उसने ब्याज का विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त स्थापित करने के प्रयत्न किए और विक्सिलवादी (Wicksillian) ब्याज की सतुलक दर (natural rate) को रद्द कर दिया। इस प्रकार, केन्ज़ ब्याज दर को *निर्धारित करने वाली वास्तविक शक्तियों को समाविष्ट करने मे असफल रहा।*

(7) प्रत्याशाएं (Expectations)—केन्ज़ की इसलिए भी आलोचना की गई है कि उसने प्रत्याशाओं पर अत्यधिक बल दिया है। प्रत्याशाएं अनिश्चितता को जन्म देती हैं। यद्यपि केन्ज़ ने पूंजी की सीमान्त उत्पादकता को प्रभावित करने में प्रत्याशाओं को प्रमुख कार्यभाग सौंपा है, फिर भी, वह प्रत्याशाओं के सही सिद्धान्त की स्थापना करने मे असमर्थ रहा। उसने व्यापार प्रत्याशाओं मे परिवर्तनों का पूर्वानुमान करने के लिए

परिपाटी पर भरोसा किया और जैसाकि प्रोफेसर हार्ट (Hart) ने कहा है, वह इसे "प्रत्याशित (ex ante) तथा वास्तविक (ex post) तर्क का सामना कराने मे" असफल रहा। केन्ज के अनुसार, इस परिपाटी का निचोड इस धारणा मे निहित है कि वर्तमान परिस्थिति अनिश्चित काल के लिए चलती रहेगी, जब तक कि हमारे पास परिवर्तन की आशा करने के विशिष्ट कारण न हो। 'परिपाटी' की परिकल्पना पर भरोसा करने से केन्ज का प्रत्याशाओ का सिद्धान्त निरर्थक तथा अयथार्थिक बन जाता है।

(8) बचत तथा निवेश (Saving and investment)—केन्ज ने अपने विश्लेषण मे बचत को उतना महत्त्व नही दिया जितना की निवेश को दिया है। इसका कारण है सापेक्ष बचत को चालू अवधि के सम्बन्ध में वास्तविक साधन मान लेने की उसकी दुर्बलता। रोजगार के स्तर को प्रभावित करने मे प्रत्याशित बचत अधिक महत्त्वपूर्ण है। फिर, केन्ज यह भी नही समझ सका कि बचत सग्रह नही की जाती बल्कि उपभोग तथा पूजी वस्तुओ दोनो पर व्यय कर दी जाती है। केन्जवादी विश्लेषण की एक और दुर्बलता बचत तथा निवेश के बीच सम्बन्ध से है। एक ओर तो केन्ज बचत तथा निवेश को "एक ही वस्तु के विभिन्न पहलू मात्र" और इस प्रकार "उन्हें आवश्यक रूप से समान" मानता है। दूसरी ओर, उन्हे "ऐसी दो मूलतः विभिन्न क्रियाए मान लिया कि उनके बीच कोई सम्बन्ध भी नही है," ताकि वे केवल सतुलन मे बराबर होनी हैं। इस प्रकार केन्ज बचत निवेश सम्बन्ध को बहुत उलझनमय बना देता है।

(9) मजदूरी (Wages)—अर्थशास्त्रियो ने मजदूरी तथा रोजगार के केन्जवादी विश्लेषण की आलोचना की है। केन्ज का अल्परोजगार सतुलन मजदूरी दृढता पर आधारित है। केन्ज ने यह भी सुझाया कि बेरोजगारी को दूर करने के लिए या तो मुद्रा मजदूरी बढा दी जाए, या फिर, वास्तविक मजदूरी घटा दी जाए। पिगिकिन ने स्पष्ट किया कि अल्प-रोजगार सतुलन तो "पूर्ण प्रतियोगिता की व्यवस्था और मजदूरी तथा कीमत लोचारभकता मे भी रह सकता है।" दूसरे, हैजिलट्ट (Hazlitt) का मत है कि मार्किट-यान्त्र श्रम-मार्किट पर लागू होता है। जब मुद्रा मजदूरी बहुत ऊँची होगी तो बेरोजगारी होगी क्योंकि नियम यह है कि जब किसी वस्तु की कीमत बहुत अधिक होगी, तो वह सारी की सारी नही बिक पाएगी। पिटिकिन का यह तर्क अधिक जचने वाला है, "कि वस्तु माँग मे न्यूनता वास्तविक मजदूरी दर मे पहले से वृद्धि की अपेक्षा किए बिना ही श्रम आगत मे कमी ला सकती है।"

(10) व्यापार चक्र (Business cycle)—केन्ज की आलोचना उसके व्यापार-चक्रो के विश्लेषण के कारण भी की गई है, जोकि प्रमुख रूप से प्रत्याशाओ पर आधारित है। सोल्नियर (Saulnier) ने लक्ष्य किया है कि केन्ज के "Notes on the Trade Cycle" के प्रमाण मे तथ्यो का अभाव है। उसके शब्दो मे, "केन्ज इस बात के लिए कोई प्रयत्न ही नहीं करता. कि अपने निष्कर्षों को तथ्यो की कसौटी पर कसे।" दूसरे, केन्ज के व्यापार-चक्रो के कुछ महत्वपूर्ण चर (variables) जैसे कि प्रत्याशाएँ, पूजी की सीमान्त उत्पादकता तथा निवेश व्यापार-चक्र के मोड़ बिन्दुओ की व्याख्या नही कर सकते। केन्ज ने नीचे के

मोड़ (down turn) को पूंजी की सीमान्त उत्पादकता में आकस्मिक पतन के माथे मढ़ दिया है। हैज़लिट् के अनुसार, क्योंकि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता एक स्पष्ट तथा संदिग्ध शब्दावली है, इसलिए "केन्ज़ के द्वारा की गई पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के संकट की व्याख्या या तो व्यर्थ घिसा-पिटा सत्य है या स्पष्ट ही एक भूल है।" केन्ज़ के सिद्धान्त की एक गंभीर चूक त्वरण-नियम (acceleration principle) है। इससे उसका व्यापार-चक्रों का सिद्धांत एकांगी (one sided) बन गया है क्योंकि उसकी व्याख्या गुणक नियम के गिर्द केन्द्रित है। जैसाकि हिक्स ने लक्ष्य किया है, "त्वरण-सिद्धान्त तथा गुणक सिद्धान्त उतार-चढ़ावों के सिद्धान्त के ठीक उसी तरह दो पहलू हैं जैसेकि मांग का सिद्धान्त तथा पूर्ति का सिद्धान्त मूल्य सिद्धान्त के दो पहलू हैं।"

(11) **प्रावैगिक सिद्धान्त (Dynamic theory)**—केन्ज़ अपने सिद्धान्त को प्रावैगिक समझता था और उसे "परिवर्ती संतुलन का सिद्धान्त" कहता था। यहाँ तक कि उसके प्रमुख शिष्य हैरड ने भी उसे "प्रावैगिक अर्थशास्त्र का पिता कहा है। केन्ज़ ने अपने सिद्धान्त में 'प्रत्याशाओं' के माध्यम से प्रावैगिकता के तत्त्व का समावेश किया। परन्तु उसका विश्लेषण किसी एक समय पर रोज़गार के स्तर से संबंधित था। यह समयपश्चता-रहित (lagless) विश्लेषण है। प्रोफेसर कुरिहारा के अनुसार, केन्ज़ के परिवर्ती संतुलन की 'प्रावैगिक' प्रकृति में भान होता है कि वह प्रावैगिक ढंग में सोच रहा है क्योंकि समय में (through time) चरों की पूर्व गतियों के बिना संतुलन की एक स्थिति से दूसरी स्थिति पर विचलन हो ही नहीं सकता। केन्ज़ ने संतुलन की एक स्थिति से दूसरी पर संक्रमण की प्रक्रिया को स्पष्ट करने का कोई प्रयत्न ही नहीं किया। आय के विभिन्न संतुलन स्तरों की तुलना करने की केन्ज़वादी विधि को... "तुलनात्मक स्थैतिकी की संज्ञा दी गई है।" प्रोफैसर एक्ले ने केन्ज़वादी मॉडल को "अत्यधिक स्थैतिक कहा है।

(12) **अल्पकालीन अर्थशास्त्र (Short-run economics)**—केन्ज़वादी अर्थशास्त्र की एक अन्य आलोचना यह है कि यह अल्पकाल के संबंध में लागू होता है। केन्ज़ ने स्वयं कहा है कि **"दीर्घकालीन में तो हम सब मर हो जाते हैं।"** इसलिए उसने इन चीजों को दिया हुआ मान लिया—पूंजी का स्टॉक, वर्तमान तकनीक, लोगों की रुचियाँ तथा स्वभाव, संगठन, जनसंख्या का आकार इत्यादि। परन्तु अल्पकाल के दौरान इन सब साधनों में परिवर्तन हो जाता है। फिर, अर्थव्यवस्था पर इन शक्तियों के प्रभाव पर संकेन्द्रण के बिना तो अर्थशास्त्र का अध्ययन ही अधूरा रहता है।

(13) **अत्यधिक सामूहिक (Too aggregative)**—केन्ज़ के मॉडल की इसलिए आलोचना की गई है कि यह "अत्यधिक सामूहिक" है। दूसरे शब्दों में, यह समष्टि पक्ष पर बहुत अधिक बल देता है और व्यष्टि पक्ष को छोड़ जाता है। एक्ले (Ackley) की राय में, सामूहिक धारणाओं का प्रयोग मॉडल को गलत या भ्रान्तिजनक सूचना देने वाला बना देता है। "विश्लेषण की इकाई या तो व्यक्तिगत वस्तु होनी चाहिए, या फिर, वस्तुओं की किसी और ढंग से, जैसाकि पूर्ति की लोच की-कोटि के आधार पर इकट्ठा किया जाए।" समष्टि-आर्थिक चरों जैसेकि आय, निवेश, उपभोग, रोज़गार

इत्यादि के कारण को ठीक से समझने के लिए उनके व्यष्टि व्यवहार का अध्ययन करना आवश्यक है। इस प्रकार, केन्ज़वादी अर्थशास्त्र की सामूहिक प्रकृति उसकी आर्थिक समस्याओं के वास्तविक अध्ययन की उपयोगिता को कम कर देती है।

(14) बन्द अर्थव्यवस्था (Closed economy)—केन्ज़वादी सिद्धान्त बन्द अर्थव्यवस्था की धारणा पर आधारित है, जोकि रोज़गार तथा आय के स्तर पर पड़ने वाले विदेशीय व्यापार के प्रभाव को छोड़ देती है। इससे केन्ज़ का सिद्धान्त अयथार्थिक बन जाता है क्योंकि सभी अर्थव्यवस्थाएं खुली अर्थव्यवस्थाएँ होती हैं और उनके रोज़गार-स्तर पर विदेशी व्यापार गहरा प्रभाव डालता है। उदाहरण के लिए प्रतिकूल व्यापार-शेष से आय का प्रवाह विदेश को हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप गुणक के उलटे कार्यकरण के माध्यम से घरेलू आय, निवेश और रोज़गार की मात्रा में कमी हो जाती है। इसके विपरीत, अनुकूल व्यापार-शेष के प्रभाव से अर्थव्यवस्था में आय, निवेश तथा रोज़गार का स्तर बढ़ जाता है। इस प्रकार केन्ज़ के द्वारा रोज़गार की मात्रा पर विदेशी व्यापार के प्रतिप्रभावों को छोड़ दिया जाना उसके सिद्धान्त में एक गंभीर दोष है।

(15) पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect competition)—केन्ज़ के सिद्धान्त की एक और कमज़ोरी यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक कल्पना पर आधारित है। इससे यह सिद्धान्त समाजवादी या साम्यवादी समाजों पर नहीं लागू होता क्योंकि वहाँ समस्त अर्थव्यवस्था को राज्य चलाता है। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में चक्रीय बेरोज़गारी नहीं होती, अत उनमें केन्ज़वादी सिद्धान्त के लागू होने का सवाल ही नहीं पैदा होता। जैसाकि प्रोफ़ेसर हैरिस (Harris) ने ठीक ही कहा है, "यदि साम्यवाद आ जाए, तो रिकार्डो की भांति केन्ज़ भी खत्म हो जाएगा।"

केन्ज़ का सिद्धान्त तो आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं पर भी नहीं लागू होता क्योंकि वहां पूर्ण प्रतियोगिता की बजाय एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता है। उदाहरणार्थ, प्रभावी माँग का नियम कहता है कि जब समस्त माँग फलन समस्त पूर्ति फलन से बढ़ जाता है, तो उद्यमी अधिक लाभ कमाने की प्रत्याशा में, समर्थ माँग का बिन्दु आने तक, अधिक श्रम को लगाते रहते हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि रोज़गार के संतुलन स्तर तक पहुंचने के लिए अधिक श्रमिकों को तब भी काम पर लगाए हों, जब अपूर्ण प्रतियोगिता हो। इस प्रकार केन्ज़ का सिद्धान्त [illegible] है।

(16) सामान्य सिद्धांत (General theory)—केन्ज़ अपने सिद्धांत को एक "सामान्य सिद्धान्त" मानता है। परन्तु जैसाकि ऊपर कही गई बात से स्पष्ट है, यह सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त नहीं बल्कि एक विशिष्ट सिद्धान्त है, जो पूर्ण प्रतियोगिता-मूलक बन्द अर्थव्यवस्था में स्थैतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत ही लागू होता है। फिर, यह अल्प-विकसित देशों की समस्याएँ सुलझाने में भी असमर्थ है। जिन औजारों और मान्यताओं पर केन्ज़वादी अर्थशास्त्र का निर्माण हुआ है, वे ऐसी अर्थव्यवस्थाओं का विकास करने की क्षमता नहीं रखतीं। इस प्रकार केन्ज़वादी अर्थशास्त्र को किसी भी तरह 'सामान्य

सिद्धान्त' नही कहा जा सकता । प्रोफेसर हैरिस अधिक यथार्थवादी है, जब वह कहता है कि "जो लोग ऐसे विश्वजनीन सत्य खोजना चाहते हैं जो सब स्थानों पर और सब समयों मे लागू हो सकें, उनके लिए अच्छा है कि वे इस 'सामान्य सिद्धान्त' पर अपना समय न बर्बाद करें।"

(17) बेरोजगारी की समस्या (Problem of unemployment)—केन्ज की आलोचना इसलिए भी की गई है कि उसने केवल चक्रीय बेरोजगारी को ही उठाया है और पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में पाई जाने वाली अन्य प्रकार की बेरोजगारी को छोड़ दिया है । उसने अस्थाई (frictional) बेरोजगारी और प्रौद्योगिकीय (technological) बेरोजगारी का कोई हल नही दिया । प्रौद्योगिकीय बेरोजगारी की समस्या सभवत. इसलिए छोड़ दी गई कि केन्ज उन तेजी से होने वाली प्रौद्योगिकीय खोजों का पहले अनुमान नही कर पाया, जो उन्नत पूंजीवादी देशों मे हुई । इस प्रकार केन्जवादी अर्थशास्त्र बेरोजगारी की समस्या हल करने मे अधूरा है।

(18) नीति सबंधी निहितार्थ (Policy implications)—केन्जवादी अर्थशास्त्र की नीति सबधी निहितार्थ की भी आलोचना की गई है। कुछ आलोचनाओं की चर्चा नीचे की जाती है.

(i) बेरोजगारी का मुकाबला करने के लिए केन्ज ने घाटे का व्यय की नीति की सिफारिश की है । परन्तु इस नीति के गभीर प्रति-प्रभाव होते हैं क्योंकि राज्य फिजूल-खर्ची के ढग मे अपने साधनों को अपेक्षा अधिक व्यय कर सकता है। फिर, अमरीका मे सरकार द्वारा किए गए घाटे के व्यय से रोजगार की मात्रा बढ़ने की बजाय स्फीति आई। केन्ज के सबसे बड़े आलोचक प्रोफेसर हैजलिट्ट का मत है, "स्फीति बेरोजगारी के लिए एकदम अनिश्चित इलाज है, बेरोजगारी का अनावश्यक इलाज है।" इसलिए बेरोजगारी का इलाज करने के लिए स्फीति या घाटे के व्यय पर भरोसा नही किया जा सकता ।

(ii) मदी पर काबू पाने और पूर्ण रोजगार उपलब्ध करने के लिए केन्ज ने सार्वजनिक निवेश का पक्ष लिया है । यद्यपि उसने यह कहा था कि सार्वजनिक निवेश का काम निजी निवेश को उखाड़ फेंकना नही बल्कि उसकी अनुपूर्ति करना है, फिर भी, सार्वजनिक निवेश को बहुत हद तक प्रतिस्थापित कर दिया है। सड़क, वायु तथा रेल परिवहन एवं कई अन्य उद्योगों के राष्ट्रीयकरण और राज्य-उद्यमों के शुरू होने से सार्वजनिक क्षेत्र का घेरा बहुत बढ़ गया है । इसने निजी उद्यम का क्षेत्र घटा दिया है ।

(iii) अर्थव्यवस्था मे स्फीतिकारी झुकावों पर नियत्रण करने के लिए केन्ज ने आरोही कराधान का समर्थन किया । परन्तु कपनियों पर लगाए गए अधिक ऊंचे कर निजी निवेश को हतोत्साहित करते हैं और ऊंचे वस्तु-कर उपभोग को निरुत्साहित करते हैं। इससे निजी निवेश पर सचयी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है और इस प्रकार अर्थव्यवस्था सुस्त पड़ जाती है।

(iv) केन्ज ने मौद्रिक नीति की ओर नही ध्यान दिया । केन्जवादी व्यवस्था में, पूर्ण रोजगार तथा तरलता जाल (liquidity trap), अर्थात् जब मदी के दौरान ब्याज की

दर लोचरहित होती है, की स्थितियों में मुद्रा तटस्थ रहती है। केवल इन दो स्थितियों के बीच की माध्यमिक स्थिति में ही मुद्रा अतटस्थ होती है। केन्ज़वादी विश्लेषण में यह एक बड़ी कमी है क्योंकि जैसाकि फ्रीडमैन, मैट्ज़लर, पिटिंकिन तथा अन्य ने सिद्ध किया है, मौद्रिक नीति इन स्थितियों में भी महत्त्वपूर्ण कार्य करती है।

(v) केन्ज़ की नीति संबंधी विधियाँ पूंजी-निर्माण तथा वृद्धि की उन समस्याओं को नहीं सुलझा पाती जोकि प्रौद्योगिकीय नवप्रवर्तनों का परिणाम होती हैं। वे अल्पविकसित देशों की समस्याएं हल करने में भी असमर्थ हैं। वास्तव में, केन्ज़ की नीति सम्बन्धी विधियों को इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं पर लागू करने से और अधिक समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं।

(vi) अन्तिम, केन्ज़वादी अर्थशास्त्र कई ऐसी सामाजिक आर्थिक समस्याओं का हल देने में भी असमर्थ है जिनका सामना विकसित देशों को करना पड़ रहा है। इन समस्याओं में उचित रोज़गार, आय वितरण तथा साधन-वितरण शामिल हैं। केन्ज़वादी नीति-उपायों में यह एक गंभीर दोष है।

निष्कर्ष (Conclusion)

केन्ज़वादी अर्थशास्त्र के आलोचनात्मक मूल्यांकन से ज़ाहिर है कि जहां ऐसे केन्ज़वादी हैं, जो केन्ज़ का गुणगान करते हैं, वहां हैज़लिट्ट जैसे केन्ज़विरोधी भी हैं जिन्हें "कोई एक सिद्धान्त भी ऐसा नहीं मिला जो सत्य भी हो और मौलिक भी।" दूसरी ओर, केन्ज़ का सबसे बड़ा अनुयायी क्लिलर्ड लिखता है, "केन्ज़ इस दृष्टि से मौलिक विचारक था कि वह अपने ही ढंग से अपने विचारों तक पहुंचा। जो विचार केन्ज़ ने प्रस्तुत किए, वे उसके अपने थे, भले ही किसी और ने उन्हीं विचारों को या उनसे मिलते-जुलते विचारों को कभी उससे पहले प्रस्तुत कर दिया हो।" यद्यपि आज की समस्याएँ उनसे कुछ-कुछ भिन्न हैं, जो उस समय थीं, जब केन्ज़ ने अपनी *General Theory* लिखी थी, फिर भी अधिकांश अर्थशास्त्री केन्ज़वादी विश्लेषण के ढांचे के भीतर ही आज की समस्याओं को सुलझाते हैं। बावजूद इस बात के कि सैम्यूलसन ने *General Theory* की इन शब्दों में बड़ी निन्दा की है कि यह "एक ऐसी पुस्तक है, जो बड़े खराब ढंग से लिखी गई है, इसका संगठन घटिया है कक्षा में प्रयोग के उपयुक्त नहीं है उद्धत, चिड़चिड़ी, विवादीय है, अपनी आभार-स्वीकृतियों में बहुत उदार नहीं है और मस्तियों तथा गड़बड़ों से भरपूर है," फिर भी, यह अर्थशास्त्र की अत्यधिक लोकप्रिय पुस्तक बनी और इसका तकनीकी यंत्र अर्थशास्त्र के सामान्य शरीर में रम चुका है। समष्टि अर्थशास्त्र, मौद्रिक अर्थशास्त्र तथा सार्वजनिक अर्थशास्त्र पर शायद ही कोई किताब ऐसी हो जिस पर केन्ज़ की विचार-धारा तथा नीति की छाप न हो। प्रोफेसर हैरी जोन्सन (Harry Johnson) ने 1961 में लिखा था, "आज के दिन इस सम्बन्ध में परिश्रम करने की ज़रूरत नहीं है कि *General Theory* को बहुत कुछ श्रेय इस तथ्य के कारण मिलना चाहिए कि अब यह मान लिया गया है कि उच्च तथा स्थिर रोज़गार बनाए रखना सरकार की जिम्मेदारी है, अथवा कि

केन्ज का मांग-सिद्धात आर्थिक नीति के आधुनिक सिद्धांत का मूल है।" और डिलर्ड के अनुसार, "घाटे के वित्त प्रबंधन को सार्वजनिक नीति का महत्त्वशाली ढंग स्वीकार किया जाना सार्वजनिक चिन्तन पद्धति में एक सराहनीय परिवर्तन है, जिसके लिए केन्ज़ीय अर्थशास्त्र प्रमुख रूप से उत्तरदायी है।" इसलिए हम केन्ज के कट्टर विरोधी हैजलिट्ट के इस कथन से सहमत नहीं है कि *General Theory* "हमारे युग का एक महान् बौद्धिक अपमान है।" वास्तव में, माल्थस के संबंध में जो मूल्यांकन शुम्पीटर ने किया है, वह बहुत हद तक केन्ज पर भी लागू होता है। केन्ज "खुशकिस्मत था—क्योंकि यह खुशकिस्मती ही है—कि वह समान रूप से बेतुके, परस्पर-विरोधी मूल्यांकनों का विषय बना। वह मानव जाति का हितकारी था। वह शैतान था। वह गंभीर विचारक था। वह मूढमति था। जिस आदमी ने लोगों के दिमाग को इतना हिलोकर रख दिया कि अपने सम्बन्ध में इतने आवेशपूर्ण मूल्यांकन प्रकट करा सका, इसी तथ्य से वह कोई औसत दर्जे की चीज नहीं था।" बल्कि, वह तो प्रतिभासम्पन्न था।

प्रश्न

1 केन्ज के रोजगार तथा आय सिद्धांत का मूल्यांकन कीजिए।
2 क्लासिकी और केन्ज़ीय रोजगार सिद्धांतों की तुलना कीजिए।
3 क्लासिकी और केन्ज़ीय आय निर्धारण के मॉडलों की तुलना कीजिए और उनके दो मूलभूत भेद बताइए।

अध्याय-62
अल्पविकसित देशों पर केन्ज़ के सिद्धान्त की व्यवहार्यता
(APPLICABILITY OF KEYNES'S THEORY TO UNDERDEVELOPED COUNTRIES)

1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

केन्ज का सिद्धान्त प्रत्येक सामाजार्थिक व्यवस्था पर नहीं लागू होता। यह केवल उन्नत प्रजातंत्रात्मक पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओ पर ही लागू होता है। जैसाकि शुम्पीटर ने लिखा है, "व्यावहारिक केन्जवाद ऐसा नया बीज है जिसे विदेशी धरती मे नही रोपित किया जा सकता, वहां यह मुरझा जाता है और मुरझाने से पहले जहरीला बन जाता है। परन्तु यदि इसे इंग्लैंड की धरती मे छोड़ा जाए, तो यह नया बीज बहुत स्वस्थ रहता है और फल तथा छाया दोनो ही प्रदान करने का आश्वासन देता है। यह बात केन्ज द्वारा दी गई नसीहत के प्रत्येक अंश के सम्बन्ध मे सत्य है।"[1] दूसरी ओर, के० एन० राज का यह मत है कि "केन्द्रीय सिद्धान्त को इसलिए त्याग देना कि यह अल्पविकसित देशो पर बिल्कुल लागू नही होता वास्तव मे बच्चे को स्नान जल के साथ ही फेंक देना है।"[2]

अल्पविकसित देशो के सम्बन्ध मे केन्जवादी अर्थशास्त्र की व्यवहार्यता का अध्ययन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं मे प्रवर्तमान परिस्थितियो की तुलना मे केन्जवादी अर्थशास्त्र की धारणाओ का विश्लेषण कर लिया जाए।

केन्जवादी मान्यताए तथा अल्पविकसित देश (Keynesian Assumptions and Underdeveloped Countries)

केन्जवादी अर्थशास्त्र निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है, जोकि अल्पविकसित देशो के सम्बन्ध मे उसकी व्यवहार्यता को परिसीमित करती हैं :

[1]"Practical Keynesianism is a seedling which cannot be transplanted into foreign soil, it dies there and becomes poisonous before it dies But left in English soil, this seedling is a healthy thing and promises both fruit and shade All this applies to every bit of advice that Keynes ever offered"—Schumpeter, *Ten Great Economists op cit*, p 275

[2]"Discarding the Keynesian thesis as altogether inoperative in underdeveloped countries is really throwing the baby away with the bath water"—K N Raj

(1) केन्ज़वादी अर्थशास्त्र चक्रीय बेरोजगारी की मान्यता पर आधारित है (*Keynesian economics is based on assumption of cyclical unemployment*)—केन्ज़वादी सिद्धान्त उस चक्रीय बेरोजगारी के अस्तित्व पर आधारित है जो मंदी के दौरान होती है। यह प्रभावी माग की न्यूनता से उत्पन्न होती है। प्रभावी माग के स्तर मे वृद्धि करके बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है। परन्तु विकसित अर्थ-व्यवस्था की अपेक्षा अल्पविकसित देशों मे बेरोजगारी की प्रकृति बिल्कुल भिन्न होती है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाओ मे बेरोजगारी चक्रीय नही बल्कि चिरकालिक (chronic) होती है। यह प्रभावी माँग के अभाव के कारण नही बल्कि पूजी साधनों की न्यूनता का परिणाम होती है। चिरकालिक बेरोजगारी के अतिरिक्त, अल्पविकसित देश छिपी बेरोजगारी (disguised unemployment) से भी ग्रस्त रहते हैं। केन्ज़ का अनैच्छिक (involuntary) बेरोजगारी दूर करने तथा आर्थिक अस्थिरता की समस्या से मतलब था। इसलिए छिपी बेरोजगारी तथा उसके समाधान पर केन्ज़ ने विचार नही किया। *चिरकालिक तथा छिपी बेरोजगारी का इलाज है आर्थिक विकास, जिस पर केन्ज़* ने कोई ध्यान नही दिया। इस प्रकार चक्रीय बेरोजगारी तथा आर्थिक अस्थिरता के सम्बन्ध मे केन्ज़ की धारणाएँ अल्पविकसित अर्थव्यवस्था मे नही टिक पातीं।

(2) केन्ज़ का अर्थशास्त्र अल्पकालीन विश्लेषण (Keynes's economics is a short period analysis)—"केन्ज़वादी अर्थशास्त्र अल्पकाल सम्बन्धी विश्लेषण है जिसमे केन्ज़ वर्तमान कुशलता तथा उपलब्ध श्रम की मात्रा, उपलब्ध उपस्कर (equipment) की वर्तमान मात्रा तथा स्वरूप, वर्तमान तकनीक, प्रतियोगिता की कोटि, उपभोक्ता की रुचियाँ तथा स्वभाव, श्रम की विभिन्न गहनताओ एव देखरेख तथा सगठन क्रियाओ की अनुपयोगिता और सामाजिक ढांचा, इन सबको दिया हुआ मान लेता है।"[3] पर, विकास अर्थशास्त्र दीर्घकाल सम्बन्धी विश्लेषण है जिसमे उन सब मूल साधनों मे कालपर्यन्त मे परिवर्तन हो जाता है जिन्हे केन्ज़ दिया हुआ मान लेता है।

(3) केन्ज़वादी अर्थशास्त्र बद अर्थव्यवस्था की मान्यता पर आधारित है (Keynesian economics is based on the assumption of a closed economy)—परन्तु अल्पविकसित देश बन्द अर्थव्यवस्थाए नही है, वे तो खुली अर्थव्यवस्थाए होती हैं, जहा उनका विकास करने मे विदेशी व्यापार महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। इस प्रकार की *अर्थव्यवस्थाए प्राथमिक रूप से कृषि तथा औद्योगिक कच्चे* माल के निर्यातों तथा पूजी वस्तुओ के आयातों पर निर्भर करती हैं। अत अल्पविकसित देशो से इस सम्बन्ध मे केन्ज़वादी अर्थशास्त्र की कोई सगति नहीं है।

(4) यह श्रम तथा अन्य पूरक साधनों की अति पूर्ति की मान्यता पर आधारित है (*This is based on the assumption of excess supply of labour and* complementary factors)—केन्ज़वादी अर्थशास्त्र की धारणा है कि अर्थव्यवस्था मे

[3] J N Keynes, *op. cit*, p. 245, note 1.

श्रम तथा अन्य पूरक साधनों का आधिक्य रहता है। इस विश्लेषण का सम्बन्ध मंदी अर्थव्यवस्था से है, "जहां उद्योग, मशीनें, प्रबन्धकर्ता तथा श्रमिक एवं उपभोग-आदतें, सबके सब केवल इस प्रतीक्षा में रहते हैं कि अस्थायी रूप से निलंबित अपने कार्य तथा कार्यभाग को सभाल लें।"[1] परन्तु अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक क्रियाएं अस्थायी तौर से निलंबित नहीं होतीं। वहां आर्थिक क्रियाएं स्पैतिक होती हैं। पूंजी, कुशलताओं, साधन पूर्तियों तथा आर्थिक ऊपरि पूंजी का अत्यन्त दुःखद अभाव होता है।

(5) **यह इस मान्यता पर आधारित है कि श्रम तथा पूंजी की बेकारी एक ही साथ होती है** (This is based on the assumption that labour and capital are simultaneously unemployed)—उपर्युक्त मान्यता से यह परिणाम भी निकाला जा सकता है कि केन्जवादी विश्लेषण के अनुसार, श्रम तथा पूंजी एक ही साथ बेकार होते हैं। जब श्रम बेरोजगार होता है, तो पूंजी तथा उपस्कार का भी पूरा उपयोग नहीं हो पाता, अथवा उनमें अतिरिक्त क्षमता विद्यमान रहती है। परन्तु अल्पविकसित देशों में ऐसा नहीं होता। वहां जब श्रम बेरोजगार होता है, तो पूंजी के अनुपयुक्त रहने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता क्योंकि पूंजी तथा उपस्कार की अत्यन्त कमी रहती है।

केन्जवादी सिद्धान्त के औजार तथा अल्पविकसित देश (Tools of Keynesian Economics and Underdeveloped Countries)

इस प्रकार, जिन मान्यताओं पर केन्जवादी अर्थशास्त्र आधारित है, वे अल्पविकसित देशों में प्रवर्तमान स्थितियों पर लागू नहीं होतीं। अब हम केन्जवादी सिद्धान्त के प्रमुख औजारों का अध्ययन करेंगे ताकि अल्पविकसित देशों के सम्बन्ध में उनकी सार्थकता की जांच हो सके।

(1) **प्रभावी मांग** (*Effective demand*)—बेरोजगारी का कारण है प्रभावी मांग की कमी और इसे पार करने के लिए केन्ज का सुझाव था कि उपभोग तथा गैर उपभोग खर्चों को बढ़ाया जाए। परन्तु अल्पविकसित देशों में अनैच्छिक बेरोजगारी नहीं बल्कि छिपी बेरोजगारी होती है। बेरोजगारी प्रभावी मांग के अभाव के कारण नहीं बल्कि पूरक साधनों के कारण पैदा होती है। प्रभावी मांग का सिद्धान्त उन अर्थव्यवस्थाओं पर लागू होता है, जहां अति बचतों के कारण बेरोजगारी है, और ऐसी स्थिति में विविध मुद्रा तथा राजकोषीय तरीकों से उपभोग तथा निवेश के स्तरों का विस्तार बढ़ाने से ही इसका इलाज हो सकता है। परन्तु अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था में आय-स्तर बहुत ही नीचे होते हैं, उपभोग-प्रवृत्ति बहुत ऊंची होती है और बचतें लगभग नहीं के बराबर होती हैं। पूरक साधनों के अभाव में, मुद्रा तथा राजकोषीय तरीकों के माध्यम से मुद्रा आयों को बढ़ाने के सब प्रयत्नों का परिणाम होगा स्फीति। *यहां समस्या प्रभावी मांग बढ़ाने की नहीं है* बल्कि आर्थिक विकास के प्रसंग में रोजगार तथा प्रतिव्यक्ति आय के स्तरों

[1] A. O. Hirschman, *The Strategy of Economic Development*, p. 54

को बढ़ाने की है। फिर भी, समस्त मांग की पर्याप्तता अल्प-विकसित देशों में गरीबी के दुश्चक्रों को तोड़ने के लिए एक आवश्यक पूर्वशर्त है।

(2) गुणक (Multiplier)—डॉ० वी० के० आर० वी० राव ने केन्ज़ के गुणक सिद्धान्त तथा नीति संकेतों को भारत जैसे अल्पविकसित देश पर लागू करने की संभाव्यता का विश्लेषण किया है।[5] डॉ० राव के अनुसार, केन्ज़ ने अल्पविकसित देशों की समस्याओं को न तो कभी व्यवस्थित रूप में रखा और न ही उस उद्देश्य या नीति की इन देशों से सम्बद्धता पर विचार किया, जो उसने अधिक विकसित देशों के लिए प्रस्तावित किये। परिणाम यह हुआ कि अल्पविकसित देशों की समस्याओं पर केन्ज़ के अर्थशास्त्र को कुछ-कुछ नासमझी से लागू किया गया। केन्ज़ का गुणक सिद्धान्त निम्नलिखित चार धारणाओं पर आधारित है—

(i) अनैच्छिक बेरोजगारी,

(ii) औद्योगीकृत अर्थव्यवस्था, जहां उत्पादन का पूर्ति वक्र ऊपर की ओर दायें को ढालू होता है, परन्तु तब तक अनुलम्ब (vertical) नहीं बनता, जब तक कि बहुत काफी समय न बीत चुका हो,

(iii) उपभोग वस्तु उद्योगों में अतिरिक्त क्षमता, और

(iv) आवश्यक कार्यकारी (working) पूंजी अथवा बढ़ी हुई उत्पादन की अपेक्षा लोचदार पूर्ति (elastic supply)।[6]

इन धारणाओं के दिये हुए होने पर, यदि हम गुणक सिद्धान्त को अल्पविकसित देशों पर लागू करें, तो स्पष्ट रूप से गुणक का मूल्य किसी उन्नत देश के गुणक-मूल्य से भी बहुत अधिक होगा। हम जानते हैं कि गुणक सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। क्योंकि अल्प-विकसित देशों में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति काफी ऊंची होती है, इसलिए सम्भावना यह है कि निवेश की छोटी वृद्धियां, धनी देश की तुलना में, बहुत शीघ्र पूर्ण रोजगार को प्रेरित करेंगी, जहां कि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति कम होती है। यह बात विरोधाभासी तथा तथ्यों के विरुद्ध है क्योंकि अल्पविकसित देशों के सम्बन्ध में वे धारणाएं सत्य नहीं ठहरतीं, जिन पर कि गुणक सिद्धान्त आधारित है।

अब हम भारत जैसे अल्पविकसित देश में प्रवर्तमान परिस्थितियों के प्रकाश में उनका परीक्षण करते हैं।

(1) अनैच्छिक बेरोजगारी (Involuntary unemployment)—केन्ज़ के विश्लेषण में, अनैच्छिक बेरोजगारी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध रखती है, जहां अधिकांश श्रमिक मजदूरी के लिए काम करते हैं और जहां उत्पादन अपने उपभोग के लिए होने की बजाय विनिमय के लिए अधिक होता है। प्रोफेसर दासगुप्ता के अनुसार बड़े उद्योगों और काफी सुविकसित बैंकिंग व्यवस्था के साथ, अल्पविकसित अर्थव्यवस्था का संगठित क्षेत्र केन्ज़ के अर्थशास्त्र की सीमा में आता है क्योंकि वह पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की

[5] V K R V Rao *Essays in Economics Development, op cit*, ch. 2.
[6] *Ibid*, p 43.

विशिष्टताओं को प्रकट करता है। परन्तु जब देश की कुल कार्यकारी जनसंख्या के सम्बन्ध में विचार किया जाता है, तो इस क्षेत्र में अनैच्छिक बेरोजगारी महत्त्वहीन ठहरती है।

वास्तव में, अति जनसंख्या वाले अल्पविकसित देश में छिपी बेरोजगारी पाई जाती है। प्रत्यक्ष रूप से लोग कृषि में लगे होते हैं परन्तु यदि उनमें से कुछ को फार्म से हटा लिया जाए तो उत्पादन में कोई कमी नहीं होती। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में अनैच्छिक बेरोजगारी की बजाय छिपी बेरोजगारी का अस्तित्व गुणक सिद्धान्त के कार्यकारण में बाधा प्रस्तुत करता है। निवेश की प्रारम्भिक वृद्धियों के द्वितीयक, तृतीयक तथा अन्य प्रभाव प्रस्तुत रूप से इसलिए नहीं होते कि चालू मजदूरी स्तर पर रोजगार स्वीकार करने को तैयार कोई भी श्रमिक नहीं होते। चालू मजदूरी स्तर पर छिपे बेरोजगार इसलिए नहीं मिलते कि एक तो उन्हें इस तथ्य का भी ज्ञान नहीं होता कि वे बेरोजगार हैं और दूसरे उन्हें पहले ही वह वास्तविक आय प्राप्त हो रही है जो उन्हें कम से कम उतनी सतुष्टि तो देती ही है जितनी कि चालू मजदूरी स्तर से उन्हें प्राप्त होगी। इस प्रकार अल्पविकसित देशों में अनैच्छिक बेरोजगारी का अभाव तथा छिपी बेरोजगारी की उपस्थिति उत्पादन या रोजगार को गुणक द्वारा बढ़ाने में बाधक होती है।

(2) **उत्पादन का बेलोच पूर्ति वक्र (Inelastic supply curve of output)**—अल्पविकसित देशों में उत्पादन का पूर्ति वक्र बेलोच होता है, जो गुणक के कार्यकरण को और भी कठिन बना देता है। कारण यह है कि उपभोग-वस्तु उद्योगों की प्रकृति ऐसी होती है कि वे उत्पादन का विस्तार करने तथा अधिक रोजगार प्रदान करने में असमर्थ होते हैं। अल्पविकसित देश में प्रमुख उपभोग-वस्तु उद्योग कृषि है, जो *लगभग स्थिर* होती है। इसका कारण यह है कि अल्पकाल में उत्पादन बढ़ाने के लिए कृषि उत्पादकों को आवश्यक सुविधाएं नहीं प्राप्त होती। परिणाम यह होता है कि निवेश की प्रारम्भिक वृद्धि के साथ आय, उत्पादन तथा रोजगार में द्वितीयक, तृतीयक तथा अन्य वृद्धियां नहीं हो पाती। आय में हुई प्राथमिक वृद्धि खाने-पीने पर खर्च हो जाती है और उसका गुणक प्रभाव समाप्त हो जाता है।

क्योंकि अल्पविकसित देशों में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति अधिक होती है, इसलिए बढ़ी हुई आय को किसान अपने लिए खाद्य वस्तुओं के उपभोग पर खर्च कर देते हैं जिससे क्रय योग्य अनाज के आधिक्य में कमी हो जाती है। फिर, उसके परिणामस्वरूप अकृषि क्षेत्र में अनाज की कीमतें चढ़ जाती है जबकि कुल वास्तविक आय नहीं बढ़ती। पर यह सम्भावना सीमित होती है कि कृषक अकृषि वस्तुओं पर अधिक खर्च करें, क्योंकि उद्योगों में अतिरिक्त क्षमता नहीं होती। उत्पादन को बढ़ाना कठिन होता है, क्योंकि पर्याप्त कच्चा माल, पूंजी, उपकरण तथा कुशल श्रमिक नहीं मिलते। इस प्रकार, डॉ० राव यह निष्कर्ष देते हैं कि "निवेश में प्राथमिक वृद्धि से, और इसलिए आय तथा रोजगार में वृद्धि से, आय में द्वितीयक तथा तृतीयक वृद्धि होती है किन्तु कृषि क्षेत्र या अकृषि क्षेत्र में उत्पादन या रोजगार में कोई विशेष वृद्धि नहीं होती। इसलिए गुणक सिद्धान्त म

आय के सम्बन्ध में तो कार्य करता है परन्तु वास्तविक आय अथवा रोजगार के प्रसंग में नहीं।"

इसी प्रकार अल्पविकसित देश में परिस्थिति (3) और (4) (आगे वर्णित) का अभाव गुणक के प्रचलन को कठिन बना देता है। उपभोग-वस्तु उद्योगों के अतिरिक्त क्षमता का अभाव तथा उत्पादन बढ़ाने के लिए कार्यकारी पूंजी की अपेक्षाकृत बेलोच पूर्ति, दोनों मिलकर उपभोग-वस्तु उद्योगों की उत्पादन में आवश्यक वृद्धि तथा उनसे परिणामी रोजगार को रोकते हैं।

इसलिए सीधा निष्कर्ष यह है कि दो प्रमुख कारणों से अल्पविकसित देश में केन्ज का गुणक सिद्धान्त नहीं चलता। पहला कारण तो यह है कि केन्ज के ढंग की अनैच्छिक बेरोजगारी नहीं मिलती, और दूसरा यह कि विशिष्ट रूप में इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में पाए जाने वाले कुछ साधनों के कार्यकरण से कृषि तथा अकृषि उत्पादनों की पूर्ति बेलोच होती है।

वास्तव में गुणक सिद्धान्त की व्यवहार्यता सम्बन्धी दिये गये तर्क एक गतिहीन अल्पविकसित अर्थव्यवस्था पर ही लागू होते हैं। परन्तु एक विकासशील अर्थव्यवस्था जो सन्धारमक सक्रमण स्टेज से गुजर रही है उसमें निवेश का गुणक प्रभाव उत्पादन, आय और रोजगार पर होना प्रारम्भ हो जाता है।

(3) उपभोग प्रवृत्ति (Propensity to consume)—उपभोग प्रवृत्ति केन्जवादी अर्थशास्त्र के महत्त्वपूर्ण औजारों में से एक है और यह उपभोग तथा आय के बीच सम्बन्ध को दर्शाता है। जब आय बढ़ती है, तो उपभोग भी बढ़ता है परन्तु आय में हुई वृद्धि की अपेक्षा कम मात्रा में। उपभोग फलन का यह व्यवहार इसे और भी स्पष्ट करता है कि जब आय बढ़ती है, तो बचत में वृद्धि होती है। अल्पविकसित देशों में आय, उपभोग तथा बचत के ये सम्बन्ध नहीं टिक पाते। लोग बहुत गरीब होते हैं और जब उनकी आय बढ़ती है तो वे उपभोक्ता वस्तुओं पर अधिक व्यय करते हैं क्योंकि उनकी प्रवृत्ति यह रहती है कि अपनी अपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करें। ऐसे देशों में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है, जबकि सीमान्त बचत प्रवृत्ति बहुत कम होती है। केन्जवादी अर्थशास्त्र हमें बताता है कि जब सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति ऊंची होती है, तो आय में वृद्धि होने पर उपभोक्ता-माग, उत्पादन तथा रोजगार अपेक्षाकृत अधिक तेजी से बढ़ते हैं। परन्तु अल्पविकसित देशों में जब आय में वृद्धि होने पर उपभोग बढ़ता है तो उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाना सम्भव नहीं होता क्योंकि सहकारी साधनों की दुर्लभता रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि रोजगार के स्तर में वृद्धि होने की बजाय कीमतें बढ़ जाती हैं।

(4) बचत प्रवृत्ति (Propensity to save)—अब बचत पक्ष को लिया जाए। केन्ज ने बचत को एक सामाजिक दोष माना है क्योंकि बचत की अधिकता ही प्रभावी माग में कमी लाती है। यह विचार भी अल्पविकसित देशों पर नहीं लागू होता क्योंकि आर्थिक पिछड़ेपन के लिए बचत तो रामबाण है। पूंजी-निर्माण ही आर्थिक विकास की कुंजी है

और पूजी-निर्माण तब सम्भव है, जब लोग अधिक बचत करें। उपभोग में कमी तथा बचतो मे वृद्धि करके ही अल्पविकसित देश प्रगति कर सकते हैं और यह बात केन्ज के इस मत से उलट है कि उपभोग बढाया जाये और बचतें घटाई जाए। अल्पविकसित देशो के लिए बचत दोष नही बल्कि गुण है।

(5) पूजी की सीमान्त उत्पादकता (Marginal efficiency of capital)—केन्ज के अनुसार, पूजी की सीमान्त उत्पादकता निवेश के आवश्यक निश्चायको मे से एक है। निवेश तथा पूजी की सीमान्त उत्पादकता के बीच उलटा सम्बन्ध है। जब निवेश बढता है, तो पूजी की सीमान्त उत्पादकता घट जाती है और जब निवेश घटता है, तो पूजी की सीमान्त उत्पादकता बढ जाती है। परन्तु यह सम्बन्ध अल्पविकसित देशो पर नही लागू होता। इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाओ मे निवेश का स्तर नीचा होता है और पूजी की सीमान्त उत्पादकता भी कम होती है। इस विरोधाभास के कारण हैं पूजी तथा अन्य साधनो का अभाव, मार्किट का छोटा आकार, कम आय, कम माग, ऊची लागतें, अविकसित पूजी तथा मुद्रा मार्किट, अनिश्चितताए इत्यादि। पूजी की सीमान्त उत्पादकता तथा निवेश को ये सब साधन नीचे स्तर पर रखते हैं।

(6) ब्याज की दर (Rate of interest)—केन्जवादी पद्धति मे निवेश का दूसरा निश्चायक ब्याज की दर है और इसे, आगे, तरलता अधिमान तथा मुद्रा की पूर्ति निर्धारित करते हैं। तरलता अधिमान के उद्देश्यो मे से लेन देन तथा एहतियाती उद्देश्य तो आय-लोचदार हैं और वे ब्याज की दर को प्रभावित करते हैं। केवल सट्टा-प्रयोजन से मुद्रा के लिए माग ही एक ऐसा उद्देश्य है जो ब्याज की दर को प्रभावित करता है। अल्पविकसित देशो मे लेन-देन तथा एहतियाती उद्देश्यो के लिए तरलता अधिमान अधिक होता है और सट्टा सम्बन्धी उद्देश्यो के लिए कम। इसलिए तरलता अधिमान ब्याज की दर को प्रभावित करने मे असमर्थ रहता है। ब्याज की दर का अन्य निश्चायक है मुद्रा की पूर्ति। केन्ज के अनुसार, मुद्रा की पूर्ति मे वृद्धि ब्याज की दर को घटाती है तथा निवेश, आय और रोजगार के स्तर को बढावा देती है। परन्तु अल्पविकसित देशो मे, मुद्रा की पूर्ति मे वृद्धि के परिणामस्वरूप ब्याज की दर मे कमी होने की बजाय कीमतें बढ जाती हैं। जैसाकि भारत का उदाहरण देते हुए स्वय केन्ज ने लक्ष्य किया है, "भारत का इतिहास हर युग मे इस बात का साक्षी रहा है कि भारत एक ऐसा देश है जिसकी दरिद्रता का कारण तरलता (नकदी) के लिए अधिमान है, जो इतनी प्रबल लालसा के रूप मे स्थित रहा है कि कीमती धातुओ का चिरकालिक तथा भारी मात्रा मे आगमन भी ब्याज की दर को घटाकर उस स्तर तक लाने मे असमर्थ रहा है जो वास्तविक धन की वृद्धि के अनुकूल हो।" इस प्रकार अल्पविकसित देशो मे ब्याज की दर को मुद्रा के लिए माग तथा मुद्रा की पूर्ति इतना नही प्रभावित करती जितना कि परम्पराए, रीति-रिवाज तथा संस्थागत साधन।

(7) नीति उपाय (Policy measures)—इतना ही नही, अल्पविकसित देशो मे प्रवर्तमान परिस्थितियो के अन्तर्गत केन्ज की नीति के नुस्खे भी नही काम करते। डॉ०

राव का कहना है कि घाटे की वित्त-व्यवस्था के माध्यम से निवेश बढ़ाने का प्रयत्न उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि लाने की बजाय कीमतों में स्फीतिकारी वृद्धि लाता है। परन्तु "Deficit Financing for Capital Formation and Price Behaviour in an Underdeveloped Economy" शीर्षक से एक अन्य निबन्ध में वे कहते हैं कि पूंजी-निर्माण के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था से स्फीति नहीं आती क्योंकि क्षमता बढ़ाने और परिणामत. उत्पादन के पूर्ति वक्र को लोच प्रदान करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। पर, थोड़ी-बहुत कीमत-वृद्धि तो अनिवार्य है, लेकिन यह 'स्वयं परिशोधक प्रकृति' (self-liquidating character) की होती है। "प्रश्न केवल यह है कि घाटे की वित्त-व्यवस्था को किस सीमा तक अपनाना उचित है, और इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि उस बिंदु के बाद घाटे की वित्त-व्यवस्था को नहीं अपनाना चाहिए, जहां वह स्फीतिकारी हो जाए।"

अल्पविकसित देशों में जीवन का अपेक्षाकृत अधिक ऊंचा स्तर प्राप्त करने तथा बढ़ते हुए रोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए, प्रोफेसर दासगुप्ता केन्ज की सार्वजनिक निवेश की नीति का समर्थन करते हैं। परन्तु समुचित सार्वजनिक बचतों तथा विदेशी पूंजी के प्रवाह के अभाव के कारण, वे घाटे की वित्त-व्यवस्था का भी समर्थन करते हैं, जो कीमत तथा पूंजी निर्गम नियन्त्रणों के साथ न होने पर संक्रमण काल (transitional period) में कीमतों में स्फीतिकारी वृद्धि ला देगा। अल्पविकसित देशों के लिए, केन्ज के इस सिद्धान्त की अपेक्षा कि उपभोग तथा निवेश में एक साथ वृद्धि होनी चाहिए, "पुराने ढंग का यह नुस्खा कि 'अधिक परिश्रम करो तथा अधिक बचाओ' आर्थिक प्रगति के लिए औषधि के रूप में अब भी सही प्रतीत होता है।"[7] परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भले ही केन्ज के नीति-नुस्खे अल्पविकसित देशों की समस्याओं पर सम्पूर्ण रूप से लागू न हो, पर ऐसी अर्थव्यवस्थाओं की समस्याओं को समझने के लिए केन्ज के विश्लेषण के औजार आवश्यक हैं।

प्रोफेसर दासगुप्ता के शब्दों में निष्कर्ष यह है कि "*General Theory* की 'सामान्यता' कुछ भी हो शायद वही हो जिस अर्थ में केन्ज ने 'सामान्य' शब्द का प्रयोग किया है, पर बहुत करें तो अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की परिस्थितियों पर *General Theory* की प्रस्थापनाओं की व्यवहार्यता सीमित है।"[8]

[7]"The old fashioned prescription of 'work harder and save more' still seems to hold as the medicine for economic progress."—V. K. R. V. Rao

[8]"Whatever the generality of the *General Theory*, may be in the sense in which the term 'general' was used by Keynes, the applicability of the prepositions of the *General Theory* to conditions of an underdeveloped economy is at best limited."—DasGupta.

प्रश्न

1. केन्ज ने अपने सामान्य सिद्धान्त मे कौन-सी मान्यताए प्रतिस्थापित की हैं? आपके विचार मे कहा तक एक अल्पविकसित परन्तु विकासशील अर्थव्यवस्था की दशाए इन मान्यताओ को सही या गलत ठहराती हैं?
2. केन्ज के रोजगार के सिद्धान्त की तर्कपूर्ण विवेचना कीजिए और स्पष्ट कीजिए कि किस सीमा तक इसके निष्कर्ष अल्पविकसित देशो पर लागू होते हैं।
3. निवेश-आय गुणक की धारणा पर एक टिप्पणी लिखिए। कहा तक यह धारणा एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था मे आय प्रजनन के विश्लेषण मे लाभदायक हो सकती है?

भाग आठ
व्यापार-चक्र
(BUSINESS CYCLES)

अध्याय-63
व्यापार-चक्र की प्रकृति एवं सिद्धान्त
(NATURE OF TRADE CYCLES AND THEORIES)

1 अर्थ
(MEANING)

व्यापार-चक्र पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का अंग है। यह चक्रीय तेजियों तथा मंदियों के विषय में संबंधित है। व्यापार-चक्र में कुल रोजगार, आय, उत्पादन तथा कीमत स्तर में तरंग की तरह (wave like) उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने 'व्यापार-चक्र' को विभिन्न रूपों में परिभाषित किया है। प्रोफेसर हैबलर की दी हुई परिभाषा बहुत सरल है। उसके अनुसार *"व्यापार-चक्र को सामान्य अर्थ में यों परिभाषित किया जा सकता है कि यह अच्छे तथा बुरे* व्यापार की समृद्धि तथा मंदी की अवधियों का अदल-बदल है।' अपनी पुस्तक *Treatise of Money* के केन्ज द्वारा दी गई परिभाषा अधिक स्पष्ट है "व्यापार-चक्र अच्छे व्यापार की उन अवधियों से निर्मित है जिनकी विशिष्टता बढ़ती कीमतें तथा कम बेरोजगार प्रतिशतता है और जो अवधियाँ गिरती कीमतों तथा ऊँची बेरोजगार प्रतिशतता से युक्त बुरे व्यापार की अवधियों के साथ अदल-बदल करती हैं।"

प्रोफेसर गार्डन के अनुसार, "चक्रीय उतार-चढ़ावों की विशिष्टता विस्तार तथा संकुचन की तरंगों का अदल-बदल है। उनकी कोई नियत लय नहीं होती परन्तु वे इस अर्थ में चक्रीय होते हैं कि *संकुचन तथा विस्तार की अवस्थाएँ अक्सर तथा पर्याप्त रूप में मिलते-जुलते ढंग पर* बार-बार आती हैं।" व्यापार-चक्रों की स्थिति में लक्ष्य करने की महत्वपूर्ण बात यह है कि कोई भी चक्र एकरूप, उपरम्भार तथा विस्तार से युक्त पूर्ण रूप से नियमित नहीं होता अर्थात् ऐसा नहीं होता कि उत्पादन के एक शिखर स्तर से दूसरे तक पहुँचने में हमेशा एक ही समय लगे और कि उत्पादन तथा रोजगार का स्तर ऊपर तथा नीचे के मोड़-बिन्दुओं के बीच हमेशा एक ही अनुपात में विचरण करे। परन्तु इस तरह के चक्र कभी घटित नहीं हुए। इस प्रकार व्यापार-चक्र कुल रोजगार, आय, उत्पादन तथा कीमत स्तरों में आवर्ती उतार-चढ़ाव होते हैं।

चक्रों के प्रकार (Types of Cycles)

व्यापार-चक्रों को सामान्यतः यों वर्गीकृत किया जाता है

(1) अल्प किचिन चक्र (The short Kitchin cycle)—इसे लघु चक्र भी कहते हैं, जो लगभग 40 मास की अवधि का होता है। यह ब्रिटिश अर्थशास्त्री जोसफ किचिन (Joseph Kitchin) के नाम पर प्रसिद्ध है जिसने 1923 में बड़े तथा छोटे चक्र के बीच भेद प्रस्तुत किया। वह अपने शोध नाम पर प्रसिद्ध है जिसने 1923 में बड़े तथा छोटे चक्र के बीच भेद प्रस्तुत किया। वह अपने शोध के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि बड़ा चक्र 40 मास के दो या तीन चक्रों

का होता है।

(2) दीर्घ जुग्लर चक्र (The long Juglar cycle)—इस चक्र को बड़ा चक्र भी कहते हैं। इसे यों परिभाषित किया जाता है कि "यह अनुक्रमिक (successive) संकटों के बीच व्यापार क्रिया का उतार-चढ़ाव होता है।" 1862 में फ्रांसीसी अर्थशास्त्री क्लीमेण्ट जुग्लर (Clement Juglar) ने यह बताया कि समृद्धि, संकट तथा परिसमापन (Liquidation) की अवधियाँ हमेशा एक ही क्रम में एक-दूसरी के बाद आती हैं। पाश्चात्य अर्थशास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जुग्लर चक्र की अवधि औसतन साढ़े नौ वर्ष होती है।

(3) अति दीर्घ कोन्द्रातीफ चक्र (The very long Kondratieff cycle)—1925 में रूसी अर्थशास्त्री कोन्द्रातीफ इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि चक्रों की अति दीर्घ तरंगें होती हैं जिनकी अवधि 50 वर्ष से अधिक होती है और जो छः जुग्लर चक्रों की बनी होती हैं। बहुत ही लम्बे चक्र को कोन्द्रातीफ तरंगें कहा जाने लगा है।

(4) भवन सम्बन्धी चक्र (Building cycles)—एक प्रकार के चक्र वे हैं, जो भवनों के निर्माण से संबंध रखते हैं और जिनकी अवधि बहुत अधिक नियमित होती है। इनकी अवधि बड़े चक्रों की अवधि से दुगुनी और औसतन 18 वर्ष होती है। इस तरह के चक्र वारेन (Warren) तथा पीयर्सन (Pearson) नामक दो अमरीकी अर्थशास्त्रियों के नाम से सम्बद्ध हैं, जो *World Price and the Building Industry* (1937) नामक पुस्तक में प्रस्तुत निष्कर्ष पर पहुँचे थे।

(5) कुजनेट्स चक्र (Kuznets cycle)—प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री प्रोफेसर साइमन कुजनेट्स ने 16-22 वर्ष के दीर्घकालीन उतार-चढ़ाव (secular swing) नामक नए प्रकार के चक्रों की प्रस्थापना की, जो ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि यह 7-11 वर्ष के चक्र को अपेक्षाकृत महत्त्वहीन बना देता है। इसे कुजनेट्स चक्र कहा जाने लगा है।

एक व्यापार-चक्र की प्रावस्थाएँ (Phases of a Trade Cycle)

एक विशिष्ट चक्र सामान्यतः चार प्रावस्थाओं में विभक्त होता है

(1) विस्तार अथवा समृद्धि अथवा उत्कर्ष (upswing),

(2) सुस्ती (recession) अथवा उपरी मोड़ बिन्दु,
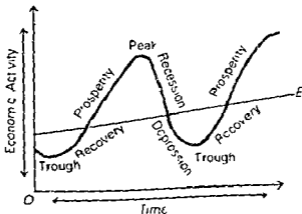
चित्र 63.1

(3) सकुचन अथवा मन्दी अथवा अधोमुख (downswing), और

(4) पुनरुन्नयन (revival) अथवा पुनरुत्थान (recovery) अथवा निचला मोड विन्दु।

विभिन्न चक्रों की स्थिति में ये प्रावस्थाएँ आवर्ती (recurring) तथा एकरूप होती हैं परन्तु किसी भी प्रावस्था का निश्चित कालक्रम अथवा काल अन्तराल (time interval) नहीं होता। जैसा कि पीगू ने लक्ष्य किया है, चक्र भले ही जुडवाँ न हों परन्तु वे एक ही परिवार के होते हैं। परिवारों की भाँति उनकी सामान्य विशिष्टताएँ होती हैं जिनका वर्णन किया जा सकता है। अपकर्ष (trough) अथवा नीचे के विन्दु से शुरू होकर, चक्र पुनरुत्थान एव समृद्धि की प्रावस्था में से गुजरता है, शिखर पर चढता है, सुस्ती एव मदी की प्रावस्था के माध्यम से गिरता है और गर्त (trough) तक पहुँचता है। इसे चित्र 1 में दिखाया गया है। हम नीचे व्यापार-चक्र की इन विशिष्टताओं का वर्णन करते हैं।

पुनरुत्थान (Recovery)—हम पहले उस स्थिति को लेते हैं, जब कुछ दिन मदी रह चुकी हो और पुनरुत्थान प्रावस्था अथवा निचला मोड विन्दु शुरू होता है। "आरम्भकारी शक्तियाँ" (originating forces) अथवा "प्रारभक" (starters) वाह्यजात (exogenous) अथवा अन्तर्जात (endogenous) शक्तियाँ होती हैं। मान लीजिए कि अर्द्ध टिकाऊ वस्तुएँ घिस जाती हैं और परिणामत यह आवश्यक हो जाता है कि अर्थव्यवस्था में उन्हें स्थानापन्न किया जाए। इससे माँग वढती है। इस वढी हुई माँग को पूरा करने के लिए निवेश तथा रोजगार वढते हैं। उद्योग का पुनरुत्थान प्रारम्भ हो जाता है। सवद्ध पूँजी वस्तु उद्योगों में भी पुनरुत्थान शुरू होता है। जव एक वार शुरू हो जाता है, तो पुनरुन्नयन की प्रक्रिया सचयी वन जाती है। परिणामत अर्थव्यवस्था में रोजगार, आय तथा उत्पादन के स्तर धीरे-धीरे वढते हैं। पुनरुत्थान-प्रावस्था की प्रारम्भिक अवस्थाओं में अर्थव्यवस्था में पर्याप्त अतिरिक्त अथवा अप्रयुक्त क्षमता होती है जिससे कुल लागत में आनुपातिक वृद्धि हुए विना ही उत्पादन वढता है। "परन्तु ज्यों-ज्यों समय वीतता है, त्यों-त्यों उत्पादन कम लोचदार हो जाता है, वढती लागतों के साथ अडचनें आने लगती हैं, वितरण में अधिक कठिनाई होती है और हो सकता है कि 'प्लाटों' का विस्तार करना पडे—इन स्थितियों में कीमतें वढती हैं।" लाभों में वृद्धि होती है। व्यापार-प्रत्याशाओं में सुधार होता है। इष्टतम स्थिति रहती है। निवेश को प्रोत्साहन मिलता है, जो वैंक ऋणों के लिए माँग को वढाता है। इससे साख विस्तार होता है। इस प्रकार निवेश, रोजगार, उत्पादन, आय तथा कीमतों में वृद्धि की सचयी प्रक्रिया स्वय अपना पोषण करती है और आत्म-समर्थक वन जाती है। अन्त में, पुनरुत्थान समृद्धि प्रावस्था में कदम रखता है।

समृद्धि (Prosperity)—समृद्धि प्रावस्था में माँग, उत्पादन, रोजगार तथा आय ऊँचे स्तर पर होते हैं। ये कीमतें वढाते हैं परन्तु मजदूरी, वेतन, व्याज दरें, किराया तथा कर, कीमतों में वृद्धि के अनुपात में नहीं वढते। कीमतों तथा लागतों के अन्तर से लाभ की मात्रा वढ जाती है। लाभ की वृद्धि तथा उसके जारी रहने की सभावना सामान्य रूप से स्टॉक-वाजार मूल्यों में तेजी से वृद्धि करती हैं। "सुधरती प्रत्याशाओं के प्रभाव में सभी प्रतिभूतियाँ, जिनमें वॉड भी शामिल हैं, वढते हैं। विशिष्ट परिवर्तन स्टॉकों में होता है, जो भावी लाभों को अंकित करता है।" अर्थव्यवस्था आशावाद की लहरों में घिर जाती है। अपेक्षाकृत अधिक लाभ की प्रत्याशाएँ निवेश को और वढाती हैं। उदार वैंक-साख निवेश को सहायता देती है। इस तरह के निवेश अधिकाशत स्थिर पूँजी, 'प्लाट', सभार तथा मशीनरी में होते हैं। वे उपभोक्ता वस्तुओं के लिए माँग वढाकर तथा कीमत स्तर को और वढाकर आर्थिक क्रिया में पर्याप्त विस्तार करते हैं। इससे परचून तथा थोक विक्रेताओं तथा निर्माणकर्ताओं को प्रोत्साहन मिलता है कि वे अपने भण्डारों

में वृद्धि करें। इस तरह से विस्तार प्रक्रिया तब तक सचयी तथा आत्म-समर्थक बनी रहती है जब तक कि अर्थव्यवस्था उत्पादन के उस ऊँचे स्तर पर नहीं पहुँचती जिसे शिखर (peak) अथवा तेजी (boom) कहते हैं।

समृद्धि का शिखर अर्थव्यवस्था को अति पूर्ण रोजगार स्तर पर पहुँचा सकता है और कीमतों में स्फीतिकारी वृद्धि ला सकता है। यह समृद्धि प्रावस्था के अन्त तथा सुस्ती के प्रारभ का लक्षण है। सुस्ती के बीज तेजी के भीतर आर्थिक ढाँचे में तनावों के रूप में विद्यमान रहते हैं, जो विस्तारकारी पथ पर नियन्त्रण का काम करते हैं। वे ये हैं (i) श्रम तथा कच्चे माल इत्यादि की दुलर्भता जिससे कीमतों की सापेक्षता में लागतें बढती हैं, (ii) पूँजी की दुर्लभता के कारण ब्याज दरों में वृद्धि, और (iii) जब आय बढती है, तो बढती कीमतों तथा उपभोग की स्थिर प्रवृत्ति के कारण उपभोग का न बढ सकना। पहला कारक लाभ-सीमाओं को घटाता है। दूसरा कारक निवेशों को महँगा बनाता है और पहले के साथ मिलकर व्यापार-प्रत्याशाओं को घटाता है। तीसरे कारक का परिणाम यह होता है कि भण्डारों का अम्बार लग जाता है, जो प्रकट करता है कि विक्रय अथवा उपभोग उत्पादन से पीछे रह जाता है।

ये शक्तियाँ सचयी तथा आत्म-समर्थक बन जाती हैं। उद्यमी, व्यापारी तथा व्यवसायी बहुत सतर्क हो जाते हैं और अति-आशावाद का स्थान निराशावाद ले लेता है। यह ऊपरी मोड़ बिन्दु का प्रारम्भ है।

सुस्ती (Recession)—जब 'शिखर' से, जोकि थोडी अवधि का होता है, नीचे की ओर गति होती है तो सुस्ती शुरू हो जाती है। "यह मोड की उस अवधि को लक्ष्य करती है जिसमें सकुचन लाने वाली शक्तियाँ अन्तत विस्तार की शक्तियों पर विजय प्राप्त कर लेती हैं। इसके बाह्य चिह्न ये हैं स्टॉक बाजार में परिसमापन (liquidation), बैंकिंग प्रणाली में तनाव तथा ऋणों का कुछ परिसमापन, और कीमतों में पतन का प्रारम्भ।" परिणामत लाभ-सीमाएँ और घट जाती हैं क्योंकि लागतें कीमतों से आगे बढने लगती हैं। कुछ फर्में बन्द हो जाती हैं। अन्य फर्में उत्पादन घटा देती हैं और सचित स्टॉकों को बेचने का प्रयत्न करती हैं। निवेश, रोजगार आय तथा माँग गिर जाती हैं। यह प्रक्रिया सचयी बन जाती है।

सुस्ती हल्की या तेज हो सकती है। तेज सुस्ती से आकस्मिक स्फोटात्मक स्थिति आ सकती है, जो बैंक प्रणाली अथवा स्टॉक एक्सचेंज से उत्पन्न होती है और आतक (panic) अथवा सकट (crisis) छा जाता है। "जब सकट, और अधिक विशिष्ट रूप से आतक, छा ही जाता है, तो यह विश्वास के अन्त तथा तरलता के लिए आकस्मिक माँगों से सम्बद्ध प्रतीत होता है। यह सकट अपने आप में किसी कौतुकपूर्ण तथा आकस्मिक असफलता के कारण भी आ सकता है। कोई फर्म अथवा बैंक अथवा निगम घोषणा कर देता है कि वह अपना कर्जा चुकाने में असमर्थ है। यह घोषणा अन्य फर्मों तथा बैंकों को ऐसे समय में कमजोर बनाती हैं, जब आर्थिक ढाँचे में धन की कमी के अशुभ लक्षण प्रकट होने लगते हैं, और फिर, इससे आतक की ऐसी लहर छा जाती है कि वित्तीय सस्थाओं से पैसा निकलवाने की भाग-दौड पराकाष्ठा को पहुँच पाती है सन् 1873, 1893, 1907 में सयुक्त राज्य को इसी तरह का अनुभव प्राप्त हुआ था।" एम. डब्ल्यू. ली के शब्दों में, "जब एक बार सुस्ती शुरू हो जाती तो वह अपने आप जगल की आग की तरह भडकने लगती है, और जब एक बार चल पडती है तो स्वय अपना सैन्यदल तैयार कर लेती है और अपनी विध्वसकारी क्षमता को आन्तरिक प्रोत्साहन देती है।"

मन्दी (Depression)—जब आर्थिक क्रिया में व्यापक ह्रास होता है तो सुस्ती मदी में विलीन हो जाती है। वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन, रोजगार, आय, माँग तथा कीमतों में पर्याप्त

प्रकार अर्थव्यवस्था में समृद्धि अथवा मंदी आ जाती है।

व्यापार चक्र की प्रसार अवस्था तब शुरू होती है जब बैंक उधार-सुविधाओं को बढ़ा देते हैं। ब्याज की उधार देने की दर घटाकर या प्रतिभूतियाँ खरीद कर ये उधार-सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। इनसे सौदागरों तथा उत्पादकों को उधार लेने को प्रोत्साहन मिलता है। इसका कारण यह है कि वे ब्याज की दर में परिवर्तनों के प्रति बहुत सचेत होते हैं। इसलिए ऋण सस्ती दर पर मिलने लगता है, तो वे अपना स्टॉक या माल बढ़ाने के लिए बैंकों से उधार लेते हैं। इसके लिए वे उत्पादकों को बड़े आर्डर देते हैं जो आगे उस बढ़ी हुई माग को पूरा करने के लिए उत्पादन के अधिक साधन काम में लगाते हैं। परिणामत, उत्पादन के साधनों के स्वामियों की मौद्रिक आय बढ़ जाती है जिससे वस्तुओं पर व्यय बढ़ जाता है। सौदागर देखते हैं कि उनका स्टॉक खत्म होता जा रहा है। वे उत्पादकों को अधिक आर्डर देते हैं। इससे उत्पादक सक्रियता में, आय, परिव्यय, माँग में वृद्धि होती है और सौदागरों का स्टॉक और कम हो जाता है। हाट्रे के अनुसार, "बढ़ रही सक्रियता का मतलब है बढ़ रही माँग और बढ़ रही माग का मतलब है बढ़ रही सक्रियता। एक दुश्चक्र, उत्पादक सक्रियता का प्रसार शुरू हो जाता है।"

ज्यों-ज्यों प्रसार की सचयी प्रक्रिया चलती है, त्यों-त्यों उत्पादक कीमतें बढ़ाने लगते हैं। ऊँची कीमतों से व्यापारियों को अधिक उधार लेने की प्रेरणा मिलती है, ताकि वे और अधिक लाभ कमाने के लिए और भी अधिक स्टॉक रोक सकें। इस प्रकार आशावादिता उधार लेने को प्रोत्साहन देती है, उधार लेने से विक्रय बढ़ते हैं और विक्रय से आशावादिता बढ़ती है।

हाट्रे का कहना है कि समृद्धि निरन्तर नहीं चलती रह सकती। जब बैंक ऋण का प्रसार रोक देते हैं तो समृद्धि समाप्त हो जाती है। बैंक और उधार देने से इसलिए इनकार कर देते हैं कि उनके नकदी कोष रिक्त हो जाते हैं और जो मुद्रा परिचलन में होती है उसे उपभोक्ता नकदी धारणों के रूप में खपा लेते हैं। दूसरा कारण यह है कि जब घरेलू वस्तुओं की कीमतें बहुत बढ़ जाती हैं जिनके परिणामस्वरूप निर्यातों की तुलना में आयात बढ़ जाते हैं, तो विदेशों को सोना निर्यात करना पड़ता है। इन कारणों से विवश होकर बैंकों को ब्याज की दरें बढ़ानी पड़ती हैं और वे उधार देने से इनकार कर देते हैं। बल्कि वे व्यापारी समुदाय को कर्जा चुकाने के लिए कहते हैं। इससे व्यापारिक मंदी की अवस्था शुरू हो जाती है।

बैंकों का कर्जा चुकाने के लिए व्यापारी अपना माल बेचने लगते हैं। इससे कीमतों के गिरने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। व्यापारी लोग उत्पादकों को दिए गए अपने आर्डर भी कैन्सल कर देते हैं। माँग गिर जाने के कारण, उत्पादक अपनी उत्पादन सक्रियता घटा देते हैं। इससे आगे, उत्पादन के साधनों की माँग गिर जाती है। बेरोजगारी फैलती है। आय गिर जाती है। गिरती हुई माँग, कीमतें एवं आय—ये सभी मंदी के सूचक हैं। बैंकों का कर्जा चुकाने में असमर्थ कुछ फर्में दिवालिया हो जाती हैं और इस प्रकार बैंकों को मजबूर कर देती है कि वे अपनी साख में और संकुचन करें। इस प्रकार समस्त प्रक्रिया सचयी बन जाती है और अर्थव्यवस्था को मंदी में धकेल देती है।

हाट्रे के अनुसार, पुनरुत्थान की प्रक्रिया बहुत धीमी तथा रुक-रुक कर चलती है। जब मंदी चलती रहती है, तो जो भी कीमत मिले उसी पर व्यापारी अपने स्टॉक बेचकर बैंकों का कर्जा चुकाते हैं। परिणामत, बैंकों की रिजर्वों में मुद्रा आने लगती है और बैंकों के कोष बढ़ते हैं। यद्यपि बैंक-दर बहुत कम होती है, फिर भी साख गतिरोध (credit deadlock) बना रहता है जो आर्थिक सक्रियता में निराशावाद के कारण व्यापारियों को बैंकों से उधार लेने से रोके रखता है। केन्द्रीय बैंक इस गतिरोध को सस्ती मुद्रा नीति अपनाकर समाप्त कर सकता है, जो कि अन्तत

अर्थव्यवस्था में पुनरुत्थान लाएगा।

इस सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Its Criticisms)—फ्रीडमैन (Friedman) जैसे मुद्रा-सिद्धान्तियों ने हाट्रे के सिद्धान्त का समर्थन किया है। परन्तु अधिकाँश अर्थशास्त्रियों ने उसकी इस बात पर आलोचना की है कि उसने चक्रीय उतार-चढ़ावों की व्याख्या करने में मौद्रिक साधनों पर अनिवल दिया है और गैर-मौद्रिक साधनों की उपेक्षा की है। जिन बातों पर हाट्रे के सिद्धान्त की आलोचना की गई है, उनमें से कुछ की चर्चा नीचे की जा रही है

1 इस बात से कोई भी इनकार नहीं कर सकता कि साख का प्रसार होने से व्यापार सक्रियता का विस्तार होता है। परन्तु हाट्रे मानता है कि साख प्रसार से तेजी आती है। यह ठीक नहीं है क्योंकि तेजी का कारण साख प्रसार नहीं है। जैसा कि पीगू ने लक्ष्य किया है "बैंक मुद्रा पूर्ति में होने वाले परिवर्तन व्यापार-चक्र का अंग हैं, कारण नहीं।" मंदी की अन्तिम स्थिति में ऋण सुगमता से उपलब्ध होता है, परन्तु फिर वह पुनरुत्थान लाने में असमर्थ रहता है। इसी प्रकार, साख-संकुचन मंदी नहीं ला सकता। बहुत हुआ, तो वह मंदी के लिए स्थितियाँ मात्र उत्पन्न कर सकता है। इस प्रकार साख का प्रसार या संकुचन अर्थव्यवस्था में न तो तेजी और न ही मंदी ला सकता है।

2 हैबर्लर ने हाट्रे के इस तर्क की आलोचना की है कि "व्यापारिक तेजी के भंग के लिए सदा मौद्रिक कारण ही उत्तरदायी रहता है और कि यदि मुद्रा पूर्ति अनन्त हो, तो अनिश्चित काल के लिए समृद्धि चलती रह सकती है और मंदी को रोका जा सकता है।" परन्तु तथ्य यह है कि यदि देश में मुद्रा की पूर्ति अनन्त भी हो, तो भी न तो व्यापार-उत्कर्ष को अनन्त काल के लिए चलाया जा सकता है और न ही मंदी को अनिश्चित काल तक स्थगित किया जा सकता है।

3 हाट्रे ने अपने विश्लेषण में थोक-विक्रेताओं को जो कार्य भाग दिया है, उसकी आलोचना प्रोफेसर हैम्बर्ग ने की है। हाट्रे के सिद्धान्त में प्रमुख व्यक्ति व्यापारी या थोक विक्रेता हैं जो बैंकों से उधार लेता है और उत्थान या पतन लाना शुरू करता है। वास्तव में व्यापारी केवल बैंक साख पर ही निर्भर नहीं करते बल्कि अपने संचित कोषों से और निजी स्रोतों से उधार-ग्रहण द्वारा अपने व्यापार के लिए वित्त का प्रबन्ध करते हैं।

4 फिर हैम्बर्ग तो हाट्रे के इस विचार से भी सहमत नहीं हैं कि व्यापारी लोग ब्याज की दरों में होने वाले परिवर्तनों से प्रभावित होते हैं। हैम्बर्ग के अनुसार, ब्याज की दर में कमी के प्रति व्यापारियों में अनुकूल प्रतिक्रिया तभी होगी जब वे यह समझेंगे कि वह कमी स्थायी रहेगी। परन्तु मंदी की अवस्था में उनमें अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं होती क्योंकि व्यापारियों को यह भय रहता है कि हर बार जब ब्याज की दर घटेगी तो और कमी आएगी। दूसरी ओर, यदि व्यापारी अपने ही कोषों से अपने स्टॉकों के लिए वित्त का प्रबंध करेंगे, तो ब्याज-दर के परिवर्तनों का उनके कर्मों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

5 फिर यह कहना भी अतिशयोक्ति है कि स्टॉकों के संचयन या क्षय के सम्बन्ध में व्यापारियों के निर्णयों को केवल ब्याज-दर में परिवर्तन ही शासित करते हैं। वास्तविकता यह है कि इस प्रकार के निर्णयों को प्रभावित करने में ब्याज-दर के अतिरिक्त अन्य कारण अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उन कारणों के अंतर्गत व्यापार प्रत्याशाएँ, कीमत परिवर्तन, भंडार लागत आदि हैं।

6 हैम्बर्ग आगे यह भी लक्ष्य करता है कि हाट्रे के सिद्धान्त के अनुसार, आर्थिक सक्रियता में जो सचयी गतियाँ होती हैं वे वस्तुओं के स्टॉकों में होने वाले परिवर्तनों का परिणाम होती

हैं। परन्तु मालसूचियों (inventories) के उतार-चढ़ाव, बहुत हुआ तो, छोटे चक्र पैदा कर सकते हैं जिन्हें सही अर्थ में चक्र नहीं कहा जा सकता।

7 यह सिद्धान्त चक्र की आवर्तितता (periodicity) की व्याख्या करने में भी असमर्थ है।

अन्त में कहा जा सकता है कि हाट्रे का सिद्धान्त अपूर्ण है क्योंकि यह केवल मौद्रिक साधनों पर बल देता है और गैर-मौद्रिक साधनों की—जैसे नव-प्रवर्तन, पूँजी स्टॉक, गुणक-त्वरक अन्त संबंध आदि की—पूर्ण रूप से उपेक्षा करता है।

2 शूम्पीटर का नव-प्रवर्त्तन सिद्धान्त (Schumpeter's Theory of Innovations)

व्यापार-चक्रों का नव-प्रवर्त्तन सिद्धान्त जोसेफ़ शूम्पीटर[3] के नाम से सम्बद्ध है। शूम्पीटर का कहना है कि अर्थव्यवस्था के ढाँचे में जो नव-प्रवर्त्तन होते हैं, वही आर्थिक उतार-चढ़ावों के स्रोत हैं। व्यापार-चक्र, किसी पूँजीवादी समाज में आर्थिक विकास का परिणाम होते हैं। शूम्पीटर ने जुग्लर (Juglar) के इस कथन को स्वीकार किया है कि "मंदी का कारण समृद्धि है" और उसके बाद चक्र के उद्भव के कारण से संबंधित अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

जो दृष्टिकोण शूम्पीटर ने प्रस्तुत किया है उसके अनुसार शूम्पीटर के मॉडल के विकास की दो अवस्थाएँ रहती हैं। पहली अवस्था तो नव-प्रवर्त्तन के आरम्भिक प्रभाव से संबंध रखती है और दूसरी अवस्था, नव-प्रवर्तन के मूल प्रभाव के प्रति प्रतिक्रियाओं के माध्यम से आती है।

शूम्पीटर का पहला निकटीकरण (approximation) यह मान कर चलती है कि अर्थव्यवस्था संतुलन की स्थिति में है और प्रत्येक साधन पूर्ण रूप से नियुक्त है। प्रत्येक फर्म संतुलन में है और दक्षता से उत्पादन कर रही है तथा उसकी लागतें उसकी आय के बराबर हैं। वस्तु कीमतें उसकी औसत तथा सीमान्त दोनों लागतों के बराबर हैं। न तो कोई बचतें हैं और न ही कोई निवेश। इस संतुलन को शूम्पीटर ने वृत्तीय प्रवाह (circular flow) कहा है जो कि हर वर्ष एक ही ढंग से अपनी पुनरावृत्ति (repeat) करता रहता है—वैसे ही जैसे प्राणियों में एक ही ढंग से रक्त का संचार होता है। वृत्तीय प्रवाह में हर वर्ष एक ही ढंग से एक ही प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन होता है। शूम्पीटर का मॉडल इस बात से शुरू होता है कि लाभ कमाने के लिए उद्यमी नई वस्तु के रूप में नव-प्रवर्तन करके वृत्तीय प्रवाह को भंग करता है। नव-प्रवर्त्तन में शूम्पीटर का तात्पर्य है—"वस्तुओं के उत्पादन में होने वाले ऐसे परिवर्तन जो कि सीमान्त पर अत्यल्प प्रयत्नों अथवा परिवर्तनों से प्रभावित नहीं हो सकते।" नव-प्रवर्तन के अन्तर्गत ये आ सकते हैं—(1) नई वस्तु का प्रचलन, (2) उत्पादन की नई विधि का प्रचलन, (3) नया बाज़ार खोलना, (4) कच्चे माल या अर्द्धविनिर्मित वस्तुओं का नया स्रोत खोज निकालना, और (5) किसी उद्योग के नए संगठन को अमल में लाना। नव-प्रवर्त्तन आविष्कार नहीं होते। शूम्पीटर के अनुसार, ऐसी कोई बात नहीं जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि आविष्कार एक चक्रीय ढंग से होते हैं। नई वस्तु का प्रचलन और विद्यमान वस्तुओं में निरन्तर सुधार ही व्यापार चक्रों के प्रमुख कारण हैं।

शूम्पीटर के अनुसार नव-प्रवर्त्तन का कार्य पूँजीपति नहीं अपितु उद्यमी करता है। उद्यमी साधारण प्रतिभा का व्यक्ति नहीं है, बल्कि ऐसा व्यक्ति है जो किसी एकदम नई चीज़ की शुरूआत करता है। वह निधि तो नहीं प्रदान करता, परन्तु निधियों के प्रयोग को निर्दिष्ट करता है।

उद्यमी को अपना आर्थिक उत्तरदायित्व निभाने के लिए दो बातों की ज़रूरत रहती है—एक

3 J.A. Schumpeter *Business Cycles* 1939

तो नई वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए तकनीकी ज्ञान का अस्तित्व हो, और दूसरे, बैंक साख के रूप में, उत्पादन के साधनों पर निपटान करने का अधिकार। शूम्पीटर का कहना है कि पूँजीवादी समाज में ऐसे अप्रयुक्त तकनीकी ज्ञान का भण्डार विद्यमान है जिसका उद्यमी उपयोग कर सकता है। इसलिए वृत्तीय प्रवाह को भंग करने के लिए बैंक साख बहुत जरूरी है।

बैंक साख के प्रसार से नव-प्रवर्त्तक उद्यमी को वित्त प्राप्त होता है। क्योंकि नव-प्रवर्त्तन में निवेश करने में जोखिम रहता है इसलिए उसे उस निवेश पर ब्याज देना ही पड़ेगा। अपनी नई प्राप्त निधियों से नव-प्रवर्त्तन अन्य उद्योगों से समाधन खींचना शुरू करता है। मुद्रा आय बढ़ती है। कीमतें बढ़ने लगती हैं जिससे और अधिक निवेश को प्रोत्साहन मिलता है। नया नव-प्रवर्त्तक वस्तुओं का उत्पादन करने लगता है और अर्थव्यवस्था में वस्तुओं का प्रवाह बढ़ जाता है। परिणामत माँग की तुलना में पूर्ति बढ़ जाती है। कीमतें तथा वस्तुओं के उत्पादन की लागत तब तक गिरती जाती है जब तक कि व्यापारी मंदी शुरू नहीं हो जाती। क्योंकि वस्तुओं की कीमतें थोड़ी होती है इसलिए उत्पादक अपना उत्पादन बढ़ाने को तैयार नहीं होते। "व्यापारिक मंदी की इस अवधि में साख, कीमतें, तथा ब्याज-दरें गिर जाती हैं परन्तु कुल उत्पादन की औसत पिछली समृद्धि की अपेक्षा अधिक होगी।"

अत शूम्पीटर के प्रथम निवर्टीकरण में दो प्रावस्था चक्र शामिल हैं। अर्थव्यवस्था सतुलन स्थिति से प्रारम्भ होती है, शिखर तक पहुँचती है और तब नीचे गुस्ती की ओर चलती रहती है जब तक कि नया सतुलन पहुँच नहीं जाता है। यह नया सतुलन प्रारंभिक सतुलन की तुलना में आय के ऊँचे स्तर पर होगा। ऐसा नव-प्रवर्त्तन के कारण होता है जिसने चक्र को प्रारम्भ किया। इसे 'प्राथमिक लहर' (Primary Wave) द्वारा चित्र 2 में दिखाया गया है।

शूम्पीटर का दूसरा निवर्टीकरण मूल नव-प्रवर्त्तन के प्रभाव की प्रतिक्रियाओं के माध्यम
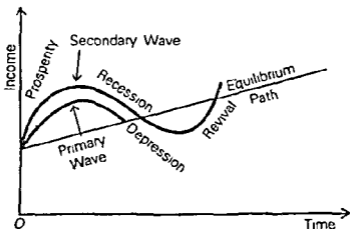
चित्र 63.2

से प्राप्त होती है। जब एक बार नव-प्रवर्त्तन सफल तथा लाभदायक बन जाता है, तो अन्य उद्यमी उस पर "टिड्डी-दल" की भाँति टूट पड़ते हैं। एक क्षेत्र में नव-प्रवर्त्तन अन्य सम्बद्ध क्षेत्रों में नव-प्रवर्त्तनों को प्रेरित करता है। परिणामत मुद्रा, आय तथा कीमतें बढ़ती हैं और समस्त अर्थव्यवस्था में सचयी प्रसार उत्पन्न करने में सहायक होती हैं। जब उपभोक्ताओं की क्रय-शक्ति बढ़ जाती है, तो पुराने उद्योगों की वस्तुओं की पूर्ति की तुलना में उनकी माँग भी बढ़ जाती है। कीमतें और बढ़ती हैं। लाभ बढ़ जाते हैं और पुराने उद्योग बैंकों से उधार लेकर अपना

विस्तार करते हैं। इससे साख स्फीति की द्वितीयक लहर प्रेरित होती है जो नव-प्रवर्त्तन की प्राथमिक लहर पर छा जाती है। अति-आशावाद और सट्टा भी व्यापार (तेजी) को और बढ़ाते हैं। पक्वनावधि (gestation period) के बाद बाजार में नई वस्तुएँ आनी शुरू हो जाती हैं और पुरानी वस्तुओं को स्थानापन्न करने लगती हैं तथा दिवालिया, पुनर्समायोजन एव खपाने की प्रक्रिया ला देती हैं।

पुरानी वस्तुओं की माँग घट जाती है। उनकी कीमतें गिर जाती हैं। पुरानी फर्में उत्पादन घटा देती हैं और कुछ फर्में तो बन्द हो जाती हैं। जब नव-प्रवर्त्तक अपने लाभों में से बैंक का कर्जा चुकाना शुरू करते हैं, तो मुद्रा की मात्रा घट जाती है और कीमतें गिरने लगती हैं। लाभ कम हो जाते हैं। अनिश्चितता एव जोखिम बढ़ जाती है। नव-प्रवर्त्तन का आवेग कम हो जाता है, और समाप्त हो जाता है। मदी शुरू हो जाती है और "सतुलन के पिछले विन्दु के आस-पास" पुनर्समायोजन की दुःखद प्रक्रिया शुरू हो जाती है। अन्त में पुनरुत्थान की प्राकृतिक शक्तियाँ पुनरुद्धार कर देती हैं। शूम्पीटर की धारणा है कि पूँजीवाद के अन्तर्गत आर्थिक विकास की कीमत चक्रीय उतार-चढ़ावों के रूप में चुकानी पड़ती है जो कि इसके गतिशील कालपथ की स्थायी विशिष्टता है। शूम्पीटर आर्थिक सक्रियता में उतार-चढ़ाव पूर्ण कोन्द्रातीफ (Kondratieff) दीर्घ लहर के अस्तित्व में विश्वास रखता है। प्रत्येक दीर्घ लहर की उत्कर्ष (upswing) नव-प्रवर्त्तन लाता है जो जनसाधारण को बहुतायत में वस्तुएँ प्रदान करती हैं। जब एक बार उत्कर्ष समाप्त होता है, तो अवनति शुरू हो जाती है।

इस प्रकार शूम्पीटर के व्यापार-चक्र के सिद्धान्त का विकास चार अवस्थाओं के चक्र में होता है। पहली अवस्था है सुस्ती जो पहली पहुँच में दूसरी अवस्था थी। दूसरी अवस्था में यह सुस्ती नीचे की ओर चलती रहती है और मन्दी ला देता है। तीसरी अवस्था में चक्र के इस प्रसार के बाद पुनरुत्थान की अवधि आती है जो चौथी अवस्था में तब तक चलती रहती है जब तक कि सतुलन स्तर नहीं आ जाता। इसे चित्र 2 में द्वितीयक लहर (Secondary Wave)—दिखाया गया है।

शूम्पीटर ने एक उपकल्पना भी प्रस्तुत की है जिसमें उसने किचिन (Kitchin) के 40 महीने की अवधि के लघु चक्र जुग्लर (Juglar) के 8-9 वर्ष की अवधि के माध्यमिक चक्र और कोन्द्रातीफ के 50 से 60 वर्ष के दीर्घ चक्र को समाकलित कर दिया है। उसने अपने सिद्धान्त में यह स्थापना की है कि प्रत्येक कोन्द्रातीफ में छ माध्यमिक जुग्लर चक्र होते हैं और प्रत्येक जुग्लर चक्र में तीन किचिन लघु चक्र रहते हैं। इस प्रकार शूम्पीटर ने अपने सिद्धान्त में चक्रों की त्रिसोपानीय (three-tier) स्कीम प्रस्तुत की है।

आलोचनाएँ (Criticisms)—शूम्पीटर ने चक्र की विभिन्न अवस्थाओं तथा मोडों का जो विश्लेषण किया है वह नया और अन्य सभी अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत विश्लेषणों से भिन्न है। परन्तु वह आलोचनाओं से मुक्त नहीं है।

1 शूम्पीटर के विश्लेषण का आधार है, नव प्रवर्त्तक। ऐसे व्यक्ति 18वीं तथा 19वीं शताब्दियों में मिल सकते थे जो कि नवप्रवर्त्तन करते थे। परन्तु आजकल सभी नव-प्रवर्त्तक एक सयुक्त पूँजी कम्पनी के कार्यों के अग हैं। नव-प्रवर्त्तनों को उद्योग-सस्थाओं का नित्य का विषय समझा जाता है ओर उनके लिए अलग से नव-प्रवर्त्तक की आवश्यकता नहीं है।

2 शूम्पीटर का यह दावा ठीक नहीं है कि चक्रीय उतार-चढ़ाव नव-प्रवर्त्तनों के कारण आते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि मनोवैज्ञानिक, प्राकृतिक अथवा वित्तीय कारणों से भी व्यापार-चक्र आते हैं।

3 शूम्पीटर ने अपने सिद्धान्त में बैंक साख को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। बैंक साख

अल्पकालीन में तो महत्त्वपूर्ण हो सकती है जब कि उद्योग सस्थाएँ बैंकों से ऋण-सुविधाएँ प्राप्त करती हैं। परन्तु दीर्घकालीन में जब पूँजी की आवश्यकता बहुत बढ जाती है तो बैंक साख अपर्याप्त रहती है। इसके लिए व्यापार सगठनों को पूँजी बाजार में नए हिस्से तथा ऋणपत्र जारी करने पडते हैं। शूम्पीटर का सिद्धान्त इस दृष्टि से दुर्बल है कि वह इन साधनों पर ध्यान नहीं देता।

4 फिर आलोचक यह भी लक्ष्य करते हैं कि यदि स्वैच्छिक बचतों अथवा आन्तरिक निधियों से नव-प्रवर्त्तन के लिए वित्त की व्यवस्था की जाएगी, तो कीमतों में स्फीतिकारी वृद्धि नहीं होगी। परिणामत हो सकता है कि अल्परोजगारयुक्त अर्थव्यवस्था में ऐसा नवप्रवर्त्तन, जिसके लिए वित्त की व्यवस्था स्वैच्छिक बचतों के माध्यम से की जाती है, चक्र को उत्पन्न ही न कर पाए।

5 अन्तिम शूम्पीटर का विश्लेषण इस अयथार्थिक पूर्वधारणा पर आधारित है कि शुरू में ससाधन पूर्ण रोजगार युक्त होते हैं। परन्तु तथ्य यह है कि पुनरुत्थान के समय ससाधन बेरोजगार होते हैं। इस प्रकार हो सकता है कि नवप्रवर्त्तन के द्वारा श्रम तथा अन्य ससाधनों को पुराने उद्योगों से न खींचा जा सके। इस प्रकार नवप्रवर्त्तन के प्रतियोगितामूलक प्रभाव से लागतें तथा कीमतें नहीं बढेंगी। क्योंकि पूर्णरोजगार एक नियम नहीं अपितु अपवाद मात्र है, इसलिए शूम्पीटर के सिद्धान्त को व्यापार-चक्रों की सही व्याख्या नहीं माना जा सकता।

3 केन्ज का व्यापार चक्र सिद्धान्त (Keynes' Theory of the Trade Cycle)

केन्ज का व्यापार-चक्र का सिद्धान्त[4] उसके आय, उत्पादन तथा रोजगार विषयक सिद्धान्त का अभिन्न अग है। व्यापार-चक्र आय, उत्पादन तथा रोजगार के आवर्ती (periodic) उतार-चढाव होते हैं। केन्ज मानता है कि व्यापार-चक्र का प्रमुख कारण "पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में चक्रीय परिवर्तन है जोकि भले ही पेचीदा होता है और जिसे अर्थव्यवस्था के अन्य महत्त्वपूर्ण अल्पकालीन चरों में सम्बद्ध परिवर्तन प्राय गम्भीर बना देते हैं।"

केन्ज के अनुसार मदी तथा बेरोजगार का प्रमुख कारण है, समस्त माग का अभाव। समस्त माँग बढाकर पुनरुत्थान किया जा सकता है और उपभोग अथवा/तथा निवेश बढाकर समस्त माग बढाई जा सकती है। क्योंकि अल्पकालीन में उपभोग तो स्थिर रहता है, इसलिए निवेश बढाकर पुनरुत्थान किया जा सकता है। इसी प्रकार अवनति का प्रमुख कारण है, निवेश होने वाली कमी। इस प्रकार, व्यापार-चक्र की केन्जीय व्याख्या में हेन्सन के शब्दों में "चक्र वस्तुत निवेश की दर में उतार-चढावों पर निर्भर करता है और निवेश की दर में उतार-चढाव लाने का प्रमुख कारण पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में होने वाले उतार-चढाव रहते हैं।"[5] पूँजी की सीमान्त उत्पादकता, पूँजी परिसम्पत्तियों की पूर्ति कीमत तथा उनके प्रत्याशित प्रतिफल पर निर्भर करती है। क्योंकि अल्पकालीन में पूँजी परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत स्थिर रहती है, इसलिए पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को पूँजी परिसम्पत्ति के प्रत्याशित प्रतिफल निर्धारित करेंगे, जो आगे व्यापार प्रत्याशाओं पर निर्भर रहेंगे। ब्याज की दर में उतार-चढाव भी निवेश की दर में उतार-चढाव उत्पन्न करते हैं। परन्तु केन्ज ने चक्रीय उतार-चढावों के प्रमुख कारण के रूप में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में उतार-चढावों को अधिक महत्त्व दिया है।

केन्जीय चक्र का क्रम स्पष्ट करने के लिए हम पहले प्रसार की अवस्था को लेते हैं।

4 J M Keynes, *op cit* ch 22

5 A H Hansen *A Guide to Keynes*, p 213

प्रसार-अवस्था में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता अधिक होती है। व्यापारी लोग आशावादी होते हैं। निवेश की दर तेजी से बढ़ती है। परिणामत उत्पादन, रोजगार, और आय में वृद्धि होती है। निवेश में प्रत्येक वृद्धि के परिणामस्वरूप आय में गुणक प्रभाव के माध्यम से, कई गुणा वृद्धि होती है। इस प्रकार, बढ़ते निवेश, आय तथा रोजगार की सचयी प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि व्यापारिक तेजी नहीं आ जाती।

ज्यों-ज्यों तेजी बढ़ती है त्यों-त्यों पूँजी की सीमान्त उत्पादकता, दो कारणों से, गिरने लगती है। प्रथम, ज्यों-ज्यों पूँजी वस्तुओं का लगातार उत्पादन होता है, त्यों-त्यों उस पर चालू प्रतिफल घटता जाता है। दूसरे, साथ-साथ माल और श्रम की कमियों तथा अड़चनों के कारण नई पूँजी वस्तु की चालू लागतें बढ़ती जाती हैं। "इस प्रकार पूँजी वस्तुओं के भावी प्रतिफलों के प्रवर्तमान आशावादी अनुमान का भ्रम टूटता जाता है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का पतन तेजी मे तरलता अधिमान में तीव्र वृद्धि ला देता है। इससे व्याज की दर बढ़ जाती है, और इस प्रकार स्थिति गम्भीर हो जाती है। परन्तु व्यापारी जगत का अनियंत्रित एवं अवज्ञापूर्ण मनोविज्ञान पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के चक्रीय उतार-चढ़ावों को अधिक प्रचण्ड बना देता है।"

अवनति में, पूँजी की सीमान्त उत्पादकता गिरने और व्याज की दर बढ़ने के कारण निवेश गिर जाता है। इसके परिणामस्वरूप आय तथा रोजगार में, गुणक के उल्टे प्रचालन के माध्यम से, सचयी पतन प्रारम्भ हो जाता है। फिर, हो सकता है कि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में पतन, उपभोग फलन को नीचे की ओर सरका दे और इस प्रकार जल्दी मंदी ले आए। चक्र की अवनति, जो सकट एवं मन्दी लाती है—की व्याख्या के रूप में केन्ज ने व्याज की दर में वृद्धि की अपेक्षा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के आकस्मिक पतन को अधिक महत्त्व दिया है।

आर्थिक प्रणाली का पतन तो सहसा हो जाता है परन्तु पुनरुत्थान में समय लगता है। यह उन साधनों पर निर्भर करता है जो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का पुनरुत्थान करते हैं। पुनरुत्थान शुरू होने से पहले कितना समय गुजरे, यह अशत अर्थव्यवस्था की संवृद्धि की सामान्य दर के आकार पर और अशत पूँजी-वस्तुओं के जीवन-काल पर निर्भर करता है। टिकाऊ परिसम्पत्तियों का जीवन-काल जितना कम होगा मंदी भी उतने ही कम समय तक रहेगी, और फिर संवृद्धि की दर जितनी तेज होगी, मंदी उतना ही कम समय तक रहेगी। एक और साधन, जो मंदी की अवधि को शासित करता है, "बेशी भंडार की ढुलाई-लागतें" (carrying costs of surplus stocks) हैं। केन्ज के अनुसार, मंदी के दौरान बेशी भंडार की ढुलाई लागत कदाचित् ही 10 प्रतिशत वार्षिक से कम होती है। इसलिए, कुछ वर्षों तक स्टॉकों में निवेश तब तक बन्द रहेगा जब तक कि बेशी भंडार समाप्त नहीं हो जाते। निराशावाद का स्थान आशावाद ले लेता है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता बढ़ती है। नए निवेश होने लगते हैं। पुनरुत्थान शुरू हो जाता है।

आलोचनाएँ (Criticisms)—व्यापार-चक्र के पूर्व सिद्धान्तों की तुलना में केन्ज का सिद्धान्त अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि "यह व्यापार-चक्र के सिद्धान्त से इस दृष्टि से बढ़कर है कि यह रोजगार में परिवर्तनों की चक्रीय प्रकृति से एकदम स्वतन्त्र रहकर रोजगार के स्तर की सामान्य व्याख्या प्रस्तुत करता है।" परन्तु ऐसे आलोचकों की कमी नहीं है जिन्होंने उसमें भी दोष निकाले हैं।

1. केन्ज की इस बात के लिए आलोचना हुई है कि उसने प्रत्याशाओं को व्यापार-चक्र के अपने विश्लेषण का आधार बनाया है। वास्तव में उसने पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को प्रभावित करने में प्रत्याशाओं पर बहुत अधिक बल दिया है। प्रोफेसर हार्ट (Hart) के अनुसार, केन्ज ने व्यापार प्रत्याशाओं के परिवर्तनों के संबंध में पूर्वानुमान के लिए 'रूढ़ि' (convention) पर भरोसा किया है और प्रत्याशित एवं वास्तविक तर्क का सामना करने में असमर्थ रहा है।

रूढ़िगत उपकल्पना पर भरोसा करने के कारण केन्ज़ की प्रत्याशाओं की धारणा व्यर्थ एव अयथार्थिक बन गई है। प्रोफेसर ओज़्गा (Ozga) के अनुसार, "प्रत्याशाओं पर ध्यान देने की कोई जरूरत नहीं। व्यापारी लोगो से ऐसे आचरण की आशा की जाती है मानो वे अपनी स्थितियो का प्रत्याशाओ से नही अपितु अवलोकनीय (observable) आकडो से समायोजन कर रहे हो।"

2 केन्ज़ मानता है कि व्यापार-चक्र का मुख्य कारण पूँजी की सीमान्त उत्पादकता मे होने वाले उतार-चढ़ाव है। आगे पूँजी की सीमान्त उत्पादक्ता निवेश की दर को निर्धारित करती है और निवेश-सबधी निर्णय व्यापारियो अथवा उत्पादको के मनोविज्ञान पर निर्भर करते है। इस प्रकार केन्ज़ का सिद्धात भी पीगू के व्यापार-चक्र के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त से बहुत भिन्न नही है।

3 फिर, केन्ज़ ने पूँजी की सीमात उत्पादकता मे आकस्मिक पतन को अवनति के लिए उत्तरदायी ठहराया है। प्रोफेसर हैज़्लिट के अनुसार, "क्योकि पूँजी की सीमात उत्पादकता शब्द अस्पष्ट, एव धूमिल है, इसलिए केन्ज़ द्वारा प्रस्तुत की गई पूँजी सीमात उत्पादकता के सकट की व्याख्या या तो बेकार है, या फिर स्पष्टत गलत है।"

4 केन्ज़ के व्यापार-चक्र के सिद्धात की एक और कमजोरी यह है कि इसके कुछ घर, जैसे कि प्रत्याशाएँ, पूँजो की सीमात उत्पादकता और निवेश, व्यापार-चक्र की विभिन्न अवस्थाओ की व्याख्या नही कर पाते। प्रोफेसर डिल्लर्ड के शब्दो मे, "यह व्यापार-चक्र का पूर्ण सिद्धात नही है क्योकि यह व्यापार-चक्र की विभिन्न अवस्थाओ का विभिन्न विवरण प्रस्तुत करने का कोई प्रयत्न नहीं करता।"

5 प्रोफेसर सोल्नियर (Saulnier) के केन्ज़ के *Notes on the Trade Cycle* की आलोचना करते हुए कहा है कि उसमे तथ्यात्मक प्रमाण का अभाव है। उसका मत है कि केन्ज़ ने अपने अनुमानो को तथ्यो की कसौटी पर परखने का कोई प्रयत्न नही किया। डिल्लर्ड ने इस दोष की ओर वहाँ भी सकेत किया है जहाँ उसने लिखा है कि केन्ज़ ने "व्यापार-चक्र के आनुभाविक आँकड़ो का बारीकी से विश्लेषण नही किया है।"

6 केन्ज़ के सिद्धात की एक बड़ी भूल यह है कि उसमे त्वरण-नियम को छोड़ दिया गया है। इससे उसका सिद्धात एकागी बन गया है क्योकि उसकी व्याख्या गुणक के नियम के इर्द-गिर्द ही केन्द्रित है। जैसाकि सर जॉन हिक्स ने लक्ष्य किया है, "त्वरण का सिद्धात तथा गुणक का सिद्धात उसी प्रकार उतार-चढ़ावो के सिद्धात के दो पक्ष हैं, जैसे कि माँग का सिद्धात तथा पूर्ति का सिद्धात मूल्य के सिद्धात के दो पक्ष है।"

3 स्थिरीकरण नीतियाँ या व्यापार-चक्रों को नियमित करने के उपाय (STABILISATION POLICIES)

एक अर्थव्यवस्था मे उतार-चढ़ावो के नियत्रित करने हेतु समय-समय पर अनेक उपाय सुझाए और कार्यान्वित किए जाते है। उनका उद्देश्य मदियो और तेजियों के कुप्रभावो से बचने के लिए आर्थिक क्रिया का स्थिरीकरण करना होता है। इसके लिए निम्न तीन उपाय अपनाए जाते है।

1. मौद्रिक नीति (Monetary Policy)

व्यापारिक उतार-चढ़ावो को नियन्त्रित करने के उपाय के रूप मे मौद्रिक नीति एक देश के केद्रीय बैंक द्वारा परिचालित की जाती है। केद्रीय बैंक साख की मात्रा और गुणवत्ता को नियत्रित करने के लिए अनेक उपाय अपनाता है। तेजी मे मुद्रा-पूर्ति के प्रसार को नियत्रित करने हेतु वह बैंक दर को बढ़ाता है, खुले बाज़ार मे प्रतिभूतियो को बेचता है, रिज़र्व अनुपात मे वृद्धि करता है और अनेक चयनात्मक साख नियत्रण उपाय, जैसे सीमा आवश्यकताएँ बढ़ाना और उपभोक्ता साख को नियमन

करना आदि, अपनाता है। अत केंद्रीय बैंक महंगी मुद्रा नीति अपनाता है। व्यवसाय और व्यापार द्वारा उधार लेना महगा, कठिन और चयनात्मक हो जाता है। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था मे मुद्रापूर्ति की अधिक मात्रा को नियंत्रित करने के प्रयत्न किए जाते हैं।

मंदी अथवा सुस्ती को नियंत्रित करने के लिए, केंद्रीय बैंक सस्ती या सुगम (cheap or easy) मौद्रिक नीति अपनाता है। व्यापारिक बैंको के रिज़र्व बढ़ाने के लिए वह बैंक दर तथा बैंको की ब्याज दरें कम करता है। वह खुले बाज़ार मे प्रतिभूतियाँ खरीदता है। वह कर्जों पर सीमा आवश्यकताएँ कम करता है और उपभोक्ताओ, व्यवसायिओ, व्यापारियो आदि को अधिक उधार देने हेतु बैंको को प्रोत्साहित करता है।

मौद्रिक नीति की सीमाएँ (Limitations of Monetary Policy)

परतु मौद्रिक नीति तेजी और मदी को नियंत्रित करने मे अधिक प्रभावी नही होती है। यदि तेजी लागताधिक्य (cost-push) कारको से होती है तो स्फीति, कुल माग, उत्पादन, आय और रोजगार को नियंत्रित करने म प्रभावी नही होगी। जहाँ तक मदी का सबध है, 1930 की महान मदी का अनुभव बताता है कि जब व्यापारियो में निराशावादिता हो तो मौद्रिक नीति की सफलता बिल्कुल नही होती है। ऐसी स्थिति मे, उनमे उधार लेने की प्रवृत्ति बिल्कुल नही होती, यदि ब्याज दर बहुत कम भी हो। इसी प्रकार जिन उपभोक्ताओ की आमदनियो मे कमी हो और जो बेरोजगार हो, वे अपने उपभोग व्यय कम कर देते है। ऐसी स्थिति मे न तो केंद्रीय बैंक और न ही व्यापारिक बैंक व्यापारियो और उपभोक्ताओ को समस्त माग बढ़ाने मे प्रोत्साहित कर सकते है। इस प्रकार आर्थिक उतार-चढ़ावो को नियंत्रित करने मे मौद्रिक नीति की सफलता बिल्कुल सीमित होती है।

2 राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

अकेली मौद्रिक नीति व्यापार-चक्रो को नियंत्रित करने की क्षमता नही रखती है। इसलिए उसे क्षतिपूरक (compensatory) राजकोषीय नीति के साथ जोड़ा जाता है। तेजी मे राजकोषीय उपाय जैसे अत्यधिक सरकारी व्यय, व्यक्तिगत उपभोग व्यय तथा निजी और सार्वजनिक निवेश नियंत्रित करने के लिए बहुत प्रभावी होते है। दूसरी ओर, वे मदी मे सरकारी व्यय, व्यक्तिगत उपभोग व्यय तथा निजी और सार्वजनिक निवेश बढ़ाने मे सहायक होते है।

तेजी के दौरान नीति (Policy during Boom)—तेजी मे निम्न उपाय अपनाए जाते है। वस्तुओ और सेवा की माँग कम करने के लिए, सरकार गैर-विकास क्रियाओ पर अनावश्यक व्यय की कटौती कर देती है। इससे निजी व्यय पर भी रोक लगती है, जो वस्तुओं और सेवाओ के लिए सरकारी माग पर निर्भर करती है। लेकिन सरकारी व्यय में कटौती करना कठिन है। फिर, आवश्यक और अनावश्यक सरकारी व्यय मे भेद करना सभव नही है। इसलिए, इस उपाय को कराधान द्वारा सपूरित किया जाता है। व्यक्तिगत व्यय को कम करने के लिए, सरकार व्यक्तिगत, कपनी और वस्तु करो की दरो को बढ़ाती है। जब सरकारी व्यय से आय अधिक होती है तो सरकार आधिक्य बजट (surplus budget) की नीति अपनाती है। ऐसा या तो कर दरें बढ़ाकर या सरकारी व्यय कम करके या दोनों द्वारा किया जाता है। ये गुणक की विपरीत प्रक्रिया द्वारा आय और समस्त माग को कम कर देते है।

एक अन्य राजकोषीय नीति जो प्राय अपनायी जाती है वह जनता से अधिक उधार लेना है, जिसका प्रभाव जनता के पास मुद्रा की मात्रा कम करना है। फिर, सार्वजनिक ऋण का पुर्नभुगतान बद कर देना चाहिए और जब अर्थव्यवस्था स्थिर हो जाए, तो किसी भविष्य की तिथि तक भुगतान स्थगित कर देना चाहिए।

अध्याय-64

सैम्यूल्सन का व्यापार-चक्र मॉडल

(SAMUELSON'S TRADE CYCLE MODEL)

प्रोफेसर सैम्यूल्सन[1] ने एक अवधि समयपश्चता (one period lag) MPC (α) और त्वरक (β) के विभिन्न मूल्य मानकर, पांच विभिन्न प्रकार के व्यापार चक्रों से सबंधित एक गुणक-त्वरक मॉडल निर्मित किया है। सैम्यूल्सन-मॉडल यह है :

$$Y_t = G_t + C_t + I_t \qquad \cdots(1)$$

जहां Y_t राष्ट्रीय आय (Y) है, t समय पर, जो कि सरकारी व्यय G_t, उपभोग व्यय C_t तथा प्रेरित निवेश I_t का कुल जोड है

$$C_t = \alpha Y_{t-1} \qquad \cdots(2)^*$$

$$I_t = \beta\ (C_t - C_{t-1}) \qquad \cdots(3)$$

समीकरण (2) को समीकरण (3) मे प्रतिस्थापन करने से हमे प्राप्त होता है,

$$I_t = \beta\ (\alpha Y_{t-1} - \alpha Y_{t-2})$$

$$I_t = \beta\alpha Y_{t-1} - \beta\alpha Y_{t-2} \qquad \cdots(4)$$

$$G_t = 1 \qquad \cdots(5)$$

समीकरण (2), (4) और (5) का समीकरण (1) मे प्रतिस्थापन करने से हमे प्राप्त होता है

$$Y_t = 1 + \alpha Y_{t-1} + \beta\alpha Y_{t-1} - \beta\alpha Y_{t-2} \qquad (6)$$

$$= 1 + \alpha(Y_{t-1} + \beta Y_{t-1}) - \beta\alpha Y_{t-2}$$

$$= 1 + \alpha(1+\beta)\ Y_{t-1} - \beta\alpha Y_{t-2} \qquad (7)$$

सैम्यूल्सन के अनुसार 'यदि हम दो अवधियों की राष्ट्रीय आय ज्ञात हो तो अगली अवधि की राष्ट्रीय आय, भारित जोड (weighted sum) लेकर, आसानी से निकाली जा सकती है। भार, निस्सन्देह, सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति के साथ सम्बन्ध के चुने गए मूल्यो पर निर्भर करेंगे। यह मानकर कि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का मूल्य शून्य से अधिक और एक से कम ($0<\alpha<1$) एव त्वरक का मूल्य शून्य से अधिक ($\beta>0$) है, सैम्यूल्सन पाच प्रकार के चक्रीय उतार-चढ़ावो की व्याख्या करता है जिनका सारांश

[1]Paul A. Samuelson "Interactions Between the Multiplier Analysis and Principle of Acceleration," *The Review of Economic Statistics* May 1963, reprinted in *Readings in Macroeconomics* (ed.) M. G. Mueller

*अवधि t के उपभोग को पिछली अवधि ($t-1$) की आय का फलन माना गया है।

तालिका दिया गया है।

स्थिति 1. सैम्यूल्सन के चक्रहीन पथ (cycleless path) को व्यक्त करती है क्योंकि यह केवल गुणक प्रभाव पर आधारित है और त्वरक इसमें कोई कार्य नहीं करता। इसे चित्र 64.1 (A) में दिखाया गया है।

तालिका 1. सैम्यूलसन का परस्पर क्रिया मॉडल

स्थिति	मूल्य	चक्र का व्यापार
1	$\alpha = .5, \beta = 0$	चक्रहीन पथ
2	$\alpha = .5, \beta = 1$	परिमन्दित उतार-चढ़ाव
3	$\alpha = .5, \beta = 2$	स्थिर विस्तार के उतार-चढ़ाव
4	$\alpha = 6, \beta = 2$	विस्फोटात्मक चक्र
5	$\alpha = 8, \beta = 4$	चक्रहीन विस्फोटात्मक पथ

स्थिति 2 परिमन्दित चक्रीय पथ (damped cyclical path) को व्यक्त करती है, जो स्थैतिक गुणक स्तर के गिर्द उतरता चढ़ता है और धीरे-धीरे उस स्तर तक बैठ जाता है, जैसा कि चित्र 64.1 (B) में दिखाया गया।
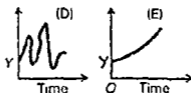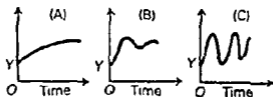
चित्र 64.1

स्थिति 3. स्थिर विस्तार (constant amplitudes) वाले चक्रों को व्यक्त करती है, जो कि स्वयं के गुणक-स्तर के गिर्द बार-बार घूमते हैं। यह स्थिति चित्र 64.1 (C) में दिखाई गई है।

स्थिति 4. प्रति-परिमन्दित (anti-damped अथवा विस्फोटात्मक चक्रों (explosive cycles) को प्रकट करती है। इसके लिए देखिए चित्र 64.1 (D)।

स्थिति 5 चक्रहीन विस्फोटात्मक ऊपर जाता पथ (cycleless explosive upward

path) से सम्बन्ध रखती है, जो कि अन्तत वृद्धि की चक्रवृद्धि ब्याज दर तक पहुंच जाता है, जैसा कि चित्र 64 I (E) में दिखाया गया है।

जिन पाच स्थितियों की ऊपर व्याख्या की गई है, उनमे से केवल तीन स्थितियों, न० 2, 3 और 4 की ही प्रकृति चक्रीय है। परन्तु उन्हें घटाकर केवल दो ही रख ली जा सकती हैं क्योंकि स्थिर विस्तार से सम्बन्ध रखने वाली स्थिति न० 3 अनुभव मे नहीं आई है। जहा तक परिमन्दित चक्रो की स्थिति न० 2 का सम्बन्ध है, ये यद्यपि नियमित रूप से तो नही, पर पिछली आधी शताब्दी मे धीमे रूप मे घटित होती रही हैं। "सामान्यतः युद्धकालीन अवधि के मुकाबले युद्धोत्तर अवधि मे चक्र अपेक्षाकृत परिमन्दित रहे हैं।" वे परिणाम हैं "ऐसे झटको के—जिन्हें अव्यवस्थित झटके (erratic shocks) कहा जा सकता है—जो कि ऐसे बहिर्जात साधनो से उत्पन्न होते हैं जैसे कि युद्ध, फसलों में परिवर्तन, आविष्कार, 'इत्यादि इत्यादि' जिनके "पर्याप्त स्थिरता से आने की आशा की जा सकती है।"[1] परन्तु उनके परिमाण को मापना सम्भव नहीं है।

विस्फोटात्मक चक्रो की स्थिति नं० 4 अतीत (past) मे नहीं मिलती। उन चक्रों के अभाव का कारण उन बहिर्जात आर्थिक साधनो का परिणाम है, जो उतार-चढ़ावों को सीमित करते हैं। पर, हिक्स ने मूल्यो की मान्यता लेकर व्यापार चक्र का मॉडल निर्मित किया है, जो शिखरो तथा तलो द्वारा नियन्त्रित व्यापार चक्रो का प्रतिपादन करता है।

मॉडल का समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal of the Model)

गुणक तथा त्वरक की परस्पर क्रिया का बहुत बड़ा गुण यह है कि अकेले गुणक अथवा त्वरक की तुलना मे राष्ट्रीय आय को बहुत अधिक तेजी से बढ़ाती है। यह न केवल व्यापार-चक्रो की व्याख्या के लिए बल्कि स्थिरीकरण नीति (stabilisation policy) के मार्गदर्शक के रूप मे भी एक उपयोगी औजार है। जैसा कि प्रोफेसर कुरिहारा ने स्पष्ट किया है, "सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (एक से कम होते) की धारणा पर आधारित गुणक विश्लेषण से मिलकर ही त्वरक नियम व्यापार चक्र विश्लेषण के उपयोगी औजार के रूप मे तथा व्यापार चक्र नीति के लाभदायक मार्गदर्शक के रूप मे काम करता है।" गुणक तथा त्वरक इकट्ठे मिलकर चक्रीय उतार-चढ़ाव उत्पन्न करते हैं। त्वरक का मूल्य (β) जितना ही अधिक होगा, विस्फोटात्मक चक्र की संभावना भी उतनी ही अधिक होगी। गुणक का मूल्य (α) जितना ही अधिक होगा, चक्रहीन पथ की सभावना उतनी ही अधिक होगी। हम प्रोफेसर एस्टे (Prof. Estey) के साथ सहमत होते हुए निष्कर्ष रूप मे कह सकते हैं "गुणक तथा त्वरक का सयोग चक्रीय उतार-चढ़ाव उत्पन्न करने की क्षमता रखता प्रतीत होता है। अकेला गुणक किसी भी दिए हुए प्रोत्साहन से कोई चक्र नहीं उत्पन्न करता बल्कि आय के स्थिर स्तर तक, केवल धीमी वृद्धि प्रदान करता है, जिसे उपभोग की प्रवृत्ति निर्धारित करती है परन्तु यदि त्वरण के नियम को प्रवर्तित कर

[1] J. A. Estey, *Business Cycles*, 1956.

दिया जाय, तो परिणाम यह होता है कि उतार-चढ़ावों का क्रम प्रारम्भ हो जाता है जिसे गुणक स्तर कहा जा सकता है। त्वरक पहले कुल आय को इस स्तर से ऊपर ले जाता है, परन्तु जैसे आय की वृद्धि की दर घटती है, त्वरक निम्न-मोड़ प्रवर्तित कर देता है जो कि कुल आय को गुणक स्तर से नीचे ले जाता है, तब फिर ऊपर, और इसी प्रकार क्रम चलता रहता है।"

सीमाएं (Limitations)—गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया के इन प्रत्यक्ष उपयोगों के बावजूद प्रस्तुत विश्लेषण की अपनी सीमाएं हैं।

सैम्यूल्सन ने जिन विभिन्न चक्रों की व्याख्या की है, उनकी अवधि की लम्बाई के सम्बन्ध में वह मौन है।

(2) फिर, प्रस्तुत विश्लेपण यह मान लेता है कि उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (a) तथा त्वरक (β) स्थिर हैं, परन्तु वास्तव में वे आय के स्तर के साथ-साथ परिवर्तित होते हैं। अत यह छोटे उतार-चढ़ावों के अध्ययन पर ही लागू हो सकता है।

(3) अन्तिम, प्रस्तुत मॉडल में जिन चक्रों की व्याख्या की गई है, वे प्रवृत्तिहीन अर्थव्यवस्था में स्थिर स्तर के गिर्द ही घूमते हैं। यह वास्तविक नहीं है, क्योंकि अर्थव्यवस्था प्रवृत्तिहीन (trendless) नहीं होती बल्कि वृद्धि की प्रक्रिया में रहती है। इसी का परिणाम है कि हिक्स ने वृद्धिशील अर्थव्यवस्था में व्यापार-चक्र के अपने सिद्धांत का निर्माण किया।

प्रश्न

1 गुणक तथा प्रेरक से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए और यह सिद्ध कीजिए कि व्यापार-चक्र केवल गुणक तथा प्रेरक की पारस्परिक प्रक्रिया का ही फल है।

2. सैम्यूल्सन के व्यापार-चक्रों के मॉडल की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।

अध्याय-65
हिक्स का व्यापार-चक्र सिद्धान्त
(HICKS'S THEORY OF THE TRADE CYCLES)

प्रोफेसर जे० आर० हिक्स ने अपनी पुस्तक *A Contribution to the Theory of the Trade Cycle* में गुणक-त्वरक परस्पर-क्रिया के नियम के आधार पर अपना व्यापार-चक्रों का सिद्धांत निर्मित किया है। उसके लिए "त्वरण का सिद्धांत तथा गुणक का सिद्धान्त उतार-चढ़ावों के सिद्धांत के ठीक वैसे ही दो पक्ष हैं, जैसे कि माग का सिद्धान्त तथा पूर्ति का सिद्धान्त मूल्य सिद्धान्त के दो पक्ष हैं।" सैम्यूल्सन के मॉडल से भिन्न, जो कि लघु उतार-चढ़ावों के अध्ययन पर लागू होता है, हिक्स का मॉडल वृद्धि तथा गतिमान सतुलन की समस्या से सम्बन्ध रखता है।

मॉडल के तत्त्व (Ingredients of the Model)

हिक्स के व्यापार-चक्र मॉडल के तत्त्व ये हैं वृद्धि की अभीष्ट दर, उपभोग फलन, स्वायत्त निवेश, प्रेरित-निवेश फलन तथा गुणक-त्वरक सम्बन्ध।

वृद्धि की अभीष्ट दर (Warranted rate of growth) वह दर है, जो अपने आपको बनाए रखेगी। यह बचत-निवेश सतुलन के अनुरूप होती है। जब वास्तविक निवेश तथा वास्तविक बचत एक ही समान दर से हो रही हो तो कहा जाता है कि अर्थव्यवस्था अभीष्ट दर से वृद्धि कर रही है। हिक्स के अनुसार गुणक-त्वरक परस्पर-क्रिया ही है, जो अभीष्ट वृद्धि-दर के गिर्द आर्थिक उतार-चढ़ावों का मार्ग प्रशस्त करती है।

उपभोग फलन $C_t = {}_aY_{t-1}$ का रूप लेता है। अवधि t में उपभोग को पिछली अवधि $(t-1)$ की आय (Y) का फलन माना जाता है। इस प्रकार आय से उपभोग पीछे रह जाता है और गुणक को समयपश्चता सम्बन्ध (lagged relation) समझा जाता है।

स्वायत्त निवेश उत्पादन के स्तर में परिवर्तनों से स्वतन्त्र होता है, अत यह अर्थव्यवस्था की वृद्धि से नहीं सम्बद्ध होता।

दूसरी ओर, **प्रेरित निवेश** उत्पादन के स्तर में परिवर्तनों पर निर्भर रहता है, अत यह अर्थव्यवस्था की वृद्धि-दर का फलन होता है। हिक्स के मॉडल में त्वरक, प्रेरित निवेश पर आधारित है, जो कि गुणक के साथ मिलकर ऊपरी मोड़ (upturn) लाता है। हिक्स ने त्वरक को यों परिभाषित किया है कि यह प्रेरित निवेश का आय में वृद्धि से अनुपात है।

गुणक तथा त्वरक के स्थिर मूल्यों में दिए होने पर 'लीवर प्रभाव' (leverage effect)

ही आर्थिक उतार-चढ़ावों के लिए उत्तरदायी होता है।

मॉडल की मान्यताएं (Assumptions of the Model)

व्यापार-चक्र का हिक्सीय सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

(1) हिक्स मान लेता है कि अर्थव्यवस्था प्रगतिशील है जिसमें स्वायत्त निवेश स्थिर दर से इस तरह बढ़ता है ताकि अर्थव्यवस्था गतिमान सतुलन में रहे।

(2) बचत तथा निवेश गुणाक (coefficients) काल पर्यन्त (over time) ऐसे ढंग से बदलते हैं कि सतुलन पथ से ऊपर की ओर विस्थापन (displacement) सतुलन से दूर समयपश्चता गति (lagged movement) ला देता है।

(3) हिक्स मान लेता है कि गुणक तथा त्वरक के मूल्य स्थिर हैं।

(4) अर्थव्यवस्था उत्पादन के पूर्ण रोजगार स्तर से आगे नहीं विस्तार कर सकती। इस प्रकार 'पूर्ण रोजगार सीमा, अर्थव्यवस्था के ऊपर की ओर गति पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण का काम करती है।

(5) अवनति (downswing) में त्वरक का कार्यकरण अर्थव्यवस्था की नीचे की ओर गति पर अप्रत्यक्ष नियत्रण प्रदान करता है। त्वरक में कमी की दर को मूल्यह्रास की दर अवनति में सीमित करती है।

(6) क्योंकि यह मान लिया गया है कि उपभोग तथा प्रेरित निवेश समयपश्चता के साथ कार्यकरण करते हैं, इसलिए गुणक तथा त्वरक के बीच सम्बन्ध समयान्तर ढंग से किया जाता है।

(7) यह मान लिया गया है कि औसत पूंजी-उत्पादन अनुपात (v) इकाई से अधिक है और कि कुल निवेश शून्य से नीचे नहीं गिरता। इस प्रकार चक्र स्वाभाविक रूप से विस्फोटात्मक हैं, परन्तु वे अर्थव्यवस्था के शिखरों और तलों (ceilings and floors) के भीतर रहते हैं।

हिक्स का मॉडल (The Hicksian Model)

हिक्स अपने व्यापार-चक्र सिद्धान्तों को चित्र 65.1 में स्पष्ट करता है। रेखा AA स्थिर दर से बढ़ते हुए स्वायत्त निवेश के मार्ग को व्यक्त करती है। EE उत्पादन का सतुलन स्तर है, जो AA पर निर्भर है और इस पर गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया लागू करके इसी से निकाला जाता है। रेखा FF संतुलन मार्ग EE के ऊपर पूर्ण रोजगार शिखर स्तर है और स्वायत्त निवेश की स्थिर दर से बढ़ रहा है। LL उत्पादन का निम्न संतुलन पथ है, जो तल (floor) अथवा अवपात (slump) संतुलन रेखा को व्यक्त करता है।

हिक्स सतुलन पथ EE पर चक्रहीन स्थिति P_0 से प्रारम्भ करता है, जब स्वायत्त निवेश की दर में वृद्धि से आय बढ़ने लगती है। परिणामतः, गुणक तथा त्वरक के संयुक्त कार्यकरण द्वारा उत्पादन तथा आय की वृद्धि अर्थव्यवस्था को विस्तार पथ पर P_0 से

ऊपर की ओर P_1 पर ले जाती है। हिक्स के अनुसार, प्रस्तुत उत्कर्ष प्रावस्था (upswing phase) स्टैण्डर्ड चक्र में सम्बद्ध रहती है, जो कि गुणक तथा त्वरक के दिए हुए मूल्यों के कारण विस्फोटात्मक स्थिति उत्पन्न करेगा। परन्तु पूर्ण रोजगार स्तर FF द्वारा नियत उपरि-सीमा (upper limit) अथवा शिखर (ceiling) के कारण ऐसा नहीं हो पाता। इस सम्बन्ध में हिक्स लिखता है "मैं केन्ज का अनुसरण करते हुए यह मान लेता हूं कि कोई बिन्दु ऐसा रहता है जिस पर प्रभावी माग में वृद्धि के प्रत्युत्तर में उत्पादन बेलोच बन जाता है।" इस प्रकार पूर्ति की कुछ अड़चनें प्रकट हो जाती हैं, जो उत्पादन को शिखर पर पहुंचने से रोकती हैं और उसकी बजाय P_1 पर उपरि-सीमा से मिलती हैं।

जब अर्थव्यवस्था P_1 पर पूर्ण रोजगार शिखर का स्पर्श करती है तो वह समय की कुछ अवधि के लिए शिखर के साथ रेंगती चलेगी और अवनति (downswing) तुरन्त नहीं प्रारम्भ हो जाएगी। निवेश समयपश्चता (lag) की अवधि पर निर्भर करते हुए अर्थव्यवस्था शिखर के साथ-साथ चलेगी। निवेश समयपश्चता जितना ही अधिक होगा, अर्थव्यवस्था उतना ही शिखर पथ के साथ-साथ चलेगी। क्योंकि चक्र की पिछली अवस्था की सापेक्षता में इस स्तर पर आय घट रही है, इसलिए निवेश की मात्रा घट जाती है। निवेश की इतनी मात्रा अर्थव्यवस्था को शिखर स्तर पर रखने के लिए अपर्याप्त है और तब नीचे की ओर झुकाव शुरू हो जाता है।
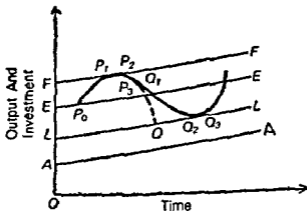
चित्र 65.1

अवनति (downswing) के दौरान गुणक-त्वरक यान्त्र उलटा चलता है, घटता हुआ निवेश आय को घटाता है, घटी हुई आय निवेश को घटाती है और इसी प्रकार क्रम आगे बढ़ता चलता है। यदि त्वरक लगातार इसी प्रकार काम करता चले तो उत्पादन निश्चय ही सतुलन स्तर EE के नीचे की ओर गिर जाएगा और इसका कारण अपेक्षाकृत अधिक सीमा तक वही विस्फोटात्मक प्रवृत्तियां होंगी जिनसे यह उससे ऊपर बढ़ी थी।

इस अवस्था में उत्पादन में पतन प्रपाति (steep) हो सकता है, जैसा कि F_1P_2Q द्वारा दिखाया गया है। परन्तु अवनति में त्वरक उतनी तेजी से नहीं काम करता जितना कि उत्कर्ष (upswing) में। यदि अवपात (slump) उग्र होगा, तो प्रेरित निवेश शीघ्रता से गिरकर शून्य हो जाएगा और त्वरक का मूल्य शून्य बन जाएगा। निवेश में कमी की दर को मूल्यह्रास की दर सीमित करती है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में निवेश की कुल मात्रा, स्वायत्त निवेश घटा मूल्यह्रास की स्थिर दर, के बराबर होती है। क्योंकि स्वायत्त निवेश हो रहा है, इसलिए उत्पादन में पतन बहुत धीमे होगा और तेजी (boom) की अपेक्षा अवपात (slump) बहुत लम्बा होगा जैसा कि Q_1Q_2 द्वारा प्रकट किया गया है। Q_2 पर, अवपात रेखा LL द्वारा प्रदान किए गए तल पर पहुंच जाता है। अर्थव्यवस्था Q_2 से तुरन्त ऊपर की ओर नहीं मुड़ जाती बल्कि अवपात सतुलन-रेखा LL के साथ-साथ चलेगा क्योंकि अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त क्षमता है। अन्तत जब सारी अतिरिक्त क्षमता समाप्त हो जाएगी, तो स्वायत्त निवेश आय को बढ़ाएगा, जिससे आगे प्रेरित निवेश बढ़ेगा ताकि त्वरक चालू हो जाय जो गुणक के साथ अर्थव्यवस्था को फिर शिखर की ओर ले जाएगा। इस तरीके से अर्थव्यवस्था में चक्रीय प्रक्रिया की आवृत्ति होती चलेगी।

हिक्स के मॉडल की आलोचना (Criticism of Hicks's Model)

ड्यूसनबरी (Duesenberry) स्मिथीज (Smithies) तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने व्यापार-चक्र के हिक्स के सिद्धान्त की निम्नलिखित आधारों पर कटु आलोचना की है।

(1) **गुणक का मूल्य स्थिर नहीं (Value of multiplier not constant)** हिक्स का मॉडल मान लेता है कि व्यापार-चक्र की विभिन्न प्रावस्थाओं के दौरान गुणक का मूल्य स्थिर रहता है। यह केन्ज़ के स्थिर उपभोग फलन पर आधारित है। परन्तु यह मान्यता वास्तविक नहीं है। फ्रीडमैन (Friedman) ने अनुभवजन्य प्रमाण के आधार पर सिद्ध किया है कि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति, आय में चक्रीय परिवर्तनों के अनुपात में, नहीं स्थिर रहती। इस प्रकार चक्र की विभिन्न प्रावस्थाओं में गुणक का मूल्य परिवर्तित होता रहता है।

`(2) **त्वरक का मूल्य स्थिर नहीं (Value of accelerator not constant)**— हिक्स की आलोचना इसलिए भी की गई है कि उसने चक्र की विभिन्न प्रावस्थाओं के दौरान त्वरक का मूल्य स्थिर मान लिया है। त्वरक की स्थिरता पहले से स्थिर पूंजी-उत्पादन अनुपात मानकर चलती है। ये मान्यताएं अयथार्थिक है क्योंकि प्रौद्योगिकीय कारकों, निवेश की प्रकृति तथा सरचना, पूंजी वस्तुओं की पक्वतावधि इत्यादि के कारण पूंजी-उत्पादन अनुपात स्वयं परिवर्तनशील है। इसलिए प्रोफेसर लुण्डबर्ग (Lundberg) ने सुझाव दिया है कि व्यापार-चक्रों को समझने की यथार्थिक पद्धति के लिए त्वरक में स्थिरता की मान्यता छोड़ दी जाए।[1]

[1]E. Lundberg, "The Stability of Economic Growth," *I. E. P.*, No 8, 1958.

(3) **स्वायत्त निवश निरन्तर नहीं** (Autonomous investment not continuous)—हिक्स मान लेता है कि चक्र की विभिन्न प्रावस्थाओं में सतत गति से निरन्तर स्वायत्त निवेश होता रहता है। यह मान्यता अयथार्थिक है क्योंकि मंदी में वित्तीय सकट स्वायत्त निवेश को उसके सामान्य स्तर से नीचे गिरा सकता है। फिर, जैसा कि शुम्पीटर ने लक्ष्य किया है, यह भी सम्भव है कि प्रौद्योगिकीय नवप्रवर्तन के कारण स्वयं स्वायत्त निवेश में उतार-चढ़ाव होते रहें।

(4) **वृद्धि केवल स्वायत्त निवेश परिवर्तनों पर निर्भर नहीं** (Growth not dependent only on changes in autonomous investment)—हिक्स के मॉडल का एक और दोष यह है कि वृद्धि को स्वायत्त निवेश में परिवर्तनों पर निर्भर बना दिया गया है। सतुलन पथ से स्वायत्त निवेश का तीव्र गति से होना वृद्धि लाता है। स्वायत्त निवेश का, प्रोफेसर स्मिथीज[2] के अनुसार, वृद्धि का स्रोत व्यवस्था के भीतर स्थित होना चाहिए। वृद्धि को अस्पष्ट बाह्य साधन पर रोपित करके हिक्स व्यापार-चक्र की पूर्ण व्याख्या प्रदान करने में असफल रहा है।

(5) **स्वायत्त और प्रेरित निवेश में भेद युक्तियुक्त नहीं** (Distinction between autonomous and induced investment not feasible)—ड्यूसनबरी[3] तथा लुण्डबर्ग जैसे आलोचक लक्ष्य करते हैं कि स्वायत्त तथा प्रेरित निवेश के बीच हिक्स द्वारा किया गया भेद व्यवहार में युक्तियुक्त नहीं है। जैसा कि लुण्डबर्ग ने लक्ष्य किया है कि प्रत्येक निवेश अल्पकालीन में स्वायत्त होता है और स्वायत्त निवेश की अधिकांश मात्रा दीर्घकालीन में प्रेरित बन जाती है। यह भी सभव है कि किसी विशिष्ट निवेश का कुछ भाग स्वायत्त हो और कुछ भाग प्रेरित, जैसा कि मशीनरी की स्थिति में। अतः स्वायत्त तथा प्रेरित निवेश के इस भेद की सार्थकता व्यवहार में संदेहास्पद है।

(6) **शिखर मन्दी के प्रारम्भ की पर्याप्त व्याख्या करने में असफल** (Ceiling fails to explain adequately the onset of depression)—हिक्स ने व्यापार-चक्र के शिखर अथवा ऊपरी सीमा की जो व्याख्या की है, उसके लिए भी हिक्स की आलोचना की गई है। ड्यूसनबरी के अनुसार, शिखर मन्दी के शुरू होने की समुचित व्याख्या करने में असमर्थ रहता है। बहुत हुआ तो यह वृद्धि को रोक तो सकता है परन्तु मन्दी नहीं ला सकता। साधनों की न्यूनता निवेश में आकस्मिक पतन और इस प्रकार मन्दी नहीं ला सकती। अमरीका में 1953-54 की व्यापारिक मन्दी प्रस्तुत तथ्य को सिद्ध करती है। फिर, अमरीका में 1873-1921 के बीच की मन्दी साधनों की कमी के कारण नहीं आई थी।[4] इससे भी आगे, जैसा कि स्वयं हिक्स ने स्वीकार किया है, मौद्रिक साधनों के कारण पूर्ण रोजगार शिखर आने से पहले ही मन्दी शुरू हो सकती है।

[2] A. Smithies, "Economic Fluctuations and Growth" *Econometrica*, January 1957.

[3] J. S. Duesenberry, *Business Cycles and Economic Growth*, 1958.

[4] *Ibid*.

(7) **तल एवं निम्न मोड़ बिन्दु की व्याख्या विश्वासप्रद नहीं** (Explanation of floor and lower turning point not convincing)—तल तथा निम्न मोड बिन्दु की हिक्सीय व्याख्या भी विश्वासप्रद नही है। हिक्स के अनुसार स्वायत्त निवेश ही है, जो धीरे-धीरे तल की ओर गति प्रदान करता है और फिर तल पर स्वायत्त निवेश मे वृद्धि से ही निम्न मोड बिन्दु आता है। हैरड (Harrod) ने इस तर्क पर भी सदेह प्रकट किया है कि मन्दी के तल पर स्वायत्त निवेश बढ़ेगा। मन्दी तो स्वायत्त निवेश को प्रोत्साहित करने की बजाय कम कर सकती है। और फिर, हिक्स का यह तर्क भी अनुभव-जन्य प्रमाण से नही सिद्ध हो सका है कि अतिरिक्त क्षमता के समाप्त हो जाने पर पुनरुत्थान (revival) शुरू हो जाएगा। रेंडिग फेल (Rending Fel) द्वारा किए गए 19वी शताब्दी के अमरीकी व्यापार-चक्रो के अध्ययन से स्पष्ट हो गया है कि अतिरिक्त क्षमता के समाप्त होने के कारण पुनरुत्थान नही हुआ था बल्कि कुछ स्थितियो मे तो पुनरुत्थान तभी शुरू हो गया था, जबकि अतिरिक्त क्षमता विद्यमान थी।[3]

(8) **पूर्ण रोजगार स्तर उत्पादन-पथ से स्वतन्त्र नहीं** (Full employment level not independent of output-path)—हिक्स के मॉडल के विरुद्ध एक और आपत्ति यह उठाई गई है कि हिक्स द्वारा परिभाषित पूर्ण रोजगार शिखर उत्पादन-पथ से स्वतन्त्र है। डर्नबर्ग तथा मैकडूगल के अनुसार, पूर्ण रोजगार का स्तर उन साधनो के परिमाण पर निर्भर करता है, जो देश मे उपलब्ध हैं। जब किसी अवधि मे पूजी-स्टॉक बढता है, तो शिखर ऊपर चला जाता है। "क्योकि वह दर जिस पर उत्पादन बढता है उस दर को निर्धारित करती है जिस पर पूजी-स्टॉक परिवर्तित होता है, इसलिए उत्पादन का शिखर स्तर बदलता रहेगा, जो उत्पादन के समय-पथ पर निर्भर करेगा। इसलिए हम दीर्घ-कालीन पूर्ण रोजगार प्रवृत्ति को उससे पृथक नही कर सकते, जो व्यापार-चक्र मे घटित होता है।"[4]

(9) **विस्फोटात्मक चक्र वास्तविक नहीं** (Explosive cycle not realistic)—हिक्स ने अपने मॉडल मे मान लिया है कि औसत पूजी-उत्पादन अनुपात (v) एक वर्ष या इससे कम समयपश्चता के लिए इकाई से अधिक है। इस प्रकार उसके मॉडल मे विस्फोटात्मक चक्र पाए जाते हैं। परन्तु अनुभवजन्य प्रमाण सिद्ध करता है कि उत्पादन मे परिवर्तन से निवेश का प्रत्युत्तर (response) कई अवधियो पर फैला रहता है। परिणामत विस्फोटात्मक चक्रो की बजाय परिमन्दित चक्र (damped cycle) रहे हैं।

(10) **व्यापार-चक्र की यान्त्रिक व्याख्या** (Mechanical explanation of trade cycle)—हिक्स के सिद्धान्त की एक और गम्भीर परिसीमा यह है कि यह व्यापार-चक्र की यान्त्रिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसका कारण यह है कि यह सिद्धान्त गुणक-त्वरक

[3]Quoted in Lundberg, *op cit*
[4]T. F. Dernburg and D M McDougall, *Macroeconomics*, p 323.

परस्पर-क्रिया पर आधारित है जिसमें प्रत्येक विकास, जो अतीत मे होता रहा है, भविष्य मे परिवर्तन लाता है और क्रमबद्ध रूप से ऐसा तब तक चलता रहता है, जब तक कि चक्र न पूरा हो जाए और नया चक्र शुरू न हो जाए। इस प्रकार यह यान्त्रिक ढग की व्याख्या है जिसमे मानव के निर्णय, व्यापार प्रत्याशाएं एव निर्णय कोई काम नही करते। निवेश एक महत्त्वपूर्ण कार्य करता है, जो निर्णय पर आधारित होने की बजाय एक फार्मूले पर आधारित है।

(11) सकुचन प्रावस्था विस्तार प्रावस्था से लम्बी नहीं (Contraction phase *not longer* than expansion phase)—अन्तिम बात, हिक्स की आलोचना इस बात के लिए भी की गई है कि उसने कहा है कि व्यापार-चक्र की विस्तार-प्रावस्था की अपेक्षा सकुचन प्रावस्था अधिक लम्बी होती है। परन्तु युद्धोत्तरकालीन चक्रों के वास्तविक व्यवहार ने स्पष्ट कर दिया है कि व्यापार-चक्र की विस्तारशील प्रावस्था उसकी सकुचनशील प्रावस्था की अपेक्षा बहुत अधिक लम्बी होती है।

निष्कर्ष (Conclusion)—हिक्स के मॉडल की इन प्रत्यक्ष दुर्बलताओं के बावजूद कहा जा सकता है कि व्यापार-चक्रों के मोड बिन्दुओं की सतोषजनक व्याख्या करने के लिए प्रस्तुत मॉडल पिछले सभी सिद्धान्तों से श्रेष्ठ है। प्रोफेसर इमेंबर्ग तथा मैक्डूगल के शब्दों मे निष्कर्ष दिया जा सकता है कि—"हिक्स का मॉडल, विश्लेषण के एक लाभदायक ढाचे का काम देता है जो, कुछ सशोधनों के साथ, वृद्धि के ढाचे के भीतर चक्रीय उतार-चढ़ावों का पर्याप्त सुन्दर चित्र प्रदान करता है। यह विशिष्ट रूप से इस बात पर बल देने का काम करता है कि ऐसी पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे, जिसकी विशिष्टता टिकाऊ पूंजी पदार्थों की पर्याप्त मात्रा है, विस्तार के बाद अनिवार्यत सकुचन की अवधि आती है "हिक्स का मॉडल इस तथ्य को भी लक्ष्य करता है कि तकनीकी प्रगति तथा अन्य स्वायत्त वृद्धि साधनों के अभाव मे अर्थव्यवस्था मन्दी में काल की दीर्घ अवधियों के लिए निष्क्रिय हो जाएगी।" प्रस्तुत मॉडल अच्छी से अच्छी दशा मे प्रबोधक (suggestive) है।

प्रश्न

1. त्वरक की सहायता से व्यापार-चक्र के आधुनिक सिद्धान्त का स्पष्टीकरण कीजिए।
2. हिक्स के व्यापार-चक्र सिद्धान्त की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।

अध्याय-66
कालडर का व्यापार-चक्र सिद्धान्त
(KALDOR'S THEORY OF THE TRADE CYCLE)

निकलस कालडर ने बचत और निवेश की केन्जीय शब्दावली के आधार पर व्यापार-चक्र के मॉडल का निर्माण किया। उसके अनुसार चक्र दबावों का प्रभाव है जो अर्थव्यवस्था की नियोजित बचत और निवेश की समानता की ओर ले जाता है। वास्तव में नियोजित बचत और निवेश का अन्तर चक्र को लाता है। परन्तु चक्र केवल तभी सभव है जब बचत और निवेश अरेखीय (non-linear) हों।

चित्र 1 (A) और (B) लीजिए जहा I और S सतुलन के आय स्तर Y_0 पर समान हैं। परन्तु प्रत्येक स्थिति एक एकल (single) सतुलन स्थिति होती है। चित्र के भाग (A) में Y_0 के आगे जहा $I > S$ हैं अस्थिर सतुलन की स्थिति है क्योंकि ऐसी स्थिति असीमित प्रसार, पूर्ण रोजगार और अति-स्फीति को लाएगी। दूसरी ओर, यदि $S > I$ तो इसका अभिप्राय Y_0 के बाईं ओर नीचे की गति होने पर शून्य उत्पादन और रोजगार तथा अर्थव्यवस्था के पतन को लाती है, जैसा कि चित्र के (B) भाग में दर्शाया गया है। कालडर रेखीय बचत और निवेश फलनों को छोड देता है क्योंकि ये चक्र को उत्पन्न करने में असमर्थ हैं। इनकी बजाय वह अरेखीय बचत और निवेश फलनों को अपनाता है।
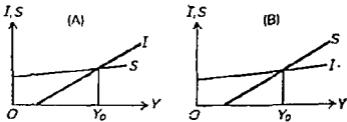
चित्र 66.1

एक अरेखीय निवेश फलन I को चित्र 2 में दर्शाया गया है। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था प्रसार प्रावस्था की ओर अग्रसर होती है, जिसे I वक्र के साथ-साथ बाईं ओर की गति द्वारा दिखाया गया है, जहा I वक्र लगभग सपाट है। इसका अभिप्राय है कि आय के निम्न स्तर पर अप्रयुक्त क्षमता है तथा शुद्ध निवेश शून्य है। परन्तु जब प्रसार प्रारभ हो जाता है तब सचित पूँजी के ऋणात्मक प्रभाव का उत्पादन एव लाभ के ऊँचे स्तरों की अपेक्षा निवेश निर्णयों पर अधिक
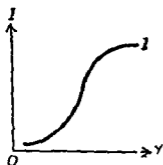
चित्र 66 2

शक्तिशाली होता है। इसके विपरीत आय के ऊँचे स्तर पर जब अर्थव्यवस्था सकुचन प्रावस्था में प्रवेश करती है तो *I* वक्र फिर सपाट होता है और शुद्ध निवेश कम होता है क्योंकि लागतों में बढोतरी, बढती हुई लागतें तथा उधार लेने की कठिनाइयों में वृद्धि उत्पादकों को और तेजी से प्रसार करने से रोकेंगी। इसमे उत्पादन में वृद्धि की दर धीमी पड जाती है। इसका तात्पर्य है कि वर्तमान पूँजी स्टॉक और क्षमता चालू उत्पादन से अधिक है। यह स्थिति निवेश को और कम करती है। अत आय में गिरावट होती है तथा सचयी प्रभाव से अर्थव्यवस्था सकुचन की प्रावस्था में प्रवेश करती है।

इसी प्रकार अरेखीय बचत फलन चित्र 3 में दिखाया गया है। आय के बहुत नीचे स्तर पर बचत बहुत कम हो जाती है तथा यह ऋणात्मक भी हो सकती है। इस प्रकार, प्रसार की प्रावस्था के दौरान *MPS* अधिक होती है। आय के सामान्य स्तरों पर, बचतों में वृद्धि कम दरों से होगी। इसे *S* वक्र के मध्य भाग द्वारा दिखाया गया है। परन्तु आय के बहुत ऊँचे स्तर पर बचतें बहुत अधिक होंगी तथा लोग अपनी आय का एक बडा भाग बचाएंगे।

चक्र तभी दिखाई देता है जब अरेखीय बचत और निवेश वक्र इकट्ठे लाए जाते हैं, जैसाकि चित्र 4 में। चित्र *A*, *B* और *C* स्थितियों पर बहु सतुलनों को दर्शाता है। इनमें से *A* और *B* स्थिर स्थितिया हैं तथा *C* अस्थिर स्थिति है। *C* और *B* स्थितियों के बीच तथा *A* स्थिति के नीचे, $I > S$ यह आय के स्तर को ऊँचा करेगा। स्थितियों *A* और *C* के बीच और *B* स्थिति के ऊपर, $S > I$ है, यह आय के स्तर को नीचा करेगी।
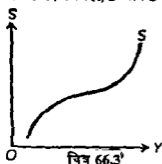
चित्र 66.3

परन्तु *A* और *B* स्थितिया केवल अल्प काल में स्थिर हैं। दीर्घकाल में ये स्थितिया अस्थिर होती हैं और चक्र का पथ दृष्टिगोचर होता है। इसके लिए कालडर ने पूँजी स्टॉक को एक अन्य चर के रूप में प्रयोग किया है जो बचत और निवेश के सबधों पर प्रभाव डालता है। उसने बचत और निवेश दोनों को आय और पूँजी स्टॉक के फलन के रूप में लिया ताकि

$$S = f(Y, K)$$
$$I = f(Y, K)$$

तथा $\frac{dS}{dY} > 0, \quad \frac{dS}{dK} > 0$

$$\frac{dI}{dY} > 0, \quad \frac{dI}{dK} < 0$$

और $\frac{dI}{dY} > \frac{dS}{dY}$ सकुचन प्रावस्था में $MPI > MPS$

ऊपर के सबध दर्शाते हैं कि S और I प्रत्यक्ष रूप में Y के साथ धनात्मक परिवर्तित होते हैं। S सीधा K के साथ, और I विपरीत रूप में K के साथ परिवर्तित होता है। $MPI > MPS$ सबध अर्थव्यवस्था की स्थिरता को दर्शाता है जो कि इसे या तो प्रसार अथवा सकुचन की ओर ले जाएगा। चित्र 4 के अनुसार, A और B की स्थितिया दीर्घकाल में 'स्विच विन्दु' हैं। ये वे विन्दु हैं जिन पर अर्थव्यवस्था अपनी दिशा या तो प्रसार अथवा सकुचन की ओर परिवर्तित करती है। विन्दु C दोनों दिशाओं की ओर अस्थिर होता है। जब विन्दु C और B नजदीक आते हैं
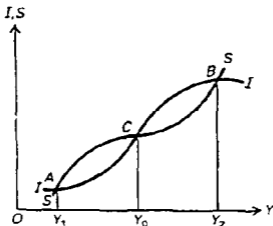
चित्र 66 4

तो चक्र की प्रसार प्रावस्था प्रारभ होती है। जब वे मिलते हैं तो प्रसार समाप्त होता है और सकुचन शुरू होता है। इसके विपरीत जब विन्दु C और A नजदीक आते हैं तो सकुचन प्रारंभ होता है। जब वे मिलते हैं तो सकुचन समाप्त होता है और प्रसार शुरू होता है।

प्रसार प्रावस्था (Expansion Phase)—कालडर अपने व्यापार-चक्र की प्रसार प्रावस्था को तीन अवस्थाओं में दर्शाता है जैसे कि चित्र 5 में स्थिति Y से प्रारंभ करने से अवस्था 1 (जो कि चित्र 4 के समान है।) , मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था विन्दु C पर संतुलन में है। लेकिन यह अस्थिर सतुलन का विन्दु है। C के ऊपर की ओर स्थानान्तरण दर्शाता है कि $I > S$ जो अर्थव्यवस्था को प्रसार पथ की ओर ले जाती है। क्योंकि निवेश दर ऊँची है, इसलिए अर्थव्यवस्था का पूजी स्टॉक तीव्र दर से वढता है। लेकिन पूजी स्टॉक के वढने से, पूजी की सीमात उत्पादकता कम होती है तथा निवेश वक्र नीचे की ओर शिफ्ट करता है। उसी समय जब अर्थव्यवस्था के पूजी स्टॉक में वृद्धि होती है तो यह अर्थव्यवस्था की आय में वढोतरी करता है जिससे उसकी वचत वढती है। अत वचत वक्र ऊपर को शिफ्ट करता है। इस प्रकार, निवेश वक्र I के नीचे की ओर शिफ्ट करने तथा वचत वक्र S के ऊपर की ओर शिफ्ट करने से विन्दु C विन्दु B के पास आ जाता है जैसा कि चित्र की अवस्था 2 में दिखाया गया है। I वक्र के नीचे की ओर तथा S वक्र के ऊपर की ओर शिफ्ट करने की यह प्रक्रिया चलती रहती है जब तक कि दोनों वक्र एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते तथा विन्दु C और विन्दु B मिलते नहीं हैं, जैसा कि चित्र की अवस्था 3 में दिखाया गया है। परन्तु इस स्थिति में दोनों दिशाओं में $S > I$ इसलिए नीचे की दिशा में यह एक अस्थिर असतुलन की स्थिति है। यह अर्थव्यवस्था को नीचे की ओर ले जाती है जब तक कि अवस्था 3 में विन्दु A नहीं पहुंचता।
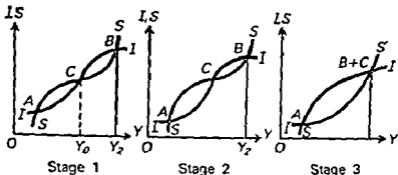
चित्र 66 5

सकुचन प्रावस्था (Contraction Phase)—व्यापार-चक्र की सकुचन प्रावस्था को भी तीन अवस्थाओं में दिखाया गया है जैसा कि चित्र 6 में। हम स्थिति Y_1 से प्रारभ करते हैं जो चित्र की अवस्था 4 में बिन्दु A के साथ मेल खाती है। यह अल्पकालीन स्थिर सतुलन का बिन्दु है लेकिन आय के बहुत निम्न स्तर का। परन्तु आय के इतने नीचे स्तर पर दीर्घकाल में अप्रयुक्त क्षमता के कारण पूजी स्टॉक कम होता है तथा निवेश वक्र I ऊपर को शिफ्ट करता है। साथ ही बचत कम हो जाती है जो बचत वक्र को नीचे की ओर शिफ्ट कर देती है। इस प्रकार, I वक्र के ऊपर की ओर शिफ्ट करने तथा S वक्र के नीचे की ओर शिफ्ट करने से A और C स्थितिया नजदीक आ जाती हैं जैसा कि चित्र की अवस्था 5 में दिखाया गया है। यह प्रक्रिया धीरे-धीरे चालू रहेगी जब तक कि I और S वक्र स्पर्श नहीं करते तथा स्थितिया A और C मिल नहीं जाती जैसा कि चित्र में अवस्था 6 में दिखाया गया है। परन्तु Y_1 आय स्तर पर $A + C$ की यह स्थिति ऊपर की दिशा में अस्थिर है क्योंकि $I > S$ यह प्रसारात्मक प्रक्रिया की ओर ले जाएगी जब तक कि अर्थव्यवस्था बिन्दु B पर आय के ऊँचे स्तर Y_2 पर नहीं पहुँच जाती है। बिन्दु B से I तथा S वक्र धीरे-धीरे, चित्र 5 अवस्था 1 में दिखाई गई स्थितियों पर, पहुँ ाएगे, और चक्रीय प्रक्रिया पुन प्रारभ हो जाती है। इस प्रकार, कालडर की चक्रीय प्रक्रिया आत्मजनक है।

कालडर के अनुसार, वे शक्तिया जो नीचे की ओर मोड़ बिन्दु लाती हैं वे उच्च स्तर पर निश्चित नहीं होती। तेजी अपने आप ही निश्चित रूप से समाप्त हो जाएगी। परन्तु मदी स्थैतिक स्थिति में पड़ सकती है और वहीं रह सकती है जब तक कि बाह्य परिवर्तन (जैसे कि नये आविष्कारों की खोज या नई मार्किटों का खोलना) उसके बचाव पर नहीं आते।

फिर, कालडर के मॉडल में चक्र समान लबाई और अवधि के आवश्यक तौर से नहीं होते
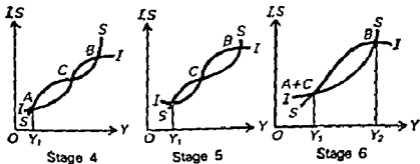
चित्र 66 6

हैं और न ही प्रसार और संकुचन आवश्यक तौर से समरूपक होते हैं। वास्तव में I और S वक्रों की ढलानों तथा चक्र की प्रत्येक प्रावस्था में वे किस दर से शिफ्ट करते हैं, इस पर निर्भर करते हैं।

कालडर अपने व्यापार चक्र सिद्धान्त की व्याख्या करने में न तो त्वरण नियम और न ही मौद्रिक कारकों का प्रयोग करता है। साथ ही वह दर्शाता है कि किसी वृद्धि कारक के न होने पर कैसे एक व्यापार-चक्र पाया जाता है।

प्रश्न

1 कालडर के व्यापार-चक्र मॉडल की व्याख्या कीजिए।
2 कालडर के निवेश और बचत के व्यापार-चक्र सिद्धान्त की व्याख्या करिए।

भाग नौ
अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार
(International Trade)

अध्याय 67

अन्तर-क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख लक्षण
(Distinguishing Features of Inter-Regional And International Trade)

1 प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र राष्ट्रों के बीच आर्थिक संबंधों तथा परस्पर निर्भरता से संबद्ध है। इसका अध्ययन मुख्यतया साधनों, सेवाओं और वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाहों के घरेलू उपभोक्ताओं के कल्याण पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करने के लिए किया जाता है। इन अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाहों का नियमन (regulation) करने के लिए जो राष्ट्रीय नीतियां अपनाई जाती हैं उनके प्रभाव, पूर्वानुमान और परीक्षण का भी अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र की एक विशेष और पृथक् शाखा है जो देश के भीतर आर्थिक संबंधों से भिन्न है, जिसका विश्लेषण करने के लिए घरेलू अर्थव्यवस्था से भिन्न विश्लेषण के औजारों की आवश्यकता होती है। इन औजारों का अध्ययन अगले अध्याय में किया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र का विषय-क्षेत्र बहुत विस्तृत है जिसमें सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विशुद्ध सिद्धान्त आता है। इसमें व्यापार का आधार तथा व्यापार से लाभ का अध्ययन किया जाता है। एक, इसके अन्तर्गत स्मिथ, रिकार्डो एवं मिल के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्तों से लेकर आधुनिक अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्तों का विश्लेषण होता है। दूसरा, वाणिज्यिक नीति का सिद्धान्त है जिसके अन्तर्गत विभिन्न व्यापार नीतियों तथा प्रतिबंधों से संबद्ध सिद्धान्तों का अध्ययन सम्मिलित है। यह दोनों विषय व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण के क्षेत्र में आते हैं क्योंकि इनमें प्रत्येक देश को एक एकल इकाई के रूप में लिया जाता है और इनका विश्लेषण सापेक्ष वस्तु और साधन की लागतों और कीमतों के आधार पर किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र का तीसरा भाग भुगतान शेष से संबंधित एक देश के भुगतानों और प्राप्तियों का शेष विश्व के साथ होने वाले परिवर्तनों के कारणों एवं प्रभावों से है। इसमें भुगतान शेष तथा विदेशी विनिमय के विभिन्न सिद्धान्तों का विश्लेषण सम्मिलित होता है।

आजकल भुगतान शेष से ही संबद्ध अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र के चतुर्थ भाग का महत्व बहुत बढ़ गया है, जिसके अन्तर्गत भुगतान शेष के असंतुलनों की समस्या को विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणालियों और संस्थाओं द्वारा सुलझाने के तंत्रों का अध्ययन शामिल है।

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के ये दोनों पहलू समष्टि आर्थिक विश्लेषण के क्षेत्र में आते हैं क्योंकि भुगतान शेष विभिन्न देशों के अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन का परिणाम होता है। फिर, भुगतान शेष असतुलन से उत्पन्न होने वाले प्रभाव, राष्ट्रों की कुल आय, उत्पादन तथा सामान्य कीमत सूचकांक को प्रभावित करते हैं।

2 अन्तर-क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भिन्नताएँ[1] (DIFFERENCE BETWEEN INTER-REGIONAL AND INTERNATIONAL TRADE)

अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार का अर्थ है किसी देश के क्षेत्रों के बीच व्यापार। इसे ही ओलिन ने अन्तर-स्थानीय व्यापार कहा है। इस प्रकार, अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार घरेलू या आन्तरिक व्यापार है। दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दो देशों या राष्ट्रों के बीच होने वाला व्यापार है।

अर्थशास्त्रियों में एक विवाद उठता रहा है कि क्या अन्तर-क्षेत्रीय या घरेलू व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कोई अन्तर है अथवा नहीं। क्लासिकी अर्थशास्त्री मानते थे कि अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में एक निश्चित मूलभूत अन्तर है। तदनुसार, उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक पृथक् सिद्धान्त प्रतिपादित किया जो तुलनात्मक लागत के सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। परन्तु बर्टिल ओलिन (Bertil Ohlin) और हैबरलर (Haberler) जैसे आधुनिक अर्थशास्त्री इस मत का विरोध करते हैं। उनकी मान्यता है कि अन्तर-क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में गुणात्मक नहीं, मात्रात्मक अन्तर है।

फिर भी, इस क्लासिकी विचार को मानने के कई कारण हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार से मूलतः भिन्न है

1 *साधन अगतिशीलता (Factor Immobility)*—क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार का अपना पृथक सिद्धान्त इस आधार पर प्रस्तुत किया था कि उत्पादन के साधन हर क्षेत्रों के बीच उतने ही मुक्त और गतिशील हैं जितने वे स्थानों और व्यवसायों के बीच होते हैं। इसके विपरीत, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में साधन देशों के बीच अगतिशील होते हैं। इस प्रकार, श्रम और पूँजी को देशों के बीच अगतिशील माना जाता है जबकि वे एक ही देश में पूर्णतः गतिशील होते हैं। कम लाभ वाले क्षेत्रों से अधिक लाभ वाले क्षेत्रों तक श्रमिकों तथा अन्य साधनों की तीव्र और सहज गति के कारण एक ही देश में मजदूरी की भिन्नताओं और साधन-कीमत की असमानताओं में पूर्ण समायोजन (adjustment) होता है परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय रूप में ऐसी गति सम्भव नहीं है। देशों के बीच साधनों की अपेक्षा कीमत-परिवर्तन वस्तुओं की गति का कारण बनते हैं। श्रम की अन्तर्राष्ट्रीय अगतिशीलता के कारण हैं — भाषाओं, रीतियों और व्यावसायिक कौशलों में भिन्नता, परिचित वातावरण और पारिवारिक बन्धनों को छोड़ने की अनिच्छा, विदेश यात्रा के ऊँचे खर्चे तथा श्रमिकों के अप्रवास (immigration) पर विदेशों द्वारा लगाए जाने वाले प्रतिबंध। पूँजी की अन्तर्राष्ट्रीय गतिशीलता में परिवहन व्यय ही रुकावट नहीं है बल्कि कानूनी निवारण (legal redress) की कठिनाइयाँ, राजनीतिक अनिश्चितता, विदेश में निवेश की सम्भावनाओं का अज्ञान, बैंकिंग प्रणाली की अपूर्णता, विदेशी करेंसियों की अस्थिरता, विदेशियों के प्रति अविश्वास आदि भी रुकावटें हैं। इस प्रकार, देशों के बीच श्रम तथा पूँजी की गतिशीलता में

---

1 यह भाग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता से सम्बद्ध है।

सबधित कानूनी तथा अन्य प्रतिबध हैं। परन्तु अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार मे ऐसी समस्याए नहीं हैं।

2 प्राकृतिक ससाधनो मे भिन्नताए (Differences in Natural Resources)—विभिन्न देश विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक ससाधनो की दृष्टि से सम्पन्न हैं। अत वे उन वस्तुओ के उत्पादन मे विशिष्टता प्राप्त कर लेते हैं जिनमें वे बहुत सम्पन्न होते हैं तथा वे उनका उन देशो से व्यापार करते हैं जहा ऐसे ससाधन बहुत कम हैं। आस्ट्रेलिया मे भूमि प्रचुर मात्रा में है लेकिन श्रम और पूजी अपेक्षाकृत दुर्लभ है। इसके विपरीत, इग्लैंड मे पूजी अपेक्षाकृत प्रचुर सस्ती है जबकि भूमि दुर्लभ और महगी है। इस प्रकार, अधिक पूजी की आवश्यकता वाली वस्तुए इग्लैंड में उत्पन्न की जा सकती हैं, जबकि ऊन, मास, गेहू आदि अपेक्षाकृत अधिक भूमि की आवश्यकता वाली वस्तुए आस्ट्रेलिया मे ही उत्पन्न की जा सकती हैं। इस प्रकार दोनो देश विभिन्न वस्तुओ के उत्पादन म तुलनात्मक लागत भिन्नताओ के आधार पर एक-दूसरे की वस्तुओ का व्यापार कर सकते हैं।

3 भौगोलिक तथा जलवायु सम्बन्धी भिन्नताए (Geographical and Climatic Differences)—प्रत्येक देश भौगोलिक और जलवायु सम्बन्धी स्थितियो के कारण सभी वस्तुओ का उत्पादन नहीं कर सकता। अगर कर भी सकता है तो अत्यधिक लागतें वहन करके ही ऐसा कर सकता है। उदाहरणतया कॉफी के उत्पादन के लिए ब्राजील मे अनुकूल भौगोलिक और जलवायु सम्बन्धी स्थितिया हैं, बाग्लादेश मे पटसन के लिए, क्यूबा में चुकदर के लिए, इसी प्रकार अन्य देशों मे अन्य अनेक वस्तुओ के लिए अनुकूल स्थितिया हैं। अत अनुकूल स्थितियो वाले देश वस्तु के उत्पादन म विशिष्टता प्राप्त कर लेते हैं और अन्य देशो से उनका व्यापार करते हैं।

4 भिन्न बाजार (Different Markets)—अन्तर्राष्ट्रीय बाजार भाषा, प्रचलन, आदत, रुचि आदि की भिन्नताओं के कारण पृथक्-पृथक् होते हैं। यहा तक कि मशीन और उपस्कर (equipment) की शैलिया, ढाचे, माप-तोल की प्रणालिया भी भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न होती हैं। उदाहरणतया, फ्रास और सयुक्त राज्य अमेरिका के रेलवे इजन और माल डिब्बे ब्रिटेन से भिन्न होते हैं। इस प्रकार जिन वस्तुओ का व्यापार क्षेत्रो के बीच होता है उन्हें दूसरे देशो को नहीं बेचा जा सकता। यही कारण है कि अधिकाश स्थितियो मे विदेशो को बेचे जाने वाली वस्तुओ को विशेष ढग से बनाया जाता है ताकि वे उस देश की राष्ट्रीय विशिष्टताओं के अनुरूप हों।

इसके अतिरिक्त अन्तर-क्षेत्रीय और अन्तराष्ट्रीय बाजारो मे एक महत्वपूर्ण भिन्नता क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो में वस्तुओं के विक्रय और निर्माण में है। एक बड़ी फर्म अनेक वस्तुओ का निर्माण और विभिन्न देशो में उनका क्रय कर सकती है। परतु वह न तो अपनी वस्तुओ को मानकित (standardised) कर सकती है और न ही बडे पैमाने पर उत्पादन करके किफायत ही कर सकती है। इसके विपरीत, वह फर्म जो अन्तराष्ट्रीय बाजारो के लिए केवल एक प्रकार की वस्तु का निर्माण करने मे विशेषज्ञ है, बडे पैमाने पर उसका उत्पादन करके किफायत कर सकती हैं।

5 भिन्न मुद्राए (Different Currencies)—अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार म मुख्य भेद यह भी है कि विदेश व्यापार में विभिन्न मुद्राओ का प्रचलन है जबकि आन्तरिक व्यापार मे एक ही प्रकार की मुद्रा का प्रचलन है। उत्तर से दक्षिण तक, पूर्व से पश्चिम तक समूचे भारत में रुपया स्वीकार किया जाता है परन्तु हम यदि नेपाल या पाकिस्तान चले जाए तो हमे वहा वस्तुए और सेवाए खरीदने के लिए अपने रुपए को उनके रुपये म परिवर्तित कराना पडेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार म कीमतों की भिन्नता ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि उनके सापेक्ष मूल्यो म

परिवर्तन भी महत्वपूर्ण है। अन्य करेंसी की तुलना में किसी करेंसी के मूल्य में जब कभी परिवर्तन होता है, तो अनेक आर्थिक समस्याए उत्पन्न हो जाती हैं। "जब किन्हीं भिन्न करेंसियों की मौद्रिक इकाइया स्वर्ण मे परिवर्तित नहीं हो सकतीं, तो उन इकाइयों की तुलना में जिनका स्वर्णमान (gold standard) है, इनकी विनिमय दरो मे अत्यधिक अन्तर हो जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सबद्ध मुद्रा-विनिमय लेन-देन के करने मे ऐसी लागते और जोखिम आते हैं जो साधारणतया आन्तरिक व्यापार मे नहीं आते।"[2] इसके अतिरिक्त, कुछ देशो की करेसिया—जैसे अमेरिका का डॉलर, इग्लैण्ड का पाउण्ड, जर्मनी का मार्क और जापान का येन— -अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन मे बहुत अधिक उपयोग की जाती हैं, जबकि अन्य लगभग अपरिवर्तनीय होती हैं। ऐसी प्रवृत्तिया अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुत आर्थिक समस्याए उत्पन्न करती हैं। फिर, विभिन्न देश भिन्न-भिन्न मौद्रिक और विदेशी विनिमय नीतिया अपनाते हैं जो निर्यात की पूर्ति अथवा आयात की माग को प्रभावित करती हैं। किंडलबर्गर के अनुसार, "नीतियो मे यह अन्तर, न कि विभिन्न राष्ट्रीय मुद्राओ का पाया जाना, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को घरेलू व्यापार से भिन्न करता है।"[3]

6 भुगतान शेष की समस्या (Problem of Balance of Payments)—भुगतान शेष की समस्या भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार से भिन्न रखती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे भुगतान शेष की समस्या स्थायी है जबकि एक देश के क्षेत्रो मे यह समस्या नहीं पाई जाती है। ऐसा इस कारण कि देशो के बीच की अपेक्षा क्षेत्रो के बीच पूजी की अधिक गतिशीलता होती है। फिर, भुगतान शेष के सतुलन को दूर करने के लिए एक देश जो नीतिया अपनाता है उनसे अनेक अन्य समस्याए उत्पन्न हो सकती हैं। यदि वह अवस्फीति अथवा अवमूल्यन अथवा आयात या करेसी की गति पर प्रतिबन्ध अपनाता है तो वे आगे और समस्याए उत्पन्न करते हैं, परन्तु अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार मे ऐसी समस्याए उत्पन्न नहीं होती हैं।

7 परिवहन लागते (Transport Costs)—एक देश के अन्दर अन्तर-क्षेत्रीयता की अपेक्षा दो देशो के बीच व्यापार में ऊची परिवहन लागते पाई जाती हैं क्योकि देशो के बीच भौगोलिक दूरिया बहुत होती हैं।

8 विभिन्न राजनीतिक दल (Different Political Groups)—अन्तर-क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे एक महत्वपूर्ण भिन्नता यह है कि एक देश मे सभी क्षेत्र एक राजनीतिक इकाई मे सबद्ध होते हैं, जबकि विभिन्न देशो की भिन्न-भिन्न राजनीतिक इकाइयां होती हैं। अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार एक ही देश मे रहने वाले लोगो के बीच होता है यद्यपि वे जातियों, धर्मों, मतो, रुचियो एव रिवाजो के आधार पर भिन्न हो सकते हैं। उनमे एक ही राष्ट्र का होने की भावना प्रबल होती है तथा क्षेत्रीय भावना गौण होती है। सरकार भी समस्त राष्ट्र के नागरिको के कल्याण का ध्यान रखती है न कि किसी विशेष क्षेत्र के नागरिको का। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे राष्ट्रो के बीच कोई एकता और समानता नहीं पाई जाती है। प्रत्येक देश अन्य देशों के साथ अपने स्वार्थ और प्राय दूसरो के अहित मे व्यापार करता है। जैसाकि फ्रैड्रिक लिस्ट ने कहा था, "घरेलू व्यापार आपस मे होता है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आपस में और उनके बीच होता है।"

9 भिन्न राष्ट्रीय नीतिया (Different National Policies)—अन्तर-क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय

---

2 H B Killough and J W Killough, *Economics of International Trade*, 1948
3 C B Kindleberger, *International Economics*, V/e, 1973

व्यापार में एक और भिन्नता यह पाई जाती है कि एक देश में कराधान, व्यापार, वाणिज्य आदि से संबधित नीतियां समान होती हैं, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में एक देश से दूसरे देश में जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं पर अभ्यास (कोटा), आयात कर, टैरिफ, विनिमय नियंत्रण आदि अनेक प्रकार के कृत्रिम प्रतिबंध लगाए जाते हैं। कई बार प्रतिबंध अधिक व्यापक होते हैं, जैसे विस्तृत सीमा शुल्क विधियां, पैकिंग आवश्यकताएं, आदि। ऐसे प्रतिबंध अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार में क्षेत्रों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाहों पर नहीं पाए जाते हैं। ऐसी हालत में, आय, मुद्रा, वाणिज्य, कराधान, आदि से संबधित आन्तरिक नीतियाँ प्रत्येक देश में अन्य देशों से भिन्न होती हैं।

इसलिए, क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने ऊपर दिए गए तर्कों के आधार पर यह बल देकर कहा कि घरलू या अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मूलत भिन्न है। अत उन्होंने तुलनात्मक लागत अन्तर के सिद्धान्त पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक पृथक् सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

3. अन्तर-क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे समानताए (SIMILARITIES BETWEEN INTER-REGIONAL AND INTERNATIONAL TRADE)

बर्टिल ओलिन ने यह स्पष्ट किया है कि अन्तर-क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कोइ विशेष अन्तर नहीं है। इस कारण अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य उसी प्रकार निर्धारित होते हैं जैसे कि आन्तरिक व्यापार मे। उसके अनुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, अन्तर-क्षेत्रीय अथवा अन्तर्स्थानीय व्यापार की केवल एक विशेष स्थिति है।" इसलिए वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक पृथक सिद्धान्त का कोइ औचित्य नहीं पाता। अपने सिद्धान्त के पक्ष मे वह अनेक तर्क देता है।

ओलिन इस क्लासिकी तर्क को स्वीकार नहीं करता कि श्रम और पूंजी एक देश के भीतर मुक्त रूप से गतिशील होते हैं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय तौर में अगतिशील हैं। उसका यह कथन है कि श्रम और पूंजी एक देश के भीतर भी अन्तर-क्षेत्रीय तौर मे अगतिशील होते हैं। यह इस बात से स्पष्ट होता है कि मजदूरी की दरें केवल विभिन्न व्यवसायों में ही भिन्न नहीं होतीं बल्कि वे एक देश के भीतर विभिन्न क्षेत्रों में समान व्यवसायों मे भी भिन्न उद्देश्यों के लिए परिवर्तित होती हैं।

फिर, श्रम और पूंजी देशों के बीच अगतिशील नहीं है, बल्कि वे एक देश से दूसरे देश को गए हैं। 19वीं तथा 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यू एस ए, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा लेटिन अमरीकी देशों का तीव्र विकास इंग्लैंड और यूरोप से श्रम और पूंजी की इन देशों को गति के परिणामस्वरूप हुआ है।

ओलिन के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार से कोइ अधिक भिन्न नहीं है। दोनों में स्थान कारक महत्वपूर्ण है तथा वस्तुए प्रचुर पूर्तियों के स्थानों से उन स्थानों पर जाती हैं जहा वे कम होती हैं। दोनों मे ही परिवहन लागत शामिल होती है। अन्तर्राष्ट्रीय तथा अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार दोनो मे लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य के लिए फर्में व्यापार करती हैं।

जहा तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में करेंसी भिन्नताओं की बात है उनके कारण एक पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है। दो देशों के बीच विनिमय की दर, दोनों देशों की करेंसियों की क्रय शक्ति के आधार पर इकट्ठी जुडी होती है। क्योंकि एक देश की करेंसी दूसरे देश की करेंसी में परिवर्तनीय होती है, इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार मे कोई मूल भिन्नता नहीं पाई जाती।

अन्तिम, ओलिन का यह तर्क है कि तुलनात्मक लागतो का सिद्धान्त केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर ही लागू नहीं होता बल्कि एक देश के भीतर समस्त व्यापार लागू होता है। यह विशिष्टीकरण के सिद्धान्त मे अन्तर्निहित है कि एक व्यक्ति अपनी योग्यताओं को उन कार्यों मे लगाएगा जिनके लिए वह सबसे अधिक उपयुक्त है। उदाहरणार्थ, एक फर्म का मैनेजर एक मिस्त्री की अपेक्षा अपनी मोटर कार को अधिक कुशलता तथा सस्ती मरम्मत करने की क्षमता रख सकता है। परन्तु वह ऐसा नहीं करता है क्योंकि वह अपने समय और शक्ति को अधिक लाभदायकता से अपने व्यवसाय मे लगा सकता है।

जैसाकि ओलिन ने लिखा, "क्षेत्र और राष्ट्र उन्हीं कारणो से एक-दूसरे के साथ विशिष्टीकरण एव व्यापार करते हैं जिन कारणो से विशिष्टीकरण तथा व्यापार व्यक्ति करते हैं। कुछ व्यक्ति स्वभाव से एक कार्य की अपेक्षा दूसरे कार्य के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं, एक व्यक्ति अच्छा माली, दूसरा एक अच्छा अध्यापक और तीसरा एक बढिया डाक्टर सिद्ध हो सकता है। माली एक घटिया अध्यापक सिद्ध होगा तथा अध्यापक एक घटिया डॉक्टर और आगे इसी तरह। अत विशिष्टीकरण द्वारा लाभ स्पष्ट है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति योग्यता में समान हो तो भी विशिष्टीकरण से लाभ होगा।" विशिष्टीकरण का यह मूलभूत सिद्धान्त जो जीवन के सभी क्षेत्रो मे पाया जाता है, निश्चित रूप से उसी प्रकार तथा उतना ही बलपूर्वक अन्तराष्ट्रीय व्यापार में लागू होता है। इस प्रकार, तुलनात्मक लागतो के सिद्धान्त का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रयोग अनावश्यक है क्योकि यह समस्त प्रकार के व्यापार का आधार है। इस बारे मे ओलिन बलपूर्वक कहता है, "क्योंकि राष्ट्र निश्चित तौर से सभी क्षेत्रो में अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं, इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त अन्तरक्षेत्रीय व्यापार के सामान्य सिद्धान्त के मुख्य प्रयोग को व्यक्त करता है।"

इस कारण उसका यह विश्वास है, कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को एक प्रथक् सिद्धान्त की कोई आवश्यकता नहीं है और वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को अन्तरस्थानीय अथवा क्षेत्रीय व्यापार की एक विशेष स्थिति मानता है। अन्तर्राष्ट्रीय तौर पर विनिमय की गई वस्तुओ की कीमतें उसी प्रकार निर्धारित होती हैं जिस प्रकार अन्तरक्षेत्रीय तौर से विनिमय की गई वस्तुओ की। अन्तरक्षेत्रीय व्यापार मे कीमतो के निर्धारण का आधार माग और पूर्ति का सामान्य सतुलन है जो बिना पर्याप्त परिवर्तनो के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर भी लागू होता है। रुचियां, आदतो, रीति-रिवाजो, भाषा, करेंसी, टैरिफ प्रतिबध आदि को देशो के बीच भिन्नताए गुणात्मक नहीं बल्कि मात्रात्मक हैं। वास्तव मे, ये अन्तर्राष्ट्रीय तौर पर वस्तुओं तथा सेवाओ के मुक्त प्रवाह को नहीं रोकतीं। अत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एव अन्तरक्षेत्रीय व्यापार में यथार्थ मे कोई भिन्नता नहीं है।

निष्कर्ष (Conclusion)

परन्तु हम ओलिन के इस मत से सहमत नहीं कि यथार्थ मे अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तरक्षेत्रीय व्यापार मे कोई अन्तर नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि दोनो मे तीव्र भिन्नताए पाई जाती हैं। हर देश की करेंसी होती है जिससे उसके नागरिक देश के भीतर वस्तुओं और सेवाओं को मुक्त रूप से बेच और खरीद सकते हैं। परन्तु दूसरे देशो को वस्तुएं बेचना और खरीदना सभव नहीं होता क्योंकि प्रत्येक देश उन पर अनेक प्रतिबध लगाता है। विदेशी करेंसिया न तो मुक्त रूप से प्राप्त होती हैं और न ही आसानी से परिवर्तनीय होती हैं। अन्तरक्षेत्रीय व्यापार मे विनिमय दरों, भुगतान शेषों तथा टैरिफ की समस्याए बिल्कुल उत्पन्न नहीं होती हैं, जबकि वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अभिन्न अंग है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

से उत्पन्न होने वाली समस्याओ को हल करने के लिए ही IMF, GATT तथा UNCTAD जैसी सस्थाए स्थापित की गई है जिनका अन्तरक्षेत्रीय व्यापार से कोई सरोकार नहीं है।

इतना ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के समष्टि तथा व्यष्टि भागों से सबधित अनेक सिद्धान्त और मॉडल हेक्शर, ओलिन, सैम्यूलसन, जोनसन, भगवती आदि अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित किए गए हैं, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सबधित सिद्धान्तो से सर्वथा भिन्न हैं। इससे सिद्ध होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एक पृथक अध्ययन है जो किसी भी प्रकार से अन्तरक्षेत्रीय व्यापार के समान नहीं है। जैसा कि किडलबर्गर ने ठीक ही कहा है, "अन्तराष्ट्रीय व्यापार को एक पृथक् विषय माना जाता है, परम्परा के कारण, वास्तविक विश्व मे अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रश्नो द्वारा प्रस्तुत की गइ, अत्यावश्यक और महत्वपूर्ण समस्याओ के कारण, क्योकि यह घरेलू व्यापार से भिन्न नियमों का अनुसरण करता है, और क्योकि इसका अध्ययन समस्त अर्थशास्त्र के हमारे ज्ञान को प्रकाशमय तथा समृद्ध करता है।"

प्रश्न

1 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा अन्तरक्षेत्रीय व्यापार में मूलभूत अन्तरों की व्याख्या कीजिए।
2 "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को अन्तरक्षेत्रीय व्यापार अथवा सभवत अन्तरस्थानीय व्यापार की एक विशेष स्थिति समझना चाहिए।" इस कथन की सविस्तार व्याख्या कीजिए।
3 घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भिन्नताए मात्रात्मक हैं न कि गुणात्मक। क्या आप इस मत से सहमत हैं या नहीं? कारण दीजिए। क्या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक पृथक् सिद्धान्त का आधार है?

अध्याय 68

तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त
(The Theory of Comparative Costs)

1. प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का क्लासिकी सिद्धान्त सर्वप्रथम राबर्ट टोरेन्ज, डेविड रिकार्डो तथा जॉन स्टुअर्ट मिल ने प्रतिपादित किया था। उनके विचार तुलनात्मक लागत या लाभ से सम्बद्ध हैं। एडमस्मिथ ने निरपेक्ष लाभ के सिद्धान्त को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार लिया, जिसे रिकार्डो ने त्याग दिया। इसके स्थान पर रिकार्डो ने तुलनात्मक लाभ का सिद्धान्त प्रचलित किया जो टॉसिग तथा हैबलर जैसे अर्थशास्त्रियों द्वारा स्वीकारा और सुधारा गया है। इस अध्याय मे स्मिथ तथा रिकार्डो के विचारो की विवेचना को जा रही है।

2 तुलनात्मक लागत सिद्धान्त
(COMPARATIVE COSTS THEORY)

तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त विभिन्न देशो मे एक समान वस्तुओ की उत्पादन लागतों मे अन्तर पर आधारित होता है। श्रम के भौगोलिक विभाजन तथा उत्पादन में विशिष्टीकरण के कारण विभिन्न देशो मे उत्पादन लागत भिन्न-भिन्न होती है। जलवायु, प्राकृतिक साधनों, भौगोलिक स्थिति एव श्रम की कुशलता में अन्तर होने के कारण एक देश किसी वस्तु का किसी दूसरे देश की अपेक्षा कम लागत में उत्पादन कर सकता है। इस प्रकार प्रत्येक देश उस वस्तु के उत्पादन मे विशिष्टीकरण करता है जिसमे उसकी उत्पादन की तुलनात्मक लागत सबसे कम हो। इसलिए जब कोई देश किसी अन्य देश के साथ व्यापार करता है, तो वह उन वस्तुओं का निर्यात करेगा जिनमें उसकी तुलनात्मक उत्पादन लागत कम है और उन वस्तुओ को आयात करेगा जिनमे उसकी तुलनात्मक उत्पादन लागत अधिक है। रिकार्डो के अनुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार यही है। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रत्येक देश **उन वस्तुओ के उत्पादन में विशिष्टीकरण करेगा जिनमे उसे तुलनात्मक लाभ अधिक अथवा तुलनात्मक हानि न्यूनतम होगी** (Each country will specialise in the production of those commodities in which it has greater comparative advantages or least comparative disadvantages) । इस प्रकार कोई देश उन वस्तुओं को निर्यात करेगा जिनमें उसे *अधिकतम तुलनात्मक लाभ होगा और उन वस्तुओ को आयात करेगा जिनमे उसे तुलनात्मक हानि कम-से-कम होगी।*

सिद्धान्त की मान्यताएं (Assumptions of the Theory)

तुलनात्मक लागत का रिकार्डो का सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित है

1 केवल दो ही देश—मान लीजिए इग्लैंड और पुर्तगाल हैं।

2 वे समरूप दो वस्तुओ—शराब और कपडे का उत्पादन करते हैं।

3 दोनो देशों मे रुचिया समान हैं।

4 श्रम ही उत्पादन का एकमात्र साधन है।

5 सभी श्रम-इकाइया समरूप हैं।

6 श्रम की पूर्ति अपरिवर्तित है।

7 दोनो वस्तुओ की कीमतो को श्रम-लागत, अर्थात प्रत्येक के उत्पादन मे लगी श्रम-इकाइयो की सख्या निर्धारित करती है।

8 स्थिर लागत या प्रतिफल के नियम के अधीन वस्तुओं का उत्पादन होता है।

9 दोनो देशो के बीच वस्तु-विनिमय-प्रणाली के आधार पर व्यापार होता है।

10 प्रौद्योगिक ज्ञान अपरिवर्तित है।

11 उत्पादन के साधन प्रत्येक देश के भीतर तो पूर्णतया गतिशील हैं परन्तु दोनो देशो के बीच पूर्णतया गतिहीन हैं।

12 दोनो देशों के बीच स्वतन्त्र व्यापार है और वस्तुओं के व्यापार पर कोइ रोक या प्रतिबन्ध नहीं है।

13 दोनों देशों के बीच व्यापार करने मे कोई परिवहन लागतें नहीं हैं।

14 दोनों देशो मे उत्पादन के सभी साधन पूर्णतया रोजगार मे लगे हैं।

15 अन्तर्राष्ट्रीय बाजार पूर्ण बाजार है जिससे दोनो वस्तुओ का विनिमय-अनुपात समान है।

लागत अन्तर (Cost Differences)

ये मान्यताए दी होने पर तुलनात्मक लागत के सिद्धान्त की व्याख्या लागतो में तीन तरह के अन्तरो-निरपेक्ष, समान और तुलनात्मक को लेकर की गई है।

1 लागतों मे निरपेक्ष अन्तर (Absolute Differences in Costs)—जब कोई देश दूसरे देश की अपेक्षा उत्पादन की निरपेक्ष न्यूनतम लागत पर किसी वस्तु का उत्पादन करता है तो लागत में निरपेक्ष अन्तर हो सकता है।

निरपेक्ष लागत अन्तर को तालिका I मे दर्शाया गया है।

तालिका I लागत मे निरपेक्ष अन्तर

देश	वस्तु-X	वस्तु-Y
A	10	5
B	5	10

सारणी I स्पष्ट करती है कि श्रम की एक इकाई से *A* देश 10 *X* अथवा 5*Y* और *B* देश 5*X* अथवा 10*Y* वस्तुए श्रम की एक इकाई से उत्पादित कर सकता है।

इस स्थिति में देश *A* को *X* वस्तु के उत्पादन मे निरपेक्ष लाभ है। (क्योंकि 10*X* अधिक है 5 *X*

मे) और देश B को Y के उत्पादन मे निरपेक्ष लाभ है (क्योंकि $10Y$ अधिक है $5Y$ से)। इसे निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है—

$$\frac{\text{देश } A \text{ का } 10\,X}{\text{देश } B \text{ का } 5\,X} > 1 > \frac{\text{देश } A \text{ का } 5\,Y}{\text{देश } B \text{ का } 10\,Y}$$

दोनो देशो के बीच व्यापार दोनो को लाभ प्रदान करेगा, जैसा कि सारणी II मे दिखाया गया है।

तालिका II व्यापार से लाभ

		व्यापार-पूर्व उत्पादन (1)		व्यापार-पश्चात उत्पादन (2)		व्यापार मे लाभ (2 − 1)	
वस्तु →		X	Y	X	Y	X	Y
देश ↓	A	10	5	20	—	+10	−5
	B	5	10	—	20	−5	+10
कुल उत्पादन		15	15	20	20	+5	+5

तालिका II से स्पष्ट होता है कि व्यापार मे पहले दोनो देश A और B प्रत्येक वस्तु पर श्रम की एक-एक इकाइ लगाकर दोनो वस्तुओ X और Y को 15-15 इकाइया उत्पादित करते हैं। यदि देश A वस्तु X के उत्पादन मे विशिष्टीकरण करे और श्रम की दोनो इकाइया लगा दे, तो उस का कु ल उत्पादन X वस्तु की 20 इकाइया होगा। इसी प्रकार, यदि देश B केवल Y वस्तु के उत्पादन मे विशिष्टीकरण करे तो उसका कुल उत्पादन Y की 20 इकाइया होगा। व्यापार से दोनो देशो को X तथा Y की 5-5 इकाइयो का सयुक्त लाभ होगा।

चित्र 68 1 उत्पादन सम्भावना वक्रो की सहायता से लागतो मे निरपेक्ष अन्तरो को दिखाता है। Y_AX_A देश A का उत्पादन सम्भावना वक्र है जो दर्शाता है कि यह या तो वस्तु X की OX_A मात्रा उत्पादित कर सकता है अथवा वस्तु Y की OY_A मात्रा। Y_BX_B देश B का उत्पादन सम्भावना वक्र है तथा यह वस्तु X की OX_B मात्रा अथवा वस्तु Y की OY_B मात्रा उत्पादित कर सकता है। चित्र यह भी स्पष्ट करता है कि देश A को वस्तु X के उत्पादन मे निरपेक्ष लाभ है क्योंकि $OX_A > OX_B$ तथा देश B को वस्तु Y के उत्पादन मे निरपेक्ष लाभ क्योंकि $OY_B > OY_A$
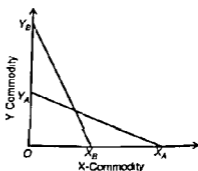
चित्र 68 1

एडम स्मिथ का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त दो देशो के बीच लागतो मे निरपेक्ष अन्तरो पर आधारित है। परन्तु व्यवहार का यह आधार वास्तविक नहीं है। क्योंकि बहुत से अल्पविकसित देश ऐसे है जो किसी भी वस्तु के उत्पादन मे निरपेक्ष लाभ नहीं रखते परन्तु फिर भी उनके अन्य देशो के साथ व्यापारिक सम्बन्ध होते हैं। इसलिए रिकार्डो ने लागत मे तुलनात्मक अन्तर पर विशेष बल दिया।

2 *लागतो में समान अन्तर (Equal Differences in Costs)*—लागतो मे समान अन्तर वहा

उत्पन्न होते है जहा दोनो वस्तुए दोनो देशो मे समान लागत अन्तर पर उत्पादित की जाती हैं। मान लीजिए कि देश A उत्पादन कर सकता है 10 X अथवा 5Y और देश B उत्पादन कर सकता है 8X अथवा 4Y।

इस स्थिति मे, श्रम की एक इकाई से देश A या तो 10 X या 5 Y उत्पादन कर सकता है और X तथा Y में लागत अनुपात 2 : 1 है। देश B मे, श्रम की एक इकाई या तो 8 X या फिर 4Y उत्पादन कर सकती है और दोनो वस्तुओं में लागत अनुपात 2 : 1 है। इस प्रकार Y के ढग से X के उत्पादन की लागत दानो देशो मे वही है। इसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है—

$$\frac{\text{देश } A \text{ का } 10\,X}{\text{देश } B \text{ का } 8\,X} = \frac{A \text{ का } 5\,Y}{B \text{ का } 4\,Y} = 1$$

जब लागत अन्तर समान हो तो व्यापार से किसी देश को लाभ नहीं होता। अत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्भव नहीं है।

3 *लागतो में तुलनात्मक अन्तर (Comparative Differences in Costs)*—जब एक देश को दोनो वस्तुओं के उत्पादन मे निरपेक्ष लाभ हो, परन्तु एक की अपेक्षा दूसरी वस्तु के उत्पादन मे तुलनात्मक लाभ हो तो, लागत मे तुलनात्मक अन्तर हो सकता है। सारणी III मे तुलनात्मक लागत अन्तर की चर्चा की गई है।

तालिका III लागत मे तुलनात्मक अन्तर

देश	वस्तु-X	वस्तु-Y
A	10	10
B	6	8

तालिका III स्पष्ट करती है कि देश A, 10 X या 10Y उत्पादित कर सकता है और देश B, 6X या 8Y उत्पादित कर सकता है।

इस स्थिति मे A देश X और Y दोनो वस्तुओ के उत्पादन मे निरपेक्ष लाभ प्राप्त करता है, परन्तु X वस्तु के उत्पादन मे तुलनात्मक लाभ प्राप्त करता है। देश B दोनों वस्तुओ के उत्पादन मे निरपेक्ष हानि में होता है किन्तु इसकी न्यूनतम तुलनात्मक हानि Y वस्तु के उत्पादन में होती है। यह इस तथ्य से देखा जा सकता है कि व्यापार मे पहले देश A में X और Y वस्तुओं का घरेलू लागत अनुपात 10 : 10 (1 : 1) होता है, जबकि देश B मे यह 6 : 8 (3 : 4) होता है। यदि वे व्यापार मे प्रवेश करेंगे तो X वस्तु के उत्पादन मे B देश की तुलना मे A देश का लाभ $\frac{A \text{ का } 10X}{B \text{ का } 6X}$ या $\frac{5}{3}$ और Y वस्तु के उत्पादन मे $\frac{A \text{ का } 10Y}{B \text{ का } 8Y}$ या $\frac{5}{4}$ होता है। चूकि $\frac{5}{4}$ से $\frac{5}{3}$ बडा है, इसलिए X वस्तु के उत्पादन मे A देश का लाभ अधिक होता है। A देश को अपनी X वस्तु के बदले मे देश B से Y वस्तु का आयात करना सस्ता पडेगा।

इसी तरह, हम दोनो वस्तुओ के उत्पादन में देश B की तुलनात्मक हानि जान सकते हैं। X वस्तु

के मामले में देश B की स्थिति $\frac{B \text{ का } 6X}{A \text{ का } 10X}$ या $\frac{3}{5}$ है। Y वस्तु के मामले में यह $\frac{B \text{ का } 8Y}{A \text{ का } 10Y}$ या $\frac{4}{5}$ है। चूंकि $\frac{3}{5}$ से $\frac{4}{5}$ बड़ा है इसलिए B को Y वस्तु के उत्पादन में न्यूनतम तुलनात्मक हानि होगी। देश B, देश A की X वस्तु के लिए अपनी Y वस्तु का व्यापार करेगा। दूसरे शब्दों में, देश A को X वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ होगा और B देश को Y वस्तु के उत्पादन में न्यूनतम तुलनात्मक हानि होगी।

इस प्रकार, व्यापार दोनों देशों के लिए लाभदायक है। दोनों देशों की तुलनात्मक लाभ की स्थिति का वर्णन चित्र 68 2 में किया गया है।

PQ देश A का उत्पादन संभावना वक्र है तथा RS देश B का। PQ दर्शाता है कि देश A को देश B की तुलना में क्रमश X और Y दोनों वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त है। यह इसलिए संभव है क्योंकि देश B का उत्पादन संभावना वक्र RS, देश A के उत्पादन संभावना वक्र PQ में नीचे है। B देश Y वस्तु की OR इकाइयां और X वस्तु की OS इकाइयां उत्पादित करता है जबकि A देश क्रमश OP और OQ इकाइयां उत्पादित करता है।
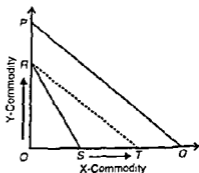
चित्र 68.2

व्यापार में तुलनात्मक लाभ की स्थिति दिखाने के लिए PQ रेखा के समानान्तर RT रेखा खींचिए। अब देश A को X वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ प्राप्त है क्योंकि वह देश B की OS इकाईयों की तुलना में अधिक इकाइयां OT निर्यात करता है। दूसरी ओर, देश B को सिर्फ Y वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक हानि होती है। चूंकि वह यदि X वस्तु की OS इकाइयां उत्पादित करने के लिए आवश्यक संसाधनों को छोड़ दे तो यह Y वस्तु की OR उतनी मात्रा उत्पादित करेगा। देश A वस्तु X की OT मात्रा देश B को निर्यात करेगा और उससे Y वस्तु की OR मात्रा प्राप्त करेगा। इस प्रकार, देश A को X वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ प्राप्त होता है और देश B को Y वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक हानि होती है।[1]

3. सिद्धान्त की आलोचनाएं (ITS CRITICISMS)

जब तक प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त नहीं हुआ तब तक एक शताब्दी से भी अधिक समय के लिए तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का मूल आधार रहा। तब से आलोचक इसके सुन्दर भवन को गिरा सकने की बजाय केवल उसका सुधार सवर्धन ही कर पाये हैं। जैसा कि प्रो सैम्युल्सन ने ठीक ही लक्ष्य किया है, "यदि लडकियों की भांति सिद्धान्त भी सौन्दर्य-प्रतियोगिता जीत

1 लाभ वितरण के लिए 'व्यापार से लाभ' अध्याय में 'मित्र की धारणा' की व्याख्या करिए।

सकते, तो तुलनात्मक लाभ को इस दृष्टि से निश्चय ही बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त होता कि यह सुन्दर तार्किक ढाचा है।"[2]

परन्तु यह सिद्धान्त कुछ दोषो से मुक्त नहीं है। विशेष रूप से **बर्टिन ओलिन** तथा **फ्रैंक डी० ग्रॅहम** ने इसकी कटु आलोचना की है। हम नीचे इसकी महत्त्वपूर्ण आलोचनाओ की चर्चा कर रहे हैं

1 श्रम लागत की अयथार्थिक मान्यता (Unrealistic Assumption of Labour Cost)—तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की कटुतम आलोचना यह है कि यह मूल्य के श्रम सिद्धान्त पर आधारित है। उत्पादन लागत का हिसाब लगाते समय यह केवल श्रम लागत को लेता है और वस्तुआ क उत्पादन मे पाई जाने वाली गैर-श्रम लागते छोड देता है। यह अयथार्थिक है क्योकि राष्ट्रीय आय तथा अन्तर्राष्ट्रीय वस्तुओ क लेन-देन का आधार श्रम-लागते नहीं अपितु मुद्रा लागते होती हैं।

फिर, श्रम लागत सिद्धान्त **समरूप श्रम** की मान्यता पर आधारित है। यह भी अयथार्थिक है क्योकि श्रम तो विभिन्न प्रकार का होता है—विभिन्न प्रकार एव स्तरो का, कोई विशिष्ट अथवा विशिष्टीकृत, और अन्य अविशिष्ट अथवा सामान्य।

2 समान रुचिया नहीं (No Similar Tastes)—समान रुचिया की मान्यता अवास्तविक है क्योंकि एक देश मे विभिन्न आय श्रेणियों के लोगो की रुचियो मे अन्तर होता है। फिर, ये एक अर्थव्यवस्था की वृद्धि तथा अन्य देशो के साथ व्यापारिक सम्बन्धो के विकास से भी बदलती हैं।

3 स्थिर अनुपातो की स्थैतिक मान्यता (Static Assumption of Fixed Proportions)—तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि श्रम सभी वस्तुओं के उत्पादन में समान स्थिर अनुपातों मे प्रयोग होता है। यह मूलत स्थैतिक विश्लेषण है, इसलिए अयथार्थिक है। वास्तव में, विभिन्न वस्तुओ के उत्पादन मे श्रम परिवर्ती अनुपातो में प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ, कपडे के उत्पादन की अपेक्षा इस्पात के उत्पादन में पूंजी की प्रति इकाई कम श्रम का प्रयोग किया जाता है। फिर, उत्पादन में पूजी के स्थान पर श्रम का कुछ स्थानापन्न सदैव किया जाता है।

4 स्थिर लागतो की अयथार्थिक मान्यता (Unrealistic Assumption of Constant Costs)—यह सिद्धान्त एक और कमजोर मान्यता पर आधारित है कि अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण के कारण उत्पादन मे वृद्धि के बाद लागत स्थिर हो जाती है। परन्तु तथ्य यह है कि लागत या तो बढती है या कम होती हैं। यदि बडे पैमाने पर उत्पादन से लागत घट जाएगी, तो तुलनात्मक लाभ बढ जाएगा। दूसरी ओर, यदि उत्पादन की बढ रही लागत के परिणामस्वरूप उत्पादन बढा है, तो तुलनात्मक लाभ कम हो जाएगा और कुछ स्थितियों म तो यह समाप्त भी हो सकता है।

5 परिवहन लागतो की उपेक्षा (Ignores Transport Costs)—रिकार्डो व्यापार मे तुलनात्मक लाभ निर्धारित करने मे परिवहन लागते छोड देता है। यह बहुत ही अयथार्थिक है क्योकि विश्व-व्यापार का ढाचा निर्धारित करने मे परिवहन लागत तो बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। पैमाने की किफायतो की भांति, यह भी उत्पादन का स्वतन्त्र साधन है। उदाहरण के लिए, ऊंची परिवहन लागत तुलनात्मक लाभ तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ को समाप्त कर सकती है।

6 देश के भीतर साधन पूर्णतया गतिशील नहीं (Factors not Fully Mobile Internally)—यह सिद्धान्त मान लेता है कि उत्पादन के साधन देश के भीतर पूर्णतया गतिशील हैं और अन्तर्राष्ट्रीय

---

2 "If theories like girls could win beauty contests, comparative advantage would certainly rate high in that it is an elegantly logical structure "—Samuelson

रूप मे पूर्णतया गतिहीन। यह बात यथार्थिक नहीं है क्योंकि देश के भीतर भी साधन एक उद्योग से दूसरे उद्योग में अथवा एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे स्वतन्त्र रूप से गतिशील नहीं होते। उद्योग मे विशिष्टीकरण की कोटि जितनी अधिक होगी, उतनी ही एक उद्योग से दूसरे उद्योग म साधन गतिशीलता कम होगी। इस प्रकार साधन-गतिशीलता लागतो को और परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के ढाचे को प्रभावित करती है।

7 दो-देश, दो-वस्तु मॉडल अयथार्थिक है (Two-Country Two-Commodity Model is Unrealistic)—रिकार्डो का मॉडल दो वस्तुओ के आधार पर दो देशो के बीच व्यापार से सम्बन्ध रखता है। यह भी अयथार्थिक है क्योंकि वास्तव मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कई देशो के बीच होता है जो कई वस्तुओ का व्यापार करते हैं।

8 मुक्त व्यापार की अयथार्थिक मान्यता (Unrealistic Assumption of Free Trade)—इस सिद्धान्त की एक दुर्बलता यह है कि यह मुक्त एव पूर्ण विश्व-व्यापार की मान्यता लेकर चलता है। प्रत्येक देश वस्तुओ के अन्य देशो से मुक्त आयात-निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा देता है। इस प्रकार प्रशुल्क तथा अन्य प्रतिबन्ध ससार के आयात तथा निर्यात को प्रभावित करते हैं। फिर वस्तुए भी समान नहीं परन्तु भिन्न-भिन्न होती हैं। इन पक्षों की उपेक्षा करने के कारण रिकार्डो का सिद्धान्त अयथार्थिक बन जाता है।

9 पूर्ण रोजगार की अयथार्थिक मान्यता (Unrealistic Assumption of Full Employment)—सभी क्लासिकी सिद्धान्तों की भाति, तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त भी पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है। यह मान्यता भी सिद्धान्त को स्थैतिक बना देती है। केन्ज ने पूर्ण रोजगार की मान्यता को झुठलाया और सिद्ध किया कि अर्थव्यवस्था मे अल्परोजगार होता है। इस प्रकार पूर्ण रोजगार की मान्यता इस सिद्धान्त को अयथार्थिक बना देती है।

10 स्वार्थ इसके प्रचालन मे बाधा प्रस्तुत करता है (Self-Interest Hinders its Operation)—यह सिद्धान्त उस समय नहीं लागू होता जब तक जिसे तुलनात्मक हानि है, वह देश सैन्य अथवा विकास-विचारणाओ के कारण किसी अन्य देश की वस्तु को आयात नहीं करना चाहता। इस प्रकार, तुलनात्मक लागत के सिद्धान्त क प्रचालन मे स्वार्थ प्राय बाधक बन जाता है।

11 प्रौद्योगिकी के कार्यभाग की उपेक्षा (Neglects the Role of Technology)—यह सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे तकनीकी नवप्रवर्तनों की उपेक्षा करता है। यह अवास्तविक है क्योंकि तकनीकी परिवर्तन केवल घरेलू मार्किट के लिए ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय मार्किट के लिए वस्तुओ की पूर्ति बढाने मे सहायक होते हैं। विश्व व्यापार ने नवप्रवर्तनो, अनुसधान तथा विकास से बहुत लाभ उठाया है।

12 एक पक्षीय सिद्धान्त (One-Sided Theory)—रिकार्डो का सिद्धान्त एक-पक्षीय है क्योंकि यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के केवल पूर्ति पक्ष पर विचार करता है और माग पक्ष को छोड देता है। प्रो ओलिन के शब्दो मे, "यह वास्तव मे पूर्ति की शर्तों के सक्षिप्त विवरण से अधिक कुछ नहीं है।"

13 अपूर्ण सिद्धान्त (Incomplete Theory)—रिकार्डो का सिद्धान्त यह वर्णन करता है कि दो देश किस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ प्राप्त करते हैं परन्तु यह दर्शाने मे विफल है कि व्यापार से लाभ का वितरण दोनों देशों के बीच कैसे होता है। इसलिए यह अपूर्ण सिद्धान्त है।

14 पूर्ण विशिष्टीकरण की असभवता (Impossibility of Complete Specialisation)—प्रो ग्रॅहम ने लक्ष्य किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे प्रवेश करने वाली वस्तुओ के उत्पादन में

तुलनात्मक लाभ के आधार पर पूर्ण विशिष्टीकरण करना असम्भव होगा। अपने तर्क के समर्थन मे उसने दो स्थितिया स्पष्ट की हैं : एक, बडे तथा तथा छोटे देश से सम्बन्धित, और दो, अधिक मूल्य तथा कम मूल्य वाली वस्तु से सम्बन्धित।

पहली स्थिति को लीजिए। मानलीजिए दो देश हैं जो तुलनात्मक लाभ के आधार पर परस्पर व्यापार करते हैं। इनमे से एक देश बडा है और दूसरा छोटा। छोटा देश पूर्णतया विशिष्टीकरण कर सकेगा, क्योकि यह अपनी अतिरेक (surplus) वस्तु बडे देश को बेच सकता है। परन्तु बडा देश पूर्णतया विशिष्टीकरण नहीं कर सकेगा क्योकि एक तो वह बडा है, इसलिए छोटा देश उसकी सभी आवश्यकताएं पूरी करने की स्थिति मे नहीं होगा, और दूसरे यदि वह किसी विशिष्ट वस्तु मे विशिष्टीकरण कर लेगा, तो उसका अतिरेक उत्पादन इतना अधिक होगा कि छोटा देश उस सारे अतिरेक उत्पादन को आयात नहीं कर सकेगा।

दूसरी स्थिति मे जहा अतुलनीय मूल्यो वाली वस्तुए हैं, वहा जो देश अधिक मूल्य वाली वस्तु का उत्पादन करता है यह तो विशिष्टीकरण कर सकेगा, परन्तु जो देश कम मूल्य वाली वस्तु का उत्पादन करता है वह विशिष्टीकरण नहीं कर सकेगा। इसका कारण यह है कि दूसरे देश की अपेक्षा पहला देश अधिक लाभ प्राप्त करने की स्थिति मे होगा। इस प्रकार ग्रॉहम के अनुसार, "दो देशो के बीच पूर्ण विशिष्टीकरण का क्लासिकी निष्कर्ष केवल वहीं टिक सकता है जहा यह मान लिया जाए कि व्यापार ऐसे दो देशो के बीच है जिनका अवसर उपभोग मूल्य लगभग समान है और ऐसे दो देशो के बीच है जिनका आर्थिक कार्यकरण लगभग समान है।"[3]

15 *भद्दा एव खतरनाक औजार (A Clumsy and Dangerous Tool)*—प्रो ओलिन ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्लासिकी सिद्धान्त की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की हैं

(i) तुलनात्मक लागत का नियम केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर ही लागू नहीं होता, अपितु यह सारे व्यापार पर लागू होता है। ओलिन मानता है कि "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तो अन्त स्थानीय अथवा अन्त प्रदेशीय व्यापार की विशेष स्थिति मात्र है।" इस प्रकार आन्तरिक व्यापार तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कोई अन्तर नहीं है।

(ii) केवल अन्तर्राष्ट्रीय रूप से ही नहीं अपितु विभिन्न प्रदेशों के भीतर ही साधन गतिहीन होते हैं। यह बात इस तथ्य से सिद्ध होती है कि एक ही देश के विभिन्न प्रदेशो मे मजदूरी तथा ब्याज की दरे भिन्न-भिन्न होती हैं। फिर, श्रम तथा पूजी एक सीमित ढग से उसी प्रकार देशो के बीच गतिशील हो सकते हैं जिस प्रकार वे एक प्रदेश के भीतर गतिशील होते हैं।

(iii) यह मूल्य के श्रम-सिद्धान्त पर आधारित दो-देश दो-वस्तु मॉडल है जिसे ऐसी वास्तविक स्थितियो पर लागू करने का प्रयत्न है जिनमे कई देश तथा कई वस्तुए पाई जाती हैं। इसलिए, वह समझता है कि तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त बेढगा तथा अयथार्थिक है और विश्लेषण का भद्दा एव खतरनाक औजार है। विकल्प रूप मे ओलिन ने नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सामान्य सन्तुलन या आधुनिक सिद्धान्त कहते है।

निष्कर्ष (Conclusion)

इन दुर्बलताओ के बावजूद, यह सिद्धान्त समय की कसौटी पर खरा उतरा है। यद्यपि इसमे बहुत

---

3 F D Graham, *The Theory of International Value*, 1938

सुधार किये गए हैं, पर इसका मूल ढाचा ज्यो-का-त्यो रहा है। प्रो सैम्यूल्सन के शब्दो मे निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है कि "तो भी, अपने समस्त सरलीकरण के बावजूद, तुलनात्मक लाभ के सिद्धान्त मे सत्य की अत्यन्त महत्वपूर्ण झलक मौजूद है। अर्थशास्त्र को इतने सारगर्भित सिद्धान्त और नहीं मिल पाए, जो राष्ट्र की तुलनात्मक लाभ की उपेक्षा करता है, उसे जीवन-स्तर तथा सवृद्धि की सम्भाव्य दर के रूप मे भारी कीमत चुकानी पड सकती है।"

प्रश्न

1 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्लासिकी सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्याकन कीजिए।
2 'तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त' की विवेचना कीजिए।

अध्याय 69

हैक्शर–ओलिन का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त
(Heckscher–Ohlin Theory of International Trade)

1 प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

बर्टिन ओलिन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *Inter–regional and International Trade* (1933) मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्लासिकी सिद्धान्त की आलोचना की और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सामान्य सन्तुलन सिद्धान्त (General Equilibrium Theory) अथवा साधन सम्पन्नता (Factor Endowment) अथवा साधन अनुपातो (Factor Proportions) का सिद्धान्त बनाया। इसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त अथवा हैक्शर-ओलिन प्रमेय भी कहते हैं। वास्तव मे ओलिन के अध्यापक एली हैक्शर ने पहले पहले 1919 मे यह विचार प्रस्तुत किया था कि अन्तराष्ट्रीय व्यापार तो विभिन्न देशों मे साधन सम्पन्नताओ में अन्तर का परिणाम होता है। ओलिन ने इस विचार को आगे बढ़ाया और इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त निर्मित किया।

2 सिद्धान्त का वक्तव्य
(STATEMENT OF THE THEORY)

हैक्शर–ओलिन सिद्धान्त यह बताता है कि उत्पादन, विशिष्टीकरण तथा प्रदेशो मे व्यापार ढाचे का प्रमुख निर्धारक तत्त्व है साधन पूर्तियों की सापेक्ष प्राप्यता (relative availability)। प्रदेशो अथवा देशो की साधन सम्पन्नताए तथा साधन पूर्तिया भिन्न-भिन्न होती हैं। "कुछ देशो मे पूजी अधिक होती है, दूसरो मे श्रम अधिक होता है। अब यह सिद्धान्त कहता है कि जिन देशो मे श्रम अधिक होगा वे श्रम-गहन वस्तुओ का निर्यात करेगे।"[1] ओलिन की दृष्टि मे, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का तुरन्त कारण सदा यह रहता है कि कुछ वस्तुए अन्य प्रदेशो से अधिक सस्ती खरीदी जा सकती हैं जबकि उसी प्रदेश में उन वस्तुओं का उत्पादन ऊची कीमतो पर ही सम्भव होता है। इस प्रकार प्रदेशो के बीच व्यापार का प्रमुख कारण वस्तुओ की कीमतो का अन्तर रहता है।

मान्यताए (Assumptions)

यह सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है।

1 यह दो-एव-दो-एव-दो मॉडल है, अर्थात दो देश (*A* एव *B*) हैं, दो वस्तुए (*X* तथा *Y*) हैं और उत्पादन के दो साधन (पूजी तथा श्रम) हैं।

1 Bo Sodersten International Economics 1970 p 64

2 वस्तुओं तथा साधन बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता है।

3 संसाधन पूर्ण नियोजित (fully employed) हैं।

4 विभिन्न प्रदेशों की साधन सम्पन्नताओं में मात्रात्मक अन्तर है परन्तु गुणात्मक रूप से वे समरूप है।

5 दोनों वस्तुओं के उत्पादन फलनों की साधन गहनताएं विभिन्न हैं अर्थात् व श्रम-गहन तथा पूंजी-गहन हैं।

6 साधन गहनताएं बदली नहीं जा सकती हैं।

7 विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन फलन भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु दोनों देशों म प्रत्येक वस्तु के उत्पादन फलन समान है। इसका मतलब है कि वस्तु X का उत्पादन फलन वस्तु Y के उत्पादन फलन से भिन्न है। परन्तु दोनों देशों मे वस्तु X के उत्पादन क लिए प्रयुक्त तकनीक समान है और दोनों देशों म वस्तु Y के उत्पादन के लिए प्रयुक्त तकनीक समान है।

8 प्रत्येक प्रदेश के भीतर साधन पूर्णतया गतिशील हैं परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय रूप से वे गतिहीन हैं।

9 कोई परिवहन लागते नहीं हैं।

10 दोनों देशों के बीच मुक्त तथा बिना किसी प्रतिबन्ध के व्यापार हैं।

11 प्रत्येक प्रदेश म प्रत्येक वस्तु के उत्पादन मे पैमाने के स्थिर प्रतिफल हैं।

12 दोनों देशों मे उपभोक्ताओं के अधिमान तथा उनकी माग के ढाचे समरूप हैं।

13 प्रौद्योगिकी ज्ञान म कोई परिवर्तन नहीं है।

हैक्शर-ओलिन प्रमेय (The Heckshër-Ohlin Theorem)

इन मान्यताओं के दिए होने पर, हैक्शर तथा ओलिन का कहना है कि दो देशों के बीच साधन सम्पन्नताओं में अन्तर के परिणामस्वरूप साधनों की सापेक्ष माग तथा पूर्ति मे अन्तर (साधन कीमतों) द्वारा उत्पन्न सापेक्ष वस्तु कीमतों का अन्तर ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का तुरन्त कारण है। मूल रूप से, साधनों की सापेक्ष दुर्लभता—माग की सापेक्षता म पूर्ति की कमी—दो प्रदेशों के बीच व्यापार के लिए *अनिवार्य है।* जिन वस्तुओं में दुर्लभ साधनों की बडी मात्राएं प्रयोग होती हैं उन्हें *आयात किया जाता है* क्योंकि उनकी कीमतें ऊची हैं जबकि उन वस्तुओं को निर्यात किया जाता है जिनमे प्रचुर साधन प्रयोग होते हैं, क्योंकि उनकी कीमतें नीची हैं।

हैक्शर–ओलिन प्रमेय की दो परिभाषाओं के रूप मे व्याख्या की जाती है

(1) साधन प्रचुरता (या दुर्लभता) कीमत कसौटी के रूप मे, तथा

(2) साधन प्रचुरता (या दुर्लभता) भौतिक कसौटी के रूप मे।

हम इन दोनों की क्रमश विवेचना करते हैं

साधन कीमतों के रूप म साधन प्रचुरता (Factor Abundance in Terms of Factor Prices)— हैक्शर-ओलिन ने साधन कीमतों के रूप मे साधन सम्पन्नता की व्याख्या की है। उनकी परिभाषा के अनुसार, देश A मे पूंजी की प्रचुरता होगी बशर्ते कि $(P_C/P_L)\ A < (P_C/P_L)\ B$, जहा P_C तथा P_L पूंजी *तथा श्रम की कीमतों को व्यक्त करते हैं और A तथा B दोनों देशों को लक्ष्य करते हैं।* दूसरे शब्दों मे, यदि देश A मे पूंजी अपेक्षाकृत सस्ती है तो उस देश मे पूंजी की प्रचुरता है, और यदि देश B मे श्रम सस्ता है तो उस देश मे श्रम की प्रचुरता है। इस प्रकार, देश A पूंजी-गहन वस्तु को निर्यात करेगा और देश B श्रम-गहन वस्तु को निर्यात करेगा। इसे चित्र 79 1 के द्वारा स्पष्ट किया गया है।
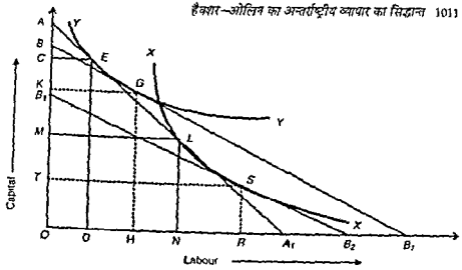
चित्र 69 1

मानलीजिए कि X श्रम-गहन वस्तु है जिसे क्षैतिज-अक्ष पर लिया गया है और Y पूजी-गहन वस्तु है जिसे अनुलम्ब अक्ष पर लिया जाता है। वस्तु X का सममात्रा वक्र (isoquant) XX है तथा वस्तु Y का सममात्रा वक्र YY है। ये दोनो देशो A और B के लिए समान हैं। देश A में दोना वस्तुओं के लिए सापेक्ष साधन कीमते, साधन-कीमत रेखा AA_1 बताती हैं। यह मानकर कि प्रत्येक सममात्रा वक्र उससे सम्बन्धित वस्तु की एक इकाई को प्रकट करता है, तब वस्तु Y की एक इकाई पूजी की OC मात्रा तथा श्रम की OD मात्रा द्वारा उत्पादित की जाएगी। यह बिन्दु E द्वारा निर्धारित होती है जहा सम-लागत (isocost) रेखा AA_1, सममात्रा वक्र YY को स्पर्श करती है। इसी तर्क द्वारा यह मालूम कर लिया जाता है कि देश A मे वस्तु X को एक इकाई उत्पादित करने की लागत पूजी की OM मात्रा तथा श्रम की ON मात्रा है जहा यह L बिन्दु पर निर्धारित होती है, क्योकि इस बिन्दु पर रेखा AA_1 तथा वक्र XX स्पर्श करते हैं। क्योकि देश A में पूजी प्रचुर और सस्ती है, इसलिए यह पूजी-गहन वस्तु Y के उत्पादन मे विशिष्टीकरण करेगा। यह चित्र से स्पष्ट है जहा वस्तु Y को एक इकाई उत्पादित करने के लिए यह देश सममात्रा वक्र YY के बिन्दु E पर अधिक पूजी की मात्रा सापेक्षतया OC श्रम की कम मात्रा OD का प्रयोग करता है। दूसरी ओर, वस्तु X की एक इकाई का उत्पादन करने के लिए यह देश सममात्रा वक्र XX के बिन्दु L पर कम पूजी की मात्रा OM तथा अधिक श्रम की मात्रा ON का प्रयोग करता है। अत: देश A सापेक्षतया पूंजी प्रचुर और सस्ती वस्तु Y को उत्पादित करेगा तथा इसे दूसर देश B को निर्यात करेगा।

देश B मे, जहा श्रम सापेक्षतया प्रचुर और सस्ता है, प्रत्येक वस्तु की उत्पादन लागत को मालूम करने के लिए सममात्रा वक्र YY के बिन्दु G पर एक चपटी साधन कीमत रेखा BB' खींचिए। एक ऐसी ही साधन कीमत रेखा B_1B_2 को BB' के समानान्तर खींचा गया है जो बिन्दु S पर सममात्रा वक्र XX को स्पर्श करती है। अब देश B मे वस्तु Y की एक इकाई उत्पादित करने के लिए पूजी की OK मात्रा तथा श्रम की OH मात्रा चाहिए। दूसरी ओर, इसी देश में वस्तु X की एक इकाई उत्पादित करने के लिए पूजी की OT मात्रा तथा श्रम की OR मात्रा चाहिए। क्योंकि इस देश B में श्रम प्रचुर और सस्ता है, इसलिए यह श्रम-गहन वस्तु X के उत्पादन में विशिष्टीकरण करेगा। अत यह सममात्रा वक्र XX

के बिन्दु S पर वस्तु X उत्पादित करेगा जिसके लिए श्रम OR तथा कम पूजी OT की आवश्यकता है। जबकि वस्तु Y की एक इकाई उत्पादित करने के लिए सममात्रा वक्र YY के बिन्दु G पर कम श्रम OH के साथ अधिक पूजी OK चाहिए। क्योंकि देश B श्रम-गहन है इसलिए यह श्रम-गहन वस्तु X का उत्पादन करेगा और उसे देश A की पूजी-गहन वस्तु Y के साथ विनिमय करेगा।

ऊपर के विवेचन से हैक्सर-ओलिन प्रमेय स्थापित हो जाती है कि पूजी प्रचुर देश सापेक्षतया सस्ती पूजी-गहन वस्तु का निर्यात करेगा, तथा श्रम प्रचुर देश सापेक्षतया सस्ती श्रम-गहन वस्तु को निर्यात करेगा।

भौतिक रूप मे साधन-प्रचुरता (Factor Abundance in Physical Terms) —हैक्सर-ओलिन के सिद्धान्त की भौतिक रूप मे साधन-प्रचुरता के आधार पर भी व्याख्या की जाती है। यदि देश A सापेक्षिक रूप से पूजी-प्रचुर है तो उत्पादन सभावना वक्र AA_1 है, जैसाकि चित्र 69 2 मे दर्शाया गया है। दूसरी ओर, यदि देश B सापेक्षिक रूप से श्रम-प्रचुर है तो इसका उत्पादन सभावना वक्र BB_1 है। यदि देश A और देश B एक ही अनुपात मे दोनो वस्तुओ का उत्पादन करते है तो वे OR किरण के साथ-साथ उत्पादन करेंगे। यदि दोनो अपने-अपने बिन्दुओ पर उत्पादन करते है तो देश A बिन्दु E पर उत्पादन करेगा जहा साधन कीमत रेखा ST उत्पादन सभावना वक्र AA_1 को स्पर्श करती है। वह वस्तु Y का अधिक उत्पादन करेगा जो इसमे सस्ती है और X वस्तु की कम मात्रा उत्पादित करेगा जो इसमे महगी है।

चित्र 69 2

देश B बिन्दु F पर उत्पादन करेगा जहा साधन कीमत रेखा KP उत्पादन सभावना वक्र BB_1 को स्पर्श करती है। यह X वस्तु की अधिक मात्रा उत्पादित करेगा जो देश A की अपेक्षा इसमे सस्ती है। यह बात देश A की साधन कीमत रेखा ST के झुकाव से मापित हो जाती है जो देश B की साधन कीमत की चपटी रेखा KP की अपेक्षा तिरछी है।

X-अक्ष पर दोनो साधन कीमत रेखाओ के बीच का अन्तर TP यह व्यक्त करता है कि देश A की अपेक्षा देश B मे श्रम-गहन वस्तु X की अधिक मात्रा उत्पादित की जाती है। इसी तरह, Y-अक्ष पर दोनो साधन कीमत रेखाओ के बीच का अन्तर KS दर्शाता है कि देश B की अपेक्षा देश A मे पूजी-गहन वस्तु Y की अधिक मात्रा उत्पादित की जाती है।

3 क्लासिकी सिद्धान्त की तुलना में इसकी श्रेष्ठता
(ITS SUPERIORITY OVER THE CLASSICAL THEORY)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्लासिकी सिद्धान्त की तुलना मे हैक्सर-ओलिन सिद्धान्त कई बातो मे श्रेष्ठ है

1 क्लासिकी सिद्धान्त से यह सिद्धान्त एक तो इस बात मे श्रेष्ठ है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को ओलिन अन्त प्रादेशिक अथवा अन्त स्थानीय व्यापार की विशेष स्थिति मानता है, जबकि क्लासिकी सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को घरेलू व्यापार से नितान्त भिन्न मानता है।

2 ओलिन का विश्लेषण मूल्य के यथार्थक सामान्य सतुलन सिद्धान्त के ढाचे मे ढाला गया है,

इसलिए यह क्लासिकी सिद्धान्त को मूल्य के तथा अयथार्थिक श्रम-सिद्धान्त से मुक्त करता है।

3 ओलिन माडल दो साधन लेता है–श्रम तथा पूंजी, जबकि क्लासिकी मॉडल एक साधन श्रम ही लेता है। इस प्रकार ओलिन मॉडल उसके श्रेष्ठ है।

4 फिर, रिकार्डो के सिद्धान्त से ओलिन सिद्धान्त इस बात मे भी श्रेष्ठ है कि यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ढाचे को निर्धारित करने के लिए साधन पूर्तियो के अन्तर को आधार मानता है जबकि रिकार्डो इस पर बिल्कुल ध्यान ही नहीं देता।

5 ओलिन-मॉडल अधिक यथार्थिक है क्योकि यह साधना की सापेक्ष कीमतो पर आधारित है जो आगे वस्तुओ की सापेक्ष कीमतो पर प्रभाव डालती हैं, जबकि रिकार्डों का सिद्धान्त केवल वस्तुओ की सापेक्ष कीमतो पर विचार करता है।

6 ओलिन का सिद्धान्त श्रम तथा पूजी की सापेक्ष उत्पादकताओ के अन्तर को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार मानता है जबकि क्लासिकी सिद्धान्त अकेले श्रम की उत्पादकता को लेता है। अत क्लासिकी सिद्धान्त की अपेक्षा ओलिन का सिद्धान्त अधिक यथार्थिक है।

7. ओलिन-मॉडल का एक और गुण यह है कि वह विभिन्न देशो की साधन-सम्पन्नताओ के अन्तर पर आधारित है जबकि क्लासिकी सिद्धान्त मे एक साधन श्रम-गुणवत्ता को लेता है। इस प्रकार ओलिन का सिद्धान्त श्रेष्ठ है क्योकि अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य निर्धारित करने म यह केवल साधनो की गुणवत्ता पर ही नहीं अपितु उनकी मात्रा पर भी बल देता है।

8 सैम्युल्सन के अनुसार, रिकार्डो का सिद्धान्त तुलनात्मक लाभ मे अन्तर के कारणो को स्पष्ट नहीं कर सका। ओलिन के सिद्धान्त में खूबी यह है कि वह उनकी सतोषजनक व्याख्या करता है।

9 क्लासिकी सिद्धान्त दो देशो के बीच व्यापार से होने वाले लाभ प्रदर्शित करता है। यह कल्याण-सिद्धान्त से सम्बन्धित है। दूसरी ओर, ओलिन-मॉडल वैज्ञानिक है और व्यापार के मूल-आधार पर ध्यान सकेन्द्रित करता है। इस प्रकार यथार्थमूलक सिद्धान्त का गुण ग्रहण कर लेता है।

10 हैबरलर के अनुसार, ओलिन सिद्धान्त एक अवस्थिति सिद्धान्त (location theory) है जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे स्थान साधन के महत्व को मुख्यता देता है जबकि क्लासिकी सिद्धान्त विभिन्न देशो को स्थानहीन बाजार मानता है। इस प्रकार क्लासिकी सिद्धान्त से ओलिन का सिद्धान्त श्रेष्ठ है।

11 यह सिद्धान्त स्पष्टतया दो देशो के उत्पादन फलनो की मान्यता पर आधारित है। दूसरी ओर, क्लासिकी सिद्धान्त व्यापार कर रहे देशो के उत्पादनो मे भिन्नताओ पर आधारित है।

12 ओलिन का सिद्धान्त क्लासिकी सिद्धान्त से अधिक वास्तविक है क्योकि यह एक देश द्वारा एक वस्तु के उत्पादन मे पूर्ण विशिष्टीकरण की ओर ले जाता है तथा दूसरे देश को दूसरी वस्तु मे, जब दोनो देश एक दूसरे के साथ व्यापार करते हैं। इसकी तुलना मे, क्लासिकी सिद्धान्त म दो देशो के बीच व्यापार पूर्ण विशिष्टीकरण की ओर ले जा भी सकता है और नहीं भी।

4 इसकी आलोचनाए
(ITS CRITICISMS)

निम्नलिखित आधार लेकर ओलिन के सिद्धान्त की आलोचना की गई है।

1 *दो–एव–दो–एव–दो मॉडल (Two-by-two-by-two Model)*—ओलिन की आलोचना एक तो इस बात के लिए हुई कि उसने अति सरलीकृत मान्यताओ पर आधारित दो–एव–दो–एव–दो का मॉडल प्रस्तुत किया। परन्तु स्वय ओलिन ने लक्ष्य किया है कि इसे अनेक प्रदेशो, अनेक वस्तुओ

तथा अनेक साधनो तक विस्तारित किया जा सकता है। उसने अपनी पुस्तक के गणितीय परिशिष्ट मे इसे प्रदर्शित भी किया है।

2 *स्थैतिक सिद्धान्त (Static Theory)*—क्लासिकी सिद्धान्त की तरह ओलिन का मॉडल प्रकृति में स्थैतिक है। यह एक दिए हुए समय बिन्दु मे एक अर्थव्यवस्था को केवल कुछ विशिष्टताए ही प्रदान करता है।

3 *साधन समरूप नहीं (Factors not Homogeneous)*—यह सिद्धान्त मान लेता है कि दो देशो मे समरूप साधन विद्यमान हैं और उन्हे साधन सम्पन्नता अनुपातो की गणना करने के लिए मापा भी जा सकता है। परन्तु वास्तव मे, देशो के बीच कोइ भी दो साधन गुणात्मक दृष्टि से समरूप नहीं होते और एक साधन भी विविध प्रकार का होता है, जैसे श्रम—कुशल एव अकुशल दोनो प्रकार होता है। इसी प्रकार, पूजी पदार्थ भी अनेक प्रकार के होते हैं और वे श्रम-बचत होने पर श्रम का काय भी करते हैं।

4 *उत्पादन तकनीक समरूप नहीं होतीं (Production Techniques not Homogeneous)*—फिर, ओलिन-मॉडल यह मानकर चलता है कि दो देशो मे प्रत्येक वस्तु की उत्पादन तकनीक समरूप है। परन्तु दो देशो मे एक ही वस्तु की उत्पादन तकनीक अलग-अलग होती है। ऐसी स्थिति म, हो सकता है कि व्यापार ओलिन के तरीके से न हो। उदाहरणार्थ, कपडा हथकरघो पर उत्पादित किया जा सकता है जिन पर कम पूजी तथा अधिक श्रम की आवश्यकता पडती है या आधुनिक शक्तिचालित करघो पर जहा कम श्रम चाहिए।

5 *रुचिया और माग ढाचे समरूप नहीं (Tastes and Demand Patterns not Identical)*—यह सिद्धान्त दोनो देशो म समरूप रुचिया और उपभोक्ताओ के समान माग ढाचो की मान्यता पर आधारित है। इस मान्यता का यह मतलब है कि विभिन्न आय वर्गों के लिए माग ढाचे और रुचिया एक जैसी हैं जो अवास्तविक है। फिर, उपभोक्ता वस्तुओ मे निरन्तर खोज होने के कारण, विकसित देशो मे भी उपभोक्ताओ की रुचियो और माग ढाचो मे परिवर्तन होते हैं। इस कारण, उदाहरणार्थ, जिन वस्तुओं की यू एस ए मे उपभोक्ता माग करते हैं वे जर्मनी के उपभोक्ताओ से भिन्न होती हैं। परिणामस्वरूप, व्यापार करने वाले देशो मे रुचिया समान नहीं पाई जाती हैं।

6 *पैमाने के स्थिर प्रतिफल नहीं पाए जाते (No Constant Returns)*—इस सिद्धान्त की यह मान्यता, कि उत्पादन मे पैमाने के स्थिर प्रतिफल पाए जाते हैं, भी वास्तविक नहीं है। ऐसा इस कारण कि एक देश जो साधन सम्पन्नताओ मे समृद्ध है वह अधिक उत्पादन तथा वस्तु के अधिक निर्यात द्वारा पैमाने की मितव्ययताओ के लाभ प्राप्त करता है जिससे बढते प्रतिफल प्राप्त होते हैं न कि वे स्थिर रहते हैं।

7 *परिवहन लागतें व्यापार को प्रभावित करती हैं (Transport Costs Influence Trade)*—यह सिद्धान्त दो देशो के बीच व्यापार म परिवहन लागत को नहीं लेता। यह भी अवास्तविक मान्यता है। परिवहन लागत के साथ माल को उतारने और चढाने तथा अन्य बन्दरगाह की लागतो का दो देशो में उत्पादित की गई वस्तु की कीमत पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडता है। जब परिवहन लागत शामिल होती है तो दोनो देशों मे एक ही वस्तु की कीमत मे अन्तर बढ जाता है जो उसके व्यापार सम्बन्धो को प्रभावित करता है।

8 *लियोनतिफ विरोधाभास ने सिद्धान्त गलत सिद्ध कर दिया है (Leontief Paradox has Falsified Theory)*—ओलिन यह मान लेता है कि सापेक्ष साधन सम्पन्नताओ की सापेक्ष साधन कीमत पूर्णत प्रकट करती हैं। इसका मतलब है कि साधन कीमतो के निर्धारण मे माग की अपेक्षा

पूर्ति अधिक महत्वपूर्ण है। पर, यदि साधन कीमतों के निर्धारण में माग-साधनों को अधिक महत्व दिया जाएगा तो पूंजी-धनिक देश श्रम-गहन वस्तु निर्यात करेगा क्योंकि पूंजी के लिए अधिक माग, श्रम की सापेक्षता मे पूंजी की कीमत बढा देगी। प्रो लियोनतिफ द्वारा किए गए ओलिन-सिद्धान्त के आनुभाविक अध्ययन से (जिसे लियोनतिफ विरोधाभास भी कहते हैं) ये विरोधाभासी परिणाम प्राप्त हुए हैं कि यद्यपि संयुक्त राज्य अमरीका पूंजी-धनिक देश है, तथापि वह श्रम-गहन वस्तुओं का निर्यात और पूंजी-गहन वस्तुओं का आयात करता है।[2]

9 आंशिक सतुलन विश्लेषण (Partial Equilibrium Analysis)—प्रो हैबरलर ने ओलिन की इसलिए आलोचना की है कि वह एक व्यापक सामान्य सतुलन सधारणा विकसित करने में असफल रहा। वह समझता है कि ओलिन का सिद्धान्त, मोटे तौर पर, एक आंशिक सतुलन विश्लेषण ही है।

10 साधन कीमते वस्तु कीमतों को निर्धारित नहीं करतीं (Factor Prices do not Determine Commodity Prices)—विजनहोल्ड्ज ने ओलिन के इस मत की आलोचना की है कि वस्तु कीमतो को साधन कीमतें निर्धारित करती हैं और साधन कीमतें आगे लागतों को निर्धारित करती है। उसका मत है कि उपभोक्ताओं के लिए वस्तुओं की उपयोगिता वस्तुओं की कीमतों को निर्धारित करती है और कच्चे माल तथा श्रम की कीमतें अन्तत अन्तिम वस्तुओं की कीमतो पर निर्भर करती हैं। उसका निश्चित मत है कि सही पद्धति यह है कि साधन कीमतो की बजाय वस्तु कीमतों से चला जाए।[3]

11 अवास्तविक मान्यताए (Unrealistic Assumptions)—ओलिन का सिद्धान्त पूर्ण रोजगार तथा पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है क्योंकि न तो किसी देश में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है और न ही विश्व-व्यापार में पूर्ण प्रतियोगिता है बल्कि व्यापार में बडे स्तर पर प्रतिबन्ध विद्यमान हैं।

12 अस्पष्ट तथा सशर्त सिद्धान्त (Vague and Conditional Theory)—ओलिन के सिद्धान्त को अस्पष्ट तथा सशर्त कहा गया है। प्रो हैबरलर के अनुसार, बहुत उत्पादन के साधनों के साथ, जिनमें से कुछ विभिन्न देशो मे गुणात्मक रूप में मेल नहीं खाते हैं, तथा विभिन्न देशों में असमान उत्पादन फलनों के साथ, व्यापार की सरचना के बारे मे कोई स्पष्ट सामान्यीकरण पहले से ही सभव नहीं है।

इन आलोचनाओं के बावजूद, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का हैक्शर-ओलिन सिद्धान्त निश्चय ही क्लासिकी सिद्धान्त से श्रेष्ठ है क्योंकि यह सामान्य सतुलन परिवेश मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है।

प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के हैक्शर-ओलिन प्रमेय की आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. ओलिन के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्लासिकी सिद्धान्त से कहा तक श्रेष्ठ है?
3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. इस मत का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार देशों में साधन सम्पन्नताओं में अन्तर के कारण होता है।

---

2 W W Leontief, "Factor Proportions and the Structure of American Trade Further Theoretical and Empirical Analysis," R. E S, Vol. 38 Nov 1956

3 H W J Wijanholds, "The Theory of International Trade A New Approach" South African Journal of Economics September 1953

अध्याय 70

भुगतान शेष
(Balance of Payments)

1 अर्थ तथा संरचना
(MEANING AND STRUCTURE)

किसी देश का भुगतान-शेष किसी दिए हुए वर्ष में बाहर के देशों से किए गए उसके आर्थिक लेन-देन का व्यवस्थित रिकार्ड है। यह देश के बाकी दुनिया के साथ आर्थिक सम्बन्धों की प्रकृति तथा आयामों का सांख्यिकीय रिकार्ड होता है। बो-सोडरस्टन (Bo-Soderston) के अनुसार, "भुगतान-शेष किसी देश के लिए अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन में प्राप्तियों और भुगतान को दर्ज करने का तरीका मात्र है।" "यह देश की व्यावसायिक स्थिति को विदेशी उधारदाता अथवा उधार ग्रहणकर्ता (लेने वाला) के रूप में उसकी निवल स्थिति में परिवर्तनों को और उसके सरकारी रिजर्व धारणों में परिवर्तन को व्यक्त करता है।"[1]

किसी देश का भुगतान-शेष लेखा दोहरी प्रविष्टि (Double entry) बहीखाता के सिद्धान्त पर बनाया जाता है। प्रत्येक लेन-देन चिट्ठे (बैलेन्स शीट) के क्रेडिट और डेबिट पक्ष में दर्ज किया जाता है। परन्तु भुगतान-शेष लेखांकन एक बात में व्यापार-लेखांकन से भिन्न होता है। व्यापार-लेखांकन डेबिट प्रविष्टियां (-) बैलेन्स शीट में बाईं ओर तथा क्रेडिट प्रविष्टियां (+) बैलेंस शीट में दाईं ओर दिखाई जाती हैं। परन्तु भुगतान-शेष लेखांकन में क्रेडिट प्रविष्टियां बैलेन्स शीट के बाईं ओर तथा डेबिट प्रविष्टियां दाईं ओर दिखाने की प्रथा है।

जब किसी बाहर के देश से भुगतान प्राप्त होता है तो यह क्रेडिट सौदा है और जब किसी बाहर के देश को भुगतान किया जाता है तो यह डेबिट सौदा होता है। क्रेडिट पक्ष में दिखाई जाने वाली प्रमुख मदें ये हैं- वस्तुओं तथा सेवाओं के निर्यात, विदेशियों से उपहार इत्यादि के रूप में प्राप्त न लौटाने वाली (या हस्तान्तरण) प्राप्तियां, विदेशों से उधारग्रहण, देश में विदेशियों द्वारा किए गए निवेश, विदेशों तथा अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों को रिजर्व परिसम्पत्तियों का अधिकृत विक्रय, जिनमें सोना भी शामिल है। डेबिट पक्ष में प्रमुख मदें ये होती हैं—वस्तुओं तथा सेवाओं का आयात, विदेशियों को हस्तान्तरण भुगतान, विदेशों को उधार देना, विदेशों में आवासियों द्वारा किए गए निवेश और विदेशों तथा अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों से रिजर्व परिसम्पत्तियां अथवा सोने का सरकारी क्रय।

---

1 B J Cohen, *Balance of Payments Policy*, 1969

इन क्रेडिट तथा डेबिट मदो को देश के भुगतान-शेष लेखे मे दोहरी प्रविष्टि बहीखाता के सिद्धान्तानुसार अनुलम्ब रूप मे दिखाया जाता है। क्षैतिज रूप से उन्हे तीन श्रेणियो मे विभाजित किया जाता है—चालू लेखा, पूजी लेखा, सरकारी भुगतान लेखा अथवा सरकारी रिजर्व परिसम्पत्ति लेखा।

1 चालू लेखा (Current Account)—देश के चालू लेखो मे वे सब लेन-देन आते हैं जो वस्तुओं तथा सेवाओ के व्यापार तथा एकपक्षीय (या न लौटाये जाने वाले) हस्तान्तरणो से सम्बन्ध रखते हैं। सेवाओ के लेन-देन में यात्रा तथा परिवहन, विदेशी निवेशो पर आय तथा भुगतान इत्यादि शामिल रहते हैं। हस्तान्तरण भुगतानो का सम्बन्ध उपहारो, विदेशी सहायता, पेन्शनो, निजी प्रेषणो (remittances), विदेशियों द्वारा विदेशो के व्यक्तियो तथा सरकारो से प्राप्त खैराती उपहारो से है।

2 पूजी लेखा (Capital Account)—देश के पूजी लेखे के अन्तर्गत देश की वित्तीय परिसम्पत्तियों के लेन-देन आते हैं जो अल्पावधि एव दीर्घावधि उधार-दान तथा उधार-ग्रहण और निजी तथा सरकारी निवेशो के रूप मे पाये जाते हैं। दूसरे शब्दो मे, पूजी लेखा-ऋणो और निवेशो के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह को दर्शाता है और देश की परिसम्पत्तियो और देयताओ मे हुए परिवर्तनो को व्यक्त करता है। दीर्घावधि लेन-देन उन अन्तर्राष्ट्रीय पूजीगतियो से सम्बन्ध रखते हैं जिनकी परिपक्वता अवधि एक वर्ष या एक वर्ष से अधिक होती है और उनम प्रत्यक्ष निवेश जैसे विदेशी प्लाण्ट लगाना, निवेशसूची (portfolio) निवेश जैसे विदेशी बाडो और स्टॉको का क्रय और अन्तर्राष्ट्रीय ऋण शामिल रहते हैं।

3 सरकारी भुगतान लेखा (Official Settlements Account)—सरकारी भुगतान लेखा अथवा सरकारी रिजर्व परिसम्पत्ति लेखा वास्तव मे पूजी लेखा का ही भाग है। परन्तु इग्लेड तथा सयुक्त राज्य अमरीका के भुगतान-शेष लेखे इसे अलग लेखे के रूप मे दिखाते हैं। यह लेखा सामान्यत वर्ष के दौरान देश की विदेशी सरकारी धारको के पास तरल तथा अतरल देयताओ मे परिवर्तन को और राष्ट्र की सरकारी रिजर्व परिसम्पत्तियो मे परिवर्तन को मापता है। किसी देश की सरकारी रिजर्व परिसम्पत्तियो मे उसका स्वर्ण का स्टॉक, उसकी परिवर्तनीय विदेशी करेंसिया तथा *SDR* के धारण और *IMF* मे उसकी निवल स्थिति शामिल हैं।

चालू लेखे और पूजी लेखे का जोड बुनियादी (basic) शेष कहलाता है। देश *A* का भुगतान-शेष लेखा तालिका 1 मे प्रस्तुत किया गया है।

चालू लेखे मे सबसे महत्वपूर्ण मद व्यापारिक माल का निर्यात और आयात है। किसी देश के निर्यात और आयात का अन्तर उसका व्यापार शेष होता है। यदि प्रत्यक्ष आयात से प्रत्यक्ष निर्यात बढ जाए, तो व्यापार शेष अनुकूल होता है। यदि स्थिति इसके विपरीत हो तो व्यापार शेष प्रतिकूल होगा।

पर वस्तुत सेवाए तथा हस्तान्तरण भुगतान अथवा चालू लेखे की अप्रत्यक्ष मद ही भुगतान-शेष लेखे का सही रूप प्रस्तुत करती हैं। ये तथा दृश्य मद वास्तविक चालू लेखा स्थिति को निर्धारित करती हैं। यदि वस्तुओ तथा सेवाओ के आयात से वस्तुओ तथा सेवाओ के निर्यात अधिक हों, तो भुगतान शेष अनुकूल होता है। इसके विपरीत स्थिति मे वह प्रतिकूल होगा।

चालू खाते मे, वस्तुओ तथा सेवाओ के निर्यात और हस्तान्तरण भुगतानो की प्राप्तिया क्रेडिट के रूप मे दर्ज की जाती हैं क्योकि ये विदेशियो से प्राप्त होती हैं। दूसरी ओर, वस्तुओ तथा सेवाओ के आयात और विदेशियो को किए गए हस्तान्तरण भुगतान, डेबिट के रूप मे दर्ज किए जाते हैं क्योकि विदेशियो को उनका भुगतान किया जाता है।

तालिका 1
भुगतान-शेष लेखा

क्रेडिट (+) (प्राप्तिया)	डेबिट (-) (भुगतान)
1 चालू लेखा	
निर्यात	*आयात*
(क) वस्तुए	(क) वस्तुए
(ख) सेवाए	(ख) सेवाए
(ग) हस्तान्तरण भुगतान	(ग) हस्तान्तरण भुगतान
2 पूजी लेखा	
(क) विदेशों से उधार ग्रहण	(क) विदेशों को उधार देना
(ख) विदेशों द्वारा किए गए प्रत्यक्ष निवेश	(ख) विदेशों मे किए गए प्रत्यक्ष निवेश
3 सरकारी भुगतान लेखा	
सरकारी विदेशी धारणो मे वृद्धि	स्वर्ण तथा विदेशी करेन्सियो के सरकारी धारणों मे वृद्धि
अशुद्धिया और भूल-चूक	

पूजी लेखा मे दो प्रकार के लेन-देन आते हैं - निजी और सरकारी। निजी लेन-देन के अन्तर्गत सभी प्रकार के निवेश आते हैं प्रत्यक्ष, निवेशसूची तथा अल्पाधिक निवेश। सरकारी निवेशो मे विदेशो की सरकारी एजेन्सियो से लिये और उन्हें दिए गए ऋण आते हैं।

पूजी लेखा में, विदेशो से लिये गए उधार और विदेशो द्वारा किए गए प्रत्यक्ष निवेश पूंजी के *अन्तर्प्रवाहों अथवा क्रेडिटो को व्यक्त करते हैं क्योंकि ये विदेशियों से प्राप्तियां होती हैं।* दूसरी ओर, विदेशो को जो उधार दिए जाते हैं और विदेशो मे जो प्रत्यक्ष निवेश किये जाते हैं, वे सब पूजी बहिर्प्रवाहों अथवा डेबिटो को व्यक्त करते हैं क्योंकि वे विदेशियो को भुगतान किए जाते हैं।

सरकारी भुगतान लेखा देश A को निवल सरकारी रिजर्व परिसम्पत्तियों के लेन-देन व्यक्त करता है।

अशुद्धिया और भूल-चूक सतुलन मद है ताकि दोहरी प्रविष्टि बहीखाता नियमों के अनुसार तीनों लेखो के कुल क्रेडिट और कुल डेबिट अवश्य एक दूसरे के बराबर हो क्योंकि लेखांकन की दृष्टि से किसी देश के भुगतान शेष हमेशा सतुलन मे होते हैं।

जब हम यह कहते हैं कि भुगतान शेष हमेशा सतुलन मे होते हैं तो इसका मतलब है कि इन लेखों में से एक मे निवल क्रेडिट शेष के मुकाबले अन्य किसी एक खाते मे, अथवा अन्य दोनो खातो *में मिलकर, उतना ही निवल डेबिट शेष होना चाहिए।* तीनों लेखो के निवल क्रेडिट और डेबिट शेषों का बीजगणितीय जोड हर हालत मे शून्य होगा।

2. क्या भुगतान-शेष हमेशा संतुलन में होते है ?
(IS BALANCE OF PAYMENTS ALWAYS IN EQUILIBRIUM?)

भुगतान-शेष में घाटा या अतिरेक रहता ही है। जब $B=R_f=P_f$ तो भुगतान-शेष सतुलन मे होते हैं। यहां B भुगतान-शेष को, R_f विदेशियो से प्राप्तियो को, और P_f विदेशियो को किए गए भुगतानो को

व्यक्त करते हैं। जब $R_f - P_f > 0$, तो इसका मतलब है कि विदेशियों को किए गए भुगतानों की अपेक्षा विदेशियों से हुई प्राप्तियाँ अधिक हैं और भुगतान-शेष में अतिरेक (surplus) है। दूसरी ओर जब $R_f - P_f < 0$, अथवा $R_f < P_f$ तो भुगतान-शेष में घाटा है क्योंकि विदेशियों को जो भुगतान किए गए हैं, वे विदेशियों से हुई प्राप्तियों से अधिक हैं।

यदि निवल विदेशी उधार, दान तथा विदेशों में निवेश को लिया जाए, तो लोचदार विनिमय दर निर्यात को आयात से बढ़ा देती है। अन्य करेन्सियों के दामों में घरेलू करेन्सी का मूल्य घट जाता है। आयात की सापेक्षता में निर्यात अधिक सस्ते हो जाते हैं। इसे समीकरण के रूप में यों दिखाया जा सकता है:

$$X + B = M + I_f$$

जहां X निर्यात को, M आयात को, I_f विदेशी निवेश को और B विदेश से उधार लेने को व्यक्त करते हैं

अथवा
$$X - M = I_f - B$$
अथवा
$$(X - M) - (I_f - B) = 0$$

यह समीकरण बताता है कि भुगतान शेष सतुलन में है। चालू लेखा के धनात्मक शेष का उसके पूंजी लेखा का ऋणात्मक शेष पूर्ण रूप से क्षतिपूर्ति कर देता है, और उलट भी। लेखाकन की दृष्टि से, भुगतान-शेष हमेशा सतुलन में होता है। इसे निम्न समीकरण की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है

$$C + S + T = C + I + G + (X - M)$$
अथवा
$$Y = C + I + G + (X - M)$$

जहां C उपभोग व्यय को, S घरेलू बचत को, T कर प्राप्तियों को, I निवेश व्यय को, G सरकारी व्यय को, X वस्तुओं तथा सेवाओं के निर्यात को और M वस्तुओं तथा सेवाओं के आयात को व्यक्त करते हैं।

ऊपर दिए गए समीकरण में $C+S+T$ सकल राष्ट्रीय उत्पाद (*GNI*) अथवा राष्ट्रीय आय (Y) है; और $C+I+G=A$, जहां A को अवशोषण (absorption) कहा जाता है। लेखाकन की दृष्टि से, यह आवश्यक है कि कुल घरेलू व्यय ($C+I+G$) और चालू आय ($C+S+T$) बराबर हो अर्थात् $A=Y$, तो घरेलू बचतें (S_d) और घरेलू निवेश (I_d) भी बराबर होने चाहिए। इसी तरह, आवश्यक है कि चालू खाते में निर्यात अतिरेक ($X>M$) को निवेश से बढ़ी हुई घरेलू बचत ($S_d>I_d$) क्षतिपूर्ति कर दे। इस प्रकार, लेखाकन की दृष्टि से, भुगतान-शेष हमेशा सन्तुलन में होता है।

यदि भुगतान-शेष हमेशा सन्तुलित रहता है, तो किसी देश के भुगतान-शेष में घाटा या अतिरेक क्यों प्रकट होता है? घाटे या अतिरेक की सम्भावना केवल उस स्थिति में नहीं होती, जब भुगतान-शेष में सब मदें शामिल कर ली जाएं। यदि किसी देश में भुगतान-शेष में से कुछ मदें निकाल दी जाएं, और फिर शेष निकाला जाए, तो इसमें घाटा या अतिरेक आ सकता है।

भुगतान-शेष में घाटे या अतिरेक को मापने के तीन तरीके हैं। *प्रथम, बुनियादी शेष* (basic balance) होता है जिसमें चालू लेखा शेष और दीर्घावधि पूंजी लेखा शेष शामिल हैं। *दूसरा, निवल तरलता शेष* (net liquidity balance) है जिसमें बुनियादी शेष तथा अल्पावधि निजी अतरल पूंजी शेष शामिल हैं। *तीसरा, सरकारी भुगतान शेष* (official settlements balance) है जिसमें कुल निवल तरल शेष तथा अल्पावधि निजी तरल पूंजी शेष शामिल हैं।

इन शेषो के बीच सम्बन्ध को सक्षिप्त रूप मे तालिका 2 मे दिया गया है।

तालिका 2

व्यापार शेष	a
हस्तान्तरण भुगतान शेष	b
चालू लेखा शेष	$c(=a+b)$
दीर्घावधि पूजी शेष	d
बुनियादी शेष	$e(=c+d)$
अल्पावधि निजी अतरल पूजी	f
SDRs का आवटन	g
अशुद्धिया और भूल-चूक	h
निवल तरलता शेष	$i(=e+f+g+h)$
अल्पावधि निजी तरल पूजी शेष	j
सरकारी भुगतान शेष	$k(=i+j)$

प्रत्येक शेष, घाटे का अलग-अलग चित्र प्रस्तुत करेगा। जो मदे एक विशिष्ट शेष मे शामिल की जाती हैं, वे 'रेखा के ऊपर' रखी जाती हैं और जो मदे निकाल दी जाती हैं, वे 'रेखा के नीचे' रखी जाती है। जो मदे रेखा के नीचे रखी जाती है वे निपटारा (settlement) अथवा समायोजक (accommodating) अथवा क्षतिपूरक (compensatory) मदें कहलाती हैं। दूसरी ओर, जो मदे रेखा के नीचे रखी जाती हैं, वे स्वायत्त (autonomous) मदे कहलाती हैं। सैद्धान्तिक विश्लेषण मे, भुगतान-शेष मे असतुलन का अर्थ है स्वायत्त मदो का शेष। अल्पावधि पूजी लेन-देन के क्षतिपूरण का उद्देश्य भुगतान-शेष की स्वायत्त मदो मे असतुलन को दूर करना है।

परन्तु इस बात का निर्णय करना कठिन है कि कौन-सी मद क्षतिपूरक है और कौन-सी स्वायत्त है। उदाहरणार्थ, ऊपर दी गई तालिका मे तीनो शेषो मे प्रमुख अन्तर इस बात का है कि वे अल्पावधि मे पूजी गतियो को किस प्रकार लेती हैं, क्योकि ये गतिया भुगतान शेष मे घाटे के लिए उत्तरदायी होती हैं। बुनियादी शेष तो अल्पावधि मे निजी अतरल पूजी गतियो को रेखा के नीचे रखता है जबकि निवल तरल शेष उन्हे रेखा के ऊपर रखता है। इसी प्रकार निवल तरल अल्पावधि मे निजी तरल पूजी गतियो को रेखा के नीचे रखता है और सरकारी भुगतान शेष उन्हे रेखा के ऊपर रखता है।

उपर्युक्त विश्लेषण स्थिर विनिमय दरों की मान्यता पर आधारित है। इस प्रकार, स्थिर विनिमय दरो की प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय-शेष मे घाटा (या अतिरेक) सभव है। परन्तु स्वतन्त्र रूप मे कार्यशील विनिमय दरो की प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय शेष मे सिद्धान्त मे कोई घाटा (या अतिरेक) नहीं हो सकता। और फिर लेखाकन के आधारभूत नियम के अनुसार वास्तविक लेखाकन की दृष्टि मे, भुगतान-शेष हमेशा सतुलन मे होता है। अन्तिम बात यह है कि इस तरह का भुगतान-शेष केवल तभी सतुलन में हो सकता है, जब क्षतिपूर्वक लेन-देन न हो।

3 व्यापार-शेष और भुगतान-शेष
(BALANCE OF TRADE AND BALANCE OF PAYMENTS)

किसी देश के भुगतान-शेष उसके किसी एक वर्ष में किए गए अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देनों की प्राप्तियो और भुगतानो का व्यवस्थित रिकार्ड होता है। प्रत्येक लेन-देन को बैलेन्स शीट के क्रेडिट पक्ष और डेबिट पक्ष मे दर्ज किया जाता है (देखिए तालिका 1)। क्रेडिट पक्ष मे दर्ज की जाने वाली प्रमुख मदे ये हैं (1) प्रत्यक्ष निर्यात जो निर्यातित वस्तुओं से सम्बन्ध रखते हैं जिनके बदले देश को भुगतान प्राप्त होते हैं। (2) अप्रत्यक्ष निर्यात जो उन सेवाओ को व्यक्त करते हैं जो एक देश अन्य देशों को प्रदान करता है। इस तरह की सेवाओ के अन्तर्गत बैंकिंग, बीमा, जहाजरानी तथा तकनीकी ज्ञान इत्यादि के रूप मे प्रदान की गई सेवाए, देश मे आने वाले पर्यटकों तथा विद्यार्थियों द्वारा यात्रा और शिक्षा पर खर्च की गई मुद्रा आती हैं। (3) विदेशियों से उपहारों के रूप मे प्राप्त हस्तान्तरण प्राप्तिया (4) विदेशों से लिये गए उधार और विदेशियो द्वारा देश मे किए गए निवेश। (5) विदेशों तथा अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ द्वारा किया गया रिजर्व परिसम्पत्तियो का सरकारी विक्रय।

डेबिट पक्ष मे प्रमुख मदे निम्न होती है- (1) प्रत्यक्ष आयात जो आयातित वस्तुओ से सम्बन्ध रखते हैं जिनके बदले मे कोई देश विदेशों का भुगतान करता है। (2) विदेशो द्वारा प्रदान की गई सेवाओ के बदले घरेलू देश द्वारा किए गए भुगतान के रूप मे अप्रत्यक्ष आयात। इनके अन्तर्गत व सभी मदे शामिल हैं जिनका ऊपर के अनुच्छेद मे (2) के अन्तर्गत उल्लेख हुआ है। (3) उपहारो इत्यादि के रूप में विदेशियों को किए गए हस्तान्तरण भुगतान। (4) विदेशो को दिए गए ऋण, विदेशो मे आवासियों द्वारा किए गए निवेश, और विदेशों को ऋणो के पुनर्भुगतान। (5) विदेशों तथा अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओं से रिजर्व परिसम्पत्तिया अथवा स्वर्ण का सरकारी क्रय।

यदि क्रेडिट पक्ष मे विदेशियो से हुई कुल प्राप्तिया, डेबिट पक्ष में विदेशियो को किए गए भुगतानो से बढ जाए, तो भुगतान-शेष अनुकूल होता है। दूसरी ओर, यदि विदेशियों को किए गए भुगतान विदेशियो से हुई प्राप्तिया से बढ जाए तो भुगतान शेष प्रतिकूल होता है।

व्यापार-शेष निर्यातित और आयतित वस्तुओ तथा सेवाओं के मूल्य का अन्तर होता है। इसमे भुगतान-शेष लेखा के क्रेडिट और डेबिट पक्षों की पहली दो मद आती हैं। इसे 'चालू लेखा का भुगतान-शेष' कहते हैं। कुछ अर्थशास्त्रियो ने व्यापार-शेष की परिभाषा यह दी है कि व्यापार-शेष व्यापारिक माल के निर्यात तथा आयात के मूल्य का अन्तर होता है। प्रो मीड (Meade) का मत है कि देश की राष्ट्रीय आय के दृष्टिकोण से व्यापार-शेष को परिभाषित करने का यह ढग गलत है और कम आर्थिक महत्त्व रखता है। समीकरण रूप मे भुगतान-शेष है $Y=C+I+G+(X-M)$ जिनमे वे सभी लेन-देन शामिल हैं जो राष्ट्रीय आय को उत्पन्न अथवा समाप्त करते हैं। इस समीकरण मे Y राष्ट्रीय आय को, C उपभोग व्यय को, I निवेश व्यय को, G सरकारी व्यय को, X वस्तुओ तथा सेवाओ के निर्यात को और M वस्तुओं तथा सेवाओ के आयात को व्यक्त करते हैं। व्यजक $(X-M)$ व्यापार-शेष को व्यक्त करता है। यदि X और M का अन्तर शून्य है, तो व्यापार-शेष सतुलित हो जाता है। यदि M की अपेक्षा X बडा है, तो व्यापार-शेष अनुकूल है अथवा या कहिए कि अतिरेक व्यापार-शेष है। दूसरी ओर, यदि M से X कम है तो व्यापार-शेष मे घाटा है अथवा कि व्यापार-शेष प्रतिकूल है।

असतुलन के कारण (Causes of Disequilibrium)

कई कारण हैं जो एक देश के भुगतान-शेष मे घाटा या अतिरेक ला सकते हैं।

प्रथम, व्यापार में आकस्मिक परिवर्तन, मौसमी उतार-चढ़ाव, कृषि उत्पादों पर मौसम के प्रभाव इत्यादि कुछ ऐसे कारण है जो अस्थायी रूप से असतुलन उत्पन्न कर देते हैं। आशा यह की जाती है कि इस तरह के अस्थायी कारणों से उत्पन्न होने वाले घाटे या अतिरेक थोड़े समय म अपने आप ठीक हो जाएगे।

दूसरे, कुछ चिरकालिक अथवा *आधारभूत* असतुलन होते हैं। वे अर्थव्यवस्था के भीतर आधारभूत परिवर्तनों के कारण उत्पन्न हो सकते हैं। वे देश क भीतर या विदेशो मे उपभोक्ता रुचियो मे परिवर्तनो के कारण उत्पन्न हो सकते हैं और परिणामस्वरूप देश के आयात तथवा निर्यात को प्रभावित करते हैं।

तीसरे, उत्पादन के तरीको मे प्रौद्योगिकीय परिवर्तन, घरेलू उद्योगा अथवा अन्य देशो के उद्योगो के उत्पादन भी घरेलू या विदेशी बाजारो मे देश की प्रतियोगिता क्षमता को प्रभावित कर सकते हैं। इसका कारण यह है कि प्रौद्योगिकीय सुधारो के परिणामस्वरूप उत्पादनो की लागतो और कीमतो तथा गुणवत्ता मे परिवर्तन हो जाते हैं।

चौथे, देश की राष्ट्रीय आय म परिवर्तन होना भी मतुलन का एक कारण है। यदि देश की राष्ट्रीय आय बढेगी, तो आयात बढ जाएगे और परिणाम यह होगा कि यदि अन्य बाते समान रहे तो भुगतान-शेष मे घाटा उत्पन्न हो जाएगा। यदि देश पहले ही पूर्ण रोजगार के स्तर पर है, तो आय बढने से कीमतो मे स्फीतिकारी वृद्धि होगी और देश के आयात बढ जाएगे जो भुगतान-शेष मे असतुलन उत्पन्न कर देगे।

पाचवे, भुगतान-शेष मे असतुलन उत्पन्न होने का एक अन्य कारण स्फीति है। जब देश मे स्फीति आती है तो निर्यात की कीमत बढ जाती है। परिणामस्वरूप, निर्यात कम हो जाते हैं। पर साथ ही आयात की माग भी बढ जाती है। इस प्रकार निर्यात कीमतो के बढने से निर्यात के कम होने और आयात के बढने का परिणाम यह होता है कि भुगतान-शेष प्रतिकूल हो जाता है।

छठे, किसी देश का भुगतान-शेष उसके आर्थिक विकास की अवस्था पर भी निर्भर करता है। यदि देश विकास की प्रक्रिया में से गुजर रहा है तो उसके भुगतान-शेष मे घाटा होगा क्योकि वह कच्चे माल, मशीनरी, पूजी-उपकरण, और विकास प्रक्रिया मे सम्बद्ध सेवाओ का आयात करता है और प्राथमिक उत्पादन निर्यात करता है। देश के महगे आयात के लिए भुगतान तो अधिक करना पडता है और सस्ते निर्यात के बदले प्राप्ति कम होती है। इससे उसके भुगतान-शेष मे असतुलन हो जाता है।

अन्तिम, देशो के उधार लेन-देन और उधार से भी भुगतान-शेष मे असतुलन पैदा हो जाता है। जो देश दूसरे देशो को बडे पैमाने पर ऋण और अनुदान देता है, उसके पूजी लेखे के भुगतान-शेष मे घाटा होगा। यदि वह आयात भी अधिक कर रहा है, जैसे सयुक्त राज्य अमरीका, तो उसके भुगतान-शेष मे चिरकालिक घाटा रहेगा। दूसरी ओर, जो विकासशील देश दूसरे देशो और अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ से बहुत अधिक कोष उधार लेता है, उसका भुगतान-शेष अनुकूल हो सकता है। परन्तु इसकी सम्भावना बहुत कम है क्योकि ये देश प्राय खाद्य सामग्री, कच्चा माल, पूजीगत वस्तुए इत्यादि भारी मात्रा मे आयात करते हैं और प्राथमिक उत्पादन ही निर्यात करते हैं। इस तरह से उधार लेना केवल भुगतान-शेष के घाटो को कम करने मे ही सहायक होते हैं।

4. भुगतान-शेष का समायोजन अथवा असतुलन ठीक करने के उपाय (ADJUSTMENT IN BALANCE OF PAYMENTS OR MEASURES TO CORRECT DISEQUILIBRIUM)

जब किसी देश के भुगतान-शेष मे घाटा या अतिरेक होता है, तो उसका समायोजन अपने आप हो

जाता है, जो या तो कीमत तथा आय परिवर्तनो के माध्यम से लाया जाता है, या फिर अवमूल्यन तथा प्रत्यक्ष नियन्त्रण जैसे कुछ नीति उपाय अपनाकर लाया जाता है। हम आगे इन उपायो का अध्ययन कर रहे हैं।

1 विनिमय मूल्यह्रास के माध्यम से समायोजन (कीमत प्रभाव) [Adjustment through Exchange Depreciation (Price Effect)]

लचीली विनिमय दरो के अन्तर्गत, विदेशी विनिमय की माग और पूर्ति की शक्तिया अपने आप भुगतान-शेष के असतुलन को ठीक कर देती हैं। विनिमय दर करेन्सी की कीमत है जिसे अन्य वस्तुओ की कीमत की भाति माग और पूर्ति निर्धारित करते हैं। बदलती हुई पूर्ति एव माग की स्थितियों के साथ-साथ विनिमय दर बदलती रहती है, परन्तु ऐसी विनिमय दर निकाल पाना सदैव सम्भव है जो विदेशी विनिमय बाजार का समाशोधन करे और बाह्य सतुलन स्थापित करे[1]। यदि देश के भुगतान-शेष मे घाटा हो तो देश की करेन्सी का मूल्यह्रास और यदि देश के भुगतान-शेष मे अतिरेक हो तो देश की करेंसी की मूल्यवृद्धि करने पर अपने आप सतुलन स्थापित हो जाता है। करेन्सी के मूल्यह्रास का मतलब है कि उसका सापेक्ष मूल्य घट जाता है और मूल्यवृद्धि का अर्थ है कि उसका सापेक्ष मूल्य बढ जाता है। मूल्यह्रास से निर्यात को प्रोत्साहन मिलता है और आयात हतोत्साहित होते है जबकि मूल्यवृद्धि की स्थिति इसके उलट होती है। जब विनिमय मूल्यह्रास हो तो विदेशी कीमते, घरेलू कीमतो मे रूपान्तरित हो जाती हैं। मानलीजिए कि पाउण्ड के अनुपात मे डालर का मूल्यह्रास होता है। इसका मतलब है कि विदेशी विनिमय बाजार मे पाउण्ड के अनुपात मे डालर की कीमत कम हो जाती है। इससे इंग्लैण्ड मे अमरीका से निर्यात की कीमत गिर जाती हैं और अमरीका मे इग्लैण्ड से आयात की कीमते बढ जाती हैं। जब अमरीका मे आयात कीमते बढ जाएगी, तो अमरीका के लोग अग्रेजो से कम वस्तुए खरीदेंगे। दूसरी ओर, जब अमरीका के निर्यात की कीमते कम होंगी तो इग्लैण्ड मे उनका विक्रय बढ जाएगा। इस प्रकार अमरीका के निर्यात बढेंगे और आयात कम हो जाएगे, परिणामस्वरूप भुगतान-शेष मे सतुलन आ जाएगा।

समायोजन प्रक्रिया को चित्र 70 1 *(A)* मे स्पष्ट किया गया है जहा D अमरीका के विदेशी विनिमय का माग वक्र है जो इग्लैण्ड के आयात की माग को व्यक्त करता है और S अमरीका के विदेशी विनिमय का पूर्ति वक्र है जो इग्लैण्ड को उसके निर्यात व्यक्त करता है। अमरीका के विदेशी विनिमय की माग और पूर्ति बिन्दु P पर सतुलन मे है जहा अमरीकी डालर और अग्रेजी पाउण्ड के बीच विनिमय दर OE है और विनिमय की मात्रा OQ है।

मानलीजिए कि इग्लैण्ड के साथ अमरीका के भुगतान-शेष मे असतुलन उत्पन्न हो जाता है। इसे माग वक्र के D से D_1 पर सरकने द्वारा दिखाया गया है और घाटा PP_1 के बराबर है। इसका मतलब है कि अमरीका मे इग्लैण्ड से आयात की माग बढ जाती है जिसके परिणामस्वरूप पाउण्ड की माग बढती है। इसका मतलब है कि अमरीकी डालर का मूल्यह्रास हो गया है और अग्रेजी पाउण्ड की मूल्यवृद्धि हो गई है। परिणामस्वरूप अमरीका मे अग्रेजी वस्तुओ की आयात कीमते बढ जाती हैं और अमरीकी निर्यात की कीमते गिर जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि नया सतुलन P_1 पर और नई विनिमय दर E_1 पर स्थापित होती है जिससे भुगतान-शेष का घाटा समाप्त हो जाता है। विदेशी विनिमय की माग

1 Bo Soderston, *International Economics*, p 215
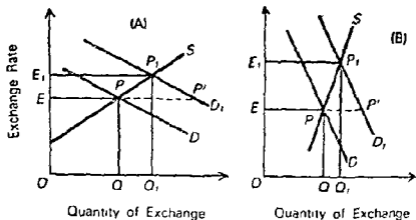
चित्र 70 1

OQ_1 पर विदेशी विनिमय की पूर्ति के बराबर हो जाती है और भुगतान-शेष में सन्तुलन आ जाता है।

उपर्युक्त विश्लेषण विनिमय दर की पूर्ति और माग की सापेक्ष लोच की मान्यता पर आधारित है। परन्तु दोनो देशो मे सापेक्ष कीमतो पर मूल्यह्रास का पूरा प्रभाव मापने के लिए, माग और पूर्ति की स्थितियो का सापेक्ष लोचदार होना ही पर्याप्त नहीं है। बल्कि विदेशी विनिमय की माग तथा पूर्ति की कम लोच महत्वपूर्ण है। इसे चित्र 70 1 (*B*) मे दिखाया गया है जहां विनिमय दर के मूल कम लोचदार माग और पूर्ति वक्र क्रमश D और S हैं जो परस्पर P पर काटते हैं और सन्तुलन विनिमय दर OE है। अब भुगतान-शेष में PP' के बराबर घाटा उत्पन्न हो जाता है। क्योंकि विदेशी माँग और पूर्ति की लोच बहुत कम होती हैं (बेलोच होती है), इसलिए सतुलन को पुन स्थापित करने के लिए डालर के बहुत अधिक मूल्यह्रास और पाउण्ड की बहुत अधिक मूल्य वृद्धि की जरूरत है। जब विदेशी विनिमय की दर बहुत अधिक बढ़कर OE_1 हो जाती है तब यह सतुलन P_1 पर स्थापित होता है। परन्तु इतने अधिक मूल्यह्रास का परिणाम यह होगा कि दोना देशों मे बहुत अधिक कीमत परिवर्तन होंगे और दोनो अर्थव्यवस्थाए छिन्न-भिन्न हो जाएगी।

लचीली ब्याज-दरो का व्यावहारिक उपयोग बहुत ही कम है। जो देश मूल्यह्रास और मूल्य वृद्धि करते हैं उनमे कीमतें गिरती और बढती हैं। उनके परिणामस्वरूप क्रमश गम्भीर मंदिया और स्फीतियां आती हैं। और फिर वे असुरक्षा और अनिश्चितता उत्पन्न करती हैं। इसका अधिक कारण विदेशी विनिमय म सट्टा है जो लचीली विनिमय-दर अपनाने वाले देशो की अर्थव्यवस्थाओ को अस्थिर बना देता है। इसलिए सरकारे विनिमय-दरो को स्थिर रखने के पक्ष म हैं जिसके लिए आवश्यक है कि नीतिगत उपाय अपनाकर भुगतान-शेष समायोजित किय जाए।

2. अवमूल्यन या व्यय-परिवर्तन नीति
(Devaluation or Expenditure Switching Policy)

अवमूल्यन को व्यय-परिवर्तन नीति भी कहा जाता है क्योंकि यह व्यय को आयातित वस्तुओ और सेवाओं से घरेलू वस्तुओं और सेवाओ की ओर मोड़ देता है। जब कोई देश अपनी करेंसी का अवमूल्यन

करता है तो विदेशी करेंसी की कीमत बढ जाती है जो आयात को महगा और निर्यात का सस्ता कर देती है। इसके कारण जब देश के निर्यात मे वृद्धि होती है तो व्यय विदेशी वस्तुओं से घरलू वस्तुओं की ओर मुड़ जाते हैं और आयातों मे कटौती से देश घरेलू और विदेशी माग को पूरा करने के लिए अधिक उत्पादन करता है। परिणामस्वरूप, भुगतान-शेष घाटा समाप्त हो जाता है।

अवमूल्यन के सही प्रभावों का मूल्याकन करने के लिए उचित यह होगा कि एक ही मुद्रा म निर्यात और आयात के कीमत परिवर्तनो का अध्ययन किया जाए। चित्र 70 2 (A) तथा (B) क्रमश निर्यात और आयात पर अवमूल्यन के इन प्रभावो को प्रदर्शित करता है। मानलीजिए अमरीकी डालर के अनुपात में अग्रेजी पाउण्ड का अवमूल्यन किया जाता है और अवमूल्यन के पहले और बाद में होने वाले कीमत परिवर्तन पाउण्ड मे लिये जाते हैं। निर्यात तथा आयात के माग और पूर्ति दोनों ही वक्र लोचदार लिये गये हैं। पहले चित्र के भाग (A) मे निर्यात को लीजिए। पाउण्ड मे निर्यात की पूर्ति पर पाउण्ड के अवमूल्यन का कोई प्रभाव नहीं पडता। इसलिए निर्यात का पूर्ति वक्र Sx नहीं बदलता। परन्तु अग्रेजी वस्तुओ के अमरीकी उपभोक्ताओं के लिए पाउण्ड के अवमूल्यन का मतलब है कि वस्तुए पहले से सस्ती हैं। परिणामस्वरूप निर्यात की माग बढ़ जाती है और माग वक्र Dx से दाईं ओर सरक कर $D'x$ पर पहुच जाता है। OX निर्यात की पूर्व-अवमूल्यन कीमत OPx है। अवमूल्यन के बाद निर्यात कीमत बढ़कर $OP'x$ हो जाती है और निर्यात की मात्रा बढकर OX_1 हो जाती है।

अब आयातों पर अवमूल्यन का प्रभाव लीजिए। जब अवमूल्यन किया जाता है तो आयात पाउण्ड
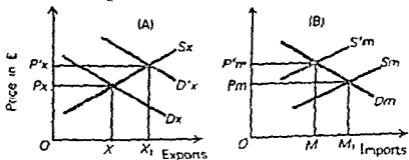
चित्र 70 2

मे महगे हो जाते हैं और अवमूल्यन से पहले की अपेक्षा उनकी मात्रा घट जाती है। इसलिए चित्र का भाग (B) आयात का पूर्ति वक्र मे Sm से सरक कर $S'm$ पर चला जाता है। परन्तु क्योंकि आयातों का माँग वक्र DM लोचदार है। इसलिए आयात की कीमतो के OPm से बढकर $OP'm$ हो जाने मे खरीदी गई मात्रा OM_1 से घटाकर OM रह जाती है।

इस प्रकार करेन्सी का अवमूल्यन करने वाले देश की करन्सी मे, अवमूल्यन निर्यात को बढाकर और आयात को घटाकर भुगतान-शेष मे सन्तुलन स्थापित कर देता है।

3 प्रत्यक्ष नियत्रण (Direct Control)

भुगतान-शेष का असन्तुलन ठीक करने के लिए सरकार प्रत्यक्ष नियत्रण उपाय अपनाती है जो आयात की मात्रा को सीमित करते हैं। सरकार भारी आयात शुल्क, अभ्यशो (कोटा) निश्चित कर,

टैरिफ आदि लगाकर अमहत्त्वपूर्ण अथवा अवाछनीय मदो के आयात को रोकती है। साथ ही, वह आवश्यक वस्तुओ के आयात को शुल्क फ्री या कम आयात शुल्क पर अथवा उदार आयात कोटा निश्चित करके देश मे आने की अनुमति दे सकती हैं। उदाहरणार्थ, सरकार पूजीगत वस्तुओ को शुल्क फ्री करने की अनुमति दे सकती है परन्तु आयात विलासिताओ पर भारी आयात शुल्क लगा सकती है। सरकार आयात कोटा भी निश्चित करती है और आयातकर्त्ताओं को कुछ आवश्यक वस्तुओ को निश्चित मात्रा मे आयात करने के लिए अधिकारियो से लाइसेन्स लेने पडते हैं। इस प्रकार, विपरीत भुगतान-शेष को ठीक करने के लिए आयात को कम किया जाता है। सरकार विनिमय नियत्रण भी लगाती है। विनिमय नियत्रण का दोहरा उद्देश्य होता है। वे आयात को रोकते हैं और विदेशी विनिमय (करेन्सी) को नियमन और नियत्रण भी करते हैं। आयात के नियत्रण और विदेशी विनिमय के नियत्रण से दृश्य एव अदृश्य आयात कम हो जाती हैं। परिणामस्वरूप, विपरीत भुगतान शेष ठीक हो जाता है।

हम प्रशुल्क (टैरिफ) की स्थिति को उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर रहे हैं। चित्र 70 3 में D तथा Sm क्रमश माग और पूर्ति वक्र हैं। प्रशुल्क लगान से पहले, OP_1 कीमत पर OQ_1 मात्रा आयात की जाती है। P_2P_T प्रशुल्क लगाने के बाद आयातित वस्तुओ की माग OQ_1 से घटकर OQ_2 रह जाती है और पूर्ति वक्र सरक कर $Sm+T$ पर चला जाता है। यद्यपि घरेलू पूर्ति कीमत बढकर OP_T हो जायेगी, पर निर्यात करने वाले देश म पूर्ति कीमत गिरकर OP_2 रह जाएगी और P_2P_T क्षेत्र सरकार को राजस्व के रूप मे प्राप्त होगा।
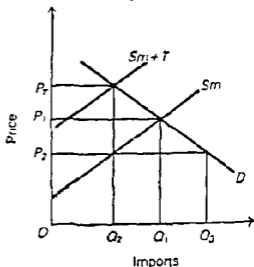
चित्र 70 3

यदि देश अपनी घरेलू करेन्सी के अतिमूल्यन के कारण अपने विदेशी विनिमय को बहुत नीची कीमत OP_2 पर बनाए रखे, तो आयात OQ_1 से बढकर OQ_3 हो जायेंगे और आयात की अति-माग के कारण घाटा Q_1Q_3 होगा। और फिर यदि सरकार इस पूर्ति को नीलाम करे, तो आयात करने वाले विदेशी विनिमय की OP_T कीमत देने को तैयार रहेंगे। ऐसी स्थिति मे भुगतान-शेष मे सुधार होगा क्योंकि आयातित वस्तुओं की मात्रा गिरकर OQ_2 रह जाएगी।

4 पूजी गतियों के माध्यम से समायोजन (Adjustments through Capital Movements)

पूजी गतिया भी भुगतान-शेष मे सन्तुलन लाती हैं। इन्हे भुगतान-शेष मे घाटा अथवा अतिरेक की वित्त-व्यवस्था करने के लिए काम मे लाया जा सकता है। पूजी अन्तप्रवाहो (inflows) से घाटे और पूजी बहिर्प्रवाहो (outflows) से अतिरेक की वित्त-व्यवस्था की जा सकती है। हम लचीली ब्याज दरों और पूर्ण पूजी गतिशीलता के अन्तर्गत समायोजन प्रक्रिया का विश्लेषण कर रहे हैं।

जब पूजी पूर्णरूप मे गतिशील होती है, तो घरेलू ब्याज दर मे होने वाले थोडे परिवर्तन ही पूजी के

बड़े प्रवाह ले आते हैं। जब घरेलू ब्याज दर विश्व-दर के बराबर हो, तो यह कहा जाता है कि भुगतान शेष सन्तुलन मे है। यदि घरेलू ब्याज दर विश्व-दर से कम होगी, तो पूजी के बहिर्प्रवाह अधिक होगे जो करेंसी का बहुत मूल्य घटा देगे। इसके विपरीत, यदि घरेलू ब्याज दर विश्व-दर से ऊची होगी तो पूंजी के बड़े अन्तर्प्रवाह होगे जो करेन्सी के मूल्य बहुत बढ़ा देगे।

पूजी गतियो के माध्यम से भुगतान-शेष म राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियो के आधार पर समायोजन होते हैं। पहले चित्र 70 4 (A) में राजकोषीय नीति दखिए जहा IS वक्र राजकोषाय नीति के कार्यकरण को व्यक्त करता है और LM वक्र मौद्रिक नीति के कार्यकरण को दर्शाता है। BOP वक्र ब्याज दर और राष्ट्रीय आय के उन सयोगो को रेखांयित करता हे जो भुगतान-शेष म सन्तुलन स्थापित करते हैं। क्षैतिज BOP वक्र बताता है कि पूजी पूर्ण रूप से गतिशील है। भुगतान-शेष केवल R_1 ब्याज दर पर सन्तुलन मे है। इससे नीची या ऊची ब्याज दर का मतलब होगा कि पूजी का अन्तप्रवाह या बहिर्प्रवाह हो रहा है। विस्तारक (expansionary) राजकोषीय नीति को लीजिए। LM वक्र दिया हुआ होने पर यह नीति IS वक्र को सरकाकर IS_1 पर ले जाती है। इससे अर्थव्यवस्था P_1 पर सन्तुलन म आ जाती है, जहा OR_2 ब्याज दर तथा OY_2 आय स्तर पर IS_1 वक्र LM वक्र को काटता है। क्योकि P_1 बिन्दु BOP रेखा से ऊपर है इसलिए भुगतान-शेष मे अतिरेक है। इस अतिरेक से विनिमय-दर की मूल्य वृद्धि हो जाती है जो आगे घरेलू उत्पादन की माग को घटा देती है। मूल्य वृद्धि की यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक घरेलू ब्याज दर विश्व-दर से ऊपर रहेगी और पूजी अन्तर्प्रवाह जारी रहेंगे। मूल्य वृद्धि तब तक वस्तुओ की माग को घटाती चलगी और राजकोषीय नीति के विस्तारक प्रभाव को समाप्त करती चलेगी जब तक कि IS_1 वक्र सरक कर वापिस IS पर नहीं आ जाता और P_1 पर सन्तुलन पुन स्थापित नहीं हो जाता जहा ब्याज दर और आय अपने मूल OR_1 तथा OY_1 स्तरो पर वापस आ जाती है। P_1 पर भुगतान-शेष सन्तुलन मे है परन्तु मूल्य वृद्धि के कारण व्यापार शेष म घाटा है, क्योंकि मूल्य वृद्धि विदेशियो के लिए घरेलू वस्तुओ की कीमते बढ़ा देती है और आयात की कीमत घटा देती हैं। परिणामस्वरूप, निर्यात घटगे और आयात बढेगे और इससे व्यापार घाटा उत्पन्न हो जायगा। विस्तारक राजकोषीय नीति द्वारा बजट घाटे के माध्यम से पूजी अन्तर्प्रवाहो के द्वारा व्यापार घाटे की वित्त-व्यवस्था करके भुगतान-शेष सन्तुलन P_1 बिन्दु पर बनाए रखा जा रहा है। इस प्रकार पूर्ण पूजी गतिशीलता के अन्तर्गत राजकोषीय नीति का आय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

विस्तारक मौद्रिक नीति को लीजिए। यह ब्याज दर को घटा देती है इसीलिए पूजी के बहिर्प्रवाह को
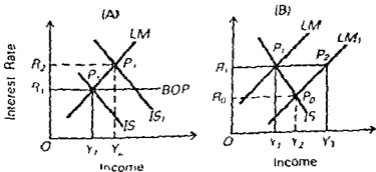
चित्र 70 4

बढ़ाती हैं जिससे भुगतान-शेष मे घाटा उत्पन्न हो जाता है। इस घाटे को कैसे दूर किया जाता है, इसे चित्र 70.4 (B) में स्पष्ट किया गया है। IS वक्र के दिए होने पर, यदि P_1 बिन्दु से चलें, तो विस्तारशील मौद्रिक नीति LM वक्र को दाईं ओर सरकाकर LM_1 वक्र पर ले जाती है। LM_1 वक्र IS को P_0 पर काटता है जिससे ब्याज दर गिरकर OR_0 रह जाती है और आय बढ़कर OY_2 हो जाती है। इनसे पूँजी के बहिर्प्रवाह होने लगते हैं और परिणामस्वरूप भुगतान-शेष मे घाटा और विनियम-दर का मूल्यह्रास होता है। मूल्यह्रास विदेश मे घरेलू वस्तुओं की माग को बढा देता है जिससे उत्पादन और आय बढ जाते हैं। इससे अर्थव्यवस्था LM_1 वक्र पर तब तक ऊपर को चलती जाती है तब तक वह P_2 बिन्दु पर नहीं पहुच जाती, जहा आय बढ़कर OY_1 हो जाती है और ब्याज की दर पुराने स्तर पर OR_1 पर आ जाती है। भुगतान-शेष मे P_2 पर सन्तुलन पुन स्थापित हो जाता है, जहा पर आय मे वृद्धि के माध्यम से आयात मे हुई वृद्धि को मूल्यह्रास के कारण व्यापार शेष का अतिरेक क्षतिपूर्ति कर देता है।

5 आय परिवर्तनों के माध्यम से समायोजन
(Adjustment through Income Changes)

निर्यात के मूल्य मे स्वायत्त वृद्धि राष्ट्रीय आय मे उतनी मात्रा में वृद्धि कर देती है जो निर्यात में वृद्धि गुणा विदेशी व्यापार गुणक के बराबर होती है। इस प्रकार विदेशी व्यापार गुणक के कार्यकरण के माध्यम से राष्ट्रीय आय बढ़ती है। 'विदेशी व्यापार गुणक उस आय-परिवर्तन को व्यक्त करता है जो खुली अर्थव्यवस्था मे निर्यात अथवा निवेश मे परिवर्तन के कारण होता है और उस खुली अर्थव्यवस्था मे आय बिखर कर आयात मे समा जाती है।"

6 निर्यात को प्रोत्साहन (Stimulation of Exports)

निर्यात को प्रोत्साहन देकर भी भुगतान-शेष का घाटा पूरा किया जा सकता है। बढ़िया वस्तुओं का उत्पादन करके, बढ़ते हुए उत्पादन और उत्पादकता के माध्यम से और बेहतर क्रय-विक्रय द्वारा निर्यातों को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। निर्यात में वृद्धि विदेशी व्यापार गुणक के कार्यकरण के माध्यम से राष्ट्रीय आय को कई गुणा बढा देती है। विदेशी व्यापार गुणक निर्यात मे परिवर्तन द्वारा लाए गए आय-परिवर्तन को व्यक्त करता है। अन्तत भुगतान-शेष का घाटा तब समाप्त होता है जब आयात से निर्यात अधिक तेजी से बढ़ें।

7. आयात नियन्त्रण (Import Control)

भुगतान-शेष असन्तुलन ठीक करने का एक अन्य उपाय आयात का नियन्त्रण करना है। इस के अन्तर्गत अनावश्यक और विलासिता की वस्तुओं के आयात पर रोक लगा दी जाती हैं अथवा उन पर भारी आयात कर लगाये जाते हैं जिससे आयातित वस्तुए महगी हो जाने से उनके आयात घट जाते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के आयात कोटा लगाकर आयात पर रोक लगाकर उनका नियमन किया जाता है जिससे निर्यात की अपेक्षा आयात कम हो जाते हैं तथा भुगतान-शेष का सन्तुलन सम्भव होता है।

8 विनिमय नियन्त्रण (Exchange Control)

विनिमय नियन्त्रण द्वारा भी सरकार प्रतिकूल भुगतान-शेष को ठीक करती है। इसके अनुसार सरकार विदेशी विनिमय बाजार को नियन्त्रित करती है। सभी विदेशी करेंसिया केन्द्रीय बैंक के पास जमा

करानी होती हैं जो उनका अवश्यकताओं के अनुसार वितरण करता है। विनिमय नियंत्रण द्वारा अन्य देशों की करेंसियों के साथ देश की विनिमय दरें स्थिर की जाती हैं जिससे भुगतान शेष मे होने वाले उतार-चढ़ाव कम होते हैं। इसके अतिरिक्त, इस नीति के अन्तर्गत विदेशों को पूजी प्रवाह तथा आयातित वस्तुओं पर व्यय की जाने वाली विदेशी मुद्राओं पर भी नियंत्रण करके भुगतान-शेष के घाटे को कम करने का प्रयत्न किया जाता है।

9 राज्य व्यापार (State Trading)

भुगतान-शेष के घाटे को कम करने के लिए आजकल बहुत से विकासशील देशों की सरकार स्वय विदेश व्यापार में सक्रिय भाग लेती हैं। निजी व्यापारी विकसित देशो के व्यापारियो के साथ जब व्यापार-सौदे करते हैं, तो उनकी सौदा करने की शक्ति कमजोर होने के कारण व्यापारी की शर्तें इन देशो के विरुद्ध जाती हैं। परन्तु जब राज्य व्यापार अपने हाथ म लेता है, तो उसका देश की वस्तुओं को निर्यात करने और विदेशों से वस्तुए आयात करने पर एकाधिकार हो जाता है। ऐसी स्थिति मे जो द्विपक्षीय सौदे किए जाते हैं वे देश के व्यापारियो के हित म होते हैं और व्यापार शर्तें भी देश के अनुकूल होती हैं। सरकार देश की आवश्यकताओ के अनुसार विदेशी मुद्राओ का प्रयोग करती है जिससे भुगतान-शेष में असन्तुलन को दूर किया जाता है।

10 व्यय-घटानेवाली नीतिया (Expenditure-Reducing Policies)

भुगतान-शेष मे घाटे का अर्थ व्यय का आय से अधिक होना है। इसे ठीक करने के लिए व्यय और आय को बराबर लाना चाहिए। व्यय-घटानेवाली नीतियो का उद्देश्य ऊँचे कर और ब्याज दरो द्वारा समस्त माँग को कम करना है, जिसमे व्यय और उत्पादन मे कटौती होती है। व्यय और उत्पादन मे कमी घरेलू कीमत-स्तर को कम करते हैं जिससे व्यय विदेशी वस्तुओं से घरेलू वस्तुओ की ओर मुड जाता है। परिणामस्वरूप, देश के आयातो म गिरावट आती है और भुगतान-शेष सन्तुलन ठीक हो जाता है।

प्रश्न

1 'भुगतान शेष में असन्तुलन' का अर्थ स्पष्ट कीजिए। यह बतलाइए कि यह कब उत्पन्न होता है तथा सन्तुलन को पुन स्थापित करने के लिए क्या उपाय अपनाने चाहिए।
2 इसकी व्याख्या कीजिए कि भुगतान-शेष सदैव सन्तुलन में होते हैं। भुगतान शेष के घाटे को दूर करने के उपायों की विवेचना कीजिए।
3 भुगतान-शेष और व्यापार शेष मे अन्तर स्पष्ट कीजिए। भुगतान शेष में असन्तुलन के कारणों की व्याख्या कीजिए।

भाग दस

आर्थिक विकास और आयोजन
(ECONOMIC DEVELOPMENT AND PLANNING)

अध्याय 71

आर्थिक विकास
(ECONOMIC DEVELOPMENT)

1 प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

विकास का अर्थशास्त्र अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। यद्यपि आर्थिक विकास के अध्ययन ने वाणिज्यवादियों तथा एडम स्मिथ से लेकर मार्क्स और केन्ज तक सभी अर्थशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया था फिर भी उनकी दिलचस्पी प्रमुख रूप से ऐसी समस्याओं में रही जिनकी प्रकृति विशेषतया स्थैतिक थी और जो अधिकतर सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं के पश्चिम यूरोपीय ढाँचे से सबंध रखती थी। वर्तमान शताब्दी के पाँचवें दशक में और विशेष रूप से दूसरे विश्व युद्ध के बाद ही अर्थशास्त्रियों ने अल्पविकसित देशों की समस्याओं के विश्लेषण की ओर ध्यान देना शुरू किया। विकास के अर्थशास्त्र में उनकी दिलचस्पी राजनैतिक पुनरुत्थान की उस लहर के द्वारा और भी बढ़ी, जो दूसरे विश्व युद्ध के बाद एशिया तथा अफ्रीका के राष्ट्रों में फैल गई थी। इन देशों के नेता शीघ्रता से आर्थिक विकास को बढ़ावा देना चाहते थे और साथ ही विकसित राष्ट्र भी यह महसूस करने लगे थे कि "किसी एक स्थान की दरिद्रता प्रत्येक अन्य स्थान की समृद्धि के लिए खतरा है।" इन दोनों बातों ने अर्थशास्त्रियों की रुचि इस विषय में और सजग हुई। जैसाकि मायर तथा बाल्डविन ने कहा है, "राष्ट्रों के धन के अध्ययन की अपेक्षा राष्ट्रों की दरिद्रता के अध्ययन की अधिक आवश्यकता है।"[1] परन्तु अल्पविकसित देशों की विशाल दरिद्रता को दूर करने में धनी राष्ट्रों की रुचि किसी मानव हितवादी उद्देश्य को लेकर नहीं जागृत हुई है। अन्य देशों के मुकाबले में अधिक सहायता देने का वचन देकर प्रत्येक देश अल्पविकसित देशों का समर्थन तथा वफादारी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

2 आर्थिक विकास अथवा आर्थिक वृद्धि
(ECONOMIC DEVELOPMENT OR ECONOMIC GROWTH)

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास और आर्थिक वृद्धि शब्दों के अर्थ को अलग ढंग से प्रयुक्त किया है। प्राय अर्थशास्त्री आर्थिक विकास शब्द का प्रयोग अल्पविकसित देशों के लिए और आर्थिक वृद्धि शब्द का प्रयोग विकसित देशों के लिए करते हैं।

[1]G M Meier and R E Baldwin *Economic Development*, p 12

हिक्स की परिभाषा — हिक्स की परिभाषा में दोनों शब्दों का अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है। उसके अनुसार, "अल्पविकसित देशों की समस्याएँ उपयोग में न लाए गए साधनों के विकास से सबध रखती हैं, भले ही उनके उपयोग भली-भांति ज्ञात हों, जबकि उन्नत देशों की समस्याए वृद्धि से सबंधित रहती हैं जिनके बहुत सारे साधन पहले से ज्ञात और किसी सीमा तक विकसित होते हैं।"[2]

परिभाषा से स्पष्ट है कि 'विकास' शब्द का सबध पिछड़े हुए देशों से है जहाँ पर साधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हुआ और उनके विकास की सभावना है। जबकि 'वृद्धि' शब्द का प्रयोग आर्थिक दृष्टिकोण से विकसित देशों मे है।

मैडिसन की परिभाषा — मैडिसन की परिभाषा द्वारा किया गया भेद सबसे सरल है। उसके शब्दों में, "आय स्तरों को ऊचा करना सामान्यतया अमीर देशों मे आर्थिक वृद्धि कहलाता है जबकि गरीब देशों में यह आर्थिक विकास कहलाता है।"[3]

कभी-कभी अल्पविकसित के पर्याय के रूप में पिछड़े अथवा गरीब शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। 'गरीब' शब्द का प्रयोग प्रति व्यक्ति आय के नीचे स्तर से है। परन्तु मैडिसन की परिभाषा दोनो प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं मे आय स्तरों को बढ़ाने वाली अतर्निहित शक्तियों को स्पष्ट नही करती है।

शुम्पीटर की परिभाषा — वास्तव में 'विकास' और 'वृद्धि' शब्दों का अर्थव्यवस्था के प्रकार से कोई सबध नही है। दोनो मे भेद परिवर्तन की प्रकृति और कारणो से है। शुम्पीटर दोनों शब्दों में भेद को स्पष्ट करते हुए कहता है कि विकास स्थिर अवस्था मे एक निरतर और स्वत प्रेरित परिवर्तन है जो पहले से वर्तमान सतुलन अवस्था को हमेशा के लिए परिवर्तित और विस्थापित करता है, जबकि वृद्धि दीर्घकाल में होने वाले क्रमिक तथा सतत परिवर्तन है जो बचतों और जनसख्या की दर मे धीरे-धीरे वृद्धि द्वारा आता है।[4] शुम्पीटर की इस परिभाषा को अधिकतर अर्थशास्त्रियों ने स्वीकृत किया और सुधारा है।

किडलबर्गर और हैरिक की परिभाषा — किडलबगर और हैरिक के अनुसार आर्थिक विश्लेषण मे कभी-कभी 'वृद्धि' और 'विकास' को पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। अक्सर ऐसा प्रयोग मान्य है लेकिन जहाँ दोनों धारणाए प्रयुक्त की जाती हैं वहा विशेषतया अलग अर्थ लिया जाता है। स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से सामान्य तौर से इनका प्रयोग इस प्रकार से है। "आर्थिक वृद्धि का मतलब अधिक उत्पादन है जबकि आर्थिक विकास का अर्थ है अधिक उत्पादन तथा तकनीकी और सस्थानिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन जिनके द्वारा यह उत्पादित और वितरित होता है"।[5]

निष्कर्ष (Conclusion) — अत आर्थिक वृद्धि का सबध देश की प्रति व्यक्ति आय या उत्पादन मे एक मात्रात्मक निरतर वृद्धि से है जो कि उसकी श्रम शक्ति उपभोग पूजी और व्यापार की मात्रा में प्रसार के साथ होती है। दूसरी ओर आर्थिक विकास एक विस्तृत धारणा है। यह आर्थिक आवश्यकताओं, वस्तुओं, प्रेरणाओं और सस्थाओं में गुणात्मक परिवर्तनों से सबधित है। यह प्रौद्योगिकी और सरचनात्मक परिवर्तनों जैसे वृद्धि के अतर्निहित निर्धारकों का वर्णन करता है। विकास में वृद्धि और ह्रास दोनो सम्मिलित होते हैं। एक अर्थव्यवस्था वृद्धि कर सकती है परन्तु यह विकास नही कर सकती क्योंकि प्रौद्योगिकी और सरचनात्मक परिवर्तनों के अभाव के कारण गरीबी, बेरोजगारी और असमानताए निरतर विद्यमान रहती है। परन्तु प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि में अभाव के कारण, विशेषकर जब जनसख्या तीव्रता से बढ़ रही है तो आर्थिक वृद्धि के बिना विकास के बारे में सोचना कठिन है।

[2] U Hicks "Learning about Economic Development" *OEP* Feb 1957
[3] A Maddison, *Economic Progress and Policy in Developing Countries* 1970
[4] J A Schumpeter *The Theory of Economic Development* pp 63 66
[5] C P Kindleberger and Herick *Economic Development* 2 e 1965

3 आर्थिक विकास अथवा आर्थिक वृद्धि के माप
(MEASUREMENT OF ECONOMIC DEVELOPMENT OR GROWTH)

आर्थिक विकास अथवा आर्थिक वृद्धि को चार तरह से मापा जा सकता है।

1 सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product)

कुछ अर्थशास्त्री सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) में वृद्धि को ही आर्थिक विकास का सूचक मानते हैं। उनके अनुसार, 'आर्थिक विकास को समय की किसी दीर्घावधि में एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के रूप में मापा जाए'। इस कथन को नीचे चित्र 71 1 से स्पष्ट किया गया है। क्षैतिज अक्ष पर समय को लिया गया है जबकि अनुलम्ब अक्ष पर राष्ट्रीय आय में परिवर्तन समय के साथ दिखाया गया है। रेखा *Ya* देश *A* में राष्ट्रीय आय के स्तर को और *Yb* देश *B* में राष्ट्रीय आय के स्तर को दर्शाती है। समय *T* तक देश *A* में राष्ट्रीय आय में वृद्धि देश *B* में अपेक्षाकृत अधिक है। लेकिन दीर्घकाल में देश *B* में विकास परियोजनाएं शुरू होने से राष्ट्रीय आय में तीव्रता से वृद्धि होती है। जैसाकि चित्र 1 1 में *E* बिन्दु के बाद $Yb > Ya$ से स्पष्ट हो रहा है। इस सदर्भ में प्रोफेसर मॉयर एवं बाल्डविन ने ठीक ही कहा है कि 'आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में दीर्घकाल में वृद्धि होती है।'
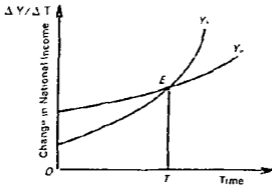
चित्र 71 1

सकल राष्ट्रीय उत्पाद के माप में कठिनाइयां (Difficulties in the Measurement of GNP)

किसी भी देश की राष्ट्रीय आय का आगणन करना एक जटिल समस्या है जिसमें निम्नलिखित कठिनाइयां पाई जाती हैं

(1) राष्ट्र की परिभाषा (Definition of income) — प्रथम कठिनाई 'राष्ट्र' की परिभाषा है। हर राष्ट्र की अपनी राजनीतिक सीमाएं होती हैं परन्तु राष्ट्रीय आय में राष्ट्र की सीमाओं से बाहर विदेशों में कमाई गई देशवासियों की आय भी सम्मिलित होती है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय के दृष्टिकोण से 'राष्ट्र' की परिभाषा राजनीतिक सीमाओं को पार कर जाती है। इस समस्या को सुलझाना कठिन है।

(2) कुछ सेवाएं (Some services) — राष्ट्रीय आय सदैव मुद्रा में ही मापी जाती है परन्तु बहुत-सी वस्तुएं और सेवाएं ऐसी होती हैं जिनका मुद्रा में मूल्यांकन करना मुश्किल होता है, जैसे किसी व्यक्ति द्वारा अपने शौक के लिए चित्र बनाना, मां का अपने बच्चों का पालन आदि। इसी

प्रकार जब एक फर्म का मालिक अपनी महिला सेक्रेटरी से विवाह कर लेता है तो उसकी सेवाएं राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं होती जबकि विवाह से पहले वह राष्ट्रीय आय का भाग होती है। ऐसी सभी सेवाएं राष्ट्रीय आय में सम्मिलित न होने से राष्ट्रीय आय कम हो जाती है।

(3) **दोहरी गणना** (Double counting) – राष्ट्रीय आय की परिगणना करते समय सबसे बड़ी कठिनाई दोहरी गणना की होती है। इसमें एक वस्तु या सेवा को कई बार गिनने की आशंका बनी रहती है। यदि ऐसा हो तो राष्ट्रीय आय कई गुना बढ़ जाती है। इस कठिनाई से बचने के लिए केवल अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं को ही लिया जाता है जो आसान काम नहीं।

(4) **अवैध क्रियाएं** (Illegal activities) – राष्ट्रीय आय में अवैध क्रियाओं से प्राप्त आय सम्मिलित नहीं की जाती जैसे, जुए या चोरी से बनाई गई शराब से आय। ऐसी सेवाओं में वस्तुओं का मूल्य होता है और वे उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को भी पूरा करती हैं परन्तु इनको राष्ट्रीय आय में शामिल न करने से राष्ट्रीय आय कम रह जाती है।

(5) **अन्तरण भुगतान** (Transfer earnings) – राष्ट्रीय आय में अन्तरण भुगतानों को सम्मिलित करने की कठिनाई उत्पन्न होती है। पैन्शन, बेरोजगारी भत्ता तथा सार्वजनिक ऋणों पर ब्याज व्यक्तियों को प्राप्त होते हैं पर इन्हें राष्ट्रीय आय में सम्मिलित किया जाए या न किया जाए, एक कठिन समस्या है। एक ओर तो ये प्राप्तियां व्यक्तिगत आय का भाग हैं, दूसरी ओर ये सरकारी व्यय हैं। यदि इन्हें दोनों ओर सम्मिलित किया जाए तो राष्ट्रीय आय में बहुत वृद्धि हो जाएगी। इस कठिनाई से बचने के लिए इन्हें राष्ट्रीय आय में से घटा दिया जाता है।

(6) **वास्तविक आय** (Real income) – फिर मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय की परिगणना वास्तविक आय का न्यून आगणन करती है। इसमें किसी वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया में किए गए अवकाश का त्याग शामिल नहीं होता। दो व्यक्तियों द्वारा अर्जित की गई आय समान हो सकती है परन्तु उनमें से यदि एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा अधिक घण्टे काम करता है तो यह कहना कुछ ठीक ही होगा कि पहले की वास्तविक आय कम बताई गई है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय वस्तु के उत्पादन की वास्तविक लागत को नहीं लेती।

(7) **सार्वजनिक सेवाएं** (Public services) – राष्ट्रीय आय की परिगणना में बहुत-सी सार्वजनिक सेवाएं भी ली जाती हैं, जिनका ठीक-ठीक हिसाब लगाना कठिन होता है। पुलिस तथा सैनिक सेवाओं का आगणन कैसे किया जाए? युद्ध के दिनों में तो सेना क्रियाशील होती है जबकि शान्ति में छावनियों में ही विश्राम करती है। इसी प्रकार सिंचाई तथा शक्ति परियोजनाओं से प्राप्त लाभों का मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय में योगदान का हिसाब लगाना भी एक कठिन समस्या है।

(8) **पूंजी लाभ या हानियां** (Capital gains or losses) – जो सम्पत्ति मालिकों को उनकी पूंजी परिसम्पत्तियों के बाजार मूल्य में वृद्धि, कमी या मांग में परिवर्तनों से होती हैं वे GNP में शामिल नहीं की जाती हैं क्योंकि ऐसे परिवर्तन चालू आर्थिक क्रियाओं के कारण नहीं होते हैं। जब पूंजी लाभ या हानियां चालू प्रवाह या उत्पादकीय क्रियाओं के अप्रवाह के कारण होते हैं तो उन्हें GNP में सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार पूंजी लाभों या हानियों की राष्ट्रीय आय में आगणन करने की बहुत कठिनाई होती है।

(9) **मालसूची परिवर्तन** (Inventory changes) – सभी मालसूची परिवर्तन चाहे वे ऋणात्मक हों या धनात्मक GNP में शामिल किये जाते हैं। परन्तु समस्या यह है कि फर्में अपनी मालसूचियों को उनकी मूल लागतों के हिसाब से दर्ज करती हैं न कि उनकी प्रतिस्थापन लागत के हिसाब से। जब कीमतें बढ़ती हैं तो मालसूचियों के अंकित मूल्य में लाभ होता है। इसके विपरीत कीमतें गिरने पर हानि होती है। अतः GNP का सही हिसाब लगाने के लिए मालसूची समायोजन की आवश्यकता होती है जो कि बहुत कठिन काम है।

(10) **मूल्यह्रास** (Depreciation) – जब पूंजी मूल्यह्रास को GNP में से घटा दिया जाता है तो NNP प्राप्त होती है। परन्तु मूल्यह्रास की गणना की समस्या बहुत मुश्किल है। उदाहरणार्थ,

यदि कोई ऐसी पूंजी परिसम्पत्ति है जिसकी प्रत्याशित आय बहुत अधिक जैसे 50 वर्ष है, तो उसकी वास्तु मूल्यह्रास दर का हिसाब लगा सकना बहुत कठिन होगा। और यदि परिसम्पत्तियों की कीमतों में प्रत्येक वर्ष परिवर्तन होता जाए, तो यह कठिनाई और बढ़ जाती है। मापसूचियों के विपरीत, मूल्यह्रास मूल्यांकन कर पाना बहुत कठिन और जटिल तरीका होता है।

(11) **हस्तांतरण भुगतान** (Transfer payments)—राष्ट्रीय आय के माप में हस्तान्तरण भुगतानों की समस्या भी पाई जाती है। व्यक्तियों को पेंशन, बेकारी भत्ता और सार्वजनिक ऋण पर ब्याज प्राप्त होते हैं परन्तु इन्हें राष्ट्रीय आय में शामिल करने की कठिनाई उत्पन्न होती है। एक ओर तो ये अर्जन व्यक्तिगत आय का भाग है और दूसरी ओर ये सरकारी व्यय है।

2 प्रति व्यक्ति आय (GNP Per Capita)

दूसरी परिभाषा का सम्बन्ध लम्बी अवधि में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि से है। 'प्रति व्यक्ति वास्तविक आय या उत्पादन में वृद्धि' के रूप में आर्थिक विकास की परिभाषा देने में अर्थशास्त्री एकमत हैं। बुकैनन तथा एलिस के अनुसार "विकास का अर्थ पूंजीनिवेश के उपयोग द्वारा अल्पविकसित क्षेत्रों की वास्तविक आय सम्भावनाओं का विकास करने के लिए ऐसे परिवर्तन लाना और ऐसे उत्पादक स्रोतों का बढ़ाना है जो प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बढ़ाने की सम्भावना प्रकट करते हैं।"* इन परिभाषाओं का उद्देश्य इस बात पर बल देना है कि आर्थिक विकास के लिए वास्तविक आय में वृद्धि की दर जनसंख्या में वृद्धि की दर से अधिक होनी चाहिए। परन्तु फिर भी कठिनाइयां रह जाती हैं।

यह सम्भव है कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप जनसाधारण के वास्तविक जीवनस्तर में सुधार न हो। यह सम्भव है कि जब प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बढ़ रही हो, तो प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा कम होती जा रही हो। हो सकता है कि लोग बचत की दर बढ़ा रहे हों, या फिर सरकार स्वयं इस बढ़ी हुई आय को सैनिक अथवा अन्य उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल कर रही हो। वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के बावजूद जनसाधारण की गरीबी का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि बढ़ी हुई आय बहुसंख्यक गरीबों के पास जाने की बजाय मुट्ठी भर अमीरों के हाथ में जा रही हो। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार की परिभाषा उन प्रश्नों को गौण बना देती है जो "समाज के ढांचे, उसकी जनसंख्या के आकार एवं बनावट, उसकी संस्थाओं तथा संस्कृति साधन-स्वरूपों और समाज के सदस्यों में उत्पादन के समान वितरण से सम्बन्ध रखते हैं।"

प्रति व्यक्ति आय आगणन की कठिनाइयाँ (Difficulties of Estimating per Capita Income)

अल्पविकसित देशों में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के माप तथा उन्नत देशों की प्रति व्यक्ति आय से उनकी तुलना करने में भी बड़ी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं जिनके कारण नीचे दिए जा रहे हैं :

(1) **अमौद्रिक क्षेत्र** (Non-monetised sector)—अल्पविकसित देशों में एक महत्वपूर्ण अमौद्रिक क्षेत्र होता है जिसके कारण राष्ट्रीय आय का हिसाब लगाना कठिन है। कृषि क्षेत्र में जो उत्पादन होता है, उसका बहुत-सा भाग या तो वस्तुओं से विनिमय कर लिया जाता है या फिर व्यक्तिगत उपभोग के लिए रख लिया जाता है। इसके परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय कम बताई जाती है।

(2) **व्यवसायिक विशिष्टीकरण का अभाव** (Lack of occupational specialisation)—ऐसे देशों में व्यवसायिक विशिष्टीकरण का अभाव होता है जिससे वितरणात्मक हिस्सों के द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना करना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त किसान ऐसी

*N.S. Buchanan and E. Ellis, *Approaches of Economic Development*, pp 21-22

अनेक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, जैसे कि अंडे, दूध, वस्त्र आदि जिन्हें प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के अनुमान में कभी शामिल नहीं किया जाता।

(3) **अशिक्षितता (Illiteracy)**—अल्पविकसित देशों में लोग अधिकतर अशिक्षित होते हैं और हिसाब-किताब नहीं रखते, और यदि हिसाब-किताब रखें भी तो अपनी सही आय बताने को तैयार नहीं होते। ऐसी स्थिति में मोटे तौर पर ही अनुमान लगाया जा सकता है।

(4) **गैर-बाजार लेन-देन (Non-market transactions)**—राष्ट्रीय आय के आगणन में केवल उन वस्तुओं और सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनका वाणिज्य में प्रयोग होता है। परन्तु अल्पविकसित देशों में गाँवों में रहने वाले लोग प्राथमिक वस्तुओं से उपभोग-वस्तुओं का निर्माण करते हैं और बहुत से खर्चों से बच जाते हैं। वे अपनी झोंपड़ियाँ वस्त्र तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं स्वयं बना लेते हैं। इस प्रकार अल्पविकसित देशों में अपेक्षाकृत कम वस्तुओं का मार्केट के मार्ग से प्रयोग होता है और इसलिए वे प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के आगणन में भी शामिल नहीं होतीं।

(5) **वास्तविक आय (Real income)**—मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय की गणना वास्तविक आय का न्यून अनुमान करती है। इसमें किसी वस्तु के उत्पादन की वास्तविक लागत प्रयत्न या उत्पादन की प्रक्रिया में किए गए अवकाश का त्याग शामिल नहीं होता। दो व्यक्तियों द्वारा अर्जित की गई आय समान हो सकती है परन्तु उनमें से यदि एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा अधिक घण्टे काम करता है, तो यह कहना कुछ ठीक ही होगा कि पहले की वास्तविक आय कम बताई गई है।

(6) **कीमत परिवर्तन (Price changes)**—कीमत स्तर में परिवर्तन के कारण जो परिवर्तन उत्पादन में होते हैं उनका उचित माप राष्ट्रीय आय के आगणन में नहीं कर पाते। कीमत स्तर के परिवर्तन को मापने के लिए काम में लाए जाने वाले सूचकांक (index numbers) भी केवल मोटे तौर पर अन्दाजे से बनाए होते हैं। फिर भिन्न-भिन्न देशों में कीमत स्तर भी भिन्न होते हैं। प्रत्येक देश में उपभोक्ताओं की इच्छाएँ और अधिमान भी भिन्न होते हैं। इसलिए विभिन्न देशों के प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के आँकड़े प्रायः भ्रान्तिजनक तथा अतुलनीय होते हैं।

(7) **भ्रमपूर्ण आंकड़े (Doubtful data)**—अविश्वसनीय तथा भ्रमपूर्ण आँकड़ों के कारण अल्पविकसित देशों में प्रति व्यक्ति आय के हिसाब-किताब में उसके कम या अधिक बताए जाने की सम्भावना रहती है।

इन सब सीमाओं के बावजूद, विभिन्न देशों की आर्थिक प्रगति के स्तर के लिए सबसे अधिक व्यापक रूप से किया जाने वाला माप प्रति व्यक्ति आय ही है। फिर भी अल्पविकास के सूचकों के रूप में केवल प्रति व्यक्ति आय आगणनों का कोई मूल्य नहीं है।

3 आर्थिक कल्याण (Economic Welfare)

यह प्रवृत्ति भी होती है कि आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से आर्थिक विकास की परिभाषा दी जाए। इसी दृष्टि से तो आर्थिक विकास माना जाता है जिसमें प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होती है और उसके साथ-साथ आय की असमानताओं का अन्तर कम होता है तथा समस्त जनता के अधिमान सन्तुष्ट होते हैं। इसके अनुसार आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तियों के वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग में वृद्धि होती है। ओकन और रिचर्डसन के अनुसार आर्थिक विकास भौतिक समृद्धि में ऐसा अनवरत दीर्घकालीन सुधार है जोकि वस्तुओं और सेवाओं के बढ़ते हुए प्रवाह से प्रतिबिम्बित समझा जा सकता है।[7]

इसकी सीमाएं (Its Limitations)

यह परिभाषा भी सीमाओं से मुक्त नहीं है। प्रथम, यह आवश्यक नहीं कि वास्तविक राष्ट्रीय

[7] B. Okun and R.W. Richardson, Studies in Economic Development, p. 230

आय में वृद्धि का अर्थ 'आर्थिक कल्याण' में सुधार ही हो। ऐसा सम्भव है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने से अमीर अधिक अमीर हो रहे हों और गरीब अधिक गरीब। इस प्रकार केवल आर्थिक कल्याण में वृद्धि से ही आर्थिक विकास नहीं होता, जब तक कि राष्ट्रीय आय का वितरण न्यायपूर्ण न माना जाए। दूसरे, आर्थिक कल्याण को मापते समय कुल उत्पादन की संरचना का ध्यान रखना पड़ता है जिसके कारण प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है, और यह उत्पादन कैसे मूल्यांकित हो रहा है। बढ़ा हुआ कुल उत्पादन पूँजी पदार्थों से मिल कर बना हो सकता है और यह भी उपभोक्ता वस्तुओं के कम उत्पादन के कारण। तीसरे, वास्तविक कठिनाई इस उत्पादन के मूल्यांकन में होती है। उत्पादन तो मार्केट कीमतों पर मूल्यांकित होता है, जबकि आर्थिक कल्याण वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन या आय में वृद्धि से मापा जाता है। वास्तव में, आय के विभिन्न वितरण से कीमतें भिन्न होंगी और राष्ट्रीय उत्पादन का मूल्य तथा संरचना भी भिन्न होंगे। चौथे कल्याण के दृष्टिकोण से हमें केवल यह नहीं देखना चाहिए कि क्या उत्पादित किया जाता है बल्कि यह भी कि उसका उत्पादन कैसे होता है। वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन में बढ़ने में सम्भव है कि अर्थव्यवस्था में वास्तविक लागतों (पीड़ा और त्याग) और सामाजिक लागतों में वृद्धि हुई हो। उदाहरणार्थ उत्पादन में वृद्धि अधिक घण्टे तथा श्रम-शक्ति की कार्यकारी अवस्थाओं में गिरावट के कारण हुई हो। पाँचवें, "और फिर अतिरिक्त कारणों के बिना सामाजिक कल्याण का तो कहना ही क्या, हम प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि को भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि के बराबर नहीं मान सकते। विकास की इष्टतम दर निश्चित करने के लिए हमें आय-वितरण उत्पादन की संरचना, रुचियों, वास्तविक लागतों तथा ऐसे अन्य सभी विशिष्ट प्रयत्नों के संबंध में मूल्य-निर्णय (value judgements) करने पड़ेंगे जोकि वास्तविक आय में कुल वृद्धि से संबंध रखते हैं।" इसलिए मूल्य-निर्णयों से बचने और सरलता के लिए अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति वास्तविक राष्ट्रीय आय को आर्थिक विकास का माप मानकर प्रयोग करते हैं।

अन्तिम, सबसे बड़ी कठिनाई व्यक्तियों के उपभोग को भार (weights) देने की है। वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग व्यक्तियों की रुचियों और अधिमानों पर निर्भर करता है जो भिन्न-भिन्न होते हैं। इसलिए व्यक्तियों का कल्याण सूचक बनाने में समान भार लेना सही नहीं है।

4 सामाजिक अथवा मूलभूत आवश्यकता सूचक (Social or Basic Needs Indicator)

आर्थिक विकास के माप के रूप में GNP अथवा GNP प्रति व्यक्ति से असंतुष्ट होकर, कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास को सामाजिक अथवा मूलभूत (आधारभूत) आवश्यकता सूचक के रूप में मापना प्रारम्भ किया है। इसके अनेक कारण हैं।

1950 तथा 1960 के दशकों में GNP/GNP प्रति व्यक्ति को आर्थिक विकास का सूचक माना जाता रहा। 1960 के विकास दशक के लिए संयुक्त राष्ट्र ने एक प्रस्ताव द्वारा अल्पविकसित देशों के लिए GNP में 5 प्रतिशत की वृद्धि दर का लक्ष्य निश्चित किया। इस लक्षित दर को प्राप्त करने के लिए अर्थशास्त्रियों ने शहरीकरण के साथ तीव्र औद्योगिकीकरण का सुझाव दिया। उनका यह मत था कि GNP की वृद्धि में प्राप्त लाभ अपने-आप रोजगार और आय में अवसरों में वृद्धि के रूप में गरीबों तक धीरे-धीरे पहुँच जाएंगे। इस प्रकार, विकास के इस माप के अनुसार गरीबी, बेरोजगारी और आय असमानताओं की समस्याओं को गौण महत्त्व दिया गया।

रोस्टोव द्वारा प्रतिपादित विकास के इस एक रेखीय वृद्धि की अवस्थाओं के पथ का नक्शे व क्रम बचतों छोटी मार्किटों तथा जनसंख्या दबावों के कुचक्रों (vicious circles) ने और शक्ति प्रदान की। यह समझा गया कि इन कुचक्रों को दूर करने से प्राविधिक शक्तियाँ मुक्त हो जाएंगी जो अर्थव्यवस्था में ऊँची वृद्धि लाएंगी। इसके लिए रोडान ने 'बड़ा धक्का' नक्शे ने संतुलित विकास हर्षमैन ने असंतुलित विकास, तथा लीबन्स्टीन ने क्रान्तिक न्यूनतम प्रयत्न सिद्धान्त का सुझाव दिया। परन्तु अल्पविकसित देशों में विकास के लिए पूंजी तकनीकी ज्ञान, विदेशी विनिमय, आदि के रूप में "लुप्त अंशों" (missing components) को प्रदान करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय

सहायता पर अधिक बल दिया गया। विदेशी सहायता के तर्क के पीछे "दो-अंतराल मॉडल" (two gap model) तथा आयात स्थानापन्नता द्वारा औद्योगिकीकरण था ताकि अल्पविकसित देश धीरे-धीरे विदेशी सहायता का परित्याग कर दें।[*]

डेविड मोरवैट्ज (David Morawetz) के अनुमान यह बताते हैं कि इस विकास कूटनीति के अपनाने से विकासशील देशों में 1950-75 के बीच GNP प्रति व्यक्ति में 3 4 प्रतिशत प्रति वर्ष औसत दर से वृद्धि हुई। परन्तु यह वृद्धि दर ऐसे देशों की गरीबी, बेरोजगारी तथा असमानताओं की समस्याओं को सुलझाने में असफल रही।

आर्थिक विकास के सूचक के रूप में GNP के विरुद्ध अर्थशास्त्रियों के बीच आलोचनाएं 1960 की दशाब्दी से बढ़ती जा रहीं थीं परन्तु सार्वजनिक तौर से प्रथम प्रहार प्रो डडले सियरज़ (Dudley Seers) ने 1969 में नई दिल्ली में आयोजित Eleventh World Conference of the Society for International Development के अध्यक्षीय भाषण में किया। उसने समस्या को इस प्रकार प्रस्तुत किया, "एक देश के विकास के बारे मे पूछे जाने वाले प्रश्न हैं गरीबी को क्या हो रहा है? बेरोजगारी को क्या हो रहा है? असमानता को क्या हो रहा है? यदि ये तीनों ऊंचे स्तरों से कम हुए हैं तो बिना सशय के उस देश के लिए विकास की अवधि रही है। यदि इन मुख्य समस्याओं में से एक या दो अधिक बुरी अवस्था में हो रही हैं, विशेषतया तीनों ही, तो परिणाम को 'विकास' कहना आश्चर्यजनक होगा चाहे प्रति व्यक्ति आय दुगुनी हुई हो।" उस समय के विश्व बैंक के गवर्नर रॉबर्ट मैक्नमारा (Robert McNamara) ने भी फरवरी 1970 में विकासशील देशों मे GNP वृद्धि दर को आर्थिक विकास के सूचक के रूप मे विफलता को इन शब्दों में स्वीकार किया "प्रथम विकास दशाब्दी में, GNP में 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर के प्राथमिक विकास उद्देश्य को प्राप्त किया गया था। यह मुख्य उपलब्धि थी। परन्तु GNP में सापेक्षतया ऊंची वृद्धि दर विकास में सतोषजनक उन्नति न लाई। विकासशील विश्व में, दशाब्दी के अन्त में, कुपोष्ण सामान्य है, शिशु मृत्यु दर ऊची है, अनपढ़ता विस्तृत है, बेरोजगारी स्थानिक रोग है जो और बढ़ रहा है, धन और आय का पुनर्वितरण अत्यन्त विषम है।"

विकास के GNP/GNP प्रति व्यक्ति माप से असतुष्ट होकर, 1970 की दशाब्दी से आर्थिक विचारकों ने विकास प्रक्रिया को गुणवत्ता की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया है। जिसके अनुसार वे तीन विभिन्न, परन्तु पूरक, रोजगार को बढाने, गरीबी को दूर करने तथा आय और धन की असमानताओं को कम करने के लिए मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं (basic human needs) की कूटनीति पर बल देते हैं। इसके अनुसार, जनसाधारण को स्वास्थ्य, शिक्षा, जल, खुराक, कपडे, आवास, काम आदि के रूप में मूलभूत भौतिक आवश्यकताएं और साथ ही सांस्कृतिक पहचान तथा जीवन और कार्य में उद्देश्य एव सक्रिय भाग की भावना जैसी अभौतिक आवश्यकताएं प्रदान करना है। मुख्य उद्देश्य गरीबों को मूलभूत मानवीय आवश्यकताएं प्रदान करके उनकी उत्पादकता बढाना और गरीबी दूर करना है। यह तर्क दिया जाता है कि मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं का प्रत्यक्ष प्रबंध करने से गरीबी पर थोडे ससाधनों द्वारा और थोडे समय में प्रभाव पडता है। शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य मूलभूत आवश्यकताओं के रूप में मानव ससाधन विकास से उत्पादकता के उच्च स्तर प्राप्त होते हैं। ऐसा विशेष तौर से वहाँ होता है जहाँ ग्रामीण भूमिहीन अथवा शहरी गरीब पाए जाते हैं तथा जिनके पास दो हाथों और काम करने की इच्छा के सिवाय कोई भौतिक परिसपत्तियां नहीं होती हैं। इस कूटनीति के अन्तर्गत मूलभूत न्यूनतम आवश्यकताओं के प्रबंध के अलावा, रोजगार के सुअवसरों, पिछडे वर्गों के उत्थान तथा पिछडे क्षेत्रों के विकास पर बल देना और उचित कीमतों एवं दक्ष वितरण प्रणाली द्वारा आवश्यक वस्तुओं को गरीब वर्गों को जुटाना है।

[*]इस पैरा में वर्णित सभी सधारणाओं सिद्धान्तों और मॉडलों की पुस्तक के आगामी अध्यायों में विवेचना की गई है।

सामाजिक सूचक (Social Indicators)

अब हम सामाजिक सूचकों का विस्तृत अध्ययन करते हैं।

अर्थशास्त्री सामाजिक सूचकों में तरह-तरह की मदों को शामिल कर लेते हैं। इनमें से कुछ आगत (input) हैं जैसे पौष्टिकता मापदण्ड या अस्पताल के बिस्तरों की संख्या या जनसंख्या के प्रतिव्यक्ति डॉक्टर, जबकि दूसरी कुछ मद इन्हीं के अनुरूप निर्गत (outputs) हो सकती हैं, जैसे नवजात शिशुओं की मृत्यु दर के अनुसार स्वास्थ्य में सुधार, रोग दर आदि। सामाजिक सूचकों को प्रायः विकास के लिए मूल आवश्यकताओं के सन्दर्भ में लिया जाता है। मूल आवश्यकताएं, गरीबों की मूल मानवीय आवश्यकताओं को उपलब्ध करा कर गरीबी उन्मूलन पर केन्द्रित होती हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, खाद्य, जल, स्वच्छता तथा आवास जैसी प्रत्यक्ष सुविधाएं थोड़े से मौद्रिक संसाधनों तथा अल्पावधि में ही गरीबी पर प्रभाव डालती हैं। जबकि GNP/प्रति व्यक्ति GNP की कूटनीति उत्पादकता बढ़ाने तथा गरीबों की आय बढ़ाने के लिए दीर्घावधि में स्वतः ही कार्य करती है। मूल आवश्यकताओं की पूर्ति उच्च स्तर पर उत्पादकता तथा आय बढ़ाती है, जिन्हें शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं जैसे मानव विकास के साधनों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

सामाजिक सूचकों की विशेषता यह है कि वे लक्ष्यों से जुड़े हैं और वे लक्ष्य हैं मानव विकास। आर्थिक विकास इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक साधन है। सामाजिक सूचकों से पता चलता है कि देश विभिन्न दरों वैकल्पिक उपयोगों के बीच अपने GNP का आवंटन करते हैं। कुछ शिक्षा पर अधिक तथा अस्पतालों पर कम खर्च करना पसंद करते हैं। इसके साथ-साथ इनसे बहुत सी मूल आवश्यकताओं की उपस्थिति, अनुपस्थिति अथवा कमी के बारे में जानकारी मिलती है।

हिक्स और स्ट्रीटन[9] मूलभूत आवश्यकताओं के लिए छः सामाजिक सूचकों पर विचार करते हैं।

मूल आवश्यकता		सूचक
1	स्वास्थ्य	जन्म के समय जीवन की प्रत्याशा
2	शिक्षा	प्राथमिक शिक्षा विद्यालयों में जनसंख्या के प्रतिशत के अनुसार दाखिले द्वारा साक्षरता की दर
3	खाद्य	प्रति व्यक्ति कलोरी आपूर्ति
4	जल आपूर्ति	शिशु मृत्यु दर तथा पीने योग्य पानी तक कितने प्रतिशत जनसंख्या की पहुंच
5	स्वच्छता	शिशु मृत्यु दर तथा स्वच्छता प्राप्त जनसंख्या का प्रतिशत
6	आवास	कोई नहीं

प्रतिव्यक्ति कैलारी आपूर्ति को छोड़कर शेष सभी सूचक निर्गत सूचक हैं। निःसन्देह नवजात शिशुओं की मृत्युदर, स्वच्छता तथा साफ पेय जल सुविधाओं दोनों की सूचक है क्योंकि नवजात शिशु पानी से होने वाले रोगों का शीघ्र शिकार हो जाते हैं। नवजात शिशु मृत्युदर भोजन की पौष्टिकता से भी सबंधित है। इस प्रकार शिशुओं की मृत्युदर 6 में से 4 मूल आवश्यकताओं को मापती है।

इसकी आलोचनाएं (Its Criticisms)

परन्तु सामाजिक सूचकों से सबंधित विकास का एक सामान्य सूचक बनाने में समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

प्रथम, ऐसे सूचक में शामिल किए जाने वाली मदों की संख्या और किस्मों के बारे में अर्थशास्त्रियों

9 Norman L. Hicks and Paul P. Streeten "Indicators of Development: The Search for a Basic Needs Yardstick," *World Development*, Vol. 7, 1979

में एक मत नहीं है। उदाहरणार्थ, हेगन (Hagen) और संयुक्त राष्ट्र की सामाजिक विकास के लिए अन्वेषण संस्था (UNRISD) 11 से 18 मदों का प्रयोग करते हैं जिनमें से बहुत कम समान हैं। दूसरी ओर, डी. मौरिस तुलनात्मक अध्ययन के लिए विश्व के 23 विकसित और विकासशील देशों से संबंधित "जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक" (Physical Quality of Life Index) बनाने के लिए केवल तीन मदों अर्थात जीवन प्रत्याशा, शिशु मृत्युदर और साक्षरता दर को लेता है।

दूसरे, विभिन्न मदों का भार देने की समस्या उत्पन्न होती है जो देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक ढाँचे पर निर्भर करती है। यह व्यक्तिपरक बन जाती है। मॉरिस तीनों सूचकों को समान भार प्रदान करता है जो विभिन्न देशों के तुलनात्मक विश्लेषण के लिए सूचक का महत्व कम कर देता है। यदि प्रत्येक देश अपने सामाजिक सूचकों की सूची का चुनाव करता है और उनको भार प्रदान करता है, तो उनकी अन्तर्राष्ट्रीय तुलनाएं उतनी ही गलत होंगी जितनी की GNP के आकड़े।

तीसरे, सामाजिक सूचक वर्तमान कल्याण से संबंधित होते हैं न कि भविष्य के कल्याण से।

चौथे, अधिकतर सूचक आगत हैं न कि निर्गतें जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, आदि।

अन्तिम, उनमें मूल्य-निर्णय पाए जाते हैं। अतः मूल्य निर्णयों से बचने और सुगमता के लिए अर्थशास्त्री तथा यू. एन. के संगठन GNP प्रति व्यक्ति को आर्थिक विकास के माप के रूप में प्रयोग करते हैं।

4. मूलभूत आवश्यकताएं बनाम आर्थिक वृद्धि
(BASIC NEEDS V/S ECONOMIC GROWTH)

क्या आर्थिक वृद्धि और मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति के बीच कोई विवाद है? जैसाकि पहले कहा गया है, मूलभूत आवश्यकताएं लक्ष्यों से संबंधित हैं और आर्थिक वृद्धि इन लक्ष्यों को पाने का साधन। अतः आर्थिक वृद्धि तथा मूलभूत आवश्यकताओं में कोई विरोध नहीं है। गाल्डस्टीन ने शिशु मृत्युदर के माध्यम से आर्थिक वृद्धि तथा मूलभूत आवश्यकताओं में कोई विरोध नहीं है। गाल्डस्टील ने शिशु मृत्युदर के माध्यम से आर्थिक वृद्धि तथा मूलभूत आवश्यकताओं के बीच गहरा संबंध पाया है। वह आर्थिक विकास को 'कुशलता' का नाम देता है। उसके अनुसार, शिशुओं की मृत्यु दर को 5 प्रतिशत से कम रखने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए GDP का स्तर आवश्यक है। जो देश अपने GDP का एक बड़ा हिस्सा अथवा प्रतिशत स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च करते हैं, वे अधिक कुशल हैं, क्योंकि इस प्रकार वे शिशु मृत्युदर को घटाने में सफल हो जाते हैं। गाल्डस्टीन ने पाया कि कुछ विकासशील देशों ने अपने थोड़े से संसाधनों को शिक्षा तथा स्वास्थ्य की मूल आवश्यकताओं को पूर्ण करने में लगाया। अपने विभिन्न वर्गों के अध्ययन में उसने स्कूलों में दाखिल तथा महिलाओं में स्वास्थ्य के साथ-साथ शिक्षा की प्राप्ति को लिया। उसने पाया कि कुछ विकासशील देशों ने बहुत थोड़े संसाधनों को शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लगाया। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जो विकासशील देश प्राथमिक स्कूली शिक्षा तथा महिला शिक्षा पर अधिक ध्यान देते हैं, वे इन मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कम खर्च करके भी अधिक विकास कर सकते हैं।

फाइ, रैनिस तथा स्टूअर्ट[10] के अनुसार, विकासशील देशों में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति पर खर्च करने से उत्पादक निवेश में कमी नहीं होती। उन्होंने नौ देशों का सर्वेक्षण किया। उनके अध्ययन से पता चलता है कि ताईवान, दक्षिण कोरिया, फिलीपीन्स, उरुग्वे तथा थाईलैण्ड ने मूल आवश्यकताओं का अच्छा प्रबंध किया तथा उनके निवेश अनुपात भी औसत से अधिक थे। जबकि कोलम्बिया, क्यूबा, जमैका तथा श्रीलंका ने अच्छी मूलभूत आवश्यकताओं के साथ-साथ औसत निवेश अनुपात रखे। उन्होंने नौ विभिन्न देशों के मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में किए गए कार्य को औसत से अधिक तथा

10. C.H. Fei, G. Ranis and F. Stewart, *Basic Needs: A Framework for Analysis*, 1979.

औसत से कम आर्थिक वृद्धि के साथ भी सबद्ध किया। इनमे से ताइवान, दक्षिण कोरिया तथा इडोनेशिया ऐसे है जिन्होंने मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ औसत से अधिक आर्थिक वृद्धि की। ब्राजील ने मात्र न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा किया तथा औसत स अधिक आर्थिक वृद्धि भी की। जबकि दूसरी ओर सामाली श्रीलका, क्यूबा तथा मिस्र की आर्थिक वृद्धि औसत से कम रही हालांकि मूलभूत आवश्यकताओं की अच्छी पूर्ति की। कवल एक दश मालदीप ने मात्र न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं क प्रावधान के साथ औसत स कम आर्थिक वृद्धि प्राप्त की। वे इस निष्कर्ष पर पहुचे कि मूलभूत आवश्यकताओ क अधिक प्रावधान करन से आर्थिक वृद्धि भी होती है। नॉरमन हिक्स ने भी अपन अध्ययन म यह दर्शाया है कि कई विकासशील दशो की आर्थिक वृद्धि की दर मूलभूत आवश्यकताओ की कूटनीति द्वारा बढी है।

निष्कर्ष (Conclusion)

चित्र 71.2

आइए अब, दीर्घकाल म GNP/प्रतिव्यक्ति GNP मूलभूत आवश्यकताओ तथा कल्याण धारणाओ की आर्थिक विकास पर प्रभावो की तुलना कर। चित्र 71.2 म तीन पथ A_1, A_2 तथा A_3 दिखाए गए ह। इसम समय का क्षतिज अक्ष पर रखा गया ह तथा विकास की दर को अनुलब अक्ष पर गरीबो म प्रतिव्यक्ति उपभोग द्वारा मापा गया ह। पथ A_1 का सबध GNP/प्रति व्यक्ति GNP कूटनीति स है। स्पष्ट ह कि आरभ म गरीबो म प्रति व्यक्ति उपभोग समय T_1 तक घटता ह क्योंकि तजी स उद्योगीकरण तथा शहरीकरण स गरीबी, बेरोजगारी तथा असमानता म वृद्धि होती है। लेकिन जब GNP/प्रति व्यक्ति GNP म वृद्धि क लाभ गरीबो तक "रिस कर" पहुचते हे तो उनक रोजगार तथा आय म वृद्धि होती है तथा समय T_1 क बाद प्रति व्यक्ति उपभोग मे भी वृद्धि होनी आरभ हो जाती है।
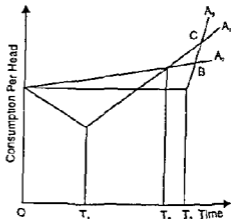
पथ A_2 का सबध कल्याण धारणा स ह जो गरीबो म प्रति व्यक्ति उपभोग की धीमी वृद्धि को दर्शाता ह। यह पथ समय T_2 स पथ A_1 स पीछे रहता है।

पथ A_3 मूलभूत आवश्यकताओ की कूटनीति स सबधित ह। आरभ म गरीबो मे उपभोग क मूल न्यूनतम वर्तमान स्तर को प्राप्त करने को उच्च प्राथमिकता दी जाती ह जो समय T_3 तक कल्याण तथा GNP/प्रति व्यक्ति GNP क उपभोग स्तरो स कम हो सकता ह। जब एक दीर्घ अवधि म गरीबो की मूलभूत आवश्यकताए पूरी हो जाती ह तथा उनकी उत्पादकता तथा आय क स्तरो म वृद्धि हो जाती है तो समय T_3 स आगे आर्थिक वृद्धि तजी से होन लगती ह। पथ A_3 पहले पथ A_2 को B बिन्दु पर पीछे छोड़ देता है तथा बाद म C बिन्दु पर पथ A_1 को। इस प्रकार मूलभूत आवश्यकताओ की कूटनीति GNP/प्रति व्यक्ति GNP और कल्याण की आर्थिक विकास की कूटनीतियो स बहतर है।

मानव विकास सूचक

(HUMAN DEVELOPMENT INDICES)

अर्थशास्त्रियो न एक, दो अथवा अधिक सकेतकों को लेकर मानव विकास क सम्मिश्र सूचको

के निर्माण के लिए मूल आवश्यकताओं के सामाजिक सूचकों को मापने का प्रयास किया है। अब मौरिस द्वारा विकसित जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक (Physical Quality of Life Index) तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा विकसित मानव विकास सूचक (HDI) का अध्ययन करेंगे।

1. जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक (PQLI)

मौरिस डी. मौरिस (Morris D. Morris)[11] ने 1979 में 23 विकसित तथा विकासशील देशों के जीवन की सम्मिश्र भौतिक गुणवत्ता (composite physical quality of life) का तुलनात्मक अध्ययन किया। उसने शिशु मृत्युदर, एक वर्ष की आयु में जीवन सम्भाव्यता तथा 15 वर्ष की आयु में मूल शिक्षा जैसे तीन सूचक घटकों को, लोगों की मूल आवश्यकताओं को पूरा करने के कार्य के मूल्यांकन के लिए जोड़ा। इस सूचक से बहुत से सूचकों, जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल, पोषण तथा स्वच्छता आदि का पता चलता है। प्रत्येक सूचक के तीनों घटकों को शून्य से 100 तक के पैमाने पर रखा गया है जिसमें शून्य को मन्दतम तथा 100 को सर्वोत्तम प्रदर्शन के रूप में परिभाषित किया गया है। PQLI सूचक की गणना तीनों घटकों को समान भार (weight) देते हुए औसत निकाल कर की जाती है तथा सूचक को भी शून्य से 100 के पैमाने पर रखा गया है।

मौरिस के अनुसार तीनों सूचकों में से प्रत्येक सूचक परिणाम को मापता है न कि आगतों को, जैसे आय। प्रत्येक सूचक आवंटन प्रभावों के प्रति संवेदनशील है अर्थात् इन सूचकों में वृद्धि अथवा सुधार से लोगों को उसी अनुपात में मिलने वाले लाभ का पता चलता है। परन्तु कोई भी सूचक विकास के किसी स्तर विशेष पर निर्भर नहीं है। प्रत्येक सूचक की अन्तर्राष्ट्रीय तुलना की जा सकती है। सन् 1950 में गेबन* की शिशु मृत्युदर 229 प्रति हजार को मन्दतम मानते हुए मौरिस ने इसे शून्य पर स्थिर कर दिया, तथा इसकी उच्चतम सीमा को सन् 2000 तक 7 प्रति हजार का लक्ष्य बनाया गया। इसी प्रकार, वियतनाम में एक वर्ष की आयु पर जीवन संभाव्यता सन् 1950 में 38 वर्ष ली। इसे मौरिस ने जीवन सभाव्यता सूचक पर शून्य का स्थान दिया। इसकी उच्चतम सीमा पुरुषों व तथा महिलाओं को मिलाकर सन् 2000 तक 77 वर्ष रखी गई। अंत में, 15 वर्ष की आयु में शिक्षा की दर को शिक्षा सूचक बताया गया। मौरिस ने इसके सहसंबंध निम्न अनुसार प्रस्तुत किए हैं

(N = 150)	शिशु मृत्युदर	जीवन संभाव्यता
एक वर्ष की आयु में जीवन सम्भाव्यता	–0.919	—
शिक्षा	–0.919	0.897

एक वर्ष की आयु में जीवन सभाव्यता तथा शिशु मृत्युदर के बीच सहसंबंध (correlation) का गुणांक उच्च डिग्री तथा ऋणात्मक (negative) है। इस प्रकार का सहसंबंध शिक्षा तथा शिशु मृत्युदर के बीच है अर्थात् शिक्षा के साथ शिशु मृत्युदर में गिरावट आती है। शिक्षा तथा जीवन सभाव्यता के बीच गुणांक ऊंची डिग्री का धनात्मक (positive) सह-संबंध दर्शाता है अर्थात् शिक्षा के साथ-साथ जीवन सभाव्यता में भी वृद्धि होती है। मौरिस के अनुसार एक वर्ष की आयु में जीवन सभाव्यता तथा

11 *Measuring the Conditions of the World's Poor: The Physical Quality of Life Index* 1979

* Gaban अफ्रीका का एक देश है।

शिशु मृत्युता जीवन की भौतिक गुणवत्ता के बहुत अच्छे सूचक हैं। और यही बात शिक्षा तथा जीवन सम्भाव्यता के बारे में कही गई है। वास्तव में शिक्षा सूचक विकास की सम्भावना को व्यक्त करता है।

नीचे तालिका 71 1 में दो विकसित व दो विकासशील देशों की GNP प्रतिव्यक्ति वृद्धि दर तथा PQLI से सम्बन्धित आकड़े प्रस्तुत हैं

तालिका 1.1 · जीवन का भौतिक गुणवत्ता निष्पादन तथा GNP प्रतिव्यक्ति वृद्धि दर

देश		(PQLI)		औसत वार्षिक GNP प्रति
	1950	1960	1970	व्यक्ति वृद्धि दर %
भारत	14	30	40	1 8
श्रीलंका	65	75	80	1 9
इटली	80	87	92	5 0
संयुक्त राज्य अमरिका	89	91	93	2 4

उपर्युक्त तालिका से पता चलता है कि भारत जिसे मॉरिस "बास्केट केस" कहता है अपनी GNP प्रति व्यक्ति 1 8% की धीमी वृद्धि दर के बावजूद, 1950 से 1970 तक की दो दशकों की अवधि में इसके PQLI में 14 से 40 तक की धीमी परन्तु कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। उसी अवधि के दौरान श्रीलंका का PQLI भारत से कहीं अधिक था हालांकि इसकी औसत GNP प्रति व्यक्ति वृद्धि दर (1 9%) लगभग भारत के बराबर रही। अमरिका तथा इटली दोनों विकसित देशों के PQLI काफी ऊंचा था। परन्तु इटली की प्रति व्यक्ति GNP दर (5%) अमरिका (2 4%) से लगभग दुगुनी था। इस सन्दर्भ में मॉरिस ने देखा कि प्रतिव्यक्ति GNP दर तथा PQLI के बीच कोई स्पष्ट तालमेल नहीं है। वास्तव में सामाजिक संबंधों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति पोषण संबंधी दशा, लोगों का स्वास्थ्य शिक्षा तथा पारिवारिक वातावरण किसी समाज के PQLI को निर्धारित करते हैं। इसके अतिरिक्त उच्च PQLI को बनाने तथा बनाए रखने में सहायक संस्थागत प्रबंध के निर्माण में बहुत समय लग जाता है।

इसकी सीमाएं (Its Limitations)

मॉरिस ने यह स्वीकार किया है कि PQLI मूल आवश्यकताओं को केवल एक सीमा तक ही [illegible] है। यह GNP का [illegible] नहीं [illegible]। यह आर्थिक वृद्धि को [illegible] भी नहीं करता है। इसके अतिरिक्त यह सामाजिक और आर्थिक संगठन के बदलते हुए ढांचे को भी नहीं दर्शाता। अत यह आर्थिक विकास को नहीं मापता। इसी प्रकार यह कुल कल्याण को भी नहीं मापता है। फिर भी यह जीवन की गुणवत्ताओं को मापता है जो गरीबों के लिए बहुत जरूरी है।

मॉरिस द्वारा PQLI के प्रयुक्त तीन घटकों को मनमाने भार देने के कारण मॉरिस की आलोचना हुई। प्रो मायर के अनुसार "PQLI द्वारा लिए गए गए- [illegible] तीन घटक महत्त्वपूर्ण हैं परन्तु उतने ही महत्त्वपूर्ण समग्र गणना सूचकांक को प्राप्त करने के लिए समूहन (aggregation) के [illegible] संवेदनशील (sensitive) तरीके और आय तथा उपभोग आकड़े होते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)— इन सीमाओं के बावजूद PQLI विशेषकर जन्मांधिकार [illegible] [illegible] तथा सामाजिक नीतियों की असफलता [illegible] [illegible] के शिकार समाज के [illegible] [illegible]

जानकारी प्राप्त करने में काम आ सकता है। यह उस सूचक की ओर इंगित करता है जहां तुरन्त कार्रवाई की आवश्यकता है। सरकार ऐसी नीतियां अपना सकती है जिससे POLI में भी शीघ्र वृद्धि हो तथा आर्थिक विकास भी बढ़े।

2 मानव विकास का सूचक (HDI)

1990 से संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) अपनी वार्षिक मानव विकास रिपोर्ट में मानव विकास सूचक (HDI) के रूप में मानव विकास के माप को प्रस्तुत कर रहा है। HDI तीन सामाजिक सूचकों का एक मिश्रित सूचक है जीवन सम्भाव्यता, वयस्क शिक्षा तथा स्कूलों के वर्ष। इसमें वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP का भी ध्यान रखा जाता है। अत HDI तीन आधारभूत पहलुओं में उपलब्धियों का एक मिश्रित सूचक है एक लम्बा व स्वस्थ जीवन, ज्ञान तथा उत्कृष्ट जीवन-स्तर।

किसी देश के HDI का मूल्य निकालने के लिए तीन सूचकों को लिया जाता है।

1 दीर्घायु जिसे जन्म के समय जीवन की सम्भाव्यता द्वारा मापा जाता है 25 वर्ष तथा 85 वर्ष।

2 शैक्षिक योग्यताओं की प्राप्ति, जिसे वयस्क शिक्षा (दो तिहाई भार) तथा प्राथमिक माध्यमिक व क्षेत्रीय विद्यालयों में उपस्थित अनुपात (एक तिहाई भार) के मिश्रण के रूप में मापा जाता है, उदाहरणार्थ वयस्क शिक्षा . 0% से 100% तथा दाखिलों का मिश्रित अनुपात 0% से 100%।

3 जीवन स्तर, जिसे डालर की क्रय शक्ति समता (purchasing power parity) पर आधारित वास्तविक प्रतिव्यक्ति GDP द्वारा मापा जाता है।

HDI जीवन की सम्भाव्यता सूचक शैक्षिक प्राप्तियां सूचक तथा समायोजित वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP सूचक का सरल औसत सूचक है।* इसकी गणना इन तीनों संकेतकों के योग को 3 से विभाजित कर निकाली जाती है। इसमें प्रत्येक चर का न्यूनतम तथा अधिकतम मूल्य स्थिर है जिसे घटाकर शून्य (0) तथा एक (1) के बीच पैमाने पर रखा गया है तथा प्रत्येक देश इस पैमाने के किसी न किसी बिन्दु पर आता है।

प्रत्येक देश का HDI मूल्य यह दर्शाता है कि उसे अपने कुछ परिभाषित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कितना प्रयास करना है 85 वर्ष के औसत जीवन की अवधि, सभी के लिए शिक्षा की उपलब्धि तथा उत्कृष्ट जीवन स्तर। HDI एक दूसरे के सबंध में विभिन्न देशों का क्रम (rank) तय करता है। किसी भी देश का HDI क्रम विश्व आवटन के बीच ही तय होता है। उदाहरणार्थ, यह क्रम प्रत्येक विकसित तथा विकासशील देशों से सबंधित अपने HDI मूल्य पर आधारित है जिसके लिए उस देश द्वारा HDI न्यूनतम मूल्य शून्य (0) से HDI अधिकतम मूल्य एक (1) तक प्रयास किए गए। ऐसे देश जिनका HDI मूल्य 0 5 से कम है उन्हें निम्न स्तर के मानव विकास क्रम में रखा जाता है तथा 0.5 से 0 8 मूल्य वाले देशों को मध्यम तथा 0 8 से ऊपर HDI मूल्य वाले देश उच्च स्तर में गिने जाते है। HDI में देशों को उनके प्रति व्यक्ति GDP के आधार पर भी क्रमबद्ध किया जाता है।

मानव विकास रिपोर्ट 1996 में 174 विकसित एवं विकासशील देशों से सबंधित वर्ष 1993 की वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP के क्रम HDI मूल्य तथा HDI क्रम प्रस्तुत किए गए है। जिन 174 देशों के HDI की गणना की गई थी उनमें से 57 उच्च विकास वर्ग (0 8 से 0 95) में थे, 69 मध्यम वर्ग (0 5 से 0 79) में तथा 48 निम्न वर्ग (0 48 से 0 2) में थे। कनाडा, संयुक्त राज्य अमरिका तथा जापान HDI में उच्च वर्ग के 26 विकसित देशों में सबसे आगे थे। उस वर्ग में सबसे अन्तिम क्रम 57 पर रूसी संघ था। 26 विकासशील देशों में हांगकांग, साइप्रस, बारबाडोस प्रथम तीन क्रम में थे। मध्यम वर्ग में विघटित सोवियत संघ के अधिकतर देशों सहित

* HDI is a simple average of life expectancy index, educational attainment index and the adjusted real GDP per capita index

16 विकसित तथा 53 विकासशील देश थे। इस वर्ग में ब्राजील सबसे आगे 58 वें क्रम पर रहा। श्रीलंका 89वें क्रम पर तथा चीन 108वें क्रम पर रहा। निम्न वर्ग में 48 विकासशील देश थे जिनमें सबसे ऊपर कमेरून, केन्या तथा घाना थे। पाकिस्तान का HDI क्रम 134 तथा भारत का 135 था जबकि बांग्लादेश 143 तथा नेपाल 151वें क्रम पर रहे, जैसा कि तालिका 1 2 में दर्शाया गया है।

तालिका 1.2 : चुने हुए देशों का मानव विकास सूचक, 1993

देश	HDI मूल्य	HDI क्रम (Rank)	वास्तविक GDP प्रति व्यक्ति क्रम (PPP$)	वास्तविक GDP* प्रति व्यक्ति क्रम घटा HDI क्रम
1. उच्च मानव विकास				
विकसित देश				
कनाडा	0 951	1	7	6
संयुक्त राज्य अमेरिका	0 940	2	2	0
जापान	0 938	3	9	6
सोवियत संघ	0 804	57	64	8
विकासशील देश				
हांगकांग	0 909	22	6	–16
साइप्रस	0 909	23	30	7
बारबाडोस	0 906	25	36	11
कोस्टारिका	0 884	31	54	23
मलेशिया	0 826	53	45	–9
मॉरिशस	0 825	54	33	-21
2. मध्यम मानव विकास				
ब्राजील	0 796	58	58	0
श्रीलंका	0 689	89	96	8
मिस्र	0 611	106	76	–30
चीन	0 609	108	110	3
वियतनाम	0 540	121	147	27
3. निम्न मानव विकास				
कमेरून	0 482	127	114	-12
केन्या	0 473	128	136	9
घाना	0 467	129	124	–4
पाकिस्तान	0 442	134	118	-15
भारत	0 436	135	141	7
नेपाल	0 332	151	149	-2
भूटान	0 307	159	157	-2

* एक धनात्मक आकड़ा यह बताता है कि वास्तविक GDP प्रति व्यक्ति क्रम से HDI क्रम ऊँचा है। ऋणात्मक आकड़ा इसके विपरीत बताता है।

HDI क्रम वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP से विशेष रूप से भिन्न है। ऐसे देश जिनका GDP क्रम HDI क्रम से ऊंचा है उनकी उच्च आय के लोगों को अधिक साम्यता से आवंटित करने की पर्याप्त क्षमता (potential) है। ऐसे 21 देश थे जिनका GDP क्रम उनके HDI क्रम से 20 स्थान ऊंचा था। इनमें मॉरिशस (–21) तथा मिस्र (–30) पर थे। ऐसे देश जिनका HDI क्रम उनके GDP क्रम से अधिक है, यह दर्शाते है कि उन्होंने अपनी आय को प्रभावी ढंग से अपने लोगों का जीवन स्तर सुधारने में प्रयोग किया है। ऐसे 16 देश थे जिनका HDI क्रम उनके GDP क्रम से ऊंचा था। इनमें से कोस्टारिका (23) तथा वियतनाम (27) थे। इस प्रकार HDI यह दर्शाता है कि कई देशों के प्रति व्यक्ति GDP स्तर समान हो सकते है परन्तु उनकी मानव विकास उपलब्धियां भिन्न हो सकती है या फिर HDI समान हो सकते है परन्तु उनकी मानव विकास उपलब्धियां भिन्न हो सकती है या फिर HDI समान हो सकते है परन्तु GDP प्रति व्यक्ति स्तर भिन्न हो सकते है।

HDI हमें विकास की प्रगति की ओर जाने के बारे में बताता है। मानव विकास रिपोर्ट में कहा गया है कि निम्न मानव विकास वाले देशों को मानव विकास की उच्च श्रेणी तक पहुंचने में 200 से भी अधिक वर्ष लग सकते है। चीन इस स्तर तक 25 वर्षों में पहुंच जाएगा जबकि भारत को अभी 100 वर्ष लगेंगे। परन्तु ये सब तो मात्र कच्चे अनुमान है।

इसकी सीमाएं (Its Limitations)

HDI की भी अपनी सीमाएं हैं। प्रथम, केवल तीन सूचक ही मानव विकास के सूचक नहीं है। शिशु मृत्युदर, पोषण आदि अन्य सूचक भी हो सकते है। द्वितीय HDI निरपेक्ष (absolute) की बजाय सापेक्ष (relative) मानव विकास मापता है ताकि यदि सभी देश समान भारित (weighted) दर से अपने HDI मूल्य का सुधार लें तो निम्न मानव विकास वाले देशों के सुधार का पता नहीं चल पाएगा। तृतीय किसी देश का HDI वहां पाई जाने वाली ऊंची असमानता को दूर करने के लक्ष्य से भटक सकता है। अंत में दूसरे सामाजिक सूचकों के साथ प्रति व्यक्ति GNP क्रमों को रखना तथा अनुपूरित करने की वैकल्पिक व्यूहनीति फिर भी बेहतर है।

प्रश्न

1. सकल राष्ट्रीय उत्पादन विकास का अपर्याप्त सूचक है। इसके अतिरिक्त और किन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है? इस संदर्भ में विकास की 'मूलभूत आवश्यकता' व्यूहनीति की व्याख्या कीजिए।
2. प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि को विकास का सूचक मानने के कारण विकास के महत्वपूर्ण गुणात्मक परिवर्तनों की अवहेलना हुई है। इस कथन को समझाते हुए इस संदर्भ में आधारभूत आवश्यकता विचारधारा की व्याख्या कीजिए।
3. आर्थिक विकास और आर्थिक वृद्धि में अंतर समझाइए। आर्थिक वृद्धि को कैसे मापा जा सकता है?
4. आर्थिक वृद्धि की परिभाषा दीजिए। आर्थिक वृद्धि के सूचक समझाइए।
5. जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक (PQLI) क्या बतलाता है? इसकी आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
6. मानव विकास सूचक (HDI) से विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के बारे में किन बातों का ज्ञान होता है? व्याख्या कीजिए।

अध्याय 72

अल्पविकसित देश का अर्थ तथा विशिष्टताएँ
(MEANING AND CHARACTERISTICS OF AN UNDERDEVELOPED COUNTRY)

अल्पविकसित देशों की परिभाषा के बारे में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है। किसी भी देश को अल्पविकसित देशों के वर्गीकरण में रखने के बारे में अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न मापदण्ड बताए हैं जिनका वर्णन करने से पहले अल्पविकसित और अविकसित शब्दों में अन्तर स्पष्ट किया जाता है।

अल्पविकसित अथवा अविकसित
(UNDERDEVELOPED OR UNDEVELOPED)

अविकसित' तथा 'अल्पविकसित' प्राय पर्यायवाची मानकर प्रयोग किए जाते हैं। लेकिन दोनों में अन्तर है। 'अविकसित' उस देश के लिए प्रयुक्त किया जाता है जहां विकास की आशाए न हों। उदाहरणार्थ, दक्षिण-ध्रुव वृत्त, उत्तर-ध्रुव वृत्त तथा महारा मरुस्थल के भाग अविकसित कहे जा सकते हैं। दूसरी ओर, अल्पविकसित देश वह है जहां विकास की सभाव्यताए हों। इस वर्ग में भारत, पाकिस्तान, कोलम्बिया, श्रीलका आदि देश आते हैं।

प्रोफेसर शैनन[1] की परिभाषा – प्रोफेसर शैनन की परिभाषा द्वारा दिया गया अन्तर सैद्धान्तिक तौर पर मान्य है। उनके अनुसार, 'वह क्षेत्र अल्पविकसित होता है जो उचित रूप से 'विकसित' और फिर भी 'निर्धनीकृत' वर्ग में रखा जा सके, जबकि ऐसे क्षेत्र को 'अविकसित' कहा जा सकता है जो 'अल्पविकसित' हो और जिसमें विकास की क्षमता न हो।

"निर्धन" और "पिछड़े" शब्द भी 'अल्पविकसित' के पर्यायवाची मानकर प्रयुक्त किये जाते हैं।

अल्पविकास के मापदण्ड
(CRITERIA OF UNDERDEVELOPMENT)[2]

अल्पविकास के कुछ महत्त्वपूर्ण मापदण्डों पर विचार किया जाता है।

(1) जनसख्या का भूमि के क्षेत्रफल से अनुपात (Ratio of population to land area) – अल्पविकास का प्रथम मापदण्ड है **जनसख्या का भूमि के क्षेत्रफल से अनुपात**। परन्तु इस बात का निर्णय कर सकना बहुत कठिन है कि क्षेत्रफल से जनसख्या का नीचा अनुपात अल्पविकास का सूचक है अथवा ऊँचा अनुपात। अफ्रीका तथा लेटिन अमरीका जैसे कई देश हैं, जहाँ 'रिक्त स्थानों' का होना नीचे अनुपात को बताता है, जबकि भारत, चीन, बर्मा, पाकिस्तान, मलाया तथा अन्य दक्षिण एशियाई देश ऐसे हैं जिनमें क्षेत्रफल से जनसख्या का अनुपात उच्च है। इसलिए यह मापदण्ड अस्पष्ट तथा निरर्थक समझा जाता है।

(2) कुल उत्पादन से औद्योगिक उत्पादन अनुपात (Ratio of industrial output to total output) – अल्पविकास का दूसरा सूचक है कुल उत्पादन से औद्योगिक उत्पादन का

[1] L.W Shannon *Underdeveloped Areas* p 1
[2] ये अल्पविकास के माप भी कहलाते हैं।

अनुपात। कुल जनसंख्या से औद्योगिक जनसंख्या के अनुपात के रूप में भी इसकी व्याख्या की जा सकती है। इस मापदण्ड के अनुसार, "जिन देशों में कुल उत्पादन से औद्योगिक उत्पादन का अनुपात कम हो, उन्हें अल्पविकसित समझा जाता है।" परन्तु प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के साथ इस अनुपात में वृद्धि होने लगती है, इसलिए औद्योगीकरण की कोटि (degree) किसी देश की आर्थिक समृद्धि का परिणाम होती है, न कि कारण। उन देशों में, जहाँ कृषि का विकास होता है, तृतीयक (tertiary) अथवा सेवा उद्योगों की अपने आप वृद्धि होने लगती है क्योंकि बढ़ रहा कृषि प्रयोज्य आधिक्य औद्योगिक वस्तुओं की माँग में वृद्धि करता है। परन्तु जब कृषि आय के प्रयोज्य आधिक्य (disposable surplus) का अलाभकारी नगर-उद्योग को सहायता देने के लिए प्रयोग किया जाता है, तो प्रति व्यक्ति आय कम हो जाएगी।[3] इस प्रकार यह मापदण्ड अल्पविकास का सही सूचक नहीं है।

(3) **प्रति व्यक्ति जनसंख्या से पूंजी का नीचा अनुपात** (Low ratio of capital to per head of population)—प्रो० नर्क्से की परिभाषा के अनुसार अल्पविकसित देश वे हैं जिनमें "उन्नत देशों की तुलना में उनकी जनसंख्या और प्राकृतिक साधनों के सम्बन्ध में पूँजीगत साधनों की कमी होती है"।[4] परन्तु निम्नलिखित कारणों से पूँजी की कमी अल्पविकास की सतोषजनक कसौटी नहीं है। (क) पूँजी की कमी का सम्बन्ध किसी देश के पूँजी-स्टॉक के पूर्ण परिमाण से नहीं होता बल्कि जनसंख्या अथवा किसी अन्य साधन से पूँजी के अनुपात से होता है। (ख) सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त बताता है कि जहाँ अन्य साधनों से पूँजी का अनुपात कम होता है, वहाँ पूँजी की सीमान्त उत्पादकता अधिक होती है। परन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि क्योंकि पूँजी दुर्लभ है, इसलिए अल्पविकसित देशों में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता अधिक होती है अथवा पूँजी की ऊँची सीमान्त उत्पादकता का अर्थ पूँजी की दुर्लभता है। सम्भव है कि घटिया प्रबन्ध, कम कुशलता, प्रतिकूल मौसम आदि के कारण अल्पविकसित देशों में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता कम रहे। (ग) और फिर, यदि पूँजी की कमी को अल्पविकास का सूचक मान लिया जाए, तो अन्य सामाजिक-आर्थिक कारण उपेक्षित रह जाते हैं।

(4) **दरिद्रता ही अल्पविकास का प्रमुख कारण** (Poverty as the main cause of underdevelopment)—डॉ० यूजीन स्टेले की परिभाषा के अनुसार अल्पविकसित देश वह है "जिसकी विशिष्टता जनता की दरिद्रता हो जोकि दीर्घस्थायी होती है और किसी अस्थायी दुर्भाग्य का परिणाम न होकर उत्पादन के पुराने तरीकों और सामाजिक सगठन का फल हो, जिसका अर्थ यह हुआ कि दरिद्रता केवल तुच्छ प्राकृतिक साधनों के कारण नहीं होती और इसलिए निष्कर्षत अन्य देशों में प्रमाणित तरीकों से दूर नहीं की जा सकती।"[5]

यह परिभाषा अल्पविकसित देशों की कुछ प्रमुख विशिष्टताओं की ओर सकेत करती है कि अल्पविकसित देशों में काम में न लाए गए प्राकृतिक साधन पूँजी वस्तुओं तथा उपकरणों की दुर्लभता, उत्पादन की पुरानी तकनीक और सामाजिक-आर्थिक सगठन में दोष होते हैं। इनसे कोई इन्कार नहीं कर सकता। परन्तु इस परिभाषा में कोई भी अल्पविकास के आधारभूत मूल-तत्त्व, अर्थात प्रति व्यक्ति कम आय, पर बल नहीं दिया गया है।

(5) **प्रति व्यक्ति निम्न आय** (Low per capita real income)—इस प्रकार उन्नत देशों के मुकाबले अल्पविकसित देशों की प्रति व्यक्ति निम्न आय अल्पविकास की साधारणतया सबसे अधिक स्वीकृत कसौटी है। सयुक्त राष्ट्र विशेषज्ञों के अनुसार, "हम इस (अल्पविकसित देश) शब्द का प्रयोग उन देशों के अर्थ में करते हैं जिनमें अमरीका, कनाडा आस्ट्रेलिया और पश्चिमी

[3] J Viner, "The Economics of Development" in *The Economics of Underdevelopment* (ed.) A N Aggarwal and S P Singh pp 11-12

[4] Nurkse *op cit.*, p 1

[5] *The Future of Underdeveloped Countries* p 13

यूरोप से तुलना करने पर प्रति व्यक्ति वास्तविक आय कम रहती है।"[6] परन्तु ऐसी परिभाषा किसी भी प्रकार उपयुक्त तथा सतोषजनक नहीं मानी जा सकती, जोकि प्रति व्यक्ति आय के निम्न स्तर के रूप में अल्पविकसित देश की व्याख्या करती है क्योंकि वे अल्पविकास के एक ही पक्ष अर्थात दरिद्रता पर ध्यान केन्द्रित करती है। वह अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के उपभोग के निम्न स्तरों, रुकी हुई वृद्धि और विकास सम्भाव्यताओं के कारणों का विश्लेषण नहीं करती।

अल्पविकसित देश की परिभाषा प्रो० वाइनर की अधिक उपयुक्त है कि 'वह ऐसा देश है जिसमें इस बात की अच्छी भावी सम्भाव्यताएँ हों कि वह अपनी वर्तमान जनसख्या का जीवन के ऊँचे स्तर पर भरण-पोषण करने के लिए और यदि उसका प्रति व्यक्ति आय-स्तर पहले ही ऊँचा है तो जीवन के स्तर पर जो अपेक्षाकृत कम न हो, पहले से अधिक जनसख्या का भरण-पोषण करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक श्रम, अधिक पूँजी या अधिक उपलब्ध प्राकृतिक साधनों या इन सबका प्रयोग कर सके।'[7] इस प्रकार, निष्कर्ष यह है कि "मूल कसौटी यह ठहरती है कि किसी देश में प्रति व्यक्ति आयों को बढ़ाने या बढ़ी हुई जनसख्या के लिए प्रति व्यक्ति आय का ऊँचा वर्तमान स्तर बनाए रखने की अच्छी भावी सम्भाव्यताएँ हैं या नहीं।" यह परिभाषा व्यापक रूप से लागू होने वाली है। यह एक अल्पविकसित देश पर लागू होती है चाहे उसमें जनसख्या या पूँजी या प्रति व्यक्ति आय की प्रचुरता या दुर्लभता हो, और चाहे उसकी अर्थव्यवस्था कृषि सम्बन्धी अथवा औद्योगिक हो। यह प्रति व्यक्ति आय तथा विकास सम्भाव्यता पर भी बल देती है, जोकि आर्थिक विकास के दो महत्त्वपूर्ण निर्धारक हैं। इस प्रकार प्रो० वाइनर की परिभाषा अपेक्षाकृत अधिक गत्यात्मक, सुनिश्चित, व्यापक तथा आशापूर्ण है।

अल्पविकसित देश की विशिष्टताएं
(CHARACTERISTICS OF AN UNDERDEVELOPED COUNTRY)

किसी अल्पविकसित देश की समस्याओं की जाच करने के लिए उसकी अर्थव्यवस्था की सामान्य रूपरेखा को समझ लेना अच्छा है। यद्यपि विश्व के मानचित्र पर एक प्रतिनिधि अल्पविकसित देश की स्थिति का निश्चय करना कठिन है फिर भी उसकी कुछ विशिष्टताओं पर विचार किया जा सकता है।

1 सामान्य गरीबी (*General Poverty*)

अल्पविकसित देश गरीबी का मारा होता है। उसकी गरीबी प्रति व्यक्ति आय में झलकती है। 1997 की World Development Report के अनुसार 1995 में विश्व की 56 0 प्रतिशत जनसख्या की औसत GNP प्रति व्यक्ति 430 डॉलर थी। दूसरी ओर, औद्योगीकृत देशों में रह रही विश्व की 15 8 प्रतिशत जनसख्या की औसत GNP प्रति व्यक्ति 32039 डॉलर थी, तथा मध्यम आय अर्थव्यवस्थाओं में विश्व की 27.5 प्रतिशत जनसख्या की औसत GNP प्रति व्यक्ति 2390 डॉलर थी। ये आकड़े विकासशील देशों में गरीबी की सीमा को दर्शाते हैं।

सन् 1995 के आकड़े देते हुए World Development Report राष्ट्रों के बीच विस्तृत आय असमानताएं भी बताती है। 1995 में 23 बहुत धनी विकसित देश थे। इनमें से, जापान की GNP प्रति व्यक्ति 39640 डॉलर, यू एस ए की 26980 डॉलर तथा स्विट्जरलैंड की 40630 डॉलर थी। परन्तु कुछ विकासशील छोटे पूँजी आधिक्य तेल निर्यातक देश भी इनमें सम्मिलित हैं, जैसे सयुक्त राष्ट्र अमीरात जिसकी GNP प्रति व्यक्ति 17400 डॉलर तथा कुवैत 17300 डॉलर।

[6] United Nations *Measures for the Economic Development of Underdeveloped Countries*, p 3
[7] J Viner, *op.cit.*, pp 12-13

दूसरी ओर, GNP प्रति व्यक्ति 730 डॉलर या उससे कम 49 निम्न आय वाले सबसे गरीब देश थे। इनमें औरों के अलावा श्रीलंका 700 डॉलर, चीन 620 डॉलर, पाकिस्तान 460 डॉलर, भारत 340 डॉलर, केन्या 280 डॉलर, बंगलादेश 240 डॉलर और नेपाल की GNP प्रति व्यक्ति 200 डॉलर थी।

फिर भी, ऐसी अर्थव्यवस्थाओं का मूल्यांकन करने के लिए सापेक्ष *(relative)* गरीबी की अपेक्षा निरपेक्ष (absolute) गरीबी अधिक महत्त्वपूर्ण है। निरपेक्ष गरीबी को केवल निम्न आय से ही नहीं मापा जाता बल्कि कुपोषण, खराब स्वास्थ्य, कपड़ा, आवास और शिक्षा के अभाव से भी मापा जाता है। अतः निरपेक्ष गरीबी लोगों के निम्न रहन-सहन के स्तर में झलकती है। ऐसे देशों में, अन्न उपभोग की मुख्य मद होती है और इस पर आय का लगभग 80 प्रतिशत व्यय किया जाता है जबकि विकसित देशों में आय का 20 प्रतिशत व्यय होता है। लोग अधिकतर अनाज खाते हैं और उनकी खुराक में मास, मछली और दुग्ध पदार्थों आदि पौष्टिक आहारों का नितान्त अभाव होता है। उदाहरणार्थ, भारत में प्रति व्यक्ति प्रति दिन अनाज का उपभोग 430 ग्राम है जबकि विकसित देशों में 200 ग्राम से भी कम। भारत में प्रोटीन का प्रति व्यक्ति उपभोग 45 ग्राम है जबकि अमरीका में 100 ग्राम है। परिणामस्वरूप, अल्पविकसित देशों में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन औसत कैलोरी खुराक 2000 से अधिक नहीं होती, जबकि उन्नत देशों के लोगों की खुराक में यह 3000 कैलोरी से भी अधिक पाई जाती है।

ऐसे देशों में बाकी उपभोग मुख्य रूप से घास-फूस की झोंपड़ी तथा नाममात्र के वस्त्र होते हैं। लोग अत्यन्त अस्वास्थ्यकारी परिस्थितियों में रहते हैं। विकासशील देशों में 120 करोड़ से अधिक लोगों को सुरक्षित पेय जल प्राप्त नहीं है तथा 140 करोड़ से भी अधिक लोगों के लिए साफ शौचालयों का प्रबंध नहीं है। प्रत्येक 10 शिशु जो जन्म लेते हैं, दो एक वर्ष के भीतर मर जाते हैं, एक और, पांच वर्ष की आयु से पहले ही मर जाता है तथा केवल पांच 40 की आयु तक बचते हैं। इसके कारण कुपोषण, असुरक्षित जल, सफाई का न पाया जाना, अज्ञानी माता-पिता, तथा रोगों से प्रतिरक्षा का अभाव है। शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी सेवाएं नाममात्र की पाई जाती हैं। नवीन आकड़े बताते हैं कि भारत में 2520 व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर है, बंगलादेश में 6730 व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर, नेपाल में 32710 व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर तथा चीन में 1000 व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर है। इसके विपरीत विकसित देशों में 470 व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर होता है। अधिकतर विकासशील देश शैक्षिक सुविधाओं का तीव्र गति से प्रसार कर रहे हैं। फिर भी, ऐसे प्रयत्न उनकी मानवशक्ति की आवश्यकताओं से कम रहते हैं। बहुत से निम्न आय देशों में प्राथमिक स्कूल आयु के लगभग 70 प्रतिशत शिशु पाठशाला जाते हैं। माध्यमिक स्तर पर, ऐसे देशों में स्कूल भर्ती दरें 20 प्रतिशत से कम होती हैं, जबकि उच्च शिक्षा में भर्ती 3 प्रतिशत तक ही पहुंचती है। फिर अधिकतर स्कूल तथा कालेज जाने वालों को दी जा रही शिक्षा उन देशों की विकास आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं होती है। इस प्रकार, अल्पविकसित देशों में बहुत अधिक लोग भूखे, नंगे, आवास-रहित तथा अशिक्षित होते हैं।

एक अनुमान के अनुसार, अल्पविकसित देशों में निरपेक्ष गरीबी में रह रहे लोगों की सख्या, चीन को छोड़कर लगभग 100 करोड़ है। इनमें से आधे दक्षिण एशिया अधिकतर भारत और बंगलादेश में निवास करते है, 1/6 पूर्व और दक्षिण-पूर्व, अधिकतर इंडोनेशिया में अन्य और 1/6 उप-सहारा अफ्रीका, तथा बाकी लेटिन अमरीका उत्तरी अफ्रीका तथा मध्य-पूर्व में रहते हैं। इस प्रकार गरीबी एक अल्पविकसित देश की आधारभूत बीमारी है जिसकी विपत्ति के चक्र में वह फंसा हुआ है। प्रो० केर्नक्रास ने ठीक कहा है कि अल्पविकसित देश विश्व अर्थव्यवस्था की गंदी बस्तियां हैं।[1]

[1]A.K. Cairncross, *Factors in Economic Development* p. 15

2 कृषि, प्रमुख व्यवसाय (Agriculture, the Main Occupation)

अल्पविकसित देशों में दो-तिहाई या इससे भी अधिक लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और कृषि उनका प्रमुख व्यवसाय होता है। उन्नत देशों में जितने लोग कृषि करते हैं, अल्पविकसित देशों में उससे चार गुना लोग कृषि में लगे होते हैं। भारत, चीन बंगलादेश, तथा सूडान में 70% जनसख्या कृषि में लगी है, जबकि अमरीका, कनाडा और पश्चिमी जर्मनी में यह प्रतिशत क्रमश 4 5 और 6 है। कृषि में इतना अधिक संकेन्द्रण दरिद्रता का चिन्ह है। प्रमुख व्यवसाय के रूप में कृषि अधिकतर अनुत्पादक है। कृषि पुराने ढंग से तथा उत्पादन के अप्रचलित और पिछड़े हुए तरीकों से की जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि पैदावार अनिश्चित रूप से कम रहती है और किसान केवल गुजारे के स्तर पर जीवित रहते हैं। हाल के वर्षों में कई देशों में कृषि की आधुनिक तकनीकें अपनाने से कृषि उत्पादन में बहुत वृद्धि हुई है।

कुछ देश प्रमुख रूप से कच्चे माल और खाद्य पदार्थों के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त करते हैं, जबकि कुछ अकृषि-सम्बन्धी प्राथमिक उत्पादन अर्थात खनिजों में भी विशिष्ट बन जाते हैं। उदाहरणार्थ लंका ने चाय, रबड़ तथा नारियल की वस्तुओं में, मलाया ने रबड़, टीन और खजूर के तेल में, इण्डोनेशिया ने रबड़, तेल और टीन में, बंगलादेश ने पटसन में, और पाकिस्तान ने रुई में, विशिष्टता प्राप्त की है। इस प्रकार अल्पविकसित देश प्राथमिक क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था है। प्राथमिक क्षेत्र के अतिरिक्त अल्पविकसित द्वितीय क्षेत्र भी होता है जिसमें कुछ साधारण, हल्के और छोटे उपभोक्ता-वस्तु उद्योग होते हैं और उतना ही अल्पविकसित तृतीयक क्षेत्र—परिवहन वाणिज्य, बैंकिंग और बीमे का होता है।

3 दोहरी अर्थव्यवस्था (A Dualistic Economy)

लगभग सभी अल्पविकसित देशों की दोहरी अर्थव्यवस्था होती है—एक मार्केट अर्थव्यवस्था और दूसरी निर्वाह-अर्थव्यवस्था। एक नगरों में तथा उनके निकट होती है, जबकि दूसरी ग्रामीण क्षेत्रों में। एक विकसित होती है, दूसरी कम विकसित। नगरों में केन्द्रित अर्थव्यवस्था अत्यन्त आधुनिक होती है जिसमें जीवन की सब सुविधाएं प्राप्त रहती हैं जैसेकि रेडियो, कार, बसें, टेलीफोन, सिनेमाघर, शानदार इमारतें, स्कूल और कॉलिज। यहाँ सरकारी कार्यालय, व्यापारिक गृह, बैंक और फैक्टरियाँ भी दिखाई पड़ती हैं जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में निर्वाह-अर्थव्यवस्था पिछड़ी हुई है और प्रमुख रूप से कृषि-अनुस्थापित (agriculture-oriented) होती है।

अनेक अल्पविकसित देशों में विदेशियों द्वारा सचालित क्षेत्र होते हैं, जो त्रैतीय (triplistic) अर्थव्यवस्था बना देते हैं। वे अत्यन्त पूँजीवादी होते हैं और पैट्रोलियम, खनिज तथा बागानों में पाए जाते हैं। कुछ अधिक स्पष्ट उदाहरणों के अन्तर्गत—मध्यपूर्व वैन्जुएला और लिबिया में पैट्रोल निकालने मध्य एशिया में तांबे के लिए, बोलेविया में टीन, दक्षिण अफ्रीका में स्वर्ण, मलेशिया में रबड़ बागान और श्रीलंका में चाय आते हैं। इन बागानों और खानों में मजदूरी पर काम करने वाला श्रमिक अपनी मजदूरी का अधिकाश भाग विदेशी उपभोग वस्तुओं पर व्यय करता है। वहाँ काम करने वाले मजदूरों का जीवन-स्तर निर्वाह क्षेत्र में रहने वाले उनके अपने भाइयों के स्तर से भिन्न होता है। खानों और बागानों का विदेशी स्वामित्व और कार्य अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्था पर गहरे प्रभाव छोड़ जाता है। विदेशी अपने अत्यधिक अर्जित लाभ को अपने देश में ले जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएं कंगाल बन जाती हैं। इसके अतिरिक्त विदेश के हित में खानों तथा बागान का शोषण किया जाता है। इन सबके कारण अल्पविकसित देश आर्थिक रूप से दरिद्र रहते हैं।

इस प्रकार, अर्थव्यवस्था की यह दोहरी या त्रैतीय प्रवृति स्वस्थ आर्थिक प्रगति में सहायक नहीं है। प्राथमिक क्षेत्र द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्रों के विस्तार और विकास को सीमित कर उनकी वृद्धि को रोकता है।

4 अल्पविकसित प्राकृतिक साधन (Underdeveloped Natural Resources)

अल्पविकसित देश में प्राकृतिक साधन इस अर्थ में अल्पविकसित होते हैं कि या तो उनका उपयोग हुआ ही नही होता, या फिर अल्प-उपयोग या दुरुपयोग हुआ होता है। किसी देश में प्राकृतिक साधनों का अभाव हो सकता है परन्तु पूर्ण रूप से ऐसा कभी नहीं होता। भले ही कोई देश साधनों में हीन हो परन्तु यह नितान्त सम्भव है कि हाल में अज्ञात साधनों की खोज के परिणामस्वरूप, अथवा इसलिए कि ज्ञात साधनों के नए प्रयोग मिल जाने से, वह भविष्य में साधनों में धनी बन जाए। इसलिए यह कहने की बजाए कि अल्पविकसित देश साधनों में पूर्ण रूप से हीन होते हैं, यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वे तकनीकी और सामाजिक तथा आर्थिक संगठन में उपयुक्त परिवर्तनों द्वारा अपने प्राकृतिक साधनों की दुर्लभता को पार करने में सफल नहीं हो सके हैं। जैसाकि मौर और यामे ने कहा है, "यह सुझाव अतिसरलीकरण होगा कि सामान्य रूप से अल्पविकसित देश प्राकृतिक साधनों के विषय मे भाग्यहीन रहे हैं और अल्प साधन-युक्त हैं—विशेष रूप से खनिजों और उपजाऊ भूमि के सम्बन्ध में आधुनिक स्टैंडर्ड से देखा जाए तो सभी विकसित देश शुरू में अल्पविकसित थे और इतिहास की अपेक्षाकृत थोड़ी और वर्तमान अवधि में ही उनका विकास हुआ है।"[9] सामान्यरूप से कहा जा सकता है कि भूमि, खनिज जल, वन या शक्ति-साधनों में अल्पविकसित देश त्रुटियुक्त नहीं होता। उदाहरण के लिए, भारत में 9 करोड़ एकड़ कृषि योग्य बंजर भूमि है और इसकी जलशक्ति सभाव्यता 410 लाख किलोवाट आँकी गई है, जबकि इसका मुश्किल से 10% भाग ही अभी तक उपयोग में लाया जा सका है। अफ्रीका में विश्व की जलशक्ति सभाव्यता का 44% है परन्तु वह 0.1% से अधिक का उपयोग नहीं करता। अल्पविकसित देश खनिज धन में भी समृद्ध हैं। अफ्रीका में तांबे, बाक्स ^ट, टीन और स्वर्ण के महत्त्वपूर्ण भण्डार हैं। एशिया पैट्रोलियम, लोहे, बाक्साइट, मैंगानीज, अ.. ^ और टीन में समृद्ध है। लेटीन अमरीका के पैट्रोलियम, लोहे, जस्ता और तांबे के असीम भण्डार हैं। अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका की वन सम्पत्ति की खोज और अनुसधान नही हो सका है। इस प्रकार अल्पविकसित देशों के पास साधन तो होते हैं परन्तु विविध बाधाओं, जैसेकि उनकी अपनी दुर्गमता, तकनीकी ज्ञान की कमी, पूँजी की अप्राप्यता और मार्केट की छोटी सीमा, के कारण या तो उनका उपयोग ही नहीं हो पाता या फिर अल्प अथवा दुरुपयोग होता है।

5 अल्प-रोजगार अथवा अदृश्य बेरोजगारी (Under-employment or Disguised Unemployment)

अल्प-रोजगार *अथवा अदृश्य अथवा* छिपी हुई बेरोजगारी अधिकाश अल्पविकसित देशों की अदभुत विशिष्टता है। इस प्रकार की बेकारी स्वैच्छिक (voluntary) नहीं बल्कि अनैच्छिक होती है। लोग काम करने को तैयार होते हैं परन्तु पूरक साधनों की कमी के कारण उन्हें सारे वर्ष के लिए काम नही मिल पाता। इस प्रकार की बेकारी कृषि मे पाई जाती है, जहाँ किसानों और उनके परिवारों को पूर्ण रूप से काम पर लगाये रखने के लिए पर्याप्त भूमि और उपकरण नहीं होते और साथ ही वे ऐसी स्थिति में नहीं होते कि दूसरे व्यवसायों मे रोजगार प्राप्त कर सकें। उदाहरण के लिए, यदि भूमि के एक टुकडे पर खेती करने में छ व्यक्ति लगे हैं और उसकी पाँच व्यक्ति भी खेती कर सकते हैं तो इसका मतलब है कि छ के छ पूर्ण रूप से रोजगार पर नहीं लगे हैं और यदि उनमे से एक को हटा लिया जाये और उसे कोई दूसरा काम दे दिया जाए, तो केवल वही नहीं बल्कि बाकी पाच भी पूर्ण रूप से काम पर लग जाएगे और साथ ही कृषि उत्पादन पर भी कोई प्रभाव नही पड़ेगा।

अल्पविकसित देशो (under-developed countries) मे अदृश्य बेरोजगारी (disguised unemployment) को चित्र 2 1 म दिखाया गया है जिसमे TP कुल उत्पादन

[9] *Op cit*, p 161 मोटे अक्षरों में मुद्रित शब्द लेखक के हैं।

वक्र है। जब OL_1 श्रमिकों को खेती के काम में लगाया जाता है तो कुल उत्पादन OO_1 $(=L_1S_1)$ होता है। अधिक श्रमिकों OL_2 को काम पर लगाने से उत्पादन पहले से बढ़कर OO_2 $(=L_2S_2)$ हो जाता है। लेकिन OL_2 से अधिक श्रमिक लगाने से कृषि उत्पादन में बिल्कुल वृद्धि नहीं होती। OL_2 के पश्चात श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य हो जाती है और अधिक श्रम नियुक्त करने का कोई लाभ नहीं क्योंकि कुल उत्पादन OO_2 में कोई वृद्धि नहीं होती है। अत इस प्रकार L_2L_3 श्रमिकों को अदृश्य बेरोजगार कहा जायेगा। नवरेट्र और नवरेट्र के शब्दों में, "ऐसी स्थिति को अल्प-रोजगार कहा जा सकता है जिसमें साधन-श्रम की एक निश्चित मात्रा को हटाकर दूसरे उपयोग में लगा देने से उस क्षेत्र की कुल उत्पादन में खास कमी नहीं होती जिससे उसे हटाया गया है। दूसरे शब्दों में, इसे यों कहा जा सकता है कि अपने मूल रोजगार में साधन-श्रम की इन इकाइयों की सीमान्त उत्पादकता शून्य या शून्य के अत्यन्त निकट है **अथवा ऋणात्मक भी हो सकती है और उसे कृषि से हटा लेने पर फार्म की उपज वास्तव में बढ़ाई जा सकती है।**" यद्यपि इस अदृश्य बेरोजगारी का मात्रात्मक माप कठिन है फिर भी, अधिकांश अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि घने आबाद देशों में यह बेरोजगारी कृषि श्रम-शक्ति के 25 से 33% का प्रतिनिधित्व करती है जिसे, फार्म-उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना हटाया जा सकता है।
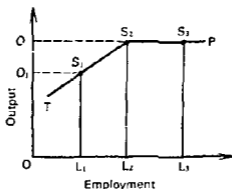
चित्र 2.1

6. जनांकिकीय विशिष्टताएँ (Demographic Features)

अल्पविकसित देश जनांकिकीय स्थिति और प्रवृत्तियों में बहुत भिन्न होते हैं। जनसंख्या के आकार, घनत्व आयु-संरचना तथा वृद्धि की दर में विभिन्नता रहती है। परन्तु तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या एक सामान्य विशिष्टता प्रतीत होती है जिसके कारण कुल जनसंख्या में प्रतिवर्ष काफी संख्या बढ़ जाती है। अपनी प्रति व्यक्ति निम्न आय तथा पूँजी निर्माण की निम्न दरों में ऐसे देशों के लिए इस अतिरिक्त संख्या का भरण-पोषण कठिन हो जाता है। और जब सुधरी हुई तकनीक और पूँजी निर्माण के कारण उत्पादन बढ़ता है, तो उसे बढ़ी हुई जनसंख्या हड़प कर जाती है। परिणाम यह होता है कि जनसाधारण के जीवन-स्तर में कोई सुस्पष्ट सुधार नहीं होता। अल्पविकसित देशों की जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताओं का वर्णन नीचे किया जाता है

(1) जनसंख्या की वृद्धि दरें (Growth rates of population)—विकसित देशों की अपेक्षा अल्पविकसित देशों में जनसंख्या की वृद्धि-दरें दुगुनी पाई जाती हैं जिससे इन देशों की जनसंख्या में विस्फोट पाया जाता है। World Development Report, 1989 के अनुसार, 1980-87 के बीच अल्पविकसित और विकसित देशों में जनसंख्या की वृद्धि दरों का अन्तर लगभग

तीन गुणा था। उदाहरणार्थ, 1980-87 के दौरान भारत में यह 2 1 प्रतिशत, नेपाल में 2 7 प्रतिशत तथा पाकिस्तान में 3 1 प्रतिशत थी जबकि फ्रांस में 0 5 प्रतिशत, जापान में 0 6 प्रतिशत तथा अमरीका में 1 0 प्रतिशत थी।

(2) निम्न मृत्यु दरें एवं ऊँची जन्म दरें (Low mortality and high fertility rates)—अल्पविकसित देशों में जनसख्या की वृद्धि दरें द्वितीय महायुद्ध के बाद बढ़ीं जिसके मुख्य दो कारण है, मृत्यु दर में कमी आना तथा जन्म दर में वृद्धि होना। उदाहरणार्थ, भारत में 1965 में मृत्यु दर 21 प्रति हजार थी जबकि 1987 में मृत्यु दर सिर्फ 11 प्रति हजार प्रति वर्ष रह गई। पाकिस्तान में मृत्यु दर 1965 में 21 प्रति हजार से कम होकर 1987 में 12 प्रति हजार प्रति वर्ष रह गई। भारत में 1965 में जन्म दर 45 प्रति हजार प्रति वर्ष जबकि 1987 में 32 प्रति हजार प्रति वर्ष रही। लेकिन पाकिस्तान में जन्मदर इसी अवधि में 47 से 48 प्रति हजार प्रति वर्ष हुई। इस प्रकार कई देशों में जन्म दर कम हो रही है और कुछ देशो में कम नही हो रही है जबकि मृत्यु दर कम हो रही हैं। मृत्यु दर में कमी होने का कारण उत्तम औषधियाँ एवं लोक स्वास्थ्य कार्यक्रमों का लागू होना है। मृत्यु दर के जन्म दर की अपेक्षा बहुत अधिक कम होने से अल्पविकसित देश में प्रसवन दर ऊँची है।

(3) छोटी आयु वर्ग की अधिक प्रतिशतता (Larger proportion in younger age group)—ऊँचे जन्मानुपात का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह है कि जनसख्या का अपेक्षाकृत अधिक अनुपात छोटी आयु के वर्गों में होता है। अल्पविकसित देशों में 15 वर्ष की आयु से कम जनसख्या की प्रतिशतता लगभग 40 है, जबकि विकसित देशों की जनसख्या का 20 से 25% भाग 15 वर्ष से नीचे की आयु का है। जनसख्या में बच्चों की बढ़ी हुई प्रतिशतता से अर्थव्यवस्था पर भारी बोझ पड़ता है क्योंकि इसका अर्थ है ऐसे आश्रितों की बड़ी सख्या जो उत्पादन तो बिल्कुल नहीं करते पर उपभोग आवश्यक करते हैं। अनेक आश्रितों का भरण-पोषण करने से कार्यशील व्यक्तियों के लिए यह कठिन हो जाता है कि पूँजी पदार्थों में निवेश के लिए कुछ बचा सकें। उनके लिए अपने बच्चों की शिक्षा और जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं का ही प्रबध करना एक समस्या रहती है, जोकि देश की दीर्घकालीन आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक है।

(4) सभावित जीवन-काल (Life expectancy)—अल्पविकसित देशों की अपेक्षा विकसित देशों में साधारण नागरिक की औसत आयु अधिक है। भारत में साधारण नागरिक की आयु 57 वर्ष, कीनिया और पाकिस्तान में 52 वर्ष है। दूसरी तरफ विकसित देशो जैसे अमरीका में 72, जापान एवं फ्रांस में 75 वर्ष है। अल्पविकसित देशों मे साधारण नागरिक की औसत आयु कम रहने के कारण निर्धनता जिससे पौष्टिक आहार उपलब्ध न होना, पीने के लिए स्वच्छ जल की व्यवस्था न होना गदगी, अधिक बीमारियों का होना, आदि।

(5) जनसख्या का वितरण (Distribution of population)—विश्व बैंक रिपोर्ट में सबसे निर्धन देश निम्न आय वर्ग में पाए जाते हैं जिनमें विश्व की कुल जनसख्या का 56 प्रतिशत निवास करता है जबकि विकसित देश विश्व का सिर्फ 15 प्रतिशत है।

(6) जनसंख्या का घनत्व (Density of population)—अल्पविकसित देशों में विकसित देशों की अपेक्षा जनसख्या का घनत्व बहुत अधिक पाया जाता है जिससे इनमें भूमि पर जनसख्या के बढते हुए दबाव का पता चलता है। भारत में जनसख्या का घनत्व 267 प्रति वर्ग किलोमीटर, श्रीलका में 110 जबकि औद्योगिक देशो जैसे इंग्लैंड मे 230 जापान मे 324 प्रति वर्ग किलोमीटर है, अमरीका मे 21 और रूस मे सिर्फ 12 प्रति वर्ग किलोमीटर है। वास्तव म घनत्व का अधिक या कम होना विकास और पिछड़ेपन का द्योतक नहीं है। स्थिति यह है कि विकासशील देशों में भूमि-श्रम का अनुपात कम है जिस कारण भूमि पर जनसख्या का दबाव अधिक है। इंग्लैंड में घनत्व अधिक होते हुए भी भूमि पर जनसख्या के दबाव का प्रश्न नहीं उठता क्योंकि वह औद्योगिक देश है।

(7) शहरीकरण (Urbanization) – अल्पविकसित देशों में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण लोग गाँव से शहरों की तरफ आने लगे हैं। क्योंकि शहरों में ज्यादा उद्योग लगे हुए हैं और जीवन की सभी सुविधाएँ हैं। इन देशों के शहरों में भीड़ अधिक दिखाई पड़ती है। ज्यादा सड़क वाहनों के कारण पर्यावरण प्रदूषित होता जा रहा है। औद्योगिक घरानों द्वारा गंदगी को शहरों में बिखराने से भी पर्यावरण प्रदूषित होता जा रहा है जिससे इन देशों में साधारण नागरिक विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त है। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के सम्बन्ध में चेतावनी देते हुए कीनलेसाइड कहते हैं कि, "बम्ब की तुलना में गर्भाशय अधिक मन्दगामी है, परन्तु उतना ही भयंकर सिद्ध हो सकता है। भस्मीकरण की बजाए श्वासघुटन मानव कथा का अन्त कर सकता है"।[10]

7 सांस्कृतिक एवं प्रशासनिक विशेषताएँ (Cultural and Administrative Characteristics)

अल्पविकसित देशों की अपनी संस्कृति भी उनकी अपनी विशेषताओं की द्योतक है साथ-साथ प्रशासनिक ढाँचा अयोग्य और भ्रष्ट होने के कारण भी यह देश विश्व के अन्य देशों से पिछड़े हुए हैं।

(1) संयुक्त परिवार प्रणाली (Joint family system) – संयुक्त परिवार प्रणाली तथा जाति प्रथा के कारण श्रम की व्यावसायिक अगतिशीलता रहती है। श्रम की पूर्ति का निर्णय करने में मजदूरी की दरों की अपेक्षा कुछ सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक कारण अधिक प्रबल होते हैं। संयुक्त परिवार प्रणाली लोगों को सुस्त और घर-घुसे बना देती है। बहुत सारे अल्पविकसित देशों में कुछ व्यवसाय किसी विशेष जाति, धर्म, नसल, कबीले या सैक्स के व्यक्तियों के लिए आरक्षित होते हैं। लेटिन अमरीका में कपड़ा बनाना एकमात्र स्त्रियों के अधिकार-क्षेत्र में पड़ता है। डॉ० स्टीफन एन्के के अनुसार अल्पविकसित देशों की 'एक गैर-आर्थिक संस्कृति' होती है। "प्रमुख रूप से इसका मतलब यह है कि परंपरागत वृत्तियाँ मानवीय साधनों के पूर्ण उपयोग को हतोत्साहित करती हैं, और भी स्पष्ट रूप से इसका मतलब यह है कि अतिरिक्त उपभोग के लिए लोगों के प्रयत्न करने की कम संभावना है।" अल्पविकसित देशों में अधिकांश लोग निरक्षर, ज्ञानशून्य, दकियानूस, वहमी और भाग्यवादी होते हैं। ऐसे देश में अथाह दरिद्रता होती है, परन्तु उसे ईश्वर प्रदत्त अथवा भाग्य में लिखी समझा जाता है। बचत और उद्यम के व्यक्तिगत अभाव से इसका संबंध कभी नहीं बताया जाता।

(2) प्रशासनिक (Administrative) – लगभग सभी अल्पविकसित देश अस्थिरता से घिरे हुए हैं। अधिकतर देश प्रजातान्त्रिक देश हैं। देश की सत्ता पर एक वर्ग, जाति या पार्टी का प्रभुत्व रहता है जिनका अपना निजी स्वार्थ रहता है। प्राय प्रशासन धनी वर्ग के हाथों केन्द्रित रहता है, जिससे राजनैतिक नेता एवं सरकारी अधिकारी भ्रष्ट होते हैं जो कि अपने राजनैतिक एवं आर्थिक अधिकारों का दुरुपयोग करते हैं। इसी कारण अधिकांश अल्पविकसित देश अयोग्य और भ्रष्ट प्रशासन के कारण विकास नहीं कर पाए हैं।

(3) अन्य सामाजिक विशेषताएँ (Other social characteristics) – बाल-श्रम का व्यापक प्रचलन होता है और समाज में स्त्रियों का दर्जा और स्थिति पुरुषों से निम्न होती है। श्रम-गौरव का प्रत्यक्ष अभाव रहता है। शारीरिक काम की अपेक्षा सरकारी नौकरियों का सम्मान अधिक होता है, चाहे वे क्लर्क प्रकृति की ही क्यों न हो। लोगों को एक विशेष कार्य कर सकने की क्षमता के अनुसार नहीं बल्कि आयु, सैक्स, जाति, फिरके और रिश्तेदारी के अनुसार श्रेणीबद्ध किया जाता है। वे रीति-रिवाजों और परंपराओं से शासित होते हैं। व्यक्तिवादी भावना का अभाव होता है। वस्तुविनिमय द्वारा लेन-देन अधिक होता है और मुद्रा-अर्थव्यवस्था बड़ी

[10] H L. Keenleyside in *Dynamics of Development* (ed) G. Hambidge p 9

मुश्किल से समाप्त पड़ती हैं। "मूल्य-प्रणाली आर्थिक प्रोत्साहनों, भौतिक पुरस्कारों, स्वतन्त्रता तथा विचारशील गणना के महत्त्व को न्यूनतम बनाती है। यह विकास तथा नए विचारों और उद्देश्यों की स्वीकृति में बाधा पहुचाती है और उद्देश्यों की प्राप्ति के वैकल्पिक तरीकों के लाभों और लागतों की तुलना करने में असफल रहती है। सक्षेप में, बहुत सारे गरीब देशों में सास्कृतिक मूल्य-प्रणाली आर्थिक प्राप्ति के अनुकूल नही होती और लोग आर्थिक दृष्टि से पिछडे रहते हैं।"

8 **आर्थिक नीतियाँ** (Economic Policies)

अल्पविकसित देशों की अप्रभावशील आर्थिक नीतियाँ भी इनके पिछड़ेपन का कारण रही हैं। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में अधिकतर लोग गावों में रहते हैं जहाँ बैंकिंग प्रणाली की सुविधाओं का अभाव बना रहता है। लोग वस्तु-विनिमय प्रणाली में ज्यादा विश्वास रखते हैं। गाँव के साहूकार एव महाजन साख की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं जोकि ऋण देने के बदले अधिक ब्याज लेते हैं। लोग ऋण उत्पादकीय कार्यों मे न लगाकर सामाजिक रीति-रिवाजों पर अधिक खर्च करते हैं।

इन अर्थव्यवस्थाओं में केन्द्रीय बैंक को अपने कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए समय-समय पर अपनी नीतियों को बदलना पडता है, क्योंकि देश के मुद्रा बाजार का अविकसित होने के कारण ब्याज की दरों में भी अन्तर रहता है। लोग निरक्षर होने के कारण बैंकिंग सेवाओं का उपयोग कम करते हैं। इसकी बजाए सोना, चादी, जमीनों के खरीदने की अधिक प्रवृत्ति प्रबल रहती है।

दूसरी तरफ, कर नीति में असमानता पाई जाती है। ज्यादा कर का भार शहरी लोगों पर रहता है, जबकि ग्रामीण लोगों पर सिर्फ भूमि-कर का ही भार होता है। वित्तीय साधनों की कमी होने के कारण राजकोषीय नीति सफल नही रहती।

9 **तकनीकी विशेषताए** (Technical Characteristics)

अल्पविकसित देशों की तकनीकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

(1) **प्रति एकड़ कम उपज** (Low per acre production)— अल्पविकसित देशों में दो तिहाई या उससे भी अधिक लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और कृषि प्रमुख व्यवसाय है। उदाहरणार्थ, भारत, चीन, बगलादेश तथा सूडान मे 70 प्रतिशत जनसख्या कृषि के क्षेत्र में कार्यरत है। उत्पादन के पुराने तरीकों के कारण अल्पविकसित देशों मे प्रति एकड उपज कम है। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार भारत मे 100 कि०ग्रा० प्रति हेक्टर गेहूँ का उत्पादन विश्व के गेहूँ उत्पादन का 18 प्रतिशत है जबकि अमरीका में 24 प्रतिशत है।

(2) **उत्पादन के पुराने ढग** (Old methods of production)— अल्पविकसित देशों में कृषि एव औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन कम रहने का कारण उत्पादन की पुरानी तकनीकें हैं जिसके कारण विशेषत कृषि क्षेत्र मे पैदावार अनिश्चित रूप से कम रहती है और किसान केवल गुजारे के स्तर पर जीवित रहता है। इन देशो का प्रौद्योगिकीय पिछडापन इन बातों में झलकता है प्रथम, निम्न मुद्रा-मजदूरी के बावजूद उत्पादन की ऊँची औसत लागत मे, द्वितीय श्रम एव पूँजी की निम्न उत्पादकता, तृतीय, अकुशल एव अप्रशिक्षित श्रमिक।

यह प्रौद्योगिकीय पिछड़ापन प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद के कारण भी होता है जिसका अभिप्राय यह है कि अल्पविकसित देशों में उन्नत और पिछडी हुई तकनीकों का साथ-साथ प्रयोग लाना, औद्योगिक क्षेत्र में तो उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग तथा ग्रामीण क्षेत्र में पिछडी हुई का। इसी कारण साधनो के अनुपात में असतुलन पाया जाता है, जिससे औद्योगिक क्षेत्र में सरचनात्मक या प्रौद्योगिकीय बेरोजगारी और ग्रामीण क्षेत्र में छिपी हुई बेरोजगारी पाई जाती है।

(3) **यातायात एव सचार के साधन** (Means of transport and communications)— अल्पविकसित देशों मे यातायात एव सचार के साधन अपर्याप्त होने के कारण इन देशों में साधनों का कुशलतम प्रयोग नही हो पाता, बाजार का आकार छोटा रहता है। व्यापार के प्रमुख केन्द्र

आय का केवल 5 से 6% तक होता है, जबकि विकसित देशों में यह लगभग 15 से 20% तक होता है।

नई महत्वपूर्ण योजनाओं में निवेश का तो कहना ही क्या, बचत की इतनी निम्न दर तो तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या (2 से 2½%) की व्यवस्था करने के लिए भी काफी नहीं है। वास्तव में, इन देशों की पूँजी का मूल्यह्रास भी पूरा करने और वर्तमान पूँजी पदार्थ को स्थानापन्न करने में कठिनाई होती है।

पूँजी की कमी का मूल कारण है अल्प-बचत की समस्या, अथवा अधिक सही तौर पर आर्थिक वृद्धि की दर बढ़ाने वाले उत्पादक साधनों में अल्प निवेश की समस्या। क्योंकि प्रति व्यक्ति आय बहुत कम होती है, इसीलिए कठिनाई से निर्वाह करने वाले लोग अधिक बचत नहीं कर पाते, जिसका परिणाम यह होता है कि आगे निवेश के लिए बहुत कम बचता है।

ऐसे देशों में आयों के वितरण में अत्यधिक असमानताएं होती हैं। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि पूँजी-निर्माण के लिए उपलब्ध बचतों की मात्रा अधिक है। वास्तव में, आय स्तूप के शिखर के 3 से 5% तक लोगों के लिए ही अधिक बचतें सम्भव हैं। और फिर आय स्तूप की चोटी पर स्थित लोग व्यापारी तथा भूमिपति होते हैं जिनकी ऐसी अनुत्पादक दिशाओं में निवेश की प्रवृत्ति होती है जैसे कि स्वर्ण, आभूषण, कीमती पत्थर, व्यर्थ भण्डार, सुखप्रद वास्तविक जागीर और विदेशी मुद्रा-मार्केट इत्यादि में।

इस बात के लिए, कि दीर्घकाल में आयों के बढ़े हुए स्तर के साथ बचत-अनुपात क्यों नहीं बढ़ता, नर्क्से ने एक और कारण की व्याख्या **प्रदर्शनकारी प्रभाव** के रूप में की है। प्रत्येक व्यक्ति में अपने समृद्ध पड़ोसियों के जीवन-स्तर की नकल की प्रबल लालसा होती है। इसी प्रकार अल्पविकसित देशों के लोगों की भी उन्नत देशों की अपेक्षा ऊँचे उपभोग स्तरों के अनुकरण की प्रवृत्ति होती है। प्रदर्शनकारी प्रभाव के परिणामस्वरूप आय-वृद्धि प्रमुख उपभोग के बढ़े हुए खर्च में लग जाती है और इस प्रकार बचतें लगभग स्थैतिक या नाममात्र रह जाती हैं। यह प्रदर्शनकारी प्रभाव प्रायः विदेशी फिल्मों, पत्रिकाओं और विदेश-भ्रमण के द्वारा लाया जाता है।

उन्नत देशों के उपभोग आदर्शों की नकल की यह प्रवृत्ति केवल व्यक्तियों में ही नहीं बल्कि सरकारों में भी पाई जाती है। अल्पविकसित देशों की सरकारें विकसित देशों के सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों का अनुकरण करती हैं, जैसे कि न्यूनतम मजदूरी विधान, स्वास्थ्य बीमा, पेंशन और प्रोविडेंट फंड स्कीमें इत्यादि। परन्तु वे तरीके उद्यमियों के मार्ग में बाधाएं प्रस्तुत करते हैं और इस प्रकार पूँजी निर्माण रोक देते हैं। प्रो० हैबरलर लिखते हैं "कोई आश्चर्य नहीं कि दरिद्र और पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्थाएं जब जागती हैं और जल्दी में विकास का निश्चय कर लेती हैं और अधिक विकसित व्यवस्थाओं तक पहुँच जाती हैं तो अधिक व्यय करने को प्रेरित होती हैं और अपने साधनों से बढ़कर रहती हैं।" इसलिए अल्पविकसित देश चिरकालिक पूँजी-अभाव के रोग से ग्रस्त रहते हैं और इसके लिए जो कारण उत्तरदायी हैं, वे केवल आर्थिक ही नहीं बल्कि सामाजिक और राजनैतिक भी होते हैं।

12 विदेशी व्यापार अनुस्थापन (Foreign Trade Orientation)

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं सामान्यतया विदेशी व्यापार-अनुस्थापित होती हैं। यह अनुस्थापन प्राथमिक वस्तुओं के निर्यातों और उपभोक्ता-वस्तुओं तथा मशीनरी के आयातों में व्यक्त होता है। कुल उत्पादन से निर्यात उत्पादन का अनुपात, आमतौर पर अधिक, लगभग 20% होता है, उन देशों की विदेशी विनिमय कमाने के अधिकांश भाग के लिए एक या दो प्रमुख वस्तुएं ही उत्तरदायी होती हैं। उदाहरणार्थ, वैन्जुएला अपने निर्यात के 92% के लिए तेल पर निर्भर है, कोलम्बिया 77% के लिए कॉफी पर, चिली 66% के लिए ताँबे पर, और होण्डूरास अपनी विदेशी कमाई के 51% के लिए केलों पर निर्भर है। निर्यातों पर इतनी अधिक निर्भरता का

उन देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर गंभीर उलटा प्रभाव पड़ता है। विश्व बैंक के नवीनतम आँकड़ों के अनुसार अल्पविकसित राष्ट्र संसार के 80% साधनों, विशेषकर कच्चे माल का निर्यात करते हैं। इससे अल्पविकसित देश इन राष्ट्रों को उच्च कोटि के अधिक प्रोटीन वाले खाद्य पदार्थ लगातार निर्यात करते जा रहे हैं जिनका उपभोग वहाँ के लोग केवल स्वयं ही नहीं करते बल्कि मुर्गी एवं पशुपालन में भी किया जाता है। इसका दुष्परिणाम यह हो रहा है कि कमजोर और दरिद्र लोगों को तो अच्छी प्रोटीनयुक्त खाद्य सामग्री मिलती नहीं जो उनके लिए अनिवार्य है जबकि उसका अत्यधिक उपभोग पहले से ही हृष्ट-पुष्ट व्यक्तियों तथा पशु-पक्षियों द्वारा हो रहा है। इन राष्ट्रों की प्राथमिक वस्तुओं के निर्यात पर निर्भरता इनकी अर्थव्यवस्थाओं पर निम्नलिखित कुप्रभाव डालती है

एक, अपने अन्य क्षेत्रों की अपेक्षाकृत उपेक्षा करके अर्थव्यवस्था प्रमुख रूप से निर्यात के उत्पादन पर ध्यान केन्द्रित करती है। दूसरे, निर्यात वस्तुओं की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों के उतार-चढ़ाव के प्रति अर्थव्यवस्था विशेष रूप से प्रभावित बन जाती है। विदेश में मन्दी से उसकी माँग और कीमतें गिर जाती हैं। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अन्तिम, अन्य उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ण उपेक्षा में कुछ निर्यात वस्तुओं पर अत्यधिक अति-निर्भरता ने इन अर्थव्यवस्थाओं को बहुत ही आयात-निर्भर बना दिया है। आयातों में प्राय निर्मित वस्तुएँ, कपड़ा, उपभोक्ता वस्तुएँ और खाद्य पदार्थ भी होते हैं। इनके साथ मिलकर प्रदर्शनकारी प्रभाव भी काम करता है जिससे और अधिक आयात करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है।

हाल में, अल्पविकसित देशों के व्यापार की आय-शर्तों में (आयात करने की क्षमता में) दीर्घकालीन ह्रास हुआ है, जिससे उन्हें भुगतान-शेष की कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। प्रो० हरिहारा के अनुसार, अल्पविकसित देश की प्रबल आयात-आवश्यकताओं की तुलना में निर्बल निर्यात क्षमता उसकी बाह्य ऋणग्रस्तता में प्रकट होती है। उदाहरणार्थ, मेक्सिको का दीर्घकालीन विदेशी ऋण 1987 में डॉलर 82,770 मिलियन था।

विदेशी व्यापार-अनुस्थापन अपने को अल्पविकसित देशों के प्रति विदेशी पूँजी के प्रवाह के माध्यम से भी प्रकट करता है। यह निर्यात क्षेत्र का विकास और विस्तार करने में भी प्रबल कार्य करता है। यह उन सेवाओं या भी नियन्त्रण और प्रबंध करता है जो निर्यात क्षेत्र के अधीन होती हैं। इस तरीके से अल्पविकसित देशों में कुछ चुने हुए क्षेत्रों में विदेशी पूँजी अपनी स्थिति का एकाधिकार करने लगती है, जैसे कि खनिज पदार्थों, बागानों तथा पैट्रोलियम में। विकसित देशों से बहुराष्ट्रीय निगमों (MNCs) ने विनिर्माण (manufacturing), निर्यात-अनुस्थापित बागानों, पैट्रोलियम तथा खनन (mining) के क्षेत्रों में अल्पविकसित देशों में बहुत फैली हुई हैं। अल्पविकसित देशों में विदेशी पूँजी का इतना अधिक विस्तार और अधिकार उनके साधनों को निचोड़ लेता है क्योंकि शोषण द्वारा अधिकतम लाभ कमाना ही विदेशियों का मुख्य उद्देश्य है। इस तथ्य से अल्पविकसित देशों की ऋण-स्थिति तथा विदेशी विनिमय की समस्या अधिक गंभीर हो रही है।

प्रश्न

1. एक अल्पविकसित देश की क्या मुख्य विशेषताएं हैं?
2. अल्पविकसित देश किसे कहते हैं? इसके विशिष्ट लक्षण क्या हैं?
3. अल्पविकसित देशों की जनांकिकीय व तकनीकी विशेषताओं का वर्णन करें।

अध्याय 73

आर्थिक विकास में बाधाएँ
(OBSTACLES TO ECONOMIC DEVELOPMENT)

पिछले अध्याय में अल्पविकसित देशों की जिन प्रमुख विशिष्टताओं की चर्चा की गई है, उन्हें आर्थिक विकास की बाधाएं भी माना जा सकता है। यद्यपि अल्पविकसित देशों की सामान्य विशिष्टताएं सब अल्पविकसित देशों में समान रूप से नहीं मिलती, फिर भी, इन विशिष्टताओं में इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर विद्यमान है कि कोई दरिद्र देश दरिद्र क्यों है। इन विशिष्टताओं में से अनेक दरिद्रता का कारण और परिणाम दोनों हैं। वास्तव में, चक्रीय सबंध होते हैं, जिन्हें दरिद्रता के दुश्चक्र कहा जाता है जो ऐसे देशों में विकास के निम्न-स्तर को चिरस्थायी बनाने का प्रयत्न करते हैं। निम्नलिखित आर्थिक और गैर-आर्थिक कारक उन आपसी कारण सबंधों का विश्लेषण करते हैं जो आर्थिक वृद्धि में बाधा प्रस्तुत करते हैं

1 आर्थिक बाधाएं
(Economic Obstacles)

1 दरिद्रता के दुश्चक्र (Vicious Circles of Poverty)

अल्पविकसित देश दरिद्रता के दुश्चक्रों में पड़े हुए हैं। नर्क्से ने इस विचार की इन शब्दो में व्याख्या की है, "इसका तात्पर्य ऐसी शक्तियों का वृत्तीय समूह है जो एक दूसरी पर इस तरह क्रिया और प्रतिक्रिया करती हैं कि वे एक दरिद्र देश को दरिद्रता की अवस्था में ही रखती हैं। उदाहरणार्थ, हो सकता है कि एक गरीब आदमी के पास खाने को काफी न हो कम खाने के कारण उसकी सेहत कमजोर हो सकती है, शारीरिक दुर्बलता के कारण उसकी कार्य करने की क्षमता कम होगी, जिसका मतलब है कि वह दरिद्र ही रहेगा, जिसका फिर यह मतलब होगा कि उसे काफी खुराक नहीं मिलेगी, और फिर वही क्रम। पूरे देश से सबंध रखने वाली इस प्रकार की स्थिति को हम इस घिसे-पिटे वचन द्वारा व्यक्त कर सकते हैं कि "एक देश इसीलिए दरिद्र है कि वह दरिद्र है।"[1]

मूल दुश्चक्र इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि पूँजी की कमी, मार्केट-अपूर्णताओं, आर्थिक पिछड़ेपन तथा अल्पविकास के कारण अल्पविकसित देशों में कुल उत्पादकता कम होती है। कम-उत्पादकता कम वास्तविक आय में झलकती है। वास्तविक आय के निम्न स्तर का मतलब है बचत की निम्न दर। बचत के निम्न स्तर का परिणाम यह होता है—निवेश की निम्न दर तथा पूँजी की कमी। और फिर पूँजी की कमी का परिणाम उत्पादकता का निम्न स्तर होना है। अतः इस प्रकार, पूर्ति की ओर से दुश्चक्र पूरा हो जाता है। यह चित्र 73.1 में दर्शाया गया है।

अन्य दुश्चक्र इस दुश्चक्र को पुष्ट करते और ढाँप लेते हैं। वास्तविक आय का निम्न स्तर माँग के स्तर को गिरा देता है, जिससे आगे निवेश का अनुपात गिर जाता है और यहाँ से हम वापिस पूँजी की कमी तथा उत्पादकता के निम्न स्तर पर आ जाते हैं, जैसा कि चित्र 73.2 में दिखाया गया है।

दोनों दुश्चक्रों की सामान्य विशिष्टता है वास्तविक आय का निम्न स्तर, जो निम्न बचत तथा निम्न निवेश को प्रकट करता है।

[1]A country is poor because it is poor *R Nurkse*

चित्र 73 1 चित्र 73 2
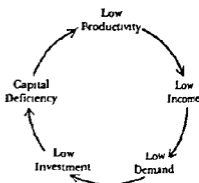
एक तीसरा दुश्चक्र मानवीय तथा प्राकृतिक साधनों को आच्छादित कर लेता है। प्राकृतिक साधनों का विकास देश में लोगों की उत्पादन क्षमता पर निर्भर रहता है। यदि लोग पिछड़े हुए तथा अशिक्षित हैं और उनमें तकनीकी दक्षता, ज्ञान तथा उद्यमीय क्रियाशीलता का अभाव है, तो प्राकृतिक साधनों का या तो उपयोग ही नहीं हो पाएगा या फिर अल्प उपयोग होगा अथवा दुरुपयोग भी हो सकता है। किसी देश के लोग, अल्पविकसित प्राकृतिक साधनों के कारण, आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। इसे चित्र 73 3में स्पष्ट किया गया है।

Market Imperfections

↑ ↓

Underdeveloped Natural Resources

↑ ↓

Backward People
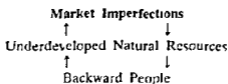
चित्र 73.3

"इस प्रकार अर्थव्यवस्था का अल्पविकास तथा दरिद्रता पर्यायवाची हैं। कोई देश इसलिए दरिद्र है कि वह अल्पविकसित है। कोई देश इसलिए अल्पविकसित है कि वह दरिद्र है और इसलिए अल्प विकसित रहता है कि उसके पास विकास-प्रवर्तन के लिए आवश्यक साधन नहीं होते। दरिद्रता एक शाप है परन्तु उससे भी बड़ा अभिशाप यह है कि वह स्वयं को चिरस्थायी बनाए रखती है।"[2]

इस दुश्चक्र से अर्थव्यवस्था को निकालने के लिए उपाय प्राकृतिक साधनों का विकास, पूँजी-निर्माण को बढ़ावा, बाजार सुविधाओं का विकास, प्रौद्योगिकी उन्नति, मानवीय साधनों का विकास, एवं संरचनात्मक परिवर्तन आवश्यक है जिनका वर्णन 'आर्थिक वृद्धि के तत्व' के अन्तर्गत किया गया है। इसके अतिरिक्त सन्तुलित विकास करना आवश्यक है जिसके लिए सन्तुलित विकास का सिद्धांत देखें।

2 **पूँजी-निर्माण की निम्न दर** (Low Rate of Capital Formation)
आर्थिक विकास की सबसे बड़ी बाधा पूँजी की कमी होती है। यह दरिद्रता के उन दुश्चक्रों से

[2] R N Bhattacharya *Indian Plans* p 4

उत्पन्न होती है जिनका ऊपर विश्लेषण किया गया है। दरिद्रता किसी देश की पूँजी-निर्माण की निम्न दर का कारण तथा परिणाम दोनों होती है। अल्पविकसित देश में जनसाधारण दरिद्रता में फसे होते हैं। वे अधिकतर अशिक्षित तथा अकुशल होते हैं और पुराने पूँजी उपकरण तथा उत्पादन के तरीके प्रयोग करते हैं। वे निर्वाह-कृषि का अनुसरण करते हैं। उनमें गतिशीलता नहीं होती और अर्थव्यवस्था के मार्केट क्षेत्र से उनका सबध नहीं के बराबर होता है। उनकी सीमान्त उत्पादकता बहुत ही कम होती है। निम्न उत्पादकता का परिणाम यह होता है कि वास्तविक आय, बचत, निवेश तथा पूँजी-निर्माण की दर के स्तर कम हो जाते हैं। उपभोग-स्तर पहले ही इतना कम होता है कि पूँजी-स्टॉक बढ़ाने के लिए इसे और नियंत्रित करना कठिन होता है। यही कारण है कि ऐसे देशों में लाखों किसान पुराने तथा अप्रचलित पूँजी-उपकरणों का प्रयोग करते हैं। वे थोड़ी बहुत राशियाँ, जिन्हें वे बचा पाते हैं, प्राय करेंसी के रूप में एकत्र की जाती हैं या स्वर्ण तथा आभूषण आदि खरीदने में प्रयोग होती हैं। मुद्रा को सग्रह करने के प्रति झुकाव का कारण है देहाती क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का अभाव। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि अल्पविकसित देशों में पूँजी-निर्माण नहीं के बराबर होता है। अल्पविकसित देशों में पूँजी निर्माण की वृद्धि में निम्न बाधाओं—(क) बचत एव निवेश का निम्न स्तर (ख) वित्तीय समस्याए, (ग) प्रदर्शनकारी प्रभाव का वर्णन किया जाता है।

(1) **बचत एव निवेश का निम्न स्तर** (Low level of saving and investment)—अल्पविकसित देशों में निवेश का स्तर काफी नीचा रहता है जिसका प्रमुख कारण पूंजी और आय का कम होना है। इन देशों में बचत तथा निवेश की प्रेरणा के कारण अपूर्ण कानून और व्यवस्था कायम रखना, राजनैतिक अस्थिरता अनिश्चित मौद्रिक परिस्थितियाँ, आर्थिक जीवन में निरन्तरता का अभाव, विस्तृत परिवार प्रणाली तथा उसके द्वारा साधनों का निकास और व्यक्तिगत उपक्रम (initiative) का अन्त तथा भूमि-धारण की कुछ प्रणालियाँ आती हैं। निवेश के मार्ग में बाधा प्रस्तुत करने वाले कारणों में पहले तो 'केवल आदत होने की बात' आती है। अज्ञात की अपेक्षा जानने का प्रयत्न करना सदैव अधिक सुगम होता है। मनुष्य स्वभाव से ही अपने पुराने घाट पर प्रसन्न रहता है और नए साहसिक कार्यों में खतरा मोल लेना नहीं चाहता। दूसरा कारण है घरेलू मार्किट का छोटा आकार। जनसाधारण की निम्न क्रय-शक्ति के कारण वस्तुओं की पूर्ति की खपत के लिए घरेलू मार्किट की क्षमता सीमित होती है। तीसरे, निवेश के लिए कोष प्राप्त करने की कठिनाइयाँ भी विद्यमान होती हैं। बहुत सारे उत्पादक कार्यों के लिए अधिक पूँजी-व्यय की जरूरत होती है, जिसे सुविकसित पूँजी तथा स्टॉक-मार्किट और ऋण तथा बैंकिंग प्रणाली के अभाव के कारण प्राप्त करना कठिन होता है। चौथे, कुशल श्रम तथा साधन गतिशीलता का अभाव उत्पादन की लागत बढ़ा देता है जिसके परिणामस्वरूप सभावित निवेशक रुक जाते हैं। पाँचवे, परिवहन, शक्ति तथा जल-पूर्ति की मूल सेवाओं की अपर्याप्तता अथवा अभाव निवेश की प्रेरणा तथा पूजी निर्माण की दर को कम कर देता है।

(2) **वित्तीय समस्याए** (Problems of finance)—अधिकाश अल्पविकसित देशों में उद्यमीय योग्यताए अपने आप में एक दुर्लभ साधन हैं और जो भी थोड़ी-बहुत उद्यमता उपलब्ध भी होती है, वह वित्त की कमी और निवेश के भारी जोखिम उठाने से भाग जाती है। अधिकतर व्यापारी निर्यात उद्योग में लगे रहते हैं जो कि प्राथमिक वस्तुओं का होता है। इस प्रकार इन देशों में पूँजी के वास्तविक स्टॉक में कोई वृद्धि नहीं हो पाती। निम्न आय तथा उच्च आय वर्गों के बीच में एक छोटा-सा मध्यम आय वर्ग होता है जो कम जोखिम वाले कार्यों जैसे कि मार्केटिंग तथा अन्य सेवाए प्रदान करने में लगा रहता है। यह वर्ग उत्पादक उद्योगों में निवेश के लिए तैयार नहीं होता जिसका कारण वित्त का अभाव है और उसको प्राप्त करने में कई प्रकार की कठिनाइया हैं जिनमें मुख्यतौर से पूजी एव मास बाजार का अविकसित होना, वित्तीय संस्थाओं का अभाव आदि है।

(3) **प्रदर्शनकारी प्रभाव** (Demonstration effect)—प्रोफेसर नर्क्से के अनुसार, अल्पविकसित देशों में पूजी-निर्माण की गति मन्द करने वाले प्रमुख कारणों में से एक यह है कि

लोगों में विकसित देशों के उत्कृष्ट उपभोग स्तरो का अनुसरण करने की इच्छा होती है। एक मात्र धनी वर्ग ही ऐसा है जो इन देशो मे अधिकाश बचत करता है लेकिन ये बचते उत्पादक नहीं होतीं जैसे, भूमि खरीदना, स्वर्ण के आभूषण, विदेशी एव देशी करेंसी को एकत्रित करना, इत्यादि। धनी वर्ग द्वारा अन्य विकसित देशो मे वस्तुए खरीदना भी घरेलू वस्तुओ की माग को कम रखता है।

3 प्राकृतिक साधन (Natural Resources)

अल्पविकसित देशो मे विभिन्न कारणो से प्राकृतिक साधनो का उपयोग नही हो पाता या अल्प उपयोग या सिर्फ दुरुपयोग होता है। उदाहरणार्थ भारत, उगाडा, सूडान, बर्मा आदि अनेक देश अल्पविकसित हैं—प्राकृतिक साधनो से भरे पडे हैं लेकिन सही दोहन मे विभिन्न बाधाओ जैसे तकनीकी ज्ञान की कमी, पूँजी का पर्याप्त मात्रा मे न होना, बाजार की सीमितता के कारण ऐसे देशो की राष्ट्रीय आय कम रही है। अत अल्पविकसित प्राकृतिक साधन इन देशो के आर्थिक विकास मे एक बडी बाधा के रूप मे मानी जाती है। प्रो० हैनरी ब्रटन के अनुसार प्रोद्योगिकी परिवर्तन किसी अर्थव्यवस्था मे विद्यमान प्राकृतिक साधनो की कोटि तथा परिमाण को प्रभावित करते हैं।

4 बाजार का सीमित होना (Limited Size of Market)

अल्पविकसित देशो में बाजार बहुत ही छोटे होते हैं। इसका कारण आय का असमान वितरण, पूँजी की कमी, विक्रयकला प्रवृत्ति का कम होना, परिवहन के साधनो का अविकसित होना और प्रशुल्क सीमाओं की ऊँची दरें। इन्हीं कारणो से अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास की गति धीमी रहती है।

(1) आय का कम होना (Low level of income)—अल्पविकसित देशों में आय का असमान वितरण होता है जिसके कारण बाजार पर नियन्त्रण कुछ गिने-चुने पूँजीपतियों का रहता है। अल्पविकसित देशो में सामान्यत लोगो का जीवन स्तर नीचा रहता है क्योंकि आय निम्न होती है और लोग सिर्फ दैनिक उपयोग की वस्तुए ही खरीदते हैं जिससे अन्य वस्तुओं की माँग कम रहती है और बाजार में व्यापारिक क्रियाए सीमित रहती हैं।

(2) पूँजी की कमी (Deficiency of capital)—एक अन्य कारण यह भी है कि अल्पविकसित देशों मे पूजी की कमी होती है। लोगों की आय सीमित होने से बचत करने की प्रवृत्ति भी कम होती है। इसके अतिरिक्त उत्पादककर्ता, व्यापारी वर्ग और उद्यमियो को पूजी की उपलब्धता सस्ते ब्याजों पर सरकार और गैर-सरकारी सस्थाओ से प्राप्त नहीं होती जिससे निवेश की प्रक्रिया प्रभावित नही होती है।

(3) विक्रयकला प्रवृत्तिओं का कम होना (Low level of sales propensities)—पूजी के अभाव के कारण अल्पविकसित देशों में विक्रकला के साधनों जैसे समाचार पत्रों द्वारा, रेडियो, टी० वी० के माध्यम से वस्तुओं का प्रचार कम होता है जिससे अर्थव्यवस्था में वस्तुओं की माग कम बनी रहती है।

(4) परिवहन के अविकसित साधन (Undeveloped means of transportation)—अल्पविकसित देशों में परिवहन के साधन अविकसित होते हैं जिससे वस्तुओं की उत्पादन लागतें अधिक रहती हैं। ऐसे देशों में उत्पादकों को कच्चा माल प्राप्त करने और उत्पादित वस्तुओं को बेचने के लिए परिवहन के साधनों पर अधिक निर्भर रहना पडता है। अधिकतर उद्योग शहर से बाहर लगाए जाते हैं और वस्तुओं की माग की शहरों मे खपत होती है जिससे उत्पादन लागतें अधिक रहती हैं।

(5) प्रशुल्क सीमा की ऊची दरें (High rates of tariff barriers)—अल्पविकसित देशों में सरकारें उत्पादकों के अधिक लाभों को सीमित रखने के लिए समय-समय पर प्रशुल्क सीमा की

दरों को बढ़ाती रहती हैं, जिससे वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुचाने में काफी खर्चों को उठाना पड़ता है।

5 जनसख्या विस्फोट (Population Explosion)

अल्पविकसित देशों में जनसख्या की स्थिति विस्फोटक है। इन देशो मे जनसख्या के कारण उत्पादन का स्तर उतना नही बढ़ पाता जितनी तीव्रता से उपभोग में वृद्धि होती है। भूमि पर बढ़ते हुए दबाव के कारण ऐसी अर्थव्यवस्थाओं मे खाद्यान्नों की कमी रहती है और इसी कमी के कारण अन्य वस्तुओं की कीमतें भी बढ़ती जाती हैं जो पूजी-निर्माण की प्रक्रिया को धीमा रखती हैं। जनसख्या के प्रभाव को नीचे चित्र 3 4 मे दिखाया गया है। क्षैतिज अक्ष पर जनसख्या के स्तर को और अनुलम्ब अक्ष पर कुल उत्पादन के स्तर को दिखाया गया है। चिकित्सा सुविधाओं में सुधार के कारण जन्म-दर बढ़ जाती है जिससे जनसख्या बढ़कर P_1 से P_2 हो जाती है। साथ-साथ उत्पादन तकनीको मे सुधार के कारण उत्पादन मे वृद्धि Y_1 से Y_2 हो जाती है। रेखा Y_2P_2 उत्पादन जनसख्या के स्तर को बता रही है कि उत्पादन में वृद्धि के साथ जनसख्या मे वृद्धि भी हो रही है। लेकिन दीर्घकाल में, जनसख्या तीव्रता से बढ़ती है और उत्पादन मे वृद्धि अपेक्षाकृत कम रहती है। चित्र 3 4 मे रेखा Y_3P_3 द्वारा स्पष्ट हो रहा है कि जब जनसख्या मे वृद्धि P_2 से P_3 हो रही है, तो उत्पादन का स्तर अपेक्षाकृत पहले से भी कम Y_3 रह जाता है जिसका कारण जनसख्या विस्फोट है। जनसख्या विस्फोट को चित्र मे AFB द्वारा व्यक्त किया गया है।
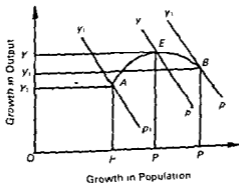
चित्र 73 4

6 साधनों की उत्पादकता में कमी (Low Productivity of Factors of Production)

अल्पविकसित देशों मे विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादकता कम रहती है। इसका मुख्य कारण साधनों की अगतिशीलता, कार्यकुशलता का कम होना, सीमित विशिष्टीकरण और उद्यम का अभाव है। इसके अतिरिक्त, सरकारें कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए इजीनियरों, तकनीकी निरीक्षकों को काम पर लगाती हैं। साथ ही साथ निजी प्रबधकों को विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहन दिए जाते हैं तब भी उत्पादन की मात्रा और गुणवत्ता प्राय असन्तोषजनक रहती है। बाल श्रम का अधिक प्रचलन, श्रमिकों को अपर्याप्त रूप से प्रशिक्षण, अनुभव का अभाव और कम मजदूरी के कारण भी उत्पादकता कम रहती है। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में काम—धर्म, जाति और भौगोलिक आधार पर दिया जाता है।

शिक्षा के प्रति सामाजिक मनोभाव भी आर्थिक प्रगति का विरोधी है। ऐसे देशों मे तकनीकी तथा व्यवसायिक शिक्षा की तुलना में विश्वविद्यालय शिक्षा को अधिक अधिमान दिया जाता है,

जो कि केवल सरकारी तथा अन्य लिपिक धन्धों के लिए प्रशिक्षित करती है। शारीरिक श्रम के प्रति घृणा का भाव बना रहता है और उसे तुच्छ समझा जाता है। परिणामस्वरूप व्यावहारिक कार्य तथा प्रशिक्षण के प्रति स्वाभाविक अरुचि रहती है। ऐसे देशों के लोग नवप्रवर्तन के प्रभाव द्वारा उपजे नए मूल्यों को स्वीकार करने के विरुद्ध होते हैं। यह माना जाता है कि एक अल्पविकसित देश में दो प्रकार की वस्तुए—पूजीगत वस्तुए एव उपभोग वस्तुए ही उत्पादित होती हैं। इस देश की उत्पादन सीमा चित्र 3 5 में PP द्वारा प्रदर्शित की गई है। यदि अर्थव्यवस्था बिन्दु A पर है तब किसी भी प्रकार के उत्पादन में वृद्धि नहीं होती क्योंकि अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों को पूर्ण रूप से काम पर नहीं लगाया जाता। यदि पुरानी तकनीकों में सुधार किया जाता है, तो उत्पादन सभावना बिन्दु A से बिन्दु B पर केन्द्रित हो जाता है। इस बिन्दु पर उपभोग वस्तुए अधिक और पूजीगत वस्तुए कम उत्पादित की जाती हैं। वास्तव में, बिन्दु B या बिन्दु C पर अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों का इष्टतम् उपयोग ऊपर वर्णित बाधाओं के कारण नहीं हो पाता। इसी कारण विकसित देशों का उत्पादन सभावना वक्र चित्र में DE हमेशा अल्पविकसित देशों के उत्पादन सभावना वक्र से ऊपर रहता है। इस सदर्भ में प्रो० शुल्ज ने ठीक ही कहा है कि "ऐसे (अल्पविकसित) देशों में प्रमुख महत्त्व इस तथ्य में है कि आर्थिक वृद्धि प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि तीन प्रकार के कार्य करने का प्रयत्न करना और पूजी का विभाजन जैसे कि पुनरुत्पादनीय वस्तुओं की मात्रा बढ़ाई जाए उत्पादक एजेंटों के रूप में लोगों की श्रेणी में सुधार एव उत्पादक कलाओं का स्तर बढ़ाया जाए।"[3]
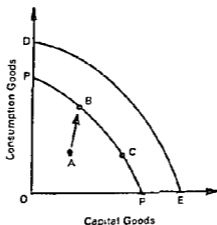
चित्र 73 5

7 उपनिवेशवाद का प्रभाव (Impact of Colonialism)

अधिकतर अफ्रीका और एशिया के देश औपनिवेशक शोषण के शिकार रहे हैं। आजकल इन देशों में उद्योग पिछड़े हुए हैं जिसका मुख्य कारण उपनिवेशवाद है। विदेशी शासकों के अधीन सारा व्यापार रहने के कारण इन देशों से अधिक निष्कासन के रूप में कच्चा माल, अधिक वसूली, धन और अमूल्य वस्तुए विदेशों में गईं। उपनिवेशवाद के कारण आज विश्व के अल्पविकसित देशों को विकसित देशों की आर्थिक सहायता पर निर्भर रहना पड़ रहा है।

[3] T W Schultz, "The Role of Government in Promoting Economic Development", in White L D (ed) *The State of Social Sciences*, p 372.

8 **कृषि संबंधी बाधाएं** (Agricultural Constraints)

एक अन्य बाधा कृषि क्षेत्र से सबंधित है। अधिकतर अल्पविकसित देश कृषि प्रधान होते हैं जिनमें कृषि उत्पादन सकल राष्ट्रीय उत्पाद का बहुत बड़ा भाग होता है और कृषि पदार्थ उनकी कुल निर्यातों के मूल्य का एक मुख्य हिस्सा होते हैं। प्रो० हैनसन के अनुसार, "कृषि पद्धतियाँ रिवाजों तथा परम्परा द्वारा नियंत्रित होती हैं। एक ग्रामीण विज्ञान से भयभीत होता है। अनेक ग्रामीणों के लिए कृमिनाशक औषधि भय होती है। नया और सुधरा हुआ बीज संदेहजनक है। इसका प्रयोग जुआ खेलना है। उदाहरण के लिए, उर्वरक वास्तव में एक जोखिम है। इन अपरीक्षित तरीकों को अपनाना जोखिम मोल लेना है तथा असफलता का अर्थ भूखों मरना हो सकता है।"* वास्तव में कृषि विकास में बाधा कृषकों का व्यवहार नहीं बल्कि उनका वातावरण है जिसमें वे कार्य करते हैं उनको प्राप्य प्रौद्योगिकी, उत्पादन तथा निवेश के लिए प्रोत्साहन, आगतों की उपलब्धता तथा कीमत, सिंचाई के साधन तथा जलवायु। शीतोष्ण और सम-शीतोष्ण क्षेत्रों में स्थित अल्पविकसित देश जलवायु के बारे में अलाभ की स्थिति में होते हैं। गर्मी और अत्यधिक वर्षा के कारण उनकी भूमि के उपजाऊपन में कमी हो जाती है। वातावरणात्मक कारकों के कारण, कृषि उत्पादन विकासशील अर्थव्यवस्था की बढ़ती हुई माग को बढ़ाने में असमर्थ होता है। फिर, जब जनसख्या की वृद्धि दर ऊंची होती है तो प्रति व्यक्ति कृषि और खाद्य उत्पादन बढ़ने की बजाय कम हो सकता है। यही कारण है कि बहुत से अल्पविकसित देशों के वस्तु-उत्पादन में खाद्य पदार्थों का भाग 25 प्रतिशत से अधिक है जो उनके विदेशी विनिमय ससाधनों पर भारी भार डालते हैं। इस प्रकार, कृषि क्षेत्र का पिछड़ापन अल्पविकसित देशों के धीमे आर्थिक विकास में मुख्य बाधा है।

9 **अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के प्रतिप्रभाव** (Repercussions of International Forces)

मिंत, प्रैबिश, सिंगर, लुइस तथा मिर्डल जैसे अर्थशास्त्रियों ने विश्व के द्वारा अल्पविकसित देशों के शोषण के परिणामस्वरूप व्यापार के लाभ प्रमुख रूप से विकसित देशों को प्राप्त हुए हैं। अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के प्रतिप्रभावों का वर्णन किया जाता है।

(i) **भुगतान-शेष की समस्या** (Problems of balance of payments) – विश्व मार्किटों के लिए अल्पविकसित देशों के खुल जाने के बाद उनके निर्यातों में अद्भुत वृद्धि हुई है। परन्तु इसने इन देशों की शेष अर्थव्यवस्था के विकास में अधिक योगदान नहीं दिया है क्योंकि अर्थव्यवस्था के दूसरे क्षेत्रों की पूर्ण उपेक्षा करके निर्यात क्षेत्र का विकास हुआ है। दूसरी ओर, निर्यातों पर अत्यधिक निर्भरता ने इन अर्थव्यवस्थाओं को उनकी वस्तुओं की माग और कीमतों को अन्तर्राष्ट्रीय उतार-चढ़ावों के खतरे में डाल दिया है। चक्रीय अस्थिरता तथा भुगतान-शेष कठिनाइयों के कारण वे अस्थिर हो [illegible] हैं। मन्दी में व्यापार की शर्तें प्रतिकूल हो जाती हैं और विदेशी विनिमय अर्जन तीव्रता से गि[illegible] है। परिणाम यह होता है कि उन पर प्रतिकूल भुगतान-शेष की मुसीबत पड़ जाती है। परन्तु अपनी वस्तुओं की कीमतों के गिरने का लाभ वे उनका निर्यात बढ़ा कर नहीं उठा सकते क्योंकि उनकी निर्यात वस्तुओं की पूर्ति की प्रकृति लोचरहित होती है, जोकि प्रमुख रूप से कृषि व खनिज वस्तुएं होती हैं। इसी प्रकार विश्व मार्किट में तेजी से भी वे लाभ नहीं उठा सकते। उनकी व्यापार-शर्तों में सुधार के साथ उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि नहीं होती जिसका कारण है मार्किट-अपूर्णताएं, अपर्याप्त पूरक पूंजी तथा सरचनात्मक कुसमायोजन। इसके विपरीत, बढ़ी हुई निर्यात कमाई सट्टे, दिखावटी उपभोग, भूमि, विदेशी विनिमय इत्यादि में नष्ट कर दी जाती है। इनसे स्फीति-दबाव, निवेश व्यय का कुविभाजन तथा भुगतान-शेष की कठिनाईयां भी उत्पन्न होती हैं।

*Alvin Hasen, *Economic Issues of the 1960s*, pp 157 58

(2) **विदेशी निवेश का प्रभाव** (Effect of foreign investment) — अल्पविकसित देशों के मार्ग में एक अन्य बाधा विदेशी निवेश के प्रतिकूल प्रभाव रहे हैं। विदेशी निवेश प्रमुख रूप से निर्यात-योग्य वस्तुओं की वृद्धि की ओर अभिमुख रहा है, परन्तु इससे अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। प्राथमिक क्षेत्र में उत्पादकता के स्तर, आय तथा जीवन-स्तर नहीं बढ़े। निर्यात वस्तुओं के क्षेत्र में भी अदक्ष श्रम की वास्तविक मजदूरी का स्तर नीचा रहा है। प्रबंधात्मकता की मजदूरी तथा लाभों के कारण विदेशी लोग मुद्रा की बड़ी राशियाँ खींचते रहे हैं।

(3) **व्यापार की शर्तें** (Terms of Trade) — प्रो० रॉल प्रैबिश के विचार में अल्पविकसित देशों का व्यापार के क्षेत्र में चिरकालिक पतन हुआ है। उसकी धारणा है कि "पिछले सत्तर वर्षों में, परिवृत्तीय (peripheral) अल्पविकसित देशों ने अपनी आयात क्षमता की निरन्तर कमी के घातक परिणाम सहे हैं। इससे अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या का पोषण करने के लिए उनके वर्तमान प्राथमिक उत्पादनकारी उद्योगों की क्षमता दुर्बल पड़ गई है। इसके परिणामस्वरूप तकनीकी प्रगति का लाभ उन तक पहुँचने में असफल हुई है। इससे प्रत्येक व्यक्तिगत देश के प्राथमिक उत्पादनकारी उद्योगों के उत्पादन बढ़ाने के स्वतन्त्र प्रयत्न का परिणाम उनकी व्यापार-शर्तों में असंतुलन हुआ है। इसने अन्ततः पूँजी-निर्माण का अनुपात कम कर दिया है और इस प्रकार उनकी आर्थिक वृद्धि भी घटा दी है।" इस तरह अल्पविकसित देशों की व्यापार-शर्तों के चिरकालिक बिगाड़ का अर्थ है कि उनके कारण विकसित देशों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ अधिक प्राप्त हुए हैं, जिसने उनकी वास्तविक आय का स्तर तथा विकास-क्षमता घटा दी है।

(ख) गैर-आर्थिक बाधाएँ
(Non-Economic Obstacles)

आर्थिक विकास में गैर-आर्थिक बाधाएँ निम्नलिखित हैं

1. सामाजिक एवं सांस्कृतिक बाधाएं (Socio-cultural Obstacles)

अल्पविकसित देशों में सामाजिक संस्थाएं ऐसे व्यवहारों का प्रदर्शन करती हैं जो कि आर्थिक विकास के प्रेरक नहीं होते। यह जाति तथा वर्ग संबंधी दरारों, अन्य देशीय तथा धार्मिक भेदों, सांस्कृतिक परम्परा तथा सामाजिक आदर्शों में भेद, बन्धुत्व-निष्ठा और क्षेत्रीय ज्ञान के द्वारा समाज को विभाजित होने की प्रवृत्ति है। जैसे कि नर्क्से ने कहा, "राष्ट्रीय विकास बहुत हद तक मानवीय गुणों, सामाजिक प्रवृत्तियों, राजनैतिक परिस्थितियों और ऐतिहासिक संयोगों से सम्बन्ध रखता है। प्रगति के लिए पूंजी आवश्यक तो है लेकिन उसके लिए केवल पूंजी का होना ही पर्याप्त ही नहीं।"[5] इन बाधाओं का वर्णन नीचे किया जाता है।

(क) **परिवार** (Family) — परिवार प्राथमिक आर्थिक तथा सामाजिक इकाई है। परिवार की प्रवृत्तियाँ जनसंख्या के दबावों तथा भूमि के लगाव के लिए उत्तरदायी हैं। वे आर्थिक निर्णय करने में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के क्षेत्र को भी सीमित कर देती हैं और आर्थिक निर्णय बचत तथा निवेश के उद्देश्यों को प्रभावित करते हैं। मुद्रा एकत्र की जाती है अथवा स्वर्ण आभूषण या भूमि में लगाई जाती है या फिर सामाजिक रीति-रिवाजों पर खर्च हो जाती है।

(ख) **सामाजिक वर्गीकरण** (Social classification) — अल्पविकसित देशों में लोग जाति, कबीले या सम्प्रदाय द्वारा निर्धारित सामाजिक स्तर अथवा रक्त-संबंधों से प्रभावित होते हैं। एक श्रमिक के रूप में किसी व्यक्ति की योग्यता तथा क्षमता का मूल्यांकन उसकी जाति, धर्म एवं भौगोलिक आधार पर किया जाता है। एक श्रमिक के रूप में किसी व्यक्ति की योग्यताओं और क्षमताओं को उसकी जाति, धार्मिक विश्वासों, सामाजिक या भौगोलिक स्थिति अथवा अन्य

[5] R. Nurkse, *op cit.*, p 1

विशेषताओं से छुडाना कठिन प्रतीत होता है जिनका उत्पादन में उसके सभावित योगदान से कोई सबध नही होता। परिणामस्वरूप कुशलता को क्षति पहुँचती है क्योकि विशिष्ट योग्यताओं का प्रयोग नहीं हो पाता और कामकाज तथा श्रमिक उतने बराबर नहीं हो पाते जितना हो सकते थे।"[6] ये सामाजिक विशेषताए अच्छी सरकार, स्वच्छ प्रशासन और बड़े पैमाने पर उद्योगों के दक्षतापूर्ण कार्यकरण के मार्ग में बाधाए रहती हैं। इनसे भाई-भतीजावाद (nepotism) रिश्वत, पक्षपात और अदक्ष प्रशासन फैलते हैं। कु-प्रशासन, चाहे वह निजी उद्यम में हो चाहे सार्वजनिक उद्यम में, आर्थिक विकास को और भी कठिन बना देता है।

2 धार्मिक बाधाएँ (Religious Obstacles)

अल्पविकसित देशो में धार्मिक प्रवृत्तियाँ विकास के मार्ग मे बाधाए डालती हैं। धर्म बचत तथा परिश्रम के गुणो को कम प्रोत्साहित करता है। इन देशों मे लोग अवकाश, सतुष्ट और उत्सवों एव धार्मिक समारोहों में भाग लेने को अधिक महत्त्व देते हैं। इस प्रकार वह मुद्रा, जो लाभदायक ढग से निवेश हो सकती है, व्यर्थ के कामों मे अपव्यय हो जाती है। लोग यह विश्वास ही नहीं करते कि मानवीय प्रयत्नो से प्रगति सभव हो सकती है और यह मानना की मनुष्य भाग्य की प्रबल शक्तियों के सामने विवश है विकास के मार्ग में बाधा सिद्ध होती है।

जी० वेगनर ने पूर्वी अफ्रीका के उत्तरी कावीरोडों के बादू लोगो के बारे मे लिखा है कि वे लाभदायक नकद फसलें बोने मे बडे ही उत्सुक एव उत्साही रहे हैं, किन्तु खाद देने के लिए पशुओं के गोबर का इस्तेमाल बडी हिचकिचाहट से करते हैं जिसका आशिक कारण तो यह है कि इस इस्तेमाल का सबध जादू-टोने से माना जाता है और इसलिए भी होता है कि 'पशुओ के तबेलो में एकत्र गोबर के बिटौरे का बडा आकार उसके स्वामी के पशुधन के प्रतीक के रूप में समझा जाता है।

3 मानव ससाधन सबधी बाधाए (Human Resources Obstacles)

अविकसित मानव ससाधन अल्पविकसित देशो के विकास में एक महत्त्वपूर्ण बाधा है ऐसे देशों में अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक कुशलताए और ज्ञान वाले व्यक्तियो का अभाव होता है। इनमे पर्याप्त मात्रा मे अतिरेक श्रम का पाया जाना आवश्यक कुशलताओं के अभाव के कारण होता है। अविकसित मानव ससाधन श्रम की नीची उत्पादकता, साधन अगतिशीलता, व्यवसाय मे सीमित विशिष्टीकरण तथा रिवाजी मूल्यों और परपरागत सामाजिक सस्थाओ में झलकते हैं जो आर्थिक विकास के प्रोत्साहनों को कम करते हैं। फिर, जनसख्या की आर्थिक गुणवत्ता नीची रहती है जब इस बात का कम ज्ञान होता है कि कितने प्राकृतिक ससाधन उपलब्ध हैं, आवश्यक कुशलताए कितनी हैं, उत्पादन की वैकल्पिक तकनीकें कितनी-कितनी सभव है, मार्किट स्थितियां और अवसर कितने हैं तथा ऐसी सस्थाए कितनी हैं जो बचत के यत्न और आर्थिक विवेकशीलता के निर्माण के पक्ष में हो सकती हैं। क्योंकि अल्पविकसित देशो में आवश्यक कुशलताओं और ज्ञान का अभाव होता है इसलिए उनमें भौतिक पूजी, चाहे देशीय या आयातित हो, उसका उत्पादकीय उपयोग नही किया जा सकता है। परिणामस्वरूप, मशीनें शीघ्र घिस और टूट जाती हैं, साज-समान और उनके भाग व्यर्थ जाते हैं, उत्पादन की गुणवत्ता गिरती है और लागतें बढ़ती हैं।

4 राजनैतिक वातावरण (Political Environment)

अल्पविकसित देशो मे राजनैतिक तत्त्व भी सबसे बडी बाधा है। इन देशो मे राजनैतिक भ्रष्टाचार और राजनैतिक अस्थिरता या राजनैतिक दलों द्वारा हडतालों, जलूसो और गलत

[6] N Buchanan and F Ellis *Approaches to Economic Development* p 86

अफवाहों द्वारा पैदा की जाती है। दूसरी तरफ, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति इन देशों को गुटों में विभाजित किए हुए हैं तथा आर्थिक सहायता के लिए भी विकसित देशों के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है।

5 प्रशासनिक बाधाएं (Administrative Obstacles)

अल्पविकसित देशों का प्रशासनिक ढाचा भी विकास में एक बड़ी बाधा धारण किए हुए है। इन देशों में रोजगार के साधन कम होने के कारण प्रशासन में भाई-भतीजावाद, रिश्वत, पक्षपात इत्यादि बुराई फैली हुई हैं। प्रशासनिक ढाचा भी राजनीति से प्रेरित रहता है जिससे इन अर्थव्यवस्थाओं में लोग सरकारी कार्यों को पूरी निष्ठा से नहीं निभाते जिससे प्रशासनिक दक्षता कम रहती है। अदक्ष प्रशासन चाहे सार्वजनिक क्षेत्र में हो अथवा निजी क्षेत्र में, देश के आर्थिक विकास में बाधा बना रहता है।

प्रश्न

1 कोई देश इसलिए गरीब है क्योंकि वह गरीब है। टिप्पणी कीजिए।
2 अल्पविकसित देशों के रास्ते में मुख्य बाधाएं क्या है?
3 निर्धनता के दुश्चक्रो से आप क्या समझते हैं? एक अर्थव्यवस्था को इन चक्रों से निकालने के लिए आप किन उपायो का सुझाव देंगे?

आर्थिक वृद्धि के कारक; आर्थिक तथा गैर-आर्थिक
(FACTORS OF ECONOMIC GROWTH ECONOMIC AND NON-ECONOMIC)

विश्व के समस्त देशों में आर्थिक वृद्धि हुई है परन्तु उनकी वृद्धि दरें एक दूसरे से भिन्न रहती हैं। वृद्धि दरों में असमानताए उनकी विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक, ऐतिहासिक, तकनीकी एव अन्य स्थितियों के कारण पाई जाती हैं। यही स्थितियाँ आर्थिक वृद्धि के कारक हैं।

परन्तु इन कारकों का निश्चित रूप से उल्लेख करना भी एक समस्या है क्योंकि विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने-अपने ढग से इनको बताया है। किंडलबर्जर और हैरिक ने **भूमि और प्राकृतिक साधन, भौतिक पूँजी, श्रम और मानव पूँजी, सगठन, प्रौद्योगिकी, पैमाने की बचतें और मण्डी का विस्तार**, तथा सरचनात्मक परिवर्तन आर्थिक वृद्धि के कारक माने हैं। रिचर्ड गिल ने जनसख्या वृद्धि, प्राकृतिक साधन, पूंजी सचय, उत्पादन के पैमाने में वृद्धि एव विशिष्टीकरण और तकनीकी प्रगति आर्थिक वृद्धि के आधारभूत कारक बतलाए हैं। दूसरी ओर लुइस ने आर्थिक वृद्धि के केवल तीन कारक ही महत्वपूर्ण कहे हैं। ये हैं बचत करने का प्रयत्न, ज्ञान की वृद्धि या उसका उत्पादन में प्रयोग, और प्रति व्यक्ति पूँजी अथवा अन्य साधनो की मात्रा में वृद्धि करना। परन्तु नर्क्से इन कारकों को आर्थिक वृद्धि के लिए पर्याप्त नही समझता। उसके अनुसार, "आर्थिक वृद्धि बहुत हद तक मानवीय गुणों, सामाजिक प्रवृत्तियों, राजनैतिक परिस्थितियों और ऐतिहासिक सयोगों से सबध रखती है। वृद्धि के लिए पूजी आवश्यक तो है परन्तु उसके लिए केवल पूँजी का होना ही पर्याप्त नही है।" अत राजनैतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक आवश्यकताए आर्थिक वृद्धि के लिए उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं जितनी कि आर्थिक आवश्यकताए। इसीलिए अर्थशास्त्री आर्थिक वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारको को दो भागों मे बाँटते हैं। ये हैं **आर्थिक एव गैर-आर्थिक कारक** जिनका विवेचन इस प्रकार है

1 आर्थिक कारक
(ECONOMIC FACTORS)

1 प्राकृतिक साधन (Natural Resources)

किसी देश की आर्थिक प्रगति को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारक प्राकृतिक साधन (या अर्थशास्त्र के अर्थ में भूमि) है। इनमें भूमि की उपजाऊ शक्ति, स्थिति, क्षेत्र, बनावट, वन-सम्पदा, खनिज पदार्थ, जलवायु, जन-साधन, समुद्री साधन आदि शामिल होते हैं। आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक साधनो का पाया जाना आवश्यक समझा जाता है। लुइस के अनुसार "अन्य बातें समान होने पर, लोग अल्प-साधनों की अपेक्षा समृद्ध साधनों का श्रेष्ठतर उपयोग कर सकते हैं।"

अल्पविकसित देशो में या तो प्राकृतिक साधनों का उपयोग हुआ नही होता या अल्प-उपयोग या दुरुपयोग होता है। इसलिए ये देश उन्नत नही होते। फिशर के अनुसार "प्राकृतिक साधनों के विकास की आशा करने का कोई कारण नहीं यदि ये साधन, जो वस्तुएं या सेवाएं प्रदान कर सकते हैं, उनके प्रति लोग उदासीन हों।" ऐसा आर्थिक पिछडेपन तथा तकनीकी साधनों की कमी के कारण होता है। अत प्राकृतिक साधनो का विकास तकनीकी ज्ञान में वृद्धि से होता है। इसलिए यह कहा जाता है कि प्राकृतिक साधनों का अभाव होने पर भी आर्थिक विकास सभव हो सकता है।

प्राकृतिक साधन किसी भी देश की आर्थिक वृद्धि को किसी रूप में अवश्य प्रभावित करते हैं जिनका वर्णन नीचे किया जाता है।

(1) **भूमि (Land)**—कुछ अल्पविकसित देशों में भूमि के उपजाऊपन के अनुकूल साधनों को अपनाने के कारण उत्पादन में अवश्य ही वृद्धि हुई है। लेकिन दूसरी तरफ, एशिया व अफ्रीका के विकासशील देशों में पर्याप्त भूमि होते हुए भी वे कृषि समृद्ध नहीं हैं क्योंकि खेती योग्य भूमि पर नए तरीकों का उपयोग नहीं कर पाए।

(2) **जलवायु (Climate)**—प्राकृतिक वनस्पति जलवायु द्वारा नियन्त्रित तत्व है। उदाहरण के लिए, कृषि भी वनस्पति की ही देन है। जहाँ वनस्पति अत्यन्त सघन और नियंत्रित है वहाँ कृषि का विकास तीव्रता से हुआ है। यूरोप के कई देशों में पशुपालन उद्योग का विकास वहाँ की वनस्पति के कारण ही सम्भव हुआ है।

(3) **खनिज पदार्थ (Minerals)**—प्राकृतिक साधनों में खनिज पदार्थों का अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास पर अधिक प्रभाव पड़ा है। प्रोफेसर लुइस के अनुसार "एक देश, जो आज साधनों में निर्धन माना जाता है कुछ समय के पश्चात समृद्ध माना जा सकता है, जिसका कारण यह नहीं कि अज्ञात साधनों की खोज हुई है बल्कि ज्ञात साधनों के नए उपयोगों में खोज हुई है।" भारत, ब्राजील, बर्मा आदि अनेक देश खनिज पदार्थों से भरे हुए हैं लेकिन फिर भी निर्धन हैं। इसका कारण खनिज पदार्थों का सही उपयोग नहीं हुआ है। अतः आर्थिक वृद्धि के लिए खनिज पदार्थों का देश में पाया जाना ही आवश्यक नहीं जैसे जापान अपर्याप्त कोयले के तथा न्यूजीलैंड बिना औद्योगिक कच्चे माल के भी समृद्ध देश हैं।

(4) **औद्योगिक विकास (Industrial development)**—अल्पविकसित देशों में औद्योगिक विकास का आधार प्राकृतिक साधन ही हैं। जैसे कि भारत में कच्चा लोहा, कोयला, अभ्रक प्रचुर मात्रा में होने के कारण औद्योगिक विकास सम्भव हुआ है। उसके साथ-साथ संचार एवं परिवहन के साधनों का भी विकास हुआ है। अतः यह कहा जा सकता है कि आर्थिक वृद्धि के लिए केवल प्राकृतिक तकनीकों से उनका उपयोग भी आवश्यक है।

(5) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार (Basis of International trade)**—अल्पविकसित देशों में प्राकृतिक साधन ही इन देशों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार हैं। उदाहरण के लिए खाड़ी के देशों में पैट्रोल, अफ्रीका में सोना, टीन, तांबा तथा पैट्रोल ही इन देशों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार हैं।

(6) **रोजगार का आधार (Basis of employment)**—अल्पविकसित देशों में लोगों की आजीविका का आधार प्राकृतिक साधनों पर निर्भर उद्योग धन्धे हैं। इन देशों में ज्यादातर लोग कृषि क्षेत्र में कार्यरत हैं। कई उद्योग विशेषरूप से कृषि क्षेत्र पर आधारित हैं जैसे—पशुपालन उद्योग साथ-साथ उन से बने कपड़ा का उद्योग, जूट उद्योग, चीनी उद्योग, चाय उद्योग, कागज उद्योग इत्यादि। अतः अल्पविकसित देशों में रोजगार का आधार प्राकृतिक साधनों पर आधारित उद्योग हैं।

(7) **आर्थिक सपन्नता का आधार (Basis for economic dependence)**—अल्पविकसित देशों की आर्थिक सपन्नता का आधार इन देशों के प्राकृतिक साधनों पर अधिक निर्भर करता है। प्राकृतिक साधनों का सही विदोहन आधुनिक तरीकों पर भी निर्भर करता है। उदाहरण के लिए आज विश्व के कुल अल्पविकसित देश प्राकृतिक साधनों के सही विदोहन के कारण विकसित देशों की श्रेणी में माने जाते हैं। पश्चिमी एशिया के रेगिस्तान में से पैट्रोल प्राप्त हो जाने के कारण कुवैत, सऊदी अरब, ईरान व ईराक इत्यादि देश विकासशील देशों में गिने जाते हैं। अतः निर्धनता के दुष्चक्र को तोड़ने के लिए प्राकृतिक साधनों का विकास करना आवश्यक है।

2 पूँजी-निर्माण (Capital Formation)

आर्थिक वृद्धि का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारक पूँजी-निर्माण है। पूँजी-निर्माण से अभिप्राय भौतिक

उत्पादन साधनों का निर्माण है। नर्क्से के शब्दों में, "पूँजी-निर्माण का अर्थ है कि समाज अपनी समस्त चालू उत्पादक क्रिया को आवश्यकताओं एव इच्छाओ के अनुरूप तात्कालिक उपभोग पर लागू नही करता बल्कि उसके एक भाग को पूँजीगत वस्तुओ यन्त्रो व उपकरणों मशीनों एव परिवहन सुविधाओ, प्लान्टों तथा यन्त्रों के निर्माण में लगा देता है।" इस प्रकार पूँजी-निर्माण पूँजीगत पदार्थों मे निवेश है जिससे पूँजी में वृद्धि होती है तथा राष्ट्रीय उत्पादन एव आय बढते हैं।

पूँजी निर्माण की अवस्थाएं (Stages of capital formation)–पूँजी-निर्माण मे तीन परस्पर-निर्भर अवस्थाएँ पाई जाती हैं (क) वास्तविक बचतों का होना और उनमें वृद्धि (ख) बचतों को एकत्र करने तथा इच्छित दिशा में मोड देने के लिए ऋण तथा वित्तीय सस्थाओं का पाया जाना और (ग) इन बचतो का पूँजीगत वस्तुओ के उपयोग के लिए निवेश करना।

(क) वास्तविक बचतों में वृद्धि (Increase in real savings)–अल्पविकसित देशों मे बचतों के निर्माण में वृद्धि एक गम्भीर समस्या है। बचत वास्तव में उपभोग पर निर्भर करती है। साथ-साथ उत्पादन के स्तर में वृद्धि पर भी। किसी भी अर्थव्यवस्था में उपभोग आवश्यकताए लोगो के रीति-रिवाजों जनसख्या के आकार और रहन-सहन पर निर्भर करती हैं लेकिन इन अल्पविकसित देशो में लोगों का उपभोग स्तर निम्न होता है और उत्पादन में वृद्धि उतनी नहीं हो पाती जितनी तीव्रता से जनसख्या मे वृद्धि होती है। जब अर्थव्यवस्था मे आर्थिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है तो निवेश के साथ-साथ उत्पादन मे भी वृद्धि होती है और लोगों की क्रय-शक्ति बढ़ने से उपभोग में भी वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में बचत बढ़ाने के लिए उपभोग की मात्रा को कम किया जाता है लेकिन उत्पादन को भी बढ़ाने के प्रयत्न जारी रखे जाते हैं।

बचतों की शहरी और ग्रामीण क्षेत्र में विभिन्नता पाई जाती है। ग्रामीण क्षेत्र में बचत का स्तर शहरी क्षेत्र की तुलना मे अपेक्षाकृत कम रहता है। ग्रामीण क्षेत्र में आय की असमानता, लाभ-हानि की सभावना शहरी क्षेत्र की अपेक्षा कम होती है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों मे सयुक्त परिवार प्रणाली अत्यन्त सुदृढ़ पाई जाती है जिससे ग्रामीण नागरिकों की बीमारी, बेकारी और वृद्धावस्था आदि के लिए बचत करने की जरूरत महसूस ही नही होती। इसी कारण बचत करने की भावना कम होती है। दूसरी तरफ, सरकार की कर नीति भी बचतों को प्रभावित करती है। करों की अधिक दरें निवेश की प्रक्रिया को निरुत्साहित करती हैं। अत कर नीति लचीली होनी चाहिए जिससे कर का बोझ कम पडे और लोग अपनी आय मे से कुछ बचत करें। आर्थिक विकास होने के साथ-साथ देश के लोगों की आय भी बढ़ती है और बचतों में वृद्धि होती है।

(ख) बचतों को एकत्रित करना (To mobilise savings)–पूँजी-निर्माण की अवस्थाओं में बचतों को एकत्र करने तथा इच्छित दिशा में मोड देने के लिए ऋण तथा वित्तीय सस्थाओं का होना आवश्यक है। लेकिन अल्पविकसित देशों में कुशल वित्तीय सस्थाओं की कमी रहती है जिससे बचत एकत्रित करना कठिन हो जाता है। साधारणतौर से बचत करने वाला बचत पर अधिक ब्याज की दर चाहता है और अपनी पूजी को भी सुरक्षित रखना चाहता है। यह सभी सुविधाएँ वित्तीय सस्थाओं के विस्तार से संभव हैं।

(ग) बचतों का निवेश करना (To invest in savings)–इन बचतों का पूजीगत वस्तुओं के उपयोग के लिए निवेश करने का कार्य वित्तीय सस्थाएँ करती हैं और बचत करने वाले वर्ग से साधनों को प्राप्त करके निवेश करने वाले वर्ग तक पहुँचती हैं। मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में वित्तीय सस्थाओं में प्रमुख बैंक, बीमा कम्पनियाँ, सहकारी सस्थाएँ हैं। आर्थिक विकास के साथ-साथ वित्तीय सस्थाओं का भी प्रभाव बढता है। दीर्घकालीन परियोजनाओं के लिए वित्त की व्यवस्था करना इनका प्रमुख उद्देश्य होता है।

(i) पूँजी-निर्माण के कार्य (Functions of capital formation)–पूँजी-निर्माण आर्थिक वृद्धि की प्रमुख कुंजी है। एक ओर तो अर्थव्यवस्था में प्रभावी माँग को व्यक्त करता है और दूसरी ओर यह भावी उत्पादन के लिए उत्पादकीय क्षमता का निर्माण करता है। अल्पविकसित देशों के

लिए तो इसका विशेष महत्त्व है। यह ऐसे देशो में बढ़ती हुई जनसख्या की हर प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने मे सहायक होता है। पूँजीगत पदार्थों मे निवेश से केवल उत्पादन ही नही बढ़ता बल्कि रोजगार के साधन भी बढ़ते हैं। पूँजी-निर्माण द्वारा ही तकनीकी उन्नति होती है जिससे विशिष्टीकरण एव बडे पैमाने के लाभ प्राप्त होते हैं। यह बढ़ती हुई श्रम-शक्ति के लिए मशीनें सयन्त्र, साज-समान प्रदान करने मे सहायक होता है। इसके द्वारा ही देश मे सामाजिक एव आर्थिक उपरिसुविधाएँ जैसे बिजली, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सम्भव होते हैं। इसमे प्राकृतिक साधनो का उपयोग, औद्योगीकरण कृषि विकास एव मार्किट का विस्तार होता है जिससे आर्थिक विकास होता है। अत अल्पविकसित देश जो निधनता के दुष्चक्र में फसे हुए हैं उनके लिए पूजी-निर्माण करना आवश्यक है।

(ii) **पूँजी-श्रम अनुपात** (Capital-labour ratio)—अल्पविकसित देशो मे पूजी की कमी के कारण और उत्पादन क्षमता कम होने के कारण पूँजी-उत्पादन अनुपात कम होता है। इनमें पूँजी-श्रम अनुपात मे वृद्धि होनी चाहिए। अति जनसख्या वाले अल्पविकसित देशो मे प्रति व्यक्ति उत्पादन मे वृद्धि का सबध पूजी-श्रम अनुपात की वृद्धि से होता है। जो देश पूँजी-श्रम अनुपात को बढ़ाना चाहते हैं, उन्हे दो समस्याओ का सामना करना पडता है। **प्रथम**, जनसख्या बढने से पूँजी-श्रम अनुपात कम हो जाता है। इसलिए पूँजी-श्रम अनुपात की कमी को दूर करने के लिए शुद्ध निवेश की अधिक मात्रा चाहिए जो अल्पविकसित देशों मे सम्भव नही। **द्वितीय**, जब जनसख्या तेजी के साथ बढ रही हो तो इच्छित निवेश की मात्रा के लिए पर्याप्त बचतो का होना आवश्यक है, परन्तु प्रति व्यक्ति आय बहुत कम होने के कारण ऐसी अर्थव्यवस्था मे बचत प्रवृत्ति बहुत नीची होती है। फिर भी, बचतो को प्रोत्साहित करके पूँजी-निर्माण की दर बढ़ाई जा सकती है।

3 **सगठन** (Organisation)

उत्पादन के साधनो को इष्टतम ढग से आर्थिक क्रियाओ मे लगाना, विकास प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण अग है जिससे उत्पादन बढ़ता है। सगठन, पूँजी और श्रम का पूरक है जो उनकी उत्पादकता बढाने मे सहायक होता है। आधुनिक आर्थिक वृद्धि मे उद्यमी ही सगठनकर्ता का कार्य करते हुए जोखिम तथा अनिश्चितता उठाता रहा है। उद्यमी साधारण योग्यता का व्यक्ति नही होता। उसमे दूसरो से कार्य कराने की विशेष योग्यता पाई जाती है। शुम्पीटर के अनुसार, उद्यमी का पूँजीपति होना आवश्यक नही बल्कि उसका मुख्य कार्य नवप्रवर्तन करना है। इगलैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति का श्रेय उद्यमियो को है और यू० एस० ए० की 19 वी और 20 वी शताब्दी के मध्य तक आर्थिक वृद्धि का कारण प्रबधन की कोटि में उन्नति को है।

(1) **प्रबन्धकीय गुण** (Managerial qualities)—अल्पविकसित देशो मे उद्यमीय योग्यता का अभाव पाया जाता है जिस कारण उद्यमी बहुत कम होते हैं। मार्किट का छोटा आकार पूँजी की कमी, निजी सम्पत्ति का अभाव, प्रशिक्षित श्रम एव प्रबधन की कमी, कच्चे माल एव आर्थिक उपरिसुविधाए पर्याप्त मात्रा मे न मिलने के कारण उद्यमी पनप नही पाते। परन्तु मिर्डल के अनुसार एशिया के देशो मे उद्यमता की कमी इसलिए नही कि उनमे पूँजी या कच्चे माल की कमी है बल्कि इसलिए कि उनमे सही प्रवृत्ति वाले बहुत कम व्यक्ति हैं। जापानियों में यह प्रवृत्ति पर्याप्त मात्रा मे पाई जाती है यही कारण है कि वे विकसित देशो की श्रेणी मे आते हैं। विकसित देशो मे सगठन का कार्य निजी उद्यम ही करता रहा है जिसने विशेषकर द्वितीय महायुद्ध के बाद बहुराष्ट्रीय निगमो का रूप ग्रहण करके विकसित एव विकासशील देशों की आर्थिक उन्नति मे योगदान दिया।

(2) **आर्थिक और सामाजिक उपरिसुविधाए** (Economic and social overheads)—विभिन्न देशो की सरकारों ने किसी न किसी रूप मे 1928-29 की महान मदी से सगठनकर्ता के रूप में कार्य प्रारम्भ किया। यह द्वितीय महायुद्ध से पहले सामाजिक उपरिव्यय पूँजी के रूप मे आया

और युद्ध के पश्चात लोक उद्योगों के रूप में फैल गया। उदाहरणार्थ, यूरोप इंगलैण्ड और अमरीका में सरकारों ने सार्वजनिक कल्याण के कार्य प्रारम्भ किए जैसे लोक स्वास्थ्य, सडकें, पुल, पार्क, शिक्षा, आग से रक्षा, बाढ़ नियंत्रण आदि। कई सरकारों ने रेल, डाक, तार विद्युत एवं गैस आदि का संचालन करना शुरू कर दिया है। ब्रिटेन ने कोयला, इस्पात और सडक परिवहन का राष्ट्रीयकरण किया, जबकि फ्रांस ने हवाई सेवाओं, कोयले और रेनॉल्ट मोटर गाड़ियों के निर्माण का राष्ट्रीयकरण किया। अल्पविकसित देशों में तो आर्थिक और सामाजिक उपरिसुविधाएं अधिकतर सरकारी क्षेत्र में ही पाई जाती हैं और सार्वजनिक उद्यमों का हर ओर प्रसार हो रहा है।

(3) वित्तीय संस्थाएं (Financial institutions)—संगठन मे प्राय बैंकों के कार्य भाग को नहीं लिया जाता है। वास्तव में ये ऐसी महत्त्वपूर्ण संस्थाएं हैं जिन्होंने विकसित देशों की आर्थिक वृद्धि में बहुत योगदान दिया है। ब्रिटेन, यूरोप और अमरीका में बैंकों ने वित्तीय सहायता प्रदान करके औद्योगीकरण मे बहुत सहायता की। उन्होने केवल वित्त ही नही दिया बल्कि निजी उद्यमो को निवेश सम्बन्धी परामर्श दिया, प्रशिक्षित श्रम और मैनेजर विदेशो से भर्ती करने मे सहायता दी, बढ़िया कच्चा माल मँगवा कर दिया और प्रारभ मे तो निर्मित माल को बेचने मे भी सहायता प्रदान की। अमरीका, यूरोप ब्रिटेन तथा उसके उपनिवेश देशो में यातायात खनिज विकास एव वस्तुओं के निर्माण मे बैंकों का बहुत योगदान रहा है। अल्पविकसित देशों मे भी वाणिज्य बैंक, राष्ट्रीयकृत बैंक, सहकारी बैंक तथा औद्योगिक बैंक एव निवेश ट्रस्ट विकास के लिए विभिन्न प्रकार से सहायता कर रहे हैं। 1950 के बाद से विश्व बैंक और उसकी कई सहायक संस्थाए इन देशो के विभिन्न क्षेत्रों के विकास मे प्रशिक्षित सेविवर्ग परामर्श एव वित्तीय सहायता प्रदान कर रही हैं।

इस प्रकार संगठन मे केवल निजी उद्यम ही नही बल्कि सरकार बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओ का महत्त्वपूर्ण योगदान विकसित एव अविकसित देशो की आर्थिक उन्नति मे पाया जाता है।

(4) यातायात एव संचार के साधन (Means of transportation and communications)—आधुनिक काल मे उद्यमी के लिए अपनी वस्तुओं की उत्पादन लागतो का विशेष महत्त्व है। यातायात एव सचार के साधनों के विकास से उत्पादन लागते अपेक्षाकृत कम रहती हैं। विश्व के जिन देशो मे सडक, रेल, नदियो द्वारा विभिन्न भाग आपस मे जुडे हुए हैं वहा उद्यम ने विशेष उन्नति की है। जापान, ब्रिटेन, जर्मनी एव फ्रांस मे इन साधनों के विकास मे उद्यम काफी पनपा है जिसका इन देशो के आर्थिक विकास में विशेष योगदान रहा है।

4 प्रौद्योगिकीय उन्नति (Technological Progress)

प्रौद्योगिकीय उन्नति अथवा परिवर्तन आर्थिक वृद्धि के महत्त्वपूर्ण तत्व माने जाते हैं। प्रौद्योगिकीय उन्नति मे नई उत्पादन तकनीकों के विकास अथवा अन्वेषण अथवा नवप्रवतन होने हैं जिससे श्रम एव पूंजी की उत्पादकता मे वृद्धि होती है। न्यूनतम लागत पर अधिक उत्पादन होता है और कम समय मे बढ़िया वस्तुओं का निर्माण जिससे वस्तुओं की माग बनी रहती है।

अल्पविकसित देश, प्रौद्योगिकी ज्ञान को दूसरे अन्य विकसित देशों से प्राप्त कर आर्थिक प्रगति कर सकते हैं। विशेषज्ञों को विशेष प्रशिक्षण देकर तथा मशीने लगाकर उत्पादन में वृद्धि कर सकते हैं। जो इन देशों को निर्धनता के दुष्चक्रो से निकालने मे सहायक होगी।

5 श्रम विभाजन एव उत्पादन का पैमाना (Division of Labour and Scale of Production)

विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन से उत्पादकता में वृद्धि होती है। इससे बड़े पैमाने की मितव्ययिताए भी उपलब्ध होती हैं जो औद्योगिक विकास में सहायक सिद्ध होती हैं। एडम स्मिथ ने आर्थिक विकास में श्रम-विभाजन को बहुत महत्त्व दिया। श्रम-विभाजन से श्रम की उत्पादकीय शक्तियो मे सुधार होता है। हर श्रमिक पहले से अधिक कुशल हो जाता है वह समय

की बचत करता है, वह नई मशीनों की खोज करने मे भी समर्थ होता है और अन्त मे उत्पादन में कई गुणा वृद्धि होती है। परन्तु श्रम-विभाजन मार्किट के आकार पर निर्भर करता है। मार्किट का आकार आर्थिक प्रगति पर निर्भर करता है अर्थात देश मे माँग का आकार क्या है तथा उत्पादन का साधारण स्तर, यातायात के साधन आदि कितने विकसित हैं। उत्पादन का पैमाना बड़ा होने से अधिक विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन संभव होता है जिससे उत्पादन बढ़ता है और आर्थिक प्रगति की दर म वृद्धि होती है। ऐसा होने से मौद्रिक बाह्य मितव्ययिताए उपलब्ध होती हैं और अविभाज्यताओ (indivisibilities) से लाभ प्राप्त होते हैं। ये अविभाज्यताए शक्ति, यातायात आदि होती हैं जिनके प्रयोगो से उद्योगो का विकास होता है। इस प्रकार उत्पादन बढ़ता है तथा आर्थिक विकास मे तीव्रता आती है। विशाल विकसित देशो जैसे अमरीका कनाडा एव आस्ट्रेलिया की आर्थिक वृद्धि का एक महत्त्वपूर्ण कारण उनमें परिवहन एव सचार के साधनों में अभूतपूर्व उन्नति है जिससे उनकी वस्तुओं की मार्किट के आकार मे विस्तार हुआ है एव लागत कम हुई हैं और उत्पादन का पैमाना बढ़ा है। विकसित राष्ट्रो द्वारा स्वेज एव पनामा नहरो के निर्माण में दिलचस्पी लेना और उनका निर्माण करना, मार्किट के विस्तार के लाभों को प्राप्त करने के लिए ही था। अल्पविकसित देशो मे मार्किट अपूर्णताएँ मार्किट के विस्तार मे बाधक होती हैं जिस कारण वे श्रम-विभाजन और उत्पादन के पैमाने के लाभ प्राप्त करने म असमर्थ होते हैं। अत निर्धनता के दुश्चक्रो म निकलने के लिए अल्पविकसित देशो को बाजार का विस्तार करना चाहिए।

6 **सरचनात्मक परिवर्तन** (Structural Changes)

सरचनात्मक परिवर्तन से अभिप्राय एक परम्परागत कृषक समाज से आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तन है, जिसमे वर्तमान सस्थाओं, सामाजिक प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं में महत्त्वपूर्ण रूपान्तरण पाया जाता है। ऐसे सरचनात्मक परिवर्तन से रोजगार के अवसरों, श्रम-उत्पादकता तथा पूँजी स्टॉक म वृद्धि होती है और नये साधनों के प्रयोग एव तकनीक में सुधार होते हैं।

एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था मे एक विस्तृत प्राथमिक क्षेत्र और एक बहुत छोटे द्वितीयक क्षेत्र के साथ एक और छोटा-सा तृतीयक क्षेत्र होता है। उदाहरणार्थ, भारत मे 1940-50 में राष्ट्रीय उत्पादन मे प्राथमिक क्षेत्र का योगदान 49 4%, द्वितीयक क्षेत्र का 16 6% और तृतीयक क्षेत्र का 18 6% था। सरचनात्मक परिवर्तन का प्रारम्भ जनसख्या के प्राथमिक से द्वितीयक और फिर तृतीयक रोजगार में स्थानान्तरण से हो सकता है। एक अति-जनसख्या वाली कृषि-अनुस्थापित अर्थव्यवस्था में 70 से 80% जनसख्या कृषि मे सलग्न होती है। सरचनात्मक परिवर्तन मे अकृषि क्षेत्र फैलता है ताकि कृषि क्षेत्र म जनसख्या का अनुपात अधिकाधिक कम हो जाए। इसका अभिप्राय कृषि क्षेत्र का राष्ट्रीय आय मे योगदान कम करना है। परन्तु शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद मे कृषि क्षेत्र के भाग की कमी का अर्थ कृषि उत्पादन मे कमी से नहीं है बल्कि कृषि उपज निरपेक्ष रूप मे अवश्य बढ़नी चाहिए। कृषि उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए मूलभूत परिवर्तन—जैसे भूमि सुधार, सुधरी हुई कृषि तकनीकें और आगतें, मार्किट का अच्छा सगठन, नई साख सस्थाएँ आदि के रूप म—करने होते हैं।

जब कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है तो उससे कृषि क्षेत्र मे मौद्रिक आय बढ़ती है। यह आगे कृषि आगतों और उपभोक्ता वस्तुओं की ग्रमीण माग को बढ़ाती है, जो औद्योगिक क्षेत्र के प्रसार को प्रोत्साहित करती है। औद्योगिक क्षेत्र स्वय भी कृषि क्षेत्र को प्रभावित करता है। प्रथम, फार्म उत्पादन की वृद्धि के लिए औद्योगिक क्षेत्र द्वारा निर्मित सुधरी हुई फार्म मशीनरी और अन्य आगत चाहिए। दूसरे, बढ़ रही कृषि उत्पादकता और आय, औद्योगिक क्षेत्र की उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं की माँग को बढ़ाती हैं। दूसरे शब्दों मे, कृषि उत्पादकता और आय बढ़ाने का अवसर बहुत अधिक अर्थव्यवस्था के सरचनात्मक रूपान्तरण पर निर्भर करता है क्योंकि यह खाद्य पदार्थों की

व्यापारिक माँग में वृद्धि, वैकल्पिक रोजगार के अवसरों में वृद्धि और कृषि क्षेत्र को उपलब्ध खरीदी गई आगतों की अधिक मात्रा और किस्म को प्रभावित करता है।

संरचनात्मक परिवर्तन का एक अन्य पहलू जनसंख्या का प्राथमिक और द्वितीयक से तृतीयक रोजगार में स्थानान्तरण है। तृतीयक उत्पादन में बहुत-सी असमान सेवाएं सम्मिलित होती हैं जो अभौतिक वस्तुओं को उत्पादित करती हैं, जैसे परिवहन, शिक्षा, परचून और थोक वितरण, सरकारी और घरेलू सेवाएं आदि। आर्थिक विकास के साथ तृतीयक वस्तुओं की माँग बहुत शीघ्रता से बढ़ती है क्योंकि कृषि और औद्योगिक क्षेत्र का प्रसार अधिकतर परिवहन, परचून एवं थोक वितरण, तकनीकी सेविवर्ग आदि पर निर्भर करता है। अतः आर्थिक विकास के साथ-साथ तृतीयक धन्धों में कार्यकारी श्रम का अनुपात चढ़ जाता है। परन्तु बहुत से तृतीयक धन्धे जैसे रेलें और मोटर परिवहन आदि अधिक पूँजी गहन होते हैं और उनमें बड़े पैमाने पर श्रम के स्थान पर पूँजी स्थानापन्न होती है। इस प्रकार आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में तृतीयक धन्धे अधिक लोगों को खपाने में असफल होते हैं और अधिक मात्रा में श्रमिक सभी प्रकार की वस्तुएं और सेवाएँ बेचने वाले बन जाते हैं जिनमें बहुत थोड़ी या बिल्कुल पूँजी की आवश्यकता नहीं पड़ती जैसे 'फल, अखबार आदि बेचने वाले या फिर कारें साफ करने वाले, कुली, बेयरा तथा दुकान-सहायक आदि।' इस प्रकार का अल्परोजगार कृषि क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी द्वारा बढ़ता है।

कोई नवप्रवर्तन अथवा नए क्षेत्र का खुलना अर्थव्यवस्था के भीतर ही संरचनात्मक परिवर्तन ला सकता है और इस प्रकार घरेलू मार्किट का विस्तार तथा विदेशी मार्किट का निर्माण कर देता है। तकनीकी आविष्कार ऐसे समाज में होता है "जहाँ प्रयोग की इच्छा के लिए परंपरावाद हट जाता है जहाँ लोग श्रम तथा पूँजी की भौतिक सीमाएँ पार करने को उत्सुक होते हैं जहाँ, दूसरे शब्दों में, वे विस्तार की लालसा से प्रेरित होते हैं।" एक बार जब नई संस्थाओं का निर्माण हो जाता है तो वे भूतकाल से उपहारों का कार्य करती हैं और वे उत्कर्ष (take-off) काल में मुख्य रूप से आर्थिक क्रिया को तीव्रता से बढ़ाने में योगदान देती हैं। उत्कर्ष काल में जो संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं, उनके बारे में सम्भवतः सबसे महत्त्वपूर्ण बात पहले से विद्यमान संस्थाओं को नए उद्देश्यों, विशेषकर पूँजी-निर्माण, के लिए ढालना है।"[1]

संरचनात्मक परिवर्तन का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू एक नई सामाजिक व्यवस्था का विकास है। यह समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक ढाँचे में संरचनात्मक परिवर्तन करने के लिए है। संयुक्त परिवार, जाति प्रथा, कौटुम्बिक संबंध, धार्मिक कट्टरता जैसी सामाजिक संस्थाओं को ऐसे परिवर्तित करना चाहिए ताकि आर्थिक विकास संभव हो सके। जैसाकि मायर और बाल्डविन ने ठीक ही लिखा है "यदि राष्ट्रीय आय को अधिक तेजी से बढ़ाना हो तो नई आवश्यकताएं, नई प्रेरणाएं, उत्पादन के नए ढंग, नई संस्थाओं का निर्माण करना आवश्यक है।" परन्तु कोई भी तीव्र संरचनात्मक परिवर्तन अपने साथ असंतोष और विरोध लाएगा। उदाहरणार्थ, राष्ट्रीय आय में वृद्धि से सामाजिक कल्याण में वृद्धि नहीं होगी यदि इस वृद्धि से गहरे सांस्कृतिक परिवर्तन होते हैं। इसलिए इस प्रकार के सभी परिवर्तन रचनात्मक होने चाहिए और यथासंभव जो क्षति हो उसकी क्षतिपूर्ति की जाए या भविष्य के लिए रचनात्मक विकास में लगाया जाए। ऐसे परिवर्तन लाने के लिए लोगों को मनाना न कि बल प्रयोग करना चाहिए। विकास के मार्ग में सामाजिक-सांस्कृतिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए शिक्षा और प्रदर्शन काफी हद तक सफल हो सकते हैं। ऐसा भी सुझाव दिया जाता है कि अधिक तीव्र आर्थिक उन्नति वर्तमान प्रथाओं और संस्थाओं के प्रयोग से होगी, न कि देश की वर्तमान संस्कृति को समाप्त करके। नाइजीरिया के आर्थिक विकास पर विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार "यद्यपि नाइजीरियाई प्रथाओं में बहुत-सी

[1]Bert F. Hoselitz, "Non Economic Factors in Economic Development" *A.E.R.* May 1957

ऐसी बातें हैं जो आर्थिक विकास को रोक सकती हैं, फिर भी, उनके सामाजिक सगठन में बहुत कुछ है जो उसके उद्देश्य को पूरा कर सकता है। नाइजीरियाइयों में दृढ़ निष्ठाएं पाई जाती हैं। वे घनिष्ठता के साथ अपने परिवार या कबीले के साथ बंधे होते हैं, वे स्थानीय संगठनों को सहायता देते हैं और स्थानीय उपलब्धियों में वे गौरव अनुभव करते हैं। परिवारों, कबीलों और ग्रामीण समुदायों को उत्पादकों की सहकारिताओं, बचत और मितव्ययिता क्लबों में इकट्ठा बाँधना स्वय-सहायता के व्यावहारिक और महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं।" परन्तु किसी भी देश में विकास की प्रक्रिया में प्रयोग की गई संस्थाएं तभी अधिक प्रभावपूर्ण होती हैं, जब वे देश की आर्थिक आवश्यकताओं और सांस्कृतिक स्थितियों पर ठीक बैठती हैं। उधार लिए गए कपड़ों की तरह, दूसरे देशों से उधार ली गई संस्थाएं बिना अदल-बदल के ठीक बैठ सकती हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वे जरूर सही बैठेंगी।

फिर भी, वे संस्थात्मक परिवर्तन जो तकनीकी दक्षताओं, प्रशासनिक और उद्यमीय क्रियाओं या पूँजी की पूर्ति को प्रभावित करते हैं, बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। पूँजी की आवश्यकता के लिए वित्तीय संस्थाएं होनी चाहिए जिनके द्वारा बचतों का एकत्र करके उत्पादकीय स्रोतों में लगाया जा सके। इस प्रक्रिया को आसान बनाने के लिए मुद्रा बाजार में बचत बैंक, बीमे और स्टॉक एक्सचेंज, निवेश बैंक, व्यापारी और दलाल, आढ़तिए आदि वित्तीय संस्थाएं होनी चाहिए।

विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षित संवर्ग जैसे इंजीनियर, प्रबंधक, वैज्ञानिक, प्रशासक आदि की कमी अल्पविकसित देशों में गंभीर समस्या उत्पन्न करती है। इसके लिए उन्नत स्टेज में वैज्ञानिक, तकनीकी और प्रबंधात्मक शोध और प्रशिक्षण संबंधी संस्थाओं की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ टोकूगावा (Tokugava) के अधीन डच (Dutch) अध्ययन की प्रथा और पश्चिमी तकनीकी एवं विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में शोध सुविधाओं को अपनाने से जापान की तीव्र उन्नति का मार्ग स्पष्ट ही हुआ।

परन्तु आधारभूत समस्या उद्यमिता की पूर्ति को बढ़ाना है, जोकि विशेष संस्थाओं पर निर्भर ही नहीं करती बल्कि समस्त वातावरणात्मक स्थितियों और सही प्रेरणाओं पर निर्भर करती है। एक उद्यमी ऊँचे मौद्रिक पुरस्कार से या अपने निजी व्यापारिक साम्राज्य को स्थापित करने से या अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने से या केवल नव-प्रवर्तन करने की प्रसन्नता से या केवल दूसरे से काम करवाने से प्रेरित हो सकता है। केवल ऐसे व्यक्ति नहीं होने चाहिए, जोकि उद्यमीय क्रिया को करने के इच्छुक हों बल्कि वे ऐसा करने में समर्थ हों। उद्यमी स्वतंत्र रूप से कार्य करने को तैयार हों, परिवर्तन में बाधाओं को पार कर सकें और अपने कार्य के परिणामों का निजी उत्तरदायित्व उठाने को तैयार हों। फिर, सामाजिक और आर्थिक हालात ऐसे होने चाहिए जो उनकी उद्यमीय योग्यताओं के प्रयोग में सहायक हों। कानून और व्यवस्था उद्यमीय अवसरों को प्रोत्साहित करेंगे, इसी प्रकार ऐसी सरकारी नीतियाँ भी, जो आर्थिक उपरि-पूँजी और सहायक मौद्रिक और राजकोषीय प्रेरणाएं प्रदान करने के लिए बनाई जाती हैं। तकनीकी प्रगति और नवप्रवर्तनों को वित्त प्रदान करने की सुविधाएं एवं विस्तृत मार्किट तथा साधनों की गतिशीलता उद्यमियों की पूर्ति को बढ़ाएंगे। अतः प्रेरणाएं, योग्यताएं एवं सहायक वातावरण सभी मिलकर उद्यमीयता को प्रोत्साहित करते हैं।

कुजनेट्स के अनुसार इन संरचनात्मक परिवर्तनों के साथ फर्मों के पैमाने में वृद्धि तथा विनिर्माण और व्यापार जैसे क्षेत्रों में संगठन के प्रकार में परिवर्तन पाए जाते हैं जो औद्योगिक ढांचे और प्रौद्योगिकी में शीघ्र परिवर्तन के कारण होते हैं। उत्पादन कर रही फर्मों के प्रकारों और आकारों के बीच उत्पादन के आवटन में भी शीघ्र परिवर्तन होते हैं और परिणामस्वरूप श्रम शक्ति के आवटन में। ऐसा समाज के कुछ वर्गों में उपलब्धि प्रेरित धारणाओं के कारण भी होता है जिन्हें भविष्य में कुछ करने की लगन होती है।

परन्तु संरचनात्मक परिवर्तन लाने में सरकार का भी बहुत अधिक योगदान होता है। सरकार ही एक ऐसी संस्थानिक संगठन होता है जो देश की समस्त विकास संबंधी समस्याओं को सुलझाने

में समर्थ रखता है। एक दृढ़ सरकार ही यह निर्णय ले सकती है कि सरचनात्मक परिवर्तन सरकार द्वारा किए जाए अथवा निजी क्षेत्र के अन्तर्गत। उदाहरणार्थ, देश में भूमिपतियो के प्रभुत्व को भूमि सुधारों द्वारा समाप्त करके कृषकों को उनके अधिकार सरकार ही प्रदान कर सकती है। फिर कृषको को भूमि सुधार के लिए वित्त, अच्छे बीज और अन्य सुविधाए प्रदान करने के लिए नई सस्थाए सरकार द्वारा ही स्थापित की जा सकती हैं। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रो मे सरचनात्मक परिवर्तन लाने मे सरकार ही अग्रणी होती है। परन्तु प्रवर्त्तमान सामाजिक सस्थाओ आस्तो एव विश्वासों में परिवर्तन लाना बहुत कठिन कार्य होता है जिसे एक दृढ़ और शक्तिशाली सरकार ही शिक्षा, कानूनी परिवर्तनों तथा नई सस्थाओ द्वारा परिवर्तित कर सकती है।

2 गैर-आर्थिक कारक
(NON-ECONOMIC FACTORS)

आर्थिक कारकों के साथ-साथ गैर-आर्थिक कारक भी आर्थिक प्रगति को प्रभावित करते हैं। वास्तव में किसी भी देश मे प्रचलित गैर-आर्थिक कारक, जैसे सामाजिक, सास्कृतिक एव राजनैतिक सगठन, ऊपर वर्णित आर्थिक कारको को प्रभावित करते हैं। इसलिए गैर-आर्थिक कारको का आर्थिक विकास मे बहुत महत्त्व है। नर्क्से के अनुसार आर्थिक विकास मानवीय गुणो, सामाजिक वृत्तियो, राजनैतिक परिस्थितियो एव ऐतिहासिक सयोगों से बहुत निकटता का सबध रखता है।[2] अत आर्थिक विकास के लिए केवल आर्थिक कारक ही पर्याप्त नही, राजनैतिक मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक कारक भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने कि आर्थिक कारक। अत आर्थिक विकास के आवश्यक गैर-आर्थिक कारको, सामाजिक मूल्यो एव सस्थाओ, सास्कृतिक प्रवृत्तियो तथा प्रशासनिक विधियो—म परिवर्तन आते हैं।

1 धार्मिक-सास्कृतिक वृत्तिया (Religious-Cultural Attitudes)

अल्पविकसित देशो के समाजो मे ऐसी धार्मिक एव सास्कृतिक परम्पराए होती हैं, जो आर्थिक विकास की प्रेरक नही होती। धर्म मितव्ययिता तथा परिश्रम के गुणो को कम प्रोत्साहन देता है। लोग भाग्यवादी होत हैं, इसलिए काम करना पसन्द नही करते। वे परम्परागत रीति-रिवाजो से अधिक प्रभावित होते हैं तथा अवकाश सन्तुष्टि और उत्सवो एव समारोहो मे भाग लेने को अधिक मूल्य प्रदान करते हैं। इस प्रकार मुद्रा लाभदायक ढग से निवेश न करके व्यर्थ कार्यों पर व्यय कर दी जाती है। सास्कृतिक वृत्तिया प्रगति मे बाधक होती हैं जिसस सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक सस्थाए पिछडी हुई रहती हैं और आर्थिक विकास में सहायक नही होती।

इसलिए धार्मिक एव सास्कृतिक परम्पराओ मे परिवर्तन लाने बहुत आवश्यक हैं। लोगो में ऐसे धार्मिक विचारो का समावेश करना चाहिए जिससे आर्थिक प्रगति को प्रोत्साहन मिले। यह विशेषता पाश्चात्य सस्कृति मे पाई जाती है जिसमें भौतिकवाद प्रबल है, जबकि भारतीय सस्कृति मे अध्यात्मवाद पर अधिक बल दिया जाता है। डॉ एस० राधाकृष्णन ने ठीक ही कहा है कि "प्राच्य सस्कृति मे सर्वाधिक गुण जीवन तथा स्थिरता के लिए प्रयत्न करते हैं जबकि पाश्चात्य सस्कृति की विशिष्टताए प्रगति तथा साहस के लिए।"

कोई भी सास्कृतिक परिवर्तन असतोष फैलाता है और अपने ही माग म बाधा प्रस्तुत करता है जिससे आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। जैसे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से सामाजिक कल्याण मे वृद्धि नही होगी, यदि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के साथ निर्बल सास्कृतिक समायोजन होगे। इसलिए परिवर्तन चयनात्मक होने चाहिए। उन्हे धीरे-धीरे प्रचलित करना चाहिए। जबरदस्ती की अपेक्षा मनाने का तरीका अच्छा होता है। इस दिशा में शिक्षा तथा निदर्शन सहायक सिद्ध हो

[2] "Economic development has much to do with human endowments social attitudes political conditions and historical accidents" R Nurkse *op cit* p 1

सकते हैं। शिक्षा से ज्ञान का मार्ग खुलता है और लोग नए तरीकों और तकनीकों के प्रति जागरूक होते हैं जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। इस प्रकार आर्थिक प्रगति का द्वार खुल जाता है।

2 सामाजिक कारक—सामाजिक मूल्य, वृत्तियां एवं संस्थाएं (Social Factors – Values, Attitudes and Institutions)

सामाजिक वृत्तियां, मूल्य तथा संस्थाएं भी आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं। 'वृत्ति' शब्द से अभिप्राय वे समस्त विश्वास और मूल्य हैं जो मानव व्यवहार को जैसा वह है उसे वैसा होने का कारण होते हैं। 'मूल्य' शब्द विशेष उद्देश्यों की ओर मानव व्यवहार की प्रवृत्तियों से संबद्ध है।

आधुनिक आर्थिक वृद्धि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारकों द्वारा प्रभावित हुई है। पश्चिमी संस्कृति और शिक्षा में तर्क और संदेहवाद प्रारम्भ हुए। इससे साहसिकता की भावना उत्पन्न हुई जिससे नई खोजें और नए आविष्कार हुए तथा परिणामस्वरूप नए व्यापारी वर्ग का उदय हुआ। ये शक्तियां सामाजिक वृत्तियों, आशाओं और मूल्यों में परिवर्तन लाईं। लोगों ने बचत और निवेश करने की आदतें अपनाईं तथा लाभ कमाने के लिए जोखिम उठाए। उन्होंने एक दी हुई आगत से अधिकतम उत्पादन करने को विकसित किया जिसे लुइस 'बचत करने की क्षमता' कहता है। परिणामस्वरूप, यूरोपीय देशों ने 18वीं तथा 19वीं शताब्दियों में औद्योगिक क्रांति का अनुभव किया। आर्थिक और धार्मिक स्वतन्त्रता ने सामाजिक वृत्तियों और मूल्यों में और परिवर्तन लाए। एकल पारिवारिक इकाई ने संयुक्त परिवार प्रणाली का स्थान लिया जिसने आधुनिक आर्थिक वृद्धि की [illegible] सहायता की।

अल्पविकसित देशों में ऐसी सामाजिक वृत्तियां, मूल्य और संस्थाएं पाई जाती हैं जो आर्थिक विकास में सहायक नहीं होती हैं। बचत और मेहनत की अच्छाइयों को धन कम प्रेरणाएं प्रदान करता है। लोग भाग्यवादी होते हैं तथा इसलिए मेहनती नहीं होते हैं। वे परम्परावादी रिवाजों द्वारा अधिक प्रभावित होते हैं तथा त्योहारों और रीति-रिवाजों में भाग लेने एवं आराम और संतोष पर अधिक बल देते हैं। अतः सामाजिक वृत्तियां विकास के मार्ग में बाधा होती हैं जब गैर-आर्थिक क्रियाओं पर सदा फिजूल खर्च की जाती है।

(i) संयुक्त परिवार (Joint family)—इन देशों में संयुक्त परिवार प्राथमिक एवं सामाजिक इकाई होती है। यह परिवार के लोगों को स्वतन्त्र आर्थिक निर्णय लेने से रोकती है, सुस्ती पैदा करती है तथा जनसंख्या बढ़ाने में प्रोत्साहन देती है। ऐसे समाजों में संबंध व्यक्तिगत अथवा पैतृक होते हैं। सामाजिक स्तर पर लोग जाति, कबीले या पंथ द्वारा प्रभावित होते हैं।

इन सामाजिक वृत्तियों, मूल्यों तथा संस्थाओं को परिवर्तित करना चाहिए ताकि आर्थिक विकास हो सके। संयुक्त परिवार, जाति प्रथा, बंधुता तथा धार्मिक कट्टरता जैसी सामाजिक संस्थाओं को परिवर्तित करना चाहिए ताकि वे आर्थिक विकास में सहायक हों। परन्तु यह आसान काम नहीं है। कोई भी सामाजिक परिवर्तन अपने साथ असंतोष और विरोध लाएगा। इस प्रकार, यह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। इसलिए सभी सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन सोच समझ कर लाने चाहिए। उन्हें स्टेजों में कार्यान्वित करना चाहिए। जबरदस्ती की बजाय मनाने का तरीका अपनाना चाहिए। इस दिशा में शिक्षा तथा प्रदर्शन बहुत कुछ कर सकते हैं। लोकप्रिय शिक्षा से लोकप्रिय ज्ञान होता है और यह ज्ञान का मार्ग खोल देता है। यह लोगों के मन को नए तरीकों और उत्पादन की नई तकनीकों की ओर खोल देता है। यह आत्म-अनुशासन उत्पन्न करती है, विवेकपूर्ण सोचने तथा भविष्य के बारे में जाँच-पड़ताल करने की शक्ति प्रदान करती है। आर्थिक विकास में शिक्षा के महत्त्व पर बल देते हुए प्रो० केर्नक्रास लिखते हैं कि "कोई देश, जिसमें औद्योगिक सभ्यता के मार्ग में शिक्षा नहीं हुई है, अपने आप को विकसित नहीं कर सकता। कृषकों को निर्वाह योग्य कृषि पर ही नहीं छोड़ा जा सकता, उन्हें मौद्रिक अर्थव्यवस्था के भीतर लाना पड़ता है, श्रमिकों को मजदूरी के लिए निश्चित घंटे काम करने का आदी होना पड़ता है,

नगरों, बैंकों तथा व्यवसायिक उद्यमो की वृद्धि आवश्यक होती है विज्ञान की उपलब्धियां समस्त अर्थव्यवस्था पर लागू करनी पड़ती हैं। सबसे ऊपर, देश के जीवन में निरन्तर तत्व के रूप में व्यापार, प्रशासकीय तथा राजनैतिक नेताओं का वर्ग प्रकट होना चाहिए जिन पर यह भरोसा किया जा सके कि वे लगातार नवप्रवर्तन द्वारा विकास का वेग बनाए रखेंगे।"

(ii) जाति प्रथा (Caste system)—अल्पविकसित देशों में समाज की स्थिति जाति प्रथा द्वारा अधिक प्रभावित रहती है जिसके कारण व्यवसायिक गतिशीलता न के बराबर रहती है जो कि आर्थिक विकास को प्रभावित करती है। जाति प्रथा के कारण इन समाजों में भेदभाव व साम्प्रदायिक झगड़े चलते रहते हैं। भय असुरक्षा व अनिश्चितता का वातावरण आर्थिक प्रक्रिया को प्रोत्साहित नहीं होने देता।

(iii) सामाजिक वृत्तियों में परिवर्तन (Changes in social attitudes)—कुछ जातियों में दूसरों की अपेक्षा विकास करने की अधिक प्रवृत्तियां पाई जाती हैं जैसे कि भारत में पंजाबी पारसी और गुजराती तथा बाजील और अमरीका में नीग्रो। विकास के लिए यह आवश्यक है कि जातियों को एक दूसरे से दूर न रखा जाए बल्कि उनमें परस्पर मिश्रण हो ताकि सांस्कृतिक मूल्यों और जातीय गुणों का मेल हो। परन्तु ऐसे उपाय अपनाने के लिए बहुत धैर्य चाहिए। ऐसे जातीय परिवर्तनों में सामाजिक ढांचे में रूपान्तरण होना है।

अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास पर संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट सामाजिक वृत्तियों मूल्यों और संस्थाओं में परिवर्तनों पर बल देने हुए बताती है कि बिना कष्टदायक समायोजनाओं के तीव्र आर्थिक विकास असंभव है। पुराने विचार त्यागने होंगे पुरानी संस्थाएं त्यागनी पड़ेंगी जाति धर्म, के बंधन तोड़ने होंगे। परन्तु परिवर्तन की प्रक्रिया क्रांतिकारी नहीं होनी चाहिए। अन्यथा सामाजिक वृत्तियों और मूल्यों में तीव्र परिवर्तन अपने साथ असंतोष और हिंसा लाएंगे तथा विकास के मार्ग को रोकेंगे।

(iv) संस्थात्मक परिवर्तन (Institutional changes)—मिर्डल अपने Asian Drama में अल्पविकसित देशों के तीव्र आर्थिक विकास के लिए 'आधुनिकीकरण मूल्यों' अथवा "आधुनिकीकरण आदर्शों" को अपनाने पर बल देता है। उसके अनुसार आधुनिकीकरण (modernisation) का अर्थ है सामाजिक सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक ढांचा जो उत्पादन की सभी शाखाओं और अवस्थाओं पर परीक्षित ज्ञान के लागू करने की सुविधा प्रदान करता है। आधुनिकीकरण के आदर्शों में सम्मिलित होने हैं उत्पादकता में वृद्धि रहन-सहन के स्तर तथा सामाजिक और आर्थिक समानता लाने के लिए जानबूझ कर वैज्ञानिक वृत्ति तथा आधुनिक तकनीक लागू करके क्रिया और विचार में तर्कशक्ति लाना। जैसा कि जवाहरलाल नेहरू ने कहा था "एक देश की उन्नति का टैस्ट यह है वह कहां तक आधुनिक तकनीकों का प्रयोग कर रहा है। आधुनिक तकनीक केवल एक औजार को प्राप्त और प्रयोग करने की बात नहीं है। आधुनिक तकनीक आधुनिक विचार का अनुसरण करती है।"

परन्तु अपनी स्थिति सुधारने की अभिलाषा तथा भौतिक प्रगति करने की पहल अवश्य ही देश के नागरिकों में उत्पन्न होनी चाहिए। विकास की इच्छा स्वयं देश द्वारा की जानी चाहिए यह बाहर से रोपित नहीं की जा सकती। बाहरी शक्तियों को राष्ट्रीय शक्तियों द्वारा प्रोत्साहित करना चाहिए और उन्हें सुगम बनाना चाहिए। वे उन्हें उखाड़ न दें बल्कि उनकी पूरक बनें। विदेशी सहायता विकास को केवल प्रारंभ या प्रोत्साहित कर सकती है, उसे बनाए नहीं रख सकती। पर्याप्त आन्तरिक प्रोत्साहन के अभाव में विकास लड़खड़ा जाएगा। जब तक विकास के लिए प्रयास देश के भीतर से नहीं होता, तो विकास की प्रारंभिक पहल व्यर्थ और थोड़े समय के लिए होगी। जैसा कि केनिकास ने कहा है, "विकास असंभव है यदि यह लोगों के मन में नहीं होता"। इसलिए, यह आवश्यक है कि यदि आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया को संचयी और दीर्घ-स्थायी बनाना है तो विकास की शक्तियों की जड़ें घरेलू अर्थव्यवस्था के भीतर ही सुदृढ़ हों।

आधुनिकीकरण के आदर्श संस्थाओं और वृत्तियों में परिवर्तन चाहते हैं ताकि श्रम की दक्षता और मेहनत, प्रभावी प्रतियोगिता, गतिशीलता और उद्यम बढ़ें, अवसरों को अधिक समानता दी जाए, ऊँची उत्पादकता और कल्याण संभव हो, तथा सामान्यतौर से विकास बढ़े। जाति, रंग, धर्म, जातीय उत्पत्ति, संस्कृति, भाषा तथा प्रांतीयता के बंधन भंग करने चाहिए तथा सम्पत्ति और शिक्षा ऐसी असमानता से वितरित नहीं करने चाहिए कि वे सामाजिक एकाधिकार दर्शाए। यह सभी कुछ शिक्षा और ज्ञान के प्रसार द्वारा लोगों की वृत्तियों और सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन करके संभव हो सकता है। लोगों को अपने उद्देश्यों के बारे में सजग होना चाहिए तथा उनको प्राप्त करने की शक्ति होनी चाहिए। लेकिन जहां सामाजिक ढांचा दृढ़ जाति और संयुक्त परिवार प्रणालियों द्वारा प्रभावित होता है वहां व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं व्यवसायिक गतिशीलता नहीं होती है। परिणामस्वरूप, लोगों में अधिक काम, अधिक कमाई और अधिक बचत करने की प्रेरणा कम पाई जाती है तथा वे प्रयास और जोखिम नहीं उठाते। इस कारण विकास के लिए ऐसी संस्थाओं और वृत्तियों को परिवर्तित करना चाहिए जो मुक्त समाज और मुक्त प्रतियोगिता के मार्ग में रुकावटें होती हैं। उदाहरणार्थ, भारत में विभिन्न भूमि सुधार को मिर्डल जाति प्रथा तोड़ने के प्रयास मानता है ताकि मुक्त प्रतियोगिता की बाधाएं और सामाजिक एकाधिकारों को समाप्त किया जा सके।

वृत्तियों के संबंध में आधुनिकीकरण आदर्शों को मिर्डल 'नया मनुष्य' अथवा "आधुनिक मनुष्य", "नए राज्य का नागरिक", "विज्ञान के युग में मनुष्य", "औद्योगिक मनुष्य" का निर्माण करना कहता है। इसका अभिप्राय है वृत्तियों में परिवर्तन ताकि लोगों में दक्षता, परिश्रम, सुव्यवस्थितता, समय-पाबंदी, मितव्ययिता, अत्यन्त ईमानदारी, काम के निर्णयों में तर्कशक्ति, परिवर्तन के लिए तत्परता, अवसरों के प्रति सजगता जैसा कि ये परिवर्तनशील संसार में उत्पन्न होते हैं, सक्रिय उद्यम, सच्चरित्रता और आत्म-निर्भरता, सहयोगिता तथा दीर्घ दृष्टिकोण अपनाने की इच्छा।

आधुनिकीकरण की ओर वृत्तियों में परिवर्तनों से अर्थव्यवस्था के कृषि, औद्योगिक और तृतीयक क्षेत्रों की ओर विकास होता है। परन्तु उद्यमवृत्ति के बिना इन क्षेत्रों का विकास संभव नहीं है। लिहंल के अनुसार, अल्पविकसित देशों में उद्यमवृत्ति का अभाव इस कारण नहीं है कि उनमें पूँजी अथवा कच्चे माल की कमी होती है बल्कि इस कारण कि उनमें सही वृत्तियों वाले उद्यमियों की कमी पाई जाती है। हेगन अपनी पुस्तक *On The Theory of Social Change* (1962) में उद्यमवृत्ति के अभाव को परंपरागत समाज में शिशुत्व वातावरण को मानता है जो व्यक्तियों में क्रोध, चिन्ताएं और तनावों को उत्पन्न करता है। वे "आदर निकास" से पीड़ित होते हैं और "पलायनवाद" को अपने व्यक्तित्व का मुख्य लक्षण विकसित कर लेते हैं। हेगन के अनुसार अनेक पीढ़ियों की बहुत लंबी अवधि के दौरान "उपलब्धि आवश्यकता" (need achievement) प्रेरणा के साथ उद्यमियों का एक वर्ग विकसित होता है। ऐसी मनोवैज्ञानिक वृत्ति उत्पन्न होती है जब पिताओं की एक पीढ़ी उपलब्धि की मांग करती है या उपलब्धि के रास्ते में नहीं आती, तथा माताएं शिशुओं के प्रति सक्रियता प्रोत्साहित करने में आधार की भूमिका निभाती हैं :

मैक्कलैंड ने अपनी पुस्तक *The Achieving Society* (1961) में यह विचार प्रतिपादित किया है कि उद्यमवृत्ति की वृद्धि उपलब्धि प्रेरणा के लिए आवश्यकता पर निर्भर करती है। उसके अनुसार, n-Ach (need achievement) सापेक्ष स्थिर व्यक्तित्व विशेषता है जिसकी जड़ें मध्य बचपन के अनुभवों में पाई जाती हैं। n-Ach स्तरों में परिवर्तनों को बच्चों की पाठ्यपुस्तकों की कहानियों के साथ सह-संबद्ध किया गया और यह पाया गया कि 80 या 90 वर्ष पूर्व संयुक्त राज्य अमरीका में n-Ach बहुत अधिक थी। अब यह रूस और चीन में अधिकतम है। यह मैक्सिको तथा नाइजीरिया जैसे विकासशील देशों में बढ़ रही है। उसके अनुसार इन देशों में n-Ach अधिक होने का कारण सैद्धांतिक सुधार उपकल्पना, यूरोप तथा अमरीका में प्रोटेस्टेंट धर्म, रूस

तथा चीन में उत्साहशील साम्यवादी विचारधारा, तथा विकासशील देशों में राष्ट्रीयता की भावना है।

मैक्कलैंड ने डेविड विटर के साथ मिल कर भारत में आंध्र प्रदेश के काकिनादा कस्बे में प्रयोग किए और यह बताया कि वहा उद्यमवृत्ति के विकास में n-Ach कारक ने न तो मुद्रा, न ही जाति और न ही परपरागत विश्वासों ने कोई महत्त्वपूर्ण कार्य किया। यह पाया गया कि जिन्होंने 1964-65 में प्रेरणा कार्यक्रम के अन्तर्गत हैदराबाद की Small Industries Extension Training Institute में दो सप्ताह का प्रशिक्षण दिया गया, उन्होंने बाद मे अधिक सक्रिय उद्यमी व्यवहार का परिचय दिया। इस प्रकार वृत्तिया, प्रेरणाए, और अनुकूल वातावरण सब मिलकर विकास के लिए उद्यमवृत्ति को बढ़ावा देते हैं।

3 मानवीय कारक (Human Factors)

आधुनिक आर्थिक वृद्धि, जिसका सबध विकसित देशों से है, का महत्त्वपूर्ण कारण मानवीय साधनों में अभूतपूर्व वृद्धि है। यह जनसख्या में वृद्धि और श्रम-शक्ति की कुशलता का परिणाम है। कुजनेट्स के अनुसार यूरोपीय लोगों में 1750 से 1950 के बीच 433% की वृद्धि हुई जब कि शेष विश्व की जनसख्या में 200% की वृद्धि हुई। जहाँ जनसख्या लगभग पाँच गुना बढ़ी, वहा इन यूरोपीय देशों और इनके द्वारा बसाये गए नए देशों में प्रति व्यक्ति आय दस गुना बढ़ी।

प्रति व्यक्ति आय मे इतनी वृद्धि का मुख्य कारण मानवीय साधनों का विकास माना जाता है जो श्रम-शक्ति की कुशलता में निहित है। इसे आधुनिक अर्थशास्त्री मानव-पूँजी निर्माण कहते हैं जो "देश के सब लोगों का ज्ञान, कुशलता तथा क्षमताए बढ़ाने की प्रक्रिया है," जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा तथा सामान्य रूप से सामाजिक सेवाओ पर व्यय शामिल हैं। डेनिसन के अनुसधान के अनुसार 1929-57 के बीच अमरीका में शिक्षा पर किए गए व्यय से सकल वास्तविक राष्ट्रीय आय में 23% योगदान था।

परन्तु एक अल्पविकसित देश में तेजी से बढ़ती जनसख्या आर्थिक उन्नति के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा होती है क्योंकि मानव-पूँजी में निवेश की कमी के कारण शिक्षा, तकनीकी ज्ञान, कुशलता तथा शारीरिक स्वास्थ्य का स्तर बहुत निम्न होता है। यही कारण है कि ऐसे देशों मे श्रम की उत्पादकता बहुत कम होती है जिससे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं हो पाती। जबकि सोलोमन फ्रैब्रीकैंट के अनुसार 1889-1957 के बीच अमरीका के कुल राष्ट्रीय उत्पाद मे वृद्धि जितनी श्रम और भौतिक पूँजी की वृद्धि द्वारा हुई उतनी ही श्रम की उत्पादकता में वृद्धि से हुई। इस प्रकार देश मे स्वस्थ, शिक्षित एव प्रशिक्षित श्रम-शक्ति होने पर ही आर्थिक वृद्धि सभव हो सकती है।

अल्पविकसित देश मे प्रति व्यक्ति निम्न आय तथा पूँजी-निर्माण की निम्न दरो के कारण अतिरिक्त जनसख्या का भरण-पोषण करना कठिन हो जाता है। जब उत्पादन को बढ़ाया जाता है तो उसे बढ़ी हुई जनसख्या हड़प कर जाती है। परिणाम यह होता है कि वास्तविक आर्थिक प्रगति दर में कोई वृद्धि नहीं होती। उदाहरण के तौर पर भारत में जनसख्या की वृद्धि दर इतनी अधिक है कि कुल उत्पादन में जितनी वृद्धि प्रति वर्ष होती है, बढ़ती हुई जनसख्या उसको निष्फल बना देती है, जिस कारण अर्थव्यवस्था की वार्षिक वृद्धि दर 3 प्रतिशत से अधिक नहीं बढ़ पाती।

जनसख्या में तीव्र वृद्धि का एक और प्रभाव यह होता है कि बढ़ती हुई श्रम शक्ति के लिए पुराने ढग के उपकरण जुटाने में भी बहुत अधिक पूँजी लगानी पडती है। अनुमानत यदि जनसख्या में वृद्धि दर 2 5 प्रतिशत हो तो राष्ट्रीय आय का 5% से 12 5% भाग पूँजी मे निवेश करना पडेगा।

ऐसे देशों में जनसख्या का अधिक प्रतिशत (लगभग 40) छोटे आयु-वर्ग (15 वर्ष) में होता है जिससे अर्थव्यवस्था पर भारी बोझ पड जाता है तथा जीवन-प्रत्याशा कम होने के कारण श्रम-शक्ति में कमी पाई जाती है।

आर्थिक विकास के लिए ऐसी जनसख्या का उपयोग निम्नलिखित तरीकों से किया जा सकता है

(i) **जनसंख्या पर नियंत्रण** (Control over population)—मानवीय साधनों के विकास के लिए श्रेष्ठतम उपयोग तभी सम्भव है, जबकि जनसख्या के परिमाण को कम किया जाए। इसके लिए परिवार-नियोजन तथा जन्म-दर को कम करना आवश्यक है।

(ii) **श्रम शक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन** (Change in the outlook of the labour force)—आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे श्रम-शक्ति का सामाजिक व्यवहार भी महत्त्वपूर्ण होता है। श्रम की उत्पादकता एव गतिशीलता बढ़ाने के लिए लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन करना आवश्यक है जिससे उनमें श्रम-गौरव का महत्त्व उत्पन्न हो। इसके लिए धार्मिक, सास्कृतिक, सस्थागत एव सामाजिक परिवर्तन होने अनिवार्य हैं, जो वास्तव मे शिक्षा के प्रसार पर निर्भर करते हैं।

(iii) **प्रशिक्षण** (Training)—आर्थिक विकास के लिए श्रम का शिक्षित तथा प्रशिक्षित होना जरूरी है। इसके लिए अर्थशास्त्री मानव पूँजी-निर्माण पर अधिक बल देते हैं। मानव पूँजी-निर्माण "देश के सब लोगों का ज्ञान, कुशलता तथा क्षमताएं बढ़ाने की प्रक्रिया है।" अल्पविकसित देश मे मानव-पूँजी में निवेश की कमी होने के कारण शिक्षा ज्ञान, तकनीकी ज्ञान, कुशलता तथा शारीरिक दक्षता का स्तर बहुत निम्न होता है जिस कारण भौतिक पूँजी की उत्पादकता बहुत कम होती है। इस कमी को पूरा करने के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा तथा सामान्य रूप से सामाजिक सेवाओं में व्यय करना ही मानव-पूँजी मे निवेश है। इस प्रकार शिक्षित एव प्रशिक्षित श्रम-शक्ति हो जाने से आर्थिक प्रगति तीव्र हो जाती है।

4 **राजनैतिक एव प्रशासनिक परिवर्तन** (Political and Administrative Changes)

अल्पविकसित देशो मे राजनैतिक एव प्रशासनिक ढाँचा बहुत ढीला होने के कारण आर्थिक विकास के मार्ग मे बाधक होता है। एक सशक्त, कुशल तथा निष्कलक शासन आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है। प्रोफेसर लुइस ने ठीक ही कहा है, "सरकार का व्यवहार आर्थिक क्रिया को प्रोत्साहित या हतोत्साहित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।"[3]

राजनीतिक नीतियाँ एव प्रशासनिक ढाचा आधुनिक आर्थिक वृद्धि में बहुत सहायक हुई हैं। बर्तानियाँ, जर्मनी, अमरीका, जापान और फ्रास की आर्थिक वृद्धि उनके सुदृढ़ प्रशासनिक ढाँचों का ही परिणाम हैं जबकि अमरीका को छोड़कर इन सभी देशों ने दोनो विश्व युद्धों मे बहुत क्षति उठाई। दूसरी ओर, इटली जैसे यूरोप के अन्य देश राजनीतिक अस्थिरता एव कुप्रशासन के कारण इतनी प्रगति नही कर पाए। शांति, स्थिरता तथा कानूनी सुरक्षा से उद्यम को प्रोत्साहन मिलता है। जितनी स्वतत्रता अधिक होगी, उतना ही उद्यम पनपेगा। तकनीकी उन्नति, साधनो की गतिशीलता और विस्तृत मार्किट उद्यम को बढ़ाने मे सहायक होते हैं जिनको स्वच्छ प्रशासन एव स्थिर राजनैतिक अवस्था ही प्रदान कर सकती है। इसी प्रकार आर्थिक उपरिव्यय पूँजी तथा मौद्रिक एव राजकोषीय नीतियाँ अपनाकर सरकार पूँजी-निर्माण मे सहायक हो सकती है। यदि वह आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देना चाहती है तो सरकार को चाहिए कि समाज को ये सेवाएँ प्रदान करे व्यवस्था, न्याय, पुलिस तथा रक्षा, उत्पादन में योग्यता तथा निवेश के अनुकूल पुरस्कार, सम्पत्ति—जो विविध प्रकार की हो सकती है—के उपभोग मे सुरक्षा, वसीयती अधिकार, व्यापार प्रतिविदाओ (covenants) तथा इकरारनामो को पूरा करने का आश्वासन, बाट, प्रमाप तथा करेंसी के स्टैण्डर्ड और स्वय राजकीय प्रणाली की स्थिरता प्रदान करना, प्रत्याशाओ तथा कर्त्तव्यों की व्यवस्था, विवेक की भावना तथा भावी गण्यता (future calculability) कायम रखना। इस प्रकार स्वच्छ, शक्तिशाली एव न्यायपूर्ण शासन आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करता है। जैसाकि लुइस ने कहा है, "किसी भी देश ने योग्य सरकारों के सुनिश्चित प्रोत्साहन के बिना आर्थिक प्रगति नही की है।"[4]

[3] W A Lewis, *op cit*, p 376

[4] "No country has made progress without positive stimulus from intelligent Governments" *W A Lewis*

निष्कर्ष (Conclusion)

इस प्रकार आर्थिक एवं आर्थिकेतर तत्त्व वृद्धि की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करते हैं। वे एक दूसरे पर भी निर्भर करते हैं। आर्थिक तत्त्व आर्थिकेतर तत्त्वों द्वारा प्रभावित होते हैं और उनको प्रभावित भी करते हैं। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे वाइनर तथा मिर्डल के अनुसार आर्थिक एवं गैर-आर्थिक तत्त्वों में भेद निरर्थक, भ्रमपूर्ण तथा असंगत है। इसलिए इसको त्याग देना चाहिए। परन्तु हम इन अर्थशास्त्रियों के विचार से सहमत नहीं क्योंकि यह सर्वमान्य है कि आर्थिक तथा आर्थिकेतर तत्त्वों का आधुनिक आर्थिक वृद्धि पर बहुत महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

प्रश्न

1. आधुनिक आर्थिक वृद्धि क्या है? इसको प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्वों की विवेचना कीजिए।
2. किसी देश की आर्थिक वृद्धि को प्रभावित करने वाले तत्त्वों की विवेचना कीजिए।
3. आर्थिक विकास में सामाजिक एवं संस्थात्मक परिवर्तनों के महत्त्व को समझाइए। वे अल्पविकसित देशों में विकास को कहाँ तक अवरुद्ध कर रहे हैं?
4. आर्थिक विकास में गैर-आर्थिक तत्त्व क्या हैं? आर्थिक विकास की प्रक्रिया को वे किस प्रकार सहायता अथवा बाधा पहुँचाते हैं?

अध्याय 75

आर्थिक आयोजन
(ECONOMIC PLANNING)

1 आर्थिक आयोजन का अर्थ
(MEANING OF ECONOMIC PLANNING)

"आर्थिक आयोजन" शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में कोई एकमत नहीं है। अर्थशास्त्र विषयक साहित्य में इस शब्द का बहुत शिथिल रूप में प्रयोग हुआ है। इसे प्रायः भ्रान्ति से साम्यवाद, समाजवाद या आर्थिक विकास समझ लिया जाता है। राज्य की ओर से आर्थिक मामलों में किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप को भी आयोजन मान लिया गया है परन्तु राज्य तो कोई योजना बनाए बिना भी हस्तक्षेप कर सकता है। फिर आयोजन क्या है? आयोजन एक तकनीक, एक साध्य की प्राप्ति का साधन और वह साध्य है, जो केन्द्रीय योजना प्राधिकरण द्वारा निर्धारित किन्हीं पूर्वनिश्चित तथा सुस्पष्ट लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को प्राप्त करता है। यह साध्य आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक अथवा सैनिक उद्देश्यों को प्राप्त करना हो सकता है। इसलिए *"प्रश्न यह नहीं है कि योजना बनाई जाए अथवा नहीं बल्कि यह है कि विभिन्न* प्रकार की योजनाओं में से किसे अपनाया जाए।"[1]

प्रोफेसर रॉबिन्स ने छः विभिन्न अर्थों का निर्देश किया है जिनमें इस 'आयोजन' शब्द का आर्थिक साहित्य में प्रयोग हुआ है।

प्रथम, पर्याप्त साहित्य ऐसा है जिसमें यह शब्द केवल सड़कों, रहने की बिल्डिंगों और सिनेमाओं तथा ऐसे ही अन्य साधनों के भौगोलिक कटिबन्धन (zoning) से सम्बन्ध रखता है। कभी-कभी इसे नगर तथा ग्राम आयोजन और कभी केवल योजना कहते हैं।

दूसरे, 'आयोजन' का अर्थ यह निर्णय करना है कि यदि सरकार के पास खर्च करने के लिए मुद्रा हो, तो वह भविष्य में क्या मुद्रा व्यय करेगी।

तीसरे, *'योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था' वह होती है जिसमें उत्पादन की प्रत्येक इकाई (या फर्म) केवल उन* मनुष्यों, माल तथा उपकरणों के साधनों का प्रयोग करती है, जो उस कोटा द्वारा इसके लिए नियत कर दिए जाते हैं और अपना उत्पादन केवल उन्हीं व्यक्तियों अथवा फर्मों को देती है, जो केन्द्रीय आदेश द्वारा निर्दिष्ट हो।

चौथे, कभी-कभी 'आयोजन' का अर्थ यह होता है कि सरकार, निजी अथवा सार्वजनिक उद्यम के लिए, कोई उत्पादन-लक्ष्य नियत कर देती है। अधिकांश सरकार इस प्रकार के आयोजन कहीं-कहीं पर अपनाती हैं या केवल एक या दो ऐसे उद्योगों अथवा सेवाओं के लिए, जिन्हें सरकार बहुत महत्व देती हो।

[1] L. Robbins, *Economic Policy and International Order* p 6

पाँचवें, यहाँ समस्त अर्थव्यवस्था के लिए लक्ष्य नियत किए जाते हैं, जिनका उद्देश्य यह होता है कि अर्थव्यवस्था की विविध शाखाओं में समस्त देश के श्रम, विदेशी मुद्रा, कच्चे माल तथा अन्य साधनों का विभाजन किया जाए।

और अन्तिम, कभी-कभी 'आयोजन' शब्द का प्रयोग उन साधनों का वर्णन करने के लिए होता है जिनको सरकार इसलिए काम में लाती है कि उन लक्ष्यों को निजी उद्यम पर लागू करने का प्रयत्न करे, जो पहले से निर्धारित कर दिए हैं।

परन्तु **फर्डीनेण्ड ज्वेग** का कहना है कि 'आयोजन' का अर्थ है समस्त अर्थव्यवस्था का आयोजन, न कि अर्थव्यवस्था के भीतर आयोजन। यह केवल नगरों, सार्वजनिक निर्माण-कार्यों, अथवा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अलग-अलग वर्गों का नहीं बल्कि समस्त अर्थव्यवस्था का आयोजन होता है। इस प्रकार आयोजन का अर्थ खण्डों में आयोजन नहीं बल्कि अर्थव्यवस्था का समस्त आयोजन है।

आर्थिक आयोजन की कुछ परिभाषाएँ नीचे दी जा रही हैं

प्रोफेसर **रॉबिन्स** की परिभाषा के अनुसार, "आर्थिक आयोजन उत्पादन तथा विनिमय की निजी क्रियाओं का सामूहिक नियंत्रण या प्रतिस्थापन है।"

हैक के अनुसार आयोजन का अर्थ है, *"केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा उत्पादकीय किया का निदेशन।"*

डाल्टन के अनुसार, "अपने व्यापकतम अर्थ में 'आयोजन' का अर्थ है, बड़े-बड़े साधनों के कार्यभारी व्यक्तियों द्वारा आर्थिक क्रिया को चुने हुए लक्ष्यों की ओर आयोजित निदेशन।"

लुइस लार्डविन की परिभाषा के अनुसार, आर्थिक आयोजन "आर्थिक संगठन की वह स्कीम है, जिसमें व्यक्तिगत तथा अलग-अलग प्लांट, उद्यम तथा उद्योग एक एकल व्यवस्था की समन्वित इकाइयाँ हैं, ताकि एक निश्चित समय के भीतर लोगों की जरूरतों की अधिकतम संतुष्टि के लिए उपलब्ध साधनों का उपयोग किया जाए।"

ज्वेग के शब्दों में, "आर्थिक साधनों का संगठन तथा उपयोग करने के लिए लोक प्राधिकारियों के कार्यों का विस्तार करने में ही आर्थिक आयोजन निहित है। आर्थिक आयोजन का तात्पर्य तथा परिणाम राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का केन्द्रीयकरण होता है।"

अधिकमन प्रसिद्ध परिभाषा **डिकन्सन** की है जिसके अनुसार आयोजन का अर्थ है "इस विषय में प्रमुख आर्थिक निर्णय करना कि किस वस्तु का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए, कि कब और कहाँ उत्पादन हो, और समस्त अर्थव्यवस्था के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर निर्णायक प्राधिकरण के सजग निर्णय के अनुसार उस उत्पादन को कैसे विभाजित किया जाए।"

यद्यपि इस विषय में एक मत नहीं है, फिर भी, जैसाकि अधिकांश अर्थशास्त्री समझते हैं, आर्थिक आयोजन का मतलब है, **समय की एक निश्चित अवधि के भीतर निश्चित लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के उद्देश्य से केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा अर्थव्यवस्था का आयोजित नियंत्रण तथा निदेशन।**[1]

2. आयोजन के उद्देश्य
(OBJECTIVES OF PLANNING)

आयोजन के उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक होते हैं जिनके द्वारा मुक्त बाजार के दोष तथा असफलताओं को दूर किया जा सके, जैसे बेरोजगारी, व्यापार चक्र, गरीबी, शोषण, असमानताएँ आदि। कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्य निम्नलिखित हैं

1. **पूर्ण रोजगार (Full employment)**—आर्थिक आयोजन का एक मुख्य उद्देश्य बेरोजगारी को समाप्त करना तथा अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार प्राप्त करना होता है। प्रत्येक देश चाहे वह पूँजीवादी हो या साम्यवादी, पूर्ण रोजगार प्राप्त करने की ओर अग्रसर रहता है। भारत जैसे विकासशील देशों की योजनाओं में रोजगार के साधनों में वृद्धि करके बेरोजगारी दूर करना तथा पूर्ण रोजगार के स्तर तक

[1] Planning implies deliberate control and direction of the economy by a central authority for the purpose of achieving definite targets and objectives within a specified period of time.

पहुँचना एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है।

2. असमानताओं को दूर करना (Removal of inequalities)—पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में विकास के साथ-साथ धन एवं आय का कुछ व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रीयकरण होता जाता है जिसे दूर करना योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था का एक उद्देश्य होता है। इसके लिए राज्य ऐसे कदम उठाता है जिससे धन तथा आय का समान रूप से विभाजन हो। इसके अन्तर्गत सामाजिक सेवाओं का विकास एवं विस्तार किया जाता है, तथा भारी करों और एकाधिकार के विरुद्ध कानूनों द्वारा रोक लगाई जाती है।

3. गरीबी को दूर करना (Removal of poverty)—पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में गरीबी सबसे बड़ा दोष है जिसे केवल दीर्घावधि में योजनाओं द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है। विशेषकर विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में गरीबी के दुश्चक्र बेरोजगार तथा असमानताओं के साथ सम्बद्ध होते हैं। इसलिए योजनाओं के उद्देश्यों में गरीबी दूर करना भी पाया जाता है। भारतीय योजनाओं के ये तीनों मुख्य उद्देश्य हैं।

4 साधनों का उचित प्रयोग (Proper use of resources)—योजना के अन्तर्गत देश के साधनों का सही ढंग से प्रयोग करना पाया जाता है। साधनों का प्रयोग सुव्यवस्थित एवं नियन्त्रित तरीके से किया जाता है ताकि उनका अपव्यय न हो तथा उत्पादन में वृद्धि हो सके। इसके लिए योजना में लक्ष्यों को पूर्वनिर्धारित करके उनके अनुसार साधनों का उचित प्रयोग किया जाता है, जैसे खनिज, वन, जल, विद्युत तथा मानवीय साधन आदि।

5 संतुलित क्षेत्रीय विकास (Balanced regional development)—योजना का एक मुख्य उद्देश्य संतुलित क्षेत्रीय विकास करना होता है। रूस तथा अमरीका ने क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने के उद्देश्य से योजनाएँ बनाईं। भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में भी यह उद्देश्य पाया जाता है। प्रत्येक देश में कुछ क्षेत्र विकसित होते हैं और कुछ अविकसित। इस असंतुलन को समाप्त करने के लिए औद्योगिक तथा कृषि-विकास पर अधिक बल दिया जाता है। साथ में यातायात के साधन और विद्युत का भी विकास इन क्षेत्रों में किया जाता है।

6 त्वरित विकास (Rapid development)—अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में तीव्र विकास करना भी योजना का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है। इसके अन्तर्गत योजना-अवधि में विकास की दर को बढ़ाने का लक्ष्य रखा जाता है जिसके अनुसार निवेश किया जाता है।

7 आत्मनिर्भरता (Self-sufficiency)—अल्पविकसित देशों की योजनाओं में एक उद्देश्य आत्मनिर्भरता प्राप्त करना भी होता है। ऐसे देश प्राय सभी उपभोक्ता एवं पूँजीगत पदार्थों के लिए विकसित राष्ट्रों पर निर्भर रहते है। इसलिए वे योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था अपनाकर कुछ दशकों मे औद्योगिक एव कृषि-विकास द्वारा आत्मनिर्भर होने का प्रयत्न करते हैं।

8 सामाजिक सुरक्षा (Social security)—आयोजन का उद्देश्य, देश में सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करना भी होता है जिससे श्रमिक अधिक मेहनत एवं लगन से कार्य करें, ताकि उत्पादन में वृद्धि हो। सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत चिकित्सा, बीमा, बेरोजगारी, आवास, मनोरंजन, उचित मजदूरी आदि सम्मिलित होते हैं।

9 आर्थिक स्थिरता (Economic stability)—प्रत्येक अर्थव्यवस्था में आर्थिक उतार-चढ़ाव होते रहते हैं जिनका मुख्य कारण कम या अधिक उत्पादन होता है। इससे कभी कीमतें बढ़ने लगती हैं और कभी कम होने लगती है। मंदी एवं तेजी की अवस्थाएँ मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था की विशेषता होती है। आर्थिक आयोजन द्वारा ही इनको नियंत्रित किया जा सकता है। इसलिए आर्थिक आयोजन का एक उद्देश्य अर्थव्यवस्था में आर्थिक स्थिरता कायम करना होता है।

10 राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाना (Increase in national and per capita income)—आयोजन में योजनाओं की निश्चित अवधि के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करना एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है। यह अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के उत्पादन और तकनीकी ज्ञान पर निर्भर करता है।

11 अधिकतम सामाजिक कल्याण (Maximum social welfare)—आर्थिक आयोजन का उद्देश्य

उत्पादन में विभिन्न साधनों को अधिक से अधिक सुविधाएँ प्रदान करना है जिससे प्रत्येक साधन को उसका उचित मूल्य मिल सके। सरकार ऐसे नियम लागू करती है जिससे प्रत्येक साधन को समान अवसर प्राप्त हो। ऐसा करने से साधनों का उचित उपयोग होता है और सामाजिक कल्याण में वृद्धि।

3 अल्पविकसित देशों में आयोजन की आवश्यकता
(NEED FOR PLANNING IN UNDERDEVELOPED COUNTRIES)

अल्पविकसित देशों में आयोजन का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक विकास की दर को बढ़ाना है लोगों का जीवन स्तर ऊंचा उठाना निर्धनता व आर्थिक असमानताओं को दूर करना है।*

1 पूँजी निर्माण के लिए (For capital formation)—आय, बचत तथा निवेश के स्तर बढ़ाकर पूँजी निर्माण की दर बढ़ाना। परन्तु अल्पविकसित देशों में पूँजी-निर्माण की दर बढ़ाने में अनेक कठिनाइयाँ पाई जाती हैं। लोग दरिद्रताग्रस्त होते हैं। आय के निम्न स्तरों तथा उपभोग की ऊँची प्रवृत्ति के कारण, उनकी बचत करने की क्षमता बहुत ही कम होती है। परिणामत निवेश की दर कम रहती है जिससे पूँजी की न्यूनता और कम उत्पादकता होती है। कम उत्पादकता का मतलब है कम आय और दुश्चक्र पूरा हो जाता है। इस आर्थिक दुश्चक्र को केवल योजनाबद्ध विकास ही तोड़ सकता है। अल्पविकसित देशों के सामने दो मार्ग खुले हैं। एक मार्ग है विदेश से पूँजी आयात करके योजनाबद्ध विकास जिसे **न्वेग** "समर्थित औद्योगीकरण" (supported industrialization) कहता है, और दूसरा मार्ग है बलकृत बचतों का, जिसे वह "आत्मनिर्भर औद्योगीकरण" कहता है।

2 बेरोजगारी दूर करने के लिए (For removal of unemployment)—ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में विस्तृत बेकारी तथा अदृश्य बेकारी दूर करने की आवश्यकता के कारण आयोजन की जरूरत और प्रबल होती है क्योंकि इनमें पूँजी दुर्लभ होती है और श्रम की अधिकता रहती है इसलिए निरंतर बढ़ती हुई श्रम शक्ति को लाभदायक रोजगार के अवसर प्रदान करने की समस्या कठिन बनी रहती है। इस समस्या को केवल एक केन्द्रीकृत आयोजन प्राधिकरण ही सुलझा सकता है।

3 संतुलित आर्थिक विकास के लिए (For balanced economic development)—पर्याप्त उद्यम तथा उपक्रम के अभाव में, अर्थव्यवस्था के संतुलित विकास की योजना बनाने के लिए आयोजन प्राधिकरण ही एकमात्र संस्था हो सकती है। द्रुत आर्थिक विकास के लिए अल्पविकसित देशों को इस बात की आवश्यकता रहती है कि कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों का विकास हो, सामाजिक तथा आर्थिक उपरिसुविधाएँ स्थापित की जाएँ, घरेलू तथा विदेशी व्यापार-क्षेत्रों का सामंजस्यपूर्ण ढंग से विस्तार हो। इस सबके लिए विभिन्न क्षेत्रों में एक साथ ही निवेश आवश्यक है, जो केवल विकास आयोजन के अन्तर्गत ही संभव है। औद्योगिक क्षेत्र के साथ साथ कृषि क्षेत्र के विकास की आवश्यकता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि कृषि तथा उद्योग परस्पर निर्भर हैं। कृषि के पुनर्संगठन से अतिरेक श्रम-शक्ति मुक्त होती है जिसे औद्योगिक क्षेत्र खपा सकता है। औद्योगिक क्षेत्र की कच्चे माल की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए भी कृषि का विकास नितान्त आवश्यक है।

4 सामाजिक एवं आर्थिक उपरि-सुविधाओं का विकास (For the development of socio-economic overheads)—पर सामाजिक तथा आर्थिक उपरि-सुविधाओं के अभाव में कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र विकास नहीं कर सकते। कृषि तथा औद्योगिक विकास के लिए नहरों, सड़कों, रेलमार्गों तथा बिजली-घरों इत्यादि का निर्माण अनिवार्य है। और इसी प्रकार, प्रशिक्षित तथा कुशलताप्राप्त सेविवर्ग के नियमित प्रवाह के लिए प्रशिक्षण तथा शिक्षण संस्थाओं, लोक स्वास्थ्य तथा भवन निर्माण आदि का भी होना अनिवार्य है। परन्तु अल्पविकसित देशों में सामाजिक तथा आर्थिक उपरि-सुविधाओं की अलाभदायकता के कारण निजी उद्यम उनके विकास में रुचि नहीं रखता। वह सामाजिक लाभ की बजाय निजी लाभ से प्रेरित होता है। इसलिए योजनाबद्ध ढंग से सामाजिक तथा आर्थिक उपरि पूँजी का निर्माण करने का दायित्व राज्य पर आ पड़ता है।

5 वित्तीय संस्थाओं का विकास (For the development of financial institutions)—इसी

* ये पूंजीवादी आयोजन के पक्ष में तर्क भी हैं।

प्रकार, घरेलू तथा विदेशी व्यापार के विस्तार के लिए सामाजिक तथा आर्थिक उपरि-सुविधाओं के साथ-साथ कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों का विकास ही नहीं बल्कि वित्तीय संस्थाओं का होना भी आवश्यक है। अल्पविकसित देशों में, मुद्रा तथा पूँजी मार्केट अल्पविकसित होते हैं। ये साधन उद्योग तथा व्यापार की वृद्धि में बाधक होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय चक्रीय उतार-चढ़ाव द्वारा उत्पन्न आर्थिक अस्थिरता रहती है। इस अव्यवस्था को केवल राज्य ही दूर कर सकता है। वही इस बात का निर्णय कर सकता है कि एक केन्द्रीय बैंक की और उसकी सहायता से, समस्त देश में, बिल मार्केट, कमर्शियल बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं की स्थापना करे। अर्थव्यवस्था के श्रेष्ठतम हितों में आयोजन प्राधिकरण ही घरेलू तथा विदेशी व्यापार का नियंत्रण तथा नियमन कर सकता है। फिर, आयोजन प्राधिकरण ही एकमात्र ऐसी संस्था है जो अर्थव्यवस्था के भीतर आर्थिक स्थिरता बनाए रखने के लिए माँग तथा पूर्ति के बीच समायोजन ला सकती है।

6 **दरिद्रता दूर करना (For the removal of poverty)**—राष्ट्रों की दरिद्रता दूर करने हेतु विकास के लिए आयोजन करना अनिवार्य है। राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने के लिए आय तथा धन की असमानताएँ घटाने के लिए, रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए, सर्वतोन्मुखी विकास के लिए और नई-नई प्राप्त की हुई राष्ट्रीय स्वतंत्रता कायम रखने के लिए अल्पविकसित देशों के सामने केवल यही एक मार्ग खुला है कि वे आयोजन करें। इससे बड़ा कोई अन्य सत्य नहीं है कि आयोजन के विचार ने अल्पविकसित देशों में व्यावहारिक रूप धारण किया और विश्व के अल्पविकसित देशों की यही एकमात्र आशा है। अक्तूबर क्रान्ति के समय दरिद्र देश रूस का द्रुत आर्थिक विकास इस तथ्य का साक्षी है।

7 **तकनीकी विकास के लिए (For technical development)**—ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में तकनीकी ज्ञान एवं कार्यकुशलता की कमी पाई जाती है जिससे विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन लक्ष्य से कम होता है। तकनीकी पिछड़ेपन को दूर करने लिए प्रशिक्षण एवं शिक्षा में सुधार की आवश्यकता है जिससे कार्यकुशलता में वृद्धि से उत्पादन लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा आर्थिक आयोजन से ही संभव है।

8 **साधनों का उचित उपयोग (Proper utilization of resources)**—अल्पविकसित देशों द्वारा आर्थिक आयोजन अपनाने से साधनों का उचित उपयोग होगा। तकनीकी ज्ञान और पूँजी की कमी के कारण प्राकृतिक साधनों तथा मानवीय साधन के रूप में श्रम की कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। साधनों के उचित उपयोग के लिए निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों का इकट्ठा विकास किया जाना चाहिए। साधनों के सही उपयोग से आर्थिक विकास में तीव्रता आती है।

9 **उत्पादन समस्याओं का समाधान (Solution of production problems)**—उत्पादन संबंधी समस्याओं का समाधान आर्थिक आयोजन के अंतर्गत ही संभव है। अल्पविकसित देशों में बढ़ते हुए जनसंख्या दबाव के कारण उत्पादन लक्ष्यों को निश्चित करना आवश्यक हो जाता है। जनसाधारण की आवश्यकताओं की वस्तुओं का उत्पादन कैसे करना है और कितना करना है यह आयोजन के द्वारा ही संभव है। उत्पादन तकनीकों में सुधार, तथा उनके आयात करने, अपनाने एवं खपाने से देश में उत्पादकीय क्षमता में वृद्धि होती है जो आयोजन द्वारा ही संभव है।

10 **आर्थिक सुरक्षा (Economic security)**—आर्थिक आयोजन अपनाने से आर्थिक सुरक्षा बढ़ती है। आर्थिक सुरक्षा के अंतर्गत सरकारें शोषण के विरुद्ध कानून बनाना, बीमा योजना, भविष्य निधि योजना, पैंशन इत्यादि योजनाएं लागू करती हैं। इससे कार्यकुशलता के साथ साथ समाज कल्याण में भी वृद्धि होती है।

4. विकास आयोजन की समस्याएं
(PROBLEMS OF DEVELOPMENT PLANNING)

एक विकास योजना को प्रतिपादित तथा कार्यान्वित करने के मार्ग में अनेक समस्याएं आती हैं जिनका नीचे विश्लेषण किया जा रहा है।*

1 **अपर्याप्त सांख्यिकीय आंकड़े (Inadequate statistical data)**—विकास आयोजन की एक

* ये पूँजीवादी आयोजन के दोष भी हैं।

प्रमुख समस्या अर्थव्यवस्था के सभी पहलुओं से संबंधित सांख्यिकीय आँकड़ों की अपर्याप्तता एवं कमी है। अल्पविकसित देशों में ठीक ढंग से आंकड़े इकट्ठे नहीं हो पाते। लोग अशिक्षित होने के कारण सही जानकारी नहीं देते तथा आंकड़े इकट्ठे करने वाले भी सांख्यिकीय विधियों के बारे में बहुत कम ज्ञान रखते हैं। कम्प्यूटर और अन्य संबंधित मशीनों का भी अभाव होता है। इन कारणों से अनेक क्षेत्रों में जैसे जनसंख्या, निर्यात, आयात, पूँजी, श्रम, रोजगार, आगत निर्गत गुणांकों आदि के सही आकड़ों के अनुमान लगाने में गंभीर त्रुटियां होती हैं।

2 समष्टि-आर्थिक अनुमानों की समस्याएं (Problems of macroeconomic estimates)–प्रत्येक विकास योजना में कुल राष्ट्रीय उत्पाद या आय, कुल बचत तथा कुल निवेश के सबसे वांछनीय काल-पथ पर समष्टि-आर्थिक अनुमान लगाए जाते हैं। योजना के प्रतिपादन के समय, इनसे संबंधित आंकड़े एक आधार वर्ष के लिए ज्ञात होते हैं। परन्तु समस्या कुल बचत अथवा बचत अनुपात के इष्टतम स्तर को जानने की है। इष्टतम स्तर वह है जिसमें अधिक या कम बचत करना वांछनीय होता है। परन्तु बचत के ऐसे इष्टतम स्तर को पहुंचना संभव नहीं है।

3 माडलों के प्रयोग की सीमाएं (Limitations of the use of models)–विकास आयोजन से संबंधित एक अन्य समस्या अधिकतर टिनबर्गन प्रकार के मॉडलों के प्रयोग की है। ये मॉडल उद्देश्यों के एक निश्चित समूह को प्राप्त करने के लिए लक्ष्यों तथा उपकरणों के विशेष विवरणों की अपेक्षा रखते हैं। इन उद्देश्यों को किसी प्रकार के सूचक के अनुरूप बनाना पड़ता है तथा कम से कम उतने उपकरण होने चाहिए जितने स्वतंत्र लक्ष्य होते हैं। यह प्रक्रिया सहायक हो सकती है लेकिन भ्रम पैदा करने वाली भी हो सकती है, क्योंकि योजना वास्तव में तर्क में प्रयोग नहीं है, परन्तु समर्थन जुटाने के लिए एक राजनैतिक समर्थन है। लक्ष्य और उपकरण सुचारु रूप से अलग करने योग्य नहीं हैं जैसे कराधान, लगान विनिमय दरें। आयोजन की प्रक्रिया में लक्ष्य और उपकरण परिवर्तित होते हैं।

4 स्थिर कीमतें (Constant prices)–एक विकास योजना इस मान्यता पर आधारित होती है कि योजना अवधि में कीमतें स्थिर रहती हैं। ऐसी स्थिति में, अनुमानों के गलत होने की संभावना हो जाती है, क्योंकि विकास आयोजन में कीमतों में परिवर्तन होने अनिवार्य होते है। कीमतों में परिवर्तन आन्तरिक कारकों तथा निर्यातों में वृद्धि एवं/अथवा आयात कीमतों में वृद्धि से संबंधित हो सकते हैं। फिर, कीमत निर्धारण योजना के भौतिक अथवा वित्तीय परिव्ययों के साथ जुड़ा नहीं होता, जो भौतिक अथवा वित्तीय लक्ष्यों की गणना तथा उनकी उपलब्धियाँ अवास्तविक बना देता है।

5 निजी क्षेत्र योजना पर कोई नियंत्रण नहीं (No control over private sector plan)–एक विकास योजना सार्वजनिक एवं निजी दोनों क्षेत्रों के लिए आवंटन की स्कीमों का प्रबंध करती है। क्योंकि सरकार निजी क्षेत्र पर पूरा नियंत्रण नहीं करती, इसलिए निजी क्षेत्र से संबंधित योजना भौतिक लक्ष्यों तथा वित्तीय आवंटनों के अनुसार कभी भी कार्यान्वित नहीं होती है। इसका कारण यह होता है कि सरकारी तंत्र और निजी क्षेत्र के बीच इस संबंध में कोई विशेष सम्पर्क नहीं होता है। मुख्य समस्या सरकार द्वारा केन्द्रित निर्णयकरण तथा निजी क्षेत्र द्वारा विकेन्द्रित कार्यान्वन में विरोध की है। निजी स्तर पर निर्णयकरण अक्सर असंगत होता है क्योंकि यह योजना के उद्देश्यों अथवा लक्ष्यों के विरुद्ध होता है। दूसरी ओर, केन्द्रित निर्णयकरण भी अदक्ष होता है। ये दोनों भिन्न कारक विकास योजना को कार्यान्वित करने में समस्याएं उत्पन्न करते हैं। अतः एक विकास योजना में निजी क्षेत्र एक सबसे कमजोर कड़ी है।

6 स्थिर पूंजी-उत्पादन अनुपात (Constant capital output ratio)–एक विकास योजना स्थिर पूंजी उत्पादन अनुपात को मानकर चलती है। पूंजी उत्पादन अनुपात एक महत्वपूर्ण तत्व है जिस पर योजना के प्रक्षेपण (projections) आधारित होते हैं। यह अनुपात बताता है कि पूँजी स्टॉक में प्रत्येक वृद्धि से राष्ट्रीय उत्पाद में आनुपातिक वृद्धि होती है। एक अल्पविकसित देश में पूँजी उत्पादन अनुपात अर्थपूर्ण ढंग से मापने योग्य नहीं होता है। विकास आयोजन की प्रारंभिक अवस्था में यह अधिक ही होता है और उसके पश्चात कम होना प्रारंभ कर देता है। वास्तव में यह अनेक कारकों पर निर्भर करता है जैसे संसाधनों की उपलब्धता, नियोजित पूँजी की मात्रा, तकनीकी उन्नति, निवेश की दर, आदि। उदाहरणार्थ, एक देश जो विदेशी पूँजी की बहुत अधिक मात्रा प्रयोग करता है, उसमें पूँजी उत्पादन अनुपात माने गये

अनुपात से अधिक होगा। अथवा, यदि देश दीर्घ अवधि की पूँजी-प्रधान परियोजनाओं के विकास की योजनाएं चालू करता है तो योजना में लिए गए अनुपात से वास्तविक पूंजी-उत्पादन अनुपात अधिक होगा।

7 साधन आगतों और निर्गतों में स्थिर संबंध (Fixed relationship between factor inputs and outputs)—विकास मॉडलों की एक मुख्य समस्या यह है कि वे साधन आगतों और निर्गतों में स्थिर संबंध मानते हैं। वास्तव में उनके संबंध एक विस्तृत क्षेत्र के बीच घट (variable) होते हैं। अल्पविकसित देशों में आगतें दुर्लभ होती हैं। इसलिए निर्गतें ऐसी आगतों के साथ अनम्य (rigid) तौर से संबंधित नहीं होती हैं। निर्गतों को प्रभावित करने वाले अन्य महत्वपूर्ण कारक भी होते हैं।

8 योजना नीतियों और वार्षिक बजटों में समन्वय न होना (No coordination between plan policies and annual budgets)—प्रत्येक योजना में वित्तीय संसाधनों का प्रावधान वार्षिक बजटों में किया जाता है। परन्तु अल्पविकसित देशों में संस्थानिक कठोरताओं एवं दुर्लभताओं के कारण योजना नीतिओं और वार्षिक बजटों में समन्वय का अभाव पाया जाता है। परिणामस्वरूप, योजना को बजट न तो प्रतिविम्बित और न ही कार्यान्वित करता है। यह विकास आयोजन की गंभीर समस्या है।

9 संतुलन कायम करने की समस्या (*Problem of maintaining balances*)—विकास आयोजन की अन्य समस्या अर्थव्यवस्था के विभिन्न खण्डों में संतुलन कायम करने की है। संरचनात्मक कठिनाइयों के कारण अल्पविकसित देश में आन्तरिक सुसंगति (consistency) प्राप्त करना संभव नहीं होता है। हो सकता है कि देश योजना के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक स्थिति तक न पहुँच सके। इसका मुख्य कारण अर्थव्यवस्था मे वस्तुओ और सेवाओ की माँग एव पूर्तियो में समग्र सतुलन न हो सकना है। उदाहरणार्थ, अप्रत्याशित रूप से फसलों के खराब हो जाने से कृषि वस्तुओं की पूर्ति में कमी हो जाए अथवा बिजली की पूर्ति मे कमी होने से औद्योगिक उत्पादन का कम होना। इनका कुप्रभाव अर्थव्यवस्था के विभिन्न खण्डों पर पडेगा। इस प्रकार, विकास आयोजन मे अर्थव्यवस्था के विभिन्न खण्डों मे सतुलन कायम करने की समस्या पाई जाती है।

10 अनिश्चितताओं का होना (Existence of uncertainties)—एक विकास योजना को अनेक अनिश्चिताओं का सामना करना पड़ता है जो योजना के सही कार्यान्वन में बाधाएं उत्पन्न करती हैं। एक अल्पविकसित देश को विदेशी विनिमय अथवा भुगतान शेष संकट, अतिरिक्त औद्योगिक क्षमता, अविश्वसनीय आकड़े, स्फीतिकारी दबाव, आदि की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जो योजना के कार्यान्वन में अनिश्चितताएं उत्पन्न करती है।

5. योजना निर्माण तथा सफल आयोजन की पूर्वाकाक्षाएँ
(PRE-REQUISITES FOR PLAN FORMULATION AND SUCCESSFUL PLANNING)

योजना के निर्माण तथा सफलतापूर्ण कार्यकरण के लिए कुछ शर्तों अथवा पूर्वाकाक्षाओं का पूरा किया जाना आवश्यक है। वे ये है

1 योजना आयोग (Planning Commission)—योजना की सर्वप्रथम पूर्वाकाक्षा म एक योजना आयोग का होना आवश्यक है जिसे उचित ढग मे सगठित करना चाहिए। इसके प्रत्यक कार्य को पृथक पृथक विभागो तथा अधिकारियों में बाँटा जाना चाहिए। इसमे अर्थशास्त्रीय एव सांख्यिकीय विशेषज्ञ, तकनीकी एवं प्रशासनिक कार्यों के विशेषज्ञ शामिल होने चाहिए। इसके अतिरिक्त विकास स[illegible]न्धी नीतियो जैस वित्तीय, राजकोषीय, विदेशी व्यापार आदि का विशेष ज्ञान रखने वाले विशेषज्ञ तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे जैसे कृषि, उद्योग, यातायात, सचार, श्रम, सिचाई विद्युत आदि का व्यावहारिक ज्ञान रखने वाले व्यक्ति होने भी आवश्यक है। वास्तव मे योजना की सफलता योजना आयोग में दक्ष सविवर्ग पर निर्भर करती है।

2 योजना-अवधि (Plan-period)—अर्थव्यवस्था का सुचारु रूप से चलाने के लिए योजना आयोग की स्थापना की जाती है जिसका कार्य योजना का प्रारूप तैयार करते हुए योजना-अवधि को भी निर्धारित

करना है। अर्थव्यवस्था में उपलब्ध साधनों और स्रोतों को ध्यान में रखकर योजना-अवधि निर्धारित की जाती है।

3 निरन्तर तथा स्थायी आयोजन (Continuous and permanent planning)—आयोजन की सफलता के लिये योजना आयोग को देश के आर्थिक विकास के लिए निरन्तर योजनाएँ लागू करनी चाहिए। सर्वप्रथम दीर्घकालीन योजनाएँ लागू की जाती है, जिनको सफलतापूर्वक चलाने के लिए अल्पकालीन योजनाओं में लागू किया जाता है। जैसेकि दीर्घकालीन योजनावधि—10, 15 अथवा 20 वर्ष तक हो सकती है जिसे आगे अल्पकालीन योजनावधि—1, 3, 5 अथवा 7 वर्ष में बाँटा जा सकता है। इस प्रकार दीर्घकालीन लक्ष्यों को विभिन्न अवधियों में पूरा किया जाता है।

4 लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण (Fixation of targets and priorities)—अगला सोपान योजना में नियत उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण है। लक्ष्य साहसपूर्ण तथा अर्थव्यवस्था के प्रत्येक पक्ष को समाविष्ट करने वाले हों। उनमें ये सम्मिलित होते हैं मात्रात्मक (quantitative) उत्पादन लक्ष्य, खाद्यान्नों, कोयला, इस्पात, खाद आदि के इतने मिलियन टन और अधिक विद्युतशक्ति क्षमता के इतने किलोवाट रेलमार्गों तथा सड़कों के इतने मीटर, इतनी अतिरिक्त प्रशिक्षण संस्थाएँ, राष्ट्रीय आय की इतनी वृद्धि, इत्यादि। ऐसे लक्ष्य केवल सरकारी संस्थाओं के लिए ही नहीं बल्कि, कम से कम, अधिक बड़ी निजी फर्मों के लिए भी निर्धारित किए जाएँ, ताकि यह देखा जा सके कि थोड़ी पूर्ति का माल उसी उद्देश्य के लिए प्रयोग होता है, जिसके लिए कि वह है। अर्थव्यवस्था की एक निश्चित वृद्धि-दर प्राप्त करने के उद्देश्य से उन्हें परस्पर-संगत होना चाहिए। इसके लिए प्राथमिकताएँ निर्धारित करना आवश्यक हो जाता है। उपलब्ध भौतिक पूँजी तथा मानवीय साधनों को ध्यान में रखते हुए अर्थव्यवस्था की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन आवश्यकताओं के आधार पर प्राथमिकताएँ निश्चित की जाएँ। जिन स्कीमों अथवा परियोजनाओं को पहले पूरा करना आवश्यक हो, उन्हें अधिकतम प्राथमिकता दी जाए जबकि कम महत्वपूर्ण स्कीमों अथवा प्रोग्रामों को कम प्राथमिकता दी जाए। प्राथमिकताओं की स्कीम कठोर नहीं होनी चाहिए बल्कि देश की आवश्यकताओं के अनुसार बदली जा सके।

5 लचीलापन (Flexibility)—आयोजन की सफलता के लिए आवश्यक है कि योजनाओं के लक्ष्य अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों के अनुसार निर्धारित किए जाएँ। उदाहरणार्थ, वार्षिक योजनाएं पंचवर्षीय योजना को लागू करने के लिए देश के वित्तीय संसाधनों को ध्यान में रखकर बनाई जाती है। ऐसी योजनाओं में लचीलापन अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए उद्देश्यों एवं लक्ष्यों में परिवर्तन संभव होता है।

6 सांख्यिकीय आँकड़े (Statistical data)—उत्कृष्ट आयोजन की एक पूर्वाकांक्षा यह है कि देश के वर्तमान तथा संभाव्य साधनों का पूर्ण सर्वेक्षण हो। देश के कुल उपलब्ध भौतिक, पूँजी तथा मानवीय साधनों के सम्बन्ध में सांख्यिकीय आँकड़ों तथा सूचना के संग्रह के लिए इस प्रकार का सर्वेक्षण नितान्त आवश्यक है। उपलब्ध तथा संभाव्य प्राकृतिक साधनों तथा उनके शोषण की कोटि, कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन, परिवहन, तकनीकी तथा अतकनीकी सेविवर्ग इत्यादि से सम्बन्धित आँकड़े आयोजन में निश्चित लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं के लिए आवश्यक हैं। इसके लिए योजना के व्यवस्थापन हेतु सांख्यिकी आँकड़े तथा सूचना इकट्ठी करने के लिए सांख्यिकी कार्यालयों के जाल से युक्त एक केन्द्रीय सांख्यिकीय संस्था बनाई जाए।

7 समन्वित आयोजन (Integrated planning)—योजना के उद्देश्य उपलब्ध साधनों के सर्वेक्षण पर आधारित होते है। इसके लिए योजना आयोग सर्वेक्षण एवं अनुसंधान, विशेषज्ञों द्वारा योजना का प्रारूप तैयार करना और संसद द्वारा इसे पास करना इत्यादि। उदाहरणार्थ यदि देश में एक योजना पहले कार्यान्वित हो चुकी है, दूसरी योजना यह पुनर्निरीक्षण करती है कि राष्ट्रीय आय, निवेश, बचत, उपभोग तथा जनसंख्या में क्या परिवर्तन हुए हैं और पूर्ववर्ती योजना में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की क्या प्रगति रही है। समय समय पर योजना के मूल्यांकन और यहाँ तक कि योजना-अवधि के दौरान वार्षिक आर्थिक सर्वेक्षण का प्रकाशन भी अगली योजना के लिए अर्थव्यवस्था की प्रगति का चित्र प्रस्तुत करने में सहायक हो सकते है।

8 पर्याप्त वित्तीय संसाधन (Sufficient financial resources)—योजनाओं को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन जुटाना आवश्यक हैं। संसाधन जुटाने का संबंध योजना के वित्त-प्रबंधन के लिए निधियों को संग्रह करने की स्कीमों से है। यदि पर्याप्त निधियाँ उपलब्ध न हों तो भौतिक लक्ष्य पूरे करना संभव नहीं। अल्पविकसित देशों में योजनाओं के लिए संसाधन जुटाने के लिए बचतों को बढ़ावा देना, कराधान तथा विदेशी सहायता का सहारा लिया जाता है।

9 उचित संतुलन कायम रखना (Maintaining proper balances)—योजना के सफलतापूर्ण कार्यकरण के लिये आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में उचित सन्तुलन विद्यमान हों ताकि एकपक्षीय विकास तथा अड़चनों से बचा जाए। उपभोग तथा उत्पादन वस्तु क्षेत्र के बीच, निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के बीच, आन्तरिक वित्त तथा विदेशी मुद्रा के बीच, और उत्पादन की पूँजी तथा श्रम-गहन तकनीकों के बीच सन्तुलन हो। इन सन्तुलनों को कायम रखने के लिए राज्य को चाहिए कि कुछ आवश्यक कदम उठाए। वह कृषि का पुन संगठन करे। वह भूमि सुधारों का प्रवर्तन, सहकारियों का संगठन और घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहित करे। सरकार को चाहिए कि पर्याप्त सामाजिक तथा आर्थिक उपरि-सुविधाओं तथा आधारभूत एवं प्रमुख उद्योग स्थापित करे। विदेशी मुद्रा की कठिनाइयों को पार करने के उद्देश्य से सरकार को घरेलू तथा विदेशी व्यापार का नियमन तथा नियंत्रण करना चाहिए।

10 समुचित विकास नीति (Proper development policy)—राज्य को चाहिए कि विकास योजना की सफलता के लिए और विकास-प्रक्रिया में उत्पन्न होने वाली अप्रत्याशित बाधाओं से बचने के लिए समुचित विकास नीति निर्धारित करे। प्रो **लुइस** ने इस प्रकार की विकास नीति के प्रमुख तत्व ये बताए हैं (i) विकास संभाव्यता की जाँच पड़ताल, राष्ट्रीय साधनों का सर्वेक्षण, वैज्ञानिक अनुसंधान, मार्केट अनुसंधान। (ii) सार्वजनिक अथवा निजी ऐजेन्सियों के माध्यम से समुचित आधारिक संरचना की (जल, बिजली, परिवहन तथा संचार की) व्यवस्था। (iii) विशिष्टीकृत प्रशिक्षण सुविधाओं की व्यवस्था करना जैसे कि उपयुक्त सामान्य शिक्षा की, जिसके परिणामस्वरूप आवश्यक कुशलताएँ सुनिश्चित हो जाएँ। (iv) आर्थिक क्रिया के कानूनी ढाँचे में, विशिष्ट रूप से भूमि-पट्टों, निगमों तथा वाणिज्यिक लेन देन से सम्बन्धित नियमों में सुधार करना। (v) और अधिक तथा श्रेष्ठतर मार्केटों का।

11 अभ्रष्ट तथा दक्ष प्रशासन (Incorrupt and efficient administration)—सफल आयोजन के लिए एक सशक्त, दक्ष तथा अभ्रष्ट प्रशासन अनिवार्य है। परन्तु अल्पविकसित देश में इसी का तो सबसे अधिक अभाव होता है। प्रो लुइस योजना की सफलता के लिए पहली शर्त ही मजबूत, समर्थ तथा निष्कलंक प्रशासन को मानते हैं। अल्पविकसित देशों में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल को चाहिए कि तकनीकी परामर्शदाताओं से भली प्रकार जाँच करवाए, बिना महत्वपूर्ण आर्थिक निर्णय न करे। विविध मन्त्रालयों में योग्य प्रशासकीय स्टॉफ नियुक्त किया जाए, जो प्रस्तावित परियोजनाओं को प्रारम्भ करने से पहले उनके सम्बन्ध में पहले अच्छी संभाव्यता रिपोर्ट तैयार करे। वह परियोजना के आयोजन तथा शुरू करने में अनुभव प्राप्त करे, इस अनुसूची के अनुसार चलाए, अप्रत्याशित कमियाँ उत्पन्न होने पर उनमें सुधार करे और समय-समय पर इसका मूल्यांकन करे। ऐसी प्रशासनीय मशीनरी के न होने पर, विकास आयोजन को अल्पविकसित देश में **प्रवेशाधिकार** (locus standi) नहीं है। लुइस ने अत्यन्त स्पष्टतापूर्वक लिखा है "ऐसे प्रशासन के अभाव में यह बेहतर है कि सरकारें योजना का बहाना करने की बजाय अबंध नीति अपनाएँ।" रूस में विकास आयोजन की अद्भुत सफलता का श्रेय "साम्यवादी दल के अत्यन्त प्रशिक्षित अनुशासित ईमानदार वर्ग" को दिया जा सकता है। एक और स्थान पर प्रो लुइस लिखते हैं, "योजना बनाने में तकनीक नीति का सहायक अंग होती है। इसलिए, यद्यपि आधारभूत तकनीकें काम में लाई जाती हैं, फिर भी नीति पर निरन्तर बल रहता है। विकास का अर्थशास्त्र बहुत जटिल नहीं है, सफलतापूर्ण आयोजन का रहस्य सुदृढ़ राजनीति तथा श्रेष्ठ लोक-प्रशासन में अधिक निहित है।"

12 शिक्षणात्मक आधार (An educational base)—स्वच्छ तथा दक्ष प्रशासन के लिए दृढ़ शिक्षणात्मक आधार नितान्त आवश्यक है। सफलता के लिए आयोजन को लोगों के नैतिक तथा सदाचार विषयक स्तरों का ध्यान रखना पड़ेगा। हम तब तक प्रशासन में मितव्ययिता तथा दक्षता की आशा नहीं कर सकते, जब तक कि लोगों के नैतिक तथा सदाचार सम्बन्धी मूल्य ऊँचे न हों। यह तब तक सम्भव

नहीं हो सकता, जब तक कि सशक्त शिक्षणात्मक आधार का निर्माण न हो, जिससे शैक्षणिक तथा तकनीकी दोनों क्षेत्रों में शिक्षा दी जा सके। प्रो **श्रीमन्न नारायण** की धारणा है कि "देश में ईमानदार तथा दक्ष मनुष्यों की सृष्टि किए बिना बड़े पैमाने पर आर्थिक आयोजन शुरू करना सम्भव नहीं होगा।"

13 सार्वजनिक सहयोग (Public co-operation) – सबसे बढ़कर, प्रजातन्त्रमूलक देश में योजना की सफलता के लिए सार्वजनिक सहयोग को एक महत्वपूर्ण साधन समझा जाता है। आयोजन के लिए लोगों के अपरिमित सहयोग की आवश्यकता होती है। आर्थिक आयोजन दलीय राजनीति से ऊपर होना चाहिए, परन्तु साथ ही इसे सब दलों का समर्थन भी प्राप्त हो। दूसरे शब्दों में, जब लोगों के प्रतिनिधि योजना को अनुमोदन प्रदान कर दें, तो उसे राष्ट्रीय योजना समझा जाए क्योंकि सार्वजनिक सहयोग के बिना कोई भी योजना सफल नहीं हो सकती। जैसाकि प्रो लुइस का कथन है "सार्वजनिक उत्साह आयोजन का चिकनाने वाला तेल और आर्थिक विकास का पट्रोल – दोनों ही है – अर्थात एक गत्यात्मक शक्ति है, जो सब कुछ संभव बनाती है।"

प्रश्न

1 आर्थिक आयोजन की परिभाषा कीजिए। इसके कौन कौन से उद्देश्य होते है? अल्पविकसित देशों के संदर्भ में इसकी आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
2 आर्थिक आयोजन किसे कहते है? इसके मार्ग में क्या कठिनाइयां आती है? व्याख्या करिए।
3 योजना निर्माण तथा सफल आयोजन के लिए किन बातों का होना आवश्यक है? विवेचना कीजिए।
4 आर्थिक आयोजन को परिभाषित कीजिए तथा प्रभावी आर्थिक आयोजन की विभिन्न पूर्वाकांक्षाओं की व्याख्या कीजिए।

परिशिष्ट

मांग पूर्वानुमान
(Demand Forecasting)

1 अर्थ
(MEANING)

माग पूर्वानुमान समाधनों के आवटन सम्बन्धी निर्णय-निर्माण और अग्रिम आयोजन के लिए अति आवश्यक है। व्यवसाय जगत् जोखिमों और अनिश्चितताओं से भरा होता है। पूर्वानुमान का उद्देश्य प्रबंधन के सामने फैली लागत, बिक्री, लाभ, कीमत निर्धारण और पूजी निवेश से सबधित अनिश्चितताओं को कम करना, उचित समय पर आवश्यक मात्रा उत्पादित करने के योग्य बनाना और पूर्व में ही उत्पादन के विभिन्न साधनो को भली-भाति व्यवस्थित करना है। पूर्वानुमान प्रबंधन को वस्तुओं की संभावित माग निर्धारित करने और उसके अनुसार उत्पादन की योजना बनाने में मदद करता है। माग का ठीक-ठीक पूर्वानुमान करने से अल्प-उत्पादन और अति-उत्पादन की समस्या नहीं रहती है और इनसे होने वाली हानियों से फर्म बच जाती है। इस प्रकार, व्यवसाय की सफलता फर्म द्वारा ठीक ढग से माग का पूर्वानुमान करने की उसकी योग्यता पर निर्भर करती है।

पूर्वानुमान से अभिप्राय भविष्य की दशाओं को एक क्रमबद्ध आधार पर निर्धारित करना है। अत माग की भविष्यकालीन दशा का वस्तुगत मूल्याकन करना ही माग पूर्वानुमान है।

कोटलर (Kotler) ने कहा है, "कपनी का पूर्वानुमान चुनी हुई विपणन योजना और माने हुए विपणन सबधी वातावरण पर आधारित कपनी के विक्रय का प्रत्याशित स्तर होता है।"[1]

कण्डिफ एव स्टिल (Cundiff and Still) के अनुसार, "विक्रय पूर्वानुमान किसी विशिष्ट अवधि के दौरान विक्रय का एक अनुमान होता है जो प्रस्तावित विपणन योजना से सम्बद्ध होता है और जो अनियत्रित एव प्रतियोगी शक्तियों का एक विशेष समूह मानकर चलता है।"[2]

उपर्युक्त परिभाषाओं से माग पूर्वानुमान में निहित निम्न बातें स्पष्ट होती हैं।

1 माग पूर्वानुमान भविष्यकालीन विक्रय का अनुमान है।

2 यह अग्रिम आयोजन का आधार है।

3 इसका सबध एक निश्चित अवधि से होता है।

4 पूर्वानुमान मुद्रा के रूप में या वस्तु की इकाई के रूप में होता है।

---

1 The company forecast is the expected level of company sales based on a chosen mar' ting plan and assumed marketing environment"

—Philip Kotler

2 Sales forecasting is an estimate of sales during a specified period which estimate is tied to a proposed marketing plan and which assumes a particular set of uncontrollable and competitive forces"

—Cundiff and Still

5 यह विपणन (marketing) सबधी योजना और आर्थिक एव अन्य तत्त्वो पर निर्भर करता है।

6 इसका आधार भूतकालीन आकडे एव परिस्थितिया होती हैं।

इस प्रकार, पूर्वानुमान दी हुई दशाओ के अन्तर्गत भविष्यकालीन स्थिति का एक अनुमान है। पूर्वानुमान जितना अधिक वास्तविक होगा, उतना ही अधिक प्रभावशाली निर्णय लिया जा सकेगा। फिर भी, सभी फर्में अपनी बिक्री का सही-सही पूर्वानुमान नहीं लगा पाती हैं।

2 माग पूर्वानुमान के उद्देश्य[1]
(OBJECTIVES OF DEMAND FORECASTING)

माग पूर्वानुमान का उद्देश्य उसके प्रकारो के साथ परिवर्तित होता है। अत इसका विश्लेषण दो स्तरो पर किया जाता है—अल्पकालीन एव दीर्घकालीन।

1. अल्पकालीन माग पूर्वानुमान के उद्देश्य (Objectives of Short-run Demand Forecasting)

अल्पकालीन पूर्वानुमान सामान्यत एक वर्ष की अवधि तक का होता है, जिसमें मौसमी ढाचे (seasonal patterns) अति महत्त्वपूर्ण होते हैं। साथ ही इसका सबध फर्म की वर्तमान उत्पादन क्षमता से भी होता है। अल्पकालीन माग पूर्वानुमान के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं

1 *उपयुक्त उत्पादन निर्धारित करना* (Determining Appropriate Production)—अति उत्पादन और अल्प उत्पादन योजना की समस्या से निपटने के लिए एक समुचित उत्पादन योजना की आवश्यकता होती है अर्थात् उत्पादन तालिकाए प्रत्याशित बिक्री के अनुरूप बनायी जाए जो पूर्वानुमान माग के अन्तर्गत ही सभव है।

2 *लागतों मे कमी और मालसूची नियत्रण* (Cost Reduction and Inventory Control)—इससे कच्चे माल की बडी मात्रा मे खरीद हो सकेगी जिससे लागत में कमी आयेगी। साथ ही इस अनुमान के आधार पर फर्म की भविष्यकालीन ससाधन आवश्यकताओ को निर्धारित कर माल सूची को नियत्रित किया जा सकता है जिससे भी लागतो में कमी आएगी।

3 *उपयुक्त कीमत नीति* (Appropriate Price Policy)—बाजार माग दशाओ के अनुरूप एक समुचित कीमत नीति तैयार करना अल्पकालीन पूर्वानुमान का प्रमुख उद्देश्य है। अर्थात् जब बाजार दशाओं का कमजोर होना प्रत्याशित हो तो कीमतो में वृद्धि को टाल दिया जाय। दूसरी ओर, जब बाजार के मजबूत होने की प्रत्याशा हो तो कीमतों मे कमी नहीं की जाय।

4 *विज्ञापन और विक्रय प्रोत्साहन* (Advertising and Sales Promotion)—विक्रय प्रोत्साहन सबधी विभिन्न सार्थक प्रयास करना और विज्ञापन एव विक्रय तकनीको मे आवश्यक सुधार के विषय में निर्णय करना भी माग पूर्वानुमान का उद्देश्य होता है।

5 *विक्रय लक्ष्य निर्धारण* (Determining Sales Targets)—यह उपयुक्त नीति के निर्माण में सहायक होता है। बेचने वालों के लिए उपयुक्त विक्रय-लक्ष्य का निर्धारण करने और नियत्रणो को लागू करने एव समुचित प्रेरक (incentive) योजनाओं के निर्माण मे भी यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

6 *अल्पकालीन पूजी आवश्यकताओ का पूर्वानुमान* (Forecasting Short-term Capital

1 इस खड का सबध माग पूर्वानुमान की आवश्यकता से भी है।

Requirements)—चूकि नकदी की आवश्यकता विक्री स्तर और उत्पादन क्रियाओ पर निर्भर करती है, इसलिए माग या विक्रय पूर्वानुमान फर्म को पहले से ही युक्तिसगत शर्तों पर पर्याप्त कोषो की व्यवस्था करने मे सक्षम बनाता है।

इस प्रकार एक उपयुक्त बजट के निर्माण मे अल्पकालीन पूर्वानुमान का अत्यधिक महत्त्व है।

2 दीर्घकालीन माग पूर्वानुमान के उद्देश्य (Objectives of Long-Run Demand Forecasting)

दीर्घकालीन पूर्वानुमान सामान्यत पाच से बारह वर्ष की अवधि से सबधित होता है। फर्म दीर्घकालीन पूर्वानुमान के अन्तर्गत आश्रित चरो (dependent variables) को प्रभावित करने वाले स्वतत्र चरो की लोच के साथ-साथ स्वतत्र चरो मे परिवर्तन का भी पूर्वानुमान करती है। यदि माग की प्रवृत्तियों (trends) मे स्थिरता की झलक हो तो दीर्घकालीन पूर्वानुमान करना आसान होता है। अन्यथा यह बहुत कठिन होता है क्योंकि प्राकृतिक आपदाए, युद्ध, आर्थिक उतार-चढाव और सामाजिक, राजनीतिक एव मनोवैज्ञानिक घटके दीर्घकाल को अत्यधिक अनिश्चित बना देती हैं। दीर्घकालीन माग पूर्वानुमान के उद्देश्य निम्न हैं।

1 *प्रचालनों के पैमाने का आयोजन* (Planning for Scale of Operations)—वर्तमान उत्पादन इकाई का विस्तार या नई इकाइयो अथवा प्लाटो की स्थापना का आयोजन दीर्घकालीन पूर्वानुमान का मुख्य उद्देश्य है। इसके लिए विचाराधीन वस्तुओ की दीर्घकालीन सभावित माग का विश्लेषण आवश्यक होता है। फर्म के पास समस्त माग की वृद्धि प्रवृत्तियों और विविध वस्तुओं पर माग के वितरण का ज्ञान जितना अधिक होगा, उसकी प्रतियोगी क्षमता उतनी ही अधिक होगी।

2 *लाभदायक निवेश* (Profitable Investments)—फर्म अपना दीर्घकालीन पूर्वानुमान करते समय इस बात का भी ध्यान रखती है कि नए निवेशो का जोखिम उठाने से पहले लाभदायक निवेशो वाले कार्यक्षेत्रो का पता लगा लिया जाय।

3 *दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं का आयोजन* (Planning for Long-run financial Requirements)—पूजी मे वृद्धि के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता होती है। अतः दीर्घकालीन विक्री पूर्वानुमान दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं के निर्धारण मे अति महत्त्वपूर्ण होता है। इस प्रकार, दीर्घकालीन पूर्वानुमान उपयुक्त पूजी आयोजन मे सहायक होता है।

4 *मानव-शक्ति आवश्यकताओं का आयोजन* (Planning for Man-power Requirements)—दीर्घकालीन पूर्वानुमान का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य मानव-शक्ति आयोजन के लिए प्रशिक्षण और व्यक्तिगत विकास करना एव फर्म के विभिन्न विभागों मे समन्वय स्थापित करना है। चूकि ये सभी दीर्घकालीन प्रक्रियाए हैं, इसलिए ये दीर्घकालीन माग पूर्वानुमान के आधार पर निर्धारित मानव-शक्ति आवश्यकताओ के अनुमानों के अनुसार ही काफी पहले से प्रारभ किए जा सकते हैं।

इस प्रकार दीर्घकालीन पूर्वानुमान माल, मानवीय घटे, मशीनी समय और क्षमता की बर्बादी रोकने मे सहायक है। साथ ही, दीर्घकालीन पूर्वानुमान करते समय चरो मे परिवर्तन, जैसे उपभोग ढाचा, आयु-वर्ग ढाचा, जनसख्या आदि में परिवर्तन को भी ध्यान में रखा जाता है। इसके अतिरिक्त, किसी विशेष वस्तु का माग पूर्वानुमान सबधित उद्योग के माग पूर्वानुमान मे भी सहायक होता है।

3 माग पूर्वानुमान के प्रकार
(TYPES OF DEMAND FORECASTING)

माग पूर्वानुमान को हम निम्न प्रकारो के बीच बाट सकते हैं जिसका विकास व्यावसायिक फर्मों की आयोजन आवश्यकताओ के कारण हुआ है।

1 *व्यष्टि और समष्टि पूर्वानुमान* (Micro and Macro Forecasting)—माग पूर्वानुमान व्यष्टि और समष्टि दोनो स्तरो पर होता है, अर्थात् यह फर्म, उद्योग या अर्थव्यवस्था स्तर पर हो सकता है। फर्म स्तर पर माग पूर्वानुमान प्रबन्धकीय दृष्टिकोण से अति महत्त्वपूर्ण होता है जबकि उद्योग स्तर पर पूर्वानुमान विभिन्न व्यापार सगठनो द्वारा किए जाते है। चूकि अधिकाश वस्तुओ और सेवाओ की माग व्यावसायिक दशाओ से अत्यधिक प्रभावित होती है, इसीलिए फर्म की वस्तु का माग पूर्वानुमान सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए आर्थिक क्रिया के सामान्य स्तर के पूर्वानुमान से प्रारभ होता है।

2 *प्रतिबधित और अप्रतिबधित पूर्वानुमान* (Conditional and Unconditional Forecasting)—प्रतिबधित पूर्वानुमान के अन्तर्गत माग पर कीमत, रुचिया, फेशन जैसे स्वतत्र चरो मे जाने-पहचाने या कल्पित परिवर्तनो के सभावित प्रभाव का अनुमान किया जाता है। जबकि अप्रतिबधित पूर्वानुमान के अन्तर्गत स्वय चरो मे परिवर्तन का ही अनुमान किया जाता है। इसमे प्रतिबधित पूर्वानुमान के सभी जोखिम विद्यमान रहते हैं।

3 *सक्रिय और निष्क्रिय पूर्वानुमान* (Active and Passive Forecasting)—जब माग पूर्वानुमान के अन्तर्गत नियोजित कार्यवाही और कूटनीति तैयार किए जाते हैं तो यह सक्रिय पूर्वानुमान कहलाता है। अर्थात् यदि फर्म वस्तु को गुणवत्ता, प्रोत्साहन, प्रयास, कीमत मे परिवर्तन आदि के द्वारा पूर्वानुमान माग प्राप्त करने का प्रयास करती है तो यह सक्रिय पूर्वानुमान का सूचक होता है। दूसरी ओर, यदि फर्म आने वाले वर्ष के लिए पूर्वानुमानित माग प्राप्त करने के लिए गत वर्षो की माग का सहारा लेती है तो यह निष्क्रिय पूर्वानुमान का उदाहरण होगा।

4 *अल्पकालीन और दीर्घकालीन पूर्वानुमान* (Short-run and Long-run Forecasting)—माग पूर्वानुमान करते समय एक महत्त्वपूर्ण विचारणीय विषय यह होता है कि किसी विशेष वस्तु के लिए किस अवधि का माग पूर्वानुमान किया जाय। इस आधार पर इसे दो भागो म बाटा जा सकता है—अल्पकालीन और दीर्घकालीन। फिर भी, अवधि का अन्तराल एक वस्तु से दूसरी वस्तु को परिवर्तित होता है।

अल्पकालीन माग पूर्वानुमान सामान्यत एक महीना, तीन महीने, छ महीने या अगले एक वर्ष तक की अवधि का हो सकता है। इसके लिए कौन-सी अवधि चुनी जाएगी, वह वस्तु या व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करेगी, अर्थात् यदि उस वस्तु की माग एक महीने से दूसरे महीने को परिवर्तित हो जाती है तो ऐसी स्थिति मे एक अति अल्प अवधि का पूर्वानुमान किया जाना उपयुक्त होगा। साथ ही, अल्पकालीन माग पूर्वानुमान सामान्यत स्थापित वस्तुओ मे सबधित होता है।

दूसरी ओर, दीर्घकालीन माग पूर्वानुमान 5, 10 या 20 वर्ष तक की अवधि का भी हो सकता है। परतु, प्राय 10 वर्षों के पश्चात् भविष्य इतना अनिश्चित हो जाता है कि परियोजना अत्यधिक सदिग्ध हो जाती है। नवीन वस्तु विकास के लिए दीर्घकालीन पूर्वानुमान की आवश्यकता होती है। पर्याप्त समय होने के कारण माग पूर्वानुमान के आधार पर उत्पादन क्षमता घटाने या बढाने से

सबधित निर्णय भी लिया जा सकता है। परतु दीर्घकालीन पूर्वानुमान करते समय जनसख्या, फैशन, रुचियो और क्रेताओ के अधिमानो, उत्पाद जीवन-चक्र, तकनीक आदि पर भी अवश्य विचार किया जाना चाहिए।

4 माग पूर्वानुमान का क्षेत्र (SCOPE OF DEMAND FORECASTING)

माग पूर्वानुमान के छ मुख्य घटक हैं जो इसके क्षेत्र को निर्धारित करते हैं। इनकी चर्चा हम नीचे कर रहे हैं।

1 पूर्वानुमान की अवधि (Period of Forecasting)—माग पूर्वानुमान समय के दृष्टिकोण से अल्पकालीन या दीर्घकालीन होता है, जब माग पूर्वानुमान की अवधि अधिक से अधिक एक वर्ष की हो तो इसे अल्पकालीन पूर्वानुमान कहा जाता है। और यदि माग पूर्वानुमान की अवधि 5, 10, 12 या 20 वर्ष हो तो उसे दीर्घकालीन माग पूर्वानुमान कहते हैं।

यह मध्यकालीन भी हो सकता है जिसके अतर्गत पूर्वानुमान की अवधि सामान्यत 1 वर्ष से ऊपर और पाच वर्ष से नीचे होती है। परतु अवधियो का यह पचाग (calender) वर्गीकरण सिर्फ कामचलाऊ है। वास्तव मे यह वस्तु या व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, ऊनी वस्त्र की दशा मे 1 वर्ष दीर्घकालीन हो सकता है जबकि हवाई जहाज की दशा मे यह अल्पकालीन होगा।

अल्पकालीन माग पूवानुमान वस्तुओ के लिए किए जाते हैं। क्योंकि पूर्वानुमान वर्तमान ससाधनो के अन्तर्गत ही दिन-प्रतिदिन के प्रयासो से सबधित होते हैं। पूर्वानुमान करते समय मौसम के अतिरिक्त, फैशन, रुचिया आदि तत्त्वो का भी ध्यान रखा जाता है।

दूसरी ओर, दीर्घकालीन माग पूर्वानुमान नवीन वस्तु विकास के लिए किए जाते हैं। बैटर्सबी (Battersby) के अनुसार, "दीर्घकालीन पूर्वानुमान वह है जो प्रमुख कूटनीति निर्णयो के लिए सूचना प्रदान करता है, यह ससाधनो की सीमाओ को बढाने या घटाने से सबधित होता है।"[1] प्राकृतिक आपदाए, युद्ध, आर्थिक उतार-चढाव और सामाजिक, राजनीतिक एव मनोवैज्ञानिक घटके दीर्घकाल को अत्यधिक अनिश्चित बना देती हैं। अत दीर्घकालीन माग पूर्वानुमान करते समय इनके अतिरिक्त जनसख्या, फैशन, रुचियो और क्रेताओ के अधिमानो, वस्तु जीवन-चक्र और तकनीक आदि पर भी विचार किया जाना आवश्यक होता है।

फर्म को मध्यकालीन पूर्वानुमान से सबसे बडा लाभ यह होता है कि उसे माग की प्रवृत्ति की जानकारी प्राप्त होती है। मध्यकालीन माग पूर्वानुमान मे साख्यिकीय पूर्वानुमान की अपेक्षा अनुभव और कुशल निर्णय अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। यह पूवानुमान दीर्घकालीन पूर्वानुमानो पर आधारित नियत्रण के लिए उपयोगी होता है।

2 पूर्वानुमान का स्तर (Level of Forecasting)—माग पूर्वानुमान निम्न तीन स्तरो पर हो सकता है।

(क) समष्टि स्तर (Macro Level)—यहा समष्टि स्तर से अभिप्राय सपूर्ण अर्थव्यवस्था स्तर

1 "A long-term forecast is one which provides information for major strategic decisions, it is concerned with extending or reducing the limit of resources"

—*Albert Battersby*

से है। समष्टि स्तर पूर्वानुमान राष्ट्रीय आय या व्यय, थोक बिक्री कीमतें, और औद्योगिक उत्पादन आदि के एक उपयुक्त सूचक की सहायता से किए जाते हैं। चूंकि अधिकांश वस्तुओं और सेवाओं की मांग व्यावसायिक दशाओं से अत्यधिक प्रभावित होती है, इसलिए फर्म की वस्तु का मांग पूर्वानुमान संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए आर्थिक क्रिया का सामान्य स्तर के पूर्वानुमान से प्रारंभ होता है।

(ख) उद्योग स्तर (Industry Level)—उद्योग स्तर पर मांग पूर्वानुमान फर्म को यह संकेत देता है कि आगे संपूर्ण उद्योग की मांग गतिविधियों की दिशा क्या होगी? इसके आधार पर फर्म उद्योग के शेष भाग के सापेक्ष में भविष्य के लिए अपनी एक समुचित योजना बना सकेगी। ये पूर्वानुमान उपभोक्ताओं के इरादों का सर्वेक्षण और उपभोक्ता प्रतिक्रिया के विश्लेषण पर आधारित होते हैं। उद्योग स्तर पर पूर्वानुमान विभिन्न संगठनों द्वारा किए जाते हैं।

(ग) फर्म स्तर (Firm Level)—फर्म स्तर पर मांग पूर्वानुमान प्रबंधकीय दृष्टिकोण से अति महत्त्वपूर्ण होता है। फर्म अच्छी स्थिति में है या नहीं, अथवा बाजार में इसके भाग को कैसे बढ़ाया जाय, इन समस्याओं के समाधान में इस पूर्वानुमान की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

विविध वस्तु फर्म वस्तु-श्रृंखला पूर्वानुमान (Product-line Forecasting) भी करती है जो यह निर्णय लेने में मदद करती है कि फर्म के सीमित समाधनों के आवंटन में किस वस्तु या वस्तु समूह को प्राथमिकता दी जाय। उदाहरणार्थ, महिन्द्रा एंड महिन्द्रा कंपनी यह जानना चाहेगी कि उसे अपने सीमित संसाधनों से ट्रैक्टर का या जीप का अधिक उत्पादन करना चाहिए।

3 *पूर्वानुमान की प्रकृति* (Nature of Forecasting)—पूर्वानुमान सामान्य या विशिष्ट उद्देश्य के लिए हो सकता है। फर्म के लिए सामान्य पूर्वानुमान तो उपयोगी होता है, परंतु इसे विशिष्ट पूर्वानुमानों में बांटकर और अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है, जैसे वस्तुओं की प्रकृति, विक्रय के क्षेत्र, घरेलू और विदेशी बाजार आदि के आधार पर मांग पूर्वानुमान।

4 *स्थापित और नई वस्तुओं का पूर्वानुमान* (Forecasting of Established and New Products)—स्थापित और नई वस्तुओं के पूर्वानुमान की विधियां और समस्याओं में प्राय भिन्नता होती है। स्थापित वस्तुओं की विक्रय प्रवृत्ति और प्रतियोगी दशायें जानी-पहचानी होती हैं जबकि नई वस्तुओं के संदर्भ में ऐसी बात नहीं होती।

5 *वस्तुओं की प्रकृति* (Nature of Goods)—वस्तुओं को प्राय दो भागों में विभाजित किया जाता है (1) पूंजी वस्तुएं, (2) उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएं एवं गैर टिकाऊ वस्तुएं। इनमें प्रत्येक के लिए मांग का पृथक ढांचा होता है। उपभोक्ता मांग आय पर *अधिक निर्भर करती है जबकि पूंजीगत* या उत्पादक वस्तुओं की मांग व्युत्क्रम (derived) मांग होने के कारण अपेक्षाकृत तेजी से घटती-बढ़ती है।

6 *अन्य घटक* (Other Factors)—मांग पूर्वानुमान के अंतर्गत वस्तु और बाजार विशेष से संबंधित कुछ विशिष्ट घटक भी होते हैं जो इसके क्षेत्र को निर्धारित करते हैं। इन पर विचार किया जाना आवश्यक होता है। मांग पूर्वानुमान करते समय प्रतियोगिता की प्रकृति, जोखिम और अनिश्चितता का प्रभाव, इसके फलस्वरूप पूर्वानुमान में अशुद्धता की संभावना आदि का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए। इसके साथ ही कई सामाजिक और मनोवैज्ञानिक घटक भी मांग पूर्वानुमान को प्रभावित करते हैं, जैसे वस्त्र उद्योग में क्षेत्रीय रीति-रिवाज। उपभोक्ता की भविष्य के विषय में सोच, व्यक्तिगत समृद्धि और वस्तुओं एवं ब्रांडों के विषय में उनके विचार महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक घटक हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त घटक मांग पूर्वानुमान के क्षेत्र को दर्शाते हैं।

5. अच्छी पूर्वानुमान विधि की कसौटिया (CRITERIA OF A GOOD FORECASTING METHOD)

एक अच्छी पूर्वानुमान विधि की निम्न कसौटिया हैं।

1 *यथार्थता* (Accuracy)—प्रबधन के दोनो महत्त्वपूर्ण कार्य, निर्णय-निर्माण और अग्रिम आयोजन, यथार्थ माग के पूर्वानुमान पर आधारित होते हैं। सेवेज और स्मौल (Savage and Small) के अनुसार, ''पूर्वानुमान तकनीको के व्यावहारिक प्रयोग मे, साख्यिकीय सिद्धात के उत्तम तत्त्वो पर केन्द्रित होने की अपेक्षा भविष्य सूचक यथार्थता अन्तत अधिक महत्त्वपूर्ण है।''[1] पूर्वानुमान विधि की यथार्थता पर विचार करते समय पिछले पूर्वानुमानो का परीक्षण वर्तमान उपलब्धियों और वर्तमान पूर्वानुमानो का परीक्षण भविष्य की उपलब्धियो से किया जाना चाहिए। इस प्रकार पूर्वानुमान की यथार्थता का माप दो तरह से किया जा सकता है—(1) पूर्वानुमान और वास्तविक उपलब्धियो के बीच विचलनो (deviations) की सीमा, और (2) दिशात्मक (directional) परिवर्तनो के पूर्वानुमानो मे सफलता का स्तर।

2 *सरलता* (Simplicity)—सरलता एक अच्छी पूर्वानुमान विधि की महत्त्वपूर्ण शर्त है। पूर्वानुमान विधि ऐसी होनी चहिए जिसे प्रबधन आसानी से समझ सके और जिस विधि मे उसका विश्वास हो। सरलता पूर्वानुमान को व्यापक बनाती है। साथ ही, भूत और वर्तमान एव वर्तमान और भविष्य के बीच निरतर मेल से पूर्वानुमान दीर्घकालिक होता है।

3 *व्यापकता* (Comprehensibility)—प्रबधन उपयुक्त परिणाम तभी प्राप्त कर सकता है जब उसने प्रयोग की जाने वाली पूर्वानुमान विधि को अच्छी तरह से समझा हो। जैसा कि प्रो जोल डीन (Joel Dean) ने कहा है, 'व्यापकता पूर्वानुमान विधि की यथार्थता बढाती है'। अत पूर्वानुमान विधियो, उनकी मान्यताओं और सभावनाओं की अच्छी जानकारी आवश्यक है क्योकि एक अच्छा माग पूर्वानुमान तभी कहा जाएगा जब यह विचलनो और मोड बिन्दुओ को भी भविष्यवाणी करे ताकि पूर्वानुमान अधिक प्रभावी हो।

4 *मितव्ययिता* (Economy)—एक अच्छी पूर्वानुमान विधि मे 'न्यूनतम लागत और अधिकतम लाभ' का गुण अवश्य होना चाहिए। अर्थात् पूर्वानुमान की लागत और उनके लाभ की तुलना अवश्य की जानी चाहिए। इसकी प्रचालन लागत (operational cost) कम से कम हो। यदि कोई विशेष माग पूर्वानुमान फर्म के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है तो ऊँची लागत पर अधिक यथार्थता प्राप्त करने का कोई अर्थ नहीं है।

5 *लोचशीलता* (Flexibility)—विश्व गतिशील है। अत माग पूर्वानुमान विधि मे भी परिवर्तनो को शामिल करने की क्षमता होनी चाहिए। यदि पूर्वानुमान विधि मे अनुकूलनशीलता हो, तभी वह दीर्घकालिक हो सकती है। जैसा कि कहा भी जाता है—लोचशीलता व्यापकता का पर्याय होता है।

6 *उपलब्धता* (Availability)—किसी तकनीक द्वारा निर्धारित लक्ष्य तक तभी पहुचा जा सकता है जब तक उसके लिए आवश्यक आकडो की उपलब्धता आसान न हो। तकनीक ऐसी होनी चाहिए जो शीघ्र और अर्थपूर्ण परिणाम उपलब्ध करा सके।

---

1 " In the practical application of forecasting technique accuracy is ultimately more important than overconcentration of finer points of statistical theory"
—*Savage and Small*

7 सामयिकता (Timeliness)—एक अच्छे पूर्वानुमान के लिए उसका सामयिक (समय पर) होना अनिवार्य है। अर्थात प्रयोग की जाने वाला तकनीक ऐसी हो जो शीघ्रता से अर्थपूर्ण परिणाम उपलब्ध करा सके। यदि तकनीक के अन्तर्गत काफी समय लग रहा है तो स्वाभाविक ही है कि निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में विलम्ब होगा जिससे फर्म को अत्यधिक हानि उठानी पडेगी।

इस प्रकार उपर्युक्त मानदडो को पूरा करने पर ही किसी तकनीक को अच्छी तकनीक कहा जा सकता है।

6 माग पूर्वानुमान का महत्त्व
(IMPORTANCE OF DEMAND FORECASTING)

किसी विशेष वस्तु की माग कब और कितनी होगी ? आधुनिक व्यवसाय की यह एक प्रमुख समस्या है। जिसकी जानकारी माग पूर्वानुमान से ही सभव है। इस प्रकार माग पूर्वानुमान, फर्म को समय पर भविष्य की जोखिमो और अनिश्चितताओ से सावधान करता है। इसी पूर्वानुमान पर उसका निर्णय-निर्माण और पहले से आयोजन निर्भर करता है। अर्थात् व्यवसाय की सफलता ही माग पूर्वानुमान की यथार्थता और सफलता पर निर्भर करती है।

माग पूर्वानुमान का महत्त्व निम्न पर निर्भर करता है।

1 उत्पादन (Production)—फर्म को उत्पादन सबधी निर्णय सही-सही और समय पर लेना पडता है जो माग पूर्वानुमान के आधार पर ही सभव है। उत्पादन के लिए कई घटकों की सेवाओं की आवश्यकता होती है, जैसे मानव-शक्ति, वित्त आदि जिन्हे व्यवस्थित करना पडता है। अत माग पूर्वानुमान उत्पादन सबधी निर्णय और आयोजन के लिए अति महत्वपूर्ण होता है। उत्पादन समय पर और माग के अनुसार होकर बिक जाता है। साथ ही फर्म के सामने अति उत्पादन और अल्प उत्पादन की कोई समस्या नहीं रहती है।

2 सामान्य नियत्रण (General Control)—एक अच्छी तरह सोची-समझी लागत और लाभ बजट तैयार कर पाने की स्थिति में ही किसी व्यवसायी का फर्म पर अच्छा नियत्रण हो सकता है। इसके लिए माग पूर्वानुमान का सहारा आवश्यक हो जाता है।

3 मालसूची नियंत्रण (Inventory Control)—फर्म की सफलता के लिए उत्पादन-प्रक्रिया की विभिन्न आवश्यकताओं में माल सूचियों, कच्चे मालों, कल पुर्जों और वस्तुओ पर उचित नियत्रण आवश्यक होता है। फर्म अच्छी स्थिति मे तभी हो सकती है जब भविष्य की आवश्यकताओं का अनुमान ठीक-ठीक ढग मे हुआ हो जिसके लिए माग पूर्वानुमान आवश्यक है।

4 बिक्री प्रोत्साहन (Sales Promotion)—माग पूर्वानुमान बिक्री प्रोत्साहन के लिए आधार तैयार करता है जो फर्म के विकास के लिए अति आावश्यक है। फर्म सार्थक बिक्री प्रोत्साहन प्रयास तभी कर पाएगी जब उसने माग का पूर्वानुमान ठीक-ठीक किया हो।

5 निवेश निर्णय (Investment Decisions)—फर्म की वृद्धि दीर्घकालिक निवेश निर्णयों पर निर्भर करती है। जबकि फर्म की वृद्धि दर और दीर्घकालिक निवेश कार्यक्रमो का निर्धारण एक समुचित माग पूर्वानुमानों के आधार पर ही सभव है।

7 व्यावसायिक अनिश्चितता (Business Uncertainty)—व्यवसाय जगत जोखिमो और अनिश्चितताओं से भरा होता है। माग पूर्वानुमान का उद्देश्य प्रबधन के सामने फैली इन अनिश्चितताओं

को कम करना, और उन्हे उचित समय पर आवश्यक मात्रा उत्पादित करने के योग्य बनाना और पहले से ही उत्पादन के विभिन्न साधनो को भली-भांति व्यवस्थित करना होता है।

8 *मौसमी वस्तुए* (Seasonal Products)—कुछ उद्योग ऐसे भी हैं जहा मौसम प्रमुख भूमिका निभाता है, जैसे ऊनी वस्त्र, पखा, कूलर आदि। यहा पर माग पूर्वानुमान का महत्त्व और भी बढ जाता है, क्योंकि एक ओर अल्प उत्पादन होने पर फर्म को मौसम का सर्वाधिक लाभ नहीं मिल पाएगा जबकि दूसरी ओर अति उत्पादन होने पर उसमे लगे साधनो की बर्बादी के कारण उसे हानि होगी।

9 *अन्य घटक* (Other Factors)—इसके अतिरिक्त पूजी प्रबध, श्रम प्रबध आदि क्षेत्रों मे भी माग पूर्वानुमान की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। साथ ही, आधुनिक युग मे उत्पादन वृहत् पैमाने पर किया जाता है जिससे माग पूर्वानुमान और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion)—इस प्रकार, इस गतिशील विश्व मे भावी परिवर्तनों का अनुमान नहीं करना फर्म की अदूरदर्शिता को प्रकट करेगा। अत फर्म के पास माग पूर्वानुमान करने या न करने के बीच कोई विकल्प नहीं है। बात सिर्फ इतनी है कि माग पूर्वानुमान किस विधि से किया जाय, इसे कौन करे, और उसमें कौन-कौन से ससाधन लगाए जाए ?

7 मांग पूर्वानुमान की सीमाए
(LIMITATIONS OF DEMAND FORECASTING)

माग पूर्वानुमान की निम्न सीमाए हैं

1 *अनिश्चितता* (Uncertainty)—चूंकि भविष्य अनिश्चित होता है, इसलिए कोई भी पूर्वानुमान शत-प्रतिशत सही नहीं हो सकता है। प्रत्येक फर्म इसकी आश्यकता समझती है। फिर भी, कोई फर्म सही-सही माग पूर्वानुमान नहीं कर सकती।

2 *आकडो का अभाव* (Lack of Data)—माग पूर्वानुमान भूतकालीन आकडो के आधार पर किया जाता है, जबकि हम देखते हैं कि फर्म के पास भूतकालीन विक्रय आकडो का अभाव होता है। आवश्यकता के अनुसार इन आकड़ो को एकत्रित करना एक कठिन कार्य है।

3 *अत्यधिक लागत* (Heavy Cost)—माग पूर्वानुमान की समुचित प्रक्रिया में अत्यधिक लागत आती है जिसे वहन करना प्रत्येक फर्म के वश की बात नहीं होती। परिणामस्वरूप, पूर्वानुमान मे यथार्थता का अभाव हो जाता है।

4 *फैशन* (Fashion)—फैशन में परिवर्तन विकास का स्वाभाविक लक्षण है। सभ्यता का विकास, विज्ञापन, सचार और परिवहन का विकास, मॉडलिंग आदि के कारण फैशन परिवर्तित होते रहते हैं। परतु प्रश्न यह है कि वर्तमान फैशन कब तक रहेगा ? इसे पता लगाना अति कठिन कार्य है।

5 *विशेषज्ञों का अभाव* (Scarcity of Experts)—माग पूर्वानुमान का काम कोई सबधित विशेषज्ञ ही कर सकता है जबकि ऐसे विशेषज्ञो का अभाव पाया जाता है।

6 *सामाजिक घटक* (Social Factors)—हमारा समाज तेजी से बदल रहा है। सामाजिक नियत्रण और रीति-रिवाज बदल रहे हैं। अत वस्तुओं की माग बदल रही है। उदाहरणार्थ, धोती और साडी का स्थान पश्चिमी शैली के वस्त्र ले रहे हैं। ऐसी स्थिति मे यथार्थ माग पूर्वानुमान से भिन्न होती है।

7 *मनोवैज्ञानिक घटक* (Psychological Factors)—उपभोक्ता की भविष्य के विषय मे क्या

सोच होगी ? वस्तुओं और ब्राडों के विषय में उनके क्या विचार होगे ? ये सभी महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक सीमाए हैं। इसके अतिरिक्त, युद्ध की आशका, आर्थिक नीति मे परिवर्तन आदि से भी उनकी मनोवृत्ति मे बदलाव आ जाता है। ऐसी स्थिति मे यथार्थ माग का पूर्वानुमान करना, वास्तव में, एक कठिन कार्य है।

इस प्रकार माग पूर्वानुमान की उपर्युक्त सीमाए हैं। फिर भी, प्रत्येक फर्म को यथासगत यथार्थ माग पूर्वानुमान करने की चेष्टा करनी चाहिए।

8 नवीन वस्तुओ के लिए माग पूर्वानुमान
(DEMAND FORECASTING FOR NEW PRODUCTS)

नवीन वस्तुए *अर्थव्यवस्था* और कपनी दानो के लिए नवीन होती हैं। अत वस्तु की आर्थिक और प्रतियोगी विशेषताओ का गहन अध्ययन ही हमे यथार्थ माग पूर्वानुमान तक पहुचा सकता है। माग पूर्वानुमान की विधिया विशेष वस्तु की प्रकृति के अनुरूप होनी चाहिए। प्रश्न यह है कि नवीन वस्तुओ की माग का पूर्वानुमान कैसे किया जाय, जिनके लिए भूतकालीन आकडे भी उपलब्ध नहीं होते हैं। इसके लिए निम्न धारणाए अपनायी जा सकती हैं।

1 *विकासात्मक धारणा* (Evolutionary Approach)—विकासात्मक धारणा यह मानकर चलती है कि नवीन वस्तु वर्तमान पुरानी वस्तु का विकसित रूप है। अत इस धारणा के अनुसार, नवीन वस्तु का माग पूर्वानुमान करते समय पुरानी वस्तु की चालू माग दशाओ पर अवश्य विचार किया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, डीजल एम्बैसैडर कार की माग मे वृद्धि होती है जहा पेट्रोल एम्बैसैडर कार की माग में कमी हो जाती है। इस प्रकार यह धारणा तभी उपयोगी होगी जब नवीन वस्तु वर्तमान पुरानी वस्तु का निकटतम स्थानापन्न हो। इसके अन्तर्गत सबसे बडी समस्या यह अनुमान करना है कि नव रूपान्तरण का माग ढाचा पुराने ढग की वस्तु के ढाचा से अलग कैसे होगा।

2 *स्थानापन्न माग धारणा* (Substitute Approach)—इस धारणा के अनुसार नवीन वस्तु की माग का विश्लेषण कुछ वर्तमान पुरानी वस्तुओं के स्थानापन्न के रूप में किया जाना चाहिए, क्योंकि अधिकाश नवीन वस्तुए स्थानापन्न ही होती हैं। उदाहरणार्थ, रगीन टी वी, श्याम-श्वेत टी वी की माग को किस सीमा तक प्रभावित करेगा ? इस प्रकार, स्थानापन्न धारणा के द्वारा नवीन वस्तु का माग पूर्वानुमान आसानी से किया जा सकता है। परतु कभी-कभी वर्तमान पुरानी वस्तु के सभावित बाजार की त्रुटिपूर्ण ऊपरी सीमा निर्धारित करता है। आगे, कई व्यावहारिक समस्याओं के लिए प्रतिस्थापन की ऊपरी सीमा नहीं बल्कि, यह महत्त्वपूर्ण है कि नवीन वस्तु वर्तमान पुरानी वस्तु को कितनी जल्दी से विस्थापित (displaced) कर देगी। इसके अतिरिक्त, कई नवीन वस्तुओं के विभिन्न उपयोग होते हैं और प्रत्येक *उपयोग एक पृथक् स्थानापन्नता की समस्या उपस्थित करता* है।

3 *वृद्धि वक्र धारणा* (Growth Curve Approach)—यह धारणा नवीन वस्तुओं की माग पूर्वानुमान का विश्लेषण स्थापित वस्तुओ के वृद्धि ढाचे के आधार पर करता है। उदाहरणार्थ, हॉकिन्स प्रेशर कुकर बाजार मे उपयोग किए जाते हैं। अब यदि वह नवीन वस्तु के रूप मे जूसर-मिक्सर-ग्राइडर प्रस्तुत करना चाहे तो इसके माग पूर्वानुमान के लिए प्रेशर कुकर की औसत माग एक आधार प्रस्तुत कर सकती है। यद्यपि यह एक अच्छी धारणा है, फिर भी उसकी व्यवहार्यता सीमित

है। यह मुख्यत माग प्रोजेक्शन की बाद की अवस्थाओं में उपयोगी होती है।

4 विचार मतदान धारणा (Opinion Polling Approach)—यह विधि क्रेताओं की सभावित प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करती है। इस धारणा के अन्तर्गत नवीन वस्तुओं का माग पूर्वानुमान अतिम क्रेताओं से प्रत्यक्ष छान-बीन के आधार पर करना चाहिए। इसके लिए पूरे पैमाने पर नमूनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, नवीन औद्योगिक वस्तुओं के माग पूर्वानुमान के लिए कुछ चुने हुए ग्राहकों को अपनी कपनी के इजीनियर के पास विशेष विवरण के साथ भेजकर आवश्यक आकडे एकत्रित करने चाहिए। यद्यपि इस विधि का व्यापक प्रयोग होता है, फिर भी इसके अन्तर्गत सैम्पलिंग, वास्तविक इरादों की जाच, विविध वैकल्पिक चुनाव की जटिलता आदि समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

5 विक्रय अनुभव धारणा (Sales Experience Approach)—इस धारणा के अन्तर्गत एक सैम्पल बाजार का चुनाव किया जाता है। आगे, इस बाजार मे प्रत्यक्ष डाक या चुनिंदा वितरक स्रोतों द्वारा बिक्री के लिए नवीन वस्तुओं को प्रस्तुत किया जाता है। सैम्पल बाजार में हुए बिक्री के आधार पर नवीन वस्तुओं का कुल माग पूर्वानुमान किया जाता है। यद्यपि समस्या यह निर्धारित करने मे है कि सैम्पल बाजार की अपरिपक्वता और उसकी खास विशेषताओं के लिए कौन सी छूट प्रदान की जाय। इसके अतिरिक्त, यह विधि छान-बीन की प्रक्रिया मे भी देर लगाती है।

6 प्रतिनिधिमूलक धारणा (Vicarious Approach)—इस पूर्वानुमान का आधार विशेषज्ञ डीलरों द्वारा दी गई रिपोर्ट होती है। इन डीलरों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप मे नवीन वस्तु के विषय में उपभोक्ताओं की प्रतिक्रियाओं का सर्वेक्षण कर एक यथार्थ मूल्याकन किया जाता है। चूंकि ये डीलर उपभोक्ता और उत्पादक दोनों से जुड़े होते हैं, इसलिए उन्हें उपभोक्ता की आवश्यकताओं और वैकल्पिक अवसरों के विषय में अच्छी जानकारी होती है। यद्यपि यह एक सरल विधि है, परन्तु इसमें शुद्धता का अभाव पाया जाता है। इस विधि की सफलता डीलरों की यह अनुमान करने की योग्यता पर निर्भर करती है कि क्रेता क्या करने वाला है। अक्सर, ये डीलर अनमने ढग मे सूचना देते हैं, अत इन डीलरों के माध्यम से प्राप्त रिपोर्ट की फिर मे एक बार जाच करनी चाहिए।

जीवन चक्र खण्डीकरण विश्लेषण
(Life Cycle Segmentation Analysis)

नवीन वस्तुओं की भविष्य में माग का पूर्वानुमान करने के लिए जीवन चक्र खण्डित विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है। यह विश्लेषण वस्तु का जीवन चक्र दर्शाता है।

प्रत्येक वस्तु का एक जीवन-चक्र होता है। इसके अंतर्गत पाच अवस्थायें आती हैं। प्रत्येक अवस्था के लिए अलग-अलग व्यावसायिक विधिया होती हैं। अत यह जानना आवश्यक है कि कोई वस्तु जीवन-चक्र की किसी विशेष अवस्था मे कब होगी। आगे, कुल बाजार भी खण्डों में होता है। अत एक ही वस्तु का जीवन चक्र विभिन्न बाजार खण्डों मे भिन्न-भिन्न दरों पर चलता है। इसलिए विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न विधियां अपनाई जानी चाहिए। जीवन-चक्र की निम्न अवस्थाएं हैं .

1. परिचय (Introduction)—इस अवस्था में गुणवत्ता का बाजार प्रभाव अत्यधिक होता है। उसके बाद विज्ञापन का स्थान आता है। इस अवस्था मे कीमतों और सेवाओं का प्रभाव बहुत कम होता है। अत, अधिक बिक्री के लिए अच्छी गुणवत्ता वाली वस्तुओं पर जोर दिया जाना चाहिए।

2 *वृद्धि* (Growth)—इस अवस्था मे विज्ञापन और प्रचार जैसे बिक्री बढाने वाले प्रयासो का प्रबल प्रभाव होता है।

3 *परिपक्वता* (Maturity)—इस अवस्था में गुणवत्ता, विज्ञापन और सेवा की अपेक्षा कीमत अधिक महत्वपूर्ण होती है। इसका कारण यह है कि बाजार में प्रतियोगी प्रवेश कर चुके होते हैं। अत अब कीमत लोच अधिक होती है।

4 *चरम सीमा* (Saturation)—इस अवस्था के अतर्गत गुणवत्ता मे वस्तु विभेदीकरण, विज्ञापन पैकेजिंग अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। चूंकि कीमत पहले ही कम हो चुकी होती है इसलिए कीमत अधिक महत्वपूर्ण नहीं होती है।

5 *गिरावट* (Decline)—इस अवस्था मे वस्तु का नवीन उपयोग, विज्ञापन आदि का विशेष महत्त्व होता है। यहा कीमत का बहुत कम प्रभाव होता है। जबकि गुणवत्ता और सेवा का इतना महत्त्व नहीं होता है।

इस प्रकार, वस्तु के जीवन-चक्र की उपर्युक्त अवस्थाए होती हैं जिन्हे चित्र 1 में दर्शाया गया जहा समानातर अक्ष पर समय और अनुलब अक्ष पर वस्तु की बिक्री की मात्राओ को लिया गया है। इसमे S बिक्री वक्र है।
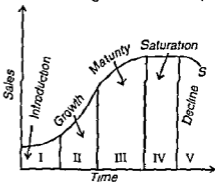
चित्र 1

जीवन चक्र खडीकरण विश्लेषण माग पूर्वानुमान के लिए बहुत ही उपयोगी है। बाजार के खडीकरण द्वारा एक या दो अवस्थाओ के लिए *सर्वाधिक उपयुक्त विधि का चुनाव किया जा सकता* है। साथ ही यदि प्रत्येक खड मे कुल सभावना, कुल बाजार सभावना और वर्तमान खड के परिपक्व होने की गति और सीमा की जानकारी हो तो शेष खडो के लिए भी उसी तरह के पूर्वानुमान किए जा सकते हैं। अत कुल बाजार के लिए समस्त माग पूर्वानुमान किया जा सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)—इस प्रकार, नवीन वस्तुओ के माग पूर्वानुमान की उपर्युक्त विधिया हैं जिनका प्रयोग एक दूसरे के पूरक के रूप में होना चाहिए। परतु ये विधिया आपस मे निरपेक्ष नहीं हैं। प्राय इनमे से कई विधियो का सयोग पूरक के रूप मे आवश्यक हो जाता है ताकि क्रॉस परीक्षण (cross checking) किया जा सके। जैसा कि प्रो जोल डीन ने कहा है, "उनमें से कई का सयोग प्राय वाछनीय होता है ताकि वे एक दूसरे के पूरक हो सकें।" इसके *अतिरिक्त*, नवीन वस्तुओ की माग पूर्वानुमान के लिए स्थापित वस्तुओ की माग पूर्वानुमान विधियों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

9 मांग पूर्वानुमान की विधिया
(DEMAND FORECASTING METHODS)

माग पूर्वानुमान की विधियों को दो श्रेणियो मे बाट सकते हैं, प्रथम सर्वेक्षण विधि, जिसके अन्तर्गत बाजार शोध, साक्षात्कार, सर्वेक्षण, आर्थिक सूचना आदि के द्वारा उपभोक्ताओ के विचारो स सबधित जानकारी हासिल की जाती है। *द्वितीय, साख्यिकीय विधि,* जिसके अतर्गत अर्थमिति (econometrics)

मॉडल के माध्यम से पिछला अनुभव अर्थात् ऐतिहासिक आकडो का विश्लेषण किया जाता है, और इसके आधार पर माग पूर्वानुमान किए जाते हैं। सर्वेक्षण विधि प्राय अल्पकालीन माग पूर्वानुमान के लिए उपयुक्त होती है, जबकि दीर्घकालीन माग पूर्वानुमान के लिए सांख्यिकीय विधि को उपयुक्त माना जाता है। इसी तरह स्थापित (established) वस्तुओ का माग पूर्वानुमान दोनो प्रकार की विधियो से हो सकता है, जबकि नवीन वस्तुओ का माग पूर्वानुमान सर्वेक्षण विधि से होता है क्योकि नवीन वस्तुओ के सदर्भ मे कोई ऐतिहासिक आकडे नहीं होते हैं। अब हम विभिन्न विधियों की चर्चा सक्षेप मे निम्न चार्ट 1 के अनुसार कर रहे हैं।
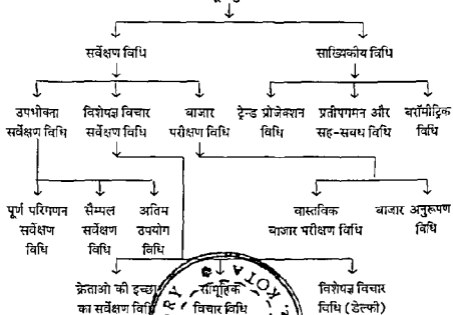
(A) सर्वेक्षण विधि (Survey Method)

सर्वेक्षण विधि के अन्तर्गत उपभोक्ता सर्वेक्षण विधि, विशेषज्ञ विचार सर्वेक्षण विधि, और बाजार परीक्षण विधि आते हैं जिनकी विस्तार से चर्चा नीचे की जा रही है।

1 उपभोक्ता सर्वेक्षण विधि (Consumer's Survey Method)

इसे 'क्रेताओं के विचारों का सर्वेक्षण' विधि भी कहा जाता है। इसके तीन रूप हैं ·

1 *पूर्ण परिगणन सर्वेक्षण विधि* (Complete Enumeration Survey Method)—इसके अनुसार, वस्तु विशेष के लगभग सभी सभावित उपभोक्ताओं से सम्पर्क कर साक्षात्कार लिया जाता है। विचाराधीन वस्तुओं को खरीदने की उनकी भविष्य योजना से सबधित जानकारी हासिल की जाती है तथा उपभोक्ताओ द्वारा बताई गई मात्राओ को एक साथ जोडकर विचाराधीन वस्तुओ की

माग का पूर्वानुमान किया जाता है। इस विधि से प्रत्यक्ष और निष्पक्ष सूचना का महत्त्वपूर्ण लाभ प्राप्त होता है। साथ ही यह विधि टिकाऊ और नवीन वस्तुओं के माग पूर्वानुमान के लिए विशेष उपयोगी है। परतु इसमे समय और व्यय दोनों अधिक लगता है एव यह विधि विशाल उपभोक्ताओं वाली वस्तुओं के लिए उपयुक्त नहीं है। इनके अतिरिक्त उपभोक्ताओ द्वारा दी गई सूचना पक्षपातपूर्ण हो सकते हैं।

2 *सैम्पल सर्वेक्षण विधि* (Sample Survey Method)—इस विधि के अतर्गत कुछ प्रतिचयन विधि द्वारा कुल सभावित उपभोक्ताओ मे से सिर्फ कुछ सैम्पल उपभोक्ता चुने जाते हैं। ऐसे चुने हुए उपभोक्ताओ से साक्षात्कार लिए जाते हैं। इनसे प्राप्त सूचना के आधार पर औसत माग की गणना की जाती है। आगे, उपभोक्ताओं की कुल सख्या को औसत माग से गुणा कर विचाराधीन वस्तुओ की कुल माग का पूर्वानुमान किया जाता है। यह विधि सस्ती और सरल है तथा कम समय में ही माग पूर्वानुमान पूरा हो जाता है। सैम्पलों का चुनाव साख्यिकीय विधि से होने के कारण परिणाम अधिक विश्वसनीय होते हैं। नवीन वस्तुओ के लिए यह सबसे उपयुक्त विधि है। परतु यह विधि अत्यधिक व्यक्तिपरक (subjective) है। यदि अन्वेषक योग्य और अनुभवी नहीं हो तो परिणाम अयथार्थ होंगे। फिर भी, यह विधि अतिलोकप्रिय है।

3 *अतिम उपयोग विधि* (End Use Method)—इस विधि के अनुसार विचाराधीन वस्तु का माग पूर्वानुमान मध्यवर्ती वस्तु के रूप में उपयोग करने वाले उद्योगों के माग सर्वेक्षण के आधार पर किया जाता है। इस सदर्भ मे इस वस्तु का उपयोग करने वाले उद्योगो की उत्पादन योजनाओं और आगत-निर्गत (Input-Output) गुणाकों का सर्वेक्षण किया जाता है। यहा ध्यान देने योग्य बात यह है कि कोई मध्यवर्ती वस्तु अतिम उपयोग वस्तु भी हो सकती है और किसी मध्यवर्ती वस्तु की माग देशी और विदेशी दोनो बाजारों मे हो सकती है। यह विधि सरल और सुविधाजनक है एव इसमें विकेन्द्रीकरण का लाभ मिलता है। व्यापक उत्पादक वस्तुओं वाले उद्योगो के लिए यह अति उपयोगी है। दूसरी ओर, अतिम वस्तु उद्योगों पर निर्भरता इसका प्रमुख दोष है। इसका क्षेत्र भी सीमित है। इस विधि के द्वारा उपभोक्ता वस्तुओ का माग पूर्वानुमान करना सरल नहीं होगा।

2 विशेषज्ञ विचार सर्वेक्षण विधि (Expert Opinion Survey Method)

इसके अतर्गत जानकार व्यक्तियो के विचार प्राप्त किए जाते हैं। इसके निम्न रूप हैं

1 *क्रेताओ की इच्छा का सर्वेक्षण विधि* (Survey Method of Buyer's Intentions)—इसके अतर्गत ग्राहकों से प्रत्यक्ष रूप से सम्पर्क कर भविष्य की क्रय योजना मे सबधित उनकी इच्छाओ को जानने के लिए सर्वेक्षण किया जाता है। अत पूर्वानुमान का भार ग्राहकों पर टाल दिया जाता है। साथ ही विक्रेताओ के स्वनिर्णय का भी ध्यान रखा जाता है। यह विधि सरल, सुविधाजनक और प्रत्यक्ष सूचना पर आधारित है। इसके अतर्गत विभिन्न प्रकार के कई दृष्टिकोण प्राप्त होते हैं। जबकि यह विधि अत्यधिक व्यक्तिपरक है। ग्राहक स्वय अपनी आवश्यकताओ का सही अनुमान नहीं लगा पाते हैं। साथ ही वे इसे सहजतापूर्वक बताना भी नहीं चाहते हैं। यदि ग्राहक औद्योगिक उत्पादक हों तो पूर्वानुमान शायद सही भी हो जाए परतु घरेलू ग्राहको की स्थिति में यह कई कारणों से सही नहीं होगा, जैसे इच्छाओ मे अनियमितता, बहु-विकल्प में चुनाव करने की असमर्थता आदि। फिर भी, यह अल्पकाल में माग पूर्वानुमान की सर्वाधिक प्रत्यक्ष विधि है।

2 *सामूहिक विचार विधि* (Collective Opinion Method)—इस विधि के अतर्गत माग

का पूर्वानुमान विक्रयकर्त्ता के सामूहिक विचारो के आधार पर किया जाता है। विक्रयकर्त्ताओं के अपने सबधित क्षेत्रो के लिए व्यक्तिगत अनुमानो को जोडकर कुल विक्रय का पूर्वानुमान किया जाता है। माग पूर्वानुमान करते समय विक्रयकर्त्ताओं द्वारा पक्षपात, विक्रय कीमतों में प्रस्तावित परिवर्तन, विज्ञापन और डिजाइन प्रोग्राम, प्रतियोगिता, रोजगार, जनसख्या एव क्रय-शक्ति मे परिवर्तन आदि का भी ध्यान रखा जाता है। यह विधि सुविधाजनक, सस्ती और स्वय विक्रयकर्त्ताओं द्वारा दी गई प्रत्यक्ष सूचना पर आधारित है। परतु इसमें व्यक्तिगत विचार पूर्वानुमान को प्रभावित कर सकता है। साथ ही दीर्घावधि पूर्वानुमान के लिए यह विधि उपयुक्त नहीं है। फिर भी, यह माग पूर्वानुमान की सबसे सुलभ विधि है।

3 *विशेषज्ञ विचार विधि* (Expert Opinion Method)—इस विधि के अतर्गत फर्म सबधित क्षेत्रों के अपने विशेषज्ञों के पूर्वानुमान सबधी विचार प्राप्त करना चाहती है। इसके अतर्गत पूर्वानुमान दो प्रकार से किए जाते हैं, सरल विधि और डेल्फी विधि।

सरल विधि के अतर्गत विभिन्न विशेषज्ञ द्वारा दिए गए गोपनीय पूर्वानुमान सख्याओं का सरल या भारित औसत निकाला जाता है और अपने सुविचारित निर्णय से परख कर आवश्यक पूर्वानुमान पर पहुचा दिया जाता है।

डेल्फी विधि के अनुसार, सबधित क्षेत्र के विशेषज्ञ अथवा प्रत्येक भागीदार को स्वतत्रतापूर्वक पूर्वानुमान प्रस्तुत करने को कहा जाता है। इनकी पहचान गुप्त रखी जाती है। आगे, विभिन्न विशेषज्ञों के बीच इन विचारो की अदला-बदली की जाती है। उनकी प्रतिक्रिया प्राप्त की जाती है और उनका विश्लेषण किया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक किसी सर्वसम्मति पर न पहुच लिया जाय। यह विधि सरल और सस्ती है एव इसे शीघ्र पूरा किया जा सकता है। नवीन वस्तुओं एव जहा असाध्य परिवर्तन होते रहते हैं वहा यह सर्वोत्तम विधि मानी जाती है।

3. बाजार परीक्षण विधि (Market Experiments Method)

यदि वस्तु नवीन हो अथवा स्थापित वस्तु नवीन बाजार में या नवीन वितरण तत्र द्वारा बेची जा रही हो, विश्लेषण के लिए पुराने आंकडा उपलब्ध नहीं हो तो, ऐसी स्थिति मे बाजार परीक्षण विधि सबसे उपयुक्त हो सकती है। इसके दो रूप हैं :

1 *वास्तविक बाजार परीक्षण विधि* (Actual Market Experiment Method)—इस विधि के अतर्गत फर्म सर्वप्रथम, समान विशेषता वाले प्रतिनिधि बाजारो के कुछ क्षेत्रों का चुनाव करती है। आगे, फर्म इन क्षेत्रो मे एक या अधिक माग निर्धारको को परिवर्तित कर परीक्षण प्रारंभ करती है और परिणामो के आधार पर लोच गुणाको की गणना की जाती है। फिर, मागफलन के चरों के साथ इन गुणाको का प्रयोग वस्तु विशेष का माग पूर्वानुमान के लिए किया जाता है। फर्म यह जानने के लिए विभिन्न बाजारो मे परीक्षण कर सकती है कि माग आयु, लिंग, जाति, पेशा जैसी विशेषताओं द्वारा कैसे प्रभावित होती है।

2. *बाजार अनुरूपण विधि* (Market Simulation Method)—इस विधि के अतर्गत एक बनावटी उपभोक्ता दल गठित किया जाता है। जिसे नवीन वस्तु से भी सबधित कई व्यावसायिक विज्ञापन दिखाए जाते है। उन्हें मुद्रा भी दी जाती है जिसे वे खर्च कर सकते है या अपने पास रख सकते है। परीक्षण के दौरान विभिन्न वस्तुओं की कीमतें उनकी पैकेजिंग, गुणवत्ता आदि परिवर्तित

किए जाते हैं ताकि इन परिवर्तनो के फलस्वरूप उपभोक्ताओ की प्रतिक्रियाओ का अवलोकन किया जा सके। इस तरह से प्राप्त सूचना निश्चय ही पूर्वानुमान के लिए सतोषप्रद होगी।

इन दोनो रूपो मे *वास्तविक बाजार परीक्षण विधि अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय है* क्योकि बाह्य घटको पर इसका अधिक नियत्रण होता है। बाजार परीक्षण विधि यद्यपि खर्चीली और जोखिम भरी है फिर भी यह विशाल बाजार वाली फर्मों, नवीन वस्तुओं और साख्यिकीय अध्ययन के परिणामो की जाच के लिए अति उपयोगी है।

(B) साख्यिकीय विधि (Statistical Method)

साख्यिकीय विधि के अतर्गत अर्थमिति मॉडल के माध्यम से पिछला अनुभव अर्थात ऐतिहासिक आकडो का विश्लेषण किया जाता है। और उसके आधार पर माग पूर्वानुमान किए जाते हैं। इसके अतर्गत मुख्य विधिया निम्न हैं

1 ट्रेड प्रोजेक्शन विधि (Trend Projection Method)—यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि भूतकालीन प्रवृत्ति के आधार पर भविष्य का अनुमान किया जा सकता है। फर्म के भूतकालीन विक्रय आकडों को जब कालक्रमानुसार सजाया जाता है तो उसे काल-श्रेणी *(time series)* कहते हैं। काल श्रेणी आकडे महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो को दर्शा सकते हैं जिनके लिए उत्तरदायी घटक हैं प्रवृत्ति, ऋतुगत परिवर्तन, आकस्मिक आघात और चक्रीय उतार-चढाव। पूर्वानुमान मे व्यावसायिक उतार-चढाव की प्रकृति जानने के लिए काल-श्रेणी आकडो का अपघटन किया जाता है। वस्तु विशेष के माग पूर्वानुमान के लिए काल-श्रेणी आकडो का प्रयोग मुख्यत दो प्रकार से किया जाता है *आलेखीय विधि और न्यूनतम वर्ग विधि।*

(1) आलेखीय विधि (Graphical Method)—इसके अतर्गत ग्राफ पेपर पर काल श्रेणी आकडो को चित्रित किया जाता है और इनसे होकर एक ऐसी मुक्त-हस्त रेखा खीची जाती है जिससे रेखा और बिदुओं के बीच की कुल दूरी न्यूनतम हो। यह आकडो की सामान्य प्रवृत्ति दर्शाती है। इसी रेखा को आगे बढाकर विचाराधीन वर्ष से सबधित माग का पूर्वानुमान प्राप्त किया जा सकता है। परतु यह सिर्फ प्रवृत्ति दर्शाती है उसका माप नहीं करती।

(2) न्यूनतम वर्ग विधि (Least Square Method)—इस विधि के अतर्गत प्रवृत्ति समीकरण द्वारा निर्धारित प्रवृत्ति रेखा साख्यिकीय तकनीको की सहायता से काल-श्रेणी आकडो मे फिट कर दी जाती है। रेखा इस ढग से खींची जाती है कि *परिकल्पित और अवलोकित मूल्य के बीच वर्गकृत* विचलनो का योग न्यूनतम हो सके। प्रवृत्ति समीकरण या तो रेखीय या किसी प्रकार के अरेखीय रूप मे हो सकता है। इस तकनीक का प्रयोग प्रवृत्ति रेखा प्राप्त करने के लिए किया जाता है जो उपलब्ध आकडो के लिए *सर्वोत्तम माना जाता है। आगे, इस प्रवृत्ति का प्रयोग* भविष्य मे आश्रित अथवा माग पूर्वानुमान के लिए किया जाता है। यह विधि सरल, कम खर्चीली एव अति लोकप्रिय है।

2 सह-सबध और प्रतीपगमन विधि (Correlation and Regression Method)—इस विधि के *अतर्गत माग अर्थात आश्रित* चर और आय,कीमत जैसे स्वतत्र चरो के बीच एक सबध स्थापित किया जाता है। इसके लिए विचाराधीन वस्तुओ से सबधित ऐतिहासिक आकडे और उसके निर्धारको की आवश्यकता होती है। इस विधि की मान्यता है कि आश्रित और स्वतत्र चरो के बीच भूत मे विद्यमान कार्यात्मक सबध पूर्वानुमानित अवधि मे भी कायम रहेगे। माग और उसके निर्धारको

के बीच रेखीय माग फलन को मानते हुए हम पूर्वानुमान के लिए इस समीकरण को अपना सकते हैं -

यहा D मि, ,=अ, है।
a स्थिर , u,एव e माग और Px, चल
(Parameters) चलों का मान न्यूनतम वर्ग विधि सकता है। यह विधि स लोकप्रिय रही है।

3 बरॉमीट्रिक तकनीक (Barometric Technique)—बरॉमीट्रिक इस मान्यता पर आधारित है कि वर्तमान की कुछ घटनाओ का प्रयोग भविष्य म परिवर्तन की दिशाओं के पूर्वानुमान के लिए किया जा सकता है। यह काम आर्थिक और साख्यिकीय सकेतको के प्रयोग द्वारा पूरा किया जाता है। ये आर्थिक सकेतक निम्न हैं

(1) प्रमुख सकेतक (Leading Indicator)—इनका प्रयोग ही सर्वाधिक सामान्य बरॉमीट्रिक तकनीक है। प्रमुख सकेतक वह चर है जो उस चर के भविष्यकालीन व्यवहार मे सहसबधित हैं जिसके लिए पूर्वानुमान किया जाना है। उदाहरणार्थ, भवन-निर्माण सामग्रियो के माग पूर्वानुमान के लिए स्वीकृत भवन-निर्माण अविदाओ की सख्या प्रमुख सकेतक होगा।

(2) अनुरूप सकेतक (Coincident Indicator)—ये सकेतक प्रमुख सकेतकों की गतिविधि के अनुसार साथ-साथ बढ़ते हैं और घटते हैं, जैसे व्यक्तिगत आय।

(3) पीछे रहने वाले सकेतक (Lagging Indicator)—ये सकेतक प्रमुख सकेतकों की गतिविधि के उपरात आगे या पीछे चलते हैं। उदाहरणार्थ, अल्पकालीन व्यवसाय ऋणों पर बैंक दर।

पूर्वानुमान में निम्न साख्यिकीय सकेतको का प्रयोग होता है—

(क) प्रसार सूचक (Diffusion Indexes)—प्रसार सूचक उत्पादन या उपभोग जैसे विशेष वर्ग मे चुनिन्दा आर्थिक काल-श्रेणियो की दिशा और तीव्रता को दर्शाती है।

(ख) सम्मिश्र सूचक (Composite Indexes)—सम्मिश्र सूचक कई चुनिन्दा एकल सकेतकों का भारित औसत होता है।

इस प्रकार बरॉमीट्रिक तकनीक सरल, बोधगम्य और व्यवसाय क्रिया मे मोड बिन्दुओं का अग्रिम पता लगाने के लिए उपयोगी है। परतु इसके अतर्गत प्रत्येक चर के लिए प्रमुख सकेतक की पहचान करना सदैव सभव नहीं होता है।

अत किसी वस्तु के माग पूर्वानुमान के लिए विविध विधियों एव तकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है जिनके अपने गुण एव दोष हैं। वास्तव में, इनकी उपयोगिता और विश्वसनीयता माग पूर्वानुमान के उद्देश्य, पूर्वानुमान की तीव्रता, आकडों की उपलब्धता, आकडा संचय की विधि,उपयुक्त सूत्र का चुनाव आदि पर निर्भर करती है। माग पूर्वानुमान के लिए उपयुक्त विधि का चुनाव करते समय एक अच्छे पूर्वानुमान का तकनीक की कसौटियों पर अवश्य विचार किया जाना चाहिए।

प्रश्न

1 माग पूर्वानुमान किसे कहते हैं? इसके उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
2 माग पूर्वानुमान से आप क्या समझते हैं? एक फर्म के लिए इसका क्या महत्त्व है?
3 माग पूर्वानुमान क्या है? इसको मापन की विभिन्न विधियों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
4 नई वस्तुओं की माग का अनुमान कैसे लगाया जाता है? व्याख्या कीजिए।
5 माग पूर्वानुमान का अर्थ, विधियां, महत्त्व और परिस्थितियों का विवेचन कीजिए।